हिंदी शब्दसागर

प्रथम भाग

["अ" से "ईहित" तक, शब्दसंख्या—१८०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट	रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह	जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन	रामचंद्र वर्मा



संपादकमंडल

संपूर्णानंद	कमलापति त्रिपाठी
मंगलदेव शास्त्री	धीरेंद्र वर्मा
कृष्णदेवप्रसाद गौड	रामधन शर्मा
हरवंशलाल शर्मा	शिवनंदनलाल दर
शिवप्रसाद मिश्र	सुधाकर पांडेय
भोलाशंकर व्यास (सह० संयो०)	करुणापति त्रिपाठी (संयोजक, संपादकमंडल)

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री	विश्वनाथ त्रिपाठी

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

हिंदी शब्दसागर के संपादन का संपूर्ण तथा इसके प्रकाशन का पचहत्तर प्रतिशत व्ययभार भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया।

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण (दूसरी बार)

शकाब्द १९०७ सं० २०४२ वि० १९८६ ई०

मूल्य नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ६३३)७५
मूल्य.....

शंभुनाथ वाजपेयी द्वारा
नागरी मुद्रण, वाराणसी
में मुद्रित

प्रथम संस्करण की भूमिका

किसी जाति के जीवन मे उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दो का अत्यत महत्वपूर्ण स्थान है। आवश्यकता तथा स्थिति के अनुसार इन प्रयुक्त शब्दो का आगम अथवा लोप तथा वाच्य, लक्ष्य एव द्योत्य भावों मे परिवर्तन होता रहता है। अतएव और सामग्री के अभाव मे इन शब्दो के द्वारा किसी जाति के जीवन की भिन्न भिन्न स्थितियों का इतिहास उपस्थित किया जा सकता है। इसी आधार पर आर्यजाति का प्राचीनतम इतिहास प्रस्तुत किया गया है और ज्यो ज्यो सामग्री उपलब्ध होती जा रही है, त्यों त्यों यह इतिहास ठीक किया जा रहा है। इस अवस्था मे यह बात स्पष्ट समझ मे आ सकती है कि जातीय जीवन मे शब्दो का स्थान कितने महत्व का है। जातीय साहित्य को रक्षित करने तथा उसके भविष्य को सुचारु और समुज्वल बनाने के अतिरिक्त वह किसी भाषा की सपन्नता या शब्दबहुलता का सूचक और उस भाषा के साहित्य का अध्ययन करनेवालो का सबसे बडा सहायक भी होता है। विशेषत अन्य भाषा भाषियो और विदेशियो के लिये तो उसका और भी अधिक उपयोग होता है। इन सब दृष्टियों से शब्दकोश किसी भाषा के साहित्य की मूल्यवान् सपत्ति और उस भाषा के भडार का सबसे बडा निदर्शक होता है।

जब अँगरेजो का भारतवर्ष के साथ घनिष्ठ सबध स्थापित होने लगा, तब नवागतुक अँगरेजो को इस देश की भाषाएँ जानने की विशेष आवश्यकता पडने लगी; और फलत वे देशभाषाओ के कोश, अपने सुभीते के लिये बनाने लगे। इस प्रकार इस देश मे आधुनिक ढग के और अकारादि क्रम से बननेवाले शब्दकोशो की रचना का सूत्रपात हुआ। कदाचित् देशभाषाओ मे से सबसे पहले हिंदी (जिसे उस समय अँगरेज लोग हिंदुस्तानी कहा करते थे) के दो शब्दकोष श्रीयुक्त जे० फर्गुसन नामक एक सज्जन ने प्रस्तुत किए थे, जो रोमन अक्षरो मे सन् १७७३ मे लदन मे छपे थे। इनमे से एक 'हिंदुस्तानी अँगरेजी' का और दूसरा 'अँगरेजी हिंदुस्तानी' का था। इसी प्रकार का एक कोश सन् १७९० मे मदरास में छपा था जो श्रीयुक्त हेनरी हेरिस के प्रयत्न का फल था। सन १८०८ मे जोसफ टेलर और विलियम हटर के समिलित उद्योग से कलकत्ते मे एक 'हिंदुस्तानी अँगरेजी काश' प्रकाशित हुआ था। इसके उपरात १८१० मे एडिनबरा मे श्रीयुक्त जे० बी० गिलक्राइस्ट का और सन १८१७ मे लदन मे श्रीयुक्त जे० शेक्सपियर का एक 'अँगरेजी हिंदुस्तानी' और एक 'हिंदुस्तानी अँगरेजी' कोश निकला था, जिसके पीछे से तीन सस्करण हुए थे। इनमे से अतिम संस्करण बहुत कुछ परिवर्धित था। परतु ये सभी कोश रोमन अक्षरों मे थे और इनका व्यवहार अँगरेज या अँगरेजी पढे लिखे लोग ही कर सकते थे। हिंदीभाषा या देवनागरी अक्षरो मे जो सबसे पहला कोश प्रकाशित हुआ था, वह पादरी एम० टी० एडम ने तैयार किया था। इसका नाम 'हिंदी कोश' था और यह सन् १८२९ मे कलकत्ते से प्रकाशित हुआ था। तब से ऐसे शब्दकोश निरतर बनने लगे, जिनमें या तो हिंदी शब्दो के अर्थ अँगरेजी में और या अँगरेजी शब्दो के अर्थ हिंदी मे होते थे। इन कोशकारो मे श्रीयुक्त एम० डब्ल्यू० फैलन का नाम विशेष रूप से उल्लेख करने योग्य है, क्योकि इन्होंने साधारण बोलचाल के छोटे बडे कई कोश बनाने के अतिरिक्त, कानून और व्यापार आदि के पारिभाषिक शब्दो के भी कुछ कोश बनाए थे। परतु इनका जो 'हिंदुस्तानी अँगरेजी कोश' था उसमे यद्यपि अधिकाश शब्द हिंदी के ही थे, फिर भी अरबी फारसी के शब्दों की कमी नही थी, और कदाचित् फारस के अदालती लिपि होने के कारण ही उसमे शब्द फारसी लिपि मे, अर्थ अँगरेजी मे और उदाहरण रोमन मे दिए गए थे। सन् १८८४ मे लदन मे श्रीयुक्त जे० टी० प्लाट्स का जो कोश छपा था वह भी बहुत अच्छा था और उसमे भी हिंदी तथा उर्दू शब्दो के अर्थ अँगरेजी भाषा मे दिए गए थे। सन् १८७३ मे मु० राधेलालजी का शब्दकोश गया से प्रकाशित हुआ था जिसके लिये सरकार से उन्हें यथेष्ट पुरस्कार भी मिला था। श्रीयुक्त पादरी जे० डी० बेट ने पहले सन् १८७५ मे काशी से एक हिंदी कोश प्रकाशित किया था, जिसमे हिंदी के शब्दों के अर्थ अँगरेजी मे दिए गए थे। इसी समय के लगभग काशी से कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी का हिंदी कोश प्रकाशित हुआ था, जिसमे हिंदी के शब्दो के अर्थ हिंदी मे ही थे। बेट के कोश के भी पीछे से दो और सशोधित तथा परिवर्धित सस्करण प्रकाशित हुए थे। सन् १८७५ मे ही पेरिस मे एक कोश का कुछ अश प्रकाशित हुआ था, जिसमे हिंदी या हिंदुस्तानी शब्दो के अर्थ फ्रासीसी भाषा मे दिए गए थे। सन् १८८० मे लखनऊ से सैयद जामिन अली जलाल का 'गुलशने फैज' नामक एक कोश प्रकाशित हुआ था, जो था तो फारसी लिपि मे ही, परतु शब्द उसमे अधिकाश हिंदी के थे। सन् १८८७ मे तीन महत्व के कोश प्रकाशित हुए थे, जिनमे सबसे अधिक महत्व का कोश मिरजा शाहजादा कैसरबख्त का बनाया हुआ था। इसका नाम 'कैसर कोश' था और यह इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था (दूसरा कोश श्रीयुक्त मधुसूदन पडित का बनाया हुआ था जिसका नाम 'मधुसूदन निघटु' था और जो लाहौर से प्रकाशित हुआ था। तीसरा-कोश श्रीयुक्त मुन्नीलाल का था जो दानापुर मे छपा था और जिसमे अँगरेजी शब्दों के अर्थ हिंदी मे दिए गए थे। सन् १८८१ और १८९५ के बीच मे पादरी टी० केपन के बनाए हुए कई कोश प्रकाशित हुए थे, जो प्राय स्कूलो के विद्यार्थियों के काम के थे। १८९२ मे बाँकीपुर से श्रीयुक्त बाबा बैजूदास का 'विवेक' कोश निकला था। इसके उपरात 'गौरीनागरी कोश', 'हिंदीकोश', 'मगलकोश' 'श्रीधरकोश' आदि छोटे छोटे और भी कई कोश निकले थे, जिनमे हिंदी शब्दो के अर्थ हिंदी मे ही दिए गए थे। इनके अतिरिक्त कहावतो और मुहावरो आदि के जो कोश निकले थे, वे अलग हैं।

इस बीसवी शताब्दी के आरभ से ही मानो हिंदी के भाग्य ने पलटा खाया और हिंदी का प्रचार धीरे धीरे बढने लगा। उसमें निकलनेवाले सामयिक पत्रो तथा पुस्तको की सख्या भी बढने लगी और पढनेवालों की भी सख्या मे उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। तात्पर्य यह कि दिन पर दिन लोग हिंदी साहित्य की ओर प्रवृत्त होने लगे और हिंदी पुस्तकें चाव से पढ़ने लगे। लोगो मे प्राचीन काव्यो आदि को

पढ़ने की उत्कंठा बढ़ने लगी। उस समय हिंदी के हितैषियों को हिंदी-भाषा का एक ऐसा वृहत् कोश तैयार करने की आवश्यकता जान पड़ने लगी, जिसमे हिंदी के पुराने पद्य और नए गद्य दोनो मे व्यवहृत होनेवाले समस्त शब्दों का समावेश हो, क्योकि ऐसे कोश के विना आगे चलकर हिंदी के प्रचार मे कुछ बाधा पहुँचने की आशका थी।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने जितने बडे बडे और उपयोगी काम किए हैं, जिस प्रकार प्राय उन सबका सूत्रपात या विचार सभा के जन्म के समय, उसके प्रथम वर्ष मे हुआ था, उसी प्रकार हिंदी का वृहत् कोश बनाने का सूत्रपात नही तो कम से कम विचार भी उसी प्रथम वर्ष मे हुआ था। हिंदी मे सर्वांगपूर्ण और वृहत् कोश का अभाव सभा के संचालको को १८९३ ई० मे ही खटका था और उन्होंने एक उत्तम कोश बनाने के विचार से आर्थिक सहायता के लिये दरभगानरेश महाराजा सर लक्ष्मीश्वर सिंह जी से प्रार्थना की थी। महाराजा ने भी शिशु सभा के उद्देश्य की सराहना करते हुए १२५) उसकी सहायता के लिये भेजे थे और उसके साथ सहानुभूति प्रकट की थी। इसके अतिरिक्त आपने कोश का कार्य आरभ करने के लिये भी सभा से कहा था और यह भी आशा दिलाई थी कि आवश्यकता पड़ने पर वे सभा को और भी आर्थिक सहायता देंगे। इस प्रकार सभा ने नौ सज्जनो की एक उपसमिति इस सबध मे विचार करने के लिये नियुक्त की, पर उपसमिति ने निश्चय किया कि इस कार्य के लिये बड़े बड़े विद्वानों की सहायता की आवश्यकता होगी और इसके लिये कम से कम दो वर्ष तक २५०) मासिक का व्यय होगा। सभा ने इस संबध मे फिर श्रीमान् दरभगानरेश को लिखा था, परतु अनेक कारणों से उस समय कोश का कार्य आरभ नही हो सका। अतः सभा ने निश्चय किया कि जबतक कोश के लिये यथेष्ट धन एकत्र न हो तथा दूसरे आवश्यक प्रबध न हो जांय तबतक उसके लिये आवश्यक सामग्री ही एकत्र की जाय। तदनुसार उसने सामग्री एकत्र करने का कार्य भी आरभ कर दिया।

सन् १९०४ मे सभा को पता लगा कि कलकत्ते की हिंदी साहित्य सभा ने हिंदी भाषा का एक वृहत बडा कोश बनाना निश्चित किया है और उसने इस सबध मे कुछ कार्य भी आरभ कर दिया है। सभा का उद्देश्य केवल यही था कि हिंदी मे एक बहुत बडा कोश तैयार हो जाय, स्वय उसका श्रेय प्राप्त करने का उसका कोई विचार नही था। अत सभा ने जब देखा कि कलकत्ते की साहित्य सभा कोश बनवाने का प्रयत्न कर रही है, तब उसने बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक निश्चय किया कि अपनी सारी सचित सामग्री साहित्य सभा को दे दी जाय और यथासाध्य सब प्रकार से उसकी सहायता की जाय। प्राय तीन वर्ष तक सभा इसी आसरे मे थी कि साहित्य सभा कोश तैयार करे। परतु कोश तैयार करने का जो यश स्वयं प्राप्त करने की उसकी कोई विशेष इच्छा न थी, विधाता वह यश उसी को देना चाहता था। जब सभा ने देखा कि साहित्य-सभा की ओर से कोश की तैयारी का कोई प्रबंध नहीं हो रहा है, तब उसने इस काम को स्वय अपने ही हाथ में लेना निश्चित किया। जब सभा के सचालको ने आपस मे इस विषय की सब बातें पक्की कर लीं, तब २३ अगस्त, सन् १९०७ को सभा के परम हितैषी और उत्साही सदस्य श्रीयुक्त रेवरेंड ई० ग्रीव्स ने सभा की प्रबधकारिणी समिति मे यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि हिंदी के एक वृहत् और सर्वांगपूर्ण कोश बनाने का भार सभा अपने ऊपर ले, और साथ ही यह भी बतलाया कि यह कार्य किस प्रणाली से किया जाय। सभा ने मि० ग्रीव्स के प्रस्ताव पर विचार करके इस विषय में उचित परामर्श देने के लिये निम्नलिखित सज्जनो की एक उपसमिति नियत कर दी—रेवरेंड ई० ग्रीव्स, महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी, पडित राम॰नारायण मिश्र बी० ए०, बाबू गोविंददास, बाबू इद्रनारायण सिंह एम० ए०, छोटेलाल, मुशी सकटाप्रसाद, पडित माधवप्रसाद पाठक और मैं।

इस उपसमिति के कई अधिवेशन हुए जिनमे सब बातो पर पूरा विचार किया गया। अत मे ९ नवबर, १९०७ को इस उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट दी, जिसमे सभा को परामर्श दिया गया कि सभा हिंदी॰भाषा के दो बडे कोश बनवावे जिनमे से एक मे तो हिंदी शब्दों के अर्थ हिंदी मे ही रहें और दूसरे मे हिंदी शब्दो के अर्थ अंगरेजी में हों। आजकल हिंदी भाषा में गद्य तथा पद्य मे जितने शब्द प्रचलित हैं उन सबका इन कोशों मे समावेश हो, उनकी व्युत्पत्ति दी जाय और उनके भिन्न भिन्न अर्थ यथासाध्य उदाहरणों सहित दिए जायें। उपसमिति ने हिंदी भाषा के गद्य तथा पद्य के प्राय दो सौ अच्छे अच्छे ग्रथों की एक सूची भी तैयार कर दी थी और कहा था कि इनमें से सब शब्दों का अर्थसहित सग्रह कर लिया जाय, कोश की तैयारी का प्रबंध करने के लिये उसकी एक स्थायी समिति बना दी जाय और कोश के सपादन तथा उसकी छपाई आदि का सब प्रबध करने के लिये एक सपादक नियुक्त कर दिया जाय।

समिति ने यह भी निश्चित किया कि कोश के सबध में आवश्यक प्रबध करने के लिये महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी, लाला छोटेलाल, रेवरेंड ई० ग्रीव्स, बाबू इद्रनारायण सिंह एम० ए०, बाबू गोविंददास, पडित माधवप्रसाद पाठक और पडित रामनारायण मिश्र बी० ए० की प्रबधकर्तृ समिति बना दी जाय, और उसके मत्रित्व का भार मुझे दिया जाय। समिति का प्रस्ताव था कि उस प्रबधकर्तृ समिति को अधिकार दिया जाय कि वह आवश्यकतानुसार अन्य सज्जनो को भी अपने मे समिलित कर ले। इस कोश के सबंध मे प्रबधकर्तृ समिति को समति और सहायता देने के लिये एक और बडी समिति बनाई जाने की समति भी दी गई जिसमे हिंदी के समस्त बडे बडे विद्वान् और प्रेमी समिलित हो। उस समय यह अनुमान किया था कि इस काम मे लगभग ३००००) का व्यय होगा जिसके लिये सभा को सरकार तथा राजा महाराजाओं से प्रार्थना करने का परामर्श दिया गया।

सभा की प्रबधकारिणी समिति ने उपसमिति की ये बातें मान लीं और तदनुसार कार्य भी आरभ कर दिया। शब्दसग्रह के लिये, उपसमिति ने जो पुस्तकें बतलाई थीं, उनमे से शब्दसग्रह का कार्य भी आरभ हो गया और धन के लिये अपील भी हुई, जिससे पहले ही वर्ष २३३२) के वचन मिले, जिसमें से १९०२) नगद भी सभा को प्राप्त हो गए। इसमें से सबसे पहले १०००) स्वर्गीय माननीय सर सुदरलाल सी० आई० ई० ने भेजे थे। सत्य तो यह है कि यदि प्रार्थना करते ही उक्त महानुभाव तुरत १०००) न भेज देते तो सभा का कभी इतना उत्साह न बढ़ता और बहुत सभव था कि कोश का काम और कुछ समय के लिये टल जाता। परतु सर सुदरलाल से १०००) पाते ही सभा का उत्साह बहुत अधिक बढ़ गया और उसने और भी तत्परता से कार्य करना आरभ किया। उसी समय श्रीमान् महाराज ग्वालियर ने भी १०००) देने

को वचन दिया। इसके अतिरिक्त और भी अनेक छोटी मोटी रकमो के वचन मिले। तात्पर्य यह कि सभा को पूर्ण विश्वास हो गया कि अब कोश तैयार हो जायेगा।

इस कोश के सहायतार्थ सभा को समय समय पर निम्नलिखित गवर्नमेंटो, महाराजो तथा अन्य सज्जनों से सहायता प्राप्त हुई—

संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट	१३०००)
भारत गवर्नमेंट	५०००)
मध्यप्रदेश की गवर्नमेंट	१०००)
श्रीमान् महाराज साहब नेपाल	२०००)
„ स्वर्गवासी महाराज साहब रीवाँ	१८००)
„ महाराज साहब छत्रपुर	१५००)
„ महाराज साहब बीकानेर	१५००)
„ महाराजाधिराज वर्दवान	१५००)
„ महाराज साहब अलवर	१०००)
„ स्वर्गवासी महाराज साहब ग्वालियर	१०००)
„ स्वर्गवासी महाराजा साहब काश्मीर	१०००)
„महाराज साहब काशी	१०००)
डाक्टर सर सुदरलाल	१०००)
स्वर्गवासी राजा साहब भिनगा	१०००)
कुँवर राजेंद्रसिंह	१०००)
श्रीमान् महाराज साहब भावनगर	५००)
„ महाराज साहब इदौर	५००)
„ स्वर्गवासी राजा साहब गिद्धौर	५००)
डाक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन	१५०)

इनके अतिरिक्त और बहुत से महानुभावो से १००) अथवा उससे कम की सहायता प्राप्त हुई।

शब्दसग्रह करने के लिये जो पुस्तकें चुनी गई थी, उन पुस्तको को सभासदो मे बाँटकर उनसे शब्दसग्रह कराने का सभा का विचार था। बहुत से उत्साही सभासदो ने पुस्तकें तो मँगवा ली पर कार्य कुछ भी न किया। बहुतो ने तो महीनो पुस्तकें अपने पास रखकर अत मे ज्यो की त्यों लौटा दीं और कुछ लोगो ने पुस्तकें भी हजम कर ली। थोडे से लोगों ने शब्दसग्रह का काम किया था, पर उनमे भी सतोषजनक काम इने गिने सज्जनो का ही था। इसमे व्यर्थ बहुत सा समय नष्ट हो गया, पर धन की यथेष्ट सहायता सभा को मिलती जाती थी, अत दूसरे वर्ष सभा ने विवश होकर निश्चित किया कि शब्दसग्रह का काम वेतन देकर कुछ लोगों से कराया जाय। तदनुसार प्राय १६-१७ आदमी शब्दसग्रह के काम के लिये नियुक्त कर दिए गए और एक निश्चित प्रणाली पर शब्दसग्रह का काम होने लगा।

आरभ मे कोश के सहायक सपादक पडित बालकृष्ण भट्ट, पडित रामचद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन और बाबू अमीरसिह के अतिरिक्त बाबू जगन्मोहन वर्मा, बाबू रामचद्र वर्मा पडित वासुदेव मिश्र, पडित रामवचनेश मिश्र, पडित ब्रजभूषण ओझा, श्रीयुत वेणी कवि आदि अनेक सज्जन भी इस शब्दसग्रह के काम मे संमिलित थे। शब्दसग्रह के लिये सभा केवल पुस्तकों पर ही निर्भर नही रही। कोश मे पुस्तको के शब्दों के अतिरिक्त और भी अनेक ऐसे शब्दो की आवश्यकता थी जो नित्य की बोलचाल के, पारिभाषिक अथवा ऐसे विषयों के शब्द थे जिनपर हिंदी मे पुस्तकें नहीं थी। अतः सभा ने मुशी रामलगनलाल नामक एक सज्जन को शहर मे घूम घूमकर अहीरो, कहारो, लोहारो, सोनारों, चमारों, तमोलियो, तेलियों, जोलाहों, भालू और बदर नचानेवालो, कूचेबदो, धुनियो, गाटीवानो, कुश्तीबाजों, कसेरो, राजगीरो, छापेखानेवालों, महाजनो, बजाजो, दलालो, जुआरियो, मल्लाहो, पसारियो, साईसो आदि के पारिभाषिक शब्द तथा गहनो, कपडो, अनाजो, पेडो, बरतनो, देवताओ, गृहस्थी की चीजो, पकवानो, मिठाइयो, विवाह आदि की रस्मो, तरकारियों, सागो, फलो, घासो, खेलो और उनके साधनो, आदि आदि के नाम एकत्र करने के लिये नियुक्त किया। पुस्तकों के शब्दसग्रह के साथ साथ यह काम भी प्राय दो वर्ष तक चलता रहा। इस सबध मे यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि मुशी रामलगनलाल का इस सबध का शब्दसग्रह बहुत सतोषजनक था। इसके अतिरिक्त सभा ने बाबू रामचद्र वर्मा को समस्त भारत के पशुओं, पक्षियो, मछलियो, फूलो और पेडो आदि के नाम एकत्र करने के लिय कलकत्ते भेजा था जिन्होने प्राय. ढाई मास तक वहाँ रहकर इपीरियल लाइब्रेरी से 'फ्लोरा और फॉना आफ बृटिश इडिया सीरिज' की समस्त पुस्तको मे से नाम और विवरण आदि एकत्र किए थे। हिंदी भाषा मे व्यवहृत होनेवाले अँगरेजी, फारसी, अरबी तथा तुर्की आदि भाषाओं के शब्दो, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियो की जीवनियो, प्राचीन स्थानो तथा कहावतो आदि के सग्रह का भी बहुत अच्छा प्रबध किया गया था। पुरानी हिंदी तथा डिंगल और बुदेलखडी आदि भाषाओ के शब्दो का भी अच्छा सग्रह किया गया था। इसमे सभा का मुख्य उद्देश्य यह था कि जहाँ तक हो सके, कोश मे हिंदी भाषा मे व्यवहृत होने या हो सकनेवाले अधिक से अधिक शब्द आ जायँ और यथासाध्य कोई आवश्यक बात या शब्द छूटने न पावे। इसी विचार से सभा ने अँगरेजी, फारसी, अरबी और तुर्की आदि भाषाओ के शब्दो, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों और स्थानो के नामो आदि की एक बडी सूची भी प्रकाशित कराके घटाने बढाने के लिये हिंदी के बडे बडे विद्वानो के पास भेजी थी।

दो ही वर्ष मे सभा का अनेक बडे बड़े राजा महाराजाओ तथा प्रातीय और भारतीय सरकारो से कोश के सहायतार्थ बडी बडी रकमे भी मिलीं, जिससे सभा तथा हिंदीप्रेमियो को कोश के तैयार होने मे किसी प्रकार का सदेह नही रह गया और सभा बडे उत्साह से कोश का काम कराने लगी। आरभ मे सभा ने यह निश्चित नही किया था कि कोश का सपादक कौन बनाया जाय, पर दूसरे वर्ष सभा ने मुझे कोश का प्रधान सपादक बनाना निश्चित किया। मैंने भी सभा की आज्ञा शिरोधार्य करके यह भार अपने ऊपर ले लिया।

सन् १९१० के आरभ मे शब्दसग्रह का कार्य समाप्त हो गया। जिन स्लिपो पर शब्द लिखे गए थे, उनकी सख्या अनुमानत १० लाख थी, जिनमे से आशा की गई थी कि प्राय १ लाख शब्द निकलेंगे, और प्राय यही बात अत मे हुई भी। जब शब्दसग्रह का काम हो चुका, तब स्लिपें अक्षरक्रम से लगाई जाने लगीं। पहले वे स्वरो और व्यजनो के विचार से अलग अलग की गई और तब स्वरो के प्रत्येक अक्षर तथा व्यजनो के प्रत्येक वर्ग की स्लिपें अलग अलग की गई। जब स्वरो की स्लिपें अक्षरक्रम से लग गई, तब व्यजनो के वर्गों के अक्षर अलग अलग किए गए और प्रत्येक अक्षर की स्लिपें क्रम से लगाई गई। यह कार्य प्राय. एक वर्ष तक चलता रहा।

जिस समय कोश के सपादन का भार मुझे दिया गया था, उसी

समय सभा ने यह निश्चित कर दिया था कि पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन तथा बाबू अमीर सिंह कोश के सहायक संपादक बनाए जायँ और ये लोग कोश के संपादन में मेरी सहायता करें। अक्टूबर, १९०९ में मेरी नियुक्ति काश्मीर राज्य में हो गई जिसके कारण मुझे काशी छोड़कर काश्मीर जाना आवश्यक हुआ। उस समय मैंने सभा से प्रार्थना की कि इतनी दूर से कोश का संपादन सुचारु रूप से न हो सकेगा। अतः सभा मेरे स्थान पर किसी और सज्जन को कोश का संपादक नियुक्त करे। परंतु सभा ने यही निश्चय किया कि कोश का कार्यालय भी मेरे साथ आगे चलकर काश्मीर भेज दिया जाय और वहीं कोश का संपादन हो। उस समय तक स्लिपें अक्षरक्रम से लग चुकी थीं और संपादन का कार्य अच्छी तरह आरंभ हो सकता था। अतः १५ मार्च, १९१० को काशी में कोश का कार्यालय बंद कर दिया गया और निश्चय हुआ कि चारों सहायक संपादक जंबू पहुँचकर १ अप्रैल, १९१० से वहीं कोश के संपादन का कार्य आरंभ करें। तदनुसार पंडित रामचंद्र शुक्ल और बाबू अमीर सिंह तो यथासमय जंबू पहुँच गए, पर पंडित बालकृष्ण भट्ट तथा लाला भगवानदीन ने एक एक मास का समय माँगा। दुर्भाग्यवश बाबू अमीर सिंह के जंबू पहुँचने के चार पाँच दिन बाद ही काशी में उनकी स्त्री का देहांत हो गया, जिससे उन्हें थोड़े दिनों के लिये फिर काशी लौट आना पड़ा। उस बीच में अकेले पंडित रामचंद्र शुक्ल ही संपादन कार्य करते रहे। मई के आरंभ में पंडित बालकृष्ण भट्ट और बाबू अमीर सिंह जंबू पहुँचे और संपादनकार्य करने लगे। पर लाला भगवानदीन कई बार प्रतिज्ञा करके भी जंबू न पहुँच सके, अतः सहायक संपादक के पद से उनका संबंध छूट गया। शेष तीनों सहायक संपादक महाशय उत्तमतापूर्वक संपादन कार्य करते रहे। कोश के विषय में सम्मति लेने के लिये आरंभ में जो कोश कमेटी बनी थी, वह १ मई, १९१० को अनावश्यक समझकर तोड़ दी गई।

कोश का संपादन आरंभ हो चुका था और शीघ्र ही उसकी छपाई का प्रबंध करना आवश्यक था, अतः सभा ने कई बड़े बड़े प्रेसों से कोश की छपाई के नमूने मँगाए। अंत में प्रयाग के सुप्रसिद्ध इंडियन प्रेस को कोश की छपाई का भार दिया गया। इस कार्य के लिये आरंभिक प्रबंध करने के लिये उक्त प्रेस को २०००) पेशगी दिए गए और लिखापढ़ी करके छपाई के संबंध में सब बातें तै कर ली गईं।

अप्रैल, १९१० से सितंबर, १९१० तक तो जंबू में कोश के संपादन का कार्य बहुत उत्तमतापूर्वक और निर्विघ्न होता रहा, पर पीछे इसमें एक विघ्न पड़ा। पंडित बालकृष्ण भट्ट जंबू में दुर्घटनावश सीढ़ी पर से गिर पड़े और उनकी एक टाँग टूट गई, जिसके कारण अक्टूबर, १९१० में उन्हें छुट्टी लेकर प्रयाग चले आना पड़ा। नवंबर में बाबू अमीर सिंह भी बीमार हो जाने के कारण छुट्टी लेकर काशी चले आए और दो मास तक यहीं बीमार पड़े रहे। संपादन कार्य करने के लिये जंबू में फिर अकेले पंडित रामचंद्र शुक्ल बच रहे। जब अनेक प्रयत्न करने पर भी जंबू में सहायक संपादकों की संख्या पूरी न हो सकी, तब विवश होकर १५ दिसंबर, १९१० को कोश का कार्यालय जंबू से काशी भेज दिया गया। कोश विभाग के काशी आ जाने पर जनवरी, १९११ से बाबू अमीर सिंह भी स्वस्थ होकर उसमें सम्मिलित हो गए और बाबू जगन्मोहन वर्मा भी सहायक संपादक के पदपर नियुक्त कर दिए गए। दूसरे मास फरवरी में बाबू गंगाप्रसाद गुप्त कोश के सहायक संपादक बनाए गए। जंबू में तो पहले सब सहायक संपादक अलग अलग शब्दों का संपादन करते थे और तब सब लोग एक साथ मिलकर संपादित शब्दों को दोहराते थे। परंतु बाबू गंगाप्रसाद गुप्त के आ जाने पर दो दो सहायक संपादक अलग अलग मिलकर संपादन करने लगे। नवंबर, १९११ में जब बाबू गंगाप्रसाद गुप्त ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया, तब पंडित बालकृष्ण भट्ट पुनः प्रयाग से बुला लिए गए और जनवरी, १९१२ में लाला भगवानदीन भी पुनः इस विभाग में सम्मिलित कर लिए गए तथा मार्च, १९१२ से सब सहायक संपादक संपादन के कार्य के लिये तीन भागों में विभक्त कर दिए गए। इस प्रकार कार्य की गति पहले की अपेक्षा घट तो गई, पर फिर भी उसमें उतनी वृद्धि नहीं हुई जितनी वांछित थी। जब मई, सन् १९१० में 'अ' 'आ' 'इ', और 'ई' का संपादन हो चुका, तब उसकी कापी प्रेस में भेज दी गई और उसकी छपाई में हाथ लगा दिया गया। उस समय तक मैं भी काश्मीर से लौटकर काशी आ गया था, जिससे कार्यनिरीक्षण और व्यवस्था का अधिक सुभीता हो गया।

सन् १९१३ में संपादनशैली में कुछ और परिवर्तन किया गया। पंडित बालकृष्ण भट्ट, बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन तथा बाबू अमीर सिंह अलग अलग संपादन कार्य पर नियुक्त कर दिए गए। सब संपादकों की लेखशैली आदि एक ही प्रकार की नहीं हो सकती थी, अतः सबकी संपादित स्लिपों को दोहराकर एक मेल करने के कार्य पर पंडित रामचंद्र शुक्ल नियुक्त किए गए और उनकी सहायता के लिये बाबू रामचंद्र वर्मा रखे गए। उस समय यह व्यवस्था थी कि दिनभर तो सब सहायक संपादक अलग अलग संपादन कार्य किया करते थे और पंडित रामचंद्र शुक्ल पहले की संपादित की हुई स्लिपों को दोहराया करते थे, और संध्या को चार बजे से पाँच बजे तक सब संपादक मिलकर एक साथ बैठते थे और पंडित रामचंद्र शुक्ल की दुहराई हुई स्लिपों को सुनते तथा आवश्यकता पड़ने पर उसमें परिवर्तन आदि करते थे। इस प्रकार कार्य भी अधिक होता था और प्रत्येक शब्द के संबंध में प्रत्येक सहायक संपादक की संमति भी मिल जाती थी।

मई, १९१२ में छपाई का कार्य आरंभ हुआ था और एक ही वर्ष के अंदर ९६—९६ पृष्ठों की चार संख्याएँ छपकर प्रकाशित हो गईं, जिनमें ८६६६ शब्द थे। सर्वसाधारण में इन प्रकाशित संख्याओं का बहुत अच्छा आदर हुआ। सर जार्ज ग्रियर्सन, डाक्टर रुडाल्फ हार्नली, प्रोफेसर सिलवान लेवी, रेवरेंड ई० ग्रीव्स, पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी, मिस्टर रमेशचंद्र दत्त, पंडित श्यामविहारी मिश्र आदि अनेक बड़े बड़े विद्वानों, पंडितों तथा हिंदीप्रेमियों ने प्रकाशित अंकों की बहुत कुछ प्रशंसा की और अँगरेजी दैनिक लीडर तथा हिंदी साप्ताहिक बंगवासी आदि समाचारपत्रों ने भी समय समय पर अच्छी प्रशंसात्मक आलोचना की। ग्राहकसंख्या भी दिन पर दिन बहुत ही संतोषजनक रूप में बढ़ने लगी।

इस अवसर पर एक बात और कह देना आवश्यक जान पड़ता है। जिस समय मैं पहले काश्मीर जाने लगा था, उस समय पहले यही निश्चय हुआ था कि कोशविभाग काशी में ही रहे और मेरी

अनुपस्थिति मे स्वर्गवासी पडित केशवदेव शास्त्री कोशविभाग का निरीक्षण करें। परतु मेरी अनुपस्थिति मे पडित केशवदेव शास्त्री तथा कोश के सहायक सपादकों में कुछ अनवन हो गई, जिसने आगे चलकर और भी विलक्षण रूप धारण किया। उस समय सपादक लोग प्रवधकारिणी समिति के अनेक सदस्यो तथा कर्मचारियो से वहुत रुष्ट और असतुष्ट हो गए थे। कई मास तक यह झगडा भीपण रूप से चलता रहा और अनेक समाचारपत्रो मे उसके सवध मे कडी टिप्पणियाँ निकलती रही। सभा के कुछ सदस्य तथा वाहरी सज्जन कोश की व्यवस्था और कार्यप्रणाली आदि पर भी अनेक प्रकार के आक्षेप करने लगे, और कुछ सज्जनो ने तो छिपे छिपे ही यहाँ तक उद्योग किया कि अवतक कोश मे जो व्यय हुआ है, वह सव सभा को देकर कोश की सारी सामग्री उससे ले ली जाय और स्वतत्र रूप से उसके सपादन तथा प्रकाशन आदि की व्यवस्था की जाय। यह विचार यहाँ तक पक्का हो गया था कि एक स्वनामधन्य हिंदी विद्वान् से सपादक होने के लिये पत्रव्यवहार तक किया था। साथ ही मुझे उस काम से विरत करने के लिये मुझपर प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न रीति से अनेक प्रकार के अनुचित आक्षेप तथा दोपारोपण किए गए थे। इस आदोलन मे व्यक्तिगत भाव अधिक था। पर थोडे ही दिनो मे यह अप्रिय और हानिकारक आदोलन ठढा पड गया और फिर सव कार्य सुचारु रूप से पूर्ववत् चलने लगा। 'श्रेयासि वहुविघ्नानि' के अनुसार इस वडे काम मे भी समय समय पर अनेक विघ्न उपस्थित हुए पर ईश्वर की कृपा से उनके कारण इस कार्य मे कुछ हानि नही पहुँची।

सन् १९१३ मे कोश का काम अच्छी तरह चल निकला। वह वरावर नियमित रूप से सपादित होने लगा और सख्याएँ वरावर छपकर प्रकाशित होने लगी। वीच वीच मे आवश्यकतानुसार सपादनकार्य में कुछ परिवर्तन होता रहा। इसी वीच मे पडित वालकृष्ण भट्ट, जो इस वृद्धावस्था मे भी वडे उत्साह के साथ कोशसपादन के कार्य मे लगे हुए थे, अपनी दिन पर दिन वढती हुई अशक्तता के कारण अभाग्यवश नववर, १९१३ में कोश के कार्य से अलग होकर प्रयाग चले गए और वही थोडे दिनो वाद उनका देहात हो गया। उस समय वावू रामचद्र वर्मा उनके स्थान पर कोश के सहायक वना दिए गए और कार्यक्रम मे फिर कुछ परिवर्तन की आवश्यकता पडी। निश्चित हुआ कि वावू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन तथा वावू अमीरसिंह आगे के शब्दो का अलग अलग सपादन करें और पडित रामचद्र शुक्ल तथा वावू रामचद्र वर्मा सपादित किए हुए शब्दो को अलग अलग दोहराकर एक मेल करें। इस क्रम मे यह सुभीता हुआ कि आगे का सपादन भी अच्छी तरह होने लगा और सपादित शब्द भी ठीक तरह से दोहराए जाने लगे, और दोनों ही कार्यों की गति मे भी यथेष्ट वृद्धि हो गई। इस प्रकार १९१७ तक वरावर काम चलता रहा और कोश की १५ सख्याएँ छपकर प्रकाशित हो गईं तथा ग्राहकसख्या मे वहुत कुछ वृद्धि हो गई। इस वीच मे और कोई उल्लेख योग्य वात नहीं हुई।

सन् १९१८ के आरभ में तीन सहायक सपादको ने 'ला' तक संपादन कर डाला और दो सहायक सपादकों ने 'वि' तक के शब्द दोहरा डाले। उस समय कई महीनो से कोश की वहुत कापी तैयार रहने पर भी अनेक कारणो से उसका कोई अंक छपकर प्रकाशित न हो सका जिसके कारण आय रुकी हुई थी। कोश विभाग का व्यय वहुत अधिक था और कोश के सपादन का कार्य प्राय समाप्ति पर था अतः कोश विभाग का व्यय कम करने की इच्छा से विचार हुआ कि अप्रैल, १९१८ से कोश का व्यय कुछ घटा दिया जाय। तदनुसार वावू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन और वावू अमीरसिंह त्यागपत्र देकर अपने पद से अलग हो गए। कोश विभाग मे केवल दो सहायक सपादक—पडित रामचद्र शुक्ल और वावू रामचद्र वर्मा—तथा स्लिपो का क्रम लगानेवाले और साफ कापी लिखनेवाले एक लेखक पडित व्रजभूपण ओझा रह गए। इस समय आगे के शब्दो का सपादन रोक दिया गया और केवल पुराने सपादित शब्द ही दोहराए जाने लगे। पर जव आगे चलकर दोहराने योग्य स्लिपें प्राय समाप्त हो चली, और आगे नए शब्दों के सपादन की आवश्यकता प्रतीत हुई तव सपादनकार्य के लिये वावू कालिकाप्रसाद नियुक्त किए गए जो कई वर्षों तक अच्छा काम करके और अत में त्यागपत्र देकर अन्यत्र चले गए। परतु स्लिपों को दोहराने का कार्य पूर्ववत् प्रचलित रहा।

सन् १९२४ मे कोश के सवध मे एक हानिकारक दुर्घटना हो गई थी। आरभ मे शब्दसग्रह की जो स्लिपें तैयार हुई थी, उनके २२ वडल कोश कार्यालय से चोरी चले गए। उनमे 'विव्वोक' से 'श' तक की और 'शय' से 'सही' तक की स्लिपें थी। इसमें कुछ दोहराई हुई पुरानी स्लिपें भी थी जो छप चुकी थी। इन स्लिपो के निकल जाने से तो कोई विशेष हानि नही हुई, क्योंकि सव छप चुकी थी। परतु शब्द-सग्रहवाली स्लिपो के चोरी जाने से अवश्य ही वहुत वडी हानि हुई। इसके स्थान पर फिर कोशो आदि से शब्द एकत्र करने पडे। यह शब्द-सग्रह अपेक्षाकृत थोडा और अधूरा हुआ और इसमे स्वभावत ठेठ हिंदी या कविता आदि के उतने शब्द नही आ सके, जितने आने चाहिए थे, और न प्राचीन काव्यग्रथों आदि के उदाहरण ही समिलित हुए। फिर भी जहाँ तक हो सका, इस त्रुटि की पूर्ति करने का उद्योग किया गया और परिशिष्ट मे वहुत से छूटे हुए शब्द आ भी गए हैं।

सन् १९२५ मे कार्य शीघ्र समाप्त करने के लिये कोश विभाग मे दो नए सहायक अस्थायी रूप से नियुक्त किए गए—एक तो कोश के भूतपूर्व सपादक वावू जगन्मोहन वर्मा के सुपुत्र वावू सत्यजीवन वर्मा एम० ए० और दूसरे पडित अयोध्यानाथ शर्मा, एम० ए०। यद्यपि ये सज्जन कोश विभाग मे प्राय एक ही वर्ष रहे थे, फिर भी इनसे कोश का कार्य शीघ्र समाप्त करने मे और विशेपत व, श, प तथा स के शब्दो के सपादन मे अच्छी सहायता मिली। जव ये दोनो सज्जन सभा से सवध त्यागकर चले गए तव सपादन कार्य के लिये श्रीयुत् पडित वासुदेव मिश्र, जो आरभ मे भी कोशविभाग मे शब्दसग्रह का काम कर चुके थे और जो इधर वहुत दिनो तक कलकत्ते के दैनिक भारतमित्र तथा साप्ताहिक श्रीकृष्णसदेश के संपादक रह चुके थे, कोश विभाग में सहायक सपादक के पद पर नियुक्त कर लिए गए। इनकी नियुक्ति से सपादन कार्य वहुत ही सुगम हो गया और वह वहुत शीघ्रता से अग्रसर होने लगा। अत मे इस प्रकार सन् १९२७ में कोश का सपादन आदि समाप्त हुआ।

इतने बड़े शब्दकोश मे बहुत से शब्दो का अनेक कारणों से छूट जाना बहुत ही स्वाभाविक था। एक तो यो ही सब शब्दो का सग्रह करना बडा कठिन काम है, जिस पर एक जीवत भाषा मे नए शब्दो का आगम निरतर होता रहता है। यदि किसी समय समस्त शब्दो का सग्रह किसी उपाय से कर भी लिया जाय और उनके अर्थ आदि भी लिख लिए जाँय, तथापि जबतक यह सग्रह छपकर प्रकाशित हो सकेगा तबतक और नए शब्द भाषा मे समिलित हो जाँयगे। इस विचार से तो किसी जीवित भाषा का शब्दकोश कभी भी पूर्ण नही माना जा सकता। इन कठिनाइयो के अतिरिक्त यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिए कि हिंदी भाषा के इतने बडे कोश को तैयार करने का इतना बड़ा आयोजन यह पहला ही हुआ है। अतएव इसमे अनेक त्रुटियो का रह जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। फिर भी इस कोश की समाप्ति मे प्राय २० वर्ष लगे। इस बीच मे समय समय पर बहुत से ऐसे नए शब्दो का पता लगता था जो शब्दसागर मे नही मिलते थे। इसके अतिरिक्त देश की राजनीतिक प्रगति आदि के कारण बहुत से नए शब्द भी प्रचलित हो गए थे जो पहले किसी प्रकार सगृहीत ही नहीं हो सकते थे। साथ ही कुछ शब्द ऐसे भी थे जो शब्दसागर मे छप तो गए थे, परतु उनके कुछ अर्थ पीछे से मालूम हुए थे। अत यह आवश्यक समझा गया कि इन छूटे हुए या नवप्रचलित शब्दो और छूटे हुए अर्थों का अलग संग्रह करके परिशिष्ट रूप मे दे दिया जाय। तदनुसार प्राय एक वर्ष के परिश्रम में ये शब्द और अर्थ भी प्रस्तुत करके परिशिष्ट रूप मे दे दिए गए हैं। आजकल समाचारपत्रों आदि या बोलचाल मे जो बहुत से राजनीतिक शब्द प्रचलित हो गए हैं, वे भी इसमे दे दिए गए हैं। साराश यह कि इसके सपादको ने अपनी ओर से कोई बात इस कोश को सर्वांगपूर्ण बनाने मे उठा नहीं रखी है। इसमे जो दोष, अभाव या त्रुटियाँ हैं उनका ज्ञान जितना इसके सपादको को है उतना कदाचित् दूसरे किसी को होना कठिन है, पर ये बातें असावधानी से अथवा जान बूझकर नहीं होने पाई हैं। अनुभव भी मनुष्य को बहुत कुछ सिखाता है। इसके सपादको ने भी इस कार्य को करके बहु कुछत सीखा है और वे अपनी कृति के अभावों से पूर्णतया अभिज्ञ हैं।

कदाचित् यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि भारतवर्ष की किसी वर्तमान देशभाषा मे उसके एक बृहत् कोश के तैयार कराने का इतना बडा और व्यवस्थित आयोजन दूसरा अबतक नही हुआ है। जिस ढग पर यह कोश प्रस्तुत करने का विचार किया गया था, उसके लिये बहुत अधिक परिश्रम तथा विचारपूर्वक कार्य करने की आवश्यकता थी। साथ ही इस बात की भी बहुत बडी आवश्यकता थी कि जो सामग्री एकत्र की गई है उसका किस ढग से उपयोग किया जाय और भिन्न भिन्न भावो के सूचक अर्थ आदि किस प्रकार दिए जायँ क्योंकि अभी तक हिंदी, उर्दू, बँगला, मराठी या गुजराती आदि किसी देशीभाषा मे आधुनिक वैज्ञानिक ढग पर कोई शब्दकोश प्रस्तुत नही हुआ था। अबतक जितने कोश बने थे, उन सबमे वह पुराना ढग काम मे लाया गया था और एक शब्द के अनेक पर्याय ही एकत्र करके रख दिए गए थे। किसी शब्द का ठीक ठीक भाव बतलाने का कोई प्रयत्न नही किया गया था। परतु विचारवान् पाठक समझ सकते हैं कि केवल पर्याय से ही किसी शब्द का ठीक ठीक भाव या अभिप्राय समझ में नही आ सकता, और कभी कभी तो कोई पर्याय अर्थ के सबध में जिज्ञासु को भी और भ्रम मे डाल देता है। इसी लिये शब्दसागर के सपादको को एक ऐसे नए क्षेत्र मे काम करना पडा था जिसमे अभी तक कोई काम हुआ ही नही था। वे प्रत्येक शब्द को लेते थे, उसकी व्युत्पत्ति ढूंढते थे, और तब एक या दो वाक्यो मे उसका भाव स्पष्ट करते थे, और यदि यह शब्द वस्तुवाचक होता था, तो उस वस्तु का यथासाध्य पूरा पूरा विवरण देते थे, और तब उसके कुछ उपयुक्त पर्याय देते थे। इसके उपरात उस शब्द से प्रकट होनेवाले अन्यान्य भाव या अर्थ, उत्तरोत्तर विकास के क्रम से, देते थे। उन्हें इस बात का बहुत ध्यान रखना पडता था कि एक अर्थ का सूचक पर्याय दूसरे अर्थ के अतर्गत न चला जाय। जहाँ आवश्यकता होती थी, वहाँ एक ही तरह के अर्थ देनेवाले दो शब्दो का अतर भी भली भाँति स्पष्ट कर दिया जाता था। उदाहरण के लिये 'टँगना' और 'लटकना' इन दोनो शब्दो को लीजिए। शब्दसागर मे इन दोनो के अर्थों का अतर इस प्रकार स्पष्ट किया गया है--'टँगना' और 'लटकना' इन दोनो के मूल भाव मे अतर है। टँगना' शब्द मे ऊँचे आधार पर टिकने या अडने का भाव प्रधान है और 'लटकना' शब्द मे ऊपर से नीचे तक फैले रहने या हिलने डोलने का।'

इसी प्रकार दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक, वास्तुविद्या आदि अनेक विषयो के पारिभाषिक शब्दो के भी पूरे पूरे विवरण दिए गए हैं। प्राचीन हिंदी काव्यो मे मिलनेवाले ऐसे बहुत से शब्द इसमे आए हैं जो पहले कभी किसी कोश मे नही आए थे। यही कारण है कि हिंदीप्रेमियों तथा पाठको ने आरभ में ही इसे एक बहुमूल्य रत्न की भाँति अपनाया और इसका आदर किया। प्राचीन हिंदी काव्यो का पढना और पढाना, एक ऐसे कोश के अभाव मे, प्राय असभव था। इस कोश ने इसकी पूर्ति करके वह अभाव बिल्कुल दूर कर दिया। पर यहाँ यह भी निवेदन कर देना आवश्यक जान पडता है कि अब भी इसमें कुछ शब्द अवश्य इसलिये छूटे हुए होंगे कि हिंदी के अधिकाश छपे हुए काव्यो मे न तो पाठ ही शुद्ध मिलता है और न शब्दो के रूप ही शुद्ध मिलते हैं।

इन सब बातो से पाठको ने भली भाँति समझ लिया होगा कि इस कोश मे जो कुछ प्रयत्न किया गया है, बिल्कुल नए ढग का है। इस प्रयत्न मे इसके सपादकों को कहाँ तक सफलता हुई है। इसका निर्णय विद्वान् पाठक ही कर सकते हैं। परतु सपादको के लिये यही बात विशेष सतोष और आनद की है कि आरभ से अनेक बडे बडे विद्वानो ने जैसे, सर जार्ज ग्रियर्सन, डाक्टर हार्नली, प्रो० सिल्वन् लेवी, डा० गगानाथ झा आदि ने इसकी बहुत अधिक प्रशसा की है। इसकी उपयोगिता का यह एक बहुत बडा प्रमाण है। कदाचित् यहाँ पर यह कह देना भी अनुपयुक्त न होगा कि कुछ लोगो ने किसी किसी जाति अथवा व्यक्तिविषयक विवरण पर आपत्तियाँ की हैं। मुझे इस सबध में केवल इतना ही कहना है कि हमारा उद्देश्य किसी जाति को ऊँची या नीची बनाना न रहा है और न हो सकता। इस संबध मे न हम शास्त्रीय व्यवस्था देना चाहते थे और न उसके अधिकारी थे। जो सामग्री हमको मिल सकी उसके आधार पर हमने विवरण लिखे। उसमे भूल होना या कुछ छूट जाना कोई असभव बात नही है। इसी प्रकार जीवनी के सबध मे मतभेद या भूल हो सकती है। इसके कारण यदि किसी का हृदय दुखा हो या किसी प्रकार का क्षोभ हुआ हो तो उसके लिये हम दुखी हैं और क्षमा के प्रार्थी हैं। सशोधित संस्करण मे ये त्रुटियाँ दूर की जायँगी।

इस प्रकार यह वृहत् आयोजन २० वर्ष के निरतर उद्योग, परिश्रम और अध्यवसाय के अनतर समाप्त हुआ है। इसमे सब मिलाकर ९३,११५ शब्दो के अर्थ तथा विवरण दिए गए हैं और आरभ मे हिंदी भाषा और साहित्य के विकास का इतिहास भी दे दिया गया है। इस समस्त कार्य मे सभा का अवतक १०, २७, ३५१) ८≈ व्यय हुआ है, जिसमे छपाई आदि का भी व्यय समिलित है। इस कोश की सर्वप्रियता और उपयोगिता का इससे बढकर और क्या प्रमाण (यदि किसी प्रमाण की आवश्यकता है) हो सकता है कि कोश समाप्त भी नही हुआ और इसके पहले ही इसके खडो को दो दो और तीन तीन वेर छापना पडा है और इस समय इस कोश के समस्त खड प्राप्य नही हैं। इसकी उपयोगिता का दूसरा वडा भारी प्रमाण यह है कि अभी यह ग्रथ समाप्त भी नही हुआ था, वरन् यो कहना चाहिए कि अभी इसका थोडा ही अश छपा था जब कि इससे चोरी करना आरभ हो गया था और यह काम अवतक चला जा रहा है, पर असल और नकल में जो भेद ससार मे होता है वही यहाँ भी दीख पडता है। यदि इस सवध मे कुछ कहा जा सकता है तो वह केवल इतना ही है कि इन महाशयो ने चोरी पकडे जाने के भय से इस कोश के नाम का उल्लेख करना भी अनुचित समझा है।

जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है, उससे स्पष्ट है कि इस कोश के कार्य मे आरभ से लेकर अत तक पडित रामचद्र शुक्ल का संबंध रहा है, और उन्होने इसके लिये जो कुछ किया है, वह विशेष रूप से उल्लिखित होने योग्य है। यदि यह कहा जाय कि शब्दसागर की उपयोगिता और सर्वांगपूर्णता का अधिकाश श्रेय पडित रामचद्र शुक्ल को प्राप्त है, तो इसमे कोई अत्युक्ति न होगी। एक प्रकार से यह उन्हीं के परिश्रम, विद्वत्ता और विचारशीलता का फल है। इतिहास, दर्शन, भाषाविज्ञान, व्याकरण, साहित्य आदि के सभी विषयो का समीचीन विवेचन प्राय उन्ही का किया हुआ है। यदि शुक्ल जी सरीखे विद्वान् की सहायता न प्राप्त होती तो केवल एक या दो सहायक सपादको की सहायता से यह कोश प्रस्तुत करना असभव ही होता। शब्दो को दोहराकर छपने के योग्य ठीक करने का भार पहले उन्ही पर था। फिर आगे चलकर थोडे दिनो बाद उनके सुयोग्य साथी बाबू रामचद्र वर्मा ने भी इस काम मे उनका पूरा पूरा हाथ बँटाया और इसलिये इस कोश को प्रस्तुत करनेवालो मे दूसरा मुख्य स्थान वावू रामचद्र वर्मा को प्राप्त है। कोश के साथ उनका सबध भी प्राय आदि से अंत तक रहा है और उनके सहयोग तथा सहायता से कार्य को समाप्त करने मे वहुत अधिक सुगमता हुई है। आरभ मे उन्होंने इसके लिये सामग्री आदि एकत्र करने मे वहुत अधिक परिश्रम किया था, और तदुपरात वे इसके निर्माण और सपादित की हुई स्लिपो को दोहराने के काम मे पूर्ण अध्यवसाय और शक्ति से समिलित हुए। उनमे प्रत्येक बात को वहुत शीघ्र समझ लेने की अच्छी शक्ति है, भाषा पर उनका पूरा अधिकार है और वे ठीक तरह से काम करने का ढग जानते हैं, और उनके इन गुणो से इस कोश को प्रस्तुत करने मे बहुत अधिक सहायता मिली है। इसकी छपाई की व्यवस्था और प्रूफ आदि देखने का भार भी प्राय उन्ही पर था। इस प्रकार इस विशाल कार्य के सपादन का उन्हें भी पूरा पूरा श्रेय प्राप्त है और इसके लिये मैं उक्त दोनो सज्जनो को शुद्ध हृदय से धन्यवाद देता हूँ। इनके अतिरिक्त स्वर्गीय पडित बालकृष्ण भट्ट, स्वर्गीय बाबू जगन्मोहन वर्मा, स्वर्गीय बाबू अमीर सिंह तथा लाला भगवानदीन जी को भी मैं बिना धन्यवाद दिए नही रह सकता। उन्होने इस कोश के सपादन मे बहुत कुछ काम किया है और उनके उद्योग तथा परिश्रम से इस कोश के प्रस्तुत करने मे बहुत सहायता मिली है। जिन लोगो ने आरभ मे शब्दसग्रह आदि या और कामो में किसी प्रकार से मेरी सहायता की है वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य विद्वानो, सहायकों तथा दानी महानुभावो के प्रति भी मैं अपनी तथा सभा की कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होने किसी न किसी रूप मे इस कार्य को अग्रसर तथा सुसपन्न करने मे सहायता की है, यहाँ तक कि जिन्होंने इसकी त्रुटियो को दिखाया है उनके भी हम कृतज्ञ हैं, क्योंकि उनकी कृपा से हमे अधिक सचेत और सावधान होकर काम करना पड़ा है। ईश्वर की परम कृपा है कि अनेक विघ्न बाधाओ के समय समय पर उपस्थित होते हुए भी यह कार्य आज समाप्त हो गया। कदाचित् यह कहना कुछ अत्युक्ति न समझा जायगा कि इसकी समाप्ति पर जितना आनद और सतोष मुझको हुआ है उतना दूसरे किसी को होना असभव नही तो कठिन अवश्य है। काशी नागरीप्रचारिणी सभा अपने इस उद्योग की सफलता पर अपने को कृतकृत्य मानकर अभिमान कर सकती है।

काशी
३१-१ १९२९

श्यामसुदरदास
प्रधान सपादक



संपादकीय प्रस्तावना

निघंटु : आर्यभाषा का प्रथम शब्दकोश (समाम्नाय)

वैदिक (विरल या क्लिष्ट) शब्दों के संग्रह को 'निघंटु' कहते थे। 'यास्क' का निरुक्त वैदिक निघंटु का भाष्य है। यास्क से पूर्ववर्ती निघंटुओं में एकमात्र यही निघंटु उपलब्ध है। पर निरुक्त से जान पडता है कि यास्क के पूर्व अनेक निघंट बन चुके थे। इस विषय की संक्षिप्त चर्चा आगे होगी। यहाँ 'यास्क' द्वारा व्याख्यात 'निघंटु' का परिचय दिया जा रहा है।

यह 'निघंटु' पचाध्यायी कहा जाता है। इसके प्रथम तीन अध्यायों को 'नैघंटुक कांड' कहा गया है। इन कांडों के शब्दों की निरुक्त के द्वितीय और तृतीय अध्यायों में 'यास्क' ने व्याख्या की है इनमें १३४१ शब्द हैं, यद्यपि व्याख्या २३० शब्दों की हुई है निघंटु के परिगणित शब्दों में संज्ञा अर्थात् नाम और आख्यात एवं अव्यय पदों का संकलन है। सबसे प्रथम पृथ्वी के बोधक २१ पर्यायवाची शब्दों का परिचय दिया गया है तदनंतर ज्वलनार्थक अग्नि के ११ पर्याय दिए गए हैं। इसी रीति से पूरे तीनों अध्यायों में पर्यायवाची अथवा समानार्थ-बोधक शब्दों का समूह है इनमें भी अनेक शब्द ऐसे हैं जो अनेकार्थक हैं। 'निघंटु' में तो उनका संग्रह पर्यायरूप में ही हुआ है, पर 'निरुक्त' के निर्वचन में उनके अनेक अर्थ सोदाहरण बताए गए है। 'गो' शब्द की निरुक्त व्याख्या में इस शब्द के अनेक अर्थों का निर्देश है। चतुर्थ अध्याय में २७८ स्वतंत्र पदों का (जो किसी के पर्याय नहीं हैं) एकत्रीकरण दिया गया है। इनमें मुख्यत दो प्रकार के शब्द है-- (१) वे शब्द जिनके अनेक अर्थ हैं और (२) वे शब्द जिनका व्याकरणमूलक संस्कार (व्युत्पत्ति) अवगत नहीं है। अंतिम पंचम अध्याय को दैवतकांड कहा गया है जिसमें वैदिक देवता-बोधक १५१ नाम मिलते हैं।

इस 'निघंटु' के निर्माता का नामनिर्णय विवादास्पद है। इतना ही नहीं, इनमें कुछ विद्वान् अनेक पुरुषों की रचना मानते हैं। डा० लक्ष्मणस्वरूप इनमें प्रमुख है। डा० कोल्ड ने भी हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर निर्णय दिया है कि 'निरुक्त' के पूर्वषड्क और उत्तरषड्क-- दोनों की शैलियाँ भिन्न हैं और दोनों के निर्माता भी संभवत भिन्न रहे होंगे। परंतु राजवाडे ने डा० लक्ष्मणस्वरूप के मत का अनेक तर्कों के आधार पर खंडन किया है। ऐसे भी पंडित हैं जो 'यास्क' को ही निघंटु और निरुक्त—दोनों का रचयिता मानते हैं। स्कंद दुर्ग तथा माहेश्वर आदि प्राचीन आचार्य 'निघंटु' को किसी ऐसे वेदज्ञ ऋषि का ग्रंथ मानते हैं जिसका नाम अब तक ज्ञात नहीं है।

कोशविद्या के विचार से 'निघंटु' ग्रंथ को विकासक्रम का प्रारंभिक और प्रथम उपलब्ध रूप कहा जा सकता है। इसमें विशिष्ट वैदिक ग्रंथ के शब्दों का संग्रह तो है पर वह समस्त शब्दों का न होकर कतिपय कठिन और दुर्बोध शब्दों का संकलन है। इस कोश में नाम, आख्यात और अव्यय शब्दों का संकलन किया गया है। यह गद्य माध्यम से हुआ है, छंदोबद्ध नहीं है। पर्यायसंकलन या अन्यसंग्रहण द्वारा इसका उद्देश्य वेद के शब्दों का अर्थ स्पष्ट करना था इसमें तिङन्त (आख्यात), सुबंत (नामपद) और अव्यय हैं।

शब्द-संकलन-पद्धति की दृष्टि से इसमें पर्यायवाची, अनेकार्थक और विरल शब्दों का संग्रह मिलता है। इन्हें हम चार विभागों में बाँट सकते हैं --(१) समानार्थक धातुरूप, (२) एकार्थक अथवा पर्यायवाची भिन्न भिन्न शब्दों का संग्रह, (३) अनेकार्थ शब्दों का संग्रह और (४) देवताओं के प्रमुख और अप्रमुख नामों का संग्रह। अज्ञात-व्याकरण-संस्कारवाले शब्द भी संगृहीत हैं।

उपलब्ध 'निघंटु' के अतिरिक्त अन्य अनेक निघंटु भी अवश्य ही रहे होंगे। 'यास्क' के 'निरुक्त' से भी इतना स्पष्ट है कि उनसे पूर्व जिस प्रकार अनेक वैयाकरण एवं अनेक निरुक्तकार हो चुके थे उसी प्रकार उपलब्ध 'निघंटु' के अतिरिक्त अन्य निघंटु भी वर्तमान थे। 'यास्क' के निर्देश (१.२० तथा ७ १५) से संकेत मिलता है कि 'निघंटु' शब्द अनेक निघंटुओं का बोधक है। आचार्य भगवद्दत्त के वक्तव्य से अनुमान किया जा सकता है कि निघंटु अनेक थे। अथर्व परिशिष्ट का ४८वाँ अंश भी कौत्सव्य द्वारा संकलित 'निघंटु' ही है। 'यास्क' ने 'शाकपूणि' का उल्लेख किया है। बृहद्देवता में भी 'यास्क' के साथ साथ अनेक बार उनका नाम देखकर अनुमान किया जाता है कि दोनों ही ग्रंथ--'निघंटु' और 'निरुक्त'— उन्हीं के रचित थे। इधर पूना से 'शाकपूणि' का एक निघंटु भी प्रकाशित किया गया है। इन सबके आधार पर यह कहना कदाचित् असंगत न हो कि 'यास्क' के समय तक बहुत से निघंटु ग्रंथ निर्मित हो चुके थे।

'यास्क' के कथनानुसार 'निघंटु' का अर्थ है—वह शब्दसमूह जो वेदों से चुनकर एकत्र किए हुए शब्दों का अर्थद्योतन करे। इस अर्थद्योतन में अनेक शब्दों का अर्थद्योतन कभी एक साथ होता है और कभी पृथक् पृथक्। इसमें सामान्यत शब्द-संकलन-विधान की निम्नलिखित विधि की संयोजना मिलती है, चाहे वे सभी विधियाँ एक निघंटु में हों अथवा न हों—(१) समानार्थक धातुओं का संग्रह, (२) किसी एक सत्व अथवा पदार्थ के नाना नामधेयों एवं अव्ययपदों का संग्रह, (३) एक शब्द के अनेक अर्थों का अभिधान और (४) देवताओं के नाम।

प्रोफेसर 'राजवाडे' का कथन है कि अनेक अर्थों का एक अभिधान द्वारा कथन--इस उपलब्ध 'निघंटु' में नहीं है। फिर भी ऐकपदिक कांड में कुछ अनेकार्थक शब्द भी ढूंढ़ जा सकते हैं और व्याकरण की दृष्टि से अव्युत्पन्न शब्द भी। 'ऐकपदिक' कांड में तथा कथित अव्युत्पन्न शब्द लक्षण संबंधी उपर्युक्त अंगों में नहीं आते। अत कह सकते हैं कि निरुक्तोक्त अंगों की अपेक्षा यहाँ कुछ अधिकता

है। इसका संकेत यह भी हो सकता है कि 'यास्क' के पूर्ववर्ती आचार्यों ने 'निघटु' के लिये उपर्युक्त चतुरंग लक्षण आवश्यक मान लिया था, और उस प्रकार के अनेक ग्रंथ उस समय वर्तमान थे।

निश्चय ही १००० ई० पू० के पहले से लेकर ई० पू० ८०० या ७०० तक अनेक वैदिक निघटु निर्मित हो चुके थे। विरल और कठिन शब्दो तथा पर्यायवाची नामो और आख्यातो एव अव्ययो का वडे श्रम के साथ आचार्यों ने अर्थनिर्देशपूर्वक सग्रह किया था। भारतीय कोशविद्या का यह प्राचीनतम उपलब्ध रूप यद्यपि गद्यवद्ध था, तथापि परवर्ती पद्यवद्ध कोशों के लिये—विशेषत पर्यायवाची कोशो का—पथप्रदर्शक और प्रेरणादायक रहा। 'अमरकोश' जैसे ग्रंथ पर भी जहाँ एक ओर निघटुकार की पर्यायवाची शैली का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है वहाँ दूसरी ओर 'निरुक्त' के काडत्रय का प्रभाव भी 'त्रिकाडकोश' या 'अमरकोश' पर कदाचित् पडा। विषय की दृष्टि से न सही, पर काड शब्द और 'तीन की सख्या' इन दोनो अशो मे अमरसिंह ने प्रभाव ग्रहण किया हो तो आश्चर्य नहीं।

निरुक्त के आरभ मे ही कहा गया है—'समाम्नाय समाम्नात स व्याख्यातव्य। तदिम समाम्नाय निघण्टव इत्याचक्षते।' अर्थात् समाम्नाय की (जो गुरुपरपरा से वैदिको द्वारा प्राप्त किया गया है उसकी) व्याख्या आवश्यक है। इसी को 'निघटव' (निघटु) कहते हैं। इस शब्द का विकास 'निगतव' मे हुआ है। सभवत अनेक 'निघटु' थे, इसी से बहुवचन मे प्रयोग है। प्रथम तीन अध्यायो मे 'नामपदों' और 'आख्यातपदो' की पर्यायवद्ध सूची है। चौथे अध्याय मे क्लिष्ट वैदिक शब्द हैं अपने तत्सम रूप मे और ५वें मे देवतावाचक शब्दो का सग्रह है।

लगभग दो सहस्र वर्षों वाद १८वी शती मे 'भास्करराय' नामक एक महाविद्वान् ने 'वैदिक कोश' का निर्माण किया था। उक्त कोश में वैदिक 'निघटु' के शब्दो और उनके अर्थों का पद्यवद्ध सयोजन किया गया है।

वैदिक निघटुओ की परपरा—कदाचित् आगे चलकर लुप्त हो गई। परन्तु अथर्ववेद के उपवेद—आयुर्वेद—मे इस नाम के ग्रथो की परपरा चलती रही। आयुर्वेद के परपराकथित अवतारी आचार्य 'धन्वतरि' द्वारा विरचित एक 'धन्वतरि निघटु' है। किंवदती-अनुसारी श्लोक मे 'विक्रमादित्य' के नवरत्नो मे इनका नाम सर्वप्रथम आता है। 'अमरकोश' की क्षीरस्वामीकृत टीका (वनोषधिवर्ग—श्लोक ५०) के अनुसार धन्वतरि को 'अमरसिंह' से प्राचीन माना जाता है। सभवत चतुर्थ शतक से पूर्व इनका काल रहा होगा। नौ अध्याय के इस ग्रथ में पारिभाषिक शब्दो के अर्थ के साथ साथ उनके गुण दोष का भी इसमे वर्णन है श्लोकवद्ध यह 'वैद्यकनिघटु'—सभवत परवर्ती तद्वर्गीय ग्रथो का प्रेरणाधार रहा। 'माधवनिदान' (प्रसिद्ध वैद्यक ग्रथ) के निर्माता 'माधवकर' (लगभग आठवीं नवी शती) द्वारा 'पर्यायरत्नमाला' नाम से एक वैद्यक कोश भी रचित माना जाता है। 'हेमचंद्र ने भी 'निघटुशेष' नामक ग्रथ का निर्माण किया था। १८वी शती के उत्तरार्ध मे अनेकशास्त्रविद्याविशारद काष्ठा नगरीराज 'मदनपाल' ने १७७४ ई० में 'मदनपाल निघटु' (या 'मदनपाल विनोद' नामक विशाल ग्रथ वनाया था। इसमे मराठी के भी अनेक पर्यायशब्द उपलब्ध है।)

सस्कृत कोश· प्राचीन (अमरकोश पूर्ववर्ती)

वैदिक निघटुकोशो और 'निरुक्त ग्रथो' के अनतर सस्कृत के प्राचीन और मध्यकालीन कोश हमे उपलब्ध होते हैं। इस सवध मे 'मैक्डानल्ड' ने माना है कि सस्कृत कोशों की परपरा का उद्‌भव (निघटु ग्रथों के अनतर) धातुपाठो और गणपाठो मे हुआ है। पाणिनीय अष्टाध्यायी के पूरक परिशिष्ट रूप मे धातुओ और गणशब्दो का व्याकरणोपयोगी सग्रह—इन उपर्युक्त पाठो मे हुआ। पर उनमे अर्थनिर्देश न होने के कारण उन्हें केवल धातुसूची और गणसूची कहना अधिक समीचीन होगा।

आगे चलकर सस्कृत के अधिकाश कोशो मे जिस प्रकार रचना-विधान और अर्थनिर्देश शैली का विकास हुआ है वह धातुपाठ या गणपाठ की शैली से पूर्णत पृथक् है। निघटु ग्रथो से इनका स्वरूप भी कुछ भिन्न है। निघटुओ मे वैदिक शब्दो का सग्रह होता था। उनमे क्रियापदो, नामपदो और अव्ययो का भी संकलन किया जाता था। परतु सस्कृत कोशो मे मुख्यत केवल नामपदो और अव्ययो का ही सग्रह हुआ।

'निरुक्त' के समान अथवा पाली के 'महाव्युत्पत्ति' कोश की तरह इसमे व्युत्पत्तिनिर्देश नही हैं। वैदिक निघटुओ मे सगृहीत शब्दो का सवध प्राय विशिष्ट ग्रथो से (ऋग्वेदसहिता या अथर्वसहिता का अथर्वनिघटु) होता था। इनकी रचना गद्य मे होती थी। परतु सस्कृत कोश मुख्यत पद्यात्मक हैं और प्रमुख रूप से उनमे अनुष्टुप् छद का योग (अभिधानरत्नमाला आदि को छोडकर) हुआ है। संस्कृत कोशों द्वारा शब्द और अर्थ का परिचय कराया गया है 'धनजय', 'धरणी' और 'महेश्वर' आदि कोशों के निर्माण का उद्देश्य था सभवत महत्वपूर्ण विरलप्रयुक्त और कविजनोपयोगी शब्दो का संग्रह वनाना।

सस्कृत कोशो का ऐतिहासिक सिंहावलोकन करने से हमें इस विषय की सामान्य जानकारी प्राप्त हो सकती है। इस सवध मे विद्वानो ने 'अमरसिंह' द्वारा रचित और सर्वाधिक लोकप्रिय—'नामलिंगानुशासन' (अमरकोश) को केंद्र में रखकर उसी के आधार पर सस्कृत कोशो को तीन कालखडो मे विभाजित किया है—(१) अमरकोश-पूर्ववर्ती सस्कृत कोश, (२) अमरकोशकाल तथा (३) अमरकोश-परवर्ती सस्कृत कोश।

'अमरसिंह' के पूर्ववर्ती कोशों का उनके नामलिंगानुशासन' मे उल्लेख नही मिलता है। परतु 'समाहृत्यान्यतन्त्राणि' के ध्वन्यार्थ का आधार लेकर 'अमरकोश' की रचना मे पूर्ववर्ती कोशो के उपयोग का अनुमान किया जा सकता है। 'अमरकोश' की एक टीका मे लब्ध 'कात्य' शब्द के आधार पर 'कात्य' या 'कात्यायन' नामक 'अमर'-पूर्ववर्ती कोशकार का और पाठातर के आधार पर व्याडि नामक कोशकार का अनुमान होता है। 'अमरकोश' के टीकाकार 'क्षीरस्वामी' के आधार पर 'धन्वतरि' के 'धन्वतरिनिघटु' नामक वैद्यक निघटु (कोश) का सकेत मिलता है। 'महाराष्ट्र शब्दकोश' की भूमिका से 'भागुरि' के

कोश को भी—जिसका नाम 'त्रिकाडकोश' था—'अमर'-पूर्ववर्ती वताया गया है। यह कोश दक्षिण भारत की एक ग्रथसूची मे आज भी उल्लिखित है। 'रति' या 'रतिदेव' और 'रसभ' या 'रसभपाल' को भी (महाराष्ट्र शब्दकोष की भूमिका के आधार पर) 'अमर'—पूर्ववर्ती कोशकार कहा गया है।

'सर्वानद' ने 'अमरकोश की अपनी टीका मे बताया है कि 'व्याडि' और 'वररुचि' आदि के कोशो मे केवल लिगो का सग्रह है और 'त्रिकाड' एव 'उत्पलिनी' मे केवल शब्दो का। परतु 'अमरकोश' मे दोनो की विशेषताएं एकत्र समिलित हैं। इस प्रकार 'व्याडि', 'वररुचि' (या कात्य) 'भागुरि' और 'धन्वतरि' आदि अनेक कोशकारो का क्षीरस्वामी ने अमर-पूर्ववर्ती कोशकारो और 'त्रिकाड', 'उत्पलिनी', 'रत्नकोश' और 'माला' आदि अमर-पूर्ववर्ती कोशग्रथो का परिचय दिया है।

अमरकोशकाल (रचनाकाल—लगभग चौथी पाँचवी शती)

अमरकोश की महत्ता के कुछ कारण हैं। यद्यपि तत्पूर्ववर्ती कोश ('धन्वतरिनिघटु' तथा पाडुलिपिसूची मे उल्लिखित एकाध अन्य ग्रथ को छोडकर) आज उपलब्ध नही हैं तथापि यह अनुमान किया जाता है कि प्राचीन कोशो मे दो प्रकार की शैलियां (कदाचित्, प्रचलित थी—(१) कुछ कोश (सभवत) नामो (सज्ञाओं) का ही और कुछ लिगो का ही निर्देश करते थे। (कदाचित् दो एक कोश धातुसूची भी प्रस्तुत करते थे।) इन्हें नामतत्र (नामपारायणात्मक) तथा लिगतत्र (लिगपारायणात्मक) कहा जाता था। द्वितीय विधा के कोशो मे लिगो का विवेचनात्मक निर्देशन ही मुख्य विषय रहता था। पर 'अमरसिंह' ने अपने कोश मे दोनो का एक साथ अत्यत प्रौढ सयोजन और विवेचन किया है। प्रारभ मे ही उन्होने तीसरे से पांचवे श्लोक तक अपने कोश मे प्रयुक्त नियमों और पद्धति का स्पष्ट निर्देश किया है। इनके आधार पर शब्दार्थ के साथ ही साथ लिग का निर्णय भी होता है।

तीन काडों के इस ग्रथ मे क्रमश दस, दस और पाँच वर्ग हैं। उपक्रम भाग में निर्दिष्ट पद्धति के अनुसार नामपदों के लिग का आद्यत निर्देश किया गया है। इसी कारण इसका अभिधान 'नामलिगानुशासन' है। इसकी विशिष्टता का परिचय देते हुए स्वय ग्रथकार ने बताया है कि अन्य तत्रो से विवेच्य विषय का समाहार करते हुए सक्षिप्त रूप में और प्रतिसंस्कार द्वारा उत्कृष्ट रूप से वर्गों मे विभक्त—इस 'नामलिगानुशासन' को पूर्ण बनाने का प्रयास हुआ है। यही इसकी विशेषता है।

सुव्यवस्थित पद्धति के अनुसार काडों और वर्गो का विभाजन किया गया है। वस्तुत देखा जाय तो प्रथम दो काड इस कोश का पर्यायवाची स्वरूप प्रस्तुत करते हैं और तृतीय काड मे नाना प्रकृति के इतर नामपदो का सग्रह है। विशेष्यनिघ्न वर्ग मे विशेष्यानुसारी लिगादि में प्रयुक्त हानेवाले नामपदो का सग्रह है। 'सकीर्ण' वर्ग में प्रकृति प्रत्यादि के अर्थ द्वारा लिग की ऊहा का विवेचन हुआ है। 'नानार्थ' वर्ग मे नानार्थ नामो का 'कात, खात' आदि क्रम के अनुसार सग्रह किया गया है। चतुर्थ वर्ग अव्यय शब्दो को सकलित करनेवाला है, और अतिम वर्ग लिगादिसग्रह कहा गया है एव उसमे शास्त्रीय और व्याकरणनियमानुसारी आधार को लेकर लिग का अनुशासन मुख्य रूप से तथा गौण रूप से अन्य अनुक्त-लिग-निर्देश की क्रमवद्ध पद्धति वताई गई है।

यह कोशग्रथ मुख्यत पर्यायवाची ही है। फिर भी तृतीय काड के द्वारा, जिसे हम आधुनिक पदावली मे परिशिष्टाश कह सकते हैं, इस कोश को पूर्ण और व्यापक तथा उपयोगी बनाया गया है।

अमरकोशपरवर्ती अमरपरवर्ती काल मे सस्कृत कोशो की अनेक विधाएँ लक्षित होती हैं—कुछ कोश मुख्यत. केवल नानार्थ कोश के रूप मे हमारे सामने आते हैं, कुछ को समानार्थक शब्दकोश और कुछ का अशत पर्यायवाची कोश कह सकते हैं।

इन विधाओ के अतिरिक्त ऐसे कोश भी मिलते हैं जिनमे क्रमश एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर और नानाक्षर शब्दो का योजनाबद्ध रूप से सकलन हुआ है। 'द्विरूप' कोश भी बने हैं।

इनके अतिरिक्त 'पुरुषोत्तमदेव' का ग्रथ 'वर्णदेशना' है, जिसमे लिखावट मे स्वल्पाधिक भेदो के कारण हानेवाले वर्णविन्यास सबधी वैरूप्य का परिचय मिलता है। इन्ही का एक कोश 'त्रिकाडकोष' भी है जिसमे अमरसिंह के कोश मे छूटे हुए, पर तद्युगीन भाषा मे प्रचलित, शब्दो का सग्रह है। 'पुरुषोत्तमदेव' की ही एक रचना 'हारावली' भी है, जिसमे विरल प्रयोगवाले 'एकार्थ' और 'अनेकार्थ' शब्दों के दो भाग हैं। स्वय लेखक ने लिखा है कि इस ग्रथ मे अत्यत विरल शब्दो का सग्रथन हुआ है।

'अमरसिंह' के अनतर कोशकारो और कोशग्रथो पर अमरकोश का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। पर्यायवाची कोश बहुत कुछ अमरकोश से प्रभाव ग्रहण कर लिखे गए। 'नानार्थ' या 'अनेकार्थ' कोश भी अमरकाश के नानार्थ वग के आधार पर प्राय बहुमुखी विस्तारमात्र रहे हैं। 'विश्वप्रकाश' कोश मे अवश्य कुछ अधिक वैशिष्ट्य दिखाई देता है। वह विलक्षण 'नानार्थकोश' है जो अनेक अध्यायों मे विभक्त हैं। प्रत्येक अध्याय मे एकाक्षर, द्व्यक्षर आदि क्रम से सप्ताक्षर शब्दों तक का सकलन है। 'कैकक', 'कद्विक', आदि भी अध्यायो के नाम हैं। 'अमरकोश' का तरह ही शब्द के अतिम वर्णानुसार कात, खात आदि रूप मे शब्दो का अनुक्रम है। उनका 'शब्द-भेद-प्रकाशिका' नामक ग्रथ भी वस्तुत इसी का अन्य परिशिष्ट है। इसके चार अध्यायो मे क्रमश 'शब्दभेद', 'वकारभेद', 'ऊष्मभेद' और 'लिगभेद' नामक चार विभिन्न भेद हैं। ऐतिहासिक क्रम से सस्कृत कोशो का निर्देश नीचे किया जा रहा है

शाश्वत का अनेकार्थसमुच्चय नामक नानार्थ कोश है। समय पूर्णत निश्चित न होने पर भी ६०० ई० के आसपास के काल मे इसकी रचना मानी जाती है। इसी को शाश्वतकोश भी कहते हैं। 'अमरकोश' के सक्षिप्त नानार्थ वर्ग का यह विस्तार जान पडता है। ८०० अनुष्टुप छदों के इस काश का छह भागो मे विभक्त किया गया है। आद्य तीन भागो मे क्रमवद्ध रूप से शब्द के अर्थ क्रम से चार चरणो (पुरे श्लोक), दो चरणो (आधे श्लोक), और एक चरण मे दिए गए हैं।

चौथे भाग में एक एक चरण में नानार्थबोधक शब्द हैं और पचम तथा षष्ठ विभागो मे अव्यय हैं।

भट्ट हलायुध (समय लगभग १० वीं शताब्दी ई०) के कोश का नाम अभिधानरत्नमाला है, पर हलायुधकोश' नाम से यह अधिक प्रसिद्ध है। इसके पाँच काड (स्वर, भूमि, पाताल, सामान्य और अनेकार्थ) हैं। प्रथम चार पर्यायवाची काड हैं, पचम मे अनेकार्थक तथा अव्ययशब्द सगृहीत हैं। इसमे पूर्वकोशकारो के रूप मे अमरदत्त, वररुचि, भागुरि और वोपालित के नाम उद्धृत हैं। रूपभेद से लिंगबोधन की प्रक्रिया अपनाई गई है। ९०० श्लोको के इस ग्रथ पर अमरकोश का पर्याप्त प्रभाव जान पडता है। पिंगलसूत्र' की टीका के अतिरिक्त 'कविरहस्य' भी इनका रचित है जिसम 'हलायुध' ने धातुओं के लट्लकार के भिन्न भिन्न रूपा का विशदीकरण भी किया है।

यादवप्रकाश (समय १०५५ से ११३७ के मध्य) का वैजयतीकोश अयत प्रसिद्ध भी है और महत्वपूर्ण भी। इसकी कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। यह वृहदाकार भी है और प्रामाणिक भी माना गया है। इसकी सर्वप्रमुख विशेषता है। नानार्थ भाग की आदिवर्णक्रमानुसारी वर्णक्रमयोजना जिसमे आधुनिक कोशों की अकारादिवर्णानुक्रमपद्धति का वीज दृष्टिगोचर होता है। परतु कठोरता और पूर्णता के साथ इस नियम का पालन नहीं है। केवल प्रथमाक्षर का आधार लिया गया है—द्वितीय, तृतीय आदि अक्षर या ध्वनि का नहीं। इसके दो भाग हैं—(१) पर्यायवाची और (२) नानार्थक। दोनो ही भाग—अमरकोश की अपेक्षा अधिक सपन्न हैं। नानार्थभाग के तीन काडो मे द्व्यक्षर, त्र्यक्षर और शेष शब्दो को सकलित किया गया है। नानार्थभाग के काडो का अध्यायविभाग—उपप्रकरणो में लिंगानुसार (पुल्लिंगाध्याय, स्त्रीलिंगाध्याय, नपुसकलिंगाध्याय, अर्थवल्लिगाध्याय और नानालिंगाध्याय) हुआ है। अतिम चार अध्यायो मे और भी अनेक विशेषताएँ हैं। अमरकोश की परिभाषाएँ सक्षेपीकृत रूप से गृहीत हैं। इसमे कुछ वैदिक शब्द भी सगृहीत हैं।

हेमचद्र—सस्कृत के मध्यकालीन कोशकारों मे हेमचद्र का नाम विशेष महत्व रखता है। वे महापडित थे और 'कालिकालसर्वज्ञ' कहे जाते थे। वे कवि थे, काव्यशास्त्र के आचार्य थे, योगशास्त्रमर्मज्ञ थे, जैनधर्म और दर्शन के प्रकाड विद्वान् थे, टीकाकार थे और महान् कोशकार भी थे। वे जहाँ एक ओर नानाशास्त्रपारंगत आचार्य थे वही दूसरी ओर नाना भाषाओं के मर्मज्ञ, उनके व्याकरणकार एव अनेकभाषाकोशकार भी थे (समय १०८८ से ११७२ ई०)। सस्कृत मे अनेक कोशों की रचना के साथ साथ प्राकृत-अपभ्रश-कोश भी (देशीनाममाला) उन्होंने सपादित किया। अभिधानचिंतामणि (या 'अभिधानचिंतामणिनाममाला) इनका प्रसिद्ध पर्यायवाची कोश है। छह काडो के इस कोश का प्रथम काड केवल जैन देवो और जैनमतीय या धार्मिक शब्दों से सवद्ध है। देव, मर्त्य, भूमि या तिर्यक्, नारक और सामान्य—शेष पाँच काड हैं। 'लिंगानुशासन' पृथक् ग्रथ ही है। 'अभिधानचिंतामणि' पर उनकी स्वविरचित 'यशोविजय' टीका है—जिसके अतिरिक्त, व्युत्पत्तिरत्नाकर' (देवसागरगणि) और 'सारोद्धार' (वल्लभगणि) प्रसिद्ध टीकाएँ हैं। इसमे नाना छदो मे १५४२ श्लोक हैं। दूसरा कोश 'अनेकार्थसग्रह' (श्लो० स० १८२९) है जो छह काडों मे है। एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर आदि के क्रम से काडयोजना है। अत मे परिशिष्ट काड अव्ययो से सबद्ध है। प्रत्येक काड मे दो प्रकार की शब्दक्रमयोजनाएँ हैं—(१) प्रथमाक्षरानुसारी और (२) 'अतिमाक्षरानुसारी'। 'देशीनाममाला' प्राकृत का (और अशत अपभ्रश का भी) शब्दकोश है जिसका आधार 'पाइयलच्छी नाममाला है।'

महेश्वर (११११ ई०) के दो कोश (१) विश्वप्रकाश और (२) शब्दभेदप्रकाश हैं। प्रथम नानार्थकोश है। जिसकी शब्दक्रमयोजना अमरकोश के समान 'अत्याक्षरानुसारी है। इसके अध्यायो मे एकाक्षर से लेकर 'सप्ताक्षर' तक के शब्दो का क्रमिक सग्रह है। तदनुसार 'कंकक' आदि अध्याय भी हैं। अत मे अव्यय भी सगृहीत हैं। 'स्त्री', 'पुम्' आदि शब्दो के द्वारा नही अपितु शब्दो की पुनरुक्ति द्वारा लिंगनिर्देश किया गया है। इसमें अनेक पूर्ववर्ती कोशकारों के नाम—भागीद्र, कात्यायन, साहसाक, वाचस्पति, व्याडि, विश्वरूप, अमर, मगल, शुभाग, शुभाक गोपालित (वोपालित) और भागुरि—निर्दिष्ट हैं। इस कोश की प्रसिद्धि, अत्यत शीघ्र हो गई थी क्योंकि 'सर्वानद' और 'हेमचद्र' ने इनका उल्लेख किया है। इसे 'विश्वकोश' भी अधिकत कहा जाता है। शब्दभेदप्रकाशिका वस्तुत विश्वप्रकाश का परिशिष्ट है जिसमे शब्दभेद, वकारभेद, लिंगभेद आदि हैं।

मंख पडित (१२ वीं शती ई०) का अनेकार्थ—१००७ श्लोकों का है और अमरकोश एव विश्वरूपकोश के अनुकरण पर बना है। 'भागुरि', 'अमर', 'हलायुध', 'शाश्वत' और 'धन्वंतरि' के आधारग्रहण का उसमे सकेत है। शब्दक्रमयोजना अत्याक्षरानुसारी है।

अजयपाल (लगभग १२वीं-१३वी शती के बीच) के नानार्थसग्रह नामक कोश मे १७३० श्लोक हैं। इसे देखने से जान पडता है कि शाश्वतकोश या अनेकार्थसमुच्चय के आधार पर इसकी रचना की गई है। उन्ही का अनुकरण भी इसमे आभासता है। प्रत्येक अध्याय के अत मे अव्यय शब्द हैं। धनंजय (ई० १२ वीं शताब्दी उत्तरार्ध के आसपास अनुमानित) की नाममाला नामक कोशकृति है। यह लघुकोश है। नाममाला नाम के अनेक कोशग्रथ मिलते हैं। इसमे केवल २०० श्लोक हैं। कुछ पाडुलिपियों मे नानार्थ शब्द नही हैं पर एक मे तत्सवद्ध ५० श्लोक हैं।

पुरुषोत्तमदेव (समय ११५९ ई० के पूर्व)—सस्कृत मे पाँच कोशों के निर्माता माने गए हैं—(१) त्रिकाडकोश, (२) हारावली, (३) वर्णदेशना, (४) एकाक्षरकोश और (५) द्विरूपकोश। 'अमरकोश' के टीकाकार 'सर्वानद' ने अपनी टीका मे इनके चार कोशों के वचन उद्धृत किए हैं जिससे इनका महत्वपूर्ण कोशकर्तृत्व प्रकट है। ये बौद्ध वैयाकरण थे। 'भाषावृत्ति' इनकी प्रसिद्ध रचना है। इन्होंने 'वाचस्पति' के 'शब्दार्णव', 'व्याडि' की 'उत्पलिनी' 'विक्रमादित्य' के 'ससारावर्त' को अपना आधार घोषित किया है। 'आफ्रेक्त' ग्रथसूची मे नौ अन्य (व्याकरण और कोश के) ग्रथो का

पुरुषोत्तमदेव के नाम से संकेत मिलता है। इनका 'त्रिकाडकोश'—नाम से ही 'अमरकोश' का परिशिष्ट प्रतीत होता है। फलत वहाँ अप्राप्त शब्दों का इसमे सकलन है। ('अमरकोश' से पूर्व का भी एक 'त्रिकाडकोश' बताया जाता है। पर उससे इसका सबध नही जान पडता।) इसमे अनेक छद हैं और इसकी टीका भी हुई है। हारावली मे पर्याय शब्दो और नानार्थ शब्दो के दो विभाग हैं। श्लोकसंख्या २७० है। पर्यायवाची विभाग का तीन अध्यायों—(१) एकश्लोकात्मक (२) अर्धश्लोकात्मक तथा (३) पादात्मक—मे उपविभाजन हुआ है। नानार्थ विभाग में भी—(१) अर्धश्लोक, (२) पादश्लोक और एक शब्द मे अर्थ दिए गए हैं। इसमे प्राय विरलप्रयोग और अप्रसिद्ध शब्द हैं जबकि त्रिकाडकोश मे प्रसिद्ध शब्द। ग्रथकार की उक्ति के अनुसार १२ वर्षों मे बडे श्रम के साथ इसकी रचना की गई है। (१२ मास भी एक पाठ के अनुसार)। वर्णदेशना अपने ढग का एक विचित्र और गद्यात्मक कोश है। देशभेद, रूढिभेद और भाषाभेद से ख, क्ष या ह, ड अथवा ह, घ मे होनेवाली भ्राति का अनेक ग्रथो के आधार पर निराकरण ही इसका उद्देश्य जान पडता है—'अत हि प्रयोगे बहुदश्वाना श्रुतिसाधारण्यमात्रेण गृह्णता खुरक्षुरप्रादी खकारक्षकारयो सिहशिघानकादी हकारघकारयो ‧ ‧ ‧ तथ गौडदिलिपि साधारण्याद् ह्रिण्डीरगुडाकेशादौ हकार-डकारयो भ्रातय उपजायन्ते। अतस्तद्विवेचनाय क्वचिद्धातुपरायणे धातुवृत्ति-पूजादिपु प्रव्यक्तलेखनेन प्रसिद्धोद्देशेन धातुप्रत्ययोणादिव्याख्यालेखनेन क्वचिदाप्तवचनेन श्लेषादिदर्शनेन वर्णदेशनेयमारभ्यते। (इडिया आफिस केटेलाग, पृ० २९५)। 'महाक्षपणक', 'महीधर' और 'वररुचि' के बनाए 'एकाक्षर' कोशो के समान 'पुरुषोत्तमदेव' ने भी एकाक्षर कोश बनाया जिसमे एक एक अक्षर के शब्दों के अर्थ वर्णित हैं। द्विरूपकोश भी ७५ श्लोको का लघुकोश है। नैषधकार 'श्रीहर्ष' ने भी एक द्विरूपकोश लिखा था।

केशवस्वामी (समय १२ वी या १३वीं शताब्दी) एक का **नानार्थार्णव-सक्षेप** को अपनी शैली के कारण बडा महत्व प्राप्त है। एक एक लिंग के एकाक्षर से षडक्षर तक के अनेकार्थक शब्दो का क्रमश छह काडो मे सग्रह है और प्रत्येक काड के भी क्रमश स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुसकलिंग, वाच्यलिंग तथा नानालिंग पाँच पाँच अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय की शब्दानुक्रमयोजना मे अकारादिवर्णक्रम की सरणि अपनाई गई है। 'अमरकोश' मे अनुपलब्ध शब्द ही प्राय इसमे सकलित हैं। ५८०० श्लोकसख्यक इस बृहन्नानार्थकोश मे कुछ वैदिक शब्दों का और ३० प्राचीन कोशकारो के नामों का निर्देश है।

मेदिनिकर का समय लगभग १४ वी शताब्दी के आसपास या उससे कुछ पूर्ववर्ती काल माना गया है। एक मत से ११७५ ई० के पूर्व भी इनका समय बताया जाता है। इनके कोश का नाम **नानार्थशब्द-कोश** है। पर मेदिनिकोष नाम से वह अधिक विख्यात है। इसकी पद्धति और शैली पर 'विश्वकोश' की रचना का पर्याप्त प्रभाव है। उसके अनेक श्लोक भी यहाँ उद्धृत हैं। ग्रथारभ के परिभाषात्मक अश पर 'अमरकोश' की इतनी गहरी छाप है कि इसमे 'अमरकोश' के श्लोक तक शब्दश: ले लिए गए हैं। इसमे कोई खास विशेषता नहीं है।

मेदिनी के अनतर के लघुकोश न तो बारबार उद्धृत हुए हैं और न पूर्वकोशो के समान प्रमाणरूप मे मान्य हैं। परतु इनमें कुछ ऐसे प्राचीनतर और प्रामाणिक कोशो का उपयोग हुआ है जो आज उपलब्ध नही हैं अथवा और अशुद्ध रूप मे अशत उपलब्ध हैं। (१) 'जिनभद्र सूरि' का कोश है **अपवर्गनाममाला**—जिसका नाम 'पचवर्गपरिहारनाममाला भी है। इनका काल संभवत १२वीं शताब्दी के आस पास है। (२) 'शब्दरत्नप्रदीप'—सभवत यह **कल्याणमल्ल का शब्दरत्नप्रदीप** नामक पाँच काडोंवाला कोश है। (समय लगभग १२९५ ई०)। (३) महीप का शब्दरत्नाकर—कोश है जिसके नानार्थभाव का शीर्षक है—अनेकार्थ या नानार्थतिलक, समय है लगभग १३७४ ई०। (४) पद्मरागदत्त के कोश का नाम 'भूरिक-प्रयोग' है। इसका समय लगभग वही है। इस कोश का पर्यायवाची भाग छोटा है और नानार्थ भाग बडा। (५) रामेश्वर शर्मा की **शब्दमाला** भी ऐसी ही कृति है। (६) १४ वी शताब्दी के विजयनगर के राजा हरिहरगिरि की राजसभा मे भास्कर अथवा दडाधिनाथ थे। उन्होने **नानार्थरत्नमाला** बनाया। (७) **अभिधानतत्र** का निर्माण जटाधर ने किया। (८) 'अनेकार्थ' या नानार्थकमजरी'—'**नामागदसिंह**' का लघु नानार्थकोश है। (९) रूपचद्र की **रूपमजरी**—नाममाला का समय १६वी शती है। (१०) शारदीय **नाममाला** 'हर्षकीर्त्ति' कृत है (१६२४ ई०)। (११) शब्दरत्नाकर के कर्ता '**वामनभट्ट बाण**' है। (१२) **नामसग्रहमाला** की रचना अप्पय दीक्षित ने की है। इनके अतिरिक्त (१३) **नामकोश** (सहजकीर्ति का (१६२७) और (१४) **पचतत्व प्रकाश** (१६४४) सामान्य कोश हैं।

कल्पद्रु कोश केशवकृत है। नानार्थार्णवसक्षेपकार 'केशवस्वामी' से ये भिन्न हैं। यह ग्रथ सस्कृत का बृहत्तम पर्यायवाची कोश है। इसमे नानार्थ का प्रकरण या विभाग नही है। इसमे पर्यायो की सख्या सर्वाधिक है, यथा—पृथ्वी के १६४ तथा अग्नि के ११४ पर्याय इत्यादि। 'मल्लिनाथी' टीका मे उद्धृत वचन के आधार पर 'केशव नामक' तृतीय कोशकार भी अनुमानित हैं। तीन स्कधों के इस कोश की श्लोकसख्या लगभग चार हजार है। स्कधो के अतर्गत अनेक प्रकाड हैं। लिगबोध के लिये अनेक सक्षिप्त सकेत हैं। पर्यायो की स्पष्टता और पूर्णता के लिये अनेक प्रयोग तथा प्रतिक्रियाएँ दी हुई हैं। इसमें कात्य वाचस्पति, भागुरि, अमर, मगल, साहसांक, महेश और जिनांतिम (सभवत हेमचद्र) के नाम उल्लिखित हैं। चतुर्थ श्लोक से नवम श्लोक तक—कोश मे विनियुक्त पद्धति का निर्देश किया गया है। रचनाकाल १६६० ई० माना जाता है। **केशवस्वामी के नानार्थार्णव कोश से यह भिन्न है।**

(१६) **शब्दरत्नावली** के निर्माता मथुरेश हैं (समय १७वी शताब्दी)। इनके अतिरिक्त कुछ और भी साधारण परवर्ती कोश हैं। (१७) **कोशकल्पतरु**—विश्वनाथ; (१८) नानार्थपदपीठिका तथा **शब्दलिगार्थचद्रिका**—सुजन (दोनो ही नानार्थकोश हैं)। इनमे प्रथम में—अत्यव्यजनानुसारा क्रम है और द्वितीय मे तीन काड हैं जिसमे क्रमश एक, दो और तीन लिगो के शब्द हैं)। (२०) **पर्यायपदमजरी और शब्दार्थमजूषा**—प्रसिद्ध कोश हैं। (२१) **महेश्वर** के कोश का नाम '**पर्यायरत्नमाला**' है—सभवत: पर्यायवाची कोश '**विश्वप्रकाश**' के निर्माता

महेश्वर से ये भिन्न हैं। पर्यायशब्दरत्नाकर के कर्ता धनजय भट्टाचार्य हैं। (२३) विश्वमेदिनी--सारस्वत मिश्र का है। (२४) विश्वकवि का विश्वनिघटु है। (२५) १७८६ और १८३३ के बीच बनारस मे सस्कृत-पर्यायवाची शब्दो की एक 'ग्लासरी' 'एथेनियन' ने अपने एक ब्राह्मण मित्र द्वारा अपने निर्देशन मे बनवाई थी। इसमे मूल शब्द सप्तमी विभक्ति के थे और पर्याय--कर्ता कारक (प्रथमा) के। परतु सभवत इसमें बहुत सा अश आधारहीनता अथवा दोषपूर्ण विनियोग के कारण सदिग्ध रहा। 'बोथलिंक' का सक्षिप्त शब्दकोश भी 'व्यलनास' के अनेक उद्धरणो से युक्त है।

इनके अलावा क्षेमेंद्र का लोकप्रकाश, महीप की अनेकार्थमाला का हरिचरणसेन की पर्यायमुक्तावली, वेणीप्रसाद का पचतत्वप्रकाश, अनेकार्थतिलक, राघव खाडेकर का कोशावतस, 'महाक्षपणक की अनेकार्थध्वनिमजरी आदि साधारण शब्दकोश उपलब्ध हैं। भट्टमल्ल की आख्यातचन्द्रिका (क्रियाकोश), हर्ष का लिंगानुशासन, अनिरुद्ध का शब्दभेदप्रकाश और शिवदत्त वैद्य का शिवकोश (वैद्यक), गणितार्थ नाममाला, नक्षत्रकोश आदि विशिष्ट कोश हैं। लौकिक न्याय की सूक्तियो के भी अनेक सग्रह हैं। इनमे भुवनेश की लौकिकन्यायसाहस्री के अलावा लौकिक न्यायसग्रह, लौकिक न्याय मुक्तावली, लौकिकन्यायकोश आदि हैं। दार्शनिक विषयो के भी कोश--जिन्हें हम पारिभाषिक कहते है--पाडुलिपि की सूचियो मे पाए जाते हैं।

सस्कृत कोशो की टीकाओ का महत्व

सस्कृत मे टीका, व्याख्या और भाष्य की प्रणाली विशेष महत्व रखती है। प्राय सभी प्रकार के ग्रथो मे इन टीकाओ का विशेष महत्व है। इसका कारण यह है कि अनेक टीकाओ मे मूल की अपेक्षा अधिक बातें, नूतन व्याख्या तथा खडन मडन द्वारा नव्य मतो की भी स्थापना की गई है। कोशग्रथों के टीकाकारो का कृतित्व भी बडे महत्व का है। उनमे जहाँ एक ओर नए शब्द, नवीन अर्थ और नई व्याख्याएँ हैं वहीं दूसरी ओर अनेक कोशकारो और कोशग्रथो के नाम भी मिलते हैं। अनेक तो ऐसे टीकाकार हैं जो स्वय ग्रंथकार हैं और स्वयमपि जिन्होने अपने ग्रथ की टीकाएँ भी लिखी हैं। अधिकाश ने केवल टीकाएँ बनाई हैं। 'अमरकोश' की टीकाएं सर्वाधिक और कदाचित् सर्वप्राचीन भी हैं। उनका अनुवादात्मक हिंदी आदि भाषाओं मे कोशीकरण भी किया गया है। इन टीकाओं मे अनेक पूर्ववर्ती कोशो या कोशकारो के नाम और कभी कभी उद्धरण भी मिलते हैं। अमरकोश के टीकाकार 'क्षीरस्वामी' तथा 'हेमचद्र' ने 'काव्य' कोश के नानार्थ और पर्यायवाची कोशो का सकेत दिया है। इनसे यह भी लक्षित होता है कि कभी कभी शब्द की अर्थबोधक व्याख्याएँ भी वहाँ थी--यथा--'क्षुद्रछिद्रसमोपेत चालन तितउ पुमान्।' अथवा 'स्कधादूर्ध्व तरो शाखा काटप्रो विटपो मत।' हेमचद्र ने ३० कोशकारो या कोशो का उल्लेख किया है। टीका आदि के आधार पर--तारपाल, दुर्ग, धरणीधर धर्ममुनि, रतिदेव, रुद्र, विश्वरूप, वोपदेव, शुभाग (शुभाक), वोपालित (गोपालित), कृष्णकवि (वैभाषिक शब्दकोश) आदि नाना नाम मिलते हैं। 'राभस' या 'रभस' के पर्यायकोश का भी उल्लेख है।

इन कोशटीकाओं मे शब्दों की व्युत्पत्तियाँ भी हैं। 'अमरकोश' की 'रामाश्रयी' टीका मे प्रत्येक शब्द की पाणिनीय व्याकरणानुसारी व्युत्पत्ति दी गई है। कभी कभी किसी टीका मे त्रुटियाँ और कभी कभी प्रयोग भी बताए गए हैं। सब मिलाकर इन टीकाओ को कोशवाङ्मय का महत्वपूर्ण अग कहा जा सकता है। वस्तुत ये कोशो के पूरक अंग हैं। इनमे 'उक्त अनुक्त और दुरुक्त' विषयो का विचार और विवेचन किया गया है। अत संस्कृत कोशो के इतिहास मे इनका महत्व और योगदान--हमे कभी नही भूलना चाहिए।

पाली, प्राकृत और अपभ्रश का कोशवाङ्मय

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओ का वाङ्मय भी कोशो से रहित नही था। पालि भाषा मे अनेक कोश मिलते हैं। इन्हें बौद्धकोश भी कहा गया है। उनकी मुख्य उपयोगिता पालि भाषा के बौद्धसाहित्य के समझाने मे थी। उनकी रचना पद्यबद्ध सस्कृतकोशो की अपेक्षा गद्यमय निघटुओ के अधिक समीप है। बहुधा इनका सबध विशेष ग्रथो से रहा है। पालि का महाव्युत्पत्ति कोश २८५ अध्यायो मे लगभग नौ हजार श्लोको का परिचय देनेवाला है। बौद्ध सप्रदाय के पारिभाषिक शब्दो का अर्थ देने के साथ साथ पशु पक्षियो, वनस्पतियो और रोगों आदि के पर्यायो का इसमे सग्रह है। इसमे लगभग ६००० शब्द सकलित हैं। दूसरी ओर मुहावरों, नामधातु के रूपो और वाक्यो के भी सकलन हैं। पाली का दूसरा विशेष महत्वपूर्ण कोश अभिधान प्रदीपिका (अभिधानप्पदीपिका) है। यह संस्कृत के अमरकोश को रचनाशैली की पद्धति पर तथा उसके अनुकरण पर छदोबद्ध रूप मे निर्मित है। 'अमरकाश' के अनेक श्लोकों का भी इसमे पालिरूपातरण है। इसी प्रकार भिक्षु सद्धर्मकीर्त्ति के एकाक्षर कोश का भी नामोल्लेख मिलता है।

प्राकृत भाषा मे उपलब्ध कोशो की सख्या कम है। जैन भाडागारो से कुछ प्राकृत और अपभ्रश के कोशो की विद्यमानता का पता चला है। परतु जब तक उन्हे देखने का अवसर नही मिलता, तब तक उनका विवरण देना ठीक नही है।

धनपाल (समय ९७२ ई० से ९९७ ई० के बीच) विरचित 'पाइअलच्छीनाममाला' कदाचित् प्राकृत का सर्वप्राचीन उपलब्ध कोश है। इनके गद्यकाव्य--'तिलकमजरी'--के उल्लेखानुसार 'मुजराज' ने इन्हें 'सरस्वती' उपाधि दी थी। गाथाछद मे रचित, अध्यायविरहित इस कोश मे क्रम से श्लोक, श्लोकार्ध और पद (चरण) एव शब्द में पर्यायवाची शब्द निर्दिष्ट हैं। 'हेमचद्र' ने अपने 'देशीनाममाला' में इसकी सहायता लेने का टीका मे उल्लेख किया है।

हेमचद्र रचित देशीनाममाला नाम से प्रसिद्ध प्राकृत का महत्वपूर्ण और विख्यात कोश कहा जाता है। देशी शब्द वस्तुत प्राकृत का पर्याय नही है, उसकी सीमा मे प्राकृत और अपभ्रश का--जो हेमचद्र के समय तक उक्त भाषाओ के ग्रथो मे मिलते थे उन्हीका--सग्रह है। देशी से सामान्यत आभास यह होता है कि जो शब्द सस्कृत तत्सम शब्दों से व्युत्पन्न न होकर तत्तत् देश की लौकिक भाषाओ के अव्युत्पन्न शब्द थे उन्ही को देशी कहा गया है। देशज भी उन्ही का परिचायक है। परतु तथ्य यह नहीं है। देशी नाममाला के बहुत से शब्द देशज अवश्य हैं। परतु जिन तद्भव शब्दो की व्युत्पत्ति सस्कृत तत्सम शब्दो

से हेमचंद्र संबद्ध न कर सके उन्हें अव्युत्पन्न देशज शब्द मान लिया। प्राकृत के व्याकरण नियमो के अनुसार जिनकी तद्भवसिद्धि नही दिखाई जा सकी, उन्ही को यहाँ देशी कहकर सकलित किया गया। परतु 'देशीनाममाला' मे ऐसे शब्दो की सख्या बहुत बडी है जो सस्कृत के तद्भव व्युत्पन्न शब्द हैं। चूँकि प्राकृत व्याकरणानुसार हेमचद्र उनका सबध, मूल सस्कृत शब्दो से जोडने मे असमर्थ रहे, अत उन्हें देशी कह दिया। फलत हम कह सकते हैं कि देशी शब्द का यहाँ इतना ही अर्थ है कि उन शब्दो की व्युत्पत्ति का सबध जोडने मे हेमचद्र का व्याकरणज्ञान असमर्थ रहा।

इनके अतिरिक्त दो देशी कोशो का भी—एक सूत्ररूप मे और दूसरा गोपाल कृत छदोबद्ध—उल्लेख मिलते हैं। द्रोणकृत एक देशी कोश का नाम भी मिलता है। इसी तरह शिलाग का भी कोई देशी कोश रहा होगा। हेमचद्र ने देशीनाममाला मे अपना मतभेद और विरोध—उक्त कोशकार के मत के साथ—प्रकट किया। हेमचद्र के प्राकृत शब्दसमूह मे उपलब्ध अनेक तत्पूर्ववर्ती देशी शब्दकोशकारो का उल्लेख मिलता है। हेमचद्र ने ही जिन कोशकारो को सर्वाधिक महत्व दिया है उनमे राहुलक की रचना और पादलिप्ताचार्य का 'देशीकोश' कहा जाता है। 'जिनरत्नकोश' मे भी अनेक मध्यकालीन कोशग्रथो के नाम मिलते हैं। अभिधानचितामणिमाला सभवतः वही ग्रंथ है जिसे हेमचद्र विरचित अभिधानचितामणि कहा गया और यह सस्कृत कोश है।

विजयराजेंद्र सूरि (१६१३-१६२५ ई०) द्वारा सपादित, सकलित और निर्मित—अभिधानराजेंद्र—भी प्राकृत का एक बृहद् शब्दकोश है। पर तत्वत यह जैनो के मत, धर्म और साहित्य का आधुनिक प्रणाली मे रचित—सात जिल्दो मे ग्रथित—महाकोश है। पृष्ठ सख्या भी इसकी लगभग दस हजार है। यह वस्तुत विश्वकोशात्मक ज्ञानकोश की मिश्रित शैली का आधुनिक कोश है।

निष्कर्ष

(१) जहाँ तक सस्कृत कोशो का सबध है। शब्दप्रकृति के अनुसार उसके तीन प्रकार कहे जा सकते हैं—(१) शब्दकोश, (२) लौकिक शब्दकोश और (१) उभयात्मक शब्दकोश।

(२) वैदिक निघटुओ की शब्द-सग्रह-पद्धति क्या थी इसका ठीक ठीक निर्धारण नहीं होता, पर उपलब्ध निघटु के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि उसमे नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चारो प्रकार के शब्दो का सग्रह रहा होगा। परतु उनका संबध मुख्य और विरल शब्दों से रहता था और कदाचित् वेदविशेष या सहिताविशेष से भी प्राय वे सबद्ध थे। वे सभवत गद्यात्मक थे।

(३) लौकिक सस्कृत की कोशपरपरा मे 'अमरपूर्व' कोशकारो की दो पद्धतियाँ थी, एक 'नामतत्र' और दूसरा 'लिंगतत्र'। इस द्वितीय विधा के कोशों मे सस्कृत शब्दो के प्रयोगो मे स्वीकार्य लिंगो का निर्देश होता था। एकलिंग, द्विलिंग, त्रिलिंग शब्दों के विभाग के अतिरिक्त अर्थवत्‌लिंग और नानालिंग के प्रकरण भी इनमे हुआ करते थे। ये कोश अनुमान के अनुसार गद्यात्मक थे।

(४) नामतत्रात्मक कोशो की भी दो विधाएँ होती थीं—एक समानार्थक शब्दसूचीकोश (जिसे आज पर्यायवाची कोश कहते हैं) और दूसरा अनेकार्थ या नानार्थ कोश।

(५) 'अमरसिंह' के कोशग्रथ मे 'नामतत्र' और 'लिंगतत्र' दोनो का समन्वय होने के बाद जहाँ एक ओर कोश उभयनिर्देशक होने लगे वहाँ कुछ कोश 'अमरकोश' के अनुकरण पर ऐसे भी बने जिनमे समानार्थक पर्यायों और अनेकार्थक शब्दो—दोनो विधाओ की अवतारणा एकत्र की गई। फिर भी कुछ कोश (अभिधान चितामणि और कल्पद्रु आदि) केवल पर्यायवाची भी बने, और कुछ कोश—विश्वप्रकाश, मेदिनी, नानार्थार्णवसक्षेप'—आदि नानार्थकोश ही हैं। 'वर्णदेशना' सदृश कोशो को छोडकर सस्कृत कोश प्राय पद्यात्मक हैं। इनमे मुख्य छद अनुष्टुप् है। कभी कभी बहुछदवाले कोश भी बने।

(६) अमरकोश' की पद्धति पर कुछ कोशो मे शब्दो का वर्गीकरण स्वर्ग, द्यौ, दिक्, काल आदि विषयसबद्ध पदार्थों के आधार पर काडो, वर्गों, अध्यायो आदि मे हुआ और आगे चलकर कुछ मे वर्णानुक्रम शब्दयोजना का भी आधार लिया गया। इनमे कभी रूपमाण शब्दसकलन भी हुआ।

(७) अनेकार्थकोशो मे विशेष रूप से वर्णक्रमानुसारी शब्दसकलन पद्धति स्वीकृत हुई। उसमे भी अत्याक्षर (अर्थात् अतिम स्वरात व्यजन) के आधार पर शब्दसकलन का क्रम अपनाया गया और थोडे बहुत कोशो मे आदिवर्णानुसारी शब्द-क्रम-योजना भी अपनाई गई। अत्यवर्णानुसारी कोशो की उक्त योजना का आधार कही कही निर्दिष्ट वर्ग या उच्चारणस्थान होता था। इनमे कभी कभी अक्षर सख्यानुसार भी एकाक्षर, द्वयक्षर, त्र्यक्षर आदि के क्रम से शब्दवर्गों का विभाजन भी किया गया है।

(८) इन विशेषताओ के अतिरिक्त एकाक्षरकोशमाला और द्विरूपकोश नामक शब्दकोशों की दो विधाओ का उल्लेख मिला है। एकार्थनाममाला, 'द्व्यर्थनाममाला' आदि ग्रथ आज उपलब्ध नही हैं तथापि कोशकार 'सोहरि' के नाम से निर्मित वे कोश कहे गए हैं। 'राक्षस' कवि का 'षडर्थनिर्णयकोश' भी उल्लिखित है। 'षड्मुखकोश'-वृत्ति भी सभवत ऐसा ही टीकाग्रथ था। 'वर्णदेशना' गद्यात्मक कोश है। वैकल्पिक रूपो का भी एकाध कोशो मे निर्देश किया गया है।

(९) कुछ कोशटीकाओ के आधार पर कहा जा सकता है कि सस्कृतकोश के युग मे बडे कोशो के सक्षेपीकरण द्वारा व्यवहारोपयोगी लघु रूप के निर्माण की पद्धति भी प्रचलित थी। सस्कृत के वैयाकरणो मे भी 'बृहत्' और 'लघु' संस्करणो के सपादन की प्रवृत्ति मिलती है जैसे—'लघुशब्देंदुशेखर' 'बृहच्छब्देंदुशेखर' 'बालमनोरमा' 'प्रौढमनोरमा' तथा 'लघु-सिद्धात-कौमुदी'। 'रायमुकुट' कृत अमरकोश टीका मे 'बृहत्अमरकोश,' सर्वदानद द्वारा 'बृहानद अमरकोश' और 'भानुदीक्षित' द्वारा 'बृहत् हारावली' के नाम उल्लिखित हैं। ऐसा मालूम होता है कि इन्ही ग्रथो के सक्षिप्त सस्करण के रूप मे 'हारावली' और 'अमरकोश' आदि निर्मित हुए हैं।

(१०) आनुपूर्वीमूलक वैकल्पिक शब्दो के सकल भीन कही

कहीं मिल जाते है। 'शब्दार्णवसक्षेप' मे पर्यायो की प्रवृत्तिमूलक सूक्ष्म अर्थच्छाया की भेदपरक व्याख्या भी मिलती है। 'कल्पद्रुकोश' मे लिखित म० म० रामावतार शर्मा के कथन से यह भी पता लगता है कि अतिप्राचीन 'व्याडि' के कोश मे कभी कभी अर्थनिर्देशन के लिये व्युत्पत्तिपरक सूचना भी दी जाती रही है।

(११) पाली, प्राकृत और अपभ्रंश कोशो मे कुछ नवीनता लक्षित नहीं होती। इतना अवश्य है कि पाली कोशो मे बौद्धमत के पारिभाषिक शब्दो का काफी परिचय मिल जाता है और पाली के बहुत से शब्दों का अर्थज्ञान भी हो जाता है। 'पाली' का महाव्युत्पत्यात्मक कोश गद्यात्मक है।

(१२) प्राकृत कोशो मे अधिकतः देशी शब्दकोश, और देशी नाममालाएँ हैं। इनमे अव्युत्पन्न माने गए देशी शब्दो का सकलन है। कुछ मे जैन प्राकृत ग्रथो के सपर्क से जैन मत के पारिभाषिक शब्दो का आशिक परिचय मिल जाता है। 'पइअलच्छीनाममाला' नामक ग्रथ मे सभवत सामान्य प्राकृत नामपदों का अत्यत लघु शब्द सग्रह रहा होगा।

(१३) अपभ्रंश के कोश सभवत' पृथक् उपलब्ध नही हैं। प्राकृत के देशी शब्दकोशो अथवा देशी नाममालाओं मे ही उनका अतर्भाव समझना चाहिए।

मध्यकालीन हिंदी कोश

मध्यकाल में विरचित हिंदी कोशो का उल्लेख मिलता है और उनका स्वरूप सामने आता है। हिंदी ग्रथो के खोजविवरणो में पचासो कोश ग्रथो के नाम मिलते हैं। इनके अतिरिक्त पोद्दार अभिनदन ग्रथ मे श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी ने १४-१५ ऐसे कोशो के नाम दिए हैं जो खोजविवरणो मे नही मिल पाए हैं। इससे ऐसा लगता है कि हिंदी साहित्य के मध्यकाल मे और उसके बाद भी छोटे बड़े सैकड़ो कोश बने थे। उनमे अनेक सभवत लुप्त हो गए। जिनके नाम ज्ञात हैं उनमे भी अनेक लुप्त या नष्ट होते जा रहे हैं। हिंदी ग्रथो की खोज करनेवालो को जो कोश उपलब्ध हुए हैं उनमे कतिपय प्रसिद्ध कोशो का सक्षिप्त परिचय दिया जा सकता है।

ऐसा जान पड़ता है, इनपर सस्कृत के कोशों से सकलित विषय और उनकी पद्धति का पर्याप्त प्रभाव पडा है। अधिकाश कोशो ने मुख्य आधार के रूप मे 'अमरकोश' का सहारा लिया। उसकी उपजीव्यता का उन्होंने उल्लेख भी किया है। कभी कभी (जैसे उमराव कोश मे) अमरकोश का नाम भी उल्लिखित है। पर कुछ कोशकारो ने (यथा कर्णाभरण के लेखक हरिचरण दास) मेदिनी हेमकोश आदि से भी सहायता ली है।

मध्यकालीन कोश-रचना-पद्धति की झलक अग्रेनिर्दिष्ट कुछ प्रसिद्ध कोशों के नाम देखने से मिल जाती है। 'नाममाला' और 'अनेकार्थमजरी' 'नददास के दो कोश मिलते हैं। पद्यनिर्मित इन कृतियो के नाममात्र से इनके स्वरूप का बोध हो जाता है। 'गरीबदास' का 'अनगप्रबोध' १६१५ ई० की रचना कही जाती है। 'रत्नजीत' (१७१३ ई०) के दो शब्द कोश (क) भाषाशब्दसिंधु और (ख) भाषाधातुमाला—बताए गए हैं। इनके नाम भी स्वरूपपरिचायक हैं। 'मिर्जा खाँ' का 'तुहफत् उल-हिन्द (तुहफतुल हिंद) 'खुसरो' की 'खालिकबारी'—अत्यत प्रसिद्ध कोश हैं। एक 'डिंगल कोश' भी बहुत पहले बन चुका है। इनके अतिरिक्त भी अनेक कोश बने। 'नददास' के नाम से 'नामचितामणि' नामक भी एक कोश कहा गया है। 'अमरकोश' के भी सभवत अनेक पद्यानुवाद हुए हैं।

इन ग्रथो के परिदर्शन से ज्ञात होता है कि जैसा ऊपर कहा जा चुका है, 'अमरकोश' के तथा कभी कभी अन्य कोशों के आधार पर हिंदी के मध्यकालीन पद्यात्मक कोश बने जो पर्यायवाची, समानार्थी या अनेकार्थक कोश थे। धातुसग्रह का भी एक कोश—उपर्युक्त धातुमाला—अतिम वर्णक्रमानुसारी सकलन है। मिर्जा खाँ' का कोश अनेक दृष्टियो से नूतन पद्धतियो का निदर्शन उपस्थित करता है। अपने ढग का यह प्रथम प्रयास कहा गया है। जियाउद्दीन और सुनीतकुमार चाटुर्ज्या ने इसकी बड़ी प्रशसा की है। मध्यकालीन हिंदी भाषा के कोशो मे शब्दो के क्रमसयोजन मे नूतन और भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि का इसमे परिचय दिया गया है, साथ ही साथ शब्दो की विस्तृत व्याख्या भी दी गई है। इसके अतिरिक्त उच्चारण मे—लिखित रूप की अपेक्षा बोलचाल के स्वरूप का अधिक ध्यान रखा गया है। 'गरीबदास' का कोश सत साहित्य के अनेक पारिभाषिक शब्दों का अर्थकोश है। हिंदी मे 'खुसरो' का कोश भी यद्यपि विशाल नही है तथापि द्विभाषी कोश की प्राचीनरूपता के कारण महत्व रखता है। इसी तरह 'लल्लूलाल' का परवर्ती (१८६७ ई०) अग्रेजी हिंदी-फारसी कोश भी उल्लेखनीय है। 'एकाक्षरी कोश', औषधिवरदनाममाला' आदि अनेक प्रकार के शब्द सग्रहात्मक कोशो का भी निर्माण हुआ है।

हिंदी के मध्यकालीन कोशो मे प्राचीन वर्गानुसारी विभाजन के अतिरिक्त केवल शीर्षकानुसारी विभाजन भी मिलता है, जैसे—'अथ गो शब्द, 'अथ सदृश शब्द' इत्यादि। मुरारिदान' के डिंगल कोश के अतर्गत वर्गपद्धति के साथ साथ अन्य शीर्षक भी दिए गए हैं। उक्त कोश मे शीर्षकों के रूप हैं — (१) अथ वनस्पतिकायमाह, (२) दोहा, (३) वननाम इत्यादि। इसकी एक अन्य विशेषता भी है—इंद्रियों के अनुसार उपशीर्षक जैसे—'अथ द्वींद्रियानाह, त्रींद्रियानाह, चतुरिंद्रियानाह पंचेंद्रियानाह।' पुनश्च 'जलचरान् पचेंद्रियानाह' —इत्यादि। 'वायुकायमाह' कहकर वायु से सबद्ध नाना पदार्थों का सकलन है। कही कही पीडा, 'पाताल' आदि उपशीर्षक के अतर्गत भी उन शब्दो का सग्रह है जो अन्यत्र समाविष्ट नही किए जा सके। कही कही ऐसा भी है कि पर्यायो और जातिभेदो के लिये दूसरी पद्धति अपनाई गई है, जैसे, 'रुख' के अतर्गत तो वृक्षो के पर्याय दिए गए है और 'सुररुख' नाम के अतर्गत वृक्षो के प्रकार गिनाए गए हैं—'सुरतर गोरक, सिरस, देवदार, मदार' इत्यादि। इसी क्रम मे वे नाम भी हैं जिनमे चौबीस अवतार, अष्टसिद्धि, नवनिधि, सत्ताईस नक्षत्र छत्तीस शस्त्रो आदि के नाम दिए गए हैं।

हिंदी के मध्यकालीन कोशग्रथो मे शब्दसकलन का कार्य मुख्यत सस्कृत के अन्य कुछ प्रसिद्ध कोशो के आधार पर हुआ है। इसके अतिरिक्त 'भिखारीदास' आदि के साहित्यिक भाषाग्रथो से भी शब्द सकलित हुए हैं। 'खुसरो' और उनसे प्रभावित कोशो के समय से ही

जनजीवन या बोलचाल के शब्दो को भी संगृहीत करने की चेष्टा मिलती है। सस्कृत कोशो की पद्धति भी—जिसके अनुसार 'घनसार-श्चद्रसव' कहकर चद्र की सभी सज्ञाओ को कपूर का पर्याय भी सकेतित कर दिया गया है—'उमराव' कोश आदि मे मिलती है। परतु 'अमरकोश' आदि के समान हिंदी कोशो मे लिगनिर्देश की व्यवस्था नहीं हो पाई। शिवसिंह कायस्थ के भाषा अमरकोश' (अमरकोश की टीका) मे स्पष्ट ही उसे विना प्रयोजन समझकर छोड देने का निर्देश किया गया है। कभी कभी अवश्य एकाध कोश मे यह कह दिया गया है कि दीर्घ रूप स्त्रीलिंग है और ह्रस्व पुल्लिग। अव्ययो का समावेश भी प्राय नही के बराबर उपलब्ध है यद्यपि अनेक कोशो मे सस्कृत के परिनिष्ठित पदरूपो को तत्सम भाव मे भी कभी कभी निर्दिष्ट किया गया है तथापि सस्कृत अव्ययो के सकलन मे यह प्रक्रिया छोड दी गई है। जहाँ तक ध्वनियो मे विकसित परिवतन को निर्दिष्ट करने का प्रश्न है—'तुहफतुलहिंद' आदि कोशो को छोडकर अन्यत्र इसका अभाव है। 'भिखारीदास' ने अवश्य ही एक स्थल पर य, ज, री, रि, श, प, स, और ज्ञ आदि का समस्यात्मक उल्लेख मात्र कर दिया है। पर्याय शब्द और नानार्थ के विभिन्न अर्थों की गणना भी कुछ कोशकारो ने या तो अत में पर्याय-सख्या-सूचना से अथवा प्रत्येक पर्याय के साथ अक देकर की है।

सक्षेप मे कह सकते हैं कि (१)—मध्यकालीन हिंदीकोश अधिकत पद्य मे ही बने जो सस्कृत कोशो से—मुख्यत 'अमरकोश' से—या तो प्रभावित अथवा अनूदित हैं। अधिकत ये पर्यायवाची कोश हैं। कुछ अनेकार्थक कोश भी है तथा दो एक 'एकाक्षरीकोश' भी मिल जाते हैं। कुछ 'निघटु' ग्रथ भी—जो वैद्यक से सबधित थे,—सस्कृत से प्रभावित होकर बने। (२)—इन कोशों मे नामसग्रह अधिक है। कभी कभी धातुकोश भी मिल जाते हैं। (गूढ़ार्थ कोश भी बना था।) इसी कारण अधिकत 'नाममाल', 'नाममजरी', 'नामप्रकाश', 'नामचितामणि', आदि कोशपरक नामो का अधिक प्रयोग हुआ है। (३)—'आतमबोध' या 'अनल्पप्रबोध' आदि मे पारिभाषिक-शब्दकोश-पद्धति भी मिलती है। (४)—शब्दक्रम मे अधिकत अत्य वर्ण आधार बने हैं। शब्दविभाजन या तो वर्गानुसारी है या शीर्षकानुसारी। 'तुहफतुलहिंद' मे अवश्य ही वर्णवर्गों का विभाजनक्रम मिलता है। कुछ कोशो मे उच्चारण और वर्णानुपूर्वी का सामान्य निर्देश भी दिखाई पडता है। (५)—डिंगल के कुछ कोशो में नामपद के साथ क्रियाओ का सकलन भी दिखाई देता है। (६)—कभी कभी पर्यायगणना भी है और परिभाषाएँ भी।

लिंगव्यवस्था आदि अनावश्यक समझे जानेवाले तत्वों का त्याग करने के अतिरिक्त कोश-विद्या-सबधी कोई ऐसी नवीन बात—जो कोश-विज्ञान के विकास मे विशिष्ट महत्व रखती हो—इन कोशो में आविर्भूत नहीं हुई। उच्चारण आदि के सबंध मे कभी कभी कोशकार की पैनी दृष्टि अवश्य आकृष्ट हुई। दूसरी ओर भाषा मे प्रयुक्त होनेवाले और महत्वपूर्ण साहित्यकारो के विशिष्ट साहित्यग्रथो मे प्रयोगागत तद्भव, देशी और विदेशी शब्दो के सकलन का प्रयास उतना नही हुआ जितना होना आवश्यक था।

मध्यकालीन हिंदी कोशकार अपने सामने उपलब्ध संस्कृत कोशों के आधार पर हिंदी कोश का कदाचित् निर्माण कर देना चाहते थे। इसका एक और भी अत्यत महत्वपूर्ण एव सभावित कारण कहा जा सकता है। कोश का सर्वप्रमुख प्रयोजन होता है वाङ्मय के ग्रथो का पाठको को अर्थबोध कराना। परतु सस्कृत कोशो और तदाधारित हिंदी कोशो के निर्माताओं की मुख्य दृष्टि थी ऐसे कोशो के सपादन पर जो विशेषत कवियो और सामान्यत अन्य ग्रथकारो के प्रयोगार्थ पर्यायवाची शब्दभाडार को सुलभ बना दें। निघंटुभाष्य अर्थात् निरुक्त मे वेदार्थ-व्याख्या पर ही सर्वाधिक ध्यान दिया गया है।

सस्कृत साहित्य के रचनात्मक ग्रथो के टीकाकारो ने अर्थ बोधन के लिये ही कोश वचनो के उद्धरण दिए हैं। फिर भी संस्कृत के अधिकाश कोशकारो की दृष्टि मे कविता के निर्माण मे सहायता पहुँचाना—पर्यायवाची कोशो का कदाचित एक अति महत्वपूर्ण लक्ष्य था। इसी प्रकार श्लेष, रूपक आदि अलकारो मे उपयुक्त शब्दनियोजन के लिये शब्दो को सुलभ बनाना अनेक नानार्थ शब्द-सग्राहको का मुख्य कोशकर्म था। हिंदी के कोशकारों ने भी सभवत इस प्रेरणा को अपना प्रियतर उद्देश्य समझा। इसी कारण गतानुगतिक और सस्कृतागत शब्द-कोश की निधि को असस्कृज्ञो के लिये सुलभ करने की इतिवर्तव्यता हिंदी कोशो मे भी हुई। थोडे से कोशकारों ने आरंभ में पर्याय या अनेकार्थ शब्दो मे नए शब्द जोडे। पर उससे बहुत आगे बढने का स्वतत्र प्रयास कम हुआ। फिर भी कुछ कोशकारो ने तद्भव आदि शब्दो की थोडी बहुत वृद्धि करने का प्रयास किया। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि मध्यकालीन हिंदी शब्दकोशों मे कोशविद्या के किसी भी तत्व की प्रगति नही हो पाई। सस्कृत कोशो की प्रामाणिक प्रौढता में उसी प्रकार कुछ ह्रास ही हुआ जैसे, रीतिकालीन साहित्यशास्त्र के हिंदी-लक्षण-ग्रथो मे सस्कृत के तद्विषयक विशिष्टग्रथो की प्रौढता का। व्युत्पत्ति का पक्ष हिंदी के मध्यकालीन कोशो मे पूर्णत. परित्यक्त था। सस्कृत कोशों मे भी यह पक्ष उपेक्षित ही रहा पर कोश के अनेक टीकाकारों ने व्युत्पत्ति पर ध्यान दिया। 'अमरकोश' की 'व्याख्यासुधा' या 'रामाश्रयी' टीका (भानुजी दीक्षितकृत) मे 'अमरकोश' के प्रत्येक नामपद की व्युत्पत्ति दी गई है। हिंदी के मध्यकालीन कोशो की न तो वैसी टीकाएँ लिखी गईं और न तद्भव शब्दो की व्युत्पत्ति का अनुशीलन ही हुआ। अत कोशविद्या के वैकासिक कौशल की दृष्टि मे कोई प्रगति नही मिलती।

सस्कृत के आधुनिक महाकोश

भारत मे आधुनिक पद्धति पर बने संस्कृत कोशों को दो वर्गों मे रखा जा सकता है। इनमे एक विधा वह थी जिसमे अग्रेजी अथवा जर्मन आदि भाषाओ के माध्यम से सस्कृत के कोश बने। इस पद्धति के प्रवर्तक अथवा आदि निर्माता पाश्चात्य विद्वान् थे। कोशविद्या की नूतन दृष्टि से सपन्न नवकोश की रचनाशैली के अनुसार ये कोश बने। इनकी चर्चा आगे की जायगी। दूसरी ओर नवीन पद्धति के अनुसार नूतन प्रेरणाओं को लेकर सस्कृत मे ऐसे कोश बने जिनका माध्यम भी

संस्कृत ही था। इस प्रकार के कोशो मे विशेष रूप मे दो उल्लेखनीय हैं (१) 'शब्दकल्पद्रुम' और (२) वाचस्पत्य'।

प्रथम कोश—स्यार राजा 'राधाकांतदेव बाहादुर' द्वारा निर्मित "शब्दकल्पद्रुम" है। इसका प्रकाशन १८२८—१८५८ ई० मे हुआ। इसमे पाणिनिव्याकरण के अनुसार प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति दी गई है, शब्दप्रयोग के उदाहरण उद्धृत हैं तथा शब्दार्थसूचक कोश या इतर प्रमाणो के समर्थन द्वारा अर्थनिर्देश किया गया है। पर्याय भी दिए गए हैं। धातुओं से व्युत्पन्न क्रियापदो के उदहरण भी दिए गए है। पदोदाहरण आदि भी हैं। कुछ थोड़े अतिप्रचलित वैदिक शब्दो के अतिरिक्त शेष नही हैं। शब्दो की विस्तृत व्याख्या मे दर्शन, पुराण, वैद्यक, धर्मशास्त्र आदि नाना प्रकारो के लबे लबे उद्धरण भी दिए गए हैं। तत्र मत्र, शास्त्र, स्तोत्र आदि से उद्धृत करते हुए अनेक सपूर्ण स्तोत्र, तात्रिक मत्र आदि के भी विस्तृत अश उद्धरित हैं। ज्योतिषशास्त्र और भारतीय विद्याओ के पारिभाषिक शब्दो का भी तद्विद्याविशेषज्ञो के सहयोग से सप्रमाण विवरण दिया गया है। इस कोश की रचनापरिपाटी के विषय मे भी विस्तृत वक्तव्य दिया गया है। उन कोशो की सूची भी दी गई है जो उपलब्ध थे और जिनसे शब्दसग्रह किया गया है। साथ ही विभिन्न कोशो मे उल्लिखित पर अनुपलब्ध कोशो अथवा कोशकारो के नाम भी भूमिका मे दिए गए हैं। लेखक स्वयमपि सस्कृत वैदुष्य के अतिरिक्त बँगला, हिंदी, अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओ का अच्छा जानकार था।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस कोश मे—जो सात खडो मे विरचित है—यथासभव समस्त उपलब्ध सस्कृत साहित्य के वाङमय का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त अत मे परिशिष्ट भी दिया गया है जो अत्यत महत्वपूर्ण है। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय-कोश रचना के विकासक्रम मे इसे विशिष्ट कोश कहा जा सकता है। यह पूर्णत सस्कृत का एकभाषीय कोश है। परवर्ती सस्कृत कोशों पर ही नहीं, भारतीय भाषा के सभी कोशो पर इसका प्रभाव—व्यापक रूप से—पडता रहा है।

यह कोश विशुद्ध शब्दकोश नहीं है, वरन् अनेक प्रकार के कोशों का—शब्दार्थकोश, पर्यायकोश, ज्ञानकोश और विश्वकोश का—समिश्रित महाकोश है। इनमे बहुविधीय उद्धरण, उदाहरण, प्रमाण, व्याख्या और विधिविधानो एव पद्धतियो का परिचय दिया गया है। इसमे गृहीत शब्द 'पद' हैं, सुप्तंतिङ त हैं, प्रातिपदिक या धातु नही।

सुखानदनाथ ने भी चार जिल्दों मे एक वृहदाकार सस्कृतकोश आगरा और उदयपुर से (ई० १८७३-८३ मे) प्रकाशित किया जिसपर 'शब्दकल्पद्रुम' का पर्याप्त प्रभाव है।

इस प्रकृति का दूसरा शब्दकोश 'वाचस्पत्यम्' है, जिसका निर्माण अनेक वर्षो मे सपन्न हुआ। पूर्व कोश की अपेक्षा सस्कृत कोश का यह एक वृहत्तर सस्करण है। इसके सकलयिता थे तर्कवाचस्पति तारानाथ भट्टाचार्य, जो बगाल के राजकीय सस्कृत महाविद्यालय मे अध्यापक थे।

एच उडरो ने अपनी 'वाचनिका' मे इस कोश की विशेषता बताते हुए कहा है कि "विल्सन" की 'सस्कृत डिक्शनरी' और 'शब्दकल्पद्रुम' की अपेक्षा इसका क्षेत्र विस्तृत और गभीरतर है। साथ ही तत्र, दर्शन-शास्त्र, छद शास्त्र और धर्मशास्त्र के ऐसे जाने कितने शब्द हैं जो 'राथ बोथलिंग्क्' की सस्कृत-जर्मन डिक्शनरी मे नही हैं। इसमे यह भी बताया गया है कि 'शब्दकल्पद्रुम' का प्रथम सस्करण बँगला लिपि मे हुआ था। उस समय के उपलब्ध कोशो मे अनुपलब्ध सैकडो हजारो शब्द इसमे सकलित हैं। सामान्य वैदिक शब्द तो हैं ही साथ ही ऐसे भी अनेक वैदिक शब्द हैं जो तत्कालीन शब्दकोशो मे अप्राप्य हैं। षड्दर्शनो के अतिरिक्त चार्वाक, माध्यमिक, योगाचार, वैभाषिक, सौत्रान्तिक, अर्हत, रामानुज, माध्व, पाशुपत, शैव, प्रत्यभिज्ञा, रसेश्वर आदि अल्पलोकप्रिय दर्शनो के पारिभाषिक शब्दो का भी इसमे समावेश मिलता है। पुराणो और उपपुराणो से सगृहीत पुरातन राजाओ का इतिहास तथा प्रत्नयुगीन भारतीय भूगोल का भी इसमे निर्देश हुआ है। चिकित्साशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों और अन्य विवरणो का भी विस्तृत निर्देश किया गया है। ज्योतिष—गणित, और फलित—के पारिभाषिक शब्द भी हैं। यद्यपि वैदिक शब्दो के सकलन सपादन को कोशकार ने अपने इस कोश की विशेष महत्ता बताई है तथापि बहुत से वैदिक शब्द छट भी गए हैं और बहुसख्यक वैदिक शब्दो की व्युत्पत्ति और उनके अर्थ स्वकल्पित भी हैं। 'राथबोथलिंग्क' के वृहत्सस्कृत शब्दकोश' के उपयोग का भी काफी प्रयत्न किया गया है।

सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि 'वाचस्पत्यम्' की रचना द्वारा पूर्वोक्त 'शब्दकल्पद्रुम' का एक ऐसा परिवर्धित और अपेक्षाकृत वृहत्तर सस्करण सामने आया जो कि रचनापद्धति की दृष्टि से अधिकाश बातो मे 'शब्दकल्पद्रुम' के आयाम को व्यापक और पूर्ण बनाने की चेष्टा करता है। 'तर्कवाचस्पति' ने निश्चय ही जितना परिश्रम किया वह असामान्य है। उनके गभीर ज्ञान, तलस्पर्शी मनीषा और व्यापक वैदुष्य का इसमे अद्भुत उन्मेष दिखाई देता है। 'शब्दकल्पद्रुम' की आधारपीठिका पाकर भी ग्रथकार ने कोशकला को 'शब्दकल्पद्रुम' की शैली मे काफी व्यापक बनाया।

'शब्दकल्पद्रुम' की अपेक्षा इसमे एक और विशेषता लक्षित होती है। 'शब्दकल्पद्रुम' मे 'पद' सुबत तिङत दिए गए हैं। प्रथमा एकवचन के रूप को कोश मे व्याख्येय शब्द का स्थान दिया गया है। परतु 'वाचस्पत्यम्' में दिए गए शब्द 'पद' न होकर 'प्रातिपदिक' अथवा 'धातु-रूप' में उपन्यस्त हैं। वैसे सामान्य दृष्टि से—रचनाविधान की पद्धति के विचार से—'वाचस्पत्यम्' को 'शब्दकल्पद्रुम' का विकसित रूप कहा जा सकता है। 'विल्सन' और 'मोनियर विलियम्स' के कोशों द्वारा अर्थबोध, शब्दार्थज्ञान एव शब्दप्रयोग की सूचना तथा व्याख्या-परक परिचय सक्षिप्त है, पर उपयोगी रूप में कराया गया है। परतु 'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' द्वारा उद्धरणो की विस्तृत पृष्ठभूमि के सपर्क में उभरे हुए अर्थचित्र यद्यपि सश्लिष्टबोध देने में सहायक होते हैं तथापि उद्धरणो के माध्यम से सवद्धज्ञान का आकार विश्वकोशीय

ही गया है। उपयोगितासंपन्न होकर भी सामान्य संस्कृतज्ञों के लिये—यह व्यावहारिक सौविध्य से रहित हो गया है।

संस्कृत के माध्यम से छोटे बड़े अनेक संस्कृतकोश बने। परंतु कोश-विकास के इतिहास में उनका कोई महत्व नहीं माना जा सकता। संस्कृत के अनेक कोश ऐसे भी बने जो भारतीय भाषाओं के माध्यम से संस्कृत शब्दों का अर्थपरिचय देते हैं। परंतु उनमें कोई अपनी स्वतंत्र विशेषता नहीं दिखाई देती। 'विल्सन' अथवा 'विलियम्स', 'मेक्डानल्ड', 'आप्टे' के कोशों का या तो इन्होंने आधार लिया अथवा थोड़ी बहुत सहायता 'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' से ली। मराठी-संस्कृत-कोश संस्कृत-तमिल-कोश, संस्कृत-तेलगू-कोश, संस्कृत-बंगला कोश, संस्कृत-गुजराती-कोश, संस्कृत-हिंदी-कोश आदि भारतीय आधुनिक भाषाओं के तत्तत् नामवाले—सैकड़ों की संख्या में कोश बने हैं और आज ये कोश उपलब्ध भी है। यहाँ पर ध्यान रखने की एक और बात यह है कि संस्कृत के उक्त दोनों महाकोश बंगाल की भूमि में ही बने।

बंगला विश्वकोश भी संभवत उसी परंपरा से प्रभावित—'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' का ही एक रूप है। इसमें यद्यपि आधुनिक विश्वकोश की रचनापद्धति को अपनाने की चेष्टा हुई है तथापि वह भी मिश्रित शैली का ही विश्वकोश है। उसका एक हिंदी संस्करण भी हिंदी विश्वकोश के नाम से प्रकाशित किया गया है। बंगला विश्वकोश का पूरा पूरा आधार लेकर चलने पर भी हिंदी का यह प्रथम विश्वकोश नए सिरे से तैयार किया गया।

शब्दकोश और विश्वकोश के मिश्रित रूप की यह पद्धति केवल संस्कृत और बंगला के कोशों में ही नहीं अपितु भारतीय भाषा के अन्य कोशों में भी लक्षित होती है। अंग्रेजी आदि भाषा के अनेक बड़े कोशों में यह सरणि है—विशेषत प्राचीन संस्करणों में। पूर्णचंद्र का उड़िया कोश भी इसी पद्धति का एक ग्रंथ है। 'हिंदी शब्दसागर' भी अपने प्रथम संस्करण में आंशिक रूप से इसी पद्धति पर चला। द्वितीय संशोधित और परिवर्धित संस्करण में भी उसके पूर्वरूप को सुरक्षित रखने की चेष्टा हुई है। परंतु लंबे लंबे पौराणिक, शास्त्रीय अथवा दार्शनिक उद्धरणों का भार इसमें न आने देने की चेष्टा हुई है। संबद्ध वस्तु अथवा पदार्थज्ञान के लिये उपयोगी विवरण को यथासंभव देने की चेष्टा की गई है।

आधुनिक कोशविद्या : पश्चिम में

आधुनिक कोशरूप का उद्भव और विकास

पश्चिमी विद्वानों के संपर्क से भारत में जिस कोश-रचना-पद्धति का १८वीं शती में विकास हुआ, पश्चिम में पहले से ही वह प्रचलित हो चुकी थी। अत. योरप की कोश-रचना-पद्धति के विकास का ऐतिहासिक सिंहावलोकन यहाँ देना अनुचित न होगा।[क]

ग्लॉस—रोमन धर्म और साम्राज्य की धार्मिक एवं राजनीतिक महत्ता के कारण समस्त पश्चिमी योरप में लातिन (लैटिन) सर्वप्रमुख भाषा बन गई थी। उस भाषा के ग्रंथों का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण मान लिया गया था। वह भाषा समस्त विद्या और ज्ञान की प्राप्ति का एक प्रकार से प्रवेशद्वार समझी जाने लगी थी। पाश्चात्य कोशविद्या का अंकुरण भी इन्हीं लातिन-शब्द-सूचियों से हुआ था, जिन्हें ग्लासेज कहते थे। 'ग्लासरी' शब्द भी इसी मूल से व्युत्पन्न है। ग्लासेज का अर्थ होता था शब्दसूचियाँ। 'लातिन' ग्रंथों के पढ़नेवाले—ग्रंथों के हाशिए पर उनके दुर्बोध्य और कठिन शब्दों को लिख दिया करते थे। अपनी स्मृति द्वारा अथवा अन्य विज्ञों की सहायता से—कभी सरल 'लातिन' में और कभी तदितर स्वभाषा में—इन शब्दों का अर्थ भी हलके अक्षरों में लिख लेते थे। इसी शब्द को 'ग्लास' कहते हैं।

'रोमानिक' भूमिवासियों के लिये प्राचीन रोमन भाषा (लातिन) बहुत कठिन नहीं थी। पर दूरस्थों के लिये वह भाषा दुर्बोध्य थी। अत 'केल्टिक' और 'ट्यूटानिक' प्रदेशों के दूरस्थों की दृष्टि में उपर्युक्त 'ग्लास पद्धति' अधिक उपयोगी हुई। व्यापक रूप से और अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत आयाम में इस प्रकार की शब्दसूचियाँ बनीं। इनके माध्यम से सैक्सन, इंग्लिश, 'आयरिश', 'प्राचीन जर्मन (गाथिक)' आदि भाषाओं के ऐसे प्राचीन शब्दरूप बहुत बड़ी मात्रा में सुरक्षित रह गए हैं जिनमें तत्तद्भाषाओं के बहुत से शब्द आज अन्यत्र दुर्लभ हैं।

कहा जाता है कि इंग्लैंड में उत्पन्न 'जोन्स दी गार्लैंडिया' ने लातिन के एक डिक्शनेरियस का निर्माण—१२२५ ई० में किया था। लातिन

क—शब्दकोशों के आरंभिक अस्तित्व की चर्चा में अनेक देशों और जातियों के नाम जुड़े हुए हैं। भारत में पुरातनतम उपलब्ध शब्दकोश वैदिक 'निघंटु' है। उसका रचनाकाल कम से कम ७०० या ८०० ई० पू० है। उसके पूर्व भी 'निघंटु' की परंपरा थी। अत कम से कम ई० पू० १००० से ही निघंटु कोशों का संपादन होने लगा था। कहा जाता है कि 'चीन' में ईसवी सन् के हजारों वर्ष पहले से ही कोश बनने लगे थे। पर इस श्रुतिपरंपरा का प्रमाण बहुत बाद—आगे चलकर उस प्रथम चीनी कोश में मिलता है, जिसकी रचना 'शुओ वेन' (एस-एच-यू-ओ-डब्ल्यू-ई-एन) ने पहली दूसरी शती ई० के आसपास की थी (१२१ ई० भी इसका निर्माणकाल कहा गया है)। चीन के 'हान' राजाओं के राज्यकाल में भाषाशास्त्री 'शुओ वेन' के कोश को उपलब्ध कहा गया है। यूरेशिया भूखंड में एक प्राचीनतम 'अक्कादी-सुमेरी' शब्दकोश का नाम लिया जाता है जिसके प्रथम रूप का निर्माण—अनुमान और कल्पना के अनुसार—ई० पू० ७वीं शती में बताया जाता है। कहा जाता है कि हेलेनिस्टिक युग के यूनानियों ने भी योरप में सर्वप्रथम कोशरचना उसी प्रकार आरंभ की थी जिस प्रकार साहित्य, दर्शन, व्याकरण, राजनीति आदि के वाङ्मय की। यूनानियों का महत्व समाप्त होने के बाद और रोमन साम्राज्य के वैभवकाल में तथा मध्यकाल में भी बहुत से 'लातिन' के कोश बने। 'लातिन' का उत्कर्ष और विस्तार होने पर लातिन तथा लातिन + अन्यभाषा कोश, शनै शनै बनते चले गए। 'लातिन' ग्लास-कोशों की चर्चा में इसका कुछ वर्णन किया गया है। सातवीं-आठवीं शती ई० में निर्मित एक विशाल 'अरबी शब्दकोश' का उल्लेख भी उपलब्ध है।

शब्दों का यह लघु सग्रहकोश था। विषयवर्गानुसार वाक्यो मे प्रयोग-निदर्शन के रूप मे भाषा के आरभिक सीखनेवालो की उपयोगिता के निमित्त इसका निर्माण किया गया था। 'डिक्शनरी' शब्द का भी कदाचित सर्वप्रथम प्रयोग इसी शब्दसूची मे हुआ था। १४वीं शती के उत्तरार्ध मे भी ऐसे कुछ कोश बने।

कालातर मे अलग पन्नो पर उक्त शब्दों-अर्थों की प्रतिलिपियाँ की जाने लगी। उन्हें एकत्र भी किया जाने लगा। 'लातिन' भाषा के क्लिष्ट शब्दो का अर्थबोध कराने के लिये शब्दार्थसग्रह का यह कार्य अत्यत उपयोगी हो गया है। तत्तत् सूचियो मे समाविष्ट शब्दो को आगे चलकर ग्लासेरियम कहने लगे, जिसका अर्थ है शब्दार्थसूची। १६वीं १७वी—मे इन्हीं 'ग्लासेरियम' के आधार पर वर्णक्रमानुसारी शब्दसारिणियाँ (टेबुल्स अल्फाबेटिकल) और क्लिष्ट-शब्दार्थ-बोधक सग्रहो का निर्माण हुआ।

अकारादिक्रम—१५वी शती से भी दो तीन सौ वर्ष पूर्व योरप की विभिन्न भाषाओ मे अनेक प्रकार के विभिन्न वर्गों के शब्दो की सूचियाँ सगृहीत होने लगी थीं।

इन शब्दसूचियों मे शब्दसकलन वर्गीकृत होता था। जिस प्रकार सस्कृत के अमरकोश आदि ग्रथो मे अपनी दृष्टि से पर्यायवाची शब्दो का वर्गाश्रित सग्रह मिलता है उसी प्रकार इन शब्दसूचियों मे शरीर के अगों पारिवारिक सबधो, मनुष्य के पदो और श्रेणियो, घरेलू एव पालित जानवरो, जगली पशुओं, मछलियो, वृक्षो, व्यवसायो, वस्त्राभूषणों, अस्त्रशस्त्रों, चर्च की सामग्रियो, रोग आदि के नामो की अर्थ-सहित सूचियाँ सगृहीत होती थी।

इन्हें 'वोकैब्युलेरियम्' कहा जाता था। अग्रेजी का 'वोकैब्युलरी' शब्द भी इसी से निर्गत है। कागज के अतिरिक्त चमडे पर भी इनका सग्रह होता था। मूलत भिन्न दृष्टि से सकलित होने पर भी 'ग्लॉस' और 'वोकैब्युलरी' दोनो का व्यावहारिक उपयोग भाषाज्ञान मे सहायता देनेवाले उपकरण के रूप मे होने लगा था। अत इन दोनो प्रकार की शब्दार्थसूचियो का प्राय एकत्र सयोजन कर दिया जाने लगा।

स्वज्ञान से अथवा दूसरो की 'ग्लॉसरी' और 'वोकैब्युलरी' से नए शब्दो को लेकर शब्दसूचियों के स्वामी उनमे नए शब्द जोड़ते रहते थे। इनकी प्रतिलिपि करके अन्य व्यक्ति भी समय समय पर इनका सग्रह प्राप्त कर सकता था। प्रतिलिपि परपरा द्वारा इनका प्रसार और विस्तार होता चल रहा था।

सर टामस् ईलियट (१५३८ ई०) का निर्मित शब्दकोश डिक्शनेरियम) विशेष महत्व भी रखता है और नूतनपथ का भी प्रदर्शक है। जे० डब्ल्यू० विदाल्स् द्वारा अग्रेजी के आरभिक लातिन पाठको की सुविधा के लिये रचित 'अग्रेजी-लातिन' का लघुशब्दकोश भी विषयानुसारी वर्गों मे ही ग्रथित है। परतु 'अग्रेजी मे लातिन' का कोश होने के कारण विशेष महत्व रखता है।

इससे भी अधिक महत्व का एक बहुभाषी लातिन शब्दकोश—१३३६ ई० मे भार एस्टीम ने बनाया था जिसमे लातिन शब्दो के समानार्थक अग्रेजी शब्दो के अलावा यूरप की अनेक नव्यभाषाओ के भी पर्याय दिए गए थे। १५४७ ई० के बाद अग्रेजी और नव्ययूरोपीय भाषा के भी कोश बनने लगे।

प्रतिलिपीकरण के माध्यम से प्रसारित इन सूचियो मे शब्दो और वाक्याशो को उपयोगिता की दृष्टि से अकारादि क्रमानुसार व्यवस्थित करना अधिक लाभकर जान पडा। यही से इनमे अकारादि क्रमानुसारी सग्रहपद्धति का आरंभ होता है। शब्द या वाक्याश के आरभिक प्रथमाक्षर को क्रमबद्ध सूची मे लिपिक सगृहीत कर देता था। उसमे द्वितीयाक्षर अथवा आनुपूर्वी नही देखी जाती थी। अत इस पद्धति को वर्णमालानुसारी प्रथमाक्षर क्रम कह सकते हैं। यह व्यवस्था सहस्रो शब्दोवाली सूची मे अनुभूत कठिनाई को दूर कर, सुविधाजनक पद्धति को ढूंढ निकालने के सायास व्यवस्था द्वारा प्रचलित हुई। फलत धीरे-धीरे उसमे विकास होता गया और प्रथमाक्षर के साथ साथ द्वितीय, तृतीय अक्षरो पर भी ध्यान दिया जाने लगा। फिर धीर धीरे वर्णानुपूर्वी के अनुसार आधुनिक युग मे प्रचलित पद्धति से शब्दार्थसग्रह होने लगा।

अग्रेजी कोश का उद्भव

'लातिन' की इन शब्दसूचियो ने आधुनिक कोश-रचना-पद्धति का जिस प्रकार विकास किया, अग्रेज कोशो के विकास क्रम मे उसे देखा जा सकता है। आरभ मे इन शब्दार्थसूचियो का प्रधान विधान था क्लिष्ट 'लातिन' शब्दो का सरल 'लातिन' भाषा मे अर्थ सूचित करना। धीरे धीरे सुविधा के लिये रोमन भूमि से दूरस्थ पाठक अपनी भाषा मे भी उन शब्दो का अर्थ लिख देते थे। 'ग्लॉसरी', और 'वोकैब्युलरी' के अग्रेजी भाषी विद्वानो की प्रवृत्ति मे भी यह नई भावना जगी। इस नवचेतना के परिणामस्वरूप 'लातिन' शब्दो का अग्रेजी मे अर्थनिर्देश करने की प्रवृत्ति बढने लगी। इस क्रम मे 'लैटिन अग्रेजी' कोश का आरंभिक रूप सामने आया।

दसवी शताब्दी मे ही 'आक्सफोर्ड' के निकटवर्ती स्थान के एक विद्वान् धर्मपीठाधीश 'एफ्रिक' ने 'लैटिन' व्याकरण का एक ग्रथ बनाया था। और उसी के साथ वर्गीकृत 'लातिन' शब्दो का एक 'लैटिन-इग्लिश', लघुकोश भी जोड दिया था। सभवत उक्त ढग के कोशो मे यह प्रथम था। १०६६ ई० मे लेकर १४०० ई० के बीच की कोशात्मक शब्दसूचियो को एकत्र करते हुए 'राइट व्यूलर' ने ऐसी दो शब्द-सूचियाँ उपस्थित की हैं। इनमे भी एक १२ वी शताब्दी की है। वह पूर्ववर्ती शब्दसूचियो की प्रतिलिपि मात्र है। दूसरी शब्दसूची मे 'लातिन तथा अन्य भाषाओ के शब्द हैं।

इगलैड मे सास्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना के उद्बुद्ध होने पर अग्रेजी राजभाषा हुई। शिक्षा-सस्थाओ मे फासीसी के स्थान पर अग्रेजी का पठन पाठन बढ़ा। अग्रेजी मे लेखको की सख्या भी अधिक होने लगी। फलत अग्रेजी के शब्दकोश की आवश्यकता भी बढ गई। १५वी शती मे 'राइट व्यूलर' ने छह महत्वपूर्ण पुरानी शब्दार्थसूचियो को मुद्रित किया। अधिकत विषयगत वर्गों के आधार पर वे बनाई गई थी। केवल एक शब्दसूची ऐसी थी जिसमे अकारादिक्रम से २५००० शब्दो का सकलन किया गया था।

एम० एम० मैथ्यू ने 'अंग्रेजी कोशों का सर्वेक्षण' नामक अपनी रचना में १५वीं शती के दो महत्वपूर्ण ग्रंथों का उल्लेख किया है। प्रथम 'ओरट्स' का 'वोकाव्युलरियम्' था जो पूर्व 'मेड्ला' व्याकरण पर आधारित था। दूसरा था 'ग्लाफेड्स' या 'ज्याफरी' व्याकरण पर आधारित इंग्लिश-लैटिन कोश। इसका पिंसन द्वारा १४४० ई० में प्रथम मुद्रित संस्करण प्रकाशित किया गया। उसका नाम था प्रोम्पटोरियम परव्यूलोरम सिनक्लेरिकोरम्' (अर्थात् बच्चों का भांडार या संग्रहालय)। इसका महत्व--९-१० हजार शब्दों के संग्रह के कारण न होकर इसलिये था कि इसके द्वारा शब्दसूची के रचनाविधान में नए प्रयोग का संकेत दिखाई पड़ा। इसमें संज्ञा और क्रिया के मुख्यांश से व्यतिरिक्त अन्य प्रकार के शब्द (अन्य पार्टस् ऑव स्पीच) भी संवलित हैं। यह 'मेड्ला ग्रामाटिसिज' कदाचित् प्रथम 'लातीन अंग्रेजी' शब्दकोश था। लोकप्रियता का प्रमाण मिलता है--उसकी बहुत सी उपलब्ध प्रतिलिपियों के कारण। १४८३ ई० में 'केथोलिकम ऐंग्लिकन्' नामक शब्दकोश संकलित हुआ था। परंतु महत्वपूर्ण कोश होकर भी पूर्वोक्त कोश के समान वह लोकप्रिय न हो सका।

इसके पश्चात् १६वीं शताब्द में 'लैटिन अंग्रेजी' और 'अंग्रेजी लैटिन' की अनेक शब्दसूचियाँ निर्मित एवं प्रकाशित हुई। 'सर टामस ईलियट' की डिक्शनरी ऐसा सर्वप्रथम ग्रंथ है जिसमें 'डिक्शनरी' अभिधान का अंग्रेजी में प्रयोग मिलता है। मूल शब्द लातिन का 'डिक्शनरियम्' है जिसका अर्थ था कथन (सेइंग)। पर वैयाकरणों द्वारा 'कोश' शब्द के अर्थ में उसका प्रयोग होने लगा था। इससे पूर्व--प्रारंभिक शब्दसूचियों और कोशों के लिये अनेक नाम प्रचलित थे, यथा--'नॉमिनल', 'नेमबुक', मेड्ला ग्रामेटिक्स, 'दी आर्ट्स वोकाब्युलेरियम्, गार्डन आफ वर्ड्स, दि प्रोम्पटारियम पोरवोरम, कैथोलिकम् ऐंग्लिकन्, मैनुअलस् वोकैब्युलरम्, हैंडफुल आव वोकैब्युलरियस्, 'दि एवेसडेरियम्, विवलोथिका, एल्वेरिया, लाइब्रेरी, दी टेबुल अल्फाबेटिकल, दी ट्रेजरी या ट्रेजरर्स आफ वर्ड्स, 'दि इंग्लिश एक्सपोजिटर, दि गाइड टु दि टंग्स, दि ग्लासोग्राफिया, दि न्यू वर्ल्ड्स आव वर्ड्स, 'दि इटिमालॉजिकम्, दि फाइलॉलॉजिकम्' आदि। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार १२२५ ई० में कंठस्थ की जानेवाली 'लातिन' शब्दसूची के हस्तलेख के लिये जान गारलैंडिया ने इस (डिक्शनरी) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया था। परंतु लगभग तीन शताब्दी बाद सर टामस् ईलियट द्वारा प्रयुक्त यह शब्द क्यों और कैसे लोकप्रिय हो उठा यह कहना सरल नहीं है।

१६वीं शती में पूर्वार्ध के व्यतीत होते होते यह विचार स्वीकृत होने लगा कि शब्दकोश में शब्दार्थ देखने की पद्धति सुविधापूर्ण और सरल होनी चाहिए। इस दृष्टि से कोश के लिये वर्णमालाक्रम से शब्दानुक्रम की व्यवस्था उपयुक्ततर मानी गई। पश्चिम की इस पद्धति को महत्वपूर्ण उपलब्धि और कोशविद्या के नूतन विकास की नई मोड़ माना जा सकता है। एकाक्षर और विश्लेषणात्मक पदरचना वाली चीनी भाषा में एकाक्षर शब्द ही होते हैं। प्रत्येक 'सिलेबुल' स्वतंत्र, सार्थक और विश्लिष्ट होता है। वहाँ के पुराने कोश अर्थानुसार तथा उच्चारणमूलक पद्धति पर बने हैं। वैसी भाषा के कोशों में उच्चारणानुसारी शब्दों का ढूँढना अत्यंत दुष्कर होता था। परंतु योरप की भाषाओं में अकारादि क्रमानुसारी एक नई दिशा की ओर शब्दकोशरचना का संकेत हुआ। पूर्वोक्त प्रोम्पटोरियम के अनंतर १५१९ में प्रकाशित विलियम हार्मन का शब्दकोश अंग्रेजी लैटिन कोशों में उल्लेख्य है। इसमें कहावतों और सूक्तियों का प्राचीन पद्धति पर संग्रह था। मुद्रित कोशों में इसका अपना स्थान था। १५७३ ई० में रिचार्ड हाउलेट का 'एवेसेडेरियम' और 'जॉन वारेट' का 'लाइब्रेरिया'--दो कोश प्रकाशित हुए। प्रथम में लैटिन पर्याय के साथ साथ अंग्रेजी में अर्थकथन होने से अंग्रेजी कोशों में--विशेषतः प्राचीन काल के--इसे उत्तम और अपने ढंग का महत्वशाली कोश माना गया है। इससे भी पूर्व--ई० १५७० में 'पीटर लेविंस' ने एक 'इंगलिश राइमिंग डिक्शनरी' बनाई थी जिसमें अंग्रेजी शब्दों के साथ लैटिन शब्द भी हैं और सभी खास शब्द तुकांत रूप में रखे गए थे।

हेनरी अष्टम की बहन, मेरी ट्यूडर, जब फ्रांस के १२वें लुई की पत्नी बनी तब उन्हें फ्रांसीसी भाषा पढ़ाने के लिये जान पाल ग्रे ने एक ग्रंथ बनाया जिसमें फ्रांसीसी के साथ साथ अंग्रेजी शब्द भी थे। १५३० ई० में यह प्रकाशित हुआ। इस कोश को 'आधुनिक' फ्रांसीसी और आधुनिक अंग्रेजी भाषाओं का प्राचीनतम कोश कहा जा सकता है। गाइल्स दु गेज ने लेडी मेरी को फ्रांसीसी पढ़ाने के लिये १५२७ में व्याकरणरचना की जो पुस्तक प्रकाशित की थी उसमें भी चुने हुए अंग्रेजी और फ्रांसीसी शब्दों का संग्रह जोड़ दिया गया था।

रिचर्ड हाउलेट का एवेसेडिरियम १५५२ ई० में प्रकाशित हुआ, जिसे सर्वप्रथम अंग्रेजी (+लैटिन) 'डिक्शनरी' कह सकते हैं। जान वारेट का कोश (एल्वेरिया) भी १५७३ ई० में प्रकाशित हुआ। रिचार्ड के कोश में अंग्रेजी भाषा द्वारा अर्थव्याख्या की गई है। अतः उसे प्रथम अंग्रेजी कोश--लैटिन अंग्रेजी डिक्शनरी--कह सकते हैं। १६वीं शताब्दी में ही (१५९९ ई० में) रिचार्डस परसिवाल ने स्पेनिश अंग्रेजी-कोश मुद्रित कराया था। फ्लोरियो ने भी दि वर्ल्ड्स आव दि वर्ड्स नाम से एक इताली-अंग्रेजी कोश बनाकर मुद्रित किया। उसका परिवर्धित संस्करण १६११ ई० में प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष रैंडल काटग्रेव का प्रसिद्ध फ्रेंच-अंग्रेजी कोश भी प्रकाशित हुआ जिसके अति लोकप्रिय हो जाने के कारण बाद में अनेक संस्करण छपे। केवल अंग्रेजीकोश के अभाववश 'फ्लोरियो' और 'काटग्रेव' के अंग्रेजी शब्दसंग्रहों का अत्यंत महत्व माना गया और 'शेक्सपियर' के युग की भाषा समझने समझाने में वह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ।

इसी के आस-पास 'बाइबिल' का अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाश में आया। १७वीं शताब्दी के प्रथम चरण (१६१० ई० में) में जॉन मिन्श्यु ने 'दि गाइड इंटु टंग्स' नामक एक नानाभाषी कोश का निर्माण किया जिसमें अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य दस भाषाओं के (वेल्स, लो डच्, हाई डच्, फ्रांसीसी, इताली, पुर्तगाली, स्पेनी, लातिन, यूनानी और हिब्रू शब्द दिए गए थे।

इन कोशों मे अंग्रेजी कोश के लिये आवश्यक और उपयोगी सामग्री के रहने पर भी केवल अंग्रेजी के एकभाषी कोश की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। प्राचीन अध्ययन के प्रति पुनर्जागृति के कारण अंग्रेजी मे लातिन, यूनानी, हिब्रू, अरबी आदि के सहस्रो शब्द और प्रयोग प्रचारित होने लगे थे। ये प्रयोग 'इंक हार्ड्स टर्म्स्' कहे जाते थे। वे परंपरया आगत नहीं थे। इन क्लिष्ट शब्दो की वर्तनी और कभी कभी अर्थ बतानेवाले ग्रंथो की तत्कालीन अनिवार्य आवश्यकता उठ खडी हुई थी। मुख्यत इसी की पूर्ति के लिये—न कि अपनी भाषा के शब्दो और मुहावरो का परिचय कराने की भावना से—आरंभिक अंग्रेजी-कोशो के निर्माण की कदाचित् मुख्य प्रेरणा मिली। सर्वप्रथम 'टेबुल अल्फाबेटिकल आव हार्ड वर्ड्स' शीर्षक एक लघु पुस्तक राबर्ट काउड्रे' ने प्रकाशित की जो १२० पृष्ठों मे रचित थी। इसमे तीन हजार शब्दो की शुद्ध वर्तनी और अर्थो का निर्देश किया गया था। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि आठ वर्षो मे इसके तीन संस्करण प्रकाशित करने पड़े। १६१६ ई० मे 'ऐन इगलिश एक्सपोजिटर' नामक—जॉन बुलाकर का—कोश प्रकाशित हुआ जिनके न जाने कितने संस्करण मुद्रित किए गए। १६२३ ई० मे 'एच० सी० जेंट' द्वारा रचित 'इंगलिश डिक्शनरी' के नाम से एक कोशग्रंथ प्रकाशित हुआ जिसकी रचना से प्रसन्न होकर प्रशसा मे 'जॉन फोर्ड' ने प्रमाणपत्र भेजा था। तीन भागो मे विभक्त इस कोश की निर्माणपद्धति कुछ विचित्र सी लगती है। इसकी विभाजनपद्धति को देखकर 'यास्क' के निरुक्त मे निर्दिष्ट नैगमकांड, नैघंटुककांड और दैवतकांडो मे लक्षित वर्गानुसारी पद्धति की स्मृति हो आती है। प्रथम अंश मे क्लिष्ट शब्द सामान्य भाषा मे अर्थो के साथ दिए गए हैं। द्वितीय अंश मे सामान्य शब्दों के अर्थो का क्लिष्ट पर्यायो द्वारा निर्देश हुआ है। देवी देवताओ, नरनारियो, लडके लडकियो, दैत्यो-राक्षसो, पशु पक्षियो आदि की व्याख्या द्वारा तीसरे भाग के इस अंश मे वर्णन किया गया। इसमे शास्त्रीय, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा अलौकिक शक्तिसंपन्न व्यक्तियो आदि से संबद्ध कल्पनाओ का भी अच्छा संकलन है। २० साल परिश्रम करके 'ग्लासोग्राफिया' नामक एक ऐसे कोश का 'टामस ब्लाउंडर' ने संग्रह किया था जिसमे यूनानी, लातिन, हिब्रू आदि के उन शब्दो की व्याख्या मिलती है जिनका प्रयोग उस समय की परिनिष्ठित अंग्रेजी मे होने लगा था। ई० सी० काकरमैन का कोश भी बडा लोकप्रिय था और उसके जाने कितने संस्करण हुए। प्रसिद्ध कवि मिल्टन के भतीजे एडवर्ड फिलिप्स ने १५४५ ई० मे 'दि न्यू वर्ल्ड आव इंगलिश वर्ड्स्, या 'ए जेनरल डिक्शनरी' नामक लोकप्रिय कोश का निर्माण किया था।

१६६० तक के प्रकाशित कोशों की निर्माण संबंधी आवश्यकताओ मे कदाचित् तात्कालिक प्रयोजन का सर्वाधिक महत्व था विशिष्ट महिलाओ या अध्ययनशील विदुषियो की सहायता देना आदि म चलकर कोशनिर्माण का इस प्ररणा का निर्देश नहीं १७०२ ई० से १७०७ तक 'ग्लासोग्राफिया' के अनेक ... । एडवर्ड फिलिप्स का कोश भी ... हो गया। एशिसाफोरस भी भी इसी समय के आसपास छपे जिनका पुनर्मुद्रण बीसवी शती तक भी होता रहा। जॉन करेन्सी ने भी 'डिक्शनेरियम एग्लोब्रिटेनिकन' या 'जनरल इंग्लिश डिक्शनरी' निर्मित की जिसमें पुराने (प्रयोगलुप्त) शब्दो की पर्याप्त सख्या थी।

नैथन बेली—सौ वर्षो तक अंग्रेजी की कोशरचना का यही क्रम चलता रहा जिनके शब्दसंकलन मे विशिष्ट शब्दो की ही मुख्यता बनी रही। भाषा मे प्रयुक्त समस्त—सामान्य और विशिष्ट—शब्दों का कोश बनाने मे विद्वान् प्रवृत्त नहीं हुए थे। 'नैथन बेली' ने सर्वप्रथम ऐसे कोशके निर्माण की योजना बनाई जिसमे अंग्रेजी के समस्त शब्दो के समावेश का प्रयास किया गया। इसका नाम था 'युनिवर्सल इटिमॉलाजिकल इंगलिश डिक्शनरी'। इसमे अनेक विशेषताएँ थी। संकलित शब्दो के विकासक्रम का सकेत दिया गया था। साथ ही इसमे व्युत्पत्ति देने की भी चेष्टा की गई। १७२१ मे इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। १७३१ मे प्रकाशित दूसरे संस्करण मे शब्दो के उच्चारणबोधक सकेत भी इसमे दिए गए। अंग्रेजी के कोशज्ञ विद्वानो द्वारा यह कोश अत्यंत महत्वपूर्ण अंग्रेजी डिक्शनरी माना जाता है। पहला कारण यह था कि डा० जानसन द्वारा निर्मित ऐतिहासिक महत्व के अंग्रेजी कोश की यह आधारशिला बनी। दूसरा कारण यह था कि इसमे समस्त अंग्रेजी शब्दों के यथाशक्ति सकलन का लक्ष्य पहली बार रखा गया। तीसरा कारण व्युत्पत्ति निर्देश करने और उच्चारणसंकेत देने की पद्धति के प्रवर्तन का प्रयास था।

जॉनसन के अंग्रेजी कोश का महत्व (१७४७–१७५५ई०)

इटली और फ्रांस एकेडेमीशियनो द्वारा ऐसे प्रामाणिक कोशो की रचना का कार्यक्रम प्रवर्तित हो गया था जिनमे परिनिष्ठित भाषा के मान्यताप्राप्त प्रयोगरूपो का स्थिरीकरण और प्रमाणीकरण किया जा सके। जर्मन, स्पेनी, फ्रांसीसी और इताली भाषाओं मे ऐसे कोशो की रचना का प्रयास चल रहा था।

अंग्रेजी भाषा का साहित्यिक स्वरूप—पुष्ट, विकसित, मान्य एवं परिनिष्ठित होता चल रहा था। पद्य या छंदोबद्ध भाषा के अतिरिक्त गद्य की रचनाओ को साहित्यिक आदर प्राप्त होने लगा था। फलत' अंग्रेजी भाषा का तत्कालीन स्वरूप परिनिष्ठित भाषा के स्तर पर ग्राह्य और मान्य हो गया था। अत साहित्यकार, पुस्तक प्रकाशक और प्रचारक यह महसूस करने लगे थे कि परिनिष्ठित अंग्रेजी कोश का निर्माण अत्यंत आवश्यक हो गया है। अनेक पुस्तक प्रकाशकों और विक्रेताओ के उत्साह और सहयोग से पर्याप्त धनराशि व्यय करके जॉनसन द्वारा अनेक वर्षो के अथक प्रयास से अंग्रेजी की डिक्शनरी १७४७ से १७५५ ई० के बीच तैयार कर प्रकाशित की गई। इसी ... कन्साइज डिक्शनरी' भी १७५३ ई० मे जान वेसली द्वारा ... सामने आई। आजतक जानसन का उक्त कोश अपने ... ऐतिहासिक महत्व का माना जाता है। इसमे मूल ... के व्युत्पन्न शब्दो का विकासक्रम दिखाने के ... अर्थप्रयोगो को भी उदाहरणो द्वारा स्पष्ट

किया गया है। अंग्रेजी के उत्कृष्ट लेखकों से उदाहरणों के उद्धरण लिए गए है।

उनके इस कार्य का अंग्रेजी भाषी जनता ने बड़े हर्ष और उल्लास के साथ स्वागत किया। इसमे शब्दो का अर्थ परिभाषा के रूप मे भी दिया गया है। नवकोशविद्या के इतिहास मे यह उपलब्धि सर्वप्रथम और अत्यंत महत्वशाली कही गई। इसी समय चालीस विद्वान् व्यक्ति एक साथ मिलकर फ्रास मे फ्रासीसी भाषा का कोश बना रहे थे। उसकी चर्चा करते हुए 'जेंटिलमॅन्स मॅगजीन' नामक पत्र ने कहा था कि फ्रास के चालीस विद्वान् लगभग आधी शती मे जो कार्य न कर सके उसे अकेले जॉनसन ने सात वर्षो मे कर दिखाया। अंग्रेज जनता ने उस कोश को राष्ट्र और भाषा दोनो के उत्कर्ष की दृष्टि से अत्यंत महत्व का बताया। अंग्रेजी शब्दो के उच्चारण, भाषाशुद्धता की रक्षा और प्रयोग का स्थिरीकरण करने में इस कोश की बहुत बड़ी देन मानी जाती है। परतु इसमे दिए गए साहित्यिक उद्धरण—ग्रथो से सदर्भ निर्देशपूर्वक न लेकर—कोशकार ने अपनी स्मृति से दे दिए हैं। फलत अनेक स्थलो मे उद्धरणों की अशुद्धि इस कोश की एक त्रुटि बन गई। परतु त्वरित गति से स्वल्प समय मे कार्य समाप्त करने की आकाक्षा के कारण त्रुटि रह गई। पुस्तक एकत्र करना, उद्धरण प्रतिलिपि करना और उनका सयोजन करना, आदि कार्य इतना श्रम-समय-साध्य था जो सात वर्षो में एक व्यक्ति के द्वारा सर्वथा असभव था।

इसके बाद १८वी शती के अत तक अंग्रेजी मे अनेक कोश बने। विलियम कनिक, विलियम पैरी, टामस शेरिडन और जान वाकर ने उच्चारण आदि की समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया। इन कोशो को 'जॉनसन' के कोश का सक्षिप्त या लघु सस्करण कहा गया है। उच्चारण का ठीक ठीक स्वरूप बताने का कार्य समस्यात्मक था। उसका पूर्णत समाधान करने की चेष्टा 'जॉनसन' या बाद के कोशकारो ने की। जॉन वाकर ने उक्त दिशा मे विशेष प्रयत्न किया। इन कारणों से 'जॉनसन' के कोश की कुछ आलोचना भी होती रही। पर १६ वी शती के पूर्वार्ध से उसका समान बढ़ गया, उसकी महत्ता स्वीकृत हो गई। उसमे नए शब्दो, अर्थो, उद्धरणो आदि के परिवर्धनकारी परिशिष्टो को, अनेक विद्वानो की सहायता से जोड़कर, उक्त कोश के सशोधित और सर्वधित सस्करण प्रकाशित होते रहे। १८१८ई० मे ऐसा ही एक सस्करण प्रकाशित हुआ जो अब तक मान्य बना हुआ है।

इग्लिस्तानितों के अंग्रेजी प्रयोगों से अमेरिकनो की अंग्रेजी को स्वतत्र देखकर वेब्स्टर ने अमेरिकी अंग्रेजी का एक महत्वपूर्ण कोश बनाया। परतु उनके कोश की बहुत सी व्युत्पत्तियाँ ऐतिहासिक प्रमाणों पर आधारित न होकर निज की स्वतत्र कल्पना से आविष्कृत थी। बाद के सस्करणों मे भाषाविज्ञो ने उनका सशोधन कर दिया। आज भी वेब्स्टर के इस कोश का दो जिल्दो मे 'इन्टरनेशनल' सस्करण प्रकाशित होता है और कुछ दृष्टियो से इसका आज भी महत्व बना हुआ है। इस युग का दूसरा कोशकार रिचर्डसन था। उसके कोश मे उद्धरणो के द्वारा शब्दार्थबोध की युक्ति महत्वपूर्ण मानी गई और अर्थबोधक परिभाषाओं को हटाकर केवल उद्धरणो से अर्थ-प्रत्यायन की पद्धति अपनाई गई। जॉनसन से भी आगे बढ़कर—१२०० ईस्वी के पूर्ववर्ती चासर, गोवर आदि कलाकारो के लेखखडो को उसने उद्धृत किया। परतु उद्धरणों की तिथि उन्होंने नही दी। व्यावहारिक दृष्टि से श्रमसाध्य, अधिक व्यय-समय-साध्य यह पद्धति—शब्दकोश से अर्थज्ञान की कामना करनेवाले पाठको के लिये उपयोगी और सुविधाजनक न हुई। सामान्य पाठकों के लिये यह अति क्लिष्ट भी थी तथा अर्थ तक पहुँचने में समय भी बहुत लगता था। फिर भी कभी-कभी अनिश्चय रह ही जाता था। जनता मे अधिक उपयोगी और लोकप्रिय न होने पर भी इस कोश से एक बड़ा भारी लाभ हुआ। प्राचीन और प्रसिद्ध लेखकों के अत्यधिक उद्धरणो का इसमे सकलन हो गया और वे स्थायी रूप मे सुरक्षित भी हो गए।

आक्सफोर्ड डिक्शनरी योजना और निर्माण

१६वीं शताब्दी के मध्य लदन की फिलालाजिकल सोसाइटी मे स्वपठित निबधों द्वारा आर्कबिशप डा० आर० सी० ट्रेंच ने अंग्रेजी के तत्कालीन कोशो की कुछ कमियो की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने यह भी कहा कि नाथनबेली, जानसन तथा उनके उत्तराधिकारियो के कोश महत्वपूर्ण हैं। पर उन कोशो द्वारा शब्दो के पारिवारिक-ऐतिहासिक-विकास, अर्थ और तात्पर्य में परिवर्तन एव विकास तथा रूपविचार के विषय मे विशेष ध्यान नही दिया गया। शब्दो और अर्थों के प्रयोग एव ऐतिहासिक विकास की दिशा का कोश द्वारा पूर्ण परिचय मिलना चाहिए। सक्षेप मे भाषाविज्ञान और साहित्य के वैकासिक प्रयोगक्रम के साथ अर्थविकास (सिमेंटिक चेंजेज) और उत्पत्तिमूलक विकास की—कोश मे वैज्ञानिक और साहित्यिक—उभयविध सगति और पूर्णता अत्यंत अपेक्षित है। इन त्रुटियो के साथ साथ पूर्वोक्त कोशों मे विरल और अप्रचलित शब्दो का सकलन भी अपूर्ण था।

उन्होंने यह भी निर्देश किया कि कोशनिर्माण के वैज्ञानिक लक्ष्य की पूर्ति के लिये भाषा के प्राचीन साहित्य और वैज्ञानिक दृष्टिपद्धति का सम्यग्विनियोग और उपयोग किए बिना कोश की सर्वांगीण पूर्णता सभव नही होगी। यह भी सकेत किया कि इस कार्य की विशालता को देखते हुए जो अध्ययन, अनुशीलन और श्रम अपेक्षित है उसका संपादन एक दो व्यक्तियों द्वारा समव भी नही है। अनेक भाषाविज्ञ, भाषावैज्ञानिक और साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों के समिलित प्रयास से ही अभीप्सित कोश का निर्माण हो सकता है।

लदन की फ़िलालाजिकल सोसाइटी के समक्ष उन्होंने अंग्रेजी का विशाल और पूर्ण कोश बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया। उन्होंने सुझाव दिया कि बेली, जानसन, रिचर्डसन, वेब्स्टर आदि के कोशों को पूर्ण करने के लिये निर्धारित कोशपद्धति के आधार पर सामग्री का सकलन किया जाय, उनके परिशिष्ट बनाए जायें। शब्दप्रयोग, रूपविकास, अर्थविकास, प्रयोगमूलक नाना अर्थच्छायाओं का, शब्दार्थनिर्देश के सदर्भ मे, सोदाहरण उपन्यास करना चाहिए। शब्द और उससे द्योतित अर्थ के विकास का कोश में पूर्ण इतिहास दिखाना चाहिए। उक्त सस्था द्वारा सकलित सामग्री के आधार पर और

डा० ट्रेंच के निर्देशो का आधार लेकर अनेक विद्वानो द्वारा अनेक वर्षो मे सकलित सामग्री की सहायता से आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी का प्रथम रूप और सस्करण प्रकाशित हुआ।

आठ सौ वर्षो के अग्रेजी साहित्य मे प्रयुक्त लिखित रूपो, अर्थो आदि का यथासभव विकास इस कोश मे दिखाया गया। प्रथम प्रयोग से लेकर उनके प्रमुख प्रयोगक्रम की जन्मपत्री दिखाई गई। भाषा के प्रचलित अप्रचलित--प्राय सभी शब्दरूपो और उनके अर्थांश का वैकासिक एव ऐतिहासिक विवरण भी यथ सभव दिया गया है। अप्रचलित शब्दो के उपलब्ध अतिम प्रयोग की सूचना देने का भी प्रयास हुआ। भाषावैज्ञानिक अध्ययन और अनुशीलन के आधार पर शब्दो की व्युत्पत्तियों का भी सयोजन किया गया। इस ऐतिहासिक कोश का महत्व था इसकी यथासभव सपूर्णता। इसी आधार पर उस युग के भाषाविज्ञों ने इस कोश को समादर दिया और इसकी प्रशसा हुई। इसकी सामग्र के सकलन मे पचास लाख शब्द चिटें एकत्र हुई थी और उनके सकलन का कार्य लगभग दो सहस्र उत्साही पाठकों ने किया था। इस सदर्भ मे कुछ विस्तार से विवरण देने का तात्पर्य इतना ही है कि हम हिंदी के सबसे बडे वर्तमान कोश--हिंदी-शब्द-सागर--के सपादन मे भी समस्त आवश्यक एव अपेक्षित साधनो और उपकरणो को एकत्र करने मे सर्वथा समर्थ नहीं हो पाए हैं। इस विषय की चर्चा अन्यत्र की जा रही है।

इसी सबध मे यह भी ध्यान रखने की बात है कि उक्त कोश के पुन सशोधित और परिवर्धित सस्करण का सपादन कार्य निरतर चला आ रहा है। सौ सवा सौ वर्षो से इग्लैड के कोशविज्ञान-विशारद विद्वानो की मडली सर्वदा कार्यरत रहती है। अपार धनराशि का निरतर व्यय किया जाता है। इन समस्त साधनो के योग से और सस्थाविशेष के निर्देशन मे विशेष विभाग द्वारा उक्त कोश के परिष्कार, विस्तार और पुन सपादन का अखड यज्ञ चल रहा है। ज्ञान विज्ञान की सभी शाखाओ के कोशप्रेमी विद्वानो की अबाध सहायता भी सदा प्राप्त होती रहती है। कोशविज्ञान, भाषाविज्ञान, साहित्यविद्या और भाषा एव साहित्य के धुरधर और ऐतिहासिक सुधियों द्वारा उसके पुन सपादन मे सभी आवश्यक प्रयत्न होते चल रहे हैं। इतना ही नहीं, उक्त कार्य में देश के बहुसख्यक जागरूक पाठको का भी बिना पारिश्रमिक के स्वल्पाधिक सहयोग मिलता रहा है।

'फिलालाजिकल सोसाइटी' की योजना के साथ साथ अनेक अन्य छोटे बडे कोश भी बनते रहे जो कोशविद्या की सर्वांगीणता के विचार से अपूर्ण भी थे तथा उनमे अन्य प्रकार की त्रुटियाँ या इसी ढग से मिलते जुलते कोश बनते रहे।

उपर्युक्त अग्रेजी कोश के आरभिक विकास का त्वरित सिंहावलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि (१)--अग्रेजी कोशों में सर्वप्रथम लिखित लैटिन शब्दसूचियो का सरल लैटिन और अग्रेजी मे अर्थ देने से कोशकला का प्रारभ हुआ। यह प्रथम रूप था। (२)--दूसरे सोपान पर अग्रेजी शब्दसूचियो का तथा लैटिन और अग्रेजी शब्दसंग्रहों का विस्तार हुआ। (३)--तीसरे चरण मे इगलिश-लैटिन के शब्दसग्रह का कार्य हुआ। (४)--चतुर्थ अवस्था मे अग्रेजी और इतर भाषाओ के कोश बने। (५)--पाँचवे चरण मे अग्रेजी के क्लिष्ट शब्दो के शब्दसग्रहवाले और कोश बने। बेल्ली द्वारा इनमे सामान्य शब्दो को जोडने के साथ साथ व्युत्पत्तिनिर्देश की भी चेष्टा की गई। अब शब्दप्रयोगो के उदाहरण भी सगृहीत होने लगे। (६)--छठी अवस्था मे उच्च कोटि के कोशनिर्माण की चेष्टा और अर्थस्पष्टीकरण के लिये साहित्य मे प्रयुक्त उद्धरणो का उपयोग प्रारभ हुआ। (७)--इसी के साथ साथ या कुछ पहले से ही अग्रेजी कोशो मे प्रयुज्यमान भाषाशब्दो के उच्चारणसकेत देने की भावना प्रारभ हुई। (८)--अष्टम स्थिति वह है जब रिचर्डसन द्वारा शब्दव्याख्या छोडकर केवल उदाहरणमाध्यम से अर्थबोध का प्रयास हुआ। और आगे चलकर अतिम रूप से इन सबकी परिणति डा० ट्रेंच की प्रेरणा से निर्मित महाकोश मे दिखाई देती है। शब्दोच्चारण, शब्द, अर्थ शब्दप्रयोग और व्युत्पत्ति सबद्ध शब्दप्रयोग के इतिहासक्रम आदि को विस्तृत और ऐतिहासिक आयामो के साथ कोश मे अनुस्यूत करने की चेष्टा हुई है।

कोशविज्ञान की प्रारभिक स्थिति मे पश्चिम के कोश भी पर्याय सूचित करते हैं। धीरे धीरे विभिन्न अर्थो का भी निर्देश होने लगा। पर व्याकरण, उच्चारणसकेत, शब्दार्थप्रयोग का इतिहास, व्युत्पत्तिनिर्देश और उदाहरण द्वारा तात्पर्यविवरण का उनमे अभाव था। सस्कृत कोशों मे भी यह नहीं था। क्योकि वे ऐसे छदोबद्ध शब्दसग्रह थे जो पर्यायो के माध्यम से एक या अनेक अर्थो का परिचय देते थे। परतु सस्कृत के प्रसिद्ध वैयाकरण 'भानुजी दीक्षित' द्वारा निर्मित अमरकोश की 'व्याख्यासुधा' नामक टीका मे सभी शब्दो की व्याकरणानुसारी व्युत्पत्ति देने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

पश्चिम मे ऐतिहासिक और भाषावैज्ञानिक अनुशीलन की दृष्टि ने कोश के आधुनिक रूप को पूर्ण बनाने का प्रयास किया। प्रथमत फिलिप्स के कोश मे शब्दमूल का व्युत्पत्ति के प्रसग मे निर्देशमात्र हुआ। शब्दसागर के तत्सम और अनेक तद्भव शब्दो की व्युत्पत्ति इसी रूप मे सकेतित मात्र है। यहीं से अग्रेजी कोशो मे व्युत्पत्तिप्रदर्शन का अति सामान्य आरभ होता है। इससे कुछ पहले या इसी के आसपास शब्दार्थबोध के लिये पर्याय मात्र देने के स्थान पर अर्थसूचक व्याख्या लिखने की पद्धति आरभ हो गई थी। जॉनसन से एकाध ही वर्ष पूर्व प्रकाशित मार्टिन के कोश मे अर्थच्छायाओ को यद्यपि विस्तृत सदर्भ मे देखने का प्रयास हुआ, तथापि व्युत्पत्तिसकेत वहाँ लुप्त हो गया। जॉनसान के कोश में नाना अर्थच्छायाओ और उदाहरणों के साथ साथ शब्दप्रयोग के स्मृतिमूलक उदाहरण भी दिए गए। सकेतरूप मे मूल शब्द के निर्देश मात्र से व्युत्पत्तिसबध का सूचन किया जाता था। समानार्थक फ्रांसीसी पर्याय भी दिए गए। शेरिडन और वाकर के कोश, जॉनसन की अपेक्षा अल्प महत्व के होने पर भी उच्चारणसकेत की दिशा में अधिक प्रयत्नशील रहे। वेब्स्टर के कोश मे छोटे पैमाने पर कोशकला की रचनाविधानसबधी पूर्वमान्यताओ के उपयोग का सर्वाधिक प्रयास हुआ। दूसरी ओर पूर्वोक्त विशेषताओ

के अतिरिक्त डा० 'रिचर्डसन' के कोश मे लातिन के साथ फ्रासीसी, इताली, स्पेनी भाषा के शब्दो का उपन्यास यह सूचित करता है कि उस युग के कोशकारो की चेतना उद्बुद्धतर हो रही थी और तुलनात्मक दृष्टि का विकास होने लगा था। एक अन्य कोश मे तुलनात्मक रूपो की प्रवृत्ति तो लुप्त हो गई पर अर्थव्याख्या मे कुछ कुछ विश्वकोशीय पद्धति का प्रभाव लक्षित होने लगा था। १८६० के 'वेब्स्टर' के कोश मे पुन लातिन, इताली, स्पेनी और फ्रासीसी शब्दरूपों मे भी तुलनात्मक बोध का आभास मिलता है पर अग्रेजी कोशो की यह सीमा इन्ही भाषाओ के घेरे मे पडी रही।

धीरे धीरे कोशकला के आदर्श-रचना-विधान की उपादान सामग्रियों का प्रयोग—थोडी या बहुत मात्रा मे—आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी की रचना के पहले से भी होने लगा था। पर उनमे वैज्ञानिक और ऐतिहासिक आधार सर्वथा पुष्ट और सुव्यवस्थित नही थे। वे उपादान किसी एक कोश मे योजनाबद्ध क्रम से सयोजित न होकर भिन्न भिन्न कशों मे विकीर्ण थे। फिर भी उनसे कोशनिर्माण के आवश्यक उपादानो की उपयोगिता सूचित और निर्देशित हो चुकी थी। पूर्व कोशो की अपेक्षा परवर्ती कोशो मे प्राय अर्थप्रतिपादन की पूर्णता, यथार्थता और गूढता के साथ-साथ ऐतिहासिक और भाषवैज्ञानिक प्रौढता बढती गई। डा० ट्रेंच की मनीषा ने समस्त पूर्वसकेतिक उपादानो के समुचित विनियोग एव समावेश का लिगनिर्देश किया। उन्होने सुव्यवस्थित ढग से और योजनाबद्ध रूप मे उनके उपयोग की महत्ता को ठीक ठीक समझा और उनके समुचित एव व्यवस्थित विनियोग और प्रयोग से कोशरचना के कार्य को पूर्णता की दिशा मे बढाने का प्रयास किया।

आक्सफोर्ड इगलिश डिक्शनरी के निर्माण मे उपयोजित रचना-विधान ने कोशनिर्माण की एक ऐसी भूमिका प्रतिष्ठित की जो क्रमश विकास की ओर बढती चल रही है। साहित्य और भाषा के ऐतिहासिक एव वैज्ञानिक अध्ययन, अनुशीलन और अर्थविचार अथवा शब्दार्थविचार का कुशल परिशीलन उसमे लक्षित होता है। उसको पूर्णता की ओर अग्रसर करने के लिये शक्ति, सामर्थ्य, सहयोग और धन का व्यापक साधन जहाँ अपेक्षित है वहाँ विभिन्न शास्त्रज्ञो, विद्यावेत्ताओ, शब्दव्यवहार के मर्मज्ञ मनीषियो, भाषा तथा साहित्य के ऐतिहासिक परिशीलकों और शोधकर्ताओ की मेधा, मनीषा, सूक्ष्म बोध और प्रतिभा भी अपेक्षित है। यह कार्य स्वल्प समय मे साध्य भी नही है। इसके निर्माण और विस्तार का कार्य व्यापक परिवेश और बडे पैमाने पर अखड रूप से चलते रहना चाहिए। आक्सफोर्ड इगलिश डिक्शनरी का कार्य निरतर चलता रहता है। उसके सशोधन, परिष्करण, सवर्धन आदि की प्रक्रिया और नवीनतम सस्करण की प्रकाशनसामग्री का सचालन होता चलता है। सपादको की अनेक पीढ़ियों ने वहाँ कार्य किया। इतना ही नही—उसके आधार पर अनेक उपयोगी 'सक्षिप्त', 'लघु', 'पाकेट', आदि सस्करण छपते और लाखो की सख्या मे बिकते रहते हैं। अन्य सैकडो हजारो अग्रेजी कोशो को—जिनमे बडे छोटे सभी प्रकार के कोश हैं—रचना मे वहाँ से सामग्री और सहायता मिलती है। उसे प्रामाणिक और आप्त मान लिया गया है।

यह प्रसंग यहीं समाप्त किया जा रहा है। यहाँ इस चर्चा का उद्देश्य केवल इतना ही सकेत करना था कि भारत मे जो आधुनिक कोश बने वे इन्ही पाश्चात्य कोशो की पद्धति पर चले। उनके निर्माण मे पूरी सफलता चाहे न भी मिल सकी हो पर उनकी पद्धति भी वही थी जिसे हम आधुनिक कोशविज्ञान की रचनाशैली कहते हैं।

पाश्चात्य विद्वानो का योगदान

सस्कृत तथा भारतीय भाषाओ के कोश

भारत मे विदेशी विद्वानो, धर्मप्रचारको और सरकारी शासको द्वारा आधुनिक ढग से कोशनिर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ—यह कहा जा चुका है। ये कोश मुख्यत दो रूपो मे बने—(१) विदेशी भाषाओ मे (विशेषत अग्रेजी मे) और (२) अग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं मे। विदेशी भाषाओ के माध्यम से भारतीय भाषाओ के जो कोश बने उनमे सस्कृत के कोशो का स्थान महत्वपूर्ण है। इनके अलावा दूसरे वे कोश हैं जो अंग्रेजी आदि के माध्यम से बने। वे या तो हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू के कोश हैं या अन्य भारतीय भाषाओ के।

१८१९ मे डा० 'विलसन' का 'सस्कृत इगलिश कोश' प्रकाशित हुआ। अग्रेजी के माध्यम से प्रकाशित होनेवाले इस सस्कृत कोश को प्रस्तुत दिशा मे महत्वपूर्ण पर आरभिक कार्य कहा जा सकता है। इस कृति की भूमिका से पता चलता है कि उस समय पुरानी पद्धति के कुछ सस्कृत कोश वर्तमान थे। कोलब्रुक द्वारा अनूदित अमरकोश भी वर्तमान था। वस्तुत 'विलसन' का यह ग्रथ पर्यायवाची द्विभाषी कोश कहा जा सकता है। मोनियर विलियम्स की दो कृतियाँ—सस्कृत अग्रेजी कोश और इगलिश सस्कृत कोश महत्वपूर्ण कोश हैं। उनका प्रकाशन १८५१ ई० मे हुआ। इस कोश की प्रेरणा विलसन के ग्रथ से मिली। विलसन ने अपने कोश के नवीन सस्करण की भूमिका मे अपना मतव्य प्रकट किया है। वे यह चाहते थे कि सस्कृत के सभी शब्दो का वैज्ञानिक ढग से ऐसा आकलन हो जिससे सस्कृत की लगभग दो हजार धातुओ के अतर्गत समस्त सस्कृत शब्दो का समावेश हो जाय। इस दिशा मे उन्होंने थोडा प्रयत्न भी किया। इन दोनो के बाद महत्वपूर्ण ग्रथ आप्टे का कोश आता है जो सस्कृत अग्रेजी और अग्रेजी सस्कृत दोनो रूपो मे सपादित किया गया। विलियम्स के कोश मे धातुमूलक व्युत्पत्ति के साथ साथ शब्दप्रयोग का सदर्भ-सकेत भी दिया गया। परतु आप्टे के कोश मे सकेतमात्र ही नही उद्धरण भी दिए गए हैं। पूर्व कोश की अपेक्षा वह अधिक उपयोगी दिखाई पडा। कुछ वर्षों पूर्व तीन खडो मे उनके कोश का सशोधित सवर्धित और विस्तृत सस्करण प्रकाशित हुआ है जो कदाचित् तबतक के समस्त 'सस्कृत अग्रेजी कोशो मे सर्वाधिक प्रामाणिक एव उपयोगी

कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त भी अल्प महत्व के अनेक संस्कृत-अंग्रेजी-कोश बनते रहे जिनमे कुछ प्रसिद्ध कोशो के नाम आगे दिए जा रहे हैं—(१) संस्कृत अंग्रेजी कोश (संपादक—डब्ल्यू० यीट्स—१८४६) (२) संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी (लक्ष्मण रामचद्र वैद्य—१८८९), (३) संस्कृत डिक्शनरी (थियोडोर बेन्फे—१८६६), (४) ग्रासमैन लेक्सिकन टु दि ऋग्वेद और (५) प्रैक्टिकल संस्कृत डिक्शनरी—विद ट्रान्स्लिटरेशन, एक्सेंचुएशन ऐंड एटिमालाजिकल एनालसिस थ्रू आउट—मैक्डानल्ड, १९२४ ई०।

पूना मे केंद्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त आर्थिक अनुदान से डा० कत्रे के निदेशन मे संस्कृत का एक विशाल कोश बन रहा है। उसकी आधारभूत सामग्री का भी स्वतंत्र रीति से वैज्ञानिक और आलोचनात्मक पद्धति पर आलोचन और पाठनिर्धारण किया जा रहा है। उक्त कोश के लिये शब्दो का जो प्रामाणिक संकलन हो रहा है वह प्राय: सर्वांशत यथासभव आलोचनात्मक ढग से संपादित या संकलित है। डा० 'कत्रे' संस्कृत के साथ साथ आधुनिक भाषाविज्ञान के बडे विद्वान् हैं। इस कोश के शब्दसकलन और अर्थनिर्धारण मे तत्तत विषयो के संस्कृतज्ञ, प्रौढ पडितो की पूरी सहायता लेने का प्रयत्न हो रहा है। संपादनविज्ञान की पद्धति पर संपादित प्रामाणिक और आलोचित आधारग्रथो से ही यथासभव शब्दसकलन की चेष्टा हो रही है। भारतीविद्या (इडोलाजी) मे अबतक जो भी महत्वपूर्ण अनुशीलन विश्व की किसी भाषा मे हुआ है उसके सर्वांशत उपयोग और विनियोग का प्रयास हो रहा है। १७–१८ वर्षो से यह प्रयास चल रहा है जिसमे काफी समय, श्रम और धनराशि व्यय हो रही है तथा विषयज्ञ विद्वज्जनो का अधिक मे अधिक सहयोग पाने की चेष्टा की जा रही है। भाषाविज्ञान की न्यूनतम उपलब्धियों का सहारा लेकर व्युत्पत्तिनिर्धारणादि की व्यवस्था हो रही है। अत आशा है, यह कोश निश्चय ही उच्चतर स्तर का होगा। अंग्रेजी, जर्मन, फ्रासीसी, रूसी आदि भाषाओं के समस्त संपन्न संस्कृत कोशो की विशाल सामग्री का परीक्षापूर्वक ग्रहण हो रहा है। अत: निश्चय ही उक्त कोश, अबतक के समस्त संस्कृत-अंग्रेजी-कोशों मे श्रेष्ठतम होगा। क्या ही अच्छा होता यदि उक्त संस्कृत कोश के हिंदी तथा अन्य सभी आधुनिक भारतीय भाषाओ मे भी संस्करण छापे जाते।

मोनियर विलियम्स के बाद अनेक संस्कृत अंग्रेजी कोश बने। परंतु विलसन के नवीन संस्करण और विलियम्स के कोश के सामने उनका विशेष प्रचार नही हो पाया। विलसन के कोश का एक संक्षिप्त संस्करण भी १८७० ई० मे रामजसन ने संपादित किया जिसका काफी प्रचार हुआ। मेक्डानल की प्रैक्टिकल संस्कृत-इगलिश-डिक्शनरी अवश्य ही अत्यत महत्वपूर्ण कोश है। इसमे संस्कृत शब्दो के अर्थ का कालावधिक परिचय भी दिया गया है, शब्द के अधिक प्रचलित और स्वल्प प्रचलित अर्थों को सूचित करने का भी प्रयास हुआ है। 'बेन्फे' की भी 'संस्कृत-इगलिश-डिक्शनरी' प्रकाशित हुई। और भी अनेक छोटे बडे संस्कृत कोश निर्मित हुए। परंतु विलसन विलियम्स और आप्टे—इनकी संस्कृत इगलिश कोशत्रयी को सर्वाधिक सफलता एव प्रसिद्धि मिली।

यहाँ राथ और वोथलिंक् द्वारा प्रकाशित संस्कृत-जर्मन-कोश के उल्लेख के बिना समस्त विवरण अपूर्ण ही रह जायगा। ओटो वोथलिंक् तथा 'रुडोल्फ राथ' के संयुक्त संपादकत्व मे संस्कृत का जर्मनभाषी यह कोश—संस्कृत वॉर्तेरबुख—१८५८ ई० से प्रारभ होकर १८७५ ई० मे पूर्ण हुआ। यह कोश भारतीविद्या का महाज्ञान-कोश है। अत्यत विशाल और सात जिल्दों के इस कोश मे प्रभूत सामग्री भरी पडी है। इसका एक संक्षिप्त संस्करण भी १८७९ से लेकर १८८९ ई० तक प्रकाशित होता रहा। वह भी सात जिल्दो मे है पर उसकी पृष्ठसख्या—आधी से भी कम है। सेंट पीटर्सबर्ग से प्रकाशित यह संस्कृत-जर्मन-कोश व्यावहारिक उपयोगिता से पूर्ण होकर भी अत्यत प्रामाणिक है। इसके पहले अनेक छोटे बडे संस्कृत कोश जर्मन, फ्रासीसी, इताली आदि भाषाओ मे बन चुके थे। १८४६ ई० मे थियोडोर बेन्फ' का कोश बना था जिसका अंग्रेजी रूपातर १८५६ मे मैक्सम्यूलर के संपादकत्व मे प्रकाशित हुआ।

इनमें से अनेक कोश ऐसे थे जो भारत मे और अनेक विदेशों मे प्रकाशित हुए।

हिंदुस्तानी, हिंदी, उर्दू के कोश

हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू के आधुनिक कोशो का निर्माणकार्य भी पाश्चात्य विद्वानों ने व्यापक पैमाने पर किया। इन भाषाओ एव अन्य भारतीय भाषाओ के कोशो का निर्माण जिन प्रेरणाओं से पाश्चात्य विद्वानो ने किया उनमे दो बातें कदाचित् सर्वप्रमुख थी

(क) धर्म का प्रचार करनेवाले ख्रीष्ट मतावलबी धर्मोपदेशक चाहते थे कि यहाँ की जनता मे घुलमिलकर उनकी भाषा बोल और समझकर उनकी दुर्बलताओं को समझा जाय और तदनुरूप उन्ही की बोली मे इस ढग से प्रचार किया जाय जिसमे सामाजिक रूढियो और बधनो से पीडित वर्ग, इसाई धर्म के लाभो के लालच मे पडकर अपना धर्म-परिवर्तन करे। फलत यह आवश्यक था कि हिंदी या हिंदुस्तानी, उर्दू तथा बँगला, तमिल, मराठी, मलयालम्, कन्नड, तेलगू, उडिया, असमिया आदि भाषाभाषियो के बीच ख्रीष्टीय मत के प्रचारक, उनकी भाषाएँ सीखें और उनमे धडल्ले से व्याख्यान दे सकें तथा ग्रथरचना कर सकें। परिणामत इन भाषाओं के अनेक छोटे मोटे व्याकरण और कोशों की विदेशी माध्यम से रचना हुई।

(ख) दूसरा प्रमुख वर्ग था शासको का। शासनकार्य की सुविधा और प्रौढता के लिये, शासित की भावना, संस्कृति, धार्मिक विचार, भाषा और उनके धर्मशास्त्र तथा साहित्य की जानकारी भी अनिवार्य थी। एतदर्थ भी इन भाषाओ के कोश बने।

इन दोनों के अतिरिक्त भारतीविद्या भारतीय दर्शन, वैदिक तथा वैदिकेतर संस्कृत साहित्य के विद्याप्रेमी और भाषावैज्ञानिक प्राय नि:स्वार्थ भाव से संस्कृत एव अन्य भारतीय भाषाओं के अनुशीलन मे प्रवृत्त हुए तथा तत्तत् विषयों के ग्रथो की रचना की। इसी सदर्भ मे महत्वपूर्ण कोशग्रथ भी बने। संस्कृतकोशो की चर्चा की जा चुकी है। 'ए डिक्शनरी आव् मोहमडन लॉ ऐंड बगाल रेवेन्यू टर्म्स्' (४ भाग—ई० १७९५), 'ए ग्लासरी आव् इडियन टर्म्स्' (८ भाग—१७९७ ई०), बगाली सिविल सर्विस टर्म्स्' (एच्. एम् इलियट—

१८४५ ई०), 'ए ग्लासरी आव् जुडिशल ऐंड रेवेन्यू टर्म्स्' इत्यादि ग्रंथो का निर्माण किया गया। इनसे एक ओर तो शासनकार्य मे सुविधा प्राप्त हुई और दूसरी ओर पाश्चात्य विद्वानो को भी भारतीय भाषा या सस्कृत के ग्रथो का अपनी अपनी भाषाओ मे अनुवाद करने मे सहायता मिली।

इन कोशो के अलावा पाश्चात्य विद्वानो अथवा उनकी प्रेरणा से भारतीय सुधियो द्वारा उसी पद्धति पर पाली, प्राकृत आदि के कोश भी बने और बन रहे हैं। राबर्ट सीजर ने पालि-सस्कृत-डिक्शनरी का १८७५ ई० मे प्रकाशन कराया था। १९२१ ई० मे पाली टैक्स्ट सोसाइटी के निर्देशन मे पाली-अग्रेजी-डिक्शनरी बनकर सामने आई। शतावधानी जैनमुनि श्रीरत्नचद ने 'अर्धमागधी डिक्शनरी' का निर्माण किया। उसमे सस्कृत, गुजराती, हिंदी और अग्रेजी का प्रयोग उपयोग होने से उसे बहुभाषी शब्दकोश कहना सगत है। 'पाइयसद्दमहण्णव' निश्चय ही प्राकृत का अत्यत विशिष्ट कोश है जिसका पुन प्रकाशन किया गया है 'प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी' की ओर से।

भारतीय आधुनिक भाषाओं मे हिंदी के विशिष्ट स्थान और महत्व की घोषणा किए बिना भी पाश्चात्य विद्वानो ने उसे हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा मान लिया तथा हिंदी या हिंदुस्तानी—दोनो ही नामों का उसके लिये—मेरी समझ में—प्रयोग किया। उर्दू को भी उसी की शैली समझा। अत हिंदुस्तानी और हिंदी के कोशो की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। नीचे इसकी चर्चा हो रही है।

हिंदी-हिंदुस्तानी के कोश

हिंदी या हिंदुस्तानी या उर्दू के कोशो का निर्माण भी इसी क्रम में हुआ। जानसन का लघुकोश 'ए लिस्ट आव वन थाउजड इपार्टैंट-वर्ड्स' आरमिक प्रयास था। इस दिशा मे सबसे महत्वपूर्ण कार्य था विलियम हटर की हिंदुस्तानी-इग्लिश-डिक्शनरी (१८०८ ई०)। इसका मुख्य आधार था कैप्टन जोसफ टेलर की 'ए डिक्शनरी आव हिंदुस्तानी ऐंड इग्लिश'। टेलर ने अपने उपयोग के लिये इसका निर्माण किया था। हटर का कोश निरतर सशोधित और परिवर्धित सस्करणो मे क्रमश १८१९, १८२० और १८३४ ई० मे प्रकाशित होता रहा। जान शेक्सपियर भी कोश का कार्य करते रहे। पर उनके कोश से पूर्व हटर का कोश तथा एम० टी० आदम की कृति 'दि डिक्शनरी आव हिंदी ऐंड इग्लिश' प्रचलित था। डा० गिल-क्राइस्ट की डिक्शनरी 'इग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी' १७८६-९६ मे प्रकाशित हो चुकी थी। उसका सक्षिप्त रूप उन्होने ही रोबक के सहसपाद-कत्व मे १८१० ई० मे प्रकाशित किया था। डा० रोजेरी ने उसी को ए डिक्शनरी आव 'इग्लिश बंगला ऐंड हिंदुस्तानी' नाम से सक्षिप्ततर रूप में कलकत्ता से १८३७ ई० मे प्रकाशित कराया था। जे० बी० थामसन की उर्दू-अग्रेजी डिक्शनरी १८३८ ई० मे प्रकाशित हुई। १८१७ ई० मे शेक्सपियर द्वारा लदन से 'अग्रेजी हिंदुस्तानी, और हिंदुस्तानी अग्रेजी' कोश प्रकाशित हुआ परतु इन सबमे रोमन या फारसी लिपि का प्रयोग मुख्यत होता रहा। इसी बीच १८२९ ई० मे पादरी एम० टी० आदम का महत्वशाली कोश भी सामने आया, जो—जैसा प्रथम सस्करण की भूमिका के पृ० १ मे बताया गया है—हिंदी कोश के नाम से कलकत्ता मे प्रकाशित हुआ। इसे नागरी का प्रथम कोश कह सकते है जिसमे हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का व्यवहार किया गया। डा० हरकोट्स ने भी 'ए डिक्शनरी इग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी' बनाई थी। मद्रास के डा० हैरिस ने बडे व्यापक पैमाने पर एक हिंदुस्तानी-अग्रेजा कोश का सपादन-कार्य आरभ किया था। वे बहुत काफी कार्य कर भी चुके थे। पर इसके पूर्ण होने से पहले ही वे दिवगत हो गए। यह बहुत ही प्रामाणिक ग्रथ था। सामान्य सदर्भ की भी इसमे सहयोजना थी। इसकी सबसे बडी विशेषता यह थी कि इसमे दक्खिनी हिंदी के शब्दो का उपयोग हुआ था।

जान शेक्सपियर ने अपने कोश के निर्माण मे इसकी पाडुलिपियो का पूर्ण उपयोग किया। उन्हें इसका हस्तलेख मिला था इडिया हाउस के आफिस मे। इसके शब्दो और अर्थों के सकलन मे डा० हैरिस ने भारतीय विद्वानों की पूरी सहायता ली थी।

इसके आधार पर और सकलित भाग का पूर्ण उपयोग करते हुए अपने कोशो का शेक्सपियर ने परिवर्धित सस्करण १८४८ ई० में और दूसरा सशोधित सस्करण १८६१ ई० मे प्रकाशित कराया। इस विशाल शब्दकोश के दोनो अशो मे बहुत परिवर्धन सशोधन हुआ। दोनो अश 'हिंदुस्तानी ऐंड इग्लिश डिक्शनरी' तथा 'इंग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी डिक्शनरी' एक साथ प्रकाशित किए गए। यह शब्दकोश विशेष महत्व का है। इसमे सबसे पहले रोमन वर्णो द्वारा शब्दनिर्देशन है, तदनंतर यथा, एस् = सस्कृत, एच् = हिंदी या हिंदुस्तानी, पी = फारसी सकेतो द्वारा कोश के शब्द से संबद्ध मूलभाषास्रोत का निर्देश हुआ है और हिंदी, हिंदुस्तानी, फारसी, अरबी, अग्रेजी, पुर्तगाली, तुर्की, ग्रीक, लातिन, तामिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड, बंगला, मराठी, गुजराती आदि के सकेत हैं। तदनतर फारसी मे कोशशब्द यथास्थान दिए हुए हैं। यदि आवश्यक हुआ तो नागरी रूप भी दिया गया है। रोमन मे फिर वही शब्द है और अत मे अग्रेजी पर्याय।

इसी युग मे डकन फोर्ब्स का कोश—डिक्शनरी हिंदुस्तानी (१८४८ ई०) का भी प्रकाशन किया गया। इसमे कोशशब्दो को फारसी और रोमन मे तथा अर्थपर्याय अग्रेजी में दिया गया है।

'ए न्यू हिंदुस्तानी इग्लिश डिक्शनरी' का फैलन ने बडे श्रम के साथ सपादन किया और उसे प्रकाशित कराया। उसका महत्व इस वर्ग के कोशो मे सर्वाधिक माना गया। आधुनिक कोशविद्या की पद्धति से निर्मित यह ऐसा कोश है जिसमे पर्यायवाची शैली का भी योग है। इसमे उदा-हृत अश एक ओर तो हिंदुस्तानी साहित्य से गृहीत हैं दूसरी ओर लोकगीतों के उदाहरण भी दिए गए हैं। इतना ही नहीं, बोलचाल की भाषा और महिलाओ की शुद्ध बोलियो का पहली बार उदाहरण के रूप मे यहाँ उपयोग किया गया है। हिंदुस्तानी शब्दो के अर्थों को बोलचाल की भाषा से ही सकलित करके देने का प्रयास हुआ है। व्युत्पत्तिमूलक अर्थो को पुराने रूपों के आधार पर दिया गया है और कुछ हिंदी शब्दो के धातुओं का भी निर्धारण हुआ है। यह कोश व्युत्पत्ति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है तथा उदाहरणों और तदाधारित अर्थनिर्देश की दृष्टि से भी अत्यत महत्व रखता है। इसका कारण यह

है कि इसमे बोलचाल की भाषा का मथन और निकट से सूक्ष्मदर्शन किया गया है। इन्होंने इंग्लिश हिंदुस्तानी का भी कोश तैयार किया। इन कोशो का विवरण सक्षेप मे नीचे दिया जा रहा है।

गिलक्राइस्ट की हिंदुस्तानी इगलिश डिक्शनरी, जो अपनी प्राचीनता के कारण बड़े महत्व की है, १७८६ मे बनी थी। इसमे भूमिका देने के अलावा भाषासबधी कुछ आवश्यक बातें तथा युद्ध की कहानियाँ भी सगृहीत हैं। सज्ञा, सर्वनाम, क्रियाविशेषण, अव्यय आदि के शब्द हैं। इसमे संस्कृत तत्सम शब्दो को छोड दिया गया है परतु तद्भव, देशज एव भारत मे प्रचलित अरबी फारसी के शब्दों को ले लिया गया है। रोमन वर्णमाला के अनुसार शब्दक्रम है। शब्दो की व्याख्या कम की गई है और अग्रेजी पर्याय अधिक हैं।

जे० टी० थामसन ने दो शब्दकोश--(१) उर्दू और अग्रेजी तथा (२) हिंदी और अग्रेजी--बनाए। फासिस ग्लेडविड ने परशियन, हिंदुस्तानी और अग्रेजी की डिक्शनरी निर्मित की। जे० डी० बेट्स ने ए डिक्शनरी आव हिंदी लैंग्वेज (१८७५ ई० मे) बनाई।

कैप्टन टेलर का शब्दकोश (हिंदुस्तानी अग्रेजी) बना था अपने व्यक्तिगत उपयोग के निमित्त। हटर ने उसी का आधार लेकर विस्तत कोश बनाया था। कोशकार के कथनानुसार उसका शब्दसंकलन जनता से हुआ था। सस्कृत के तत्सम, तद्भव और देशज शब्दो के साथ साथ अरबी, फारसी, ग्रीक, अग्रेजी, पुर्तगाली के तद्भव शब्द भी और कभी कभी तत्सम और देशज शब्द भी उसमे लिए गए हैं। दखिखनी हिंदी और बँगाली के शब्द भी नहीं छोडे गए हैं। शब्दो की वैकल्पिक और भूगोलमूलक भिन्नताओ का स्थान स्थान पर सकेत भी किया गया है। रीति रिवाजो का भी अनेक स्थानो पर काफी विवरण मिलता है। कुछ व्यक्तिवाचक सज्ञाओ के प्रयोग मे पौराणिक और प्राचीन कथाओ का वर्णन भी मिल जाता है।

१८१७ मे निर्मित शेक्सपियर की हिंदुस्तानी-अग्रेजी डिक्शनरी मे पर्याप्त शब्दों की व्युत्पत्ति देने का प्रयत्न लक्षित होता है। शब्दो के पूव ही सकेताक्षरो द्वारा भाषाओ का निर्देश हुआ है। शब्दक्रम की योजना मे फारसी लिपिमाला का अनुसरण है परतु सस्कृत से व्युत्पन्न शब्द नागरी लिपि मे हैं। इस कोश के अनेक सस्करण हुए। चतुर्थ सस्करण मे दक्खिनी भाषा के अनेक कवियो से भी शब्द सकलित हुए हैं।

इन कोशो की रचना मे धर्मप्रचार के अतिरिक्त मुख्य उद्देश्य था विदेशी शासन के अधिकारी वर्ग को भारतीय भाषा सिखाना। अत शब्दसकलन के क्रम मे बोलचाल के शब्दो को इन कोशकारो ने प्रमुखता दी और अप्रचलित या अल्पप्रचलित तत्सम या तद्भव शब्दो के अनावश्यक सकलन से कोशकलेवर को विस्तार से बचाने का उन्होने प्रयत्न किया। हिंदुस्तानी के इन कुछ कोशो मे अधिकत उर्दू शब्दो का प्राधान्य है और बेट्स तथा एकाध और कोशकारो के कोशो को छोडकर प्राय सबमे शब्द-क्रम-योजना का आधार फारसी वर्णमाला है। फैलन के कोश मे चूंकि मुख्य रूप [illegible] चाल की भाषा का आधार गृहीत हुआ था, अतः जॉन टी० [illegible] ने उर्दू और हिंदी के सा[illegible] ओ मे प्रयुक्त शब्दों के सकलन [illegible]

ध्यान दिया। पादरियो और अग्रेजी शासको ने निश्चय हिंदी या हिंदुस्तानी के एकभाषी, द्विभाषी, कोशो और नवीन कोश रचना-पद्धति का प्रवर्तन किया। लल्लू जी लाल जैसे लोगो ने भी त्रिभाषी कोश बनाए। श्रीराधेलाल का शब्दकोश (१८७३ ई०), पादरी बेटस का कोशो से (१८७५ ई० मे) प्रकाशित हिंदीकोश और मु० दुर्गाप्रसाद का अग्रेजी उर्दू कोश (१८६० ई०)--इस दिशा के अनवरत चलते रहनेवाले प्रयास के उदाहरण हैं। १८७३ ई० से लेकर और उन्नीसवी शती के अत तक--भारत और बाहर (पेरिस आदि में) इस दिशा के कार्यों का सिंहावलोकन प्रथम सस्करण की भूमिका (पृ० १२) मे दिया गया है। अत यहाँ इतना ही कहना है कि हिंदी के नवकोशो की आद्य रचना और प्रेरणा--पश्चिम के कोशकारो द्वारा ही प्राप्त हुई। फलत हिंदी ही नही, उसकी बोलियो के भी अनेक कोश बने। ब्रजभाषा का कदाचित् सर्वप्रसिद्ध कोश है श्री द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी द्वारा निर्मित--शब्दार्थपारिजात। सूर-ब्रजभाषा-कोश भी डा० टडन ने बनाया है। अवधी का प्रसिद्ध नवकोश--श्री रामाज्ञा द्विवेदी द्वारा सपादित कराकर हिंदुस्तानी एकाडमी ने प्रकाशित किया है। उदयपुर से इधर एक विशाल राजस्थानी सबद कोश भी प्रकाश मे आ रहा है। इसी प्रकार मैथिली कोश भी प्रकाशित हो चुका है।

हिंदीतर भाषाओ मे कोश

(क) द्रविड भाषाएँ

भारतीय हिंदीतर भाषा के कोशो का निर्माण भी प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक बराबर चल रहा है।

तमिल भाषा मे कोशनिर्माण की परपरा बहुत प्राचीन कही जाती है। उनका प्रसिद्ध व्याकरण ग्रथ 'तालकाप्पियम्' कहा जाता है। उसी व्याकरण ग्रथ मे ग्रथकार ने सूत्र शैली मे शब्दकोश तैयार किया था। ग्रथ के लेखक ने तमिल भाषा के शब्दो को चार वर्गों मे विभक्त किया है--(१) सामान्य देशी शब्द, (२) साहित्यिक शब्द, (३) विदेशी भाषाओ से व्युत्पन्न शब्द और (४) सस्कृत से व्युत्पन्न शब्द। इसमे शब्दसग्रह वर्णानुक्रम से रखा गया है। इसका प्रकाशन यद्यपि अट्ठारहवी शताब्दी का है तथापि इसकी रचना ईसा की प्रथम द्वितीय शताब्दी मे बताई जाती है। तमिल का दूसरा कोश 'तिवाकरम' है। १२ खडो का यह कोश अमरकोश के आधार पर बना है। इसमे दस खडो मे वर्गमूलक शब्दसचय है, ११वाँ खड नानार्थ शब्दो का और १२वाँ समूहवाचक शब्दो का है।

१६७६ ई० मे प्रथम तमिल-पुर्तगाली-कोश बना और १७१० ई० में फादर बेशली ने पूर्णत अकारादि क्रम पर निर्मित 'कतुर अकाराति' नामक कोश तैयार किया। तमिल का प्रथम अग्रेजी कोश लूथर के अनुयायी धर्मप्रचारको द्वारा १७७९ ई० मे 'मलाबार ऐंड इंग्लिश डिक्शनरी' नाम से प्रकाशित हुआ। उसी का दूसरा सस्करण सशोधित रूप से तमिल मे 'इग्लिश डिक्शनरी' के नाम मे १८०९ ई० मे मुद्रित हुआ। [illegible]५१ ई० में एक त्रिभाषी कोश (अग्रेजी, तेलगू और तमिल का [illegible] प्रकाशित हुआ। इनकी [illegible] ता से अनेक तमिल कोश बनते [illegible] और [illegible] । मे व्याकरण

ग्रौर कोशो की सपन्न परपरा है। मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा तमिल का एक विशाल कोश तैयार हुग्रा है जो ग्रनेक जिल्दों मे प्रकाशित है। इसकी शब्दयोजना तमिल वर्णमाला के ग्रनुसार है। इसकी भूमिका मे तमिल-कोश-परपरा के विकास का विस्तृत विवरण दिया गया है।

इनके ग्रतिरिक्त प्राचीन ग्रौर ग्रर्वाचीन कालो मे ग्रनेक तमिल कोश निर्मित हुए। इनमे ग्रनेक नवीन कोश ऐसे हैं जिनमे तमिल मे ग्रर्थ दिया गया है, कुछ मे ग्रग्रेजी द्वारा शब्दार्थ बताया गया है—जैसे 'तमिल लेक्सिकन' ग्रौर कुछ नए कोश ऐसे भी हैं जिनमे भारतीय भाषाग्रों का ग्रर्थबोधन के लिये ग्राश्रय लिया गया है। इन्ही मे एकाध तमिल हिंदी कोश भी हैं।

दक्षिण की ग्रन्य द्रविड भाषाग्रो मे भी १६वी शती के पूर्वार्ध से ही कोशों की रचना चली ग्रा रही है। इन भाषाग्रो मे ग्राज ग्रनेक उत्तम ग्रौर विशाल कोश प्रकाशित हैं या हो रहे हैं। तेलगू के द्विभाषी कोश की ऊपर चर्चा हुई है। चार्ल्स फिलिप्स ब्राउन द्वारा १८५२ ई० मे ग्रग्रेजी तेलगू कोश निर्मित होकर छापा गया। ए तेलगू-इग्लिश डिक्शनरी का १६०० ई० मे निर्माण पी० शकरनारायण ने किया। १६१५ ई० मे ग्राक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस से भी एक तेलगू कोश प्रकाशित किया गया। विलियम ऐंडर्सन ने इससे भी बहुत पहले ही, ग्रर्थात् १८१२ ई० मे ग्रग्रेजी-मलयालम का कोश बनाया था। जान गैरेट का ग्रग्रेजी कर्नाटकी (कनारी) कोश १८६५ ई० मे प्रकाशित हुग्रा। बाद मे भी एफ० कितल द्वारा सपादित (१८६४ ई० मे) कन्नड का भी एक कोश छपा।

(ख) ग्रार्यभाषाएँ

हिंदी के ग्रतिरिक्त ग्राधुनिक ग्रार्यभाषाग्रों के कोशो मे बँगला ग्रौर मराठी का कोशसाहित्य कदाचित् ग्रत्यत सपन्न कहा जा सकता है। इन भाषाग्रो के ग्रलावा ग्रन्य ग्रार्यभाषाग्रो मे भी ग्राधुनिक कोशों की कमी नहीं है। पजाबी मे बहुत से पुराने कोश हैं। उडिया, गुजराती, नेपाली, काश्मीरी, ग्रसमिया ग्रादि मे भी कोश बने हैं। पर बँगला, मराठी ग्रौर पजाबी की चर्चा ही यहाँ उदाहरण रूप मे की जा रही है।

बँगला कोश

बँगला के कोशो की परपरा—बँगला भाषा का विकास होने के बाद से—बराबर चल रही है। ग्राधुनिक ढग के कोशो मे प्रकृतिवाद ग्रभिधान नामक विशाल बँगला कोश उल्लेखनीय है जिसका सपादन राधाकमल विद्यालकार ने किया। १८११ ई० मे यह प्रकाशित हुग्रा। यह शब्दकोश वस्तुत सस्कृत बँगला शब्दकोश है। इसका पूर्णत परिशोधित ग्रौर परिवर्धित सस्करण १६११ ई० मे श्रीशरच्चद्र शास्त्री द्वारा सपादित होकर प्रकाशित हुग्रा। इसका षष्ठ सस्करण तक देखने को मिला है। कदाचित् इससे भी पहले बगला पुर्तगाली डिक्शनरी बन चुकी थी। पादरी मेनुग्रल ने बँगला व्याकरण के साथ बँगला-पुर्तगाली तथा पुर्तगाली-बँगला कोश (सभवत) बनाए थे। कहा जाता है कि रामपुर के पादरी केरे साहब ने १८२५ ई० बहुत विशाल बँगला-इगलिश कोश बनाला था। ईस्ट इडिया कपनी की ग्रोर से १८३३ ई० मे बँगला सस्कृत-इगलिश-डिक्शनरी तैयार करवाई गई थी। हाउटर ग्रौर रामकमल सेन का 'बँगला-इगलिश कोश भी ग्रत्यत प्रसिद्ध है। पादरी केरे के बँगला ग्रग्रेजी कोश मे ८०००० शब्द थे। इनके ग्रतिरिक्त भी ग्रनेक छोटे बडे बँगला ग्रग्रेजी कोश भी बने। केवल बँगला लिपि ग्रौर भाषा मे ही ज्ञानेंद्रमोहन दास का बँगला भाषार ग्रभिधान (द्वितीय सस्करण १६२७) ग्रौर पाँच जिल्दोवाला हरिचरण वद्योपाध्याय द्वारा निर्मित बगीय शब्दकोश दोनो उत्कृष्ट रचनाएँ मानी जाती हैं। बँगला मे उन्नीसवी शताब्दी से ग्राजतक छोटे बडे शब्दकोशो के निर्माण की परपरा चली ग्रा रही है। छोटे कोशो मे चलतिका ग्रत्यत लोकप्रिय है। सैकडो ग्रन्य कोश भी ग्राज तक रचे गए ग्रौर प्रकाशित हो चुके हैं। श्री योगेशचद्र राय का बँगला शब्दकोश भी प्रसिद्ध रचना है। इस ग्रथ मे ग्रनेक ग्राधारिक ग्रौर सहायक ग्रथो की चर्चा है। उनमे बँगला से सबद्ध निम्नाकित कोशो के नाम उपलब्ध हैं—

(१) डिक्शनरी ग्राव् बगाली लैंग्वेज (स० केरे–१८२५ ई०)

(२) ए डिक्शनरी ग्राव् बगाली लैंग्वेज (स० जॉन सी० मार्शमैन—१८२७ ई०)

(३) बगाली वोकैब्यूलरी (स० एच्० पी० फास्टर–१७६६ ई०)

(४) बगाली वोकैब्यूलरी (मोहनप्रसाद ठाकुर—१८१० ई०)

(५) डिक्शनरी ग्राव् बगाली लैंग्वेज (स० डब्ल्यू० मार्टन—१८२८ ई०)।

(६) ए डिक्शनरी ग्राव् बगाली ऐंड इगलिश (स० ताराचद चक्रवर्ती—१८२७ ई०)।

(७) शब्दसिंधु (ग्रमरकोश के सस्कृत शब्दो की ग्राकारादिवर्णानुक्रमानुसार योजना तथा बँगला व्याख्या—१८०८ ई०)

ग्लासरी ग्रॉव जुडिशल ऐंड रेवेन्यू टर्म्स नामक जानसन के ग्रग्रेजी बँगला कोश का टाड सस्करण १८३४ ई० मे प्रकाशित हुग्रा एच्० एच्० विलसन का जो कोश १८५५ ई० मे प्रकाशित हुग्रा उसमे ग्ररबी फारसी हिंदी, हिंदुस्तानी, उडिया, मराठी, गुजराती, तेलगू, कर्नाटकी (कनारी), मलयालम् ग्रादि के साथ साथ बँगला के शब्द भी थे। श्रीतारानाथ का शब्दस्तोममहानिधि भी ग्रच्छा कोश कहा जाता है।

मराठी कोश

मराठी भाषा मे कोशनिर्माण की परपरा सभवत उस यादवकाल से प्रारभ होती है जब महाराष्ट्री प्राकृत के ग्रनतर ग्राधुनिक मराठी का स्वतत्र भाषा के रूप मे विकास हुग्रा ग्रौर वह प्रौढ हो गई। उस युग मे कुछ कोश बनाए गए थे। हेमाद्रि पडितो द्वारा रचित ग्रनेक कोशो का उल्लेख मिलता है। सत ज्ञानेश्वर ने ग्रपनी कृति ज्ञानेश्वरी के क्लिष्ट शब्दो की—ग्रकारादि क्रम से ग्रनुक्रमणिका बनाते हुए उसी के साथ सरल मराठी मे पर्याय शब्द दिए हैं। उसी के द्वारा मराठी से सबद्ध १२वी शती के उन कोशो का सकेत मिलता है जो ग्राज ग्रनुपलब्ध हैं। शिवाजी द्वारा भी उनके समय मे 'राज-

व्यवहार-कोश' बना था जिसमे मराठी, फारसी और सस्कृत—तीनो भाषाओं की सहायता ली गई थी। रघुनाथ पडितराव द्वारा ३८४ पद्यों का यह छदोबद्ध कोश ऐसा त्रिभाषी कोश है जो अपने ढग का विशेष कोश कहा जा सकता है। सस्कृत और फारसी के भी अर्थपर्यायसूचक ऐसे कोश सस्कृत माध्यम से मुगल शासनकाल मे बने थे।

आगे चलकर पाश्चात्यो के सपर्क और प्रभाव से 'मराठी इगलिश' के अनेक कोश बने। चीफ कैप्टन गोलस्वर्थ ने अग्रेजी-मराठी का एक विशाल कोश १८३१ ई० मे बनाया था। थामस कैंडी के सहयोग से उस कोश के सशोधित और परिवर्धित अनेक सस्करण छपे। मराठी के इन कोशो की परपरा १६वी शताब्दी के आरभ से अबतक चली आ रही है। कोशों की दृष्टि से मराठी भाषा अत्यत सपन्न है। अग्रेजी कोशो मे केरी, कर्नल केनेडी और गोल्सवर्थ कैंडी के मराठी इगलिश कोश महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त १६वी शती के कुछ प्रमुख मराठी कोश हैं--(१) महाराष्ट्र भाषे चा कोश (इसके प्रथम भाग का प्रकाशन १८२९ ई० से प्रारभ हो गया था), (२) रघुनाथ भास्कर गाडबोले का हसकोश (१८६३ ई०), (३) बोडकर का रत्नकोश (१८६९ ई०) और (४) मराठी भाषा का नवीन कोश (१८९० ई०)। बीसवी सदी के कोशो मे–वा० गो० आप्टे का--मराठी शब्दरत्नाकर और विद्याधर का सरस्वती कोश अधिक प्रसिद्ध है। सामान्य शब्दार्थ कोशो के अतिरिक्त मराठी-व्युत्पत्तिकोश (कृष्णाजी पाडुरग कुलकर्णी--१९४६ ई०) अत्यत प्रसिद्ध व्युत्पत्ति-कोश है। इसमे मराठी भाषा का पूर्ण प्रयोग हुआ है। मराठी मे विश्वकोश, लोकोक्तिकोश, वाक्सप्रदायकोश, (अनेक) ज्ञानकोश और शब्दार्थकोश हैं। गोविंदराव काले का एक पारिभाषिक शब्दकोश भी है जिसमे अग्रेजी सैनिक शब्दों का शब्दार्थ सग्रह मिलता है। मराठी हिंदी कोश भी अनेक बने हैं। इनमे कुछ उत्तम कोटि के भी कोश हैं।

पंजाबी, काश्मीरी, नेपाली

लोदियन मिशन द्वारा १८५४ ई० मे पजाबी शब्दकोश बना था जिसमे गुरुमुखी और रोमन मे मूल शब्द थे तथा अग्रेजी मे अर्थ था। इसके बाद पजाबी कोशों का सिलसिला चलता है तथा पंजाबी के कोश बनने लगे।

इधर २०वी शती मे भाई विशनदास पुरी के सपादकत्व में प्रकाशित (१९२२ ई०) और पजाब सरकार के भाषा विभाग, पटियाला से प्रकाश्यमान पजाबी कोश अत्यत महत्व के हैं। द्वितीय कोश कदाचित् पजाबी का सर्वोत्तम कोश है।

काश्मीरी भाषा के अपने मैनुअल मे डा० ग्रियर्सन ने व्याकरण बनाया और फ्रेजबुक के साथ साथ शब्दकोश भी सपादित (१९३२ ई०) किया था। इसके मूलवर्ता ईश्वर कौल थे और सभवत १८९० ई० के पूर्व इसकी रचना हो चुकी थी। इसके पूर्व भी १८८५ ई० में इस दिशा का कुछ कार्य हो चुका था। टर्नर की नेपाली डिक्शनरी यद्यपि बहुत बाद की है, तथापि उसमे कोशविज्ञान और भाषाविज्ञान का विनियोग जिस महत्ता के साथ हुआ है वह अत्यत प्रशसनीय है।

उर्दू कोश

उन उर्दू के कोशो की चर्चा ऊपर हुई है जिन्हें विदेशियों ने बनाया। हिंदी या हिंदुस्तानी कोशो के साथ या इनका मिश्रित रूप ही प्राय रहा। कभी कभी वे अलग भी थे। इनके पूर्व और बाद में बहुत से ऐसे कोश भी बने जो फारसी लिपि मे निर्मित थे। इनमे फरहगे आसफिया, तस्मीस्सुल्लुगात, लुगात किसोरी अधिक महत्व के और प्रसिद्ध माने जाते हैं। नत्वत इनमे हिंदी के शब्दो की सख्या बहुत ज्यादा है। पर लिपिभेद के कारण हिंदी मात्र जाननेवाले इनका उपयोग और प्रयोग नही कर पाते। 'फरहगे-ए-इस्तलाहात--वस्तुत मौ० अब्दुलहक की योजना और प्रेरणा से रचित उर्दू का विशाल कोश है। इनके अतिरिक्त भी अमीर मीनाई का अमीरुल् लुगात तथा करीमुल्लुगात उर्दूकोशों मे प्रसिद्ध हैं। श्रीरामचद्र वर्मा, श्रीहरिशकर शर्मा आदि ने नागरी लिपि में भी कोश बनाए। उत्तर प्रदेश सरकार ने महाह द्वारा सपादित उर्दू हिंदी कोश प्रकाशित किया है जिसे अच्छा कोश कहा जाता है।

गुजराती, उडिया, और असमिया मे भी अनेक आधुनिक कोश बन चुके हैं और निरतर बनते जा रहे हैं। नवजीवन प्रकाशन मदिर का सार्थ गुजराती मडणी कोश, तथा शापुरजी दरालजी का गुजराती इग्रेजी कोश प्रसिद्ध है। असमिया मे १८३७ ई० मे ब्राउन्सन (अमेरिकी मिशनरी) ने असमिया-इगलिश डिक्शनरी बनाई थी। हेमचद्र बरुआ द्वारा निर्मित 'असमिया-अग्रेजी कोश', विशेष प्रसिद्ध है। उडिया में भी ऐसे अनेक कोश बन चुके हैं। कहने का साराश यह है कि भारत की सभी प्रमुख भाषाओ मे आधुनिक कोशो की प्रेरणा पाश्चात्यो से मिली और भारतीयो ने उस कार्य को निरतर आगे बढाने मे योगदान किया।

आधुनिक कोश की विधाएँ :

आधुनिक कोशरचना के विविध प्रकारो की सक्षिप्त चर्चा यहाँ अनावश्यक न होगी। वर्तमान युग ने कोशविद्या को अत्यत व्यापक परिवेश मे विकसित किया। सामान्य रूप से उसकी दो मोटी मोटी विधाएँ कही जा सकती हैं--(१) शब्दकोश और (२) ज्ञानकोश। शब्दकोश के स्वरूप का बहुमुखी प्रवाह निरतर प्रौढता की ओर बढता लक्षित होता रहा है। आज की कोशविद्या का विकसित स्वरूप भाषाविज्ञान, व्याकरणशास्त्र, साहित्य, अर्थविज्ञान, शब्दप्रयोगीय, ऐतिहासिक विकास, सदर्भसापेक्ष अर्थविकास और नाना शास्त्रो तथा विज्ञानो मे प्रयुक्त विशिष्ट अर्थों के बौद्धिक और जागरूक शब्दार्थ सकलन का पुजीकृत परिणाम है।

शब्दकोश

हमारी परिचित भाषाओ के कोशो मे आक्सफोर्ड-इगलिश-डिक्शनरी के परिशीलन मे उपर्युक्त समस्त प्रवृत्तियो का उत्कृष्ट निदर्शन देखा जा सकता है। उसमे शब्दो के सही उच्चारण का सकेत-चिह्नो से विशुद्ध और परिनिष्ठित बोध भी कराया है। योरप के उन्नत और समृद्ध देशो की प्राय सभी भाषाओं मे विकसित स्तर की कोशविद्या के आधार पर उत्कृष्ट, विशाल, प्रामाणिक और सपन्न कोशो का निर्माण हो चुका है और उन देशों मे कोशनिर्माण के लिये ऐसे स्थायी सस्थान प्रतिष्ठापित किए जा चुके हैं जिनमे अबाध गति से सर्वदा कार्य चलता

रहता है। लब्धप्रतिष्ठ और बडे बडे विद्वानो का सहयोग तो उन सस्थानो को मिलता ही है, जागरूक जनता भी सहयोग देती रहती है। अंग्रेजी डिक्शनरी तथा अन्य भाषाओ मे निर्मित कोशकारो के रचना-विधान-मूलक वैशिष्ट्यो का अध्ययन करने से अद्यतन कशो मे निम्ननिर्दिष्ट बातो का अनुयोग आवश्यक लगता है—

(क) उच्चारणसूचक सकेतचिह्नो के माध्यम से शब्दो के स्वरो व्यजनो का पूर्णत शुद्ध और परिनिष्ठित उच्चारण स्वरूप बताना और स्वराघात बलाघात का निर्देश करते हुए यथासभव उच्चार्य अश के अक्षरो की बद्धता और अबद्धता का परिचय देना, (ख) व्याकरण-सबद्ध उपयोगी और आवश्यक निर्देश देना, (ग) शब्दों की इतिहास-सबद्ध वैज्ञानिक व्युत्पत्ति प्रदर्शित करना, (घ) परिवार-सबद्ध अथवा परिवारमुक्त निकट या दूर के शब्दो के साथ शब्दरूप और अर्थरूप का तुलनात्मक पक्ष उपस्थित करना, (ङ) शब्दो के विभिन्न और पृथक्कृत नाना अर्थो को अधिक-न्यून-प्रयोग क्रमानुसार सूचित करना, (च) अप्रयुक्त शब्दो अथवा शब्दप्रयोगो की विलोपसूचना देना, (छ) शब्दों के पर्याय बताना, और (ज) सगत अर्थों के समर्थनार्थ उदाहरण देना, (झ) चित्रों, रेखाचित्रो, मानचित्रो आदि के द्वारा अर्थ को अधिक स्पष्ट करना। 'आधुनिक कोश की सीमा और स्वरूप' उपशीर्षक के अन्तर्गत इन बातो की कुछ विस्तृत चर्चा की गई है।

'आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' का नव्यतम और बृहत्तम सस्करण आधुनिक कोशविद्या की प्राय सभी विशेषताओ से सपन्न है। पर भारतीय भाषाओ के कोशो मे अभी उपर्युक्त समस्त सामग्री का पुष्ट एकत्रीकरण नही हो पाया है। नागरीप्रचारिणी सभा के हिंदी शब्दसागर के अतिरिक्त हिंदी साहित्य समेलन द्वारा प्रकाश्यमान मानक शब्दकोश (जिसके चार खड प्रकाशित हो चुके है) एक विस्तृत आयाम है। हिंदी कोशकला के लब्धप्रतिष्ठ सपादक श्रीरामचद्र वर्मा के इस प्रशसनीय कार्य का उपजीव्य भी मुख्यत शब्दसागर ही है। उसका मूल कलेवर तात्विक रूप मे शब्दसागर से ही अधिकाशत परिकलित हैं। हिंदी के अन्य कोशो मे भी अधिकाश सामग्री इसी कोश से ली गई है। थोडे बहुत मुख्यत सस्कृत कोशो से और यदा कदा अन्यत्र से शब्दो और अर्थो को आवश्यक अनावश्यक रूप मे ठूँस दिया गया है। ज्ञानमडल के बृहद् हिंदी शब्दकोश मे पेटेवाली प्रणाली शुरू की गई है। परतु वह पद्धति सस्कृत के कोशो मे जिनका निर्माण पश्चिमी विद्वानो के प्रयास से आरभ हुआ था, सैकडों वर्ष पूर्व से प्रचलित हो गई थी। पर आज भी, नव्य या आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोश उस स्तर तक नहीं पहुँच पाए हैं जहाँ तक आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी अथवा रूसी, अमेरिकन, जर्मन, इतालो, फ्रासीसी आदि भाषाओं के उत्कृष्ट और अत्यत विकसित कोश पहुँच चुके हैं।

कोशरचना की ऊपर वर्णित विधा को हम साधारणत सामान्य भाषा शब्दकोश कह सकते हैं। इस प्रकार शब्दकोश एकभाषी, द्विभाषी, त्रिभाषी और बहुभाषी भी होते हैं। बहुभाषी शब्दकोशो मे तुलनात्मक शब्दकोश भी यूरोपीय भाषाओ मे ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान की प्रौढ़ उपलब्धियो से प्रमाणीकृत रूप में निर्मित हो चुके हैं। इनमे मुख्य रूप से भाषावैज्ञानिक अनुशीलन और शोध के परिणामस्वरूप उपलब्ध सामग्री का नियोजन किया गया है। ऐसे तुलनात्मक कोश भी आज बन चुके हैं जिनमे प्राचीन भाषाओ की तुलना मिलती है। ऐसे भी कोश प्रकाशित हैं जिनमें एक से अधिक मूल परिवार की अनेक भाषाओ के शब्दो का तुलनात्मक परिशीलन किया गया है।

शब्दकोशो के और भी नाना रूप आज विकसित हो चुके हैं और हो रहे हैं। वैज्ञानिक और शास्त्रीय विषयो के सामूहिक और तत्तद-विषयानुसारी शब्दकोश भी आज सभी समृद्ध भाषाओ मे बनते जा रहे हैं। शास्त्रो और विज्ञानशाखाओ के पारिभाषिक शब्दकोश भी निर्मित हो चुके हैं और हो रहे हैं। इन शब्दकोशो की रचना एक भाषा मे भी होती है और दो या अनेक भाषाओ मे भी। कुछ मे केवल पर्याय शब्द रहते हैं और कुछ मे व्याख्याएँ अथवा परिभाषाएँ भी दी जाती हैं। विज्ञान और तकनीकी या प्राविधिक विषयो से सबद्ध नाना पारिभाषिक शब्दकोशो मे व्याख्यात्मक परिभाषाओ तथा कभी कभी अन्य साधनो की सहायता से भी बिलकुल सही अर्थ का बोध कराया जाता है। दर्शन, भाषाविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान और समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि समस्त आधुनिक विद्याओ के कोश विश्व की विविध सपन्न भाषाओ मे विशेषज्ञो की सहायता से बनाए जा रहे हैं और इस प्रकृति के सैकडो हजारो कोश भी बन चुके हैं। शब्दार्थकोश सबधी प्रकृति के अतिरिक्त इनमे ज्ञानकोशात्मक तत्वो की विस्तृत या लघु व्याख्याएँ भी समिश्रित रहती हैं। प्राचीन शास्त्रो और दर्शनो आदि के विशिष्ट एव पारिभाषिक शब्दो के कोश भी बने हैं और बनाए जा रहे हैं। इनके अतिरिक्त एक एक ग्रथ के शब्दार्थ कोश (यथा मानस शब्दावली) और एक एक लेखक के साहित्य की शब्दावली भी योरप, अमेरिका और भारत आदि मे सकलित हो रही है। इनमे उत्तम कोटि के कोशकारो ने ग्रथसदर्भों के सस्करणात्मक सकेत भी दिए हैं। अकारादि वर्णानुसारी अनुक्रमणि-कात्मक उन शब्दसूचियो का—जिनके अर्थ नही दिए जाते हैं पर सदर्भसकेत रहता है—यहाँ उल्लेख आवश्यक नही है। योरप और इगलैंड मे ऐसी शब्दसूचियाँ अनेक बनी। शेक्सपियर द्वारा प्रयुक्त शब्दो की ऐसी अनुक्रमणिका परम प्रसिद्ध है। वैदिक शब्दो की और ऋक्सहिता में प्रयुक्त पदो की ऐसी शब्दसूचियों के अनेक सकलन पहले ही बन चुके हैं। व्याकरण महाभाष्य की भी एक एक ऐसी शब्दानुक्रमणिका प्रकाशित है। परतु इनमे अर्थ न होने के कारण यहाँ उनका विवेचन नही किया जा रहा है।

ज्ञानकोश

कोश की एक दूसरी विधा ज्ञानकोश भी विकसित हुई है। इसके बृहत्तम और उत्कृष्ट रूप को इन्साइक्लोपिडिया कहा गया है। हिंदी मे इसके लिये विश्वकोश शब्द प्रयुक्त और गृहीत हो गया है। यह शब्द बँगला विश्वकोशकार ने कदाचित् सर्वप्रथम बँगला के ज्ञानकोश के लिये प्रयुक्त किया। उसका एक हिंदी संस्करण हिंदी विश्वकोश के नाम से नए सिरे से प्रकाशित हुआ। हिंदी मे यह शब्द प्रयुक्त होने लगा है। यद्यपि हिंदी के प्रथम किशोरोपयोगी

ज्ञानकोश (अपूर्ण) को श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी तथा पं० कृष्णवल्लभ द्विवेदी द्वारा विश्वभारती अभिधान दिया गया तो भी ज्ञान कोश, ज्ञानदीपिका, विश्वदर्शन, विश्वविद्यालयभंडार आदि सज्ञाओं का प्रयोग भी ज्ञानकोश के लिये हुआ है। स्वय सरकार भी बालशिक्षोपयोगी ज्ञानकोशात्मक ग्रंथ का प्रकाशन 'ज्ञानसरोवर' नाम से कर रही है। परंतु इन्साइक्लोपीडिया के अनुवाद रूप मे विश्वकोश शब्द ही प्रचलित हो गया। उडिया के एक विश्वकोश का नाम शब्दार्थानुवाद के अनुसार ज्ञान मडल रखा भी गया। ऐसा लगता है कि बृहद् परिवेश के व्यापक ज्ञान-का पारिभाषिक और विशिष्ट शब्दो के माध्यम से ज्ञान देनेवाले ग्रंथ का इन्साइक्लोपीडिया या विश्वकोश अभिधान निर्धारित हुआ और अपेक्षाकृत लघुतरकोशों को ज्ञानकोश आदि विभिन्न नाम दिए गए। अंग्रेजी आदि भाषाओं मे बुक आफ नालेज, डिक्शनरी आव जनरल नालेज आदि शीर्षकों के अंतर्गत नाना प्रकार के छोटे बडे विश्वकोश अथवा ज्ञानकोश बने हैं और आज भी निरतर प्रकाशित एव विकसित होते जा रहे हैं। इतना ही नही इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन ऐंड एथिक्स आदि विषयविशेष से संबद्ध विश्वकोशो की संख्या भी बहुत ही बडी है। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से निर्मित अनेक सामान्य विश्वकोश और विशेष विश्वकोश भी आज उपलब्ध हैं।

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, इन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना अंग्रेजी के ऐसे विश्वकोश हैं। अंग्रेजी के सामान्य विश्वकोशो द्वारा इनकी प्रामाणिकता और समान्यता सर्वस्वीकृत है। निरतर इनके संशोधित, सवर्धित तथा परिष्कृत सस्करण निकलते रहते हैं। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के दो परिशिष्ट ग्रंथ भी हैं जो प्रकाशित होते रहते हैं और जो नूतन सस्करणकी सामग्री के रूप मे सातत्य भाव से सकलित होते रहते हैं। इगलैंड मे इन्साइक्लोपीडिया के पहले से ही ज्ञानकोशात्मक कोशों के नाना रूप बनने लगे थे।

ज्ञानकोशों के भी इतने अधिक प्रकार और पद्धतियाँ हैं जिनकी चर्चा का यहाँ अवसर नहीं है। चरितकोश, कथाकोश इतिहासकोश, ऐतिहासिक कालकोश, जीवनचरितकोश पुराख्यानकोश, पौराणिक-रूपातपुरुषकोश आदि आदि प्रकार के विविध नामरूपात्मक ज्ञानकोशो की बहुत सी विधाएँ विकसित और प्रचलित हो चुकी हैं। यहाँ प्रसगत ज्ञानकोशो का सकेतात्मक नामनिर्देश मात्र कर दिया जा रहा है। हम इस प्रसग को यहीं समाप्त करते हैं और शब्दार्थकोश से सबद्ध प्रकृत विषय की चर्चा पर लौट आते हैं।

हिंदी कोशो की सीमा और उनके रूप

अद्यतन शब्दकोशों की विशेषताओं और उनकी विभिन्न विधाओं की चर्चा अन्यत्र हुई है। आज के कोशो मे भाषावैज्ञानिक, व्याकरणिक और भाषा के ऐतिहासिक शब्दरूपों और अर्थरूपों मे सबद्ध व्युत्पत्ति-निर्देश और अर्थ विकास-क्रम का कोश मे समावेश उसका अत्यंत अनिवार्य अंग हो गया है, यह अन्यत्र कहा गया है। भाषा के शब्दों का भाषाप्रवाह मे प्राय प्रयोग और क्रमश उत्तरवर्ती प्रयोगों के उदाहरण भी आवश्यक होने हैं। व्युत्पत्तिलभ्य यौगिक और रूढ—नाना अर्थों के भी सोदाहरण निर्देश—कोश की प्रामाणिकता सूचित करने के लिये समाविष्ट किए जाते हैं। एक शब्द के शब्दार्थबोध की प्रयोगसीमा मे आनेवाले सूक्ष्म अर्थों की नाना अर्थच्छायाओं का पार्थक्य और विस्तार भी सोदाहरण उपस्थित किया जाता है। शब्द के नाना अर्थों और आवश्यक उदाहरणों द्वारा तत्तदर्थबोधकता का समर्थन भी कोश मे रहता है। आवश्यक व्याख्याएँ दी जाती हैं। इन सबके अतिरिक्त आधुनिक प्रयोगों के नव्यतम अर्थों का निर्देश किए बिना कोश पूर्ण और अद्यतन नही होता।

शब्दार्थकोश का पूर्ण और नूतनतम रूप ऐसे कोश को ही कहा जा सकता है। परतु ऐसे कोश सपन्न और विकसित देशों की साधना द्वारा ही बन पाते हैं। इनके अतिरिक्त छोटे बडे अनेक ऐसे साधारण कोश भी हैं जो पूर्ण साधनो के अभाव मे समस्त वैशिष्ट्यों से सपन्न न होकर भी व्यावहारिक उपयोग के लिये बनाए जाते हैं और यथासभव और यथाशक्ति या आंशिक रूप मे उत्कृष्ट कोशो की घटक सामग्रियो से सहायता लेते हैं। सभवत भारत के अधिकाश बडे कोश भी शब्दार्थकोश की अद्यतनतम पूर्णता से अभी दूर ही हैं। हिंदी के शब्दार्थकोशो मे शब्द और अर्थ के प्रयोग और विकाससबधी प्रामाणिक उदाहरणों द्वारा ऐतिहासिक क्रम का नियोजन अभी नहीं हो पाया है। इनके अतिरिक्त शब्दो के उच्चारण-सबधी यथार्थ निर्देश की कमी प्राय सभी छोटे बडे हिंदी कोशों मे वर्तमान है। प्राचीन राजस्थानी, पिंगल, डिंगल, प्राचीन और मध्यकालीन ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली और दक्खिनी हिंदी, खडी बोली तथा हिंदी प्रदेश के विस्तृत क्षेत्र मे प्रचलित आधुनिक परिनिष्ठित हिंदी के उच्चारणों का निर्देश अत्यंत आवश्यक है। हिंदी पढनेवाले हिंदीतर भाषाभाषियों के लिये उच्चारणनिर्देश बिना शुद्ध और सही उच्चारण करना नितात कठिन हो जाता है। पर अबतक के बृहत् हिंदी कोशो मे, यहाँ तक कि इस हिंदी शब्द-सागर के नवीन सस्करण मे उच्चारणनिर्देश की योजना कार्यान्वित नही हो सकी।

इसके अतिरिक्त एक और बडी भारी कमी हिंदी कोशों मे रह गई है। उसका सबंध ऊपर निर्दिष्ट शब्दप्रयोगो के ऐतिहासिक क्रमनिर्देश से है। भाषा मे अनेक शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनका पहले तो प्रयोग होता था पर कालपरपरा मे उनका प्रयोग लुप्त हो गया। आज के उत्कृष्ट कोशो मे यह भी दिखाया जाता है कि कब उनका प्रयोग आरभ हुआ और कब उनका लोप हुआ। पर हिंदी कोशो मे इनका अभाव है। नागरीप्रचारिणी सभा का यह कोश इस दिशा मे थोडा प्रयत्न-शील है। व्यवहारलुप्त शब्दों के आरभ और समाप्ति के प्रयोगसपृक्त ऐतिहासिक क्रम को सूचित किए बिना भी पुरातन-प्रयोग सबधी सकेत-बोधक चिह्न के द्वारा लुप्तप्रयोग शब्दों का निर्देश कर दिया गया है।

इन सब कमियो को दूर करने की ओर कोशनिर्माण मे प्रवृत्त सस्थाओं और व्यक्तियो के विचार काम कर रहे हैं। पर अभी साधनाभाव के कारण प्रगति सतोषजनक नहीं है।

व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से सामान्य पाठकों के लिये बने हुए सामान्य कोशो के अतिरिक्त हिंदी मे कुछ कोश और हैं जिन्हें हम शब्दार्थकोश मात्र कहते हैं। इनमे व्याकरणसबद्ध निर्देश और

प्रचलित अर्थमात्र दिए गए हैं। हिंदी मे एकाध पर्यायवाची कोश भी बनाए गए हैं। विशिष्ट विषयो के पारिभाषिक शब्दो के अर्थकोश भारत की अनेक भाषाओ और हिंदी मे भी बन रहे हैं। इनमे बहुत से ऐसे कोश हैं जो ज्ञानकोश की सीमा के अतर्गत आ जाते हैं। इनमे विस्तृत व्याख्या और कभी कभी ऐतिहासिक परिचय भी रहता है। परतु कुछ कोश शब्दार्थ मात्र का बोध कराते हैं कभी पर्यायो द्वारा और कभी सक्षिप्त व्याख्या द्वारा। इस विधा को हम विषय शब्द-कोश कह सकते है। इनके अतिरिक्त जैसा ऊपर सकेत किया गया है, विभिन्न कवियों लेखको के ग्रथो अथवा विशिष्ट ग्रथो के भी कोश अर्थसहित बनाए जाते है। प्रथम प्रकार के कोशों मे हिंदी के सूर ब्रजभाषा कोश (डा० टडन), प्रसाद काव्यकोश (श्रीसुधाकर पाडेय) आदि को रखा जा सकता है और द्वितीय कोटि मे मानस शब्द कोश आदि को। बडे शब्दार्थ कशो मे कभी कभी विश्वकोश पद्धति का अनुसरण करते हुए ऐतिहासिक और विवरणात्मक, परिचय भी स्थान स्थान पर दे दिया जाता है। शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्य, हिंदी शब्दसागर आदि इसी प्रकार के शब्दकोश हैं। वेब्स्टर की न्यू इगलिश डिक्शनरी भी इसी प्रकार का शब्दकोश है जिसमें विश्वकोशीय पद्धति की रचनाशैली बहुत दूर तक अतर्नियोजित है। यहाँ यह सकेत भी कर देना अनुचित न होगा कि हिंदी के शब्दार्थ कोशो मे यौगिक, सामासिक शब्दो और लोकोक्तियो, मुहावरो आदि का भी उसी प्रकार अतर्योग लक्षित होता है जिस प्रकार सस्कृत कोशो अथवा अग्रेजी कोशो मे। क्रियाप्रयोग भी हिंदी शब्दसागर मे दिखाए गए हैं। यहाँ अथवा सामान्य कोशो मे लोकोक्तियो और मुहावरो का अर्थबोध अथवा क्रियाप्रयोग शब्दविशेष के अतर्गत दिखाया गया है। परतु कुछ कोश ऐसे भी बने हैं जो केवल 'लोकोक्तिकोश' या 'मुहावराकोश' कहे जाते हैं।

सामान्य शब्दार्थकोश एकभाषी या अनेकभाषी होते हैं। एकभाषी कोशों मे व्याख्यात्मक अर्थकोश होते हैं, पर्यायवाची कोश होते हैं और कभी कभी विपर्यायवाची कोश भी मिल जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि शब्दकोशो की अनेक विधाएँ विकसित हो रही हैं और उनके अनुसार अनेक प्रकार के छोटे बडे कोश निर्मित होते जा रहे हैं। शब्दानुक्रमणिकाओ को जो मात्र शब्दो की अर्थरहित सूचियाँ होती हैं, छोड देने पर भी अनेक ग्रथ के साथ सार्थक शब्दानुक्रमणिकाएँ भी मिलती हैं। इन्हें हम ग्रथविशेष के क्लिष्ट या विरल पदो का शब्दकोश कह सकते हैं।

आधुनिक कोशविद्या तुलनात्मक दृष्टि

मध्यकालीन हिंदी कोशो की मान्यता और रचनाप्रक्रिया से भिन्न उद्देश्यों को लेकर भारत मे कोशविद्या के आधुनिक स्वरूप का उद्भव और विकास हुआ। पाश्चात्य कोशो के आदर्श, मान्यताएँ, उद्देश्य, रचनाप्रक्रिया और सीमा के नूतन और परिवर्तित आयामो का प्रवेश भारत की कोश रचनापद्धति मे आरभ हुआ। सस्कृत और इतर भारतीय भाषाओ मे पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानो के प्रयास से छोटे बडे बहुत से कोश निर्मित हुए। इन कोशो का भारत और भारत के बाहर भी निर्माण हुआ। आरभ मे भारतीय भाषाओ के मुख्यत सस्कृत के, कोश अग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओ के माध्यम से बनाए गए। इनमे सस्कृत आदि के शब्द भी रोमन लिपि मे रखे गए। शब्दार्थ की व्याख्या और अर्थ आदि के निर्देश कोश की भाषा के अनुसार जर्मन, अग्रेजी, फारसी पुर्तगाली आदि भाषाओ मे दिए गए। बँगला, तमिल आदि भाषाओ के ऐसे अनेक कोशो की रचना ईसाई धर्मप्रचारको द्वारा भारत और आसपास के लघु द्वीपो मे हुई। हिंदी के भी ऐसे अनेक कोश बने। इनकी चर्चा की जा चुकी है। प्रथम संस्करण की भूमिका मे पृष्ठ १-२ पर हिंदी के आधुनिक कोशो की आरभिक रचना का निर्देश किया गया है। सबमे पहला शब्दकोश सभवत फरग्युसन का 'हिंदुस्तानी अग्रेजी' (अग्रेजी हिंदुस्तानी) कोश था जो १७७३ ई० मे लदन मे प्रकाशित हुआ। इन आरभिक कोशो को हिंदुस्तानी कोश कहा गया। ये कोश मुख्यत हिंदी के ही थे। पाश्चात्य विद्वानो के इन कोशो मे हिंदी को हिंदुस्तानी कहने का कदाचित् यह कारण है कि हिंदुस्तान भारत का नाम माना गया, और वहाँ की भाषा हिंदुस्तानी कही गई। कोशविद्या के इन पाश्चात्य पडितो की दृष्टि में हिंदी का ही अपर पर्याय हिंदुस्तानी था और वही सामान्य रूप से हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा थी। पश्चिम मे विकसित नूतन पद्धति पर बने हुए सस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओ के कोशों और उनकी उपलब्धियों के वैशिष्ट्य का रूपरेखात्मक परिचय दिया जा चुका है।

भारत की आदिमध्यकालीन कोशविद्या के ऐतिहासिक विकास की रूपरेखा से स्पष्ट हो चुका है कि आरभिक क्रम मे कोशनिर्माण की प्रेरणात्मक चेतना का बहुत कुछ सामान्य रूप भारत और पश्चिम मे मिलता जुलता था। भारत का वैदिक निघटु विरल और क्लिष्ट शब्दो के अर्थ और पर्यायो का सक्षिप्त सग्रह था। योरप मे भी ग्लासेरिया से जिस कोशविद्या का आरभिक बीजवपन हुआ था, उसके मूल मे भी विरल और क्लिष्ट शब्दो का पर्याय द्वारा अर्थबोध कराना ही उद्देश्य था। लातिन की उक्त शब्दार्थसूची से शनै शनै. पश्चिम की आधुनिक कोशविद्या के वैकासिक सोपान आविर्भूत हुए। भारत और पश्चिम दोनो ही स्थानो मे शब्दों के सकलन मे वर्गपद्धति का कोई न कोई रूप मिल जाता है। पर आगे चलकर नव्य कोशो का पूर्वोक्त प्राचीन और मध्यकालीन कोशो से जो सर्वप्रथम और प्रमुखतम भेदक वैशिष्ट्य प्रकट हुआ वह था वर्णमालाक्रमानुसारी शब्दयोजना की पद्धति।

इसके अतिरिक्त आधुनिक और पाश्चात्य कोशो की अन्य भेदकताएँ मुख्यत निम्ननिर्दिष्ट हो सकती हैं---

(१) योरप मे विशेष रूप से और भारत मे आशिक रूप से--आदिमध्यकालीन कोशकर्म मे कठिन शब्दो का सरल शब्दो या पर्यायों द्वारा अर्थज्ञापन होता था। योरप में सामान्यत एक पर्याय दे दिया जाता था और भारत मे वैदिक निघटुकाल से ही पर्यायशब्दो का अर्थबोधकपरक एकत्रीकरण होता था। इनमे दुर्बोध्य और कठिन शब्दो के सग्रह की मुख्य प्रेरणा थी। भारतीय कोशों मे बहुपर्याय सग्रह के

कारण अनेक क्लिष्ट शब्दों के साथ पर्यायवाची कोशो मे सरल शब्द भी समाविष्ट रहते थे। निघटु का शब्दसकलन भी वैदिक वाङमय के समग्र शब्दनिधि का सग्रह न होकर अधिकत दुर्बोध्य और विवेच्य शब्दो की सकलन प्रेरणा से प्रभावित है।

(२) भारत के प्राचीन कोश पर्यायवाची या समानार्थक थे। आरभिक अवस्था मे नानार्थक शब्दो का इनमे परिशिष्ट जुडा रहता था। आगे चलकर नानार्थक या अनेकार्थक शब्दलिपि का विस्तार मे आकलन होने लगा। फलत संस्कृत के अनेक नानार्थ कोशो मे मुख्यत नामसग्रह होता था और आगे चलकर लिंगनिर्देश भी होने लगा। पर्यायवाची कोशो की सग्रहयोजना वर्गपरक हो गई थी। नानार्थ शब्दो की क्रम-योजना में अत्य व्यजनाक्षर का क्रम (मूलत) अपनाया गया। पर कभी कभी आदिवर्ण का आधार लेकर वर्णमालानसारी शब्द-क्रम-योजना का प्रयास भी किया गया। पर दूसरी ओर आधुनिक कोशो मे लघु कोशो के अतिरिक्त पर्याय के साथ साथ अर्थबोधक व्याख्याएँ भी दी जाती हैं। सस्कृत मे यह नही था। टीकाएँ अवश्य यह कार्य करती थीं। सस्कृत के समानार्थक कोशो की भाँति आधुनिक कोशों मे पर्याय रखने पर अधिक बल देने की चेष्टा नही होती। कभी कभी अवश्य ही सस्कृत कोशों के प्रभाव से हिंदी आदि मे भी पर्यायवाची कोश बन जाते हैं। पर वस्तुत ये कोश सस्कृत कोशो के अवशेषमात्र हैं, आधुनिक कोश नहीं।

(३) सस्कृत के प्राचीन कोशो मे मुख्यत नामपदो, अव्ययशब्दो तथा कभी कभी धातुओं का भी सग्रह होता था। व्याकरण-प्रभावित सग्रहदृष्टि का मूल कदाचित् पाणिनि के धातुपाठ और गणपाठो मे दिखाई पडता है। आरभ मे, अमरकाल और उसके बाद, सस्कृत कोशो का मुख्य रूप नामलिंगानुशासनात्मक हो गया। आधुनिक कोशो में रचनाविधान की भिन्नता के कारण इसे अनुपयोगी मानकर सर्वथा त्याग दिया गया। परतु व्याकरणमूलक ज्ञान और प्रयोग के लिये उपयोगी निर्देश प्रत्येक शब्द के साथ लघुसकेतो द्वारा निर्दिष्ट होते हैं।

(४) आज के शब्दकोशो का निर्माण उन समस्त जनो के लिये होता है जो तत्तद्भाषाओ के सरल या कठिन किसी भी शब्द का अर्थ जानना चाहते हैं। सस्कृत कोशो का मुख्य रूप पद्यात्मक होता था। इस कारण उसका अधिकत उपयोग वे ही कर पाते थे जो कोशपद्यो को कठस्थ कर रखते थे। प्रयोग और अर्थज्ञान के साथ साथ कोशो को कठस्थ करना भी एक उद्देश्य समझा जाता था पर आज के नवीन कोशो का यह प्रयोजन बिल्कुल ही नहीं है।

(५) सस्कृत के प्राचीन कोशों का प्रयोजन होता था कवियो, साहित्यनिर्माताओ और काव्यशास्त्रादि के पाठको के शब्दभडार की वृद्धि करना। परतु आधुनिक कोशों का मुख्य प्रयोजन है शब्दो के अर्थ का ज्ञान कराना और तत्सबधी अन्य बातो की जानकारी देते हुए उनके समीचीन प्रयोग की शक्ति बढाना।

(६) इनके अतिरिक्त शब्दोच्चारण, व्युत्पत्तिसूचन, शब्दप्रयोग का प्रथम प्रयोग और यदि कोई शब्द लुप्तप्रयोग हो गया हो तो उसका सप्रमाण ऐतिहासिक वर्णन, नाना अर्थो का सामान्य एव विशेष सदर्भ-सयुक्त विवित्त विवरण, यौगिक एव मुहावरो के सप्रयोगों तथा धातुयोगो आदि के अर्थवैशिष्ट्य का सोदाहरण निरूपण भी आधुनिक कोशो मे रहता है। यह सब प्राचीन कोशो मे नही था। कोशटीकाओं मे अवश्य इनमे से अनेक बातें अशत और प्रसगत निर्दिष्ट कर दी जाती थीं।

आधुनिक कोश सीमा और स्वरूप

योरप मे आधुनिक कोशो का जो स्वरूप विकसित हुआ, उसकी रूपरेखा का सकेत किया जा चुका है। योरप, एशिया और अफ्रिका के उस तटभाग मे जो अरब देशों के प्रभाव मे आता था, उक्त पद्धति के अनुकरण पर कोशो का निर्माण होने लगा था। भारत मे व्यापक पैमाने पर जिस रूप मे कोश निर्मित होते चले, उनकी सक्षिप्त चर्चा की जा चुकी है। इन सबके आधार पर उत्तम कोटि के आधुनिक कोशों की विशिष्टताओं का आकलन करते हुए कहा जा सकता है

(क) आधुनिक कोशो मे शब्दप्रयोग के ऐतिहासिक क्रम की रूपरेखा दिखाने के प्रयास को बहुत महत्व दिया गया है। ऐसे कोशो को ऐतिहासिक विवरणात्मक कहा जा सकता है। उपलब्ध प्रथम प्रयोग और प्रयोगसदर्भ का आधार लेकर अर्थ और उसके एकमुखी या बहुमुखी विकास के सप्रमाण उपस्थापन की चेष्टा की जाती है। दूसरे शब्दों मे इसे हम शब्दप्रयोग और तद्बोध्यार्थ के रूप की आनुक्रमिक या इतिहासानुसारी विवेचना कह सकते हैं। इसमें उद्धरणों का उपयोग दोनों ही बातों (शब्दप्रयोग और अर्थविकास) की प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं।

(ख) आधुनिक कोशकार के द्वारा सगृहीत शब्दो और अर्थों के आधार का प्रामाण्य भी अपेक्षित होता है। प्राचीन कोशकार इसके लिये बाध्य नहीं था। वह स्वत प्रमाण समझा जाता था। पूर्व ग्रंथों या ग्रथो का समाहार करते हुए यदाकदा इतना भी कह देना उसके लिये बहुधा पर्याप्त हो जाता था। पर आधुनिक कोशो में ऐसे शब्दो के सबध मे जिनका साहित्य या व्यवहार मे प्रयोग नही मिलता, यह बताना भी आवश्यक हो जाता है कि अमुक शब्द या अर्थ कोशीय मात्र हैं।

(ग) आधुनिक कोशो की एक दूसरी नई धारा ज्ञानकोशात्मक है जिसका उत्कृष्ट रूप विश्वकोश के नाम से सामने आता है। अन्य रूप पारिभाषिक शब्दकोश, विषयकोश, चरितकोश, ज्ञानकोश, शब्दकोश आदि नाना रूपो मे अपने आभोग का विस्तार करते चल रहे हैं।

(घ) आधुनिक शब्दकोशो मे अर्थ की स्पष्टता के लिये चित्र, रेखा-चित्र, मानचित्र आदि का उपयोग भी किया जाता है।

(ङ) विशुद्ध शास्त्रीय वाङमय (शास्त्र) के प्राचीन स्तर से हटकर आज के कोश वैज्ञानिक अथवा विज्ञानकल्प रचनाप्रक्रिया के स्तर पर पहुँच गए हैं। ये कोश रूपविकास और अर्थविकास की ऐतिहासिक प्रामाणिकता के साथ साथ भाषावैज्ञानिक सिद्धात की सगति ढूँढने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं। आधुनिक भाषाओ के तद्भव, देशी और विदेशी शब्दो के मूल और स्रोत ढूँढने की चेष्टा की जाती है। कभी कभी

प्राचीन भाषा या भाषाओं के मूलस्रोतों की गवेषणा के व्युत्पत्ति-दर्शन के संदर्भ में महत्वपूर्ण प्रयास होता है। बहुभाषी पर्यायकोशों में ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान के सहयोग और सहायता द्वारा स्रोतभाषा के कल्पनानिर्दिष्ट रूप अंगीकृत होते हैं। उदाहरणार्थ प्राचीन भारत-यूरोपीय – आर्यभाषा के बहुभाषी तुलनात्मक कोशों में मूल आर्यभाषा (या आर्यों के 'फादर लैंग्वेज') के कल्पित मूलरूपों का अनुमान किया जाता है। दूसरे शब्दों में इसका तात्पर्य यह है कि आधुनिक उत्कृष्ट कोशों में जहाँ एक ओर प्राचीन और पूर्ववर्ती वाङ्मय का शब्द-प्रयोग के क्रमिक ज्ञान के लिये ऐतिहासिक अध्ययन होता है वहाँ भाषाविज्ञान के ऐतिहासिक, तुलनात्मक और वर्णनात्मक दृष्टिपक्षों का प्रौढ सहयोग और विनियोग अपेक्षित रहता है। कोशविज्ञान की नूतन रचनाप्रक्रिया आज के युग में भाषाविज्ञान के नाना अंगों से बहुत ही प्रभावित हो गई है। इस प्रभाव की दूरगामी व्याप्ति का नीचे की पंक्तियों में संक्षेपतः संकेत किया जा रहा है।

कोशरचना की प्रक्रिया और भाषाविज्ञान

कोशनिर्माण का शब्दसंकलन सर्वप्रमुख आधार है। परंतु शब्दों के संग्रह का कार्य अत्यंत कठिन है। मुख्य रूप में शब्दों का चयन दो स्रोतों से होता है--(१) लिखित साहित्य से और (२) लोकव्यवहार और लोकसाहित्य से। लिखित साहित्य से संग्राह्य शब्दों के लिये हस्तलिखित और मुद्रित ग्रंथों का सहारा लिया जाता है। परंतु इसके अंतर्गत प्राचीन हस्तलेखों और मुद्रित-ग्रंथों के आधार पर जब शब्द-संकलन होता है तब उभयविध आधारग्रंथों की प्रामाणिकता और पाठशुद्धि आवश्यक होती है। इनके बिना गृहीत शब्दों का महत्व कम हो जाता है और उनसे भ्रमसृष्टि की संभावना बढती है।

हिंदीकोश में शब्दसंकलन . शुद्धपाठ

मुद्रित या हस्तलिखित ग्रंथों से जो शब्दसंकलन होता है उसमें पाठ की शुद्धि नितांत अपेक्षित है। ऐतिहासिक दृष्टि से उनका महत्व तभी स्थापित हो सकता है जब पाठालोचन विज्ञान के अनुसार ग्रंथ के आलोचनात्मक (क्रिटिकल) संस्करण संपादित हों और उनके माध्यम से प्राचीनतम शुद्ध पाठ उपलब्ध हो। शुद्ध और मूल पाठ तभी निर्धारित हो सकता है जब यह ज्ञात हो कि भाषा में प्रयुक्त कौन से शब्द का कब क्या रूप था और उसके अर्थविकास का क्या क्रम था ?

पूना से प्रकाशिष्यमाण संस्कृत कोश के आधारित ग्रंथों के ऐसे समालोचित पाठ का निर्धारण किया जा रहा है जो पाठालोचन के वैज्ञानिक सिद्धांतों से विवेचित हो। प्रसंगवश यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि हिंदी में आदि और मध्य कालों के हिंदी ग्रंथों के ऐसे संस्करण अत्यंत दुर्लभ हैं जिनके पाठों का संपादन पाठालोचनविज्ञान के आधार पर हुआ हो। रामचरितमानस के पाठालोचन की चेष्टा कुछ अधिक हुई है, और उसके अपेक्षाकृत कुछ अच्छे संस्करण प्रकाशित हुए और हो रहे हैं। परंतु अनेक महत्वपूर्ण साहित्यिक ग्रंथ अभी जिस रूप में उपलब्ध हैं, उनमें पाठालोचनविज्ञान की संपादनपद्धति का प्राय: अभाव है। पृथ्वीराज रासो, सूरसागर, कबीर साहित्य आदि के पूर्णतः संतोषदायक संस्करण आज भी अनुपलब्ध हैं। शुद्ध पाठ तो अप्राप्य है ही। तत्तद् ग्रंथों में कितना अंश क्षेपक है एवं कितना मूल है, इसका असंदिग्ध प्रमाण भी अनुपलब्ध है। 'रासो' जैसे महाग्रंथ के प्रामाणिक और मूल रूप का प्रश्न अत्यंत विवादास्पद है। उसे जाली ग्रंथ भी कह दिया जाता है और उसके निर्माणकाल का भी निर्धारण अभी नहीं हो पाया है। ऐसी स्थिति में प्रकाशित ग्रंथों के आधार पर संकलित शब्दसमूह और उनके प्रयोग का इतिहास विवादास्पद और प्रमाणहीन रह जाता है।

हस्तलेखों में शुद्ध पाठ की प्राप्ति स्वतः दुःसाध्य कार्य है। इसके अतिरिक्त उनसे हिंदी कोशकारों का शब्दसंग्रह करना और भी दुष्कर है। अपेक्षित आर्थिक साधन के अभाव में अप्रकाशित हस्तलेखों से शब्द संग्रह करना प्राय उपेक्षित ही रहा है। कहने का तात्पर्य केवल यह कि हिंदी कोश के पूर्ण विकसित स्वरूप का निर्माण आज की परिस्थिति में भी असंभवप्राय जान पड़ता है।

कोश के लिये संकलित शब्दसमूह के आधार ऐसे शब्द होते हैं जो आलोचनात्मक और वैज्ञानिक पद्धति से विवेचित एवं शुद्ध पाठवाले संस्करणों से संगृहीत हों। भाषाविज्ञान के ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टियों से पाठविज्ञान का घनिष्ठ संबंध है। शब्दरूप और तद्बोध्य अर्थ का निर्णयात्मक स्वरूप भी भाषाविज्ञान की दृष्टि की--बहुत दूर तक--अपेक्षा करता है।

लोकभाषा से शब्दसंकलन

व्यावहारिक लोकभाषा से शब्दसंग्रह करना श्रमसाध्य कार्य अवश्य है परंतु असंभव नहीं है। इनके रूप का स्रोत ढूँढने और अर्थ-विकास की शृंखला निर्धारित करने में भाषाविज्ञान की अत्यधिक सहायता अपेक्षित होती है।

लोकसाहित्य का आज एक स्वतंत्र अध्ययनक्षेत्र लोक-साहित्य-विज्ञान के रूप में विकसित हुआ है। परंपरागत लोकगीतों में लोक-साहित्य का काफी पुराना अंश चला आ रहा है। लोककथाओं आदि के पद्यात्मक रूपों में शब्दरूपों की परंपरा सुरक्षित मिल जाती है। परंतु प्राचीन बोलियों से गद्यरूप काफी दूर हो जाता है। लोकबोलियों से एक ओर तो तत्तद् बोलियों के शब्दकोशों का निर्माण करने में शब्दों का संकलन सहायक होता है, दूसरी ओर शब्द के रूपविकास और अर्थविकास की कड़ी के रूप में भी उनकी उपयोगिता होती है। हिंदी के कोशों में तो बोलियों के बहुत से शब्दों का संकलन और भी आवश्यक हो जाता है। मध्यकालीन हिंदी के अंतर्गत राजस्थानी, व्रजभाषा, दक्खिनी हिंदी, संधुक्कड़ी, बुंदेली, अवधी, बिहारी, मैथिली, उर्दू आदि अनेक प्रांतीय या क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों के ग्रंथ समाविष्ट किए गए हैं। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से वाक्यगठन के आधार पर पूर्वी और पश्चिमी हिंदी की भाषाओं और बोलियों में स्पष्ट अंतर होने पर भी, साहित्यिक दृष्टि से, विशाल हिंदीक्षेत्र की भाषा, विभाषाओं और बोलियों के शब्दरूपों और बोध्यार्थों का आकलन और संकलन हिंदी कोशों में अनिवार्य हो जाता है। रूपविकास और अर्थविकास की ऐतिहासिक और तुलनात्मक प्रतिपत्ति के लिये बोलियों के शब्दों का संकलन भी हिंदी और इस श्रेणी की अन्य भाषाओं के कोशों में बहुत सहायक होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि बोलियों और लोकसाहित्य के

ग्रंथों के प्रकाशित वाङ्मय की अल्पता के कारण कोशकार की चेष्टा पूर्ण सफल नहीं हो पाती है। साहित्यिक भाषा के शुद्ध रूप और ज्ञान और अर्थबोधन में लोक-साहित्य-विज्ञान का सहयोग अत्यंत लाभकर होता है। लोकसाहित्य-विज्ञान का पूर्ण उत्कर्ष तभी हो पाता है जब उसकी अनुशीलना में समाजशास्त्र, संस्कृतिविज्ञान, पुराणविज्ञान और भाषाविज्ञान के साहाय्य से विवेचन हो।

व्युत्पत्ति (निरुक्ति)

यह अन्यत्र कहा जा चुका है कि वर्तमान शब्दों अथवा कोश में संगृहीत शब्दरूपों का विकासक्रम और मूल शब्द से संबंध बताने में व्युत्पत्ति विज्ञान अत्यधिक सहायक होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसका घनिष्ठ संबंध भाषाविज्ञान से है। ध्वनिविज्ञान ध्वनि-विकास-विज्ञान, ध्वनि-तत्व-विज्ञान, पद-रचना-विज्ञान और अर्थविज्ञान आदि के द्वारा व्युत्पत्तिनिर्देश का वैज्ञानिक पक्ष पुष्ट होता है।

कोशकार शब्दों के जिन मानीकृत (मानक अथवा स्टैंडर्ड) रूपों का संग्रह करता है उसके निर्धारण का कार्य भाषाविज्ञान की सहायता से होता है। वैकल्पिक रूपों के परिचयन में भी भाषा-विज्ञान और तदंगभूत व्याकरणशास्त्र अत्यंत सहायक होते हैं। कोशरचना में वह प्रत्यक्ष सहायता देता है। एक ही शब्दरूप प्रयोगगत अर्थबोध की भिन्नता के कारण विशेषण और संज्ञा आदि के व्याकरणिक भेद का परिचय देता है। अतः कोश में प्रयोग की अर्थकारिता के प्रभाव से शब्दभेद का निर्धारण व्याकरण से उपजीवित होता है।

उच्चारणस्वरूप

मानीकृत कोश में संगृहीत शब्द के उच्चारणरूप की चर्चा हुई है। आधुनिक कोशों में शब्द के उच्चारणरूप की सही जानकारी कराना अत्यंत आवश्यक समझा जाता है। इसके अंतर्गत ध्वनियों के सही सही उच्चारण में भाषाविज्ञान के एक अंग ध्वनिग्रामविज्ञान—द्वारा बडी सहायता मिलती है। नूतन उच्चारणसंकेतों के माध्यम से उच्चरित शब्द का परिशुद्ध रूप निर्दिष्ट होता है। ध्वनिलेखन के पूर्णांत शुद्ध रूप का परिचय देने के लिये ध्वनिग्रामों का विभिन्न परिवेशों और पूर्वापर ध्वनियों के संदर्भ में उच्चरित रूप का निर्धारण आज अनेक वैज्ञानिक यंत्रों के माध्यम से किया जाता है। ध्वनियों के सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम वैशिष्ट्य का बोध कराने में इन यंत्रों का विशेष योगदान है। इनके द्वारा अक्षरों पर पडनेवाले स्वराघात की बलात्मक न्यूनाधिकता और आरोहावरोहात्मक चढाव उतार भी यंत्रों से पूर्ण रूप में परिज्ञात हो जाते हैं। तदनुसार निर्मित उच्चारण-वैशिष्ट्य-बोधक संकेतचिह्नों के द्वारा कोश के शब्द का विशुद्ध उच्चारणरूप अंकित होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भाषाविज्ञान की इस क्षेत्र में नई नई उपलब्धियों और आविष्कृतियों से कोशरचना का कार्य पुष्ट हो रहा है।

अर्थविकास

कोशों का कदाचित् सर्वाधिक महत्वशाली प्रयोजन है शब्दार्थ का ज्ञान कराना। भाषाविज्ञान का इस अंश में अत्यधिक प्रभाव पडता है। यद्यपि सिमांटिक्स अर्थात् अर्थविज्ञान को भाषाविज्ञान की अंगशाखा के रूप में महत्व अपेक्षाकृत अर्वाचीन है, और साथ ही अनेक आधुनिक विचारक इस शाखा को भाषाविज्ञान से पृथक् भी बताने लगे हैं, तथापि अभी अनेक लोगों द्वारा इसे भाषाविज्ञान का ही एक पक्ष माना जाता है। कोश के प्रौढ और सूक्ष्म अर्थबोधन में इस शाखा की उपजीव्यता बहुत अधिक है।

शब्दव्युत्पत्ति के निर्देशक्रम में भी केवल ध्वनिसाम्य अथवा ध्वनि-विकास-संबंधी नियमों की प्रयोगयोग्यता ही पर्याप्त नहीं है। अर्थपक्ष को छोडकर केवल ध्वनि या रूपपक्ष का आधार लेकर चलने से कभी कभी व्युत्पत्तियाँ अत्यंत भ्रामक और अशुद्ध हो जाती हैं। अतः कोशनिर्माण में व्युत्पत्ति के द्वारा परंपरा या अर्थविज्ञान का विनियोग बडा ही महत्व रखता है।

इन कुछ मुख्य तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि भाषा-विज्ञान का आधुनिक कोशविज्ञान पर व्यापक प्रभाव है। कुछ बातों को छोडकर प्रायः कोशविज्ञान के समस्त आधारिक तत्वों पर साक्षात् या परंपरया आधुनिक भाषाविज्ञान का व्यापक प्रभाव है। निघंटु के निरुक्तात्मक व्याख्यान से ही भारतवर्ष में कोशविद्या के क्षेत्र में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से व्याकरण, भाषाविज्ञान और व्युत्पत्ति शास्त्र की उपजीव्यता का संकेत मिलने लगा था। आज वह प्रभाव अधिक स्पष्टतर और व्यापकतर बन गया है।

निष्कर्ष

हिंदी शब्दसागर से पूर्व

भारत में पाश्चात्य कोशों और कोशकारों के संपर्क और प्रभाव से आधुनिक ढंग के कोशों का निर्माण प्रचलित और विकसित हुआ। हिंदी के आधुनिक कोशों की चर्चा की जा चुकी है। प्रथम संस्करण की भूमिका में भी इसका सिंहावलोकन किया गया है। इन्हें देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले के हिंदी कोशों में प्रथम था 'पादरी-आदम' का हिंदी कोश जो १८२९ में 'कलकत्ता' में छपा। इसके पूर्व के कोश पाश्चात्यों द्वारा पाश्चात्य लिपि और भाषा के माध्यम में बने। गिलक्राइस्ट, जान शेक्सपियर, टेलर, विलियम हंटर आदि पाश्चात्यों द्वारा निर्मित कोश सामान्यतः हिंदुस्तानी कोश कहे गए हैं। उनमें संगृहीत शब्दों को प्रायः फारसी, नागरी और रोमन लिपियों में रखा गया है। फैलन का कोश विशेष महत्व रखता है। क्योंकि इसमें हिंदुस्तानी साहित्य, लोकगीतों और बोलचाल की भाषा से उदाहरण उपस्थित किए गए हैं। परंतु प्लाट्स का कोश हिंदी और उर्दू के अंशों को पृथक् कर देता है। पादरी आदम का कोश ही शब्दसागर के प्रथम संस्करण की भूमिका के अनुसार हिंदी का ऐसा सर्वप्रथम शब्दकोश बताया गया है जो देवनागरी लिपि और हिंदी भाषा में प्रकाशित हुआ। इसके अलावा शब्द-सागर की भूमिका में ही बाद के हिंदी कोशों की एक सूची दी गई है। १८७३ में श्री राधेलाल हेडमास्टर का काशी से प्रकाशित हिंदी कोश पाया जाता है। इन सबकी विस्तृत चर्चा ऊपर हो चुकी है।

इन कोशों में यद्यपि पाश्चात्य-कोश-विद्या के सिद्धांतों का प्रौढ़ता

से पालन नहीं हुआ है तथापि उसी पद्धति पर चलने का प्रारंभिक प्रयास शुरू हो गया था। अकारादिवर्णानुक्रम इनकी सर्वप्रथम विशेषता है। परंतु वह क्रम भी पुराने कोशों में पूर्णत: व्यवस्थित नहीं था।

हिंदी शब्दसागर के पूर्व निर्मित हिंदी कोशों में शब्दसंग्रह का मुख्याधार संस्कृत शब्द ही थे। व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त शब्दों का भी संकलन हुआ, परंतु वह अपेक्षाकृत कम ही रहा। इन कोशों में व्याकरणपरक निर्देश और शब्दार्थबोध के लिये प्राय: पर्याय दिए जाते थे। व्याख्या कहीं कहीं दे दी जाती थी, परंतु बहुधा संक्षिप्त और अपूर्ण रहती थी। किसी किसी कोश में व्युत्पत्ति देने की चेष्टा है पर वह प्रामाणिक और भाषावैज्ञानिक नहीं है, और न उस युग में इसकी आशा ही की जा सकती थी। उदाहरण उद्धृत करने की ओर सर्वथा उपेक्षाभाव लक्षित होता है।

इन सब कारणों से हिंदी शब्दसागर से पूर्व की कोशरचना का स्वरूप और स्तर बाल्यावस्था का ही कहा जा सकता है। प्राय: एक व्यक्ति के प्रयास में निर्मित इन कोशों में विशेष प्रौढ़ता तत्कालीन कोशचेतना के हिंदी विद्वानों में युगबोध के अनुरूप ही था। इनका प्रयोजन मुख्यत: शब्दार्थज्ञान कराना था, और वह भी पर्याय द्वारा। इनमें संकलित अधिकांश शब्द संस्कृत, हिंदी आदि के पूर्ववर्ती कोश से ही ले लिए जाते थे और एक जिल्द में व्यवहारोपयोगी कोश तैयार करना ही इन कोशकारों और कोशों का मुख्य प्रयोजन था।

हिंदी शब्दसागर के द्वारा हिंदी में जिस प्रकार का महत्वपूर्ण और नूतन कोश विज्ञान की रचनादृष्टि से समन्वित भाषा के महाकोश बनाने की प्रेरणा मिली और तदनुकूल प्रयास किया गया, उसका संकेत प्रथम संस्करण की भूमिका में प्रधान संपादक बाबू श्यामसुंदरदास द्वारा किया गया है। यहाँ उनकी उद्धरणी अनावश्यक है। इस संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि डा० श्यामसुंदरदास के नेतृत्व में और आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे मर्मज्ञ आलोचक और हिंदी साहित्यविज्ञ के सहायकत्व में तथा बालकृष्ण भट्ट, श्री अमीर सिंह, श्री जगन्मोहन वर्मा, श्री (लाला) भगवानदीन और श्री रामचंद्र वर्मा के संपादकत्व में तथा अनेक विद्वानों, कार्यकर्ताओं के सहयोग से संपादित और निर्मित यह कोश एक महान् प्रयास। साधन और परिस्थितियों के विचार से उक्त महाकोश के संपादन में सभा के कर्णधारों और कोश के कार्यकर्ताओं को महान् सफलता प्राप्त हुई। यह ठीक है कि पाश्चात्य भाषा के प्रौढ़ कोशों की तुलना में इसमें अनेक कमियाँ रह गई हैं। फिर भी इसकी कुछ उपलब्धियाँ हैं जो स्तुत्य और अभिनंदनीय हैं। यह भी कहा जा सकता है कि हिंदी शब्दसागर के अनंतर बने हिंदी के सभी छोटे बड़े कोशों का यही महाकोश उपजीव्य और आधार रहा। आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी के प्रथम संस्करण की रचना का कार्यारंभ हो गया था। १८५७ ई० से १८७९ ई० तक उसकी तैयारी आदि होती रही, और १८८४, (१८ ११।१८८४) ई० में उसका प्रथम अग्रिम संपादित प्रारूपांश छपकर सामने आया। १८८५ ई० से लेकर १९२८ ई० तक संपादन और प्रकाशन के कार्य चलते रहे। लगभग ४४ वर्षों में उसका प्रकाशन हुआ। उसके तैयार होने में ७२ वर्ष लगे। पर उसकी बहुत सी आधारिक सामग्री उसमें पूर्व ही डा० जानसंसन, रिचर्डसन और वेब्स्टर के कोशों में संकलित हो चुकी थी। उनकी सहायता मिली, यद्यपि उसे भी व्यवस्थित और सुनियोजित करने में बहुत बड़ा श्रम करना पड़ा। हिंदी शब्दसागर का संपादन साधन और आधारिक सामग्री को देखते हुए अपने आपमें स्तुत्य और सफल प्रयास था। नव्यकोशविज्ञान की दृष्टि से आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी के स्तर से नीचे होने पर भी वह उपलब्धि बहुत बड़ी रही।

पूर्ववर्ती अधिकांश हिंदी कोशों की भाँति यह कोश एक व्यक्ति द्वारा निर्मित न होकर भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ अनेक सुधियों द्वारा तैयार किया गया है। शब्दसंकलन के लिये केवल पुराने कोशों का ही आधार न लेकर ग्रंथों और व्यवहारयुक्त भाषा और बोलियों के प्राय: समस्त उपलब्ध सामान्य और विशेष शब्दों के संग्रह का उसमें प्रयास हुआ है। प्राय: प्रत्येक शब्द का मूल स्रोत देखने के प्रयास के साथ साथ विभिन्न भाषामूलक स्रोतों का निर्देश करने की चेष्टा हुई है। व्युत्पत्तियाँ यद्यपि बहुत सी ऐसी हैं जो संदिग्ध और भ्रामक अथवा कहीं कहीं अशुद्ध भी हैं तथापि उसके लिये यथासाधन और यथाशक्ति जो प्रयास है वह भी अपने आपमें बड़ा महत्व रखता है। व्युत्पत्तिनिर्देश का स्वरूप भी विकासक्रम के विभिन्न स्तरों में उपस्थित नहीं किया जा सका है। फिर भी पूर्ववर्ती हिंदी कोशों की तुलना में शब्दसागर की व्युत्पत्ति विषयक अग्रगति पर्याप्त महत्व की है। हिंदी के कोशकार आज भी इस दिशा में बहुत आगे नहीं बढ़ पाए हैं।

हिंदी शब्दसागर में अनेकत्र उदाहरणों का सहयोग लिया गया है; परंतु प्रथम शब्द के प्रयोग का ऐतिहासिक कालनिर्देश नवीन संस्करण में भी संभव नहीं हो सका। इस संबंध की असमर्थता का निर्देश किया जा चुका है। पर दूसरी ओर व्याकरणमूलक व्यवस्था और तदनुसार शब्द एवं अर्थ के व्यवस्थित निर्देश का हिंदी शब्दसागर में अत्यंत प्रौढ़ विनियोजन दिखाई देता है। पर्यायनिर्देशन पर जहाँ एक ओर संस्कृत कोशों का व्यापक प्रभाव है और प्राय: अधिकाधिक यौगिक पदों का उल्लेख भी संस्कृत व्याकरण पर अधिकत: आधारित है वहाँ दूसरी ओर हिंदी की प्रकृति और प्रयोगपरंपरा का आकलन और संकलन भी बड़े यत्न और मनोयोग के साथ किया गया है। हिंदी के मुहावरों और लोकोक्तियों या प्रयोगों अथवा क्रियाप्रयोगों की प्रयोगपरंपरा से आगत अर्थों की व्याख्या भी—इसमें पर्याप्त प्रौढ़ है।

अर्थनिर्धारण में व्याख्यात्मक पद्धति अपनाई गई है। पर साथ ही मुख्य शब्दों के अंतर्गत अधिकत: पर्याय भी रख दिए गए हैं। इस कारण कभी कभी ऐसा भी लगता है कि यह कोश आधुनिक ढंग का पर्यायवाची और नानार्थक कोश एक साथ बन गया है। व्याख्यात्मक पद्धति के अंतर्गत व्यक्ति, विषय, वस्तु आदि का पौराणिक, ऐतिहासिक, शास्त्रीय और परंपरागत अनेक प्रकार के परिचय एवं विवरण यथास्थान दिए गए हैं। इस कारण यह कोश विश्वकोश, ज्ञानकोश, चरितकोश और पारिभाषिक कोश के परिवेश का भी यत्र तत्र स्पर्श करता दिखाई देता है। कुछ कुछ यही दशा है आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी के प्रथम संस्करण की।

शब्दों की प्रयोगसपृक्त अर्थच्छाया (शेडस आव मीनिंग) की भिन्नता को भी अनेक स्थलो पर स्पष्ट करने का प्रयास लक्षित होता है। फिर भी इस दिशा का कार्य अभी और श्रम अपेक्षित करता है। शब्दो के समस्त अर्थों की प्रयोगपुष्टि और प्रामाणिकता के निमित्त सर्वत्र उदाहरण नही हैं। जहाँ हैं वहाँ भी बहुधा ग्रथो के नाममात्र ही निर्दिष्ट हैं। उनके प्रसगस्थल और सस्करण का उल्लेख नहीं है। अनेक स्थलो पर बोलचाल के स्वनिर्मित उदाहरण भी नियोजित किए गए हैं। सब मिलाकर इसमे शब्दसग्रह और अर्थविवृति दोनों की परिधि को यथासभव व्यापक और विस्तृत बनाया गया है। इस क्षेत्र मे विभिन्न पेशे और वर्ग के जनजीवन से सगृहीत शब्दभडार की सयोजना से इस कोश का महत्व बहुत बढ गया है।

हिंदी शब्दसागर के अनतर

हिंदी शब्दसागर के प्रथम सस्करण का प्रकाशन जब हुआ तब हिंदी मे अग्रेजी आदि न जाननेवालो के सामने कोशविज्ञान के अपेक्षाकृत प्रौढ और विकसित रूप का प्रतिमान उद्भासित हुआ।

सक्षिप्त हिंदी शब्दसागर को हम हिंदी कोशो का प्रथम व्यावहारिक और प्रामाणिक सस्करण कह सकते हैं। इसमे मुख्यत सक्षेपीकरण ही किया गया है। बाद के सस्करणो मे थोडा बहुत शोधन-वर्धन होता रहा। पष्ठ सस्करण मे अवश्य ही व्युत्पत्ति के निर्देश मे कुछ नई पद्धति अपनाई गई है। स्वल्प कुछ ही विशेष उपलब्धि है। अन्य अनेक कोश भी इस समय बने परतु ज्ञानमडल का बृहद् हिंदी शब्दकोश कुछ दृष्टि से नवीनता लेकर सामने आता है। इस कोश मे सस्कृत कोशो से लेकर हजारो शब्द—मूल और यौगिक—बढ़ाए गए हैं। इनमे बहुधा ऐसे दिखाई पडते हैं जो हिंदी मे अप्रयुक्त है। इस कोश की नवीनता है सस्कृत कोशो के अनुकरण पर पेटेवाली पद्धति का यथाशक्ति अपनाने की चेष्टा। इस पद्धति के अनुसार एक मूल शब्द के अतर्गत उससे बने अनेक व्युत्पन्न रूपो और यौगिक पदो का समावेश किया गया है। इसमे पूर्णता न होने पर भी इस सरणि का, जहाँ तक हमें ज्ञात है, कदाचित् व्यापक रूप से पहली बार हिंदी के कोश मे प्रयोग हुआ है। अग्रेजी, सस्कृत आदि के कोशो का यह पद्धति हिंदी मे लाकर इस कोश ने हिंदी कोशो के निर्माण मे नवीनता पैदा की। पर इसके अनुसरण मे हिंदी कोशो के लिये अनेक कठिनाइयाँ आ जाती है। व्युत्पन्न और समासयुक्त यौगिक पदो के मूल शब्द के अतर्गत समावेशन से आनुपूर्वी के अनुसार शब्दक्रम के स्थापन मे पूर्ण व्यवस्था कठिन हो जाती है। व्याकरणिक ध्वनिविकारो और साधमूलक ध्वनिपरिवर्तनो के कारण शब्द-क्रम योजना अस्तव्यस्त होने लगती है। उदाहरण के लिये वचन शब्द के अतर्गत यदि 'वाचन' भी रखा जाय और इतिहास के अतर्गत 'ऐतिहासिक', 'व्याकरण' के अतर्गत 'वैयाकरण' शब्द समाविष्ट हो, 'सर्व' के अतर्गत 'सार्वदेशिक', सार्वभौम आदि शब्द रख दिए जाय तो शब्द-क्रम-स्थापना की जो पूर्वापर अस्तव्यस्तता उत्पन्न होती है वह एक समस्या बन जाती है। इसका सर्वमान्य निश्चय और स्वीकरण किए बिना हिंदी कोशो मे उक्त पद्धति का अपनाना कुछ कठिन हो जाता है। फिर भी ज्ञानमडल के कोश मे यह प्रयास नवीन ही कहा जायगा। ऐसी या अन्य कठिनाइयो का प्रश्न भी उक्त कोश के सपादको के सामने आया था, और उसके समाधान की एक पद्धति भी उन्होने अपनाई है। पर जब तक वह स्वीकृत न हो, तब तक उसका ग्रहण सर्वत्र नहीं हो सकता। कोशो मे गृहीत या नवसमाविष्ट शब्दों के अतिरिक्त अधिकत हिंदी शब्दसागर का ही व्यापक उपयोग किया गया है।

शब्दसागर के सहायक सपादकों मे श्री रामचद्र वर्मा जी भी थे। सक्षिप्त हिंदी शब्दसागर के बाद अतिरिक्त प्रामाणिक हिंदी कोश के नाम से उन्होंने एक ग्रथ सपादित और प्रकाशित किया। सक्षिप्त-शब्दसागर के आरंभिक अनेक सस्करणो का उन्होंने सपादन भी किया था। हिंदी कोश मे सबद्ध अनेक प्रश्न और सक्षिप्त शब्दसागर की अनेक कमियों की ओर उनका ध्यान जाता रहा। उनके निराकरण की चेष्टा मे भी वे यथासाध्य प्रामाणिककोश के सपादन के पूर्व तक लगे रहे। प्रामाणिक हिंदी कोश के वस्तुत सभा के सक्षिप्त शब्दसागर का कुछ सुधरा हुआ रूप मात्र था। कोशकला की दृष्टि से उसमे नूतन विकास नहीं हो पाया। नालदाविशाल शब्द सागर नामक—दिल्ली से प्रकाशित एक हिंदी कोश—बडे विज्ञापन और बडे प्रचार के साथ सामने आया। हिंदी शब्दसागर को पूर्णत लेकर और मनमाने ढग से उसके अगो, अशो को काट छाँटकर यत्रतत्र कुछ अनावश्यक नए शब्दों को जोडकर इसका ढाँचा खडा किया गया। पर शब्दसख्या की दिखावटी वृद्धि के अतिरिक्त इस एक जिल्द के 'विशाल' विशेषणवाले शब्दसागर मे कोई भी ऐसी खास बात नहीं है, जो कोशरचना के स्तर को ऊपर उठा सके। ऐसी अव्यवस्थाएँ अवश्य हैं जिनके कारण हिंदी की कोश-रचना-विद्या उस स्तर से कुछ नीचे खिसक आई जिसे शब्दसागर द्वारा निर्धारित और अधिगत किया गया था।

हिंदी साहित्य समेलन द्वारा प्रकाशित और श्री रामचद्र वर्मा के सपादकत्व एव निर्देशन मे निर्मित मानक हिंदी कोश—इस दिशा मे एक महत्वपूर्ण दूसरा और नवीन विशाल ग्रथ है। इसके आरंभिक निवेदन मे सपादक ने उक्त कोश की अनेक विशेषताओं का निर्देश किया है जिन्हें उन्होंने (१) शब्दों के रूप और अक्षरी, (२) निरुक्ति या व्युत्पत्ति, (३) शब्दों के अर्थ और विवेचन, (४) अर्थो का क्रम, (५) अर्थो का वर्गीकरण, (६) अर्थो के सूक्ष्म अतर, (७) मुहावरे, (८) उदाहरण, (९) अन्यान्य सशोधन और (१०) अंगरेजी पर्याय, इन शीर्षको के अतर्गत निर्दिष्ट किया है। पर स्वय इन्होंने कहा है कि मानक हिंदी कोश भी सभी आधुनिक हिंदी कोशो की तरह हिंदी शब्दसागर की भित्ति पर ही आधारित है। फिर भी बहुत सी बातो और विवरणो मे अनेक परिवर्तनो के कारण उक्त कृति मे कोशरचना का ढाँचा बदल गया है। इसके कारण वे अपने सपादन पर गौरव का भी अनुभव करते हुए कहते हैं—'उसको बिलकुल नया, युक्तिसगत वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप दिया गया है'। उनका कथन है कि शब्दार्थविवेचन मे केवल अन्य कोशो का आधार न लेकर उनके प्रयोगो के प्रचलित पक्ष का भी सहारा लिया गया है।

आधुनिक कोश नियोज्य उपादान और पद्धति

आधुनिक शब्दकोशों के बहुत से कार्य वैज्ञानिक पद्धति से होते हैं। भाषाविज्ञान के प्रयोगात्मक विज्ञान के रूप में इसमें श्रम करना पड़ता है। उत्तम कोश के लिये विषयगत वर्णन के पद्धतिसिद्धांत का सामान्यीकरण और निरंतर प्रतिमशधन अपेक्षित रहता है। भाषाविज्ञान के वर्णनात्मक पक्ष की उपयोगिता यहाँ प्रत्यक्ष है। संकलित शब्द के विषय में निम्नलिखित बातों की सही जानकारी देना आवश्यक होता है। (१) वर्णानुपूर्वी, (२) उच्चारण रूप, (३) व्याकरणिक शब्दभेद की सूचना, (४) प्रकृति-प्रत्यय विवेक, (५) व्युत्पत्ति, (६) वर्तमान एक या अनेक अर्थ, (७) प्राचीन शब्दार्थ, (८) अपर-शब्द-संनिधि-मूल शब्दयोग और उसका अर्थ, (९) अव्युत्पन्न शब्द, (१०) पर्याय और (११) अर्थो के भेद पर आधारित अर्थच्छायाएँ।

इनके अतिरिक्त शब्दार्थ की आवश्यक व्याख्या और सदर्भसंपृक्त सूचनाओं का विवरण भी दिया जाता है। यहाँ शब्दकोश द्वारा ज्ञानकोशात्मक और विश्वकोशात्मक पद्धति की विशेषता का स्पर्श हो जाता है। कभी पर्याय से, कभी लंबे कथनों द्वारा शब्दबोध्य अर्थ का भावधारा या संयुक्त भावना सूचित करना आवश्यक हो जाता है। इसके लिये अन्य शब्दो, विवरणों या चित्रों और रेखाकृतियों द्वारा ज्ञान कराया जाता है। इसी प्रकार प्रसंगगर्भित अर्थ भी व्यक्त करना पड़ता है, कभी कभी अर्थप्रकाशक उद्धरणों का उपयोग भी आवश्यक हो जाता है।

हिंदी कोश में शब्दसंकलन—कुछ समस्याएँ

निर्मेय कोश के अनुरूप शब्दसंकलन भी बड़ी सावधानी से और विवेकपूर्वक करना पड़ता है। साथ ही अर्थसंकलन भी करना पड़ता है। इसका तात्पर्य यह है कि भाषा में नवीन अर्थचित्रों और अभिव्यक्ति-दृष्टियों का आयात होता रहता है। कभी पुराने ही शब्दों से और कभी नए शब्दों या शब्दयोगों द्वारा इनका अभिव्यंजन होता है। अतः शब्दसंकलन के साथ साथ भाषा में नवागत अर्थचित्रों, विचार-बिंबों और अर्थबोध के रूपों का संकलन, शब्दसंकलन के साथ साथ भी उत्तम कोशों में संयोजित करना आवश्यक होता है। इसलिये संकलयिता और संपादक के लिये प्रबुद्धता, जागरूकता और भाषाप्रयोग के विस्तृत क्षेत्र की गहरी जानकारी अत्यंत अपेक्षित होती है, उनके लिये तत्तद्विषयों का प्रौढ़ ज्ञान और ताटस्थ्यबोध भी आवश्यक है। कोशोपयोगी शब्द और अर्थ के संग्रह और त्याग की शक्ति और उस क्षेत्र में गहरी पैठ नितांत उपयोगी होती है। तत्तद्विषय के मर्मज्ञ और कोशकार्य की बोधचेतना से समन्वित पुरुष ही अच्छे कोश के उत्तम शब्दसंकलन में सहायक हो सकते हैं। वे ही इस क्षेत्र के संग्रह और त्याग का मर्म ठीक ठीक पहचान सकते हैं। जो नए एवं विलक्षण—शब्द और अर्थ के प्रयोग भाषा में काफी चल पड़े हों, उनका संग्रह होना चाहिए। यदि वे मान्य हो गए हों तो उनका संग्रह अनिवार्य हो जाता है।

हिंदी कुछ विलक्षण भाषा है। यह राष्ट्रभाषा है और बड़े भारी भूभाग की व्यवहारभाषा भी है। किसी अंचल की पूर्णरूपेण मातृभाषा न होते हुए भी लगभग २० करोड़ जनता के व्यवहार में इसका प्रयोग होता है। इसके अंतर्गत अनेक आंचलिक बोलियाँ हैं, विभाषाएँ हैं, मातृभाषाएँ हैं। ऐसी भाषा का जब व्यापक भूभाग में शिष्ट और साहित्यिक भाषा के रूप में व्यवहार होता है तब आंचलिक और सीमावर्ती क्षेत्रों की बोलियों और भाषाओं के शब्दार्थों का संग्रह और त्याग दुष्कर समस्या बन जाती है। इसका समाधान कठिनतर हो जाता है। फिर भी कोशसंपादकों के लिये अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर रास्ता निकालने की चेष्टा करना आवश्यक हो उठता है।

संख्यावृद्धि

शब्दसंग्रह का ही दूसरा पहलू है शब्दसंख्या की वृद्धि। इसमें कभी तो वैकल्पिक विकसित तद्भव या अपभ्रष्ट रूपों के कारण संख्या-वृद्धि होती है, और कभी भाषा में नवोद्भूत, नवागत, नवोद्भावित और नवायातित शब्दों के सहयोग से शब्दवृद्धि होती है। किसी भी जीवित भाषा में सामाजिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक, शैक्षणिक तथा प्राविधिक आदि ज्ञान विज्ञान का विकास और विस्तार होने पर नित्य नए नए शब्द आते रहते हैं। विचार के नए कोण, नई शैली और बोध्यार्थ की अभिव्यक्ति की नूतन बोधचेतना के कारण कुछ प्रचलित या पुराने शब्दों से भी परंपरागत अर्थ के अतिरिक्त कथ्य और वाच्य का बोध कराया जाता है। कभी नए शब्द, नए यौगिक-समस्त पद अथवा नवकायित (न्यूकाएड) शब्दों के माध्यम से तद्भाषाभाषी समाज की अभिव्यंजनीय विवक्षा की पूर्ति का प्रयास होता है।

नवीन शब्दों-अर्थों का प्रश्न

हिंदी जीवित भाषा है। राष्ट्रभाषा हो जाने के बाद देश और काल की संपूर्ण परिस्थितियों के अनुरूप उसकी बोधसीमा और वाच्यशक्ति के आयामों का विस्तार अपेक्षित भी है, अवश्यभावी भी। उद्योग, व्यवसाय, ज्ञान विज्ञान आदि के क्षेत्र में वर्तमान युग के समस्त आवश्यक अर्थरूपों और अर्थबिंबों की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिये—इसी कारण हिंदी प्रयत्नशील है। ज्ञान विज्ञान की सैकड़ों शाखाओं से पारिभाषिक, प्राविधिक और नव्य अर्थबोध के अभिधेय अथवा प्रतीकबोध्य, अर्थरूपों की अभिव्यंजना का वह प्रयास कर रही है। अतः हिंदी का कोशकार्य भविष्य में भी सर्वदैव तब तक निर्माण प्रक्रिया के क्रम में ही रहेगा जब तक वह जीवित भाषा बनी रहेगी। अतः यथाशक्ति शब्द-संख्या-वृद्धि भी सर्वदैव अत्यंत आवश्यक रहेगी।

पारिभाषिक, वैज्ञानिक, प्राविधिक एवं नानाशास्त्रीय शब्दकोशों के निर्माण में भारत सरकार की ओर से बड़े विशाल पैमाने पर कार्य हो रहा है। तत्तद्विषयों के विशेषज्ञों और हिंदीविज्ञों के सहयोग से अंग्रेजी हिंदी के शब्दसंग्रहात्मक कोश बन रहे हैं। 'पारिभाषिक शब्दसंग्रह,' 'विज्ञान शब्दावली' (साइंस ग्लासरी) और 'पदनाम-शब्दावली' आदि बन चुके हैं। डा० रघुवीर ने भी ऐसे अनेक कोश बनाए हैं।

शब्दसागर के अनंतर बननेवाले निर्दिष्ट कोशों में प्रायः सर्वत्र संख्यावृद्धि की चर्चा हुई है। परंतु यह कार्य इसलिये अत्यंत कठिन है कि पूर्वोक्त शब्दार्थ के संग्रह और त्याग का प्रश्न बड़ा ही वैदुष्य-

साध्य, साधनसाध्य और श्रमसाध्य है। शब्दसागर के नवीन संस्करण में संगृहीत नवीन शब्द अतीत के हिंदी साहित्य के स्रोत से ही अधिकांश लिए गए हैं। आधुनिक हिंदी वाङ्मय के अपेक्षाकृत नव्य ग्रंथों से कम शब्द ही जोड़े गए हैं। पारिभाषिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रकृति के नवप्रयुक्त शब्दों का इसलिये संग्रह नहीं किया जा सका है कि उसका सर्वसंमत और प्रामाणिक रूप अभी निश्चित नहीं हो पाया है। वैज्ञानिक, प्राविधिक आदि संबंधी हिंदी ग्रंथों के विभिन्न लेखकों द्वारा जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं या हो रहे हैं उनमें अत्यधिक अनेकरूपता है, सर्वमान्य एकरूपता का अभाव है। अंग्रेजी शब्दों के अर्थानुवाद की भावना से लेखकों द्वारा एक अर्थ के लिये अनेक शब्द चल रहे हैं। विभिन्न ज्ञान विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों की पारिभाषिक और प्राविधिक शब्दावली भारत सरकार तैयार कर रही है। कुछ विषयों के शब्दों के रूप और अर्थ का निर्धारण होने के बाद कुछ शब्दावलियों का प्रकाशन भी किया जा चुका है।

यहाँ कथ्य इतना है कि जीवित भाषा के कोशों की शब्दसंख्या में वृद्धि और तदनुरूप अर्थविस्तार एक ऐसी क्रिया है जिसकी निरंतर गतिशीलता नितांत अपेक्षित है। पदार्थों के संग्रह और त्याग के मर्म को पहचान कर ही यह कार्य होना चाहिए। नवीन संस्करणों या नवीन परिशिष्टों द्वारा शब्दसंख्या की वृद्धि सदा होती रहनी चाहिए। पेटेवाली पद्धति के उपायों से यद्यपि अनावश्यक शब्द-संख्या वृद्धि से बचा जा सकता है तथापि हिंदी कोशों में उसका प्रयोग तभी समीचीन होगा जब हिंदी के प्रौढ कोशकारों द्वारा कोई व्यवस्था सर्वमान्य हो जाय।

मानक रूप

शब्दों के ग्राह्य, मानक या परिनिष्ठित रूप के स्थिरीकरण की भी एक विशिष्ट समस्या है। वैकल्पिक अथवा तद्भव शब्दों के नाना रूप भी शब्दार्थनियोजन में कठिनाई उपस्थित करते हैं। संज्ञा और क्रिया के नाना रूपों में विशेष रूप का मानकत्व और मानकीकरण विवाद का विषय है। आंचलिक बोलियों के प्रभाव से और काल, वाच्य, वचन, भाव, विधि आदि के कारण क्रियापदों के नाना रूप सामने आ जाते हैं। अतः उनका ग्रहण संभव नहीं हो पाता। हिंदी में सामान्य अथवा क्रियार्थक्रिया के नाकारांत रूपों द्वारा क्रिया पदों की निर्मापक धातु का निर्देश किया जाता है। इन समस्याओं पर विचार करते हुए एक ओर तो सभा की कोशोपसमिति ने क्रियार्थक्रिया के रूपों को मूल मानकर उनका ग्रहण किया है; दूसरी ओर ऐतिहासिक, भौगोलिक, भाषाशास्त्रीय अथवा तद्भवता से प्रभावित संज्ञारूपों को अपनाया है। परंतु व्याकरण के कारण सामान्य रूपावली को छोड़ देना पड़ा है। संज्ञाओं और विशेषणों के प्रसंग में स्त्रीलिंग के विशिष्ट रूपों का निर्देश तत्सम या तत्समाभास रूपों के कारण भी कभी कभी शब्दवृद्धि की समस्या सामने आती है। 'इतिहास', 'भूगोल' से व्युत्पन्न ऐतिहासिक, भौगोलिक शब्दों के बजाय कुछ लोग 'इतिहासिक,' भौगोलिक आदि शब्द प्रयोग करते हैं। यहाँ तत्सम रूप को ही परिनिष्ठित मानने का पक्ष प्रबल है। इसी तरह से विदेशी शब्दों के उच्चारणमूलक विभिन्न रूप प्रचलित हैं जैसे, 'इटली, इतली, इताली' अथवा 'योरप, यूरोप' आदि। हिंदी कोशकारों के लिये इनमें भी मानकीकरण करना कठिन हो जाता है।

इस प्रकार के अनेक प्रश्न कोशसंपादन उपसमिति के समक्ष समय समय पर आते हैं। उपसमिति के सदस्यों ने विचार विनिमय के अनंतर जो निश्चय किए हैं उसी पद्धति पर संपादन का कार्य चलता रहा। उसकी यथाशक्ति परिणति ही परिवर्धित संशोधित हो कर शब्दसागर के नवीन संस्करण के रूप में प्रस्तुत हो रहा है।

१८।१२।६५
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

करुणापति त्रिपाठी
[संयोजक, संपादक मंडल]

प्रकाशिका

'हिंदी शब्दसागर' अपने प्रकाशन काल से ही कोश के क्षेत्र मे भारतीय भाषाओ के दिशानिर्देशक के रूप मे प्रतिष्ठित है। तीन दशको तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओ ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन १९२८ ई० मे मूर्त रूप दिया। तबसे निरतर यह ग्रथ इस क्षेत्र मे गभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज मे प्रकाशस्तभ के रूप मे मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्त ग्रथ के रूप मे इसका मूल्य लोगो को सहस्र मुद्राओ से भी अधिक देना पडा। ऐसी स्थिति मे अभाव की उपयोगिता द्वारा लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशो का प्रकाशन हिंदी जगत् मे हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के बल जीवित थे। इसलिये निरतर इसकी पुन अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही। किंतु साधन के अभाव मे अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहते हुए भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मातिक पीडा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बडे व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप मे डा० श्री संपूर्णानद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एव हिंदी जगत् का ध्यान निम्नाकित शब्दो मे इस ओर आकृष्ट किया--'हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ गया है। हिंदी मे एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका बृहत् सस्करण निकालने की आवश्यकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारो का सहारा मिलता रहे।'

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा--'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोष सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण मे सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया सस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला सस्करण छपा, हिंदी मे बहुत बातो मे और हिंदी के अलावा ससार मे बहुत बातो मे बडी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वचित नही रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियो के लिये भी साधारणत पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयो का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया सस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों मे बीस-बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जायगा और आप इस काम मे अग्रसर होंगे।'

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुन सपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामत्रालय ने अपने पत्र स० एफ। ४-३।५४ एच० दिनाक ११।५।५४ को एक लाख रुपया पाँच वर्षों मे प्रति वर्ष २०-२० हजार रुपए करके देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमडल का गठन किया गया जिसमे सर्वश्री डा० सपूर्णानद, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, आचार्य बदरीनाथ वर्मा, राहुल साकृत्यायन, अमरनाथ झा, शिवपूजन सहाय, मो० सत्यनारायण, रामचद्र वर्मा, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, मुनि जिनविजय, डा० तारापोरवाला, डा० सुब्रह्मण्य अय्यर, किशोरीदास वाजपेयी, बाबूराव विष्णु पराडकर, आचार्य नरेंद्रदेव, नददुलारे वाजपेयी, डा० सैयद हफीज, डा० रामअवध द्विवेदी तथा डा० सिद्धेश्वर वर्मा थे। साथ ही, इस सबध मे देश के विभिन्न क्षेत्रो के अधिकारी विद्वानो की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमडल के अनेक सदस्यो का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानो की राय के अनुसार इस कार्य का सयोजन करना चाहती थी, वह भी नही उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानो तथा परामर्शमडल के सदस्यो ने गभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको गभीरतापूर्वक मथकर निम्नाकित सिद्धात शब्दसागर के सपादन हेतु स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामत्रालय भी सहमत हुआ।

(१) इस कोश मे जहाँ आवश्यक हो, वहाँ परिभाषाओ और व्याख्याओ मे सगत सशोधन किए जायँ, जिससे यह वैज्ञानिक और वैयुत्पत्तिक कोश हो सके।

(२) वे शब्द, जो भाषा के अग बन चुके हैं, चाहे जहाँ से भी आए हो, मूलस्थान का बिना विचार किए रखे जायँ। पूर्वसस्करण मे

गृहीत शब्द निकाले न जायँ, प्रत्युत नए शब्द अथवा यूरोपीय और भारतीय भाषाओं और बोलियों के प्रयोग, जो प्रथम सस्करण के बाद प्रचलन मे आए हो, समाविष्ट किए जायँ।

(३) विभिन्न व्यावसायिक धधो के जनसाधारण मे प्रचलित विशिष्ट शब्दों को ग्रहण किया जाय और यथासभव उनके उद्गम स्रोतो का निर्देश किया जाय।

(४) जहाँ कही आवश्यक और सभव हो, अर्थ को स्पष्ट करने के लिये विशेष विवरण दिए जायँ।

(५) हिंदी के उन पुराने शब्दो को भी ग्रहण किया जाय जो कभी प्रचलन मे थे।

इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिये विभिन्न पुस्तकालयो, कोशशालाओं एव सदर्भग्रथो का गभीरतापूर्वक अध्ययन किया गया तथा अपने साधन एव सामर्थ्य की सीमा को परखा गया और शब्दसागर के पुन· सपादन के लिये निम्नाकित तत्वों को आधार बनाकर कार्य आरभ किया गया

शब्द मुख्य शब्द, उप शब्द, समस्त पद तीन वर्गों मे विभक्त किया गया। मुख्य शब्द के अतर्गत (क) सभी स्वतत्र शब्द, मूल या व्युत्पन्न, (ख) वे सभी समस्त पद, जो अर्थगत या इतिहासगत वैशिष्टय के कारण पृथक् स्थान के अधिकारी हैं (जैसे, अन्नपूर्णा, अग्निवर्ण आदि)। उपशब्द के अतर्गत (क) मुख्य शब्द के विविध और (आब्सोलीट) रूप, विगडे या विगाडे हुए शब्द, सदिग्ध शब्द या कुप्रयुक्त शब्द, और समस्त पद के अतर्गत वे समस्त शब्द या पद जिनके अर्थों मे कोई वैशिष्टय हो, और इनका स्थान मुख्य शब्द के अतर्गत रहे, अतर्भूत किए गए। मुख्य शब्द का अर्थ समाप्त होने पर समस्त पद देने की व्यवस्था की गई।

शब्दसग्रह मे निम्नाकित नियमों का पालन किया गया ·

(क) व्यक्तिवाचक और स्थानवाचक सज्ञाओं में से वे ही दिए गए हैं जिनका अर्थसबधी ऐतिहासिक महत्व है।

(ख) क्रियाओं के विभिन्न रूप न देकर केवल धातु रूप दिए गए हैं।

(ग) ग्रथो मे व्यवहृत शब्दो का ही सग्रह किया गया है, सामान्यतया कोशों से शब्दसग्रह बहुत कम किया गया है।

(घ) सज्ञा के विकारी रूप दिए गए हैं।

(ङ) रासो, विद्यापति आदि के ग्रथो मे अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ पाठदोष के कारण अर्थनिर्धारण मे बाधा पहुँचती है। ऐसे स्थलों मे, जहाँ सभव हुआ है, सदिग्ध पाठ के साथ प्रश्नचिह्न देकर नवीन या उचित पाठ का निर्देश कर दिया गया है और यथास्थान अर्थ दे दिया गया है।

(च) दादू, दरिया आदि के ग्रथों मे फारसी अरबी के शब्दों की बहुतायत है। इनका प्रयोग दो प्रकार से हुआ है—

(१) हिंदी शब्दों के साथ मिश्रित रूप मे।
(२) पूरी पक्ति या पूरे छद मे अविकल रूप मे।

शब्दसागर मे इनमे से प्रथम प्रकार के शब्द ही व्यावहारिक दृष्टि से सगृहीत किए गए हैं।

(छ) विदेशी भाषा के उन शब्दो का सकलन भी किया गया है जो हिंदी मे पर्याप्त प्रचलित हो गए हैं। वर्तनी के सबध में परिनिष्ठित या मुख्य रूप प्राय सर्वत्र शब्दसागर मे प्रयुक्त किया गया है पर यथावश्यकता जहाँ एक से अधिक वर्तनी प्रचलित हैं, वहाँ अति आवश्यक होने पर उन्हें भी दे दिया गया है।

व्याकरणनिर्देश के प्रसग में शब्दप्रकार या उसका उपभाग दिया गया है, जैसे, उप० (उपसर्ग), सर्व० (सर्वनाम)। शब्दो के अल्पप्रचलित या बहुप्रचलित विशिष्ट अर्थों मे वैशिष्टयनिर्देशन के लिये भी व्यवस्था की गई है, जैसे सगीत शास्त्र के लिये (सगीत) और वनस्पतिशास्त्र के लिये (वन०)। प्राचीन शब्दरूपों, मुख्यतया अपभ्रश मे शब्द के पूर्वापर रूपक्रम का उल्लेख है तथा विकारी रूपो, बहुवचन आदि का निर्देश भी किया गया है।

रूपविज्ञान, जिसके अतर्गत निरुक्ति या व्युत्पत्ति है, बडे कोष्ठ [ ] मे देने की व्यवस्था की गई है और जहाँ शब्द की व्युत्पत्ति निश्चित है वहाँ मूल रूप का निर्देश किया गया है। अन्य भाषाओं के रूपातरित शब्दो के व्युत्पत्तिनिर्देश के सबध मे ध्वनिपरिवर्तन, वर्णलोप, विकार, विरुद्ध अर्थ या भ्रातिमूलक योजना के आधार पर उसके मूल शब्द का उल्लेख किया गया है।

इसके साथ ही यह भी उल्लेख कर दिया गया है कि वह सस्कृत के किस शब्द का तत्सम या तद्भव रूप है। यदि वे शब्द फारसी, अरबी, अँगरेजी, फ्रासीसी, पुर्तगाली, चीनी आदि भाषाओं के हैं तो उनका भी तत्सम या तद्भव रूप निर्दिष्ट कर दिया गया है। ऐसे शब्दो के सबध में जो रचे या निर्मित किए हुए कोशो से लिए गए हैं, जैसे, ज्योतिर्विज्ञान आदि कोश (नागरीप्रचारिणी सभा), आग्ल हिंदी महाकोश (डा० रघुवीर), इस्तलाहाते पेशेवारॉं (डा० जफर रहमान) आदि का उल्लेख कर दिया गया है। देशज शब्दो के संबध मे उनके मूल और समस्त पदो का भी निर्देश है।

यह तो मुख्य शब्दो की बात हुई। उप शब्दों के सबध मे शब्द का विलुप्त या मुख्य रूप या उसके विविध रूप प्रस्तुत किए गए हैं। यदि उनके वर्तमान रूपों के कारण उनका प्राचीन रूप अज्ञात या अपरिचित है तो व्याकरणनिर्देश और व्युत्पत्ति देने के बाद 'दे०' लिखा गया है। प्रचलित मुख्य शब्द में ऐसे शब्दों का अर्थ देखना चाहिए। जहाँ उप शब्द मुख्य शब्द के अनियमित और विभिन्न रूप मे ग्रहण किया गया है और यदि अर्थ मे परिवर्तन नही है तो ऐसे उप शब्दों के लिये भी 'दे०' का ही प्रयोग किया गया है। लेखकों या कोशो के संदिग्ध और अशुद्ध, भ्रातिमूलक शब्द जिनका क्वचित् प्रयोग ही हुआ हो, उनके अर्थ के लिये भी 'दे०' देकर मूल शब्द के साथ ही अर्थ देखने की व्यवस्था की गई है।

समस्त पदो के अतर्गत सामान्य शब्दों के समस्त रूप यथासभव गृहीत किए गए हैं। उनमे प्रत्येक शब्द की वर्तनी पृथक् दी गई है, चाहे वे रूप समासचिह्नो अथवा अर्थसबधो से सयुक्त हो। अति सामान्य समस्त पद, विशेष आवश्यक न होने पर, नहीं लिए गए हैं।

ऐसे समस्त पदों का वर्गीकरण निम्नांकित तीन रूपो मे किया जा सकता है

(क) वे समस्त पद जिनमे प्रत्येक शब्द का पूरा पूरा अर्थ निश्चित है ।

(ख) वे जिनमे अर्थगत विशेषता सपृक्त है, पर सयुक्त शब्दो द्वारा जिनकी व्याख्या की जा सकती है ।

(ग) वे समस्त पद, जो अपना प्रशस्न इतिहास होने के कारण विशेष अर्थ के बोधक हो गए हैं और विशेष व्याख्या की अपेक्षा करते हैं । ये सभी समस्त पद मूल शब्द के अन्तर्गत अकारादि क्रम से शब्दसागर मे प्रस्तुत किए गए हैं ।

मुहाविरो की स्वतत्र सत्ता स्वीकार की गई है और उन्हें मल या प्रधान शब्द के रूप मे ग्रहण किया गया है ।

व्युत्पत्तिनिर्देश के सबध मे सामान्यतया जिन सिद्धातो का परिपालन किया गया है, वे निम्नाकित है

(क) जो शब्द सस्कृत मे उपलब्ध हैं, उनकी व्युत्पत्ति सस्कृत तक ही रखी जाय । सस्कृतेतर शब्दो का मूल स्रोत निर्दिष्ट किया जाय ।

(ख) हिंदी मे कहाँ से शब्द आया, इसका उल्लेख हो । यदि वह फारसी आदि से आया हो और फारसी ने सस्कृत आदि से ग्रहण किया हो तो दोनो का उल्लेख हुआ करे । उनकी सीधी व्युत्पत्ति के साथ यह लिखा जाय कि हिंदी मे यह शब्द इस अर्थ मे सबसे पहले कब से प्रयुक्त हो रहा है ।

(ग) भिन्न स्रोत (मूलधातु) से आए हुए एकार्थवाचक ऐसे शब्दों की व्युत्पत्ति मे प्राय. सभी स्रोत दिए जायँ ।

(घ) एक शब्द के कई अर्थ हों तो उनकी विभिन्न व्युत्पत्तियो की खोज की जाय ।

(ङ) व्युत्पत्ति स्पष्ट करने के लिये अपेक्षित उदाहरण सक्षेप मे दिए जायँ ।

(च) शब्दो की व्युत्पत्ति मुख्यत सस्कृत से दी जाय ।

शब्दसागर का व्युत्पत्ति भी विचारणीय और परिवर्तनीय मानी गई है और निर्देश क पहले हिंदी या सस्कृत या अन्य का निर्देश किया गया है । उन शब्दो को, जिनकी व्युत्पत्ति अप्राप्य है और जो भिन्न उद्गम के हैं, भूखडों के सबधवशात् देशी निर्दिष्ट किया गया ह ।

अप्रचलित और प्राचीन शब्दो के अर्थलेखन मे केवल निर्देश करके अर्थ आदि की व्यवस्था की गई है । अर्थों मे अनावश्यक विस्तार को रोका गया है और उसकी पुष्टि साहित्य के प्रयागों से की गई है । एसे तद्भव शब्दो का भी निर्देश किया गया है, जिनका अथ परिवर्तित हो गया है । सशोधन के सबध मे यथासाध्य उदाहरण दिया गया है । शब्दों के विविध, नवीन, अथ रखे गए है और विभिन्न ग्रथो स पूरे सकत के साथ उदाहरण दिए गए हैं ।

जो अर्थ मूल मे अस्पष्ट हैं उन्हें अधिक स्पष्ट किया गया है तथा अथ की भाषा सरल रखी गई ह । शब्दाथ म व्याख्या क साथ अत्यत आवश्यक होने पर अंगरेजी शब्द भी देवनागरी लिपि म रखे गए हैं । उन शब्दों के उदाहरण यथाशक्ति दे दिए गए हैं जिनके प्रयोग में रूपगत अथवा अर्थगत विशेषता है । मुहावरो के उदाहरण भी, जहाँ आवश्यक हैं, दिए गए हैं । पुरानी हिंदी के ग्रथो, यथा रासो आदि से, शब्द और अर्थ के साथ उदाहरण भी दिए गए हैं । सभा के स्वीकृत नियमों के अनुसार मूल विदेशी शब्दो की वर्तनी भी दी गई है और व्युत्पत्ति मे शीघ्र उच्चारण सूचित करने के लिये अक्षरों के नीचे बिंदी आदि भी लगाई गई है । जिन ग्रथो से शब्दचयन किया गया है, उदाहरण भी उन्हीं से लिए गए हैं । शब्दसागर के अर्थों के उदाहरण सक्षिप्त किए गए हैं, परतु ध्यान रखा गया है कि ऐसा करने मे सदर्भ की पूर्णता खडित न होने पाए । प्रसिद्ध एव प्रचलित शब्दो के नए उदाहरण प्राय. नही रखे गए हैं, पर इस बात का ध्यान रखा गया है कि उदाहरण अर्थच्छाया के विशदीकरण के लिये ही हों ।

समितियो और मडलो द्वारा स्वीकृत इन तत्वो के आधार पर शब्दसागर की रचना हुई । इस कार्य मे सभा को ११ वर्ष का समय लगा है तथा सैकडो व्यक्तियो ने सहयोग प्रदान किया है । इसकी अपनी एक कहानी है ।

मूल सस्करण की प्रस्तावना भी इस नवीन सस्करण मे दे दी गई है जिससे मूल सस्करण का सक्षिप्त इतिहास है । इस नवीन सस्करण का सपादन सरकारी अनुदान पर आधारित था । सरकार के अपने अलग विधि विधान होते हैं और सभा का अपना विधि विधान भी है । इसलिये दोनो के ताल मेल के माध्यम से कार्य का आरभ और सचालन हुआ । यद्यपि इस कोश के सपादन कार्य को पाँच वर्ष मे ही पूरा करना था, तो भी यह कार्य लगभग ११ वर्षों मे पूरा हुआ । सभा को इस बात का खेद है कि वह निश्चित समय मे कार्य पूरा न कर सकी । किंतु उसे इस बात का सतोष है कि विलब से ही सही, यह महत्वपूर्ण काय सपन्न हुआ । इस कार्य की प्रगति का कुछ विस्तृत विवरण यहाँ उपस्थित करना अप्रासगिक न होगा ।

१५ जून १९५४ को कोश कार्य आरभ हुआ और उसके कार्यालय का व्यवस्था की गई । यह कार्य १३ अप्रैल, १९५६ तक चलता रहा इस अवधि के प्रथम वर्ष मूल हिंदी शब्दसागर के ६००० शब्दो पर व्युत्पत्तिसशोधन तथा अपभ्रश, डिंगल, राजस्थानी, हिंदी आदि के नए पुराने ग्रथों स ७२,६०० शब्दों का सकलन किया गया ।

दूसरे वर्ष प्रथम वर्ष के सकलित शब्दको अक्षरक्रम से सयोजित किया गया तथा ३३,३६८ नए सगृहीत शब्दो का अर्थलेखन किया गया । सगृहीत शब्दो मे ५,०६८ शब्द अनावश्यक होने के कारण निकाल भी दिए गए और १०,००० शब्दों पर व्युत्पत्तिशोधन का कार्य हुआ । मूल हिंदी शब्दसागर के ६,५११ शब्दो पर व्युत्पत्ति तथा अर्थसशोधन कार्य भी किया गया । इस वर्ष से विभागीय समस्याओ पर विचारार्थ साप्ताहिक बैठकों की व्यवस्था आरभ की गई ।

तीसरे वर्ष, अर्थात् सवत् २०१३ विक्रमी मे, पुराने सगृहीत शब्दो पर अर्थलेखन काय चलता रहा । व्युत्पत्ति क क्षेत्र म १२,०३८ व्युत्पत्तियाँ पूरी की गई । इस अवधि तक प० करुणापति त्रिपाठी

संपादक रहे, फिर [illegible] ... नियुक्त हुए। इस वर्ष [illegible] ... रहे। [illegible] ... इस वर्ष [illegible] ... सहायता पहुँचाई। [illegible] ... इस वर्ष आधुनिक साहित्य के [illegible] ... किया गया और उनका [illegible] हुआ। प्रथम वर्ष के संगृहीत शब्दों का [illegible] किया गया जिससे [illegible] के पुनरुक्त एवं [illegible] होने के कारण लगभग [illegible] छोड़ दिए गए और उनकी संख्या ४४,०१७ रही।

तीसरे वर्ष अर्थात् संवत् २०१४ में ६,००० और नए उदाहरणों का संग्रह और व्यवस्थापन किया गया। इस अवधि में २०,००० उदाहरणों का पाठ मिलान किया गया और मूल शब्दसागर के लगभग २७,००० शब्दों पर [illegible] की गई। शब्दसागर के संशोधन एवं संपादन का कार्य भी इस वर्ष आरंभ किया गया। इस वर्ष लगभग ४,००० शब्द तैयार हुए।

पाँचवें वर्ष मूल हिंदी शब्दसागर के ८,००० और शब्दों की व्युत्पत्तियाँ की गईं, और कोश कार्य को अंतिम रूप देने के लिये १३ श्रावण, २०१५ विक्रमी को भाषा और पद्धति संबंधी निम्नांकित निश्चय किया गया।

(१) रचना और व्याकरण की दृष्टि से पश्चिमी हिंदी की खड़ी बोली का क्षेत्र इस कोश के लिये क्षेत्र माना जाएगा। हिंदी की साहित्यिक परंपरा के अनुसार इसकी उपभाषाओं यथा ब्रज, अवधी, राजस्थानी (डिंगल छोड़कर), और मैथिली के हिंदी साहित्य में स्वीकृत ग्रंथों से शब्द लिए जायँ।

(२) प्राकृत, अपभ्रंश और डिंगल के शब्द इस कोश में ग्राह्य नहीं हैं।

(३) अर्थ प्रयोगों के आधार पर ही हों।

(४) जिन संस्करणों से शब्द लिए गए हैं भविष्य में उन्हीं से लिए जायँ। नए शब्द प्रामाणिक ग्रंथों से लिए जायँ। इनमें सभा के ग्रंथों को वरीयता दी जाय।

(५) शब्दों में क्रियाओं के धातु रूप दिए जायँ। (उनमें सर्वप्रथम खड़ी बोली की क्रिया का रूप रखा जायगा। इसके अनंतर ब्रज अवधी और राजस्थानी के रूप दिए जायँ। जिन रूपों के [illegible] हैं।)

(६) व्युत्पत्ति [illegible] ग्रंथों के आधार पर दी जायँ।

(७) [illegible] और [illegible] शब्द अलग अलग रखे जायँ।

(८) [illegible] द्वारा किया जाय।

(९) [illegible] न दिए जायँ।

[illegible] ... पहला। [illegible] ... और [illegible] ... नहीं था।

[illegible] की पाँच वर्षों की अवधि तक निश्चित इनकी समाप्ति के कारण किए गए इन निश्चयों के मूल में कार्य की शीघ्र समाप्ति की चिंता ही मानी जा सकती है। इस पद्धति पर कार्य किया गया और पुराने किए हुए कार्यों के नये ढंग का तात्कालिक लाभ की कामना से एक सीमा तक उत्सर्ग कर दिया गया। प्रचलित खड़ी बोली के शब्दों को उसमें विशेष गरिमा दी गई किंतु पूर्वनिश्चयों में इस महिमा को अक्षुण्ण रखते हुए अतीत की भी संपदा का ध्यान मात्र रखा गया था जो किसी भी जीवित भाषा के कोश के लिये परम आवश्यक है। देर से ही सही, बाद में सभा ने इन नए निश्चयों को त्याग पूर्व निश्चयों के आधार पर यह कार्य किया है।

हिंदी शब्दसागर के लिये प्रथम [illegible]०,००० का अनुदान ५ अगस्त सन् १९५४ का, दूसरा २०,००० का अनुदान १५ नवंबर सन् १९५५ को, तीसरा अनुदान १८ फरवरी सन् १९५७ का और चौथा अनुदान २८ फरवरी सन् १९५८ का प्राप्त हुआ। इन्हीं वर्षों में सभा क्रमशः १६ हजार ५ सौ ७३ रुपए, १९ हजार ३ सौ ९ रुपए ७॥ आने, १५ हजार ६ सौ ५२ रुपए ।। आने तथा २७ हजार ५ सौ ४६ रुपए ८ आने व्यय कर चुकी थी, अर्थात् उसे कुल ८० हजार रुपए प्राप्त हुए थे जिसमें ९ सौ १८ रुपए ९७ पैसे मात्र शेष बचे थे। योजना के पाँचवें वर्ष में सरकार से कोई भी अनुदान प्राप्त नहीं हुआ अपितु सभा ने अपने पास से १९ हजार ६ सौ ८१ रुपए ३७ पैसे व्यय किए। संवत् २०१५ में भी इस कार्य पर २० हजार ६ सौ ८ रुपए १४ न० पैसे व्यय हुए। सरकार को २० हजार रुपए सभा को अनुदान स्वरूप दे देना चाहिए था किंतु वह न मिला, कारण चाहे जो भी रहा हो। अंततोगत्वा कोश संपादनकार्य सं० २०१५ के अंत में १३ अप्रैल १९५९ को बंद कर दिया गया।

अवैतनिक कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त वैतनिक कार्यकर्ताओं ने हिंदी शब्दसागर में सम्मुखांकित पद से अग्रांकित अवधि तक कार्य किया।

सर्वश्री १ डा० हेमचंद्र जोशी, निरीक्षक संपादक १-११-५४—१३-४-५९, ४ वर्ष ५॥ माह, २. त्रिलोचन शास्त्री, सहायक संपादक १५-६-५४—१७-१-५६, १५-३-५७—१३-४-५९ (स्थानांतरण) ४ वर्ष १ माह, ३ उदयशंकर शास्त्री, सहायक संपादक १५-६-५४—२८-२-५७, २ वर्ष ८ माह, ४ विश्वनाथ त्रिपाठी, सहायक संपादक, १५-६-५४—१३-४-५९, ५ वर्ष, ५ रामवली पांडेय, लेखक, १६-६-५४—१५-५-५६ (स्थानांतरण), १ वर्ष ११ माह, ६. पूर्णगिरि गोस्वामी उपनिरीक्षक, १५-३-५८—१३-४-५९. १ वर्ष १ माह; ७ डा० चंद्रशेखर शुक्ल सहायक संपादक, ७-३-५६—१५-३-५८, १५-५-५६—१३-४-५९ (स्थानांतरण), १ वर्ष ३ माह, ८. युगेश्वर पांडेय, लेखक, १८-६-५५—१५-३-५८, १५-३-५८—१३-४-५९ (स्थानांतरण) १ वर्ष १० माह, ९. बलदेवप्रसाद दत्त, सहायक संपादक, १५-२-५५—१३-४-५९, १ वर्ष २ माह १०. कन्हैयालाल यादव, लेखक, १७-६-५[illegible]—१३-४-५९, [illegible] वर्ष; ११. श्यामनारायण त्रिपाठी, सहायक संपादक, [illegible]—१३-४-५९, २ वर्ष; १२. [illegible] दुबे, सहायक संपादक [illegible]

२१-५-५७–१५-४-५८, १ वर्ष, १३ शालग्राम उपाध्याय सहायक संपादक, १५-१-५७–२-८-५७, २१-५-५७–१५-४-५८, १ वर्ष, १४ श्यामसुंदर शुक्ल, सहायक, संपादक, ८-१-५७–२१-५-५७ ४½ मास, १५ हरिमोहन श्रीवास्तव, सहायक संपादक, १५-१-५७–६-८-५७, २१-५-५७ १-१२-५७, ८ माह, १६ बद्रीप्रसाद मिश्र, सहायक संपादक, २८-२-५७–२१-५-५७ ३ माह, १७ लक्ष्मणस्वरूप त्रिपाठी, सहायक संपादक, २८-२-५७–२१-५-५७, ३ मास, १८ रामकुमार राय, सहायक संपादक, २८-२-५७–२१-२-५७, ३ मास, १९ तिलकधारी पांडेय सहायक संपादक, ११-३-५७–२१-५-५७, २½ मास २० किशोरीदास वाजपेयी, सहायक संपादक, २४-२-५७–१५-४-५८, १ वर्ष २ मास, २१ दयाशंकर द्विवेदी, सहायक संपादक, ६-३-५७–२१-५-५७ २½ मास, २३. छन्नूराम गुप्त, टंकक, ६-८-५७–१६-१०-५७, २½ मास, २४ नागेंद्रनाथ उपाध्याय, सहायक संपादक, १-८-५७–१५-४-५८, ८½ मास, २५. विष्णुचंद्र शर्मा, सहायक संपादक, १-१०-५७–१५-४-५८, ६½ मास, २६ ब्रजेंद्रनाथ पांडेय, सहायक संपादक' १५-११-५७–१५-४-५८, ५ मास, २७ हरिहरसिंह, लेखक, १५-३-५८–१३-४-५९, १ वर्ष, १ मास, २८ जयशंकर मिश्र, टंकक, २-७-५४–१०-२-५५, ७½ मास।

ता० १३।४।१९५९ को विभाग समाप्त हो गया।

अपनी अपनी क्षमता और शक्ति के अनुसार इन सभी कार्यकर्ताओं ने कार्य किया, इसके लिये ये धन्यवाद के पात्र हैं।

कोश के कार्य का यह चरण यद्यपि सं० २०१५ में समाप्त हो गया, तो भी धीरे धीरे सभा इस कार्य को अग्रसारित कर रही थी और, कार्य की शृंखला बनी रहे, इसलिये स्वयं अपने पास से व्यय कर रही थी। बाकी बचे २० हजार के स्वीकृत अनुदान में से अनेक प्रयत्न करने पर भी १९ जून, १९५९ को केवल १० हजार रुपए केंद्रीय सरकार से प्राप्त हुए। सं० २०१६ में सभा वेतन पर १९२९ रुपया ४३ पैसा और व्यय कर चुकी थी तथा कोश के लिये संदर्भ ग्रंथ क्रय करने पर १०१४ रुपया ५६ पैसा लगा चुकी थी। इस प्रकार संवत् २०१६ के अंत तक १२३३० रुपया ३९ पैसा व्यय कर चुकी थी। इसी बीच श्री डा० रामधन शर्मा, विशेष अधिकारी शिक्षा मंत्रालय द्वारा ३१ जनवरी सन् १९५९ से ४ फरवरी सन् १९५९ तक अब तक किए गए कोश कार्य की जाँच की गई तथा उनका महत्वपूर्ण विवरण प्राप्त हुआ। निश्चय ही इसमें वर्णित तथ्य विचारणीय थे, तथा अनेक सुंदर सुझावों से पूर्ण भी। सभा ने इस पर गंभीरतापूर्वक विचार किया और इस संकल्प पर दृढ़ रही कि उसे शब्दसागर का संशोधन और परिवर्धन करना है और इस रूप में करना है कि भले ही वह संसार का सर्वोत्तम कोश न बन सके तो भी हिंदी के सर्वोत्तम कोश की उसकी मर्यादा सुरक्षित रहे और तब तक के कोश-रचना-शिल्प से आधार पर शेष कार्य को उसको मूल सिद्धांतों के आधार पर अग्रसारित किया जाय। इसी प्रकार वह शब्दसागर की पुरानी मर्यादा का संरक्षण कर सकेगी।

सरकार ने सभा की इस चिंता में हाथ बटाया और सहानुभूतिपूर्वक सहायता के लिये वह पुनः आगे बढ़ी। वह १४ फरवरी सन् १९६२ तक का समय इसमें बीत गया, उसने १०००० रुपए सभा को अनुदानस्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार १४ फरवरी सन् १९६२ तक सरकार ने अपना पूर्वस्वीकृत एक लाख रुपया का अनुदान सभा को दे दिया।

संवत् २०१८ के अंत तक इतस्ततः जो कार्य इस संबंध में सभा कर रही थी उसमें एक लाख के अतिरिक्त ६५८३ रुपया ७३ पैसा सभा और व्यय कर चुकी थी। तब तक सरकार इस कार्य की गुरुता को पहचान चुकी थी और उसे अधूरा छोड़ना उचित न समझ कर उसने ६५००० का नया अनुदान स्वीकार किया और ४ मार्च सन् १९६३ को उसने इसमें से ३२५०० रुपए सभा को एतदर्थ सहायता की। यहीं से सभा में कार्य की पुनः नई चेतना उत्पन्न हुई।

फिर से पुराने कार्य का पुनरवलोकन और पुनर्मूल्यांकन आरंभ किया गया और पुराने काम को, जिसमें से बहुत अस्तव्यस्त और जीर्ण सा हो गया था, सुव्यवस्थित और सुनियोजित करने में लगभग दो वर्ष व्यतीत हो गए थे। सभा ने यह बड़ा मूल्यवान् समय केवल पुनर्मूल्यांकन में तथा योजनाबद्ध रूप से कार्य करने की योजना बनाने में व्यय किया। फिर भी जिस उत्साह, निष्ठा और लगन से यह कार्य संवत् २०२१ से आरंभ किया गया उसकी गति निश्चय ही संतोषप्रद रही है। निश्चित अवधि के भीतर अब संपादन का कार्य ३१ दिसंबर, सन् ६५ तक समाप्त होने जा रहा है। नई कार्यविधि में शब्दसागर के आरंभ के अंश से ही संकलन, संशोधन, संपादन के साथ ही साथ निरीक्षण, व्युत्पत्तिनिर्देशन, अर्थचिंतन संशोधन तथा प्रेस कापी तैयार करने का कार्य वैतनिक अवैतनिक, दोनों प्रकार के कार्यकर्ता अधिकारी और कर्मचारी का भेद भूलकर एकरस हो हिंदी हितचिंतन को आदर्श मान प्राणपण से सचेष्ट होकर इस अवधि में कार्य करते रहे। जिन वैतनिक कार्यकर्ताओं ने कार्य किया है या कर रहे हैं उनकी सूची, पद तथा कार्यावधि के साथ नीचे दी जा रही है।

१ श्रीत्रिलोचन शास्त्री, सहायक संपादक १-११-५९–३१-१२-६५, ६ वर्ष २ माह, २ श्रीविश्वनाथ त्रिपाठी, सहायक संपादक १-११-५९–१-१-६४. २-५-६०–३१-१२-६५ (स्थानांतरण) २ वर्ष ७ मास, ३ श्रीहरिहर सिंह शास्त्री, सहायक संपादक १४-२-६४–१५-४-६५, १ वर्ष १॥ मास, ४ स्व०श्रीरघुनंदनप्रसाद शुक्ल 'अटल', सहायक संपादक, १-२-६४–३०-९-६५, १ वर्ष ८ मास, ५ श्री लालधर त्रिपाठी प्रवासी, सहायक संपादक, २३-९-६४–३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास, ६ श्रीप्रसाद, सहायक संपादक, २३-९-६४–३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास, ७ श्रीराधाविनोद गोस्वामी, सहायक संपादक, १५-९-६४–३१-१२-६५ १ वर्ष ३॥ मास, ८ श्रीशारदाशंकर द्विवेदी, सहायक संपादक, ९-३-६५–३१-१२-६५, ९ मास, ९, श्रीराजाराम त्रिपाठी, सहायक संपादक, २७-७-६५–१९-११-६५, ३॥ मास १० श्रीरामबला पांडेय, सहायक संपादक, ७-७-६४–३०-१-६५, ६ मास, ११ श्रीविजयबली मिश्र, लेखक, ४-२-६३–३१-१२-६५, २ वर्ष ११ मास, १२ श्रीरामेश्वरलाल लेखक, १५-६-६४–१२-८-६४, २ मास, १३ श्रीकेशरीनारायण त्रिपाठी, लेखक १०-१०-६४–

३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास, १४ श्रीजितेंद्रनाथ मिश्र, लेखक, १० १०-६४–३१-१२ ६५ १ वर्ष ३ मास, १५ श्रीराम मेहरोत्रा,लेखक ११-१०-६४–३०-६-६५, १वर्ष, १६ रामदयाल कश्यप, लेखक, ५-१-६५-३१-१२-६५,१ वर्ष, १७ लज्जाशकर लाल,लेखक १६-३-६५-३१ १२-६५-६॥मास, १८ श्रीमनोरजन ज्योतिषी, लेखक, २३-४-६५-२०-७-६५, ३ मास, १९ श्रीगुवावलाल श्रीवास्तव, लेखक, १०-५-६५-३१-१२-६५, ७॥ मास, २० श्रीवशिष्टनारायण त्रिपाठी, लेखक, १-६-६५-३०-६-६५, १ मास, २३ श्रीउदयशकर दूबे, लेखक, २०-७-६५-३१,१२-६५, ५॥ मास, २४ श्रीकिशोरीरमण मिश्र, लेखक, १-६-६५-३१-१२-६५, ७ मास, २५ श्री अशर्फीराम मिश्र लेखक, १८-९-६५ ३१-१२ ६५,३ ।मास २६ श्रीश्यामाकात पाठक, लेखक, १८ ९-६५-३१-१२-६५, ३॥ मास, २७ श्रीसदानद शास्त्री, लेखक, १८ ९ ६५-३१-१२-६५, ३॥ मास, २८ श्रीबद्रीनारायण उपाध्याय, लेखक, ११-११-६५-३१-१२-६५, २ मास। चपरासी—स्व राम सुदर १-११-५९ से, रघुनाथ ८-८-६४-३१ १२ ६५, १॥ वर्ष । बुद्धू राम (लगभग २ मास) । ३१-१२-१९६५ को विभागसमाप्ति ।

यद्यपि इन वैतनिक कार्यकर्ताओ की योग्यता और क्षमता के अनुसार उन्हें वृत्ति नही दी जा सकी है तो भी अपनी क्षमता भर उन्होंने अपने घर की तरह जिस भाँति दत्तचित्त होकर कार्य किया हैं उसके प्रति कृतज्ञता न प्रकाश करना कृतघ्नता होगी। हमे इस बात का खेद है कि हम अपनी साधनहीनतावश हिंदी की सेवा सभा के माध्यम से उनसे आगे ले सकने की स्थिति में नही हैं । तो भी सभा के प्रत्येक पदाधिकारी की मगलकामना उनके साथ है ।

सवत् २०१९ मे ३२,५००) के प्राप्त अनुदान मे से जो व्यय किया गया उसके उपरात भी २०,६४३)३३ और स० २०२० मे उसी मे से व्यय करने के उपरात १६,१२९) ८९ पैसे सरकारी अनुदान का बचा रहा। सवत् २०२१ मे हिंदी शब्दसागर पर सभा ने जो व्यय किया वह अनुदान से प्राप्त रुपये के अतिरिक्त ५,६३१)७७ था। १५ दिसवर सन् १९६५ तक सभा अपने पास से ३०,६७१)६१ व्यय कर चुकी थी और इसके अतिरिक्त ३१ दिसवर तक १,८२८, रुपया और व्यय होने का अनुमान है । इधर सरकार ने स्वीकृत अनुदान शेष ३२,५००)मे से १० ०००) भेजा है। इस प्रकार सरकार से स्वीकृत ६५,०००) के इस अनुदान से शब्दसागर का सपादन कार्य समाप्त हो जायगा। केवल 'स' और 'ह' अक्षरो की प्रतिलिपि मात्र शेष रह जायगी ।

इस अवसर पर सभा के भूतपूर्व प्रधान मत्री श्री डा० राजवली पांडेय और डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा को भी धन्यवाद देते हैं, क्योंकि उनका प्रयत्न भी स्मरणीय है । कोश कार्य का पर्यालोचन तथा निरीक्षण यथावश्यकता बरावर श्रीकृष्णदेवप्रसाद गौड, प० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र', डा० भोलाशकर व्यास और मैं करता रहा हूँ, और पडित करुणापति त्रिपाठी सयोजक के रूप मे [illegible] र गुरुतापूर्वक अपने इस उत्तरदायित्व का वहन । एक साथ बैठकर सभा के अतिथि-भवन के कक्ष मे कोश के वरिष्ठ कार्यकर्ताओ के साथ हम सबने एक एक शब्द पर चिंतन एव मनन तो किया ही है, अनेक उलझनों को यथाशक्ति सुलझाते भी रहे हैं। इस काय के लिये हम सबने सभा की सेवा मे अपने को अर्पित कर बल भर कार्य पूरा करने का यत्न किया है। इस प्रसग मे सपादकमडल मे सरकार के शिक्षा मत्रालय के प्रतिनिधि डा० रामधन शर्मा का मार्मिक सहयोग एव सुझाव बहुत अधिक सहायक हुआ है। इस अवसर पर सभा के भूतपूर्व सभापति स्वर्गीय आचार्य नरेंद्रदेव, डा० अमरनाथ झा एव प० गोविंद वल्लभ पत की स्मृति भी जाग्रत हो उठती है । जिन्होंने शब्दसागर के नवीन सस्करण के प्रति उनकी चिंता देखी है वे ही अनुमान लगा सकते हैं कि वे आज इस कार्य से कितने तुष्ट होते। सभा के सरक्षक तथा राष्ट्रपति स्वर्गीय डा० राजेंद्रप्रसाद इस कार्य के लिये कितने व्यग्र थे, यह ऊपर दिए गए उसके भाषण के अश से सहज ही जाना जा सकता है। उनका सभा पर ऋण है और वह ऋण हिंदी के हित मे किए गए ऐसे कार्यों द्वारा ही चुकाया जा सकता है।

सभा के सरक्षक डा० सपूर्णानद जी उसके प्रत्येक सुदर कार्य के मूल मे आत्मा की भाँति हैं, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का साहस नही है । हमारे वर्तमान सभापति प० कमलापति त्रिपाठी का स्नेह और उद्बोधन ही सभा की आज की गति के मूल मे है । यद्यपि देश और समाज के कार्य मे वे व्यस्त रहते है, तो भी सभा की चिंता उन्हें बनी रहती है, और राजनीतिक हानि उठाकर भी सभा के प्रत्येक कार्य मे रुचि लेते है। इस कोश के कार्य मे उन्होंने जो रुचि ली और जो योग दिया है उसकी प्रेरणा के परिणामस्वरूप ही इस कार्य का सपन्न होना सभव हुआ है।

भारत के प्रधान मत्री माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री का सभा से सबध बडा पुराना है। वे सदैव अपनी व्यस्तता मे भी सभा को, उन्नत करने मे योगदान करते रहते हैं । इस सभा के वे सरक्षक हैं, और उन्होंने शब्दसागर के प्रथम खड का उद्घटन करने की स्वीकृति देकर हमे जो प्रोत्साहन दिया है, सभा निश्चय ही उसके प्रति हृदय से कृतज्ञ है और उसके कार्यकर्त्ता और अधिक उत्साह से हिंदी की सेवा करने के लिये कृतसकल्प ।

भारत सरकार के भूतपूर्व शिक्षामत्री श्री के० एल० श्रीमाली और वर्त्तमान उपशिक्षामत्री श्री भक्तदर्शन जी ने समय समय पर इस कार्य मे जो रुचि दिखाई है, और सभा की जैसी सहायता की है उसके प्रति सभा और उसके कायकर्ता हृदय से कृतज्ञ हैं ।

हो सकता है इस कार्य के सपन्न होने मे कभी कभी कुछ अप्रिय भी हुआ हो। इस अप्रियता का कारण स्वप्न मे भी किसी को कष्ट पहुँचाना नही रहा है, अपितु कार्य की त्वरित गति और निश्चित अवधि तक समाप्ति की भावना ही हमारे प्रत्येक काय के मूल मे थी । फिर भी यदि इस सबध मे कही कुछ अप्रिय हुआ तो उसका उत्तरदायित्व सहज

ही मेरे मित्रो पर, विशेषकर मुझ पर, ही है। मैं उसके लिये उन सबसे हृदय से क्षमाप्रार्थी हूँ जिनको जरा भी मुझसे ठेस पहुँची हो।

इस कोश के नवीन सस्करण के लिये जिन सदर्भ ग्रथो से सहायता ली गई है उनके लेखको, सपादको तथा प्रकाशको के प्रति सभा कृतज्ञ है। इन ग्रथो मे से कुछ विशेष सहायक ग्रथो के नाम यहाँ दिए जा रहे हैं -

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी (१३ खड)। शार्टर ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी (२ खड)। कन्साइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी। थार्नडाइक इग्लिश डिक्शनरी। चेंबर्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी डिक्शनरी। सस्कृत वोर्टेरबुख, ग्राटो वोथलिंग रुडोल्फ राथ। मक्डनल इग्लिश डिक्शनरी सर एम० मोनियर विलियम्स, प्रैक्टिकल सस्कृत इग्लिश डिक्शनरी वी० एस० आप्टे। आप्टे कृत प्रैक्टिकल सस्कृत इग्लिश डिक्शनरी (३ खड), सपादक--पी० के० गोडे तथा सी० जी० कर्वे। मैकडानेल प्रैक्टिकल सस्कृत इग्लिश डिक्शनरी। पर्शियन इग्लिश डिक्शनरी स्टाइनगास। ऐंग्लो हिंदुस्तानी डिक्शनरी फैलन। हिंदुस्तानी ग्रैवर्स फैलन। नेपाली डिक्शनरी टर्नर। शब्दार्थ कल्पतरु मामिडि वेंकटार्य। अल्फरायद उल् दुर्रियत उल-तुलाव (अरबी अग्रेजी डिक्शनरी), फरहग आमफिया (४ खड)। नूर उल् लुगात (४ खड)। करीम उल् लुगात। तखमीस उल् लुगात। लुगात किशोरी। अमरकोश। हलायुधकोश। मेदिनी कोश। शब्दकल्पद्रुम (५ खड)। वाचस्पत्यम् (८ खड)। पूर्णचद्र ओडिया महाकोश (७ खड)। वाङ्गला भाषार अभिधान ज्ञानेंद्रमोहन दास (२ भाग)। चलतिका राजशेखर वसु। विनीत जोडणी कोश (गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद), मराठी व्युत्पत्ति कोश कृष्णाजी पाडुजी कुलकर्णी। इस्तेलहाते पेशेवारां (आठ खड)। राजस्थानी सबद कोश . सीताराम लालस। अवधी कोश रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'। विहार पीजेंटस लाइफ, कृषिकोश विहार राष्ट्रभाषा परिषद्। कृषि जीवन सबधी व्रजभाषा शब्दावली (२ खड), अवाप्रसाद सुमन। व्रजभाषा सूरकोश (पाँच खड)। तुलसी शब्दसागर · हरगोविंद तिवारी। मानस शब्दसागर वद्रीदास अग्रवाल। सस्कृत इग्लिश डिक्शनरी . डॉ० विलसन। अग्रेजी सस्कृत डिक्शनरी सर एम० मोनियर विलियम्स। सस्कृत थियोडोर वेन्फे। पाली इग्लिश डिक्शनरी सोसायटी। अर्धमागधी कोश मुनि श्री रत्नचद्र। जॉन शेक्सपियर हिंदुस्तानी इग्लिश डिक्शनरी ऐंड इग्लिश हिंदुस्तानी डिक्शनरी। प्रसाद काव्यकोश श्री सुधाकर पाडेय। वृहत् अग्रेजी हिंदी कोश ज्ञानमडल। उर्दू हिंदी शब्दकोश मद्दाह। पाइय सद्द महण्णवो हरगोविंद सेठ। अभिधान राजेंद्र (५ खड)। पाली हाइब्रिड डिक्शनरी। रूपनिघटु, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी। शालिग्राम निघटुभूषणम्। अश्ववैद्यक। अश्वशास्त्र। रगीनामा। डिंगल कोश। इन्साक्लोपीडिया ऑव् रिलीजन ऐंड एथिक्स--हेस्टिंग्ज। विश्वकोश (हिंदी तथा बँगला) सपादक--नगेंद्रनाथ वसु। तेलुगू डिक्शनरी गैलेटी। पोर्चुगीज ऐंड इग्लिश डिक्शनरी (२ खड)। इन्फ्लुएन्स ऑव पोर्चुगीज वोकेवुल्स इन एशियाटिक लाग्वेज वी० भट्टाचार्य। पर्शियन वोकेवुलरी लेथर्टन। वर्ल्ड गजेटियर ऐंड जियोग्रैफिकल डिक्शनरी। डिक्शनरी ऑव् वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स. टी० शिप्ले। लटाइनिशेज एटिमोलोगाशेज वोर्टेरबुख रिलीफ उट इन्सक्रिप्ट (२ खड)। मुडारी इग्लिश डिक्शनरी। ऐटिमालागिशेल वोर्टेरबुख डेस आल्टिडिशेन . मानफ्रेड मायर होफर (६ खड)। आल्टिडिशे ग्रामाटीक (५ खड), वाकरनागेल। गुरु-शब्दरत्नाकर (४ खड)। हिंदी राष्ट्रभाषा कोश। वैद्यक शब्दसिंधु। आयुर्वेदीय विश्वकोश (३ खड)। वनौषधि चद्रोदय (८ खड)। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (३४-३५)।

नागरीप्रचारिणी सभा के प्रकाशन तथा कोश विभाग मे पूर्ण सहयोग के कारण ही यह कोश इतने शीघ्र प्रकाशित हो सका है और विश्वास है कि शेष खड प्रत्येक छह छह महीने पर प्रकाशित होते रहेंगे। सभा के सहायकमत्री श्री शभुनाथ वाजपेयी, श्री विश्वनाथ त्रिपाठी तथा श्री वल्लभाशरण पाडेय ने प्रूफ सशोधन के कार्य मे जो सहयोग दिया है मैं तदर्थ आभारी हूँ। हमने इस बात का प्रयत्न किया है कि प्रूफ सवधी तथा अन्य त्रुटियाँ इसमे स्थान न पा सकें किंतु कही कही सभव है कुछ प्रूफ सवधी भूलें आ गई हो जिसका हमे आतरिक क्लेश है। हम इसे अगले सस्करण मे दूर करने का प्रयत्न करेंगे और ध्यान रखेंगे कि इस प्रकार की त्रुटियाँ भविष्य मे न हो। फिर भी नागरीमुद्रण के व्यवस्थापक श्री विष्णुचद्र शर्मा तथा उनके सहयोगियो ने जिस तत्परता के साथ काम किया है वह सराहनीय है।

इस ग्रथ के सपादन का ही नही, उसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत वोझ भारत सरकार ने वहन किया है। इसलिये ही यह ग्रथ इतना सस्ता निकालना सभव हो सका है। उसके लिये शिक्षा मत्रालय के अधिकारियो का प्रशसनीय सहयोग हमे प्राप्त है और उसके लिये हम उनके आभारी भी हैं।

जिस रूप में यह ग्रथ हिंदी जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमे अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और प्रयोग किया गया है किंतु हिंदी की और हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, परतु साधन की कमी तथा हिंदी के ग्रथो के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव मे वैसा कर सकना सभव न था। फिर भी यह कहने मे हमे सकोच नही कि अद्यतन प्रकाशित कोशो मे शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओ के कोशो मे अतुलनीय है, और इस क्षेत्र मे काम करनेवाले इससे आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हिंदी जगत् को यह भी नम्रतापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थाई विभाग का सकल्प किया है जो वरावर इसके प्रवर्धन और सशोधन के लिये अद्यतन कोशशिल्प विधि से यत्नशील रहेगा।

मूल शब्दसागर से इसकी शब्दसख्या मे दुगुनी से अधिक की वृद्धि हुई है और नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल, संत एव सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र वाणिज्य आदि और अभिनदन एव पुरस्कृत ग्रथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित

उर्दू शैली आदि से संकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खंड में प्राविधिक एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

शब्दचयन सामान्यतः सन् १९५६ तक प्रकाशित ग्रंथों से तथा सन् १९६० तक प्रकाशित महत्वपूर्ण ग्रंथों से किया गया है, उनके प्रयोग के उदाहरण भी प्रस्तुत किए गए हैं। शब्दसागर में दी गई व्युत्पत्तियों या अर्थों तथा दृष्टांतों में व्यापक रूप से संशोधन भी किया गया है, तथा उसमें एतत्संबंधी लगे प्रश्नचिह्नों का यथासाध्य समाधानपूर्वक प्रामाणिक परिष्कार भी किया गया है।

अंत में शब्दसागर के मूल संपादक तथा सभा के संस्थापक डा० श्यामसुंदरदास को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह संकल्प हम पुनः दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उनका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा, और इस क्षेत्र में वह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभोज्ज्वल होता रहेगा।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
मौर ३ पौष, सं० २०२२ वि०।

सुधाकर पांडेय
प्रकाशन मंत्री



संकेतिका

[उद्धरणो मे प्रयुक्त सदर्भ ग्रथो के इस विवरण मे क्रमश ग्रथ का सकेताक्षर, ग्रथनाम, लेखक या सपादक का नाम और प्रकाशन के विवरणदिए गए हैं]

अँधेरे०	अँधेरे की भूख डा० रागेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, स० २००७
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०
अजात०	अजातशत्रु, जयशकर प्रसाद, १६ वाँ स०
अणिमा	अणिमा, प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', युग-मदिर, उन्नाव
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०
अनामिका	अनामिका, प० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० स०
अनुराग०	अनुरागसागर, सपा० स्वामी युगलानद विहारी, वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, प्र० स०
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)
अनेकार्थ०	अनेकार्थमजरी और नाममाला, सपा० बलभद्र-प्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०
अपरा	अपरा, प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० स०, १९५३ ई०
अभिशप्त	अभिशप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०
अतीत०	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध'
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स० २०१४
अर्चना	अर्चना, प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', कला-
अष्टाग (शब्द०)	अष्टांग योगसहिता
आँधी	आँधी, जयशकर प्रसाद, भारती भडार इलाहाबाद, पचम सं०
आकाश०	आकाशदीप, जयशकर प्रसाद, भारती भडार इलाहाबाद, प० स०
आचार्य०	आचार्य रामचद्र शुक्ल, चद्रशेखर शुक्ल, वाणी वितान, वाराणसी, प्र० स०
आदि०	आदिभारत, अर्जुन चौबे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० स० १९५३
आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
आनदघन (शब्द०)	कवि आनदघन
आराधना	आराधना, सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार ससद, इलाहाबाद, प्र० स०
आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० स०, १९८४ वि०
आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
आर्यो०	आर्यों का आदिदेश, सपूर्णानद, भारतीभडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९९७ वि०, प्र० सं०
इद्र०	इद्रजाल जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
इद्रा०	इंद्रावती, सपा० श्यामसुदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
इशा०	इशा उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा० ब्रजरत्नदास, कमलमणि ग्रथमाला, बुलानाला, काशी, प्र० स०
इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, प० रामचद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवाँ स० ।
इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय', प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली,
इरा०	इरावती जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, चतुर्थ स०
उत्तर०	उत्तर रामचरित नाटक अनु० प० सत्यनारायण

संक्षेप	ग्रंथ
कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्
कढ़ी०	कढ़ी मे कोयला, पाडेय बेचन शर्मा उग्र, गऊघाट, मिर्जापुर, प्र० स०
कबीर ग्रं०	कबीर ग्रंथावली, सपा० श्यामसुदरदास, ना० प्र० सभा, काशी
कबीर० बानी०	कबीर साहब की बानी
कबीर	कबीर बीजक, सपा० हसदास, कबीर ग्रथ प्रकाशन समिति, बाराबकी, २००७ वि०
कबीर म०	कबीर मसूर (२ भाग), वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस बबई, सन् १९०३
कबीर रे०	कबीर साहब की ज्ञानगूदडी व रेख्ते, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद
कबीर श०	कबीर साहब की शब्दावली (४ भाग)
कबीर (शब्द०)	कबीरदास
कबीर सा०	कबीरसागर (४ भा०), सपा० स्वा० श्री युगलानद बिहारी, वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बबई
कबीर सा० स०	कबीर साखी संग्रह, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९१२ ई०
करुणा०	करुणालय, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
कविता कौ०	कविता कौमुदी [१-४ भा०], सपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मदिर, प्रयाग, तृ० स०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, सपा० उमाशकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग
कानन०	काननकुसुम, जयशकरप्रसाद, भारती भडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पचम स०
कामायनी	कामायनी, जयशकरप्रसाद, नवम स०
काया०	कायाकल्प, प्रेमचद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ६वाँ स०
काले०	काले कारनामे, 'निराला', कल्याण साहित्य मदिर, प्रयाग २००७ वि०
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा अन्य निबध, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, लीडरप्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ स०
काव्य० य० प्र०	काव्य, यथार्थ और प्रगति, डा० रागेय राघव, विनोद पुस्तक मदिर, आगरा, प्र० स०, २०१२ वि०
काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, पं० श्रीधरपाठक, इडियन प्रेस, इलाहाबाद
किन्नर०	किन्नर देश मे, राहुल साकृत्यायन, इडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
कीर्ति०	कीर्तिलता, सं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० स०
कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमदिर, उन्नाव
कुणाल	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कृषि०	कृषिशास्त्र
केशव (शब्द०)	केशवदास
केशव ग्रं०	केशव ग्रंथावली, सपा० -० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
केशव० अमी०	केशवदास की अमीघूट
कौटिल्य अ०	कौटिल्य का अर्थशास्त्र
क्वासि	क्वासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बबई, १९५३ ई०
खानखाना (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
खालिक०	खालिकबारी, सपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
खिलौना	खिलौना (मासिक)
खुदाराम	खुदाराम और चद हसीनो के खतूत, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, गऊघाट, मिर्जापुर, आठवाँ सं०
गग ग्रं०	गग कवित्त [ग्रंथावली], सपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
गबन	गबन, प्रेमचद, हस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६ वाँ सं०
गि० दा० गि० दास (शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचद्र)
गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुडलियावाले)
गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारतीभडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुजन	गुजन, सुमित्रानदन पत, भारतीभडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र
गुलाल०	गुलाल बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
गोदान	गोदान, प्रेमचद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचद्र)
गोरख०	गोरखबानी, डा० संपा० पीताबरदत्त बडथ्वाल, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
घनानद	घनानद, सपा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद, वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी
घाघ०	घाघ और भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद ।

चंद०	चंद हसीनों के खतूत, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवाँ सं०
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल, पटना प्र० सं०
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका
चरण० बानी	चरणदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग, प्र० सं०
चिता	चिता, अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, १९४० ई०
चिंतामणि	चिंतामणि [२ भाग], रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग ।
चिंतामणि (शब्द०)	कवि चिंतामणि त्रिपाठी
चित्रा०	चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, प्र० सं० ।
चुभते०	चुभते चौपदे, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, ,, ,, ,,
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला', किताबमहल, इलाहाबाद, प्र० सं०
छंद०	छंद प्रभाकर, भानुकवि, भारतजीवन प्रेस काशी, प्र० सं०
छत्र०	छत्रप्रकाश, सपा० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०
छिताई	छिताई वार्ता, सपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
छीत०	छीत स्वामी, सपा० व्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं० २०१२ वि०
जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद, १९०६, प्र० सं०
जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली
जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९९५ वि०
जायसी ग्रं०	जायसी ग्रंथावली. सपा० रामचंद्र शुक्ल.
जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
ज्ञानदान	ज्ञानदान यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४२ ई०
ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद ।
झरना	झरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
झाँसी०	झाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, द्वि० सं०
टैगोर०	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, १९५६ ई० प्र० सं०
ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
ठाकुर०	ठाकुर शतक, सपा० काशीप्रसाद, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० स०, संवत् १९६१
ठेठ	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्या सिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
ढोला० दू०	ढोला मारू रा दूहा, सपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० स०
तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०
तुलसी ग्रं०	तुलसी ग्रंथावली, सपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी तृतीय सं०
तुलसी श०	तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरस वाले), बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, १९११
तेग० (शब्द०)	तेगबहादुर
तेज०	तेजबिंदूपनिषद्
तोष (शब्द०)	कवि तोष
त्याग०	त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
द० सागर	दरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
दक्खिनी०	दक्खिनी का गद्य और पद्य, सपा० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० सं०
दरिया० बानी	दरिया साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०

दादू०	(श्री) दादूदयाल की बानी, सपा० श्री सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी
दादूदयाल ग्रं०	दादूदयाल ग्रथावली
दादू० (शब्द०)	दादूदयाल
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह दिनकर', उदयाचल, पटना प्र० सं०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०
दीन० ग्र०	दीनदयाल गिरि ग्रथावली, सपा० श्याम सुदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०
दी० ज०	दीप जलेगा, उपेंद्रनाथ अश्क, नीलाभ, प्रकाशन गृह प्रयाग
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह
देव० ग्र०	देव ग्रथावली, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
देव (शब्द०)	देवकवि (मैनपुरीवाले)
देशी०	देशी नाममाला
दैनिकी	सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९९९ वि०
दो सौ बावन०	दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता [दो भाग], शुद्धाद्वैत एकेडमी, काँकरौली प्रथम सं०
द्वंद्व०	द्वंद्वगीत, रामधारी सिंह दिनकर, पुस्तक भडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०
द्वि० अभि० ग्र०	द्विवेदी अभिनदन ग्रथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी
द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी
धरनी० बा०	धरनी साहब की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
धरम० शब्दा०	धरमदास की शब्दावली
धूप०	धूप और धूआँ, रामधारीसिंह 'दिनकर', अजता प्रेस लि०, पटना ४
नद० ग्र० नददास ग्र०	नददास ग्रथावली, सपा० ब्रजरत्न दास, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
नई०	नई पौध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १८५३
नट०	नटनागर विनोद, सपा० कृष्णबिहारी मिश्र, इडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय', प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०
नया०	नया साहित्य नए प्रश्न, नददुलारे वाजपेयी, विद्यामदिर, वाराणसी, २०११
नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशकर प्रसाद लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम सं०
नागरी (शब्द०)	नागरीदास
नील०	नीलकुसुम, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
नेपाल०	नेपाल का इतिहास, प० बलदेवप्रसाद, वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, १९६१ वि०
पचवटी	पचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पजनेस०	पजनेस प्रकाश, सपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यत्रालय, काशी, प्र० सं०
पदमावत	पदमावत, सपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पदु०, पदुमा०	पदुमावती, सपा० सूर्यकात शास्त्री, पजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
पद्माकर ग्र०	पद्माकर ग्रथावली, सपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर भट्ट
प० रा० प० रासो	परमाल रासो, सं० श्यामसुदरदास, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
परमानद०	परमानद सागर
परिमल	परिमल, 'निराला', गगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
पर्दे०	पर्दे की रानी, इलाचद्र जोशी, भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
पलटू०	पलटू साहब की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पत, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० सं०
पाणिनि०	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसी दास, प्र० सं०, २०१२
पारिजात०	परिजातहरण
पार्वती	पार्वती, रामानद तिवारी शास्त्री, भारतीनदन, मगल भवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धात, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
पिंजरे०	पिंजरे की उडान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
पूर्व० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००९ वि०
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खड], सपा० मोहनलाल विष्णुलाल पड्या, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०

पृ० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खंड], संपा० कविराज मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०
पोद्दार अभि० ग्र०	पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ, संपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१० वि०
प्रताप ग्र०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, संपा० विजयशंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र
प्रबंध०	प्रबंध पद्म, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला', सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसंगली, संपा० संत संपूरण सिंह, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० रांगेय राघव, आत्माराम एंड संस, दिल्ली प्र० सं०, १९५३ ई०
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ सं०
प्रिया (शब्द०)	प्रियादास
प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
प्रेम० और गोर्की	प्रेमचंद और गोर्की, संपा० शचीरानी गुर्टू, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९९६ वि०
प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
प्रेमांजलि	प्रेमांजलि, ठा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग], पं० रतननाथ 'सरशार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०
बंगाल	बंगाल का काल, हरिवंश राय बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
बाँकी० ग्र० बाँकीदास ग्र०	बाँकीदास ग्रंथावली [चार भाग], संपा० रामनारायण दूगड, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
बदन०	बदनवार, देवेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४९ ई०
बद०	बदमाश दर्पण, तेगअली, भारत जीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०
बाँगेदरा	बाँगेदरा
बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०
बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, संपा० जगन्नाथदास रत्नाकर, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रंथप्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०
बी० रासो	बीसलदेव रासो, संपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
बीसल० रास०	बीसलदेव रास, संपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
बी० श० महा०	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपाल सिंह, ओरिएंटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
बृहत्संहिता (शब्द०)	बृहत्संहिता
बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
बेला	बेला, 'निराला', हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०
बेलि०	बेलि क्रिसन रुकमणी, संपा० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०
ब्रज०	ब्रजविलास, संपा० श्री कृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०
ब्रज० ग्र०	ब्रजनिधि ग्रंथावली, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, सं० वियोगीहरि, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, तृ० सं०
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५३ वि०
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्री भक्ति सुधाबिंदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० सं०, १९८३ वि०
भक्ति०	भक्ति सागरादि, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६० वि०
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६०
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय लखनऊ, १९४६ ई०
भा० इ० रू०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालंकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ ई०
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, इतिहास कार्यालय, राजमेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०

भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, नवम् सं० ।
भारत० नि० भा० भू०,	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० सं०, १९८१ वि०
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान
भारतेंदु ग्र०	भारतेंदु ग्रंथावली [४ भाग], संपा० व्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली, १९५३ ई०
भाषा शि०	भाषा शिक्षण, सीताराम चतुर्वेदी
भिखारी ग्र०	भिखारीदास ग्रंथावली [दो भाग], सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भीखा श०	भीखा शब्दावली
भूषण ग्र०	भूषण ग्रंथावली, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी
भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदयनारायण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०
मति० ग्र०	मतिराम ग्रंथावली, कृष्णबिहारी मिश्र, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, द्वि० सं०
मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
मधु०	मधुकलश, हरिवंश राय बच्चन, सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९
मधुज्वाल	मधुज्वाल, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९ ई०
मधु मा०	मधुमालती वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय बच्चन, सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० सं०
मन विरक्त०	मन विरक्त करन गुटका सार (चरणदास) चरणदास
मनु०	मनुस्मृति
मलूक० (शब्द०)	मलूकदास
महा०	महाराणा का महत्व, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
महाभारत (शब्द०)	महाभारत
माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई चतुर्थ सं०
माधवानल०	माधवानल कामकंदला, बोधा कवि, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं०, १८९४ ई०
मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
मानव०	मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०
मानस	रामचरितमानस, संपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय बच्चन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी प्र० सं०, १९५० ई०
मुंशी अभि० ग्र०	मुंशी अभिनंदन ग्र० संपा० डा० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
मृग०	मृगनयनी , वृंदावन लाल वर्मा ,मयूर प्रकाशन, झाँसी
मैला०	मैला आँचल, फणीश्वर नाथ रेणु, ममता प्रकाशन , पटना – ४ , प्र० सं०
मोहन०	मोहनविनोद, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्र० सं०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र०सं०
यामा	यामा, महादेवीवर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० सं०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
युगपथ०	युगपथ ,, ,, ,, ,,
युगांत	युगांत, सुमित्रानंदन पंत, इंद्र प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोड़ा, प्र० सं०
रंगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०, १९८१ वि०
रघु० रू०	रघुनाथ रूपक गीतांरो, म० महतावचंद्र खारैड ना० प्र० सभा०, काशी, प्र० सं०
रघु० दा० (शब्द०)	रघुनाथदास
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ
रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजसिंह, रीवाँनरेश
रजत०	रजत शिखर, सुमित्रानंदनपंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०
रज्जब०	रज्जब जी की बानी, ज्ञान सागर प्रेस, बंबई १९७५ वि०
रतन०	रतनहजारा, संपा० श्री जगन्नाथ प्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, १८९२ ई०
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०,१९५३ ई०
रत्न० (शब्द०)	रत्नसार
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा काशी, चतुर्थ और द्वि० सं०
रस०	रसमीमांसा, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि सं०

रस क०	रसकलश, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०
रसखान०	रसखान और घनानंद, स० बा० अमीरसिंह ना० प्र० सभा, द्वि० स०
रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम
रस र०	रसरतन, सपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा वाराणसी, प्र० स०
रसनिधि (शब्द०)	राजा पृथ्वीसिंह
रहीम०	रहीम रत्नावली
रहीम (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गौरीशकर हीराचद ओझा, अजमेर, १९९७ वि०, प्र० स०
रा० रू०	राजरूपक, सपा० प० रामकर्ण, ना० प्र० सभा, प्र० स०
रा० वि०	राजविलास, स० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवाँ स०
राम च०	सक्षिप्त रामचद्रिका, स० लाला भगवानदीन ना० प्र० सभा, वाराणसी षष्ठ स०
राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, सपा० मालचद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहथल) वडारामद्वारा, बीकानेर।
राम० धर्म० स०	रामस्नेह धर्म सग्रह, स० मालचद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहस्थल) वडारामद्वारा, बीकानेर।
रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रामानद०	रामानद की हिंदी रचनाएँ, सपा० पीतांबरदत्त बडथ्वाल, ना० प्र० सभा, प्र० स०
रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रथकार मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३९ वि०
रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तकभडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० स०
रै० बानी	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद
लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू (शब्द०)	लल्लू लाल
लहर	लहर, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, पचम स०
लाल (शब्द०)	लालकवि (छत्रप्रकाशवाले)
वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर
विद्यापति	विद्यापति, स० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस लि०, पटना
विनय०	विनयपत्रिका, टी० पं० रामेश्वर भट्ट, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० स०
विशाख	विशाख, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, मृ० सं०
विश्राम (शब्द०)	विश्राम सागर
वीणा	वीणा, सुमित्रानदन पत, इडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० स०
वेनिस (शब्द)	वेनिस का बाँका
वैशाली० या वै० न०	वैशाली की नगरवधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली प्र० स०
वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी
व्यास (शब्द०)	अबिकादत्त व्यास
शं० दि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय
शकर०	शकरसर्वस्व, सपा० हरिशकर शर्मा, गयाप्रसाद ऐंड सस, आगरा, प्र० स०
शकु०	शकुतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी
शकुतला	शकुतला नाटक, अनु० राजालक्ष्मण सिंह, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग, चतु० स०
शार्ङ्गधर स०	शार्ङ्गधर सहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुबई वैभव मुद्रणालय, स० १९७१
शिखर०	शिखर वशोत्पत्ति, स० पुरोहित हरिनारायण, ना० प्र० सभा, प्र० स०, स० १९८५
शुक्ल० अभि० ग्रथ	शुक्ल अभिनदन ग्रथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य समेलन,
शृं० सत० (शब्द०)	शृगार सतसई
शेर०	शेर ओ सुखन
शैली	शैली, करुणापति त्रिपाठी
श्यामा०	श्यामास्वप्न, स० डा० श्रीकृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
श्रीनिवास ग्र०	श्री निवास ग्रथावली, सपा० डा० श्रीकृष्णलाल, ना० प्र० सभा, प्र० स०
सतति०	चद्रकाता सतति, देवकी नदन खत्री, वाराणसी
सत तुरसी०	सत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
स० दरिया, सत दरिया	सत कवि दरिया स० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, विहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्र० सं०
सत र०	सत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासघ, हरिद्वार प्र० स०
सतबाणी०, सत० सार०	सतबाणी-सार-सग्रह [२ भाग] बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
संन्यासी	सन्यासी, इलाचद्र जोशी, भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०
सपूर्णा० अभि० ग्रं०	सपूर्णानद अभिनदन ग्रथ, संपा० आचार्य नरेंद्र देव, ना० प्र० सभा, वाराणसी

स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
सबल (शब्द०)	सबल सिंह चौहान।
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास
स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं०
स० सप्तक	सतसई सप्तक, सं० श्यामसुंदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
सहजो०	सहजो बाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०८ वि०
साकेत	साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
सागरिका	सागरिका, ठा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस प्रयाग, प्र० सं०,
साम०	सामधेनी, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल, पटना, द्वि० सं०
सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, संपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ, प्र० स०
सा० लहरी,	साहित्यलहरी, सं० रामलोचन शरण बिहारी, पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग
सुंदर० ग्र०	सुंदर दास ग्रंथावली [दो भाग], सं० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता, प्र० सं०
सुखदा	सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
सुधाकर (शब्द)	सुधाकर द्विवेदी
सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), संपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०, १९०२
सुनीता	सुनीता, जैनेंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं०।
सूत०	सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर०	सूर सागर, [दो भाग], ना० प्र० सभा, द्वितीय स०
सूर० (शब्द०)	सूरदास
सूर (राधा०)	सूरसागर, संपा० राधाकृष्ण दास, वेंकटेश्वर प्रेस, प्रथम सं०
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि सं०
सैर कु०	सैर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरशार' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १९३४ ई०
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस प्रयाग, प्र० सं०
हंस०	हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, संपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हनुमान (शब्द)	हनुमन्नाटक
हम्मीर०	हम्मीरहठ, संपा० जगन्नाथदास रत्नाकर इंडियन प्रेस लि० प्रयाग
ह० रासो हम्मीर रा०	हम्मीर रासो, संपा० डा० श्यामसुंदर दास ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चंद्र
हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९४९ ई०
हर्ष०	हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्र० सं०, १९५३ ई०
हालाहल	हालाहल, हरिवंश राय बच्चन, भारती भंडार प्रयाग, १९४६ ई०
हिंदी आ०	हिंदी आलोचना,
हिंदी आ० प्र०	हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्र सहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
हिं० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३९ ई०
हिं० प्रेमा० हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यसंग्रह, संपा० डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
हिं० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरण कुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
हिं० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं० १९४८
हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तान एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हिम कि०	हिम किरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० स०
हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, प्र० स०

हिम्मत०	हिम्मतबहादुर विरुदावली, लाला भगवानदीन, ना० प्र० काशी, सभा, द्वि० सं०
हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०
हुमायूँ	हुमायूँनामा, अनु० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

अ०	अंग्रेजी
अ०	अरबी
अनु०	अनुकरण शब्द
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक
अप०	अपभ्रंश
अर्द्ध मा०	अर्द्धमागधी
अल्पा०	अल्पार्थक
अव०	अवधी
अव्य०	अव्यय
इब०	इबरानी
उ०	उदाहरण
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ
उड़ि०	उड़िया
उप०	उपसर्ग
उभ०	उभयलिंग
एकव०	एक वचन
कहावत	कहावत
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र
[को०], (को०)	अन्य कोश
कोक०	कोकणी
क्रि०	क्रिया
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक
क्व०	क्वचित्
गीत०	लोकगीत
गुज०	गुजराती
ची०	चीनी भाषा
छं०	छंद
जापा०	जापानी
जावा०	जावा द्वीप की भाषा
जी०, जीवन०	जीवन चरित
ज्या०	ज्यामिति
ज्यो०	ज्योतिष
डिं०	डिंगल
त०	तमिल
तर्क०	तर्कशास्त्र
तु०	तुर्की
दू०	दूहा या दूहला
दे०	देखिए
देश०	देशज
देशी०	देशी
धर्म०	धर्मशास्त्र
नाम०	नामधातु
ना० धा०	नामधातुज क्रिया
ने०	नेपाली
न्याय	न्याय या तर्कशास्त्र
पं०	पंजाबी
परि०	परिशिष्ट
पा०	पाली
पुं०	पुंलिंग
पुर्त०	पुर्तगाली
पु० हिं०	पुरानी हिंदी
पू० हिं०	पूर्वी हिंदी
पृ०	पृष्ठ
प्रत्य०	प्रत्यय
प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना
प्रा०	प्राकृत
प्रे०	प्रेरणार्थक रूप
फ०	फरासीसी भाषा
फकीर०	फकीरों की बोली
फा०	फारसी
बंग०	बंगाली भाषा
बरमी०	बरमी भाषा
बहुव०	बहुवचन
बुं० खं०	बुंदेलखंड की बोली
बोल०	बोलचाल
भाव०	भाववाचक संज्ञा
भू०	भूमिका
भू० कृ०	भूत कृदंत
मरा०	मराठी
मल०	मलयाली या मलयालम भाषा
मला०	मलायम भाषा
मि०	मिलाइए
मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
मुहा०	मुहावरा
यू०	यूनानी
यौ०	यौगिक
राज०	
लश०	

ला०	लाक्षणिक	सर्व०	सर्वनाम
लै०	लैटिन	स्पे०	स्पेनी भाषा
व० कृ०	वर्तमान कृदंत	स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
वि०	विशेषण	स्त्री०	स्त्रीलिंग
वि० द्वि० मू०	विषमद्विशक्तिमूलक	हिं०	हिंदी
वै०	वैदिक	Ⓟ	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
व्या०	व्याकरण	>	व्युत्पन्न
शब्द	शब्दसागर	†	प्रांतीय प्रयोग
सं०	संस्कृत	‡	ग्राम्य प्रयोग
संयो०	संयोजक अव्यय	√	धातुचिह्न
संयो क्रि०	संयोजक क्रिया	●	संभाव्य व्युत्पत्ति
स०	सकर्मक		
सधु०	सधुक्कड़ी भाषा		

हिंदी शब्दसागर

अ

अ— संस्कृत और हिंदी वर्णमाला का पहला अक्षर। इसका उच्चारण कठ से होता है इससे यह कण्ठ्य वर्ण कहलाता है। व्यजनो का उच्चारण इस अक्षर की सहायता के बिना अलग नहीं हो सकता इसी से वर्णमाला मे क, ख, ग आदि वर्ण अकार-सयुक्त लिखे और बोले जाते हैं।

विशेष——अक्षरो मे यह सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। उपनिषदो मे इसकी बडी महिमा लिखी है। गीता मे श्रीकृष्ण ने कहा है——'अक्षराणामकारोस्मि'। वास्तव मे कठ खुलते ही बच्चो के मुख से यह अक्षर निकलता है। इसी से प्राय सब वर्णमालाओं मे इसे पहला स्थान दिया गया है। वैयाकरणो ने मात्राभेद से इसे तीन प्रकार का माना हैं, ह्रस्व जैसे—अ, दीर्घ जैसे——आ, प्लुत जैसे—अ३। इन तीनो मे से प्रत्येक के दो दो भेद माने गए हैं, सानुनासिक और निरनुनासिक। सानुनासिक का चिह्न चद्रबिंदु ँ है। तत्रशास्त्र के अनुसार यह वर्णमाला का पहला अक्षर इसलिये है कि यह सृष्टि उत्पन्न करने के पहले सृष्टिकर्ता की अतुल अवस्था को सूचित करता है।

अक— सज्ञा पुं० [सं० अङ्क] [वि० अङ्कित, अङ्कनीय, अङ्क्य] १ सख्या। अदद। २ सख्या का चिह्न, जैसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९। उ०—रामनाम को अक है सब साधन है सून। ——तुलसी ग्र०, पृ० १०४। ३ चिह्न। निशान। छाप। आँक। उ०——सीय राम पद अक बराए। लखन चलहिं मग दाहिन लाए। —मानस, २।२१३। ४ दाग। धब्बा। उ०—जहाँ यह स्यामता को अक है मयक मे।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ४९। ५ काजल की टिकी जिसे नजर से बचाने के लिये बच्चो के माथे पर लगा देते हैं। डिठौना। अनखी। ६. अक्षर। उ०—अद्भुत रामनाम के अक।——सूर०, १।९०। ७ लेख। लिखावट। उ०——खडित करने को भाग्य अक। देखा भविष्य के प्रति अशक।——अनामिका, पृ० १२३। ८ भाग्य। लिखन। किस्मत। उ०— जो विधना ने लिखि दियो छठी रात को अक। राई घटै न तिल बढै रहु रे जीव निसक।—कबीर सा०, पृ० ८०। ९ गोद। क्रोड। कोली। उ०—जिस पृथिवी से निकली सदोष वह सीता— अक मे उसी के आज लीन।——तुलसी०, पृ० ४४। १०. बार। दफा। मर्तबा। उ०——एकहु अक न हरि भजेसि रे सठ सूर गँवार।—सूर (शब्द०)। ११ नाटक का एक अश जिसकी समाप्ति पर जवनिका गिरा दी जाती है। १२ दस प्रकार के रूपकों मे से एक जिसकी इतिहासप्रसिद्ध कथा में नाटककार उलटफेर कर सकता है। इसके रसयुक्त आख्यान मे प्रधान रस करुण और एक ही अक होता है। इसकी भाषा सरल और पद छोटा होना चाहिए। १३. किसी पत्र या पत्रिका की कोई सामयिक प्रति। १४ नौ की सख्या (क्योंकि अक नौ ही तक होते हैं)। १५. एक की सख्या (को०)। १६ एक सख्या। शून्य (को०)। १७ पाप। दुख। १८. शरीर। अग। देह। जैसे——'अकधारिणी' मे 'अक'। १९. बगल। पार्श्व। जैसे—— 'अकपरिवर्तन' मे 'अक'। २०. कटि। कमर। उ०——सह सूर सामत बधंति अक।——पृ० रा०, ५१।१२०। २१ वक्र रेखा। उ०——भृकुटि अक वकुरिय।——पृ० रा०, ६१।२४५७। २२ हुक या हुक जैसा टेढा औजार (को०)। २३ मोड। झुकाव (को०)। २४ कठ। गला। गर्दन। उ०—अवरमाला इक्क अक पहिराइ कह्यौ इह।——पृ० रा०, ७।२६। २५ विभूषण (को०)। २६ स्थान (को०) २७ चित्रयुद्ध। नकली लडाई (को०)। २८ प्रकरण (को०)। २९ पर्वत (को०)। ३० रथ का एक अश या भाग (को०)। ३१ पशु को दागने का चिह्न (को०)। ३२ सहस्थिति (को०)।

मुहा०——अक देना = गले लगाना। आलिंगन देना। अक भरना = हृदय से लगाना। लिपटाना। गले लगाना। दोनो हाथो से घेरकर प्यार से दबाना। परिरभण करना। आलिगन करना। उ०——उठी परजक ते मयक वदनी को लखि, अक भरिबे को फेरि लाल मन ललकै।—भिखारी० ग्र०, भा० १ पृ० २४५। अक मिलाना = दे० 'अक भरना'। उ०— नारी नाम कहिन जो आही। तासो कैसे अक मिलाही।——कबीर सा०, पृ० १०१०। अक लगना = दे० 'अक देना'। अक लगाना = दे० 'अक भरना।' उ०—बावरी जो पै कलक लग्यौ तो निसक ह्वै क्यो नहि अक लगावती——हरि०, पृ० २६३। अक मे समाना = लीन होना। सायुज्य मुक्ति प्राप्त करना। उ०——जैसे कनिका काटि कै आ है राई। ऐसे हरिजन अकि समाई।——प्राण०, पृ० १५८।

अकक——सज्ञा पुं० [सं० अङ्कक] [स्त्री० अङ्किका] १. गिनती करनेवाला। २. हिसाब रखनेवाला। ३. चिह्न करनेवाला।

अककरण——सज्ञा पुं० [सं० अङ्ककरण] चिह्न या छाप लगाने का कार्य। अकन [को०]।

अककार——सज्ञा पुं० [सं० अङ्ककार] वह योद्धा जिसकी हार या जीत उसके पक्ष की हार जीत का निर्णय कराए।

अकगणित--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कगणित] संख्याओं का हिसाव। संख्या की मीमांसा। वह विद्या जिससे संख्याओं का जोड, घटाव, गुणा, भाग आदि किया जाता है। हिसाव।

अंकगता--वि० स्त्री० [अङ्क+गता] पार्श्व मे स्थित। उ०--अंकगता तुम करो विश्वमगल सदा।--पार्वती, पृ० १४३।

अंकज--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कज] पुत्र। संतान। उ०--विधि अकज उपदेस दिय रघुपति गुन जस गाव।--प० रा०, ११२।

अकतंत्र--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कतन्त्र] संख्याओं की विद्या। अकगणित और बीजगणित।

अकति--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कति] १ ब्रह्मा। २ वायु। ३ अग्नि। ४ अग्निहोत्री [को०]।

अकधारण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कधारण] तप्त मुद्रा के चिह्नों का दगवाना। शख, चक्र, त्रिशूल आदि के सांप्रदायिक चिह्न गरम धातु से छपवाना।

क्रि० प्र०--करना।

अकधारणा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कधारणा] शरीर या अंक को धारण करने की स्थिति [को०]।

अकधारिणी--वि० स्त्री० [सं० अङ्कधारिणी] १ शरीर मे धारण करनेवाली। उ०--असख्य पत्रावलि अकधारिणी।--प्रिय प्र०, पृ० १०२। २ तप्त मुद्रा के चिह्न धारण करनेवाली। दे० 'अकधारी'।

अकधारी--वि० [सं० अङ्कधारिन्] [स्त्री० अङ्कधारिणी] तप्त मुद्रा के चिह्न धारण करनेवाला। शख, चक्र, त्रिशूल आदि के सांप्रदायिक चिह्नों को गरम धातु से अपने शरीर पर छपवानेवाला।

अकन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कन] [वि० अङ्कनीय, अङ्कित, अङ्क्य] १ चिह्न करना। निशान करना। २ लेखन। लिखना। जैसे--'चित्रांकन', 'चरित्रांकन' मे 'अंकन'। ३ शख, चक्र, गदा, पद्म या त्रिशूल आदि के चिह्न गरम धातु से बाहु पर छपवाना।

विशेष--वैष्णव लोग शख, चक्र, गदा, पद्म आदि विष्णु के चार आयुधो के चिह्न छपवाते हैं और दक्षिण के शैव लोग त्रिशूल या शिवलिंग के। रामानुज सप्रदाय के लोगों मे इसका चलन बहुत है। द्वारिका इसके लिये प्रसिद्ध स्थान है।

४ गिनती करना। ५ श्रेणीनिर्धारण (को०)।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अकना (पु)--क्रि० स० [सं० अङ्कन] १ निश्चित करना। ठहराना। आँकना। उ०--इहै बात साँची सदा देव अकी।--पृ० रा०, २।२११। २ ढकना। मुद्रित करना। मूँदना। उ०--समभि दासि सिरवर तिन ढक्यो। करपल्लव तिन द्रग वर अक्यो।--पृ० रा०, ६१।७१६।

अकनीय--वि० [सं० अङ्कनीय] १ अंकन के योग्य। चिह्न करने योग्य। २ छापने लायक। ३ चित्रण करने योग्य।

अकपट्टी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्क+हिं० पट्टी] काठ की लबोतरी चिकनी पटिया जिसपर बालक आरभ मे अक्षर लिखना सीखते हैं। पाटी। उ०--यही पर भगवान् कृष्ण अकपट्टी पर लिखना सीखे थे।--प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३४।

अकपरिवर्तन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कपरिवर्तन] १ एक ओर से दूसरी ओर पीठ करके सोना। करवट लेना। करवट बदलना। करवट फिरना। २ गोद के बच्चे को एक बगल से दूसरी बगल करना। ३ एक अक की समाप्ति के बाद दूसरे अक का आरभ (नाटक)।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अकपलई--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपल्लव] वह विद्या जिसमे अकों को अक्षरो के स्थान पर रखते हैं और उनके समूह से उसी प्रकार अभिप्राय निकालते हैं जैसे शब्दो और वाक्यों से। इसमे इकतीस अक्षर लेकर उनकी सख्याएँ नियत कर दी गई हैं। जैसे १ से 'प' अक्षर समझते हैं।

अकपालिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अकपाली'।

अकपाली--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपाली] १ दाई। धाय। २. आलिंगन (को०) ३ वेदिका नाम का गधद्रव्य (को०)।

अकपाश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कपाश] गणित ज्योतिष मे संख्याओं को विशिष्ट ढग से रखने की एक क्रिया [को०]।

अकमाल--संज्ञा पुं० [सं० अङ्क+माला] आलिंगन। भेंट। परिरभण। गले लगना। उ०--भगति हेत भगता के चले, अकमाल ले बीठल मिले।--रै० बानी, पृ० ५७।

मुहा०--अकमाल देना = आलिंगन करना। भेंटना। गले लगाना। उ०--आजु आए जानि सब अकमाल देत हैं।--तुलसी ग्रं०, पृ० १७०।

अकमालिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कमालिका] १ आलिंगन। भेंट। २ छोटा हार। छोटी माला।

अकमुख--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कमुख] नाटक का आरभिक अंश जिसके द्वारा सभी अक तथा बीज रूप मे कथानक सूचित किया जाता है, जैसे--भवभूति के मालतीमाधव नाटक का प्रथम अक (सा० दर्पण)।

अकविद्या--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कविद्या] दे० 'अकगणित'।

अकशायी--वि० पुं० [सं० अङ्कशायिन्] [स्त्री० अङ्कशायिनी] अक या गोद मे सोनेवाला। उ०--अकशायी तुम बनोगे दूर होंगे तैश संशय।--क्वासि, पृ० ११६।

अकस[1]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कस] १ शरीर। देह। जिस्म। तन २. चिह्न। निशान [को०]।

अकस[2]--वि० चिह्नयुक्त [को०]।

अकाक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्काङ्क] जल। पानी [को०]।

अकावतार--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कावतार] नाटक के किसी अक के अत मे कथा को विच्छिन्न किए बिना आगामी अक के आरभिक दृश्य तथा पात्रो की सूचना या आभास देनेवाला अंश (सा० दर्पण)।

क्रि० प्र०--होना।

अकास्य--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कास्य] अंक के अत मे प्रविष्ट किसी पात्र के द्वारा विच्छिन्न अतीत कथा का आगामी ससूचक अंश (सा० दर्पण, दश०)।

अंकिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्किका] १ चिह्न रखनेवाली। १ गिनती करनेवाली। ३ हिसाब रखनेवाली।

अंकित--वि० [सं० अङ्कित] १ निशान किया हुआ। दागदार। चिह्नित। उ०--भूमि बिलोकु राम पद अंकित बन बिलोकु रघुबर बिहार थलु।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४६६। २ लिखित। खचित। उ०--तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर। --मानस, ५।१३। ३ वर्णित। उ०--सब गुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी।--मानस, १।१०। ४ गिना हुआ (को०)।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अंकिनी¹--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्किनी] १ चिह्नों का समूह। चिह्न-राशि। २. चिह्नयुक्त स्त्री [को०]।

अंकिनी²--वि० अंकन करनेवाली। उ०--होकर भी वह चित्र अंकिनी आप रंकिनी आशा है।--साकेत, पृ० ३६६।

अंकिल†--संज्ञा पुं०[सं० अङ्क + हिं० इल (प्रत्य०)] बछड़ा जिसे हिंदू वृषोत्सर्ग मे दागकर छोड देते हैं। दागा हुआ साँड। साँड।

अंकी--संज्ञा पुं० [सं० अङ्की] एक प्रकार का मृदंग [को०]।

अंकुट--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुट] कुंजी। ताली [को०]।

अंकुडक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुडक] १ कुंजी। ताली। २. नागदंत। खूँटी [को०]।

अंकुर¹--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] [वि० अङ्कुरित, हिं० अंकुरना] १. अँखुआ। गाभ। अंगुसा। उ०--पाइ कपट जल अंकुर जामा। --मानस, २।२३। २. डाभ। कल्ला। कनखा। कोपल। आँख। ३ यव का नया नया अँखुआ जो मांगलिक होता है। उ०--अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा। --मानस, १।३४६।

क्रि० प्र०--आना। उगना।--जमना।--निकलना।--फूटना। --फोडना।--फेंकना।--लेना।

४. कली। ५ संतति। संतान। उ०--(क) 'हमारे नष्ट कुल मे ये एक अंकुर बचा है, इससे हमारा वंश चलेगा।'--श्रीनिवास ग्रं० पृ० १४६। (ख) थे अंकुर हितकर कलश पयोधर पावन। --साकेत, पृ० २०३। ६. नोक। ७ जल। पानी। ८ रुधिर। रक्त। खून। ९ रोम। रोआँ।

अंकुर²--संज्ञा पुं० [फा० अंगूर] मांस के बहुत छोटे लाल लाल दाने जो घाव भरते समय उत्पन्न होते हैं। भराव। अंगूर।

अंकुरक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरक] घोंसला। खोता [को०]।

अंकुरण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरण] अंकुर निकलना। बीज आदि का अंकुरयुक्त होना [को०]।

अंकुरना--क्रि० अ० [सं० अङ्कुरण] अंकुर फूटना। उगना। जमना। निकलना। पैदा होना। उत्पन्न होना। उ०--उर अंकुरेउ गर्व तरु भारी।--मानस, १।२१६।

अंकुराना--क्रि० अ० दे० 'अंकुरना'।

अंकुरित--वि० [सं० अङ्कुरित] १ जिसमे अंकुर हो गया हो। अँखुआ आया हुआ। उगा हुआ। जमा हुआ। उ०--सृष्टि बीज अंकुरित प्रफुल्लित सफल हो रहा हरा भरा।--कामायनी, पृ० १८२। २. उत्पन्न। निकला हुआ। उ०--अंकुरित तरु पात उकठि रहे जे गात, बनबेली प्रफुलित कलिनी कहर के।--सूर०, १०।३०।

क्रि० प्र०--करना।

अंकुरितयौवना--वि० [सं० अङ्कुरितयौवना] वह बालिका जिसके यौवनावस्था के कुच आदि चिह्न प्रकट हो गए हो। किशोरी।

अंकुरी†--संज्ञा स्त्री० [हिं० अंकुर + ई] चने की भिगोई हुई घुँघनी।

अंकुल--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] दे० 'अंकुर'--१। उ०--अंकुल बीज नसाय के भए बिदेही थान।--कबीर बी०, पृ० १३। (ख) बीज बिन अंकुल पेड बिनु तरिवर, बिनु फूले फल फरिया। --कबीर बी०, पृ० ३५।

अंकुश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश] १. एक प्रकार का छोटा शस्त्र या टेढ़ा काँटा जिसे हाथी के मस्तक मे गोदकर महावत उसे चलाता या हाँकता है। हाथी को हाँकने का दोमुहाँ काँटा या भाला जिसका एक फल झुका होता है। आँकुस। गजबाग। सृणि।

क्रि० प्र०--देना।--मारना।--लगाना।

२. प्रतिबंध। रोक। दबाव। नियंत्रण। जैसे, अंकुश मे रखना = प्रतिबंध मे रखना। ३. अंकुश के आकार की हाथ पैर की रेखा। उ०--अंकुश बरछी शक्ति पवि गदा धनुष असि तीर। आठ शस्त्र को चिह्न यह धारत पद बलबीर।--भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २१।

अंकुशग्रह--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश ग्रह] महावत। हाथीवान। निषादी। फीलवान।

अंकुशदंता--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुशदन्त] एक प्रकार का हाथी जिसका एक दाँत सीधा और दूसरा पृथिवी की ओर झुका रहता है। यह अन्य हाथियो से बलवान् और क्रोधी होता है तथा झुंड मे नही रहता। इसे गुंडा भी कहते हैं।

अंकुशदुर्धर--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुशदुर्धर] अंकुश से भी जल्दी वश मे न आनेवाला मतवाला हाथी। मत्त हाथी।

अंकुशधारी--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुशधारी] महावत। फीलवान [को०]।

अंकुशमुद्रा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुशमुद्रा] तंत्र शास्त्र मे अंगुलियो को अंकुश के आकार की बनाई आकृति [को०]।

अंकुशा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुशा] २४ जैन देवियो मे एक। चौदहवें तीर्थंकर श्री अनंतनाथ की शासनदेवी का नाम [को०]।

अंकुशित--वि० [सं० अङ्कुशित] अंकुश के प्रयोग द्वारा आगे बढाया हुआ [को०]।

अंकुशी¹--वि० [सं० अङ्कुशी] १. अंकुशवाला। अंकुश से युक्त। २. अंकुश म वश मे करनेवाला [को०]।

अंकुशी²--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंकुशा'।

अंकुस¹--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश, प्रा० अंकुस] १ दे० 'अंकुश'¹। उ०--महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब।--मानस, १।२५६।

मुहा०--अंकुस देना = ठेलना। जबरदस्ती करना। उ०--क्रोध गजपाल क ठठकि हाथी रह्यो देत अंकुस मसकि कह सकान्यो। --सूर०, १०।३०५४।

२. दे० 'अंकुश'-२। उ०--कुल अंकुश आरज पथ तजि के लाज सकुच दई डेरै। सूर स्याम कै रूप लुभाने कैसेहु फिरत न फेरे।--सूर०, (परि०) २, पृ० ७४।

३. दे० 'अंकुश' ३.। उ०--याका सेवक चतुरतर गननायक सम होइ। या हित अंकुस चिह्न हरि चरनन सोहत सोइ।--भारतेंदुग्रं०, भा० २, पृ० ८।

अकुसा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश] एक प्रकार का अस्त्र। उ०—सूल अकुसा छुरी सुधारी तिष्प कुठारी।—सुजान०, पृ० १५७।

अकूर—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] दे० 'अकुर'। उ०—(क) तव भा पुनि अकूर, दीपक सिरजा निरमला।—जायसी (शब्द०)। (ख) सो सामत प्रमान, उग्गि अकूर वीर रस।—पृ० रा०, ३१।६३।

अकूरी(पु)—वि० [सं० अङ्कुर + ई (प्रत्य०)] अकुरवाला। ज्ञान के अंकुरवाला (पूर्वजन्म के सस्कार से)। उ०—अकूरी जिव मेटे निज गेहा। नूवा नाम जो प्रथम सनेहा।—कवीर सा०, पृ० ८१।

अकूलना(पु)—क्रि० अ० [सं० अङ्कुरण, हिं० अंकुरना] जनमना। पैदा होना। उ०—सालिग्राम गडक अकूला। पाहन पूजत पडित भूला।—कवीर सा०, पृ० १८।

अकूप—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कूष] १ अकुश। २ नेवले की जाति का एक जानवर। घूस [को०]।

अकोट—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोट] दे० 'अकोल'।

अकोटक—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोटक] दे० 'अकोल'।

अकोल—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोल] एक पेड जो सारे भारतवर्ष मे प्राय पहाडी जमीन पर होता है।

विशेष—यह शरीफे के पेड से मिलता जुलता है। इसमे वेर के बरावर गोल फल लगते हैं जो पकने पर काले हो जाते है। छिलका हटाने पर इसके भीतर वीज पर लिपटा हुआ सफेद गूदा होता है जो खाने मे कुछ मीठा होता है। इस पेड की लकड़ी कडी होती है और छडी आदि वनाने के काम मे आती है। इसकी जड की छाल दस्त लाने, वमन कराने, कोढ और उपदश आदि चर्मरोगो को दूर करने तथा सर्प आदि विषैले जतुओ के विप को हटाने मे उपयोगी मानी जाती है।

पर्या०—अकोटक। अकोट। ढेरा। अकोला।

अकोलसार—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोलसार] अकोल के वृक्ष से तैयार किया गया विप [को०]।

अकोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कोलिका] आलिगन। अँकवार [को०]।

अक्य[1]—वि० [सं० अङ्कय] १ चिह्न करने योग्य। निशान लगाने लायक। अकनीय। २ गिनने योग्य। [को०]।

अक्य[2]—संज्ञा पुं० १ दागने योग्य अपराधी।

विशेष—प्राचीन काल मे राजा लोग विशेष प्रकार के अपराधियो के मस्तक पर कई तरह के चिह्न गरम लोहे से दाग देते थे। इसी से आजकल भी किसी घोर अपराधी को, जो कई वेर सजा पा चुका हो, 'दागी' कहते हैं।

२ मृदग, तवला, पखावज आदि वाजे जो अक मे रखकर वजाए जायँ।

अख(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्ख] आँख। नेत्र। उ०—आज नीरालइ सीय पडयो। च्यारि पहूर माँही नू मीली अख।—वी० रासो, पृ० ४८।

अखि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि; प्रा० अक्खि] दे० 'अख'। उ०—करि क्रोध अखि सुरत्त, हवि जानि लग्गिय लत्त।—पृ० रा०, ११।०४।

अखिका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि] आँख। नेत्र। उ०—लर्जे भर्जे मन गतीयपुव्वता कवी क्है। सु अखिका कुरग गत्ति भान देषिता रहै।—पृ० रा०, ११ ५४।

अखे—क्रि० वि० [सं० अक्षि; (लाक्ष०)] आगे। समक्ष। आँख में। उ०— न अखे है, न पछे है, न तले है, न ऊपर है।—दक्खिनी, पृ० ४४८।

अग[1]—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] १ शरीर। वदन। देह। गात्र। तन। जिस्म। उ०—अभिशाप ताप की ज्वाला से जल रहा आज मन और अग।—कामायनी, पृ० १६२। २ शरीर का भाग। अवयव। उ०—भूषन सिथिल अग भूपन सिथिल अग—भूषण ग्र०, पृ० १२६।

मुहा०—**अग उभरना**—युवावस्था आना। **अग करना**=स्वीकार करना। ग्रहण करना। उ०—(क) जाको मनमोहन अग करै।—सूर (शब्द०)। (ख) जाको हरि दृढ करि अग कर्यो।—तुलसी (शब्द०)। **अग छूना**=शपथ खाना। माथा छूना। कसम खाना। उ०—सूर हृदय से टरत न गोकुल अग छुवत हौ तेरो।—सूर (शब्द०)। **अग टूटना**=जम्हाई के साथ आलस्य से अगो का फैलाया जाना। अँगडाई आना। **अग तोडना**—अँगडाई लेना। **अग धरना** = पहनना। धारण करना। व्यवहार करना। **अग मे मास न जमना**=दुवला पतला रहना। क्षीण रहना। उ०—नैन न आवै नींदडी, अग न ज मै मासु।—क्वीर सा० सं०, भा० १, पृ० ४३। **अग मोडना**= (१) शरीर के भागों को सिकोडना। लज्जा से देह छिपाना। (२) अँगडाई लेना। उ०—अगन मोरति भोर उठी छिति पूरति अग सुगध झकोरन।—व्यगार्थ (शब्द०)। (३) पीछे हटना। भागना। नटना। वचना। उ०—रे पतग निःशक जल, जलत न मोडै अग। पहिले तो दीपक जलै पीछे जलै पतग (शब्द०)। **अग लगना**=(१) आलिगन करना। छाती से लगाना। (२) शरीर पुष्ट होना। उ०—'वह खाता तो वहुत है पर उसके अग नहीं लगता' (शब्द०)। (३) काम मे आना। उ०—'किसी के अग लग गया, पडा पडा क्या होता' (शब्द०)। (४) हिलना। परचना। उ०—'यह वच्चा हमारे अग लगा है' (शब्द०)। **अंग लगाना या अग लाना**(पु) = (१) आलिगन करना। छाती से लगाना। परिरभण करना। लिपटाना। उ०—पर नारी पैनी छूरी कोउ नहिं लाओ अग। (शब्द०) (२) हिलाना। परचाना। (३) विवाह देना। विवाह मे देना। उ०—'इस कन्या को किसी के अग लगा दे' (शब्द०)। (४) अपने शरीर के आराम मे खर्च करना।

३ भाग। अश। टुकडा। ४ खड। अध्याय। जैसे—'गुरुदेव को अग', 'चितावनी को अग', 'सूषिम मारग को अग'।—कवीर ग्र०। ५ ओर। तरफ। पक्ष। उ०—सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अग।—तुलसी (शब्द०)। ६ भेद। प्रकार। भाँति। तरह। उ०—(क) को कृपालु स्वामी सारिखो, राखै सरनागत सव अग वल विहीन को।—तुलसी ग्र०, पृ० ५६४। (ख) अग अंग नीके भाव गूढ भाव के प्रभाव, जानै को सुभाव रूप पचि पहिचानी है।—केशव (शब्द०)। ७. आधार। आलबन। उ०—राधा राधारमन को रस सिंगार

मे अंग ।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ४ । ८ सहायक । सुहृद । पक्ष का । तरफदार । उ०--रौरे अंग जोग जग को है । --मानस, २।२८४ । ९ एक संबोधन । प्रिय । प्रियवर । उ०--यह निश्चय ज्ञानी को जाते कर्ता दीखै करै न अंग । --निश्चल (शब्द०) । १० जन्मलग्न (ज्यो०) । ११. प्रत्यययुक्त शब्द का प्रत्यय रहित भाग । प्रकृति । (व्या०) । १२. छह की संख्या । उ०--बरसि अचल गुण अंग ससी संवति, तवियौ जस करि श्रीभरतार ।--वेलि, दू० ३०५ । १३ वेद के ६ अंग, यथा-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छंद । दे० 'वेदांग' । १४. नाटक मे शृंगार और वीर रस को छोडकर शेष रस जो अप्रधान रहते हैं । १५ नाटक मे नायक या अंगी का कार्यसाधक पात्र, जैसे--'वीरचरित' मे सुग्रीव, अंगद विभीषण आदि । १६ नाटक की ५ संधियो के अंतर्गत एक उपविभाग । १७ मन । उ०--सुनत राव इह कथ्थ फुनि, उपजिय अचरज अंग । सिथिल अंग धीरज रहित, भयो दुमति मति पग ।--पृ० रा०, ३।१८ । १८ साधन जिसके द्वारा कोई कार्य संपादित किया जाय । १९ सेना के चार अंग वा विभाग, यथा--हाथी, घोडे रथ और पैदल । दे० 'चतुरंगिणी' । २० राजनीति के सात अंग, यथा--स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष राष्ट्र, दुर्ग और सेना । २१ योग के आठ अंग, यथा--यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि । दे० 'योग' । २१. बंगाल मे भागलपुर के आसपास का प्राचीन जनपद जिसकी राजधानी चंपापुरी थी । कही कही इसका विस्तार वैद्यनाथ से लेकर भुवनेश्वर (उडीसा, उत्कल) प्रदेश तक लिखा है । २३ ध्रुव के वंश का एक राजा । २४. एक भक्त का नाम । २५. उपाय । २६. लक्षण । चिह्न (को०) ।

अंग²--वि० १ अप्रधान । गौण । २ उलटा । प्रतीप । ३ प्रधान । ४ निकट । समीप (को०) । ५ अंगोंवाला (को०) ।

अंग³ ⓟ--संज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा] आज्ञा । आदेश । उ०--सो निज स्वामिनि अंग सुनि अमिय सुप्रथ्थह वव्व ।--पृ० रा०, ६१।७६६ ।

अंगकर्म--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गकर्म] शरीर को सँवारना या मालिश करना ।

क्रि० प्र०--करना ।--होना ।

अंगक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गक्रिया] अंगकर्म (को०) ।

अंगग्रह--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गग्रह] १ एक रोग जिससे देह मे पीडा होती है । २. स्थापत्य मे पत्थरो के एक दूसरे के ऊपर फिसल न जाने अथवा उनके जोडों को अलग होने से रोकने के लिये उनके बीच बैठाया जानेवाला कबूतर की पूँछ के आकार का लोहे या ताँबे का एक टुकडा । पाहू ।

अंगचालन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गचालन] हाथ पैर हिलाना । अंग डुलाना ।

अंगच्छवि--संज्ञा स्त्री० [अङ्ग + छवि] अंगो की शोभा । उ०--'अंगच्छवि से होते थे स्वयं अलंकृत । --पार्वती, पृ० २०० ।

अंगच्छेद--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + छेद] अंग कटना । अंगभंग । उ०--शरीर छोटे से बडा होता है, उसका कभी कभी अंगच्छेद हो जाता है ।--चिद्०, पृ० २०७ ।

अंगज¹--वि० [सं० अङ्गज] शरीर से उत्पन्न । तन से पैदा । उ०--कु अंगजों की बहु कष्टदायिता बता रही थी जन नेत्रवान को । --प्रिय० प्र०, पृ० १०३ ।

अंगज²--संज्ञा पुं० [स्त्री० अंगजा] १ पुत्र । बेटा । लडका । उ०--कृष्ण गेह कै काम, काम अंगज जनु अनुरध । -- पृ० रा०, १।७२७ । २ पसीना । ३ बाल । केश । रोम । ४ काम, क्रोध आदि विकार । ५ साहित्य मे स्त्रियो के यौवन संबंधी जो सात्विक विकार हैं उनमे हाव, भाव और हेला ये तीन 'अंगज' कहलाते हैं । कायिक । ६ कामदेव । ७ मद । ८ रोग । ९. रक्त । खून (को०) ।

अंगजा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गजा] कन्या । पुत्री । बेटी ।

अंगजाई--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग + हिं० जाई] पुत्री । बेटी । कन्या ।

अंगजात--संज्ञा पुं० दे० 'अंगज' ।

अंगजाता--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगजा' ।

अंगज्वर¹--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गज्वर] राजयक्ष्मा । क्षय रोग (को०) ।

अंगज्वर²--वि० ज्वरोत्पादक (को०) ।

अंगड खंगड¹--वि० [अनुध्व०] १ बचा खुचा । गिरा पडा । इधर उधर का । २ टूटा फूटा । उ०--'अयोध्या की अंगड खंगड वीहड और बेढंगी बस्ती । --प्रेमघन०, भा० २, पृ० १७४ ।

अंगड खंगड²--संज्ञा पुं० काठकबाड । टूटा फूटा सामान ।

अंगड़ा ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + हिं० डा (प्रत्य०)] दे० 'अंग' १ । उ०--तेरा अंगडा पेखो रे, तेरा मुखडा देखो रे । --दादू०, पृ० ५०४ ।

अंगढंग--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + हिं० ढंग] अंगो की बनावट या रचना । उ०--अंगढंग औ रंग भूरि भँवरी सुभ लच्छन ।--रत्नाकर, भा० १, पृ० ११३ ।

अंगण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गण] १ घर के बीच का खुला हुआ भाग । आँगन । सहन । चौक । अजिर । उ०--(क) संदेसे ही घर भरयउ कई अंगणि कई बार ।--ढोला०, दू०, ८०० । (ख) आवी द्वार तजे ग्रह अंगण ।--राज०, पृ० १८ ।

विशेष--शुभाशुभ निश्चय के लिये इसके दो भेद माने गए हैं, एक 'सूर्यवेधी' जो पूर्व पश्चिम लंबा हो, दूसरा 'चंद्रवेधी' जिसकी लंबाई उत्तर दक्षिण हो । चंद्रवेधी आँगन अच्छा समझा जाता है ।

२ यान । सवारी (को०) । ३ संचरण । गमन (को०) ।

अंगति--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गति] १ अग्निहोत्री । २. विष्णु । ३. ब्रह्मा । ४. अग्नि । ५. जिसके द्वारा गमन किया जाय । वाहन (को०) ।

अंगत्राण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गत्राण] १. शस्त्रास्त्रो से अंग की रक्षा के निमित्त पीतल या लोहे का पहिनावा । कवच । बख्तर । वर्म । जिरह । २ अँगरखा । कुरता ।

अंगद--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गद] १. बालि नामक बंदर का पुत्र जो रामचंद्र की सेना मे था । २. बाहु पर पहनने का एक गहना । बिजायट । बाजूबंद । उ०--उर पर पदिक कुसुम बनमाला अंगद खरे बिराजै ।--सूर०, १०।४५१ । ३ लक्ष्मण के दो पुत्रों मे से एक । ४. दुर्योधन के पक्ष का एक योद्धा ।

अगदा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गदा] दक्षिण दिशा के दिग्गज की पत्नी।

अगदा²—वि० स्त्री० अगदान करनेवाली (स्त्री)।

अगदान—संज्ञा पुं० [अङ्ग + दान] १ पीठ दिखलाना। युद्ध से भागना। लडाई से पीछे फिरना। २ तनुदान। अगमसर्पण। सुरति। रति। (स्त्रियों के लिये प्रयुक्त)।
क्रि० प्र०—करना = (१) पीठ दिखलाना, भागना, पीछे फिरना। (२) रति करना, समाग करना।

अगदीया—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गदीया] कारुपथ नामक देश की नगरी जो लक्ष्मण के पुत्र अगद को मिली थी।

अगद्वार—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गद्वार] शरीर के मुख, नासिका आदि दस छेद।

अगद्वीप—संज्ञा पुं० [अङ्गद्वीप] छह द्वीपों मे से एक।

अगधारी—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + धारिन्] शरीर धारण करनेवाला। शरीरी। प्राणी।

अगन—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गन] १ आँगन। सहन। चौक। उ०—घर अगन गायन पिरकि जमुना जल बन कुज।—पृ० रा०, २।५५६।

अगना—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गना] २ सुदर अगवाली स्त्री। २. स्त्री। कामिनी। उ०—बीच परी अगना अनेक आँगननि के।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १८३। २ सार्वभौम नामक उत्तर के दिग्गज की स्त्री। ४ कन्या राशि (को०)। ५ वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशियाँ (को०)।

अगनाप्रिय¹—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गनाप्रिय] १ अशोक का पेड। २. उत्तर दिशा का हस्ती (को०)।

अगनाप्रिय²—वि० स्त्रियों का प्यारा (को०)।

अगन्यास—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गन्यास] तत्रशास्त्र के अनुसार मत्रो को पढते हुए एक एक अग छूना। सध्या, जप पाठ आदि के पूर्व की जानेवाली एक विधि।

अगपाक—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गपाक] अगो का पकना या सडकर उनमे मवाद भरना। अग पकने का रोग।

अगपालिका—संज्ञा स्त्री० दे० 'अकमालिका' (को०)।

अगपाली—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गपाली] १. आलिगन। अँकवार। २ वेदिका नामक गधद्रव्य (को०)।

अगप्रायश्चित्त—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गप्रायश्चित्त] स्मृतियो मे कथित अशौच मे दान के रूप में किया जानेवाला प्रायश्चित्त जो शरीर की शुद्धि के लिये किया जाता है (को०)।

अगप्रोक्षण—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गप्रोक्षण] अग पोछना। देह पोंछना शरीर को गीले कपडे से मलकर साफ करना।

अगफुरन—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + स्फुरण, प्रा० अप० फुरण] अग का फडकना। उ०—अगफुरन तें निज मतग मन रग पिछानत।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११७।

अगवी—संज्ञा पुं० [फा०] मधु। शहद। उ०—ताअत मे ता रहें न मय ओ अगवीं की लाग।—कबीर०, भा० १, पृ० ५२७।

अगभग¹—संज्ञा सं० [सं० अङ्गभङ्ग] १ किसी अवयव का खडन या नाश। अग का खडित होना। शरीर के किसी भाग की हानि। २ मोहित करने की स्त्रियों की चेष्टा। स्त्रियों की कटाक्ष आदि क्रिया। अगभगी।

अगभग²—वि० जिसके शरीर का या कोई भाग खडित हो या टूटा हो। जिसके हाथ पैर टूटे हों। अपाहज। लँगडा लूला। लुज।
क्रि० प्र०—करना। उ०—अगभग करि पठवहु बदर।—तुलसी (शब्द०)।—होना। जैसे—उसका अगभग हो गया।—(शब्द०)।

अगभगि—संज्ञा स्त्री० दे० 'अगभगी'। उ०—अगभगि मे व्योम मरोर, भौंहो मे तारों के झौंर।—पल्लव, पृ० ३३।

अगभगिमा—संज्ञा स्त्री० दे० 'अगभगी'। उ०—सम्मोहन विभ्रम अगभगिमा मे अपठित।—ग्राम्या, पृ० २०।

अगभगी—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + भङ्गी] स्त्रियों की मोहित करने की चेष्टा। स्त्रियों की चेष्टा। अदा। उ०—वह अनगपीडा अनुभव सा अगभगियो का नर्तन।—कामायनी, पृ० ११।

अगभाव—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गभाव] सगीत मे नेत्र, भृकुटि और हाथ आदि अगो से मनोविकार का प्रकाशन। गाने में शरीर की विविध मुद्राओं द्वारा चित्त के उद्वेगों की अभिव्यक्ति।

अगभू¹—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गभू] १. पुत्र। २. कामदेव (को०)।

अगभू²—वि० शरीर या मन मे उत्पन्न (को०)।

अगभूत¹—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गभूत] पुत्र। बेटा।

अगभूत²—वि० १ अग मे उत्पन्न। देह से पैदा। २ अंतर्गत। भीतर। अतर्भूत। ३. गौण। अप्रधान।

अगमग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + मङ्ग या अङ्ग, प्रा० अंगमग] अग प्रत्यग। हर एक अवयव। उ०—कुदन ओपति अगमग जनु चद किन्नि सिर।—पृ० रा०, १४.७४।

अगम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आगम] आगम। आना। अवाई। उ०—तिन रिपि पूछी ताहि वचन मान्न इत अगम।—पृ० रा०, १।२६४।

अगमना(पु)—क्रि० स० दे० 'अगवना'। उ०—(क) पायान राय जयचद को विगरि पिथ्थ कुन अगमै।—पृ० रा०, ६१।१०८०। (ख) को अगमै सु जम्म अम्म को करै सँधारन।—पृ० रा०, ६१।१०६०।

अगमर्द—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्द]। १ अग मलनेवाला या हाथ पैर दबानेवाला नौकर। सवाहक। सेवक। २. एक प्रकार का वातरोग। हड्डियो का दर्द। हडफूटन रोग।

अगमर्दक—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्दक] अगमर्द। सवाहक (को०)।

अगमर्दन—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्दन] अगो की मालिश। देह। दबाना। हाथ पैर दबाना।

अगमर्दी—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्दी] सवाहक। अगमर्दक।

अगमर्ष—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्ष] अगो की पीड़ा। वातरोग (को०)।

अगयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गयज्ञ] प्रधान यज्ञ का अगीभूत यज्ञ (को०)।

अगयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गयष्टि] शरीर की पतली आकृति (को०)।

अंगरक्षक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गरक्षक] [स्त्री० अङ्गरक्षिका] शासक या विशेष अधिकारी की रक्षा के लिये नियुक्त सैनिक। बाडीगार्ड। शरीर रक्षक [को०]।

अंगरक्षणी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गरक्षिणी] शरीर की रक्षा के लिये लोहे की बनी पोशाक। वर्म। कवच [को०]।

अंगरक्षा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गरक्षा] शरीर की रक्षा। देह का बचाव। बदन की हिफाजत।

अंगरक्षिणी--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगरक्षणी'।

अंगरस--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग+रस] किसी पत्ते या फल का कूटकर निचोड़ा हुआ रस। स्वरस। रांग।

अंगराग--सं० पुं० [सं० अङ्गराग] १. चंदन, केसर, कपूर, कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्यों का मिला हुआ लेप जो अंग में लगाया जाता है। उबटन। बटना। २ वस्त्र और आभूषण। ३ शरीर की शोभा के लिये महावर आदि रँगने की सामग्री। ४ स्त्रियों के शरीर के पाँच अंगों की सजावट--माँग में सिंदूर, माथे पे रोली, गाल पर तिल की रचना, केसर का लेप, और हाथ पैर में मेंहँदी या महावर। ५ एक प्रकार की सुगंधित देसी बुकनी जिसे मुँह पर लगाते हैं। चौंसठ कलाओं में से एक।--वर्ण०।

अंगराज--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गराज] १ अंग देश का राजा कर्ण। २ राजा सोमपाद जो दशरथ के परम मित्र थे। इनकी कन्या शांता ऋष्यशृंग को ब्याही गई थी। इसी नाते ऋष्यशृंग ने दशरथ से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था।

अंगरुह--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गरुह] १ शरीर के रोएँ, केश आदि। २ ऊन [को०]।

अंगरेजी[1]--संज्ञा स्त्री० [फा० पुर्त० अंग्लेज, इंगलेज] अँगरेज लोगों की भाषा। इंग्लैंड और अमेरिका के निवासियों की भाषा।

अंगरेजी[2]--वि० अँगरेजों की। विलायती।

अंगरेजीवाज--वि० [हिं० अंगरेजी+फा०बाज] कुछ कुछ अँगरेजी जाननेवाला। उ०--'बहुतेरे अंगरेजीबाज सांवले साहित्य लोग'।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५२।

अंगलिपि--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गलिपि] अंग देश में लिखी जानेवाली लिपि [को०]।

अंगलेप--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गलेप] दे० 'अंगराग'--१ [को०]।

अंगलोड्य--संज्ञा पुं० सं० [अङ्गलोड्य] १ एक प्रकार की घास। चिंचिडा। २ अदरक या उसकी जड़ [को०]।

अंगवना(पु)--क्रि० सं० दे० 'अँगवना'--३। उ०--एक कोटि अंगवन धरत हर उर सुध्यान वर।--पृ० रा०, ६१।१६०।

अंगवस्त्र--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग+वस्त्र] पहनने का वस्त्र। पोशाक। उ०--जो जो अंग ऊपर अंगवस्त्र पहिरे हते सो तो रहे।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११३।

अंगवारा--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग=भाग, सहायता+कार] १ गाँव के एक छोटे भाग का मालिक। २ खेत की जोताई में एक दूसरे की सहायता।

अंगविकल--वि० [सं० अङ्गविकल] १ मूर्छायुक्त। मूर्छित। २ विकलांग [को०]।

अंगविकृति--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गविकृति] अपस्मार। मृगी या मिरगी रोग। मूर्छा रोग।

अंगविक्षेप--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गविक्षेप १ अंग हिलाना। चमकाना। मटकाना। बोलते, वक्तृता देते या गाते समय हाथ पैर, सिर आदि का हिलाना। २ नृत्य। नाच। ३ नृत्यकालीन अंग-संचालन। कलाबाजी।

अंगविद्या--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गविद्या] १ शरीर के लक्षणों और रेखाओं को देखकर जीवन की घटनाओं को बताने की विद्या। शरीर की रेखाओं से मनुष्य के शुभाशुभ फल कहने की कला। सामुद्रिक विद्या। २ छह वेदांग।

अंगविभ्रम--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गविभ्रम] १ रोग जिसमें रोगी अंगों को और का और समझता है। अंगभ्रांति। २ शृंगार रस में नायिका की विभ्रम नामक चेष्टा।

अंगवैकृत--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गवैकृत] हृदय या मन के भाव को अंगों की चेष्टा से व्यक्त करना। आकार [को०]।

अंगश--क्रि० वि० [सं० अङ्गश] अंग या विभाग के अनुसार [को०]।

अंगशुद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गशुद्धि] स्नानादि द्वारा शरीर स्वच्छ करना [को०]।

अंगशैथिल्य--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गशैथिल्य] बदन की सुस्ती। अंग का ढीलापन। थकावट।

अंगशोष--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गशोष] एक रोग जिसमें शरीर क्षीण होता या सूखता है। सुखंडी रोग।

अंगसंग--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग+सङ्ग] रति। संयोग। मैथुन। संभोग।

अंगसंधि--संज्ञा स्त्री० दे० 'संध्यंग'

अंगसपेख(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग+सम्प्रेक्ष] अंग नामक देश (डिं०)।

अंगसंवाहन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गसंवाहन] अंगमर्दन। मालिश। देह दबाना। उ०--'चार सेवक आवनूस के बेलन से उसका अंग-संवाहन करते थे'।--चंद्र० (भू०), पृ० २२।

अंगसंस्कार--संज्ञा पुं० [अङ्गसंस्कार] अंगों का सँवारना। देह का बनाव सजाव। उबटन, स्नान या सुगंधित द्रव्यों आदि से शरीर की सजावट।

अंगसंस्क्रिया--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगसंस्कार' [को०]।

अंगसंहति--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गसंहति] अंगों का गठन। अंगों की रचना या बनावट। अंगों का सुढारपन [को०]।

अंगसंहिता--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गसंहिता] किसी शब्द में व्यंजन और स्वर के मध्य का ध्वनिसंबंध [को०]।

अंगसख्य--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गसख्य] अभिन्न मैत्री। गाढ़ी मित्रता। गहरी दोस्ती।

अंगसिहरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग=शरीर+हर्ष=कंप] १ ज्वर आने के पहले देह की कँपकँपी। कंप। कँपकँपी। २ जूडी।

अंगसुप्ति--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गसुप्ति] शरीर का सुन्न होना [को०]।

अंगसेवक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गसेवक] शरीर की रक्षा करनेवाला निजी सेवक। अंगरक्षक [को०]।

अगस्कध--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गस्कन्ध] रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और सस्कार नामक शरीर के पाँच स्कध (बौद्ध)।

अगस्पर्श--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गस्पर्श] दाहकर्म करनेवाले का अशौच के चौथे दिन अस्थि सचयन के बाद दूसरो के द्वारा छुने के योग्य होना [को०]।

अगहानि--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गहानि] दैव, भ्रम या अनवधानता से मुख्य कार्य के उपकारक अवातर का कार्यो मे हुई असावधानी या त्रुटि [को०]।

अगहार--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गहार] १ अगविक्षेप। चमकना। मटकना। हाथ पैर हिलाना। २ नृत्य। नाच।

अंगहारि--संज्ञा पुं० १ दे० 'अगहार'। २ रगमच। रगस्थल [को०]।

अगहीन¹--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गहीन] अनग। कामदेव [को०]।

अगहीन²--वि० जिमको कोई एक वा अनेक अग न हो। जिसके शरीर का कोई भाग खडित वा टूटा हो। लूला लँगडा। लूज आदि। अवयवरहित।

अगागिता--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गाङ्गिता] दे० 'अगागिभाव' [को०]।

अगागिभाव--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गाङ्गिभाव] १ अवयव और अवयवी का परस्पर सबध। उपकारक उपकार्य-सबध। अश का सपूर्ण के साथ आश्रय और आश्रयी रूप सबध अर्थात् ऐसा सबध कि उस अश का अवयव के विना सपूर्ण वा अवयवी की सिद्धि न हो, जैसे त्रिभुज की एक भुजा का सारे त्रिभुज के साथ सबध। २ गौण और मुख्य का परस्पर सबध। ३ अलकार में सकर का एक भेद। जहाँ एक ही पद्य मे कुछ अलकार प्रधान रूप आएँ और उनके आश्रय या उपकार से दूसरे और भी आ जाएँ। उ०--अब ही तो दिन दस वीते नाहिं नाह चले अब उठि आई कहँ कहाँ लौं विसरिहै। आओ खेलें चौपर विसारै मतिराम दुख खेलन को आई जानि विरह को चूरि है। खेलत ही काहू कह्यो जुग जिन फूटो प्यारी। न्यारी भई मारी को निवाह होनो दूर है। पासे दिए डारि मन साँसे ही मे बूडि रह्यो विसरयो न दुख, दुख दूनो भरपूर है। यहाँ 'जुग जनि फूटो' वाक्य के कारण प्रिय का स्मरण हो आया इससे स्मरण अलकार और इस स्मरण के कारण विरहनिवृत्ति के साधन से उलटा दुख हुआ अर्थात् 'विषम' अलकार की सिद्धि हुई। अत यहाँ स्मृति अलकार विषम का अग है।

अगागीभाव--संज्ञा पुं० दे० 'अगागिभाव।'

अगा¹--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] १ पहिनावा जो घुटनो के नीचे तक लबा होता है और जिसमे बद लगे रहते हैं। अगरखा। चपकन।

अगा²--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] दे० 'अग'। उ०--देवी गगा लहर तुरगा। तुहरे लहर परमू, भाजे आठो अगा।--शुक्ल० अभि० ग्र०, पृ० १३८।

अगाकडी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गार + हिं० कडी] अगारो पर सेंकी हुई मोटी रोटी। लिट्टी। वाटी।

क्रि० प्र०--करना।--लगाना = वाटी तैयार करना या पकाना।

अगाकर(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगाकडी'। उ०--कोस पयाएउ पाणियो ज्यहि। सात अगाकर वैठो ही खाय।--वी० रासो, पृ० ७८।

अगाकरी(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगाकडी'। उ०--रवा केह ग्रामोदनं दे वनाए। घने घृत्त अगाकरी खोभि लाए।--पृ० रा० ६३।८६।

अगार¹--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गार] १ दहकता हुआ कोयला। आग का जलता हुआ टुकडा। विना धुएँ की आग। निर्धूम अग्नि। उ०--धवनि धवती रहि गई बुझि गए अगार।--कवीर ग्र०, पृ० ५७। २ स्फुलिंग। चिनगारी। उ०--अति अगिनि झार भभार धुधार करि उचटि अगार झभार छायौ।--सूर०, १०।५९६।

मुहा०--अगार उगलना = कडी कडी बातें मुँह से निकालना। ऐसी बात वोलना जिससे सुननेवाले को अत्यत क्रोध उत्पन्न हो। अगार बनना = (१) खा पीकर लाल होना। मोटा ताजा होना। (२) क्रोध मे भरना। अंगार बरसना = (१) अत्यत अधिक गर्मी पडना। (२) दैवी आपत्ति आना।

३ कोयला (को०)। ४ मगल। उ०--चर आए ढिल्लिय नगर, दसमि सुदिन अगार।--पृ० रा०, ६६।१६१८। ५. लाल रग (को०)। ६ हितावली नाम का पौधा (को०)।

अगार²--वि० लाल रगवाला [को०]।

अगारक--संज्ञा पुं० [सं० अगारक] १ दहकता हुआ कोयला। आग का जलता हुआ टुकडा। २ चिनगारी (को०)। ३ मगल ग्रह। ४ भृगराज। भँगरैया। भँगरा। ५ कटसरैया का पेड, कुरटक। पियावासा। ६ एक प्रकार का तैल जो सभी ज्वरो का नाश करनेवाला होता है (को०)।

अगारकमणि--सं० पुं० [सं० अङ्गारकमणि] मूँगा। प्रवाल।

अगारकवार--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारकवार] मगल का दिन। भौमवार [को०]।

अगारकारी--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारकारी] काठ को जलाकर वेचने के लिये कोयला तैयार करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अगारकित--वि० [सं० अङ्गारकित] दग्ध। जला हुआ। भुना हुआ। [को०]।

अगारकृत--संज्ञा पुं० दे० 'अगारकारी' [को०]।

अगारधानी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारधानी] आग रखने का वरतन। अँगीठी। बोरसी [को०]।

अगारधानिका--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगारधानी' [को०]।

अगारपरिपाचित--संज्ञा पुं० दे० 'अगारपरिपाचित' [को०]।

अगारपर्ण¹--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारपर्ण] चित्ररथ गधर्व का एक नाम।

अगारपर्ण²--वि० दे० 'चित्ररथ'

अगारपाचित--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारपाचित] अगार या दहकती हुई आग पर ही रखकर पकाया हुआ खाना, जैसे कवाव, नानखताई इत्यादि।

अगारपात्री--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारपात्री] अँगीठी। अगारधानी [को०]।

अगारपुष्प--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारपुष्प] इगुदी वृक्ष जिसके फूल अगार के समान लाल होते हैं। हिंगोट का पेड।

अगारमजरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारमञ्जरी] वह करज जिसकी मजरी लाल होती हैं। लाल करज की बेल [को०]।

अगारमजी--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगारमजरी' [को०]।

अगारमणि--संज्ञा पुं० दे० 'अगारकमणि'।

अगारमती--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारमती] कर्ण की स्त्री।

अंगारवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारवल्लरी] दे० 'अंगारवल्ली' [को०]।

अंगारवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारवल्ली] गुंजा की लता। घुँघची की बेल। चिरमटी की बेल।

अंगारवेणु—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारवेणु] लाल रंग का बाँस। बाँस का एक भेद [को०]।

अंगारशकटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारशकटी] अँगीठी। अंगारपात्री। गोरसी। बोरसी [को०]।

अंगारा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारक, प्रा० अंगारअ] दे० 'अंगार'।

मुहा०—अंगारा बनना = क्रोध के कारण मुँह लाल होना। गुस्से में होना। अंगारा हो जाना = दे० 'अंगारा बनना'। अंगारा होना = क्रोध से लाल होना। अंगारे उगलना = कटु वचन कहना। जली कटी सुनाना। अंगारे फाँकना = असह्य फल देनेवाला काम करना। अंगारे बरसना = (१) अत्यंत अधिक गर्मी पड़ना। आग बरसना। (२) दैवी कोप होना। अंगारों पर पैर रखना = (१) जान बूझकर हानिकारक कार्य करना या अपने को संकट में डालना। (२) जमीन पर पैर न रखना। इतराकर चलना। अंगारों पर लोटना = (१) अत्यंत रोष प्रकट करना। आग बबूला होना। झल्लाना। (२) डाह से जलना। ईर्ष्या से व्याकुल होना। उ०—'वह मेरे बच्चे को देखकर अंगारों पर लोट गई' (शब्द०)। (३) तड़पना व्याकुल होना। उ०—शाम से ही लोटना है मुझको अंगारों पै आज। —शेर०, भा० १, पृ० ६५६। अंगारों पर लोटाना = (१) जलाना। दाह करना। (२) तड़पाना। दुखी करना। लाल अंगारा = (१) बहुत लाल। खूब सुर्ख। उ०—'काटने पर तरबूज लाल अंगारा निकला' (शब्द०)। (२) अत्यंत क्रुद्ध। उ०—'यह सुनते ही वह लाल अंगारा हो गई' (शब्द०)।

अंगारावक्षपण—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारावक्षेपण] अंगार या जलता हुआ कोयला निकालने और बुझाने का एक पात्र। चिमटा [को०]।

अंगारि—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारि] अँगीठी। बोरसी।

अंगारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिका] १ अँगीठी। २ इक्षु। ईख। ३ ईख का छोटा टुकड़ा। ४ कली। ५. पलाश की कली [को०]।

अंगारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिणी] १ अँगीठी। बोरसी। आतिशदान। २ वह दिशा जिसपर डूबे हुए सूर्य की लाली छाई हो। ३ एक लता (को०)।

अंगारित—वि० [सं० अङ्गारित] १ भुना हुआ। २ दग्ध (एक प्रकार का भोजन जो जैन मुनियों के लिये त्याज्य है)। ३ जला हुआ [को०]।

अंगारित[2]—संज्ञा पुं० पलाश की ताजी कली [को०]।

अंगारिता—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिता] १ अँगीठी। २ कली। ३ पलाश की ताजी कली। ४ एक लता। ५ एक नदी का नाम [को०]।

अंगारी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारी] १ दहकते हुए कोयले का छोटा टुकड़ा। २ चिनगारी। ३. अंगार या दहकती हुई बिना लपट की आग पर पकाई हुई रोटी। लिट्टी। बाटी। ४ अँगीठी। बोरसी।

अंगारी[2]—वि० [सं० अङ्गारिन्] सूर्य द्वारा प्रतप्त (दिशा)।

अंगारीय—वि० [सं० अङ्गारीय] अंगार या कोयला बनाने के योग्य (काष्ठादि) [को०]।

अंगार्या—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गार्या] कोयले की ढेरी [को०]।

अंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गिका] १ स्त्रियों की कुरती। अँगिया। चोली। कचुकी। छोटा कपड़ा। २ सर्प की केंचुल (को०)।

अंगित(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'इंगित'। उ०—की कीरति अंगित काजे। —विद्यापति०, पृ० ५३३।

अंगिन्—वि० [सं० अङ्गिन्] दे० 'अंगी।'

अंगिनी—वि० [सं० अङ्गिनी] अंगवाली।

विशेष—इसका प्रयोग प्राय समस्तरूप में ही मिलता है, जैसे, अर्धांगिनी।

अंगिया(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगिका'—१।

अंगिर—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गिर] १ दे० 'अंगिरस'। २. तीतर पक्षी [को०]।

अंगिरस्—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गिरस्] १ एक प्राचीन ऋषि का नाम जो दस प्रजापतियों में गिने जाते हैं।

विशेष—ये अथर्ववेद के प्रादुर्भावकर्ता कहे जाते हैं। इसी से इनका नाम अथर्वा भी है। इनकी उत्पत्ति के विषय में कई कथाएँ हैं। कहीं इनके पिता को उरु और माता को आग्नेयी लिखा है और कहीं इनको ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न बतलाया गया है। स्मृति, स्वधा, सती और श्रद्धा इनकी स्त्रियाँ थीं जिनसे ऋचस् नाम की कन्या और मानस् नामक पुत्र हुए। इनकी बनाई एक स्मृति भी है।

२ बृहस्पति का नाम। ३. ६० संवत्सरों में छठे संवत्सर का नाम। ४. कटीला। कटीला गोंद। कतीरा।

अंगिरस—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गिरस्] १ परशुराम का एक शत्रु २ दे० 'अंगिरस'—२ [को०]।

अंगिरसी—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गिरसी] शरीर विज्ञान का ज्ञाता [को०]।

अंगिरा—संज्ञा पुं० दे० 'अंगिरस्'।

अंगिर्—संज्ञा पुं० [सं० अंगिर्] एक ऋषि जिन्होंने अथर्वण ऋषि से ब्रह्मविद्या प्राप्त की थी। अंगिरस् के गुरु सत्यवाह इनके शिष्य थे [को०]।

अंगी[1]—वि० [सं० अङ्गी] १ शरीरी। देहधारी। शरीरवाला। २. अवयवी। उपकार्य। अंशी। समष्टि। ३ प्रधान। मुख्य।

अंगी[2]—वि० स्त्री० अंगवाली (केवल समास में प्रयुक्त, जैसे, तन्वंगी, कोमलांगी आदि)।

अंगी[3]—संज्ञा पुं० १ नाटक का प्रधान नायक, जैसे सत्यहरिश्चंद्र में हरिश्चंद्र। २. प्रधान रस। नाटकों में शृंगार और वीर ये दो रस अंगी (प्रधान) कहलाते हैं और शेष रस अंग (अप्रधान)।

अंगी[4]—संज्ञा स्त्री० [डिं०] चौदह विद्याएँ।

अंगी(पु)[5]—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगिया'।

अंगीकति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अंगीकृत, प्रा० अंगीकत, हिं० अंगीकति] दे० 'अंगीकृति'। उ०—जो चाचा जी में श्रीनाथ जी गुसाईं जी की अंगीकति को संबंध दृढ़ है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ६५।

अंगीकरण—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गीकरण] १ दे० 'अंगीकार'। उ०—

अस्वीकरण और अगीकरण दोनो की क्षमता अपने प्राणो मे जगानी होती है।--सुनीता, पृ० २३७।

अगीकार--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गीकार] स्वीकार। मंजूर। कबूल। ग्रहण।

क्रि० प्र०--करना। उ०--जाकों हरि अगीकार कियौ।--सूर०, १।३७।--होना।

अगीकृत--वि० [सं० अङ्गीकृत] स्वीकार किया हुआ। ग्रहण किया हुआ। अपनाया हुआ। लिया हुआ। स्वीकृत। मंजूर। उ०--जो न अगीकृत करें वे होइ हौं रिन दास।--सूर०, १०।३४३१।

अगीकृति--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गीकृति] स्वीकृति। मजूरी। अगीकरण।

अगीय--वि० [सं० अङ्गीय] १ शरीर या अग सबधी। २ अग देश का [को०]।

अगुण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुण] बैंगन। भटा [को०]।

अगुर(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अगुल'--१। उ०--अगुर द्वै घटि होत सबनि सौं पुनि पुनि और मँगायौ।--सूर०, १०।३४२।

अगुरि(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरि] उँगली। उ०--मुँह अगुरि दै दै मुसुकावति।--नद ग्र०, पृ० २४३।

अगुरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरी] उँगली। उ०--(क) भरति नीर सुदरी। सु पानि पत्त अगुरी। पृ० रा०, ६१।३३६। (ख) जो कोई ब्रज के रुखन के पतौआ तथा डार तोरेगो ताके हाथ की अगुरी हो तोरेंगो।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३००।

अगुरीय--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुरीय] अँगूठी। मुंदरी [को०]।

अगुरीयक--संज्ञा पुं० दे० 'अगुरीय' [को०]।

अगुल--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुल] १ लबाई की एक नाप। एक आयत परिमाण। आठ जौ के पेट की लबाई। आठ यवोदर का परिमाण। उ०--साठि सु अगुल लंह्य किल्ली।--पृ० रा०, ३।२२।

विशेष--१२ अगुल का एक वित्ता और दो वित्ते का एक हाथ होता है।

२ ग्रास या बारहवाँ भाग (ज्यो०)। ३ उँगली। अगुलि। ४. अँगूठा। ५ चाणक्य या वात्स्यायन का एक नाम [को०]।

अगुलक--वि० [सं० अङ्गुलक] अगुल सबधी। जो अगुल के परिमाणवाला हो [को०]।

अगुलप्रमाण[१]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलप्रमाण] अगुलियो की लबाई या चौड़ाई [को०]।

अगुलप्रमाण[२]--वि० अगुली की लबाईवाला [को०]।

अंगुलमान--संज्ञा पुं०, वि० दे० 'अगुलप्रमाण' [को०]।

अगुलि--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलि] १ दे० 'अगुली'। उ०--तडित करिग अगुलि धरम दान भग्गि प्रथिराज।--पृ० रा०, ५७।८७।

मुहा०--अगुलि करना = बदनामी करना। अगुल्यानिर्देश करना। उ०--जिहि प्रियजन अगुलि करै तिहि प्रियजन किहि काज।--पृ० रा०, ६१।१२७३।

२. दस की सख्या (को०)।

अगुलिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिका] १ उँगली। एक प्रकार की चीटी [को०]।

अगुलिगण्य--[सं० अङ्गुलिगण्य] उँगलियों पर गिनने योग्य। बहुत कम। विरला। उ०--गोपाल का सच्चा भक्त अगुलिगण्य ही हो सकता है।--सपू० अभि० ग्र०, पृ० ३१२।

अगुलितोरण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलितोरण] त्रिपुट तिलक। तीन पतली अर्द्धचद्राकार समानातर रेखाओ का तिलक जिसे शैव लोग माथे पर लगाते हैं।

अगुलित्र--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलित्र] १ वह तत या तारो वाला बाजा जो कमानी से नहीं बल्कि उँगली मे मिजराब पहनकर बजाया जाता है, जैसे--सितार, बीन, एकतारा आदि। २ दे० 'अगुलित्राण' (को०)।

अगुलित्राण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलित्राण] गोह के चमड़े का बना हुआ दस्ताना जिसे बाण चलाते समय उँगलियों को रगड़ से बचाने के लिये पहनते हैं। उँगलियों की रक्षा के निमित्त गोह के चमड़े का एक आवरण। गोह के चमड़े का दस्ताना।

अगुलित्रान(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अगुलित्राण'। उ०--अगुलित्रान कमान बान छवि सुरनि सुखद असुरनि उर सालति।--तुलसी ग्र०, पृ० ४१५।

अगुलिनिर्देश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिनिर्देश] १ उँगली से सकेत करने का कार्य। २ बदनामी। निंदा [को०]।

अगुलिपचक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिपञ्चक] हाथ की पाँच उँगलियाँ जिनके नाम ये हैं--अगुष्ठ, प्रदर्शनी या तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका।

अगुलिपर्व--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिपर्वन्] उँगलियों की पोर। उँगली की गाँठ या जोड़।

अगुलिमुख--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिमुख] उँगली का सिरा या नोक [को०]।

अगुलिमुद्रा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिमुद्रा] १ अँगूठी जिसपर नाम खुदा हो। नामाकित अँगूठी। २ मुहर लगाने के लिये नाम खुदी अँगूठी।

अंगुलिमुद्रिका--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगुलिमुद्रा' [को०]।

अगुलिमोटन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिमोटन] अँगुली चटकाने या फोड़ने का काम। उँगली पुटकाना [को०]।

अगुलिवेष्ट--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिवेष्ट] दस्ताना [को०]।

अगुलिवेष्टक--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलिवेष्ट' [को०]।

अगुलिवेष्टन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिवेष्टन] १. दस्ताना। हथेली और उँगलियो को ढाँकने का आवरण। २ अगुलित्राण।

अगुलिसगा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिसङ्गा] उँगलियों मे लिपट जाने वाली लपसी। यवागू [को०]।

अगुलिसज्ञा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिसज्ञा] उँगली का इशारा [को०]।

अगुलिसंदेश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिसन्देश] उँगली की मुद्रा से या उँगली चुटकाकर सकेत करना [को०]।

अगुलिसभूत--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिसम्भूत] नख [को०]।

अंगुलिस्फोटन—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिस्फोटन] उँगलियों को फोड़ना या चटकाना [को०]।

अंगुली—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुली] १. उँगली। उ०—अरुन चरन अंगुली मनोहर।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३२५। २. हाथ का अँगूठा (को०)। ३. पाँव की उँगली (को०)। ४. पाँव का अँगूठा (को०)। ५. अंगुल का परिमाण (को०)। ६. हाथी के अगले सूँड़ का उँगलीनुमा सिरा या भाग। ७. एक नदी का नाम।

अंगुलीक—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलीक] अँगूठी [को०]।

अंगुलीपंचक—संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलिपंचक' [को०]।

अंगुलीपर्व—संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलिपर्व' [को०]।

अंगुलीमुख—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलीमुख] उँगली का सिरा या अगला भाग [को०]।

अंगुलीय—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलीय] अँगूठी। उ०—जैसे अंगुलीय में मरकत।—कुंकुम, पृ० ६४।

अंगुलीयक—संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलीय' [को०]।

अंगुलीसंभूत—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिसम्भूत] नख। नाखून [को०]।

अंगुल्यग्र—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुल्यग्र] उँगली का सिरा या अगला भाग [को०]।

अंगुल्यादेश—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलि + आदेश] उँगली का इशारा। उँगली से अभिप्राय प्रगट करना। इशारा। संकेत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अंगुल्यानिर्देश—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुल्यानिर्देश] बदनामी। कलंक। लांछन। अंगुश्तनुमाई। बुराई। दोषारोपण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अंगुश्त—संज्ञा पुं० [फा०] उँगली। अंगुली। उ०—अपने के तईं पादशाहत अंगुश्त आह धरा है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १६।

अंगुश्तनुमा—वि० [फा०] निंदनीय। बदनाम। कुख्यात [को०]।

क्रि० प्र०—करना = निंदा करना।—होना = निंदित होना। बदनाम होना।

अंगुश्तनुमाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] बदनामी। कलंक। लांछन। दोषारोपण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अंगुश्तरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] अँगूठी। मुँदरी। मुद्रिका। उ०—जब सुलेमाँ पाय की अंगुश्तरी।—दक्खिनी०, पृ० १८४।

अंगुश्ताना—संज्ञा पुं० [फा०] १. उँगली पर पहनने की पीतल या लोहे की एक छोटी टोपी जिसमें छोटे छोटे गड्ढे बने रहते हैं। इसे दरजी लोग कपड़ा सीते समय एक उँगली में पहन लेते हैं जिससे सूई न चुभ जाय। इसी से वे सूई को उसका पिछला हिस्सा दबाकर आगे बढ़ाते हैं। २. सोने या चाँदी की एक प्रकार की मुँदरी जो हाथ के अँगूठे में पहनी जाती है। ३. उँगली की रक्षा के लिये उसमें पहनने का धातु, चमड़े, सींग आदि का खोल। अंगुलित्राण (को०)।

अंगुश्तेनर—संज्ञा पुं० [फा०] अँगूठा [को०]।

अंगुष्ट(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंगुष्ठ'। उ०—अंगुष्ट दष्ट उरसे गुरज्ज।—हम्मीर रा०, पृ० ५।

अंगुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुष्ठ] १. हाथ या पैर की सबसे मोटी उँगली। अँगूठा। २. अँगूठे की चौड़ाई जो उँगलियों के दो पोरों की लंबाई के बराबर मानी जाती है [को०]।

अंगुष्ठमात्र—वि० [सं० अङ्गुष्ठमात्र] अँगूठे की ऊँचाई का। अँगूठे जैसा [को०]।

अंगुष्ठमात्रक—वि० [स्त्री० अङ्गुष्ठमात्रिका] दे० 'अंगुष्ठमात्र' [को०]।

अंगुष्ठा(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंगुष्ठ'। उ०—जप बिहूरी गत अंगुष्ठा माला अधिक अपार।—कबीर सा०, पृ० ८८।

अंगुष्ठिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुष्ठिका] एक पौधे का नाम [को०]।

अंगुष्ठ्य—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुष्ठ्य] अँगूठे का नाखून [को०]।

अंगूठा—संज्ञा पुं० दे० 'अँगूठा'। उ०—उदधान पर डोलते प्राय, अंगूठे के बल हुए खड़े।—युगांत, पृ० ४१।

अंगूर[1]—संज्ञा पुं० [फा०] एक लता और उसके फल का नाम। द्राक्षा। दाख।

विशेष—यह भारत के उत्तरपश्चिम और पंजाब तथा कश्मीर आदि प्रदेशों में बहुत लगाया जाता है। हिमालय के पश्चिमीय भागों में यह आपसे आप भी होता है। उत्तर प्रदेश के कुमाऊँ, जौनसार और देहरादून तथा आंध्र और महाराष्ट्र प्रदेश के अहमदनगर औरंगाबाद, पूना और नासिक आदि स्थानों में भी इसकी उपज होती है। बंगाल में पानी अधिक बरसने के कारण इसकी बेल वैसी नहीं बढ़ सकती। बिहार प्रदेश में तिरहुत और दानापुर में इसकी कुछ टट्टियाँ तैयार की जाती हैं।

अंगूर की बेल होती है जो टट्टियों पर फैलती है। इसकी पत्तियाँ कुम्हड़े या नेनुए की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं। इसके फल हरे और बैंगनी रंग के तथा छोटे, बड़े, गोल और लंबे कई आकार के होते हैं। कोई नीम के फल की तरह लंबोतरे और कोई मकोय की तरह गोल होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। अंगूर की मिठास तो प्रसिद्ध ही है। भारतवासी इसे 'द्राक्षा' और 'मृद्वीका' के नाम से जानते हैं। चरक और सुश्रुत में इसका उल्लेख है। पर भारतवर्ष में इसकी खेती कम होती थी। फल प्रायः बाहर से ही मँगाए जाते थे। मुसलमान बादशाहों के समय अंगूर की ओर अधिक ध्यान दिया गया। आजकल हिंदुस्तान में सबसे अधिक अंगूर काश्मीर में होते हैं जहाँ वे पहाड़ के गड्ढों में लगते हैं। वहाँ इसकी शराब बनती है और सिरका भी बनता है। महाराष्ट्र देश में जो अंगूर लगाए जाते हैं उनके कई भेद हैं जैसे—काली, फकीरी, हबशी, [illegible] साहेबी इत्यादि। अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान और सिंध में अंगूर बहुत अधिक और कई प्रकार के होते हैं—जैसे, हेटा, किशमिशी, कंधारी, हुसैनी इत्यादि। किशमिशी में बीज नहीं होता। काबुलवाले हेटा अंगूर को चूने और सज्जीखार के साथ गरम पानी में डुबाकर 'आबजोश' और किशमिशी को धूप में सुखाकर किशमिश बनाते हैं।

मुनक्का, जो दवा के काम में आता है, सुखाया हुआ अंगूर है। यह दस्तावर है और ज्वर और प्यास को कम करता है। खाँसी के लिये भी अच्छा है। 'ब्रांडी' आदि कई मादक

वैदिक ओषधियाँ इससे तैयार होती हैं। हकीमों में इसका बहुत व्यवहार है।

अगूर का मडवा या अगूर की टट्टी = (१) अगूर की वेल के चढने और फैलने के लिये बाँस की खपचियों का बना हुआ मडप। (२) एक प्रकार की आतिशबाजी जिससे अगूर के गुच्छे के समान चिनगारियाँ निकलती हैं।

मुहा०—अगूर खट्टे होना = प्रयत्न करने पर भी प्राप्त न होनेवाली अच्छी चीज को बुरा बताना। उ०—अत में यह कह चलती हुई अरे ये खट्टे हैं अगूर।—खिलौना १९२७।

अगूर[2]—सज्ञा पुं० मास के छोटे छोटे लाल दाने जो घाव भरते समय दिखाई पडते हैं। दे० 'अकुर'[2]।

मुहा०—अगूर आना = घाव के ऊपर चमडे की पतली झिल्ली पडना। घाव पुरना। घाव भरना। अगूर तडकना = भरते हुए घाव पर बधी हुई मास की झिल्ली का फट जाना। अगूर फटना = दे० 'अगूर तडकना'। अगूर बँधना = घाव के ऊपर मास की नई झिल्ली चढना। घाव भरना। अगूर-भरना = दे० 'अगूर बँधना'।

अगूर[3]—सज्ञा पुं० [स० अकुर] अकुर। अँखुआ।

अगूरशेफा—सज्ञा पुं० [फा०] एक जडी जो हिमालय पर शिमले से लेकर काश्मीर तक होती है। इसे सग अगूर, सूची, जवराज तथा गिरबूटी कहते हैं। इसकी जड और पत्तियाँ दमे और वायु के दर्द को दूर करती हैं।

अगूरी[1]—वि० [फा०] १. अगूर से बना हुआ। २. अगूरी रग का।

अगूरी[2]—सज्ञा पुं० कपडा रँगने का एक हरा रग जो नील और टेसू के फूल को मिलाकर बनाया जाता है।

अगूरी[3]—सज्ञा स्त्री० [अगूर की शराब का सक्षिप्त रूप] शराब।

अगूरी वेल—सज्ञा स्त्री० [फा० अगूरी + हिं० वेल] कपडे आदि पर काढी जानेवाली या छापी जानेवाली अगूर की लता की आकृति।

अगूष—सज्ञा पुं० [स० अङ्गूष] १ घूस नाम का जतु। २ वाण। तीर (को०)।

अगोछ—सज्ञा पुं० [स० अङ्गोञ्छ] अगोछा। (को०)।

अगोछन—सज्ञा पुं० [स० अङ्गोछन] दे० 'अगोछ' (को०)।

अगोछना(पु)—क्रि० स० दे० 'अँगोछना'। उ०—करि मजन अगोछि तन धूप वासि बहु अग।—पृ० रा०, १४। ५३।

अगोट—सज्ञा स्त्री० [स० अङ्ग + वर्त्म, प्रा० वट्ट] अग का गठन। शरीर की बनावट।

अगोटी—सज्ञा स्त्री० दे० 'अगोट'।

अग्य—वि० [स० अङ्ग्य] अग का। अग सबधी (को०)।

अग्रेज—सज्ञा पुं० दे० 'अँगरेज'।

अग्रेजियत—सज्ञा स्त्री० [हिं० अग्रेज + फा० इयत (प्रत्य०)] अग्रेजो अथवा अग्रेजी का प्रभाव। अग्रेजीपन। उ०—अग्रेजियत ने हमारा दिमाग ऐसा बिगाड दिया है।—प्रेमघन०, भा० १, (भू०)।

अग्रेजी—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँगरेजी'। उ०—अग्रेजी पढिकै जदपि सब गुन होत प्रवीन। पै निज भाषा ज्ञान बिनु रहत हीन के हीन।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७३२।

अंघ—सज्ञा पुं० [स० अङ्घ] अघ। पाप (को०)।

अघस—सज्ञा पुं० [स० अङ्घस्] पाप। पातक। अपराध।

अघारि—सज्ञा पुं० [स० अङ्घारि] १ पाप का शत्रु। २. सोम के रक्षक का नाम। ३ दीप्तिशील ज्योति से युक्त (को०)।

अघ्रि—सज्ञा पुं० [स० अङ्घ्रि] १ पैर। चरण। पाँव। २ पेड की जड। मूल (को०)। ३ छद का चतुर्थ चरण (को०)।

अघ्रिकवच—सज्ञा पुं० [अङ्घ्रिकवच] जूता। उपानह (को०)।

अघ्रिज—सज्ञा पुं० [स० अङ्घ्रिज] क्षुद्र। निम्न (को०)।

अघ्रिनाम—सज्ञा पुं० [स० अङ्घ्रिनाम] १ वृक्ष की जड। २ पैर। पाँव (को०)।

अघ्रिनामक—सज्ञा पुं० दे० 'अङ्घ्रिनाम' (को०)।

अघ्रिप—सज्ञा पुं० [स० अङ्घ्रिप] पादप। वृक्ष। पेड।

अघ्रिपर्णिका—सज्ञा स्त्री० [स० अङ्घ्रिपर्णिका] सिंहपुच्छी नाम की लता (को०)।

अघ्रिपर्णी—सज्ञा स्त्री० [स० अङ्घ्रिपर्णी] दे० 'अङ्घ्रिपर्णिका' (को०)।

अघ्रिपान—सज्ञा पुं० [स० अङ्घ्रिपान] पैर का अँगूठा चूसने का कार्य (को०)।

अङ्घ्रिवल्लिका—सज्ञा स्त्री० [स० अङ्घ्रिवल्लिका] सिंहपुच्छी लता। अघ्रिपर्णी (को०)।

अघ्रिवल्ली—सज्ञा स्त्री० दे० 'अघ्रिवल्लिका' (को०)।

अघ्रिस्कध—सज्ञा पुं० [स० अङ्घ्रिस्कन्ध] टखना। गुल्फ (को०)।

अच[1]—वि० [स० अञ्च] घुँघराला। घूमा हुआ। [को०]।

विशेष—केवल 'रोमाच' में प्राप्त तथा समास का अतिम शब्द।

अच[2]—सज्ञा स्त्री० [स० अर्चि, प्रा० अच्चि, अच्च, अप० अच] १ स्फुलिंग। चिनगारी। उ०—तन सट्टं सटि मुकति बोल भारथ्थी बोलै। लोह अच उड्डत पत्त तरवर जिमि डोलै।—पृ० रा०, २७।२४। २. दे० 'आँच'। उ०—जा तें अतर गुरुमति आई। ताँ कौं अच न लागै काई।—प्राण०, पृ० ३।

अचति—सज्ञा पुं० [स० अञ्चति] १ वायु। २. अग्नि। ३ वह व्यक्ति जो गतिशील हो [को०]।

अचती—सज्ञा पुं० दे० 'अचति' [को०]।

अचन—सज्ञा पुं० [स० अञ्चन] झुकाने या घुमाने की स्थिति अथवा कार्य।

अचना(पु)—क्रि० स० दे० 'ऐंचना'। उ०—(क) गहे इत उत्त सु गिद्धनि गिद्ध। मरालिय अचि सिवाल अतिद्ध।—पृ० रा०, ६६।१४०३। (ख) चौतेगी सद्दवाज बान अरि प्रान सु अचै।—पृ० रा०, २७।४३।

अचर(पु)—सज्ञा पुं० दे० 'अचल'। उ०—कौन निरासी दीठि लगाई लै लै अचर भारै।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ९३४। २. दुपट्टा। उपरना। उ०—राजन अचर छोरु करि जैत प्रससन काज। दिल्ली घर अग्गर इहै जुज्झ परयौ घर आज।—पृ० रा०, ६६।१२४७।

अचल—सज्ञा पुं० [स०] साडी या ओढनी का वह भाग जो सिर अथवा कधे पर से होता हुआ सामने छाती पर फैला हुआ हो। साडी का छोर। आँचल। पल्ला। छोर। अँचरा। उ०—बहुरि बदन बिधु अचल ढाँकी।—मानस, २।११७। २ दुपट्टा। उपरना। उ०—लोचन सजल प्रेम पुलकित तन गर अचल कर माल।—सूर०, १।१८९। ३ किसी प्रदेश या स्थान आदि का एक भाग। उ०—वन गुहा- कुज मरु अचल

मे हूँ खोज रहा अपना विकास ।—कामायनी पृ० १५८ । ४ किनारा । तट । ५ छोर । किनारा । ६ कोर, जैसे 'नयनाचल' मे अचल । ७ तलहटी । घाटी । उ०—उसकी वह जलन भयानक फैली गिरि अचल मे फिर ।—कामायनी, पृ० २८१ ।

मुहा०—अचल जोरना = दीनता व्यक्त करना उ०–अचल जोरे करत वीनती मिलिवे को सव दासी ।—सूर० (शब्द०)। अचल-देना = आँचल की ओट करना । लज्जा व्यक्त करना । परदा करना । उ०—पीतावर वह सिर से ओढत अचल दै मुसकात । —सूर०, १०।३३८ । अचल पसारना = दे० 'अँचरा पसारना' । उ०—पुर नारि सकल पसारि अचल विधिहि वचन सुनावही । —मानस, १।३११ । अचल (मे) गाँठ देना = याद रखने के लिये आंचल मे ग्रथि देना । वरावर स्मरण रखना । कभी न भूलना । उ०—अचल गाँठि दई दुख भाज्यो, सुख जु आनि उर पैठ्यो ।—सूर०, ६।१६४ । अचल रोपना = दीनता और विनय प्रदर्शन के साथ प्रार्थना करना । अँचरा पसारकर याचना करना । निहोरा करना । उ०—चरन नाइ सिर अचल रोपा ।—मानस, ६।६ । अचल लेना = दे० 'अचल देना' । उ०—रुद्र कौ देखि कै मोहिनी लाज करि लियौ अचल रुद्र तब अधिक मोह्यौ ।—सूर०, ८।१० । अचल भरना = (१) मगलाशसा के साथ वधू या पुत्री के आँचल में अन्न, दूब, हल्दी आदि डालना । एक मगल कृत्य । (२) कामना पूरी होने का आशीर्वाद । (३) गोद भरना ।

अचला(पु)—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँचरा' । उ०—मन वधे अचला मिसि । —वेलि, दू० १५८ ।

अचित(पु)—वि० [सं० अचिन्त्य, प्रा० अचित] चितन मे परे । अचित्य । उ०—अचित पुरुप को मगल हसा गावै हो ।—धर्म० श०, पृ० ५४ ।

अचित—वि० [सं० अञ्चित] १ पूजित । आराधित । समानित । २ विशिष्ट । प्रधान । ३ भुका हुआ । घुमावदार । ४ धनुपाकार । ५ सुदर । ६ गत । गया हुआ । ७ ग्रथित । गूँथा हुआ [को०] ।

अचितपत्र—सज्ञा पुं० [सं० अञ्चितपत्र] टेढे दल वाला कमल [को०] ।

अचितपत्राक्ष—वि० [सं० अञ्चितपत्राक्ष] कमल की तरह नेत्र-वाला [को०] ।

अचितभ्रू—वि० स्त्री० [सं० अञ्चितभ्रू] वक्र भौंहोवाली या धनुपाकार भौंहोवाली [को०] ।

अचितलागूल—वि० [सं० अञ्चितलाङ्गूल] टेढी दुमवाला (जैसे वदर) [को०] ।

अची(पु)—सज्ञा स्त्री० दे० 'अच' । उ०—जिने लोहची लग्गि अची न कव्व ।—पृ० रा०, २४।२६१ ।

अचुता(पु)—वि० [सं० अच्युत] जो विचलित न हो । अडिग । उ०—पारब्रह्म वारे एह लटका अचुता चुत मे लूटा ।—सत दरिया, पृ० ११३ ।

अचुर(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अनुचर] सेवक । दास । उ०—फुनवारी मो कीजे वासा । अचुर भेज देहि तेहि पासा ।—इद्रा०, पृ० १२७ ।

अच्छया(पु)†—सज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] कामना । इच्छा । उ०—मन अच्छया पूरन भई सबको मिटयो री मदन दुख दद ।—ब्रज-निधि ग्र०, पृ० १६६ ।

अछ(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अक्ष] आँख ।—उ० इछिनि अछ वखानि कै मोहि सुनावहु एह ।—पृ० रा०, १४।१३७ ।

अछर—सज्ञा पुं० [सं० अक्षर] १ मुँह के भीतर का एक रोग जिसमे काँटे से उभर आते हैं । २ अक्षर । ३. मत्र । टोना । जादू ।

मुहा०—अछर मारना = जादू करना । टोना करना । मत्रप्रयोग करना । उ०—मेरे अछर मारि परान लिए, सुध लाग रही भइ वावरिया । —गीत (शब्द०) ।

अछि(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अच्छि] आँख । नेत्र । उ०—इच्छइ जु अछि वके करन, सका लज्ज वसकरी ।—पृ० रा०, ५८।१२३ ।

अछया—सज्ञा पुं० [सं० इच्छा, गु० इछा] लोभ । लालच । इच्छा । कामना । लालसा ।—डिं० ।

अज¹—सज्ञा पुं० [सं० अब्ज, प्रा० * अज्ज, > अप० * अज] कमल । कमल का फूल ।—अनेकार्थ० ।

अज²—सज्ञा पुं० [सं० अञ्जस] क्रोध । उ०—मजु काम सव रूप, अज गजवध महावल ।—पृ० रा०, १।२३० ।

अजन¹—सज्ञा पुं० [सं० अञ्जन] [क्रि० अँजवाना, अँजाना] १ श्यामता लाने या रोग दूर करने के निमित्त आँख की पलको के किनारे पर लगाने की वस्तु । काजल । आंजन । उ०—अजन रजन हूँ बिना खजन गजन नैन ।—विहारी० र०, ४६ । २. सुरमा । उ०—अजन आड तिलक आभूषण सचि आयुधि वड छोट ।—सा० लहरी, (उ०, १६) ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—लगाना ।—सारना ।

३. सोलह शृगारो मे एक । ४. स्याही । रोशनाई । ५ रात । रात्रि । उ०—उदित अजन पै अनोखी देव अगिन जराय ।—सा० लहरी, ३२ । ६ सिद्धाजन जिसके लगाने से कहा जाता है कि जमीन मे गडे खजाने आदि दीख पडते हैं । उ०—यथा सुअजन अजि दृग साधक सिद्ध सुजान ।—मानस, १।१।७ लेप । उ०—निरजन वने नयन अजन ।—परिमल, पृ० १५८ । ८ माया । ६ अलकारो मे प्रयुक्त व्यजना वृत्ति का एक भेद जिसमे कई अर्थोंवाले किसी शब्द का प्रयोग किसी विशेष अर्थ मे हो और वह अर्थ दूसरे शब्द या पद के अर्थ से स्पष्ट हो । अभिधामूलक व्यजना वृत्ति । १० पश्चिम दिशा का दिग्गज । ११ एक पर्वत का नाम । कृष्णाजनगिरि । सुलेमान पर्वत शृखला । १२. कद्रु से उत्पन्न एक सर्प का नाम । १३ छिपकली । बिस्तुइया । १४ अग्नि (को०) । १५. पश्चिम दिशा (को०) । १६. एक देश का नाम । १७ एक जाति का वगला जिसे नटी भी कहते हैं । आँजन । १८. एक पेड जो मध्य प्रदेश, बुदेलखड, मद्रास, मैसूर आदि मे बहुत होता है । इसकी लडकी श्यामता लिए हुए लाल रग की और बडी मजबूत होती है । यह पुलो और मकानो मे लगती है । इससे अन्य सामान भी बनते हैं । १६ एक पार्थिव खनिज द्रव्य जिसका सुरमा बनता है (को०) । २० आंख मे अजन लगाने का कार्य (को०) ।

अजन²—वि० काला । सुरमई । उ०—उडत फूल उडगन नभ अतर अजन घटा घनी ।—सूर० २।२८ ।

यौ०—अजनकेश । अजनकेशी । अजनशलाका । अजनसार । अजनहारी ।

अजन³—संज्ञा पुं० [अ० एंजिन दे० 'इंजन'। उ०—जो जान देना हो अंजन से कट मरो एक दिन।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६३२।

अजन⁴—संज्ञा पुं० [सं० अर्जन, प्रा० अज्जण] उपार्जन। कमाना।

अजनक—संज्ञा पुं० [अञ्जनक] सुरमा [को०]।

अजनकेश—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जनकेश] दीपक। दीया। चिराग।

अजनकेशी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनकेशी] नख नामक सुगधद्रव्य जिसके जलाने से अच्छी महक उठती है। हट्टविलासिनी। नखी।

अजनकेशी²—वि० स्त्री० अजन सदृश काले बालवाली स्त्री [को०]।

अजनगिरि—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जनगिरि] नीलगिरि पर्वत।

अजनता—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनता] पहचान [को०]।

अजननामिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जननामिका] पलकों पर होनेवाली फुसी। बिलनी।

अजनशलाका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनशलाका] आँजन या सुरमा लगाने के लिये जस्ते वा सीसे की सलाई। सुरमचू।

अजनसार—वि० [सं० अजन + हिं० सारना] सुरमा लगा हुआ। अजन युक्त। आँजा हुआ। जिसमे अजन सारा या लगाया गया हो। उ०—एक तो नैना मद भरे दूजे अजनसार। ए चोरी कोउ देत है मतवारे हथियार (शब्द०)।

अंजनहारी—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जन + कारिन्] १ आँख की पलक के किनारे की फुसी। बिलनी। गुहाजनी। गुहाई। अजना। एक कीडा। भृगी। २ एक प्रकार का उडनेवाला कीडा। भृगी नामक एक कीडा।

विशेष—इसे कुम्हारी या बिलनी भी कहते हैं। यह प्रायः दीवार के कोनों पर गीली मिट्टी से अपना घर बनाता है। कहते हैं, इस मिट्टी को घिसकर लगाने से आँख की बिलनी अच्छी हो जाती है। इसी कीडे के विषय मे यह प्रसिद्ध है कि वह दूसरे कीडों को पकडकर अपने समान कर लेता है, जैसे, भइ गति कीट भृग की नाईं। जहँ तहँ मैं देखौं रघुराई।—तुलसी० (शब्द०)।

अजना¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जना] १ कुजर नामक बदर की पुत्री और केसरी नामक बदर की स्त्री जिसके गर्भ से हनुमान उत्पन्न हुए थे। हनुमान की माता। कहीं कहीं अजना को गौतम की पुत्री भी लिखा है। २ आँख की पलक के किनारे पर होनेवाली एक लाल छोटी फुसी जिसमे जलन और सूई चुभने के समान पीडा होती है। बिलनी। गुहाजनी। ३. दो रग की छिपकली। ४ उत्तर पूर्व के दिग्गज सुप्रतीक की स्त्री (को०)।

अजना²—संज्ञा पुं० १. एक जाति का मोटा धान जो पहाडी प्रदेशो मे होता है। २. एक पहाड।

अजना³(पु)—क्रि० स० [सं० अञ्जन] दे० 'आँजना'। उ०—(क) कालिंदी न्हावहिं न नयन अजैं न मृगमद।—पृ० रा०, २।३४६। (ख) जथा सुअजन अजि दृग साधक सिद्ध सुजान।—मानस, १।१।

अजनागिरि—संज्ञा पुं० दे० 'अजनगिरि' [को०]।

अजनाद्रि—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जनाद्रि] अजन नामक पर्वत जिसका उल्लेख सस्कृत ग्रथो मे है। यह पश्चिम दिशा में माना जाता है।

अजनाधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनाधिका] एक प्रकार की छिपकली [को०]।

अजनानदन—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जनानन्दन] अजना के पुत्र। हनुमान।

अजनावती—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनावती] १ उत्तरपूर्व के दिग्गज की स्त्री। २ कालाजन नामक एक वृक्ष [को०]।

अजनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनिका] १ एक प्रकार की छिपकली। २ छोटी चुहिया। ३ दे० 'अजनावती' [को०]।

अजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनी] १ हनुमान की माता अजना। उ०—दूत राम राय को सपूत पूत पौन को तू, अजनी को नदन प्रताप भूरि भानु सो।—तुलसी ग्र०, पृ० २४८। २ माया। ३ वह स्त्री जिसने चदनादि का लेप लगाया हो। ४ एक काष्ठौषधि। कुटकी। ५ कालाजन नामक वृक्ष (को०)। ६ आँख की पलक की फुसी। बिलनी।

अजनीकुमार—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जनी + कुमार] अजनी के पुत्र। हनुमान। उ०—बिगरी सवार अजनीकुमार कीजे मोहि जैसे होत आए हनुमान के निवाजे हैं।—तुलसी० ग्र०, पृ० २५१।

अजबार—संज्ञा पुं० [फा०] मध्य एशिया की फरात नदी के किनारो पर होनेवाला एक पौधा जिसकी जड का काढा और शर्बत हकीम लोग सर्दी और कफ के रोगो मे एव रक्तस्राव बद करने के लिये देते हैं। इद्राणी।

अजर(पु)—वि० [सं० उज्ज्वल]। उज्ज्वल। उजला उ०—सित अजर रजनीय पुरनि गध्रव पग धारिय।—पृ० रा०, १।३४८।

अजरपजर—संज्ञा पुं० [अनुध्व० सं० पञ्जर] देह का बद। शरीर का जोड। ठठरी। पसली। हड्डी पसली।

मुहा०—अजर पजर ढीला होना = शरीर के जोडो का उखडना वा हिल जाना। देह का बद बद टूटना। शिथिल होना। लस्त होना। अजर पजर तोड देना = अग भग करके बेकाम कर देना।

अजरपजर—क्रि० वि० अगल बगल। पार्श्व मे।

अजरि—संज्ञा स्त्री० दे० 'अजलि'।

अजल¹—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलि] दोनो हथेलियो को मिलाकर बनाया हुआ सपुट वा गड्ढा जिसमे पानी वा और कोई वस्तु भर सकते हैं। उ०—अजल भर आटा साईं का। बेटा जीवै माई का।—(फकीरो की बोली)।

अजल²—संज्ञा स्त्री० दे० 'अजली'।

अजल(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अन्नजल'। उ०—जब अजल मुँह सोवा समुद न सँवरा जागि। अब धरि काढ मच्छ जिमि पानी काढत आगि।—जायसी (शब्द०)

अजला—संज्ञा पुं० दे० अजल।

अजलि—संज्ञा स्त्री० दे० 'अजली'।

अंजलिक—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिक] अर्जुन के बाणो मे से एक का नाम [को०]

अजलिकर्म—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिकर्म] जुडे हाथो से नमस्कार करने का कार्य [को०]।

अजलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जलिका] १. एक प्रकार की छोटी चुहिया। २. लजाधुर। छुईमुई [को०]।

अजलिकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जलिकारिका] १ नमस्कार करने की मुद्रावाली मिट्टी की छोटी मूर्ति (को०)। २ लजाधुर लता।

अजलिगत—वि० [सं० अञ्जलि+गत] १ अजली मे आया हुआ। हाथ मे पडा हुआ। दोनो हथेलियो पर रखा हुआ। उ०—अजलिगत सुम सुमन जिमि सम सुगध-कर दोउ। —मानस, १।३।

अजलिपुट—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिपुट] दोनो हथेलियो को मिलाने से बना हुआ खाली स्थान जिसमे पानी वा कोई और वस्तु भर सकते हैं। अँजली।

अजलिवधन—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिवन्धन] माथे तक उठाई हुई अजलि से प्रणमन [को०]।

अजलिवद्ध—वि० [सं० अञ्जलिवद्ध] हाथ जोडे हुए।

अजली—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जली] १ दोनो हथेलियो को मिलाकर बनाया हुआ सपुट। दोनो हथेलियो का मिलाने से बना हुआ खाली स्थान वा गड्ढा जिसमे पानी वा और कोई वस्तु भर सकते हैं। उ०—निज विस्तार समेटि अजली आनि समानी। —रत्नाकर, भा० १, पृ० २१७। २ उतनी वस्तु जितनी एक अजलि मे आए। प्रस्थ। कुडव। दो प्रसृति। एक नाप जो वीस मागधी तोले या सोलह व्यावहारिक तोले अथवा एक पाव के बराबर होती है। दो पसर। ३ अन्न की राशि मे से तौलते समय दोनो हथेलियो से दान के लिये निकाला हुआ अन्न।

अजस्—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जस्] मलहम [को०]।

अजस—वि० [सं० अञ्जस] १. सीधा। सरल। २ निश्छल। ईमानदार [को०]।

अजसा—क्रि० वि० [सं० अञ्जसा] १ शीघ्रता से। तुरत। २ ठीक ठीक। यथावत्। ३ सीधे मे। साक्षात् [को०]।

अजसायन—वि० [सं० अञ्जसायन] सीधी गतिवाला। ऋजुगामी [को०]।

अजहा†—वि० [हि० अनाज+हा (प्रत्य०)] (स्त्री० अजही) अनाज का। अन्न के मेल मे बना हुआ।

अजही†[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह बाजार जहाँ अन्न विकता है। अनाज की मडी।

अजही†[2]—वि० अनाज की। अनाज से बनी हुई।

अजाम—संज्ञा पुं० [फा०] १ समाप्ति। पूर्ति। अत। आखीर। उ०—अजाम की मजिल है वडी देखिए क्या हो।—कविता कौ०, भा ४, पृ० ५८५। २ परिणाम। फल। नतीजा।
क्रि० प्र०—करना।—देना।—पर पहुँचना या पहुँचाना=पूरा करना। समाप्त करना। निपटाना। प्रवध करना। उ०—काम क्या अजाम देगा दूसरा। जब नहीं सकते हमी अजाम दे।—चोखे०, पृ० ६६।

अजारना(पु)—क्रि० स० [सं० अर्जन] कमाना। सचित करना।

अजि[1]—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जि] १ प्रेरक। भेजनेवाला। २ आदेशदाता। ३ विपुड [को०]।

अजि[2]—संज्ञा स्त्री० १ अगराग। २ रग। ३ जननेंद्रिय [को०]।

अंजिक—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जिक] सूर्य। रवि [को०]।

अजित[1]—वि० [सं० अञ्जित] १ अजन लगाए हुए। अजनसार। आँजे हुए। उ०—रज रजित अजित नयन घूँटन डोलत भूमि। —पृ० रा०, १।७१८।

अजित[2]—वि० [सं० अञ्चित] पूजित। आराधित (डि०)।

अजिवार—संज्ञा पुं० दे० 'अजवार'

अजिव—वि० [सं० अञ्जिव] पिच्छिल। चिकना। फिसलाहट [को०]।

अजिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जिष्ठ] सूर्य [को०]।

अँजिष्णु—संज्ञा पुं० दे० 'अजिष्ठ'।

अजिसना(पु)—क्रि० अ० [सं० अञ्जसा] शीघ्रता करना। उ०—अजिसिय हँसिय अतर गसिय मसिय सह उद्धर घँमिय।—पृ० रा०, ६७।३५७।

अजिहिषा—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जिहिषा] जाने की इच्छा [को०]।

अजी—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जी] १ पीसने का एक यत्र। २ आशिष आशीर्वाद [को०]।

अंजीर[1]—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जीर, फा० अजीर] एक प्रकार का पेड तथा उसका फल।
विशेष—यह गूलर के समान होता है और खाने मे मीठा होता है। यह भारतवर्ष मे बहुत जगह होता है। पर अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान और काश्मीर इसके मुख्य स्थान हैं। इसके लगाने के लिये कुछ चूना लगी हुई मिट्टी चाहिए। लकडी इसकी पीली होती है। इसके कलम फागुन मे काटकर दूर दूर क्यारियो मे लगाए जाते हैं। क्यारियाँ पानी से खूब तर रहनी चाहिएँ। लगाने से दो ही तीन वर्ष बाद इसका पेड फलने लगता है और १४ या १५ वर्ष बराबर फल देता रहता है। यह वर्ष मे दो बार फलता है। एक बार जेठ-असाढ मे और फिर फाल्गुन मे। माला मे गुथे हुए इसके सुखाए हुए फल अफगानिस्तान आदि से हिंदुस्तान मे बहुत आते हैं। सुखाते समय रग चढाने और छिलके को नरम करने के लिये या तो गधक की धूनी देते हैं अथवा नमक और शोरा मिले हुए गरम पानी मे फलो को डुबाते हैं। भारतवर्ष मे पूना के पास खेडशिवापुर नामक गाँव के अजीर सबसे अच्छे होते हैं। पर अफगानिस्तान और फारस के अजीर हिंदुस्तानी अजीरो से उत्तम होते हैं। सुखाया हुआ अजीर का फल स्निग्ध, पुष्टिकर और रेचक होता है। यह दो तरह का होता है, एक जो पकाने पर लाल होता है और दूसरा काला।

अजीर[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अजिर] आँगन। उ०—ऐन अजीर एक करु मेला।—सत दरिया०, पृ० ३।

अजु(पु)—वि० [सं० ऋजु, प्रा० अजु] सरल। स्पष्ट। उ०—पहुपजलि अजु सुरग बन।—पृ० रा०, ७।३४८।

अजुवार—संज्ञा पुं० दे० 'अजवार' (को०)।

अजुमन—संज्ञा पुं० [फा०] सभा। समाज। मजलिस। मडली।

अजुल(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अजली'। उ०—सायर मध्य सुठाम करत त्रिभुवन तन अजुल।—पृ० रा०, २।६२

अजुलि—संज्ञा स्त्री० दे० 'अजलि'। उ०—मजुल अजुलि भरि भरि पिय कौं तिय जल मेलन।—नद० ग्र०, पृ० २८।
मुहा०—अजुलि करना=प्रणाम करना। उ०—दडव्रत अजुलि करिय मन आनद सधीर।—पृ० रा०, ६।३८। अंजुलि जोरना=हाथ

जोड़ना। उ०—अंजुलि जोरि करात करात। कहन लगे विप्रनि सों बात।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०१।

अजुली—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंजली'। उ०—अंजुली जल घटत जैसें तैसें ही तन यह गयौ।—सूर०, १०।३८६५।

मुहा०—अंजुली करना = आचमन करना। उ०—हरि चरन अब अंजुली कीन।—पृ० रा०, १।४३६।

अजू—संज्ञा पुं० [सं० अश्रु] आँसू। उ०—ममदर एक आँख के अंजू में।—दक्खिनी०, पृ० १६६।

अझा—संज्ञा पुं० [सं० अनध्याय प्रा० अणज्झा, अणज्झाअ] नागा। तातील। छुट्टी। काम न करने का दिन। उ०—(क) मन को ममूमि मननावन सो रुसि सखी दासिन को दूसि रही रंग झुकि झझा सी। सोवै, सुख मोवै, सुक सारिका लचावै चोचे न रुचिर बानि मानि रहै अझा सी।—देव (शब्द०)। (ख) अझा सी दिन की भई सझा सी सकल दिसि गगन लगन रही गर्द छवाय है'—भूषण (शब्द०)। (ग) काम मे चार दिन का अझा हो गया (शब्द०)।

अझू—संज्ञा पुं० दे० 'अजू'।—दक्खिनी०, पृ० ७८।

अटमट—वि० दे० 'अट्ट सट्ट'।

अटा—संज्ञा पुं० [सं० अण्ड, प्रा० अडअ] १ बड़ी गोली।

विशेष—इसका प्रयोग अफीम और भंग के सबंध मे अधिक होता है। जैसे अफीम का अटा चढा लिया, अब क्या है?

२ सूत वा रेशम का लच्छा। ३ बड़ी कौड़ी। ४ एक खेल जिसे अँगरेज लोग हाथीदाँत की गोलियो से मेज पर खेला करते हैं। बिलियर्ड।

यौ०—अटागुड़गुड़। अटाघर। अटाचित। अटावधू।

अटागुडगुड—वि० [हिं० अटा + गुडगुड] नशे मे चूर। सज्ञाशून्य। बेहोश। बेसुध। अचेत।

क्रि० प्र०—होना।

अटाघर—संज्ञा पुं० [हिं० अटा + घर] वह कमरा जिसमे गोली का खेल खेला जाय। इस खेल को अँगरेजी मे बिलियर्ड कहते हैं।

अटाचित—क्रि० वि० [हिं० अटा + चित] पीठ के बल। सीधा। पीठ जमीन पर किए हुए। पट और औंधा का उलटा।

क्रि० प्र०—गिरना। पडना—।—होना।

मुहा०—अटाचित होना = (१) स्तभित होना। अवाक् होना। (२) पीठ के बल गिर पडना, जैसे, इस खबर को सुनते ही वह अटाचित हो गया (शब्द०)। (३) बेकाम होना। बरबाद होना। किसी काम का न रह जाना, जैसे, व्यापार मे उसे ऐसा घाटा आया कि वह अटाचित हो गया (शब्द०)। ४ नशे मे बेसुध होना। बेखबर होना। अचेत होना। चूर होना। उ०—वह भंग पीते ही अटाचित हो गया (शब्द०)।

अटाधार—संज्ञा पुं० दे० 'बटाधार' उ०—'फैशन ने तो बिल और टोटल के इतने गोले मारे कि अटाधार कर दिया और सिफारिश ने भी खूब ही छकाया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४७६।

अटावधू—संज्ञा पुं० [सं० अण्ट + बन्धक] जुए मे फेंकनेवाली कौड़ी जिसे जुआरी सब कुछ हारने पर दाँव पर रख देता है।

अटी—संज्ञा पुं० [सं० अण्ट] [क्रि० अँटियाना] १ उँगलियों के बीच का स्थान। अंतर। घाई। २ धोती की वह लपेट जो कमर पर होती है और जिसमे पैसा भी रखते हैं। गाँठ। मुर्री।

मुहा०—अटी करना—किसी का माल उडा लेना। धोखा देकर कोई वस्तु ले लेना। अटी चढाना = अपने मतलब पर लाना। वश मे करना। अपने दाँव पर लाना। अटी पर चढाना = अपने दाँव मे लाना। अटी मारना = (१) जुवा खेलते समय कौड़ी को उँगलियो के बीच मे छिपा लेना (२) आँख बचाकर धीरे से दूसरे की वस्तु खिसका लेना। धोखा देकर कोई चीज उडा लेना। (३) तराजू की डाँडी को इस ढग से पकड़ना कि तौल मे चीज कम चढे। कम तौलना। डाँडी मारना। अटी रखना = छिपा रखना। दबा रखना। प्रगट न होने देना।

३ एक दूसरे पर चढी हुई एक ही हाथ की दो उँगलियाँ। तर्जनी के ऊपर मध्यमा को चढाकर बनाई हुई मुद्रा। डँडिया। डडोइया।

विशेष—इसका चलन लडकों मे है। जब कोई लडका किसी अपवित्र वस्तु वा अत्यज से छू जाता है तब उसके साथ के और लडके उँगली पर उँगली चढा लेते हैं जिसमे यदि वह उन्हें छू ले तो छूत न लगे और कहते हैं कि दाँ दाल की अटी काला वाला छू ले'।

क्रि० प्र०—चढाना।—बाँधना। लगाना।

४ लच्छा। अट्टी। सूत वा रेशम की लच्छी।

क्रि० प्र०—करना = अटेरना। लढियाना। लपेटना। लच्छा बाँधना।

५ अटेरन। वह लकड़ी की वस्तु जिसपर सूत लपेटते हैं। ६ विरोध। बिगाड़। लड़ाई। शरारत। ७ कान मे पहनने की छोटी बाली जिसे धोबी, काछी, कहार आदि नीच जाति के मर्द पहनते हैं। मुरकी। छोटी बाली। ८ जेब। खलीता (को०)।

अटीबाज—वि० [हिं० अटी + फा० बाज] धूर्त। चालाक (को०)।

अठ—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्ठ = गमन] गति। चाल। उ०—धवं अठ भारी।—पृ० रा०, ३१। ११२।

अठी—संज्ञा स्त्री० [सं० अस्थि, प्रा० अट्ठि, अठि] १ चीयाँ। गुठली। बीज। २ गाँठ। गिरह। ३ नवोढा के निकलते हुए स्तन। अँठली। ४ गिलटी। कड़ापन।

अठुल ⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं० अठी] खुर। सुम। उ० —है अठुल दल पग वीर अवरत्त हलाहस।—पृ० रा०, ६१।८१४५।

अड—संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] १ अडा। उ०—अनलपच्छ का अड ज्यों उलटि चले असमान।—रत्न०, पृ० ६१। २ 'अडकोश'। फोता। ३ ब्रह्माड। लोकपिंड। लोकमडल। विश्व। उ०—जिअन मरन फल दसरथ पावा। अड अनेक अमल जस छावा।—मानस, २।१५६। ४ वीर्य। शुक्र। ५ कस्तूरी का नाफा। मृगनाभि। नाफा। ६ पंच आवरण। दे० 'कोश'। ७. कामदेव। उ०—अति प्रचड यह अड महाभट जाहि सबै जग जानत। सो मदहीन दीन ह्वै बपुरो कोपि धनुष शर तानत।—सूर (शब्द०)। ८ मकानो की छाजन के ऊपर के गोल कलश जो शोभा के लिये बनाए जाते हैं। उ०—(क) अड टूक जाके भसमति सों ऐसा राजा त्रिभुवनपति।—दक्खिनी, पृ० ३०। (ख) बटे दर पग्ग बमद्ध निसार। तुटे वर देवल अड अधार।—पृ० रा०, २४।२३६। १० शिव का एक नाम (को०)।

अडक—संज्ञा पुं० [सं० अण्डक] १. अडकोश। २. छोटा अडा (को०)।

अंडककडी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकर्कटी] दे० 'अंडकर्कटी' [को०]।

अंडकटाह—संज्ञा पुं० [सं० अण्डकटाह] ब्रह्मांड। विश्व। लोकमंडल। उ०—एहि विधि देखत फिरउँ मैं अंडकटाह अनेक।—मानस, ७।८०।

अंडकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकर्कटी] पपीता। अंड खरबूज [को०]।

अंडकोटरपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकोटरपुष्पा] दे० 'अंडकोटरपुष्पी' [को०]।

अंडकोटरपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकोटरपुष्पी] नील अपराजिता। नीलवृह्ला। नीलपुष्पी। अजान्त्री [को०]।

अंडकोश—संज्ञा पुं० [सं० अण्डकोश] १ लिंगेंद्रिय के नीचे चमड़े की वह दोहरी थैली जिसमें वीर्यवाहिनी नसें और दोनों गुठलियाँ रहती हैं। दूध पीकर पलनेवाले उन समस्त जीवों को यह कोश वा थैली होती है जिनके दोनों अंड वा गुठलियाँ पेड़ू से बाहर होती हैं। फोता। खुशिया। अंडि। बैजा। वृषण। २ ब्रह्मांड। लोकमंडल। संपूर्ण विश्व। उ०—जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोश समेत गिरि कानन।—तुलसी (शब्द०)। ३ सीमा। हद। ४ फल का छिलका। फल के ऊपर का बोकला। ५ फल (को०)।

अंडकोष—संज्ञा पुं० [सं० अण्डकोष] दे० 'अंडकोश' [को०]।

अंडकोषक—संज्ञा पुं० [सं० अण्डकोषक] दे० 'अंडकोश-१' [को०]।

अंडकोस—संज्ञा पुं० दे० 'अंडकोश-२'। उ०—प्रति अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनस अनेक अनूपा।—मानस, ७।८१।

अंडज[1]—संज्ञा पुं० [सं० अण्डज] अंडे से उत्पन्न होनेवाले जीव, जैसे सर्प, पक्षी, मछली, कछुआ इत्यादि। ये चार प्रकार के जीवों में से हैं।

अंडज[2]—वि० [सं० अण्डज] अंडे से उत्पन्न [को०]।

अंडजराय—संज्ञा पुं० [सं० अण्डज+प्रा० राय] पक्षियों के राजा। गरुड। उ०—उदर माँझ सुनु अंडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया।—मानस, ७।८०।

अंडजा—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डजा] कस्तूरी।

अंडजात[1]—संज्ञा पुं० [सं० अण्डजात] अंडे से उत्पन्न जीव, जैसे सर्प, मछली, छिपकली, पक्षी इत्यादि [को०]।

अंडजात[2]—वि० दे० 'अंडज' [को०]।

अंडजेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० अण्डजेश्वर] पक्षिराज। गरुड [को०]।

अंडदल—संज्ञा पुं० [सं० अण्डदल] अंडे का छिलका या खोल [को०]।

अंडधर—संज्ञा पुं० [सं० अण्डधर] शिव [को०]।

अंडबंड—संज्ञा पुं० [सं० अकाण्डविकाण्ड, प्रा० अंड विअंड] १. असंबद्ध प्रलाप। बे सिर पैर की बात। ऊटपटाँग। अनाप शनाप। अगडबगड। व्यर्थ की बात। २ गाली। बुरी बात। अपशब्द।

क्रि० प्र०—कहना।—बकना।—बोलना।

अंडबंड[2]—वि० असंबद्ध। बे सिर पैर का। इधर उधर का। अस्तव्यस्त। व्यर्थ का। प्रयोजन रहित। उ०—'जब उसने उन प्रश्नों के उत्तर अंडबंड दिए तो उसपर··।'—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० १६७।

अंडर सेक्रेटरी—संज्ञा पुं० [अं०] वह मंत्री जो मुख्य मंत्री के अधीन हो। सहकारी सचिव। सहायक मंत्री। जैसे, अंडर सेक्रेटरी फार इंडिया (सहकारी भारत सचिव)।

अंडवर्धन—संज्ञा पुं० [सं० अण्डवर्धन] दे० 'अंडवृद्धि' [को०]।

अंडवृद्धि—संज्ञा पुं० [सं० अण्डवृद्धि] एक रोग जिसमें अंडकोश वा फोता फूलकर बहुत बढ़ जाता है। फोते का बढ़ना।

विशेष—शरीर की बिगड़ी हुई वायु या जल नीचे की ओर चलकर पेड़ू के एक ओर की संधियों से होता हुआ अंडकोश में जा पहुँचता है, और उसको बढ़ाता है। वैद्यक में इसके वातज, पित्तज आदि कई भेद माने गए हैं।

अंडस†—संज्ञा पुं० [सं० अन्तस् प्रा० *अंडस् = बीच में, दाब में] कठिनता। कठिनाई। मुश्किल। संकट। असुविधा।

अंडसू—वि० [सं० अण्डसू] अंडे से पैदा होनेवाला। अंडज [को०]।

अंडा[1]—संज्ञा पुं० [सं० अण्डक, प्रा० अंडअ] [वि० अंडैल] १ बच्चों को दूध न पिलानेवाले जंतुओं के गर्भाशय से उत्पन्न गोल पिंड जिसमें से पीछे से उस जीव के अनुरूप बच्चा बनकर निकलता है। वह गोल वस्तु जिसमें से पक्षी, जलचर और सरीसृप आदि अंडज जीवों के बच्चे फूटकर निकलते हैं। बैजा। उ०—अंडा पालै काछुई बिनु थन राखै पोक।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० ८१।

मुहा०—अंडा उड़ाना=(क) बहुत झूठ बोलना। बे पर की उड़ाना। (ख) असंभव को संभव कर दिखाना। अंडा खटकना = अंडा फूटने के करीब होना। जब अंडे से बच्चा निकलने में एक आध दिन रह जाता है तो उसके भीतर के बच्चे का अंडे के छिलके पर चोंच मारना। अंडा ढीला होना = (क) नस ढीली होना। थकावट आना। शिथिल होना। जैसे, यह काम सहज नहीं है, अंडा ढीला हो जायगा (शब्द०)। (ख) खुक्ख होना। निर्द्रव्य होना। दिवालिया होना। जैसे, खर्च करते करते अंडे ढीले हो गए (शब्द०)। अंडा सरकना = (क) दे० 'अंडा ढीला होना'। (ख) हाथ पैर हिलाना। अंग डोलाना। उठना। जैसे, बैठे बैठे बताते हो, अंडा नहीं सरकता (शब्द०)। अंडा सरकाना = हाथ पैर हिलाना। अंग डोलाना। उठना। उठकर जाना। जैसे, अब अंडा सरकाओ तब काम चलेगा (शब्द०)। प्रायः मोटे या बड़े अंडकोशवाले आदमी को लक्ष्य कर यह मुहावरा बना है। अंडे लड़ाना = जुवारियों का एक खेल जिसमें दो आदमी अंडे के सिरे लड़ाते हैं। जिसका अंडा फूट जाता है वह हारा समझा जाता है। अंडे का मलूक = सीधा सादा आदमी। अनुभवहीन व्यक्ति। अंडे का शाहजादा = वह व्यक्ति जो कभी घर से बाहर न निकला हो। वह जिसे कुछ अनुभव न हो। अंडे सेना = (क) पक्षियों का अपने अंडे पर गर्मी पहुँचाने के लिये बैठना। (ख) घर में बैठ रहना। बाहर न निकलना। जैसे, क्या घर में पड़े पड़े अंडे सेते हो (शब्द०)।

अंडा[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अण्डक] शरीर। देह। पिंड। उ०—आसन बासन मानुष अंडा। भए चौखंड जो ऐस पखंडा।—जायसी (शब्द०)।

अंडाकर्षण—संज्ञा पुं० [सं० अण्डाकर्षण] नपुंसक बनाना [को०]।

अंडाकार—वि० [सं० अण्डाकार] अंडे के आकार का। बैजावी। उस परिधि के आकार का जो अंडे की लंबाई के चारों ओर रेखा खींचने से बने। लंबाई लिए हुए गोल।

अडाकृति¹—सज्ञा स्त्री० [सं० अण्डाकृति] अंडे का आकार। अंडे की शकल।

अडाकृति²—वि० अडे के आकार का। अडाकार। अड इव।

अडालु—सज्ञा पुं० [सं० अण्डालु] अडे से भरी हुई मछली [को०]।

अडिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अण्डिका] चार यव के परिमाण की एक तौल [को०]।

अडिनी—सज्ञा स्त्री० [सं० अण्डिनी] स्त्रियो का एक योनिरोग जिसमे कुछ मास बढ़कर बाहर निकल आता है। इसे योनिकद रोग भी कहते हैं।

अडी¹—सज्ञा स्त्री० [सं० एरण्ड] १. रेंडी। रेंड के फल का वीज। २. रेंड या एरड का पेड।

अडी²—सज्ञा स्त्री० [सं० अण्डक या अण्डिका] एक प्रकार का रेशमी कपडा जो रद्दी रेशम और छाल आदि से बनता है।

अंडीर¹—सज्ञा पुं० [सं० अण्डीर] १ वयस्क पुरुष। युवक। जवान व्यक्ति। २ दृढ व्यक्ति [को०]।

अडीर²—वि० बली। समर्थ [को०]।

अंडल—वि० स्त्री० दे० 'अडैल'।

अडैल—वि० स्त्री० [हिं० अडा + ऐल (प्रत्य०)] जिसके पेट मे अडे हो। अडेवाली।

अत —अव्य० [सं० अन्तः] 'अतर्' के अर्थ मे समस्त पदो मे कुछ स्थितियो मे प्रयुक्त 'अतर्' शब्द का एक रूप जो पहले आता है, जैसे अत शल्य, अत सार आदि आदि [को०]।

अत कक्ष—सज्ञा पुं० [सं० अन्त कक्ष] घर के भीतर का कमरा जहाँ प्रसाधन, शयन, आदि की व्यवस्था हो। उ०—'देवी अत कक्ष मे अभ्यागत के अकस्मात् प्रवेश से स्तब्ध हो गई...।' —दिव्या, पृ० २१४।

अत करण—सज्ञा पुं० [सं० अन्त करण] १ वह भीतरी इद्रिय जिसके विषय सकल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण आदि हैं तथा जो सुख दु खादि का अनुभव करती है।

विशेष—कार्यभेद से इसके चार विभाग हैं—(क) मन, जिससे सकल्प विकल्प होता है। (ख) बुद्धि जिसका कार्य है विवेक वा निश्चय करना। (ग) चित्त, जिससे वातों का स्मरण होता है। (घ) अहकार, जिससे सृष्टि के पदार्थों से अपना सबध देख पडता है।

२ हृदय। मन। चित्त। वृद्धि। उ०—अत करण मे तीव्र अभिमान के साथ विराग है।—स्कद०, पृ० ५६। ३ नैतिक वुद्धि। विवेक, जैसे—हमारा अत करण इस वात को कवूल नही करता (शब्द०)।

अत करन(५)—सज्ञा पुं० दे० 'अत करण'। उ०—'जो आजहू तेरो अत.-करन सुद्ध भयो नही है।—दो सौ वावन०, भा० २, पृ० १८।

अत कलह—सज्ञा पुं० [सं० अन्त.कलह] दे० 'गृहकलह'।

अंत कुटिल¹—वि० [सं० अन्त कुटिल] भीतर का कपटी। खोटा। धोखेवाज। छली।

अत कुटिल²—सज्ञा पुं० शख [को०]।

अत कोण—सज्ञा पुं० [सज्ञा अन्त कोण] भीतरी कोना। भीतर की ओर का कोण।

विशेष—जव एक रेखा दो रेखाओं को स्पर्श करती या काटती हैं तब उन रेखाओं के मध्य मे बने हुए कोण को अत.कोण कहते हैं।

अत कृमि¹—सज्ञा पुं० [सं० अन्त कृमि] शरीरस्थ कीटाणुओं से उत्पन्न होनेवाला एक रोग [को०]।

अंत कृमि²—वि० जिसमे कीडे हो (फलादि) किनहा [को०]।

अत कोटरपुष्पी—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त कोटरपुष्पी] दे० 'अण्डकोटर-पुष्पी' [को०]।

अत कोप—सज्ञा पुं० [सं० अन्त कोप] प्रकट न होनेवाला कोप। भीतरी गुस्सा [को०]।

अतकोष—सज्ञा पुं० [सं० अन्त कोश] कोशागार वा भाडार का भीतरी हिस्सा (को०)।

अत क्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त क्रिया] १ भीतरी व्यापार। अप्र-गट कर्म। २ अत करण को शुद्ध करनेवाला आतरिक कर्म।

अंत पट—सज्ञा पुं० [सं० अन्त पट] १. वह आवरण पट जो दो व्यक्तियो (वर वधू या गुरु शिष्य) को समुचित मुहूर्त के पूर्व सयुक्त करने के पहले डाला जाता है। वह परदा जो विवाह के अवसर पर वर और वधू के बीच उनको मिलाने के पहले डाला जाता है। अतरपट। २ अतर्वस्त्र। अंतरौटा (को०)।

अत पटल—सज्ञा पुं० [सं० अन्त पटल] १ आँखो के भीतर का अव्यक्त जालीदार परदा। २ भीतरी परदा [को०]।

अत.पटी—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त पटी] १ किसी चित्रपट द्वारा नदी, पर्वत, वन, नगर आदि का दिखलाया हुआ दृश्य। २ नाटक का परदा।

अत पद—अव्य० [सं० अन्त पदम्] विकारी शब्द के मध्य मे [को०]।

अत पदवी—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त पदवी] सुषुम्णा नाडी के मध्य की राह [को०]।

अत पदे—अव्य० दे० 'अत पदम्' [को०]।

अत परिधान—संज्ञा पुं० [सं० अन्त परिधान] अतर्वस्त्र। अंत-रौटा [को०]।

अत परिधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त परिधि] १. किसी परिधि वा घेरे के भीतर का स्थान। २. यज्ञ की अग्नि को घेरने के लिये जो तीन हरी लकडियाँ रखी जाती हैं, उनके भीतर का स्थान।

अंत पवित्रा¹—वि० स्त्री० [सं० अन्त पवित्रा] शुद्ध अत करणवाली। शुद्ध चित्त की।

अत पवित्रा²—सज्ञा स्त्री० सोमरस जव वह छानने के लिये छनने मे रखा हो।

अत पशु—सं० पुं० [सं० अन्त पशु] पशुओ की गोशाला या स्थान पर रहने का सायकाल से प्रात काल तक का समय [को०]।

अत पात—सज्ञा पुं० [सं० अन्त पात] १ यज्ञशाला का मध्यवर्ती स्तम या खभा (को०)। २ व्याकरण मे किसी अक्षर का मध्य मे आना [को०]।

अत पातित—वि० [सं० अन्त पतित] दे० 'अन्तःपाती' [को०]।

अत पाती—वि० [सं० अन्त पातिन्] १ मध्यवर्ती। बीच में। २. समिलित [को०]।

अत पाल—सज्ञा पुं० [सं० अन्त पाल] १ अन्त पुर या रनिवास का रक्षक। २ कचुकी [को०]।

अत पुर—सज्ञा पुं० [सं० अन्त पुर] घर के मध्य या भीतर का भाग जिसमे रानियाँ या स्त्रियो रहती हों। जनानखाना। जनाना या भीतरी महल। रनिवास। हरम। उ०—'दुर्ग का तो नहीं, अत पुर का भार तुम्हारे ऊपर है'।—स्कद० पृ० ५६।

अंत पुरचर--संज्ञा पुं० [सं० अंत पुरचर] अंत पुर मे आने जाने के अधिकारी, कन्चुकी आदि [को०]।

अंत पुरचारिणी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्पुरचारिणी] [संज्ञा पुं०अन्त पुरचारिन्] अंत पुर या हरम मे निवास करनेवाली स्त्री। उ०—'एक समय कुलवधू की संज्ञा थी अंत पुरचारिणी'।—टैगोर सा०, पृ० ३६।

अंत पुरजन--संज्ञा पुं० [सं० अन्त पुरजन] अंत पुर मे रहनेवाली स्त्रियाँ आदि [को०]।

अंत पुरप्रचार--संज्ञा पुं० [सं० अन्त·पुरप्रचार] औरतों की गप्पबाजी [को०]।

अंत पुररक्षक--संज्ञा पुं० [सं० अन्त पुररक्षक] दे० 'अंत पाल' [को०]।

अंत पुरवर्ती--संज्ञा पुं० [सं० अन्त पुरवर्तिन्] अंत पाल [को०]।

अंत पुरसहाय--संज्ञा पुं० [सं० अन्त पुरसहाय] अंत पुर मे कार्य करनेवाले खोजा नपुसक, माणवक, विदूषक आदि [को०]।

अंत पुराध्यक्ष--संज्ञा पुं० [सं० अन्त पुराध्यक्ष] अंत·पुर का रक्षक। रनिवास का अध्यक्ष [को०]।

अंत पुरिक--संज्ञा पुं० [सं० अन्त पुरिक] अंत पुर का रक्षक। कचुकी [को०]।

अंत पुरिका--संज्ञा पुं० [सं० अन्त पुरिका] अंत पुर में रहनेवाली नारी [को०]।

अंत पुष्प--संज्ञा पुं० [सं० अन्त पुष्प] वह रज जो १२ वर्ष की रजस्राव की निश्चित अवधि के बीत जाने पर भी प्रगट नही होता [को०]।

अंत पूय--वि० [सं० अन्त पूय] पीब या मवाद से भरा हुआ। जिसके भीतर मवाद हो [को०]।

अंत प्रकृति--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त·प्रकृति] १ आतरिक प्रकृति। भीतरी या मन का स्वभाव। अंतवृत्ति। मूल स्वभाव। उ०—उसी प्रकार अंत·प्रकृति मे दया, दाक्षिण्य, श्रद्धा, भक्ति आदि वृत्तियों की स्निग्ध, शीतल आभा मे सौदर्य लहराता हुआ पाते हैं।— रस०, पृ० ३२। २. आत्मा। ३ राज्याग। राजा के समीपवर्ती अमात्य, सुहृद् आदि। ४ राजधानी की प्रजा [को०]।

अंत प्रज्ञ--संज्ञा पुं० [सं० अन्त.प्रज्ञ] जिसकी आतरिक अथवा आत्मविषयिणी प्रज्ञा प्रबुद्ध हो। आत्मज्ञानी। तत्वदर्शी।

अंत प्रतिष्ठित--वि० [सं० अन्त प्रतिष्ठित] हृदय मे बसा हुआ [को०]।

अंत प्रवाह--संज्ञा पुं० [सं० अन्त प्रवाह] वह धारा या प्रवाह जो भीतर ही भीतर बहता हो [को०]।

अंत प्रविष्ट--वि० [सं० अन्त.प्रविष्ट] १. भीतर घुसा हुआ। २. हृदगत। मनोगत [को०]।

अंत प्रातीय--वि० [सं० अन्त + प्रातीय] किसी भी देश के दो या उससे अधिक विभागो या प्रदेशो मे सबध रखनेवाला अथवा उनसे अवस्थित।

अंत.प्राचीर--संज्ञा पुं० [सं० अन्त प्राचीर] प्राचीर के भीतर की दीवाल। भीतरी दीवार [को०]।

अंत प्रादेशिक--वि० [सं० अन्त प्रादेशिक] दे० 'अंत प्रातीय'।

अंत.प्रेरणा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःप्रेरणा] भीतरी या स्वाभाविक प्रेरणा।

अंत राष्ट्रीय--वि० [सं० अन्त + राष्ट्रीय] जिसका दो या अधिक राष्ट्रो से सबध हो। भिन्न भिन्न राष्ट्रो से सबधित।

अंत शर[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्त शर] १ वनभूमि का भीतरी भाग जहाँ शर (बेंत) उगे हो। २. एक रोग [को०]।

अंत शर[2]--वि० दे० अंत·शल्य' [को०]।

अंत शरीर--संज्ञा पुं० [सं० अन्त शरीर] वेदात और योग के अनुसार स्थूल शरीर के भीतर का सूक्ष्म शरीर। लिंगशरीर।

अंत शल्य[1]--वि० [सं० अन्त शल्य] भीतर घुसे काँटे की तरह सालनेवाला। गाँसी की तरह मन मे चुभनेवाला। मर्मभेदी।

अंत शल्य[2]--संज्ञा पुं० शत्रु के वश मे पडी हुई सेना।

अंत शुद्ध--वि० पुं० [सं० अन्त शुद्ध] [स्त्री० अन्त·शुद्धा] जिसका अंत करण, मन या चित्त शुद्ध हो।

अंत शुद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त शुद्धि] अंत.करण की पवित्रता। चित्त की स्वच्छदता। दिल की सफाई। चित्तशुद्धि।

अंत सज्ञ--वि० पुं० [सं० अन्त·सज्ञ] जो जीव अपने सुख दुख का अनुभव करते हुए भी उन्हें स्पष्ट प्रगट न कर सके, जैसे वृक्ष, तृण आदि।

अंत सत्व--वि० [सं० अन्त सत्व] जिसके भीतर शक्ति या गुरुता हो। अंत सार [को०]।

अंत सत्वा[1]--वि० स्त्री० [सं० अन्त.सत्वा] गर्भवती। गर्भिणी।

अंत सत्वा[2]--संज्ञा स्त्री० भिलावाँ। भल्लातक।

अंत सलिला--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःसलिला] दे० 'अतस्सलिला'। उ०—क्या हो सूने मरु अचल मे अंत सलिला की धारा सी।—कामायनी, पृ० ६७।

अंत·साक्षी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तः + साक्षिन्] भीतरी प्रमाण। आतरिक गवाही। उ०—सूत्रो की अंत·साक्षी इसी पक्ष मे है।—पाणिनि०, पृ० ४।

अंत सार[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्त सार] भीतरी तत्व। गुरुता। भीतरी सार। उ०—'ऐसे मामलो का अंत·सार हिंदुस्तानी ही लोग जानते हैं'। —भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३६२।

अंत सार[2]--वि० जिसके भीतर कुछ तत्व हो। जो भीतर से पोला न हो। जिसके भीतर कुछ प्रयोजनीय या महत्व की वस्तु हो।

अंत सारवान--वि० पुं० [सं० अन्त·सारवत्] १ जिसके भीतर कुछ तत्व या सार हो। जो पोला न हो। जिसके भीतर प्रयोजनीय वस्तु हो। २ तत्वपूर्ण। सारगर्भित। प्रयोजनीय। काम का।

अंत सुख[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्त सुख] बाह्य सुख से रहित आत्मानुसधान रूपी सुख। आतरिक सुख [को०]।

अंत सुख[2]--वि० जिसे आतरिक सुख प्राप्त हो [को०]।

अंत सौंदर्य--संज्ञा पुं० [सं० अन्त + सौन्दर्य] भीतरी सौंदर्य। हृदय की अच्छाई। उ०—'जहाँ कोई सौंदर्य नही वहाँ अंत सौंदर्य देखा जाता है'। —जय० प्र०, पृ० ३६।

अंत स्थ--संज्ञा पुं०, वि० [सं० अन्तःस्थ] दे० 'अतस्थ' [को०]।

अंत.स्थित--वि० [सं० अन्त स्थित] मध्य मे स्थित या बैठा हुआ। भीतर बैठा हुआ [को०]।

अंत.स्वर--संज्ञा पुं० [सं० अन्तः + स्वर] आंतरिक ध्वनि। भीतरी आवाज। हृदय का स्वर। दिल की आवाज। उ०—'गूँजते से तप्त अंत.स्वर तुम्हारे तरल कूजन मे'।—हरी घास०, पृ० ३२।

अंतस्वेद—संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्वेद] वह जीव जिसके भीतर स्वेद या मदजल हो। मदस्रावी हाथी।

अंत¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्त] [वि० अंतिम, अंत्य] १ वह स्थान जहाँ से किसी वस्तु का अंत हो। समाप्ति। आखीर। अवसान। इति। उ०—बन कर अंत कतहुँ नहिं पावहिं।—तुलसी (शब्द०)। २ वह समय जहाँ से किसी वस्तु की समाप्ति हो। उ०—दिन के अंत फिरी दोउ अनीं'।—तुलसी (शब्द०)।
विशेष—इस शब्द में 'में' और 'को' विभक्ति लगने से 'आखिरकार', 'निदान' अर्थ होता है।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
३ शेष भाग। अंतिम भाग। पिछला अंश। उ०—'रजनी सु अंत महुरत्त बंभ'।—पृ० रा०, ६६।१६६२।
मुहा०—अंत बनना = अंतिम भाग का अच्छा होना। अंत बिगड़ना = अंतिम या पिछले भाग का बुरा होना।
४ पार। छोर। सीमा। हद। अवधि। पराकाष्ठा। उ०—'अस अंबराउ सघन बन, बरनि न पारौं अंत'।—जायसी (शब्द०)।
क्रि० प्र०—करना = हद करना। उ०—तुमने तो हँसी का अंत कर दिया (शब्द०)।—पाना।—होना।
५ अंतकाल। मरण। मृत्यु। उ०—(क) 'जान्यौ सु अंत प्रथिराज अप्प। थिन्नौं जुगति दुग्गा सु जप्प'।—पृ० रा०, ६७। ४५७। (ख) 'अंत राम कहि आवत नाहीं'।—तुलसी (शब्द०)। ६ नाश। विनाश। उ०—'वहै पदमाकर त्रिकूट ही को ढाहि डारौं डारत करेई जातुधानन को अंत हौं'।—पद्माकर (शब्द०)।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
७ परिणाम। फल। नतीजा। उ०—(क) अंत भले का भला।—कहावत (शब्द०)। (ख) 'बुरे काम का अंत बुरा होता है' (शब्द०)। ८ प्रलय (डिं०) ९ सामीप्य। निकटता। (को०) १० प्रतिवेश। पड़ोस (को०)। ११ निबटारा। निबटाव (को०)। १२ किसी समस्या का समाधान या निर्णय (को०)। १३ निश्चय (को०)। १४ समास का अंतिम शब्द (को०)। १५ शब्द का अंतिम अक्षर (को०)। १६ प्रकृति। अवस्था (को०)। १७ स्वभाव (को०)। १८ पूर्ण योग या राशि (को०)। १९. वह संख्या जिसे लिखने में १२ अंक लिखने पड़ें। एक खरब या सौ अरब की संख्या।—भा० प्रा० लि०, पृ० १२। २० भीतरी भाग (को०)।

अंत²—वि० १ समीप। निकट। २ बाहर। दूर। ३ अंतिम (को०)। ४ सुंदर। प्यारा (को०)। ५ सबसे छोटा (को०)। ६ निम्न। भ्रष्ट (को०)।

अंत(पु)³—क्रि० वि० अंत में। आखिरकार। निदान। उ०—(क) उघरे अंत न होहि निबाहू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कोटि जतन कोऊ करौ परै न प्रकृतिहिं बीच। नल बल जल ऊँचो चढ़ै अंत नीच को नीच।—बिहारी (शब्द०)।

अंत(पु)⁴—संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्] १. अंतःकरण। हृदय। जी। मन। जैसे 'तुम अपने अंत की बात कहो', 'मैं तुम्हें अंत से चाहता हूँ' (शब्द०)। २. भेद। रहस्य। छिपा हुआ भाव। मन की बात। उ०—'काहू को न देती इन बातन को अंत लै इकंत मानि कै अनंत सुख ठानती'।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १५६।
मुहा०—अंत पाना = भेद पाना। पता पाना। अंत लेना = भेद लेना। मन का भाव जानना। मन टटोलना। उ०—हे द्विज मैं हौं धर्म लेन आयो तव अंता।—विश्राम० (शब्द०)।

अंत(पु)⁵—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्र, प्रा० अंत] आँत, अँतड़ी। उ०—(क) जिमि जिमि अंत रुलत लच्छ दल तिन गनि तिम तिम।—पृ० रा०, ६१।२२७३। (ख) भर श्रोन धारा परे पेट ते अंत।—सुजान (शब्द०)।

अंत(पु)⁶—क्रि० वि० [सं० अन्यत्र, प्रा० अण्णत्त, अन्नत, हिं० अनत-अंत] और जगह। और ठौर। दूसरी जगह। और कहीं। दूर। अलग। जुदा। उ०—(क) कुंज कुंज में क्रीड़ा करि करि गोपिन को सुख देहौं। गोप सखन सँग खेलत डोलौं ब्रज तजि अंत न जैहौं।—सूर (शब्द०)। (ख) एक ठाँव यहि थिर न रहाहीं। रस लै खेलि अंत कहुँ जाहीं।—जायसी (शब्द०)। (ग) धनि रहीम गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय। जियत कंज तजि अंत बसि कहा भौंर को भाय।—रहीम (शब्द०)।

अंतक¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तक] १ मृत्यु जो प्राणियों के जीवन का अंत करती है मौत। २ यमराज। काल। उ०—गिरा रहित वृक असिन अजा लौं अंतक आनि गह्यौं।—सूर०, १।२०१।३ सन्निपात ज्वर का एक भेद जिसमें रोगी को खाँसी, दमा और हिचकी होती है और वह किसी वस्तु को नहीं पहचानता। उ०—व्याकुल सखा गोप भए व्याकुल। अंतक दसा भयौ भय आकुल।—सूर०, १०।३११५। ४ ईश्वर जो प्रलय में सबका संहार करता है। ५ शिव। परमेश्वर। ६ सीमा। हद्द (को०)।

अंतक²—वि० अंत करनेवाला। नाश करनेवाला।

अंतकर—वि० [सं० अन्तकर] अंत या नाश करनेवाला। संहार करनेवाला।

अंतकरण—वि० [सं० अन्तकरण] दे० 'अंतकर' (को०)।

अंतकर्ता—वि० [सं० अन्तकर्ता] दे० 'अंतकर'।

अंतकर्म—संज्ञा पुं० [सं० अन्तकर्म] मरण। मृत्यु। (को०)।

अंतकारी—वि० [सं० अन्तकारिन्] स्त्री० [अन्तकारिणी] अंत या नाश करनेवाला। विनाश करनेवाला। संहार करनेवाला। मार डालनेवाला। उ०—भक्त भय हरन असुरांतकारी।—सूर०, १०।४१९४।

अंतकाल—संज्ञा पुं० [सं० अन्तकाल] १ अंतिम समय। मरने का समय। आखिरी वक्त। उ०—घर घर मंतर देत फिरत हैं महिमा के अभिमाना। गुरू सहित सीष सब बूड़े अंतकाल पछिताना।—कबीर बी०, पृ० ३०।

अंतकृत¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तकृत] यमराज। धर्मराज। काल। उ०—भूमिजा दुःख संजात रोषांतकृत (रोष + अंतकृत) यातना जंतुकृत यातुधानी।—तुलसी (शब्द०)।

अंतकृत²—वि० अंत या विनाश करनेवाला। अंतकर।

अंतक्क—संज्ञा पुं० [सं० अन्तक, प्रा० अंतक्क] यमराज। काल। उ०—प्रथिराज सब्ब देष्यौ सु आव। अंतक्क रूप सब गुन सहाव।—पृ० रा०, ६७।४६०।

अंतक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तक्रिया] अंत्येष्टि कर्म। क्रिया कर्म। मरने के पीछे मृतक की आत्मा की भलाई या सद्गति के लिये किए जानेवाले दाह और पिंडदान आदि कर्म। हिंदुओं के षोडश संस्कारों में अंतिम।

अतग--वि० [सं० अन्तग] १ जानकारी में पूरा । पारगत । पारगामी निपुण । अतगामी । २ मृत । मरा हुआ (को०) ।

अतगत--वि० [सं० अन्तगत] १ सीमा पर गया हुआ । २ समाप्ति को पहुँचा हुआ (को०) ।

अतगति¹--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तगति] अतिम दशा । मृत्यु । मरण । मौत ।

अतगति²--वि० अत को प्राप्त होनेवाला । नाश होनेवाला (को०) ।

अतगमन--संज्ञा पुं० [सं० अन्तगमन] १ अत तक पहुँचने या पूर्ण करने का कार्य । २ जीवन के अत तक जाने की स्थिति । मौत । मृत्यु [को०] ।

अतगामी--वि० [सं० अन्तगामिन्] [स्त्री० अन्तगामिनी] १ दे० 'अतग' । २ मरणशील (को०) ।

अतगुरु--संज्ञा पुं० [सं० अन्तगुरु] वह शब्द जिसके अत मे दो मात्राएँ या गुरु हो । उ०--गज अभरन प्रहरन असनि चकल अतगुरु नाम ।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १६६ ।

अतघाई--वि० [सं० अन्त+घाती, प्रा० अत+घाइ] अत मे धोखा देनेवाला । विश्वासघाती । दगाबाज । उ०--साँझ ही समै तें दूरि बैठी परदानि देकै सक मोहि एकै या कलानिधि बसाई की । कत की कहानी सुनि श्रवन सोहानी रैनि रचक बिहानी या बसत अतघाई की ।--कोई कवि (शब्द०) ।

अतघाती--वि० [सं० अत+घातिन्] धोखा देनेवाला । वचक । दगाबाज ।

अतचर--वि० [सं० अन्तचर] १ सीमा पर जाने या चलनेवाला । २ कोई भी कार्य पूरा करनेवाला [को०] ।

अतच्छद --संज्ञा पुं० [सं० अन्तच्छद] भीतरी आच्छादन । अदरूनी परदा ।

अतज--वि० [सं० अन्तज, अन्त्यज] जो अत मे उत्पन्न हो । सबसे बाद मे उत्पन्न होनेवाला [को०] ।

अतजा--वि० स्त्री० [सं० अन्तजा, अन्त्यजा] अत मे पैदा होनेवाली । सबसे पीछे की । उ०--अत मरिा सो गत्ति अतजा मत्ति अमत्तिय ।--पृ० रा०, ३१।१०१ ।

अतजाति¹--वि० [सं० अन्तजाति, अन्त्यजाति] अतिम जाति का । निम्न जाति का [को०] ।

अतजाति²--संज्ञा पुं० जातिविभाजन मे अतिम जाति [को०] ।

अतत --अव्य० [सं० अन्तत] १ अत मे । आखिरकार । निदान । सबसे पीछे । उ०--मिला परमार्थ मुझको अतत इस वृद्ध वय में ।--पार्वती, पृ० ३८ । २ कम से कम । अशतः (को०) । ३. भीतर (को०) । ४. निचले या निम्न मार्ग मे । मुख्य एव मध्य के बाद मे (को०) ।

अतत(पु)--अव्य० [सं० अन्तत] अत मे । आखिरकार । उ०--जाति स्वभाउ मिटै नहिं सजनी अतत उबरी कुबरी ।--सूर० (राधा०), पृ०५३२ ।

अततर--वि० [सं० अन्ततर] अतिम के बाद का । अत के बादवाला [को०] ।

अततम--वि० [सं० अन्ततम] सबसे बाद का । सबसे बादवाला [को०] ।

अतता--क्रि० वि० दे० 'अतत' । उ०--दूध भात घृत सकरपारे । हरते भूक नहि अतता रे ।--दक्खिनी०, पृ० १०५ ।

अततोगत्वा--क्रि० वि० [सं० अन्ततस्+गत्वा] अत मे जाकर । आखिरकार । निदान । उ०--'शोकार्त हृदयवाले का अततोगत्वा ईश्वर मे अनन्य प्रौढ प्रेमप्रदर्शन उत्तम है' ।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४४२ ।

अतदीपक--संज्ञा पुं० [सं० अन्तदीपक] काव्यो मे प्रयुक्त दीपकालकार का एक भेद [को०] ।

अतपाल--संज्ञा पुं० [सं० अन्तपाल] १ द्वारपाल । ड्योढीदार । पौरिया । दरबान । २ सीमा की रक्षा करनेवाला अधिकारी । सरहद का पहरेदार । उ०--'सरहदो का प्रबध अतपाल करते थे' ।--हिंदु० सभ्यता, पृ० ३२६ ।

अतपुर(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अतपुर' । उ०--अतपुर पैठि भानु आतुर कहूँ न वेगि, चिर निसि अक मैं निसापति डरे रहै ।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १२८ ।

अतवर(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्त+अवलि] आँतो का समूह । उ०--मस हड्ड रद गूद अतवर वाच गज्ज नर ।--पृ० रा०, ७।१५२ ।

अतभव--वि० [सं० अन्तभव] अत मे उत्पन्न होनेवाला [को०] ।

अतभाक्--वि० [सं० अन्तभाज्] किसी शब्द के अत का या अत मे होनेवाला [को०] ।

अतभूत--वि० [सं० अन्तर्भूत] दे० 'अतर्भूत' ।

अतभेदी--संज्ञा पुं० [सं० अन्तभेदी] एक प्रकार का व्यूह । मध्यभेदी व्यूह का विपरीत या उलटा व्यूह ।

अतम--वि० [सं० अन्तम] अति समीप का । घनिष्ठ (मित्र) [को०] ।

अंतमन--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्मन] आभ्यतर मन । भीतरी मन । उ०--सुनि आनदधौं कब्वि जिय धरिय अतमन ध्यान ।--पृ० रा०, ६७।२७४ ।

अतमान(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अतमन' । उ०--लोयन राखौ घूँघट हेरी । अतमान कौ राखे फेरी ।--चित्रा०, पृ० १५४ ।

अतरग¹--वि० [सं० अन्तरङ्ग] १ अत्यत समीपी । आत्मीय । निकटस्थ । दिली । जिगरी । उ०--'वह अपने अतरग लोगो का परिचय भी नहीं बताती' ।--स्कद०, पृ० ११६ । २ मानसिक । ('बहिरग' इसका उलटा है) ।

अतरग²--संज्ञा पुं० १ मित्र । दिली दोस्त । आत्मीय । स्वजन । उ०--'अनवरी आज इतनी अतरग बन गई है' ।--तितली' पृ० १२४ । २ हृदय । उ०--वरदान आज उस गत युग का कपित करता है अतरग ।--कामायनी, पृ० १६२ । ३ राजाओ के अतपुर मे जानेवाले अधिकारी ।--वर्ण०, पृ० ६ । ४. भीतरी अग । प्रच्छन्न अग । उ०--फुनि पुच्छति इछिनि सु वहि सौत रूप मनि साल । नो पुच्छा कैसी कहै अतरग सु विसाल ।--पृ० रा०, ६२।१०४ ।

यौ०--अतरग मत्री = निजी सचिव । अतरग सचिव=प्राइवेट सेक्रेटरी । अतरग मित्र=दिली दोस्त । अतरग सभा = सब कमेटी छोटी कमेटी या प्रबधकारिणी सभा जिसमे मुख्य सभा से चुने हुए लोग रहते हैं और जिनकी सख्या नियत रहती ।

अतरगिनी--वि० स्त्री० [सं० अन्तरङ्गिणी] अत्यत समीप की । आत्मीया । उ०--'यह सुनत ही श्री गुसाई जी कहे, जो मेरी

अंतरंगिनी सेवकिनी के घर सखडी महाप्रसाद क्यो नाही लियो ?'—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १० ।

अतरगी¹—वि० [स० अन्तरङ्गिन्] दिली । भीतरी । जिगरी । उ०—'हे अतरगी जन आज तक जो पुस्तकें प्रकाशित हुई, वह दूसरे को समर्पित हुई थी ।'—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० ६४६ ।

अतरगी²—संज्ञा पु० गहरा मित्र । दिली दोस्त । उ०—वही अतरगी सुरगी निनार । वहे राज राजीव लोचन्न सार ।—पृ० रा०, २।७७६ ।

अतरस—संज्ञा पु० [स० अन्तरस] वक्षस्थल । सीना । छाती [को०] ।

अतर¹—संज्ञा पु० [स० अन्तर] १ फर्क । भेद । विभिन्नता । अलगाव । फेर । उ०—(क) सत भगवत अतर निरतर नहीं किमपि मतिमलिन कह दास तुलसी ।—तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० ४८८ । (ख) इसके और उसके स्वाद मे कुछ अतर नहीं है (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना = फर्क या भेद करना । उ०—मोहि चद बरदाय सु अतर मति करयो ।—पृ० रा० ५८।१२६ ।—देना । —पडना ।—रखना = भेदभाव रखना । उ०—ब्रजवासी लोगन सो मैं ता अतर कछु न राख्यो ।—सूर (शब्द०) ।—होना ।

२ बीच । मध्य । फासला । दूरी । अवकाश । उ०—'यह विचारो कि मथुरा और वृदावन का अतर ही क्या है' ।—प्रेमसागर (शब्द०) । ३ दो घटनाओं के बीच का समय । मध्यवर्ती काल । उ०—(क) इहि अतर मधुकर इक आयो ।—सूर०, १० ३४८७ । (ख) 'इस अतर मे रतन दूध से भर जाते हैं' ।—वनिताविनोद (शब्द०) । ४ दो वस्तुओ के बीच मे पडी हुई चीज । ओट । आड । परदा । उ०—कठिन बचन सुनि स्रवन जानकी सकी न हिये सँभारि । तृन अतर दै दृष्टि तरौंधी दई नयन जल ढारि ।—सूर०, ६।७६ ।

क्रि० प्र०—करना = आड करना । उ०—अपने कुल को कलह क्यो देखहिं रवि भगवत । यहै जानि अतर कियो मानो मही अनत ।—केशव (शब्द०) ।—डालना ।—देना = ओट करना । उ०—पट अतर दै भोग लगायो आरति करी बनाइ ।—सूर०, १०।२६१ ।—पडना ।

५ छिद्र । छेद । रध्र । दरार । ६. भीतर का भाग । उ०—'दास' अँगिराति जमुहाति तकि झुकि जाति, दीने पट, अतर अनत आप झलकै ।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १४३ । ७ प्रवेश । पहुँच (को०) । ८ शेष । बाकी । गणित मे शेषफल (को०) । ९ विशेषता । उ०—अतरौ एक कैमास सुनि मरन तुच्छ मारन बहुल ।—पृ० रा०, १२।१६८ । १०. निवलता (को०) । ११ दोष । त्रुटि (को०) । १२ अभाव (को०) । १३ प्रयोजन (को०) । १४ लिहाज (को०) । १५. छिपाव (को०) । १६ निश्चय (को०) । १७. प्रतिनिधि (को०) । १८ वस्त्र (को०) । १९ हृदय । अतःकरण । जी । मन । चित्त । उ०—जिहि जिहि भाइ करत जन सेवा अतर की गति जानत ।—सूर०, १।१३ । (ख) अतर प्रेम तासु पहिचाना । मुनि दुरलभ गति दीन्ह सुजाना ।—तुलसी (शब्द०) । २० आत्मा (को०) । २१ परमात्मा (को०) । २२ स्थान (को०) । २३ आशय (को०) ।

अतर²—वि० १ अतर्धान । गायब । लुप्त । उ०—कृपा करी हरि कुँवरि जिमाई । अतर आप भए सुरराई ।—महाभारत (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना—होना = अदृश्य होना । उ०—मोहीं ते परी री चूक अतर भए हैं जातें तुमसों कहति बातें मैं ही कियो हृदन ।—सूर (शब्द०) ।

२ दूसरा । अन्य । और ।

विशेष—इस अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग प्राय यौगिक शब्दों में मिलता है, जैसे, ग्रथातर, रथ नातर, कालातर, देशांतर, पाठातर, मतातर, यज्ञातर इत्यादि ।

३ समीप । आसन्न । निकट (को०) । ४ आत्मीय । प्यारा (को०) । ५ समान (स्वर या शब्द), (को०) । ६ भीतरी । भीतर का (को०) ।

अतर³—क्रि० वि० १ दूर । अलग । जुदा । पृथक् । बिलग । उ०—कहाँ गए गिरिधर तजि मोकों ह्याँ मैं कैसे आई । सूर श्याम अतर भए मोते अपनी चूक सुनाइ ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना = दूर करना । पृथक् करना । उ०—सूरदास प्रभु को हियरे तें अतर करी नही छिनही ।—सूर (शब्द०) ।—होना ।

२. भीतर । अतर । उ०—(क) मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ । बसत सुचित अतर तऊ प्रतिबिंबित जग होइ ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) चिता ज्वाल शरीर बन दावा लगि लगि जाइ । प्रगट धुआँ नहि देखिए उर अतर धुधुआइ ।—दीनदयाल (शब्द०) । (ग) बाहर गर लगाइ राखौंगी अतर करौंगी समाधि ।'—हरिश्चद्र (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना—भीतर करना । ढाँकना । छिपाना । उ०—फिरि चमक चोप लगाइ चचल तनहिं तव अतर करै (शब्द०) ।

अतर⁴(पु)—संज्ञा पु० दे० 'अतर' । उ०—जवादि केसर सुर । पल सु सत्त अतर ।—पृ० रा०, ६६।६० ।

अतर⁵(पु)—संज्ञा पु० [स० अन्त्र, प्रा० अंत, अप० अनडी] आँत । अँतडी । उ०—(क) करत हुक्क हुक्कय । स्रमत धक्क धक्कय । चढत देत दतर । अरू अभ्रत अतरं ।—पृ० रा०, ६।१७५ । (ख) बुहत सार वार पार ता तुरत अतर । अहुव दत दत एक वठ कठ मतरं ।—पृ० रा०, ५८।२४३ ।

अतर अयण—संज्ञा पु० [स० अन्तर + अयण] नीचे जाना । विलोपन [को०] ।

अतर अयन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर + अयन] १ तीर्थों की एक परिक्रमा विशेष अतर्गृही । २ एक देश का नाम । ३ काशी का मध्य भाग । उ०—अतर अयन अयन भल, थन फल, बच्छ वेद बिस्वासी ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६४ ।

अतरकालीन—वि० [सं० अन्तर + कालीन] दो कालविभागो के बीच का । किन्हीं दो स्थितियों का मध्यवर्ती [को०] ।

अतरख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अतरिक्ख] अतरिक्ष । शून्य । अतर । आकाश । उ०—रूप न होता तब अकुलान रहिता सबद । गगन न होता तब अतरख रहिता चद ।—गोरख०, पृ० १८६ ।

अतरगत¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्गत] मन । हृदय । अतःकरण । उ०—(क) ज्यौं गूँगे मीठे फल रस को अतरगत ही भावै ।—सूर०, १।२ । (ख) जानराय जानत सबै अतरगत की बात ।—घनानद, पृ० ५६ ।

अंतरगत²—वि० अतर्गत । भीतर आया हुआ । उ०—जैसे जननि जठर अंतरगत सुत अपराध करै ।—सूर०, १।११७ ।

अंतरगति(पु)--संज्ञा स्त्री [सं० अन्तर्गति] चित्तवृत्ति। भावना। उ०--अंतरगति राँचै नहीं बाहर कथैं उदास। ते नर जमपुर जाहिंगे सत भाषै रैदास --सत० रै०, पृ० ६५।

अंतर्गत्ति--संज्ञा स्त्री [सं अन्तरग्नि, पेट की अग्नि। पेट की गरमी जिससे खाई हुई वस्तु पचती है। जठराग्नि।

अंतरचक्र--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरचक्र] १ दिशाओं और विदिशाओं के बीच के अंतर को चार चार भागों में बाँटने से बने हुए ३२ भाग। २. दिशाओं के ऊपर कहे हुए भिन्न भिन्न विभागों में चिड़ियों की बोली सुनकर शुभाशुभ फल बताने की विद्या। जिस दिशा में पक्षी बैठकर बोले उसका विचार करके शकुन कहने की विद्या। ३ तंत्र के अनुसार शरीर के भीतर माने हुए मूलाधार आदि कमल के आकार के छह चक्र। षट्चक्र। ४ आत्मीय वर्ग। स्वजन वर्ग। भाई बंधुओं की मंडली।

अंतरछाल--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर + हिं० छाल] छाल के नीचे की कोमल छाल या झिल्ली। बोकले के भीतर का कोमल भाग।

अंतरजातीय--वि० दे० 'अंतर्जातीय'।

अंतरजानी--वि० [सं० अन्तर् + ज्ञानी, प्रा० अंतर + जाणि] भीतर की बात जाननेवाला। अंतर्यामी। उ०--नैन स्रवन मुख नासिका तुम अंतरजानी हो।--केशव० अमी०, पृ० ७।

अंतरजामी[1](पु)--वि० [सं० अंतर्यामी] १ भीतर की बात जाननेवाला। उ०--तुम सबके उर अंतरजामी।--मानस ७।८४। २ अंतःकरण स्थित प्रेरक। उ०--अंतरजामिहुँ ते बड़ बाहरजामी हैं राम जो नाम लिए तें।--तुलसी ग्र०, भा० २।

अंतरजामी[2](पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतर्यामी'। उ०--दया करो गुरु पूरन स्वामी। मैं नहिं जाना अंतरजामी।--कबीर सा०, पृ० १०१४।

अंतरजाल--संज्ञा पुं० [हिं०] कसरत करने की एक लकड़ी।

अंतरज्ञ--वि० [सं० अन्तरज्ञ] १ भीतर की बात जाननेवाला। अंतःकरण का आशय जाननेवाला। हृदय की बात जाननेवाला। अन्तर्यामी। २. भेद या फर्क जाननेवाला।

अंतरण--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरण] व्यवधान डालना। अंतरित करना। निगूहन [को०]।

अंतरत--क्रि० वि० [सं० अन्तरत] बीच में। मध्य में। बीचोबीच।

अंतरत--वि० [सं० अन्तरत] विनाश में आनंद से रहनेवाला। नाश में आनंद माननेवाला [को०]।

अंतरतम--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरतम] सबसे भीतर का भाग या हिस्सा। अंतस्तल। उ०--छिपी रहेंगी अंतरतम में सबके तू निगूढ़ धन सी।--कामायनी, पृ० ६।

अंतरतर[1]--वि० [सं० अन्तरतर] अति समीपी। अत्यंत घनिष्ट [को०]।

अंतरतर[2]--संज्ञा पुं० १ अंतस्तल। उ०--अपनी अलख झलक आभा से मम अंतरतर भर दो।--अपलक। २ ईश्वर (को०)। पृ० १६।

अंतरदंद(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्द्वन्द्व] दे० अंतर्द्वंद। उ०--अंतरदंद चंद मनि गज्जिय --पृ० रा०, ६७।१८५।

अंतरद--वि० [सं० अन्तरद] हृदय को कष्ट पहुँचानेवाला [को०]।

अंतरदाह--संज्ञा पुं० [सं अन्तर्दाह] भीतरी जलन या दुःख। मानसिक ताप। उ०--अंतर दाह जु मिट्यौ व्यास को इक चित ह्वै भागवत किएँ।--सूर०, १।८६।

अंतरदिशा --संज्ञा स्त्री० [सं अंतरदिशा] दो दिशाओं के बीच की दिशा। कोण। विदिशा।

अंतरदीठि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्दृष्टि, प्रा० अंतरदिट्ठि] अंतर्दृष्टि। विवेक।

अंतरद्वार--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्द्वार] छिपा हुआ या भीतरी दरवाजा। अंतःपुर का दरवाजा। उ०--अंतरद्वार घाट भए ठाढ़े गुनत तिया की घातैं --सूर०, १०।२६६६।

अंतरदृष्टि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्दृष्टि] ज्ञानचक्षु। हिए की आँख। उ०--यह अंतरदृष्टि से भली भाँति निगाह कर लेता है कि मैं अपने कर्मों का कर्ता नहीं।--कबीर सा०, पृ० ६६७।

अंतरदेशीय--वि० [सं अन्तर + देशीय] १ दो या अधिक देशों से संबद्ध। २ राष्ट्र या देश के सभी राज्यों या प्रदेशों से संबंधित, जैसे--'अंतरदेशीय पत्र'।

अंतरधन--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्धन] छिपाकर बचाया हुआ धन। उ०--विछु अंतरधन दूतें जु साथ। सा दीनों माता के हाथ।--अर्ध०, पृ० ७।

अंतरधान(पु)--वि० दे० 'अन्तर्द्धान' उ०--पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना। अंतरधान भए भगवाना।--मानस, १।१५२।

अंतरध्यान[1](पु)--वि० [सं० अन्तर्ध्यान] आंतरिक मनन या चिंतन। उ०--अंतरध्यान नाम निज बेरा जिन भजिया तिन पाई।--कबीर श०, भा० १, पृ० ७८।

अंतरध्यान[2](पु)--वि० [सं० 'अन्तर्द्धान' का विकृत रूप] अंतर्हित। लुप्त। उ०--(क) षटमास निमानिसि नृत्य किय। तब गोविंद अंतरध्यान हुय।--पृ० रा०, २।३४५। (ख) भए अंतरध्यान बीते पाछिली निसि जाम।--सा० ल०, पृ० १५४।

अंतरपट--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपट] १ परदा। आड़। ओट। उ०--उघरेहूँ अंतरपट राखत अगने गुनहि कहौं।--घनानंद, पृ० ५४७। २ विवाहमंडप में अग्नि की आहुति के समय अग्नि और वर कन्या के बीच में एक परदा डाल देते हैं जिसमें वे दोनों उस आहुति को न देखें। इस परदे को अंतरपट कहते हैं।

क्रि० प्र०--करना।--डालना।--देना।

मुहा०--अंतरपट खाना = छिपकर बैठना। सामने न रहना। आड़ में रहना।

३ परदा। छिपाव। दुराव। भेद। ४ धातु या औषध को फूँकने के पहले उसकी लुगदी या संपुट पर गीली मिट्टी के लेव के साथ कपड़ा लपेटने की क्रिया। कपरमिट्टी। कपरौटी। कपरौटा।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

५. गीली मिट्टी का लेव देकर लपेटा हुआ कपड़ा।

अंतरपतित आय--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरपतित आय] सौदा पटाने की दस्तूरी। दलाली।

अंतरपाट--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर + पट] परदा। ओट। आड़। उ०--गुप्त रसै मनु नैहोमि। तू दीद अन्तरपाट दिखावेंगे।--कबीर सा०, पृ० ४३२।

अतरपुरुष--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरपुरुष] १ आत्मा। २ परमात्मा। अतर्यामी। परमेश्वर।

अतरपूरुष--संज्ञा सं० [सं० अन्तरपूरुष] दे० 'अतरपुरुष'।

अतरप्रकाश--संज्ञा पु [पुं० अन्त प्रकाश] भीतरी प्रकाश। आत्मज्ञान। उ०--'यह भी बिना अतरप्रकाश के जाना नहीं जा सकता कि भोगनेवाला कौन है और मैं कौन हूँ।--कबीर सा०, पृ० ६७१।

अतरप्रतीहार--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरप्रतीहार] राजप्रासाद के भीतर आने जानेवाले प्रतीहार। अभ्यतर परिजन [हर्ष०]।

अतरप्रभव--संज्ञा पु० [सं० अन्तरप्रभव] जो दो भिन्न भिन्न वर्णों के माता पिता मे उत्पन्न हो। वर्णसकर।

अतरप्रश्न--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरप्रश्न] वह प्रश्न जो पूर्ववर्णित प्रसग मे निहित हो [को०]।

अतरप्रातीय--वि० [सं० अन्तर+प्रान्तीय] दे० 'अन्तरप्रादेशिक'।

अतरप्रादेशिक--वि० [सं० अन्तरप्रादेशिक] १. जिसका सबध अपने प्रदेश या प्रात से हो। अपने प्रात मे होनेवाला। जैसे, अतरप्रादेशिक अपराध। २ देश या राष्ट्र के सभी प्रदेशो या राज्यो मे सबध रखनेवाला।

अतरबरन--संज्ञा पु० [सं० अन्तर+वर्ण] बीच के अक्षर। उ०--या कवित्त अतरबरन लै तुकन द्वै छडि।--भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १६।

अतरबल--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर+बल] भीतरी शक्ति। आतरिक बल। उ०--रथ बिभजि हति केतु पताका। गरजा अति अतरबल थाका।--मानस, ६। ६१।

अतरबाधा-- संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर+बाधा] मानसिक कष्ट। उ०--खेलौ जाइ स्याम सग राधा। यह सुनि कुँवरि हरप मन कीनौ मिटि गई अतरबाधा।--सूर०, १०।७०५।

अतरबानी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वाणी] अतर की वाणी। आत्मा की आवाज। उ०--सुनु हिरदे यह अतरबानी।--रत्न०, पृ० ७।

अतरबास (पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्त +वास] अत पुर। रनिवास। उ०--दुरग चीतोट पहुँचो राइ। अतरबासइ गम कियौ।--बीसल० रा०, पृ० ११२।

अतरबासी--वि० [सं० अतर्+वासी] भीतर रहनेवाला। उ०--उरगाना उर अतरबासी। जाका नाम कहे अविनासी।--रत्न०, पृ० १६५।

अतरबेद--संज्ञा पु० [सं० अन्तर्वेद] दे० 'अतर्वेद'।

अतरभाव (पु)--संज्ञा पुं० [सं० आन्तर्+भाव] भावातर। भिन्न भाव। उ०--कछु पुनि अतरभाव तें कही नायिका जाहि।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १६।

अतरभेद (पु)--संज्ञा पु० [सं० अतर्+भेद] आतरिक तत्व या रहस्य। भीतरी भेद। उ०--ए रस अतरभेद प्रीय जानै विय जौ रस।--पृ० रा०, ६२।१०३।

अतरमतर--संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र मन्त्र] जादू टोना। झाड फूँक। जतर मतर।

अंतरमत--संज्ञा पु० [सं० अन्तर+मत] आतरिक विचार। निगूढ या गुह्य मत। उ०--बचन पच्छिना मिट्टया अतरमत खोला।--पृ० रा०, पृ० २६।

अतरमुख (पु)-- वि० [सं० अन्तर्मुख] भीतर की ओर उन्मुख। आतरिक ध्यानयुक्त। उ०-बरनै दीनदयाल मिलै नहि व हूर टेरे। अतरमुख ह्वै ढूढ सुगध सबै घट तेरे।--दीन० ग्र०, पृ० २३०।

अतरय--संज्ञा पु० [सं० अन्तरय] दे० 'अतराय' [को०]।

अतरयण--संज्ञा पु० [सं० अन्तरयण] अयनो [मार्गो] के सान्निध्य मे सूर्य की स्थिति का काल। उ०--सूत्र 'अयनञ्च' मे अतरयण का उल्लेख है।--पाणिनि०, पृ० १७८।

अतरयन--संज्ञा पु० दे० 'अतरयण'। उ०--अयनाशो के बीच के देशों के लिये पाणिनि ने 'अतरयन' शब्द का प्रयोग किया है।--पाणिनि०, पृ० ४१।

अतररति--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्+रति] सभोग के सात आसन, यथा,स्थिति, तिर्यक्, समुख, विमुख, अध, ऊर्ध्व और उत्तान।

अतरराष्ट्रीय--वि दे० 'सार्वराष्ट्रीय'। उ०-'हिंदुस्तानी उस अतरराष्ट्रीय सेना से मिलकर लड रहे हैं जिसने मैड्रिड की रक्षा खूबी के साथ की है।'--'आज', १९३९।

अतरवर्तिनि, अन्तरवर्तिनी--वि० [सं०अन्तर्वर्तिन्] मध्यस्थ। बीच की। उ०--तिय पिय की हितकारिनी अतरवर्तिनि हैं ई।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ३३।

अतरवासक--संज्ञा पु० [सं० अन्तर्वासक] कपडे के नीचे पहना जानेवाला कपडा। भीतरी वस्त्र। अंतरौटा। उ०--अंबपाली ने तीन डुबकियाँ लगाई, महीन अतरवासक उसके स्वर्णगात्र से चिपक गया।--वै० न०, पृ० ४।

अतरविश्वविद्यालय--वि० [सं० अन्तर्+हिं० विश्वविद्यालय] (अ० इटर युनिवर्सिटी) एकाधिक विश्वविद्यालयों से सबध रखनेवाला। उ०--'इस साल अतरविश्वविद्यालय फुटबाल टूर्नामेंट काशी मे हुआ।'--'आज', १९५१।

अतरशायी--संज्ञा पु० [सं० अन्तर्शायी] अतरस्थ जीव। जीवात्मा।

अतरसचारी--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्सचारी] वे अस्थिर मनोविकार जो बीच बीच मे आकर मनुष्य के हृदय के प्रधान और स्थिर (स्थायी) मनोविकारों मे से किसी की सहायता वा पुष्टि करके रस की सिद्धि करते हैं। इसे केवल सचारी भी कहते हैं। [अतर' शब्द इस कारण भी लगाया गया कि किसी किसी ने अनुभाव के अतर्गत सात्विक भाव को तनसचारी लिखा है।] ये ३३ माने गए हैं। दे० 'सचारी'।

अतरसाखी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त साक्षी] अत साक्ष्य। गुप्त गवाही। साक्षी। उ०--सीता प्रथम अनल महु राखी। प्रगट कीन्हि चह अतरसाखी।--मानस, ६।१०७।

अतरस्थ--वि० [सं० अन्त स्थ] भीतर का। भीतरी। अदर का। भीतर रहनेवाला (जीवात्मा)।

अतरस्थायी--वि० [सं० अन्त स्थायी] दे० 'अत स्थ'।

अतरस्थित--वि० [सं० अन्तरस्थित] दे० 'अतरस्थ'।

अतरबेध (पु)--संज्ञा पुं० [सं०अन्तर्वेध] गगा और यमुना का मध्यवर्ती भूभाग। अन्तर्वेद। उ० अतरबेध कूरभ आइ। सब मेर जेर होइ लगे पाय।--पृ० रा०, १।२११।

अतरहित (पु)--वि० [सं० अन्तर्हित] दे० 'अतर्हित'। उ०--अतरहित सुर आसिष देहीं।--मानस, १।३५१।

अंतरहीन—वि० सं० [अन्तर+हीन] जिसमें फासला न हो। व्यवधान रहित। उ०—उस अंतरहीन सामीप्य में किसी न्यूनता और अवसाद की अनुभूति के लिये स्थान नहीं रह गया।—वो दुनिया, पृ० १३।

अंतरहेत(पु)—वि० दे० 'अंतर्हित'। उ०—तुम तहँ एता सिरजा आपके अंतरहेत।—जायसी ग्र०, पृ० ३५७।

अंतरास—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरास] स्कंध और वक्षस्थल के बीच का भाग [को०]।

अंतरा¹—क्रि० वि० [सं० अन्तरा] १. मध्य। बीच। २ इसी बीच (को०)। ३ समीप। निकट। ४ अतिरिक्त। सिवा। ५ पृथक्। ६ बिना। ७ मार्ग में (को०)। ८. लगभग। प्रायः (को०)। ९ यदातदा। जब तब (को०)। १० कुछ काल के लिये (को०)।

अंतरा²—संज्ञा पुं० १. किसी गीत में स्थायी या टेक के बाद का दूसरा चरण। २ किसी गीत में स्थायी या टेक के अतिरिक्त बाकी और पद या चरण। †३ प्रात काल और संध्या के बीच का समय। दिन।

अंतरा(पु)³—[सं० अन्तर] मध्यवर्ती। बीच का। उ०—जब लगि हरत निमेष अनरा युग समान पल जात।—सूर० (राधा०), १३४७।

अंतरा(पु)⁴—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर] फर्क। भेद। अंतर उ०—सब्द सब्द बहु अंतरा सार सब्द मन लीजै।—कबीर बी०, पृ० ९२।

अंतराइ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराय, प्रा० अंतराइ] विघ्न। अंतराय। बाधा। उ०—'तब श्री चंद्रावली जी कह्यो, जो तैंने श्री ठाकुर जी के मिलन में अंतराइ कियो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १०९।

अंतराकाश—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराकाश] १ मध्य भाग या स्थान। २ हृदय में स्थित ब्रह्म [को०]।

अंतराकूत—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराकूत] गुप्त उद्देश्य। गुप्त आशय अभिप्राय [को०]।

अंतरागार—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरागार] भीतरी गृह। घर का भीतरी हिस्सा [को०]।

अंतरात्मा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरात्मा] १ जीवात्मा। जीव। २ आत्मा। प्राण। उ०—'वह मेरी स्त्री जिसके अभावों का कोप कभी खाली नहीं, ' उससे मेरी अंतरात्मा काँप उठती है'।—स्कंद०, पृ० ३२। ३ अंत.करण। मन।

अंतरादिक्—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरादिक्] दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा [को०]।

अंतरापण—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरापण] नगर के मध्य भाग में स्थित बाजार। उ०—'श्रेणियों का माल अंतरापण में बिकता था'।—वैं० न०, पृ० २।

अंतरापत्या—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरापत्या] गर्भिणी। गर्भवती। हामिला।

अंतराभवदेश—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराभवदेश] दे० 'अंतराभवदेह' [को०]।

अंतराभवदेह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराभवदेह] मृत्यु और पुनर्जन्म के मध्य स्थित आत्मा [को०]।

अंतराय—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराय] १ विघ्न। बाधा। अड़चन। २ ओट। आड़ [को०]। ३. ज्ञान का बाधक। ४ योग की सिद्धि के विघ्न जो नौ प्रकार के हैं, यथा—(क) व्याधि। (ख) स्त्यान = संकोच। (ग) संशय। (घ) प्रमाद। (च) आलस्य (छ) अविरति = विषयों में प्रवृत्ति। (ज) भ्रांतिदर्शन = उलटा ज्ञान, जैसे जड़ में चेतन और चेतन में जड़ बुद्धि। (झ) अलब्ध भूमिकत्व = समाधि की अप्राप्ति। (ट) अनवस्थितत्व = समाधि होने पर भी चित्त का स्थिर न होना। ५ जैन दर्शन में दर्शनावरणीय नामक मूल कर्म के नौ भेदों में से एक, जिसका उदय होने पर दानादि करने में अंतराय वा विघ्न होते हैं। ये अंतराय कर्म पाँच प्रकार के माने गए हैं—दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय।

अंतरायाम—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरायाम] एक रोग जिसमें वायुकोप से मनुष्य की आँखें ठुड्डी और पसली स्तब्ध हो जाती है और मुँह से आप ही आप कफ गिरता है तथा दृष्टिभ्रम से तरह तरह के आकार दिखाई पड़ते हैं।

अंतराराम—वि० [सं० अंतराराम] हृदय में आनंद का अनुभव करनेवाला [को०]।

अंतराल—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराल] १ घिरा हुआ स्थान। आवृत स्थान। घेरा। मंडल। उ०—तुम कनक किरण के अंतराल में लुक छिपकर चलते हो क्यों।—चंद्र०, पृ० ६३। २ मध्य। बीच। उ०—वह देखो वन के अंतराल से निकले, मानो दो तारे क्षितिज पटी से निकले।—साकेत, पृ० २२१। ३ भीतर। ओट। उ०—'कुलपुत्रों को चुप देखकर किसी ने साल के अंतराल से सुकोमल कंठ से कहा'।—इंद्र०, पृ० १३२।

अंतरालक—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरालक] दे० 'अंतराल' [को०]।

अंतरालदिक्—संज्ञा [सं० अन्तरालदिक्] दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा। कोण। कोना।

अंतरालदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरालदिशा] दे० 'अंतरालदिक्'।

अंतरावेदी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरावेदी] खंभों पर बनी हुई ओसारी या मंदिर [को०]।

अंतरिंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरिन्द्रिय] आंतरिक इंद्रियाँ, मन बुद्धि आदि [को०]।

अंतरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरिका] दो घरों के मध्य की गली।

अंतरिक्ख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अंतरिक्ख] दे० 'अंतरिक्ष'। उ०—भुइँ उड़ि अंतरिक्ख मृतमंडा। खंड खंड धरती बरम्हंडा।—जायसी ग्र०, पृ० २।

अंतरिक्ष¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष] १ पृथिवी और सूर्यादि लोकों के बीच का स्थान। कोई दो ग्रहों वा तारों के बीच का शून्य स्थान। आकाश। अधर। रोदसी। शून्य। उ०—सौरभ से दिगंत पूरित था अंतरिक्ष आलोक अधीर।—कामायनी, पृ० ११। २ स्वर्ग लोक। ३ प्राचीन सिद्धांत के अनुसार तीन प्रकार के केतुओं में से एक जिसके घोड़े, हाथी, ध्वज, वृक्ष आदि के समान रूप हों। ४ एक ऋषि का नाम। ५ पृथिवी की आकर्षण शक्ति की परिधि से बाहर का आकाश में स्थान।

यौ०—अंतरिक्षयान = हवाई जहाज। वायुयान। एयरप्लेन (अं०)।

अंतरिक्ष²—वि० अंतर्धान। गुप्त। अप्रकट। उ०—(क) भये ते अंतरिक्ष रिक्ष लक्ष लक्ष जात हीं।—केशव (शब्द०)। (ख) फ्लोडो

आर्डों अंतरिक्ष अर्थात् लोप हो गया। (ग) अविलाइनो इतने समय मे अतरिक्ष था।—अयोध्यासिंह (शब्द०)।

अंतरिक्षक्षित—वि० [सं० अन्तरिक्षक्षित] अन्तरिक्षवासी। अतरिक्ष मे रहनेवाला [को०]।

अंतरिक्षग[1]—वि० [सं० अन्तरिक्षग] अतरिक्ष या आकाश मे गमन करनेवाला [को०]।

अंतरिक्षग[2]—सज्ञा पुं० पक्षी। विहग। खग [को०]।

अंतरिक्षचर[1]—वि० [सं० अन्तरिक्षचर] दे० अंतरिक्षग' [को०]।

अंतरिक्षचर[2]—सज्ञा पु० पक्षी [को०]।

अंतरिक्षचारी[1]—वि० [स० अंतरिक्षचारी] दे० 'अंतरिक्षग' [को०]।

अंतरिक्षचारी[2]—सज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

अंतरिक्षजल—सज्ञा पुं० [पुं० अन्तरिक्षजल] ओस। अवश्याय नीहार [को०]।

अंतरिक्षसत्[1]—वि० [सं० अन्तरिक्षसत्] अतरिक्ष या शून्य आकाश मे गमन करनेवाला। आकाशचारी।

अंतरिक्षसत्[2]—सज्ञा पुं० १ आत्मा। २ पक्षी।

अंतरिक्षायतन[1]—स्त्री० पुं० [सं० अन्तरिक्षायतन] अतरिक्ष मे निवास करनेवाले देवता [को०]।

अंतरिक्षायतन[2]—वि० आकाशवासी। क्षतरिक्षवासी (को०)।

अंतरिख—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अतरिक्ख] १ दे० 'अंतरिक्ष'। २ (ला०) भूला। उ०—रसदायिनी सुदरी रमतौ सेज अतरिख भूमि सम।—वेलि०, दू० २१७।

अंतरिच्छ—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अतरिक्ख] १ आकाश। उ०—जोजन विस्तार सिला पवनसुत उपाटी। किंकर करि बान, लच्छ अंतरिच्छ काटी।—सूर०, ९।९८। २ अधर। ओठ। उ०—अंतरिच्छ श्री वधू लेत हरि त्यौं ही आप आपनो घाती।—सा० लहरी, पृ० ५६।

विशेष—अतरिक्ष का पर्याय अधर' = ओठ है और अधर का अतरिक्ष है, अत पर्यायसाम्य से अर्थपरिवर्तन हुआ।

अंतरित[1]—[वि० अन्तरित] १ भीतर किया हुआ। भीतर रखा हुआ। भितराया हुआ। छिपाया हुआ।

क्रि० प्र०—करना = भीतर करना। भीतर ले जाना। छिपाना।—होना = भीतर होना। अदर जाना। छिपना।

२, अतर्धान। गुप्त। गायब। तिरोहित।

क्रि० प्र—करना। होना।

३ आच्छादित। ढका हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

४. बीच मे आया हुआ (को०)। ५ अलग किया हुआ। पृथक्कृत (को०)। ६ तुच्छ समझा हुआ या तुच्छ समझा हुआ या तुच्छ किया हुआ (को०)। ७ नष्ट किया हुआ।

अंतरित[2]—सज्ञा पुं० १ शेष। बाकी। २ स्थापत्य कला का एक पारिभाषिक शब्द [को०]।

अंतरिम—वि० [अ० इंटेरिम] १. मध्यवर्ती। दो समय के बीच का। २ अस्थायी।

यौ०—अंतरिम सरकार = मध्यवर्ती वा अस्थायी सरकार [अ० इंटेरिम गवनमेंट]।

अंतरीक—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अतरिक्ख, अतरिक्क] आकाश। अतरिक्ष।—डिं०।

अंतरीक्ष—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरीक्ष] दे० 'अंतरिक्ष' [को]।

अंतरीछ—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरीक्ष] आकाश। गगन। उ०—पारस, मनि नृप नखियाँ, करि कचन के ग्राम। अतरीछ उडिके गयौ, नरवाहन के धाम —परमाल रा०, पृ० ३४।

अंतरीप—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरीप] १ द्वीप। टापू। २ पृथिवी का वह नोकीला भाग जो समुद्र मे दूर तक चला गया हो। रास।

अंतरीय—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरीय] कमर मे पहनने का वस्त्र। अधा- वस्त्र। धोती।

अंतरीय[2]—वि० भीतर का। अदर का। भीतरी।

अंतरु†—सज्ञा पुं० दे० अतर'। उ०—अत अत रु के ऊवर।—रघु० रू० पृ० २४१।

अंतरैक्य—सं० पुं० [सं० अन्तर् + ऐक्य] हार्दिक एकता। आतरिक एकत्व। उ०—लोकतत्व की सुदृढ नींव रख अतरैक्य पर।—रजतशि०, पृ० ११३।

अंतर—वि० [सं० अन्तर] भीतर। बीच मे।

विशेष—समस्त पदों मे इस शब्द के अन., अतर्, अतश् और अतस रूप यथानियम हो जाते हैं।

अंतर्कथा[1]—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तकथा] प्रसग द्वारा या सदर्भ में सकेतित कथा।

अंतर्कथा[2]—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर् + कथा] गुप्त कथा। भीतरी बात। उ०—'साहित्यकार का जीवन, अन्तर्कथा आदि के प्रश्न कभी न पूछना चाहिए, नहीं तो रसधारा भग हो जाती है'।—भा० शिक्षा, पृ० १२६।

अंतर्गंगा—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गङ्गा] गुप्त गगा। छिपी हुई या लुप्त गगा [को०]।

अंतर्गडु—वि० [सं० अन्तर्गडु] व्यर्थ। निष्प्रयोजन। बेकार। निरर्थक। वृथा [को०]।

अंतर्गत[1]—वि० [सं० अन्तर्गत] १ भीतर आया हुआ। समाया हुआ। शामिल। अतर्भूत। अतर्गृहीत। सम्मिलित। उ०—(क) 'और यह भी ध्यान हुआ कि ऐसे बडे-बडे वृक्ष इन्हीं छोटे बीजो के अंतर्गत हैं'।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० १२५। (ख) 'इस समय इतना भूभाग मलाबार के अतर्गत हैं'।—सरस्वती (शब्द०)। २ भीतरी। छिपा हुआ। गुप्त। उ०—'यह फोडा कभी प्रत्यक्ष, कभी अतर्गत रहता है'।—अमृतसागर (शब्द०)। ३ हृदय के भीतर का। अत.करणस्थित। उ०—'उनके अतर्गत भावो को कौन जान सकता है' (शब्द०)।

अंतर्गत[2]—सज्ञा पुं० मन। जी। हृदय। चित्त। उ०—(क) रुक्म रिसाइ पिता सो कह्यो। सुनि ताको अतर्गत दह्यो।—सूर०, (शब्द०)। (ख) तुलसिदास जद्यपि निसि बासर छिन छिन प्रभु मूरतिहिं निहारति। मिटति न दुसह ताप तउ तन की यह विचारि अतर्गत हारति।—तुलसी (शब्द०)।

अंतर्गति—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गति] मन का भाव। चित्तवृत्ति। भावना। चित्त की अभिलाषा। हार्दिक इच्छा। मनकामना। उ०—(क) रही आन चहुँ विधि भगतन की जनु अनुराग भरी

अंतर्गति।—तुलसी (शब्द०)। (ख) 'श्री पार्वती जी ने कृपा की अंतर्गति जानि उसे अति हित से निकट बुलाय प्यार कर ममभाय के कहा'।—प्रेमसागर (शब्द०)।

अंतर्गर्भ—वि० [सं० अन्तर्गर्भ] गर्भयुक्त [को०]।

अंतर्गांधार—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्गान्धार] संगीत में तीसरे स्वर के अंतर्गत एक विकृत स्वर जो प्रसारिणी नामक श्रुति से आरंभ होता है और जिसमें चार श्रुतियाँ होती हैं।

अंतर्गृह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्गृह] भीतर का घर। भीतर की कोठरी। घर का भीतरी खंड।

अंतर्गृहगता—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गृह + गता] भक्तिमार्ग में ठाकुर जी को कामबुद्धि से भजनेवाली सेविका। उ०—'और लीला के भाव में हू देखें तो प्रभु की इच्छा होइ तब अंतर्गृहगतान के साथ प्रभु रमन करत हैं।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ४४६।

अंतर्गृही—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गृह + ई (प्र०)] तीर्थस्थान के भीतर पड़नेवाले प्रधान स्थलों की यात्रा।

अंतर्गेह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्गेह] घर या मकान का भीतरी खंड [को०]।

अंतर्घट—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्घट] शरीर के भीतर का भाग। अंतःकरण। हृदय। मन।

अंतर्घन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्घन] मुख्य द्वार और घर के बीच का स्थान [को०]।

अंतर्घात—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्घात] दे० 'अन्तर्घन' [को०]।

अंतर्ज—वि० [सं० अन्तर्ज] अंतर या भीतर उत्पन्न (जैसे, शरीर में कीड़ा) [को०]।

अंतर्जगत्—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्जगत्] अंतस्तल। भीतरी जगत्। मन का संसार। उ०—अंधकार का आलोक से, असत् का सत् से, जड़ का चेतन से, और बाह्य जगत् का अंतर्जगत् से संबंध कौन कराती है? कविता ही न?—स्कंद०, पृ० २१।

अंतर्जठर—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्जठर] कोख। पेट [को०]।

अंतर्जलन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + हिं० जलन] भीतरी जलन। अंतर्दाह। उ०—जानती अंतर्जलन क्या कर नहीं, दाह से आराध्य भी सुंदर नहीं।—रेणुका, पृ० १००।

अंतर्जात—वि० [सं० अन्तर्जात] भीतर उत्पन्न। उ०—'कला उच्चता की अंतर्जात प्रवृत्ति की शोधिका है'।—पा० सा० सि०, पृ० ६७।

अंतर्जातीय—वि० [सं० अन्तर् + हिं० जातीय] भिन्न वर्णों अथवा जातियों संबंधी। दो या दो से अधिक जातियों के बीच का। उ०—'इन सब कथनों से सिद्ध होता है कि अंतर्जातीय व्याह अवश्य होते थे'।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १५६।

अंतर्जानी(पु)—वि० दे० 'अंतरजानी'। उ०—आए तुम समर्थ हो अंतर्जानी सत्य कहो हम निश्चय मानी।—कबीर सा०, पृ० २२३।

अंतर्जानु—वि० [सं० अन्तर्जानु] हाथों को घुटने के बीच किए हुए।

अंतर्जामी(पु)—वि० दे० 'अंतरजामी'।

अंतर्जीवन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्जीवन] आंतरिक जीवन। बौद्धिक या वैचारिक जीवन। उ०—अंतर्जीवन सत्य कर दिया तुमने ज्योतित।—स्वर्ण०, पृ० ६१।

अंतर्जीवी सं० [सं० अन्तर्जीवी] आंतरिक जीवनवाला। जिसकी वृत्ति आंतरिक हो। विचारप्रधान। उ०—आज मुझे है महत्प्रेरणा मिली 'मनुज अंतर्जीवी है।—रजत शि०, पृ० ७०।

अंतर्ज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्ज्ञान]। १. अंतःकरण की बात का जानना। दूसरे के दिल की बात जानना। परोक्षदर्शन। २. परिज्ञान। अंतःकरण का अनुभव। अंतर्बोध।

अंतर्ज्योति¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्ज्योतिस्] अंतर्यामी। परमेश्वर

अंतर्ज्योति²—वि० जिसकी आत्मा प्रकाशित हो। [को०]

अंतर्ज्वलन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्ज्वलन] भीतरी ताप। आभ्यंतर अग्नि [को०]।

अंतर्ज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्ज्वाला] १ भीतरी आग। भीतर की अग्नि। २ चिंता। संताप [को०]।

अंतर्दग्ध—वि० [सं० अन्तर्दग्ध] भीतर भीतर जला हुआ [को०]।

अंतर्दंधन —संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्दंधन] शराब चुआने का कार्य या स्थिति [को०]।

अंतर्दधान—वि० [सं० अन्तर्धान] गुप्त। छिपा हुआ [को०]।

अंतर्दर्शक—वि० [सं० अन्तर्दर्शक] दे० 'अंतर्दर्शी'। उ०—पहले प्रकार के मनुष्य को हम मननशील कहते हैं और दूसरे प्रकार के मनुष्य को अंतर्दर्शक कहते हैं।—पा० सा० सि०, पृ० १८९।

अंतर्दशा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्दशा] १. फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन में जो ग्रहों के भोगकाल नियत हैं उन्हें दशा कहते हैं। मनुष्य की पूरी आयु १२० वर्ष की मानी गई है। इस १२० वर्ष के पूरे समय में प्रत्येक ग्रह के भोग के लिये वर्षों की अलग अलग संख्या नियत है जिसे महादशा कहते हैं, जैसे सूर्य की महादशा ६ वर्ष, चंद्रमा की १० वर्ष इत्यादि। अब इस प्रत्येक ग्रह के नियत भोगकाल या महादशा के अंतर्गत भी नवग्रहों के भोगकाल नियत हैं जिन्हें अंतर्दशा कहते हैं। जैसे सूर्य के ६ वर्ष में सूर्य का भोगकाल ३ महीने १८ दिन और चंद्रमा का ६ महीने इत्यादि। कोई कोई अष्टोत्तरी गणना के अनुसार अर्थात् १०८ वर्ष की आयु मानकर चलते हैं। २ मन स्थिति। चित्त की वृत्ति। उ०—अनेक भाव तथा अंतर्दशाएँ उसके संचारी के रूप में आती हैं।—रस०, पृ० ६५।

अंतर्दशाह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्दशाह] मरने के पीछे दस दिन तक मृतक की आत्मा वायु रूप में रहती है और प्रेत कहलाती है। इन दस दिनों के भीतर हिंदू शास्त्र के अनुसार जो कर्मकाण्ड किए जाते हैं उन्हें अंतर्दशाह कहते हैं।

अंतर्दर्शी—वि० [सं० अन्तर्दर्शी] १. अंतःकरण की वृत्ति समझनेवाला। मन के भाव जाननेवाला। दिल की बात जाननेवाला। २. आत्मनिरीक्षक। तत्ववेत्ता। ३ भीतर देखने या परखनेवाला [को०]।

अंतर्दाह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्दाह] १. आंतरिक दुःख। मानसिक वेदना। उ०—अंतर्दाह स्नेह का तब भी होता था उस मन में।—कामायनी, पृ० ११६। २. एक प्रकार का सन्निपात।—माधव, पृ० २०।

अंतर्दृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्दृष्टि] १. ज्ञानचक्षु। प्रज्ञा। हिए की आँख। उ०—बिना नवीन अभ्यास और अंतर्दृष्टि के साहित्यिक कृतियों का अनुशीलन करना, प्रति दिन कठिन होता

जा रहा है।—जय० प्र०, पृ० ८६। २ आत्मचिंतन। आत्मा का ध्यान।

अंतर्देशीय—वि० [सं० अन्तर्देशीय] १ देश के भीतर का। जैसे अंतर्देशीय पत्र। २ दो या दो से अधिक देशो के मध्य का। दो या अधिक देश संबंधी।

अंतर्द्धान¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्द्धान] लोप। अदर्शन। छिपाव। तिरोधान।

अंतर्द्धान²—वि० गुप्त। अलक्ष्य। गायब। अदृश्य। अंतर्हित। अप्रकट। लुप्त। छिपा हुआ।

क्रि० प्र०—करना = छिपाना। दूर हटाना। = नजर से गायब करना। उ०—ताते महा भयानक भूप। अंतर्द्धान करो सुर भूप। —सूर (शब्द०)।—होना = छिपना। लोप होना। उ०—भई मुनि की खोज पै सो भए अंतर्द्धान।—बुद्ध० च०, पृ० १६।

अंतर्द्वंद्व—संज्ञा, पुं० [सं० अन्तर्द्वन्द्व] १ चरित्रविकास की दृष्टि से नाटक के प्रधान पात्र का आंतरिक संघर्ष। मन में उठनेवाले भावों अथवा विचारों का संघर्ष। उ०—मानवीय प्रेम के उद्भव, उत्थान, विकास, अंतर्द्वंद्व, ह्रास आदि की कहानी कहने का यत्न किया गया है।—हिं० आ० प्र०, पृ० २४५। २ घर या देश का आपसी झगड़ा [को०]।

अंतर्द्वार—संज्ञा, पुं० [सं० अन्तर्द्वार] घर के भीतर का गुप्त द्वार। घर में आने जाने के लिये प्रधान द्वार के अतिरिक्त एक और द्वार। पीछे का दरवाजा। खिड़की। चोर दरवाजा।

अंतर्धा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्धा] १ अपवारण। २ संगोपन। आच्छादन [को०]।

अंतर्धान—वि० [सं० अन्तर्धान] गुप्त। अदृश्य। अंतर्हित। उ०—कै हरि जू भए अंतर्धान। मोसौं कहि तू प्रगट बखान।—सूर०, १।२८६।

अंतर्धापन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्धापन] संगोपन। छिपाने या तिरोहित करने का कार्य [को०]।

अंतर्धापित—[सं० अन्तर्धापित] संगोपित। छिपाया हुआ [को०]।

अंतर्धारा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्धारा] वह प्रवाह जो बाह्य लक्षणों से व्यक्त न हो। आंतरिक धारा। उ०—वन जीवन के विषम देश की निर्मल अंतर्धारा। जीवन का मृदु मर्म सींचती रही अमृत रस द्वारा।—पार्वती०, पृ० २१।

अंतर्धि—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्धि] १ दो संघर्षशील राज्यों के बीच में पड़नेवाला राज्य। २ दे० 'अंतर्धा' [को०]।

अंतर्ध्यान—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्ध्यान] आंतरिक एवं गंभीर समाधि [को०]।

अंतर्नगर—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्नगर] राजा का प्रासाद या रईस का महल [को०]।

अंतर्नयन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्नयन] दे० 'अंतर्दृष्टि'। उ०—खोल अंतर्नयन करती नित्य शिव का ध्यान।—पार्वती०, पृ० ८३।

अंतर्नाद—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्नाद] अंतरात्मा की पुकार। हृदय की आवाज।

अंतर्निर्भरता—संज्ञा पुं० [सं० अंतर् + निर्भरता] पारस्परिक निर्भरता। एक दूसरे का भरोसा या सहारा। उ०—स्वाधीनता ध्येय नहीं, साधन मात्र है, ध्येय है अंतर्निर्भरता तथा एकता।—रजत शि०, पृ० १२१।

अंतर्निविष्ट—वि० [सं० अन्तर्निविष्ट] १. भीतर बैठा हुआ। अंदर रखा हुआ। २ अंतःकरण में स्थित। मन में जमा हुआ। हृदय में बैठा हुआ।

क्रि० प्र०—करना = (१) भीतर बैठाना। अंदर ले जाना। भीतर रखना। (२) मन में रखना। जी में बैठाना। हृदयगत करना। दिल में जमाना।—होना = (१) भीतर बैठना। भीतर जाना। भीतर पहुँचना। (२) मन में धँसना। चित्त में बैठना। दिल में जमना। हृदयगत होना।

अंतर्निष्ठ—वि० [सं० अन्तर्निष्ठ] आत्मीय या विषयीगत (सब्जेक्टिव)। उ०—प्रेमचंद के लिये सब कुछ अपना ही है, जैनेंद्र का जो कुछ है अपना है। एक बहिर्निष्ठ और दूसरा अंतर्निष्ठ।—प्रेम० गोर्की, पृ० २१७। २ आंतरिक चिंतन में लगा हुआ [को०]।

अंतर्निहित—वि० [सं० अन्तर्निहित] विलीन। समाविष्ट। उ०—उधर पराजित कालरात्रि भी जल में अंतर्निहित हुई।—कामायनी, पृ० २३।

अंतर्बाष्प¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्बाष्प] दबाए गए अश्रु। रोका हुआ आँसू। निरुद्ध बाष्प [को०]।

अंतर्बाष्प²—वि० अश्रुमय [को०]।

अंतर्बोध—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्बोध] १ आत्मज्ञान। आत्मा की पहचान। २ आंतरिक अनुभव।

अंतर्भवन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्भवन] घर का भीतरी भाग। अंतर्गृह। अंतरभवन। उ०—छोड़ सभा विलास भी अंतर्भवन निज किस विजन में।—पार्वती०, पृ० १५१।

अंतर्भाव—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्भाव] [वि० अन्तर्भावित, अन्तर्भूत, संज्ञा अन्तर्भावना] १ मध्य में प्राप्ति। भीतर समावेश। अंतर्गत होना। शामिल होना।—उ० अन्य अर्थालंकारों का उपमा, दीपक और रूपक में अंतर्भाव है। (अर्थात् अन्य अलंकार उपमा दीपक आदि के अंतर्गत हैं)—(शब्द०)। २ तिरोभाव। विलीनता। छिपाव। ३ नाश। अभाव। ४ आर्हत या जैन दर्शन में आठ कर्मों का क्षय जिससे मोक्ष होता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

५ भीतर का भाव। आंतरिक अभिप्राय। आशय। मंशा।

अंतर्भावना—संज्ञा स्त्री० [अन्तर्भावना] १ ध्यान। सोच विचार। चिंता। चिंतवन। २ गुणनफल के अंतर से संख्याओं को ठीक करना।

अंतर्भावित—वि० [सं० अन्तर्भावित] १ अंतर्भूत। अंतर्गत। शामिल। भीतर। २ भीतर किया हुआ। छिपाया हुआ। लुप्त।

अंतर्भुक्त—वि० [सं० अन्तर्भुक्त] शामिल। समाविष्ट। उ०—इन जातियों और इनकी समस्त आचार परंपरा को धीरे धीरे इन टीकाओं तथा ऋषियों के नाम पर लिखे गए नए नए स्मृति और पुराणग्रंथों में अंतर्भुक्त किया गया।—हिं० सा० भू०, पृ० १३।

अंतर्भूत¹—वि० [सं० अन्तर्भूत] अंतर्गत। शामिल। उ०—जिनके अंतर्भूत हैं मुद्राबंध समस्त।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३२।

अंतर्भूत²--संज्ञा पुं० जीवात्मा। प्राण। जीव।

अंतर्भूमि--संज्ञा स्त्री० [अन्तर्भूमि] पृथ्वी का भीतरी भाग। भूगर्भ।

अंतर्भेद--संज्ञा पुं० [अन्तर्भेद] भीतरी मनमुटाव [को०]।

अंतर्भेदिनी--वि० [सं० अन्तर्भेदिनी] हृदय का भेदन करनेवाली। भीतर तक पहुँचनेवाली। उ०--उसकी सर्वदर्शिनी अन्तर्भेदिनी आँखों से छिपी न रह सकी।--प० रानी, पृ० ८।

अंतर्भौम--वि० [सं० अन्तर्भौम] जमीन के अंदर का। भूगर्भ में स्थित [को०]।

अंतर्मन--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्मन] भीतरी मन। मन की भीतरी चेतना। अवचेतन। उ०--(क) उस भरे पूरे वातावरण में रहने पर भी मेरा अंतर्मन वास्तव में भयंकर सूनेपन का अनुभव करता रहता था।--प० रानी, पृ० ३६। (ख) अंतर्मन के भूमिकंप से ध्वस्त भ्रष्ट हों। शिखर सनातन शिखर रहे हैं मर्त्य धूलि पर।--युगपथ, पृ० ११०।

अंतर्मना--वि० [सं० अन्तर्मनस्, अन्तर्मना] १ व्याकुलचित्त। घबड़ाया हुआ। विकल। २ उदास। रंजीदा। ३. अंतर्मुखी।

अंतर्मल--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्मल] १ भीतर का मल। पेट के भीतर का मैला। पेट के अंदर की अलाइश। २ चित्त-विकार। मन का दोष। हृदय की बुरी वासना।

अंतर्मुख¹--वि० [सं० अन्तर्मुख] [स्त्री० अन्तर्मुखी] १ जिसका मुख भीतर की ओर हो। भीतर मुँहवाला। जिसका छिद्र भीतर की ओर हो। उ०--यह फोड़ा अति कठोर और अंतर्मुख होता है।--अमृतसागर (शब्द०)। २ जिसकी वृत्ति बहिर्मुख न हो। अपने ही विचारों और कल्पनाओं में तल्लीन रहनेवाला। उ०--'वह अंतर्मुख और आत्मरत था'।--सम्मा० चि०, पृ० १०।

अंतर्मुख²--क्रि० वि०, भीतर की ओर प्रवृत्त। जो बाहर से हटकर भीतर ही लीन हो।

क्रि० प्र०--करना = भीतर की ओर ले जाना या फेरना। भीतर नियुक्त करना। उ०--अकामी पुरुष इंद्रियों को हटाय अंतर्मुख कर उनके द्वारा अपनी महिमा का साक्षात् अनुभव करता है--कठ० उप० (शब्द०)।

अंतर्मुद्र¹--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्मुद्र] भक्ति का एक प्रकार [को०]।

अंतर्मुद्र²--वि० भीतर से मुहरबंद [को०]।

अंतर्मृत--वि० [सं० अन्तर्मृत] गर्भ के भीतर मरा हुआ (शिशु) [को०]।

अंतर्य--वि० [सं० अन्तर्य] भीतर का। बीच का [को०]।

अंतर्यज्ञ--संज्ञा पुं० दे० 'अंतर्याग' [को०]।

अंतर्यश्छद--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्यश्छद] भीतर का आवरण [को०]।

अंतर्याग--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्याग] मानस यज्ञ या मानसिक पूजा [को०]।

अंतर्यामी¹--वि० [सं० अन्तर्यामिन्, अन्तर्यामी] [वि० स्त्री० अन्तर्यामिनि] १. भीतर की बात जाननेवाला। हृदय की बात का ज्ञान रखनेवाला। उ०--(क) जो अंतर्यामी, वही इसे जानेगा।--साकेत, पृ० २३३। (ख) किसने तुमको अंतर्यामिनि! बतलाया उसका आना?--वीणा, पृ०, ५८। २ अंतःकरण में स्थित होकर प्रेरणा करनेवाला। चित्त पर दबाव या अधिकार रखनेवाला। ३ भीतर तक पैठनेवाला। भीतर पहुँच रखनेवाला। उ०--बाण के सांस्कृतिक अध्ययन का अन्तर्यामी सूत्र कुछ गहराई तक उनके शास्त्र में पैठने पर हमारे हाथ आया।--हर्ष० पृ० २।

अंतर्यामी²--संज्ञा पुं० ईश्वर। परमात्मा। चैतन्य। परमेश्वर। पुरुष।

अंतर्योग--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्योग] ध्यान। अखंड ध्यान [को०]।

अंतर्राष्ट्रीय--वि० दे० 'अंतर राष्ट्रीय', 'अंत रराष्ट्रीय'। उ०--उनके काम करने के घंटे और काम करने के नियम, भारत की आर्थिक व्यवस्था पर ध्यान रखते हुए, अंतर्राष्ट्रीय ढंग पर हों।--भा० वि०, पृ० ३६।

विशेष--यह शब्द संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध नहीं है।

अंतर्लंब--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्लम्ब] वह त्रिकोण क्षेत्र जिसके भीतर लंब गिरा हो।

अंतर्लापिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्लापिका] वह पहेली जिसका उत्तर उसी पहेली के अक्षरों में हो। उ०--(क) कौन जाति सीता सती, दई कौन कहँ तात। कौन ग्रंथ बरण्यो हरी, रामायण अवदात।--वैष्णव (शब्द०)। इस दोहे में पहले पूछा है कि सीता कौन जाति थीं? उत्तर--रामा = स्त्री। फिर पूछा कि उनके पिता ने उन्हें किसको दिया? उत्तर 'रामाय = राम को। फिर पूछा किस ग्रंथ में हरण लिखा गया है। उत्तर हुआ 'रामायण'। (ख) चार महीने बहुत चलै औ आठ महीने थोरी। अमीर खुसरो यों कहै तू बूझ पहेली मोरी।--(शब्द०)। इसमें 'मोरी' शब्द ही उत्तर है।

अंतर्लीन--वि० [सं० अन्तर्लीन] १ मग्न। भीतर छिपा हुआ। डूबा हुआ। गर्क। विलीन। २. तन्मय। ध्यान में मग्न (को०)।

अंतर्वंश--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वंश] अंतःपुर [को०]।

अंतर्वंशिक--वि० [अन्तर्वंशिक] अंतःपुर या अंतर्वंश का निरीक्षक [को०]।

अंतर्वण--वि० सं० [अन्तर्वण] वन के भीतर बसा हुआ [को०]।

अंतर्वती--वि० [सं० अन्तर्वती] १ गर्भवती। अंतर्वत्नी। गर्भिणी। हामिला। २ भीतरी। भीतर की। अंदर रहनेवाली। अंतरस्थित।

अंतर्वत्नी--वि० स्त्री० [सं० अन्तर्वत्नी] गर्भवती। गर्भिणी। हामिला। उ०--निज प्रिय पति के दिव्य तेज से अंतर्वत्नी रानी।--पार्वती, पृ० ५१।

अंतर्वमि--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वमि] अजीर्ण [को०]।

अंतर्वर्ग--पुं० [सं० अन्तर्वर्ग] किसी वर्ग या समूह के भीतर का वर्ग [को०]।

अंतर्वर्ती--वि० [सं० अन्तर्वर्ती] [वि० स्त्री० अंतर्वर्तिनी] भीतरी। भीतर का। अंदर रहनेवाला [को०]।

अंतर्वस्तु--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वस्तु] किसी पुस्तक, पात्र, पेटी आदि के भीतर की वस्तु [को०]।

अंतर्वस्त्र--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वस्त्र] ऊपरी वस्त्र के अंदर पहनने का कपड़ा [को०]।

अंतर्वाणी--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वाणी] शास्त्रज्ञ। पंडित। शास्त्रवेत्ता। शास्त्रों का जाननेवाला। विद्वान्।

अंतर्वायु--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वायु] हृदयस्थ वस्तु। प्राणवायु। उ०--अंतर्वायु निरोध पूर्णत कर रत अविरत तप, मे।--पार्वती०, पृ० १२१।

अंतर्वाष्प[1]--संज्ञा पुं० [अंतर्वाष्प] दे० 'अंतरवाष्प'।

अंतर्वाष्प[2]--वि० आँसू से भरा। अश्रुपूरित [को०]।

अंतर्वास--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वास] दे० 'अंतर्वस्त्र' [को०]।

अंतर्वासक--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वासक] भीतर पहना जानेवाला वस्त्र। अँतरौटा। उ०--(क) फिर चाहे आप त्रिपिटक से ही प्रमाण क्यों न दें कि बिना अंतर्वासक, चीवर इत्यादि के भारत का कोई भी भिक्षु नहीं रहता था, पर वे कब माननेवाले।--आँधी, पृ० ८। (ख) तरुणी का घुटने तक लटकनेवाला अंतर्वासक हवा में फड़फड़ा रहा था।--वै० न०, पृ० १३६।

अंतर्विकार--स्त्री० पुं० [सं० अन्तर् + विकार] शरीर का धर्म। मन या शरीर संबंधी अनुभव, जैसे भूख, प्यास, पीड़ा इत्यादि।

अंतर्विद्रोह--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + विद्रोह] विद्रोह। गृहयुद्ध। उ०--तात! विपत्तियों के बादल घिर रहे हैं, अंतर्विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित है, इस समय मैं केवल एक सैनिक बन सकूँगा, सम्राट् नहीं।--स्कंद० पृ०, ७६।

अंतर्विरोध--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + विरोध] आंतरिक विरोध। भीतरी झगड़ा। उ०--आर्य साम्राज्य के अंतर्विरोध और दुर्बलता को आक्रमणकारी भली भाँति जान गए हैं।--स्कंद०, पृ० ७०।

अंतर्वृत्ति--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर् + वृत्ति] मनोवृत्ति। आंतरिक प्रवृत्ति। उ०--जो कविता रमणी के रूपमाधुर्य में हमें तृप्त करती है वही उसकी अंतर्वृत्ति की सुंदरता का आभास देकर हमें मुग्ध करती है।--रस०, पृ० ३१।

अंतर्वेग--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + वेग] मनोवेग। मनोविकार। [अं० इमोशन] उ०--परंतु मनोविज्ञान में कलामीमांसा संबंधी अंतर्वेग जैसे मानसिक तत्व का कोई स्थान नहीं है।--पा० सा० सि०, पृ० २००। २ भीतरी ज्वर (वैद्यक)।

अंतर्वेगी ज्वर--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेगी ज्वर] एक प्रकार का ज्वर जिसमें भीतर दाह, प्यास, चक्कर, सिर में दर्द और पेट में शूल होता है। इसमें रोगी को पसीना नहीं आता और न दस्त होता है। इसे कष्टज्वर भी कहते हैं।

अंतर्वेद--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेदि] [वि० अंतर्वेदी] १ देश जिसके अंतर्गत यज्ञों की वेदियाँ हों। २ गंगा और यमुना के बीच का देश। गंगा यमुना के बीच का दोआब। ब्रह्मावर्त देश। उ०--तुम आज से अंतर्वेद के विषयपति नियत किए गए।--स्कंद०, पृ० ८१। ३ दो नदियों के बीच का देश या भूखंड। दोआब।

अंतर्वेदना--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वेदना] आंतरिक व्यथा। भीतरी दुःख या पीड़ा। उ०--क्या यह सारी अंतर्वेदना इसी विलासप्रेम के कारण है।--काया०, पृ० ५२०।

अंतर्वेदि--वि० [सं० अन्तर्वेदि] दे० 'अंतर्वेदी' [को०]।

अंतर्वेदी[1]--वि० [सं० अन्तर्वेदीय] अंतर्वेद का निवासी। गंगा यमुना के बीच के देश में रहनेवाला। गंगा यमुना के दोआब में बसनेवाला।

अंतर्वेदी[2]--संज्ञा स्त्री० गंगा यमुना के बीच की भूमि या देश। ब्रह्मावर्त देश।

अंतर्वेध--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेध] शरीर की चोट या आघात से होनेवाला दर्द [को०]।

अंतर्वेशिक--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेशिक] अंतःपुर का रक्षक। जनानखाने की रखवाली करनेवाला। राजाज्ञा।

अंतर्वेश्म--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेश्म] भीतरी घर। गृह का भीतरी हिस्सा [को०]।

अंतर्वेश्मिक--संज्ञा पुं० [अन्तर्वेश्मिक] अंतःपुर का निरीक्षक। अंतर्वेशिक [को०]।

अंतर्व्याधि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्व्याधि] भीतर की व्याधि। आंतरिक रोग [को०]।

अंतर्व्रण--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्व्रण] शरीर के भीतर होनेवाला फोड़ा [को०]।

अंतर्हस्त--क्रि० वि० [सं० अन्तर्हस्त] हाथ में। हाथ की पहुँच के भीतर [को०]।

अंतर्हस्तीन--वि० [सं० अन्तर्हस्तीन] जो हाथ की पहुँच के भीतर हो या जो हस्तगत हो [को०]।

अंतर्हास--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्हास] भीतरी हँसी। भीतर ही भीतर हँसना। मन ही मन की हँसी। अप्रकट हास। गूढ़ हास।

अंतर्हित--वि० [सं० अन्तर्हित] तिरोहित। अंतर्धान। गुप्त। गायब। छिपा हुआ। अदृश्य। अलक्ष्य। लुप्त।

क्रि० प्र०--करना।--होना = अंतर्धान होना। उ०--एहि विधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ।--तुलसी (शब्द०)।--रहना = गायब या गुप्त रहना। छिपा हुआ रहना। उ०--'कुछ प्रवृत्तियाँ अंतर्हित रहती हैं'।--रस०, पृ० १७५।

अंतर्हृदय--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्हृदय] हृदय का भीतरी हिस्सा [को०]।

अंतलघु--संज्ञा पुं० [सं० अन्तलघु] १ छंद का वह चरण जिसके अंत में लघुवर्ण या मात्रा हो। २ वह शब्द जिसका अंतिमवर्ण लघु हो।

अंतलीन--वि० [सं० अन्तलीन] छिपा हुआ [को०]।

अंतलोप--वि० [सं० अन्तलोप] (शब्द) जिसका अंतिम अक्षर लुप्त हो (व्या०) [को०]।

अंतवत--वि० [सं० अन्तवत्, अन्तवन्त.] नष्ट या समाप्त होनेवाला। मरणधर्मा। विनाशी। उ०--अंतवत तम की माया यह सतत क्यों ठहरे।--अपलक, पृ० १०४।

अंतवर्ण[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तवर्ण] १ वर्ग का अंतिम अक्षर। पंचम वर्ण, जैसे, ङ, ञ, ण, न, म आदि [को०]। २. शूद्र।

अंतवर्ण[2]--वि० अंतिम वर्ण का। चतुर्थ वर्ण का।

अंतवह्नि--संज्ञा पुं० [सं० अन्तवह्नि] प्रलय की अग्नि [को०]।

अंतवासी[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तेवासी] दे० 'अंतेवासी' [को०]।

अंतवासी[2]--वि० १. सीमांत पर रहनेवाला। २. समीप रहनेवाला [को०]।

अतविदारण--सज्ञा पुं० [स० अन्तविदारण] सूर्य और चद्रग्रहण के जो दस प्रकार के मोक्ष माने गए हैं उनमे से एक।

विशेष--इसमे चद्रमा के बिंब के चारो ओर निर्मलता और मध्य मे गहरी श्यामता होती है। इससे मध्य देश की हानि और शरद् ऋतु (कुआर) की खेती का विनाश वराहमिहिर ने माना है।

अतवेला--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तवेला] अतकाल। अत समय [को०]।

अतव्याप्ति--सज्ञा स्त्री० [अन्तव्याप्ति] किसी शब्द के अतिम अकार का परिवर्तन, जैसे--'मिह' का 'मघ' [को०]।

अतशय्या--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तशय्या] १ भूमिशय्या। २ मृत्युशय्या। मरनसेज। मरनखाट। ३ श्मशान। मसान। मरघट ४ मरण। मृत्यु। ५ चिता [को०]।

अतश्--'अतर्' वि० [सं०] शब्द का कुछ स्थितियो मे परिवर्तित रूप।

अतश्चेतन--सज्ञा पुं० [सं० अन्तस् + चेतन) मन का वह भाग (मुख्यत दबी हुई इच्छाओ आदि से युक्त) जो बाह्य अनुभूति मे न आ सके। उ०--जब से चेतन मनोविज्ञान से आगे बढकर उपचेतन और अतश्चेतन मनोविज्ञान की शोधें हुई हैं, तब से साहित्यिको के लिये नई कृतियाँ प्रस्तुत करने का बहुत बडा क्षेत्र खुल गया है।--न० सा० न० प्र०, पृ०, १८।

अतश्चेतन²--वि० आत्म चेतना या दिव्य प्रेरणा से युक्त। उ०--ऊर्ध्व मुक्त, अतश्चेतन बन जाता जन मन।--रजत शि०, पृ० ७०।

अतश्चेतना--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + चेतना] अतश्चेतन की अनुभूति। आत्मचेतना। दिव्य प्रेरणा। उ०- रजत शिखर मनुष्य की अतश्चेतना का शुभ्र प्रतीक है।--रजत शि०, (भू०) पृ० ३।

अतश्छद--सज्ञा पुं० [सं० अन्तस् + छद] १ भीतरी तल। २ भीतरी आच्छादन। ३ मिहराब के नीचे का तल।

अतश्छिद्र--सज्ञा० पुं० [सं० अन्तश्छिद्र] भीतरी छेद या अदरूनी सूराख [को०]।

अंतश्छिन्न--वि० [सं० अन्तश्छिन्न] भीतर कटा हुआ [को०]।

अतस्¹--सज्ञा पुं० [स० अन्तस्] अत करण। मन। हृदय। चित्त। मानस। उ०--(क) तुही मानव देव दान सिधान। तुही कोटि ब्रह्मादि अतस् समान।--पृ० रा०, २। २०५। (ख) काया की न छाया यह केवल तुम्हारी, द्रुम! अतस् के मर्म का प्रकाश यह छाया है।--रस०, पृ० १६।

अतस्²--वि० 'अतर्' शब्द का समासगत रूप, जैसे, अतस्तल, अतस्तप्त आदि मे।

अतसश्लेप--सज्ञा पुं० [सं० अन्त सश्लेष] सधि। जोड [को०]।

अतसंत्क्रिया--सज्ञा स्त्री० [स० अन्तसत्क्रिया] अतिम सत्कार अंतिम सस्कार [को०]।

अतसद्--सज्ञा पुं० [स० अन्तसद्] शिष्य। चेला

अतसमय--सज्ञा पुं० [स०अन्तसमय] मृत्युकाल। मरणकाल।

अतस्तप्त--वि० [स० अन्तस्तप्त] १ भीतर भीतर तपा हुआ। २ खिन्न। सतप्त [को०]।

अंतस्तल--सज्ञा पुं० [सं० अन्तस् + तल] १ मन हृदय। चित्त। उ०--उठती अतस्तल से सदैव दुर्ललित लालसा जो कि कात।--कामायनी, पृ० १४०। २. मन का भीतरी तल या भीतरी तह। उ०--पर जो हृदय के अतस्तल पर मार्मिक प्रभाव चाहते हैं, किसी भाव की स्वच्छ निर्मल धारा मे कुछ देर अपना मन मग्न रखना चाहते है, उनका सतोप बिहारी से नहीं हो सकता।--इतिहास, पृ० २५१।

अतस्ताप--सज्ञा पुं० [सं० अन्तस्ताप] मानसिक व्यथा। आधि। चित्त का सताप। आतरिक दुख। भीतरी खेद। उ०--असुरो के घोता पद सागर निज मर्यादा छोड। अतस्ताप दग्ध बडवा सा करता करणिम क्रोड।--पार्वती, पृ० १०१।

अतस्तुषार--सज्ञा पुं० [सं० अन्तस्तुषार] ओस की बूंद से युक्त [को०]

अतस्तोय--वि० [सं० अन्तस्तोय] जल से भरा हुआ (बादल) [को०]।

अतस्त्य--सज्ञा पुं० [सं० अन्तस्त्य] आँत। अँतडी [को०]।

अंतस्थ¹--वि० [सं० अन्तस्थ] १ भीतर स्थित। भीतरी। २ बीच मे स्थित। मध्य का मध्यवर्ती। बीचवाला। ३ 'य, र, ल, व' ये चारो वर्ण अतस्थ कहलाते हैं क्योंकि इनका स्थान स्पर्श और ऊष्म वर्णों के बीच मे है।

अतस्थ²--सज्ञा पुं० स्पर्श और ऊष्म वर्णो के बीच रहनेवाले 'य, र, ल, व' वर्ण।

अतस्थल--सज्ञा पुं०, [सं० अन्तस्थल] अत करण। उ०--आज उन्होने विवेक के प्रकाश मे अपने अतस्थल को देखा।--काया०, पृ० १६६।

अतस्था--सज्ञा पुं० [सं० अन्तस्था] दे० अतस्थ²।

अतस्थित--वि० [सं० अन्तस् + स्थित] १ भीतर स्थित। भीतरी। २ हृदयस्थित। हृदय का। चित्त के भीतर का। अत करण का।

अतस्नान--सज्ञा पुं० [सं० अन्तस्नान] अवभृथ स्नान। वह स्नान जो यज्ञ समाप्त होने पर किया जाता है।

अतस्सज्ञा--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + सज्ञा] मन या बुद्धि की वह क्रिया जो अभी तक प्रत्यक्ष अनुभव मे स्पष्ट न हुई हो। उ०--उदय से अस्त तक भावमडल का कुछ भाग तो आश्रय की चेतना के प्रकाश (कांशस) मे रहता है और कुछ अतस्सज्ञा के क्षेत्र (सब काशस रीजन = अवचेतन) मे छिपा रहता है--रस०, पृ० ६५।

अतस्सत्ता--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + सत्ता] आतरिक सत्ता। अत करण। चेतना। उ०--हमारी अतस्सत्ता की यही तदाकार परिणति सौंदर्य की अनुभूति है।--रस०, पृ० २६।

अतस्सलिल--वि० [सं० अन्तस्सलिल] [स्त्री० अन्त सलिला] जिसके जल का प्रवाह बाहर न दिखाई पडे, भीतर हो। उ०--अतस्सलिला सरस्वती (शब्द)।

अतस्सलिला--सज्ञा स्त्री० [सं० अतस्सलिला] १ सरस्वती नदी। २ फल्गू नदी।

अतस्साधना--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + साधना] आतरिक साधना। गुप्त साधना। उ०--हृदयपक्षशून्य सामान्य अतस्साधना का मार्ग निकालने का प्रयत्न नाथपथी कर चुके थे, यह हम कह चुके हैं।--इतिहास, पृ० ६४।

अतस्सार--सज्ञा पुं० [सं० अन्तस्सार] १ आतरिक सार। तत्व। २. ठोसपन। ३ मन, बुद्धि और अहकार का योग। ४ अतरात्मा [को०]।

अंतहकरण(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंत करण'। उ०--सुंदर हरि के भजन तें निर्मल अंतहकरण।--सुंदर ग्रं०, पृ० ६७६।

अंतहपुर(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंत पुर'। उ०--(क) पूछत पूछत ग्यो अंतहपुरि। हुआँ सुंदरसण तणौ हरि।--वेलि, दू० ५२। (ख) उठिव नृपति दीवान तें, अंतहपुर मे जाय।--प० रासो, पृ० ६८।

अंतहार(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्र + हार] आँतों की माला। आँत का हार। उ०--करि अंगराग चरबी बसा अंतहार आभार दिय।--सुजान च०, पृ० २३।

अंताराष्ट्रिय--वि० [सं० अन्तर् + राष्ट्रिय] दो या दो से अधिक राष्ट्रों से संबंध रखनेवाला।

अंताराष्ट्रीय--वि० [सं० अन्ताराष्ट्रीय] दो या दो से अधिक राष्ट्रों से संबंध रखनेवाला।

अंताल--संज्ञा पुं० [सं० अन्ताल] आँत। अँतड़ी।--परि फूक सु कूक, डक्किन ढूक, गिद्ध गहक अंताल।--पृ० रा०, २१२६०।

अंतावरि--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंतावरी'।

अंतावरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र + अवली] अँतड़ियाँ। आँतों का समूह।--अंतावरी गहि उडत गीध पिसाच कर गहि धावहीं।--मानस, ३।१८।

अंतावशायी--संज्ञा पुं० [सं० अन्तावशायी] १ ग्राम की सीमा के बाहर बसनेवाला। २ प्राचीन काल मे अस्पृश्य कहे जानेवाले वर्ण जैसे-चांडाल।

अंतावसायी--संज्ञा पुं० [सं० अन्तावसायी] १ नाई। हज्जाम। २ हिंसक। चांडाल।

अंतित(पु)--वि० [सं० अत्यन्त] दे० 'अत्यन्त'। उ०--पुच्छन सु बाल बुल्यो वलिय। करि सु चित अंतित चित। पृ० रा०, १।२७५।

अंति[1]--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ति] बडी बहन [को०]।

अंति[2](पु)--वि० [सं० अन्तिक, प्रा० अंतिअ] १ समीप। निकट। उ०--खडे अंति चहुवान के बैन बोले।--प० रा०, पृ० ८५। २. अंत मे। उ०--जु कछु तत को मत अंति कहि कहि समझायो।--पृ० रा०, ६७।४५५।

अंति[3](पु)--दे० 'अत्यंत'। उ०--सहस सात हय पेत रहि परे पच से दंति, लुथ्थि कोस पचह प्रचर परे सु पाइल अंति।--पृ० रा०, १९।२४४।

अंतिक[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तिक] १ पड़ोस। २ निकटता। सामीप्य [को०]।

अंतिक[2]--वि० १ पास। २ निकट। समीप [को०]।

अंतिकता--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तिकता] सामीप्य। निकटता [को०]।

अंतिकस्थ--वि० [सं० अन्तिकस्थ] निकटस्थ। पास या समीप पहुँचा हुआ [को०]।

अंतिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तिका] १ अंति। बडी बहन। २ चूल्हा। भट्ठी। ३ एक पौधा। सातला [को०]।

अंतिकाल(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतकाल'। उ०--गुर परसादै भिष्या पाइबा, अंतिकालि न होइगी भारी।--गोरख०, पृ० ३७।

अंतिकाश्रय--संज्ञा पुं० [अन्तिकाश्रय] समीपस्थ का सहारा या अवलंबन [को०]।

अंतिज(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंत्यज'। उ०--वहि जो अहं देह अभिमानी। चारि वर्ण अंतिज लौ प्रानी।--सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३७४।

अंतिम--वि० [सं० अन्तिम] १ जो अंत मे हो। अंत का। आखिरी। सबसे पिछला। सबके पीछे का। २ चरम। सबसे बढ़के। हद दरजे का।

अंतिम यात्रा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तिम यात्रा] महायात्रा। महाप्रस्थान। आखिरी सफर। अंतकाल। मृत्यु। मरण। मौत। मृत्यु के पीछे उस स्थान तक जीवात्मा की यात्रा जहाँ अपने कर्मानुसार उसे रहकर कर्मों का फल भोगना पड़ता है।

अंतिमाक--संज्ञा पुं० [सं० अंतिमाङ्क] नौ की संख्या [को०]।

अंतिमेत्थम्--[अं० 'अल्टिमेटम्' का हिंदीकरण] आखिरी चेतावनी।

अंती(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] आँत। उ०--ढरै सूर अंती गरं सामरंती वहै भूमि छंती सु मा ध्य ग्रसंती।--पृ० रा०, ६६।१०४७।

अंते(पु)--क्रि० वि० [सं० अन्ते] दे० 'अन्त'। उ०--अधर महल पर बैठन पायो, अंते जाय बलाय।--गुलाल०, पृ० ३८।

अंतेउर(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अंतःपुर, प्रा० अंतेउर; अंतेवर] घर के भीतर का भाग जिसमे स्त्रियाँ रहती है। अंतःपुर। जनानखाना। रनिवास। उ०--बीजइ फेरइ फेरियइ गाय। गहनड अंतेउर नीयड रे बुलाइ।--बीसल० रा० पृ० ५७।

अंतेवर(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतेउर'। उ०--दूजइ फेरी जब फेरइ गाय, नहु अंतेवर लियो बोलाइ।--बी० रा०, पृ० २३।

अंतेवासि(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतेवासी'। उ०--गोपालनाचार्ज भव्रो पुनि उन अंतेवासि।--घनानंद, पृ० ६०८।

अंतेवासी--संज्ञा पुं० [सं० अंतेवासी] १ गुरु के समीप रहनेवाला। शिष्य। चेला। २ ग्राम के बाहर रहनेवाला। चांडाल। अंत्यज। उ०--आचार्य और अंतेवासी अर्थात् पढ़ाने और पढने-वाले दोनों ही उस आदर्श से प्रेरित होते हैं।--पाणिनि०, पृ० २६८।

अंत्य[1]--वि० [सं० अन्त्य] अंत का। अंतिम। आखिरी। सबसे पिछला।
यौ०--अंत्यजन्मा, अंत्यजाति, अंत्यजातीय = अंतिम वर्ण का।

अंत्य[2]--संज्ञा पुं० वह जिसकी गणना अंत मे हो, जैसे--१ लग्नों मे मीन। २ नक्षत्रों मे रेवती। ३. वर्णों मे शूद्र और ४ अक्षरों मे 'ह'। ५ एक संख्या। पद्म की संख्या। दस सागर की संख्या (१०००,००० ०००,०००,०००) दस करोड़ करोड़। ६ यम [को०]।

अंत्यक--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यक] अंतिम वर्ण का मनुष्य। अंत्यज [को०]।

अंत्यकर्म--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यकर्मन्] अंत्येष्टि क्रिया।

अंत्यक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्यक्रिया] अंत्यकर्म। अंत्येष्टि [को०]।

अंत्यगमन--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यगमन] सवर्ण जाति की स्त्री का असवर्ण जातिवाले पुरुष के साथ सहवास [को०]।

अंत्यज--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यज] [वि० स्त्री० अंत्यजा] वह व्यक्ति जो अंतिम वर्ण मे उत्पन्न हुआ हो। वह शूद्र जो प्राचीन युग मे छूने के योग्य नही माना जाता था या जिसका छुआ हुआ जल द्विज उन दिनो ग्रहण नहीं करते थे, जैसे--धोबी, चमार नट बसड, डोम, मेद, भिल्ल इत्यादि।

यौ०—अन्त्यजगमन=सवर्ण जाति की स्त्री का असवर्ण जातिवाले पुरुष के साथ यौन संबंध।

अंत्यजन्मा—वि० [सं० अन्त्यजन्मा] अंत्य जाति का। निम्न जातीय [को०]।

अंत्यजा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्यजा] शूद्रा। अंतिम वर्ण में उत्पन्न स्त्री [को०]।

यौ०—अन्त्यजागमन=सवर्ण जाति के पुरुष का असवर्ण जाति की स्त्री के साथ यौन संबंध।

अंत्यजाति—वि० [सं० अन्त्यजाति] अंतिम जाति का। निम्न जाति का [को०]।

अंत्यजातीय—वि० [सं० अन्त्यजातीय] दे० 'अंत्यजाति' [को०]।

अंत्यधन—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यधन] गणना की अंतिम राशि [को०]।

अंत्यपद—स्त्री० पुं० [सं० अन्त्यपद] अंतिम या सबमें बड़ा वर्गमूल। अंत्यमूल (गणित) [को०]।

अंत्यभ—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यभ] १ अंतिम नक्षत्र अर्थात् रेवती। २ मीन राशि।

अंत्यमद—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यमद] मदात्यय रोग का एक भेद।

विशेष—इसमें रोगी बड़ों का तिरस्कार करता है, न खाने योग्य चीजों को खाता है और उसके मन में जो गुप्त बातें होती हैं उन्हें प्रकट करने लगता है। मदात्यय तीन प्रकार का होता है। पूर्वमद, मध्यमद और अन्त्यमद। —मा० नि०, पृ० ११५।

अंत्यमूल—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यमूल] दे० 'अंत्यपद'।

अंत्ययुग—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्ययुग] गणनाक्रम से युगों के अंत में आनेवाला युग। कलियुग।

अंत्ययोनि¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्ययोनि] अंतिम या निम्न योनि [को०]।

अंत्ययोनि²—वि० निम्न योनि का [को०]।

अंत्यलोप—संज्ञा वि० [सं० अन्त्यलोप] किसी शब्द के अंतिम वर्ण या अक्षर का लोप (भा० वि०)।

अंत्यवर्ण—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यवर्ण] १. अंतिम वर्ण। शूद्र। २ अंत का वर्ण 'ह'। ३. पद के अंत में आनेवाला कोई भी वर्ण या अक्षर।

अंत्यविपुला—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्यविपुला] आर्या छंद का एक भेद।

विशेष—इसके दूसरे दल के प्रथम तीन गणों तक चरण पूर्ण नहीं होता और दोनों दलों में दूसरा और चौथा गण जगण होता है। इसे अंत्यविपुला महाचपला, अंत्यविपुला जघनचपला या अंत्यविपुला मुखचपला भी कहते हैं।

अंत्यविराम—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यविराम] अंत का या अंतिम विराम। उ०—गिरजाकुमार माथुर अंत्यविराम रहित पंक्तियों के मुक्त छंद को काव्य के लिये बहुत उपयुक्त मानते हैं।—हिं० का० आं० प्र०, पृ० २६१।

अंत्या—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्या] चांडाली। चांडाल की स्त्री। चांडालिनी।

अंत्याक्षर—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्याक्षर] १ किसी शब्द या पद के अंत का अक्षर। २ वर्णमाला का अंतिम वर्ण 'ह'।

अंत्याक्षरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्य+हिं० अक्षरी] किसी कहे हुए श्लोक या पद्य के अंतिम अक्षर से आरंभ होनेवाला दूसरा श्लोक या पद्य पढ़ना। किसी श्लोक या पद्य के अंतिम पद के अंत्य अक्षर से दूसरे श्लोक या पद्य का आरंभ।

विशेष—विद्यार्थियों में इसकी चाल है। एक विद्यार्थी जब एक श्लोक या पद्य पढ़ चुकता है तब दूसरा उस श्लोक के अंतिम अक्षर में आरंभ होनेवाला दूसरा श्लोक या पद्य पढ़ता है। फिर पहला उस दूसरे विद्यार्थी के कहे हुए पद्य का अंतिम अक्षर लेता है और उससे आरंभ होनेवाला एक तीसरा पद्य पढ़ता है। यह क्रम बहुत देर तक चलता है। अंत में जो विद्यार्थी श्लोक या पद्य न पाकर चुप हो जाता है, उसकी हार मानी जाती है।

अंत्यानुप्रास—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यानुप्रास] पद्य के एक चरण के अंतिम अक्षर और पूर्ववर्ती स्वर का किसी अन्य चरण के अंतिम अक्षर और पूर्ववर्ती स्वर से मेल। पद्य के चरणों के अंतिम अक्षरों का मेल। तुक। तुकबंदी। तुकांत। उ०—श्रुतिकटु मानकर, कुछ वर्णों का त्याग, वृत्तविधान, लय, अंत्यानुप्रास आदि नाद-सौंदर्य-साधन के लिये ही है।—रस०, पृ० ४६।

विशेष—जैसे, सिय सोभा किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।—तुलसी (शब्द०)। इस चौपाई के दोनों चरणों का अंतिम अक्षर 'नी' है। हिंदी कविता में ५ प्रकार के अंत्यानुप्रास मिलते हैं। (१) सर्वांत्य, जिसके चारों चरणों के अंतिम वर्ण एक हों। उ०—न ललचहु। सब तजहु। हरि भजहु। यम करहु। (शब्द०)। (२) समांत्य विषमांत्य, जिसके सम से सम और विषम से विषम के अंत्याक्षर मिलते हों। उ०—जिहिं सुमिरत सिधि होइ, गणनायक करिवर बदन। करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धिराशि शुभ गुणसदन।—तुलसी (शब्द०)। (३) समांत्य जिसके सम चरणों के अंत्याक्षर मिलते हों विषम के नहीं। उ०—सब तो। शरणा। गिरिजा। रमणा (शब्द०)। (४) विषमांत्य, जिसके विषम चरणों के अंत्याक्षर एक हों, सम के नहीं। उ०—लोभिहि प्रिय जिमि दाम, कामिहि नारि पियारि जिमि। तुलसी के मन राम, ऐसे ह्वै कब लागिहौ।—तुलसी (शब्द०)। (५) समविषमांत्य, जिसके प्रथम पद का अंत्याक्षर द्वितीय पद के अंत्याक्षर के समान हो। उ०—जगो गुपाला। सुभोर काला। कहैं यसोदा। लहै प्रमोदा (शब्द०)।

अंत्यावसायी—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यावसायिन्] [स्त्री० अंत्यावसायिनी] १ हिंदुओं की प्राचीन जातिव्यवस्था के अनुसार अत्यंत नीच जाति का व्यक्ति। चांडाल। मनु के अनुसार निषाद स्त्री और चांडाल पुरुष से उत्पन्न व्यक्ति। २ अंगिरा के अनुसार चांडाल, श्वपच, क्षत्ता, सूत, वैदेहक, मागध और अयोगव ये सात जातियाँ।

अंत्याश्रम—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्याश्रम] अंतिम आश्रम। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—इन चारों आश्रमों में अंतिम। संन्यासाश्रम [को०]।

अंत्याश्रमी[1]--वि० [सं० अन्त्याश्रमिन्] अंतिम आश्रम में स्थित। सन्यास आश्रमवाला [को०]।

अंत्याश्रमी[2]--संज्ञा पुं० अंतिम आश्रम का व्यक्ति। सन्यासी [को०]।

अंत्याहुति--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्याहुति] यज्ञ या चिता की अंतिम आहुति [को०]।

यौ०--अंत्याहुति क्रिया=अंत्येष्टि कर्म।

अंत्येष्टि--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्येष्टि] मृतक का शवदाह से सपिंडन तक कर्म। क्रिया कर्म। अंत्यक्रिया। उ०--अंतिम समय में यमुना और घटी रूपी सौभाग्य देवयाँ विजय की अंत्येष्टि का प्रबंध करती हैं।--कंकाल, पृ० १०५।

यौ०--अंत्येष्टि क्रिया=मृतक का शवदाह आदि कर्म। अंत्येष्टि। उ०--महादेवी की अंत्येष्टि क्रिया राजसमान से होनी चाहिए। --स्कंद०, पृ० ११५।

अंत्रधमि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रन्धमि] अजीर्ण। अपच। पेट का फूलना। वायु के कारण पेट का फूलना [को०]।

अंत्र[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्र] आँत। अँतडी। रोधा।

अंत्र[2] (पु)--संज्ञा पुं०, कही कहीं 'अंतर' का अपभ्रंश। जैसे 'अंत्रध्यान' में 'अंत्र'।

अंत्रकूज--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्रकूज] दे० 'अंत्रकूजन' [को०]।

अंत्रकूजन--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्रकूजन] आँतों का शब्द। अँतड़ियों की गुडगुडाहट अँतडियों की कुडकुडाहट।

अंत्रध्यान(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतर्धान'। उ०--इम कहिय ईस हुअ अंत्रध्यान, जगयौ राज भौ वर विहान।--पृ० रा० ६६।१६६६।

अंत्रपाचक--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्रपाचक] एक ओषधोपयोगी क्षुप जिसके छाल, सार और निर्यास का प्रयोग होता है [को०]।

अंत्रवल्लिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रवल्लिका] महिषवल्ली [को०]।

अंत्रवल्ली--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रवल्ली] सोमवल्ली लता [को०]।

अंत्रविकूजन--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्रविकूजन] दे० 'अंत्रकूजन' [को०]।

अंत्रवृद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रवृद्धि] आँत उतरने का रोग। आँत का उतरकर अंडकोश में चले जाना।

अंत्रस्रज--संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्रस्रज्] आँतों की माला, जो नरसिंह ने धारण की थी [को०]।

अंत्राडवृद्धि--संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्राण्डवृद्धि] एक रोग जिसमें आँत उतरकर अंडकोश में चली आती हैं और फोता फूल जाता है।

अंत्राद--संज्ञा पुं० [स० अन्त्राद] आँत का कीडा। अँतडियों में रहकर उसे खानेवाला कृमि [को०]।

अंत्रालजी--संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्रालजी] पीब से भरी एक प्रकार की ऊँची गोल फुंसी जो वैद्यक के अनुसार कफ और वात के प्रकोप से होती है।

अंत्रि--संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्र] अँतडी। आँत।

अंत्री[1]--संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्री] एक वनौषधि का नाम। उदरशूल या पेट की बाई में दी जानेवाली ओषधि का पौधा।

अंत्री[2]--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंत्रि'।

अंथवना(पु)--क्रि० अ० दे० 'अथवना'। उ०--जौं पच्छिम दिसि उय पुब्ब अथवै दिनकर।--पृ० रा० ६१।१००६।

अंदरसा(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अँदरसा'। उ०--लौंग कपूर खाँडघृत धारे। अंदरसे खटमिठे सिधारे।--सूर० परि० १, पृ० ५०।

अंदरी--वि० [फा०, अन्दर + हिं० ई] भीतरी अंदरूनी।

अंदरूनी--वि० [फा० अंदरूनी] भीतरी। भीतर का। आभ्यंतरिक।

अंदलीब--संज्ञा स्त्री० [अ०] बुलबुल। उ०--पूछे है फूलों फल की खबर अब तो अंदलीब। टूटे झडे खिजाँ हुए फूले फले गए।--क० कौ०, भा० ४, पृ० १०८।

अंदाज--संज्ञा पुं० [फा० अंदाज] १ अटकल। अनुमान। उ०--गुप्त जी एक युग पहले का मध्यवर्गीय संतोष हमें सिखाते हैं, उन्हें आज की आग का अंदाज नहीं है।--जय० प्र०, पृ० ८। २. मान। नापजोख। कूत। तखमीना। ३ ढब। ढंग। तौर। तर्ज। उ०--इससे यह बात नहीं निकलती कि बिलकुल मेहनत न करो सब काम अंदाज सिर करने चाहिए।--श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १८५।

क्रि० प्र०--करना।--लगाना।--होना।

मुहा०--अंदाज उड़ाना=दूसरे की चाल ढाल पकडना। पूरी पूरी नकल करना।

४ मटक। भाव नाज। चेष्टा। ठसक उ०--अंदाज अपना देखते हैं आइने में वोह। और ये भी देखते हैं कोई देखता न हो।--शेर०, भा० १, पृ० ६०६।

अंदाजन--क्रि० वि० [फा० अंदाज + अ० अन् (प्रत्य०)] १ अंदाज से। अटकल से। तखमीनन २ लगभग। करीब।

अंदाजपट्टी--संज्ञा पुं० [फा० अंदाज + हिं० पट्टी (भूभाग)] खेत में लगी हुई फसल के मूल्य कूतना। कनकूत।

अंदाजपीटी--संज्ञा स्त्री० [फा० अंदाज + हिं० पिटना (हैरान होना)] वह स्त्री जो अपने बनाव सिंगार में लगी रहे। अपनी सुंदरता और चालढाल पर इतरानेवाली स्त्री।

अंदाजा--संज्ञा पुं० [फा० अंदाजह्] १ अटकल। अनुमान। २ कूत। नापजोख। परिमाण तखमीना। उ०--उपनिषद में तो ब्रह्मानंद के सुख के परिमाण का अंदाजा कराने के लिये उसे सहवास सुख से सौगुना कहा था।--इतिहास, पृ० ११।

अंदिका--संज्ञा स्त्री० [स० अन्दिका] १ बड़ी बहन। अतिका। २ अँगीठी। बोरसी [को०]।

अंदु--संज्ञा पुं० [स० अन्दु] १ पैर में पहनने का स्त्रियों का एक गहना। पाजेब। पैरी। पैजना। २ साँकडा। हाथी को बाँधने की साँकल। अलान। उ०--छूटे अंदु हस्ती मदजा जरान। --पृ० रा०, १२।३२१। ३ बाँधने की रस्सी या जंजीर।

अंदुक--संज्ञा पुं० [स० अन्दुक] दे० 'अंदु'।

अंदू--संज्ञा पुं० [स० अन्दू] बेडी। निगड। उ०--(क०) विरदावलि विरदाई पाय अंदू कर ढीले। तामस बुझथन काज बोलि मधु बचन रसीले।--पृ० रा०, ६६।१६२८। (ख) क्रीडा समदू गज्ज अंदू ग्राह फदू रच्चए। --राम० धर्म०, पृ० २६।

अंदूक--संज्ञा पुं० [स० अन्दूक] दे० 'अंदू' [को०]।

अंदेश[1]--संज्ञा पुं० [फा० अंदेशह्] सोच। चिंता। फिक्र। उ०--सिय अंदेश जानि प्रभु सूरज लियो करज की ओर। टूटत धनु नृप लुके जहाँ तहँ ज्यों तारागन भोर।-- (शब्द०)।

अंदेश²--प्रत्य० [फा० अंदेश] सोचनेवाला। अभिलाषी। देखनेवाला। द्रष्टा। जैसे, बद अंदेश। खैर अंदेश। दूर अंदेश आदि [को०]।

अंदेशा--संज्ञा पुं० [फा० अंदेशह्] १. सोच। चिंता। फिक्र। उ०--मोमिन ये असर सियाह मस्ती का न हो। अंदेशा कभी बलद व पस्ती का न हो।--कविता को०, भाग ४, पृ० ४८७। २ संशय। अनुमान। संदेह। शक। ३ खटका। आशंका। भय। डर। ४ हर्ज। हानि। ५ दुविधा। असमंजस। आगा-पीछा। पसोपेश।

अंदेस(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंदेशा'। उ०--(क) कितक रूप गुन आगरो सुनत मोहिं अंदेश।--पृ० रा०, १४।७। (ख) सो अंदेश होत मन मारें वव घों मिलवो आना रे।--जग० बानी, भा० २, पृ० ३।

अंदेसडा(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० अंदेशा > अंदेस + ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'अंदेशा'। उ०--अंदेसड़ा न भाजिसी संदेसौ कहियाँ। कै हरि आयाँ भाजिसी, कै हरि ही पासि गयाँ।--कबीर ग्र०, पृ० ८।

अंदेह(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंदेस'। उ०--पुत्र प्रगट्ट न कीजिये। मो तिय इय अंदेह।--पृ० रा०, १।१५३।

अंदोअन(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आन्दोलन] हलचल। अंदोर। उ०--सुन अंदोअन राव दिठ। रिझाए सब साइ।--पृ० रा०, ६१।१२१६।

अंदोर--संज्ञा पुं० [सं० अन्दोल = हलचल] हलचल। शोर। हल्ला। कोलाहल। हुल्लड। हल्लागुल्ला। उ०--झहरात झहरात दवानल आया। घेरि चहू ओर करि सोर अंदोर बन धरनि आकास चहुँ पास छायो।--सूर०, १०।५९६।

क्रि० प्र०--करना = शोर मचाना। उ०--चीन्हो रे नर प्रानी याका निस दिन करत अंदोर।--कबीर श०, पृ० ११६।--मचना या होना = कोलाहल होना। उ०--बहु लौलीन होइ सब धुन करत है, घट घनघोर अंदोर ह्वै।--कबीर० रे०, पृ० २५।

अंदोरा(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंदोर'।

अंदोल--वि० [सं० अन्दोलन] कंपित। हिलती डुलती। उ०--सुभ उच्च अंदाल बीच विराज। मनो स्रग आरोह सोपान साज।--पृ० रा०, ६।८३।

अंदोलना(पु)--क्रि० स० [सं० अन्दोलन] हिलाना। डुलाना। उ०--मुष पाय पानि अंदोलि वारि। अच्चयो अप्प आतम अधारि।--पृ० रा०, ६१।१६१७।

अंदोलित--वि० [सं० आन्दोलित] आंदोलित। हिली डुली। उ०--जल अंदोलित सो भई उदै होत वर भान।--पृ० रा०, २।६०।

अंदोह--संज्ञा पुं० [फा०] १. शोक। दुःख। रंज। खेद। उ०--सिंघ विनास्यो वनिक सुत कन्या किय अंदोह।--पृ० रा०, १।३४८। २. तरद्दुद। खटका। असमंजस। संदेह।

अंद्रसस्त्र(पु)--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रशस्त्र] वज्र [डिं०]।

अंद्रि(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अद्रि] अद्रि। पर्वत। उ०--अंबर बरषै धरती निपजै, अंद्रि बरषदाई।--रामानंद०, पृ० १२।

अंध¹--वि० [सं० अन्ध] १. नेत्रहीन। बिना आँख का। अंधा। जिसकी आँखों में ज्योति न हो। जिसमें देखने की शक्ति न हो। उ०--गुर सिष अंध बधिर कइ लेखा। एक न सुनै एक नहिं देखा।--मानस, ७।९९। २. अज्ञानी। अजानकार। अनजान। मूर्ख। बुद्धिहीन। अविवेकी। उ०--तत्र आक्षिप्त तव विषम माया, नाथ ! अंध मैं मंद व्यालादगामी।--तुलसी ग्र०, पृ० ४८१। ३. असावधान। अचेत। गाफिल। ४. उन्मत्त। मतवाला। मस्त। उ०--ठौर ठौर झौरत झँपत भौंर भौंर मधु अंध।--बिहारी र०, ४९६। ५ प्रखर। तीव्र (को०)।

विशेष--समस्त पदों में ही प्रायः प्रयुक्त, जैसे कामांध, मोहांध, क्रोधांध, जन्मांध दिवांध, रात्र्यंध, मदांध आदि।

यौ०--अंधकूप। अंधखोपड़ी।

अंध²--संज्ञा पुं० १. वह व्यक्ति जिसे आँखें न हों। नेत्रहीन प्राणी। अंधा। २. जल। पानी। ३ उल्लू। ४. चमगादड़। ५. अंधकार। अँधेरा। ६. कवियों के बाँधे हुए पथ के विरुद्ध चलने का काव्य संबंधी दोष। ७. ज्योतिष् के अनुसार एक योग (को०)। ८. परिव्राजकों का एक भेद (को०)।

अंधक--संज्ञा पुं० [सं० अन्धक] १. नेत्रहीन मनुष्य। दृष्टिरहित व्यक्ति। अंधा। २ कश्यप और दिति का पुत्र एक दैत्य।

विशेष--इसके सहस्र सिर थे। मद के मारे अंधों की नाई चलने के कारण यह अंधक कहलाता था। स्वर्ग से पारिजात लाते समय यह शिव द्वारा मारा गया। इसी से शिव को अंधकारि वा अंधकरिपु कहते हैं।

३. क्रोष्टी नामक यादव के पौत्र और युधाजित् के पुत्र।

विशेष--अंधक नाम की यादवों की शाखा इन्हीं से चली। इनके भाई वृष्णि थे जिनसे वृष्णिवंशी यादव हुए जिनमें कृष्ण थे। ४ बृहस्पति के बड़े भाई उतथ्य ऋषि के पुत्र महातपा नामक ऋषि। इनकी माता का नाम ममता था।

अंधकघाती--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकघाती] अंधक नामक असुर को मारनेवाले शिव [को०]।

अंधकरिपु--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकरिपु] १. अंधक नामक दैत्य के शत्रु शिव। २ अंधकार का नाश करनेवाले सूर्य। २ चंद्रमा। ४ अग्नि। प्रकाश। रोशनी।

अंधकशत्रु--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकशत्रु] शिव [को०]।

अंधकार--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार] १. अँधेरा।

विशेष--महा अंधकार को अंधतमस, सर्वव्यापी वा चारों ओर के अंधकार को संतमस और थोड़े अंधकार को अवतमस कहते हैं।

२ अज्ञान। मोह। ३ उदासी। कांतिहीनता। जैसे--उसके चेहरे पर अंधकार छाया है (शब्द०)।

अंधकारमय--वि० [सं० अन्धकारमय] अंधकार से युक्त [को०]।

अंधकारसंचय--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकारसञ्चय] घना अंधकार। महा अंधकार [को०]।

अंधकारि--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकारि] शिव। शंकर [को०]।

अंधकारी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकारी] भैरव राग की पाँच स्त्रियों में से एक। एक रागिनी। दे० 'रागिनी'।

अंधकाल(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंधकाला'।

अंधकाला(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार] अंधकार। अँधेरा। उ०--ऐसे बादर सजल, करत अति महाबल, चलत घहरात करि अंधकाला।--सूर०, १० ८५५।

अंधकासुहृद्--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकासुहृद्] अंधकारि शिव [को०]।

अंधकूप--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकूप] १ वह कूआँ जिसका जल सूख गया हो और मुँह घासपात से ढका हो। अंधा कूआँ। सूखा कूआँ। अँधेरा कूआँ। उ०--यह कूप कूप भव अंधकूप, वह रक हुआ जो यहाँ भूप निश्चय रे।--तुलसी०, पृ० २८। २. अँधेरा। अंधकार। उ०--जैसे अंधो अंधकूप मे गनत न खाल पनार। तैसेहि सूर बहुत उपदेसै सुनि सुनि गे कै बार।--सूर०, १।८४। ३ घनांधकार। निविड तम। अंधागुप्प। उ०--अंधकूप भा आवै, उडत आव तस छार। ताल तलावा पोखर, धूरि भरी जेवनार।--जायसी ग्र०, पृ० २२७। ४. एक नरक का नाम।

अंधकूपता--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकूपता] अँधेरापन। मूर्खता। अज्ञान। उ०--उन्हें जगत् की अनेकरूपता और हृदय की अनेक भावात्मकता के सहारे अंधकूपता से बाहर निकलने की फिक्र करनी चाहिए।--चिंतामणि, भा० २, पृ० ५१।

अंधकोठरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध+हिं० कोठरी] अँधेरा और तंग कमरा (बोल०)।

अंधखोपडी--वि० [सं० अन्ध+हिं० खोपडी] जिसके मस्तिष्क मे बुद्धि न हो। मूर्ख। गाउदी। भोंदू। अज्ञानी। नासमझ।

अंधड़--संज्ञा पुं० [सं० अन्ध+हिं० ड़ (प्रत्य०)] गर्द लिए हुए कडे झोके की वायु। वेगयुक्त पवन। आँधी। तूफान। उ०--अंधड था बढ रहा प्रजादल सा झुँझलाता।--कामायनी, पृ० २००।

अंधतम--संज्ञा पुं० [सं० अन्धतमस्] घना अँधेरा। अँधेरागुप्प। उ०--जग के निद्रित स्वप्न सजनि सब इसी अंधतम मे बहते।--पल्लव, पृ० ५७।

अंधतमस--संज्ञा पुं० [सं० अन्धतमस्] दे० 'अंधतम'। उ०--अंधतमस है किंतु प्रकृति का आकर्षण है खीच रहा।--कामायनी, पृ० २२७।

अंधता--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धता] अंधापन। दृष्टिहीनता। उ०--चल न सकै चाल लागे दुख दैन बाल बैन, लटपटे भए नैन अंधता छई।--दीन० ग्र०, पृ० १३८।

अंधतामस्--संज्ञा पुं० [सं० अन्धतामस्] दे० 'अंधतमस' [को०]।

अंधतामिस्र--संज्ञा पुं० [सं० अन्धतामिस्र] १. घोर अंधकारयुक्त नरक। बडा अँधेरा नरक। २१ बडे नरको मे से दूसरा या १८वाँ। २ जीने की इच्छा रहते हुए भी मरने का भय (सांख्य)।

विशेष--सांख्य मे इच्छा के विघात अर्थात् जो इच्छा मे आए उसे करने की अशक्ति को विपर्यय कहते हैं। इस विपर्यय के पाँच भेद हैं जिनमे से अंतिम को अंधतामिस्र या अभिनिवेश कहते हैं।

३ योगशास्त्र के अनुसार पाँच क्लेशो मे से एक। मृत्यु का भय। अभिनिवेश। ४ मृत्यु के बाद आत्मा का अनस्तित्व [को०]।

अंधत्व--संज्ञा पुं० [सं० अन्धत्व] अंधापन [को०]।

अंधधी--वि० [सं० अन्धधी] मूर्ख। नासमझ। मंदबुद्धि [को०]।

अंधधुंध[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्ध = अन्धकार + धूम=धूआँ अथवा अन्ध + धूनन (कंपन हलचल), सं० अन्ध + हिं० धुंध] १ अंधकार। अँधेरा। उ०--(क) अति विपरीत तृणावर्त आयो। वातचक्र मिस ब्रज के ऊपर नद पँवरि मे भीतर आयो। अंधधुंध भयो सब गोकुल जो जहाँ रह्यो सो तहाँ छपायो।--सूर०, (शब्द०)। (ख) काउ लैं ओट रहत वृक्षन की अंधधुंध दिसि विदिसि भुलाने।--सूर०, १०।८६०। २ अंधाधुंध। अंधेर। अनरीति। दुराचार। अनियमित व्यापार। उच्छृंखल कर्म। उ०--समुझि न परै तिहारी मधुकर, हम ब्रजनारि गँवार। सूरदास ऐसी क्यों निबहै अंधधुंध सरकार।--सूर०, १०।३६०६।

अंधधुंध[2]--वि० विशाल। अपार। उ०--देखत मदध दसकंध अंधधुंध दल बंधु सो बलकि बोल्यो राजा राम बरिवंड।--भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ३२।

अंधधुंध[3]--क्रि० वि० बहुत। अत्यधिक। उ०--अंधधुंध माँ बाप, रुवै रे, बहुरि नहीं अस अवसर पाय।--जग० श०, भा० २ पृ० ११०।

अंधधू--संज्ञा पुं० [देश०] कूप। कूआँ [को०]।

अंधपरंपरा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धपरंपरा] बिना समझे बूझे पुरानी चाल का अनुकरण। एक को कोई काम करते देख दूसरे का बिना किसी विचार के उसे करना। लीक पिटौअल। भेडियाधँसान।

अंधपूतना--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धपूतना] दे० 'अंधपूतना ग्रह'।

अंधपूतनाग्रह--संज्ञा पुं० [सं० अन्धपूतनाग्रह] बालकों का रोगविशेष।

विशेष--इसमे वमन, ज्वर, खाँसी, प्यास आदि की अधिकता होती है। बालक के शरीर से चरबी की सी गंध आती है और वह बहुत रोता है। दे० 'पूतना'।

अंधप्रभंजन-- संज्ञा पुं० [सं० अन्धप्रभंजन] ऐसी तेज हवा जिसमे कुछ न सूझ पडे। आँधी। तूफान। उ०--बहता अंधप्रभंजन ज्यों, यह त्योंही स्वरप्रवाह, मचल कर दे चंचल आकाश।--अनामिका, पृ० ६७।

अंधवाई(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धवायु] धूल लिए हुए वेगयुक्त पवन। ऐसी तेज हवा जिसमे गर्द के कारण कुछ सूझ न पडे। आँधी। तूफान।

अंधमति--वि० [सं० अन्धमति] उलटी बुद्धिवाला। नासमझ। मूर्ख। उ०--रे दसकंध अंधमति तेरी आयु तुलानी आनि।--सूर०, ६।७६।

अंधमूषिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धमूषिका] 'देवताड' नामक पौधा।

विशेष--वैद्यक में माना गया है कि इसके सेवन से अंधापन चला जाता है।

अंधर(पु)--वि० [सं० अन्धकार, अंधार] अँधेरा। अंधकारमय। प्रकाश रहित। उ०--नखत चहूँ दिसि रोवहिं, अंधर धरति अकास।--जायसी (शब्द०)।

अंधराजा--पुं० [सं० अंधराजा] शास्त्र और नीति आदि से अनभिज्ञ अविवेकी राजा।

विशेष--चाणक्य ने अर्थशास्त्र मे राजा के दो भेद किए हैं-- एक अधराजा दूसरा चलितशास्त्र राजा। चलितशास्त्र वह है जो जान बूझकर शास्त्र की मर्यादा का उल्लघन करता हो। इन दोनो मे चाणक्य ने अधराजा को ही अच्छा कहा है, जो योग्य मत्रियो के होने पर अच्छा शासन कर सकता है।

अधरात्री--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्धरात्री] अँधेरी रात। अमावास वाली रात [को०]।

अधरोप--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्ध + रोष] भीषण क्रोध। अतिक्रोध। उ०-- भृकुटि के कुडल वक्र मरोर, फुहूँकता अधरोष फन खोल।-- पल्लव, पृ० १२१।

अधल[1]--वि० [सं० अन्ध, प्रा० अधल] अधा। नेत्रहीन।

अधल[2]--सञ्ज्ञा पुं० अधकार। अँधेरा।

अधली--सञ्ज्ञा स्त्री० [प्रा० अधल] [पुं० अधला] अधी स्त्री। अधी। उ०--अँधली आखिन काजल कीया। मुडली मांग सँवारे।-- सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ८७३।

अधविदु--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धबिन्दु] आँख के भीतरी पटल पर का वह स्थान जो प्रकाश को ग्रहण नही करता और जिसके सामने पडी हुई वस्तु दिखाई नही देती।

विशेष--नेत्रपटल पर ज्ञानततु पीछे से आकर शिराओ के रूप मे फैले हुए हैं और मुडकर शकु और छडियो के आकार मे हो गए हैं। मनुष्य की आँख मे इन शकुओ की सख्या ३३,६०,००० मानी गई है। ये छडियाँ वा शंकु आकार और रग का परिज्ञान कराने मे काम देते हैं। यदि प्रकाश ऐसे स्थान पर पडे जहाँ कोई शकु न हो तो कुछ देख नही पडता। यही स्थान अधविदु कहलाता है।

अधविश्वास--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धविश्वास] बिना विचार किए किसी बात का निश्चय। बिना समझे बूझे किसी बात पर प्रतीति। सभव-असभव विचाररहित धारणा। विवेकशून्य धारणा।

अधश्रद्धा--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धश्रद्धा] बिना विचार की श्रद्धा। विवेकहीन आस्था। उ०--अधश्रद्धा और अश्रद्धा आदि इसी के परिणाम हैं।--जय० प्र०, पृ० ५३।

अधस--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धस] १ पका हुआ चावल। भात। २. भोजन (को०)। ३ जडी बूटी (को०)। ४ सोम नामक लता (को०)। ५ सोमरस (को०)। ६ रस (को०)। ७. घृत (को०)।

अधसैन्य--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धसैन्य] अशिक्षित सेना। दे० 'भिन्नकूट'।

अधा[1]--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धक, प्रा० अन्धअ] [स्त्री० अधी] बिना आँख का जीव। वह जिसको कुछ सूझता न हो। वह जीव जिसकी आँखो मे ज्योति न हो। दृष्टिरहित जीव। उ०-- जानता बूझा नहीं बूझि किया नहीं गौन। अधे को अधा मिला राह बतावै कौन।--कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० १४।

अधा[2]--वि० १ बिना आँख का। दृष्टिरहित। उ०--अधा बाँटे रेवडी फिर फिर अपने देय (कहावत) २. विचाररहित। अविवेकी। अज्ञानी। उ०--ज्ञानी से कहिए कहा कहत कबीर लजाय। अधे आगे नाचते कला अकारथ जाय।-- कबीर सा० स०, पृ० ८६।

क्रि० प्र०--करना। --बनना। --बनाना। --होना। भले बुरे का विचार खो बैठना। उ०--क्रोध मे मनुष्य अधा हो जाता है। (शब्द०)।

मु०--अधा करना = (१) दे० 'अधा बनाना' (२) शौक और जोश या आवेश से विवेकहीन बना देना। अधा बनना = जान बूझकर किसी बात पर ध्यान न देना। अंधा बनाना = आँख मे धूल डालना। बेवकूफ बनाना धोखा देना। अधा मुल्ला टूटी मस्जिद = बुरे को बुरी चीज का मिलना। जैसे को तैसा मिलना। अधा क्या चाहे दो आँखें = जरूरतमद की अपनी जरूरत पूरी होने की काक्षा करना। अधे की लकडी या लाठी = (१) एकमात्र आधार सहारा। आसरा। (२) वह लडका जो कई लडको मे बचा हो। इकलौता लडका। अधे के हाथ बटेर लगना = किसी वस्तु का अयोग्य व्यक्ति को अप्रत्याशित रूप से प्राप्त होना। उ०--समझ लो कि तुम अपनी मिहनत से नही पास हुए, अधे के हाथ बटेर लग गई --मान०, भा० १, पृ० ८२। अधो मे काना राजा या सरदार = थोडी सी जानकारी से मूर्खो या अनजान लोगो के बीच श्रेष्ठ बनना। अधो का राज = विवेकहीन शासन। उ०--राव रक अधा सबै फिर अधो ही का राज --दरिया, बानी, पृ० ६।

३ मतवाला। उन्मत्त। जैसे--आदमी अपने मतलब मे अधा है। ४ जिसमे कुछ दिखाई न दे। अँधेरा। प्रकाशशून्य।

यौ०--अधा आइना = वह दर्पण जिसमे चेहरा साफ दिखाई न दे। धुंधला शीशा। अधा कूआँ = (१) दे० 'अधकूप' १। (२) लडको का एक खेल जो चार लकडियो से खेला जाता है। अधा कूप = दे० अधकूप'। उ०--तन मे जो अधा कूप है। वोही तुम्हारा रूप है।--सत तुरसी, पृ० २५। अधा घर = वह मकान जिसकी बाहरी रौनक खत्म हो चुकी हो। अंधा घोडा = उपानह। जूता (साधु फकीर)। अधा चिराग = वह चिराग जिसकी ज्योति मे प्रसार न हो। धुँधली ज्योति का दीपक। अधा तारा = नेपचून नामक तारा। अधा दरबार = दे० 'अधा-राज'। अधा दीया = दे० 'अधा चिराग'। अधा भैंसा = लडको का एक खेल जिसमे एक लडका दूसरे लडके की पीठ पर चढ़कर उसकी आँखे बद कर लेता है और दूसरे लडके उस भैंसा बने हुए लडके के बीच से एक एक करके निकलते हैं। सवार लडका ऊपर से प्रत्येक निकलनेवाले लडके का नाम पूछता जाता है। भैंसा बना हुआ लडका जिसका नाम ठीक बता देता है उसे फिर वह भैंसा बनाकर उसकी पीठ पर सवारी करता है। अधा राज = वह राज्य जिसका प्रबध बुरा हो। अन्यायी राज्य। अधा शीशा = दे० 'आइना'।

कहा०--अधा गाए बहरा बजाए = जब किसी काम के करने मे अयोग्य व्यक्ति एक साथ लगे हो। अधी पीसे कुत्ता खाय = निष्प्रयोजन काम को बडे परिश्रम से करना। अधे के आगे रोए, अपनी आँखें खोए = अरण्यरोदन। अधे को दूर की सूझना = असमर्थ होते हुए भी समर्थ से बढकर काम करना या अनजान होकर भी जानकारो से भी अधिक समझ की बात बताना।

अधाई--सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० अधा + ई] अधापन। विवेकहीनता। उ०--भूप रक अधा सबै अधाई का राज।--दरिया बानी, पृ० ३६।

अधाधुंध¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० अंधा + धुंध] १ बड़ा अँधेरा। घोर अंधकार। उ०—अधाधुंध भयो सब गोकुल, जो जहँ रम्यो सो तहीं छपायौ।—सूर० १०।७७। २ अँधेर। अविचार। अन्याय। गड़बड़। धींगाधींगी। कुप्रबंध। भौसा। उ०—वहाँ कोई किसी को पूछनेवाला नहीं, अधाधुंध मची है (शब्द०)।

अधाधुंध²—वि० बिना सोच विचार का। विचाररहित। वेधड़क। वेहिसाब। वेअंदाज। वेठिकाने। उ०—वह किसी कोरे स्वप्नद्रष्टा की काल्पनिक अधाधुंध उड़ान नहीं है।—जय० प्र०, पृ० ४।

अधाधुंध³—क्रि० वि० १ बिना सोचे विचारे। वेरोकटोक। वेतहाशा। मारामार। उ०—अधाधुंध धर्म के मारग सब जग गोते खाता।—संत तुरसी०, पृ० २२३। २ अधिकता से। बहुतायत से, जैसे—वह अधाधुंध दौड़ा आता है। वह अधाधुंध खाए चला जाता है। (शब्द०)।

अधानुकरण—संज्ञा पुं० [सं० अन्ध + अनुकरण] बिना विचारे अनुकरण करने का कार्य।

अधानुवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध + अनुवृत्ति] दे० 'अधानुकरण'। उ०—'भारतीय इतिहास की कुछ समस्याएँ' नामक लेख में अपनी अधानुवृत्ति और अनगलता से 'न भूमि स्यात्-सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वात्' का अनुवाद यों दिया है—भूमि व्यक्तिगत संपत्ति नहीं है —काव्य सं० प्र०, पृ० ४०।

अधानुसरण—संज्ञा पुं० [सं० अन्ध + अनुसरण] दे० 'अधानुकरण'। उ०—उन्होंने भारतीय परंपरा को मानते हुए भी अधानुसरण' कहीं नहीं किया है—रस०, पृ० ५।

अधार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अधआर, अधार] दे० 'अधकार'। उ०—गिरद्द उड़ी भान अधार रैन।—पृ० रा०, २०।६५।

अधारी¹(पु)—वि० [प्रा० अन्धार + हिं० ई (प्रत्य०)] अधकारयुक्त। अँधेरी। अँधेरिया। उ०—अधारी दारुन निसा, भू सपनंतर आइ।—पृ० रा०, १७।७१।

अंधारी²—संज्ञा स्त्री० घोड़े, हाथी अथवा बैलों की आँखों पर डालने का पर्दा। अँधेरी। उ०—इभ कुंभ अधारी कुच सु कचुकी, कवच सभु काम क कलह।—वेलि, दू० ९०।

अधालजी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धालजी] अंतर्मुख फोड़ा। अंधा फोड़ा। अंतर्मुख पिटक [को०]।

अंधाहि¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्धाहि] विषहीन सर्प [को०]।

अधाहि²—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की मछली। कूचिका [को०]।

अधाहिक—संज्ञा पुं० [सं० अन्धाहिक] एक विषरहित सर्प [को०]।

अधाहुली—संज्ञा स्त्री० [सं० अंधपुष्पी] चोरपुष्पी नामक क्षुप। दे० 'चोरपुष्पी'।

अधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धिका] १ रात। रात्रि। २ द्यूत। जूआ का खेल। ३ एक विशेष प्रकार का खेल या क्रीड़ा। ४ आँख का एक रोग। ५. सर्षपी जिसके अत्यंत सेवन से दृष्टिक्षय होता है (को०)। ६. स्त्रियों का एक भेद (को०)।

अधियारी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकार प्रा० अन्धआर, अन्धयार + हिं० ई (प्रत्य०)] १ अंधकार। अँधेरा। २ वह पट्टी जो उपद्रवी घोड़ों, शिकारी पक्षियों और चीते आदि की आँखों पर इसलिये बँधी रहती है कि किसी का देखकर उपद्रव न करें।

अंधी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० पुं० अंधा, स्त्री० अंधी] बिना आँख की स्त्री। जो स्त्री देख न सके।

अंधी²—वि० स्त्री० १ दृष्टिरहित। विवेकशून्य। विचाररहित।

यौ०—अंधी सरकार = १ राज्य जिसका प्रबंध बुरा हो। २ मालिक जो नौकरों को तनख्वाह ठीक समय पर न देता हो।

मुहा०—अंधी बैठना = बिना अंदाज के सही बात का ठीक होना। बिना अंदाज के फेंकी चीज का ठीक लक्ष्य पर बैठना। उ०—एक बार उनकी अंधी बैठ गई तो सब जगह उसे कार्य ही दिखाने लगी।—अपरे०, पृ० १८०।

२. प्रकाशहीन। अंधकारपूर्ण। उ०—जहाँ गुलानपुर की एक बड़ी अंधी गुफा थी।—प्रेमसागर (शब्द०)। ३ मतवाली। उन्मत्त।

अंधु¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्धु] १. कूआँ। कूप। २ लिंग। पुरुष की जननेंद्रिय [को०]।

अंधु²—वि० अँधेरा। प्रकाश का अभाव। प्रकाशहीन। उ०—सुखदाता सुरपति गृह अंधु। तुम्हारी कृपा बिनु सब जग अंधु।—सूर०, १०।१८०।

अंधुल—संज्ञा पुं० [सं० अन्धुल] सिरीष वृक्ष। सिरस का पेड़।

अंधुला(पु)—वि० दे० 'अंधला'। उ०—पीछे सिकदार मेंधुले, काजी मुल्ला कार। तिनी पास न सिटीयै, जो सबदे दे चोर।—सतवानी०, पृ० ७०।

अंधेर—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार (अन्ध इव करोति-इति), प्रा० अंधयार < अन्धइयार, प्रा०, पुं० हिं० अंधेर, अंधियार] १. अन्याय। अविचार। अत्याचार। जुल्म। २ उपद्रव। गड़बड़। कुप्रबंध। भौसा। अधाधुंध। धींगाधींगी। अनर्थ।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना —होना = अविचार या गड़बड़ होना। धींगाधींगी होना। उ०—इननी फिरगिनें बैठी हैं किसी की जबान तक न हिली और हम आपस में कटे मरते हैं, क्या अंधेर है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३।

अंधेरखाता—संज्ञा पुं० [हिं० अंधेर + खाता] १ हिसाब किताब और व्यवहार में गड़बड़ी। व्यतिक्रम। २ अन्यथाचार। अन्याय। अविचार। कुप्रबंध। ३. अविचारपूर्ण या अन्यायपूर्ण व्यवहार।

अंधेरगर्दी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अंधेर + फा० गर्दी] बेहद अंधेर। अनाचार (बोल०)।

अंधेरनगरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अंधेर + सं० नगरी] १. वह स्थान, संस्थान या स्थिति जहाँ कोई नियम या कानून न हो। अन्यायपूर्ण राज्य। २. अशांति या अव्यवस्थापूर्ण स्थान। उ०—अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ६७०।

अंधरा—संज्ञा पुं० [हिं० अंधेर + आ (प्रत्य०)] गड़बड़। अंधेर। अनर्थ। अन्याय। उ०—महामत्त बुधिबल की हीनो देखि करै अंधेरा।—सूर० १।१८६।

अंधेरी¹--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँधेरी'।

अंधेरी²--संज्ञा स्त्री० [?] दक्षिण भारत का एक स्थान।

अंध्यार(पु)†--संज्ञा पु० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधयार] अँधियार। अँधेरा।

अंध्यारी(पु)†--संज्ञा० स्त्री० दे० 'अँधियारी'¹।

अंध्र--संज्ञा पुं० [सं० अन्ध्र] १ बहेलिया। व्याधा। शिकारी। २ वैदेहिक पिता और कारावर माता से उत्पन्न नीच जाति के मनुष्य जो गाँव के बाहर रहते और शिकार करके अपना निर्वाह करते थे। ३ दक्षिण का एक देश जिसे अब तिलगाना कहते हैं। इसके पश्चिम की ओर पश्चिम घाट पर्वत, उत्तर की ओर गोदावरी और दक्षिण मे कृष्णा नदी है। आंध्र देश। ४ अंध्र देश के निवासीजन ५ मगध का एक राजवश जिसे एक शूद्र ने अपने मालिक कण्व वश के अतिम राजा को मारकर स्थापित किया था। अंध्र वश का अतिम राजा पुलोम था।

अंध्रभृत्य--संज्ञा पु० [सं० अन्ध्रभृत्य] मगध देश का एक राजवश।
विशेष--अंध्रवश के अतिम राजा पुलोम के गगा मे डूब मरने के पीछे उसका सेनापति रामदेव फिर रामदेव का सेनापति प्रतापचद्र और फिर प्रतापचद्र के पीछे भी अनेक सेनापति राजा बन बैठे। इन सेनापतियो का वश अंध्रभृत्य कहलाया।

अंन(पु)--संज्ञा पु० [सं०अन्न] दे० 'अन्न'। उ०--(क) अंन का मास अनिल का हाड तत का भपिवा बाई --गोरख० पृ० ४१। (ख) पच दिवस च्यारी बरन भुजत अंन अपार।--पृ० रा०, १४।१२०।
यौ०--अंनदान=अन्न दान करने का कार्य। उ०--करि सनान गगोदकह दिय सु गाइ दस दान। दस तोला तुलि हेम दिय अंनदान अ [प्र] मान।--पृ० रा०, ६।१३१।

अंननास(पु)--संज्ञा पु० दे० 'अनन्नास'। उ०--सु अंननास जीरय। सतूतय जँभीरय।।--पृ० रा०, ५६।६।

अंनी(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अनी'। उ०--दिसा वाइय साद हुस्सेन अंनी। --पृ० रा० ६ १४०।

अंनेक(पु)--वि० दे० 'अनेक'। उ०--अंनेक भाव दिप्पहि सु दिव, दिव दिवान दुदुभि बजइ।--पृ० रा०, १४।७३।

अंन्य(पु)--वि० दे० 'अन्य'। उ०--और बधाई कमरा करी आइ सुरतान। अंन्य सवन कीनी पयर पुजिय पीर ठटान।--पृ० रा०, ६।२१०।

अंन्योअन्य(पु)--सर्व दे० 'अन्योन्य'। उ०--अन्योअन्य सहँ नाम।--पृ० रा०, ६।८६।

अंब¹(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बा] अंबा। माता। उ०--कबहुँक अंब अवसर पाइ।--तुलसी ग०, पृ० ४७५।

अंब²(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अम्म, अब] दे० 'आम्र'। आम का पेड या फल। उ०--अंब सुफल छाँडि कहाँ सेमर को धाऊँ।--सूर० १।१६६।

अंब³--संज्ञा पु० [सं० अम्ब] १ पिता। २ स्वर। ३ स्वर करनेवाला। ४. आँख। वेद। ५ ताँवा [को०]। ६. आकाश। उ०--ग्रीषम भाजै गात अंब बरसात उलट्टी।--रा० रू, पृ० ३४३। ७ जल। उ०--हरिचरन अंब अंजुली कीन।--पृ० रा०, ९।३६६।

अंब⁴(पु)--संज्ञा पु० [सं० अम्बु] रक्त। खून। रुधिर। उ०--अरि अंब अचन अगथि करार।--पृ० रा०, ६१।२२३।

अंबक--संज्ञा पु० [सं० अम्बक] १ आँख। नेत्र। उ०--नव अंबुज अंबक छवि नीकी।--मानस १।१४७।
यौ०--त्र्यंबक=शिव।
२ पिता। ३ ताँबा। ४ शिवनेत्र [को०]।

अंबखास(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'आमखास'। उ०--सावत नै शाहि अंबखास मे बुलाया। हाजिर उमराव मीर सो तमाम आया --शिखर०, पृ० ६२।

अंबजा(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजा]-कमलिनी। उ०--अलीन जुथ्थ आवरं। मनो बिहग सावरं। चुवंत पत्त रत्त जा। उवंत जानि अंबजा।--पृ० रा० २५।३२४।

अंबडि(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अम्बर] अंबर। आकाश। उ०--तिस अंबडि कोय न सकई उड्ड ऊँचा अवर अपार।--प्राण०, पृ० २०८।

अंबमौर--संज्ञा पुं० [सं० अम्ब + मुकुर, प्रा० अंब + मउर] आम्र की मजरी। बौर। उ०--बन उपवन फुल्लहि अति बठौर। रहे जोर मौर रस अंबमौर।।--ह० रा०, पृ० १८।

अंबया--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बया] १ माता (कौपी०)।

अंबर¹--संज्ञा पुं० [सं० अम्बर] १ आकाश। आसमान। शून्य। उ०--अंबर कुंजा कुरलियाँ गरजि भरे सब ताल।--कबीर ग्र०, पृ० ७।
मुहा०--अंबर के तारे डिगना=आकाश से तारे टूटना। असभव बात का होना। उ०--अंबर के तारे डिगैं, जूआ लाडे बैल। पानी मे दीपक बलै, चलै तुम्हारी गैल (शब्द०)।
यौ०-अंबरचर=(१) पक्षी। (२) विद्याधर। अंबरचारी=ग्रह। अंबरद=कपास। अंबरपुष्प=आकाशकुसुम। अंबरशैल=ऊँचा पहाड। अंबरस्थली=पृथ्वी।
२ बादल। मेघ (क्व०)। उ०--आषाढ मे सोवै परी मन च्वाव देखै कामिनी। अंबर नवै, बिजली खवै, दुख देत दोनों दामिनी--(शब्द०)। ३ वस्त्र। कपडा। पट। उ०--नभ पर जाइ बिभी-षन तबही। बरषि दिए मनि अंबर सबही।--मानस, ७।११६। ४ स्त्रियों की पहनने की एक प्रकार की एकरगी किनारेदार धोती। उ०--करपत सभा द्रुपद तनया को अंबर अछय कियो। --सूर० १।१२१। ५ कपास। ६ अभ्रक धातु। अबरक। ७ राजपूताने का एक पुराना नगर (सभवत जयपुर की राज-धानी आमेर)। ८ प्राचीन ग्रथो के अनुसार उत्तरी भारत का एक देश। ९ शून्य (को०)। १० गध द्रव्य। कश्मीरी केशर। उ०--पचीस छाव अंबर, असीम मुक्क्ली भर।--पृ० रा०, ६६।५८। ११ परिधि। मडल (को०)। १२ पड़ोस। सामीप्य। पास का देश (को०)। १३ ओष्ठ। ओठ (को०)। १४ दोष। बुराई (को०) १५ हाथियो का नाश करने- वाला (को०)।

अवर²--संज्ञा पुं० १ एक सुगंधित वस्तु।

विशेष--यह ह्वेल मछली की तथा कुछ और समुद्री मछलियों की अँतड़ियों में जमी हुई चीज है जो भारतवर्ष, अफ्रीका और ब्राजील के समुद्री किनारों पर बहती हुई पाई जाती है। ह्वेल का शिकार भी इसके लिये होता है। अवर बहुत हलका और शीघ्र जलनेवाला होता है तथा आँच दिखाने रहने से बिलकुल भाप होकर उड़ जाता है। इसका व्यवहार औषधियों में होने के कारण यह नीकोबार (कालापानी का एक द्वीप) तथा भारत समुद्र के और और टापुओं से आता है। प्राचीन काल में अरब, यूनानी और रोमन लोग इसे भारतवर्ष से ले जाते थे। जहाँगीर ने इससे राजसिंहासन का सुगंधित किया जाना लिखा है। उ०--जिनके पास अवर है इस शहर बीच। खरीद करनहार है सब वही व।--दक्खिनी०, पृ० ७९। २ एक इत्र। उ०--तेल फुलेल सुगंध उबटनो अवर अतर लगावें रे।--भक्ति०, पृ० ३६०।

अवर³(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अमृत, प्रा० अमरित, अमरिअ, अप० [अवरि] अमृत। सुधा।--अनेकार्थ०, पृ० ११४।

अवर⁴(पु)--संज्ञा पुं० [अ० अमारी, हिं० अवारी] हाथी की पीठ पर का हौदा जिसपर छज्जेदार मडप होता है। अवारी। उ०--चढ़ी चौडोल अवर। मनो कि मेघ घुम्मर।--पृ० रा०, ६६।५७।

अवरग--वि० [सं० अम्बरग] आकाशगामी [को०]।

अवरचर¹--वि० [सं० अम्बरचर] आकाशगामी [को०]।

अवरचर² --संज्ञा पुं० १ पक्षी। खग। २ विद्याधर [को०]।

अवरचारी--वि० [सं० अम्बरचारी] ग्रह [को०]।

अवरडवर--संज्ञा पुं० [सं० अम्बर + हिं० डवर] वह लाली जो सूर्य के अस्त होने के समय पश्चिम दिशा में दिखाई देता है। उ० --बिनसत बार न लागई ओछे जन की प्रीति। अवर डवर साँझ के ज्यों बारू की भीति।--स० सप्तक, पृ० ३१२।

अवरद--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरद] कपास [को०]।

अवरपुर--(पु संज्ञा पुं० [सं० अम्बरपुर] आकाश। उ०--आरोपि प्रथ्थि अवरपुरह सत माइर ससै परिय। कहि चद दद करि दैत सों घरनिधार अद्धर धरिय।--पृ० रा०, २।१५३।

अवरपुष्प--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरपुष्प] आकाशकुसुम। असभव बात। खपुष्प। अस्तित्वहीन पदार्थ। [को०]।

अवरवानी--संज्ञा पुं० [सं० अम्बर (= मेघ) + वानी] मेघगर्जन। बादलों का गर्जन। उ०--अवरवानी भई सजल बादर दल छए।--सूर० (राधा०), ४८०६।

अवरवारी--संज्ञा स्त्री० [सं० अमरवल्लरी, प्रा० अम्मर वाली] एक झाड़ी।

विशेष--यह हिमालय और नीलगिरि पर होती है। इसकी जड़ और छाल में बहुत ही अच्छा पीला रंग निकलता है जिससे कभी कभी चमड़ा भी रँगते हैं। इसके बीज में तेल निकलता है। इसकी लकड़ी, जिसे दारुहल्द या दारुहल्दी कहते हैं, औषधियों में काम आती है तथा इसकी जड़ और लकड़ी से एक प्रकार का रस निकालते हैं जो रसवत या रसौत कहलाता है। पर्या०--चित्रा। दारुहल्द। आँबाहरदी (अमाहरदी)।

अवरवेल--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्मरवल्ली] दे० 'अम्बरवेलि'।

अवरवेलि--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्मरवल्ली प्रा०, अमरवल्ली] आकाश वेल। आकाश वौंर। अमरवेल।

विशेष--हकीमी नुसखों में इसे इफतीमून कहते हैं। सूत के समान पीली एक बेल जो प्रायः पेड़ों पर लिपटी मिलती है जिसकी जड़ पृथ्वी में नहीं होती और इसमें पत्ते और कनखे भी नहीं निकलते। जिस पेड़ पर यह पड़ जाती है उसे लपेटकर सुखा डालती है। यह बाल बढ़ाने की एक औषधि है। हकीम लोग इसे वायुरोगों में देते हैं।

अवरमणि--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरमणि] आकाश के मणि अर्थात् सूर्य।

अवरमाला--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बरमाला] मोतियों की विशेष प्रकार की माला। उ०-- अवरमाला इक्क अक पहिराइ कह्यौ इह।--पृ० रा०, ७।२६।

अवरयुग--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरयुग] स्त्रियों का ऊपर और नीचे पहनने का वस्त्र [को०]।

अवरलेखी--वि० [सं० अम्बरलेखिन्] आकाशस्पर्शी। गगनचुंबी [को०]।

अवरशैल--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरशैल] अति उच्च पर्वत। बहुत ऊँचा पहाड़ [को०]।

अवरसारी--संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कर या टैक्स जो पहले घरों के ऊपर लगता था।

अवरस्थली--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बरस्थली] पृथ्वी [को०]।

अवरात-- संज्ञा पुं० [सं० अम्बरान्त] १ कपड़े का छोर। २ वह स्थान जहाँ आकाश पृथ्वी से मिला हुआ दिखाई देता है। क्षितिज।

अवराधिकारी--संज्ञा पुं० [सं० अम्बराधिकारी] अवर या परिधान का अध्यक्ष [को०]।

अवरीक(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरीष, देश० अवरीख > अवरीक] दे० 'अवरीष'। उ०--माफ करे अवरीक बचौगे तब दुर्वासा।--पलटू०, १।१६।

अवरीष--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरीष] १ भाड़। २ वह मिट्टी का बरतन जिसमें भड़भूजे लोग गरम बालू डालकर दाना भूनते हैं। ३ विष्णु। ४ शिव। ५, सूर्य। ६ किशोर अर्थात् ११ वर्ष से छोटा बालक। ७ एक नरक। ८ अयोध्या के एक सूर्यवंशी राजा।

विशेष--ये प्रशुश्रुक के पुत्र थे और इक्ष्वाकु से २८वीं पीढ़ी में हुए थे। पुराणों में ये परम वैष्णव प्रसिद्ध हैं जिनके कारण दुर्वासा ऋषि का विष्णु के चक्र ने पीछा किया था। महाभारत, भागवत और हरिवंश में अवरीष को नाभाग का पुत्र लिखा है जो रामायण के मत के विरुद्ध है।

९ आमड़े का फल और पेड़। १० अनुताप। पश्चात्ताप। ११ समर। लड़ाई। १२ छोटा जानवर। बछड़ा [को०]।

अवरीसक--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरीष] भाड़। भरसायँ (डिं०)।

अवरीक--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरीक] देवता।

अवरौकस्--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरौक] दे० 'अवरौक [को०]।

अवल--संज्ञा पुं० [सं० अम्ल, हिं० अवल] १ मादक पदार्थ। अमल। २ खट्टा रस। अवल।

अवला(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अवला'। उ०--साँझ समय राइ वोलसी। हँसि हँसि वोल (ई) अवला मूँध।--वी० रासो०, पृ० १६।

अवली(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अमली'--२। उ०--'आव अंवली रे अवली, ववूर चढी नग वेली रे।--कवीर ग्र०, पृ० ११२।

अवष्ठ--संज्ञा पुं० [सं० अम्वष्ठ] [स्त्री० अम्वष्ठा] १ एक देश का नाम पजाव के मध्य भाग का पुराना नाम। २ अवष्ठ देश मे वसनेवाला मनुष्य। ३ ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री से उत्पन्न एक जाति। इस जाति के लोग चिकित्सक होते थे। ४. महावत। हाथीवान। फीलवान। हस्तिपक। ५ कायस्थो का एक भेद।

अवष्ठकी--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्वष्ठकी] दे० 'अवष्ठा'।

अवष्ठा--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्वष्ठा] १ अवष्ठ जाति की स्त्री। २. एक लता का नाम। पाढा। ब्राह्मणी लता। ३ जूही (को०)। ४. अवाडा (को०)। ५ चूक (को०)।

अवष्ठिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्वष्ठिका] ब्राह्मी लता [को०]।

अवहर(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अम्वर, डिं० अवहर] मेघ वादल। उ०--चातक रटै वलाहकि चचल। हरि सिणगारै अवहर। वेलि०, दू० १६४।

अवा[1]--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्वा] १ माता। जननी। माँ। अम्मा। उ०--जौं सिय भवन रहइ कह अवा। मोहि कहँ होइ वहुत अवलवा।--मानस, १।६०। २. गौरी। पार्वती। देवी। दुर्गा। ३ अवष्ठा। पाढा। ४ काशी के राजा इद्रद्युम्न की तीन कन्यायो मे सवसे वडी कन्या।

विशेष--काशिराज की तीन कन्याओ को भीष्म पितामह अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये हरण कर लाए थे। अवा राजा शाल्व के साथ विवाह करना चाहती थी। इससे भीष्म ने उसे शाल्व के पास भिजवा दिया। पर राजा शाल्व ने उसे ग्रहण न किया और वह हताश होकर भीष्म से वदला लेने के लिये तप करने लगी। शिव जी इसपर प्रसन्न हुए और उसे वर दिया कि तू दूसरे जन्म मे वदला लेगी। यही दूसरे जन्म मे शिखडी हुई जिसके कारण भीष्म मारे गए।

५ ससुर खदेरी नदी।

विशेष--यह नदी फतेहपुर के पास निकलकर प्रयाग से थोडी दूर पर यमुना मे मिली है। ऐसी कथा है कि यह वही काशिराज की वडी कन्या अवा है, जो गगा के शाप से नदी होकर भागी थी।

अवा[2](पु)--संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अव] आम। रसाल। उ०--मारू अवा मउर जिम, कर लगइ कुँमलाइ।--ढोला०, दू० ४७१।

यौ०--अवाझोर=तीर्व और लगातार चलनेवाली हवा जिससे पेडो से आम के फल गिर जायँ (वेलि०)।

अवाडा--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्वाडा] माता। जननी [को०]।

अवापोली--संज्ञा स्त्री० [सं० यौ० आम्र+पोलि>प्रा० अवा+पोली= रोटी, पोतला] अमावट। अमरस।

अवावन--संज्ञा पुं० [सं० अंवा+वन] इलावृत खड का एक स्थान जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाता था। उ०--पुनि सुद्युम्न वसिष्ठ सौ कह्यौ। अवावन मैं तिय ह्वै गयौ।--सूर०, ६।२।

अवायु--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्नायु] १ माता। जननी। २ भद्र या शिष्ट महिला [को०]।

अवार--संज्ञा पुं० [फा०] ढेर। समूह। राशि। अटाला। उ०--रीढ वकिम किए निश्चल किंतु लोलुप खडा वन्य विलार, पीछे, गोयठो के गधमय अवार।--इत्यलम्।

अवारखाना--संज्ञा पुं० [फा०] गोदाम। भडार। कवाडखाना [को०]।

अवारी[1]--संज्ञा स्त्री० [अ० अमारी] १. हाथी के पीठ पर रखने का हौदा। २ (ऊँट के पीठ का) मोहमिल जिसके ऊपर एक छज्जेदार मडप वना रहता है। उ०--कुदन नगन जटित अवारिय।--प० रा०, पृ० ११२। ३ छज्जा। मडप।

अवारी[2]--संज्ञा स्त्री० पटमन। (दक्षिण)।

अवालय--संज्ञा पुं० [सं० अम्वालय] अवाला शहर। उ०--सो रूपमुरारीदास अवालय मे एक खत्री के जन्मे।--दो सौ वावन०, भा० १, पृ० १४१।

अवाला--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्वाला] माता [को०]।

अवालिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्वालिका] १ माता। माँ। जननी। २. अवष्ठा लता। पाढा। पाठा। ३ काशी के राजा इद्रद्युम्न की तीन कन्यायो मे सवसे छोटी।

विशेष--इसे भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये हरण कर लाए थे। विचित्रवीर्य के मरने पर जव व्यास जी ने इससे नियोग किया तव पाडु उत्पन्न हुए।

अवाली--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्वाली] माता [को०]।

अविका--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्विका] १ माता। माँ। उ०--अविका माता को कहिये, धाकर नीच ब्राह्मन को कहिये तातें विरुद्ध मतिकृत भयो।--भिखारी ग्र०, भा० २ पृ० २२५। २ दुर्गा। भगवती। देवी। पार्वती। उ०--वासी नरनारि ईस अविका सरूप हैं।--तुलसी ग्र०, पृ० २४१। ३ जैनो की एक देवी। ४ कुटकी का पेड। ५ अवष्ठा लता। पाढा। ६. काशी के राजा इद्रद्युम्न की तीन कन्याओ मे मझली।

विशेष--भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये इन कन्याओ को हर लाए थे। विचित्रवीर्य के मरने पर जव व्यास जी ने इससे नियोग किया तव धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए।

अविकापति--संज्ञा पुं० [सं० अम्विकापति] शिव [को०]।

अविकापुत्र-- संज्ञा पुं० [सं० अम्विकापुत्र] काशिराज की मझली कन्या अविका के पुत्र धृतराष्ट्र [को०]।

अविकावन--संज्ञा पुं० [सं० अम्विकावन] १ इलावृत खड मे एक पुराणप्रसिद्ध स्थान जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाते थे। उ०--एक दिवस सो अखेटक गयौ। जाइ अविकावन तिय भयौ।--सूर०, ९।२। २ व्रज के अतर्गत एक वन।

अविकालय--संज्ञा पुं० [सं० अम्विकालय] देवी का मदिर। उ०--पूजा मिसि आनिसि पुरखोतम अविकालय नगर आरात।--वेलि०, दू० ६६।

अविकासुत--संज्ञा पुं० [सं० अम्बिकासुत] धृतराष्ट्र। अंबिकापुत्र [को०]

अविकेय--संज्ञा पुं० [सं० अम्बिकेय] अंबिका के पुत्र--१ गणेश। २. कार्तिकेय। ३. धृतराष्ट्र।

अविष्टा--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बष्ठा + 'जूही'] राजवल्ली।--नंद० ग्र०, पृ० १०५।

अबु[1]--संज्ञा पुं० [सं० अम्बु] १ जल। पानी। उ०--अबु तू हौं अबुचर, अब तू हौं डिंभ।--तुलसी ग्र०, पृ० २६६। २. आँसू। अश्रु। उ०--सारगमुख,ते परत अबु ढरि मनु सिव पूजति तपति विनास।--सा० लहरी, पृ० १७३। ३ रक्त का जलीय तत्व (को०)। ४ सुगधवाला। ५ कुडली के बारह स्थानो या घरो मे चौथा। ६ चार की सख्या, क्योकि जल तत्वो की गणना मे चौथा है। ७ एक छद (को०)।

अबु[2]--सज्ञा पुं० [सं० आम्र] आम। रसाल। उ०--जबू वृक्ष कहो क्यो लपट फलवर अबु फरै।--सूर० (राधा०), ३३११।

अबुअ(पु)--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुक, प्रा० अबुअ] जल। पानी। उ०--उतपति प्रेम अगिन उपजावा। बहुरि पवन अबुअ उपजावा।--हिं० प्रेमा०, पृ० २२६।

अबुकटक--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुकण्टक] जलजतुविशेष। मगर।

अबुक[1](पु)--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुक ?] मछली। माम। उ०--सुरा पान अबुक भखे, नित्त कर्म विभिचार।--दया० बानी, पृ० २८।

अंबुक[2]--सज्ञा पुं० [सं० अम्बक] आँख। नयन। उ०--पहिले घन के अबुक माहीं। अजन स्याम रहा है नाहीं।--इद्रा०, पृ० ७१।

अबुकण--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुकण] जलबिंदु। पानी का छीटा [को०]।

अबुकिरात--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुकिरात] एक जलजतु। मगर।

अबुकीश--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुकीश] एक जलजतु। सूस। शिशुमार।

अबुकूर्म--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुकूर्म] दे० 'अबुकीश' [को०]।

अबुकेशर--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुकेशर] नीबू का पेड [को०]।

अबुकेशी--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुकेशी] एक जलजतु। ऊद। ऊदबिलाव।

अबुक्रिया--सज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुक्रिया] पितृतर्पण [को०]।

अबुग[1]--वि० [सं० अम्बुग] पानी मे निवास करनेवाला। जलचर [को०]।

अबुग[2]--सज्ञा पुं० जलचर प्राणी [को०]।

अबुघन--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुघन] उपल। ओला। बनौरी [को०]।

अबुचत्वर--सज्ञा पुं० [सं० अम्बु + चत्वर] झील [को०]।

अबुचर--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुचर] जलचर। उ०--अबु तू हौ अबुचर, अब तू हौं डिंभ।--तुलसी ग्र० भा० २, पृ० २५६।

अबुचामर--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुचामर] शैवाल। सेवार।

अबुचारी[1]--वि० [सं० अम्बुचारिन्] जलचर [को०]।

अंबुचारी[2]--सज्ञा पुं० जलचर प्राणी [को०]।

अबुज[1]--वि० [सं० अम्बुज] जल मे उत्पन्न होनेवाला [को०]।

अंबुज[2]--सज्ञा पुं०, १ जल से उत्पन्न वस्तु या जतु। २. कमल। जलज। उ०--नव अबुज अबक छवि नीकी।--मानस १।१४७। ३, पानी के किनारे होनेवाला एक पेड। हिज्जल। ईजड। पनिहा। ४. बेत। ५ वज्र। ६ ब्रह्मा। ७. शख। ८. चंद्रमा (को०)। ९ सारस नाम का पक्षी (को०)।

अंबुजतात--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुजतात] ब्रह्मा। उ०--सुनि के बोल्यो अबुज तात। सुनहु अमरगन मो तैं बात।--नद० ग्र०, पृ० २२०।

अबुजन्मा--सज्ञा पुं० [सं० अबुजन्मन्] कमल [को०]।

अबुजसुत--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुजसुत] ब्रह्मा। अबुज तात। उ०--अबुज सुत उमया बिलोकि, वेद पढ़त खलि बीरज।--पृ० रा०, ६१।३१५।

अबुजा--सज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजा] १ एक रागिनी जिसे सगीतशास्त्र वाले मेघ राग की पुत्रवधू कहते हैं। २ सरस्वती। उ०--तुही अबुजा अबुकामिन्नि काम।--पृ० रा० २४। ३ कमलिनी। उ०--ढरत रत्त एड़िय। उपम्म कव्वि टेरिय। मनो कि रत्त रत्तजा। विकत पत्त अबुजा।--पृ० रा०, २५।३३०।

अबुजाक्ष[1]--वि० [सं० अम्बुजाक्ष] कमल के समान नेत्रवाला।

अंबुजाक्ष[2]--सज्ञा पुं० विष्णु।

अबुजाक्षी--वि० स्त्री० [सं० अम्बुजाक्षी] कमल जैसी आँखवाली [को०]।

अबुजात[1]--वि० [सं० अम्बुजात] जल मे उत्पन्न।

अबुजात[2]--सज्ञा पुं० कमल। दे० अबुज।

अबुजासन--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुजासन] वह जिसका आसन कमल पर हो। ब्रह्मा।

अबुजासना--सज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजासना] वह स्त्री जिसका आसन कमल पर हो। लक्ष्मी। कमला। सरस्वती।

अबुजिनी--सज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजिनी] कमलिनी [को०]।

अबुतस्कर--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुतस्कर] सूर्य [को०]।

अबुताल--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुताल] शैवाल सेवार।

अबुद[1]--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुद] १ जल देनेवाला--बादल मेघ। उ०--बिधि महेस मुनि सुर सिहात सब देखत अबुद ओट दिये।--तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० २७२। २ मोथा। नागरमोथा।

अबुद[2]--वि० जल देनेवाला। जो जल दे।

अबुदेव--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुदेव] १ वे लोग जो जल को देवता मानते हैं। २. ज्योतिष के अनुसार पूर्वाषाढ़ का एक विभाग [को०]।

अबुदैव--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुदैव] दे० 'अबुदेव' [को०]।

अबुधर[1]--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुधर] जल को धारण करनेवाला--मेघ। बादल। उ०--नव अबुधर बर गात अबर पीत सुर मन मोहई।--मानस, ५।१२।

अबुधर[2]--वि० जल को धारण करनेवाला।

अबुधार--सज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधार] जलधारा। उ०--कुतल चिहुर चुवहि ज्यों धाला। अबुधार कैधो अलिमाला।--माधवानल०, पृ० १९०।

अबुधि--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुधि] १ समुद्र। सागर। २. चार की सख्या (को०)। ३. जलपात्र (को०)।

अबुधिकामिनी--सज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधिकामिनि] समुद्र की स्त्री या नदी [को०]।

अबुधिस्रवा--सज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधिस्रवा] घृतकुमारी। घीकुआँर। ग्वारपाठा।

अबुनाथ--सज्ञा पुं० [सं० अम्बुनाथ] १. समुद्र। सागर। २. वरुण देवता।

अंबुनिधि—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुनिधि] समुद्र। सागर।
अंबुनिवह[1]—वि० [सं० अम्बुनिवह] जल ले जानेवाला [को०]।
अंबुनिवह[2]—संज्ञा पुं० बादल [को०]।
अंबुनेत्रा—वि० स्त्री० [सं० अम्बुनेत्रा] आँसू भरी आँखोंवाली। अश्रुपूरित नेत्रोंवाली। उ०—आसीना थी निकट पति के अंबुनेत्रा यशोदा।—प्रिय प्र०, (सर्ग १०)।
अंबुप[1]—वि० [सं० अम्बुप] पानी पीनेवाला।
अंबुप[2]—संज्ञा पुं० १. समुद्र। सागर। २ वरुण। ३ शतभिषा नक्षत्र। ४ चकवड का पौधा। चक्रमर्द। चकौंड।
अंबुपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुपक्षिन्] जल मे रहनेवाले पक्षी [को०]।
अंबुपति—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुपति] १ समुद्र। उ०—आनन अनल अंबुपति जीहा।—मानस, ६।१५। २ वरुण।
अंबुपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुपत्रा] नागरमाथा। मोथा। उच्चटा।
अंबुपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुपद्धति] जलमार्ग। धारा। जल प्रवाह। जलप्रपात [को०]।
अंबुपात—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुपात] दे० 'अंबुपद्धति' [को०]।
अंबुपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुपालिका] पनिहारिन। पानी भरनेवाली लडकी उ०—भरे हुए पानी मृदु आती थी पथ पर, अंबुपालिका।—अनामिका, पृ० १७७।
अंबुप्रसाद—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुप्रसाद] निर्मली। निर्मली का पौधा। गँदले पानी को साफ करनेवाली ओषधि। कतक।
अंबुप्रसादन—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुप्रसादन] दे० 'अंबुप्रसाद' [को०]।
अंबुबसा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवासा] पाटल। पाडर।—नंददास ग्र०, पृ० १०२।
अंबुभव—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुभव] कमल [को०]।
अंबुभृत्—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुभृत्] १. बादल। २ मोथा। ३ समुद्र। ४. अभ्रक।
अंबुमत्—वि० [सं० अम्बुमत्] जलयुक्त [को०]।
अंबुमती—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुमती] एक नदी का नाम [को०]।
अंबुमात्रज[1]—वि० [सं० अम्बुमात्रज] जल मे ही उत्पन्न होनेवाला। जलीय [को०]।
अंबुमात्रज[2]—संज्ञा पुं० घोघा। शख। शबूक [को०]।
अंबुर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुर] दरवाजे का काष्ठ। चौखट [को०]।
अंबुरय—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुरय] धारा। प्रवाह [को०]।
अंबुराज—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुराज] दे० 'अंबुपति' [को०]।
अंबुराशि—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुराशि] जल की राशि अर्थात् समुद्र। सागर।
अंबुरुह—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुरुह] कमल।
अंबुरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुरुहा] स्थल कमलिनी [को०]।
अंबुरुहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुरुहिणी] कमल। कमलिनी। कुईं कोईं [को०]।
अंबुरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुरोहिणी] दे० 'अंबुरुहिणी'।
अंबुल[1]—संज्ञा पुं० [सं० अम्ल > प्रा० अमम्ल > अंबल,] १ अम्ल। अम्वल। खट्टा रस। उ०—पन बहु अंबुल जंबुअ मेलि।—पृ० रा०, ६३।१०६। २ आम।
अंबुल[2]—संज्ञा पुं० [सं० आमलक, प्रा० आमलय] आमला [को०]।
अंबुवाची—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवाची] आषाढ़ मे आर्द्रा नक्षत्र का प्रथम चरण अर्थात् आरंभ के तीन दिन और २० घड़ी जिनमे पृथ्वी ऋतुमती समझी जाती है और बीज बोने का निषेध है।
यौ०—अंबुवाची त्याग = आषाढ़ कृष्णपक्ष त्रयोदशी का दिन [को०]।
अंबुवाची पद = आषाढ़ कृष्णपक्ष का दशम दिन [को०]।
अंबुवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवासिनी] पुष्पविशेष। पाडर का फूल। पाटला [को०]।
अंबुवासी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवासिन्] दे० 'अंबुवासिनी' [को०]।
अंबुवाह—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुवाह] १ बादल। मेघ। २ मोथा। नागरमोथा। ३. जलवाहक व्यक्ति (को०)। ४. अभ्रक (को०)। ५ सत्रह की सख्या (को०)। ६ झील (को०)।
अंबुवाहक[1]—वि० [सं० अम्बुवाहक] जल ले जानेवाला [को०]।
अंबुवाहक[2]—संज्ञा स्त्री० १ बादल। २ मोथा। नागरमोथा (को०)।
अंबुवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवाहिनी] १ नाव का जल उलीचने या फेंकने का बरतन जो प्राय काठ या कछुए के खोपडे का होता है। २ जल लानेवाली स्त्री० [को०]।
अंबुवाही—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुवाहिन्] १ मेघ। बादल। २ मोथा। मुस्तक [को०]।
अंबुविस्रवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुविस्रवा] घृतकुमारी। ग्वारपाठा। घीकुआँर [को०]।
अंबुविहार—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुविहार] जलक्रीडा। जलविहार [को०]।
अंबुवेतस—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुवेतस] एक प्रकार का बेत जो पानी मे होता है। बडा बेत।
विशेष—यह बेत पतला पर बहुत दृढ होता है। इसकी छडियाँ बहुत उत्तम बनती हैं। दक्षिण बंगाल, उड़ीसा, करनाटक, चटगाँव, वर्मा आदि मे यह पाया जाता है।
अंबुशायी—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुशायिन्] जल या समुद्र मे शयन करनेवाले, विष्णु। नारायण।
अंबुशिरीपिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुशिरीषिका] एक विशेष पेड। जलशिरीष। ढाटोन। टिटिनी। [को०]।
अंबुशिरीषी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुशिरीषी] दे० 'अंबुशिरीपिका' [को०]।
अंबुसर्पिणी—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुसर्पिणी] जोंक।
अंबुसेचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुसेचनी] जल सींचने या उलीचने का पात्र [को०]।
अंबूक—संज्ञा पुं० [सं० अम्बूक] लकुच। बडहर [को०]।
अंबूकृत—वि० [सं० अम्बूकृत] निष्ठीवनयुक्त उच्चरित (भाषा या कथन) [को०]।
अंबूज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुज] कमल। अंबुज। उ०—परे सीस भार बहुआन धार। मनो इम्भ झकोर अंबूज झार।—पृ० रा०, २५।७६१।
अंबूजी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुज + हिं० ई (प्रत्य०) कमलिनी। कुमुदिनी। उ०—अनुदिन काम विलास विलासिनि, चँ अलि तू अंबूजी।—सूर०, १०।२८२६।
अंबूदीप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुद्वीप, प्रा० अंबूदीअ] कबीर साहित्य में वर्णित एक द्वीप का नाम। उ०—अंबूदीप हम को पाना।—कबीर सा०, पृ० ५।
अंबोह—संज्ञा पुं० [फा०] भीड़भाड़। जमघट। भीड। जमाव। समूह। उ०—इक दम की पैठ लगी है यह अंबोह मजा चरचा कहिये।—राम० धर्म०, पृ० ९३।
अम्रित(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमृत] सुधा। अमृत। उ०—पुहुप पक रस अम्रित साँधे। केइँ ये सुरंग खिरौरा बाँधे।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १९२।

अंभ—संज्ञा पुं० [सं० अम्भ] अंभस् का समासगत रूप, जैसे, अंभपति, अंभसार मे।
अंभ पति—संज्ञा पुं० [सं० अम्भ पति] जलपति। वरुण [को०]।
अंभ सार—संज्ञा पुं० [सं० अम्भ सार] मोती [को०]।
अंभ सू—संज्ञा पुं० [सं० अम्भ सू] दे० 'अंभसू' [को०]।
अंभ स्थ—वि० [सं० अम्भ स्थ] जल मे स्थित [को०]।
अंभ—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्] १ जल। पानी। उ०—नौ तत्वनि को लिंग पुनि माँहि भरयौ है अंभ।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ७८१। २ पितृलोक। ३ पितर। ४ लग्न से चौथी राशि। ५ चार की संज्ञा। ६ साख्य मे आध्यात्मिक तुष्टि के चार भेदों मे से एक। दे० 'अंभस्तुष्टि'। ७ देव। ८ असुर। ९. एक राक्षस या असुर (को०)। १०. शक्ति (को०) ११ तेज (को०)। १२ मनुष्य। मानव (को०) १३ एक वैदिक छद (को०)। १४ आकाश। उ०—करि मत साह गोरी अचभ। आरंभ चक्र भुजदड अंभ।—पृ० रा०, १९।८४।
अंभनिधि—संज्ञा पु० [सं० अम्भस्+निधि] दे० 'अंभोनिधि'।
अंभस्—संज्ञा पु० [सं० अम्भस्] पानी [को०]।
अंभसार—संज्ञा पु० [सं० अम्भ सार] मोती :
अंभसू—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्+सु] १ धूआँ। २. भाप।
अंभस्तुष्टि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्+तुष्टि] साख्य मे चार आध्यात्मिक तुष्टियो मे से एक। जब कोई व्यक्ति माया के प्रपच मे फँसकर यह सतोष करता है कि उसे होते होते प्रकृति की गति के अनुसार विवेक आदि की अवस्था प्राप्त हो ही जाएगी तब उनकी इस तुष्टि को अंभस्तुष्टि कहते हैं।
अंभस्सार—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्सार] मोती। मुक्ता [को०]।
अंभु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अम्बु] पानी। ओप। तेज। काति। उ०—सदा दान किरवान मैं, जाके आनन अंभु।—भूषण ग्र०, पृ० ६।
अंभो—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्] 'अंभस् का समासगत रूप।
अंभोज[1]—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोज] १. कमल। पद्म। २ सारस पक्षी। ३ चद्रमा। ४ कपूर। ५ शख।
अंभोज[2]—वि० जल मे उत्पन्न।
अंभोजखड—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोजखड] कमल समूह [को०]।
अंभोजजनि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोज+जनि] अंभोजजन्मा ब्रह्मा। चतुरानन [को०]।
अंभोजजन्म—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोजजन्मन्] ब्रह्मा [को०]।
अंभोजजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोजजन्मन्] ब्रह्मा [को०]।
अंभोजयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्भोजयोनि] ब्रह्मा [को०]।
अंभोजा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्भोजा] १. कमलिनी। २ जेठी मधु। मुलेठी [को०]।
अंभोजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्भोजिनी] १ कमल का पौधा। कमलिनी। पद्मिनी २ कमल का समूह। ३. वह स्थान जहाँ पर बहुत से कमल हों।
अंभोद—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोद] १ बादल। मेघ। २. मोथा। नागरमोथा।
यौ०—अंभोदनाद = मेघनाद। रावण का पुत्र। अंभोदनादहन्ता = अंभोदनाद को मारनेवाले लक्ष्मण।
अंभोधर—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधर] १. बादल। २ मोथा।
अंभोधि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधि] अंबुधि। समुद्र। उ०—जयति अजनी गर्भ अंभोधि संभूत विधु विबुध कुल कैरवानदकारी।—तुलसी ग्र०, या २, पृ० ३९०।
अंभोधिपल्लव—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधिपल्लव] विद्रुम मूँगा। प्रवाल [को०]।
अंभोधिवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधिवल्लभ] मूँगा। प्रवाल।
अंभोनिधि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोनिधि] समुद्र। सागर।
अंभोयोनि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोयोनि] ब्रह्मा [को०]।
अंभोराशि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोराशि] समुद्र।
अंभोरुह—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोरुह] १ कमल। उ०—वदन इदु, अंभोरुह लोचन, स्याम गौर सोभा सदन सरीर।—तुलसी ग्र०, पृ० १९६। २ सारस पक्षी।
अंम(पु)—सर्व० [सं० अस्मत्, प्रा अम्ह] हमारा। मेरा। उ०—जं जपि ताम पेरभ राव। बूझै न मत को अंमठाव।—पृ० रा०, १२।१९८।
अंमर[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अम्बर] आकाश। नभ। उ०—चालुक्क राह चालत दल अंमर घुमर घुमर वर।—पृ० रा०, १२।७६।
अंमर[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमर] देवता। उ०—सभरि सौं लगे समर अमर कौतिग एव।—पृ० रा०, १२।३२६।
अंमर[3]†—वि० दे० 'अमर'।
अंमर[4]†—संज्ञा पुं० [सं० अमृत, अम्मरअ] अमृत।
अंमर डमर—संज्ञा पुं० दे० 'अवर डवर' उ०—घन अंमर डमर दिसि प्रमान। उठै जन तीनो निषान। पृ० रा०, १४।६१।
अंमरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अमरी = देवागना] देवागना। अप्सरा। उ०—अमरिय रहसि दल दुम्र विहसि। करसि वीर लगे सु वर।—पृ० रा०, ३१।१५४।
अंमह(पु)—सर्व० [सं० अस्मत्; प्रा० अम्मह] हमे। उ०—अमह एत्ता दुख्ख सुनि।—कीर्ति०, पृ० ७२।
अंमृत(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अमृत] अमृत। सुधा। उ०—गगन मंडल मे ऊँधा कूवा तहाँ अमृत का बासा।—गोरख०, पृ० ६।
अंमृत्त(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अमृत'। उ०—अमृत्त आवहि जाहि, पप्पील रगहि चाहि।—पृ० रा, भा० २, पृ० ५६४।
अंमोल(पु)—वि० [हिं० अनमोल] दे० 'अमोल'। उ०—इसे अस्व अमोल लिये पृडीर चद कहि।—पृ रा०, ६४।४२०।
अंम्रित(पु)—संज्ञा पु० दे० अमृत। उ०—मनहुँ कला ससि भान, कला सोलह सोवन्निय। बाल वेस ससिता समीप अम्रित रस पिन्निय।—पृ० रा०, २०।५।
अंवटना(पु)†—क्रि० स० दे० 'औटना'। उ०—अवटि छीर अनल पर जाई। जोरन दे तब दही जमाई।—सं० दरिया, पृ० ६।
अंश—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाग। खड। अवयव। अग। २ दाय या उत्तराधिकार का भाग। हिस्सा। बखरा। बाँट। ३. भाज्य अक। ४ भिन्न की लकीर के ऊपर की सख्या। ५. चौथा भाग। ६ सोलहवाँ भाग। ७ वृत्त की परिधि का ३६० वाँ भाग जिसे इकाई मानकर कोण या चाप का प्रमाण बताया जाता है।

विशेष--पृथ्वी की विषुवत् रेखा को ३६० भागों मे बाँटकर प्रत्येक विभाजक विंदु पर से एक एक लकीर उत्तर दक्षिण को खींचते हैं। इसी प्रकार इन उत्तर दक्षिण लकीरों को ३६० भागों मे बाँटकर विभाजक विंदुओ पर से पूर्व पश्चिम लकीर खींचते हैं। इन उत्तर दक्षिण और पूर्व पश्चिम की लकीरों के परस्पर अंतर को अंश कहते हैं। इसी रीति से राशिचक्र भी ३६० अंशो में बांटा गया है। राशियाँ १२ हैं, इससे प्रत्येक राशि प्रायः ३० अंश की होती है। अंश के ६०वें भाग को कला और कला के ६०वें भाग को विकला कहते हैं।

८ कंधा। ९ सूर्य। १२ आदित्यों मे से एक, जैसे--अंशसुता=अर्थात् सूर्य की पुत्री यमुना। १० किसी कारबार का हिस्सा। ११ फायदे का हिस्सा। १२ राग का मुख्य स्वर (संगीत)। १३ एक यदुवंशी राजा (को०)। १४ दिन (को०)।

यौ०--अंशवंश=धन परिवार।

अंशक¹--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अंशिका] १. भाग। टुकडा। २. दिन। सौर दिवस। ३ हिस्सेदार। साझीदार। पट्टीदार।

उ०--दाय या उत्तराधिकार में कई व्यक्ति हिस्सा बाँटनेवाले हों तो प्रत्येक का भाग अंश और पानेवाला अंशक कहलाता था।--पाणिनि०, पृ० ४१२।

अंशक²--वि० १. अंश धारण करनेवाला। अंश रखनेवाला। अंशधारी। २ बाँटनेवाला। विभाजक।

अंशकरण--संज्ञा पुं० [सं०] विभाजन। बँटवारा या विभाग करने का कार्य [को०]।

अंशकल्पना--संज्ञा स्त्री० [सं०] अंश या विभाग प्रदान करने का कार्य [को०]।

अंशतः--क्रि० वि० [सं० अंशतस्] किसी अंश तक। कुछ हद तक। आंशिक रूप मे। खंडों मे। टुकडों मे। खंडशः। असंपूर्ण रूप से।

अंशतीर्थ--संज्ञा पुं० [देश०] एक तीर्थ का नाम।

अंशधारी--वि० [सं०] अंश धारण करनेवाला। अंशक। उ०--प्रगट्यो कवींद्र अंशधारी नरहरि तहाँ दिल्लीपति मान्यो तिन्हें गुण की प्रभाते हैं।--अकबरी०, पृ० ७५।

अंशन--संज्ञा पुं० [सं०] विभाजन। विभाग या बँटवारा करने का कार्य [को०]।

अंशपत्र--संज्ञा पुं० [सं०] वह कागज जिसमें पट्टीदारो का अंश या हिस्सा लिखा हो।

अंशप्रकल्पना--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अंशकल्पना' [को०]।

अंशप्रदान--संज्ञा पुं० [सं०] हिस्सा या अंश देने का कार्य। अंशकल्पना [को०]।

अंशभागी--वि० [सं०] दे० 'अंशभाग'।

अंशभाग्--वि० [सं०] अंशी। दायाद। हिस्सेदार। [को०]।

अंशभू--वि० [सं०] पट्टीदार। साझीदार [को०]।

अंशभूत--वि० [सं०] अंशरूप। अंशमय। अंश [को०]।

अंशयिता--वि० [सं० अंशयितृ, अंशयिता] हिस्सा बाँटनेवाला दायाद। हिस्सेदार।

अंशल--वि० [सं०] १ हिस्सेदार। दायाद। २. पुष्ट कंधोंवाला। बलवान्। शक्तिसंपन्न [को०]।

अंशवत्--संज्ञा पुं० [सं०] अंशुमत्। सोम का एक भेद [को०]।

अंशसुता--संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना नदी।

अंशस्वर--संज्ञा पुं० [सं०] संगीत मे मुख्य स्वर [को०]।

अंशहर--वि० [सं०] हिस्सेदार। हिस्सा पानेवाला [को०]।

अंशहारी--वि० [अंशहारिन्] दे० 'अंशधारी' [को०]।

अंशांश--संज्ञा पुं० [सं०] १. अंश का भाग (किसी देवता का)। २ अमुख्य, अपूर्ण या गौण अवतार। अंशावतार [को०]।

अंशांशि--क्रि० वि० [सं०] विभागशः। विभागानुक्रम से [को०]।

अंशावतरण--संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अंशावतार'। २ महाभारतके आदि पर्व के ६४ से ६७ अध्यायों का अभिधान [को०]।

अंशावतार--संज्ञा पुं० [सं०] वह अवतार जिसमे परमात्मा की शक्ति का कुछ भाग ही आया हो। पूर्णावतार से भिन्न।

अंशी¹--वि० [सं० अंशिन्] [वि० स्त्री० अंशिनी] १ अंशधारी। अंश रखनेवाला। २ शक्ति या सामर्थ्य रखनेवाला। ३. अवतारी।

अंशी²--संज्ञा पुं० १ हिस्सेदार। साझीदार। २ अवयवी।

अंशु--संज्ञा पुं० [सं०] १ किरण। प्रभा।

यौ०--अंशुधर, अंशुपति, अंशुभर्ता, अंशुभृत् अंशुस्वामी, अंशुहस्त=सूर्य।

२ लता का कोई भाग। ३ सूत। सूत्र। तागा। धागा। पतली रस्सी। ४ तागे का छोर। छोर। ५ लेश। बहुत सूक्ष्म अंश या भाग। ६ लता और विशेष रूप से सोमलता का सुतरा (को०)। ७ सूर्य। ८ एक ऋषि या राजा का नाम। ९ वेग (को०)। १० वेश (को०)। ११. आमंडन वस्त्र (को०)।

अंशुक--संज्ञा पुं० [सं०] १ कपडा। वस्त्र। २ पतला कपडा। महीन कपडा। ३ किरन। अल्प प्रकाश। किरणसमूह। ४ रेशमी कपडा। ५ उपरना। उत्तरीय। दुपट्टा। ६ धोती या अधोवस्त्र। ७ ओढना। ओढनी। ८ मुखवस्त्र, घूँघट (को०) ९ तेजपात।

अंशुकोष्णीषपट्टिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अंशुक+उष्णीषपट्टिका] उष्णीष पर बाँधी जानेवाली अंशुक नामक महीन वस्त्र की पट्टी।--हर्ष०, पृ० १७।

अंशुजाल--संज्ञा पुं० [सं०] १ किरणसमूह। प्रकाशपुंज। २. प्रकाश की दीप्ति या चमक [को०]।

अंशुनाभि--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विंदु जिसपर समानांतर प्रकाश की किरणें तिरछी और संकुचित होकर मिलें।

विशेष--सूर्यमुखी शीशे को जब सूर्य के सामने करते हैं तब उसकी दूसरी ओर इन्हीं किरणो का समूह गोल वृत्त या विंदु बन जाता है जिसमे पडने से चीजें जलने लगती है।

अंशुपट्ट--संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्रविशेष। एक प्रकार का रेशमी कपडा [को०]।

अंशुमत--संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २. अंशुमान राजा।

अंशुमती--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक नदी। यमुना। कालिंदी २. सालपर्णी [को०]।

अंशुमत्फला—संज्ञा स्त्री० [सं०] केले का वृक्ष और उसका फल [को०]।

अंशुमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में ग्रहयुद्ध के चार भेदों में से एक। इस ग्रहयुद्ध में राजाओं में युद्ध, रोग और भूख की पीड़ा आदि होती है। दे० 'ग्रहयुद्ध'।

अंशुमान्[1]—वि० [सं०] १. रेशेदार। २. सोम से संपन्न। सोमरस से भरा हुआ। ३ चमकीला। दीप्तिमान्। ४. नुकीला [को०]।

अंशुमान्[2]—संज्ञा पुं० [सं० अंशुमत्] १ सूर्य। २. चंद्रमा (क्व०)। ३ अयोध्या के सूर्यवंशी राजा सगर के पौत्र, असमंजस के पुत्र और दिलीप के पिता। सगर के अश्वमेध का घोड़ा ये ही ढूंढकर लाए थे और सगर के ६०,००० पुत्रों के शव को इन्हीं ने पाया था।

अंशुमाला—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिर्वलय। प्रकाश का घेरा। तेजोवलय [को०]।

अंशुमाली—संज्ञा पुं० [सं० अंशुमालिन्] १ सूर्य। २ बारह की संख्या [को०]।

अंशुल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चाणक्य मुनि। २ मुनि [को०]।

अंशुल[2]—वि० प्रकाशपूर्ण [को०]।

अंशुविमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] किरणों के मंद या धुँधली होने की स्थिति [को०]।

अंशूदक—संज्ञा पुं० [सं०] धूप या चाँदनी में रखा हुआ जल [को०]।

अंश्य—वि० [सं०] १ बाँटने योग्य। विभाजनीय। २ विभाग प्राप्य [को०]।

अंस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ भाग। अंश। खंड। अवयव। उ०—ईश्वर अंस, जीव अविनासी।—मानस, ७।११७। २ स्कंध। कंधा। उ०—अभयद भुजदंड मूल, अंस पीन सानुकूल, कनक मेखला दुकूल दामिनि धरखी री।—सूर०, १०।१३८४। ३ चतुर्भुज का कोई कोण (को०)। ४ वेदी के कोई दो स्कंध या कोण (को०)।

अंस[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अंश] १ कला। उ०—तापर उरग ग्रसित तव सोभित पूरन अंस ससी।—सूर०, १०।११९६। २. सूर्य। जैसे 'अंससुता' में। ३ अपनत्व। संबंध। अधिकार। उ०—अब इन कृपा करी ब्रज आए जानि आपनो अंस।—सूर०, १०।३५८७।

अंस[3](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अंशु] किरण। उ०—सित कमल बंस सी सीतकर अंस सी।—भिखारी० ग्रं०, भा०, १, पृ० २३४।

अंस(पु)[4]—संज्ञा पुं० [सं० अश्र या अश्रु] आँसू। अश्रु। उ०—भुज फरकनि तरकनि कंचुकि कच छुरि जु रहे ढुरि अंस।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८३।

अंसकूट—संज्ञा पुं० [सं०] साँड़ के कंधों के बीच का ऊपर उठा हुआ भाग। कूबड़। कुब। ककुद।

अंसटपाटी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अनशन + हिं० पाटी] दे० 'खटपाटी'।

क्रि० प्र०—लेना = खटपाटी लेना। क्रोध या हठ के कारण कामकाज न करना। काम धाम से विरक्त होना। उ०—तो वाकी मा अंसटपाटी लै के परि गई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १००६।

अंसत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्कंधत्राण। कंधों की रक्षा के लिये धारण किया जानेवाला लौहपट्ट। २. धनुष [को०]।

अंसधन—संज्ञा पुं० [सं० अंशधन] हिस्से का धन। उ०—जु कछु अंसधन हुतौ जो साथ। सो दीनो माता के हाथ।—अर्ध०।

अंसपुरसा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अंश + पुरुष] अंशपुरुष। बलवान् व्यक्ति। उ०—तदवार अंसपुरस' तणी, आय बणी जग ऊपरा।—रा० रू०, पृ० २३।

अंसफलक—संज्ञा पुं० [सं०] रीढ़ का ऊपरी भाग [को०]।

अंसभार[1]—वि० कंधों पर बोझा ढोनेवाला। बहँगीदार [को०]।

अंसभार[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कंधों का बोझ। बोझ जो कंधे पर ढोया जाय [को०]।

अंसभारिक—वि० [सं०] कंधों पर बोझ ढोनेवाला [को०]।

अंसभारी—वि० [सं०] दे० 'अंसभारिक' [को०]।

अंसर(पु)—संज्ञा पुं० [अ० उन्सुर] तत्व। उ०—के हैं पाँच अंसर सू फला यो तन, के माटी होर पानी व बारा तू गिन।—दक्खिनी०, पृ० २०८।

अंसल—वि० [सं०] पुष्ट कंधोंवाला। दृढस्कंध। बलवान् [को०]।

अंससुता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अंशु (= सूर्य) + सुता] कालिंदी। जमुना। सूर्यतनया। उ०—सूरदास प्रभु अंससुता तट क्रीड़त राधा नंदकुमार।—सूर०, १०।१८०२।

अंसिक(पु)—[सं० अंशक] अंश धारण करनेवाला। अंशसंभूत। उ०—सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा। जिए सकल रघुपति कीं ईछा।—मानस, ६।११३।

अंसी(पु)—वि० [सं० अंशी] अंशवाला। अंशधारी। उ०—द्वारपाल इहँ कही, जोधा कोउ बचे नहीं, काँधे गजदंत धरे सर ब्रह्म अंसी।—सूर०, १०।३०७४।

अंसु[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अंशु, प्रा० अंसु] किरण। उ०—सरद निसि को अंसु अगनित इंदु आभा हरनि।—सूर०, १०।३५१।

यौ०—अंसुपति, अंसुमान, अंसुमाल = सूर्य।

अंसु[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अंस] भाग। अंश। उ०—लोभा लई नीचे ज्ञान चलाचल हीं। को अंस अंत है क्रिया पाताल निंदा रस ही को खानि।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० २१२।

अंसु[3](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अंस] स्कंध। कंधा। उ०—सखा अंसु पर भुज दीन्हें लीन्हें मुरलि अधर मधुर विश्व भरन।—सूर०, १०।६२४।

अंसु[4](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्रु, प्रा० अस्सु, अंसु] आँसू। अश्रु। उ०—गहत बाल पिय पानि सु गुरु जन सभरे। लोचन मोचि सुरंग सु अंसु बहे खरे।—पृ० रा०, २५।२७५।

अंसु[5](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्व, प्रा० अस्स] अश्व। घोड़ा। उ०—पय मर्दिहि अंसु धरै उलटा। मनो विटप देखि चलै कुलटा।—पृ० रा०, २७।३५।

अंसुक—संज्ञा पुं० [सं० अंशुक, प्रा० अंसुक, अंसुग] वस्त्र। कपड़ा। उ०—औं अंसुक जिमि फूल सलोना।—इंद्रा०, पृ० १२८।

अंसुग(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंसुक'। उ०—कासमीर अंसुग दए सब जोधन पहिराय।—प० रा०, पृ० १६४।

अंसुमाल(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अंशु, प्रा० अंसु + सं० प्रा० माल] किरण समूह। उ०—जागियै गोपाललाल, प्रगट भई अंसुमाल मिट्यौ अंधकाल, उठौ जननी सुखदाई।—सूर०, १०।६१६।

अंस्य[1]--वि० [सं० अस्य] विभाज्य।
अस्य[2]--वि० [सं०] कथा मवधी [को०]।
अंह--संज्ञा पुं० [सं० अहस्] १ पाप। दुष्कर्म। अपराध। २ दुःख। चिता। कष्ट। व्याकुलता। ३ विघ्न। बाधा।
अहति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दान। त्याग। परित्याग। ३ रोग। ४ कष्ट। दुख [को०]।
अहती--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अहति' [को०]।
अहद(पु)--वि० [हिं० अन+अ० हद] जिसकी हद न हो। असीम। अनत। अनहद। उ०--नाद अनाहद अहद, सुनै अनाहद कौन। --इद्रा०, पृ० १२१।
अहस्पति--संज्ञा पुं० [सं०] क्षय मास [को०]।
अहिति--संज्ञा स्त्री० [सं०] दान [को०]।
अहिती--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अहिति' [को०]।
अह्रि--संज्ञा पुं० [सं०] १ पाँव। पैर। २ वृक्ष की जड या मूल [को०]।
अह्रिप--संज्ञा पुं० [सं०] पादप। पेड [को०]।
अह्रिशिर--संज्ञा पुं० [सं०] 'अह्रिस्कद' [को०]।
अह्रिस्कध--संज्ञा पुं० [सं०] गुल्फ। घुट्ठी टखना [को०]।
अँकखरी†--संज्ञा स्त्री० [हिं०] ककड या पत्थर का महीन टुकडा या चूरा। अँकटी। अँकरी। अँकरौरी।
अँकटा†--संज्ञा पुं० [सं० कर्कर, प्रा० कक्कर या स० अंकुर, हिं० अकुर > अँकड अथवा स० अक+काण्ड, > प्रा० अक+अड =अकड, या देश] १ ककड का छोटा टुकडा। २ ककड पत्थर आदि का महीन टुकडा या चूरा जो अनाज मे से चुनकर निकाल दिया जाता है।
अँकटी†--संज्ञा स्त्री० [अँकटा शब्द का अल्पार्थक प्रयोग] छोटा अँकटा।
अँकड(पु)--संज्ञा स्त्री० [स० हुङ्कार >प्रा० उकड >अँकड] अकड। ऐंठ। उ०--अँकड जीव लव सुक सु किया था जुल्लाव। --दक्खिनी०, पृ० १४६।
अँकडा†--संज्ञा पुं० दे० 'अँकटा' (बोल०)।
अँकडी--संज्ञा स्त्री० [स० अङ्कुर=अँखुआ=टेढी नोक; अथवा सं० अङ्कुटक, प्रा० अङ्कुडग, अकुडय] १ अँकटी। २ हुक। कँटिया। ३ तीर का मुडा हुआ फल। टेढ़ी गाँसी। ४ बेल। लता। ५ लग्गी। फल तोडने का बाँस का डडा जिसके सिरे पर फँसाने के लिए एक टेढी छोटी लकडी बँधी रहती है।
अँकना[1](पु)--क्रि० स० [सं० अङ्कन] दे० 'आँकना'।
अँकना[2](पु)--क्रि० अ० १ आँका जाना या कूता जाना। २ लिखा जाना या अकित होना।
अँकना[3](पु)--क्रि० स० [सं० आकर्णन] सुनना। श्रवण करना। उ०--अवध सकल नर नारि बिकल अति अँकनि वचन अनभाए। --तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० ३६२।
अँकमाल(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अकमाल'। उ०--सूर स्याम वन तै ब्रज आए जननि लिए अँकमाल। --सूर०, १०।१३६०।
अँकरवरी(पु)†--संज्ञा स्त्री० [हिं० अकर+वरी या औरी (प्रत्य०)] अँकडी। ककडी। उ०--काँट न चुभै न गडै अँकरवरी। --जायसी ग्र० (गुप्त), छद १३७।
अँकरा--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] [स्त्री० अँकरी] १ एक खर या कुधान्य।
विशेष--यह रबी की फसलो मे गेहूँ के पौधो के बीच जमता है। इसे काटकर बैलो को खिलाते हैं और इसका साग भी खाते हैं। इसका दाना या बीज काला, चिपटा, छोटी मूँग के बराबर होता है और प्राय गेहूँ के साथ मिल जाता है। इसे गरीब लोग खाते भी हैं। खेसारी इसी का एक रूपातर है।
२ ककड।
अँकरास†--संज्ञा पुं० दे० 'अकरास'।
अँकरी--संज्ञा स्त्री० [अँकरा का अल्पार्थक प्रयोग] छोटा अँकरा या ककडी।
यौ०--अँकरी+पथरी=ककडी। अँकटी।
अँकरोरी†--संज्ञा स्त्री० [देश०] ककडी। सिटकी। ककड या खपडे का बहुत छोटा टुकडा। अँकरवरी।
अँकरौरी(पु)†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँकरौरी'। उ०--अँकरौरी सम गनौं पहारा, लेखौ समुद हिये महँ नारा। --चित्रा०, पृ० २१५।
अँकवरी†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँकरोरी'।
अँकवाई--संज्ञा स्त्री० [हिं०+आँकना+वाई (प्रत्य०)] १ अँकवाने की क्रिया या स्थिति। २ आँकने का पारिश्रमिक या मजदूरी। अँकाई (बोल०)।
अँकवाना--क्रि० स० [हिं० आँकना का प्रेरणार्थक] १ मूल्य निर्धारित करना। २ कुतवाना। अदाज कराना। ३ परीक्षा कराना। जँचवाना। परखवाना। ५ चिह्न, छाप आदि लगवाना।
अँकवार--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपालि, अङ्कमाल, प्रा० अकवालि, अकवाल] १ गोद। अक। २ छाती। वक्षस्थल।
मुहा०--देना=गले लगना। छाती से लगना। आलिंगन करना। भेंटना। --भरना=आलिंगन करना। भेंटना। गले मिलना। उ०--बनमाला पहिरावत स्यामहि बार बार अँकवार भरत धरि। --सूर०, १०।४०६। --भरी होना=गोद मे बच्चा रहना। सतानयुक्त होना। उ०--वह तुम्हारी अँकवार भरी रहे, (आशीर्वाद) (शब्द०)।
३ आलिंगन। भेंट। मिलना। जैसे--चिट्ठी मे हमारी भेंट अँकवार लिख देना। --(शब्द०)।
अँकवारना†--क्रि० स० [हिं० अकवार+ना] गले लगाना। भेंटना। आलिंगन करना।
अँकवारि(पु)--संज्ञा स्त्री० [स० अङ्कपालि, प्रा० अकवालि] उ०--खेलत तैं मोहि बोलि लियो इहि दोउ भुज भरि दीन्ही अँकवारि। --सूर०, १०।३०४।
अँकवारी[1](पु)--संज्ञा स्त्री० १ दे० 'अँकवार'। उ०--अब के गौना बहुरि नहि औना करि ले भेंट अँकवारी। --सतवाणी, भा० २, पृ० ६। २ हाथाबाँही। हाथापाई। मुठभेड। सघर्ष (लाक्षणिक प्रयोग)। उ०--वीर अगुमने भुजा पसारी। दुइ दल माँह भई अँकवारी। --चित्रा०, पृ० १४३।
अँकस†--संज्ञा पुं० दे० 'अकस'।
अँकसदीया†--संज्ञा पुं० दे० 'अकासदीया'।

अँकाई—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्क, हिं० अंक (आँक, आँकना, अकना) + आई (प्रत्य०)] १ कूत। अंदाजा। अटकल। तखमीना। २ फसल में से जमींदार और काश्तकार के हिस्सों का ठहराव। मूल्य लिखा जाना।

क्रि० प्र०—करना। —होना।

३ आँकने का पारिश्रमिक या मजदूरी।

अँकाना—क्रि० स० [सं० अंकन] [संज्ञा—अँकाई अँकाव] १ अंदाज कराना। कुतवाना। २ परीक्षा कराना। परखाना। ३ मूल्य निर्धारित कराना। उ०—मन आग्रह करने लगा, लगा पूछने दाम। चला अँकाने के लिये वह लोभी बेकाम।—झरना, पृ० ७४। ४ चिह्न छापा आदि लगवाना।

अँकाव—संज्ञा पुं० [सं० अङ्क + हिं० आव (प्रत्य०)] [क्रि०—अँकाना] कूतने या आँकने का काम। कुताई। अंदाज या तखमीना करने का काम।

क्रि० प्र०—होना।

अँकावना(पु)†—क्रि० स० दे० 'अँकवाना', अँकाना'। उ०—वह प्रेम बजार के अतर सो पर नैन दलाल अँकावने हैं।—ठाकुर०, पृ० २५।

अँकिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँख, अँखिया] आँख। नेत्र। उ०—अँकिया के नहर सूँ दीदे का पानी वर ऐसे लागे गम की दाग-वारी।—दक्खिनी०, पृ० २२७।

अँकुडा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] १ लोहे का झुका हुआ टेढ़ा काँटा। २ लोहे का झुका हुआ टेढ़ा छड़ जिससे चुड़िहार लोग भट्ठी से गला हुआ काँच निकालते हैं। ३ टेढ़ी झुकी हुई कील या काँटिया जिसमें तागे अँटकाकर पटवा या पटहार काम करते हैं। ४ लोहे का एक टेढ़ा काँटा जो लकड़ी आदि तौलनेवाली बड़ी तराजू की डाँडी के बीचोबीच लगा रहता है। ५. कुलावा। पायजा। ६ लोहे का एक गोल पच्चड़ जो किवाड़ की चूल में ठोंका रहता है। ७ लोहे का एक छड़ जिसका एक सिरा चिपटा होता है और दूसरा टेढ़ा और झुका हुआ। चिपटे सिरे को काँटे से किवाड़ के पल्ले में जड़ देते हैं और झुके हिस्से को साह के कोटों में डाल देते हैं। इसी पर पल्ला घूमता है अर्थात् खुलता और बंद होता है। ८ रेशमी कपड़ा बुननेवालों का मछली के आकार का काठ का एक औजार जिसके सिरे पर एक छेद होता है। इस छेद में एक खूँटी गड़ी रहती है जिसमें दलपमन से बँधी हुई रस्सी लपेटी रहती है। ९. गाय बैल के पेट का दर्द या मरोड़ जिसे ऐंचा भी कहते हैं। १० खूँटी। नागदंत।—(क्व०)।

अँकुडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँकुड़ा का अल्पार्थक प्रयोग] [वि० अँकुडी-दार] १ छोटा अँकुड़ा। टेढ़ी कँटिया। हुक। २ लोहे का एक छड़ जिसका सिरा कुछ झुका रहता है और जिससे लोहार लोग भट्ठी की आग खोदते हैं। ३ हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगाया जाता है। ४ एक्के के पहिए के जोड़ों पर लगी हुई लोहे की पीतल या जाली।

अँकुडीदार—वि० [हिं० अँकुडी + फा० दार] १ जिसमें अँकुडी या कँटिया लगी हो। जिसमें अँटकाने के लिये हुक लगा हो। हुक-दार। २. एक प्रकार का कसीदा जिसे गड़ारी भी कहते हैं।

अँकुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] अंकुर। अँखुआ। उ०—अदभुत राम नाम के अंक। धर्म अँकुर के पावन द्वै दल मुक्ति-वधू ताटंक॥—सूर०, ११९०।

अँकुरना(पु)—क्रि० अ० [सं० अङ्कुरण] अंकुरित होना। अंकुर का उत्पन्न होना या निकलना। किसी वस्तु की आरंभिक उत्पत्ति या उत्पन्न होना।

अँकुराना¹(पु)—क्रि० स० [सं० अङ्कुरण] पानी में भिगोकर चने आदि को अँकुरयुक्त होने में प्रवृत्त करना। अंकुर उत्पन्न कराना।

अँकुराना²(पु)—क्रि० अ० दे० 'अँकुरना'।

अँकुराना³(पु)—क्रि० अ० [सं० आकुल] आकुल होना। व्याकुल होना। उ०—माइ बापे दय हलु नेपुर गढ़इ। नेपुर भँगवइते जिव अँकुराई।—विद्यापति, पृ० २०३।

अँकुरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुर + ई (हिं०)] १ भिगोकर अंकुरित किए गए चने, मूँग, गेहूँ आदि की घुँघनी। २ वंश में एकमात्र बची हुई संतान।

अँकुवार—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुर, हिं० अँखुआ + आर (प्रत्य०)] अंकुर। अँखुआ। उ०—प्रेम बिना नहीं उपज हिय, प्रेम बीज अँकुवार—रसखान० पृ० १।

अँकुसा—संज्ञा पुं० दे० 'अंकुश'।

अँकुसी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुश, हिं० अंकुस + ई (प्रत्य०)] १ टेढ़ी करके झुकाई हुई लोहे की कील जिसमें कोई चीज लटकाई या फँसाई जाय। हुक। कँटिया। २ पीतल या लोहे का एक लंबा छड़ जिसका एक सिरा घुमावदार होता है। इससे ठठेरे भट्ठी की राख निकालते हैं। ३ लोहे का टेढ़ा छड़ जिसको किवाड़ के छेद में डालकर बाहर से अगरी या सिटकिनी खोलते हैं। यह कुंजी का काम देता है। ४ वह छोटी लकड़ी जो फल तोड़ने की लग्गी के सिरे पर बँधी रहती है। ५ लोहे का एक बित्ता लंबा सूजा जिसका सिरा झुका होता है। इससे नारियल के भीतर की गरी निकालते हैं।

अँकूर—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] १ अंक। भाग्य। उ०—जथा जोग सब मिलत है जो विधि लिख्यो अँकूर। खल गुर भोग गवारनी रानी पान कपूर।—स० सप्तक, पृ० ३४१। २ अंकुर। अँखुवा। उ०—जु बकिय भोह न तुच्छ गरूर। उठे मन मच्छ धनक अँकूर।—पृ० रा०, २१।२२।

अँकोडा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर या प्रा० अंकुडग] १ एक प्रकार का लोहे का काँटा जो पाल की रस्सी खींचने में काम आता है। २ एक प्रकार का लगड़। बड़ी कँटिया। कोढ़ा।

अँकोर¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कमाल या अङ्कपालि, हिं० अँकवार] १ अंक। गोद। छाती। उ०—खेलत रहौं कतहु मैं बाहिर चितै रहति सब मोरी ओर। बोलि लेति भीतर घर अपने मुख चूमति भरि लेति अँकोर।—सूर० (शब्द)। २ दे० 'अँकवार'। ३ भेंट। नजर। उपहार। उ०—सूरदास प्रभु के जो मिलन को, कुच श्रीफल मो करति अँकोर।—सूर (शब्द)। ३ घूस। रिशवत। उ०—(क) लीन्ह अँकोर हाथ जेहि जीउ दीन्ह तेहि हाथ —जायसी ग्रं०, पृ० २८७। (ख) विथुरित सिररुह वरूथ, कुंचित बिच सुमन जुथ मनि जुत सिसु फनि

अनीक, ससि समीप आई। जनु सभीत दै अँकोर, राखे जुग रुचिर मोर, कुंडल छवि निरखि चोर सकुचत अधिकाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४०५।

अँकोर[2]†—संज्ञा पुं० [सं० कवल; हिं० कौर अथवा कोर (देश०)] खोराक या कलेवा जो खेत में काम करनेवालों के पास भेजा जाता है। छाक। कोर। दुपहरिया। जलपान।

अँकोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपालि प्रा० अकवालि, अथवा सं० अङ्कोलिका] १ गोद। अंक। २ आलिंगन। अँकवार। कौली। उ०—गावत हँसत रिझावत हिलिमिलि पुनि पुनि भरत अँकोरी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४६७।

अँकौर—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कपालि या अङ्कोलिका, प्रा० अकवालि] आलिंगन। अँकवार। उ०—मुख चूमत ललचाइ कबहूँ पुनि कबहूँ भरत अँकौर।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६६।

अँकौल(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंकोल'।

अँखडी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि, अक्ख, डिं० और प० अख + डी (प्रत्य०), अथवा हिं० आँख + डी (प्रत्य०)] १. आँख। नेत्र। उ०—मेरी इन दुखिया अँखड़ियों के सामने।—लहर, पृ० ७२। २ चितवन। उ०—तुझ अँखड़ियाँ के देखे आलम खराब होगा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ८।

अँखमीचनी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँख + मीचनी] दे० 'आँख-मिचौली'।

अँखमूदन(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अँखमूदनो'।

अँखमूदनो—संज्ञा पुं० [हिं० आँख + मूँदना] आँखमीचनी। आँख-मिचौली।

अँखाना(पु)—क्रि० अ० दे० 'अनखाना'।

अँखि(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अक्षि'। उ०—जिम सुकिया दुति वचन, दूत तरिय अँखि अग्गी।—पृ० रा०, ६१।१०११।

अँखिया‡—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि, हिं० आँखि, अँखिया, प० अख] १. आँख। नेत्र। उ०—अँखिया निरखि स्याम मुख भूली।—सूर०, १०।२४०१।

विशेष—दुलार या स्नेहयुक्त अभिव्यक्ति के प्रसंग में प्राय इस रूप का प्रयोग होता है।

२ लोहे का एक ठप्पा या कमल जिससे बरतन पर हथौड़ी से ठोंक ठोंककर नक्काशी बनाते हैं।

अँखियारा‡—वि० [हिं० अँखिया + रा (प्रत्य०)] आँखवाला (अंधा का विलोम)।

अँखुआ—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरक] १. बीज से फूटकर निकली हुई टेढ़ी नोक जिसमें से पहली पत्तियाँ निकलती है। अंकुर। उ०—खोल खेत में आँख वही अँखुआ कहलाता मिट्टी मुह में डाल फूल अगों न समाता।—बुद्ध० च०। २ बीज से पहले पहल निकली हुई मुलायम बँधी पत्ती। डाभ। कल्ला। कनखा। कोंपल। फुनगी।

क्रि० प्र०—आना। —उगना। —जमना। —निकलना।—फूटना। —फेंकना। —फोड़ना। —लाना। —लेना।

अँखुआना—क्रि० अ० [हिं० अँखुआ से नाम०] १ अंकुर फड़ना या फेंकना। उगना। जमना। अंकुरित होना। २. उभड़ना। उठाना।

अँग—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] १. शरीर। देह। अवयव। अंग। उ०—फले अँग न समात, सबन को भाग उघरि रह्यो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३३। २ पक्ष। तरफ। उ०—अपने अँग के जानि कै जोबन-नृपति प्रवीन।—बिहारी र०, दो० २।

अँगऊँ†—संज्ञा पुं० दे० 'अँगौंगा'।

अँगऊ†—संज्ञा पुं० [सं० अग्रिम] दे० 'अँगौंगा'।

अँगडाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँगडाना + ई (प्रत्य०)] [क्रि० अँगडाना] आलस से जम्हाई के साथ अंगों को फैलाना, मरोटना या तानना। देह के बंद या जोड़ के भारीपन को हटाने के लिये अवयवों को पसारना या तानना। शरीर के लगातार एक स्थिति में रहने के कारण जोडों या बंदों के भर जाने पर अवयवों को फैलाना। अँगड़ाने की क्रिया या भाव। देह टूटना। [illegible] टूटना। उ०—जलधि लहरियों की अँगड़ाई बारबार जाती सोने।—कामायनी, पृ० २३।

विशेष—सोकर उठने पर या ज्वर आने के कुछ पहले यह प्राय आती है।

क्रि० प्र०—आना।—लेना। उ०—खुदा के वास्ते तनरर न ले तू अँगड़ाई। कि बंद बंद बुते बेहिजाब चटकेगा (फै०)।

मुहा०—अँगड़ाई तोड़ना = (१) आलस्य में बैठे रहना। कुछ काम न करना। (२) किसी के कंधे पर हाथ रखकर अपने शरीर का भार उसपर देना।

अँगडाना—क्रि० अ० [सं० अङ्ग + अट्] शरीर के बंद या जोडों के भारीपन को हटाने के लिये अंगों को पसारना या तानना। शरीर के लगातार एक स्थिति में रहने के कारण जोडों या बंदों के भर जाने पर अवयवों को फैलाना या तानना। देह तोड़ना। सुस्ती से या थकावट से ऐंठना या ऐंडाना।

अँगधातु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गधातु] प्रस्वेद। पसीना। उ०—मुकुट उतारि धरयौ लै मंदिर पोंछति है अँगधातु।—सूर० १०।७११।

अँगन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गण, अङ्गन] आँगन। चौक। उ०—डहडहे बदन निरखि सिसु भूले। कंचन जलज अँगन जनु फूले॥—नंद० ग्रं०, पृ० ३०२।

अँगनई—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगनाई'। उ०—और अब तरक्की करते करते सेक्रेटेरियट की अँगनई में दाखिल हो उठे थे।—नई पौ०, पृ० ८।

अँगनवाँ(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० अँगन + वाँ (प्रत्य०)] दे० 'अँगन'। उ०—खेलत रहलूँ अँगनवाँ सखी, गँग गायी हो।—धरम० शब्दा०, पृ० ६४।

अँगना[1]†—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गण, अङ्गन] आँगन। चौक। उ०—पर अँगना करि टारयौ मो घर तर छिन जोरे हाथ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३८४।

अँगना[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गना] स्त्री। नारी। उ०—[illegible] गुडी लखि ललन की अँगना अँगना माँह।—बिहारी र०, दो० ३७३।

अँगनाई†—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गन, हिं० आँगन, अँगना + ई (प्रत्य०)] आँगन। अजिर। अँगना। उ०—[illegible] रुचिर अँगनाई।—मानस ७।७६।

अँगनैत‡—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गन, हिं० आँगन, अँगना+ऐत (प्रत्य०)] आँगन का स्वामी । घर का मालिक । गृहस्वामी । गृहपति ।

अँगनैया‡—संज्ञा स्त्री० [स० अङ्गन, हिं० आँगन–अँगन + ऐया (प्रत्य०)] आँगन । अँगना । उ०—मनि खभनि प्रतिबिंब झलक, छवि छलकिहै भरि अँगनैया । —तुलसी ग्र०, पृ० २७३ ।

अँगबदन(पु)—संज्ञा पुं० [स० अङ्ग+बन्धन, तु० फा० बद] अगबधन । शरीर का बधन । उ०—ज्यो अहिपति केंचुरि को लघु लघु छोरत है अँगबदन । —सूर०, १०।११५८ ।

अँगवलित—वि० [स० अङ्गवलित] अगो से लिपटा हुआ । उ०—ब्रज अधिप अगवलित सुरति समय सोहती बाला —भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १३१ ।

अँगरँग -संज्ञा पुं० [स० अङ्गरङ्ग] शरीर की काति या दीप्ति । उ०—तेरे ही नव जोवन के अँगरँग सुभ लागत परम सुहाए ।—नद० ग्र०, पृ० ३४६ ।

अँगरखा—संज्ञा पुं० [स० अङ्ग = देह + रक्षक = बचानेवाला, प्रा० रक्खअ, हिं० रखा] एक पुराना मर्दाना पहिनावा जो घुटनो के नीचे तक लबा होता है और जिसमे बाँधने के लिये बद टँके रहते हैं । बददार अगा । चपकन ।

विशेष—इसे हिंदू और मुसलमान दोनो बहुत दिनो से पहनते आते हैं । इसके दो भेद हैं—(१) छहकलिया, जिसमे छह कलियाँ होती हैं और चार बद लगे रहते हैं । इसके बगल के बद भीतर वा नीचे की ओर बाँधे जाते हैं, ऊपर नही दिखाई पडते, अर्थात् इसका वह पल्ला जिसका बद बगल मे बाँधा जाता है भीतर वा नीचे होता है, उसके ऊपर वह पल्ला होता है जिसका बद सामने छाती पर बाधा जाता है । (२) बाला बर, जिसमे चार कलियाँ होती है और छह बद लगे रहते हैं । इसका बगल मे बाँधनेवाला पल्ला नीचे रहता है और दूसरा उसके ऊपर छाती पर से होता हुआ दूसरी बगल मे जाकर बाँधा जाता है । अत• उसके सामने के और एक बगल के बद दिखाई पडते हैं ।

अँगरखी†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगरखा' ।

अँगरना(पु)†—क्रि० अ० दे० 'अँगराना ।

अँगरा†—संज्ञा पुं० [स० अङ्गार] १ अँगार । अँगारा । दहकता हुआ कोयला । २ कोयला ।

मुहा०—अँगरा दरना = अनुचित कार्य की हद करना । अशोभन या अशुभ कार्य करना ।

विशेष—स्त्रियाँ परस्पर कलह मे सोहागिनो के प्रति अशुभ भाव व्यक्त करती हुई 'माँग मे अँगरा दर दूँगी', प्राय ऐसा कहती हैं।

३ बैल के पैर टपकने या रह रहकर दर्द करने का एक रोग। इस रोग मे बैल बार बार पैर उठाया करता है ।

अँगराई‡—संज्ञा स्त्री० दे० अँगडाई' । उ०—है रात घूम आई मधुवन यह आलस की अँगराई है । —लहर, पृ० २० ।

अँगराग(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अगराग'—१ । उ०—नृप द्वार कुमारि चली पुर की, अँगराग सुगंध उडै गहरी ।—बुद्ध च०, पृ० २४ ।

अँगराना(पु)†—क्रि० अ० दे० 'अँगडाना' । उ०—(क) बारबधू पिय पथ लखि अँगरानी अँग मोरि'—मति० ग्र०, पृ० ३०६ । (ख) पलक अधखुली दृगनि सो अँग अगरात जम्हात । —ब्रज• ग्र०, पृ० ६३ ।

अँगरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [स० अङ्ग+री] कवच । झिलम । बकतर । बक्तर । उ०—अँगरी पहिरि कूँडी सिर धरहीं । फरसा बाँस सेल सम करही । —मानस, २।१९१ ।

अँगरी[2]—संज्ञा स्त्री० [स० अङ्गुरीय] उँगलियो को धनुष की रगड से बचाने के लिये गोह के चमडे का दस्ताना । अगुलित्राण ।

अँगरेज—संज्ञा पुं० [फ्रे० आगलेज, पुर्त० इगलेज, अ० इगलिश] [वि० अँगरेजी] इगलैड देश का निवासी । इगलिस्तान का रहनेवाला आदमी । उ०—प्रमित्र अँगरेजे घलि घलि तेजै अरिगन भेजै सुरपुर को । —हिम्मत०, पृ० ४२ ।

अँगरेजियत—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगरेज+फा० इयत (प्रत्य०)] अँगरेजीपन । अँगरेजी रगढग की । उ०—हममे तो भाई यह अँगरेजियत नही देखी जाती —रतन, पृ० ११० ।

विशेष—कभी कभी शासक और शासित के बीच अँगरेज शासको की अकड या अपने को श्रेष्ठ समझने का अभिमान भी इस अर्थ मे मिला रहता है ।

अँगरेजी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँगरेज+ई (प्रत्य०)] अँगरेजो की भाषा । इगलिश भाषा ।

अँगरेजी[2]—दे० अँगरेज सबधी । अगरेजो का ।

अँगलेट—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग, हिं० अग + लेट ?] शरीर की गठन । काठी । उठान । देह का ढाँचा । अँगेट ।

अँगवना(पु)†—क्रि० स० [सं० अङ्ग से नाम०] १ अगीकार करना स्वीकार करना । उ०—दाप पतँग होइ अँगएउ आगी ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३२८ । २ ओढना । अपने सिर पर लेना । ३ सहना । बरदाश्त करना । उ०—अपना घर सुख छाडि के अँगवै दुख को भार ।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २७ । ४ उठाना । उ०—धरती भार न अँगवै पाँव धरत उठ हाल । कूर्म टूट मुँह फाटी तिन हस्तिन की चाल ।—जायसी (शब्द०) ।

अँगवनिहारा—वि० हिं० अँगनवा + हारा (प्रत्य०)] सहनेवाला । सहन करनेवाला । बरदास्त करनेवाला । उ०—सूल कुलिस असि अँगवनिहारे । ते रतिनाथ सुमन सर मारे । —मानस, २।२५ ।

अँगवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० अँगवना । अग मे लगाना या मलना । उ०—चदन और अरगजा आन्यो अपने कर बल के अँगवान्यो । —सूर०, १०।१२१३ ।

अँगवारा†—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग = भाग, सहायता + कार या हिं० वारा = वाला] १ गाँव के एक छोटे भाग का मालिक या हिस्सेदार । २ खेत की जुताई मे एक दूसरे की सहायता ।

अँगसँग(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अगसग' । उ०—यह जग अँगसँग मे मतवारा, चाबे विषय भोग अनुसारा । —रत्न०, पृ० ९० ।

अँगाकरि(पु)†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अगाकडी' । उ०—अबही अँगाकरि तुरत बनाई । जे भजि भजि ग्वालिनि सँग खाई ।—सूर०, १०।१२१३ ।

अँगाना㊕—क्रि० स० [सं० अङ्ग] अगीकार करना। स्वीकार करना। उ०—मनहुँ एक की रंग एक निज अग अँगाए।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १८२।

अँगार㊕—सज्ञा पुं० दे० 'अगार'। उ०—जनु अँगार गसिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ।—मानस, ६।५२।

अँगारा㊕—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गारक, प्रा० अगारय] आग का जलता टुकडा। अगार। उ०—नभ चढ वरषं विपुल अँगारा।—मानस, ६।५१।

विशेष—'अगारा' शब्द के मुहावरो का प्राय: 'अँगारा' शब्द के साथ भी प्रयोग होता है।

अँगारी—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिका प्रा० अगालिय, इगाली] १ ईख के सिर पर की हरी पत्ती जिसे काटकर पशुओं का खिलाते हैं। २ गडाँसे कटे हुए ईख के छोटे छोटे टुकडे जो पत्थर के कोल्हू मे पेरने के लिये तैयार किए जाते हैं गँडेरी। गेडी। ३ चिनगारी। अग्निकण। उ०— खुले घाव पं ताके मानो परी अँगारी।—बुद्ध च०, पृ० १५१। दे० 'अगारी'।

अँगाली㊕—वि० [स० अग्रणी, प्रा० अग्गणी, हिं० अगाड़ी, अगारी] आगे। प्रथम। उ०—मुअज्जम इसम अँगाली हमेशा।—दक्खिनी०, पृ० ११८।

अँगिया¹—सज्ञा स्त्री० [स० अङ्गिका, प्रा० अगिआ] स्त्रियो का एक पहिनावा जिससे केवल स्तन ढके रहते है, पेट और पीठ खुली रहती है। इसमे चार बद होते हैं जो पीछे बाँधे जाते हैं। छोटा कपडा। चोली। कचुकी। काँचली। उ०—अँगिया नील, माँडनी राती, निरखत नैन चुराई।—सूर०, १०।१०५३।

यौ०—**अँगिया का कठा या अँगिया की कठी**=दे० 'अँगिया का घाट'। **अँगिया की कटोरी या मुलकट**=अँगिया का वह भाग जो स्तनो के ऊपर पडता है। **अँगिया की खवासी या खसी**=वह सीवन जो कटोरियों का आस्तीन से मिलाती है। **अँगिया का घाट**=अँगिया का गला या गरेबान, गले के नीचे का खुला हिस्सा। **अँगिया की चिडिया**=दोनो कटोरियो के बीच की सीवन। **अँगिया का ठर्रा**=वह बटा हुआ धागा जो अँगिया के नीचे की गोट मे लगाया जाता है। **अँगिया की डोरी**=कठे और पुट्ठे मे शोभा के लिये टाँकी जानेवाली डोरी। **अँगिया की दीवार**=दे० 'अँगिया का पान'। **अँगिया का पछुआ**=अँगिया की पीठ की ओर के टुकडे। **अँगिया का पान**=अँगिया की कटोरी का छोटा टुकडा। **अँगिया का पुट्ठा**=अँगिया की आस्तीन की चौडी गोट। **अँगिया के बंद**=पीठ की ओर का ठर्रा जिससे अँगिया कसी जाती है। **अँगिया का बँगला**=कटोरी की कली या फाँक जो जोडो पर गोखरू टाँकने से बन जाता है। दो कलियाँ होने पर बँगला और दस बारह होने पर खरबूजा कहते है। **अँगिया के बाजू**=अँगिया का वह भाग जो दोनो बगल छिपाता है। **अँगिया की लहर**=कटोरियो पर तिकोनी कटी हुई सज्जा।

अँगिया²—सज्ञा स्त्री० [हिं० अँधिया] झीने कपडे से मढी हुई चलनी।

अँगिरना㊕†—क्रि० स० [सं० अङ्गीकरण ?] स्वीकार करना। उ०—जे अँगिरिअ तो न होइअ उदास।—विद्यापति, पृ० ४४।

अँगिराना—दे० 'अँगडाना'। उ०—लागि गरें अँगिरात जँभात हैं, आरस गात भरे गिरि जात हैं।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ४२।

अँगीठ㊕—सज्ञा पुं० [स० अग्निष्ठ, पा०, प्रा० अग्गिट्ठ] दे० 'अँगीठा'। उ०—या मन को बिसमिल करूँ दीठ करूँ अदीठ। जो सिर राखूं आपना पर सिर जलो अँगीठ।—कबीर (शब्द०)।

अँगीठा—सज्ञा पु० [सं० अग्नि=आग+स्था=ठहरना >अग्निस्था, अग्निष्ठा, प्रा० अग्गिट्ठा अथवा स० अग्निष्ठिका, प्रा० अग्गिट्ठिआ] बडी अँगीठी। बडा आतिशदान। बडी बोरसी। आग रखने का बरतन।

अँगीठि㊕—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठी'। उ०—सुदर एक अचभा हूवा पानी माँहि जरै अँगीठि।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ५२१।

अँगीठी—सज्ञा स्त्री० [स० अग्निष्ठिका, प्रा० अग्गिट्ठिआ] आग रखने का छोटा बरतन। आतिशदान। उ०—धरी अँगीठी स्वच्छ धूम बिन गावत अपने रग।—भारतेंदु ग्र०, भाग २, पृ० ८३०।

विशेष—यह मिट्टी और लोहे की गोल, चौखूंटी अठपहली आदि कई आकारों की बनती है।

मुहा०—**अँगीठी होना**=अँगीठी के समान तप्त होना। उ०—सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु जरि बरि भई अँगीठी।—सूर०, १०।३६७२।

अँगु㊕—सज्ञा पुं० दे० 'अग¹'। उ०—सैल सँभार्‌यो लला अँगुरी धरि पै अबला अँगु री न सँभार्‌यो।—देव ग्र०, पृ० ११।

अँगुछा㊕†—सज्ञा पुं० दे० 'अँगोछा¹'। उ०—'नव वा माली ने याको अँगुछा तो फेरि दियो'।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २२६।

अँगुछाना—क्रि० स० [सं० अँगुछा से नाम०] दे० 'अँगोछना' उ०—मनन सुनीर अन्हवाय अँगुछाय दया, नवनि बसन प्रन सोधी ले लगाइये।—भक्तमाल (प्रि०), छ० ३।

अँगुठा—सज्ञा पु० दे० 'अँगूठा'। उ०—कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत।—सूर०, १०।६४।

मुहा०—**अँगुठा चटाना**=दे० 'अँगूठा चटाना'। उ०—अँगुठा चटाय दफादार के रे साँवलिया।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३४०।

अँगुठी—सज्ञा स्त्री० [स० अङ्गुष्ठिका, प्रा० अँगुट्ठी] १ काँसे का ढालकर बनाया हुआ एक गहना जो पैर के अँगूठे में अनवट के स्थान पर पहना जाता है। इसका व्यवहार नीच जाति की स्त्रियो मे है। २ दे० 'अँगूठी'।

अँगुरि㊕—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँगुरी'। उ०—कानन कुडल चलत अँगुरि दल ललित कपोलन में कछु झलकैं।—नद० ग्र०, पृ० ३५२।

अँगुरिया†—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरिका, प्रा० अगुरिया] छोटी उँगली। उ०—गहे अँगुरिया ललन की नँद चलन सिखावत।—सूर०, १०।१२२।

अँगुरियाना—क्रि० स० [हिं० अँगुरी से नाम०] हैरान करना। तंग करना। परेशान करना (बोल०)।

अँगुरिया वेल—सज्ञा पुं० [फा० अंगूर] कालीन या गलीचे के किनारे पर की एक वेल या नक्काशी जो अगूर की लता के ढग पर वनाई जाती है।

अँगुरी†—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरी] १ उँगली। उ०—तीजे मास हस्त पग होहि चौथ मास कर अँगुरी सोहि। —सूर०, ३।३। क्रि० प्र०—चटकाना = दे० 'उँगली चटकाना'। उ०—योवन के मद सग ढरै अँग अग मुरै अँगुरी चटकावै।—देव ग्र०, पृ० १२।

२ वरक पीटने की चाँदी। यौ०—अँगुरी की चाँदी = वह चाँदी सिल की चाँदी को खूव साफकरके वनाई जाती है। इसी को पीटकर चाँदी का वरक वनाते हैं।

अँगुली—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुली, प्रा० अगुली] †१. अँगुली। उँगली। २ हाथी की सूँड का अगला भाग। ३ एक नदी का नाम।

अँगुष्ठ(पु)—सज्ञा पुं० दे० 'अगुष्ठ'। उ०—सुभग अँगुष्ठ अगुली अविरल, कछुक अरुन नखज्योति जगमगति।—तुलसी ग्र०, पृ० ४१५।

अँगुसा†—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश = टेढी नोक, प्रा० अकुसय] अकुर। अँखुआ।

अँगुसाना†—क्रि० अ० [हिं० 'अँगुसा से नाम०] वोए हुए अनाज का अँखुआ फोडना। जमना। अकुरित होना। अँखुआना।

अँगुसी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अँगुसा + ई (प्रत्य०)] १ हल का फाल। २ सोनारों की वकनाल या टेढी नली जिससे दिए की लौ को फूँककर टाँका जोडते हैं।

अँगूठा—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गुष्ठ, प्रा० अगुट्ठ] १ मनुष्य के हाथ की सवसे छोटी और मोटी उँगली। पहली उँगली जिससे दूसरा स्थान तर्जनी का है। तर्जनी की वगल मे छोर पर की वह उँगली जिसका जोड हथेली मे दूसरी उँगलियों के जोडो के नीचे होता है। उ०—हथफूल पीठ पर करके धर, उँगलियाँ मुदरियों से सव भर, आरसी अँगूठे मे देकर'—ग्राम्या, पृ० ४०।

विशेप—मनुष्य के हाथ मे दूसरे जीवों के हाथो से इस अँगूठे की वनावट मे वडी भारी विशेपता है। यह वटी सुगमता से इधर उधर फिरता है और शेप चार उँगलियों मे से प्रत्येक पर सटीक वैठ जाता है। इस प्रकार यह पकडने मे चारो उँगलियो को एक साथ भी और अलग अलग भी सहायता देता है। विना इसकी शक्ति और सहायता के उँगलियाँ कोई वस्तु अच्छी तरह नहीं पकड सकतीं।

मुहा०—अँगूठा चूमना = १ आदर करना। विनय प्रकट करना। २ अधीन होना। ३ खुशामद करना। सुश्रूपा करना। अँगूठा चूसना = वडा होकर वच्चो की सी नासमझी करना। अँगूठा दिखाना = १ किसी वस्तु को देने से अवज्ञापूर्वक नहीं करना। २ किसी कार्य को करने से हट जाना। किसी कार्य को करने से अस्वीकार करना। ३ अवज्ञा करना। ४ चिढाना। उ०—ऐसी उपाय गई निमुकाय, चितै मुसुकाय दिखाय अँगूठो। —सुधानिधि, पृ०। अँगूठा नचाना = चिढाना। अँगूठे पर मारना = तुच्छ समझना। परवाह न करना।

२ मनुष्य के पैर की सवसे मोटी उँगली।

अँगूठी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अँगूठा + ई (प्रत्य०)] १ उँगली मे पहनने का एक गहना। एक प्रकार का छल्ला। मुँदरी। मुद्रिका। अँगुश्तरी। उ०—औ पहिरे नगजरी अँगूठी'—पदु०, पृ० ५०।

यौ०—अँगूठी का नगीना = महत्वपूर्ण व्यक्ति या वस्तु। उ०—देखो, जैसा ईश्वर ने यह सुदर अँगूठी के नगीने सा नगर वनाया है। —भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २८०।

२ उँगली मे लपेटा हुआ राछ मे जोडने का तागा।

विशेप—जुलाहे जव पाई को राछ मे जोडने लगते हैं तव पाई के थोडे थोडे तागो को ऐंठकर उँगली मे लपेट लेते हैं और फिर उँगली मे से एक एक तागा निकालकर राछ मे जोडते हैं। इस उँगली मे लपेटे हुए तागे को अँगूठा या अँगूठी कहते हैं।'

अँगूर¹(पु)—सज्ञा पुं० दे० 'अगूर'। उ०—चूसे अधर अँगूर दोउ गालन पै प्रगट निसानी सी।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ८६३।

अँगूर²(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] अकुर। अँखुवा। उ०—सो पै जानै नैन रस, हिरदै प्रेम अँगूर।—जायसी (शब्द०)।

अँगे(पु)—क्रि० वि० [सं० अग्रे, प्रा० अग्गे] आगे। भविष्य मे। उ०—के जैसा अँगे हानेहारा है काम।—दक्खिनी०, पृ० ७६।

अँगेजना(पु)—क्रि० स० [सं० अङ्ग = शरीर + एज = हिलना, कँपना] १ सहना। वरदाश्त करना। उठाना। उ०—रह सका काम का सुखी सुदर, कौन सा अग दुख अँगेजे पर।—चोखे०, पृ० २१। २ अगीकार करना। स्वीकार करना। उ०—इक मरिवे कौं छाडि कहा जो नाहि अँगेज्यौ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ८०।

अँगेट(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग] अगों की दीप्ति या काति। उ०—(क) एडी तें सिखा लौ है अनूठिए अँगेट आछी।—रसखान०, पृ० १२०। (ख) साँवरे छैल की आछी अँगेट पै काम करोरिक वारियै जोहि कै।—घनानद०, पृ० ४७।

अँगेठा†—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठी'।

अँगेठी†—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठी'।

अँगेरना(पु)—क्रि० स० [सं० अङ्ग = देह + ईर = जाना, अथवा सं० अङ्ग = स्वीकार या स० अङ्गीकरण, प्रा० अगीअरण या अगीरण] १ अगीकार करना। स्वीकार करना। मजूर करना। २ सहना वरदाश्त करना।

अँगोछना—क्रि० स० [स० अङ्गोञ्छन] गीले कपडे से देह पोछना। शरीर पर गीला वा भीगा वस्त्र रखकर मलना। गीला कपडा फेरकर वदन साफ करना। उ०—पीत पट लै लै के अँगोछत सरीर करु कजन सौं पोछत भुसुड गजराज कौं।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १००।

अँगोछा—सज्ञा पुं० [स० अङ्गोञ्छ] [स्त्री० अँगोछी] [पू० गमछा गमछी] १ देह पोछने का कपडा। तौलिया। २ ऊपर रखने के लिये एक कपडे का टुकडा। इसे प्राय लोग कधे पर रखते हैं। उपरना। उपवस्त्र। उ०—वासन ढाँकि अँगोछा डारा। हाँ से भाजन काढि निकारा। —रत्न०, पृ० १६८।

क्रि० प्र०—लेना = पोछना। उ०—चरन पखारि अँगोछा लीन्हा। —कवीर सा०।

अँगोछी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गोछा + हिं० ई (प्रत्य०)] १ देह पोंछने के लिये छोटा कपडा २ बच्चों की छोटी धोती जिससे कमर से आधी जाँघ तक ढक जाय। यह प्राय छोटे लडके लडकियो के लिये होती है।

अँगोजना (पु)--क्रि० स० दे० 'अँगेजना'।

अँगोट (पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग + वर्त्म, प्रा० अग + वट्ट], शरीर की गठन। देह की बनावट।

अँगोटना (पु)--क्रि० स० दे० 'अगोटन'। उ०--देखि री देखि अँगोटि कै नैननि कोटि मनोज मनोहर मूरति।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १२७।

अँगोरा¹†--संज्ञा पुं० [देश०] मच्छर। भुनगा।

अँगोरा²--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गार] अँगारा। अँगार। उ०--भयउ अदग सो लाल अँगोरा। कहे आगि मे अगिनि अँजोरा।--सं० दरिया, पृ० २३।

अँगोरी--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगारी'।

अँगौंगा--संज्ञा पुं० [सं० अग्र = अगला + अग = भाग] अन्न या और किसी वस्तु का वह भाग जो धर्मार्थ पहले निकाल लिया जाय। धर्मार्थ बाँटने या देवता को चढाने के लिये अलग निकाला हुआ अश। अँगऊँ। पुजौरा।

अँगौछना (पु)†--क्रि० स० दे० 'अँगोछना'। उ०--उत्तम विधि सौं मुख पखरायौ, ओदे बसन अँगौछि।--सूर०, १०।६०६।

अँगौछा†--संज्ञा पुं० दे० 'अँगोछा'। उ०--अँगौछे मे माम और पोथी के चोंगे मे मद्य छिपाई जाती है।--भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ८२।

अँगौछी†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगोछी'। उ०--एक अँगौछी अपने अपने गले मे डाले आकर सत्यगुरु के चरणों पर गिरे।--कबीर म०, पृ० ५०६।

अँगौटी†--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गाकृति या अङ्गवर्त्म ?] अग का गठन। आकृति। बनावट। अँगोट।

अँगौडा†--संज्ञा पुं० [?] किसी देवता को अर्पण करने के लिये निकाला गया पदार्थ। देवाश।

अँगौरिया--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग = भाग] १ वह हलवाहा जिसे कुछ मजदूरी न देकर हल बैल देते है जिनसे वह अपने खेत भी जोत लेता है। २ मजदूरी के स्थान पर हल बैल मँगनी देना।

अँग्रेज--संज्ञा पुं० दे० अँगरेज।

अँघडा†--संज्ञा पुं० [सं० अंघ्रि] काँसे का एक प्रकार का छल्ला जिसे एक वर्ग की स्त्रियाँ पैर के अँगूठे मे पहनती हैं।

अँघराई†--संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कर जो पहले पशुओं पर लगाया जाता था।

अँघिया--संज्ञा स्त्री० [देश०] झीने कपडे से मढी हुई आटा या मैदा चालने की चलनी। अँगिया। आखा

अँचना (पु)--क्रि० स० दे० 'अँचवना'। उ०--पुट एकै इत मद उत अमृत आपु अँचै अँचवावै।--सूर०, १०।१२४६।

अँचर (पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अँचरा'। उ०--गज गति चाल अँचर गति धुजा।--जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३४७।

यौ०--अँचर धरैया = दे० 'अँचरा पकडाई'।

अँचरा (पु)†--[सं० अञ्चल] १ साडी का वह छोर जो छाती पर रहता है। साडी या ओढनी का वह भाग जो सिर पर होता हुआ सामने छाती पर फैला हो। पल्ला। २ दुपट्टे या दुशाले के दोनो छोर। छोर। उ०--अब मेरो अँचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसौं झगरे।--सूर०, १०।७६।

यौ०--अँचरा पकडाई = विवाह की एक प्रथा जिसमे वर कन्या की माता तथा उसके कुटुंब की और स्त्रियों का अचल पकडता है और कुछ लेने पर छोडता है। इस रीति को तथा उस वस्तु को जो वर को मिलती है, अँचरा पकडाई या अँचर धरैया कहते हैं।

मुहा०--अँचरा पसारना = (१) किसी बडे या देवता से कुछ माँगते समय (स्त्रियों का) अपने अचल को आगे फैलाना जिससे दीनता और उद्वेग सूचित होता है। विनती करना। दीनता दिखाना। उ०--ए विधिना तो सो अँचरा पसारि माँगो जनम जनम दीजो या ही ब्रज बसिबो--छीतस्वामी (शब्द०)। (२) भीख माँगने की एक मुद्रा। कोई वस्तु लेने के लिये देनेवाले के सामने अचल रोपना। (३) दीनता और विनय के साथ माँगना।

अँचल (पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अचल--१'। उ०--अँचल ध्वज अवलोकि नाही धरत पिय मन धीर।--सूर०, १०।२४४६।

अँचला--संज्ञा पुं० [सं० अञ्चल] १. दे० 'अँचरा'। २ कपडे का एक टुकडा जिसे साधु लोग नाभि के ऊपर धोती के स्थान पर लपेटे रहते हैं।

अँचली (पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं० अचल + ई (प्रत्य०)] दे० 'अँचरा', 'अँचला'। उ०--उलटन पलटत जग की अँचली। जैसे फेरै पान तमोली।--मलूक०, पृ० १३।

अँचवन (पु)†--संज्ञा पुं० दे० 'अचवन'। उ०--हसन को विश्राम, पुष्प दर्श अँचवन सुधा।--कबीर सा०, पृ० १५।

अँचवना (पु)†--क्रि० स० दे० 'अचवना'। उ०--परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वाति को।--तुलसी ग्र०, पृ० १०७।

अँचवनी (पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० आचमनी] आचमन करने का छोटा पात्र। आचमनी।

अँचवाना (पु)†--क्रि० स० दे० 'अचवाना'। उ०--अँचवाइ दीन्हे पान गवने वास जहँ जाको रह्यो।--मानस, १।९९।

अँचार (पु)†--संज्ञा पुं० दे० 'अचार¹'।--उ०--पापर, बरी, अँचार परम सुचि। अदरख अरु निबुअनि ह्वै है रुचि।--सूर०, १०।१२१३।

अँचुली (पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अजली १'। उ०--जनम यहि धोखे बीता जात, जस जल मैं अँचुली मे भल सीझै।--कबीर श०, भा० ३, पृ० ३७।

अँजना (पु)--क्रि० अ० [सं० अञ्ज, प्रा० अज] स्निग्ध होना। उ०--देखत रूप निरजन अँजेऊ।--द० सागर, पृ० ६४।

अँजली†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अजली'।

अँजवाना--क्रि० स० [हिं० आँजना का प्रेर०] अजन लगवाना। सुरमा लगवाना।

अँजाना--क्रि० स० दे० 'अँजवाना'। उ०--आँख अँजाइ पहिरि कर चूरी, हारे मोहन गिरधारी।--भारतेंदु ग्र०, भा २, पृ० ३८१।

अँजीर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अंजिर] अंजिर। अँजान। उ०—अमृत बुंद तहँ भरै निकदा। नैन अँजीर मगन मन चंदा।—दं० सागर, पृ० ६८।

अँजुरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंजली'। उ०—जोबन मेरा जात है ज्यों अँजुरी का नीर।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८५।

अँजुली(पु)†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँजली'। उ०—जैसे मोती ओस की, पानी अँजुली माहि।—संतबानी०, भा० २, पृ० १६३।

अँजोर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला। उजेरा। प्रकाश। रोशनी। चाँदनी। उ०—मारग हुता अँधेर असूझा। भा अँजोर सब जाना बूझा।—पदु०, १।१३६।

अँजोरना(पु)†—क्रि० स० [हिं० अंजुरी से नाम०] १ बटोरना। समेटना। उ०—करो जो कछु धरी सचि पचि सुकृत सिला बटोरि। पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि।—तुलसी (शब्द०)। २ छीनना। हरण करना। ले लेना। मूसना। उ०—ठाढ़ी भई दियरि मारग में माँझ हाट मटकी सों फोरि। सूरदास प्रभु रसिक सिरोमणि चित चिंतामणि लियो अँजोरि।—सूर (शब्द०)।

अँजोरना†—क्रि० स० [सं० उज्ज्वलन; हिं० 'अँजोर' से नाम०] जलाना। प्रकाशित करना। बालना। जैसे—'दीपक अँजोरना' (शब्द०)।

अँजोरवा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० अँजोर + वा (प्रत्य०)] उजाला। प्रकाश। उ०—जब लगि तेल दिया में बाती, येहि अँजोरवा बिछाय चलतू।—संतबानी०, भा० २, पृ० २३।

अँजोरा[1]†—वि० [सं० उज्ज्वल, हिं० अँजोर] उजेला। प्रकाशमान।
यौ०—अँजोरा पाख = शुक्ल पक्ष।

अँजोरा[2](पु)†—संज्ञा पुं० प्रकाश। रोशनी। उ०—दिया मंदिर निसि करै अँजोरा। दिया नाहि घर मूसहि चोरा।—जायसी (शब्द०)।

अँजोरिया[1](पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँजोर + इया (प्रत्य०)] चाँदनी। ज्योत्स्ना।

अँजोरिया[2](पु)†—वि० उजेली। शुक्ल पक्ष की।
यौ०—अँजोरिया रात = शुक्ल पक्ष की रात।

अँजोरी[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँजोर + ई (प्रत्य०)] १ प्रकाश। रोशनी। चमक। उजाला। उ०—महिमा अमित मोरि मति थोरी। रवि सनमुख खद्योत अँजोरी।—मानस, ३।५ (क)। २ चाँदनी। चंद्रिका। चंद्रमा का प्रकाश।

अँजोरी[2](पु)—वि० स्त्री० उजियाली। उजेली। प्रकाशमय। उज्ज्वल। देदीप्यमान। उ०—(क) अँजोरी रात आने दो (शब्द०)। (ख) पदिक पदारथ लिखी सो जोरी। चाँद सुरुज जस होइ अँजोरी।—जायसी (शब्द०)।

अँजोरना(पु)—क्रि० स० दे० 'अँजोरना[1]'। उ०—सूर स्याम की बुधि चतुराई लीन्ही सबै अँजोरी।—सूर०, १०।१२४३।

अँट(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँट] लागडाँट। हठ। जिद। उ०—निकसे स्याम सदन मेरे तें इनि अँट करि पहिचानी।—सूर०, १०।२०४३।

अँटकना—क्रि० अ० [देश०] १ रुकना। अड़ना। उ०—गोरख अँटके कालपुर कौन कहावै साहु।—कबीर बी०, पृ० ६५। २. फँसना। उलझना। उ०—सूर सुनेहु ग्वालि मन अँटक्यो अंतर प्रीति जाति नहिं तोरी।—सूर०, १०।३०५। दे० 'अटकना'।

अँटकाना†—क्रि० स० दे० 'अटकाना'।

अँटना—क्रि० अ० [देश०] १ समाना। किसी वस्तु के भीतर आना। उ०—(क) दूध इस बरतन में न अँटेगा (शब्द०)। (ख) आनंद हृदय में अँटता नहीं था। —भक्तमाल (श्री०) पृ० ५५०। २ किसी वस्तु के ऊपर सटीक बैठना। ठीक चपकना। उ०—यह जूता मेरे पैर में नहीं अँटता है (शब्द०)। ३ भर जाना। ढँक जाना। छा जाना। उ०—कूड़े से कूआँ अँट गया (शब्द०)। ४ पूरा पटना। काफी होना। बस होना। चलना। उ०—(क) इतना कमाते हैं पर अँटता नहीं (शब्द०)। (ख) अकेले हम इतने कामों को नहीं अँट सकते (शब्द०)। ५(पु). पूरा होना। खपना। लग जाना।

अँटिया—संज्ञा स्त्री० [प्रा० अट्टा, 'आँट', हिं० अंटी + इया (प्रत्य०)] घास, खर या पतली लकड़ियों आदि का बँधा हुआ मुट्ठा। छोटा गट्ठा। गठिया। पूली।

अँटियाना—क्रि० स० [हिं० 'अँटिया' से नाम० या अंटी] १ उँगलियों के बीच में छिपाना। हथेली में छिपाना। २. चारो उँगलियों में लपेटकर डोरे की पिंडी बनाना। ३ घास, खर या पतली लकड़ियों का मुट्ठा बाँधना। ४ अँट में रखना। अंटी में रखना। ५. गायब करना। हजम करना।

अँटौतल—संज्ञा पुं० [देश०] ढक्कन जिन्हें तेली लोग कोल्हू में जोतने के समय बैल की आँखों पर चढ़ा देते हैं।

अँठई†—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टपदी प्रा० अट्ठअई, अंठई] छोटे छोटे कीड़े जो प्राय कुत्तों के बदन में चिपटे रहते हैं। किलनी। चिचड़ी।

अँठली—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्ठि = गुठली, गाँठ, अष्ठीलिका] नवयुवती के निकलते हुए स्तन।

अँठियाना†—क्रि० अ० [सं० अष्ठि प्रा० अट्ठि, 'अंठि' से नाम०] १ गुठली पड़ना। गिलटी पड़ना। गाँठ पड़ना। २ दही का थक्का जमना।

अँड(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] अंडा। बैजा। उ०—जिन सब्द सोध सिहार साँचे अलल अँड उलटे सही।—रत्न०, पृ० ६।

अँडखँड—संज्ञा पुं० दे० 'अंड खंड'। उ०—कान कुरम सेस अकार अँडखँड नौ निरंजन बस रह्यो।—रत्न०, पृ० १।

अँड़दार—वि० [हिं० अड़ना + दार (प्रत्य०)] रुकनेवाला। अड़नेवाला। उ०—ज्यों मतंग अँड़दार को लिये जात गँडदार।—मति० ग्रं०, पृ० ३१२।

अँडरना†—क्रि० अ० [देश०] धान के पौधे का उस अवस्था में पहुँचना जब बाल निकलने पर हो। रेंड़ना। गरभाना।

अँडलाना†—क्रि० अ० [हिं० अड़ना] इठलाना। शोखी दिखाना।

अँडवाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अंड या अंडा + वाई (प्रत्य०)] मुर्गी या कोई अन्य चिड़िया जो अंडा देनेवाली हो।

अँड़ाना—क्रि० स० दे० 'अड़ाना'। उ०—माया जाल में बाँधि अँडाया क्या जाने नर अंधा।—मलूक०, पृ० २०।

अँड़िया†--संज्ञा स्त्री० [देश०] १ बाजरे की पकी हुई बाल। २ परेते पर लपेटा हुआ सूत। कुकड़ी।

अँडुआ¹--संज्ञा पुं० [सं० अण्ड, हिंदी अँड+उआ (प्रत्य०)] वह पशु जो बधिया न किया गया हो। आँडू।

अँडुआ²--वि० जो बधिया न किया गया हो। आँडू।

अँडआना--क्रि० स० [सं० अण्ड से नाम०] बैल के अंडकोश को कुचलना जिसमें वह नटखटी न करे और ठीक चले। बधियाना। बधिया करना।

अँडुआ बैल--संज्ञा पुं० [हिं० अडुआ+बैल] १ बिना बधिया किया हुआ बैल। साँड। २ बहुत बड़े अंडकोशवाला आदमी जो उसके बोझ से चल न सके। ३ सुस्त आदमी।

अँडुवा†--वि० दे० 'अँडुआ'।

अँडुवारी--संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डज>अडअ>अडव>अँडउ+वारी> एक प्रकार की बहुत छोटी मछली।

अँतड़ी--संज्ञा स्त्री० [प्रा० अप० अंतडी] आँत। नली। दे० 'आँत'।

मुहा०--अँतड़ी टटोलना=१ भूख को समझना। उ०--जोरू टटोले गठड़ी, माँ टटोले अँतड़ी (कहावत)। २ रोग की पहचान के लिये पेट को दबाकर देखना। अँतड़ी जलना=पेट जलना। बहुत भूख लगना। अँतड़ी गले में पड़ना=किसी आपत्ति में फँसना। सकटग्रस्त होना। अँतड़ियों का बल खोलना=बहुत दिन के बाद भोजन मिलने पर खूब पेट भर खाना। अँतड़ियों को मसोसकर रह जाना=भूख की कठिन तकलीफ सहना। अँतड़ियों में आग लगना=दे० 'अँतड़ी जलना'। अँतड़ियों में बल पड़ना=अँतड़ियों का ऐंठना या दुखना। पेट में दर्द होना। उ०--हँसते हँसते अँतड़ियों में बल पड़ गए। (शब्द०)।

अँतर¹--संज्ञा पुं० [हिं० अंतर] दूरी। अंतर। उ०--आरोपित हार थणी थियौं अँतर उरस्थल कुंभस्थल आज।--वेलि० दू०, ६४।

अँतर²†--संज्ञा पुं० दे० 'इत्र'।

अँतरजामी(पु)--वि० दे० 'अंतरजामी'। उ०--कमल नैन करुनामय सकल अँतरजामी। विनय कहा करै सूर कूर कुटिल कामी।--सूर०, १।१२४।

अँतरधान(पु)--वि० दे० 'अंतरधान'। उ०--ह्वै अँतरधान हरि मोहिनी रूप धरि जाइ बन माँहि दीन्हें दिखाई।--सूर०, ८।१०।

अँतरपट(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरपट] १ ओट। आड़। उ०--सीय भीख रावन कहँ दीन्हीं। तू असि निठुर अँतरपट कीन्ही।--जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३२६। २ छिपाव। दुराव। उ०--तासौं कौन अँतरपट जो अस पीतम पीउ।--जायसी ग्र०, पृ० १३८। ३ कपड़मिट्टी। कपड़ौटी। उ०--का पूछौ तुम धातु निछोही, जो गुरु कीन्ह अँतरपट आही।--जायसी (शब्द०)।

अँतरा¹†--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरा] १ अभाव। नागा। अंतर। बीच।

क्रि० प्र०--करना। --डालना। --पड़ना।

२ वह ज्वर जो एक दिन नागा देकर आता है। क्रि० प्र०--उ०--आना उसे अँतरा आता है। ३ कोना।

अँतरा²†--वि० एक बीच में छोड़कर दूसरा।

विशेष--विशेषण में इसका प्रयोग साधु भाषा में केवल 'ज्वर' शब्द के साथ और प्रांतीय भाषाओं में कालसूचक शब्दों के साथ होता है; जैसे, अँतरा ज्वर। अँतरे दिन।

यौ०--अँतरे खोतरे=बीच में नागा करते हुए। दूसरे तीसरे। उ०--अँतरे खोतरे डंडै करै, तालु नहाय ओस माँ परै। दैव न मारै अपुइ [न] इ मरै।--घाघ०, पृ० ४७।

अँतराना¹(पु)†--क्रि० स० [सं० अन्तर से नाम०] १ अलग करना। जुदा करना। २ भीतर करना। भीतर ले जाना।

अँतराना²(पु)--क्रि० अ० अंतर या भेद डालना। फर्क डालना। उ०--हौ हौ कहत धोख अँतराही। ज्यौं भा सिद्ध कहाँ परिछाही।--जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २८४।

अँतरिख(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतरिख'। उ०--चंद सुरुज औ नखत तराई। तेहि डर अँतरिख फिरै सबाई।--जायसी ग्र०, पृ० २२६।

अँतरिछ(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतरिच्छ'। उ०--जाकी कुरिया अँतरिछ छाई। सो हरिचंद देखल नहि जाई।--कबीर बी०, पृ० १८।

अँतरी¹--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँतड़ी'।

मुहा०--अँतरी का बल खोलना=जी भर खाना। पेट भर खाना। कड़ी भूख मिटाना। अँतरियाँ जलना=जोरों की भूख लगना। अँतरियों में आग लगना=दे० 'अँतरियाँ जलना'।

अँतरीखा(पु)†--संज्ञा पुं० दे० 'अंतरिक्ष'--१'। उ०--बहुतक फिरा करहिं अँतरीखा। अहे जो लाख भए ते लीखा।--पदु०, पृ० १२०।

अँतरौटा--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरपट] महीन साड़ी के नीचे पहनने का कपड़ा। वह कपड़े का टुकड़ा जिसे स्त्रियाँ इसलिये कमर में लपेट लेती हैं जिसमें महीन साड़ी के ऊपर से शरीर न दिखाई दे। अस्तर। छनना। उ०--चोली चतुरानन ठग्यो अमर उपरना राते। अँतरौटा अवलोकि कै असुर महा मद माते (हो)।--सूर०, १।४४।

अँतहकरण(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतहकरण'। उ०--वर नारि नेत्र निज वदन विलासा, जाणियौं अँतहकरण जई।--वेलि दू० १७२।

अँत्रिख(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष] आकाश। अंतरिक्ष। उ०--दूजी अमर वेलि जग आई। जहाँ तहाँ अँत्रिख लपटाई।--चित्रा०, पृ० १४२।

अँथऊ†--संज्ञा पुं० दे० 'अथऊ'।

अँथवना(पु)--क्रि० अ० दे० 'अथवना'। उ०--केइँ यह बसत बसत उजारा। गा सो चाँद अँथवा लै तारा।--जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २५५।

अँदरसा--संज्ञा पुं० [फ़ा० अंदर+सं० रस, अथवा सं० अन्न+रस] एक प्रकार की मिठाई। उ०--सुंदर अति सरस अँदरसे। ते घृत दधि मधु मिलि सरसे।--सूर०, १०।१८३।

विशेष--यह मिठाई चौरेठे या पिसे हुए चावल की बनती है। चौरेठे को चीनी के कच्चे शीरे में डालकर थोड़ा घी देकर पकाते हैं। जब वह गाढ़ा हो जाता है तब उतारकर दो दिन तक रखकर उसका खमीर उठाते हैं। फिर उसी की छोटी छोटी टिकिया बनाकर उनपर पोस्ते का दाना लपेटकर उन्हें घी में निकालते हैं।

अदली†--वि० [प्रा० अधल] अधा। उ०--यहाँ वी अँदली आखिर कुँ बी अँदेले।--दक्खिनी० पृ० ४३३।

अँदाज(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अदाज'। उ०--एकै जीव जीवत हैं उमर अँदाज भर एकै जर्व होतें हिसु होत चटपट है।--ठाकुर० पृ० १३।

अँदाना(पु)--क्रि० स० [स० अद या अदि = बाँधना, बधन करना] बचाना। बरकाना। उ०--पग्वा नवमी पुरुब न भाए। दूइज दसमी उतर अँदाए।--जायसी (शब्द०)।

अँदुआ--संज्ञा पुं० [स० अन्दुक, प्रा० अदुआ] हाथियो के पिछले पैरो मे डालने के लिये लकड़ी का बना एक काँटेदार यत्र।

विशेष--यह दो धनुषाकार लकड़ियो का बना होता है जिनके मुँह एक ओर कील से मिले रहते हैं। इसे हाथी के पैर मे डालकर दूसरे छोरो को भी बाँध देते हैं।

अँदेशा--संज्ञा पुं० [फा० अदेशह्] आशका। खटका। उ०--मोह कैसा ? छोह कैसा ? गुप्त पथ का क्या अँदेशा।--क्वासि, पृ० ९०।

अँदेस(पु)†--संज्ञा पुं० दे० 'अँदेशा'। उ०--जिम वरमनि करि अधिक कलेस। फल अति तुच्छ मिटै न अँदेस।--नद० ग्र०, पृ० ३०१।

अँदेसवा†--संज्ञा पुं० दे० 'अँदेशा'। उ०--तुम बिन प्रान रहै वा नाहीं यह जिय मँ हि अँदेसवा रे।--भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ३७४।

अँदोरा(पु)†--संज्ञा पुं० दे० 'अदोर'। उ०--घरी एक सुठि भयउ अँदोरा। पुनि पाछे बीता होइ रारा।--जायसी (शब्द०)।

अँदोल(पु)--संज्ञा पुं० [प्रा० अदोल = झूलना] आनद। प्रसन्नता। उ०--चहल पहल सी देखि कै मान्यो बहुत अँदोल।--सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० ३१६।

अँदोलना(पु)--क्रि० स० [स० अन्दोलन] हिलाना। डुलाना। उ०--लगि रिगात स्रम अग वारि पिन्नी अँदोलि कर।--पृ० रा०, १।५५६।

अँधकाल(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्ध + काल] अधकार। अँधेरा। उ०--सूर कचन गिरि बिवनि मनु रह्यो है अँधकाल।--सूर० १०। १०८३।

अँधवाई(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँधवाई'

अँधवाई(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धवायु] धूल लिए हुए वेगयुक्त पवन। ऐसी तेज हवा जिसमे गर्द के कारण कुछ सूझ न पड़े। आँधी तूफान। उ०--श्याम अकेले आँगन छाँडे आपु गई कछु काज घरै। यहि अतर अँधवाई उठी इक गरजत गगन सहित घहरै।--सूर (शब्द०)।

अँधरा¹(पु)†--संज्ञा पुं० [स० अन्ध, प्रा० अघरअ] अधा। नेत्रविहीन प्राणी। दृष्टिरहित जीव।

अँधरा²(पु)†--वि० अधा। बिना आँख का। दृष्टिरहित।

अँधरी¹†--संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधरा + ई (प्रत्य०)] अधी। अधी स्त्री।

अँधरी²†--संज्ञा स्त्री०[स०आधारित,प्रा० आधारिअ > आधरी > अँधरी] पहिए की पुट्टियों अर्थात् गोलाई को पूरा करनेवाली धनुषाकार लकडियों की चूल जो दूसरी पुट्ठी के भीतर ऐसे घुसी रहती है कि ऊपर से मालूम नहीं देती।

अँधला(पु)--संज्ञा पुं० [प्रा० अघल] दे० 'अँधरा'--१। उ० (क) तिवँ उद्र महि दुख महै अँघलउ गालि असीतु।--प्राण०, पृ० २१०। (ख) कौने भ्रम भूले अँधला।--सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ६०६।

अँधवायु(पु)--संज्ञा पुं० [स० अन्धवायु] आँधी। उ०--तेरा पूत अँधवायु उठायो।--ब्रज०, पृ० ३८।

अँधवाह(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अँधवाई'। उ०--धावहु नद गोहारि लगी किन तेरो सुत अँधवाह उड यो।--सूर०, १०।७७।

अँधार¹(पु)†--संज्ञा पुं० [स० अन्धकार, प्रा० अधार] अधकार। तम। अँधेरा। अँधियारा। उ०--मृगनैनी कामिनि बिना लागत सबै अँधार।--ब्रज० ग्र०, पृ० ६६।

अँधार²(पु)†--संज्ञा पुं० [स० आधार = सहारा] रस्सी का जाल जिसमें घास भूसा आदि भरकर बैल की पीठ पर लादते हैं।

अँधारी(पु)--संज्ञा स्त्री० आँधी। तेज हवा। तूफान (डिं०)।

अँधिअर(पु)--वि० [स० अन्धकार, प्रा० अधयार] अँधेरा। अधकारमय। उ०--हिएँ की जोति दीप वह सूझा। यह जो दीप अँधिअर भा बूझा।--जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २०८।

अँधिआरा(पु)--संज्ञा पुं० [स० अधकार, प्रा० अधयार] अधकार। अँधेरा। उ०--दरपि धूरि कीन्हेसि अँधियारा।--मानस ६।५१।

अँधिआरी(पु)--संज्ञा स्त्री० [स० अन्ध + कारी] आँख बद करने का आवरण या पट्टी। अँधेरी। उ०--छलि आँखिन्ह अधिआरी मेली। धकारहि गवदार सहेली।--चित्रा०, पृ० २०२।

अँधियरवा(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं० अँधियर + वा (प्रत्य०)] दे० 'अँधियार'। उ०--अँधियरवा मे ठाढ़ि गोरी का करलू। जब लगि तेल दिया मे बाती, ये हीं अँजोरवा बिछाय धलतू।--सत बानी०, भा० २ पृ० २३।

अँधियरिया(पु)†--संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधियर + इया (प्रत्य०)] १ अँधेरी रात। २ अँधेरा। तम। उ०--खुली किवरिया मिटि अँधियरिया।--धरम०, पृ० ३३।

अँधियार¹†--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अधयार] [स्त्री० अँधियारी] अँधेरा। अधकार। तम। उ०--पसरि परयौ अँधियार सकल ससार घुमडि घिरि।--नद ग्र०, पृ० ४।

अँधियार²--वि० प्रकाशरहित। अँधेरा। तमाच्छादित। दे० 'अँधेरा'। उ०--भय उदधि जमलोक दरसै निपट ही अँधियार।--सूर०, १।८८।

अँधियारक टोला--संज्ञा पुं० [स० अँधियारक + हिं० टोला] अधक नामक यदुवशियों की एक शाखा का निवासस्थान। अधको का निवास।

अँधियारा¹(पु)†--संज्ञा पुं० [स० अन्धकार, प्रा० अधयार] १ अँधेरा। अधकार। तम। २ धुधलापन धुध।

अँधियारा²(पु)†--वि० १ प्रकाशरहित। अँधेरा। तमाच्छादित। उ०--पक्ष अँधियारा जगत का जब मनुज अघ मे निरत था।--हस०, पृ० ११। २ धुधला। ३. उदास। सूना।

मनहूस। उ०—बीर कीर, सिय राम लखन बिनु लागत जग अँधियारो।—तुलसी ग्रं०, भा० २, पृ० ३५१।

अँधियारी¹⑤†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधियार] १. अंधकार। उ०—जब करि पकर्यौ सरलौ नहि एकौ नाहिं मिटी अँधियारी।—जग० श०, भा० २, पृ० १०८। २. अंधकार फैला देनेवाली आँधी। उ०—अँधियारो आई तहँ भारी। दनुज सुता तिहि तें न निहारी।—सूर०, ६।१७४। ३. दे० 'अँधिआरी'। उ०—जोवन गज अपमर मद कीन्हें। अब न रहे अँधियारी दीन्हें।—चित्रा०, पृ० १६४।

अँधियारी²—वि० स्त्री० अंधकारपूर्ण। उ०—अँधियारी भादौं की रात।—सूर०, १०।१२।

अँधियारी कोठरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधियारी + कोठरी] १. अँधेरा छोटा कमरा। २. पालकी का अगला कहार जब रास्ते में पानी देखता है तब पीछेवाले कहारों को सावधान करने के लिये 'अँधियारी कोठरी' कहता है। ३. पेट। उदर। गर्भस्थान। कोख। धरन।

अँधियाली—वि० दे० 'अँधियारी²'।—उ०—आधी रात का समा, बड़ी अँधियाली रात, सब ओर सन्नाटा, इसपर बादलों की घेरघार, पसारने पर हाथ भी न सूझता।—ठेठ, पृ० ३२।

अँधूला⑤—वि० दे० 'अँधरा'। उ०—जैनी अंधूले भ्रमत खै कालु।—प्राण०, पृ० १८०।

अँधेर—संज्ञा पुं० दे० 'अँधेरा¹'। उ०—वहि देसवा में नित्त पूनिमा, कबहु न होइ अँधेर।—कबीर० श०, भा० २, पृ० ६४।

अँधेरना⑤—क्रि० स० [अँधेर + ना] अँधेरा करना। अंधकारमय करना। तमाच्छादित करना। उ०—अरी, खरी सटपट परी, बिधु आधे मग हेरि। संग लगैं मधुपनु लई भागन गली अँधेरि।—बिहारी र०, दो० ४५६।

अँधेरा¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधयार] १. अंधकार। तम। प्रकाश का अभाव। उजाले का विलोम। उ०—मौन, नाश, विध्वंस अँधेरा शून्य बना जो प्रकट अभाव।—कामायनी, पृ० १८। २. धुँधलापन। धुंध। उ०—उसकी आँखों में अँधेरा छाया रहता है (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—छाना।—दौड़ना।—पड़ना।—फैलना।—होना।

मुहा०—अँधेरा छूटना = प्रकाश के सामने से हट जाना। उजाला छोड़ना।

३. छाया परछाईं। उ०—चिराग के सामने से हट जाओ, तुम्हारा अँधेरा पड़ता है (शब्द०)। ४. उदासी। शोक। उ०—उसके मरते ही समाज में अँधेरा छा गया (शब्द०)।

अँधेरा²—वि० अंधकारमय। प्रकाशरहित। तमाच्छादित।

यौ०—अँधेरा कुप = कूएँ की तरह अँधेरा। बहुत गहरा अँधेरा। अँधेरा पाख, अँधेरा पक्ष = कृष्ण पक्ष। बदी। अँधेरे उजाले, अँधेरे उजेले = अबेर सबेर। समय कुसमय। वक्त बेवक्त। उ०—अच्छा जमादार अँधेरे उजाले समझ लूँगा।—किसाना०, पृ० ४८६। अँधेरे मुहँ, मुँह अँधेरे = सूर्योदय के पहले जब मनुष्य एक दूसरे का मुँह अच्छी तरह न देख सकते हों। बड़े तड़के। बड़े सबेरे।

मुहा०—अँधेरे घर का उजाला = (१) अत्यंत कांतिमान। अत्यंत सुंदर। (२) शुभ लक्षणवाला। सुलक्षण। कुलदीपक। वंश की मर्यादा बढ़ानेवाला। (३) इकलौता बेटा। अँधेरे घर का चिराग या दिया = दे० 'अँधेरे घर का उजाला'।

अँधेरा उजाला—संज्ञा पुं० [हिं० अँधेरा + उजाला] एक खिलौना जो श्वेत और रंगीन कागजों से बनता है। रात दिन का खिलौना।

विशेष—कागज को एक विशेष प्रकार से कई तहों में लपेटकर बनाया हुआ एक प्रकार का खिलौना जिसके भीतरी दो भाग सादे और दो भाग रंगीन होते हैं और जो हाथ की चारों उँगलियों की सहायता से खोला और मूँदा जाता है। इससे कभी तो उसका सादा अंश दिखाई पड़ता है और कभी रंगीन।

अँधेरा गुप—संज्ञा पुं० [हिं० अँधेरा + कूप] इतना अधिक अंधकार कि कुछ दिखाई न दे। घोर अंधकार, जैसे—इस कोठरी में तो बिलकुल अँधेरा गुप है (शब्द०)।

अँधेरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकार] १. अंधकार। अँधेरा। उ०—झलकि चमकि तहँ रूप बिराजै मिटिगै सकल अँधेरियाँ री।—जग० श०, भा० २, पृ० १०६।

अँधेरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधेरा + ई] [पु० अँधियरिया] १. अंधकार। तिमिर। प्रकाश का अभाव। तम। अँधियारी। उ०—मालती कुंज में मिलती चंद्रिका अँधेरी जैसे।—आँसू पृ० ४८। २. काली रात। अंधकार भरी रात्रि।

क्रि० प्र०—छाना।—झुकना।—दौड़ना।—फैलना।

३. आँधी। अंधड़। ४. घोड़ों और बैलों की आँख पर डाला जानेवाला पर्दा। अँधारी।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

मुहा०—अँधेरी डालना, अँधेरी देना = (१) किसी की आँखों को मूँदकर उसकी दुर्गति करना। इसी को कंबल ओढ़ाना भी कहते हैं। (२) आँख में धूल डालना। धोखा देना।

अँधेरी²—वि० प्रकाशरहित। अंधकारयुक्त। बिना उजेले की। उ०—रजनी अँधेरी है न सूझति हथेरी रच चोर करै फेरी लखि मुख ना लुकावै तूँ।—दीन० ग्रं०, पृ० १३८।

यौ०—अँधेरी कोठरी = १. पेट। गर्भ। कोख। धरन। २. गुप्त भेद। रहस्य।

मुहा०—अँधेरी कोठरी का यार = गुप्त प्रेमी। जार।

अँधोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध + पटी, प्रा० अंधवटी, अंधोटी, अँधोटी] बैल या घोड़े की आँख बंद करने का ढक्कन या परदा।

अँधोटा—संज्ञा पुं० [सं० अन्ध + पट्टक, प्रा० अंधवट्टअ] दे० 'अँधोटी'। उ०—रहट बिसह एह मूढ मन दिएँ अँधोटा बैल।—चित्रावली, पृ० १७५।

अँधौरी†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अम्हौरी'।

अँध्यार⑤†—संज्ञा पुं० दे० अँधियार। उ०—दीपक हजारन अँध्यार लुनियतु हैं।—ब्रजमाधुरी० पृ० ३०८।

अँध्यारी¹⑤†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँधियारी'। उ०—भई एक बार अपार अँध्यारी।—हम्मीर रा०, पृ० २०।

अँध्यारी—वि० अंधकारयुक्त। अँधेरी। उ०—भादों की अँधराति अँध्यारी।—सूर०, १०।११।

अँव ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अंब] आम। उ०—तहाँ सु अँव तर रिप्प इक क्रम तम अंग सुरग।—पृ० रा०, ६।१७।

अँवराई†—संज्ञा स्त्री० [सं० आम्र = आम + राजी = पंक्ति; प्रा० अंब + राई] आम का बगीचा। आम की बारी।

अँवराउँ ⓟ—संज्ञा पुं० दे० 'अँवराई'। उ०—घन अँवराउँ लाग चहुँ पासा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २७।

अँवराव ⓟ—संज्ञा पुं० दे० 'अँवराई'। उ०—अस अँमराव सघन वन, वरनि न पारौं अंत।—जायसी (शब्द०)।

अँवली—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की गुजराती कपास जो ढोलेरा नामक स्थान में होती है।

अँववा†—संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अंब हिं० अँव + वा (प्रत्य०)] आम। आम्र। उ०—यहाँ अँववा तरे रुक एक पल विश्राम लेना।—ठंडा०, पृ० १६।

अँवा ⓟ—संज्ञा पुं० दे० 'आँवा'। उ०—व्रज करि अँवा जोग ईंधन करि सुरति आगि सुलगाए।—सूर०, १०।३७८१।

अँवाडा—संज्ञा पुं० दे० 'आमड़ा'।

अँवारी—संज्ञा स्त्री० [अ० अमारी] दे० 'अवारी—१'। उ०—कलित करिवरन्हि परी अँवारी।—मानस, १।३००।

अँविया—संज्ञा स्त्री० [सं० आम्र, प्रा० अंब + इया (प्रत्य०)] आम का छोटा कच्चा फल जिसमें जाली न पड़ी हो। टिकोरा। केरी। अमिया।

विशेष—इसकी खटाई कुछ हल्की होती है। इसे लोग दाल में डालते तथा चटनी और अचार भी बनाते हैं।

अँविरती ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अमृतिका, प्रा० अमिरितिआ] तार का एक पुराना बाजा। अमृत कुंडली। उ०—वीन पिनाक कुमाइच कही। बाज अँविरती अति गहगही।—पदमावत, पृ० ५६२।

अँविरथा ⓟ†—वि० [सं० वृथा + अँ (उच्चा०) ⓟ विरथा] वृथा। व्यर्थ। वेफायदा। फजूल। उ०—प्रेम कि आगि जरै जो कोई। ताकर दुख न अँविरथा होई।—जायसी (शब्द०)।

अँविलि ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्लिका, प्रा० अंबिलिया] इमली का वृक्ष। उ०—कोइ अँविलि कोई महुव खँजूरी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४७।

अँवुआ ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं० अंव + उवा (प्रत्य०)] आम्र। आम। उ०—मौरे अँवुआ अरु द्रुम वेली मधुकर परिमल भूले।—सूर० (राधा०), २३६१।

अँभौरी†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अम्हौरी'।

अँमर ⓟ—संज्ञा पुं० दे० 'अवर—६'। उ०—दाहिने अतर और अँमर तमोर लीन्हें। सामुहे लपेटे लाज भोजन के थार गहें।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १६८।

अँवदा ⓟ—†वि०—[सं० *अवाध, ⓟ अँवधा] १ नीचे की ओर मुँहवाला। उ०—आकाशे अँवदा कुआ पाताले पनिहार।—कबीर (शब्द०)। २ औंधा। उलटा।

अँवधाना ⓟ—क्रि० स० [ⓟ अँवधा से नाम०] औंधा करना। उलटा करना। उ०—मूरत मनोज देखि कै हारा। निज अँवधाय सो रख्यो नगारा।—हिं० प्रेमा०, पृ० २५५।

अँवरा†—संज्ञा पुं० दे० 'आँवला'। उ०—कोई अँवरा कोई वेर करौंदा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४७।

अँवराई ⓟ†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँवराई'। उ०—सत सभा चहुँ दिसि अँवराई।—मानस, १।३७।

अँवलउ—वि० [सं० प्रा० अबल] अस्वस्थ। व्यथित। उ०—सज्जण चाल्या हे सखी पडह उ वाज्यउ द्रग। काँही रली वधामणाँ, काँही अँवलउ अग।—ढोला०, दू० ३५१।

अँवला†—संज्ञा पुं० दे० 'आँवला'।

अँवली¹—संज्ञा स्त्री० [सं० आमलकी, प्रा० आमलई] छोटा आँवला। उ०—पक गये सुनहले मधुर वेर, अँवली से तरु की डाल जड़ी।—ग्राम्या, पृ० ३६।

अँवली—ⓟ² वि० [?] उलटा। उ०—लगन लगी जब और प्रीत छी, अब कुछ अँवली रीति।—संत० सार०, भा० ३, पृ० ७४।

अँवहलदी—संज्ञा स्त्री० दे० आमा हल्दी। उ०—आलूचा, अमिली अँवहलदी, आल आँवरा लाल अफलदी।—सुजान०, पृ० १६१

अँवा—ⓟ†—संज्ञा पुं० दे० 'आँवा'। उ०—अँवा अगिनि जिमि अंतर जरै।—नंद० ग्रं०, पृ० १३३।

अँवारना ⓟ—क्रि० स० [हिं० वारना] न्योछावर करना। वारना। उ०—अय रामियों शरण तुम्हारी। पल पल ऊपर प्राण अँवारी।—राम० धर्म०, पृ० ३२२।

अँविरथा—ⓟ†—वि० दे० 'अँविरथा'। उ०—उघर न नैन तुमहिं विनु देखे। सवहि अँविरथा मोरे लेखे।—जायसी ग्रं०, पृ० ३५७।

अँस ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अंस] स्कंध। कंधा। उ०—वाम भजहि सखा अँसे दीन्हें, दच्छिन कर द्रुम डारयौं।—सूर०, १०।४७०।

अँसुआ ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० अश्रु, प्रा० अंसु, असुय] आँसू। अश्रु। उ०—तन काँप लोचन भरे अँसुआ झलके आय।—श्यामा०, पृ० १२८।

अँसुपात ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अश्रुपंक्ति] आँसुओं की वेतार। आँसू की पंक्ति या पाँत। उ०—इतनी सुनत सिमिटि सब आये, प्रेम सहित धारे अँसुपात।—सूर०, ६।३८।

अँसुवा ⓟ†—संज्ञा पुं० दे० 'अँसुआ'। उ०—यह छवि निरखि रही नँदरानी अँसुवा ढरि ढरि परत करोटनि।—सूर०, १०।१८७।

अँसुवाना ⓟ—क्रि० स० [हिं० आँसू से नाम०] अश्रुपूर्ण होना। डबडबा आना। आँसू से भर जाना। उ०—उनही विन ज्यों जलहीन ह्वै मीन सी आँखि मेरी, अँसुवानी रहैं।—रसखान (शब्द०)।

अँहडा†—संज्ञा पुं० [देश०] तौलने का बटखरा।

अँहस—संज्ञा पुं० [सं० अहस्] दे० 'अह'।

अँहुडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक लता जिसमें छोटी छोटी गोल पेटे की फलियाँ लगती हैं। इन फलियों की तरकारी बनती है और इनके बीज दवा में पड़ते हैं। बाकला।

अ¹—उप० संज्ञा और विशेषण शब्दों के पहले लगकर यह उनके अर्थों में फेरफार करता है। जिस शब्द के पहले यह लगाया जाता है उस शब्द के अर्थ का प्रायः अभाव सूचित करता है, जैसे, अकर्म, अन्याय, अचल। कहीं कहीं यह अक्षर शब्द के अर्थ को दूषित भी करता है जैसे—अभागा, अकाल, अदिन। स्वर से आरंभ होनेवाले शब्दों के पहले जब इस अक्षर को लगाना होता है तब उसे 'अन' कर देते हैं, जैसे, अनंत, अनेक अनीश्वर। पर हिंदी में कभी कभी व्यंजन के पहले भी 'अन्' के 'न' को सस्वर 'न' करके 'अन' लगा देते हैं, जैसे, अनबन, अनरीति, अनहोनी आदि।

संस्कृत वैयाकरणों ने इस निषेधसूचक उपसर्ग का प्रयोग इन छह अर्थों में माना है (१) सादृश्य, यथा—अब्राह्मण= ब्राह्मण के समान आचार रखनेवाला अन्य वर्ण का मनुष्य। (२) अभाव, यथा—अफल=फलरहित, अगुण=गुणरहित। (३) अन्यत्व, यथा—अघट=घट से भिन्न, पट आदि। (४) अल्पता, यथा—अनुदरी कन्या=कृशोदरी कन्या। (५) अप्राशस्त्य। बुरा, यथा—अभाग। अधन=बुरा धन। (६) विरोध, यथा—अधर्म=धर्म के विरुद्ध आचरण। अन्याय, आदि। हिंदी में इसका प्रयोग कुछ लोग स्वार्थिक रूप में भी मानते हैं, जैसे अलोप=लोप।

अ²—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २ शिव (को०)। ३ ब्रह्मा। ४ विराट। ५ इंद्र। ६ वायु। ७ कुबेर। ८ अग्नि। ९ विश्व। १० सरस्वती। ११ अमृत। १२ कीर्ति। १३ ललाट। १४ प्रणव (को०)। १५ यम (को०)। १६ प्राण (को०)।

अ³—वि० १ रक्षक। २ उत्पन्न करनेवाला।

अइ(पु)—सर्व० [सं० एतत्, अप० एइ, एअ] ये। उ०—करि कइरां ही पारणउ अइ दिन यूँ हीं ठेलि।—ढोला०, दूहा०, ४३०।

अइयपन(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'ऐपन'। उ०—पउ अनाल अइयपन भल मेल।—विद्यापति, पृ० २२१।

अइया†—संज्ञा स्त्री० दे० 'ऐया'।

अइल†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अइला'।

अइला†—संज्ञा पुं० [देश०] चूल्हे का मुँह या छेद।

अइस(पु)†—वि० [सं० ईदृश, अप० अइस] ऐसा। इस प्रकार का।

अइसइ(पु)†—क्रि० वि० [सं० ईदृशो हि] ऐसे ही। इस प्रकार ही।

अइसन†—वि० [सं० ईदृश, अप० अइस] ऐसा। इस प्रकार का।

अइसना(पु)†—वि० [अप० अइश] दे० 'अइसन'। उ०—अइसना देह गेह ना सोहावये।—विद्यापति, पृ० ११०।

अइसा†—वि० दे० 'ऐसा'।

अइसिउँ(पु)—वि० [सं० ईदृशी अपि] ऐसी भी। इस प्रकार का भी

अइहइ(पु)†—वि० [अप०] [सं० ईदृश] ऐसा। इस प्रकार का। उ०—मृगरिपु कटि सुंदर वणी, मारू अइहइ घाट।—ढोला०, दू० ४६६।

अईगई(पु)†—वि० [हिं० अई+गई] दे० 'आई गई'।

मुहा०—अई गई करना='आई गई करना'। उ०—चित आन की आन कहीं चहैं पै हित जान अई गई कीजतु हैं।—ठाकुर०, पृ० ३।

क्रि० प्र०—करना।

अउँध†—वि० दे० 'औंधा'। उ०—फिरहु का फूले फूले फूले। जब दस मास अउँध मुख होते सो दिन काहे भूले।—कबीर बी०, पृ० ५४।

अउँरा(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'औंरा'। उ०—कोइ अउँरा कोइ राइ करउँदा।—पदुमा०, पृ० ८५।

अउ¹—संयो० अव्य० [सं० अपर या अवर] और। तथा। उ०—जस हथ्थ मुगुति अउ मुकुति दोउ कहि नरहरि नित संभरिय।—अकबरी०, पृ० ७४।

अउ²(पु)—सर्व १. वह। उ०—सारीखी जोड़ी आ जुड़ी नारी अउ नाह।—ढोला०, दू० ६। २ यह। उ०—राजा राणी सूँ कहइ कीजइ अउ वीमाँह।—ढोला०, दू० ६।

अउखद(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'औषध'। उ०—ऐसा अउखद खाहु गवाँरा। जितु खाधे तेरे जाँहि विकारा।—प्राण०, पृ० २७४।

अउगाह(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'अवगाह'। उ०—नयन हिं जानउं नीअरे कर पहुँचत अउगाह।—पदुमा०, पृ० ५४।

अउगुण(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अवगुण'। उ०—सजण मिल्या मण ऊमग्यउ, अउगुण सहि गलियाह।—ढोला०, दू० ५६०।

अउझक(पु)†—क्रि० वि० दे० 'औझक'। उ०—मारू दीठी अउझकइ जाणि खिवी घण सञ्ज।—ढोला०, दू० ८६।

अउठा—संज्ञा पुं० [देश०] नापने की दो हाथ की एक लकड़ी जिसे जुलाहे लिए रहते हैं।

अउत¹(पु)—वि० दे० 'अऊत'। उ०—नानक लेखै माँगीअै अउत जणेंदी जाय।—प्राण०, पृ० २१८।

अउत²(पु)—वि० [सं० अयुक्त] अनुचित। अयुक्त। उ०—अउत होइ धरि छोड हे राय।—वी० रा०, पृ० ४९।

अउधान(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अवधान] गर्भाधान। गर्भस्थिति।

अउधू(पु)†, अउधूत(पु)†—संज्ञा पुं० दे० अवधूत'।

अउपन(पु)†—संज्ञा पुं० [प्रा० ओप्पा] सान पर घिसना। सान देना।

अउर(पु)†—अव्य० दे० 'और'। उ०—मकरध्वज वाहणि चढ्यौ अहिमकर उत्तर वाउ वाए अउर।—वेलि०, दू० २२२।

अउरउ(पु)†, अउरौ(पु)†—क्रि० वि० [सं० अपर+अपि] और भी।

अउलग(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० *अपालग प्रा० *अवलग, अप० *अउलग] प्रवास। दूर गमन।

अउलगना(पु)†—क्रि० स० [अउलग से नाम०] प्रवास करना। यात्रा करना। उ०—ईडर की घर अउलगउं, जइ तूँ कहइ तु जाँह।—ढोला०, दू० २२४।

अउहेर+, अउहरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवहेला] अवहेलना। अपमान।

अउहेरना†—क्रि० अ० [हिं० अवहेर से नामधातु] अपमान करना। तिरस्कार करना।

अऊत¹(पु)—वि० [सं० अपुत्र, प्रा० अपुत्त, अउत्त] निपूता। बिना पुत्र का। निसंतान। उ०—(क) धन्य सो माता सुंदरी, जिन जाया वैष्णव पूत। राम सुमिरि निर्भय भया, और सब गया अऊत।—कबीर (शब्द०)। (ख) गये हुये माँगन को पूत। यह फल दीनों सती अऊत।—अर्ध०, पृ० ६।

अऊत²(पु)—संज्ञा पुं० अपुत्रत्व। निपुत्रता। उ०—यह ताको निस्तारिहि, उनते जाइ अऊत।—सुंदर ग्रं०, भा १, पृ० १८३।

अऊलना¹—क्रि० अ० [सं० उल् = जलना] १. जलना। गरम होना। २. गरमी पड़ना। दे० 'औलना'।

अऊलना²—क्रिया अ० [सं० आ = अच्छी तरह + शूल, प्रा० सूल, हिं० हूलना] छिलना। छिदना। चुभना। उ०—छत आजु की देखि कहौंगी कहा, छतिया नित ऐसे अऊलति है।—रघुनाथ (शब्द०)।

अऋण—वि० [सं०] बिना कर्ज का। जिसपर कर्ज न हो। ऋणमुक्त।

अऋणी—वि० [सं०] जिसपर कर्ज न हो। ऋणमुक्त।

अएरना (पु)—क्रि० स० [सं० अङ्गीकरण; प्रा० अगीअरण, हिं० अँगेरना] अंगीकार करना। अँगेरना। स्वीकार करना। धारण करना। उ०—दियौ सुसीस चढ़ाइ लै आछी भाँति अएरि। जापै सुखु चाहतु लियौ ताके दुखहि न फेरि।—बिहारी०, पृ० ३८।

अओध (पु)—वि० दे० 'अंउध'। उ०—अधर मगइते अओध कर माथ। सहए न पार पयोधर हाथ।—विद्यापति, पृ० २८३।

अओधा (पु)—वि० दे० 'औंधा' उ०—अओधा कमल कांति नहि पूरए हेरहू त जुग बहि जाइ।—विद्यापति, पृ० ३६।

अकंटक—वि० [सं० अकण्टक] १. बिना काँटे का। कंटकरहित। २. बाधारहित निर्विघ्न। बिना रोक टोक का। बेधड़क। उ०—समुझि काम सुख सोचहिं भोगी। भये अकंटक साधक जोगी।—मानस, १।८७। ३. शत्रुरहित। उ०—जानहिं सानुज रामहिं मारी। करौं अकंटक राज सुखारी।—मानस, २।१८६।

अकंठ—वि० [सं० अकण्ठ] १. कंठरहित। जिसे कंठ न हो। स्वर-हीन। कर्कश (को०)।

अकंड—वि० [हिं० अकड़] तेज। अकड़दार। उ०—'इशा' धदल के काफिये रख छेड़छाड़ के, चढ़ बैठ एक और बछेड़े अकंड पर।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २७८।

अकंप—वि० [सं० अकम्प] न काँपनेवाला। स्थिर। उ०—मृत्य भी शव-सा अकंप कठोर।—साकेत, पृ० १६१।

अकंपत्व—संज्ञा पुं० [सं० अकम्पत्व] १. काँपने का अभाव। न काँपने की दशा। कंपहीनता। २. वंशी बजाने में उँगलियों का एक गुण। अकंपत्व। न काँपना।

अकंपन¹—वि० [सं० अकम्पन] [वि० अकंपित, अकंप्य, संज्ञा अकम्पत्व] न काँपनेवाला। स्थिर।

अकंपन²—संज्ञा पुं० रावण का अनुचर एक राक्षस जिसने खर के वध का वृत्तांत उससे कहा था।

अकंपित¹—वि० [सं० अकम्पित] जो कँपा न हो। अटल। निश्चल।

अकंपित²—संज्ञा पुं० बौद्ध गणाधिपों का एक भेद।

अकंप्य—वि० [सं० अकम्प्य] न काँपनेवाला। हिलने या डिगने-वाला। अटल स्थिर। अचल।

अक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाप। पातक।

यौ०—अकहीन = पापहीन। उ०—अरवस करत विरोध हठि होन चहत अकहीन।—स० सप्तक, पृ० ४७। अकबस = पापवश। उ०—तुलसी मठ अकबस विहठि दिन दिन कद मलीन।—स० सप्तक, पृ० ४७।

२. दुःख। ३. गर्व (को०)। ४. चिह्न (को०)।

अक² (पु)—वि० दे० 'एक'। उ०—रहौ फकीर अक खुदा गुसाई।—घट०, पृ० ८५।

अकच¹—वि० [सं०] बिना बाल का। गंजा। खल्वाट।

अकच²—संज्ञा पुं० केतुग्रह।

अकचकाना—क्रि० अ० [सं० (अक० अकस्मात्) + चक् = चकितहोना] विस्मित होना। हक्काबक्का होना। उ०—(क) युवक के रहन पर बालक भी अकचकाना हुआ बैठ गया।—छाया, पृ० १०७। (ख) वह अकचकाकर अवपाली की ओर ताकता रह गया।—वै० न०, पृ० २५५।

अकच्छ—वि० [सं० अ - रहित + कच्छ या कक्ष = धोती, परिधान] १. नग्न। नंगा। २. व्यभिचारी। परस्त्रीगामी।

अकटुक—वि० [सं०] १. जो कटु न हो। मधुर। २. अथान। अक्लांत (को०)।

अकटोटा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्क = छाप, तिलक + देश० टोटा = ककड़, ढेला] कंकड़, मिट्टी से तैयार किया हुआ चंदन। उ०—अकटोटा को धरि तिलक, नयो निर्ये लगाया।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १५२।

अकठोर—वि० [सं०] जो कठोर न हो। मुलायम। कोमल (को०)।

अकडम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तांत्रिक चक्र (को०)।

अकडमचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अकडम' (को०)।

अकडोडा—संज्ञा पुं० [सं० अर्क + तुंड, प्रा० अक्क + तोंड] मदार का फल। मदार की ढोंढ़ी। उ०—आवन की हौंस कैसे अकडोड़े जात हैं।—सुंदर०, ग्रं०, भा० २, पृ० ४५७।

अकड़त—संज्ञा स्त्री० [हिं० अकड़ + अंत (प्रत्य)] अकड़। दर्प। घमंड। उ०—तकले की तरह बल निकल जावे। तेरे आगे जो दो करे अकड़त।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६४।

अकड़¹—संज्ञा स्त्री० [सं० आ = अच्छी तरह + काण्ड = गाँठ, पोर, > अकड़ = गाँठ की तरह कड़ा] ऐंठ। तनाव। मरोड़। बल।

अकड़²—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. घमंड। अहंकार। शेखी।

मुहा०—अकड़ दिखाना = घमंड या शेखी दिखाना। उ०—मार खाव तो बदन झाड़कर फिर भी अकड़ दिखाओ।—प्रेमघन०, भा० २, ३०८।

२. धृष्टता। ढिठाई। ३. हठ। अड़। जिद।

अकड़ तकड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० अकड़ + तकड़ < तगड़ा] १. ऐंठन। २. तेजी। ताव। घमंड। अभिमान। उ०—'अकड़ तकड़ उसमें बहुत सारी थी'।—इशा०, पृ० ६१।

अकड़ना¹—क्रि० अ० [हिं० 'अकड़' से नाम०] १. सूखकर सिकुड़ना और कड़ा होना। खरा होना। ऐंठना। जैसे, पटरियाँ धूप में रखने से अकड़ गईं (शब्द०)। २. ठिठुरना। स्तब्ध होना। सुन्न होना, जैसे—सरदी से अकड़ जाओगे (शब्द०)। ३. छाती को उभाड़कर डील को थोड़ा पीछे की ओर झुकाना। तनना, जैसे—वह अकड़कर चलता है (शब्द०)

अकड़ना²--क्रि० अ० [देश०] १ शेखी करना। घमंड दिखाना। अभिमान करना, जैसे--वह इतने ही में अकड़ा जाता है (शब्द०)। २ ढिठाई करना। ३ हठ करना। जिद करना। अड़ना। जैसे--सब जगह अकड़ना ठीक नहीं, दूसरे की बात भी माननी चाहिए (शब्द०)। ४ फिर पड़ना। मिजाज बदलना। चिटकना जैसे--तुम तो जरा सी बात पर अकड़ जाते हो (शब्द०)।

अकड़फो--वि० [हिं० अकड़ + फो = फुफकारना] ऐंठ और अभिमान से भरा हुआ [को०]।

अकड़वाई--संज्ञा स्त्री० [हिं० अकड़ + वाई = वायु] शरीर की नसों का पीड़ा के सहित एकबारगी खिंचना। ऐंठन। कुड़ल।

अकड़बाज--वि० [हिं० अकड़ + फा० बाज = वाला] अकड़ दिखानेवाला। अपने को लगानेवाला। नोक झोंकवाला। ऐंठदार। शेखीबाज। अभिमानी।

अकड़बाजी--संज्ञा स्त्री० [हिं० अकड़ + फा० बाजी] अकड़ने की प्रवृत्ति। ऐंठ। अभिमान। शेखी।

अकड़ा¹--संज्ञा पुं० [सं० *अकाण्डक या हिं० अकड़] चौपायों का एक छूतवाला रोग।

विशेष--जब चौपाए तराई की धरती में बहुत दिनों तक चरकर सहसा किसी जोरदार धरती की घास पा जाते हैं तब यह बीमारी उन्हें हो जाती है।

अकड़ा²--वि० [हिं० अकड़] अकड़ में भरा। ऐंठ भरा। उ०--हिंसा गर्वोन्नत हारों में ये अकड़े अणु टहल रहे।--कामायनी, पृ० २६६।

अकड़ाव--संज्ञा पुं० [हिं० अकड़ + आव (प्रत्य०)] ऐंठन। खिंचाव।

अकड़ू†--वि० [हिं० अकड़ + ऊ (प्रत्य०)] अकड़बाज। अकड़ दिखानेवाला।

अकड़ैत--वि० [हिं० अकड़ + ऐत। (प्रत्य०)] अकड़बाज। अकड़ू।

अकत¹†--वि० [सं० अक्षत, प्रा० अप० अक्खत अथवा सं० अकृत, प्रा० अकत्त, हिं० अकत] समग्र। समूचा। आखा। सारा।

अकत²--† क्रि० वि० बिलकुल। सरासर।

अकती--संज्ञा स्त्री० दे० 'अखती'। उ०--अकती की तीज तजवीज के महेली जुरीं'--ठाकुर (शब्द०)।

अकत्थ(पु)†--वि० सं० अकथ्य, प्रा० अकत्थ] जो कहा न जा सके। न कहने योग्य। अकथनीय। उ०--मसि नैना लिखनी बरुनि रोई रोई लिखा अकत्थ'।--जायसी (शब्द०)।

अकत्थन--वि० [सं०] जो डींग न हाँके। अविकत्थन [को०]।

अकथ--वि० [सं० अकथ्य, प्रा० अकत्थ] जो कहा न जा सके। कहने की सामर्थ्य के बाहर। अकथनीय। अवर्णनीय। अनिर्वचनीय। उ०--नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामूझि साधी।--मानस, १।२१।

यौ०--अकथ कथा; अकथ कहानी = अनिर्वचनीय आख्यान।

अकथनीय--वि० [सं०] न कहे जाने योग्य। जो कहने में न आ सके। अनिर्वचनीय। अवर्णनीय। वर्णन के बाहर। जिसका वर्णन न हो सके। उ०--एहि विधि दुखित प्रजेसकुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी।--मानस, २।६०।

अकथह¹--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अकडम' [को०]।

अकथह²(पु)--वि० दे० 'अकथ'। उ०--नानक गुरु मिलै अकथह कथै।--प्राण०, पृ० ५३।

अकथित--वि० [सं०] जो न कहा गया हो।

अकथ्थ(पु)--वि० दे० 'अकत्थ'। उ०--बाल बच पुनि आल्ह सी आनंद कियव अकथ्थ।--प० रा०, पृ० १३६।

अकथ्य--वि० [सं०] न कहने योग्य। अवर्णनीय अनिर्वचनीय।

अकद--संज्ञा पुं० [अ० अक्द] इकरार। प्रतिज्ञा। वादा।

अकदन¹--क्रि० वि० दे० 'कदन'।

अकदन²--वि० [सं० अ + कदन] विनाशरहित। उ०--कदन विदन अकदन तुदा गहन अजन क्लेशाहि। दुख जनि दे अब जानि दे कत बैठी अनखाहि।-- नंददास (शब्द०)।

अकदबदी--संज्ञा स्त्री० [अ० अक्द + फा० बदी] करारनामा। प्रतिज्ञापत्र।

अकबक(पु)†--संज्ञा पुं० [देश० अनु०] आशंका। आगा पीछा। सोच विचार। भय। डर। उ०--हौं के लोभी लाभ बस, छवि मुकुताहल लैन। कूदत रूप समुद्र में अकबक करत न नैन।--रतन०, दो० ४५२।

अकनना†--क्रि स० [सं० आकर्णन प्रा० आकण्णण] १ सुनना। कर्णगोचर करना। उ०-- पुरजन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता।--मानस १।३४४। २ आहट लेना। उ०--नगर सुर अकनत सुनत अति रुचि उपजावत।--सूर० (राधा०), २५६१। ३ कान लगाकर सुनना। चुपचाप सुना। उ०--आलस गात जानि मनमोहन बैठे छाँह करत सुख चैन। अकनि रहत कहुँ सुनत नहीं कछु नहिं गौ रमन बालक बैन।--सूर० (शब्द०)।

अकना¹†--क्रि अ० [सं० या देश०] ऊबना। उकताना। घबराना। उ०--दौड़ धूप आने से जुअरत के अकोमत क्या करे। उस बिचारे की तबियत तुम पे है आई हुई।--जुअरत (शब्द)।

अकना²--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरण] ज्वार की वह बाल जिसके दाने निकाल लिये गए हो।

अकनिष्ठ¹--वि० [सं०] १ जो कनिष्ठ न हो। कनिष्ठ भिन्न। २. जिससे कोई कनिष्ठ न हो। सबसे छोटा [को०]।

अकनिष्ठ²--संज्ञा पुं० १ गौतम बुद्ध का एक नाम। २ बौद्ध देवगणों का एक वर्ग [को०]।

अकनिष्ठग--संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध [को०]।

अकन्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो कुमारी न हो [को०]।

अकपट--वि० [सं०] कपट से रहित। निष्कपट। उ०--हरी डाल के सुखद हिंडोले में परिवर्धित होकर, जो अकपट विकसित भाव दिखाती है कैसी आनंदमयी।--प्रेम०, पृ०७।

अकवक¹—संज्ञा पुं० [हिं० अनु० अक+बक=असंबद्ध बकना] [क्रि० अकवकाना] १ निरर्थक वाक्य । असंबद्ध प्रलाप । अंड बंड । अनाप शनाप । उ०—जैसे कछु अकवक वचन है आज हरि, तैसई जानि नावँ मुग्ध ताहू को निवसी जाय ।—केशव (शब्द०) । २ धड़धड़ाहट । चिंता । धड़क । खटका । उ०—इंद्र जू के अकवक, धाता जू के धकपक, शंभु जू के सकपक, केसोदास को कहै । जब जब मृगया लोक को राम के कुमार चढ़ै, तब तब कोलाहल होत लोक है ।—केशव (शब्द०) । ३ होश हवाश । छक्का पंजा । अक्की बक्की । चतुराई । सुध । उ०—सब पकहोत पकजासन परम दीन, अकवक भूलि जात गरुडनसीन के ।—चरणचंद्रिका (शब्द०) ।

अकवक²—वि० [सं० अवाक्] भौचक्का । चकित । निस्तब्ध, जैसे—'यह वृत्तांत सुन वह अकवका रह गया' (शब्द०) ।

अकवकाना—क्रि० अ० [हिं० अकवक से नाम०] चकित होना । भौंचक्का होना । घबराना । उ०—(क) अकवकात तन, धकधकात उर, अवधकात सब ठाढ़े । सूर उपँग सुत बोलत नाहीं अति हिरदै ह्वै गाढ़े ।—सूर (शब्द०) । (ख) 'रामेसरी अकवका गई, कौन सी ऐसी बात उसके मुँह से निकली जिससे बीसो के जी को आघात पहुँचा है' ।—नई पौध, पृ० ६६ ।

अकवत—संज्ञा स्त्री० दे० 'आकवत' । उ०—अकवति अलह सों जानि सुबुक सो बोलना ।—गुलाल०, पृ० ६२ ।

अकवर¹—वि० [अ०] श्रेष्ठतम [को०] ।

अकवर²—संज्ञा पुं० मुगल सम्राट् अकवर जिसने भारत में १५५६ ई० से १६०५ ई० तक शासन किया ।

अकवरी¹—संज्ञा स्त्री० [अ० अकवर+फा० ई० (प्रत्य०)] १ एक फलाहारी मिठाई । तीखुर और रुवाली अरुई का घी के साथ फेंटकर उसकी टिकिया बनाकर, घी में तलकर चाशनी में पाग देते हैं । कहीं कहीं इसे सिंघाड़े से भी बनाया जाता है । २ एक प्रकार की लकड़ी पर की नक्काशी जिसका व्यवहार पंजाब में बहुत है । सहारनपुर के कारखानों में भी इसका चलन है ।

अकवरी²—वि० अकवर संबंधी ।

यौ०—अकवरी अशरफी=सोने का एक पुराना सिक्का जिसका मूल्य पहले १६ रुपए था, पर अब २५ रुपए हो गया है । अकवरी मोहर=१ एकाक्ष व्यक्ति । एक आँख का आदमी । २ अकवरी असरफी ।

अकवार†—संज्ञा पुं० दे० 'अखवार' । उ०—बालदेव भी अकवार पढ़ता है' ।—मैला आँ०, पृ० २५४ ।

अकवाल—संज्ञा पुं० दे० 'इकवाल' ।

अकर¹—वि० [सं०] १ हस्तरहित । बिना हाथ का । उ०—अकर कहावत धनुख धरे देखियत परम कृपाल पै कृपान कर पति है ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १५१ । २ बिना कर या महसूल का । जिसका महसूल न लगता हो । ३. दुष्कर । न करने योग्य । कठिन । विकट । उ०—मारथ अकर करतूतिन निहारि लही, यातें घनस्याम लाल तोते बाज आये री ।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १६० । ४ क्रियारहित । निष्क्रिय ।

अकर²—संज्ञा पुं० [सं० आकर] १ खान । आकर । २ समूह । राशि । उ०—हिमकर सो है तेरे जस के अकर सो ।—भूषण ग्रं०, पृ० १० ।

अकरकरा—संज्ञा पुं० [अ० आकरकरहा] एक पौधा जो अफ्रिका के उत्तर अल्जीरिया में बहुत होता है । इसकी जड़ पुष्ट और कामोद्दीपक औषधि है । इसके मुँह में रखने से मुँह में थूक आता है और दाँत की पीड़ा भी शांत होती है ।

पर्या०—आकल्लक ।

अकरखन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आकर्षण] दे० 'आकर्षण' । उ०—किया अकरखन मन मां यही घुरि सुरराज । उड़ि उड़ि दौरी बाल सब तज लाज गृहराज ।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ७६ ।

अकरखना—(पु) क्रि० स० [हिं० अकरखन से नाम०] १ खींचना । आकर्षित करना । तानना । २ चढ़ाना ।

अकरण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कर्म का न किया जाना या न होना । कर्म का फल रहित होना । कर्म का अभाव ।

विशेष—शास्त्र के अनुसार सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो जाने पर फिर कर्म अकरण अर्थात् बिना किए हुए के समान हो जाते हैं और उनका कुछ फल नहीं होता ।

२ इंद्रियों से रहित । ईश्वर । परमात्मा ।

अकरण²—वि० १. न करने योग्य । कठिन । २. इंद्रियरहित [को०]

अकरण³(पु)—वि० [सं० अकारण] बिना कारण । अकारण । बेसबब ।

अकरणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नैराश्य । असफलता । अपूर्णता २ आक्रोश विशेष । शाप [को०] ।

अकरणीय—वि० [सं०] न करने योग्य । न करने लायक । करने के अयोग्य ।

अकरन¹(पु)—वि० [सं० अकारण] बिना कारण । बेसबब । उ०—कर कुठार मैं अकरन कोही । आगे अपराधी गुरुद्रोही ।—तुलसी (शब्द०) ।

अकरन²(पु)—वि० [सं० अ+करण=कर्म] न करने योग्य । जिसका करना कठिन या असंभव हो । उ०—दयानिधि तेरी गति लखि न परै । धर्म अधर्म अधर्म, धर्म करि अकरन करन करै ।—सूर०, १।१०८ ।

अकरना(पु)—क्रि० अ० दे० 'अकड़ना' । उ०—मिथ्यावाद आपजस सुनि सुनि मूछहि पकरि अकरतो ।—सूर०, १०।२०३ ।

अकरनीय(पु)—वि० दे० 'अकरणीय' ।

अकरव—संज्ञा पुं० [अ० अकरब] १ घोड़ा जिसके मुँह पर सफेद रोएँ होते हैं और उन सफेद रोओं के बीच बीच में दूसरे रंग के भी रोएँ होते हैं । यह घोड़ा ऐबी समझा जाता है । २ बिच्छू (को०) । ३ वृश्चिक राशि (को०) ।

अकरम(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अकर्म १' । उ०—अकरम करम करै मन आपहि पीछे जिव दुख पावै ।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २६ ।

अकरमी(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अकर्मी'। उ०—महा अकरमी जीव हम सबहि लेहु मुकुताय।—कबीर सा०, पृ० ५५०।

अकरा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी। आँवला [को०]।

अकरा²†—वि० [सं० अक्रय्य प्रा० अकरय्य, अकरय] [स्त्री० अकरी] १ न मोल लेने योग्य। महँगा। अधिक दाम का। कीमती। उ०—लै आये हो नफा जानि कै सबै वस्तु अकरी।—सूर०, १०।३१०४। २ खरा। श्रेष्ठ। उत्तम। अमूल्य। उ०—आरतपालु कृपालु जा राम, जेही सुमिरे, तेहि को तहँ ठाढ़े। नाम प्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े।— तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० २२६।

अकराथ(पु)—वि० [सं० अकार्य्यार्थ, प्रा० अकारियत्थ] अकारथ। व्यर्थ। निष्फल। उ०—प्राण राखि प्रबोधिए, ज्ञान सुनै अकराथ।—कबीर (शब्द०)।

अकराम—संज्ञा पुं० [अ० करम का ब० व०] बख्शिश। कृपा। अनुग्रह [को०]।

अकरार(पु)¹—वि० [हिं० अकराल] भयानक। उ०—कहाँ प्रिया एकत सुपन पायौ अकरारिय।—पृ० रा०, ६६।२१०५।

अकरार²†—संज्ञा पुं० [अ० इकरार या करार] कौल। प्रतिज्ञा इकरार।

अकराल¹—वि० [सं०] जो भयकर न हो। सौम्य। सुंदर। अच्छा।

अकराल²(पु)—वि० [सं० कराल] भयकर। भयानक। डरावना। [डिं०]।

अकरास¹—संज्ञा पुं० [हिं० अकड+आस (प्रत्य०)] अँगड़ाई। देह टूटना।

अकरास²—संज्ञा पुं० [सं० अकर] आलस्य। सुस्ती। कार्यशिथिलता।

अकरासा†—संज्ञा पुं० दे० 'अकरास²'। उ०—छुट्टी मे आपउ चली गई रहीं। हमका बहुत अकरासा लागत रहा।—भस्मा० चि०, पृ० ६१।

अकरासू†—वि० स्त्री० [सं० अकर = आलस्य] गर्भवती। जो हमल से हो।

अकरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० आ = भलीभाँति + किरण (√कृ) बिखेरना] बीज गिराने के लिये हल मे जो पोला बाँस लगा रहता है उसके ऊपर का लकड़ी का चोंगा जिसमे बीज डाला जाता है।

अकरी²—संज्ञा स्त्री० [?] असगध की जाति का एक पौधा या झाड़ी जो पजाब सिंध और अफगानिस्तान आदि देशो मे होती है।

अकरी³(पु)—वि० [हिं० अकर + ई] न करनेवाला। अकर्ता। अक्रिय। उ०—अकरी अलख अरूप अनादी तिमिर नही उजियारा।—चरण०, भा० २, पृ० १४०।

अकरुण—वि० [सं०] करुणाशून्य। निर्दयी। निष्ठुर। कठोर। उ०—अकरुण वसुधा से एक झलक। वह स्मित मिलने को रहा उ०—ललक।—लहर, पृ० ३४।

अकरुर(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अक्रूर'। उ—लै अकरुर चले मधुवन को, सब व्रज अति भै भात।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० २३७।

अकर्कश—वि० [सं०] जो कठोर न हो। मृदु। मुलायम। नरम [को०]।

अकर्ण¹—वि० [सं०] १ कान से रहित। कर्णहीन। उ०—जो अकर्ण अहि को भी सहसा कर दे मन्त्रमुग्ध नतफन।—प्रवध०। २ छोटे कानोवाला। लघकर्ण (को०)। ३ सुनने की शक्ति से रहित। वधिर। बहरा (को०)। ४ पतवार विहीन। विना पतवार का।

अकर्ण²—संज्ञा पुं० सर्प। साँप [को०]।

अकर्णक—वि० [सं०] कान से रहित। कर्णहीन [को०]।

अकर्णधार—वि० [सं०] पतवार चलानेवाले से रहित। चालकविहीन [को०]।

अकर्ण्य—वि० [सं०] वह जो कानो न सुना जाय। अश्राव्य [को०]।

अकर्तन—वि० [सं०] १ बौना। २ जो न काटे [को०]।

अकर्तव्य¹—वि० [सं०] न करने योग्य। करने के अयोग्य। जिसका करना उचित न हो।

अकर्तव्य—संज्ञा पुं० न करने योग्य कार्य। अनुचित कर्म। उ०—सिद्ध होत विनहू जतन मिथ्या मिश्रित काज। अकर्तव्य से स्व नहू मन न धरो महराज।—श्री निवास ग्र०, पृ० ९६७।

अकर्ता¹—वि० [सं०] कर्म का न करनेवाला। कर्म से अलग। उ०—चेतन ज्यों को त्यों सदा सदा अकर्ता होय।—भक्ति० पृ० २८०।

अकर्ता²—संज्ञा पुं० सांख्य के अनुसार पुरुष का नाम जो कर्मों से निर्लिप्त रहता है।

अकर्तृक—संज्ञा पुं० [सं०] विना कर्ता का। जिसका कोई कर्ता या रचयिता न हो। जो किसी के द्वारा रचा न गया हो। कर्ता-विहीन।

अकर्तृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्तृत्व का अभाव। २ कर्तृत्व का अभिमान न होना [को०]।

अकर्तृभाव—संज्ञा पुं० [सं०] कुछ न करने का भाव। कर्म से पृथकता।

अकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ न करने योग्य कार्य। दुष्कर्म। बुरा काम। उ०—यह अकर्म शास्त्र के विरुद्ध है।—कबीर सा०, पृ० ९६४। २ कर्म का अभाव।

अकर्मक¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अकर्मिका] व्याकरण मे क्रिया के दो मुख्य भेदो मे से एक। यह उस क्रिया को कहते हैं जिसे किसी कर्म की आवश्यकता न हो कर्ता तक ही क्रिया का कार्य समाप्त हो जाय, जैसे—'लडका दौडता है,' इस वाक्य मे 'दौडता है' अकर्मक क्रिया है।

अकर्मक²—संज्ञा पुं० परमात्मा [को०]।

अकर्मण्य—वि० [सं०] कुछ काम न करनेवाला। बेकाम। निकम्मा। आलसी। उ०—'सघ ऐसे अकर्मण्य युवक को आर्य साम्राज्य के सिंहासन पर नही देखना चाहता।— स्कंद० पृ० १४०।

अकर्मण्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अकर्मण्य होने का भाव। निकम्मापन। आलसीपन [को०]।

अकर्मभोग—संज्ञा पुं० [सं०] कर्मफल के भोगने मे मुक्ति या स्वातन्त्र्य [को०]।

अकर्मशील—वि० [सं०] काम न करनेवाला। आलसी। सुस्त [को०]।

अकर्मा--वि० [स०] १ काम न करनेवाला। निकम्मा। बेकाम। कार्य के लिये अनुपयुक्त। २ कुकर्मी। बुरा काम करनेवाला (को०)। ३ स्वेच्छाचारी (को०)।

अकर्मान्वित--वि० [स०] १ दुष्कर्मी। अपराधी। २ अयोग्य। बेकार (को०)।

अकर्मिणी--सज्ञा स्त्री० [स०] पाप करनेवाली। पापिन। अपराधिनी।

अकर्मी--वि० [स० अकर्मिन्] [स्त्री० अकर्मिणी] बुरा काम करनेवाला। पापी। दुष्कर्मी। अपराधी। उ०--राजा वेश्या जात छिवारी। महा अकर्मी विषय विकारी।--कबीर म०, पृ० ४५६।

अकर्षण(पु)--सज्ञा पुं० दे० 'आकर्षण'।

अकर्षना(पु)--क्रि० अ० [स० आकर्षण] आकर्षण करना। खींचना। आकर्षना। उ०--देवकि गर्भ अकर्षि रोहिनी आप वास करि लीनो। सूर०, १०।६२२।

अकलंक¹--वि० [स० अकलङ्क] [सज्ञा अकलकता, वि० अकलंकित] निष्कलंक। दोषरहित। बेऐब। निर्दोष। बेदाग। उ०--अस बिचारि रुव तजहु असका। सबहि भाँति सकर अकलका।--मानस, १।७२।

अकलंक²--सज्ञा पुं० एक जैन लेखक जिनका नाम भट्ट अकलंक देव था (को०)।

अकलंक³†--सज्ञा पुं० [स० अकलङ्क] दाग। लाछन। ऐब। दाग। उ०--ठाने अठान जेठानिन हूँ सब लोगन हूँ अकलंक लगाए।--कोई कवि (शब्द०)।

अकलंकता--सज्ञा स्त्री० [स० अकलङ्कता] निर्दोषता। सफाई। कलकहीनता। उ०--लोभा ल लुप कल कीरति चहई। अकलकता कि कामी लहई।--तुलसी (शब्द०)।

अकलंकित--वि० [स० अकलङ्कित] निष्कलक। निर्दोष। बेदाग। साफ। शुद्ध। बेऐब। उ०--तामहँ पैठि जो निवसैं, अकलंकित ना साधु।--चित्रा०, पृ० १५०।

अकलंकी--वि० [स० अकलङ्किन्] जिसपर कोई कलक न हो। निर्दोष। बेऐब (को०)।

अकल¹--वि० [स० अ+कल] १ जिसके अवयव न हों। अवयवरहित। उ०--ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।--मानस १।५०। २ जिसके खड न हों। सर्वांगपूर्ण। अखड। उ०--अकल कला को खेल बनाया, अनत रूप दिखाइया।--गुलाल०, पृ० ३८। ३ जिसका अनुमान न लगाया जा सके। परमात्मा का एक विशेषण। उ०--व्यापक अकल अनीह अज निरगुन नाम न रूप।--मानस, १।२०५। ४. (पु) बिना गुण या चतुराई का। कलाहीन।

अकल²(पु)--वि० [स० अ+हिं० कल=चैन] विकल। व्याकुल। बेचैन। उ०--कामिनी के अकल नूपुर, भामिनी के हृदय मे भय।--अचना, पृ० ६३।

अकल³(पु)--सज्ञा स्त्री० दे० 'अक्ल'। उ०--मरदूद तुझे मरना सही। बाइम अकल न के कही।--सत तुरसी० पृ० १४।

मुहा०--अक्ल गुद्दी में होना--बुद्धि का काम न करना। अकल का छिप रहना। उ०--इन्होंने सब कुछ कहा। आपकी अकल क्या गुद्दी मे थी? आपको क्या हो गया था?'--सैर०, पृ० ४१। अकल घास चरने जाना = दे० 'अक्ल का चरने जाना'। उ०--'यहाँ प्लेग का बडा प्रकोप है, इसलिये अकल घास चरने चली गई है'।--पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ८६७। अकल गुजर जाना=बुद्धि खत्म होना। समझ का न रह जाना। उ०--अकल जाती है इस कूचे मे अय 'जामिन' गुजर पहले।--कविता कौ०, भा० ४ पृ० ५६२।

अकलखुरा--वि० [हिं० अकेल+फा० खोर=खानेवाला] १ अकेले खानेवाला। स्वार्थी। मतलबी। लालची। २ जो मिलनसार न हो। रूखा। मनहूस। ३ ईर्ष्यालु। उ०--'अकलखुरा किसी को देख नहीं सकता'। 'अकलखुरा जग से बुरा (शब्द०)।

अकलना(पु)--क्रि० स० [सं० अकलन] जानना। समझना। उ०--वीमल नरिंद इह भय अकलि, लहै न कहु निस दिन चयन।--पृ० रा० १।२०४।

अकलप¹(पु)--वि० [सं० अकल्प्य] जिसकी कल्पना न की जा सके। कल्पनातीत। उ०--मैमता अविगत रता अकलप आसा जीति। राम अमलि माता रहै जीवत मुकति अतीति।--कबीर।

अकलप²(पु)--सज्ञा पुं० [सं० आकल्प] कल्प पर्यंत। अनेक युगों तक। उ०--आसन तजि अनत जिनि जावो। अकलप छिछ्या बैठा खावो।--गोरख०, पृ० २३६।

अकलबर--सज्ञा पुं० दे० 'अकलबीर'।

अकलबीर--सज्ञा पुं० [सं० कलवीर] भाँग की तरह का एक पौधा।

विशेष--यह हिमालय पर काश्मीर से लेकर नैपाल तक होता है। इसकी जड रेशम पर पीला रग चढाने के काम मे आती है।

पर्या०--कलवीर। वच। भगजल।

अकलीम--सज्ञा स्त्री० [अ० इक्लीम] १ महाद्वीप। उ०--साह तणा छनी सकल आय वर्चे इण ठर। औ सातू अकलील मे चावो गढ़ चीतोड।--बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ९२। २ बादशाहत। राज्य। उ०--पावै जो अकलीम सात हेक सुरताणरै। नहीं जिका दे नीम ईछै लेवा आठमी।--बाँकी ग्र०, भा० ३ पृ० ५८।

अकलुष--वि० [सं०] कलुषता से रहित। निर्मल। शुद्ध। साफ। उ०--स्नेह सुख मे बढ सखि चिरकाल, दीप की अकलुष शिखी समान।--गुजन, पृ० ३१।

अकलुषित--वि० [सं०] जो कलुषित न हुआ हो। पवित्र। उ०--फिरन चाहो धरा पै मैं धरि अकलुषित पाँव। धरि हूँ तैं सेज मेरी, बास सूनो ठाँव।--बुद्ध० च०, पृ० ६।

अकलेस(पु)--वि० [स० अखिलेश] समग्र विश्व के स्वामी। उ०--ॐ नामो सिव सकल। नमो अकलेस सकल मति।--पृ० रा०, १।१८४।

अकलैमूल(पु)--वि० [प्रा० एक्कलइ=एक ही+सं० मूल] जिसके आगे पीछे कोई न हो। अकेला। तनहा उ०--सबला अकलै मूल पातर खाउँ खाउँ करै मूखा।--सूर०, १।१८६।

अकल्क—वि॰ [सं॰] [स्त्री॰ अकल्का] १ विना तलछट का। शुद्ध। २. पापरहित। निष्पाप [को॰]।

अकल्कक—वि॰ [सं॰] दे॰ 'अकल्कल' [को॰]।

अकल्कन—वि॰ [सं॰] दे॰ 'अकल्कल' [को॰]।

अकल्कल—वि॰ [सं॰] १ विनम्र। सरल। २ अहंकारशून्य। दंभ रहित। ३. ईमानदार [को॰]।

अकल्कता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] ईमानदारी। शुद्धता [को॰]।

अकल्का—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] ज्योत्स्ना। चाँदनी। [को॰]।

अकल्प—वि॰ [सं॰] १ जो नियम और प्रतिबंध का विषय न हो। अनियंत्रित। निर्बंध। २ दुर्बल। कमजोर। ३. जिसकी तुलना न की जा सके। अतुलनीय। ४ अयोग्य। अक्षम [को॰]।

अकल्पनीय—वि [सं॰] जिसकी कल्पना न की जा सके। कल्पना से परे। उ॰—विपुल अलौकिक कलान ते कलित बनि, रेल तार काज क्यों अकल्पनीय करते।—रसक॰, पृ॰ ३१६।

अकल्पित—वि॰ [सं॰] १ कल्पनारहित। अकल्पनीय। उ॰—वीर-कुल बाल ह्वै न सहिहौं त्रिकाल माँहि, लोक प्रतिकूल की अकल्पित कुचाली को।—रसक॰, पृ॰ ३२३। २ अकृत्रिम। स्वाभाविक (को॰)। ३ प्राकृतिक। नैसर्गिक (को॰)।

अकल्मष—वि॰ [सं॰] पापरहित। निर्दोष। निर्विकार। बेऐब।

अकल्य—वि॰ [सं॰] १ अस्वस्थ। रुग्ण। २ सत्य। सच [को॰]।

अकल्याण¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अमंगल। अहित।

अकल्याण²—वि॰ १ कल्याणरहित। अशुभ। २ असुंदर [को॰]।

अकव—वि॰ [सं॰] १ अवर्णनीय। २ अतुच्छ। ३ अकृपण। जो कृपण न हो [को॰]।

अकवच—वि॰ [सं॰] बिना कवच का। कवचरहित [को॰]।

अकवन(पु)†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ आक] आक का पेड़। मदार।

अकवाम—संज्ञा पुं॰ [अ॰ अकवाम कौम का बहुवचन] जातियाँ। उ॰—'दोनों अकवाम मिस्ल शीर व शकर के मिल जायँ।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ ६०।

अकवार†—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ 'अँकवार'। उ॰—धरमदास से छुटल भव-सागर, सब सों मेंटि अकवार हो।—धरम॰ शब्दा॰, पृ॰ ५१।

अकवारि—वि॰ [सं॰] दे॰ 'अकवारी' [को॰]।

अकवारी—वि॰ [सं॰] १ निस्स्वार्थ। स्वार्थहीन। २ अकृपण। जो कजूस न हो। ३ जिसे शत्रु तुच्छ न समझे। ४ प्रबल शत्रुवाला [को॰]।

अकवि—वि॰ [सं॰] जो बुद्धिमान या सुबुद्ध न हो। मूर्ख [को॰]।

अकस¹—संज्ञा पुं॰ [अ॰ अक्स] १ बैर। अदावत। विरोध। शत्रुता। उ॰—काम कोह लाई कै देखाइयत आँखि मोहि, एते मान अकस कीबे को आपु आहि को।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ २२२। २ लाँगडाँट। होड़। स्पर्धा। उ॰—हानि लाहु अनखु उछाहु बाहुबल कहि बंदी बोले बिरद अकस उपजाइकै।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ ३१२। ३ ईर्ष्या। डाह। उ॰—मोर मुकुट की चंद्रि-कनु यौं राजत नँदनंद। मनु ससि सेखर की अकस किय सेखर सतचंद।—बिहारी र॰, दो॰ ४१६।

अकस²(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ आकाश] नभ। आकाश। उ॰—सकसे का जैतवार अकसे का वाई।—रा॰ रू॰, पृ॰ ६७।

क्रि॰ प्र॰—ठानना।—दिलाना।—पड़ना।—मानना—रखना।

यौ॰—अकसदीय। अकसदियता।

अकसना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ अकस से नाम॰] १ अकस रखना। बैर रखना। शत्रुता रखना। २ लाँगडाँट रखना। बराबरी करना। आँट रखना। उ॰—साहनि सों अकसिबो हाथिन को बकसिबो, राव भाव सिंह जू को सहज सुभाव है।—मतिराम ग्रं॰, पृ॰ ४३५।

अकसमात(पु)—क्रि॰ वि॰ दे॰ 'अकस्मात्'। उ॰—(क) ऐसे में इह भावई अकसमात हुअ आइ।—पृ॰ रा॰, ६।२८। (ख) जे द्रुम नभ सों बातें करें। ते तर अकसमात भुई परें।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ २७६।

अकसर¹—क्रि॰ वि॰ [अ॰] प्राय। बहुधा। अधिकतर। बहुत करके। विशेष करके, उ॰—बदन पर अकसर गाते, भौं मिहदी से रँगते हैं।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ २४६।

अकसर²(पु)†—[सं॰ एक + सर (प्रत्य॰)] अकेले। बिना किसी को साथ लिए। तनहा। उ॰—धनि सो जीव दगध इमि सहा। अकसर जरइ न दूसर कहा।—जायसी (शब्द॰)।

अकसर³(पु)†—वि॰ अकेला। एकाकी। उ॰—करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात। कवन हेतु मन व्यग्र अति अकसर आयहु तात।—मानस, ३।१८।

अकसरुआ†—वि॰ [हिं॰ अकसर] अकेला। बिना साथ का।

अकसवा†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ अकास] दे॰ 'आकाश'। उ॰—ना हुवाँ धरती न पौन अकसवा।—कबीर श॰, भा॰ १, पृ॰ ४७।

अकसी†—वि॰ [हिं॰ अकस] अकस रखनेवाला। बैरी।

अकसीर¹—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ इक्सीर] १ वह रस या भस्म जो धातु को सोना या चाँदी बना दे। रसायन। कीमिया। उ॰—हमसे हो जरो सीम की तदबीर सो क्या खाक? दुनियाँ में वही चीज है अकसीर सो क्या खाक।—कविता कौ॰, भा॰ ४, पृ॰ ४४। २ वह औषधि जो प्रत्येक रोग को नष्ट करे। वह औषधि जिसके खाने से मनुष्य कभी बीमार न हो। उ॰—अगर अक-सीर बिन रोगी दर्द कबहूँ न जावेगा।—संत तुरसी॰, पृ॰ ३३।

अकसीर²—वि॰ अव्यर्थ। अत्यंत गुणकारी। अत्यंत लाभकारी।

अकसीरगर—वि॰ [हिं॰ अकसीर + फा॰ गर] कीमिया बनानेवाला। रसायनी [को॰]।

अकस्मात्—क्रि॰ वि॰ [सं॰] १. अचानक। एकबारगी। यकायक। उ॰—सब उतरना चाहते हैं, कुआँ में अकस्मात् जल बढ़ जाता है, सब बहते हुए दिखाई देते हैं।—स्कंद॰, पृ॰ १०७। २. संयोगवश। दैवयोग से। उ॰—महादेवी! आज मैंने अपने हृदय के मार्मिक रहस्य का अकस्मात् उद्घाटन कर दिया है।—स्कंद॰, पृ॰ २८।

अकस्मात—क्रि॰ वि॰ [सं॰ अकस्मात्] १ अचानक। अनायास। एकबारगी। यकायक। सहसा। तत्क्षण। बैठे बिठाए। औचक। अतर्कित। अनचित्ते में। २ दैवात्। दैवयोग से। संयोगवश। हठात्। आपसे आप। अकारण।

अकह¹—वि० [सं० अकथ, प्रा० अकह] न कहने योग्य। जो कही न जा सके। अकथनीय। अनिर्वचनीय। अवर्णनीय। उ०—नहीं ब्रह्म, नहिं जीव, न माया ज्यों का त्यों वह जाना। मन, बुधि, गुन, इद्रिय, नहिं जाना अलख अकह निर्बाना।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—अकह कहानी = अनिर्वचनीय कथा। उ०—निज दल जागै ज्योति पर दल दूनी होति, अचला चलति यह अकह कहानी है। पूरण प्रताप दीप अजन की राजै रेख राजत श्री रामचद्र पानिन कृपानी है।—केशव (शब्द०)।

अकह²ⓟ—वि० [सं० अकत्थ्य] मुँह पर न लाने योग्य। बुरी। अनुचित। उ०—शील सुधा वसुधा लहिकै अकहै कहिकै यह जीभ बिगारिए।—देव (शब्द०)।

अकहन‡—वि० [हिं०] कहना न माननेवाला। बेकहला।

अकहनी—वि० [हिं० अकह] न कहने योग्य। उ०—जो सब कहनी अकहनी थी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १९४।

अकहुआⓟ†—वि० दे० 'अकहुवा'।

अकहुवाⓟ†—वि० [सं० अकथ, प्रा० अकह + उवा (प्रत्य०)] जो कहा न जा सके। अकथनीय। उ०—जाकर नाम अकहुवा भाई। ताकर कहौ रमैनी भाई।—कबीर (शब्द०)।

अकाड¹—वि० [सं० अकाण्ड] बिना डाली या शाखा का।

अकाड²—क्रि० वि० अकस्मात्। सहसा। बिना कारण।

अकाडजात—वि० [सं० अकाण्डजात] होते ही मर जानेवाला। जन्मते ही मर जानेवाला।

अकाडताडव—संज्ञा पुं० [सं० अकाण्ड + ताण्डव] १ असामयिक उद्धत नृत्य। आकस्मिक उद्धत नृत्य। उ०—ह्रीं औंध हर के अकाड ताडवो के भये, भाड के समान सारो ब्रह्माड फूटैगो।—रसक०, पृ० ३५१ २ व्यर्थ की उछल कूद। व्यर्थ की बकवाद। वितडा।

अकाडपात—वि० [सं० अकाण्डपात] होते ही मर जानेवाला। जन्मते ही मर जानेवाला।

अकांडपातजात—वि० [सं० अकाण्डपातजात] जन्म लेते ही मरने वाला [को०]।

अकाडशूल—संज्ञा पुं० [सं० अकाण्डशूल] आकस्मिक तीव्र पीडा या वेदना [को०]।

अकात—वि० [सं० अकान्त] जो कात न हो। जो सुदर न हो। उ०—हरिऔध कात को अकात अबलो किहै तो, मृदुल करेजो कुल-कामिनी को छिलिहै।—रसक०, पृ० २९५।

अकाउट—संज्ञा पुं० [अं०] हिसाब। लेखा। हिसाब किताब।

अकाउंटबुक—संज्ञा पुं० [अं०] हिसाब की किताब। बही खाता। लेखा।

अकाउटेंट—संज्ञा पुं० [अं०] हिसाब जाँचनेवाला। निरीक्षक। मुनीम। लेखा लिखनेवाला।

अकाज¹—संज्ञा पुं० [सं० अकार्य; प्रा० अकज्ज] १ कार्य की हानि। नुकसान। हर्ज। विघ्न। बिगाड। उ०—हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।—तुलसी (शब्द०)। २, बुरा कार्य। दुष्कर्म। खोटा काम (क्व०)।

अकाज²—क्रि० वि० [हिं० अ + काज] व्यर्थ। बिना काम। निष्प्रयोजन। उ०—बीति जैहै बीति जैहै जनम अकाज रे।—तेगबहादुर (शब्द०)।

अकाजना¹ⓟ—क्रि० अ० [हिं० अकाज से नामधातु] १ हानि होना। खो जाना। २ गत होना। जाता रहना। मरना। उ०—सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राज अकाजेउ आजू।—तुलसी (शब्द०)।

अकाजना²—क्रि० स० अकाज करना। हर्ज करना। हानि करना। विघ्न करना। नुकसान करना।

अकाजीⓟ—वि० [हिं० अकाज + ई (प्रत्य०)] [स्त्री० अकाजिन अकाजिनी] अकाज करनेवाला। हर्ज करनेवाला। कार्य की हानि करनेवाला। नुकसान करनेवाला। बाधक। विघ्नकारी। उ०—लाज न लागति लाज अहै तुहि जानी मैं आज अकाजिनि एरी।—देव (शब्द०)।

अकाट—वि० [हिं० अ + काटना] जिसकी काट न हो। जिसका खडन न हो। अखडनीय (युक्ति तर्क इत्यादि)।

अकाट्य—वि० [सं० अ + काट्य] न काटने योग्य। जिसका खडन न हो सके। दृढ़। मजबूत। अटल। उ०—भाई कहने को तक अकाट्य तुम्हारा। पर मेरा ही विश्वास सत्य है सारा।—साकेत पृ० २१९।

यौ०—अकाट्य युक्ति।

अकातर—वि० [सं०] जो कायर न हो। जो भयभीर न हो। उ०—गति अनाहत तू सखा मत स्हज सयत रे अकातर।—अर्चना, पृ० ८८।

अकाथ¹ⓟ—क्रि० वि० [सं० अकृतार्थ प्रा० अकअत्थ] अकारथ। व्यर्थ। निष्फल। निरर्थक। वृथा। फजूल। उ०—रह्यो न परै प्रेम आतर अति जानी रजनी जात अकाथ।—सूर (शब्द०)।

अकाथ²ⓟ—वि० [सं० अकथ्य] न कहने योग्य। अकथनीय। अनिर्वचनीय। उ०—आपनो ज्यौ हीरा सो पराये हाथ ब्रजनाथ। दै कै तो अकाथ हाथ मैंने ऐसो मन लेहु।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ७४।

अकादर†—वि० [सं० अकातर] जो कादर न हो। शूरवीर। साहसी। हिम्मतवर।

अकाम¹—वि० [सं०] बिना कामना का। कामनाविहीन। इच्छा-रहित। निस्पृह। उ०—हमरें जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।—मानस, १।८९।

अकाम²ⓟ—क्रि० वि० [सं० अ + हिं० काम] बिना काम के। निष्प्रयोजन व्यर्थ। उ०—दिना मान नर जगत में धावत फिरै अकाम।—(शब्द०)।

अकाम³—संज्ञा पुं० दुष्कर्म। बुरा काम (क्व०)। उ०—गज परचौ घरनि साहन सिंगार। किन्नौ अकाम परताप पार—पृ० रा०, ५।२४।

अकामत—क्रि० वि० [सं०] अनिच्छापूर्वक। अनचाहे [को०]।

अकामत—संज्ञा पुं० [अ० इकामत] ठहरने का स्थान। निवास। आवास। उ०—उम्र अपनी रवाँ है तो इकामत से सरोकार। समझे अगर इसान तो दिन रात सफर हैं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५७४।

अकामता--संज्ञा स्त्री० [सं०] काम या इच्छा का अभाव [को०]।

अकामनिर्जरा--संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मत के अनुसार तपस्या से जो निर्जरा या कर्म का नाश होता है उसके दो भेदों में से एक। यह निर्जरा सब प्राणियों को होती है क्योंकि उन्हें बहुत से क्लेशों को विवश होकर सहना पड़ता है।

अकामहत--वि० [सं०] जो काम से प्रभावित न हो। अक्षुब्ध। शांत [को०]। जो काम से आहत न हो। [को०]।

अकामा¹--वि० स्त्री० [सं०] (स्त्री) जिसमें काम का प्रादुर्भाव न हुआ हो। यौवनावस्था के पूर्व की।

अकामा²--संज्ञा स्त्री० कामचेष्टा से रहित स्त्री।

अकामी--वि० [सं० अकामिन्] [स्त्री० अकामिनी] १. कामनारहित। इच्छाविहीन। निस्पृह। जिसे किसी बात की आकांक्षा न हो। निःस्वार्थ। उ०--भजामि ते पदांबुजम्। अकामिनां स्वधामदम्। --तुलसी (शब्द०)। २ जो कामी न हो। जितेंद्रिय।

अकाय--वि० [सं०] १ बिना शरीरवाला। देहरहित। उ०--सत्त पुरुष एक रहै अकाया। अस तासु सोइ निरगुन आया।--घट०, पृ० २७४। २ अशरीर। शरीर न धारण करनेवाला। जन्म न लेनेवाला। ३ रूपरहित। निराकार। उ०--माँगत बामन रूप धरि परबत भयो अकाय। सत्त धर्म सब छाँड़ि के धरयो पीठ पै पाय।--नंद० ग्रं०, पृ० १८१।

अकायिक--वि० [सं० अ + कायिक] शरीर से संबंध न रखनेवाला। उ०--आज अव्यभिचारिणी निज भक्ति का वरदान दो तो, निज अपार्थिव अति अकायिक स्नेह का स्मरदान दो तो।--अपलक, पृ० ४६।

अकार¹--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षर 'अ'।

अकार²--संज्ञा पुं० [सं० आकार] आकार। स्वरूप। आकृति। उ०--बिना अकार रूप नहिं रेखा कौन मिलेगी आय।--कबीर श०, भा० १, पृ० ७४।

अकार³--वि० [सं० अ + हिं० कार = कार्य] क्रियारहित [को०]।

अकारक मिलाव--संज्ञा पुं० [सं० अकारक + हिं० मिलाव] ऐसा रासायनिक मिश्रण या मिलावट जिसमें मिली हुई वस्तुओं के पृथक् गुण बने रहें और वे अलग की जा सकें।

अकारज(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अकार्य] कार्य की हानि। हानि। नुकसान। हर्ज। उ०--(क) आप अकारज आपनो करत कुसंगत साथ। पायँ कुल्हाड़ी देत है मूरख अपने हाथ।--सभाविलास (शब्द०)। (ख) ताते न मान समान अकारज जाको अयानु बड़ो अधिकारी, देव कहै कहूँ हित की हरि जू सो हितू न कहूँ हितकारी।--देव (शब्द०)।

अकारण¹--वि० [सं०] १. बिना कारण का। हेतुरहित। बिना वजह का, जैसे, 'संसार में अकारण प्रीति दुर्लभ होती है'।--(शब्द०)। उ०--'तात ! कहाँ थे ? इस बालक पर अकारण क्रोध करके कहाँ छिपे थे ?--स्कंद०, पृ० ७८। २. जिसकी उत्पत्ति का कोई कारण न हो। जो किसी से उत्पन्न न हो। स्वयंभू।

अकारण²--क्रि० वि० बिना कारण के। बेसबब। व्यर्थ। अनायास। निष्प्रयोजन, जैसे--'क्यों अकारण हँसते हो ?' (शब्द०)।

अकारत--वि० दे० 'अकारथ'।

अकारथ¹†--वि० [सं० अकार्यार्थ प्रा० अकारयत्थ, अकारअथ] बेकाम। निष्फल। व्यर्थ। निष्प्रयोजन। फजूल। उ०--बिना व्याह यह तपस्या अकारथ होती है।--सदल मिश्र (शब्द०)।

क्रि० प्र० करना।--होना।

अकारथ²--क्रि० वि० व्यर्थ। बेकार। निष्प्रयोजन। फजूल। बेफायदा। उ०--स्वारथ हू न कियो परमारथ यों ही अकारथ बैस बिताई।--पदमाकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०--खोना।--गारना = व्यर्थ ही गलाना या नष्ट करना। उ०--आछो गात अकारथ गारयो। करी न प्रीति कमललोचन सों जन्म जुआ ज्यों हारयो।--सूर (शब्द०)।--जाना उ०--ते दिन गये अकारथै संगति भई न संत।--कबीर (शब्द०)।

अकारन(पु)--वि० दे० 'अकारण'। उ०--जिमि चह कुशल अकारन कोही।--मानस, १।२६७।

अकारना(पु)--क्रि० स० दे० 'करना'। उ०--करि साधन इह साज, व्याधि नासत फल धारिय। गुरु उपदेसह पाइ, सकल आवीस अकारिय।--पृ० रा०, ६।२६।

अकारांत--वि० [सं० अकारान्त] जिसके अंत में 'अ' अक्षर हो [को०]।

अकारादि--वि० [सं०] 'अ' वर्ण से आरंभ होनेवाला [को०]।

अकारी(पु)--वि० [सं० अ + कारिन्] १. अनर्थ करनेवाला। अनर्थकारी। उ०--गौर सुप्प वपु स्याम गिरन सम नख्य अकारिय।--पृ० रा०, २।२८७। २ तीक्ष्ण (डिं०)। उ०--आरंभ अति फौज अकारी दिल्लीपति पूगो रहवारी।--राज रू०, पृ० ५६।

अकार्पण्य¹--संज्ञा पुं० [सं०] १. कृपणता का अभाव। २ दीनता का अभाव [को०]।

अकार्पण्य²--वि० जो निम्नता या दीनता दिखाए बिना प्राप्त हो [को०]।

अकार्य¹--संज्ञा पुं० [सं०] १ कार्य का अभाव। अकाज। हर्ज। हानि। २ बुरा कार्य। कुकर्म। दुष्कर्म।

अकार्य²--वि० १. जिसका कोई परिणाम न हो। फलरहित। २. अकरणीय। न करने लायक।

अकार्यचिंता--संज्ञा स्त्री० [सं० अकार्यचिन्ता] अनुचित कार्य करने का सोचविचार। अपराध करने की मनोवृत्ति [को०]।

अकाल¹--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अकालिक] १. अनुपयुक्त समय। अनवसर। अनियमित समय। ठीक समय से पहले या पीछे का समय। उ०--तूँ रहि, हौं हा सखि ! लखौं, चढ़ि न अटा, बलि बाल। सबहिनु बिनु ही ससि उदय, दीजतु अरघु अकाल।--बिहारी र०, दो० २६८। २. दुष्काल। दुर्भिक्ष। महँगी। कहत। जैसे--'भारतवर्ष में कई बार अकाल पड़ चुका है।'--(शब्द०)।

क्रि० प्र०--पड़ना।

३. घाटा। अत्यधिक कमी। न्यूनता। जैसे--यहाँ कपड़ों का अकाल नहीं है।'--(शब्द०)। ४. अशुद्ध समय (ज्यो०)।

अकाल²--वि० १ जो काला न हो। श्वेत। २ अनवसर का। असामयिक [को०]।

अकालकुसुम--[सं०] १ विना समय या ऋतु मे फूला हुआ फूल। उ०--भयदायक खल के प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी।--मानस, ३।१८।

विशेष--यह दुर्भिक्ष या उपद्रवसूचक समझा जाता है। २ असमय मे किसी वस्तु की प्राप्ति या दिखाई पड़ना (लाक्ष०)। ३ वेसमय की चीज।

अकाल कुष्माड--संज्ञा पुं० [सं० अकाल कुष्माण्ड] १ असमय या वेमौसम का कुम्हडा। २ वह कुम्हडा जो बलिदान के काम न आए। ३ वेकार वस्तु। ४ व्यर्थ या निरर्थक जन्म [को०]।

अकाल कूष्माड--संज्ञा पु० [सं० अकालकूष्माण्ड] दे० 'अकाल कुष्माड' [को०]।

अकालज--वि० [सं०] दे० 'अकालजात' [को०]।

अकालजलद--संज्ञा पुं० [सं०] असामयिक मेघ। असमय के बादल। उ०--सुखदेव चौवे ने अकालजलद की तरह उसके सयम के दिन को मलिन कर दिया था।--तितली, पृ० १५३।

अकालजलदोदय--संज्ञा पुं० [सं०] १ असमय मेघों का छा जाना। २ कुहरा [को०]।

अकालजात--वि० [सं०] जो नियत समय पर उत्पन्न न हो [को०]।

अकालज्ञ--वि० [सं०] काल या समय के ज्ञान से रहित। कालज्ञानविहीन [को०]।

अकालपक्व--वि० [स०] समय से पूर्व पका हुआ [को०]।

अकालपुरुष-- संज्ञा पुं० [स० अकाल+पुरुष] परमात्मा। ईश्वर (सिख)।

अकालभृत्--संज्ञा पुं० [स०] स्मृति के अनुसार १५ दासो मे से एक। दास बनाने के लिये जिसकी रक्षा दुर्भिक्ष मे की गई हो। अकाल मे मिला हुआ दास।

अकालमूर्ति--संज्ञा स्त्री० [स०] पुरुष जिसकी स्थापना काल या समय मे न हो सके। नित्य। अविनाशी।

अकालमृत्यु--संज्ञा स्त्री [स०] वेसमय की मृत्यु। ठीक समय से पहले की मृत्यु। थोडी अवस्था का मरना। अनायास मृत्यु। असामयिक मृत्यु। उ०--अकालमृत्यु सो मरे। अनेक नर्क मों परे।--राम च०, पृ० १६६।

अकालमेघोदय--संज्ञा पुं० [स०] दे० 'कालजलदोदय' [को०]।

अकालवृद्ध--वि० [स०] समय से पूर्व वृद्ध होनेवाला [को०]।

अकालवेला--संज्ञा स्त्री० [स०] १, उचित या नियत समय का अभाव। २ बुरा समय [को०]।

अकालसह--वि० [स०] १ जो देर या विलव न सह सके। अधीर। २ जो अधिक समय तक आक्रमण न सह सके [को०]।

अकालिक--वि० [सं०] असामयिक। विना समय का। वेमौके का।

अकाली--संज्ञा पुं० [सं० अकाल+ई (प्रत्य०)] नानकपथी साधु जो सिर मे चक्र के साथ काले रग की पगडी वाँधे रहते हैं।

अकालोत्पन्न--वि० [सं०] जो समय से पूर्व उत्पन्न हुआ हो [को०]।

अकाल्य--वि० [स०] असामयिक। असमय का [को०]।

अकावा--संज्ञा पुं० [स० अर्क, प्रा० अक्क] आक। मदार।

अकाश(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'आकाश'। उ०--टूरि कर तू गमने महि माहीं। मैं आकाश ह्वै चलौं तहाँहीं --रामचंद्रिका०, पृ० ८५६।

अकास--संज्ञा पुं० दे० 'आकाश'। उ०--रामचरन अवलवन बिनु परमारथ की आस। चाहत वारिद वूँद गहि तुलसी चढन अकास।--स० सप्तक, पृ० ४।

मुहा०--अकाश गहना = अनहोनी या असभव बात करना। उ०--बातनि गही अकास, सुनहि न आवै माँग। वोलो तौ कछू न आवै ताते मौन गहिय।--सूर (राधा०), १२७३। अकास बाँधना = असभव काम करने की कोशिश करना।

अकासकृत--संज्ञा पुं० [सं० आकश+कृत] विजली (अनेका०)।

अकासदीया--संज्ञा पुं० [स० आकाशदीपक] वह दीपक या लालटेन जो बाँस के उपर आकाश मे लटकाया जाता है। आकाशदीप।

अकासनदी(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'आकाशनदी'। उ०--उछलै जल उच्च अकास चढै जल जात दिसा दिदिमान मढै। जनु सिंधु अकासनदी अरि कै, वहु भाँति मनावत पाँ परि कै।--राम च०, पृ० १०६।

अकासनीम--संज्ञा पुं० [स० आकाशनिम्व] एक पेड जिसकी पत्तियाँ बहुत सुदर होती हैं। उ०--कुहरा भीना और महीन, झर झर पडे अकासनीम।--हरी घास०, पृ०।

अकासवानी(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'आकाशवाणी'। उ०--परसन जवहि लाग महिपाला। भै अकासवानी तेहि काला।--मानस, १।१७३।

अकासवेल--संज्ञा स्त्री० [सं० आकाश+वेलि] अमरवेलि। अमरवेल। अकासवौर।

अकासवादी(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अकासवानी'। उ०--दस हथी सुविहान साहि गोरी मुख दिन्नौं। कर अकासवादी हतार चवकौद सदिन्नौ।--पृ० रा०, २७।१२५।

अकासी--संज्ञा स्त्री० [स० आकाश] १. चील नामक पक्षी।

यौ०--घोरी अकासी या सफेद अकासी = एक प्रकार की चील जिसे क्षेमकरी भी कहते हैं। इसका सिर सफेद और शेष सारे अग लाल होते हैं इसका दर्शन शुभ माना गया है। उ०--बाँएँ अकासी धोरी आई।--जायसी (शब्द०)।

२ ताड के वृक्ष या फलों का रस। ताडी।

अकाह(पु)--वि० दे० 'अकाथ²'। उ०--कवहूँ यो वियोग विथा को सहे जो जोगिन हूँ कों अकाह-सी है।--ठाकुर०, पृ० १०।

अकिंचन¹--वि० [स० अकिञ्चन] १ जिसके पास कुछ न हो। निर्धन। धनहीन। दीन। कगाल। दरिद्र। गरीब। मुहताज। उ०--देख अकिंचन जगत लूटता तेरी छवि भोली भाली।--कामायनी, पृ० ४०। २ आवश्यकता से अधिक धन का सग्रह न करनेवाला। परिग्रहत्यागी। ३. जिसे भोगने के लिये कुछ कर्म न रह गए हों। कर्मशून्य।

अकिंचन²--संज्ञा पुं० १ निर्धन मनुष्य। गरीब आदमी। दरिद्र मनुष्य। २. जैन मत के अनुसार परिग्रह का त्याग या ममता से निवृत्ति जो दस प्रकार के साधुधर्मो में से एक है। ३ वह वस्तु जिसका कुछ मूल्य न हो (को०)।

अकिंचनता--संज्ञा स्त्री० [सं० अकिञ्चनता] १ दरिद्रता। गरीबी। निर्धनता। उ०--हरिगंध कैसे अकिंचनता तृनावली में लसति हरीतिमा विभूतिवती महती।--रस क० पृ० ३३१। २ परिग्रह का त्याग जो योग का एक यम है।

अकिंचनत्व--संज्ञा पुं० [सं० अकिञ्चनत्व] १ निर्धनता। गरीबी २ अपरिग्रह (जैन) [को०]।

अकिंचिज्ज्ञ--वि० [सं० अकिञ्चिज्ज्ञ] जो कुछ न जानता हो। ज्ञानशून्य [को०]।

अकिंचितकर--वि० [सं०अकिञ्चित्कर] १ जिसका किया कुछ न हो। असमर्थ। २ तुच्छ। अशक्त। उ०--जो अकिंचितकर था वह भी अपरूप हो गया।'--टैगोर०, पृ० २४।

अकि†--अव्य [हिं० कि] या। अथवा। कि। उ०--(क) पातक शत्रु विनाशकरी अकि राघव की उघरी तरवार है।--श्री भक्त०, पृ० ५७६। (ख) आगि जरौं अकि पानी परौं अब कैसी करौं हिय का विधि धीरौं।--घनानद, पृ० १२७।

अकितव--वि० [सं०] १ जो जुआरी न हो (को०)। २ निश्छल। सरल [को०]।

अकिति--संज्ञा स्त्री० [सं० अकीर्ति] अपयश। अकीर्ति। उ०--क्रम बढ्ढत बढ्ढै अकिति। अकिति बढ्ढहि लक दिज्जै।--पृ० रा०, ६१।१५६२।

अकिन--संज्ञा दे० 'यकीन'। उ०--आरति बुद अकिन जब वारा। सुरति विसुरति गयो सब भारा।--गुलाल०, पृ० १२९।

अकिल--संज्ञा स्त्री० दे० 'अक्ल'। उ०--(क) अकिल आरसी लै के सजनी पिया को रूप निहार हो।--कबीर श०, पृ० १३५। (ख) 'मियाँ साहब ने उत्तर दिया, भाई बात तो सच है, खुदा ने हमें भी अकिल दी है'।--भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६७७।

यौ०--अकिल अजीरन = बुद्धि का अजीर्ण। बुद्धिहीनता। उ०--चूरन खाते लाला लोग, जिनको अकिल अजीरन रोग।--भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६६३।

अकिलदाढ़--संज्ञा स्त्री० [हिं० अकिल + दाढ़] वह दाँत जो मनुष्यों के वयस्क होने पर ३२ दाँतों के अतिरिक्त निकलता है।

विशेष--कहते हैं इस दाँत के निकलने पर मनुष्य का लड़कपन जाता रहता है और वह समझदार हो जाता है।

अकिलवहार--संज्ञा पुं० [अ० अकीलकुल वहर] वैजयती का पौधा या दाना

अकिलवान†--वि० [हिं० अकिल + वान] बुद्धिमान्। अक्लवाला। अक्लमंद। उ०--सखा दरद को री हरी, हरी को दरद खास। सदा अकिलवानै गनै गनै बाल किय दास।--भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० २०७।

अकिला--वि० [स्त्री० अकिली] दे० 'अकेला १'। उ०--(क) अकिले घूमत तर अस अधे।--नद० ग्र० पृ० १४०। (ख) अकिली वन घन दसि न डेराई।--नद० ग्र० पृ० १४०।

अकिल्विष[1]--वि० [सं०] १ पापशून्य। निष्पाप। पवित्र। २ निर्मल। शुद्ध।

अकिल्विष[2]--संज्ञा पुं० पापशून्य मनुष्य। शुद्ध प्राणी।

अकीक--संज्ञा पुं० [अ० अकीक] एक प्रकार का प्रायः लाल बहुमूल्य पत्थर या नगीना।

विशेष--इसपर मुहर भी खोदी जाती है। यह बबई, बाँदा और खभात से आता है। इसकी कई किस्में यमन और बगदाद से भी आती हैं।

अकीदत--संज्ञा स्त्री० [अ० अकीदत] श्रद्धा। आस्था। उ०--'माँ राना ने कृष्ण से अपनी अकीदत का इजहार किया था।'--गोदान, पृ० २५।

अकीदतमद--वि० [अ० अकीदत + फा० मद] श्रद्धावान्। श्रद्धायुक्त। श्रद्धालु [को०]।

अकीदा--संज्ञा पुं० [अ० अकीदह्] श्रद्धा। विश्वास। उ०--दर्द दिवाने बावरे अलमस्त फकीरा। एक अकीदा लै रहे ऐसे मन धीरा।--मलूक० पृ० ७।

अकीधा--वि० [सं० अकृत] बिना किया हुआ। न किया हुआ। उ०--जिम सिणगार अकीधें मोहति प्री आगमि जाणियै प्रिया।--वेलि० दू० २२८।

अकीन†--संज्ञा पुं० [अ० यकीन] विश्वास। श्रद्धा। उ०--अकीन इमान जौहर जाहीर दोजक सवाल ना डारियै रे।--सं० दरिया, पृ० ६८।

अकीरति--संज्ञा स्त्री० दे० 'अकीर्ति'।

अकीर्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] अयश। अपयश। बदनामी।

अकीर्तिकर--वि० [सं०] अकीर्ति करनेवाला। अपयश देनेवाला। बदनाम करनेवाला। अपयश का भागी बनानेवाला। जिससे बदनामी हो।

अकीर्त्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अकीर्ति'।

अकुठ--वि० [सं० अकुण्ठ] १ जो कुठित या गुठला न हो। तेज। चोखा। २ तीव्र। तीक्ष्ण। खरा। उ०--गएउ गरुड जहँ बसइ भुसुडी। मति अकुठ हरि भगति अखडी।--तुलसी (शब्द०)। ३. उत्तम। श्रेष्ठ। उ०--जीवत ही त्रिलोक जीवत हौ शिवलोक जीवत बैकुठ लोक जो अकुठ गायो हैं।--सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ६२३। ४ कार्यक्षम। शक्तिशाली (को०)। ५ नवीन। शाश्वत। नित्य (को०)

अकुठधिष्ण्य--संज्ञा पुं० [सं० अकुण्ठधिष्ण्य] नित्य निवास। स्वर्ग [को०]।

अकुठि--वि० [सं० अकुण्ठ] दे० 'अकुठ'।

अकुठित--वि० [सं० अकुण्ठित] १ जो कुठित न हो। तेज। उ०--परम अकुठित विरोधिनी सकठता की, कुलिस सी कठिन कठोरता में ढाली है।--रसक०, पृ० ३१३। २. जिसे टाला न जा सके। अटल। उ०--हैं दानव दल दलन खल खडन ए। अरि-कुल कठ-कुठार अकुठित व्रत धरे।--पारिजात, पृ० ७।

अकुचना--क्रि० अ० [सं० आकुञ्चन] आकुचित होना। सकुचित होना। उ०--काहे कों पीय सकुचत हौ। अब ऐसे जिनि काम करो कहुँ जो अति ही जिय अकुचत हौ।--सूर०, १०।२७३२।

अकुटिल--वि० [सं०] १. जो कुटिल या टेढ़ा न हो। सीधा। सरल। २ साफ दिल का। निष्कपट। निश्छल। भोला भाला। सीधा साधा।

अकुटिलता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुटिलता का अभाव। सिधाई। २. सादापन। निष्कपटता।

अकुठाना㉙—[सं० कुण्ठन] शिथिल होना। सुस्त होना। उ०—का सों कहो कहे को मानै अंग अंग अकुठाई।—धरनी० बा०, पृ० ५।

अकुताना㉙—क्रि० अ० दे० 'उकताना'। उ०—पलटू कानो कछु कहै तनिको ना अकुताहि।—पलटू०, भा० १, पृ० १२।

अकुतोभय—वि० [सं०] जिसे किसी से अथवा कहीं भय न हो। निर्भय। निडर [को०]।

अकुत्सित—वि० [सं०] जो निंदित वा निम्न न हो [को०]।

अकुप्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ जो धातु निम्न श्रेणी की न हो, सोना या चाँदी। २ कोई भी साधारण धातु, ताँबा, पीतल आदि [को०]।

अकुप्यक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अकुप्य' [को०]।

अकुमार[1]—वि० [सं०] जो कुमार या बालक न हो। वयस्क। प्राप्तवय [को०]।

अकुमार[2]—संज्ञा पुं० इंद्र [को०]।

अकुल[1]—वि० [सं०] १ जिसके कुल में कोई न हो। कुलरहित। परिवारविहीन। उ०—निर्गुन निलज कुबेप कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली।—मानस, १।७।६ २ बुरे कुल का। नीच कुल का। अकुलीन। उ०—अकुल कुलीन होत, पाँवर प्रवीन होत, दिन होत चक्कवै चलत छत्रछाया के।—देव, (शब्द०)।

अकुल[2]—संज्ञा पुं० १ बुरा कुल। नीच कुल। बुरा खानदान। २. परम तत्व। शिव। उ०—अकुल शरनि पूरी मति होय।—प्राण०, पृ० १८१।

अकुलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुल की निम्नता [को०]।

अकुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गिरिजा। पार्वती [को०]।

अकुलात㉙—वि० [सं० आकुल] अकुलता से युक्त। व्याकुल। उ०—गज्जि भरग प्रथिराज चित्त करयौ अकुलात।—पृ० रा०, २७।१२७।

अकुलाना—क्रि० अ० [सं० आकुलन] १. ऊबना। जल्दी करना। उतावला होना। उ०—(क) 'चलते हैं, क्यों अकुलाते हो' (शब्द०)। (ख) पुनि पुनि मुनि उकसहि अकुलाहीं।—मानस, १।१३५। २ घबड़ाना। व्याकुल होना। व्यग्र या बेचैन होना। दुखी होना। उ०—(क) अतिसै देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी।—मानस, १।१८३। (ख) इन दुखिया अँखियानु कौं सुख सिरजोई नाँहि। देखैं बनै न देखतै अनदेखे अकुलाँहि।—बिहारी र०, दो ६६३। ३. विह्वल होना। मग्न होना। लीन होना। आवेग में आना। उ०—बोलि गुरु ससुर समाज सों मिलन चले, जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं।—तुलसी ग्र०, पृ०, २६६।

अकुलिनी㉙—वि० स्त्री० [सं० अकुलीना] जो कुलवती न हो। कुलटा। व्यभिचारिणी।

अकुलीन—वि० [सं०] १ बुरे कुल का। नीच कुल का। तुच्छ वंश में उत्पन्न। कमीना। क्षुद्र। उ०—कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ कोऊ कहौ रंकिनि कलंकिनी कुनारो हौं।—ब्रजमाधुरी,० पृ० ३१४। २. धरती से असबद्ध। मर्पाथिव (को०)।

अकुशल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अमंगल। अशुभ। बुराई। अहित। २ बुरा शब्द। अपशब्द (को०)।

अकुशल[2]—वि० १. जो दक्ष न हो। अनिपुण। अनाड़ी। २ भाग्यहीन। अभागा (को०)। ३ अप्रिय (को०)।

अकुशलधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध धर्मानुसार प्राणियों का पाप करने का स्वभाव।

अकुसल㉙—वि० दे० 'अकुशल-१' उ०—कव या भाँति, चितैरनि लौं लिखिबै मैं अकुशल।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ३१।

अकुसीद—वि० [सं०] सूद न लेनेवाला। लाभ न लेनेवाला [को०]।

अकुसुम—वि० [सं०] पुष्पहीन। बिना फूल का [को०]।

अकुह—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो धोखा नहीं देता। ईमानदार व्यक्ति [को०]।

अकुहक—वि० [सं०] दे० 'अकुह' [को०]।

अकूज—वि० [सं०] चुप। कूजन रहित। शांत [को०]।

अकूट—वि० [सं०] [स्त्री० अकूटा] १ जो प्राकृतिक हो। अकृत्रिम। दिव्य। अलौकिक। उ०—उतर को देइ देव मगि गएउ। सगद अकूट मँडप महँ भएऊ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २५०। २ जो व्यर्थ न हो। अमोघ (शस्त्र) (को०)। ३ जो खोटा या नकली न हो (सिक्का) (को०)।

अकूत—वि० [सं० अ + हिं० कूतना] जो कूता न जा सके। जिसकी गिनती या परिमाण न बतलाया जा सके। बेअंदाज। अपरिमित। अगणित। उ०—धन्य भूमि, ब्रजवासी धनि धनि, आनंद करत अकूत।—सूर०, १०।३६।

अकूपार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। २ वह कच्छप जो पृथ्वी के नीचे माना जाता है। बड़ा कछुआ। ३. पत्थर या चट्टान। ४ सूर्य (को०)।

अकूपार[2]—वि० १. अच्छे परिणाम या फल से युक्त। शुभ परिणाम वाला (को०)। २ असीम। अपरिमित (को०)।

अकूफ—㉙ संज्ञा पुं० [अ० वुकूफ] ज्ञान। बुद्धि। समझ। उ०—तिल में वास केहु नहिं जाना। कोइ अकूफ ही सो पहचाना।—संत० दरिया, पृ० ४१।

अकूर㉙—संज्ञा पुं० दे० 'अंकुर'। उ०—पुनि यहै अकूर नाहीं कर प्रेम हिलूर बरषाशी।—सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० २४१।

अकूर्च[1]—वि० [सं०] १ कपट या धोखा न करनेवाला। अकपटी। २ गंजा। खल्वाट। ३. जिसे दाढ़ी न हो [को०]।

अकूर्च[2]—संज्ञा पुं० बुद्ध [को०]।

अकूल—वि० [सं० अ + कूल] १ जिसका किनारा या ओर छोर न हो। उ०—आकुल अकूल बनने आती, अब तक तो है वह आती।—लहर, पृ० १२। २ अनंत। असीम। उ०—सखी मैं हो गया अकूल वा, भूल गया निज सीमा।—अनामिका, पृ० ६६।

अकूवार—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अकूपार' [को०]।

अकूहल㉙—वि० [देश०] बहुत अधिक। असह्य। उ०—खेलत हँसत करत कौतूहल। जुरे लोग जहँ तहाँ अकूहल।—सूर (शब्द)।

अकृच्छ्र[1]—संज्ञा पुं०, [सं०] १ क्लेश का अभाव । २ आसानी । सुगमता । अमकोच ।

अकृच्छ्र[2]—वि० १ क्लेशशून्य । जिसे किसी प्रकार का सकोच या कष्ट न हो । २ आसान । सुगम ।

अकृच्छ्री—वि० [सं०] कठिनाई और भय या घबराहट से मुक्त । क्लेशविहीन [को०] ।

अकृत[1]—वि० [सं०] १ बिना किया हुआ । असपादित । २ अन्यथा किया हुआ । अडबंड किया हुआ । बिगड़ा हुआ । ३ जो किसी का बनाया न हो । नित्य । स्वयभू । ४ प्राकृतिक । ५ जिसकी कुछ करनी या करतूत न हो । निकम्मा । बेकाम । कर्महीन । बुरा । मद । उ०—नाहीं मेरे और कोउ बलि, चरन कमल बिनु ठाउँ । हौं असौच, अकृत, अपराधी सम्मुख होत लजाउँ ।—सूर (शब्द०) । ६ कच्चा । अपक्व (भोजन) (को०) । ७ अविकम्पित । जो विकम्पित न हो (को०) ।

अकृत[2]—संज्ञा पुं० १ कारण । २ मोक्ष । ३ स्वभाव । प्रकृति । ४ जो पूर्ण न किया गया हो । अधूरा या अपूर्ण कार्य (को०) ।

अकृतकार—क्रि० वि० ऐसे ढग से जो पहले न किया गया हो [को०] ।

अकृतकार्य—वि० [सं० अ + कृतकार्य = सफल] असफल । विफल । उ०—'चाबी मुझे कहीं मिली नहीं । अकृतकार्य होकर मैं बेचैन हो आई' ।—सुखदा, पृ० १६६ ।

अकृतकाल—वि० [सं०] आधि या गिरवी के दो भेदों मे से एक । जिसके लिये काल नियत न हो । जिसके लिये कोई समय या मियाद न बाँधी गई हो । बेमियाद ।

विशेष—धर्मशास्त्र मे आधि या गिरवी के दो भेद किए गए गए हैं जिनमे एक अकृतकाल है अर्थात् जिसका रखनेवाला वस्तु के छुड़ाने के लिये कोई अवधि नहीं बाँधता । गैरमियादी (रेहन) ।

अकृतचिकीर्षा (संधि)—संज्ञा स्त्री० [सं०] साम आदि उपायों से नई संधि करना तथा उसमे छोटे, बड़े और समान राजाओं के अधिकारों का उचित ध्यान रखना ।

अकृतज्ञ—वि० [सं०] १ जो कृतज्ञ न हो । किए हुए उपकारो को जो न माने । कृतघ्न । नाशुकरा । २ अधम । नीच ।

क्रि० प्र०—होना ।

अकृतज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपकार न मानने का भाव । कृतघ्नता । नाशुकरापन ।

क्रि० प्र०—करना—होना ।

अकृतधी—वि० [सं०] अपरिपक्व बुद्धिवाला [को०] ।

अकृतबुद्धि—वि० [सं०] अनजान । अज्ञ । अपरिपक्व बुद्धि । उ०—असहाय (सहायकों—मत्रियों—से रहित), मूढ, लुब्ध, अकृतबुद्धि और विषयासक्त (राजा) उग्र (दड) का न्याय से सचालन नहीं कर सकता' ।—भा० इ० रू०, पृ० ६६५ ।

अकृतबुद्धित्व—संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञान । अज्ञता [को०] ।

अकृतव्रण—वि० [सं०] जिसे घाव या व्रण न हो [को०] ।

अकृतशुल्क—वि० [सं०] १ जिसने महसूल या चुंगी न दी हो । २. जिसपर महसूल न लगा हो (माल) ।

अकृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लड़की जो पुत्र के अधिकारवाली मान ली गई हो ।

अकृतात्मा—वि० [सं०] अपरिपक्व मतिवाला । अज्ञ । असयत । उ०—'दंड का बड़ा तेज है, अकृतात्मा उसे धारण नहीं कर पाते' ।—भा० ई० रू०, पृ० ६६५ । २ ब्रह्म को न जाननेवाला । जो ब्रह्मज्ञ न हो (को०) ।

अकृताभ्यागम—संज्ञा पुं० [सं०] बिना किए हुए कर्मफल की प्राप्ति ।

विशेष—न्याय या तर्कशास्त्र मे यह दोष माना गया है ।

अकृतार्थ—वि० [सं०] १. जिसका कार्य न हुआ हो । जिसका कार्य पूरा न हुआ हो । अकृतकार्य । २ जिसको कुछ फल न मिला हो । फल से वंचित । फलरहित । ३ कार्य मे अदक्ष । अपटु । अकुशल ।

अकृतार्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] असफलता । विफलता । उ०—'असत-कर्ता कलालक्ष्मी का अपमान करती है और कलालक्ष्मी उसका बदला अकृतार्थता देकर लेती है ।'—टैगोर० पृ० ४१ ।

अकृतास्त्र—वि० [सं०] जो अस्त्र का प्रयोग करने मे कुशल न हो [को०] ।

अकृतित्व—संज्ञा पुं० [सं०] अकर्मण्यता [को०] ।

अकृती[1]—वि० [सं० अकृतिन्] [स्त्री० अकृतिनी] काम न करने योग्य । निकम्मा । उ०—कहाँ जायँ, क्या करें, अभागे अकृती हम ये ?—साकेत, पृ० ४०७ ।

अकृती[2]—संज्ञा पुं० वह आदमी जो किसी काम लायक न हो । निकम्मा मनुष्य ।

अकृतैनस् —वि० [सं०] निष्पाप । निरपराध [को०] ।

अकृतोद्वाह—वि० [सं०] अविवाहित [को०] ।

अकृत्त—वि० [सं०] जो कटा न हो । जिसमे कोई काट छाँट न की गई हो [को०] ।

अकृत्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा काम । अपराध ।

अकृत्य[2]—वि० जो करने योग्य न हो । अकरणीय [को०] ।

अकृत्यकारी—वि० [सं०] अकृत्य करनेवाला । दुष्कर्मी [को०] ।

अकृत्रिम—वि० [सं०] १ अपने आप उत्पन्न । प्रकृतिसिद्ध । बे बनावटी । प्राकृतिक । नैसर्गिक । स्वाभाविक । २. असली । सच्चा । यथार्थ । वास्तविक । ३ हार्दिक । आतरिक । जैसे—'हमारा उसके ऊपर अकृत्रिम प्रेम है ।' (शब्द०) ।

अकृत्स्न —वि० [सं०] जो पूरा या समग्र न हो । अपूर्ण [को०] ।

अकृप—वि० [सं०] कृपारहित । निर्दय । निष्ठुर [को०] ।

अकृपण—वि० [सं०] जो कृपण या कजूस न हो । उदार [को०] ।

अकृपणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपणता का अभाव । उदारता [को०] ।

अकृपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपा का अभाव । कोप । क्रोध । नाराजी । उ० 'पश्चिमोत्तर प्रदेश पर अधिकतर परमेश्वर की अकृपा प्रतीत होती है ।'—प्रेमघन , भा० २, पृ० ५१ ।

अकृपालु—संज्ञा पुं० [सं० अ + कृपालु] जो कृपालु न हो । कृपारहित । निर्दय । उ०—दीनबंधु दूसरो कहँ पावों ? प्रभु अकृपालु,

कृपाल, मलायक जहँ जहँ चितहिं डोलावों ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५४७ ।

अकृश– वि० [सं०] कृशतारहित । स्वस्थ । भरापूरा । उ०—जीवन में पुलकित प्रणय सदृश, यौवन की पहली कांति अकृश ।—झरना, पृ० १० ।

अकृशलक्ष्मी[1]—वि० [सं०] प्रभूत लक्ष्मीवाला । समृद्ध । सपन्न । वैभवशाली [को०] ।

अकृशलक्ष्मी[2]—संज्ञा स्त्री० अत्यधिक समृद्धि या ऐश्वर्य [को०] ।

अकृषीवल—वि० [सं०] जो खेतिहर न हो । गैर किसान । कृषकेतर [को०] ।

अकृष्ट[1]—वि० [सं०] १ जो जुता न हो । जो खींचा न गया हो । जो जोता न गया हो [को०] ।

अकृष्ट[2]—संज्ञा पुं० वह भूमि जो जोती न जाती हो । परती भूमि [को०] ।

अकृष्टपच्य—वि० [सं०] [स्त्री० अकृष्टपच्या] बिना जोती हुई भूमि में पैदा होने और पक जानेवाला । जो बिना जोते पैदा हो । उ०—फसलें दो प्रकार की थीं, कृष्टपच्य जो खेत से उत्पन्न हों, अकृष्टपच्य जैसे नीवार आदि जंगली धान्य ।—पाणिनि०, पृ० २०५ ।

अकृष्टपच्या—वि० [सं०] १ (विशेषत भूमि) जो बिना जोते हुए धान्य, फल आदि पैदा करे । २ अत्यधिक उपजवाली । बहुत उपजाऊ [को०] ।

अकृष्टरोही—वि० [सं०] अकृष्ट या परती भूमि में स्वत उगने या अंकुरित होनेवाला [को०] ।

अकृष्ण[1]—वि० [सं०] १ जो कृष्ण या काला न हो । श्वेत । सफेद २ शुद्ध । निर्मल [को०] ।

अकृष्ण[2]—संज्ञा पुं० निष्कलंक चाँद [को०] ।

अकृष्णकर्मा– वि० [सं०] काला (पाप) कर्म न करनेवाला । निर्दोष । निरपराध । निष्पाप । पुण्यात्मा [को०] ।

अकेतन—वि० [सं०] बिना घरबार का । खानाबदोश । बेठिकाना ।

अकेतु—वि० [सं०] १ जिसका कोई चिह्न न हो । आकारशून्य । २. अपरिचेय । जिसकी पहचान न हो सके [को०] ।

अकेलⓅ—वि० दे० 'अकेला' । उ०—रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु ।— मानस, १।१७० ।

अकेला[1]—वि० [सं० एकल, प्रा० अयकेल्लय, एकल्लय] [स्त्री० अकेली] जिसके साथ कोई न हो । बिना साथी का । दुकेले का उलटा । एकाकी । तनहा, जैसे—'वह अकेला आदमी इतनी चीजें कैसे ले जायेगा' (शब्द०) । उ० –मैं अकेला, देखता हूँ आ रही मेरे दिवस की सांध्य बेला ।—अणिमा, पृ० २० ।

मुहा०—**अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता** = एकाकी या अकेले व्यक्ति द्वारा बड़ा काम न होना । **अकेला हँसता भला न रोता** = एकाकी या तनहा किसी प्रकार बात न बन पड़ना । २ अद्वितीय । यकता । निराला, जैसे—'वह इस हुनर में अकेला है ।'—(शब्द०) ।

यौ०—**अकेला दम** = एक ही प्राणी । बिलकुल एकाकी । जैसे—'हमारा तो अकेला दम है, जब तक जीते हैं खर्च करते हैं ।'—(शब्द०) । **अकेला दुकेला** = (१) एक या दो । इक्का दुक्का । (२) एकाकी ।

अकेला[2]—संज्ञा पुं० निराला । एकांत । शून्य स्थान । निर्जन स्थान; जैसे—'वह तुम्हें अकेले में पावेगा तो जरूर मारेगा' (शब्द०) ।

अकेली—वि० स्त्री० १ दे० 'अकेला—१' । उ०—अकेली भूलि परी बन माहिं ।—सूर०, १०।११०४ । २ केवल । सिर्फ । मात्र । उ०—इंद्रिन सहित चित्त हरि लै गए रही अकेली हमहीं ।—सूर०, १०।२०६६ ।

मुहा०—**अकेली लकड़ी भी नहीं जलती** = अकेले कोई भी काम नहीं हो सकता ।

यौ०—**अकेली कहानी** = एक पक्ष की ओर से किसी ऐसे समय कही गई बात जब उसको काटनेवाला दूसरे पक्ष का कोई न हो । एकतरफा बात । एकपक्षीय वार्ता, जैसे—'अकेली कहानी गुड़ से मीठी' (शब्द०) । **अकेली दुकेली** = दे० 'अकेला दुकेला', जैसे—कोई अकेली दुकेली सवारी मिले तो बैठा लेना (शब्द०) **अकेली जान** = दे० 'अकेला दम' ।

अकेले—क्रि० वि० [हिं० अकेला] १ किसी साथी के बिना । एकाकी । आप ही आप । तनहा । उ०—अदेखे अकेले बिते दिन ह्वै गए, चाहे गई चित सों कहि मोऊ ।—ठाकुर० प०७ । २ मात्र । सिर्फ । केवल, जैसे—'अकेले चिट्ठा लिखने से काम न चलेगा' (शब्द०) ।

यौ०—**अकेले अकेले** = अलग अलग । उ०—बिना समाजबद्ध हुए देश की दशा सुधारने का प्रयत्न अकेले अकेले व्यर्थ होगा' —प्रेमघन० भा० २, पृ० २७१ । **अकेले दम** = दे० 'अकेला दम', जैसे—'हम तो अकेले दम हैं, चाहे जहाँ रहें' (शब्द०) । **अकेले दुकेले** = दे० 'अकेला दुकेला' । उ० –किंतु जहाँ अकेले दुकेले या थोड़े आदमी कोई नया धंधा अख्तियार करते ...'—भा० इ० रू०, पृ० १०२१ ।

अकेश—वि० [सं०] १ बिना केश का । केशरहित । २ अल्पकेश । थोड़े केशवाला । ३ बुरे या असुंदर बालोंवाला [को०] ।

अकेहरा†—वि० दे० 'एकहरा' ।

अकैतव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कपट का अभाव । निष्कपटता । सिधाई ।

अकैतव[2]—वि० कपटरहित । सीधा । छलहीन [को०] ।

अकैया†—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष = प्रा० अक्ख, अवक, हिं० अक + ऐया (प्रत्य०)] वस्तु लादने के लिये थैला या टोकरा । खुरजी । गौन । कजावा ।

अकोट[1]Ⓟ—वि० [सं० कोटि] करोड़ों । असख्य । उ०—बाजे तबल अकोट जुझाऊ । चढ़ा कोप सब राजा राऊ ।—जायसी (शब्द०) ।

अकोट[2]—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्गीफल का वृक्ष या सुपारी [को०] ।

अकोढई†—संज्ञा स्त्री० [सं० अकठोर = सरल, + ई (हिं० प्रत्य०)] वह भूमि जो सींचने से बहुत जल्दी भर जाती है । वह भूमि जिसमें पानी ठहरा रहता है ।

अकोतरसौ[1]Ⓟ—वि० [सं० एकोत्तरशत] सौ के ऊपर एक सौ एक । उ०—खँडरा खाँड जो खड़े खड़े । वरी अकोतर सो कह हड़े ।— जायसी (शब्द०) ।

अकोतरसौ[2]Ⓟ—संज्ञा पुं० एक सौ एक की संख्या—१०१ ।

अकोप—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोप का अभाव । प्रसन्नता । खुशी । २ राजा दशरथ के आठ मंत्रियों में से एक ।

अकोपन—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० अकोपना] क्रोध से रहित । अक्रोधी [को०] ।

अकोप्यापणयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिक्के का चलन । सिक्के के चलने में किसी प्रकार की रुकावट न होना ।

अकोविद(पु)—वि० दे० 'अकोविद' । उ०—अज्ञ अकोविद अंध अभागी । काई विषय मुकुर मन लागी ।—मानस, १।११५ ।

अकोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्रोड, प्रा० कोड > हिं० अकोर अथवा सं० अङ्कक्रोड, प्रा० अंककोड, अक्कोर > हिं० अंकोर, अकोर] १ आलिंगन । अंकवार । उ०—पान करत कहूँ तृप्ति न मानत पलकनि देत अकोर ।—सूर०, १० । १७६१ । २ भेंट । नजर । उपहार । उ०—माया प्रान अकोर देकर सतगुरु पूरा । —कबीर श०, भा० ३, पृ० ३७ । ३ रिश्वत । घूस । उ०—फूले फिरत दिखावत औरन निडर भये दै हँसनि अकोर । —सूर० (राधा०), २१३१ ।

अकोरना(पु)—क्रि० स० [हिं० अकोर से नाम०] आलिंगन करना । उ०—मीन भली कहि कौन सकै घन आनंद जान सु नाक मकोरै । रीझ बिलोइए डारति है हिय, मोह़ति टोह़ति थारी अकोरै ।—घनानंद, पृ० ५७ ।

अकोरी(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंकवारी' । उ०—यहि ते जो नेक लवुधियाँ री । गहत सोई जो समात अकोरी ।—सूर० (राधा०), ३३४५ ।

अकोल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अकोर] भेंट । नजर । उपहार । उ०—अछै रंग में रँगिया दीन्हो प्रान अकोल ।—संतवानी०, भा०१, पृ० १४० ।

अकोला[1]—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोल] अंकोल का पेड़ ।

अकोला[2]—संज्ञा पुं० [सं० अग्र, प्रा० अगर, अकर > हिं० अकोर अथवा सं० कोटि प्रा० कोर > हिं० अकोर, अकोला] ऊख के सिरे पर की पत्ती । अँगारी । अकोला । अगौला । गेंडा ।

अकोविद—वि० [सं०] जो जानकार न हो । मूर्ख । अज्ञानी । अनाड़ी ।

अकोसना†(पु)—क्रि० स० [सं० आक्रोशन, प्रा० अक्कोस] बुरा भला कहना । गालियाँ देना । कोसना ।

अकौआ†—संज्ञा पुं० [सं० अर्क, प्रा० अक्क + औआ (वा) (प्रत्य०)] १ मदार । आक । २ ललरी । घंटी । कौआ ।

अकौटा†—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष, प्रा० अक्ख, अक्क, अक = धुरा + अटन = घूमना] डंडा जिस पर गड़ारी घूमती है । धुरा ।

अकौटिल्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुटिलता का अभाव । निष्कपटता । सिधाई । सरलता ।

अकौता†—संज्ञा पुं० [हिं० उकवत] दे० 'उकवत' ।

अकौवा†—संज्ञा पुं० [हिं० अकौवा] दे० 'अकौआ' ।

अकौशल—संज्ञा पुं० [सं०] कुशलता या दक्षता का अभाव । अदक्षता [को०] ।

अक्क[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्क प्रा० अक्क] १. सूर्य । रवि । उ०—गतिधीर धीर वह चली सेन, रजरंजित अंबर अक्क ऐन ।—सुजान०, पृ० १८ । २. आक । मदार । उ०—दहिसी गात कुवाँरियाँ, थल जाली बलि अक्क ।—ढोला०, दू० २८६ ।

अक्क[2]—संज्ञा पुं० [सं०] घर का कोना [को०] ।

अक्क[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्का (माँ) का संबोधन रूप, जैसे— 'हे अक्क ।'

अक्का[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] माता । माँ ।

अक्का[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] बहन [को०] ।

अक्कास—संज्ञा पुं० [अ०] चित्रकार । फोटोग्राफर [को०] ।

अक्कासी[1]—वि० [अ०] चित्रकारी । चित्र उतारना [को०] ।

अक्कासी[2]†—संज्ञा स्त्री०] [हिं० अकास] वह डाल जो नीचे झुकी हुई हो । उ०—अक्कासी आती हुई देखकर, रामलाल बोले एक डंडे से टेककर ।—कुकुर०, पृ० ५५ ।

अक्कित्त(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अकीर्ति] अकीर्ति । अपयश । उ०— अक्कित राह पच्छै फिरंग । चक्र तेग सद्धिय सुबुद्धि ।— पृ० रा०, २५। ३३५ ।

अक्किल†—संज्ञा स्त्री० [अ० अक्ल, हिं० अकिल] दे० 'अक्ल' । उ०— मेरी बिटिया के कुछ अक्किल नहीं है । बड़ी सीधी है । —दहकते०, पृ० ७६ ।

अक्के दुक्के†—क्रि० वि० दे० 'इक्के दुक्के' ।

अक्ख(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्ष; प्रा० अक्ख] आँख । नेत्र । उ०— जो कोई मेरे बच्चे को तक्के । उसकी फूटें दोनों अक्खें (शब्द०) ।

अक्खड़—वि० [सं० अक्षर = न टलनेवाला । डटा रहनेवाला, प्रा० अक्खड़] १ न मुड़नेवाला । अड़नेवाला किसी का कहना न माननेवाला । उग्र । उद्धत । उच्छृंखल । २. बिगड़ैल । झगड़ालू । ३ निःशंक । निर्भय । बेडर । उ०—'वही बनारसी गुंडे और अक्खड़ों की बोली ठोलियाँ उड़ती' ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११४ । ४. असभ्य । अशिष्ट । दुःशील । ५ उजड्ड । अनगढ़ । जड़ मूर्ख । ६. जिसे कुछ कहने या करने में संकोच न हो । स्पष्टवक्ता । खरा ।

अक्खड़पन—संज्ञा पुं० [हिं० अक्खड़ + पन (प्रत्य०)] १ अक्खड़ होने का भाव । अशिष्टता । असभ्यता । दुःशीलता । उच्छृंखलता । २ जड़ता । उजड्डपन । अनगढ़पना । ३ उग्रता । कड़ाई । उद्धतपन । कलहप्रियता । ४ निःशंकता । निर्भयता । स्पष्टवादिता । खरापन ।

अक्खना(पु)—क्रि० स० [सं० आख्यान, प्रा० अक्खाण, पं० आखना] कहना । बोलना । उ०—जो उपजै यहि बार मोहिं प्रभु आपनु अक्खिय—हम्मीर रा०, पृ० ६४ ।

अक्खर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर; प्रा० अक्खर] अक्षर । हरफ । वर्ण । उ०—अक्खर आवै जाय अखर को ताहि ठिकाना ।— पलटू० पृ० ११० ।

अक्खरिका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षरिका] एक प्रकार की क्रीड़ा या खेल । उ०—'बौद्धों के 'शील' ग्रंथ में बौद्ध साधुओं के लिये जिन जिन बातों का निषेध किया गया है, उनमें अक्खरिका नामक खेल भी शामिल है' ।—भा० प्रा० लि०, पृ० ४ ।

अक्ल काम न देना। (२) घबरा जाना। अक्ल उड़ाना = (१) हैरान करना। (२) त्रस्त करना। अक्ल उलटी होना = (१) मूर्ख या नासमझ होना। (२) कुछ का कुछ समझना। अक्ल औंधी होना = दे० 'अक्ल उलटी होना'। अक्ल का अंधा = अत्यंत मूर्ख। अक्ल का काम न करना = समझ में न आना। कर्तव्य-ज्ञान शून्य होना। उ०— मट्टी, हुजूर अक्ल नहीं काम करती'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १। अक्ल का चक्कर में आना = (१) घबराना। (२) विस्मित होना। अक्ल का चरने जाना = (१) समझ जाती रहना। (२) बदहवास होना। अक्ल का चिराग गुल होना = समझ में फर्क आना। अक्ल का दुश्मन = अत्यंत मूर्ख। बुद्धिविरोधी काम करनेवाला। अक्ल का पुतला = बहुत बुद्धिमान या ज्ञानी। उ०— बस, सारी बात यह है कि यह लोग अक्ल के पुतले हैं। कोई शै दुनियाँ के पर्दे पर ऐसी नहीं जिससे यह वाकिफ न हों।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १७। अक्ल का पूरा = बुद्धू। मूर्ख। (व्यंग्य)। अक्ल का मारा = बहुत ही मूर्ख। अक्ल की कोताही = बुद्धिहीनता। मूर्खता। अक्ल की मार = बेवकूफी। अक्ल के घोड़े दौड़ाना = (१) बहुत सोचना या विचार करना। (२) खयाली पुलाव पकाना। अक्ल के तोते उड़ना = होश ठिकाने न रहना। घबरा जाना। अक्ल के पीछे लट्ठ लिए फिरना = बुद्धिविरोधी काम करना। अक्ल के बखिए उधेड़ना = अक्ल गँवा देना। अक्ल के होश उड़ना = दे० 'अक्ल के तोते उड़ना'। उ०— और मुकाम बुलंद इस कदर कि अक्ल के होश उड़ते हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१३। अक्ल को रोना = नासमझी पर अफसोस करना। उ०— अक्ल को तो हुस्नआरा रो चुकी'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२०। अक्ल खर्च करना = सोचने समझने की कोशिश करना। अक्ल गुम होना = होशहवास जाते रहना। अक्ल गुद्दी में होना = बेवकूफ या कमअक्ल होना। अक्ल छू जाना = थोड़ी सी समझ होना। अक्ल जाती रहना = दे० 'अक्ल जाना'। अक्ल जाना = (१) समझ न रहना। (२) घबरा जाना। अक्ल ठिकाने रहना = होशहवास दुरुस्त होना। उ०— अब मैं, उसका समझाऊँ कि बहन अक्ल ठिकाने किसकी है'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२०। अक्ल ठिकाने न रहना = होश दुरुस्त न रहना। अक्ल ठीक करना = शक्ति या नीति द्वारा किसी का गर्व तोड़ना। अक्ल दंग होना = दे० 'अक्ल हैरान होना'। उ०— 'बेगम' अक्ल दंग है'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५। अक्ल देना = सीख देना समझाना बुझाना। अक्ल दौड़ाना = सोच विचार करना। जुगत बैठाना। अक्ल पर झाड़ू फेरना = नासमझी का व्यवहार करना। अक्ल पर पत्थर पड़ना = निहायत बेअक्ल होना। अक्ल पर पर्दा पड़ना = समझ जाती रहना। उ०— पूछा जो उनसे आपका पर्दा वो क्या हुआ, कहने लगीं कि अक्ल पै मर्दों के पड़ गया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६४१। अक्ल भिड़ाना = दे० 'अक्ल दौड़ाना'। अक्ल मारी जाना = बुद्धि का बेकार होना। अक्ल रफूचक्कर होना = अक्ल का काम न करना। अक्ल लड़ाना = दे० 'अक्ल दौड़ाना'। अक्ल सठियाना = बुद्धि भ्रष्ट हो जाना, जैसे—'इस बुड्ढे की अक्ल तो सठिया गई है'।—(शब्द०)।

विशेष—ऐसा कहते हैं कि साठ वर्ष बाद मनुष्य की बुद्धि जीर्ण या बेकाम हो जाती है।

अक्ल से दूर होना = समझ या बुद्धि से बाहर होना। 'अक्ल से बाहर होना = दे० 'अक्ल से दूर होना'।

यौ०—अक्ले इंसानी = मनुष्य की बुद्धि। अक्ले कुल = (१) देवदूत। फरिश्ता। (२) मूर्ख। घामड़ (व्यंग्य)। अक्ले सलीम = संतुलित बुद्धि। सद्बुद्धि। अक्ले हैवानी = पशुतुल्य बुद्धि। पशुबुद्धि।

अक्लमंद—वि० [अ० अक्ल + फा० मंद] बुद्धिमान्। चतुर। सयाना। विज्ञ। समझदार। होशियार।

मुहा०—अक्लमंद की दुम = मूर्ख (व्यंग्य)।

अक्लमंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० अक्ल + फा० मंदी] बुद्धिमानी। समझदारी। चतुराई। सयानापन। विज्ञता।

अक्लम[1]—वि० [सं०] जो थका न हो। अक्लांत। उ०—लाज का आज भूषण, अक्लम नारी का।—तुलसी०, पृ० ५०।

अक्लम[2]—संज्ञा पुं० क्लम या थकावट का अभाव [को०]।

अक्लांत—वि० [सं०] १ जो थका न हो। क्लांतिरहित। उ०— भाभी की अक्लांत परिचर्या से प्राय एक सप्ताह बाद मैं ज्वर-मुक्त हो गया'।—जिप्सी, पृ० ५५३। २। अम्लान, जो मुरझाया न हो (को०)।

अक्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पौधा [को०]।

अक्लिन्न—वि० [सं०] जो गीला या नम न हो [को०]।

अक्लिन्नवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक नेत्ररोग जिसमें पलकें चिपक जाती हैं।

अक्लिष्ट—वि० [सं०] १ बिना क्लेश का। कष्टरहित। २ सुगम। सहज। आसान। सरल। सीधा। ३. विवादरहित। निर्विवाद (को०)। ४ क्लांतिरहित। जिसे थकान न हो (को०)।

अक्लिष्टकर्मा—वि० [सं०] जो कार्य करते हुए न थके [को०]।

अक्लिष्टकारी—वि० [सं०] [स्त्री० अक्लिष्टकारिणी] दे० 'अक्लिष्ट-कर्मा' [को०]।

अक्लिष्टवर्ण—वि० [सं०] जो संदेहास्पद न हो। प्रामाणिक [को०]।

अक्लिष्टव्रत—[सं०] जो व्रत करने में न थके [को०]।

अक्ली—वि० [अ०] १ अक्ल की। बुद्धिसंगत। २. बुद्धिसंबंधी [को०]।

मुहा०—अक्ली गद्दा या गुद्दा लगाना = अटकल से बात करना।

अक्लीव[1]—वि० [सं०] १ जो नपुंसक या नामर्द न हो। २. जो कायर या कम हिम्मतवाला न हो। ३ सच्चा। जो झूठा न हो [को०]।

अक्लीव[2]—क्रि० वि० निर्भयतापूर्वक [को०]।

अक्लेद[1]—वि० [सं०] जो आर्द्र या गीला न हो। २. अलिप्त (ला०)। उ०—'अरूप अश, वर्णनाभेद के रखने पर भी पूर्ववत् अक्लेद रहा'।—प्रबंध०, पृ० १६४।

अक्लेद[2]—संज्ञा पुं० गीलेपन या आर्द्रता का अभाव [को०]।

अक्लेद्य—वि० [सं०] जो भिगोया न जा सके [को०]।

अक्लेश¹—संज्ञा पुं० [सं०] क्लेश का अभाव। क्लेशहीनता [को०]।

अक्लेश²—वि० क्लेशरहित [को०]।

अक्षतव्य—वि० [सं० अक्षन्तव्य] क्षमा न हो सकने योग्य। जिसे क्षमा न किया जा सके। क्षमा न करने योग्य। अक्षम्य। उ०—यह सुंदर ग्रंथावली टीका टिप्पणी, जीवनचरित्र, भूमिका, चित्रादि सहित अक्षतव्य विलंब और दीर्घसूत्रता के साथ सामने आई है'।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, (भू०), पृ० २०२।

अक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अक्षा] १ खेलने का पासा। २ पासों का खेल। चौसर। ३ छकड़ा। गाड़ी। ४ किसी गोल वस्तु के बीचोंबीच पिरोया हुआ वह छड या दंड जिसपर वह वस्तु घूमती है। धुरी। ५ पहिए की धुरी। ६ वह कल्पित स्थिर रेखा जो पृथिवी के भीतरी केंद्र से होती हुई, उसके आर पार दोनों ध्रुवों पर निकलती है और जिसपर पृथिवी घूमती हुई, मानी गई है। ७ तराजू की डाँडी। ८. व्यवहार। मामला। मुकदमा। ९ इंद्रिय। १०. तूतिया। ११ सोहागा। १२ आँख। नेत्र। उ० एक कह्या अनुमानि करि एक देखिए अक्ष। सुंदर अनुभव होइ जब तब देखिए प्रत्यक्ष।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८१४। १३ बहेड़ा। १४ रुद्राक्ष। १५ साँप। १६ गरुड़। १७ आत्मा। १८. कर्ष नाम की १६ माशे की एक तौल। १९ जन्मांध। २० रावण का पुत्र अक्षयकुमार। उ० —रूख निपातत खात फल रक्षक अक्ष निपाति।—तुलसी ग्रं०, पृ० २८। २१ सौवर्चल या सोचर नमक (को०)। २२ कानून (को०)। २३. द्यूत (को०)। २४ ज्ञान (को०)। २५ नाप का एक मान (को०)। २६ किसी मंदिर का निचला हिस्सा (को०)। २७ शिव (को०)।

अक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] तिनिश का वृक्ष [को०]।

अक्षकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] समकोण त्रिभुज में समकोण के सामने की भुजा, विशेषतया धूपघड़ी के लिये बनी त्रिभुजाकृत कर्ण रेखा, जिसकी छाया से समय का पता लगता है (ज्यो०)।

अक्षकाम—वि० [सं०] जिसे द्यूतक्रीडा प्रिय हो। द्यूतप्रिय [को०]।

अक्षकितव—वि० [सं०] द्यूत कुशल [को०]।

अक्षकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] रावण का एक पुत्र जिसे हनुमान ने लंका का प्रमोदवन उजाड़ते समय मारा था।

अक्षकुशल—वि० [सं०] जुआ खेलने में प्रवीण। द्यूतकुशल [को०]।

अक्षकूट—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पुतली। अक्षितारा [को०]।

अक्षकोविद—वि० [सं०] दे० 'अक्षकुशल' [को०]।

अक्षक्रीडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पासे का खेल। चौसर। चौपड़। २. द्यूतक्रीडा (को०)।

अक्षचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रियों का समूह [को०]।

अक्षज—संज्ञा पुं० [सं०] १ हीरा। २. वज्र। ३ प्रत्यक्ष ज्ञान। ४. विष्णु [को०]।

अक्षण—वि० [सं०] असमय। अनवसर [को०]।

अक्षणा—क्रि० वि० [सं० अक्षणा (अक्षि का तृतीया एक व०)] आँख द्वारा। उ०—सुनै न कान और की दृशै न और अक्षणा।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २५।

अक्षणिक—वि० [सं०] १ दृढ। स्थिर। स्थायी। २ जो क्षणिक न हो [को०]।

अक्षत¹—वि० [सं०] क्षत या घाव से रहित। व्रणशून्य। उ०—'ब्राह्मण को कभी नहीं मारना पर सब धन को बचाकर अक्षत केवल राज से बाहर कर देना चाहिये'।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १०। २ बिना टूटा हुआ। अखंडित। सर्वांगपूर्ण। समूचा।

अक्षत²—संज्ञा पुं० १ बिना टूटा हुआ चावल जो देवताओं की पूजा में चढाया जाता है। २ धान का लावा। ३ जौ। ४ कोई भी धान्य (को०)। ५ हानि या अणु न का अभाव। कल्याण (को०)। ६ शिव (को०)। ७ हिजड़ा (को०)।

अक्षतत्व—संज्ञा पुं० [सं० अक्षतत्त्व] द्यूत। द्यूत विद्या। जूआ [को०]।

अक्षतयोनि¹—वि० स्त्री० [सं०] जिसका पुरुष से संसर्ग न हुआ है।

अक्षतयोनि²—संज्ञा स्त्री० १ वह कन्या जिसका पुरुष से संसर्ग न हुआ हो। २ वह कन्या जिसका विवाह हो गया हो किंतु पति से समागम न हुआ हो।

अक्षतवीर्य¹—वि० [सं०] जिसका वीर्यपात न हुआ हो। जिसने स्त्री-संसर्ग न किया हो।

अक्षतवीर्य²—संज्ञा पुं० १ शिव। २ क्षयाभाव। ३ नपुंसक। पुंस्त्व-विहीन (व्यंग्य) [को०]।

अक्षता¹—वि० [सं०] जिसका पुरुष से संयोग न हुआ हो।

अक्षता²—संज्ञा स्त्री० १ वह स्त्री जिसका पुरुष से संयोग न हुआ हो। २ धर्मशास्त्र के अनुसार वह पुनर्भू स्त्री जिसने पुनर्विवाह तक पुरुषसंयोग न किया हो। ३ काकड़ासींगी।

अक्षत्र—वि० [सं०] १. क्षत्रियरहित। २ राजहीन [को०]।

अक्षदंड—संज्ञा पुं० [सं० अक्षदण्ड] धुरी [को०]।

अक्षदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] १ धर्माध्यक्ष। न्यायाधीश। न्यायकर्ता। २ द्यूत क्रीडा का निरीक्षक (को०)।

अक्षदाय—संज्ञा पुं० [सं०] पासे को दूसरे के हाथ में देना [को०]।

अक्षदृक्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षदर्शक' [को०]।

अक्षदेवी—वि० [सं०] जूआ खेलनेवाला। जुआरी।

अक्षद्यू—संज्ञा पुं० [सं०] द्यूत। जूआ [को०]।

अक्षद्यूत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षद्यू' [को०]।

अक्षद्यूतिक—संज्ञा पुं० [सं०] द्यूतक्रीडा में होनेवाला झगड़ा [को०]।

अक्षद्रुग्ध—वि० [सं०] १ जुए के कारण तिरस्कृत। २ जुए में असफल रहनेवाला। ३ जुए द्वारा ठगनेवाला [को०]।

अक्षद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] धुरी का सूराख [को०]।

अक्षधर¹—वि० [सं०] चक्र या धुरा को धारण करनेवाला [को०]।

अक्षधर²—संज्ञा पुं० १. पहिया। २. एक वृक्ष। शाखोट। सिहोर। ३. विष्णु। ४. चक्र या पासे को धारण करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अक्षधुर—संज्ञा पुं० [सं०] पहिए की धुरी।

अक्षधूर्त—वि० [सं०] दे० 'अक्षकुशल' [को०]।

अक्षधूर्तिल—संज्ञा पुं० [सं०] वृष। बैल [को०]।

अक्षनपुण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षनैपुण्य' [को०]।

अक्षनैपुण्य--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षकुशलता । अक्षकौशल [को०] ।

अक्षपटल--संज्ञा पुं० [सं०] १ न्यायालय । २ न्यायसंबंधी कागज पत्र रखने का स्थान । ३ न्यायकर्ता । न्यायाधीश । ४ अभिलेखों (रेकार्ड्स) को सुरक्षित रखने का स्थान । ५ वह कार्यालय या स्थान जहाँ आय व्यय आदि का विवरण रखा जाय [को०] ।

अक्षपटलाधिकृत--संज्ञा पुं० [सं०] राजकीय अभिलेख पत्रादि का तथा आय व्यय आदि का निरीक्षण करनेवाला प्रधान अधिकारी [को०] ।

अक्षपटलिक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षपटलाधिकृत' [को०]।

अक्षपराजय--संज्ञा पुं० [सं०] जुए की हार। जुए में हार [को०]।

अक्षपरि--संज्ञा पुं० [सं०] हार का पासा । पासे की वह स्थिति जिससे हार सूचित हो।

अक्षपाट--संज्ञा पुं० [सं०] १ जुआखाना । द्यूतगृह । २ अखाड़ा । मल्लशाला [को०] ।

अक्षपाटक--संज्ञा पुं० [सं०] न्यायाधीश । धर्माध्यक्ष [को०]।

अक्षपात--संज्ञा पुं० [सं०] पासा फेकने या डालने का कार्य [को०] ।

अक्षपातन--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षपात' [को०]।

अक्षपाद--संज्ञा पुं० [सं०] १ सोलह पदार्थवादी । न्यायशास्त्र के प्रवर्तक गौतम ऋषि ।

विशेष--ऐसा कहा जाता है कि गौतम ने अपने मत का खंडन करनेवाले व्यास का मुख न देखने की प्रतिज्ञा की थी। पीछे से जब व्यास ने इन्हें प्रसन्न किया तब इन्होने अपने चरणों में नेत्र करके उन्हें देखा अर्थात् अपने चरण उन्हें दिखलाया। इसी से गौतम का नाम अक्षपाद हुआ ।

२. तार्किक । नैयायिक ।

अक्षपीडा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इंद्रियों की वा शरीर की पीड़ा। २ एक लता । यवतिक्त लता [को०]।

अक्षप्रिय--वि० [सं०] जुआरी । जुआवाज [को०]।

अक्षबंध--संज्ञा पुं० [सं०] वह विद्या जिससे आसपास के लोग कुछ देख नहीं सकते । नजरबंदी ।

अक्षभा--संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षांश की छाया [को०]।

अक्षभाग--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षांश का विभाग [को०]।

अक्षभार--संज्ञा पुं० [सं०] गाड़ी का बोझ [को०]।

अक्षभूमि--संज्ञा स्त्री० [सं०] जुआ खेलने का स्थान [को०] ।

अक्षम--वि० [सं०] १ क्षमारहित । असहिष्णु । २ असमर्थ । अशक्त । लाचार। ३ ईर्ष्यालु (को०)।

अक्षमता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्षमा का अभाव। असहिष्णुता । २. ईर्ष्या । डाह । ३ असामर्थ्य ।

अक्षमद--संज्ञा पुं० [सं०] जुआ खेलने का व्यसन या उत्साह [को०]।

अक्षमा¹--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अधैर्य । अधीरता । २. क्रोध । रोष । ३ ईर्ष्या । डाह । ४ असमर्थता । लाचारी [को०]।

अक्षमा²--वि० क्षमारहित [को०]।

अक्षमात्र--संज्ञा पुं० [सं०] निमेष । निमिष [को०] ।

अक्षमापक--संज्ञा पुं० [सं०] ग्रह नक्षत्रों के निरीक्षण का यंत्र [को०] ।

अक्षमाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ रुद्राक्ष की माला । २ 'अ' से 'क्ष' तक अक्षरों की वर्णमाला । ३. वशिष्ठ की पत्नी अरुंधती ।

अक्षमाली¹--वि० [सं०] जो रुद्राक्ष की माला धारण करे ।

अक्षमाली²--संज्ञा पुं० शिव [को०] ।

अक्षम्य--वि० [सं०] जिसे क्षमा न किया जाय। क्षमा के अयोग्य। उ०--'यह तुम्हारा अक्षम्य अपराध है'।--स्कंद०, पृ० ८२।

अक्षय¹--वि० [सं०] १ जिसका क्षय न हो। अनश्वर। सदा बना रहनेवाला। कभी न चुकनेवाला । २ कल्पांतस्थायी । कल्प के अंत तक रहनेवाला। उ०--दिवा रात्रि या मित्र वरुण की बाला का अक्षय शृंगार ।--कामायनी पृ० ३६ ।

अक्षय²--संज्ञा पुं० १ परमात्मा । २ सन्यासी । ३ दरिद्र । ४ एक योग जिसमें किया हुआ पाप या पुण्य का नाश नहीं होता [को०]।

अक्षयकुमार(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अक्षकुमार'।

अक्षयगुण¹--संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

अक्षयगुण²--वि० क्षय न होनेवाले गुणों से युक्त [को०]।

अक्षयता--संज्ञा स्त्री० [सं०] नाश या क्षय का अभाव [को०]।

अक्षयतूणीर--संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा तरकस जिसके बाण कभी समाप्त नहीं होते । उ०--'अक्षय तूणीर, अक्षय कवच सब लोगों ने सुना होगा, परंतु इस अक्षय मंजूषा का हाल मेरे सिवा कोई नहीं जानता ।--स्कंद०, पृ० १७ ।

अक्षयतृतीया--संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ल तृतीया । आखा तीज। सतयुग के प्रारंभ की तिथि ।

विशेष--इस तिथि को लोग स्नान, दान आदि करते हैं। सतयुग का आरंभ इसी तिथि से माना जाता है। यदि इस तिथि को कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्र पड़े तो वह बहुत ही उत्तम समझी जाती है।

अक्षयत्व--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षयता' [को०]।

अक्षयधाम--संज्ञा पुं० [सं०] १. वैकुंठ । २ मोक्ष [को०]।

अक्षयनवमी--संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक शुक्ल पक्ष की नवमी।

विशेष--इस तिथि को लोग स्नान, दान आदि करते हैं। त्रेता युग की उत्पत्ति इसी तिथि से मानी गई है।

अक्षयनीवी--संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थायी दान वा निधि । वह मूल संपत्ति जिसका ब्याज मात्र व्यय किया जाय। उ०--साथ ही श्रीमती ने यह इच्छा प्रकट की कि इस संबंध में हिंदी में उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक अक्षय नीवी की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय ।--मु० द०, परिचय, पृ० २ ।

अक्षयपद--संज्ञा पुं० [सं०] मोक्ष [को०]।

अक्षयपुरुहूत--संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

अक्षयलोक--संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग। वैकुंठ [को०] ।

अक्षयवट--संज्ञा पुं० [सं०] प्रयाग और गया में एक बरगद का पेड़।

विशेष--यह अक्षय इस लिये कहलाता है कि पौराणिक लोग इसका नाश प्रलय में भी नहीं मानते ।

अक्षयवृक्ष--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षयवट'।

अक्षया--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पुण्य तिथि [को०]।

अक्षयिणी¹--संज्ञा स्त्री० [सं०] उमा। पार्वती [को०]।

अक्षयिणी²--वि० स्त्री० क्षय न होनेवाली [को०]।

अक्षयी--वि० [सं०] जिसका नाश न हो। अनश्वर [को०]।

अक्षय्य--वि० [सं०] १ अक्षय, अविनाशी। २ सदा बना रहनेवाला। समाप्त न होनेवाला।

अक्षय्यनवमी--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अक्षयनवमी' [को०]।

अक्षय्योदक--संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध में पिंडदान के अनंतर ब्राह्मण के हाथ पर 'अक्षय्य हो' कहकर छोड़ा जानेवाला मधु-तिल-युक्त जल।

अक्षर¹--वि० [सं०] १ अच्युत। स्थिर। अविनाशी। नित्य। २. क्रियाशून्य [को०]।

अक्षर²--संज्ञा पुं० १ अकारादि वर्ण। हरफ। मनुष्य के मुख से निकली हुई ध्वनि को सूचित करने का संकेत या चिह्न।

क्रि० प्र०--जाना।--जोड़ना।--टटोलना।--पढ़ना।--लिखना।

मुहा०--अक्षर घोंटना = अक्षर लिखने का अभ्यास करना। अक्षर से भेंट न होना = अपढ़ रहना। मूर्ख रहना। बिधना के अक्षर = कर्मरेख। भाग। लिखन।

२ ओंकार। ॐ। उ०--बिन अक्षर कोई न छूटे, अक्षर अगम अगाध।--कबीर सा०, पृ० ६६०। ३. आत्मा। ४. ब्रह्म। चैतन्य पुरुष। ५ आकाश। ६ जल। ७ धर्म। ८ तपस्या। ९ मोक्ष। १० अपामार्ग। चिचड़ा। ११ शिव (को०)। १२ विष्णु (को०)। १३ जीव (को०)। १४ परमात्मा (को०)। १५ खड्ग (को०)। १६ स्वर (को०)। १७ शब्द (को०)। १८ समय का एक परिमाण। काष्ठा का पाँचवाँ हिस्सा (को०)।

अक्षरक-- संज्ञा पुं० [सं०] अक्षर। स्वर [को०]।

अक्षरकर--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धार्मिक ध्यान [को०]।

अक्षरक्रम--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षरों का अनुक्रम। वर्णानुक्रम [को०]।

अक्षरगणित--संज्ञा पुं० [सं०] बीजगणित [को०]।

अक्षरचंचु--संज्ञा पुं० [सं० अक्षरचञ्चु] साफ और स्पष्ट लिखनेवाला व्यक्ति। सुलेखक [को०]।

अक्षरचट्टा ⓤ--वि० [सं० अक्षर + देश० चट्ट = चाटना] अक्षर चाटनेवाला। कोरा पढ़ा लिखा। पठित मूर्ख। उ०--'तब रूपचंद नंदा ने अपने मन में विचारी, जो यह बात परमानंद सोनी कहा जाने ? यह तो अक्षरचट्टा है'।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६०।

अक्षरचण--संज्ञा पुं० [सं०] सुलेखक [को०]।

अक्षरचन--संज्ञा पुं० दे० 'अक्षरचण' [को०]।

अक्षरचुंचु--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षरचंचु' [को०]।

अक्षरच्युतक--संज्ञा पुं० [सं०] किसी अक्षर को हटा देने से भिन्न अर्थ देनेवाला अक्षरों का एक प्रकार का खेल [को०]।

अक्षरछंद--संज्ञा पुं० [सं० अक्षरछन्द] वर्णिक छंद। वर्णवृत्त (को०)।

अक्षरजननी--संज्ञा स्त्री० [सं०] लेखनी। कलम (को०)।

अक्षरजीवक--संज्ञा पुं० [सं०] लिखकर जीविका कमानेवाला व्यक्ति। लेखक। लिपिकार [को०]।

अक्षरजीविक--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षरजीवक। लेखक [को०]।

अक्षरजीवी--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षरजीवक' [को०]।

अक्षरज्ञान--संज्ञा पुं० [सं०] लिखने और पढ़ने की योग्यता। अक्षरबोध [को०]।

अक्षरतूलिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षर जननी। लेखनी [को०]।

अक्षरधाम--संज्ञा पुं० [सं०] १. मोक्ष। निर्वाण। २ ब्रह्मलोक [को०]।

अक्षरन्यास--संज्ञा पुं० [सं०] १ लेख। लिखावट। २ तंत्र की एक क्रिया जिसमें किसी मंत्र के एक एक अक्षर को पढ़कर हृदय, नाक, कान, आँख आदि छूते हैं। ३ वर्ण। अक्षर (को०)।

अक्षरपंक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षपङ्क्ति] पंक्ति नामक वैदिक छंद का एक भेद जिसके चार पादों के वर्णों का योग २० होता है।

अक्षरपूजक--वि० सं० [सं०] पुराण आदि प्राचीन धर्मग्रंथों में लिखी बातों को पूरी तौर से माननेवाला [को०]।

अक्षरबंध--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वर्णवृत्त [को०]।

अक्षरभूमिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] लिखने की वस्तु। पटिया। पाटी [को०]।

अक्षरमाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्णमाला [को०]।

अक्षरमुख¹--वि० [सं०] जो अक्षरों का अभ्यास करता हो। अक्षर सीखनेवाला।

अक्षरमुख²--संज्ञा पुं० १ शिष्य। छात्र। २. अक्षरों का आरंभ अर्थात् 'अ' (को०)।

अक्षरमुष्टिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] चौसठ कलाओं में से एक कला। मुष्टिका के विशेष आकार से अक्षरों को जानने की कला। उँगलियों के संकेत द्वारा भावव्यंजना की पद्धति। उ०--'अक्षर मुष्टिका देशभाषा ज्ञान दोहृदकरण'।--वर्ण०, पृ० २०।

अक्षरयोजना--संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्णों की योजना। अक्षरविन्यास [को०]।

अक्षरवर्जित--वि० [सं०] १. अपढ़। निरक्षर। २. परमात्मा का एक विशेषण [को०]।

अक्षरविन्यास--संज्ञा पुं० [सं०] १ लिपि। लिखावट। २. हिज्जे। वर्णविन्यास। वर्णक्रम [को०]।

अक्षरवृत्त--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'वर्णवृत्त' [को०]।

अक्षरव्यक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षर का स्पष्ट उच्चारण [को०]।

अक्षरश--क्रि० वि० [सं०] अक्षर अक्षर। एक एक अक्षर। लफ्ज ब लफ्ज। संपूर्णतया। बिलकुल। सब। उ०--'उसका कहना अक्षरश सत्य है (शब्द०)।

अक्षरशत्रु¹--संज्ञा पुं० [सं०] निरक्षर या मूर्ख व्यक्ति। अनपढ़ और जाहिल आदमी।

अक्षरशत्रु²--वि० जिन्हें अक्षर का ज्ञान न हो। निरक्षर। अक्षरशून्य। उ०--हमारा संगीत अक्षरशत्रु अपढ़ व्यक्तियों के हाथ में चला गया।--संपूर्णा० अभि० ग्र० पृ० २३२।

अक्षरसंस्थान--संज्ञा पुं० [सं०] लिखावट। लिखन। लिपि [को०]।

अक्षरसमाम्नाय--संज्ञा पुं० [सं०] 'अ' से 'ह' तक के वर्णों का समूह। वर्णमाला [को०]।

अक्षराग--संज्ञा पुं० [सं० अक्षराङ्ग] १ लिखावट। लिपि। २. लिखने का साधन। [को०]।

अक्षरा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भाषा। २ शब्द [को०]।

अक्षराक्षर--संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान का एक प्रकार या प्रक्रिया [को०]

अक्षराज--संज्ञा पुं० [सं०] द्यूत क्रीडा मे आसक्त व्यक्ति [को०]।

अक्षरारंभ--संज्ञा पुं० [सं० अक्षरारम्भ] एक सस्कार जिसमे पहले पहल वालकों को अक्षर लिखना सिखाया जाता है [को०]।

अक्षरार्थ--संज्ञा पुं० [सं०] वर्णो का अभिप्राय। शब्दो का अर्थ। वाच्यार्थ वा यौगिक अर्थ [को०]।

अक्षरी[१] ⓤ--वि० [सं० अक्षर+ई] अक्षरयुक्त। वर्णवाली उ०--द्वै अक्षरी दूजी नाडी। दोय पप पान अमान।--गोरख०, पृ० २५१।

अक्षरी[२]--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वरसात। वर्षा ऋतु (को०)। २ किसी शब्द के लिखने या उच्चारण करने मे अक्षरो का क्रम। हिज्जे।

अक्षरेखा--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सीधी रेखा जो किसी गोले पदार्थ के भीतर केंद्र से होती हुई दोनो पृष्ठों पर लव रूप मे गिरे। धुरी की रेखा।

अक्षरौटी--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षरावर्त्तन, प्रा० अक्खरावट्टन] १ वर्णमाला। २ लेख लिपि का ढग। अछरौटी। ३ सितार पर गीत निकालने या वोल वजाने की क्रिया।

अक्षार्य[१]--वि० [सं०] वर्ण या अक्षर से सबद्ध [को०]।

अक्षार्य[२]--संज्ञा पुं० साम का एक भेद [को०]।

अक्षवती--संज्ञा स्त्री० [सं०] द्यूत क्रीडा। पासो का खेल [को०]।

अक्षवाट--संज्ञा पुं० [सं०] १ जुआ खेलने का स्थान। पासे का फलक। द्यूतगृह। जुआखाना। २ वह वस्तु जिसपर पासा खेला जाय (को०)। ३ कुश्ती लडने की जगह। अखाडा।

अक्षवाम--संज्ञा पुं० [सं०] वेईमान जुआडी। वह जो द्यूतकर्म मे कपट करे [को०]।

अक्षविक्षेप--संज्ञा पुं० [सं० अक्ष+विक्षेप] कटाक्ष। अपाग दृष्टि [को०]।

अक्षविद्--वि० [सं०] [स्त्री० अक्षवेत्री] १ जुआ खेलने के ढग को जाननेवाला। द्यूतकुशल। २ व्यवहारकुशल [को०]।

अक्षविद्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्यूतकला। २ जुआ [को०]।

अक्षवृत्त[१]--संज्ञा पुं० [सं०] राशिचक्र रूपी कोणविहीन क्षेत्र [को०]।

अक्षवृत्त[२]--वि० १ जुआ खेलने का आदी। द्यूतासक्त। २ जुए के समय घटित [को०]।

अक्षशाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] द्यूतक्रीडागृह। जुआखाना [को०]।

अक्षशालिक--संज्ञा पुं० [सं०] जुआघर का प्रधान अधिकारी [को०]।

अक्षशाली--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षशालिक' [को०]।

अक्षशौड--संज्ञा पुं० [सं० अक्षशौण्ड] दे० 'अक्षकुशल [को०]।

अक्षसूक्त--संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद के अतर्गत अक्ष या द्यूत सबंधी सूक्त [को०]।

विशेष--यह अक्षसूक्त ऋग्वेद मडल १०, अध्याय ३ का ३४ वाँ सूक्त है जिसमे १४ ऋचाएँ हैं। इनमे १, ७, ६ और १२ वीं ऋचा पासे की स्तुतिपरक हैं और १३ वीं कृषि की स्तुति मे हैं। शेष ऋचाओ मे जुए का खेल और जुआडियों की स्थिति का अकन किया गया है।

अक्षसूत्र--संज्ञा पुं० [सं०] १ रुद्राक्ष की माला। २ जपमाला जिसमे गूँथी जाय वह सूत (को०)।

अक्षसेन--संज्ञा पुं० [सं०] भारत वर्ष का एक प्राचीन राजा जिसका नाम मैत्र्युपनिषद् मे आया है।

अक्षस्तुष--संज्ञा पुं० [सं०] वहेडा [को०]।

अक्षहीन--वि० [सं०] नेत्ररहित। अधा।

अक्षहृदय--संज्ञा पुं० [सं०] १ जुए के खेल की दक्षता। २ जुए की भीतरी वातें या चालें [को०]।

अक्षहृदयज्ञ--वि० [सं०] जुए मे पूरी तौर से दक्ष [को०]।

अक्षांति--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षान्ति] १ ईर्ष्या। डाह। जलन। हसद। २ दे० 'अक्षमा' (को०)।

अक्षांश--संज्ञा पुं० [सं०] १ भूगोल पर उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव से होती हुई एक रेखा मान कर उसके ३६० भाग किए गए हैं। इन ३६० अंशो पर से होती हुई ३६० रेखाएँ पूर्व पश्चिम भूमध्यरेखा के समानातर मानी गई हैं जिनको अक्षाश कहते हैं। अक्षांश की गिनती विपुवत् या भूमध्यरेखा से की जाती है। २ वह कोण जहाँ पर क्षितिज का तल पृथ्वी के अक्ष से कटता है। ३ भूमध्यरेखा और किसी नियत स्थान के वीच मे याम्योत्तर का पूर्ण झुकाव या अतर। ४ किसी नक्षत्र का क्रांतिवृत्त के उत्तर या दक्षिण की ओर का कोणातर। ५ कोई स्थान जो अक्षाशो के समानातर पर स्थित हो।

अक्षाग्र--संज्ञा पुं० [सं०] धुरा या धुरे का सिरा [को०]।

अक्षाग्रकील--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जुए और लट्ठे को जोडनेवाली खूँटी। २ पहिए को रोकने के लिये लगाई हुई खूँटी या कील [को०]।

अक्षाग्रकीलक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षाग्रकील' [को०]।

अक्षार[१]--वि० [सं०] क्षारशून्य। जिसमे क्षार न हो।

अक्षार[२]--संज्ञा पुं० प्राकृतिक लवण या नमक [को०]।

अक्षारलवण--संज्ञा पुं० [सं०] १. वह लवण जिसमे क्षार न हो। वह लवण जो मिट्टी से न निकला हो।

विशेष--कोई कोई सेंधा और समुद्री लवण को अक्षार लवण मानते हैं और व्रतादि मे उसको ग्राह्य समझते है।

२ वह हविष्य भोजन जिसमे नमक न हो और जो अशौच और यज्ञ मे काम आता हो, जैसे--दूध, घी, चावल, तिल, मूंग जौ आदि।

अक्षावपन--संज्ञा पुं० [सं०] वह फलक जिसपर पासा फेंका जाय [को०]।

अक्षावली--संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्राक्ष की जपमाला [को०]।

अक्षावाप--संज्ञा पुं० [सं०] १ जुआरी। जुआ खेलनेवाला। २ द्यूतगृह का स्वामी या निरीक्षक। ३ द्यूत का निरीक्षण करनेवाला सरकारी कर्मचारी [को०]। ४ आय व्यय का गणनाध्यक्ष।--हिंदु० स०, पृ० १०५।

अक्षावापन--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षपटल' [को०] ।

अक्षि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आँख । नेत्र । २ दो की संख्या ।--भा० प्रा० लि०, पृ० १२० ।

अक्षिकंप--संज्ञा पुं० [सं० अक्षिकम्प] पलकों के काँपने की स्थिति । आँख की फड़कन । आँख चमकाना [को०] ।

अक्षिक--संज्ञा पुं० [सं०] १ एक वृक्ष । आल का पेड़ । २ दे० 'अक्षक' (को०) ।

अक्षिकूट--संज्ञा पुं० [सं०] १ आँख के ऊपर का ललाट का मुख्य भाग । २ आँख की पुतली । ३ नेत्रगोलक [को०] ।

अक्षिकूटक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षिकूट' [को०] ।

अक्षिगत--वि० [सं०] १ देखा हुआ । दृष्ट । २ विद्यमान । उपस्थित । ३ द्वेष का पात्र । द्वेष्य [को०] ।

अक्षिगोल--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षिगोलक' [को०] ।

अक्षिगोलक--संज्ञा पुं० [सं०] आँख का डेला । आँख की पुतली ।

अक्षिणी--संज्ञा स्त्री० [सं०] गैरमनकूला जायदाद या अचल संपत्ति से संबद्ध आठ प्रकार की शर्तों या सुविधाओं में से एक [को०] ।

अक्षित¹--वि० [सं०] १ क्षय न होनेवाला । जिसका क्षय न हुआ हो । २ अघट । न घटनेवाला । ३ जिसे चोट आदि न लगी हो [को०] ।

अक्षित²--संज्ञा पुं० १ जल । २ दस लाख की संख्या [को०] ।

अक्षितर--संज्ञा पुं० [सं०] पानी । जल [को०] ।

अक्षितवसू--संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम [को०] ।

अक्षितारक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षितारा' [को०] ।

अक्षितारा--संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख की पुतली ।

अक्षितावसु --संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षितवसु' । [को०] ।

अक्षिति¹--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० अनश्वरता [को०] ।

अक्षिति²--वि० अनश्वर । नाश न होनेवाला [को०] ।

अक्षिनिमेष--संज्ञा पुं० [सं०] १ आँख की चमक । २ क्षण । पल [को०] ।

अक्षिपक्ष्म--संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पलकों के अग्रभाग के बाल । बरौनी [को०] ।

अक्षिपटल--संज्ञा पुं० [सं०] १ आँख के कोए पर की झिल्ली । आँख का परदा । २ आँख का एक रोग । माँड़ा (को०) ।

अक्षिपाक--संज्ञा पुं० [सं०] आँख की सूजन [को०] ।

अक्षिव--संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'अक्षीव' [को०] ।

अक्षिभू--वि० [सं०] १ प्रत्यक्ष । दृश्य । प्रगट । २ सत्य । वास्तविक [को०] ।

अक्षिभेषज--संज्ञा पुं० [सं०] १ आँख की दवा । २ पट्टिकालोध्र नामक वृक्ष [को०] ।

अक्षिमत्--वि० [सं०] आँखवाला [को०] ।

अक्षिलोम--संज्ञा पुं०, [सं०] दे० 'अक्षिपक्ष्म' [को०] ।

अक्षिव--संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'अक्षीव' [को०] ।

अक्षिविकूणित--संज्ञा पुं० [सं०] कटाक्ष [को०] ।

अक्षिविकूशित--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षिविकूणित' [को०] ।

अक्षिविक्षेप--संज्ञा पुं० [सं०] कटाक्ष [को०] ।

अक्षिश्रवा--संज्ञा पुं० [सं० अक्षिश्रवस्] सर्प । चक्षुश्रवा [को०] ।

अक्षिस्पंदन--संज्ञा पुं० [सं० अक्षिस्पन्दन] आँख फड़कना ।

अक्षीक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षक' या 'अक्षिक' [को०] ।

अक्षीण--वि० [सं०] १ जो न घटे । क्षीण न होनेवाला । जो कम न हो । २ अविनाशी । नाशरहित ।

अक्षीव¹--वि० [सं०] जो मतवाला न हो । चैतन्य । धीर । शांत ।

अक्षीव²--संज्ञा पुं० १ सहिजन का पेड़ । २ समुद्री नमक ।

अक्षीव--संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अक्षीव' [को०] ।

अक्षु¹-- वि० [सं०] शीघ्र । तुरंत । [को०] ।

अक्षु²--संज्ञा पुं० एक प्रकार का जाल [को०] ।

अक्षुण--वि० [सं०] दे० 'अक्षुण्ण' [को०] ।

अक्षुणता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अक्षयता । २ अनुभवहीनता [को०] ।

अक्षुण्ण--वि० [सं०] १ बिना टूटा हुआ । अभग्न । उ०--अक्षुण्ण अतुलता रहे सदैव अतुल की ।--साकेत, पृ० २१९ । २ अकुशल । अनुभवशून्य । अनाड़ी । ३. अपराजित । सफल (को०) । ४. समूचा । अन्यून (को०) । ५ लगातार । व्यवधानरहित (को०) ।

अक्षुद्र¹--वि० [सं०] १ जो क्षुद्र या छोटा न हो । २ जो नीच या तुच्छ न हो [को०] ।

अक्षुद्र²--संज्ञा पुं० शिव का एक नाम [को०] ।

अक्षुध्य--वि० [सं०] १ जिससे क्षुधा न लगे । भूख मिटानेवाला, भूख नष्ट करनेवाला । २ जिसको भूख न लगती हो । क्षुधारहित [को०] ।

अक्षुब्ध--वि० [सं०] क्षोभरहित । जिसे क्षोभ न हो [को०] ।

अक्षेत्र¹--वि० [सं०] १ क्षेत्रशून्य । बिना क्षेत्र का । २ परती । अकृष्ट [को०] ।

अक्षेत्र²--संज्ञा पुं० १ निकृष्ट या बुरी भूमि । २ ज्यामिति की विकृत आकृति । मंद बुद्धि का छात्र । उपदेश के अयोग्य शिष्य [को०] ।

अक्षेत्रज्ञ--वि० [सं०] १ पथभ्रांत । भटका हुआ । २ आध्यात्मिक ज्ञान से शून्य । ३ क्षेत्र या शरीर के तत्व को न जाननेवाला । देहाभिमानी [को०]

अक्षेत्रविद्--वि [सं०] दे० 'अक्षेत्रज्ञ' [को०] ।

अक्षेत्री--वि० [सं०] बिना क्षेत्र का । बिना खेतवाला [को०] ।

अक्षेम--संज्ञा पुं० [सं०] अमंगल । अशुभ । अकुशल । बुराई ।

अक्षै (पु)--वि० [सं० अक्षय] दे० 'अक्षय' । उ०--अक्षै वृक्ष एक राशि बनाई । अग्रवास तहाँ रही समाई ।--कबीर सा०, पृ० १५३४ ।

अक्षोट--संज्ञा पुं० [सं०] अखरोट का वृक्ष या फल ।
पर्या०--कर्पराल । कदराल । अक्षोड । आक्षोट । आक्षोड ।

अक्षोड--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षोट' [को०] ।

अक्षोडक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षोट' [को०] ।

अक्षोधुक--वि० [सं०] जो भूखा न हो । क्षुधारहित । क्षुधाहीन [को०] ।

अक्षोनि (पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षौहिणी] दे० 'अक्षौहिणी' । उ०--जुरे नृपति, अक्षोनि अठारह, भयो युद्ध अति भारी ।--सूर (शब्द०) ।

अक्षोभ¹--संज्ञा पुं० [सं०] १ क्षोभ का अभाव। अनुद्वेग। शांति। दृढ़ता। धीरता। स्थिरता। २ हाथी बाँधने का खूँटा।

अक्षोभ²--वि० १ क्षोभरहित। चचलता से रहित। उद्वेगशून्य। २. शात। स्थिर गभीर।

अक्षोभ्य¹--वि० [सं०] धीर। शात। गभीर [को०]।

अक्षोभ्य²--सज्ञा पुं० १ तंत्रोक्त एक ऋषि। २ बुद्ध का एक नाम। ३ बौद्धो के मत से एक बहुत बड़ी सख्या [को०]।

अक्षोभ्यकवच--सज्ञा पुं० [सं०] तंत्रशास्त्रोक्त एक प्रकार का कवच [को०]।

अक्षौरिम--सज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्रोक्त वे नक्षत्र जिनमे क्षौर-कर्म वर्जित है [को०]।

अक्षौहिणी--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूरी चतुरगिनी सेना। सेना का एक परिमाण। सेना की एक नियमित सख्या। इसमे १०९३५० पैदल, ६५६१० घोडे, २१८७० रथ और २१८७० हाथी होते थे। २ ग्यारह की सख्या।--भा० प्रा० लि०, पृ० १२०।

अक्ष्ण¹--वि० [सं०] अखड। व्यापक [को०]।

अक्ष्ण²--सज्ञा पुं० काल। समय [को०]।

अक्स--सज्ञा पुं० [अ०] १ प्रतिबिंब। छाया। परछाईं। उ०--नाजुक हैं, न खिचवाऊँगा तस्वीर मैं उनकी। चेहरा न कही अक्स के बदले उतर आए।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६९२।

क्रि० प्र०--आना।--डालना।--पडना।--लेना।

२ तसवीर। चित्र। उ०--आईनए दिल मे है तेरा अक्स। दिन रात मैं तुझको देखता हूँ।--शेर०, भा० १, पृ० ३०६।

क्रि० प्र०--उतारना।--खींचना।

३. फोटो [को०]।

अक्सर--क्रि० [अ०] वि० दे० 'अकसर'। उ०--आँखो मे अक्सर उनकी आँसू निकल गए हैं। क्या क्या भरे गुलिस्ताँ सावन मे जल गए हैं।--शेर०, भा० ४, १८२।

अक्सी--वि० [फा०] १ प्रतिबिंब या छाया सबधी। २. अक्स सबधी। अक्स से बना [को०]।

अक्सी तसवीर--सज्ञा पुं० [फा०] फोटो। आलोक चित्र।

अक्सीर¹--वि० [अ०] अव्यर्थ। अकसीर। उ०--जाहिद शराबे नाब की तासीर कुछ न पूछ। अक्सीर है जो हल्क के नीचे उतर गई।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५५५।

अक्सीर²--सज्ञा पुं० कीमिया। अक्सीर। एक दवा [को०]।

अखग(पु)--वि० [सं० अखण्ड] न खंगनेवाला। न चुकनेवाला। कम न होनेवाला। अविनाशी।

अखड--वि० [सं० अखण्ड] १ जिसके खड या टुकडे न हो। अटूट। अविच्छिन्न। सपूर्ण। समूचा। पूरा। उ०--ज्ञान अखड एक सीतावर। मायावस्य जीव सचराचर।--मानस, ७।७८। २ जिसका क्रम या सिलसिला न टूटे। जो बीच मे न रुके। लगातार। अनवरत। उ०--जहाँ अखड शांति रहती है वहाँ सदा स्वच्छद रहें।--प्रेम०, पृ० ३२। ३ निर्विघ्न। बेरोक। उ०--रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचड। जरत बिभीषन राखेउ दीन्हेउ राज अखड।--मानस, ५।४९।

यौ०--अखंड ऐश्वर्य। अखड कीर्ति। अखड पुण्य। अखंड प्रताप। अखड यश। अखड राज्य। अखंड वृष्टि।

अखड द्वादशी--सज्ञा स्त्री० [स० अखण्डद्वादशी] अगहन सुदी द्वादशी। मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की बारहवी तिथि [को०]।

अखडधार--संज्ञा पुं० [सं० अखण्डधार] न टूटनेवाली धार। झडी। लगातार वृष्टि। उ०--सलिल अखडधार धर टूटत किए इद्र मन सादर।--सूर० १०।८५८।

अखडन¹--वि० [सं० अखण्डन] १ खडित न होनेवाला। अखडनीय। २ समग्र। पूर्ण। ३ अखडित। अविच्छिन्न [को०]।

अखडन²--सज्ञा पुं० १ विरोध का अभाव। अविरोध। २ काल। समय। ३ परमात्मा। ४ खडन न करना [को०]।

अखडनीय--वि० [स० अखण्डनीय] १ जिसके टुकडे न हो सकें। जिसका खंड न हो सके। जो काटा न जा सके। २ जिसके विरुद्ध न कहा जा सके। पुष्ट। अकाट्य।

अखडपाठ--सज्ञा पुं० [सं० अखण्ड+पाठ] वह पाठ जो बिना क्रम टूटे लगातार चले।

अखडर(पु)--सज्ञा पुं० [सं० आखण्डल] इद्र। सुरपति। उ०--नहिं सुमत कैमास राय गोयद अखडर।--पृ० रा०, ६६। २३८।

अखडल¹(पु)--वि० [सं० अखण्ड+हिं० ल (प्रत्य०)] १ अखड। अटूट। अविच्छिन्न। उ०--मनु नखत मडल मे अखडल पूर्ण चद्र सुहाय।--रघुनाथ (शब्द०) २ समूचा। सपूर्ण। पूरा। उ०--तवा सो तपत धरा मडल अखडल औ मारतड मडल हवा सो होत भोर तें।--बेनी (शब्द)।

अखडल²(पु)--सज्ञा पुं० [स० आखण्डल; प्रा० अखडल] इद्र। सुरपति। उ०--जाय वृजमडल के बीच मैं अखडल ह्वाँ मरजी तिहारी मानि रह्यो वहु भाँति हैं।--दीन० ग्र०, पृ० ६०।

अखड सौभाग्य--सज्ञा पुं० [स० अखंड+सौभाग्य] जीवन पर्यंत स्त्रियो के अविधवा होने का सौभाग्य। जीवन पर्यंत अविधवा रहने की स्थिति [को०]।

अखड सौभाग्यवती--वि० [स० अखण्ड+सौभाग्यवती] जीवन पर्यंत सुहागिनी रहनेवाली [को०]।

अखडा द्वादशी--सज्ञा स्त्री० [स० अखण्डा द्वादशी] अगहन सुदी द्वादशी दे० 'अखडद्वादशी' [को०]।

अखडानद--वि० [स० अखंड+आनद] पूर्ण आनदस्वरूप। उ०--जदपि अखडानद नदनदन ईश्वर हरि।--नद० ग्र०, पृ० ४६।

अखडित--वि० [स० अखण्डित] जिसके टुकडे न हो। विभाग-रहित। अविच्छिन्न। उ०--सोइ सर्वज्ञ तज्ञ सोइ पडित। सोइ गुन गृह विज्ञान अखडित।--मानस, ७।४९। २ सपूर्ण। समूचा। पूरा। परिपूर्ण। उ०--वे हरि सकल ठौर के बासी। पूरन ब्रह्म अखडित मडित पडित मुनिन विलासी।--सूर०, १०।३०६६। जिसमे कोई रुकावट न हो। बाधा-रहित। निर्विघ्न, जैसे--उसका व्रत अखडित रहा (शब्द०)।

उ०—सुग्रा ग्रमीस दीन्ह बड साजू । बड परताप ग्रखडित राजू । —जायसी ग्रं०, पृ० ३२। ४ लगातार । अनवरत । सिलसिलेवार। उ०—(क) धार ग्रखटित बरसत झर झर । कहत मेघ धावहु व्रज गिरिवर ।—सूर०, १०।९३६ । (ख) उमडी अँखियान ग्रखडित धार ।—कोई कवि (शब्द०) ।

अख—सज्ञा पु० [देश०] वाग। वगीचा (डिं०) ।

अखगर—सज्ञा पुं० [फा० अख्गर] चिनगारी। अग्निकण। स्फुलिंग। उ०—अखगर को छिपा राख मे मैं देख के समझा । 'तावाँ' तो तहे खाक भी जलता ही रहेगा ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २१८।

अखगरिया—सज्ञा पु० [फा० अख्गर + हिं० इया (प्रत्य०)] वह घोडा जिसके बदन से मलते वक्त चिनगारी निकलती है।

विशेष—ग्रश्वशास्त्र या शालिहोत्र के अनुसार ऐसा घोडा ऐबी समझा जाता है।

अखज ⓟ—वि० [स० अखाद्य; प्रा० ग्रखज्ज] १ न खाने योग्य । ग्रभक्ष्य। उ०—झख मारत ततकाल ध्यान मुनिवर सो धारत । विहरत पख फुलाय नही खज ग्रखज विचारत ।—दीन० ग्र०, पृ० २०९ । २ निकृष्ट । बुरा। खराव। उ०—वैरागी ग्रस चाल बताऊँ। तजे अखज तब हस कहाऊँ ।—कबीर सा०, पृ० २२१।

अखटट—संज्ञा पु० [स०] प्रियाल का पेड [को०] ।

अखट्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अशिष्ट व्यवहार । २ वचपन की वात [को०] ।

अखडा†—सज्ञा पुं० [स० अखात] ताल के वीच का गडहा जिसमे मछलियाँ पकडी जाती हैं। चँदवा ।

अखड़ैत[1] ⓟ†—सज्ञा पुं० [हिं० अखाड़ा + ऐत (प्रत्य०)] मल्ल। पहलवान। वलवान पुरुष। उ०—जंगा जीत तपोवल जालम ग्रोप वडे ग्रखडैत।—रघु० रू०, ६२।

अखड़ैत[2]†—वि० अखाडा मे कुश्ती लडनेवाला जोर करनेवाला। अखाडिया।

अखत—वि० [स० अक्षत] विना टूटा हुग्रा। ग्रक्षत। सपूर्ण। समग्र। उ०—गिराजे सद ज्यागे जिंदगाणी, उभै विरद धरियाँ ग्रखत ।—रघु० रू०, पृ० २४।

अखतियार ⓟ†—सज्ञा पु० [ग्र० इख्तयार] दे० 'इख्तियार' उ०—ग्रव नाटक करनेवालों को ग्रखतियार है कि सव नाटक हिंदी भाषा मे करें चाहे हिंदी, उर्दू, मारवाडी ग्रौर व्रजभाषा मे करें। —श्रीनिवास ग्र० (नि०), पृ० १०।

अखती †—सज्ञा स्त्री० [स अक्षय तृतीया, प्र० ग्रक्खय—तइया, तीय] ग्रक्षय तृतीया । उ०—ग्रखती की तीज तजवीज कै सहेली जुरी, वर के निकट ठाढी भावते को घेर के । ठाकुर०, पृ० १७।

अखतीज—सज्ञा स्त्री० [सं० अक्षय तृतीया' प्रा० अक्खय-तइया, तीय] अक्षय तृतीया, । ग्राखातीज।

अखत्यार†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इख्तियार'। उ०—'हम तो ग्राज्ञाकारिणी दासी ठहरी, हमारो का ग्रखत्यार है' ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४४७।

अखनकुमारी ⓟ†—वि० स्त्री० [सं० अक्षत, अक्षय + कुमारिका] अक्षत कुमारी। जिसका कौमार्य भग न हुग्रा हो। उ०—सुंदर सवही सौं मिली कन्या ग्रखनकुमारि । वेश्या फिरि पतिव्रत लियौ भई सुहागनि नारि।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७५५।

अखना ⓟ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ग्राखना'। उ०—माद चरण की कला ग्रठारह ग्ररट गीत कवि मक्र ग्रखै ।—रघु० रू०, प० ६२।

अखनी—सज्ञा स्त्री० [ग्र० यखनी] मास का रसा। शोरवा। उ०—ग्रपनी वटि वामति मास परे। हठिवास सुवासिनी ग्राभ भरे।—पृ० रा०, ६३।१००।

अखवार—सज्ञा पुं० [ग्र० खवर का वहु०] १ समाचारपत्र। सवाद पत्र। उ०—खीचो न कमानो का न तलवार निकालो । जव तोप मुकाविल है तो ग्रखवार निकालो ।—कविता कौ० भा० ४, पृ० ६२०। २ दे० 'खवर'। उ०—हुंगे हम तीव मे वहुत ग्रखवार। कुछ मैं लिखता हूं उनसते यार।—दक्खिनी०, पृ० २१८।

अखवारनवीस—सज्ञा पुं० [ग्र० ग्रखवार, फा० + नवीस] वह जो समाचार लिखता हो। समाचारलेखक । समाचारपत्र सपादक। पत्रकार।

अखवारनवीसी—सज्ञा स्त्री० [ग्र० ग्रखवार + फा० नवीसी] ग्रखवारनवीस का काम। पत्रकारिता [को०]।

अखवारी—वि० [ग्र० ग्रखवार + हिं० ई (प्रत्य०)] ग्रखवार सवधी। ग्रखवार का [को०]।

अखय ⓟ—वि० [सं० ग्रक्षय, प्रा० ग्रक्खय] जिसका क्षय न हो। न छीजनेवाला। ग्रविनाशी। नित्य। चिरस्थायी। उ० —खसमहि छोडि छेम ह्वै रहई। होय ग्रखीन ग्रखय पद गहई।—कवीर (शब्द०)।

अखयकुमारी ⓟ—वि० स्त्री० [सं० ग्रक्षयकुमारी] दे० 'ग्रखनकुमारी'। उ०—माह मास सीय पडे ग्रति सार । समजती धन ग्रखय कुमारि।—वी० रासो० पृ० २१।

अखयवट ⓟ—सज्ञा पुं० [सं० ग्रक्षयवट] दे० 'ग्रक्षयवट'। उ०—सगम सिंघासन सुठि सोहा। छत्र ग्रखयवट मुनि मन मोहा।—मानस, २।१०५।

अखर[1] ⓟ—सज्ञा पुं० [सं० अक्षर; पा०, प्रा० ग्रक्खर] ग्रक्षर। वर्ण। हर्फ। उ०—म द प ग्रखर ए मध्य तज झ ट क ग्रत मत ग्राण।—रघु० रू०, पृ० ८।

अखर[2] ⓟ—वि० दे० 'ग्रक्षर'।

अखर[3]—सज्ञा स्त्री० [हिं० ग्रखरना] ग्रखरने का भाव या स्थिति। उ०—'हाँ, सदूक खोलकर लाना कोई कठिन काम नहीं। ग्रखर तो उसे होती है जिसे कुग्राँ खोदना पडता है।—काया०, पृ० ३०।

अखरताली†—सज्ञा स्त्री० [सं० ग्रक्षर + तल] हस्ताक्षर। हस्तलेख।

अखरना—क्रि० ग्र० [सं० खर=तीव्र, कटु] १ दुखदाई होना। कष्टकर होना। उ०—चहचह चिरी धुनि कहकह केकिन की घहघह घनसोर सुनतै ग्रखरिहै ।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० २२९। २. वुरा लगना। खलना। उ०—'चिट्ठी लगाना सत्तीदीन की स्त्री को ग्रखरता।'—बिल्ले०, पृ० १६।

अखरा¹ (पु)—वि० [सं० अ = नहीं + खरा = सच्चा] जो खरा या सच्चा न हो। झूठा। कृत्रिम। बनावटी। उ०—वार विलासिनी ती के जपै अखरा अखरा नखरा अखरा के।—पद्माकर (शब्द०)।

अखरा² (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर] वर्ण। अक्षर। हरफ। उ० (क)—नीते कौन, कौन अखरा की रेफ, कैकै, कहा कहै ऋर मीत राखैं कहा कहि धाप दम।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० १९६। (ख) रसवंत कवितन का रस ज्यों अखरान के ऊपर ह्वै झलके।—काई कवि (शब्द०)।

अखरा³†—संज्ञा पुं० [देश०] बिना कुटे हुए जौ का भूसी मिला आटा जिसे गरीब लोग खाते हैं।

अखरावट—संज्ञा पुं० [सं० अक्षरावलि, अक्षरावर्त] १ वर्णमाला। अक्षरसमूह। २ वर्णानुक्रम के आधार पर निर्मित पद्यसमूह, जैसे जायसी का अखरावट।

अखरावटी (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अखरावट + ई (प्रत्य०)] दे० 'अक्षरौटी'–१। उ०—पंडित पढ अखरावटी टूटा जोरेहु देखि।—जायसी ग्रं०, ३०३।

अखरावलि (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षरावलि] अक्षरपंक्ति। उ०—प्रकटित पृथिमी पृथु मुख पंकज अखरावलि मिसि थाइ एकत्र।—वेलि०, दू० २६३।

अखरोट¹ (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अखरावट'- १। उ०—पुराजै, सुध अखरोट पिए श्रै दस दाप अगाध।—रघु० रू०, पृ० १३।

अखरोट²—संज्ञा पुं० [सं० अक्षोट, प्रा० अक्खोड] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो हिमालय पर भूटान से लेकर कश्मीर और अफगानिस्तान तक होता है।

विशेष—खासिया की पहाड़ियों तथा अन्य स्थानों पर भी यह लगाया जाता है। इसकी लकड़ी बहुत ही अच्छी, मजबूत और भूरे रंग की होती है और उसपर बहुत सुंदर धारियाँ पड़ी होती है। इसकी मेज, कुरसी, बंदूक के कुंदे, संदूक आदि बनते हैं। इसकी छाल रँगने और दवा के काम में भी आती है। इसका फल अंडाकार, बहेड़े के समान होता है। सूखने पर इसका छिलका बहुत कड़ा हो जाता है जिसके भीतर से टेढ़ा मेढ़ा गूदा व मीठी गरी निकलती है। गूदे में से तेल भी बहुत निकलता है। डंठल और पत्तियों को गाय बैल खाते हैं। अखरोट बहुत गर्म होता है।

अखरोट जंगली—संज्ञा पुं० [हिं०] जायफल।

अखरौटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अखरावटी'।

अखर्व—वि० [सं०] १. जो छोटा न हो। बड़ा। लंबा। २. जो क्षुद्र या बौना न हो [को०]।

अखर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [को०]।

अखल—संज्ञा पुं० [सं०] गुणी एवं अच्छा वैद्य या डाक्टर [को०]।

अखलाक—संज्ञा पुं० [अ० अखलाक] १ सदाचार। उत्तम आचार। २. सुजनता। शिष्टता [को०]।

अखलि—वि० [देश० अक्खलिय] आकुल व्याकुल। उ०—दुतिया द्वै कुल उपरत धीर, उनमन मनवाँ अखलि सरीर।—गोरख०, पृ० १८१।

अखसत—संज्ञा पुं० [सं० अक्षत] चावल (डिं०)।

अखाँगना¹ (पु)—क्रि० स० [हिं० खाँगना] मारना। उ०—कहै पदमाकर अखाँग्यो तुम लकपति।—पदमाकर ग्रं०, पृ० २४८।

अखाँगना² (पु)—क्रि० स० [सं० अ = नहीं + हिं० खाँग = कमी, त्रुटि] त्रुटि न करना। कोताही या कमी न करना। उ०—हमहूँ कलकपति ह्वै कोई अखाँग्यो है।—पदमाकर ग्रं०, पृ० २४८।

अखा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आखा'।

अखाज (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अखाद्य'। उ०—गम्य अगम्य विचार न करहीं, खाज अखाज नहीं चित धरहीं।—कबीर सा०, पृ० ४६४।

अखाड (पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अखाडा'। उ०—छुद्र घटि मोहहिं नर राजा। इंद्र अखाड आइ जनु साजा।—जायसी ग्रं०, पृ० ४७।

अखाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० अक्षवाट; प्रा० अक्खाडय] १. वह स्थान जो मल्लयुद्ध के लिये बना हो। कुश्ती लड़ने या कसरत करने के लिये बनाई हुई चौखूँटी जगह जहाँ की मिट्टी खोदकर मुलायम कर दी जाती है। मल्लशाला। उ०—'चौदह पंद्रह साल के लड़के अखाडा गोड चुके थे छप्पर की थूनियाँ पकड़े हुए बैठक कर रहे थे'।—काले०, पृ० ३। २ साधुओं की सांप्रदायिक मंडली। जमायत, जैसे—निरंजनी अखाडा, निर्वाणी अखाडा, पंचायती, अखाड़ा। ३ साधुओं के रहने का स्थान। संतों का अड्डा। ४ तमाशा दिखानेवालों और गाने-बजाने वालों की मंडली। जमायत। जमावड़ा। दल, जैसे—'आज पटेबाजों के दो अखाड़े निकले' (शब्द०)। ५ सभा दरबार। मजलिस। ६ रंगभूमि। रंगशाला। परियों का अखाड़ा। नृत्यशाला। उ०—लड़ते हैं परियों से कुश्ती पहलवाने इश्क हैं, हमको नासिख राजा इंदर का अखाडा चाहिए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३५४। ७ आँगन। मैदान।

मुहा०—अखाडा उखाड़ना = अखाड़े के काम में लोगों द्वारा रुचि न लेना। अखाड़ा न जमना। अखाडा गरम होना = अखाड़े में काफी लोगों का आना या भीड़भाड़ होना। अखाडा जमना = १ अखाड़े का काम ठीक ढंग से होना। २. अखाड़े में शामिल होनेवाले और दर्शकों की चहल पहल होना। ३. किसी जगह बहुत से आदमियों का इकट्ठा होना। ४. किसी मजलिस, सभा या गोष्ठी में चहल पहल रहना। अखाडा न लगना = अखाड़े का काम न होना। अखाड़ा बंद रहना। उ०—'और लड़कों को समझा दिया कि कोई आवे तो कह दे कि अखाडा न लगेगा'।—काले०, पृ० २७। अखाडा निकलना = अखाड़े से संबद्ध लोगों का सामूहिक रूप में निकलना। अखाडा बदना = चुनौती देना। ललकारना। अखाड़ा लगना = दे० 'अखाडा जमना'। अखाड़े का जवान = कुश्ती या कसरत से पुष्ट शरीर का व्यक्ति। अखाड़े में आना = लड़ने के लिये सामने आना। अखाड़े में उतरना = दे० 'अखाड़े में आना'।

अखाड़िया¹—वि० [हिं० अखाड़ा + इया (प्रत्य०)] १ अखाड़े के कामों में सधा हुआ। दंगली पहलवान। २. केवल खाड़ मझपने में ही लड़नेवाला। दंगल में न लड़नेवाला। ३. किसी विषय के ज्ञान में बेजोड़।

अखाड़िया²—संज्ञा पुं० कुश्ती लड़नेवाला पहलवान।

अखाढ़(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपाढ' । उ०--मास अखाढ उन्नत नवमेघ —विद्यापति, पृ० १३१ ।

अखात¹--संज्ञा पुं० [पुं०] १ बिना खोदा हुआ स्वाभाविक जलाशय । ताल । झील । २ खाड़ी । ३ मनुष्य द्वारा निर्मित जलाशय [को०] ।

अखात²--वि० बिना खोदा हुआ [को०] ।

अखाद(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अखाद्य' । उ०--खाद अखाद न छांडे अब लौं सब मैं साधु कहावै ।--सूर०, १।१८६ ।

अखाद्य--वि० [सं०] १ न खाने योग्य । अभक्ष्य, जैसे, गामास आदि । २ खाने की वस्तु से भिन्न (को०) ।

अखाधि(पु)--वि० [अखाद्य, प्रा० अखादिम] दे० 'अखाद्य' । उ०--की ब्रह्म ज्ञान होये मेथुन मथन करे खाधि अखाधि सनचारा ।--सं० दरिया, पृ० १२१ ।

अखानी--संज्ञा स्त्री० [सं० अखात + हिं० ई (प्रत्य०)] एक टेढी छडी या लकडी जिससे दँवरी या गल्ला पीटने के समय खेत से कटकर आए हुए डठलों को बीच मे करते जाते हैं ।

अखार¹--संज्ञा पुं० [सं० अक्ष, पा०, प्रा० अक्ख = धुरी + हिं० आर (प्रत्य०)] मिट्टी का छोटा सा लोदा जिसे कुम्हार लोग चाक के बीच में रख देते हैं और जिसपर थोथा रखकर नरिया उतारते है ।

अखार²(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० अखाडा] दे० 'अखाडा' उ०--नट नाटक पतुरिन ओ बाजा । आनि अखार सबै तहँ साजा ।--पदमावत, पृ० ६०१ ।

अखारना†--क्रि० स० [सं० अक्षालन] चारो ओर से अच्छी तरह धोना; जैसे अखारना, पखारना ।

अखारा(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अखाडा' । उ०--तहाँ देखि अप्सरा अखारा । नृपति कछू नहिं वचन उचारा ।--सूर०, ६।४।

अखित(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षत' । उ०--दिय अखित सीस केदार साज ।--पृ० रा०, ५८६१ ।

अखिद्र--वि० [सं०] जो थका न हो । खेदरहित [को०] ।

अखिन्न--वि० [सं०] १ खिन्नतारहित । खेदविहीन । उ०--सकेत किया मैंने अखिन्न जिस ओर कुडली छिन्न भिन्न ।--अनामिका, पृ० १२५ । २ क्लेशरहित । दुखरहित । ३ प्रसन्न । विमल । उ०--तेहिं प्रौढोक्ति कहै सदा जिन्ह की बुद्धि अखिन्न ।--भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ४६।४ अश्रात । अक्लात (को०) ।

अखियात¹(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आख्यात] आश्चर्य । अचभा । उ०--ए अखियात जु याउधि आउध, सजे रुकम हरि छेद सोजि ।--वेलि०, दू० १३३ ।

अखियात²(पु)--वि० १ प्रसिद्ध । आख्यात । उ०--अखियातो वातों वचै जरा काल डर छड्ड ।--बाँकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० ४६ । २ समग्र । सब । सपूर्ण । उ०--रिण पडियाँ भ्रम राख अभँग अखियात उबारै ।--रा० रू०, पृ० ३८ । ३ दे० 'अक्षय' उ०--पात सुजस अखियात पयपै दातव असमर वात दुवै ।--रघु० रू०, पृ० १६ ।

अखिर (पु)--वि० [सं० अक्षर, प्रा० अक्खर, (पु)अखिर + हिं० ई (प्रत्य०)] अक्षरवाला । आखर । उ०--प्यड ब्रह्मड सम तुलि व्यापीले, एक अखिरी हम गुरमुपि जाणी ।--गोरख०, पृ० १०१ ।

अखिल--वि० [सं०] १. संपूर्ण । समग्र । बिलकुल । पूरा । सब । उ०--अखिल विश्व यह मोर उपाया ।--मानस, ७।८७ । २ सर्वांगपूर्ण । अखड । उ०--तुमही ब्रह्म अखिल अविनासी भक्तन सदा सहाय ।--सूर (शब्द०) । ३ जो अकृष्ट या विना जोता हुआ न हो । खेती के योग्य (को०) ।

यौ०--अखिल विग्रह = समग्र विश्व जिसका शरीर हो, ईश्वर ।

अखिलात्मा--संज्ञा पुं० [सं०] समग्र विश्व जिसकी आत्मा हो । विश्वात्मा । ब्रह्म [को०] ।

अखिलिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वनस्पति । करेली [को०] ।

अखिलेश--संज्ञा पुं० [सं०] समग्र सृष्टि का स्वामी । ईश्वर [को०] ।

अखिलेश्वर--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अखिलेश' । उ०--मग सती जग जननी भवानी । पूजे शिव अखिलेश्वर जानी ।--मानस, १।४८ ।

अखीन(पु)--वि० [सं० अक्षीण, अक्खीण] न छीजनेवाला । न घटनेवाला । चिरस्थायी । अविनाशी । नित्य । स्थिर । उ०--खसमहि छांडि छेम ह्वै रहई । होय अखीन परमपद गहई ।--कबीर (शब्द०) ।

अखीर¹--संज्ञा पुं० [अ० अखीर] १. अत । छोर । २ समाप्ति ।

अखीर²--वि० खत्म । समाप्त । उ०--अखीर हो गए गफलत में दिन जवानी के, वहारे उम्र हुइ कब खिजाँ नही मालूम ।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३८० ।

अखीरी¹--वि० [अ० अखीर + ई (प्रत्य०)] दे० 'आखिरी' ।

अखीरी²(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अखिरी' । उ०--एक अखीरी एकंकार जपीला, सुंनि अस्थूल दोइ वाँणी ।--गोरख०, १०१ ।

अखुटना(पु)--क्रि० अ० [सं० *आ + √स्फोट (क्षेपे), प्रा० *खोट खुट (ला०) अथवा देश०] लडखडाना । उ०--अखुटत परत सु विहवल भयो, डरत डरत सूती गृह गयो ।--नद० ग्र०, पृ० २३१ ।

अखुटित(पु)--वि० [सं० अ + कुण्ठ, प्रा० *अखुट, > अखुट, अथवा सं० अ = नहीं + √क्षोट = क्षय, प्रा० *अखोट > अखुट + इत (प्रत्य०)] लगातार । अनवरत । निरतर । उ०--अखुटित रटत सभीत ससकित, सुकृत शब्द नहिं पावै ।--सूर०, १।४८ ।

अखूट--वि० [सं० अ + √खुड् = तोडना अथवा सं० *अखोड्य, प्रा० *अखुड्, अखुड्ड > अखूट] १ जो तोड़ा या खडित न किया जा सके । अटूट । उ०--सात दीप सात सिंधु थरक थरक करें जाके डर टूटत अखूट गढ राना के ।--अकबरी०, पृ० १४३ । २ जो न घटे या न चुके । अखड । अक्षय । बहुत । अधिक । उ०--(क) नैना अतिही लोभ भरे । सगहिं सग रहत वै जहँ तहँ बैठत चलत खरे । काहू की परतीति न मानत जानत सबहिनि चोर । लूटत रूप अखूट दाम को स्याम वस्य यौं भोर ।--सूर०, १०।२८८४ । (ख) झूठ न कहिए साँच को साँच न कहिए झूठ । साहब तो मानै नही लागै पाप अखूट ।--दादू (शब्द०) ।

अखेट(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आखेट] दे० 'आखेट' । उ०--सबै कहै अखेट सो करै, विषय भोग जीवन सहरै ।--सूर०, ४।१२ ।

अखेटक(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आखेटक] दे० 'आखेटक' । उ०--(क) एक दिवस को अखेटक गयो, जाइ अविका वन तिय भयो ।--सूर०, ६।२। (ख) इक दिन राव अखेटक चढ्यो, विरही मृग मारन रिस भरयो ।--नद० ग्र०, पृ० १४० ।

अखेटकीⓟ—वि० [हि० अखेटक + ई (प्रत्य०)] शिकारी। अहेरी। आखेटी। उ०—पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि, अटत गहन बन अहन अखेटकी।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२०।

अखोटिक—संज्ञा पुं० [सं० आखोटिक] १ शिशिर निवारी वृक्ष। २. कोई भी वृक्ष [को०]।

अखेद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दुःख का अभाव। प्रसन्नता। निर्द्वंद्वता।

अखेद[2]—वि० दुःखरहित। प्रसन्न। हर्षित। उ०—है हरखा परतार प्रभु कारण करन अखेद। यह विचारि चहुँआन के मन उपज्यौ निरवेद।—हम्मीर०, पृ० ६८।

अखेदित्व—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत में लगातार भाषण देने का वाणी का एक गुण [को०]।

अखेदी—वि० [सं०] क्लांतिरहित। अथकित [को०]।

अखेलतⓟ—वि० [सं० अ + खेल = खेलना = बिना खेलते हुए] १ अचंचल। अलोल। भारी। २ आलस्य भरा उनींदा। उ०—भारी रस भीजे भाग भावनि भूजन भरे, भावते सुभग उपभोग रस मोहगे। खेलत हीं खेलत अखेलत ही आखिन मों खिनखिन खीन ह्वै खरे ही खिन खोइगे।—देव (शब्द०)।

अखैⓟ—वि० [सं० अक्षय, पा०, प्रा० अक्खय] अक्षय। अविनाशी। उ०—मन मस्त हस्ती मिल्या घट लूटि ले अखै भंडार।—गोरख०, पृ० २७।

यौ०—अखैपद = निर्वाण। अखैपुरुष = ईश्वर। अखैवट, अखैवर = अक्षयवट।

अखै तीजⓟ†—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षय तृतीया] अखती की तीज। अक्षय तृतीया। उ०—अखै तीज तिथि के दिना गुरु होवै सजूत। तौ भाखै यों भड्डरी निपजै नाज बहूत।—घाघ०, पृ० १४५।

अखैनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षान] चार पाँच हाथ लंबी बाँस की लग्गी जिसके एक छोर पर एक टेढ़ी छोटी लकड़ी चोंच की तरह बँधी होती है। खलिहान में जब अनाज बरसाया जाता है तब इसी से उलट फेरकर उसे सुखाते हैं। अखानी।

अखैवटⓟ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अक्षयवट' उ०—सु अखैवट बीज लौं फैलि परयो बनमाली वहाँ धौं समोय चले —घनानंद, पृ० ११४।

अखैवर†—संज्ञा पुं० [सं० अक्षयवट, प्रा० अक्खयवड] अक्षयवट।

अखैवडⓟ†—संज्ञा पुं० [हि०] दे० अखैवट'। उ०—मधुप अखैवड विगर, प्रलै सागर सिर सोवै।—रा० रू०, पृ० ५३।

अखोट—वि० [सं० अ + हिं √खोट, प्रा० खोट] दोषरहित। शुद्ध। निश्छल। उ०—कही अखारी दाम यह दियो प्रनाम अखोट। हरनि बिरह तें दृगन को मर सरोज की मद —मति० ग्रं०, पृ० २८८।

अखोर[1]ⓟ—वि० [हि० अ = नहीं + फा० ख्वार] १. अच्छा। भला। सज्जन। २ सुंदर। रूपवान। ३. बुराई से बचा हुआ। निर्दोष। बेऐब।

अखोर[2]—वि० [फा० अखोर] निकम्मा। तुच्छ। बुरा। रद्दी। आखोर।

अखोर[3]—संज्ञा पुं० १ कूड़ा करकट। निकम्मी चीज। उ०—मलने का अखोर बाजार से उठा लाए।—(शब्द०)। २. खराब घास। मुरझाई घास। बुरा चारा। विचाली। उ०—राम अखोर कुश लिए डारी, चाह बाड़ थी चढ़ी विछारी।—रघु० (शब्द०)।

अखोलⓟ—वि० [हि० अ = नहीं + खोलना] जिसे खोला न जा सके। बँधा हुआ। दृढ़। उ०—मनमथ कुमार वीरपति बोल। करम बैलि तमाम अरधे। कुमुद्वाय अखोल।—पृ० रा० १०।२१३२।

अखोला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अखाला'

अखोह—संज्ञा पुं० [सं० क्षोभ = असमानता] ऊँची नीची भूमि। ऊबड़ खाबड़ पृथ्वी। विषम भूमि।

अखोट—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष, पा० प्रा० अक्ख = धुरा + हि० ओट (प्रत्य०)] १ गाड़ी या चक्की के बीच की वह कील जिसपर उसका पाट घूमता है। आंख की कीली। २. लकड़ी या लोहे का डंडा जिसपर गड़ारी घूमती है।

अखोटा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अखोट'।

अख्खनाⓟ—क्रि० स० [हि०] दे० 'अखना'।

अख्खर—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर; प्रा० अक्खर] अक्षर। हरफ। वर्ण। उ०—एकै अख्खर पीव का सोई सत करि जाणि। राम नाम सतगुरु कहा दादू सो परवाणि।—दादू०, भा० १, पृ० ३२।

अख्खाह—अव्य० [अ० अख्खाह्] हर्ष या आश्चर्यसूचक शब्द। उ०—'अख्खाह! आप बैठिए। अख्खाह! आप भी इसमें लगे हुए हैं।—(शब्द०)।

विशेष—जब कोई व्यक्ति किसी से सहसा मिलता है अथवा उसे स्वभावविरुद्ध काम करते देखता है, तब इस शब्द का प्रयोग करता है। वास्तव में यह 'अल्लाह' शब्द का बिगड़ा हुआ 'अहा' शब्द का रूपांतर है।

अख्खिरⓟ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अक्षर'। उ०—जे तेरे गुरु अख्खिरा तिनि सबा सुणि पुणि पठ।—संत तु०, पृ० २२।

अख्खैⓟ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अक्षय'। उ०—ढीलि सोध पुहमिराज सु आयौ। घमा घमा धार्यौ अख्खाय।—पृ० रा०, ४।१६।

अख्ज—संज्ञा पुं० [अ० अख्ज] लेना। ग्रहण।

क्रि० प्र०—करना = १. लेना। ग्रहण करना। २. निष्कर्ष निकालना। नतीजा निकालना।

अख्तियार—संज्ञा पुं० [अ० इख्तियार] दे० 'इख्तियार'। उ०—जिसने की तुमसे निगह मेरा हैरान हूँ। तू पंछे जिस न जिस के लिए अख्तियार है।—कविता०, भा० ५, पृ० ३६३।

अख्तर—संज्ञा पुं० [फा० अख्तर] तारा। सितारा। नक्षत्र। उ०—मौज ए-मवाज में हुए अख्तर शमा फिर बैठा गया। सबकिस हुआ नजर दम में सर्द हुआ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ३६३। २. भाग्य। प्रारब्ध। किस्मत (को०)।

मुहा०—अख्तर चमकना = भाग्योदय होना। तकदीर खुलना। अच्छे दिन आना।

अख्तरशुमार--संज्ञा पुं० [फा० अख्तरशुमार] नक्षत्रों की विद्या का जानकार । ज्योतिषी [को०]।

अख्तरशुमारी--संज्ञा स्त्री० [फा० अख्तरशुमारी] १ नक्षत्रगणना की विद्या। भाग्य जानने की विद्या २ आसमान से तारों को गिन गिनकर रात काटना। बेचैनी से रात काटना। उ०—शब उसने तोड़कर मोती के सुमरन मुझसे गिनवाए। दिखाया वस्ल में आलम नया अख्तरशुमारी का। —शेर०, भा० १, पृ० २१७ ।

अख्तावर--संज्ञा पुं० [फा० आख्ता + वर (प्रत्य०)] वह घोड़ा जिसे जन्म से ही अंडकोश की कोड़ी न हो या कृत्रिम उपाय से नष्ट कर दी गई हो।

विशेष —जन्म से नपुसक घोड़ा ऐबी समझा जाता है ।

अख्तियार--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इख्तियार'। उ०—कुछ हाथ उठा के माँग न कुछ हाथ उठा के देख। फिर अख्तियार खातिरे बेमुद्दआ के देख।—शेर० भा० ४, पृ० ५८ ।

अख्त्यार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इख्तियार'। उ०—कीजे क्या हाली न कीजे सादगी गर अख्त्यार। वालना आए न जब रगीं बयानों की तरह।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५६६ ।

अख्यात--वि० [सं०] १ अप्रसिद्ध। अज्ञात। २ जिसे कोई जानता न हो। अविदित। ३ अख्यातियुक्त। अप्रतिष्ठित [को०]।

अख्याति--संज्ञा स्त्री० [स०] अप्रसिद्धि। प्रसिद्धि का अभाव [को०]।

अख्यातिकर--वि० [स०] १ अपमानकर। अप्रसिद्धि करनेवाला। अकीर्तिकर। बदनामी फैलानेवाला।

अख्यान(पु)—संज्ञा पुं० [स० आख्यान; प्रा० अक्खाण] दे० 'आख्यान'। उ०—अब अख्यान बखानहूँ भुवन सिंह चौहान।—रामरसिक०, पृ० ६६६ ।

अख्यायिका(पु)--संज्ञा स्त्री० [स० आख्यायिका] दे० 'आख्यायिका'।

अगंज(पु)—वि० [स० अ = नहीं + √गञ्ज] न जीता जानेवाला। अपराजेय। उ०—पवह सहस पसवान साहि। अगन अगंज को सकै गाहि।—पृ० रा०, १३।१६ ।

अगंड—संज्ञा पुं० [स० अगण्ड] बिना हाथ पैर का कबंध। धड़ जिसके हाथ पैर कट गए हों।

अगत(पु)†—क्रि० वि० [स० अग्रत प्रा० अग्गत > अगत] सामने। आगे। उ०—मेल्हन उजोर पहुँच्यो तुरत रनथभ कोट देख्यौ अगत।—हम्मीर०, पृ० १७ ।

अगता¹—वि० [स० अगन्ता] चलने या गमन न करनेवाला [को०]।

अगता²†—वि० [स० अग्र + गता] १. आगे बढ़ा हुआ। अगाड़ी। २ पेशगी। अगता। अग्रिम।

अगध—वि० [सं० अगन्ध] गधरहित। गधहीन [को०]।

अग¹—वि० [स०] १. न चलनेवाला। अचर। स्थावर। उ०—तव विषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।—मानस, ७।१३। २ टेढ़ा चलनेवाला। ३ पहुँच के बाहर। [को०]।

अग²—संज्ञा पुं० १ पेड़। वृक्ष। २ पर्वत। पहाड़। उ०—गए पूरि सर धूरि भूरि भय अग थल जलधि समान।—तुलसी ग्र०, पृ० ३८१। ३. पत्थर (को०)। ४. वृक्ष। पादप (को०)। ५. सूर्य (को०)। ६ जलपात्र (को०)। ७ सात की संख्या का वाचक शब्द (को०)।

अग³(पु)—वि० [स० अज्ञ] अनजान अनाड़ी। मूढ़।

अग⁴(पु)—संज्ञा पुं० [स० अङ्ग] शरीर। अग (डिं०)।

अग⁵†—संज्ञा पुं० [स० अग्र, प्रा० अग्ग] ऊख के सिर पर का पतला भाग जिसमें गाँठ बहुत पास पास होती हैं और जिसका रस फीका होता है। अगौरा।

अग⁶(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आगे'। उ०—सवत नव मत मद्द बरष दस तीय मत्त अग। पुर प्रविष्ट वीसल नरिंद राजत सयल जग।—पृ० रा०, १।४७२।

अगइं(पु)†—वि० [स० अग्रिम] अगला। आगे का। अग्रिम। उ०—राजा पाहुणो लाया है, व लाई। अगइ बात वहाँ समझाय।—बी० रासा, पृ० ८६।

अगई—संज्ञा पुं० [देश०] चलता जाति का एक पेड़।

विशेष—यह अवध, बगाल, मध्यप्रदेश और मद्रास में बहुतायत से होता है। इसकी लकड़ी भीतर सफेदी लिए हुए लाल रग की होती है और जहाजों तथा मकानों में लगती है। इसका कोयला भी बहुत अच्छा होता है। इसके पत्ते दो दो फुट लबे होते हैं और पत्तल का भी काम देते हैं। इसकी कली और कच्चे फलों की तरकारी भी बनती है।

अगच्छ¹—वि० [स०] जो न चले। अगमनशील [को०]।

अगच्छ²—संज्ञा पुं० वृक्ष। पेड़ [को०]।

अगज¹—वि० [स०] पर्वत में उत्पन्न होनेवाला। २. वृक्ष से उत्पन्न (को०)। ३ पर्वतों पर घूमनेवाला। गिरिचर (को०)।

अगज²—संज्ञा पुं० १ शिलाजीत। २ हाथी।

अगज³(पु)—संज्ञा पुं० [अ० अगश] श्वेत रग के सिरवाला अश्व। उ०—अबलक अबमर अगज सिराजी। चौंधर चाल समुँद सब ताजी।—पदमावत, पृ० ५१६।

अगजग—संज्ञा पुं० [सं० अग + जग] चराचर। जड़ चेतन। उ०—अगजग उनका कण कण उनका पल भर वे निर्मम हों। झरते नित लोचन मेरे हों।—यामा, पृ० १८१।

अगजा—संज्ञा स्त्री० [सं० अग = पर्वत + जा = पुत्री] हिमालय की पुत्री, पार्वती [को०]।

अगट¹—संज्ञा पुं० [देश०] चिक या मास बेचनेवाले की दूकान।

अगट²(पु)—क्रि० अ० [स० एकत्र, एकस्थ, प्रा० एकट्ठ] इकट्ठा होना। एकत्र होना। जमा होना।

अगड(पु)—संज्ञा पुं० [स० अर्गल, प्रा० अग्गल] सिक्कड़ जिसमें हाथी बाँधे जाते हैं। उ०—चिहूँ ओर हरषी छुटैं, परें अगड सुमार। गोला लगै गिलोल गुरु छुटैं न तो इमरार।—पृ० रा०, ६।३२५।

अगड(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अकड़ या अ० मा० अगड] अकड़। ऐंठ। दर्प। उ०—सोभ मान जग पर किए सरजा सिवा खुमान। साहिन सों बिनु डर अगड बिनु गुमान को दान।—भूषण (शब्द०)।

अगड़धत्त—वि० [हिं०] दे० 'अगड़धत्ता'।

अगड़धत्ता--वि० [देशी] १. लबा तड़गा। ऊँचा। २ श्रेष्ठ। बढ़ा-चढ़ा। उ०—एक पेड़ अगड़धत्ता। जिसमें जड़ न पत्ता।—पहेली [उत्तर—अमरबेल।]

अगडवगड¹--वि० [सं० अकृत+विकृत, प्रा० अकड+विकड, अगड विकड] अंड बंड। वे सिर पैर का। ऊलजलूल। क्रमविहीन।

अगड़वगड़²--संज्ञा पुं० १ अडवड वात। वे सिर पैर की वात। प्रलाप। २ अडवड काम। व्यर्थ का कार्य। अनुपयोगी कार्य। उ०--'वह दूकान पर नहीं वैठता, दिन रात अगडवगड़ किया करता है (शब्द०)।

अगडम वगडम¹†--वि० [हिं०] दे० 'अगडवगड'।

अगडम वगडम²--संज्ञा पुं० [सं० अकृतम्+विकृतम् अथवा अनु०] १ दे० 'अगडवगड'। २ टूटे फूटे सामान और काठकवाड का ढेर।

अगड़ा¹†--संज्ञा पुं० [सं० अकण अथवा देश०] ज्वार बाजरा आदि अनाजों की वाल जिसमें से दाना झाड लिया गया हो। खुखडी। अखरा।

अगडा²--वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्गला] दे० 'अगरा', 'अगला'।

अगडी†--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगरी २'।

अगण--संज्ञा पुं० [सं०] अशुभ गण। बुरा गण।

विशेष--पिंगल या छंदशास्त्र में तीन तीन अक्षरों के जो आठ गण माने गए हैं, उनमें से चार अर्थात्--जगण, रगण, सगण और तगण अशुभ माने गए हैं और अगण कहलाते हैं। इनको कविता के आदि में रखना वर्ज्य समझा जाता। पर यह गणागण का दोष मात्रिक छंदों में ही माना जाता है, वर्ण वृत्तों में नहीं। उ०--इहाँ प्रयोजन गण, अगण और द्विगण को काहि।--छंद०,पृ० ११२।

अगणत(पु)†--वि० [हिं०] दे० अगणित। उ०--हेक विदर पैदा हुवै अगणत मिलिया अम।--वाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ८५।

अगणन--वि० [सं०] असंख्य। अनगिनत। उ०--प्रलय के समय में जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता-लय होता है अगणन ब्रह्मांड ग्रास करके। --अनामिका, पृ० १०१।

अगणनीय--वि० [सं०] १ गिनने योग्य। सामान्य। २ अनगिनती। असंख्य। वेशुमार।

अगणित--वि० [सं०] १ जिसकी गणना न हो। अनगिनत। असंख्य। वेशुमार। बहुत। वेहिसाव। अनेक। उ०--ऐसे ही अगणित रत्नों से तुम्हें जगत ने पाया है।--साकेत, पृ० ३७०। २ जो गिना न गया हो। जो गिनती में न आया हो (को०)। ३ उपेक्षित। तुच्छ (को०)।

अगणित प्रतियात--वि० [सं०] सूचना न प्राप्त होने के कारण या ध्यान आकृष्ट न होने के कारण वापस [को०]।

अगणितलज्ज--वि० [सं०] लज्जा का ध्यान न रखनेवाला। निर्लज्ज [को०]।

अगण्य--वि० [सं०] १ न गिनने योग्य। सामान्य। तुच्छ। २ असंख्य। वेशुमार। उ०--गूँजे गगनागण में ये अगण्य गान। --गीतिका, पृ० ८७।

अगत¹(पु)--वि० [सं० अगति] जहाँ गति न हो। अगम्य। उ०--(क) उनकी मेहर से वे मिले सब जो अगत गाई जिनन।--संत तुरसी०, पृ० ४३।

अगत²--अव्य० [सं० अग्रत, प्रा० अग्गत] आगे चलो। हाथियों को आगे बढाने के लिये महावतों द्वारा प्रयुक्त शब्द। महावत लोग हाथी को आगे बढाने के लिये 'अगत', 'अगत' कहते हैं।

अगत³(पु)†--स्त्री० [सं० अगति] बुरी गति। दुर्दशा। दुर्गति। उ०--मन प्रकार सुख शक लख जन रामा हरि बिन अगत।--राम० धर्म, पृ० २४५।

अगता¹--वि० [सं० अग्रत] १ आगे स्थित। अगाडी। उ०--वाएं सो दहिने पीछे सोड अगता। अर्घ उर्घ सम घटत न बढता।--भीखा श०, भा० ३, पृ० ४०। २ अग्रिम। पेशगी।

अगता²--संज्ञा पुं० [फा० आख्त] बधिया किया हुआ घोडा [को०]।

अगति¹--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुरी गति। दुर्गति। दुर्दशा। दुरवस्था। उ०--ऋधि सिधि विधि चारि सुगति जा विनु गति अगति। --तुलसी ग्र० पृ० ३६०।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

२ गति का उलटा। मरने के पीछे शव की दाह आदि क्रिया का यथाविधि न होना। मृत्यु के पीछे की बुरी दशा। मोक्ष की अप्राप्ति। बंधन। नरक। उ०--काल कर्म गति अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे।--तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०--करना उ०--कहो तो मारि सहारि निशाचर रावण करौ अगति को।--सूर० (शब्द०)।

३ स्थिर या अचल पदार्थ। केशव के अनुसार २८ वर्ण्य विषय हैं। इनमें से जो स्थिर या अचल हो उनकी अगति संज्ञा दी है, यथा--अगति सिंधु गिरि ताल तरु वापी कूप वखानि।--केशव (शब्द०)। उ०--कौलौं राखौ थिर वपु, वापी कूप सर सम, हरि विनु कीन्हें बहु वासर व्यतीत मैं।--केशव (शब्द०)। ४ गति का अभाव। स्थिरता। उ०--न तो अगति ही है न गति आज किसी भी ओर, इस जीवन के झाड में रही एक झकझोर।--साकेत, पृ० २८९। ५ पहुँच या सहायता की कमी (को०)। ६ पूर्णता का अभाव या कमी (को०)।

अगति²--वि० १ जिसकी गति न हो। निरुपाय। अगतिक। उ०--इस पिता ही की चिता के पास, मुझ अगति को भी मिले चिरवास।--साकेत, पृ० २००। २ बिना सहायता का। असहाय (को०)।

अगतिक--वि० [सं०] १ जिसकी कहीं गति या पैठ न हो। जिसे कहीं ठिकाना न हो। वेठिकाना। अशरण। अनाथ। निराश्रय। उ०--अगतिक की गति दीनदयाल।--कोई कवि (शब्द०)। २ मरने पर जिसकी अंत्येष्टि क्रिया आदि न हुई हो।

अगतिकगति--वि० [सं०] गतिहीन या निरुपायों का आश्रय। अशरण शरण (भगवान्) [को०]।

अगतिमय--[वि० सं० अगति+मय] गतिहीन। जड। उ०--अरे पुरातन अमृत अगतिमय मोह मुग्ध जर्जर अवसाद।--कामायनी, पृ० १८।

अगती¹(पु)--वि० [सं० अगति] १. जो गति या मोक्ष का अधिकारी न हो। बुरी गतिवाला। २ पापी। कुमार्गी। दुराचारी। कुकर्मी। ३ दे० 'अगति'।

अगती²—संज्ञा पुं० पापी मनुष्य। कुकर्मी या कुमार्गी व्यक्ति। पातकी मनुष्य। उ० (क) जय जय जय जय माधव बेनी। जगहित प्रगट करी करुनामय अगतिन को गति देनी।—सूर०, ६।११। (ख) देखि गति गोपिका की भूलि जाति निज गति अगतिन कैसे धौं परम गति देत हैं।—केशव (शब्द०)।

अगती³—संज्ञा स्त्री० चक्रवंड। दादमर्दन। दद्रुघ्न। चक्रमर्द।

अगती⁴†—वि० स्त्री० [सं० अग्रत] अगाऊ। पेशगी।

अगती⁵—क्रि० वि० आगे से। पहले से।

अगतीक—वि० [सं०] १ जिसपर चलना अनुचित हो। कुपथ। कुमार्ग। २ दे० 'अगतिक' [को०]।

अगत्तर†—वि० [सं० अग्रतर] आनेवाला।

अगत्ती†—संज्ञा पुं० [सं० अत्तीक] शरारती। नटखट।

अगत्या—क्रि० वि० [सं०] १ आगे से। भविष्य में। २ आगे चलकर। पीछे से। अंत में। अकस्मात्। सहसा।

अगदकार—संज्ञा पुं० [सं० अगदङ्कार] वैद्य। चिकित्सक [को०]।

अगद¹—वि० [सं०] १ नारोग। चंगा। स्वस्थ। २ न बोलने या कहनेवाला (को०)। ३ न्याय द्वारा मुक्त। अभियोगमुक्त। (को०)। ४ व्याधिरहित। निष्कटक। निर्दोष। उ०—रीझि दियौ गुरु जाहि अगद वृंदावन पद कौं।—ब्रजमाधुरी०, पृ० २५२।

अगद²—संज्ञा पुं० १ औषधि। दवा। २ स्वास्थ्य। रोग का अभाव (को०)। ३ अष्टांग आयुर्वेद का एक अंग। अगद तंत्र (को०)।

अगदतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० अगदतन्त्र] आयुर्वेद के आठ अंगों में से एक जिसमें सर्प, बिच्छू आदि के विष से पीड़ित मनुष्यों की चिकित्सा का विधान है।

अगदराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ औषधियों का राजा। चंद्रमा। उ०—एकादश अध्याय यह अगदराज की धार। पान करहु नर चित्त दै मिटै रोग संसार।—नंद० ग्रं०, पृ० २५६। २ उत्तम या अव्यर्थ औषधि (को०)।

अगदवेद—संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद [को०]।

अगदित—वि० [सं०] न कहा हुआ। अकथित [को०]।

अगन¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] १ दे० 'अग्नि'। उ०—द्रुम लगन ऊपर आविया मझ अगन लागो मेह।—रघु० रू०, पृ० ३७। २ अगिन नाम की एक चिड़िया। उ०—अगन से मेरे पुलकित प्राण, सहस्रों सरस स्वरों में कूक तुम्हारा करते हैं आह्वान।—पल्लव, पृ० १६।

अगन²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अगण] दे० 'अगण'। उ०—मन यम भ्रम चारि हैं र स ज त अगनी चारि।—भिखारी० ग्रं०, भा० १ पृ० १७०।

अगन³(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गण] दे० 'आँगन'।

अगन⁴(पु)—वि० [सं० अगण्य, प्रा० अगन्न] असंख्य। बेशुमार। उ०—(क) साँब की लक्षमना सहित ल्याए बहुरि दियौ दाइज अगन गनि न जाई।—सूर०, १०।४२०६। (ख) ससि अखंड मंडल जु गगन में। राजत भयौ नक्षत्र अगन में।—नंद० ग्रं०, पृ० २६२।

अगन⁵(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगनेत'।

अगनत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अगणित'।

अगनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] दे० 'अग्नि'। उ०—अगनि तें दीपक अनगन बरै। बहुरि आनि सब तिन मैं ररै।—नंद० ग्रं०, पृ० १४४।

अगनिउ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आग्नेय] आग्नेय कोण। दक्षिण पूर्व का कोना। उ०—तीज एकादसि अगनिउ मोर। चौथ दुआदसि नैऋत वोर।—जायसी (शब्द०)।

अगनित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अगणित'। उ०—उमा महेस विवाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती।—मानस, पृ० २६।

अगनिया(पु)†—वि० [अगणित, प्रा० अगणिय] दे० 'अगणित'। उ०—बरी, बरा, बेसन बहु भाँतिनि, व्यंजन विविध अगनियाँ।—सूर०, १०।२३८।

अगनी¹(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] दे० 'अग्नि'। उ०—स्रवननि बचन सुनत भइ उनकैं ज्यौं घृत नाए अगनी।—सूर०, १०।४१२५।

अगनी²—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र] घोड़े के माथे पर की भौंरी या घूमे हुए बाल।

अगनी³(पु)—वि० [सं० अगणित] अनगिनत। असंख्य।

अगनू(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आग्नेय] अग्निकोण। उ०—तीज एकादसि अगनू मारी। चौथ दुआदश नैऋत वारी।—जायसी (शब्द०)।

अगनेउ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आग्नेय, अप० अगनेउ] आग्नेय दिशा। अग्निकोण। उ०—छठएँ नैऋत दक्खिन सर्तै। बसे जाय अगनेउ सो अठैं।—जायसी (शब्द०)।

अगनेत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आग्नेय] आग्नेय दिशा। अग्निकोण। उ०—भोम काल पच्छिम बुध नैरिता। दक्खिन गुरु शुक्र अगनेता।—जायसी (शब्द०)।

अगनेव(पु)—वि० [सं० आग्नेय] अग्नि संबंधी। उ०—सीत भीत आदीत वास अगनेव कोण किय।—पृ० रा०, ६३। १६६०।

अगवान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्निबाण'। उ०—वज्जि गहर नीसान अग्नि अगवान विछुट्टिय।—पृ० रा०, १।६२६।

अगम¹—वि० [सं० अगम्य] १ जहाँ कोई जा न सके। न जाने योग्य। पहुँच के बाहर। दुर्गम। अवघट। गहन। उ०—(क) अब अपने यदुकुल समेत लै दूरि सिधारे जीति जवन। अगम सुपथ दूरि दक्षिण दिसि तहँ सुनियत सखि सिंधु लवन।—सूर (शब्द०)। (ख) है आगे परवत की पाटी। विषम पहार अगम सुठि घाटी।—जायसी (शब्द०)। २ विकट। कठिन। मुश्किल। उ०—एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सो नाहीं।—तुलसी (शब्द०)। ३ न मिलने योग्य। दुर्लभ। अलभ्य। उ०—सुनु मुनीश्वर दरसन तोरे। अगम न कछु प्रतीति मन मोरे।—तुलसी (शब्द०)। ४ अपार। अत्यंत। बहुत। उ०—समुझि अब निरखि जानकी मोहिं। बड़ो भाग गुनि अगम दसानन सिव बर दीनों तोहिं।—सूर०, ६।७७।५ न जानने योग्य। बुद्धि के परे। दुर्बोध। उ०—अविगत गति कछु कहत न आवै। सब विधि अगम बिचारहि तातें सूर सगुन लीला पद गावै।—सूर०, १।१। ६ बहुत गहरा। अथाह। उ०—'यहाँ पर नदी में अगम जल है' (शब्द०)। उ०—तिन कहुँ मानस अगम अति जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ।—

मानस, १।३८।७ विशाल। बड़ा। उ०—कैसे बचे अगम तरुकैं तर मुख चूमनि यह कहि पछितावति।—सूर०, १०।३६०। ८. जिसे वश में न किया जा सके। सुदृढ़। उ०—लंका बसत दैत्य अरु दानव उनके अगम सरीर।—सूर०, ९।८६।

अगम²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आगम] १ शास्त्र। 'आगम। उ०—तुलसी महेस को प्रभाव भाव हीं सुगम, निगम अगम हू को जानिबो गहनु है।—तुलसी ग्रं०, पृ० २३७।

यौ०—अगम निगम=आगम निगम। उ०—चितयौ चित्त दुजराज तब अगम निगम करि कढ़टयौ।—पृ० रा०, ३।२०।

२ आगम। अवाई। उ०—देखौ माई स्याम सुरति अब आवै। दादुर मोर कोकिला बोलें पावस अगम जनावै।—सूर०, १०।३३१२।

अगम³—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृक्ष। २. पर्वत [को०]।

अगम⁴—वि० १, न चलनेवाला। चलने के अयोग्य। अगता। २. अजगम। स्थावर (को०)।

अगमति(पु)—वि० [सं० अगम+अति] बहुत विशाल। अत्यत अगम। उ०—मोहन, मुर्छन, वसीकरन पढि अगमति देह बढाउँ।—सूर०, १०।४९।

अगमन¹—संज्ञा पुं० [सं०] गति या गमन का अभाव। न चलना [को०]।

अगमन²—क्रि० वि० [सं० अग्रवान्] १ आगे। पहले। प्रथम। उ०—(क) नाम न जानै गाँव का भला मारग जाय। काल्ह गड़ैगा काँटवा अगमन कस न कराय।—कबीर सा०, पृ० ७३। (ख) तब अगमन ह्वै गोरा मिला। तुइ राजा लै चल बादला।—जायसी (शब्द०)। (ग) पग पग मग अगमन परत चरन अरुनदुति झलि। ठौर ठौर लखियत उठे दुपहरिया से फूलि।—बिहारी र०, दो० ४९०। २ आगे से। पहले से। उ०—पिय आगम ते अगमनहिं करि बैठी तिय मान।—पद्माकर (शब्द०)।

अगमना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'आगमना'।

अगमनीया—वि० स्त्री० [सं०] न गमन करने योग्य (स्त्री)। जिस स्त्री के साथ संभोग करने का निषेध हो। अगम्या।

अगमने(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगमन'। उ०—पौढे हुत पर्यंक परम रुचि रुक्मिणि चमर डुलावति तीर। उठि अकुलाइ अगमने लीन्हें मिलत नैन भरि आए नीर।—सूर० (शब्द०)।

अगमनो(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगमन'। उ०—निसिचर सलभ कृसान राम-सर उड़ि उड़ि परत जरत खल जैहैं। रावन करि परिवार अगमनो जमपुर जात बहुत सकुचैहैं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३९३।

अगमानी¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्र+मानी] अगुआ। नायक। सरदार। उ०—(क) है यह तेरे पुत्र की रन अगमानी भूप। नाम जासु दुष्यत है कीरति जासु अनूप।—शकुतला, पृ० १४८। (ख) जीत्यो गयो न इद्र पै बल सों जो रिपु बस। रन अगमानी तुम किए करन ताहि विध्वस।—शकुतला, पृ० १२९।

अगमानी²(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवानी'। उ०—जबती करने आइया हम भी यह जानी, बीबी साहब सग लै हूवे अगमानी।—सुजान०, पृ० ६९।

अगमासी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवाँसी'।

अगमी†—वि० [हिं०] दे० 'आगमी'। उ०—ना मैं पडित पढ़ि गुणि जानौं ना कुछ ज्ञान विचारा। ना मैं अगमी जोतिग जानौं ना मुझ रूप सिंगारा।—दादू०, पृ० ५६९।

अगमैया(पु)†—वि० [सं० अगम्य] बुद्धि से परे। न जानने योग्य। अज्ञेय। दुर्बोध। उ०—अज मैं को उपज्यो यह भैया। सग सखा सब कहत परसपर इनके गुन अगमैया।—सूर०, १०।८२८।

अगम्य—वि० [सं०] १ न जाने योग्य। २ जहाँ कोई जा न सके। पहुँच के बाहर। अवघट। गहन। ३ विकट। कठिन। मुशकिल। ४ अपार। बहुत। अत्यत। ५ जिसमें बुद्धि न पहुँचे। बुद्धि के बाहर। अज्ञेय। दुर्बोध। उ०—गम्य अगम्य अग दो रहई। तीन देव वहाँ लगि कहई।—कबीर सा०, पृ० ९०९। ६ अथाह। बहुत गहरा। ७ जिससे विषय भोग अनुचित हो [को०]।

अगम्यगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने वर्जित या अपात्र पुरुष से सप्रयोग किया हो [को०]।

अगम्यरूप—वि० [सं०] जिसकी स्थिति या रूप बोध से परे हो [को०]।

अगम्या¹—वि० स्त्री० [सं०] न गमन करने योग्य। मैथुन के अयोग्य।

अगम्या—संज्ञा स्त्री० १ न गमन करने योग्य स्त्री। वह स्त्री जिसके साथ सभोग करना निषिद्ध है, जैसे—गुरुपत्नी, राजपत्नी, सौतेली माँ, माँ, कन्या, पतोहू, सास, गर्भवती स्त्री, बहिन, सती, सगे भाई की स्त्री, भाभी, भतीजी, चेली, शिष्य की स्त्री, भाजे की स्त्री, भतीजे की स्त्री, इत्यादि। २. अत्यज स्त्री। अत्यजा (को०)।

अगम्यागमन—संज्ञा पुं० [सं०] अगम्या स्त्री से सहवास। उस स्त्री के साथ मैथुन जिसके साथ सभोग का निषेध है।

अगम्यागमनीय—वि० [सं०] अगम्यागमन से सबधित [को०]।

अगम्यागामी—वि० अगम्या स्त्री के साथ सहवास करनेवाला [को०]।

अगयार—वि० [अ० गैर का बहु० व०] पराया। गैर। उ०—हो यार वही उसका जो इस जग में सबसे अगयार बने।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६५।

अगर¹—संज्ञा पुं० [सं० अगरु] एक पेड़ जिसकी लकड़ी सुगंधित होती है। ऊद। उ०—चदन अगर सुगध और घृत विधि करि चिता बनायो।—सूर०, ९।५०।

विशेष—यह पेड़ भूटान, आसाम, पूर्वी बगाल, खासिया और मर्तबान की पहाड़ियों में होता है। इसकी ऊँचाई ६० से १०० फुट और घेरा ५ से ८ फुट तक होता है। जब यह २० वर्ष का होता है तब इसकी लकड़ी अगर के लिये काटी जाती है। पर कोई कोई कहते हैं कि इसकी लकड़ी ५०–६० वर्ष के पहले नहीं पकती। पहले तो इसकी लकड़ी बहुत साधारण पीले रग की और गधरहित होती है, पर कुछ दिनों में घड़ और शाखाओं में जगह जगह एक प्रकार का रस आ जाता है जिसके कारण उन स्थानों की लकड़ियाँ भारी हो जाती हैं। इन स्थानों से लकड़ियाँ काट ली जाती हैं और अगर के नाम

से बिकती हैं। यह रस जितना अधिक होता है उतनी ही लकडी उत्तम और भारी होती है। पर ऊपर से देखने से यह नहीं जाना जा सकता कि किस पेड़ मे लकडी अच्छी निकलेगी। विना सारा पेड काटे इसका पता नहीं लग सकता। एक अच्छे पेड मे ३००) तक का अगर निकल सकता है। पेड का हल्का भाग जिसमे यह रस या गोद कम होता है, 'दूम' कहलाता है और सस्ता अर्थात् १) २) सेर विकता है, पर असली काली काली लकडी, जो गोद अधिक होने के कारण भारी होती है, 'गरकी' कहलाती है और १६) या २०) सेर विकती है। यह पानी मे डूब जाती है। लकडी का बुरादा धूप, दसाग आदि मे पडता है। बवई मे जलाने के लिये इसकी अगरबत्ती बहुत बनती है। सिलहट मे अगर का इत्र बहुत बनता है। चोवा नाम का सुगधित लेप इसी से बनता है।

अगर[2]—सज्ञा पु॰ [सं॰ अक्षर] अक्षर। वर्ण। हर्फ (डिं)। उ॰—उठारे सहज जोवार असुमरा लडे हरि चापडे मार लीधा उचार दध अगर रो।—रघु॰ रू॰, पृ॰ १३१।

अगर[3]—सज्ञा पुं॰ [सं॰ आगार टिं॰ अगर] आगार। गृह। उ॰—जे सैंसार अँधियार अगर मे भए मगनवर।—का॰ कौमुदी १,।

अगर[4]—अव्य [फा॰] यदि। जो। उ॰—उसे हमने बहुत ढूँढा न पाया। अगर पाया तो खोज अपना न पाया।—शेर॰, भा॰ १, पृ॰ ४१२।

मुहा॰—अगर मगर करना = (१) हुज्जत करना। तर्क करना। (२) आगा पीछा करना।

अगर[5]ⓟ—क्रि॰ वि॰ [स॰ अग्र, प्रा॰ अग्गर] आगे। जैसे 'अगरज' मे 'अगर'।

अगरई—वि॰ [हिं॰ अगर + ई (प्रत्य॰)] श्यामता लिए हुए सुनहले सदली रग का। अगर के रग का।

अगरचे—अव्य॰ [फा॰] गो कि। यद्यपि। हरचंद। बावजूद कि। उ॰—काबा अगरचे टूटा क्या जाय गम है शेख।—कविता कौ॰, भा॰ ४, पृ॰ ९८।

अगरजⓟ—सज्ञा पुं॰ [स॰ अग्रज] दे॰ 'अग्रज'। उ॰—ताही ते अगरज भयउ सव विधि तेहि परचार।—स॰ सप्तक, पृ॰ ४३।

अगरजानी‡—वि॰ [सं॰ अग्र + ज्ञानी] पहले से ही किसी बात को समझने या जाननेवाला। आगमजानी। उ॰—ऐसे अगरजानी आदमी की बात काटने का नतीजा सारा गाँव भोग रहा है।—मैला॰ पृ॰ ३७४।

अगरनाⓟ†—क्रि॰ अ॰ [सं॰ अग्र] आगे होना। आगे जाना। अगाडी बढना। आगे आगे भागना। उ॰—प्यारी अगरि चली हरि धाए। पकरि न पावत पैर थकाए।—गिरधरदास (शब्द॰)।

अगरपारⓟ—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अग्र ?] क्षत्रियों की एक जाति। उ॰—खत्री औ बचवान बघेली। अगरपार चौहान चँदेली।—जायसी, (शब्द॰)।

अगर बगरⓟ†—क्रि॰ वि॰ [हिं॰] दे॰ 'अगल बगल'।

अगरबत्ती—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अगरुवर्त्तिका] सुगध के निमित्त जलाने की पतली सींक या बत्ती।

विशेष—इसमे अगर तथा कुछ और सुगधित वस्तु पीसकर लपेटते हैं। इसका व्यापार मद्रास और बवई मे बहुत होता है।

अगरवाला—सज्ञा पुं॰ [हिं॰ अगरोहावाला, आगरेवाला] [स्त्री॰ अगरवालिन] वैश्यों की एक जाति जिसका आदि निवास दिल्ली से पश्चिम अगरोहा नाम का स्थान कहा जाता है। अग्रवाल।

अगरसार—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अगरु + सार] अगर। ऊद।

अगरा[1]ⓟ†—वि॰ [स॰ अग्र] [स्त्री॰ अगरी] १ अगला। प्रथम। अगुआ। उ॰—सूर स्याम तेरी अति गुननि माहिं अगरी।—सूर॰ १०।३३६। २ बढा चढा। बढकर। श्रेष्ठ। उत्तम। उ॰—हम तुम सब एक बैस काते कौन अगरी। लियौ दियौ सोई कछु डारि देहु झगरी।—सूर॰, १० ३३६। ३. अधिक। ज्यादा। बडा। भारी। ४. उग्र। ५ अग्रिम। पेशगी। अगाऊ। उ॰—बैल लीजे कजरा, दाम दीजे अगरा।—घाघ॰, पृ॰ १०७।

अगरा[2]ⓟ—सज्ञा पुं॰ [सं॰ आकर] खान। आकर। उ॰—सूरदास प्रभु सब गुननि अगरी।—सूर॰ (राधा॰), १ ५६।

अगरा[3]—सज्ञा पुं॰ [हिं॰ अँगरा] रगरा। अडबड बात। अनुचित व्यवहार। उ॰—दल्ल कहा अगरा कह कीजै। साहब वचन मानि के लीजै।—सत दरिया, पृ॰ ५।

अगराई—सज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ अगरना] आगे होने का भाव। अग्रता। श्रेष्ठत्व। उ॰—गोविंद गुसाई यौं ही माँगत हौं गोद गेह गिरा अगराई गुन गरिमा गगन कों।—घनानद पृ॰ १६४।

अगरान—सज्ञा पुं॰ [हिं॰] पीला लिए हुए लाल रग का घोडा जिसमे सफेदी विशेष न झलकती हो। उ॰—खुरमुज नोकिरा जरदा भले। औ अगरान बालसिर चले।—पदमावत, पृ॰ ५१६।

अगराना[1]ⓟ—क्रि॰ स॰ [देशी] १ अधिक स्नेह या दुलार के कारण किसी को धृष्ट बनाना।

अगराना[2]ⓟ—क्रि॰ अ॰ स्नेहाधिक्य मे ढिठाई करना।

अगराना[3]‡ⓟ—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'अँगडाना'।

अगरासन†—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अग्र + अशन] दे॰ 'अग्राशन'। उ॰—'सास को दिखाने के लिये बिल्लेसुर रोज अगरासन निकालते थे।—बिल्ले॰ पृ॰ ८४।

अगरी[1]—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १ एक प्रकार की घास या पौधा जो चूहे आदि के विष को दूर करता है। देवताड। २ विष हरनेवाला कोई भी द्रव्य [को॰]।

अगरी[2]—सज्ञा स्त्री॰ [स॰ अर्गला, अर्गलिका] लकडी या लोहे का छोटा डडा जो किवाड के पल्ले मे कोढा लगाकर डाला रहता है। इसके इधर उधर खीचने से किवाड खुलते और बद होते हैं। किल्ली। ब्योडा।

अगरी[3]—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अग्र] फूस की छाजन का एक ढग जिसमें जड ढाल या उतार की ओर रखते हैं।

अगरी[4]ⓟ—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अगीर्य = अवाच्य] १ अड बड बात। बुरी बात। अनुचित बात। २ ढिठाई। धृष्टता।

अगरी[5]ⓟ—सज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ अगरना] अगराई हुई बात। स्नेह के कारण धृष्टता से की हुई क्रिया उ॰—गेंडुरि दइ फटकारि कै हरि करत है लँगरी। नित प्रति ऐसेई ढग करें हमसों कहै अगरी।—सूर॰ (शब्द॰)।

अगरु—संज्ञा पुं० [सं० अगुरु] अगर लकड़ी। ऊद। उ०—अगरु चंदन की चिता थी मेज।—साकेत, पृ० १६८।

अगरू—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अगर' [को०]।

अगरे†—क्रि० वि० [सं० अग्रे] सामने। आगे। उ०—चेला पूछै गुरु कहँ तेहि कस अगरे होइ।—जायसी (शब्द०)।

अगरेल†—वि० [हिं० अगर + ऐल (प्रत्य०)] अगर संबंधी। अगर की। उ०—रवि सेख जावणी, घणी आणंद चहक्की। मग वेन सूरमा, वाम अगरेल महक्की।—रा० रू०, पृ० १७३।

अगरो(पु)—वि० [सं० अग्र] १. अगला। प्रथम। २. बढ़कर। श्रेष्ठ। उत्तम। उ०—सूर सनेह ग्वारि मन अटक्यो छाँड़हु दिये परत नहिं पगरो। परम मगन ह्वै रही चितै मुख सब तें भाग यही को अगरो।—सूर (शब्द०)। ३. चतुर। दक्ष। निपुण। ४. अधिक। ज्यादा। उ०—योजन बीस एक अरु अगरो डेरा इहि अनुमान। व्रजवासी नर नारि अंत नहिं मानो सिंधु समान।—सूर (शब्द०)।

अगर्चे—अव्य० [फ़ा० अगरचे] दे० 'अगरचे'। उ०—अगर्चे उम्र की दस दिन से लब रहे खामोश। सुखन रहेगा सदा मेरी कम जवानी का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १७२।

अगर्दभ—संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर [को०]।

अगर्व—वि० [सं०] गर्व या अभिमान से रहित। निरभिमान। सीधा सादा।

अगर्हित—वि० [सं०] १. जो गर्हित या निंदित न हो। २ शुद्ध [को०]।

अगल¹—क्रि० वि० [सं० अग्रत, प्रा० अग्गल] १ आगे। उ०—यकायक कहे काफिरॉ साथ चला अबू जहल आया नबी के अगल।—दक्खिनी०, पृ० ३४८।

अगल²(पु)—वि० [प्रा० अग्गल] अधिक। ज्यादा। उ०—सब तीन वरप्प अमी अगल।—पृ० रा०, ५६।५५।

अगल बगल—क्रि० वि० [फ़ा०] १ दोनों पार्श्व में। दोनों ओर। दोनों किनारे। २ इधर उधर। आसपास।

अगलहिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया।

अगला¹—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्गल] [स्त्री० अगली] १ आगे का। सामने का। अगाड़ी का। पिछला का उलटा। जैसे—घोड़े का अगला पैर सफेद है (शब्द०)। उ०—वह अगला समतल जिसपर है देवदारु का कानन।—कामायनी, पृ० ७६। २ पहले का। पूर्ववर्ती। प्रथम। उ०—आवै औरंगसाह नूं अगली मुहरां याद।—रा० रू०, पृ० ३५०। ३ विगत समय का। प्राचीन। पुराना। उ०—रेखते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो गालिब। कहते हैं अगले जमाने में कोई मीर भी था।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १२२।

यौ०—अगले समय। अगले लोग।

४. आगामी। आनेवाला। भविष्य। जैसे—मैं अगले साल वहाँ जाऊँगा (शब्द०)। ५ अपर। दूसरा। एक के बाद का। जैसे—'उससे अगला हमारा घर है' (शब्द०)।

अगला²—संज्ञा पुं० १ अगुआ। अग्रगण्य। प्रधान। जैसे—'वे सब बातों में अगले बनते हैं'। (शब्द०)। २ चतुर आदमी। चालाक। चुस्त आदमी। जैसे—'अगला अपना काम कर गया, हम लोग देखते ही रह गए (शब्द०)। ३ पूर्वज। पुरखा (बहु० व० में ही प्रयुक्त)। जैसे—जो अगले करते हैं उसे करना चाहिए (शब्द०)।

मुहा०—अगले पिछलों को रोना = पूर्वजों और औलाद के नाम र रोना या मातम करना। उ०—'खाक अच्छा गाती है। गाती है या रोती है अपने अगले पिछलों को डायन'।—सैर कु०, पृ० २०। ४ अपने पति को सूचित करने के लिये स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त शब्द। ५. करनफूल के आगे लगी हुई जंजीर। ६ गाँव और उसकी हद के बीच में पड़नेवाले खेतों का समूह।

अगलूँणी(पु)†—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग, (राज० आगलो + ऊणी (प्रत्य०) = वाली)] आगेवाली। पूर्व की। उ०—जिण दिन ढोलउ आवियउ तिण अगलूँणी रात। मारू सुहिणउ लहि कह्यउ, सखियाँ सूँ परभात।—ढोला०, ५०१।

अगवड†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगौढ'।

अगवढ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगौढ'।

अगवन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आगमन] दे० 'आगमन'।

अगवना†—क्रि० अ० [हिं० आगे + ना] कोई काम करने के लिये उद्यत होना। आगे बढ़ना।

अगवनिहरवा—वि० [हिं० अगवना] किसी को बुलाने के लिये आया हुआ। उ०—सतगुरु पठवा अगवनिहरवा।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४६।

अगवाँई¹—संज्ञा पुं० [हिं० अगुआ] उ०—इसमाइल राजेंद्र गुसाई। सफदरजंग भये अगवाई।—सुजान०, पृ० १४१।

अगवाँई²†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगवानी] दे० 'अगवाई'।

अगवाँसी—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्रवासी] १ हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगा रहता है। २ हलवाहे को पैदावार में से अंशरूप में मिलनेवाली मजदूरी।

अगवा—क्रि० वि० [सं० अग्र] आगे। अगाड़ी। उ०—हरि जू की गैल यह मेरी पौर अगवा सी, ह्यां ह्वै कढ़ै चाहौं मोहि काम घनो घर को।—ठाकुर०, पृ० २।

अगवाई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र = आगे + हिं० अवाई] अगवानी। अभ्यर्थना। आगे से जाकर लेना। उ०—अगवाई के हेतु कुँवर के सब नर नारी।—बुद्ध च०, पृ० १८०।

अगवाई²—संज्ञा पुं० [सं० अग्रगामी] आगे चलनेवाला व्यक्ति। अगुवा। अग्रसर।

अगवाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० अग्रवाट् अथवा अग्रवर्त्त (प्रत्य०)] घर के आगे का भाग। द्वार के सामने की भूमि। पिछवाड़ा शब्द का उलटा।

अगवान¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० वान (आवना आदि के मूल में स्थित द्विधातु का अंश)] १ अगवानी या अभ्यर्थना करनेवाला व्यक्ति। आगे से जाकर लेनेवाला व्यक्ति। २ विवाह में कन्यापक्ष के वे लोग जो बरात का आगे बढ़कर स्वागत करते हैं। उ०—(क) अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंद पुलक भर गाता।—मानस, १।३०५। (ख) सहित बरात राउ सनमाना। आयेसु माँगि फिरे अगवाना।—मानस, १।३०६।

अगवान२--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र+हिं० वान] १. आगे से जाकर लेना। अगवानी। अभ्यर्थना। उ०—महाराज जयसिंह जय मे सिंह के समान, निरयान समय जासु गग लीनी अगवान।--रघुराज (शब्द०)। २ विवाह में कन्यापक्ष के लोगों का बरात की अभ्यर्थना के लिये जाना। उ०—लै अगवान बरातहि आए। दिए सबहि जनवास सुहाए।—मानस, १।६९।

क्रि० प्र०--करना।--लेना।--होना।

अगवानी१--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र+हिं० वान] १. अपने यहाँ आते हुए किसी अतिथि से निकट पहुँचने पर सादर मिलना। आगे बढ़कर लेना। अभ्यर्थना। पेशवाई। २ विवाह मे जब बारात लड़कीवाले के घर के पास आती है, तब कन्यापक्ष के लोग सज धजकर बाजे गाजे के साथ आगे जाकर उससे मिलते हैं। इसी को अगवानी कहते हैं। उ०--नियरानि नगर बरात हरषी लेन अगवानी गए।—तुलसी ग्र०, पृ० १३५।

अगवानी२(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्रगामी] आगे पहुँचनेवाला व्यक्ति। दूत। उ०--(क) सखी री पुरनता हम जानी। याही तैं अनुमान करति हैं षट्पद से अगवानी।—सूर०, १०।४०३९। (ख) अगवानी तो आइया ज्ञान विचार विवेक। पीछे हरि भी आयेंगे सारी सौंज समेक।--कबीर (शब्द०)।

अगवानी३--संज्ञा पुं० आगे रहनेवाला। अगुवा। पेशवा। उ०— विरह अथाह होत निसि हम कौं बिनु हरि समुद समानी। क्यो करि पावहि बिरहिनि पारहि बिनु केवट अगवानी।-- सूर०,१०।३२७१।

अगवार१†—संज्ञा पुं० [सं० अग्र+हिं० वार (प्रत्य०)] १ खलिहान मे अन्न का वह भाग जो राशि से निकालकर हलवाहे आदि के लिये अलग कर दिया जाता है। २. वह हल्का अन्न जो ओसाने मे भूसे के साथ चला जाता है। ३ गाँव का चमार।

अगवार२†--संज्ञा पुं० दे० 'अगवाड़ा'। उ०--बेऊ आये द्वारे हौं हूँ हुती असवारें ओर, द्वारें अगवारें कोऊ तौ न तिहि काल मैं।— पद्माकर ग्र०, पृ० २००।

यौ०—अगवार पछवार।

अगवाह--वि० [सं० अग्र+वाह] आगे पहुँचानेवाला। पहले पहुँचनेवाला। उ०—'कंपित स्वर लहरी आत्मनिवेदन की सहज स्निग्ध कमनीयता के अगवाह रास्ते को अनायास ही पकड़ लेती'।--नई पौध, पृ० १११।

अगवैया†--वि० [सं० अग्र+हिं० वैया (प्रत्य०)] आगे आगे चलनेवाला। किसी के आगमन की पूर्वसूचना देनेवाला। उ०---अभी माघ भी चुका नहीं पर मधु का गरवीला अगवैया कर उन्नत शिर।--इत्यलम्, पृ० २०६।

अगव्यूति--वि० [सं०] जहाँ पशुओं का चरागाह न हो। बंजर [को०]।

अगसत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगस्त्य'। उ०--आकिल गुरु अगसत है, सिख समुद मन लीन।--रज्जब०, पृ० ६।

अगसर(पु)—क्रि वि० [सं० अग्रसर] आगे। पहले। उ०--अगसर खेती अगसर मार। कहै घाघ ते कबहुँ न हार।--घाघ०, पृ० ४१।

अगसरना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अगुसरना'।

अगसार(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगसारी'।

अगसारी(पु)—क्रि० वि० [सं० अग्रसर] आगे। सामने। उ० –हस्ति क जूह आय अगसारी। हनुवंत तबै लँगूर पसारी।—जायसी ग्र०, पृ० ११६।

अगस्त१--संज्ञा पुं० [अं० ऑगुस्ट,] रोम के सम्राट् ऑगुस्टस् के नाम पर चलाया गया अग्रेजी का आठवाँ महीना जो भादो मे पड़ता है।

अगस्त२—संज्ञा पुं० [सं० अगस्त्य] १. अगस्त्य ऋषि। उ०--मधवानल वहि अगिन समानी। अगिन अगस्त साखावत पानी।--हिंदी प्रेमा०, पृ० २७५। २ अगस्त्य तारा। उ०--उदित अगस्त पथ जल सोपा। जिमि लोभहिं सोखै संतोषा।--तुलसी (शब्द०)। ३ अगस्त्य वृक्ष। उ०—फूल करील कली पाकर नम। फरी अगस्त करी अमृत सम।—सूर०, १०।२१३।

अगस्ति(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] १ अगस्त्य तारा। उ०--उए अगस्ति हस्ति घन गाजा। तुरै पलानि चढे रन राजा।—जायसी ग्र०, पृ० ३५६। २ अगस्त्य ऋषि। उ०--हुत जो अपार विरह दुख दोखा। जनहुँ अगस्ति उदधि जल सोखा।—जायसी ग्र०, पृ० ३४०। ३ अगस्त्य या बक वृक्ष (को०)।

अगस्तिद्रु--संज्ञा पुं० [सं०] अगस्ति या बक वृक्ष [को०]।

अगस्तिया†—संज्ञा पुं० [सं० अगस्ति] दे० 'अगस्त्य ३'। उ०--द्विज सुधा दीधिति कला वह लखि डीठि लखाई। मनौ अकास अगस्तिया एकै कली लखाइ।--बिहारी र०, दो० ९२।

अगस्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम जिनके पिता मित्रावरुण थे।

विशेष—ऋग्वेद मे लिखा है कि मित्रावरुण ने उर्वशी को देखकर कामपीड़ित हो वीर्यपात किया जिससे अगस्त्य उत्पन्न हुए। सायणाचार्य ने अपने भाष्य मे लिखा है कि इनकी उत्पत्ति एक घड़े मे हुई। इसी से इन्हें मैत्रावरुणि, और्वशेय, कुंभज, घटोद्भव और कुंभसंभव कहते हैं। पुराणों मे इनके अगस्त्य नाम पड़ने की कथा यह लिखी है कि इन्होंने बढ़ते हुए विंध्य पर्वत को लिटा दिया। अतः इनका एक नाम विंध्यकूट भी है। पुराणों के अनुसार इन्होंने समुद्र को चुल्लू मे भरकर पी लिया था जिससे ये समुद्रचुलुक और पीताब्धि भी कहलाते हैं। कहीं कहीं पुराणों मे इन्हें पुलस्त्य का पुत्र भी लिखा है। ऋग्वेद मे इनकी अनेक ऋचाएँ हैं।

२ एक तारे या नक्षत्र का नाम।

विशेष--यह भादो मे सिंह के सूर्य के १७ अंश पर उदय होता है। इसका रंग कुछ पीलापन लिए हुए सफेद होता है। इसका उदय दक्षिण की ओर होता है इससे बहुत उत्तर के निवासियों को यह नहीं दिखाई देता। आकाश के स्थिर तारों मे लुब्धक को छोड़कर दूसरा कोई तारा इसकी तरह नहीं चमचमाता। यह लुब्धक से ३५° दक्षिण है।

३ एक प्रसिद्ध पेड़।

विशेष--यह पेड़ ऊँचा और घेरेदार होता है। इसकी पत्तियाँ सिरिस के समान होती हैं। इसके टेढ़े मेढ़े फूल अर्धचंद्राकार, लाल और सफेद होते हैं। इसके छिलके का काढ़ा शीतला और

ज्वर मे दिया जाता है। पत्तियाँ इसकी रेचक हैं। पत्ती और फूल के रस की नास लेने से विनाम फूटना, सिर दर्द और ज्वर अच्छा होता है। आँखों मे फूल का रस डालने से ज्योति बढती है। इसके फूलों की तरकारी और अचार भी बनता है।

४ शिव का एक नाम [को०]।

अगस्त्यकूट—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण मद्रास प्रांत मे एक पर्वत जिससे ताम्रपर्णी नदी निकली है।

अगस्त्यगीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के शांति पर्व मे अगस्त्य ऋषि द्वारा कथित विद्या [को०]।

अगस्त्यचार—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य तारे का मार्ग [को०]।

अगस्त्यतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान [को०]।

अगस्त्यमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अगस्त्यचार' [को०]।

अगस्त्यवट—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर स्थित एक पवित्र स्थान का नाम [को०]।

अगस्त्यसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अगस्त्य द्वारा प्रणीत धर्म विषयक एक ग्रंथ [को०]।

अगस्त्यहर्र—संज्ञा पुं० [सं० अगस्त्य हरीतकी] कई द्रव्यों के संयोग से जिनमे हर्र मुख्य है, बनी हुई एक आयुर्वेदिक औषधि जो खाँसी, हिचकी, संग्रहणी आदि रोगों मे दी जाती है।

अगस्त्योदय—संज्ञा पुं० [सं०] १ भाद्रपद के शुक्ल पक्ष मे अगस्त्य नामक तारे का उदय। २ भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी [को०]।

अगस्थ(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगस्त्य' १। उ०—मुगता तठै कर सनमान, आया अगस्थ रे असथान।—रघु० रू०, पृ० १२४।

अगह(पु)—वि० [सं० अग्राह्य] १ न पकडने योग्य। हाथ मे न आने लायक। उ०—अलह को लहना, अगह को गहना।—दरिया० बानी, पृ० ६७। २ चचल। उ०—माधव जू नेकु हटको गाय। निसि बासर यह भरमति इत उत अगह गही नहिं जाय।—सूर (शब्द०)। ३. जो वर्णन और चिंतन के बाहर हो। उ०—कहँ गाधिनदन मुदित रघुनदन सो नृपगति अगह गिरा न जाति गही है।—तुलसी (शब्द०)। ४. न धारण करने योग्य। कठिन। मुश्किल। उ०—ऊधो जो तुम हमहिं बतायो। सो हम निपट कठिनई करि करि या मन को समुझायो। योग याचना जबहि अगह गहि तबही सो है ल्यायो। सूर (शब्द०)।

अगहन—संज्ञा पुं० [सं० अग्रहायण] प्राचीन वैदिक क्रम के अनुसार वर्ष का अगला वा पहला महीना। मार्गशीर्ष। मगसिर। उ०—अगहन अम्मर देखेउ जुग जुग जीवै सोइ।—जग० श०, भा० २, पृ० ६५।

विशेष—गुजरात आदि मे यह क्रम अभी तक है, पर उत्तरी भारत मे गणना चैत्र मास से आरभ होती है। इस कारण यहाँ नवाँ मास पडता है।

अगहनिया—वि० [सं० आग्रहायणीक] अगहन मे होनेवाला।

अगहनी[1]—वि० [सं० आग्रहायणीय] अगहन मे तैयार होनेवाला।

अगहनी[2]—संज्ञा स्त्री० वह फसल जो अगहन मे काटी जाती है। जैसे जडहन धान, उरद इत्यादि। उ०—जब लों पृथिवी है तब लों बोना और लोना, जाडी और गर्मी, अगहनी और बैशाखी, दिन और रात बद न होंगे।—कबीर म०, पृ० १६५।

अगहर(पु)†—क्रि० वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग + हिं० हर (प्रत्य०)] १ आगे। २ पहले। प्रथम। उ०—राजन दीवा रायमनि, बाईं तरफ अडोल। उमगत अगहर जूझ को, ताकत प्रति भट गोल।—लाल (शब्द०)।

अगहाट—संज्ञा पुं० [सं० अग्राह्य अथवा सं० अग्रहार] वह भूमि जो किसी के अधिकार मे चिरकाल के लिये हो और जिसे वह अलग न कर सके।

अगहार†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्रहार'।

अगहुँड[1]—वि० [सं० अग्र पा० अग्ग + हिं० हुँड (प्रत्य०)] अगुआ। आगे चलनेवाला। उ०—बिलोके दूरि तें दोउ बीर। मन अगहुँड तन पुलकि सिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४६।

अगहुँड[2]—क्रि० वि० आगे। आगे की ओर। 'पिछहुँड' का उलटा। उ०—कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुँड परै न पाऊ।—तुलसी (शब्द०)।

अगा[1]—वि० [सं०] न चलनेवाला [को०]।

अगा[2]—क्रि० वि० [सं० अग्र] आगे। पहले। उ०—सोवत कहा चेत रे रावन अब क्यों खात दगा। कहत मँदोदरि सुनु पिय रावन मेरी बात अगा।—सूर०, ९।१४४।

अगाई†—वि० [सं० अग्र, हिं० आई (प्रत्य०)] आगे। पहले। उ०—अगाई सो सवाई।—घाघ० पृ० ७४।

अगाउनी[1](पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगौनी-१'। उ—मुरली मृदगन अगाउनी भरत स्वर भावती सुजागरे भरी है गुन आगरे।—देव (शब्द०)।

अगाउनी[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'अगौनी-२'।

अगाऊँ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगाऊ'। उ०—न्हान समै जब मेरो लखै तब साज लै बैठत आनि अगाऊं।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १२३।

अगाऊ[1]—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग + हिं० आऊ (प्रत्य०)] †१. अग्रिम। पेशगी। जैसे, 'उसे कुछ अगाऊ दाम दे दो' (शब्द०)। २ (पु) अगला। आगे का। उ०—धरि बाराह रूप रिपु मार्‌यो लै छिति दंत अगाउ।—सूर० (शब्द०)।

अगाऊ[2](पु)—क्रि० वि० १ आगे। पहले। प्रथम। उ०—(क) कबिरा करनी आपनी, कबहुँ न निष्फल जाय। सात समुद्र आडा परै मिलै अगाऊ आय।—कबीर (शब्द०)। (ख) 'उग्रसेन भी सब यदुवंशियों समेत गाजे बाजे से अगाऊ जाय मिले'।—लल्लू० (शब्द०)। २. अगाड़ी मे। आगे से। उ०—(क) साखि सखा सब सुबल सुदामा देखि धौं बूझि बोलि बलदाऊ। यह तो मोहि खिझाइ कोटि बिधि उलटि बिबादन आइ अगाऊ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४३४। (ख) कौन कौन को उत्तर दीजै तातें भग्यो अगाऊ।—सूर० (शब्द०)।

अगाड़—संज्ञा पुं० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग + हिं० आड़ (प्रत्य०)] १. हुक्के की टोंटी या कुहनी मे लगाने की सीधी नली जिसे मुँह मे

रखकर धुआँ खींचते हैं। निगाली। २ खेत सींचने की ढेंकली की छोर पर लगी हुई पतली लकड़ी। ३ किसी वस्तु के आगे का भाग। अगाड़ी।

अगाड़ा¹—संज्ञा पुं० [हिं० अगाड़, तुल० कुमा० गाडा = खेत] कछार। तरी।

अगाड़ा²—संज्ञा पुं० [अग्र + हिं० आड़ा (प्रत्य०)] १ यात्री का वह सामान जो पहले से आगे के पड़ाव पर भेज दिया जाता है। पेशखेमा। २ आगे का भाग या हिस्सा।

अगाड़ा³†—वि० आगे का। आगेवाला।

अगाड़ी¹—क्रि० वि० [सं० अग्र प्रा० अग्ग + हिं० आड़ी (प्रत्य०)] १ आगे, जैसे—इस घर के अगाड़ी एक चौराहा मिलेगा (शब्द०)। २ भविष्य में, जैसे—अभी से इसका ध्यान रखो नहीं तो अगाड़ी मुश्किल पड़ेगी (शब्द०)। ३ पूर्व। पहले, जैसे—अगाड़ी के लोग बड़े सीधे सादे होते थे (शब्द०)। ४ सामने। समक्ष, जैसे—उनके अगाड़ी यह बात न कहना (शब्द०)।

अगाड़ी²—संज्ञा पुं० १ किसी वस्तु के आगे का भाग। २ अँगरखे या कुरते के सामने का भाग। ३ घोड़े के गराँव में बँधी हुई दो रस्सियाँ जो इधर उधर दो खूँटों से बँधी रहती हैं। ४. सेना का पहला धावा। हल्ला; जैसे—फौज की अगाड़ी आँधी की पिछाड़ी (शब्द०)।

यौ०—अगाड़ी पिछाड़ी = आगे और पीछे का भाग।

अगाड़ू—क्रि० वि० [सं० अग्र प्रा० अग्ग अग + हिं० आड़ू (प्रत्य०)] दे० 'अगाड़ी'।

अगाता—वि० [सं०] अच्छा न गानेवाला [को०]।

अगात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शैलपुत्री। पार्वती [को०]।

अगाद(पु)—वि० दे० 'अगाध'। उ०—आवसनि वत अगाद भय त निबलहु द्रिग छिनक कर।—पृ० रा० ६१।१२६५।

अगाध¹—वि० [सं०] १ अथाह। बहुत गहरा। अतल स्पर्श। उ०—जलधि अगाध मौलि वह फेनू। सतत धरनि धरत सिर रेनू।—मानस, १।१६७।२. अपार। असीम। अत्यत। बहुत। अधिक उ०—देखि मिटे अपराध अगाध निमज्जत साधु समाज भलो रे।—तुलसी (शब्द०)। ३ जिसका कोई पार न पा सके। समझ में न आने योग्य। दुर्बोध। उ०—अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।—मानस, १।२३।

अगाध²—संज्ञा पुं० १ छेद। २ गड्ढा। ३. स्वाहाकार की पाँच अग्नियों में से एक का नाम [को०]।

अगाधजल—संज्ञा पुं० [सं०] गहरा तालाब या झील। ह्रद [को०]।

अगाधरुधिर—संज्ञा पुं० [सं०] रुधिर का आधिक्य। अत्यधिक रक्त [को०]।

अगाधसत्व—वि० [सं०] अत्यधिक शक्तिसंपन्न [को०]।

अगाधा—वि० स्त्री० [सं०] अत्यत। बहुत। अधिक। उ०—लाल गुलाल घलाघल मैं दृग ठाकर दै गई रूप अगाधा।—पद्माकर (शब्द०)

अगाधित्व—संज्ञा पुं० [सं०] गांभीर्य। गहराई [को०]

अगान¹(पु)†—वि० [सं० अज्ञान] अनजान। अज्ञान। नासमझ। उ०—बालक अगाने हठी और की न मानें बात, बिना दिए मातु हाथ भोजन न पाइए।—हनुमन्नाटक (शब्द०)।

अगान²(पु)—संज्ञा पुं० ज्ञान का अभाव। अज्ञान।

अगामें(पु)—क्रि० वि० [सं० अग्रिम, प्रा० अग्गम्मि] आगे।

अगार¹—संज्ञा पुं० [सं० आगार] १ निवासस्थान। धाम। गृह। उ०—दुख आवत कछु अटक न मानत, सूनो देखि अगार।—सूर०, १०।३३८८। २ ढेर। राशि। समूह। अटाला। उ०—मींजि मींजि हाथ धुनै माथ दसमाथ तिय, तुलसी तिलो न भयो बाहिर अगार को।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७३।

अगार²—संज्ञा पुं० [सं० अग्र] आगे का स्थान। अगला हिस्सा। अग्रभाग। उ०—अरु जो तुमरे मन में यह बात तो काहे को मोहि अगार दयौ।—सुजान०, पृ० ७१।

अगार³—क्रि० वि० आगे। अगाड़ी। पहले। प्रथम। उ०—प्रीतम को अरु आनन को हग देखनो है अब होत सकारे। कैधों चलैंगे अगार सखी यहि देह ते प्रान कि गेह ते प्यारे।—कोई कवि (शब्द०)।

अगार⁴—वि० [सं० अग्रज?] अगुआ। नेता। मुखिया। उ०—नव सि-सिनवार देअवारिया अगार और खुटैला जुझार बीर चाहर अपार।—सुजान०, पृ० ६७।

अगारदाही—संज्ञा पुं० [सं० अगारदाहिन्] मकान को जलानेवाला व्यक्ति [को०]।

अगारि—वि० [सं० अ = नहीं + अ० गार = गड्ढा] अगभीर। कम गहरा। उ०—दिन दिन सरोवर होइ अगारि, अवहु नई बरिषइ मही भरि वारि।—विद्यापति, पृ० ५२६।

अगारी¹—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगाड़ी'¹'। उ०—देखो दीठि, उठाय कुँवर पुनि भार अगारी। रावति पीटति जाति नदी की ओर सिधारी।—बुद्ध च०, पृ० ७०।

अगारी²—वि० [सं० अगारिन्] मकान मालिक। मकानवाला [को०]।

अगारू—क्रि० वि० [हिं० अगार] आगे। पहले प्रथम। उ०—जौं लौं चक्रधारी चक्र चाहत चलाइबो को, तौं, लौं ग्राह ग्रीवा पै अगारू चक्र चलि गो।—ग्वाल ग्रं० पृ० १।

अगाव†—संज्ञा पुं० [सं० अग्र] ऊख के ऊपर का पतला और नीरस भाग जिसमें गाँठें बहुत पास पास होती हैं। अगौरा। अगोरी। अँगोरी।

अगास¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्र; प्रा० अग्ग + आस (प्रत्य०)] द्वार के आगे का चबूतरा।

अगास²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आकाश] आकाश। उ०—हौं सँग साँवरे के जैहौं। का यह सूर अजिर अवनी तनु तजि अगास पिय भवन समैहौं। का यह ब्रज वापी क्रीड़ा जल भजि नंदनद सबै सुख लैहौं।—सूर० (शब्द०)।

अगासी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अकासी'। उ०—दौड़े बदर बने मुछदर कूदै चढे अगासी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३३।

अगाह¹(पु)—वि० [सं० अगाध, प्रा० अगाह] १. अथाह। बहुत गहरा। उ०—अब लइ गए देइ ओहि सूरी। तेहि सौ अगाह बिथा तुम्ह पूरी।—पद्मावत, पृ० २९२। २ अत्यत। बहुत। उ०—जो जो सुनै धुनै सिर राजहिं प्रीति अगाह।—जायसी (शब्द०)। ३ गंभीर। चितित। उदास। उ०—जबहि सुरुज कहँ लागा राहू। तबहि कमल मन भयो अगाहू।—जायसी (शब्द०)।

अगाह[1]@—क्रि० वि० [हि० आगे] आगे से। पहले से। उ०—पहिले कहत अगाह जनाया।—जायसी (शब्द०)।

अगाह[2]@—वि० [फा० आगाह] विदित। प्रकट। ज्ञात। मालूम। उ०—जस दुख पाया कलिहूँ आहू। ना सब सूझ सहै भयउ अगाहू।—जायसी (शब्द०)।

अगाही[1]—संज्ञा स्त्री० [फा० आगाह] किसी बात की पहले से सूचना या संकेत।

अगि@—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि] अग्नि। उ०—बहु-धाना के सेत समुद्र दिग्ध पताराल। अगि दुग्गम म्मगवो मूल सरल धन घन सौर।—पृ०, १२।७१६।

विशेष—पुरानी हिंदी तथा व्रजभाषा में यह समस्त रूप में मिलता है। जैसे अगिदधा, अगिदाहू आदि।

अगिआ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा] आदेश। हुक्म।

अगिआना@—क्रि० अ० [हि०] दे० 'अगियाना'। उ०—धीर पवन पवन क्रम धारयो जोग समाधि लगाई। इहि तन आनि रूप दहें की आगि उठै अगिआई।—सूर (शब्द०)।

अगिदधा[1]—वि० [सं० अग्नि + दग्ध] आग में जला हुआ। दग्ध। उ०—तेहि सीता राजा अगिदधा—जायसी (शब्द०)।

अगिदाह@—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अग्निदाह'। उ०—तन मन सेज करे अगिदाहू। सब कहँ चंद खगेउ मोहि राहू।—जायसी ग्रं०, पृ० १५३।

अगिनत@—वि० [सं० अगणित] अनगिनत। बेशुमार। उ०—जलचरा थलचरा नभचरा पत जा। स्वादि हू पानि के जीव अगिनत जी।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ०, २६०।

अगिन[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] [हि० अगियाना] @ १ आग। उ०—तुरी बीन ऐराक तेज जम अगिन पवन मन।—पृ० रा०, १।२५४। २ गोरैया या बया के आकार की छोटी चिड़िया।

विशेष—इसका रंग मटमैला होता है। इसकी बोली बहुत प्यारी होती है। लोग इसे बहुधा पिंजड़े में रखते हैं।

३ एक प्रकार की घास जिसमें नीबू की सी सौंधी महक रहती है। अगिया घास।

अगिन[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्गारिका] ईख के ऊपर का पत्ता सहित भाग। अगौरी।

अगिन[3]—वि० [सं० अ = नहीं + हि० गिनना] अगणित। बेशुमार। उ०—सोई सो राजा गाहि। लाखु लहरि, फिरि सागर अगिन गिनी न जाई।—सूर (शब्द०)।

अगिनगोला—संज्ञा पुं० [हि० अगिन + गोला] वह गोला जो फटने पर आग लगा दे।

अगिनझाल[1]—संज्ञा स्त्री० [हि० अगिन + झाल] दे० 'अग्निज्वाला'।

अगिनबाव—संज्ञा पुं० [हि० अगिन + बाव = वायु] एक रोग का नाम जो घोड़ों को होता है। त्रिदोष, सन्निपात, आदि।

अगिनबोट—संज्ञा स्त्री० [हि० अगिन + अं० बोट] एक प्रकार की बड़ी नाव जो भाप के इंजन से चलती है। स्टीमर। धुआँकश।

अगिनहोत्र@—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अग्निहोत्र'। उ०—[illegible] मन्त्र नरि [illegible]।—[illegible], पृ० [illegible]।

अगिनि@—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि] आग। उ०—[illegible]।—सुंदर० १६६३।

अगिनिकोन@—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अग्निकोण'। उ०—[illegible]।

अगिनित@—वि० [हि०] दे० 'अगणित'। उ०—[illegible] सुनो, [illegible]।—सुंदर०, ६।१०६।

अगिनिवान@—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अग्निबाण'। उ०—[illegible]।—[illegible], पृ० ४६।

अगिनिवाण@—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + हि० बाण] १ [illegible]। उ०—[illegible] अगिनियाना। [illegible]।

अगिनी@—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि] दे० 'अग्नि'। उ०—[illegible]।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८८८

अगिनेव@—संज्ञा पुं० [सं० आग्नेय] [illegible]। उ०—[illegible]।—पृ० रा० [illegible]।

अगिया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि, अगि + या] १. एक प्रकार की घास।

विशेष—[illegible]।

२ [illegible]।

विशेष—[illegible]।

३ अग्नि। आग।

अगिया[2]—संज्ञा पुं० १ [illegible]।

विशेष—[illegible]।

२ [illegible]।

अगिया कोइलिया—संज्ञा पुं० [हि० अगिया + कोइलिया] [illegible]।

अगियाना—क्रि० अ० [हिं० अगिया से नाम०] जल उठना। गरमाना। जलन या दाह से युक्त होना, जैसे—चलते चलते उसका पैर अगिया गया (शब्द०)।

अगिया बैताल—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि हिं० अगिया + सं० बैताल] १ विक्रमादित्य के दो बैतालों में से एक। २ एक कल्पित बैताल जिसके संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं। कहते हैं यह बड़ा दुष्ट था और बड़े आश्चर्यजनक कृत्य करता था। ३ मुहँ से लुक या लपट निकालनेवाला भूत। उल्कामुख प्रेत। ४ दलदल या तराई में इधर उधर घूमते हुए फासफरस व आग जो दूर से जलते हुए लूक के समान जान पड़ते हैं। ये कभी कभी कबरिस्तानों में भी अँधेरी रात में दिखाई देते हैं। ५ वह जिसका स्वभाव बहुत क्रोधी और चिड़चिड़ा हो। क्रोधी व्यक्ति।

अगियार१†—वि० [हिं० आग + इयार (प्रत्य०)] (लकड़ी, कोयला, कंडा आदि) जिसकी आग बहुत देर तक ठहरे या तेज हो।

अगियार२—संज्ञा पुं० दे० 'अगियारी'।

अगियारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० आग + इयारी (प्रत्य०)] वह पदार्थ या वस्तु जो अग्नि में वायु को सुगंधित करने के लिये डाली जाय। धूप देने की वस्तु।

अगियासन—संज्ञा पुं० [हिं० अगिया + सन] १. एक प्रकार का सन की जाति का पौधा। २ एक कीड़ा जिसके छू जाने से शरीर में जलन होती है। ३ एक चर्म रोग जिसमें झलझलाते हुए फफोले निकलते हैं।

अगिर—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २ अग्नि। ३ स्वर्ग। ४ एक राक्षस [को०]।

अगिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र = आगे] मकान के आगे का भाग। द्वार। उ०—तुलसी सेव जाति छवि छाए। बरसाने मनमोहन आए। चारि दुआरे उन्नत भारे। करिवर बहु झूमत मतवारे। इमि देखत अगिरी छवि छाए। अंत पुर महँ माधव आए।—गोपाल० (शब्द०)।

अगिरौकस्—वि० [सं०] १ स्वर्ग में निवास करनेवाला (देवतादि)। २ शोर गुल करने पर भी न रुकनेवाला [को०]।

अगिला†—वि० [हिं०] दे० 'अगला'।

अगिलाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि + हिं० लाय = लपट] अग्नि की ज्वाला। आग की लपट। उ०—जारति अंग अनंग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई।—घनानंद पृ० ६४।

अगिवाँण(पु)†—वि० [सं० अग्र + वान्] प्रधान। मुख्य। अगुआ उ०—तेंहि लवोदर वीनमूँ। चउसठि जोगिनि का अगिवाँण।—बी० रासो, पृ० ३।

अगिवान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगवान'—२। उ०—आदर सयुत बोल मुक्कि मंत्री अगिवान।—पृ० रा०, १२।६७।

अगिहर†—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि + गृह, प्रा० अग्गि + हर] अग्नि का निवास। चिता। उ०—विनति करओ सहिलौलिनि रे मोहि देहे अगिहर साजि।—विद्यापति, पृ० १५८।

अगिहाना†—संज्ञा पुं० [सं० अग्निधान, अग्न्याधान] वह स्थान जहाँ आग जलाई जाती हो। आग रखने का स्थान।

अगीठा१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा।

विशेष—इसके पत्ते पान के आकार के पर उससे कुछ बड़े होते हैं। इसमें सेंथ की तरह का एक प्रकार का कुछ चिपटा फल लगता है जिसके भीतर छोटे छोटे दाने रहते हैं।

अगीठा२(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + इष्ट] आगे का भाग।

अगीठि—संज्ञा पुं० [हिं० अगोर = आगे अथवा सं० अग्र, प्रा० अग्ग + हिं० इट्ठ] आगे का भाग। अगवाड़ा। आगे। उ०—मंगल मूरति मारुत नंदन ... मन आनंद नीठि है। काटि किर्या करनी ... अगीठि है।—भिखारी० ग्रं० भा० १ पृ० ९८।

अगीठी(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठी'। उ०—... अगीठी तापै ...।—... पृ० १४९।

अगीत१—क्रि० [सं० अग्रतः ?] आगे का आगामी। उ०—आइ अगीत पछीत गई फिरि ... नाहिं कनेर के फूलन। —ठाकुर०, पृ० १।

अगीत२—वि० [सं० अ + गीत] गीतरहित। न गाया हुआ। उ०—एक अस्फुट ... सुधि की दे स्पंदित मुस्कान।—पल्लव पृ० २।

अगीतपछीत१—क्रि० वि० [सं० अग्रतः पश्चात्] आगे और पीछे की ओर। आगे पाछे। उ०—... और ... विनती तुम सों हरि आइ अगीतपछीती न घेरा।—ठाकुर०, पृ० ७।

अगीतपछीत२—संज्ञा पुं० आगे का भाग और पीछे का भाग। अगवाड़ा पिछवाड़ा।

अगीह(पु)—वि० [सं० अगृह] गृहहीन। अगेह। उ०—जब प्रलय लोपत नीड़। घर बिसरि होत अगीह।—पृ० रा०, ६१।१०७१।

अगुठित—वि०—[सं० अ + गुंठित = आवृत्त] अनावृत्त। खुला हुआ। उ०—भारत की नारी उषा सी आज अगुंठित, भारत की मानवता नव आभा से मंडित।—युगपथ, पृ० ८६।

अगु१—संज्ञा पुं० [सं०] १ राहु ग्रह। २. प्रकाश का अभाव। अंधकार (को०)।

अगु२—वि० १ जिसके पास गाय न हो। गोहीन। २ गरीब। ३. दुष्ट। बदमाश [को०]।

अगुआ—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० उआ (प्रत्य०)] [क्रि० अगुआना। संज्ञा अगुआई, अगुआनी] १. अग्रग०। आगे चलनेवाला व्यक्ति। अग्रणी। २ मुखिया। प्रधान। नायक। सरदार। नेता। ३ पथप्रदर्शक। मार्ग बतानेवाला। रहनुमा। उ०—ततखन बोला सुआ सरेखा। अगुआ सोइ पथ जेइ देखा।—जायसी ग्रं०, पृ० ५७। ४. विवाह की बातचीत चलानेवाला। विवाह ठीक करनेवाला। घटक। कौतुकी। ५. आगा। आगे का भाग।

अगुआई—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग + आई (प्रत्य०)] १. अगुआ होने की क्रिया। अग्रसरता। २ प्रधानता। सरदारी। ३ मार्ग प्रदर्शन। रहनुमाई। उ०—कियेउ निषादनाथु अगुआई। मातु पालकी सकल चलाई।—मानस, २।२१२।

अगुआना१—क्रि० स० [हिं० 'अगुआ' से नाम०] [संज्ञा अगुआनी] आगे करना। अगुआ बनाना। सरदार नियत करना।

अगुआना[2]†--क्रि॰ अ॰ आगे होना या बढ़ना।

अगुआनी(पु)--संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'अगवानी'। उ॰--यह महीप मेरी अगुआनी के लिये महासागर तक आया।--श्यामा॰, पृ॰ ७६।

अगुण[1]--वि॰ [सं॰] १. सत्व, रज, तम आदि गुणों से रहित। धर्म या व्यापारशून्य। गुणरहित। निर्गुण। २. निर्गुणी। अनाड़ी। मूर्ख। बेहुनर।

अगुण[2]--संज्ञा पुं॰ अवगुण। बुरा गुण। दूषण। दोष।

अगुणज्ञ--वि॰ [सं॰] जो गुणज्ञ न हो। जिसे गुण की परख न हो। अनाड़ी। गँवार। नाकदरदान।

अगुणता--संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] गुणहीनता। गुणों का अभाव। उ॰--सेंद्रिया मैं, अगुणता से नित्य उकता ही रही थी, सजन मैं गा ही रही थी।--क्वासि, पृ॰ ८५।

अगुणत्व--संज्ञा पुं॰ [सं॰] अगुणता। गुणराहित्य [को॰]।

अगुणवादी--वि॰ [सं॰] अवगुण कहनेवाला। दोष निकालने या कहनेवाला। छिद्रान्वेषी [को॰]।

अगुणवान्--वि॰ [सं॰] गुणरहित [को॰]।

अगुणशील--वि॰ [सं॰] विशेषतारहित। अयोग्य। अगुणी [को॰]।

अगुणी--वि॰ [सं॰] १. निर्गुणी। गुणरहित। २. अनाड़ी। मूर्ख।

अगुताना(पु)†--क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'उकताना'। उ॰--तू जानि मोहि अगुतावहु रंक जनि नावहु हो।--पलटू॰ बानी, भा॰ ३, पृ॰ ७४।

अगुन[1](पु)--वि॰ [सं॰ अगुण] १. सत्व रज तम आदि गुणों से रहित। निर्गुण। उ॰--अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा।--मानस, १।२३। २. अनाड़ी। बेहुनर। निर्गुणी। उ॰--अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनवास।--मानस, ६।३०।

अगुन[2](पु)--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अगुण] दे॰ 'अगुण' २। उ॰--खल अघ अगुन साधु गुनगाहा।--मानस, १।६।

अगुनी(पु)--वि॰ [सं॰ अ+हिं॰ गुनना] जिसे गुना या विचारा न जा सके। जिसका वर्णन न किया जा सके। उ॰--ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनायक की अगुनी गुन गाहैं। आरत दीन अनाथन को रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं।--तुलसी ग्र॰, पृ॰ २००।

अगुमन(पु)--क्रि॰ वि॰ [हिं॰] दे॰ 'अगमन[1]'। उ॰--मन हित अगुमन दिहल चलाई।--धरनी॰, पृ॰ २।

अगुरु[1]--वि॰ [सं॰] १. जो भारी न हो। हलका। सुबुक। २. जिसने गुरु से उपदेश न पाया हो। बिना गुरु का। निगुरा। ३. लघु या ह्रस्व (वर्ण)।

अगुरु[2]--संज्ञा पुं॰ १. अगर वृक्ष। ऊद। २. शीशम का पेड़।

अगुवा(पु)†--संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अगुआ'। उ॰--अगुवा भयउ सेख बुरहानू। पथ लाइ मोहि दीन गियानू।--जायसी ग्र॰, पृ॰ ८।

अगुवानी†--संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'अगवानी'।

अगुसरना(पु)†--क्रि॰ अ॰ [सं॰ अग्रसरण] अग्रसर होना। आगे बढ़ना। उ॰--एकौ परग न सो अगुसरई।--जायसी (शब्द॰)।

अगुसारना(पु)†--[सं॰ अग्रसारण] आगे बढ़ना। आगे रखना। उ॰--रंग के राजे दुख अगुसारा। जियत जीव नहिं करौ निनारा।--पदमावत, पृ॰ ७०३।

अगुठना(पु)--क्रि॰ स॰ [सं॰ अवगुण्ठन] चारों ओर से घेर लेना।

अगूठा(पु)†--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अवगुण्ठक] घेरा। मुहासिरा।

अगूठी(पु)--वि॰ [सं॰ अवगुण्ठित अथवा हिं॰ अगूठ] घेरायुक्त। उ॰--जेहि कारन गढ़ कीन्ह अगूठी।--जायसी (शब्द॰)।

अगूठी[2](पु)--संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ अगूठा] कारागार। बंधन।

अगूढ़[1]--वि॰ [सं॰ अगूढ़] जो छिपा न हो। स्पष्ट। प्रकट। सहज। आसान।

अगूढ़[2]--संज्ञा पुं॰ अलंकार में गुणीभूत व्यंग्य के आठ भेदों में से एक।

विशेष--यह वाच्य के समान ही स्पष्ट होता है। जैसे--'उदयाचल चुवत रवी, अस्ताचल को चंद।' यहाँ प्रभात का होना व्यंग्य होने पर भी स्पष्ट है।

अगूढ़गंध--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अगूढ़गन्ध] हींग [को॰]।

अगूढ़गंधा--संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अगूढ़गन्धा] हींग। गाँधी।

अगूढ़भाव--वि॰ [सं॰ अगूढ़भाव] जिसका भाव या विचार छिपा हुआ न रह सके।

अगूता(पु)--क्रि॰ वि॰ [सं॰ अग्र+हिं॰ ऊता (प्रत्य॰)] आगे। सामने। उ॰--बाजन बाजहिं होइ अगूता। दुवौ कंत लेइ चाहहिं सूता।--जायसी ग्र॰, पृ॰ २९६।

अगृभीत--वि॰ [सं॰] १. अगृहीत। जो पकड़ा या गिरफ्तार न किया गया हो। २. अपराजित। अपराभूत [को॰]।

अगृह[1]--वि॰ [सं॰] गृहविहीन। बिना घर का। उ॰--क्या पूछो हो पता हमारा? हम हैं अगृह, अकाम।--अपलक, पृ॰ ७३।

अगृह[2]--संज्ञा पुं॰ गृहस्थाश्रम के बाद का आश्रम। वानप्रस्थ [को॰]।

अगृहता--संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बिना घर का होने की स्थिति या दशा। बेघरबारपन [को॰]।

अगेंथ--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अग्निमन्थ] अरनी का पेड़। गनियारी।

अगेंद्र--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अगेन्द्र] पर्वतों का राजा। हिमालय।

अगेज[1]--वि॰ [फा॰ अगेज] मिला हुआ।

अगेज[2]--संज्ञा स्त्री॰ सहन। अँगेज।

अगेय--वि॰ [सं॰] जो गेय न हो या जिसका गान न किया जा सके [को॰]।

अगेयान(पु)†--वि॰ [सं॰ अज्ञान] अज्ञ। अजान। अनजान। उ॰--ए सखि पिआ मोर बड़ा अगेयान, बोलथि बदन तोर चाँद समान।--विद्यापति, पृ॰ २८।

अगेला--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अग्र+हिं॰ एला (प्रत्य॰)] १. आगेवाली मठिया जिन्हें नीच जाति की स्त्रियाँ कलाई में पहनती हैं। इसका उलटा 'पछेला' है। २. हलका अन्न जो ओसाते समय भूसे के साथ आगे जा पड़ता है और जिसे हलवाहे आदि ले जाते हैं।

अगेह--वि॰ [सं॰] जिसे घर द्वार न हो। गृहरहित। बेठिकाने का। उ॰--अकुल अगेह दिगंबर व्याली।--मानस, १।७२।

अगौरा†—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० औरा (प्रत्य०)] नई फसल की पहली आँटी जो प्रायः जमींदार को भेंट की जाती है।

अगोई[1]ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अग्रवर्ती] अगुआ। सरदार। नायक। उ०—उदंकरन रन भयौ अगोई।—छत्र०, पृ० २१७।

अगोई[2]ⓟ—वि० स्त्री० [सं० अगोपित, प्रा० अगोइअ, हिं० अगोइ] जो छिपी न हो। प्रकट। जाहिर। व्यक्त। उ०—सतन की गति अगत अगोई।—घट०, पृ० ७२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अंगोचⓟ—वि० [सं० अगोचर] दे० 'अगोचर'। उ०—देहुरे मझे देव पायो, वस्त अगोच लखायो।—दादू० पृ० ५३०।

अगोचर[1]—वि० [सं०] १ जिसका अनुभव इंद्रियों को न हो। जिसका बोध न हो सके। इंद्रियातीत। उ०—मन बुद्धि वर बानी अगोचर प्रगट कवि कैसे करै।—मानस, १।३२। २ अप्रगट। अप्रत्यक्ष। अव्यक्त। उ०—'अगोचर बातों या भावनाओं को भी, जहाँ तक हो सकता है, कविता स्थूल गोचर रूप में रखने का प्रयास करती है।—रस०, पृ० ४१।

अगोचर[2]—संज्ञा पुं० १ ब्रह्म। २ वह वस्तु जो इंद्रियों का विषय न हो। ३ वह वस्तु जिसे देखा, समझा या जाना न जा सके [को०]।

अगोचरीⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० गोचर] हठयोगियों की पाँच मुद्राओं में से 'गोचरी' नाम की एक मुद्रा। उ०—चाचरी, भूचरी, खेचरी, अगोचरी, उन्मुनी पाँच मुद्रा साधते सिद्ध राजा।—रामानंद०, पृ० ५।

अगोट[1]—संज्ञा पुं० [सं० अग्र = आगे + हिं० ओट = आड़] [क्रि० अगोटना] १ रोक। ओट। आड़। उ०—रही दै घूघट पट की ओट। नहसुत कील, कपाट सुलच्छन, दै दृग द्वार अगोट।—सूर०, १०।२७६९।

अगोट[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र + हिं० ओट = सहारा] आश्रय। आधार। उ०—रहिहैं चंचल प्रान ए, कहि कौन की अगोट।—बिहारी र०, पृ० ३९५।

अगोट[3]— वि० [सं० अ = नहीं + हिं० गोट = जोट, साथी] एकाकी। अकेला।

अगोटना[1]ⓟ†— क्रि० स० [हिं० अगोट से नाम० अथवा सं० अग्र, प्रा० अग्ग + हिं० ओट + ना (प्रत्य०)] १. रोकना। छेंकना। उ०—सतु कोट जो पाय अगोटी। मीठी खाँड़ जेंवाए रोटी।—जायसी (शब्द०)। २ बंद कर रखना। रोक रखना। पहरे में रखना। कैद रखना। उ०—जौ गुनही, तौ राखियै आँखिनु माँझ अगोटि।—बिहारी र०, दो० २५०। ३ छिपाना। ढाँकना। उ०—कीजै किन यत्न अगोटन को। है चोर यही मनमोहन को।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २४२।

अगोटनाⓟ[2]—क्रि० स० [सं० आक्रोड, प्रा० अक्कोड, हिं० 'अगोट' से नाम०] १ अंगीकार करना। स्वीकार करना। २ पसंद करना। चुनना। उ०—लगत कल्प शतकोटि एक एक के गुन गनत। मन में लेहि अगोटि जो सुदर नीको लगै।—गुमान (शब्द०)।

अगोटनाⓟ[3]—क्रि० अ० [हिं० अगोट (= रोक) से नाम०] रुकना ठहरना। अड़ना। फँसना। उलझना। उ०—सुनत भावती बात सुतनि की झूठहिं धाम के काम अगोटी।—सूर०, १०।१६५।

अगोणी†—वि० [हिं० अगौनी] आगेवाली। आगे की। उ०—एता कमाम लै अगोणी भूमि आया।—शिखर० पृ० ६।

अगोता[1]ⓟ—क्रि० वि० [सं० अग्रत] दे० 'अगुता'।

अगोता[2]ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अगवानी। पेशवाई।

अगोत्र—वि० [सं०] कारणरहित। अकारण [को०]।

अगोपा—वि० [सं०] जिसके पास गाय न हो। गोधन से रहित [को०]।

अगोपिⓟ—वि० [सं० अगोप्य] प्रकट। जाहिर। व्यक्त। उ०—गोपि कहूँ तो अग पि पहा यह गोपि अग पि न ऊभौ न वैसा।—सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ८१७।

अगोरई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगोरना] १ खेत आदि की देखभाल करने की मजदूरी। २ अगोरने की क्रिया या स्थिति।

अगोरदार—संज्ञा पुं० [हिं० अगोरना + फा० दार] रखवाली करनेवाला। पहरा देनेवाला। चौकसी करनेवाला। रखवाला।

अगोरना[1]—क्रि० स० [सं० आघूर्णन = देखना या सं० अग्र + रक्ष या देशी] १ राह देखना। बाट जोहना। इंतजार करना। प्रतीक्षा करना। उ०—तेरी बाट अगोरते आँखें हुईं चकोर की।—हर० घास०, २ रखवाली करना। पहरा देना। चौकसी करना। उ०—कुँवर लाख दुइ बार अगोरे। दुहु दिसि पँवर ठाढ़ कर जोरे।—जायसी (शब्द०)।

अगोरना—क्रि० स० [हिं०] रोकना। अगोरना। छेंकना। उ०—जउ मैं कोटि जतन करि राखति, घूघट ओट अगोरि। तउ उड़ि मिले वधिक के खग ज्यौं, पलक पींजरा तोरि।—सूर०, १०।२३५७

अगोरा†—संज्ञा पुं० [हिं० अगोर + आ (प्रत्य०) १ अगोरने या रखवाली करने की क्रिया। चौकसी। निगरानी। २ खेत की कटाई या फसल की दँवाई के समय की वह निगरानी जो जमींदार लोग काश्तकार से उपज का भाग लेने के लिये अपनी ओर से कराते हैं।

अगोराईⓟ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगोर + आई (प्रत्य०)] दे० 'अगोरई'।

अगोरिया†—संज्ञा पुं० [हिं० अगोर + इया (प्रत्य०)] खेत की रखवाली करनेवाला। फसल रखनेवाला। रखवाला।

अगोही†—संज्ञा पुं० [सं० अग्रवर्ती या अग्रवाही] वह बैल जिसके सींग आगे की ओर निकले हों।

अगोह्य— वि० [सं०] जो गोपनीय या ढँका न हो। प्रकट [को०]।

अगौडी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अग + औड़ी (प्रत्य०)] ईख के ऊपर का पतला भाग। अघोरी। अगाव। अगौरा।

अगौका[1]—वि० [सं०] पर्वत पर रहनेवाला [को०]।

अगौका[2]—१ शरभ। २. सिंह। ३ पक्षी [को०]।

अगौढ†—संज्ञा पुं० [सं० अग्रु, प्रा० अग्ग + वढ़ (प्रत्य०)] रुपया जो असामी जमींदार को नजर या पेशगी की तरह देता है। पेशगी। अगाऊ।

अगौनी[1] ⓟ--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगाउनी'। उ० --देव दिखावत कचन सो तन औरन को मन लावै अगौनी --देव (शब्द०)।

अगौनी†[2]--संज्ञा स्त्री० [हिं० अगवानी] १ अगवानी। पेशवाई। २ वह आतिशबाजी जो बरात आने पर द्वारपूजा के समय छोडी जाती है।

अगौरा[1]--संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० औरा (प्रत्य०)] ऊख के ऊपर का पतला नीरस भाग जिसमे गाँठे नजदीक होती हैं। अगाव। अगौडी कोचा।

अगौरी[1]--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगौरा'। २ दे० 'अगौली'।

अगौली--संज्ञा स्त्री० [देश०] १ ईख की एक छोटी और कडी जाति।

अगौवा ⓟ--क्रि० वि० [हिं० अग + औआ (प्रत्य०)] आगे। उ०--विरच्यौ विकट रायमनि दौवा। धाई खाइ अरि हनै अगौवा।--छत्र०, पृ० २१५।

अगौहैं ⓟ[1]--क्रि० वि० [सं० अग्रमुख] आगे की ओर। आगे। अगाड़ी। उ०--(क) भीतर भौन तें प्रान प्रिया सो चितौ चहै पैग पडै न अगौहैं।--बेनी प्रवीन (शब्द०)।

अग्ग ⓟ--क्रि० वि० [सं० अग्र; प्रा० अग्ग] अगाडी। आगे। उ०--अग्ग गयौ गिरि निकट विकट उद्यान भयकर--पृ० रा०, ६।६४।

अग्गई--संज्ञा स्त्री० [देश०] अवध में अधिकता से होनेवाला एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष।

विशेष--इसकी पत्तियाँ प्राय हाथ भर लबी होती हैं। यह नेपाल भूटान, बरमा और जावा मे भी पाया जाता है। इसमे पीले रग के २-३ इच चौडे फूल और छोटे अमरूद के आकार के फल लगते हैं।

अग्गम†--[सं० अगम्या] दे० 'अगम'। उ०--अग्गम बदरिया आई रसिया, पच्छम बरस गये मेंह।--शुक्ल, अभि० ग्र०, पृ० १५६।

अग्गय ⓟ--क्रि० वि० [सं० अग्र] दे० 'अग्र' या 'आगे'। उ०--तहाँ अप्प अग्गय धर तत रथ्थ।--पृ० रा०, ६४।१००।

अग्गर[1] ⓟ--वि० [देश० अग्गल] [वि० स्त्री० अग्गरी] अगुआ। अग्रणी। उ०--गय सलषानी राव वीर अग्गर गढ रष्षे।--पृ० रा०, १२।५८।

अग्गर ⓟ[2]--संज्ञा पुं० [सं० आगार] निवास। धाम। प्रासाद। उ०--अग्गर जेहा झूँपडा तउ मासगे मोइ।--ढोला० दू० ३१४।

अग्गाल ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० अकाल] असमय। अनवसर। उ०--कंइ तू सींची सज्जणे, कंइ वूठउ अग्गाल।--ढोला० दू०, ३८१

अग्गि ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि] दे० 'अग्नि'। उ०--पवन अग्गि जलधर अकाश। सरिता समुद्द तिथि गिरि निवास।--पृ० रा०, १।१९।

अग्गिया ⓟ--संज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा] दे० 'आज्ञा'। उ०--अग्गिया दीन जद्दवह जाम।--पृ० रा०, ६१।१६०७।

अग्गे ⓟ--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आगे'। उ०--बहुराइ देव कवियन प्रबल मिलन पिथ्थ अग्गे चलिय।--पृ० रा०, ६।९३।

अग्नायी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अग्नि की स्त्री स्वाहा। २. त्रेतायुग (को०)।

अग्नि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आग। तेज का गोचर रूप। उष्णता। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश आदि पचभूतो या पचतत्वो मे से एक। २. वैद्यक के मत से तीन प्रकार की अग्नि।

विशेष--आयुर्वेद मे अग्नि के तीन प्रकार माने गए हैं। यथा-- (क) भौम, जो तृण, काष्ठ आदि के जलने से उत्पन्न होती है। (ख) दिव्य, जो आकाश मे बिजली से उत्पन्न होती है। (ग) उदर या जठर, जो पित्त रूप से नाभि के ऊपर और हृदय के नीचे रहकर भोजन भस्म करती है। इसी प्रकार कर्मकाड मे भी अग्नि तीन प्रकार की मानी गई है। यथा-- गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि। सभ्याग्नि, आवसथ्य और औपासनाग्नि--इन तीन को मिलाकर उनके छह भेद हैं जिनमे प्रथम तीन प्रधान हैं।

३ वेद के प्रधान देवताओ मे से एक।

विशेष--ऋग्वेद का प्रादुर्भाव इसी से माना जाता है। वेद मे अग्नि के मत्र बहुत अधिक हैं। अग्नि की सात जिह्वाएँ मानी गई हैं जिनके अलग अलग नाम हैं, जैसे--काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, धूम्रवर्णा, उग्रा और प्रदीप्ता। भिन्न भिन्न ग्रथो मे ये नाम भिन्न भिन्न दिए हैं। यह देवता दक्षिण पूर्व कोण का स्वामी है और आठ लोकपालो मे से एक है। पुराणो मे इसे वसु से उत्पन्न धर्म का पुत्र कहा है। इसकी स्त्री स्वाहा थी जिससे पावक, पवमान और शुचि ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इन तीनो पुत्रो के भी पैंतालीस पुत्र हुए। इस प्रकार सब मिलाकर ४९ अग्नि माने गए हैं जिनका विवरण वायुपुराण मे विस्तार के साथ दिया है।

क्रि० प्र०--जलना। जलाना।--डालना।--फूँकना।--बालना।--बुझना।--बुझाना।--भडकना।--भडकाना।--लगना।--लगाना।--सुलगाना।

४ जठराग्नि। पाचन शक्ति। जैसे--'अग्नि तो मद हो गई है। भूख कहाँ से लगे (शब्द०)। ५ पित्त। ६ तीन की सख्या क्योकि कर्मकाड के अनुसार तीन अग्नि मुख्य है। ७. सोना। ८ चित्रक। चीता। ९ भिलावा। १० नीबू। ११. अग्निकर्म (को०)। १२ 'र्' का गूढ प्रतीक (को०)। १३ प्रकाश (को०)।

अग्निक--संज्ञा पुं० [सं०] १ वीरबहूटी नाम का कीडा। २. एक प्रकार का पौधा (को०)। सर्पो की एक किस्म (को०)।

अग्निकण--संज्ञा पुं० [सं०] चिनगारी। स्फुलिंग [को०]।

अग्निकर्म--संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निहोत्र। हवन। २. अग्निसस्कार। शवदाह। ३ गरम लोहे से दागने का कार्य (को०)।

अग्निकला--संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की दस कलाओ मे कोई एक [को०]।

अग्निकल्प--वि० [सं०] अग्नि की प्रकृति या स्वभाववाला [को०]।

अग्निकाड--संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + कांड] आग लगाना।

अग्निकारिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऋग्वेदोक्त अग्निसूक्त जो 'अग्नि दूत पुरोदधे' से प्रारभ होता है। २. अग्निकार्य [को०]।

अग्निकार्य --संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिसारण' २।

अग्निकाष्ठ--संज्ञा पुं० [सं०] अगर का पेड़।

अग्निकीट—संज्ञा पुं० [सं०] समदर नाम का कीडा जिसका निवास अग्नि मे माना जाता है।

अग्निकुड—संज्ञा पुं० [सं० अग्निकुण्ड] अग्निहोत्र के लिये निर्मित कुड [को०]।

अग्निकुक्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] जलता हुआ तृण या पयाल का पूला। लुकारी। लुक।

अग्निकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] १ कार्तिकेय। षडानन। २ आयुर्वेद के अनुसार एक रस जो विभिन्न अनुपानो के साथ देने से अरुचि, मदाग्नि, श्वास, कास, कफ, प्रमेह आदि रोगो को दूर करता है।

अग्निकुल—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियो का एक कुल या वंशविशेष।

विशेष—ऐसी कथा है कि ऋषियो के तप मे जब दैत्य विघ्न डालने लगे तब उन्होंने वशिष्ठ की अध्यक्षता मे आबू पर्वत पर एक यज्ञ किया। उस यज्ञकुड से एक एक करके चार पुरुष उत्पन्न हुए जिनसे चार वश चले अर्थात् प्रमार, परिहार, चालुक्य या सोलकी और चौहान। इन चार क्षत्रियों का कुल अग्निकुल कहलाता है।

अग्निकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का एक नाम। २ रावण की सेना का एक राक्षस। ३ धूम्र। धुआँ [को०]।

अग्निकोण—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्व और दक्षिण का कोना।

अग्निक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शव का अग्नि मे दाह। मुर्दा जलाना। २ अग्निहोत्र या अग्निकर्म [को०]।

अग्निक्रीडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आतशबाजी।

अग्निगर्भ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्यकात मणि। २. सूर्यमुखी शीशा। आतशी शीशा। ३. शमी वृक्ष। ४. अग्निजार या गजपिप्पली का पौधा [को०]।

अग्निगर्भ[2]—वि० जिसके भीतर अग्नि हो। जो अग्नि उत्पन्न करे, जैसे अग्निगर्भ पर्वत।

अग्निगर्भ पर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वालामुखी पहाड।

अग्निगर्भा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शमी वृक्ष। २. पृथिवी। धरा। ३ महाज्योतिष्मती नाम की लता [को०]।

अग्निगृह—संज्ञा पुं० [सं०] वह गृह जहाँ हवन की अग्नि रखी रहती हो [को०]।

अग्निघृत—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि उद्दीपन करने के लिये निर्मित एक प्रकार का घृत [को०]।

अग्निचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ योग मे शरीर के भीतर माने हुए छ चक्रो मे से एक।

विशेष—इसका स्थान भौंहों का मध्य, रग बिजली का सा और देवता परमात्मा माने गए हैं। इस चक्र मे जिस कमल की भावना की गई है उसके दलो (पखुडियो) की सख्या दो और उनके अक्षर 'ह' और 'क्ष' हैं।

२. अग्नि का चक्र या गोला। उ०—विमल व्योम मे देव दिवाकर अग्निचक्र से फिरते हैं।—कानन०, पृ० २४।

अग्निचय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निचयन' [को०]।

अग्निचयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञार्थ अग्नि को रखना। अग्न्याध्यान। २. अग्न्याध्यान कार्य मे प्रयुक्त होनेवाले मत्र [को०]।

अग्निचित्—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्री।

अग्निचूड—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि के समान लाल शिखावाला पक्षी। कुक्कुट। अरुणचूड [को०]।

अग्निज[1]—वि० [सं०] १ अग्नि से उत्पन्न। २. अग्नि को उत्पन्न करनेवाला। ३ अग्निसदीपक। पाचक।

अग्निज[2]—संज्ञा पुं० १ अग्निजार वृक्ष। समुद्रफल का पेड। २ कार्तिकेय का नाम (को०)। ४. सोना। स्वर्ण (को०)।

अग्निजन्मा—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अग्निज' [को०]।

अग्निजात—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अग्निज' [को०]।

अग्निजार—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] समुद्र फल का पेड।

अग्निजाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निज्वाल' [को०]।

अग्निजित्—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर [को०]।

अग्निजिह्व[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। अमर। २ विष्णु [को०]।

अग्निजिह्व[2]—वि० अग्नि के समान जीभवाला [को०]।

अग्निजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आग की लपट। २. अग्नि देवता की सात जिह्वाएँ।

विशेष—मुडकोपनिषद् मे इनके नाम ये दिए हैं—काली, कराली, मनोजवा, लोहिता, धूम्रवर्णा, स्फलिगिनी और विश्वरूपी। वृहत्सहिता मे अंतिम दो नामों के स्थान मे उग्रा और प्रदीप्ता ३ कलियारी विष। लागली। नाम दिए हैं।

अग्निजीवी—संज्ञा पुं० [सं०] आग के सहारे काम करनेवाले जैसे—लुहार, सुनार आदि।

अग्निज्वाल—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। शकर [को०]।

अग्निज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आग की लपट। उ०—इडा अग्निज्वाला सी आगे जलती है उल्लास भरी।—कामायनी, पृ० १८१। २ धव का पेड जिसमे लाल फूल लगते हैं। ३. जलपिप्पली का पेड।

अग्निझाल—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + ज्वाल प्रा० झाल] जलपिप्पली का पेड।

अग्नितुडावटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नितुण्डावटी] वैद्यक के अनुसार अजीर्ण दूर करनेवाली गोली।

अग्नितेजा—वि० [सं०] अग्नितुल्य तेजवाला [को०]।

अग्नित्रय—संज्ञा पुं० [सं०] विधिपूर्वक स्थापित गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण नामक अग्नि [को०]।

अग्नित्रेता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अग्नित्रय' [को०]।

अग्निदड—संज्ञा पुं० [सं० अग्निदण्ड] आग मे जलाने का दड।

अग्निद—संज्ञा पुं० [सं०] आग लगानेवाला।

अग्निदग्ध[1]—वि० [सं०] चिताग्नि मे सविधि जलाया हुआ [को०]।

अग्निदग्ध[2]—संज्ञा पुं० पितृगणो का एक वर्ग [को०]।

अग्निदमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियारी क्षुप। एक प्रकार का क्षुप जिसे दमनी कहते हैं।

अग्निदाता—संज्ञा पुं० [सं०] चिता पर शव को अग्नि देनेवाला या दाहकृत्य करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अग्निदान—संज्ञा पुं० [सं०] चिता मे अग्नि लगाने का कार्य [को०]।

अग्निदाह--संज्ञा पुं० [सं०] १ आग में जलाने का कार्य। भस्म करने का कार्य। जलाना। भस्मीकरण। २ शवदाह। मुर्दा जलाना।

अग्निदिव्य- संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि के प्रयोग द्वारा सत्यासत्य का निर्णय। अग्निपरीक्षा [को०]।

अग्निदीपक--वि० [सं०] जठराग्नि को उत्तेजित करनेवाला। पाचन शक्ति बढानेवाला।

अग्निदीपन--संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्निवर्धन। जठराग्नि की वृद्धि। पाचनशक्ति की बढती। २ अग्निवर्धक औषध। पाचनशक्ति को बढानेवाली दवा। वह दवा जिसके खाने से भूख लगे।

अग्निदीप्ता--संज्ञा स्त्री० [सं०] महाज्योतिष्मती। अग्निगर्भा [को०]।

अग्निदूत--संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ में आवाहित देवगण। २ यज्ञकार्य। यजन [को०]।

अग्निदूषित--वि० [सं०] दग्ध। जला हुआ [को०]।

अग्निदेव--संज्ञा पुं० [सं०] १ देवरूप में अग्नि को प्रधान माननेवाले अग्निपूजक। २ अग्नि [को०]।

अग्निदेवा--संज्ञा स्त्री० [सं०] कृत्तिका नक्षत्र [को०]।

अग्निद्वार--संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वदक्षिण कोण में स्थित मकान का दरवाजा [को०]।

अग्निधान--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि रखने का पवित्र स्थान [को०]।

अग्निनक्षत्र--संज्ञा पुं० [सं०] कृत्तिका नाम का तृतीय नक्षत्र [को०]।

अग्निनयन--संज्ञा पुं० [सं०] हवन की अग्नि का विधिपूर्वक संस्कार करना [को०]।

अग्निनिर्यास--संज्ञा पुं० [सं०] अग्निजार वृक्ष [को०]।

अग्निनेत्र--संज्ञा पुं० [सं०] देवगण [को०]।

अग्निपक्व--वि० [सं०] अग्नि पर पकाया हुआ [को०]।

अग्निपरिक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि में हवन और उसकी सुरक्षा करना [को०]।

अग्निपरिग्रह--संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्र लेना [को०]।

अग्निपरिधान--संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की अग्नि को परदे से आवृत्त करना या घेरना [को०]।

अग्निपरीक्षा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जलती हुई आग द्वारा परीक्षा या जाँच। जलती हुई आग पर चलाकर अथवा जलता हुआ पानी, तेल या लोहा छुलाकर किसी व्यक्ति के दोषी या निर्दोष होने की जाँच।

विशेष--प्राचीन काल में जब किसी व्यक्ति पर किसी अपराध का संदेह होता था तब यह देखने के लिये कि वह यथार्थ में दोषी है या नहीं, लोग उसे आग पर चलने को कहते थे, अथवा उसके ऊपर जलता हुआ तेल या जल डालते थे। उनका विश्वास था कि यदि वह निरपराध होगा तो उसे कुछ आँच न आवेगी।

२ भयप्रदायक एवं कठिन परीक्षा। ३ सोने, चाँदी आदि धातुओं की आग में तपा कर परख।

अग्निपर्वत--संज्ञा पुं० [सं०] ज्वालामुखी पर्वत [को०]।

अग्निपुराण--संज्ञा पुं० [सं०] १८ पुराणों में से एक।

विशेष--इसका नाम अग्निपुराण इस कारण है कि इसे अग्नि ने वशिष्ठ जी को पहले पहल सुनाया था। इसके श्लोकों की संख्या कोई १४,०००, कोई १५,००० और कोई १६,००० मानते हैं। इसमें यद्यपि शिव का माहात्म्यवर्णन प्रधान है पर कर्मकांड, राजनीति, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, अलंकार, छंद शास्त्र, व्याकरण, तंत्र आदि अनेक फुटकर विषय भी इसमें सम्मिलित हैं।

अग्निपूजक--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि की पूजा करनेवाला व्यक्ति, जाति या धर्म।

अग्निप्रणयन--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निनयन' [को०]।

अग्निप्रतिष्ठा--संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ, विवाहादि धार्मिक अवसरों पर कुंड या वेदी पर अग्नि को रखने की क्रिया [को०]।

अग्निप्रवेश--संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर त्याग की इच्छा से अग्नि में प्रवेश करना। २ किसी स्त्री का पति के शव आदि के साथ चिता में प्रवेश करना [को०]।

अग्निप्रस्तर--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि उत्पन्न करनेवाला पत्थर। वह पत्थर जिससे आग निकले। चकमक पत्थर।

अग्निबाण--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र। वह बाण जिसमें से अग्नि की ज्वाला प्रकट हो। वह तीर जिसमें आग की लपट निकले। भस्म करनेवाला बाण।

विशेष--ऐसा कहा जाता है यह बाण मंत्र द्वारा चलाया जाता था और इससे अग्नि की वर्षा होने लगती थी।

अग्निबाव--संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + वायु, प्रा० वाव] १ घोडों और चौपायों का एक रोग जिसमें उनके शरीर पर छोटे आबले निकलते हैं और फूट फूटकर फैलते हैं। यह रोग अधिकतर घोडों को ही होता है। २ मनुष्यों का एक चर्मरोग जिसमें शरीर पर बडे बडे लाल चकत्ते या ददोरे निकल आते हैं। पित्ती। जुडपित्ती। ददरा। ३ अग्नि की ज्वाला या लपट। उ०--पुहीर चद जनु अग्निबाव।--पृ० रा०, ८।१५।

अग्निबाहु--संज्ञा पुं० [सं०] १ धूम्र। धुआँ। २ प्रथम मनु के पुत्र [को०]।

अग्निबीज--संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना।

विशेष--मनु आदि प्राचीन ग्रंथों में सोने की उत्पत्ति अग्नि के संयोग से लिखी है।

२. अग्नि का बीजाक्षर 'र' [को०]।

अग्निभ[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निसदृश नक्षत्र। कृत्तिका। २. सोना। स्वर्ण [को०]।

अग्निभ[2]--वि० अग्नि की तरह दीप्त [को०]।

अग्निभू--संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय।

अग्निभूति--संज्ञा पुं० [सं०] अंतिम जैन तीर्थंकर के शिष्य [को०]।

अग्निमथ--संज्ञा पुं० [सं० अग्निमथ] १ अरणी वृक्ष जिसकी लकडी को परस्पर घिसने से आग बहुत जल्द निकलती है। २ अरणी नामक यंत्र जिसमें यज्ञ के लिये आग निकाली जाती है।

अग्निमथन--संज्ञा पुं० [सं० अग्निमन्थन] दे० 'अग्निमथ' [को०]।

अग्निमणि--संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्यकांत मणि। एक बहुमूल्य पत्थर। २ सूर्यमुखी शीशा। आतशी शीशा।

अग्निमंथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ में अरणि का मथन करनेवाला याज्ञिक ब्राह्मण। २ अरणिमंथन के अवसर पर प्रयुक्त होने वाले मंत्र। ३ अरणि का काठ [को०]।

अग्निमांद्य—संज्ञा पुं० [सं० अग्निमान्द्य] मंदाग्नि। जठराग्नि की कमी। पाचनशक्ति की कमी। भूख न लगने का रोग।

अग्निमान्¹—संज्ञा पुं० [सं०] विधिपूर्वक अग्नि रखनेवाला द्विज। अग्निहोत्री [को०]।

अग्निमान्²—वि० अच्छी पाचनशक्तिवाला [को०]।

अग्निमारुति—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्यमुनि का नाम।

अग्निमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] शुंग वंशीय पुष्यमित्र का पुत्र। मालविकाग्निमित्र नाटक में इसकी कथा है [को०]।

अग्निमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। २. अग्निहोत्री (को०)। ३ प्रेत। ४ ब्राह्मण। ५ चीते का पेड़। ६ भिलावे का पेड़। ७ वैद्यक में अजीर्ण नाशक चूर्ण का नाम जो जवाखार, सज्जी, चित्रक, लवण आदि कई वस्तुओं के मेल से बनता है। ८ एक रस ओषधि का नाम जिससे वातशूल दूर होता है। ९ खटमल (को०)।

अग्निमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भल्लातक। भिलावाँ। २ गायत्री का मंत्र। ३ ब्राह्मण। ४ अग्नि आदि देवगण। ५ पाकशाला [को०]।

अग्नियंत्र—संज्ञा पुं० [सं० अग्नियन्त्र] आग उगलनेवाला यंत्र। बंदूक [को०]।

अग्नियान—संज्ञा पुं० [सं०] विमान। व्योमयान। वायुयान [को०]।

अग्नियुग—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में पाँच पाँच वर्ष के जो बारह युग माने गए हैं। उनमें से एक। इस युग के वर्षों के नाम क्रम से चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव और व्यय हैं।

अग्नियोजन—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञार्थ अग्नि प्रकट करने का कार्य [को०]।

अग्निरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्न्याधान' [को०]।

अग्निरजा—संज्ञा पुं० [सं०] १ वीरबहूटी कीड़ा। २. स्वर्ण [को०]

अग्निरहस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ अकल्प की उपासना को बतानेवाला शास्त्र या ग्रंथ। २ शतपथ ब्राह्मण का दशम कांड [को०]।

अग्निरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मांसरोहिणी नामक लता [को०]।

अग्निरूप—वि० [पुं०] अग्नितुल्य तेजोमय स्वरूपवाला [को०]।

अग्निरेता—संज्ञा पुं० [सं० अग्निरेतस्] अग्नि का रेतस् या तेज। सोना [को०]।

अग्निरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक मतानुसार एक रोग जिसमें अग्नि के समान झलकते हुए फफोले पड़ते हैं और रोगी को दाह और ज्वर होता है।

अग्निलिंग—संज्ञा पुं० [सं० अग्निलिङ्ग] आग की लपट की रंगत और झुकाव देखकर शुभाशुभ फल बतलाने की विद्या।

अग्निलोक—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि द्वारा अधिष्ठित मेरु पर्वत के शृंग के नीचे का लोक [को०]।

अग्निवंश—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निकुल।

अग्निवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की स्त्री स्वाहा [को०]।

अग्निवर्च¹—संज्ञा पुं० [अग्निवर्चस्] अग्नि का तेज [को०]।

अग्निवर्च²—वि० अग्नि की तरह दीप्त [को०]।

अग्निवर्ण¹—संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा जो रघु के प्रपौत्र तथा सुदर्शन के पुत्र थे।

अग्निवर्ण²—वि० आग के रंग का। अंगारे के समान। रक्तवर्ण। लाल।

अग्निवर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीखी मदिरा। तेज शराब [को०]।

अग्निवर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणों के अनुसार एक प्रकार का मेघ [को०]।

अग्निवर्धक—वि० [सं०] जठराग्नि को बढ़ानेवाला। पाचन शक्ति को बढ़ानेवाला [को०]।

अग्निवर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ युद्ध में आग्नेयास्त्रों की वर्षा या प्रयोग। २ भयंकर धूप पड़ना।

अग्निवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ साल का वृक्ष। साखू का पेड़। २ साल से निकली हुई गोंद। राल। धूप।

अग्निवासा—वि० [सं० अग्निवासस्] अग्नि की तरह शुद्ध या लाल वस्त्रवाला [को०]।

अग्निवाह¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. बकरा। छाग। २ धूम्र [को०]।

अग्निवाह²—वि० ज्वलनशील (पदार्थ) [को०]।

अग्निवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] बकरा। छाग [को०]।

अग्निबिंदु—संज्ञा पुं० [सं०] चिनगारी। स्फुलिंग [को०]।

अग्निविद—संज्ञा पुं० [सं० अग्निवित्] अग्निहोत्री।

अग्निविद्—वि० अग्निहोत्र आदि की क्रियाओं का ज्ञाता [को०]।

अग्निविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रातःकाल और सायंकाल मंत्रों द्वारा अग्नि की उपासना की विधि। अग्निहोत्र।

यौ०—पंचाग्निविद्या = छांदोग्य उपनिषद् में सूर्य, बादल, पृथ्वी पुरुष और स्त्री संबंधी विज्ञान को 'पंचाग्निविद्या' कहा है।

अग्निविश्वरूप—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार केतु तारों का एक भेद। ये ज्वाला की माला से युक्त और संख्या में १२० कहे गए हैं।

अग्निविसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] शोथ या फोड़े के कारण होनेवाली जलन या दर्द (को०)।

अग्निवीर्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नितुल्य पराक्रम। २ स्वर्ण [को०]।

अग्निवीर्य²—वि० अग्नि के सदृश तेजस्वी [को०]।

अग्निवेश—संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद के आचार्य एक प्राचीन ऋषि का नाम जो अग्नि के पुत्र कहे जाते हैं।

अग्निव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] वेद की एक ऋचा का नाम।

अग्निशरण—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निशाला [को०]।

अग्निशर्मा¹—वि० [सं०] बहुत शीघ्र उत्तेजित होनेवाला [को०]।

अग्निशर्मा²—संज्ञा पुं० एक ऋषि [को०]।

अग्निशाल—संज्ञा पुं० [पुं०] अग्निशाला [को०]।

अग्निशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घर जिसमें अग्निहोत्र या हवन करने की अग्नि स्थापित हो। उ०—देखते थे अग्निशाला से कुतूहलयुक्त।—कामायनी, पृ० ८३।

अग्निशिख--संज्ञा पुं० [सं०] १ कुसुम या बर्रे का पेड़। २. कुंकुम। केसर। ३ सोना। ४ दीपक। ५ बाण। तीर। ६. अग्निबाण [को०]।

अग्निशिखा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अग्नि की ज्वाला। आग की लपट। उ०--अग्निशिखा बुझ गई जागने पर जैसे सुख सपने।--कामायनी पृ० १३८। २ कलियारी या करियारी नामक पौधा जिसकी जड़ में विष होता है।

अग्निशुद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अग्नि से पवित्र करने की क्रिया। आंग छुलाकर किसी वस्तु को शुद्ध करना। २ अग्निपरीक्षा।

अग्निशेखर--संज्ञा पुं० [सं०] १ कुसुम या बर्रे का पेड़। २ केसर। ३ जागली वृक्ष। ४ सोना। स्वर्ण [को०]।

अग्निश्री--वि० [सं०] अग्नि की तरह दीप्त या शोभ वाला [को०]।

अग्निष्टुत्--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो एक दिन में पूरा होता है। यह अग्निष्टोम का ही संक्षेप है।

अग्निष्टोम--संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ जो ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का रूपांतर है।

विशेष--इसका काल वसंत है। इसके करने का अधिकार अग्निहोत्री ब्राह्मण को है। द्रव्य इसका सोम है। देवता इसके इंद्र और वायु आदि हैं और इसमें ऋत्विजों की संख्या १६ है। यह यज्ञ पाँच दिन में समाप्त होता है।

अग्निष्ठ--संज्ञा पुं० [सं०] १ रसोईघर। २ अँगीठी [को०]।

अग्निष्वात्ता--संज्ञा पुं० [सं०] १ पितरों का एक भेद। २ अग्नि, विद्युत् आदि विद्याओं का जाननेवाला।

अग्निसंकाश--वि० [सं०] अग्नितुल्य वर्ण या दीप्तिवाला [को०]।

अग्निसंदीपन--वि० [सं०] दे० 'अग्निवर्धक' [को०]।

अग्निसंभव[१]--वि० [सं०] अग्नि द्वारा उत्पन्न [को०]।

अग्निसंभव[२]--संज्ञा पुं० १ स्वर्ण। २ आरण्य कुसुम। ३ कार्तिकेय। ४ भोज्यपदार्थ या भोजन का रस [को०]।

अग्निसंस्कार--संज्ञा पुं० [सं०] १ आग का व्यवहार। आग जलाना। २ तपाना। तप्त करना। ३ शुद्धि के लिये अग्नि स्पर्श कराने का विधान। ४ मृतक के शव को भस्म करने के लिये उसपर अग्नि रखने की क्रिया। दाहकर्म। ५ श्राद्ध में पिंड रखने की वेदी पर आग की चिनगारी घुमाने की रीति या क्रिया।

अग्निसंहिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निवेश ऋषि द्वारा प्रणीत चिकित्सा संबंधी एक ग्रंथ [को०]।

अग्निसखा--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निसहाय'।

अग्निसहाय--संज्ञा पुं० [सं०] १ जंगली कबूतर (क्योंकि उसके मांस से जठराग्नि तीव्र होती है)। २ वायु। हवा। ३ धुआँ [को०]।

अग्निसाक्षिक--वि० [सं०] १ जिसका साक्षी अग्नि हो। २ जिसकी प्रतिज्ञा अग्नि को साक्षी देकर की गई हो। जो अग्नि देवता के सामने संपादित हो।

विशेष--जो बात अग्नि के सामने उसको साक्षी मानकर कही जाती है वह बहुत पक्की समझी जाती है और उसका पालन धर्मविचार से अत्यंत आवश्यक होता है। विवाह में वर कन्या की जो प्रतिज्ञाएँ होती हैं वे अग्नि को साक्षी देकर की जाती हैं।

अग्निसात्--वि० [सं०] आग में जलाया हुआ। भस्म किया हुआ। क्रि० प्र०--करना।--होना।

अग्निसार--संज्ञा पुं० [सं०] नेत्रों के लिये आयुर्वेदकथित एक औषध। रसांजन (को०)।

अग्निसुत--संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय [को०]।

अग्निसूनु--संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय [को०]।

अग्निसेवन--संज्ञा पुं० [सं०] आग तापना।

अग्निस्तंभ--संज्ञा पुं० [सं० अग्निस्तम्भ] १. अग्नि के प्रभाव को रोकने का कार्य। २ अग्निप्रभाव रोकनेवाले मंत्र। ३ अग्नि-प्रभाव-निरोधक चूर्ण या लेप [को०]।

अग्निस्तंभन--संज्ञा पुं० [सं० अग्निस्तम्भ] दे० 'अग्निस्तंभ' [को०]।

अग्निस्तोक--संज्ञा पुं० [सं०] स्फुलिंग। चिनगारी [को०]।

अग्निहोत्र--संज्ञा पुं० [सं०] वेदोक्त मंत्रों से अग्नि में आहुति देने की क्रिया। एक यज्ञ। उ०--जलने लगा निरंतर उनका अग्निहोत्र सागर के तीर।--कामायनी, पृ० ३१।

अग्निहोत्री[१]--वि० संज्ञा पुं० [सं० अग्निहोत्रिन्] अग्निहोत्र करनेवाला। सवेरे संध्या अग्नि में वेदोक्त विधि से हवन करनेवाला। आहिताग्नि।

अग्निहोत्री[२]--संज्ञा स्त्री० यज्ञप्रयुक्त गाय [को०]।

अग्नीध्र--संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ में ऋत्विकविशेष जिसका काम अग्नि की रक्षा करना है। २ स्वायंभुव मनु के पुत्र एक राजा का नाम। ३ मनु के पुत्र राजा प्रियव्रत का बेटा। उ०--प्रियव्रत के अग्नीध्र सू भयौ।--सूर० ५।२।४। दे० 'आग्नीध्र'।

अग्नीय--वि० [सं०] १. अग्नि का समीपवर्ती। २ अग्निसंबधी। अग्नि का [को०]।

अग्न्यगार--संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञाग्नि को रखने का स्थान। अग्निहोत्र का गृह [को०]

अग्न्यस्त्र--संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + अस्त्र] १ मंत्र द्वारा फेंका जानेवाला अस्त्र जिससे आग निकले। अग्निघटित अस्त्र। आग्नेयास्त्र। २ वह अस्त्र जो आग से चलाया जाय, जैसे बंदूक।

अग्न्यागार--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्न्यगार' [को०]।

अग्न्याधान--संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि की विधानपूर्वक स्थापना। २ अग्निहोत्र।

अग्न्यालय--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्न्यागार' [को०]।

अग्न्याशय--संज्ञा पुं० [सं०] जठराग्नि का स्थान। पक्वाशय।

अग्न्याहित--संज्ञा पुं० [सं०] अहिताग्नि। अग्निहोत्री [को०]।

अग्न्युत्पात--संज्ञा पुं० [सं०] १ आकाशीय अग्नि द्वारा उपद्रव।

विशेष--नक्षत्र, उल्का, वज्र या पत्थर, बिजली और तारा के रूप में यह पाँच प्रकार का होता है।

२ अग्निकांड। आग लगना [को०]।

अग्न्युत्सादी--वि० [सं०] जो अग्निहोत्र या यज्ञ की अग्नि को बुझ जाने देता है [को०]।

अग्न्युद्धार--संज्ञा पुं० [सं०] अरणिमंथन द्वारा आग उत्पन्न करने का कार्य [को०]।

अग्न्युपस्थान--संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि की पूजा या प्रार्थना। २ अग्निपूजा में प्रयुक्त होनेवाले मंत्र [को०]।

अग्य(पु)†--वि० [सं० अज्ञ, पु० हिं० अग्य] राम विरोधी विजय चह सठ हठ बस अति अग्य।--मानस, ६।८३।

अग्याँ(पु)†--संज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा, (पु) अग्याँ] दे० 'आज्ञा'। उ०--अग्याँ भई रिसान नरेसू।--पदमावत, पृ० ४६३।

अग्याँन(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० अज्ञान, (पु) अग्याँन, अगेयान] दे० 'अज्ञान'। उ०--जोबन गुन गवित सुनि सजनी तज्यो नाहि अग्याँन।--पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १४८।

अग्या(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अग्याँ'। उ०--जो अग्या सामंत स्वामि दीनी सु मानि लिय।--पृ० रा०, ३१।४८।

अग्याकारिनि(पु)--वि० स्त्री० [सं० आज्ञाकारिणी] आदेश माननेवाली। सेविका। उ०--हूँ तौ तिहारी अग्याकारिनि साँचि बात मोसौं कहा करौ महराज।--नंद० ग्रं०, पृ० ३६८।

अग्यात(पु)--क्रि० वि० [सं० अज्ञात, (पु) अग्यात] दे० 'अज्ञात'।

अग्यान(पु)--वि० दे० [हिं०] 'अग्यान'। उ०--मैं अग्यान अकुलाइ, अधिक लै, जरत माँभ धृत नायौ।--सूर०, १।१५४।

अग्यारी†--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि + कारिका, प्रा० अग्गिआरिया = होमकर्म] १ अग्नि में धूप, गुड़ आदि सुगंध द्रव्य देने की क्रिया। धूपदान। २ अग्निकुंड।

अग्यौन(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगवान' २। उ०--मुनि आवत चहुआँन, वरिय अग्यौन सलप वर।--पृ० रा०, १४।२२।

अग्र¹--संज्ञा पुं० [सं०] १ आगे का भाग। अगला हिस्सा। आगा। उ०--बहुरि करि कोप हल अग्र पर दंक धरि कटक को सकल चाहत डुबायो।--सूर० (शब्द०)। २. सिरा। नोक उ०--जैसे जब के अग्र ओस कन प्राण रहत ऐसे अवधिहि के तट।--सूर (शब्द०)। ३ स्मृति के अनुसार अन्न की भिक्षा का एक परिमाण जो मोर के ४८ अंडों के बराबर होता है। ४ शृंग। शिखर (को०)। ५ श्रेष्ठता। उत्कर्ष (को०)। ६. आलंबन। अवलंबन (को०)। ७ प्रारंभ। शुरुआत (को०)। ८. समूह। भंड (को०)। ९ पल नाम की एक तौल (को०)। १० अपने वर्ग या जाति का सर्वोत्तम पदार्थ (को०)। ११. सूर्य का घेरा या मंडल (को०)।

अग्र²--क्रि० वि० आगे। उ०--चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीत पुरातन लखइ न कोई।--तुलसी० (शब्द०)।

अग्र³--वि० १ अगला। प्रथम। २ श्रेष्ठ। उत्तम। ३ प्रधान। मुख्य। ४ अधिक। ज्यादा। [को०]।

अग्रकर--संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथ का अगला भाग। २ हाथ की उँगलियाँ। ३ सूर्य की प्रथम किरण। प्रकाश [को०]।

अग्रकाय--संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का अगला भाग [को०]।

अग्रग--संज्ञा पुं० [सं०] अगुआ। नेता [को०]।

अग्रगण्य--वि० [सं०] जिसकी गिनती पहले हो। प्रधान। मुखिया। श्रेष्ठ। बड़ा।

अग्रगामी¹--संज्ञा पुं० [सं० अग्रगामिन्] वह जो आगे चले। प्रधान व्यक्ति। अग्रसर। अगुआ। नेता।

अग्रगामी²--वि० [स्त्री० अग्रगामिनी] आगे चलनेवाला। अगुआ। उ०--रहे सदा तुम तो अनुगामी, आज अग्रगामी न बनो।--साकेत, पृ० ३९६।

अग्रगामी दल--संज्ञा पुं० [सं०] [अं० फारवर्ड ब्लाक] वह संस्था वा संघटन जिसकी स्थापना सुभाषचंद्र वसु ने कांग्रेस से संबंध-विच्छेद करने के बाद की।

अग्रजंघा--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्रजङ्घा] जाँघ का अगला भाग [को०]।

अग्रज¹--संज्ञा पुं० [सं०] १ जो भाई पहले जन्मा हो। बड़ा भाई। ज्येष्ठ भ्राता। अनुज का उलटा। उ०--अग्रज परतिग्या करी तुव उरु तोडन हेत।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ११४। २ (पु) नायक। नेता। अगुआ। उ०--सेना अग्रज हत्यो पंच भट अक्ष कुमारहि घाता।--रामस्वयंवर (शब्द०)। ३ ब्राह्मण।

अग्रज²(पु)--वि० १ श्रेष्ठ। उत्तम। उ०--बैठे विशुद्ध गृह अग्रज अग्र जाई। देखी बसंत ऋतु सुंदर मोददाई।--केशव (शब्द०)। २ आगे पैदा होनेवाला। उ०--रोवत तें बरजे सबै मोहन अग्रज भाइ।--सूर०, १०।५८६।

अग्रजन्मा--संज्ञा पुं० [सं०] १ बड़ा भाई। २ ब्राह्मण। ३ ब्रह्मा।

अग्रजा--संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी बहन। उ०--प्रभु कहाँ, कहाँ किंतु अग्रजा, कि जिनके लिये था मुझे तजा।--साकेत, पृ० ३१२।

अग्रजात--संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्राह्मण। २ बड़ा भाई [को०]।

अग्रजातक--संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण [को०]।

अग्रजाति--संज्ञा पुं० [सं०] अग्रजातक। ब्राह्मण [को०]।

अग्रजिह्वा--संज्ञा स्त्री० [सं०] जीभ का अगला भाग [को०]।

अग्रणी --वि० [सं०] अगुआ। श्रेष्ठ। प्रधान। मुखिया।

अग्रणी²--संज्ञा पुं० १ प्रधान पुरुष। मुखिया। अगुआ। २. वह्नि। अग्नि [को०]।

अग्रत --क्रि० वि० [सं०] आगे से। पहले से।

अग्रदानी--संज्ञा पुं० [सं०] वह पतित ब्राह्मण जो प्रेत या मृतक के निमित्त दिए हुए तिल आदि के दान को ग्रहण करे।

अग्रदूत--संज्ञा पुं० [सं०] वह दूत जो किसी के आने की सूचना आनेवाले व्यक्ति के पूर्व ही पहुँचकर दे। उ०--मैं ही वसंत का अग्रदूत।--अपरा, पृ० २६।

अग्रनख--संज्ञा पुं० [सं०] नख का अगला भाग [को०]।

अग्रनिरूपण--संज्ञा पुं० [सं०] भविष्य या भावी का कथन [को०]।

अग्रनी(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अग्रणी'। उ०--बीटन को नायक सहायक वरूथिनी को अनुज विराग वर अग्रनी बनायो है।--दीन० ग्रं०, पृ० १३४।

अग्रपर्णी--संज्ञा स्त्री० [सं०] अजलोमा। केवाँच [को०]।

अग्रपा--वि० [सं०] सबसे प्रथम पानेवाला [को०]।

अग्रपाद--संज्ञा पुं० [सं०] पैर का अगला हिस्सा। अँगूठा [को०]।

अग्रपूजा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सबसे पहले पूजन। सर्वप्रथम अर्चना। २. सबसे अधिक पूज्यता या मान्यता [को०]।

अग्रबीज¹--संज्ञा पुं० [सं०] १ वह वृक्ष जिसकी डाल काटकर लगाने से लग जाय। पेड़ जिसकी कलम लगे। २. कलम।

अग्रबीज²--वि० कलम से होनेवाला [को०]।

अग्रभाग--संज्ञा पुं० [सं०] १ आगे का भाग। अगला हिस्सा। २. सिरा। नोक। छोर। ३ श्राद्ध आदि में पहले दिया जानेवाला द्रव्य [को०]। ४. शेष अंश या भाग [को०]।

अग्रभागी—वि० [सं०] सर्वप्रथम हिस्सा या भाग पानेवाला [को०]।

अग्रभुक्—वि० [सं०] १ देवपितर को अर्पण किए बिना पहले स्वयम् खानेवाला। २ पेटू। औदरिक। ३. सबसे पहले भोजन करनेवाला [को०]।

अग्रभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अग्रभूमि' [को०]।

अग्रभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घर की छत। पाटन। २ लक्ष्य या प्राप्य स्थान [को०]।

अग्रमहिषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रधान रानी। पटरानी [को०]।

अग्रमास—संज्ञा पुं० [सं०] १ उदर के भीतर मांसवृद्धि का एक रोग। २. हृदय [को०]।

अग्रमुख—संज्ञा पुं० [सं०] मुख का अग्रभाग। मुखाग्र [को०]।

अग्रयान[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेना का आगे बढ़ना। सेना का पहला धावा। २. आगे बढ़ती हुई सेना। धावा करती हुई फौज।

अग्रयान[2]—वि० अग्रगामी। अगुआ [को०]।

अग्रयायी—संज्ञा पुं० [सं० अग्रयायिन्] १. अगुआ। अग्रसर। २ प्रधान। श्रेष्ठ [को०]।

अग्रयोधी—संज्ञा पुं० [सं०] १. आगे बढ़कर युद्ध करनेवाला वीर। २ प्रधान योद्धा। प्रमुख वीर [को०]।

अग्रलेख—संज्ञा पुं० [सं० अग्र+लेख] दैनिक और साप्ताहिक समाचार पत्रों में संपादकीय स्तंभ के अंतर्गत संपादक द्वारा लिखित प्रमुख लेख। उ०—'जीवन चरित्र लिख अग्रलेख अथवा छापते विशाल चित्र'।—अपरा, पृ० ६३।

विशेष—यह शब्द अंग्रेजी के 'लीडिंग आर्टिकल' का अनुवाद है।

अग्रलोहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिल्ली या बथुआ नामक शाक [को०]।

अग्रवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत में वर्णित चीरफाड़ का एक यंत्र।

अग्रवर(पु)—क्रि० वि० [सं० अग्र+पर, प्रा० वर] आगे। पहले। उ०—उमडि अग्रवर पैयर दिन्हिउ, जिय हठि प्रथम जुद्ध व्रत लिन्हिउ।—हिम्मत०, पृ० ६५७।

अग्रवर्ती—वि० [सं० अग्रवर्तिन्] आगे रहनेवाला। अगुआ।

अग्रवात—संज्ञा पुं० [सं०] स्वच्छ एवं ताजा वायु [को०]।

अग्रवान्—वि० [सं०] सबसे आगे या श्रेष्ठ [को०]।

अग्रवाल—संज्ञा पुं० [हिं०] अगरवाला।

अग्रश—क्रि० वि० [सं०] आगे से ही। पहले से ही। शुरू से ही [को०]।

अग्रशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] निवास का अगला भाग। ओसारी [को०]।

अग्रशोची—संज्ञा पुं० [सं०] आगे से विचार करनेवाला। दूरदर्शी। दूरदेश, जैसे—'अग्रशोची सदा सुखी' (शब्द०)।

अग्रशोभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्कृष्ट सौंदर्य। अपूर्व शोभा [को०]।

अग्रसंख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रथम स्थान या श्रेणी [को०]।

अग्रसंधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमराज की एक पुस्तिका या पंजिका जिसमें प्राणिवर्ग का शुभाशुभ लिखा रहता है [को०]।

अग्रसंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रातःकाल। प्रभात। ऊषाकाल। २. सायंकाल का पूर्ववर्ती समय [को०]।

अग्रसर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ आगे जानेवाला व्यक्ति। अग्रगामी। अगुआ। २. आरंभ करनेवाला। पहले पहले करनेवाला व्यक्ति। ३ मुखिया। प्रधान व्यक्ति।

क्रि० प्र०—होना = आगे बढ़ना। उ०—हुए अग्रसर उसी मार्ग से छुटे तीर से फिर वे।—कामायनी, पृ० १०६।

अग्रसर[2]—वि० १ जो आगे जाय। अगुआ। २ जो आरंभ करे। ३ प्रधान। मुख्य। उ०—अग्रसर हो रही यहाँ फूट, बाधाएँ कृत्रिम रही टूट।—कामायनी, पृ० २३६।

अग्रसारण—संज्ञा पुं० [सं० अग्रसर] १. आगे बढ़ाना। किसी का आवेदनपत्र आदि आगेवाले अधिकारी के पास भेजने का कार्य।

अग्रसारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बिना फल या पत्ते की टहनी। २. अनंत संख्याओं की गिनती करने का एक सरल तरीका [को०]।

अग्रसारित—वि० [सं० अग्रसर] आगे बढ़ाया हुआ।

अग्रसूची—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूई का अगला भाग या हिस्सा। सूच्यग्र [को०]।

अग्रसोची—संज्ञा पुं० [सं० अग्र+हिं० सोचना] आगे से विचार करनेवाली प्राणी। दूरदेश। दूरदर्शी। उ०—पहले कुछ आटे की कमी मालूम हुई किंतु अग्रसोची सदा सुखी।—किन्नर०, पृ० ७७।

अग्रस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] शीर्षस्थान। प्रथम स्थान या मूर्धन्य स्थान [को०]।

अग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १ गार्हस्थ्य को न धारण करनेवाला पुरुष। २ वानप्रस्थ। ३ ज्ञानशून्य (को०)। ४ गृहशून्य या गृहहीन व्यक्ति (को०)।

अग्रहर—वि० [सं०] (वस्तु या पदार्थ) जो पहले दिया जाय। सर्वप्रथम दी जाने योग्य [को०]।

अग्रहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अग्रकर'। २ हाथी के सूँड का अगला सिरा या नोक [को०]।

अग्रहायण—संज्ञा पुं० [सं०] वर्ष का अगला या पहला महीना। अगहन। मार्गशीर्ष।

विशेष—प्राचीन वैदिक क्रम के अनुसार वर्ष का आरंभ अगहन से माना जाता था। यह प्रथा अब तक भी गुजरात आदि देशों में है। पर उत्तरीय भारत में वर्ष का आरंभ चैत्र मास से लेने के कारण यह नवाँ पड़ता है।

अग्रहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ राजा की ओर से ब्राह्मण को योगक्षेम के लिये किया हुआ भूमि का दान। २. वह गाँव या भूमि जो किसी ब्राह्मण को माफी दी जाय। ३ ब्राह्मण को देने के लिये कृषि की पैदावार से निकाला या अलग किया हुआ अन्न (को०)।

अग्रहारिक—संज्ञा पुं० [सं०] अग्रहार का निरीक्षक अधिकारी [को०]।

अग्रांश—संज्ञा पुं० [सं० अग्र+अंश] १. आगे का भाग। २ चंद्रमा का वह भाग जो पृथ्वी पर से सदैव नहीं दिखाई पड़ता वरन् कभी कभी चंद्रमा की अनियमित गति या कंप से दिखाई पड़ जाता है।

विशेष—[illegible] है कि इसका भाग एक नियत [illegible] पृथ्वी की ओर [illegible]। केवल कभी कभी [illegible] जाता है जिससे उसका कुछ और [illegible] जाता है।

[illegible]—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] [को०]।

[illegible]—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] [को०]।

[illegible]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० '[illegible]' [को०]।

[illegible]—संज्ञा स्त्री० [सं० आ+गर्ज्] गर्जना। उ०—अवर की [illegible]।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० [illegible]।

[illegible]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्रानीक' [को०]।

[illegible]—संज्ञा पुं० [अ०] [illegible] की स्थिति या भाव। हैरान। उ०—[illegible] इतना [illegible] हो गया कि [illegible] कठिन प्रतीत होने लगा।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० [illegible]।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अग्रानीक—संज्ञा पुं० [सं०] सेना का आगे जानेवाला भाग [को०]।

अग्राम्य—वि० [सं०] १ जो गाँव का न हो। नगर का। शहरी। २ [illegible]। ३ जो पाला पोसा न हो। जंगली [को०]।

अग्राशन—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन का वह अंश जो देवता के लिये [illegible] दिया जाता है। यह अग्राशन पशुओं और [illegible] दिया जाता है।

अग्रासन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रधान आसन। मुख्य स्थान। सबसे आगे का [illegible] आसन।

अग्राह्य—वि० [सं०] १ न ग्रहण करने योग्य। अग्रहणीय। धारण [illegible]। २ न लेने लायक। ३ त्याज्य। छोड़ने लायक। ४ न मानने योग्य। अविचारणीय (को०)। ५. [illegible] (को०)।

अग्राह्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौलादि के कार्य में प्रयुक्त न होनेवाली [illegible] (को०)।

अग्रिम¹—वि० [सं०] १ अगाऊ। पेशगी। २. आगे आनेवाला। आगामी। उ०—यही बात अग्रिम सूत्रों से सिद्ध करेंगे।—[illegible] (शब्द०)। ३ प्रधान। श्रेष्ठ। उत्तम। ४ सर्वश्रेष्ठ। [illegible] (को०)। ५ अगला। आगे का (को०)।

[illegible]—[illegible]।

[illegible]—संज्ञा स्त्री० [सं०] [illegible]। [illegible] (को०)।

[illegible]—वि० [सं०] १ पहले उत्पन्न। पहले होनेवाला। २ श्रेष्ठ। [illegible]।

[illegible]—[illegible] १ [illegible]। २ पहला फल। ३ [illegible]।

[illegible]—[illegible] [सं०] दे० '[illegible]' (को०)।

[illegible]—संज्ञा पुं० दे० '[illegible]' (को०)।

[illegible]—[illegible] [सं०] [illegible] विवाह न हुआ [illegible]।

[illegible]—[illegible] [सं०] १. [illegible]। २ पहले से। आगे [illegible] [को०]।

अग्रेणी—संज्ञा पुं० [सं०] नेता। अगुआ। [को०]।

अग्रेदिधिषु¹—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी स्त्री से विवाह करनेवाला पुरुष जो पहले किसी और को ब्याही रही हो।

अग्रेदिधिषु²—संज्ञा स्त्री० वह कन्या जिसका विवाह उसकी बड़ी बहिन के पहले हो जाय।

अग्रेसर—वि० [सं०] दे० 'अग्रसर' [को०]।

अग्रेसरिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ नेता। अगुआ। २. अपने मालिक के आगे आगे जानेवाला सेवक [को०]।

अग्रेसुर—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + ईश्वर] देवताओं में अग्रणी या प्रथम पूज्य गणेश। उ०— समरि तिण पाछे अग्रेसुर दया कृपा कर श्री लंबोदर।—राज०, पृ० ४।

अग्र्य¹—वि० [सं०] १ प्रधान। श्रेष्ठ। २ अगला। ३ कुशल [को०]।

अग्र्य²—संज्ञा पुं० १ बड़ा भाई। २ सबसे बड़ा भाई (को०)। ३ सब वेदों को अनन्यमना होकर एकरस पढ़ने में समर्थ ब्राह्मण, जो श्रद्धा के साधकों में गिना गया हो। ४ छत। पाटन (को०)।

अघनिका—वि० [सं० अघ] पापयुक्ता। पापिनी। उ०—प्रसिद्ध हों अघनिका —भिखारी० ग्रं० भा० १, पृ० १८[illegible]।

अघ¹—[illegible] [सं०] १ पापात्मा। २ बुरा। बदमाश। ३ दोषी। दुष्कर्मी [को०]।

अघ²—संज्ञा पुं० १ पाप। पातक। अधर्म। उ०—सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी।—मानस १।२९। २ दोष। गुनाह दुष्कर्म। उ०—जेहिं अघ बधेउ व्याध जिमि बाली।—मानस, १।२९। ३ दुख विपत्ति। उ०—वरखि विस्व हरषित करत हरत ताप अघ प्यास —तुलसी ग्रं०, पृ० १३४। ४ व्यसन। ५ अशौच (को०)। ६ मथुरा के राजा कंस का सेनापति अघासुर जिसे कृष्ण ने मारा था।

अघओघ—संज्ञा पुं० [सं० अघौघ] पापकसमूह। पापराशि। उ०—सिय निंदक अघओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए।—मानस १।१६।

अघकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो प्रायश्चित्त के रूप में किया जाता है। अघमर्षण कृच्छ्र [को०]।

अघकृत्—वि० [सं०] पातकी। पाप करनेवाला [को०]।

अघघ्न¹—वि० [सं०] अघ या पाप का विनाशक [को०]।

अघघ्न²—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

अघट¹—वि० [सं० अ=नहीं+घट्=होना] १. जो कार्य में परिणत न हो सके। जो घटित न हो। न होने योग्य। उ०—अघट घटना सुघट, सुघट विघटन विकट, भूमि, पाताल, जल, गगन गंता।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६७। २ दुर्घट। कठिन। ३ जो ठीक न घटे। जो ठीक न उतरे। अनुपयुक्त। बेमेल। अयोग्य। उ०—भूषण पट पहिरे विपरीता। कोउ अंग अघट कोउ अंग रीता।—विश्रामसागर (शब्द०)।

अघट²—वि० [सं० अ=नहीं+घट्=हिंसा] १ जो न घटे। जो कम न हो। न चुकने योग्य। अक्षय। उ०—माटी मिलै न गगन बिलाई। अघट एकरस रहा न जाई।—दादू०, पृ० ५७३। २ जो समभाव रहे। एकरस स्थिर। उ०—(क) कबिरा यह

गति अटपटी, चटपट लखी न जाय। जो मन की खटपट मिटै, अघट भए ठहराय।—कबीर (शब्द०)। (ख) जहँ तहँ मुनिवर निज मर्यादा थापी अघट अपार।—सूर० (शब्द०)। ३ पूरा। पूर्ण। उ०—सूर स्याम सुजान सुकिया अघट उपमा दाव।—सा० लहरी, पृ० १।

अघटन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ + हिं० घटना] कम न होगा। न घटना, कम न होने का भाव।

अघटित¹—वि० [सं०] १. जो घटित न हुआ हो। जो हुआ न हो। उ०—पाकर पुत्रों में प्रेम अटल अघटित सा।—साकेत, पृ० २२६। २ जिसके होने की संभावना न हो। न होने योग्य। असंभव। कठिन। उ०—हरि माया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं।—तुलसी (शब्द०)। ३ (पु) अयोग्य। अनुचित। अनुपयुक्त। ना मुनासिब। उ०—रसना स्वाद सिथिल लपट ह्वै अघटित भोजन करतो।—सूर०, १।२०३।

अघटित²(पु)—वि० [सं० आ + घटित] अवश्य होनेवाला। अमिट। अनिवार्य। उ०—जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी।—तुलसी (शब्द०)।

अघटित³(पु)—वि० [हिं० अघट] न घटने योग्य। बहुत अधिक। उ०—अघटित सोभा यदपि तदपि मनि घटित विराजत। —गि० दा० (शब्द०)।

अघटितघटनापटीयसी—वि० [सं०] जो कभी न हुआ हो उसे भी करने में पटु या चतुर। माया का विशेषण [को०]।

अघट्ट(पु)—वि० [सं० अघट्य] जो न घटे या न चुके। अक्षय। उ०—दीपक दीन्हा तेल भरि बाती दई अघट्ट। कबीर सा० स०, भा० १, पृ० ६।

अघड़(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + घट, प्रा० घड, हिं० घड़] जो गढ़ा न जा सके। निर्माण के अयोग्य। उ०—अघड घडावै उलटे चाकि।—प्राण०, पृ० १७०।

अघन—वि० [सं०] १ जो घना या ठोस न हो। तरल। २ जो अशिथिल और अविरल न हो [को०]।

अघनाशक—संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'अघघ्न' [को०]।

अघनाशन¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अघ का नाश करे। विष्णु [को०]।

अघनाशन²—वि० पापों का नाश करनेवाला [को०]।

अघनासी(पु)—वि० स्त्री० [सं० अघ + नाशिन्] पाप का नाश करनेवाली। पापनाशिनी। उ०—वासी, अविनासी अघनासी ऐसी कासी है।—भारतेंदु ग्र० भा० १, पृ० २८२।

अघभोजी—वि० [सं० अघभोजिन्] १ देव पितर आदि के लिये न बनाकर अपने ही लिये बनाने और खानेवाला। २. पाप की कमाई खानेवाला [को०]।

अघमरषण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अघमर्षण] दे० 'अघमर्षण'। उ०—बाढ़ै पुन्य आघ अघमरषण आखरनि, मतिराम करत जगत जप नाम को।—मतिराम ग्र०, पृ० ४१२।

अघमर्षण¹—वि० [सं०] पापनाशक।

अघमर्षण²—संज्ञा पुं० १. ऋग्वेद का एक सूक्त जिसका उच्चारण संध्यावदन के समय द्विज पाप की निवृत्ति के लिये करते हैं। २. मंत्र द्वारा हाथ में जल लेकर नासिका से छुलाकर विसर्जन करने की पापनाशिनी क्रिया।

अघमर्षणकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कठिन व्रत जो प्रायश्चित्त रूप में किया जाता था।

विशेष—इसमें तीन दिन तक कुछ न खाने, त्रिकाल स्नान करने और पानी में डूबकर अघमर्षण मंत्र जपने का विधान है —(स्मृति)।

अघमार—वि० [सं०] पापों का नाश करनेवाला [को०]।

अघरूप—संज्ञा पुं० [सं० अघ + रूप] पापरूप। महापातकी। उ०—तदपि महीसुर स्राप बस भए सकल अघरूप।—मानस, १।१७६।

अघर्म—वि० [सं०] उष्णतारहित। शीतल [को०]।

अघर्मांशु—संज्ञा पुं० [सं०] हिमांशु। चंद्रमा [को०]।

अघल—वि० [सं०] पाप का नाश करनेवाला [को०]।

अघवान्—वि० [सं०] पापी। अघी।

अघवाना—क्रि० स० [हिं० अघाना का प्रे०] १ भरपेट खिलाना। भोजन से तृप्त करना। छकाना। २ संतुष्ट करना। मन भरना। उ०—कीनों घमसान समसान फर मंडल मैं घाइनु अघाइ अघवाए वीर वास मैं।—सुजान०, पृ० १३।

अघविष—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत तीव्र विषवाला साँप [को०]।

अघशंस—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुष्कर्म या पाप कहनेवाला व्यक्ति। २ दुष्कर्म की इच्छा करनेवाला व्यक्ति, जैसे चोर। ३. बुरा व्यक्ति [को०]।

अघशंसी—वि० [सं०] बुराई या पाप की वार्ता करनेवाला [को०]।

अघहर—वि० [सं० अघ + हर] पापों को हरण करनेवाला। पाप को नष्ट करनेवाला। उ०—सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अघहर सुखकंद।—भारतेंदु ग्र०, पृ० २५०।

अघहरन(पु)—वि० [सं०] अघहरण दे० 'अघहर'। उ०—अति प्रताप महिमा समाज जस, सोक, ताप, अघहरन।—नंद० ग्र०, पृ० ३२६।

अघहार—संज्ञा पुं० सं० १ कुख्यात डाकू या लुटेरा। २. अपराध विषयक अपवाद या अफवाह [को०]।

अघाँवरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अघाना] तृप्त होना। संतुष्ट होना। उ०—कवि ठाकुर नैन सो नैन लगे अब प्रेम सों क्यों न अघाँवरी री।—ठाकुर श०, पृ० १८।

अघा¹(पु)—संज्ञा पुं० हिं० दे० 'अघासुर'। उ०—बीते वर्ष कहत सब ग्वाला। आज अघा मार्‍यो नँदलाला।—व्रज०, पृ० १३३।

अघा²—संज्ञा स्त्री० सं० पाप की देवी। पाप की अधिष्ठात्री देवी [को०]।

अघाउ(पु)†—संज्ञा पुं० [प्रा० अग्घव = पूरा करना] संतुष्ट या तृप्त होने का भाव। संतोष। तृप्ति। उ०—भरत सभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०९।

अघाट—संज्ञा पुं० [देश०] वह भूमि जिसे बेचने या अलग करने का अधिकार उसके स्वामी को न हो। अगहाट।

अघात¹—संज्ञा पुं० [सं०] क्षति या घात का अभाव [को०]।

अघात² (पु)—संज्ञा पुं० [सं० आघात] चोट। मार। प्रहार। उ०—बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे।—मानस, ४।१४।

अघात³—क्रि० वि० [हिं० अघाना] पेट भर। खूब। ज्यादा। अधिक। बहुत। उ०—तब उन माँगी इन नहिं दीन्हीं बाढ्यो बैर अघात।—सूर० (शब्द०)।

अघाती—वि० [सं०] घात या क्षति न करनेवाला [को०]।

अघाना¹—क्रि० अ० [सं० आघ्राण] १ भोजन या पान से तृप्त होना। पेट भर खाना या पीना। छकना। अफरना। उ०—पुरुष को भोजन स्वाद सुधा मिलि पाइए। जुग जुग छुधा बुझाइ तौ पाइ अघाइए।—कबीर (शब्द०)।

विशेष—सं० 'आ + घ्रा' का अर्थ अच्छी तरह सूँघना है। यहाँ 'सुगंधि सूँघकर तृप्त होना' लाक्षणिक अर्थ धीरे धीरे अवस्थांतर प्रक्रिया से 'अघाना' का अर्थ देने लगा।

२ संतुष्ट होना। तृप्त होना। मन का भरना। इच्छा का पूर्ण होना। उ०—नखसिख रुचिर बिंदु माधव छवि निरखहिं नयन अघाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६१। ३ प्रसन्न होना। हर्ष से परिपूर्ण होना। उ०—ग्वाल दसौं ताहूका देखि ऋषि देत असीस अघाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६६। ४ (पु) थकना। ऊबना। उ०—प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ। मानस, ७।८८। ५. (पु) पूर्णता को पहुँचना। उ०—सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि।—मानस २।६३।

अघाना²—क्रि० स० संतुष्ट करना। तृप्त करना। उ०—परे भहराइ भभरि गिरि पाद सों करि वदन रुधिर भरों अघाऊ।—सूर०, १।१२६।

अघायु—वि० सं० १ हिंसानिरत। २ दूसरे की अहितकामना करनेवाला। पापमय जीवन व्यतीत करनेवाला। ३. सभी अवस्थाओं में पापाचरण करनेवाला [को०]।

अघारी¹—वि० [सं० अघारिन्] व्यसन या दुःख से युक्त [को०]।

अघारी²—संज्ञा पुं० [सं० अघ + अरि] १. पाप का शत्रु। पापनाशक। पाप दूर करनेवाला। उ०—तुम्हरेइ भजन प्रभाव अघारी।—मानस, ३।७। २ अघ नामक दैत्य को मारनेवाले श्रीकृष्ण या विष्णु।

अघालु (पु)—वि० [सं० अघालु] पापी। दुष्कर्मी। उ०—साखी कथ कथाइ अघाल मलय दुनियाँ भार। गरीबदास शाह यो कहै दरगा पकरी यार।—कबीर म० पृ० १२७।

अघाव—संज्ञा पुं० [हिं० अघाना] अघाने की स्थिति या भाव।

अघावट¹—संज्ञा पुं० [हिं० अघा + वट (प्रत्य०)] १. अघाने या पूर्ण तृप्त होने की स्थिति या भाव। २. ऊब।

अघासुर—संज्ञा पुं० [सं०] कंस का सेनापति अघ नामक दैत्य जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।

अघी—वि० [सं०] पापी। पातकी। कुकर्मी। उ०—कूर, कुजाति, कपूत, अघी सबकी सुधरै जो करै नर पूजो।—तुलसी (शब्द०)।

अघोरना—संज्ञा पुं० [देश०] घी का लोटा।

अघोर¹—वि० [सं०] १ जो भयानक या भयंकर न हो (शिव)। २. सौम्य। प्रियदर्शन। सुहावना।—उ०—सब श्रीकृष्ण ने अघोर वर्षा बरसाई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८३।

अघोर²—वि० [सं० घोर] १. घोर। कठिन। कठोर। उ०—पाँचों राम चतुर पद्म नाहीं। महा अघोर जन्म भयो तबहीं।—कबीर सा०, पृ० ३७। २ भयंकर। भयानक। उ०—दर्व दुर्गति पर सोक न हरही। सो गुरु नर्क अघोरहि परही।—सं० दरिया, पृ० ७।

अघोर³—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का नाम या एक रूप। २. एक पंथ या संप्रदाय।

विशेष—इसके अनुयायी न केवल मद्य मांस का व्यवहार अत्यधिक करते हैं, वरन् वे नरमांस, मल मूत्र आदि तक से घिन नहीं करते। कीनाराम इस संप्रदाय के बड़े प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं।

३ अघोर पंथ का उपासक। अघोरी। उ०—मति के कठोर मानि धरम को तोर करै, करम अघोर डरै परम अघोर को।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ३४।

अघोरघोररूप—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

अघोरनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] भूतनाथ। शिव।

अघोरपंथ—संज्ञा पुं० [सं० अघोर + पंथ] अघोरियों का पंथ या संप्रदाय वि० दे० 'अघोरमार्ग'।

अघोरपंथी—संज्ञा पुं० [सं० अघोरपंथी] अघोर मत का अनुयायी। अघोरी। औघड़।

अघोरपथ—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का उपासक एक संप्रदाय [को०]।

अघोरप्रमाण—संज्ञा पुं० [सं०] भयंकर परीक्षा या शपथ [को०]।

अघोरमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] अघोर मतावलंबियों की साधना का ढंग। अघोरियों का साधन मार्ग। उ०—सारूप्य मुक्ति सो तब पावै, अघोरमार्ग को जो कोई ध्यावै।—कबीर सा०, पृ० ६०५।

विशेष—अघोरमार्ग में शिव की अघोरीश्वर रूप में उपासना होती है। श्मशानसाधन, शवसाधन, मंत्रसाधन, पंचमकार सेवन, चिताभस्म और रुद्राक्षधारण आदि इस मार्ग में विहित है। तांत्रिक वीराचारियों से इनके आचार विचार मिलते हैं।

अघोरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्र कृष्ण चतुर्दशी। भादों बदी चौदस।

विशेष—इस तिथि को शिवपूजन का विशेष महत्व है।

अघोरी¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अघोरिन्] १. अघोर मत का अनुयायी। अघोर पथ पर चलनेवाला साधक जो मद्य मांस के सिवाय मल, मूत्र, शव आदि घिनौनी वस्तुओं को भी खा जाता है और अपना वेश भी भयंकर और घिनौना बनाए रहता है। औघड़, कीनारामी। २ घिनौनी वस्तुओं का व्यवहार करनेवाला व्यक्ति। भक्ष्याभक्ष्य का विचार न करनेवाला। सर्वभक्षी। घृणित व्यक्ति।

अघोरी²—वि० जो घिनौनी वस्तुओं का व्यवहार करे। घृणित। घिनौना। उ०—क्यों धर्म आपहिं तुम हित चंडाल अघोरी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ६२।

अघोष¹—वि० [सं०] १ शब्दरहित। नीरव। २ अल्पध्वनियुक्त। ३ ग्वाल या अहीरों से रहित।

अघोष²—संज्ञा पुं० १ व्याकरण में एक वर्णसमूह का नाम।

विशेष—इसमें प्रत्येक वर्ग का पहला और दूसरा अक्षर तथा श, ष, स भी हैं, यथा—क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, श, ष, स।

२. तेरह की संख्या का सूचक शब्द क्योंकि अघोष वर्ण १३ होते हैं [को०]।

अघोषित—वि० [सं०] बिना कहा या घोषणा किया हुआ।

अघोपितयुद्ध--संज्ञा पुं० [सं०] दो राज्यों का वह सशस्त्र संघर्ष या युद्ध जिसमें कोई भी राज्य संघर्ष की पूर्वसूचना अथवा नियमित घोषणा नहीं करते ।

अघौघ--संज्ञा पुं० [सं०] पापों का समूह । पाप का ढेर । उ०-- पावस समय कछु अवध बरनत सुनि अघौघ नसावहीं ।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४१६ ।

अघ्न्य¹--संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मा । २ बलीवर्द । साँड [को०] ।

अघ्न्य²--वि० न हनने या मारने के योग्य ।

अघ्न्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] गौ । गाय [को०] ।

अघ्रान(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आघ्राण] १. गंध लेने की क्रिया या भाव । सूँघने का कार्य । गंधग्रहण । २ गंध । महक । अरघान । उ०--नर अघ्रान तहाँ तिन्ह लागी । सत सुकृत बोले अनुरागी । --कबीर सा०, पृ० ६७ ।

अघ्रानना(पु)--क्रि० स० [सं० आघ्राण] आघ्राण करना । महँक लेना । सूँघना । उ०--असख रवि जहाँ, कोटि दामिनि, पुहुप सेज अघ्रानियाँ ।--कबीर (शब्द०) ।

अघ्रेय¹--वि० [सं०] न सूँघने योग्य ।

अघ्रेय²--संज्ञा पुं० मद्य । शराब [को०] ।

अचचल--वि० [सं० अचञ्चल] [स्त्री० अचचला, संज्ञा अचचलता] १ जो चचल न हो । चचलतारहित । स्थिर । ठहरा हुआ । उ०--भए विलोचन चारु अचचल ।--तुलसी (शब्द०) । २ धीर । गभीर ।

अचचलता--संज्ञा स्त्री० [सं० अचञ्चलता] १ स्थिरता । ठहराव । २ धीरता । गभीरता ।

अचड--वि० [सं० अचण्ड] [स्त्री० अचडी] जो चड न हो । उग्रता रहित । शात । सुशील । सौम्य ।

अचडी--संज्ञा स्त्री० [सं० अचण्डी] १ सीधी गाय । शात गौ । २. अकोपना स्त्री [को०] ।

अचती(पु)--वि० [सं० अचिन्तित, प्रा० अचिंतिय, अचिंतिइ] अतर्कित । आकस्मिक । उ०--का, प्री, रांगा, प्रांण करि, काँइ अचती होंण ।--ढोला दू० ६७७ ।

अचद्र--वि० [सं० अचन्द्र] चद्रमा से रहित । बिना चाँद का [को०] ।

अचभमं(पु)+--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचभव' । उ०--हुअ धरा नरा नर हैमरा, उरध अचभम अम्मरा ।--रा० रू०, पृ० २५ ।

अचभव(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अत्यद्भुत, प्रा० अच्चब्भुअ, अचभव] अचभा । आश्चर्य । विस्मय । तअज्जुब । उ०--अगम अगोचर समुझि परै नहिं भयो अचभव भारी ।--कबीर (शब्द०) ।

अचभा--संज्ञा पुं० [सं० अत्यद्भुत, प्रा० अच्चब्भुअ] १ आश्चर्य । अचरज । विस्मय । तअज्जुब । २ विस्मय उत्पन्न करनेवाली बात । उ०--एक अचभा देखा रे भाई, ठाढा सिंघ चरावै गाई । --कबीर ग्रं०, पृ० ६१ ।

अचभित(पु)--वि० [हिं० अचभा] आश्चर्यित । चकित । विस्मित ।

अचभो--संज्ञा पुं० [सं० असभव अथवा हिं० अचभव] दे० 'अचभा' । उ०--(क) देखत रहे अचभो, योगी हस्ति न आय । योगिहि कर अस जूझव भूमि न लागत पाय ।--जायसी (शब्द०) । (ख) अचभो इन लोगनि को आवै । छाँडे स्वाद अमी रस फलको माया विष फल भावै ।--सूर (शब्द०) ।

अचभौ(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचभव' । उ०--नमै धर्म मन वचन काय करि सिंधु अचभौ करई ।--सूर०, ६।७८।

अच्--संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत व्याकरण में स्वरों के लिये प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द जिसे प्रत्याहार भी कहते हैं [को०] ।

अचक¹--वि० [सं० चक्र, प्रा० चक्क = समूह, ढेर] भरपूर । पूर्ण । ज्यादा । जैसे--'जिनके घर अचक माया धरी है'।-- हिं०प्र० (शब्द०) ।

अचक²+--क्रि० वि० [सं० अ = नहीं चक् + भ्रात होना] बिना भ्रात हुए । बिना हिले डुले । उ०--घोड़ी लै चलु अचक बैठारि, सजन के खेत में ।--पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६३५ ।

अचक³--संज्ञा पुं० [सं० √चक् = भ्रात होना] घबराहट । भौंचक्कापन । विस्मय । उ०--नोम तन छाए, सुलतान दल आए, सो तो समर भजाए उन्हें छाई है अचक सी ।--सूदन (शब्द०) ।

अचकचाना--क्रि० अ० [हिं० अचक³ से नाम०] घबराना । विस्मित होना ।

अचकचाहट--वि० [हिं० अचक] घबराहट । भौंचकापन । उ०--'अपनी अचकचाहट का मुसकराहट से ढकने का प्रयत्न कर ही रहा था' ।--दहकते० पृ० २७ ।

अचकन--संज्ञा पुं० [अ० 'चिकन' का 'परिधान' से] एक प्रकार का लंबा अंगा ।

विशेष--इसमें पाँच कलियाँ और एक बालाबर होता है । जहाँ बालाबर मिलता है वहाँ दो बंद बाँधे जाते हैं । अब बंदों के स्थान पर बटन भी लगाने लगे हैं ।

अचकना पचकना--क्रि० वि० [हिं० अचक + अनु० पचक] हिचकिचाना । घबराना । उ०--अचक पचक यों धर धीरे पग सुधि भी लगी उतरने ।--मिट्टी०, पृ० ३५ ।

अचकाँ(पु)--क्रि० वि० [हिं० अचानक, अचक्का] अचानक । अचक्के में । एकाएक । सहसा । उ०--जानत हीं तुम हौ बल पूरे । पै अचकाँ आए नहिं सूरे ।--सदन (शब्द०) ।

अचकित--वि० [सं०] जो चकित या विस्मित न हो [को०] ।

अचक्का--संज्ञा पुं० [सं० आ = भले प्रकार + चक् = भ्रांति] ऐसी दशा जिसमें चित्त दूसरी ओर हो । असावधानी की अवस्था । अनजान ।

यौ०--अचक्के में = अचानक । सहसा । एकाएक ।

अचक्र--वि० [सं०] १. बिना चक्र या पहिए का । चक्रहीन । २ स्थिर । अचल । निष्कप [को०] ।

अचक्षु¹--वि० [सं०] १. बिना आँख का । नेत्ररहित । अधा । २ अतींद्रिय । इंद्रियरहित ।

अचक्षु²--संज्ञा पुं० असौम्य नेत्र [को०] ।

अचक्षुदर्शन--संज्ञा पुं० [सं०] आँख को छोड़ अन्य आभ्यंतरिक इंद्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान ।

अचक्षुर्दर्शनावरण--संज्ञा पुं० [सं०] वह कर्म जिससे अचक्षुदर्शन नामक ज्ञान न प्राप्त हो । अचक्षुदर्शन का निरोधकारक कर्म ।

अचक्षुर्दर्शनावरणीय--वि० [सं०] जैन शास्त्रकारों ने जीव के जो आठ मूल कर्म माने हैं उनमें से दर्शनावरणीय कर्म के नौ भेदों में से एक । अचक्षुर्दर्शन नामक ज्ञान का आवरक ।

अचक्षुविषय—वि० [सं०] जो नेत्र का विषय न हो । दृष्टि से परे [को०] ।

अचक्षुष्क—वि० [सं०] चक्षुविहीन । नेत्रहीन [को०] ।

अचख(पु)— वि० [सं० अचक्षु, प्रा० अचक्खु] नेत्रहीन । दृष्टिरहित । उ०—भय युत बालक प्रिय अचख सुनत अनाथ सदीव ।—राम० धर्म० पृ० ५६ ।

अचगरा— वि [सं० अत्यर्गल, प्रा० अच्चग्गल, देश०] छेड़खानी करनेवाला । नटखट । शोख । चचल । उ०—ऐसी नाहिं अचगरौ मेरौ कहा बनावति बात ।—सूर०, १०।२६० ।

अचगरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अचगरा] ज्यादती । नटखटी । शरारत । छेड़छाड़ । उ०—(क) जौं लरिका कछु अचगरि करहीं ।—मानस, १।२७७। (ख) माखन दधि मेरो सब खाया बहुत अचगरी कीन्हीं ।—सूर० १०।२६७ ।

अचतुर—वि० [सं०] १. जो चतुर न हो । २ अनाड़ी । अकुशल । ३. चार से रहित [को०] ।

अचना(पु)—क्रि० स० [सं० आचमन अथवा हिं० अचवना] १. आचमन करना । पीना । उ०—(क) पैठि बिवर मिलि ताप-सिहि अचई पानि, फलु खाई —तुलसी ग्रं०, पृ० ८०। २. छोड़ देना । खो बैठना । बाकी न रखना, जैसे—'तुम तो लाज शरम अचै गए (शब्द०) उ०—लाज को अचै कै कुलधरम पचै कै विथा वृदनि सचै कै भई मगन गुपाल मैं ।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ६ ।

अचपल¹—वि० [सं०] अचचल । धीर । गभीर । उ०—मेरे श्रम-सिंचित देखोगे अचपल, पलकहीन नयनों से तुमको प्रतिपल हेरेंगे अज्ञात ।—गीतिका ।

अचपल²†—वि० [सं० आ + चपल] [स्त्री० अचपली] चचल । शोख । उ०—क्या काम उन्हें जो हँस बोले या शोखी मे अचपल निकले ।—नजीर (शब्द०) ।

अचलपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अचचलता । स्थिरता । धीरता । गभीरता ।

अचपलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १ चपलता का अभाव । अचापल्य । २† शोखपन । चुलबुलाहट ।

अचपली¹†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अचपल] अठखेली । किलोल । क्रीडा । उ०—गुलाल अबीर से गुलजार हैं सभी गलियाँ । कोई किसी के साथ कर रहा है अचपलियाँ ।—नजीर (शब्द०) ।

अचपली²†—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अचपल²' । उ०—जाकी छोटी नँनद बड़ी अचपली ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६२१ ।

अचभौन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचभा' । उ०—कहा कहत तू नद ढुटौना । सखी सुनहु री बातें जैसी करत अतिहि अचभौना ।—सूर (शब्द०) ।

अचमन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आचमन' । उ०—भोजन करि नँद अचमन लीन्हौ माँगत सूर जुठनिया ।—सूर०, १०।३४१ ।

अचर¹—वि० [सं०] न चलनेवाला । स्थावर । जड ।

अचर²—संज्ञा पुं० १. न चलनेवाला पदार्थ । जड़ पदार्थ । स्थावर द्रव्य । उ०—जे सजीव जग चर अजर, नारि पुरुष अस नाम ।—मानस १।८४। २ ज्योतिष के अनुसार वृष, सिंह वृश्चिक और कुंभ राशियाँ जो स्थिर हैं (को०) ।

अचरचे¹—क्रि० वि० [सं० अ = नहीं + हिं० चरचना] बिना पूजा के । अपूजित । उ०—और तौ अचरचे पाइँ धरी मो तो कहौ कौन के पेड़ भरि ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २६० ।

अचरज¹—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य, प्रा० अच्चरिअ] आश्चर्य । अचभा । विस्मय । उ०—अचरज कहा पार्थ जो देखें तीनि लोक इक ठान ।—सूर०, १।२६८ ।

अचरज²—वि० आश्चर्ययुक्त अनोखा ।

क्रि० प्र०—करना । उ०—बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम ।—मानस १।११० ।—मानना ।—मे आना ।—मे पड़ना ।—होना । उ०—वह अगाध यह क्यों कहैं भारी अचरज होय ।—कबीर (शब्द०) ।

अचरम—वि० [सं०] जो चरम या अंतिम न हो [को०] ।

अचरा¹(पु)—वि० [सं० अचला] दे० 'अचला' । उ०—अचरा न चरे धेन कटरा न पाई ।—गारख० , पृ० १४८ ।

अचरा²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अँचरा' । उ०—अचरा डारयौ बदन पै मधुर मधुर मुसिकाई ।—नद० ग्रं०, पृ० १६६ ।

अचरिज(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचरज' । उ०—मित्र कहत अचरिज मो हिए ।—नद० ग्रं०, पृ० ३०८ ।

अचरित¹(पु)—वि० [सं०] १ जिसपर कोई चला न हो । २ जो खाया न गया हो । ३ अछूता । नया ।

अचरित²—संज्ञा पुं० कामकाज छोड़ अड़कर बैठना । धरना देना । गतिनिरोध ।

अचर्ज(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचरज' । उ०—बेनु केवल भई बँसुरी जो अनर्थ करै तो अचर्ज कहा है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८२१ ।

अचल¹—वि० [सं०] १ जो न चले । स्थिर । जो न हिले । ठहरा हुआ । निश्चल । उ०—जिहिं गोबिंद अचल ध्रुव राख्यौ, रवि-ससि किए प्रदच्छिनकारी ।—सूर०, १।३४। । २. सब दिन रहनेवाला । चिरस्थायी । उ०—लका अचल राज तुम्ह करहू ।—मानस ६।२३ ।

यौ०—अचल कीर्ति । अचल राज्य । अचल समाधि ।

३ न डिगनेवाला । न बदलनेवाला । अटल । ध्रुव । दृढ । पक्का । उ०—(क) रघुपति पद परम प्रेम तुलसी यह अचल नेम ।—तुलसी ग्रं० पृ० ४६२ । (ख) 'उसकी यह अचल प्रतिज्ञा है' (शब्द०) । ४, जो नष्ट न हो । मजबूत । पुख्ता । अटूट । अजेय । उ०—(क) गरम भाजि गढवै भई तिय कुच अचल मवास ।—बिहारी र०, दो० ३४४ । (ख) 'अब इसकी नींव अचल हो गई (शब्द०) ।

अचल²—संज्ञा पुं० १ पर्वत । पहाड़ । उ०—जितना चहौं तरजनि अचल कटि कटि केहर वेस ।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६ । २ शिव । स्थाणु (को०) । ३ ब्रह्मा (को०) । ४. आत्मा (को०) । ५. शकु । खूँटी । कील (को०) । ६, सात की संख्या का वाचक शब्द (को०) ।

अचलकन्यका--संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमवान् की पुत्री। पार्वती [को०]।

अचल कन्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अचलकन्यका' [को०]।

अचलकीला--संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी। धरित्री।

विशेष--पृथिवी का यह नाम प्राचीन विद्वानों के इस विचार पर आधारित है कि पृथिवी को स्थिर रखने के लिये उसमें जहाँ तहाँ पहाड़ कीलों के समान जड़े हुए हैं।

अचलज--वि० [सं०] पर्वतोत्पन्न [को०]।

अचलजा--संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती [को०]।

अचलजात--वि० [सं०] दे० 'अचलज' [को०]।

अचलतनया--संज्ञा स्त्री० [सं०] उमा [को०]।

अचलत्विट्[1]--संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल [को०]।

अचलत्विट्[2]--वि० सदा समान शोभावाला। स्थिर कांतिवाला [को०]

अचलदुहिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती [को०]।

अचलद्विट्--संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों के शत्रु इंद्र [को०]।

अचलधृति--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ५ नगण और १ लघु इस प्रकार १६ लघु मात्राएँ रहती हैं, यथा--'पट दस लखहि अचलधृति मन गुनि'।--भिख रीं० ग्रं०, भा० १ पृ० १९८। उ०--लखि भव भयद छवि दुरवटु वहत। सुघनि वर लखि जिन वपु जिउ रहत (शब्द०)।

अचलन--संज्ञा स्त्री० [सं० अ = बुरा + हिं० चलन] कुचाल। बुरा आचरण। उ०--तिन्ह की नारि रमहिं पचीस मग अचलनि बहुत करहि री।-- जग० बानी, पृ० ८२।

अचलपति--संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों का स्वामी हिमालय [को०]।

अचलराज--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अचलपति' [को०]।

अचलव्यूह--संज्ञा पुं० [सं०] असंहत व्यूह का एक भेद जिसमें हाथी, घोड़े और रथ एक दूसरे के आगे पीछे रखे जाते थे।

अचलसंपत्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संपत्ति जो चल न हो। स्थिर संपत्ति। जिसे हटाया न जा सके वह संपत्ति। गैरमनकूला जायदाद, जैसे--मकान, खेत, वृक्षादि।

अचलसुता--संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती [को०]।

अचला[1]--वि० स्त्री० [सं०] जो न चले। स्थिर। ठहरी हुई।

अचला[2]--संज्ञा स्त्री० पृथिवी। धरती।

विशेष--प्राचीन लोग पृथिवी को स्थिर मानते थे। आर्यभट्ट ने पृथिवी को चल कहा पर उनकी बात को उस समय लोगों ने दबा दिया। अचला नाम का कारण आर्यभट्ट ने पृथिवी पर अचल अर्थात् पर्वतों का होना अथवा उसका अपनी कक्षा के बाहर न जाना बतलाया है।

अचलाधिप--संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों के राजा हिमालय [को०]।

अचलासप्तमी--संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ला सप्तमी। इस तिथि को स्नान दान आदि करते हैं।

अचवन(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० आचमन, अप० अचवन] [क्रि० अचवना] १ आचमन। पानी। पीने की क्रिया। उ०--अचवन करि पुनि जल अचवायो तब नृप बीरा लीन्हो।--सूर (शब्द०)। २ भोजन के पीछे हाथ मुँह धोकर कुल्ली करने की क्रिया।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अचवना(पु)†--क्रि० स० [सं० आचमन] १ आचमन करना। पान करना। पीना। उ०--सुनु रे तुलसीदास, प्यास पपीहहि प्रेम की। परिहरि चारिउ मास जो अचवै जल स्वाति को।--तुलसी (शब्द०)। २ भोजन के पीछे हाथ मुँह धोकर कुल्ली करना। ३ छोड़ देना। खो बैठना। बाकी न रखना।

अचवाई(पु)--वि० [हिं० अचवना] धोई हुई। साफ। स्वच्छ। उ०--रूप सरूप सिंगार सवाई। अप्सर कैसी रहहि अचवाई।--जायसी (शब्द०)।

अचवाना(पु)--क्रि० स० [हिं० अचवना का प्रेर०] १ आचमन कराना। पान कराना। पिलाना। २ भोजन पर से उठे हुए मनुष्य के हाथ पर मुँह हाथ धोने और कुल्ली कराने के लिये पानी डालना। भोजन करके उठे हुए मनुष्य का हाथ मुँह धुलाना और कुल्ली कराना। उ०--अचवन करि पुनि जल अचवायो तब नृप बीरा लीनो।--सूर (शब्द०)।

अचाक(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचानक'। उ०--जो अचाक मग भेटती विहँसति करि बहुरंग।--श्यामा पृ० १६७।

अचाचक(पु)--क्रि० वि० [हिं० अचान + सं० √चक् = भ्रांति] बिना पूर्वसूचना के। अचानक। एकबारगी। सहसा। एकाएक। अकस्मात्। हठात्। उ०--कई गनीमत का मौका हाथ आया देख अचानक अपने यार वफादार को पाकर ।--प्रेमघन०, भा० २ पृ० ११४।

अचानचक(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचाचक'। उ०--परिहै वज्राग्नि ताके ऊपर अचानचक घरि उड़ि जाइ कहूँ ठौहर न पाइहै।--सुदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५००।

अचाक(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचाका'।

अचाका(पु)†--क्रि० वि० [सं० आ + चक् = भ्रांति] अचानक। अकस्मात्। सहसा। दैवात्। उ०--(क) दिनहिं राति अस परी अचाका। भा रवि अस्तु, चंद्र रथ हाँका।--जायसी (शब्द०)। (ख) कहै पद्माकर नहीं तो ये झकोरैं लगैं औरे लौ अचाका बिन घोरै घुरि जायगी।--पद्माकर (शब्द०)।

अचाक्षुष--वि० [सं०] चक्षु के विषय से परे। अदृश्य [को०]।

अचाख(पु)--वि० [सं० अ = नहीं + हिं० चाखना] न चखा जा सकने-वाला। खाने के अयोग्य। उ०--तीखा तेज महा अचाख।--प्राण० पृ० ४०।

अचातुर्य--संज्ञा पुं० [सं०] चतुराई का अभाव। मूर्खपन। अनाड़ीपन [को०]।

अचान(पु)--क्रि० वि० [हिं० अचानक] अचानक। सहसा। अकस्मात्। उ०--देव अचान भई पहिचान चितौत ही स्याम सुजान के सौंहैं।--देव (शब्द०)।

अचानक--क्रि० वि० [सं० आ = अच्छी तरह + चक् = भ्रांत अथवा सं० अज्ञानात्] बिना पूर्वसूचना के। एकबारगी। सहसा। अक-स्मात्। दैवात्। हठात्। औचट में। अनचित्ते में। उ०--(क)

[illegible] लगाए। तरहिं अवधि मैं कहन न समुझी [illegible] अचानक आग।—सूर०, १०।४२८८। (ख) नाचि अचानक हीं उठे बिनु पावस बन मोर।—बिहारी र०, दो० ४३६।

अचानिक ⓟ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचानक'। उ०—आइ अचानिक [illegible] प्रनपति।—पृ० रा० १।३८६।

अचापल¹—वि० [सं०] चपलतारहित। अचंचल (कौ०)।

अचापल²—संज्ञा पुं० चपलता का अभाव। स्थिरता। अचपलता (कौ०)।

अचापल्य—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अचापल' (कौ०)।

अचार¹—संज्ञा पुं० [फा० आचार] मिर्च, राई, लहसुन आदि मसालों के साथ तेल, नमक, सिरका या अर्कनाना में कुछ दिन रखकर खट्टा किया हुआ फल या तरकारी। कचूमर। अथाना।

अचार²ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० आचार] आचरण। आचार। उ०—दंभ सहित कलि धरम सब, छल समेत व्यवहार। स्वारथ सहित सनेह सब रुचि अनुहरत अचार।—तुलसी ग्र०, पृ० १५०।

अचार³—संज्ञा पुं० [सं० चार] चिरौंजी का पेड़। पियाल द्रुम।

अचारजⓟ—संज्ञा पुं० [सं० आचार्य प्रा० आचारज] दे० 'आचार्य'। उ०—[illegible] भट्ट रघुनाथ अचारज। [illegible] प्रज्ञानंद सु आरज।—भारतेन्दु ग्र० भा० २, पृ० [illegible]।

अचार विचारⓟ¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आचार विचार'। उ०—[illegible] भरे ते अचार विचार समीप न जाहीं।—तुलसी ग्र०, पृ० २२०।

अचारी¹ⓟ—वि० [सं० आचारी] अचार करनेवाला।

अचारी²ⓟ—संज्ञा पुं० आचार विचार से रहनेवाले आदमी। वह व्यक्ति जो अपना नित्यकर्म विधि और शुद्धतापूर्वक करता है।

अचारी³ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० आचार्य] १ यज्ञ के समय कर्मोपदेशक। [illegible]। उ०—[illegible] सुफल ना होई कोटिन जुरे अचारी।—[illegible] २ रामानुज संप्रदाय का वैष्णव जिसका [illegible] विशेष विधानों का संपादन करता है।

अचारी⁴—संज्ञा स्त्री० [हिं० अचार का अल्पा०] छिले हुए कच्चे आम की फाँक जो नमक और मसाला के साथ धूप में सिझाकर तैयार की जाती [illegible] भी बनाई जाती है।

अचारु—वि० [सं०] असुंदर। अशोभन (कौ०)।

अचालू¹—संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + चालन] अनचालू जहाज। कम [illegible] जहाज।

अचालू²—वि० अचालन। चलनरहित।

अचाह¹ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + प्रा० चाह] अनिच्छा। [illegible]। उ०—नाहिं अचाह नहि चाहना चरनन [illegible]—[illegible], भा० १, पृ० ६८।

अचाह²—वि० जिसे कुछ अभिलाषा न हो। बिना चाह का। [illegible]। निष्काम।

अचाहा¹ⓟ—वि० [हिं०] [स्त्री० अचाही] १. चाहा हुआ। अवांछित। [illegible]। २. जिसपर रुचि या प्रीति न हो। जो प्रेमपात्र न हो।

अचाहा²—संज्ञा पुं० १ वह व्यक्ति जिसकी चाह न हो। वह व्यक्ति जो प्रेमपात्र न हो। २ न चाहने या प्रीति न करनेवाला व्यक्ति। निर्मोही। उ०—रावलि कहाँ हो किन, कहत हो काते अरी रोष तज, रोष कै कियो मैं का अचाहे को।—पद्माकर (शब्द०)।

अचाही¹ⓟ—वि० [हिं० अचाह] किसी बात की चाह न रखनेवाला। निरीह। निस्पृह। निष्काम।

अचाही²—संज्ञा स्त्री० न चाही गई या अवांछित बात। उ०—कवि ठाकुर लाल अचाहि करी तिहि तैं सहिए जसही नहियाँ।—ठाकुर०, पृ० २५।

अचिंत—वि० [सं० अचिन्त] चितारहित। निश्चिंत। बेफिक्र। उ०—चिंता न करु अचिंत रहु, देनहार समरथ।—कबीर (शब्द०)।

अचिंतनशील—वि० [सं० अचिन्तन + शील] चिंतारहित। विचारशक्तिहीन। उ०—वह भी अन्य प्राणियों की भाँति जड या अचिंतनशील ही रह जाता।—शैली, पृ० ५।

अचिंतनीय—वि० [सं० अचिन्तनीय] १ जिसका चिंतन न हो सके। जो ध्यान में न आ सके। अज्ञेय। दुर्बोध। २. आकस्मिक। अतर्किक (कौ०)।

अचिंता—संज्ञा स्त्री० [सं० अचिन्ता] चिंता का अभाव। लापरवाही (कौ०)।

अचिंतित—वि० [सं० अचिन्तित] १ जिसका चिंतन न किया गया हो। जिसका विचार न हुआ हो। बिना सोचा विचारा। २ अनभावित। आकस्मिक। ३ निश्चिंत। बेफिक्र। ४ उपेक्षित (कौ०)।

अचिंत्य¹—वि० [सं० अचिन्त्य] १ जिसका चिंतन न हो सके। जो ध्यान में न आ सके। बोधागम्य। अज्ञेय। कल्पनातीत। २ जिसका अंदाजा न हो सके। अकूत। अतुल। ३. आशा से अधिक। ४ बिना सोचा विचारा। आकस्मिक।

अचिंत्य²—संज्ञा पुं० १ एक अलंकार।

विशेष—इसमें अविलक्षण या साधारण कारण से विलक्षण कार्य की उत्पत्ति कही जाती है, जैसे—'कोकिल को वाचालता विरहिनि मौन अनंत। देनहार यह देखिए आयो समय बसंत (शब्द०)। इस दोहे में साधारण बसंत के आगमन रूप कारण से मौन और वाचालता रूप विलक्षण कार्यों की उत्पत्ति है।

२ वह जो चिंतन से परे हो। ईश्वर। उ०—छठाँ कमल अचिंत्य को बासा।—कबीर सा०, पृ० ११। ३ शिव (कौ०)। ४. पारद। पारा (कौ०)।

अचिंत्यकर्म—संज्ञा पुं० [सं० अचिन्त्यकर्म] वह कर्म या कार्य जो चिंतन से परे हो (कौ०)।

अचिंत्यकर्मा—वि० [सं० अचिन्त्यकर्मा] अचिंत कार्य करनेवाला (कौ०)।

अचिंत्यरूप—वि० [सं० अचिन्त्यरूप] जिसका चिंतन या ध्यान न हो सके ऐसे रूप तथा आकारवाला (कौ०)।

अचिंत्यात्मा—संज्ञा पुं० [सं० अचिन्त्य + आत्मा] वह जिसका स्वरूप ठीक ठीक ध्यान में न आ सके। परमात्मा। ईश्वर।

अचिकित्स्य—वि॰ [सं॰] चिकित्सा के अयोग्य। जिसकी दवा न हो सके। असाध्य।

अचिकीर्षु—वि॰ [सं॰] न करने की इच्छावाला। काम न करने की इच्छावाला। कार्य मे अनिच्छुक [को॰]।

अचिज्ज(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ आश्चर्य] अचरज। अचभा। उ॰—सतपत्र पुत्त अचिज्ज सुद्दित्त निय तप्प लग्ग हरे वच्छ भ्रग्ग। —पृ॰ रा॰, २।६१।

अचित्[१]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ जडप्रकृति। अचेतन। 'चित्' का उलटा। २. रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थो मे से एक। विशेष—यह भोग्य, दृश्य, अचेतन स्वरूप, जडात्मक और भोग्यत्व विकार से युक्त माना जाता है। इसके भोग्य, भोगोपकरण और भोगायन ये तीन प्रकार माने गए हैं।

अचित्[२]—वि॰ अचेतन। चेतनारहित। जड [को॰]।

अचित—वि॰ [सं॰] १ गया हुआ। २. जो सोचा न गया हो। ३. जो एकत्र न किया गया हो [को॰]।

अचितवन—वि॰ [सं॰ अ = नहीं + हिं॰ चितवन] चितवन रहित। निर्निमेष। अपलक।

अचित्त—वि॰ [सं॰] १ विचार या ध्यान मे न आने योग्य। २. बुद्धिरहित। अज्ञ। ३ अविचारित। जिसपर विचार न किया गया हो। ४ चेतनारहित। अचेत [को॰]।

अचित्ति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] ज्ञान का अभाव [को॰]।

अचिन्न—वि॰ [सं॰] १ जिसमें अलगाव या भेद न किया जा सके। २ जो छिन्न न हो। जो बहरगा न हो [को॰]।

अचिर[१]—क्रि॰ वि॰ [सं॰] १ शीघ्र। जल्दी। २ थोडा ही समय पूर्व। कुछ काल पहले (को॰)।

अचिर[२]—वि॰ १. थोडे समय का। क्षणस्थायी। २. हाल का। ताजा। ३ नया [को॰]।

अचिरज(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अचरज'। उ॰—ऐ परि याकी नेम सुनहिं जो। लाडिलि अचिरज लाड रहै तो।—नंद॰ ग्र॰, पृ॰ १३३।

अचिरता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] अचिर का भाव। क्षणिकता।

अचिरद्युति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] क्षणप्रभा। बिजली।

अचिरप्रभा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बिजली।

अचिरप्रसूता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सद्य प्रसूता गौ। हाल की व्याई गाय [को॰]।

अचिरभा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] विद्युत् [को॰]।

अचिरम्—क्रि॰ वि॰ [सं॰] दे॰ 'अचिरात्' [को॰]।

अचिरमृत—वि॰ [सं॰] कुछ समय पूर्व मृत [को॰]।

अचिररोचि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सौदामिनी। बिजली [को॰]।

अचिरांशु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] विद्युत्। बिजली [को॰]।

अचिरात्—क्रि॰ वि॰ [सं॰] शीघ्र। जल्दी। तुरत। २ कुछ समय पूर्व। कुछ पहले (को॰)।

अचिराभा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] क्षणप्रभा। बिजली [को॰]।

अचिरेण—क्रि॰ वि॰ [सं॰] दे॰ 'अचिरात्' [को॰]।

अचीतिया(पु)†—वि॰ [सं॰ अचिंतित; प्रा॰ अचिंतिय] आकस्मिक। असभावित। उ॰—आवी खबर अचीतियाँ विसमैं जैसी बत्त। —रा॰ रू॰, पृ॰ ६२।

अचीता[१]—वि॰ [सं॰ अचिंतित] [स्त्री॰ अचीती] १ बिना सोचा विचारा। असभावित। आकस्मिक। जिसका पहले से अनुमान न हो। २ अचिंत्य। जिसका अदाजा न हो। बहुत। अधिक। उ॰—लिखी खबर जैसी इन बीती। परी मुलक पर मार अचीती।—लाल (शब्द॰)।

अचीता[२](पु)—वि॰ [सं॰ अचिन्त] निश्चित। बेफिक्र। उ॰—सुनो मेरे मीता सुख सोइए अचीता कहो सीता सोधि लाउँ कहो सी मिलाऊँ राम को।—हृदयराम (शब्द॰)।

अचीर—वि॰ [सं॰] चीरविहीन। वस्त्ररहित [को॰]।

अचुवाना(पु)—क्रि॰ स॰ [हिं॰] दे॰ 'अचवाना'। उ॰—पुनि जल शीतल अचुवावै। ता माहि सुगध मिलावै।—सुदर॰ ग्र॰ भा॰ १, पृ॰ १३५।

अचूक[१]—वि॰ [सं॰ अच्युत अथवा सं॰ अ = नहीं + प्रा॰ √चुक्क=चूकना] १. जो न चूके। जो खाली न जाय। जो ठीक बैठे। जो अवश्य फल दिखावे। जो अपना निर्दिष्ट कार्य अवश्य करे। उ॰—बाँकी तेग कबीर की, अनी परै द्वै टूक। मारे बीर महाबली, ऐसी मूठि अचूक।—कबीर (शब्द॰)। २. निर्भ्रांत। जिसमे भूल न हो। ठीक। भ्रमरहित। निश्चित पक्का। उ॰—'वह समझता है कि जिस बात को सब लोग निर्भ्रांत कहते हैं वह अवश्य ही अचूक होगी।'—(शब्द॰)।

अचूक[२]—क्रि॰ वि॰ १ सफाई से। पटुता से। कौशल से। उ॰—मूँदे तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग सुदृग मिचावनी के ख्यालन हितै हितै। नैसुक नवाइ ग्रीवा धन्य धनि दूसरी को आँचका अचूक मुख चूमत चितै चितै।—पद्माकर ग्र॰, पृ॰ ६५। २ निश्चय। अवश्य। जरूर। उ॰—जहाँ मुख मुक, राम राम ही की कूक जहाँ सबै सुखभूप तहाँ है अचूक जानकी —हृदयराम (शब्द॰)।

अचेत[१]—वि॰ [सं॰] १ चेतनारहित। संज्ञाशून्य। बेसुध। बेहोश। मूर्च्छित। २ व्याकुल। विह्वल। विकल। उ॰—भौं यह ऐसोई समौ, जहाँ सुखद दुखु देत। चैत चाँद की चाँदनी डारति किए अचेत।—बिहारी र॰, दो॰ ५१९। ३ असावधान बेपरवाह। उ॰—यह तन हरियर खेत, तरुनी हरिनी चर गई। अजहूँ चेत अचेत, यह अधचरा बचाइ ले।—सम्मन (शब्द॰)। ४ अनजान। बेखबर। उ॰—वृंदावन की बीथिन तकि तकि रहत गुमान समेत। इन बातन पति पावत मोहन जानत होहु अचेत।—सूर (शब्द॰)। ५ नासमझ। मूढ। उ॰—मैं पुनि निज गुरु मन सुनी, कथा सु सूकरखेत। समुझी नहिं तसु बालपन तब अति रहेउँ अचेत।—तुलसी (शब्द॰)। (पु) ६ जड। उ॰—(क) असम अचेत पखान प्रगट लै बनचर जल महँ डारत।—सूर (शब्द॰)। (ख) कामातुर होत हैं सदा ही मतिहीन तिन्हैं चेत औ अचेत माँह भेद कहाँ पावैगो।—लक्ष्मणसिंह (शब्द॰)।

अचेत[२](पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अचित्] १. जड प्रकृति। जडत्व। २ माया। अज्ञान। उ॰—कह लौं कहौं अचेतै गयऊ। चेत अचेत झगर यक भयऊ।—कबीर (शब्द॰)।

अचेतन¹—वि० [सं०] १ चेतनारहित। जिसमें चेतना का अभाव हो। जिसमें सुख दुःख आदि किसी प्रकार के अनुभव की शक्ति न हो। जड़। 'चेतन' का उलटा। उ०—सब में एक अचेतन [illegible] जिसमें [illegible] समीर।—कामायनी, पृ० ११। २ अज्ञान (दे०)। ३. जीवरहित। निर्जीव (को०)। ४ [illegible]। मूर्छित। जैसे—'वह अचेतन अवस्था में पाया गया।' (शब्द०)।

अचेतन²—संज्ञा पुं० अचैतन्य पदार्थ। जड़ द्रव्य।

अचेता—वि० [सं० अचेतस्] १ चेतनाविहीन। अचेत। २ चित्त-[illegible]। चित्तविहीन। ३ जीवरहित। निर्जीव [को०]।

अचेतान—वि० [सं०] १ ज्ञानविहीन। न जाननेवाला। २. मूर्ख। [illegible] [को०]।

अचेती—[illegible] स्त्री० [सं० अ = नहीं + हिं० चेत + ई (प्रत्य०)] [illegible]। बेखबरी। गफलत।

अचेलक—संज्ञा पुं० [सं० अचेलक] वस्त्र न रखनेवाला या स्वल्प [illegible] वस्त्र रखनेवाले भिक्षु। भिक्षुओं का एक भेद। उ०—[illegible]। कुछ अचेलक, आजीविक, निगंठ आदि भिक्षु हैं।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २३१।

अचेलपरीसह—संज्ञा पुं० [सं० अचेलपरिसह] आगम में कहे हुए [illegible] धारण करने और उनके फटे और पुराने होने पर भी चित्त में ग्लानि न लाने का नियम।

अचेष्ट—वि० [सं०] १ चेष्टारहित। १ बिना प्रयास का। ३. गति-[illegible] [को०]।

अचेष्टित—वि० [सं०] प्रयत्न या चेष्टारहित। २ बिना प्रयास का [को०]।

अचैतन्य¹—वि० [सं०] चेतनारहित। आत्माविहीन। जड़।

अचैतन्य²—संज्ञा पुं० १. निश्चेतनता। चेतना का अभाव। २ अज्ञान। ३. चेतनाविहीन द्रव्य या वस्तु। जड़ पदार्थ (को०)। ४ होश हवास न रहना। बेहोशी (को०)।

अचैन—संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + देश० चैन] बेचैनी। व्याकुलता। [illegible]। दुःख। कष्ट। उ०—[illegible] मान अपराध हूँ चलियै, [illegible]। सुरत दीठि तजि रिस खिसी, हँसे दुहुन के नैन।—बिहारी र०, दो० ६५६।

अचैन—वि० [हिं० अ = नहीं + चैन = आराम] [स्त्री० अचैनी] बेचैन। व्याकुल। [illegible]। उ०—[illegible] चितवै चहुँ ओर [illegible] चपल [illegible] अचैनी।—देव (शब्द०)।

अचैना—संज्ञा पुं० [सं० छिन्न = कटा हुआ] १ लकड़ी का मोटा कुंदा [illegible] में गड़ा रहता है और जिसपर [illegible] गँड़ासे से [illegible] जाता है। [illegible]। निसुहा। ठीहा। हँसुआ। २ [illegible] लकड़ी को [illegible]। निसुहा। ठीहा।

अचोना—संज्ञा पुं० [सं० आचमन प्रा० आचवँनअ < अचवनअ < अचोना] [illegible] का पात्र। पीने का बरतन। [illegible]। उ०—[illegible], [illegible] न लगत पल, [illegible] मनोज में। [illegible] आनन [illegible] आनन अचान है।—देव (शब्द०)।

अचौकी—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० चौंकना = चकित होना] अच-किन। स्थिर। उ०—रहत अचौकी चित्त नित ही ध्यान सु रावरो।—ब्रज० ग्र०, पृ० ३८।

अचौन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचवन¹'। उ०—चातक उमाहै घन आनँद अचौन को।—घनानंद, पृ० १५८।

अचौनि—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० अचवन'।

अच्चंड†—वि० [सं० आश्चर्य; प्रा० अच्चर] अचंभा। अचरज। उ०—भाए तहाँ करनाय महाभड आया परब उवारण अच्चंड।—रा० रू०, पृ० १३४।

अच्छद—वि० [सं अच्छन्दस्] १ वेदाध्ययन न करनेवाला। २ वेदाध्ययन के अधिकार से विहीन। ३ छद या पद्य से रहित। छंदविहीन। ४ छलविहीन छद्मरहित [को०]।

अच्छ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्फटिक। २ भालू। ३ स्वच्छ जल (डिं०)। ४ आभिमुख्य। समुख होना (को०)। ५ एक प्रकार का पौधा (को०)।

अच्छ²—वि० स्वच्छ। निर्मल। पवित्र। अच्छा। उ०—(क) उदधि नाकपति शत्रु को, उदित जानि बलवंत। अंतरिक्ष ही लक्षि पद अच्छ छुयो हनुमंत।—केशव (शब्द०)। (ख) मानहु विधि तन अच्छ छबि स्वच्छ राखिबै काज। दृग-पग-पोंछन कौं करे भूषन पायदाज।—बिहारी र० दो० ४।३।

अच्छ³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष प्रा० अच्छ] १ आँख। नेत्र उ०—(क) कहै पदमाकर न अच्छन प्रतच्छ होत अच्छन ते आगे हू अबिच्छ गाइयतु है।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) जो तव अच्छ समच्छ सकत कर पकरि कृपानी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १०१। २ रुद्राक्ष उ०—माँजी औ उपवीत अच्छ कठा कल धारे।—रत्नाकर, भा० १ पृ० १०१। ३ अक्षकुमार नामक रावण का बेटा। उ०— रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहि मारा।—तुलसी (शब्द०)।

अच्छत¹†—संज्ञा पुं० [सं० अक्षत, प्रा० अच्छत] बिना टूटा हुआ चावल जो मंगल द्रव्यों में गिना जाता है और देवताओं को चढ़ाया जाता है। उ०—अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंगल तुलसि बिराजा।—मानस १।१४।

अच्छत²—वि० अखंडित। लगातार। उ०—राघौ हेरत जो गयो, अच्छत हिये समाधि। वह तन राघव घाघ भा, सकै न कै अपराध।—जायसी (शब्द०)।

अच्छत³(पु)—क्रि० वि० [हिं० अछत] रहते हुए उपस्थिति में। विद्यमानता में। उ०—जुद्धौ को करत छाजन नहीं है तुम्हें सुनि महाराज अच्छत हमारे।—सूर०, १०।८१६४।

अच्छभल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] भालू। भल्लक [को०]।

अच्छम(पु)—वि० [सं० अक्षम] असमर्थ। अशक्त। लाचार। उ०—सब हि समर्थहि सुखद प्रिय अच्छम प्रिय हितकारि।—तुलसी ग्र०, पृ० ९२।

अच्छय(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अक्षय'। उ०—पै रच्छक रन दच्छ देखि अच्छय बन माली।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १६४।

अच्छयतृतिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अक्षय तृतीया'। उ०— अच्छय तृतिया, अच्छय सुखनिधि पिय को प्यारी चढ़ावै चंदन।—नंद० ग्र०, पृ० ३७१।

अच्छर¹(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर, पा० अक्खर, प्रा० अच्छर] अक्षर। वर्ण। हरफ। उ०—द्वादस अच्छर महामंत्र के अविकल जापी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० २१६।

अच्छर²(पु)—वि० दे० 'अक्षर¹'। उ०—अच्छर ब्रह्म सुन्न द्वारा।—कबीर श०, पृ० ५८।

अच्छर³(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सर] अप्सरा उ०—का सरु सिंगार सवाई। अच्छर जैसी रहि अछवाई।—जायसी (शब्द०)।

अच्छरा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरस्, पा० प्रा० अच्छरा] अप्सरा। उ०—तारि कै छरा सो अच्छरा सी यों निचारि कहै 'तमनै कहे ते कन मुकता में पानी हैं'।—भूषण ग्रं०, पृ० २२४।

अच्छरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अच्छरी'। उ०—घन अच्छरि अच्छ कुलच्छ करै।—पृ० रा०, २४।१६४।

अच्छरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरस्, पा० प्रा० अच्छरा] अप्सरा। स्वर्ग की वारवनिता। उ०—वनि नाचती सुर अच्छरी जिन भाव मोह। सिद्ध हैं।—गुमान (शब्द०)।

अच्छा¹—वि० [सं० अच्छक, प्रा० अच्छअ = स्वच्छ, निर्मल] १ उत्तम। भला। बढ़िया। उमदा। खरा। चोखा।

मुहा०—अच्छा आना = (१) ठीक या उपयुक्त अवसर पर आना। जैसे—तुम अच्छे आए, अब सब ठीक हो जायगा (शब्द०)। (२) ठीक उतरना। सुंदर बनना, जैसे—इस कागज पर चित्र अच्छा नहीं आता (शब्द०)। अच्छा करना = अच्छा काम करना। जैसे,—तुमने अच्छा नहीं किया जो चले आए (शब्द०)। अच्छा कहना प्रशंसा करना, जैसे—कोई तुम्हें अच्छा नहीं कहता (शब्द०)। अच्छा घर = संपन्न घर। प्रतिष्ठित कुल। अच्छा दिन = सुख संपत्ति का दिन जैसे—उसने अच्छे दिन देखे हैं (शब्द०)। अच्छी कटना, गुजरना या बीतना = अच्छी तरह बीतना। आनंद से दिन कटना, जैसे—यहाँ से वहाँ अच्छी बीतेगी (शब्द०)। अच्छा रहना = अच्छी दशा में रहना। लाभ वा आराम में रहना, जैसे—तुम से तो हमीं अच्छे रहे जो कहीं नहीं गए (शब्द०)। अच्छा लगना = (१) भला जान पड़ना। सजना। सोहना, जैसे—तुम्हारे सिर पर यह टोपी नहीं अच्छी लगती (शब्द०) (२) रुचिकर होना। पसंद आना, जैसे—हमें यह फल नहीं अच्छा लगता। हम तुम्हारी यह चाल नहीं अच्छी लगती (शब्द०)। अच्छे वक्त = ठीक समय से। आवश्यकता के समय। जरूरत के वक्त। अच्छे से पाला पड़ना = बेढंगे व्यक्ति से काम पड़ना। अच्छे हालों गुजरना = साधारणत सुख से दिन बीतना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग व्यंग्य रूप से बहुत होता है। जैसे—'आप भी अच्छे कहनेवाले आए वा मिले'। जब कोई बात किसी को नहीं जँचता तब वह उसके कहने वा करनेवाले के प्रति प्राय कहता है कि 'अच्छे आए' वा 'अच्छे मिले'।

२ स्वस्थ। चंगा। तंदुरुस्त। नीरोग। आरोग्य, जैसे—'तुम किसकी दवा से अच्छे हुए' (शब्द०)?

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अच्छा²—संज्ञा पुं० १ बड़ा आदमी श्रेष्ठ पुरुष। जैसे—मैंने अच्छे अच्छों को निकाले जाते देखा है, तुम क्या हो (शब्द०)। २ गुरुजन। बापदादा। बड़ा बूढ़ा, जैसे—दोगे क्यों नहीं? मैं तो तुम्हारे अच्छे अच्छों से लूँगा (शब्द०)।

अच्छा³—क्रि० वि० अच्छी तरह। खूब। बहुत। जैसे—तुमने यहाँ बुलाकर हम अच्छा तंग किया (शब्द०)।

अच्छा⁴—अव्य० १ प्रार्थना या आदेश के उत्तर में (प्रश्न के नहीं) स्वीकृतिसूचक शब्द। जैसे—'(आदेश)—तुम कल आना (उत्तर)—अच्छा' (शब्द०)। उ०—फिर बोले—अच्छा याही कैं कर बेचन तन।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ७३। २. इच्छा के विरुद्ध कोई बात हो जाने पर अथवा उस होनी हुई या होनेवाली सुन या देखकर भी यह शब्द कहा जाता है। खैर। जैसे—(क) अच्छा जो हुआ सो हुआ अब आगे से सावधान रहना चाहिए। (ख) अच्छा हम देख लेंगे (शब्द०)।

अच्छाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० अच्छा + ई (प्रत्य०)] अच्छापन। उत्तमता। श्रेष्ठता। सुंदरता। सुघराई।

अच्छाखासा—वि० [हिं० अच्छा + खासा] पूर्णत: स्वस्थ। तंदुरुस्त। काफी अच्छा। पूरा। बड़ा चढ़ा।

अच्छापन—संज्ञा पुं० [हिं० अच्छा + पन (प्रत्य०)] अच्छे होने का भाव। उत्तमता। सुघराई।

अच्छाबुरा—वि० [हिं०] सुंदर या खराब। भला बुरा।

अच्छावाक—संज्ञा पुं० [सं० अच्छावाक्] १ आह्वान करनेवाला। यज्ञ करानेवाले होता, अध्वर्यु आदि सोलह ऋत्विजों में से एक। २ दे० 'ऋत्विज'।

अच्छाविच्छा—वि० [हिं० अच्छा + बीछना = चुनना] १ दुरुस्त। खासा। चुना हुआ। २ भला चंगा। नीरोग।

अच्छि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अच्छि] नेत्र। आँख। उ०—जग्गिराज की अच्छि पिय ढक भई सारं खत।—पृ० रा०, ६३।१४९।

अच्छित(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अच्छत'। उ०—कंचन थार में कुंकुम अच्छित तिलक करति नंदलाल के।—छीत०, पृ० ३०।

अच्छिद्र¹—[सं०] १. छिद्ररहित। रंध्रविहीन। २ अखंडित। अक्षत। ३ फूट प्रमाद आदि से रहित। ४ सच्चा। ५. त्रुटिरहित [को०]।

अच्छिद्र²—संज्ञा पुं० १ अक्षुण्ण स्थिति या अवस्था। २ दोषरहित कार्य [को०]।

अच्छिन्न—वि० [सं०] १ छिद्ररहित। २ जो कटा न हो। अखंडित। साबित। ३ जो टूटा या विभक्त न हो। अविभक्त (को०)। ४ लगातार गतिशील (को०)।

अच्छिन्नपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ पादपविशेष वृक्ष जिसमें पत्तियाँ बराबर रहती हैं। २. बिना कटे टूटे पंखवाला पक्षी [को०]।

अच्छिन्नपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अच्छिन्नपत्र' [को०]।

अच्छिय(पु—वि० [हिं०] दे० 'अच्छा'। उ०—देइ द्रव्य लै अच्छी अच्छिय।—पृ० रा०, ११४०२।

अच्छिर(पु—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षर'। उ०—बाँचि दिनारिय दाहिमा निम्मित आच्छर नृत।—पृ० रा० (उ०), भा० १, पृ० २१२।

अच्छुप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों की १६ देवियों में से एक।

अच्छुरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मंडल या घेरा। २. चक्र या रथांग [को०]।

अच्छेदिक—वि० [सं०] काटने या छेदने के अयोग्य [को०]।

अच्छेद्य—वि० [सं०] अविभाज्य। विभाग न करने लायक [को०]।

अच्छैदिक—वि० [सं०] दे० 'अच्छेदिक' [को०]।

अच्छै बिरिछ ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षय वृक्ष'। उ०—सत्त पुरुष अच्छै बिरिछ निरंजन डारा।—सनवाणी०, भा० २, पृ० १८।

अच्छोटन—संज्ञा पुं० [सं०] आखेट। मृगया। शिकार [को०]।

अच्छोत ⓤ—वि० [सं० अक्षत, प्रा० अच्छत?] १ पूरा। २ अधिक। बहुत। उ०—वृषभ धर्म पृथ्वी सो गाइ। वृषभ पग्यो तासों या भाइ। मेरे हेतु दुखी तू होत। कै अधर्म तुम पर अच्छोत।—सूर (शब्द०)।

अच्छोद¹—संज्ञा पुं० [सं०] बाणभट्ट द्वारा कादंबरी में उल्लिखित हिमालयस्थ एक सरोवर।

अच्छोद²—वि० स्वच्छ या निर्मल जलवाला [को०]।

अच्छोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणों में वर्णित एक नदी [को०]।

अच्छोहिन ⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अक्षौहिणी'।

अच्छोहिनी ⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अक्षौहिणी सेना।

अच्यत ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अचित्य'। उ०—अच्यत च्यत ए माधो सो सब माहि समाना।—कबीर ग्र०, पृ० १००।

अच्यता ⓤ—क्रि० वि० [सं० अचिन्तित] अकस्मात्। आकस्मिक रूप से। उ०—काल अच्यता झड़पसी ज्यूँ तीतर को बाज।—कबीर ग्र०, पृ० ७२।

अच्युत¹—वि० [सं०] १. जो गिरा न हो। २. दृढ़। अटल। स्थिर। ३ नित्य। अमर। अविनाशी। ४. जो न चूके। जो त्रुटि न करे। जो विचलित न हो। ५ न चूने या टपकने वाला (को०)।

अच्युत²—संज्ञा पुं० १ विष्णु और उनके अवतारों का नाम। २ वासुदेव। कृष्ण (को०)। ३. जैनियों के चार श्रेणी के देवताओं में चौथी अर्थात् वैमानिक श्रेणी के कल्पभव नामक देवताओं का एक भेद। ४. एक पौधे का नाम। ५ एक प्रकार की पद्य रचना जिसमें १२ वध होते हैं (को०)।

अच्युतकुल—संज्ञा पुं० [सं० अच्युत+कुल] वैष्णवों का समाज और उनकी शिष्यपरंपरा। विशेषकर-रामानंदी संप्रदाय के वैष्णव लोग अपने को अच्युतकुल या अच्युतगोत्र कहते हैं।

अच्युतगोत्र—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अच्युतकुल'।

अच्युतज—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों का एक देववर्ग जो विष्णु से उत्पन्न कहा गया है [को०]।

अच्युतपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ कामदेव। अनंग। २ कृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न [को०]।

अच्युतमध्यम—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो मार्जनी नामक श्रुति से प्रारंभ होता है और जिसमें दो श्रुतियाँ होती हैं।

अच्युतमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

अच्युतवास—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृक्ष जिसमें अच्युत अर्थात् विष्णु का निवास हो। पीपल का वृक्ष [को०]।

अच्युतषड्ज—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो छंदवती नामक श्रुति से प्रारंभ होता है और जिसमें दो श्रुतियाँ होती हैं।

अच्युतांगज—संज्ञा पुं० [सं० अच्युताङ्गज] १ कामदेव। २ कृष्णपुत्र प्रद्युम्न [को०]।

अच्युताग्रज—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु के बड़े भाई इंद्र। २ श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम।

अच्युतात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अच्युतपुत्र' [को०]।

अच्युतानंद¹—वि० [सं० अच्युतानन्द] जिसका आनंद नित्य हो।

अच्युतानंद²—संज्ञा पुं० आनंदस्वरूप परमात्मा। ईश्वर।

अच्युतावास—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल वृक्ष [को०]।

अछभौ ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० असम्भव या अत्यद्भुत, प्रा० अच्चब्भुअ> अचब्भव] दे० 'अचंभौ' (डिं०)।

अछक ⓤ—वि० [सं० अ=नहीं+चष, प्रा० चख, चक, छक,] बिना छका हुआ। अतृप्त। भूखा। उ०—तेग या तिहारी मतवारी है अछक तौलों जौ लौं गजराजन की गजक करै नहीं।—भूषण (शब्द०)।

अछकना ⓤ—क्रि० वि० [हिं० अछक से नाम०] अतृप्त होना। तृप्त न होना। न अघाना। उ०—चंपक बेलि चमेलिन मे मधु छाक छक्यो अछक्यो अनुकूलै। मालती मंजु गुलाब समीर धर्यो नहिं धीर मनोज की हूलै।—(शब्द०)।

अछग ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अछक'। उ०—परै के अछग्गे। न बैरीन सग्गे।—पृ० रा०, ८।५२।

अछत¹ ⓤ—क्रि० वि० [सं० ✽√आक्षि, प्रा० √अच्छ] [क्रि० अ० 'अछना' का कृदंत रूप जिसका प्रयोग क्रि० वि० की तरह होता है।] १. रहते हुए। उपस्थिति में। विद्यमानता में। सम्मुख। सामने। उ०—(क) खसम अछत बहु पीयर जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) आपु अछत जुवराज पद रामहिं देउ नरेसु।—मानस, २।१। (ग) तिनहिं अछत तुम अपने आलम काहैं कत रहत इस गात।—सूर०, १०।४२१५। २. सिवाय। अतिरिक्त।—लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा।—मानस १।२७४।

अछत² ⓤ—क्रि० वि० [सं० अ=नहीं+अस्ति, प्रा० अच्छइ=है] न रहते हुए। अनुपस्थित। उ०—गनती गनिबे तें रहे छतहूँ अछत समान।—बिहारी र०, दो० २७५।

अछताना पछताना—क्रि० अ० [सं० पश्चात्ताप, प्रा० पच्छाताव से विषम द्विरुक्त नाम०] बार बार किसी भूल या किसी बीती हुई बात पर खेद करना। पछताना। उ०—ऐसे सोच समझ अछताय पछताय मेवों सहित इंद्र अपने स्थान को गया।—लल्लूलाल (शब्द०)।

अछन¹ ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अ+क्षण] क्षण मात्र नहीं। बहुत दिन। दीर्घकाल। चिरकाल। उ०—दैन कहहि फिर देत न जो है। भजन अछन को भाजन सो है।—पद्माकर (शब्द०)।

अछन² ⓤ—क्रि० वि० [अ० (उच्चा०)+सं० क्षण, प्रा०, अप० छन] धीरे धीरे। ठहर ठहरकर। उ०—प्यारे इन घन गलियन आव। नैनन जल सों धाइ सँवारी अछन अछन धरि पाव।—रसिकबिहारी (शब्द०)।

अछना(पु)--क्रि० अ० [सं० अस् का समानार्थक √सं० आक्षे, √प्रा० अच्छ, अप० अछ = होना] होना रहना। विद्यमान रहना। उ०--(क) आतम तुझ पासइ अछइ अोलग रूडा रखउ।--ढोला०, ११४। (ख) अछहि बेहम तवूल मो रातीं। जनु गुलाल देखैं बिहँ राती।--जायसी (शब्द०)।

अछप(पु)--वि० [सं० अ + छ्य = छिपना] न छिपने योग्य। प्रकट। प्रकाशमान। जाहिर। उ०--सोइ ख्याल ममरत्य कर, रहे सो अछप छपाइ। सोइ संधि लै आयउ सोवत जगहि जगाइ।--कबीर (शब्द०)।

अछय(पु)--वि० [सं० अक्षय] दे० 'अछय'। उ०- करत मभा द्रुपद तनया को अवर अक्षय कियो --सूर०, ११२३१।

अछयकुमार(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षकुमार'।

अछयवृच्छ(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षयवृक्ष'। उ०--तिरवेनी से नीर मँगावो अछय वृच्छ के डार हो।--धरम०, पृ० ५७।

अछर[1](पु)--वि० [सं० अक्षर] दे० 'अक्षर[1]'। उ०--अछर अच्युत अविकार है निराकार है जोइ।--सूर०, १०।११७५।

अछर[2](पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सर'। उ०--मधुकर माधवि मदन मत्त मन मैंन अछर से डोलै।-- श्यामा०, पृ० ११८।

अछरना(पु)--क्रि० अ० [सं० उच्छलन, पु० हिं० उछरना] उपटना। स्पष्ट होना। प्रकट होना। अंकित देख पडना। उ०--बैठि भंवर कुच नारँग लारी। लागि मुख अछरै रँगराती।--जायसी (शब्द०)।

अछरा(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरा, प्रा० अच्छरा] अप्सरा। स्वर्ग की वारवनिता। उ०--ओहि भउँहहिँ सरि कोउ न जीता। अछरइँ छपी, छपी गोपीता।--जायसी (शब्द०)।

अछरी(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सर, प्रा० अच्छर + ई (प्रत्य०)] अप्सरा। स्वर्ग की वारवनिता। उ०--(क) मानउँ मयन मूरती, अछरी वरन अनूप।--जायसी (शब्द०)। (ख) सुता एक अछरी कै नाईं।--हिंदी० प्रेमा०, पृ० २५१।

अछरौटी(पु)†--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षर, प्रा० अच्छर + हिं० औटी (प्रत्य०)] वर्णमाला। उ०--रसिक पपीहा साछी आछी अछरौटी के।--घनानंद, पृ० २०५।

मुहा०--अछरौटी बर्तनी = किसी शब्द के प्रत्येक वर्ण को अलग अलग कहना। हिज्जे करना।

अछल--वि० [सं०] छलरहित। निष्कपट। सीधासादा। भोलाभाला।

अछवाई--संज्ञा स्त्री० [हिं० अच्छा < अच्छ + वाई (प्रत्य०)] अच्छाई। सुंदरता। उ०--रति साँचे ढरी अछवाई भरी पिटुरीन गुराइये पेखि पगै।--घनानंद, पृ० १५।

अछवाना(पु)--क्रि० स० [हिं० अछ से नाम०] साफ करना। सँवारना। उ०--रूप सरूप सिंगार सवाई। अच्छर जैसी रहि अछवाई।--जायसी (शब्द०)।

अछवानी--संज्ञा स्त्री० [सं० यवानिका या यमानी हिं० अजवाइन] अजवाइन, सोंठ तथा मेवों को पीसकर घृत में पकाया हुआ मसाला जो प्रसूता स्त्रियों को पिलाया जाता है।

अछाम(पु)--वि० [सं० अक्षाम] १ जो पतला न हो। मोटा। बडा। भारी। २ जो क्षीण या दुबला न हो। हृष्ट पुष्ट। मोटा ताजा बलवान्

अछित(पु)--क्रि० वि० [हिं० अछत] दे० 'अछत'। उ०--जीव अछित जोबन गया, कछू किया न नीका।--कबीर ग्र०, पृ० १४८।

अछिद्र--वि० [सं०] १ छिद्र या रध्रंरहित। २ बेऐब। निर्दोष [को०]।

अछियार--संज्ञा पुं० [हिं० छोर = किनारा ?] एक प्रकार की गजी की साडी जिसमें लाल किनारे होते हैं।

अछी--संज्ञा स्त्री० [देश०] आल का पेड।

अछूत[1]--वि० [सं० अ = नहीं + छुप्त छुआ हुआ, प्रा० छुत्त] १. बिना छुआ हुआ। जो छुआ न गया हो। अस्पृष्ट। उ०--भीजे हार चीर हिय चोली। रही अछूत कत नहिं खोली।--जायसी (शब्द०)। २ जो काम में न लाया गया हो। जो बर्ता न गया हो। नया। ताजा। कोरा। पवित्र। उ०--रस के अधर अमी भरि राखे। अबहिं अछूत, न काहू चाखे।--जायसी ग्र०, पृ० ४४। ३ न छूने योग्य। नीच जाति का। अत्यज जाति का। अस्पृश्य। जैसे--'मेहतर, डोम, चमार, आदि अछूत जातियाँ भी अपना संगठन कर रही हैं।'--(शब्द०)।

अछूत[2]--संज्ञा पुं० वह जो छूने योग्य न हो। अछूत या अस्पृश्य जाति का मनुष्य। जैसे--'आर्य समाज ने तीन सौ अछूतों को शुद्ध कर अपने में मिला लिया।--(शब्द०)।

अछूतपन--संज्ञा पुं० [हिं० अछूत + पन] अछूत या अस्पृश्य होने का भाव। जैसे--'समाज उनके साथ अछूतपन का व्यवहार करता है'।--आ० अ० रा०, पृ० ८७।

अछूता--वि० [हिं० अछूत] [स्त्री० अछूती] १ बिना छुआ हुआ। जो छुआ न गया हो। अस्पृष्ट। २ जो काम में न लाया गया हो। जो बर्ता न गया हो। नया। कोरा। ताजा। पवित्र उ०--दधि माखन द्वै, माट अछूते तोहिं सौंपति हौं सहियो।--सूर०, १०।३१३।

अछूतोद्धार--संज्ञा पुं० [हिं० अछूत + उद्धार] १ अस्पृश्य जातियों के सुधार का कार्य। अछूतों से अन्य जातिवत् व्यवहार कार्य। २. अछूतों के उद्धार का आंदोलन।

अछेद[1](पु)--वि० [सं० अच्छेद्य] जिसका छेदन न हो सके। जो कट न सके। अभेद। अखंड्य। उ०--अभिन अछेद रूप मम जान। जो सब घट है एक समान।--सूर०, ३।१३।

अछेद[2]--संज्ञा पुं० अभेद। अभिन्नता। छल छिद्र का अभाव। उ०--चेला सिद्धि सो पावै, गुरु सों करै अछेद।--जायसी ग्र०, पृ० १०६।

अछेदन(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आच्छादन'। उ०--पाँच वासन श्वेत वस्तर कदलिपत्र अछेदना।--कबीर सा०, पृ० ५६।

अछेद्य--वि० [सं०] १ जिसका छेदन न हो सके। जो कट न सके। अभेद्य। अखंड्य। २ अविनाशी। अविनश्वर।

अछेरा(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य, प्रा० अच्छेर] विस्मयजनक। अपूर्व। उ०--जावै पिए जावै नहीं, एह अछेरा गल्ल।--बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ०६।

अछेदा(पु)—वि० [सं० अ + छेद या अछिद्र] छिद्र या दूषणरहित, निर्दोष। बेदाग। उ०—बसन सुरंग स्वच्छ कीन्हे आभूषण सब हीरन तौ मानिक तो लालि अछेद को।—रघुनाथ (शब्द०)।

अछेह(पु)—वि० [सं० अच्छेद] १ अखंड्य। निरंतर। लगातार। उ०—या विरहा मन माँ, आनि इहाँ विरहा धरे। आठौं जाम अछेह दृग जु बरत बरसत रहत।—बिहारी र०, दो० ४४५। २ अनंत। बहुत अधिक। अत्यंत। ज्यादा। उ०—(क) घरे हर पुन री ... फिरै अछेह उछाह।—बिहारी र०, दो० ६००। (ख) ... दीठि पिय पग परसि, आदर कियो अछेह।—शृंगार स०, पृ० ६३।

अछै(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अक्षय'। उ०—टरै मेटे सब विषम काल का, अछै अमर पद लहिए।—कबीर श०, पृ० २६।

अछोप(पु)—वि० [सं० अ + छुप] आच्छादनरहित। नंगा। नीच। तुच्छ। दीन। उ०—सेवा मजन करै जप पूजा, सबद न तिनको सुनावै। मैं अछोप हीन मति मेरी, दादू को दिखलावै।—दादू (शब्द०)।

अछोभ(पु)—वि० [सं० अक्षोभ] १ क्षोभरहित। चंचलतारहित। उद्वेगशून्य। उ०—धीर व्रती तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु शोभा।—तुलसी (शब्द०)। २ स्थिर। गंभीर। शांत। ३ मोहरहित। मायारहित। खेदरहित। उ०—जबते ब्राह्मण जनमिया, तब तें परधन लोभ। दे अक्षर कबहूँ नहीं लहु तें गौन अछोभ। कबीर—(शब्द०)। ४ निडर। निर्भय। ५ जिसे बुरा कर्म करते हुए क्षोभ या ग्लानि न हो। नीच।

अछोर(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० छोर = किनारा] अपार। अकूल। बिना ओर छोर का।

अछोह¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अक्षोभ, प्रा० अच्छोह] १ क्षोभ का अभाव। २. शांति। स्थिरता। ३ मोह का अभाव। दयाहीनता। करुणाशून्यता। निर्दयता।

अछोह²(पु)—वि० १ क्षोभरहित। २. स्थिर। शांत। ३ मोहशून्य। ४ करुणारहित। निर्दय।

अछोही(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अछोह'।

अजंगम—संज्ञा पुं० [सं० अजङ्गम] छप्पय नामक मात्रिक छंद के ७१ भेदों में से एक।

विशेष—इसमें ११४ वर्ण होते हैं जिनमें ३८ गुरु और ७६ लघु होते हैं। मात्राओं की संख्या १५२ है।

अजंट—संज्ञा पुं० [अं० एजेंट] १ प्रतिनिधि। किसी दूसरे की ओर से कार्य करनेवाला। २ किसी राजा या सरकार की ओर से किसी दूसरे राजा या सरकार के यहाँ नियुक्त किया हुआ व्यक्ति, जिसका काम आज्ञापत्रानुसार अपने राजा या सरकार की इच्छाओं को प्रकट करना और उनके अनुसार कार्य करना है। ३ किसी सौदागर की ओर से कमीशन या कुछ द्रव्य लेकर उसका माल बेचनेवाला। गुमाश्ता। आढ़तिया।

अजंटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अजंट + ई (प्रत्य०)] १ अजंट का कार्यालय। अजंट का दफ्तर या उसकी कचहरी। २. अजंट का पद या काम।

अजंत—वि० पुं० [सं० अच् + अन्त = अजंत] वह शब्द जिसके अंत में अच् प्रत्याहार हो। वह शब्द जिसके अंत में स्वर हो। स्वरांत (व्या०)।

अजंता—संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारत में सह्याद्रि पर्वत की गोद में बहनेवाली वागुरा नदी की घाटी में स्थित एक स्थान जो अपने १९ कलात्मक गुफामंदिरों के लिये जगद्विख्यात है।

विशेष—मध्य रेलवे की इटारसी बंबई शाखा पर स्थित जलगाँव स्टेशन से उत्तर की ओर फतहपुर होते हुए अजंता जाने का मार्ग है। गुफाएँ प्राकृतिक नहीं हैं, बल्कि पत्थर के ठोस पहाड़ों को काट-काटकर भारतीय कारीगरों द्वारा निर्मित हैं। वास्तु, शिल्प और चित्र इन तीनों कलाओं का चरमोत्कर्ष इन गुफाओं में दृष्टिगोचर होता है जिनका निर्माणकाल ई० पू० दूसरी शती (गुहा संख्या १०, १२, १३) से लेकर ७वीं शती तक (विहार गुहा १, २) है। आरंभिक गुहाओं में बौद्धों की हीनयान शाखा के प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। शिल्प और चित्रों में भगवान् बुद्ध की प्रधानता है। १९वीं गुहा सर्वोत्कृष्ट है। इसके भित्तिचित्रों में भगवान् बुद्ध और उनके जीवन की विविध घटनाएँ एवं विभिन्न जातक कथाओं के चित्र अत्यंत सधे हाथों से अंकित हैं। रंग ऐसे पक्के और चटकीले हैं, मानो कारीगर ने उन्हें अभी अभी समाप्त किया है। ५० फुट से अधिक प्रशस्त मंडप के ऊपर की छत तक अलंकृत है। अन्यान्य गुफाओं की चित्रसमृद्धि भी अत्यंत उच्च कोटि की है। ये गुफाएँ भारतीय स्वर्णयुग के सांस्कृतिक, कलात्मक और आध्यात्मिक उपलब्धियों की प्रत्यक्ष साक्षी हैं।

अजंतुक—वि० [सं० अजन्तुक] जंतुविहीन। प्राणीरहित। उ०—अजंतुक, जब पृथ्वी पर किसी प्रकार का जीवन न था।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८।

अजंभ¹—वि० [सं० अजम्भ] बिना दाँत का। दंतरहित।

अजंभ²—संज्ञा पुं० १ मेढक। २ सूर्य (को०)। ३. बालक की वह अवस्था, जब उसके दाँत न निकले हों (को०)।

अजंमत्त(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजमत'। उ०—अजमत्त भारी हमीर सु जानी।—ह० रासो, पृ० ८५।

अजंसी—संज्ञा स्त्री० [अं० एजेंसी] १ अजंट के रहने का स्थान। अजंट का दफ्तर या उसकी कचहरी। २ आढ़त। आढ़त की दूकान। वह दूकान जिसमें किसी दूसरे सौदागर या कारखाने की चीज बेचने के लिये रखी जाय।

अज¹—वि० [सं०] जिसका जन्म न हो। जन्म के बंधन से रहित। अजन्मा। स्वयंभू। उ०—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।—मानस, ११५०।

अज²—संज्ञा पुं० १ ब्रह्मा। उ०—लगन बाचि अज सबहि सुनाई।—मानस, ११९१। २ विष्णु। ३ शिव। ४ ईश्वर (को०)। ५. कामदेव। ६. चंद्रमा (को०)। ७. एक सूर्यवंशी राजा जो दशरथ के पिता थे।

विशेष—वाल्मीकि रामायण में इन्हें नाभाग का पुत्र लिखा है पर रघुवंश आदि के अनुसार ये रघु के पुत्र थे।

८. बकरा। उ०—तदपि न तजत स्वान, अज, खर ज्यों फिरत बिषय अनुरागे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५१६। ९. भेंडा। १०.

माया शक्ति। ११ जीव (को०)। १२. ज्योतिष में शुक्र की गति के अनुसार तीन तीन नक्षत्रों की जो एक एक वीथी मानी गई है, उनमें से एक, जो हस्त, विशाखा और चित्रा नक्षत्र में होती है। १३. एक ऋषि (को०)। १४ मेषराशि (को०) १५ अग्नि (को०)। १६ एक प्रकार का धान्य (को०)। १७ माक्षिक धातु (को०)। १८ सूर्य का रथ (को०)।

अज³(पु)—क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज] अब। अभी तक।

विशेष—इस शब्द को 'हूँ' के साथ देखा जाता है, स्वतंत्र रूप में नहीं, जैसे—(क) उठी कबीरा विरहिनी अजहूँ ढढै खेह।—कबीर (शब्द०)। (ख) अजहूँ जागु अजाना होत आउ निसि भोर।—जायसी (शब्द०)। (ग) रे मन, अजहूँ क्यों न सम्हारै।—सूर० १।६३। (घ) अजहूँ मानहूँ कहा हमारा।—मानस, १।८०।

अज⁴—प्रत्य० [फा० अज] से। उ०— लिये खाँटे ऊपर अज जान हार दिल।—दक्खिनी०, पृ० ११४।

अजक¹—वि० वि० [सं० अ = नहीं + फा० जक = पराजय] अपराजेय। उद्धत। उ०—अजक अपीधा अनल ज्यूँ किया कीधा रसातल।—राज०, पृ० ७४।

अजक‡—संज्ञा स्त्री० रोग। पीड़ा। उ०—एक जड़ी तोड़ ऐसी री दुग्गी, मिटि जाइ अजक तिहारी।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६६५।

अजक³—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुरवा के वंश का एक राजा (को०)।

अजकजा—संज्ञा पुं० [फा० अज + अ० कजा] संयोगवश। उ०—अजकजा जब शोज गए बस्ती भीतर।—दक्खिनी०, पृ० २८१।

अजकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजकर्णक' (को०)।

अजकर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] १. साल का पेड़। सालवृक्ष २. असन का वृक्ष (को०)।

अजकव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजगव'।

अजका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कम उम्रवाली बकरी। २ बकरी के गले से लटकनेवाली माँस की ग्रंथि। अजागलस्तन। ३ नेत्रों का एक रोग। अजकाजात (को०)।

अजकाजात—संज्ञा पुं० [सं०] आँख में होनेवाली लाल फूली जो पुतली को ढँक लेती है। टेंड़ या ढेंढ़। नाखूना।

अजकाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का धनुष। अजगव। २ बबूल का वृक्ष। ३ काष्ठनिर्मित एक यज्ञ पात्र जो मित्र और वरुण से संबद्ध है (को०)। ४ एक नेत्ररोग। अजकाजात (को०)। ५ अजका रोग का विष (को०)।

अजखुद—क्रि० वि० [फा०]। स्वयं। आप से आप। उ०—'गुया अजखुद गाली न देकर।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०१।

अजगंधा— संज्ञा स्त्री० [सं० अजगन्धा] अजमोदा।

अजगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अजगन्धिका] १ वनतुलसी का पौधा। बर्बरी।

अजगंधिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अजगन्धिनी] १ काकड़ासींगी। २ वनतुलसी का पौधा (को०)।

अजग—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का धनुष। २ विष्णु का नाम। ३ अग्नि (को०)।

अजगर—संज्ञा पुं० [सं०] १ बकरी निगलने वाला साँप। बहुत मोटी जाति का एक सर्प। उ०—(क) बैठि रहेसि अजगर इव पापी।—मानस, ७।१०७। (ख) बिन आशा बिन उद्यम कीने अजगर उदर भरै।—सूर०, १।१०५। अजगर करै न चाकरी पछी करै न काम। दास मलूका कहि गए सब के दाता राम —मलूक (शब्द०)।

विशेष—यह अपने शरीर के भारीपन के कारण फुर्ती से इधर उधर टाल नहीं सकता और बकरी, हिरन ऐसे बड़े पशुओं को निगल जाता है। और सर्पों के समान इसके दाँतों में विष नहीं होता। यह जंतु अपनी स्थूलता और निरुद्यमता के लिये प्रसिद्ध है। २, एक दानव (को०)।

अजगरी —संज्ञा स्त्री० [सं० अजगरीय] अजगर की सी निरुद्यम वृत्ति। बिना परिश्रम की जीविका। उ०—उत्तम भीख जो अजगरी, सुनि लीजो निज बैन। कहै कबीर ताके गहे महा परम सुख चैन।—कबीर (शब्द०)।

अजगरी²—वि० १ अजगर की सी। २ बिना परिश्रम की।

अजगरी³—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधे का नाम (को०)।

अजगरीवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना श्रम की जीविका। अजगरी।

अजगलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूँग के दाने के बराबर छोटी पीड़ा-रहित फुंसी जो कफ और वात के प्रकोप से शरीर पर निकलती है

अजगल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजगलिका' (को०)।

अजगव—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव जी का धनुष। पिनाक। उ०—नहीं इसी से चढ़ी शिंजिनी अजगव पर प्रतिशोध भरी।—कामायनी पृ० १०५। २ अजवीथी (को०)।

अजगाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का धनुष। २ नागों के एक गुरु। ३ एक प्रकार यज्ञपात्र। ४ अजवीथी (को०)।

अजगुत —संज्ञा पुं० [सं० अयुक्त हिं० अजगुति] १ युक्ति विरुद्ध बात। अचंभे की बात। आश्चर्यजनक भेद। असाधारण बात। अस्वाभाविक व्यापार। अप्राकृतिक घटना उ०—आई कंरगी भो अजगूता। जनम जनम जम पहिरे बूना।—कबीर (शब्द०)। २ अयुक्त बात। अनुचित बात। बेजोड़ बात। उ०—सरबस लूटि हमारो लीनो राज कूबरी पावै। तापर एक मुनी री अजगुत लिख लिख जोग पठावै —सूर (शब्द०)।

अजगुत²(पु)†—वि० १, आश्चर्यजनक। अदभुत। विलक्षण। २ अनुचित। अयुक्त। बेजोड़। उ०—पापी जाउ जीभ गलि तेरी अजगुत बात बिचारी। सिंह को भक्ष्य शृगाल न पावै हौं समरथ की नारी।—सूर (शब्द०)।

अजगुथ्या(पु)‡— वि० [हिं०] दे० 'अजगुत'। उ०—त्रिगुण भेद कहो अजगुथ्या।—कबीर सा०, पृ० ४१।

अजगैव¹—क्रि० वि० [फा०] अलक्षित स्थान से। गैब से। अदृष्ट से (को०)।

अजगैव²(पु)—संज्ञा पुं० [फा० अज + अ० गैब] अलक्षित स्थान। अदृष्ट स्थान। उ०—दादू टरिए लोक तें, कैसी धरहिं उठाइ। अनदेखी अजगैव, कैसी कहइ बनाइ।—दादू (शब्द०)।

अजगैवी(पु)—वि० [फा० अज+अ० गैबी+ई (प्रत्य०)] रहस्यपूर्णता। अलौकिकता। उ०—कहैं पदमाकर त्यो तारन विदारन की दिगर गुनाह अजगैवी गैर आब की।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३२४।

यौ०—अजगैबी गोला, अजगैवी तमाचा=दैवी विपत्ति आकस्मिक कष्ट। अजगैवी तमाशा=आश्चर्य करनेवाला खेल। अजगैवी मार=दे० 'अजगैवी गोला'।

अजघन्य—वि० [सं०] जो जघन्य अर्थात् जो निम्नतम, तुच्छ और अनिम या उपेक्ष्य न हो [को०]।

अजघोष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमे रोगी के शरीर मे बकरे की गंध आती है।—(माधव०)।

अजजीव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजजीविक' [को०]।

अजजीविक—संज्ञा पुं० [सं०] बकरे पालकर उनके विक्रयादि के द्वारा अपनी जीविका चलानेवाला व्यक्ति [को०]।

अजटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामलकी। कपिकच्छू [को०]।

अजड[1]—वि० [सं०] जो जड न हो। चेतन।

अजड[2]—संज्ञा पुं० चेतन पदार्थ।

अजड[3]—वि०, संज्ञा पुं० [सं० अजड] दे० 'अजड'

अजण—संज्ञा पुं० [सं० अर्जुन] राजा सहस्रार्जुन।—(डिं०)।

अजथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पीले रंग की जूही का पेड और फूल। २ पीली चमेली। जर्द चमेली। ३ बकरों का समूह (को०)।

अजदंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० अजदण्डी] एक प्रकार का पौधा। ब्रह्मदंडी [को०]।

अजदर—संज्ञा पुं० [फा० अजदर] दे० 'अजदहा'। उ०—अजदर है भभूका है जहन्नुम है बला है —भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२२।

अजदहा—संज्ञा पुं० [फा०] बडा मोटा और भारी साँप। अजगर।

अजदाह—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० अजदहा'। उ०—संत की प्रीति अजदाह की चाहिए, चले बिन फिरे आहार आवै।—पलटू०, पृ० २६।

अजदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि। २. पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र का एक नाम [को०]।

अजधाम—संज्ञा पुं० [सं० अज+धाम] ब्रह्मलोक। उ०—(क) पद पाताल सीस अजधामा।—मानस ६।१५। (ख) पद है पताल दिग श्रुति अजधाम भाल वाल घन माल काल भृकुटी विलास है।—दीन० ग्रं०, पृ० १५५।

अजनंदन—संज्ञा पुं० [सं० अज+नन्दन] रघुवंश के राजा अज के पुत्र दशरथ। उ०—त्याग दिया आज अजनंदन ने एक साथ पुत्र हेतु प्राण सत्य कारण अपर है।—साकेत, पृ० २०१।

अजन[1]—वि० [सं०] १ जन्म के बंधन से मुक्त। जन्मरहित। अजन्मा। अनादि। स्वयंभू। उ०—सकललोक नायक, सुखदायक, अजन, जन्म धरि आयौ।—सूर०, १०।४। २ निर्जन। सुनसान। उ०—मो उर अजन पजिर मैं निज गोतिहि जमाय जागौंगे।—घनानंद, पृ० १६२।

अजन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अयोग्य व्यक्ति। अप्रिय व्यक्ति। तुच्छ जन। उ०—हँसे खुलकर हाल बाहर अजन जन के बने मंगल।—अर्चना, पृ० २७। २ पितामह। ब्रह्मा (को०)। ३ गति गमन (को०)।

अजनक—वि० [सं०] उत्पादन न करनेवाला। अनुत्पादक [को०]।

अजननि—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पन्न या पैदा न होने की स्थिति। उत्पन्न न होना [को०]।

अजननीय—वि० [सं०] जनन के अयोग्य। जो उत्पादनीय न हो।

अजननी—वि० [अ०] १. अज्ञात। अपरिचित। जिसे कोई जानता न हो। बिना जान पहिचान का। नया। परदेशी। २ अनजान। नावाकिफ।

अजनबीपन—संज्ञा पुं० [अ० अजनबी+हिं० पन (प्रत्य०)] अजनबी होने का भाव। उ०—उस पर दोनो भाषाओं के अजनबीपन की छाप दिखाई पडी।—चिंतामणि, भा० २, पृ० १४२।

अजनयोनिज—संज्ञा पुं० [सं०] दक्ष प्रजापति [को०]।

अजनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] भारतवर्ष का एक प्राचीन नाम [को०]।

अजनामक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खनिज द्रव्य [को०]।

अजनाशक—संज्ञा पुं० [सं०] भेडिया [को०]।

अजन्म[1]—वि० [सं० अजन्मा] दे० 'अजन्मा'। उ०—आतम अजन्म सदा अविनासी। ताको देह मोह बड फाँसी।—सूर० ५।४।

अजन्म[2]—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म का अभाव। जन्म न होना [को०]।

अजन्मा—वि० [सं०] जन्मरहित। जिसका जन्म न हुआ हो। जो जन्म के बंधन मे न आवे। अनादि। नित्य। अविनाशी।

अजन्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शुभाशुभ सूचक सृष्टिव्यापार जैसे—भूकंप आदि।

अजन्य[2]—वि० १ जन्य या मनुष्य के लिये अनुपयुक्त। २ उत्पादन के अयोग्य। अजननीय [को०]।

अजप—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुपाठक। बुरा पढनेवाला ब्राह्मण। २ बकरी, भेंड पालनेवाला। गडेरिया।

अजपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्तम एवं श्रेष्ठ बकरा। २ भौम। मंगल [को०]।

अजपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ छायापथ। अजवीथी (को०) २ वह पथ जिसपर केवल बकरी ही चल सके। अत्यंत सँकरा मार्ग।

विशेष—अजपथ के विषय मे बृहत्कथा श्लोकसंग्रह मे लिखा है कि यह रास्ता इतना कम चौडा होता था कि आमने सामने से आनेवाले दो व्यक्ति एक साथ उसपर से निकल नहीं सकते थे।

अजपथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजपथ' [को०]।

अजपद—संज्ञा पुं० [सं०] अजैकपाद नामक रुद्र [को०]।

अजपा[1]—वि० [सं०] १ जिसका उच्चारण न किया जाय। उ०—जपते मभक्ति अजपा विभक्त हो राम नाम।—अपरा, पृ० ४१। २ जो न जपे या भजे।

अजपा[2]—संज्ञा पुं० १ उच्चारण न किया जानेवाला तांत्रिकों का मंत्र। वह जप जिसके मूल मंत्र 'हंस' का उच्चारण श्वासप्रश्वास के गमनागमन मात्र से होता जाय। हंस मंत्र। उ०—अजपा जपत सुनि अभिअंतरि, यहु तत जानै सोई।—कबीर ग्रं०, पृ० १५९।

विशेष—इसका देवता अर्धनारीश्वर अर्थात् शिव और शक्ति का संयुक्त रूप है। इस जप की संख्या एक दिन और रात में २१,६०० मानी गई है।

यौ०—अजपाजप, अजपाजाप = इस मंत्र का जप। उ०—अजपा-जाप उनमनी नारी।—कबीर ग्रं०, पृ० १५८। अजपामाला = अजपा जपने की माला या प्रक्रिया। उ०—तिलक उनमनी भजन जपत है अजपा माला।—पलटू०, भा० १, पृ० १००।

२. बकरियों का पालक। गड़ेरिया।

अजपाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक रुद्र (को०)।

अजपाल—संज्ञा पुं० [सं०] बकरी पालने का व्यवसाय करनेवाला व्यक्ति। उ०—'कृषक, अजपाल और व्यापारी लोगों के लिये शुभाशीर्वाद सूचक मंत्र हैं'।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ६२।

अजबंधु—संज्ञा पुं० [सं० अजबन्धु] मूर्ख। अज के समान मंद बुद्धि-वाला व्यक्ति (को०)।

अजब[1]—वि० [अ०] विलक्षण। अद्भुत। आश्चर्यजनक। विचित्र। अनोखा। अनूठा। उ०—कारी निसि कारी घटा, कच रति कारे नाग। कारे कन्हर पै चली, अजब लगन की लाग।—पद्माकर (शब्द०)।

अजब[2]—संज्ञा पुं० अचंभा। अचरज (को०)।

अजबस—क्रि० वि० [फ़ा०] एकाएक। उ०—लगे गुनजन पे अजबस गम के हाल्यां।—दक्खिनी०, पृ० १६१।

अजभक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] बबूल का पेड़ जिसकी पत्ती बकरियाँ अधिक चाव से खाती हैं।

अजम—संज्ञा पुं० [अ०] अरब के अलावा ईरान, तूरान आदि देश अथवा वहाँ के निवासी। उ०—अरब और अजम तुर्को ताजिक व रूम।—दक्खिनी, पृ० २१३।

अजमत—संज्ञा पुं० [अ० अज़मत] १. प्रभुत्व। प्रताप। शान। महत्व। उ०—आपकी उल्फत ईसा की सब अजमत आज मिटाएगी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५६। २. चमत्कार।

अजमाइश†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० आजमाइश] दे० 'आजमाइश'।

अजमाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'आजमाना'।

अजमायु—वि० [सं०] बकरे की तरह मिमियानेवाला (को०)।

अजमार—संज्ञा पुं० [सं०] १. कसाई। २. अजमेर का एक नाम। ३. एक जाति (को०)।

अजमी[1]—वि० [अ०] अजम संबंधी। अजम का (को०)।

अजमी[2]—संज्ञा पुं० अजम का निवासी व्यक्ति। ईरानी तूरानी (को०)।

अजमीढ—संज्ञा पुं० [सं० अजमीढ] १. अजमेर का पुराना नाम। २. पुरुवंशीय हस्ति के ज्येष्ठ पुत्र का नाम। ३. सुहोत्र के पुत्र का नाम। ४. युधिष्ठिर की उपाधि (को०)।

अजमुख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दक्ष प्रजापति का एक नाम (को०)।

विशेष—यज्ञ में शिव का अपमान करने पर सती के प्राणत्याग के बाद वीरभद्र ने दक्ष के यज्ञ का ध्वंस किया और उसे मार डाला। बाद में शिव की आज्ञा से उसे जीवित करने के लिये बकरे का सिर लगा दिया था। 'भागवत' में इसका विस्तृत विवरण है।

अजमुख[2]—वि० बकरी की तरह मुखवाला। [illegible] (को०)।

अजमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी का [illegible] अशोकवाटिका में सीता की देखरेख के लिये नियुक्त थी (को०)।

अजमूदा—वि० [फ़ा० आजमूदा] दे० 'आजमूदा'।

अजमोद—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अजमोदिका] अजवाइन की तरह का एक पेड़ और उसका फल। बड़ी अजवाइन।

विशेष—यह [illegible] लगाया जाता है। इसके बीज या दाने [illegible] के काम आते हैं। यह अजीर्ण, [illegible] तथा शरीर का दर्द दूर करने के लिये प्रसिद्ध है।

पर्या०—उग्रगंधा। गंधदला। शिखिमोदा। वह्निदीपिका। मर्कटी। [illegible]। [illegible]। हस्तिकारवी।

अजमोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजमोद' (को०)।

अजमोदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजमोद' (को०)।

अजय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पराजय। हार। जय का अभाव। २. अग्नि (को०)। ३. विष्णु (को०)। ४. एक कोशकार का नाम (को०)। ५. छप्पय छंद के ७१ भेदों में से पहला जिसमें ७० गुरु और १२ लघु मिलाकर ८२ वर्ण और १५२ मात्राएँ हैं।

अजय[2]—वि० न जीतने योग्य। जो जीता न जा सके। अजेय। उ०—[illegible] अजय रघुराई। माया ते असि [illegible] न जाई।—मानस ६।१३।

अजयपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. संगीत में भैरव राग का पुत्र।

विशेष—यह संपूर्ण जाति का राग है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। २. एक राजा का नाम। ३. जमालगोटा।

अजया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विजया। भाँग। २. दुर्गा की एक सखी का नाम (को०)। ३. माया (को०)।

अजया[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अजा] बकरी। उ०—[illegible] विश्राम [illegible] धनी मिलैगी [illegible] अजया गज [illegible] चढ़ी, [illegible]—[illegible] (शब्द०)।

अजय्य—वि० [सं०] १. अजेय। जो जीता न जा सके। २. [illegible] अजेय (को०)।

अजर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. निर्जर। देवता (को०)। २. परब्रह्म। ईश्वर का एक नाम। ३. [illegible] नामक पौधा (को०)।

अजर[2]—वि० १. जरारहित। जो बूढ़ा न हो। उ०—अजर अमर [illegible] न जाई। [illegible]—मानस, १।८१। २. [illegible]। [illegible]।

अजर[3]—वि० [सं० [illegible] (जर) = पचना] [illegible]। उ०—[illegible]—[illegible] (शब्द०)।

अजर[4]—संज्ञा पुं० [अ०] [illegible]। उ०—[illegible]—दक्खिनी०, पृ० १५२।

अजर[5]—संज्ञा पुं० [सं० अजिर] दे० 'अजिर'। उ०—[illegible] अजर की —[illegible], पृ० ६६।

अजरक—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निमांद्य। मंदाग्नि [को०]।

अजरद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष [को०]।

अजरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घृतकुमारी। घीकुआर। २ विधारा। ३ गृहगोधा। छिपकली (को०)।

अजरायल[1]—वि० [सं० अजर+हिं० आयल (प्रत्य०)] जो जीर्ण न हो। जो पुराना न हो। जो सदा एक सा रहे। अमिट। पक्का। चिरस्थायी। उ०—दिना चारि में सब मिटि जैहैं। श्याम रंग अजरायल रैहैं।—सूर० (शब्द०)।

अजरायल[2]†—वि० [सं० अ=नहीं+दर=भय] १ निर्भय। वेडर। निःशंक। उ०—तस कुठार द्रग तायल राह बरात ईख अजरायल।—रघु० रू० पृ० ८६। २ बलवान्। शक्तिशाली। उ०—रीठ वागो उभय श्रोड अजरायला।—रघु० रू०, पृ० १८३।

अजराल—वि० [सं० अ=नहीं+जृ पुराना पड़ना] बलवान्। जोरावर।—डिं०।

अजरावन—वि० [सं० अजर+आवन (प्रत्य०)] दे० 'अजर'। उ०—भलैं सु दिन भयौ पूत अमर अजरावन रे।—सूर०, १०।२८।

अजरावर(पु)—वि० [सं० अजरामर] जरा मरण से रहित। उ०—आत्मा माहि दीदार दरसता रहै यूँ अजरावर होय आपु जीया।—रामानंद०, पृ० ५।

अजर्य[1]—वि० [सं०] १ जराविहीन। २ पचाने के अयोग्य। अपाच्य। ३ चिरकाल तक रहनेवाला। चिरस्थायी [को०]।

अजर्य[2]—संज्ञा पुं० मैत्री। दोस्ती [को०]।

अजलंबन—संज्ञा पुं० [सं० अजलम्बन] सुरमा [को०]।

अजल—संज्ञा स्त्री० [अ० अजल] मृत्यु। मौत। उ०—ऐ सनम तू ही मेरी शक्ल से रहता है खफा, है अजल भी तो खफा।—श्यामा०, पृ० १०२।

अजलचर—वि० [सं० अ=नहीं+जलचर] जो जलचर न हो। जो जल में न रहता हो। स्थलचर। थलचर उ०—अरु तहँ बहुत जुगनि की कहाँ। सर्प अजलचर क्यों जल रहाँ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७९।

अजलोमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केवाँच का पेड़।

अजलोमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजलोमा' [को०]।

अजव—वि० [सं०] वेगरहित। गतिहीन [को०]।

अजवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजशृंगी' [को०]।

अजवाइन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अजवायन'। उ०—रोटी रुचिर कनक बेसन करि। अजवाइनि सैंधो मिलाइ धरि।—सूर०, १०।१२१३।

अजवायन—संज्ञा स्त्री० [सं० यवानिका] यवानी। एक पौधा। जवाइन।

विशेष—यह पौधा सारे भारत में, विशेषकर बंगाल में लगाया जाता है। यह पौधा अफगानिस्तान, फारस और मिस्र आदि देशों में भी होता है। भारतवर्ष में इसकी बोआई कार्तिक, अगहन में होती है। इसके बीज जिनमें एक विशेष प्रकार की महक होती है और जो स्वाद में तीक्ष्ण होते हैं, मसाले और दवा के काम आते हैं। भभके पर उतारने से बीज में से अर्क (अमूम का पानी) और तेल निकलता है। भभके से उतारते समय तेल के ऊपर एक सफेद चमकीली चीज अलग होकर जम जाती है जो बाजार में 'अजवायन के फूल' के नाम से बिकती है। अजवायन का प्रयोग हैजा, पेट का दर्द, वात की पीड़ा आदि में किया जाता है।

अजवाह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कच्छ, कठियावाड़ का एक प्राचीन नाम [को०]।

अजवाह[2]—वि० अजवाह देश का [को०]।

अजवीथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजवीथी' [को०]।

अजवीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सूर्यादि के गमन के तीन दक्षिणी मार्गों में से एक। छायापथ। गगनसेतु। २. बकरे के चलने की राह या मार्ग [को०]।

अजशृंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० अजशृङ्गी] एक वृक्ष। मेढासिंगी।

विशेष—यह भारतवर्ष में प्रायः समुद्र के किनारे होता है। इसकी छाल 'संकोचक' है और ग्रहणी आदि रोगों में दी जाती हैं। इसका लेप घाव और नासूर को भी भरता है।

अजस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अयश प्रा० अजस] अयश। अपयश। अपकीर्ति। बुरी ख्याति। बदनामी। उ०—सिय बरनिय तेइ उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई।—मानस, १।२४७।

यौ०—अजस पेटारी=अपयश की भागिनी। उ०—अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।—मानस २ १२।

अज सरे नौ—क्रि० वि० [फा० अज सरे नौ] नए सिरे से। नए ढंग से [को०]।

अजसी(पु)—वि० [सं० अयशिन्] जिसकी बुरी कीर्ति हो बदनाम। निंद्य। अपयशी। उ०—कौल कामवस कृपन विमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा।—मानस, ६।३१।

अजस्र—क्रि० वि० [सं०] सदा। निरंतर। हमेशा। लगातार। उ०—'आहुतियाँ विश्व की अजस्र लुटाता रहा।'—लहर, पृ० ५६।

अजस्रता—संज्ञा स्त्री० [सं० अजस्र+ता (प्रत्य०)] अजस्र होने का भाव या क्रिया। नैरंतर्य। उ०—'तुममें या मुझमें या हमारे प्रेम में ही अजस्रता नहीं है'।—चित्रा०, पृ० ६४।

अजहत्—वि० [सं०] त्याग न करनेवाला। न छोड़नेवाला [को०]।

अजहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजहत्स्वार्था'।

अजहल्लक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजहत्स्वार्था' [को०]।

अजहल्लिंग—संज्ञा पुं० [सं० अजहल्लिङ्ग] संस्कृत व्याकरण में वह शब्द या संज्ञा जो अन्य लिंग के शब्द के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने पर भी अपने लिंग का त्याग न करे [को०]।

अजहत्स्वार्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] अलंकार शास्त्र में लक्षणा के दो भेदों में से एक।

विशेष—इसमें लक्षक शब्द अपने वाच्यार्थ को न छोड़कर उससे संपृक्त या कुछ भिन्न या अतिरिक्त अर्थ प्रकट करे। जैसे—'भालों के आते ही शत्रु भाग गए'। यहाँ भालों से तात्पर्य भाला लिए सिपाहियों से है। इसे उपादान लक्षणा भी कहते हैं।

अजहद—क्रि० वि० [फा० अज+अ० हद्द] हद से ज्यादा। बहुत अधिक। उ०—सब पखियों में मैं हूँ अजहद पाक तन।—दक्खिनी०, पृ० १७६।

अजहुँ(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अजहूँ'। उ०—तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनार्थाह तारा गयद जाके अर्धनायँ। —तुलसी ग्र०, पृ० ५०२ ।

अजहूँ(पु)--क्रि० वि० [स० अद्य, प्रा० अज्ज + हिं० हूँ (प्रत्य०)] अब भी अद्यपि। आज भी। उ०—किती दार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूँ है छटी।—सूर०, १०।१७५।

अजान्वी—संज्ञा स्त्री० [सं० अजान्त्री] नीलपुष्पी नामक पौधा [को०]।

अजाविका—संज्ञा स्त्री० [सं० अजाम्बिका] भाद्र कृष्ण एकादशी का नाम जो एक व्रत का दिन है ।

अजाँ— संज्ञा स्त्री० [अ० अजाँ] दे० 'अजान³'। उ०—तुझे ही शेख ने प्यारे अजाँ देकर पुकारा है।—भारतेंदु ग्र०, भाग २, पृ० ८५१ ।

अजा¹—वि० स्त्री० [सं०] जिसका जन्म न हुआ हो। जो उत्पन्न न की गई हो। जन्मरहित । उ०—अजा अनादि सक्ति अविनासिनि ।—मानस, १।६७ ।

अजा²—संज्ञा स्त्री० १ बकरी। २ साख्य मतानुसार प्रकृति या माया जो किसी के द्वारा उत्पन्न नही की गई और अनादि है। ३ शक्ति । दुर्गा। ४ भादो वदी एकादशी जो एक व्रत का दिन है ।

अजा³—संज्ञा पुं० [अ० अजा] १ मृत्यशोक । मातम। २ मातमपुर्सी [को०] ।

अजाइब(पु)—संज्ञा पुं० [अ० अजायब] दे० 'अजायब'। उ०—अजब अजाइब नूर दीदम दादू है हैरान ।—दादू, पृ० ५७७।

अजाखाना—संज्ञा पुं० [अ० अजाखानह्] वह स्थानविशेष जहाँ मातम किया जाय, ताजिया रखा जाय या मर्सिया पढा जाय [को०] ।

अजागर¹—वि० [सं०] न जागनेवाला [को०]।

अजागर²—संज्ञा पुं० मृगराज। भँगरैया [को०]।

अजागलस्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बकरी के गले मे लटकने वाली मास की स्तनकार छीमी। २ देखने मे उपयोगी किंतु निरर्थक वस्तु (लाक्ष०) [को०] ।

अजाच(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अयाच्य'। उ०—जाचक भए अजाच प्रजा परिजन मुद छाए ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० २५४ ।

अजाचक(पु)¹— संज्ञा पुं० [सं० अयाचक] न माँगनेवाला। वह जिसे कुछ माँगने की आवश्यकता न हो ।सपन्न व्यक्ति।

अजाचक(पु)²—वि० जो न माँगे। जिसे माँगने की आवश्यकता न हो। सपन्न। भरापूरा। उ०—विप्रन्ह दान विविध विधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे।—मानस, ७।१३।

अजाची(पु)¹†—संज्ञा पुं० [स० अयाचिन्] न माँगनेवाला। सपन्न पुरुष ।

अजाची(पु)²—वि० जो न माँगे । जिसे माँगने का आवश्यकता न हो । धन धान्य से पूर्ण । संपन्न । भरापूरा उ०—(क) कपि सवरी सुग्रीव विभीषन को जो कियो अजाची ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गुरुसुत आनि दिए जमपुर तैं विप्र सुदामा कियौ अजाची। —सूर०, १।१८।

अजाजि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजाजी' [को०] ।

अजाजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद और काला जीरा। जीरा।

अजाजील—संज्ञा० पुं० [अ० अजाजील] शैतान [को०]।

अजाजीव--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजजीवक' [को०]।

अजात—वि० [सं०] १. जो पैदा न हुआ हो। अनुत्पन्न। २ जन्मरहित। अजन्मा।

अजातककुत्--संज्ञा पुं० [सं०] वह बछडा जिसकी पीठ पर डिल न निकला हो। छोटा बछडा। बछवा। उ०—जब तक बछडा बडा नही हो जाता था अर्थात् उसकी पीठ पर डिल नहीं निकल आता था तब तक वह अजातककुत् और युवा होने पर पूर्णककुन् कहलाता था।—सपू० अभि० ग्र०, पृ० २४८।

अजातदत—वि० [स० अजातदन्त] जिसे दाँत पैदा न हुए हों। बिना दाँत का। दतविहीन [को०]।

अजातपक्ष--वि० [सं०] बिना पखवाला । जिसे पख उत्पन्न न हुए हो [को०] ।

अजातरिपु—वि० [सं०] दे० 'अजातशत्रु [को०]।

अजातव्यजन—वि० [सं० अजातव्यञ्जन] अस्पष्ट आकृति या चिह्नवाला। जिसकी आकृति सुस्पष्ट न हो, (पक्षी) [को०]।

अजातव्यवहार--वि० [स०] जिसको व्यवहारिक ज्ञान न हो या जो बालिग न हो [को०]।

अजातशत्रु¹—वि० [स०] जिसका कोई शत्रु उत्पन्न न हुआ हो। बिना वैरी का। शत्रुविहीन।

अजातशत्रु²--संज्ञा पुं० १. राजा युधिष्ठिर। २ शिव । ३ बृहदारण्यक उपनिषद् मे वर्णित काशी का एक क्षत्रिय राजा जो बडा ज्ञानी था और जिसने गार्ग्य बालाकि ऋषि को बहुत से उपदेश दिए थे। ४ राजगृह (मगध) के राजा बिंबिसार का पुत्र जो गौतमबुद्ध का समकालीन था।

अजातश्मश्रु—वि० [सं०] जिसे दाढी मूछ न निकली हो। छोटी उम्रवाला। अल्पवय [को०]।

अजातारि—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अजातशत्रु' [को०]।

अजाति¹—वि० [सं०] १ जाति से निकला हुआ। जाति से बाहर। जातिरहित । पतित । पक्तिच्युत। उ०—कहहु काह सुनि रीझिहु बर अकुलीनहिं। अगुन अमान अजाति मातुपितु हीनहिं —तुलसी ग्र०, पृ० ३३। २. जो जात या उत्पन्न न हो [को०]।

अजाति²—संज्ञा स्त्री० उत्पत्ति का अभाव। अनुत्पत्ति [को०]।

अजाती¹—वि० [स० अजाति] दे० 'अजाति'। उ०—चद न सूर दिवस नहिं राती। बरन भेद नहिं जाति, अजाती।—कबीर सा०, पृ० २।

क्रि० प्र०—करना। जैसे—'उसको बिरादरी ने अजाती कर दिया है।'—(शब्द०)।—होना।

अजाती²—संज्ञा पुं० जाति से अलग किया हुआ आदमी। जातिच्युत व्यक्ति।

अजाद(पु)—वि० [फा० आजाद] दे० 'आजाद'। उ०—हमैं नँदनदन मोल लिए। जम के फद काटि मुकराए, अभय अजाद किए। —सूर०, १।१७१।

अजादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवास या जवासा का एक भेद [को०]।

अजादार—वि० [अ० अजा + फा० दार] मृत्युशोक करनेवाला । मातम मनानेवाला [को०] ।

अजादारी—संज्ञा स्त्री० [अ० अजा + फा० दार + ई (प्रत्य०)] शोक । मातम [को०] ।

अजान¹—वि० [सं० अज्ञान, प्रा० अजाण [स्त्री० अजानी] १ जो न जाने । अनजान । अबोध । अनभिज्ञ । अबूझ । नासमझ । उ०—(क) तुम प्रभु अजित, अनादि लोकपति, हौं अजान मतिहीन ।—सूर०, १।१८१ । (ख) भक्त अरु भगवत एक है बूझत नही अजान ।—कबीर (शब्द०) । २ न जाना हुआ । अपरिचित । अज्ञात । उ०—उसे दिखाती जगती का सुख, हँसी और उल्लास अजान ।—कामायनी पृ० ३० ।

अजान²—संज्ञा पुं० १ अज्ञानता । अनभिज्ञता । उ०—(क) 'मुझसे यह काम अजान मे हो गया ।'—(शब्द०) । (ख) धीरे धीरे आती है जैसे मादकता आँखो के अजान मे ललाई मे ही छिपती ।—लहर, पृ० ७४ ।

विशेष—इसका प्रयोग इस अर्थ मे 'मे' के साथ ही होता है और दोनों मिलकर क्रियाविशेषणवत् हो जाते हैं । कही कही इसका स्वतत्र प्रयोग भी प्राप्त होता है, जैसे—'जान अजान नाम जो लेइ । हरि बैकुठ वास निहिं देइ ।—सूर०, ६१४।

२. एक पेड जिसके नीचे जाने से लोग समझते हैं कि बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । उ०—कोइ चदन फूलहि जनु फूली । कोइ अजान वीरउ तर भूली ।—जायसी (शब्द०) ।

विशेष—यह पीपल के बराबर ऊँचा होता है और इसके पत्ते महुए के से होते हैं । इसमे लबे लंबे मौर लगते हैं ।

अजान³—संज्ञा स्त्री० [अ० अजान] वह पुकार जो प्राय मसजिद की मीनारो पर मुसलमानों को नमाज के समय की सूचना देने और उन्हें मसजिदो मे बुलाने के लिये की जाती है । बाँग ।

मुहा०—अजान देना = (१) किसी ऊँचे स्थान या मसजिद का मीनार से उच्चस्वर मे नमाज करने के समय की सूचना देना । (२) प्रात काल मुर्गे का बोलना । मुर्गे का बाँग देना ।

अजानता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञता । अजानपन । नासमझी । उ०—मोहि मेरे जिय की जनायबो अजानता हैं, जानराय जानत हौ सकल कला प्रवीन ।—घनानद, पृ० ३६ ।

अजानपन—संज्ञा पुं० [हिं० अजान + पन] (प्रत्य०)] अनजानपन । अज्ञानता । नासमझी । उ०—जो लोग औरो की निंदा सुनकर काँपते हैं वह आप भी अपने अजानपने मैं औरो की निंदा करते हैं' ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३२६ ।

अजानि—संज्ञा पुं० [सं०] १ बिना पत्नी का व्यक्ति । वह व्यक्ति जिसे पत्नी न हो । २ विधुर [को०] ।

अजानिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गडेरिया । छागपालक । २ दे० 'अजानि' । [को०] ।

अजानी—वि० [हिं०] दे० 'अज्ञानी' । उ०—रानी मैं जानी अजानी महा पवि पाहन हू ते कठोर हियो है ।—तुलसी ग्र०, पृ० १६६ ।

अजानीय—वि० [सं०] दे० 'अजानेय' । उ०—गाधार के दश नागरिको का शिष्टदल दश अजानीय असाधारण अश्व और बहुत सी उपायन सामग्री देकर भेजा था ।—वैशाली०, पृ० १२३ ।

अजानेय¹—संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी नस्ल का घोडा [को०] ।

अजानेय²—वि० अच्छी जाति का । ताकतवर । निर्भय (घोडा) ।

अजापक्व—संज्ञा पुं० [सं०] औषधि के लिये निर्मित एक प्रकार का घी [को०] ।

अजापालक—संज्ञा पुं० [सं०] गडेरिया । मेषपालक [को०] ।

अजापुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] बकरी का बच्चा । बकरा । उ०—नित्य एक अजापुत्र के भक्षण की सामर्थ्य आप मे बढती जाय ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ७३ ।

अजाव—संज्ञा पुं० [अ० अजाब] १ सजा । पीडा । यातना । उ०—कर अब तो रहम अजाब के बदले ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०३ । २ पाप । कष्ट । प्रायश्चित्त । उ०—पलटू खुदा हक राह यही । और खाना अजाब है जी ॥—पलटू०, पृ०१० ।

मुहा०—मोल लेना = व्यर्थ झझट मे पडना ।

यौ०—अजाब के फरिश्ते = पापियो को दड देने के लिये नियुक्त यमदूत ।

अजामिल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराण के अनुसार एक पापी ब्राह्मण का नाम जो मरते समय अपने पुत्र 'नारायण' का नाम लेकर तर गया ।

अजाय¹ (पु)—वि० [स० अ = कुत्सित + फा० जाय = जगह] बेजा । अनुचित । बुरा । उ०—द्वै सुत निर्धन देखि कै मातु कह्यो अनखाय । भए पुत्र द्वै रक मम, कीन्हो कत अजाय ।—रघुराज (शब्द०) ।

अजाय²—वि० [स०] जायारहित । पत्नीविहीन [को०] ।

अजायब¹—संज्ञा पुं० [अ० 'अजब' का बहुवचन] अद्भुत वस्तु । विलक्षण पदार्थ या व्यापार । विचित्र वस्तु या कार्य ।

अजायब (पु)²—वि० अजीब । विचित्र । विलक्षण । उ०—अविगत रूप अजायब बानी । ता छवि का कहि जाई ।—भीखा श०, पृ० ३७ ।

अजायबखाना—संज्ञा पुं० [अ० अजायब + फा० खाना] वह भवन या घेरा जिसमे अनेक प्रकार के अद्भुत पदार्थ रखे जाते हैं । अद्भुत-वस्तु-सग्रहालय । म्यूजियम ।

अजायबघर—संज्ञा पुं० [अ० अजायब + हिं० घर] दे० 'अजायबखाना ।

अजायबी (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अजायब²' । उ०—अग सुखमूल, रग रुचिर गुलाब फूल कोमल दुकूल तूलपूरित अजायबी ।—घनानद, पृ० २०६ ।

अजाया (पु)—वि० [स० अजातक] गतप्राण । मृत । मरा हुआ ।

अजार (पु)—संज्ञा पुं० [फा० आजार] १ रोग । बीमारी । उ०—कबकी अजब अजार मे, परी बाम तन छाम । तित कोऊ मति लीजियो चद्रोदय को नाम ।—पद्माकर (शब्द०) । २. कष्ट । दु.ख (को०) । ३ दुर्व्यसन । लत (को०) ।

अजारा†—संज्ञा पुं० [अ० इजारा] दे० 'इजारा' । उ०—कृपण सतोष करैं नहीं लालच अक । सुपण वमीपण सूँ मिलै लिए अजारे लक ।—बाँकीदास ग्र०, भा० २, पृ० ३१ ।

अजावन (पु)—वि० [सं० अजायमान] न जनमनेवाला । उत्पन्न न होनेवाला । अजन्मा । उ०—(क) निरमल अभी क्राति अद्भुत छवि अकह अजावन सोई ।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २६ । (ख) पुरुष अजावन रह्या जो देहा ।—कबीर सा०, पृ० १५३३ ।

अजि[1]--वि० [सं०] चलनेवाला। गमन करनेवाला, जैसे--पदाजि = पैर से चलनेवाला [को०]।

अजि[2]--संज्ञा स्त्री० १ चलना की क्रिया या स्थिति। गति। २ फेंकने की क्रिया। फेंकना [को०]।

अजिआउर†--संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अजिऔरा'।

अजिऔरा(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० आर्यिका + पुर, प्रा० अज्जिया + औरा (प्रत्य०)] आजी या दादी के पिता का घर।

अजित[1]--वि० [सं०] १. अपराजित। जो जीता न गया हो। उ०--इद्री अजित बुद्धि विषयारत मन की दिन दिन उलटी चाल। --सूर०, १।१२९। २ जो जीता न जा सके। अजेय (को०)।

अजित[2]--संज्ञा पुं० १ विष्णु। २ शिव। ३ बुद्ध। ४ विषघ्न ओषधि (को०)। ५ जहरीला मूसा (को०)। ६ प्रथम मन्वतर के देवों की एक श्रेणी या वर्ग (को०)।

अजितनाथ--संज्ञा पु० [सं०] जैनियों के दूसरे तीर्थंकर का नाम।

अजितबला--संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन सप्रदाय की एक देवी [को०]।

अजितविक्रम[1]--वि० [सं०] अपराजित विक्रमवाला [को०]।

अजितविक्रम[2]--संज्ञा पुं० चद्रगुप्त द्वितीय का एक नाम या विरद [को०]।

अजिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों वदी एकादशी का नाम जो व्रत का दिन है।

अजितात्मा--वि० [सं०] दे० 'अजितेंद्रिय' [को०]।

अजितापीड--वि० [सं० अजितापीड] अजेय मुकुटवाला। बेजोड मुकुट का [को०]।

अजितेंद्रि(पु)--वि० [सं० अजितेन्द्रिय] दे० 'अजितेंद्रिय'। उ०--असुर अजितेंद्रि जिहिं देखि मोहित भए, रूप सो मोहिं दीजै दिखाई। सूर०, १।४३७।

अजितेंद्रिय--वि० [सं० अजितेन्द्रिय] जिसने इद्रियों को जीता न हो। जो इद्रियों के वश में हो। इद्रियलोलुप। विषयासक्त। उ०--कृपन दरिद्र कुटुंबी जैसे। अजितेंद्रिय दुख भरत हैं तैसे।--नद० ग्र०, पृ० २९१।

अजिन--संज्ञा पुं० [सं०] १ चर्म। चमडा। खाल। उ०--गज अजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै।--तुलसी ग्र०, पृ० ३४। २ ब्रह्मचारी आदि के धारण करने के लिये कृष्णमृग और व्याघ्र आदि का चर्म। उ०--अजिन वसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।--मानस, २।२११। ३ चमडे का एक प्रकार का थैला (को०)। ४ भाथी। धौंकनी (को०)। ५. छाल।

अजिनपत्रा--संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसके पख अजिन की तरह सुश्लिष्ट हों। चमगादड [को०]।

अजिनपत्रिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजिनपत्री' [को०]।

अजिनपत्री--संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड। गादुर [को०]।

अजिनफला--संज्ञा स्त्री० [सं०] भाथी की तरह फलवाला एक प्रकार का वृक्ष [को०]।

अजिनयोनि--संज्ञा पुं० [सं०] मृग। हिरन।

अजिनवासी--वि० [सं०] कृष्ण मृग का चर्म धारण करनेवाला [को०]।

अजिनसंध--संज्ञा पुं० [सं० अजिनसन्ध] मृगचर्म का व्यापारी। अजिन का व्यवसायी [को०]।

अजिर[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ आँगन। सहन। उ०--घुटुरुनि चलत, अजिर महँ विहरत, मुख मडित नवनीत।--सूर०, १०।९७। २ वायु। हवा। ३ शरीर। ४ मेढक। ५ इद्रियों का विषय। ६ छछूँदर (को०)।

अजिर[2]--वि० शीघ्रगामी [को०]।

अजिरा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा का एक नाम। २ वेगवती नदी [को०]।

अजिरीय--वि० [सं०] आँगन से सबधित। सहन या आँगन का [को०]।

अजिह्म[1]--वि० [सं०] १. जो जिह्म या टेढा न हो। सीधा। सरल। २ ईमानदार। सच्चा। खरा [को०]।

अजिह्म[2]--संज्ञा पुं० १ एक मछली। २ मेढक। दादुर [को०]।

अजिह्मग[1]--वि० [सं०] सीधा चलनेवाला। टेढे मेढे न चलनेवाला [को०]।

अजिह्मग[2]--संज्ञा पुं० वाण। इषु [को०]।

अजिह्व[1]--संज्ञा पुं० [सं०] मेढक। दादुर [को०]।

अजिह्व[2]--वि० जीभरहित। जिह्वाविहीन [को०]।

अजी--अव्य० [सं० अयि!] सबोधन शब्द। जी। जैसे--'अजी, जाने दो' (शब्द०)।

अजीकव--संज्ञा पुं० [सं०] शिव का धनुष [को०]।

अजीगर्त--संज्ञा पुं० [सं०] १ एक ऋषि जो शुन शेप के पिता थे। २ वह जो छिद्र में प्रविष्ट होता हो। साँप। सर्प [को०]।

अजीज[1]--वि० [अ० अजीज] प्यारा। प्रिय।

अजीज[2]--संज्ञा पुं० १ सबधी। २ मित्र। सुहृद्।

क्रि० प्र०--करना = प्रिय समझना।--जानना या रखना = समान करना। प्रिय समझना।--होना = (१) प्रिय होना (२) कोई वस्तु देने में सकोच होना।

अजीजदार--संज्ञा पुं० [अ० अजीज + फा० दार] दे० 'अजीज' [को०]।

अजीजदारी--संज्ञा० स्त्री० [अ० अजीज + फा० दारी] १ मित्रता। दोस्ती। २ सबध। रिश्तेदारी [को०]।

अजीटन--संज्ञा पुं० [अं० अडजुटेंट] सेना का एक सहायक कर्मचारी जो कर्नल या सेनापति को सहायता देता है।

अजीत[1]--वि० [सं०] जो कुम्हलाया हुआ या मद न हो [को०]।

अजीत[2](पु)--वि० [हिं०] दे० 'अजित'। उ०--जीति उठि जायगी अजीत पाडुपूतनि की, भूप दुरजोधन की भीति उठि जायगी। --रत्नाकर, भा० १, पृ० १४२।

अजीति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समृद्धि। अभ्युदय। २. क्षय का अभाव [को०]।

अजीब--वि० [अ०] विलक्षण। विचित्र। अनोखा। अनूठा। आश्चर्यजनक। विस्मयकारक।

अजीब वो गरीब--वि० [अ० अजीब + फा० ओ + अ० गरीब] १ अनूठा। आश्चर्यजनक। २ दुष्प्राप्य [को०]।

अजीमुश्शान--वि० [अ० अजीम + उल् + शान] बहुत ही शानदार। उ०--'एक बडी अजीमुश्शान सुर्ख पत्थर की मस्जिद थी'।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५८।

अजीयत--संज्ञा स्त्री० [अ०] कष्ट। पीडा। उ०--जो मुझे देवेगा अजीयत गम।--दक्खिनी०, पृ० २१८।

अजीरन¹—वि० [सं० अजीर्ण प्रा० अजीरण] दे० अजीर्ण। उ०—होइ न कहूँ अनद अजीरन। तासों धरु धीरज चचल मन।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ६०७।

अजीरन²—संज्ञा पुं० दे० 'अजीर्ण'।

मुहा०—अजीरन होना = दुर्वह होना। कठिन होना।

अजीर्ण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपच। अध्यसन। बदहजमी।

विशेष—प्राय पेट मे पित्त के बिगडने से यह रोग होता है जिससे भोजन नही पचता और वमन, दस्त शूल आदि उपद्रव होते हैं। आयुर्वेद मे इसके छह भेद बतलाए हैं —(१) आमाजीर्ण = जिसमे खाया हुआ अन्न कच्चा गिरे। (२) विदग्धाजीर्ण = जिसमे अन्न जल जाता है। (३) विष्टब्धाजीर्ण = जिसमे अन्न के गोटे या कडे बँधकर पेट मे पीडा उत्पन्न करते हैं। (४) रसशेषाजीर्ण = जिसमे अन्न पानी की तरह पतला होकर गिरता है। (५) दिनपाकी अजीर्ण = जिसमे खाया हुआ अन्न दिन भर पेट मे बना रहता है और भूख नही लगती। (६) प्रकृत्याजीर्ण या सामान्य अजीर्ण।

२ अत्यत अधिकता। बहुतायत (व्यग्य)। जैसे—'उमे बुद्धि का अजीर्ण हो गया है।'—(शब्द०)। ३ शक्ति। ताकत (को०)। ४, जीर्ण न होने का भाव। क्षयाभाव (को०)।

अजीर्ण²—वि० जो पुराना न हो। नया।

अजीर्णि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बदहजमी [को०]।

अजीर्णी—वि० [सं०] अपच या अजीर्ण रोगवाला [को०]।

अजीर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजीर्ण' [को०]।

अजीव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. अचेतन। जीव तत्व से भिन्न जड पदार्थ। २ मृत्यु। मौत (को०)। ३ जैन मतानुसार जड जगत् (को०)। ४ अस्तित्वविहीनता (को०)।

अजीव²—वि० १ विना प्राण का। मृत। २ जड (को०)।

अजीवकल्प—संज्ञा पुं० [सं० अजीव + कल्प] वह युग या काल जिस समय पृथिवी पर जीव नही रहते थे। उ०—बहुत समय तक वह इतनी गर्म थी कि उसपर कोई जीव पैदा न हो सकता था, उस काल को अजीव कल्प (एजोइक एज) कहते हैं।—भारत० नि०, पृ० १८।

अजीवन¹—वि० [सं०] जीविकाहीन। योगक्षेम की व्यवस्था से रहित [को०]।

अजीवन²—संज्ञा पुं० जीवन का अभाव। मृत्यु [को०]।

अजीवनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अस्तित्व का अभाव। मृत्यु [को०]।

अजीवित¹—वि० [सं०] मृत। जीवनहीन [को०]।

अजीवित²—संज्ञा पुं० मृत्यु। अजीवन [को०]।

अजु(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'और'। उ०—अति अत्र मौर तोरण अजु अबुज। कली सु मगल कलस करि।—वेलि०, दू० २३३।

अजुगत—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजगुत'।

अजुगति†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अजगुत'।

अजुगुत¹(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजगुत'। उ०—देखि देखि लोग हीय सब कूटा। भा अजुगुत दलगजन छूटा।—चित्रा०, पृ० १८९।

अजुगुत²(पु)†—वि० [सं० अयुक्त] दे० 'अयुक्त'। उ०—तोर नयन एँ थहु न सचर अजुगुत वह न जाइ।—विद्यापति०, पृ० ३८७।

अजुगुप्सित—वि० [सं०] जो निंदित, घृणित या बुरा न हो। जो नापसद न हो [को०]।

अजुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आनद या प्रसन्नता का अभाव। २. असतुष्टि। निराशा [को०]।

अजूँ(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अजौं', 'अजहूँ'। उ०—समुझै क्यों न अजूँ समझाऊँ मूल मती द्विव भाया।—रघु० रू०, पृ० १६।

अजू(पु)†—अव्य० [सं० अयि] सबोधन शब्द। 'अजी!' का ब्रज रूपातर। उ०—जीतौं जौ चहै अजू तो रीतो घरो लै चलु नहीं तौ नहीं तो सिर अजस वै परे मरै।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ११०।

अजूजा(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] बिज्जू की तरह का एक जानवर जो मुर्दा खाता है। उ०—कहँ कवि दूलह समुद्र बढे सोनित के जुगिनि परेतै फिरै जबुक अजूजा मे।—दूलह (शब्द०)।

अजूनी(पु)—वि० [सं० अयोनि] उत्पन्न न होनेवाला। अजन्मा। उ०—अमर अजूनी थिर धनी काल कर्म सिरि नाहि।—प्राण०, पृ० १०६।

अजूब(पु)—वि० [अ० अजूबह्] दे० 'अजूबा'। उ०—वाकिफ हो सो गमि लहै वाजिब मखुन अजूब।—कबीर श०, पृ० ३०।

अजूबा¹—वि० [अ० अजूबह्] अद्भुत। अनोखा। अनूठा।

अजूबा²—संज्ञा पुं० अनूठी वस्तु। अद्भुत चीज [को०]।

अजूरा(पु)¹—वि० [सं० अ + जुट = जोडना] १ बिना जुटा हुआ। पृथक्। अलग। जुदा। उ०—रहा जो राजा रतन अजूरा। केह क सिंहासन केह क पटूरा।—जायसी (शब्द०)। २ अप्राप्त। अनुपस्थित।

अजूरा(पु)²—संज्ञा पुं० [अ० अजूरह् = पारिश्रमिक] मजदूरी। भाडा। उ०—आठ पहर रहै ठाढ सोई है चाकर पूरा। का जानी केहि घरी हरी दै देइ अजूरा।—पलटू० बानी, भा० १, पृ० ४५।

यौ०—अजूरादार = भाडे या मजदूरी पर काम करनेवाला।

अजूह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ, जूझ, जूह] युद्ध। लडाई। उ०—ताको जु हिमाऊँ साहि हूअ। तासो पठान सो भयो अजूह।—सूदन (शब्द०)।

अजे(पु)¹—क्रि० वि० [सं० अद्यापि, प्रा० अज्जवि] आज भी। अभी भी। उ० —तेणि न राखी सासरइ अजे स मारू बाल।—ढोला०, दू० ११।

अजे(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजय'।

अजे(पु)³—वि० [हिं०] दे० 'अजेय'। उ०—मुनि मानस पकज भृग भजे, रघुवीर महा रन धीर अजे।—मानस, ७।१४।

अजेइ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अजेय'। उ०—कियो सबै जगु कामबस जीते जिते अजेइ। कुसुमसरहिं सर धनुष कर अगहनु गहन न देइ।—बिहारी र०, दो० ४६५।

अजेतव्य—वि० [सं०] अजेय। जो जीता न जा सके [को०]।

अजेय¹—वि० [सं०] न जीते जाने योग्य। जिसे कोई जीत न सके। उ०—द्विस्वभाव अश्लेष मे ब्राह्मण जाति अजेय।—राम च०, पृ० २६०।

अजय२—संज्ञा पुं० सुश्रुत में कथित एक विषघ्न घृत [को०]।
अजे१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजय'।
अजे(पु)२—वि० [हिं०] दे० 'अजेय'। उ०—हौं हार्‌यौ करि जतन विविध विधि अतिसै प्रबल अजै।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०४।
अजैकपाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ एकादश रुद्र में से एक। २ उक्त रुद्र द्वारा अधिष्ठित पूर्वाभाद्रपदा नाम का नक्षत्र। ३ विष्णु [को०]।
अजैव—वि० [सं०] जीव से असंबंधित। जो जीव संबंधी न हो [को०]।
अजोख(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० जोखना] जो जोखा न जा सके। अमाप। उ०—लीन्ही जिन मोल भाय चोखै। दीन्ही तुमको बिथा अजोखे।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २१५।
अजोग(पु)—वि० [सं० अयोग्य, प्रा० अजोग] १ जो योग्य न हो। अनुचित। नामुनासिब। बेठीक। उ०—सुनि यह बात अजोग जोग की ह्वै हैं समुद नदी वै।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २१०। २ अयुक्त। बेजोड़। बेमेल। उ०—जोगहि जोग मिलाइए हम या जोग अजोग।—सूर०, १०।३५२१। ३ नालायक। निकम्मा। उ०—पती नारी का देवता है, वह कैसा ही क्यों न हो, पर तिरिया उसको अजोग और बुरा नहीं कह सकती।—ठेठ०, पृ० ४३।
अजोगी(पु)—वि० [सं० अयोगी] जोग को न जाननेवाला। जोग से रहित। उ०—मूरख कायर और अजोगी सो ये नेक न पावै।—चरण० बानी, भा० २, पृ० १२६।
अजोड(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + जोडना] जिसे जोडा न जा सके। उ०—नि मर भरै अजोड को जोडे।—प्राण०, पृ० ६४।
अजोत†—संज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + हिं० जोत] वह भूमि जो जोतने के उपयुक्त न हो। परती भूमि।
अजोतर—वि० [हिं० अजोता] स्वच्छंद। निरर्गल। उ०—आनँद घन पिय नई घमंड सों देन दरवारयो टालत अर्जो अजोतर।—घनानंद, पृ० २९०।
अजोता१—संज्ञा पुं० [सं० अयुक्त, प्रा० अजुत्त] चैत की पूर्णिमा का दिन। इस दिन बैल नहीं नाधे जाते।
अजोता†—वि० बिना जोता या नाधा हुआ। स्वच्छंद।
अजोनि(पु)—वि० [सं० अयोनि] जो योनि से उत्पन्न न हो। स्वयभू। उ०—जस जस पुरुष प्रगटे अजोनि। कर खग्ग धनुष कटि लसै तोनि।—हम्मीर रा०, पृ० ११।
अजोन्य(पु)—वि० [सं० अयोनि] अयोनिज। स्वत संभूत। उ०—अजोन्य अनायास पाए अनादू। नमो देव दादू नमो देव दादू।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० २५६।
अजोरना(पु)—क्रि० स० [हिं० हिं० अँजोर से नाम०] दे० 'अँजोरना'।
अजोष—वि० [सं०] अपरितोष। अतृप्ति [को०]।
अजौ(पु)†—क्रि० वि० [हिं० अजहुँ] अब भी। अद्यापि। अब तक। उ०—सघन कुंज छाया सुखद, सीतल सुरभि समीर। मन ह्वै जातु अजौं वहै उहि जमुना के तीर।—बिहारी र०, दो० ६०१।
अज्ज(पु)१—संज्ञा पुं० [सं० आर्य या अज] ब्रह्म। उ०—हूं वदो जाकूं सदा सबकी सुणै पुकार। अज्ज कीट पर्यंत लों भय भंजन भरतार।—राम० धर्म०, पृ० २५६।
अज्ज२(पु)—क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज] आज। उ०—जेहा सज्जण काल्ह था तेहा नाँही अज्ज।—ढोला०, दू० २१६।
अज्ज३—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अज्झल' [को०]।
अज्जाण(पु)—वि० [सं० अज्ञान] दे० 'अजान'। उ०—गाफिल समझ रे अज्जाण। माथै राख पति कूँ जाण।—राम० धर्म०, पृ० १६६।
अज्जान(पु)—वि० [सं० आजान] घुटने तक लंबा। जानु पर्यंत लंबा। उ०—राजीव नयन विशाल। अज्जानबाहु रसाल।—प० रा०, पृ० ७९।
अज्जुका—संज्ञा स्त्री [सं० 'आर्यिका' का प्राकृत रूप संस्कृत में गृहीत] वेश्या। वारवधू [को०]।
विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल रूपकों में प्राप्त होता है
अज्जूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अज्जुका' [को०]।
अज्झटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामल की [को०]।
अज्झल—संज्ञा पुं० [सं०] १ जलता हुआ कोयला। अंगारा। २ ढाल [को०]।
अज्ञ१—वि० [सं०] १ अज्ञानी। ज्ञान रहित। २ जड। अचेतन। मूर्ख ३ अनजान नासमझ। नादान। उ०—तैमइ आपु तैसेइ लरिका, अज्ञ सबनि मति थोरी।—सूर०, १।८७१।
अज्ञ२—संज्ञा पुं० मूर्ख मनुष्य। जड व्यक्ति। अनजान मनुष्य। नादान आदमी। उ० अज्ञ जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि विधि मोह मिटै सोइ करहू।—(शब्द०)।
अज्ञका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्ख औरत। नादान या अनजान स्त्री [को०]
अज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मूर्खता। नादानी। नासमझी। अजानपन। अनाडीपन। २ जडता। अचेतनता।
अज्ञताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अज्ञता + हिं० आई (प्रत्य०)] दे० 'अज्ञता'। उ०—अहो। अज्ञताई नीति मन मैं न आइए।—भक्तमाल (श्री०) पृ० ६६।
अज्ञत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अज्ञता' [को०]।
अज्ञा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आज्ञा'।—उ० (क) होइ अज्ञा बनवास तौ जाऊँ।—जायसी (शब्द०)। (ख) गुरु को सिर पर राखिए चलिए अज्ञा माँही।—कबीर सा० स०, भा० १, पृ० २।
अज्ञाकारी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आज्ञाकारी'। उ०—तेऊ चाहत कृपा तुम्हरी। जिनकै बस अनिमिष अनेक गन अनुचर अज्ञाकारी।—सूर०, १।१६३।
अज्ञात१—वि० [सं०] १ बिना जाना हुआ। अविदित। अप्रकट। नामालूम। अपरिचित। उ०—किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती सी तुम कौन।—झरना, पृ० २८। २ जिसे ज्ञान न हो। उ०—सो अज्ञात जोबन वर बाला।—नंद० ग्र०, पृ० १२०। ३ अप्रत्याशित। आकस्मिक (को०)।
अज्ञात(पु)२—क्रि० वि० बिना जाने। अनजान में। उ०—अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता। छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता।—मानस, १।२८५।

अज्ञातक--वि० [सं०] अविदित । अप्रसिद्ध । अज्ञात [को०] ।

अज्ञातकुल--वि० [सं०] जिसके वंश कुल आदि का पता न हो [को०]।

अज्ञातचर्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञातवास [को०]।

अज्ञातजोवना (पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अज्ञातयौवना] दे० 'अज्ञातयौवना'। उ०--इहि परकार तिया जो लहिए । सो अज्ञातजोवना कहिए ॥--नंद ग्रं०, पृ० १४६ ।

अज्ञातनामा--वि० [सं०] १ जिसके नाम का पता न हो। जिसका नाम विदित न हो। २ जिसे कोई न जानता हो। अविख्यात। तुच्छ ।

अज्ञातपितृक--वि० [सं०] जिसके पिता का पता न हो। नामालूम बापवाला [को०] ।

अज्ञातपूर्व--वि० [सं०] जो पहले से जानकारी में न हो। जिसका पहले से ज्ञान न हो [को०] ।

अज्ञातयौवना--संज्ञा स्त्री० [सं०] मुग्धा नायिका के दो भेदों में से एक। जिसे अपने यौवन के आगमन का ज्ञान न हो।

अज्ञातवास--संज्ञा पुं० [सं०] छिपकर रहना । ऐसे स्थान का निवास जहाँ कोई पता न पा सके, जैसे--'विराट के यहाँ पांडवों ने एक वर्ष अज्ञातवास किया था' (शब्द०)।

अज्ञातस्वामिक (धन)--संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जिसके मालिक का पता न हो। जैसे, मार्ग में पड़ा हुआ या जमीन में गड़ा धन ।

अज्ञाता--वि० स्त्री० [सं० अज्ञात] जिसे ज्ञात न हो। मुग्धा । उ०--अज्ञाता--की केशराशि में इन्हें न कस कस बँधवाओ । वीणा, पृ० १ ।

अज्ञाति--संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो अपनी जाति या संबंध का न हो । अन्य जातीय व्यक्ति। परजात [को०] ।

अज्ञान[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ बोध का अभाव। जड़ता। मूर्खता। अविद्या। मोह। अजानपन। उ०--अज्ञान भला जिसमें सोह तो क्या, स्वयं अहं भी कब है ।--साकेत, पृ० ३१६। २ जीवात्मा का गुण और उनके कार्यों से पृथक् न समझने का अविवेक । ३ न्याय में एक निग्रहस्थान। यह उस समय होता है जब प्रतिवादी के तीन बार कहने पर भी वादी किसी ऐसे विषय को समझने में असमर्थ हो जिसे सब लोग जानते हों ।

अज्ञान[2]--वि० ज्ञानशून्य। मूर्ख। जड़। नासमझ। अनजान। उ०--मैं अज्ञान कछू नहिं समुझ्यौ, परि दुख पुंज सह्यौ ।--सूर० १।१६ ।

अज्ञानकृत--वि० [सं०] १ अज्ञान में किया हुआ । अनजाने में किया हुआ । २ अज्ञान या मूर्खतावश किया हुआ [को०] ।

अज्ञानत--क्रि० वि० [सं०] अज्ञान या मूर्खता के कारण। मोहवश । २ अनजान में। नासमझी के कारण [को०] ।

अज्ञानता--संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्बोधता । जड़ता। मूर्खता। अविद्या। नासमझी। नादानी । उ०--'इन सब बातों में बहुत सी स्वार्थपरता और बहुत सी अज्ञानता मिली हुई है'।--श्रीनिवास० ग्रं०, पृ० २०० ।

अज्ञानतिमिर--संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञानरूपी अंधकार । मोहरूपी अँधेरा [को०]।

अज्ञानपन--संज्ञा पुं० [सं० अज्ञान+हिं० पन (प्रत्य०)] मूर्खता । जड़ता। नादानी। नासमझी। अजानपन ।

अज्ञानी--वि० [सं०] ज्ञानशून्य। मूर्ख। जड़। अविद्याग्रस्त। अनाड़ी। नादान। नासमझ। अबोध।

अज्ञेय--वि० [सं०] न जानने योग्य। जो समझ में न आ सके। बुद्धि की पहुँच के बाहर का। ज्ञानातीत। बोधागम्य।

अज्ञेयवाद--संज्ञा पुं० [सं०] परमतत्व की ज्ञानातीत स्थिति या अज्ञेयता का प्रतिपादक मत [को०]।

अज्ञेयवादी--वि० [सं०] अज्ञेयवाद का माननेवाला । अज्ञेयवाद का अनुयायी [को०] ।

अज्म--संज्ञा पुं० [अ०] संकल्प। दृढ़ निश्चय। उ०--यों अज्म किया था वह शैतान ता कर देवे काबा वीरान।--दक्खिनी०, पृ० २२०।

अज्यास (पु)--संज्ञा पुं० [सं० अध्यास = मिथ्याज्ञान, भ्रांति] अविश्वास। धूर्तपन। ठगहाई। उ०--जग आसवास अज्यास दिस विदिस प्राण उदास।--रा० रू०, पृ० ६८ ।

अज्यासुत (पु)--संज्ञा पुं० [सं० अजासुत] बकरा । उ०--बड़े ब्रह्म औ काध जनेऊ अज्यासुत कह मारी।--सं० दरिया पृ० ११६।

अज्येष्ठ--वि० [सं०] १ जो सबसे जेठा न हो। २. जिसे बड़ा भाई न हो (को०)। ३ जो सर्वश्रेष्ठ न हो (को०) ।

अज्येष्ठवृत्ति--वि० [सं०] १ बड़े भाई का कार्य या व्यवहार न करनेवाला । २ उस व्यक्ति की तरह कार्य या व्यवहार करनेवाला। जिसे बड़ा भाई न हो [को०]।

अज्यौं (पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अजौं' ।

अज्र--संज्ञा पुं० [अ०] भलाई का बदला। प्रत्युपकार [को०]।

अज्वाल--वि० [अ+ज्वाल] ज्वालाविहीन। लपटरहित। ज्वालारहित। लपटविहीन। उ०--ज्वाल उपजावन अज्वाल दरसावन मृणाल वह पावक न जावक दिढाए ही।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १२८ ।

अझर (पु)--वि० [सं० अ = नहीं + झरना = गिरना] जो न झरे। जो न गिरे। जो न बरसे। उ०--चलि सुकेलि घर घन अझर कारी निसी सुखदानि। कामिनि सोभासानि तूँ, दामिनि दीपति बानि ।--स० सप्तक, पृ० २४३ ।

अझुरना (पु)+--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरुझना'। उ०--कामिनि कनक लता लपटाना। अझुरत सझुरत संत सुजान ।--सं० दरिया पृ० १२।

अझना (पु)[1]--संज्ञा पुं० [सं० अध्म = जलती हुई अग्नि] आग। अग्नि। उ०--बिलखत छाडी सौंस चारिक चिन्हारी करि, वारि दियौ हिय में उमंग को अझनो है।--घनानंद पृ० १३८।

अझूना (पु)[2]--वि० [सं० अजीर्ण, प्रा० अजण्ण = अजुन्न] जो जीर्ण न हो। जो सदा एक सा बना रहे । हमेशा एक सा रहनेवाला। उ०--तुम्हें बिन साँवरे ये नैन सूने, हिये में लै दिए बिरहा अझूने।--घनानंद, पृ० १६७ ।

अझोरी (पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० दोल = झूलना] झोली । कपड़े की लंबी थैली जो कंधे पर लटकाई जाती है। उ०--झोरी अझोरी काँधे आँतिन्ह की सेली बाँधे, मूँड के कमंडल खपर किए कोरि कै।--तुलसी (शब्द०) ।

अटवर--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = अधिक, फा० अंबार = ढेर] अटाला । ढेर। राशि। उ० लागि गए अवर लौं अखिल अटवर पै, द्रुपदसुता को अजौं न अखूटयो है ।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १११।

अट—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] शर्त। कैद। प्रतिबंध। रुकावट। उ०—तुम तो हर बात में एक अट लगा देते हो।—(शब्द०)।

अटक[1]—संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + टिक = चलना अथवा सं० आ + टक = बंधन, अथवा सं० हठ + क (प्रत्य०), प्रा० *अट्टक] [क्रि० अटकना, वि० अटकाऊ] १ रोक। रुकावट। अड़चन। विघ्न। बाधा। उलझन। उ०—करि हियाव, यह सौंज लादि कै, हरि कै, पुर लै जाहि। घाट बाट कहुँ अटक होइ नहिं सब कोउ देहि निवाहि।—सूर० (शब्द०)। २ संकोच। हिचक। उ०—तुमको जो मुझसे कहने में कोई अटक न हो तो मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ।—ठेठ० (शब्द०)। ३. सिंध नदी। ४ सिंध नदी पर एक छोटा नगर जहाँ प्राचीन तक्षशिला का होना अनुमान किया जाता है। ५ अकाज। हर्ज। बड़ी आवश्यकता।

क्रि० प्र०—पड़ना। उ०—ह्याँ ऊधो काहे को आए कौन सी अटक परी।—सूर (शब्द०)।

अटक[2]—वि० [सं० अट] घूमनेवाला। चक्रमणशील [को०]।

अटकन(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अटक'।

अटकन बटकन—संज्ञा पुं० [देश०] छोटे लड़कों का एक खेल।

विशेष—इसमें कई लड़के अपने दोन हाथों की उँगलियों को जमीन पर टेककर बैठ जाते हैं। एक लड़का सबके पंजों पर एक एक करके उँगली रखता हुआ यह कहता जाता है—'अटकन बटकन दही चटाकन, बगला भूले बागा भूले, सावन मास करेला फूले, फल फूल की बनियाँ बाबा गए गंगा, लाए सात पियरियाँ, एक पियरी फूट गई, नेवुले की टाँग टूट गई, खड़ा मारूँ या छुरी।' पूरब मे इसको इस प्रकार कहते हैं—'उक्का बुक्का तीन तलुक्का, लौवा लाठी चंदन काठी, चदन लावै दूली दूला, भादो मास करेला फूला, इजइल बिजइल पान फूल पचक्का जा।' जिस लड़के पर अंतिम शब्द पड़ता है वह छूटता जाता है। जो सबसे पीछे रह जाता है उसे चोर समझकर खेल खेला जाता है।

अटकना—क्रि० अ० [सं० अ = नहीं + टिक् = चलना] १ रुकना। ठहरना। अड़ना। उ०—(क) तुम चलते चलते अटक क्यों जाते हो?—(शब्द०)। २ फँसना। उलझना लगा रहना। उ०—इहीं आस अटक्यो रहतु अलि गुलाब के मूल।—बिहारी र०, दो० ४३७। प्रेम में फँसना। प्रीति करना। उ०—फिरत जु अटकत कटनि बिनु, रसिक सुरस न खियाल। अनत अनत नित नित हितनु, चित सकुचत कत लाल।—बिहारी र०, दो० ५२८। ४ विवाद करना। झगड़ना। उलझना। उ०—जब गजराज ग्राह सौं अटक्यौ, बली बहुत दुख पायौ। नाम लेत ताही छिन हरि जू गरुडहिं छाँड़ि छुड़ायौ।—सूर०, १।३२।

अटकर†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अटकल'। उ०—(क) जैसें तैसें ब्रज पहिचानत। अटकरही अटकर करि मानत।—सूर०, १०५० (राधा०)। (ख) अपनी अपनी सब कहैं अटकर परै न कोई।—सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७६०।

अटकरना(५)—क्रि० स० [हिं० 'अटकर' से नाम०] दे० 'अटकलना'। उ०—बार बार राधा पछितानी। निकसे स्याम सदन तैं मेरे इनि अटकरि पहिचानी।—सूर (शब्द०)।

अटकल—संज्ञा स्त्री० [सं० अट = घूमना + कल् = गिनना] १. अनुमान। कल्पना। २ अंदाज। तखमीना। कूत। उ०—वह करोड़ों रुपए के अटकल अकेले दान विषय में व्यय करता है।—प्रेमघन० भा० २, पृ० २२८।

क्रि० प्र०—करना।—बैठना।—लगाना।

अटकलना†—क्रि० स० [हिं० 'अटकल' से नाम०] अटकल लगाना। अंदाज करना। अनुमान करना।

अटकलपच्चू[1]—संज्ञा पुं० [हिं० अटकल + देश० पच्चू = पकाना] मोटा अंदाज। कपोल कल्पना। अनुमान। जैसे—इस अटकलपच्चू से काम न चलेगा।—(शब्द०)।

अटकलपच्चू[2]—वि० अंदाजी। खयाली। ऊटपटाँग, जैसे—ये अटकलपच्चू बातें रहने दीजिए।—(शब्द०)।

अटकलपच्चू[3]—क्रि० वि० अंदाज से। अनुमान से। जैसे,—रास्ता नहीं देखा है, अटकलपच्चू चल रहे हैं।—(शब्द०)।

अटकलबाज—वि० [हिं० अटकल + फा० बाज (प्रत्य०)] अंदाज लगानेवाला। निराधार बात करने मे निपुण।

अटकलबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटकल + बाजी] अंदाज लगाना। कल्पना करना।

अटका[1]—संज्ञा पुं० [सं० अट = खाना, उड़ि० आटिका] जगन्नाथ जी को चढ़ाया हुआ भात जो दूर देशों में भी सुखाकर प्रसाद की भाँति भेजा जाता है। जगन्नाथ जी के भोग के निमित्त दिया हुआ धन। उ०—अटका द्विशत रुपैया केरो। तुमहिं चढैहौं अस प्रण मेरो।—रामरसिक०, पृ० ८५४।

अटका†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] दे० 'अटक'।

अटकाना—क्रि० स० [हिं० 'अटकना' का प्रे० रूप] [संज्ञा अटकाव] १ रोकना। ठहराना। अड़ाना। लगाना। उ०—गए तबहिं तैं फेरि न आए। सूर स्याम वै गहि अटकाए।—सूर०, १०।२२७८। २ फँसाना। उलझाना। उ०—तबहिं स्याम इक बुद्धि उपाई। जुवती गई घरनि सब अपनै गृह कारज जननी अटकाई।—सूर०, १०।३८३। ३. डाल रखना। पूरा करने में विलंब करना। जैसे,—उस काम को अटका मत रखना।—(शब्द०)।

अटकाव—संज्ञा पुं० [हिं० अटक + आव] (प्रत्य०)] १ रोक। रुकावट। प्रतिबंध। अड़चन। बाधा। विघ्न। उ०—या समर्पण में ग्रहण का एक सुनिहित भाव, थी प्रगति, पर अड़ा रहता था सतत अटकाव।—कामायनी, पृ० ८१। २ मासिक धर्म। उ०—ता पाछे कछूक दिन में सास को अटकाव भयो।—दो सौ बावन०, पृ० २९८।

अटखट(५)—वि० [अनुध्व०] अट्टसट्ट। अडबड। टूटा फूटा। उ०—बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे।—तुलसी ग्र०, पृ० ५५३।

अटखेली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अठखेली'।

अटट(५)†—वि० [हिं० अटूट] निपट। नितांत।

अटन—संज्ञा पुं० [सं०] घूमना। चलना फिरना। डोलना। यात्रा। भ्रमण। उ०—चले राम बन अटन पयादे।—मानस, २।३१०।

अटना(पु)¹—क्रि० अ० [सं० अट् = चलना अथवा अटन] १ घूमना। चलना। फिरना। उ०—जीव जलथल जिते वेष धरि धरि तिते अटत दुरगम अचल भारे।—सूर०, १।१२०। २ यात्रा करना। सफर करना। उ०—जोग जाग जप विराग तप सुतीरथ अटन।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५२०। ३ पूरा पड़ना। काफी होना। अँटना।

अटना²—क्रि० अ० [सं० उट = घास फूस अथवा हिं० ओट] पड़ना। आड़ करना। ओट करना। छेकना। उ०—(क) फटो जो घूँघट आट अटै, सोइ दीठि फुरी अखिको जु घँमाई—केशव (शब्द०)। (ख) नेकु अटे पट फूटन आँखि सु देखत हैं कबको ब्रज लोगो।—केशव (शब्द०)।

अटनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'अटन'। २ दे० 'अटनी'।

अटनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ धनुष के सिरे का वह भाग या खाँचा जहाँ प्रत्यंचा या डोरी बाँधी जाती है [को०]।

अटनी(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० अटन = घूमना] अटन की क्रिया। कलाबाजी। उ०—जैसे वरत बाँस चढ़ि नटनी। वारंबार करै तहाँ अटनी।—सुंदर ग्रं०, भा० १ पृ० ६८।

अटपट—वि० [सं० अट = चलना + पत् = गिरना अथवा अनु०] [स्त्री० अटपटी। क्रि० अटपटाना] १ टेढ़ा। विकट कठिन। मुश्किल। दुरुस्त। २ गूढ़। जटिल। गहरा। अनोखा उ०—सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।—तुलसी (शब्द०)। ३ ऊटपटाँग। अंड बंड। उलटा सीधा। बेठिकाने उ०—अटपट आसन बैठि कै, गोधन कर लीन्हों। धार अनत ही के देखि कै व्रजपति हँसि दीन्हों।—सूर० १०।४०६। ४ गिरता पड़ता। लड़खड़ाता। उ०—वाही की चित्त चटपटी धरत अटपटे पाइ।—बिहारी र०, दो० ३३।

अटपटा†—वि० [हिं०] दे० 'अटपट'।

अटपटाना—क्रि० अ० [हिं० अटपट से नाम०] १ अटकना। अटवड होना। लड़खड़ाना। घबराना। उ०—आलस हैं भरे नैन, बैन अटपटात जात, ऐंडात जम्हात गात अंग मोरि बहियाँ भेलि।—सूर (शब्द०)। २ हिचकना। संकोच करना। आगा पीछा करना। जैसे—आप कहने में अटपटाते क्यों हैं?—(शब्द०)।

अटपटी(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटपट + ई (प्रत्य०)] नटखटी। अनरीति। उ०—सूधे दान न काहे लेत। और अटपटी छाँडि नंदसुत रहहु कँपावन वेत।—सूर०, १०।१४६८।

अटपटी²—वि० [हिं० अटपट] बेढंगी। उलटी सीधी। उ०—मधुकर छाँडि अटपटी बातें।—सूर०, १०।३५४७।

अटब्बर(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० आडम्बर] आडंबर। दर्प। उ०—बाँधत पाग अटब्बर को।—श्रीपति (शब्द०)।

अटब्बर(पु)²—संज्ञा पुं० [प० टब्बर = परिवार] खानदान। परिवार। कुटुंब। उ०—बब्बर के वंश के अटब्बर के रच्छक हैं तच्छक अलच्छन सुलच्छन के स्वच्छ घर।—सूदन (शब्द०)।

अटम—संज्ञा पुं० [सं० अट्ट] ढेर। अंबार।

अटरनी—संज्ञा पुं० [अं० एटर्नी] १ एक प्रकार का मुख्तार जो कलकत्ता और बंबई हाइकोर्टों में मुअक्किलों से मुकदमे लेकर उन्हें ठीक करता है और उनकी पैरवी के लिये बैरिस्टर नियुक्त करता है। २ उच्च न्यायालयों में सरकारी मुकदमों की पैरवी करनेवाला वकील।

अटरिया‡(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटारी + इया (प्रत्य०)] दे० 'अटारी'। उ०—पिया ऊँची रे अटरिया तोरी देखन चली।—कबीर ग्रं०, पृ० ५५।

अटरुप—संज्ञा पुं० [सं०] अडूसा नाम का क्षुप वासक [को०]।

अटरूप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अटरुप' [को०]।

अटरूषक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अटरुप' [को०]।

अटल—वि० [सं०] १ जो न टले। जो न डिगे। स्थिर। निश्चल। उ०—तुलसीस पवननंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करै।—तुलसी (शब्द०)। २ जो न मिटे। जो सदा बना रहे। नित्य। चिरस्थायी। उ०—करि किरपा दीन्ह वरदान निधि अटल मंदिर, थिर राज।—सूर (शब्द०)। ३ जो अवश्य हो। जिसका होना निश्चित हो। अवश्यंभाव। जैसे—यह बात अटल है, अवश्य होगी।—(शब्द०)। ४ ध्रुव। पक्का। जैसे—उनका इस बात में अटल विश्वास है।—(शब्द०)।

अटलस—संज्ञा पुं० [अं० ऐटलस] वह पुस्तक जिसमें पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों के मानचित्र हों।

अटवाटी खटवाटी—संज्ञा [अनु० व० + हिं० खाट + पाटी] खाट खटोला। बारिया बँधना। साज सामान।

मुहा०—अटवाटी खटवाटी लेकर पड़ना या लेना = खिन्न और उदासीन होकर अलग पड़ रहना। रूठकर अलग बैठना।

अटवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अटवी' [को०]।

अटविक—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली। आटविक [को०]।

अटवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जंगल। वन। उ०—अटवी हिल डोलने लगी, मरुती सौरभ खोने लगी।—साकेत, पृ० ३४८। २ लंबा चौड़ा साफ मैदान।

अटवीबल—संज्ञा पुं० [सं०] वनवासियों की सेना।

अटसट(पु)†—वि० [अनु०] दे० 'अट्टसट्ट'।

अटहर(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = ऊंचा ढेर, अटाला] १ अटाला। ढेर। २ फेंटा। लपेट। पगड़ी। उ०—आप चढ़ी शीश मोहिं दीन्हीं बकसीस औ हजार शीश वारे की लगाई अटहर है।—(शब्द०)।

अटहर²—संज्ञा पुं० [हिं० अटक] कठिनाई। अड़चन अटकाव। दिक्कत।

अटा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अट्टा] घर के ऊपर की कोठरी या छत। अटारी। कोठा। उ०—छिनकु चलति, ठठुकति छिनकु, भुज प्रीतम गल डारि। चढ़ी अटा देखति घटा बिज्जु छटा सी नारि।—बिहारी र०, दो० ३८४।

अटा²—संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = अतिशय] अटाला। ढेर। राशि। समूह। उ०—ए री! बलबीर के अहीरन के भीरन में सिमिटि समीरन अबीर को अटा भयो।—पद्माकर (शब्द०)।

अटा³—संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रमणशीलता (संन्यासियों की भाँति)। भ्रमण की क्रिया। घूमना [को०]।

अटाउ ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट=अतिक्रमण करना+हिं० आउ (प्रत्य०)] १ बिगाड। बुराई। २ नटखटी। शरारत। उ०--आप ही अटाउ कै ये लेत नाम मेरो, वे तो बापुरे मिलाप के सँताप कर दाने हैं (शब्द०)।

अटागर--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट+आगार] समूह। अटाला। ढेर। उ०--हुआँ साँभेजी जुहार जुहार। पान अटागर काथ श्री कार।--वीसल०, पृ० १८।

अटाटूट--वि० [सं० अट्ट=ढेर+हिं० अटूट अथवा सं० अट्ट+हिं० अटूट] नितांत। बिल्कुल।

अटाना¹--क्रि० स० [हिं० अटक=रोक, बाधा] रोक या बाधा आ पडना। उ०--आगे आइ सिंघु नियराना। पार जाइ कह गाढ अगाना।--इंद्रा०, २६।

अटाना²--क्रि० स० [हिं० अटना का प्र० रूप] किसी वस्तु को किसी वस्तु में समा देना। रखना अँटा देना।

अटारी--संज्ञा स्त्री० [सं० अट्टालिका] कोठा। दीवारों पर छत पाटकर बनाई हुई कोठरी। सबके ऊपर की कोठरी या छत। चौबारा। उ०--निबुकि चढेउ कपि कनक अटारी। भई सभीत निसाचर नारी।--मानस ५।२५।

अटाल--संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल] बुर्ज। धरहरा (डिं०)।

अटाला--संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल] १. ढेर। कूरा। राशि। अंबार। २ समान। असबाब। सामग्री। ३ कसाइयों की बस्ती या मुहल्ला।

अटाव--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट+हिं० आव (प्रत्य०)] १ वैर। वैमनस्य। द्वेष। २ शरारत। पाजीपन। दुष्टता। ३ अँटना। समाना। पूरा पडने का भाव।

अटित¹--वि० [सं० अटा] जिसमें अटा या अटारी हो। अटारीवाला।

अटित²--वि० [सं० अटन] घुमावदार। घूमा हुआ।

अटिहार ⓟ--वि० [हिं० अटना+हार (प्रत्य०)] अँटनेवाला। पूरा पडनेवाला। उ०--अटिहार कोई पुज्जै नही बल अमूत आतम करचौ।--पृ० रा०, २४।१६७।

अटी--संज्ञा स्त्री० [सं० अटी] एक चिडिया जो पानी के किनारे रहती है। चहा।

अटूट--वि० [सं० अ=नहीं+टूट=टूटना] १ न टूटने योग्य। अखडनीय। अछेद्य। दृढ। पुष्ट। मजबूत। २ जिसका पतन न हो। अजेय। ३ अखड। लगातार। उ०--छूटे जटाजूट सों अटूट गगधार धौल मौलि सुधागार को अधार दरसत है।--रत्नाकर, भा० २, पृ० २१०।

अटेरन--संज्ञा पुं० [सं० अहिण्डन, प्रा० * अहिण्डन * अइडरन * अटइरन * अटेरन, अथवा सं० अट=घूमना एकत्र करना] [क्रि० अटेरना] १. सूत की आँटी बनाने का लकड़ी का यत्र। ओयना।

विशेष--६ इच की एक लकडी के दोनों सिरों पर सूत लपटने के लिये दो आडी लकडियाँ लगाई जाती हैं जो दोनों ओर प्राय तीन तीन इच बढी रहती हैं। इन लकडियों में से नीचे की लकडी कुछ बडी और ऊपर की लकडी पृष्ठ के बल रखे हुए धनुष के आकार की होती है।

मुहा०--अटेरन होना=हड्डी हड्डी निकलना। अत्यत दुर्बल होना।

२ घोडे को कावा या चक्कर देने का एक ढग या तरीका। क्रि० प्र०--फेरना।

३ कुश्ती का एक पेंच।

मुहा०--अटेरन कर देना=दाँव में डालकर चकरा देना। दम न लेने देना।

अटेरना--क्रि० स० [हिं० अटेरन से नाम०] १ अटेरन से सूत की आँटी बनाना। २ मात्रा से अधिक मद्य या नशा पीना। जैसे,--क्या कहना है लाला जी खूब अटेरे हैं।--(शब्द०)।

अटोक ⓟ--वि० [सं० अ+तर्क, पा० तक्क=टोकना] बिना रोक टोक का। उ०--(क) अह अटोक ड्योढी करी, पैठत बखत तमाम।--मतिराम (शब्द०)। (ख) मोद भरी ननदी अटोक टोना टारै लगी।--कविता कौ०, २।१०२।

अटोट ⓟ--वि० [हिं०] दे० 'अटूट'। उ०--चोली चारु छीट की छाजति उपमा देत अटूट।--सूर०, परि० १, पृ० ८५।

अटोप ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० अटोप] दे० 'आटोप'। उ०--अलोप टोप कै अटोप चाइ चोप सो धरैं--पद्माकर ग्रं०, पृ० २८४।

अट्ट ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० हट्ट=बाजार] १. हाट। बाजार। उ०--देव दपनि अट्ट देख सराहते।--साकेत, पृ० ३।

अट्ट¹--संज्ञा पुं० [सं०] १ बुर्ज। उ०--अट्टों पर चढ चढकर सब ओर पथों में बढकर बढकर'--साकेत, पृ० १५२। अटारी। कोठा। ३ एक यक्ष का नाम। ४. प्राधान्य। अधिकता। अतिशयता। ५ पका हुआ चावल। भात। ६ भोज्य पदार्थ। ७ पहरा देने का ऊँचा स्थान या मीनार। ८ महल। प्रासाद। ९ रेशमी वस्त्र। १० दुर्ग में सेना के रहने का स्थान या भाग (को०)।

अट्ट²--वि० १ ऊँचा। २ शुष्क। सूखा। सुखाया हुआ। ३ उच्च स्वर से युक्त [को०]।

अट्टक--संज्ञा पुं० [सं०] १ छत के ऊपरवाला कमरा। बंगला। २. प्रासाद। महल [को०]।

अट्टट्ट--वि० [सं०] १ बहुत ऊँचा। २ बहुत जोर का [को०]।

अट्टट्ट हास--संज्ञा पुं० [सं०] बडे जोर की हँसी। ठठाकर हँसना। क्रि० प्र०--करना।--होना।

अट्टन--संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का चक्र की आकृति का अस्त्र। २ अपमान। अवमानना। उपेक्षा। तिरस्कार [को०]

अट्टसट्ट--वि० [अनुध्व०] १ ऊटपटाँग। अडबड। जैसे--तुम तो सदा यों ही अट्टसट्ट बका करते हो।--(शब्द०)। २ बहुत ही साधारण या निम्न कोटि का। इधर उधर का। जैसे,--उस कोठरी में बहुत सा अट्टसट्ट सामान पडा है।--(शब्द०)।

अट्टहसित--संज्ञा पुं० [सं०] 'अट्टहास' [को०]।

अट्टहास--संज्ञा पुं० [सं०] ठहाका। जोर की हँसी। खिलखिलाना उ०- अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा।--मानस, ६। ३६। क्रि० प्र०--करना--होना।

अट्टहासक¹--संज्ञा पुं० [सं०] १ खिलखिलाकर हँसना। ठहाका। २. कुद का फूल और पेड।

अट्टहासक²--वि० जोर से हँसनेवाला। ठहाका मारकर हँसनेवाला।

अट्टहासी¹--संज्ञा पुं० [सं० अट्टहासिन्] शिव [को०]।

अट्टहासी—वि० अट्टहास करनेवाला [को०]।

अट्टहास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अट्टहास' [को०]।

अट्टा—संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = बुर्ज] मचान।

अट्टाट्ट हास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अट्टट्टहास'

अट्टाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपरी मंजिल का कोठा। २ बुर्ज। उच्च स्थान। ३ प्रासाद। महल [को०]।

अट्टालक—संज्ञा पुं० [सं०] किले का बुर्ज।

अट्टालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अटारी। कोठा।

अट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० अट्ट = घूमना, बढाना] १ अटेरन पर लपेटा हुआ सूत या ऊन। लच्छा। पोला। किरची। २ आटा। उ०—जमदढ्ढ दट्टी। मनों नोन अट्टी।—पृ० रा०, १०।२१।

अट्ठ—वि० [सं० अष्ट] आठ की संख्या। ८। उ०—घन मिकार राजन करिय हनि वराहु अनि अट्ठ।—पृ० रा०, २४।३५१।

अट्ठा—संज्ञा पुं० [सं० अष्टक, प्रा० अट्ठय] ताश का एक पत्ता जिसपर किसी भी रंग की आठ बूटियाँ होती हैं।

अट्ठाइस—वि० [अप०] दे० 'अट्ठाईस'।

अट्ठाइसवाँ—वि० [सं० अष्टाविंशतिम, हिं० अट्ठाइस] जिसका स्थान सत्ताइसवें के उपरांत हो। क्रम या गिनती में जिसका स्थान अट्ठाइसवाँ हो।

अट्ठाईस—वि० [सं० अष्टाविंशति, पा० अट्ठावीस; प्रा० अट्ठाईस, अप० अट्ठाइस] एक संख्या। बीस और आठ। २८।

अट्ठानवे—वि० [सं० अष्टानवति, पा० अट्ठानवति, प्रा० अट्ठाणवइ] एक संख्या। नब्बे और आठ। ९८।

अट्ठानवेवाँ—वि० [सं० अष्टानवतितम; देश० अट्ठानवे] जिसका स्थान सत्तानवे के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अट्ठानवेवाँ हो।

अट्ठारह—वि० [सं० अष्टादश, प्रा० अट्ठारस, अट्ठारह] दे० 'अठारह'।

अट्ठावन—वि० [सं० अष्टपञ्चाशत्, प्रा० अट्ठावण्ण, अट्ठावन्न] एक संख्या। पचास और आठ। ५८।

अट्ठावनवाँ—वि० [सं० अष्टपञ्चाशतम्, देश० अट्ठावन] जिसका स्थान सत्तावन के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अट्ठावनवाँ हो।

अट्ठासिवाँ—वि० [सं० अष्टाशीति, अप० अट्ठासि > हिं० अट्ठासी + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सत्तासिवें के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अट्ठासिवाँ हो।

अट्ठासी—वि० [सं० अष्टाशीति, अप० अट्ठासि, अट्ठासीइ] दे० 'अठासी'।

अट्ठे—वि० [हिं० आठ से] आठगुना। जैसे, पाँच अट्ठे चालीस, सात अट्ठे छप्पन।

अठग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अष्टांग] अष्टांग योगी। उ०—उठत उरोजन उठाए उर ऐंठ भुज औठन अमेठे अंग आठ हू अठग सी।—देव (शब्द०)।

अठ—वि० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ] आठ। (हिंदी समास में प्रयुक्त) जैसे—अठपतियाँ, अठपहला, अठकोना आदि।

अठएँ—वि० [हिं०] दे० 'आठवाँ'। उ०—अठएँ आठ अष्ट कँवल में, उरध निरखै सोई।—धरम०, पृ० ७७।

अठइसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अट्ठाइस] २८ गाहियों अर्थात् १४० फलों की संख्या जिसे फलों के लेनदेन में सैंकड़ा मानते हैं।

अठई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टमी] अष्टमी तिथि। उ०—सतमी पुनिउँ वा सब आछी। अठई अमावस ईसन लाछी।—जायसी (शब्द०)।

अठकठ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अटपट'। उ०—अठकठ नाज बरनि नहिं जाई। सर्ग मो इक एक सोहाई।—बीजा ग्र०, पृ० ७४।

अठकपाली—वि० [सं० अष्ट + कपाल] अठगुनी बुद्धिवाला। चतुर। धूर्त। चालाक। उ०—बड़े बड़े अठकपाली हमारे सामने अपना अठकपालीपन भूल गए।—चुभते चौ० (भू०), पृ० २।

अठकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अठन्नी'।

अठकोन—वि० [हिं०] दे० 'अष्टकोण'। उ०—अयुम अरघ रेख प्रज्ञ अठकोन अमलतर।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० ६६०।

अठकौशल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अठकौसल'।

अठकौसल—संज्ञा पुं० [हिं० आठ + अ० कौंसिल] १ गोष्ठी। पंचायत। २ सलाह। मंत्रणा। उ०—हेरत फिरत बारि वृच्छ कहलाने सबै होति अठकौसल पुरगी औ भलाका मैं।—रत्नाकर, भा० २ पृ० ११८।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अठखेलपन—संज्ञा पुं० [सं० अष्टक्रीडा, या *अष्टखेल, प्रा० अट्ठखेल, अट्ठखेल्ल] चंचलता। चपलता। चुलबुलापन।

अठखेली—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टक्रीडा या *अष्टखेल, प्रा० अट्ठखेल, अट्ठखेल्ल] १ विनोद। क्रीडा। चपलता। कल्लोल। चंचलता। चुलबुलापन। २ मतवाली चाल। मस्तानी चाल।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—अठखेलियाँ सूझना = चुलबुलापन करना। उ०—तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेजार बैठे हैं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २६३।

अठताल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अष्टताल] १ एक प्रकार का गीत। उ०—यो अठतालो गीत उचारै, कहं मछ प्रभु गुण इक धारै।—रघु० रू०, पृ० २०६।

विशेष—इसमें आठ चरण होते हैं। प्रथम तीन चरण चौदह चौदह मात्राओं के होते हैं और चौथा चरण दस मात्राओं का रहता है जिसके तुकांत में लघु गुरु रहता है। इसी प्रकार चार चरणों का दूसरा द्वाला बनाया जाता है। इसमें चौथे और आठवें चरण का तुकांत प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पंचम और सप्तम के साथ मिलता है। प्रथम द्वाले के प्रथम पद में अठारह मात्राएँ होती हैं।

२ दे० 'अष्टताल'। वाद्य। उ०—बाजत बेनु बिषान बाँसुरी डफ मृदंग अठताल।—नंद० ग्रं०, पृ० २९६।

अठत्तर—वि० [हिं०] दे० 'अठहत्तर'।

अठन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अठ + अन्नी = आनावाली] १ सन् १९५६ तक भारत में प्रचलित आठ आने के मूल्य का सिक्का। २. पचास पैसे का सिक्का।

अठपतिया—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टपत्रिका, पा० अट्ठपत्तिका, प्रा० अट्ठपत्तिया, अठपत्तिया] एक प्रकार की पत्थर की नक्काशी जिसमें आठ दलों के फूल बनाए जाते हैं।

अठपहरा(पु)--वि० [सं० अष्टप्रहर] रात दिन का। आठो पहर का। लगातार। उ०--सवर तखत पर बैठ तूर अठपहरा बाजै पलटू०, पृ० ७५।

अठपहला--वि० [सं० अष्टपटल, पा० अट्ठपहल अथवा म० अष्ट + फा० पहल] आठ कोनेवाला। जिसमे आठ पार्श्व हों

अठपाव(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अष्टपाद, पा० अट्ठपाद; प्रा० अट्ठपाव] उपद्रव। ऊधम। शरारत। उ०--भूषन भयो अफजल्ल वचै अठपाव कै सिंह को पाँव उमैठो।--भूषण ग्रं०, पृ० २५३।

अठवन्ना--संज्ञा पुं० [सं० अट = घूमना + बन्धन] वह बाँस जिसपर जुलाहे करघे की लदाई से बढा हुआ ताने का सूत लपेट रखते हैं और ज्यों ज्यों बुनते जाते हैं उसपर से सूत खींचते जाते हैं।

अठमासा¹--संज्ञा पुं० [सं० अष्टमासिक, प्रा० अट्ठ + मासअ] १ वह खेत जो आषाढ से माघ तक समय समय पर जोता जाता रहे और जिसमे ईख बोई जाय। अठवाँसा। २ गर्भ के आठवें मास मे होनेवाला सीमत सस्कार। ३ आठ मास पर होनेवाला प्रसव।

अठमासा²--वि० दे० 'अठवाँसा'।

अठमासी--संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टमाश] आठ माशे का सोने का सिक्का। सावरेन। गिनी।

अठयी(पु)--वि० [हिं०] दे० 'आठवाँ'। उ०--अठयो गर्भ सु तेरो हता। --नंद० ग्रं०, पृ० २२१।

अठलाना(पु)--क्रि० अ० [हिं० ऐंठ + लाना] १. ऐंठ दिखाना। इतराना। गर्व जताना। ठसक दिखाना। उ०--काहे को अठिलात कान्ह, छाँडी लरिकाई।--सूर (शब्द०)। २. चोंचला करना। नखरा करना। उ०--जैये चले अठिलैये उतै इत कान्ह ! खरी वृषभानुकुमारि है।--सभु (शब्द०)। ३ मदोन्मत्त होना। मस्ती दिखाना। उ०--देखी जाय और काहु को हरि पै सबै हरित मंडरानी। सूरदास प्रभु मेरो नान्हो तुम तरुणी डोलति अठिलानी।--सूर (शब्द०)। ४ छेडने के लिये जान बूझकर अनजान बनना।

अठवना(पु)--क्रि० अ० [सं० आस्थापन, पा० ठान = ठहराव अथवा सं० आस्थान] जमना। ठनना। उ०--मैं आवत या थान दुग्ग की होय तयारी। करो मोरचा सबै तोपखानो सब जारी। सब जारी करि देहु सत्रु आवत है अठयो। सिंह बहादुर पास साँडिया को लिख पठयो।--सूदन (शब्द०)।

अठवाँस¹--संज्ञा पुं० [स० अष्टपार्श्व] अठपहली वस्तु। अठपहले पत्थर का टुकडा।

अठवाँस²--वि० अठपहला। अठकोना।

अठवाँसा¹--वि० [स० अष्टमास, पा० अट्ठमास] वह गर्भ जो आठ ही महीने मे उत्पन्न हो जाय।

अठवाँसा²--संज्ञा पुं० १. सीमत सस्कार। २. वह खेत जो आषाढ से माघ तक समय समय पर जोता जाता रहे और जिसमे ईख बोई जाय। अठमासा।

अठवारा--संज्ञा पुं० [स० अष्ट, प्रा० अट्ठ>अठ + स० वार] १. आठ दिन का समय। पक्ष का आधा भाग। सप्ताह। हफ्ता। २. अनिश्चित दिनो तक। उ०--नहिं घन अठवारन लौं वैसी झरी लगावैं।--प्रेमघन०, पृ० ५५१।

अठवारी--संज्ञा स्त्री० [स० अष्ट, प्रा० अट्ठ अठ + स० वार + हिं० ई (प्रत्य०)] वह रीति जिसके अनुसार असामी जोताई के समय प्रति आठवे दिन अपना हल बैल जमींदार का खेत जोतने के लिये देता है।

अठवाली--संज्ञा स्त्री० [हिं० अठ + वाली] १ वह लकडी का टुकडा जो किसी भारी चीज में बाँधा जाता है और जिसमे सँगरे लगाकर पेशराज लोग उस भारी चीज को उठाते हैं। २ वह पालकी जिसे आठ कहार उठाते है। अठकरी।

अठसठ- वि० [हिं०] दे० 'अठसठ'। उ०--अठसठ तीरथ मध के वरनन कोट गया और कासी।--कबीर श०, पृ० ७८।

अठसिल्या(पु)--संज्ञा पुं० [स० अष्टशिला, पा० अट्ठसिला] सिंहासन। उ०--देखि सखिन हँसि पाँव पखारे। मणिमय अठसिल्या बैठारे।--विश्राम (शब्द०)।

अठहत्तर--वि० [स० अष्टसप्तति, प्रा० अठहत्तरि] एक सख्या। सत्तर और आठ। ७८।

अठहत्तरवाँ--वि० [हिं० अठहत्तर + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सतहत्तरवें के उपरात हो। क्रम या सख्या मे जिसका स्थान अठहत्तरवाँ हो।

अठाई(पु)--वि० [स० अस्थायी अथवा म० अ + स्थानिक] उपद्रवी। उत्पाती। शरीर। उ०--हैं हरि आठहु गाँठ अठाई।--केशव (शब्द०)।

अठान(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + हिं० ठानना] १ न ठानने योग्य कार्य। अकरणीय कर्म। अयोग्य या अनुचित कर्म। उ०--(क) तजतु अठान न, हठ परयो सठमति, आठौ जाम।--विहारी र०, पृ० १७०। (ख) हनुमान परोसिन हू हित की कहती तो अठान न ठानतीं मैं।--हनुमान (शब्द०)। २ वैर। शत्रुता। विरोध। झगडा। उ०--खाँ सगै करत उमगै ठानि अठान पठान चढै।--सूदन (शब्द०)।

अठाना(पु)¹--क्रि० स० [सं० अर्ति = पीडा, प्रा० अट्टि + अट्ट से नाम०] १ सताना। पीडित करना। उ०--आजु सुन्यो अपने पिय प्यारे को काम महा रघुनाथ अठारे।--रघुनाथ (शब्द०)।

अठाना(पु)²--क्रि० स० [सं० स्थान = स्थिति, ठहराव, ठानना, प्रा० ठान] मचाना। ठानना। जमाना। छेडना। उ०--(क) जानि जुद्ध अमनेक अठायो। तहवर खाँ इहि देस पठायो।--लाल (शब्द०)। (ख) घासहरै था कुँवर जी रन रग अठाया। तिस कागज के बाँचते सूरज मुसकाया।--सूदन (शब्द०)।

अठानी(पु)--वि० [हिं० अठान + ई (प्रत्य०)] अयोग्य या अनुचित कार्य करनेवाला। उ०--द्रोन के प्रबोध दुरबोध दुरजोधन के आयु औधि दिवस जयद्रथ अठानी के।--रत्नाकर, भा० २,पृ० १४५।

अठार(पु)--वि० [सं० अष्टादश, हिं० अठारह, अट्ठार] अठारह की सख्या। दस और आठ। १८। उ०--प्रब्ब अठार सवालष लष्षं, तौ भारथ गुर तत्त बिसष्षं।--पृ० रा०, १।८७।

अठारह¹--वि० [सं० अष्टादश, पा० अट्ठादस, प्रा० अट्ठारस, अट्ठारह] एक सख्या। दस और आठ। १८। उ०--पदुम अठारह जूथप बदर।--मानस, ५।५५।

अठारह²--संज्ञा पुं० १ काव्य मे पुराणसूचक संकेत या शब्द। २. चौसर का एक दाँव। पासे की एक सख्या। उ०--ढारि

पासा साधु संगति केरि रसना सारि। दाँव अबके परयो पूरो कुमति पिछली हारि। राखि सत्रह सुनि अठारह चोर पाँचों मार।—सूर० (शब्द०)।

अठारहवाँ—वि० [सं० अष्टादशम, प्रा० अट्ठारसवें, अप० अट्ठारहवें, अट्ठारहवाँ] जिसका स्थान सत्रहवें के उपरांत हो। क्रम या गिनती में जिसका स्थान अठारह पर हो।

अठासिवाँ—वि० [सं० अष्टाशीति + हिं० वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सत्तासिवें के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अठासिवाँ हो।

अठासी—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टाशीति, प्रा० अट्टासीइ, अप० अट्टासि] एक संख्या। अस्सी और आठ। ८८।

अठिलाना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० अठलाना। उ०—रहिमन निज मन की व्यथा मनहीं राखो गोय। सुनि अठिलैहै लोग सब बाँटि न लैहैं कोय।—कविता कौ०, भा० १, पृ० १६५।

अठिल्ला—संज्ञा पुं० [सं०] प्राकृत का एक छंद। दे० 'अरिल्ल' [को०]।

अठेल(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० ठेलना] बलवान्। मजबूत। जोरावर (डिं०)।

अठेसा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अट्ठाइस'। उ०—विनसत सबै मया बिस चारि अठसा। सो सब पलट् देखिया हम जैसे क तैसा।—पलटू०, भा० ३, प० ६६।

अठोठ(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] ठाट। आडंबर। पाखंड। उ०—लाज के अठोट कै कै, बैठती न ओट दै दै, घूँघट कै काहे को कपट पट तानती। डारि देती डर कर ऐंचती न कोप करि डीठै चोरि पीठि मोरि हौं न हठ ठानती।—देव (शब्द०)।

अठोतरसो—वि० [सं० अष्टोत्तरशत प्रा० अट्ठुत्तरसत] आठ के ऊपर सौ। एक सौ आठ।

अठोतरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टोत्तरी] एक सौ आठ दानों की जपमाला।

अठोर—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० ठोर] जिसमें धार न हो। कुंद। भोंतरा। उ०—अठोर धार बनराति। मालती छिन में करोंदा मेघमाला पानी हरिया।—दक्खिनी०, पृ० ३०।

अठौंडी—संज्ञा पुं० [सं० अष्टपदी] एक प्रकार का आठ पैरोंवाला कीड़ा जो पशुओं के शरीर में लगता है।

अठौरा—संज्ञा पुं० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ, अठ + हिं० औरा (प्रत्य०)] लगे हुए पान के आठ बीड़ों की खोंगी।

अडग(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अडिग'। उ०—तपसी रो रूप धरो अततार्इ अडग कुटी गई सीत उठाई।—रघु० रू०, पृ० १३५।

अडग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अडगा'। उ०—धक्को की धडाधड अडग की अडाअड में ह्वै रहै कडाकड सुदतो की कडावडी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३०७।

अडँगवडँग†—वि० [हिं० अडग + वेडग] टेढ़ा मेढ़ा। अंडबंड। अव्यवस्थित। उ०—अडँग वडँग कर आत्मा मेटै साँची सूध।—दरिया० बानी, पृ० ३४।

अडगा—संज्ञा पुं० [हिं० अड + अग = (अगवाला) रुकावट डालनेवाला] टाँग अड़ाना। अटकाव। रुकावट। अड़चन। हस्तक्षेप। उ०—क्रुद्ध ह्वै मलेच्छनि की सुद्धि के विरुद्ध बने जाल जे कुबुद्धि तनै उद्धत अडगा को।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १६५।

अडंड(पु)—वि० [सं० अदण्ड्य + दंड न दंड देने योग्य] १. अदंडनीय। जिसको दंड न दे सकें। २. निर्भय। निर्द्वंद्व।

अडंबर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० आडंबर। उ०—(क) मुगल की माल दीन्हा, गाल पर ज्वाल दीन्हा, छीन लीन्हा अंबर आडंबर जहाँ जैसो।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०१। (ख) धारि कै हिमन कौ सर्जीव स्वच्छ अडंबर कौं, सपन प्रकाश की पचंबर बढ़ाए लेति।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १२८।

अडमर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आडंबर'। उ०—धुम अडमर घुघरिय झलमल जल रमझार।—पृ० रा०, १४।६५।

अड—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० हठ = जिद अथवा अट्ट = समाधान = अभियोग] [क्रि० अड़ना, अड़ाना, वि० अड़ियल, अड़ियल] हठ। टेक। जिद। अड़न। अड़ने की स्थिति।

अडकाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अटकाना'।

अडग(पु)—वि० [हिं० अडिग + अग] अडिग। न डिगनेवाला। अटल। अचल।—(डिं०)। उ०—अजाअधानाथ दशमाथ रावण अडग मढ़ा ये आर भारथ मानो।—रघु० रू०, पृ० २०।

अडगडा—संज्ञा पुं० [अनु०] १. बैलगाड़ियों और सग्गड़ों आदि के ठहरने का स्थान। २. वह जगह जहाँ बिक्री के लिये घोड़े, बैल आदि रहते हों।

अडगरिध(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अडगरिधू'।

अडगरिधू(पु)—वि० [हिं० अडिग + पु० रिधू] स्थिर (डिं०)।

अडगोडा—संज्ञा पुं० [हिं० अड = रोक + हिं० गोड = पाँव] एक लकड़ी का टुकड़ा जिसे एक सिरे पर छेदकर नटखट चौपायों के गले में बाँधते हैं जो दौड़ते समय उनके अगले पैरों में लगता है जिससे वे बहुत तेज भाग नहीं सकते। ठगुर। ठेंगुर। ठेंगना।

अडचन—संज्ञा पुं० [देश०] १ रुकावट। अड़स। बाधा। आपत्ति। कठिनाई। दिक्कत। उ०—आगे चलकर इस काम में बड़ी बड़ी अड़चनें पड़ेंगी।—(शब्द०)।

अडचल†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अडचन'। उ०—क्रोध, भय, जुगुप्सा और करुणा के संबंध में साहित्यप्रेमियों को शायद कुछ अड़चन दिखाई पड़े।—रस०, पृ० २७३।

अडट(पु)—वि० [हिं० अ = नहीं + डाँट] डाँट में न रहनेवाला। न दबनेवाला। उ०—अडटनि डटन सुदढ बलि थिर करत अप्पबर।—पृ० रा०, ३।५५।

अड़डडा—संज्ञा पुं० [हिं० अड़ = टिकाव + डंडा] वह लकड़ी या बाँस का डंडा जिसके दोनों छोरों पर लट्टू बने रहते हैं। यह डंडा मस्तूल पर चिड़ियों के अड्डे की तरह बँधा रहता है और इसी पर पाल चढ़ाई जाती है।

अड़डपोपो—संज्ञा पुं० [देश०] १ सामुद्रिक विद्या जाननेवाला। हाथ देखकर जीवन की घटनाओं का बतलानेवाला। २ पाखंडी। धर्मध्वजी। झूठमूठ आडंबर करनेवाला। ३ वृथालापी। बकवादी। गप्पी।

अडतल—संज्ञा पुं० [हिं० आड़ + सं० तल] १. ओट। ओझल। आड़। २. छाया। शरण। ३. बहाना। हीला। उज्र।

मुहा०--अटतल पकडना या अडतल लेना = (१) पनाह लेना। शरण में जाना। (२) बहाना करना।

अडतालिस--वि० [हि०] दे० 'अडतालीस'।

अड़तालिसवाँ--वि० [सं० अष्टचत्वारिंशत्, प्रा० अट्ठ = अत्तालिस < हिं० अडतालिस + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सैंतालीस के उपरात हो। क्रम या सख्या मे जिसका स्थान अडतालिसवाँ हो।

अडतालीस--वि० [सं० अष्टचत्वारिंशत्, प्रा० अट्ठचत्तालीस, अट्ठतालीस] एक सख्या। चालीस और आठ। ४८।

अडतीस--वि० [अष्टत्रिंशत् प्रा० अट्ठतीस, अठतीस] एक संख्या। तीस और आठ। ३८।

अडतीसवाँ- वि० [हिं० अडतीस + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सैंतीसवें के उपरात हो। क्रम या सख्या मे जिसका स्थान अडतीसवाँ हो।

अडदार--वि० [हिं० अड + फा० दार (प्रत्य०)] १ अडियल। रुकनेवाला। उ०-- अली चली नवलाहि लै पिय पै साजि सिंगार। ज्यों मतग अडदार को लिए जात गडदार --मतिराम (शब्द०)। २ ऐंडदार। मस्त। मतवाला। उ०--दावदार निरखि रिसानों दीह दलराय, जैसे गडदार अडदार गजराज को।--भूषण ग्र०, पृ० ६।

अडन--सज्ञा स्त्री० [हिं० अटना] अडने का भाव या क्रिया। अडने की स्थिति। उ०--साधु को ऐसा चाहिए ज्यो सिमु अडन अडै।--पलटू०, पृ० ५४।

अडना--क्रि० अ० [देश० अथवा सं० हठ, प्रा० ० अठ > हिं० अड से नाम०] १ रुकना। अटकना। ठहरना। उ०--इहि उर माखन चोर गडे। अब कैसे निकसत सुनि ऊधौ तिरछे ह्वै जु अटे।--सूर०, १०।३७३१। २ हठ करना। टेक बाँधना। ठानना। उ०--बिरहा सेती मति अडै, रे मन मोर सुजान। --कबीर (शब्द०)।

अडपायल--वि० [हिं० अड + पाँव × ल (प्रत्य०)] जोरावर। बलवान् (डिं०)।

अडबग(पु)†--वि० पुं० [हिं० अडना + सं० वक्र, प्रा० वक = टेढा] १ टेढा मेढा। ऊँचा नीचा। अडबड। अटपट। उ०--वेद को न मानै ना पुरान भेद जानै कछू ठानै ठान आपने लबेद अडबगा की।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १९६। २ विकट। कठिन। दुर्गम। जैसे रास्ता अडबग है।--(शब्द०)। ३ विलक्षण। अनोखा। अद्भुत। उ०--नहिं जागत उपाय कछु लागत कुमकरण अडबगा।--रघुराज (शब्द०)।

अडबद--सज्ञा पुं० [हि०] दे० आडबद। उ०--दया प्रेम का अडबद बाँधो आतम खोल लगाई।--कबीर श०, भा० ३, पृ० ४६१।

अडबड†--वि० [हि० अटपट अथवा अडबड] टेढा। विकट। कठिन। मुश्किल। दुस्तर। उ०--आगमपुरी की है सँकरी गलियाँ अडबड है चढना।--कबीर श०, भा० १, पृ० ६७।

अडबल--वि० [हि०] अडनेवाला। अडियल। हठी।

अडभग--वि० [हिं०] दे० 'अटबग'। उ०--मुल्कों पो चढके दुश्मन घाँतल मँचाया देखो अडभँगे पन से पढको मुर्दार आया देखो। --दक्खिनी० पृ० २९९।

अडभगी--वि० [हिं०] १. टेढा मेढा। अडबड। २ विकट। कठिन। दुर्गम। ३. विलक्षण।

अडर(पु)[1]--वि० [सं० अ = नहीं + दर - भय] निडर। निर्भय। बेडर। बेखौफ। उ०--अडर भेप धरि चढत जो आगा।--कबीर सा०, पृ० ३०९।

अडर[2]--सज्ञा पुं० [अं० आर्डर] राजकीय आदेश। राजाज्ञा। सरकारी आदेश।

अडव--सज्ञा पुं० [सं० औडव, ओडव] वह राग जिसमे पडज, गाधार मध्यम, धैवत और निपाद ये पाँचो स्वर आवें।

अडवा --सज्ञा पुं० [सं० अड्ड = रोक, बाधा] मनुष्य का आकार जो जानवरो को डराने के लिये खेत मे खडा किया जाता है। उ०--दरिया ऐसा भेप है जैसा अडवा खेत। बाहर चेतन की रहन, भीतर जड्ड अचेत।--दरिया० बानी, पृ० ३६।

अडवोकेट--सज्ञा पुं० [अं० ऐडवोकेट] वह वकील जिसे वकालतनामा दाखिल करने की जरूरत नही होती। निचले न्यायालयों से उच्च न्यायालय तक वादी या प्रतिवादी के पक्ष मे बहस करने का कानूनी अधिकार रखनेवाला व्यक्ति। वकील। अब सब वकील ऐडवोकेट होते हैं।

अडसठ--वि० [सं० अष्टषष्ठि, प्रा० अट्ठसट्ठि] एक सख्या। साठ और आठ की सख्या। ६८।

अडसठवाँ-- वि० [हिं० अडसठ + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सडसठवें के उपरात हो। क्रम या सख्या मे जिसका स्थान अडसठवाँ हो।

अडहुल--सज्ञा पुं० [सं० ओण + फुल्ल, हिं० ओणहुल्ल] जपा या जवा पुष्प। देवी फल। गुडहर।

विशेष--इसका पेड ६--७ फुट तक ऊँचा होता है और पत्तियाँ हरसिंगार से मिलती जुलती होती हैं। फूल इसका बहुत बडा और खूब लाल होता है। इसके फूल मे महक (गंध) नहीं होती।

अडाअड--सज्ञा पुं० [हिं०] अडने का क्रिया या भाव। उ०--धक्को की धकाधक अडग की अडाअड मे ह्वै रहे कडाकड सु दतो की कडाकडी।--पद्माकर ग्र०, पृ० ३०७।

अड़ाक-- वि० [हिं०] अडनेवाला। अडियल। उ०--साहब सूम, अडाक तुरग, किसान कठोर, दिवान नकारो।--इतिहास, पृ० २०३।

अडाकी(पु)--वि० [हिं० अडाक] अडनेवाला। उ०--आखेटा मजबूत अडाकी जात किधा खल जेर।--रघु० रू०, पृ० ६३।

अडाड[1]--सज्ञा पुं० [हिं० आड] चौपायो के रहने का हाता जो प्राय बस्ती के बाहर होता है। लकडियो का घेरा जिसमे रात को चौपाए हाँक दिए जाते हैं। खरिक।

अडाड[2] --सज्ञा पुं० [हिं० दे० 'अडार'[1]]।

अडाड[3]--सज्ञा पुं० [अनु०] टूटने या गिरने की आवाज। उ०--एक ऊंचा टीले का टीला अडाड करके फट पडा।--सैर कु०, पृ० ३८।

अडान--सज्ञा पुं० [हिं० अड + आन (प्रत्य०)] १ रुकने की जगह। २ पडाव। वह स्थान जहाँ पथिक लोग विश्राम लें।

अडाना[1]--सज्ञा पुं० [हिं० अडान] खडी या तिरछी लकडी जो गिरती हुई छत, दीवार या पेंड आदि को गिरने से बचाने के लिये लगाई जाती है। डाट। चाँड़। थूनी। ठेवा टेका।

अड़ाना²--संज्ञा पुं० एक राग जो कान्हड़ा का भेद है।

अड़ाना³--क्रि० स० [हिं० अड़ाना] १ टिकाना। ठहराना। फँसाना। उलझाना। २ टेकना। डाट लगाना। ३ कोई वस्तु बीच मे देकर गति रोकना। जैसे,--पहिए मे रोड़ा अड़ा दे।--(शब्द०)। ४ ठूँसना। भरना। जैसे,--'इस बिल मे रोड़ा अड़ा दे'--(शब्द०)। ५ गिरना। ढरकाना।

अड़ानी¹--संज्ञा पुं० [देश०] १ बड़ा पखा। उ०--बहु छत्र अड़ानी कलस धुज, राजत राजत कनक के।--गिरिधरदास (शब्द०)।

अड़ानी²--संज्ञा स्त्री० [हिं० अड़ाना] १ कुश्ती का एक पेंच। अड़गा। दूसरे की टाँग मे अपनी टाँग अड़ाकर पटकने का दाँव। २ लकड़ी की रोक जो खिड़की या दरवाजे के पल्लो को रोकने के लिये लगाई जाती है।

अड़ायती--वि० [हिं० आड़ या अड़+आयती (प्रत्य०)] [स्त्री० अड़ायती (व्रज०)] जो आड़ करे। ओट करनेवाला। अड़ैतो। उ०--क्यो न गड़ि जाहु गाड़ गहिरी गड़ति जिन्हे गोरी गुरुजन लज निगड़ गड़ायती। ओड़ी न परति री निगोडि़न की ओड़ी दीठि लागे उठि आगे उठि होत है अड़ायती।--देव (शब्द०)।

अड़ार¹--वि० [स० अराल] १ अड़नेवाला। स्थिर रहनेवाला। उ०--जग डोलै डोलत नैनाहाँ। उलटि अड़ार जाहिं पल माहाँ।--जायसी ग्र० पृ० ४२। २ टेढ़ा। तिरछा।

अड़ार²--संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल=बुर्ज, ऊँचा स्थान] १ समूह। राशि। ढेर। उ०--मम पितु अन्न अड़ार जुहायो। क्रम क्रम ते सब जनन बटायो।--विश्राम (शब्द०)। २ ईंधन का ढेर जो बेचने के लिये रखा हो। ३ लकड़ी या ईंधन की दूकान। ४ गायो भैंसो के रहने का घेरा या बाड़ा।

अड़ारना(पु)--क्रि० स० [हिं० डालना] डालना। देना। उ०--पीउ सुनत धनि आपु बिसारे। चित्त लखै तन खाइ अड़ारे।--जायसी (शब्द०)।

अड़ाल--संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य का एक भेद। चिड़ियो के पख की तरह हाथ फटफटाकर एक ही स्थान पर चक्कर काटना। मयूरनृत्य।

अड़ाव--संज्ञा पुं० [हिं० अड़] १ स्तभ। आधार। २ ऊँचाई। उ०--राजमहलूं के अड़ाव अरस सेती अड़े।--रघु० रू०, पृ० २३८।

अडिग(पु)--वि० [स० अ=नहीं+हिं० डिगना] जो हिले डुले नही। निश्चल। स्थिर।

अड़िग्ग--वि० [हिं०] दे० 'अडिग'। उ०--धीरजवंत अडिग्ग जितेंद्रिय निर्मल ज्ञान गह्यो दृढ आदू।--सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ३८४।

अड़ियल--वि० [हिं० अड़ना+इयल (प्रत्य०)] १ रुकनेवाला। अड़ अड़कर चलनेवाला। चलते चलते रुक जानेवाला। उ०--मधुवन अड़ियल टट्टू की तरह रुक गया।--तितली, पृ० २२६। २ सुस्त। काम मे देर लगानेवाला। मट्ठर। ३ जिद्दी। हठी।

अड़िया--संज्ञा स्त्री० [हिं० अड़ना] अड्डे के आकार की एक लकड़ी जिसे टेककर साधु लोग बैठते हैं। साधुओं की कुबड़ी या तकिया।

मुहा०--अड़िया करना=जहाज के लगर की रस्सी खीचना।

अड़िल्ल--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरिल्ल'।

अड़ी¹--संज्ञा स्त्री० [हिं० अड़ना] १ अड़ान। जिद। हठ। आग्रह। २ रोक।

क्रि० प्र०--करना=हिरन की तरह छलाँग मारना।

३ ऐसा अवसर जब कोई काम रुका हो। जरूरत का वक्त। मौका। ४. पासा या चौपड़ के खेल मे एक ही घर मे दो गोटियों के पहुँचने पर अन्य खेलाड़ियों की चालो का रुकना। उ०--चौरासी घर फिरै अड़ी पौ बारह नावौं।--पलटू०, पृ० ३४।

अड़ी²--वि० अड़नेवाला। टेकी। जिद्दी।

अड़ीखभ(पु)--वि० [हिं० अड़ी+खभ] जोरावर। बली।--डिं०।

अड़िठ--वि० [सं० अदृष्ट, पा० अदृष्ट, प्रा० अदिट्ठ] १ जो दिखाई न पड़े। लुप्त। २ छिपा हुआ। अतर्हित। गुपचुप।

अडुक--संज्ञा पुं० [सं०] हिरन। मृग [को०]।

अडुचल--संज्ञा पुं० [सं०] हलचल का एक भाग [को०]।

अडूलना(पु)--क्रि० स० [देश० अथवा हिं० उँडेलना] ढालना। उडेलना। डालना। गिराना। उ०--जहाँ आठ हू भाँति के कज फूलैं। मनो नीर आकास तारे अडूलै।--सूदन (शब्द०)।

अडूसा--संज्ञा पुं० [सं० अटरूष, प्रा० अठरूस] एक ओषधि विशेष।

विशेष--इसका पेड ३-४ फुट तक ऊँचा होता है। इसका पत्ता हलके हरे रग का आम के पत्ते से मिलता जुलता होता है। इसकी प्रत्येक गाँठ पर दो दो पत्ते होते हैं। इसके सफेद रग के फूल जटा मे गुथे हुए निकलते हैं जिनमे थोड़ा सा मीठा रस होता है जो कास, श्वास, क्षय आदि रोगों मे दिया जाता है।

अड़ैच--संज्ञा स्त्री० [देश०] शत्रुता। द्वेष। मनमुटाव।

अड़ैता(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अड़ायती'।

अड़ैल(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अड़ियल'। उ०--ऐल परी गैल मैं मतग मतवारनि की, भीड़ अड़त अड़ैलनि तुरगा तरजत हैं।--हम्मीर० पृ० २४।

अड़ोर--संज्ञा पुं० [सं० आन्दोल=हलचल] तुमुल शब्द। शोर। गुल। दे० 'अदोर'। उ०--बाजन बाजे होय अड़ोरा। आवहिं बहल हस्ति औ घोरा।--जायसी (शब्द०)।

अडोल--वि० [सं० अ=नहीं+हिं० डोलना] १ अटल। जो हिले नही। निश्चल। उ०--प्रेम अडोलु डुलै नहीं, मुँह बोल अनखाई। चित उनकी मूरति बसी, चितवन माँहि लखाई।--बिहारी र० दो० ६३१। २ स्तब्ध। ठकमारा। उ०--त्यो पदमाकर खालि रही दृग बोलै न बोल अडोल दशा है।--पद्माकर ग्र०, पृ० १५१। ३ स्थिर। ध्रुव। उ०--मुख बोल कहत अडोल है गज बाजि देत अमोल है।--पद्माकर ग्र०, पृ० ६।

अड़ोस पड़ोस--संज्ञा पुं० [सं० प्रतिवेस (=पड़ोस) से वि० हिं० मू०] आसपास। करीब।

अड़ोसी पड़ोसी--संज्ञा पुं० [हिं० अड़ोस पड़ोस] आसपास का रहनेवाला। हमसाया।

अड्ड(पु)--वि० [देश० अड्ड=आड़े आनेवाला] बाधा। रोक। आड़। उ०--काल पहुँच्यो सीस पर नाहिन कोऊ अड्ड।--भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० २३३।

अड्डन—संज्ञा पुं० [सं० अड्डनम्] ढाल। एक प्रकार का शस्त्र। अट्टन [को०]।

अड्डा—संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल = ऊँची जगह] १ टिकने की जगह। ठहरने का स्थान। २ मिलने या इकट्ठा होने की जगह। ३ बदमाशों के मिलने या बैठने की जगह। ४ वह स्थान जहाँ सवारी या पालकी उठानेवाले कहार भाड़े पर मिलें। ५. रंडियों के इकट्ठा होने का स्थान या कुटनियों का डेरा जहाँ व्यभिचारिणी स्त्रियाँ इकट्ठी होती हैं। ६ केंद्र। प्रधान स्थान। जैसे—वही तो इन सब बुराइयों का अड्डा है (शब्द०)। ७ लकड़ी या लोहे की छड़ जो चिड़ियों के बैठने के लिये पिंजड़े के भीतर आड़ी लगाई जाती है। ८. बुलबुल, तोता आदि चिड़ियों के बैठने के लिये लोहे की एक छड़ जिसका एक सिरा जमीन में गाड़ने के लिये नुकीला होता है और दूसरे सिरे पर एक छोटी आड़ी छड़ लगी रहती है। ९ पचास आठ तह के कपड़े का गद्दा जिसको छीपी चौकी पर बिछाकर उसी के ऊपर कपड़ा रखकर छापते हैं। १० चौखूटा लकड़ी का ढाँचा जिसपर इजारबंद वगैरह बुने जाते हैं और कारचोबी का काम भी होता है। चौकठा। ११ चार हाथ लंबी, चार अंगुल चौड़ी और चार अंगुल मोटी लकड़ी जिसके किनारे पर बहुत सी खूँटियाँ, जिनपर बादले का ताना ताना जाता है लगी रहती हैं। १२ ऊँचे बाँस पर बँधी हुई एक टट्टी जो कबूतरों के बैठने के लिये होती है। कबूतरों की छतरी। १३ एक लंबा बाँस जो दो बाँसों को गाड़कर उनके सिरे पर आड़ा बाँध दिया जाता है। १४ लोहे या काठ की एक पटरी जो बीचोबीच लगी हुई एक लकड़ी के सहारे पर खड़ी की जाती है। इसी पर रुखानी को टिकाकर खरादनेवाले खरादते हैं। १५ खँडसाल में काम आनेवाला बाँस की टट्टी। १६ एक लकड़ी जो रहँट में इसी अभिप्राय से लगाई जाती है कि वह उलटा न घूम सके। १७. जुलाहे का करघा। उन लकड़ियों का समूह जिनपर जुलाहे सूत चढ़ाकर कपड़ा बुनते हैं। १८ एक लकड़ी जिसपर नवार बुनकर लपेटी जाती है।

अड्डी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अड्डा] १ एक बरमा जिससे गटगटा आदि लंबी चीजों में छेद करते हैं। २ जूते का किनारा।

अड्रेस—संज्ञा पुं० [अं० एड्रेस] १ अभिनंदनपत्र। वह लेख या प्रार्थनापत्र जो किसी महापुरुष के आगमन के समय उसे संबोधन करके सुनाया जाय। २ पता। ठिकाना। ३ भाषण। वक्तृता।

अढउल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अड़हुल'।

अढ़तिया—संज्ञा पुं० [हिं० आढ़त + इया (प्रत्य०)] १ वह दुकानदार जो ग्राहकों या दूसरे महाजनों को माल खरीदकर भेजता है और उनका माल मँगाकर बेचता है। इसके बदले में वह कुछ कमीशन या आढ़त पाता है। आढ़त करनेवाला। आढ़त का व्यवसाय करनेवाला। २ दलाल। एजेंट।

अढन(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] धाक। मर्यादा। उ०—चारिउ बरन चारि आश्रम हू मानत श्रुति की अढन —देवस्वामी (शब्द०)।

अढर(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० ढरना] न ढलनेवाला। उ०—अढर ढुरहि गढ ररहि मेर परभर सुपर्रहि भर।—पृ० रा०, ५५।८।

अढवना(पु)—क्रि० स० [सं० आ + √ज्ञा = बोध कराना, आज्ञापन, प्रा० आणपन] आज्ञा देना। कार्य में नियुक्त करना। काम में लगाना। उ०—कैसे बरजो करन को समरनीति की बात। अति साहस के काम को अढवन हियो सकात।—उत्तरचरित (शब्द०)।

अढ़वायक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अढवना] वह जो दूसरों को काम में लगाता हो। दूसरों से काम लेनेवाला। उ०—पहिलेइ रचे चारि अढवायक। भए सब अढवैयन के नायक।—जायसी ग्रं०, पृ० ३०६।

अढवैया(पु)— संज्ञा पुं० [हिं० अढ + वा + ऐया (प्रत्य०)] दे० 'अढवायक'। उ०—भे सब अढवैयन के नायक।—जायसी ग्रं०, पृ० ३०६।

अढाई—वि० [सं० अर्धतृतीय, प्रा० अड्ढाइय] दो और आधा। ढाई। उ०—मुनि कह उचित कहत रघुराई। गएउ बीति दिन पहर अढ़ाई।—मानस, २।२७७।

अढार(पु †— वि० [सं० अ० = नहीं + हिं० ढरना = ढलना] १. किसी की ओर न ढलने या अनुरक्त होनेवाला। २ कठोर। निर्मोही निर्दय।

अढारटकी(पु—संज्ञा पुं० [?] धनुष (डिं०)।

अढ़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० आधानिका, प्रा० आढाइया > अढइया] १. काठ, पत्थर आदि का बना हुआ छोटा बरतन। २ काठ या लोहे का पात्र जिसमें मजदूरों के लटके गारा या कपसा उठाकर ले जाते हैं।

अढी(पु—वि० [प्रा० अड्ढाई] ढाई। दो और आधे की संख्या। उ०—तिन भूफत निरखि गयी अढी कोस चहुआन।—पृ० रा०, ६१।२२१६।

अढ़ुक—संज्ञा पुं० [देश०] ठोकर। चोट। उ०—फोरहिं सिल लोढा सदन लागे अढ़ुक पहार। कायर कूर कपूत कलि घर घर सहस डहार।—तुलसी ग्रं०, पृ० १५१।

अढ़ुकना—क्रि० अ० [सं० आ = अच्छी तरह + टक = बंधन या रोक अथवा हिं० अढ़ुक से नाम०] १ ठोकर खाना। उ०—अढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे। राम वियोग विकल दुख तीछे।—मानस, २।१४३। २ सहारा लेना। टेकना।

अढ़ैया¹—संज्ञा पुं० [हिं० अढाई, ढाई] १ एक तौल जो ढाई सेर की होती है। पसेरी का आधा। २ ढाई गुने का पहाड़ा।

अढ़ैया²—संज्ञा पुं० [हिं० अढवना] काम करानेवाला। अढवैया।

अढौना—संज्ञा पुं० [हिं० अढवना] करने के लिये कहा गया या दिया हुआ काम। उ०—छोटा सा अढौना भी करेगी तो भुनभुना कर।—गोदान, पृ० ३०।

अणक¹(पु—वि० [सं०] कुत्सित। निंदित। अधम। नीच (डिं०)।

अणक²—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

अणकरता†—वि० [सं० अन्, प्रा० अण + हिं० करता] अकर्ता। निष्क्रिय। न करनेवाला। उ०—करता है सो करेगा दादू साखी भूत। कौतिगहारा ह्वै रह्या अणकरता औधूत।—दादू०, पृ० ४५७।

अणकीय—वि० [सं०] कुत्सित, निंदित, नगण्य, अधम आदि से संबंधित [को०]।

अणद(पु) संज्ञा पुं० [सं० आनन्द] आनंद। उल्लास। चित्त की प्रसन्नता (डिं०)।

अणमण(पु)--वि० [अन्यमनस्, प्रा० अण्ण+मण] १. अप्रसन्न। दुखित। नाराज। २ बीमार। रोगी (डिं०)।

अणरता(पु)--वि० [प्रा० अण+रत्त] जो अनुरक्त न हो। अनासक्त। उ०--अणरता सुख सोवणा रातै नींद न आइ।--कबीर ग्र०, पृ० ५१।

अणरस(पु)--वि० [प्रा० अण+रस] दे० 'अनरस१'। उ०--रस को अणरस अणरस को रस मीठा खारा होइ।--दादू०, पृ० ५५४।

अणव्य--संज्ञा पुं० [सं०] चीना, साँवाँ आदि धान्य उगाने का क्षेत्र [को०]।

अणसक(पु)--वि० [सं० अन्=नहीं+शंका=डर, प्रा० अण+संक] जो डरे नहीं। निर्भय। निःशंक। निडर (डिं०)।

अणास(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० अडस] अडस। कठिनाई (डिं०)।

अणि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कोर। नोक। मुनई। २ धार। बाढ़। ३ वह कील जिसे धुरे के दोनो छोरो पर चक्के की नाभि मे इसलिये ठोकते हैं जिसमे चक्का धुरी के छोरों पर से बाहर न निकल जाय। धुरकीली। धुरी की कील। ४ सीमा। हद। सिवान। मेड। ५ किनारा। ६ अत्यंत छोटा। ७ गाडी के बम के अगले सिरे पर लगी कीली या वाल्टू।

अणिमाडव्य--संज्ञा पुं० [सं० अणिमाण्डव्य] एक ऋषि का नाम जो एक कील या नोकीला डंटा चुभाए रहते थे जिनके कारण उनका यह नाम लोक मे प्रसिद्ध हुआ [को०]।

अणिमा--संज्ञा स्त्री० [सं०] अष्ट सिद्धियो मे पहली सिद्धि।

विशेष--इस सिद्धि के द्वारा योगी अणुवत् सूक्ष्म रूप धारण कर लेते हैं और किसी को दिखाई नही पडते। इसी सिद्धि के द्वारा योगी तथा देवता लोग अगोचर रहते है और समीप होने पर भी दिखाई नही देते तथा कठिन से कठिन अभेद्य पदार्थ मे भी प्रवेश कर जाते हैं।

२ सूक्ष्मता। ३ अणुता या अणु का भाव।

अणिमादिक--संज्ञा स्त्री० [सं०] अष्टसिद्धियाँ--अर्थात् १ अणिमा, २ महिमा, ३ लघिमा, ४ गरिमा, ५ प्राप्ति, ६ प्राकाम्य ७ ईशित्व और ८. वशित्व।

अणियाली(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अणि=धार+हिं० याली=वाली (प्रत्य०)] कटारी (डिं०)।

अणी१(पु)--सर्व० [देश०] अरी। अनी। एरी। हेरी। उ०--डोलती डरानी खतरानी वतरानी वेवे, कुडियन पेखी अणी माँ गदन पावा हाँ।--सूदन (शब्द०)।

अणी२--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अणि'।

अणीय--वि० [सं० अणु+ईयस्=अणीयस्] अतिसूक्ष्म। बारीक। भीना।

अणु१--१ संज्ञा पुं० [सं०] द्वयणुक से सूक्ष्म, परमाणु से बडा कण जिसका बिना किसी विशेष यत्न के खंड नही किया जा सकता। २ ६० परमाणुओं का संघात या बना हुआ कण। ३ छोटा टुकडा। कण। ४ परमाणु। ५ सूक्ष्म कण। ६ रज। रजकण। ७. संगीत मे तीन ताल के काल का चतुर्थांश काल। ८ अत्यंत सूक्ष्म मात्रा। ९. एक मुहूर्त का ५,४६,७५,००० वाँ भाग।

अणु२--वि० १ अतिसूक्ष्म। क्षुद्र। २ अत्यंत छोटा। ३ जो दिखाई न दे या कठिनाई से दिखाई पड़े।

अणुक--वि० [सं०] अणु सबंधी। अतिसूक्ष्म। उ०--अणुक द्वयणुक जड जीव आदि जितने हैं, देखा।--अनामिका, पृ० ३८। २ एक प्रकार का छोटे दानोंवाला अन्न (को०)। ३ चतुर (को०)।

अणुतर--वि० [सं०] बहुत बारीक या सूक्ष्म। कोमल [को०]।

अणुता--वि० [सं०] दे० 'अणुक' [को०]।

अणुतैल--संज्ञा पुं० [सं०] एक औषध का तेल [को०]।

अणुत्व--वि० [सं०] अतिसूक्ष्मता। अणु जैसी सूक्ष्मता [को०]।

अणुबम--संज्ञा पुं० [सं० अणु+अं० बॉम्ब] एक विनाशक अस्त्र। दे० 'परमाणु बम'।

अणुभा--संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली। विद्युत्।

अणुभाष्य--संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मसूत्र पर वल्लभाचार्य द्वारा कृत पुष्टिमार्गीय भाष्य [को०]।

अणुमध्यबीज--संज्ञा पुं० [सं०] एक मंत्र का नाम [को०]।

अणुमात्र--वि० [सं०] अणु के समान छोटे आकारवाला [को०]।

अणुमात्रिक--वि० [सं०] १ दे० 'अणुमात्र'। २ अणु के अंग या मात्रा से युक्त [को०]।

अणुरेणु--संज्ञा पुं० [सं०] आणविक या अणु सबंधी धूल जैसी सूर्य की किरणों मे दिखाई पडती है [को०]।

अणुरेणुजाल--संज्ञा पुं० [सं०] आणविक धूलिकणों समूह [को०]।

अणुरेवती--संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती नामक क्षुप। करोटन का वृक्ष [को०]।

विशेष--इसकी अनेक जातियाँ होती हैं और उनके पत्ते भी भिन्न भिन्न आकार तथा रंग के होते हैं।

अणुवंत--संज्ञा पुं० [सं० अणुवन्त] बाल की भी खाल निकालनेवाला प्रश्न [को०]।

अणुवाद--संज्ञा पुं० [सं०] १ वह दर्शन या सिद्धांत जिसमें जीव या आत्मा अणु माना गया हो। वल्लभाचार्य का मत। २ वह शास्त्र जिसमे पदार्थों के अणु नित्य माने गए हों। वैशेषिक दर्शन।

अणुवादी--संज्ञा पुं० [सं० अणुवादिन्] १ नैयायिक। वैशेषिक शास्त्र का माननेवाला। २ वल्लभाचार्य का अनुयायी वैष्णव।

अणुवीक्षण--संज्ञा पुं० [सं०] जिसके द्वारा सूक्ष्म पदार्थ देखे जाते हैं। सूक्ष्मदर्शक यंत्र। खुर्दबीन। माइक्रोस्कोप। उ०--बिखर गया मानव का मन अणुवीक्षण पथ से।--युगपथ, पृ० १२०। २ बाल की खाल निकालना। छिद्रान्वेषण।

अणुवेदांत--संज्ञा पुं० [सं०] एक ग्रंथ का नाम [को०]।

अणुव्रत--संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार गृहस्थ धर्म का एक अंग।

विशेष--इसके ५ भेद हैं--(१) प्राणातिपात विरमण, (२) मृषावाद विरमण, (३) अदत्तदान विरमण, (४) मैथुन विरमण और (५) परिग्रह विरमण। पातंजलि योगशास्त्र मे इनको 'यम' कहते हैं।

अणुव्रीहि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार धान जिसका चावल बहुत बारीक होता है और पकाने से बढ जाता है। यह खाने मे स्वादिष्ट होता है और महँगा बिकता है मोनीयूर।

अणुह—संज्ञा पुं० [सं०] विभ्राज के एक पुत्र का नाम [को०]।

अणोरणीयान्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् के उस मंत्र का नाम जिसके आदि में ये शब्द आते हैं। वह मंत्र यह है—अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहित गुहायाम्। तमक्रतु पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मन'।

अणोरणीयान्[2]—वि० १ सूक्ष्म से सूक्ष्म। अत्यत सूक्ष्म २. छोटे। से छोटा।

अतक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आतक'। उ०—सक सौ सिमिटि चित्त अक से भए हैं सबै वक अरि उर पै अनक इमि छायो है।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १४१।

अतका[1](पु)—वि० [आतङ्कित, प्रा० आतङ्किअ] आतंकित। भयभीत। उ०—वाढी सीत सका कांपै कर ह्वै अतका।—गग ग्र०, पृ० २३६।

अतका[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आतक'। उ०—सोहै अज ओडे जे न छोडे सीम सगर की लगर लँगूर उच्च ओज के अतका मे।—पद्माकर ग्र०, पृ० २२४।

अतत—वि० [हिं०] दे० 'अत्यत'। उ०—मन पछी सो एक है पारब्रह्म को अतत'—केशव० अमी०, पृ० १३।

अतत्र—वि० [सं० अ+तन्त्र] १ अनियत्रित। २ सिद्धातरहित। ३ तत्र या ततु से रहित [को०]।

अतत्रत्व—संज्ञा भा [सं० अतन्त्रत्व] अर्थराहित्य। अर्थशून्यता।

अतद्र—वि० [सं० अतन्द्र] १ तद्रारहित। सजग। २ सतर्क [को०]।

अतद्रमा(पु)—वि० [सं० अतन्द्रिम] तद्रारहित। निरालस्य। सजग। उ०—देत छवि को है कोकनद मे नदी मे कहो नखत विराजै कौन निसि मे अतद्रमा।—पद्माकर ग्र०, पृ० ८०।

अतद्रिक—वि० [सं० अतन्द्रिक] १ आलस्यरहित। निरालस्य। चुस्त। चचल। उ०—बिखरि जात पखुरी गरूर जनि करि अतद्रिका'। सुकवि दसा सब ह्वै है हरि सिर मोरचद्रिका।—व्यास (शब्द०)। २ व्याकुल। विकल। बेचैन।

अतद्रित—वि० [सं० अतन्द्रित] आलस्यरहित। चपल। निद्रारहित चचल। उ०—पहुँच नहीं पाया जनमन का नीरव रोदन, हृदय सगीत रहा उच्छ्वसित अतद्रित।—रजत शि०, पृ० ११४।

अतद्रिल—वि० [सं० अतन्द्रिल] तद्राविहीन। अतद्र [को०]।

अत[1]—क्रि० वि० [सं०] इस कारण से। इस वजह से। इसलिये। इस वास्ते। इस हेतु। उ०—शुचिते, पहनाकर चीनाशुक, कर सका न तुझे अत दधिमुख।—अनामिका, पृ० ११०।

अत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अति'। 'सहचरि सरँन' मयक वदन को मदनमोहिनी अत है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३९४।

अतऊर्ध्वम्—अव्य० [सं०] इसके आगे या बाद मे [को०]।

अतएव—क्रि० वि० [सं०] इसलिये। इस हेतु से। इस वजह से। इसी कारण।

अतक—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रा करनेवाला यात्री [को०]।

अतट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत का शिखर। चोटी। टीला। २. जमीन का निचला भाग। अतल (को०)।

अतट[2]—वि० तटहीन। खडी ढालवाला [को०]।

अतटप्रपात—संज्ञा पुं० [सं०] सीधा गिरनेवाला झरना [को०]।

अतत[1](पु)—वि० [सं० अतथ्य, अथवा अतत्त्व, प्रा० अतत्त] दे० 'अतथ्य'। उ०—चितग गव रावर कहै अतत मत मत्री कहे।—पृ० रा०, ५६।५०।

अतत[2](पु)—वि० [सं० अतत्त्व, प्रा० अतत्त] दे० 'अतत्व'। उ०—अतत निरसन कीजिए तौ द्वैत नहिं ठहराई।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ८४०।

अतताई(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आततायी'। उ०—तपसी रो रूप धरे अतताई अडग कुटी गइ सीत उठाई।—रघु० रू०, पृ० १३५।

अतत्व[1]—संज्ञा पुं० [सं० अ+तत्त्व] असार वस्तु [को०]।

अतत्व[2]—वि० सारहीन। तत्वरहित [को०]।

अतथ्य—वि० [सं०] १ अन्यथा। झूठ। असत्य। अयथार्थ। २. अनहुत्। असमान।

अतद्गुण—संज्ञा पुं० [सं०] एक अलकार जिसमे एक वस्तु का किसी ऐसी दूसरी वस्तु के विशिष्ट गुण को न ग्रहण करना दिखलाया जाय जिसके कि वह अत्यत निकट हो। जैसे—गगाजल सित अरु असित जमुना जलहू अन्हात। हस रहत तव शुभ्रता तैसिय वढि न घटात (शब्द०)।

अतद्वत्—वि० [सं०] जो उसके समान न हो [को०]।

अतद्वान्—वि० [सं०] अतद्वत्। असमान। जो (उसके) सदृश न हो।

अतन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अतनु] कामदेव। अनग। उ०—धूम धमारिन की मची अगन अतन उमग। अरी आज वरसत घनो व्रजवीथिन रसरग।—स० सप्तक, पृ० ३६१।

अतनु—वि० [सं०] १ शरीररहित। बिना देह का। बिना अस का। उ०—रति अति दुखित अतनु पति जानी।—मानस १।२४६। २ मोटा। स्थूल।

अतनु[2]—संज्ञा पुं० अनग। कामदेव।

अतप—वि० [सं०] १. जो तप्त न हो। ठढा। शात। २. दिखावा न करनेवाला। आडबररहित। बेकार। निठल्ला [को०]।

अतप्त—वि० [सं०] १. जो तपा न हो। ठढा। २. जो पका न हो।

अतप्ततनु[1]—वि० [सं०] रामानुज सप्रदाय के अनुसार जिसने तप्तमुद्रा न धारण की हो। जिसने विष्णु के चार आयुधो के चिह्न अपने शरीर पर गरम धातु से न छपवाए हो। बिना छाप या चिह्न का।

अतप्ततनु[2]—संज्ञा पुं० बिना छाप का मनुष्य।

अतमा—वि० [सं० अतमस्] अधकार रहित [को०]।

अतमाविष्ट—वि० [सं० अ+तम+आविष्ट (असाधु प्रयोग)] जो अधकाराच्छन्न न हो या अधकार से ढका न हो [को०]।

अतमिस्र—वि० [सं०] जो अधकार से आच्छन्न न हो [को०]।

अतरग—संज्ञा पुं० [देश०] लगर को जमीन से उखाड़कर उठाए रखने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।

अतर[1]– संज्ञा पुं० [अ० इत्र] निर्यास। पुष्पसार। भभके द्वारा खिंचा हुआ फूलों की सुगंध का सार। उ०--करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि। रे गंधी, मतिअंध तूं अतर दिखावत काहि।--बिहारी र० दो० ८२।

विशेष--ताजे फूलों को पानी के साथ एक बंद देग में आग पर रखते हैं जो नल के द्वारा उस भभके से मिला रहता है जिसमें पहले से चंदन का तेल, जिसे जमीन या माचा कहते हैं, रखा रहता है। फूलों से सुगंधित भाप उठकर उस चंदन के तेल पर टपककर इकट्ठा होती जाती है और तेल (जमीन) ऊपर आ जाता है। इसी तेल को काछकर रख लेते हैं और अतर या इतर कहते हैं। जिस फूल के भाप से यह बनता है उसी का अतर कहलाता है। जैसे--गुलाब का अतर, मोतिया का अतर इत्यादि।

अतर[2](पु)--संज्ञा पुं० [सं० अस्त्र, प्रा० अत्थ] दे० 'अस्त्र'। उ०--कनक पाट जनु बइठेउ राजा। सबइ सिंगार अतर लेइ साजा।--पदुमा०, पृ० ४६।

अतरक(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अतर्क्य'। उ०--अगम अगोचर अच्छर अतरक निरगुन अंत अनंदा।--रै० बा०, पृ० ४५।

अतरज(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य] दे० 'अचरज'। उ०--आजु की बात कहा कहूँ राजा, अतरज मेरे गात, परसराम की बानु कुँमरि नें धरचौ एकई हात।--पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६७१।

अतरदान--संज्ञा पुं० [अ० इत्र+फा० दान (तुल० वै० 'धान')] सोने, चाँदी या गिलट का फूलदान के आकार का एक पात्र जिसमें इतर से तर किया हुआ रुई का फाहा रखा होता है और महफिलों में सत्कारार्थ सबके सामने उपस्थित किया जाता है। उ०--सब राजा बराबर बराबर कुर्सियों पर बैठे हैं, सरोजनी नाचती है, मन्त्री ने अतरदान ले रक्खा है।--श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १६२।

अतरल--वि० [सं०] जो तरल या पतला न हो। गाढ़ा।

अतरवन--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर] १ पत्थर की पटिया जिसे घोड़िए के ऊपर बैठाकर छज्जा पाटते हैं। २ वह खर या मूंज जिसे ठाट पर फैलाकर उपर से खपड़ा या फूस छाते हैं।

अतरसों--क्रि० वि० [सं० *इतर+श्व] १ परसों के आगे का दिन। वर्तमान दिन से आनेवाला तीसरा दिन। उ०--खेलत में होरी रावरे के कर परसों जो भीजी है अतर सो सो आइहै अतरसों।--रघुनाथ (शब्द०)। २ गत परसों से पहिले का दिन। वर्तमान से तीसरा व्यतीत दिन।

अतराफ--संज्ञा स्त्री० [अ०] तरफ का बहुवचन। उ०--उस अतराफ में था जिसे तख्तो ताज इतायत करे मतिक देवे खिराज।--दक्खिनी०, पृ० १५६।

अतरिख--संज्ञा पुं० [सं० अंतरिक्ष, प्रा० अंतरिख] दे० 'अंतरिक्ष'।

अतरौटा(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अँतरौटा'। उ०--'दास' उलटीयै वेनी उलटीयै आँगी उलटोई अतरौटा पहिरे हौं उतलाई मे।--भिखारी० ग्रं०, पृ० २७२।

अतर्क[1]--वि० [सं०] तर्कहीन। असंगत [को०]।

अतर्क[2]--संज्ञा पुं० तर्कहीन बात करनेवाला [को०]।

अतर्कित--वि० [सं०] १. जिसका पहले से अनुमान न हो। २ आकस्मिक। ३ बे सोचा समझा। जो विचार में न आया हो। जिसपर विचार न किया गया हो।

अतर्क्य--वि० [सं०] जिसपर तर्क वितर्क न हो सके। जिसके विषय में किसी प्रकार की विवेचना न हो सके। अनिर्वचनीय। अचिंत्य। उ०--राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी।--मानस, १।१२०।

अतर्स(पु)--वि० [सं० अ+त्रास, अथवा हिं० अ+फा० तर्स] निर्भय। निष्ठुर। उ०--यह जम तीन लोक का राजा बाँधे अतर्स होई।--कबीर श०, पृ० १४।

अतल[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ सात पातालों में दूसरा पाताल। २. शिव [को०]।

अतल[2]--वि० तलविहीन। अथाह [को०]।

अतलता[1]--वि० तलरहित। अथाह। उ०--अतल सिंधु में लगा लगा कर जीवन की बेड़ी बाजी।--झरना, पृ० ५१।

अतलता[2]--संज्ञा स्त्री० [सं०] गहराई। उ०--ये किन स्वच्छ अतलताओं की मौन नीलिमाओं में बहते।--प्रतिमा, पृ० १२।

अतलस--संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो बहुत नरम होता है। उ०--अतलस लहँगा जरद रँग सारी। चोलिअन्हि बंद सँवारी री।--स० दरिया, पृ० १७०।

अतलस्पर्शी--वि० [सं०] अतल को छूनेवाला अत्यंत गहरा। अथाह। अतलस्पृक्।

अतलस्पृक्--वि० [सं०] अत्यंत गहरा।

अतलांत--वि० [सं० अतल+अंत] जिसके तल का अंत न हो। अत्यंत गहरा। उ०--अतलांत महा गंभीर जलधि तजकर अपनी वह नियत अवधि।--लहर, पृ० १२।

अतवान(पु)--वि० [सं० अतिवान्] अधिक। अत्यंत। उ०--सावन बरस मेह अतवानी। भरन परी हौं बिरह झुरानी।--जायसी (शब्द०)।

अतवार--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अत्तवार'। उ०--दरबार के दिन जो अतवार और मंगल को था, वे नदी के उस पार जाते थे।--हुँमयूँ०, पृ० ५७।

अतस[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ वायु। पवन। २ आत्मा। ३ अतसी के रेशों से बना हुआ वस्त्र। ४ एक प्रकार का अस्त्र। ५ एक क्षुप [को०]।

अतस[2](पु)--वि० [सं० 'अतिशय' का संक्षिप्त रूप] बहुत अधिक। अतिशय। उ०--तो पण प्रताप मेछा तणो अतस दाप बाधे अकस।--राज० रू०, पृ० २१।

अतसवाजी(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतिसबाजी'। उ०--छुटत अतसबाजी रंगरंगी।--भारतेंदु ग्रं०, भाग २, पृ० ७०५।

अतसी--संज्ञा स्त्री० [सं०] अलसी। तीसी।

अतहार[1] संज्ञा पुं० [अ० तुह्र का बहुव०] पवित्रता। उ०--मुज कूं, दर बावे इज्जत अतहार।--दक्खिनी०, पृ० २१८।

अतहार[2]--वि० [अ० ताहिर का बहुव०] पवित्र [को०]।

अता-- स्त्री० [अ० अता=अनुग्रह] अनुग्रह। दान।

क्रि० प्र०--करना, फरमाना=देना।--होना=दिया जाना। मिलना।

अतावख्श—वि० [अ० अता + फा० बख्श] दान देनेवाले। दाता। उदार [को०]।

अताई¹—वि० [अ०] १ दक्ष। कुशल। प्रवीण। २ धूर्त। चालाक। ३. अर्धशिक्षित। अशिक्षित। जो किसी काम को बिना सीखे हुए करे। पंडितमन्य।

अताई²—संज्ञा पुं० वह गवैया जो बिना नियमपूर्वक सीखे हुए गावे बजावे। उ०—और स्वतंत्र व्यसनशील वा अताई उनसे भी बढ जाते हैं।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ३५३।

अताई³—वि० [हिं०] दे० 'आततायी'।

अतान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अथान'। उ०—कुंज गई न विथा गई कुसुमित ताकि अतान। बहुरि दई दूनी भई लगे अतन के बान।—स० सप्तक, पृ० २६४।

अताना—संज्ञा पुं० [?] मालकोस राग की एक रागिनी।

अतानामा—संज्ञा पुं० [अ० अता + फा० नामह] दानपत्र [को०]।

अतापता—संज्ञा पुं० [हिं० पता का अनु० वि० द्वि०] हालचाल। ठौर ठिकाना। उ०—दूसरे दिन खोज करते करते एक स्थान पर अतापता मिला।—सुनीता पृ० ४४।

अतापी(पु)—वि० [सं०] तापरहित। दु खरहित। शांत।

अताब—संज्ञा पुं० [अ० इताब] गुस्सा। क्रोध। उ०—लाखो लगाव एक चुराना निगाह का। लाखो बनाव एक बिगडना अताब का।—शेर०, भा० १, पृ० १२।

अतार—संज्ञा पुं० [अ० अत्तार] दे० 'अत्तार'।

अतालीक—संज्ञा पुं० [अ०] शिक्षक। गुरु। उस्ताद। अध्यापक।

अतित(पु)—वि० [सं० अत्यंत] दे० 'अत्यंत'। उ०—ज्यौं कोउ रूप की रासि अतित कुरूप कहै भ्रम भंचक आन्यो—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५८१।

अति¹—वि० [सं०] बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—अति डर तें अति लाज तें जो न चहै रति बाम।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ८६।

अति²—संज्ञा स्त्री० अधिकता। ज्यादती। सीमा का उल्लंघन या अतिक्रमण। उ०—(क) गंगा जू तिहारो गुनगान करै अजगैब आनि होति बरखा सु आनँद की अति है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५८। (ख) उनके ग्रंथ मे कल्पना की अति है।—ध्यास (शब्द०)।

अतिअंत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अत्यंत'। उ०—लाभ होत अतिअंत किसोरी कृष्न चरन को।—ब्रजनिधि ग्रं०, पृ० ११।

अतिउकुति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अति + उक्ति, हिं० उकति] दे० 'अत्युक्ति'। उ०—सुनि अतिउकुति पवनसुत केरी।—मानस, ६।१।

अतिउक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० अति + उक्ति] अत्युक्ति।

अतिकंदक—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद नाम का पौधा [को०]।

अतिकथ—वि० [सं०] १ अविश्वसनीय। अतिरंजित। २. अश्रद्धेय। ३. सामाजिक नियमो का उल्लंघन करनेवाला। ४. मृत। नष्ट [को०]।

अतिकथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिरंजित कथा। निरर्थक बात [को०]।

अतिकर्षण—संज्ञा वि० [सं०] अत्यधिक परिश्रम [को०]।

अतिकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार उतना काल जितने मे एक ब्रह्मा की आयु पूरी होती है, अर्थात् ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्ष। ब्रह्मकल्प। उ०—सत्य संकल्प, अतिकल्प, कल्पांतकृत।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४८५।

अतिकांत—वि० [सं० अतिकान्त] अत्यधिक प्रिय [को०]।

अतिकाय¹—[सं०] वि० दीर्घकाय। बहुत लंबा चौडा। बडे डीलडौल का। स्थूल। मोटा।

अतिकाय²—संज्ञा पुं० रावण का एक पुत्र जिसे लक्ष्मण ने मारा था। उ०—भट अतिकाय अकंपन भारी।—मानस, ६।६१।

अतिकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ विलंब। देर। २. कुसमय। ३ काल का अतिक्रमण करनेवाला महाकाल। काल के भी काल। शिव। उ०—काल अतिकाल, कलिकाल, व्यालादखग, त्रिपुरमर्दन भीम कर्म भारी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६०।

अतिकिरिट—वि० [सं०] बहुत छोटे दाँतोंवाला [को०]।

अतिकिरीट—वि० [सं०] दे० 'अतिकिरिट' [को०]।

अतिकृच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहुत कष्ट। २ छह दिन का एक व्रत।

विशेष—इस व्रत मे पहले दिन एक ग्रास प्रातःकाल, दूसरे दिन एक ग्रास सायंकाल और तीसरे दिन यदि बिना माँगे मिल जाय तो एक ग्रास किसी समय खाकर शेष तीन दिन निराहार रहते हैं।

अतिकृति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पचीस वर्णों के वृत्तों की संज्ञा। जैसे—सुंदरी सवैया और क्रौंच। २ मर्यादा का अतिक्रम (को०)।

अतिकृति²—वि० जिसे करने में अति या मर्यादा का अतिक्रमण किया गया हो [को०]।

अतिकेशर—संज्ञा पुं० [सं०] कुब्जक नाम का पौधा [को०]।

अतिकोप—वि० [सं०] क्रोधरहित। शांत [को०]।

अतिक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] नियम या मर्यादा का उल्लंघन। विपरीत व्यवहार। उ०—देवपाल का क्रोध सीमा का अतिक्रम कर चुका था, उसने खड्ग चला दिया।—आकाश०, पृ० ३६।

अतिक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. उल्लंघन। पार करना। हद के बाहर जाना। उ०—बाधाओं का अतिक्रमण कर जो अबाध हो दौड चले।—कामायनी, पृ० २०८। २ प्रबल आक्रमण (को०)। ३ जीतना। अधिकार करना (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अतिक्रांत¹—वि० [सं० अतिक्रान्त] १ सीमा का उल्लंघन किए हुए। हद के बाहर गया हुआ। बढा हुआ। २ बीता हुआ। व्यतीत। गया हुआ।

अतिक्रांत²—संज्ञा पुं० बीती हुई बातो या कथन [को०]।

अतिक्रांतनिषेध—वि० [सं० अतिक्रान्तनिषेध] निषेधाज्ञा का उल्लंघन करनेवाला [को०]।

अतिक्रांतभावनीय—संज्ञा पुं० [सं० अतिक्रान्तभावनीय] योग दर्शन के अनुसार चार प्रकार के योगियों मे से एक। वैराग्यसंपन्न योगी।

अतिक्रामक—संज्ञा पुं० [सं०] क्रम या नियम का उल्लंघन करनेवाला। उ०—कृतियों में इस कमी के रहते हुए भी अनेक अतिक्रामक गुण हैं।—शुक्ल० अभि० ग्रं०, पृ० १०।

अतिक्रुद्ध[1]--वि० [सं०] अत्यंत रुष्ट। अधिक नाराज [को०]।
अतिक्रुद्ध[2]--संज्ञा पुं० तंत्रोक्त एक मंत्र [को०]।
अतिक्रूर[1]--वि० [सं०] अत्यधिक निष्ठुर [को०]।
अतिक्रूर[2]--संज्ञा पुं० १ एक तंत्रोक्त मंत्र। २ शनि आदि क्रूर ग्रह [को०]।
अतिक्षिप्त[1]--वि० [सं०] सीमा के पार या बहुत दूर फेंका हुआ [को०]
अतिक्षिप्त[2]--संज्ञा पुं० मोच। मुरकन [को०]।
अतिखट्व--वि० [सं०] चारपाई से रहित। बिना खाट के काम चलानेवाला।
अतिगंड[1]--वि० [सं० अतिगण्ड] बड़े या फूले गालोंवाला [को०]।
अतिगंड[2]--संज्ञा पुं० १ बड़ा कपोल या गाल। २ बड़े कपोलवाला व्यक्ति। ३ एक नक्षत्र या तारा। ४ एक योग [को०]।
अतिगंध[1]--संज्ञा पुं० [सं० अतिगन्ध] १ चंपा का पेड़ या फूल। २ भूतृण। मुद्गर, बटगोरा आदि (को०)।
अतिगंध[2]--वि० तीक्ष्ण गंधवाला [को०]।
अतिगंधालु--संज्ञा पुं० [सं० अतिगन्धालु] एक लता का नाम। पुत्रदात्री [को०]।
अतिगंधिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अतिगन्धिका] दे० 'अतिगंधालु' [को०]।
अतिगत--वि० [सं०] बहुतायत को पहुँचा हुआ। बहुत। अधिक। ज्यादा। अत्यंत। उ०--अतिगत आतुर मिलन को जैसे जल बिनु मीन।--दादू (शब्द०)।
अतिगति--संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम गति। मोक्ष। मुक्ति। उ०--जनक कहत सुनि अतिगति पाई। तृणावर्त को ही मुनिराई।--गि० दा० (शब्द०)।
अतिगव--वि० [सं०] १ अत्यंत मूर्ख। २ वर्णन के परे। वर्णनातीत [को०]।
अतिगहन--वि० [सं०] अधिक गहरा। प्रवेश करने में दुष्कर [को०]।
अतिगह्वर--वि० दे० 'अतिगहन' [को०]।
अतिगुण[1]--वि० [सं०] १ सद्गुणी। बहुत अच्छे गुणवाला। २. अयोग्य। निकम्मा [को०]।
अतिगुण[2]--संज्ञा पुं० सद्गुण। बहुत अच्छा गुण [को०]।
अतिगुरु[1]--वि० [सं०] अत्यंत भारी। बहुत वजनी [को०]।
अतिगुरु[2]--संज्ञा पुं० अत्यंत आदरणीय व्यक्ति। पिता माता आदि [को०]।
अतिगुहा--संज्ञा स्त्री० [सं०] पृश्निपर्णी नाम की लता [को०]।
अतिग्रह[1]--वि० [सं०] बोधागम्य। दुर्बोध [को०]।
अतिग्रह[2]--संज्ञा पुं० १ ज्ञानेंद्रियों का विषय। २. उपयुक्त या सही ज्ञान। ३ आगे बढ़ जाना। ४ अधिक ग्रहण करनेवाला व्यक्ति [को०]।
अतिग्राह--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिग्रह' [को०]।
अतिग्राह्य[1]--वि० [सं०] नियंत्रण में रखने योग्य [को०]।
अतिग्राह्य[2]--संज्ञा पुं० ज्योतिष्टोम यज्ञ में लगातार तीन बार किया जानेवाला तर्पण [को०]।
अतिघ--संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का आयुध। २. क्रोध [को०]।
अतिघ्न--वि० [सं०] अधिक विनाश करनेवाला [को०]।
अतिघ्नी--संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी सुखद निद्रा या विस्मृति जिसमें अतीत की अप्रिय बातें भूल जाएँ [को०]।
अतिचमू--वि० [सं०] सेनाओं का विजेता [को०]।
अतिचर--वि० [सं०] अधिक परिवर्तनशील [को०]।
अतिचरण--संज्ञा पुं० [सं०] अधिक करने का अभ्यास। जितना करना हो उससे अधिक करना [को०]।
अतिचरणा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ स्त्रियों का एक रोग जिसमें कई बार मैथुन करने पर तृप्ति होती है। २ वैद्यक मतानुसार वह योनि जो अत्यंत मैथुन से तृप्त न हो।
अतिचरा--संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थलपद्मिनी नाम की लता [को०]।
अतिचार--संज्ञा पुं० [सं०] १ सीमा से आगे बढ़ जाना। अतिक्रमण करना। उ०--मेरा अतिचार न बंद हुआ उन्मत्त रहा सबको घेरे।--कामायनी, पृ० ७१। २ ग्रहों की शीघ्र चाल।

विशेष--जब कोई ग्रह किसी राशि के भोगकाल को समाप्त किए बिना ही दूसरी राशि में चला जाता है तब उसकी गति को अतिचार कहते हैं।

३ जैनमतानुसार एक विघात। व्यतिक्रम। ४ तमाशबीनी और मर्यादा भंग करने का जुर्म। नाचरंग के समाजों में अधिक सम्मिलित होने का अपराध।

विशेष--चंद्रगुप्त के समय में जो रसिक और रँगीले बार बार निषेध करने पर भी नाचरंग के समाजों में सम्मिलित होते थे, उनपर तीन पण जुर्माना होता था। ब्राह्मण को जूठी या अपवित्र वस्तु खिला देने या दूसरे के घर में घुसने पर भी अतिचार दंड होता था।

अतिचारी--वि० [सं० अतिचारिन्] [स्त्री० अतिचारिणी] अतिक्रमण करनेवाला। अतिचार करनेवाला। उ०--अतिचारी मिथ्या मान इसे परलोक वंचना से भर जा।--कामायनी, पृ० १६६।
अतिच्छत्र--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अतिच्छत्रा] भूतृण। छत्रक [को०]।
अतिच्छत्रक--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अतिच्छत्रिका] दे० 'अतिच्छत्र' [को०]।
अतिच्छादन--संज्ञा पुं० [सं०] सीमा से इस पार आगे बढा हुआ होना कि आसपास की मिलती जुलती चीजें भी उसके क्षेत्र में आ जायँ [को०]।
अतिजगती--संज्ञा स्त्री० [सं०] तेरह वर्णों के वृत्तों की संज्ञा। जैसे--तारक, मंजुभाषिणी, माया आदि।
अतिजन--वि० [सं०] जो आबाद न हो। जनावासरहित [को०]।
अतिजव[1]--वि० [सं०] बहुत तेज चलनेवाला। अत्यंत वेगवान्।
अतिजव[2]--संज्ञा पुं० असाधारण गति। अतिशय वेग [को०]।
अतिजागर[1]--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बगला। नीलबक।
अतिजागर[2]--वि० १ निरंतर जागते रहनेवाला। २. जागरूक [को०]।
अतिजात--वि० [सं०] पिता से आगे बढा हुआ [को०]।
अतिडीन--संज्ञा पुं० [सं०] (पक्षियों की) असाधारण उड़ान [को०]।

अतितत—वि० १ [सं०] १ अत्यंत दूर फैलनेवाला । २ अपने को अधिक बड़ा दिखानेवाला । ३ आडंबरी [को०] ।

अतितरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ पार करना । २ पराभूत या पराजित करना [को०] ।

अतितारी—वि० [सं० अतितारिन्] पार कर जानेवाला । विजयी [को०] ।

अतितीक्ष्ण[1]—वि० [सं०] अत्यंत तेज [को०] ।

अतितीक्ष्ण[2]—संज्ञा पुं० शोभांजन नाम का वृक्ष [को०] ।

अतितीव्र[1] संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में वह स्वर जो तीव्र से भी कुछ अधिक ऊँचा हो ।

अतितीव्र[2]—वि० अत्यंत तेज [को०] ।

अतितीव्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की दूब [को०] ।

अतितृण्ण—वि० [सं०] अत्यधिक चोटवाला । जिसे अत्यधिक चोट पहुँची हो [को०] ।

अतितृष्ण[1]—वि० [सं०] १ अधिक प्यासा । २ अत्यंत लोभी [को०]

अतितृष्णा[2]—संज्ञा स्त्री० १ तेज प्यास । अत्यधिक लोभ [को०] ।

अतित्रस्नु—वि० [सं०] अत्यधिक डरनेवाला [को०] ।

अतिथि—संज्ञा पुं० [सं०] १ घर में आया हुआ अज्ञातपूर्व व्यक्ति । वह जिसके आने का समय निश्चित न हो । अभ्यागत । मेहमान । पाहुन । उ०—उस अनोखे अतिथि को आतिथ्य में चुपचाप ।—शकु०, पृ० ८ । २ वह संन्यासी जो किसी स्थान पर एक रात से अधिक न ठहरे । व्रात्य । ३ मुनि (जैनसाधु) । ४ अग्नि का एक नाम । ५ अयोध्या के राजा सुहोत्र जो कुश के पुत्र और रामचंद्र के पौत्र थे । ६ यज्ञ में सोमलता को लानेवाला व्यक्ति ।

अतिथिक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] आतिथ्य । अतिथि की आवभगत [को०] ।

अतिथिगृह—संज्ञा पुं० [सं०] वह भवन जो केवल अतिथियों के ठहरने के लिये बना हो । अतिथिशाला [को०] ।

अतिथिग्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ आतिथेय । २ राजा दिवोदास की उपाधि । उ०—राजा दिवोदास अतिथियों का ऐसा स्वागत करता था कि उसे अतिथिग्व की उपाधि दी गई थी ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ५६ ।

अतिथिदेव—वि० [सं०] अतिथि को देवता के समान जानने और माननेवाला [को०] ।

अतिथिद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] अतिथि के प्रति घृणा का भाव [को०] ।

अतिथिधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] आतिथ्य प्राप्त करने का अधिकार [को०] ।

अतिथिधर्मी—वि० [सं० अतिथिधर्मिन्] आतिथ्य का अधिकारी [को०] ।

अतिथिपति—संज्ञा पुं० [सं०] आतिथेय । मेजबान [को०] ।

अतिथिपूजन —संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिथिपूजा' । उ०—अतिथिपूजन भली भाँति हुई (था) और चलते समय मधुकर के हाथ गरम कर दिए ।—श्यामा०, पृ० ७६

अतिथिपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिथि का आदर सत्कार । मेहमानदारी । अतिथिसत्कार ।

विशेष—यह पंचमहायज्ञों में से एक है और गृहस्थ के किये नित्य कर्तव्य कहा गया है ।

अतिथिभवन—संज्ञा पुं० [सं० अतिथि + भवन] दे० 'अतिथिगृह' ।

अतिथियज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] अतिथि का आदर सत्कार जो पंचमहायज्ञों में पाँचवाँ है । नृयज्ञ । अतिथिपूजा । मेहमानदारी ।

अतिथिशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिथिगृह' [को०] ।

अतिथिसंविभाग—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार चार शिक्षाव्रतों में से एक जिसमें बिना अतिथि को दिए भोजन नहीं करते ।

विशेष—इसमें पाँच अतिचार हैं—(१) सचित निक्षेप (२) सचित्त पीहण (३) कालातिचार (४) परव्यपदेश मत्सर और (५) अन्योपदेश ।

अतिथिसत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] अभ्यागत अतिथि की आवभगत । मेहमान की खातिरदारी [को०] ।

अतिथिसत्क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिथिसत्कार' ।

अतिथिसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिथिसत्कार' ।

अतिदंतुर—वि० [सं०] जिसके दाँत अधिक बड़े हों या मुँह से बाहर निकले हों [को०] ।

अतिदर्प[1]—वि० [सं०] अतिशय अभिमानी [को०] ।

अतिदर्प[2]—संज्ञा पुं० १ अत्यधिक गर्व या अभिमान । २ एक सर्प [को०] ।

अतिदर्शी— वि० [सं० अतिदर्शिन्] अधिक दूरदेश । अत्यंत दूरदर्शी [को०] ।

अतिदाता—संज्ञा पुं० [सं० अतिदातृ] अत्यधिक दान देनेवाला व्यक्ति [को०] ।

अतिदान—संज्ञा पुं० [सं०] १ अत्यधिक दान । २ अति उदारता [को०] ।

अतिदाह—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक ताप या जलन [को०] ।

अतिदिष्ट—वि० [सं०] १ जिसमें या जिसका अतिदेशन हुआ हो । २ जो अवधि, क्षेत्र, सीमा आदि से आगे बढ़ा हुआ हो । ३ प्रभावयुक्त । प्रभावित । ४ आकृष्ट । खिंचा हुआ । ५ किसी अन्य की जगह पर रखा हुआ [को०] ।

अतिदीप्य[1]—वि० अतिशय प्रकाशमान [को०] ।

अतिदीप्य[2]— संज्ञा पुं० लाल चित्रक का वृक्ष [को०] ।

अतिदुःसह—वि० [सं०] जिसका सहना अत्यंत कठिन हो । असह्य [को०] ।

अतिदुर्गत—वि० [सं०] जिसकी बहुत बुरी गति हो । अत्यंत दुर्दशाग्रस्त [को०] ।

अतिदुर्धर्ष—वि० [सं०] १ जिसका दमन करना बहुत कठिन हो । २ अतिप्रबल । प्रचंड । बहुत उग्र । अत्यधिक उद्दंड [को०] ।

अतिदूर—वि० [सं०] देश, काल या संबंध आदि के विचार से बहुत दूरी या अंतर पर [को०]

अतिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ या देवता अर्थात् विष्णु, शिव ।

अतिदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक स्थान के धर्म या नियम का दूसरे स्थान पर आरोपण । २ वह नियम जो साधारण नियम से

कुछ विशेष स्थानों में काम आवे। वह नियम जो अपने निर्दिष्ट विषय के अतिरिक्त दूसरे विषयों में भी काम आए। ३ विस्तारण (को०)। ४ भिन्न तथा विरोधी विषयों या वस्तुओं में कुछ विशेष तत्वों की होनेवाली समानता या सादृश्य। (को०)

विशेष—यह अतिदेश शास्त्र, कार्य, निमित्त, व्यपदेश और रूपभेद से पाँच प्रकार का कहा गया है। जैमिनि मीमासासूत्र के सातवें और आठवें अध्याय में इसका विस्तृत विवेचन है।

अतिदेशन—संज्ञा पुं० [सं०] अतिदेश करने की क्रिया या भाव [को०]।

अतिदोष—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत बडा अवगुण या अपराध [को०]।

अतिद्वय—वि० [सं०] १ दोनों से आगे बढा हुआ। २. अद्वितीय। अतुलनीय [को०]।

अतिधन्वा—संज्ञा पुं० [सं० अतिधन्वन्] १. अद्वितीय धनुर्धर या योद्धा। २ वह व्यक्ति जो मरुस्थल का अतिक्रमण कर गया हो। ३ एक वैदिक आचार्य का नाम [को०]।

अतिधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] उत्कृष्ट धर्म [को०]।

अतिधृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उन्नीस वर्ण के वृत्तों की संज्ञा। जैसे—शार्दूलविक्रीडित। २ उन्नीस की सख्या (को०)।

अतिधेनु—वि० [सं०] अपनी गायों के कारण अत्यंत प्रसिद्ध [को०]।

अतिनाठ—संज्ञा पुं० [सं०] सकीर्ण नामक मिश्रित राग का एक भेद।

अतिनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] हिरण्याक्ष दैत्य के नौ पुत्रों में से एक।

अतिनाष्ट्र—वि० [सं०] भय से परे। खतरे से बाहर [को०]।

अतिनिद्र—वि० [सं०] १ अत्यंत निद्रालु। २ बिना निद का। निद्राहीन [को०]।

अतिनिर्हारी—वि० [सं०] बहुत ही आकर्षक (गंध) [को०]।

अतिनु—वि० [सं०] नौका से पृथ्वी पर उतरा हुआ [को०]।

अतिनौ—वि० [सं०] दे० 'अतिनु' [को०]।

अतिपचा—संज्ञा स्त्री० [सं० अति+पञ्चा पाँच] वर्ष की वय पूरी करनेवाली लडकी [को०]।

अतिपथ—संज्ञा पुं० [सं० अतिपन्थ] सन्मार्ग। अच्छी राह। सुपथ।

अतिपटीक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक के अंतर्गत पर्दे के उठाने या न उठाने का परित्याग [को०]।

अतिपतन—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अतिपात'। २. सीमा से बाहर उडना (को०)। २ गिरना (को०)। ३ अतिक्रमण (को०)। ४ भूल [को०]।

अतिपतित—वि० [सं०] १ अतिक्रांत। २ मर्यादा से च्युत। ३ भूला हुआ [को०]।

अतिपत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १ अतिक्रमण। २ समय का बीत जाना। ३ कार्य को पूर्ण न करना [को०]।

अतिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद वृक्ष [को०]।

अतिपथी—संज्ञा पुं० [सं० अति+पथिन्] सामान्य मार्ग से उत्तम मार्ग। सन्मार्ग [को०]।

अतिपद—वि० [सं०] १ पदरहित। जिसके पैर न हों। २. वर्णवृत के अनुसार अधिक पदवाली। जैसे, अतिपदा गायत्री या जगती [को०]।

अतिपन्न[1]—वि० [सं०] १ अतिक्रांत। २ विस्मृत। ३ बीता हुआ [को०]।

अतिपर[1]—वि० [सं०] शत्रुओं को जीतनेवाला। जिसने अपने शत्रुओं को परास्त किया हो। शत्रुजित।

अतिपर[2]—संज्ञा पुं० भारी शत्रु। बढा चढा प्रतिद्वंद्वी।

अतिपरोक्ष—वि० [सं०] १ दृष्टि से बहुत दूर। अदृश्य। २ जो गुप्त न हो। प्रकट [को०]।

अतिपाडुकवला—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिपाण्डुकम्बला] जैन मतानुसार सिद्धशिला के दक्षिण के सिंहासन का नाम जिसपर तीर्थंकर बैठते है।

अतिपात—संज्ञा पुं० [सं०] १ अतिक्रम। अव्यवस्था। गडबडी। २. बाधा। विघ्न। हानि। ३ बीतना। व्यतीत होना (काल या समय)। उ०—विद्यार्जन के लिये प्राणपण से अतिपात-अर्थ आयु का किया।—अनामिका, पृ० १६६। ४ उपेक्षा। दुर्व्यवहार। (को०)। ५ विरोध (को०)। ६ लगातार होना या गिरना (को०)। ७. विध्वस। नाश (को०)।

अतिपातक—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र में कहे हुए नौ पातकों में सबसे बडा पातक।

विशेष—पुरुष के लिये माता, बेटी और पतोहू के साथ गमन और स्त्री के लिये पुत्र, पिता और दामाद के साथ गमन अतिपातक है।

अतिपातित[1]—वि० [सं०] १ स्थगित। रोका हुआ। २ पूरी तरह से तोडा हुआ [को०]।

अतिपातित[2]—संज्ञा पुं० हड्डी का पूरी तरह टूट जाना [को०]।

अतिपाती—वि० [सं० + अतिपातिन्] १. अतिपात करनेवाला। २ गति में आगे बढ जानेवाला [को०]।

अतिपात्य—वि० [सं०] कुछ विलंब से करने योग्य। स्थगित कर देने योग्य [को०]।

अतिपाप—वि० [सं० अति + पाप] महापापी। उ०—कौन हूँ मुझ सा पतित अतिपाप।—साकेत, पृ० १८१।

अतिपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] महापुरुष। वीर पुरुष [को०]।

अतिपूरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिपुरुष' [को०]।

अतिप्रकाश—वि० [सं०] १. प्रसिद्ध प्राप्त। अत्यंत प्रसिद्ध। २ बुरे कार्यों के लिये मशहूर। कुख्यात [को०]।

अतिप्रकृत—वि० [सं०] प्रकृत या सामान्य रूप से अधिक बढा हुआ [को०]।

अतिप्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० अतिप्रबन्ध] अविच्छिन्नता। निरतरता [को०]।

अतिप्रभंजनवात—संज्ञा पुं० [सं० अतिप्रभञ्जनवात] अत्यंत प्रचंड और तीव्र वायु जिसकी गति एक घंटे में ४० या ५० कोस होती है।

अतिप्रमाण—वि० [सं०] १. प्रमाण से परे। जो प्रमाण का अतिक्रमण कर गया हो। २ बहुत अधिक प्रमाणयुक्त [को०]।

अतिप्रवृद्ध—वि० [सं०] अत्यधिक अहंकारी। २ बहुत अधिक बढा हुआ [को०]।

अतिप्रश्न--[पु० स०] अमर्यादित प्रश्न। उपयुक्त उत्तर प्राप्त होने पर भी किया गया प्रश्न। अनावश्यक प्रश्न [को०]।

अतिप्रसग--सज्ञा पु० [स० अतिप्रसङ्ग] १ अत्यधिक आसक्ति २ बहुत ही घनिष्ठ सबध। ३ धृष्टता। ढिठाई। अशिष्टता। ४ किसी नियम की अतिव्याप्ति। ५ प्रचुरता। आधिक्य। विस्तार [को०]।

अतिप्रसक्ति--सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अतिप्रसग' [को०]।

अतिप्राण--सज्ञा पुं० [स०] असामान्य जीवन। असाधारण व्यक्तित्व [को०]।

अतिप्रौढा--सज्ञा स्त्री० [स०] विवाह करने योग्य लडकी। युवावस्था प्राप्त कन्या [को०]।

अतिबरवै--सज्ञा पु० [सं० अति+हिं० बरवै] बरवै छद का एक भेद।
विशेष--इसके पहले और तीसरे चरणो मे बारह तथा दूसरे और चौथे चरणो मे नौ मात्राएँ होती हैं। इसके विषम पदो के आदि मे जगण न आना चाहिए और सम पदो के अत का वर्ण लघु होना चाहिए।

अतिबरसण(पु)--सज्ञा पुं० [स० अतिवर्षण] मेघमाला। घटा (डिं०)।

अतिबल[१]--वि० [स०] प्रबल। प्रचड। बली। उ०--नारी अतिबल होत है, अपने कुल को नास।--गिरधर (शब्द०)।

अतिबल[२]--सज्ञा पु० [स०] १ अत्यधिक शक्ति। २ शक्तिसपन्न सेना [को०]।

अतिबला--सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्राचीन युद्धविद्या।
विशेष--इस विद्या के सीखने से श्रम और ज्वर की बाधा का भय नही रहता था और पराक्रम बढता था। विश्वामित्र ने इसे रामचद्र को सिखाया था।
२ एक ओषधि। कँगही या ककही नामक पौधा।

अतिबात--सज्ञा पु० [स० अतिवात] तेज हवा। तूफान। उ०--प्रतिमा रुदहिं पविपात नभ अतिबात बह डोलति मही।--मानस ६।१००।

अतिबालक[१]--वि० [स०] बालको जैसा। बच्चो जैसा। बाल्य [को०]।

अतिबालक[२]--सज्ञा पु० छोटी वय का बालक। शिशु [को०]।

अतिबाला--सज्ञा स्त्री० [स०] दो वर्ष की गाय (को०)।

अतिबाहु[१]--वि० [स०] १. असाधारण बाहोवाला। आजानुबाहु [को०]।

अतिबाहु[२]--सज्ञा पु० १ चौदहवें मन्वतर के एक ऋषि का नाम। २ एक गधर्व का नाम [को०]।

अतिब्रह्मचर्य[१]--वि० [स०] ब्रह्मचर्य व्रत का अतिक्रमण करनेवाला। ब्रह्मचर्य व्रत को तोडनेवाला [को०]।

अतिब्रह्मचर्य[२]--सज्ञा पु० [स०] ब्रह्मचर्य व्रत का अत्यधिक पालन [को०]।

अतिभर--सज्ञा पु० [सं०] १ बहुत अधिक बोझ। उ०--मति डिग परै दबै सब ब्रज जन भयो है हाथ पै अतिभर।--नंद० ग्र०, पृ० ३६२। २ दे० 'अतिभार' [को०]।

अतिभव--सज्ञा पुं० [स०] आगे बढ जाना। पराजित करना। विजय करना [को०]।

अतिभार--सज्ञा पु० [स०] १ अत्यधिक बोझ। २ गति। चाल। ३ वाक्य की अस्पष्टता [को०]।

अतिभारग[१]--वि० [स०] अधिक मात्रा मे बोझ ढोनेवाला [को०]।

अतिभारग[२]--[स०] खच्चर [को०]।

अतिभारारोपण--सज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार पशुओ पर अधिक बोझ लादने का अत्याचार।

अतिभारिक--वि० [सं०] बहुत भारी [को०]।

अतिभी--सज्ञा स्त्री० [स०] इद्र के वज्र की ज्वाला। विद्युत की चमक [को०]।

अतिभू[१]--वि० [स०] सबको पार कर जानेवाला [को०]।

अतिभू[२]--सज्ञा पु० [सं०] १ विष्णु का एक नाम। २ दे० 'अतिभव' [को०]।

अतिभूमि--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधिकता। २ श्रेष्ठता। ३ मर्यादा का अतिक्रमण। ४ अधिक विस्तृत भूमि [को०]।

अतिभोग--सज्ञा स्त्री० [स०] १ उपयुक्त या नियत समय के अतिरिक्त भी किसी वस्तु अथवा विषय का उपभोग। २ स्वत्व की भाँति किसी सपत्ति का बहुत दिनो तक उपयोग [को०]।

अतिभोजन--सज्ञा पु० [स०] आवश्यकता से अधिक खाना। पेटूपन [को०]।

अतिमगल्य[१]--वि० [स० अतिमङ्गल्य] अत्यधिक शुभ [को०]।

अतिमगल्य[२]--सज्ञा पु० बिल्व वृक्ष [को०]।

अतिमत--सज्ञा पुं० [स०] सर्वमान्य समझा जानेवाला विचार या सिद्धात [को०]।

अतिमति[१]--वि० [स०] अत्यधिक घमडी। अहकारी। उ०--जौ अतिमति चाहसि सुगति तौ तुलसी करु प्रेम।--स० सप्तक, पृ० २०।

अतिमति[२]--सज्ञा स्त्री० १ अहकार। अत्यधिक गर्व। २ हठ [को०]।

अतिमध्यदिन--सज्ञा पुं० [स० अतिमध्यन्दिन] प्रखर मध्याह्न। खडी दुपहरी [को०]।

अतिमर्त्य--वि० [स०] १ इस लोक से परे। अलौकिक। २ मानवीय शक्ति मे परे। अमानुषिक [को०]।

अतिमर्श--सज्ञा पु० [स०] अत्यधिक सपर्क। अत्यत निकट का सबध [को०]।

अतिमास--वि० [स०] अत्यधिक मासवाला। [को०]।

अतिमा--सज्ञा स्त्री० [स० अतिमान] अपरिमेय वह मन स्थिति जो आज के भौतिक, मानसिक, सास्कृति परिवेश को अतिक्रम कर चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित हो। उ०--यह अतिमा, तन मे जा बाहर, जगजीवन की रज लिपटाकर।--अतिमा, पृ० ४४।

अतिमात्र--वि० [सं०] अतिशय। बहुत। ज्यादा। मात्रा से अधिक।

अतिमान[१]--वि० [स०] अपरिमेय। अति विस्तृत [को०]।

अतिमान[२]--सज्ञा पु० [स०] दे० 'अतिमति' [को०]।

अतिमानव—संज्ञा पुं० [सं०] अलौकिक शक्ति तथा गुणों से संपन्न मनुष्य [को०]।

अतिमानवी—वि० [सं० अतिमानव+ई (प्रत्य०)] मानव से संबंध न रखनेवाली। अलौकिक। देवी। उ०—उनकी अत्यंत हार्दिक नम्रता अतिमानवी थी।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २५६।

अतिमानुष[1]—वि० [सं०] मनुष्य की शक्ति से बाहर। अमानुषी। दैवी

अतिमानुष[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिमानव' [को०]।

अतिमाय—वि० [सं०] जो मायावी न हो। माया से रहित। वीतराग मायातिक्रांत [को०]।

अतिमित[1]—वि० [सं०] अपरिमित। अतुल। बेअंदाज। बहुत अधिक। बेहिसाब। बेठिकाना।

अतिमित[2]—वि० [सं०] जो तिमित या गीला न हो [को०]।

अतिमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत घनिष्ठ मित्र। २ अत्यधिक शुभ ग्रह [को०]।

अतिमिर्मिर—वि० [सं०] तेजी से पलकें गिरानेवाला [को०]।

अतिमुक्त[1]—वि० [सं०] १ जिसकी मुक्ति हो गई हो। निर्वाणप्राप्त। २ निष्फल। विषयवासनारहित। वीतराग।

अतिमुक्त[2]—संज्ञा पुं० १ माधवी लता। २ तिनिश। तिरिच्छ। ३ मरुआ का पौधा।

अतिमुक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिमुक्त[2]' [को०]।

अतिमुक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] परम निर्वाण। मोक्ष [को०]।

अतिमुशल—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नक्षत्र में मंगल अस्त हो और उसके सत्रहवें या अठारहवें नक्षत्र से अनुवक्र हो तो उस वक्र को अतिमुशल कहते हैं।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इससे चोर और शस्त्र का भय तथा अनावृष्टि होती है।

अतिमूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में आत्रेय मत के अनुसार छह प्रकार के प्रमेहों में से एक। बहुमूत्र।

विशेष—इसमें अधिक मूत्र उतरता है और रोगी क्षीण होता जाता है। इसे बहुमूत्र भी कहते हैं।

अतिमैथुन—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यधिक संभोग [को०]।

अतिमृत्यु—संज्ञा पुं० [सं०] मोक्ष। मुक्ति।

अतिमोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सुगंध की बहुत अधिक मात्रा। २ नवमल्लिका। नेवारी। मोगरी।

अतियव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जौ [को०]।

अतियात—वि० [सं०] बहुत तेज चलनेवाला। तीव्र गतिवाला [को०]।

अतियोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ अधिकता। अतिशयता। २. किसी मिश्रित औषधि में किसी द्रव्य की नियत मात्रा से अधिक मिलावट।

अतिरंजन—संज्ञा पुं० [सं० अतिरंजन] दे० 'अतिरंजना'।

अतिरंजना—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिरंजना] अत्युक्ति। बढ़ा चढ़ाकर कहने की रीति।

अतिरंजित—वि० [सं० अतिरञ्जित] १ अतिरंजना से युक्त। अत्युक्तिपूर्ण। उ०—वह अतिरंजित सी तूलिका चितेरी सी फिर भी कुछ कम थी।—लहर, पृ० ७१। २ अत्यंत रागमय। उ०—देखा मनु ने वह अतिरंजित विजन विश्व का नव एकांत।—कामायनी, पृ० १४।

अतिरक्त—वि० [सं०] १ बहुत अधिक लाल। २ अत्यधिक अनुरक्त [को०]।

अतिरक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की एक जीभ का नाम। अग्नि की सात जीभों में से एक। [को०]।

अतिरथ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिरथी' [को०]।

अतिरथि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अतिरथिन्] दे० 'अतिरथी'। उ०—अमरन करि जु न जीते जाहीं। भीषमादि अतिरथि जिहि माहीं।—नंद ग्रं०, पृ० २१६।

अतिरथी—संज्ञा पुं० [सं० अतिरथिन्] रथ पर चढ़कर लड़नेवाला योद्धा। वह जो अकेले रथियों से लड़ सके। उ०—अतिरथी महारथी सरब कालानल चारा।—राम० धर्म० पृ० १४७।

अतिरभस—संज्ञा पुं० [सं०] असामान्य गति। अत्यधिक शीघ्रता [को०]।

अतिरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विभिन्न प्रकार के पौधों के नाम जैसे, मूर्वा, रास्ना और क्लीतनक [को०]।

अतिराग—संज्ञा पुं० [सं०] प्रबल उत्सुकता [को०]।

अतिरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का एक गौण अंग। २ वह मंत्र जो अतिरात्र यज्ञ के अंत में गाया जाय ३ चाक्षुष मनु के एक पुत्र का नाम। ४ मध्य रात्रि।

अतिराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराण के अनुसार एक नाग या सर्प।

अतिरिक्त[1]—क्रि० वि० [सं०] सिवाय। अलावा। जैसे—इसे हमारे अतिरिक्त कोई नहीं जानता (शब्द०)।

अतिरिक्त[2]—वि० १ अधिक। ज्यादा। बढ़ती। शेष। बचा हुआ। जैसे खाने पहनने से अतिरिक्त धन को अच्छे काम में लगाओ (शब्द०)। २ न्यारा। अलग। जुदा। भिन्न। जैसे,—जो सब में पूर्णपुरुष और जीव से अतिरिक्त है वही जगत् का बनानेवाला है (शब्द०)।

अतिरिक्तकवला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मत के अनुसार सिद्धशिला के उत्तर का सिंहासन जिसपर तीर्थंकर बैठते हैं।

अतिरिक्तपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह विज्ञापन समाचार या सूचना आदि जो अलग से छापकर किसी समाचार पत्र के साथ बाँटा जाय। विशेष पत्र। क्रोडपत्र।

अतिरिक्तलाभ—संज्ञा पुं० [सं० अतिरिक्त+लाभ] वह लाभ जो नियत या उचित मात्रा से अधिक हो।

अतिरुचिर—वि० [सं०] अत्यधिक प्रिय [को०]।

अतिरुचिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिजगती और चूडिलिका नामक दो वृत्त [को०]।

अतिरूक्ष[1]—वि० [सं०] १ बहुत रूखा। २ क्रूर। ३ प्रेमहीन। ४ अत्यधिक स्नेही [को०]।

अतिरूक्ष[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का अन्न [को०]।

अतिरूप¹—वि० [सं०] १ आकृतिहीन, जैसे वायु। २ परम रूपवान। अत्यंत सुंदर। ३. रूप से परे, जैसे ईश्वर [को०]।

अतिरूप²—संज्ञा पुं० अद्वितीय सौंदर्य [को०]।

अतिरेक—संज्ञा पुं० [सं०] १ आवश्यकता से अधिक होने का भाव, गुण या स्थिति। २ आधिक्य। अतिशयता। उ०—प्राणों मे विस्मृति है उर मे सुख श्री का अतिरेक। ३ भेद। अंतर (को०)।

अतिरोग—संज्ञा पुं० [सं०] राजयक्ष्मा। क्षयी रोग।

अतिरोमश¹—वि० [सं०] बहुत अधिक बालोंवाला [को०]।

अतिरोमश²—वि० १ एक प्रकार का जंगली बकरा। २ एक तरह का बड़ा बंदर [को०]।

अतिरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन। जिंदगी।

अतिलंघन—संज्ञा पुं० [सं० अतिलङ्घन] १ दीर्घ काल तक का उपवास। २ अतिक्रमण। उल्लंघन [को०]।

अतिलंघी—वि० [सं० अतिलङ्घिन्] भूल करनेवाला (को०)।

अतिलोमश—वि०, संज्ञा पुं० [संज्ञा] दे० 'अतिरोमश' [को०]।

अतिलोमशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीलबुट्टना, शखवेल नाम का पौधा [को०]।

अतिलौल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्कट इच्छा। अतिलोभ। अति-चापल्य। २ जैन सिद्धांत के अनुसार भोग के समय अधिक आसक्ति। उ०—भोगोपभोग व्रत के भी पाँच अतिचार हैं—अनुप्रेक्षा, अनुस्मृति, अतिलौल्य, अतितृष्णा और अनुभव। —हिंदू० सभ्यता, पृ० २३१।

अतिवत(पु)—वि० [सं०अत्यंत, प्रा० अतिअंत, अतिवंत] दे० 'अत्यंत'। उ०—फिरि वेपिय रवन्न मुष। अतिवंत दुषी दुष मानी मुष।—पृ० रा०, ६१।२०९५।

अतिवक्ता—वि० [सं० अतिवक्तृ] बहुत अधिक बोलनेवाला। बक-वादी [को०]।

अतिवक्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवल के मत से बुध ग्रह की चार गतियों मे से एक।

विशेष—इसका एक राशि पर वर्तमान काल २४ दिन का होता है और यह धन का नाश करनेवाली मानी जाती है।

अतिवय—वि० [सं० अतिवयस्] १ अतिशय वृद्ध २ पुरानी वय का। ३ कई वर्षों आगे का [को०]।

अतिवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्षमा करने योग्य अपराध। २ दंड से छुटकारा। ३ अधिक आगे बढ जाने की क्रिया या भाव। ४ किसी वस्तु का बहुत अधिक मात्रा मे होनेवाला उपयोग या व्यवहार [को०]।

अतिवर्ती—वि० [सं० अतिवर्तिन्] १ अतिक्रमण करनेवाला। २ सबसे आगे बढ जानेवाला। ३ क्षम्य अपराध के दोष-वाला [को०]।

अतिवर्तुल¹—वि० [सं०] अत्यधिक गोल [को०]।

अतिवर्तुल²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का अन्य। कलाय [को०]।

अतिवात—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक वेगपूर्ण वायु। प्रचंड आँधी [को०]।

अतिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ खरी बात। सच्ची बात। २. परुष वचन ३. बढ़ी चढ़ी बात। डींग। ४. औचित्य या मर्यादा का अतिक्रमण करके जाने का सिद्धांत। उ०—छोडकर जीवन के अतिवाद मध्य पथ से लो सुगति सुधार।—लहर, पृ० १३।

अतिवादिक—वि० [सं०] अतिवाद संबंधी [को०]।

अतिवादी—वि० [सं० अतिवादिन्] १ सत्यवक्ता। खरी बात कहने-वाला। २ कटुवादी। ३ बढ बढकर बात करनेवाला। डींग मारनेवाला। ४ पर पक्ष का खंडन कर अपने मत को स्थापित करनेवाला (को०)।

अतिवास—संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध के एक दिन पूर्व किया जानेवाला उपवास [को०]।

अतिवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूक्ष्म शरीर का अन्य शरीर मे प्रवेश करना २ परलोकवास। ३. आवश्यकता से अधिक पानी को बाहर निकालनेवाली नाली [को०]।

अतिवाहक—संज्ञा पुं० [सं०] सूक्ष्म शरीर को अन्य देह के अंतर्गत प्रवेश कराने मे सहायक देवता। [को०]।

अतिवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बिताना। गुजारना। २ बहुत अधिक बोझ ढोना। ३. भेजना। [को०]।

अतिवाहिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ लिंग शरीर। २ पाताल निवासी।

अतिवाहित¹—वि० बिताया हुआ [को०]।

अतिवाहित²—संज्ञा पुं० दे० 'अतिवाहिक' [को०]।

अतिविकट¹—वि० [सं०] अतिशय भीषण [को०]।

अतिविकट²—संज्ञा पुं० दुष्ट हाथी [को०]।

अतिविपिन—वि० [सं०] १ घने जंगलोंवाला। २ प्रवेश मे कठिन या दुर्गम [को०]।

अतिविश्रब्ध नवोढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रसमंजरी के अनुसार वह मध्या नायिका जिसे पति पर अतिशय प्रेम हो।

विशेष—यह नायिका धैर्ययुक्त, अपराधी नायक के प्रति व्यंग्य और अधीर अपराधी नायक के प्रति कटु वचन का व्यवहार करती है।

अतिविष¹—वि० [सं०] अत्यधिक विषवाला। बहुत अधिक जहरीला। विषैला (साँप) (को०)।

अतिविष²संज्ञा स्त्री० दे० 'अतिविषा'।

अतिविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जहरीली ओषधि। अतीस।

अतिविस्तार—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक विस्तार। व्याप्ति [को०]।

अतिविवृंत—वि० [सं०] दृढ। पुष्ट। मजबूत।

अतिवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आगे बढ जाना। २ अतिक्रमण। ३ अतिरंजना। ४ वेग से निकलना (रक्त)

अतिवृद्ध¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अतिवृद्धा] १ बहुत अधिक बूढा २ अधिक वय का [को०]।

अतिवृद्ध²—संज्ञा पुं० तंत्र मे प्रयुक्त एक मंत्र [को०]।

अतिवृद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास चबाने तक मे असमर्थ अत्यधिक बूढी गाय [को०]।

अतिवृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ६ ईतियों मे से एक। पानी का बहुत बरसना जिससे खेती को हानि पहुँचे। अत्यंत वर्षा। उ०—अनावृष्टि अतिवृष्टि होति नहिं यह जानत सब कोई।—सू०, १०।४१६१।

अतिवेगित—वि० [सं०] १ तेजी से चलाया हुआ। २ तीव्र गति से चलनेवाला [को०]।

अतिवेध—संज्ञा पुं० [सं०] १ अधिक निकट का संबंध। २ दशमी और एकादशी का योग [को०]

अतिवेल—वि० [सं०] १. अत्यत। असीम। वेहद। २ मर्यादा का उल्लघन करनेवाला (को०)। ३ उद्वेलित (को०)।

अतिवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विलंब। देर। २ अनुपयुक्त समय [को०]।

अतिव्यथन—संज्ञा पुं० [सं०] तीव्र यातना अत्यधिक पीड़ा [को०]।

अतिव्यथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिव्यथन'।

अतिव्यय कर्म—संज्ञा पुं० [सं०] फजूलखर्ची का काम।

अतिव्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय मे एक लक्षण का एक दोष। किसी लक्षण या कथन के अंतर्गत लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य वस्तु के आ जाने का दोष।

विशेष—जहाँ लक्षण या लिंग लक्ष्य या लिंगी के सिवाय अन्य पदार्थो पर भी घट सके वहाँ 'अतिव्याप्ति' दोष होता है। जैसे—'चौपाए सब पिंडज है', इस कथन मे मगर और घडियाल आदि चार पैरवाले अंडज भी आ जाते है। अत इसमे अतिव्याप्ति दोष है।

अतिशक्करी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १५ वर्ण के वृत्तो की संज्ञा। इसके संपूर्ण भेद ३२७६८ हो सकते हैं। उ०—पद्रह अतिशक्करी सहस बत्तीस सात सै अठसठि कीय।—भिखारी० ग्र० भा० १, पृ० २३६।

अतिशय¹—वि० [सं०] बहुत। ज्यादा। अत्यत।

अतिशय²—संज्ञा पुं० प्राचीन शास्त्रकारो के अनुसार। एक अलकार।

विशेष—इसमे किसी वस्तु की उत्तरोत्तर संभावना या असंभावना दिखलाई जाती है जैसे—'ह्वै न, होय तो थिर नही, थिर तो बिन फलवान। सत्पुरुषन को कोप है, खल की प्रीति समान, (शब्द०)। कोई कोई इस अलकार को अधिक अलकार के अंतर्भुक्त मानते हैं।

अतिशयता—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिशयता] आधिक्य। प्राचुर्य। बहुतायत। उ०—स्वर्गिक सुख की सी आभास अतिशयता मे अचिर महान्।—पल्लव, पृ० ३२।

अतिशयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिशयता'।

अतिशयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रलेखा नामक एक छद [को०]

अतिशयालु—वि० [सं०] अति की ओर या आगे बढ़ जाने की चेष्टा करनेवाला [को०]।

अतिशयित—वि० [सं०] १ अत्यधिक। २. आगे बढ़ा हुआ [को०]।

अतिशयी—वि० [सं० अतिशयिन्] १ प्रधान। श्रेष्ठ। २ बहुत अधिक [को०]।

अतिशयोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी बात को बढ़ा चढाकर कहना। २, एक अलकार।

विशेष—इसमे उपमान से उपमेय का निगरण लोकसीमा का उल्लघन प्रधान रूप दिखाया जाता है। जैसे—'गोपिन के अँसुवान के नीर पनारे भए पुनि ह्वै गए नारे। नारे भए नदियाँ बढिकै, नदियाँ नद ह्वै गई काटि किनारे। बेगि चलो तो चलो ब्रज मे कवि तोख कहै ब्रजराज हमारे। वे नद चाहत सिंधु भए अरु सिंधु ते ह्वै हैं हलाहल मारे' (शब्द०)। इसके पाँच मुख्य भेद माने गए हैं, यथा—(१) रूपकातिशयोक्ति (२) भेदकातिशयोक्ति, (३) संबधातिशयोक्ति (४) असंबधातिशयोक्ति और (५) पचम भेद के अतर्गत अक्रमातिशयोक्ति, चपलातिशयोक्ति तथा अत्यतातिशयोक्ति है।

अतिशयोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलकार का भेद।

विशेष—इसमे यह दिखाया जाता है कि कोई वस्तु सदा अपने विषय मे एक है, दूसरी वस्तु मे उसकी उपमा नहीं दी जा सकती। जैसे—'कैसोदाम प्रगट प्रकास सो अकास पुनि, ईस हू के सीस रजनीस अवरेखिऐ। थल थल जल जल अचल अमल अति, कोमल कमल बहु बरन विसेखिऐ। मुकुर कठोर बहु नाहिनै अचल जस बसुधा सुधा हू निय अवरन लेखिऐ। एकरस एकरूप जाकी गीता सीता सुनि, तेरो सो वदन तैनो तोही विषै देखिऐ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १६२।

अतिशस्त्र—वि० [सं०] शस्त्र से भी तेज या बढा हुआ [को०]।

अतिशायन—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रधानता। श्रेष्ठता। २ आधिक्य। ३ आगे बढ जाना [को०]।

अतिशायी—वि० [सं० अतिशायिन्] १ प्रधान। श्रेष्ठ। २ अत्यधिक। आगे बढ जानेवाला [को०]।

अतिशायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृत्त [को०]।

अतिशीत—संज्ञा पुं० [सं०] ठंड का अतिक्रमण। भयकर जाडा [को०]।

अतिशीलन—संज्ञा पुं० [सं०] अभ्यास। मश्क। बारबार मनन या संपादन।

अतिशूद्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शूद्र जिसके हाथ का जल उच्चवर्ण के लोग न ग्रहण करें। अत्यज।

अतिशेष—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत थोडा बचा हुआ अंश [को०]।

अतिश्रुत—वि० [सं० अति+श्रुत] अतिप्रसिद्ध। विख्यात। उ०—माधव ब्रह्मचारी ने ज्योंही वह अतिश्रुत नाम सुना वह अचकचाकर अंबपाली की ओर ताकता रह गया।—वैं० न०, पृ० २५५।

अतिश्रेष्ठ—वि० [सं०] सर्वोत्कृष्ट। सबसे उत्तम [को०]।

अतिश्व—वि० [सं० अतिश्वन्] कुत्तो से तेज दौडनेवाला सूअर। उ०—जो सूकर अपनी द्रुतगति से कुत्तो को बहुत पीछे छोड देते थे वे अतिश्व पदवी के अधिकारी होते थे।—संपू० अभि० ग्र०, पृ० २४८।

अतिसंव—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा या आज्ञा का भंग करना। विधि या आदेशविरुद्ध आचरण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अतिसंधान—संज्ञा पुं० [सं० अतिसन्धान] १ अतिक्रमण। २ विश्वासघात। धोखा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अतिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिसन्धि] १ सामर्थ्य से अधिक सहायता देने की शर्त। २ एक मित्र की सहायता से दूसरे मित्र या सहायक की प्राप्ति [को०]।

अतिसंधित—वि० [सं० अतिसन्धित] १ अतिक्रांत। २ धोखा खाया हुआ। जिसके साथ विश्वासघात किया गया हो [को०]।

अतिसंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिसन्ध्या] सूर्योदय के कुछ पूर्व और सूर्यास्त के कुछ बाद का समय [को०]।

अतिस(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अतसी'। उ०—साँवरी स्याम मूरति सुवर अतिस पुहुप समान वर।—पृ० रा०, २।३४७।

अतिसक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यधिक अनुरक्ति। विशेष आशक्ति [को०]

अतिसय(पु)—वि० [सं० अतिशय] दे० 'अतिशय'। उ०—रहे मोनवी साहब जहाँ के अतिशय सज्जन।—प्रेमघन, पृ० २०८।

अतिसर[1]—वि० [सं०] अतिक्रमण करनेवाला। सबसे आगे बढ जानेवाला। नेता [को०]।

अतिसर[2]—संज्ञा पुं० प्रयास। चेष्टा। प्रयत्न [को०]।

अतिसर्ग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अभिलाषा पूर्ण करना। देना। २ इच्छानुसार काम करने की आज्ञा देना। ३ पृथक् करना [को०]।

अतिसर्ग[2]—वि० १ स्थायी। नित्य। २ मुक्त [को०]।

अतिसर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अधिक दान। दान। २ उदारता। त्याग (को०)। ३. धोखा। वचना (को०)। ४ पार्थक्य। विलगाव (को०)। ५ वध (को०)।

अतिसर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १ तीव्र गति। बहुत तेज चलना। २ गर्भाशय में बच्चे का इधर उधर हिलना डुलना [को०]।

अतिसर्व[1]—वि० [सं०] दे० 'अतिश्रेष्ठ' [को०]।

अतिसर्व[2]—संज्ञा पुं० ईश्वर [को०]।

अतिसातपन कृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं० अतिसान्तपनकृच्छ्र] प्रायश्चित के निमित्त एक व्रत।

विशेष—इसमें दो दिन गोमूत्र, दो दिन गोबर, दो दिन दूध, दो दिन दही, दो दिन घी और दो दिन कुशा का जल पीकर तीन दिन तक उपवास करने का विधान है।

अतिसावत्सर—वि० [सं०] एक वर्ष से अधिक का [को०]।

अतिसामान्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] जो बात वक्ता के अभिप्रेत अर्थ का अतिक्रमण या उल्लघन करे।

विशेष—न्याय के अनुसार यह ऐसे स्थलों पर प्रयुक्त होता है, जैसे—किसी ने कहा कि 'ब्राह्मणत्व विद्याचरण सपत्'। पर विद्याचरण सपत्ति कहीं ब्राह्मण में मिलती है और कहीं नहीं। इस प्रकार यह वाक्य वक्ता के अभिप्रेत अर्थ का उल्लघन करनेवाला है, अत अतिसामान्य।

अतिसामान्य[2]—वि० अत्यत साधारण। मामूली। सहज।

अतिसाम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मधुयष्टि नामक पौधा [को०]।

अतिसार—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक दस्त होने का एक रोग।

विशेष—इसमें मल बढकर उदराग्नि को मद करके शरीर के रसों को लेता हुआ बार बार निकलता है। इसमें आमाशय की भीतरी झिल्लियों में शोथ हो जाने के कारण लाया हुआ पदार्थ नहीं ठहरता और अँतड़ियों में से पतले दस्त के रूप में निकल जाता है। यह भारी, चिकनी, रूखी, गर्म पतली चीजों के खाने से, एक भोजन के पचे बिना फिर भोजन करने से, विष से, भय और शोक से, अत्यत मद्यपान से तथा कृमिदोष से उत्पन्न होता है। वैद्यक के अनुसार इसके छह भेद हैं—(१) वायुजन्य, (२) पित्तजन्य (३) कफजन्य (४) सनिपातजन्य, (५) शोकजन्य और (६) आमजन्य।

मुहा०—अतिसार होकर निकलना = दस्त के रास्ते निकलना। किसी न किसी प्रकार नष्ट होना। जैसे—'हमारा जो कुछ तुमने खाया है वह अतिसार होकर निकलेगा' (शब्द०)।

अतिसारकी—वि० [सं० अतिसारकिन्] अतिसार से पीडित। अतिसार का रोगी [को०]।

अतिसारी—वि० [सं० अतिसारिन्] दे० 'अतिसारकी' [को०]।

अतिसी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अतसी] तीसी। अलसी। उ०—अतिसी कुसुम तन, दीरघ चचल नैन, मानो रिस भरि के लरति जुग झखियाँ।—सूर०, १०।१३८५।

अतिसृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्कृष्ट रचना [को०]।

अतिसै(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अतिशय'। उ०—कह्यौ हरि कैं भय रवि ससि फिरैं। वायु वेग अतिसैं नहिं करैं।—सूर० ३।१३।

अतिसौरभ[1]—वि० [सं०] अत्यधिक सुगधित [को०]।

अतिसौरभ[2]—संज्ञा पुं० १ अत्यधिक सुगध। २ आम [को०]।

अतिसौहित्य—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक मात्रा में भोजन करना [को०]।

अतिस्थूल[1]—वि० [सं०] १ बहुत मोटा। २ मोटीबुद्धिवाला। मूर्ख।

अतिस्थूल[2]—संज्ञा पुं० मेद रोग का एक भेद जिसमें चरबी के बढने से शरीर अत्यत मोटा हो जाता है।

अतिस्पर्श[1]—वि० [सं०] १ कजूस। २ नीच प्रवृत्ति का अनुदार [को०]।

अतिस्पर्श[2]—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में उच्चारण करते समय जीभ और तालु का अत्यल्प स्पर्श [को०]।

अतिस्वप्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहुत अधिक स्वप्न देखना। २ अत्यधिक निद्रा [को०]।

अतिहत—वि० [सं०] १ पूर्णतया नष्ट किया हुआ। २ अचल। स्थिर [को०]।

अतिहसित—संज्ञा पुं० [सं०] हास के छह भेदों में से एक जिसमें हँसनेवाला ताली पीटे, बीच बीच में अस्पष्ट वचन बोले, उसका शरीर काँपे और उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े।

अतींद्रिय[1]—वि० [सं० अतीन्द्रिय] जो इंद्रियज्ञान के बाहर हो। जिसका अनुभव इंद्रियों द्वारा न हो। अगोचर। अप्रत्यक्ष। अव्यक्त। उ०—एक अतींद्रिय स्वप्नलोक का मधुर रहस्य उलझता था।—कामायनी, पृ० ३५।

अतींद्रिय[2]—संज्ञा पुं० १ आत्मा। २ प्रकृति। ३ मन [को०]।

अती—वि० [सं०] दे० 'अति'। [को०]।

अतीचार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिचार' [को०]।

अतीत[1]—वि० [सं०] १ गत। व्यतीत। बीता हुआ। गुजरा हुआ। भूत। उ०—चिंता करत हूँ मैं जितनी उस अतीत की, उस सुख की।—कामायनी, पृ० ६। २ निर्लेप। असग। विरक्त। पृथक्। जुदा। अलग। न्यारा। उ०—धनि धनि साँई तू बडा, तेरी अनुपम रीत। सकल भुवनपति साइयाँ ह्वै केर है अतीत।—कबीर (शब्द०)। ३ मृत। मरा हुआ।

अतीत²—क्रि० वि० परे। बाहर। उ०—गुन अतीत अविगत अविनासी सो व्रज मे खेलत सुखरासी।—सूर (शब्द०)।

अतीत(५)³—संज्ञा पुं० वीतराग सन्यासी। यति। विरक्त साधु। उ०—(क) अजर धान्य अतीत का, गृही करै जु अहार। निश्चय होय दरिद्री, कहै कवीर विचार। कवीर (शब्द०)। (ख अति सीतल अति ही अमल, सकल कामना हीन, तुलसी ताहि अतीत गनि, वृत्ति सांति लयलीन।—तुलसी ग्र० पृ० १४।

अतीत(५)⁴—संज्ञा पुं० [सं० अतिथि] १ अभ्यागत। अतिथि पाहुन। मेहमान। उ०—आरत दुखी सीत भयभीता। आयो ऐसो गेह अतीता।—सवल (शब्द०)। २ सगीत मे वह स्थान जो सम से दो मात्राओ के उपरात आता है। यह स्थान कभी कभी सम का काम देता है। उ०—सुर स्रुति तान बँधान अमित अति सप्त अतीत अनागत आवत।—सूर०,१।१२६६। ३ तवले के किसी वोल या टुकडे की सम से आधी या एक मात्रा के पहले समाप्ति।

अतीतना¹(५)—क्रि० अ० [सं० अतीत] वीतना। गुजरना। गत होना। उ०—रोग-वियोग-सोक-सम-सकुल वडि वय वृथहि अतीति।—तुलसी ग्र०, पृ० ५७४।

अतीतना²(५)—क्रि० स० विताना। व्यतीत करना। विगत करना। छोडना। त्यागना। उ०—कृच्छ्र उपवास सव इद्रियन जीतही। पुत्र सिख लीन, तन जौ लगि अतीतही।—केशव (शब्द०)।

अतीति—संज्ञा स्त्री० [सं० अतीत] आधिक्य। प्राचुर्य। उ०—राजन की नीति गई पच प्रतीति गई, अव तौ अतीति सो अनीत होन लागी है।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४३२।

अतीथ¹(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अतिथि'। उ०—वधु कुवुद्धि पुरोहित लपट चाकर चोर अतीथ धुतारो।—इतिहास, पृ० २०१।

अतीथ²(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अतीत'। उ०—कहै गुलाल अतीथ राम गुन गाइया।—गुलाल०, पृ० ६०।

अतीम(५)—वि० [हिं०] दे० 'यतीम'। उ०—रहै गरीव अतीम होई तिनकौं कही फकीर। सत वाणी०, पृ० १३५७।

अतीव—वि० [सं०] अधिक। ज्यादा। वहुत। अतिशय। अत्यंत। उ०—हो के रुष्ट अत अतीव मन मे पाके वृथा ताप वे।—शकु० पृ० २१।

अतीस—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा।

विशेष—यह हिमालय के किनारे सिंध नदी से लेकर कुमाऊँ तक पाया जाता है। इसकी जड कई प्रकार की दवाओ मे काम आती है और खाने मे कुछ कडवी तथा चरपरी होती है। यह पाचक, अग्निसदीपक और विपघ्न है तथा कफ, पित्त, आम, अतिसार, खाँसी, ज्वर, यकृत और कृमि आदि रोगो को दूर करती है। वालरोगो के लिये यह वहुत उपकारी है। यह तीन प्रकार की होती है—(१) सफेद, (२) काली और (३) लाल। इनमें सफेद अधिक गुणकारी समझी जाती है।

पर्याय—विषा, अतिविषा, काश्मीरा, श्वेता, अरुणा, प्रविषा, उपविषा, घुणवल्लभा, शृ गी महौषध, भृ गी, श्वेतकदा, भगुरा, मृद्वी, शिशुभैषज्य, शोकापहा, श्यामकदा, विश्वा।

अतीसार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिसार'।

अतुग—वि० [सं०] जो ऊँचा न हो। ठिगना [को०]।

अतुद—वि० [सं०] जो हृष्ट पुष्ट न हो, क्षीणकाय [को०]।

अतुकात¹—[हिं० अ+तुक+अत] तुकरहित। जिसके अतिम चरणो का तुक या अनुप्रास न मिलता हो। उ०—प्रसाद जी हिंदी मे छायावाद के विधाता तो हैं ही, अतुकात कविता के आरभकर्ता भी वे ही हैं।—करुणा० (प्रका०)।

अतुकात²—संज्ञा पुं० [हिं० अ+तुक+अत] छदोवद्ध कविता जिसमे तुक या अनुप्रास न हो।

अतुर¹—वि० [सं०] १ जो धनदार न हो। २ अनुदार [को०]।

अतुर²(५)—वि० [हिं०] दे० 'आतुर'। उ०—प्राण जोडे हुकुम पावै अतुर। वारै भरथ आवै।—रघु०, पृ० ११६।

अतुर³(५)—वि० [हिं०] दे० 'अतुल'।—उ०—नव मुनि मान नरिंद सवद उच्चार अतुर वर।—पृ० रा०, ३५।१०४५।

अतुराई(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० आतुर+हिं० आई (प्रत्य०)] १ आतुरता। जल्दी। शीघ्रता। उ०—कीरति महरि लिवावन आई। जाहु न स्याम, करहु अतुराई।—सूर०। १।१३७५। २ घवराहट। हडवडी। ३ चचलता। चपलता। उ०—नैनन की अतुराई, वैनन की चतुराई गात की गोराई ना दुराति दुति चाल की।—केशव (शब्द०)।

अतुराना(५)—क्रि० अ० [सं० आतुर, हिं० अतुर से नाम०] आतुर होना। घवडाना। हडवडाना। जल्दी मचाना। अकुलाना। उ०—(क) तुरत जाइ लै आउ, उहाँ ते, विलव न करि मो भाई। सूरदास प्रभु वचन सुनतही हनुमत चल्यो अतुराई।—सूर०, ६।१४६। (ख) आए अतुराने, वाँधे वाने, जे मरदाने समुहाने।—सूदन (शब्द०)।

अतुरी(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतुरता'।

अतुल¹—वि० [सं०] १ जो तोला या कूता न जा सके। जिसकी तौल या अदाज न हो सके। २ अमित। असीम। अपार। वहुत अधिक। वेअदाज। उ०—आवत देखि अतुल वलसीवा।—तुलसी (शब्द०)। ३ जिसकी तुलना या समता न हो सके। अनुपम। वेजोड। अद्वितीय। उ०—मुनि रघुपति छवि अतुल विलोकी। भए मगन मन सके न रोकी।—मानस ७।३२।

अतुल²—संज्ञा पुं० १ केशव के अनुसार अनुकूल नायक का दूसरा नाम। उ०—ये गुण केशव जाहि मे, सोई नायक जान। अतुल, दक्ष, शठ, धृष्ट, पुनि, चौविध ताहि वखान।—केशव (शब्द०)। २ तिल का पेड। ३ तिलक। तिलपुष्पी। ४ कफ। श्लेष्मा। वलगम।

अतुलनीय—वि० [सं०] १ जिसका अदाजा न हो सके। अपरिमित। अपार। वेअदाज। वहुत अधिक। २ अनुपम वेजोड। वेजोड। अद्वितीय।

अतुलित—वि० [सं०] १ विना तौला हुआ। २ वे अदाज। अपरिमित। अपार। वहुत अधिक। उ०—वनचर देह धरी छिति माही। अतुलित वल प्रताप तिन पाही।—मानस, १।१८७।३ —असख्य। उ०—जो पै अलि अत इहै करिवे हो। तौ अतुलित अहीर अवलनि को हठि न हिये हरिवे हो।—तुलसी ग्र०, पृ० ४४४।

४ अनुपम। बेजोड। अद्वितीय। उ०—कहहिं परस्पर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघुभाई।—मानस २।२१३।

अतुल्य—वि० [सं०] १ असमान। असदृश। २ अनुपम। बेजोड। अद्वितीय। निराला।

अतुल्ययोगिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जहाँ कई वस्तुओं का समान धर्म कथन होने के कारण तुल्ययोगिता की संभावना दिखाई पड़ने पर भी किसी एक अभीष्ट वस्तु का विरुद्ध गुण बतलाकर उसकी विलक्षणता दिखलाई जाय वहाँ इस अलंकार की कल्पना कविराजा मुरारिदान ने की है। उ०—हय चले हाथी चले संग छोडि साथी चले, ऐसी चलाचली मे अचल हाडा ह्वै रह्यो।—भूषण ग्र०, पृ० १३३।

अतुष—वि० [सं०] भूसी रहित। बिना भूसी का [को०]।

अतुषार—वि० [सं०] जो ठंडा न हो। गर्म [को०]।

अतुषारकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अतुष्टि—संज्ञा स्त्री० [को०] अतृप्ति। असंतोष [को०]।

अतुष्टिकर—वि० [सं०] असंतोषजनक [को०]।

अतुहिन—वि० [सं०] जो ठंडा न हो। उष्ण [को०]।

अतुहिनकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अतुहिनधाम—संज्ञा पुं० [सं० अतुहिनधामन] दे० 'अतुहिनकर' [को०]।

अतुहिनरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतुहिनकर'।

अतुहिनरुचि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतुहिनरश्मि' [को०]।

अतूथ(पु)—वि० [सं० अति=अधिक+उत्थ=उठा हुआ] अपूर्व। उ०—देखौ सखि अकथ रूप अतूथ। एक अंबुज मध्य देखियत बीस दधिसुत जूथ।—सूर० परि०, ११६।

अतूल[1]—वि० [हिं०] दे० 'अतुल'। उ०—नेह उपजावन अतूल तिल फूल कैधौं, पानिय सरोवरी की उरमि उतंग है।—भिखारी ग्र० भा० १, पृ० १०१।

अतूल[2]—वि० [हिं०] दे० 'अतुल्य'। उ०—हित हरषत करषत बमन परपत उरज अतूल।—पद्माकर ग्र०, पृ० १६५।

अतूर्णाद—संज्ञा पुं० [सं०] तुरत का जन्मा बछड़ा [को०]।

अतृपत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अतृप्त'। उ०—अतृपत सुत जु छुधित तब भयौ। भाजत भाजि भवन दुरि गयौ।—नंद० ग्र०, पृ० २४६।

अतृप्त—वि० [सं०] १ जो तृप्त या संतुष्ट न हो। असंतुष्ट। जिसका मन न भरा हो। उ०—होकर अतृप्त तुम्हें देखने को नित्य नया रूप दिए देता हूँ पुराना छोड़ने के लिये।—झरना, पृ० ६४। २ भूखा। बुभुक्षित।

अतृप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] असंतोष। मन न भरने की अवस्था। उ०—यह अतृप्ति अधीर मन की क्षोभयुत उन्माद।—कामायनी पृ० ६१।

अतृष्ण—वि० [सं०] तृष्णारहित। निस्पृह। कामनाहीन। निर्लोभ।

अते(पु)—वि० [सं० अत्यंत] परम। अत्यधिक। उ०—अतेरूपमूरति परगटी पुनिपूनौ ससि सो खीन होइ घटी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ४१।

अतेज—वि० [सं० अतेजस्] १ तेजरहित। अंधकारयुक्त। मंद। धुँधला। २. हतश्री। प्रतापरहित।

अतेव—वि० [हिं०] दे० 'अतीव'। उ०—या विधा फिरै निकुंज कुंज पुंज भामरो। कामधेनु पाय रो रहै अतेव चामरो।—भिखारी ग्र०, भाग १, पृ० १३६।

अतोर—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० तोड=टूटना] जो न टूटे। अभंग दृढ़। उ०—जनु माया के बंधन अतोर।—गुमान (शब्द०)।

अतोल—वि० [हिं० अ+तोल] [स्त्री० अतोली] १ बिना तौला हुआ। बिना अंदाज किया हुआ। जो कूता न हो। उ०—साज सहित एक घुड़िला लैयो गैया दूध अतोली जू।—नंद ग्र०, पृ० ३३७। २ जिसकी तौल या अंदाज न हो सके। बेअंदाज। बहुत अधिक। उ०—चलै गोल गोली अतोली सनकै, मनो भौंर भौंरे उडाती भनकै।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०। ३ अतुल्य। अनुपम। बेजोड। उ०—परनि धरत मग धरनि धुजावैं धरि, तावै निज ऊपर अतोल बल धारे ते।—हम्मीर०, पृ० २३।

अतोषणीय—वि० [सं०] जो तोषणीय न हो [को०]।

अतौल—वि० [हिं०] दे० 'अतोल'।

अत्क—संज्ञा पुं० [सं०] १ पथिक। २ अवयव। अंग। ३ जल। ४ बिजली। ५ परिधान। पहनावा। ६ कवच। ७ घर का कोना [को०]।

अत्त[1](पु)—वि० [सं० आत्त] प्राप्त। उपलब्ध।

अत्त[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अति] अति। अधिकता। ज्यादती। उ०—यह कन्या फली नहीं, मुद्राराक्षस की विषकन्या हो गई। अत्त भी तो बडी भई।—भारतेंदु ग्रंथ, भाग १, पृ० ३६७।

अत्तवार‡—संज्ञा पुं० [सं० आदित्यवार प्रा० आइच्चवार, *आइत्तवार <इत्तवार <अतवार] रविवार। सप्ताह का पहला दिन।

अत्तव्य—वि० [सं०] खाने योग्य [को०]।

अत्ता[1]—संज्ञा पुं० [सं०] चराचर का ग्रहण करनेवाला। ईश्वर का एक नाम।

अत्ता[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जेठी बहिन। २ सास। माता। ३ मौसी। मातृष्वसा।

अत्तार—संज्ञा पुं० [अ०] १ गंधी। सुगंध या इत्र बेचनेवाला। २ यूनानी दवा बनाने और बेचनेवाला। उ०—परम पिता हमही वैद्यन के अत्तारन के प्रान।—भारतेंदु ग्र०, भाग १ पृ० ४७६।

अत्ति[1]—वि० [हिं० दे० 'अति']। उ०—ठिले अत्ति हैं मद्द मातंग माते। उमगंत तैयार तूरंग ताते।—पद्माकर ग्र० पृ० २८०।

अत्ति(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दे० 'अत्त[2]']।

अत्ति[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी बहन [को०]।

अत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अत्ति[3]'।

अत्तिवारे(पु)—वि० [हिं अति+वाले] अत्यंत साहस का काम करनेवाले। उ०—चटै हैं तिन्हों पैं महा वज्र मारे नगैं यो किलाएँ मनो अत्तिवारे। पद्माकर ग्र०, पृ० २८०।

अत्थ(पु)—संज्ञा [सं० अर्थ प्रा० अत्थ] प्रयोजन। हेतु। उ०—एकै रिपुन के जुत्थ जुत्थ करै उलत्थि बिन अत्थ ते।—पद्माकर ग्र०, पृ० २०।

अत्थडी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्थ, प्रा० अत्थ + डी० (प्रत्य०)]धन। संपत्ति। उ०—उधम हत्था अत्थडी काणा सुण निण कीत।—बाँकी० ग्र० भाग १, पृ० ५१।

अत्थवना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अथवना'। उ०—जो ऊगे सो अत्थवै फूलै सो कुम्हिलाय।—कबीर सा० सं०, पृ० ७८।

अत्थि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अस्ति] अस्तित्व में आने की स्थिति सत्ता [को०]।

अत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ वायु। २ सूर्य। ३ पथिक [को०]।

अत्नु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अत्न'

अत्यकुश—वि० [सं० अत्यङ्कुश] अंकुश को न माननेवाला। नियंत्रण में न रहनेवाला [को०]।

अत्यंत—वि० [सं० अत्यन्त]बहुत अधिक। बेहद। अतिशय। हद से ज्यादा।

अत्यंतग—वि०[सं० अत्यन्तग] बहुत तेज चलनेवाला। तीव्रगामी[को०]।

अत्यंतगत–वि० [सं० अत्यन्तगत] जो सदा के लिये चला गया हो या पृथक हो गया हो [को०]।

अत्यंतगति—संज्ञा स्त्री० [सं०अत्यन्तगति] पूर्णता [को०]।

अत्यंतगामी—वि० [सं० अत्यन्तगामिन्] १ अत्यधिक तेज चलनेवाला। २ बहुत अधिक [को०]।

अत्यंतता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आधिक्य। २ उग्रता। ३ प्रचंडता [को०]।

अत्यंततिरस्कृत अर्थ—संज्ञा पुं० [सं० अत्यन्ततिरस्कृत अर्थ] दे० 'अत्यंत तिरस्कृत वाच्यध्वनि'। उ०—अत्यंत तिरस्कृत अर्थ सदृश ध्वनि कंपित करना बार बार।—लहर, पृ० ३४।

अत्यंततिरस्कृत वाच्यध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं० अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य ध्वनि] एक ध्वनि जिसमें वाच्यार्थ का पूर्णतया त्याग होता है। [को०]।

अत्यंतनिवृत्ति—संज्ञा स्त्री० सं० [अत्यन्तनिवृत्ति] पूर्णतया मुक्त हो जाना। पूर्ण रूप से पृथक् हो जाना [को०]।

अत्यंतनिवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं० अत्यन्तभाव] किसी अवस्था में अभाव को न प्राप्त होनेवाला भाव। सदा बनी रहनेवाली सत्ता। अपरिमित अस्तित्व।

अत्यंतवासी—संज्ञा पुं० [सं० अत्यन्तवासिन्] आचार्य के समीप हमेशा रहनेवाला छात्र [को०]।

अत्यंतसंपर्क—संज्ञा पुं० [सं० अत्यन्त सम्पर्क] अत्यधिक संभोग [को०]।

अत्यंतसुकुमार[1]—वि० [सं० अत्यन्तसुकुमार] अतिशय कोमल [को०]

अत्यंतसुकुमार[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान्य [को०]।

अत्यंतातिशयोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० अत्यतिशयोक्ति] दे० अतिशयोक्ति'। उ०—अत्यंतातिसयोकति चीतौ। जहँ पूरब पर क्रम विपरीतौ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ४०।

अत्यंताभाव—संज्ञा पुं० [सं० अत्यन्ताभाव] १ किसी वस्तु का बिलकुल न होना। सत्ता की नितांत शून्यता। प्रत्येक दशा में अनस्तित्व २ वैशेषिक के अनुसार पाँच प्रकार के अभावों में से चौथा जो प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव और अन्योन्याभाव से भिन्न अर्थात् जो तीनों कालों में संभव न हो। जैसे—आकाशकुसुम, वंध्यापुत्र, शशविषाण में आदि। ३ बिलकुल कमी।

अत्यंतिक—वि० [सं० अत्यन्तिक] १ समीपी। नजदीकी। २ जो बहुत घूमे। घुमक्कड़। ३ बहुत चलनेवाला [को०]।

अत्यंतीन—वि० [सं० अत्यन्तीक] १ बहुत अधिक चलनेवाला। २ अत्यधिक तीव्र गति से चलनेवाला। ३ चिरकालव्यापी। चिरस्थायी [को०]।

अत्य(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अति] दे० 'अति'। उ०—कमलपत्र दृग मत्त हैं रैन रति के अत्य। प्रीतम लखि थकि नित रहैं यहै कहति हौं सत्य।—ब्रज ग्र०, पृ० ६३।

अत्यग्नि[1]—वि० [सं०] अग्नि से भी अधिक तापवाला [को०]।

अत्यग्नि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यधिक तेज पाचन शक्ति [को०]।

अत्यधिक—वि० [सं० अति + अधिक] बहुत ज्यादा। सीमा से आगे [को०]।

अत्यम्ल[1]—संज्ञा पुं० [सं० अति + अम्ल] १ इमली का पेड़। २ विषाबिन। ३ बिजौरा नीबू।

अत्यम्ल[2]—वि० बहुत खट्टा [को०]।

अत्यम्लपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रामचना या खटुआ नाम की बेल।

अत्यम्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली बिजौरा नीबू।

अत्यय—संज्ञा पुं० [सं०] १ मृत्यु। ध्वंस। नाश। २ अतिक्रमण। हद से बाहर जाना। ३ दंड। सजा। ४ कृच्छ्र। कष्ट। ५ दोष। ६ प्राचीन काल का एक प्रकार का अर्थदंड या जुर्माना।

अत्ययिक—वि० [सं०] दे० 'आत्ययिक'।

अत्ययी—वि० [सं० अत्ययिन्] १ अतिक्रमण करनेवाला। २ सबसे आगे बढ़ जानेवाला [को०]।

अत्यर्थ—वि० [सं०] उचित परिणाम से अधिक। अत्यधिक [को०]।

अत्यष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १७ वर्ण के वृत्तों की संज्ञा। शिखरिणी, पृथ्वी, हरिणी, मंदाक्रांता भाराक्रांता और मालाधार, आदि छंद इसके अंतर्गत हैं।

अत्यह्न—वि० [सं० अति + अह्न] एक दिन से अधिक समय का [को०]।

अत्याकार[1]—वि०[सं० अति = बड़ा + आकार] विशाल आकार का। भारी डीलडौलवाला [को०]।

अत्याकार[2]—संज्ञा पुं० १ अवज्ञा। २ घृणा। ३ निंदा। ४ विशाल डीलडौल [को०]।

अत्याग—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण। स्वीकार। उ०—श्रवन-सुखद भव-भय-हरन त्यागिन को अत्याग।—भारतेंदु ग्र०, भाग १, पृ० ४१४।

अत्यागी—वि० [सं० अत्यागिन्] दुर्गुणों को न छोड़नेवाला। विषयासक्त। दुर्व्यसनी।

अत्याचार—संज्ञा पुं० [सं०] १ आचार का अतिक्रमण। विरुद्धाचरण। अन्याय। निठुराई। ज्यादती। जुल्म। २ बुराचार। पाप। ३ आचार की अधिकता। पाखंड। ढोंग। ढकोसला। आडंबर।

अत्याचारी[1]—वि० [सं० अत्याचारिन्] १ अत्याचार करनेवाला। दुराचारी। अन्यायी। निठुर। जालिम। २ पाखंडी। ढोंगी। ढकोसलेबाज। धर्मध्वजी।

अत्याचारी[1]—संज्ञा पुं० वह जो अत्याचार करे। अन्यायी व्यक्ति।

अत्याज्य—वि० [सं०] १ न छोड़ने योग्य। जिसका त्याग उचित न हो। २ जो कभी छोड़ा न जा सके।

अत्यादित्य—वि० [सं०] सूर्य के पार जानेवाला [को०]।

अत्याधान—संज्ञा पुं० [सं०] १ रखने की क्रिया। २ अतिक्रमण। ३ होम की अग्नि को रक्षित न रखना [को०]।

अत्यानंद—संज्ञा पुं० [अत्यानन्द] आनंद का परम उत्कृष्ट आध्यात्मिक रूप। परमानंद [को०]।

अत्यानंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० अत्यानन्दा] वैद्यक के अनुसार योनियों का एक भेद।

विशेष—वह योनि जो अत्यंत मैथुन से भी संतुष्ट न हो। यह एक रोग है जिसमें स्त्रियाँ वंध्या हो जाती हैं। इसका दूसरा नाम 'रतिप्रीता' भी है।

अत्याय—संज्ञा पुं० [सं०] १ सीमा का उल्लंघन। मर्यादा का अतिक्रमण। अधिक आमदनी या लाभ [को०]।

अत्यायु—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का पात्रविशेष [को०]।

अत्यारूढ—वि० [सं०] बहुत ऊँचे पद पर पहुँचा हुआ। अत्यंत प्रसिद्ध [को०]।

अत्यारूढि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अत्यंत ऊँचा पद। २ अतिप्रसिद्धि [को०]।

अत्याल—संज्ञा पुं० [सं०] रक्तचित्रक नामक वृक्ष [को०]।

अत्यावाय—संज्ञा पुं० [सं०] राजद्रोहियों की अधिकता [को०]।

अत्याहित¹—वि० [सं०] असहमति के योग्य। अस्वीकार्य [को०]।

अत्याहित²—संज्ञा पुं० १ अरुचि। अप्रियता। २ संकट। ३ भय। ४ दुःसाहस [को०]।

अत्याहितकर्मा—वि० [सं० अत्याहित+कर्मन्] दुष्ट। नीच। दुराचारी [को०]।

अत्युक्त—वि० [सं०] बहुत बढ़ा चढ़ाकर कहा हुआ। अत्युक्तिपूर्ण।

अत्युक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अत्युक्था' [को०]।

अत्युक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करने की शैली। मुबालिगा। बढ़ावा। २ एक अलंकार जिसमें शूरता, उदारता आदि गुणों का अद्भुत और अतथ्य वर्णन होता है। जैसे—जाचक तेरे दान तें भए कल्पतरु भूप (शब्द०)।

अत्युक्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो वर्णों के वृत्तों की संज्ञा।

विशेष—इसके चार भेद कहे गए हैं। कामा, मही, सार और मधु।

अत्युग्र¹—वि० [सं०] अति प्रचंड। अतिशय भयानक [को०]।

अत्युग्र²—संज्ञा पुं० हींग [को०]।

अत्युग्रगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

अत्युत्तम—वि० [सं०] सबसे श्रेष्ठ। अधिक उत्कृष्ट [को०]।

अत्युपध—वि० [सं०] १ परीक्षित। अंदाजा हुआ। २ विश्वस्त [को०]।

अत्यूर्मि—वि० [सं०] सीमा का अतिक्रमण कर बहनेवाला [को०]।

अत्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहुत अधिक ऊहापोह। तर्क वितर्क २ अधिक जोर से बोलनेवाला पक्षी। मोर [को०]।

अत्यूहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीलिका या निर्गुंडी नामक पौधा [को०]।

अत्र¹—क्रि० वि० [सं०] यहाँ। इस स्थान पर।

अत्र²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अस्त्र, अप० अत्र] दे० 'अस्त्र'। उ०—सोहैं अत्र जोड़े जे न छोड़े सीम सगर की लगर लँगूर उच्च ओज की अतका में।—पद्माकर ग्रं० पृ० २२४।

अत्र³(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अतर'।

अत्र⁴(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] अँतड़ी।

अत्र⁵—संज्ञा पुं० [सं०] १ राक्षस। २ भोजन [को०]।

अत्रक—वि० [सं०] १ यहाँ का। २ इस लोक का। लौकिक। ऐहिक।

अत्रत्य—वि० [सं०] यहाँ का। यहाँवाला।

अत्रप—वि० [सं० अ=नहीं+त्रपा] निर्लज्ज। उदंड [को०]।

अत्रभवान्—वि० [सं०] [स्त्री० अत्रभवती] माननीय। पूज्य। श्रेष्ठ।

अत्रय(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अत्रि'। उ०—फिरभू किना वासर पाय। अत्रय तणो आश्रम आय।—रघु० रू०, पृ० १२२।

अत्रस्त—वि० [सं०] निर्भीक। भयरहित। निडर [को०]।

अत्रस्थ—वि० [सं०] यहाँ रहनेवाला। इस स्थान का। यहाँवाला। यहाँ उपस्थित रहनेवाला। यहाँ का।

अत्रस्नु—वि० [सं०] दे० 'अत्रस्त' [को०]।

अत्रास—वि० [सं०] दे० 'अत्रस्नु' [को०]।

अत्रि—संज्ञा पुं० [सं०] १ सप्तर्षियों में से एक।

विशेष—ये ब्रह्मा के पुत्र माने जाते हैं। इनकी स्त्री अनुसूया थी। दत्तात्रेय, दुर्वासा और सोम इनके पुत्र थे। इनका नाम दस प्रजापतियों में भी है।

२ एक तारा जो सप्तर्षिमंडल में है। ३ सात की संख्या (को०)।

अत्रिगुण—वि० [सं० अ+त्रिगुण] त्रिगुणातीत। सत्व, रज, तम नामक तीनों गुणों से पृथक्।

अत्रिज—संज्ञा पुं० [सं०] अत्रि के पुत्र—१ चंद्रमा २. दत्तात्रेय। ३ दुर्वासा।

अत्रिजात—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अत्रिज'। २ प्रथम तीन वर्णों में से किसी एक में संबंधित मनुष्य। द्विज [को०]।

अत्रिदृग्ज—संज्ञा पुं० [सं०] १ अत्रि के नेत्र से उत्पन्न चंद्रमा ऋषि। २ गणित में एक की संख्या [को०]।

अत्रिनेत्रज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अत्रिदृग्ज'।

अत्रिनेत्रप्रभव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अत्रिनेत्रज [को०]।

अत्रिनेत्रभू—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अत्रिनेत्रप्रभव' को।

अत्रिनेत्रसूत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अत्रिनेत्रभू' [को०]।

अत्रिप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्दम मुनि की कन्या अनसूया जो अत्रि ऋषि को ब्याही थी। उ०—अत्रिप्रिया निज तपबल आनी।—मानस, २।१३२।

अत्रिसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्रि ऋषि द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्र [को०]।

अत्रिस्मृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अत्रिसंहिता' [को०]।

अत्री¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अत्रिप्रिया' [को०]

अत्री²—संज्ञा पुं० [सं० अत्रिन्] राक्षस [को०]।

अत्रेय⑤—संज्ञा पुं० [सं० आत्रेय] दे० 'आत्रेय'।

अत्रैगुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणों का अभाव।

विशेष—सांख्य मतानुसार इस अवस्था का परिणाम मोक्ष या कैवल्य है।

अत्वक्क—वि० [सं०] चर्मरहित [को०]।

अत्वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्रता की कमी। मंदता [को०]।

अथ—अव्य [सं०] १ एक मंगलसूचक शब्द जिसमें प्राचीन काल में लोग किसी ग्रंथ या लेख का आरंभ करते थे। जैसे—(क) 'अथतो धर्मं व्याख्यास्याम'।—वैशेषिक। [ख] 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'।—ब्रह्मसूत्र। पीछे से यह ग्रंथ के आरंभ में उसके नाम के पहले लिखा जाने लगा। जैसे—'अथ विनयपत्रिका लिख्यते'। २ अब। ३ अनंतर। तदनंतर।

अथऊँ—संज्ञा पुं० [सं० अस्त, प्रा० अत्थ] वह भोजन जो जैन लोग सूर्यास्त के पहले करते है।

अथक—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० थकना] जो न थके। अश्रांत।
उ०—शासन कुमारिका से हिमालय शृंग तक अथक अबाध और तीव्र मेघ ज्योति सा चलता था।—लहर, पृ० ७६।

अथकिम्—अव्य० [सं०] और क्या। हाँ [को०]।

अथग—वि० [सं० अस्तग प्रा० अत्थग] अगाध। गंभीर। अथाह।
उ०—अखड सरोवर अथग जल हंसा सरवर न्हाहि।—दादू पृ० ६७।

अथच—अव्य० [सं०] और। और भी। इसके अतिरिक्त।

अथना⑤—क्रि० अ० [सं० अस्त प्रा० अत्थ से नाम०] १. अस्त होना। डूबना। उ०—सूरुज उवै बिहानहि आई। पुनि सो अथै कहा कह जाई।—जायसी [शब्द०]। २ कम होना। घट जाना। समाप्त हो जाना (को०)।

अथमना†—संज्ञा पुं० [सं० अस्तमन, प्रा० अत्थमण] पश्चिम दिशा। उगमना का उलटा।

अथरवन⑤—संज्ञा पुं० [सं० अथर्वन्] चौथा वेद। अथर्ववेद। उ०—[क] यहु परमारथ कहौ हो पंडित, रुग जुग स्याम अथरबन पढिया।—गोरख०, पृ० १०६। [ख] रिग, जजु, साम, अथरबन माहाँ।—जायसी ग्र०, पृ० ४४।

अथरा—संज्ञा पुं० [सं० आस्तर] मिट्टी का एक बरतन या नाँद।

विशेष—इसमें रँगरेज कपड़ा रँगते हैं, सोनार मानिक रेत रखते हैं और जुलाहे सूत भिगोते और ताने में लेई लगाते हैं।

अथरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'अथरा का अल्पा०] १ छोटा अथरा। २ मिट्टी का वह बरतन जिसमें कुम्हार हाँडी या घड़े को रखकर थापी से पीटते हैं। ३. मिट्टी का वह बरतन जिसमें दही जमाते हैं।

अथर्व—संज्ञा पुं० [सं० अथर्वन्] चौथा वेद।

विशेष—इसके मंत्रद्रष्टा या ऋषि भृगु या अंगिरा गोत्रवाले थे जिस कारण इसको 'भृग्वंगिरस' और 'अथर्वांगिरस' भी कहते हैं। इसमें ब्रह्मा के कार्य का प्रधान प्रतिपादन होने से इसे 'ब्रह्मवेद' भी कहते हैं। इस वेद में यज्ञकर्मों का विधान बहुत कम है। शांति, पौष्टिक अभिचार आदि प्रतिपादन विशेष है। प्रायश्चित, तंत्र, मंत्र आदि इसमें मिलते हैं। इसकी नौ शाखाएँ थीं—पैप्पलाद, दांत, प्रदांत, स्नात, ब्रह्मदावला, शौनकी, देवदर्शनी और चरण विद्या। कहीं कहीं इन नौ शाखाओं के नाम इस प्रकार हैं—पिप्पलादा, शौनकीया, दामोदा, तोतायना, जाजला, ब्रह्मपालाशा, कौनखिना, देवदर्शिना और चारण विद्या। इन शाखाओं में से आजकल केवल शौनकीय मिलती है जिसमें २० कांड, १११ अनुवाक, ७३१ सूक्त और ४७६३ मंत्र हैं। पिप्पलाद शाखा की संहिता प्रोफेसर बूलर को काश्मीर में भोजपत्र पर लिखी मिली थी पर वह छपी नहीं। इसका उपवेद धनुर्वेद है। इसके प्रधान उपनिषद् प्रश्न, मुंडक और माडूक्य हैं। इसका गोपथ ब्राह्मण आजकल प्राप्त है। कर्मकांडियों को इस वेद का जानना आवश्यक है।

२ अथर्ववेद का मंत्र।

अथर्वण—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव। २ दे० 'अथर्व' [को०]।

अथर्वणि—संज्ञा पुं० [सं०] १ अथर्ववेद के अनुसार कर्मकांड करनेवाला ब्राह्मण। २ यज्ञ करानेवाला पुरोहित। यज्ञ का ब्रह्मा [को०]।

अथर्वन्—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक मुनि जो ब्रह्मा के पुत्र और अग्नि को स्वर्ग से लानेवाले समझे जाते हैं। २ दे० 'अथर्व' [को०]।

अथर्वन⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अथर्व'। उ०—चातर वेद अथर्वन हारु।—कबीर सा०, पृ० ७७

अथर्वनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद' का मर्मज्ञ [को०]।

अथर्वनी⑤—संज्ञा पुं० [सं० आथर्वणि] दे० 'अथर्वणि'। उ०—प्रापु बसिष्ठ अथर्वनी महिमा जग जानी।—तुलसी ग्र०, पृ० २७०।

अथर्वविद्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अथर्वनिधि' [को०]।

अथर्वशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् [को०]।

अथर्वशिर—संज्ञा पुं० [सं० अथर्वशिरस्] १ एक प्रकार की ईंट जो तैत्तिरीय शाखा के समय में यज्ञ की वेदी बनाने के काम आती थी। २ एक उपनिषद् [को०]।

अथर्वशिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० अथर्वशिरस्] १ वेद की एक ऋचा का नाम। २ एक उपनिषद [को०]।

अथर्वांगिरस—संज्ञा पुं० [सं० अथर्वाङ्गिरस] दे० 'अथर्व'

अथर्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अथर्वणि' [को०]।

अथल†—संज्ञा पुं० [अ (उच्चा०)+सं० स्थल, प्रा० थल] वह भूमि जो लगान पर जोतने के लिये दी जाय।

अथवना⑤†—क्रि० अ० [सं० अस्तमन=डूबना प्रा० अत्थमण अत्यजण] १ अस्त होना। डूबना। उ०—[क]—जो आगै सो अथवै फूलै सो कुम्हिलाय। जो चनिए सो ढहि परै जामै सो मरि जाय।—कबीर [शब्द]। [ख] केइ यह बसत बसत उजारा। गा सो चाँद अथवा लेइ तारा।—जायसी [शब्द०]। २ लुप्त होना। तिरोहित होना। नष्ट होना। गायब होना। चला जाना। उ०—कहत ससोक बिलोकि बधु मुख बचन प्रीति गथए हैं। सेवक सखा भगति, भायप गुन चाहत अब अथए हैं—तुलसी [शब्द०]।

अथवा—अव्य० [सं०] एक वियोजक अव्यय जिसका प्रयोग उस स्थान पर होता है जहाँ दो या कई शब्दों या पदों में से किसी एक का ग्रहण अभीष्ट हो। या। वा। किंवा। उ०—निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होइ अथवा अति फीका।—मानस, १।८।

अथाई—संज्ञा स्त्री० [सं० *आस्थायिका अथवा *आस्थायी, प्रा० अत्थाई] बैठने की जगह। घर का वह बाहरी चौपाल जहाँ लोग इष्ट मित्रों से मिलते वा उनके साथ बातचीत करते हैं। बैठक। चौबारा। उ०—हाट बाट घर गली अथाई। कहहिं परसपर लोग लुगाई।—मानस, २।१०। २ वह स्थान जहाँ किसी गाँव या बस्ती के लोग इकट्ठे होकर बातचीत और पंचायत करते हैं। उ०—कहै पदमाकर अथाइन को तजि तजि, गोपगन निज निज गेह को पथ गयो।—पद्माकर ग्र०, पृ० २३७। ३ घर के सामने का चबूतरा जिसपर लोग उठते बैठते हैं। ४ गोष्ठी। मडली। सभा। जमावड़ा। दरबार। उ०—गजमनि माल बीच भ्राजत कहि जात न पदिक निकाई। जनु उडुगण मंडल वारिद पर नव ग्रह रची अथाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ६२१।

अथाग(पु)—वि० [सं० अस्ताघ, प्र० अत्थग्घ] दे० 'अथाह'। उ०—हूकल दल गज हैवरां अमरख नरां अथाग।—रा० रू०, पृ० ५५३।

अथान—संज्ञा पुं० [सं० अस्थाणु = स्थिर] अचार। कचूमर। उ०—विधि पाच अथान बनाइ कियो। पुनि द्वै विधि क्षीर मो माँगि लियो।—केशव (शब्द०)।

अथाना¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अथान'। उ०—निबुआ, सूरन आम अथानो और करौंदनि की रुचि न्यारी।—सूर० १०।२४१।

अथाना²(पु)—क्रि० अ० [सं० अस्तायं, प्रा० अत्था, अत्थाअ] डूबना। अस्त होना। दे० 'अथवना'।

अथाना³—क्रि० स० [सं० आ+स्थापन] १ थहाना। थाह लेना। गहराई नापना। २ ढूँढना। छानना। उ०—फिरत फिरत बन सकल अथायो। कोऊ जीव हाथ नहिं आयो।—सबल (शब्द०)।

अथाय(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अथाह'। उ०—अद्वै अचल अखड है, अगम अपार अथाय। ब्रज माधुरी०, पृ० २८९।

अथार(पु)—वि० [सं० आ (उप०)+स्तार < स्तृ] फैला या बिखरा हुआ।

अथावत(पु)—वि० [सं० अस्तमित = डूबा हुआ] अस्त। डूबा हुआ। उ०—बेर लगी रघुनाथ रहे कित हे मन याको मैं भेद न पायो। चंदहु आयो अथावतो होत अजहुँ मनभावतो क्यो नहिं आयो।—रघुनाथ (शब्द)।

अथाह¹—वि० [सं० अस्ताघ, प्रा० अत्थाह अथवा सं० अ = नहीं + √स्था = ठहरना] १ जिसकी थाह न हो। जिसकी गहराई का अंत न हो। बहुत गहरा। अगाध जैसे—यहाँ अथाह जल है (शब्द)। २ जिसका कोई पार या अंत न पा सके। जिसका अंदाज न हो सके। अपरिमित। अपार। बहुत अधिक। ३ गंभीर। गूढ। समझ में न आने योग्य। कठिन। उ०—(क) करैं नित्य जप होम औ जानत वेद अथाह (शब्द)। (ख) रमणी हृदय अथाह जो न दिखलाई पड़ता।—कानन०, पृ० ७१।

अथाह²—संज्ञा पुं० १ गहराई। गड्ढा। जलाशय। २ समुद्र। उ०—वा मुख के फिर मिलन को, आस रही कछु नाहिं। परे मनोरथ जाय मम अब अथाह के माहिं।—शकुतला, पृ० ११४।

मुहा०—अथाह मे पड़ना = मुश्किल मे पड़ना। जैसे—हम अथाह मे पड़े हैं, कुछ नही सूझता [शब्द]।

अथिर(पु)—वि० [सं० अस्थिर, प्रा० अत्थिर, अथिर] १ जो स्थिर न हो चलायमान। चचल। उ०—काची काया मन अस्थिर थिर थिर काम करत।—कबीर ग्र०, पृ० ७६। २ क्षणस्थायी। टिकनेवाला।

अथीर(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अथिर'। उ०—नहि तर्क वितर्क अधीर धीर। नहि शून्य अशून्य अथीर थीर।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ७८।

अथैव(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अथाई'। उ०—स्वामी हमारे बुलबुल की अथैया इन देखिबे आइए।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६२७।

अथोर(पु)—वि० [सं० अ + स्तोक = थोडा प्र० थोक, अप० थोक + ड [प्रत्य०] [स्त्री० अथोरी] कम नहीं। अधिक। ज्यादा। बहुत। पूरा। उ०—भरति नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर।—भारतेंदु ग्र० २।५७७।

अदक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आतङ्क, हिं० अतक] डर। भय। त्रास। उ०—जसुमति बूझति फिरति गोपालहिं। जब ते तृणावर्त्त ब्रज आयो तब ते मोहिं जिय सक। नैननि ओट होत पल एकौ मैं मन भरति अदक।—सूर [शब्द]।

अदड¹—वि० [सं० अदण्ड्य] १ जो दड के योग्य न हो। जिसे दड देने की व्यवस्था न हो। सजा से बरी। २ जिसपर कर या महसूल न लगे। कररहित। ३ निर्द्वंद्व। निर्भय। स्वेच्छाचारी। उ०—उदधि अपार उतरत हू न लागी बार, केसरीकुमार सो अदड ऐसो डाँडिगो।—तुलसी [शब्द०]।

अदड²—संज्ञा पुं० वह भूमि जिसकी मालगुजारी न लगे। मुआफी।

अदडनीय—वि० [सं० अदण्डनीय] जो दड पाने के योग्य न हो। जिसके दड का विधान न हो। अदंड्य।

अदडमान—वि० [सं० अदण्डमान] दड के अयोग्य। दड से मुक्त। सजा से बरी। उ०—अदडमान दीन गर्व दडमान भेद वै। अपठ्ठमान पाप ग्रथ, पठ्ठमान वेद वै।—केशव [सब्द]।

अदड्य—वि० [सं० अदण्ड्य] दड न पाने योग्य। जिसे दड न दिया जा सके। दडमुक्त। सजा से बरी।

अदत¹—वि० [सं० अदन्त] १ बेदाँत का। जिसे दाँत न हो। २ जिसे दाँत न निकला हो। बहुत थोडी अवस्था का। दुधमुहाँ। ३ जिसने दाँत न तोडा हो (चौपाया)।

अदत²—वि० १ बारह आदित्यों में एक। २ जोंक [को०]।

अदत्य—वि० [सं० अदन्त्य] जो दाँत सबधी न हो। २ जो दाँतो के अनुकूल न हो। ३ दाँतो के लिये अहितकर [को०]।

अदब(पु)—वि० [सं० अदब्ध] पवित्र। शुद्ध। उ०—यों पद्माकर मत्र मनोहर जै जगदब अदब्ध अए री।—पद्माकर ग्र० पृ० ३२५।

अदभ¹—वि० [सं० अदम्भ] १ दभरहित। पाखडविहीन। सच्चा। बिना आडबर का। २ निश्छल। निष्कपट। ३ प्राकृतिक। स्वाभाविक। अकृत्रिम। स्वच्छ। शुद्ध। उ०—मोति नग हीर, नग हीरन की कानि मो रतन खंभ पातिन अदभ छवि छाई सी।—देव [शब्द]।

अदंभ[2]—संज्ञा पुं० १ शिव । २ दंभ का अभाव (को०) । ३. शुद्धता (को०) ।

अदंभित्व—संज्ञा पुं० [स० अदम्भित्व] दंभशून्यता । दंभ का अभाव । पाखंड या आडंबर का न होना । सात्विक जनों का एक गुण ।

अदंष्ट्र[1]—वि० [सं०] दंतहीन । बिना दाँत का [को०] ।

अदंष्ट्र[2]—संज्ञा पुं० १ बिना विषैले दाँत का सर्प । विषदंतहीन सर्प [को०] ।

अदक्ष—वि० [स०] १ अकुशल । जो निपुण न हो । २ भद्दा । कुरूप [को०] ।

अदक्षिण—वि० [सं०] १ बायाँ । जो दाहिना न हो । २ प्रतिकूल । विरुद्ध । ३ बिना दक्षिणा का । दक्षिणारहित [यज्ञ इत्यादि] । ४. अकुशल अनाड़ी । अनुदार ।

अदक्षिणीय—वि० [स०] जो दक्षिणा देने का पात्र या अधिकारी न हो [को०] ।

अदक्षिण्य—वि० [सं०] दे० 'अदक्षिणीय' [को०] ।

अदग—वि० [स० अदग्ध प्रा० अदग्घ] १ बेदाग । निष्कलंक । शुद्ध । २ निरपराध । निर्दोप । जिसे पाप न छू गया हो । ३ अछूता । अस्पृष्ट । साफ । बचा हुआ । उ०—जेते थे तेते लियो, घूँघट माहँ समोय । कज्जल वाके रेख है, अदग गया नहिं कोय ।—कबीर [शब्द] ।

अदग्घ—वि० [सं०] १ न जला हुआ । २. जिसका दाह संस्कार न किया गया हो [को०] ।

अदत्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जिसके दिए जाने पर भी लेनेवाले को उसके रखने का अधिकार न हो ।

विशेष—नारद ने अदत्त के सोलह भेद किए हैं—[१] **भय** जो वस्तु डर के मारे दी गई हो । [२] **क्रोध**—लड़के आदि पर क्रोध निकालने के लिये । [३] **शोकावेग** मे । [४] **रुक्**—असाध्य रोग से घबराकर [५] **उत्कोच**—घूस के रूप मे । [६] **परिहास**—हँसी हँसी मे । [७] **व्यत्यास**—चढावे मे आकर अथवा देखादेखी । [८] **छल**—जो धोखे मे उचित से अधिक दे दिया गया हो । [९] **बाल**—देनेवाला यदि बालक या नाबालिग हो । [१०] **मूढ़**—जो धोखे में आकर बेवकूफी से दिया गया हो । [११] **अस्वतंत्र**—जो दास के द्वारा या ऐसे व्यक्ति के द्वारा दिया गया हो जिसे देने का अधिकार न हो । [१२] **आर्त**—जो बेचैनी या दुख से घबड़ाकर दिया गया हो । [१३] **मत**—जो नशे की झोंक मे दिया गया हो । [१४] **उन्मत्त**—जो पागल होने पर दिया गया हो । [१५] **कार्य**—जो लाभ की झूठी आशा दिखाकर प्राप्त किया गया हो और [१६] **अधर्म काम्य**—धर्म के नाम पर जो अधर्म के लिये लिया गया हो ।

अदत्त[2]—वि० [सं० अदाता अथवा स० अदत्त] जिसने दिया न हो । न देनेवाला । कृपण । उ०—कहुँ चोर कहुँ साह कहावत, कहुँ अदत्त, कहुँ दानी ।—जग० बानी, पृ० ५३ ।

अदत्तदान—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार बिना दी हुई वस्तु का ग्रहण । अपहरण । चोरी । डकैती ।

विशेष—कोई कोई आचार्य इसके तीन भेद—[१] द्रव्यादत्तदान [२] भावादत्तदान, [३] द्रव्य भावादत्तदान और कोई चार भेद—(१) स्वामी अदत्तदान, (२) जीव अदत्तदान, [३] तीर्थंकर अदत्तदान और [४] गुरु अदत्तदान मानते हैं । इससे बचने का नाम अदत्तदान विरमणव्रत है ।

अदत्तपूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुँवारी कन्या । वह लड़की जिसकी मँगनी न हुई हो [को०] ।

अदत्ता[1]—वि० स्त्री० [स०] न दी हुई ।

अदत्ता[2]—संज्ञा स्त्री० अविवाहिता कन्या ।

अदद—संज्ञा पुं० [अ०] १. संख्या । अंक । गिनती । २ संख्या का चिह्न या संकेत ।

अदन[1]—संज्ञा पु० [अ०] १ यहूदी, ईसाई और मुसलमान मत के अनुसार स्वर्ग का वह उपवन जहाँ ईश्वर ने आदम को बनाकर रखा था । उ०—अंजन की रेखा राजैं कुच विच चित्र साजैं, एहैं बेली, रेनी, ही, उचित, अदन मैं ।—छीत०, पृ० ३९ । २ अरब सागर का एक बंदरगाह ।

अदन[2]—संज्ञा पुं० [स०] खाना । भक्षण उ०—[क] भारती बदन विष अदन सिव, ससि पतंग पावक नयन ।—तुलसी ग्र० पृ० २३६ । [ख] बहुरि बीरा सुखद सौरभ अदन रदन रसाल ।—घनानंद, पृ० ३०१ ।

अदना—वि० [अ०] [स्त्री० अदनी] १ तुच्छ । छोटा । क्षुद्र । नीच । उ०—हलाकू चंगेजो तैमूर, हमारे अदना, अदना सूर ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४७४ । २ सामान्य । मामूली उ०—करना किसी पै, रहम, इक अदना सी बात पर ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०९ ।

अदनीय—वि० [सं०] खाने योग्य । भक्ष्य ।

अदफर (५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधफर' । उ०—नाउ जाजरी धार मैं अदफर और भुलान ।—स० सप्तक, पृ० ३४४ ।

अदब—संज्ञा पुं० [अ०] १ शिष्टाचार । कायदा । बडो का आदर, समान । उ०—दौलते दीवार जाए पर अदब जाने न पाए ।—शेर०, पृ० ३०९ ।

मु०—**अदब की जगह**—वह व्यक्ति, स्थान या वस्तु जिसका लिहाज करना जरूरी होता है ।

क्रि० प्र०—करना ।

अदबकायदा—संज्ञा पु० [अ०] शिष्ट व्यवहार [को०] ।

अदब लिहाज—संज्ञा पुं० [अ०] आदर समान [को०] ।

अदबदकर—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अदबदाकर' । उ०—मैं यो तो ये काच लेता या न लेता पर अब उनकी जिद से अदबदाकर लूँगा ।—श्रीनिवास० ग्र०, पृ० १६३ ।

अदबदाकर—क्रि० वि० [सं० **अधि + वद = वचन देना, कहना अथवा अनुध्व०**] १. हठ करके । टेक बाँधकर अवश्य । जरूर । जैसे—यो तो हम न जाते, अब अदबदाकर जाएँगे (शब्द०) ।

विशेष—यह शब्द केवल इसी रूप मे, क्रि० वि० के समान आता है परंतु वास्तव मे यह **क्रि० प्र० है** ।

अदवुद¹(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अद्भुत'। उ०—अदवुद रूप जाति की वानी। कबीर बी०, पृ० २५।

अदवुद²(पु)—वि]हिं०] दे० 'अधबुध'। उ०—वाके बदन करु सब कोई। बुद अदवुद अचरज बड होई।—कबीर बी०, पृ०२५८।

अदव्व¹(पु)—संज्ञा पुं० [अ० अदब] दे० 'अदब'। —आदर अदव्व सथ्थीन देत।—पृ० रा०, ११७२१।

अदव्व²—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० दबना] न दबनेवाला।—अदव्व गब्बियान के सरव्व गब्ब को हरे।—पद्माकर ग्र० पृ० २८३।

अद्भुत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अद्भुत'। उ०—अद्भुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पिआस मनोमल हारी।—मानस १।४३।

अदभू(पु)—[सं० अद्भुत] दे० 'अद्भुत'। उ०—रज्जब निरजहि इदर गुरु अदभू आदर ऐन। पहुप पत्र फल पूजिये सुर नर पावहिं चैन।—रज्जब० बानी०, पृ० ८।

अदभ्र—वि० [सं०] १. बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—सुनु अदभ्र करदा, वारिज लोचन मोचन भय भारी।—तुलसी ग्र०, पृ० ५१५। २ अपार। अनत। उ०—अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता।—मानस ७।१२।

अदम—संज्ञा पुं० [अ०] १ अनस्तित्व। अभाव। लोप। २. अनुपस्थिति। ३ देवलोक। परलोक। जन्नत। उ०—अदम की राह सीधी है, बुलदी है, न पस्ती है।—शेर० भा १, पृ० २८६।

मुहा०—**अदम की राह लेना, अदम को पधारना या अदम को सिधारना = मर जाना।**

अदमआवाद—संज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ लोग मरने के बाद जाते हैं। परलोक [को०]।

अदमखाना—संज्ञा पुं० [अ० अदम+फा० खानह] दे० 'अदमआवाद' [को०]।

अदमगाह—संज्ञा पु० [अ० अदम+फा० गाह[दे० 'अदमआवाद'। [को०]।

अदमतामील—संज्ञा स्त्री० [अ०] समन आदि का अमल मे न आना [को०]।

अदमपैरवी—संज्ञा स्त्री० [फा०] किसी मुकदमे मे जरूरी कारवाई न करना। अभियोग मे पक्षप्रतिपादन का अभाव। जैसे—वह मुकदमा तो अदमपैरवी मे खारिज हो गया।

अदमफुरसत—संज्ञा स्त्री० [फा० [अवकाश न होना। अनवकाश [को०]।

अदममौजूदगी—संज्ञा स्त्री० [अ०] अनुपस्थिति। गैरहाजिरी [को०]।

अदमवसूली—संज्ञा स्त्री० [अ०] मालगुजारी आदि का वसूल न होना।

अदमवाकफीयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] अनुभवहीनता [को०]।

अदमसबूत—संज्ञा पु० [फा०] किसी मुकदमे मे सबूत का न होना। प्रमाण का अभाव।

अदमहाजिरी—संज्ञा स्त्री० [अ०] गैरहाजिरी। अनुपस्थिति।

अदम्य—वि० [सं०] जिसका दमन न हो सके। न दबने योग्य प्रचड। प्रबल। अजेय।

अदय—वि० [सं०] १ दयारहित। करुणाशून्य (व्यापार)। २ निर्दयी। निष्ठुर। कठोरहृदय (व्यक्ति) उ०—अनजानी भूलो पर भी वह अदय दड तो देती है।—पचवटी, पृ० ७।

अदया—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+दया] कोप। नाराजी दया का अभाव। उ०—अदया अलह राम की, कुरलै ऊँणी कूब।—कबीर ग्र०, पृ० २५।

अदरक—संज्ञा पुं० [सं० आर्द्रक, फा० अदरक] तीन फुट ऊँचा एक पौधा जिसकी पत्तियाँ लबी और जड या गाँठ तीक्ष्ण और चरपरी होती।

विशेष—यह भारतवर्ष के प्रत्येक गर्म भाग मे तथा हिमालय पर ४००० से ५००० फुट तक की ऊँचाई पर होता है। इसकी गाँठ मसाला, चटनी, अचार और दवाओ मे काम आती है। यह गर्म और कटु होता है तथा कफ, वात, पित्त और शूल का नाश करती है। अग्निदीपक इसका प्रधान गुण है। गाँठ को जब उबालकर सुखा लेते हैं तब उसे सोठ कहते हैं।

पर्याय—शृ गवेर, कटुभद्र, कटूत्कट, गुल्ममूल, मूलज, कदर, वर, महीज, सैकतेष्ट, अनूपज, अपाकशाक, चद्राख्य, राहुच्छत्र, सुशाकक, शाङ्ग, आर्द्रशाक, सच्छाक।

अदरकी—संज्ञा स्त्री० [सं० आर्द्र की] सोठ और गुड मिलाकर बनाई हुई टिकिया। सोठौरा।

अदरख(पु)—सं० पु० [हि] दे० 'अदरक'। उ०—हीग हरद मिरच छौंके तेले। अदरख और आँवले मेले।—सूर०, १०।१०१४।

अदरस¹(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अदर्शन'। उ०—भरत हरत दरसत सबहि, पुनि अदरस काहु। तुलसी सुगुरु प्रसाद बल होत परमपद लाहु।—स० सप्तक, पृ० ३४।

अदरस²(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अदृश्य'।

अदरा संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आर्द्रा'। उ०—(क) बरसै अदरा के बुँदवा, ठाढि भीजैं गुजरी।—प्रेमघन०, भाग २ पृ० ३४०। (ख) अदरा माहि जो बोवउ साठी। दुख के मार निकालउ लाठी।—घाघ०, पृ० १२२।

अदराना¹—क्रि० अ० [सं० आदर] बहुत आदर पाने से शेखी पर चढ़ना। फूलना। इतराना। आदर या मान चाहना। जैसे—वे आजकल अदराए हुए हैं, कहने से कोई काम जल्दी नही करते (शब्द)।

अदराना²—क्रि० स० आदर देकर शेखी पर चढाना। फुलाना। घमडी बनाना।

अदरु—संज्ञा पुं० [सं० आदर] दे० 'आदर'। उ०—राजे बिना बुलाई गति जाऊँ, अदरु नहिं होई।—पोद्दार अभि० ग्र० पृ० ६१७।

अदर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह दिन जिसकी सध्या को चद्रमा दिखाई न पडे। २ आदर्श। दर्पण [को०]।

अदर्शन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. अविद्यमानता। असाक्षात्। २ लोप। विनाश। ३ उपेक्षा [को०]।

क्रि प्र०—करना।—होना।

अदर्शन²—वि० अदृश्य। लुप्त [को०]।

अदर्शनीय—वि० [सं०] दर्शन के अयोग्य। जो देखने लायक न हो। बुरा। कुरूप। भद्दा।

अदल¹—संज्ञा पुं० [अ० अदल] न्याय। इंसाफ। उ०—अदल कहौं पुहुमी जस होई। चाटा चलत न दुखवै कोई।—जायसी (शब्द)।

अदल²—संज्ञा पुं० [सं०] हिज्जल नाम का एक पौधा [को०]।

अदल³—वि० १ बिना दल या पत्ते का। पत्रविहीन। २. बिना फौज का। सेनारहित। ३ भागरहित (को०)।

अदल⁴—वि० [हिं० अ+दल] जो किसी दल मे न हो। तटस्थ।

अदल⁵Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं०अदल=अपर्णा] पार्वती। उ०—अदल-पति-रिपु पिता-पतिनी अब न जैहैं फेर।—सा० लहरी, पृ० ११६।

अदलखाना—संज्ञा पुं० [अ० अदल+फा० खानह्] न्यायालय। कचहरी। उ०—मेरे ही अकेले गुन औगुन विचारे बिना बदल न जैहै बड़े अदलखाते मे।—भिखारी ग्र०, भाग १, पृ० ७६।

अदलतिहा+—वि० [अ० अदालत+हिं० हा (प्रत्य०)] मुकदमेबाज। मुकदमा लड़नेवाला।

अदल बदल—संज्ञा पुं० [अ० बदल का अनुध्व० अबल] उलट पुलट। हेर फेर। परिवर्तन। उ०—अदल बदल भूषण प्रिया यातैं परत लखाइ नूपुर कटि ढीलो भयो सकसि किंकिनी पाइ।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ४५।

अदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] घृतकुमारी नामक पौधा [को०]।

अदलाबदली—संज्ञा स्त्री० [हिं० अदल बदल] १ एक वस्तु लेने के लिये उसके बदले दूसरी वस्तु देना। २ एक चीज के स्थान पर दूसरी चीज रखना।

क्रि प्र०—करना।—होना।

अदली¹Ⓟ—संज्ञा पुं० [अ० अदल+हिं० ई (प्रत्य०)] न्यायी। इंसाफवर। उ०—कप कदली मे वारि बुंद बदली, सिवराज अदली के राज मे यो राजनीति है।—भूषण (शब्द)।

अदली²Ⓟ—वि० [सं० अदल] बिना पत्ते का।

अदलीय—वि० [सं० अ+दल+ईय (प्रत्य०)] जो किसी दल का सदस्य न हो। किसी दल से संबंध न रखनेवाला।

अदवान—संज्ञा स्त्री० [सं० अध.=नीचे+दाम=रस्सी अथवा देशी] चारपाई के पैताने की वह रस्सी, जिसे बिनावट को कसी रखने के लिये करधनी के छेदों मे से ले जाकर सीरो मे तानकर लपेटते हैं। ओनचन।

अदस—संज्ञा पुं० [अ०] मसूर [को०]।

अदह्Ⓟ—वि० [अदाह्य] न जलनेवाला।

अदहन—संज्ञा पुं० [सं० आदहन] खौलता हुआ पानी। आग पर चढ़ा हुआ वह पानी जिसमे दाल, चावल आदि पकाते हैं।

अदहय—वि० [सं०] न जलने योग्य। जो जल न सके।

अदात—वि० [सं० अदान्त] १ जो इंद्रियो का दमन न कर सके। अजितेंद्रिय। विषयासक्त। २ जो वश मे न किया जा सके। दुर्दांत (को०)।

अदाँतⓅ—वि० [सं० अदन्त] बिना दाँत का। जिसे दाँत न आए हो (प्राय पशुओ के लिये)। उ०—अदाँत बरदै, दो दाँत अाय। माप जाय खसमै खाय।—कहावत (शब्द)।

अदा¹—वि [अ०] चुकता। बेबाक। दिया हुआ। उ०—जान दी, दी हुई उसी की थी। हक तो यह है कि हक अदा न हुआ।—शेर०, भा० १, ४६३।

क्रि० प्र०—करना। जैसे—उसने तुम्हारा सब रुपया अदा कर दिया (शब्द)।—होना। जैसे—तुम्हारा कर्ज अदा हो गया (शब्द)।

मुहा०—अदा करना=पालन करना या पूरा करना। जैसे—सबको अपना फर्ज अदा करना चाहिए। (शब्द)।

यौ०—अदाए जर डिगरी=डिगरी के देने या रुपए को देना। अदाबंदी=किसी रुपए के बेबाक करने या देने के लिये किस्त या समय का नियत करना। किस्तबंदी। अदा या बेबाक करना=सब चुकता कर देना। कौडी कौडी दे डालना। अदाए मालगुजारी=मालगुजारी का देना। अदाए शहादत=गवाही देना।

अदा²—संज्ञा स्त्री० १ भाव। हाव भाव। नखरा। मोहित करने की चेष्टा। उ०—सगरव गरब खिंचे सदा चतुर चितेरे आय। पर वाकी बाँकी अदा नेकु न खींची जाय।—सं० सप्तक०, पृ० २६५। २ ढग। तर्ज। आन। अदाज। उ०—इस अदा से मुझे सलाम किया। एक ही आन मे गुलाम किया।—शेर०, भाग १, पृ० ३६२।

अदाइगी—संज्ञा स्त्री० [को०] दे० 'अदायगी' [को०]।

अदाई¹Ⓟ—वि० [अ० अदा+हिं ई (प्रत्य०)] १ ठगी। चालबाज। चतुर। उ०—ऊधो नेकु निहारो। हम सालोक्य, सरूप, सायुज्यो रहति समीप सदाई। सो तजि कहत और की औरे, तुम अलि बड़े अदाई।—सूर० १०।३६००।

अदाई²Ⓟ—वि० [हिं०अ+दाया] वाम। प्रतिकूल। प्रेमवंचित। उ०—कहहु मोहि अब बाल सुहाई। केहि अवगुन मोहि कीन्ह अदाई।—चित्रा०, पृ० ३०६।

अदाकार—संज्ञा पुं० [हिं० अद+फा० कार] अभिनेता। कलाकार [को०]।

अदागⓅ—वि० [हिं० अ=नहीं+अ० दाग=धब्बा] १. बेदाग। निर्मल। स्वच्छ। साफ। उ०—ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग। त्याग को भूषन शांतिपद तुलसी अमल अदाग।—तुलसी (शब्द)। २ निष्कलंक। निर्दोष। ३ पवित्र। शुद्ध।

अदागीⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अदाग'।

अदाता¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ न देनेवाला व्यक्ति। कृपण। कंजूस। २ विवाह मे (कन्या) न देनेवाला व्यक्ति को (को०)। ३ वह व्यक्ति जिसे किसी का कुछ देय न हो (को०)।

अदाता²—वि० न देनेवाला। कंजूस।

अदान¹Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अ+दान] १ अदाता। न देनेवाला व्यक्ति। कंजूस। कृपण। उ०—हरि को मिलन सुदामा आयो। पूरब जन्म अदान जानिकै ताते कछू मँगायो। मूठिक तंदुल बाँधि कृष्ण को वनिता विनय पठायो।—सूर (शब्द)। २ वह हाथी जिसका दान अर्थात् मद स्रवित न होता हो (को०)।

अदान²—वि० [सं० अ=नहीं+फा० दानह=जानकार] अजान। नादान। नासमझ। उ०—ये अद न जानती नहीं, कछु पालेहु भूल बिसारी।—रघुराज (शब्द०)।

अदानियाँ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अदानी'। उ०—(क) ठाकुर कहत ये अदानियाँ अबूझ भोदू भाजन अजस के वृथा ही उपजाए तें। —ठाकुर श०, पृ० ३७। (ख) ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के जालिम दमाद हैं,अदानियाँ ससुर के।—इतिहास,पृ०३८२।

अदानी(पु)—वि० [सं० अ+दानिन्] जो दान न दे। कंजूस। सूम। कृपण। उ०—श्रवण नैन कोनहीं रौं आँसु को, निवास होत जैसे सोन भौन कौन राखत अदानी है।—रघुराज (शब्द०)।

अदाव(पु)—संज्ञा पुं० [अ० आदाब] दे० 'आदाब'। उ०—अदब आदाब सलाम जो करई।—दरिया० बानी, पृ० ४०।

अदाय—वि० [सं०] दाय या हिस्सा पाने का अनधिकारी [को०]।

अदायगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० अदाइगी] १ चुकता करना। भुगतान करना। २ पद्धति। तर्ज। प्रणाली। उ०—सिर्फ अदायगी अँगरेजी है।—गीतिका (भू०) पृ० ५।

अदायाँ(पु)—वि० [हिं० अ+दायाँ=दक्षिण, दाहिना] वाम। प्रतिकूल। बुरा। उ०—परिया नवमी पूर्व न भाए। दूइज दसमी उतर अदाएँ।—जायसी (शब्द०)।

अदाया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+दया] दया का अभाव। निष्ठुरता। अकृपा। उ०—साहस, अनृत चपलता माया। भय अविवेक असौच अदाया।—मानस, ६।१६।

अदायाद—वि० [सं०] १ जो सपिंड न हो। २ उत्तराधिकार रहित [को०]।

अदायिक—वि० [सं०] १ दाय या उत्तराधिकार से संबंध न रखनेवाला। २ जिसका कोई उत्तराधिकारी न हो। लावारिस [को०]।

अदार—वि० [सं०] पत्नीरहित। विधुर। रँडुआ [को०]।

अदारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [को०]।

अदालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] न्यायालय। वह स्थान जहाँ बैठकर न्यायाधीश स्वत्व संबंधी झगड़ों पर विचार करता है।

विशेष—आजकल इसके दो प्रधान विभाग हैं—(१) फौजदारी और (२) दीवानी। माल विभाग को दीवानी के अंतर्गत ही समझना चाहिए।

यौ०—**अदालत अपील**=वह अदालत जहाँ किसी मातहत अदालत के फैसले की अपील हो। **अदालत खफीफा**=एक प्रकार की दीवानी अदालत जिसमें छोटे छोटे मुकदमे लिए जाते हैं। **अदालत दीवानी**=वह अदालत जिसमे संपत्ति या स्वत्व संबंधी बातों का निर्णय होता है। **अदालत मराफाऊला**=वह अदालत जिसमें पहले पहल दीवानी मुकदमा दायर किया जाय। **अदालत मराफासानी**=वहअदालत जिसमे अदालत मराफाऊल की अपील हो। **अदालत मातहत**=जिसके फैसले की अपील उसके ऊपर की अदालत मे हुई हो। **अदालत माल**=वह अदालत, जिसमे मालगुजारी या लगान संबंधी मुकदमे दायर किए जाते हैं।

मुहा०—**अदालत करना**=मुकदमा लड़ना। **अदालत होना**=अभियोग चलना।

अदालती—वि० [अ० अदालत+हिं० ई० (प्रत्य०)] १ अदालत विषयक। न्यायालय संबंधी। २ जो अदालत करे। मुकदमा लड़नेवाला।

अदावँ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ० बुरा+हिं० दावँ] बुरा दाँवपेंच। असमंजस। कठिनाई। उ०—यह ऐसा अदावँ परचो या घरी घरहाइन के परि पुंजन मे। मिस कोउ न आनि चढ़े चितवैं इनकी बतियाँन की गुंजन में।—राम (शब्द०)।

अदावत—संज्ञा स्त्री० [अ०] शत्रुता। दुश्मनी। लाग। वैर। विरोध। उ०—कीजे हमारे साथ अदावत ही क्यों न हो।—शेर० भाग १, पृ० ५२१।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—निकालना।—होना।

अदावती—वि० [अ० अदावत+हिं० ई (प्रत्य०)] जो अदावत रखे। कसरी। जो लाग रखे। २ विरोधजन्य। द्वेषमूलक।

अदास—वि० [सं०] जो दास या परतंत्र न हो। स्वाधीन [को०]।

अदाह[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० अदा] हाव भाव। नखरा। आन। मोहित करने की चेष्टा। उ०—एतो सरूप दियो तो दियो पर एती अदाह तें आनि धरी क्यों। एती अदाह धरी तो धरी पर ये अखियाँ रिझवारि करी क्यों।—(शब्द०)।

अदाह[2](पु)—वि० [सं० अदाह] दाहरहित। जिसमे ताप या जलन न हो। उ०—कहा होइ ज्यो त्री दुख तापा। सूखे जी अदाह औ झापा।—इंद्रा०, पृ० १५१।

अदाहक—वि० [सं०] न जलानेवाला। जिसमे जलाने या भस्म करने का गुण न हो जैसे—जल।

अदाह्य—[सं०] १ जो जलने योग्य न हो। २ जो चिता पर जलाने योग्य न हो। ३ आत्मा और परमात्मा का विशेषण [को०]।

अदिक्—वि० [सं०] दिशाओं से परे। दिशारहित। उ०—तुम ही घर आए हो यह जग जंजाल रूप। पर तुम हो चिर अकाल नित्य अदिक्, हे अनूप।—क्वासि, पृ० ६१।

अदिढ(पु)—वि० दे० 'अदृढ'। उ०—कछु मन दिढ कछु अदिढ लहीये, प्रौढा धीराधीरा कहिये।—नंद० ग्रं०, पृ० १४८।

अदित(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आदित्य] दे० 'आदित्य'।

अदिति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रकृति। २ पृथ्वी। ३ दक्ष प्रजापति की कन्या और कश्यप ऋषि की पत्नी।

विशेष—इनसे सूर्य आदि तैंतीस देवता उत्पन्न हुए थे। ये देवताओं की माता कहलाती हैं।

४ असीमता। ५ निर्धनता। ६ स्वतंत्रता। ७ सुरक्षा। ८ पूर्णता। ९ पुनर्वसु नक्षत्र। १० गाय। ११ वाणी। १२ उत्पन्न करने की शक्ति। १३ दूध। १४ माता। १५ द्युलोक। १६ अंतरिक्ष।

अदिति[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईश्वर का एक विशेषण। २ प्रजापति। ३ देवताओं का विश्वदेवा नामक गण। ४ काल। ५ मृत्यु [को०]।

अदितिज—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। २ आदित्य। सूर्य [को०]।

अदितिनंदन—संज्ञा पुं० [सं० अदितिनन्दन] दे० 'अदितिज' [को०]।

अदितिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। २ सूर्य।

अदिन—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा दिन। कुदिन। कुसमय। संकट या दुख का समय। अभाग्य। उ०—यो कही बार बार पाँयनि परि पाँवरि पुलकि लई है। अपनो अदिन देखि हो डरपत जेहि विष बेलि बई है।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३५६।

अदिव्य[1]—वि० [सं०] १ लौकिक। साधारण। सामान्य। २ स्थूल जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो।

अदिव्य[2]—संज्ञा पुं० तीन प्रकार के नायकों में से एक। वह नायक जो लौकिक हो। मनुष्य नायक। जैसे—मालती माधव नाटक में माधव।

अदिव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक। वह नायिका जो लौकिक हो। जैसे—मालती माधव में मालती।

अदिष्ट[1]—संज्ञा पुं० [सं० अ + दिष्ट = भाग्य] अभाग्य। उ०—कन्या एक जु पाछे भई। सु पुनि अदिष्ट लई उड़ि गई।—नंद० ग्रं०, २३६।

अदिष्ट[2]—वि० [सं० अदृष्ट] दे० 'अदृष्ट'।

अदिष्टी—वि० [सं० अ = नहीं + दिष्ट = भाग्य] १ अभागा। बदकिस्मत। २ अदूरदर्शी। मूर्ख। अविचारी। दुष्ट।

अदिस्ट—वि० दे० 'अदृष्ट'। उ०—पेम अदिस्ट गगन तें ऊँचा। ज्ञान दिरिट सौं जाइ पहूँचा।—जायसी ग्रं०, पृ० १२२।

अदिस्स—वि० [सं० अदृश्य, प्रा० अदिस्स] लुप्त। गायब। ओझल। उ०—भूतनिग्रनाग रिपु रन अदिस्स।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २७८।

अदीक्षित—वि० [सं०] जिसने दीक्षा न ली हो। जो दीक्षित न हो [को०]।

अदीठ—वि० [सं० अदृष्ट प्रा० अदिट्ठ] बिना देखा हुआ। अप्रत्यक्ष। अनदेख। गुप्त। छिपा हुआ। उ०—इस मन को बिसमल करौं दीठा करौं अदीठ।—कबीर ग्रं०, पृ०, २८।

अदीत—पुं० [सं० आदित्य] दे० 'आदित्य'। उ०—मोह महातम रहतु है, जो लौं ज्ञान न होत। कहा महातम रहि सकै भए अदीत उदोत।—स० सप्तक, पृ० ३०६।

अदीदा—वि० [सं० अ + फा० दीदह] बिना आँख का। नेत्ररहित। उ०—दादू देखा अदीदा। सब कोई कहत सुनीदा।—घट०, पृ० १६८।

अदीठा—वि० [सं० अदृष्ट] जिसे देखा न गया हो। उ०—मारवणी कह कारणइ देस अदीठा दिट्ठ।—ढोला०, पृ० १२५।

अदीन—वि [सं०] [स्त्री० अदीना] १ दीनतारहित। अनम्र। उग्र। अविनीत प्रचंड। निडर। २ उच्चाशय। ऊँची तबीयत का। उदार। उ०—निठुर, ठुकराओ न, मेरी इस अदीना याचना को।—क्वासि, पृ० ५०।

यौ०—अदीनात्मा = जो प्रकृत्या अदीन हो।

अदीनवृत्ति—वि० [सं०] जो प्रकृत्या दीन न हो। तेजस्वी [को०]।

अदीनसत्व—वि० [सं० अदीनसत्व] दे० 'अदीनवृत्ति' [को०]।

अदीनात्मा—वि० [सं०] दे० 'अदीनवृत्ति' [को०]।

अदीपित—वि० [सं०] अप्रकाशित [को०]।

अदीब[1]—वि० [अ०] १ अदब सिखानेवाला। २ सुशील [को०]।

अदीब[2]—संज्ञा पुं० साहित्य और विद्या का ज्ञाता [को०]।

अदीयमान—वि० [सं०] जो न दिया जाय। उ०—अदीयमान दुख सुख दीयमान जानिए।—केशव (शब्द०)।

अदीर्घ—वि० [सं०] जो बड़ा न हो। छोटा। सूक्ष्म [को०]।

अदीर्घसूत्री—वि० [सं०] १ काम करने में विलंब न करनेवाला। २ आलस्य न करनेवाला ३ स्फूर्तिवाला [को०]।

अदीर्घसूत्री—वि० [सं०] दे० 'अदीर्घसूत्री' [को०]।

अदीह—वि० [सं० अ = नहीं + दीर्घ, पा० दीघ, प्रा० दीह] दे० 'अदीर्घ'। उ०—राधिका रूप विधान के पानिप आनि सबै छिति की छवि छाई। दीह अदीहन सूछम थूल गहै दृग गारी की दौरि गोराई।—केशव (को०)।

अदुंद—वि० [सं० अद्वंद्व, प्रा० अदुंद] १ द्वंद्वरहित। निर्द्वंद्व। बिना झंझट का। बाधारहित। २ शांत। निश्चित। ३ बेजोड़। अद्वितीय। उ०—सोहत वनक पै कनक वसुधाधर सुधाधर बदन मधुराधर मदुर सी। (शब्द०)।

अदुःख—वि० [सं०] जो दुःखी न हो। दुःख से रहित [को०]।

अदुःखनवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि [को०]।

विशेष—इस दिन दुःख निवारण के लिये स्त्रियाँ देवी की पूजा करती हैं।

अदुहन—वि० [सं० अद्वैत] दे० 'अद्वैत'। उ०—अदुहन ब्रह्म विराग मत ब्रह्मज्ञान निर्लेप।—सं० दरिया, पृ० ८०।

अदुग्ध—वि० [सं०] १ दुग्धरहित। २ न दुही हुई [को०]।

अदुर्ग—वि० [सं०] १ दुर्गरहित। २ दुर्गम न हो [को०]।

अदुर्गविषय—संज्ञा पुं० [सं०] वह देश जिसमें किले का अभाव हो [को०]।

अदुष्ट—वि० [सं०] १ दूषणरहित। निर्दोष। शुद्ध। ठीक। यथार्थ। वास्तविक। उ०—सो स्लेष मुद्रालंकार करिकै बारह, लच्छन को नाम प्रान्यो चाहो तातें सब अदुष्ट हैं।—भिखारी० ग्रं० भा० २, पृ० २८०। २ सज्जन। भला।

अदू—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु। बैरी। दुश्मन। उ०—दोस्तों के लिये शादी हो अदू के लिये गम हो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २ पृ० ७४७।

अदूजा—वि० दे० 'अद्वितीय' [को०]।

अदूर[1]—क्रि० वि० [सं०] समीप। निकट। पास।

अदूर[2]—वि० पास का। समीपी [को०]।

अदूर[3]—संज्ञा पुं० सामीप्य [को०]।

अदूरदर्शी—वि० [सं०] जो दूर तक न सोचे। अनग्रसोची। जो दूर के परिणाम का विचार न करे। अविचारी। स्थूलबुद्धि। नासमझ।

अदूरदरसी—वि० [हिं०] दे० 'अदूरदर्शी'। उ०—हेरत हिरायेसे परसपर सचित्र चूर पारथ सो मारथी अदूरदरसीनि लौं।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १४३।

अदूषण—वि० [सं०] दूषणरहित। निर्दोष। बेऐब। शुद्ध। स्वच्छ। अच्छा।

अदूषन—वि० [हिं०] दे० 'अदूषण'। उ०—मनहु मारि मनसिज पुरारि दिय ससिहि चापसर मकर अदूषन।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१४।

अदूषित—वि० [स०] जिसपर दोष न लगा हो। निर्दोष। शुद्ध। उ०—वह पूर्णतया अदूषित और निर्विकार है।—कबीर ग्र०, पृ० ३।

अदूषितधी—वि०[सं०] जिसकी बुद्धि भ्रष्ट न हुई हो। शुद्ध बुद्धिवाला पवित्रात्मा। [को०]।

अदृढ—वि० [सं० अ+दृढ] १ जो दृढ न हो। कमजोर। अस्थिर। चचल।

यौ०—अदृढचित्त।

अदृप्त—वि० [स०] दर्प या अभिमानशून्य। निरभिमान। सीधा सादा। सौम्य।

अदृश्य—वि० [स०] १ जो दिखाई न दे। अलख। २ जिसका ज्ञान पाँच इद्रियो को न हो। अगोचर। परोक्ष। लुप्त। गायब। अतधर्वि।

क्रि० प्र०—करना। —होना। उ०—लक्ष्मण तुरत अदृश्य उसी मे हो गए।—कानन०, पृ० १०१।

अदृष्ट[1]—वि० [स०] १—न देखा हुआ। अलक्षित। अनदेखा। २—लुप्त। अतर्धान। तिरोहित। गायब। ओझल। उ०—यह कहिकै भागीरथी केशव भई अदृष्ट।—राम च०, पृ० ६३।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अदृष्ट[2]—सज्ञा पुं० १ भाग्य। प्रारब्ध। किसमत। भावी। जन्मातर का सस्कार। उ०—(क) केशव अदृष्ट साथ जीव जोति जैसी, तैसी लकनाथ हाथ परी छाया जाया राम की।—राम-च०, पृ० ७५। (ख) लिखता अदृष्ट था विधाता वाम कर से।—लहर पृ० ५३। २ अग्नि और जल आदि से उत्पन्न आपत्ति। जैसे—आग लगना, बाढ आना, तूफान आना।

अदृष्टकर्मा—वि० [सं० अदृष्टकर्मन्] जिसे काम करने का अभ्यास न हो। कार्य सबधी अनुभव से रहित [को०]।

अदृष्टगति—वि० [स०] १ जिसकी चाल लखी न जाय। जो चुपचाप कार्य करे। उ०—सहज सुवास सरीर की आकरषन विधि जानु। अति अदृष्टगति दूतिका, इष्ट देवता मानु।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० २६२। २ चालबाज। कूटनीतिपरायण।

अदृष्टनर—सज्ञा पुं० [सं०] वह सधि जिसे मध्यस्थ के बिना ही दोनो पक्ष स्वीकार कर लें [को०]।

अदृष्टनरसधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अदृष्टनरसन्धि] वह सधि जो दूसरे के साथ इस आशय से किया जाय कि वह किसी तीसरे से कोई काम सिद्ध करा देगा।

अदृष्टपुरुष—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अदृष्टनर' [को०]।

अदृष्टपूर्व—वि० [स०] १ जो पहले न देखा गया हो। २ अद्भुत। विलक्षण।

अदृष्टफल[1]—वि० [स०] अज्ञात फलवाला। जिसका फल न ज्ञात हो [को०]।

अदृष्टफल[2]—सज्ञा पुं० पुण्य अथवा पाप का भविष्य मे उपलब्ध होनेवाला फल [को०]।

अदृष्टरूप[1]—वि० [सं०] अदृश्य आकारवाला। [को०]।

अदृष्टरूप[2]—सज्ञा पुं० वह रूप जो दृष्टिगोचर न हो [को०]।

अदृष्टलिपि—सज्ञा स्त्री० [स० अदृष्ट+लिपि] भाग्यलिपि। भाग्य की रेखा। उ०—लोगो की अदृष्ट लिपि लिखी-पढी जाती थी।—लहर, पृ० ७६।

अदृष्टवाद—वह सिद्धात जिसके अनुसार परलोक आदि परोक्ष बातो पर किसी प्रकार का तर्क वितर्क किए बिना केवल शास्त्रलेख के आधार पर विश्वास किया जाय। प्रारब्धवाद। नियतिवाद।

अदृष्टवादी—वि० [स०] अदृष्टवाद को माननेवाला। भाग्यवादी। उ०—आप बडे अदृष्टवादी हैं।—आँधी, पृ० १८।

अदृष्टाकाश—सज्ञा पुं० [स० अदृष्ट+आकाश] भाग्यरूपी आकाश। उ०—मुगल अदृष्टाकाश मध्य अति तेज से धूमकेतु से सूर्य-मल्ल समुदित हुए।—कानन०, पृ० १०८।

अदृष्टाक्षर—सज्ञा पु० [सं०] ऐसी युक्ति से लिखे अक्षर जो बिना किसी विशिष्ट क्रिया के न पढे जाएँ।

विशेष—ऐसे अक्षर प्राय प्याज, नीबू आदि के रस से लिखे जाते हैं और सूखने पर दिखाई नही पडते। विशेषत आँच पर रखने से उभड आते और पढे जाते हैं।

अदृष्टार्थ[1]—सज्ञा पुं० [स०] न्यायदर्शन के अनुसार वह शब्दप्रमाण जिसके वाच्य या अर्थ का साक्षात् इस ससार मे न हो। जैसे—स्वर्ग, मोक्ष, परमात्मा, आदि।

अदृष्टार्थ[2]—वि० आध्यात्मिक या गूढ अर्थ का द्योतक। जिसका विषय इद्रियो के ज्ञान से परे हो [को०]।

अदृष्टि[1]—वि० [स०] दृष्टिहीन। अधा [को०]।

अदृष्टि[2]—सज्ञा स्त्री० १ दिखाई न पडने की स्थिति। २ क्रोध दुर्भाव आदि से युक्त दृष्टि। कुदृष्टि [को०]।

अदृष्टि[3]—सज्ञा पु० शिष्यो के तीन भेदो में से एक। मध्यम अधिकारी शिष्य।

अदृष्टिका—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अदृष्ट' [को०]।

अदेख(५)—वि० [स० अ=नहीं+हिं० <देख] १ जो न देखा जाय। अदृश्य। गुप्त। २ न देखा हुआ। अदृष्ट। उ०—(क) ऊहै अदेख केहू नहि देखा, कवन फल दहुँ पाय।—जग० बानी, पृ० १०६। (ख) देखेउ करइ अदेख इव अनदेखेउ बिसुआस।—स० सप्तक, पृ० २८।

अदेखी[1]—वि० [अ=नहीं+देखी] जो न देख सके। डाही। द्वेषी। ईर्षालु। उ०—ए दई, ऐसो कछू कह न्यौंत जु देखें अदेखिन के दृग दागैं। जामे निसक ह्वै मोहन को भरिए निज अक कलक न लागैं।—पद्माकर ग्र०, पृ० ९७।

अदेखी[2]—वि० स्त्री० बिना देखी हुई।

अदेखे—क्रि० वि० [हिं०] बिना देखे। अनदेखे। उ०—अदेखे अकेले किते दिन ह्वै गए चाह गई चित सो कढ़ि सोऊ।—ठाकुर०, पृ० ७।

अदेय—वि० [स०] १ न देने योग्य। जिसे न दे सकें। उ०—सकुच बिहाइ माँगु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही।—मानस, १।१४९। २ (वह पदार्थ) जिसे देने को कोई वाध्य न किया जा सके।

जिसके थान की लंबाई साधारण गजेंद्र या नैनसुख के थान की आधी होती है।

अद्भुत¹—वि० [सं०] [संज्ञा अद्भुतता, अद्भुतत्व] आश्चर्यजनक। विस्मयकारक। विलक्षण। विचित्र। अनोखा। अजीब। अपूर्व। अलौकिक।

अद्भुत²—संज्ञा पुं० १ आश्चर्य। विस्मय (को०)। २ विस्मयपूर्ण घटना, पदार्थ या वस्तु (को०)। ३ किसी ऊँचाई की माप के ५ सम भागों में से एक, जिनमें ऊँचाई चौड़ाई की अपेक्षा दूनी होती है (को०)। ४ काव्य के नौ रसों में से एक।

विशेष—इसमें अनिवार्यतः विस्मय की परिपुष्टता दिखलाई जाती है। इसका वर्ण पीत, देवता ब्रह्मा, आलंबन असंभावित वस्तु, उद्दीपन उसके गुणों की महिमा तथा अनुभाव स्तंभनादिक हैं। ५ केशव के अनुसार रूपक के तीन भेदों में एक।

विशेष—इसमें किसी वस्तु का अलौकिक रूप में एक रस होना दिखलाया जाता है। जैसे—सोभा सरवर माहिं फूल्योई सखि, राजै राजहंसिनी समीप सुखदानिऐ। केसोदास आस पास सौरभ के लोभ घने, आननि के देव भौंर भ्रमत बखानिऐ। होति ज्योति दिन दूनी निसी में सहस गुनी, सूरज सुहृद चारु चंद मन मानिऐ। रति को सदन, छूइ सकै न मदन ऐसो कोमलवदन जग जानकी को जानिऐ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १८४।

अद्भुतकर्मा—वि० [सं० अद्भुतकर्मन्] आश्चर्यजनक काम करनेवाला उ०—और सब लोग इनको अद्भुतकर्मा कहते हैं।—रसक०, पृ० ४२।

अद्भुतता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विचित्रता। विलक्षणता। अनोखापन।

अद्भुतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] विचित्रता। अनोखापन। उ०—चमत्कार में हमारा अभिप्राय यहाँ प्रस्तुत वस्तु के अद्भुतत्व या वैलक्षण्य से नहीं।—रस० पृ० ३३।

अद्भुतदर्शन—वि० [सं०] जो देखने में अद्भुत या विचित्र लगे। विलक्षण।

अद्भुतधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के नव अंगों में से एक [को०]।

अद्भुतब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के एक ब्राह्मण का अंश [को०]।

अद्भुतरस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अद्भुत'। उ०—जाको थाई आचरज सो अद्भुतरस गाव।—पद्माकर ग्रं० पृ० २३०।

अद्भुतरामायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक रामायण जिसकी रचना का श्रेय वाल्मीकि को दिया जाता है [को०]।

अद्भुतसार—सं० पुं० [सं०] खदिर वृक्ष का फल [को०]।

अद्भुतस्वन¹—वि० [सं०] विचित्र स्वरवाला [को०]।

अद्भुतस्वन²—संज्ञा पुं० शिव का एक नाम [को०]।

अद्भुतालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ संसार के अद्भुत पदार्थ दिखलाने के लिये रखे जाते हैं। अजायबघर।

अद्भुतोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का एक भेद।

विशेष—इसमें उपमा के ऐसे गुणों का उल्लेख किया जाता है, जिनका होना उपमेय में त्रिकाल में भी संभव न हो। जैसे—श्रीरम को अपमाननि गान सयाननि रीझि रिझावैं। भ्रुक बिलोकनि बोलि अमोलनि बोलि कै केशव मोद बढ़ावैं। हावइ भाव विभाव प्रभाव सुभाव कै भाइनि चित्त चुरावैं। ऐसे विलास जु होहिं सरोज मैं तौ उपमा मुख तेरे की पावैं।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १८९।

अद्मनि¹—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

अद्मर—वि० [सं०] अत्यधिक खानेवाला। पेटू [को०]।

अद्य¹—क्रि० वि० [सं०] अब। अभी। आज।

अद्य²—संज्ञा पुं० खाद्य पदार्थ। आहार [को०]।

अद्य³—वि० खाने योग्य। भोज्य [को०]।

अद्यतन—वि० [सं०] [वि० अद्यतनीय] आज के दिन का। वर्तमान।

अद्यतन¹—संज्ञा पुं० बीती हुई आधी रात से लेकर आनेवाली आधी रात तक का समय। कोई कोई बीती हुई रात के शेष प्रहर से लेकर आनेवाली रात के पहले प्रहर तक के समय को अद्यतन कहते हैं।

अद्यतनीय—वि० [सं०] आज का। आधुनिक युग का [को०]।

अद्यदिन—अव्य० [सं०] आज का दिन [को०]।

अद्यदिवस—अव्य० [पुं०] दे० 'अद्यदिन' [को०]।

अद्यपूर्व—अव्य० [सं० अद्यपूर्वम्] अब अथवा आज से पहले [को०]।

अद्यप्रभृति—क्रि० वि० [सं०] आज से। अब से।

अद्यश्वीन—वि० [सं०] आज या कल के अंतर्गत घटित होनेवाला [को०]।

अद्यश्वीना—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसका प्रसवकाल सन्निकट हो। आसन्नप्रसवा [को०]।

अद्यापि—क्रि० वि० [सं०] आज भी। अब भी। इस समय भी। अब तक। आज तक। उ०—देवयानी और ययाति के पावन चरित अद्यापि भूमंडल को पवित्र करते हैं।—श्यामा०, पृ० ६१।

अद्यावधि—क्रि० वि० [सं०] आज तक। अब तक। इस समय पर्यंत। उ०—वह मंत्र जो इसने सिद्ध किया था, अद्यावधि इसी भीत पर गहरा खुदा है।—श्यामा०, पृ० १४।

अद्यावधिक—वि० [सं०] आजकल का। आधुनिक [को०]।

अद्याश्व—संज्ञा पुं० [सं०] आज और कल का दिन [को०]।

अद्यूत्य—वि० [सं०] जो जुए से प्राप्त न किया गया हो। ईमानदारी से उपार्जित [को०]।

अद्यैव—क्रि० वि० [सं०] आज ही। इसी समय [को०]।

अद्रव¹—वि० [सं०] जो द्रव या पतला न हो। गाढ़ा। घना। ठोस।

अद्रव²—संज्ञा पुं० ठोस पदार्थ [को०]।

अद्रव्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] सत्ताहीन पदार्थ। अवस्तु। असत्। शून्य। अभाव।

अद्रव्य²—वि० द्रव्य या धनरहित। दरिद्र।

अद्रा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आर्द्रा, हिं० अद्रा] दे० 'आर्द्रा'। उ०—(क) तपनि मृगसिरा जे सहे ते अद्रा पलुहे।—जायसी ग्रं०, पृ० १५६। (ख) अद्रा धान पुनर्वसु पैया, गया किसान जो बोवै चिरैया।—घाघ०, पृ० ७३।

अद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत। पहाड़। २. पत्थर (को०)। ३. पेड़। वृक्ष (को०)। ४. सूर्य। दिनकर (को०)। ५ [illegible] (को०)। ६. [illegible] (को०)। ७. [illegible] (को०)। ८. एक प्रकार की माप (को०)। ९. [illegible] (को०)। १०. पृथ्वी का एक पीत (को०)।

अद्रिकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती (को०)।

अद्रिकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराजिता पौधा (को०)।

अद्रिकील—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] (को०)।

अद्रिकीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। धरती।

अद्रिकुक्षि—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुफा। [illegible] (को०)।

अद्रिछिद्—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र। [illegible]।

अद्रिज¹—वि० [सं०] पर्वत से उत्पन्न (को०)।

अद्रिज²—संज्ञा पुं० १. शिलाजीत। २. [illegible] (को०)।

अद्रिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती। २. [illegible] सिंहली पीपर (को०)।

अद्रितनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती। [illegible] के एक वृत्त का नाम। इसे अश्वललित भी कहते हैं। [illegible] न [illegible] भी [illegible] (उदा०)।

अद्रिद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पहाड़ी घाटी। २. [illegible] उद्गम (को०)।

अद्रिद्विष—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों का शत्रु। इंद्र (को०)।

अद्रिनन्दिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अद्रिनन्दिनी] [illegible] (को०)।

अद्रिपति—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों के स्वामी। पर्वतों का राजा। हिमालय।

अद्रिभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम [illegible]।

अद्रिम—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] नामक पौधा (को०)।

अद्रिमण्डल—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत समूह। उ०—[illegible] अद्रिमण्डल [illegible]। —[illegible], पृ० ३।

अद्रिराज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अद्रिपति' (को०)।

अद्रिवह्नि—संज्ञा पुं० [सं०] दावाग्नि (को०)।

अद्रिशय्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (को०)।

अद्रिशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत की चोटी। उ० [illegible] सब दुख सह दुरम उत्पन्नित अद्रिशिखर। —[illegible], पृ० १२।

अद्रिशृंग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अद्रिशिखर' (को०)।

अद्रिसानु—संज्ञा पुं० [सं०] अद्रिशृंग' (को०)।

अद्रिसार¹—वि० [सं०] पर्वत जैसा दृढ़ (को०)।

अद्रिसार²—संज्ञा पुं० १. लोहा। २. शिलाजीत।

अद्रिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती (को०)।

अद्रीन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० अद्रीन्द्र] हिमालय पर्वत (को०)।

अद्रीश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अद्रीन्द्र' (को०)।

अद्रोघ—वि० [सं०] १. सत्य। २. द्रोहविहीन। द्रोहरहित (को०)।

अद्रोह—संज्ञा पुं० [सं०] द्रोह या द्वेष का अभाव। [illegible] (को०)।

अद्रोहवृत्ति—[illegible] [सं०] द्रोह या द्वेषविहीन [illegible] (को०)।

अद्वितीय—वि० [सं० अद्वितीय] [illegible]।

[illegible]

अद्वैत²—वि० [सं०] १. द्वितीयरहित। [illegible]। २. [illegible]। अद्वितीय। अनोखा।

अद्वैत—संज्ञा पुं० १. ब्रह्म। ईश्वर। २. [illegible] का अभाव। जीव ब्रह्म का ऐक्य (को०)।

अद्वैतवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म [illegible] को [illegible] दूसरा [illegible] सिद्ध [illegible] को ब्रह्म [illegible] करते हैं। [illegible] सिद्धांत का सब विवेचन [illegible] का बहुत [illegible] जीव [illegible] आदि की [illegible] है। [illegible] समस्त प्रमेय पदार्थों का [illegible], [illegible], [illegible] का [illegible] अस्वीकार करते हैं। शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित 'अद्वैतवाद' इसी मत का प्रतिपादक है। ब्रह्माद्वैतवाद (शांकर) [illegible] मत) [illegible] (ब्रह्माद्वैतवाद) के अतिरिक्त 'शिवाद्वैतवाद' [illegible] आदि हैं। इसी के अंतर्गत प्रकार है—दृग्द्वैत, केवलाद्वैत

आदि भी । ३. शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित वेदांत दर्शन । इस मत में 'ब्रह्म' के अतिरिक्त सभी पदार्थ असत्य हैं अर्थात् 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' के अनुसार 'एकमेवाद्वितीय ब्रह्म' अर्थात् 'ब्रह्म' ही एक और केवल अद्वैत तत्व सत्य माना गया है और 'ब्रह्म' सत्-चित्-आनंदस्वरूप । मायावाद, अध्यासवाद, विवर्तवाद, उत्तरमीमांसा, शंकरवेदांत आदि पदों से प्राय इसी दर्शन का बोध होता है ।

विशेष—इस सिद्धांत के अनुयायी कहते हैं कि जैसे रस्सी के स्वरूप को न जानने से सर्प का बोध होता है, वैसे ही ब्रह्म के रूप को न जानने के कारण अध्यासवश ब्रह्म ही संसार रूप में वस्तुत दिखाई देता है । अंत में अज्ञान दूर हो जाने पर सब पदार्थ ब्रह्ममय प्रतीत होता है ।

अद्वैतवादी[1]—वि० [सं०] अद्वैत मत को माननेवाला । ब्रह्म और जीव को एक माननेवाला । शांकरवेदांत का अनुयायी ।

अद्वैतवादी[2]—संज्ञा पुं० अद्वैतवाद का सिद्धांत माननेवाला व्यक्ति ।

अद्वैतसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ब्रह्म और जीव के अभेद की सिद्धि । २ शांकर वेदांत का प्रकरणविशेष [को०] ।

अद्वैती—संज्ञा पुं० [सं० अद्वैतिन्] दे० 'अद्वैतवादी' [को०] ।

अद्वैध—वि० [सं०] १ जो दो भागों में विभक्त न हो । अवियुक्त । २ असद् भावना से रहित । ३ खरा । उत्तम [को०] ।

अद्वैध्यमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति, मित्र या राष्ट्र जिसकी मित्रता में किसी प्रकार का संदेह न हो ।

विशेष—वह जिसकी मैत्री स्वार्थपूर्ण न हो, जो स्थिरचित्त, सुशील, और उपकारी हो तथा विपत्ति में जिसके साथ छोड़ने की आशंका न हो, वह अद्वैध्यमित्र है ।

अधंग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्धांग' । उ०—सीस गंग गिरिजा अधंग भूषण भुजगवर ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २३५ ।

अधंतरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अध + अंतरी] मालखंभ की एक कसरत ।

अध[1]—अव्य० [सं०] नीचे । तले ।

अध[2]—संज्ञा स्त्री० दश दिशाओं में से, एक । पैर के ठीक नीचे की दिशा ।

अध काय—संज्ञा पुं० [सं० अध =नीचे+काय=शरीर] कमर के नीचे के अंग । नाभि के नीचे के अवयव ।

अध क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपमानित करना । नीचा दिखाना [को०] ।

अध पतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीचे गिरना । २ अवनति । अध पात तनज्जुली । ३ दुर्दशा । दुर्गति । ४ विनाश । क्षय ।

अध पतित—वि० [सं०] १ जिसका पतन हो गया हो । २ दुर्दशाग्रस्त [को०] ।

अध पात—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे गिरना । पतन । २ अवनति । तनज्जुलि । ३ दुर्गति । दुर्दशा ।

अध पुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनंतमूल नामक औषधि । २ नीले फूल की एक बूटी जिसे अधाहुली भी कहते हैं ।

अध प्रस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] अशौचवालों के बैठने के लिये तृणों का बना हुआ आसन । कुशासन ।

अधोवेद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रथम पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह करना [को०] ।

अध शयन—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी पर सोना । ब्रह्मचर्य का एक नियम

अध शय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अध शयन' [को०] ।

अध शिरा[1]—वि० [सं० अध शिरस्] सिर नीचे रखनेवाला [को०] ।

अध शिरा[2]—संज्ञा पुं० एक नरक का नाम [को०] ।

अध स्वस्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] अधोबिंदु । देखनेवालों के पैरों के नीचे माना जानेवाला एक कल्पित बिंदु [को०] ।

अध[1](पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'अध' । उ०—अध अर्द्ध वानर विदिस दिसि वानर है ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७४ ।

अध[2]—वि० [सं० अर्ध; प्रा० अद्ध, अध] 'आधा' शब्द का संकुचित रूप । आधा । उ०—हौं जानत जो नाह तुम बोलत अध अखरान ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६६ ।

विशेष—प्राय यौगिक शब्द बनाने में इस शब्द का प्रयोग होता है । जैसे—अधकचरा, अधजल, अधबावरा, अधमरा ।

अधकचरा[1]—वि० [हिं० अध + कच्चा] १ अपरिपक्व । अधूरा । अपूर्ण । २. अकुशल । अदक्ष । जिसने पूरी तरह कोई चीज न सीखी हो । जैसे—उसने अच्छी तरह पढ़ा नहीं अधकचरा रह गया (शब्द०) ।

अधकचरा[2]—वि० [हिं० अध + कचरना] आधा कूटा या पीसा हुआ । दरदरा । अधपिसा । अधकूटा । अरदावा किया हुआ ।

अधकच्चा—वि० [हिं०] दे० 'अधकचरा' । उ०—बहुधा इस तरह की बनावट और चालाकी सुखवासी लाल सरीखे अधकच्चे मनुष्यों से होती है ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ६४ ।

अधकच्छा—संज्ञा पुं० [सं० अधिकच्छा] नदी के किनारे की वह ऊँची भूमि जो ढालुई होते होते नदी की सतह में मिल गई हो ।

अधकछार—संज्ञा पुं० [सं० अर्ध + कच्छ] पहाड़ के अंचल की वह ढालुई भूमि जो प्राय बहुत उपजाऊ और हरी भरी होती है ।

अधकट—वि० [हिं० अध + कटना] १ आधा कटा हुआ । २ नियत दूरी या परिमाण का आधा ।

अधकपारी—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्ध + कपाल हिं० अध + कपारी] आधे सिर का दर्द जो सूर्योदय से प्रारंभ होकर दोपहर तक बढ़ता जाता है । फिर दोपहर के बाद से घटने लगता है और सूर्यास्त होते ही बंद हो जाता है । आधासीसी । सूर्यावर्त ।

अधकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्ध + कर] १ अठन्नियाँ । किस्त । मालगुजारी या महसूल या किराए की आधी रकम जो किसी नियत समय पर दी जाय ।

अधकहा—वि० [हिं० अध + कहना] आधा कहा हुआ । अस्पष्ट रूप से या आधा उच्चारण किया हुआ । उ०—गहकि गाँसु औरे गहे रहे अधकहे बैन । देखि खिसौहैं पिय नयन किए रिसौहैं नैन ।—बिहारी र०, दो० ६५ ।

अधकी(पु)—वि० [सं० अधिक] दे० 'अधिक' । उ०—ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों त्यों अधकी बास ।—कबीर सा० सं०, पृ० ६३ ।

अधखिला—वि० [हिं० अध + खिलना] [स्त्री० अधखिली] आधा खिला हुआ । अर्धविकसित ।

अधखुला—वि० पुं० [हिं० अध+खुलना] [स्त्री० अधखुली] आधा खुला हुआ। उ०—सुभग सिंगार साजे सबै, दै सखीन को पीठि। चलै अधखिले द्वार लौं, खुली अधखुली दीठि।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२८।

अधगतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अधोगति'। उ०—महा विपट कोटर महु जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई।—मानस, ७।१०७।

अधगो—संज्ञा पुं० [सं० अध = नीचे+गो = इंद्रिय] नीचे की इंद्रियाँ। शिश्न या गुदा। उ०—उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु की बहु कलपना।—मानस, ६।१५।

अधगोरा—संज्ञा पुं० [हिं० अध+गोरा] [स्त्री० अधगोरी] यूरोपीय और एशियाई माता पिता से उत्पन्न संतान। यूरेशियन।

अधगोहुआँ—संज्ञा पुं० [सं० अर्ध+गोधूम+क] जौ मिला हुआ गेहूँ। गोजई।

अधघटⓅ—वि० [हिं० अध+घट] जो ठीक या पूरा न उतरे। जिससे ठीक अर्थ न निकले। अटपट। कठिन। उ०—है कबीर अधघट बोलै। पूरा होइ विचार लै बोलै।—कबीर (शब्द०)।

अधचना—संज्ञा पुं० [हिं० आधा+चना] गेहूँ और चने का मिश्रण जिसमें आधा चना और आधा गेहूँ हो।

अधचरा—वि० [हिं० अध+चरना] आधा चरा हुआ। अर्धभक्षित। आधा खाया हुआ। उ०—यह तन हरियर खेत, तरुनी हरिनी चर गई। अजहूँ चेत अचेत यह अधचरा बचाइ ले।—सम्मन (शब्द०)।

अधजरⓅ—वि० [हिं० अध+जरना] दे० 'अधजला'। उ०—कोई परा भौंर होइ बास लीन्ह जनु चोप। कोई पतंग भा दीपक कोइ अधजर तन कोंप।—जायसी ग्र०, पृ० २४६।

अधजल—वि० [सं० अर्ध+जल] पानी से आधा ही भरा हुआ। जैसे—अधजल गगरी छलकत जाय (को०)।

अधजला—वि० [हिं० आधा+जलना] आधा जला हुआ। जो पूर्ण रूप से भस्म न हुआ हो।

अधडीⓅ—वि० स्त्री० [सं० अधर] १ न ऊपर न नीचे। अधर का। आधाररहित। निराधार। २ ऊटपटाँग। बेसिर पैर का। असबद्ध। जिसका कोई सिलसिला न हो। न इधर की न उधर की। उ०—अधडी चाल कबीर की असा धरी नहिं जाइ। दादू डाँकहि मिरिग ज्यो उलटि पडइ भू आइ।—दादू (शब्द०)।

अधधर—संज्ञा पुं० [सं० अर्ध+धार] मध्यधार। बीचोबीच। उ०—पढे गुने उपजै अहँकारा। अधधर डूबे वार न पारा।—कबीर ग्र०, पृ० १३०।

अधनⓅ—वि० [सं०] १ धनरहित। निर्धन। कंगाल। गरीब। अकिंचन। धनहीन। उ०—तुम सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि सिवहि संदेहा।—मानस, १।१६१। २ स्वतंत्र संपत्ति रखने का अनधिकारी (को०)।

विशेष—मनु के अनुसार भार्या, पुत्र और दास स्वतंत्र संपत्ति रखने के अनधिकारी हैं।

अधनियाँ—वि० [हिं० आधा+आना+इया (प्रत्य०)] आध आने का। आध आनेवाला। जैसे—अधनियाँ टिकट।

अधन्ना—संज्ञा पुं० [सं० अर्ध+आणक = आना] [स्त्री० अधन्नी] एक आने का आधा। आध आने का सिक्का। डबल पैसा।

अधन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अधन्ना'।

अधन्य—वि० [सं०] [स्त्री० अधन्या] १ जो धन्य न हो। भाग्यहीन। अभागा। २ गर्हित। निंद्य। बुरा।

अधप—संज्ञा पुं० [सं०] भूखा सिंह। अर्धतृप्त केहरी।

अधपई—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्ध+पाद = चौपाई] तौलने का एक बाट। एक सेर के आठवें हिस्से की तौल। आधा पाव तौलने का बाट या मान। दो छटकी। दसभरी। अधपैया। अधपौवा।

अधपका—वि० [सं० अर्धपक्व] आधा पका हुआ। जो पूरी तरह पका न हो। अपरिपक्व।

अधपतिⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधिपति'। उ०—खैंची कमर सौं बाँध्या पटका। अधिपति हुवा बैठि करि पटका।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ३५१।

अधफडⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधफर'। उ०—टूटे पख बाज मँडराने अधफड प्रान गँवैहौं।—कबीर श०, पृ० २२।

अधफरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अर्ध+फलक = तख्ता] अंतरिक्ष। न नीचे न ऊपर का स्थान। बीच का भाग। अधर। उ०—अब अधफर ऊपर अकाश। चलत दीप देखियत प्रकाश। चौकी दै मनु अपने भेव। बहुरे देवलोक को देव।—केशव (शब्द०)।

अधबरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० अध+देश० बर (प्रत्यय०)] अथवा हिं० अध+बाट = मार्ग] १ आधा मार्ग। आधा रास्ता। उ०—जे अनिरुध पर परें हथ्यार। अधबर कटें शिखा की धार।—लल्लू (शब्द०)। २ बीच। मध्य। अधर। उ०—उन कुल की करनी तजी इत न भजे भगवान। तुलसी अधबर के भए ज्यों बघूर के पान।—स० सप्तक, पृ० ३१।

अधबाँच—संज्ञा पुं० [हिं० अध+सं० *√वञ्च्]१ चमरावत। चमारों का जोरा। २ वह उजरत जो चमारों को चमड़े का मोट बनाने के लिये वर्ष भर में या फसल के समय दी जाती है।

अधबिच—संज्ञा पुं० [हिं० अध+बीच] मध्य। बीच। उ०—तरु तमाल अधबीच जनु त्रिविध कीर पाँति रुचिर, हेमजाल अंतर परि तातें न उडाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४०५।

अधबुधⓅ—वि० [सं० अर्ध+बुध = बुद्धिमान] अर्धशिक्षित। अधचरा। जिसकी शिक्षा पूरी न हुई हो। उ०—दिना सात लौं बाकी सही। बुध अधबुध अचरज एक कही।—कबीर (शब्द०)।

अधबैसूⓅ—वि० [सं० अर्ध+वयस्+हिं० ऊ (प्रत्य०)] [स्त्री० अधबैसी] अधेड। मध्यम अवस्था का। ढलती उम्र का। उतरती जवानी का।

अधम[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अधमा] [संज्ञा अधमाई, अधमता] १ नीच। निकृष्ट। बुरा। खोटा। २ पापी। दुष्ट। उ०—कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।—मानस १।११४।

अधम²—संज्ञा पुं० १ एक पेड़ का नाम। २ कवि के तीन भेदों में से एक। वह कवि जो दूसरों की निंदा करे। ३ ग्रहों का एक अनिष्ट योग (को०)। ४ कर्तव्याकर्तव्य के विचार से रहित कामी (को०)।

अधमई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अधम+हिं ई (प्रत्य०)] नीचता। अधमता। खोटापन।—सुनि मेरी अपराध अधमई कोई निकट न आवै।—सूर०, १।१६७।

अधमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधमपना। नीचता। खोटाई।

अधमभृत—संज्ञा पुं० [सं०] निम्न श्रेणी का सेवक। तीन प्रकार के सेवकों में एक [को०]।

अधमभृतक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधमभृत' [को०]।

अधमरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्यवश प्रीति को अधमरति कहते हैं। जैसे, वेश्या की प्रीति।

अधमरा—वि० पुं० [सं० अर्ध, हिं अध+मरा] [स्त्री० अधमरी] आधा मरा हुआ। अर्धमृत। मृतप्राय। अधमुआ।

अधमर्ण—संज्ञा पुं० [सं० अधम+ऋण] ऋण लेनेवाला आदमी। कर्जदार। धरना। ऋणी।

अधमाग—संज्ञा पुं० [सं० अधमाङ्ग] शरीर का निचला भाग। चरण। पाँव। पैर।

अधमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'अधमा नायिका'। २ नीच प्रकृति की स्त्री [को०]।

अधमाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अधम+हिं० आई (प्रत्य०)] अधमता। नीचता। खोटाई। उ०—परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीडा सम नहिं अधमाई।—मानस ७।४१।

अधमादूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधम कुटनी। वह दूती जो उत्तम रूप से अपना कार्य न करे वरन् कटु बातें कहकर नायक या नायिका का सदेश एक दूसरे को पहुँचाए।

अधमाधम—वि० [सं अधम+अधम] नीच से नीच। महानीच। उ०—महा विटप कोटर महु जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई। मानस ७।१०७।

अधमानायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रकृति के अनुसार नायिका के भेदों से एक। वह स्त्री जो प्रिय या नायक के हितकारी होने पर भी उसके प्रति अहित या कुव्यवहार करे।

अधमार(पु)—वि० [हिं०] आधे मारे हुए। अधमरा। उ०—गए पुकारत कछु अधमारे।—मानस ५।८।

अधमार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि के नीचे का भाग [को०]।

अधमुआ—वि० [हिं०] दे० 'अधमरा'।

अधमुख(पु)—क्रि० [सं० अधोमुख] मुँह के बल। सिर के बल। औंधा। उलटा। उ०—(क) स्याम भुजनि की सुदरताई। बडे विमाल जानु लौं परसत इक उपमा मन आई। मनो भुजग गगन तें उतरत अधमुख रह्यो झुलाई।—सूर (शब्द०)। (ख) स्याम बिंदु नहिं चिबुक मैं, सो मन यों ठहराइ। अधमुख ठोढी गाड की, अँधियारी दरसाई।—स० सप्तक, पृ० २४५।

अधमोद्धारक—वि० [सं०] पापियों का उद्धार करनेवाला [को०]।

अधरंगा—संज्ञा पुं० [हिं० आधा+रंग] एक प्रकार का फूल।

अधर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे का ओठ। २ ओठ।

यौ०—बिंबाधर। दयिताधर।

मुहा०—अधर चबाना=क्रोध के कारण दाँतों से ओठ बार बार दबाना। उ०—तदपि क्रोध नहिं रोक्यो जाई। भए अरुन चख अधर चबाई।—पद्माकर (शब्द०)।

३ भग या योनि के दोनों पार्श्व। ४ शरीर का निचला हिस्सा (को०)। ५ दक्षिण दिशा (को०)।

अधर²—संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+धृ=धरना] १ बिना आधार का स्थान। अंतरिक्ष। आकाश। शून्यस्थान। जैसे—वह अधर में लटका रहा। (शब्द०)।

मुहा०—अधर में झूलना, अधर में पडना, अधर में लटकना=(१) अधूरा रहना। पूरा न होना। जैसे—यह काम अधर में पडा हुआ है (शब्द०)। (२) पशोपेश में पडना। दुविधा में पडना।

अधर³—वि० १ जो पकड में न आए। चंचल। २ नीच। बुरा। तुच्छ। उ०—गूढ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि। सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि।—मानस २।१६। ३ विवाद या मुकदमे में जो हार गया हो। ४ नीचा। नीचे का।

अधरकाय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का निचला भाग [को०]।

अधरछत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अधरक्षत] ओठ का व्रण। उ०—तु है अपन्हुति अधरछत करत न पिय हिय बाइ।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १६।

अधरज—संज्ञा पुं० [सं० अधर+रज] ओठों की ललाई। ओठों की सुर्खी। ओठों की धडी। पान या मिस्सी के रंग की लकीर जो ओठों पर दिखाई देती है।

अधरपान—संज्ञा पुं० [सं० अधर=ओठ+पान=पीना, चूसना] सात प्रकार की बाह्यरतियों में से एक रति। ओठों का चुंबन।

अधरबिंब—संज्ञा पुं० [सं०] कुँदरू के पके फल जैसे लाल ओठ।

अधरबुद्धि—वि० [सं०] क्षुद्र बुद्धिवाला [को०]।

अधरम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधर्म'। उ०—जब जब होई धरम कै हानी। बढहिं असुर अधरम अभिमानी।—मानस १।१२१।

अधरमकाय(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधर्मास्तिकाय'।

अधरमधु—संज्ञा पुं० [सं०] अधरों का रस। अधरामृत [को०]।

अधररस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधरमधु' [को०]।

अधरस्वस्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] अधोबिंदु [को०]।

अधरांग—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के नीचे के अंग या भाग [को०]।

अधरा(पु)—स्त्री० पुं० [सं० अधर] दे० 'अधर'। उ०—सूरज मित्र से डँगुर बोरे बँधूक से हैं अधरा अरुनारे।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ११।

अधरात(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्धरात्रि] आधीरात। उ०—अधरात उठत करि हाय हाय।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २२२।

अधराधर—संज्ञा पुं० [सं० अधर+अधर] नीचे का ओठ। उ०—बर दंत की पंगति कुंद कली अधराधर पल्लव खोलनि की।—तुलसी,ग्र० पृ० १५५।

अधरामृत—संज्ञा पुं० [सं०] ओठों का रस जो अमृत के समान मीठा माना जाता है [को०]।

अधरावलोप—संज्ञा पुं० [सं०] ओष्ठचर्वण। ओठ चबाना [को०]।

अधरासव—संज्ञा पुं० [अधर+आसव] ओठ का मादक रस।—उ०—अधरासव अधरन चह्यौ उरहु चह्यौ उर लागि।—श्यामा०, पृ० १७६।

अधरीण—वि० [सं०] १ नीच। तिरस्कृत। २ निंदित [को०]।

अधरेद्यु—संज्ञा पुं० [सं०] गत दिन के पहले का दिन। परसों।

अधरोथा(पु)-वि० [सं० अर्ध+रोमन्य=जुगाली] [स्त्री० अधरोथी] आधा जुगाली किया हुआ। आधा पागुर किया हुआ। आधा चबाया हुआ। उ०—अधरोथी कग दाम गिरावन। थकित खुले मुख ते बिखरावन। शकुतला०, पृ० ८।

अधरोत्तर—वि० [सं अधर+उत्तर] ऊँचा नीचा। खडबीहड। ऊबड खाबड। २ अच्छा बुरा। ३ न्यूनाधिक। कमोवेश।

अधरोत्तर—क्रि० वि० ऊँचे नीचे।

अधरोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे का होठ। २ नीचे और ऊपर के दोनों ओठ [को०]।

अधरौष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधरोष्ठ' [को०]।

अधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अधर्मी, अधर्मिष्ठ, अधर्मी] पाप। पातक। असद्व्यवहार। अकर्तव्य कर्म। अन्याय। धर्म के विरुद्ध कार्य। कुकर्म दुराचार। बुरा काम।

विशेष—शरीर द्वारा हिंसा चोरी आदि कर्म वचन द्वारा अनृत भाषण आदि और मन द्वारा परद्रोहादि। यह गौतम का मत है। कणाद के अनुसार वह कर्म जो अभ्युदय (लौकिक सुख) और निःश्रेयस (पारलौकिक सुख) की सिद्धि का विरोधी हो। जैमिनी के मतानुसार वेदविरुद्ध कर्म। बौद्धशास्त्रानुसार वह दुष्ट स्वभाव जो निर्वाण का विरोधी हो।

२ एक प्रजापति अथवा सूर्य का अनुचर [को०]।

अधर्ममत्रयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जो दोनों ओर के लोगों को नष्ट करने के लिये छेड़ा गया हो।

अधर्मात्मा—वि० [सं०] अधर्मी पापी। दुराचारी। कुकर्मी। बुरा।

अधर्मास्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] अधर्म पाप। जैनशास्त्रानुसार द्रव्य के छह भेदों में से एक।

विशेष—यह एक नित्य और अरूपी पदार्थ है जो जीव और पुद्‌गल की स्थिति का सहायक है। इसके तीन भेद हैं—स्कंध, देश और प्रदेश।

अधर्मी—संज्ञा पुं० [सं० अधर्मिन्] [स्त्री० अधर्मिणी] पापी दुराचारी

अधर्म्य—वि० [सं०] १ धर्मविरुद्ध। जो धर्म की दृष्टि में उपयुक्त न हो। २ अवैध। अन्यायपूर्ण [को०]।

अधर्पणी—वि० पुं० [सं०] जिसको कोई दबा या डरा न सके। जिसको कोई पराजित न कर सके। प्रचंड। प्रबल। निर्भय।

अधवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+धव=पति] जिसका पति जीवित न हो। विधवा। पतिहीना। बिना पति की स्त्री। सधवा का उलटा।

अधवाना—संज्ञा पुं० [हिं० हिंदवाना] तरबूज।

अधवारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड का नाम जिसकी लकडी मकान और असबाब बनाने के काम आती है।

अधश्चर¹—वि० [सं०] जो नीचे नीचे चले।

अधश्चर²—संज्ञा पुं० सेंध लगाकर चोरी करनेवाला पुरुष। सेंधिया चोर।

अधसेरा—संज्ञा पुं० [सं० अर्ध+सेटक=सेर] एक बाट या तौल जो एक सेर की आधी होती है। दो पाव का मान।

अधस्तन—वि० [सं०] १ नीचा। नीचे अवस्थित। २ पूर्ववर्ती। पहले का [को०]।

अधस्तल—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे का कमरा। नीचे की कोठरी। २ नीचे की तह। तहखाना।

अधस्स्वस्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे की ओर का वह स्थान या बिंदु जो पृथ्वी पर के किसी स्थान या बिंदु के ठीक नीचे हो। शीर्षबिंदु से ठीक विपरीत दिशा का बिंदु जो क्षितिज का दक्षिणी ध्रुव है।

अधाँगा—संज्ञा पुं० [सं० अर्धाङ्ग] एक खाकी रंग की चिडिया जिसकी गरदन से ऊपर का सारा भाग लाल होता है और डैने तथा पैर सुनहले होते हैं।

अधाधुध—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अधाधुंध'।

अधाना—संज्ञा पुं० [सं० अर्ध] ख्याल (अस्थायी) का एक भेद। यह तिलवाडा ताल पर बजाया जाता है।

अधान्यवाय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान या उपनिवेश जिसमें धान न पैदा होता हो।

विशेष—चाणक्य के अनुसार जलयुक्त उपनिवेश में भी वही उपनिवेश या प्रदेश उत्तम है जिसमें धान पैदा होता हो। परंतु यदि धान पैदा करनेवाला उपनिवेश छोटा हो और धान न पैदा करनेवाला उपनिवेश बहुत बडा हो, तो दूसरा ही ठीक है।

अधामार्गव—संज्ञा पुं० [सं०] अपामार्ग [को०]।

अधार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आधार] दे० 'आधार'। उ०—जप अधार सब सृष्टि भवानी।—मानस, १।७३।

अधारणक—वि० [सं०] जो लाभप्रद न हो। [को०]

अधारिया—संज्ञा पुं० [सं० आधार] बैलगाडी में गाडीवान के बैठने का वह स्थान जिसे मोढा भी कहते हैं।

अधारी¹—(पु)संज्ञा स्त्री० [सं० आधार या आधारिका] १ आश्रय। सहारा। आधार की चीज। २ काठ के डंडे में लगा काठ का पीढा जिसे साधु लोग सहारे के लिये रखते हैं। उ०—ऊधो योग सिखावन आए। शृंगी भस्म अधारी मुद्रा दै यदुनाथ पठाए।—सूर (शब्द०)। ३ यात्रा का सामान रखने का झोला या थैला जिसे मुसाफिर लोग कंधे पर रखकर चलते हैं। उ०—मेखल, सिंघी, चक्र धधारा। जोगवौट, रुद्राक्ष अधारी।—जायसी ग्र०, पृ० ५३।

अधारी²—वि० स्त्री० सहारा देनेवाली। प्रिय। सुख देनेवाली। भली। उ०—की मोहिं लै पिय कठ लगावैं। परम अधारी बात सुनावैं।—जायसी (शब्द०)।

अधारी³—संज्ञा पुं० [हिं० आधा+आरि(प्रत्य)] बेनिकाला हुआ बैल ।

अधार्मिक—वि० [सं०] १ अधर्मी । धर्मशून्य । २ पापी । दुराचारी ।

अधावट(पु)—वि० पुं० [सं०अर्ध = आधा+आवृत्त, प्रा० अध+आवट्ट, आउट्ट] आधा औटा हुआ । जो औटाते या गरम करते करते गाढ़ा होकर नाप में आधा हो गया हो । उ०—कछु बलदाऊ को दीजै, अरु दूध अधावट पीजै ।—सूर० १०।१८३ ।

अधि—उप० [सं०] एक संस्कृत उपसर्ग ।

विशेष—यह शब्दों के पहले लगाया जाता है और इसके ये अर्थ होते हैं—(१) ऊपर । ऊँचा । पर । जैसे—अधिराज । अधिकरण । अधिवास । (२) प्रधान । मुख्य । जैसे, अधिपति । (३) अधिक । ज्यादा । जैसे, अधिमास । (४) संबंध में । जैसे, आध्यात्मिक । अधिदैविक । आधिभौतिक ।

अधिक¹—वि० [सं०] [संज्ञा अधिकता, अधिकाई, क्रि० अधिकाना] १ बहुत । ज्यादा । विशेष । २ अतिरिक्त । सिवा । फालतू । बचा हुआ । शेष । जैसे—जो खाने पीने से अधिक हो उसे अच्छे काम में लगाओ (शब्द०) ।

अधिक²—संज्ञा पुं० १ वह अलंकार जिसमें आधेय को आधार से अधिक वर्णन करते हैं । जैसे—तुम पूछत कहि मुद्रिके मौन होति यह नाम । कंकन की पदवी दई तुम बिनु या कहँ राम ।—राम च०, पृ० १०० । २ न्याय के अनुसार एक प्रकार का निग्रह स्थान जहाँ आवश्यकता से अधिक हेतु और उदाहरण का प्रयोग होता है ।

अधिकई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अधिक+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'अधिकाई' । उ०—हितनी के लाह की, उछाह की, विनोद मोद सोभा की अवधि नहिं । अब अधिकई है ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३२० ।

अधिककोण—संज्ञा पुं० [सं० अधिक+कोण] वह कोण जो समकोण से बड़ा हो (ज्यामिति) ।

अधिकत—क्रि० वि० [सं०] अधिकतर । विशेषकर । उ०—अधिकत बँगना यह ध्यान था, व्रजविभूषण है शतशः बने ।—प्रिय०, पृ० १६३ ।

अधिकतम—वि० [सं०] परिमाण, माप, संख्या आदि में सबसे अधिक [को०] ।

अधिकतर¹—वि० [सं०] किसी की तुलना में आगे बढ़ा हुआ । और ज्यादे [को०] ।

अधिकतर²—क्रि० वि० ज्यादातर । बहुत करके [को०] ।

अधिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिकाता । ज्यादती । बढ़ती । वृद्धि ।

अधिक तिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जो अपने समय के पश्चात् दूसरे दिन भी मानी जाय [को०] ।

अधिक दिन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिक तिथि' [को०] ।

अधिक दिवस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिक तिथि' ।

अधिक मास—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक महीना । मलमास । लौंद का महीना । पुरुषोत्तम मास । असंक्रांतमास । शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावस्या पर्यंत काल जिसमें संक्रांति न पड़े ।

विशेष—यह प्रति तीसरे वर्ष आता है तथा चांद्र वर्ष और सौर वर्ष को बराबर करने के लिये चांद्र वर्ष में जोड़ लिया जाता है ।

अधिकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ आधार । आसरा । सहारा । २ व्याकरण में कर्ता और कर्म द्वारा क्रिया का आधार । सातवाँ कारक । इसकी विभक्तियाँ 'में' और 'पर' हैं । ३ प्रकरण । शीर्षक । ४ दर्शन में आधार विषय । अधिष्ठान । जैसे—ज्ञान का अधिकरण आत्मा है (शब्द०) । ५. मीमांसा और वेदांत के अनुसार वह प्रकरण जिसमें किसी सिद्धांत पर विवेचना की जाय और जिसमें ये पाँच अवश्य हों—विषय संशय, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष और निर्णय । ६ सामान । पदार्थ । ७ न्यायालय । ८ प्रधानता । प्राधान्य । ९ अधिकारप्रदान ।

अधिकरणभोजक—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायाधीश [को०] ।

अधिकरणमंडप—संज्ञा पुं० [सं० अधिकरण मण्डप] न्यायालय । अदालत [को०] ।

अधिकरणविचाल—संज्ञा पुं० [सं०] व्यतिक्रम करते जाना । किसी वस्तु के गुण में ह्रास अथवा वृद्धि करते जाना [को०] ।

अधिकरण सिद्धांत—संज्ञा पुं० [सं० अधिकरणसिद्धान्त] न्याय दर्शन में वह सिद्धांत जिसके सिद्ध होने से कुछ अन्य सिद्धांत या अर्थ भी स्वयं सिद्ध हो जायँ ।

विशेष—जैसे, आत्मा देह और इंद्रियों से भिन्न है, इस सिद्धांत के सिद्ध होने में इंद्रियों का अनेक होना, उनके विषयों का नियत होना, उनका ज्ञाता के ज्ञान का साधक होना, इत्यादि विषयों की सिद्धि स्वयं हो जाती है ।

अधिकरणिक—संज्ञा पुं० [सं० अधिकरणिक या अधिकारणिक] मुंसिफ । जज । फैसला करनेवाला । न्यायकर्ता ।

अधिकरणी—वि० [सं० अधिकरणिन्] १ अध्यक्ष । २ निरीक्षण करनेवाला [को०] ।

अधिकरण्य—संज्ञा पुं० [सं०] अधिकार [को०] ।

अधिकर्द्धि—वि० [सं० अधिक+ऋद्धि] ऐश्वर्यशाली [को०] ।

अधिकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ देखरेख । निरीक्षण । २ श्रेष्ठ कर्म ३ निरीक्षक [को०] ।

अधिकर्मकर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिकर्मकृत' [को०] ।

अधिकर्मकृत—संज्ञा पुं०[सं० अधिकर्मकृत] काम करनेवालों का जमादार ।

अधिकर्मिक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल में व्यापारियों से चुंगी उगाहनेवाला अधिकारी [को०] ।

अधिकर्मी—संज्ञा पुं० [सं० अधिकर्मिन्] मजदूरों आदि के कार्यों का निरीक्षण करनेवाला अधिकारी [को०] ।

अधिकवाक्योक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बढ़ा चढ़ाकर कहना । अतिरंजना [को०] ।

अधिकसंवत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक मास । मलमास [को०] ।

अधिकांग¹—संज्ञा पुं० [सं० अधिकाङ्ग] अधिक अंग । नियत संख्या से विशेष अवयव ।

अधिकांग²—वि० जिसे कोई अवयव अधिक हो । जैसे—छागुर ।

अधिकांश¹—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक भाग । ज्यादा हिस्सा । जैसे—लूट का अधिकांश सरदार ने लिया (को०) ।

अधिकाश[2]—वि० बहुत ।

अधिकाश[3]—क्रि० वि० १ ज्यादातर । विशेषकर । बहुधा । २ अकसर । प्राय । जैसे—अधिकाश ऐसा ही होता है (शब्द०) ।

अधिकाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० अधिक+हि० आई (प्रत्य०)] १ ज्यादती । अधिकता । विपुलता । विशेषता । बहुतायत । बढती । उ०—लहहि सकल सोभा अधिकाई ।—मानस, १ । ११ । २ बडाई । महिमा महत्व । उ०—उमा न कछु कपिकै अधिकाई । प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ।—मानस, ५।३ ।

अधिकाधिक—वि० [स०] ज्यादा से ज्यादा । अधिक से अधिक ।

अधिकाना(पु)—क्रि० अ० [स० अधिक से नाम०] अधिक होना । ज्यादा होना । बढना । विशेष होना । वृद्धि पाना । उ०—सुक से मुनि सारद से बकता चिरजीवन लोमस ते अधिकाने ।—तुलसी ग्र ०, पृ० २०७ ।

अधिकाभेदरूपक—संज्ञा पु० [सं०] 'चद्रालोक' के अनुसार रूपक अलकार के तीन भेदो मे से एक ।

विशेष—इसमे उपमान और उपमेय के बीच बहुत सी बातो मे अभेद या समानता दिखलाकर पीछे से उपमेय मे कुछ विशेषता या अधिकता बतलाई जाती है । जैसे—'रहै सदा विकसित विमल, धरै बास मृदु मजु । उपज्यो नहिं पुनि पक ते प्यारी को मुख कज ।' यहाँ मुख उपमेय और कमल उपमान के बीच सुवास आदि गुणो मे समानता दिखाकर मुख के सर्वदा विकसित रहने और पक से न उत्पन्न होने की विशेषता दिखाई गई है ।

अधिकार[1]—संज्ञा पु० [स०] १ कार्यभार प्रभुत्व । आधिपत्य । प्रधानता । जैसे—'इस कार्य का अधिकार उन्ही के हाथ मे सौंपा गया हैं' (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—चलाना ।—जताना ।—देना ।—सौंपना ।

२ स्वत्व । हक । अख्तियार । जैसे—'यह पूछने का अधिकार तुम्हे नही है' (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।—रखना ।

३ दावा कब्जा । प्राप्ति । जैसे—'सेना ने नगर पर अधिकार कर लिया' (शब्द०) ।

क्रि०प्र०—करना ।—जमाना ।

४ क्षमता सामर्थ्य । शक्ति । ५ योग्यता । परिचय । जानकारी । ज्ञान । लियाकत । जैसे—(क) 'इस विषय मे उसे कुछ अधिकार नही हैं' (शब्द०) । ६ प्रकरण । शीर्षक । जैसे—वातरोगाधिकार । ७ नाट्यशास्त्र के अनुसार रूपक के प्रधान फल का स्वामित्व या उसकी प्राप्ति की योग्यता । ८ कर्तव्य (को०) । ९ निरीक्षण (को०) । १० स्थान (को०) । ११ व्याकरण मे एक मुख्य या प्रधान नियम जिससे उसके क्षेत्र मे । आनेवाले अन्य नियम भी शासित होते हैं ।

विशेष—यह अधिकार तीन प्रकार का होता है—(१) सिंहावलोकित, (२) मडूकप्लुत और (३) गगाप्रवाह के सदृश ।

अधिकार[2](पु)—वि० पु० [स० अधिक] अधिक । बहुत ।

अधिकारपात्र—वि० [सं०] अधिकार की पात्रता या योग्यता रखनेवाला [को०] ।

अधिकारविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मीमासा मे वह विधि या आज्ञा जिससे यह बोध हो कि किस फल की कामनावाले को कौन सा यज्ञ या कर्म करना चाहिए अर्थात् कौन किस कर्म का अधिकारी है । जैसे,—स्वर्ग की कामना करनेवाला अग्निहोत्र यज्ञ करे, राजा राजसूय यज्ञ करे, इत्यादि ।

अधिकारस्थ—वि० [स०] अधिकार सपन्न जिसमे अधिकार निहित हो [को०] ।

अधिकारा(पु)—वि० [स० अधिक+आरा (प्रत्य०)] अत्यधिक । उ०—चढे त्रिपुर मारन कूँ सारे, हरिहर सहित देव अधिकारे ।—निश्चल (शब्द०) ।

अधिकारी[1]—संज्ञा पु० [स० अधिकारिन्] [स्त्री० अधिकारिणी] १ प्रभु । स्वामी । मालिक । २ स्वत्वधारी । हकदार । ३ योग्यता या क्षमता रखनेवाला । उपयुक्त पात्र । जैसे—'सब मनुष्य वेदात के अधिकारी नही हैं' (शब्द०) । ४ नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक का वह पात्र जिसे रूपक का प्रधान फल प्राप्त होता है । ५ एक जातीय उपाधि (को०) ।

अधिकारी[2]—वि०— स्वत्व या क्षमता रखनेवाला [को०] ।

अधिकारी[3]—वि० स्त्री० [हि० अधिकाई] अधिकता । बाहुल्य । उ०—(क) जेहि कौं आपन हितकर जान्यो दीन्ह्यो सुख अधिकारी ।—जग० बानी, भा० १, पृ० ३४ । (ख) तरकारी, यामे पानी की अधिकारी ।—घाघ० पृ० ८५ ।

अधिकारी[4](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] जबर्दस्ती । उ०—त्यो पदमाकर मेलि मुठी इत पाइ अकेली करी अधिकारी ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३१९ ।

अधिकार्थ—संज्ञा पु० [स०] कोई वाक्य या शब्द जिससे किसी पद के अर्थ मे विशेषता आ जाय ।

अधिकार्थवचन—संज्ञा पुं० [स०] अत्युक्ति । अतिरजना [को०] ।

अधिकी(पु)—वि० [सं० अधिक+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'अधिक' । उ०—अधिकी हमको नाही चाहियत है ।—दो सौ बावन, भाग २, पृ० १०५ ।

अधिकृत[1]—वि० [स०] १ अधिकार मे आया हुआ । हाथ मे आया हुआ । उपलब्ध । २ जिस पर अधिकार किया गया हो । उ०—हृदय हुआ अधिकृत तुमसे, तुम जीते हम हारे ।—झरना, पृ० ९३ ।

अधिकृत[2]—संज्ञा पु० अधिकारी । अध्यक्ष । जैसे—महाबलाधिकृत मे 'अधिकृत' ।

अधिकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिकार । स्वत्व [को०] ।

अधिकौहाँ(पु)—वि० [स०अधिक+हिं० औहाँ (प्रत्य०)] अधिकतम । अत्यधिक । उ०—जनु कलिंदनदिनि मनि-इद्रनी न सिखर परसि धँसति लसति हससेनि सकुल अधिकौहै ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४०६ ।

अधिक्रम—संज्ञा पु० [स०] आरोहण । चढाव । चढाई ।

अधिक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिक्रम' [को०] ।

अधिक्षिप्त—वि० [सं०] १ फेंका हुआ । २ निंदित । तिरस्कृत। अपमानित । बुरा ठहराया हुआ ।

अधिक्षेप—संज्ञा पुं० [स०] १ फेंकना । २ तिरस्कार । निंदा । अपमान । ३ तानाजनी । व्यग्य ।

अधिगतव्य—वि० [स० अधिगन्तव्य] १ प्रापणीय। प्राप्तव्य। २ समझने योग्य। ज्ञेय [को०]।

अधिगता—वि० [स० अधिगन्तृ] १ प्रापक। पानेवाला। २ समझनेवाला। अध्ययन करनेवाला [को०]।

अधिगणन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अधिक गिनना। २ किसी चीज का अधिक दाम लगाना।

अधिगत—वि० [स०] १ प्राप्त। पाया हुआ। २ जाना हुआ। ज्ञात। अवगत। समझा बूझा। पढा हुआ।

अधिगम—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राप्ति। पहुँच। ज्ञान। गति। २ जैन दर्शन के अनुसार व्याख्यान आदि परोपकार द्वारा प्राप्त ज्ञान ३. ऐश्वर्य। बडप्पन।

अधिगमनीय—वि० [सं०] दे० 'अधिगतव्य' [को०]।

अधिगम्य—वि० [सं०] दे० 'अधिगमनीय' [को०]।

अधिगव—वि० [स०] गाय मे अथवा गाय से प्राप्त [को०]।

अधिगुण¹—वि० [स०] विशिष्ट गुण से भूषित। सुयोग्य [को०]।

अधिगुण²—संज्ञा पुं० [स०] विशिष्ट गुण [को०]।

अधिगुप्त—वि० [सं०] रक्षित। रखा हुआ। छिपाया हुआ। दबा हुआ।

अधिचरण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के ऊपर चलना। अतिक्रमण करना [को०]।

अधिच्छ(पु)—वि० [स० अदृक्ष] दे० 'अदृश्य'। उ०—अच्छन के आगे ही अधिच्छ गाडयतु है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २६६।

अधिज—वि० [सं०] १ जनमा हुआ। २ उच्च कुल मे उत्पन्न [को०]।

अधिजनन—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म [को०]।

अधिजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक से अधिक जीभवाला जीव। साँप आदि। २ जीभ मे होनेवाली एक प्रकार की बीमारी [को०]।

अधिजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक बीमारी जिसमे रक्त मिले हुए कफ के कारण जीभ के ऊपर सूजन हो जाती है। यह सूजन पक जाने पर असाध्य हो जाती है। २ गले का कौआ।

अधिजिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधिजिह्वा' [को०]।

अधिज्य—वि० [सं०] जिसकी डोरी खिंची हो। धनुष, जिसकी प्रत्यचा या जिसका चिल्ला चढ़ा हो।

अधिज्यकार्मुक—वि० [सं०] जिसके धनुष की प्रत्यचा चढी हुई हो [को०]।

अधिज्यधन्वा—वि० [सं०] दे० 'अधिज्यकार्मुक' [को०]।

अधित्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड के ऊपर की समतल भूमि। ऊँचा पथरीला मैदान। टेबुल लैंड। 'उपत्यका' का उलटा। उ०—(क) हरी भरी घासन सो अधित्यका छबि छाई।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३। (ख) इसकी कैसी रम्य विशाल अधित्यका है जिसके समीप आश्रम ऋषिवर्य का।—कानन०, पृ० १०५।

अधिदंडनेता—संज्ञा पुं० [सं० अधिदण्डनेतृ] यमराज [को०]।

अधिदंत—संज्ञा पुं० [सं० अधिदन्त] एक दाँत के ऊपर निकलनेवाला दाँत [को०]।

अधिदार्व—वि० [सं०] काष्ठ का। काठ से बना [को०]।

अधिदिन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिक तिथि' [को०]।

अधिदीधित—वि० [सं०] अत्यधिक प्रभा या कांतिवाला [को०]।

अधिदेव¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अधिदेवी] इष्टदेव। कुलदेव।

अधिदेव²—वि० देव संबंधी [को०]।

अधिदैव—वि० [सं०] दैविक। दैवयोग से होनेवाला। आकस्मिक।

अधिदैवत¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रकरण या मंत्र जिसमे अग्नि, वायु, सूर्य, इत्यादि देवताओ के नामकीर्तन मे इष्टदेव का अर्थप्रतिपादन होकर ब्रह्मविभूति अर्थात् सृष्टि के पदार्थो के गुण आदि की शिक्षा मिले। पदार्थविज्ञान संबंधी विषय या प्रकरण।

अधिदैवत²—वि० देवता संबंधी।

अधिदैविक—वि० [सं०] १ अधिदेव संबद्ध। आधिदैविक। २ आध्यात्मिक [को०]।

अधिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ सबका मालिक। सबका स्वामी। २. सरदार। अफसर। प्रधान अधिकारी।

अधिनायक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अधिनायिका] १ अफसर। सरदार मुखिया। २ मालिक। स्वामी। ३ किसी प्रदेश, देश, जाति या राष्ट्र का सर्वाधिकार संपन्न शासक। तानाशाह। डिक्टेटर।

अधिनायकतंत्र—संज्ञा पुं० [स० अधिनायक + तन्त्र] वह शासन व्यवस्था जिसके अनुसार किसी एक शासक को सारी शक्ति प्रदान कर दी जाय। तानाशाही। डिक्टेटरशिप।

अधिनायकी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अधिनायक + हिं० ई (प्रत्य०)] अधिनायक का पद या कार्य [को०]।

अधिनायकी²—वि० अधिनायक संबंधी [को०]।

अधिनियम—संज्ञा पुं० [स० अधि + नियम] लोकसभा या सर्वोच्च शासक द्वारा पारित अथवा स्वीकृत विधि, नियम, कानून। ऐक्ट। जैसे, भारतीय शासक संबंधी सन् १९३५ ई० का अधियम।—भारतीय०, पृ० १।

अधिनियमन—संज्ञा पुं० [स० अधि + नियमन] अधिनियम या विधान बनाने का कार्य [को०]।

अधिप—संज्ञा पुं० [सं०] मालिक। २ अफसर। सरदार। मुखिया। नायक। ३ राजा।

अधिपति¹—संज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अधिपत्नी] १ सरदार। मालिक। अधीश। नायक। अफसर। स्वामी। मुखिया। हाकिम। २ राजा। ३. मस्तक का वह भाग जहाँ की चोट प्राणघातक होती है।

अधिपति²—वि० बौद्ध दर्शन के अनुसार अधिपति चार प्रकार के होते हैं—(१) यज्ञाधिपति, (२) वित्ताधिपति, (३) वीर्याधिपति और (४) न्यायाधिपति।

अधिपतिप्रत्यय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन दर्शन के अनुसार वह प्रत्यय या संयम जिसके अनुसार विषय को ग्रहण करने का नियम होता है।

अधिपत्नी—संज्ञा स्त्री० [स०] १ स्वामिनी। २ शासिका [को०]।

अधिपांशुल—वि० [स०] धूलिधूसरित। धूल से भरा [को०]

अधिपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] परमपुरुष। परमात्मा। ईश्वर [को०]।

अधिप्रज—वि० [सं०] बहुत अधिक संतान उत्पन्न करनेवाला [को०]।

अधिबल—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भसंधि के तेरह अंगों में से एक। वह धोखा जो किसी को वेश बदले हुए देखकर होता है (नाट्यशास्त्र)।

अधिविन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं० अधिविन्ना] १ अध्यूढा। पहली पत्नी। प्रथम विवाह की स्त्री। वह स्त्री जिसके रहते उसका पति दूसरा विवाह कर ले।

अधिभू—संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी। प्रधान व्यक्ति [को०]।

अधिभूत¹—वि० [सं०] भूत संबंधी [को०]।

अधिभूत²—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्म। २ सृष्टि के समस्त पदार्थ [को०]।

अधिभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] अति भोजन। बहुत अधिक खाना [को०]।

अधिभौतिक㉦—वि० हिं० दे० 'आधिभौतिक'। उ०—अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे, बेगि बोलि बलि बरजिए करतूति कठोरे।—तुलसी ग्र०, पृ० ४५७।

अधिमंथ—संज्ञा पुं० [सं० अधिमन्थ] अभिष्यंद रोग का एक अंश।

अधिमंथन¹—संज्ञा पुं० [सं० अधिमन्थन] अग्नि उत्पन्न करने के लिये अरणी की लकड़ियों को परस्पर रगड़ना [को०]।

अधिमंथन²—वि० रगड़ से अग्नि उत्पन्न करने योग्य (लकड़ी) [को०]

अधिमंथित—वि० [सं० अधिमन्थित] अधिमंथ रोग से पीडित (को०)।

अधिमांस—संज्ञा पुं० [सं०] आँख के सफेद भाग में या मसूड़ों के पिछले भाग में होने वाला रोग विशेष [को०]।

अधिमांसक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग।

विशेष—कफ के विकार से नीचे की दाढ़ में विशेष पीड़ा और सूजन होकर मुँह से लार गिरती है।

अधिमात्र—वि० [सं०] परिणाम से अधिक। बहुत ज्यादा [को०]।

अधिमास—संज्ञा पुं० [सं०] दे 'अधिक मास'।

अधिमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ परस्पर मित्र। २ ज्योतिष में परस्पर मित्र ग्रहों के योग का नाम।

अधिमुक्त—वि० [सं०] विश्वासयुक्त [को०]।

अधिमुक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] मधुमाधवी नाम का पौधा [को०]।

अधिमुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वास [को०]।

अधिमुक्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार महाकाल [को०]।

अधिमुक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुक्ता। सीप। मोती का सीप [को०]।

अधिमुह्य—संज्ञा [सं०] चौबीस पूर्वजन्मों में बुद्ध का एक नाम [को०]।

अधियज्ञ¹—वि० [सं०] यज्ञ संबंधी। यज्ञ से संबंध रखनेवाला।

अधियज्ञ²—संज्ञा पुं० प्रधान यज्ञ [को०]।

अधिया¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्धिका] १ आधा हिस्सा। गाँव में आधी पट्टी की हिस्सेदारी। २ एक रीति जिसके अनुसार उपज का आधा मालिक को और आधा उसके संबंध में परिश्रम करने वाले को मिलता है। उ०—खेती करै अधिया, न बैल न बधिया।—घाघ, पृ० ८९।

अधिया²—संज्ञा पुं० [सं० अधिक] आधा हिस्सेदार। गाँव में आधी पट्टी का मालिक। अधियार।

अधियान㉦—संज्ञा पुं० [सं०] जपनी। गोमुखी। एक थैली जिसमें हाथ डालकर माला जपते हैं २ छोटी माला। सुमिरनी।

अधियाना—क्रि० स० [हिं० आधा से नाम०] आधा करना। दो बराबर हिस्सों में बाँटना।

अधियार†—संज्ञा पुं० [हिं० अधिया + आर (प्रत्य०)] १ किसी जायदाद में आधा हिस्सा। २ आधे का मालिक। वह जमींदार या असामी जो किसी गाँव के हिस्से या जोत में आधे का हिस्सेदार हो। ३ वह जमींदार या असामी जिसका आधा संबंध एक गाँव में और आधा दूसरे गाँव में हो और जो अपना समय दोनों गाँवों के काम में लगावे।

अधियारिन㉦—संज्ञा स्त्री० [हिं० अधियार + इन (प्र०)] १ सौत। सपत्नी। २ बराबर का दावा रखने और आधे हिस्से की हिस्सेदार स्त्री।

अधियारी㉦—संज्ञा स्त्री० [हिं० अधियार + ई (प्र०)] किसी जायदाद में आधी हिस्सेदारी। २ किसी जमींदार या असामी की जमींदारी या जोत का दो भिन्न भिन्न गाँवों में होना।

अधियोग—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रा के लिये शुभ माना जानेवाला ग्रहों का एक योग [को०]।

अधिरथ¹—संज्ञा स० [सं०] सारथी। जो रथ को हाँकनेवाला हो। गाड़ीवान।

अधिरथ²—वि० १ रथारूढ। रथ पर चढ़ा हुआ। २ कर्ण को पालनेवाले सूत का नाम ३ बड़ा रथ। उत्तम रथ।

अधिराज—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। बादशाह। महाराज। प्रधान राजा। चक्रवर्ती। सम्राट्।

अधिराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] साम्राज्य। चक्रवर्ती राज्य।

अधिरात㉦—संज्ञा स्त्री० [हिं०] आधीरात। उ०—पिउ पिउ अधिरात पुकारत।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १७०।

अधिरूढ—वि० [सं०] १ आरूढ। चढ़ा हुआ। २ बढ़ा हुआ [को०]।

अधिरोपण—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर उठाने या चढ़ाने का कार्य [को०]।

अधिरोह—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथी पर चढ़ना। २ ऊपर चढ़ना। ३ सीढ़ी [को०]।

अधिरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] चढ़ना। सवार होना। ऊपर उठना।

अधिरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीढ़ी। निसैनी। जीना।

अधिरोही—वि० [सं०] अधिरोहण करनेवाला। ऊपर चढ़नेवाला [को०]।

अधिलोक¹—संज्ञा पुं० [सं०] संसार। ब्रह्मांड।

अधिलोक²—वि० ब्रह्मांड संबंधी।

अधिवक्ता—संज्ञा पुं० [सं० अधिवक्तृ] १ न्यायालय में किसी पक्ष का समर्थन करनेवाला। वकील। २ वक्ता [को०]।

अधिवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बढ़ाकर कही हुई बात २ नाम। संज्ञा ३ पक्ष का समर्थन।

अधिवसित—वि० [सं० अधिवस + इत (प्रत्य०)] बसा हुआ। आबाद [को०]।

अधिवाचन—संज्ञा पुं० [सं०] नामजदगी। निर्वाचन। चुनाव।

अधिवास—संज्ञा पुं० [सं०] १ निवासस्थान। स्थान। रहने की जगह। २ महासुगंध। खुशबू। ३ विवाह से पहले तेल हलदी चढ़ाने की रीति। ४ उबटन। ५ अधिक ठहरना। अधिक देर तक रहना। ६ दूसरे के घर जाकर रहना।

विशेष—मनु के अनुसार स्त्रियों के ६ दोषों में से एक।

७ यज्ञारंभ के पूर्व देवता का आवाहन (को०)। ८ हठ (को०)। ९ नवाश्रा (को०)। १० निवासी (को०)। ११. पड़ोसी [को०]। १२ काम रह जाना [को०]।

अधिवासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि०—अधिवासित] १ सुगंधित करने की क्रिया। २ देवता की मूर्ति या प्राणप्रतिष्ठा से पहले सुगंधित चंदन आदि से लिप्त कर रात भर किसी स्थान में वस्त्र से ढाँककर और जल में डुबोकर रख छोड़ने की रीति।

अधिवासभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बस्ती। वासस्थान [को०]।

अधिवासित—वि० [सं०] १ सुगंधित। वासयुक्त। २ सुसज्जित [को०]

अधिवासी—संज्ञा पुं० [सं०] १ निवासी। रहनेवाला। २. उत्तरप्रदेश का वह कृषक जिसका नाम सरकारी कागजपत्रों में सन् १३५६ फसली और १३५८ फसली में चढ गया हो।

अधिविन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति उसके रहते दूसरा विवाह कर ले [को०]।

अधिवीत—वि० [सं०] लपेटा हुआ। ढका हुआ [को०]।

अधिवेत्तव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके विद्यमान रहते दूसरा विवाह कर लेना उचित हो [को०]।

अधिवेत्ता—संज्ञा पुं० [सं०] पहली स्त्री के रहते दूसरा विवाह करनेवाला व्यक्ति।

अधिवेद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह करनेवाला।

अधिवेद[2]—वि० [सं०] वेद से संबंधित [को०]।

अधिवेदन—संज्ञा पुं० दे० 'अधिवेद'[1] [को०]।

अधिवेदनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधिवेत्तव्या' [को०]।

अधिवेदवेद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधिवेदनीया' [को०]।

अधिवेशन—संज्ञा पुं० [सं०] बैठक। सभा। जलसा।

अधिशय—संज्ञा पुं० [सं०] योग। जोड़। मिलाई गई या दी हुई वस्तु [को०]।

अधिशयन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी चीज पर लेटना। सोना [को०]।

अधिशयित—वि० [सं०] १ लेटा या सोया हुआ। २ लेटने या सोने के उपयोग में आनेवाला [को०]।

अधिशस्त—वि० [सं०] कुख्यातिप्राप्त। बदनाम [को०]।

अधिश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १ आधार। पात्र। २ उबालना। गरम करना [को०]।

अधिश्रयण—संज्ञा पुं० [सं०] १ आग पर चढाना। आग पर रखना। २ तंदूर। भाड़। अँगीठी। चूल्हा।

अधिश्रयणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीढी। निसेनी। निश्रेणी। जीना।

अधिश्रित—वि० [सं०] १ आग पर रखा हुआ। २ आधार [को०]।

अधिषवण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोमरस निचोड़ने की क्रिया। २ सोमरस निचोड़ने का साधन [को०]।

अधिष्ठाता—संज्ञा पुं० [सं० अधिष्ठातृ] [स्त्री० अधिष्ठात्री] १ अध्यक्ष। मुखिया। प्रधान नियंता। उ०—इस भूमि का एकमात्र अधिष्ठाता देवता प्रेम है।—र० ०, पृ० ८०। २ किसी कार्य की देखभाल करनेवाला। वह जिसके हाथ में किसी कार्य का भार हो। ३. प्रकृति को जड़ से चेतन अवस्था में लानेवाला पुरुष। ईश्वर।

अधिष्ठात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिष्ठाता का स्त्रीलिंग रूप —उ०—प्रकृति अधिष्ठात्री है इसकी, कहीं विकृति का नाम नहीं।—पंचवटी, पृ० १०।

अधिष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] १ वासस्थान। रहने का स्थान। २ नगर। शहर। बस्ती। कस्बा। ३ स्थिति। रहाइश। पड़ाव। मुकाम। ठिकाना। ४ आधार। सहारा। उ०—मन्वन्तरों के अधिष्ठान राम और कृष्ण जैसे परात्पर ब्रह्म और धीर हैं वैसे ही उनका भगवान धाम और उनका लीला भी सनातन है।—रस० पृ० ६१। ५ वह वस्तु जिसमें भ्रम का आरोप हो।

विशेष—जैसे रज्जु में सर्प और शुक्ति में रजत। यहाँ रज्जु और शुक्ति दोनों अधिष्ठान हैं क्योंकि इन्हीं में सर्प और रजत का भ्रम होता है।

६ सांख्य में भोक्ता और भोग का संयोग।

विशेष—जैसे, आत्मा का शरीर के साथ और इंद्रियों का विषय के साथ।

७ अधिकार। शासन। राज्यसत्ता। ८ वह जिसपर खंभा या पाया आदि बनाया जाय (वास्तु)।

अधिष्ठानदेह—संज्ञा पुं० [सं०] वह सूक्ष्म शरीर जिसमें मरण के उपरांत पितृलोक में आत्मा का निवास रहता है।

अधिष्ठानशरीर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिष्ठानदेह'।

अधिष्ठित—वि० [सं०] १ ठहरा हुआ। बसा हुआ। स्थापित। २. निर्वाचित। नियुक्त।

अधिस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] उच्च श्रेणी की स्त्री [को०]।

अधीकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिकार' [को०]।

अधीक्षक—संज्ञा पुं० [सं० अधि + ईक्षक] अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण करनेवाला अधिकारी (को०)।

अधीत—वि० पुं० [सं०] पढा हुआ। सीखा हुआ। उ०—[illegible] श्रुति सिंधु अपार। [illegible] पुनि, स्तुति [illegible]।—[illegible] ०, भा० १, पृ० ५[illegible]।

अधीतविद्य—वि० [सं०] जिसने वेदों का अध्ययन कर लिया हो या जिसका अध्ययन समाप्त हो गया हो [को०]।

अधीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अध्ययन। २ स्मृति। ३ [illegible] [को०]।

अधीती—वि० [सं० अधीतिन्] जिसने भली भाँति अध्ययन किया हो [को०]।

अधीन[1]—वि० [सं०] १ आश्रित। मातहत। अंगीकृत। आज्ञाकारी। दीन। वशवर्ती। ताबेदार। उ०—[illegible], [illegible] सब सर्व सुधर्म अधीन [illegible] (धा) हो।—[illegible] ०, पृ० २५९। २ विवश। लाचार। दीन। उ०—[illegible] भूख्यो [illegible]। [illegible] अधीन भयो है, निद्रा गति न अघानी।—सूर०, १। ८७।

अधीन[2]—संज्ञा पुं० दास। सेवक।

अधीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ परतंत्रता। परवशता। आज्ञाकारिता। मातहती। २ लाचारी। दीनता। [illegible]।

अधीनना(पु)—क्रि० अ० [सं० अधीन से नाम०] [illegible] होना। वश में होना। उ०—[illegible] सब वर्ष सारी [illegible]। [illegible] [illegible] दुनिकर होत हो।—सूर (शब्द०)।

अधीनस्थ—वि [सं० अधीन + स्थ] किसी के अधीन रहनेवाला [को०]

अधीमथ—संज्ञा पुं० [सं० अधीमन्थ] दे० 'अधिमंथ' [को०]।

अधीयान[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ विद्यार्थी। अध्ययन करनेवाला व्यक्ति। २ विद्यार्थी या अध्यापक रूप मे वेदो का अध्ययन पूरा करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अधीयान[2]—वि० पढनेवाला [को०]।

अधीर—वि० पुं० [सं०] १ धैर्यरहित। घबराया हुआ। उद्विग्न। व्यग्र। बेचैन। व्याकुल। विह्वल। २ चचल। अस्थिर। बेसब्र। उतावला। तेज। आतुर। ३ असतोषी।

यौ०—अधीराक्षी। अधीर विप्रेक्षित।

अधीरा[1]—वि० स्त्री० [सं०] जो धीर न धरे।

अधीरा[2]—संज्ञा स्त्री० १ मध्या और प्रौढा नायिकाओ के तीन भेदो मे से एक। वह नायिका जो नायक मे नारीविनाससूचक चिह्न देखने से अधीर होकर प्रत्यक्ष कोप करे। २ विद्युत्। बिजली।

अधीवास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पहनावा जिससे सारा शरीर ढक जाय। लबादा [को०]।

अधीश—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वामी। मालिक। सरदार। २ राजा।

अधीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अधीश्वरी] १ मालिक। स्वामी। पति। अध्यक्ष। २ अधिपति। भूपति। राजा।

अधीष्ट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी को सत्कारपूर्वक किसी कार्य मे लगाना। नियोग।

अधीष्ट[2]—वि० सत्कारपूर्वक नियोजित। आदर के साथ बुलाकर किसी काम मे लगाया हुआ।

अधीस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधीश'। उ०—परम अधीस वस भूमि थल देखिये।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १९९।

अधीसारक—संज्ञा पुं० [सं०] वेश्याओ के पास बार बार जानेवाला व्यक्ति। चद्रगुप्त के समय मे इन्हे कठोर दड दिया जाता था।

अधुना—क्रि० वि० [सं०] इस समय। सप्रति। आजकल। अब। इन दिनो।

अधुनातन—वि० [सं०] साम्प्रतिक। वर्तमान समय का। अब का। हाल का। 'सनातन' का उलटा।

अधुर—वि० [सं०] भाररहित। २ चितामुक्त [को०]।

अधूत—वि० [सं०] १ अकपित। २ निर्भय। निडर। ढीठ। उचक्का। उ०—शखचूड धनपति का दूता। लै भागा एक सखी अधूता (शब्द०)।

अधूमक[1]—वि० [सं०] धूमरहित [को०]।

अधूमक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] जलती हुई आग जिसमे धुआँ न हो [को०]।

अधूरा—वि० पुं० [सं० अर्ध, हिं० अध+पूरा या ऊरा (प्रत्य०)] [स्त्री० अधूरी] अपूर्ण। जो पूरा न हो। आधा। असमाप्त। अधकचरा।

मुहा०—अधूरा जाना=असमय गर्भपात होना। कच्चा बच्चा होना। जैसे—उस स्त्री को अधूरा गया (शब्द०)।

अधृत[1]—वि० [सं०] १ धारण न किया हुआ। २ अनियन्त्रित [को०]।

अधृत[2]—संज्ञा पुं० [पुं०] विष्णु के सहस्र नामो मे से एक [को०]।

अधृति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ धृति की विपरीतता। अधीरता। उद्वेग। दृढ़ता का अभाव। घबराहट। २. आतुरता। असयम। ४ दुःख।

अधृति[2]—वि० [सं०] अस्थिर [को०]।

अधृष्ट—वि० [सं०] १ जो ढीठ न हो। २ विनम्र। लज्जाशील। ३ अजेय। ४ क्षतिरहित [को०]।

अधृष्य—वि० [सं०] १ अजेय। २ सलज्ज। गर्वयुक्त [को०]।

अधेगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्धांग'।

अधेड़—वि० [सं० अर्ध, हिं० अध+एड़ (प्रत्य०)] वि० आधी उम्र का। उतरती अवस्था का। ढलती जवानी का। बुढापे और जवानी के बीच का।

अधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूध न देनेवाली गाय। ठाँठ गाय [को०]।

अधेला—संज्ञा पुं० [हिं० आधा+एला (प्रत्य०)] आधा पैसा। एक छोटा ताँबे का सिक्का जो सन् १९५९ तक चलता था। जो पैसे का आधा होता है।

अधेलिका—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अँधियार'।

अधेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० आधा+एली (प्र०)] आधा रुपया। आठ आने का सिक्का। अठन्नी।

विशेष—चाँदी या निकल का सिक्का जो आधे रुपए के बराबर था और सन् १९५९ तक चलता था।

अधैर्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ धैर्य का अभाव। घबडाहट। व्याकुलता। उद्विग्नता। चचलता। उतावलापन।

अधैर्य[2]—वि० १ धैर्यरहित। व्याकुल। उद्विग्न। चचल। २ उतावला। आतुर।

अधैर्यवान—वि० [सं० अधैर्यवान्] १ धैर्यरहित। व्यग्र। उद्विग्न। घबडानेवाला। २ आतुर। उतावला।

अधोशुक—संज्ञा पुं० [सं० अधस्=अंशुक] १ नीचे पहनने का वस्त्र। जैसे पायजामा, धोती इत्यादि। २ अस्तर।

अधो—अव्य० [सं० अधस् का समासरूप] दे० 'अध'। जैसे, अधोमुख अधोगति आदि मे 'अधो'।

अधोक्षज—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम। कृष्ण का एक नाम।

अधोगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पतन। गिराव। उतार। उ०—मूढ़न ही की जहाँ अधोगति गाइया।—रामच०, पृ० ८। २ अवनति। दुर्गति। दुर्दशा।

अधोगमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे जाना। २ अवनति। पतन। दुर्दशा।

अधोगामी—वि० [सं० अधोगामिन्] [स्त्री० अधोगामिनी] १ नीचे जानेवाला। २ अवनति की ओर जानेवाला। बुरी दशा को पहुँचनेवाला।

अधोघटा—संज्ञा स्त्री० [सं० अधोघण्टा] चिचडा। अपामार्ग।

अधोछज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अधोक्षज] दे० 'अधोक्षज'। उ०—इद्री दृष्टि विकार तें रहित अधोछज जोति।—नद० ग्र० पृ० १७८।

अधोजिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गले का कौआ [को०]।

अधोटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बाजा। उ०—बाजत ताल दग अधोटी बिच मुरली धुनि थोरी।—छी०,पृ० २६।

अधोतर—संज्ञा पुं० [देश०] एक देशी कपडा जो गज्जी गाढ़े से भी मोटा होता है। उ०—सिरीसाफ बाफता अधोतर मेख कहिये।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ७५।

अधोदिशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दक्षिण दिशा। २ अधोविंदु [को०]।
अधोदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीची दृष्टि। केवल नीचे की ओर देखना। उ०—सबै अंग लै अंग ही मे दुरायो। अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो।—रामच०, पृ० ६६।
अधोदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे का स्थान। नीचे की जगह। २ शरीर के नीचे का भाग या हिस्सा।
अधोद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] गुदा [को०]।
अधोनिलय—संज्ञा पुं० [सं०] नरक [को०]।
अधोभुवन—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल। नीचे का लोक।
अधोभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्वत के नीचे की जमीन। नीची भूमि। [को०]।
अधोमंडल—संज्ञा पुं० [सं० अधोमण्डल] भूमि से साढ़े सात मील तक का ऊँचा वायुमंडल [को०]।
अधोमर्म—संज्ञा पुं० [सं०] गुह्यद्वार [को०]।
अधोमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे का रास्ता। सुरंग का मार्ग। २ गुदा।
अधोमुख¹—वि० [सं०] नीचे मुख किए हुए। मुँह लटकाए हुए। २ औंधा। उलटा।
अधोमुख²—क्रि० वि० औंधा। उलटा। मुँह के बल। जैसे—वह अधोमुख गिरा (शब्द०)। उ०—गरभ बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयो विस्राम।—सूर०, १।४७।
अधोमुखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोजिह्वा [को०]।
अधोमूल—वि० [सं०] जिसकी जड़ नीचे हो [को०]।
अधोयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० अधोयन्त्र] भभका [को०]।
अधोरव(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अधोर्ध्व'। उ०—दिशि पूरब पच्छिम दाहिने बाएँ अधोरव सकल से री फिरैं।—सेवक (शब्द०)।
अधोर्ध्व—क्रि० वि० [सं० अध+ऊर्ध्व] नीचे ऊपर। तले ऊपर।
अधोलंब—संज्ञा पुं० [सं० अधोलम्ब] १ वह खड़ी रेखा जो किसी दूसरी सीधी आड़ी रेखा पर इस प्रकार आकर गिरे कि पार्श्व के दोनों कोण समकोण हों। लंब। २ साहुल। सूत में बँधा हुआ लोहे या पत्थर का वह गोला या घंटे के आकार का लट्टू जिसे मकान बनानेवाले कारीगर पर्दे की सीध लेने के लिये काम में लाते हैं।
विशेष—इस लट्टू को दीवार के सिरे से नीचे की ओर लटकाते हैं और इस सूत और दीवाल के अंतर का मिलान करते हैं। यह यंत्र जल की गहराई नापने के भी काम आता है।
अधोलिखित—वि० [सं० अधस्+लिखित] नीचे लिखा हुआ। उ०—अधोलिखित काव्य महाकाव्य की कोटि में पूर्ण नहीं ठहरते।—बीसल० रास०, पृ० ४५।
अधोलोक—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे का लोक। पाताल।
अधोवदन—वि० [सं०] दे० 'अधोमुख' [को०]।
अधोवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के नीचेवाले भाग में पहना जानेवाला वस्त्र [को०]।
अधोवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधोगति'। उ०—यह दो सूत्र हमारी संस्कृति के मूल तत्व हैं और इस अधोवस्था में भी हम उन्हें अपनाए हुए हैं।—प्रेम० और गोर्की पृ० १५१।
अधोवातावरोधोदावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष। अधोवायु के वेग को रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग।
विशेष—इस रोग के ये लक्षण हैं—मल मूत्र का रुक जाना, अफरा चढ़ना, गुदा, मूत्राशय, लिंगेंद्रिय में पीड़ा तथा वादी से पेट में अन्य रोगों का होना।
अधोवायु—संज्ञा पुं० [सं०] अपान वायु। गुदा की वायु। पाद। गोज। नीचे की हवा।
अधोविंदु—संज्ञा पुं० [सं० अधोबिन्दु] पैर के ठीक नीचे माना जाने वाला विंदु [को०]।
अधोहीं—संज्ञा स्त्री० [हिं० आधा+ओही (प्रत्य०)] जानवरों की खाल का वह आधा भाग जो जानवर की लाश ढोनेवालों को मिलता है [को०]।
अधौड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अध+औड़ी (प्र०)] १ आधा चरसा। चरसे या पूरे चमड़े का सिझाया हुआ आधा टुकड़ा।
विशेष—सिझाने के लिये चमड़े के दो टुकड़े करने की आवश्यकता होती है इसी से एक एक टुकड़ा अधौड़ी कहलाता है।
२ मोटा चमड़ा। 'नरी' का उलटा जो प्रायः बकरी आदि के पतले चमड़े का होता है।
यौ०—अधौड़ी अस्तर=(१) जूते के तले के ऊपर का मोटा चमड़ा जिसपर नरी न हो। (२ वह जूता जिसपर केवल अधौड़ी का मोटा स्तर हो। ऊपर से नरी का लाल चमड़ा न हो। ३ आमाशय। पक्वाशय। उ०—नरी अधौड़ी भावरी, बैठा पेट फुलाइ। दादू सूकर स्वान ज्यों ज्यों आवै त्यों खाइ।—दादू०, पृ० २६।
मुहा०—अधौड़ी तनना=अघाना। खूब पेट भर जाना। जैसे—आज तो निमंत्रण था खूब अधौड़ी तनी होगी।
अधौड़ी तानना=खूब पेट भरकर खाना।
अधौतन(पु)—वि० [हिं० आधा+ऊन] आधा भाग या अंग [को०]।
अधौरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष। बकरी। धौरा। सेन।
विशेष—हिमालय की तराई में जम्मू से आसाम तक और दक्षिण भारत तथा बर्मा के जंगलों में पाया जाता है। इसकी छाल चिकनी तथा खाकी रंग की होती है। छाल और पत्तियाँ चमड़ा सिझाने के काम आती हैं। लकड़ी से हल तथा नावें बनती हैं। इसकी लकड़ी का कोयला भी अच्छा होता है। यह चैत से जेठ तक फूलता और वर्षा ऋतु में फलता है। फल बहुत समय तक वृक्ष पर रहते हैं। इसकी छाल से एक प्रकार का मीठा और खाने योग्य गोंद निकलता है।
अधौरी²—संज्ञा स्त्री० दे० 'अधोगी'। उ०—राजत ताल मृदंग अधौरी, कूजत वेनु रसाल।—नंद० ग्रं०, पृ० १६६।
अध्मान—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष। पेट का अफरा।
विशेष—इस रोग में पेट अधिक फूल जाता है दर्द होता है, अधोवायु का छूटना बंद हो जाता है।
अध्यंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० अध्यण्डा] अजश्रृंगी और भूमि आमलकी नामक पौधे (को०)।
अध्यांडा—संज्ञा स्त्री० [सं० अध्याण्डा] दे० 'अध्यंडा' [को०]।

अध्यक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वामी। मालिक। २ अफसर। नायक। सरदार। प्रधान। मुखिया। ३ मुख्य अधिकारी। अधिष्ठाता। ४ सफेद मदार। श्वेतार्क। ५ क्षीरिका। खिरनी।

अध्यक्ष[2]—वि० १ गोचर। दृश्य। २ निरीक्षण करनेवाला [को०]।

अध्यक्षर[1]—क्रि० वि० [सं०] अक्षरशः। अक्षर अक्षर। जैसे-यह बात अध्यक्षर सत्य है (शब्द०)।

अध्यक्षर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] ओम् मंत्र या शब्द [को०]।

अध्यक्षीय—वि० [सं०] अध्यक्ष से संबंधित। अध्यक्ष का [को०]।

अध्यग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्त्रीधन। यौतुक या दायज।

विशेष—यह अग्नि को साक्षी कर कन्या को विवाह के समय मायकेवालों की ओर से दिया जाता है।

अध्यच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अध्यक्ष] दे० 'अध्यक्ष'।

अध्ययन—संज्ञा पुं० [सं०] १ पठन पाठन। पढाई। २ ब्राह्मणों के षट्कर्मों में से एक कर्म।

अध्ययनीय—वि० [सं०] अध्ययन के योग्य। पठनीय [को०]।

अध्यर्ध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वायु जो सबको धारण करनेवाली और बढानेवाली है और सारे संसार में व्याप्त है।

अध्यर्ध[2]—वि० [सं०] एक और उसका आधा। डेढ।

अध्यर्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष।

विशेष—जिस स्थान पर एक बार अर्बुद रोग हुआ हो उसी स्थान पर यदि फिर अर्बुद हो तो उसे अध्यर्बुद कहते हैं।

अध्यवसान—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रयत्न। २ दृढता। ३ अध्यवसाय। ४ प्रकृति अप्रकृति की ऐसी अभिन्नता जिसमें एक दूसरे में पूर्णतया समाहित हो [को०]।

अध्यवसाय—संज्ञा पुं० [सं०] १ लगातार उद्योग। अविश्रांत परिश्रम। निःसीम उद्यम। दृढता पूर्वक किसी काम में लगा रहना। २ उत्साह। ३ निश्चय। प्रतीति।

अध्यवसायित—वि० [सं०] जिसके लिये प्रयास किया गया हो [को०]।

अध्यवसायी—वि० [सं० अध्यवसायिन्] १ लगातार उद्योग करनेवाला। परिश्रमी। उद्योगी। उद्यमी। २ उत्साही।

अध्यवसायित—जिसने संकल्पपूर्वक किसी कार्य के लिये प्रयत्न किया हो [को०]।

अध्यवसिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अध्यवसाय' [को०]।

अध्यशन—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक मात्रा में भोजन करना। अजीर्ण। अनपच।

अध्यस्त—वि० [सं०] जिसका भ्रम किसी अधिष्ठान में हो।

विशेष—जैसे—रज्जु में सर्प, शुक्ति में रजत और स्थाणु में पुरुष का भ्रम। यहाँ सर्प, रजत और पुरुष अध्यस्त हैं और रज्जु आदि अधिष्ठानों में इनका भ्रम होता है।

अध्यस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] अस्थि के ऊपर का भाग [को०]।

अध्यस्थि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अस्थि के ऊपर निकलनेवाली दूसरी अस्थि। हड्डी के ऊपर की हड्डी [को०]।

अध्याइ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अध्याय'। उ०—अब सुनि लै द्वितीय अध्याइ। जामैं ब्रह्मादिक सब आइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २२३।

अध्यातम(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अध्यात्म'। उ०—अह अध्यातम दीप जु कोई। बुध्यादिक परकासक सोई।—नंद० ग्रं०, २२९।

अध्यात्म[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मविचार। ज्ञान तत्व। आत्मज्ञान। २ परमात्मा। ३ आत्मा।

अध्यात्म[2]—वि० आत्मा से संबद्ध [को०]।

अध्यात्मज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा तथा परमात्मा से संबंध रखनेवाला ज्ञान [को०]।

अध्यात्मदर्शी—वि० [सं० अध्यात्मदर्शिन्] आत्मा और परमात्मा का ज्ञान रखनेवाला [को०]।

अध्यात्मयोग—संज्ञा पुं० [सं०] मन को अन्य विषयों की ओर से हटाकर परमात्मा की ओर केंद्रित करना [को०]

अध्यात्मरति—वि० [सं०] परमात्मा के प्रति अनुरक्त रहनेवाला [को०]।

अध्यात्मा—संज्ञा पुं० [सं० अध्यात्मन्] परमात्मा। ईश्वर।

अध्यात्मिक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आध्यात्मिक'।

अध्यापक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अध्यापिका] शिक्षक। गुरु। पढानेवाला। उस्ताद।

अध्यापकी—संज्ञा स्त्री० [सं० अध्यापक + हिं० ई (प्रत्य०)] पढाई। पढाने का काम। मुदर्रिसी।

अध्यापन—संज्ञा पुं० [सं०] शिक्षण। पढाने का कार्य।

अध्यापयिता—संज्ञा पुं० [सं० अध्यापयितृ] शिक्षक। अध्यापक [को०]।

अध्यापिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पढानेवाली। शिक्षिका [को०]।

अध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रंथविभाग। २ पाठ। सर्ग। परिच्छेद।

अध्यायी[1]—वि० [सं० अध्यायिन्] अध्ययन में लगा हुआ [को०]।

अध्यायी[2]—संज्ञा पुं० विद्यार्थी [को०]।

अध्यारूढ—वि० [सं० अध्यारूढ] १ आरूढ। चढा हुआ। सवार। २ आक्रांत। ३ अत्यधिक। ४ किसी की तुलना में उससे श्रेष्ठ। ५ नीचे या निम्नतर [को०]।

अध्यारोप—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक के व्यापार का दूसरे में लगाना। अपवाद। दोष। अध्यास। २ झूठी कल्पना। वेदांत के अनुसार अन्य में अन्य वस्तु का अभाव या भ्रम, जैसे ब्रह्म में जो सच्चिदानंद अनंत अद्वितीय है, अज्ञानादि सकल जड समूह का आरोपण। ३ सांख्य के अनुसार एक के व्यापार को अन्य में लगाना। जैसे, प्रकृति के व्यापार को ब्रह्म में आरोपित कर उसको जगत् का कर्ता मानना, या इंद्रियों की क्रियाओं को आत्मा में लगाना और उसको उनका कर्ता मानना।

अध्यारोपण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अध्यारोप' [को०]।

अध्यारोपित—वि० [सं०] अध्यारोपण किया हुआ। भ्रमवश आरोपित [को०]।

अध्यावाहनिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह द्रव्य जो कन्या को पिता के घर से पति के घर जाते समय मिलता है। यह स्त्रीधन समझा जाता है।

अध्यास—संज्ञा पुं० [सं०] १ अध्यारोप। भ्रांत ज्ञान। मिथ्या ज्ञान। कल्पना। और वस्तु में और वस्तु की धारणा।

अध्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपवेशन। बैठना। २ आरोपण। ३ स्थान।

अध्याहरण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अध्याहार' [को०]।

अध्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क वितर्क। ऊहापोह। विचिकित्सा। विचार। बहस। २ वाक्य को पूरा करने के लिये उसमें और कुछ शब्द ऊपर से जोड़ना। उ०—प्रसंगानुकूल आक्षेप अथवा अध्याहार करके ही अर्थबोध होता है।—शैली०, पृ० ७३। ३ अस्पष्ट वाक्य को दूसरे शब्दों में स्पष्ट करने की क्रिया।

अध्याहृत—वि० [सं०] अध्याहार किया हुआ [को०]।

अध्युषित—वि० [सं०] बसा हुआ। आबाद [को०]।

अध्युष्ट—वि० पुं० [सं०] १ बसा हुआ। आबाद। २ साढ़े तीन। तीन और आधा (को०)। ३ साढ़े तीन वलय की सर्प की कुंडली [को०]।

अध्युष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँटगाड़ी [को०]।

अध्यूढ[1]—वि० [सं० अध्यूढ] १ उच्च। उन्नत। २ समृद्ध। ३ अत्यधिक [को०]।

अध्यूढ[2]—संज्ञा पुं० १ शिव। २ किसी स्त्री का वह पुत्र जो विवाह के पूर्व उत्पन्न हुआ हो। [को०]।

अध्यूढा—संज्ञा स्त्री० [सं० अध्यूढा] प्रथम विवाहिता स्त्री। वह स्त्री जिसके रहते पति दूसरा विवाह कर ले। ज्येष्ठा पत्नी।

अध्यूहन—संज्ञा पुं० [सं०] परत डालना (राख आदि की) [को०]।

अध्येन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अध्ययन] दे० 'अध्ययन'। उ०—दस पच दिन अध्येन कीन्ह। दस च्यारि मास मत सीख लीन।—पृ० रा०, १।७३१।

अध्येतव्य—वि० पुं० [सं०] पढ़ने योग्य। अध्ययन करने योग्य।

अध्येता—संज्ञा पुं० [सं० अध्येतृ] पढ़नेवाला। विद्यार्थी।

अध्येय—वि० [सं०] पढ़ने योग्य। अध्ययन करने योग्य।

अध्येषण—संज्ञा पुं० [सं०] आदर के साथ किसी कार्य में प्रवृत्त करना [को०]।

अध्येषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] याचना। माँगना। मगनपन। निवेदन।

अध्रि—वि० [सं०] किसी का नियंत्रण न माननेवाला। जिसे वश में न किया जा सके [को०]।

अध्रियमाण—वि० [सं०] १ जो पकड़ा न जा सके। २ मृत [को०]।

अध्रिगामणी(पु)—संज्ञा स्त्री० [डिं०] कटार। कटारी।

अध्रुव[1]—वि० पुं० [सं०] १ चल। चंचल। चलायमान। डाँवाडोल। अस्थिर। २ अनित्य। अनिश्चित। बेठौर ठिकाने का।

अध्रुव[2]—संज्ञा पुं० अनिश्चय [को०]।

अध्रुव[3]—संज्ञा पुं० [सं०] गले का रोगविशेष [को०]।

अध्व—संज्ञा पुं० [सं० अध्वन्] रास्ता। मार्ग। पथ। २ यात्रा। ३ दूरी। ४ काल। ५ साधन। ६ वेद की शाखा। ७ आक्रमण। ८ स्थान। ९ आकाश। १०। वायु। [को०]।

अध्वग—संज्ञा पुं० [सं०] १ बटोही। पथिक। यात्री। मुसाफिर। २ ऊँट। ३ खच्चर। ४ सूर्य। [को०]।

अध्वगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा [को०]।

अध्वगामी—वि० [सं० अध्वगामिन्] यात्रा करनेवाला [को०]।

अध्वनिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] पड़ाव।

अध्वनीन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] यात्री। मुसाफिर [को०]।

अध्वनीन[2]—वि० यात्रा करने योग्य। २ यात्रा में तेज चलनेवाला [को०]।

अध्वन्य—संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'अध्वनीन'।

अध्वपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २ मार्ग का निरीक्षण करनेवाला अधिकारी [को०]।

अध्वर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ। सोमयज्ञ। २ आकाश। ३ वायु [को०]।

अध्वर[2]—वि० १ सरल। २ सावधान। ३ अबाध। ४ पुष्ट [को०]।

अध्वरकल्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काम्येष्टि यज्ञ [को०]।

अध्वरकांड—संज्ञा पुं० [सं० अध्वरकाण्ड] शतपथ ब्राह्मण का एक भाग [को०]।

अध्वरग—वि० [सं०] यज्ञ के उपयोग में आनेवाला [को०]।

अध्वरथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ यात्रा के उपयुक्त गाड़ी। २ यात्रा में कुशल दूत [को०]।

अध्वर्यु—संज्ञा पुं० [सं०] चार ऋत्विजों या यज्ञ करानेवालों में से एक। यज्ञ में यजुर्वेद का मंत्र पढ़नेवाला ब्राह्मण। उ०—करोड़ों वलोन्मत्त नृपमों के मरण यज्ञ में वे हँसनेवाले अध्वर्यु थे।—कंकाल, पृ० १५६।

अध्वर्युवेद—संज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद [को०]।

अध्वशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ा।

अध्वशोष—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष। रास्ता चलने से उत्पन्न यक्ष्मा रोग।

अध्वांत[1]—संज्ञा पुं० [सं० अध्वान्त] १ हलका अँधेरा। २. छाया [को०]।

अध्वांत[2]—संज्ञा पुं० [सं० अध्व+अन्त] यात्रा या मार्ग का अंत [को०]।

अध्वाति—संज्ञा पुं० [सं०] १ पथिक। यात्री। २ कुशल व्यक्ति [को०]।

अध्वाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] मार्ग का निरीक्षक [को०]।

अध्वायन—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रा। सफर [को०]।

अध्वेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अध्वाधिप' [को०]।

अन्—अव्य० [सं०] संस्कृत व्याकरण में यह निषेधार्थक 'नञ्' अव्यय का स्थानादेश है और अभाव या निषेध सूचित करने के लिये स्वर से आरंभ होनेवाले शब्दों के पहले लगाया जाता है। जैसे—अनकुश, अनंत, अनधिकार, अनीश्वर आदि। हिंदी में यह अव्यय या उपसर्ग स्वरंग होता है और व्यंजन तथा स्वर से आरंभ होनेवाले शब्दों के पहले भी लगाया जाता है। जैसे, अनबन, अनरीति, अनहोनी, अनअहिवात, अनऋतु आदि।

अनंकुश—वि० [सं० अनङ्कुश] १ अंकुश या नियंत्रण से बाहर। अनियंत्रित। जो वश में न हो। २ अंकुश न माननेवाला। छूट लेनेवाला (जैसे, कवि) [को०]।

अनग[1]—वि० [सं० अनङ्ग] १. विना शरीर का। देहरहित। उ०—(क) अगी अनग कि मूढ अमूढ उदास अमीत कि मीत सही को। सो अथर्व कबहूँ जनि केशव जाके उदोत उदै सबही को।—केशव (शब्द०)। (ख) मुझको प्यारी के पास पहुँचने के लिये अनग, अर्थात् शरीरविहीन क्यों नही बना देते।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ४३२।

अनग[2]—संज्ञा पुं० १ कामदेव। उ०—आगे सोहै साँवरो कुँवर गोरो पाछे पाछे, आछे मुनिवेष धरे लाजत अनग है।—तुलसी ग्र०, पृ० १६५। २, आकाश (को०)। ३ मन (को०)। ४ वह जो अग न हो (को०)।

अनग अराति—संज्ञा पुं० [सं० अनङ्ग+अराति] अनग का शत्रु। महादेव। शिव। उ०—तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनग अराती। मानस—१।१०८।

अनगक—संज्ञा पुं० [सं० अनङ्गक] मन [को०]।

अनगक्रीडा—संज्ञा स्त्री० [सं० अनङ्गक्रीडा] १ रति। २ छद शास्त्र मे मुक्तक नामक विषम वृत्त के दो भेदो मे से एक जिसके पूर्व दल मे १६ गुरु वर्ण और उत्तर दल मे ३२ लघु वर्ण हो। जैसे—आठो जामा शभू गाओ। भौ फदा ते मुक्ति पाओ। सिख मम धरि हिय भ्रम सब तजि कर। भज नर हर हर हर हर हर हर (को०)।

अनगद—वि० [सं० अनङ्गद] काम या प्रणय का जनक [को०]।

अनगना—क्रि० अ० [सं० अनङ्ग] विदेह होना। शरीर की सुधि छोटना। वेसुध होना। सुध बुध भुलाना। उ०—गागरि नागरि जल भरि घर लीन्हे आवै। भृकुटी धनुष कटाक्ष बाण मनो पुनि पुनि हरिहिं लगावै। जाको निरखि अनग अनगत ताहि अनग बढावै।—सूर (शब्द०)।

अनगरग—संज्ञा पुं० [सं० अनङ्गरङ्ग] कामशास्त्र सबधी ग्रथ जिसमे मैथुन सबधी आसनो का विवरण है [को०]।

अनगलेख—संज्ञा पुं० [सं० अनङ्गलेख] मदनलेख या प्रेमपत्र [को०]।

अनगलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं० अनङ्गलेखा] प्रेमपत्र [को०]।

अनगवती—वि० स्त्री० [सं० अनङ्गवती] कामिनी [को०]।

अनगशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० अनङ्गशत्रु] शिव [को०]।

अनगशेखर—संज्ञा पुं० [सं० अनङ्गशेखर] दडक नामक वर्णवृत्त का एक छद जिसमे ३२ वर्ण होते हैं और लघु गुरु का कोई क्रम नही होता। जैसे—गरज्जि सिहनाद सो निनाद मेघनाद वीर कुट्ट ान मान सो कृसानु वाण छडिय (शब्द०)।

अनगारि—संज्ञा पुं० [सं० अनङ्गारि] कामदेव के अरि या शिव।

अनगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अनङ्गिनी] अनग की स्त्री। रति। उ०—लीला रसरगिनि श्रीराधा, अनुराग अनगिनि श्रीराधा।—घनानद,—पृ० २४५।

अनगी[1]—वि० [सं० अनङ्गिन्] [स्त्री० अनगिनी] १ अगरहित। विना देह का। अशरीर। २ अगविहीन। लूला लँगडा। अपाहिज। उ०—कहा कहौं हरि केतिक तारे पावन पद परतगी, सूरदास यह विरद स्रवन सुनि गरजत अधम अनगी।—सूर०, १।१२१।

अनगी[2]—संज्ञा पुं० १ परमेश्वर। २ कामदेव।

अनंगुरि—वि० [सं० अनङ्गुरि] विना उँगलियो का। उँगलियो से हीन या रहित [को०]।

अनगुलि—वि० [सं० अनङ्गुलि] अगुलिविहीन [को०]।

अनजन—वि० [सं० अनञ्जन] अजनरहित। अजनशून्य [को०]।

अनझ—वि० [देश०] अनधीन। जो अधीन न हो। निर्बाध। उ०—चहुआन जोग छत्री अनझ, अन्यन कोस सितए मझ।—पृ० रा०, ५५।४२।

अनछित्त—वि० [सं० अन्+छित्त] जो छेदा हुआ या कटा हुआ न हो। अच्छिन्न। उ०—अनच्छित्त अग वर अत्तताई, भई जीत चहुआन प्रथिराज राई।—पृ० रा०, २५।७७३।

अनत[1]—वि० [सं० अनन्त] १ जिसका अत न हो। जिसका पार न हो। असीम। बेहद। अपार। २ बहुत अधिक। असख्य। अनेक। ३ अविनाशी। नित्य।

अनत[2]—संज्ञा पुं० १ विष्णु। २ शेषनाग। ३ लक्ष्मण। ४ बलराम। ५ आकाश। ६ जैनो के एक तीर्थंकर का नाम। ७ अभ्रक। ८ एक गहना जो बाहु मे पहना जाता है। ९ एक सूत का गडा जो चौदह सूत एकत्र कर उसमे चौदह गाठ देकर बनाया जाता है। इसे भादो सुदी चतुर्दशी या अनतव्रत के दिन पूजित कर बाहु मे पहनते हैं। १० अनतचतुर्दशी का व्रत। ११ रामानुजाचार्य के एक शिष्य का नाम। १२ विष्णु का शख (को०)। १३ कृष्ण (को०)। १४ शिव (को०)। १५ रुद्र (को०)। १६ सीमाहीनता। अतहीनता (को०)। १७ नियत्व (को०)। १८ मोक्ष (को०)। १९ वासुकि (को०)। २० बादल (को०)। २१ सिंदुवार (को०)। २२ अभ्रक। अबरक (को०)। २३ श्रवण नक्षत्र (को०)। २४ ब्रह्म (को०)।

अनतकर—वि० [सं० अनन्तकर] बढाकर सीमाहीन कर देनेवाला। अधिक कटनेवाला (को०)।

अनतकाय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तकाय] जैनियो के अनुसार उन वनस्पतियो का समुदाय विशेष जिनके खाने का निषेध है।

विशेष—इसके अतर्गत वे पेड या पौधे माने जाते हैं जिनके पत्तो, और फूलो की नसें इतनी सूक्ष्म हो कि देख न पडें, जिनकी सधियाँ गुप्त हो, जो तोडने से एकबारगी टूट जायँ, जो जड से काटने पर फिर हरे हो जायँ, जिनके पत्ते मोटे, दलदार और चिकने हो अथवा जिनके पत्ते फूल और फल कोमल हो। ये सख्या मे बत्तीस हैं।

अनतग—वि० [सं० अनन्तग] नित्य या अतहीन जानेवाला। नित्य गतिशील रहनेवाला [को०]।

अनतगुण—वि० [सं० अनन्तगुण] बहुत अधिक गुणो से युक्त [को०]।

अनतचतुर्दशी—संज्ञा स्त्री० [सं० अनन्तचतुर्दशी] भाद्र शुक्ल चतुर्दशी।

विशेष—इस दिन हिंदू अलोना व्रत करते हैं और चौदह तागो के अनतसूत्र को, जिसमे चौदह गाँठें दी होती हैं, पूजन कर बाँधते हैं और तत्पश्चात् भोजन करते हैं। यह व्रत मध्याह्न पर्यंत का है।

अनतचरित्र—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तचरित्र] एक बोधिसत्व [को०]।

अनतजित्—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तजित्] १ वासुदेव। २ वर्तमान अवसर्पिणी के १४ वें तीर्थंकर [को०]।

अनंततर्क—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तटङ्का] एक रागविशेष जो मेघ राग का पुत्र माना जाता है।

अनतता—संज्ञा स्त्री० [सं० अनन्तता] असीमत्व। अमितत्व। अत्यत अधिकता।

अनततान—वि० [सं० अनन्ततान] असीम। अपार [को०]।

अनततीर्थकृत—संज्ञा पुं० [सं० अनन्ततीर्थकृत्] दे० 'अनतजित्' [को०]।

अनततृतीया—संज्ञा स्त्री० [सं० अनन्ततृतीया] भाद्र मास का तीसरा दिन [को०]।

अनतत्व—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तत्व] अनतता [को०]।

अनतदर्शन—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तदर्शन] जैन मत के अनुसार केवल दर्शन या सम्यक् दर्शन। सब बातो का पूरा ज्ञान। ऐसा ज्ञान जो दिशा, काल आदि से बद्ध न हो।

अनतदृष्टि—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तदृष्टि] रुद्र का एक नाम।

अनतदेव—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तदेव] १ शेषनाग। २ शेषशय्या पर रहनेवाले नारायण [को०]।

अनतनाथ—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तनाथ] जैन लोगो के चौदहवें तीर्थंकर।

अनतपार—वि० [सं० अनन्तपार] जिसका पार या सीमा न हो। असीम विस्तारवाला [को०]।

अनतमति—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तमति] एक बोधिसत्व [को०]।

अनतमायी—वि० [सं० अनन्तमायिन्] अनत या अपार छल या माया से युक्त [को०]।

अनतमूल—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तमूल] एक पौधा या बेल जो सारे भारतवर्ष मे होती है और ओषधि के काम आती है।

विशेष—इसके पत्ते गोल और सिरे पर नुकीले होते हैं। यह दो प्रकार की होती है—काली और सफेद। यह स्वादिष्ट, स्निग्ध, शुक्रजनक तथा मदाग्नि, अरुचि, श्वास, खाँसी, विष, त्रिदोष आदि को हरनेवाली होती है। रक्त शुद्ध करने का भी गुण इसमे बहुत है। इसी से इसे हिंदी मे सालसा या उशबा भी कहते हैं।

पर्याय—सारिवा। अनता। गोपी। भद्रवल्ली। नागजिह्वा। कराला। गोपवल्ली। सुगधा। भद्रा। श्यामा। शारदा। प्रहालिका। आस्फोता।

अनतर[1]—क्रि० वि० [सं० अनन्तर] १ पीछे। ठीक बाद। उपरांत। बाद। २ निरतर। लगातार।

अनतर[2]—वि० १ अतररहित। निकटस्थ। पट्टीदार। २ अखडित। ३ अपने वर्ण मे ठीक बादवाले वर्ण का (को०)।

यौ०—अनन्तरज। अनन्तरजात।

अनतर[3]—संज्ञा पुं० १ समीपता। निकटता। अतर का अभाव। २. ब्रह्म। परमात्मा [को०]।

अनतरज—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तरज] वह व्यक्ति जिसके पिता का वर्ण माता से एक वर्ण ऊँचा हो।

विशेष—जैसे,—माता शूद्रा हो और पिता वैश्य अथवा माता वैश्य हो और पिता क्षत्रिय अथवा माता क्षत्राणी और पिता ब्राह्मण हो।

अनंतरजात—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तरजात] दे० 'अनतरज'।

अनतरय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तरय] अंतर का अभाव [को०]।

अनतराय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तराय] निर्विघ्न [को०]।

अनतरित—वि० [सं० अनन्तरित] १ जिसमे बीच न पडा हो। निकटस्थ। २ अखडित। अटूट।

अनतरिति—संज्ञा स्त्री० [सं० अनन्तरिति] न त्यागना या अपनाना [को०]।

अनतरीय—वि० [सं० अनन्तरीय] वशानुक्रम मे ठीक बादवाला [को०]।

अनतर्हित—वि० [सं० अनन्तर्हित] १ जो अलग न किया गया हो। मिला हुआ। निकटस्थ। पास का। २ शृखलाबद्ध। अखडित। ३ जो छिपा न हो। प्रकट (को०)।

अनतवान्[1]—वि० [सं० अनन्तवान्] नित्य। जिसकी सीमा न हो [को०]।

अनंतवान्[2]—संज्ञा पुं० ब्रह्मा के चार चरणो मे से एक [को०]।

विशेष—पृथ्वी अतरिक्ष, अनत और समुद्र नामक ब्रह्मा के चार चरण हैं।

अनतविजय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तविजय] युधिष्ठिर के शख का नाम।

अनतवीर्य[1]—वि० [सं० अनन्तवीर्य] अपार पौरुषवाला।

अनतवीर्य[2]—संज्ञा पुं० जैनो के तेइसवे तीर्थंकर का नाम।

अनता[1]—वि० स्त्री० [सं० अनन्ता] जिसका अत या पारावार न हो।

अनता[2]—संज्ञा संज्ञा १ पृथ्वी। २ पार्वती। ३ करियारी का पौधा। ४ अनतमूल। ५ दूब। ६ पीपर। ७ जवासा। ८ अरणीवृक्ष। ९ अनतमूत्र।

अनतानुबधी—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तानुबन्धिन्] जैन मतानुसार वह दोष या दुस्वभाव जो कभी न जाय, जैसे अनतानुबधी क्रोध,—लोभ,—माया, मान।

अनताभिधेय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्ताभिधेय] वह जिसके नामो का अत न हो। ईश्वर।

अनती—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियो का गडा जिसे वे बाएँ बाजू पर बाँधती है [को०]।

अनत्य[1]—वि० [सं० अनन्त्य] जिसका अत या सीमा न हो [को०]।

अनत्य[2]—संज्ञा पुं० १. नित्यत्व। नित्यता। २ हिरण्यगर्भ का चरण [को०]।

अनद[1]—संज्ञा पुं० [सं० अनन्द] १४ वर्णो का एक वृत्त जिसका क्रम इस प्रकार है—जगण, रगण, जगण, रगण, लघु, गुरु।

अनद[2]Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आनद'। उ०—मुनि पुर भयउ अनद बधाव बजावहि।—तुलसी ग्र०, पृ० ५६।

अनदनाⓅ—क्रि० अ० [सं० आनन्द] आनदित होना। उ०—पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बदे। अभिमत आसिष पाइ अनदे।—तुलसी (शब्द०)।

अनदी[1]—संज्ञा पुं० [सं० अनन्दिन्] एक प्रकार का धान।

अनदी[2]Ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'आनदी'।

अनबर[1]—वि० [सं० अनम्बर] वस्त्रहीन। नग्न। नगा (को०)।

अनबर[2]—संज्ञा पुं० एक जैन साधु सप्रदाय। दिगबर [को०]।

अनभ[1]—वि० [सं० अन = नहीं + अम्भस् = जल] बिना पानी का।

अनभ²Ⓟ—वि० [सं० अन् = नहीं + अंह = पाप, विघ्न, बाधा] निर्विघ्न। बाधारहित। बे आँच। उ०—मोहन बाण हमार है, देखत मोहत शंभु। मोहन बाण तुम्हार जो हमको करत अनभु।—सबल (शब्द०)।

अनंश—वि० [सं०] १ जो पैत्रिक संपत्ति पाने का अधिकारी न हो। २ जिसका अंगभाग या खंड न हो (आकाश या ब्रह्म का विशेषण) [को०]।

अनशुमत्फला—संज्ञा स्त्री० [सं०] केला। कदली [को०]।

अन¹Ⓟ—क्रि० वि० [सं० अन्] बिना। बगैर। उ०—हँसि हँसि मिले दोऊ, अन ही मनाए मान छुटि गयो एही ओर राधिका रमन को।—केशव (शब्द०)।

अन²Ⓟ—वि० [सं० अन्य = दूसरा] अन्य। और। दूसरा। उ०—अनजल सींचे रूख की छाया तें बरु घाम। तुलसी चातक बहुत हैं यह प्रबीन को काम।—तुलसी ग्रं० पृ० १२८।

अन³Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अन्न] अनाज। अन्न। उ०—जैंमें हैं गिरिराज जू तैंसो अन को कोट। मगन भये पूजा करैं, नर नारी बड छोट।—सूर०, १०।८४१।

यौ०—अनधन = अन्न और संपत्ति। उ०—कहत कबीर सुनहु रे संतहु अनधन कछु अैसे न गयो।—कबीर ग्रं०, पृ० ३१०।

अनअहिवातⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अन = नहीं + हिं० अहिवात] अहिवात का अभाव। वैधव्य। विधवापन। रँडापा। उ०—कुमतिहि कसि कुबेषता फावी। अनअहिवात सूच जनु भावी।—मानस, २।२५।

अनइच्छितⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अनिच्छित'। उ०—राम भजत सोइ मुकुति गुसाई। अनइच्छित आवै बरिआई।—मानस,७।११९।

अनइसⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] अनिष्ट। अनैस। उ०—आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फल अनइस पावा।—मानस। २।१६३।

अनइसाⓅ अनइसीⓅ—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अनैसा'।

अनऋतु—संज्ञा पुं० [सं० अन् + ऋतु] १ विरुद्ध ऋतु। अनुपयुक्त ऋतु। बेमौसिम। अकाल। असमय। उ०—(क) चातक की रट नेह सदा, वह ऋतु अनऋतु नहिं हारत।—सूर(शब्द०)। (ख) सब तरु फरे राम हित लागी। ऋतु अनऋतुहि काल गति त्यागी।—तुलसी० (शब्द०)। २ ऋतु विपर्यय। ऋतु के विरुद्ध कार्य।

अनकपⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अकप'।

अनक¹—वि० [सं०] दे० 'अणक' [को०]।

अनक²—संज्ञा पुं० दे० 'अणक'।

अनक³Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आनक'।

अनकदुदुभ—संज्ञा पुं० [सं० अनकदुन्दुभ] कृष्ण के पितामह और वसुदेव के पिता का नाम [को०]।

अनकदुदुभिⓅ—संज्ञा पुं० [सं० आनकदुन्दुभि] अनकदुदुभ के पुत्र वसुदेव।

अनकना¹—क्रि० स० [सं० आकर्णन, प्रा० आकण्णण, हिं० अ कनना > (वर्णव्य०) अनकना] १ सुनना। २ चुपचाप सुनना। छिपकर सुनना।

अनकरीब—क्रि० वि० [अ० अनकरीब] करीब करीब। लगभग। प्राय।

अनकस्मात्—क्रि० वि० [सं०] जो आकस्मिक, अचानक या अकारण न हो [को०]।

अनकहनी—वि०, स्त्री० [हिं० अन + कहनी] न कहने योग्य। उ०—(क) सबके चरित्र लिखने में कुछ अनकहनी कहनी भी कह गए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०३। (ख) यही बैठ कहती थी तुमने सब कहनी अनकहनी।—उद्धा०, पृ० २०।

अनकहा—वि० [हिं० अन + कहा] [स्त्री० अनकही] बिना कहा हुआ। अकथित। अनुक्त। उ०—सिर्फ अनकहा रहने से तो असत्य हो नहीं जाता।—मुखदा, पृ० १०७।

मुहा०—अनकही देना = अवाक् रहना। चुपचाप होना। उ०—समुझि परी पटमास बीतीने कहाँ हुती हो आयो। सूर अनकही दै गोपिनि सों स्रवन मूँदि उठि धायो।—सूर०, १०।४१६९।

अनका—संज्ञा पुं० [अ० अन्का] दे० 'उनका' [को०]।

अनकाढा—[हिं० अन + काढना] बिना निकाला हुआ। उ०—साकहिं मरै चहै अनकाढे।—जायसी (शब्द०)।

अनकायमार—वि० [सं०] जो बिना इच्छा के न मरता हो। बिना इच्छा के न मरनेवाला [को०]।

अनकीय—वि० [सं०] अगणनीय [को०]।

अनकुस—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश अथवा हिं० अन + फा० खुश] बुरा। खराब। उ०—बँगले में शीशे लगी खिडकियों के बाहर घनी जाली लगी देखकर कुछ अनकुस मालूम होता था।—किन्नर०, पृ० १।

अनक्ष—वि० [सं०] १ बिना आँख का। अंधा। २ जहाँ बहेडा या रुद्राक्ष का वृक्ष न हो [को०]।

अनक्षर¹—वि० [सं०] १ अक्षरज्ञान से रहित। निरक्षर। २ न जाननेवाला। अज्ञ। ३ मूक। गूँगा। ४ न कहने योग्य [को०]।

अनक्षर²—संज्ञा पुं० दुर्वचन या गाली [को०]।

अनक्षर³—क्रि० वि० बिना शब्दप्रयोग किए। बिना शब्द उच्चारण किए। बिना बोले [को०]।

अनक्षि—वि० [सं०] बुरी आँख [को०]।

अनक्षिक—वि० [सं०] बिना आँख का। अंधा [को०]।

अनख¹—संज्ञा पुं० [सं० अन् = बुरा + अक्ष = आँख, प्रा० अनक्ख अथवा सं० अनाकाङ्क्ष प्रा० अनाकख अनअक्ख, अनक्ख हिं० अनख] १ झुँझलाहट। रिस। क्रोध। नाराजगी। अनिच्छा। असंतोष। उ०—(क) धनि धनि अनख उरहनो धनि धनि धनि माखन धनि मोहन खाए।—सूर (शब्द०)। (ख) मायँ कुमायँ न आलसहूँ। नाम जपत मंगल,दिसि दसहूँ।—मानस १।१९।२ दुःख। ग्लानि। खिन्नता। उ०—जो पै हिरदय माँझ हरी। कर कंकन दरपन लै देखो इहि अति अनख परी। क्यों अब जियहिं जोग सुनि सूरज, बिरहिनि बिरहभरी।—सू०, १०।३७९०। ३ ईर्षा। द्वेष। डाह। उ०—किमि सहि जात अनख तोहि पाही। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाही।—मानस ३।२४। ४ झंझट। अनरीति। उ०—बाबू ऐसो है संसार तिहारो ये कलि है व्यवहारा। को अब अनख सहै प्रति दिन को नाहिन

रहनि हमारा।—कबीर (शब्द०)। ५ डिठौना। काजल की बिंदी जिसे दीठ (नजर) से बचाने के लिये बच्चों के माथे में लगाते हैं। उ०—अनधन देखि लिलरवा, अनख न धार। ममलहु दिय दुति मनमिज, मन करतार।—खानखाना (शब्द०)।

अनख²—वि० [सं० अ=नहीं+नख=नाखून] १ बिना नाखून का। उ०—मिहिर नजर सों भावते, राख याद मरि मोद। अनखन खनि अनखन अरे, मन सो मनहिं करोद।—रसनिधि (शब्द०)।

अनखना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अनख से नाम०] क्रोध करना। रिसाना। रुष्ठ होना। उ०—हम अनखी या बात सों लेत दान को नावें। सहज भाव रहौ लाडिले बसत एक ही गाँव।—सूर (शब्द०)।

अनखाना¹(पु)—क्रि० अ० [हिं० अनख] क्रोध करना। रुष्ठ होना। रिसाना। उ०—(क) कापर नैन चढाए डोलनि, व्रज में तिनुका तोर। सूरदास यशुदा अनखानी यह जीवन धन मोर।—सूर०, १०।३१०। (ख) गई करुणा भी इक दिन ऊब। कहा अनखाकर उसने खूब।—झरना, पृ० ५६।

अनखाना²(पु)—क्रि स० अप्रसन्न करना। नराज करना। खिझाना। उ०—उठन सभा दिन मधि सैनापति भीर देखि फिरि आऊँ। न्हात खात मुख करन साहिबी कैसे करि अनखाऊँ।—सूर० ६। १७२।

अनखावना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अनखाना'। उ०—वा देखत हमकों तुम मिलिहौं, काहे को ताकों अनखावत।—सूर०, १०।२८१६।

अनखाहट(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनख+आहट (प्रत्य०)] अनखने या क्रोध दिखलाने की क्रिया या भाव। उ०—मारची मनुहारिनु भरी गारचौ खरी मिठाहिं। वाको अति अनखाहटौ मुसुकाहट बिनु नाहिं।—बिहारी र०, दो० ४६८।

अनखी†—वि० [हिं० अनख+ई (प्रत्य०)] क्रोधी। गुस्सावर। जो जल्दी नाराज हो।

अनखीली(पु)†—वि० स्त्री० [हिं० अनख+ईली (प्रत्य०)] अनखवाली। बुरा माननेवाली। अनखी। उ०—कहै पदमाकर अगार अनखीलिन की भीरी भीर भारन को भाँज दै री भाँज दै।—पद्माकर ग्र ०, पृ० ३२२।

अनखुला—वि० [हि० अन+खुलना] [अनखुली] १ जो खुला न हो। बंद। २ जिसका कारण प्रगट न हो। गुप्त। उ०—केसर केसरि कुसुम के रहे अंग लपटाइ। लगे जानि नख अनखुली कत बोलति अनखाइ।—बिहारी र०, दो० १६६।

अनखौहा(पु)†—वि० [हिं० अनख+औहा (प्रत्य०)] [स्त्री० अनखौही] १ क्रोध से भरा हुआ। कुपित। रुष्ट। उ०—रवि बंदौं कर जोरिकै, सुनत स्याम के बैन। भए हँसौंहैं सबनु के, अति अनखौंहैं नैन।—बिहारी र०, दो० २२४। २ चिड़चिड़ा। जल्दी क्रोध करनेवाला। छोटी सी बात पर चिढ जानेवाला। ३ क्रोधजनक। क्रोध दिलानेवाला। उ०—निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि, मानि त्रास औनिपन मानो मौनता गही। रोषे माखे लखन अकनि अनखौही बातें तुलसी बिनीत बानी बिहँसि ऐसी कही।—तुलसी ग्र ०, पृ० १६०। ४ अनुचित। खोटा। बुरा। उ०—(क) कबहूँ मो को कछू लगावति कबहुँ कहति जनु जाहु कही। सूरदास बातें अनखौंही नाहिन मो पै जाति सही।—सूर (शब्द०)। (ख) राम सदा सरनागत की अनखौंही अनैसी सुभाय सही है।—तुलसी ग्र ०, पृ० १६६।

अनगढ—वि० [हिं० अन+गढना] १ बिना गढा हुआ। उ०—थे चमक रहे दो खुले नयन ज्यों शिलालग्न अनगढे रतन।—कामायनी, पृ० २४७। २ जिसे किसी ने न बनाया हो। स्वयंभू। उ०—ऊधौ राखिए यह बात। कहत हौ अनगढ व अनहद सुनत ही चपि जात।—सूर(शब्द०)। ३ बेडौल। भद्दा। बेढंगा। ४ असंस्कृत। अपरिष्कृत। ५ उजड्ड। अक्खड। पोंगा। अनाडी। जैसे, अनगढ मूर्ख। ६ बेतुका। अटपट। बे सिर पैर का। जैसे, अनगढ बात।

अनगन(पु)—वि० सं० [अन्+गणन] [स्त्री० अनगनी] अगणित। बहुत। उ०—निज काज सजत सँवारि पुर नर नारी रचना अनगनी।—तुलसी (शब्द०)।

अनगना¹†—क्रि० स० [सं० अनग्न=ढका हुआ] खपडा फेरना। छाजन में टूटे हुए खपडों के स्थान पर नए लगाना। टपकते हुए खपडैल की मरम्मत करना।

अनगना²—वि० [हिं० अन्+गनना] १ जो गिना न गया हो। न गिना हुआ। २ अगणित। बहुत।

अनगना³†—संज्ञा पुं० गर्भ का आठवाँ महीना। जैसे—इस स्त्री का अब अनगना लगा है (शब्द०)।

अनगवना(पु)—क्रि० अ० [सं०अन्+हिं० अगवना अथवा हिं० अन+गवन=गमन] जान बूझकर देर करना। विलंब करना। उ०—मुहुँ धोवति, एडी घसति, हँसति, अनगवति तीर। घसति न इंदीवर नयनि कालिंदी के नीर।—बिहारी र०, दो० ६६७।

अनगाना¹(पु)—क्रि० अ० [सं० अन्+हिं० अगाना] १ विलंब करना। देर करना। २ टालमटोल करना।

अनगाना²—क्रि० स० [हिं०] सँवरना। सुलझाना (केश आदि)

अनगाना³—क्रि० स० [हिं० अनगना] अनगने या खपडा फेरने का काम कराना।

अनगार¹—वि० [सं०] बिना अगार या घर का। गृहहीन [को०]।

अनगार²—संज्ञा पुं० घूमने फिरनेवाला। सन्यासी [को०]।

अनगारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिव्राजक या सन्यासी का जीवन या स्थिति [को०]।

अनगिन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनगिनत'। उ०—फूलि रहे तारे मानो मोती अनगन हैं।—कवित्त०, पृ० ६६।

अनगिनत—वि० [सं० अन्=नहीं+गणित=गिना हुआ] जिसकी गिनती न हो। अगणित। असंख्य। बेशुमार। बेहिसाब। बहुत। उ०—शून्यता सम डगर में अनगिनत कण खो गई है।—अपलक, पृ० ८६।

अनगिना—वि० पुं० [हिं० अन+गिनना] [स्त्री० अनगिनी] १. बिना गिना हुआ। जो गिना न गया हो। २ अगणित। असंख्य। बहुत। उ०—मुक्ति मुक्ता अनगिने फल तहाँ चुनि चुनि खाहिं।—सूर १।३३६।

अनगैरी(पु)--वि० [हिं० अन+अ० गैर+हिं० ई (प्रत्य०)] गैर। पराया। अपरिचित। बेजान। उ०—कह गिरिधर कविराय घरे आवैं अनगैरी। हित की कहैं बनाय चित्त मे पूरे बैरी।—गिरिधर (शब्द०)। (ख) मूरख करैं सबन ते बैरू। मूरख घर राखैं अनगैरू।—विश्राम (शब्द०)।

अनग्नि—वि० [सं०] १ अग्निहोत्ररहित। श्रौत और स्मार्त कर्म से विमुख या हीन। २ जिसे अग्नि की आवश्यकता न हो (को०)। ३ मदाग्नि का रोगी (को०)। ४ अविवाहिता (को०)।

अनग्नित्र—वि० पु० [सं०] [स्त्री० अग्नित्रा] जो पवित्र अग्नि का सरक्षण न करता हो [को०]।

अनग्निदग्ध—वि० [सं०] १ जो आग से न जला हो। २ चिता पर न जला या जलाया हुआ। ३ गाडा हुआ [को०]।

अनग्निष्वात्त —वि० [सं०] १ जो अग्निदग्ध न हो। २ गाडा हुआ। दफनाया हुआ [को०]।

अनघ[1]—वि० [सं०] १ निष्पाप। पातकरहित। निर्दोष। बेगुनाह। २ पवित्र। शुद्ध।

अनघ[2]—संज्ञा पु० वह जो पाप न हो। पुण्य। उ०—तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ आगि लागे डाढन।—तुलसी (शब्द०)।

अनघरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अन् = विरुद्ध+घरी = घड़ी] असमय। कुसमय। अनवसर। बेवक्त। बेमौका।

अनघैरी(पु)—वि० [सं० अन्+हिं० घेर अथवा सं० अनाघोरित] बिना बुलाया हुआ। अनिमंत्रित। अनाहूत।

अनघोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० घोर] अंधेर। अत्याचार। ज्यादती। उ०—यह अनित्य तनु हेतु तुम, करहु जगत अनघोर।—रघुराज० (शब्द०)।

अनघोरी(पु)—क्रि० वि० [हिं० अनघरी] अचानक। चुपके से। उ०—जीति पाइ अनघोरी आए।—छत्र०।

अनचहा(पु)—वि० [सं० अन+हिं० चाह] नहीं चाहा हुआ। अनिच्छित। अप्रिय। उ०—अनत चह्यो न भलो सुपथ सुचाल चल्यौ, नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हौं।—तुलसी ग्र०, पृ० ५८८।

अनचाखा(पु)—वि० [हिं० अन+चाखना] बिना चखा या खाया हुआ। अनास्वादित। उ०—दारिउँ दाख फरे अनचाखे।—जायसी ग्र०, पृ० ४६।

अनचाहत[1](पु)—वि० [हिं० अन+चाहना] जो न चाहे।

अनचाहत[2]—संज्ञा पु० न चाहनेवाला आदमी। प्रेम न करनेवाला पुरुष। उ०—हाय दई कैसी भई अनचाहत को सग। दीपक को भावै नही, जल जल मरत पतग (शब्द०)।

अनचाहा—वि० [हिं० अन+चाहना] जिसकी चाह या इच्छा न की गई हो। अचाहा। अवांछित। अप्रिय।

अनचिन्हा(पु)†—वि० [हिं० अन+चीन्ह = परिचित] अपरिचित। अजनबी। अनजाना।

अनचीत—वि० [हिं० अन+चीत] मन या चित के विरुद्ध। बेमन। उ०—गैया चरैं अनचीत, मुरली मन मोहि रे रहे।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३५०।

अनचीता[1]—वि० [हिं० अन+चीतना = सोचना] १ न सोचा हुआ। अपरिचित। अनचाहा। अचाहा।

अनचीता[2]—क्रि० वि० [हिं० अन+चीतना] अचानक या अकस्मात् होनेवाला।

अनचीन्ह(पु)†—[हिं० अन+चिन्ह] १ अपरिचित। बे पहिचान का। २ चीन्ह या लक्षण से रहित।

अनचीन्हा(पु)†—वि० [हिं० अन+चीन्ह] बिना पहचाना हुआ। अपरिचित। अज्ञात।

अनचेता—वि० [हिं० अन+चेतना] न सोचा हुआ। अचिंतित।

अनचेती—वि० स्त्री० [हिं० अन+चेतना] न सोची हुई (बात विषय आदि)।

अनचैन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अन+चैन] बेचैनी। व्याकुलता। विकलता।

अनचैनी†—[हिं० अनचैन+ई] (प्रत्य०)] चैन रहित। व्याकुलता से भरी। विकलतायुक्त।

अनच्छ—वि० [सं०] जो स्वच्छ, निर्मल या साफ न हो [को०]।

अनजका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी बकरी [को०]।

अनजाद†—संज्ञा पु० [फा० अंदाजह] अनुमान। अटकल।

अनजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी बकरी [को०]।

अनजान[1]—वि० [हिं० अन+जानना] १ अज्ञानी। अनभिज्ञ। अज्ञ। नासमझ। नादान। सीधा। भोला भाला। २ बिना जाना हुआ। अपरिचित। अज्ञात।

अनजान[2]—संज्ञा पु० १ एक प्रकार की लंबी घास जिसे प्राय भैंसें ही खाती है और जिससे उनके दूध मे कुछ नशा आ जाता है। २ धजना नाम का पेड़।

अनजानत(पु)—क्रि० वि० [हिं० अन+जानना] न जानते या समझते हुए। उ०—(क) श्रीमद नृपअभिमान मोहबस जानत अनजानत हरि लायो।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६५। (ख) व्याकुल भयो डरयो जिय भारी। अनजानत कीन्ही प्रधिकारी।—सूर० १०।६४७।

अनजाया(पु)—वि० [हिं० अन+जाया = उत्पन्न] जन्म से परे। अजन्मा। उ०—बाबुल मेरा ब्याह करा दो अनजाया बर लाय।—कबीर श०, पृ० १०१।

अनजोखा—वि० बिना जोखा हुआ। बिना तौला हुआ।

अनट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनृत = अत्याचार अथवा सं० अन्+नृत = अनृत, प्रा० अणट्ट = उपद्रव] उपद्रव। अनीति। अन्याय। अत्याचार। उ०—(क) खेलत सग अनुज बालक नित जोगवत अनट उपाय।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६। (ख) सहि कुबोल, साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान। तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान।—तुलसी ग्र०, पृ० १४२।

अनडीठ(पु)—वि० [सं० अन्+दृष्ट प्रा० डिट्ठ, दिट्ठ, हिं० डीठ] बिना देखा।

अनडुज्जिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गोजिह्वा। २ अनंतमूल [को०]।

अनडुह—संज्ञा पुं० [सं०] १ बैल। २ वृषराशि (को०)। ३ गोत्र प्रवर्तक एक ऋषि का नाम (को०)।

अनडुही—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय ।

अनडवान्—संज्ञा पुं० [सं०] १ बैल । साँड़ । २ सूर्य (उपनि०) । ३ वृष राशि [को०] ।

अनड्वाही—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौ । गाय [को०] ।

अनणु[1]—वि० [सं०] जो सूक्ष्म न हो [को०] ।

अनणु[2]—संज्ञा पुं० मोटा अन्न [को०] ।

अनत[1]—वि० [सं०] न झुका हुआ । सीधा ।

अनत[2]—क्रि० वि० [सं० अन्यत्र, प्रा० अण्णत, अन्नत्त] और कहीं । दूसरी जगह में । पराए स्थान । उ०—राम तपन सिय सुनी मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहि तजि ठाऊँ ।—मानस, २।२३२ ।

अनति[1]—वि० [सं०] बहुत नहीं, थोड़ा ।

अनति[2]—संज्ञा स्त्री० नम्रता का अभाव । विनीत भाव का न होना । अहंकार ।

अनदेखा—वि० [हिं० अन+देखना] [स्त्री० अनदेखी] बिना देखा हुआ । उ०— देखी अनदेख्यो किये अँगु अँगु सबै दिखाइ । पैठति सी तन मैं सकुचि बैठी चितै लजाइ ।—बिहारी र०, दो० ६१८ ।

अनदोष—वि० [हिं० अन+सं० दोष] दोषरहित । अदोष । निर्दोष । उ०—अनदोषे कौ दोष लगावति, दई देइगौ टारि ।—सूर०, १०।२९२ ।

अनद्धा—क्रि० वि० [सं०] असत्यतः, अवस्तुतः या अनौचित्य [को०] ।

अनद्धामिश्रित वचन—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार समय के संबंध में झूठ बोलना । जैसे कुछ रात रहते ही कह देना कि सूर्योदय हो गया ।

अनद्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद सरसों [को०] ।

अनद्य[2]—वि० जो खाने योग्य न हो । अखाद्य [को०] ।

अनद्यतन[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अनद्यतनी] आज या अद्यतन के पहले या पीछे का ।

अनद्यतन[2]—संज्ञा पुं० पिछली रात के पिछले दो पहर और आनेवाली रात के अगले दो पहर और इनके बीच के सारे दिन को छोड़कर बाकी रात या भविष्य का समय । पिछली १२ बजे रात से आनेवाली १२ बजे रात तक का समय जो बीत रहा हो ।

विशेष—पिछली आधी रात के पहले के समय को भूत अनद्यतन और आनेवाली रात के बाद के समय को भविष्य अनद्यतन कहते हैं ।

अनद्यतन भविष्य—संज्ञा पुं० [सं०]१ आनेवाली आधी रात के बाद का समय । २ संस्कृत व्याकरण में भविष्य काल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता ।

अनद्यतन भूत—संज्ञा पुं० [सं०] १ बीती हुई आधी रात के पहले का समय । संस्कृत व्याकरण में भूतकाल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता ।

अनधिक—वि०[सं०]१ जो अधिक न हो । २ सीमाहीन । असीम । ३ पूर्ण । पूरा । ४ जिससे कोई बढ़कर न हो । ५ जिसे बढ़ाया न जा सके [को०] ।

अनधिकार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अधिकार का अभाव । इख्तियार का न होना । प्रभुत्व का अभाव । २ बेबसी लाचारी । ३ अयोग्यता । अक्षमता ।

अनधिकार[2]—वि० १ अधिकाररहित । बिना इख्तियार का । २ अयोग्य । योग्यता के बाहर ।

अनधिकारचर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग्यता के बाहर बातचीत । जिस विषय में गति न हो उसमें टाँग अड़ाना ।

अनधिकार चेष्टा—संज्ञा स्त्री०[सं०]बिना अधिकार के कोई कार्य या प्रयत्न करना [को०] ।

अनधिकारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधिकारशून्यता । अधिकार का न होना । २ अक्षमता ।

अनधिकारी—वि० [सं० अनधिकारिन्] [स्त्री० अनधिकारिणी] १ जिसे अधिकार न हो । जिसके हाथ में इख्तियार न हो । २ अयोग्य । अपात्र । कुपात्र । जैसे—पंडित लोग अनधिकारी को वेद नहीं पढ़ाते (शब्द०) ।

अनधिकृत—वि०[सं०]१ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न किया गया हो । २ अधिकार से बाहर । जिसपर अधिकार न हो [को०] ।

अनधिगत—वि० [सं०] बिना समझा हुआ । अनवगत । अज्ञात । बे जाना बूझा ।

अनधिगत मनोरथ—वि० [सं०] जिसकी इच्छा पूर्ण न हुई हो । हताश [को०] ।

अनधिगत शास्त्र—वि० [सं०] जिसका शास्त्र पर अधिकार न हो [को०] ।

अनधिगम्य—वि०[सं०] जो पहुँच के बाहर हो । अप्राप्य । दुष्प्राप्य ।

अनधिष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] निरीक्षण का न होना [को०] ।

अनधिष्ठित—वि० [सं०] १ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ । २ जो उपस्थित न हो [को०] ।

अनधिष्ठित—वि०[सं०]१ अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ हो । २ उपस्थित न हो [को०] ।

अनधीन[1]—वि० [सं०] जो अधीन न हो । स्वतंत्र [को०] ।

अनधीन[2]—संज्ञा पुं० स्वेच्छा पूर्वक स्वतंत्र रूप से काम करनेवाला बढ़ई [को०] ।

अनधीनक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनधीन' [को०] ।

अनध्यक्ष—वि० [सं०] १ जो देख न पड़े । अप्रत्यक्ष । नजर के बाहर । २ अध्यक्षरहित । बिना मालिक का ।

अनध्ययन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अध्ययन न होना । अध्ययन का अभाव । २ अध्ययनकाल में बीच में पड़नेवाला विराम [को०] ।

अनध्यवसाय—संज्ञा पुं०[सं०]१ अध्यवसाय का अभाव । गफलत । ढिलाई । २ एक काव्यालंकार ।

विशेष—इसमें कई समान गुणवाली वस्तुओं के बीच नहीं वरन् किसी एक वस्तु के संबंध में साधारण अनिश्चय का वर्णन किया जाता है । जैसे—'स्वेदगात्र आज अस तन का । आली बनमाली को यह' । यह प्रकार संदेह में 'संदेह के अंतर्गत ही आता है और इसमें कुछ चमत्कारता भी नहीं प्रतीत होती है ।

अनध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह दिन जिसमें शास्त्रानुसार पढ़ने पढ़ाने का निषेध हो ।

अनगैरी(पु)—वि० [हिं० अन+अ० गैर+हिं० ई (प्रत्य०)] गैर। पराया। अपरिचित। बेजाना। उ०—कह गिरिधर कविराय घरे आवै अनगैरी। हित की कहै बनाय चित्त मे पूरे बैरी।—गिरिधर (शब्द०)। (ख) मूरख करै सवज ते बैरू। मूरख घर राखै अनगैरू।—विश्राम (शब्द०)।

अनग्नि—वि० [सं०] १ अग्निहोत्ररहित। श्रौत और स्मार्त कर्म से विमुख या हीन। २ जिसे अग्नि की आवश्यकता न हो (को०)। ३ मदाग्नि का रोगी (को०)। ४ अविवाहिता (को०)।

अनग्नित्र—वि० पु० [सं०] [स्त्री० अग्नित्रा] जो पवित्र अग्नि का सरक्षण न करता हो [को०]।

अनग्निदग्ध—वि० [सं०] १ जो आग से न जला हो। २ चिता पर न जला या जलाया हुआ। ३ गाडा हुआ [को०]।

अनग्निष्वात्त —वि० [सं०] १ जो अग्निदग्ध न हो। २ गाडा हुआ। दफनाया हुआ [को०]।

अनघ[1]—वि० [सं०] १ निष्पाप। पातकरहित। निर्दोष। बेगुनाह। २ पवित्र। शुद्ध।

अनघ[2]—संज्ञा पु० वह जो पाप न हो। पुण्य। उ०—तुलसिदास जगदघ जवास ज्यो अनघ आगि लागे डाढन।—तुलसी (शब्द०)।

अनघरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अन् = विरुद्ध + घरी = घडी] असमय। कुसमय। अनवसर। बेवक्त। बेमौका।

अनघैरी(पु)—वि० [सं० अन्+हिं० घेर अथवा सं० अनागोरित] बिना बुलाया हुआ। अनिमत्रित। अनाहूत।

अनघोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० घोर] अधेर। अत्याचार। ज्यादती। उ०—यह अनित्य तनु हेतु तुम, करहु जगत अनघोर।—रघुराज० (शब्द०)।

अनघोरी(पु)—क्रि० वि० [हिं० अनघरी] अचानक। चुपके से। उ०—जीति पाइ अनघोरी आए।—छत्र०।

अनचहा(पु)—वि० [सं० अन+हिं० चाह] नही चाहा हुआ। अनिच्छित। अप्रिय। उ०—अनत चह्यो न भलो सुपथ सुचाल चल्यौ, नीके जिय जानि इहाँ भली अनचह्यो हो।—तुलसी ग्र०, पृ० ५८८।

अनचाखा(पु)—वि० [हिं० अन+चाखना] बिना चखा या खाया हुआ। अनास्वादित। उ०—दारिउँ दाख फरे अनचाखे।—जायसी ग्र०, पृ० ४६।

अनचाहत[1](पु)—वि० [हिं० अन+चाहना] जो न चाहे।

अनचाहत[2]—संज्ञा पु० न चाहनेवाला आदमी। प्रेम न करनेवाला पुरुष। उ०—हाय दई कैसी भई अनचाहत को सग। दीपक को भावै नही, जल जल मरत पतग (शब्द०)।

अनचाहा—वि० [हिं० अन+चाहना] जिसकी चाह या इच्छा न की गई हो। अचाहा। अवाछित। अप्रिय।

अनचिन्हा(पु)†—वि० [हिं० अन+चीन्ह = परिचित] अपरिचित। अजनबी। अनजाना।

अनचीत—वि० [हिं० अन+चीत] मन या चित्त के विरुद्ध। बेमन। उ०—गैया चरै अनचीत, मुरली मन मोहि रे रहे।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३५०।

अनचीता[1]—वि० [हिं० अन+चीतना = सोचना] १ न सोचा हुआ। अपरिचित। अनचाहा। अचाहा।

अनचीता[2]—क्रि० वि० [हिं० अन+चीतना] अचानक या अकस्मात् होनेवाला।

अनचीन्ह(पु)†—[हिं० अन+चिन्ह] १ अपरिचित। बे पहिचान का। २ चीन्ह या लक्षण से रहित।

अनचीन्हा(पु)†—वि० [हिं० अन+चीन्ह] बिना पहचाना हुआ। अपरिचित। अज्ञात।

अनचेता—वि० [हिं० अन+चेतना] न सोचा हुआ। अचिंतित।

अनचेती—वि० स्त्री० [हिं० अन+चेतना] न सोची हुई (बात, विषय आदि)।

अनचैन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अन+चैन] बेचैनी। व्याकुलता। विकलता।

अनचैनी†—[हिं० अनचैन+ई] (प्रत्य०)] चैन रहित। व्याकुलता से भरी। विकलतायुक्त।

अनच्छ—वि० [सं०] जो स्वच्छ, निर्मल या साफ न हो [को०]।

अनजका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी बकरी [को०]।

अनजाद—संज्ञा पु० [फा० अंदाजह] अनुमान। अटकल।

अनजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी बकरी [को०]।

अनजान[1]—वि० [हिं० अन+जानना] १ अज्ञानी। अनभिज्ञ। अन। नासमझ। नादान। सीधा। भोला भाला। २ बिना जाना हुआ। अपरिचित। अज्ञात।

अनजान[2]—संज्ञा पु० १ एक प्रकार की लबी घास जिसे प्राय भैसे ही खाती हैं और जिससे उनके दूध मे कुछ नशा आ जाता है। २ वजना नाम का पेड।

अनजानत(पु)—क्रि० वि० [हिं० अन+जानना] न जानते या समझते हुए। उ०—(क) श्रीमद नृपअभिमान मोहबस जानत अनजानत हरि लायो।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६५। (ख) व्याकुल भयो डरयो जिय भारी। अनजानत कीन्ही अधिकारी।—सूर० १०।६४७।

अनजाया(पु)—वि० [हिं० अन+जाया = उत्पन्न] जन्म से परे। अजन्मा। उ०—बाबुल मेरा ब्याह करा दो अनजाया वर लाय।—कबीर ग्र०, पृ० १०१।

अनजोखा—वि० बिना जोखा हुआ। बिना तौला हुआ।

अनट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनृत = अत्याचार अथवा सं० अन्+ऋत = अनृत, प्रा० अणट्ट = उपद्रव] उपद्रव। अनीति। अन्याय। अत्याचार। उ०—(क) सेवत सग अनुज बालक नित भोगवत अनट उपाय।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६। (ख) सहि कुबोल, साँसति सकल अँगइ अनट अपमान। तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान।—तुलसी ग्र०, पृ० १४२।

अनडीठ(पु)—वि० [सं० अन्+दृष्ट प्रा० डिट्ठ, दिट्ठ, हिं० डीठ] बिना देखा।

अनडुज्जिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोजिह्वा। २ अनतमूल [को०]।

अनडुह—संज्ञा पुं० [सं०] १ बैल। २ वृषभराशि (को०)। ३. गोत्र प्रवर्तक एक ऋषि का नाम (को०)।

अनडुही—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय।

अनड्वान्—संज्ञा पुं० [सं०] १ बैल। साँड। २ सूर्य (उपनि०)। ३ वृष राशि [को०]।

अनड्वाही—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौ। गाय [को०]।

अनणु[1]—वि० [सं०] जो सूक्ष्म न हो [को०]।

अनणु[2]—संज्ञा पुं० मोटा अन्न [को०]।

अनत[1]—वि० [सं०] न झुका हुआ। सीधा।

अनत[2] ⓟ—क्रि० वि० [सं० अन्यत्र, प्रा० अण्णत्त, अन्नत्त] और कहीं। दूसरी जगह में। पराए स्थान। उ०—राम लषन सिय सुनी मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ।—मानस, २।२३२।

अनति[1]—वि० [सं०] बहुत नहीं, थोड़ा।

अनति[2]—संज्ञा स्त्री० नम्रता का अभाव। विनीत भाव का न होना। अहंकार।

अनदेखा—वि० [हिं० अन+देखना] [स्त्री० अनदेखी] बिना देखा हुआ। उ०— देखी अनदेखी किये अँगु अँगु सबै दिखाइ। पैठति सी तन मैं सकुचि बैठी चितै लजाइ।—बिहारी र०, दो० ६१८।

अनदोष—वि० [हिं० अन+सं० दोष] दोषरहित। अदोष। निर्दोष। उ०—अनदोषे कौं दोष लगावनि, दई देइगी टारि।—सूर०, १०।२६२।

अनद्धा—क्रि० वि० [सं०] असत्यत, अवस्तुत या अठीकत [को०]।

अनद्धामिश्रित वचन—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार समय के संबंध में झूठ बोलना। जैसे कुछ रात रहते ही कह देना कि सूर्योदय हो गया।

अनद्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद सरसों [को०]।

अनद्य[2]—वि० जो खाने योग्य न हो। अखाद्य [को०]।

अनद्यतन[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अनद्यतनी] आज या अद्यतन के पहले या पीछे का।

अनद्यतन[2]—संज्ञा पुं० पिछली रात के पिछले दो पहर और आनेवाली रात के अगले दो पहर और इनके बीच के सारे दिन को छोड़कर बाकी रात या भविष्य का समय। पिछली १२ बजे रात से आनेवाली १२ बजे रात तक का समय जो बीत रहा हो।

विशेष—पिछली आधी रात के पहले के समय को भूत अनद्यतन और आनेवाली रात के बाद के समय को भविष्य अनद्यतन कहते हैं।

अनद्यतन भविष्य—संज्ञा पुं० [सं०]१ आनेवाली आधी रात के बाद का समय। २ संस्कृत व्याकरण में भविष्य काल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता।

अनद्यतन भूत—संज्ञा पुं० [सं०] १ बीती हुई आधी रात के पहले का समय। संस्कृत व्याकरण में भूतकाल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता।

अनधिक—वि०[सं०]१ जो अधिक न हो। २ सीमाहीन। असीम। ३ पूर्ण। पूरा। ४ जिससे कोई बढ़कर न हो। ५ जिसे बढ़ाया न जा सके [को०]।

अनधिकार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अधिकार का अभाव। इख्तियार का न होना। प्रभुत्व का अभाव। २ बेबसी लाचारी। ३ अयोग्यता। अक्षमता।

अनधिकार[2]—वि० १ अधिकाररहित। बिना इख्तियार का। २ अयोग्य। योग्यता के बाहर।

अनधिकारचर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग्यता के बाहर बातचीत। जिस विषय में गति न हो उसमें टाँग अड़ाना।

अनधिकार चेष्टा—संज्ञा स्त्री०[सं०]बिना अधिकार के कोई कार्य या प्रयत्न करना [को०]।

अनधिकारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधिकारशून्यता। अधिकार का न होना। २ अक्षमता।

अनधिकारी—वि० [सं० अनधिकारिन्] [स्त्री० अनधिकारिणी] १ जिसे अधिकार न हो। जिसके हाथ में इख्तियार न हो। २ अयोग्य। अपात्र। कुपात्र। जैसे—पंडित लोग अनधिकारी को वेद नहीं पढ़ाते (शब्द०)।

अनधिकृत—वि०[सं०]१ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न किया गया हो। २ अधिकार से बाहर। जिसपर अधिकार न हो [को०]।

अनधिगत—वि० [सं०] बिना समझा हुआ। अनवगत। अज्ञात। बे जाना बूझा।

अनधिगत मनोरथ—वि० [सं०] जिसकी इच्छा पूर्ण न हुई हो। हताश [को०]।

अनधिगत शास्त्र—वि० [सं०] जिसका शास्त्र पर अधिकार न हो [को०]।

अनधिगम्य—वि०[सं०] जो पहुँच के बाहर हो। अप्राप्य। दुष्प्राप्य।

अनधिष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] निरीक्षण का न होना [को०]।

अनधिष्ठित—वि० [सं०] १ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ। २ जो उपस्थित न हो [को०]।

अनधिष्ठित—वि०[सं०]१ अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ हो। २ उपस्थित न हो [को०]।

अनधीन[1]—वि० [सं०] जो अधीन न हो। स्वतंत्र [को०]।

अनधीन[2]—संज्ञा पुं० स्वेच्छा पूर्वक स्वतंत्र रूप से काम करनेवाला बढ़ई [को०]।

अनधीनक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनधीन' [को०]।

अनध्यक्ष—वि० [सं०] १ जो देख न पड़े। अप्रत्यक्ष। नजर के बाहर। २ अध्यक्षरहित। बिना मालिक का।

अनध्ययन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अध्ययन न होना। अध्ययन का अभाव। २ अध्यापनकाल में बीच में पड़नेवाला विराम [को०]।

अनध्यवसाय—संज्ञा पुं०[सं०]१ अध्यवसाय का अभाव। गफलत। ढिलाई। २ एक काव्यालंकार।

विशेष—इसमें कई समान गुणवाली वस्तुओं के बीच नहीं बल्कि किसी एक वस्तु के संबंध में साधारण अनिश्चय का वर्णन किया जाता है। जैसे—'स्नेहशालि तो हैं सम तन पर। ? आली वनमाली को यह'। यह अलंकार साहित्य में 'संदेह' के अंतर्गत ही माना है और इसमें कुछ चमत्कारिता भी नहीं प्रतीत होती है।

अनध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह दिन जिसमें शास्त्रानुसार पढ़ने पढ़ाने का निषेध हो।

विशेष—मनु के अनुसार अमावस्या, अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा ये चार दिन 'अनध्याय' के हैं। इनके अतिरिक्त प्रतिपदा को भी अनध्याय माना जाता है।

२ छुट्टी का दिन।

अनध्यास—वि० [सं०] भूला हुआ। विस्मृत।

अनन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] श्वासग्रहण की क्रिया। जीना [को०]।

अनन[2]ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे 'अन्न'। उ०—पिय बिन तन पन अनन घन, भूषन बमन नरत्त।—पृ० रा०, ६६।२७६।

अनन[3]ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अनन्य'। उ०—बाजय अनहद ताल पखावज उमग्यो प्रेम अनन खोरी।—भीख० श०, पृ० ५१।

अननिⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अनन्य'। उ०—राह भगति की अननि है विरला पावै कोर।—रामानंद, पृ० ५४।

अननुकूल—वि० [सं०] १ जो अनुकूल न हो। २ प्रतिकूल। विपरीत। उलटा। उ० जहाँ सामाजिक अनुभूति के विपरीत या अननुकूल वैयक्तिक अनुभूति काव्य में आ जाती है वहाँ रसाभास हो जाता है। साहित्य०, पृ० २१६।

अननख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ख्याति, ज्ञान या बोध का अभाव [को०]।

अननुज्ञात—वि० [सं०] १ जो स्वीकृत न हो। अस्वीकृत। २ जिसको अनुज्ञा या अनुमति न दी गई हो [को०]।

अननुभावक—संज्ञा [सं०] जो समझने में असमर्थ हो [को०]।

अननुभावकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बोध या ज्ञान का अभाव। २ अबोध। अज्ञान। अज्ञात [को०]।

अननुभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में एक प्रकार का निग्रहस्थान।

विशेष—जब वादी किसी विषय को तीन बार कह चुके और सब लोग समझ जायँ, और फिर प्रतिवादी उसका कुछ उत्तर न दे तब वहाँ अननुभाषण होता है और प्रतिवादी की हार मानी जाती है।

अननुभूत—वि० [सं०] जिसका अनुभव न हो। अनुभव से परे। उ०—अननुभूति पदार्थों का साहित्यकार सर्जन करता रहता है।—शैली, पृ० २१।

अननुमत—वि० [सं०] १ जिसकी अनुमति या आज्ञा न हो। २ नापसंद। अप्रिय। ३ असंगत। अयुक्त [को०]।

अननुषंगी—वि० [सं० अननुषङ्गिन्] जो अनुषंगी न हो [को०]।

अननुष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] अनुष्ठान का अभाव [को०]।

अननूक्त—वि० [सं०] १ जिसका पाठ न किया गया हो। २ अनुत्तरित। जिसका उत्तर न दिया गया हो [को०]।

अननृत—वि० [सं०] जो अनृत या असत्य न हो। सत्य [को०]।

अनन्न—वि० [सं०] चावल या खाद्य जो हीन कोटि का हो [को०]।

अनन्नास—संज्ञा पुं० [अं० जी० (अमे०) नानस, पुर्त० अनानाज] रामबाँस की तरह का एक पौधा और उसका फल।

विशेष—यह पौधा दो फुट तक ऊँचा होता है। जड़ से दो तीन इंच ऊपर डंठल में अंकुरों की एक गाँठ बँधने लगती है जो क्रमशः मोटी और लंबी होती जाती है और रस से भरी होती है। इस मोटे अंकुरपिंड का स्वाद खटमीठा होता है।

अनन्य[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अनन्या] अन्य से संबंध न रखनेवाला। एकनिष्ठ। एक ही में लीन। जैसे—(क) 'वह ईश्वर का अनन्य उपासक है।' 'इसपर हमारा अनन्य अधिकार है, (शब्द०)। (ख) सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत।—मानस ४।३।

यौ०—अनन्यभक्त = जो किसी एक की ही भक्ति करे। एकनिष्ठ भक्त। २ अद्वितीय। जिसके समान दूसरा न हो। जैसे—अंगरेजी के अनन्य महाकवि शेक्सपीयर की कविता।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

अनन्य[2]—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम।

अनन्यगति—वि० [सं०] जिसको दूसरा सहारा या उपाय न हो। जिसको और ठिकाना न हो। उ०—भेवहि भगति मन वचन करम अनन्य गति हर चरन की।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१।

अनन्यगतिक—वि० [सं०] जिसे दूसरा सहारा या उपाय न हो [को०]।

अनन्यगामी—वि० [सं० अनन्यगामिन्] किसी अन्य के पास न जानेवाला [को०]।

अनन्यगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण [को०]।

अनन्यचित्त—वि० [सं०] जिसका चित्त और जगह न हो। एकाग्रचित्त।

अनन्यचेता—वि० [सं० अनन्यचेतस्] अनन्यचित्त। एकाग्रचित्त [को०]

अनन्यचोदित—वि० [सं०] जो अन्य किसी से प्रेरित न हो। स्वतःप्रेरित (को०)।

अनन्यज—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

अनन्यजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० अनन्यजन्मन्] अनंग। कामदेव [को०]।

अनन्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अन्य के संबंध का अभाव। २ एकनिष्ठता। एकाश्रयता। एक ही में लीन रहना। उ०—इस अनन्यता सहित धन्य अपने प्यारे को आराधा।—एकांत०, पृ० १३।

अनन्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] अनन्यता [को०]।

अनन्यदृष्टि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एकाग्र दृष्टि। एकटक देखते रहना [को०]।

अनन्यदृष्टि[2]—वि० एकटक देखनेवाला [को०]।

अनन्यदेव[1]—वि० [सं०] जिसका अन्य कोई देव न हो [को०]।

अनन्यदेव[2]—संज्ञा पुं० परमात्मा [को०]।

अनन्यनिष्पाद्य—वि० [सं०] किसी अन्य से निष्पन्न या संपादित न होने योग्य [को०]।

अनन्यपरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्यपरता का अभाव। एकनिष्ठता [को०]।

अनन्यपरायण—वि० [सं०] जो अन्य (स्त्री०) में लीन या आसक्त न हो [को०]।

अनन्यपूर्व—वि० [सं०] वह पुरुष जिसके अन्य स्त्री न हो [को०]।

अनन्यपूर्वा—वि० स्त्री० [सं०] १ जो पहले किसी की न रही हो। २ कुमारी। क्वारी। बिनब्याही।

अनन्यभव—वि० [सं०] जिसके अन्य संतान उत्पन्न न हो [को०]।

अनन्यभाव[1]—वि० [सं०] अन्य के प्रति भाव या आस्था न रखनेवाला [को०]।

अनन्यभाव[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एकनिष्ठ भक्ति या भाव। २ परमात्मा के प्रति भक्ति या निष्ठा [को०]।

अनन्यमनस्क—वि० [सं०] जो अन्यमनस्क या अन्यनिष्ठ न हो [को०]।

अनन्यमना—वि० [सं० अनन्यमनस्] १ एकाग्रचित्त। २ एकनिष्ठ [को०]।

अनन्यमानस—वि० [सं०] १ एकाग्रचित्त। २ एकनिष्ठ [को०]।

अनन्ययोग[1]—वि० [सं०] जिसका किसी अन्य का योग या साथ न हो [को०]।

अनन्ययोग[2]—क्रि० वि० किसी अन्य के साथ या बाद मे न आनेवाला [को०]।

अनन्यविषय—वि० [सं०] एकमात्र विषय या सदर्भ से सबध रखनेवाला [को०]।

अनन्यविषयात्मा—वि० [सं० अनन्यविषयात्मन्] एक विषय पर स्थिर रहनेवाला [को०]।

अनन्यवृत्ति—वि० [सं०] १ अन्यवृत्ति न रखनेवाला। एकाग्र। दत्तचित्त। २ जिसकी दूसरी वृत्ति या जीविका न हो। ३ समान वृत्ति या स्वभाववाला [को०]।

अनन्यसाधारण—वि० [सं०] अन्य मे न मिलनेवाला। असाधारण [को०]।

अनन्यसामान्य—वि० [सं०] जो अन्य सामान्य या साधारण जनो से अलग हो। असाधारण [को०]।

अनन्यहृत—वि० [सं०] जो अन्य द्वारा हरण न किया गया हो। सुरक्षित [को०]।

अनन्याधिकार—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिसके देखने या बनानेका किसी एक व्यक्ति या कपनी को ही अधिकार हो। पेटेंट। इजारा।

अनन्यार्थ—वि० [सं०] जो अन्य अर्थ या विषय के अतर्गत न हो। जो गौण न हो। मुख्य या आधिकारिक [को०]।

अनन्याश्रित[1]—वि० [सं०] १ जो अन्य का आश्रित या अधीन न हो। २ स्वाधीन। स्वतत्र [को०]।

अनन्याश्रित[2]—संज्ञा पुं० वह सपत्ति जिसपर ऋण न हो [को०]।

अनन्वय—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्वय या सबध का अभाव। २ काव्य मे वह अलकार जिसमे एक ही वस्तु उपमान और उपमेय रूप मे कही जाय। जैसे—तेरे मुख की जोड को तेरो ही मुख आहि (शब्द०)।

विशेष—केशवदास ने इसी को अतिशयोपमा लिखा है।

अनन्वित—वि० [सं०] १ असबद्ध। पृथक्। विलग। २ अडबड। अयुक्त।

अनन्वै(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनन्वय] दे० 'अनन्वय[2]'। उ०—कहाँ करत उपमेय को उपमेयै उपमान, तहाँ अनन्वै कहत है भूषन सकल सुजान।—भूषन ग्र०, पृ० १३।

अनप—वि० [सं०] जलहीन। बिना जल का [को०]।

अनपकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ हानि करना। २ रुपया न लौटाना [को०]।

अनपकर्म—संज्ञा पुं० [सं० अनपकर्मन्] दे० 'अनपकरण' [को०]।

अनपकार—संज्ञा पुं० [सं०] अपकार या हानि का अभाव [को०]।

अनपकारक—वि० [सं०] १ जो हानिकारक न हो। २ निर्दोष [को०]।

अनपकारी—वि० [सं० अनपकारिन्] [स्त्री० अनपकारिणी] अपकार या हानि न करनेवाला [को०]।

अनपकृत[1]—वि० [सं०] जिसका अहित न हुआ हो [को०]।

अनपकृत[2]—संज्ञा पुं० दोष का अभाव [को०]।

अनपक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] न जाना या न हटना [को०]।

अनपक्राम—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीछे न हटना। २ पराड्मुख न होना [को०]।

अनपक्रामक—वि० [सं०] पीछे न हटनेवाला [को०]।

अनपक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनपकरण' [को०]।

अनपच—संज्ञा पुं० [हिं० अन (प्रत्य०) + पच] अजीर्ण। बदहजमी।

अनपच्युत—वि० [सं०] १ विचलित न होनेवाला। डावाँडोल न होनेवाला। २ विश्वासपात्र। विश्वसनीय [को०]।

अनपढ—वि० [हिं० अन = नहीं + √पढ] बेपढा। अपठित। मूर्ख। निरक्षर।

अनपत्य—वि० [सं०] [स्त्री० अनपत्या] निसतान। लावल्द।

अनपत्यक—वि० [सं०] दे० 'अनपत्य'।

अनपत्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निस्सतान होना [को०]।

अनपत्रप—वि० [सं०] निर्लज्ज। बेशर्म [को०]।

अनपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] वह तर्क जो ग्राह्य न हो। अग्राह्य तर्क [को०]।

अनपधृष्य—वि० [सं०] पराजित या विजित न करने योग्य [को०]।

अनपभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] १ जो अपभ्रंश न हो। २. शुद्ध शब्द [को०]।

अनपर[1]—वि० [सं०] १ अपर या अन्य से रहित। २. जिसका कोई अनुयायी न हो। ३ अकेला। एकमात्र [को०]।

अनपर[2]—संज्ञा पुं० ब्रह्म [को०]।

अनपराद्ध—वि० [सं०] अपराधशून्य [को०]।

अनपराध—वि० [सं०] अपराधरहित। निर्दोष। बेकसूर।

अनपराधी—वि० [सं० अनपराधिन्] [स्त्री० अनपराधिनी] निरपराध। निर्दोष। बेकसूर।

अनपसर—वि० [सं०] १ जिसमे निकलने का मार्ग न हो। २ जो न्याय न हो [को०]।

अनपसरण—संज्ञा पुं० [सं०] निकलने के मार्ग का अभाव [को०]।

अनपाकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वचन या इकरार पूरा न करना। २ ऋण या मजदूरी न चुकता करना [को०]।

अनपाकरणविवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ इकरार पूरा न करने का मुकदमा या अभियोग। २ ऋण या मजदूरी न देने का अभियोग [को०]।

अनपाकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा के काम न करना। इकरार के मुताबिक तनखाह या मजदूरी न देना। जैसे—मजदूरी न देना, दी हुई वस्तु लौटा लेना।

विशेष—स्मृतियो तथा कौटिल्यीय अर्थशास्त्र मे इसका प्रयोग इसी अर्थ मे है। अनपाकर्म सबधी झगडा दो प्रकार का है। एक

तो वेतन संबंधी और दूसरा दान संबंधी पराशर ने लिखा है कि श्रमी या भृत्य को उसके काम के बदले वेतन न देना या वेतन देकर लौटा लेने का काम 'वेतनस्यानपाकर्म' है। इसी प्रकार दिए हुए माल को लौटाना और ग्रहण किए हुए माल को देना 'दत्तस्यानपाकर्म' है।

अनपाकर्मविवाद—संज्ञा पुं० [सं०] मजदूरो और काम करानेवाले पूँजीपतियो के बीच वेतन संबंधी झगडा।

विशेष—नारद ने लिखा है कि कर्मस्वामी अर्थात् पूँजीपति भृत्यो को निश्चित की हुई भृति दे (ना० स्मृ० ६०२)।

अनपाय¹—वि० [सं०] अपाय का क्षय से रहित [को०]।

अनपाय²—संज्ञा पुं० अनश्वरता। २ नित्यता। ३ शिव [को०]।

अनपायनी—वि० स्त्री० [सं० अनपायिनी] विश्लेषरहित। स्थिर। दृढ। उ०—प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहिं श्रीराम।—मानस, ७।३४।

अनपायिपद—संज्ञा पुं० [सं०] स्थिर पद। अनश्वर पद। परम पद। मोक्ष।

अनपायी—वि० [सं० अनपायिन्] [स्त्री० अनपायिनी] निश्चल। स्थिर। अचल। दृढ। अनश्वर।

अनपाश्रय—वि० [सं०] १ जो किसी का आश्रित न हो। २ स्वतंत्र [को०]।

अनपेक्ष—वि० [सं०] १ अपेक्षा या चाह न रखनेवाला। २ तटस्थ। ३ निष्पक्ष। ४ संबंधहीन। ५ स्वतंत्र [को०]।

अनपेक्षा¹—वि० [सं०] अपेक्षारहित। निरपेक्ष। बेपरवाह।

अनपेक्षा²—संज्ञा स्त्री० अपेक्षा या चाह का अभाव [को०]।

अनपेक्षित—वि० [सं०] जो अपेक्षित न हो। जिसकी परवाह न हो। जिसकी चाह न हो।

अनपेक्षी—वि० [सं० अनपेक्षिन] दे० 'अनपेक्ष' [को०]।

अनपेक्ष्य—वि० [सं०] जो अन्य की अपेक्षा न रखे। जिसे किसी के सहारे की आवश्यता न हो। जिसे किसी की परवा न हो। उ०—साक्षी हो अनपेक्ष्य मेरे अर्थ, सत्य कर दे सर्व-सहन-समर्थ।—साकेत, पृ० १७८।

अनपेत—वि० [सं०] १ जो गत न हो। २ अव्यतीत। जो बीता न हो। ३ जो पृथक् या अलग न हो। ४ विश्वासपात्र। विश्वसनीय। ५ निकट। समीप [को०]।

अनप्त—वि० [सं०] जो जलयुक्त न हो [को०]।

अनप्रापत(पु)—वि० [हिं० अन + सं० प्राप्त, हिं० प्रापत, परापत] अप्राप्त। उ०—अनप्रापत को कहा तजे, प्रापत तजे सो त्यागी है।—कबीर रे०, पृ० ४६।

अनप्रासन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नप्राशन'। उ०—आजु कान्ह करिहैं अनप्रासन।—सूर० १।७०७।

अनफाँस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अन + फांस = पाश] मोक्ष। मुक्ति। उ०—जेकर पास अनफांस, कहु जिय फिकिर सँभारि कै।—जायसी (शब्द०)।

अनफा—संज्ञा पुं० [यूनानी, ग्री० अनफे] ज्योतिष के सोलह योगो मे से एक।

विशेष—कुंडली मे जिस स्थान पर चंद्रमा बैठा हो उससे बारहवें स्थान मे यदि कोई ग्रह हो तो इस योग को अनफा कहते हैं।

अनबछी(पु)—वि० [हिं० अन + वांछित, प्रा० वछिय] अवांछित। अनचाही। उ०—और सकल यह बरतनि कहिए अनबछी ही आवै जू।—सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० ३११।

अनबन¹—संज्ञा पुं० [हिं० अन = नहीं + √बन = बनना] बिगाड। विरोध। फूट। खटपट।

अनबन²(पु)—वि० भिन्न भिन्न। नाना (प्रकार)। विविध। अनेक। उ०—(क) अनबन बानी तेहि के माहिं। बिन जाने नर भटका खाहिं।—कबीर (शब्द०)। (ख) पुनि अभरन बहु काढा अनबन भाँति जराव।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३४४।

अनबनता(पु)—वि० [हिं० अन + √बन] जिसमे बनत या बनाव या मेल न हो। उ०—कबीर कहते क्यो बनै अनबनता के संग, दीपक को भावै नहिं जरि जरि मरैं पतंग।—कबीर ग्रं०, पृ० ५८।

अनबना(पु)—वि० [हिं० अनबन] [वि० स्त्री० अनबनी] बुरा। खराब। बिगडा। उ०—बन्यो अनबन्यो समुझि कै, सोधि लेहिंगे साधु।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ४।

अनबनियत(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनबना] वह जो बननेवाली न हो। उ०—गुरु बिन मिटइ न दुगदुगी अनबनियत न नसाइ।—कबीर (शब्द०)।

अनबलई(पु)—वि० [हिं० अन + √बल] बिना जलाया। जो प्रज्वलित न किया गया हो। उ०—अनबलई दव परजलई।—बीसल० रास०, पृ० ६६।

अनवाद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनवाद'। उ०—आनंदघन सुजान सुनौ बिनती जिन अनवाद करौ निहारी।—घनानंद, पृ० ५५५।

अनबिछा—वि० [हिं० अन + √बिछ] बिना बिछाया हुआ। नंगा उ०—अपनी कोठरी मे एक अनबिछे तखत पर लेटी थी।—त्याग, पृ० २१।

अनबिधा—वि० [हिं० अन + सं० विद्ध] दे० 'अनविधा'।

अनबिधा—वि० [सं० अन् + विद्ध] बिना बेधा हुआ। बिना छेद किया हुआ।

अनबीह(पु)—वि० [हिं० अन + सं० भीत, प्रा० भीअ √बीह] निर्भय। निडर। उ०—लोहाना अनबीह लीय बारत्त समथ्थँ।—पृ० रा० ४।२०।

अनबूझ—वि० [हिं० अन + √बूझ] अनजान। नासमझ। मूर्ख। उ०—अंधेर नगरी अनबूझ राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ६७०।

अनबूझा(पु)—वि० [हिं०] बेसमझाबूझा। अबूझा।

अनबूडा(पु)—वि० [हिं० अन + √बूड] न डूबा हुआ। जो गहरे न पैठा हो। उ०—अनबूडे बूडे, तरे जे बूडे सब अंग।—बिहारी र०, दो० ६४।

अनबेधा—वि० [हिं०] दे० 'अनविधा'।

अनबोल—वि० [हिं० अन = नहीं + √बोल] १ अनबोला। न बोलनेवाला। २ चुप्पा। मौन। ३ गूँगा। बेजबान। ४ जो अपने सुख दुख को न कह सके।

विशेष—पशुओं के लिये इस विशेषण का बहुत प्रयोग प्राप्त होता है।

अनबोलता—वि० [हिं०] [स्त्री० अनबोलती] दे० 'अनबोल'।

अनबोला†—वि० [हिं०] दे० 'अनबोलता'।

अनबोला†—संज्ञा पुं० [हिं० अन+बोल] बोलचाल या बातचीत का अभाव। अनबन। अनमेल।

अनबोले—क्रि० वि० [हिं०] बिना बोले हुए। उ०—मैं तो तुम्हें हँसउ खेलतहिं छाँडि गई, आई अब न्यारे अनबोले रहे दोऊ।—सूर०, १०।२७६१।

अनब्वर—वि० [सं० अन्+अव्वर= अबल] बली। बलवान। उ०—चढ्यौ चहुआन अनब्वर।—पृ० रा, ५८।७।

अनब्याहा—वि० [हिं० अन+ब्याहा] [स्त्री० अनब्याही] अविवाहित। बिन ब्याहा। क्वाँरा। उ०—अनब्याही कह पुरुष सो अनुरागी जो होइ। ताहि अनूढा कहत हैं कवि कोविद सब कोइ।—रसराज, पृ० १५।

अनभग—वि० [हिं० अन+भग=टूटना] अखंडित। अभग। परिपूर्ण। उ०—थरहरात उर कर कँपत फरकत अधर सुरग। परखि पीउ पलकनि प्रगट पीक लीक अनभग। पद्माकर ग्र०, पृ० १६६।

अनभजता—वि० [हिं० अन+भजना] न भजनेवाला। न चाहनेवाला। उ०—इक भजते की भजै एक अनभजतन भजही।—नंद० ग्र०, पृ० २०।

अनभया—वि० [हिं० अन+भया] बिना हुए। बिना सत्ता या स्थिति हुए। उ०—जागेउ नृप अनभएँ बिहाना।—मानस, १।१७२।

अनभल†—संज्ञा पुं० [हिं० अन=नहीं+भल] बुराई। हानि। अहित। उ०—जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा।—मानस, २।१६।

मु०—अनभल ताकना=बुराई चाहना। उ०—जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि येहु फल परिपाका।—मानस, २।२१।

अनभला—वि० पुं० [हिं० अन+भला] [स्त्री० अनभली] बुरा। निंदित। हेय। खराब। उ०—कटु कहिए गाढे परे सुनि समुझि सुसाई। करहिं अनभले को भलो आपनी भलाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७२।

अनभाउता—वि० [हिं०] दे० 'अनभावता'। उ०—त्यों पदमाकर सौति सँजोगनि रोग भयो अनभाउतो जी को।—पद्माकर ग्र०, पृ० १७०।

अनभाया—वि० [[हिं० अन+भावना= अच्छा लगना] [स्त्री० अनभाई] जो न भावे। जिनकी चाह न हो। अप्रिय। अरुचिकर। नापसंद। उ०—अवध सकल नर नारि विकल अति, अँकनि वचन अनभाये। तुलसी रामवियोग सोग बस समुझत नहिं समुझाए।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६२।

अनभायौ—वि० [हिं०] अप्रिय। अनिष्ट। उ०—गरुड को कहा कियो अनभायो। जातें यह द्रहि दह मैं आयो।—नंद ग्र०, पृ० २८२।

अनभाव†—संज्ञा पुं० [[हिं० अन+भाव] भाव या प्रेम का अभाव।

अनभावत—वि० [हिं०] दे० 'अनभावता'।

अनभावता—वि० [हिं०] दे० 'अनभाया'। उ०—तेरे लाल मागन खायौ। कढ्यौ चढि, लीके की लीन्हो अनभावत भुइँ मैं ढरकायौ।—सूर० १०।३३१।

अभावरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अन+भावरी] नापसंद होने का भाव या स्थिति। उ०—भावरि अनभावरि भरे करौ कोरि बकवादु। अपनी अपनी भाँति को छुटै न सहजु सवादु।—बिहारी र०, दो० ६३७।

अनभिगम्य—वि० [सं०] जो अभिगम्य या समझने योग्य न हो। अबोध। उ०—सदैव के लिये यह उन्हें अनभिगम्य हुआ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७५।

अनभिग्रह¹—वि० [सं०] भेदशून्य। समभावविशिष्ट।

अनभिग्रह²—संज्ञा पुं० १ भेदशून्यता। एकरूपता। समकक्षता। २ जैन मतानुसार सब मतों को अच्छा और सब में मोक्ष मानने का मिथ्यात्व।

अनभिज्ञ—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनभिज्ञा, संज्ञा अनभिज्ञता] अज्ञ। अनजान। अनाड़ी। मूर्ख। उ०—(क) मैं तब कितनी अनभिज्ञा थी प्रतिबिंबित शशि को पाकर। वीणा, पृ० ३६। २ अपरिचित। नावाकिफ। उ०—(ख) निपट अनभिज्ञा अभी तुम हो बहिन, प्रेमिका का गर्व रखती हो वृथा।—ग्रंथि, पृ० ७८।

अनभिज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अज्ञता। अनाड़ीपन। अनजानपन। मूर्खता। २ परिचय का अभाव। नावाकफियत।

अनभिप्रेत—वि० [सं०] १ अभिप्रायविरुद्ध। अनभिमत। तात्पर्य से भिन्न। और का और। जैसे—आपने इस बात का अनभिप्रेत अर्थ लगाया है (शब्द०)। २ अनिष्ट। इच्छा के प्रतिकूल। नापसंद। जैसे—ऐसी ऐसी कार्रवाइयाँ हमें अनभिप्रेत है—(शब्द०)।

अनभिभूत—वि० [सं०] १ जो पराजित न हो। २. अबाधित [को०]।

अनभिमत—वि० [सं०] १. मत के विरुद्ध। राय के खिलाफ। २. तात्पर्यविरुद्ध। और का और। ३ अनभीष्ट। नापसंद।

अनभिमान—संज्ञा पुं० [सं० अन्+अभिमान] अभिमान का अभाव। उ०—संपत्ति में अनभिमान और युद्ध में जिनकी स्थिरता है वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २६४।

अनभिमानुक—वि० [सं०] किसी के प्रति दुर्भाव न रखनेवाला [को०]।

अनभिम्लात—वि० [सं०] जो मुरझाया या कुम्हलाया न हो [को०]।

अनभिम्लातवर्ण—वि० [सं०] जिनका वर्ण या रंग फीका या मंद न हुआ हो [को०]।

अनभिरूप—वि० [सं०] जो सदृश या समान न हो। २ जो सुंदर न हो [को०]।

अनभिलाप¹—वि० [सं०] इच्छाशून्य [को०]।

अनभिलाप²—संज्ञा पुं० १. भूख या इच्छा का अभाव। २. रुचि या स्वाद का अभाव [को०]।

अनमनीय—वि० [सं० अ+नमनीय] जो नमनीय न हो। दृढ। कठोर।

अनमन्न(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनमना'। उ०—अडर डरहिं अनमन्न महि ढरहिं अठार प्रकार।—पृ० रा०, ५५।१२८।

अनमस्यु—वि० [सं०] नमस्कार न करनेवाला [को०]।

अनमाँगा—वि० [हिं० अन+माँगना] जो माँगा हुआ न हो। अयाचित।

अनमाप(पु)—वि० [हिं० अन+माप] जिसकी माप न की जा सके। अमेय। अपरिमाण। उ०—नमो निरंजन देव किन पार न पायो, अमित अथाह अतोल नमो अनमाप अजायो।—राम० धर्म०, पृ० २२२।

अनमापा(पु)—वि० [हिं० अन+मापना] [स्त्री० अनमापी] जिसकी माप न हो सके। जो मापा न जा सके। उ०—वह दर्द कि जिसकी अनमापी गहराई में।—ठंढा लोहा, पृ० ६६।

अनमाया—वि० [हिं० अन+मायना] जो अँट न सके। जो समा न सके। उ०—भेंटी भालु भरत भरतानुज क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो।—तुलसी (शब्द०)।

अनमारग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अन=बुरा+मारग] १. कुमार्ग। बुरी राह। २. दुराचार। अन्याय। अधर्म। पाप। उ०—अकरम, अविधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति। जाको नाम लेत अघ उपजै सोई करत अनीति।—सूर०, १।१२६।

अनमिख[1](पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनिमिष'। उ०—अनमिख लोचन बाल के यातें नदकुमार।—मतिराम ग्र०, पृ० ५७२।

अनमिख[2](पु)—क्रि० वि० दे० 'अनिमिष'। उ०—मंद मृदु मुसकानि अनमिख पेखिहौं।—मतिराम ग्र०, पृ० ३३०।

अनमिख[3](पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अनिमिष'।

अनमितपच—वि० [सं० अनमितम्पच] १ बिना नाप जोख किए न पकानेवाला। २ कृपण। कंजूस [को०]।

अनमित(पु)—वि० [हिं० अन+मित] अमित। अपार। उ०—आरंभ कान गज आरुहे अनमित सेन उलट्टियौ।—रा० रू० पृ० १५४।

अनमित्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनमित'। उ०—अनमित्त मत्ति बल अप्रमाइ।—पृ० रा०, ६।१३५।

अनमित्ती(पु)—वि० [हिं० अन+मिति] दे० 'अनमित'। उ०—आवी फौज लखाँ अनमित्ती, जोवतों मारग जगपत्ती।—रा० रू०, पृ० २२५।

अनमित्र[1]—वि० [सं०] १ जो अमित्र या शत्रु न हो। २ जिसका कोई अमित्र या शत्रु न हो [को०]।

अनमित्र[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अमित्र या शत्रु का अभाव। २ अयोध्या का एक राजा [को०]।

अनमियाँ(पु)—वि० [सं० अ+नमित] न झुकनेवाला। अनम्र। उ०—पिच्छम घर सोहै वर पांमे, नर वस किया अनमियाँ नामे।—रा० रू०, पृ० १२।

अनमिल(पु)—वि० [हिं० अन+√मिल] १ बेमेल। बेजोड। असंबद्ध। बेतुका। बे सिर पैर का। उ०—(क) अनमिल आखर अरथ न जापू।—मानस, १।१५। (ख) मिल्यौ यवन मदमत्त बकत कछु अनमिल बातें।—मतिराम (शब्द०)। २. पृथक्। भिन्न। अलग। निर्लिप्त। उ०—रहे अदट दट नहिं जुग जुग पार न पावै काला। अनमिल रहे मिले नहिं जग में तिरछी उनकी चाल। कबीर (शब्द०)।

अनमिलत(पु)—वि० [हिं०] [स्त्री० अनमिलती] दे० 'अनमिल'।

अनमिलता—वि० [हिं० अनमिल+ता (प्रत्य०)] [स्त्री० अनमिलती] अप्राप्य। अलभ्य। अदृश्य। उ०—कहै पदमाकर सु जादा कहाँ कौन अब जाती मरजादा है मही की अनमिलती।—पद्माकर ग्र०, पृ० २५६।

अनमिला—वि० [हिं० अन+मिलना] जो मिला न हो। बेमेल। उ०—इसी से इन अनमेल परदेशियों में विशेष मेल उत्पन्न करते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८७१।

अनमिष[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनिमिष] मछली। अनेकार्थ०, पृ० ८०।

अनमिष[2](पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनमिष'। उ०—अनमिष नैन सुनैन ये निरखत अनिमिष नैन।—मतिराम ग्र० पृ० ४४७।

अनमिषनैनता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अनमिष+नयन+ता (प्र०)] पलकों के न गिरने की स्थिति या दशा। बिना पलक गिराए नेत्रों से लगातार देखने की स्थिति। उ०—तो मैं अनमिष-नैनता, मोहन मूरति नैन। अनमिष नैन सुनैन ये निरपत अन मिष नैन।—मतिराम ग्र०, पृ० ३४३।

अनमी(पु)—वि० [सं० अ+नमित प्रा० अ+णमित्र] जो अधीन या झुका हुआ न हो। अपराजित। उ०—बारमै सूर सो करन रग, अनमी नमाइ तिन करै भग।—पृ० रा०, १।७०६।

अनमीच(पु)—क्रि० वि० [हिं० अन+मिच] मृत्यु के बिना। बिना मौत के उ०—है घनआनद सोच महा मरिवो अनमीच बिना जिय जीवौ।—घनानंद, पृ० ४८।

अनमीलना(पु)—क्रि० स० [हिं० अन+मीलना=मींचना] (आँख) खोलना। उ०—नयनन मिलि कछु अनमीलनि नैंकुक नींद को भाव सुभोयो।—(शब्द०)।

अनमुख(पु)—क्रि० वि० [अन्य+मुख] अन्य मुख से। दूसरे के मुँह से। उ०—जीकारो अनमुख जुडै आ जगत् अभिलाख।—बाँकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० ७८।

अनमूरति(पु)—वि० [हिं० अन+मूरति] अमूर्त। निराकार। मूर्ति-हीन। उ०—अछय अभय अनुभव अनमूरति मन सजीवन नाथ।—गुलाल बानी, पृ० ५२।

अनमेप(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनिमेप'। उ०—अनमेप जपत इच्छा मघन, आनद डर भूपन तजै।—पृ० रा०, २५। १०८।

अनमेल—वि० [हिं० अन+मेल] १ बेमेल। बेजोड। असंबद्ध। २ बिना मिलावट का। विशुद्ध। खालिस।

अनमोल—वि० [हिं० अन+मोल] १ अमूल्य। मोलरहित। बेमोल। जिसका कोई मूल्य न हो। बहुमूल्य। २ सुंदर। उत्तम। उ०—बिकटी भृकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छवि है।—तुलसी ग्र०, पृ० १६४।

अनम्र—वि० [सं०] अविनीत। नम्रतारहित। उद्धत। उद्दंड। अकड़-वाला। ऐंठवाला।

अनय—संज्ञा पुं० [सं०] १ अमंगल। दुर्भाग्य। विपद। उ०—सब कुलन को अनय बीज अनुचित अभिमानी।—भारतेंदु ग्र०,

अनर्गल—वि० [सं०] १ प्रतिबंधशून्य। बेरोक। बेरुकावट। बेधड़क। २ विचारशून्य। व्यर्थ। अडबंड। ३ लगातार। उ०—बहै अनर्गल अश्रुधार यह ज्यों पावस का मेह।—एकांत, पृ० ४।

अनर्गलप्रलाप—संज्ञा पुं० [सं० अनर्गल+प्रलाप] अडबंड बोलना या बकना [को०]।

अनर्घ—वि० [सं०] १ अमूल्य। कीमती। बहुमूल्य। २ अल्प मूल्य का। कम कीमत। सस्ता।

यौ०—अनर्घराघव।

अनर्घक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] बाजार की कीमत से अधिक या कम कीमत पर खरीदना।

अनर्घराघव—संज्ञा पुं० [सं०] मुरारि कृत का संस्कृत नाटक [को०]।

अनर्घविक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] बाजार भाव से अधिक या कम दाम पर बेचना।

विशेष—चाणक्य ने इस अपराध में १००० पण दंड लिखा है।

अनर्घ्य—वि० [सं०] १ अपूज्य। पूजा के अयोग्य। २ जिसका मूल्य न लगा सके। बहुमूल्य। अमूल्य। ३ कम मूल्य का (को०)।

अनर्जित—वि० [सं०] १ अर्जित या प्राप्त न किया हुआ। न कमाया हुआ। २ अप्राप्त (को०)।

अनर्जित आय—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह आय या लाभ जो वस्तु के एकाएक महँगे हो जाने पर उसको उत्पन्न करनेवाले या बेचनेवाले को हो जाय अर्थात् जिसकी संभावना पहले न रही हो।

अनर्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ विरुद्ध अर्थ। अयुक्त अर्थ। उलटा मतलब उ०—उसने ग्रंथ का अनर्थ किया है (शब्द०)। २ कार्य की हानि। बिगाड़। नुकसान। उपद्रव। उत्पात। खराबी। बुराई। आपद्। विपद्। अनिष्ट। गजब। उ०—(क) अनरथ अवध अरंभेउ जब तें।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मैं सठ सब अनरथ कर हेतु—तुलसी (शब्द०)। ३ वह धन जो अधर्म से प्राप्त किया जाय। ४ भय की प्राप्ति।

अनर्थ[2]—वि० १ व्यर्थ। निकम्मा। २ अभागा। भाग्यविहीन। ३ खराब। त्रुटिपूर्ण। ४ तुच्छ। गरीब। ५ भिन्न या विपरीत अर्थवाला। अर्थविहीन। निरर्थक [को०]।

अनर्थअनर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थअनर्थानुबन्ध] किसी शक्तिशाली राजा को लड़ने के लिये उभाड़कर आप अलग हो जाना। यह अर्थ के भेदों में से है।

अनर्थअर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थअर्थानुबंध] अपने लाभ के लिये शत्रु या पड़ोसी को धन तथा सैन्य (कोशदंड) द्वारा सहायता पहुँचाना।

अनर्थक—वि० [सं०] १ निरर्थक। अर्थरहित। जिसका कुछ अभिप्राय या अर्थ न हो। २ व्यर्थ। बेमतलब। बेफायदा। निष्प्रयोजन।

अनर्थकर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनर्थकारी] १ बेकार काम करनेवाला। २ अर्थकर या लाभदायक न हो [को०]।

अनर्थकारी—वि० [सं० अनर्थकारिन्] [स्त्री० अनर्थकारिणी] १ विरुद्ध अर्थ करनेवाला। उलटा मतलब निकालनेवाला। २ अनिष्टकारी। हानिकारी। उपद्रवी। उत्पाती। नुकसान पहुँचानेवाला। ३ व्यर्थ काम करनेवाला।

अनर्थत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यर्थता। २ अर्थशून्यता [को०]।

अनर्थदर्शी—वि० [सं० अनर्थदर्शिन्] [स्त्री० अनर्थदर्शिनी] अनर्थ की ओर दृष्टि रखनेवाला। बुराई सोचने या चाहनेवाला। हित पर ध्यान न रखनेवाला।

अनर्थनाशी—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थनाशिन्] शिव [को०]।

अनर्थनिरनुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थनिरनुबन्ध] अर्थ के भेदों में से एक। किसी हीन शक्तिवाले राजा को उभाड़कर तथा लड़ने के लिये प्रोत्साहित कर स्वयं पृथक् हो जाना।

अनर्थबुद्धि—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि व्यर्थ या गई बीती हो [को०]।

अनर्थभाव—वि० [सं०] दुष्ट प्रकृति। बुरे स्वभाववाला [को०]।

अनर्थलुप्त—वि० [सं०] निस्सार विषयों से सुरक्षित या मुक्त [को०]।

अनर्थसंशय—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऐसा कार्य जिसमें भारी अनिष्ट की शंका हो। २ संपत्ति जो संकट या संदेह से मुक्त हो [को०]।

अनर्थसंशयापद—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुओं के साथ मित्रों की लड़ाई का अवसर।

अनर्थसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चल मित्र या आक्रंद (वह मित्र जो शत्रु या विजिगीषु के आश्रय में हो) का मेल या संधि।

अनर्थानर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थानर्थानुबन्ध] किसी बलशाली राजा को युद्ध के लिये उभाड़कर स्वयं अलग हो जाना [को०]।

अनर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थानुबन्ध] शत्रु का इस प्रकार नाश न होना कि अनर्थ की आशंका मिट जाय।

अनर्थापद—संज्ञा पुं० [सं०] चारों ओर से शत्रुओं का भय।

अनर्थार्थसंशय—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी स्थिति जिसमें एक ओर तो अर्थ प्राप्ति की संभावना हो और दूसरी ओर अनर्थ की आशंका।

अनर्थार्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थार्थानुबन्ध] अपने लाभ के लिये शत्रु या पड़ोसी राजा को धन और सेना द्वारा सहायता पहुँचाना [को०]।

अनर्थ्य—वि० [सं०] अनर्थक [को०]।

अनर्ह—वि० [सं०] अयोग्य। अनधिकारी। अपात्र।

अनलंकृत—वि० [सं० अन्+अलङ्कृत] अलंकारविहीन। उ०—आकर्षित कर रहा विश्व को अनलंकृत भी अमल कमल है, सुंदरता का रूप सरल है।—नागरिका, पृ० ७६।

अनलंकरिष्णु—वि० [सं० अन्+अलङ्करिष्णु] १ जो अलंकृत न हो। २ अलंकार की इच्छा न रखनेवाला [को०]।

अनल—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि। आग। २ अग्नि के अधिष्ठाता देव (को०)। ३ पाचनशक्ति (को०)। ४ पित्त (को०)। ५ वायु (को०)। ६ अष्टवसुओं में से पंचम वसु (को०)। ७ एक पितृदेव (को०)। ८ परमेश्वर (को०)। ९ जीव (को०)। १० विष्णु (को०)। ११ वासुदेव (को०)। १२ एक वानर (को०)। १३ एक मुनि (को०)। १४ कृत्तिका नक्षत्र (को०)। १५ पचासवाँ संवत्सर (को०)। १६ र वर्ण या अक्षर (को०)। १७ तीन की संख्या। १८ माली नामक राक्षस का पुत्र और विभीषण का मंत्री। १९ चीता। चित्रक। २० भिलावाँ।

अनवट²—संज्ञा पु० [सं० नयन, हिं० अयन+ओट या स० अघ+पट या देशी] कोल्हू के बैल की आँखो की पट्टी या ढक्कन। ढोका।

अनवद्य—वि० [स०] अनिंद्य। निर्दोष। वेऐव। उ०—हमरें जान सदासिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।—मानस, १।९० ।

अनवद्यता—सज्ञा स्त्री० [स०] निर्दोपिता। दोप का अभाव। उ०—सत्य की अनवद्यता से आ गए विस्तार मे।—वेला, पृ० ७४।

अनवद्यत्व—सज्ञा पु० [सं०] अनवद्यता [को०]।

अनवद्यरूप¹—सज्ञा पुं० [स०] दोपरहित रूप। वह रूप जिसमे कोई दोप न हो [को०]।

अनवद्यरूप²—वि० [स०] निर्दोष रूपवाला [को०]।

अनवद्याग—वि० [स० अनवद्याङ्ग] [स्त्री० अनवद्याङ्गी] सुदर अगोवाली। सुडौल। खूबसूरत।

अनवद्राण—वि० [सं०] न सोनेवाला। अनिद्रित [को०]।

अनवधर्ष्य—वि० [सं०] जिसको धर्पित न किया जासके [को०]।

अनवधान—संज्ञा पु० [सं०] असावधानी। अमनोयोग। चित्तविक्षेप। प्रमाद। गफलत। वेपरवाही।

अनवधानता—सज्ञा स्त्री० [स०] ध्यानहीनता। लापरवाही। असावधानी। गफलत। उ०—उमने अनवधानता से उस प्रश्न को टाल दिया।—ककाल, पृ० १४३।

अनवधि¹—वि० [सं०] असीम। वेहद। वहुत ज्यादा।

अनवधि²—क्रि० वि० निरतर। सदैव। हमेशा।

अनवन¹—वि० [सं०] अरक्षाकर। विपत्तिकारक [को०]।

अनवन²—सज्ञा पुं० अरक्षा [को०]।

अनवनामितवैजयत—सज्ञा पुं० [स० अनवनामितवैजयन्त] भावी विश्व जिसमे विजयध्वजा वरावर ऊँची रहेगी (वौद्ध)।

अनवपूरण—वि० [सं०] असयुक्त पर चारो ओर फैलनेवाला [को०]।

अनवबुध्यमान—वि० [सं०] जो बुद्धिहीन या विकृत बुद्धिवाला न हो [को०]।

अनवभ्र—वि० [स०] १ जो अक्षुण्ण हो। २ जो नश्वर न हो। ३ स्थायी [को०]।

अनवम—वि० [सं०] १ जो तुच्छ या क्षुद्र न हो। २ उदात्त। श्रेष्ठ [को०]।

अनवय(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अन्वय] वश। कुल। खानदान।

अनवर—वि० [स०] १ जो कनिष्ठ न हो। २ श्रेष्ठ। वडा। ३ जो न्यून न हो [को०]।

अनवरत—क्रि० वि० [सं०] निरतर। सतत। अजस्र। अहर्निश। सदैव। लगातार। हमेशा। उ०—अनवरत उठे कितनी उमग।—कामायनी, पृ० १६४।

अनवरार्ध्य—वि० [सं०] १ मुख्य। प्रधान। २ सर्वोत्तम [को०]।

अनवरोध¹—वि० [सं०] विना रोक या वाधा का। निरतर। अवाध। उ०—सरस ज्ञान अनवरोध करता नर रुधिरपान।—गीतिका, पृ० ७०।

अनवरोध²—सज्ञा पु० अवरोध का अभाव [को०]।

अनवलव¹—वि० [स० अनवलम्ब] विना अवलव का। वेमहारा [को०]।

अनवलव²—सज्ञा पु० स्वतत्रता। अवलव का अभाव [को०]।

अनवलवन¹—वि० [स० अनवलम्बन] जिसे अवलव या सहारा न हो [को०]।

अनवलवन²—सज्ञा पु० स्वतत्रता [को०]।

अनवलवित—वि० [स० अनवलम्बित] आश्रयहीन। निराधार। वेसहारा।

अनवलाप—वि० [स०] वचनशून्य। मौन। उ०—हुए शीर्ण खो खोकर, अनवलाप रो रोकर।—अर्चना, पृ० १४।

अनवलेप—वि० [स०] १ अभिमानशून्य। २ अवलेप या लेप से रहित [को०]।

अनवलोभन—सज्ञा पुं० [स०] एक सस्कार जो गर्भ के तृतीय मास मे किया जाता है [को०]।

अनवसर—सज्ञा पुं० [स०] १ निरवकाश। फुरसत का न होना। २ कुसमय। वेमौका। उ०—सोइ लका लखि अतिथि अनवसर राम तृनासर (सन) ज्यो दई।—तुलसी ग्र०, पृ० ३८८। ३ जसवत जसोभूपण के अनुसार वह काव्यालकार जिसमे किसी कार्य का अनवसर होना या करना वर्णन किया जाय।

अनवसादन—वि० [सं०] अवसाद या विपाद न करनेवाला। उ०—सहज रिमझिम वाद रिन रिन अनवसादन।—गीतगुज, पृ० ५८।

अनवसान—वि० [सं०] १ अत से रहित। २ मृत्युहीन [को०]।

अनवसित—वि० [स०] १ असमाप्त। उ०—वह चली सलिला अनवसित, ऊर्मिजा जैसे उतारी।—अर्चना, पृ० १०४। २ जो अस्त न हुआ हो (को०)।

अनवसितसधि—सज्ञा स्त्री० [स० अनवसित सन्धि] जगल या ऊसर जमीन वसाने के सवध मे दो पुरुपो या राष्ट्रो की सधि। औपनिवेशिक सधि।

विशेप—औपनिवेशिक सधि के विपय मे चाणक्य ने लिखा है कि यह प्राय विवादग्रस्त विपय है कि स्थलीय या जलप्राय भूमि मे उपनिवेश की दृष्टि से कौन सी भूमि उत्तम है। साधारणत जलप्राय भूमि ही उत्तम मानी जाती है।

अनवसिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक छद या वृत्त [को०]।

अनवस्थ—वि० [स०] १ अस्थिर। चचल। उतावला। अधीर। २ अव्यवस्थित। डावाँडोल।

अनवस्था—सज्ञा स्त्री० [स०] १ स्थितिहीनता। अव्यवस्था। अनियमितता। उ०—यह अनवस्था युगल मिले मे विकल व्यवस्था सदा विखरती।—कामायनी, पृ० २७१। २ व्याकुलता। आतुरता। अधीरता। ३ न्याय मे एक प्रकार का दोष।

विशेप—इस प्रकार का तर्क और अन्वेपण जिसका कुछ ओर छोर न हो। यह उस समय होना है जव तर्क करते करते कुछ परिणाम न निकले और तर्क भी समाप्त न हो। जैसे कारण का कारण, उसका भी कारण, फिर उसका कारण।

अनवस्थान—सज्ञा पुं० [सं०] १ अस्थिरता। २ अनिश्चितता। ३. आचरणभ्रष्टता। ४ वायु [को०]

अनवस्थायी—वि० [सं० अनवस्थायिन्] क्षणस्थायी [को०]।

अनवस्थित—वि० [सं०] १ अस्थिर। अधीर। चचल। अशात। क्षुब्ध। २ बेठिकाना। बेसहारा। निराधार। निरवलब।

अनवस्थितचित्त—सज्ञा पु० [सं०] अस्थिर चित्त या बुद्धिवाला [को०]।

अनवस्थिति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अस्थिरता। चचलता। अधीरता। अनिश्चितता। २ अवलवशून्यता। आधारहीनता। ३ योगशास्त्र के अनुसार समाधि प्राप्त हो जाने पर भी चित्त का स्थिर न होना।

अनवहित—वि० [सं०] असावधान। बेखबर। बेपरवाह।

अनवह्वर—वि० [सं०] जो टेढा न हो। सीधा। ऋजु [को०]।

अनवाँसना(पु)—क्रि० स० [सं० नव+हिं० बासन [नए बरतन को पहले पहल काम मे लाना।

अनवाँसा—सज्ञा पु० [सं० * अन्नकाडाश > प्रा० * अन्न आ अश > अनवा अस अथवा स० अण्वश] १ कटी हुई फसल का एक बडा मुट्ठा या पूला। औंमा। २ एक अनवाँसी भूमि मे उत्पन्न अन्न।

अनवाँसी—सज्ञा स्त्री० [सं० अणु = छोटा + वश > बाँसा = नाप] एक बिस्वे का १/२०वाँ भाग। बिस्वासी का बीसवाँ हिस्सा।

अनवाद(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अन् = बुरा + वाद = वचन] बुरा वचन। कटु भाषण। कुबोल। उ०—कूँजरी ऊजरी बाल बहेवा सो मेवा के मोल बढावति झूठे। रूप की साठि के तौलति घाटि वदै अनवाद ददै फल जूठे।—देव (शब्द०)।

अनवाप्त—वि० [सं०] न पाया हुआ। अप्राप्त। अलब्ध।

अनवाप्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] अप्राप्ति। अनुपलब्धि। न पाना।

अनवाय—वि० [सं०] अबाध। निर्विघ्न [को०]।

अनवेक्ष—वि० [सं०] १ लापरवाह। २ उदासीन [को०]।

अनवेक्षक—वि० [सं०] दे० 'अनवेक्ष' [को०]।

अनवेक्षण—सज्ञा पु० [सं०] १ असावधानता। २ निरखने या निरीक्षण का अभाव। ३ उदासीनता [को०]।

अनवेक्षा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० अनवेक्षण' [को०]।

अनशन—सज्ञा पुं० [सं०] १ उपवास। अन्नत्याग। निराहार व्रत। २ जैन शास्त्रानुसार मोक्षप्राप्ति के लिये मरने के कुछ दिन पहले ही अन्न जल का सर्वथा त्याग। ३ राजनीतिक दबाव डालने के लिये अन्न जल का त्याग करना।

अनश्वर—वि० [सं०] नष्ट न होनेवाला। अमिट। अटल। स्थिर। कायम रहनेवाला।

अनसखडी†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनसखरी'। उ०—बालभोग की महाप्रसाद अनसखडी तथा दूध की (सामग्री) आगे धरी।—दो सौ बावन०, भा० १ पृ० ८।

अनसखरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अन = अन्न + सखरी = सस्कृत] निखरी। पक्की रसोई। घी मे पका हुआ भोजन।

अनसत्त—वि० [हिं० अन + सत्त] असत्य। झूठ। उ०—घर जाऊँ तु नोवत हैं, फिर जाउँ तौ नद पै खात बरा दधि प्यारे। सपने अनसत्त किधौं सजनी घर बाहिर होत बडे बरबारे। केशव शब्द०)।

अनसन—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अनशन'। उ०—उसके लिये हमको अनसन करना होगा।—मैला०, पृ० १६।

अनसनमाना(पु)—वि० [हिं० अन + सनमान] असमानित। उ०—कँइक रहे ताहि अरमाने, अक्रूरादिक अनसनमाने।—नद०, ग्र०, पृ० २२४।

अनसमझ—वि० [हिं० अन + समझ] नासमझ। उ०—तू इतना अनसमझ क्यो है प्रमोद।—त्याग०, पृ० २०।

अनसमझा(पु)—वि० [हिं० अन + समझ] १ जिससे न समझा हो। नासमझ। उ०—समुझे का घर और है अनसमझे का और।—कबीर (शब्द०)। २ अज्ञात। बिना समझा हुआ।

अनसमुझा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनसमझा'। उ०—अनसमुझे अनुसोचनो अवसि समुझिये आपु।—स० सप्तक, पृ० ५२।

अनसहत(पु)—वि० [हिं० अन + सहना] असह्य। असहनीय। जो सहा न जाय। उ०—गाज सो परति अनसहत विपच्छिन पै मत्त गजराजन के घटा गरजत ही।—चरण (शब्द०)।

अनसाना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अनखाना'।

अनसुनी—वि० [हिं० अन + सुनना] अश्रुत। बेसुनी। बिना। सुनी हुई।

मु०—अनसुनी करना = जानबूझ कर सुनी हुई बात को बेसुनी करना या टालना। आनाकानी करना। बहटियाना।

अनसूय—वि० [सं०] असूया रहित। पराए गुण मे दोष न देखनेवाला। अछिद्रान्वेषी।

अनसूयक—वि० [सं०] दे० 'अनसूय' [को०]।

अनसूया—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पराए गुण मे दोष न देखना। नुक्ताचीनी न करना। २ अत्रि मुनि की स्त्री।

अनसूयु—वि० [सं०] दे० 'अनसूय' [को०]।

अनसूरि—सज्ञा पुं० [सं०] बुद्धिमान् व्यक्ति। विद्वान् व्यक्ति [को०]।

अनसोची—वि० [हिं० अन + सोची] बिना सोची हुई। उ०—प्रियतम अनसोची ध्यान में भी न आई।—प्रिय प्र०, पृ० ७७।

अनस्त—वि० [सं०] जो अस्त न हो। अस्त न होनेवाला। उ०—अनस्त अस्त ह्वै गम दुरुस्त रस्त छोडही।—पद्माकर ग्र०, पृ० २०६।

अनस्तमित—वि० [सं०] १ जो अस्त न हुआ हो। २ जिसका पतन न हो [को०]।

अनस्तित्व—वि० पुं० [सं०] अविद्यमानता। सत्ता का अभाव। उ०—घू घू करता नाच रहा था अनस्तित्व का ताडव नृत्य।—कामायनी, पृ० २०।

अनस्थ—वि० [सं०] दे० 'अनस्थि' [को०]।

अनस्थक—वि० [सं०] दे० 'अनस्थि' [को०]।

अनस्थि—वि० [सं०] अस्थिहीन। बिना हड्डी का [को०]।

अनस्थिक—वि० [सं०] दे० 'अनस्थि' [को०]।

अनह—सज्ञा पुं० [सं० अनहन्] १ दिन का अभाव। २ अदिन। बुरा दिन [को०]।

अनहक्क(पु)—वि० [हिं० अन + अ० हक्क] बिना हक्क या सत्य या ईश्वर का। उ०—हरिया एकै हक्क बिन सब दिन जाहि अनहक्क।—राम० धर्म०, पृ०, ६६।

अनहद(पु)—वि० [हिं० अन + स० घट] १ विचित्र। २ विकट। कठिन। उ०—भीखा ब्रह्मसरूप प्रगट पर अनहद बडा तासु मिलना।—भीखा० बानी, पृ० ७०।

अनहद¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनहदनाद'। उ०—द्वार न धरूँ पवन न रोकूँ नहिं अनहद उरझावें।—कबीर श०, पृ० ४६।

अनहद²—वि० [हिं० अन=अभाव+अ० हद=सीमा] सीमारहित। असीम। उ०—ऊधो राखियै वह बात। कहत हौ अनगढी अनहद, सुनत ही चपि जात।—सूर०, १०।३८०२।

अनहद नाद—संज्ञा पुं० [सं० अनाहत+नाद] योग का एक साधन। वह नाद या शब्द जो दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों कानों की लवें बंद करके ध्यान करने से अपने ही भीतर सुनाई देता है। उ०—हृदय कमल तें जोति विराजै। अनहदनाद निरंतर बाजै।—सूर०, १०।४०६४।

अनहद्द¹(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनहद'। उ०—(क) कृत व्यक्त रक्त स्त्रोतस्विनी जत्र तत्र अनहद्द भुअ।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १८२।

अनहद्द²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनहदनाद' उ०—सहस और द्वादशो रह है मग में करत किलोल अनहद्द बजाई।—कबीर म०, पृ० ५७६।

अनहार(पु)†—वि० [हिं० √आन+हार (प्रत्य०)] आननेवाला। ले आनेवाला। उ०—खेलत रहलौं बाबा चौवरिया आइ गए अनहार हो—धरम०, ३४।

अनहित(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अन+हित] १ अहित। अपकार। बुराई। हानि। अमगल। उ०—अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा।—तुलसी (शब्द०)। २ अहितचिंतक। अपकारी। शत्रु। उ०—वदउँ सब समान चित, हित अनहित नहिं कोउ।—तुलसी (शब्द०)।

अनहितू—वि० [हिं अन+हितू 'मित्र'] अहितचिंतक। अमित्र। अवधु। शत्रु। अपकारी। बुराई सोचने या करनेवाला।

अनहुआ—वि० [हिं०+हुआ] अघटित। जो न हुआ हो। उ०—अनहुआ उसे नहीं किया जा सकता।—सुखदा, पृ० ११३।

अनहूवा(पु)—वि० [हिं० अन+भूत प्रा० हूव, हूअ] अनहोनी। अलौकिक। उ०—अनहूवें की बात कछू प्रकट भई सी जान।—भूषण ग्र०, पृ० ५८।

अनहोता—वि० [हिं० अन+होना] [स्त्री० अनहोती] १ जिसे कुछ न हो। दरिद्र। गरीब। निर्धन। उ०—'हे सखी तेरे इस अग न को अच्छे गहने कपड़े चाहिए थे, ये आश्रम के फूल पत्ते तो अनहोती को हैं।—शकुंतला, पृ० ६६। २. अनहोना। अलौकिक। अचभे का। उ०—पलुही मैं होती अनहोती करतु है।—सुदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४४३।

अनहोनी¹—वि० स्त्री० [हिं० अन+होन,] न होनेवाली। अलौकिक। असंभव। अनहोती। अचभे की।

अनहोनी²—संज्ञा स्त्री० असभव बात। अलौकिक घटना। उ०—अनहोनी कहुँ भई कन्हैया देखी सुनी न बात। या तो आहि खिलौना सब को खान कहत तिहि तात।—सूर०, १०।१८६

अनाई पठाई—संज्ञा स्त्री० [सं० √आनय+हिं० ई (प्रत्य०) +सं० √प्रस्था > पठा+हिं० ई (प्रत्य०)] विवाह हो जाने पर दुलहिन के तीन बार ससुराल से बाप के घर आने जाने के पीछे बराबर आने जाने को अनाई पठाई कहते हैं।

अनाकनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० दे० 'अनाकानी'। उ०—(क) नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहार। तज्यौ मनौ तारन बिरद, बारक बारनु तारि।—बिहारी र०, दो० ११। (ख) कीनी अनाकनी औ मुख मोरि सुजोरि भुजा, भटू भेटत ही बन्यौ।—देव (शब्द०)।

अनाकानी—संज्ञा स्त्री० [सं० अनाकर्णन] सुनी अनसुनी करना। जान बूझकर बहलाना। टालमटोल। बहटियाना। उ०—केती अनाकानी कै जँभानी अँगिरानी पै न अतर की पीर बहराए बहरानी है।—भिखारी० ग्र०, भा० १ पृ०, १४६।

अनाकार—वि० [सं०] १ निराकार। आकाररहित। २ परमात्मा का एक विशेषण (को०)।

अनाकाल—संज्ञा पुं० [सं०] अकाल। दुर्भिक्ष [को०]।

अनाकालभृत संज्ञा पुं० [सं०] अकाल पड़ने पर दास कर्म करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अनाक्रात—वि० [सं० अनाक्रान्त] [स्त्री० अनाक्रान्तता] जो अक्रात न हो। अपीडित। अरक्षित।

अनाक्रातता—संज्ञा पुं० [सं० अनाक्रान्तता] रक्षा। अपीडा। आक्रातता का अभाव।

अनाखर—वि० [सं० अनक्षर] जो छील छालकर दुरुस्त न किया गयो हो। बेडौल। बेढगा।

अनागत¹—वि० [सं०] १ न आया हुआ। अनुपस्थित। अविद्यमान। अप्राप्त। २ आगे आनेवाला। भावी। होनहार। ३ अपरिचित। अज्ञात। बेजाना हुआ। ४ अकस्मात्। अचानक। सहसा। एकाएक। उ०—(क)) सुनि हैं श्याम मधुपुरी जात। सकुचनि कहि न सकति काहू सों गुप्त हृदय की बात। सकित बचन अनागत कोऊ कहि जो गई अधरात।—सूर० (शब्द०)। ५ अनादि। अजन्मा। उ०—नित्य अखड अनूप अनागत अविगत अनघ अनत। जाको आदि कोऊ नाहिं जानत कोउ न पावत अत।—सूर० (शब्द०)।

यौ०—अनागत विधाता।

६ अपूर्व। अद्भुत। उ०—इत रुचि दृष्टि मनोज महासुख, उत सोभागुन अमित अनागत।—सूर०, १०।२१२३।

अनागत²—संज्ञा पुं० सगीत के अतर्गत ताल का एक भेद। उ०—सूर सति तान बधान अमित अति सप्त अतीत अनागत आवत।—सूर०, १०।६४८।

अनागतविधाता—संज्ञा पुं० [सं०] आनेवाली आपत्ति के लक्षण को जानकर उसके निवारण का पहले ही से उपाय करनेवाला व्यक्ति। अग्रसोची या दूरदेश आदमी।

अनागतार्तवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी। गोरी। बालिका। जो कन्या रजोधर्मिणी न हुई हो। अजातरजस्का।

अनागम—संज्ञा पुं० [सं०] आगमन का अभाव। न आना। उ०—सोचै अनागम कारन कत को मोचै उसासनि आँसहू मोचै।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२१।

अनागस—वि० [सं० अनागस्] पापरहित। निर्दोष। निर्मल। उ०—सुराभक्त वह मुक्त अनागस।—मधुज्वाल, पृ० १२।

अनाघात—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के अंतर्गत तालविशेष। वह विराम जो गायन में चार मात्राओं के बाद आता है और कभी कभी सम का काम देता है।

अनाचार¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ कदाचार। भ्रष्टता। दुराचार। निंदित आचरण। कुव्यवहार। २ कुरीति। कुचाल। कुप्रथा।

अनाचार²—वि० १ जो विशिष्ट न हो। २ जो भद्र न हो। अभद्र। ३ विचित्र [को०]।

अनाचारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुष्टता। दुराचारिता। निंदित आचरण। २ कुरीति। कुचाल।

अनाचारी—वि० [सं० अनाचारिन्] [स्त्री० अनाचारिणी] आचारहीन। भ्रष्ट। पतित। कुचाली। दुराचारी। बुरे आचरणवाला।

अनाज—संज्ञा पुं० [सं० अन्नाद्य, प्रा० अन्नज्ज > अनाज] अन्न। धान्य। नाज। दाना। गल्ला।

अनाज्ञप्त—वि० [सं०] जिसकी आज्ञा न दी गई हो [को०]।

अनाज्ञप्तकारी—वि० [सं० अनाज्ञप्तकारिन्] जिस कार्य की आज्ञा न हो उसे करनेवाला [को०]।

अनाज्ञाकारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] आज्ञा न मानना। आदेश पर न चलना।

अनाज्ञाकारी—वि० [सं० अनाज्ञाकारिन्] [अनाज्ञाकारिणी] जो आज्ञा न माने। जो आदेश पर न चले। बेकहा।

अनाज्ञात—वि० [सं०] १ अज्ञात। २। पूर्व ज्ञात से बढा हुआ [को०]।

अनाडी—वि० पुं० [सं० अनार्य = अपठित, अशिक्षित प्रा० अनारिय अथवा सं० अज्ञानी प्रा० अण्णाणी] १ नासमझ। नादान। गँवार। अनजान। उ०—अनाडी के हाथ पडा मोती की सी कपूरमजरी की दशा है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३९८। २ जो निपुण न हो। अकुशल। अदक्ष। जैसे—यह किसी अनाडी कारीगर को मत देना (शब्द०)।

अनाढ्य—वि० [वि० स्त्री० अनाढ्या] असपन्न। द्रव्यहीन। दरिद्र। कगाल। गरीब।

अनातत—वि० [सं०] १ जो फैला हुआ न हो। २ जो खीचा या ताना हुआ न हो [को०]।

अनातप¹—संज्ञा पुं० धूप का अभाव। छाया।

अनातप²—वि० १ आतपरहित। जहाँ धूप न हो। २. ठढा। शीतल।

अनातम(पु)—वि० [सं० अनात्म] दे० 'अनात्म'। उ०—सुनि शिष्य यहै मत साखहि कौ जु अनातम आतम भिन्न करै।—सुंदर० ग्र०, भा० १। पृ० ५०।

अनातुर—वि० [सं०] [स्त्री० अनातुरा] १ जो आतुर या उत्कठित न हो। २ उदासीन। ३ अक्लात। ४ अविचलित। धीर। ५ स्वस्थ। रोगरहित। निरोग।

अनात्म¹—वि० [सं० अनात्मन्] आत्मारहित। जड।

अनात्म—संज्ञा पुं० आत्मा को विरोधी पदार्थ। अचित। पचभूत।

अनात्मक—वि० [सं०] १. जो यथार्थ न हो २ क्षणिक। ३. बौद्ध मत से जगत् या ससार का विशेषण [को०]।

अनात्मकदुःख—संज्ञा पुं० [सं०] १ अज्ञानजनित दुःख। सासारिक आधिव्याधि। भय। बाधा। २ जैन शास्त्रानुसार इस लोक और परलोक दोनो के दुःख।

अनात्मज्ञ—वि० [सं०] आत्मज्ञान से रहित। अज्ञ [को०]।

अनात्मधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] शारीरिक धर्म। देह का धर्म।

अनात्मनीन—वि० [सं०] १ जो अपना न हो। २ जो काम या लाभ के लिये न हो। ३ निःस्वार्थ। स्वार्थरहित [को०]।

अनात्मप्रत्यवेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार यह विचार कि आत्मा नहीं है [को०]।

अनात्मवाद—संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा की स्थिति को न माननेवाला सिद्धात। जडवाद। उ०—मैंने भी तीर्थकरों के मुख से आत्मवाद-अनात्मवाद के व्याख्यान सुने हैं।—इरा०, पृ० १२५।

अनात्मवान्—वि० [सं०] असयमी [को०]।

अनात्मवेदी—वि० [सं० अनात्मवेदिन्] जो आत्मविद् न हो। आत्मज्ञान से रहित [को०]।

अनात्मसंपन्न—वि० [सं० अनात्मसम्पन्न] मूर्ख। गुणशून्य [को०]।

अनात्म्य¹—वि० [सं०] अशरीरी। अशारीरिक [को०]।

अनात्म्य²—संज्ञा पुं० १ अपनो या परिवारवालों के लिये स्नेहरहित व्यक्ति। २ शरीर सबधी गर्व या मद [को०]।

अनात्यतिक—वि० [सं०] जो नित्य न हो। २ जो अतिम न हो। ३ पुनः आवर्तनशील [को०]।

अनाथ—वि० [सं०] [स्त्री० अनाथा] १ नाथहीन। प्रभुहीन। बिना मालिक का। उ०—नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मो सो।—तुलसी, ग्र० पृ० ५००। २ जिसका कोई पालन पोषण करनेवाला न हो। बिना माँ बाप का। लावारिस। जैसे—'अनाथ बालकों की रक्षा के लिये उन्होंने दान दिया (शब्द)। ३ असहाय। अशरण। जिसे कोई सहारा न हो। ४ दीन। दुःखी। मुहताज।

यौ०—अनाथालय।

अनाथसभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्धनगृह [को०]।

अनाथानुसारी—वि० [सं० अनाथानुसारिन्] [स्त्री० अनाथानुसारिणी] सहायतार्थ अनाथों का अनुसरण या पीछा करनेवाला। दीनपालक। गरीब को पालनेवाला। उ०—अनाथ सुन्यौ मैं अनाथानुसारी। बसै चित्त दडी जटी मुडधारी।—केशव (शब्द०)।

अनाथालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ दीन दुःखियों और असहायों का पालन हो। मुहताजखाना। लगरखाना। २ लावारिस बच्चों की रक्षा का स्थान। यतीमखाना। अनाथाश्रम।

अनाथाश्रम—संज्ञा पुं० [सं० अनाथ + आश्रम] वह स्थान जहाँ अनाथ रखे जायँ।

अनाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ ध्वनियो मे नाद अंश का अभाव। २ वे अघोष ध्वनियाँ जिनमे नादाश नहीं पाया जाता [को०]।

अनाददान—वि० [सं०] न लेनेवाला [को०]।

अनादर—संज्ञा पुं० [सं०] १ आदर का अभाव। निरादर। अवज्ञा। २ तिरस्कार। अपमान। अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। ३. एक काव्यालकार।

विशेष—इसमे प्राप्त वस्तु के तुल्य दूसरी अप्राप्त वस्तु की इच्छा के द्वारा प्राप्त वस्तु का अनादर सूचित किया जाय। जैसे—सर

के तट लखि कामिनी अलि पंकजहि विहाय। ताके अधरन दिसि चल्यो, रसमय गूँज सुनाय (शब्द०)।

अनादरण—संज्ञा पुं० [सं०] असम्मानपूर्ण व्यवहार [को०]।

अनादरणीय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनादरणीया] १ आदर के अयोग्य। असमाननीय। २ तिरस्कार योग्य। निंद्य। बुरा।

अनादरित—वि० [सं०] वह जिसका अपमान हुआ हो। अपमानित।

अनादरी—वि० [सं० अनादरिन्] जो आदरयुक्त न हो [को०]।

अनादि—वि० [सं०] जिसका आदि न हो। जो सब दिन से हो। जिसके आरंभ का कोई काल या स्थान न हो। स्थान और काल में अबद्ध।

विशेष—शास्त्रकारों ने 'ईश्वर' जीव और प्रकृति' इन तीन वस्तुओं को अनादि माना है।

अनादित्व—संज्ञा पुं० [सं०] अनादि होने का भाव। नित्यता।

अनादिनिधन—वि० [सं०] जिसका आदि और अंत न हो [को०]।

अनादिमान्—वि० [सं० अनादिमत्] जिसका आदि न हो [को०]।

अनादिमध्यांत—वि० [सं० अनादिमध्यान्त] जिसका आदि, मध्य और अंत न हो [को०]।

अनादिष्ट—वि० [सं०] बिना आदेश का।

अनादृत—वि० पुं० [सं०] जिसका अनादर हुआ हो। अपमानित।

अनादेय—वि० [सं०] जो आदेय या ग्राह्य न हो [को०]।

अनादेश—संज्ञा पुं० [सं०] आदेश का अभाव। आदेश न होना [को०]।

अनादेशकर—वि० [सं०] जिसकी अनुमति या आदेश न हो वह करनेवाला [को०]।

अनाद्यंत¹—वि० [सं० अनाद्यन्त] जिसका आदि तथा अंत न हो। उ०—अमरों के उस अनाद्यंत आनंदलोक में।—युगपथ, पृ० ११५।

अनाद्यंत²—संज्ञा पुं० शिव [को०]।

अनाद्य¹—वि० [सं० अनादि] दे० 'अनादि' [को०]।

अनाद्य²—वि० [सं० अन्+√अद्>आद्य] जो खाने योग्य न हो। अखाद्य [को०]।

अनाद्यनंत¹—वि० [सं० अनाद्यनन्त] जिसका आदि और अंत न हो [को०]।

अनाद्यनंत²—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अनाधार—वि० पुं० [सं०] आधाररहित। निरवलंब। बेसहारा।

अनाधि—वि० [सं०] चिंता से रहित [को०]।

अनाधृष्ट—वि० [सं०] १ जो जीतने योग्य न हो। अजेय। २ जो नियंत्रित या अधीन न हो। अनियंत्रित। ३ अक्षुण्ण [को०]।

अनाधृष्य—वि० [सं०] दे० 'अनाधृष्ट' [को०]।

अनाना—क्रि० स० [सं० आनयन] १ लाना। बुलाना। उ०—(क) जौ कबहूँ हठि नीद अनैये, साँवरे पिय सपने में पैये।—नंद० ग्रं०, पृ० १७१। (ख) केलि रसमसे मिथुन कौ सुखनीद अनाऊँ।—घनानंद, पृ० ३१४। २ मँगाना। उ०—लंक दीप के सिला अनाई। बाँधा सरवर घाट बनाई।—जायसी ग्रं०, पृ० १२।

अनानुपूर्व्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुक्रम में न आना। अनुक्रम का अभाव। किसी समस्त पद के विभिन्न अवयवों को विग्रहपूर्वक अलग करना [को०]।

अनापद—संज्ञा स्त्री० [सं०] विपत्ति या विपद का अभाव [को०]।

अनापशनाप—संज्ञा पुं० [देश०] १ ऊटपटाँग। अटसट। आयँबायँ। अंडबंड। २ असंबद्ध प्रलाप। निरर्थक बकवाद।

अनापा(पु)—वि० [सं० अ=नहीं+हिं०√नाप] १ बिना नापा हुआ २ असीम। अतुल।

अनापि¹—वि० [सं०] बिना मित्र का [को०]।

अनापि²—संज्ञा पुं० इंद्र [को०]।

अनाप्त—वि० [सं०] १ अप्राप्त। अलब्ध। २ अविश्वस्त। ३ असत्य। ४ अकुशल। ५ अनिपुण। अनाड़ी। ६ अनात्मीय। अबंधु।

अनाप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आप्ति अर्थात् प्राप्ति न होना [को०]।

अनाप्य—वि० [सं०] अप्राप्य [को०]।

अनाप्लुत—वि० [सं०] जो स्नात या धुला न हो [को०]।

अनाप्लुतांग—वि० [सं० अनाप्लुताङ्ग] जिसका शरीर स्नानसे शुद्ध न हो [को०]।

अनाबाध—वि० [सं०] बाधा या विघ्न से मुक्त [को०]।

अनाविद्ध—वि० [सं० अनाविद्ध] १ अनबिंधा। अनछेदा। बिना छेद का। २ चोट न खाया हुआ।

अनाभ्युदयिक—वि० [सं०] दुर्भाग्यपूर्ण। जो मंगलमय न हो [को०]।

अनाम—वि० [सं० अनामन्] [वि० स्त्री० अनामा] १ बिना नाम का। उ०—आदि अनाम ब्रह्म है न्यारा।—कबीर सा०, पृ० ८१२। अप्रसिद्ध। २ अप्रख्यात।

अनामय—वि० [सं०] निरामय। रोगरहित। नीरोग। चंगा। स्वस्थ। तंदुरुस्त। २ दोषरहित। निर्दोष। बेऐब। उ०—जय भगवंत अनंत अनामय।—मानस ७।३४।

अनामय²—संज्ञा पुं० नीरोगता। तंदुरुस्ती। २ कुशल क्षेम। उ०—गुरु जी ने आपका अनामय पूछकर यह कहा है।—शकुंतला, पृ० ८९।

अनामा¹—वि० स्त्री० [सं०] १ बिना नाम की। २ अप्रसिद्ध।

अनामा²—संज्ञा स्त्री० कनिष्ठा और मध्यमा के बीच की उँगली। अनामिका।

अनामिका¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] कनिष्ठा और मध्यमा के बीच की उँगली। सबसे छोटी उँगली की बगल की उँगली। अनामा।

अनामिका²—वि० स्त्री० [सं०] बिना नाम की। अप्रसिद्ध। उ०—जो प्रिया, प्रिया वह रही सदा ही अनामिका।—अनामिका, पृ० ३१।

अनामिल—वि० [सं० अनाविल] स्वच्छ। निर्मल उ०—ओस के धोए अनामिल पुष्प ज्यों खिल किरण चूमे।—गीतिका, पृ० ६४।

अनामिष—वि० [सं०] निरामिष। मांसरहित।

अनामी¹—वि० [सं० अनाम+हिं० ई (प्रत्य०)] अनाम संबंधी। उ०—शुद्ध ब्रह्म पद तहँ ठहराई, तो नाम अनामी धारा है।—कबीर श०, पृ० ६०।

अनामी²—संज्ञा पुं० परमात्मा। परब्रह्म। उ०—परे ताके रहत अनामी, स्वामी निरताइ कै।—घट०, पृ० ३७४।

अनामृत—वि० [सं०] जो मृत्युवश न हो [को०]।

अनामल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एनामेल'।

अनायक—वि० [सं०] १ नायकरहित। २ जो व्यवस्थित न हो [को०]।

अनायत—संज्ञा वि० [सं०] १. जो नियंत्रित न हो। २ अनिवारित। ३ अनाश्रित। बेसहारा। ४ जो विच्छिन्न न हो। अविच्छिन्न। ५ संलग्न। ६ विना लंबाई का [को०]।

अनायतन¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो विश्रामस्थल या वेदी न हो [को०]।

अनायतन²—वि० विश्रामस्थान या वेदी से रहित [को०]।

अनायत्त—वि० [सं०] [स्त्री० अनायत्ता] १ अनधीन। अवशीभूत। २ स्वतंत्र। खुद मुख्तार।

अनायास—क्रि० वि० [सं०] १. विना प्रयास। विना परिश्रम। विना उद्योग। बैठे बिठाए। उ०—जोई तनु धरौं तजौं पुनि अनायास हरि जान।—मानस ७।१०९। २ अकस्मात्। अचानक। सहसा। एकाएक। उ०—भरत विवेक बराह बिसाला। अनायास उघरी तेहि काला।—मानस, २।२९९।

अनायुष्य—वि० [सं०] आयुष्य या दीर्घजीवन के लिये हानिकर [को०]।

अनारंभ—वि० [सं० अन्+आरम्भ] आरंभरहित। उ०—अनारंभ अनिकेत अमानी।—मानस, ७।४६।

अनार¹—संज्ञा पुं० [फा०] १ एक पेड और उसके फल का नाम। दाडिम।

विशेष—यह पेड १५-२० फुट ऊँचा और कुछ छतनार होता है। इसकी पतली पतली टहनियों में कुछ कुछ काँटे रहते है। इसके फूल लाल होते हैं। फल के ऊपर के कडे छिलके को तोडने से रस से भरे लाल सफेद दाने निकलते है जो खाए जाते हैं। फल खट्टा मीठा दो प्रकार का होता है। गर्मी के दिनों मे पीने के लिये इसका शरबत भी बनाते हैं। फूल रंग बनाने और दवा के काम मे आता है। फल का छिलका अतिसार, संग्रहणी आदि रोगों मे दिया जाता है। पेड की छाल मे चमडा सिझाते हैं। पश्चिम हिमालय और सुलेमान की पहाडियों पर यह वृक्ष आप से आप उगता है। इसका कलम भी लगता है। प्रति वर्ष खाद देने से फल भी अच्छे आते हैं। काबुल और कंधार के अनार प्रसिद्ध है।

२ एक आतशबाजी।

विशेष—अनार फल के समान मिट्टी का एक गोल पात्र जिसमे लोहचून और बारूद भरा रहता है और जिसके मुँह पर आग लगाने से चिनगारियों का एक पेड सा बन जाता है।

यौ०—अनारदाना।

विशेष—दाँतों की उपमा कवि लोग अनार से देते आए हैं।

३ वह रस्सी जिसमे दो छप्पर एक साथ मिलाकर बाँधे जाते हैं।

अनार(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० अन्याय] अनीति। अन्याय।

अनारकिस्ट—संज्ञा पुं० [अं० एनार्किस्ट] वह जो राज्य मे विद्रोह को उत्तेजन दे या अशांति उत्पन्न करे। वह जो राज्य या राज्यव्यवस्था अथवा सामाजिक व्यवस्था को उलट देना चाहता हो। अराजक। विप्लवपंथी।

अनारज(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनार्य'। उ०—भावै देह छूटौ देश आरज अनारज मैं भावै देह छूटि जाहु बन मैं नगर मैं।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६४२।

अनारत¹—वि० [सं०] १ निरंतर। अनवरत। २ नित्य। स्थायी [को०]।

अनारत²—संज्ञा पुं० अविच्छिन्नता। निरंतरता [को०]।

अनारदाना—संज्ञा पुं० [फा० अनारदानह्] १ खट्टे अनार का सुखाया हुआ दाना। २ रामदाना।

अनारपन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अनारी+पन (प्रत्य०)] गँवारपन। नासमझी। अनाडीपन। उ०—रीकन नौ नित देय ज्ञ नैन नारंगी बान। नवल कुरंगि दगि जान हो यह अनारपन लान।—स० सप्तक, पृ० २३०।

अनारभ्य—वि० [सं०] जो आरंभ करने योग्य न हो [को०]।

अनारी¹(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनाडी'। उ०—खारी दिसि चारी चपला चमतकारी, वरनै अनारी ये कटारी तरवारी है।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० १०२।

अनारी²(पु)—वि० [हिं० अनार+ई (प्र०)] अनार के रंग का। लाल।

अनारी³—संज्ञा पुं० १ लाल रंग की आँखवाला कबूतर। २ एक प्रकार का पकवान। भीतर मीठा या नमकीन पूर से भरा एक प्रकार का समोसा।

अनारोग्य—वि० [सं०] १ जो स्वस्थ न हो। २ स्वास्थ्य के लिये हानिकर [को०]।

अनारोग्यकर—वि० [सं०] जो स्वास्थ्यकर न हो [को०]।

अनार्की—संज्ञा स्त्री० [अं० एनार्की] १ राज्य या राजा न रहने की अवस्था। शासन या राज्यव्यवस्था का अभाव। राजनीतिक उथल पुथल। अराजकता। विप्लव। २ एक मतवाद जिसके अनुसार समाज तभी पूर्णता को प्राप्त होगा जब राज्य या शासनव्यवस्था न रहेगी और पूर्ण व्यक्तिस्वातंत्र्य हो जायगा। अराजकवाद।

अनार्जव—संज्ञा पुं० [सं०] १ सिधाई का अभाव। टेढापन। २ सरलता का अभाव। अऋजुता। कुटिलता। कपट।

अनार्तव¹—वि० [सं०] विना ऋतु का। बेमौसम। अनवसर।

अनार्तव²—संज्ञा पुं० स्त्रियों के ऋतुधर्म का अवरोध। रजोधर्म की रुकावट।

अनार्तवा—वि० स्त्री० [सं०] जो ऋतुमती न हो।

अनार्य—वि० [सं०] १ आर्य जाति से रहित। २ अश्रेष्ठ [को०]।

अनार्य—संज्ञा पुं० [स्त्री० अनार्या] १ वह जो आर्य न हो। २. म्लेच्छ।

अनार्यक—संज्ञा पुं० [सं०] अगुरु की लकडी [को०]।

अनार्यकर्मा—वि० [सं० अनार्यकर्मिन्] आर्योचित कर्म न करनेवाला [को०]।

अनार्यज¹—संज्ञा पुं० [सं०] अगुरु का पेड [को०]।

अनार्यज²—वि० [वि० स्त्री० अनार्यजा] १ जो आर्य से उत्पन्न न हो। २ अनार्य देश मे उत्पन्न [को०]।

अनार्यजुष्ट—वि० [सं०] जो अनार्य द्वारा आचरित या व्यवहृत हो [को०]।

अनार्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आर्य धर्म का अभाव। २ अश्रेष्ठता। ३. लघुता। नीचता। ४ म्लेच्छता।

अनार्यतिक्त—संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता [को०]।

अनार्यत्व--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनार्यता'।

अनार्ष--वि० [सं०] जो ऋषिप्रणीत न हो। जो ऋषिकृत का बना हुआ न हो।

अनार्षेय--वि० [सं०] जो आर्ष या वैदिक न हो [को०]।

अनालंब[1]--[सं० अनालम्ब] अवलंबहीन [को०]।

अनालंब[2]--संज्ञा पुं० अवलंब का अभाव [को०]।

अनालंबन--वि० [सं० अनालम्बन] १ निरवलंब। २ निराश [को०]।

अनालंबी--संज्ञा स्त्री० [सं० अनालम्बिन] शिव का एक वाद्य [को०]।

अनालंबुका--संज्ञा स्त्री० [सं० अनालम्बुका] दे० 'अनालमुका' [को०]।

अनालंभुका--संज्ञा स्त्री० [सं० अनालम्भुका] रजस्वला स्त्री० [को०]।

अनालस्य--संज्ञा पुं० [सं०] आलस्य का अभाव।

अनालाप[1]--वि० [सं०] १ मितभाषी। कम बोलनेवाला [को०]।

अनालाप[2]--संज्ञा पुं० १ मितभाषण। २ अलाप या बातचीत का अभाव [को०]।

अनालोचित--वि० [सं०] १ न देखा हुआ। २ जो विचारित या विवेचित न हो। ३ जिसकी आलोचना न की गई हो [को०]।

अनालोच्य--वि० [सं०] जो आलोचना के योग्य न हो [को०]।

अनावरण--संज्ञा पुं० [सं०] आवरण का अभाव।

अनावर्ती--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ न लौटना। २ पुनर्जन्म का अभाव। ३ मोक्ष [को०]।

अनावर्षण--संज्ञा पुं० [सं०] अनावृष्टि। अवर्षा। मेघ के जल का अभाव। सूखा

अनावश्यक--वि० [सं०] जिसकी आवश्यकता न हो। अप्रयोजनीय। गैरजरूरी।

अनावश्यकता--संज्ञा स्त्री० [सं०] आवश्यकता का न होना। अप्रयोजनीय। गैरजरूरत।

अनाविद्ध--वि० [सं०] १ जो विद्ध या बिधा न हो [को०]।

अनाविल--वि० [सं०] १ स्वच्छ। निर्मल। साफ। २ स्वास्थ्यकर (देश०)। ३ निष्पंक। पंकरहित। [को०]।

अनावृत--वि० [सं०] [स्त्री० अनावृता] १ जो ढँका न हो। आवरण रहित। खुला। २ जो घिरा न हो।

अनावृत्त--वि० [सं०] १ न लौटा हुआ। २ पीछे न हटा हुआ। ३ जिसकी आवृत्ति न की गई हो। ४ न चुना हुआ [को०]।

अनावृत्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर धारण न करना। मोक्ष [को०]।

अनावृष्टि--संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्षा का अभाव। अनावर्षण। अवर्षा। सूखा। उ०--मंत्र जादी मिलि हरि सौं यह कह्यो सुफलक सुत जहँ होई। अनावृष्टि अतिवृष्टि होति नहीं यह जानत सब कोई।--सूर०, १०।४१६१।

अनावेदित--वि० [सं०] जो ज्ञापित न हो। जिसकी विज्ञप्ति न की गई हो [को०]।

अनाश--वि० [सं०] १ निराश। २ जिसका नाश न हो। ३ जो नष्ट न किया गया हो। ४ जीवित [को०]।

अनाशक[1]--वि० [सं०] १ अनश्वर। २ नाश या हानि न करनेवाला। २ उपवास करनेवाला। २ भोजन का त्याग करनेवाला (आमरण भी) [को०]।

अनाशक[2]--संज्ञा पुं० उपवास [को०]।

अनाशकायन--संज्ञा पुं० [सं०] उपवास का व्रत [को०]।

अनाशस्त--वि० [सं०] जो प्रशंसित न हो [को०]।

अनाशा--संज्ञा स्त्री० [सं०] आशा का अभाव। नैराश्य [को०]।

अनाशी--वि० [सं० अनाशिन्] १ जो नष्ट न हो। २ न खानेवाला [को०]।

अनाशु--वि० [सं०] मंद। सुस्त। जो तेज न हो। २ अनश्वर [को०]।

अनाश्य--वि० [सं०] अनश्वर [को०]।

अनाश्रमी--वि० [सं० अनाश्रमिन्] १ आश्रमभ्रष्ट। आश्रम धर्म से च्युत। गार्हस्थ्य आदि चारो आश्रमो से रहित। २. पतित। भ्रष्ट।

अनाश्रय--वि० [सं०] निराश्रय। बेसहारा। निरवलंब अनाथ। दीन।

अनाश्रित--वि० [सं०] १ आश्रयरहित। निरवलंब। बेसहारा। उ०--सँभालेगा हमें अब कौन ? यों अनाश्रित रह सका कब कौन।--साकेत, पृ० १७७। २ जो अधिकार रहते भी ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों को ग्रहण न करे।

अनास--वि० [सं०] बिना नाक का। चपटी नाकवाला।--हिंदु० सभ्यता, पृ० ३५।

अनासक्त--वि० [सं०] जो किसी विषय मे आसक्त न हो। उ०--त्यागी भी हैं शरण जिनके, जो अनासक्त गेह, राजा योगी जय जनक वे पुण्यदेही, विदेह।--साकेत, पृ० २५०।

अनासक्ति--संज्ञा पुं० [सं०] मोहराहित्य। आसक्ति या अनुरक्ति का अभाव। उ०--मैं कोमल वर्ग की मोहिनी शक्ति मे निर्लिप्त हूँ, और अनासक्ति का पद प्राप्त कर चुका हूँ।--मान०, भा०१, पृ० ८८१।

अनासती(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुसमय। कुअवसर (डिं०)।

अनासादित--वि० [सं०] १ अप्राप्त। २ जो आक्रांत न हो। ३ जो घटित न हो। ४ अस्तित्वरहित [को०]।

अनासादितविग्रह--वि० [सं०] जिसे विग्रह या युद्ध का अनुभव न हो [को०]।

अनासाद्य--वि० [सं०] अप्राप्य [को०]।

अनासिक--वि० [सं०] बिना नाक का। नकटा।

अनास्थ--वि० [सं०] १ आस्थारहित। २ उदासीन [को०]।

अनास्था--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अश्रद्धा। आस्था का अभाव। २ अनादर। अप्रतिष्ठा। ३ अवज्ञा। ४ उदासीनता।

अनास्राव--वि० [सं०] बिना क्लेश का। क्लेशरहित [को०]।

अनास्वाद[1]--वि० [सं०] स्वादहीन। विरस [को०]।

अनास्वाद[2]--संज्ञा पुं० स्वाद का अभाव। विरसता। नीरसता। [को०]

अनास्वादित--वि० [सं०] जिसका स्वाद न लिया गया हो [को०]।

अनास्वाद्य--वि० [सं०] जो स्वाद या आस्वाद के योग्य न हो [को०]।

अनाह--संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष। अफरा। पेट फूलना।

अनाहक(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'नाहक'। उ०--चंद्रमुखी मुनि मद महातम राहु भयो यह आनि अनाहक।--घनानंद, पृ० १०५।

अनाहक्क(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अनाहक'। उ०—अनाहक चदेल नृप, क्यों मंडित महि रार।—पृ० रा०, पृ० ४०।

अनाहत[1]—वि० [सं०] १ जिसपर आघात न हुआ हो। अक्षुब्ध। २ अगणित। जिसका गुणन न किया गया हो।

अनाहत[2]—संज्ञा पुं० १ शब्दयोग में वह शब्द या नाद जो दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों कानों की लवें बंद करके ध्यान करने से सुनाई देता है। २ हठयोग के अनुसार शरीर के भीतर के छह चक्रों में से एक। इनका स्थान हृदय, रंग लाल पीला मिश्रित और देवता रुद्र माने गए हैं। इसके दलों की संख्या १२ और अक्षर 'क' से 'ठ' तक हैं। ३ नया वस्त्र। ४ द्वितीय बार किसी वस्तु को उपनिधि या धरोहर में देना। दोबारा किसी चीज का अमानत में दिया जाना।

अनाहतनाद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनाहत'। उ०—गूँजता तुम्हारा अनाहत नाद जो वहाँ, सुनता है दास यह भक्तिपूर्वक नतमस्तक।—अनामिका, पृ० १००।

अनाहदवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अनाहत+वाणी] आकाशवाणी। देववाणी।

अनाहत शब्द—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक भीतरी शब्द जिसे योगी सुनते हैं। २ ओम की ध्वनि [को०]।

अनाहार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन का अभाव या त्याग।

अनाहार[2]—वि० १ निराहार। जिसने कुछ न खाया हो। जैसे—आज हम अनाहार रह गए (शब्द०)। २ जिसमें कुछ खाया न जाय। जैसे, अनाहार व्रत।

अनाहारमार्गणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार एक व्रत।

अनाहारी—वि० [सं० अनाहारिन्] १ आहार न लेनेवाला। २ उपवास या अनशन करनेवाला [को०]।

अनाहार्य—वि० [सं०] १ जो लेने या ग्रहण करने योग्य न हो। २ जो खाने योग्य न हो [को०]।

अनाहिताग्नि—वि० [सं०] जिसने विधिपूर्वक अग्न्याधान न किया हो। जो अग्निहोत्री न हो। निरग्नि।

अनाहुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ यज्ञ का अभाव। २ अविहित यज्ञ [को०]।

अनाहूत—वि० [सं०] बिना बुलाया हुआ। अनामंत्रित। अनिमंत्रित उ०—धिक्! आए तुम यों अनाहूत।—अपरा, पृ० २०२।

अनाह्लाद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आह्लाद या आनंद का अभाव [को०]।

अनाह्लाद[2]—वि० आह्लादरहित। संजीदा [को०]।

अनाह्लादित—वि० [सं०] जो हर्षित या आनंदित न हो [को०]।

अनिंगित—वि० [सं० अन्+इङ्गित=हिलाना, काँपना] १ अकंपित। निश्चल। उ०—काँप रही है ज्योति, अब तो तुम इसे कर दो अनिंगित, तब निवासस्थान में अब लौ लगे इसकी अशंकित।—क्वासि, पृ० २। २ अनिर्दिष्ट। इंगित न किया हुआ। जिसकी ओर इशारा न हो (को०)।

अनिंद(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनिंद्य'। उ०—बैठी फिरि पूतरी अनूतरी फिरंग कैसी पीठी दै प्रबीनी दृग दृगनि मिलै अनिंद।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०१।

अनिंदित—वि० पुं० [सं० अनिन्दित][स्त्री० अनिन्दिता]१ अकलंकित बदनामी से बचा हुआ। २ निर्दोष। उत्तम।

अनिंदनीय—वि० पुं० [सं० अनिन्दनीय][स्त्री० अनिंदनीया] जो निंदा के योग्य न हो। निर्दोष। निष्कलंक।

अनिंद्य—वि० पुं० [सं० अनिन्द्य] [वि० स्त्री० अनिंद्या] १ जो निंदा के योग्य न हो। निर्दोष। २ उत्तम। प्रशंसनीय। अच्छा।

अनिंद्र—वि० [सं० अनिन्द्र] इंद्र की पूजा या उपासना न करनेवाला [को०]।

अनि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अन्य'। उ०—दै द्रव्य रह्यौ माता सिधाय। इह शहर छंडि अनि नह्र जाय।—पृ० रा०,१।३३६।

अनि अनी(पु)—वि० [सं० अन्य+अन्य] अन्यान्य। और और। उ०— अनि अनी मुगट बैठे सु आइ।—पृ० रा०, ६।१३५।

अनिआई(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अन्यायी'।

अनिक(पु)—वि० [सं० अनेक,प्रा० अणिक्क] दे० 'अनेक'। अनन्त। उ०—निर्मल बूँद अकाश की लीनी भूमि मिलाइ। अनिक सियाने पच गए ना निरवारी जाय।—कबीर ग्रं०, पृ०२५५।

अनिकेत—वि० [सं०] १ स्थानरहित। बिना घर का। उ०—अनारंभ अनिकेत अमानी।—मानस, ३।४६। २ सन्यासी। परिव्राजक। ३ खानाबदोश। घूम फिरकर अनियत स्थानों में गुजारा करनेवाला।

अनिकेतन—वि० [सं० अ+निकेतन] दे० 'अनिकेत'। उ०—गृही लोग हम अनिकेतन की क्या जानें मृग पीर।—आराधना, पृ० ७२।

अनिक्षिप्तधुर—संज्ञा पुं०[सं०]१ एक बोधिसत्व का नाम।२ निकाला हुआ बौद्ध भिक्षु [को०]।

अनिक्षिप्त सैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] तोड़ी या सेना से अलग की हुई सेना। अपसृत सैन्य।

अनिक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] जो ईख न हो। ईख जैसी लंबी घास या नरकुल [को०]।

अनिगीर्ण—वि०[सं०] १ जो निगला न गया हो। २ जो छिपा न हो। प्रकट। व्यक्त [को०]।

अनिग्रह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनवरोध। बंधन का अभाव। २ दंड या पीड़ा का न होना। ३ वाद या तर्क में हार का अस्वीकरण [को०]।

अनिग्रह[2]—वि० १ बंधनरहित। बेरोक। २ असीम। बेहद। ३ पीडारहित। नीरोग। ४ जिसने दंड न पाया हो। अदंडित। ५ जो दंड के योग्य न हो। अदंड्य।

अनिच्छ—वि० [सं०] आकांक्षारहित। अनिच्छुक [को०]।

अनिच्छक—वि० [सं०] दे० 'अनिच्छुक' [को०]।

अनिच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वि० अनिच्छित, अनिच्छुक] १ इच्छा का अभाव। चाह का न होना। अरुचि। २ अतृप्ति।

अनिच्छित—वि०[सं०]जिसकी इच्छा न हो। अनिप्सित। अनचाहा उ०—अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दुखद खेद।—कामायनी, पृ० १६४। २ अरुचिकर।

अनिच्छु—वि० [सं०] दे० 'अनिच्छुक' [को०]।

अनिच्छुक—वि० [सं०] इच्छा न रखनेवाला। जिसे चाह न हो। अनभिलाषी। निराकांक्षी।

अनिजक—वि० [सं०] जो अपना न हो। पराया। दूसरे का [को०]।

अनित¹(पु)—वि० [हिं०] १ दे० 'अनित्य'। उ०—दारा सुत विरत अहैं सबहि अनित तासो। पोद्दार० अभि० ग्र०, पृ० ४६३। २ अनंत। जिसका अंत न हो। उ०—महिमा अनित साधु गुरु समुझहु मन सुजान।—कबीर सा०, भा० ४, पृ० ४२०।

अनित²—वि० [सं०] बिना किसी के साथ। अकेला। वंचित [को०]।

अनितभा¹—वि० [सं०] कांतिहीन। तेजहीन [को०]।

अनितभा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम [को०]।

अनित्र(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अन्यत्र'। उ०—काहे कौं भ्रमत है तू बावरे अनित्र जाइ।—सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ८६४।

अनित्य—वि० [सं०] [स्त्री० अनित्या] [संज्ञा अनित्यत्व, अनित्यता] १ जो सब दिन न रहे। अध्रुव। अस्थायी। चंदरोजा। क्षणभंगुर। २ नश्वर। नाशवान्। ३ जो स्वयं कार्यरूप हो और जिसका कोई कारण हो, अतः जो एक सा न रहे। जैसे, 'संसार अनित्य है' (शब्द०)। ४ असत्य। झूठा। ५ अनिश्चित। संदेहास्पद (को०)। ६ व्याकरण में एक नियम जो परीक्षण, प्रयोग के योग्य या अनिवार्य नहीं होता। वैकल्पित [को०]।

अनित्यकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] यदा कदा समय समय पर किया जानेवाला कार्य, जैसे—विशेष उद्देश्य से किए जानेवाले यज्ञ आदि [को०]।

अनित्यक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनित्यकर्म' [को०]।

अनित्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अनित्य अवस्था। नापायदारी। अस्थिरता। अध्रुवता। २ क्षणभंगुरता। नश्वरता।

अनित्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनित्यता'।

अनित्यदत्त—संज्ञा पुं० [सं०] गोद लेने के पहले माता पिता के द्वारा दूसरे को कुछ काल के लिये दिया हुआ पुत्र। वह लड़का जो गोद लिए जाने के पहले कुछ काल के लिये अपने माता पिता द्वारा गोद लेनेवालों को दिया जाय [को०]।

अनित्यदत्तक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनित्यदत्त' [को०]।

अनित्यदत्रिम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनित्यदत्त' [को०]।

अनित्यभाव—संज्ञा पुं० [सं०] परिवर्तनशीलता। क्षणभंगुरता।

अनित्यसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के २४ भेदों में से एक।

विशेष—यदि कोई कहे कि घट का सादृश्य शब्द में है, इससे घट की भाँति शब्द भी अनित्य हो गया, तो इसपर यह कहना कि किसी न किसी बात में घट का सादृश्य सभी वस्तुओं में होगा, तो क्या फिर सभी वस्तुएँ अनित्य होंगी? इसी प्रकार का उत्तर अनित्यसम कहलाता है।

अनिद—वि० [सं०] जो देखा न जा सके [को०]।

अनिदान—वि० [सं०] जिसका कारण ज्ञात न हो। कारणरहित [को०]।

अनिद्र¹—वि० [सं०] निद्रारहित। बिना नींद का। जिसे नींद न आए। २ जागरूक। जागा हुआ।

अनिद्र²—संज्ञा पुं० १ नींद न आने का रोग। प्रजागर। २ निद्रारहित। जाग्रत। जागा हुआ [को०]। ३ जागरूक। तत्पर [को०]।

अनिद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] १ जागरूकता। तत्परता। २ दे० 'अनिद्र' [को०]।

अनिद्रित—वि० [सं०] जो सोया हुआ न हो। जागा हुआ [को०]।

अनिधृष्ट—वि० [सं०] जो रोका न जा सके। प्रतिबंधरहित। अबाध। अपराभूत [को०]।

अनिन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनन्य'। उ०—(क) अनिन कथा तनि आचरी हिरदै त्रिभुवन राइ।—कबीर ग्र०, पृ० २६। (ख) संतो अनिन भगति यह नाहीं।—दे० बानी०, पृ० १४।

अनिन्नता(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनिन्न+ता (प्रत्य०)] दे० 'अनन्यता'। उ०—सेवहि इक्क अनिन्नता, कन मुक्त कव दानि।—पृ० रा०, पृ० ६३।

अनिप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनिक] [हिं० अनी=सेना+प=स्वामी] सेनापति। सेनाध्यक्ष। फौजी अफसर। उ०—मनो मधुमाधव दोउ अनिप धीर। वर विपुल विटप बानैत वीर।—तुलसी ग्र० पृ० ३४६।

अनिपात—संज्ञा पुं० [सं०] पतन का न होना। अपतन। जीवन। का लगातार बने रहना [को०]।

अनिपुण—वि० [सं०] अकुशल। अपटु। जो प्रवीण न हो।

अनिबद्ध—वि० [सं०] १ जो बाँधा न हो। अबद्ध। २ असंबद्ध। अनर्गल। बेसिलसिला [को०]।

अनिबद्धप्रलाप—संज्ञा पुं० [सं०] असंबद्ध वा बेसिर पैर की बात [को०]।

अनिबद्धप्रलापी—वि० [सं० अनिबद्धप्रलापिन्] बेसिर पैर की बात करनेवाला। ऊलजलूल बात करनेवाला [को०]।

अनिबाध¹—वि० [सं०] बाधारहित। जिसे कोई बाधा न हो। स्वच्छंद [को०]।

अनिबाध²—संज्ञा पुं० स्वच्छंदता। मुक्तता [को०]।

अनिभृत—वि० [सं०] १ जो छिपा न हो। जो एकांत में न हो। २ अगुप्त। प्रकट। जाहिर। ३ धृष्ट। असंकोची। बेतकल्लुफ। ४ ढुलमुल। अस्थिर। [को०]।

अनिभृत संधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अनिभृत सन्धि] यदि कोई राजा किसी दूसरे राजा की बहुत ही अधिक उपजाऊ भूमि को खरीदना चाहता हो और दूसरा राजा उस भूमि को देकर उससे संधि कर ले तो ऐसी संधि को अनिभृत संधि कहते हैं।

अनिभृष्ट—वि० [सं०] अबाधित। बेरोक। जिसपर कोई प्रतिबंध न हो [को०]।

अनिभ्य—वि० [सं०] धनहीन। निर्धन। कंगाल।

अनिमंत्रित—वि० [सं० अनिमन्त्रित] बिना न्यौता हुआ। बिना बुलाया हुआ। अनामंत्रित। अनाहूत।

अनिमक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेढक। २ कोयल। ३ मधुमक्खी। ४ भौंरा। ५ कमल की केशर। पद्मकेशर। ६ महुए का वृक्ष। [को०]।

अनिमा[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अणिमा'।

अनिमा[2]—संज्ञा पुं० [अ० एनिमा] दे० 'एनिमा'।

अनिमान—वि [सं०] असीम। अथाह। अत्यधिक। अपरिच्छिन्न [को०]।

अनिमित्त[1]—वि० [सं०] निमित्तरहित। बिना हेतु का। आकस्मिक।

अनिमित्त[2]—क्रि० वि० १ बिना कारण। २ बिना गरज। बिना किसी प्रयोजन के।

अनिमित्त[3]—संज्ञा पुं० [सं०] अपशकुन। अनिष्ट [को०]।

अनिमित्तक—वि० [सं०] १ बिना कारण का। बिना हेतु का। २ व्यर्थ। प्रयोजनरहित। बेमतलब।

अनिमित्तनिराक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपशकुन या अनिष्ट का निवारण [को०]।

अनिमित्तलिंगनाश—संज्ञा पुं० [सं० अनिमित्तलिङ्गनाश] एक प्रकार का नेत्ररोग जिसमे मनुष्य अंधा हो जाता है [को०]।

अनिमिष[1]—वि० [सं०] १ निमेषरहित। स्थिरदृष्टि। टकटकी बाँधकर देखनेवाला। २ जागरूक (को०)। ३ विकसित। खुला हुआ। जैसे आँख या पुष्प [को०]।

अनिमिष[2]—क्रि० वि० १ बिना पलक गिराए। एकटक। उ०—सुंदरता से अनिमिष चितवन छू कोमल मर्मस्थल।—युगवाणी, पृ० ६२। १ निरंतर।

अनिमिष[3]—संज्ञा पुं० १ देवता। २ मछली। ३ विष्णु (को०)। ४. महाकाल का नाम (को०)। ५ एक रतिबंध (को०)।

अनिमिषदृष्टि—वि० [सं०] टकटकी बाँधकर देखना। आँख गड़ाकर देखना। जानबूझ कर या साभिप्राय घूरना [को०]।

अनिमिषनयन—वि० [सं०] दे० 'अनिमिषदृष्टि' [को०]।

अनिमिषलोचन—वि० [सं०] दे० 'अनिमिषदृष्टि' [को०]।

अनिमिषाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवगुरु। बृहस्पति।

अनिमिषीय—वि० [सं०] देवसंबंधी [को०]।

अनिमेष[1]—वि० [सं०] दे० 'अनिमिष'।

अनिमेष[2]—क्रि०वि० १ बिना पलक गिराए। एकटक। २ निरंतर।

अनिमेष[3]—संज्ञा पुं० दे० 'अनिमिष'।

अनिमेषदृष्टि—वि० [सं०] दे० 'अनिमिषदृष्टि' [को०]।

अनिमेषनयन—वि० [सं०] दे० 'अनिमिषदृष्टि' [को०]।

अनिमेषलोचन—वि० [सं०] दे० 'अनिमेषदृष्टि' [को०]।

अनियंत्रित—वि० [सं० अनियन्त्रित] १ जो जकड़ा या बाँधा न हो। अबद्ध। प्रतिबंधरहित। बिना रोक टोक का। २ मनमाना। स्वच्छंद। निरंकुश।

अनियंत्रित शासन—संज्ञा पुं० [सं० अनियन्त्रित शासन] निरंकुश राज्य। स्वेच्छाचारी राज्य। एकतंत्र [को०]।

अनियत—वि० [सं०] १ जो नियत न हो। अनिश्चित। अनिर्दिष्ट। अनिर्धारित। २ अस्थिर। अदृढ़। जिसका ठीक ठिकाना न हो। ३ अपरिमित। असीम। ४. असाधारण। गैर मामूली। ५. अबाधित। जो रोका न जा सके [को०]। ६ अनियमित (को०)। ७ अकारण। कारणविहीन [को०]। ८ आकस्मिक [को०]।

अनियतपुंस्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] असती। पुंश्चली। शिथिल आचरण वाली स्त्री। व्यभिचारिणी [को०]।

अनियतवृत्ति—वि० [सं०] १ अनियमित काम न करनेवाला। जो किसी बँधे काम पर न लगा हो। २ अनिश्चित आयवाला। जिसकी कोई बँधी आमदनी न हो [को०]।

अनियतांक—संज्ञा पुं० [सं० अनियताङ्क] गणित में आनेवाला अनिश्चित या अज्ञात अंक। वह संख्या जिसका मूल्य निश्चित न हो [को०]।

अनियतात्मा—वि० [सं० अनियतात्मन्] १ चंचल बुद्धि का। डाँवाँडोल चित्त का। २ जिसका मन वश में न हो। अजितेंद्रिय।

अनियम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ नियम का अभाव। नियम का न होना। व्यतिक्रम। २ अव्यवस्था। बेकायदगी। ३ अनियमितता। अनिश्चितता। अस्पष्टता (को०)। ४ अविहित कर्म या अनुचित आचरण (को०)।

अनियम[2]—वि० नियमरहित। व्यवस्थारहित। अव्यवस्थित [को०]।

अनियमित—वि० [सं०] १ नियमरहित। विधिहीन। अव्यवस्थित बेकायदा। २ अनिश्चित। अनियत। अनिर्दिष्ट।

अनियाउⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—सत्य कहहु तुम मोसों दहूँ काकर अनियाउ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३८।

अनियाराⓅ—वि० [सं० अणि=नोक+हिं० आरा (प्रत्य०)] [स्त्री० अनियारी] नुकीला। कटीला। पैना। धारदार। कोरदार। तीक्ष्ण। तीखा। उ०—अनियारे दीरघ दृगन, किती न तरुनि समान। वह चितवनि औरे कछू, जिहि बस होत सुजान।—बिहारी र०, दो० ५८८।

अनियारीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनियारा] अनीदार कटारी। उ०—गहि रोम नखि नर भूमि पर। हनि अनियारिय उभय कति।—पृ० रा० ७।१५८।

अनियुक्त—वि० [सं०] जो नियुक्त न किया गया हो। अनधिकारी। २ न्यायाधीश के साथ बैठनेवाला व्यक्ति (असेसर) जिसकी नियुक्ति अनौपचारिक होती है और जिसे मत देने का अधिकार नहीं होता [को०]।

अनियोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ संबंध का अभाव। २ अनुपयुक्त पद या आयोग [को०]।

अनिर[1]—वि० [सं०] जो प्रेरित न किया जा सके। जो ठेला न जा सके। अशक्त। शक्ति की कमी [को०]।

अनिर[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनिरवा'।

अनिरवसित—वि० [सं०] ऐसे शूद्र जो इतने नीचे नहीं माने जाते कि उनके भोजन कर लेने पर पात्र सदा के लिये त्याग दिया जाय, अर्थात् जिस पात्र में उन्होंने भोजन किया हो उसे स्वच्छ करके फिर ग्रहण किया जा सकता है [को०]।

अनिरवा—संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+नकिट, प्रा० णिअड, निअट, निअड] [स्त्री० अनिरिया] बहका हुआ पशु। आवारा चौपाया जो खूँटे पर न रहे। बहेतू।

अनिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भोजन का अभाव । अन्न दरिद्रता । अन्नरहित दरिद्रता । २ दैवी विपत्ति, जैसे, अतिवृष्टि, अनावृष्टि [को०] ।

अनिराकरण—संज्ञा पुं० [सं०] निराकरण न करना । दूर न करना [को०] ।

अनिराकृत—वि० [सं०] जिसका निराकरण न किया गया हो । जो दूर न किया गया हो [को०] ।

अनिरुक्त—वि० [सं०] १ जो स्पष्ट रूप से कहा न गया हो । अस्पष्ट (कथन) । २ जिसका निर्वचन (व्याख्या) स्पष्ट रूप से न हुआ हो [को०] ।

अनिरुक्तगान—संज्ञा पुं० [सं०] १ अस्पष्ट गाना या गुनगुनाना । २ सामगान का एक प्रकार [को०] ।

अनिरुद्ध[1]—वि० [सं०] जो रोका हुआ न हो । अबाध । बेरोक ।

अनिरुद्ध[2]—संज्ञा पुं० श्रीकृष्ण के पौत्र, प्रद्युम्न के पुत्र जिनको ऊषा ब्याही थी ।

अनिरुध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनिरुद्ध] दे० 'अनिरुद्ध[2]' । उ०—अनिरुध कहँ जो लिखी जैमारा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ०३०६ ।

अनिर्णय—संज्ञा पुं० [सं०] निर्णय का न होना । अनिश्चय [को०] ।

अनिर्दश—वि० [सं०] जनन या मरण के अशौच के दस दिन बीतने के पूर्व का (समय) [को०] ।

अनिर्दशा—वि० स्त्री० [सं०] जिसको बच्चा दिए दस दिन न बीते हों ।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्राय गाय के संबंध मे देखा जाता है । ऐसी गाय का दूध पीना निषिद्ध है ।

अनिर्दशाह—वि० [सं०] दे० 'अनिर्दश' [को०] ।

अनिर्दिश्य—वि० [सं०] दे० 'अनिर्देश्य' [को०] ।

अनिर्दिष्ट—वि० [सं०] १ जो बताया न गया हो । अनिरूपित । अनिर्धारित । अनिर्वाचित । उ०—क्या उनकी कल्पना मे किसी अनिर्दिष्ट अत्याचारी या क्रूरकर्मा का सामान्य रूप ही था ?—रस० क०, पृ० २६८ । २ अनियत । अनिश्चित । ३ असीम । अपरिमित । ४ निश्चित लक्ष्य से रहित [को०] ।

अनिर्दिष्टभोग—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे के पशु, भूमि या और पदार्थों को मालिक की आज्ञा के बिना काम मे लाना ।

विशेष—इस प्रकार दूसरे की वस्तु का व्यवहार करनेवाला चोर के तुल्य ही कहा गया है । स्मृतियो मे इस दोष के करनेवाले के लिये भिन्न भिन्न अर्थदंड हैं ।

अनिर्देश—संज्ञा पुं० [सं०] निश्चित नियम या निर्देश का अभाव [को०] ।

अनिर्देश्य[1]—वि० [सं०] जिसके गुण, स्वभाव, जाति आदि का निर्धारण न हो सके । जिसके विषय मे कुछ ठीक बतलाया न जा सके । अनिर्वचनीय । अनिर्धार्य । २ जिसकी परिभाषा न हो सके । जिसकी तुलना न हो सके (को०) ।

अनिर्देश्य[2]—संज्ञा पुं० परब्रह्म की एक उपाधि [को०] ।

अनिर्धारित—वि० [सं०] अनिरूपित । अनिश्चित [को०] ।

अनिर्धार्य—वि० [सं०] जिसका निरूपण न हो सके । जिसका लक्ष्य स्थिर न किया जा सके । जिसके विषय मे कोई बात ठहराई न जा सके । अनिर्देश्य ।

अनिर्बंध—वि० [सं० अनिर्बन्ध] १ बिना बंधन का । अबाध । अनियंत्रित । बेरोकटोक । २ स्वतंत्र । स्वच्छंद । स्वाधीन । खुदमुख्तार ।

अनिर्भर—वि० [सं०] भाररहित । कम वजन का । हलका । कम [को०] ।

अनिर्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] भेद न खोलना ।

अनिर्मल—वि० [सं०] गंदा । मैला । अशुद्ध । गँदला [को०] ।

अनिर्माल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जो औषध के काम आता है । पिंडिका [को०] ।

अनिर्लोचित—संज्ञा स्त्री०[सं०]जिसपर सावधानी से विचार न हुआ हो । अविचारित [को०] ।

अनिर्लोडित—वि० [सं०] जिसकी पूर्णत परीक्षा न हुई हो । अपरीक्षित [को०] ।

अनिर्वच—वि० [सं० अनिर्वचनीय] दे० 'अनिर्वचनीय' । उ०—वह है, वह नहीं, अनिर्वच जग उसमे वह जग मे लय ।—गुंजन, पृ० ८३ ।

अनिर्वचन—संज्ञा पुं० [सं०] मौन । खामोशी । जोर से न बोलना । [को०] ।

अनिर्वचनीय[1]—[सं०] १ जिसका वर्णन न हो सके । अकथनीय । अवर्णनीय । उ०—अहो अनिर्वचनीय भावसागर । सुनो मेरी भी स्वरलहरी क्या है कह रही ।—कानन०, पृ० ८१ । २. जो कहने योग्य न हो । अकथ्य ।

अनिर्वचनीय[2]—संज्ञा पुं० १ माया । भ्रम । अज्ञान । २ जगत् । संसार [को०] ।

अनिर्वर्त्यमान—वि० [सं०] जो पास न आ रहा हो । न लौटनेवाला [को०] ।

अनिर्वाच्य—वि० [सं०] १ निर्वचन के अयोग्य । जिसका निरूपण न हो सके । जो बतलाया न जा सके । जिसके विषय मे कुछ स्थिर न हो सके । उ०—पावा अनिर्वाच्य विश्राम ।—मानस, ५।८ । २ जो चुनाव के योग्य न हो । निर्वाचन के अयोग्य ।

अनिर्वात—वि० [सं०] वायुरहित । शांत । उ०—वह श्रुति धारता, ज्ञान की शिखा वह अनिर्वात निष्कंप ।—अणिमा, पृ० ३६ ।

अनिर्वाण—वि० [सं०] १ न बुझा हुआ । २. न नहाया हुआ । अस्नात । अप्रक्षालित [को०] ।

अनिर्वाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूरा न होना । अपूर्णता । २ अनिष्पत्ति । असंगति । ३. आय की कमी या टोटा । साधन की अल्पता [को०] ।

अनिर्वाह्य—वि० [सं०] जो निर्वाह के योग्य न हो । जिसकी व्यवस्था कठिन हो [को०] ।

अनिर्वाह्य पण्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ या माल जिसका राज्य या नगर के भीतर लाया जाना बंद किया गया हो ।

अनिर्विण—वि० [सं०] अलज्जित । जिसने लज्जित होने योग्य कुछ न किया हो [को०] ।

अनिर्विण्ण—वि० [सं०] १ जो थका न हो । निर्वेदरहित । दु ख—रहित । २ विष्णु की एक उपाधि ।—[को०] ।

अनिर्विद—वि० [सं०] अथात । अक्लांत । तरोताजा [को०] ।

अनिर्वृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'अनिर्वृति' । २. दरिद्रता । धारणाहीन [को०] ।

अनिर्वृत्त¹—वि० [सं०] [संज्ञा अनिर्वृति] बुरी स्थिति का। दुःखी।

अनिर्वृत्त²—वि० [सं०] दे० 'अनिर्वृत्ति [को०]।

अनिर्वृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी स्थिति। दुःख।

अनिर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्लानि का अभाव। निराशा का अभाव। २ स्वावलंबन। साहस [को०]।

अनिर्वेश—वि० [सं०] बेरोजगार। दुःखी [को०]।

अनिल—संज्ञा पुं० [सं०] १ हवा। पवन। वायु। २ पवन देवता। ३ वायु के ४९ भेदों में से एक। ४ अष्ट वसुओं में एक। पंचम वसु। ५ शरीर का एक तत्व। ६ पक्षाघात। लकवा। वातरोग। ७ अक्षर य्। ४६ की संख्या का द्योतक शब्द। ८ स्वाति नक्षत्र। ९ विष्णु का नाम। १० मागौन का वृक्ष। ११ वायु रोग (को०)।

अनिलकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] १ पवन के पुत्र हनुमान। २ जैन शास्त्रों के अनुसार भुवनपति देवताओं का एक भेद।

अनिलघ्न—वि० [सं०] वातविकारों को दूर करनेवाला [को०]।

अनिलघ्नक—संज्ञा पुं० [सं०] विभीतक वृक्ष। बहेड़ा [को०]।

अनिलपर्यय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनिलपर्याय' [को०]।

अनिलपर्याय—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पलकों तथा बाहरी भाग की सूजन [को०]।

अनिलप्रकृति¹—वि० [सं०] वातप्रकृतिवाला [को०]।

अनिलप्रकृति²—संज्ञा पुं० शनि का नाम [को०]।

अनिलभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रथ।

विशेष—मानसार में बनावट या आकार के अनुसार रथ का सात भेद माने गए हैं-(१) नभस्वद्भद्रक, (२) प्रभंजनभद्रक, (३) निवातभद्रक, (४) पवनभद्रक, (५) परिपद्भद्रक, (६) इंद्रभद्रक और (७) अनिलभद्रक।

अनिलय—वि० [सं०] निवासरहित। आश्रयरहित [को०]।

अनिलवाह—संज्ञा पुं० [सं० अनिल+वाह=प्रवाह] वायु का प्रवाह। वायुमंडल। उ०—इस अनिलवाह के पार प्रखर किरणों का वह ज्योतिर्मय घर।—तुलसी०, पृ० १९।

अनिलव्याधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वायु कुपित होने से उत्पन्न रोग [को०]।

अनिलसख—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। वायु का सहायक [को०]।

अनिलसारथि—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

अनिलात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] वायु का पुत्र—१ हनुमान्। २ भीम [को०]।

अनिलांतक—संज्ञा पुं० [सं० अनिलान्तक] इंगुदी का पौधा। अंगारपुष्प [को०]।

अनिलापह—वि० [सं०] दे० 'अनिलघ्न' [को०]।

अनिलामय—संज्ञा पुं० [सं०] वातरोग। लकवा। गठिया [को०]।

अनिलायन—संज्ञा पुं० [सं०] वायु का मार्ग। हवा की दिशा [को०]।

अनिलहा—वि० [सं० अनीलहन्] वातरोग नष्ट करनेवाला [को०]।

अनिलाशन—वि० [सं०] दे० 'अनिलाशी' [को०]।

अनिलाशी¹—वि० [अनिलाशिन् [वि० स्त्री० अनिलाशिनी] हवा पीकर रहनेवाला।

अनिलाशी²—संज्ञा पुं० साँप। नाग।

अनिलोडित¹—वि० [सं०] [illegible] [को०]।

अनिलोडित²—वि० [सं०] जिसपर भली भाँति विचार न हुआ हो। अपूर्णतः परीक्षित [को०]।

अनिवर्तन—वि० [सं०] १ दृढ़। स्थिर। २ उचित। न्याय्य [को०]।

अनिवर्ती—वि० [सं० अनिवर्तिन्] [स्त्री० अनिवर्तिनी] १ वापस न लौटनेवाला। २ तत्पर। अध्यवसायी। मुस्तैद। ३ वीर। पीठ न दिखानेवाला। ४ विष्णु और ईश्वर का विशेषण (को०)।

अनिवार—वि० [सं० अनिवार्य] दे० 'अनिवार्य'। उ०—अति सूधो टेढ़ो बहुरि, प्रेमपंथ अनिवार।—रसज्ञान०, पृ० ६।

अनिवारित—वि० [सं०] जिसे रोका नहीं गया। अवारित। जिसका विरोध न हो। निर्विरोध [को०]।

अनिवार्य—वि० [सं०] १ जो निवारण से बाधित न हो। जो हटे नहीं। अटल। २ अवश्यंभावी। जो होकर रहे। जो अवश्य हो। ३ जिसके बिना काम न चले। परम आवश्यक। जैसे—उन्नति के लिये शिक्षा का होना अनिवार्य है (शब्द०)।

अनिविशमान—वि० [सं०] न बैठनेवाला। विश्राम न करनेवाला। गतिशील [को०]।

अनिवेशन—वि० [सं०] जिसके पास विश्राम का स्थान न हो [को०]।

अनिवृत्तिबादर—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह कर्म जिनका परिणाम निवृत्त या दूर हो जाय पर कषाय या वासना रह जाय।

अनिविष्ट—वि० [सं०] अविवाहित [को०]।

अनिश—क्रि० वि० [सं०] निरंतर। अनवरत। लगातार। अविश्रांत।

अनिश्चय—संज्ञा पुं० [सं०] संदेह। निश्चय का अभाव [को०]।

अनिश्चित—वि० [सं०] जिसका निश्चय न हुआ हो। अनियत। अनिर्दिष्ट। जिसका कुछ ठीक ठाक न हो। जिसके विषय में कुछ स्थिर न हुआ हो।

अनिषिद्ध—वि० [सं०] जो अवैध या वर्जित न हो। प्रशस्त [को०]।

अनिष्कासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्दानशीन औरत।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय यह नियम था कि पर्दानशीन औरतों से घरों के भीतर ही काम लिया जाता था और उनको वहीं पर वेतन पहुँचा दिया जाता था।

अनिष्ट¹—[सं०] १ जो इष्ट न हो। इच्छा के प्रतिकूल। अनभिलषित। अवांछित। २ बुरा। निषिद्ध (को०)। ३ यज्ञ के लिये वर्जित। जो यज्ञ के लिये प्रशस्त न हो (को०)।

अनिष्ट²—संज्ञा पुं० अमंगल। अहित। बुराई। इच्छाविरुद्ध कार्य। खराबी। हानि।

अनिष्टकर—वि०[सं०] अनिष्ट करनेवाला। अहितकारी। हानिकारक। अशुभकारक।

अनिष्टकारी—वि० [सं० अनिष्टकारिन्] [स्त्री० अनिष्टकारिणी] दे० 'अनिष्टकर' ।

अनिष्टग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] हानि करनेवाला ग्रह । अशुभ ग्रह [को०] ।

अनिष्टप्रवृत्तिक—वि०[सं०]राष्ट्र या राज्य के अनिष्टसाधन में तत्पर । बागी । राष्ट्रद्रोही ।

विशेष—चाणक्य के समय में ऐसे लोगों को अग्नि में जलाने का दंड दिया जाता था ।

अनिष्टप्रसंग—संज्ञा पुं० [सं० अनिष्टप्रसङ्ग] १ अवांछित या अनिच्छित घटना । २ गलत वस्तु, तर्क, अथवा नियम का संबंध [को०] ।

अनिष्टफल—संज्ञा पुं० [सं०] अवांछित परिणाम । बुरा नतीजा [को०] ।

अनिष्टशंका—संज्ञा स्त्री० [सं० अनिष्टशङ्का] दुर्भाग्य या अवांछित की आशंका । अहित होने का डर [को०] ।

अनिष्टसूचक—वि० [सं०] अनिष्ट या अहित की सूचना देनेवाला [को०] ।

अनिष्ट हेतु—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा लक्षण । अपशकुन ।

अनिष्टानुबंधी—वि० [सं० अनिष्टानुबन्धिन्] एक के बाद एक विपत्ति का आना । लगातार । विपत्तियों का आगमन [को०] ।

अनिष्टापत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०]अनिष्ट या अशुभ की प्राप्ति । अवांछित घटना [को०] ।

अनिष्टापादन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनिष्टापत्ति' [को०] ।

अनिष्टाप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनिष्ट की आप्ति अर्थात् प्राप्ति । अनिष्टापत्ति [को०] ।

अनिष्टाशंसी—वि० [सं० अनिष्टाशंसिन्] अनिष्ट की सूचना देनेवाला । अनिष्टसूचक ।

अनिष्टी—वि०[सं० अनिष्टिन्] जिसने यज्ञ आदि न किया हो (को०)। २ अभागा । भाग्यहीन ।

अनिष्टोत्प्रेक्षण—संज्ञा पुं०[सं०]अनिष्ट की कल्पना । अनिष्ट होने की संभावना [को०] ।

अनिष्ठा—संज्ञा पुं० [सं०] अदृढ़ता । निष्ठा का अभाव [को०] ।

अनिष्ठुर—वि० [सं०] जो कठोर न हो । जो निर्दय न हो । दयावान । कोमलचित्त [को०] ।

अनिष्ण—वि० [सं०] जो प्रवीण न हो । अदक्ष । अकुशल [को०] ।

अनिष्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपूर्णता । अपूरापन । असिद्धि ।

अनिष्पन्न—वि० [सं०] १ अधूरा । अपूर्ण । २ असंपन्न । असिद्ध ।

अनिस(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अनिश' ।

अनिसर्ग—वि० [सं०] अस्वाभाविक । अप्राकृतिक [को०] ।

अनिसृष्ट—वि०[सं०] १ जिसने अधिकार या आज्ञा न प्राप्त की हो । २ जिसके व्यवहार या उपयोग की आज्ञा न ले ली गई हो ।

अनिसृष्टोपभोक्ता—संज्ञा पुं० [सं०अनिसृष्टोपभोक्तृ] वह जो मालिक की आज्ञा के बिना धरोहर रखी हुई वस्तु काम में लाए ।

अनिस्तीर्ण—वि०[सं०]१ जो पार न किया गया हो । जो अस्वीकृत न किया गया हो । जिसमे छुटकारा न मिला हो । २ अभियोग जिसका उत्तर न दिया गया हो । जिसका खंडन न किया गया हो [को०] ।

अनिस्तीर्णाभियोग—संज्ञा पुं० [सं०] वह अभियुक्त जिसने अभियोग का खंडन कर उससे मुक्ति न पा ली हो [को०] ।

अनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अणि = अग्रभाग, नोक] १ नोक । सिरा । कोर । उ०—सतगुरु मारी प्रेम की रही कटारी टूटि । वैसी अनी न सालई जैसी सालै मूठि ।—कबीर (शब्द०) । २ नाव या जहाज का अगला सिरा । माँगा । माथा । गलही । ३ जूते की नोक । ४ पानी में निकली हुई जमीन की नोक ।

अनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अनीक = समूह, सेना] १ समूह । झुंड । दल । उ०—नारदादि सनकादि प्रजापति, सुर नर असुर अनी ।—सूर०, १।३७१ । २ सेना । फौज । उ०—नृपु न सो सखि सीय न संगा । आगे अनी चली चतुरंगा ।—तुलसी (शब्द०) ।

अनी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० आन = मर्यादा] ग्लानि । खेद । लाग । जैसे—उसने अनी के वश कनी खा ली (शब्द०) ।

अनी[4]—सर्व० स्त्री० [सं० अयि प० अनी] री । अरी । ओ ।

अनीक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेना । फौज । २ समूह । झुंड । ३. युद्ध । संग्राम । लड़ाई ।

अनीक[2](पु)—वि० [सं० अ = नहीं + फा० नेक, हिं० नीक] जो अच्छा न हो । बुरा । खराब ।

अनीकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अक्षौहिणी या पूरी सेना का दसवाँ भाग जिसमें २१८७ हाथी ५६६१ घोड़े और १०९३५ पैदल होते हैं । २ कमलिनी । पद्मिनी । नलिनी ।

अनीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] न देखना । दृष्टिनिक्षेप न करना [को०] ।

अनीच—वि० [सं०] १ जो नीचा न हो । उत्तम । आदर के योग्य । २ जिसका उच्चारण अनुदात्त स्वर में न हुआ हो । उदात्त स्वर में उच्चारित [को०] ।

अनीचदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० अनीचदर्शिन्] एक बुद्ध का नाम [को०] ।

अनीचानुवर्ती—वि० [सं० अनीचानुवर्तिन्] १ नीच अथवा अशिष्ट जनों से संपर्क न रखनेवाला ।२ निष्ठावान् या विश्वसनीय पति या प्रणयी [को०]

अनीठ(पु)—वि०[सं०अनिष्ट, प्रा० अणिट्ठ] १ जो इष्ट न हो । अनिश्चित । अप्रिय । २ बुरा । खराब । उ०—(क) जाउ जू जैए अनीठ बड़े अरु ईठ बड़े पर दीठ बड़े हौ ।—देव (शब्द०) । (ख) हा हा बलाइ ल्यों पीठ दै बैठुरी काहू अनीठ की दीठि परैगी ।—देव (शब्द०) ।

अनीठि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अन + इष्टि] १ अनिच्छा । २ बुराई । ३ क्रोध ।

अनीड[1]—वि० [सं०] बिना घोसले का । २ आश्रयहीन । जिसका निश्चित आवास न हो । ३. अशरीरी ।

अनीड[2]—संज्ञा पुं० अग्नि का एक नाम [को०] ।

अनीत(पु)संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनीति' । उ०—ऐसो और न जानिबी जग अनीत करनार । जामैं उपज्यो मरन सो ताको बेधत मार ।—स० सप्तक, पृ० ३६५ ।

अनीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नीति का विरोध । अन्याय । बेइंसाफी । २. शरारत । ३. अंधेर । अत्याचार । ४. ईति अर्थात् विपत्ति या कष्ट का अभाव (को०) ।

अनीतिज्ञ—वि० [सं०] कुनीति में प्रवीण। अनुचित कार्य में पटु। जिसे न्याय या नीति का ज्ञान न हो। धृष्ट [को०]।

अनीतिविद—वि० [सं०] दे० अनीतिज्ञ [को०]।

अनीतिमान्—वि० [सं० अनीतिमत्] [स्त्री० अनीतिमती] अन्यायी। उद्दंड, अनाचारी।

अनीदृश—संज्ञा पुं० [सं०] भिन्न। जो ऐसा न हो। जिसमें समानता न हो [को०]।

अनीप्सित—वि० [सं०] अनिच्छित। अनभिलषित। अनचाहा। न चाहा हुआ।

अनीर्ष्य—वि० [सं०] जिसमें ईर्ष्या न हो। द्वेषरहित [को०]।

अनील—वि० [सं०] जो नीला न हो। श्वेत [को०]।

अनीलवाजी—संज्ञा पुं० [सं० अनीलवाजिन्] १ सफेद घोड़ेवाला पुरुष। २ अर्जुन।

अनीश¹—वि० [सं०] १ ईशरहित। बिना अभिभावक या मालिक का। २ जो स्वामी या मालिक न हो। ३ शक्तिरहित। असमर्थ। ४. जिसके ऊपर कोई न हो। सबसे श्रेष्ठ। ५ जो [illegible] न हो [को०]।

अनीश²—संज्ञा पुं० १ विष्णु। २ ईश्वर से भिन्न वस्तु। जीव। माया।

अनीश³—संज्ञा स्त्री० [सं०] असहायावस्था। असमर्थता। दीन अवस्था [को०]।

अनीश्वर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अनीश'। २ ईश्वर का अस्तित्व या सत्ता न मानना [को०]।

अनीश्वर²—वि० १ ईश्वर को न माननेवाला। २ दे० 'अनीश'।

अनीश्वरवाद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनीश्वरवादी] १ ईश्वर के अस्तित्व पर अविश्वास। नास्तिकता। २ पूर्व मीमांसा। मीमांसा दर्शन।

अनीश्वरवादी—वि० [सं० अनीश्वरवादिन्] १ ईश्वर को न माननेवाला। नास्तिक। २ मीमांसक।

अनीस⁰—वि० [हिं०] १ दे० 'अनीश'¹। २ जिसका कोई रक्षक न हो। अनाथ। उ०—[illegible]। अति अनीस [illegible]।—तुलसी (शब्द०)।

अनीसून—संज्ञा पुं० [यू०] एक प्रकार की सौंफ जो उत्तर भारत में बहुत होती है।

अनीह¹—वि० [सं०] १ इच्छारहित। निस्पृह। उ०—एक अनीह अरूप अनामा।—मानस, १।१३। २ निश्चेष्ट। बेपरवाह। उदासीन।

अनीह²—संज्ञा पुं० अयोध्या के एक नरेश का नाम [को०]।

अनीहा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनिच्छा। निरीहता। निस्पृहता। २ निश्चेष्टता। बेपरवाही। उदासीनता।

अनीहा²—वि० अनिच्छ। जो कुछ न चाहे [को०]।

अनु¹—उप० [सं०] जिस शब्द के पहले यह उपसर्ग लगता है उसमें इन अर्थों का योग करता है—१ पीछे। जैसे, अनुगामी, अनुकरण। २ सदृश। जैसे, अनुकार, अनुरूप, अनुगुण, अनुकूल। ३ साथ। जैसे, अनुकंप, अनुपद, अनुराग। ४ प्रत्येक। जैसे, अनुक्षण, अनुदिन। ५ बारबार। जैसे, अनुगणन अनुशीलन। गणरत्न महोदधि में इसके निम्नांकित अर्थ निर्दिष्ट किए गए हैं—वेदाध्ययन, अनुष्ठान, सामीप्य, पश्चाद्भाव, अनुवचन, साम्य, अभिमुख, हीन, विसर्ग और लक्षण।

अनु²—संज्ञा पुं० १ राजा ययाति का एक पुत्र। २ प्राचीन भारत की एक जाति [को०]।

अनु³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अणु] दे० 'अणु'। उ०—मिल्यो चद्र कनि चकिनि अनु अनु ह्वै मनु जाइ।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १४१।

अनु⁴(पु)—अव्य० [हिं०] हाँ। ठीक है। उ०—अनु तुम कही नीक यह सोभा। पै कुल मोड भँवर जेहि लोभा।—जायसी (शब्द०)।

अनुकंपन¹—संज्ञा पुं० [सं० अनुकम्पन] १ अनुग्रह। दया। २ सहानुभूति [को०]।

अनुकंपन²—वि० दया करनेवाला। कोमलहृदय। सहृदय [को०]।

अनुकंपनीय—वि० [सं० अनुकम्पनीय] दे० 'अनुकंप्य' [को०]।

अनुकंपा—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुकम्पा] [वि० अनुकम्पित] १. दया। कृपा। अनुग्रह। २ सहानुभूति। हमदर्दी।

अनुकंपित—वि० [सं० अनुकम्पित] जिस पर कृपा की गई हो। अनुगृहीत।

अनुकंप्य¹—वि० [सं० अनुकम्प्य] दया के योग्य। सहानुभूति का पात्र [को०]।

अनुकंप्य²—संज्ञा पुं० १ शीघ्रगामी दूत या समाचारवाहक। २ तपस्वी [को०]।

अनुक¹—संज्ञा पुं० [सं०] कामी। कामुक। विषयी। कामी पुरुष।

अनुक²—वि० लालची। इच्छुक। २ कामवासनाग्रस्त। ३ ढालुआँ। ४ अधीन। आश्रित [को०]।

अनुकथन—संज्ञा पुं० [सं०] क्रमबद्ध वचन। कथोपकथन। वार्तालाप। बातचीत। उ०—मुनि अनुकथन परसपर होइ।—मानस, १।४१।

अनुकनीय—वि० [सं० अनुकनीयस्] सबसे छोटे से बड़ा। कनिष्ठतम से प्रथम [को०]।

अनुकर—संज्ञा पुं० [सं०] सहायक [को०]।

अनुकरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुकरणीय, अनुकृत] १ देखा देखी काम। नकल। समान आचरण। उ०—आज सोचता हूँ जैसे पद्मिनी थी कहती—'अनुकरण कर मेरा'।—लहर पृ० ६७। २ पीछे आनेवाला। वह जो पीछे उत्पन्न हो। उ०—आलंबन उद्दीपन के जे अनुकरण बखान। ते कहिए अनुभाव सब, दंपति प्रीति विधान।—केशव (शब्द०)।

अनुकरणीय—वि० [सं०] [स्त्री० अनुकरणीया] अनुकरण करने लायक। नकल करने योग्य।

अनुकर्ता—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुकरण करनेवाला। आदर्श पर चलने वाला। २ नकल करनेवाला। ३ आज्ञाकारी। हुक्म माननेवाला।

अनुकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] अनुकरण। नकल [को०]।

अनुकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक गाड़ी या रथ का तला। २. खिंचाव। आकर्षण। ३ देवता का आवाहन। ४. विलंब से किसी कर्तव्य का पालन।

अनुकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुकर्ष'।

अनुकलन—संज्ञा पुं० [सं०] अंकन। लेखन। सज्जा करना। उ०—हिंदी लिखने के लिये फारसी लिपि का इस प्रकार अनुकलन करने के कारण।—मपू० अभि० ग्रं०, पृ० १३१।

अनुकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] आवश्यकतानुसार निर्दिष्ट के अभाव में अन्य विकल्प का व्यवहार। जैसे यव के अभाव में गेहूँ या चावल के व्यवहार का विकल्प। २ कल्प (छह वेदांगों में से एक) से संबंधित ग्रंथ [को०]।

अनुकांक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुकाङ्क्षा] [वि० अनुकांक्षित, अनुकांक्षी] इच्छा। अभिलाषा। आकांक्षा।

अनुकांक्षित—वि० [सं० अनुकाङ्क्षित] इच्छित। अभिलषित। आकांक्षित।

अनुकांक्षी—वि० [सं० अनुकाङ्क्षिन्] [वि० स्त्री० अनुकांक्षिणी] इच्छा रखनेवाला। चाहनेवाला। आकांक्षी।

अनकाम—वि० [सं०] १ प्रिय। इच्छानुकूल। २ इच्छुक। विलासी [को०]।

अनुकामी—वि० [सं० अनुकामिन्] इच्छानुसार कार्य करनेवाला। स्वेच्छाचारी [को०]।

अनुकामीन—वि० [सं०] दे० 'अनुकामी' [को०]।

अनुकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुकरण'।

अनकारी—वि० [सं० अनुकारिन्] [स्त्री० अनुकारिणी] १ अनुकर्ता। अनुकरण करनेवाला। देखादेखी करनेवाला। नकल करनेवाला। २ आज्ञाकारी। हुक्म पर चलनेवाला।

अनुकार्य[1]—वि० [सं०] जिसकी नकल की जा सके। नकल किए जाने योग्य।

अनुकार्य[2]—संज्ञा पुं० अभिनेता द्वारा अनुकृत व्यक्ति। वह जिसकी नकल की जाय। उ०—उन अभिनेताओं को ही दर्शक लोग अनुकार्य समझ लेते हैं।—सं० शास्त्र, पृ० ४७।

अनुकाल—वि० [सं०] सामयिक। समयानुकूल [को०]।

अनुकीरतन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुकीर्तन'। उ०—जहाँ प्रसिद्ध निषेध को अनुकीरतन प्रकाश।—मतिराम ग्रं०, पृ० ४३६।

अनुकीर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १ वर्णन। कथन। २ घोषणा। उद्घोष। प्रचार [को०]।

अनुकुंचित—वि० [सं० अनुकुञ्चित] १ झुका हुआ। २ झुकाया हुआ। टेढ़ा किया हुआ [को०]।

अनुकूल[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अनुकूला] १ मुआफिक। २ पक्ष में रहनेवाला। सहायक। हितकर। ३ प्रसन्न। उ०—होउ महेस मोहि पर अनुकूला।—मानस, १।१५।

अनुकूल[2]—संज्ञा पुं० १ वह नायक जो एक ही विवाहित स्त्री में अनुरक्त हो। २ एक काव्यालंकार जिसमें प्रतिकूल से अनुकूल वस्तु की सिद्धि दिखाई जाय। जैसे—आगि लागि घर जरिगा, बड़ सुख कीन्ह। पिय के हाथ घयिलवा भरि भरि दीन्ह। (शब्द०)। ३ राम के दल का एक बंदर। ४ सबके प्रिय विष्णु।

अनुकूल[3](पु)—क्रि० वि० [हिं०] ओर। तरफ। उ०—ढाहति भूप रूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला।—मानस २।३४।

अनुकूलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अप्रतिकूलता। अविरुद्धता। २ पक्षपात। हितकारिता। सहायता। ३ प्रसन्नता।

अनुकूलन—संज्ञा पुं० [सं०] अनुकूल होने का प्रभाव। उ०—अर्वाचीन काल में भी हिंदू सभ्यता ने बड़ी स्थिरता दिखाई है और अनुकूलन की शक्ति का भी परिचय दिया है।—हिंदू सभ्यता, पृ० ५८४।

अनुकूलना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुकूलन से नाम०] १ अप्रतिकूल होना। मुआफिक होना। २ पक्ष में होना। हितकर होना। ३ प्रसन्न होना। उ०—फगुआ देन कह्यो मन भायो सबै गोपिका फूली। कंठ लगाय चली प्रियतम कौं अपने गृह अनुकूली।—सूर (शब्द०)।

अनुकूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भगण, तगण, नगण और दो गुरु (ऽ।।+ऽऽ।+।।।+ऽऽ) होते हैं। मौक्तिक माला। जैसे—पावक पूज्यौ समिध सुधारी। आहुति दीन्ही सब सुखकारी।—केशव (शब्द०)। २ दंती वृक्ष।

अनुकूलित—वि० [सं०] सम्मानित। जिसका भव्य स्वागत हुआ हो [को०]।

अनुकृत—वि० [सं०] अनुकरण किया हुआ। नकल किया हुआ।

अनुकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ समान आचरण। देखादेखी कार्य। नकल। अनुकरण। उ०—हृदय की अनुकृति बाह्य उदार।—कामायनी पृ० ४६। २ वह काव्यालंकार जिसमें एक वस्तु का कारणांतर से दूसरी वस्तु के अनुसार हो जाना वर्णन किया जाय। यह वास्तव में सम अलंकार के अंतर्गत ही आता है।

अनुकृष्ट—वि० [सं०] १ आकृष्ट। खिंचा हुआ। २ समाहृत। सम्मिलित। ३ आरोपित। गर्भित [को०]।

अनुक्त—वि० [सं०] अकथित। बिना कहा हुआ। अनभिहित।

अनुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ न बोलना। न कहना। अकथना। २ वह बात जो उचित न हो। अनुचित बात [को०]।

अनुक्रंदन—संज्ञा पुं० [सं० अनुक्रन्दन] उत्तर में चिल्लाना। प्रतिक्रंदन [को०]।

अनुक्रकच—वि० [सं०] जिसमें लकड़ी चीरने की आरी जैसे दाँत बने हों। दाँतेदार [को०]।

अनुक्रम[1]—वि० [सं०] क्रमबद्ध। सिलसिलेवार। तरतीबवार। उ०—प्रकृति पुरुष, श्रीपति सीतापति, अनुक्रम कथा सुनाई।—सूर, १०।२८१६।

अनुक्रम[2]—संज्ञा पुं० १ क्रम। सिलसिला। तरतीब। २ एक के बाद एक होने की स्थिति या क्रिया (को०)। ३ दे० 'अनुक्रमणिका' [को०]।

अनुक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्रमबद्ध रूप में आगे बढ़ना। २ पीछे पीछे चलना। अनुगमन [को०]।

अनुक्रमणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रम। तरतीब। सिलसिला २. सूची। तालिका। फिहरिस्त। ३ कात्यायन का एक ग्रंथ जिसमें मंत्रों के ऋषि, छंद, देवता और विनियोग बताए गए

हैं। ४ अक्षरों और मात्राओं के क्रमानुसार तैयार की हुई शब्द, ग्रंथ, नाम या विषय आदि की सूची।

अनुक्रमणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुक्रमणिका' [को०]।

अनुक्रांत—वि० [सं० अनुक्रांत] १ पारायण किया हुआ। पढा हुआ। २ विधिपूर्वक संपन्न। ३ अनुक्रमणी आदि में समाविष्ट। परिगणित [को०]।

अनुक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'अनुक्रम'। २ 'अनुकर्म' (को०)।

अनुक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] अनुकंपा। दया। उ०—दयित, क्या मुझे आर्त जान के, अविप ने अनुक्रोश मान के, धर दिया तुम्हे भेज आपही।—साकेत, पृ० ३१२।

अनुक्षण—क्रि० वि० [सं०] १ प्रतिक्षण। २ लगातार। निरंतर।

अनुक्षत्ता—संज्ञा पुं० [सं० अनुक्षत्तृ] द्वाररक्षक अथवा सारथी का अनुचर [को०]।

अनुक्षपा—संज्ञा संज्ञा [सं० अनुक्षपम्] एक रात के बाद दूसरी रात का अनवरत क्रम [को०]।

अनुक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] उडीसा के मंदिरों से पुजारियों को देवोत्तर संपत्ति में से दी जानेवाली वृत्ति [को०]।

अनुख्याता—संज्ञा पुं० [सं० अनुख्यातृ] अनुसंधान करनेवाला। पता लगानेवाला [को०]।

अनुख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुसंधान। पता लगाना [को०]।

अनुगंतव्य—संज्ञा पुं० [सं० अनुगन्तव्य] १ अनुगमन किए जाने के योग्य। जैसे—मृत पति के साथ पत्नी का सहमरण। २ अनुकरण किए जाने योग्य। ३ अनुसंधान करने योग्य। जिसे खोजा जाय [को०]।

अनुग[1]—वि०[सं०] पीछे चलनेवाला। अनुगामी। अनुयायी। पैरोकार उ०—वन में अगज अनुग, अनुज ही अग्रणी।—साकेत, पृ० १३४।

अनुग[2]—संज्ञा पुं० सेवक। नौकर। चाकर। अनुचर। उ०—उतरि अनुज अनुगनि समेत प्रभु गुरु द्विजगन चरननि सिर नायो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४०२।

अनुगत[1]—वि० [सं०] १ पीछे पीछे चलनेवाला। अनुगामी। अनुयायी उ०—चिर अनुगत सौंदर्य के समादर में।—लहर, पृ० ६५। २ अनुकूल। मुआफिक। जैसे,—नियमानुगत कार्य होना उत्तम है (शब्द०)।

अनुगत[2]—संज्ञा पुं० १ सेवक। अनुचर। नौकर। २ संगीत में मध्यम लय या समय (को०)।

अनुगतार्थ—वि० [सं०] प्रायः समान अर्थवाला। करीब करीब मिलते जुलते अर्थ का।

अनुगत—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अनुगमन। अनुसरण। पीछे पीछे चलना। २ अनुकरण। नकल। ३ अंतिम दशा। मरण।

अनुगतिक—वि०[सं०]अनुसरण करनेवाला। नकल करनेवाला [को०]।

अनुगम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुगमन' [को०]।

अनुगमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ पीछे चलना। अनुसरण। २ समान आचरण। ३ विधवा का मृत पति के शव के साथ जल मरना। ४ सहवास। संभोग। ५ स्वीकरण। स्वीकार। मानना [को०]।

अनुगम्य—संज्ञा पुं०[सं०] वह व्यक्ति जिसका अनुगमन अथवा अनुकरण किया जाय [को०]।

अनुगर्जित[1]—वि० [सं०] गर्जन किया हुआ [को०]।

अनुगर्जित[2]—संज्ञा पुं० गरजने जैसी प्रतिध्वनि [को०]।

अनुगवीन—संज्ञा पुं० [सं०] ग्वाला। गोपालक [को०]।

अनुगांग—वि० [सं० अनुगाङ्ग] गंगा के किनारे का (देश०)।

अनुगादी—वि० [सं० अनुगादिन्] पुनरावृत्ति करनेवाला। दूसरे के शब्दों को दोहरानेवाला। प्रतिध्वनि करनेवाला [को०]।

अनुगामी—वि०[सं० अनुगामिन्][वि० स्त्री० अनुगामिनी]१ पश्चाद्वर्ती पीछे चलनेवाला। उ०—नहीं आप होते अनुगामी निरय के।—करुणा०, पृ० २२। २ समान आचरण करनेवाला। ३ आज्ञाकारी। हुक्म माननेवाला। उ०—मोहि जानिय आपन अनुगामी।—मानस, १।२८१। ४ सहवास या संभोग करनेवाला। ५ जैन सिद्धांत के अनुसार क्षयोपशमनिमित्त अवधिज्ञान के छह भेदों में प्रथम। यहाँ अनुगामी उसे कहा गया है जो दूसरे क्षेत्र या जन्म में भी जीव के साथ जाता है। उ०—'अनुगामी जो दूसरे क्षेत्र या जन्म में भी जीव के साथ जाता है'। हिंदु०स०, पृ० २४१।

अनुगामुक—वि० [सं०] पीछे चलने का अभ्यासी। सदा पीछे चलने वाला [को०]।

अनुगीत—संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद का नाम। दे० 'गीता'। २ गीत के बाद गाया हुआ गीत। उत्तरगीत [को०]।

अनुगीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ महाभारत के अश्वमेध पर्व के १६ से ९२ अध्याय तक का नाम [को०]।

अनुगीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आर्या छंद का एक भेद [को०]।

विशेष—इसके प्रथम चरण में २७ और द्वितीय चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं।

अनुगुण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक काव्यालंकार जिसमें किसी वस्तु के पूर्वगुण का दूसरी वस्तु के संसर्ग से बढ़ना दिखाया जाय। जैसे—मुक्तमाल तिय हास ते अधिक श्वेत ह्वै जाय।—(शब्द०)। २ स्वाभाविक विशेषता [को०]।

अनुगुण[2]—वि० १ समान गुणोंवाला। समान प्रकृतिवाला। २ अनुकूल। मनपसंद। ३ आज्ञाकारी [को०]।

अनुगुप्त—वि० [सं०] ढका हुआ। रक्षित। आवरण किया हुआ [को०]।

अनुगृह—संज्ञा पुं० [सं० अनुगृहम्] मकान के ऊपर की छत [को०]।

अनुगृहीत—वि० [सं०]१ जिसपर अनुग्रह किया गया हो। उपकृत। उ०—मैं अनुगृहीत हूँ और यहूँ क्या देवी।—साकेत,पृ०२४३। २ कृतज्ञ।

अनुगौन (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुगमन'। उ०—देखा देखी ब्रजहु सब कीनो ता अनुगौन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २२०।

अनुग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूसरे का दुःख दूर करने की इच्छा। उ०—कृपा अनुग्रह अंगु अघाई।—मानस, २।२९९।२ कृपा। दया। अनुकंपा। उ०—करौ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन।—मानस, १।१। ३ अनिष्ट निवारण। उ०—मकर दीन दयाल अब, येहि पर होहु कृपाल। नाप अनुग्रह होइ जेहि, नाथ थोरेही काल। मानस—७।१०८। ४. राज्य या

राजा की कृपा से प्राप्त सहायता। सरकारी रियायत। ५ पृष्ठ भाग का रक्षक [को०]।

अनुग्रही—वि० [सं० अनुग्रहिन्] जादूगरी में पटु। बाजीगरी में निपुण [को०]।

अनुग्रासक—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रास। कौर। नेवाला [को०]।

अनुग्राहक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनुग्राहिका] अनुग्रह करनेवाला। कृपालु। सहायक। उपकारी।

अनुग्राही—वि० [सं० अनुग्राहिन्] दे० 'अनुग्राहक'।

अनुग्राह्य—वि० [सं०] कृपा का पात्र। अनुग्रह के योग्य [को०]।

अनुघटन—संज्ञा पुं० [सं०] आपस में जोड़ना। मिलाना। संबंध स्थापित करना [को०]।

अनुघात—संज्ञा पुं० [सं०] नाश। संहार।

अनुघातन—वि० [सं०] मार डालने या नाश करनेवाला। उ०—अघ अरिष्ट धेनुक अनुघातन।—सूर, १०।६८१।

अनुच(प)—वि० [सं० अनुच्च] जो ऊँचा या श्रेष्ठ न हो। अश्रेष्ठ। निम्न। नीच। उ०—इहि विधि उच्च अनुच तन धरि धरि देस बिदेस बिचरतौ।—सूर०, १।२०३।

अनुचर—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० स्त्री० अनुचरा, अनुचरी] १ पीछे चलनेवाला दास। नौकर। उ०—अपनी आवश्यकता का अनुचर बन गया।—करुणा०, पृ० २६। २ सहचर। साथी। उ०—सामने था शैशव से अनुचर मानिक युवक अब।—लहर, पृ०७२।

अनुचारक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक। परिचारक। अनुगामी [को०]।

अनुचारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेविका। दासी [को०]।

अनुचारी—वि० [सं०] दे० 'अनुचर'। उ०—तात, भरत, शत्रुघ्न, माडवी हम सब उनके अनुचारी।—साकेत, पृ० ३८१।

अनुचिंतन—संज्ञा पुं० [सं० अनुचिन्तन] १ विचार। गौर। २ भूली हुई बात को मन में लाना। ३ लगातार चिंतन। चिंता (को०)।

अनुचित—वि० [सं०] १ अयोग्य। अयुक्त। अकर्तव्य। नामुनासिब। बुरा। खराब। उ०—जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल।—मानस, १।२७७। २ पंक्तिबद्ध किया हुआ (को०)।

अनुचिष्ट(प)—वि० [सं० अनुच्छिष्ट] दे० 'अनुच्छिष्ट'। उ०—करुणामृत सुकवित्त युक्ति अनुचिष्ट उचारी।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ५३१८।

अनुच्छित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूर्णतः पृथक् न होना। २ पूर्णतः नष्ट न होना। ३ अनश्वरता [को०]।

अनुच्छिष्ट—वि० [सं०] जो जूठा या व्यवहृत न हो। शुद्ध। निर्दोष। ग्रहण करने योग्य [को०]।

अनुच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अनुच्छित्ति'। २ नियम, अधिनियम आदि का वह अंश जिसमें एक बात का विशद विवरण हो। जैसे राष्ट्रपति के घोषणापत्र की ७ वीं धारा का दूसरा अनुच्छेद। ३ किसी रचना या ग्रंथ के एक प्रकरण के वे छोटे छोटे अंश जिनमें संबद्ध विषय के एक एक अंग का विवेचन होता है। पैराग्राफ।

अनुछिन(प)—वि० [सं० अनुक्षण] क्षण क्षण। प्रत्येक क्षण। लगातार। उ०—'हरीचंद' ते महामूढ़ जे इनहिं न अनुछिन ध्यावैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८०।

अनुज[1]—वि० [सं०] जो पीछे उत्पन्न हुआ हो। उ०—वन में अग्रज अनुज, अनुज ही अग्रणी।—साकेत, पृ० १३४।

अनुज[2]—संज्ञा पुं० १ छोटा भाई। उ०—राम देखावहिं अनुजहि रचना।—मानस, १।२२५। २ एक पौधा। स्थलपद्म।

अनुजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० अनुजन्मन] दे० 'अनुज' [को०]।

अनुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी बहन। उ०—कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौ, अनुजा तनुजा॥—मानस,७।१०२।

अनुजात—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अनुजाता] दे० 'अनुज' [को०]।

अनुजीवी[1]—वि० [सं० अनुजीविन्] [वि० स्त्री० अनुजीविनी] सहारे पर जीनेवाला। आश्रित।

अनुजीवी[2]—संज्ञा पुं० सेवक। दास।

अनुजीव्य—वि० [सं०] सेवा का पात्र। सेव्य। जैसे,—गुरु, स्वामी, माता पिता आदि। २ रहन सहन या आचार व्यवहार में अनुकरणीय। जैसे,—गुरुजन, आचार्य, वयोवृद्ध आदि [को०]।

अनुज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुज्ञापन' [को०]।

अनुज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आज्ञा। हुक्म। अनुमति। इजाजत। उ०—माँग अनुज्ञा उनसे मैंने उस उपवन के फल खाए।—साकेत, पृ० ३८६। २ एक काव्यालंकार जिसमें दूषित वस्तु में कोई गुण देखकर उसके पाने की इच्छा का वर्णन किया जाय। जैसे,—चाहति है हम और कहा सखि, क्यों हूँ कहूँ पिय देखन पावै। चेरियै सो जु गुपाल रचे तौ चलौ री सबै मिलि चेरि कहावैं।—रसखान (शब्द०)। ३ विवाह के प्रसंग में वाग्दान (को०)। ४ अनुताप। पश्चात्ताप (को०)। ५ अनुरोध (को०)। ६ सद्व्यवहार। अनुग्रह (को०)।

अनुज्ञात—वि० [सं०] जिसे अनुमति प्राप्त हो। आदेशप्राप्त। २ स्वीकृत। सम्मानित। अनुगृहीत। ३ अधिकृत। जिसे कोई अधिकार मिला हो। ४ पृथक् किया हुआ। ५ पढ़ाया हुआ। निष्णात [को०]।

अनुज्ञातक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] सरकार की ओर से दिया हुआ कुछ वस्तुओं को बेचने का ठेका [को०]।

अनुज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अनुज्ञा'। २ प्रस्थान के लिये स्वीकृति। ३ क्षमा। त्रुटि के लिये अनुग्रह (को०)।

अनुज्ञापक—वि० [सं०] आज्ञा या आदेश देनेवाला [को०]।

अनुज्ञापन—संज्ञा पुं० [सं०] १ आज्ञा देना। हुक्म देना। २ जताना। बतलाना।

अनुज्येष्ठ—वि० [सं०] १ ज्येष्ठतम से कनिष्ठ। सबसे बड़े से छोटा। द्वितीय। २ वरीयता के क्रम में दूसरा [को०]।

अनुतप्त—वि० [सं०] १ तपा हुआ। गरम। २ दुखी। खेदयुक्त। रंजीदा।

अनुतर—संज्ञा पुं० [सं०] १ पार जाना। दूसरे छोर पर जाना। २ नराई में तानना। ३ नदी पार करने का किराया [को०]।

अनुतर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्यास। पीने की इच्छा। २ अभिलाषा। आकाक्षा। ३ मदिरापान। ४ पीने का पात्र। चषक। ५ मदिरा [को०]।

अनुतर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ मदिरापान। २ मदिरा पीने का पात्र [को०]।

अनुताप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुतप्त] १ तपन। दाह। जलन। २. दुख। खेद। रज। ३ पछतावा। अफसोस।

अनुतापन—वि० [सं०] दुख देनेवाला। पश्चात्ताप उत्पन्न करनेवाला। शोकप्रद [को०]।

अनुतापी—वि० [सं० अनुतापिन्] पश्चात्ताप करनेवाला। खेदयुक्त [को०]।

अनुत्क—वि० [सं०] [स्त्री० अनुत्का] उत्कठारहित। अनुत्सुक। अभिलाषारहित। बिना लालसा का।

अनुत्कट—वि० [सं०] छोटा। सूक्ष्म [को०]।

अनुत्त—वि० [सं०] १ जो तर या भीगा न हो। सूखा २ अप्रेरित [को०]।

अनुत्तम[1]—वि० [सं०] १ जिससे उत्तम दूसरा न हो। सर्वोत्तम। २ जो सबसे अच्छा न हो। सर्वोत्तम नही। घटिया [को०]।

अनुत्तम[2]—संज्ञा पुं० १ शिव। २ विष्णु [को०]।

अनुत्तमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] घटियापन। बुराई। उ०—सुख से मन को है जो ममता, है उसमे छिपी अनुत्तमता।—सागरिका, पृ० ७२।

अनुत्तर[1]—वि० [सं०] १ निरुत्तर। लाजवाब। कायल। उ०—यहाँ से एक जिज्ञासा अनुत्तर जगेगी अनिमेष।—हरी घास०, पृ० ५०। २ प्रधान। मुख्य (को०)। ३ सर्वोत्तम (को०)। ४ दृढ। सलग्न (को०)। ५ जो उत्तरदिशा मे न हो। दक्षिणी (को०)। ६ क्षुद्र। नीच (को०)।

अनुत्तर[2]—संज्ञा पुं० १ जैन देवताओ का एक वर्ग। २ उत्तर का अभाव (को०)।

अनुत्तरदायी—वि० [सं० अनुत्तरदायिन्] कर्तव्य और जिम्मेदारी न रखनेवाला। अपना उत्तरदायित्व न समझनेवाला।

अनुत्तरित—वि० [सं०] उत्तरविहीन। उत्तररहित। उ०—पूछा तुम कहाँ छिपे ? प्रश्न रहा अनुत्तरित।—अपलक, पृ० ४८।

अनुत्तान—वि० [सं०] जो उत्तान न हो। पीठ के बल नहीं। छाती के बल लेटा हुआ। चित्त नही। पट [को०]।

अनुत्ताप—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धो के अनुसार दस क्लेशो मे से एक।

अनुत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुत्थित] उत्थान का अभाव। चेष्टा या श्रम का न होना [को०]।

अनुत्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उत्पत्ति का अभाव। २. विफलता। असमर्थता [को०]।

अनुत्पत्तिक—वि० [सं०] जो अब तक उत्पन्न न हुआ हो [को०]।

अनुत्पत्तिसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय मे जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदो मे से एक।

विशेष—यदि किसी वस्तु के प्रसग मे कोई हेतु कहा जाय और उत्तर मे उसी के प्रसग मे यह कहा जाय कि जब तक उस वस्तु की उत्पत्ति ही नही हुई, तब तक वह कहा हुआ हेतु कहाँ रहेगा ? तो ऐसे उत्तर को अनुत्पत्तिसम कहेंगे। जैसे,-यदि वादी कहे—'शब्द अनित्य है क्योकि प्रयत्न मे उत्पन्न होता है।' इसपर प्रतिवादी कहे—'यदि शब्द प्रयत्न से उत्पन्न होता है तो प्रयत्न से पहले इसकी उत्पत्ति नही होगी। और जब शब्द उत्पन्न ही नही हुआ, तब प्रयत्न से उत्पन्न होने का गुण कहाँ पर रहेगा ? जब इस गुण का आधार ही नहीं रहा, तब वह अनित्यत्व का साधन कैसे कर सकता है ?

अनुत्पन्न—वि० [सं०] जो उत्पन्न न हुआ हो। जो जन्मा न हो। जो उत्पन्न न किया गया हो [को०]।

अनुत्पाद—संज्ञा पुं० [सं०] उत्पत्ति का न होना। अस्तित्व मे न आना [को०]।

अनुत्पादक—वि० [सं०] उत्पन्न करने मे असमर्थ। जिससे उत्पन्न न हो [को०]।

अनुत्पादन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुत्पाद' [को०]।

अनुत्साह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सकल्प और प्रयत्न का अभाव। उ०—है शीतलता भी और दाह, उत्साह तथा है अनुत्साह।—सागरिका, पृ० ७७।

अनुत्साह[2]—वि० १ दृढता या क्षमता से रहित। २ उदासीन। उत्साहहीन [को०]।

अनुत्सुक—वि० [सं०] जो उत्सुक न हो। सामान्य। शात। उत्कंठा न दिखानेवाला [को०]।

अनुत्सूत्र—वि० [सं०] १ सूत्रो का अनुगामी। २ नियमो या नीति के अनुसार चलनेवाला [को०]।

अनुत्सेक—संज्ञा पुं० [सं०] १ गर्व का न होना। घमड न होना। २. शालीनता [को०]।

अनुत्सेकी—वि० [सं० अनुत्सेकिन्] जो उत्तेजित न हो। घमड-रहित [को०]।

अनुदक—वि० [सं०] १ जलशून्य। जल के अभाववाला (जैसे, मरुस्थल)। २ थोडे जलवाला। अल्प जलवाला। ३ जिसे कोई पानी देनेवाला न हो [को०]।

अनुदग्र—वि० [सं०] १ जो ऊँचा न हो। नीचा। २ मुलायम। ३ कोमल। दुर्बल। ४ जिसमे तेजी या धार न हो (को०)।

अनुदत्त—वि० [सं०] १ लौटाया हुआ। वापस किया हुआ। २ स्वीकार किया हुआ। ३ क्षमा किया हुआ [को०]।

अनुदर—वि० [सं०][वि० स्त्री० अनुदरा] कृशोदर। दुबला। पतला।

अनुदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १ निरीक्षण। पर्यवेक्षण। २ स्वीकार आदर [को०]।

अनुदात्त—वि० [सं०] १ छोटा। तुच्छ। जो उच्चाशय न हो। २ नीचा (स्वर)। लघु (उच्चारण)। स्वर के तीन भेदों मे से एक। वह स्वर जिसपर बलाघात न हो।

अनुदान—संज्ञा पुं० [सं० अनुदान] १ किसी कार्य के लिये कुछ प्रतिबंधो के साथ दी जानेवाली सरकारी सहायता। सरकारी विभागो द्वारा व्यय होने के लिये स्वीकृत धनराशि। २ लौटाना। प्रत्यावर्तन [को०]।

अनुदार—वि० [सं०] १ सूम। कजूस। २ संकुचित हृदयवाला। संकीर्ण विचारवाला। ३ अत्यंत उदार। महान्। ४ जिसकी दारा या पत्नी भली और अनुगमन करनेवाली हो [को०]।

अनुदित—वि० [सं०] अकथित। जो कहा न गया हो। २ जो उदित न हुआ हो। जो सामने न आया हो। ३ न कहने योग्य। निंदनीय [को०]।

अनुदिन—क्रि० वि० [सं०] नित्यप्रति। प्रतिदिन। रोजमर्रा। उ०—तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिन पावहीं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६३।

अनुदिवस—क्रि० वि० [सं०] दे० 'अनुदिन' [को०]।

अनुदृष्टि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपादृष्टि। अनुकूल दृष्टि। [को०]।

अनुदृष्टि[2]—वि० कृपादृष्टि रखनेवाला। अनुकूल दृष्टि रखनेवाला [को०]।

अनुद्धत—वि० [सं०] १ जो उद्धत न हो। अनुग्र। २ सौम्य। शांत। ३ विनीत।

अनुद्धरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ न हटाना। २ स्थापना न करना। प्रमाणित न करना [को०]।

अनुद्धर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] उद्वेग का अभाव। शांति।

अनुद्धार—संज्ञा पुं० [सं०] १ बँटवारा न करना या अपना भाग न लेना। २ दे० 'अनुद्धरण' [को०]।

अनुद्धृत—वि० [सं०] १ बिना बँटा। अविभक्त। २ न हटाया हुआ। ३ अनष्ट। अक्षत। दुरुस्त। ४ अप्रमाणित। जिसकी स्थापना न की गई हो [को०]।

अनुद्भट—वि० [सं०] मृदु स्वभाववाला। अधृष्ट। २ सौम्य। अहंकारशून्य। निरभिमानी [को०]।

अनुद्यत—वि० [सं०] अतत्पर। सुस्त। काहिल। अकर्मण्य [को०]।

अनुद्यम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] उद्योग या उद्यम का अभाव [को०]।

अनुद्यम[2]—वि० उद्योग या श्रम न करनेवाला। अनुद्यमी [को०]।

अनुद्यमी—वि० [सं० अनुद्यमिन्] उद्यमरहित। आलसी। सुस्त। अलहदी।

अनुद्यूत—संज्ञा पुं० [सं०] १ लगातार जुआ खेलना। २ महाभारत के सभापर्व के अध्याय ७० से ७९ तक का नाम [को०]।

अनुद्योग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आलस्य। सुस्ती। अकर्मण्यता [को०]।

अनुद्योग[2]—वि० अनुद्योगी। अकर्मण्य [को०]।

अनुद्योगी—वि० [सं० अनुद्योगिन्] आलसी। निष्क्रिय। अकर्मण्य। सुस्त [को०]।

अनुद्रुत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल का एक भेद। द्रुत का आधा और मात्रा का एक चौथाई समय।

अनुद्रुत[2]—वि० जिसका पीछा किया गया हो। अनुगमित। अनुधावित [को०]।

अनुद्वाह—संज्ञा पुं० [सं०] अविवाह ब्रह्मचर्य। अविवाहित रहना [को०]।

अनुद्विग्न—वि० [सं०] निश्चिंत। शांत। चितामुक्त। आशंकारहित [को०]।

अनुद्वेग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आशंका का अभाव। भय से मुक्ति या सुरक्षा [को०]।

अनुद्वेग[2]—वि० उद्वेगरहित। अनुद्विग्न [को०]।

अनुधावन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुधावक, अनुधावित, अनुधावी] १. पीछे चलना। अनुसरण। २ अनुकरण। नकल। ३ अनुसंधान। खोज। ४ बार बार बुद्धि दौड़ाना। विचार। चिंतन। ५. शुद्ध करना। सफाई (को०)।

अनुधूपित—वि० [सं०] फूला हुआ। गर्वित। अभिमानी [को०]।

अनुध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी विषय का चिंतन। ध्यान। २. स्मरण। विचारणा। ३ शुभचिंतन [को०]।

अनुध्यायी—वि० [सं० अनुध्यायिन्] १ चिंतन करनेवाला। ध्यान में स्थित होनेवाला। २ खोया हुआ। अन्यमनस्क [को०]।

अनुध्येय—वि० [सं०] जिसका शुभ चिंतन किया जाय। जिसके प्रति अनुराग हो [को०]।

अनुध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतिध्वनि। गूँज। उ०—अंबर से टकराकर अनुध्वनि आ गई त्वरित।—अपलक, पृ० ४७।

अनुनत—वि० [सं० अनु + नत] विनीत। अनुशासित। शीलयुक्त। उ०—चिर अनुनत सौंदर्य के समादर में गुर्जरेश मेरी उन इंगितों में नाच उठे।—लहर, पृ० ७१।

अनुनय—संज्ञा पुं० [सं०] १ विनय। विनती। प्रार्थना। उ०—अनुनय भरी वाणी गूँज उठी कान में।—लहर, पृ० ७१। २ मानना।

अनुनयमान—वि० [सं०] विनयशील। शिष्ट। संराधन करनेवाला। (को०)।

अनुनयी—वि० [अनुनयिन्] विनीत। नम्र। विनयी [को०]।

अनुनाद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुनादित] प्रतिध्वनि। गूँज। गुंजार।

अनुनादित—वि० [सं०] प्रतिध्वनित। जिसका अनुनाद या गूँज हुई हो।

अनुनादी—वि० [सं० अनुनादिन्] प्रतिध्वनि करनेवाला। आवाज करनेवाला। गुंजायमान [को०]।

अनुनायक—वि० [सं०] संकोची। विनम्र [को०]।

अनुनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुख्य नायिका की सहचरी। जैसे,—सखी, दासी, परिचारिका आदि।

अनुनासिक[1]—वि० [सं०] जो (अक्षर) मुँह और नाक से बोला जाय।

अनुनासिक[2]—संज्ञा पुं० १ मुख और नासिका के योग से उच्चरित वर्ण जैसे,—ङ, ञ, ण, न, म और अनुस्वार। २ नाक से बोली जानेवाली ध्वनि।

अनुनीत—वि० [सं०] १. मर्यादित। अनुशासित। [को०]। २. गृहीत (को०)। ३. प्रतिष्ठित। पूजित (को०)। ४ संतुष्ट। संराधित (को०)। ५. विनयपूर्वक सत्कृत। उ०—किंचित् अनुनीत स्वर में हरिप्रसन्न ने कहा।—सुनीता, पृ० ३२४।

अनुनीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुनय' [को०]।

अनुनीय—वि० [सं०] १. अनुनययोग्य। संराधन के योग्य [को०]।

अनुनेय—वि० [सं०] दे० 'अनुनीय' [को०]।

अनुन्नत—वि० [सं०] जो ऊँचा न हो। जो उभरा न हो (नीचा)। जो ऊपर उठा न गया हो। जिनकी उन्नति न हुई हो [को०]।

अनुन्नतगात्र—वि० [सं०] अविकसित या अल्प विकसित अंगोंवाला। अपुष्ट अंगोंवाला [को०]।

अनुन्नतानत—वि० [स०] समतल [कौ०]।

अनन्मत्त—वि० [स०] जो मतवाला या पागल न हो [कौ०]।

अनुन्मदित—वि० [स०] दे० 'अनुन्मत्त' [कौ०]।

अनुन्माद[1]—सज्ञा पुं० [स०] पागलपन का न होना। उन्माद का अभाव [कौ०]।

अनुन्माद[2]—वि० दे० 'अनुन्मत्त' [कौ०]।

अनुप(पु)†—वि० [स० अनुपम] बेजोड। उपमारहित। उ०—सकल सत्त दासी अनुप। नृप इद्रावति अप्पि।—पृ० रा०, ३३।७८।

अनुपकार—सज्ञा पुं० [स०][वि० अनुपकारक, अनुपकारी]१ उपकार का अभाव। २ अपकार। हानि।

अनुपकारी—वि० [सं०] १ उपकार न करनेवाला। अकृतज्ञ। अपकार करनेवाला। हानि पहुँचानेवाला। २ फजूल। निकम्मा।

अनुपकारीमित्र—सज्ञा पु० [स०] शत्रु राजा का मित्र।

अनुपक्षित—वि० [स०] न छीजनेवाला। क्षीण न होनेवाला [कौ०]।

अनुपगत—वि० [स०] दूर का।

अनुपगीत—वि० [सं०] जिसकी प्रशसा न की गई हो। अप्रशसित [कौ०]।

अनुपजीवनीय—वि० [स०] जिससे जीवननिर्वाह के लिये पर्याप्त प्राप्ति न हो सके। २ जिसके पास जीवननिर्वाह का साधन न हो। साधनहीन [कौ०]।

अनुपतन—सज्ञा पुं० [स०] १. गिरना। क्रमश गिरना। एक के बाद दूसरे का पतन। २ पीछा करना। अनुसरण। ३. निश्चित क्रम मे आगे बढना। ४ अनुपात। ५ गणित का त्रैराशिक नियम [कौ०]।

अनुपद[1]—क्रि० वि० [सं०] १ पीछे पीछे। कदम ब कदम। उ०—वधू उर्मिला अनुपद थी, देख गिरा भी गद्गद् थी।—साकेत, पृ० ८४। २ अनतर। बाद ही।

अनुपद[2]—वि० पीछे पीछे चलनेवाला। कदम ब कदम पीछे चलनेवाला। पदानुसरण करनेवाला [कौ०]।

अनुपद[3]—सज्ञा १. गीत मे बार बार दोहराया जानेवाला पद। टेक। २ शब्दश व्याख्या [कौ०]।

अनुपदवी—सज्ञा स्त्री० [सं०] पथ। मार्ग। सडक [कौ०]।

अनुपदिक—वि० [सं०] १ पीछे चलनेवाला। पदानुसरण करनेवाला पीछे गया हुआ [कौ०]।

अनुपदी—वि० [पुं० अनुपदिन्] पीछा करनेवाला। खोज करनेवाला। अन्वेषक। पता लगानेवाला [कौ०]।

अनुपदीना—सज्ञा स्त्री० [सं०] जूता। मोजरी। पूरे पैर की लबाई का जूता।

अनुपधा—सज्ञा स्त्री० [स०] वचकता।

अनुपधि—वि०[स०]निश्छल। निष्कपट। धोखा धडी से रहित [कौ०]।

अनुपनीत—वि०[स०] १ अप्राप्त। न लाया हुआ। २ जिसका उपनयन सस्कार न हुआ हो।

अनुपन्यस्त—वि० [सं०] यज्ञ जिसका न्यास या स्थापन विधिपूर्वक न हुआ हो [कौ०]।

अनुपन्यास—संज्ञा पुं० [स०] [वि० अनुपन्यस्त] १ प्रमाण या निश्चय का अभाव। असमाधान। २ सदेह। अनिश्चय [कौ०]।

अनुपपत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ उपपत्ति का अभाव। २ असमाधान। असगति। ३ असिद्धि। ४ अप्राप्ति। ५ असपन्नता। असमर्थता।

अनुपपन्न—वि० [स०] १ अप्रतिपादित। २ जो साबित न हुआ हो। ३ अयुक्त। ४ असभव (कौ०)। ५ जो सही ढग से समर्थित न हो (कौ०)।

अनुपम—वि० [स०] उपमारहित। बेजोड। जिसकी टक्कर का दूसरा न हो। बेमिसाल। बेनजीर। उ०—अनुपम शोभाधाम आभूषण ये तारका।—कानन०, पृ० ६७।

अनुपमता—सज्ञा स्त्री० [स०] अनुपम होना। उपमा का अभाव। बेजोडपन।

अनुपमर्दन—सज्ञा पुं० [स०] अभियोग या आरोग का खडन न किया जाना [कौ०]।

अनुपमा—सज्ञा स्त्री० [स०] दक्षिण-पश्चिम दिशा के गज। कुमुद की पत्नी [कौ०]।

अनुपमित—वि० [स०] दे० 'अनुपम' [कौ०]।

अनुपमेय—वि० [स०] दे० 'अनुपमा'।

अनुपयुक्त—वि० [स] अयोग्य। बेठीक। बेढब।

अनुपयुक्तता—सज्ञा स्त्री० [स०] अयोग्यता। बेढबपन।

अनुपयोग—सज्ञा पु० [स०] १ व्यवहार का अभाव। काम मे न लाना। २ दुर्व्यवहार।

अपनुपयोगिता—सज्ञा स्त्री० [स०] उपयोगिता का अभाव। निरर्थकता।

अनुपयोगी—वि० [स० अनुपयोगिन्] [सज्ञा अनुपयोगिता] बेकाम। व्यर्थ का। बेमतलब का। बेमसरफ।

अनुपरत—वि० [स०] १ जो मृत न हो। २ बेरोक। अबाधित [कौ०]।

अनुपलभ—सज्ञा पु० [अनुपलम्भ] ज्ञान का अभाव। जानकारी न होना [कौ०]।

अनुपल—वि० [स०] प्रतिक्षण। हर समय। हर घडी। उ०—वह प्रजा से अनुपल मिलने को सन्नद्ध रहता था।—आदि० भारत, पृ० २५७।

अनुपलब्ध—वि० [स०] १ अप्राप्त। न मिला हुआ। २ अनदेखा। अकल्पित। अज्ञात (कौ०)।

अनुपलब्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अनुपलब्ध] १ अप्राप्ति। न मिलना। २ कल्पना या ज्ञान का अभाव (कौ०)।

अनुपलब्धिसम—सज्ञा पुं० [स०] न्याय मे जाति के चौबीस भेदो मे से एक।

विशेष—यदि वादी किसी बात के न पाए जाने के आधार पर कोई बात सिद्ध करना चाहता है, और उसके उत्तर मे प्रतिवादी किसी और बात के न पाए जाने के आधार पर उसके विपरीत बात सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, तो ऐसे उत्तर को अनुपलब्धिसम कहते हैं।

अनुपवीती—वि० [सं० अनुपवीतिन्] यज्ञोपवीत धारण न करने वाला [कौ०]।

अनुपशय—संज्ञा पुं० [सं०] रोगज्ञान के पाँच विधानों में से एक।
विशेष—इसमें आहार विहार के बुरे फल को देखकर यह निश्चय किया जाता है कि रोगी को अमुक रोग है। वि० दे० 'उपशय'।

अनुपस्कृत—वि० [सं०] १ अपरिष्कृत। जिसपर पालिश न की गई हो। २ शुद्ध। निष्कलुष। ३ जो पकाया न गया हो। ४ जिसके संबंध में मन में कोई भ्रम न हो [को०]।

अनुपस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] अनुपस्थिति [को०]।

अनुपस्थित—वि० [सं०] जो सामने न हो। जो मौजूद न हो। अविद्यमान। गैरहाजिर।

अनुपस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अविद्यमानता। गैरमौजूदगी। गैरहाजिरी। उ०—प्रत्युत्तर की अनुपस्थिति में हाय भी पादपूर्ति सा होता है दुष्काव्य में।—महाराणा०, पृ० १४।

अनुपहत—वि० [सं०] १ अव्यवहृत। कोरा। नया (वस्त्र)। २ जो टूटा न हो। अक्षत [को०]।

अनुपाख्य—वि० [सं०] जो साफ देखा या जाना न जाय। जिसका केवल अनुमान किया जाय। अनुमेय [को०]।

अनुपात—संज्ञा पुं० [सं०] १ गणित की त्रैराशिक क्रिया। २ दी हुई तीन संख्याओं में चौथी को जानना। ३ अनुमरण। पीछा करना (को०)। ३ एक के बाद दूसरे का पतन। लगातार गिरना (को०)।

अनुपातक—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्महत्या के समान पाप जैसे, चोरी, झूठ बोलना, परस्त्रीगमन इत्यादि।

अनुपादक—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार आकाश से भी सूक्ष्म एक तत्व।

अनुपान—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जो औषध के साथ या उसके ऊपर से खाई जाय।

अनुपानत्क—वि० [सं०] पदत्राण से रहित। नंगे पैर [को०]।

अनुपानीय[1]—वि० [सं०] औषधि के साथ लिया जानेवाला पेय [को०]।

अनुपानीय[2]—संज्ञा पुं० बाद में पी जानेवाली वस्तु [को०]।

अनुपाय—वि० [सं०] निरुपाय। उ०—राज्य सग तुम्हें कहाँ से हाय। दे सकूँगा आर्य को अनुपाय।—साकेत, पृ० १९९।

अनुपायी—वि० [सं० अनुपायिन्] साधन का उपयोग न करनेवाला। उपाय न करनेवाला [को०]।

अनुपार्श्व—वि० [सं०] पार्श्ववर्ती। बगलगीर [को०]।

अनुपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ अश्वादि पशुओं का रक्षक। रखवाला [को०]।

अनुपालक—वि० [सं०] १ रक्षा करनेवाला। २ माननेवाला [को०]।

अनुपालन—संज्ञा पुं० [सं०] १ रक्षण। २ पालन [को०]।

अनुपाश्रयाभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो बसनेवालों के अतिरिक्त और दूसरों को आश्रय देने में असमर्थ हो अर्थात् जिसमें और लोगों के बसने की गुंजाइश न हो।

अनुपासन—संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान का अभाव। उपेक्षा [को०]।

अनुपासित—वि० [सं०] उपेक्षित। जिसपर ध्यान न दिया जाय [को०]।

अनुपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वकथित व्यक्ति। २ अनुगामी। अनुयायी [को०]।

अनुपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की नरकुल [को०]।

अनुपूर्व—वि० [सं०] यथाक्रम। अनुक्रमिक। सिलसिलेवार।

अनुपूर्वकेश—वि० [सं०] सुव्यवस्थित केशोंवाला [को०]।

अनुपूर्वगात्र—वि० [सं०] सुडौल अंगोंवाला [को०]।

अनुपूर्वदंष्ट्र—वि० [सं०] सुंदर दंतपंक्तियोंवाला [को०]।

अनुपूर्वनाभि—वि० [सं०] सुंदर नाभिवाला [को०]।

अनुपूर्वपाणिलेख—वि० [सं०] जिसके हाथ की रेखाएँ सुस्पष्ट तथा व्यवस्थित हों [को०]।

अनुपूर्ववत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नियमित समय पर बच्चा देनेवाली गाय [को०]।

अनुपूर्व्य—वि० [सं०] व्यवस्थित। क्रमबद्ध [को०]।

अनुपेत—वि० [सं०] १ जो शिक्षा या दीक्षा के लिये गुरु के यहाँ भरती न हुआ हो। अदीक्षित। २ जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो। अनुपनीत (को०)।

अनुप्त—वि० [सं०] जो बोया न गया हो। बिना बोया हुआ।

अनुप्तशस्य—वि० [सं०] बिना बोया। परती [को०]।

अनुप्रज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] अन्वेषण करना। पता लगाना। खोज करना [को०]।

अनुप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट। उपहार। दान। २ वृद्धि। बढ़ोतरी [को०]।

अनुप्रवण—वि० [सं०] अनुकूल। भानेवाला। मनपसंद [को०]।

अनुप्रवाद—संज्ञा पुं० [सं०] किंवदंती। अफवाह [को०]।

अनुप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रवेश करना। भीतर जाना। २ अपने अवसर के अनुकूल बनाना। ३ अनुकरण [को०]।

अनुप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] संबंधित प्रश्न। प्रसंगानुकूल जिज्ञासा [को०]।

अनुप्रसक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रगाढ प्रेम। गहरी आसक्ति। २ तर्कशास्त्र के अनुसार शब्दों का निकट संबंध [को०]।

अनुप्रस्थ—वि० [सं०] चौड़ाई के अनुसार [को०]।

अनुप्राणन—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राण संचारण। २ प्रेरणा। स्फुरण [को०]।

अनुप्राणित—वि० [सं०] प्राणवान्। सजीव। प्रेरित। उ०—"भगवद्गीता भी जायसवाल जी के कथनानुसार मनुस्मृतिवाले आदर्शों से ही अनुप्राणित है"।—मा० इ० रू०, पृ० ७२६।

अनुप्राशन—संज्ञा पुं० [सं०] खाना। भक्षण। उ०—कछु दिन पवन कियो अनुप्राशन रोक्यो श्वास यह जानी।—सूर (शब्द०)।
क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

अनुप्रास—संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्दालंकार जिसमें किसी पद में एक ही अक्षर बार बार आकर उस पद की अधिक शोभा का कारण होता है। वर्णवृत्ति। वर्णसाम्य। वर्णमैत्री। जैसे—काक कहहिं कलकंठ कठोरा।—तुलसी (शब्द०)।
विशेष—इसके पाँच भेद हैं—छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, अंत्यानुप्रास और लाटानुप्रास।

अनुप्रेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नेत्र गड़ाकर देखना। ध्यान से देखना। २ ग्रंथ के अर्थ का मनन अर्थात् मन से अभ्यास। पठित विषय का एकाग्र चित्त से चिंतन।

अनुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनुबन्ध] १ बंधन। लगाव। २ अविच्छिन्न क्रम। आगापीछा। सिलसिला। जैसे—किसी कार्य को करने के पहले उसका आगापीछा सोच लेना चाहिए (शब्द०)। ३ वंशज। अनुवंश (को०)। ४ होनेवाला शुभ या अशुभ परिणाम। फल। ५ उद्देश्य। इरादा। कारण (को०)। ६ गौण वस्तु। पूरक। अप्रधान वस्तु (को०)। ७ वात पित्त और कफ में से जो अप्रधान हो। ८ वादविवाद या विषयवस्तु को जोड़नेवाली कड़ी। वेदांत का एक अनिवार्य तत्व या अधिकरण। ९ अपराध। त्रुटि (को०)। १० पारिवारिक बाधा, भार या स्नेह (को०)। ११ पिता या गुरु के पथ का अनुसरण करनेवाला बालक (को०)। १२ आरंभ। श्रीगणेश। १३ मार्ग। उपाय (को०)। १४ तुच्छ या नगण्य वस्तु (को०)। १५ मुख्य रोग के साथ उत्पन्न अन्य विकार (को०)। प्यास। तृषा (को०)। १६ अनुसरण। १७ करार। इकरारनामा। १८ पाणिनीय व्याकरण में धातु, प्रत्यय आदि का लोप होनेवाला वह उत्संजक सांकेतिक वर्ण जो गुण, वृद्धि प्रत्याहार आदि के लिये उपयोगी हो।

अनुबंधक—वि० [सं० अनुबन्धक] संबद्ध। संबंधित। २ अनुबंध करनेवाला (को०)।

अनुबंधन—संज्ञा पुं० [सं० अनुबन्धन] संबंध। अनुक्रम। सिलसिला। उ०—पूर्वापर प्रसंगों के अनुबंधन में व्रजविलास की कला द्रुतविलंबित गति से प्रवाहित होती है।—पोद्दार० अभि०, ग्रं०, पृ० ३४६।

अनुबंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुबन्धिका] जोड़ का दर्द (को०)।

अनुबंधी[1]—वि० [सं० अनुबन्धिन्] [वि० स्त्री० अनुबन्धिनी] १ संबंधी। लगाव रखनेवाला। २ फलस्वरूप। परिणामस्वरूप।

अनुबंधी[2]—संज्ञा स्त्री० १ हिचकी। २ प्यास।

अनुबद्ध—वि० [सं०] १ संबद्ध। लगाव रखनेवाला (को०)।

अनुबर्तन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुवर्त्तन'। उ०—प्रगटित पूरब दिसिहि को जहँ अनुबर्तन होत।—मतिराम ग्रं०, पृ० ४२८।

अनुबल—संज्ञा पुं० [सं०] पीछे रहकर रक्षा करनेवाली सेना (को०)।

अनुबाद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुवाद'। उ०—सुनत फिरौं हरि गुन अनुबादा।—मानस, ७।११०। २ जनश्रुति। अफवाह। उ०—ताहि तू बनाई जोई बाँह दै उमीमें सोई ऐसे अनुबादन के अनुबा घनेरे हैं।—गंग०, पृ० २६४।

अनुबोध—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्मरण या बोध जो पीछे हो। २ किसी वस्तु की हल्की हो गई सुगंध को पुन तीव्र करना। गंधोद्दीपन।

क्रि० प्र०—करना—होना।

अनुबोधन—संज्ञा पुं० [सं०] स्मरण करना या कराना (को०)।

अनुब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्राह्मण के समान ग्रंथ। जैसे, ऐतरेय ब्राह्मण से मिलता जुलता ग्रंथ। २ ब्राह्मण जैसा कार्य (को०)।

अनुभव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुभवी] १. प्रत्यक्ष ज्ञान। वह ज्ञान जो साक्षात् करने से प्राप्त हो। स्मृतिभिन्न ज्ञान। जैसे—सब जीव पीड़ा का अनुभव करते हैं (शब्द०)। २ परीक्षा द्वारा पाया हुआ ज्ञान। उपार्जित ज्ञान। तजरबा। जैसे,—उन्हें इस कार्य का अनुभव नहीं है (शब्द०)। ३ समझ। मन से प्राप्त ज्ञान (को०)। ४ परिणाम। फल (को०)।

अनभवना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुभव से नाम०] अनुभव करना। बोध करना। उ०—पुन्य फल अनुभवत सुतहि बिलोकि कै नंद घरनि।—सूर०, १०।१०६।

अनुभवी—वि० [सं० अनुभविन्] अनुभव रखनेवाला। जिसने देख सुनकर जानकारी प्राप्त की हो। तजरबेकार। जानकार।

अनुभाऊ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुभाव'। उ०—बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ।—मानस, २।२८८।

अनुभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रभाव। महिमा। बड़ाई। २ काव्य में रस के चार अंगों में से एक। वे गुण और क्रियाएँ जिनसे रस का बोध हो। चित्त का भावप्रकाश करनेवाला कटाक्ष, रोमांच आदि चेष्टाएँ।

विशेष—अनुभाव के चार भेद हैं—सात्विक, कायिक, मानसिक और आहार्य। हाव भी इन्हीं के अंतर्गत माना जाता है।

अनुभावक—वि० [सं०] प्रतीति या अनुभूति करानेवाला (को०)।

अनुभावन—संज्ञा पुं० [सं०] चेष्टा या भंगिमा द्वारा मन के भावों को प्रकट करना (को०)।

अनुभावित—वि० [सं०] १ अत्यधिक शक्तिसंपन्न। २ रक्षित। ३ अनुभवसंपन्न। अनुभवी (को०)।

अनुभावी—वि० [सं० अनुभाविन्] [वि० स्त्री० अनुभाविनी] १. जिसे अनुभव या संवेदना हो। साक्षात्कार कारक। २ वह साक्ष्य जिसने सब बातें खुद देखी सुनी हों। चश्मदीद गवाह। ३ मृतक के वे संबंधी जिन्हें उसके मरने का अशौच लगे या जो आयु आदि में उससे छोटे हों। ४ बाद में आनेवाला। बाद में होनेवाला (को०)। ५ भाव दिखानेवाला (को०)।

अनुभाषक—वि० [सं०] उत्तर में बोलनेवाला (को०)।

अनुभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ खंडन करने के लिये किसी स्थापना का पुन कथन। २ कथित वस्तु का पुन कथन। पुराख्यान। आवृत्ति। ३ वार्तालाप। कथोपकथन (को०)।

अनुभास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कौआ (को०)।

अनुभूत—वि० [सं०] १ जिसका अनुभव हुआ हो। जिसका साक्षात् ज्ञान हुआ हो। २ परीक्षित। तजरबा किया हुआ। आजमूदा।

यौ०—अनुभूतार्थ।

अनुभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुभव। परिज्ञान। आधुनिक न्याय के अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमिति उपमिति और शब्दबोध द्वारा प्राप्त ज्ञान। २ इंद्रियज ज्ञान या बोध। प्रत्यक्ष ज्ञान (को०)।

अनुभेद—संज्ञा पुं० [सं०] उपभेद। उ०—कौन बड़ो को छोट भेद अनुभेद न जानैं।—सूर०, १०।५८६।

अनुभोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जमीन जो किसी काम के बदले में माफी दी जाय। माफी। खिदमती। २ उपभोग।

अनुभौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुभव'। उ०—अनुभौ चँवर रैन दिन ढरिया।—केशव० अमी०, पृ० ५०।

अनुभ्राता—संज्ञा पुं० [सं० अनुभ्रातृ] कनिष्ठ भ्राता। छोटा भाई। अनुज [को०]।

अनुमंता—वि० [सं० अनुमन्तृ] अनुमति देनेवाला। स्वीकृति देनेवाला। चलते कार्य को होने देनेवाला [को०]।

अनुमत—वि० [सं०] १ अनुज्ञप्त। संमत। स्वीकृत। २ प्रिय। मनपसंद। ३ एकमत। एकराय। ४ प्रेमी [को०]।

अनुमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आज्ञा। अनुज्ञा। हुक्म। २ संमति। इजाजत। ३ वह पूर्णिमा जिसमें चंद्रमा की कला पूरी न हो। चतुर्दशी से युक्त पूर्णिमा।

अनुमतिपत्र—संज्ञा पुं० [सं० अनुमति+पत्र] किसी प्रतिबंधित कार्य के करने के लिये सरकारी आज्ञापत्र। जैसे, एक देश से दूसरे देश में जाने के लिये सरकारी आज्ञापत्र, पासपोर्ट या विसा [को०]।

अनुमत्त—वि० [सं०] आनंद के अतिरेक से उन्मत्त। खुशी के मारे पागल [को०]।

अनुमनन—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वीकृति देना। २ स्वतंत्रता [को०]।

अनुमरण—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चात् मरण। पति के साथ विधवा स्त्री का चितारोहण। सती होना [को०]।

अनुमरु—संज्ञा पुं० [सं०] मरुभूमि के बाद का देश [को०]।

अनुमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुमान। अनुमिति [को०]।

अनुमाता—वि० [सं० अनुमातृ] अनुमान लगानेवाला। निष्कर्ष निकालनेवाला [को०]।

अनुमात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृढ निश्चय। संकल्प [को०]।

अनुमान—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अनुमानित, अनुमित] १ अटकल अंदाजा २ विचार। भावना। कयास। ३. न्याय के अनुसार प्रमाण के चार भेदों में से एक।

विशेष—इससे प्रत्यक्ष साधन के द्वारा अप्रत्यक्ष साध्य की भावना होती है। इसके तीन भेद हैं—(क) पूर्ववत् या केवलान्वयी जिसमें कारण द्वारा कार्य का ज्ञान हो। जैसे, बादल देखकर यह भावना करना कि पानी बरसेगा। (ख) शेषवत् या व्यतिरेकी, जिसमें कार्य को प्रत्यक्ष देखकर कारण का अनुमान किया जाय। जैसे, नदी की बाढ देखकर अनुमान करना कि उसके चढाव की ओर पानी बरसा है। और (ग) सामान्यतोदृष्ट या अन्वयव्यतिरेकी, जिसमें नित्यप्रति के सामान्य व्यापार को देखकर विशेष व्यापार का अनुमान किया जाता है। जैसे, किसी वस्तु को स्थानांतर में देखकर उसके वहाँ लाए जाने का अनुमान।

अनुमानत—क्रि० वि० [सं०] अटकल या अनुमान से [को०]।

अनुमानना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुमान से नाम०] अनुमान करना। सोचना। अंदाजा करना। उ०—समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी।—मानस १।१५८।

अनुमानाश्रित—वि० [सं० अनुमान+आश्रित] जो अनुमान पर आधारित हो। जिसका कोई ठोस आधार न हो।

अनुमानोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तर्क। तर्कना। २ तर्कानुमोदित निष्कर्ष [को०]।

अनुमापक—वि० [सं०] [स्त्री० अनुमापिका] अनुमान में सहायक [को०]।

अनुमास—संज्ञा पुं० [सं०] १ आनेवाला महीना। २ मास प्रति मास [को०]।

अनुमित—वि० [सं०] अनुमान किया हुआ। अंदाजा हुआ।

अनुमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अनुमान। २ नव्य न्याय के अनुसार अनुभूति के चार भेदों में से एक जिसमें किसी वस्तु के व्याप्त गुणों के कारण अन्य वस्तु का अनुमान किया जाय।

अनुमित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्कर्ष या अनुमान निकालने की आकांक्षा [को०]।

अनुमृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो पति के साथ सती हो गई हो [को०]।

अनुमेय—वि० [सं०] अनुमान के योग्य।

अनुमोद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुमोदन' [को०]।

अनुमोदक—वि० [सं०] अनुमोदन करनेवाला। समर्थन करनेवाला। उ०—अनुमोदक तो नहीं किंतु निज अग्रज का अनुगत हूँ मैं। —साकेत, पृ० ३९५।

अनुमोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रसन्नता का प्रकाशन। खुश होना। २ समर्थन। ताईद। उ०—कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं।—मानस, ७।१२९।

अनुयाता—संज्ञा पुं० [सं० अनुयातृ] अनुगामी। साथी [को०]।

अनुयात्र—संज्ञा पुं० [सं०] अनुचरों का दल। २ अर्दली में रहना। ३ अनुगमन [को०]।

अनुयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुयात्र' [को०]।

अनुयात्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुयात्रा' [को०]।

अनुयान—संज्ञा पुं० [सं०] अनुगमन। पीछे चलना [को०]।

अनुयायी¹—वि० [सं० अनुयायिन्] [वि० स्त्री० अनुयायिनी] १ अनुगामी। पीछे चलनेवाला। २ अनुकरण करनेवाला। शिक्षा या आदर्श पर चलनेवाला। ३ समान। तुल्य (को०)।

अनुयायी²—संज्ञा पुं० अनुचर। सेवक। दास। पैरोकार।

अनुयुक्त—वि० [सं०] १ जिसके संबंध में अनुयोग किया गया हो। जिसके विषय में कुछ प्रश्न किया गया हो। जिज्ञासित। २ निंदित।

अनुयोक्ता¹—वि० [सं० अनुयोक्तृ] [वि० स्त्री० अनुयोक्त्री] जिज्ञासा करनेवाला। पूछताछ करनेवाला।

अनुयोक्ता²—संज्ञा पुं० १ परीक्षक। २ भृतकाध्यापक। शुल्क लेकर पढानेवाला अध्यापक [को०]।

अनुयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रश्न। जिज्ञासा। पूछताछ। २ रोक। बाधा (को०)। ३ उद्यम। श्रम। चेष्टा (को०)। ४ आलोचना। टीका (को०) ५ आध्यात्मिक या यौगिक मनन चिंतन [को०]।

अनुयोजन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुयोजित, अनुयोज्य] पूछने की क्रिया। प्रश्न करना। पूछना।

अनुयोजित—वि० [सं०] जिसके विषय में पूछताछ की गई हो।

अनुयोज्य¹—वि० [सं] १ प्रष्टव्य। जिसके विषय में पूछताछ की आवश्यकता हो। २ निंदनीय। बुरा।

अनुयोज्य²—संज्ञा पुं० विश्वस्त सेवक। भृत्य [को०]।

अनुरंजक—वि० [सं० अनुरञ्जक] मन बहलानेवाला। प्रसन्न करनेवाला [को०]।

अनुरंजन—संज्ञा पुं० [सं० अनुरञ्जन] १ अनुराग। आसक्ति। प्रीति। २ दिलबहलाव

अनुरंजित—वि० [सं० अनुरञ्जित] आनंदित। अनुरागयुक्त। उ०—मन को अनुरंजित करना ही यदि कविता का अंतिम लक्ष्य माना जाय तो।—रस०, पृ० २८।

अनुरक्त—वि० [सं०] अनुरागयुक्त। प्रेमयुक्त।—सरिता बनी माया उसे कहती कि तुम अनुरक्त हो।—कानन, पृ० २६। २ आसक्त। लीन। उ०—रहै सदा हरि पद अनुरक्त।—सूर०, ६।५। ३ प्रसन्न। खुश। संतुष्ट (को०)। ४ लालिमायुक्त। रंगीन (को०)। ५ हर प्रकार से अनुकूल। भक्त। निष्ठावान् (को०)।

अनुरक्तप्रकृति—वि० [सं०] (राजा) जिसकी प्रजा उसमे अनुरक्त हो। प्रजाप्रिय।

अनुरक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आसक्ति। अनुराग। प्रीति। भक्ति। उ०—उर मे जाने पर भी वन की स्मृति अनुरक्ति रहेगी यह।—पचवटी पृ० ११।

अनुरणन—संज्ञा पुं० [सं०] १ नूपुर, घटा आदि की ध्वनि। २ प्रतिध्वनि। गूँज। ३ शब्दव्यंजना [को०]।

अनुरणित—वि० [सं०] झकृत। ध्वनित [को०]।

अनुरत—वि० [सं०] १ लीन। आसक्त। उ०—चरननि चित्त निरंतर अनुरत रसना चरित रसाल।—सूर०, १।१८६। २ अनुरागी। प्रिय।

अनुरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] लीनता। आसक्ति। अनुराग। प्रीति।

अनुरत्त(पु)—वि० [सं० अनुरक्त, प्रा० अनुरत्त] दे० 'अनुरक्त' उ०—सजे सूर सावत सब, सुमुख समर अनुरत्त।—हम्मीर, पृ० २३।

अनुरथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] सडक के दोनो ओर पैदल चलने का मार्ग। सडक का किनारा। पटरी। [को०]।

अनुरध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनिरुद्ध] दे० 'अनिरुद्ध'। उ०—कृष्ण गेह कै काम। काम अगज जनु अनुरध।—पृ० रा०, १।७२७।

अनुरस—संज्ञा पुं० [सं०] १ गौण रस। अप्रधान रस। २ वह स्वाद जो किसी वस्तु मे पूर्ण रूप से न हो। ३ दे० 'अनुरसित[1]' [को०]।

अनुरसित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिध्वनि। गूँज [को०]।

अनुरसित[2]—वि० प्रतिध्वनियुक्त [को०]।

अनुरहस[1]—वि० [सं०] एकांत। गुप्त। गोपनीय [को०]।

अनुरहस[2]—क्रि० वि० गुप्त रूप से। ऐकांतिक [को०]।

अनुराग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुरागी] प्रीति। प्रेम। आसक्ति। प्यार। मुहब्बत। २ भक्ति भाव (को०)। ३ लाल रंग। (को०)।

अनुराग[2]—वि० लालिमायुक्त। लाल किया हुआ [को०]।

अनुरागना[1](पु)—क्रि० स० [सं० अनुराग से हिं० नाम०] प्रीति करना। प्रेम करना। आसक्त होना। उ०—अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे।—मानस, १।२४२।

अनुरागना[2](पु)—क्रि० अ० प्रेमयुक्त होना। आसक्तियुक्त होना। उ०—सुनि प्रभुवचन अधिक अनुरागेउँ।—मानस, ७।८४।

अनुरागी—वि० [सं० अनुरागिन्] [वि० स्त्री० अनुरागिणी] अनुराग रखनेवाला। प्रेमी। उ०—या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहि कोय।—बिहारी र०, दो० १२१।

अनुरात्र—क्रि० वि० [सं०] प्रतिरात्रि। रात्रि मे। एक के बाद दूसरी रात [को०]।

अनुराध[1]—वि० [सं०] १ कल्याण करनेवाला। हितकारक। २ अनुराधा नक्षत्र मे उत्पन्न [को०]।

अनुराध[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] विनती। विनय। आराधन। प्रार्थना। याचना। उ०—सूर स्याम मन दोहि न मेरो पुनि कीन्हौं अनुराध।—सूर०, १०।१८८६।

अनुराधना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुराध से हिं० नाम०] विनय करना। विनती करना। मनाना। प्रार्थना करना। उ०—मैं आजु तुम्हैं गहि बाँधौं, हा हा करि करि अनुराधौं।—सूर, १०।१८३।

अनुराधग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] अनुराध द्वारा स्थापित लंका की प्राचीन राजधानी जिसका एक नाम अनुराधपुर भी है [को०]।

अनुराधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] २७ नक्षत्रो मे १७ वाँ नक्षत्र। उ०—भादो मुकता छट्ठ को, जो अनुराधा होय। नाना मवन यो जुडे, भूखा रहै न कोय (शब्द०)।

विशेष—यह मान तारो के मिलने से सर्पाकार दिखाई देता है। यह नक्षत्र बडा शुभ और मांगलिक माना जाता है।

अनुरुद्ध—वि० [सं०] १. रोका हुआ। बाधित। जिसका प्रतिवाद किया गया हो। २ तोषित। सराधित [को०]।

अनुरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास [को०]।

अनुरूप—वि० [सं०] [संज्ञा अनुरूपता] १ तुल्य रूप का। सदृश। समान। सरीखा। २ योग्य। अनुकूल। उपयुक्त। उ०—निज अनुरूप सुभग बरु माँगा।—मानस, १।२४८।

अनुरूपक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनु+रूपक] प्रतिमा। प्रतिमूर्ति। उ०—सोनियन दंत रुचि सुभ्र उर आनिए। सत्य जनरूप अनरूपक बखानिए।—केशव (शब्द०)।

अनुरूपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ समानता। सादृश्य। २ अनुकूलता। उपयुक्तता।

अनुरूपना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुरूप से हिं० नाम०] समान या सदृश बनाना।

अनुरूपासिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रो, भाई, बधुओ आदि को साम, दाम आदि द्वारा अपने पक्ष मे करना।

अनुरेवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा [को०]।

अनुरोदन—संज्ञा पुं० [सं०] शोक की अभिव्यक्ति। महानुभूति [को०]।

अनुरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १ रुकावट। बाधा। उ०—मोधु बिनु, अनुरोध ऋतु के बोध बिहित उपाउ। करत हैं सोइ समय साधन फलति बात बनाउ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३७३। २ प्रेरणा। उत्तेजना। जैसे,—सत्य के अनुरोध से मुझे यह कहना ही पडता है (शब्द०)। ३ आग्रह। दबाव। विनयपूर्वक किसी बात के लिये हठ। जैसे,—उसका अनुरोध है कि मैं अँगरेजी भी पढूँ (शब्द०)। ४ इच्छापूर्ति करना (को०)। ५. समान [को०]। ६. विचार [को०]।

अनुरोधक—वि० [सं०] अनुरोध करनेवाला (को०)।

अनुरोधन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुसरण। परिपालन। आज्ञाकारिता। आदर। इच्छापूर्ति। २ किसी का प्रेम प्राप्त करने का साधन (को०)।

अनुरोधी—वि० [सं० अनुरोधिन्] दे० 'अनुरोधक' (को०)।

अनुर्वर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनुर्वरा] १ जिसमें उपज न हो। जो जरखेज न हो। उ०—इस विकराल, अनुर्वर, ऊसर प्ररस काल प्रांतर में।—ग्राम्या, पृ० १४। २ निष्फल। उ०—अपने में सिमटी हुई मलिन विद्या अनुर्वरा की झाँकी।—सामधेनी, पृ० १७।

अनुलग्न—वि० [सं०] संलग्न। पीछे लगा हुआ। जान बूझकर चिपका हुआ (को०)।

अनुलाप—संज्ञा पुं० [सं०] १ बातचीत। वार्तालाप। उ०—आर्यों के बीच में होने लगा अनुलाप।—शकु०, पृ० ६। २ पुनरुक्ति। किसी बात को प्रकारांतर से बार बार कहना (को०)।

अनुलालित—वि० [सं०] अनुरंजित। जिसका मनोरंजन किया गया हो (को०)।

अनुलास—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर (को०)।

अनुलास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुलास' (को०)।

अनुलिपि—संज्ञा पुं० [सं० अनु + लिपि] प्रतिलिपि। नकल। उ०—अनुलिपि आदि का कुछ कुछ अभ्यास करना प्रारंभ कर देने से लाभ ही होता है।—भाषा शि०, पृ० ६८।

अनुलेख—संज्ञा पुं० [सं० अनु + लेख] अनुलिपि। प्रतिलिपि।

अनुलेप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुलेपन'१। उ०—संसृति के विक्षत पग रे, यह चलती है डगमग रे, अनुलेप सदृश तू लग रे।—लहर, पृ० ५०।

अनुलेपक—वि० [सं०] [स्त्री० अनुलेपिका] जो शरीर पर लेप, उबटन आदि लगाता है (को०)।

अनुलेपन—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी तरल वस्तु की तह चढ़ाना। लेपन। उ०—अनुलेपन सा मधुर स्पर्श था।—कामायनी, पृ० २१५। २ सुगंधित द्रव्यों या औषधों का मर्दन। उबटन करना। उबटना लगाना। ३ लीपना। पोतना।

अनुलेपी—वि० [सं० अनुलेपिन्] दे० 'अनुलेपक' (को०)।

अनुलोम—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊँचे से नीचे की ओर आने का क्रम। उतार का सिलसिला। २ उत्तम से अधम की ओर आता हुआ श्रेणीक्रम। ३ संगीत में सुरों का उतार। अवरोही। ४ प्रतिलोम का उलटा या विलोम (को०)।

यौ०—अनुलोम विवाह।

अनुलोमज—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनुलोमजा] वह (संतान) जो अनुलोम विवाह से उत्पन्न हो। अनुलोम संकर।

अनुलोमजन्मा—वि० [सं० अनुलोमजन्मन्] दे० 'अनुलोमज' (को०)।

अनुलोमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह औषध जो पेट में पड़े हुए गोटों को ढीला करके गिरा दे। कोष्ठबद्धता को दूर करनेवाली रेचक या भेदक औषध। २ स्वाभाविक क्रम। अनुलोम (को०)।

अनुलोम विवाह—संज्ञा पुं० [सं०] उच्च वर्ण के पुरुष का अपने से किसी नीच वर्ण की स्त्री के साथ विवाह।

जैसे—ब्राह्मण का क्षत्रिया, वैश्या या शूद्रा से क्षत्रिय का वैश्या या शूद्रा से और वैश्य का शूद्रा से विवाह। इस प्रकार के संबंध से जो संतति होती है वह अनुलोम संकर कहलाती है।

अनुलोमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पति से नीचे वर्ण की स्त्री (को०)।

अनुलोमा सिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पौर, जानपद तथा सेनापतियों को दान तथा भेद से अपने अनुकूल करना।

अनुल्वण, अनुल्बण—वि० [सं०] १ जो अधिक न हो। न अधिक न अल्प। २ अस्पष्ट (को०)।

अनुवंश—संज्ञा पुं० [सं०] १ वंशवृक्ष। वंशावली। कुरसीनामा। २ आधुनिक या नई पीढ़ी (को०)।

अनुवंश्य—वि० [सं०] वंशवृक्ष या वंशावली से संबधित। जो कुरसीनामे में हो (को०)।

अनुवक्ता—संज्ञा पुं० [सं० अनुवक्तृ] उत्तर देनेवाला। प्रतिवक्ता। बाद में बोलनेवाला। पुनः पाठ करनेवाला। दोहरानेवाला (को०)।

अनुवक्र—वि० [सं०] १ अत्यंत कुटिल या टेढ़ा। २ कुछ टेढ़ा या तिरछा (को०)।

अनुवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ आवृत्ति। दोहराना। पठन। २. अध्यापन। शिक्षण। व्याख्यान। भाषण। ३ अध्याय। पाठ। प्रकरण। ४ भिन्न ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट नियमों के अनुसार मंत्रपाठ (को०)।

अनुवत्सर१—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार जो पाँच वर्ष का युग होता है उसका चौथा वर्ष।

अनुवत्सर२—क्रि० वि० प्रतिवर्ष। सालाना।

अनुवदना॒पु†—क्रि० स० [सं० अनु + वद्] बात दुहराना। उत्तर प्रत्युत्तर करना। कठहुज्जती करना। उ०—मन नहिं अनुवद सुपहु समाज।—विद्यापति, पृ० ३१८।

अनुवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुसरण। अनुगमन। २ अनुकरण। समान आचरण। ३ किसी नियम का कई स्थानों पर बार बार लगना। ४ परिणाम। फल (को०)। ५ कृतज्ञतापूर्णता (को०)।

अनुवर्तिनी१—वि० [सं०] अनुगामिनी। अनुसरण करनेवाली।

अनुवर्तिनी२—संज्ञा स्त्री० भार्या। पत्नी (को०)।

अनुवर्ती—वि० [सं० अनुवर्तिन्] [स्त्री० अनुवर्तिनी अनुसरण] अनुसरण करनेवाला। अनुसार बरताव करनेवाला। अनुयायी। अनुगामी। पैरवी करनेवाला।

अनुवश१—वि० [सं०] अनुगत। दूसरे के कहने पर चलनेवाला। वशवर्ती। आज्ञाकारी (को०)।

अनुवश२—संज्ञा पुं० आज्ञाकारिता। वशवर्तिता (को०)।

अनुवसित—वि० [सं०] १ कपड़े से ढँका हुआ। वस्त्र द्वारा आच्छादित। २ बाँधा हुआ। संबद्ध। संलग्न (को०)।

अनुवह—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक का नाम (को०)।

अनुवा[1]—संज्ञा पुं० [सं० अनूप = जलयुक्त, प्रा० अणूव] १ कुएँ के जगत का वह भाग जहाँ खड़े होकर पानी खीचते हैं। २ पानी निकालने के लिये खोदा हुआ गड्ढा। चौडा। चोआ। ३ ताल के पास का वह स्थान जहाँ से टोकरी या दौरी के द्वारा खेत सीचने के लिये पानी ऊपर फेंकते हैं। चौना।

अनुवा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] व्यभिचार दोष।

अनुवा[3]ⓤ—[हिं० आनना] आननेवाला। लानेवाला। उ०—ताहि तू बताउ जोई बाँह दै उसीसैं सोई ऐसे अनुवादन के अनुवा घनेरे हैं।—गग०, ग्र० पृ० ७६।

अनुवाक—संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रंथविभाग। ग्रंथावयव। ग्रंथखंड। अध्याय या प्रकरण का एक भाग। २ वेद के अध्याय का एक अंश। ३ दुहराना। पुन पढना (को०)।

अनुवाचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञो मे विधि के अनुसार मत्रो का पाठ। २ पढाना। अध्ययन कराना (को०)। ३ स्वय पढना (को०)।

अनुवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुनरुक्ति। पुन कथन। दोहराना। २ भाषातर। उल्था। तर्जुमा। ३ न्याय के अनुसार वाक्य का वह भेद जिसमे कही हुई बात का फिर फिर स्मरण और कथन हो। जैसे—'अन्न पकाओ, पकाओ, पकाओ, शीघ्र पकाओ, हे प्रिय ! पकाओ'।

विशेष—इसके दो भेद हैं—जहाँ विधि का अनुवाद हो वहाँ शब्दानुवाद और जहाँ विहित का हो वहाँ अर्थानुवाद होता है।

४ मीमासा के अनुसार वाक्य के विधिप्राप्त आशय का दूसरे शब्दो मे समर्थन के लिये कथन।

विशेष—यह तीन प्रकार का है—(क) भूतार्थानुवाद, जिसमे आशय की पुष्टि के लिये भूतकाल का उल्लेख किया जाय। जैसे, पहले सत् ही था। (ख) स्तुत्यर्थानुवाद, जैसे वायु ही सबसे बडकर फेंकनेवाला देवता है। (ग) गुणानुवाद, जैसे, दही से हवन करे।

५ खबर। जनश्रुति (को०)। ६ व्याख्यान का आरभ (को०)। ७ विज्ञापन। सूचना [को०]।

अनुवादक—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुवाद करनेवाला। भाषातर करनेवाला। उल्था करनेवाला। २ सदृश। समान (को०)। ३ समर्थन करनेवाला [को०]।

अनुवादित—वि० [सं०] अनुवाद किया हुआ। अनूदित।

अनुवादी[1]—संज्ञा पुं० [सं० अनुवादिन्] सगीत मे स्वर का एक भेद जिसकी किसी राग मे आवश्यकता न हो और जिसके लगाने से राग अशुद्ध हो जाय।

अनुवादी[2]—वि० दे० 'अनुवादक' [को०]।

अनुवाद्य—वि० [सं०] अनुवाद के योग्य। व्याख्या के योग्य [को०]।

अनुवास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुवासन' [को०]।

अनुवासन—संज्ञा पुं० [सं०] १ वस्त्रादि को सुगधित करना। महकाना। २ सुश्रुत के अनुसार पिचकारी के द्वारा तरल औषध शरीर के भीतर पहुँचाना। वस्ति क्रिया। एनिमा।

अनुवासनवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सुगधित करने का यत्र। पिचकारी। २ शरीर के भीतर तरल औषध पहुँचाने की पिचकारी।

अनुवासित—वि० [सं०] १ गध से बसाया हुआ। गधद्रव्य से सुवासित। २ वस्ति क्रिया द्वारा चिकित्सा किया हुआ। एनिमा दिया हुआ [को०]।

अनुवासी—वि० [सं० अनुवासिन्] पडोस मे रहनेवाला। साथ रहनेवाला [को०]।

अनुवित्त—वि० [सं०] प्राप्त। उपलब्ध [को०]।

अनुवित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राप्ति। उपलब्धि [को०]।

अनुविद्ध—वि० [सं०] १ छेदा हुआ। जिसमें आर पार छेद किया हो। २ खचित। सलग्न। ३ भरा हुआ। परिपूर्ण। ४ मिला हुआ। युक्त। सयुक्त [को०]।

अनुविधान—संज्ञा पुं० [सं०] १ आज्ञापालन। आज्ञाकारिता। २ आदेश या नियम के अनुसार कार्य करना।

अनुविधायी—वि० [सं० अनुविधायिन्] [वि० स्त्री० अनुविधायिनी] १ आज्ञाकारी। विनीत। आदेशानुसारी। २ मिलता जुलता। तद्रूप [को०]।

अनुविनाश—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के साथ लुप्त या नष्ट हो जाना [को०]।

अनुविहित—वि० [सं०] आज्ञाकारी [को०]।

अनुवृत्त[1]—वि० [सं०] १ अनुसरण करनेवाला। २ आज्ञापालन करनेवाला। ३ लगातार। अविच्छिन्न। ४ उतार चढाव के साथ वर्तुलाकार। सुराहीदार। ५ शीतानुगत। ६ जिसकी आवृत्ति की गई हो [को०]।

अनुवृत्त[2]—संज्ञा पुं० [सं०] वृत्तात। वर्णन। विवरण।

अनुवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी पद के पहले अश से कुछ वाक्य उसके पिछले अश मे अर्थ को स्पष्ट करने के लिये लाना जैसे—'राम घर गए हैं और गोविंद भी (घर गए हैं)'। २ स्वीकृति। सपुष्टि (को०)। ३. आज्ञाकारिता (को०)। ४ आवृत्ति (को०)। ५ अनुसरण। अनुकरण (को०)।

अनुवेध—संज्ञा पुं० [सं०] १ छेदन करना। वेधना। २ सपर्क। मिलन। ३ मिश्रण। ४ बाधा [को०]।

अनुवेल्लित[1]—वि० [सं०] नीचे झुका हुआ [को०]।

अनुवेल्लित[2]—संज्ञा पुं० १ घाव पर पट्टी बाँधना। २ सुश्रुत के अनुसार घाव बाँधने के लिये १४ प्रकार की पट्टियो मे से एक[को०]।

अनुवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुसरण। बाद मे प्रवेश करना। पीछे पीछे प्रविष्ट होना। २ बडे भाई से पहले छोटे का विवाह [को०]।

अनुवेशन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुवेश' [को०]।

अनुवेश्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह ब्राह्मण जो मगल या शाति कर्म करनेवाले से एक घर के अतर पर रहता हो।

विशेष—मनु ने किसी मगल या शाति कर्म मे ऐसे ब्राह्मण को भोजन कराने का निषेध किया है।

अनुवेश्य[2]—वि० प्रतिवेशी। पड़ोसी। सटे हुए मकान मे रहनेवाला।

अनुव्याख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ मत्रो तथा सूत्रो की व्याख्या। मत्रविवरण। २ ब्राह्मण ग्रथो का वह भाग जिसमे कठिन सूत्रो तथा मत्रो की व्याख्या हो। मत्रो आदि का अनुरूप अर्थप्रकाशक व्याख्यान [को०]।

अनुव्याध—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुवेध' [को०]

अनुव्याहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ बार बार दोहराना। पुनरुक्ति। २ किसी प्रसग का प्रसगातर सहित उल्लेख। ३ शाप। अनिष्ट-चिंतन [को०]।

अनुव्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुव्याहरण' [को०]।

अनुव्रजन—संज्ञा पुं० [सं०] विदा होते हुए विशिष्ट अतिथि के साथ कुछ दूर पहुँचाने जाना [को०]।

अनुव्रज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुव्रजन' [को०]।

अनुव्रत¹—वि० [सं०] १ विश्वासपात्र। कर्तव्यपरायण २ निर्दिष्ट कार्यों को दत्तचित होकर उचित रूप से करनेवाला [को०]।

अनुव्रत²—संज्ञा पुं० जैन मुनियों का एक वर्ग [को०]।

अनुव्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सदा पति मे अनुरक्त रहनेवाली स्त्री। पतिव्रता [को०]।

अनुशतिक—संज्ञा पुं० [सं०] सौ से अधिक सैनिकों का नायक या अफसर।

विशेष—इसका स्थान शतानीकों के ऊपर होता था जिन्हे यह सैनिक शिक्षा देता था।

अनुशप—संज्ञा पुं० [सं०] काम से ली हुई छुट्टी। रुखसत।

विशेष—चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र मे इसके सबध मे बहुत से नियम दिए हैं।

अनुशय—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वद्वेष। पुराना वैर। अदावत। २ पश्चात्ताप। अनुताप। उ०—लघुता मत देखो वक्ष चीर, जिसमे अनुशय बन घुसा तीर।—कामायनी, पृ० २५०। ३ झगडा। वादविवाद। कहासुनी। गर्मागर्मी। ४ दान सबधी झगडो का निर्णय, फल या फैसला (अर्थ०)। ५ घृणा (को०)। ६ लगाव। आसक्ति (को०)। ७ बुरे कर्मों का फल या परिणाम। कर्मविपाक (को०)।

यौ०—क्रीतानुशय=वे नियम जो क्रय विक्रय के झगडे मे सबध रखें। नारद स्मृति मे ये बडे विस्तार के साथ कहे गए है।

अनुशयान—वि० [सं०] पश्चात्ताप करनेवाला। पछतानेवाला [को०]।

अनुशयाना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ परकीया नायिका का एक भेद। वह नायिका जो अपने प्रिय का मिलने स्थान नष्ट हो जाने से दुखी हो।

विशेष— यह तीन प्रकार की होती है। (क) सकेतविघट्टना=वर्तमान सकेत नष्ट होने से दुखी। (ख) भाविसकेतनष्टा=भावी सकेत के नष्ट होने की समावना से सतापित और (ग) रमणगमना=मिलने के स्थान पर प्रिय गया होगा और मैं नही पहुँच सकी, यह सोचकर जो दुखी हो।

अनुशयी¹—वि० [सं० अनुशयिन्] १. वैरी। द्वेषी। २ झगडालू। ३ पश्चात्तापयुक्त। पछतानेवाला। ४ चरणो पर पडकर प्रणाम करनेवाला। ५. अनुरक्त। लीन। आसक्त। ६. कर्मफल का भोक्ता (को०)।

अनुशयी²—संज्ञा पुं० वह राजकर्मचारी जो दान सबधी झगडों का निर्णय करता था (अर्थ०)।

अनुशयी³—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुशय+ई] रोगविशेष। एक प्रकार की फुंसी जो पैर मे होती है।

अनुशर—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्टात्मा राक्षस।

अनुशासक—संज्ञा पुं० [सं०] १ आज्ञा देनेवाला। आदेश देनेवाला। हुक्म देनेवाला। २ उपदेष्टा। शिक्षक। ३ देश या राज्य का प्रबध करनेवाला। हुकूमत करनेवाला।

अनुशासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुशासक, अनुशासनीय, अनुशासित] १ आदेश। आज्ञा। हुक्म। उ०—अनुशासन ही था मुझे अभी तक आता।—साकेत, पृ० २३५। २ उपदेश। शिक्षा। ३ व्याख्यान। विवरण। ४. महाभारत का एक पर्व। ५ नियम। व्यवस्था।

अनुशासनपर—वि० [सं०] आज्ञाकारी [को०]।

अनुशासनपर्व—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत का १३वाँ पर्व।

अनुशासनीय—वि० [सं०] १ आज्ञा देने के योग्य। आदेश देने के योग्य। हुक्म देने के लायक। २ उपदेश देने के योग्य। शिक्षा देने के योग्य। ३ प्रबध करने के योग्य। हुकूमत करने के लायक।

अनुशासित—वि० [सं०] १ जिसको आज्ञा दी गई हो। जिसे आदेश दिया गया हो। २ उपदिष्ट। शिक्षित। ३ जिसका प्रबध किया गया हो। जिसपर हुकूमत की गई हो।

अनुशासी—संज्ञा पुं० [सं० अनुशासिन्] दे० 'अनुशासक [को०]।

अनुशास्ता—संज्ञा पुं० [सं० अनुशास्तृ] दे० 'अनुशासक' [को०]।

अनुशिष्ट—वि० [सं०] १ शिक्षित। २ आदिष्ट। निदेशित। ३. पूछा हुआ।

अनुशिष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आदेश। शिक्षा। शासन [को०]।

अनुशीलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुशीलनीय, अनुशीलित] १ चिंतन। मनन। आलोचन। उ०—देवो की सृष्टि विलीन हुई अनुशीलन मे अनुदिन मेरे।—कामायनी, पृ० ७१। २ पुन पुन अभ्यास या अध्ययन। आवृत्ति।

अनुशीलनीय—वि० [सं०] १ चिंतन करने के योग्य। मनन करने के योग्य। विचार या आलोचना करने के योग्य। २ अभ्यास करने के योग्य।

अनुशीलित—वि० [सं०] बार बार अभ्यस्त। सावधानी से अथवा ध्यानपूर्वक पठित [को०]।

अनुशोक—संज्ञा पुं० [सं०] शोक। पश्चात्ताप। खेद [को०]।

अनुशोचक—वि० [सं०] १. पश्चात्तापकर। खेदजनक। पछतानेवाला [को०]।

अनुशोचन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुशोक' [को०]।

अनुशोचना—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुशोचन] दुख। शोक। खेद। चिंता। उ०—(क) 'क्यो हृदय को दुर्बल बनाकर अनुशोचना बढ़ा रहे हो'।—राज्यश्री, पृ० ६।

अनुशोची—वि० [सं० अनुशोचिन्] दे० 'अनुशोचक' [को०]।

अनुश्रव—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक या धार्मिक परपरा [को०]।

अनुश्रविक—वि० [सं०] परंपरा से श्रुति द्वारा परलोक विषयक (ज्ञान), जैसे, स्वर्ग, देवता, अमृत इत्यादि का।

अनुश्रुत—वि० [सं०] परपरा से सुना गया अथवा प्राप्त (ज्ञान आदि) [को०]।

अनुश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] परंपरया सुनी या प्राप्त कथा, ज्ञान अथवा बात। उ०—अनुश्रुति है कि उनका निर्वाण विक्रम के जन्म से ४७० वर्ष पूर्व हुआ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २२३।

अनुषंग—संज्ञा पुं० [सं० अनुषङ्ग] [वि० अनुषंगी, अनुषंगिक] १ करुणा। दया। २ संबंध। लगाव। साथ। ३ प्रसंग से एक वाक्य के आगे और वाक्य लगा देना। जैसे—'राम वन को गए और लक्ष्मण भी'। इस पद में "भी" के आगे 'वन को गए' वाक्य अनुषंग से समझ लिया जाता है। ४ न्याय में उपनय के अर्थ को निगमन में ले जाकर घटाना। किसी वस्तु में किसी और के तुल्य धर्म का स्थापन करके उसके विषय में कुछ निश्चय करना। जैसे,—घट आदि उत्पत्ति धर्मवाले हैं (उदाहरण), वैसे ही शब्द उत्पत्ति धर्मवाला है (उपनय), इसलिये शब्द अनित्य है (निगमन)। ५ उत्कट लालसा। तीव्र इच्छा। ६ अर्थपूर्ति के लिये एक या अनेक शब्दों की आवृत्ति (को०)। ७ घालमेल। मिश्रण (को०)। ८ अवश्य होनेवाला फल (को०)। ९ एक शब्द का दूसरे से संबंध (को०)।

अनुषंगिक—वि० [सं० अनुषङ्गिक] १ अनिवार्य फलरूप। २ संबंध या प्रसंगवश प्राप्त। संबद्ध (को०)।

अनुषंगी—वि० [सं० अनुषङ्गिन्] १ संबंधी। २ दे० 'अनुषंगिक' [को०]।

अनुषक्त—वि० [सं०] १ घनिष्ठ संबंध या लगाववाला। २ संलग्न। संपृक्त [को०]।

अनुषक्ति—वि० [सं०] १ संबद्धता। संलग्नता। २ आसक्ति [को०]।

अनुषिक्त—वि० [सं०] बार बार सिंचित। [को०]।

अनुषेक—संज्ञा पुं० [सं०] बार बार सींचना। फिर फिर पानी डालना या छिड़कना [को०]।

अनुषेचन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुषेक' [को०]।

अनुष्टुप्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अष्टाक्षरपदी छंद। बत्तीस अक्षरों का एक वर्णवृत्त।

विशेष—इसमें आठ आठ वर्ण के चार पद या चरण होते हैं, प्रत्येक चरण का पाँचवाँ अक्षर सदा लघु और छठा सदा गुरु होता है तथा दूसरे और चौथे चरणों का सातवाँ अक्षर भी लघु ही होता है। शेष वर्णों के लिये कोई नियम नहीं है। "छंद प्रभाकर" के अनुसार माणवक्रीडा, प्रमाणिका, लक्ष्मी, विपुला, गजगति, विद्युन्माला, मल्लिका, तुंग, पद्म, वितान, रामा, नराचिका, चित्रपदा और श्लोक अनुष्टुप् छंद हैं। इनके लक्षण और भेद अलग अलग हैं।

२ सरस्वती (को०)। ३ वाणी। वाक् (को०)। ४ आठ की संज्ञा।

अनुष्ठातव्य—वि० [सं०] अनुष्ठान किए जाने योग्य। अनुष्ठेय।

अनुष्ठाता—वि० [सं० अनुष्ठातृ] कार्य करने या कार्यारंभ करनेवाला। अनुष्ठानकर्ता (को०)।

अनुष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्य का आरंभ। किसी काम का शुरू। २ नियमपूर्वक कोई काम करना। ३ शास्त्रविहित कर्म करना। ४ किसी फल के निमित्त किसी देवता की आराधना। प्रयोग। पुरश्चरण।

अनुष्ठानक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मकृत्यों का क्रम [को०]।

अनुष्ठानशरीर—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार सूक्ष्म और स्थूल शरीर के मध्य की स्थिति जिसे अधिष्ठानशरीर भी कहते हैं [को०]।

अनुष्ठापन—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य में प्रवृत्त करना अथवा कार्य कराना [को०]।

अनुष्ठायी—वि० [सं० अनुष्ठायिन्] अनुष्ठान या कार्य करनेवाला [को०]।

अनुष्ठित—वि० [सं०] सविधि पूरा किया हुआ। संपन्न। पूर्ण। उ०—सुप्रभात किया अनुष्ठित राजन्य सुरीति से।—कानन०, पृ० ११३।

अनुष्ठेय—वि० [सं०] कर्तव्य। करने योग्य अनुष्ठान योग्य [को०]।

अनुष्ण¹—वि० [सं०] १ जो गर्म न हो। ठंढा। २ आलसी। सुस्त (को०)।

अनुष्ण²—संज्ञा पुं० नील कमल [को०]।

अनुष्णक—वि० [सं०] 'अनुष्ण' [को०]।

अनुष्णगु—संज्ञा पुं० [सं०] शीतल किरणोंवाला। चंद्रमा [को०]।

अनुष्णवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली दूब। नील दूर्वा [को०]।

अनुष्यद—संज्ञा पुं० [सं०] गाड़ी का पिछला चक्का [को०]।

अनुसंधान—संज्ञा पुं० [सं० अनुसन्धान] [क्रि० अनुसंधानना] पश्चाद्गमन। पीछे लगना। २ अन्वेषण। खोज। ढूँढ। जाँच पड़ताल। तलाश। तहकीकात। ३ चेष्टा। प्रयत्न। कोशिश। ४ योजना। पूर्वरूप या प्रारूप। खाका (को०)।

अनुसंधानकर्ता—वि० [सं० अनुसन्धान + कर्तृ] शोध या खोज का कार्य करनेवाला। उ०—यह संक्षिप्त वर्णन अनुसंधानकर्ताओं के सामने एक नए क्षेत्र का जन्मदाता होगा।—प्रा० भा० प०, पृ० १२१।

अनुसंधानना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुसन्धान से हिं० नाम०] १ खोजना। ढूँढना। २ सोचना। विचारना। उ०—हृदय न कछु फल अनुसंधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना।—मानस, १।१५६।

अनुसंधानी—वि० [सं० अनुसन्धानिन्] १ शोध करनेवाला। तलाश में रहनेवाला। २ योजनापटु। किसी योजना के कार्यान्वयन में दक्ष (को०)।

अनुसंधायक—वि० [सं० अनु + सन्धायक] दे० 'अनुसंधायी'। उ०—यहाँ तक कि कुछ अनुसंधायक परवर्ती अथवा उत्तरार्ध शृंगार काल को इसी कारण पद्माकर युग तक कहना चाहते हैं।—पद्माकर ग्रं० (भू०), पृ० ८।

अनुसंधायी—वि० [सं० अनुसन्धायिन्] दे० 'अनुसंधानी' [को०]।

अनुसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुसन्धि] १ परामर्श। २ अनुसंधान। ३. गुप्त परामर्श। अंतरंग मंत्रणा। भीतरी बातचीत। षड्यंत्र। उ०—जिनको कि यह सब गुप्त अनुसंधि न मालूम थी, इस बात का निश्चय भी करा दिया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १३४।

अनुसंधेय—वि० [सं० अनुसन्धेय] शोध योग्य। खोज के योग्य।

अनुसंधान—संज्ञा पुं० [सं० [अनु + संधान] १ साथ चलना। साथ साथ यात्रा करना। २. गमन। यात्रा। दौरा। ३ बदली या परिवर्तन। उ०—अनुसंधान का अर्थ विवादग्रस्त है।—भा० इ० रू०, पृ० ५७८।

अनुसंहित—वि० [सं०] १ जिसकी छानबीन या जाँच की गई हो । २ किसी के अनुकूल या अनुरूप [को०] ।

अनुसमापन—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य की नियमित परिपूर्ति या समाप्ति [को०] ।

अनुसयनाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुशयाना] दे० 'अनुशयाना' । उ०—सु तीसरी अनुसयना पहिचान ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०८ ।

अनुसयानाⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनुशयाना' । उ०—यही अनुसयाना त्रिविध प्रथम भेद यह जानि ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०४ ।

अनुसर¹Ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अनुसार' ।

अनुसर—वि० [सं०] अनुगामी । सहयोगी । अनुचर [को०] ।

अनुसरण—संज्ञा पुं० [सं०] [क्रि० अनुसरना, अनुसारना] १ पीछे चलना । साथ साथ चलना । २ अनुकरण । नकल । ३ अनुकूल आचरण ।

अनुसरनाⓅ—क्रि० स० [सं० अनुसरण से हिं० नाम०] १ पीछे चलना । साथ साथ चलना । उ०—जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं ।—मानस, २।१४१ । २ अनुकरण करना । नकल करना । उ०—कहहु सो प्रेम प्रकट को करई । केहि छाया कवि मति अनुसरई ।—तुलसी (शब्द०) ।

अनुसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ सर्प जैसा जीव । २ रेंगनेवाला जीव । सरीसृप [को०] ।

अनुसर्पिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुख दुःख की स्थिति के तारतम्यानुसार जैन लोग छ काल की जो दो शृंखलाएँ मानते हैं उनमें से एक का नाम । उ०—जैन लोग छह छह कालों की दो महान् शृंखलाएँ मानते हैं–अनुसर्पिणी और अवसर्पिणी ।

अनुसाम—वि० [सं०] १ परितोषित । संतुष्ट किया हुआ । अनुकूल । मुताबिक [को०] ।

अनुसार¹—क्रि० वि० [सं०] १ अनुकूल । मुताबिक । उ०—कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार ।—मानस, १।२३ । २ सदृश । समान । मुताबिक । जैसे—मैंने आपकी आज्ञा के अनुसार ही काम किया है (शब्द०) ।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द संज्ञा है पर हिंदी में इसका प्रयोग क्रियाविशेषणवत् होता है ।

अनुसार²—संज्ञा पुं० [सं०] १ पीछे पीछे चलना । अनुसरण । २ अनुकूल आचरण । ३ किसी वस्तु की स्वाभाविक प्रकृति या स्थिति । ४ प्रथा । परंपरा । ५ अभ्यास । अनुकूल [को०] ।

अनुसार³—संज्ञा पुं० [सं० अनुस्वार] दे० 'अनुस्वार' । उ०—अनुसार से उपजी नीरजन, नीरजन से उपजी जोत ।—रामानंद०, पृ० ३० ।

अनुसारक—वि० [सं०] अनुसरणकारी । पीछे चलनेवाला । अनुयायी । २ तुल्य । अनुरूप । ३ शोध करनेवाला । खोजनेवाला [को०] ।

अनुसारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीछा करना । अनुगमन करना [को०] ।

अनुसारनाⓅ—क्रि० स० [सं० अनुसरण] १. अनुसरण करना । अनुकूल आचरण करना । २ आचरण करना । उ०—ऐसे जनम करम के ओछे ओछे ही अनुसारत ।—सूर० (शब्द०) । ३. कोई कार्य करना ।

विशेष—हिंदी के कतिपय प्राचीन कवि इस शब्द के पद किसी की सज्ञा शब्द के बाद इस विशेषण ... करते हैं । जैसे—(क) तब अर्जुन किनी अनुसारी ।—सूर० (शब्द०) । (ख) ... करहु ... अनुसारी ।—मानस, २।१९ । (ग) ... अनुसारी ।—मानस, ६।१०४ । (घ) ... ... अनुसारि कै । देव (शब्द०) । (ङ) ... ... कैसो बरदानन के मान अनुसारि है ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २६० ।

अनुसारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुसरिता' ।

अनुसारीⓅ—वि० [सं० अनुसारिन्] १. अनुसरण करनेवाला । अनुकरण करनेवाला । उ०—सूरदास नग, ... अनुचर अनुसारी ।—सूर०, १०।१३१ । २ दे० 'अनुसार' ।

अनुसार्यक—संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधद्रव्य चंदन, अगुरु आदि [को०] ।

अनुसालⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अनु + हिं० √साल] वेदना । पीड़ा । उ०—मधुकैटभ मथन, मुर भौम केशीभिदन, ... अनुसाल हारी ।—सूर (शब्द०) ।

अनुसासनⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुशासन' । उ०—नहीं दुरतिसिहि ... अनुसासन । तुलसी ग्रं०, पृ० ५८ ।

अनुसुइयाⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनसूया' । उ०—... सब देव ... अनुसुइया अरु मुनिन जानहु ।—ह० रा०, पृ० ३७ ।

अनुसूचक—वि० [सं०] सूचना करने या देनेवाला [को०] ।

अनुसूचन—संज्ञा पुं० [सं०] सूचना देने का कार्य । सूचना देना [को०] ।

अनुसूचित—वि० [हिं० अनुसूची] परिगणित । जिसका नाम सूची में दर्ज हो ।

अनुसूची—संज्ञा स्त्री० [सं० अनु + सूची] ... ... सूची ।

अनुसृत—वि० [सं०] १ अनुसरण किया हुआ । अनुगमित । २ प्रवाहित होना । बहना । ... । ३ ... । आगत [को०] ।

अनुसृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अनुसरण । पीछे जाना । २ ... । पैरवी । ३. ... । ... [को०] ।

अनुसृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ... । २ ... हाजिर जवाब । ... [को०] ।

अनुसेवी—वि० [सं० अनुसेविन्] किसी वस्तु के सेवन का अभ्यासी आदि । ... [को०] ।

अनुसोचनाⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनुशोचना' । उ०—... अनुसोचना ... ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६४ ।

अनुस्तरण—संज्ञा पुं० [सं०] बिछाना । बिखेरना [को०] ।

अनुस्तरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आच्छादन । २ गौ । वह गौ जिसका बलिदान ... ... किया जाता है [को०] ।

अनुस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] ... ... के अनुसार ... ... निर्वाह की धारणा करना ।

अनुस्मरण—संज्ञा पुं० [सं०] बार बार स्मरण करना। स्मृति मे लाना। उ०—इतिहास मे भूतकाल की घटनाओं का उल्लेख और अनुस्मरण रहता है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १। सोचना [को०]।

अनुस्मारक—संज्ञा पुं० [सं० अनु+स्मारक] स्मृति या याद दिलानेवाली वस्तु।

अनुस्मृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सजोई हुई स्मृति। प्रिय स्मृति। २ अन्य का त्याग करके किसी एक के प्रति किया हुआ चिंतन या स्मरण। एकात चिंतन [को०]।

अनुस्यूत—वि० [सं०] १ सीया हुआ। २ पिरोया हुआ। ३ ग्रथित। गूँथा हुआ। उ०—तीनि अवस्था माहिं है सुंदर साक्षीभूत। सदा एकरस आतमा व्यापक है अनुस्यूत।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ७८२। ४ सबद्ध। श्रेणीबद्ध। सिलसिलेवार।

अनुस्वान—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रतिध्वनि। गूँज। २ समध्वनि। समर्थक स्वर। अनुरणन [को०]।

अनुस्वार—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वर के बाद उच्चरित होनेवाला एक अनुनासिक वर्ण जिसका चिह्न (ं) है। निरुक्तकार इसे आश्रय स्थानभागी भी कहते हैं क्योंकि जिस स्वर के बाद यह लगेगा उसी का सा उच्चारण इसका होगा। २ स्वर के ऊपर की बिंदी।

अनुहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ नकल। अनुकरण। २ सादृश्य। समता [को०]।

अनुहरत—वि० [हिं० √अनुहार का कृदत रूप] १ अनुसार। अनुरूप। समान। उ०—दभ सहित कलि धरम सब छल समेत व्यवहार। स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार।—तुलसी ग्र० पृ० १५०। २ उपयुक्त। योग्य। अनुकूल। उ०—अब तुम्ह विनय मोरि सुन लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू।—मानस, २।१७७।

अनुहरना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुहरण] अनुकरण करना। आदर्श पर चलना। नकल करना। समानता करना। उ०—सहज टेढ अनुहरै न तोही। नीचु मीचु सम देख न मोही।—मानस १।२७।

अनुहरिया[1](पु)†—वि० [सं० अनुहार+हिं० इया (प्रत्य०)] समान। तुल्य।

अनुहरिया[2](पु)‡—संज्ञा स्त्री० आकृति। मुखाकृति। उ०—लाल तिलक सर सोहत भौंह कमान। मुख अनुहरिया केवल चद समान।—तुलसी ग्र० पृ० १९।

अनुहार[1]—वि० [सं०] सदृश। तुल्य। समान। एकरूप। उ०—खजन नैन बीच नासा पुट राजत यह अनुहार। खजन युग मनो लरत लराई कीर बुझावत रार।—सूर (शब्द०)।

अनुहार[2]—संज्ञा स्त्री० १ रूप भेद। प्रकार। उ०—मुग्धा मध्या प्रौढ गनि, तिनके तीनि विचार। एक एक की जानिए चार चार अनुहार।—केशव (शब्द०)। २ मुखाकृति। आकृति।

अनुहार[3]—संज्ञा पुं० दे० 'अनुहरण'।

अनुहारक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अनुहारिका] अनुकरण करनेवाला। नकल करनेवाला। सदृश कर्म करनेवाला।

अनुहारना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुहार से नाम०] तुल्य करना। सदृश करना। समान करना। उ०—देखि री हरि के चचल तारे। कमल मीन को कहाँ इती छबि, खजन हूँ न जात अनुहारे।—सूर (शब्द०)।

अनुहारि[1]—वि० स्त्री० [सं० अनुहारिन्] १ समान। सदृश। तुल्य। बराबर। उ०—(क) गिरि समान तन अगम अति, पन्नग की अनुहारि।—सूर० १०।४३१। (ख) चुनरी स्याम सतार नभ, मुख ससि की अनुहारि। नेह दबावत नींद लौं, निरखि निसा सी नारि।—बिहारी (शब्द०)। २ योग्य। उपयुक्त। उ०—बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई।—मानस, १।९२। ३ अनुसार। अनुकूल। मुताबिक। उ०—कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह, बैठारे नर नारि। उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस विशेषण का लिंग भी 'नाई' के समान है अर्थात् यह शब्द संज्ञा पुं० और संज्ञा स्त्री० दोनों का विशेषण होता है।

अनुहारि[2](पु)—संज्ञा स्त्री० आकृति। चेहरा। उ०—ज्यों मुख मुकुर बिलोकिए, चित न रहै अनुहारि। त्यों सेवतहु निरापने मातु पिता सुत नारि।—तुलसी (शब्द०)।

अनुहारी[1]—वि० [सं० अनुहारिन्] [स्त्री० अनुहारिणी] अनुकरण करनेवाला। नकल करनेवाला।

अनुहारी[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनुहारि'[2]। उ०—(क) देखी सासु आन अनुहारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भरत रामही की अनुहारी।—मानस, १।३११।

अनुहार्य—वि० [सं०] अनुकरण या नकल करने योग्य [को०]।

अनुहोड—संज्ञा पुं० [सं०] बैलगाडी [को०]।

अनूअर(पु)—क्रि० वि० [सं० अनवरत] सतत। निरतर। लगातार।

अनूक—संज्ञा पुं० [सं०] १ गत जन्म। पूर्व जन्म। २ कुल। वश। खानदान। ३ शील। स्वभाव। ४ पीठ की हड्डी। रीढ। ५ मेहराब के बीच की ईंट। कीली। ६ यज्ञ की वेदी बनाने के लिये ईंट उठाने की खँचिया या पात्र। ७ जाति या वशगत विशिष्टता [को०]। ८ यज्ञ की वेदी का पृष्ठभाग (को०)।

अनूकाश—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रकाश की कौंध या झलक। २ उदाहरण। सदर्भ। हवाला [को०]।

अनूक्त—वि० [सं०] १ बाद मे कथित। दोहराया गया। २ जिसने वेदाध्ययन किया हो। अधीत [को०]।

अनूक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विवरणपूर्वक कही या दोहराई हुई बात। २ वेदाध्ययन [को०]।

अनूचान—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो वेद वेदाग मे पारगत होकर गुरुकुल से आया हो। स्नातक। २ विद्यारसिक व्यक्ति। ३. चरित्रवान् पुरुष।

अनूजरा(पु)—वि० [हिं० अन+ऊजरा] [स्त्री० अनूजरी] जो उजला या साफ न हो। मैला। उ०—साछय साठी पूतरी अनूजरीऽसह ऊजरी ह्वै देखि रागी त्यागी ललचात जनजात है।—निश्चल (शब्द०)।

अनूठा—वि० [सं० अनुत्थ, पा० अनुट्ठ प्रा० अणुट्ठ=स्थित अथवा देश०] [स्त्री० अनूठी] १. अपूर्व। अनोखा। विचित्र। विलक्षण। अद्भुत। २. सुदर। अच्छा। बढ़िया।

अनूठापन—संज्ञा पुं० [हिं० अनूठा+पन (प्रत्य०)] १ विचित्रता। विलक्षणता। विशेषता। २ सुंदरता। अच्छापन।

अनूढ—वि० [सं० अनूढ] १ अजात। अनुत्पन्न। २ जो ले जाया न गया हो। ३ अविवाहित [को०]।

अनूढा—संज्ञा स्त्री० [सं० अनूढा] १ अविवाहिता कन्या। २ बिना व्याही स्त्री जो किसी पुरुष से प्रेम रखती हो। उ०—ताहि अनूढ़ा कहत हैं कवि पंडित परवीन।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ९७।

अनूढागमन—संज्ञा पुं० [सं० अनूढागमन] अविवाहिता स्त्री से प्रेम या संसर्ग [को०]।

अनूढाभ्राता—संज्ञा पुं० [सं० अनूढाभ्रातृ] १ अविवाहिता स्त्री का भाई। २ राजा की रखेली या उपपत्नी का भाई [को०]।

अनूतर(पु)—वि० [सं० अनुत्तर] [वि० स्त्री० अनूतरी] १ निरुत्तर। कायल २ चुपचाप बैठनेवाला। मौन धारण करनेवाला। उ०—बैठी फिरि पूतरी अनूतरी किरग कैसी, पीठि दै प्रवीनी दृग दृगनि मिलै अनिंद।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०१।

अनूदक—संज्ञा पुं० [सं०] १ जलहीन स्थान। २ सूखा [को०]।

अनूदर्वा—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव। विशेष—यह ४८ हाथ लंबी, २४ हाथ चौडी और २४ ही हाथ ऊँची होती थी।

अनूदित—वि० [सं०] १ कहा हुआ। वर्णन किया हुआ। २ अनुवादित। तर्जुमा किया हुआ। भाषांतरित।

अनूद्य—वि० [सं०] १ पीछे चर्चा करने योग्य। १ अनुवाद योग्य [को०]।

अनून—वि० [सं०] १ अखंड। पूर्ण। पूरा। समग्र। २ जिसमें कोई कमी न हो। २ अन्यून। अधिक। ज्यादा। बहुत। ३ पूर्ण अधिकारयुक्त [को०]।

अनूप[1]—वि० [सं०] १ जलप्राय। जहाँ जल अधिक हो। २ दलदली [को०]।

अनूप[2]—संज्ञा पुं० १ जलप्राय देश। वह स्थान जहाँ जल अधिक हो। २ भैंस। ३ ताल या तालाब। ४ दलदल। ५ कछार। ६ मेढक। ७ हाथी। ७ तीतर या चकोर [को०]। उ०—अनूप (जलसमीप) के रहनेवाले जीव हम चकवा आदि।—माधव, पृ० १८१।

अनूप[3]—[सं० अनुपम] १ जिसकी उपमा न हो। अद्वितीय। बेजोड। उ०—(क) कबीर रामानंद को सतगुरु भए सहाय। जग में जुगुत अनूप है सो सब दई बताय। कबीर (शब्द०)। (ख) जिन्ह वह पाई छाँह अनूपा। फिर नहिं आइ सहै यह धूपा।—जायसी (शब्द०)। (ग) अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा।—मानस, १।३७। २ सुंदर। अच्छा। उ०—जौं घरु बर कुलु होइ अनूपा। करिअ बिवाहु सुता अनुरूपा।—मानस, १।७१।

अनूपग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] नदी के किनारे का गाँव।

विशेष—चंद्रगुप्त कालीन एक राजनियम के अनुसार बरसात के दिनों में ऐसे गाँव के लोगों को नदी का किनारा छोडकर किसी दूसरे दूरवर्ती स्थान पर बसना पडता था।

अनूपनाराच—संज्ञा पुं० [सं० अनूप+नाराच] छंद का एक भेद जो पंचचामर के अंतर्गत है और जिसके प्रत्येक चरण में ज, र, ज, र, ज और गुरु होना है।

अनूपम(पु)—वि० दे० 'अनुपम'। उ०—(क) अदभुत एक अनूपम बाग।—सूर०, १०।२११०। (ख) ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ।—मानस, १।२६।

अनूपान(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अनुपान'। उ०—रघुपति भगति सजीवनि मूरी। अनूपान श्रद्धा मति रूरी।—मानस, ७।१२२।

अनूपी(पु)—वि० स्त्री० दे० 'अनूप'। उ०—धन्य अनुराग धनि भाग धनि सौभाग्य धन्य जोवन रूप अति अनूपी।—सूर०, १०।१७८८।

अनूमान(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अनुमान'। उ०—अनूमान साछी रहित होत नहीं परमान।—स० सप्तक, पृ० ४०।

अनूरत्त(पु)—वि० दे० 'अनुरक्त'। उ०—दिपती सुहाग। अनूरत्त राग।—पृ० रा०, ६२।४१।

अनूरु[1]—वि० [सं० अनूरु] उरुहीन। बिना जाँघवाला।

अनूरु[2]—संज्ञा पुं० १ सूर्य का सारथी। अरुण। २ अरुणोदय [को०]।

अनूरुसारथी—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अनूर्जित—वि० [सं०] १ शक्तिहीन। अशक्त। कमजोर। २ अभिमानशून्य [को०]।

अनूर्ध्व—वि० [सं०] ऊँचा नहीं। नीचा [को०]।

अनूर्मि—वि० [सं०] १ तरंगशून्य। अचंचल। २ अनतिक्रम्य [को०]।

अनूषर—वि० [सं०] १ क्षारीय। रेहवाला। २ क्षारहीन। रेहशून्य [को०]।

अनूह—वि० [सं०] १ जिसपर विचार न हो सके। अतर्क्य। २. विचारहीन। लापरवाह (को०)।

अनृजु—वि० [सं०] जो ऋजु अर्थात् सीधा न हो। कुटिल। वक्र। २. दुष्ट। अविश्वस्त। बेईमान [को०]।

अनृण—वि० [सं०] जो ऋणी न हो। जिसे कर्ज न हो। ऋणमुक्त।

अनृणता—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ज से छुटकारा। ऋणमुक्ति [को०]।

अनृणी—वि० [सं० अनृणिन्] दे० 'अनृण' [को०]।

अनृत[1]—वि० [सं०] १ मिथ्या। झूठा। २ अन्यथा। विपरीत। उ०—तोहिं स्याम हम कहा दिखावें। अमृत कहा अनृत गुण प्रगटें सो हम कहा बतावें।—सूर०, १०।२०६६।

अनृत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मिथ्या। असत्य। झूठ। २ कृषि। खेती [को०]।

अनृतक—वि० [सं०] मिथ्यावादी। झूठ बोलनेवाला [को०]।

अनृतभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] झूठ बोलना। मिथ्या कथन [को०]।

अनृतवादन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनृतभाषण' [को०]।

अनृतवादी—वि० [सं० अनृतवादिन्][वि० स्त्री० अनृतवादिनी] झूठा। मिथ्यावादी [को०]।

अनृतव्रत—वि० [सं०] अपने वचन या प्रतिज्ञा का पालन कभी न करनेवाला [को०]।

अनृती—वि० [सं० अनृतिन्] दे० 'अनृतक' [को०]।

अनृतु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बेमौसम। असमय। २ रजोदर्शन से पूर्व की अवस्था या स्थिति [को०]।

अननुकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या जिसे रजोधर्म न हुआ हो[को०]।

अननुप्राप्त सैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसके अनुकूल ऋतु न पड़ती हो।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार ऐसी सेना ऋतु के अनुकूल वस्त्र, शस्त्र, कवच आदि का प्रबंध हो जाने पर युद्ध कर सकती है, पर अभूमिप्राप्त (अनुपयुक्त भूमि में फँसी) सेना कुछ करने में असमर्थ हो जाती है।

अनृशंस—वि० [सं०] क्रूरतारहित। अकठोर। मृदुल [को०]।

अनृशंसता—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रूरता का अभाव। दयालुता [को०]।

अनेऊ(पु)†—वि० [सं० अन्याय, प्रा० > अन्नाय > अन्याय > अनाव > अनेव > अनेऊ] बुरा। खराब।

अनेक—वि० [सं०] एक से अधिक। बहुत। ज्यादा। असंख्य। अनगिनत।

यौ०—अनेकानेक।

अनेककाम—वि० [सं०] एक से अधिक इच्छाओंवाला [को०]।

अनेककालावधि—क्रि० वि० [सं०] बहुत काल से या चिरकाल तक [को०]।

अनेककृत—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अनेकचर—वि० [सं०] समूह या झुंड में रहनेवाला [को०]।

अनेकचित्त—वि० [सं०] १ अनेक वस्तुओं की कामना या ध्यान रखनेवाला। २ चंचल मनवाला। चपलचित्त [को०]।

अनेकज^१—वि० [सं०] जिसका जन्म एक बार से अधिक हो [को०]।

अनेकज^२—संज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

अनेकजन्मा—वि० [सं०] दे० 'अनेकज' [को०]।

अनेकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनेकत्व'।

अनेकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक से अधिक होने की स्थिति या भाव। बहुत्व। अनेकता [को०]।

अनेकत्र—क्रि० वि० [सं०] कई जगह। कई स्थान [को०]।

अनेकधा—क्रि० वि० [सं०] कई प्रकार से। कई तरह से [को०]।

अनेकप—संज्ञा पुं० [सं०] द्विप। हाथी [को०]।

अनेकभार्य—वि० [सं०] कई पत्नियोंवाला (को०)।

अनेकमुख—वि० [सं०] [स्त्री० अनेकमुखी] १ अनेक चेहरेवाला। अनेक मुखवाला। २ कई दिशाओं में जानेवाला [को०]।

अनेकमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम [को०]।

अनेकरूप^१—वि० [सं०] [स्त्री० अनेकरूपा] १ कई रूपोंवाला। २ परिवर्तनशील [को०]।

अनेकरूप^२—संज्ञा पुं० परमेश्वर [को०]।

अनेकलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्र। २ शिव। ३ विराट्पुरुष। सहस्राक्ष [को०]।

अनेकवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहुवचन। २ द्विवचन।

अनेकवर्ण^१—वि० [सं०] कई रंगोंवाला [को०]।

अनेकवर्ण^२—संज्ञा पुं० बीजगणित में प्रयुक्त अज्ञात राशियाँ [को०]।

अनेकविध—वि० [सं०] अनेक प्रकार का। विभिन्न कोटि का।

अनेकश—क्रि० वि० [सं०] अनेकबार। बार बार। उ०—मेरी कामना है कि इस दिवस की अनेकश पुनरावृत्ति हो।—शुक्ल० अभि० ग्र०, पृ० १५।

अनेकशफ—वि० [सं०] फटे खुरोंवाला [को०]।

अनेकशब्द—वि० [सं०] पर्यायवाची [को०]।

अनेकसाधारण—वि० [सं०] अनेक में पाया जानेवाला। बहुतों में पाया जानेवाला [को०]।

अनेकांगी^१—संज्ञा पुं० [सं० अनेकाङ्गिन्] वह जिसे कई अंग हों। जिसके बहुत हिस्से या भाग हों।

अनेकांगी^२—वि० अनेक अंग, भाग या हिस्सोंवाला [को०]।

अनेकांत—वि० [सं० अनेकान्त] १ जो एकांत न हो। २ जो स्थिर न हो। चंचल।

अनेकांतवाद—संज्ञा पुं० [सं० अनेकान्तवाद] [वि० अनेकांतवादी] जैन दर्शन। आर्हत दर्शन। स्याद्वाद।

अनेकांतवादी—वि० [सं० अनेकान्तवादिन्] अनेकांतवाद को माननेवाला [को०]।

अनेकाकार—वि० [सं० अनेक+आकार] अनेक आकारवाला। अनेक आकृतियोंवाला [को०]।

अनेकाकी—वि० [सं० अनेकाकिन्] [स्त्री० अनेकाकिनी] अकेला नहीं। कई लोगों के साथ [को०]।

अनेकाक्षर—वि० [सं०] अनेक अक्षरों से युक्त [को०]।

अनेकाग्र—वि० [सं०] १ जो किसी एक विषय पर ध्यानस्थ न हो। कई कामों में लगा हुआ। २ उलझा हुआ। अव्यवस्थित [को०]।

अनेकाच्—वि० [सं०] जिसमें बहुत से 'अच्' या स्वर हों। बहुत से स्वरों से युक्त। (शब्द या वाक्य) जिसमें बहुत से स्वर हों।

अनेकार्थ—वि० [सं०] जिसके बहुत से अर्थ हों। बहुत अर्थोंवाला।

अनेकार्थक—वि [सं०] दे० 'अनेकार्थ' [को०]।

अनेकाल—वि० [सं०] जिसमें एक से अधिक 'अल्' (स्वर और व्यंजन) वाला।

अनेकाश्रय—वि० [सं०] अनेक या कई पर निर्भर रहनेवाला [को०]।

अनेकाश्रित—वि० [सं०] दे० 'अनेकाश्रय' [को०]।

अनेग(पु)—वि० [सं० अनेक] बहुत अधिक। ज्यादा। उ०—रोकि रहे द्वार नेग माँगत अनेग नेगी, औ तन न खोल ब्याज खोलत खहिनि के।—देव (शब्द०)।

अनेड^१—वि० [सं०] १ मूर्ख। २ बुरा। खराब [को०]।

अनेड^२(पु)†—वि० [सं० अनृत] दे० 'अनेरा'।

अनेडमूक—वि० [सं०] १ गूँगा बहरा। २ अंधा। ३ बेईमान। कपटी। दुष्ट। बदमाश [को०]।

अनेडा(पु)†—वि० [सं० अ+निकट, प्रा० नियर, नियड] दूर। असमीप। उ०—जासु सबेरा बाट अनेडा फिर नहिं लागै जोर, बटोही का रे सोवै।—संतवाणी० भा० २ पृ० ३०।

अनेता†—संज्ञा पुं० [देश०] मालती लता (देहरादून)।

अनेम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनियम'। उ०—अनियम थल नेमहि गहै नियम ठौर जु अनेम।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० २३८।

अनेय(पु)—वि० [सं० अनीति, प्रा० अ+णीइ] अन्याय से होनेवाली। अनीतिजन्य। उ०—तुम सुधरम राजन अनेय लज्जा अधिकारिय।—पृ० रा० ६६।४६६।

अनेरा¹(पु)— वि० [सं० अनृत, प्रा० * अनिर] [वि० स्त्री० अनेरी] १ झूठ। व्यर्थ। निष्प्रयोजन। उ०—अरी म्वारि मैं मत ! बचन बोलत जो अनेरो। कब हरि बालक भए, गर्भ कब लियो बसेरो।—सूर०(शब्द०)। २ भूठा। अन्यायी। दुष्ट। निकम्मा। उ०—तोहि स्याम की सपद जसोदा आइ देखु गृह मेरो। जैसी हाल करी यहि ढोटो छोटो निपट अनेरो।—तुलसी (शब्द०)। ३ स्वच्छंद। निरकुश।

अनेरा²—क्रि० वि० व्यर्थ। झूठमूठ। निष्प्रयोजन। उ०—सुनहु स्याम रघुबीर गोसाई मन अनीति रत मेरो। चरनसरोज बिसारि तुम्हारो निसदिन फिरत अनेरो।—तुलसी (शब्द०)।

अनेला—वि० [सं० अ+निकट, प्रा० नियड, हिं० नेर] अपरिचित। अनपहचाना। उ०—आपके भाँसे मे कोई अनेला आए तो आए हमपर चकमा न चलेगा।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५।

अनेलापन—संज्ञा पुं० [हिं० अनेला+पन अथवा हिं० अनेरा] १ न पहचानने की स्थिति। अपरिचित होने का भाव। अजानपना। २. स्वच्छंदता। स्वतंत्रता। उ०—अनेलापन उसका मुझे भा गया। करूँ क्या दिल उसपर मेरा आ गया।—शौक (फीरत)।

अनेव¹—क्रि० वि० [सं०] अन्यथा। नही तो [को०]।

अनेव²(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनेक'। उ०—राजित बज्जि मगल अनेव। मानति उचारि सागुन भेव।—पृ० रा०, ६१।२५२८।

अनेम¹(पु)—वि० [सं० अनिष्ट] बुरा। खराब। अनइस।

अनेस²—संज्ञा पुं० आशंका। डर। चिता।

अनेह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अस्नेह] अप्रेम। अप्रीति। विरक्ति।

अनेहा—संज्ञा पुं० [सं० अनेहस्] समय। काल। वक्त।

अनै(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनय'। उ०—नाम प्रताप पतित पावन किए जे न अघाने अघ अनै।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३८६।

अनैकात—वि० [सं० अनैकान्त] दे० 'अनेकांत' [को०]।

अनैकांतिक—वि० [सं० अनैकान्तिक] दे० 'अनेकांत' [को०]।

अनैकांतिक हेतु—संज्ञा पुं० [सं० अनैकान्तिकहेतु] न्याय के पाँच हेत्वाभासों में से एक। वह हेतु जो साध्य का एकमात्र साधनभूत न हो। वह बात जिससे किसी वस्तु की एकांतिक सिद्धि न हो। सव्यभिचार हेत्वाभास। जैसे,—कोई कहे कि शब्द नित्य है क्योंकि वह स्पर्शवाला नहीं है। यहाँ घर आदि स्पर्शवाले पदार्थों को अनित्य देखकर अस्पृश्यता को नित्यता का एक हेतु मान लिया गया है। पर परमाणु, जो स्पर्शवाले हैं, नित्य हैं। अत: इस हेतु से व्यभिचार आ गया।

अनैक्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऐक्य या एकता का अभाव। एका न होना। २ मतभेद। नाइत्तफाकी। फूट।

अनैच्छिक—वि० [सं०] १ अवाछित। न चाहा हुआ। २ इच्छा के बिना होनेवाला। स्वत उत्पन्न। शरीर की चेष्टाएँ, दिकार आदि।

अनैठ²—संज्ञा पुं० [सं० अन् = नहीं+पण्यस्थ, प्रा० पण्णअट्ठ, हिं० पैंठ अथवा देश०] वह दिन जिसमे बाजार बद रहे। 'पैंठ' का उलटा।

अनैतिक—वि० [सं०] जो नीति के विरुद्ध हो। अनैतिक [हि०]।

अनैतिहासिक—वि० [सं०] १ जो ऐतिहासिक न हो। २ जैसा भूत मे न हुआ हो। अभूतपूर्व [को०]।

अनैपुण—संज्ञा पुं० [सं०] अनिपुणता। अदक्षता। अकुशलता [को०]।

अनैश्वर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऐश्वर्य का अभाव। धन दौलत या बड़ाई या सपदा का न होना। २ अनीश्वरता। सिद्धियों की अप्राप्ति।

अनैस¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्+एष = एषण] [क्रि० अनैसना] बुराई। अहित।

अनैस²—वि० बुरा। उ०—मोह को यह गर्व सागर भरो आइ अनैस।—सा० लहरी, पृ० १६।

क्रि० प्र०—मानना = बुरा मानना। रूठना।

अनैसना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अनैस से नाम०] बुरा मानना। रूठना। उ०—श्यामल घन गोभ समाने मोरे रहे अनैसे।—सूर० (शब्द०)।

अनैसर्गिक—वि० [सं०] १ जो प्रकृति के विरुद्ध हो। अप्राकृतिक। २. जो स्वभाव के प्रतिकूल हो। अस्वाभाविक [को०]।

अनैसा(पु)—वि० [हिं० अनैस] [वि० स्त्री० अनैसी] जो इष्ट न हो। अप्रिय। बुरा। खराब। उ०—(क) नाम लिए अपनाइ लियो तुलसी सो कहौं जग कौन अनैसो।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६८। (ख) पातिन परम ताडका ऐसी। मायाविनि अति अदय अनैसी।—पद्माकर (शब्द०)।

अनैसे—क्रि० वि० [हिं० अनैस] अनिच्छापूर्वक। बुरे भाव से। बुरी तरह से। उ०—(क) कह मुनि राम जाइ रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) छोरि छोरि बाँधी पाग आरस सो आरसी लै अनत ही आन भाति देखत अनैसे हो।—केशव० ग्रं०, भा० १, पृ० १२५।

अनैहा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अनैस] उत्पात। उपद्रव। उ०—जा कारण सुन सुत सुदर वर कीन्हो इतो अनैहो। सोइ सुधाकर देखि दमोदर या भाजन मे है, हो।—सूर (शब्द०)।

अनोग्रन्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनोखा'। उ०—छुटा ज्यों बिछुटै मुजे सेत छूटै। लगे अग तूटै अनोग्रन्त टूटै।—पृ० रा० पृ० ८६०।

अनोकशायी—संज्ञा पुं० [सं० अनोकशायिन्] जो घर में न सोता हो [को०]।

अनोकह—संज्ञा पुं० [सं०] १ जो अपना स्थान न छोड़े। २ पेड। वृक्ष।

अनोख(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनोखा'। उ०—श्री ठाकुर मुख उनही कवि गोप अनोख धरी चतुराई।—इतिहास, पृ०२८२।

अनोखा—वि० [अ० (उच्चा०) सं० नवक, अप० णवग] [वि० स्त्री० अनोखी], [संज्ञा अनोखापन] १ अनूठा। निराला। विलक्षण। विचित्र। अद्भुत। २ नवल। नया। ३ सुंदर। खूबसूरत। उ०—उस अनोखे अतिथि को आतिथ्य मे स्वागत। दे दिया उसने हृदय भी शीघ्र करने भार।—साकेत, पृ० ८।

अनोखापन—संज्ञा पुं० [हिं० अनोखा+पन (प्रत्य०)] १ अनूठापन। निरालापन विलक्षणता। २ नवलता। नयापन। ३ सुंदरता। खूबसूरती।

अनोट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनवट'। उ०—देखि करोट सु ऐंचि अनोट जगाइ लै ओट गए गिरिधारी।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १०५।

अनोदन—वि० [सं०] बिना भोजन के। निराहार [को०]।

अनोदयनाम—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार वह पाप कर्म जिसके उदय से मनुष्य की बात कोई नहीं मानता।

अनोपम(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनुपम'। उ०—सुंदर भाल बिसाल अलक सम माल अनोपम। हित प्रकाश ऋदुहार अरुण बारिज मुख ओपम।—रा० रू०, पृ० २।

अनोसर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० अन+सं०अवसर] १ वह समय जब वैष्णव धर्मावलंबी मूर्तियों का शयन कराते हैं। २ एकांत स्थान। सूना स्थान। उ०—अनोसर करि आम कछुक आरोगे।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २१।

अनौचित्य—संज्ञा पुं० [सं०] उचित बात का अभाव। अनुपयुक्तता।

अनौजस्य—संज्ञा पुं० [सं०] पराक्रम या शक्ति का अभाव [को०]।

अनौट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनवट'। उ०—बिछिया अनौट बाँक घूघरी जराइ जरी, जेहरी छबीली छुद्रघंटिका की जालिका।—केशव० ग्रं०, ।

अनौद्धत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ उच्छृंखलता या दर्प का न होना। २ नम्रता। ३ शांति। (नदी के जल का) ऊँचा न होना। ऊपर न उठना [को०]।

अनौधि(पु)—अव्य० [सं० अनवधि] शीघ्र। जल्दी। तुरत।

अनौपम्य—वि० [सं०] जिसकी उपमा न दी जा सके। बेजोड़ [को०]।

अनौरस—वि० [सं०] १ जो विवाहिता पत्नी से उत्पन्न न हो। जो औरस संतान न हो, अवैध। २ गोद लिया हुआ (पुत्र) [को०]।

अन्न भट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] तर्कसंग्रह के रचयिता।

अन्न¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ खाद्य पदार्थ। २ अनाज। नाज। धान्य। दाना। गल्ला। ३ पकाया हुआ अन्न। भात।

यौ०—अन्नकूट। अन्नजल। पक्वान्न। अन्नराशि।

४ वह जो सबका भक्षण या ग्रहण करे। ५ सूर्य। ६ विष्णु। ७ पृथ्वी। ८ प्राण। ९ जल।

मु०—अन्न मिट्टी होना—खाना पीना हराम होना। उ०—जेहि दिन गढ़ छेंकै गढ घाटी। होइ अन्न ओही दिन माटी।—जायसी (शब्द०)।

अन्न²(पु)—वि० [सं० अन्य प्रा०—अण्ण] दूसरा। विरुद्ध। पर। उ०—जो विधि लिखा अन्न नहिं होई। कित धावै किन रोवै कोई।—जायसी (शब्द०)।

अन्नकाल—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन करने का समय। अन्न ग्रहण करने का समय [को०]।

अन्नकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्नमल' [को०]।

अन्नकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न का पहाड़ या ढेर। उ०—गोवर्धन सिर तिलक चढायौ, मेटि इंद्र ठकुराइ। अन्नकूट ऐसो रचि राख्यौ, गिरि की उपमा पाइ।—सूर०, १०।८३२। २ एक उत्सव जो कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यंत यथारुचि किसी दिन (विशेषतः प्रतिपदा को वैष्णवों के यहाँ) होता है। उस दिन नाना प्रकार के भोजनों की ढेरी लगाकर भगवान को भोग लगाते हैं।

अन्नकोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न रखने का स्थान या कोठरी। २ गंज। गोला। बखार।

अन्नकोष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्नकोष्ठ' [को०]।

अन्नगंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्नगन्धि] अतिसार की व्याधि [को०]।

अन्नगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न की प्रणाली या गति [को०]।

अन्नछेत्रा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नसत्र'।

अन्नजल—संज्ञा पुं० [सं०] १ दाना पानी। खाना पीना। खानपान। जैसे,—तुम्हारे यहाँ हम अन्नजल नहीं ग्रहण करेंगे (शब्द०)।

क्रि० प्र०—त्यागना या छोड़ना = उपवास करना।

२ आबदाना। जीविका।

क्रि० प्र०—उठना = जीविका छूटना। जैसे,—'अब यहाँ से हमारा अन्न जल उठ गया' (शब्द०)।

३ संयोग। इत्तफाक। जैसे,—जहाँ का अन्न जल होगा वहाँ चले ही जायँगे (शब्द०)।

अन्नजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की हिचकी।

विशेष—'माधवनिदान' के अनुसार अन्न और पानी का बहुत अधिक सेवन करने से वायु अकस्मात् कुपित होकर ऊर्ध्वगामी हो जाती है जिससे यह हिचकी होती है।

अन्नजीवी—संज्ञा पुं० [सं० अन्नजीविन्] वह जो केवल अन्न खाकर जीवनयापन करता है। केवल अन्न पर पलनेवाला जीव [को०]।

अन्नया(पु)—वि० [सं० अन्यथा] दे० 'अन्यथा'। उ०—कृत करण अन्नया करण। सगले ही थोके समरत्थ।—बेलि०, दू०, पृ० १३७।

अन्नद—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अन्नदा] अन्नदाता। प्रतिपालक। रक्षक। पोषक।

अन्नदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा। २ अन्नपूर्णा [को०]।

अन्नदाता—संज्ञा पुं० [सं० अन्नदातृ] [स्त्री० अन्नदात्री] १. अन्न दान करनेवाला। २ पोषक। प्रतिपालक।

अन्नदास—संज्ञा पुं० [सं०] वह नौकर जो केवल भोजन पर कार्य करता है [को०]।

अन्नदोष—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न से उत्पन्न विकार। जैसे, दूषित अन्न खाने से रोग इत्यादि का होना। २ निषिद्ध स्थान या व्यक्ति का अन्न खाने से उत्पन्न दोष या पाप।

अन्नद्रवशूल—संज्ञा पुं० [सं०] पेट का वह दर्द जो सदा बना रहे, चाहे अन्न पचे या न पचे और जो पथ्य करने पर भी शांत न हो। लगातार बनी रहनेवाली पेट की पीड़ा।

अन्नद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अन्नद्वेषी] अन्न मे रुचि न होना। भोजन मे अरुचि। भूख न लगना।

अन्नपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न का स्वामी। २ शिव। ३ अग्नि। ४ सूर्य [को०]।

अन्नपाक—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि पर या पेट मे अन्न का पाचन [को०]।

अन्नपाकस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पाकस्थली'।

अन्नपूरना(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अन्नपूर्णा'। उ०—जौलो देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना।—तुलसी ग्रं०, पृ० २३५।

अन्नपूर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न की अधिष्ठात्री देवी। दुर्गा का एक रूप। ये काशी की प्रधान देवी हैं।

अन्नपूर्णेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अन्नपूर्णा। २ तंत्रोक्त एक भैरवी का एक नाम [को०]।

अन्नप्रलय—वि० [सं०] मरणोपरांत शरीर का अन्न रूप में परिवर्तित होना [को०]।

अन्नप्राशन—संज्ञा पुं० [सं०] बच्चों को पहले पहल अन्न चटाने का संस्कार। चटावन। पेहनी। पसनी।

विशेष—स्मृति के अनुसार छठे या आठवें महीने बालक को और पाँचवें सातवें महीने बालिका को पहले पहल अन्न चटाना चाहिए।

अन्नप्रासन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नप्राशन'। उ०—नामकरण सु अन्नप्रासन वेद बाँधी नीति।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४२६।

अन्नमयकोश—संज्ञा पुं० [सं०] वेदांत के अनुसार, पंचकोशों में से प्रथम। अन्न से बना हुआ त्वचा से लेकर वीर्य तक का समुदाय। स्थूल शरीर। बौद्धशास्त्रानुसार रूपस्कंद। उ०—अन्नमयकोश सुनौ पिंड है प्रकट यह प्रानमय कोश पंचवायु हू बपानिये।—सुंदर ग्रं०, पृ० ५९८।

अन्नमल—संज्ञा पुं० [सं०] १ यव आदि अन्नों से बनी शराब। २. मल। विष्टा।

अन्नराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न की ढेरी। गंज।

अन्नविकार—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न का परिवर्तित रूप। अन्न पचने से क्रमशः बने हुए रस, रक्त, मांस, मज्जा, चरबी, हड्डी और शुक्र आदि।

अन्नव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] पारस्परिक भोजन या खानपान का व्यवहार [को०]।

अन्नशेष—संज्ञा पुं० [सं०] बचा हुआ भोजन। उच्छिष्ट [को०]।

अन्नसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] देवतादि के कार्यों में अन्न का प्रयोग। देवकार्य में अन्नोत्सर्ग [को०]।

अन्नसत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ भूखों को भोजन दिया जाता है। अन्नक्षेत्र। लंगर।

अन्ना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० * अग्निक, प्रा० * अग्गिअ > अग्गा] १ वह छोटी अँगीठी या बोरसी जिसमें सुनार सोना आदि रखकर भाथी के द्वारा तपाते या गलाते हैं।

अन्ना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बा या अल्ला = माँ अथवा देश० दाई] धात्री। दूध पिलानेवाली स्त्री।

अन्नाकाल—संज्ञा पुं० [सं०] अनाकाल। दुर्भिक्ष [को०]।

अन्नाद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो सब को ग्रहण करे। ईश्वर। २ विष्णु के सहस्र नामों में से एक।

अन्नाद[2]—वि० अन्न खानेवाला। अन्नाहारी।

अन्नाम(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनाम'। उ०—इह सु नाम अन्नाम। जेन नामह घर जाइय।—पृ० रा०, ३३।१९।

अन्नि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अन्य'। उ०—ग्रहंत अन्नि एक पति, उर्द्ध जात तध्यय।—पृ० रा०, ५८।२४१।

अन्नित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनीति'। उ०—हूँ नीति जानि अन्नित न करि।—पृ० रा०, ३५।३।

अन्य—वि० [सं०] दूसरा। और कोई। भिन्न। गैर। पराया। उ०—असुर सुर नाग नर यक्ष गंधर्व खग रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४८७।

यौ०—अन्यजात। अन्यमनस्क। अन्यान्य। अन्योन्य।

अन्यक—वि० [सं०] दे० 'अन्य' [को०]।

अन्यकारुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल का कीड़ा [को०]।

अन्यक्रीत—वि० [सं०] दूसरे का खरीदा हुआ।

अन्यग—वि० [सं०] दूसरे की स्त्री के साथ गमन करनेवाला। व्यभिचारी [को०]।

अन्यगामी—वि० [सं० अन्यगामिन्] दे० 'अन्यग' [को०]।

अन्यचित्त—वि० [सं०] जिसका मन अन्यत्र लगा हो। अन्यमनस्क [को०]।

अन्यच्च—क्रि० वि० [सं०] और भी।

अन्यजात—वि० [सं०] खोई हुई या नष्ट (वस्तु)।

अन्यत्—वि० [सं०] दे० 'अन्य'।

अन्यत—क्रि० वि० [सं० अन्यतस्] १ किसी और से। २ किसी और स्थान से। कहीं और से।

अन्यतम—वि० [सं०] जिसकी तुलना में और कोई न हो। सर्वश्रेष्ठ। सबसे बड़ा [को०]।

अन्यतर—वि० [सं०] दूसरा। भिन्न। दो में से एक।

अन्यतरस्य—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु। दुश्मन। प्रतिपक्षी [को०]।

अन्यतोपाक—संज्ञा पुं० [सं०] दाढ़ी, कान, भौं इत्यादि में वायु का प्रवेश होने के कारण आँखों की पीड़ा।

अन्यत्र—वि० [सं०] और जगह। दूसरी जगह। उ०—ना नृप कौ परमातम मित्र। इक छिन रहत न सो अन्यत्र।—सूर० ४।१२।

अन्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] परायापन। भिन्नता।

अन्यत्वभावना—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार जीवात्मा को शरीर से भिन्न समझना।

अन्यथा[1]—वि० [सं०] १ विपरीत। उलटा। विरुद्ध। और का और। २ असत्य। झूठा। उ०—किएँ अन्यथा होइ नहिं विप्र श्राप अति घोर।—मानस, १।१७४।

अन्यथा[2]—अव्य० नहीं तो। जैसे,—आप समय पर आइए अन्यथा हमसे भेंट न होगी (शब्द०)।

अन्यथाकारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विपरीत या विरुद्ध करने की प्रवृत्ति। उ०—हा! होती है प्रकृति रुचि में अन्यथाकारिता भी।—प्रिय० प्र०, पृ० २१९।

अन्यथाचार—संज्ञा पुं० [सं०] अनुचित या विपरीत कार्य। विरुद्ध आचरण। उ०—तब उसका परिणाम अन्यथाचार के अतिरिक्त क्या होता है।—प्रेमघन०, भा०२, पृ० ३१६।

अन्यथानुपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वस्तु के अभाव में किसी दूसरी वस्तु की उपपत्ति या अस्तित्व की असंभावना।

विशेष—जैसे, मोटा देवदत्त दिन को नहीं खाता, इस कथन से इस बात का अनुमान होता है या प्रमाण मिलता है कि देवदत्त

रात को खाता है क्योंकि बिना खाए मोटा होना असभव है। न्याय मे यह अनुमान के अतर्गत और मीमासा मे अर्थापत्ति प्रमाण के अतर्गत है।

अन्यथाभाव—सज्ञा पु० [सं०] विरोधात्मक भाव या विचार। भिन्न रूप मे होना [को०]।

अन्यथावाही—सज्ञा पुं० [सं० अन्यथावाहिन्] अर्थशास्त्रानुसार बिना चुगी या महसूल दिए ही माल ले जानेवाला।

अन्यथासिद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय मे एक दोष जिसमे यथार्थ नहीं किंतु और कोई कारण दिखाकर किसी बात की सिद्धि की जाय। असबद्ध कारण से सिद्धि। जैसे,—कही कुम्हार, दड या गधे को देखकर यह सिद्ध करना कि वहाँ घट है।'

अन्यदा—अव्य० [स०] १ दूसरे समय। दूसरे अवसर पर। २ एक दिन। एकबार। एक समय। ३ किसी समय। कभी [को०]।

अन्यदीय—वि० [स०] अन्य का। दूसरे से सबधित। उ०—अन्यदीय इच्छा के द्वारा उसका सचालन नहीं होना।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ११८।

अन्यदुर्वह—वि० [स०] जो दूसरे के वहन करने योग्य न हो। दूसरे के लिये कठिन [को०]।

अन्यदेशीय—वि० [स०] [वि० स्त्री० अन्यदेशीया] विदेशी। दूसरे देश का परदेशी।

अन्यधी—वि० [स०] जिसका विचार ईश्वर के पक्ष मे न हो। ईश्वर को न माननेवाला [को०]।

अन्यनाभि—वि० [स०] दूसरे वशवाला [को०]।

अन्यपर—वि० [स०] अन्य विषयक। दूसरे के बारे मे [को०]।

अन्यपुरुष—सज्ञा पुं० [स०] १ दूसरा आदमी। गैर। २ व्याकरण मे पुरुषवाची सर्वनाम का तीसरा भेद। वह पुरुष जिसके सबध मे कुछ कहा जाय। यह दो प्रकार का है—निश्चयात्मक जैसे 'यह', 'वह' और अनिश्चयात्मक जैसे 'कोई'।

अन्यपुष्ट—सज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० अन्यपुष्टा] वह जिसका पोषण अन्य के द्वारा हो। कोकिल। कोयल। काकपाली।

विशेष—ऐसा कहा जाता है कि कोयल अपने अडो को सेने के लिये कौओ के घोसलो मे रख आती है।

अन्यपूर्वा—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो एक को व्याही जाकर या वाग्दत्ता होकर फिर दूसरे से व्याही जाय। इसके दो भेद हैं—पुनर्भू और स्वैरिणी।

अन्यबीजज—सज्ञा पुं० [स०] दत्तक पुत्र [को०]।

अन्यबीजसमुद्भव—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अन्यबीजज' [को०]।

अन्यबीजोत्पन्न—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अन्यबीजज' [को०]।

अन्यभृत्[1]—वि० [स०] दूसरे का पालन करनेवाला [को०]।

अन्यभृत्[2]—सज्ञा पुं० काक। कौआ [को०]।

अन्यभृता—सज्ञा स्त्री० [सं०] कोयल [को०]।

अन्यमन—वि० [स० अन्यमनस्] अनमना। उदास। चिंतित।

अन्यमनस्क—वि० [स०] जिसका जी कही न लगता हो। उदास। चिंतित। अनमना। उ०—किंतु अन्यमनस्क होकर वह टहलने ही लगी।—कानन०, पृ० १८।

अन्यमानस—वि० [सं०] दे० 'अन्यमनस्क' [को०]।

अन्यमातृज—सज्ञा पुं० [सं०] दूसरी या सौतेली माता से उत्पन्न। सौतेला भाई [को०]।

अन्यमार्गी—वि० [सं० अन्यमार्गिन्] दूसरा मत या धर्म माननेवाला। उ०—अन्यमार्गी को अहसान मोल लियो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३१८।

अन्यर्हि—अव्य० [सं०] किसी अन्य समय (को०)।

अन्यवादी—वि० [स० अन्यवादिन्] १ झूठी गवाही देनेवाला। २ प्रतिवादी [को०]।

अन्यवाप—सज्ञा पुं० [स०] कोयल [को०]।

अन्यविवर्धित—वि० [स०] जिसका पालन दूसरे द्वारा किया गया हो [को०]।

अन्यव्रत—वि० [सं०] अन्यधर्मानुगामी। अनाय।

विशेष—अनार्यों की अपनी भाषाएँ थी जो आर्यों को अजीब सी मालूम होती थी। आर्यों ने उनको अन्यव्रत इत्यादि कहा है जिससे जाहिर होता है कि उनके धर्म, देवता, नियम इत्यादि पृथक् थे।

अन्यशाख—सज्ञा पु० [स०] वह ब्राह्मण जिसने अपना धर्म त्याग दिया हो [को०]।

अन्यशाखक—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अन्यशाख' [को०]।

अन्यसक्रात—वि० [स० अन्यसङ्क्रान्त] दूसरी स्त्री से सबध कर लेनेवाला [को०]।

अन्यसगम—सज्ञा पु० [स० अन्यसङ्गम] अवैध यौनसबध [को०]।

अन्यसभूयक्रय—सज्ञा पुं० [स० अन्यसम्भूयक्रय] योक का दूसरा दाम जो पहले दाम पर न बिकने पर लगाया जाय।

विशेष—चद्रगुप्त के समय बहुत से पदार्थ ऐसे थे जिन्हे राज्य ही बेचता था।

अन्यसभोगदुखिता—सज्ञा स्त्री० [स० अन्यसम्भोगदुःखिता] वह नायिका जो अन्य स्त्री मे सभोग के चिह्न देखकर और यह जानकर कि इसने हमारे पति के साथ रमण किया है, दुखित हो।

अन्यसाधारण—वि० [सं०] बहुतो मे पाया जानेवाला [को०]।

अन्यसुरतिदुखिता—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अन्यसभोगदुखिता'। उ०—अन्यसुरतिदुखिता कहो, करे पेच-रिस-नेह।—मतिराम ग्र०, पृ० २६२।

अन्याइ(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—मुनि पावै नीतन को राइ। तौ यह होइ बडो अन्याइ।—नद० ग्र०, पृ० २४४।

अन्याई[1](पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—सेए नाहि चरन गिरिधर के बहुत करी अन्याई।—सूर० १११४५।

अन्याई[2](पु)—वि० [हिं०] दे० 'अन्यायी'। उ०—या ब्रज मे लरिका घने हौंही अन्याई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४३०।

अन्याउ(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—जे अन्याउ करहिं काहु को ते सिसु मोहि न भावहिं।—तुलसी ग्र०, पृ० ४३२।

अन्यादृश—वि० [स०] १ दूसरे प्रकार का। २ परिवर्तित [को०]।

अन्यापदेश—सज्ञा पुं० [स०] वह कथन जिसका अर्थ साधर्म्य के विचार से कथित वस्तुओ के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओ पर घटाया जाय।

अन्योक्ति। जैसे,— हे पिक पचम नाद को नहिं भीलन को ज्ञान। यहै रीझिवो मान तू जो न हनैं हिय वान। यहाँ कोकिल और भील की बात कहकर मूर्ख दुर्जनो और गुणियो का स्वभाव दिखाया गया है।

अन्यापेक्षी—वि० [स० अन्यापेक्षिन्] दूसरे का आसरा रखनेवाला। दूसरे का अवलब लेनेवाला। उ०—वह मूलत एक उन्मुख भाव है, अन्यापेक्षी भाव जो दूसरे की उपस्थिति से ही रसावस्था तक पहुँचता है।—नदी०, पृ० २५६।

अन्याय—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अन्यायी] १ न्याय के विरुद्ध आचरण। अनीति। बेइमाफी। २ अधेर। अन्यथाचार। ३ जुल्म।

अन्यायी[1]—वि० [स० अन्यायिन्] अन्यथाचारी। अनुचित कार्य करनेवाला दुराचारी। जालिम।

अन्यायी[2]—वि० [सं०] न्याय के प्रतिकूल। अनुचित।

अन्याराⓤ—वि० [स० अ=नहीं+हिं० न्यारा] १ जो पृथक् या जुदा न हो। २ अनोखा। निराला। ३ खूब। बहुत। बढै बस जग माह अन्यारा। छत्र धर्म धुर को रखवारा।—लाल० (शब्द०)।

अन्यारीⓤ—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अनियारा'। उ०—काम झूलै उर मे उरोजन मे दाम झूलै, स्याम झूलै प्यारी की अन्यारी अँखियान में।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३२१।

अन्यार्थ—वि० [स०] प्रस्तुत अर्थ से भिन्न अर्थ प्रकट करनेवाला [को०]

अन्यावⓤ†—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—देवनि हूँ देव परिहरचो अन्याव न तिनको, हौं अपराधी सब केरो।—तुलसी ग्र०, पृ० ५६३।

अन्याश्रित—वि० [सं०] दूसरे पर निर्भर या अवलबित [को०]।

अन्यासⓤ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अनायास'। उ०—दाम मनि काहे को अन्यास दरसावती सयावनी भुअगिनी सी वेनी लौटि लौटि है।—भिखारी० ग्र०, पृ० १७८।

अन्यासाधारण—वि० [स०] असाधारण। असामान्य। विचित्र[को०]

अन्यून—वि० [सं०] जो न्यून न हो। जो कम न हो। काफी। बहुत।

अन्येद्यु—क्रि० वि० [स०] [वि० अन्येद्युष्क] दूसरे दिन।

अन्येद्यु ज्वर—सज्ञा पु० [स०] वह ज्वर जो बीच मे एक एक दिन का अतर देकर चढे। एकतरा ज्वर। अँतरिया बुखार।

अन्येद्युष्क[1]—वि० [स०] दूसरे दिन होनेवाला।

अन्येद्युष्क[2]—सज्ञा पु० दे० 'अन्येद्युज्वर'।

अन्योका—वि० [सं० अन्योकस्] अपने घर मे न रहनेवाला [को०]।

अन्योक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] वह कथन जिसका अर्थ साधर्म्य के विचार मे कथित वस्तु के अतिरिक्त अन्य वस्तु पर घटाया जाय। अन्यापदेश। जैसे,—केती सोम कला करो, करो सुधा को दान। नही चद्रमणि जो द्रवै, यह तेलिया पखान। यहाँ चद्रमा और तेलिया पत्थर के बहाने गुणी और अगुणग्राही अथवा सज्जन और दुर्जन की बात कही गई है। रुद्रट आदि दो एक आचार्यों ने इसको अलकार माना है।

अन्योदर्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अन्योदर्या] दूसरे के पेट से पैदा। सहोदर का उलटा।

अन्योन्य[1]—सर्व० [सं०] परस्पर। आपस मे।

अन्योन्य[2]—सज्ञा पुं० वह काव्यालकार जिसमे दो वस्तुओ की किसी क्रिया या गुण का एक दूसरे के कारण उत्पन्न होना वर्णन किया जाय। जैसे—सर की शोभा हस है, राजहस की ताल। करत परस्पर हैं सदा गुरुता प्रकट विशाल।

अन्योन्यभेद—सज्ञा पु० [स०] आपसी वैर। शत्रुता [को०]।

अन्योन्यविभाग—सज्ञा पुं० [स०] पैतृक सपत्ति का पारस्परिक बँटवारा [को०]।

अन्योन्यवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] पारस्परिक या आपसी प्रभाव [को०]।

अन्योन्यव्यतिकर—सज्ञा पुं० [स०] कार्य और कारण का पारस्परिक सबध [को०]।

अन्योन्यसश्रय—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अन्योन्यव्यतिकर' [को०]।

अन्योन्याभाव—सज्ञा पुं० [सं०] किसी एक वस्तु का दूसरी वस्तु न होना। जैसे—घट पट नही हो सकता और पट घट नही हो सकता।

अन्योन्याश्रय—सज्ञा पुं० [स०] १ परस्पर का सहारा। एक दूसरे की अपेक्षा। २ न्याय मे एक वस्तु के ज्ञान के लिये दूसरी वस्तु के ज्ञान की अपेक्षा। सापेक्ष ज्ञान। जैसे—सर्दी के ज्ञान के लिये गर्मी के ज्ञान की, और गर्मी के ज्ञान के लिये सर्दी के ज्ञान की आवश्यकता है।

अन्वक्—क्रि० वि० [स०] १ बाद मे। पीछे से। २ मैत्री से। अनुकूलता से [को०]।

अन्वक्ष[1]—वि० [स०] १ प्रत्यक्ष। साक्षात्। २ पीछे या बाद का (को०)।

अन्वक्ष[2]—क्रि० वि० १ सामने। २ पीछे। बाद। उपरात।

अन्वय—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अन्वयी] १ परस्पर। तारतम्य। २ सयोग। मेल। ३ पद के शब्दो को वाक्यरचना के नियमानुसार यथास्थान रखने का कार्य। जैसे—पहले कर्ता फिर कर्म और फिर क्रिया। ४ अवकाश। खाली स्थान। ५ वश। कुल। घराना। खानदान। ६. भिन्न भिन्न वस्तुओ को साधर्म्य के अनुसार एक कोटि मे लाना। जैसे,—चलने फिरनेवाले मनुष्य, बैल, कुत्ता आदि को जगम के अतर्गत मानना। ७. कार्य कारण का सबध। ८ अनुगमन (को०)। ९ आशय (को०)।

अन्वयज्ञ—वि० [सं०] वशपरपरा का ज्ञाता [को०]।

अन्वयव्यतिरेक—सज्ञा पुं० [सं०] १ सहमति और असहमति। सगति और असगति। २ नियम और अपवाद [को०]।

अन्वयव्यतिरेकसबध—सज्ञा पु० [स० अन्वयव्यतिरेकसम्बन्ध] दो वस्तुओ का वह सबध जिसमे एक के होने पर दूसरी का होना तथा दूसरी के न होनेपर पहली का न होना निर्भर करता है। जैसे, दड और चक्र तथा घडे का सबध। 'दड और चक्र के रहने पर ही घडे का बनना', यहाँ दड और चक्र का घडे के बनने से अन्वय सबध है। साथ ही दड और चक्र के अभाव मे घडे का न बनना यहाँ दड और चक्र के अभाव का घडे के न बनने से व्यतिरेक सबध है।

अन्वयव्याप्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] निश्चय या स्वीकारात्मक तर्क [को०]।

अन्वयागत—वि० [स०] जो वशपरपरा से चला आ रहा हो। वशानुगत [को०]।

अन्वयार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] अन्वय से व्यक्त होनेवाला अर्थ [को०]।

अन्वयी—वि० [सं० अन्वयिन्] १ अन्वययुक्त। २ [illegible]। ३ एक ही वंश का।

अन्वर्थ—वि० [सं०] अर्थ के अनुसार। २ सार्थक। [illegible]।

अन्ववकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] यथा क्रम उचित ढंग से चारों ओर बिखेरना [को०]।

अन्ववचार—संज्ञा पुं० [सं०] पीछे की ओर जाना तथा अनुसरण करना [को०]।

अन्ववसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १ ढीला करना। २ इच्छानुकूल [illegible] या कामचार की आज्ञा [को०]।

अन्ववसायी—वि० [सं० अन्ववसायिन्] १ [illegible]। २ निर्भर। आश्रित [को०]।

अन्ववसित—वि० [सं०] [illegible]। [illegible] [को०]।

अन्ववाय—संज्ञा पुं० [सं०] जाति। वंश। कुल [को०]।

अन्ववेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ [illegible]। [illegible]। विचार [को०]।

अन्वष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पितरों के लिये एक श्राद्ध जो अष्टका के अनन्तर पूस, माघ, फागुन और [illegible] की कृष्ण पक्ष की नवमी को होता है।

अन्वाख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वकथन की व्याख्या। २ [illegible]। अध्याय। पर्व [को०]।

अन्वाचय—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रधान या मुख्य काम करने के साथ साथ किसी अप्रधान काम को भी करने की आज्ञा। जैसे,—भिक्षा के लिये जाओ और यदि रास्ते में गाय मिले तो उसे भी हाँकते लाना। २ उक्त प्रकार का कार्य या विषय (को०)।

अन्वादेश—संज्ञा पुं० [सं०] किसी एक कार्य के लिये [illegible] पुन दूसरा कार्य करने का आदेश या उपदेश। जैसे,—इसने व्याकरण पढ़ा है अब इसको साहित्य पढ़ाओ।

अन्वाधान—संज्ञा पुं० [सं०] अग्न्याधान के उपरान्त अग्नि को बनाए रखने के लिये उसमें ईंधन छोड़ने की क्रिया।

अन्वाधि—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह धरोहर या परिभू [illegible] जो किसी के हाथ में इसलिये दिया जाय कि वह उसे अमुक (तीसरे) व्यक्ति को दे दे। २ पश्चात्ताप। ग्लानि। व्यथा।

अन्वाधेय—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के पीछे जो धन स्त्री को उसके पिता या पति के घर से मिले।

अन्वाधेयक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्वाधेय' [को०]।

अन्वाध्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का एक वर्ग [को०]।

अन्वाय—संज्ञा पुं० [सं०] अर्थशास्त्र के अनुसार सेना के किसी एक अंग की अधिकता।

अन्वायन—संज्ञा पुं० [सं०] वह सामान जो वधू अपने पिता के घर से लाई हो।

अन्वारंभ—संज्ञा पुं० [सं० अन्वारम्भ] आशीर्वाद देने के लिये यजमान की पीठ का स्पर्श [को०]।

अन्वारंभण—संज्ञा पुं० [सं० अन्वारम्भण] दे० 'अन्वारंभ'।

अन्वारूढ़—वि० [सं० अन्वारूढ़] पीछे चलनेवाला।

अन्वारोहण—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] के साथ या उसके बाद [illegible] [को०]।

अन्वालभन—संज्ञा पुं० [सं० अन्वालम्भन] [illegible]। [illegible] [को०]।

अन्वालभन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्वालम्भन' [को०]।

अन्वासन—संज्ञा पुं० [सं०] १ [illegible]। [illegible]। [illegible]। २ [illegible] ३ [illegible]। [illegible]। ४ [illegible] का स्थान। [illegible]। [illegible] [को०]।

अन्वाहार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ [illegible] २ दे० 'अन्वाहार्यश्राद्ध' [को०]।

अन्वाहार्यक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्वाहार्य' [को०]।

अन्वाहार्य श्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] मासिक श्राद्ध। [illegible] श्राद्ध जो [illegible]।

अन्वाहित—वि० [सं०] [स्त्री० अन्वाहिता] [illegible]। [illegible] [को०]।

अन्वाहित—वि० [सं०] [illegible] (द्रव्य) [illegible]।

अन्वाहिक—संज्ञा पुं० [illegible]।

अन्वित—वि० [सं०] १ युक्त। [illegible]। सहित। मिला हुआ। २ [illegible] (को०)। ३ [illegible]। [illegible]। [illegible] (को०)। ४ [illegible] [को०]।

अन्वितार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible]।

अन्वितार्थ—वि० [illegible] [को०]।

अन्विति—संज्ञा स्त्री० [सं०] [illegible]। [illegible] (Unity) [illegible] भा० २ पृ० ६६।

अन्विष्ट—वि० [सं०] [illegible]। [illegible]। [illegible] [को०]।

अन्वीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ [illegible]। [illegible]। विचार। २ खोज। [illegible]। [illegible]।

अन्वीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अन्वीक्षण'।

अन्वीत—वि० [सं०] दे० 'अन्वित' [को०]।

अन्वीप—वि० [सं०] १ पानी के समीप का। पानी के पास स्थित। २ मैत्रीपूर्ण [को०]।

अन्वेष—संज्ञा पुं० दे० 'अन्वेषण' (को०)।

अन्वेषक—वि० [सं०] [स्त्री० अन्वेषिका] खोजनेवाला। तलाश करनेवाला। अनुसंधान करनेवाला [को०]।

अन्वेषण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अन्वेषणा, वि० अन्वेषित, अन्वेषी, अन्वेष्टा] अनुसंधान। खोज। ढूँढ़। तलाश।

अन्वेषित—वि० [सं०] खोजा हुआ। ढूँढ़ा हुआ।

अन्वेषी—वि० [सं० अन्वेषिन्] [स्त्री० अन्वेषिणी] ढूँढ़नेवाला। तलाश करनेवाला।

अन्वेष्टव्य—वि० [सं०] दे० 'अन्वेष्य'। [को०]।

अन्वेष्टा—वि० [सं० अन्वेष्टृ] [स्त्री० अन्वेष्ट्री] खोजनेवाला । तलाश करनेवाला ।

अन्वेष्य—वि० [सं०] अन्वेषण के योग्य [को०] ।

अन्हरा(पु)—वि० [सं० अंध, प्रा० अंधल] अंधा । नेत्रहीन । सूर । उ०—जो कुछ रहा से अन्हरे भाखा, कठवें कहेसि अनूठी । बचा रहा सो जोलहा कहिगा, अब जो कहें सो झूठी ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६६ ।

अन्हवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० अन्हाना का प्रे० रूप] स्नान कराना । नहलाना । उ०—(क) बद करत पूजा हरि देखत । घंट बजाइ देव अन्हवायौ, दल चंदन लै भेटत ।—सूर०, १०।२६१। (ख) रामचरित सर बिन अन्हवाएँ ।—मानस, १।११ ।

अन्हवैया(पु)—वि० [हिं० अन्हाना + वैया (प्रत्य०)] स्नान करानेवाला । नहानेवाला । उ०—भरत, राम, रिपुदवन, लखन के चरित सरित अन्हवैया ।—तुलसी ग्र०, पृ० २७९ ।

अन्हान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्नान, प्रा० ण्हाण, अण्हान, नहान] दे० 'स्नान' । उ०—कै मज्जन तब किएउ अन्हानू । पहिरे चीर गएउ छपि भानू ।—जायसी ग्र० ।

अन्हाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अन्हान से नाम०] स्नान करना । नहाना । उ०—हम लकेश दूत प्रतिहारी समुद नीर कौं जात अन्हाए ।—सूर०, ९।१२० ।

अपंकिल—वि० [सं० अपङ्किल] १ पंकरहित । सूखा । बिना कीचड का । २ शुद्ध । निर्मल ।

अपंग—वि० [सं० अपाङ्ग=हीनाङ्ग] १ अंगहीन । न्यूनांग । २ लँगड़ा । लूला । ३ काम करने में अशक्त । बेबस । असमर्थ । उ०—आपुन लोभ अस्त्र लै धावत, पलक कवच नहि अंगहाव भाव सर लरत कटाच्छनि, भृकुटी धनुप अपंग ।—सूर०, १०।२८८ ।

अपंचीकृत—वि० [सं० अपञ्चीकृत] पंच महाभूतों का अभिन्न सूक्ष्म रूप जिसका पंचीकरण न हुआ हो ।

अपंजीकृत—वि० [सं०अ=नहीं + पञ्जीकृत] जो सूची, बही,रजिस्टर या खाते में दर्ज न हो ।

अपंडित—वि० [सं० अपण्डित] मूर्ख । निरक्षर । ज्ञानहीन ।

अपंडी—वि० [सं० अ + पिण्डिन्] पिंड या शरीर से रहित (ईश्वर) । उ०—बसै अपंडी पंड में ता गति लषै न कोइ ।—कबीर ग्र०, पृ० १८ ।

अपंथ—संज्ञा पुं० [सं० अ=बुरा + हिं० =पंथ] दे० 'अपथ' । उ०—कहँ कबीर यह अचरज वाता । उलटी रीति अपंथ जग जाता ।—कबीर सा०, पृ० ४३१ ।

अपंपर(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपरंपार' । उ०—(क) प्रथम सुमर इण विध परमेश्वर । पूरण ब्रह्म प्रताप अपंपर ।—रा० रू०, पृ० ३ । (ख) नमो अविगत नमो आपू नमो पार अपंपरम् ।—राम० धर्म०, पृ० ५१ ।

अप् प्रवेशन—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार पानी में डुबाकर मारने का दंड जो राजविद्रोही ब्राह्मणों को दिया जाता था ।

अप्—संज्ञा पुं० [सं०] १ जल । पानी । २ वायु । हवा (को०) । ३ चित्रा नक्षत्र [को०] ।

अप[1]—उप० [सं०] उलटा । विरुद्ध । बुरा । हीन । अधिक ।

विशेष—यह उपसर्ग जिस शब्द के पहले आता है, उसके अर्थ में निम्नलिखित विशेषता उत्पन्न करता है ।—१ निषेध । जैसे—अपकार । अपमान । २ अपकृष्ट (दूषण) । जैसे—अपकर्म । अपकीर्ति । ३ विकृति । जैसे—अपकुक्षि । अपांग ४ विशेषता । जैसे—अपकलंक । अपहरण ।

अप[2]—सर्व० [हिं०] 'आप' का संक्षिप्त रूप जो यौगिक शब्दों में आता है । जैसे—अपस्वार्थी । अपकाजी । उ०—दृगनि के मग लै मोहन कहियाँ । धरि के अप अपने हिय महियाँ ।—नंद० ग्र०, पृ० २६५ ।

यौ०—अपआप = अपने आप । खुद ब खुद । उ०—नाला अपआप सागर हुआ । काहे के कारण रोता है कुवा ।—दक्खिनी, पृ० ७१ ।

अप[3](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप्] जल । पानी । उ०—रज अप अनल अनिल नभ जड जानत सब कोइ ।—स० सप्तक, पृ० १६ ।

अपक—संज्ञा पुं० [सं० अप् + क] पानी । जल । (डिं०) ।

अपकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनिष्ट कार्य । २ दुष्टाचार । दुराचार । ३ बुरा बर्ताव ।

अपकरुण—वि० [सं०] निठुर । निर्दयी । बेरहम । कठोरहृदय ।

अपकर्ता—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अपकर्त्री] १ हानि पहुँचानेवाला । हानिकारी । २ बुरा काम करनेवाला । पापी । ३ शत्रु [को०] ।

अपकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा काम । खोटा काम । कुकर्म । पाप । उ०—पति को धर्म इहै प्रतिपालैं, युवती सेवा ही को धर्म । युवती सेवा तऊ न त्यागै जो पति कोटि करै अपकर्म ।—सूर (शब्द०) ।

अपकर्मा—वि० [सं० अपकर्मन्] दुष्कर्मी भ्रष्टाचारी ।

अपकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्कर्ष का विलोम । नीचे की ओर खिंचाव । गिराव । २ घटाव । उतार । कमी । ३ किसी वस्तु या व्यक्ति के मूल्य वा गुण को कम समझना या बतलाना । बेकदरी । निरादर । अपमान ।

अपकर्षक—वि० [सं०] अपकर्ष करनेवाला । निरादर करनेवाला । जिससे अपमान होता हो ।

अपकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपमान । तिरस्कार । बेकदरी । उ०—धन्य वन्य जन भी न सह सके यह अपकर्षण ।—साकेत, पृ० ४१६ । दे० 'अपकर्ष' ।

अपकर्षसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक । दृष्टांत में जो न्यूनताएँ हों उनका साध्य में आरोप करना । जैसे यह कहना—'यदि घट का सादृश्य शब्द में है तो जिस प्रकार घट का प्रत्यक्ष श्रवणेंद्रिय से नहीं होता, उसी प्रकार शब्द का भी श्रवणेंद्रिय से प्रत्यक्ष नहीं होता ।'

अपकर्षित—वि० [सं०] अपमानित । अपकृष्ट । हटाया गया [को०] ।

अपकलंक—संज्ञा पुं० [सं० अपकलङ्क] अमिट कलंक । न मिटनेवाला कलंक [को०] ।

अपकल्मष—वि० [सं०] १ निष्पाप । २ निष्कलंक [को०] ।

अपकषाय—वि० [सं०] दे० 'अपकल्मष' [को०] ।

अपकाजी(पु) —वि० [हिं० अप + काज] अपस्वार्थी। मतलबी। उ०—श्याम बिरह बन माँझ हेरानी। अहकारि लपट अपकाजी सग न रह्यो निदानी।—सूर (शब्द०)।

अपकार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपकारक अपकारी] १ अनिष्टसाधन। द्वेष। द्रोह। बुराई। अनुपकार। हानि। नुकसान। अनभल। अहित। उपकार का विलोम। उ०—मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि विरह तुम होव दुखारी।—तुलसी (शब्द०)।२ अनादर। अपमान। ३ अत्याचार। असद्व्यवहार।

अपकारक—वि० [सं०] १ अपकार करनेवाला। क्षति पहुँचानेवाला। हानिकारी। २ विरोधी। द्वेषी।

अपकारी—वि० [सं० अपकारिन्] [स्त्री० अपकारिणी] १ हानिकारक। बुराई करनेवाला। अनिष्टसाधक। उ०—खल बिनु स्वारथ पर अपकारी।—मानस, ७।१२१। २ विरोधी। द्वेषी।

अपकारीचार(पु)—वि०[सं० अपकार + आचार]हानि पहुँचानेवाला। हानिकारी। विघ्नकारी। उ०—जे अपकारीचार, तिन्ह कहँ गौरव मान्य बहु। मन क्रम बचन लबार, ते बकता कलिकाल महँ।—तुलसी (शब्द०)।

अपकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] बिखराना। छितराना [को०]।

अपकीरति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपकीर्ति'। उ०—मैं अपनी अपकीरति को डर बात नहीं सब दैव महावै।—हम्मीर०,पृ०२०।

अपकीर्ण—वि० [सं०] बिखेरा या छितराया हुआ।

अपकीर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपयश। अयश। बदनामी। निंदा।

अपकृत[1]—वि० [सं०] १ जिसका अपकार किया गया हो। जिसे हानि पहुँची हो। जिसकी बुराई की गई हो। २ अपमानित। बदनाम। ३ जिसका विरोध किया गया हो। उपकृत का उलटा।

अपकृत[2]—संज्ञा पुं० बुराई। हानि। क्षति [को०]।

अपकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपकार। हानि। बुराई। २ अपमान। निंदा। बदनामी।

अपकृष्ट —वि० [सं०] १ गिरा हुआ। पतित। भ्रष्ट। २ अधम। नीच। निंद्य। ३ घृणित। बुरा। खराब।

यौ०—अपकृष्टचेतन = बुरे विचारोंवाला।

अपकृष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधमता। नीचता। २ बुराई। खराबी।

अपकौशली —संज्ञा स्त्री० [सं०] समाचार। सवाद। सूचना [को०]।

अपक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कच्चापन। अपरिपक्वता। २ अजीर्ण [को०]।

अपक्रम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यतिक्रम। क्रमभंग। अनियम। गड़बड़। उलट पलट। २ दौड़ना। पीछे हटना [को०]। ३ पीछे हटने का स्थान या सीमा (को०)। ४ (समय) बीतना। व्यतीत होना (को०)।

अपक्रम[2] —वि० अव्यवस्थित। क्रमविहीन [को०]।

अपक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपक्रम' [को०]।

अपक्रमी—वि० [सं० अपक्रमिन्] १ जानेवाला। हटनेवाला। २. तीव्रता से न जानेवाला [को०]।

अपक्राम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपक्रम' [को०]।

अपक्रिया— संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्षति। दुष्कर्म। अहित। २ ऋण-परिशोध [को०]।

अपक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] गाली देना। निंदा करना। कुवाच्य कहना [को०]।

अपक्व—वि० [सं०] १ बिना पका हुआ। कच्चा। उ०—फल अपक्व जो वृक्ष ते तोर लेत नर कोय। फल को रस पावै नहीं, नास बीज को होय।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २०१। २ अनभ्यस्त। असिद्ध। अनुभवहीन।

यौ०—अपक्वबुद्धि।

अपक्वकलुष—संज्ञा पुं० [सं०] शैव दर्शन के अनुसार सकल के दो भेदों में से एक। बद्धजीव, जो संसार में बार बार जन्म ग्रहण करता है।

अपक्वज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में ज्वर की वह दशा जिसमें लार गिरना, उबकाई आना, अरुचि,आलस्य, देह का जकड़ना आदि उपद्रव होते हैं।

अपक्वता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पका हुआ न होना। कच्चापन। २ अनभ्यस्तता। असिद्धता।

अपक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो राज्य के पक्ष में न हो। २ जिससे राज्य को कोई लाभ न हो। ३ वह, जिसका किसी से हेलमेल न हो। वह, जो किसी के साथ मिल जुलकर न रह सकता हो। निष्पक्ष। उ०—लक्ष अलक्ष अदक्ष न दक्ष, न पक्ष अपक्ष, न तूल न भारी।—सुंदर ग्रं०, पृ० ६४८।

विशेष—चाणक्य ने ऐसे मनुष्यों के लिये लिखा है कि उन्हें कहीं अलग अपना उपनिवेश बसाने के लिये भेज देना चाहिए।

अपक्ष[2]—वि० [सं०] १ पखहीन। पखरहित। २ निष्पक्ष (को०)।

अपक्षपात[1]—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षपात का अभाव। न्याय। खरापन।

अपक्षपात[2]—पक्षपातविहीन। निष्पक्ष। खरा। उ०—परंतु नौशेरवाँ खजाची के इस अपक्षपात काम से ऐसा प्रसन्न हुआ कि उसे निहाल कर दिया।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २२८।

अपक्षपाती—वि० [सं० अपक्षपातिन्] [स्त्री० अपक्षपातिनी] पक्षपातरहित। न्यायी। खरा।

अपक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपक्षीण] १ छीजना। ह्रास। नाश। २ कृष्णपक्ष [को०]।

अपक्षिप्त—वि०[सं०] १ अपक्षेपण की क्रिया द्वारा पलटाया वा फेंका हुआ। २ फेंका हुआ। गिराया हुआ। पतित।

अपक्षीण—वि० [सं०] नष्ट। छीजा हुआ। विनष्ट [को०]।

अपक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपक्षेपण' [को०]।

अपक्षेपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपक्षिप्त] १ फेंकना। पलटाना। २ गिराना। च्युत करना। ३ पदार्थविज्ञान के अनुसार प्रकाश, तेज और शब्द की गति में किसी पदार्थ से टक्कर खाने से व्यावर्तन होना। प्रकाशादि का किसी पदार्थ से टकराकर पलटना। ४ वैशेषिक शास्त्रानुसार आकुंचन, प्रसारण आदि पाँच प्रकार के कर्मों में से एक।

अपखोरा—संज्ञा पुं० [फा० आबखोरा, हिं० अबखोरा] जल पीने का पात्र या बरतन।

अपगंड—वि० [सं० अपगण्ड] दे० 'अपोगंड' [को०]।

अपग¹—वि० [सं०] १ जानेवाला। दूर हटनेवाला [को०]।

अपग²Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अपगा] सरिता। नदी।—अनेकार्थ०, पृ० ४४।

अपगत—वि० [सं०] १ पलायित। भागा हुआ। पलटा हुआ। २ दूरीभूत। हटा हुआ। गत। उ०—अपगत से कोई ध्वनि को पुनि प्रगट पताऊँ।—स० सप्तक, पृ० १५। ३ मरा हुआ। मृत [को०]।

यौ०—अपगतव्याधि = रोगमुक्त।

अपगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गति। अधोगति। दुर्भाग्य [को०]।

अपगम—संज्ञा पुं० [सं०] १ वियोग। अलग होना। २ दूर होना। भागना। ३ मृत्यु। मरण [को०]।

अपगमन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपगम' [को०]।

अपगर—संज्ञा [सं०] पुं० १ निंदा। २ वह जो निंदा करे। निंदक [को०]।

अपगर्जित—वि० [सं०] गर्जनशून्य (बादल)। गर्जनारहित [को०]।

अपगल्भ—वि० [सं०] १ भीत। भीरु। घबड़ाया हुआ (को०)। २ पार्श्वीय। बगल का [को०]।

अपगाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० आपगा] नदी।

अपगीत—वि० [सं० अप+गीत] बुरा कहा जानेवाला। निंदनीय (को०)। उ०—मैं ही हूँ वह महानिंद्य, अविनीत हा! होगा मुझ सा और कौन अपगीत हा!—शकु०, पृ० ५२।

अपगुण—संज्ञा पुं० [सं०] १ दोष। ऐब [को०]। २ निर्गुण। गुण अवगुण से रहित [को०]।

अपगोपुर—वि० [सं०] द्वारविहीन। द्वाररहित (नगर) [को०]।

अपघन¹—वि० [सं०] मेघरहित। निरभ्र [को०]।

अपघन²—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का अंग (हाथ पैर आदि) [को०]।

अपघात¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ हत्या। हिंसा। २ वंचना। विश्वासघात। धोखा। उ०—जीएँ तुमको जान सहसा तात। कर गया क्या काल यह अपघात।—साकेत, पृ० १७७।

अपघात²—संज्ञा पुं० [हिं० अप+सं० घात] आत्महत्या। आत्मघात। उ०—(क) कहुरे कुँअर मोंसे मत बाता। काहे लागि करसि अपघाता।—जायसी (शब्द०)। (ख)—साजन को मारो राजा चाहैं अपघात कियो जियो नहिं जात भक्ति लेशहू न आयो है।—प्रिया (शब्द०)।

अपघातक—वि० [सं०] १ विनाश करनेवाला। घातक। २ विश्वासघाती। वंचक। धोखा देनेवाला।

अपघाती—वि० [सं० अपघातिन्] [वि० स्त्री० अपघातिनी] १. घातक। विनाशक। २ विश्वासघाती। वंचक।

अपच¹—संज्ञा पुं० [हिं० अ+पच] न पचने का रोग। अजीर्ण। बदहजमी।

अपच²—संज्ञा पुं० [सं] १ पाककार्य में असमर्थ व्यक्ति। वह जिसे अपने लिये पकाना न आता हो। २ बुरा पाचक [को०]।

अपचय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपचयी] १ क्षति। हानि। २ व्यय। कमी। नाश। ४ पूजा। समान।

अपचरित¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ दोषयुक्त आचरण। दुराचार। बुरा कर्म।

अपचरित²—वि० १ गया हुआ। प्रस्थित। २ मृत [को०]।

अपचरितप्रकृति—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जिसकी प्रजा अत्याचार से पीड़ित हो [को०]।

अपचायित—संज्ञा पुं० [सं०] १ रोबीला। जिससे लोग डरें। २. पूजित। सम्मानित। आदृत [को०]।

अपचायी—वि० [सं० अपचायिन्] बड़ों का आदर सम्मान न करनेवाला [को०]।

अपचार—संज्ञा पुं० [सं] [वि० अपचारी] १ अनुचित बर्ताव। बुरा आचरण। कुव्यवहार। उ०—विबुध विमल बानी गगन हेतु प्रजा अपचारु। रामराज परिनाम भल कीजिय बेगि विचारु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६२।२ अनिष्ट। अहित। बुराई। ३ अनादर। निंदा। अपयश। ४ कुपथ्य। स्वास्थ्यनाशक व्यवहार। ५ अभाव। ६ भूल। भ्रम। दोष। ७ मृत्यु। विनाश(को०)।

अपचारक—वि० [सं०] अपचार करनेवाला [को०]।

अपचारी—वि० [सं० अपचारिन्] [वि० स्त्री० अपचारिणी] विरुद्ध आचरण करनेवाला। दुराचारी। दुष्ट।

अपचालⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० अप+हिं० चाल] कुचाल। खोटाई। नटखटी। उ०—वारि कै दार सँवार करौ अपने अपचाल कुचाल ललू पर।—रसखान (शब्द०)।

अपचित—वि० [सं०] १ पूजित। सम्मानित। आदृत। २ क्षीण। दुर्बल। कमजोर [को०]।

अपचिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हानि। क्षय। ह्रास। नाश। २. व्यय। ३. दंड देना। ४ पृथक्करण। ५ मरीचि की कन्या का नाम। ६ सम्मान करना ७ पूजा [को०]।

अपची—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडमाला रोग का एक भेद। गंडमाला की वह अवस्था जब गाँठें पुरानी होकर पक जाती हैं और जगह जगह पर फोड़े निकलते और बहने लगते हैं।

अपचेता—वि० [सं० अपचेतस्] कंजूस। सूम। जो धन न स्वयं खर्च करे न करने दे [को०]।

अपच्छत्र—वि० [सं०] छत्रविहीन। छत्ररहित [को०]।

अपच्छाय¹—वि० [सं०] १ छायाविहीन। २ दूषित या बुरी छायावाला। जो चमकदार न हो। धुँधला। कांतिहीन [को०]।

अपच्छाय²—संज्ञा पुं० देवता।

अपच्छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी छाया। भूत प्रेत की छाया [को०]।

अपच्छी¹Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + पक्षी = पक्षवाला] विपक्षी। विरोधी। शत्रु। गैर।

अपच्छी²Ⓟ—बिना पंख का। पंखरहित।

अपच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ काट देना। अलग विलग कर देना। २ हानि। ३ बाधा। ४ वह जो टूट गया हो। भंग [को०]।

अपच्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपच्छेद' [को०]।

अपच्युत—वि० [सं०] निपतित। गिरा हुआ। २ बहा हुआ। द्रवित। ३ विनष्ट [को०]।

अपछरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप्सरा, प्रा० अच्छरा] १ अप्सरा। उ०—कल हंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा।—तुलसी (शब्द०)। २ हिंदुस्तान में रंडियों की एक जाति।

अपजय—संज्ञा स्त्री० [सं०] पराजय। हार।

अपजस(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपयश'। उ०—चिता यह मोहिं अपारा। अपजस नहिं होय तुम्हारा।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१९।

अपजात—संज्ञा पुं० [सं०] माता पिता की अपेक्षा हीनगुण पुत्र। कपूत [को०]।

अपजोग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप+योग] बुरा योग। बुरा संबंध। बुराई। उ०—सब खोटे मधुबन के लोग। जिनके संग स्यामसुंदर सखि सीखे हैं अपजोग।—सूर०, स० १०।३५९०।

अपज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १ अस्वीकार। इनकार। नटना। नहीं करना। २ संगोपन। छिपाव। दुराव।

अपज्य—वि० [सं० अप+ज्या] शिंजिनीहीन। प्रत्यंचारहित [को०]।

अपट(पु)—वि० [सं० अपटु] जो चतुर न हो। अपटु। उ०—मेरे हेरन वेस कपट कौ। रहिहै नहिं पूतना अपट कौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २३८।

अपटन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उबटन'।

अपटांतर—वि० [सं० अपटान्तर] १ जो पाट या परदे द्वारा विभक्त न हो। २ अलग बिलग नहीं। संयुक्त। मिलाजुला [को०]।

अपटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ परदा। कांडपट। २ कपड़े की दीवार। कनात ३ आवरण। आच्छादन।

अपटीक—वि० [सं०] १. व्याख्या करने के ज्ञान से रहित। वस्त्ररहित [को०]।

अपटीक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक में परदा हटाकर पात्रों का रंगभूमि में सहसा प्रवेश।

अपटु—वि० [सं०] १ जो पटु न हो। कार्य करने में असमर्थ। २ गावदी। सुस्त। आलसी। ३ रोगी। ४ ज्योतिष के अनुसार (ग्रह) जिसका प्रकाश मंद हो जाय।

अपटुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पटुता का अभाव। अकुशलता। अनाड़ीपन।

अपट्ठमान(पु)—वि० [सं० अपठ्यमान] १ जो पढ़ा न जाय। न पढ़ने योग्य। उ०—अपट्ठमान पापग्रंथ, पट्ठमान वेद हैं।—केशव (शब्द०)।

अपटूडेट—वि० [अं० अप-टु-डेट] रहन सहन या विचार में समय के अत्यंत अनुकूल। उ०—फैशन के संबंध में अपटूडेट खबर रखते थे।—संन्यासी, पृ० ९२।

अपठ—वि० [सं०] १ अपढ़। जो पढ़ा न हो २ मूर्ख। ३ बुरा पढ़नेवाला। कुपाठक (को०)।

अपठित—वि० [सं०] १ अपढ़ [को०]। २ जो पढ़ा नहीं गया [को०]।

अपठ्यमान—वि० [सं०] १ जो पढ़ा न जाय [को०] २ न पढ़ने योग्य [को०]।

अपडर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप+हिं० डर] भय। शंका। उ०—समुझि सहम मोहि अपडर अपने। सो सुधि कीन्ह राम नहिं सपने।—तुलसी (शब्द०)।

अपडरना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अपडर से नाम] भयभीत होना। डरना। शंकित होना। उ०—(क) भागे मदमाद चोर भोर जानि जातुधान काम क्रोध लोभ छोभ निकर अपडरे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।—तुलसी (शब्द०)।

अपडना(पु)—क्रि० अ० [सं० अ+पत्] पहुँचना। उ०—छोठी बीख न आपड़ाँ, लाँबी लाज मरेहि। सयण बटाऊ बालरे, ल्हउ साद करेहि॥—ढोला०, दू० ३८४।

अपडाना(पु)—क्रि० अ० [सं० अपर से नाम०] खींचातानी करना। उ०—मन जो कहो करैं री माई। निलज भई तन सुधि बिसराई गुरुजन करत लराई। इत कुलकानि उतै हरि को रस मन जो अति अपडाई।—सूर (शब्द०)।

अपडाव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अपर, हिं० पराश्रा=पराया] [क्रि० अपडाना] झगड़ा। रार। तकरार। उ०—(क) हँसत कहत की धौं सतिभाव। यह कहनी औरे जो कोऊ तासो मैं करती अपडाव। सूरदास यह मोहिं लगावत सपनेहुँ जासो नहिं दरसाव।—सूर (शब्द०)। (ख) गोपी इहै करत चवाउ। सूर कान्हहि प्रगट कैहै करन दे अपडाउ।—सूर (शब्द०)।

अपढार—वि० [सं० अप+हिं० ढार=ढलना] १ वेढंगे तौर से ढलनेवाला। उ०—अरु जो अपढार ढरैं न ढरैं, गुन त्यौं नकि लागत दोष महा।—घनानंद, पृ० १२६। २ सरलता से ढलनेवाला। उ०—यह रावरीयै रसरीति अजू अपढार ढरौ इत यामो कहौं।—घनानंद, पृ० १४०। ३ आपसे आप ढलनेवाला। उ०—जमुना जस जैसे मन भायो। जमुना ही अपढार कहायो।—घनानंद, पृ० १८५।

अपढ़—वि० [सं० अपठ] बिना पढ़ा। मूर्ख। अनपढ़।

अपण्य—वि० [सं०] न बेचने योग्य। जिसके बेचने का धर्मशास्त्र में निषेध है।

अपतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० अपतन्त्र] वायु के प्रकोप से होनेवाला एक रोग।

विशेष—इस रोग में शरीर टेढ़ा हो जाता है, सिर और कनपटी में पीड़ा होती है, साँस कठिनाई से ली जाती है, गले में घरघराहट का शब्द होता है और आँखें फटी पड़ती हैं।

अपतंत्रक—संज्ञा पुं० [सं० अपतन्त्रक] दे० 'अपतंत्र' [को०]।

अपत¹(पु)—वि० [सं० अ+पत्र प्रा० पत्त, हिं० पत्ता] १. पत्रहीन। बिना पत्तों का। उ०—जिन दिन देखे वे कुसुम गई सो बीति बहार। अब अलि रही गुलाब की अपत कँटीली डार।—बिहारी (शब्द०)। २ आच्छादनरहित। नग्न।

अपत²(पु)—वि० [अ सं०=नहीं+हिं० पत=लज्जा] लज्जारहित। निर्लज्ज। उ०—लूटे सीखिन अपत करि सिसिर सुसेज बसन। दै दल सुमन सुफल किए सो भल सुजस लसत।—दीनदयाल (शब्द०)।

अपत³(पु)—वि० [सं० अपात्र, प्रा० अपत्त] अधम। पातकी। नीच। उ०—(क) राम राम राम राम राम जपत। पावन किये रावन रिपु तुलसी हू से अपत।—तुलसी (शब्द०)। (ख) प्रभु जू हौं तो महा अधर्मी। अपत, उतार, अभागौ, कामी, विषयी, निपट, कुकर्मी।—सूर०, १।१८६।

अपत⁴(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अ=नहीं+पति=प्रतिष्ठा, हिं० पत] अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। दुर्दशा। उ०—जो मेरे दीनदयाल न होते। तो मेरी अपत करत कौरवसुत होत पडवनि ओते। —सूर० १।१५६।

अपत⁵(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आपत्] विपत्ति। आपत्ति।

अपतई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अपात्र, पा० अपत्त+हिं० ई (प्रत्य०)] १. निर्लज्जता। बेहयाई। ढिठाई। उत्पात। उ०—नयना लुब्धे रूप के अपने सुख माई। अतिहि करी उन अपतई हरि सो ममताई।—सूर (शब्द०)। २ चचलता। उ०—कान्ह तुम्हारी माय महाबल सब जग अपजस कीन्हो (हो)। सुनि ताकी सब अपतई सुक सनकादिक मोहे (हो)। नेक दृष्टि पथ पडि गए शकर सिर टोना लागे (हो)।—सूर (शब्द०)।

अपतर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १ बीमारी के समय का उपवास। लघन। २ तृप्ति का अभाव [को०]।

अपतह(पु)—सर्व० [सं० आत्मत, प्रा० अप्पतह] अपने आप। खुद ब खुद। स्वय। अपने तई (को०)। उ०—हम अपतह अपनी पति खोई, हमरै खोज परहु मति कोई।—कबीर ग्र०, पृ० २८७।

अपतानक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जो स्त्रियो को गर्भपात तथा पुरुषो को विशेष रुधिर निकलने अथवा भारी चोट लगने से होता है। इसमें बार बार मूर्छा आती है, नेत्र फटते हैं तथा कठ मे कफ एकत्रित होकर घरघराहट का शब्द करता है।

अपताना(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अप=अपना+ताना] जजाल। प्रपच। उ०—दारागार पुत्र अपताना। तनधन मोह मानि कल्याना।—विश्राम (शब्द०)।

अपति¹(पु)—वि० स्त्री० [<सं० अ=नहीं+पति] १ बिना पति या स्वामी की। विधवा। २ अविवाहित। कुमारी (को०)।

अपति²—वि० [सं० अ=बुरा+पत्ति=गति] पापी। दुष्ट। दुराचारी। उ०—कहा करौं सखि काम को हिय निर्दयपन आज। तनु जारत पारत निपत अपति उजारत लाज।—पद्माकर (शब्द०)।

अपति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अ=नहीं+पत=प्रतिष्ठा] अप्रतिष्ठा। दुर्गति। दुर्दशा। उ०—(क) पति बिनु पतिनी पतित न मग मे। पति बिनु अपति नारि की जग मे।—सबल (शब्द०)। (ख) पैये निसि बासर कलकित न अक सम, बरनै मयक कविताई की अपति होइ।—भिखारी ग्र०, पृ० ६६।

अपतिक—वि० [सं०] १ पतिहीन। २. अविवाहित। कुमारी। ३. मालिक या स्वामीहीन [को०]।

अपती—संज्ञा स्त्री० [देश०] प्राय. एक बालिश्त चौडा एक तख्ता जो नाव की लबाई मे मरिया के दोनो सिरो पर लगाया जाता है। (मल्लाह)।

अपतोस(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अफसोस'।

अपत्त‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपत ४'।

अपत्नी—वि० [सं०] अविवाहिता। कुमारी। जो पत्नी न हो। जिसका पति न हो [को०]।

अपत्नीक—वि० [सं०] जिसकी पत्नी न हो। पत्नीविहीन। स्त्रीरहित [को०]।

अपत्य—संज्ञा पुं० [सं०] सतान (पुत्र या कन्या)। उ०—मार्ग है शत्रुघ्न दुर्गम सत्य, तुम रहो उनके यथार्थ अपत्य।—साकेत, पृ० १७५।

यौ०—अपत्यकाम। अपत्यजीव। अपत्यदा। अपत्यपथ। अपत्यविक्रयी।

अपत्यकाम—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपत्यकामा] सतानेच्छुक। पुत्र की इच्छा रखनेवाला [को०]।

अपत्यजीव—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जिसे पुत्रजीवी भी कहते हैं [को०]।

अपत्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाल्यावस्था। शैशव [को०]।

अपत्यद—वि० [सं०] पुत्र देनेवाला (मत्र) [को०]।

अपत्यदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भदात्री नाम का पौधा [को०]।

अपत्यपथ—संज्ञा पुं० [सं०] योनि [को०]।

अपत्यविक्रयी—वि० [सं० अपत्यविक्रयिन्] १. सतान बेचनेवाला। २ रुपए लेकर कन्या को विवाह के लिये बेचनेवाला। बेटीबेचवा [को०]।

अपत्यशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपत्य वा सतान जिसका शत्रु हो। केकडा।

विशेष—अडा देने के उपरात केकडी का पेट फट जाता है और वह मर जाती है।

२ अपत्य का शत्रु। वह जो अपने अडे बच्चे को खा जाय। साँप।

अपत्र¹—वि० [सं०] पत्रविहीन। पत्तो से रहित। उ०—वारि बेलि सी फैल अमूल, छा अपत्र सरिता के कूल, विकसा औ सकुचा नवजात बिना नाल के फेनिल फूल।—पल्लव, पृ० ३२। २. पखरहित। पक्षहीन (को०)।

अपत्र²—संज्ञा पुं० १ बाँस का कल्ला या पूती। २. वृक्ष जिसके पत्ते गिर गए हो। ३ चिडिया जिसे पख न हो [को०]।

अपत्रप—वि० [सं०] निर्लज्ज। ढीठ। धृष्ट [को०]।

अपत्रपण—संज्ञा पुं० [सं०] १ लज्जा। सकोच। २ व्याकुलता। आकुलता [को०]।

अपत्रपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपत्रपण' [को०]।

अपत्रस्त—वि० [सं०] अत्यत भयग्रस्त। भय से घबराया हुआ [को०]।

अपत्रिका—वि० [सं०] पत्तो से हीन। पत्रविरहित (को०)। उ०—हे विमुख, सदा मैं मुखर पीन। आओ अपत्रिका के मर्मर।—गीतिका (भू०), पृ० १३।

अपथ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह मार्ग जो चलने योग्य न हो। बीहड राह। विकट मार्ग। उ०—माधो नैकु हटको गाइ। भ्रमत निसि बासर अपथ पथ अगह, गहि नहिं जाइ।—सूर १।८४। २. कुपथ। कुमार्ग। उ०—(क) हरि हैं राजनीति पढ़ि आए। ते क्यो नीति करैं आपुन जिन और न अपथ छुडाए।—सूर (शब्द०)। (ख) गनत न मन पथ अपथ लखि बिथुरे सुथरे बार।—बिहारी (शब्द०)। ३. मार्ग या पथ का अभाव (को०)। ४. योनि। अपत्यपथ (को०)। ५. किसी प्रचलित मत वा सिद्धात का दृढ़तापूर्वक विरोध (को०)।

अपथ²—वि० मार्गहीन। पथविहीन (को०)।

अपथगामी—वि० [स० अपथगामिन्] १ कुमार्गगामी। बुरे रास्ते पर जानेवाला। २ चरित्रहीन [को०]।

अपथप्रपन्न—वि० [स०] १ अनुचित मार्ग पर जानेवाला (व्यक्ति)। २ दुरुपयोग या दुष्कार्य मे लगा हुआ (धन) [को०]।

अपथ्य[1]—सज्ञा पुं० [स०] व्यवहार जो स्वास्थ्य का हानिकारक हो। रोग बढ़ानेवाला आहार विहार।

अपथ्य[2]—वि० १ जो पथ्य न हो। स्वास्थ्यनाशक। २ अहितकर। ३ बुरा। खराब। अयुक्त (को०)।

अपथ्यनिमित्त—वि० [स०] अनुचित खानपान से उत्पन्न [को०]।

अपद[1]—सज्ञा पु० [स०] १ बिना पैर के रेंगनेवाले जतु। जैसे—साँप, केंचुआ, जोक आदि। उ०—राजा इक पडित पौरि तुम्हारी। अपद दुपद पसु भाषा बूझत अविगत अल्प अहारी।—सूर० ८।१४। २ गलत या बुरा स्थान (को०)। ३ आकाश। नभोमडल (को०)। ४ व्याकरण मे शब्द जो पदसज्ञक नहीं है (को०)।

अपद[2]—वि० १ बिना पैर का। पादविहीन। बिना किसी पद या ओहदे का।

अपद[3] ⓤ—क्रि० वि० बिना पद या अधिकार के।

अपदम—वि० [स०] १ आत्मनियत्रणहीन। २ जिसकी स्थिति अस्थिर या परिवर्तनशील हो [को०]।

अपदरुहा—सज्ञा स्त्री० [स०] अन्य वृक्ष के आश्रय में पनपनेवाला पौदा [को०]।

अपदरोहिणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपदरहा' [को०]।

अपदव—वि० [स०] जगल की आग मुक्त। दावाग्निमुक्त [को०]।

अपदस्थ—वि० [स०] स्थान वा पद से हटाया हुआ। पदच्युत। उ०—इधर मौर्य कारागार मे, वररुचि अपदस्थ, नागरिक लोग नद की उच्छृखलताओ से असंतुष्ट हैं।—चद्र०, पृ० १५७।

अपदांतर[1]—वि० [स० अपदान्तर] १ मिलाजुला। सयुक्त। अव्यवहित। २ समीप। सनिकट। ३. समान। बराबर।

अपदांतर[2]—क्रि० वि० शीघ्र। जल्द। तत्क्षण।

अपदाँव ⓤ—सज्ञा पु० [सं० अप=बुरा+हिं० दाँव] बुरा दाँव। चालबाजी। कुघात (को०)। उ०—दूसरें आइ कै इद्रियनि लै गयौ, ऐसौ अपदाँव सब इनहिं कीन्हे। मैं कह्यौ नैन मोकौं सँग देहिंगे, इनहु लै जाइ हरि हाथ दीन्हे।—सूर०, १०।२२४०।

अपदान—सज्ञा पुं० [स०] १ परिशुद्ध आचरण। सदाचारी जीवन। २ उत्कृष्ट कार्य। ३ पूर्णत सपन्न कार्य [को०]।

अपदार्थ[1]—वि० [सं०] तुच्छ। नाचीज। उ०—अवकाश शून्य फैला है, है शक्ति न और सहारा। अपदार्थ तिरूँगा मैं क्या, हो भी कुछ कूल किनारा।—आँसू, पृ० ४१।

अपदार्थ[2]—सज्ञा पु० १ अस्तित्व का अभाव। २ तुच्छता। ३ वाक्य मे प्रयुक्त शब्द के ठीक अर्थ का अभाव या न होना [को०]।

अपदिष्ट—वि० [सं०] तर्कना या बहाने से कथित या प्रयुक्त [को०]।

अपदेखा ⓤ—वि० [हिं० अप=अपने को+देखा=देखनेवाला] १ अपने को बड़ा माननेवाला। आत्मश्लाघी। घमडी। २ स्वार्थी उ०—अपदेखा जे अहहि तिनहिं हिव गुनि मुँह जोहहिं(शब्द०)।

अपदेवता—सज्ञा पुं० [स०] १ दुष्ट देव। २ दैत्य। राक्षस। असुर। उ०—अरे कोई अपदेवता न हो।—चद्र०, पृ० १७४।

अपदेश—सज्ञा पुं० [सं०] १ व्याज। मिस। बहाना। २ लक्ष्य। उद्देश्य। ३ अपने स्वरूप को छिपाना। भेष बदलना। ४ छल। धोखा (को०)। ५ अस्वीकार। इनकार (को०)। ६ प्रसिद्धि। ख्याति (को०)। ७ खतरा [को०]। ८ बुरा स्थान। खराब जगह(को०)। ९. निर्देश (को०)। १० वैशेषिक न्याय के अनुमार पाँच अनुमान वाक्यों मे दूसरा। हेतु [को०]।

अपद्रव्य—सज्ञा पु० [सं०] १ निकृष्ट वस्तु। बुरी चीज। कुद्रव्य। कुवस्तु। २. बुरा धन।

अपद्वार—सज्ञा पु० [स०] छिपा हुआ दरवाजा। चोर दरवाजा। बगली खिड़की।

अपधावन—सज्ञा पुं० [स०] वाक्छल। सत्य का अपलाप [को०]।

अपधूम—वि० [सं०] धुआँ रहित। धूमविहीन [को०]।

अपध्यान—सज्ञा पु० [स०] निकृष्ट चिंतन। बुरा विचार। अनिष्ट चिंतन। जैन शास्त्रानुसार बुरा ध्यान। यह दो प्रकार का होता है, आर्त और रौद्र।

अपध्वंस—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अपध्वंसी, अपध्वस्त] १ अधःपतन। गिराव। २ बेइज्जती। निरादर। अवज्ञा। अपमान। हार। नाश। क्षय।

अपध्वंसज—संज्ञा पु० [स०] वह जिसकी माता का वर्ण या जाति पिता से ऊँची हो। वर्णसकर [को०]।

अपध्वंसी—वि० [स० अपध्वंसिन्][वि०स्त्री० अपध्वंसिनी] १ गिरानेवाला। अपमान करनेवाला। निरादरकारी। अपमानकारी। २ नाश करनेवाला। क्षयकारी। ३ पराजित करनेवाला। विजयी।

अपध्वस्त—सज्ञा पु० [स०] १ पराजित। हारा हुआ। परास्त। २ निंदित। अपमानित। बेइज्जत किया हुआ। ३ नष्ट।

अपध्वांत[1]—वि० [स० अपध्वान्त] सदोष स्वर छोड़नेवाला। कर्कश स्वरवाला [को०]।

अपध्वांत[2]—सज्ञा पुं० कर्कश स्वर। गलत स्वर [को०]।

अपन ⓤ—सर्व० [स० आत्मन. प्रा० अप्पणो=अपना] १ दे० 'अपना'। उ०—मद मद हँसि नद महर तब। अपन तात सौं बात कही सब।—नद ग्र०, पृ० १६०। २ हम। (मध्यप्रदेश)।

अपनपो ⓤ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अपनपौ'। उ०—हितहि पराये आपनो अहित अपनपो जाय। बन की औषधि प्रिय लगत तन को दुख न सुहाय।—श्रीनिवास ग्र० पृ. २०७।

अपनपौ ⓤ—सज्ञा पुं० [हिं० अपना+पौ वा पा (प्रत्य०)] १. अपनायत। आत्मीयता। सबंध। उ०—भरतहि बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौन। हेतु अपनपौ जानि जिय थकित भए धरि मौन।—तुलसी (शब्द०)। २. आत्मभाव। आत्मस्वरूप। निज स्वरूप। उ०—(क) अपनपौ आपुही बिसरो।—कबीर (शब्द०)। (ख) सब हित तजै अपनपौ चेते।—तुलसी (शब्द०)। ३. सज्ञा। सुध। ज्ञान। उ०—(क) अद्भुत इक चितयो रे सजनी नद महरि के आँगन री। सो मैं निरखि अपनपौ खोयो गई मँथनियाँ माँगन री।—सूर (शब्द०)।

(ख) हरि के ललित बदन निहारु। सुभग उर दधि बुंद सुंदर लखि अपनपौ वारु। तुलसी (शब्द०)। ४ अहंकार। गर्व। ममता। अभिमान। उ०—सदा अपनपो रहहि दुराए। सब विधि कुशल कुबेष बनाए।—तुलसी (शब्द०)। ५ आत्म-गौरव। मर्यादा। मान। उ०—जिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे।—तुलसी (शब्द०)।

अपनय—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूर करना या हटाना। २ अपकार। ३ अनीति। अन्याय। ४ अर्थशास्त्र के अनुसार संधि आदि उचित रीति पर न करने का व्यवहार जिससे विपत्ति की संभावना हो जाती है [को०]।

अपनयन—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूर करना। हटाना। २. स्थानांतरित करना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। ३ पक्षांतर करना। गणित के समीकरण में किसी राशि के एक पक्ष से दूसरे पक्ष में ले जाना।

विशेष—जैसे— क + ५ = क + २५

= २क–क = २५–५

= क = २०

इस क्रिया में पहले पक्ष के पाँच को दूसरे पक्ष में ले गए और दूसरे पक्ष के क को पहले पक्ष में ले आए।

४ खंडन। ५ (रोग आदि) अच्छा करना या दूर करना (को०)। ६. कर्ज अदायगी। ऋणपरिशोधन(को०)। ७ अन्याय।

अपनर्मक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हार।

अपना¹—सर्व० [सं० आत्मनः, प्रा० अप्पणो] [स्त्री० अपनी] [क्रि० अपनाना] १ निज का। उ०—सम्मुखहूँ बोल सुनाइसि मरना। मीतहि मेट करौ हित अपना।—मानस, ५।१०।

विशेष—इसका प्रयोग तीनों पुरुषों में होता है। जैसे—तुम अपना काम करो। मैं अपना काम करूँ। वह अपना काम करे।

मुहा०—**अपना उल्लू सीधा करना** = किसी को मूर्ख बनाकर अपना कार्य निकालना। स्वार्थ सिद्ध करना। **अपना करके छोड़ना** = अपना बना लेना। उ०—हरीचंद अपनो करि छाँड़ो तब घर जाऊँ रे।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ३६८। **अपना करना** = अपना बनाना। अपने अनुकूल कर लेना। जैसे,—मनुष्य अपने व्यवहार से हर एक को अपना कर सकता है (शब्द०)। **अपना कहा करना** = (१) अपनी बात पर दृढ़ रहना। वचन के अनुसार आचरण करना। (२) अपनी जिद पूरी करना। **अपना कान देखे बिना कौआ के पीछे दौड़ना** = (१) मूल को भूलकर भटकना। (२) गप पर विश्वास करके बैठना। **अपना काम करना** = प्रयोजन निकालना। **अपना किया पाना** = किए को भुगतना। कर्म का फल पाना। **अपनापन स्थापित करना** = भाईचारा उत्पन्न करना। आत्मीयता बढ़ाना। **अपना पराया** = शत्रु मित्र। जैसे—तुम्हें अपने पराए की परख नहीं (शब्द०)। **अपना पाँव आग में डालना** = अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना। **अपना पूत पराया ढीँगड़** = एक ही गलती पर अपने पुत्र को प्यार करना और दूसरे के बच्चे को डाँटना। **अपना बना लेना** = (१) दोस्त बनाना। मित्र बनाना। (२) वश में कर लेना। (३) प्रेमी बना लेना। (४) छीन लेना। **अपना बेगाना** = दे० 'अपना पराया'। **अपना रोना रोना** = अपना ही दुखड़ा बयान करना, दूसरे की न सुनना। **अपना सा करना** = अपने सामर्थ्य या विचार के अनुसार करना। भरसक प्रयत्न करना। उ०—(क) मैं अब करी देखि मोहि लालची तू भी बड़ी सुजान। अपनी सी मैं बहुतहि कीन्ही रहति न तेरी आन।—सूर० (शब्द०)। (ख) तुलसिदास सठ अपनी सी करि गयो गर्व गँवाई।—तुलसी (शब्द०)। **अपना सा पचना** = अपनी सी कर चुकना। उ०—छूटै न लिगु पचौं सो पर्यो। कनक सो जनु कि नीलमनि जर्यो।—नंद० ग्रं०, पृ०२३८। **अपना सा मुँह लेकर रह जाना** = किसी बात में अकृतकार्य होने पर लज्जित होना। उ०—और अपना सा मुँह लेकर अपनी कुर्सी पर आनकर डट गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २२। **अपनी अक्ल अपने पास रखना** = दूसरे की सलाह की अनावश्यकता। **अपनी अपनी कहना** = अपना अपना भिन्न विचार प्रकट करना। उ०—अपनी अपनी कहत है, को का धरिए ध्यान।—कबीर सा० सं०, पृ० ८६। **अपनी अलग खिचड़ी पकाना** = सबसे पृथक् कार्य या विचार रखना। **अपनी अपनी पड़ना** = अपनी अपनी चिंता में व्यग्र होना। अपना अपना ध्यान होना। उ०—पद्माकर कछु निज कथा, कासों कहौं बखान। जाहि लखो, ता है परी अपनी अपनी आन।—पद्माकर (शब्द०)। **अपनी आग में आप जलना** = किसी के प्रति ईर्ष्या, द्वेष या क्रोध से प्रभावित होना। **अपनी उँगलियों से अपनी आँखें कुचलना** = अपने पाँव आप कुल्हाड़ी मारना। अपने हाथों अपनी हानि कर लेना।—अपनी उँगलियों से अपनी आँखों को कौन कुचलेगा।—चुभते, पृ० ८। **अपनी गाना** = अपनी ही बात कहना और किसी की न सुनना। **अपनी गुड़िया सँवार देना** = अपने सामर्थ्य के अनुसार बेटी का ब्याह कर देना। **अपनी नींद सोना** = अपने इच्छानुसार कार्य करना। **अपनी बात का एक** = वादे का पक्का। दृढ़प्रतिज्ञ। **अपनी बात पर आना** = हठ पकड़ना। जिद पकड़ना। जैसे—अब वह अपनी बात पर आ गया है, नहीं मानता (शब्द०)। **अपनी जाँघ का सहारा होना** = स्वावलंबी होना। अपने बल या पौरुष का भरोसा होना। उ०—वह कमाई चाहे कभी हारा नहीं। जाँघ का अपनी सहारा है जिन्हें।—चुभते०, पृ० ८८। **अपनी जान हरदम सूली पर होना** = संकट की सदा आशंका होना। हरदम खतरा होना। **अपनी बीती या पर बीती कहना** = अपने या दूसरे पर घटित बात कहना। उ०—अपनी बीती कहूँ कि पर बीती, यह बड़ी सनक हुई।—बोल चु०, पृ० ३३। **अपनी मुट्ठी में करना** = अपने कब्जे या वश में करना। उ०—उसके मन को अपनी मुट्ठी में कर, मनमानी करा लेना।—रस० क० मू०, पृ० ६। **अपनी सी करना** = मनमानी करना। उ०—यह अपनी सी करता ही चला जा रहा है।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३१८। **अपने पर का रास्ता लेना** = चलते बनना। अपने घर जाना। चलता होना। **अपने तक रखना** = किसी से न कहना। किसी पर प्रकट न करना। भेद छिपाना। जैसे,—फकीर लोग दवा भरसक बताते हैं। (शब्द०)। **अपने धंधे से लगना** = अपने काम में लगना। उ०—दिन को अपने अपने धंधे से लोग लगते हैं मगर आठ पाँच बजे से फिर किसी इंसान की सूरत न देखने में आएगी।—

सैर कु०, पृ० ३४। **अपनेपन पर आना** = अपने दुस्वभाव के अनुसार कार्य करना। **अपने पांव पर खड़ा होना** = स्वावलंबी होना। उ०— क्यो न हो पांव पर खडे अपने। और का पांव किसलिये पकडे।—चुभते०, पृ० १०। **अपने भावें** = अपने अनुसार। अपनी जान मे। जैसे,—अपने भावें तो मैंने कोई बात उठा नहीं रखी (शब्द०)। **अपने मन की करना** = दूसरो की सलाह न मानकर अपनी सोची बात करना। **अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना** = अपनी प्रशसा आप करना। **अपने लिये बला बनना** = अपनी विपत्ति का स्वय कारण बनना। जान बूझकर सकट बुलाना। उ०—आप अपने लिये बला न बनें। जो न सिर पर पडी बला टाले।—चुभते०, पृ० ५५। **अपने रग मे मस्त रहना** = दूसरे की चिंता न कर अपने ही कामकाज या आनद मे पडे रहना। **अपने सिर बला मोल लेना** = अपने लिये झझट, बाधा या बखेडा खडा करना। स्वय को झगडे मे डालना। **अपने सिर पडना** = अपने पर बीतना। उ०—जौ पहिले अपुने सिर परई। सो का काहु कै धरिहरि करई।—जायसी ग्र० (गुप्त) पृ० २५७। **अपने से बाहर होना** = रुष्ट या क्रोधित होना। बेकाबू होना। **अपने हलुए मांडे से काम होना**—अपने मतलब से सरोकार रखना। **अपने हांथ पाग सँवारना** = अपने हाथो अपना काम पूरा करना। **अपने हिसाब से** = अपने विचार से। अपने विवेक से।

यौ०—अपने आप = (१) स्वत। खुद। उ०—अब कुछ दिन धक्के खाने से उसकी अकल अपने आप ठिकाने हो जाएगी।—श्रीनिवास ग्र० पृ० २४६। (२) आप। निज। जैसे—अपने को। अपने मे। अपने पर।

अपना[२]—सज्ञा पु० आत्मीय। स्वजन। जैसे—आपलो। तो अपने ही हैं, आपसे छिपाव क्या ?—(शब्द०)। उ०—जब लौ न सुनो अपने जन को। अति आरत शब्द हते तन को।—रामच०, पृ० १७।

अपनाइत(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपनायत'। उ०—अपनाइत हू सो नही अब परतीत बिचारि। मो नैननि मनु मेरेई राख्यौ हरि मे डारि।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १७।

अपनाइयत—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपनायत'।

अपनाना—क्रि० स० [अपना से नाम०] १ अपने अनुकूल करना। अपने वश मे करना। अपनी ओर करना। उ०—(क) रचि प्रपच भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई।—मानस, २।१८। (ख) सूर स्याम बिन देखे सजनी कैसे मन अपनाऊँ।—सूर० (शब्द०)। २ अपना बनाना। अगीकार करना। ग्रहण करना। अपनी शरण मे लेना। उ०—(क) सब विधि नाथ मोहि अपनाइय। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइय।—मानस, ६।११६। (ख) ना हमको कछु सुदरताई। भक्त जानि के सब अपनाई।—सूर० (शब्द०)।

अपनापन—सज्ञा पुं० [हिं० अपना + पन (प्रत्य०)] १ अपनायत। आत्मीयता। उ०—अपनापन चेतन का सुखमय, खो गया नहीं आलोक उदय।—कामायनी, पृ० २४१। २ आत्माभिमान। उ०—भूल न जावे कभी न अपनापन, जान दे, पर न मान को पै खो।—चोखे०, पृ० १५।

अपनापा—सज्ञा पुं० [हिं० अपना + पा (प्रत्य०)] अपनापन। अपनत्व।

अपनाम—सज्ञा पु० [सं०] बदनामी। निंदा। शिकायत।

अपनामा—वि० [स० अपनामन] निंदित। बदनाम [को०]।

अपनायत—सज्ञा स्त्री० [हिं० अपना + यत (प्रत्य०)] १ अपना होने का भाव। अपनापन। आत्मीयता। उ०—(क) देखी सुनी न आजु लौं अपनायत ऐसी। करहिं सबै, सिर मेरे ही गिरि परै अनैसी।—तुलसी ग्र०, पृ० ५३३। (ख) जो, लोग अपनायत की रीति सें कहते हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६६। २ आपसदारी का सबध। बहुत पास या नजदीकी रिश्ता।

अपनाव—सज्ञा पुं० [हिं० अपना + आव (प्रत्य०)] अपना बना लेने की क्रिया। ऐक्य का भाव।

अपनाश(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनास'।

अपनास(पु)—सज्ञा पु० [हिं० अप + नास] अपना नाश। उ०—हाथ चढ़ौं मैं तेहि के प्रथम करौं अपनास।—जायसी ग्र० पृ० १००।

अपनाहट—सज्ञा स्त्री० [हिं० अपना + आहट (प्रत्य०)] अपनापन निजत्व। उ०—खादी की वह मोटी चादर नही चित्त को भाती थी। अनमिल जन की अपनाहट सी रुचि मे मेल न खाती थी।—आर्द्रा, पृ० ६६।

अपनि(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—अपनि प्रतिज्ञा तन किन चहौ। वेद पुराननि मैं जो कहौ।—नद० ग्र०, पृ० ३०३।

अपनिधि—वि० [सं०] गरीब।

अपनीत[१]—वि० [सं०] १ दूर किया हुआ। हटाया हुआ। २ निकाला हुआ। ३ खडित (को०)। ४ जिसका अपनयन किया गया हो।

अपनीत[२]—सज्ञा पु० १ धोखा। फरेब। २ बुरा आचरण [को०]।

अपनुक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—ए सखि कहब अपनुक दद, सपनहु जनु हो कुसुम सग।—विद्यापति, पृ० ४२३।

अपनुत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपनोदन' [को०]।

अपनोद—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपनोदन' [को०]।

अपनोदन—सज्ञा पु० [सं०] १ दूर करना। हटाना। २ खडन। प्रतिवाद। ३ प्रायश्चित्त (को०)। ४ नष्ट करना। खराब करना [को०]।

अपह्नव(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अपह्नव'।

अपह्नुति(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपह्नुति'। उ०—मिसु करि और कथन छबिधि, होत अपन्हुति भाइ।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ६०।

अपपाठ—सज्ञा पुं० [सं०] अष्ट या गलत पाठ। अशुद्ध पाठ [को०]।

अपपात्र—वि०[स०] १ जिसे सब लोगो के व्यवहार का सामान, बरतन या पात्र न दिया जाय। किसी दोष के कारण जातिच्युत। २ हीन जाति का [को०]।

अपपात्रित—वि० [सं०] दे० 'अपपात्र' [को०]।

अपपाद—वि० [सं०] खराब या बुरे पैरोवाला। जिसके पैर विकृत हो [को०]।

अपपादत्र—वि० [सं०] उपानहविहीन। पादत्राणरहित। नगे पैरोंवाला [को०]।

अपपूत—वि० [स०] १ जिसके नितंबों की रचना विकृत हो [को०]।

अपप्रजाता—संज्ञा स्त्री० [स०] ऐसी स्त्री जिसका गर्भपात हो गया हो [को०]।

अपप्रदान—संज्ञा पुं० [स०] १ घूस। रिश्वत। उत्कोच। २ अनुचित रूप से दिया धन [को०]।

अपवरग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपवर्ग'। उ०—सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपवरग सकल तनु धारी।—मानस०,१।३१५।

अपवर्ग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपवर्ग'। उ०—सात स्वर्ग अपवर्ग ऊपर ताहि चित्त लगावन—पलटू०, पृ० ६३।

अपवल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अप+बल] आत्मबल। अपनी शक्ति। उ०—इद्र कहा रिसाइ कीन्हो गयो अपवल गाहि। आइ तिनहूँ पांइ पकरे समुझि कै मन माहि।—सूर०, (प० १।४७)।

अपबस(पु)—वि० [हिं० अप+बस] अपने वश मे। स्ववश। उ०—(क) जौ विधना अपवस करि पाऊँ तौ सखि कह्यो होइ कछु तेरो अपनी साध पुराऊँ।—सूर०, १०।१०४७।

अपबाहुक—संज्ञा पुं० [स०] बाहु संबंधी एक वातरोग जिसमे कधे मे वायु के प्रविष्ट हो जाने से नसें तन जाती हैं। २ सदोष वायु [को०]।

अपभय[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ भय का नाश। निर्भयता। २ व्यर्थ भय। अकारण भय। ३ डर। भय। उ०—(क) कबहुँ कृपा करि रघुनाथ मोहूँ चितैहौ। विनय करौं अपभय हुते तुम परम हितैहौ। तुलसी (शब्द०)। (ख) अपभय कुटिल महीप डराने।—तुलसी (शब्द०)।

अपभय[2]—वि० [स०] निर्भय। निडर। जो न डरे।

अपभायो(पु)—वि० [हिं० अप+√भाना=अच्छा लगना] अपने को भाने या अच्छा लगनेवाला। आत्मभावित। अपने भाव का। स्वानुकूल। उ०—काम क्रोध मोह लोभ गर्व ने मन बौराय कियो अपभायो।—चरण० बानी, पृ० ६५।

अपभाषण—संज्ञा पुं०[स०] १ अशिष्ट भाषण।२ अपमानकर कथन। ३ गाली देना। दुर्वचन कहना [को०]।

अपभुक्त—वि० [स० अप+भुक्त] अनुचित रूप से व्यवहार मे लाया हुआ (धन या पदार्थ) [को०]।

अपभ्रंश[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ पतन। गिराव। २ बिगाड। विकृति ३ बिगडा हुआ शब्द। ४ प्राकृत बोलियो (भाषा) का विकृत। स्वरूप [को०]। ५ प्राकृत भाषा के बाद की भाषा [को०]।

अपभ्रंश[2]—वि० [स०] विकृत। बिगडा हुआ।

अपभ्रंशित—वि० १ गिरा हुआ। २ बिगडा हुआ।

अपभ्रष्ट—वि०[स०] १ विकृत। बिगडा हुआ। २ गिरा हुआ[को०]।

अपमगल—संज्ञा पुं० [स० अप+मङ्गल] अशुभ अकल्याण। अनिष्ट। उ०—अपमगल जिय जानि सु नेन मुष वही।—पृ० रा० २५।३७५।

अपमर्द—संज्ञा पुं० [स०] धूल। गर्द [को०]।

अपमर्दन—संज्ञा पुं०[स० अप+मर्दन]बुरी तरह रौदना या कुचलना।

अपमर्श—संज्ञा पुं० [स०] १ स्पर्श। २ चरना। ३. अर्पण, [को०]।

अपमान—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनादर। अवहेलना। विडबना। अवज्ञा। २ तिरस्कार। दुतकार। वेइज्जती।

क्रि० प्र०—करना। होना।

अपमानता(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० अप+मान्यता] अपमान या तिरस्कार की स्थिति या क्रिया। उ०—प्रतिग्रध गुरु अपमानता सहि नहिं सके महेस।—मानस, ७।२०६।

अपमानना(पु)—क्रि० स० [स० अपमान से नाम०] अपमान करना। विडबना करना। निंदा करना। तिरस्कार करना। उ०—(क) सुनि मुनि वचन लषन मुसुकाने। बोले परसु धरहि अपमाने।—तुलसी (शब्द०)। (ख)हारि जीत नैना नहिं मानत। धाए जात तही को फिरि फिरि वै कितनो अपमानत।—सूर (शब्द०)।

अपमानित—वि० [स०] १ निंदित। अवमानित। २ बेइज्जत।

अपमानी—वि० [स० अपमानिन्] [वि०स्त्री० अपमानिनी] निरादर करनेवाला। तिरस्कार करनेवाला। उ०—सोचिय सूद्र विप्र अपमानी। - तुलसी (शब्द०)।

अपमान्य—वि० [स०] अपमान के योग्य। निंद्य।

अपमारग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपमार्ग'। उ०—महामोहिनी मोहि आतमा अपमारगहिं लगावै।—सूर० १।४२।

अपमारगी(पु)—वि०[हिं०] दे० 'अपमार्गी'।—उ०—नैना लोनहरामी ये। चोर, ढुढ वटपार कहावत अपमारगी, अन्यायी वे।—सूर०, १०।२२८५।

अपमार्ग--संज्ञा पुं० [स०] १ कुमार्ग। असन्मार्ग। कुपथ। २ देह मलना या धोना। अग का परिमार्जन [को०]।

अपमार्गी—वि० [स० अपमार्गिन]१ कुमार्गी। कुपथी। अन्यथाचारी। २ दुष्ट। नीच। पापी।

अपमार्जन—संज्ञा पुं० [स०] १ शुद्धि। सफाई। संस्कार। सशोधन। २ हजामत। क्षौर (को०)। ३ खड। टकडा [को०]।

अपमुख—[स०] [स्त्री०अपमुखी] जिसका मुँह टेढा हो। विकृतानन टेढमुहाँ [को०]।

अपमृत्यु—संज्ञा पुं० [स०] १ कुमृत्यु कुसमय मृत्यु जैसे, बिजली के गिरने, विष खाने, साँप आदि के काटने से मरना। २ बहुत बडा रोग या खतरा जिससे व्यक्ति बच गया हो [को०]।

अपमृषित—वि० [स०] १ समझ मे न आने योग्य। अस्पष्ट। २ असह्य [को०]।

अपयश—संज्ञा पुं० [स० अपयस्] १ अपकीर्ति। बदनामी। बुराई। उ०—मैं जगत के अपयश को मौत से बढकर मानता हूँ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १११। २ कलक। लाछन।

अपयशस्क—वि० [स०] अपकीर्तिकारी। अपयशकारी [को०]।

अपयशस्कर—वि० [स०] दे० 'अपयशस्क'।

अपयशी—वि० [स० अप+यश+हिं० ई (प्रत्य०)] कलकित। निंदित [को०]।

अपयसी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपयशी'। उ०—सूम सर्वभच्छी दववादी जो कुवादी जड, अपयसी ऐसो भूमि भूपति न मोहिए—रामच० पृ० १२५।

अपयान—संज्ञा पुं० [स०] १ उपेक्षा। उदासीनता। २ पलायन। भागना। हट जाना। निकल जाना [को०]।

अपयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुयोग। बुरा योग। २. कुसमय। कुवेला। ३ कुशकुन। असगुन। ४ नियमित मात्रा से अधिक वा न्यून औषध पदार्थों का योग।

अपरंच—अव्य० [सं० अपरञ्च] १ और भी। २ फिर भी। पुनरपि। पुन। ३ दूसरा भी [को०]।

अपरपार(ग)—वि० [सं० अपर=दूसरा+हिं० पार=छोर] जिसका पारावार या ओर छोर न हो। असीम। बेहद। अनत। उ०—खग खोज पाछे नही तू तत अपरपार। बिन परचै का जानिऐं सब झूठे अहकार।—कबीर ग्र०, पृ० २३०।

अपर[1]—वि० [सं०] १ जो पर न हो। पहला। पूर्व का। २. पिछला। जिससे कोई पर न हो ३ अन्य। दूसरा। भिन्न। और। उ०—अपर नाम उडुगण विमल, बसैं भक्त उर व्योम।—भक्तमाल (श्री०) पृ० ४६८। ४ जिससे बढकर या बराबर का अन्य न हो (को०)। ५ जो दूसरा या पराया न हो। स्वपक्षीय। अपना। उ०—को गिनै अपर पर को गिनै। लोह छोह छक्के बरन।—पृ० रा०, ३३।२६। ६ अश्रेष्ठ। जो पर अर्थात् श्रेष्ठ न हो। निकृष्ट। साधारण (को०)। ७ पश्चिमी। पश्चिम दिशा का (को०)। ८ दूर का। दूरवर्ती। जो पास न हो (को०)।

अपर[2]—संज्ञा पुं० १ हाथी का पिछला भाग, जघा, पैर आदि। २ रिपु। शत्रु। ३ न्यायशास्त्र मे सामान्य के दो भेदो मे से एक। ४. भविष्यत् काल या उस काल मे किया जानेवाला कार्य [को०]।

अपरकाय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का पिछला भाग।

अपरकाल—संज्ञा पुं० [सं०] बाद का समय [को०]।

अपरक्त—वि० [सं०] १ बदले हुए रग का। रगहीन। ३ रक्तहीन। पीला। ४ असतुष्ट [को०]।

अपरक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपरक्त या असतुष्ट होना।

अपरचै(ग)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपरिचय'। उ०—देखा देखी पाकडै जाइ अपरचै छूटि। बिरला कोई ठाहरै सतगुर सामी मूठि।—कबीर ग्र०, पृ० ५१।

अपरछन[1](ग)—वि० [सं० अप्रच्छन्न वा अपरिछन्न] आवरणरहित। जो ढका न हो। बिना वस्त्र का।

अपरछन[2](ग)—[सं० अप्रच्छन्न] आवृत। छिपा। गुप्त। उ०—बाजी बिहर रचाइ के रहा अपरछन होइ। मायापट परदा दिया ताते लखइ न कोइ।—दादू (शब्द०)।

अपरज[1]—वि० [सं०] बाद मे उत्पन्न [को०]।

अपरज[2]—संज्ञा पुं० विध्वसक अग्नि। प्रलयाग्नि [को०]।

अपरतंत्र—वि० [सं० अपरतन्त्र] जो परतत्र या परवश न हो। स्वतत्र। स्वाधीन। आजाद।

अपरत—वि० [सं०] विरक्त। उदासीन। (को०)।

अपरता[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] परायापन।

अपरता[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अ=नहीं+परता=परायापन] भेदभाव की शून्यता। अपनापन।

अपरता[3]—वि० [हिं० अप=आप+रत=लगा हुआ] स्वार्थी। मतलबी।

अपरता[4]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दूरी। २ पृथकता। ३ निकटता। समीपता। ४ न्याय मे २४ गुणो में एक [को०]।

अपरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विराग। विच्छेद। २ असतोष [को०]।

अपरती(ग)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अप=आप+सं० रति=लीनता] स्वार्थ। बेईमानी।

अपरतीत(ग)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्रतीति] विश्वास का अभाव। अविश्वास। उ०—क्यों अपरतीत के बने बादल। चाँद परतीत को घुमड घेरें।—चोखे०, पृ० १६७।

अपरत्र—क्रि० वि० [सं०] १ दूसरे समय मे। और कभी। २ अन्यत्र [को०]।

अपरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ पिछलापन। अर्वाचीनता। २ परायापन। बेगानगी। ३ न्यायशास्त्रानुसार चौबीस गुणो मे से एक। यह दो प्रकार का है—एक कालभेद मे दूसरा देशभेद मे। दे० 'अपरता'।

अपरदक्षिण—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण और पश्चिम का कोना। नैर्ऋत्य कोण।

अपरदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पश्चिम।

अपरना(ग)—संज्ञा स्त्री० [सं० अपर्णा] पार्वती का नाम। वि० दे० 'अपर्णा'। उ०—पुनि परिहरेउ सुखानेउ परना। उमा नाम तब भयउ अपरना।—तुलसी (शब्द०)।

अपरनाल—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्सहिता के अनुसार एक देश का नाम।

अपरपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ कृष्ण पक्ष। २ प्रतिवादी। मुद्दालेह। फरीकसानी।

अपरपर—वि० [सं०] एक एव अन्य अनेक। विभिन्न [को०]।

अपरपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] वशज। वशागत लोग [को०]।

अपरप्रणेय—वि० [सं०] अन्य से जल्दी प्रभावित होनेवाला [को०]।

अपरबल—वि० [<सं० प्रबल] बलवान्। बली। उद्धत। बेकहा। उ०—चली अपरबल बात अघात। उडे जात कहि बनत न बात।—नद० ग्र०, पृ० ३०५।

अपरभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्य या भिन्न होने का भाव। अतर। भेद। २ अविरल [को०]।

अपरमित—वि० [सं० अपरिमित] इयत्ताशून्य। असीम। उ०—ऐसी ऐसी बातो से उसकी अपरमित शक्ति का पूरा प्रमाण मिलता है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १६८।

अपररात्र—संज्ञा पुं० [सं०] रात्रि का अतिम भाग या प्रहर [को०]।

अपरलोक—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरा लोक। परलोक। स्वर्ग।

अपरव—संज्ञा पुं० [सं०] १ (सगीत सबधी) झगडा या विवाद। २. कुख्याति [को०]।

अपरवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत जिसके विषम चरण मे दो नगण, एक रगण और लघु गुरु हो तथा समचरण मे एक नगण, दो जगण और रगण हो। यथा—सब तज रसना गहो हरी। दुख सब भागहि पापहूँ जरी। हरि विमुख मग ना करी। जप दिन रैन हरी हरी (शब्द०)।

अपरवक्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपरवक्त्र' [को०]।

अपरवश—वि० [सं०] पराए वश का। परवश।

अपरस¹—वि०[सं० अ=नहीं+स्पर्श, हिं० परस] १ जो छुआ न जाय। जिसे किसी ने छुआ न हो। उ०—ऊधो तुम हो अति बड़भागी। अपरस रहत सनेह तगा ते नाहिन मन अनुरागी।—सूर०, १०।३६५८। २ न छूने योग्य। अस्पृश्य। उ०—अपरस ठौर तहाँ सपरस जाइ कैसें, वासना न धोवें तौ लौ तन के पखारे कहाँ।—घनानद, पृ० १६८।

अपरस²—सज्ञा पुं० एक चर्मरोग जो हथेली और तलवे मे होता है। इसमे खुजलाहट होती है और चमडा सूख सूखकर गिरा करता है।

अपरस³Ⓟ—सज्ञा पुं० [स० आत्म+रस] आत्मानद। आत्मरस। उ०—पाछे श्री गुसाईं जी स्नान करि धोती उपरेना पहरि अपरस की गादी पर विराजि कै सख चक्र धरत हते।—दो सौ बावन०, पृ० ६।

अपरस⁴Ⓟ—सज्ञा पुं० [स० अप=बुरा+रस] बुरा रस। विकृत रस। उ०—जनम जनम तें अपावन असाधु महा, अपरस पूति सो न छाडै अजौं छूति कौं।—घनानद, पृ० १६८।

अपरस्पर—वि० [सं०] १ निरतर। लगातार। २ अन्योन्य। ३ जो आपस का न हो। जिसमे आपसदारी न हो [को०]।

अपराग—सज्ञा पुं० [सं० अपराङ्ग] गुणीभूत व्यग्य के ८ भेदो मे से एक जिसमे व्यग्यार्थ अन्य शब्द के अधीन हो।

अपरात—सज्ञा पुं० [सं० अपरान्त] पश्चिम का देश।

अपरातक—सज्ञा पुं० [सं० अपरान्तक] बृहत्सहिता के अनुसार पश्चिम दिशा मे एक पर्वत।

अपरातिका—सज्ञा स्त्री० [स० अपरान्तिका] वैताली छद का एक भेद जिसमे वैताली छद के सम चरणो के समान चारो पद हो और चौथी और पाँचवी मात्रा मिलकर एक दीर्घाक्षर हो जाय। जैसे—शभु को भजहु रे सबै घरी। तज सबै काम रे हिये धरी (शब्द०)।

अपरा¹—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अध्यात्म वा ब्रह्मविद्या के अतिरिक्त अन्य विद्या। लौकिक विद्या। पदार्थ विद्या। २ पश्चिम दिशा। ३ एकादशी जो ज्येष्ठ के कृष्ण पक्ष मे होती है।

अपरा²—वि० स्त्री० दूसरी।

अपराग—सज्ञा पुं० [सं०] १ असतोष। २ शत्रुता। ३ अरुचि [को०]।

अपराग्नि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दक्षिण एव गार्हपत्य अग्नि। २ चिता की अग्नि [को०]।

अपराजित¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपराजिता] जो पराजित न हुआ हो। अविजित।

अपराजित²—सज्ञा पुं० १ विष्णु। २ शिव। ३ कृष्ण का एक पुत्र (को०)। ४ एक विषैला कीट (को०)। ५ एकादश रुद्रो मे से एक।

अपराजिता¹—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विष्णुक्राता लता। कोयल लता। २ दुर्गा। उ०—मरन सरन है सदा सुख साजिता। द्रवहि द्रवहि दास को अपराजिता।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० २५४। ३ अयोध्या का एक नाम। ४ चौदह अक्षर का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण मे दो नगण, एक रगण, एक सगण तथा एक लघु और एक गुरु होता है। न न र स ल ग—।।। ।।। ऽ।ऽ ।।ऽ । ऽ जैसे—न विरस लग राम की जन को कथा। सुनत बढत प्रेम सिधु शशी यथा। रघुकुल करि पावनो सुख साजिता। जिन किय थित कीरती अपराजिता (शब्द०)। ५ एक प्रकार का धूप।

अपराजिता²—वि० जिसमे पर को जीता न जा सके। अनिर्णीत।

अपराजेय—वि० [सं०] १ जो जीता न जा सके। उ०—रह गया राम रावण का अपराजेय युद्ध।—अपरा, पृ० ३७।

अपराझीⓅ—वि० [स० अपराद्ध, प्रा० अवरज्झ+ई (प्रत्य०)] दे० 'अपराधी'। उ०—मानुस जन्म चूकेहु अपराझी। यह तन केर बहुत है साझी।—कबीर बी०।

अपराद्ध¹—वि०[सं०] १ जिसने अपराध किया हो। दोषी। अपराधी। २ चूकनेवाला। ३ अतिक्रात। अतिक्रमित [को०]।

अपराद्ध²—सज्ञा पुं० १ दोष। अपराध [को०]।

अपराद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ गलती। दोष। अपराध। २. पाप [को०]।

अपराध—सज्ञा पुं० [सं०] १ दोष। पाप। २ कसूर। जुर्म। ३. भूल। चूक।

अपराधभजन—सज्ञा पुं०[सं० अपराधभञ्जन]अपराध का नाश करनेवाले शिव [को०]।

अपराधविज्ञान—सज्ञा पुं०[सं०] अपराध के कारण और उसे निवारण करनेवाला विज्ञान [को०]।

अपराधी—वि० पुं० [सं० अपराधिन्] [स्त्री० अपराधिनी] दोषी। पापी। मुलाजिम।

अपराधीसाक्षी—सज्ञा पुं० [सं० अपराधीसाक्षिन्] किसी अपराध के मामले का वह अभियुक्त जो अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और अपने साथी या साथियो के विरुद्ध गवाही देता है। वह अभियुक्त या अपराधी जो सरकारी गवाह हो जाता है। इकबाली गवाह। मुजरिम इकरारी। सरकारी गवाह।

अपरापतⓅ—सज्ञा पुं०[स० अप्राप्त] भाग्य। किस्मत। विधि। उ०—काहू सौं नाहीं मिटै, अपरापत कै अक। ईस के सीस तउ, भयो न पूर्न मयक।—स० सप्तक, पृ० ७१०।

अपरापतिⓅ—सज्ञा स्त्री० [सं० अप्राप्ति] प्राप्ति का अभाव। अलाभ। अभाग्य। उ०—अपरापति के दिनन मे खरच होत अविचार। घर आवतु है पाहुनो, विन जन लाभ लगार।—स० सप्तक, पृ० ३३१।

अपरापरण—वि० [सं०] सतानहीन। निस्सतति [को०]।

अपरामृष्ट—वि०[सं०]१. अछूता। अस्पष्ट। जिसको किसी ने न छुआ हो। २ अव्यवहृत। कोरा। जिसे व्यवहार मे न लाया गया हो।

अपरार्क¹—वि० [सं०] द्वितीय सूर्य जैसा। सूर्य तुल्य तेजस्वी [को०]।

अपरार्क²—सज्ञा पुं० [सं०] याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रसिद्ध प्राचीनतम टीकाकार जिनकी अपरार्कचद्रिका टीका विख्यात है।

अपरार्ध—सज्ञा पुं० [सं०] द्वितीय आधा भाग। उत्तरार्ध [को०]।

अपरावर्ती—वि० [सं० अपरावर्तिन्] [वि० स्त्री० अपरावर्तिनी] १ जो बिना काम पूरा किए न लौटे। काम करके पलटनेवाला। २ जो पीछे न हटे। जो किसी काम से मुँह न मोडे। मुस्तैद।

अपरावृत—वि० [सं०] अनिवर्तित। न लौटा हुआ। अपनी जगह न आया हुआ। उ०—जब तक मनस् अपरावृत है तब तक मनस् का आलय विज्ञान ही एकमात्र आलंबन होता है।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३६६।

अपराह्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ दिन का पिछला भाग। दो पहर के पीछे का काल। तीसरा पहर।

अपराह्णतन—वि० [सं०] १ दिन के पिछले भाग से संबद्ध। २ दिन के अंतिम काल में उत्पन्न [को०]।

अपराह्णेतन—वि० [सं०] दे० 'अपराह्णतन'।

अपराह्न—संज्ञा पुं० दे० 'अपराह्ण'।

अपरिकलित—वि० [सं०] अज्ञात। अदृष्ट। अश्रुत। बे देखा सुना।

अपरिक्रम—वि० [सं०] १ चल फिर पाने में असमर्थ। २ परिश्रम करने के अयोग्य [को०]।

अपरिक्लिन्न—वि० [सं०] सूखा। शुष्क।

अपरिगण्य—वि० [सं०] अनगिनत। बेशुमार [को०]।

अपरिगत—वि० [सं०] १ अज्ञात। अपरिचित। न पहिचाना हुआ। २ अप्राप्त।

अपरिगृहीत—वि० [सं०] अस्वीकृत। त्यक्त। छोड़ा हुआ।

अपरिगृहीतागमन—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार एक प्रकार का अतिचार। कुमारी या विधवा के साथ गमन करना पुरुष के लिये और कुमार या रँडुआ के साथ गमन करना स्त्री के लिये अपरिगृहीतागमन है।

अपरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १ अस्वीकार। दान का न लेना। दानत्याग। २ देहयात्रा के लिये आवश्यक धन से अधिक का त्याग। विराग। ३ योगशास्त्र में पाँचवाँ यम। संगत्याग। ४ जैन शास्त्रानुसार मोह का त्याग।

अपरिग्राह्य—वि० [सं०] जो ग्रहण करने या अंगीकार करने योग्य न हो [को०]।

अपरिचय—संज्ञा पुं० [सं० वि० अपरिचित] परिचय का अभाव। जानपहिचान का न होना।

अपरिचयिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिचयशून्यता की स्थिति या भाव। [को०]।

अपरिचयी—वि०[सं० अपरिचयिन्] १ जिसका परिचय न हो। २. जो मिलनसार न हो। असामाजिक [को०]।

अपरिचित—वि० [सं०] १ जिसे परिचय न हो। जो जानता न हो। अनजान। जैसे—वह इस बात से बिलकुल अपरिचित है (शब्द०)। २ जो जानाबूझा न हो। अज्ञात। जैसे—किसी अपरिचित व्यक्ति का सहसा विश्वास न करना चाहिए(शब्द०)।

अपरिच्छद—वि० [सं०] १ आच्छादनरहित। आवरणशून्य। जो ढका न हो। नंगा। खुला हुआ। २ दरिद्र।

अपरिच्छन्न—वि० [सं०] १ जो ढका न हो। खुला। नंगा। २ आवरणरहित। ३ सर्वथा व्यापक।

अपरिच्छादित—वि० [सं०] दे० 'अपरिच्छन्न' [को०]।

अपरिच्छिन्न—वि० [सं०] १ जिसका विभाग न हो सके। अभेद्य। २. जो अलग न हुआ हो। मिला हुआ। ३. इयत्तारहित। असीम। सीमारहित।

अपरिच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ विभाग, विभाजन या बिलगाव का अभाव। २ न्याय या निर्णय का अभाव। ३. अविच्छिन्नता। नैरंतर्य [को०]।

अपरिछिन्न(५)—वि० [हिं०] दे० 'अपरिच्छिन्न'। उ०—जौ कहहु कि हम यों करि पाए। अपरिछिन्न नित निगमन गाए।—नंद० ग्रं०, पृ० २७१।

अपरिणत—वि० [सं०] १ अपरिपक्व। जो पका न हो। कच्चा। २ जिसमें विकार या परिवर्तन न हुआ हो। ज्यों का त्यों। विकारशून्य।

अपरिणय—संज्ञा पुं० [सं०] विवाहशून्य अवस्था। अपरिणीत स्थिति। कौमार्य। ब्रह्मचर्य।

अपरिणयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपरिणय' [को०]।

अपरिणाम—संज्ञा पुं० [सं०] परिणाम या परिवर्तन का अभाव। अपरिवर्तनशीलता [को०]।

अपरिणामदर्शी—वि० [सं० अपरिणामदर्शिन्] अदूरदर्शी [को०]।

अपरिणामी—वि० [सं० अपरिणामिन्][वि० स्त्री० अपरिणामिनी] १ जिसकी दशा में परिवर्तन न हो। परिणामरहित। विकारशून्य। २ जिसका कुछ परिणाम न हो। निष्फल।

अपरिणीत—वि० [सं०][वि०स्त्री०अपरिणीता] अविवाहित। क्वाँरा।

अपरिपक्व—वि० [सं०] १ जो परिपक्व न हो। कच्चा। २ जो भली भाँति पका न हो। अधकच्चा। अधकचरा। अप्रौढ़। अधूरा। अव्युत्पन्न। ४ जिसने तपश्चर्यादि द्वारा द्वंद्व अर्थात सर्दी, गर्मी भूख, प्यास आदि सहन न की हो।

यौ०—अपरिपक्व कषाय। अपरिपक्वधी। अपरिपक्वबुद्धि।

अपरिपणितसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अपरिपणित सन्धि] एक प्रकार की कपट संधि जो केवल धोखे में रखने के लिये की जाय।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार इसका ढंग यह है कि किसी अभिमानी मूर्ख आलसी या दुर्व्यसनी राजा को नीचा दिखाना हो तो उससे यों ही कहता रहे कि हम तुम तो एक हैं, पर किसी प्रयोजन की बात न करे। इस प्रकार उसे संधि के विश्वास में रखकर उसकी कमजोरियों का पता लगाता रहे और मौका पड़ते ही उसपर आक्रमण कर दे। इस कपटसंधि का उपयोग दो सामंत राजाओं को लड़ाकर उनके राज्य को हरण करने के लिये भी हो सकता है।

अपरिबाधा—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+परिबाधा] कपट, बाधा या आयास का निवारण।

अपरिम—वि० [सं० अ+परिमा=परिमाण] जिसका परिमाण न हो। अमित। उ०—इस रहस्य अपरिम के आगे आदर से नतमस्तक है कवि।—इत्यलम्, पृ० ६७।

अपरिमाण—वि० [सं०] १ परिमाणरहित। बेअंदाज। अकूत।

अपरिमित—वि०[सं०] १ इयत्ताशून्य। असीम। बेहद। उ०—मानव था साथ उसी के मुख पर था तेज अपरिमित।—कामायनी, पृ० २७७। २. असंख्य। अनंत। अगणित। उ०—अपनै जान मैं बहुत करी। कृपासिंधु, अपराध अपरिमित छमौ सूर तैं सब बिगरी।—सूर०, १।११५।

अपरिमेय—वि० [सं०] १ जिसका परिमाण न पाया जाय। जिसकी नाप न हो सके। बेअंदाज। अकूत। असख्य। अनगिनत।

अपरिम्लान¹—वि० [सं०] न मुरझानेवाला। जिसका अपक्षय न हो [को०]।

अपरिम्लान²—संज्ञा पु० [सं०] महासहा नाम का एक वृक्ष [को०]।

अपरिवर्त्तनीय—वि० [सं०] १ जो परिवर्तन के योग्य न हो। जो बदल न सके। २ जिसमे फेरफार न हो सके। ३ जो बदले मे न दिया जा सके। ४ सदा एकरस रहने वाला। नित्य।

अपरिवर्त्य—वि० [सं०] दे० 'अपरिवर्त्तनीय'। उ०—जो इस परिवर्तनशील विश्व मे अपरिवर्त्य है।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० २२४।

अपरिवर्तित—वि० [सं०] जिसमे कोई हेरफेर या तबदीली न हुई हो। अविकल। ज्यो का त्यो।

अपरिवाद्य—वि० [सं०] जो निंदायोग्य न हो। अनिंद्य [को०]।

अपरिवृत—वि० [सं०] जो ढका या घिरा न हो। अपरिच्छन्न।

अपरिशेष¹—वि० [सं०] जिसका परिशेष या नाश न हो। पूर्ण। अनत। अविनाशी। नित्य।

अपरिशेष²—संज्ञा पु० सीमा का अभाव [को०]।

अपरिष्कार—संज्ञा पु० [सं०] १ सस्कार का अभाव। असशोधन। सफाई या काट छाँट का न होना। २ मैलापन। ३ भद्दापन।

अपरिष्कृत—वि० [सं०] १ जिसका परिष्कार न हुआ हो। जो साफ न किया गया हो। जो काट छाँटकर दुरुस्त न किया गया हो। २ मैलाकुचैला। ३ भद्दा। बेडौल। ४ असस्कृत।

अपरिसर¹—वि० [सं०] १ समीप का नहीं। दूर का। २ अविस्तीर्ण। अप्रशस्त [को०]।

अपरिसर²—संज्ञा पु० विस्तार का अभाव [को०]।

अपरिसीम—वि० [सं० अ+परिसीम] १ असीम। २ विस्तीर्ण। उ०—भगवान वादरायण हर हर करती गगा की अपरिसीम धारा को देखते रहे—वै० न०, पृ० २४८।

अपरिस्कद—वि० [सं० अपरिस्कन्द] गतिशून्य। जो कूद फाँद न सके [को०]।

अपरिहरणीय—वि० [सं०] १ अनिवार्य। अवश्यभावी। २ अपरित्याज्य। जिसका परिहार न हो सके। ३ अनादर के अयोग्य [को०]।

अपरिहार—संज्ञा पु० [सं०] [वि० अपरिहारित, अपरिहार्य] १ अवर्जन। अनिवारण। २ दूर करने के उपाय का अभाव।

अपरिहारित—वि० [सं०] अपरिवर्जित। अनिवारित। जो दूर न किया गया हो।

अपरिहार्य—वि० [सं०] १ जिसका परिहार न हो सके। अवर्जनीय। अवाध्य। अनिवार्य। जो किसी उपाय से दूर न किया जा सके। २. अत्याज्य। न छोडने योग्य। ३ अनादर के अयोग्य। आदरणीय। ४ न छीनने योग्य।

अपरीक्षणीय—वि० [सं० अ+परीक्षणीय] १. जाँच या परीक्षा के अयोग्य।

अपरीक्षित—वि० [सं०][वि०स्त्री० अपरीक्षिता] जिसकी परीक्षा न हुई हो। जो परखा न गया हो। जिसकी जाँच न हुई हो। जिसके रूप, गुण, परिमाण और वर्ग आदि का अनुसधान न किया गया हो।

अपरुष—संज्ञा पु० [सं०][वि०स्त्री० अपरुषा] क्रोधविहीन। रोषरहित। कठोरताशून्य [को०]।

अपरूप¹—वि० [सं०] १ कुरूप। बदशकल। भद्दा। बेडौल। २ अद्भुत। अपूर्व। उ०—नर कैसी अपरूप छटा लेकर आए तुम प्यारे।—झरना, पृ० ६३।

अपरूप²—संज्ञा पु० बेडौलपन। भद्दापन। कुरूपता [को०]।

अपरेटस—संज्ञा पु० [अ० एपरेटस] वह यत्र जो किसी विशेष कार्य या परीक्षा कार्य के लिये बना हो। यत्र। औजार। परीक्षायत्र।

अपरेशन—संज्ञा पु० [अं० ऑपरेशन] शल्यचिकित्सा। चीरफाड। शल्यक्रिया।

अपरोक्ष—वि० [सं०] १ जो परोक्ष मे न हो। प्रत्यक्ष। जो देखासुना जा सके। इद्रिय गोचर। २ जो दूर हो [को०]।

अपरोक्षानुभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रत्यक्ष ज्ञान। २ वेदात मे निरूपित एक प्रकरण [को०]।

अपरोध—संज्ञा पु० [सं०] रुकावट। निषेध। वर्जन। मनाही [को०]।

अपरोप—संज्ञा पु० [सं०] १ निष्कासन। २ राज्यच्युति [को०]।

अपर्ण—वि० [सं०] पत्तो से रहित [को०]।

अपर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पार्वती का एक नाम।

विशेष—पुराणो के अनुसार पार्वती ने शिव को पति के रूप मे प्राप्त करने के लिये तपस्या मे पत्तो तक को खाना छोड दिया था। अत पार्वती का एक नाम अपर्णा प्रसिद्ध हुआ।

२ दुर्गा।

अपर्तु—वि० [सं०] १ बेमौसमी। असामयिक। २ जिसका मासिक धर्म का समय गुजर गया हो। निवृत्तरजस्का [को०]।

अपर्बल(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'अपरबल'। उ०—माया बहुत अपर्बल अलख तुम्हार बनाव।—जग० श०, पृ० ६६।

अपर्यंत—वि० [सं० अपर्यन्त] असीम। अपरिमित [को०]।

अपर्याप्त—वि० [सं०] १ अपूर्ण। २ अयथेष्ट। जो काफी न हो। ३ सीमारहित। असीम (को०)। ४ असमर्थ (को०)।

यौ०—अपर्याप्तकर्म=जैनशास्त्रानुसार वह पाप कर्म जिसके उदय से जीव की पर्याप्ति न हो।

अपर्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपूर्णता। कमी। त्रुटि। २ असामर्थ्य। अयोग्यता। अक्षमता।

अपर्याय¹—वि० [सं०] क्रमविहीन। अव्यवस्थित [को०]।

अपर्याय²—संज्ञा पु० [सं०] क्रमहीनता [को०]।

अपर्व¹—संज्ञा पु० [सं० अपर्वन्] वह दिन जो पर्वकाल न हो। अविशिष्ट दिन अर्थात् अमावस्या, पूर्णिमा, अष्टमी और चतुर्दशी से व्यतिरिक्त कोई दिन। २. सधिराहित्य। जोड का अभाव [को०]।

अपर्व²—वि० पर्व या सधि से रहित [को०]।

अपर्वक—वि० [सं०] जिसमे जोड न हो। सधिविहीन [को०]।

अपर्वदड—संज्ञा पु० [सं० अपर्वदण्ड] ईख की एक किस्म [को०]।

अपर्वा—वि० [सं०] दे० 'अपर्व' [को०]।

अपल[1]—वि० [सं०] पलशून्य । मांसहीन ।

अपल[2]—वि० [हिं० अपलक] निमेषहीन । अपलक । एकटक ।

यौ०—अपलनयन = बिना पलक गिराए या अनिमिष दृष्टि । उ०—अपल नयन मुखार यौवन नव, देख रही तन्वी कोमल-तन ।—गीतिका, पृ० ३५ ।

अपल[3]—संज्ञा पुं० १. पिन । २. अर्गला या कुंडी [को०] ।

अपलक[1]—वि० [सं० अ + हिं० पलक] जिसकी पलकें न गिरें । निर्निमेष । उ०—द्विधारहित अपलक नयनों की भूखभरी दर्शन की प्यास ।—कामायनी, पृ० १२ ।

अपलक[2]—क्रि० वि० बिना पलक गिराये । एकटक । उ०—मैं अपलक इन नयनों से निरखा करता उस छवि को ।—ग्राम, पृ० १८ ।

अपलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुलक्षण । बुरा चिह्न । दोष । २ दुष्ट लक्षण । वह लक्षण जिसमें अतिव्याप्ति और अव्याप्ति दोष हो ।

अपलट(पु)—वि० [सं० अ + हिं० पलट] १ न मुड़नेवाला । न बदलनेवाला । एकरस रहनेवाला । उ०—अविहड़ अंग बिहड़ै नहीं, अपलट पलटि न जाइ ।—दादू०, पृ० ४६४ ।

अपलाप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपलापित] १ मिथ्यावाद । बकवाद । बात का बतक्कड़ । बाग्जाल । २ बात बनाना । प्रसंग टालने के लिये इधर उधर की बातें कहना । ३. सत्य को छिपाना (को०) । ४ प्यार । आदर (को०) । ५. कंधे और पसलियों का मध्य भाग [को०] ।

अपलापी—वि० [सं० अपलापिन्] अपलाप करनेवाला [को०] ।

अपलाभ—संज्ञा पुं० [सं० अप + लाभ] अनुचित ढंग से किया गया लाभ । बेजा मुनाफा ।

अपलापिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अतिशय लालसा । २ प्रबल तृष्णा या पिपासा [को०] ।

अपलापी—वि० [सं० अपलापिन्] १ तृषित । प्यासा । २. जिसे प्यास या लालसा न हो [को०] ।

अपलापुक—वि० [सं०] दे० 'अपलापी' [को०] ।

अपलोक[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप + श्लोक = कीर्ति] १. अपयश । अपकीर्ति । बदनामी । उ०—हाय अपलोक सोक पंचहि गह्यो मैं बिरहागिनि दह्यों मैं लोक त्रिभुवनि बह्योई मैं ।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ३२ । २. अपवाद । मिथ्या दोष । उ०—(क) अब अपलोक सोक सुत तोरा । सहहि निठुर कठोर उर मोरा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) भए अनगन निज निज करतूती । लहत सुजस अपलोक बिभूती ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपलोक[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अप = अपना + लोक] अपना लोक । उ०—भयो लग्य पूरन जब देव गए अपलोक । चद ब्रह्म राजा भए, रैवत बसी असोक ।—प० रा० सो०, पृ० २२८ ।

अपल्ल(पु)—वि० [सं० अ + पल = पलक] बिना रोक । निर्बाध । उ०—नारंगी वार्या भरे, ग्राधा दिए अपल्ल ।—बाँकी ग्रं०, भा० ३, पृ० २ ।

अपवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्वचन । अपशब्द । गाली । २. निंदा [को०] ।

अपवन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कृत्रिम वन । उपवन । बाग ।

अपवन[2]—वि० वायुरहित या वायु से सुरक्षित [को०] ।

अपवरक—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री० अपवरका] १. शयनकक्ष । अंतःपुर । २. गवाक्ष । झरोखा [को०] ।

अपवरग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'अपवर्ग' । उ०—अरथ धरम अपवरग दियण जग च्यार पदारथ ।—रा० रू०, पृ० ३ ।

अपवरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन । आवरण । २ पहनावा । पोशाक [को०] ।

अपवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १ मोक्ष । निर्वाण । मुक्ति । जन्म मरण के बंधन से छुटकारा पाना । उ०—तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला एक अंग ।—मानस, ५-८ । २. त्याग । ३ दान । ४. क्षेपण । (बाण) छोड़ना (को०) । ५. विशेष नियम । अपवाद (को०) । ६. क्रियाप्राप्ति या समाप्ति [को०] ।

अपवर्गी(पु)—वि० [सं० अपवर्ग] अपवर्ग संबंधी । मोक्ष संबंधी ।

अपवर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपवर्जित] १. त्याग । छोड़ना । २. दान । ३. मोक्ष । मुक्ति । निर्वाण । ४. (ऋण आदि) बेबाक करना । चुकता करना । ५ वादा पूरा करना । वचन पालन [को०] ।

अपवर्जित—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोड़ा हुआ । त्यागा हुआ । त्यक्त । २. छुटकारा पाया हुआ । मुक्त ।

अपवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. हटाना । पृथक् करना । २ सामान्य विभाजक [को०] ।

अपवर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सामान्य माप । २. हार जिसमें यथाक्रम सोनी और सोने की गुरियाँ पिरोई हों [को०] ।

अपवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपवर्तित] १ परिवर्तन । पलटाव । उलटफेर । २ स्थानांतरण (को०) । ३. विभाजन । ४ शेष भाग जो विभक्त न हो [को०] ।

अपवर्तित—वि० [सं०] १. बदला हुआ । पलटाया हुआ । लौटाया हुआ । २ स्थानांतरित (को०) । ३. निक्षेप । विभक्त [को०] ।

अपवर्त्य—वि० [सं०] जिसका अपवर्तन हो सके । सामान्य विभाजक से जो पूर्णतः विभक्त हो जाय [को०] ।

अपवश(पु)—वि० [हिं० अप = अपना + सं० वश] अपने अधीन । अपने वश का । परवश का उलटा । उ०—भली करी उन स्याम बँधाए । सूर गए हरि रूप चुरावन उन अपवश करि पाए ।—सूर (शब्द०) ।

अपवहित—वि० [सं० अपवाहित] दे० 'अपवाहित' ।

अपवाड़(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप + वाट, प्रा० वाड] पीछे का द्वार या रास्ता । उ०—दे प्रदक्षिणा चढ़े अपवाड़ । रच सूरै तजि बंको नाड़ि ।—प्राण०, पृ० २३६ ।

अपवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. विरोध । प्रतिवाद । खंडन । उ०—करके जय जयकार राम का धर्म का, करती थीं अपवाद कैकयी कर्म का ।—साकेत, पृ० ११० । २ निंदा । अपकीर्ति । बुराई । प्रवाद । उ०—कैकयी चिल्ला उठी सोन्माद, सब करे मेरा महा अपवाद ।—साकेत, पृ० ७३ । ३ दोष । पाप । कलंक । उ०—राजपद के अपवाद मद । आज तुम्हारा विचार होगा ।—चंद्र०, पृ० १३१ । ४. बाधक शास्त्रविशेष । उत्सर्ग का विरोधी । वह नियमविशेष जो व्यापक नियम से विरुद्ध

हो। मुस्तसना। जैसे, यह नियम है कि सकर्मक सामान्य भूत क्रिया के कर्ता के साथ 'ने' लगता है पर यह नियम 'लाना' क्रिया मे नही लगता। ५ अनुमति। समति। राय। विचार। ६ आदेश। आज्ञा। ७ वेदात शास्त्र के अनुसार अध्यारोप का निराकरण। जैसे—रज्जु मे सर्प का ज्ञान, यह अध्यारोप है और रज्जु के वास्तविक ज्ञान से उसका जो निराकरण हुआ यह अपवाद है। ८ विश्वास (को०) । ९ प्रीति। प्रेम (को०)। १० पारिवारिकता। परिवार जैसा सबध (को०) । ११ मृग को धोखा देकर फँसाने या शिकार करने के लिये शिकारियो द्वारा प्रयुक्त वाद्य [को०] ।

अपवादक—वि० [स०] १ निंदक । अपवाद करनेवाला । २ विरोधी । बाधक ।

अपवादित—वि० [स०] १ निंदित । २ जिसका विरोध किया गया हो ।

अपवादी—वि० [स० अपवादिन्] [वि० स्त्री० अपवादिनी] १. निंदा करनेवाला। बुराई करनेवाला। २ बाधक। विरोधी ।

अपवारक—सज्ञा पु० [स०] १ पर्दा। आड या ओट का साधन। २ व्यवधान। घिरा स्थान (को०) ।

अपवारण—सज्ञा पुं० [स०] १ व्यवधान । रोक । बीच मे पड़कर आघात मे बचानेवाली वस्तु। २ हटाने या दूर करने का कार्य। ३ आच्छादन। ओट। छिपाव। ४ अतर्धान।

अपवारित—वि० [सं०] १ अतर्हित। तिरोहित। २ दूर किया हुआ। हटाया हुआ। ३ ढका हुआ। छिपा हुआ।

अपवाह—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपवाहन' [को०] ।

अपवाहक[1]—वि० [स०] स्थानातरित करनेवाला। एक स्थान से किसी पदार्थ को दूसरे स्थान मे ले जानेवाला।

अपवाहक[2]—सज्ञा पु० एक यत्र जो भारी चीजो को उठाकर दूसरे स्थान पर रख देता है। गृध्र यत्र ।

अपवाहन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अपवाहित, अपवाह्य] १ स्थानातरित करना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। २. भिन्न मे घटाना। बाकी (को०)। ३ एक छद (को०) ।

अपवाहित—वि० [सं०] एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाया हुआ। स्थानातरित ।

अपवाहुक—सज्ञा पुं० [स०] एक रोग जिसमे बाहु की नसें मारी जाती है और बाहु बेकाम हो जाता है। यह रोग वायु के प्रकोप से होता है। भुजस्तभ रोग ।

अपविघ्न—वि० [स०] १ निर्बाध। निर्विघ्न। अबाधित। [को०]।

अपवित्र—वि० [स०] जो पवित्र न हो। अशुद्ध । नापाक। दूषित। मैला। मलिन ।

अपवित्रता—सज्ञा स्त्री० [स०] अशुद्धि। अशौच। मैलापन। नापाकी।

अपविद्ध—वि० [स०] १ त्यागा हुआ। त्यक्त। छोडा हुआ। २ वेधा हुआ। विद्ध। ३ निकृष्ट। निम्न (को०)।

अपविद्ध पुत्र—सज्ञा पु० [सं०] धर्मशास्त्रानुसार बारह प्रकार के पुत्रो मे वह पुत्र जिसको उसके माता पिता ने त्याग दिया हो और किसी अन्य ने पुत्रवत् पाला हो ।

अपविद्धलोक—वि० [सं०] जो इस लोक को छोड चुका हो। परलोकगत [को०] ।

अपविद्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ निकृष्ट विद्या। निषिद्ध विद्या। २ अविद्या [को०] ।

अपविष—वि० [सं०] निर्विष। विषहीन। जिसमे विष न हो [को०]।

अपविषा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विषमुक्त। २ निर्विष नामक पौधा [को०] ।

अपवीण—वि० [स०] १ वीणारहित। २. निकृष्ट या खराब वीणावाला [को०] ।

अपवृक्त—वि० [सं०] १ समाप्त हुआ। २ पूर्ण हुआ [को०] ।

अपवृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] छेद। सूराख। रध्र [को०] ।

अपवृत्त—सज्ञा स्त्री० [स०] १ व्यतिक्रमित। २ उलटा पलटा। ३ औंधा। ४ क्षोभित। ५ समाप्त हुआ [को०] ।

अपवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दूषित वृत्ति। २ अत। समाप्ति।

अपवेध—सज्ञा पुं० [स०] रत्न या मोती का त्रुटिपूर्ण छेदन [को०]।

अपवोढा—वि० [स० अपवोढृ] ढोने या हटानेवाला [को०] ।

अपव्यय—सज्ञा पु० [सं०] १ अधिक व्यय। अधिक खर्च। निरर्थक व्यय। फजूलखर्ची। २ बुरे काम मे खर्च। उ०—राजन्, सत्ता का अपव्यय मत करो।—विशाख०, पृ० ४०।

अपव्ययी—वि० [स० अपव्ययिन्] १ अधिक खर्च करनेवाला। फजूलखर्च। २ बुरे कामो मे व्यय करनेवाला ।

अपव्रत[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ अविहित व्रत। हीन व्रत ।

अपव्रत[2]—वि० [स०] १ विहित व्रत या कर्म न करनेवाला। अधार्मिक। अपवित्र। २ अविश्वस्त। आज्ञापालन न करनेवाला। ३ पतित। विकृत आचरणवाला ।

अपशक—वि० [सं० अपशङ्क] भय, शका या हिचक से रहित। निर्भीक। निडर [को०] ।

अपशकुन—सज्ञा पु० [सं०] कुसगुन। असगुन।

अपशद—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अपसद' [को०] ।

अपशब्द—सज्ञा पुं० [स०] १ अशुद्ध शब्द। दूषित शब्द। २ असबद्ध प्रलाप। बिना अर्थ का शब्द। ३ गाली। कुवाच्य। ४ पाद। अपान वायु का छूटना। गोज। ५ बिगडा हुआ शब्द। संस्कृत भाषा से भिन्न भाषा। ग्राम्य भाषा [को०] ।

अपशम—सज्ञा पु० [स०] विराम। अत। समाप्ति [को०]।

अपशु[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ जो पशु न हो। अर्थात् बलिप्रदान के अयोग्य पशु। २ दुष्ट पशु। कुत्सित पशु। ३ गाय और घोडे से भिन्न पशु [को०] ।

अपशु[2]—वि० १ पशुविहीन। २ गरीब (को०) ।

अपशुक[1]—सज्ञा पुं० [स० अपशुच्] आत्मा [को०] ।

अपशुक[2]—वि० शोकविहीन [को०] ।

अपशोक[1]—वि० [स०] शोक या विषादविहीन [को०] ।

अपशोक[2]—सज्ञा पुं० अशोक का वृक्ष [को०] ।

अपश्चिम—वि० [स०] १ जिसके पीछे कोई न हो। अंतिम। २. प्रथम। अतिम नहीं। ३. चरम या पराकाष्ठा [को०] ।

अपश्रय--संज्ञा पुं० [सं०] तकिया [को०]।

अपश्री--वि० [सं०] शोभाविहीन। श्रीरहित [को०]।

अपश्रुति--संज्ञा स्त्री० [सं० अप + श्रुति] एक ही धातु या शब्द में अथवा एक ही प्रत्यय या विभक्ति के योग में निष्पन्न धातु, शब्द, प्रत्यय या विभक्ति में निर्दिष्ट क्रमानुसार स्वरध्वनि में हुए परिवर्तन को अपश्रुति कहते हैं।--जैसे--गान, गीत, गेय आदि।

अपश्वास--संज्ञा पुं० [सं०] अपानवायु [को०]।

अपष्ठ--संज्ञा पुं० [सं०] अकुश का अग्रभाग या नोक [को०]।

अपष्ठु[1]--वि० [सं०] १ विपरीत। उलटा। २ प्रतिकूल। वाम [को०]।

अपष्ठु[2]--क्रि० वि० १ विपरीत रूप में। २ गलत ढंग से। निर्दोषिता पूर्वक [को०]।

अपष्ठु[3]--संज्ञा पुं० [सं०] समय [को०]।

अपष्ठुर--वि० [सं०] विपरीत। उलटा [को०]।

अपष्ठुल--वि० [सं०] दे० 'अपष्ठुर' [को०]।

अपसचय--संज्ञा पुं० [सं० अपसञ्चय] अनियमित रूप से वस्तु का सग्रह या छिपाकर रखना।

अपस[1]Ⓟ--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपशु'। उ०--ऊकरडी डोका चुगइ अपस डँमायड आँण।--ढोला०, दू०, ३३६।

अपस[2]Ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० अपस्मार] १ मृगी रोग। २ राजस्थानी कविता में मान्य एक प्रकार का दोष जिसमें शब्दयोजना निरर्थक हो और अर्थ साफ न हो। उ०--अपस अमूम्यो अरथ सबद पिण विण हित साजै।--रघु० रू०, पृ० १४।

अपसगुनⓅ--संज्ञा पुं० [सं० अपशकुन] असगुन। बुरा सगुन। उ०--अर्जुन दुखित बहुत तब भए। इहाँ अपसगुन होत नित नए। सूर० १।२८६।

अपसद--संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो अनुलोम विवाह द्वारा द्विजों से उत्पन्न हो। ब्राह्मण पुरुष और क्षत्रिया, वैश्या वा शूद्रा स्त्री, अथवा वैश्य पुरुष और शूद्रा स्त्री से उत्पन्न सतान।

अपसमारⓅ--संज्ञा पुं० [सं० अपस्मार] तैंतीस व्यभिचारी या सचारी भावों में से एक। उ०--अपसमार मो कवि उर धरई।--भिखारी ग्र०, भा०१, पृ० ७२।

अपसनाⓅ--क्रि० अ० [सं० अपसरण = खिसकना] १ खिसकना। सरकना। भागना। उ०--राते कवँल करहिं अलि भवाँ। घूमहिं माति चहहिं अपसवाँ।--जायसी ग्र०, पृ० ४२। २ चल देना। चपत होना। उ०--(क) जीव काढि लै तुम अपसई। (ख) लै अपसवा जलधर जोगी।--जायसी (शब्द०)।

अपसवनाⓅ†--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अपसना'।

अपसरⓅ--वि० [हिं० अप = अपना + सर (प्रत्य०)।] आप ही आप। मनमाना। अपने मन का। उ०--लोटत पीत पराग कीच महँ नीच न अंग सम्हारे। बारबार सरक मदिरा की अपसर रहत उघारे।--सूर (शब्द०)।

अपसर[2]--संज्ञा पुं० [सं०] १ अपसरण। पीछे हटना। २ भागना। ३ दूरी (को०)। ४. उचित कारण। सगत तर्क [को०]।

अपसर[3]Ⓟ--वि० [फा० अफसर] मुखिया। प्रधान। उ०--अपसर गज दलगजन गाऊ। छाँ मकु नाइ देहि तेहि ठाऊ।--चित्रा०, पृ० १८८।

अपसरण--संज्ञा पुं० [सं०] १ भाग जाना। खिसक जाना। निकल जाना। २ निर्गम। निकास [को०]।

अपसर्जक--वि० [सं०] अपसर्जन करनेवाला [को०]।

अपसर्जन--संज्ञा पुं० [सं०] १ विसर्जन। त्याग। २ दान। ३. मोक्ष [को०]।

अपसर्प--संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तचर। जासूस। सुफिया। भेदिया।--अनेकार्थ०।

अपसर्पक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपसर्प' [को०]।

अपसर्पण--संज्ञा पुं० [सं०] त्रि० १ पीछे सरकना। पीछे हटना। २ जासूसी करना [को०]।

अपसर्पित--वि० [सं०] पीछे हटा हुआ। पीछे खिसका हुआ। पीछे सरका हुआ।

अपसवनाⓅ--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अपसना'।

अपसव्य--वि० [सं०] १ सव्य का उलटा। दाहिना। दक्षिण। २ उलटा। विरुद्ध। ३ जनेऊ दाहिने कंधे पर रखे हुए।

यौ०--अपसव्य ग्रहण = जब राहु सूर्य वा चद्र के दाहिने होकर चलता है। अर्थात् ग्रहण दाहिनी ओर से लगता है तब उसे अपसव्य ग्रहण कहते हैं। अपसव्य ग्रहयुद्ध = बृहत्संहिता के अनुसार ग्रहयुद्ध के चार भेदों में से एक। अपसव्यतीर्थ = पितृतीर्थ।

क्रि० प्र०--होना = बाएँ कांधे से जनेऊ और अँगोछा दाहिने कांधे पर रखना वा बदलना।--करना = किसी के किनारे चारों ओर ऐसी परिक्रमा करना कि वह दाहिनी ओर पड़े। दक्षिणावर्त परिक्रमा करना।

अपसाधारण--वि० [सं० अप + साधारण] साधारण से भिन्न (अच्छे या बुरे भाव में)।--यदि जयती एक साधारण स्त्री थी तो मैं भी एक अप साधारण पुरुष था।--सन्यासी पृ० ३२८।

अपसार[1]--संज्ञा पुं० [सं० अप = जल + सार] १ अबुकण। पानी का छींटा। उ०--लेत अवनि रवि अमु कहूँ, देत अमिय अपसार। तुलसी सूछम को सदा रवि रजनीस अधार।--स० सप्तक, पृ० ३६। २ पानी की भाप।

अपसार[2]--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपसरण' [को०]।

अपसारक--वि० [सं०] दूर करनेवाला। हटानेवाला।

अपसारण--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अपसारणा] निकाल बाहर करना। हटा देना। दूरी करण। निवारण [को०]।

अपसारित--वि० [सं०] निष्कासित। निकाला हुआ। दूरीकृत। उ०--बाधाएँ अपसारित कर, कहता वर यो वरना।--गीतिका, पृ० १०५।

अपसिद्धात--संज्ञा पुं० [सं० अपसिद्धान्त] १ अयुक्त सिद्धात। वह विचार जो सिद्धात के विरुद्ध हो। २ न्याय में एक प्रकार का निग्रह स्थान। जहाँ किसी सिद्धात को मानकर उसी के विरुद्ध बात कही जाय वहाँ यह निग्रह स्थान होता है। ३. जैन शास्त्रानुसार उनके विरुद्ध सिद्धात।

अपसूकनⓅ†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपशकुन'। उ०--महा अप सूकन होज्यो ए भुवाल।--वी० रासो, पृ० ५६।

अपसृत—वि० [सं०] १ युद्ध से भागा हुआ। भगोड़ा। २ हटाया गया (को०)। ३ नीचे फेंका हुआ या च्युत [को०]।
विशेष—कौटिल्य के अनुसार अपसृत और अनिक्षिप्त (सेवा से अलग किए हुए या देश से निकाले हुए) सैनिकों में अपसृत अच्छे हैं। उनसे युद्ध में फिर काम लिया जा सकता है।
अपसृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपसरण' [को०]।
अपसोच†—संज्ञा पुं० [सं० अप+शोच] बुरी चिंता। दुश्चिंता। उ०—सुचिता मर गया तो सहुआइन रोई तो काफी मगर भीतर भीतर उसे उतना अपसोच नहीं हुआ।—नई०, पृ० ८०।
अपसोस¹(पु)—संज्ञा पुं० [फा० अफसोस] चिंता। सोच। दुख। उ०—(क) तातें अब मरियत अपसोसनि। मथुरा हूँ ते गए सखी री। अब हरि कारे कोसनि।—सूर (शब्द०)। (ख) काहू कौं अपसोस मरति हौं नैन तुम्हारे नाहीं।—सूर०, १०।२२३५।
अपसोसना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अपसोस से नाम०] सोच करना। चिंता करना। अफसोस करना। उ०—कहा कहूँ सुंदर घन तोसों। गयो कान्ह एक संग बिलसत मन ही मन अपसोसों।—सूर (शब्द०)।
अपसौन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अपशकुन] असगुन। बुरा सगुन।
अपसौना(पु)†—क्रि० अ० दे० 'अपसवना'।
अपस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १ पहिए के अलावा गाड़ी का कोई भी हिस्सा। ढाँचा। २ विष्ठा। मल। ३ योनि। ४ गुदा [को०]।
अपस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] घुटने के नीचे का भाग [को०]।
अपस्खल—संज्ञा पुं० [सं०] कूदना। फाँदना [को०]।
अपस्तंब—संज्ञा पुं० [सं० अपस्तम्भ] छाती के भीतर एक ओर स्थित कोश जिसमें प्राणवायु रहता है [को०]।
अपस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० अपस्तम्भ] दे० 'अपस्तंब' [को०]।
अपस्तुति—संज्ञा स्त्री० [सं० अप+स्तुति] दोषवर्णन। निंदा।
अपस्नात—वि० [सं०] प्राणी के मरने पर उदक क्रिया के समय का स्नान किया हुआ।
अपस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपस्नात] १, मृतकस्नान। वह स्नान जो प्राणी के कुटुंबी उसके मरने पर उदक क्रिया के समय करते हैं। २ किसी के नहाने के बाद बचे हुए जल में नहाना [को०]।
अपस्पर्श—वि० [सं०] संज्ञाहीन। चेतनाशून्य [को०]।
अपस्मार—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोगविशेष। मृगी।
विशेष—इसमें हृदय काँपने लगता है और आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है। रोगी काँपकर पृथ्वी पर मूर्छित हो गिर पड़ता है। वैद्यक शास्त्रानुसार इसकी उत्पत्ति चिंता, शोक और भय के कारण कुपित त्रिदोष से मानी गई है। यह चार प्रकार का होता है—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज और (४) सन्निपातज। यह रोग नैमित्तिक है। वातज का दौरा बारहवें दिन, पित्तज का पंद्रहवें दिन और कफज का तीसवें दिन होता है।
पर्या०—अंगविकृति। लालाध। भूतविक्रिया। मृगी रोग।
२. अपस्मृति। भुलक्कड़पन। स्मृतिभ्रंश [को०]।
अपस्मारी—वि० [सं० अपस्मारिन्] जिसे अपस्मार रोग हो। उ०—नेत्र टेढ़े बाँके करनेवाला ऐसा अपस्मारी रोगी जीवे नहीं।—माधव०, पृ० १३१।
अपस्मृत—वि० [सं०] भुलक्कड़। खब्तुलहवास [को०]।
अपस्मृति¹—वि० [सं०] १ भुलक्कड़। भूल जानेवाला। २. विभ्रमित। घबड़ाया हुआ [को०]।
अपस्मृति—संज्ञा स्त्री० दे० 'अपस्मार¹' [को०]।
अपस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कटु स्वर या ध्वनि [को०]।
अपस्वारथ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अप+सं० स्वार्थ] स्वार्थ। अपना मतलब। उ०—(क) ये नैना अपस्वारथ के। और इनहिं पटतर क्यों दीजै जे हैं बस परमारथ के।—सूर०,१०।२२८३। (ख) अपस्वारथ सो बहु विधि लीन्हा। परमारथ काहू नहिं चीन्हा।—कबीर सा०, पृ० ५८१।
अपस्वारथी—वि० [हिं०] दे० 'अपस्वार्थी'। उ०—नैना लुब्धे रूप को अपने सुख माई। अपराधी अपस्वारथी मो को बिसराई।—सूर०, १०।२२५३।
अपस्वार्थी—वि० [हिं० अप=अपना+सं० स्वार्थी] स्वार्थ साधनेवाला। मतलबी। काम निकालनेवाला। खुदगरज।
अपह—वि० [सं०] नाश करनेवाला। विनाशक। उ०—मनोज, बैरि बंदित, अजादि देव सेवित। विशुद्ध बोध विग्रह, समस्त दूषणापह।—तुलसी (शब्द०)।
विशेष—यह शब्द समासांत पद के अंत में प्राय आता है। जैसे—क्लेशापह। तमोपह। दूषणापह।
अपहड़(पु)‡—वि० [सं० अ+प्रहत या सं० अपहत] दे० 'अप्रतिहत'। उ०—बड दाता पाता बड़ा, अपहड़ पूरै आस।—बाँकीदास ग्र०, भा० १, पृ० ८८।
अपहत—वि० [सं०] १ नष्ट किया हुआ। मारा हुआ। २ दूर किया हुआ। हटाया हुआ।
अपहतपाप्मा—वि० [सं०] सब पापों से विमुक्त। जिसके सब पाप नष्ट हो गए हों। पापशून्य। विधूतपाप।
अपहरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपहरणीय, अपहरित, अपहृत, अपहर्ता] १ छीनना। ले लेना। हर लेना। उ०—उसका सर्वस्व अपहरण करके इसे केवल राज्य से बाहर कर दो।—विशाख० पृ० ८३। २ चोरी। लूट। ३ छिपाव। संगोपन। ४ महसूल वाले माल को दूसरी वस्तुओं में छिपाकर महसूल से बचाना [को०]।
अपहरणीय—वि० [सं०] १ न छीनने योग्य। हर लेने योग्य। २ चुराने योग्य। लूटने योग्य। ३ छिपाने योग्य। संगोपन करने योग्य।
अपहरना(पु)—क्रि० स० [सं० अपहरण से नाम०] १ छीनना। ले लेना। २ लूटना। चुराना। उ०—जो नाहिन कर चित अपहरई। बरियाई बिमोह बस करई।—तुलसी (शब्द०)। ३ कम करना। घटाना। क्षय करना। नाश करना। उ०—सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई।—तुलसी (शब्द०)।

अपहर्ता—संज्ञा पुं० [सं० अपहर्तृ] १ छीननेवाला। हर लेनेवाला। ले लेनेवाला। २ चोर। लूटनेवाला। ३ छिपानेवाला।

अपहसित—संज्ञा पुं० [सं०] बेमतलब की हँसी। निरर्थक हँसी। २ हास का एक भेद या प्रकार (को०)।

अपहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ गर्दनिया देकर बाहर निकालना। गर्दन पकड़कर बाहर करना। गलहस्त। गलहस्त देकर निकाला हुआ व्यक्ति। २ फेंकना। ले जाना। ३ चोरी करना। लूटना [को०]।

अपहस्तित—वि० [सं०] १ गलहस्त देकर निष्कासित। २ परित्यक्त। फेंका हुआ [को०]।

अपहान—संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ना। त्यागना [को०]।

अपहानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'अपहान'। २ गायब होना। ३. कम होना [को०]।

अपहार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपहारक, अपहारी, अपहारित, अपहार्य] १ चोरी। लूट। २ छिपाव। संगोपन। ३ ले जाना (को०)। ४ दूसरे की संपत्ति खर्च करना। पराया माल उड़ाना (को०)। ५ हानि। क्षति (को०)। ६ प्राप्त करना। लाना [को०] प्राप्ति [को०]।

अपहारक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपहारिका] छीननेवाला। बलात् हरनेवाला।

अपहारक[2]—संज्ञा पुं० डाकू। चोर। लुटेरा।

अपहारित—वि० [सं०] १ छीना हुआ। अपहृत। २ लूटा हुआ। चोरी द्वारा प्राप्त। ३ छिपाया हुआ। संगोपित।

अपहारी[1]—वि० [सं० अपहारिन्] [वि० स्त्री० अपहारिणी] १ हरण करनेवाला। २ नाश करनेवाला।

अपहारी[2]—संज्ञा पुं० चोर। लुटेरा। डाकू।

अपहार्य—वि० [सं०] छीनने योग्य। चोरी करने योग्य।

अपहास—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपहास। उ०—अब कायर अपहास री, रचना रचूँ अमद।—बाँकीदास ग्रं०, भा० १ पृ० १६। २ अकारण हँसी।

अपहृत—वि० [सं०] छीना हुआ। चुराया हुआ। लूटा हुआ। उ०—हृदय का राजस्व अपहृत, कर अधम अपराध, दस्यु मुझसे चाहते हैं सुख सदा निर्बाध।—कामायनी, पृ० ८४।

यौ०—अपहृतज्ञान = सुधबुध हीन। बेखबर।

अपहृतश्री—कांतिहीन। छविहीन। उ०—अपहृतश्री सुख स्नेह का सदा।—तुलसी०, पृ० ३८।

अपहेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरस्कार। फटकार। झिड़की।

अपह्नव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपह्नुत] १ छिपाव। दुराव। २. मिस। बहाना। टालमटूल। हीला। वाग्जाल से असली बात को छिपाना। ३ प्रेम। प्यार (को०)। ४ तोषण [को०]।

अपह्नुत—वि० [सं०] छिपा हुआ। उ०—विविध द्रव्य हैं छिपे गर्भ में इसके विश्रुत, जो माधव के अनुकार हैं मंजु अपह्नुत।—प्रेमांजलि, पृ० ८३।

अपह्नुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुराव। छिपाव। २ बहाना। टालमटूल। हीला हवाला। ३ एक काव्यालंकार जिसमें उपमेय का निषेध करके उपमान का स्थापन किया जाय। जैसे,—सुरवा होइ न अलि यहै धुवाँ धरनि चहुँ कोद। जारत आवत जगत को पावस प्रथम पयोद।

विशेष—इसके दो प्रधान भेद हैं—शब्दापह्नुति और अर्थापह्नुति इसके अतिरिक्त हेत्वपह्नुति, पर्यस्तापह्नुति, भ्रांतापह्नुति, छेकापह्नुति, व्यंग्यापह्नुति भी इसके भेद हैं।

अपह्नवान—वि० [सं०] १ छिपाता हुआ। छिपानेवाला। २. नटनेवाला। इनकार करनेवाला।

अपह्नोता—वि० [सं० अपह्नोतृ] १ अस्वीकार करनेवाला। १ संगोप्ता। छिपानेवाला [को०]।

अपाक्त—वि० [अपाङ्क्त] भोजनकाल में साथ पंक्ति में बैठाने के अयोग्य। पंक्ति या जाति से बहिष्कृत। जातिच्युत [को०]।

अपाक्तेय—वि० [सं० अपाङ्क्तेय] दे० 'अपाक्त' [को०]।

अपाक्त्य—वि० [सं० अपाङ्क्त्य] दे० 'अपाक्त' [को०]।

अपांग[1]—संज्ञा पुं० [सं० अपाङ्ग] आँख का कोना। आँख की कोर। कटाक्ष। उ०—(क) नेत्रों को अपांग से शृंगारित किया।—वै० न०, पृ० ४४२। (ख) और फिर अरुण अपांगों से देखा कुछ हँस पड़ी।—झरना, पृ० २५।

यौ०—अपांग दर्शन = तिरछी चितवन। अपांग दृष्टि = कनखियों से देखना। अपांगधारा = कटाक्षगति। कटाक्षप्रवाह। उ०—(क) किंतु हलाहल भरी उसकी अपांगधारा। आज भी न जाने क्यों भूलने में असमर्थ हूँ।—इंद्र०, पृ० ७१। कामदेव (१) संप्रदायसूचक तिलक। (२) अंत। समाप्ति। (३) अपामार्ग।

अपांग[2]—वि० अंगहीन। अंगभंग। पंगु।

अपांगक—संज्ञा पुं०, वि० [सं० अपाङ्गक] दे० 'अपांग' [को०]।

अपांनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ सागर। समुद्र। २ वरुण [को०]।

अपांनिधि—संज्ञा पुं० [सं० अपाम्निधि] १ समुद्र। २ विष्णु [को०]।

अपांपति—संज्ञा पुं० [सं० अपाम्पति] दे० 'अपांनाथ' [को०]।

अपांपित्त—संज्ञा पुं० [सं० अपाम्पित्त] १ अग्नि। २ चित्रक वृक्ष [को०]।

अपांवत्स—संज्ञा पुं० [सं०] एक बड़ा तारा जो चित्रा नक्षत्र से पाँच अंश उत्तर विक्षेप में दिखाई पड़ता है।

अपांशुला—वि० स्त्री० [सं०] पतिव्रता।

अपा[1]ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० आपा] आत्मभाव। अहंकार। गर्व। घमंड। उ०—आपो छोड़ि ऊरध को जावै। अपा मेटि कै प्रेम बढ़ावै।—कबीर (शब्द०)। दे० 'आपा'।

अपा[2]ⓟ—सर्व [हिं०] दे० 'अपना'।

यौ०—अपापर = अपना पराया। उ०—अपापर नाहीं चिन्हीला।—दक्खिनी०, पृ० ३४।

अपाइⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अपाय] दे० 'अपाय'।

अपाउⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अपाय, प्रा० अवाय] अनरीति। अन्यथाचार। उपद्रव। उ०—खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ। जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५०६।

अपाक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ अजीर्ण । अपच । २ कच्चापन ।

अपाक²—वि० [सं०] अपक्व । अनपका [को०] ।

अपाक³(पु)—वि० [सं० अ + फा० पाक] अपवित्र । नापाक ।

अपाकज—वि० [सं०] १ जो पका या पकाया न हो । २. जो प्रकृत या मूल रूप में हो । प्राकृतिक ।

अपाकरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपाकृत] १ पृथक्करण । अलग करना । २ हटाना । दूर करना । निराकरण । निरसन । ३ चुकता करना । अदा या बेबाक करना ।

अपाकर्म—संज्ञा पुं० [सं० अपाकर्मन्] भुगतान । अदायगी [को०] ।

अपाकशाक—संज्ञा पुं० [सं०] अदरक । आदी ।

अपाकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपाकरण' [को०] ।

अपाक्ष—वि० [सं०] १ आँखों के सामने । प्रत्यक्ष । उपस्थित । २. दूषित नेत्रवाला । ३ नेत्रहीन [को०] ।

अपाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अपाचीन, अपाच्य] दक्षिण या पश्चिम [को०] ।

अपाचीन—वि० [सं०] १ पिछवाड़े । पीछे की ओर । २. जो दिखाई न दे । ३ दक्षिणी । ४ पश्चिमी । विरुद्ध । विपरीत [को०] ।

अपाच्य—वि० [सं०] १ जो पक न सके । २ जिसका पाचन न हो सके । ३. दक्षिणी या पश्चिमी [को०] ।

अपाटव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ पटुता का अभाव । अकुशलता । अनाड़ीपन । २ अचंचलता । सुस्ती । मंदता । ३. कुरूपता । बदसूरती । ४ रोग । बीमारी । ५ मद्य । शराब ।

अपाटव²—वि० १ अपटु । अनाड़ी । २ अचंचल । सुस्त । ३ कुरूप । बदसूरत । ४ रोगी । बीमार ।

अपाठ—संज्ञा पुं० [सं० अ + पाठ] अपढ़ । मूर्ख । उ०—पंडित पूत अपाठ अमत ह्वै जग में आदर । इय गति होय हठील मोल के मर्म नेरआदर ।—राम० धर्म०, पृ० १९५ ।

अपाठ्य—वि० [सं०] जो पढ़ा न जा सके । जो पढ़ने के योग्य न हो ।

अपाढ़—वि० [सं० अपार या अपग्राह्य] मुश्किल । कठिन । अपार । उ०—उसकी बिना मरजी चला जाऊँ तो घर में रहना अपाढ़ कर दे ।—गोदान, पृ० २३८ ।

अपाण(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० आत्मन्, प्रा० अप्पण, अप्पाण] गर्व । घमंड । उ०—विदेही तणे दिवाण, ईस चाप धरे आण । तोड़वा अनेक ताण, ऊठिया करे अपाण ।—रघु० रू०, पृ० ७६ ।

अपाणि—वि० [सं०] पाणिरहित । हस्तविहीन । बिना हाथ का ।

अपाणिनीय—वि० [सं०] १ पाणिनी व्याकरण के नियमानुसार असाधु प्रयोग या उसमें अनुल्लिखित । २ पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन न करनेवाला [को०] ।

अपात(पु)—वि० [सं० अ + पात] जो च्युत न हो । अच्युत । उ०—सूखमना सुर की सरिता अन ओवहिं दीन दयाल हरे । ता तट साखी अपात है ब्रह्म मुचेतन में दल सुद्ध सरै ।—दीन० ग्र०, पृ० ७४ ।

अपात्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेकार या अनुपयुक्त वर्तन । २ अयोग्य व्यक्ति । ३ दान, भोज आदि के अयोग्य ब्राह्मण [को०] ।

अपात्र²—वि० [सं०] १ अयोग्य । कुपात्र । उ०—नियम पालती एक मात्र तू, सब अपात्र हैं और पात्र तू ।—साकेत, पृ० ३१४ । २ मूर्ख । ३ श्राद्धादि निमंत्रण के अयोग्य (ब्राह्मण) ।

अपात्रकृत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यक्ति या ब्राह्मण को पतित बना देनेवाला कार्य [को०] ।

अपात्रदायी—वि० [सं० अपात्रदायिन्] [वि० स्त्री० अपात्रदायिनी] कुपात्र को दान देनेवाला ।

अपात्रभृत्—वि० [सं०] अयोग्य वा खोटे व्यक्तियों का समर्थक [को०] ।

अपात्रीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर्म जिसके करने से ब्राह्मण अपात्र हो जाता है, जैसे—झूठ बोलना, निंदित का दान लेना व्यापार करना, शूद्रों का संपर्क करना आदि ।

अपाद—वि० [सं०] पादरहित । बिना । पैरोंवाला । पंगु [को०] ।

अपादक—वि० [सं०] दे० 'अपाद' [को०] ।

अपादान—संज्ञा पुं० [सं०] १. हटाना । अलगाव । विभाग । २. व्याकरण में पाँचवाँ कारक जिससे एक वस्तु का दूसरी वस्तु से विश्लेषण वा अलगाव सूचित हो । इसका चिह्न 'से' है । जैसे—वह घर से आता है । वृक्ष से फल गिरता है ।

अपादान कारक—संज्ञा पुं० [सं० अपादान + कारक] व्याकरण के छह कारकों में से पाँचवाँ कारक ।

अपान¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस वा पाँच प्राणों में से एक ।

विशेष—निम्नलिखित तीनों वायुओं में से कोई किसी को और कोई किसी को अपान कहते हैं—१ वह वायु जो नासिका द्वारा बाहर से भीतर की ओर खींची जाती है । २ गुदास्थ वायु जो मल मूत्र को बाहर निकालती है । ३ वह वायु जो तालु से पीठ तक और गुदा से उपस्थ तक व्याप्त है ।

२ वायु जो गुदा से निकले । अधोवायु । गुदस्थ वायु । ३ गुदा ।

अपान²—वि० १ सब दुखों को दूर करनेवाला । २ ईश्वर का एक विशेषण ।

अपान³(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० अप्पाण हिं० अपना] १ आत्मभाव । आत्मतत्व । आत्मज्ञान । उ०—(क) तुलसी भेटी की भँसनि जड़ जनता सनमान । उपजत हिय अपमान भा, खोवत मूढ़ अपान ।—तुलसी ग्र०, पृ० १४५ । (ख) ऋषिराज राजा आज जनक समान को । गाँठि बिनु गुन की कठिन जड़ चेतन की, छोरी अनायास साधु सोधक अपान को ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१५ । २ आपा । आत्मगौरव । भ्रम । उ०—काहे को अनेक देव सेवत, जागै मसान खोवत अपान, सठ होत हठि प्रेत रे ।—तुलसी ग्र०, पृ० २३८ । ३ सुध । होश हवास । उ०—(क) भए मगन सब देखनहारे । जनक समान अपान बिसारे ।—मानस, १।३२५ । (ख) बरबस लिए उठाइ उर, लाए कृपानिधान । भरत राम की मिलन लखि, बिसरा सबहि अपान ।—मानस, पृ० २८५ । ४ अहं । अभिमान ।

अपान⁴(पु)—सर्व० [हिं० अपना] निज का । अपना । उ०—पहिचान को केहि जान, सबहि अपान सुधि भोरी भई ।—मानस, पृ० १।३२१ ।

अपान[५](पु)—वि० [सं० अ+पान] जो पीने के योग्य न हो। अपेय। उ०—माधो जू मोतें और न पापी। भच्छि अभच्छ अपान पान करि कबहुँ न मनसा धापी।—सूर० १।१४०।

अपानद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] गुदा [को०]।

अपानन—संज्ञा पुं० [सं०] १ श्वसनक्रिया। साँस लेना। २ मलमूत्र का निकलना या वहिर्गमन [को०]।

अपानपवन—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीरस्थ अपान नामक वायु। २. गुदा से निकलनेवाली वायु। पाद [को०]।

अपानवायु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपानपवन'।

अपाना[।]—सर्व० [हिं०] [स्त्री० अपानी] दे० 'अपना'। उ०—(क) साहब लेई चलो देस अपाना।—धरम०, पृ० २८। (ख) लोग सब गेह के, प्रवीन हैं अपानी घाई देह जुवताई नयो नयो नेह जोरिहै।—दीन ग्र०, पृ० १४०।

अपानृत—वि० [सं०] झूठ से रहित। सत्य [को०]।

अपाप[१]—संज्ञा पुं० [सं०] जो पाप न हो। पुण्य। सुकृत। उ०—सग नसै जिहि भाँति ज्यो उपजै पाप अपाप। तिनसो लिप्त न होहिं ते ज्यों उपलनि को आप।—केशव (शब्द०)।

अपाप[२]—वि०[स्त्री०अपापा] निष्पाप। पापरहित। उ०—वह पुण्यकृती अपाप थे, पहले ही अवतीर्ण आप थे।—साकेत, पृ० ३३६।

अपामार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] चिचडा। चिचडी। ऊँगा। ऊँगी। अझाझारा। लटजीरा।

अपापी—वि० [सं० अपापिन्] [वि० स्त्री० अपापिनी] निष्पाप। अपाप [को०]।

अपामार्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १ शुद्धि। सफाई। २ (व्याधि या दोष का) निरोध या निवारण [को०]।

अपामृत्यु—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपमृत्यु' [को०]।

अपाय[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अपायी] १ विश्लेष। अलगाव। २ अपगमन। पीछे हटना। ३ नाश। उ०—सब अपाय भय खोय सदा सुभ करत जाय है।—बुद्ध च०, पृ० २१६। ४ (पु) अन्यथाचार। अनरीति। उपद्रव। उ०—करिय समार कोसल राय। अकनि जाके कठिन करतब अमित अनय अपाय।—तुलसी [को०]। ५ खतरा। विघ्न [को०]। ६ हानि। क्षति (को०)। ७ शब्दांत। शब्द की समाप्ति। ८ गायब होना। लुप्त होना [को०]।

अपाय[२](पु) —वि० [सं० अ=नहीं+पाद प्रा० पाय=पैर] १ बिना पैर का। लँगडा। अपाहिज। २ निरुपाय। असमर्थ। उ०—राम नाम के जपे पै जाय जिय की जरनि। कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भए जैसे तम नाशिबे को चित्र को तरनि।—तुलसी (शब्द०)।

अपायी—वि० [सं० अपायिन्] [वि० स्त्री० अपायिनी] १ नष्ट होनेवाला। नश्वर। अस्थिर। अनित्य। २ अलग होनेवाला। ३ गायब या लुप्त होनेवाला [को०]।

अपार[१]—वि० [सं०] १ जिसका पार न हो। सीमारहित। असीम। अनंत। बेहद। उ०—एक दिन सहसा सिंधु अपार। लगा टकराने नगतल क्षुब्ध।—कामायनी, पृ० ५२। २, असंख्य। अधिक। अतिशय। अगणित। बहुत। ३, तटहीन।

अपार[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १ साख्य में वह तुष्टि जो धनोपार्जन के परिश्रम और अपमान से छुटकारा पाने पर होती है। २. समुद्र। सागर। [को०]। ३ नदी का दूसरा किनारा [को०]।

अपारक—वि० [सं०] असमर्थ। अशक्त। अयोग्य। अदक्ष [को०]।

अपारदर्शक—वि० [सं० अ+पारदर्शक] जो पारदर्शक न हो। जिसके पार प्रकाश न जा सके।

विशेष—लोहा, ताँबा, सोना, लकडी, ईंट, पत्थर आदि प्रकाश को रोक लेते हैं। इनमे होकर प्रकाश नही निकल सकता अतः इन्हे अपारदर्शक कहते हैं।

अपारदर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+पारदर्शिता] वह स्थिति जिसमें प्रकाश पार न जा सके।

अपारदर्शी—वि० [सं० अ+पारदर्शिन्] दे० 'अपारदर्शक'।

अपारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धरित्री। पृथ्वी [को०]।

अपार्ण—वि० [सं०] १ दूरस्थ। २ निकटस्थ [को०]।

अपार्थ[१]—वि० [सं०] १ अर्थहीन। निरर्थक। २ निष्प्रयोजन। व्यर्थ। ३ नष्ट। प्रभावशून्य।

अपार्थ[२]—संज्ञा पुं० १ कविता में वाक्यार्थ स्पष्ट न होने का दोष। २ दे० 'अपार्थक' [को०]।

अपार्थक—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में एक निग्रह स्थान जो ऐसे वाक्यों के प्रयोग से होता है जो पूर्वापर असबद्ध हो।

अपार्थकरण—संज्ञा पुं० [सं०] मुकदमे में झूठा बयान, दलील या तर्क उपस्थित करना [को०]।

अपार्थिव—वि० [सं०] अभौतिक। जो पृथ्वी या मिट्टी से संबद्ध अथवा उत्पन्न न हो [को०]।

अपालक—संज्ञा पुं० [सं० अपालङ्क] आरग्वध। अमलतास [को०]।

अपाल—वि० [सं०] रक्षाहीन। रक्षकविहीन [को०]।

अपाव—संज्ञा पुं० [सं० अपाय=नाश] अन्यथाचार। अन्याय। उपद्रव

अपावन—वि० पुं० [सं०] [वि० स्त्री० अपावनी] अपवित्र। अशुद्ध। मलिन। उ०—तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।—मानस, पृ० ५२।

अपावरण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अपावृति] १ उघारना। खोलना। २ ढाकना। छिपाना। ३ आवृत करना [को०]।

अपावर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १ पलटाव। वापसी। २ भागना। पीछे हटना। ३ लौटना।

अपावृत—वि० [सं०] १ जो ढका या बंद न हो। २ जो ढका, बंद या आवृत हो। ३ स्वतंत्र। अनियंत्रित [को०]।

अपावृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपावरण' [को०]।

अपावृत्त[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ लौटना (घोडे का)। २ (युद्ध में) बगली काटना [को०]।

अपावृत्त[२]—वि० [सं०] १ पछाडा हुआ। भागा या भगाया हुआ। हराया हुआ। २ तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार करनेवाला [को०]

अपाश्रय[१]—वि० [सं०] बेसहारा। निराधार। आश्रयहीन। निरवलंब असहाय। दीन [को०]।

अपाश्रय[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सिरहाना। बिस्तर का वह भाग जहाँ सिर को आश्रय दिया जाय। २ चँदोवा या शामियाना। ३ आश्रयस्थल [को०]।

अपाश्रित—वि० [सं०] १ एकांतसेवी। क्षेत्रसंन्यस्त। २ जिसने संसार के सब कामों से छुटकारा पा लिया हो। विरक्त। त्यागी। ३ अविवमित [को०]। ४ आवद्ध [को०]। ५ अवलंबित [को०]।

अपासंग—संज्ञा पुं० [सं० अपासङ्ग] तरकश। तूणीर [को०]।

अपासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपासित, अपास्त] १ क्षेपण। फेंकना। २ छोड़ना। त्यागना। ३.मारना। वध करना [को०]।

अपासरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपासृत] प्रस्थान। निर्गमन। अपसरण [को०]।

अपासु—वि० [सं०] प्राणहीन। मृत [को०]।

अपासृत—वि० [सं०] प्रस्थित। निर्गमित। [को०]।

अपाहज(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपाहिज'। उ०—और दरिद्री, दुखिया, अपाहजों की सहायता करने में अभिरुचि रखना था।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३०८।

अपाहिज—वि० [सं० अपभञ्ज, प्रा० अवहज] १ अंग भंग। खंज। लूला लँगड़ा। २ काम करने के अयोग्य। जो काम न कर सके। ३ आलसी।

अपिंडी—वि० [सं० अपिण्डिन्] पिंडरहित। बिना शरीर का। अशरीरी।

अपि[1]—अव्य [सं०] १ भी। ही। २ निश्चय। ठीक। उ०—रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्वान। ज्ञानवंत अपि सोइ नर, पसु बिनु पूँछ, बिखान।—तुलसी ग्रं०, पृ० ११४।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समीप, संबंध आदि अर्थों में भी मिलता है, जैसे, अपिकक्ष, अपिकर्दन, अपिकर्ण, आदि। संभावना, प्रश्न, गर्हा, शंका, समुच्चय, अयुक्त पदार्थ, कामचार क्रिया, विरोध, वितर्क अर्थ में भी इसका प्रयोग विहित है।

अपिगीर्ण—वि० [सं०] १ स्तुत। प्रशंसित। २ कथित। वर्णित [को०]।

अपिच—अव्य० [सं०] १ और भी। पुनश्च। २ बल्कि।

अपिच्छिल—वि० [सं०] १ निर्मल। पंकहीन। स्वच्छ। २. गंभीर। गहरा [को०]।

अपिज[1]—वि० [सं०] पुनर्जन्मा। फिर से उत्पन्न [को०]।

अपिज[2]—संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठ मास [को०]।

अपितु—अव्य० [सं०] १ किंतु। २ बल्कि। ३ और [को०]। उ०—त्रिविध भाँति को सबद बर बिघट न लट परमान। कारन अबिरल अल अपितु तुलसी अबिद भुलान।—स० सप्तक, पृ० २६।

अपितृक—वि० [सं०] १ पिताविहीन। २ अपैतृक।

अपित्र्य—वि० [सं०] अपैतृक [को०]।

अपित्व—संज्ञा पुं० [सं०] विभाग। अंश। हिस्सा [को०]।

अपित्वी—वि० [सं० अपित्विन्] हिस्सेवाला। अंश या भाग रखनेवाला [को०]।

अपिधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन। आवरण। ढक्कन। पिहान। २. ढकना। आच्छादन करना [को०]। ३. आच्छादन वस्त्र [को०]।

यौ०—अमृतापिधान = भोजन के पीछे का आचमन। भोजन के उपरांत 'अमृतापिधानमसि' कहकर आचमन करते हैं।

अपिनद्ध—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपिनद्धा] बँधा हुआ। जकड़ा हुआ। ढँका हुआ।

अपिव्रत—वि० [सं०] १.अविभक्त धार्मिक कृत्योंवाला। जिनके धार्मिक व्रत, कर्म और कृत्य समान हों। २ रक्त द्वारा संबंधित। एक रक्त का [को०]।

अपिहित—वि० [सं०][वि० स्त्री० अपिहिता] १ आच्छादित। ढँका हुआ। आवृत। २.जो आवृत न हो। खुला हुआ। स्पष्ट [को०]।

अपी[1](पु)—सर्व० [हिं० आप] स्वयं। खुद। उ०—अपी बैठी सुंदर परदे के अंदर, बुरा मुल्ला कूँ, अपने घर के भीतर।—दक्खिनी०, पृ० २४६।

अपी[2](पु)—अव्य [हिं० [सं० 'अपि'[1]। उ०—धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चीन्ह जनेउ उघार तपी।—मानस, ७।१०१।

अपीच(पु)—वि० [सं० अपीच्य] सुंदर। अच्छा। उ०—(क) बिमल बिछाइत गिलम गलीचा। तखत सिंहासन फरस अपीचा। बाँधहु ध्वज थल थलन अपीचो। नृप मारग चंदन जल सींचौ।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) फहर गई धौं कैधौं रंग के फुहारन में, कैधौं तराबोर भई अतर अपीच में।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३१६।

अपीच्य—वि० [सं०] १.अति सुंदर। अच्छा। खूबसूरत।

यौ०—अपीच्य वेश। अपीच्य दर्शन।

२.गोप्य। छिपा हुआ। अंतर्हित।

अपीत[1]—वि० [सं०] १.जिसने मद्य न पी हो। २ जिसे पिया न गया हो। ३.जो पीला न हो [को०]।

अपीत[2]—संज्ञा पुं० पीत से पृथक् वर्ण। पीतेतर वर्ण [को०]।

अपीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रवेश। २ विलय। मृत्यु। ३ प्रलय। ४. विनाश [को०]।

अपीव(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपीन'[1]। उ०—मात कमजा मुगला या जुद्धा खग आल। अजक अरीधा अमल ज्यूं विण कीधा रणताल।—रा० रू०, पृ० ७४।

अपीनस—संज्ञा पुं० [सं०] १.नासाशोष। नाक की शुष्कता। २.सर्दी जुकाम [को०]।

अपील[1](पु)—वि० [हिं० अपेल] अटल। अडिग। उ०—गुरु ग्राम कजा, मनी मैल मजा। धनू तोड़ मजा, सो लीन अपील।—घट०, पृ० ३८५।

अपील[2]—संज्ञा स्त्री० [अं० एपील] १ निवेदन। विचारार्थ प्रार्थना। २ पुनर्विचारार्थ प्रार्थना। मातहत अदालत के फैसले के विरुद्ध ऊँची अदालत में फिर विचार करने के लिये अभियोग उपस्थित करना। ३.वह प्रार्थनापत्र जो किसी अदालत के फैसले को बदलवाने या रद्द कराने के लिये उससे ऊँची अदालत में दिया जाय।

क्रि० प्र०—करना। होना।

यौ०—अपीलअदालत = जहाँ मुकदमों की निगरानी या पुनर्विचार हो।

अपीलांट—संज्ञा पुं० [अं० एपेलैंट] अपील करनेवाला व्यक्ति।

अपीली—वि० [अं० एपील + हिं० ई (प्रत्य०)] अपील संबंधी।

अपीव(पु)—वि० [स० अपेय] १. पेय जो दुर्लभ हो। अमृत। उ०—उ टटत पवन अलटत वाणी अपीव पीवत जे ब्रह्मज्ञानी। —गोरख०, पृ० ३२। २ न पीने योग्य। अपेय। उ०—ह्वै है अधिक अपीव जीव, कोउ नीर न छ्वैहैं।—दीन० ग्र०, पृ० २०२।

अपु(पु)—सर्व० [हिं० आप] १ आप। स्वय। २ आपस मे। उ०—रचि महाभारत कहूँ लरावत अपु मे भैया भैया।—ब्रजमाधुरी०, पृ० ३६६।

अपुच्छ—वि० [स०] पुच्छरहित। विना पूँछ का [को०]।

अपुच्छा—सज्ञा स्त्री० [स०] शिशपा वृक्ष। शीशम का पेड [को०]।

अपुट्ठना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अपूठना'।

अपुण्य¹—सज्ञा पुं० [स०] पुण्य का अभाव। पाप [को०]।

अपुण्य²—वि० जो पुण्य या पावन न हो। कलुपित [को०]।

अपुत्र—वि० [स०] जिसके पुत्र न हो। नि सतान। पुत्रहीन। निपूता।

अपुत्रक—वि० [स०] दे० 'अपुत्र' [को०]।

अपुत्रिक—सज्ञा पुं० [स०] ऐसी पुत्रहीना कन्या का पिता जो स्वय पुत्रहीन होते हुए भी कन्या को उत्तराधिकारी नही बना सकता [को०]।

अपुत्रिका—सज्ञा स्त्री० [स०] पुत्रहीन पिता की वह कन्या जो स्वयं भी पुत्रहीना हो [को०]।

अपुत्रीय—वि० [स०] दे० 'अपुत्रक' [को०]।

अपुन(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—जो हरि व्रत निज उर न धरैंगो। तो को अस त्राता जो अपुन करि, कर कुठाँव पकरैंगो।—सूर०, १।७५।

अपुनपो(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अपनपौ'।

अपुनपौ(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपौ'। उ०—वाको मारि अपुनपौ राखे, सूर व्रजहिं सों जाइ। सूर०, १०।६०।

अपुनरादान—सज्ञा पु० [स०] वह जो पुन ग्रहण न किया जाय [को०]।

अपुनरावर्तन—सज्ञा पु० [स०] पुनरावर्तन का अभाव। मुक्ति। मोक्ष।

अपुनरावृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पुनरावृत्ति का अभाव। मोक्ष। निर्वाण। २ मृत्यु [को०]।

अपुनर्भव—सज्ञा पु० [स०] १ फिर जन्म न ग्रहण करना। मोक्ष। निर्वाण। उ०—अच्छा होता, यदि यो होता। पर, वह गत तो है अपुनर्भव।—अपलक, पृ० ८। २ (रोगादि का) फिर न होना।

अपुनीत—वि० [स०] १ जो पुनीत न हो। अपवित्र। अशुद्ध। उ०—सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई।—मानस, १।६६। २ दूपित। दोपयुक्त।

अपुव्व(पु)—वि० [स० अपूर्व] अद्भुत। वेजोड। उ०—सुनि सुदरवर वज्जने अई अपुव्व कोइ दिट्ठ।—पृ० रा०, ६१।११४७।

अपुराण—वि० [स०] १ पुराना नही। आधुनिक। नया [को०]।

अपुरुव(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपूर्व' उ०—वहुरि कुँवर जो पाछे देखा, अपुरुव रूप चित्र एक पेखा।—चित्रा०, पृ० ३३।

अपुरुष¹—वि० [स०] अमानवीय। अमानुपिक (को०)।

अपुरुष²—सज्ञा पु० नपुंसक। हिजडा [को०]।

अपुष्कल—वि० [स०] १ वहुत नही। थोडा। २. तुच्छ। निम्न। क्षुद्र [को०]।

अपुष्ट—वि० [स०] १ जिसका ठीक ढग से पोपण न हुआ हो। जो हट्टा कट्टा न हो। दुवला पतला। २ दुर्बल। मद। क्षीण। ३ असमर्थ। कमजोर। ४ एक अर्थदोप जिसमे व्यग्य या अर्थ स्पष्ट न हो [को०]।

अपुष्टान्न—सज्ञा पु० [स० अपुष्ट+अन्न] १ वह अन्न या खाद्य जो वलवर्धक न हो।

अपुष्प¹—वि० [स०] पुष्पहीन। न फूलनेवाला [को०]।

अपुष्प²—सज्ञा पु० गूलर का वृक्ष [को०]।

अपुष्पफल¹—वि० [स०] विना पुष्पित हुए फल देनेवाला। विना फूल फल का [को०]।

अपुष्पफल²—सज्ञा पुं० १ कटहल। २ गूलर [को०]।

अपुष्पफलद—वि० सज्ञा पु० [स०] दे० 'अपुष्पफल' [को०]।

अपूजक—वि०[स०]पूजन न करनेवाला। भक्तिहीन। अधार्मिक[को०]।

अपूजा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अधार्मिकता। २ असमान। अनादर।

अपूजित—वि० [स०] जिसकी पूजा अर्चना न की जाती हो [को०]।

अपूज्य—वि०[स०]पूजा या समान के अयोग्य। उ०—ब्रह्महि शाप दियो तव जानी। होहि अपूज्य कहि वादि भवानी।—कबीर सा० पृ० २२।

अपूठना(पु)—क्रि० स० [स० अ=नहीं+पृष्ठ, पा० पुट्ठ=पीठ अथवा देश०] १ विदारण करना। विध्वस करना। नाश करना। २ उलटना पलटना।—जननी हौं रघुनाथ पठायो। रामचद्र आए की तुमको देन वधाई आयो। रावन हति लै चलौं साथ ही लका धरौं अपूठी। यातें जिय सकुचात नाथ की होइ प्रतिज्ञा झूठी।—सूर०, ९।८७।

अपूठा¹(पु)—वि०[स० अपुष्ट प्रा० अपुट्ठ] [स्त्री० अपूठी] अपरिपक्व। अजानकार। अनभिज्ञ। उ०—तुम तो अपने ही सुख झूठे। निर्गुण छवि हरि विनु को पावै ज्यों आँगुरी अँगूठे। निकट रहत पुनि दूर वतावत हौ रस माहिं अपूठे।—सूर (शब्द०)।

अपूठा²(पु)—[स० अस्फुट, प्रा० अफुट] अविकसित। वेखिला। वंधा। उ०—परमारथ पाको रतन, कवहुँ न दीजै पीठ। स्वारथ सेमल फूल है, कली अपूठी पीठ।—कवीर (शब्द०)।

अपूठा³(पु)—क्रि० वि० [स० आ+पृष्ठ, प्रा० आपुट्ठ, आपिट्ठ] १ पीछे। पीठ की ओर। उलटे। उ०—नाग अपूठी क्यु वहई।—वी० रासो, पृ० ६०। २ वापस राजि अपूठा वाहुडउ, मालवणी मूई।—ढोला०, दू० ४०४।

अपूठी(पु)—वि० [स० अपृष्ट प्रा० अपुट्ठि] विना पूछे। विना वात के। विना सवाल किए। उ०—जेठी घी कै गलै छुरी है, वहू अपूठी चाली।—सुदर ग्र०, पृ० ८२९।

अपूत¹—वि० [स०] अपवित्र। अशुद्ध।

अपूत²(पु)—वि०[स० अ=नहीं+पुत्र, प्रा० पुत्त] पुत्रहीन। निपूत।

अपूत³(पु)—सज्ञा पु० [स० अ=बुरा+पुत्र, प्रा० पुत्त] कुपूत। बुरा लडका। उ०—तोसें सपूतहि जाइकै वालि अपूतन की पदवी पगु धारे।—राम च०, पृ० ११४।

अपूता—वि० [हि०] निपूता। पुत्रहीन।

अपूप—संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ के आटे की लिट्टी जिसे मिट्टी के कपाल या कसोरे में पका कर यज्ञ में देवताओं के निमित्त हवन करते थे। २ लिट्टी [को०]। ३ अनरसा [को०]। ४ मालपुआ [को०]। ५ गेहूँ [को०]। ६ शहद का छत्ता [को०]।

अपूप्य¹—वि० [सं०] अपूप संबंधी या उसके काम की [को०]।

अपूप्य²—संज्ञा पुं० आटा। पिसान [को०]।

अपूर¹(पु)—वि० [सं० आपूर, हि० पूरा, पूरा] पूरा। भरपूर। उ०—(क) लवंग सुपारी जायफर, सब फर फरे अपूर। (ख) जलथल भरे अपूर सब, धरति गगन मिल एक।—जायसी (शब्द०)।

अपूर²(पु)†—वि० [हि०] १ दे० 'अपूर्ण'। २ पूररहित। प्रवाहरहित बिना बाढ का।

अपूरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शाल्मली या सेमर का वृक्ष [को०]।

अपूरना(पु)†—क्रि० स० [सं० आपूर्णन्] १ भरना। २ फूँकना। बजाना। उ०—पुना सख जो विष्णु अपूरा। आगे हनुमत केर लँगूरा।—जायसी (शब्द०)।

अपूरब(पु)—वि० [हि०] दे० 'अपूर्व'। उ०—भरित नेह नव नीर नित बरसत सुर अथोर। जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर।—भारतेंदु ग्र०, पृ० ५७७।

अपूरबता—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अपूर्वता'।

अपूरबताई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अपूर्वता'। उ०—दई यह कैसी अपूरबताई।—प्रेमघन ग्र०, पृ० २१२।

अपूरा¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आ+पूर] [स्त्री० अपूरी] भरा हुआ। फैला हुआ। व्याप्त। उ०—चला कटक अस चढा अपूरी। अगलहि पानी पिछलहि धूरी।—जायसी (शब्द०)।

अपूरा²(पु)—[सं० अ+पूर] जो पूरा न हो।

अपूर्ण—वि० [सं०] १ जो पूर्ण न हो। जो भरा न हो। २ अधूरा। असमाप्त। ३ कम। अल्प।

अपूर्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधूरापन। उ०—प्राणहीन वह कला नहीं जिसमें अपूर्णता शोभन।—युगवाणी, पृ० ३०। २ न्यूनता। कमी। उ०—तुम अति अबोध अपनी अपूर्णता को न स्वयं तुम समझ सके।—कामायनी पृ० १६३।

अपूर्णभूत—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में वह क्रिया का भूतकाल जिसमें क्रिया की समाप्ति न पाई जाय। जैसे—वह खाता था।(शब्द०)।

अपूर्व¹—वि० [सं०] १ जो पहिले न रहा हो। उ०—और शुचिता का अपूर्व सुहाग।—साकेत, पृ० १६३। २ अद्भुत। अनोखा। अलौकिक। विचित्र। ३ अनुपम। उत्तम। श्रेष्ठ।

अपूर्व²—संज्ञा पुं० [सं०] १ परमात्मा। परब्रह्म। २. मीमांसा के अनुसार अदृष्ट फल। ३ पाप पुण्य [को०]।

अपूर्वता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विलक्षणता। अनोखापन। श्रेष्ठता।

अपूर्वत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपूर्वता' [को०]।

अपूर्वपति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी। कन्या जिसका विवाह न हुआ हो [को०]।

अपूर्वरूप—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिससे पूर्वगुण की प्राप्ति का निषेध हो। यह पूर्वरूप का विपरीत अलंकार है। जैसे—'क्षय हो हो करहू सखी, बढत जु बारहि बार। त्यों पुनि यौवन प्राप्ति नहिं, न कर मान निति नार।' यहाँ पर दिखाया गया है कि जिस प्रकार चंद्रमा क्षय के पश्चात् पुन पूर्णता प्राप्त करता है, उस प्रकार यौवन एक बार जाकर फिर नहीं आता।

अपूर्ववाद—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म संबंधी वादविवाद या परिचर्चा [को०]।

अपूर्वविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] उस वस्तु को प्राप्त करने की विधि जिसका बोध प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणों द्वारा न हो सके। जैसे, स्वर्ग की कामना हो तो यज्ञ करे। यहाँ पर स्वर्ग, जिसकी प्राप्ति की विधि बताई गई है प्रत्यक्ष और अनुमान आदि द्वारा सिद्ध नहीं होता।

विशेष—यह विधि चार प्रकार की है—(क) कर्मविधि—जैसे, अग्निहोत्र करे तो स्वर्ग होगा। (ख) गुणविधि—जिसमें यज्ञ या कर्म के अनुष्ठान की सामग्री और देवता आदि का निर्देश हो। (ग) विनियोग विधि—जैसे, गार्हपत्य में इंद्र की ऋचा का विनियोग करे। (घ) प्रयोग विधि—अर्थात् अमुक कर्म के हो जाने पर अमुक कर्म करने का आदेश, जैसे—गुरुकुल से विद्या पढकर समावर्तन करे।

अपृक्त¹—वि० [सं०] १ बेमेल। बेजोड। बिना मिलावट का। २ बिना लगाव का। असंबद्ध। ३ खालिस अकेला।

अपृक्त²—संज्ञा पुं० पाणिनी के मतानुसार एक अक्षर का प्रत्यय।

अपेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपेक्षा' [को०]।

अपेक्षणीय—वि० [सं०] अपेक्षा करने योग्य। वांछनीय।

अपेक्षया—क्रि० वि० [सं०अपेक्षया] किसी की तुलना में अपेक्षाकृत।

अपेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आकांक्षा। इच्छा। अभिलाषा। चाह। जैसे,—कौन पुरुष है, जिसे धन की अपेक्षा न हो। २ आवश्यकता। जरूरत। जैसे—संन्यासियों को धन की अपेक्षा नहीं है। ३. आश्रय। भरोसा। आशा। जैसे—पुरुषार्थी पुरुष किसी की अपेक्षा नहीं करते। ४ कार्य कारण का अन्योन्य संबंध। ५ निस्बत। तुलना। मुकाबिला। जैसे—बँगला की अपेक्षा हिंदी सरल है। उ०—बात बनाने में पुरुषों की अपेक्षा स्त्री स्वभाव से चतुर होती हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ६३।

विशेष—इस अर्थ में यह मात्राभेद दिखाने के लिये व्यवहृत होता है और इसके आगे में लुप्त रहता है।

६ प्रतीक्षा। इंतजार।

अपेक्षाकृत—अव्य० [सं०] मुकाबले में। तुलना में। निस्बतन्।

अपेक्षाबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊहापोह की क्षमता या बुद्धि। कार्य-कारण संबंध थाहने की प्रतिभा। भेद बुद्धि [को०]।

अपेक्षित—वि० [सं०] १ जिसकी अपेक्षा हो। जिसकी आवश्यकता हो। आवश्यक। उ०—प्रेम के लिये व्यक्ति की कोई विशेषता अपेक्षित होती है।—रस०, पृ० ७८। इच्छित। वांछित। उ०—वास्तव में कला की दृष्टि दोनों ही प्रकार के काव्यों में अपेक्षित है।—रस०, पृ० ५७।

अपेक्षी—वि० [सं० अपेक्षिन्] १ आशा लगा रखनेवाला। २ प्रतीक्षा करनेवाला। ३ आकांक्षी।

विशेष—इसका प्रयोग समासांत में मुख्यत प्राप्त होता है, जैसे,—परबलापेक्षी, विधिबलापेक्षी, परमुखापेक्षी आदि।

[illegible] [illegible] [कौ०] ।

[illegible] —वि० [illegible] । जो देखने में न आया [illegible] ।

[illegible] [सं० [illegible]] [illegible] । आकांक्षा । चाह । उ०—[illegible] हिये धरेंगे ।—प्रेम- [illegible], पृ० १६४ ।

[illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] [सं०] १. [illegible] । २ युक्त [कौ०] । ३ [illegible] ।

[illegible] —संज्ञा [illegible] [सं०] [illegible] का पौधा [कौ०] ।

[illegible] —[illegible] [सं०] [illegible] ।

[illegible] —वि० [सं० अ—नहीं + प्रा० पेल्ल हिं० पेल] जो हटे नहीं । [illegible] । उ०—(क) [illegible] नवे पुन होइ बक, [illegible] न नव तजिय वह सिद्धांत [illegible] ।

[illegible] —सं० पुं० [पं० [illegible]] [illegible] का वह [illegible] के अतर्गत [illegible] और [illegible] का नियत्रण करता है और [illegible] जुरिसडिक्शन भी कहते हैं ।

[illegible] —वि० [सं० अप्रविष्ट, पा० अपविट्ठ प्रा० अपइट्ठ] जहाँ पैठ [illegible] । दुर्गम । अगम ।

[illegible] —वि० [सं० अ + पैतृक] जो पुरखों से सबद्ध न हो । जो पैतृक न हो [कौ०] ।

[illegible] —वि० [सं०] [illegible] ऊपर की अवस्थावाला । २ [illegible] । शिशु [कौ०] । ४ [illegible] अग- [illegible] [कौ०] । ५. [illegible] । अपनीत [कौ०] ।

[illegible] —वि० [illegible] । उ०—ताहि विवाद [illegible] १८० ।

[illegible] —वि० [सं० अ + पुष्ट, प्रा० पुट्ठ, पुड्ड, पोढ्ढ, हिं० अ + पोढ] [illegible] । उ०—ढीठयो दै बोलति, [illegible] ।—[illegible], पृ० [illegible] ।

[illegible] वि० [सं०] [illegible] [कौ०] ।

[illegible] [सं०] [illegible] । पाई या पैसा का [illegible] ।

[illegible] —वि० [सं० [illegible]] [illegible] न हो । बिना [illegible] । उ०—[illegible], [illegible] पृ० १२० ।

[illegible] [सं०] १ [illegible] । [illegible] । निवारण । दूर [illegible] । २ [illegible] के खडन के लिये प्रस्तुत किया [illegible] निवारण [कौ०] ।

[illegible] [कौ०] ।

[illegible] —[illegible] [सं० [illegible]] दे० '[illegible]' [कौ०] ।

[illegible] —वि० [सं०] [illegible] का दुर्गंध न आई हो [कौ०] ।

अपौरुष¹—वि० [स०] १ पुंसत्वहीन । पुरुषत्वहीन । २ अपुरुषोचित । कायरतापूर्ण । भीरु । ३ मानवीय या मानवकृत नहीं । दैवी । ईश्वरीय [कौ०] ।

अपौरुष—सज्ञा पुं० [स०] १ पौरुष का अभाव । २ दैवीशक्ति [कौ०] ।

अपौरुषेय—वि० सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अपौरुष' ।

अप्चर—सज्ञा पुं० [स०] जलजतु [कौ०] ।

अप्छर⊕†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सर' उ०—ताहि देखि अप्छरा गन मोहत ।—प० रासो, पृ० २६ ।

अप्छरा⊕†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] 'अप्सरा' । उ०—विवस भए मुनि अप्छरा, भुलियत तप व्रत नेम ।—हमीर रा०, पृ० २८ ।

अप्नु—सज्ञा पुं० [स०] १ शरीर । गात्र । अग । २ सोम । ३. यज्ञीय पशु । बलि पशु [कौ०] ।

अप्नोर्याम—सज्ञा पुं० [स०] अग्निष्टोम यज्ञ का एक अग ।

अप्प⊕—सर्व० [आत्म, प्रा० अप्प] अपना । उ०—भयो अधकार महाघोर ऐन । गई सुद्धिबुज्झै नही अप्प नैन ।—हमीर रा० पृ० ३७ ।

अप्पटि⊕†—वि० [हिं०] दे० 'अटपटी'² । उ०—पर प्रगल परदर्व पर स्त्री निसु दिन फिरत रहत निजु नत्ते । अप्पटि पाग सप्पटि बात निप्पटि श्रवसि करत निज नत्ते ।—अकबरी, पृ० ३२६ ।

अप्पति—सज्ञा पुं० [स०] १ सागर । समुद्र । २. वरुण [कौ०] ।

अप्पना⊕†—क्रि० स० [स० अर्पण] अर्पित करना । देना । उ०—(क) केलि कर बांधि धरि चरण तल अप्पिमा ।—कीर्ति०, पृ० ६६ । (ख) इसी विधि अप्पिय आयमु देव ।—राम० धर्म० पृ० ३४७ ।

अप्परमाण⊕†—वि० [हिं०] दे० 'अप्रमाण' । उ०—राया अपुराण अप्परमाण किंकर जाण जमराण ।—रा० रू०, पृ० २१६

अप्पित्त—सज्ञा पुं० [स०] १ अग्नि । २ एक प्रकार का पौधा [कौ०] ।

अप्यय—सज्ञा पुं० [स०] १ बहना (नदी आदि का) । २. लय । नाश । ३. जोड । मिलन । सधि [कौ०] ।

अप्ययन—संज्ञा पुं० [स०] १ मेल । योग । संयोग । २ मैथुन [कौ०] ।

अप्रपर⊕—वि० [हिं०] दे० 'अपरम्पार' । उ०—पग अविधा गुण वदन अप्रपर अबुज अवन सार अभिराम ।—रघु० रू०, पृ० २४८ ।

अप्रकप—वि० [स० अप्रकम्प] १ कपहीन । स्थिर । २ जिसका उत्तर न दिया जा सके । जिसका खडन न हो सके [कौ०] ।

अप्रकट—वि० [स०] जो सामने प्रकट या व्यक्त न हो । अप्रगट ।

अप्रकटित—वि० [स०] दे० 'अप्रकट' । उ०—अप्रकाशित अप्रकटित मन्याण विश्व का कारण है ।—प्रेम०, पृ० ८६ ।

अप्रकर—वि० [सं०] अच्छी तरह से कार्य न करनेवाला [कौ०] ।

अप्रकरण—संज्ञा पुं० [सं०] जो मुख्य विषय से संबद्ध न हो । आक- स्मिक । अप्रासंगिक विषय [कौ०] ।

अप्रकाल्पक—वि० [सं०] अनिर्दिष्ट । अनिर्धारित [कौ०] ।

अप्रकांड¹—वि० [स० अप्रकाण्ड] १. शाखाविहीन । २. लघु [कौ०] ।

अप्रकांड²—वि० झाड़ी । क्षुप [कौ०] ।

अप्रकाश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रकाश का अभाव। अंधकार। २.गुप्त बात। रहस्य (को०)।

अप्रकाश[2]—वि० १ प्रकाशहीन। अंधकारपूर्ण। २ अप्रकट। गुह्य। ३ स्वत प्रकाशित [को०]।

अप्रकाशित—वि० [सं०] १ जिसमे उजाला न किया गया हो। अँधेरा। २ जो प्रकट न हुआ हो। गुप्त। छिपा। ३ जो सर्वसाधारण के सामने न रखा गया हो। जो छापकर प्रचलित न किया गया हो।

अप्रकाश्य—वि [सं०] जो प्रकाश या प्रकट करने योग्य न हो। गोप्य।

अप्रकृत[1]—वि० [सं०]१ अस्वाभाविक। २ बनावटी। कृत्रिम। गढा हुआ। ३ झूठा। ४ गौण। अप्रासंगिक [को०]। ५ आकस्मिक [को०]।

अप्रकृत[2]—संज्ञा पुं० १ उपमान। २ पागल व्यक्ति [को०]।

अप्रकृताश्रितश्लेप—संज्ञा पुं० [सं०] श्लेप नामक शब्दालकार का एक भेद जिसमे प्रस्तुत और अप्रस्तुत का श्लेप हो। जैसे—तिय तौ ऐसी चँचलता, जीवन सुखद समच्छ। बसति हृदय घनश्याम के वर मारग सुप्रच्छ।

विशेष—यह दोहा शब्दो की भग अर्थात् अक्षरो को कुछ इधर उधर कर देने से,स्त्री और बिजली दोनो पर घटता है। स्त्रीपक्ष मे अर्थ करने मे सखी नायिका से कहती है कि तेरे समान दूसरी स्त्री जीवनसुखदायिनी और कमलनयनी घनश्याम के हृदय मे बसती है। बिजली पक्ष लेने से यह अर्थ होता है कि हे, स्त्री। तेरे समान बिजली है जो जीवन अर्थात् जल देनेवाली है, इत्यादि। इन दोनो पक्षो मे दूसरी स्त्री और बिजली दोनो अप्रस्तुत हैं।

अप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्राकृतिक या स्वाभाविक स्थिति का अभाव। विकृति। २ साख्य के अनुसार कार्यकारण से भिन्न आत्मा। पुरुष [को०]।

अप्रकृतिस्थ—वि० [सं०] १ अस्वस्थ। बीमार। रोगादि या अन्य भय से ग्रस्त [को०]।

अप्रकृष्ट[1]—वि० [सं०] क्षुद्र। नीच। बुरा [को०]।

अप्रकृष्ट[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ। वायस [को०]।

अप्रकेत—वि० [सं०] जिसे जाना न जा सके। अविज्ञेय। अप्रतर्क्य। उ०—आदि मे तम से घिरा हुआ तम था, वह अप्रकेत (अप्रज्ञायमान) था, और सलिल (जल) था।—आर्यो०,पृ०१८३।

अप्रखर—वि० [सं०]१ मृदु। कोमल। २ जो तेज न हो। अतीक्ष्ण [को०]। ३ सुस्त [को०]।

अप्रगल्भ—वि० [सं०] १ अप्रौढ। अपरिपक्व। अपरिपुष्ट। २ निरुत्साह। निरुद्यम। ढीला। सुस्त [को०]।

अप्रगुण—वि० [सं०] परेशान। घबड़ाया हुआ [को०]।

अप्रग्राह—वि० [सं०] अनियत्रित। बेलगाम [को०]।

अप्रचरित—वि० [सं०] जिसका प्रचार न हो। अप्रचलित।

अप्रचलित—वि० [सं०] जो प्रचलित न हो। जिसका चलन न हो। अव्यवहृत। अप्रयुक्त।

अप्रचारित—वि० [सं० अ+प्रचारित] जिसका प्रचार या प्रसार न किया गया हो।

अप्रचोदित—वि० [सं०] अनिर्दिष्ट। अवाछित। अप्रेरित [को०]।

अप्रच्छन्न—वि० [सं०] १. जो प्रच्छन्न न हो। खुला हुआ। अनावृत। २ स्पष्ट। प्रकट।

अप्रच्छिन्न—वि० [सं०] जो पृथक् न हुआ हो। अविभक्त [को०]।

अप्रछन्न(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अप्रच्छन्न'। उ०—इम कहत देवि अप्रच्छन्न हो।—पृ० रा०, ६४।७२।

अप्रज—वि० [सं०][वि० स्त्री० अप्रजा] १ सततिहीन। निस्सतान।२. अजन्मा। ३ जनहीन [को०]।

अप्रजै(पु)—वि० [हिं०]दे० 'अपराजेय'। उ०—भाण माण भुजे ऊठियो अप्रजै।—रा० रू०,पृ० २७०।

अप्रज्ञ[1]—वि० [सं०] मदबुद्धि। बुद्धिहीन मतिहीन। प्रज्ञाशून्य [को०]।

अप्रज्ञ[2]—संज्ञा पुं० मूर्ख या पुरुष [को०]।

अप्रतर्क्य—वि० [सं०] जिसके विषय मे तर्क वितर्क न हो सके। जो तर्क द्वारा निश्चित न हो सके।

अप्रति—वि० [सं०] १. अप्रतिम। बेजोड। अद्वितीय। २ जिसका कोई विरोधी, शत्रु या प्रतिद्वद्वी न हो [को०]।

अप्रतिकर—वि० [सं०] विश्वसनीय। विश्वासपात्र। विश्रब्ध [को०]।

अप्रतिकार[1]—संज्ञा पुं० [सं][वि० अप्रतिकारी] १ उपाय का अभाव। तदबीर का न होना। २ बदले का न होना।

अप्रतिकार[2]—वि० १ जिसका उपाय या तदबीर न हो सके। लाइलाज २ जिसका बदला न दिया जा सके।

अप्रतिकारी—वि० [सं० अप्रतिकारिन्] [वि० स्त्री० अप्रतिकारिणी] १—उपाय या तदबीर न करनेवाला। २ बदला न लेनेवाला। बदला न देनेवाला।

अप्रतिगृह्य—वि० [सं०] जिसका दान या उपहार ग्रहण न किया जा सके [को०]।

अप्रतिगृहीत—वि० [सं०] जिसका प्रतिग्रह न किया गया हो। जो लिया न गया हो।

अप्रतिग्रग्रहण— संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अप्रतिग्राह्य, अप्रतिगृहीत] १ दान न लेना। किसी वस्तु का ग्रहण न करना। २ विवाह न करना। कन्यादान का ग्रहण न करना।

अप्रतिग्राह्य—वि० [सं०] जो प्रतिग्रहण करने योग्य न हो। जो लेने योग्य न हो।

अप्रतिघ—वि० [सं०] १ अदम्य। अजेय। २ जिसे रोका न जा सके। अनिवार्य। ३ क्रोधविहीन। अक्रुद्ध [को०]।

अप्रतिघात—वि० [सं०] १ बिना प्रतिघात का। जिसका कोई प्रतिघात या विरोधी न हो। बेरोक। २ बेठोकर। बेचोट। धक्के मे बचा हुआ।

अप्रतिद्वद्व—वि० [सं० अप्रतिद्वन्द्व] जिसके मुकाबले का कोई न हो। बेजोड [को०]।

अप्रतिपक्ष—वि० [सं०] १ जिसका कोई विरोधी या स्पर्धी न हो। विरोधीविहीन। २. बेजोड। असमान [को०]।

अप्रतिपण्य—वि०[सं०]जिसका विक्रयण या विनिमय न हो सके [को०]।

अप्रतिपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अप्रतिपन्न] १ प्रकृत अर्थ समझने की अयोग्यता। २.कर्तव्यनिश्चय का अभाव। क्या

करना चाहिए, इसका बोध न होना । ३ निश्चय का अभाव । ४ स्फूर्ति का अभाव [को०] । ५ असफलता [को०] । ६. जडता [को०] ।

अप्रतिपन्न—वि० [स०] १ कर्तव्यज्ञानशून्य । २. अनिश्चत । अज्ञात । ३ जो सपन्न न हुआ हो । असपन्न [को०] ।

अप्रतिबध[1]—सज्ञा पु० [स० अप्रतिबन्ध][वि० अप्रतिबद्ध] रुकावट का न होना । स्वच्छदता ।

अप्रतिबध[2]—वि० १ प्रतिबधरहित । निर्बाध । २ निर्विवाद प्राप्त । बिना किसी विवाद के सीधे प्राप्त, उत्तराधिकार [को०] ।

अप्रतिबद्ध—वि० [स०] १ बेरोक । स्वतत्र । स्वच्छद । २ मनमाना ।

अप्रतिबल—वि० [स०] बल या शक्ति मे जिसके जोड का दूसरा न हो । बेजोड ताकतवाला [को०] ।

अप्रतिभ—वि० [स०] १ प्रतिभाशून्य । चेष्टाहीन । उदास अप्रगल्भ । २ स्फूर्तिशून्य । सुस्त । मद । उ०—हँसे सुलतान, और अप्रतिभ होती मैं जकडी हुई थी अपनी ही लाजश्रृखला मे ।—लहर, पृ० ८० । ३ मतिहीन । निर्बुद्धि । ४ लजालू । लजीला ।

अप्रतिभट[1]—वि० [स०] वीरता मे जिसका जोड न हो । अप्रतिम । उ०—अप्रतिभट वही एक अर्बुद सम महावीर ।—अपरा, पृ० ४५ ।

अप्रतिभट[2]—सज्ञा पु० [स०] बेजोड वीर या योद्धा [को०] ।

अप्रतिभा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रतिभा का अभाव । २. न्याय मे वह निग्रह स्थान जहाँ उत्तर पक्षवाला परपक्ष का खडन न कर सके । ३ दब्बूपन ।

अप्रतिम—वि० [स०] जिसके समान कोई दूसरा न हो । असदृश । अद्वितीय । अनुपम । बेजोड । उ०—यह ग्र थरत्न वस्तु अपने रग ढग का अप्रतिम ठहरता है ।—रस क०, पृ० १३ ।

अप्रतिमान—वि० [स०] अद्वितीय । बेजोड ।

अप्रतियोगी—वि० [स० अप्रतियोगिन्] १ जिसका कोई सामना करनेवाला न हो । जिसका कोई प्रतिस्पर्धी या विरोधी न हो । २. जिसके समान दूसरा हिस्सा या भाग न हो [को०] ।

अप्रतिरथ[1]—वि० [स०] जिसका मुकाबला करनेवाला कोई वीर योद्धा न हो [को०] ।

अप्रतिरथ[2]—सज्ञा पुं० अप्रतिम योद्धा या वीर [को०] ।

अप्रतिरव—वि० [स०] निर्विरोध । निर्विवाद [को०] ।

अप्रतिरूप—वि० [स०] १ जिसका कोई प्रतिरूप न हो । अद्वितीय अनुपम । २ जो अनुकूल रूप का या ठीक न हो [को०] ।

अप्रतिरोध—सज्ञा पुं० [स] प्रतिरोधरहित । बेरोक । निर्बाध ।

अप्रतिरोध्य—वि० [स०] जिसे रोका न जा सके । जिसका प्रतिरोध सभव न हो । उ०—वह अप्रतिरोध्य है, पर अधी है, यह तो मैं नहीं मानूँगा ।—त्याग०, पृ० ४८ ।

अप्रतिवार्य—वि० [स०] अनिवार्य । निश्चित । उ०—अत मे कैलास की प्राप्ति अप्रतिवार्य है ।—मृग०, प० ४४२ ।

अप्रतिवीर्य—वि० [स०] अप्रतिम या बेजोड शक्तिवाला [को०] ।

अप्रतिशासन—वि० [स०] १ एकतत्र शासन । २ जिसका कोई विरोधी या प्रतिद्वद्वी शासक न हो [को०] ।

अप्रतिषिद्ध[1]—वि० [स०] अनिषिद्ध । समत ।

अप्रतिषिद्ध[2]—सज्ञा पु० [स०] वास्तु विद्या मे ६ भागों मे विभक्त स्तभपरिमाण के उस भाग का नाम जो ऊपर से गिनने पर दूसरा पडे ।

अप्रतिष्ठ[1]—वि० [स०] १ प्रतिष्ठाहीन । बेइज्जत । २ बेसहारा । तिरस्कृत । फेंका हुआ । ३ अस्थिर । ढुलमुल [को०] । ४ अप्रसिद्ध [को०] ।

अप्रतिष्ठ[2]—सज्ञा पुं० एक नरक का नाम [को०] ।

अप्रतिष्ठा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रतिष्ठा का उलटा । अनादर । अपमान । २ अयश । अपकीर्ति । ३ अस्थिरता [को०] ।

अप्रतिष्ठित—वि० [स०] १ जो प्रतिष्ठित न हो । तिरस्कृत । उ०—लाला ब्रजकिशोर कुछ ऐसे अप्रतिष्ठित नहीं है ।—श्रीनिवास ग्र ०, पृ० ३४२ । २ जो स्थिर या सुव्यवस्थित न हो [को०] ।

अप्रतिसख्य—वि० [स० अप्रतिसङ्ख्य] जो ध्यान, दृष्टि या गणना मे न आया हो [को०] ।

अप्रतिसबद्धाभूमि—सज्ञा स्त्री० [स० अप्रतिसम्बद्धाभूमि] कौटिल्य के अनुसार वह भूमि जो एक दूसरी से पृथक् हो ।

अप्रतिहत[1]—वि० [स०] १ जो प्रतिहत न हो । जिसका विघात न हुआ हो । अटूट । उ०—आज भी यह विचारपरपरा अप्रतिहत है ।—रस क०, पृ० ४५ । २. अपराजित । ३ बिना रोकटोक का । ४ सपूर्ण । समग्र । अनुस्मरण (को०) ।

अप्रतिहत[2]—सज्ञा पुं० अकुश ।

अप्रतिहतगति—वि० [स०] जिसकी गति रोकी न जा सके । निर्बाध गतिवाला । उ०—अप्रतिहतगति सस्थानो से रहता था जो सदा बढा ।—कामायनी, पृ० २०६ ।

अप्रतिहतनेत्र[1]—सज्ञा पु० [सं०] एक बौद्ध देवता [को०] ।

अप्रतिहतनेत्र[2]—वि० निर्बाध दृष्टिवाला [को०] ।

अप्रतिहतव्यूह—सज्ञा पु० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह असहत व्यूह जिसमे हाथी, घोडे, रथ तथा प्यादे एक दूसरे के पीछे हों ।

अप्रतिहार्य—वि० [स०] जिसे रोका न जा सके [को०] ।

अप्रतीक—वि० [सं०] १ अग या शरीर से रहित । २ ब्रह्म का विशेषण [को०] ।

अप्रतीकार—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अप्रतिकार' ।

अप्रतीकारी—वि० [सं० अप्रतीकारिन्] दे० 'अप्रतिकारी' ।

अप्रतीघात—वि० [स०] दे० 'अप्रतिघात' ।

अप्रतीत—वि० [स०] १ अप्रसन्न । २ अगम्य । ३ निर्विरोध । ४ दुर्बोध्य । एक शब्ददोष [को०] ।

अप्रतीतत्व—सज्ञा पुं० [स०] दुरूह पारिभाषिक शब्दों का काव्यगत प्रयोग । एक काव्यदोष । उ०—आचार्यों ने पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग को अप्रतीतत्व दोष माना है ।—रस०, पृ० ४६ ।

अप्रतीति—सज्ञा स्त्री० [स०] अर्थ या रूप आदि का समझ मे न आना या स्पष्ट न होना । २ विश्वास का अभाव । अविश्वास । अनिश्चय । उ०—होई कि नहीं सोच मति आँनहि अप्रीति हृदये तें टारि । करि विश्वास प्रतीति आनि उर यह आस्तिक्य बुद्धि निरधारि ।—सुदर ग्र ० पृ० ३८ ।

अप्रतीयमान—वि० [सं०] जो प्रतीयमान वा निश्चित न हो। अनिश्चित।

अप्रतुल[1]—वि० [सं०] १ जिसकी तुलना या मान न हो सके। बेहद। २ अनुपम। बेजोड़।

अप्रतुल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वजन या भार का अभाव। २ अभाव। आवश्यकता [को०]।

अप्रत्त—वि० [सं०] जो प्रदान न किया गया हो। न लौटाया हुआ [को०]।

अप्रत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी। कन्या जिसका विवाह न हुआ हो [को०]।

अप्रत्यक्ष—वि० [सं०] १ जो प्रत्यक्ष न हो। परोक्ष। २. छिपा। गुप्त। ३ अज्ञात [को०]। ४ अनुपस्थित [को०]।

अप्रत्यनीक—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें शत्रु के जीतने के सामर्थ्य के कारण उससे संबंध रहनेवाली वस्तुओं का तिरस्कार न किया जाय। जैसे—नृप यह पीडत है परहि, नहिं पर प्रजा सुभाय। राहु शशी को ग्रसत है, नहिं तारन जु निहार (शब्द०)।

अप्रत्यय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अविश्वास। भरोसे का अभाव। २. (व्याकरण में) वह जो प्रत्यय न हो [को०]।

अप्रत्यय[2]—वि० १ विश्वासरहित। अविश्वास। २ ज्ञानहीन। बोधरहित। ३ (व्याकरण) प्रत्ययशून्य [को०]।

अप्रत्याशित—वि० [सं०] जिसकी आशा न रही हो। असंभावित। अचानक। आकस्मिक। उ०—उसमें क्षिप्रगति के साथ अप्रत्याशित विकास होना चाहिए।—सं० शास्त्र, पृ० १८२।

अप्रदुग्ध—वि० पूरी तरह दुही हुई। दुग्धरहित [को०]।

अप्रधान[1]—वि० [सं०] जो प्रधान वा मुख्य न हो। गौण। साधारण। सामान्य।

अप्रधान[2]—संज्ञा पुं० गौण कार्य [को०]।

अप्रधृष्य—वि० [सं०] जिसे दबाया या हटाया न जा सके। अजेय [को०]।

अप्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० अप्रबन्ध] प्रबंध का अभाव। अव्यवस्था। कुप्रबंध। उ०—ऐसे अप्रबंध, फूट और स्वेच्छाचार की हवा चली कि लोग आपस में कट मरे।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३३३

अप्रबल[1]—वि० [हिं०] दे० 'अपरबल'। उ०—पाणी माहै प्रजली भई अप्रबल आगि। बहती सलिता रहि गई मछ रहे जल त्यागी।—कबीर ग्रं० पृ० १२।

अप्रबल[2]—वि० [सं० अ + प्रबल] जो प्रबल न हो। दुर्बल। कमजोर।

अप्रभ—वि० [सं०] १ कांति या तेजस्विताहीन। हतप्रभ। २ तुच्छ। नीच [को०]।

अप्रभु—वि० [सं०] १ अधिकार या प्रभावहीन। २. असमर्थ। अयोग्य [को०]।

अप्रभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वल्प प्रयास [को०]।

अप्रमत्त—वि० [सं०] प्रमाद या लापरवाही से रहित। सावधान। सतर्क [को०]। उ०—आप समझी जाती है अटल, अप्रमत्त और [illegible]।—[illegible], पृ० ४१।

अप्रमद—वि० [सं०] प्रमोदहीन। [illegible]। खिन्न। उदास [को०]

अप्रमय—वि० [सं०] १. अनश्वर। अमीम। अप्रमेय [को०]।

अप्रमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रमा का न होना। भ्रांत ज्ञान [को०]।

अप्रमाण[1]—वि० [सं०] १ जो प्रमाणस्वरूप न हो। अप्रामाणिक। २ बिना सबूत का। साक्षीरहित। ३. अनधिकृत। अविश्वस्त। ४. असीम। अपरिमित [को०]।

अप्रमाण[2]—संज्ञा पुं० १ जो प्रमाण न बन सके। २ अप्रामाणिकता।

अप्रमाद[1]—वि० [सं०] प्रमादरहित। अनवरत। उ०—[illegible] स्यामल घाटी में निर्लिप्त भाव से अप्रमाद।—कामायनी, पृ० १६७।

अप्रमाद[2]—संज्ञा पुं० सावधानता। सतर्कता। जागरूकता [को०]।

अप्रमित—वि० [सं०] १ बेनाप। असीमित। २ अधिकारी द्वारा जो प्रमाणित न हो [को०]।

अप्रमेय—वि० [सं०] जो नापा न जा सके। अपरिमित। अपार। अनंत। उ०—तू न [illegible] बाण [illegible] अभेद लै [illegible]। आइयो रणभूमि में करि अप्रमेय प्रमान को।—राम चं०, पृ० १३३।

अप्रमोद—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रसन्नता का अभाव। २ [illegible] की अक्षमता [को०]।

अप्रयत्न[1]—वि० [सं०] प्रयत्नहीन। उत्साहहीन। उदासीन। [को०]।

अप्रयत्न[2]—संज्ञा पुं० [सं०] प्रयत्न का अभाव। काहिलपन। औदासीन्य [को०]।

अप्रयुक्त—वि० [सं०] जिसका प्रयोग न हुआ हो। जो काम में न लाया गया हो। अव्यवहृत। उ०—हिंदी में अप्रयुक्त संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी उनकी भाषा की [illegible] को बढ़ाने में ही मदद करता है।—रामच० (भू०), पृ० ३८। २ अप्रचलित। ३ शब्दादि का अन्यथा या गलत प्रयोग। ४ दुर्लभ या विरल प्रयोग [को०]।

अप्रयुक्तत्व—संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्द जो कोशगत और शुद्ध होते हुए भी व्यवहृत न हो।

विशेष—इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग साहित्यशास्त्र में दोष माना गया है।

अप्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रयोग का अभाव। २. कुप्रयोग। ३. अव्यवहार [को०]।

अप्रलव—वि० [सं० अप्रलम्ब] फुर्तीला। [illegible]। [illegible] [को०]।

अप्रवर्तक—वि० [सं०] १ कार्य के लिये प्रेरणा न देनेवाला। निष्क्रिय। २ अटूट। अविच्छिन्न [को०]।

अप्रवर्ती—वि० [सं० अप्रवर्तिन्] दे० 'अप्रवर्तक'।

अप्रवानी(पु)—वि० [सं० अ + प्रमाण, प्रा० प्रमाण, अप० पवाण + ई (प्रत्य०)] अप्रमेय। अजेय। उ०—[illegible] समुझानी। जब उपजै तिनसे सदा [illegible]।—सुंदर ग्रं०, पृ० २००।

अप्रवीन(पु)—वि० [सं० अप्रवीण] जो प्रवीन न हो। [illegible]। उ०—ऊधो। प्रीति करि [illegible] को [illegible] क्यों [illegible]। [illegible]।—[illegible], पृ० ४०६।

अप्रवृत्त—वि० [स०] १ जो क्रियारत न हो। निष्क्रिय। २ असनद्ध [को०]।

अप्रवृत्तवध—वि० [स०] कौटिल्य के अनुसार जिसकी ओर से आक्रमण न हुआ हो।

अप्रवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रवृत्ति का अभाव। चित्त का झुकाव न होना। २ किसी सिद्धात वा सूत्र का न लगना। किसी विचार का प्रयुक्त स्थान पर न खपना। ३ अप्रचार। ४ कोष्ठवद्धता [को०]।

अप्रवेश्य—वि० [स०] प्रवेश न करने योग्य। जिसमे प्रवेश न हो सके। उ०—विदा हाय! मेरे सुदर, अप्रवेश्य सा अधकारमय हुआ आज यह मेरा घर।—कुणाल, पृ० १४।

अप्रशसनीय—वि० [स०] निंदनीय। निंदा के योग्य।

अप्रशस्त—वि० [स०] १ जो प्रशस्त न हो। नीच। कुत्सित। बुरा। २ क्षीण (को०)। ३ अविहित। निषिद्ध [को०]।

अप्रशिक्षित—वि० [स०] जिसे किसी कार्य की विशेष शिक्षा न मिली हो। जो प्रशिक्षित न हो।

अप्रसंग[1]—सज्ञा पुं० [स० अप्रसङ्ग] १ आसक्ति, प्रयोजन या सवध का अभाव। २ वेमौका [को०]।

अप्रसग[2]—वि० १ सवधरहित। २ प्रसगहीन। वेमौका।

अप्रसक्त—वि० [स०] १ जो आशक्त न हो। वेलगाव। २. असवद्ध। ३ निर्वाध। विना रोक टोक [को०]।

अप्रसक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] अनुराग या प्रवृत्ति का अभाव। आसक्तिहीनता [को०]।

अप्रसन्न[1]—वि० [स०] जो प्रसन्न न हो। असतुष्ट। नाराज। २ खिन्न। दुखी। उदास। विरक्त। ३ पकिल। कीचड से युक्त।

अप्रसन्न[2]—सज्ञा पुं० व्याई हुई गाय का सात दिन के वाद दूध।

अप्रसन्नता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ नाराजगी। असतोप। २ रोप। कोप। ३ खिन्नता। उदासी।

अप्रसाद—सज्ञा पुं० [स०] प्रसन्नता, कृपा या अनुकूलता का अभाव। [को०]।

अप्रसिद्ध—वि० [स०] १ जो प्रसिद्ध न हो। अविख्यात। जिसको लोग न जानते हो। २ गुप्त। छिपा हुआ। तिरोहित।

अप्रसिद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] ख्याति वा प्रसिद्धि का अभाव। उ०—अप्रसिद्धि मात्र उपमा का कोई दोप नही।—रस०, पृ० ३४६।

अप्रसूत—वि० सततिविहीन। सतानरहित [को०]।

अप्रसूता—सज्ञा स्त्री० [स०] स्त्री, जिसे वच्चा न हुआ हो। वध्या नारी। वाँझ।

अप्रस्ताविक—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्रस्ताविकी] जो मूल विपया का या उससे सवद्ध न हो। अप्रास्ताविक [को०]।

अप्रस्तुत—वि० [स०] १ जो प्रस्तुत वा मौजूद न हो। अनुपस्थित। २. जो प्रसगप्राप्त न हो। अप्रासगिक। जिसकी चर्चा न आई हो। ३ जो तैयार न हो। जो उद्यत न हो। ४ गौण। अप्रधान। उ०—इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि अप्रस्तुत (उपमान) भी उसी प्रकार के भाव का उत्तेजक हो।—रस०, पृ० ३४६।

अप्रस्तुतप्रशंसा—सज्ञा [स०] वह अर्थालकार जिसमें अप्रस्तुत के कथन द्वारा प्रस्तुत का वोध कराया जाय।

विशेष—इसके पाँच भेद हैं—(क) कारणनिवधना—जहाँ प्रस्तुत वा इष्ट कार्य का वोध कराने के लिये अप्रस्तुत कारण का कथन किया जाय। जैसे—लीनो राधा मुख रचन, विधि ने सार तमाम। तिहि मग होय अकाश यह शशि में दीखत श्याम।—मतिराम (शब्द०)। (ख) कार्यनिवधना—जहाँ कारण इष्ट हो और कार्य का कथन किया जाय। जैसे—तू पद नख की दुति कछुक, गइ धोवन जन माथ। तिहि कन मिलि दधि मथन मे चद्र भयो है नाथ।—मतिराम (शब्द०)। (ग) विशेपनिवधना—जहाँ सामान्य इष्ट हो और विशेष का कथन किया जाय। जैसे—लालन सुरतरु धनद हू, सनहितकारी होय। तिनहूँ को आदर न ह्वै, यो मानत वुध लोय।—मतिराम (शब्द०)। (घ) सामान्यनिवधना—जहाँ विशेष कहना इष्ट हो पर सामान्य का कथन किया जाय। जैसे—सीख न मानै गुरन की, अहितहि हित मन मानि। सो पछतावै तासु फल, ललन भए हित हानि।—मतिराम (शब्द०)। (च) सारूप्यनिवधना—जहाँ अभीष्ट वस्तु का वोध उसके तुल्य वस्तु के कथन द्वारा कराया जाय। जैसे—वक धरि धीरज कपट तजि, जो वनि रहै मराल। उघरै अत गुलाव कवि, अपनी वोलनि चाल।—गुलाव (शब्द०)।

अप्रहृत—वि० [सं०] १ कोरा (कपडा)। जो (वस्त्र) पहना न गया हो। २ जो (भूमि) जोती न गई हो। वजर। ३ ३ अक्षत। अछूता (को०)। ४ जो मारा या नष्ट न किया गया हो। यथावत्।

अप्राकरणिक—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्राकरणिका, अप्राकरणिकी] विषय या प्रकरण जिसका लगाव न हो। असगत [को०]।

अप्राकृत—वि० [स०] १ जो प्राकृत न हो। सस्कृत। २ अस्वाभाविक। ३ असामान्य। असाधारण। ४. जो प्राकृत भाषा का या उससे सवद्ध न हो [को०]।

अप्राकृतिक—वि० [स०] स्वभाव या प्रकृति के विरुद्ध। अस्वाभाविक। अलौकिक [को०]।

अप्राख्य—वि० [स०] मुख्य नही। गौण। साधारण [को०]।

अप्राचीन—वि० [सं०] १ जो प्राचीन न हो। आधुनिक। २ पौर्वात्य नही। पाश्चात्य [को०]।

अप्राज्ञ—वि० [स०] अज्ञानी। अशिक्षित। प्रज्ञाहीन [को०]।

अप्राण[1]—वि० [सं०] १. विना प्राण का। निर्जीव। मृत। २ ईश्वर का एक विशेषण।

अप्राण[2]—सज्ञा पुं० ईश्वर।

अप्राप्त—वि० [स०] १ जो प्राप्त न हो। जो मिला न हो। अलब्ध। दुर्लभ। अलभ्य। २ जिसे प्राप्त न हुआ हो। जैसे—अप्राप्तवयस्क, अप्राप्तयौवना, अप्राप्तव्यवहार। ३ अप्रत्यक्ष। परोक्ष। अप्रस्तुत। ४ अनागत जो आया न हो। ५ जिसकी उम्र विवाह के योग्य न हो (को०)।

अप्राप्तकाल—सज्ञा पु० [स०] १ आनेवाला समय। भविष्य। २ अनवसर। उपयुक्त समय के पहले का समय। ३. न्याय मे

तर्क के समय क्षोभ के कारण प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण आदि को यथाक्रम न कहकर अडबड कह जाने का दोष। ४ कमसिन [को०]।

अप्राप्तयौवन—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्राप्तयौवना] जिसकी युवास्था अभी न आई हो। जो जवान न हो। किशोर [को०]।

अप्राप्तवय—वि०[स० अप्राप्तवयस्]१ नावालिग। १ कानून की दृष्टि ने सामाजिक जिम्मेदारी के अयोग्य। १६ वर्ष के पूर्व का।

विशेष—अब उम्र की यह अवधि पुरुषो के लिए १८ और स्त्रियो के लिए १६ वर्ष मानी जाती है केवल मतदान के लिये २१ वर्ष है।

अप्राप्तव्यहार—वि० [स०] १६ वर्ष के भीतर का बालक जिसे धर्मशास्त्र के अनुसार जायदाद पर स्वत्व न प्राप्त हुआ हो। नावालिग।

अप्राप्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ उपलब्धि या लाभ का अभाव। २ नियम कानून से असिद्ध। ३ अनहोनी। ४.जो लागू न हो। अनुपपत्ति [को०]।

अप्राप्तिसम—सज्ञा पु० [स०] न्याय मे जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदो मे से एक।

विशेष—यदि किसी के उत्तर मे कहा जाय—'तुम्हारा हेतु और साध्य दोनो एक आधार मे वर्तमान हैं या नही? यदि वर्तमान हैं तो दोनो बराबर हैं। फिर तुम किसे हेतु कहोगे और किसे साध्य?' तो इसे प्राप्तिसम कहेंगे। और यदि साथ ही इतना और कहा जाय —'यदि दोनो एक आधार मे नही रहते तो तुम्हारा हेतु साध्य का साधन कैसे कर सकता है?' तो इसे अप्राप्तिसम कहेंगे।

अप्राप्य—वि० [स०] जो प्राप्त न हो सके। जो मिले न। अलभ्य। उ०—जो यों निज प्राप्य छोड देंगे। अप्राप्य अनुग उनके लेंगे।—साकेत, पृ० १४७।

अप्रामाणिक—वि० [स०][वि० स्त्री० अप्रामाणिकी] १ जो प्रमाणसिद्ध न हो। ऊटपटांग। २ जिसपर विश्वास न किया जा सके।

अप्रामाण्य—सज्ञा पु० [स०] प्रमाण या सबूत का अभाव [को०]।

अप्रावृत—वि० [स०] जो ढँका या परिच्छिन्न न हो। अनावृत। खुला हुआ [को०]।

अप्राशन—सज्ञा पुं० [स०] आहार ग्रहण न करना। अनशन [को०]।

अप्रासगिक—वि० [स० अप्रासङ्गिक] जो प्रसगप्राप्त न हो। प्रसग-विरुद्ध। जिसकी कोई चर्चा न हो।

अप्रास्तविक—वि० [सं०] दे० 'अप्रस्ताविक' [को०]।

अप्रियवद—वि० [सं०] कटुभाषी। कठोर शब्द कहनेवाला [को०]।

अप्रिय[1]—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्रिय] १ जो प्रिय न हो। अरुचि-कर। जो न रुचे। जो पसद न हो। उ०—सत्य कहहु अरु प्रिय कहहु अप्रिय सत्य न भाखा।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १८७। २ जो प्यारा न हो। जिसकी चाह न हो। उ०—सुनि राजा अति अप्रिय बानी।—मानस १।२०८। ३.शत्रुतापूर्ण। अमित्र या शत्रुवत् [को०]।

अप्रिय[2]—सज्ञा पु० [सं०] १ वैरी। शत्रु। २.बेंत। वेतस। तिचुल। यौ०—अप्रियवद। अप्रियकर। अप्रियकारी। अप्रियवादी।

अप्रियकर—वि०[सं०]जो रुचिकर न हो। अहितकर। अमैत्रीपूर्ण [को०]।

अप्रियकारक—वि० [सं०] दे० 'अप्रियकर'।

अप्रियकारी—वि० [स० अप्रियकारिन्][वि० स्त्री० अप्रियकारिणी]दे० 'अप्रियकर' [को०]।

अप्रियता—सज्ञा स्त्री० [स० अप्रिय+ता (प्रत्य०)] बुराई। उ०—हां आर्ये प्रिय की अप्रियता करने को कहती हो तुम।—साकेत, पृ० ३८४।

अप्रियभागी—वि० [स० अप्रियभागिन्] [वि० स्त्री० अप्रियभागिनी] दुर्भाग्यग्रसित। अभागा।

अप्रियवादी—वि०[स० अप्रियवादिन्][वि० स्त्री० अप्रियवादिनी] कड़वी बात कहनेवाला। कटुवादी। कठोरवक्ता [को०]।

अप्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] शृंगी मत्स्य [को०]।

अप्रीति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ स्नेह वा प्रेम का अभाव। चाह का न होना। २ अरुचि। ३ विरोध। वैर।

अप्रीतिकर—वि० [सं०] वि० स्त्री० अप्रीतिकारी] १ अप्रिय। नाप-सद। २. कटु। कठोर अननुकूल [को०]।

अप्रेंटिस—सज्ञा पु० [अ० ऐप्रेंटिस]वह पुरुष जो किसी कार्य मे कुशलता प्राप्त करने के लिये किसी कार्यालय मे बिना वेतन लिये वा अल्प वेतन पर काम करे। उम्मेदवार।

अप्रेत—वि० [स०] न गया हुआ। अगत। मृत नही [को०]।

अप्रेतराक्षसी—सज्ञा स्त्री० [स०] तुलसी का पौधा [को०]।

अप्रैल—सज्ञा पुं० [अ० एप्रिल] एक अगरेजी महीना जो प्राय चैत मे पड़ता है। यह महीना ३० दिन का होता है।

अप्रैलफूल—सज्ञा पुं० [अ० एप्रिलफूल] जो अप्रैल महीने के पहले दिन हँसी मे बेवकूफ बनाया जाय।

विशेष—इस दिन योरपवाले हँसी दिल्लगी करना उचित मानते हैं।

अप्रोक्ष(पु)—वि०[स० अपरोक्ष] जो परोक्ष न हो। प्रत्यक्ष। दूर न हो। उ०—देहई कौं बध मोक्ष देहई अप्रोक्ष प्रोक्ष।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ५९२।

अप्रोषित—वि० [स०] जो चला न गया हो। जो अनुपस्थित न हो। जो उपस्थित हो [को०]।

अप्रौढ—वि० [स० अप्रौढ़] १ जो पुष्ट न हो। कमजोर २. कच्ची उम्र का। नावालिग। ३.अप्रगल्भ। अनुद्धत [को०]।

अप्रौढा—सज्ञा स्त्री० [स० अप्रौढ़ा] १ कन्या। कुमारी। २.विवाहिता किंतु अरजस्वला कन्या।

अप्लव—वि० [स०] १.जलयानहीन। २. जो तैरता न हो। न तैरनेवाला [को०]।

अप्सर पति—सज्ञा पुं० [स०] अप्सराओं के नाथ। इंद्र [को०]।

अप्सर[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'।

अप्सर[2]—स्त्री० पुं० [सं०] जलजंतु। जलचर [को०]।

अप्सरा—सज्ञा स्त्री० [स० अप्सरस्] १. अंबुकण। वाष्पकण। २. वेश्याओं की एक जाति ३. स्वर्ग की वेश्या। इंद्र की सभा में नाचनेवाली देवांगना। परी।

विशेष—इसलिये अप्सरा कहलाती हैं कि समुद्र मथन के समय उसमे से निकली थी।

अप्सरातीर्थ—संज्ञा पुं० [स०] अप्सराओ के स्नान का पवित्र तालाव या स्थल [को०]।

अप्सरि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'। उ०—कभी स्वर्ग की थी तुम अप्सरि, अब वसुधा की वाल।—गुंजन, पृ० ८७।

अप्सरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'।

अप्सु—वि० [स०] १ आकार या विग्रहहीन। अरूप। २ कुरूप। असुदर [को०]।

अप्सुक्षित—संज्ञा पुं० [स०] स्वर्ग एव पृथ्वी के बीच अतरिक्षनिवासी देवता [को०]।

अप्सुचर—वि० [स०] पानी का जतु। जलचर।

अप्सुप्रवेशन—संज्ञा पुं० [स०] कौटिल्य के अनुसार एक प्रकार का दड जिसमें अपराधी जल मे डुवाकर मारा जाता था।

अप्सुयोनि[1]—वि० [स०] जल से उत्पन्न [को०]।

अप्सुयोनि[2]—संज्ञा पुं० [स०] १ अश्व। घोडा। २ वेंत या नरकुल [को०]।

अफंड—संज्ञा पुं० [स० अ+स्पन्द, अप० फड] १ वखेडा। फरफद। अडगा। उ०—(क) महाजनो ने चैनसुखदास को मिलाकर यह भारी अफड खडा कर दिया।—सुदर ग्र०, पृ० १८६।

अफगन—वि० [फा० अफगन] गिरनेवाला। जैसे शेर अफगन।

अफगान—संज्ञा पुं० [फा० अफगान] अफगानिस्तान का रहनेवाला व्यक्ति। कावुली। पठान।

अफगानिस्तान—स० [फा० अफगानिस्तान] भारत के पश्चिमोत्तर-स्थित एक प्रदेश जिसकी राजधानी कावुल है।

अफगानी—वि० [फा० अफगान+ई (प्रत्य०)] अफगानिस्तान का। अफगानिस्तान से सवद्ध।

अफगार—वि० [फा० अफगार] घायल। जखमी। उ०—दिल किसके हाथ दीजे, दिल अफगार कहां है ?—कवीर ग्र०, पृ० ३२३।

अफजल—वि० [अ० अफजल] १ वहुत वढिया। उत्तमतर। २ वहुत अधिक। वहुत ज्यादा [को०]।

अफजूँ[1]—संज्ञा पुं० [फा० अफजूँ] वृद्धि। अधिकता।

अफजूँ[2]—वि० अवशेष। फाजिल। जो आवश्यकता से अधिक हो। उवरा हुआ। खर्च से वचा हुआ।

अफताव†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आफताव'। उ०—(क) भरत जहँ नूर जहूर असमान लौं रूह अफताव गुरु कीन्ह दया।—भीखा ग्र०, पृ० ६३।

अफतावा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आफतावा'।

अफतावी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आफतावी'।

अफतार—संज्ञा पुं० [अ० इफ्तार, फा० अफ्तार] रोजा खोलना। रोजा खोलने के लिये कुछ खाना पीना [को०]।

अफतालो(पु)—संज्ञा पुं० [फा० अफनाल] अगले पडाव पर पहुँचकर ठहरने की व्यवस्था करनेवाले कर्मचारी या सेवक।

अफनाना—क्रि० अ० [स० उत्+स्फार, स्फाल, हिं० उफनाना] उवाल खाना। उत्तेजित होना। घवराना। उ०—द्रौपदी कहति अफनाइ रजपूती गर्वै, उतरी हमारी सारी माहिं कफनाइगी।—रत्नाकर, भा० २, पृ० ८।

अफयूँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० अफयून] अफीम। अफयून। उ०—अफयूँ मदक चरस के व चडू के वदौलत। प्यारो के सदा रहते हैं रुखसार वसती।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७९२।

अफयून—संज्ञा स्त्री० [अ० अफयून] दे० 'अफीम'।

अफयूनी—वि० [अ० अफयून] दे० 'अफीमची'।

अफरन†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अफरना। पेट का फूलना।

अफरना—क्रि० अ० [स० आ+स्फार=प्रचुर] १ पेट भरकर खाना। भोजन से तृप्त होना। अघाना। उ०—प्रगट मिले विनु भावतें कैसे नैन अघात। भूखे अफरत कहुँ सुने, सुगति मिठाई खात।—रसनिधि (शब्द०)। २ पेट का फूलना। उ० (क) लेइ विचार लागा रहे दादू जरता जाय। कवहूँ पेट न अफरई भावइ तेता खाय।—दादू (शब्द०)। (ख) अफरी वीवी दै मारी (गेटी)। ३ ऊवना। उ०—हम उनकी यह लीला देखते देखते अफर गए (शब्द०)।

अफरा—संज्ञा पुं० [स० आ+स्फार=प्रचुर] १ फूलना। पेट फूलना। २ अजीर्ण या वायु से पेट फूलने का रोग।

अफरा तफरी—संज्ञा स्त्री० [अ० अफरा तफरी] १ उलटफेर। गड-वड। लुटपाट। २ जल्दी। हडवडी। वदहवासी।

अफराना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अफरना या स० स्फार] पेट भरने से सतुष्ट होना। अघाना। उ०—गदहा थोरे दिन में खूँद खाई इतरात। अफरान्यो मारन करयो एराकी को लात।—गिरिधर (शब्द०)।

अफराव†—संज्ञा पुं० [हिं० अफरना] पेट फूलने की स्थिति, क्रिया या भाव।

अफरीदी—संज्ञा पुं० [फा० अफरीद] पठानो की एक जाति जो पेशावर के उत्तर की पहाडियो मे रहती है।

अफल[1]—वि० [स०] १ जिसमे फल न हो। विना फल का। फलहीन। निष्फल। २ व्यर्थ। निष्प्रयोजन। उ०—परमारथ स्वारथ साधन भय अफल सकल, नाहिं सिद्धि सई है।—तुलसी ग्र०, पृ० ५२८। ३ वाँझ। वध्या।

अफल[2]—संज्ञा पुं० १ झाऊ का वृक्ष। २ वकरा।

अफला—संज्ञा स्त्री० [स०] १ भूम्यामलकी। भुँइ आँवला। २ घृतकुमारी। घीक्वार।

अफलातून—संज्ञा पुं० [फा० अफ्लातून] १ यूनान का एक प्रसिद्ध विद्वान् और दार्शनिक जो अरस्तू का गुरु और सुकरात का शिष्य था। २. वडप्पन की शेखी करनेवाला व्यक्ति।

मु०—अफलातून के नाती=शेखी करनेवाला। तीसमार वनने वाला। डींग मारनेवाला।

अफलित—वि० [स०] १ जिसमे फल न लगे। फलहीन। २ निष्फल। परिणामरहित।

अफल्गु—वि० [स०] उत्पादक। लाभदायक। जो फल्गु या सारहीन न हो [को०]।

अफवा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अफवाह'। उ० इसी तरह यह सव वातें अफवा की जहरी हवा मे मिलकर चारो ओर उडने लगी।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६१।

अफवाज—संज्ञा स्त्री० [अ० फौज का बहुव० अफवाज] सेना। फौज। उ०—तूँ जूनो परखे नवी, असुरारी अफवाज।—बाँकीदास ग्र०, भा २, पृ० १००।

अफवाह—संज्ञा पुं० [अ० अफवाह] १ उड़ती खबर। बाजारू खबर। किंवदंती। २ मिथ्या समाचार। गप्प।

मु०—अफवाह उड़ना = निराधार समाचार फैलाना, अफवाह उड़ाना या फैलाना = १ झूठी बात प्रचारित करना। २, बदनाम करना।

अफशाँ—संज्ञा स्त्री० [फा० अफशाँ] १, बादले के छोटे छोटे टुकड़े अथवा सुनहला या रुपहला चूर्ण जो स्त्रियों के मुख पर शोभा के लिये छिड़के जाते हैं। उ०—कलानिधि के अमर ललाट पर अफशाँ।—प्रेमधन, भा० २, पृ० १७।

अफशा—संज्ञा पुं० [फा० अफ़शा] प्रकाश। प्रकट। जाहिर।

यौ०—अफशायराज = गुप्त मंत्रणा का प्रकाश। छिपी बात को खोल देना।

अफसतीन—संज्ञा पु० [यू०] औषध के कार्य मे प्रयुक्त एक कड़आ और नशीला पौधा।

विशेष—यह पौधा काश्मीर मे ५००० से ७००० फुट की ऊँचाई पर होता है। इससे हरे या पीले रंग का तेल निकाला जाता है जो झारदार तथा कड़आ होता है। विशेष मात्रा मे प्रयोग करने से यह तेल विषैला हो जाता है। इसकी पत्ती विशेषकर यूनानी दवाओं के काम आती है।

अफसर—संज्ञा पु० [अ० आफिसर] [संज्ञा अफसरी] १. प्रधान। मुखिया। अधिकारी। २, हाकिम। प्रधान कर्मचारी।

यौ०—अफसरे आला = प्रधान अधिकारी। सर्वोच्च अधिकारी।

अफसरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अफसर + ई (प्रत्य०)] १ अधिकार। प्रधानता। २ हुकूमत। शासन।

क्रि० प्र०—करना।—जताना।

अफसाना—संज्ञा पुं० [फा० अफसानह्] किस्सा। कहानी। कथा। आख्यायिका।

क्रि० प्र०—छिड़ना।—छेड़ना।—रह जाना।—सुनना —सुनाना

यौ०—अफसानागो = कहानी कहनेवाला।

अफसानानवीस, अफसानानिगार—१ कहानीकार। कथालेखक। २. उपन्यासलेखक।

अफसूँ—संज्ञा पु० [फा० + अफसूँ] जादू टोना। अभिचार। मायाकर्म। इंद्रजाल [को०]।

अफसोस—संज्ञा स्त्री० [फा० अफसोस] १ शोक। रंज। २. पश्चात्ताप। खेद। पछतावा। दुःख।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अफीडेविट—संज्ञा स्त्री० [अ० ऐफीडेविट] १ हलफ। शपथ। २ हलफनामा।

अफीम—संज्ञा स्त्री० [यू० ओपियम, अ० अफयून, फा० अफ्यून] औषध और नशे के रूप मे प्रयुक्त होनेवाली पोस्ते की ढेंढ की गोंद।

विशेष—यह काछकर इकट्ठी की जाती है। यह कड़वी, मादक और स्तंभक होती है। इसके खाने से कोष्ठबद्ध होता है और नींद आती है। विशेष मात्रा मे यह विषैली और प्राणघातक हो जाती है। इसके लेप से पीड़ा दूर होती है और सूजन उतर जाती है। इसका प्रयोग संग्रहणी, अतिसारादि मे होता है। वीर्यस्तंभन की औषधियों में भी इसका प्रयोग होता है। इसके खानेवाले झपकी लेते हैं और दूध, मिठाई आदि पर बड़ी रुचि रखते हैं। यह नजले को दूर करती है। और वृद्धावस्था मे फुर्ती लाती है।

अफीमची—संज्ञा पु० [हिं० अफीम + तु० ची (प्रत्य०)] अफीम खानेवाला। वह पुरुष जिसे अफीम खाने की लत हो।

अफीमी—संज्ञा पु० [हिं० अफीम + ई (प्रत्य०)] अफीम खानेवाला। अफीमची।

अफीर—संज्ञा पुं० [अ० अफीर] प्रतिवेशी। पड़ोसी। उ०—चले साथ ले मर्दुमाने अफीर।—कबीर ग्र०, पृ० १३१।

अफुल्ल—वि० [सं०] अविकसित। जो खिला न हो। बेखिला।

अफू—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अफीम'।

अफेन¹—वि० [सं०] जिसमे फेन न हो। फेनरहित। बिना झाग का।

अफेन²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अहिफेन] अफीम।

अफोट—वि० [सं० आ + स्फोट] विदारित। खंडित। उ०—रम्य अरम्य करी सु धरन्निय। रहे मठ कोट अफोट करन्निय।—पृ० रा०, १।३६०।

अपफना(पु)—क्रि० स० [सं० अर्पण पा० अप्पण] दे देना, सौंपना। अर्पित करना। उ०—पुन्नीम पुत्र अप्फहँ पहुमि, इमि च्यतनु मन मह करिय।—पृ० पृ० रा० (उद०), पृ० २११।

अफशा—वि० [फा० अफशा] दे० 'अफशा'। उ०—अब जिद करने मे राज अफशा होता है। मगर क्या करें।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६।

अबछी(पु)—वि० [सं० अवांछित] अनचाहा। अनिच्छित। उ०—सुंदर तृष्णा कारनैं जाइ समुद्रही बीच। फटै जहाज अचानक होइ अबछी मीच।—सुंदर ग्र०, पृ० ७१३।

अबड—वि० [सं० अवण्ड] जो अंगहीन या पंगु न हो।

अबध—वि० [सं०] १ जो किसी बंधन मे न हो। अबद्ध बंधनहीन। निरंकुश। उ०—विधानों मे अबध विधान विचरते हो सुर माया कर।—गीतिका, पृ० ९०।

अबधन—वि० [सं० अबधन] अबध। मुक्त [को०]।

अबधु¹—संज्ञा पु० [सं० अबधु] अमित्र। शत्रु। उ०—बंधु अबंधु हिये महँ जानैं। ताकर लोग विचार बखानैं।—राम च०, पृ० १५१।

अबधु²—वि० १ मित्रविहीन। एकाकी। अकेला। २ अनाथ। जिसके कोई न हो [को०]। २ बंध या सीमाहीन। असीम। अपार। उ०—जिन युवकों के मणिबंधों मे अबध बल इतना भरा था जो उलटता शतघ्नियों को।—लहर, पृ० ६७।

अबध्य—वि० [सं० अबन्ध्य] [स्त्री० अबन्ध्या] १ दे० 'अबध'। २ सफल, । अव्यर्थ।

अबध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० अबन्ध्या] वह जो बाँझ न हो। संतानवाली स्त्री।

अब¹—क्रि० वि० [सं० अथ, प्रा० अह, अथवा सं० अद्य] इस समय। इस क्षण। इस घड़ी।

मुहा०—अब का = इस समय का। आधुनिक। **अबकी** = इस बार अब की बात अब के हाथ = समय के अनुसार कार्य करना। जो बात बिगडी नही है उसे सपन्न करना। **अब के लोग** = आधुनिक जन। **अब जाकर** = इतनी देर पीछे। उ०—महीनो से इस काम मे लगे हैं, अब जाकर खतम हुआ है। **अब तब करना** = हीला हवाली करना। **अब तब लगना या होना** = मरने का समय निकट होना। उ०—जब वैद्य आया तब उसका अब तब लगा था। **अब न तब** = न इस समय न फिर कभी। **अब भी** = (क) इस समय भी। (ख) इतने पर भी। उ०—इतनी हानि उठाई अब भी नही चेतते। **अब से** = इस समय से। आगे। भविष्य मे। उ०—अब से मैं ऐसा कार्य भूलकर भी न करूँगा।

अब²—सज्ञा पु० [अ०] बाप। पिता [को०]।

अबक(पु)—सज्ञा पु० [अ + हिं० बक] अनुचित बात। अकथ्य। उ०—राखो आगै रसणारँ, राघव नाम रसाल। मुख मांझल आंणो मती, गिरँग अबक ज्यूँ गाल।—बाँकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० ७९।

अबका—सज्ञा पुं० [फिलि० अबुका, स० अबका = सेवार] एक पौधा जिसकी डठल की छाल रेशेदार होती है।

विशेष—यह पौधा फिलिपाइन देश का है। अब इसकी खेती अडमान टापू और आराकान की पहाडियो मे भी होती है। खेती इस प्रकार की जाती है—इसकी जड से पेड के चारो ओर पौधे भूफोड निकलते हैं। जब वे तीन तीन फुट के हो जाते हैं तब उन्हे उखाडकर खेतो मे ८-९ फुट की दूरी पर लगाते हैं। इसकी फसल तैयार होती है तब इसे एक एक फुट ऊपर से काट लेते हैं। डठलो से इसकी छाल निकाल ली जाती है और साफ करके रस्सी आदि बनाने के काम आती है। इसकी खूँद का मैनिला पेपर बनता है।

अबक्र—वि० [सं० अ + वक्र] टेढा नही। सीधा। उ०—पुनि स्वाधिष्ठान सु द्वितीय चक्र। नही षट्दल षट् अक्षर अबक्र।—सुदर ग्र०, पृ० ४६।

अबखरा—सज्ञा पुं० [अ० अब्खर (बुखार का बहुव०)] भाप। वाष्प।

क्रि० प्र०—उठना। चढना।

अबखोरा—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आबखोरा'।

अबगत(पु)—वि० [स० अविगत] १ जो जाना न जाय। अज्ञात। २ अनिर्वचनीय। ३ नित्य (ईश्वरबोधक)। उ०—नही बाप ना माता भाए। अबगत से ही हम चल आए—कबीर सा०, पृ० ८२५।

अबगति(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अबगत'।

अबचन(पु)—वि० [स० अ + वचन] दुर्वचन। अपशब्द। उ०—बचन अबचन रहित सोई जानिये।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ६२५।

अबजरबेटरी—सज्ञा स्त्री० [अ० आबजरवेटरी] वह स्थान जहाँ ग्रहो की गति, ग्रहण, ग्रहयुद्ध, आदि खगोल सबधी घटनाओ का निरीक्षण किया जाता है। वेधालय। वेधशाला। वेधमदिर। मानमंदिर।

अबट(पु)—सज्ञा पु० [स० अ + वाट] दुर्गम रास्ता। हीन मार्ग। विपथ। उ०—नर तेथ निमाणा, निलजो नारी, अकबर गाहक बट अबट।—वेलि० (मू०), पृ० ३१।

अबटन—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उबटन'।

अबड धबड—वि० [अनु०] बेतरतीब। असगत। जल्दबाजी।

अबतर—वि० [अ० अब्तर] [सज्ञा अबतरी] १ बुरा। रद। खराब। २ गिरा हुआ। बिगडा हुआ। उ०—अफसोस ऐ सनम तुम ऐसे हुए हो अबतर। मिलते हो गैर मे जा हमसे रुखाइयाँ हैं।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६९।

अबतरी—सज्ञा स्त्री० [अ० अब्तरी] १ घटाव। बिगाड। क्षय। अवनति। २ बुराई। खराबी।

अबदार(पु)—वि० [फा० आबदार] दे० 'आबदार' उ०—पति ची प्रीत धारिया पूरी, हेमराज अबदार हजूरी।—रा० रू०, पृ० ३१६।

अबद्ध¹—वि० [स०] १ जो बँधा न हो। मुक्त। २ स्वच्छद। निरकुश। ३ असबद्ध। निरर्थक।

यौ०—अबद्धवाक्य = वह असबद्ध वाक्य जिसमे अन्वयबोध की योग्यता न हो अर्थात् जिससे कोई अभिप्राय न निकले। जैसे—कोई कहे कि मैं आजन्म मौन हूँ, मेरा बाप ब्रह्मचारी, माता बध्या और पितामह अपुत्र था। अबद्धमुख = जिसके मुख में लगाम न हो। अडबड बोलनेवाला। अबद्धमूल = जिसकी जड पुष्ट न हो।

अबद्ध²—सज्ञा पुं० असभव या असामान्य वस्तु [को०]।

अबद्धक—वि० [सं०] दे० 'अबद्ध' [को०]।

अबध¹(पु)—वि० [स० अबाध्य] जो रोका न जा सके। अबाध्य। निर्बाध। उ०—भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अबध चितवन चितई है।—तुलसी (शब्द०)।

अबध²(पु)—वि० [स० अबध्य] जिसे मारना उचित न हो। उ०—तौकों अबध कहत सब कोऊ तातें सहियत बान। बिना प्रयास मारिहौं ताकों, आजु रैनि के प्रात।—सूर (शब्द०)।

अबधू¹(पु)—वि० [सं० अबोध, पुं० हिं० अबोधु] अज्ञानी। अबोध। मूर्ख। उ०—(क) अबधू छोडो मन विस्तारा।—कबीर (शब्द०)। (ख) अबधू कुदरत की गति न्यारी —कबीर (शब्द०)।

अबधू²(पु)—सज्ञा पु० [स० अवधूत] त्यागी। सन्यासी। विरागी। अवधूत। सत। साधु। उ०—जिन अबधू गुरु ज्ञान लखाया। ताकर मन तहईं लै धाया।—कबीर (शब्द०)।

अबधूत(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवधूत'।

अबध्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अबध्या] १. न मारने योग्य। जिसे मारना उचित न हो। २ जिसे मारने का विधान न हो। जिसे शास्त्रानुसार प्राणदड न दिया जा सके। जैसे—स्त्री, ब्राह्मण बालक आदि। ३ जो किसी से न मरे। जिसे कोई मार न सके।

अबनी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अवनि'। उ०—इहाँ आनि अबनी कौं भोजन करायौ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४८३।

अबर¹(पु)—वि० [स० अ + बल] अबल। निबल। उ०—ये अबर कौ पीर जबर सबर बिन मरूँ।—तुलसी० श०, पृ० ५१।

अवर[2]Ⓟ—वि० [सं० अपर, प्रा० अवर] अन्य। और। दूसरा। उ०—सरिता सिंधु अनेक अवर सखी विलसत पति सहज सनेह।—सूर० (राधा०) २७६७।

अवर[3]Ⓟ—वि० [सं० अवर] अश्रेष्ठ। अव्यग्य। अधम। उ०—इहाँ उछाह वाक्य तें अवर काव्य होता है।—भिखारी ग्र० भा० भा० २, पृ० २४४।

अवर[4]Ⓟ—संज्ञा पुं० [फा० अब्र, सं० अभ्र] बादल। उ०—अगर यो जान जिंदगानी। अवर ओला घुले पानी।—तुलसी० श०, पृ० ३१।

अवरक—संज्ञा पुं० [सं० अभ्रक] १ एक धातु। अभ्रक। भोडल। भोडर। भुखल।

विशेष—यह खानो मे निकलती है और बडे बडे ढोको मे तह पर तह जमी हुई पहाडो पर मिलती है। साफ करके निकालने पर इसकी तह कांच की तरह निकलती है। अवरक के पत्तर कदील आदि मे लगते हैं तथा विलायत मे भी भेजे जाते हैं। वहाँ ये कांच की टट्टी की जगह किवाड के पल्लो मे लगाने के काम आते है। यह धातु आग से नहीं जलती और लचीली होती है। वैज्ञानिक यंत्रो मे भी इसका प्रयोग होता है। यह दो रग की होती है—सफेद और काली। भारतवर्ष मे बगाल, राजस्थान, मद्रास आदि की पहाडियो मे मिलती है। वैद्य लोग इसके भस्म को वृष्य मानते हैं और औषधियो मे इसका प्रयोग करते हैं। भस्म बनाने मे काले रग का अवरक अच्छा समझा जाता है। निश्चद्र अर्थात् आभारहित हो जाने पर भस्म बनता है।

२ एक प्रकार का पत्थर जो खान से निकलता है।

विशेष—यह पत्थर बर्तन बनाने के काम आता है। यह बहुत चिकना होता है। इसकी बुकनी चीजो को चमकाने के लिये पालिश या रोगन बनाने के काम मे आती है।

अवरख—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवरक'।

अवरखी[1]†—वि० [हिं० अवरक] १ अवरक के रग का। २ अभ्रक का।

अवरखी[2]†—संज्ञा स्त्री० अभ्रक की बुकनी।

अवरन[1]Ⓟ—[सं० अवर्ण्य] जिसका वर्णन न हो सके। अकथनीय। उ०—(क) अवरन को का वरनिए मोंपे लख्या न जाइ। अपना बाना बाहिया कहि कहि थाके माइ। कवीर० ग्र०, पृ० ६१। (ख) भजि मन नद नदन चरन। सनक सकर ध्यान ध्यावत निगम अवरन वरन।—सूर० (शब्द०)।

अवरन[2]Ⓟ—वि० [सं० अवर्ण] १ बिना रग का। वर्णशून्य। उ०—अलख अरूप अवरन सो करता। वह सब सो, सब वहि सो वरता।—जायसी (शब्द०)। २ एक रग का नही। भिन्न। उ०—हद छोड बेहद भया अवरन किया मिलान। दाम कवीरा मिल रहा सो कहिए रहमान।—कबीर (शब्द०)।

अवरन[3]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० आवरण] दे० 'आवरण'।

अवरन्य—संज्ञा पुं० [सं० अवर्ण्य] दे० 'अवर्ण्य'। उ०—कहूँ अवरन्यन को कहत भूपन वरनि विवेक।—भूपण ग्र०, पृ० ६१।

अवरस[1]—संज्ञा पुं० [अ० अवरश] १ घोडे का एक रग जो सब्जे से कुछ खुलता हुआ सफेद होता है। २ घोड़ा जिसका सब्जे से कुछ खुलता हुआ सफेद रग हो। उ०—अवलक अवरस लखी सिराजी। चौधर चाल समुद सब ताजी।—जायसी (शब्द०)।

अवरस[2]—वि० सब्जे से कुछ खुलता हुआ सफेद रग का।

अवरा[1]—संज्ञा पुं० [फा० अवरह्] १. अस्तर का उलटा। दोहरे वस्त्र के ऊपर का पल्ला। उपल्ला। उपल्ली।

क्रि०—प्र०।—चढाना।—देना।—लगाना।

२ खुलनेवाली गाँठ। उलझन।

अवरा[2]†—वि० [सं० अबल] बलहीन। कमजोर। निर्बल।

यौ०—अवरा दुवरा = शक्तिहीन। कमजोर। दुबला पतला।

अवरी[1]—संज्ञा स्त्री० [फा० अब्र + ई (प्रत्य०)] १ एक प्रकार का चिकना कागज जिसपर बादल की सी धारियाँ होती हैं। यह पुस्तको की दफ्ती पर लगाया जाता है और कई रग का होता हैं। २ पीले रग का एक पत्थर, जो पच्चीकारी के काम आता है। यह जैसलमेर मे निकलता है। इसलिये इसको जैसलमेरी भी कहते हैं। ३ एक प्रकार की लाह की रगाई जो रगबिरगे बादलो के छीटो की तरह होती है।

अवरी[2]†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवार] गडढे या नदी के पानी से मिला हुआ किनारा।

अवरू—संज्ञा पुं० [फा०] भौंह। भ्रू। उ०—आगे वढ़ी चढे थे अवरू खमदार।—कुकुर०, पृ० ३८।

मु०—अवरू मे बल पडना = नाराज होना। अवरू पर मैल न आना = विकार न आना।

अवर्जⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अवर + ज] अनुज। छोटा भाई।—अनेकार्थ०, पृ० ८७।

अवर्त†—संज्ञा पुं० [सं० आवर्त] पानी का भँवर। चक्कर।

अवर्नⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अवर्ण'। उ०—सुदर ब्रह्म अवर्न है व्यापक अग्नि अवर्न।—सुदर ग्र०, पृ० ७८१।

अवर्न्यⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अवर्ण्य] दे० 'अवर्ण्य[2]'। उ०—आदर घटत अवर्न्य को, जहाँ वर्न्य के जोर।—भूपण ग्र० पृ० २६।

अवल[1]—वि० [सं०] निर्बल। कमजोर। उ०—कैसे निवहै अवल जन करि सबलन सो वैर।—सभावि० (शब्द०)।

अवल[2]—संज्ञा पुं० १ बलहीनता। २ वरुण नामक वृक्ष।

अवल[3]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अवलि] १ पक्ति। समूह। कतार। उ०—अतर नीलवर अवल आभरण अगि अगि, नग नग उदित।—वेलि०, दू० ११६।

अवलक[1]—वि० [अ० अवलक] दे० 'अवलख[1]'। उ०—जो अवलक घोडा अमुके रग की होंड तो तो घोडा उपर चढि कै श्रीनाथजी द्वार जाइए।—दो सौ बावन प्र० १६३।

अवलक[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार के वर्ण का अश्व। अवलख।

अवलख[1]—वि० [अ० अवलक] १ कवरा। दो रगा। सफेद और काला अथवा सफेद और लाल रग का।

अवलख[2]—संज्ञा पुं० १ वह घोडा जिसका रग सफेद और काला हो। उ०—अवलख अवरस लखी सिराजी। चौधर चाल समुद सब ताजी।—जायसी (शब्द०)। २ वह बैल जिसका रग सफेद और काला हो। कवरा बैल।

अवलख²—वि० [सं० अवलक्ष] सफेद। श्वेत।

अवलखा—संज्ञा स्त्री० [अ० अवलक्] एक पक्षी।

विशेष—इसका शरीर काला होता है, केवल पेट सफेद होता है। इसके पैर सफेदी लिए हुए होते हैं और चोच का रग नारंगी होता है। यह उत्तर प्रदेश बगाल तथा बिहार मे होता है और पत्तियो तथा परों का घोसला बनाता है। यह एक बार मे चार पाँच अडे देता है। इसकी लबाई लगभग नौ इच होती है।

अवला—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। नारी। उ०—पावस कठिन जु पीर अबला क्यो करि सहि सकै। तेऊ धरत न धीर रक्तबीज सम ऊपजै।—बिहारी (शब्द०)।

यौ०—अबलासेन = कामदेव।

अवलावल—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव शिव। [को०]।

अवलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अवली'। उ०—नीति प्रीति छवि अवलि ए सब सरि की भाँति।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ५३३।

अवली(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अवली] १ पक्ति। २ समूह। उ०—बर विहग अवली जहँ भाँति भाँति की आवति।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २।

अवल्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुर्बलता। कमजोरी। २ बीमारी। रुग्णावस्था [को०]।

अवल्य²—वि० जो बलकारक न हो।

अववाव—संज्ञा पुं० [अ०] १ वह अधिक कर जो सरकार मालगुजारी पर लगती है। २ वह अधिक कर जो लगान पर जमीदार को असामी से मिलता है। भेजा। अधिक कर। लगता। ३ वह कर जो गाँव के व्यापारियो तथा लोहार सोनार आदि पेशेवा नो से जमीदार को मिलता है। घरद्वारी। बसौरी। भिटौरी।

अवस¹—वि० [सं० अवश] दे० 'अवश'। उ०—चदन मे नाग मद भरचो इद्रनाग, विष भरो शेषनाग, कहै उपमा अवस को।—भूषण ग्र०, पृ० ३०।

अवस²—वि० [अ०] व्यर्थ। निरर्थक। फजूल। बेकार [को०]।

अवहि(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अभी'। उ०—अबहि उगत ससि तिमिरे तेजब निसि उसरत मदन पासरे।—विद्यापति०, ६८।

अवाँह(पु)—वि० [हिं० अ + बाँह] १ बिना बाँह का। जिसे बाँह न हो। अबाहु। असहाय। अनाथ। बेसहारा।

अवा—संज्ञा पुं० [अ०] अगे से मिलता जुलता एक प्रकार का पहिनावा।

विशेष—यह अगे के बराबर या उससे कुछ अधिक लबा होता है। यह ढीलाढाला होता है और सामने खुला होता है इसमे छह कलियाँ होती है और सामने केवल दो घुडियाँ या तुमके लगते हैं। कोई कोई इसमे गरेबान भी लगाते हैं। यह पहनावा मुसलमानो के समय से चला आता है।

अवाक(पु)—वि० [हिं] दे० 'अवाक'। उ०—रतन अमो क परखर रहा जाहरी थाक। दरिया तहाँ कीमत नही, उनमन भया अवाक।—दरिया० बानी, पृ० २०।

अवाट—संज्ञा पुं० [हिं०] खराब रास्ता। कुपथ। उ०—मन कर्म मर्म अबाट परिहरि बाट घर को देत है—कबीर सा०, पृ० ४०१।

यौ०—अबाट सबाट = अडबड। गलत सलत।

अवात(पु)—वि०—[सं० अवात] [स्त्री० अवाती] १ बिना वायु का। २ जिसे वायु न हिलाती हो। ३ भीतर भीतर सुलगनेवाला। उ०—आई तजि हौं तो ताहि तरनितनूजा तीर, ताकि ताकि तारापति तरफति ताती सी। कहै पद्माकर घरीक ही मे घन श्याम काम तो कतलबाज कुज ह्वै है काती सी। याही छिन वाही सो न मोहन मिलौगे जो पै लगनि लगाई एती अगिनि अवाती सी। राउरी दुहाई तौ बुझाई न बुझैगी फेरि, नेह भरी नागरी की देह दिया बाती सी।—पद्माकर (शब्द०)।

अवाद(पु)—वि० [सं० अवाद] वादशून्य। निर्विवाद। उ०—ब्रह्म विचारे ब्रह्म को पारख गुरु परमाद। रहित रहै पद राखिके जिव से होय अवाद।—कबीर (शब्द०)।

अवादान—वि० [फा० आबादान] बसा हुआ। पूर्ण। भरा पूरा। उ०—यह गाँव अबादान रहे।—(फकीरो की बोली)।

अवादानी—संज्ञा स्त्री० [फा० आबादानी] १ पूर्णता। बस्ती। उ०—भूखे को अन्न पियासे को पानी। जगत जगत अबादानी (शब्द०)। २ शुभचितकता। उ०—जिसका खाए अन्न पानी, उसकी करै अबादानी (शब्द०)। ३. चहल पहल। मनोरजकता। उ०—जहाँ रहैं मियाँ रमजानी, वहीं होय अबादानी (शब्द०)।

अवाध—वि [सं०] १ बाधारहित। बेरोक। उ०—हँसी का मदविह्वल प्रतिबिंब मधुरिमा खेला सदृश अबाध।—कामायनी पृ० ४८। २ निर्विघ्न। उ०—राम भगति निरुपम निरुपाधी बसै जासु उर सदा अबाधी।—तुलसी (शब्द०)। ३ असीम। अपरिमित। अपार। बेहद। उ०—अकल अनीह अबाध अभेद नेति नेति कहि गावहिं बेद।—सूर० (शब्द०)।

अवाधगति—वि० [सं० अबाध + गति] जिसकी गति अबाध या बेरोक हो।

अवाधा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अबाध'। उ०—रघुपति महिमा अगुन अबाधा।—तुलसी (शब्द०)।

अवाधित—वि० [सं०] १ बाधा रहित। बेरोक। २ स्वच्छद। स्वतत्र। ३ अनिषिद्ध।

अवाध्य—वि० [सं०] १ बेरोक। जो रोका न जा सके। २ अनिवार्य ३ जो वश मे न किया जा सके।

अवान(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० बाना = चिह्न] शस्त्ररहित। हथियार छोडे हुए। निहत्था। उ०—चढे पिट्ठ दस कोस लो सब अजबीर अबान। फंसे पाय सूरज बली ठाढो ता मैदान।—सूदन (शब्द०)।

अवाबील—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक काले रग की चिडिया। कृष्णा। कन्हैया। देवबिलाई।

विशेष—इसकी छाती का रग खुलता होता है। इसके पैर बहुत छोटे छोटे होते हैं, जिसके कारण यह बैठ नहीं सकती और दिन भर बहुत ऊपर आकाश मे झुड के साथ उडती रहती है। यह पृथ्वी के सभी देशो मे होती है। इसके घोसले पुरानी दीवारों पर मिलते हैं।

अवार—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+वार, प्रा० वार=समय] असमय। अधिक देर। विलंब। बेर। कुबेला। उ०—परसुराम जमदग्नि के गेह ली नअवतार। माता ताकी जमुनजल लेन गई एक वार। लागी तहाँ अवार सिद्धि ऋषि करि क्रोध अपार। परसुराम को यो कही माँ को वेगि सहार।—सूर (शब्द०)।
क्रि०प्र०—लगना।—होना। उ०—बहुत अवार कतहुँ खेलत भई कहाँ रहे मेरे सारगपानी।—सूर (शब्द०)।

अवारजा—संज्ञा पुं० [फा० अवारिजह=बही, अवार्चा, अवारिजह (फं०)] १ रोजनामचा। २ जमाखर्च की बही। उ०—करि अवारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै। दूजे करज दूरि करि दैयत, नैकु न तापे आवै।—सूर०, १।१४२।

अवाल¹—वि० [सं०] १ जो बालक न हो। जवान। २ अबालकोचित। ३ पूर्ण। पूरा। जैसे, अबालेंदु=पूर्ण चंद्रमा।

अवाल²—संज्ञा पुं० [देश०] वह रस्सी जो चरखे की पँखुड़ियों को बाँध कर तानी जाती है और जिस पर से होकर माला चलती है।

अवाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पक्षी जो उत्तरी भारत और बंबई प्रांत तथा आसाम, चीन और स्याम मे मिलता है। इसका रंग भूरा और गर्दन कुछ पीली होती है। यह झुंड मे रहता है और अपना घोंसला घास और पर का बनाता है। बेंगनकुटी।

अवास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आवास] रहने का स्थान। घर। मकान। उ०—(क) ऊँचे अवास बहु ध्वज प्रकास। सोभा विलास, सोभै प्रकास।—केशव (शब्द०)। (ख) कबिरा गर्व न कीजिए, ऊँचा देखि अवास।—कबीर ग्र०, पृ० ६४।

अवाह्य—वि० [सं०] १ बाहरी नहीं। भीतरी। २ पूर्णत परिचित। ३ जिसमे बाहरी स्थिति न हो (को०)।

अविंगि(पु)—वि० [सं० अव्यङ्ग्य] व्यंग्यरहित। उ०—बचन अविंगि कहै रस भोय।—नंद० ग्र०, पृ० १४७।

अविंधन—संज्ञा पुं० [सं० अविन्धन] १ समुद्र। २ बडवानल।

अविंध्य—संज्ञा पुं० [सं० अविन्ध्य] रावण का एक मंत्री। यह बड़ा विद्वान् शीलवान् और वृद्ध मंत्री था। इसने रावण से सीता को लौटाने के लिये कहा था।

अविकारी—वि० [सं० अविकारी] दे० 'अविकारी'। उ०—अस प्रभु हृदय अछत अविकारी।—मानस, १।२३।

अविगत(पु)—वि० [सं० अविगत] १ जो विगत न हो। जो जाना न जाय। उ०—अविगत गति कछु कहत न आवै। ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै।—सूर० १। २।

अविगति¹(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविगत'। उ०—निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई, अविगति की गति लखी न जाई।—कबीर ग्र०, पृ० १०४।

अविगति²(पु)—संज्ञा स्त्री० अविगत अवस्था या दशा। उ०—तुलसी राम प्रसाद बिन, अविगति जानि न जात।—स० सप्तक, पृ० ४५।

अविचल(पु)—वि० [सं० अविचल] दे० 'अविचल'। उ०—रघुवीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी। जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अविचल पावनी।—मानस, ५।३५।

अविछीन(पु)—वि० [सं० अविच्छिन्न] जो विच्छिन्न या टूटा न हो। उ०—औरौ ज्ञान भगति कर, भेद सुनहु सुप्रवीन। जो सुनि होइ राम पद, प्रीति सदा अविछीन।—मानस, ७।११६।

अवितालो(पु)—संज्ञा पुं० [फा० अफताल, हिं० अफताली] सेना का वह दल जो आगे जाकर पड़ाव आदि की व्यवस्था करता है। उ०—काको अयान निकारन को उर आए है जोवन के अवितालो।—केशव ग्र०, पृ० १०।

अविद(पु)—वि० [सं० अवित्=अज्ञ] ज्ञानशून्य। अविद्वान्। मूर्ख। उ०—त्रिविध भाँति को सबद बर, विघट न नट परमान। कारन अविरल अल अपितु, तुलसी अविद भुलान।—स० सप्तक, पृ० २६।

अविद्ध—वि० [सं० अविद्ध] अनवेधा। बिना छिदा हुआ। दे० 'अविद्ध'।

अविद्धकर्णी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अविद्धकर्णी'।

अविद्या(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अविद्या'।

अविध‡—वि० [सं० अविधि] जो विधि या नियम के अनुकूल न हो। अव्यवस्थित।

अविनय(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अविनय'। उ०—स्वामिनि अविनय छमिबि हमारी।—मानस, २।११६।

अविनासो(पु)—वि० [हिं०] 'अविनाशी'। उ०—अविनासी मोहि ते चल्या, पुरई मेरी आस।—कबीर ग्र०, पृ० ७०।

अविवेक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अविवेक'। उ०—प्रभु अपने अविवेक तें, बूझौ स्वामी तोहि।—मानस, ७।९३।

अविवेकी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविवेकी'। उ०—जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहि।—मानस, २।१४२।

अविरल(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविरल'।

अविरुद्ध(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविरुद्ध'। उ०—नाम सुद्ध, अविरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन।—तुलसी ग्र०, पृ० ३५।

अविरोध—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अविरोध'। उ०—समय समाज धरम अविरोधा। बोले तब रघुवंस पुरोधा।—मानस, २।२९५।

अविरोधी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविरोधी'। उ०—धर्म विचारे प्रथम पुनि, अर्थ धर्म अविरोधि। धर्म अर्थ बाधा रहित सेवै काम सुसोधि।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १९१।

अविर्था(पु)‡—वि०[सं० आ=पूरी तरह+व्यर्थ विरथा, विर्था] बिरथा, दे० 'वृथा'। उ०—माया कारन विद्या बेचहु जन्म अविर्था जाई।—कबीर ग्र०, पृ० ३०३।

अविलंब—क्रि० वि० [सं० अविलम्ब] दे० 'अविलंब'। उ०—जय, जय, जय बलभद्र वीर धीर गंभीर अविलंब अलवहारी।—घनानंद, पृ० ५५०।

अविसेक(पु)—वि० [हिं०] दे० अभिषेक। उ०—प्रेमहित करि छीरसागर भई मनसा एक। स्याम मति से अंग चंदन अमी के अविसेक।—सा० लहरी, पृ० १८५।

अविहड(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविहड'। उ०—आदि मध्य अरु अंत लौं अविहड सदा अभंग। कबीर उस करतार की सेवग तजै न संग।—कबीर ग्र०, पृ० ८६।

अविहित—(पु) वि० [सं० अविहित] दे० 'अविहित'। उ०—राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अविहित तव बानी।—मानस, १।११६।

अवी(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अभी'। उ०—जो तूँ कह्या हमारा मानँ नाही अवी करो तुम छाई।—प्राण, पृ० १२२।

अबीज[1]—वि [सं०] १ बीजविहीन। २ उत्पादन-क्षमता-रहित। नपुसक। ३ कारणरहित [को०]।

अबीज[2]—संज्ञा पु० वह बीज जिसकी उत्पादनशक्ति नष्ट हो चुकी हो [को०]।

यौ० —अबीजविक्रयी।

अबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगूर की एक किस्म। बेदाना अंगूर। किशमिश।

अबीर—संज्ञा पुं० [अ० अबीर] १ एक रंगीन बुकनी जिसे लोग होली के दिनो मे अपने इष्ट मित्रो पर डालते हैं। यह प्राय लाल रंग की होती है और सिंघाडे के आटे मे हलदी, और चूना मिला कर बनती है। अब अरारोट और अंगरेजी बुकनियो मे अधिक तैयार की जाती है। गुलाल। उ०—अगर धूप बहु जनु अँधियारी उडै अबीर मनहुँ अरुनारी।—मानस। २ अभ्रक का चूर्ण जिसे होली मे लोग अपने इष्ट मित्रो के मुख पर मलते हैं, कही कही इसे भी अबीर कहते हैं। बुक्का। ३.श्वेत रंग की सुगंध मिली बुकनी जो वल्लभ कुल के मंदिरो मे होली मे उडाई जाती है।

अबीरी[1]—वि० [अ० अबीरी] अबीर के समान या अबीर से बनी। अबीर के रंग का। कुछ कुछ स्याही लिए लाल रंग का।

अबीरी[2]—संज्ञा पु० अबीरी रंग।

अबीह(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + भीति या भी, प्रा० बीह] भयरहित। निर्भय। निडर। उ०—साँसा सोग संताप तज, आपा होय अबीह। शून्य सेज मे पाइया हरिया अविनाशीह।—राम० धर्म०, पृ० ७५।

अबुझ(पु)—वि० [हिं०] १ दे० 'अबूझ'। २ न बूझनेवाला।

अबुध—वि० [सं०] १ अबोध। नासमझ। अज्ञानी। मूर्ख। उ०—भानु बंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू।—तुल[सी] (शब्द०) २ अनजान। उ०—रह जाता नर लोक अबुध ही ऐसे उन्नत भावो से।—साकेत, पृ० ३७१। ३ बे[हो]श। मूर्च्छित। बेसुध। उ०—एक पहर यो अबुध ह्वै रही।—नंद ग्रं०, पृ० १३८।

अबुद्ध—वि० [सं०] दे० 'अबुध' [को०]।

अबुद्धि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विचार या ज्ञान का अभाव। अज्ञान। अविद्या। २ मूर्खता। बदमाशी [को०]।

अबुद्धि[2]—वि० बुद्धिविहीन। मूर्ख। नादान।

अबुहाना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अभुआना'।

अबू—संज्ञा पुं० [अ०] वालिद। पिता। बाप [को०]।

अबूझ—वि० [सं० अबुद्ध, प्रा० अबुज्झ] अबोध। नासमझ। नादान। उ—(क) कोने परा न छूटिहै सुन रे जीव अबूझ। कबीर माँड मैदान मे करि इंद्रिन सो जूझ।—कबीर (शब्द०)। (ख) अजगव खंडेउ ऊख जिमि अजहुँ न बूझ अबूझ।—तुलसी (शब्द०)।

अबे—अव्य० [सं० अयि, पु० हिं अबे] अरे। हे। इस संबोधन का प्रयोग बडे लोग अपने बहुत छोटे वा नीच के लिये करते हैं। जैसे—अबे, सुनता नही है, इतनी देर से पुकार रहे हैं। (शब्द०)

मुहा०—अबे तबे करना = निरादर करना। निरादरसूचक वाक्य बोलना। कच्ची पक्की बोलना।

अबेध(पु)—वि० [सं० अविद्ध] जो छिदा न हो। बिना बेधा। अनबिधा। उ०—लोक रतन अबेध अलौकिक नहिं गाहक नहिं साँई। चिमिकि चिमिकि चमकै दृग दुहुँ दिसि अरब रहा छरि आई।—कबीर (शब्द०)।

अबेर(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवेला] विलंब। देर। अतिकाल। उ०—आवत पिय नहिं दीखती भइली बहुत अबेर।—संत वाणी, भा० १ पृ० ११३।

अबेव(पु)—वि० [सं० अभेद, प्रा०, अभेव] भेदरहित। समभाव युक्त। उ०—दोऊ मिले अबेव साहिब सेवक एक से।—अर्ध०, पृ० २२।

अबेश(पु)—वि० [सं० अ = अति + फा० बेश = अधिक] अधिक। बहुत। उ०—कीर कदंब मंजुका पुंगल सौरभ उडत अबेश। अगर धूप सौरभ नासा सुख बरषत परम सुदेश।—सूर (शब्द०)।

अबै(पु)—क्रि० वि० [हिं० अब ही] अभी। तत्काल। इसी समय।

अबैन(पु)—वि० [हिं० अ + बैन] १ वाणीविहीन। मौन। चुप। २ दूषित वचन। अवाच्य। कुवचन।

अबैर—संज्ञा पुं० [सं० अवैर] अविरोध। अद्वेष। वैर का अभाव। उ०—वैर से नहीं अबैर से हृदय जीतने की विचारपरंपरा के माननेवाले। किन्नर०। पृ० १०।

अबोध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञान। मूर्खता।

अबोध[2]—वि० अनजान। नादान। अज्ञानी। मूर्ख। उ०—तुम अति अबोध, अपनी अपूर्णता को न स्वयं तुम समझ सके।—कामायानी, पृ० १६३।

यौ०—अबोधगम्य = जो समझ मे न आ सके।

अबोध्य—वि० [सं०] जो समझ मे न आ सके। समझ मे न आने योग्य [को०]।

अबोल[1](पु)—वि० [सं० अ + हिं० बोल] १ मौन। अवाक्। उ०—(क) बोलहि सुअन ढँक बक लेदी। रही अबोल मीन जलभेदी।—जायसी (शब्द०)। (ख) पीरी पाती पावते पीरी चढी कपोल। कोरे वदन विलोकि के मुदिता भई अबोल (शब्द०)। २ जिसके विषय मे बोल न सकें। उ० जहाँ बोल अक्षर नहिं आया। जहाँ अक्षर तहँ मनहिं दृढाया। बोल अबोल एक है सोई। जिन या लखा सो बिरला कोई।—कबीर (शब्द०)।

अबोल[2]—संज्ञा पुं० कुबोल। बुरी बोली।

अबोलना—संज्ञा पुं० [सं० अ + हिं० बोलना] न बोलने की स्थिति। असंभाषण। उ०—पाट न खोल्या मुखाँ न बोल्या साँज लग परभात। अबोलना मे अवध बीती, काहे की कुसलात।—संत वाणी०, भा० २, पृ० ७०।

अबोला—संज्ञा पुं० [सं० अ+हिं बोलना] रंज से बोलचाल का न होना। उ०—मिलि खेलिय जा सँग बालक तें कहु तासों अबोलो क्यों ठान कियो।—केशव (शब्द०)।

अब्ज—संज्ञा पुं० [सं०] १ जल में उत्पन्न वस्तु। २ कमल। पद्म। उ०—अकुस ऊरध रेख अब्ज अठकोन अभ्यंतर।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७। ३ शख ४ निचुल। इज्जल। हिज्जल। ईजड का पेड़। ५ चद्रमा। ६ धन्वंतरि। ७ कपूर। ८ एक संख्या। सौ करोड। अरब। ९ अरब के स्थान पर आनेवाली सख्या १,००,००,००,०००।

यौ०—अब्जकर्णिका—कमल का छाता। अब्जज=(१) ब्रह्मा। (२) यात्रा मे एक योग।

विशेष—यह तब होता है जब बुध अपनी राशि और अपने अंश का हो और लग्न में शुक्र या बृहस्पति हो।

अब्जदृक्, अब्जनयन, अब्जनेत्र=कमलनयन। कमल जैसे नेत्रोंवाला। अब्जबाधव=सूर्य। अब्जभव=ब्रह्मा। अब्जभू=ब्रह्मा। अब्जभोग=(१) कमल की जड। भँसीड। (२) कौडी। वराटक। अब्जयोनि=ब्रह्मा। अब्जवाहन=शिव। अब्जवाहना=लक्ष्मी। अब्जस्थित=ब्रह्मा। अब्जहस्त=सूर्य। अब्जासन=ब्रह्मा।

अब्जद—संज्ञा पुं० [अ०] १ अरबी फारसी वर्णमाला के अक्षर। २ अरबी अक्षरों का वह क्रम जिसमें प्रति अक्षर का मूल्य सख्या में निर्धारित है।

विशेष—इससे लोगों के मरने या पैदा होने का साल निकाला जाता है। कुछ लोग बच्चों के नाम उसी आधार पर रखते हैं जिससे जन्मवर्ष ज्ञात हो।

अब्जदख्वाँ—संज्ञा पुं० [अ० अब्जद+फा० ख्वाँ] अरबी फारसी वर्णमाला पढनेवाला विद्यार्थी। नवसिखिया।

अब्जा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी।

अब्जाद—संज्ञा पुं० [सं०] हंस [को०]।

अब्जिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कमलवन। पद्मसमूह। २ पद्मलता। पौनार। ३ कमलिनी (को०)। ४ कमल से आपूर्ण स्थान या जलाशय (को०)।

यौ०—अब्जिनीपति=सूर्य।

अब्द[1]—संज्ञा पुं० [अ०] दास। सेवक। गुलाम। अनुचर। भक्त [को०]।

अब्द[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वर्ष। साल। २ मेघ। बादल। उ०—मर्कट जुद्धविरुद्ध क्रुद्ध अरि ठट्ट दपट्टहिं। अब्द शब्द करि गजि तजि झुकि झपिं झपट्टहिं।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १८२। ३ एक पर्वत। ४. नागरमोथा। ५ कपूर। ६. आकाश। उ०—जय जय शब्द अब्द अति होई। वर्षत कुसुम पुरंदर सोई।—गोपाल (शब्द०)।

यौ०—अब्दप=वर्षाधिप। इंद्र। अब्दज्ञ=ज्योतिषी। अब्दवाहन इंद्र। अब्दसार=कपूर।

अब्दकोश—संज्ञा पुं० [सं० अब्द+कोश, अं० इयरबुक] १ वह वार्षिक संग्रहग्रंथ जिसमें वर्ष के मुख्य व्यक्तियों, घटनाओं, जानकारियों आदि का विवरण मिले। २. वर्ष वर्ष का विवरणसग्रह।

अब्दाली—वि०, संज्ञा पुं० [फा०] अब्दाल का निवासी (व्यक्ति)।

विशेष—अब्दाल वासी होने से अहमदशाह के नाम के आगे यह शब्द जुड़ता है इसने नादिरशाह के बाद भारत पर १७६१ ई० मे आक्रमण किया था। इसका युद्ध मराठों मे हुआ था जिसमे मराठों की हार हुई थी। इसकी उपाधि दुर्रए दुर्रानी भी थी।

अब्दि—संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ [को०]।

अब्दुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वह दुर्ग या किला जो चारों ओर से जल से घिरा हो। वह किला जिसके चारों ओर खाई हो।

अब्धि—संज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। सागर। २ सरोवर। ताल। ३ सात की सख्या। ४ चार की सख्या का द्योतक (को०)।

अब्धिकफ—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन।

अब्धिज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अब्धिजा] १ समुद्र से पैदा हुई वस्तु। २ शख। ३ चद्रमा। ४ अश्विनीकुमार। ५ नमक (को०)।

अब्धिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लक्ष्मी। २ वारुणी। मदिरा [को०]।

अब्धिद्वीपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी। २ समुद्र से घिरा भूखड। टापू [को०]।

अब्धिनगरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारकापुरी।

अब्धिनवनीतक—संज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा [को०]।

अब्धिफेन—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्री झाग। समुद्रफेन [को०]।

अब्धिमडूकी—संज्ञा स्त्री० [सं० अब्धिमण्डूकी] वह सीप जिसमे मोती रहता है।

अब्धिशय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

अब्धिशयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अब्धिशय' [को०]।

अब्धिसार—संज्ञा पुं० [सं०] रत्न [को०]।

अब्व्यग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] समुद्र की अग्नि। वडवानल।

अब्बर(५)†—वि० [हिं०] दे० 'अबल'। उ०—बब्बर की धाक औ अकब्बर की साक मब्बे, अब्बर की छाक लौं सनेही मिसि जायगी।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १६८।

अब्बा—संज्ञा पुं० [अ० अब=पिता का संबोधन आबा] पिता। बाप।

अब्बाजान—संज्ञा पुं० [अ० आबा+फा० जान] पिता के लिये आदरसूचक सबोधन।

अब्बास—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० अब्बासी] १ एक पौधा जो दो तीन फुट तक ऊँचा होता है। गुल अब्बास।

विशेष—इसकी पत्तियाँ कुत्ते के कान की तरह नोकीली और लंबी होती हैं। कुछ लोग भूल से इसकी मोटी जड को चोबचीनी कहते हैं। इसके फूल प्राय लाल होते हैं, पर पीले और सफेद भी मिलते हैं। फूलों के झड जाने पर उनके स्थान पर काले काले मिर्च के ऐसे बीज पडते हैं।

२ हजरत मुहम्मद साहब के चाचा जो अब्बासी खलीफाओं के पूर्वज थे।

अब्बासी[1]—संज्ञा स्त्री० [अ०] मिस्र देश की एक प्रकार की कपास।

अब्बासी[2]—वि० [अ०] १ गुलब्बासी के फूल के रग का। २ हजरत अब्बास के वंशज या संबंधी।

अब्बिदु—संज्ञा पुं० [सं० अब्बिन्दु] १. जलबिंदु। २. आँसू। अश्रुबिंदु [को०]।

अभ्भीह(५)—वि० [सं० अभय, प्रा० अभ+जीह] निर्भय। निडर। उ०—दिन सोह अभ्भीह सावेट खिल्लै।—पृ० रा०, ९।३१२।

अब्वू (पु)—संज्ञा पु० [सं० अर्बुद] आबू । अरवली पर्वतश्रृंखला मे स्थित एक स्थान । उ०—अबू वै द्रुग भाग, अब्बु वर्थ्यो जिहि पायन ।—पृ० रा०, १२।३० ।

अब्भ (पु)—संज्ञा पु० [सं० अभ्र, प्रा० अब्भ] दे० 'अभ्र' । उ०—वज्जत सार गज्जत अब्भ ।—हम्मीर०, पृ० ८२ ।

अब्भक्ष[1]—वि० [सं०] केवल जल पीकर जीनेवाला [को०] ।

अब्भक्ष[2]—संज्ञा पु० [सं०] पानी मे रहनेवाला साँप । डेडहा साँप ।

अब्भक्षण—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमे केवल जल पीते हैं । जल पीकर रहना [को०] ।

अब्भ्र—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अभ्र' [को०] ।

अव्यगि (पु)—वि० दे० 'अव्यग्य' । उ०—प्रीतम कौं जब सागस लहै । व्यगि अव्यगि वचन कछु कहै ।—नद० ग्र०, पृ० १४७ ।

अब्वाई (पु)[1]—वि० [सं० अ + हिं० ब्याई] जिसने बच्चा न जना हो । जिसे प्रसव न हुआ हो । उ०—जगल मे चरैछी मो अब्याई झोटी आई ।—शिखर०, पृ० ३ ।

अव्याहत (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अव्याहत' । उ०—अव्याहत गति सभु प्रसादा ।—मानस, ७।११० ।

अब्र—संज्ञा पुं० [फा० तुल सं० अभ्र] बादल । उ०—बिना आब जहँ वहु गुल फूले, अब्र बिना जहँ बरसै ।—मलूक०, पृ० ४ ।

अब्रन (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवर्ण' । उ०—अब्रन बरण सो भेद निनारा । घट घट बसे लिप्त तन धारा ।—कबीर सा०, पृ० ८७३ ।

अब्राह्मण्य[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ वह कर्म जो ब्राह्मणोचित न हो । २ हिंसादि कर्म । ३ नाटकादि मे दिखाए जानेवाले अनुचित कर्म के बोध या ज्ञान के लिये नेपथ्य मे उद्घोषित शब्द । कही कही ब्राह्मण रक्षा या सहायता की दृष्टि से भी अब्रह्मण्यम् शब्द का उच्चारण करता है ।

अब्रह्मण्य[2]—वि० [सं०] १ ब्राह्मण के अयोग्य । २ जिसकी श्रद्धा ब्राह्मण मे न हो । जो ब्राह्मणनिष्ठ न हो । ब्राह्मणविरोधी ।

अब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो ब्राह्मण न हो । ब्राह्मणेतर व्यक्ति । उ०—एक अब्राह्मण इतना विवेकवान नही हो सकता ।—सं० दरिया, पृ० ६० ।

अब्राह्मण्य[2]—वि० [सं०] ब्राह्मणविरहित । ब्राह्मणविहीन ।

अब्राह्मण्य—संज्ञा पु० [सं०] १ ब्राह्मणोचित कर्तव्यो की अवज्ञा या उल्लघन । २ दे० 'अब्रह्मण्य' ।

अब्रू—संज्ञा स्त्री० [फा०] भौंह । भ्रू । दे० 'अवरू' ।

अब्रेअ वर—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'अवर' ।

अभंग[1]—वि० [सं० अभङ्ग] १ अखड । अटूट । पूर्ण । उ०—जनता की सेवा का व्रत मैं लेता अभग ।—अपरा, पृ० ६४ । २ अनाशवान् । न मिटनेवाला । उ०—आदि, मध्य अरु अत लौ, अविहड सदा अभग । कबीर उस करता की सेवग तजै न सग ।—कबीर ग्र०, पृ० ८६ । ३ जिसका क्रम न टूटे । लगातार । उ०—प्रिये, प्रिये उत्तर दो मैं ही करता नही पुकार अभग ।—साकेत, पृ० ३८५ । ४ जो भग या नष्ट न किया जा सके । सुदृढ । मजबूत । उ०—निपट अभग गढ कोट सब हारे तें ।—भूषण ग्र० पृ० ८२ ।

अभग[2]—संज्ञा पु० १ सगीत मे एक प्रकार का ताल जिसमे एक लघु, एक गुरु और दो प्लुत मात्राएँ होती हैं । २. एक प्रकार का पद या भजन जिनका व्यवहार मराठी मे होता है । जैसे—तुकाराम के अभग । ३ एक श्लेष जिसमे शब्द को विभक्त किए विना ही दूसरा अर्थ प्रकट हो । अर्थश्लेष (को०) । ४ भग या पराजय का अभाव (को०) ।

अभगपद—संज्ञा पु० [सं० अभङ्गपद] श्लेष अलकार का एक भेद । वह श्लेष जिसमे अक्षरो को इधर उधर न करना पडे और शब्दों से भिन्न भिन्न अर्थ निकल आवें । उ०—(क) अति अकुलाय शिलीमुखन, वन मे रहत सदाय । तिन कमलन की हरत छवि तेरे नैन सुभाय (शब्द०) । यहाँ 'शिलीमुख', 'वन' और 'कमल' शब्द के दो दो अर्थ विना शब्दो को तोडे हुए हो जाते हैं । (ख) रावन सिर सरोज वनचारी । चलि रघुवीर सिली मुख धारी ।—मानस, ६।९१ ।

अभगिनी—वि० स्त्री० [सं० अभङ्ग + इनी (प्रत्य०)] जो विच्छिन्न न हो । उ०—तन से न सही, अभगिनी, मन से है हम किंतु सगिनी ।—साकेत, पृ० ३६४ ।

अभगी (पु)—वि० [सं० अभङ्गिनी] १ अभग । पूर्ण । अखड । २. जिसके किसी अश का हरण न हो सके । जिसका कोई कुछ न ले सके । उ०—आए माई दुरँग स्याम के सगी । सूधी कहि सबहिनि समुझावत, ते साँचे सरवगी । औरनि कौ सरवस लै मारत आपुन भए अभगी ।—सूर०, १०।३५११ ।

अभगुर—वि० [सं० अभङ्गुर] १ जो टूटनेवाला न हो । दृढ । मजबूत । २ अनाशवान् । न मिटनेवाला ।

अभंजन[1]—वि० [सं० अभञ्जन] जिसका भजन न हो सके । अटूट । अखड ।

अभजन[2]—संज्ञा पुं० द्रव वा तरल पदार्थ जिनके टुकडे नही हो सकते, जैसे—जल, तेल आदि ।

अभ (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्र' । उ०—जिण दिन स्वामी अभ न गभ । ये तो जुग सूना गया ।—वी० रासो, पृ० ८२ ।

अभक्त—वि० [सं०] १ जो भक्त न हो । भक्तिशून्य । श्रद्धाहीन । २ भगवद्विमुख । उ०—भक्त अभक्त सबै पुनि खाई । सबको भखै निरजन राई ।—कबीर सा०, पृ० ५७ । जो बाँटा न गया हो । जो अलग न किया गया हो । जिसके टुकडे न हुए हों । समूचा ।

अभक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन न करना । उपवास [को०] ।

अभक्ष[2]—वि० दे० 'अभक्ष्य' ।

अभक्षण—संज्ञा पु० दे० 'अभक्ष' ।

अभक्ष्य[1]—वि० [सं०] १ अखाद्य । अभोज्य । जो खाने के योग्य न हो । २ जिसके खाने का धर्मशास्त्र मे निषेध हो ।

अभक्ष्य[2]—संज्ञा पुं० भोजन के लिये निषिद्ध खाद्य पदार्थ [को०] ।

अभख (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभक्ष्य' । उ०—केचित अभख भखत न सकाही । मदिरा पान मास पुनि खाही ।—सुदर ग्र०, पृ० ८२ ।

अभग—वि० [सं०] अभागा । भाग्यहीन [को०] ।

अभगत (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अभक्त' । उ०—तदपि करहिं सम विषम बिहारा । भगत अभगत हृदय अनुसारा ।—मानस, २।२१८ ।

अभग्ग(पु)—वि० [स० अभग्न] जो विभक्त या अलग विलग न हो। जो टूटा या भग्न न हो। उ०—तहँ मु विजय सुरराजपति, जादू कुलह अभग्ग।—पृ० रा०, २०। १।

अभग्न—वि० [स०] अखड। जो खडित न हुआ हो। समूचा। उ०—जगत्तत्व की खोज मे लग्न जहाँ ऋपियो ने अभग्न किया श्रम था।—इनिहास, पृ० ६०६।

अभद्र¹—वि० [स०] १ अमागलिक। अशुभ। अकल्याणकारी। २ अश्रेष्ठ। असाधु। अशिष्ट। बेहूदा। कमीना।

अभद्र²—सज्ञा पुं० [स०] १ बुराई। पाप। दुष्टता। २ शोक [को०]।

अभद्रता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अमागलिकता। अशुभ। २. अशिष्टता। असाधुता। बुराई। खोटाई। बेहूदगी।

अभपद(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अभयपद'। उ०—अभपद भुजदड मूल, पीन अस मानुकूल, कनक मेखला दुकूल दामिनी धरखी री।—सूर०, १०।१३८४।

अभयकर—वि० [स० अभयङ्कर] १ जो भयकर न हो। सौम्य। २ अभय करनेवाला [को०]।

अभय¹—वि० [स०] [स्त्री० अभया] निर्भय। निडर। बेखौफ। उ०—जिन्ह कर भुज बल पाइ दसानन। अभय भए विचरत मुनि कानन।—मानस, ३।१६।

मुहा०—**अभय देना वा अभय बाँह देना**=भय से बचाने का वचन देना। शरण देना। निर्भय करना। उ०—(क) ब्रह्मा रुद्रलोकहूँ गयो। उनहूँ ताहि अभय नहि दयो।—सूर० (शब्द०)। (ख) लछिमन अभयबाँह तेहि दीन्ही।—मानस ४।२०।

यौ०—**अभयदान। अभयवचन। अभयबाँह।**

अभय²—सज्ञा पुं० [स०] १ उशीर। खस। वीरणमूल। २ निर्भयता। ३ परमात्मा। ४ परमात्मविषयक ज्ञान। ५ भौतिक सपत्ति अभाव। सासारिक सपदाविहीनता। ६ अभयसूचक एक मुद्रा। ७ शिव। ८ भय मे प्राप्त त्राण। ९ यात्रा सबधी एक योग [को०]।

अभयचारी—सज्ञा पुं० [स० अभयचारिन्] वे जगली पशु जिनके मारने की आज्ञा न हो।

अभयडिंडिम—सज्ञा पुं० [स० अभयडिण्डिम] १ सुरक्षात्मक भरोसे की घोषणा। एक युद्ध वाद्य [को०]।

अभयद¹—वि० [सं०] दे० 'अभयदाता' [को०]।

अभयद²—सज्ञा पुं० १ विष्णु का एक नाम। २ जैनों के एक अर्हत [को०]।

अभयदक्षिणा—सज्ञा स्त्री० [स०] सुरक्षा का वचन, आश्वासन या भरोसा देना। भयभीत को शरण देना। (को०)।

अभयदाता—वि० [स० अभय+दातृ] अभय देनेवाला। उ०—माडवी चित्त चातक नवाबुदवरण सरन तुलसीदास अभय-दाता।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७४।

अभयदान—सज्ञा पुं० [स०] भय से बचाने का वचन देना। निर्भय करना। शरण देना। रक्षा करना। उ०—नरहरि देखि हर्ष मन कीन्हो। अभयदान प्रहलादहि दीन्हो।—सूर० ७।२।

क्रि० प्र०—देना।

अभयदानी—वि० [सं० अभयदानिन्] अभय देनेवाला। उ०—गाइ द्विजराज तियकाज न पुकार लाजे, भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि।—राम च०, पृ० ६२।

अभयपत्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ सुरक्षा के आश्वासन का लिखित पत्र या अभिलेख [को०]।

अभयपद—सज्ञा पुं० [सं० अभयपद] निर्भय पद। मोक्ष। मुक्ति। उ०—पिता वचन खडै सो पापी, सोइ प्रहलादहि कीन्हो। निकसे खभ बीच तें नरहरि, ताहि अभयपद दीन्हो।—सूर० १।१०४।

अभयप्रद—वि० [सं०] भय से विमुक्ति का आश्वासन देनेवाला। अभय देनेवाला (को०)।

अभयमुद्रा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक तात्रिक मुद्रा। २ भय से विमुक्ति का भाव व्यक्त करनेवाला हाथ का एक सकेत [को०]।

अभययाचना—सज्ञा स्त्री० [स०] भय से रक्षा करने की प्रार्थना। अभय की भीख [को०]।

अभयवचन—सज्ञा पु० [सं०] भय से बचाने की प्रतिज्ञा। रक्षा का वचन।

क्रि० प्र०—देना।

अभयवन—सज्ञा पु० [सं०] वह वन जिसे काटने की आज्ञा न हो। रक्षित वन।

अभयवनपरिग्रह—सज्ञा पु० [स०] रक्षित वन सबधी राजनियम का भग या विघात। जैसे, उसमे घुसना, पेड काटना, लकडी तोडना आदि।

अभया¹—वि० [सं०] निर्भया। बेडर की। निडर।

अभया²—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की हरीतकी या हड जिसमे पाँच रेखाएँ होती हैं। उ०—अभया सोठ चिरायत कना। सोवर मिर्चहि चूरन बना।—इद्रा०, पृ० १५१। २ दुर्गा का एक स्वरूप (को०)।

अभर(पु)—वि० [स० अ=अति+भर=भार] दुर्वह। न ढोने योग्य। उ०—भाई रे गैया एक बिरचि दियो है भार अभर भो भाई। नौ नारी को पानि पियति है तृपा तऊ न बुताई।—कबीर (शब्द०)।

अभरन¹(पु)—सज्ञा पुं० [सं० आभरण] दे० 'आभरण'। उ०—इतनो सुनत मगन ह्वै रानी बोलि लए नँदराई। सूरदास कचन के अभरन लै झगरिनि पहिराई।—सूर० १०।१६।

अभरन²(पु)—वि० [सं० अ+हिं० भरम=मान प्रतिष्ठा] अपमानित। दुर्दशाग्रस्त। उ०—उस बात की कसक हमारे मन से नही जाती जो बलराम ने तुम्हे अभरन किया था।—लल्लू० (शब्द०)।

अभरम¹(पु)—वि० [सं० अ+भ्रम, हिं० भरम] १ भ्रम न करनेवाला। अभ्रात। अचूक। २ नि शक। निडर। उ०—कृतवर्मा भट चल्यौ अभरमा कचन बरमा।—गोपाल० (शब्द०)।

अभरम²—क्रि० वि० नि सदेह। बिना सशय। निश्चय।

अभरी(पु)†—सज्ञा स्त्री० [सं० अ+हिं० भरी] परिपूर्णता। उ०—अभरी थावै आथ सु चित सरसावै चाव।—बाँकीदास ग्र०, भा० १, पृ० ५०।

अभर्तृका—वि० स्त्री० [सं०] १ अविवाहिता कुमारी। २ पतिविहीन। विधवा [को०]।

अभर्म(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अभरम'। उ०—राम कह्यो जो तुम चह्यो यह दुर्लभ वर पर्म। पै मेरे सतसग ते होइहि सत्य अभर्म।—गोपाल० (शब्द०)।

अभल(पु)—वि० [सं० अ+हिं० भल=भला] अश्रेष्ठ। बुरा। खराब।

अभव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ न होना अनस्तित्व। २ नाश। प्रलय। ३ निर्वाण। मोक्ष (को०)।

अभव[2]—वि० जो उत्पन्न न हो। अजन्मा [को०]।

अभव्य[1]—वि० [सं०] १ न होने योग्य। २ विलक्षण। अदभुत। अनहोना। ३ अमागलिक। अशुभ। बुरा। अभागा। ४ अशिष्ट। वेहूदा। भद्दा। थोडा।

अभव्य[2]—संज्ञा पुं० जैन शास्त्रानुसार जीव, जो कभी मोक्ष नही प्राप्त कर सकते।

अभाऊ(पु)—वि० [सं० अ+भाव] १ जो न भावे। जो अच्छा न लगे। उ०—भइ अज्ञा को भाँट अभाऊ। बाएँ हाथ देइ बरम्हाऊ।—जायसी ग्र०, पृ० ११४। २ जो न सोहे। अशोभित। उ०—काढहु मुद्रा फटिक अभाऊ। पहिरहु कु डल कनक जडाऊ।—जायसी (शब्द०)।

अभाग[1]—वि० [सं०] १ विना भाग का। विना हिस्से का। २ अविभक्त।

अभाग[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभाग्य'। उ०—सपनेहु दोस कलेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू।—मानस, २।२६०।

अभागा—वि० [सं० अभाग्य] [स्त्री० अभागिन्, अभागिनी] मंदभाग्य। भाग्यहीन। प्रारव्धहीन। वदकिस्मत। उ०—(क) अति खल जे विषई वक कागा। एहि सर निकट न जाइ अभागा।—मानस, १।३८। (ख) कैसे तू अभागा यहाँ पहुँचा है मरने ?—लहर, पृ० ७२।

अभागी—वि०[सं०अभागिन्][वि० स्त्री० अभागिनी] १ जिसे कुछ भाग न मिले। जिसे हिस्सा न मिले। २ भाग्यहीन। वदकिस्मत। उ०—करनु राजु लका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी।—मानस, ५।५३।

अभाग्य[1]—वि० [सं०] अभागवाला। भाग्यहीन। अभागा [को०]।

अभाग्य[2]—सं० पु० [सं०] प्रारव्धहीनता। दुर्दैव। बुरा दिन। वदकिस्मती। उ०—मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहि हौं हरि पद कमल विछोही।—मानस, ६।९८।

अभाजन—संज्ञा पुं० [सं०] अपात्र। कुपात्र। बुरा आदमी।

अभाजै(पु)—वि० [सं० अविभाजित] जो विभक्त न हो। अखडित। समूचा पूर्ण। उ०—अभाजै सी रोटली कागा ले जाइला। पूछौ म्हारा गुरू नैं कहाँ वैसि खाइला।—गोरख०, पृ० १२८।

अभाय(पु)—संज्ञा पु० [सं० अभाव] भावशून्यता। अनस्तित्व। असत्ता। उ०—त्यों ही कछु घूमि भूमि वेसुध गए कै हाय, पाय परे उखरि अभाय मुख छायो है।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११६।

अभार(पु)—वि०[हिं०] दे० 'अभर'। उ०—दैव दीन्ह सवु मोहि अभारू। मोरे नीति न धरम विचारू।—मानस, २।२६८।

अभाव[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ असत्ता। अनस्तित्व। नेस्ती। अविद्यमानता। न होना। २ आधुनिक नैयायिको के मत के अनुसार वैशेषिक शास्त्र मे सातवाँ पदार्थ।

विशेष—कणादकृत सूत्रग्र थ मे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय, ये छ पदार्थ ही अभाव' माने गए हैं। अभाव पाँच प्रकार का है, यथा (क) प्रागभाव=जो किसी क्रिया और गुण के पहले न हो, जैसे, घडा वनने के पहले न था। (ख) प्रध्वसाभाव=जो एक वार होकर फिर न रहे, जैसे 'घडा वन कर टूट गया। (ग अन्योन्याभाव=एक पदार्थ का दूसरा पदार्थ न होना, जैसे, घोडा वैल नही है और वैल घोडा नही है। (घ) अत्यताभाव=जो न कभी था, न है और न होगा, जैसे, आकाशकुसुम, वध्या का पुत्र। और (च) ससर्गाभाव=एक वस्तु के सवध मे दूसरे का अभाव, जैसे, घर मे घोडा नहीं है। २ त्रुटि। टोटा। कमी। घाटा। जैसे, राजा के घर मे द्रव्य का कौन अभाव है। उ०—अपने अभाव की जडता मे वह रह न सकेगा कभी मगन।—कामायनी, पृ० १५१। ३. नाश। मृत्यु [को०]। लोप। अतरिक्ष। अतर्धान [को०]।

अभाव[2]—वि० भावरहित। स्नेहरहित। लोप। अतरिक्ष। अतर्धान (को०)।

अभाव[3](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ=बुरा+भाव] कुभाव। दुर्भाव। विरोध। उ०—हम तिनको वहु भाँति खिझावा। उनके कवहुँ अभाव न आवा।—विश्राम (शब्द०)।

अभावन[1](पु)—वि० [सं० आ+भावन] सुदर। रुचिर। रुचिकर।

अभावन[2](पु)—वि० [सं० अ=नहीं+भावन] असुदर। अरुचिकर। अप्रिय।

अभावना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विवेक या निर्णय का अभाव। २ धार्मिक धारणाओ का अभाव (को०)।

अभावनीय—वि० [सं०] १ जो भावना मे न आ सके। अचिंतनीय। २ अशोभनीय। उ०—इसी असामजस्य के कारण वह ऐसे ऐसे अभावनीय कार्य कर वैठता है।—मृग० पृ० ५५।

अभावपदार्थ—संज्ञा पु० [सं०] भावशून्य पदार्थ। सत्ताहीन पदार्थ। असत् पदार्थ।

अभावप्रमाण—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय मे किसी किसी आचार्य के मत से एक प्रमाण जिसमे कारण के न होने से कार्य के न होने का ज्ञान हो। गौतम ने इसको प्रमाण मे नही लिया है।

अभावित—वि० [सं०] जिसकी भावना न की गई हो।

क्रि० प्र०—रहना।

अभावी—वि०[सं० अभाविन्][वि० स्त्री० अभाविनी] १. जिसकी स्थिति की भावना न हो सके। २ न होनेवाला।

अभाव्य—वि० [सं०] दे० 'अभावी' [को०]।

अभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] भाषण का अभाव। न वोलना। मौन। उ०—मैं नही हूँ यो अभाषण योग्य।—साकेत, पृ० १८६।

अभाषित—वि० [सं०] न कहा हुआ। अकथित [को०]।

अभाष्य—वि० [सं०] न वोलने योग्य वात या व्यक्ति। उ०—लोग उन्हे अस्पृश्य और अभाष्य मान उनसे उपेक्षा ही करते रहे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४२।

यौ०—अभाष्यभाषण = न कहने योग्य बातें कहना या अभाष्य व्यक्ति से बातें करना।

अभास(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आभास'। उ०—कहु हनुमत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास। तव मूरति विधु उर बसति, सोइ स्यामता अभास।—मानस, ६।१२।

अभासना(पु)—क्रि० अ० [सं० आभास, हिं० अभास से नाम०] भासना। दिखाई देना। जान पड़ना। उ०—कंकन, किंकिनि भूषन जिते। मोहि श्रीकृष्ण अभासत तिते।—नंद ग्र० पृ० २६६।

अभितर(पु)—क्रि० वि० [सं० अभ्यन्तर, प्रा० अब्भितर] दे० 'अभ्यंतर'। उ०—उत्तम पुरुष की दशा ज्यों किसमिस दाख। बाहिज अभितर विरागी मृदु अंग है।—सुंदर ग्रं०, पृ० १००।

अभि—उप० [सं०] एक उपसर्ग जो शब्दों में लगकर उनमें इन अर्थों की विशेषता उत्पन्न करता है—१ सामने। जैसे, अभ्युत्थान। अभ्यागत। २ बुरा। जैसे, अभियुक्त। ३ अधिक। जैसे, अभिलाषा। ४ समीप। जैसे, अभिसारिका। ५ बारबार, अच्छी तरह। जैसे, अभ्यास। ६ दूर। जैसे, अभिहरण। ७ ऊपर। जैसे, अभ्युदय।

अभिअंतर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्यंतर'। उ०—प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई।—मानस, ७।४९।

अभिकंपन—संज्ञा पुं० [सं० अभिकम्पन] तीव्र कंपन। बुरी तरह काँपना [को०]।

अभिक[1]—वि० [सं०] कामुक। कामी। विषयी।

अभिक[2]—संज्ञा पुं० कामुक व्यक्ति वा प्रेमी जन [को०]।

अभिकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रभाव। २ आकर्षण। खिंचाव [को०]

अभिकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] कृषि का एक उपकरण। खेती का एक औजार [को०]।

अभिकांक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिकाङ्क्षा] चाह। इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभिकांक्षी—वि० [सं० अभिकाङ्क्षिन्] इच्छुक। अभिलाषी। मनोरथवाला [को०]।

अभिकाम[1]—वि० [सं०] १ इच्छुक। अभिलाषी। २ प्रेमी। ३ कामुक [को०]।

अभिकाम[2]—संज्ञा पुं० १ प्रेम। प्यार। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभिकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छंद जिसमें १०० वर्ण या मात्राएँ होती हैं [को०]।

अभिक्रंद—संज्ञा पुं० [सं० अभिक्रन्द] चिल्लाहट। गर्जन। शोर [को०]

अभिक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुविचारित आक्रमण। धावा। उ०—देखि देखि विक्रम अभिक्रम अकालिनि के कालिनि के बाद साधुवाद बहु दीन्हे हैं।—रत्नाकर, भा० २ पृ० १६२। २ आरोहण (को०)। ३ प्रारंभ। शुरुआत (को०)। प्रयत्न। चेष्टा (को०)।

अभिक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेना का शत्रु के सम्मुख जाना। चढ़ाई। धावा। २. दे० 'अभिक्रम'।

अभिक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिक्रान्ति] दे० 'अभिक्रमण' [को०]।

अभिक्रांती—वि० [सं० अभिक्रान्तिन्] १ जो पहुँच गया हो। २. जिसने आरंभ कर दिया हो। आरंभक [को०]।

अभिक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] १ निंदा करना। कुवाच्य बोलना। २ चिल्लाना।

अभिक्रोशक—संज्ञा पुं० [सं०] १ जोर से चिल्लाने या अपशब्द कहनेवाला व्यक्ति। २ आगे आगे जोर से घोषणा करनेवाला

अभिक्षिप्त—वि० [सं०] फेंका हुआ। तिरस्कृत [को०]।

अभिख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाम। यश। कीर्ति। २ शोभा। ३ कुख्याति (को०)। ४ महात्म्य। महिमा (को०)। बुद्धि। धी (को०)। ५ नाम (को०)। ६ पुकारना। संबोधन। ७. बताना। कहना (को०)। ८ शब्द। पर्याय (को०)। व्यक्ति [को०]।

अभिख्यात—वि० [सं०] १ कीर्तिशाली। २ विख्यात। मशहूर [को०]।

अभिख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] नाम। प्रसिद्धि। यश। कीर्ति [को०]।

अभिगम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिगमन' [को०]।

अभिगमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ पास जाना। पहुँचना। २ सहवास। संभोग ३ देवताओं के स्थान को झाड़ू देकर और लीप पोत कर साफ करना। ४ समझना।

अभिगम्य—वि० [सं०] १ अभिगमन के योग्य। २ बोधगम्य [को०]।

अभिगामी—वि० [सं० अभिगामिन्] [स्त्री० अभिगामिनी] १ पास जानेवाला। २ सहवास या संभोग करनेवाला। जैसे—ऋतुकालाभिगामी।

अभिगुंजन—संज्ञा पुं० [सं० अभि + गुञ्जन] मधुर ध्वनि। रसीला स्वर।

अभिगुंजी(पु)—वि० [हिं०] अभिगुंजन करनेवाली। उ०—मधुर अधर अभिगुंजी धरैं। कान्ह मुरलिया सुर संग ररैं।—घनानंद० पृ० १८६।

अभिगुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ छिपाकर रखना। सँभालकर रखना। २ आत्मसंयमन [को०]।

अभिगूँज—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अभिगुंजन'।

अभिगोप्ता—वि० [सं० अभिगोप्तृ] छिपा रखनेवाला। बचा रखनेवाला। संरक्षणकर्ता [को०]।

अभिग्रस्त—वि० [सं०] शत्रु द्वारा दबाया हुआ। आक्रांत [को०]।

अभिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १ लेना। आदान। ग्रहण। स्वीकार। २. झगड़ा। प्रहार। कलह। ३ लूट। डाका। ४ चढ़ाई। धावा। ५ चुनौती (को०)। ६ शिकायत (को०)। ७ अधिकार। शक्ति [को०]।

अभिग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी की उपस्थिति में उसकी वस्तु का अपहरण। राहजनी। लूट (को०)।

अभिघट—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जो घड़े के आकार का होता था और जिसके मुँह पर चमड़ा मढ़ा रहता था।

अभिघात—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिघातक, अभिघाती] १ चोट पहुँचना। प्रहार। मार। ताड़ना। पुरुष की दाईं ओर और स्त्री की दाईं ओर का मसा।

अभिघातक—वि० [स०] चोट पहुँचानेवाला [को०]।
अभिघातकी—वि० [स० अभिघातकिन्] दे० 'अभिघातक'।
अभिघाती—वि० [स० अभिघातिन्] [वि० स्त्री० अभिघातिनी] दे० 'अभिघातक'।
अभिघार—सज्ञा पु० [स०] १ सींचना। छिडकाव। २ घी की आहुति। ३ घी से छौंकना या बघारना। ४ घी।
अभिचर—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० अभिचारी] दास। नौकर। सेवक।
अभिचरण—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अभिचार'।
अभिचरणीय—वि० [स०] 'अभिचरण या अभिचार के योग्य [को०]।
अभिचार—सज्ञा पुं० [स०] अथर्ववेदोक्त मत्र यत्र द्वारा मारण और उच्चाटन आदि हिंसा कर्म। पुरश्चरण। २ तत्र के प्रयोग, जो छ प्रकार के होते हैं—मारण, मोहन, स्तमन विद्वेषण, उच्चाटन और वशीकरण। स्मृति मे इन कर्मों का उपपातको मे माना गया है। उ०—उसकी आँखो मे अभिचार का सकेत है, मुस्कुराहट मे विनाश की सूचना है।—स्कद०, पृ० २६।
अभिचारक[1]—सज्ञा पु० [स०] यत्र मत्र आदि द्वारा मारण, उच्चाटन आदि कर्म।
अभिचारक[2]—वि० यत्र मत्र द्वारा उच्चाटन आदि करनेवाला।
अभिचारी—वि० [स० अभिचारिन्] [वि० स्त्री० अभिचारिणी] दे० 'अभिचारक'।
अभिज—वि० [स०] चारो ओर होनेवाला [को०]।
अभिजन—सज्ञा पु० [स०] १ कुल। वश। २ परिवार। ३. जन्मभूमि। वह स्थान जहाँ अपना तथा पिता, पितामह आदि का जन्म हुआ हो। ४ वह जो घर मे सबसे बडा हो। घर का अगुआ। कुल मे श्रेष्ठ व्यक्ति। ५ ख्याति। कीर्ति। ६ परिजन।
अभिजनन—सज्ञा पु० [स० अभि + जनन] प्रादुर्भाव। उत्पत्ति। उ०—विश्व के अधिपति ने अविच्छेद्य समन्वय का अभिजनन किया।—सपूर्णा० अभि ग्र०, पृ० १११।
अभिजय—सज्ञा स्त्री० [स०] पूर्ण रूप से विजय। पूरी जीत [को०]।
अभिजात[1]—वि० [स०] १ अच्छे कुल मे उत्पन्न। कुलीन। उ०—अत्याचारियों की नृशमता से यदुकुल के अभिजात वर्ग ने व्रज को सूना कर दिया।—ककाल, पृ० १४८। २ बुद्धिमान्। पडित। ३ योग्य। उपयुक्त। ४ मान्य। पूज्य। ५ सुदर। मनोहर।
अभिजात[2]—सज्ञा पु० १ उच्चवश। कुलीनता। २ जातकर्म [को०]।
अभिजाति—सज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँचे कुल मे जन्म। कुलीनता [को०]।
अभिजित[1]—वि० [स० अभिजित्] १ विजयी। २ अभिजित् नक्षत्र मे उत्पन्न (को०)।
अभिजित[2]—सज्ञा पुं० [स०] १ दिन का आठवाँ मुहूर्त। दोपहर के पौने बारह बजे से लेकर साढे बारह बजे तक का श्राद्ध के लिये उपयुक्त समय। २. एक नक्षत्र जिसमे तीन तारे मिलकर सिंघाडे के आकार के होते हैं। ३ उत्तराषाढ नक्षत्र के अतिम १५ दड तथा श्रवण नक्षत्र के प्रथम चार दड। उ०—नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता।—मानस, १।१९१। ४ विष्णु (को०)। ५ एक यज्ञ (को०)। ६ एक लग्न का नाम (को०)।
अभिज्ञ—वि० [सं०] जानकार। परिचित। विज्ञ। २. निपुण कुशल।
अभिज्ञता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ जानकारी। विज्ञता। २ निपुणता। कुशलता।
अभिज्ञा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पहचानना। जानना। २ याद करना। स्मरण आना। ३ अलौकिक क्षमता या शक्ति। इसके पांच भेद हैं—कोई भी रूप धारण करना, दूर की बात सुनना, दूरदर्शन, अन्य के विचार और स्थिति को जान लेना [को०]।
अभिज्ञात—सज्ञा पु० [स०] १ पुराण के अनुसार शाल्मली द्वीप के सात वर्षों या खडो मे से एक। २ जाना समझा।
अभिज्ञातार्थ—सज्ञा पु० [स०] न्याय मे एक प्रकार का निग्रह स्थान। विवाद या तर्क मे वह अवस्था जब वादी अप्रसिद्ध या शिष्ट अर्थों के शब्दो द्वारा कोई बात प्रकट करने लगे अथवा इतनी जल्दी जल्दी बोलने लगे कि कोई समझ न सके और इस कारण तर्क रुक जाय।
अभिज्ञान—सज्ञा पु० [स०] [वि० अभिज्ञात] १ स्मृति। ख्याल। २ वह चिह्न जिससे कोई वस्तु पहचानी जाय। लक्षण। पहिचान। ३ वह वस्तु जो किसी बात का स्मरण या विश्वास दिलाने के लिये उपस्थित की जाय। निशानी। सहिदानी। परिचायक चिह्न। उ०—सीता को अभिज्ञान रूप से देने के लिये राम ने हनूमान को अपनी अँगूठी दी (शब्द०)। ४ मुद्रा की छाप मुहर।
अभिज्ञानपत्र—सज्ञा पुं० स० परिचयपत्र। सिफारिशी चिट्ठी [को०]।
अभिज्ञान शाकुतल—सज्ञा पुं० [स० अभिज्ञानशाकुन्तल] महाकवि कालिदास कृत सात अको का प्रसिद्ध नाटक।
अभिज्ञापक—वि० [स०] जानकारी या सूचना देनेवाला [को०]।
अभित—अ० [स०] १ सन्निकट। २ चारो ओर से। सर्वत। ३ पूर्णत। ४ शीघ्रता से। ५ दोनो ओर से। ६ पहले और बाद मे। ७ आमने सामने से [को०]।
अभितप्त—वि० [स०] १ गर्म। जला हुआ। प्रज्वलित। २ पश्चात्तापयुक्त। अनुतप्त [को०]।
अभिताप—सज्ञा पु० [स०] १ मानसिक या शारीरिक उग्र ताप या दाह। २ प्रबल व्यग्रता, क्षोभ या वेदना [को०]।
अभिद(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अभेद्य'। उ०—अभिद अछेद रूप मम जान। जो सब घट है एक समान।—सूर० ३।१३।
अभिदर्शन—सज्ञा पु० [स०] १ देखना। २ दिखाई देना। ३ व्यक्त या प्रकट होना [को०]।
अभिद्रव—सज्ञा पुं० [स०] आक्रमण। हमला। चढाई [को०]।
अभिद्रवण—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अभिद्रव' [को०]।
अभिद्रुत—वि० [स०] आक्रात। पददलित [को०]।
अभिद्रोह—सज्ञा पुं० [स०] १ हानिकारक विरोध। २ उत्पीडन। ३ निंदा। कुत्सा। ४ क्रूरता। ५ दुख [को०]।
अभिधर्म—सज्ञा पु० [स०] बौद्धो के अनुसार परम सत्य। सर्वोच्च धर्म।
अभिधर्मपिटक—सज्ञा पु० [स०] 'त्रिपिटक'।
अभिधर्षण—सज्ञा पु० [सं०] १ भूत प्रेतो का आवेश। २ उत्पीडन। ३. किसी के विरुद्ध आघात करना [को०]।

अभिधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शब्द की तीन शक्तियों में से एक। शब्द के वाच्यार्थ को व्यक्त करने की शक्ति। शब्दों के उस अभिप्राय को प्रकट करने की शक्ति जिससे यौगिक या व्युत्पत्तिगम्य अर्थ सीधे निकलता हो। मुख्यार्थ। २ शब्द या ध्वनि। ३ नाम (को०)।

अभिधान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिधायक, अभिधेय] १ नाम। लकब। २. कथन। ३ शब्दकोश। ४. गीत। गान (को०)।

अभिधानक—संज्ञा पुं० [सं०] आवाज। शब्द। ध्वनि (को०)।

अभिधानमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] शब्दकोश [को०]।

अभिधायक—वि० [स्त्री० अभिधायिका] १ अभिधेय अर्थ का वाचक (शब्द)। २ नाम रखनेवाला। ३ कहनेवाला। ४ सूचक। परिचायक।

अभिधावक—वि० [सं०] हमला करनेवाला। आक्रमणकारी। आक्रामक [को०]।

अभिधावन—संज्ञा पुं० [सं०] चढ़ाई। आक्रमण [को०]।

अभिधेय[1]—वि० [सं०] १ अभिधा शक्ति से बोध्य (अर्थ)। प्रतिपाद्य। वाच्य। २ जिनका बोध नाम लेने से ही हो जाय। ३ नाम देने योग्य।

अभिधेय[2]—संज्ञा पुं० १ नाम। अभिधा। १ विषयवस्तु (को०)। ३ भावार्थ [को०]।

अभिध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दूसरे की वस्तु या संपत्ति की इच्छा। पराई वस्तु की चाह। २ अभिलाषा। इच्छा। लोभ।

अभिध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ अभिलाषा। इच्छा। २ प्राप्तिकामना। लोभ। ३ निंदा। ४ ध्यानमग्नता।

अभिनंदु(पु)—वि० [सं० अभिनन्द्य] अभिनंदन योग्य। उ०—को अभिनंदु रहै रन पग्ग।—पृ० रा०।

अभिनंद[1]—वि० [सं० अभिनन्द] प्रसन्न या आनंदित करनेवाला [को०]।

अभिनंद[2]—संज्ञा पुं० १ आनंद। २ स्तुति। प्रशंसा। ३ बधाई। ४ अभिलाषा। ५ स्वल्प सुख। ६ प्रोत्साहन। बढ़ावा। ७. परमात्मा का नाम [को०]।

अभिनंदन—संज्ञा पुं० [सं० अभिनन्दन] [वि० अभिनंदनीय, अभिनंदित] १ आनंद। २ संतोष ३ उत्तेजना। प्रोत्साहन। ४ आकांक्षा। इच्छा। ५ विनीत प्रार्थना। उ०—गुरु के वचन सचिव अभिनंदन। सुने भरत हिय हित जनु चंदन।—मानस, २।१७६। ६ प्रशंसा। प्रतिष्ठा। आदर। उ०—यह अवसर हमने उनके अभिनंदन के लिये उपयुक्त समझा।—संपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० (ग)।

यौ०—अभिनंदन ग्रंथ = वह ग्रंथ जो किसी व्यक्ति के महत्वपूर्ण कार्यों के प्रति आदर प्रकट करने के लिये उसके जीवन की पचासवीं या साठवीं या किसी भी जन्मतिथि पर दिया जाता है। अभिनंदनपत्र—वह आदर या प्रतिष्ठासूचक पत्र जो किसी महान् पुरुष के आगमन पर हर्ष और संतोष प्रकट करने के लिये सुनाया और अर्पण किया जाता है। (अं०) ऐड्रेस। ७ जैन लोगों के चौथे तीर्थंकर का नाम। ८ आम।

अभिनंदना(पु)—क्रि० [सं० अभिनन्दन से हिं० नाम०] सत्कृत करना। मान देना। सम्मानित करना।

अभिनंदनीय—वि० [सं० अभिनन्दनीय] वंदनीय। प्रशंसा के योग्य। उ०—मेरे हित है हित यही स्पृश्य, अभिनंदनीय।—अपरा, पृ० १८१।

अभिनंदित—वि० [सं० अभिनन्दित] वंदित। प्रशंसित। उ०—लोगों ने साधु साधु कहकर उसे अभिनंदित किया।—इंद्र०, पृ० १२८।

अभिनंदी—वि० [सं० अभिनन्दिन्] सम्मान करनेवाला। अभिनंदनकर्ता [को०]।

अभिनंद्य—वि० [सं० अभिनन्द्य] अभिनंदन के योग्य। अभिनंदनीय [को०]।

अभिन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अभिन्न'। उ०—भिन भिन अभिन बाणि मुख भाखि।—वेलि०, दू० १६८।

अभिनय—संज्ञा पुं० [सं० वि० अभिनीति, अभिनेय] दूसरे व्यक्तियों के भाषण तथा चेष्टा को कुछ काल के लिये धारण करना। नाट्यमुद्रा। कालकृत अवस्थाविशेष का अनुकरण। स्वाँग। नकल। नाटक का खेल।

विशेष—इसके चार विभाग हैं—(क) आंगिक, जिसमें केवल अंगभंगी वा शरीर की चेष्टा दिखाई जाय। (ख) वाचिक, जिसमें केवल वाक्यों द्वारा कार्य किया जाय। (ग) आहार्य, जिसमें केवल वेश या भूषण आदि के धारण की ही आवश्यकता हो, बोलने चालने का प्रयोजन न हो। जैसे, राजा के आस पास पगड़ी आदि बाँध कर चोबदार और मुसाहिबों का चुपचाप खड़ा रहना। (घ) सात्विक, जिसमें, स्तंभ, स्वेद, रोमांच और कंप आदि अवस्थाओं का अनुकरण हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—अभिनय करना = नाचना कूदना।

यौ०—अभिनयाचार्य = नृत्यकला का शिक्षक। नृत्यकलाविद्। अभिनयविद्या = नृत्यकला। नाट्य कला।

अभिनव—वि० [सं०] १ नया। नवीन। उ०—केहरि किशोर से अभिनव अवयव प्रस्फुटित हुए थे।—कामायनी, पृ० २७७। २ ताजा। ३ अनुभवहीन। अतिनूतन [को०]।

अभिनवगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वनिशास्त्र के एक प्रथित व्याख्याकार। ध्वन्यालोक की टीका लोचन के लेखक।

अभिनहन—संज्ञा पुं० [सं०] एक पट्टी जो आँखों पर बाँधी जाती है। २ अँधौटी। अनवट। ३ अंधा। दृष्टिहीन व्यक्ति [को०]।

अभिनासी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविनाशी'। उ०—हस तो अभिनासी, काल तो हताहत, सुन्य तो परम सुन्य।—रामानंद०, पृ० २९।

अभिनिधन[1]—वि० [सं०] मरणासन्न। जिसका अंत निकट हो [को०]।

अभिनिधन[2]—संज्ञा पुं० सामवेद की वे ऋचाएँ जिनका मरणासन्न के निकट गान होता है।

अभिनियोग—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य में मनोयोगपूर्वक संलग्नता। दत्तचित्तता [को०]।

अभिनिर्माण—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रस्थान। कूच। २ आक्रमण। शत्रु के विरुद्ध बढ़ाव या चढ़ाई [को०]।

अभिनिर्वृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्यपूर्ति। कार्यसंपन्नता।

अभिनिविष्ट—वि० [सं०] १ धँसा हुआ। पैठा हुआ। गड़ा हुआ। २ बैठा हुआ। उपविष्ट। ३ एक ही ओर लगा हुआ। अनन्य मन से अनुरक्त। लिप्त। मग्न।

अभिनिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिनिविष्ट, अभिनिवेशित] १. प्रवेश। पैठ। गति। २ मनोयोग। किसी विषय में गति। लीनता। अनुरक्ति। एकाग्रचिंतन। ३ दृढ संकल्प। तत्परता। ४ योगशास्त्र के पाँच क्लेशों में से अंतिम। मरणभय से। उत्पन्न क्लेश। मृत्युशंका। ५ दर्प। घमंड। शान। नाक। [को०]। ६ उत्कट लालसा। तीव्र आकांक्षा [को०]।

अभिनिवेशित—वि० [सं०] प्रविष्ट।

अभिनिष्क्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाहर जाना। बहिर्गमन। २ बौद्धों के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहणार्थ गृह का परित्याग।

अभिनिष्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णता। समाप्ति। अंत। परिपूर्णता निष्पन्नता [को०]।

अभिनिष्पन्न—वि० [सं०] पूर्ण। समाप्त। सिद्ध [को०]।

अभिनीत—वि०[सं०] १ निकट लाया हुआ। २ पूर्णता को पहुँचाया हुआ। सुसज्जित। अलंकृत। ३ युक्त। उचित। न्याय्य। ४ अभिनय किया हुआ। खेला हुआ (नाटक)। नकल करके दिखलाया हुआ। ५. विज्ञ। धीर। ६ क्रुद्ध (को०)। ७ दयालु (को०)। ८ स्वीकृत (को०)।

अभिनेतव्य—वि० [सं०] नाटक द्वारा प्रस्तुत करने योग्य। अभिनय के योग्य [को०]।

अभिनेता—वि० [सं०अभिनेतृ] अभिनय करनेवाला। स्वाँग दिखानेवाला। नाटक का पात्र। (अं०) ऐक्टर।

अभिनेत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक में अभिनय करनेवाली स्त्री। नटी। (अं०) ऐक्ट्रेस।

अभिनेय—वि० [सं०] अभिनय करने योग्य। खेलने योग्य (नाटक)।

अभिनै⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिनय'। उ०—नटवा निपट निपुन रासमंडल मैं अभिनै भेद बतावै, गीत रीति परवान सों। —घनानंद, पृ० ३६८।

अभिन्न—वि० [सं०][संज्ञा अभिन्नता]१ जो भिन्न न हो। अपृथक्। एकमय। २ अप्रभावित (को०)। ३ जो बदला न हो। अपरिवर्तित (को०)। ४ अविभक्त। पूर्ण, जैसे, संख्या (को०)। ५ मिला हुआ। सटा हुआ। लगा हुआ। संबद्ध।

यौ०—अभिन्नपुट = नया पत्ता। अभिन्नहृदय = घनिष्ठ।

अभिन्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भिन्नता का अभाव। अपृथकत्व। २ लगावट। संबंध। ३ मेल।

अभिन्नपद—संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष अलंकार का एक भेद। अभंगपद श्लेष।

अभिन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] सन्निपात का एक भेद जिसमें नींद नहीं आती, देह काँपती है, चेष्टा बिगड़ जाती है और इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और सिर के बाल बीच से अलग अलग हो जाते हैं।

अभिपतन—संज्ञा पुं०[सं०] १ समीप आना। २. आक्रमण। प्रहार। ३. प्रस्थान [को०]।

अभिपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ समीप आना। २ पूर्ति। ३ रक्षण करना। ४ शीघ्र उपपत्ति [को०]।

अभिपन्न—वि० [सं०] १ निकट गया या पहुँचा हुआ। २ भगोड़ा। ३ पराभूत या आश्रित। ४ विपत्तिग्रस्त। अभागा। ५ दोषी। ६ स्वीकृत। ७ मृत। ८ रक्षित। ९ दूर किया हुआ [को०]।

अभिपुष्प¹—वि० [सं०] पुष्प से आवृत। फूलों से ढका, जैसे, वृक्ष।

अभिपुष्प²—संज्ञा पुं० सुंदर पुष्प। नायाब फूल [को०]।

अभिप्रणय—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेम। कृपा। अनुग्रह [को०]।

अभिप्रणयन—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कार। वेदविधि से अग्नि आदि का संस्कार।

अभिप्रपन्न—वि० [सं०] संप्राप्त। उपनत [को०]।

अभिप्राणन—संज्ञा पुं०[सं०] साँस बाहर छोड़ना। फूँक मारना [को०]।

अभिप्राय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिप्रेत] १ आशय। मतलब। अर्थ। तात्पर्य। गरज। प्रयोजन। उ०—उसने सशंक हँसकर कुछ अभिप्राय से पूछा।—ठंढ०, पृ० १००। २ अर्थ। माने। मतलब। जैसे, शब्द या वाक्य का (को०)। ३. राय। विचार। सलाह (को०)। ४ संबंध। लगाव (को०)। ५ विष्णु का एक नाम (को०)।

अभिप्रेत—वि०[सं०] १ इष्ट। अभिलषित। चाहा हुआ। २ प्रिय। ३. स्वीकृत।

अभिप्रोक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञादि में प्रयुक्त विभिन्न पात्रों और सामानों का जलादि द्वारा सिंचन [को०]।

अभिप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपद्रव। उत्पात। फसाद। २ गवामयन यज्ञ में प्रति मास का १ चमाश जो छ छ दिनों का होता था और जिनमें से प्रत्येक का अलग अलग नाम होता था। स्तोम आदि का पाठ जो एक अभिप्लव में होता था। ४ उमड़कर बहना। बाढ़। ५ प्राजापत्य आदित्य।

अभिप्लुत—वि० [सं०] १ आवृत। आच्छादित। २ युक्त [को०]।

अभिभव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिभावुक, अभिभावी, अभिभूत] १ पराजय। २ तिरस्कार। अनादर। ३ अनहोनी बात। विलक्षण घटना। ४ प्राबल्य। अधिकता [को०]।

अभिभाव—वि० [सं०] दे० 'अभिभावक'।

अभिभावक—वि० [सं०] १ अभिभूत वा पराजित करनेवाला। तिरस्कार करनेवाला। २ जड़ अर्थात् स्तंभित कर देनेवाला। ३ वशीभूत करनेवाला। दबाव में लानेवाला। ४ रक्षक। मरपरस्त। उ०—अभिभावक अब नहीं हमारे रखते स्नेह सहित मुझको।—प्रेम०, पृ० १६। ५ आक्रमण करनेवाला (को०)।

अभिभावन—वि० [सं०] वशीभूत करनेवाला। मानेवाला। हर्षित। उ०—चले चतुर्दिक् हन अभिभावन।—आराधना, पृ० २६।

अभिभावी—वि० [सं० अभिभाविन्] दे० 'अभिभावक'।

अभिभावुक—वि० [सं०] दे० 'अभिभावक'।

अभिभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रवचन। भाषण। २ बोलना। भाषण देना। ३ आयोजन आदि में सर्वमुख्य भाषण। ४ लिखित भाषण [को०]।

अभिभूत—वि० [सं०] १ पराजित। हराया हुआ। २ पीड़ित। उ०—जब चले थे तुम यहाँ से दूत। तब पिता क्या थे अधिक

अभिभूत।—साकेत, पृ० १७१। ३. जिस पर प्रभाव डाला गया हो। जो वश मे किया गया हो। वशीभूत। ४. विचलित। व्याकुल। किंकर्तव्यविमूढ़।

अभिभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभिभव। पराजय। हार।

अभिमंडन—संज्ञा पुं० [सं० अभिमण्डन] [वि० अभिमंडित] १ भूषित करना। सजाना। सँवारना। २ पक्ष का प्रतिपादन या समर्थन।

अभिमंता—वि० [सं० अभिमन्तृ] १ डींग हाँकनेवाला आत्मश्लाघक। २ अहंमन्य। सर्वज्ञता का दंभी (को०)।

अभिमंत्रण—संज्ञा पुं० [सं० अभिमन्त्रण] [स्त्री० अभिमंत्रणा] १ मंत्र-द्वारा संस्कार। २ आवाहन।

अभिमंत्रित—वि० [सं० अभिमन्त्रित] १ मंत्र द्वारा शुद्ध किया हुआ। २ जिसका आवाहन हुआ हो।

अभिमंथ—संज्ञा पुं० [सं० अभिमन्थ] एक नेत्ररोग। अभिमंथ (को०)।

अभिमत[1]—वि० [सं०] १ इष्ट। मनोनीत। वांछित। पसंद का। उ०—जो न होहिं मंगलमग सुरविधि बाधक। तौ अभिमत फल पावहिं करि स्रमु साधक।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३२। २ समन। राय के मुताबिक।

अभिमत[2]—संज्ञा पुं० १, मत। सम्मति। राय। २. विचार। ३ अभिलषित वस्तु। मनचाही बात। उ०—अभिमत दानि देवतरवर से। सेवत सुलभ सुखद हरिहर से।—तुलसी (शब्द०)। ४ इच्छा। आकांक्षा (को०)।

अभिमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अभिमान। गर्व। अहंकार। २. वेदांत के अनुसार इस प्रकार की मिथ्या अहंकार भावना कि अमुक वस्तु मेरी है। ३ अभिलाषा। इच्छा। चाह। ४ मति। राय। विचार। ५ आदर। सम्मान (को०)।

अभिमन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन के पुत्र का नाम।

विशेष—कृष्ण और बलराम की बहन सुभद्रा इसकी माता थी। महाभारत युद्ध में द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में निर्मित चक्रव्यूह का भेदन करते समय सात महारथियों ने इसे मारा था। छोटी अवस्था से ही अत्यंत बली और क्रोधी होने से इसका नाम अभिमन्यु पड़ा। महाभारत के द्रोण पर्व में इसके जन्म और निधन का सविस्तार वर्णन है।

अभिमर—संज्ञा पुं० [सं०] १ संहार। विनाश। हनन। २ युद्ध। ३ स्वपक्ष के व्यक्ति द्वारा कृत विश्वासघात। ४ कैद। ५ शेर हाथी आदि से भी भिड़ने के लिये सन्नद्ध व्यक्ति।

अभिमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीसना। चूर चूर करना। २ घस्सा। रगड़। ३. युद्ध।

अभिमर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्पर्श। संपर्क। २. प्रहार। ३. आक्रमण। ४ संभोग। ५. बलात्कार (को०)।

अभिमर्शक—वि० [सं०] अभिमर्शन करनेवाला (को०)।

अभिमर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्श'।

अभिमर्शी—वि० [सं० अभिमर्शिन्] दे० 'अभिमर्शक'।

अभिमर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्श'।

अभिमर्षक—[सं०] दे० 'अभिमर्शक'।

अभिमर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्शन'।

अभिमर्षी—वि० [सं० अभिमर्षिन्] दे० 'अभिमर्शी'।

अभिमाद—संज्ञा पुं० [सं०] नशा। मद (को०)।

यौ०—अभिमान।

अभिमान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिमानी] १. अहंकार। गर्व। दर्प। घमंड। २ स्वाभिमान ३ बुद्धि। ज्ञान(को०)। ४ प्रेम। स्नेह (को०)। ५ कामना। इच्छा (को०)। ६ प्रमाण (को०)।

अभिमानित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जिसमें अभिमान हो। २. प्रेम। स्नेह। ३ संभोग। मैथुन (को०)।

अभिमानित[2]—वि० [सं०] गर्वित। अभिमानयुक्त।

अभिमानी—वि० [सं० अभिमानिन्] [स्त्री० अभिमानिनी] १. अहंकारी। घमंडी। दर्पी। अपने को कुछ लगानेवाला। २. स्वात्माभिमानी।

अभिमुख[1]—क्रि० वि० [सं०] सामने। संमुख। समक्ष।

अभिमुख[2]—वि० [सं०] १ प्रवृत्त। तत्पर। उद्यत। सनद्ध। २. ओर। तरफ। ३ निकट होना। पहुँचने के करीब होना। ४ अनुकूल (को०)।

अभिमृष्ट—वि० [सं०] १ स्पष्ट। छुआ हुआ। थपकाया गया। २ मर्दित। ३. मिश्रित। ४. स्नात। ५ संसृष्ट। आक्रांत (को०)।

अभिम्लात—वि० [सं०] मुरझाया या कुम्हलाया हुआ (को०)।

यौ०—अभिम्लातवर्ण—फीके रंगवाला।

अभियाचा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभियाच्ञा] दे० 'अभियाचन'।

अभियाचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ माँगना। याचना। २ प्रार्थना करना (को०)।

अभियाचित—वि० [सं०] जिसकी याचना की गई हो।

अभियाता—वि० [सं० अभियातृ] १ निकट जाने या पहुँचनेवाला। २ आक्रामक। अभियान करनेवाला (को०)।

अभियान—संज्ञा पुं० [सं०] १ सामने जाना। २ आक्रमण। चढ़ाई (को०)।

अभियायी—वि० [सं० अभियायिन्] दे० 'अभियाता' (को०)।

अभियुक्त—वि० [सं०] [स्त्री० अभयुक्ता] १ जिसपर अभियोग चलाया गया हो। जो किसी मुकदमे में फँसा हो। प्रतिवादी। मुलजिम। अभियोक्ता का उलटा। २ लिप्त। संलग्न। उ०—कहाँ आज वह चितवन चेतन, श्याम मोह कज्जल अभियुक्त।—अपरा, पृ० १२०। ३ विद्वान्। विशेषज्ञ। दक्ष (को०)। ४ नियुक्त (को०)। ५ कथित (को०)। ६ उपयुक्त। ठीक (को०)। ७. अध्यवसायी (को०)। ८. आक्रांत (को०)।

अभियुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभियोग (को०)।

अभियोक्ता[1]—वि० [सं० अभियोक्तृ] [स्त्री० अभियोक्त्री] १. अभियोग उपस्थित करनेवाला। वादी। मुद्दई। फरियादी। अभियुक्त का उलटा। आरोपी। २. आक्रामक। आक्रमणकारी (को०)।

अभियोक्ता[2]—संज्ञा पुं० शत्रु। आक्रामक व्यक्ति (को०)।

अभियोग—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभियोगी, अभियुक्त, अभियोक्ता] १. अपराध की योजना। दोषारोप। उ०—काश्यप मुझपर अभियोग लगाते हैं कि मैंने जान बूझकर यह ब्रह्महत्या की।—

जनमेजय०, पृ० ५५। २ किसी के द्वारा किए गए दोष या हानि के विरुद्ध न्यायालय में निवेदन। नालिश। मुकदमा। ३ चढ़ाई। आक्रमण। ४ उद्योग। ५ मनोनिवेश। लगन।

अभियोगी¹—वि० [सं० अभियोगिन्] १ अभियोग चलानेवाला। नालिश करनेवाला। फरियादी। २ आक्रमणकारी (को०)। ३. लगनवाला।

अभियोगी²—सज्ञा पुं० वादी। मुकदमा खडा करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अभियोज्य—वि० [सं०] जिसपर दोष या आरोप लग सके [को०]।
यौ०—अभियोज्यदोष=अभियोग चलने योग्य दोष या आरोप।

अभिरंजन—सज्ञा पुं० [सं० अभिरञ्जन] रँगना [को०]।

अभिरंजित—वि० [सं० अभिरञ्जित] रँगा हुआ।

अभिरक्त—वि० [सं०] १ लगा हुआ। सबद्ध। अनुरक्त। २. मधुर। प्रिय [को०]।

अभिरक्षण—सज्ञा पुं० [सं०] पूरी तरह से रक्षा या बचाव [को०]।

अभिरक्षा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिरक्षण'।

अभिरक्षित—वि० [सं०] पूरी तरह से रक्षित या शासित [को०]।

अभिरक्ष्य—वि० [सं०] पूर्णत रक्षा या बचाव के योग्य [को०]।

अभिरत—वि० [सं०] १ लीन। अनुरक्त। २ लगा हुआ। ३ युक्त। सहित। उ०—किधौं यह राजपुत्री, वरही वरयो है, किधौं उपदि वरयो है यहि सोभा अभिरत हौं।—राम च०, पृ० ५१। ३ प्रसन्न। प्रमुदित (को०)।

अभिरति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अनुराग। प्रीति। २. लगन। लगाव। लीनता। ३ सतोष। हर्ष। आनद। ४ कार्य का अभ्यास या पेशा [को०]।

अभिरना(पु)—क्रि० अ० [सं० अभि=समुख+रण अथवा प्रा० अब्भिडइ=भिडना, मिलना] १ भिडना। लड़ना उलझना। उ०—चटपत चटकी डाँड कहूँ कोउ भरत पैतरे। लरत लराई फोऊ एक एकन सो अभिरे।—प्रेमघन०, भा० १ पृ० ११। २. टेकना। सहारा लेना। उ०—मुसकाति खरी खँभिमा अभिरी, बिरी खाति लजाति महा मन मे।—बेनी (शब्द०)।

अभिरमण—सज्ञा पुं० [सं०] सम्यक् आनद लेना या रमण करना [को०]।

अभिराज(पु)—वि० [सं० अभिराज] अत्यत शोभित। उ०—चौका बना चौगान, जगमग अभिराज हो।—धरम०, पृ० ८।

अभिराद्ध—वि० [सं०] भली भाँति समाराधित, प्रसन्न या पुष्ट किया हुआ [को०]।

अभिराम¹—वि० [सं०] [स्त्री० अभिरामा] आनददायक। मनोहर। सुखद। सुदर। प्रिय। रम्य। उ०—और देखा वह सुदर दृश्य। नयन का इद्रजाल अभिराम।—कामायनी, पृ० ४६।

अभिराम²—सज्ञा पुं० आनद। सुख। उ०—(क) तुलसी अद्भुत देवता आसा देवी नाम। सेए सोक समर्पई, विमुख भए अभिराम।—तुलसी ग्र०, पृ० १२८। (ख) तुलसिदास चाँचरि मिसहि, कहे राम गुन ग्राम। गावहि सुनहि नारि नर, पावहि सब अभिराम।—तुलसी (शब्द०)। २. शिव का एक नाम (को०)।

अभिरामिनी—वि० स्त्री० [सं०] मनोहारिणी। सुदर। उ०—हरित गभीर वानीर दुहुँ तीर वर, मध्य धारा विशद विश्व अभिरामिनी।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६३।

अभिरामी—वि० [सं० अभिरामिन्] [वि० स्त्री० अभिरामिनी] रमण करनेवाला। सचरण करनेवाला। व्याप्त होनेवाला। उ०—अखिल भुवनभर्ता, ब्रह्मरुद्रादि कर्ता, थिरचर अभिरामी, कीय जामातु नामी।—केशव (शब्द०)।

अभिरुचि—सज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यत रुचि। चाह। पसद। प्रवृत्ति। उ०—सतान स्नेह और आत्मसुख की अभिरुचि समति देती है कि इस काम से हमको भी सहायता मिलेगी।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १६३। २ प्रसिद्धि की चाह। महत्वाकाक्षा (को०)।

अभिरुत—वि० [सं०] १ ध्वनित। शब्दायमान। २ कूजित। गुजित [को०]।

अभिरुता—सज्ञा स्त्री० [सं०] सगीत मे मूर्च्छनाविशेष। इसका सरगम यो है—रे, ग, म, प, ध, नि, स। म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स।

अभिरूप¹—वि० [सं०] [स्त्री० अभिरूपा] १ प्रिय। रमणीय। मनोहर। सुदर। सुगठित। २ मिलता जुलता। अनुरूप (को०)। ३ चतुर। विद्वान्। प्रबुद्ध (को०)।

अभिरूप²—सज्ञा पुं० १ शिव। २ विष्णु। ३ कामदेव। ४ चद्रमा। ५ पडित।

अभिरोग—सज्ञा पुं० [सं०] चौपायो का एक रोग जिसमे जीभ मे कीडे पड जाते हैं।

अभिलघन—सज्ञा पुं० [सं० अभिलङ्घन] १ उछलकर अथवा कूदकर पार करना। २. सीमा, अधिकार या क्षेत्र का अतिक्रमण [को०]।

अभिलक्षित—वि० [सं०] १ चिह्नाकित। चिह्नित। २ चुना हुआ। सकेतित (को०)।

अभिलक्ष्य—वि० [सं०] विशेष लक्ष्य योग्य। ध्यान मे लेने योग्य [को०]।

अभिलषण—सज्ञा पुं० [सं०] अभिलाषा करना। चाहना। लालायित होना [को०]।

अभिलषिक रोग—सज्ञा पुं० [सं०] वात व्याधि के चौरासी भेदों मे से एक।

अभिलषित¹—वि० [सं०] वाछित। ईप्सित। इष्ट। चाहा हुआ। उ०—अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दुखद खेद।—कामायनी, पृ० १६४।

अभिलषित²—सज्ञा पुं० इच्छा। आकाक्षा। मनोरथ। उ०—अभिलषित अधूरी रह न जाय।—गीतिका।

अभिलाख(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिलाषा'। उ०—अभिलाख यह जिय पूर्ववत, धन धन्य मोहि सबही कहै।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५१४।

अभिलाखना(पु)—क्रि० स० [सं० अभिलषण] इच्छा करना। चाहना। उ०—तब सिय देखि भूप अभिलाखे। कूर कपूत मूढ मन माखे।—तुलसी (शब्द०)।

अभिलाखा(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अभिलाषा का प्रा० हिं० रूप] दे० 'अभिलाषा'। उ०—सबके हृदय मदन अभिलाखा। लता निहारि नवहिं तरुसाखा।—मानस, १।८५।

अभिलाखी(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अभिलाषी'।

अभिलाप--संज्ञा पुं० [सं०] १ शब्द। कथन। वाक्य। २ मन के संकल्प का कथन या उच्चारण। ३ वर्णन। भाषण (को०)।

अभिलाव--संज्ञा पुं० [सं०] सफल काटना। लवना [को०]।

अभिलाष--संज्ञा पुं० [सं०][वि० अभिलाषक, अभिलाषी, अभिलाषुक, अभिलषित] १ इच्छा। मनोरथ। कामना। चाह। उ०--भाग छोट अभिलाष बड करौं एक विश्वास। पैहैं सुख सुनि सुजन जन खल करिहैं उपहास।--मानस १।८। २ लोभ। ३ वियोग। शृंगार के अंतर्गत दस दशाओं में से एक। प्रिय से मिलने की इच्छा।

अभिलाषक--वि० [सं०] इच्छा करनेवाला। आकांक्षा करनेवाला।

अभिलाषना--क्रि० स० [सं० अभिलषण] इच्छा करना। चाहना। उ०--जब हिरनाच्छ जुद्ध अभिलाष्यौ, मन मैं अति गरवाऊ।--सूर० १०।२२१।

अभिलाषा--संज्ञा स्त्री० [सं०] इच्छा। कामना। आकांक्षा। दे० 'अभिलाष'। उ०--भूलता ही जाता दिन रात सजल अभिलाषा कलित अतीत।--कामायनी, पृ० ४६।

अभिलाषी--वि० [सं० अभिलाषिन्] [स्त्री० अभिलाषिनी] इच्छा करनेवाला। आकांक्षी। इच्छुक।

अभिलाषुक--वि० [सं०] दे० 'अभिलाषक'।

अभिलास(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिलाष'।

अभिलासा(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अभिलाषा'।

अभिलासी(पु)--वि०[सं० अभिलाषिन्] दे० 'अभिलाषी'। उ०--को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी? कैसे बरन, भेष है कैसो, किहिं रस मैं अभिलासी।--सूर०, १०।४२४६।

अभिलिखित[1]--वि० [सं०] लिखा हुआ। खोदा हुआ [को०]।

अभिलिखित[2]--संज्ञा पुं० १ लिखना। लेखन। २ हस्ताक्षर। ३. लिखित मसविदा [को०]।

अभिलीन--वि० [सं०] १ भली भाँति लीन। २ अनुरक्त। आसक्त। ३ आवेष्टित [को०]।

अभिलुलित--वि० [सं०] १ क्षोभित। चचल। अस्थिर। २. विक्रीडित। क्रीडायुक्त [को०]।

अभिलूता--संज्ञा स्त्री० [सं०] मकडी का एक भेद [को०]।

अभिलेख--संज्ञा पुं० [सं०] लेख। प्रामाणिक लेख। शिला या धातुपटल पर खोदा लेख।

अभिलेखन--संज्ञा पुं० [सं०] १ लिखना। खोदना या उत्कीर्ण करना [को०]।

अभिलेखित[1]--संज्ञा पुं० [सं०] प्रामाणिक रूप से लिखित पटल या पत्र आदि [को०]।

अभिलेखित[2]--वि० लिखित। लिपिबद्ध [को०]।

अभिवचन--संज्ञा [सं० अभिवञ्चन] ठगना।

अभिवचित--वि० [सं० अभिवञ्चित] ठगा गया। छला गया। धोखा खाया हुआ [को०]।

अभिवदन--संज्ञा पुं० [सं० अभिवन्दन] [वि० अभिवदनीय, अभिवदित, अभिवद्य] १ प्रणाम। नमस्कार। सलाम। बदगी। २ स्तुति।

अभिवदना--संज्ञा स्त्री० [सं० अभिवन्दना] १ नमस्कार। प्रणाम। २ स्तुति। प्रशसा।

अभिवदनीय--वि० [सं० अभिवन्दनीय] १ प्रणाम करने योग्य। नमस्कार करने योग्य। २ प्रशसा करने योग्य। स्तुति करने योग्य।

अभिवदित--वि० [सं० अभिवन्दित] प्रणाम किया हुआ। नमस्कार किया हुआ। २ प्रशसित। स्तुत्य।

अभिवद्य--वि० [सं० अभिवन्द्य] दे० 'अभिवदनीय'।

अभिवचन--संज्ञा पुं० [सं०] वादा। इकरार। प्रतिज्ञा।

अभिवदन--संज्ञा पुं० [सं०] १ भाषण। कथन। २ नमन। प्रणाम। नमस्कार [को०]।

अभिवद्य--वि० [सं०] कथन या निर्वचन योग्य [को०]।

अभिवर्तन--संज्ञा पुं० [सं०] १ बढना (किसी ओर)। २ हमला करना। आक्रमण। [को०]।

अभिवाछा--संज्ञा स्त्री० [सं० अभिवाञ्छा] अभिलाषा। लालसा। इच्छा [को०]।

अभिवाछित--वि० [सं० अभिवाञ्छित] अभिलषित। चाहा हुआ।

अभिवाद--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिवादन' [को०]।

अभिवादक--वि० [सं०] [स्त्री० अभिवादिका] १ नमस्कार करनेवाला। २ विनीत। आदरान्वित। विनम्र [को०]।

अभिवादन--संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रणाम नमस्कार। वंदना। २ स्तुति। ३ अतिरजना। अतिवाद। डीग [को०]।

अभिवादयिता--वि० [सं० अभिवादयितृ] दे० 'अभिवादन'।

अभिवादित--वि० [सं०] वदित। नमस्कृत।

अभिवादी--वि० [सं० अभिवादिन्] [वि० स्त्री० अभिवादिनी] दे० 'अभिवादक'।

अभिवाद्य--वि० [सं०] नमस्कार योग्य। अभिवादनीय [को०]।

अभिवास--संज्ञा पुं० [सं०] चादर। आवरण। वस्त्राच्छादन [को०]।

अभिवासन--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिवास'।

अभिविनीत--वि० [सं०] १ सुशिक्षित। २ व्यवहारकुशल। शिष्ट। सुशील। ३ शुद्ध। पवित्र [को०]।

अभिविमान--वि० [सं०] दिक्कालातीत। निस्सीम आकार का (परमात्मा की एक उपाधि)।

अभिविश्रुत--वि० [सं०] बडी ख्याति या प्रसिद्धिवाला (को०)।

अभिवृद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं०] सफलता, उन्नति या समृद्धि [को०]। उ०--ज्ञान विज्ञान से मनुष्य की अभिवृद्धि हो सकती है, विकास नही हो सकता।--हिं० आ० प्र०, पृ० २०६।

अभिव्यजक--वि० [सं० अभिव्यञ्जक] प्रकट करनेवाला। प्रकाशक। सूचक। बोधक।

अभिव्यंजन--संज्ञा पुं० [सं० अभिव्यञ्जन] [स्त्री० अभिव्यजना] प्राकट्य। अभिव्यक्ति। प्रकाश। विकास।

अभिव्यजना--संज्ञा स्त्री० [सं० अभिव्यञ्जना] मन के भावों का शब्दों में चित्रण या रूपविधान। दे० 'अभिव्यजन'।

अभिव्यंजनावाद—संज्ञा पुं० [सं० अभिव्यञ्जना+वाद, (अं० एक्सप्रेशनिज्म)] योरप मे प्रचलित चित्रकला, साहित्य आदि का वह सिद्धात जिसमे बाह्य वस्तु या विषय को कला का गौण और अपनी या पात्रो की आतरिक अनुभूतियो के प्रतीकात्मक चित्रण को प्रधान अग माना जाता है।

विशेष—इसमे अभिव्यजना ही सब कुछ है, जिसकी अभिव्यजना की जाती है वह कुछ नही। इस मत का प्रधान प्रवर्तक इटली का क्रोचे है। अभिव्यजनावादियो के अनुसार जिस रूप मे अभिव्यजना होती है उससे भिन्न अर्थ आदि का विचार कला मे अनावश्यक है। जैसे—वाल्मीकि रामायण की इस उक्ति मे 'न स सकुचित पथा येन वाली हतो गत', कवि का कथन यही वाक्य है, न कि यह कि जिस प्रकार वाली मारा गया उसी प्रकार तुम भी मारे जा सकते हो। इसी तरह 'भारत के फूटे भाग्य के टुकडो ! जुड़ते क्यो नही ?' मे इतना ही कहना है कि 'हे फूट से अलग हुए भारतवासियो ! एकता क्यों नही रखते ? यदि तुम एक हो जाओ तो भारत का भाग्योदय हो जाय। साराश यह कि इस मत मे ध्वनि या व्यजना की गुंजाइश नही है।—चिंतामणि, भाग २, पृ० ६६।

अभिव्यजनावदी—वि० [सं० अभिव्यञ्जना+वादिन् (अं० एक्सप्रेशनिस्ट)] अभिव्यजनावाद का अनुयायी या समर्थक।

अभिव्यजित—वि० [सं० अभिव्यञ्जित] सुस्पष्ट, प्रकटित। व्यक्त। अभिव्यक्त।

अभिव्यक्त—वि० [सं०] प्रकट किया हुआ। स्पष्ट किया हुआ। जाहिर किया हुआ।

अभिव्यक्ति—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ प्रकाशन। स्पष्टीकरण। साक्षात्कार। प्रकट होना। २ उस वस्तु का प्रत्यक्ष होना जो पहले किसी कारण से अप्रत्यक्ष हो, जैसे—अँधेरे मे रखी चीज का उजाले मे साफ साफ दीख पडना। ३ न्याय के अनुसार सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष कारण का प्रत्यक्ष कार्य मे आविर्भाव, जैसे, बीज से अकुर का निकलना।

अभिव्यक्तिवाद—संज्ञा पुं० [सं० अभिव्यक्ति+वाद] जगत् को ब्रह्म की अभिव्यक्ति मानने का सिद्धात।

अभिव्यक्तिवादी—वि० [सं० अभिव्यक्तिवादिन्] अभिव्यक्तिवाद का अनुयायी या समर्थक।

अभिव्यक्तीकरण—संज्ञा पुं० [सं० अभि+व्यक्तीकरण] प्राकट्य। सामने आ जाना। अभिव्यजना।

अभिव्यापक¹—वि० [सं०] [स्त्री० अभिव्यापिका] पूर्ण रूप से फैलनेवाला। अच्छी तरह प्रचलित होनेवाला। पूर्ण रूप से व्याप्त रहनेवाला।

अभिव्यापक²—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।

यौ०—अभिव्यापक आधार=व्याकरण मे वह आधार जिसके हर एक अश मे आधेय हो, जैसे 'तिल मे तेल'।

अभिव्यापी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० अभिव्यापिन्] दे० 'अभिव्यापक'।

अभिव्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सन्निवेश। समावेश। २.सर्वव्यापकता [को०]।

अभिशका—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिशङ्का] [वि० अभिशंकित] १. आशका। सदेह। चिता। २.भय। व्यग्रता [को०]।

अभिशसन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिशस्त] सत्य या झूठ आरोप अथवा दोष लगाना। २ व्यभिचार का मिथ्या दोष लगाना। ३ गाली देना। अपमान करना।

अभिशसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिशसन'।

अभिशपन—संज्ञा पुं० [सं०] १. शाप। २ गभीर आरोप। ३. मिथ्यारोप [को०]।

यौ०—अभिशपन ज्वर=शापजन्य ज्वर।

अभिशप्त—वि० [सं०] १ शापित। जिसे शाप दिया गया हो। उ०—जो जनपद परस तिरस्कृत अभिशप्त कही जाती है।—आँसू, पृ० ७८। २ जिसपर मिथ्या दोष लगा हो।

अभिशस्त—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अभिशस्ता] १ जिसपर व्यभिचार का मिथ्या दोष लगा हो। २ व्यर्थ कलकित। लाछित।

अभिशस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अभिशाप। २ निंदा। ३ हिंसा। ४ विपत्ति। ५ प्रार्थना [को०]।

अभिशाप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिशापित, अभिशप्त] १ शाप। बद दुआ। उ०—अभिशाप ताप की ज्वाला मे जल रहा आज मन और अग।—कामायनी, पृ० १६२। २ मिथ्या दोषारोपण। झूठमूठ का अपवाद। ३ बुराई। अहित [को०]।

अभिशापन—संज्ञा पुं० [सं०] शाप देना। बद दुआ देना। कोसना [को०]।

अभिशापित—वि० [सं०] दे० 'अभिशप्त'।

अभिश्लेषण—संज्ञा पुं० [सं०] पट्टी [को०]।

अभिषग—संज्ञा पुं० [सं०अभिषङ्ग] १ पूर्ण सबध या मिलन (को०)। २ दृढ मिलाप। आलिगन। ३ सभोग। ४. पराजय। हार। ५ निंदा। आक्रोश। कोसना। ६ शपथ। कसम। ७ मिथ्यापवाद। झूठा दोषारोपण। ८ भूत प्रेत का आवेश। ९ शोक। दुःख।

यौ०—अभिषगज्वर=भूत प्रेत आदि के आवेश या प्रभाव से उत्पन्न ज्वर।

अभिषगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिषङ्गा] वेद की एक ऋचा।

अभिषगी—वि०[सं०अभिषङ्गिन्] अभिषग से युक्त। अभिषगवाला।

अभिषजन—संज्ञा पुं० [सं० अभिषञ्जन] दे० 'अभिषग' [को०]।

अभिषव—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ मे स्नान। २ मद्य खीचना। शराब चुवाना। ३.सोमलता को कुचलकर गारना या निचोडना। ४ सोमरस पान ५. यज्ञ। ६ काँजी। ७ स्नान। नहाना [को०]। ८. राज्यारोहण। ९ अधिकारप्राप्ति [को०]।

अभिषवण—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्नान। २.सोमरस निकालने या निचोड़ने का साधन [को०]।

अभिषवणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमरस निकालने का साधन या यत्र [को०]।

अभिषावक—संज्ञा पुं०[सं०] सोमरस निचोड़नेवाला पुरोहित [को०]।

अभिषिचन—संज्ञा पुं० [सं० अभिषिञ्चन] जल छिड़कना। उ०—अभिषिचन ब्राह्मण (अध्वर्यु), क्षत्रिय और वैश्य मिलकर करते थे जो कि राष्ट्र की तीन इकाइयाँ थी।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १०३।

अभिषिक्त—वि० [स०][वि० स्त्री० अभिषिक्ता]१ जिसका अभिषेक हुआ हो। जिसके ऊपर जल आदि छिडका गया हो। जो जल आदि से नहलाया गया हो। २ बाधाशाति के लिये जिसपर मत्र पढ़कर दूर्वा और कुश से पानी छिड़का गया हो। ३. जिसपर विधिपूर्वक जल छिडककर किसी अधिकार का भार दिया गया हो। राजपद पर निर्वाचित।

अभिषुत—वि० [स०] १ निचोडा हुआ। उ०—यह अतीव मधुर सोम, तुम्हारे लिये अभिषुत हुआ है।—प्रा० भा० प०, पृ० १३३। २ स्नात। जो स्नान कर चुका हो। (को०)।

अभिषेक—सज्ञा पु० [स०] १ जल से सिंचन। छिडकाव। २ ऊपर से जल डालकर स्नान। ३ बाधाशाति या मंगल के लिये मत्र पढकर कुश और दूब से जल छिडकना। मार्जन। ४. विधिपूर्वक मत्र से जल छिडककर अधिकारप्रदान। राजपद पर निर्वाचन। ५ यज्ञादि के पीछे शाति के लिये स्नान। ६ शिवलिंग के ऊपर तिपाई के सहारे जल से भरकर एक ऐसा घडा रखना जिसके पेदे मे बारीक छेद, धीरे धीरे पानी टपकने के लिये हो। रुद्राभिषेक।

यौ०—अभिषेकपात्र = अभिषेक का पात्र। अभिषेकाह = अभिषेक का दिन। राज्यारोहण का दिन।

अभिषेकना(पु)—क्रि० स० [सं० अभिषेक] अभिषेक करना। उ०—आजु अभिषेकत पिय को प्यारी। धरि दृग ध्यान नवल आँसुन के भरि भरि उमगे वारी।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ०६१८।

अभिषेकशाला—सज्ञा स्त्री० [स०] वह स्थान या मडप जहाँ अभिषेक हो। राज्याभिषेक मडप [को०]।

अभिषेक्ता—सज्ञा पुं० [स०] वह व्यक्ति जो अभिषेक करे। अभिषेक करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अभिषेक्य—वि० [सं०] दे० 'अभिषेचनीय' [को०]।

अभिषेचन—सज्ञा पुं० [सं०] विधिपूर्वक मत्र से जल छिडककर अधिकारप्रदान। राजपद पर निर्वाचन। उ०—इसके बाद शक्ति, प्रभुता और प्रार्थना के मत्र पढ़ते पढते पुरोहित जलो से अभिषेचन करते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ११४।

अभिषेचनीय—वि० [स०] १ अभिषेक योग्य। २ राज्यारोहण योग्य। ३ अभिषेक सबधी [को०]।

अभिषेच्य—वि० [स०] दे० 'अभिषेचनीय' [को०]।

अभिषेणन—सज्ञा पुं० [सं०] शत्रु के विरुद्ध बढाव या चढाई [को०]।

अभिषोता—सज्ञा पुं० [सं० अभिषोतृ] दे० 'अभिषावक' [को०]।

अभिष्यद—सज्ञा पुं० [सं० अभिष्यन्द] १ बहाव। स्राव। २ आँख का एक रोग जिसमे सुई के छेदने के समान पीडा और किरकिराहट होती है, आँखें लाल हो जाती हैं और उनसे पानी और कीचड निकलता है। आँख आना।

अभिष्यदिरमण—सज्ञा पुं० [सं० अभिष्यन्दिरमण] उपनगर। बडे नगर से लगा हुआ छोटा नगर। शाखा नगर [को०]।

अभिष्यदी—वि० [सं० अभिष्यदिन्] १ रसने, बहने या चूनेवाला। २ रेचक। दस्तावर। ३ जलापसारक (को०)।

अभिष्वग—सज्ञा पुं० [सं० अभिष्वङ्ग] घनिष्ठ सबध। प्रेम। अनुराग। उ०—आत्मस्नेह यह आत्मप्रेम है जो आत्मा मे अभिष्वग उत्पन्न करता है।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ३६६।

अभिसग—सज्ञा पुं० [स० अभिसङ्ग] दे० 'अभिसग' [को०]।

अभिसताप—सज्ञा पुं० [स० अभिसन्ताप] १ युद्ध। सघर्ष। स्पर्धा। २ पीडा [को०]।

अभिसदेह—सज्ञा पुं० [स० अभिसन्देह] १ अदला बदली। विनिमय। २ जननेंद्रिय [को०]।

अभिसदोह—सज्ञा पु० [स० अभिसदोह] दे० 'अभिसदेह' [को०]।

अभिसध—सज्ञा पुं० [स० अभिसन्ध] १ ठग। धोखा देनेवाला। वचक। २ निंदक [को०]।

अभिसंधक—सज्ञा पुं० [स० अभिसन्धक] दे० 'अभिसंध' [को०]।

अभिसधा—सज्ञा स्त्री० [स० अभिसन्धा] १ कहना। बतलाना। २ वादा। वचन। ३ बात का पक्का व्यक्ति। ४ धोखा। छल [को०]।

अभिसंधान—सज्ञा पु० [स० अभिसन्धान] १ वचना। प्रतारणा। धोखा। जाल। २ फलोद्देश्य। लक्ष्य। उ०—इस कार्य को करने मे उसका अभिसधान क्या है यह देखना चाहिए (शब्द०)। ३ इच्छा या रुचि (को०)। ४ स्वार्थ (को०)।

अभिसधि—सज्ञा स्त्री० [स० अभिसन्धि] १ प्रतारणा। वचना। धोखा। उ०—भरत मे अभिसधि क्या हो गध, तो मुझे निज राम की सौगध।—साकेत, पृ० १८७। २ चुपचाप कोई काम करने की कई आदमियों की सलाह। कुचक्र। षड्यत्र। उ०—तक्षशिलाधीश की भी उसमे अभिसधि है।—चद्र०, पृ० ७५। ३ विशेष समझौता या सधि। ४ लक्ष्य। उद्देश्य। ५ अतर्गमित या सन्निहित अर्थ। अभिप्राय। राय। ६ जोड। योग। ७ घोषणा। वादा।

अभिसधिकृत—क्रि० वि० [स० अभिसन्धिकृत] जानबूझ कर किया हुआ [को०]।

अभिसधिता—सज्ञा स्त्री० [स० अभिसन्धिता] कलहातरिता नायिका। स्वप्रिय का अपमान कर पश्चात्ताप करनेवाली स्त्री।

अभिसपात—सज्ञा पुं० [स० अभिसम्पात] १ सम्मिलन। सगम। २ युद्ध। सघर्ष। ३ बददुआ। शाप। ४ पतन [को०]।

अभिसबध—सज्ञा पु० [स० अभिसम्बन्ध] १ घनिष्ठ सबध। २ समागम। संभोग [को०]।

अभिसयोग—सज्ञा पुं० [स०] घनिष्ठ सबध। बहुत नजदीक का सबध [को०]।

अभिसश्रय—सज्ञा पुं० [स०] शरण। आश्रय। त्राण। पनाह [को०]।

अभिसस्कार—सज्ञा पुं० [स०] १ सूझ। विचार। कल्पना। २ व्यर्थ या निष्फल कार्य। ३ विकास। परिष्कार। उ०—चेतना का स्वभाव चित्त का अभिसस्कार करना है।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ३४६।

अभिसमत—वि० [स० अभिसम्मत] माननीय। आदरणीय। सम्मान्य [को०]।

अभिसर—सज्ञा पु० [स०] १ सगी। साथी। २ सहायक। मददगार। ३ सेवक। अनुचर [को०]।

अभिसरण—सज्ञा पुं० [स०] १ आगे जाना। २ समीप गमन। ३ प्रिय से मिलने के लिये जाना।

अभिसरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अभिशरण] १ शरण। सहाय। सहारा। उ०—संतन को लै अभिसरन, समुर्झाहे सुगति प्रवीन। करम विपरजय ववहुँ नहि, सदा राम रस लीन।—तुलसी (शब्द०)। २ दे० 'अभिसरण'।

अभिसरना(पु)—क्रि० अ० [सं० अभिसरण] १ संचरण करना। जाना। २ किसी वांछित स्थान को जाना। ३ नायक या नायिका का अपने प्रिय से मिलने के लिये संकेतस्थल को जाना। उ०—चकित चित्त साहस सहित, नील बसन-युत गात। कुनटा संध्या अभिसरै, उत्सव तम अधिरात।—केशव (शब्द०)।

अभिसार—संज्ञा पुं० [सं०][स्त्री० अभिसारिका, अभिसारी] १ साधन। सहाय। सहारा। बल। २ युद्ध। ३ प्रिय से मिलने के लिये नायिका या नायक का संकेतस्थल में जाना। ४. संकेतस्थल। सहेट (को०)। ५ आक्रमण (को०)। ६ शक्ति। ताकत (को०)। ७ सहयोगी। साथी। अनुगत (को०)। ८ औजार। उपकरण। साधन (को०)। ९ शुद्ध करने का एक संस्कार (को०)।

अभिसारना(पु)—क्रि० अ० [सं० अभिसार से नाम०] १ गमन करना। जाना। घूमना। २ प्रिय से मिलने के लिये नायिका या नायक का संकेत स्थान में जाना। उ०—समय जोग पट भूषन धारैं। पिय अभिसारि आप अभिसारैं।—नंद० ग्रं०, पृ० १५६।

अभिसारक(पु)—वि० [सं०] अभिसार करनेवाला।

अभिसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदों में एक। वह स्त्री जो संकेत स्थल में प्रिय से मिलने के लिये स्वयं जाय या प्रिय को बुलाए।

विशेष—यह दो प्रकार की है, शुक्लाभिसारिका (जो चाँदनी रात में गमन करे) और कृष्णाभिसारिका (जो अँधेरी रात में मिलने जाय) कोई कोई एक तीसरा भेद दिवाभिसारिका (दिन में जानेवाली) भी मानते हैं। साहित्य शास्त्र में अभिसार के आठ स्थान कहे गए हैं—(१) खेत, (२) उपवन या बगीचा (३) भग्नमंदिर, (४) दूती या सहेली का निवासस्थान, (५) जंगल, (६) तीर्थस्थान, (७) श्मशान। (८) नदीतट या परिसर।

अभिसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अभिसारिका। २. त्रिष्टुभ् छंद का भेद जो ११ की जगह १२ वर्णों की स्थिति में जगती छंद के सन्निकट जान पड़ता है (को०)।

अभिसारी—वि० [सं० अभिसारिन्] [संज्ञा स्त्री० अभिसारिका] १. साधक। सहायक। २ प्रिया से मिलने के लिये संकेतस्थान में जानेवाला। उ०—धनि गोपी धनि ग्वाल धन्य सुरभी वनचारी। धनि यह पावन भूमि जहाँ गोविंद अभिसारी।—सूर (शब्द०)। ३ आक्रामक। हमला करनेवाला (को०)। ४ आगे जानेवाला। सामने जानेवाला (को०)।

अभिसेख(ष)(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिषेक'। उ०—मुनिदेव मिले अभिसेख कीन्ह।—हम्मीर रा०, पृ० १२।

अभिसेचना(पु)—क्रि० स० [सं० अभिषेचन] सींचना। अभिषिक्त करना। उ०—आजु कछु मगल घन उनए। बरसत बूँदन मनु अभिसेचत मगल कलस लए। चमकि मंगलामुखी दामिनी मगल करत नए।—भारतेंदु ग्रं०, भा २, पृ० ११४।

अभिस्कंद—संज्ञा पुं० [सं० अभिस्कन्द] १ आक्रमण। धावा। २ युद्ध (को०)।

अभिस्नेह—वि० [सं०] घनिष्ठ स्नेह। चाह (को०)।

अभिस्मरण—संज्ञा पुं० [सं० अभि+स्मरण] विशेष रूप से की गई याद। ध्यान। स्मृति। उ०—'स्मृति' संस्कृत वस्तु का अभिस्मरण है।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३४७।

अभिस्यंद—संज्ञा पुं० [सं० अभिस्यन्द] दे० 'अभिष्यंद' (को०)।

अभिहत—वि० [सं०] १. पीटा हुआ। ताड़ित। आहत। आक्रांत। २ गुणा किया हुआ। गुणित। ३ पराजित। पराभूत। ४. बाधित। निरुद्ध (को०)।

अभिहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ निशाना लगाना। चोट करना। पीटना। २ गुणन क्रिया (को०)।

अभिहर¹—संज्ञा पुं०[सं०]उठा ले जाना। ले भागना। हटा देना[को०]।

अभिहर²—वि० [सं०] उठाईगीर। ले भागनेवाला।[को०]।

अभिहरण—संज्ञा पुं० [सं०] छीन ले जाना। लूटना [को०]।

अभिहर्ता—संज्ञा पुं० [सं० अभिहर्तृ] १ डाकू। २ अपहरणकर्ता। ले भागनेवाला [को०]।

अभिहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ आक्रमण। हमला। उ०—कौरौं पाडुपूतनि को कछुक पराध यामैं, कोऊ अभिहार कै समा को ज्ञान लूट्यो है।—रत्नाकर, भा—२, पृ० १११। २ मिश्रण। मिलावट (को०)। ३ लूटपाट। चोरी। डाका (को०)। ४ प्रयत्न। चेष्टा (को०)। ५ शस्त्रसज्ज होना (को०)। ६ समीप लाना (को०)। ७ मद्यप शराबी (को०)।

अभिहारिनि(पु)—वि० स्त्री० [सं० अभिहारिणी] सामने से हरण करनेवाली। उ०—देखी सुनी ग्वारिनि कितेक ब्रजबारिनि पै राधा सी न और अभिहारिनि लखाई है। हेरन हीं हेरन हरयो तो है हमारो कछू काहू औ हिरानो पै न परन जनाई है।—रत्नाकर, भा० २, पृ० २२१।

अभिहास—संज्ञा पुं० [सं०]विनोद। हँसी। मजाक। दिल्लगी [को०]।

अभिहित—वि० [सं०] १ उक्त। कथित। कहा हुआ। २ संबद्ध। युक्त। बद्ध (को०)।

अभिहितसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिहितसन्धि] कौटिल्य के अनुसार वह संधि जिसकी लिखापढ़ी न हुई हो।

अभिहितान्वयवाद—संज्ञा पुं० [सं०] कुमारिल भट्ट प्रभृति पुराने नैयायिकों, मीमांसकों और आलंकारियों या साहित्यिकों का मत कि वाक्य का प्रत्येक पद अलग स्वतंत्र और अनन्वित अर्थ रखता है। बाद में सब अर्थों का समन्वय करने पर समूचे वाक्य का अर्थ निकलता है। अन्विताभिधानवाद का उलटा।

अभिहितान्वयवादी—संज्ञा पुं० [सं० अभिहितान्वयवादिन्] अभिहितान्वयवाद का अनुयायी या समर्थक।

अभिहूति—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ आवाहन। २ समाराधन। पूजन [को०]।

अभिहोम—संज्ञा पुं० [सं०] घृत की आहुति देना। घी से होम करना [को०]।

अभी¹—क्रि० वि० [हिं० अब+ही] १ इसी क्षण। इसी समय। इसी वक्त। तुरत। तत्काल। २ अब तक। ३. अभी भी। ४ आजकल। इन दिनों। इस समय।

यौ०—अभी भी = इसी समय । तुरंत । तत्काल ।

अभी²—वि० [सं०] निर्भय । निडर [को०] ।

अभीक¹—वि० [सं०] १ निर्भय । निडर । २. निष्ठुर । कठोरहृदय । ३ उत्सुक । उत्कंठ । ४ लालायित (को०) । ५ कामुक । लंपट । ६ अभिगत । प्राप्त (को०) ।

अभीक²—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रभी । पति । २. स्वामी । मालिक । ३ कवि ।

अभीक्ष्ण—वि० [सं०] १. निरंतर । लगातार । २ अधिक । ३ जो बार बार दुहराया जाय । आवर्तित [को०] ।

अभीघात—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिघात' ।

अभीत—वि० [सं०] निडर । निर्भय । उ०—सून, मागध वंदि आदि अभीत, गा उठे जीवन विजय के गीत ।—साकेत, पृ० १९६ ।

अभीता(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अभीत' । उ०—यह तु अब सदय अभीता ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ११३ ।

अभीति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ निर्भयता । निडरता । २ आक्रमण । ३ निकटता [को०] ।

अभीति²—वि० [सं०] ग ीर । निर्भीक [को०] ।

अभीप्सा—संज्ञा पुं० [सं०] चाहना । इच्छा । अभिलाषा । उ०—इसकी सहज प्रवेश हृदय में जगा अभीप्सा ।—ग्रजन०, पृ० १० ।

अभीप्सित¹—वि० [सं०] अभिलषित । चाहा हुआ । वांछित । इच्छित । उ०—हे भरतभद्र, अब कहो अभीप्सित अपना ।—साकेत, पृ० ०२७ ।

अभीप्सित²—संज्ञा पुं० इच्छा । कामना । चाह [को०] ।

अभीप्सी—वि० [सं० अभिप्सिन] दे० 'अभीप्सु' [को०] ।

अभीप्सु—वि० [सं०] अभीप्सा करनेवाला । चाहनेवाला । इच्छुक [को०] ।

अभीम¹—वि० [सं०] जो भय उत्पन्न करनेवाला न हो [को०] ।

अभीम²—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम [को०] ।

अभीमान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमान' [को०] ।

अभीमुद—वि० [सं०] अत्यधिक प्रसन्न या आनंदयुक्त [को०] ।

अभीमोद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रसन्नता । खुशी [को०] ।

अभीर—संज्ञा पुं० [सं०] १ गोप । अहीर । २ काव्य में एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ११ मात्राएँ और अंत में जगण (।ऽ।) होता है । उ०—यदि विधि श्री रघुनाथ, गहे अरन धर हाथ । पूरन ओज अपार, तप राज उच्चार (शब्द०) ।

अभीरपल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गाँव [को०] ।

अभीराजी—संज्ञा पुं० [सं०] एक विषैला कीड़ा [को०] ।

अभीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभीरों या अहीरों की बोली ।

अभीरु¹—वि० [सं०] १ निर्भय । निडर । जो त्रस्तकारक न हो ।

अभीरु²—संज्ञा पुं० १ शिव । २ भैरव ।

अभीरुता—वि० [सं०] १ निडर । २. निर्भीक [को०] ।

अभीरुपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावरी [को०] ।

अभीवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ चढ़ाई । चढ़ाई । २ अथर्व द्वारा [को०] ।

अभीशाप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिशाप' [को०] ।

अभीशु—संज्ञा पुं० [सं०] १ रस्सी । लगाम । २ रश्मि । किरण । ३ बाहु । भुजा । ४ उँगली [को०] ।

अभीषया—क्रि० वि० [सं०] निर्भयतापूर्वक [को०] ।

अभीषु—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभीशु' [को०] ।

अभीष्ट¹—वि० [सं०] १ वांछित । चाहा हुआ । अभिलषित । उ०—जो स्पर्श कर लेता कभी था पुष्प प्रेम अभीष्ट तो ।—गानन०, पृ० २६ । २ मनोनीत । पसंद का । ३ अभिप्रेत । आशय के अनुकूल । ४ प्रिय (को०) । ५ अंगीकृत [को०] ।

अभीष्ट²—संज्ञा पुं० १ मनोरथ । मनचाही बात । उ०—'आपका अभीष्ट सिद्ध हो जायगा' (शब्द०) । २ प्रिय व्यक्ति या प्रेमी । ३ प्राचीन आचार्यों के मत से एक अलंकार जिसमें अपने इष्ट की सिद्धि दूसरे के कार्य द्वारा दिखाई जाय । यह जगत में प्रहर्षण अलंकार के अंतर्गत आ जाता है ।

यौ०—अभीष्टलाभ = इच्छित वस्तु की प्राप्ति । अभीष्टसिद्धि = अभिलषित इच्छा का पूर्ण होना ।

अभीष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गृहस्वामिनी । २ प्रेमिका । ३ पान [को०] ।

अभीष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभीष्ट वस्तु, इच्छा या आशा (को०) ।

अभुआना(पु)†—क्रि० अ० [सं० आ + भावन] हाथ पैर पटकना और जोर जोर से सिर हिलाना जिससे सिर पर भूत का आना समझा जाता है ।

अभुक्त—वि० [सं०] १ न खाया हुआ । २ न भोग किया हुआ । बिना बर्ता हुआ । अव्यवहृत । अछूता । उ०—नर पलुवा उगयुता पान ताकै हित हित हेरत ।—रत्नाकर, भाग १, पृ० १६४ । ३ जिसने भोजन न किया हो (को०) । ४ जिसने भोग न किया हो (को०) ।

अभुक्तपूर्व—वि० [सं०] जिसका पहले कभी भोग या व्यवहार न किया गया हो ।

अभुक्तमूल—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्येष्ठा नक्षत्र के अंत की दो घड़ी तथा मूल नक्षत्र के आदि की दो घड़ी । गंडांत ।

अभुग्न—वि० [सं०] १ न झुका हुआ । सीधा । २ स्वस्थ । निरोग (को०) ।

अभुज—वि० [सं०] बाहुविहीन । बिना भुजा का [को०] ।

अभुत(पु)—वि० [हिं० अद्भुत या अभूत] अद्भुत । अनोखा । विचित्र । उ०—[illegible] अभुत [illegible] ।—पृ० रा०, ६१।११३२ ।

अभुआना(पु)¹—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अभुआना' । उ०—[illegible] ।

अभू¹(पु)—क्रि० वि० [हिं० अब + हू = भी] अब भी ।

अभू²—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०] ।

अभुआन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभुआना' । उ०—[illegible] ।—[illegible] पृ० १०८ ।

अभूत—वि० [सं०] १ जो हुआ न हो। २ वर्तमान। ३ असत्य। मिथ्या (को०)। ४ अपूर्व। विलक्षण। अनोखा। उ०—आँगन खेलत घुटुरुनि धाए। उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत उठाए। नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनु तडित छपाए।—सूर (शब्द०)।

अभूतदोष—वि० [सं०] दोषरहित। निर्दोष [को०]।

अभूतपूर्व—वि० [सं०] १ जो पहले न हुआ हो। २ अपूर्व। अनोखा। विलक्षण।

अभूतशत्रु—वि० [सं०] जिसका कोई शत्रु न हो। अजातशत्रु [को०]।

अभूताहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी प्रकार का कपटयुक्त या व्यंग्यपूर्ण वचन कहना। गर्भसंधि के तेरह अंगों में से एक। २ अयथार्थ बात कहना। छलपूर्ण बात कहना। (को०)।

अभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अस्तित्वहीनता। अविद्यमानता। २ अशक्तता। ३ निर्धनता। ४ विपत्ति। बर्बादी। विनाश[को०]।

अभूतोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा के दस भेदों में से एक जिसमें उत्कर्ष के कारण उपमान का कथन न हो सके। उ०—जो पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुवति कहाँ कमनीया।—मानस, १।२४७।

अभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह जो भूमि न हो। भूमि के अतिरिक्त अन्य पदार्थ। २ अनुपयुक्त स्थान। ३ स्थानाभाव। ४ पहुँच से परे का स्थान [को०]।

अभूमिज—वि० [सं०] १ निकृष्ट अथवा अनुपयुक्त स्थान में उत्पन्न। २ जो भूमि में उत्पन्न न हो [को०]।

अभूमिप्राप्तसैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह सेना जो अनुपयुक्त भूमि में पड गई हो। ऐसी जगह पडी हुई फौज जहाँ से लडना असंभव हो।

अभूरि—वि० [सं०] स्वल्प। कुछ। थोडा। कतिपय [को०]।

अभूष—वि० [सं०] अभूषित [को०]।

अभूषन—संज्ञा पुं० [सं० आभूषण] दे० 'आभूषन'। उ०—हीरन के अभूषन पै वारो जग ऐन।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६५।

अभूषित—वि० [सं०] बिना आभूषण के। अनलंकृत। बिना सजाया हुआ [को०]।

अभृत—वि० [सं०] जिसे पारिश्रमिक न दिया जाता हो [को०]।

अभृतक—वि० [सं०] दे० 'अभृत' (को०)।

अभृतसैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसे वेतन या भत्ता न मिला हो।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार यह व्याधित (बीमार) सैन्य से उपयोगी है, क्योंकि वेतन पा जाने पर जी लगाकर लड सकती है।

अभृश—वि० [सं०] थोडा। कुछ। चंद [को०]।

अभेडा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभेरा'।

अभेद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभेदनीय, अभेद्य] १ भेद का अभाव। अभिन्नता। एकत्व। २ एकरूपता। समानता। ३ रूपक अलंकार के दो भेदों में से एक जिसमें उपमेय और उपमान का अभेद बिना निषेध के कथन किया जाय, जैसे—मुखचंद, चरणकमल। उ०—रमन मंजरि पुच्छ फिरावत मुच्छ उसीरनि की फहरी है। चंदन, कुंद, गुलाबन, आमन मीत सुगंधन की लहरी है। ताल बटै फणि चक्र प्रवीन जू मित वियोगिनि की कहरी है। आनन ज्वाल गुलाल उडावत व्याल बसंत बडो जहरी है।—बेनी (शब्द०)। इसको कोई कोई पृथक् अलंकार भी मानते हैं।

अभेद[2]—वि० १ भेदशून्य। एकरूप। समान। उ०—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।—मानस, १।५०।

अभेद[3] —वि० [सं० अभेद्य] जिसका भेदन या छेदन न हो सके। जिसके भीतर कोई वस्तु न घुस सके। जिसका विभाग न हो सके। उ०—कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा।—मानस, ६।७६।

अभेदनीय—वि० [सं०] दे० 'अभेद्य'।

अभेदबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेदरहित बुद्धि। एकतापरक बुद्धि। बुद्धि या विचार की वह स्थिति जिसमें भेदभाव नहीं होता।

अभेदवादी—वि० [सं० अभेदवादिन्] [वि० स्त्री० अभेदवादिनी] जीवात्मा और परमात्मा में भेद न माननेवाला। अद्वैतवादी। उ०—तेइ अभेदवादी ज्ञानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर।—मानस, ७।१००।

अभेदाभेद—वि० [सं०] एक। एकाकार। उ०—कही नरायण नाभि है कहीं ब्रह्म कहिं वेद। कहिं शंकर गिरजा कहीं,कहीं अभेदाभेद।—भक्ति०, पृ० २८५।

अभेद्य[1]—वि० [सं०] १ जिसका भेदन या छेदन न हो सके। जिसके भीतर कोई चीज घुस न सके। जिसका विभाग न हो सके। २ जो टूट न सके। अखंडनीय। अविभाज्य।

अभेद्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] हीरा। हीरक। वज्र [को०]।

अभेय—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभेव'।

अभेरना—क्रि० स० [सं० अभिद, प्रा० अब्भिड] मिलाना। मिश्रित करना। एक में करना। उ०—जपहु बुद्धि कै दुई सन फेरहु। दही चूर अस हिया अभेरहु।—जायसी (शब्द०)।

अभेरा—संज्ञा पुं० [सं० अभि=सामने+रण=लडाई अथवा प्रा० अब्भिड] रगडा। झगडा। मुठभेड। टक्कर। मुक्का। उ०—(क) उठै आगि दोउ डार अभेरा। कौन साथ तेहि बैरी केरा।—जायसी (शब्द०)। (ख) विषम कहार मार मदमाते चलहिं न पाउँ बटोरा रे। मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५५३।

अभेव[1]—संज्ञा पुं० [सं० अभेद] अभेद। अभिन्नता। एकता।

अभेव[2]—वि० भेदरहित। अभिन्न। एक। उ०—सिष सुमिरन नाँवा करैं हो जाय अलख अभेव।—दरिया०बानी, पृ० ५।

अभै—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभय'। उ०—सदा सुभाव सुलभ सुमिरन बस, भक्तन अभै दियो।—सूर० १।४०।

अभैदिदा—वि० [सं०] दे० 'अभेद्य' [को०]।

अभैन—वि० [सं०] दे० 'अभय'। उ०—गर भै अभैन सुय सत्र रष्षं।—पृ० रा०, १।३१२।

अभैपद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभयपद'। उ०—ध्रुवहिं अभैपद दियो मुरारी।—सूर०, १।६०।

अभैमंत्र(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अभयमन्त्र] निर्भयता प्रदान करनेवाला मंत्र।

अभैर—संज्ञा पुं० [सं० ?] धरन या लकड़ी जिसमें डोरी बाँधकर करघे की कंघियाँ लटकाई जाती हैं। कलवाँसा। ढढेरी।

अभोक्तव्य—वि० [सं०] जो भोगने योग्य न हो। जिसका उपयोग न किया जाय। अनुपयुक्त [को०]।

अभोक्ता—वि० [सं० अभोक्तृ] [वि० स्त्री० अभोक्त्री] १ भोग न करनेवाला। व्यवहार न करनेवाला। २ विरक्त (को०)।

अभोखण(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आभूषण'। उ०—अगि अभोखण अच्छियउ, तन सोवन सगलाइ। मारू अवा-मउर जिम, कर लग्गइ कुँमलाइ।—ढोला०, दू० ४७१।

अभोग[1](पु)—वि० [सं०] जिसका भोग न किया गया हो। अछूता। उ०—बरनि सिंगार न जानेउँ नख सिख जैस अभोग। तस जग किछू न पायउँ उपम देउँ ओहि जोग।—जायसी (शब्द०)।

अभोग[2]—संज्ञा पुं० भोग का अभाव [को०]।

अभोगी—वि० [सं० अभोगिन्] [स्त्री० अभोगिनी] भोग न करनेवाला। इंद्रियों के सुख से उदासीन। विरक्त। उ०—हमरें जान सदाशिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।—मानस, १।६०।

अभोग्य—वि० [सं०] जो भोग योग्य न हो [को०]।

अभोज(पु)—वि० [सं० अभोज्य] न खाने योग्य। अभक्ष्य। उ०—भोज अभोज न रति विरति, नीरस सरस समान। भोग होइ अभिलाष विनु, महा भोग ता मान। राम च०, पृ० १५२।

अभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] १ भोजन न करना। २ भोजन से परहेज। ३ उपवास। व्रत [को०]।

अभोज्य—वि० [सं०] १ न खाने योग्य। अभक्ष्य। अभोज। २. जिसका खाना वर्जित हो [को०]।

अभोटी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] शूद्र श्रेणी के नौकर। उ०—मंदिर में शूद्र श्रेणी के नौकर अभोटी कहलाते रहे।—पू० म० भा०, पृ० ३२३।

अभोल(पु)—वि० [हिं० भूलना] जो भूला न हो। जो भूलनेवाला न हो। उ०—अमोल अभोल अतोल अमग। अकज अगज अलुज अभग।—पृ० रा, ६४।३१७।

अभौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभय'। उ०—नृपति बहुत जाचिय अभौ।—पृ० रा०, ५७।२६७।

अभौतिक—वि० [सं०] १ जो पंचभूत का न बना हो। जो पृथ्वी, जल, अग्नि आदि से उत्पन्न न हो। अपार्थिव। २ अगोचर।

अभौम—वि० [सं०] १.जो भूमि से उत्पन्न न हो। अभूमिज। २. जो खराब या गलत जगह में पैदा हो [को०]।

अभ्भ्रि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्र'। उ०—उड्डै सार सार असी वक भार। मनो अभ्भ्रि सम वाल वज्ज्यो सवार।—पृ० रा०, ६१।२०२०।

अभ्यंग—संज्ञा पुं० [संज्ञा अभ्यङ्ग] [वि० अभ्यक्त, अभ्यंजनीय] १ लेपन। चारों ओर पोतना। मल मलकर लगाना। २ नवनीत। नैनू (को०)। ३ तैलमर्दन। स्नेहन।

यौ०—तैलाभ्यंग।

अभ्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० अभ्यञ्जन] १ तेल आदि की मालिश। २. आँखों में सुरमा या अंजन लगाना। ३ अंगराग। तेल आदि। ४ मक्खन। नवनीत [को०]।

अभ्यंजनीय—वि० [सं० अभ्यञ्जनीय] १ पोतने योग्य। लगाने योग्य। २ तेल या उबटन लगाने योग्य।

अभ्यंत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्यंतर'। उ०—अगम अगोचर रह्या अभ्यंत।—कबीर ग्रं०, पृ० २६६।

अभ्यंतज—वि० [सं० अभ्यन्तज] भीतरी। अंत तक। अभ्यंतर। उ०—रहै कौन अभ्यंतज बल प्रकार।—पृ० रा०, ५५।६६।

अभ्यंतर[1]—संज्ञा पुं० [सं० अभ्यन्तर] १ मध्य। बीच। उ०—निसि लौं रमत कोप अभ्यंतर, जो हित कहौ सो थोरी।—सूर०, १०।३८४८। २ हृदय। अंत करण।

अभ्यंतर[2]—क्रि० वि० भीतर। अंदर।

अभ्यंतर[3]—वि० १ सुपरिचित। अंतरंग। निकटतम। २ घनिष्ठता के साथ संबद्ध। ३ कुशल। ४ भीतर का। अंदर का। भीतरी। उ०—बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५१५।

अभ्यंतरक—संज्ञा पुं० [सं० अभ्यन्तरक] अंतरंग मित्र। घनिष्ठ मित्र [को०]।

अभ्यक्त—वि० [सं०] १ पोते हुए। लगाए हुए। २ तेल या उबटन लगाए हुए। ३. सुसज्ज। सजा हुआ (को०)।

अभ्यग्र—वि० [सं०] १ नजदीक। समीप। नवीन। ताजा [को०]।

अभ्यधीन—वि० [सं०] १. अधीन। जो किसी के अधिकार या नियंत्रण में हो। २ जो किसी नियम से बँधा हुआ हो [को०]।

अभ्यनुज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ स्वीकृति। अनुमति। सम्मति। २. आदेश। ३ पदच्युति या अनुपस्थिति की माफी [को०]।

अभ्यनुज्ञात—वि० १ स्वीकृत। २ समर्थित [को०]।

अभ्यमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ आक्रमण। धावा। २ आघात। ३ रोग [को०]।

अभ्यमित—वि० [सं०] १ रोगी। २ आहत। चोट खाए हुए [को०]।

अभ्यर्चन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभ्यर्चना'।

अभ्यर्चना—संज्ञा स्त्री० [सं०] सम्मान। पूजा। आराधना [को०]।

अभ्यर्ण[1]—वि० १ समीप। नजदीक। पास। २ समीप पहुँचा हुआ या आनेवाला [को०]।

अभ्यर्ण[2]—संज्ञा पुं० सामीप्य। निकटता [को०]।

अभ्यर्थन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभ्यर्थना'।

अभ्यर्थना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सम्मुख प्रार्थना। विनय। दरख्वास्त। २ सम्मान के लिये आगे बढ़कर लेना। अगवानी। उ०—लोग स्टेशन पर उनकी अभ्यर्थना के लिये खड़े थे (शब्द०)।

अभ्यर्थनीय—वि० [सं०] १. प्रार्थना करने योग्य। विनय करने योग्य। २. आगे बढ़कर लेने योग्य।

अभ्यर्थित—वि० [सं०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २ जो आगे बढकर लिया गया हो [को०]।

अभ्यर्थी—वि० [सं० अभ्यर्थिन् [वि० स्त्री० अभ्यर्थिनी] अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करनेवाला [को०]।

अभ्यर्थ्य—वि० [सं०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।

अभ्यर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीडन। [को०]।

अभ्यर्दित—वि० [सं०] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीडित [को०]।

अभ्यलकार—संज्ञा पुं० [सं० अभ्यलङ्कार] आभूषण। मडन [को०]।

अभ्यलकृत—वि० [सं०अभ्यलङ्कृत]आभूषित। मडित। सज्जित [को०]।

अभ्यर्हणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा। २ आदर। समान। श्रद्धा [को०]।

अभ्यवकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] वहि निष्कासन। बाहर निकालना या खीचना [को०]।

अभ्यवस्कद—संज्ञा पुं०[सं० अभ्यवस्कन्द] १ उटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये तीव्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।

अभ्यवस्कदन—संज्ञा पुं० [सं० अभ्यवस्कन्दन] दे० 'अभ्यवस्कद'।

अभ्यवहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [को०]।

अभ्यवहार[1]—वि० [सं०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।

अभ्यवहार[2]—संज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।

यौ०—अभ्यवहार मडप=भोजन का स्थान। खाने का मडप।

अभ्यसन—संज्ञा पु० [सं०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।

अभ्यसनीय—वि० [सं०] अभ्यास करने योग्य। जिसपर अभ्यास किया जाय [को०]।

अभ्यसित—वि० [सं०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।

अभ्यसूय—वि० [सं०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।

अभ्यसूया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रोध। गुस्सा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।

अभ्यस्त—वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मश्क किया हुआ। जैसे—यह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे—वह इस कार्य मे अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।

अभ्यस्त—वि० [सं०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।

अभ्यात—वि० [सं० अभ्यान्त] १ रोगी। आतुर। २ घायल। आहत [को०]।

अभ्याकर्ष—संज्ञा पुं०[सं०] पहलवानो का एक दूसरे को ललकारने के लिये सीना ठोकना [को०]।

अभ्याकाक्षित[1]—वि० [सं०अभ्याकाङ्क्षित] चाहा हुआ। अभिलषित [को०]।

अभ्याकाक्षित[2]—संज्ञा पुं० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभ्याख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा नालिश।

अभ्यागत[1]—वि०[सं०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ रूप मे घर आया हुआ।

अभ्यागत[2]—संज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुना, जैसे—अभ्यागत सेवा गृहस्थों का धर्म है (शब्द०)।

अभ्यागम—संज्ञा पुं० [सं०] १ सामने आना। उपस्थिति। पता। पडोस। ३ सामना। ४ मुकाबिला। मुठभेड़। ५ विरोध। ६ अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किसी पहुँचना। ८ आघात। ९ वध (को०)। १०—शत्रुता

अभ्यागारिक—वि० [सं०] १ कुटुब के पालने मे तत्पर। गृहस्थी में फँसा हुआ। घरबारी। २ कुटुब पालने मे व्यग्र की झझट मे हैरान।

अभ्याघात—संज्ञा पुं०[सं०] १ आघात। आक्रमण। २ बाधा रुकावट। (को०)।

अभ्यात्त—वि० [सं०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ अग्नि का परिव्याप्त [को०]।

अभ्याधान—संज्ञा पुं० [सं०] प्रारभ। स्थापन [को०]।

अभ्यापात—संज्ञा पुं० [सं०] विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]।

अभ्यामर्द—संज्ञा पुं० [सं] युद्ध। सघर्ष [को०]।

अभ्याश[1]—वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [को०]।

अभ्याश[2]—संज्ञा पुं० १ सामीप्य। निकटता। पडोस २ नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युदय [को०]।

अभ्यास[1]—संज्ञा पुं०[सं०] १ बार बार किसी काम को करना प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मश्क। उ०—(क) अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत जात पर परत निसान। सभा वि० (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। होना। २. आदत। टेव। बान। जैसे—उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड गया है

क्रि० प्र०—पडना।

३ प्राचीनो के अनुसार एक काव्यालकार जिसमे किसी को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०—हरि सुमि किय, जरयो न अगिन मँझार। गयो गिरायो गि न बाँको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन मे मान उसे अलकार नही मानते। ४ अनुशासन पडोस (को०)। ६ गुणन (को०)। ७ सगीत मे की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।

अभ्यास[2]Ⓤ—वि० [सं०अभ्याश] समीप। निकट।

अभ्यासकला—संज्ञा पु० [सं०] योग की उन चार क जो विविध योगांगो के मेल से बनती है। ग्राम ग्राम का मेल।

अभ्यासयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार

क्रिया। २. लगातार एक ही विषय का बार बार चिंतन करने से मन या मस्तिष्क की एकाग्रता।

अभ्यासादन—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना [को०]।

अभ्यासित(पु)—वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यसित'। उ०—रात दिना के मुनै किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सों कैसे बचौ कहो मन कोटिक करौ उपाव।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५३६।

अभ्यासी—वि० [सं० अभ्यासिन्] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करनेवाला। साधक।

अभ्याहत—वि० [सं०] १ पीडित। ताडित। २ बाधित। ३ दोषयुक्त [को०]।

अभ्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना। २. अपहरण। चौर्य [को०]।

अभ्युक्त—वि० [सं०] किसी संदर्भ में कहा हुआ [को०]।

अभ्युक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेचन। छिडकाव। सिंचन। २ मार्जन [को०]।

अभ्युक्षित—वि० [सं०] १ छिडका हुआ। सिंचित। २ जिसपर छिडका गया हो। जिसका सिंचन हुआ हो।

अभ्युक्ष्य—वि० [सं०] छिडकने योग्य।

अभ्युचित—वि० [सं०] परंपरित। प्रचलित। नियमित [को०]।

अभ्युच्चय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि। उत्थान। संपन्नता। उत्कर्ष। २ एकत्रीकरण [को०]।

अभ्युच्छ्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १ चढाव। उठान। २ संगीत में स्वरसाधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा। अवरोही—सा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग स।

अभ्युच्छ्रित—वि० [सं०] उन्नत। उठा हुआ। उच्च [को०]।

अभ्युत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना। २ किसी बडे के आने पर उसके आदर के लिये उठकर खडा हो जाना। प्रत्युद्गमन। ३ बढती। समृद्धि। उन्नति। गौरव। ४ उठान। आरंभ। उदय। उत्पत्ति।

अभ्युत्थायी—वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खडा होनेवाला। २ आदर के लिये उठकर खडा होनेवाला। ३ उन्नति करनेवाला। ४ बढनेवाला।

अभ्युत्थित—वि० [सं०] १ उठा हुआ। २ आदर के लिये उठकर खडा हुआ। ३ उन्नत। बढा हुआ।

अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १ उठने योग्य। २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो। जिसे उठकर आदर देना उचित हो। ३ उन्नति के योग्य।

अभ्युदय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, आभ्युदयिक] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय। २ प्रादुर्भाव। उत्पत्ति। ३ इष्टलाभ। मनोरथ की सिद्धि। ४ विवाह आदि शुभ अवसर। ५. वृद्धि। बढती। उन्नति। तरक्की। ६ अस्तित्व में आना। आविर्भूत होना [को०]। ७ घर में संतान के जन्म लेने पर किया जानेवाला नांदीमुख श्राद्ध। [को०]।

अभ्युदाहरण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण।

अभ्युदित—वि० [सं०] १ उगा हुआ। निकला हुआ। उ प्रादुर्भूत। २ दिन चढ़े तक सोनेवाला। ३ सूर्योदय के उठकर नित्यकर्म न करनेवाला। ४. समृद्ध। उन्नत उत्सव रूप में मनाया हुआ [को०]।

अभ्युपगत—वि० [सं०] १ पास गया हुआ। सामने आया प्राप्त। २ स्वीकृत। अंगीकृत। मंजूर किया हुआ। ३ स तुल्य [को०]।

अभ्युपगम—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना। आना या जाना। प्राप्ति। २ स्वीकार। अंगीकार। ३ वादा करना (को०)। ४ न्याय के अनुसार सिद्धांत के चा में से एक।

विशेष—बिना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर खंडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अ सिद्धांत कहते हैं। जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि - है। इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोडी लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो ब कि वह नित्य है या अनित्य। इस प्रकार मानना अ सिद्धांत हुआ।

अभ्युपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना दया। अनुग्रह। ३ अनुमोदन। स्वीकृति। मंजूर सीखना। ढाढस। ५ रक्षा। बचाव। ६ वादा [को०]

अभ्युपाय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वादा। २ स्वीकृत। ३ साधन [को०]।

अभ्युपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट। उपहार। २ रि त

अभ्युपेत—वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ। आया हुआ। २ व हुआ। स्वीकृत [को०]।

अभ्युषित[1]—वि० [सं०] साथ या निकट रहनेवाला।

अभ्युषित[2]—संज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [को०]।

अभ्यूढ—वि० [सं०] समीप लाया हुआ [को०]।

अभ्यूष—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी। २ अ हुआ भोजन [को०]।

अभ्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क। वहम। २ निष्कर्ष। ३ - ४ विचार [को०]।

अभ्रंकष[1]—वि० [सं० अभ्रङ्कष] गगनचुंबी। बहुत ऊँचा

अभ्रंकष[2]—संज्ञा पुं० १ वायु। हवा। २ पर्वत [को०]।

अभ्रंलिह[1]—वि० [सं०] गगनचुंबी [को०]।

अभ्रंलिह[2]—संज्ञा पुं० [सं०] हवा [को०]।

अभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ। बादल। २ आकाश। ३ धातु। ४ स्वर्ण। सोना। ५ नागरमोथा। ६ शून्य। ७ कपूर (को०)। ८ बेत बेंत (को०)।

अभ्रक—संज्ञा पुं० [सं०] अबरक। भोडर। दे० 'अबरक'।

अभ्रकसत्व—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल [को०]।

अभ्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वताकार बादल की चोटी [को०]

अभ्रगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [को०]

अभ्रनाग—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०]।

अभ्यर्थित--वि० [स०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २ जो आगे बढकर लिया गया हो [को०]।

अभ्यर्थी--वि० [स० अभ्यर्थिन् [वि० स्त्री० अभ्यर्थिनी] अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करनेवाला [को०]।

अभ्यर्थ्य--वि० [स०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।

अभ्यर्दन--सज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीडन। [को०]।

अभ्यर्दित--वि० [स०] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीडित [को०]।

अभ्यलंकार--सज्ञा पु० [स० अभ्यलङ्कार] आभूषण। मडन [को०]।

अभ्यलंकृत--वि० [स०अभ्यलङ्कृत]आभूषित। मडित। सज्जित [को०]।

अभ्यर्हणा--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा। २ आदर। समान। श्रद्धा [को०]।

अभ्यवकर्षण--सज्ञा पु० [स०] वहि निष्कामन। बाहर निकालना या खीचना [को०]।

अभ्यवस्कंद--सज्ञा पुं०[स० अभ्यवस्कन्द] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ वलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये तीव्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।

अभ्यवस्कदन--सज्ञा पुं० [स० अभ्यवस्कन्दन] दे० 'अभ्यवस्कद'।

अभ्यवहरण--सज्ञा पु० [स०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [को०]।

अभ्यवहार¹--वि० [स०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।

अभ्यवहार²--सज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।

यौ०--अभ्यवहार मडप = भोजन का स्थान। खाने का मडप।

अभ्यसन--संज्ञा पु० [स०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।

अभ्यसनीय--वि० [स०] अभ्यास करने योग्य। जिसपर अभ्यास किया जाय [को०]।

अभ्यसित-- वि० [स०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।

अभ्यसूय--वि० [स०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।

अभ्यसूया--सज्ञा स्त्री० [स०] १ क्रोध। गुस्सा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।

अभ्यस्त--वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मश्क किया हुआ। जैसे--वह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे--वह इस कार्य मे अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।

अभ्यस्त--वि० [स०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।

अभ्यात--वि० [स० अभ्यान्त] १ रोगी। आतुर। २ घायल। आहत [को०]।

अभ्याकर्ष--सज्ञा पुं०[स०] पहलवानो का एक दूसरे को ललकारने के लिये सीना ठोकना [को०]।

अभ्याकांक्षित¹--वि० [स०अभ्याकाङ्क्षित] चाहा हुआ। अभिलषित [को०]।

अभ्याकांक्षित²--सज्ञा पुं० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। झूठा दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभ्याख्यान--सज्ञा पुं० [स०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा। नालिश।

अभ्यागत¹--वि०[स०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ अतिथि रूप मे घर आया हुआ।

अभ्यागत²--सज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुना, जैसे--अभ्यागत सेवा गृहस्थो का धर्म है (शब्द०)।

अभ्यागम--सज्ञा पुं० [सं०] १ सामने आना। उपस्थिति। २ समीपता। पडोस। ३ सामना। ४ मुकाबिला। मुठभेड। युद्ध। ५ विरोध। ६ अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किसी निर्णय पर पहुँचना। ८ आघात। ९ वध (को०)। १०--शत्रुता (को०)

अभ्यागारिक--वि० [स०] १ कुटुंब के पालने मे तत्पर। लडके वाले मे फँसा हुआ। घरबारी। २ कुटुंब पालने मे व्यग्र। गृहस्थी की झझट से हैरान।

अभ्याघात--सज्ञा पुं०[स०] १ आघात। आक्रमण। २ बाधा। रुकावट। (को०)।

अभ्यात्त--वि० [स०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ब्रह्म का विशेषण। परिव्याप्त [को०]।

अभ्याधान--सज्ञा पु० [स०] प्रारभ। स्थापन [को०]।

अभ्यापात--सज्ञा पु० [स०] विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]।

अभ्यामर्द--सज्ञा पु० [स] युद्ध। सघर्ष [को०]।

अभ्याश¹--वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [को०]।

अभ्याश²--सज्ञा पुं० १ सामीप्य। निकटता। पडोस २ परिणाम। नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युदय [को०]।

अभ्यास¹--सज्ञा पुं०[स०]१ बार बार किसी काम को करना। पूर्णता प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलबन। अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मश्क। उ०--(क) करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान। सभा वि० (शब्द०)।

क्रि० प्र०--करना। होना। २ आदत। रब्त। बान। टेव। जैसे--उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड गया है (शब्द०)

क्रि० प्र०--पडना।

३ प्राचीनो के अनुसार एक काव्यालकार जिसमे किसी दुष्कर कार्य को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०--हरि सुमिरन प्रह्लाद किय, जरयो न अगिनि मँझार। गयो गिरायो गिरिहु ते, मन न बाँको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन मे चमत्कार न मान उसे अलकार नहीं मानते। ४ अनुशासन (को०)। ५ पडोस (को०)। ६ गुणन (को०)। ७ सगीत मे एक ही की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।

अभ्यास (पु)--वि० [स०अभ्याश] समीप। निकट।--अनेकार्थ

अभ्यासकला--सज्ञा पुं० [सं०] योग की उन चार कलाओ मे से जो विविध योगागो के मेल से बनती है। आसन और प्राणायाम का मेल।

अभ्यासयोग--सज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार अनुशीलन करने

क्रिया। २ लगातार एक ही विषय का बार बार चिंतन करने से मन या मस्तिष्क की एकाग्रता।

अभ्यासादन—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना [कौ०]।

अभ्यासित(५)—वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यसित'। उ०—रात दिना के सुने किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सों कैसे बचौ कहौ मन कोटिक करो उपाव।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५३६।

अभ्यासी—वि० [सं० अभ्यासिन्] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करनेवाला। साधक।

अभ्याहत—वि० [सं०] १ पीडित। ताडित। २ बाधित। ३ दोषयुक्त [कौ०]।

अभ्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना। २ अपहरण। चौर्य [कौ०]।

अभ्युक्त—वि० [सं०] किसी संदर्भ में कहा हुआ [कौ०]।

अभ्युक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेचन। छिडकाव। सिंचन। २ मार्जन [कौ०]।

अभ्युक्षित—वि० [सं०] १ छिडका हुआ। सिंचित। २ जिसपर छिडका गया हो। जिसका सिंचन हुआ हो।

अभ्युक्ष्य—वि० [सं०] छिडकने योग्य।

अभ्युचित—वि० [सं०] परचरित। प्रचलित। नियमित [कौ०]।

अभ्युच्चय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि। उत्थान। संपन्नता। उत्कर्ष। २ एकत्रीकरण [कौ०]।

अभ्युच्छ्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १ बढाव। उठान। २ संगीत में स्वरसाधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा। अवरोही—सा ध, नि प, ध म, प ग, म रे ग म।

अभ्युच्छ्रित—वि० [सं०] उन्नत। उठा हुआ। उच्च [कौ०]।

अभ्युत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना। २ किसी बडे के आने पर उसके आदर के लिये उठकर खडा हो जाना। प्रत्युद्गमन। ३ बढती। समृद्धि। उन्नति। गौरव। ४ उठान। आरंभ। उदय। उत्पत्ति।

अभ्युत्थायी—वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खडा होनेवाला। २ आदर के लिये उठकर खडा होनेवाला। ३ उन्नति करनेवाला। ४ बढनेवाला।

अभ्युत्थित—वि० [सं०] १ उठा हुआ। २ आदर के लिये उठकर खडा हुआ। ३ उन्नत। बढा हुआ।

अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १ उठने योग्य। २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो। जिसे उठकर आदर देना उचित हो। ३ उन्नति के योग्य।

अभ्युदय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, अभ्युदयिक] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय। २ प्रादुर्भाव। उत्पत्ति। ३ इष्टलाभ। मनोरथ की सिद्धि। ४ विवाह आदि शुभ अवसर। ५. वृद्धि। बढती। उन्नति। तरक्की। ६ अस्तित्व में आना। आविर्भूत होना [कौ०]। ७ घर में संतान के जन्म लेने पर किया जानेवाला नांदीमुख श्राद्ध। [कौ०]।

अभ्युदाहरण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण।

अभ्युदित—वि० [सं०] १ उगा हुआ। निकला हुआ। उत्पन्न। प्रादुर्भूत। २ दिन चढे तक सोनेवाला। ३ सूर्योदय के समय उठकर नित्यकर्म न करनेवाला। ४ समृद्ध। उन्नत। ५ उत्सव रूप में मनाया हुआ [कौ०]।

अभ्युपगत—वि० [सं०] १ पास गया हुआ। सामने आया हुआ। प्राप्त। २ स्वीकृत। अंगीकृत। मंजूर किया हुआ। ३ समान। तुल्य [कौ०]।

अभ्युपगम—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना। सामने आना या जाना। प्राप्ति। २ स्वीकार। अंगीकार। मंजूरी। ३ वादा करना (कौ०)। ४ न्याय के अनुसार सिद्धांत के चार भेदों में से एक।

विशेष—बिना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर जिसका खंडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं। जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है। इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोडी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य। इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धांत हुआ।

अभ्युपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना। २ दया। अनुग्रह। ३ अनुमोदन। स्वीकृति। मंजूरी। ४ सीखना। ढाढस। ५ रक्षा। बचाव। ६ वादा [कौ०]।

अभ्युपाय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वादा। २ स्वीकृत। ३ उ. ५ साधन [कौ०]।

अभ्युपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट। उपहार। २ रिश्वत [कौ०]

अभ्युपेत—वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ। आया हुआ। २ वादा किया हुआ। स्वीकृत [कौ०]।

अभ्युषित[1]—वि० [सं०] साथ या निकट रहनेवाला।

अभ्युषित[2]—संज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [कौ०]।

अभ्यूढ—वि० [सं०] समीप लाया हुआ [कौ०]।

अभ्यूष—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी। २ आधा पका हुआ भोजन [कौ०]।

अभ्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क। बहस। २ निष्कर्ष। ३ अनुमान ४ विचार [कौ०]।

अभ्रंकष[1]—वि० [सं० अभ्रङ्कष] गगनचुंबी। बहुत ऊँचा [कौ०]

अभ्रंकष[2]—संज्ञा पुं० १ वायु। हवा। २ पर्वत [कौ०]।

अभ्रंलिह[1]—वि० [सं०] गगनचुंबी [कौ०]।

अभ्रंलिह[2]—संज्ञा पुं० [सं०] हवा [कौ०]।

अभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ। बादल। २ आकाश। ३ अभ्रक धातु। ४ स्वर्ण। सोना। ५ नागरमोथा। ६ गणित शून्य। ७ कपूर (कौ०)। ८ बेत वेत्र (कौ०)।

अभ्रक—संज्ञा पुं० [सं०] अबरक। भोडर। दे० 'अबरक'।

अभ्रकसत्व—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात [कौ०]।

अभ्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वताकार बादल की चोटी [कौ०]।

अभ्रगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [कौ०]।

अभ्रनाग—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [कौ०]।

अभ्यर्थित--वि० [सं०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २. जो आगे बढ़कर लिया गया हो [को०]।

अभ्यर्थी--वि० [सं० अभ्यर्थिन्] [वि० स्त्री० अभ्यर्थिनी] अभ्यर्थना करनेवाला। निवेदन करनेवाला [को०]।

अभ्यर्च्य--वि० [सं०] दे० 'अभ्यर्चनीय'।

अभ्यर्दन--संज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीडन। [को०]।

अभ्यर्दित--वि० [सं०] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीडित [को०]।

अभ्यलंकार--संज्ञा पुं० [सं० अभ्यलङ्कार] आभूषण। मडन [को०]।

अभ्यलंकृत--वि० [सं०अभ्यलङ्कृत]आभूषित। मडित। सज्जित [को०]।

अभ्यर्हणा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा। २ आदर। सम्मान। श्रद्धा [को०]।

अभ्यवकर्षण--संज्ञा पुं० [सं०] बहिर्निष्कासन। बाहर निकालना या खींचना [को०]।

अभ्यवस्कंद--संज्ञा पुं०[सं० अभ्यवस्कन्द] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये तीव्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।

अभ्यवस्कंदन--संज्ञा पुं० [सं० अभ्यवस्कन्दन] दे० 'अभ्यवस्कंद'।

अभ्यवहरण--संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [को०]।

अभ्यवहार[1] --वि० [सं०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।

अभ्यवहार[2]--संज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।

यौ० --अभ्यवहार मडप= भोजन का स्थान। खाने का मडप।

अभ्यसन--संज्ञा पुं० [सं०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।

अभ्यसनीय--वि० [सं०] अभ्यास करने योग्य। जिसपर अभ्यास किया जाय [को०]।

अभ्यसित-- वि० [सं०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।

अभ्यसूय--वि० [सं०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।

अभ्यसूया--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रोध। गुस्सा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।

अभ्यस्त --वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मश्क किया हुआ। जैसे--यह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे--वह इस कार्य मे अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। प्रवीन [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।

अभ्यस्त--वि० [सं०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।

अभ्यान्त--वि० [सं० अभ्यान्त] १. रोगी। आतुर। २.घायल। आहत [को०]।

अभ्यारोहं--संज्ञा पुं०[सं०] पहलवानो का एक दूसरे को ललकारने के लिये सीना ठोंकना [को०]।

अभ्याकांक्षित[1]--वि० [सं०अभ्याकाङ्क्षित] चाहा हुआ। अभिलषित [को०]।

अभ्याकांक्षित[2]--संज्ञा पुं० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। झूठा दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभ्याख्यान--संज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा। झूठी नालिश।

अभ्यागत[1]--वि०[सं०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ अतिथि रूप मे घर आया हुआ।

अभ्यागत[2]--संज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुना, जैसे--अभ्यागत की सेवा गृहस्थों का धर्म है (शब्द०)।

अभ्यागम--संज्ञा पुं० [सं०] १ सामने आना। उपस्थिति। २ समीपता। पडोस। ३ सामना। ४.मुकाबिला। मुठभेड। युद्ध। ५ विरोध। ६.अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किसी निर्णय पर पहुँचना। ८ आघात। ९ वध (को०)। १०--शत्रुता (को०)।

अभ्यागारिक--वि० [सं०] १ कुटुंब के पालने मे तत्पर। लडके बालो मे फँसा हुआ। घरबारी। २ कुटुब पालने मे व्यग्र। गृहस्थी की झझट से हैरान।

अभ्याघात--संज्ञा पुं०[सं०] १ आघात। आक्रमण। २ बाधा। रुकावट। (को०)।

अभ्यात्त--वि० [सं०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ब्रह्म का विशेषण। परिव्याप्त [को०]।

अभ्याधान--संज्ञा पुं० [सं०] प्रारभ। स्थापन [को०]।

अभ्यापात--संज्ञा पुं० [सं०] विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]।

अभ्यामर्द--संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। सघर्ष [को०]।

अभ्याश[1]--वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [को०]।

अभ्याश[2]--संज्ञा पुं० १ सामीप्य। निकटता। पडोस २ परिणाम। नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युदय [को०]।

अभ्यास[1]--संज्ञा पुं०[सं०]१ बार बार किसी काम को करना। पूर्णता प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलबन। अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मश्क। उ०--(क) करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान। सभा वि० (शब्द०)।

क्रि० प्र०--करना। होना। २ आदत। रब्त। बान। टेव। जैसे--उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड गया है (शब्द०)।

क्रि० प्र०--पडना।

३ प्राचीनो के अनुसार एक काव्यालकार जिसमे किसी दुष्कर बात को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०--हरि सुमिरन प्रह्लाद किय, जरयो न अगिन मँझार। गयो गिरायो गिरिहु ते, मर्यो न बाँको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन मे चमत्कार न मान उसे अलंकार नही मानते। ४ अनुशासन (को०)। ५ पडोस (को०)। ६ गुणन (को०)। ७ सगीत मे एक ही पद की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।

अभ्यास[2] ⓤ--वि० [सं०अभ्याश] समीप। निकट।--अनेकार्थ०।

अभ्यासकला--संज्ञा पुं० [सं०] योग की उन चार कलाओ मे से एक जो विविध योगांगों के मेल मे बनती है। आसन और प्राणायाम का मेल।

अभ्यासयोग--संज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार अनुशीलन करने की

क्रिया। २ लगातार एक ही विषय का बार बार चिंतन करने मे मन या मस्तिष्क की एकाग्रता।

अभ्यासादन—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना [को०]।

अभ्यासित(पु)—वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यसित'। उ०—रात दिना के मुनि किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सों कैसे बचौ कहो मन कौटिक करौ उपाव।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५३६।

अभ्यासी—वि० [सं० अभ्यासिन्] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करनेवाला। साधक।

अभ्याहत—वि० [सं०] १ पीडित। ताडित। २ बाधित। ३ दोषयुक्त [को०]।

अभ्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना। २ अपहरण। चौर्य [को०]।

अभ्युक्त—वि० [सं०] किसी संदर्भ मे कहा हुआ [को०]।

अभ्युक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेचन। छिडकाव। सिंचन। २ मार्जन [को०]।

अभ्युक्षित—वि० [सं०] १ छिडका हुआ। सिंचित। २ जिसपर छिडका गया हो। जिसका सिंचन हुआ हो।

अभ्युक्ष्य—वि० [सं०] छिडकने योग्य।

अभ्युचित—वि० [सं०] परपरित। प्रचलित। नियमित [को०]।

अभ्युच्चय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि। उत्थान। सपन्नता। उत्कर्ष। २ एकत्रीकरण [को०]।

अभ्युच्छ्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. चढाव। उठान। २ सगीत मे स्वरसाधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा। अवरोही—सा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग म।

अभ्युच्छ्रित—वि० [सं०] उन्नत। उठा हुआ। उच्च [को०]।

अभ्युत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना। २ किसी बडे के आने पर उसके आदर के लिये उठकर खडा हो जाना। प्रत्युद्गमन। ३ बढती। समृद्धि। उन्नति। गौरव। ४ उठान। आरंभ। उदय। उत्पत्ति।

अभ्युत्थायी—वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खडा होनेवाला। २ आदर के लिये उठकर खडा होनेवाला। ३ उन्नति करनेवाला। ४ बढनेवाला।

अभ्युत्थित—वि० [सं०] १ उठा हुआ। २ आदर के लिये उठकर खडा हुआ। ३ उन्नत। बढा हुआ।

अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १ उठने योग्य। २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो। जिसे उठकर आदर देना उचित हो। ३. उन्नति के योग्य।

अभ्युदय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, आभ्युदयिक] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय। २ प्रादुर्भाव। उत्पत्ति। ३ इष्टलाभ। मनोरथ की सिद्धि। ४ विवाह आदि शुभ अवसर। ५. वृद्धि। बढती। उन्नति। तरक्की। ६ अस्तित्व मे आना। आविर्भूत होना [को०]। ७ घर मे संतान के जन्म लेने पर किया जानेवाला नांदीमुख श्राद्ध। [को०]।

अभ्युदाहरण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण।

अभ्युदित—वि० [सं०] १ उगा हुआ। निकला हुआ। उत्पन्न। प्रादुर्भूत। २ दिन चढे तक सोनेवाला। ३ सूर्योदय के समय उठकर नित्यकर्म न करनेवाला। ४. समृद्ध। उन्नत। ५ उत्सव रूप मे मनाया हुआ [को०]।

अभ्युपगत—वि० [सं०] १ पास गया हुआ। सामने आया हुआ। प्राप्त। २ स्वीकृत। अंगीकृत। मंजूर किया हुआ। ३. समान। तुल्य [को०]।

अभ्युपगम—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना। सामने आना या जाना। प्राप्ति। २ स्वीकार। अंगीकार। मंजूरी। ३ वादा करना (को०)। ४ न्याय के अनुसार सिद्धांत के चार भेदों मे से एक।

विशेष—बिना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर जिसका खंडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं। जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है। इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोडी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य। इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धांत हुआ।

अभ्युपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना। २ दया। अनुग्रह। ३ अनुमोदन। स्वीकृति। मंजूरी। ४ सीखना। ढाढस। ५ रक्षा। बचाव। ६ वादा [को०]।

अभ्युपाय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वादा। २ स्वीकृति। ३. उपाय साधन [को०]।

अभ्युपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट। उपहार। २ रिश्वत [को०]।

अभ्युपेत—वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ। आया हुआ। २ वादा किया हुआ। स्वीकृत [को०]।

अभ्युषित[1]—वि० [सं०] साथ या निकट रहनेवाला।

अभ्युषित[2]—संज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [को०]।

अभ्यूढ—वि० [सं०] समीप लाया हुआ [को०]।

अभ्यूष—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी। २ आधा पका हुआ भोजन [को०]।

अभ्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क। वहम। २ निष्कर्ष। ३ अनुमान। ४ विचार [को०]।

अभ्रंकष[1]—वि० [सं० अभ्रङ्कष] गगनचुंबी। बहुत ऊँचा [को०]।

अभ्रंकष[2]—संज्ञा पुं० १. वायु। हवा। २ पर्वत [को०]।

अभ्रंलिह[1]—वि० [सं०] गगनचुंबी [को०]।

अभ्रंलिह[2]—संज्ञा पुं० [सं०] हवा [को०]।

अभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ। बादल। २ आकाश। ३ अभ्रक धातु। ४ स्वर्ण। सोना। ५ नागरमोथा। ६ गणित में शून्य। ७ कपूर (को०)। ८ श्वेत वेश (को०)।

अभ्रक—संज्ञा पुं० [सं०] अबरक। भोडर। दे० 'अबरक'।

अभ्रकसत्व—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात [को०]।

अभ्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वताकार बादल की चोटी [को०]।

अभ्रगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [को०]।

अभ्रनाग—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०]।

अभ्यर्थित--वि० [सं०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २ जो आगे बढकर लिया गया हो [को०]।

अभ्यर्थी--वि० [सं० अभ्यर्थिन् [वि० स्त्री० अभ्यर्थिनी] अभ्यर्थना करनेवाला। निवेदन करनेवाला [को०]।

अभ्यर्थ्य--वि० [सं०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।

अभ्यर्दन--सज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीडन। [को०]।

अभ्यर्दित--वि० [सं०] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीडित [को०]।

अभ्यलकार--सज्ञा पुं० [सं० अभ्यलङ्कार] आभूषण। मडन [को०]।

अभ्यलकृत--वि० [सं०अभ्यलङ्कृत]आभूषित। मडित। सज्जित [को०]।

अभ्यर्हणा--सज्ञा स्त्री० [सं०]१ पूजा। २ आदर। समान। श्रद्धा [को०]।

अभ्यवकर्षण--सज्ञा पुं० [सं०] बहि निष्कासन। बाहर निकालना या खीचना [को०]।

अभ्यवस्कद--सज्ञा पुं०[सं० अभ्यवस्कन्द] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये तीव्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।

अभ्यवस्कदन--सज्ञा पुं० [सं० अभ्यवस्कन्दन] दे० 'अभ्यवस्कद'।

अभ्यवहरण--सज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [को०]।

अभ्यवहार[1]--वि० [सं०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।

अभ्यवहार[2]--सज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।

यौ०--अभ्यवहार मडप = भोजन का स्थान। खाने का मडप।

अभ्यसन--सज्ञा पुं० [सं०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।

अभ्यसनीय--वि० [सं०] अभ्यास करने योग्य। जिसपर अभ्यास किया जाय [को०]।

अभ्यसित--वि० [सं०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।

अभ्यसूय--वि० [सं०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।

अभ्यसूया--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रोध। गुस्सा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।

अभ्यस्त--वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मश्क किया हुआ। जैसे--वह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे--वह इस कार्य मे अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।

अभ्यस्त--वि० [सं०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।

अभ्यात--वि० [सं० अभ्यान्त] १ रोगी। आतुर। २ घायल। आहत [को०]।

अभ्याकर्ष--सज्ञा पुं०[सं०] पहलवानो का एक दूसरे को ललकारने के लिये सीना ठोकना [को०]।

अभ्याकाक्षित[1]--वि० [सं०अभ्याकाङ्क्षित] चाहा हुआ। अभिलषित [को०]।

अभ्याकाक्षित[2]--सज्ञा पुं० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। झूठा दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभ्याख्यान--सज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा। झूठी नालिश।

अभ्यागत[1]--वि०[सं०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ अतिथि रूप मे घर आया हुआ।

अभ्यागत[2]--सज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुना, जैसे--अभ्यागत की सेवा गृहस्थो का धर्म है (शब्द०)।

अभ्यागम--सज्ञा पुं० [सं०] १ सामने आना। उपस्थिति। २ समीपता। पडोस। ३ सामना। ४ मुकाबिला। मुठभेड। युद्ध। ५ विरोध। ६ अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किसी निर्णय पर पहुँचना। ८ आघात। ९ वध (को०)। १०--शत्रुता (को०)।

अभ्यागारिक--वि० [सं०] १ कुटुंब के पालने मे तत्पर। लडके बालो मे फँसा हुआ। घरबारी। २ कुटुंब पालने मे व्यग्र। गृहस्थी की झझट से हैरान।

अभ्याघात--सज्ञा पुं०[सं०] १ आघात। आक्रमण। २ बाधा। रुकावट। (को०)।

अभ्यात्त--वि० [सं०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ब्रह्म का विशेषण। परिव्याप्त [को०]।

अभ्याधान--सज्ञा पुं० [सं०] प्रारभ। स्थापन [को०]।

अभ्यापात--सज्ञा पुं० [सं०] विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]।

अभ्यामर्द--सज्ञा पुं० [सं] युद्ध। सघर्ष [को०]।

अभ्याश[1]--वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [को०]।

अभ्याश[2]--सज्ञा पुं० १ सामीप्य। निकटता। पडोस २ परिणाम। नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युदय [को०]।

अभ्यास[1]--सज्ञा पुं०[सं०]१ बार बार किसी काम को करना। पूर्णता प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलबन। अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मश्क। उ०--(क) करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान। सभा वि० (शब्द०)।

क्रि० प्र०--करना। होना। २ आदत। रब्त। बान। टेव। जैसे--उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड गया है (शब्द०)।

क्रि० प्र०--पडना।

३ प्राचीनो के अनुसार एक काव्यालकार जिसमे किसी दुष्कर बात को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०--हरि सुमिरन प्रह्लाद किय, जरयो न अगिनि मँझार। गयो गिरायो गिरिहु ते, भयो न बाँको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन मे चमत्कार न मान उसे अलकार नहीं मानते। ४ अनुशासन (को०)। ५ पडोस (को०)। ६ गुणन (को०)। ७ सगीत मे एक ही पद की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।

अभ्यास[2](पु)--वि० [सं०अभ्याश] समीप। निकट।--अनेकार्थ०।

अभ्यासकला--सज्ञा पुं० [सं०] योग की उन चार कलाओ मे से एक जो विविध योगागो के मेल से बनती है। आसन और प्राणायाम का मेल।

अभ्यासयोग--सज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार अनुशीलन करने की

क्रिया। २ लगातार एक ही विषय का बार बार चिंतन करने से मन या मस्तिष्क की एकाग्रता।

अभ्यासादन—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना [कौ०]।

अभ्यासित(पु)—वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यसित'। उ०—रात दिना के सुने किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सो कैसे बचौ कहो मन कोटिक करौ उपाव।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५३६।

अभ्यासी—वि० [सं० अभ्यासिन्] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करनेवाला। साधक।

अभ्याहत—वि० [सं०] १ पीडित। ताडित। २ बाधित। ३ दोषयुक्त [कौ०]।

अभ्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना। २ अपहरण। चौर्य [कौ०]।

अभ्युक्त—वि० [सं०] किसी संदर्भ में कहा हुआ [कौ०]।

अभ्युक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेचन। छिडकाव। सिंचन। २ मार्जन [कौ०]।

अभ्युक्षित—वि० [सं०] १ छिडका हुआ। सिंचित। २ जिसपर छिडका गया हो। जिसका सिंचन हुआ हो।

अभ्युक्ष्य—वि० [सं०] छिडकने योग्य।

अभ्युचित—वि० [सं०] परंपरित। प्रचलित। नियमित [कौ०]।

अभ्युच्चय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि। उत्थान। सपन्नता। उत्कर्ष। २ एकत्रीकरण [कौ०]।

अभ्युच्छ्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १ चढाव। उठान। २ संगीत में स्वरसाधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा। अवरोही—सा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग म।

अभ्युच्छ्रित—वि० [सं०] उन्नत। उठा हुआ। उच्च [कौ०]।

अभ्युत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना। २ किसी बडे के आने पर उसके आदर के लिये उठकर खडा हो जाना। प्रत्युद्गमन। ३ बढती। समृद्धि। उन्नति। गौरव। ४ उठान। आरंभ। उदय। उत्पत्ति।

अभ्युत्थायी—वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खडा होनेवाला। २ आदर के लिये उठकर खडा होनेवाला। ३ उन्नति करनेवाला। ४ बढनेवाला।

अभ्युत्थित—वि० [सं०] १ उठा हुआ। २ आदर के लिये उठकर खडा हुआ। ३ उन्नत। बढा हुआ।

अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १ उठने योग्य। २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो। जिसे उठकर आदर देना उचित हो। ३. उन्नति के योग्य।

अभ्युदय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, आभ्युदयिक] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय। २ प्रादुर्भाव। उत्पत्ति। ३ इष्टलाभ। मनोरथ की सिद्धि। ४ विवाह आदि शुभ अवसर। ५. वृद्धि। बढती। उन्नति। तरक्की। ६ अस्तित्व में आना। आविर्भूत होना [कौ०]। ७ घर में संतान के जन्म लेने पर किया जानेवाला नांदीमुख श्राद्ध। [कौ०]।

अभ्युदाहरण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण।

अभ्युदित—वि० [सं०] १ उगा हुआ। निकला हुआ। उत्पन्न। प्रादुर्भूत। २ दिन चढे तक सोनेवाला। ३ सूर्योदय के समय उठकर नित्यकर्म न करनेवाला। ४ समृद्ध। उन्नत। ५. उत्सव रूप में मनाया हुआ [कौ०]।

अभ्युपगत—वि० [सं०] १ पास गया हुआ। सामने आया हुआ। प्राप्त। २ स्वीकृत। अंगीकृत। मंजूर किया हुआ। ३ समान। तुल्य [कौ०]।

अभ्युपगम—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना। सामने आना या जाना। प्राप्ति। २ स्वीकार। अंगीकार। मंजूरी। ३ वादा करना (कौ०)। ४ न्याय के अनुसार सिद्धांत के चार भेदों में से एक।

विशेष—बिना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर जिसका खंडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं। जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है। इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोडी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य। इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धांत हुआ।

अभ्युपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना। २ दया। अनुग्रह। ३ अनुमोदन। स्वीकृति। मंजूरी। ४ सीखना। ढाढस। ५ रक्षा। बचाव। ६ वादा [कौ०]।

अभ्युपाय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वादा। २ स्वीकृत। ३ उपाय साधन [कौ०]।

अभ्युपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट। उपहार। २ रिश्वत [कौ०]।

अभ्युपेत—वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ। आया हुआ। २ वादा किया हुआ। स्वीकृत [कौ०]।

अभ्युषित[1]—वि० [सं०] साथ या निकट रहनेवाला।

अभ्युषित[2]—संज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [कौ०]।

अभ्यूढ—वि० [सं०] समीप लाया हुआ [कौ०]।

अभ्यूष—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी। २ आधा पका हुआ भोजन [कौ०]।

अभ्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क। बहस। २ निष्कर्ष। ३ अनुमान। ४ विचार [कौ०]।

अभ्रंकष[1]—वि० [सं० अभ्रङ्कष] गगनचुंबी। बहुत ऊँचा [कौ०]।

अभ्रंकष[2]—संज्ञा पुं० १ वायु। हवा। २ पर्वत [कौ०]।

अभ्रंलिह[1]—वि० [सं०] गगनचुंबी [कौ०]।

अभ्रंलिह[2]—संज्ञा पुं० [सं०] हवा [कौ०]।

अभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ। बादल। २ आकाश। ३ अभ्रक धातु। ४ स्वर्ण। सोना। ५ नागरमोथा। ६ गणित में शून्य। ७ कपूर (कौ०)। ८ बेत बेंत (कौ०)।

अभ्रक—संज्ञा पुं० [सं०] अबरक। भोडर। दे० 'अबरक'।

अभ्रकसत्व—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात [कौ०]।

अभ्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वताकार बादल की चोटी [कौ०]।

अभ्रगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [कौ०]।

अभ्रनाग—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [कौ०]।

अभ्रपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ वायुमंडल। २ गुब्बारा [को०]।
अभ्रपिशाच—संज्ञा पुं० [सं०] राहु [को०]।
अभ्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ बेंत। २ आकाशकुसुम। असंभव बात। पानी [को०]।
अभ्रभेदी—वि० [सं० अभ्रभेदिन्] आकाश को भेदनेवाला। गगनचुंबी [को०]।
अभ्रम¹—वि० [सं०] जिसे भ्रम न हो। भ्रमरहित [को०]।
अभ्रम²—संज्ञा पुं० भ्रम का अभाव। स्थिरता। दृढ़ता [को०]।
अभ्रमांसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी [को०]।
अभ्रमातंग—संज्ञा पुं० [सं० अभ्रमातङ्ग] ऐरावत [को०]।
अभ्रमु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्व के दिग्गज की पत्नी। ऐरावत की पत्नी [को०]।
अभ्रमुप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०]।
अभ्ररोह—संज्ञा पुं० [सं०] वैदूर्य मणि। लाजवर्त [को०]।
अभ्रमुवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०]।
अभ्रवाटिक—संज्ञा पुं० [सं०] आम्रातक वृक्ष (को०)।
अभ्रवाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमड़े का वृक्ष [को०]।
अभ्रांत—वि० [सं० अभ्रान्त] १ भ्रांतिशून्य। भ्रमरहित। २ भ्रमशून्य। स्थिर। व्यवस्थित।
यौ०—अभ्रांतबुद्धि=जिसकी बुद्धि थिर हो।
अभ्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रान्ति] १ भ्रांति का न होना। स्थिरता। अचंचलता। २ भ्रम का अभाव। भूल चूक का न होना।
अभ्रित¹(पु)—वि० [सं० अ+भृत] जो भरा न जा सके। अपूरणीय उ०—दुज वर वज्र पैठ जेहाँ धर। बिल अभ्रित तिहँ थान पडि थिर।—पृ० रा०, १।१४७।
अभ्रित²—वि० [सं०] बादलों से ढँका हुआ [को०]।
अभ्रिय¹—वि० [सं०] १ बादलों से संबंधित या बादलों से उत्पन्न [को०]।
अभ्रिय—संज्ञा पुं० बिजली [को०]।
अभ्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ फावड़ा। कुदाल। २ नाव साफ करने के लिये लकड़ी का एक नुकीला औजार [को०]।
अभ्रेष—संज्ञा पुं० [सं०] उपयुक्तता। औचित्य [को०]।
अभ्रोत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र [को०]।
अभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] नंगा रहनेवाला साधु। दिगंबर साधु [को०]।
अभ्व¹—वि० [सं०] १ महत्। विशाल। २ शक्तिशाली। ३. भयकर [को०]।
अभ्व²—संज्ञा पुं० १ विशालता। २ भयकरता। ३. अत्यधिक शक्ति [को०]।
अमख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आमिष] दे० 'आमिष'। उ०—बहरी अमख हित पखवल, गहँ कुलक असक गत। रा० रू०, १५३।
अमंग—वि० [हिं० मंगन] १ न मांगनेवाला। अयाचक।
अमंगल¹—वि०[सं० अमङ्गल] १ मंगलशून्य। अशुभ। २ भाग्यहीन। अभागा [को०]।
अमंगल²—संज्ञा पुं० १ अकल्याण। अहित। अशुभ। दुख। २. दुर्भाग्य (को०)। ३ रेंड़ का पेड़। रेंड़। एरंड।
अमंगलचार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ+हिं० मंगलचार] रुदन। विलाप उ०—करहिं अमंगलचार, कहाँ गए राजा हो—पलटू०, भा० ३, पृ० ७४।
अमंगल्य—वि० संज्ञा पुं० [सं० अमङ्गल्य] दे० 'अमंगल' [को०]।
अमंड¹—वि०[सं० अमण्ड] १ मंडनरहित। सज्जाविहीन। अनलंकृत। २ माँड रहित (चावल)।
अमंड²—संज्ञा पुं० रेंड का वृक्ष। एरंड द्रुम [को०]।
अमंडित—वि० [सं० अमण्डित] अनलंकृत। दे० 'अमंड' [को०]।
अमंत(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० अमन्त्र प्रा० अमंत] अमान्य मत। कुमत। अनुचित विचार। उ०—इन आकर्षं कज्ज विन, किनो अप्प अमंत—पृ० रा०, ६।१४३
अमंत²—वि० [सं० अमित] अत्यधिक। उ०—राजन रक्खिय सब्ब इह, बाढिय प्रीत अमंत।—पृ० रा० (उ०), पृ० २५०।
अमंत्र—वि० [सं० अमन्त्र] १ जो वेदमंत्रों का अधिकारी न हो। जैसे, स्त्री, शूद्र आदि। २ जिसमें वैदिक मंत्रों की आवश्यकता न हो (कर्म)। ३ वेदमंत्रों को न जाननेवाला। अवेदज्ञ। ४ मंत्रविहीन [को०]।
अमंत्रक—वि० [सं० अमन्त्रक] पुं० 'अमंत्र' [को०]।
अमंत्रज्ञ—वि० [सं० अमन्त्रज्ञ] वैदिक मंत्रों को न जाननेवाला [को०]।
अमंद¹—वि० [सं० अमन्द] १ जो धीमा न हो। तेज। २. उत्तम। श्रेष्ठ। स्वच्छ। सुंदर। भला। उ०—सूर० १०। २०३। ३ उद्योगी। कार्यकुशल। चलता पुरजा। चतुर। ४. कम नहीं। बहुत। अधिक [को०]।
अमंद²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का वृक्ष [को०]।
अम¹—वि० [सं०] अपक्व। कच्चा [को०]।
अम²—संज्ञा पुं० १ बीमारी का कारण। २ बीमारी। रोग। ३ दाब। भार (को०)। ४ शक्ति। बल (को०)। ५ भय। डर (को०)। ६ सेवक। नौकर। ७ प्राणवायु (को०)। ८ वह स्थिति या अवस्था जो अमित हो (को०)।
अम³(पु)‡—सर्व [सं० अस्मत्, प्रा० अम्ह] दे० 'हम'। उ०—महाराणी जसराज री या बोली तिणवार। प्रथम अमा पत्राहिए खग धाराजल धार। रा० रू०, पृ० ३३।
अम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अंब, अम, (पु)अम] आम।
विशेष—समस्त पदों में यह प्रायः पहले आता है, जैसे, अमचूर, अमरस, अमरसी।
अमका†—सर्व [सं० अमुक] ऐसा ऐसा। अमुक। फलाना।
अमग्ग(पु)—संज्ञापुं०[सं० अमार्ग प्रा० अमग्ग] कुपथ। कुराह। कुमार्ग।
अमचुर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमचूर'।
अमचूर—संज्ञा पुं० [हिं० अम='आम'+चूर] सुखाए हुए कच्चे आम का चूर्ण। पिसी हुई अमहर।
मुहा०—सूखकर अमचूर होना=बहुत दुबला होना। शरीर में हाड़ चाम भर रह जाना।
अमज्जक—वि० [सं०] जिसमें मज्जा न हो। मज्जाविहीन [को०]।
अमड़ा—संज्ञा पुं० [सं० आम्रातक, प्रा० अंबाडय] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ शरीफे की पत्तियों से छोटी और सींकों में लगी हैं। इसमें भी आम की तरह मौर आता है और छोटे छोटे खट्टे फल

लगते हैं जो अचार, चटनी आदि के काम मे आते हैं। उक्त पेड का फल। अमारी।

अमर्णव—वि० [सं०] रत्नविहीन [को०]।

अमत¹—सज्ञा पुं० [सं०] १ मन का अभाव। असमति। २ रोग। ३ मृत्यु। ४ काल। समय (को०)। रेणु। धूलि (को०)।

अमत²—वि० १ जिसका अनुभव न हुआ हो या न हो सके। २ अज्ञात ३ अस्वीकृत [को०]।

अमति¹—सज्ञा पुं० [सं०] १ समय। २ चद्रमा। ३ आकार। ढाँचा। ४ अभाव। ५ बुरा या निकृष्ट व्यक्ति [को०]।

अमति²—सज्ञा स्त्री० १ अज्ञान। अचेतना। २. ज्ञान, लक्ष्य या दूरदर्शिता का अभाव [को०]।

अमति³—वि० १ गरीब। दरिद्र। २ दुष्ट। बदमाश [को०]।

अमतपदार्थता—सज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य मे एक प्रकार का शब्ददोष जहाँ दूसरा अर्थ प्रकृत के विरुद्ध हो।

अमत्त—वि० [सं०] १ मदरहित। २ बिना घमड का। ३ शात। जिसका मस्तिष्क ठीक हो।

अमत्ति(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अ + मति] अमति। दुर्मति। कुमति। हीनमति। उ०—अत मत्ति सो गत्ति। अनजा मत्ति अमत्तिय।—पृ० रा०, ३१।१०१।

अमत्सर¹—सज्ञा पुं० [सं०] मत्सर का न होना। मात्सर्य का अभाव[को०]।

अमत्सर—वि० शत्रुता न रखनेवाला। मात्सर्यहीन [को०]।

अमद¹—वि० [सं०] १ जिसे मद न हो। मदरहित। अभिमान रहित। २ दुखी। ३ गभीर [को०]।

अमद²—सज्ञा पुं० [अ०] विचार। सकल्प [को०]।

अमदन्—क्रि० वि० [अ०] जानबूझकर। इच्छापूर्वक।

अमदान—सज्ञा पुं० [सं०]

अमधुर¹—वि० [सं०] १ जो मधुर न हो। कटु। अरुचिकर।

अमधुर²—संज्ञा पुं० सगीतशास्त्र के अनुसार बाँसुरी के सुर के छह दोषों मे से एक।

अमन¹—सज्ञा पुं० [अ० अम्न] १ शाति। चैन। आराम। इतमीनान। २ रक्षा। बचाव।

यौ०—अमनअमान = शाति। सुरक्षा। सुव्यवस्था। अमन चैन = सुख। आराम। शाति। अमनपसद = आरामपसद। शातिप्रिय।

अमन²—सज्ञा पुं० [सं० अमनस्] १ अनुभूति का न होना। अनुभूति का अभाव। २ ज्ञानाभाव [को०]।

अमनस्क—वि० [सं०] १ मन या इच्छा से रहित। उदासीन। २ उदास। अनमना। अन्यमनस्क। दे० 'अमना'।

अमना—वि० [सं० अमनस्] १ मन या इच्छारहित। उदासीन। अन्यमनस्क। २ उदास। ३ स्नेहरहित। ४ बेफिक्र। ५ अनमना। ६ मन पर नियत्रण न रखनेवाला। ७ नासमझ मूर्ख। (को०)।

अमना²—सज्ञा पुं० परब्रह्म [को०]।

अमनाक्—अव्य० थोडा नही। बहुत। अधिक [को०]।

अमनिया¹—वि० [सं० अ + मल अथवा कमनीय ?] शुद्ध। पवित्र। अछूता। उ०—कबहि अमनिया हलुवा खावै।—पलटू०, पृ० ११०।

अमनिया²—सज्ञा स्त्री० [हिं०] भोजन बनाने की क्रिया। रसोई पकाना। (साधु की परि०)।

अमनुष्य¹—सज्ञा पुं० [सं०] १ जो मनुष्य न हो। अमानव। २ राक्षस। दैत्य [को०]।

अमनुष्य²—सज्ञा पुं० १ अमानवीय। २ जहाँ मनुष्य अधिक आता जाता न हो [को०]।

अमनैत(पु)—वि० [अ० अमन + हिं० ऐत (प्रत्य०)] अमन करनेवाला। शासन करनेवाला। उ०—अपसिंह अमनैत इक खल खडन बलबड। सुजान०, पृ० ५।

अमने(पु)†—सर्व० [पुं० अस्म, प्रा० हम्म,(पु)अम, गुज० अमने = मुझे] १. हमको। मुझको। २ हमने। मैंने। उ०—प्रार अप्रछन अमने देखे, आपणपो न दिखाडे रे।—दादू०, पृ० ५३४।

अमनैक¹—सज्ञा पुं० [स० आम्नायिक = वंश का अथवा स० आत्मन्, प्रा० अप्पण, गुज० अमे, अने, असो, हिं० अपना, अपनैक] १ अवध मे एक प्रकार के काश्तकार जिन्हें कुलपरपरा के कारण लगान के सबध मे कुछ विशेष अधिकार प्राप्त रहते हैं। २. सरदार। हकदार। दावेदार। अधिकारी व्यक्ति। उ०—जेठे पुत्र सुभट छवि छाए। नाम सार वाहन जे गाए। जानि जुद्ध अमनैक अढाए। खेलहार ता समय पठाए।—लाल० (शब्द०)।

अमनैक²—वि० अधिकार जतानेवाला। ढीठ। साहसी। उ०—(क) दौरि दधिदान काज ऐसो अमनैक तहाँ आली वनमाली आइ बहियाँ गहत है।—पद्माकर, (शब्द०)। (ख) जाति हीं गोरस बेचन को ब्रज वीथिन धूम मची चहुँधा तें। बाल गोपाल सबै अमनैक हैं फागुन मे बचिहौं री कहाँ ते।—बेनी (शब्द०)।

अमनैकी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अमनैक] मनमाना आचरण। ढीठ व्यवहार। अमनैकपन। उ०—चचल चोखे चपल अति नही देत पल चैन। कमनैती सीखी नई अमनैकी इन नैन।—स० सप्तक, पृ० ३५८।

अमनोज्ञ—वि० [सं०] १ असुदर। जो सुंदर न हो। २ अप्रिय। अरुचिकर [को०]।

अमनोनिवेश—सज्ञा पुं० [सं० अ + मनस् + निवेश] मनोनिवेश का न होना। असावधानी। उ०—किंतु ऐसा उनके अमनोनिवेश से हुआ है।—ठेठ० उपो) पृ०६।

अमनोरथ—वि० [सं०] मनोरथशून्य। इच्छारहित। उ०—अब तक मैं उक्त कार्य की पूर्ति से अमनोरथ रहा हूँ।—ठेठ० (उपो०), पृ० १।

अमम¹—वि० [सं०] १ ममतारहित। अहकारशून्य। २ स्वार्थविहीन। अलिप्त। मोहरहित [को०]।

अमम²—सज्ञा पुं० बारहवें भावी जैन तीर्थंकर [को०]।

अमर¹—वि० [सं०] १ जो मरे नही। चिरजीवी। २ शाश्वत। अविनाशी।

अमर²—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अमरा, अमरी] १ देवता। २ पारा। ३ हडजोड का पेड। ४ अमरकोश। ५ लिंगानुशासन नामक प्रसिद्ध कोश के कर्ता अमरसिंह जो विक्रमादित्य के नवरत्नो मे से एक थे। ६ मरुद्गणों मे से एक। उनचास पवनों में से

एक। ७ विवाह के पहले वर कन्या के राशिवर्ग के मिलान के लिये नक्षत्रों का एक गण जिसमें ये नक्षत्र होते हैं—अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा और श्रवण। ८ सोना (को०)। ९ तैंतीस (३३) की संख्या (को०)। १० एक प्रकार का देवदार वृक्ष (को०)। ११ अस्थिसमूह (को०)। १२ एक पर्वत (को०)। १३ स्नुही वृक्ष। सेंहुड़ (को०)।

अमर[३](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अंबर'। उ०—उड्डि रेन डंबर अमर दिष्यौ सेन चहुआन।—पृ० रा० ९।१३१।

अमरकटक—संज्ञा पुं० [सं० अमरकण्टक] विंध्याचल पर्वत पर एक ऊँचा स्थान जहाँ से सोन और नर्मदा नदियाँ निकलती हैं। यह हिंदुओं के तीर्थों में से है। यहाँ प्रतिवर्ष शिवदर्शन के निमित्त धूमधाम से मेला होता है।

अमरकोट—संज्ञा पुं० [सं०] राजपूताने का एक प्रसिद्ध स्थान [को०]।

अमरकोश—संज्ञा पुं० [सं०] अमरसिंह द्वारा निर्मित संस्कृत का प्रसिद्ध कोश।

अमरख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमर्ष] १ क्रोध। कोप। गुस्सा। रिस। उ०—बरवस खोज पिता के गयऊ। खोज न पाय अमरख तब भयऊ।—कबीर सा०, पृ० ५६०। २ रस के अंतर्गत ३३ संचारी भावों में से एक। दूसरे का अहंकार न सहकर उसके नष्ट करने की इच्छा।

अमरखी(पु)—वि० [सं० अमर्षिन्] क्रोधी। बुरा माननेवाला। दुःखी होनेवाला।

अमरगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के गुरु। बृहस्पति [को०]।

अमरज—संज्ञा पुं० [सं] एक प्रकार का खैर का पेड़ [को०]।

अमरण[१]—संज्ञा पुं० [सं०] अमरता। मृत्यु का अभाव।

अमरण[२]—वि० मरणरहित। अमर। चिरजीवी।

अमरतटिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। देवनदी [को०]।

अमरतरु—संज्ञा पुं० [सं०] देवतरु। कल्पवृक्ष [को०]।

अमरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मृत्यु का अभाव। चिरजीवन। उ०—सुधा सराहिअ अमरता गरल सराहिअ मीचु।—मानस, १।१५। २ देवत्व। उ०—अरे अमरता के चमकीले पुतलो! तेरे वे जयनाद।—कामायनी, पृ० ७।

अमरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ अमरता। २ देवत्व।

अमरदारु—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु का पेड़।

अमरद्विज—संज्ञा पुं० [सं०] मंदिर का प्रबंधक या पुजारी ब्राह्मण [को०]।

अमरधाम—संज्ञा पुं० [सं० अमरधामन्] स्वर्ग। देवलोक। [को०]।

अमरनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्र। २ काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से सात दिन के मार्ग पर हिंदुओं का एक तीर्थ। यहाँ श्रावण की पूर्णिमा को बर्फ के बने हुए शिवलिंग का दर्शन होता है। ३. जैन लोगों के १८वें तीर्थंकर।

अमरपख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमरपक्ष] पितृपक्ष। उ०—समय पाइ कै लगत है, नीचहु करन गुमान। पाय अमरपख द्विजन लौं कौग चहै सनमान।—रसनिधि (शब्द०)।

अमरपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र। उ०—खेलन हरयौ अमरपति मान।—घनानंद, पृ० २४८।

अमरपद—संज्ञा पुं० [सं०] देवपद। मोक्ष। मुक्ति। उ०—अठै अमरपद लहिए।—कबीर ग्रं०, पृ० २६।

अमरपन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमर+हिं० पन] १ अमरता। चिरजीवन। २ देवत्व।

अमरपुर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अमरपुरी] अमरावती। देवताओं का नगर।

अमरपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमरपुष्पक' [को०]।

अमरपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कल्पवृक्ष। २ वृक्षविशेष। काँस। ३ तालमखाना। ४. गोखरू। ५ केतकी (को०)। ६ चूत (को०)

अमरपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधःपुष्पी का क्षुप [को०]।

अमरबेल—संज्ञा पुं० [सं० अ बर+बेल्लि, अम्बरवल्ली] एक पीली लता या बौर जिसमें जड़ और पत्तियाँ नहीं होतीं। आकाशबेल। आकाशवल्ली।

विशेष—यह लता जिस पेड़ पर चढ़ती है उसके रस से अपना परिपोषण करती है और उस वृक्ष को निर्बल कर देती है। इसमें सफेद फूल लगते हैं। वैद्य इसे मधुर, पित्तनाशक और वीर्यवर्धक मानते हैं।

अमरबौंर—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमरबेल'। उ०—अमरबौंर अर्थात् आकाशबौर ने तो ऐसे बहुतेरे वृक्षों को जकड़ लिया—प्रेमघन०, पृ० १६।

अमरभनित(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अमर+भणिति] अमरवाणी। संस्कृत। उ०—चित चकोर भाषा भनी अमरभनित अवगाहि।—घनानंद, पृ० ६०७।

अमरमूरि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमियमूरि'।

अमररत्न—संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक। बिल्लौर।

अमरराज—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र। उ०—घनन घनन घटागन बजैं। अमरराज गज की छवि लजैं।—नंद० ग्रं०, पृ० २८७।

अमरलोक—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रपुरी। देवलोक। स्वर्ग।

अमरवर—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं में श्रेष्ठ। इंद्र। उ०—खिलति मिलति तिनको नरपति सों। जिमि बर देत अमरवर रति सों।—गोपाल (शब्द०)।

अमरवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशबौर। अमरबेल [को०]।

अमरवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमरबेल।

अमरस[१]—संज्ञा पुं० [हिं० अम=आम+रस] निचोड़कर और जमाकर सुखाया हुआ आम का रस। अमावट।

अमरस[२](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमर्ष] दे० 'अमरख'। उ०—अमरस वे इतबार, निरदयता मन नामनिक। नर सम सार असार, पैलां घर वाळै पिसण।—बाँकीदास ग्रं०, भा० १, पृ० ६२।

अमरसर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] अमृतसर। पंजाब का एक नगर जो सिक्खों का तीर्थस्थान है। उ०—जो पंजाब अमरसर गाया। सो बाबे ने नहीं बनाया।—घट०, पृ० ३२८।

अमरसरी—वि० [हिं० अमरसर] अमृतसर से संबद्ध। अमरसर का।

अमरसहरी—वि० [हिं०] दे० 'अमरसरी'।

अमरसी—वि० [हिं० आम+रस+ई (प्रत्य०)] आम के रस की तरह पीला। सुनहला। यह रंग एक छटाँक हलदी और आठ माशे चूना मिलाकर बनता है।

अमरा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दूब। २ गुर्च। गिलोय। ३ सेंहुड़। थूहर। ४ नीली कोयल। बड़ा नील का पेड़। ५ चमड़े की झिल्ली जिसमें गर्भ का बच्चा लिपटा रहता है। आँवर। जटायु। ६ नाभि का नाल जो नवजात बच्चे को लगा रहता है। ७ इंद्रायण। ८ वरियारा। बरगद की एक छोटी जंगली जाति। ९ घीकुआर। १० इंद्रपुरी।

अमरा(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमड़ा'।

अमराई‡—संज्ञा स्त्री० [सं० आम्रराजि] आम का बाग। आम की बारी। २ उपवन। उद्यान। उ०—वह हरी लताओं की सुंदर अमराई।—कानन०, पृ० ३९।

अमराऊ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमराव'। उ०—देखा सब राउन अमराऊ।—जायसी ग्रं०, पृ० ११।

अमराचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के आचार्य या गुरु। बृहस्पति [को०]।

अमराद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का पर्वत। सुमेरु [को०]।

अमराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र [को०]।

अमरापगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवनदी। गंगा [को०]।

अमरापति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमरपति] इंद्र। उ०—अमरापति चरननि तर लोटत।—सूर०, १०६५०।

अमराय(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अमराई। उद्यान। उ०—आस पास अमराय बरारी। जहँ लग फूलं निती फुलवारी।—नंद० ग्रं० पृ० ११६।

अमरारि—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के शत्रु। राक्षस (को०)।

यौ०—अमरारिगुरु, अमरारिपूज्य = दैत्यगुरु। शुक्र।

अमरालय—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का स्थान। स्वर्ग। इंद्रलोक।

अमराव(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० आम्रराजि] दे० 'अमराई'।

अमरावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की पुरी। इंद्रपुरी। सुरपुरी।

अमरित(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०—अमरित पय नित स्रवहिं बच्छ महि थमन जावहिं।—अकबरी०, पृ० ७२।

अमरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ देवता की स्त्री। देवकन्या। देवपत्नी। २ एक पेड़ जिससे एक प्रकार का चमकीला गोंद निकलता है। सज। सग। आमन। सियामाल।

विशेष—इस गोंद को सुगंध के लिये जलाते हैं। संथाल लोग इसे खाते भी हैं। इसकी छाल से रंग बनता है चमड़ा सिझाया जाता है। लकड़ी मकान, छकड़े और नाव बनाने तथा जलाने के काम में आती है। इसकी डालियों से लाही भी निकलती है और पत्तियों पर सिंहभूम आदि स्थानों में टसर रेशम का कीड़ा भी पाला जाता है।

अमरी[2]—संज्ञा स्त्री० हठयोगियों की एक क्रिया। उ०—वजरी करता अमरी राखै अमरी करता वाई। भोग करता जे ब्यंद राखै ते गोरष का गुरभाई।—गोरख०, पृ० ४६।

अमरीकन—वि० [हिं०] दे० 'अमेरिकन'।

अमरीका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमेरिका'।

अमरीकी—वि० [हिं०] दे० 'अमेरिकन'।

अमरीष(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अंबरीष'। उ०—दुरवासा अमरीष सतायो।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २४०।

अमरु—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा जिसने 'अमरुशतक' नामक शृंगार का ग्रंथ बनाया था।

अमरू—संज्ञा पुं० [अ० अहमर = लाल?] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो काशी में बुना जाता है।

अमरूत—संज्ञा पुं० [फा० अमरूद, तु० मुरूद] एक पेड़ जिसका धड़ और टहनियाँ पतली और पत्तियाँ पाँच या छ अंगुल लंबी होती हैं।

विशेष—इसका फल कच्चा रहने पर कसैला और पकने पर मीठा होता है और उसके भीतर छोटे छोटे बीज होते हैं। यह फल रेचक होता है। पत्ती और छाल रँगने तथा चमड़ा सिझाने के काम आती है। मदक पीनेवाले इसकी पत्ती को अफीम में मिलाकर मदक बनाते हैं। किसी किसी का मत है कि यह पेड़ अमरीका से आया है। पर भारतवर्ष में कई स्थानों पर यह जंगली होता है। इलाहाबाद और काशी का यह फल प्रसिद्ध है।

पर्या०—(मध्यभारत, मध्यप्रदेश तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश) जाम। बिही। सफड़ो। (राजस्थान) जायफल। (बंगाल) प्यारा। (दक्षिण) पेरूफल। पेरुक। (नेपाल तराई) रुन्नी। (अवध) सफरी। अमरूद। (तिरहुत) लताम।

अमरूद—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमरूत'।

अमरेश—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का राजा। इंद्र।

अमरेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] अमरेश। इंद्र।

अमरैया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमराई'।

अमरौती‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अमरता। अमरत्व। उ०—जनम हुआ है कायर घर तो घर बैठे अमरौती खाय।—काले०, पृ० २४।

अमर्त्य—वि० [सं०] जो मर्त्य न हो। अविनश्वर। अमर [को०]।

यौ०—अमर्त्यभुवन = देवलोक। अमर्त्यापगा = गंगा।

अमर्दित—वि० [सं०] १ जिसका मर्दन न हुआ हो। जो मला न गया हो। बिना मला दला। जो मिजा मिजा न हो। २ जो दबाया या हराया न गया हो। अपराभूत। अपराजित।

अमर्याद—वि० [सं०] १ मर्यादाविरुद्ध। अव्यवस्थित। बेकायदा। २ बिना मर्यादा का। अप्रतिष्ठित। ३ सीमारहित। असंगत आचरण करनेवाला (को०)।

अमर्यादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। मर्यादा या सीमा का न होना। असंगत आचरण।

अमर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अमर्षित, अमर्षी] १ क्रोध। रिस। २. वह द्वेष या दुःख जो ऐसे मनुष्य का कोई अपकार न कर सकने के कारण उत्पन्न होता है जिसने अपने गुणों का तिरस्कार किया हो। ३ असहिष्णुता। अक्षमा। ४ तैंतीस संचारी भावों में से एक (को०)।

अमर्षण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध। रिस। असहिष्णुता।

अमर्षण[2]—वि० क्रोधी। असहिष्णु [को०]।

अमर्षित—वि० [सं०] अमर्षी। क्रोधी [को०]।

अमर्षी—वि० [सं० अमर्षिन्] [वि० स्त्री० अमर्षिणी] क्रोधी। असहनशील। जल्दी बुरा माननेवाला।

अमल¹—वि० [सं०] १ निर्मल। स्वच्छ। २ निर्दोष। पापशून्य। ३ उज्वल। प्रकाशित। चमकीला (को०)।

अमल²—संज्ञा पु० १ अबरक। अभ्रक। २ स्वच्छता। निर्मलता (को०)। ३ परब्रह्म (को०)।

अमल³—संज्ञा पु० [अ०] १ व्यवहार। कार्य। आचरण। साधन। क्रि० प्र० करना।—होना।

यौ०—अमलदरामद=कार्रवाई।

२ अधिकार। शासन। हुकूमत। उ०—हम चौधरी डोम सरदार। अमल हमारा दोनो पार।—भारतेंदु ग्र०, प्र० भा०, पृ० २९२।

यौ०—अमलदखल। अमलदरामद=जाब्ते की कार्रवाई। अमलदारी=राज्य। हुकूमत। अधिकार। अमलप=अधिकारपत्र।

३ नशा। उ०—किइँ ठाकुर अलगा वहउ, आवउ अमल करांह।—ढोला०, दू०, ६२८।

यौ०—अमलपानी=नशा वगैरह।

४ आदत। बान। टेव। व्यसन। लत। उ०—आनद कद चद मुख निसि दिन अवलोकत यह अमल परयो।—सूर० (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पडना। उ०—हरिदरसन अमल परयो लाजन लजानी।—सूर० (शब्द०)।

५ प्रभाव। असर। उ०—अभी दवा का अमल नही हुआ है (शब्द०)। ६ भोगकाल। समय। वक्त। उ०—अब चार का अमल है (शब्द०)।

अमलकोची—संज्ञा स्त्री० [देश०] कजे की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जिसकी फलियो से चमडा सिझाया जाता है। वि० दे० 'कुली'।

अमलगुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] पद्मकाष्ठ या पद्म नामक वृक्ष। वि० दे० 'पदम'।

अमलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ निर्मलता। स्वच्छता। २ निर्दोषता।

अमलतास—संज्ञा पुं० [सं० अम्ल] एक पेड जिसमे डेढ दो फुट लबी गोल गोल फलियाँ लगती हैं।

पर्या०—आरग्वध। धनबहेडा। किरवरा।

विशेष—इसकी पत्तियाँ सिरिस के समान और फूल सन के समान पीले रग के होते हैं। फलियो के ऊपर का छिलका कडा और भीतर का गूदा अफीम की तरह चिपचिपा, खाने मे कुछ मिठास लिए हुए खट्टा और कडुआ और बहुत दस्तावर होता है। इसके फूलो का गुलकद बनता है जो गुलाब के गुलकद से अधिक रेचक होता है। इसके बीजो से कै कराई जाती है।

अमलतासिया—वि० [हिं० अमलतास+इया (प्रत्य०)] अमलतास के फूल के समान हलके पीले रग का। हल्का पीला। गधकी।

अमलदार—संज्ञा पु० [अ० अमल+फा० दार] अधिकारी। शासक। हुकूमत करनेवाला।

अमलदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० अमल+फा० दारी] १ अधिकार। दखल। शासन। २ रुहेलखड मे एक प्रकार की काश्तकारी जिसमे असामी को पैदावार के अनुसार लगान देना पडता है। कनकूत।

अमलपट्टा—संज्ञा पु० [अ० अमल+हिं० पट्टा] वह दस्तावेज या अधिकारपत्र जो किसी प्रतिनिधि या कारिंदे को किसी कार्य मे नियुक्त करने के लिये दिया जाय।

अमलपतत्री—संज्ञा पु० [सं० अमलपतत्रिन्] जगली हस [को०]।

अमलबेत—संज्ञा पु० [सं० अम्लवेतस्] १ एक प्रकार की लता जो पश्चिम के पहाडो मे होती है और जिसकी सूखी हुई टहनियाँ बाजार मे बिकती हैं और दवा मे पडती हैं। २ एक मध्यम आकार का पेड जो बागो लगाया जाता है।

विशेष—इसके फूल सफेद और फल गोल, खरबूजे के समान, पकने पर पीले और चिकने होते हैं। इस फल की खटाई बडी तीक्ष्ण होती है। इसमे सूई गल जाती है। यह अग्निमदीपक और पाचक होता है, इस कारण चूरण मे पडता है। यह एक प्रकार का नीबू है।

अमलबेद—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमलबेत'। उ०—चूरन अमलबेद का भारी। जिसको खाते कृष्णमुरारी।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ६६२।

अमलबेल—संज्ञा स्त्री० [अमल ?+हिं० बेल] एक प्रकार की लता।

विशेष—यह भारत के प्राय सभी गरम प्रदेशो मे पाई जाती है। वर्षा ऋतु मे इसमें नीलापन लिए हुए सफेद रग के सुदर फूल लगते हैं। इसकी पत्तियाँ फोडो पर उन्हें पकाने के लिये बाँधी जाती हैं।

अमलमणि—संज्ञा पु० [सं०] स्फटिक। बिल्लौर।

अमलरत्न—संज्ञा पु० [सं०] स्फटिक [को०]।

अमला¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लक्ष्मी। २ सातला वृक्ष। ३ पताल आँवला।

अमला²—संज्ञा पु० [सं० आमलक] आँवला।

अमला³—संज्ञा पुं० [अ० अमलह्] कर्मचारी। कचहरी या दफ्तर मे काम करनेवाला। कार्याधिकारी। उ०—फूलि न जौ तू ह्वै गयो राजा बाबू अमला जज्ज।—भारतेंदु ग्र०, १।५५१।

यौ०—अमलाफैला (अमला फैलह)=कचहरी का कर्मचारी। अमलामाजी=कर्मचारियो को घूस देकर वशीभूत करने की क्रिया।

अमला⁴(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमल'। उ०—आठ पहर अमला रा माँता हेली देता डोलौ।—घनानद, पृ० ४८५।

अमलातक—संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेत [को०]।

अमलानक—संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेत [को०]।

अमलिन—वि० [सं०] १ स्वच्छ। निर्मल। निर्दोष।

अमली¹—वि० [अ० अमल+फा० ई (प्रत्य०)] १ अमल मे आनेवाला व्यावहारिक। २ अमल करनेवाला। कर्मण्य। ३ नशेबाज।

अमली²—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्लिका] १ इमली। २ एक झाड़ीदार

पेड जो हिमालय के दक्षिण गढवाल से आसाम तक होता है। करमई। गोल्वटी।

अमलीसमली(ऐ)—वि० [हिं०] उलटी सीधी। उ०—अमली समली आरती। जाई बघेरड दियो मिलाए।—बी० रासो०, पृ०१२।

अमलुनियाँ‡—संज्ञा पुं० [देश०] खर पतवार। एक तरह की घास जो खेतो मे अपने आप उग जाती है।

अमलूक—संज्ञा पुं० [सं० अम्ल] एक प्रकार का मेवा और उसका पेड।

विशेष—यह अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान, हजारा, कश्मीर और पजाब के उत्तर हिमालय की पहाडियो पर होता है। इसमे से बहुत सा रस बहता है जो जमकर गोद की तरह हो जाता है। इसका फल ताजा और सूखा दोनो खाया जाता है। सूखा फल काबुली लोग लाते हैं। इसे मलूक भी कहते हैं।

अमलोनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्ललोणी] नोनियाँ घास। नोनी।

विशेष—इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी, मोटे दल की और खाने मे खट्टी होती हैं। लोग इसका साग बनाकर खाते हैं जो अग्निवर्धक होता है। कहते हैं कि इसके रस मे धतूरे का विष उतर जाता है। यह बडी पत्तियो का भी होता है जिसे 'कुलफा' कहते हैं।

अमल्लकां—वि० [अ० मुतलक] बिलकुल। पूरा पूरा। समूचा। ज्यों का त्यों।

अमवा(ऐ)‡—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'आम'। उ०—चढि अमवा की डारि, अकेली धन का रैं खडी।—धरम० पृ० ४३।

अमस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. काल। समय। २ रोग। ३ मुखता[को०]।

अमस[2]—वि० निर्बोध। अज्ञानी।

अमसूल—संज्ञा पुं० [देश०] एक पतला पेड़ जो नीलगिरि पर बहुतायत से होता है।

विशेष—इस वृक्ष की डालियाँ नीचे की ओर झुकी होती हैं। दक्षिण मे कोकण, कनारा और कुर्ग के जगलों मे भी यह होता है। इसका फल खाया जाता है और गोवा मे ब्रिंदाव के नाम से बिकता है। पर यह, वृक्ष उस तेल के कारण अधिक प्रसिद्ध है जो उसके बीज से निकाला जाता है और तेल कोकम् का मक्खन कहलाता है। बाजारो मे यह तेल जमी हुई सफेद लबी बत्तियो या टिकियो के रूप मे मिलता है जो साधारण गर्मी से पिघल जाती हैं। यह वर्धक और सकोचक समझा जाता है तथा सूजन आदि मे इसकी मालिश होती है। इससे मरहम भी बनाया जाता है।

अमसृण—वि० [सं०] जो मसृण न हो। कठोर। कडा [को०]।

अमहर—संज्ञा स्त्री० [हिं० आम=अम+हर (प्रत्य०)] छिले हुए कच्चे आम की सुखाई हुई फाँक। यह दाल और तरकारी मे पडती है। इसे कूटकर अमचूर भी बनाते हैं।

अमहल(ऐ)—संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+अ० महल] १ बिना घर का। अनिकेत। २ जिसके रहने का कोई एक स्थान न हो। व्यापक। उ०—अंबरीष और याग जनक जड शेष सहस मुख पाना। कहँ लौं गनौं अनंत कोटि लौं अमहल महल दिवाना।—कबीर (शब्द०)।

अमांस[1]—वि० [सं०] १. मासहीन। २. दुर्बल। निर्बल।

अमांस[2]—संज्ञा पुं० वह जो मास न हो। मास से इतर पदार्थ [को०]।

अमांसक—वि० [सं०] अमांस [को०]।

अमाँ—प्रत्य० [हिं० ए+फा० मियाँ] मुसलमानो मे बातचीत मे प्रचलित एक सबोधन। ऐ मियाँ। अरे यार।

अमा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अमावस्या। २ अमावस्या की कला। स्कदपुराण के अनुसार चद्रमा की सोलहवी कला जिसका क्षय और उदय नही होता। ३ घर। ४ मर्त्यलोक। इहलोक। ५ चौपायों की आँख पर की बतोरी जो अशुभ समझी जाती है।

अमा[2]—वि० मापरहित। अमाप [को०]।

अमाघौना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन मे तैयार होता है।

अमाजुर—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने पिता के घर पर ही बडी और बूढी हो जानेवाली अविवाहिता स्त्री [को०]।

अमातना(ऐ)—क्रि० स० [सं० आमन्त्रण, प्रा० आमंत्रण] आमंत्रित करना। निमंत्रण देना। न्योता देना। आह्वान करना। बुलाना। उ०—कह्यौ महरि सो करी चँडाई हम अपने घर जात। तुमहूँ करो भोग सामग्री कुलदेवता अमाति।—सूर० (शब्द०)।

अमातृ—वि० [सं०] माताविहीन। बिना माँ का [को०]।

अमात्य—संज्ञा पुं० [सं०] मत्री। वजीर।

अमात्र[1]—वि० [सं०] १ मात्रारहित। बेहद। अपरिमित। २ अपूर्ण। असमग्र [को०]। ३ आरभिक [को०]।

अमात्र[2]—संज्ञा पुं० १ माप या इयत्ता का अभाव। वह जो माप नहीं है। २ परब्रह्म [को०]।

अमान[1]—वि० [सं०] १ जिसका मान या अदाज न हो। अपरिमित। परिमाणरहित। इयत्ताशून्य। उ०—गायागुन ज्ञानातीत अमाना वेद पुरान भनता।—मानस, १।१९२। २ बेहद। बहुत। उ०—आकाश विमान अमान छये। हा हा सब ही यह शब्द रये।—केशव (शब्द०)। ३ गर्वरहित। निरभिमान। सीधासादा। उ०—सदा रामप्रिय होव तुम्ह सुभ गुन भवन अमान। कामरूप इच्छामरन ज्ञान विराग निधान।—मानस, ७।११३। ४ मानशून्य। अप्रतिष्ठित। अनादृत। आत्माभिमानरहित। उ०—(क) अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनवास।—मानस, ६।३० (क)। (ख) अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब ससय छीना।—मानस, १।६७।

अमान[2]—संज्ञा पुं० [अ०] १ रक्षा। बचाव। २ शरण। पनाह। ३. शांति। उ०—माँगने से अगर मिले हमको क्यो न जी की अमान तो माँगूँ।—चुभते०, पृ० ५४।

अमानत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ अपनी वस्तु को किसी दूसरे के पास एक नियत काल तक के लिये रखना २ वह वस्तु जो दूसरे के पास किसी नियत या अनियत काल तक के लिये रख दी जाय। थाती। धरोहर। उपनिधि। ३. अमीन का काम या पद (को०)। ४. शांति। अमन।

यौ०—अमानतखाना=कोठी, बैंक आदि का वह खाता जिसमें अमानत की रकम जमा की जाती है। अमानतखाता=वह

स्थान जहाँ अमानत मे वस्तुएँ रखी जाती हैं। **अमाननामा**=अमानत रखते समय प्रमाणस्वरूप लिखा जानेवाला पत्र। **अमानत मे खयानत करना या होना**=अमानत मे रखी हुई रकम को खा जाना।

अमानतदार—संज्ञा पुं० [अ० अमानत+फा० दार] १ जिसके पास कोई चीज अमानत रखी जाय। धरोहर रखनेवाला। २ अमीन (को०)।

अमानन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमानना' [को०]।

अमानना—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनादर। अवज्ञा। तिरस्कार। अपमान [को०]।

अमानव—वि० [सं०] मानवेतर [को०]।

अमानस्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] पीडा। दुख [को०]।

अमानस्य[2]—वि० पीडित। व्यथित। दुखित [को०]।

अमाना[1]—क्रि० अ० [सं० आ=पूरा पूरा+मान=माप] १ पूरा पूरा भरना। समाना। अँटना। जैसे—इस बरतन म इतना पानी नही अमा सकता (शब्द०)। उ०—पुनि पुनि मन हनुमान के प्रेम उमँग न अमाइ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८३। २ फूलना। उमडना। इतराना। उ०—करि कछु ज्ञान अभिमान जान दै है कैसी मति ठानी। तन, धन जानि जाम जुग छाया भूलति कहा अमानी।—सूर (शब्द०)।

अमाना[2]†—संज्ञा पुं० [सं० अयन] बखार का मुँह। अन्न की कोठरी का द्वार। आना।

अमानित—वि० [सं०] १ जिसे माना न गया हो। २ जिसका मान न हुआ हो। असमानित।

अमानितसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जिसकी वीरता के उपलक्ष्य मे उचित आदर मान न किया गया हो और जो इस कारण असतुष्ट हो।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसी सेना को विमानित (जिसकी बेइज्जती की गई हो) सेना से उपयोगी कहा है, क्योंकि उचित मान पाकर यह जी लगाकर लड सकती है।

अमानिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नम्रता। मान का न होना [को०]।

अमानित्व—संज्ञा पुं० [सं०] गर्वराहित्य। अमानिता। [को०]।

अमानिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पटसन।

अमानिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमावस्या की रात्रि। अधकारयुक्त रात [को०]।

अमानी[1]—वि० [सं०] निरभिमान। घमडरहित। अहकारशून्य। उ०—मोरे प्रौढ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी।—मानस, ३।३७।

अमानी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० आत्मन्] १ वह भूमि जिसकी जमीदार सरकार हो और जिसका प्रबध उसकी ओर से जिले का कलक्टर करे। खास। २ जमीन या कोई कार्य जिसका प्रबध अपने ही हाथ मे हो, ठीके पर न दिया गया हो। ३ लगान की वसूली जिसमे बिगडी हुई फसल का विचार करके कुछ कमी की जाय।

अमानी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+हिं० मानना] मनमानी अवस्था। अपने मन की कार्रवाई। अधेर।

अमानुष[1]—वि० [सं०] १ मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर। अलौकिक। उ०—सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौशिक कृपा सुधारे।—मानस, १।३५०। २. मनुष्यस्वभाव के विरुद्ध। पाशव। पैशाचिक।

अमानुष[2]—संज्ञा पुं० १ मनुष्य से भिन्न प्राणी। २ देव देवता। ३ राक्षस।

अमानुषिक—वि० [सं०] १ अलौकिक। अमानुषी। पैशाचिक [को०]।

अमानुषी—वि० [सं०] १ मनुष्य स्वभाव के विरुद्ध। पाशव। पैशाचिक। २ मानवी शक्ति से बाहर। अलौकिक।

अमानुषीय—वि० [सं०] दे० 'अमानुषी'।

अमान्य—वि० [सं०] अमाननीय। अस्वीकृत [को०]।

अमान्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] न मानना। अस्वीकृति।

अमाप—वि० [सं०] १ जिसके परिमाण का अंदाजा न हो सके। अपरिमित। उ०—अगर के धूप धूम उठत जहाँ ई तहाँ, उठत बगूरे अब अति ही अमाप है।—भूषण ग्रं०, पृ० २४८। २ बेहद। बहुत। उ०—मारयो नहीं जात दई बधाई सबनि ही। या सूरत अमाप दृगनि देखि बाढी हूँसी।—हम्मीर०, पृ० १५।

अमापनीय—वि० [सं०] जिसकी माप न की जा सके। अमाप [को०]।

अमापित—वि० [सं०] जो मापा न गया हो। जिसकी माप न हुई हो [को०]।

अमाप्य—वि० [सं०] अमापनीय [को०]।

अमाम(पु)†—वि० [हिं० अमाप] बहुत। उ०—...करै प्रणाम उमगे मना अमाम।—रा० रू०, पृ० ७६।

अमामसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] 'अमावस्या' [को०]।

अमामा—संज्ञा पुं० [अ० इमामह] पगडी। वह पगडी जिसके अंदर टोपी रहती है। उ०—कोई टोपी टोप बनाता है और बाँधे फिरै अमामा है।—राम० धर्म०, पृ० ९२।

अमामसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अमावस्या' [को०]।

अमाय[1](पु)—वि० [सं०] १ दे० 'अमाया'। २ अपरिसीम [को०]।

अमाय[2]—संज्ञा पुं० परब्रह्म [को०]।

अमाया[1]—वि० [सं०] १ मायारहित। निर्लिप्त। २ निस्वार्थ। निष्कपट। निश्छल। उ०—जो मोरे मन बच अरु काया। प्रीति राम पद कमल अमाया।—मानस, ६।१०८।

अमाया[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्कपटता। निश्छलता। ईमानदारी [को०]।

अमायिक—वि० [सं०] १ दोषरहित। २ मायारहित। ३ निश्छल। निष्कपट। ४ सच्चा।

अमायी—[सं० अमायिन्] दे० 'अमायिक' [को०]।

अमार[1]†—संज्ञा पुं० [फा० अंबार] १ अन्न रखने का घेरा। अरहर के सूखे डठलो या सरकडो की टट्टी गाडकर बनाया हुआ घेरा जिसे ऊपर मे छा देते हैं, और जिसमे ऊपर, नीचे भुस देकर बीच मे अनाज रखते है। २ राशि। बहुतायत। ढेर। उ०—जर जेवर का अमार लगा रहता होगा उसके यहाँ।—नई०, पृ० ३६।

अमार[2]—संज्ञा पुं० [अ०] अमरण [को०]।

अमार(पु)[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमरी'।

अमार⁵(पु)†—पर्व० [हिं०; तुल० बें० आमार, ने० हाम्रा, हाम्रो,] हमारा। मेरा। उ०—कइवा देवल पुतली। ईयीय छइ प्रभु जी अमारडी नार।—वी० रासो, पृ० ९०।

अमारग(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अमार्ग'।

अमारी¹—संज्ञा स्त्री० [अ०] हाथी का छायादार या मंडपयुक्त हौदा।

अमारी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० आमडा या अमडा] अमडा नामक वृक्ष या उसका फल।

अमार्ग¹—संज्ञा पु० [सं०] १ कुमार्ग। कुराह। २ बदचलनी। बुरी चाल। दुराचरण।

अमार्ग²—मार्गरहित। मार्गविहीन। [को०]।

अमार्जित—वि० [सं०] १. जो धोकर शुद्ध न किया गया हो। अस्वच्छ। २. जिसका संस्कार न हुआ हो। बिना शोधा हुआ।

अमार्ज्य—वि० [सं०] १ जिसको स्वच्छ न किया जा सके। २ जिसका संस्कार या शोधन करना संभव न हो।

अमाल(पु)—संज्ञा पु० [अ० अमल] अमल रखनेवाला। हाकिम। शासक। उ०—पैज प्रतिपाल, भूमिभार को हमाल, चहुँ चक्क को अमाल, भयो दंडक जहान को।—भूषण (शब्द०)।

अमालनामा—संज्ञा पुं० [अ० अमाल + फा० नामह्] १ वह पुस्तक या रजिस्टर जिसमें कर्मचारियों की भली या बुरी कार्रवाइयाँ दर्ज की जाती हैं। २ कर्मपुस्तक। कर्मपत्र। मुसलमानी मत के अनुसार वह पुस्तक जिसमें प्राणियों के शुभ और अशुभ कर्म कयामत में पेश करने के लिये नित्य दर्ज किए जाते हैं।

अमाली(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० अमल] १ जाँच। २ लेखाजोखा। उ०—धरनी साल व माल अमाली, जमा खरच यहि पाई।—धरनी०, पृ० ३।

अमावट¹—संज्ञा पुं० [सं० आम्र हिं० आम + सं० आवर्त, प्रा० आवट्ट] आम के सुखाए हुए रस के पर्त या तह।

विशेष—इसे बनाने के लिये पके आम को निचोडकर उसका रस कपडे या किसी और चीज पर फैलाकर सुखाते हैं। जब रस की तह सूख जाती है तब उसे लपेटकर रख लेते हैं।

अमावट²—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहिना जाति की एक मछली।

अमावडा†—वि० [स० अ + प्रा० माव (माप्) + डिं० ड (प्रत्य०)] शक्तिशाली। जोरावर।

अमावना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अमाना'।

अमावस—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमावस्या'। उ०—मौन अमावस मूल बिन रोहिनि बिन अखतीज।—घाघ०, १८१।

अमावसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमावस्या [को०]।

अमावस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कृष्णपक्ष की अंतिम तिथि। वह तिथि जिसमें सूर्य और चद्रमा एक ही राशि के हों। २ हठयोग की एक क्रिया।

अमावास्य—वि० [सं०] १ जो अमावस्या के दिन हुआ हो।

अमावास्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अमावस्या'।

अमाह—संज्ञा पुं० [सं० अमास] [वि० अमाही] नेत्ररोग विशेष। आँख के डेले में निकला हुआ लाल मांस। नाखूना।

अमाही—वि० [हिं० अमाह] अमाह रोग संबंधी। अमाह रोगवाला।

अमिअ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमृत, प्रा० अमिअ, अप० अमिअ, सं०, (पु) अमित्र] दे० 'अमिय'। उ०—अमिअ मूरि मय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू।—मानस १।१।

अमिउ(पु)†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०—कस्रण समाइअ अमिअ रस बुज्झ कहने कन।—कीर्ति०, पृ० ५६।

अमिख(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आमिष'।

अमिट—वि० [सं० अ + हिं० मिटना, अथवा अ = नहीं + मर्त्य = मरनेवाला] १ जो न मिटे। जो नष्ट न हो। नाशहीन। स्थायी। २ जो न टले। अटल। जो निश्चय हो। अवश्यभावी।

अमित—वि० [सं०] १ जिसका परिमाण न हो। अपरिमित। बेहद। असीम। २ बहुत। अधिक। ३. तिरस्कृत। उपेक्षित (को०)। ४ अज्ञात। अनजाना (को०)। ५ असंस्कृत। संस्कारहीन (को०)। ६ केशव के अनुसार वह अर्थालंकार जिसमें साधन ही साधक की सिद्धि का फल भोगे। जैसे—'दूती नायक के पास नायिका का संदेसा लेकर जाय, परतु स्वयं उससे प्रीति कर ले।' उ०—आनन सीकर सीक कहा ? हिय तौ हित ते अति आतुर आई। फीको भयो मुख ही मुख राग क्यों ? तेरे पिया बहु बार बकाई। प्रीतम को पट क्यों पलटयो ? अलि केवल तेरी प्रतीति को ल्याई। केशव नीके ही नायक सों रमि नायिका बातन ही बहराई।—केशव (शब्द०)।

यौ०—अमितक्रतु। **अमिताशन**। **अमिततेजा**। **अमितौजा**। **अमितद्युति**। **अमितविक्रम**।

अमितक्रतु—वि० [सं०] असीम बुद्धि या साहसवाला [को०]।

अमितता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमित होना। आधिक्य।

अमिततेजा—वि० [सं० अमिततेजस्] असीम कांतिमान् [को०]।

अमितद्युति—वि० [सं०] अत्यधिक प्रकाशवाला [को०]।

अमितविक्रम—वि० [सं०] १ अत्यंत बलवान्। २ विष्णु का विशेषण [को०]।

अमितवीर्य—वि० [सं०] अत्यंत शक्तिशाली [को०]।

अमिताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अधिकता। असीमता [को०]।

अमिताभ¹—वि० [सं०] अत्यंत तेजस्वी [को०]।

अमिताभ²—संज्ञा पु० महात्मा बुद्ध का एक नाम।

अमिताशन¹—वि० [सं०] १ जो सब कुछ खाय। सर्वभक्षी। २ जिसके खाने का ठिकाना न हो।

अमिताशन²—संज्ञा पुं० १. अग्नि। आग। २ परमेश्वर विष्णु (को०)।

अमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनंतता। असीमता [को०]।

अमितौजा—वि० [सं० अमितौजस्] अत्यधिक शक्तिशाली। सर्वशक्तिमान [को०]।

अमित्र—वि० [सं०] १ जो मित्र न हो। शत्रु। वैरी। २. बिना मित्र का जिसका कोई दोस्त न हो। अमित्रक। ३ अतुकांत [बग०]। उ०—अपनी अमित्र कविता की तरह अपने गीतों के लिये भी मैं इधर उधर सुन चुका था।—गीतिका (भू०), पृ० १२।

अमित्रक—वि० [सं०] दे० 'अमित्र'।

अमित्रखाद—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र [को०]।

अमित्रघात—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुओं का नाश करना। शत्रुओं का हनन।

अमित्रघाती—वि० [सं० अमित्रघातिन्] शत्रुओं का नाश करनेवाला।

अमित्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रुता। विरोध।

अमित्रविषयातिगानौका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह जहाज जो शत्रु के राष्ट्र में जानेवाला हो।

अमित्रसह—वि० [सं०] शत्रुओं को वशीभूत करनेवाला इंद्र।

अमित्राक्षर—वि० [सं० अमिताक्षर] जिसमें अक्षरों की कोई निश्चित संख्या न हो। जिसमें तुक न हो। गद्यमय। उ०—बहुत पहिले भी अमित्राक्षर कविता लिखी गई है।—करुणा, (प्र०)।

अमित्री—वि० [सं० अमित्रिन्] वैरी। शत्रु [को०]।

अमिथ्या(पु)†—वि० [अ=उच्चा० + मिथ्या] व्यर्थ। बेकार। उ०—सतगुरु भक्तिभेद नहिं पाए, जीव अमिथ्या दीन्हा।—घट०, पृ० २६४।

अमिय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमृत, प्रा० अमिअ, अमिय] अमृत। उ०—देखि अमिय रस अन्हधरह भएउ नासिका कीर। पौन बास पहुँचावै, अस रम छांड न तीर।—जायसी ग्र०, पृ०४३।

अमियमूरि—संज्ञा स्त्री० [अमृत+मूरि] अमरमूर। अमृतबूटी। संजीवनी जड़ी। जिलानेवाली बूटी। उ०—अमिय मूरि मय चूरन चारू। शमन सकल भवरुज परिवारू।—तुलसी (शब्द०)।

अमिया—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्रिका, प्रा० अम्मिआ] कच्चे आम। उ०—बैठी होगी, जामुन अमिया लदी रौस के पेड़ों पर।—मिट्टी०, पृ० ६५।

अमिरती†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'इमरती'।

अमिरथा†—वि० [हिं०] दे० 'अबिरथा'। उ०—गया सब जनम अमिरथा मोरा।—चित्रा०, पृ० १३०।

अमिरस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] १ अमृतरस। २ हठयोग के अनुसार चंद्रमा से द्रवित होनेवाला रस। उ०—रहिम दिसा धुन अनहद गरज अमिरस करै उपजै ब्रह्मग्यान।—रामानंद०, पृ०१२।

अमिरित(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०—औ जो यह अमिरित सो पावे। सोऊअ मर जग भए मभागे।—चित्रा०, पृ० १२।

अमिल(पु)—वि० [सं० अ + हिं० मिलना] १ न मिलने योग्य। अप्राप्य। उ०—निपट अमिल वह, तुम्हैं मिलिबे की जक, कैसे कै मिलाऊँ गति मो पै न बिहग की।—केशव (शब्द०)। २ बेमेल। बेजोड़। अनमिल। असंबद्ध। ३ भिन्नवर्गीय। जो हिला मिला न हो। जो हिले मिले नहीं। जिससे मेल जोल न हो। उ०—हरपि न बोली लखि ललन, निरपि अमिल सँग साथ। आँखिन ही में हँसि धरचो, सीस हिए पर हाथ।—बिहारी (शब्द०)। ४ ऊबड़ खाबड़। ऊँचा नीचा। उ०—अमिल सुमिल सीढ़ी मदन मदन की कि जगमगै पग जुग जेहरि जराय की।—केशव (शब्द०)।

अमिलताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अमिल + ताई (प्रत्य०)] न मिलने का भाव। कपट। दूर दूर रहना। उ०—मिलत न कहूँ भरे रावरे अमिलताई हिए मैं किए बिमान जे बिनोद छन है।—रसखान०, पृ० ६३।

अमिलतास†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमलतास'।

अमिलपट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अमिल + पट्टी = जोड़] सिलाई या तुरपन का एक भेद। चौड़ी तुरपन।

अमिलातक—संज्ञा पुं० [सं०] अम्लानक। अमलबेत [को०]।

अमिलित—वि० [सं०] न मिला हुआ। पृथक्। जुदा।

अमिलियापाट—संज्ञा पुं० [हिं० अमिली = इमली + पाट = रेशम] एक प्रकार का सन या पटसन।

अमिली[1](पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्लिका] दे० 'इमली'। उ०—आलूचा अमिली अँबहलदी। आल आँवला माल अफरदी।—सुजान०, पृ० १६१।

अमिली[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + मिलना] मेल या अनुकूलता का अभाव। खटाई। कपट। विरोध। मनमुटाव। उ०—जहँ अमिली पार्क हिय माहीं। तहँ न भाव नौरँग कै छाहीं।—जायसी (शब्द०)।

अमिश्र—वि [सं०] जो मिश्रित न हो। मिलावटरहित। शुद्ध। खालिस [को०]।

अमिश्रण—संज्ञा पुं० [सं०] मिलावट का अभाव।

अमिश्रराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित में वह राशि जो एक ही इकाई द्वारा प्रकट की जाती है। इकाई।१ से ६ तक की संख्या।

अमिश्रित—वि० [सं०] १ न मिला हुआ। जो मिलाया न गया हो। २ जिसमें कोई वस्तु मिलाई न गई हो। बे मिलावट। खालिस। शुद्ध। पृथग्भूत।

अमिष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ छल का अभाव। बहाने के न होने का भाव या स्थिति। २ दे० 'आमिष'। ३ सांसारिक सुख। ऐश आराम (को०)।

अमिष[2]—वि० निश्छल। जो हीलेहवाले न हो।

अमी[1](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमिय'। उ०—'दास' मनभावती न भावती चलन तेरी अधर अमी के अवलोके मोहि रहिए।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १३८।

यौ०—अमीकर। अमीरस।

अमी[2]—वि० [सं० अमिन्] रोगी [को०]।

अमीक—वि० [अ०] गहरा। उ०—या पानी का वो इक चश्मा अमीक।—दक्खिनी०, पृ० ३४५।

अमीकर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमृतकर, अमिय + कर] अमृतांशु। चंद्रमा।

अमीकला—संज्ञा पुं० [प्रा० अमी + कला] चंद्रमा। उ०—अद्भुत अमीकला आनँदघन सुजन—जान्ह रसवृष्टि सुहाई।—घनानंद, पृ० ५५९।

अमीच(पु)—क्रि० वि० [सं० अ + मृत्यु प्रा० मिच्चु] मृत्युविहीन। बिना मृत्यु के।

अमीठ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधोरी'।

अमीत[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमित्र, प्रा० अमित्त] १ जो मित्र न हो। शत्रु। वैरी। उ०—पावक तुल्य अमीत न को भयो, मीतन को भयो धाम सुधा को।—भूषण (शब्द०)। २. अनंग। विच्छिन्न। उ०—प्रान देव की पूजा कीन्ही, गुरु से रही अमीता रे।—कबीर श०, पृ० ८।

अमीत[2]—वि० [सं०] जिसे क्षति न पहुँची हो। अक्षत [को०]।

अमीन¹—संज्ञा पुं० [अ०] १ वह व्यक्ति जो अमानत रखता है। २ विश्वसनीय।३ वह अदालती कर्मचारी जिसके सुपुर्द बाहर का काम हो, जैसे मौके की तहकीकात करना, जमीन नापना, बँटवारा करना, डिगरी का अमलदरामद कराना इत्यादि।

अमीन²(पु)—संज्ञा पुं० [प०] दे० 'अमी'। उ०—आनँदघन हित पोखि कै पाले प्रान अमीन।—घनानद पृ० १८०।

अमीपत्र(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अमी + पत्र = पात्र] अमृतपात्र। अमृतघट।

अमीवा—संज्ञा पुं० [अ०] एक अति सूक्ष्म जीव जिसे सूक्ष्मनिरीक्षक यंत्र से देखा जा सकता है।

अमीमासा—संज्ञा स्त्री० [स०] मीमासा या विवेचना का अभाव [को०]।

अमीर—संज्ञा पुं० [अ०] १ कार्याधिकार रखनेवाला। सरदार। २ धनाढ्य। संपन्न। दौलतमंद। ३ उदार। ४ अफगानिस्तान के राजा की उपाधि।

अमीरजादा—संज्ञा पुं० [अ० अमीर + फा० जादह] [संज्ञा स्त्री० अमीरजादी] अमीर या धनवान का पुत्र। शाहजादा। राजकुमार।

अमीरस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] अमृत। उ०—आदि नाम जो अमीरस चाखे।—कबीर सा०, पृ० ८७०।

अमीराना—वि० [अ० अमीर + फा० आनह (प्रत्य०)] अमीरों के ढंग का। जिसमें अमीरी प्रकट हो। धनिकोचित।

अमीरी¹—संज्ञा स्त्री० [अ० अमीर + ई (प्रत्य०)] १ धनाढ्यता। दौलतमंदी। उ०—जो सुख पावा नाम भजन में सो सुख नाहिं अमीरी में।—कबीर० श०, पृ० ७०। २ उदारता।

अमीरी²—वि० अमीर का सा। अमीरों के योग्य। जैसे, अमीरी ठाठ।

अमीरुलबहर—वि० [अ०] नौबलाध्यक्ष। नौसेनापति [को०]।

अमीव—संज्ञा पुं० [स०] १ पाप। २ दुःख। ३ रोग। ४ दुश्मन (को०)। ५ हानि। क्षति (को०)।

अमुद्ध(पु)—वि० [सं० अ + मुग्ध] मुग्ध। मूर्ख। मूढ़। उ०—कौन सुजावल जुध करै। सुनि कमधज्ज अमुद्ध।—पृ० रा०२५।७७४

अमुक—वि० [सं०] फलाँ। ऐसा ऐसा।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग किसी नाम के स्थान पर करते हैं। जब किसी वर्ग के किसी एक भी व्यक्ति या वस्तु को निर्दिष्ट किए बिना काम नहीं चल सकता, तब किसी का नाम न लेकर इस शब्द को लाते हैं। जैसे, 'यह नहीं कहना चाहिए कि अमुक व्यक्ति ने ऐसा किया तो हम भी ऐसा करें'।

अमुक्त—वि० [सं०] १ जो मुक्त या बंधनरहित न हो। बद्ध। २ जिसे छुटकारा न मिला हो। जो फँसा हो। ३. जिसका मोक्ष न हुआ हो। ४ शस्त्र (छुरा, कटारी आदि) जो हाथ में पकड़कर चलाया जाय [को०]।

अमुक्तहस्त—वि० [स०] १ देने में जिसके हाथ दबे हों। कंजूस। कृपण। २ कमखर्च। अल्प व्यय करनेवाला [को०]।

अमुख—वि० [सं०] मुखविहीन। वक्त्रहीन [को०]।

अमुख्य—वि० [सं०] जो मुख्य न हो। अप्रधान। गौण। निम्न।

अमुग्ध—वि० [स०] १ जो मुग्ध या मोहित न हो। २ जितेंद्रिय। विरक्त। अनासक्त। ३ चतुर।

अमुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह लोक। परलोक। जन्मांतर।

यौ०—इहामुत्र लोक परलोक।

अमुत्रत्य—वि० [स०] भविष्य जीवन या परलोक संबंधी [को०]।

अमुद्र—वि० [सं०] १ जिसके पास कहीं जाने का परवाना या मुहर न हो। जिसके पास मुद्रा या निशानी न हो (को०)।

अमुना—क्रि०वि० [स०] ऐसे। इस प्रकार। उ०—अमुना विधि जमुनातट आवति।—नंद० ग्रं०, पृ० २६८।

अमुला(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अमूल्य'। उ०—नाम तेरो अमुला नाम तेरो चदन घसि जपै नाम उचारै।—संत र०, पृ० १२६।

अमुष्य—वि० [स०] प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर।

यौ०—अमुष्यपुत्र = प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न। कुलीन।

अमूक(पु)—वि० [सं०] १ जो गूँगा न हो। २ बोलनेवाला। वक्ता। ३. चतुर। प्रवीण।

अमूकी(पु)†(अमूके(पु)†)अमूको(पु)†—वि० [स० अमुक] दे० 'अमुक'। जैसे, अमूकी ठौर, अमूके वैष्णव, अमूको कुम्हार आदि।

अमूझना(पु)†—क्रि० अ० [सं० अवरुद्ध, प्रा० अवरुज्झ, *अवउज्झ, *अमउज्झ] १ उलझना। फँसना। उ०—कठिन करम की परत आपमी मनहिं अमूझत है रे।—सुदर० ग्रं०, पृ० ८४२।

अमूझा(पु)†—वि० [हिं० अमूझना वा उलझना] अस्पष्ट। जो खुलासा न हो। उ०—प्रथम अमूझ्यो अरथ सबदपिण लिण हित साजै।—रघु० रू०, पृ० १४। २ गर्मी से संतप्त होना।

अमूढ¹—वि० [स० अमूढ] १ जो मूर्ख न हो। चतुर। २ विद्वान्। पंडित।

अमूढ²—संज्ञा पुं० पंचतन्मात्र में से एक। इनके नाम ये हैं—अविशेष, महाभूत, अशांत, अधीर और अमूढ।

अमूमन्—अव्य० [स०] अनुमानत। सामान्यतया। प्राय।

अमूर—संज्ञा पुं० [अ०] बात। चर्चा। उ०—मेरे खत के दीगर अमूर का जवाब आपने कुछ न दिया।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ६१।

अमूरत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अमूर्त'। उ०—अलख अमूरत सिर्जन हारा।—इद्रा०, पृ० १६७।

अमूरति(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अमूर्ति'। उ०—चमकत सो निरवान अमूरति छकित भयो मन वेधि उमंग।—जग० श०, भा० २, पृ० ८१।

अमूर्त¹—वि० [स०] मूर्तिरहित। निराकार। अवयवशून्य। निरवयव। उ०—कुछ भावों के विषय तो 'अमूर्त' तक होने लगे, जैसे कीर्ति की कालिमा।—रस०, पृ० १६५।

अमूर्त²—संज्ञा पुं० १ परमेश्वर। २ आत्मा। ३ जीव। ४ काल। ५ दिशा। ६ आकाश। ७ वायु। ८. शिव (को०)।

यौ०—अमूर्तगुण—धर्म अधर्म आदि गुण जो अमूर्त माने जाते हैं।

अमूर्ति¹—वि० [सं०] मूर्तिरहित। निराकार।

अमूर्ति²—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

अमूर्ति³—संज्ञा स्त्री० आकारहीनता। निराकारता [को०]।

अमूर्तिमान्¹—वि० [स० अमूर्तिमत्] १ निराकार। मूर्तिरहित। २ अप्रत्यक्ष। अगोचर।

अमूर्तिमान्²—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

अमूर्तीक—वि०[स०]अमूर्त । निराकार निरवयव । उ०—दूसरा द्रव्य है धर्म जो अमूर्तीक सर्वव्यापी है ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २२७।

अमूल[1]—वि० [स०] १ जिसका मूल न हो । बे जड का । २. निराधार । प्रमाणरहित (को०)। ३ अभौतिक (को०)। ४. चल(को०)।

अमूल[2]—सज्ञा पुं० साख्य के अनुसार प्रकृति ।

अमूल[3]ⓤ—वि० [स० अमूल्य] अनमोल । उ०—(क) जउ भरि बूठउ भाद्रवउ मारू देस अमूल ।—ढोला० दू० २५०। (ख) दिव्य वस्त्र काहू करन, नाना बरन अमूल ।—पृ० रा० ६।५१।

अमूल[4]ⓤ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आमूल'। उ०—नैन चोट आसी लगी गासी ज्यों भरपूर। मचत चलत क्योंहूँ नहीं खैंचत काम अमूर ।—स० सप्तक, पृ० ३५३ ।

अमूलक—वि० [स०] १ जिसकी कोई जड न हो । निर्मूल । २. असत्य । मिथ्या । दे० 'अमूल[1]' ।

अमूला—सज्ञा स्त्री० [स०] अग्निशिखा नाम का पौधा ।

अमूल्य—वि० [स०]१ जिसका मूल्य निर्धारित न हो सके । अनमोल । २. बहुमूल्य । बेशकीमती । ३. जिसके लिये कोई मूल्य न दिया जाय । मुफ्त का ।

अमृत[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ वह वस्तु जिसके पीने से जीव अमर हो जाता है। पुराणानुसार समुद्रमथन से निकले हुए १४ रत्नो मे से एक । सुधा । पीयूष । निर्जर। २ जल । ३ घी । ४ यज्ञ के पीछे की बची हुई सामग्री। ५ अन्न । ६. मुक्ति। ७ दूध । ८ औषधि । ९ विष । १० बछनाग । ११ पारा । १२ धन । १३. सोना। १४ हृद्य पदार्थ । १५ वह वस्तु जो बिना मांगे मिले। १६ सुस्वादु द्रव्य। मीठी या मधुर वस्तु । १७ अमर । देवता (को०) । उ०—राजकुमार, ब्राह्मण .. स्वराज्य मे विचरता है और अमृत होकर जीता है।—चद्र० पृ० ५६। १८ धन्वतरी (को०)। १९ इंद्र (को०)। २० सूर्य (को०)। २१ शिव (को०)। २२ विष्णु (को०)। २३ सोमरस (को०)। २४ पानी (को०)। २५ चार की सख्या (को०)। २६ निर्गुण मतानुसार वह रस जो तालुमूलस्थित चन्द्रमा से स्रवित होता है और जिसे योगी साधना द्वारा जीभ को उलटा करके पीता है। २७ वाराही कद (को०)। २८ परब्रह्म (को०)। २९ भात (को०)।

अमृत[2]—वि० [स०] १ जो मरा न हो । २ जो मरणशील न हो । ३ अमरत्व प्रदान करनेवाला । ४ अविनश्वर । शाश्वत । ५ प्रिय । अभीष्ट । सुदर [को०] ।

अमृतकर—सज्ञा पुं०[स०]जिसकी किरणो मे अमृत रहता है । चद्रमा ।

अमृतकुंडली—सज्ञा स्त्री० [स० अमृतकुण्डली] १ एक छद जो प्लवगम या चाद्रायण के अत मे हरिगीतिका के दो पद मिलाने से बन जाता है । २ एक प्रकार का बाजा । उ०—बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृतकुडली यत्र ।—सूर (शब्द०)।

अमृतक्षार—सज्ञा पुं० [स०] नौसादर [को०]।

अमृतगति—सज्ञा स्त्री० [स०] एक छद।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण मे एक नगण एक जगण फिर एक नगण और अत मे गुरु होता है । (।।।, ।S।, ।।।, S) इसको त्वरितगति तथा अमृततिलका भी कहते हैं । उ०—निज नग खोजत हरजू । पय मित लक्षमि वरजू (शब्द०) ।

अमृतगर्भ—सज्ञा पुं० [स०] १ ब्रह्म । ईश्वर । २ जीवात्मा (को०)।

अमृतजटा—सज्ञा स्त्री० [स०] जटामासी ।

अमृततरंगिणी—सज्ञा स्त्री० [सं० अमृततरङ्गिणी] चद्रिका । चाँदनी ।

अमृतत्व—सज्ञा पुं० [सं०] १ मरण का अभाव । न मरना । २. मोक्ष । मुक्ति ।

अमृतदान—सज्ञा पुं० [स० अमृत+फा० दान, अथवा सं० मृद्भाण्ड] भोजन की चीज रखने का ढकनेदार बर्तन । एक प्रकार का डब्बा ।

अमृतदीधिति—सज्ञा पुं० [स०] चद्रमा ।

अमृतद्युति—सज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा ।

अमृतद्रव—सज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा की किरण ।

अमृतधारा—सज्ञा स्त्री० [स०] एक वर्णवृत्त जिसके चार चरणो में से प्रथम चरण मे २०, दूसरे मे १२, तीसरे मे १६ और चौथे में ८ अक्षर होते हैं । उ०—सरवस तज मन भज नित प्रभु भवदुखहर्ता । साँची अरहिं प्रभु जगतभर्ता । दनुज-कुल-अरि जगहित धरमधर्ता । रामा असुर मुहर्ता (शब्द०) ।

अमृतधुनिⓤ—सज्ञा स्त्री० [हिं० दे० 'अमृतध्वनि' ।

अमृतध्वनि—सज्ञा स्त्री० [सं० अमृत+ध्वनि] २४ मात्राओं का एक यौगिक छद ।

विशेष—इसके आरभ मे एक दोहा रहता है। इसमे दोहे को मिलाकर छह चरण होते हैं और प्रत्येक चरण मे झटके के साथ अर्थात् द्वित्व वर्णों से युक्त तीन यमक रहते हैं। यह छद प्रायः वीररस के लिये व्यवहृत होता है। उ०—प्रतिभट उदभट विकट जहँ लरत लच्छ पर लच्छ। श्री जगदेश नरेश तहँ, अच्छच्छवि परतच्छ। अच्छच्छवि परतच्छच्छटनि विपच्छच्छय करि । स्वच्छच्छिति अति कित्तिरियर, सुअम्मिनिमय हरि । उज्झिज्झहरि ममुज्झिज्झहरि विरुज्झिज्झटपट । कुप्पप्रगट मुरुप्पप्पगनि विलुप्पप्रति भट ।—सूदन (शब्द०)।

अमृतप[1]—वि० [स०]१ अमृत पान करनेवाला । २ मद्यप । शराबी (को०) ।

अमृतप[2]—सज्ञा पुं० १ देवता । २ विष्णु ।

अमृतफल—सज्ञा पुं० [सं०]१ नाशपाती । २ परवल ।

अमृतफला—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ आँवला । २. अंगूर । दाख । ३ मुनक्का ।

अमृतबंधु—सज्ञा पुं० [सं० अमृतबन्धु] १ देवता । २. चद्रमा ।

अमृतबान—सज्ञा पुं० [स० मृद्भण्ड वा मृद्भाण्ड] रोगनी हाँडी। मिट्टी का रोगनी पात्र । लाह का रोगन किया हुआ मिट्टी का बरतन जिसमे अचार, मुरब्बा, घी आदि रखते हैं। मर्तबान ।

अमृतबिंदु—सज्ञा पुं० [स० अमृतबिन्दु] एक उपनिषद् जो अथर्ववेदीय माना जाता है

अमृतभुक्—सज्ञा पुं० [स०] १. देवता । २ वह जो अमृत का पान करे [को०] ।

अमृतमथन—संज्ञा पुं० [सं० अमृतमन्थन] अमृत के लिये समुद्र का मथन। समुद्रमथन [को०]।

अमृतमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमृतगति छंद [को०]।

अमृतमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

अमृतमूरि—संज्ञा स्त्री० [सं० अमृत + हिं० मूरि] सजीवनी जडी। अमरमूर।

अमृतमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा [को०]।

अमृतयोग—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष मे एक शुभफलदायक योग। विशेष—रविवार को हस्त, गुरुवार को पुष्य, बुध को अनुराधा, शनि को रोहिणी, सोमवार को श्रवण, मगल को रेवती, शुक्र को अश्विनी—ये सब नक्षत्र अमृतयोग मे कहे जाते हैं। रवि और मगलवार को नदा तिथि अर्थात् परिवा, षष्ठ और एकादशी हो, शुक्र और सोमवार को भद्रा अर्थात् द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी हो,बुधवार को जया अर्थात् तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी, गुरुवार को रिक्ता अर्थात् चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी हो, शनिवार को पूर्णा अर्थात् पचमी, दशमी और पूर्णिमा हो तो भी अमृतयोग होता है। इस योग के होने से भद्रा और व्यतीपात आदि का अशुभ प्रभाव मिट जाता है।

अमृतरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा।

अमृतरस—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुधा। अमृत। २ परब्रह्म [को०]।

अमृतरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ काले रग का अंगूर। २ एक मिठाई। अनरसा [को०]।

अमृतलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुर्च। गिलोय।

अमृतलतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अमृतलता'।

अमृतलोक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग। अमरलोक।

अमृतवपु—संज्ञा पुं० [सं०] १ चद्रमा। २ विष्णु [को०]। शिव [को०]।

अमृतवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञशेष सामग्री का उपयोग करना। उ०—वे तपस्वी ऋत और अमृतवृत्ति से जीवननिर्वाह करते हुए प्रार्थना करते थे।—स्कद०, पृ० १३२।

अमृतसजीवनी—वि० [सं० अमृतसञ्जीवनी] दे० 'मृतसजीवनी'।

अमृतसभवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अमृतसम्भवा] गुर्च। गिलोय।

अमृतसहोदर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमृतसोदर'।

अमृतसार—संज्ञा पुं० [सं०] १ नवनीत। मक्खन। २ घी।

अमृतसारज—संज्ञा पुं० [सं०] गुड [को०]।

अमृतसू—संज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा [को०]।

अमृतसोदर—संज्ञा पुं० [सं०] १ उच्चैःश्रवा नाम का अश्व। २ अश्व। तुरग [को०]।

अमृतस्रवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुदती या रुद्रवती नाम का पौधा [को०]।

अमृतान्धस्—संज्ञा पुं० [सं० अमृतान्धस्] देवता।

अमृतांशु—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी किरणों मे अमृत हो। चद्रमा।

अमृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गुर्च। उ०—धूर बीच यह समय न जाहू। सँग्रा साथ अमृता खाहू।—इद्रा०, पृ० १५४। २ इद्रायण। ३ मालकँगनी। ४ अतीस ५ हड़। ६. लाल निसोथ। ७ आँवला। ८. दूब। ९ तुलसी। १० पीपल। पिप्पली। ११ मदिरा। १२ फिटकरी [को०]। खरबूजा [को०]। १४ शरीर की एक नाड़ी (को०)। १५ सूर्य की एक किरण का नाम [को०]।

अमृताक्षर—वि० [सं०] १ अजर। अमर। अविनश्वर [को०]। उ०—फूटी तर अमृताक्षर निर्भर।—अपरा, पृ० २३०।

अमृताफल—संज्ञा पुं० [सं०] परवर। परोरा। पटोल [को०]।

अमृतासग—संज्ञा पुं० [सं० अमृतासङ्ग] तूतिया [को०]।

अमृताशी—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ देवता [को०]।

अमृताशन—संज्ञा पुं० [सं०] देवता [को०]।

अमृताशी—संज्ञा पुं० [सं० अमृताशिन्] देवता [को०]।

अमृताहरण—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड।

अमृताह्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक फल। नाशपाती [को०]।

अमृतेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता २ शिव [को०]।

अमृतेशय—संज्ञा सं० [सं०] जलशायी विष्णु [को०]।

अमृतेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] अमृतेश [को०]।

अमृतेष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ईंट [को०]।

अमृतोत्पन्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमृतोद्भव'।

अमृतोत्पन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मक्षिका। मक्खी [को०]।

अमृतोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] खर्परी तुत्थ। खपरिया तूतिया [को०]।

अमृत्यु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम [को०]।

अमृत्यु[2]—संज्ञा स्त्री० मृत्यु का अभाव। अमरता [को०]।

अमृत्यु[3]—वि० १ अमर। अमृत बनानेवाला [को०]।

अमृष्ट—वि० [सं०] अमार्जित। जो साफ न हो। गदा। जो शुद्ध न किया गया हो।

यौ०—अमृष्टभोजी = अपवित्र वा अशुद्ध भोजन करनेवाला। अमृष्टमृज = जिसकी शुद्धता अक्षुण्ण हो।

अमेट†—वि० [हिं०] दे० 'अमिट'। उ०—काह कहौं मैं ओहि कहँ जेइ दुख कीन्ह अमेट।—जायसी ग्र०, पृ० २४२।

अमेजना(पु)—क्रि० अ० [फा० आमेज] मिलावट होना। मिलना। उ०—(क) कहै पदमाकर पगी यों रस रग जामे, खुलिगे सुरग सब रगनि अमेजे ते।—पद्माकर ग्र०, पृ० ४८। (ख) मोतिन की माल मखमलवारी सारी सजे, झलमल जोति होति चांदनी अमेजे मैं—बेनी (शब्द०)।

अमेजना[2](पु)—क्रि० स० मिलाना। मिलावट करना।

अमेठ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अ + मृष्ट, प्रा० पिट्ठ, (पु) पेठ (पु) अमेठ] पिय। निपट निलज इह जेठ, धाय धाय वधुवनि गहै।—दे० 'ऐंठ'। उ०—रही न ननक अमेठ तुम बिन नदकुमार नद० ग्र०, पृ० १६६।

अमेठना(पु)—क्रि० स० [हिं० अमेठ से नाम०] दे० 'उमेठना'। उ०—पुनि जब भौंह अमेठन लागै। तब ये ग्वाल बाल डरि भागै।—नद० ग्र०, पृ० ३०१।

अमेठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अमेठ+ई] ऐंठ। अकड़। अभिमान। गर्व। उ०—एक आँख शिक्षा की हेठी से देखने लगी उसे अमेठी से।—बेला, पृ० ५३।

अमेत(पु)—वि० [सं० अमित] अगणित। अनेक। अमित। उ०—सुक समीप मन कुँवरि को, लग्यो वचन के हेत। अति विचित्र पंडित सुआ, कथत जु कथा अमेत।—पृ० रा० २०।१३।

अमेदस्क—वि० [सं०] मेदा रहित। दुबला पतला [को०]।

अमेधा—वि० [सं० अमेधस्] जिसमे मेधा न हो। मूर्ख। बुद्धिहीन [को०]।

अमेध्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपवित्र वस्तु। विष्ठा, मूत्र आदि। विशेष—स्मृति के अनुसार ये चीजें अमेध्य हैं—मनुष्य की हड्डी, शव, विष्ठा, मूत्र, चरबी, पसीना, आँसू, पीव, कफ, मद्य, वीर्य और रज।

२ एक प्रकार का प्रेत। ३ अपशकुन [को०]।

अमेध्य[2]—वि० १ जो वस्तु यज्ञ मे काम न आ सके। जैसे, पशुओ मे कुत्ता और अन्नो मे मसूर, उर्द आदि। २ जो यज्ञ कराने योग्य न हो। ३ अपवित्र।

अमेय—वि० [सं०] १ अपरिमाण। असीम। इयत्ताशून्य। बेहद। २ जो जाना न जा सके। अज्ञेय। उ०—कथ सुदर सुदर नामधेय। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमेय।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० २७९।

अमेयात्मा[1]—संज्ञा पुं० [सं० अमेयात्मन्] विष्णु [को०]।

अमेयात्मा[2]—वि० महान् आत्मावाला। उदारमना। [को०]।

अमेरिकन—वि० [अं०] १ अमेरिका का। २ सयुक्त राष्ट्र अमेरिका का निवासी। ३ अमेरिका सबधी।

अमेरिका—संज्ञा पुं० [अं०] पश्चिमी गोलार्ध का एक महादेश। यह दो भागो मे बँटा हुआ है—उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका। उ०—तुम नही मिले तुमसे हैं मिले हुए नव योरप अमेरिका।—अनामिका, पृ० २१।

अमेरिकी—वि० [हिं०] दे० 'अमेरिकन'।

अमेल—वि० [सं० अ+मेल] जिसका किसी से मेल न बैठता हो। जो किसी से मेल न खाय। अनमेल। असबद्ध।

अमेली(पु)—वि० [हिं० अमेल] अनमिल। असबद्ध। अड बड। उ०—खेलें फाग अति अनुराग सों उमग तें, वे गावें मन भावें, तहाँ वचन अमेली के (शब्द०)।

अमेव(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अमेय'।

अमेह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमे पेशाब नही उतरती या रुक रुककर उतरती है।

अमैंड(पु)—वि० दे० 'अमैंडे'।

अमैंडा(पु)—वि० [हिं० अ+मेड=सीमा] मर्यादा या सीमा न माननेवाला। उ०—कोऊ न देखैं न काहू दिखावत आपनो आनन जान अमैंडे।—घनानद, पृ० ४६।

अमैठना(पु)—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'अमेठना'।

अमोक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मोक्ष न मिलना। २ बंधन [को०]।

अमोक्ष[2]—वि० १ जिसका मोक्ष न हुआ हो। अमुक्त। २ जिसका मोक्ष न हो सके। ३ बँधा हुआ [को०]।

अमोगाँ—वि० [सं० अमोघ] अत्यधिक। बहुत (बोल०)।

अमोघ[1]—वि० [सं०] १ निष्फल न होनेवाला। वृथा या अन्यथा न होनेवाला। अव्यर्थ। अचूक। लक्ष्य पर पहुँचनेवाला। खाली न जानेवाला। २ अनिद्य। अद्वितीय। उ०—सब सामत समध चढि। बिच सुदरी अमोघ।—पृ० रा०, २५।७८०।

अमोघ[2]—संज्ञा पुं० १ व्यर्थ न होने का भाव। अव्यर्थ। २. शिव। ३, विष्णु [को०]।

अमोघकिरण—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्योदय और सूर्यास्त के समय की किरण [को०]।

अमोघदंड—संज्ञा पुं० [सं० अमोघदण्ड] वह जो दंड देने मे न चूके। शिव [को०]।

अमोघदर्शी—वि० [सं० अमोघदर्शिन्] अचूक दृष्टिवाला [को०]।

अमोघदृष्टि—वि० [सं०] दे० 'अमोघदर्शी'।

अमोघवाक्—वि० [सं०] जिसकी वाणी कभी व्यर्थ न होती हो [को०]।

अमोघविक्रम[1]—वि० [सं०] जिसका पराक्रम कभी विफल न होता हो [को०]।

अमोघविक्रम[2]—संज्ञा पुं० शिव [को०]

अमोघा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कश्यप की एक स्त्री जिनसे पक्षी उत्पन्न हुए थे। २ हड। ३ वायविडग। ४ पाढर का पेड और फूल। ५ शिव की पत्नी [को०]। ६ एक शस्त्र। शक्ति [को०]।

अमोचन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] छुटकारा न होना। न छूटना।

अमोचन[2](पु)—वि० न छूटनेवाला। दृढ। उ०—मूँदि रहे प्रिय प्यारी लोचन। अति हित बेनी उर पर नाए वेष्टित भुजा अमोचन।—सूर०—(शब्द०)।

अमोचनीय—वि० [सं०] न छूटने योग्य [को०]।

अमोद[1]—वि० [सं०] मोद रहित। आनदशून्य [को०]।

अमोद[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० आमोद] सुगध। आमोद। उ०—नैंचे कमल अमोदहिं पाइ। ठौं ठौं उठत मधुप अकुलाइ।—नद० ग्र०, पृ० २५९।

अमोनिया—संज्ञा पुं० [अं० एमोनिया] नौसादर।

अमोर[1](पु)—वि० [हिं०] न मुड़नेवाला। अडिग। स्थिर। उ०—रज पुत्त पचास भुअभ्भे अमोर। बजै जीत के नद्द नीसान घोर।—पृ० रा०, २०।९६।

अमोर[2]—वि० [हिं०] दे० 'अमोल'। उ०—रत्यनीक नामो कहैं, भूषन बुद्धि अमोर।—भूषण ग्र०, पृ० २५८।

अमोरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अम+औरी (प्रत्य०)] १ आम का बहुत छोटा कच्चा फल। अँबिया। २ आमड़ा। अम्मारी। उ० —फन को नाम बुझावन लागे हरि कहि दियो अमोरि।—सूर (शब्द०)।

अमोल(पु)—वि० [सं० अमूल्य] [वि० स्त्री० अमोली] १ अमूल्य। अत्यधिक मूल्य का। मूल्यवान्। उ०—रम सिंगार पार के पाओल अमोल मनोभव मिश्रा।—विद्यापति, पृ० ३५। २ जिसका मूल्य न लगाया जा सके। तुव नाम अमोल समरथ करहु दाया निर्धन।—कबीर सा०, पृ० ५२२।

अमोलक(पु)—वि० [हिं० अमोल+क (प्रत्य०)] दे० 'अमूल्य'। उ०—छाँडि काक मनि रतन अमोलक काँच की किरच गही।—सूर० (शब्द०)।

अमोला —संज्ञा पुं० [सं० आम्र] आम का नया निकला हुआ पौधा।

अमोलिक(ष)—वि० [हिं०] दे० अमूल्य। उ०—पाटंबर पहिराय कं अधिक अमोलिक। नदराय देत फूले नददास बोलिकै।—नद० ग्र० पृ० ३३६।

अमोही(ष)—वि० [सं० अमोह +ई (प्रत्य०)] १ विरक्त। २. निर्मोही। निष्ठुर। उ०—मीत सुजान अनीति करौ जिन हा हा न हूजिऐ मोहि अमोही।—घनानद०, पृ०।

अमौआ[1]—संज्ञा पुं० [सं० आम+औआ (प्रत्य०)] १ आम के फल का रंग। यह कई प्रकार का होता है,जैसे, पीला, सुनहरा, माशी, किरनजी, इत्यादि। २ अमौआ रंग का कपड़ा।

अमौआ[2]—वि० आम के रस के रंग का।

अमौन—संज्ञा पुं० [सं०] १ मौन का अभाव। बोलना। २ आत्मज्ञान। ३ मुनि के कर्तव्यों का अपालन। मुनि न होना [कौ०]।

अमौलिक—वि० [सं०] १ बिना जड़ का। निर्मूल। २ बे सिर पैर का। बिना आधार का। जिसका संबंध मूल से न हो। ३ अयथार्थ। मिथ्या। ४ अन्य रचना के आधार पर या अनुवाद के रूप में रचित [कौ०]।

अम्म—संज्ञा पुं० [अ०] चाचा। उ०—कहे ऐ अम्मे बुजुर्गवार व मेरे दुनिया होर दीन के आधार मेरे।—दक्खिनी, पृ० २३१।

अम्मय—वि० [सं०] जलमय। जलयुक्त या जलनिर्मित [कौ०]।

अम्मर(ष)—वि [हिं०] दे० 'अमर'। उ०—मना है अस्थान अम्मर जोति है परगाम।—जग० बानी, भा० १, पृ० ४।

अम्मरमरा—संज्ञा पुं० [हिं० अमरसर + आ (प्रत्य०)] अमृतसर का कबूतर। एक कबूतर जिसका सारा शरीर सफेद और कंठ काला होता है।

अम्मल—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'अमल'। उ०—बाजीगिरी रंग दिखावे ऐसा अम्मल मुझे नहिं भावे।—दक्खिनी०, पृ० १२५।

अम्माँ—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बा] माता। माँ।

अम्मामा—संज्ञा पुं० [अ० अम्मामह] एक प्रकार का साफा जिसे मुसलमान बांधते हैं।

यौ०—अम्मामेवाज—(१) साफ बाँधे हुए। (२) साफा बाँधनेवाला।

अम्मारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमारी'।

अम्याँ—अव्य० [हिं०] दे० 'अमाँ। जैसे, अम्याँ क्या कहते हो।

अम्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आम्र [कौ०]।

अम्र[2]— संज्ञा पुं० [अ०] १ बात। विषय। कार्य। मुआमिला। उ०—अम्र खुदा का लिया वजा तूँ नहीं ते मुनकिर होना।—दक्खिनी पृ० ५५। २. हुक्म। आदेश।

अम्रत(ष)—पुं० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०—चउरास्या सहू वर्णंव्या। अम्रत रसायण नरपति व्यास—बी० रासो, पृ० १००

अम्रात—संज्ञा पुं० [सं०] १. अमड़ा का पेड़। २. अमड़ा फल [कौ०]।

अम्रातक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्रात'।

अम्रत्या(ष)—संज्ञा पुं० [सं० ब० व० अमर्त्याः] देवता। (अनेकार्थ०)।

अम्रित(ष)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०—सत नाम रस अम्रित पीवहु, चरन तें लौ लाइ।—जग० बानी, भा० ६, पृ० ३५।

अम्रियमाण—वि० [सं०] जो मरणशील न हो। अमर। उ०—मैं गाता था गाने भूले अम्रियमाण।—अनामिका, पृ० ४५।

अम्ल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ जिह्वा में अनुभूत होनेवाला छ रसों में से एक। खटाई। २ तेजाब। ३ सिरका [कौ०]। ४ मट्ठा जिसमें एक चतुर्थांश जल हो [कौ०]। ४ वमन [कौ०]।

अम्ल[2] —वि० खट्टा। तुर्श।

यौ०—अम्लपंचक—पाँच प्रकार के प्रमुख खट्टे फल—जंबीरी नीबू, खट्टा अनार, इमली, नारंगी और अमलबेत।

अम्लक—संज्ञा पुं० [सं०] लकुच वृक्ष। बड़हार।

अम्लकांड—संज्ञा पुं० [सं० अम्लकाण्ड] एक पौधा। लवणतृण [कौ०]।

अम्लकेशर—संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू [कौ०]।

अम्लगोरस—संज्ञा पुं० [सं०] खट्टा दूध [कौ०]।

अम्लजन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आक्सिजन'।

अम्लतरु—संज्ञा पुं० [सं०] इमली का वृक्ष [कौ०]।

अम्लता—संज्ञा स्त्री० [सं०] खट्टापन। खटाई।

अम्लनिशा—संज्ञा पुं० [सं०] शठी नाम का पौधा [कौ०]।

अम्लनाल—संज्ञा पुं० [सं०] अश्मंतक नाम का पौधा [कौ०]।

अम्लपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पलाशी लता। २ क्षुद्राम्लिका [कौ०]।

अम्लपनस—संज्ञा पुं० [सं०] बड़हार [कौ०]।

अम्लपाद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लतरु।'

अम्लपित्त—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष जिसमें जो कुछ भोजन किया जाता है सब पित्त के दोष से खट्टा हो जाता है।

विशेष—यह रोग रूखी, खट्टी, कड़वी और गर्म वस्तुओं के खाने से उत्पन्न होता है। इसके लक्षण ये हैं—रगविरंग का मल उतरना, दाह, वमन, मूर्च्छा, हृदय में पीड़ा, ज्वर, भोजन में अरुचि, खट्टे डकार आना इत्यादि।

अम्लफल —संज्ञा पुं० [सं०] इमली [कौ०]।

अम्लबीजक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लफल'।

अम्लभेदन—संज्ञा पुं० [सं०] अम्लवेत [कौ०]।

अम्लमेह—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रविषयक रोग। एक प्रकार का प्रमेह [कौ०]।

अम्लरुहा—संज्ञा पुं० [सं०] मालवा में पाया जानेवाला एक प्रकार का पान [कौ०]।

अम्ललोणिका—संज्ञा पुं० [सं०] अमलोनी। नोनियाँ साग।

अम्ललोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अम्ललोणिका' [कौ०]।

अम्ललोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अमलोनी' [कौ०]।

अम्लवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] खट्टे फलों या पत्तों का वर्ग जिसमें नीबू, नारंगी अनार, इमली आदि आते हैं [कौ०]।

अम्लवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक कंद। त्रिपर्णिका [कौ०]।

अम्लवाकट—संज्ञा पुं० [सं०] आमड़ा फल और वृक्ष [कौ०]।

अम्लवाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पान [कौ०]।

अम्लवास्तूक—संज्ञा पुं० [सं०] चुक्रक [कौ०]।

अम्लवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लतरु' [कौ०]।

अम्लवेत—संज्ञा पुं० [सं० अम्लवेतस्] दे० 'अमलबेत'।

अम्लसार—संज्ञा पुं० [सं०] १ कांजी। २ चूक। ३ अमलबेत। ४ हिताल। ५ अमलसार गंधक। ६ नीबू का फल और वृक्ष [को०]।

अम्लहरिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँबाहलदी। कपूर कचरी।

अम्लांकुश—संज्ञा पुं० [सं० अम्लाङ्कुश] एक खट्टा साग [को०]।

अम्लाध्युषित (रोग)—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का रोग जो अधिक खटाई खाने से होता है।

विशेष—इस रोग में आँखें लाल हो जाती हैं कभी कभी पक भी जाती हैं, उनमें पीड़ा होती है, और पानी बहा करता है।

अम्लान[1]—वि० [सं०] १ जो उदास न हो। मलिन न हो। बिना मुरझाया हुआ। २ जो प्रफुल्लित हो। हृष्ट। प्रसन्न। ३ निर्मल। स्वच्छ। साफ।

अम्लान[2]—संज्ञा पुं०[सं०] १ बाणपुष्प नामक वृक्ष। २ दुपहरिया। कटसरैया।

अम्लानि[1]—वि० [सं०] जो मुरझाए नहीं [को०]।

अम्लानि[2]—संज्ञा स्त्री० १ शक्ति। २ ताजगी। नवता [को०]।

अम्लानी—वि० [सं० अम्लानिन्] साफ। स्वच्छ [को०]।

अम्लिका—संज्ञा स्त्री०[सं०] १ इमली। २ खट्टी डकार। ३ पलाश आदि पौधे [को०]।

अम्लिकावटक—संज्ञा पुं० [सं०] खटाई से युक्त एक प्रकार का बड़ा [को०]।

अम्लिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] खट्टापन [को०]।

अम्लीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] वह क्रिया जिसमें कोई वस्तु खट्टी की जाय।

अम्लीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अम्लिका। इमली [को०]।

अम्लीय—वि० [सं०] अम्ल विषयक। अम्ल से संबंधित [को०]।

अम्लोटक—संज्ञा पुं० [सं०] अश्मंतक पौधा [को०]।

अम्लोद्गार—संज्ञा पुं० [सं०] खट्टी डकार।

अम्ह(पु)—सर्व० [सं० अस्मद्, प्रा० अम्ह] दे० 'हम'। उ०—अम्हीं मन अचरिज भएउ, सखियाँ आखड एम।—ढोला० दू०, ६।

अम्हौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अभ-जल+हिं० औरी (प्रत्य०) अथवा सं० ऊष्मा, प्रा० उम्हा, उम्ह, प्रा०*अम्ह+औरी प्रत्य०] बहुत छोटी छोटी फुंसियाँ जो गरमी के दिनों में पसीने के कारण लोगों के शरीर में निकल आती हैं। अधौरी।

अय—सर्व० [सं० अयम्] यह। उ०—दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर काम कृत कौतुक अय।—मानस। १।८५।

अयंत्र[1]—संज्ञा पुं० [सं० अयन्त्र] १ वह जो वश या नियंत्रण में न हो। २ यंत्र का अभाव। ३ अनियंत्रण। नियंत्रण का अभाव [को०]।

अयंत्र[2]—वि० अनियंत्रित। अवशीकृत [को०]।

अयंत्रित—वि० [सं० अयन्त्रित] १ जो यंत्रित या वशीकृत न हो। स्वेच्छाचारी।

अय—संज्ञा पुं० [सं०] अयस् (लोहा) का समासगत रूप।

अय पान—संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार एक नरक का नाम।

अय पिंड—संज्ञा पुं० [सं० अय पिण्ड] लोहे का गोला। लौहपिंड [को०]।

अय शंकु—संज्ञा पुं० [सं० अयःशङ्कु] १ नेजा। भाला। २ लोहे की कील। खूँटी [को०]।

अय शय—वि० [सं०] लोहे में रहनेवाला (अग्नि) [को०]।

अय शूल—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक अस्त्र। तीव्र उपपात। तीक्ष्ण उपाय।

अय शोभी—वि० [अय शोभिन्] सौभाग्य से दीप्त [को०]।

अय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ गमन। जाना। गति। २ अच्छा भाग्य। शुभविग्राह विधि। अभ्युदय। ३ पासा। अक्ष। ४ शुभ कार्य। मंगल कृत्य [को०]।

यौ०—अयवान् अयान्वित = भाग्यवान्।

अय[2]—संज्ञा पुं० [सं० अयस्] १ लोहा। उ०—सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी।—मानस, १।२६८। २ इस्पात। शुद्ध लोहा [को०]। ३ अस्त्र शस्त्र। हथियार। ४ अग्नि। ५, कोई धातु [को०]। ६ स्वर्ण [को०]।

अय[3]—अव्य [सं० अयि] संबोधन का शब्द। हे।

विशेष—यह अधिकतर 'ऐ' लिखा जाता है।

अयक्ष्म—वि० [सं० अयक्ष्मन्] १ नीरोग। रोगरहित। २, निरुपद्रव। बाधाशून्य।

अयजनीय—वि० [सं०] जो यज्ञ में पूजा या आदर के अयोग्य हो। अपूज्य। २ निंदित।

अयज्ञ—वि० [सं०] १ यज्ञ न करनेवाला। २ यज्ञ न हो [को०]

अयज्ञक—वि० [सं०] जो यज्ञ के लिये अनुपयुक्त हो [को०]।

अयज्ञिय—वि०[सं०] १ जो यज्ञ के काम में न लाया जाता हो। २ जो यज्ञ में न दिया जाता हो। ३ अपवित्र। अशुद्ध। ४ यज्ञ करने के अयोग्य। जो शास्त्र के अनुसार यज्ञ करने का अधिकारी न हो।

अयज्ञीय—वि० [सं०] दे० 'अयज्ञिय' [को०]।

अयत—वि०[सं०] उच्छृंखल। स्वेच्छाचारी। जो संयत न हो [को०]।

अयति—वि० [सं०] उद्योगहीन। यत्न न करनेवाला [को०]।

अयती—वि० [सं० अ+यतिन्] जो यती या जितेंद्रिय न हो। इंद्रियों के वश में रहनेवाला [को०]।

अयतेंद्रिय—वि०[सं० अयतेन्द्रिय]१ जो इंद्रियों का संयम न कर सके। इंद्रियनिग्रह न करनेवाला। २ ब्रह्मचर्यभ्रष्ट। ३ चंचलेंद्रिय। इंद्रिय लोलुप।

अयत्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] यत्न का अभाव। उद्योगशून्यता।

अयत्न[2]—वि० यत्नशून्य। उद्योगहीन।

यौ०—अयत्नसिद्ध = अयत्नसाध्य। जो बिना प्रयास हो जाय।

अयत्नकृत्—वि० [सं०] बिना प्रयास के होनेवाला। सरलता से पूर्ण होनेवाला [को०]।

अयत्नज—वि० [सं०] स्वतः हो जानेवाला। आसानी से होनेवाला [को०]।

अयत्नलभ्य—वि० [सं०] बिना प्रयास के प्राप्त होने योग्य [को०]।

अयथा[1]—वि० [सं०] १ मिथ्याभूत। झूठ। असत्य। २ अयोग्य।

अयथा[2]—अव्य० गलत ढंग से। अनुचित रूप से [को०]।

अयथा[3]—संज्ञा पुं० १- किसी काम को विधि के अनुसार न करना। विधिविरुद्ध कर्म। अनुचित काम।

अयथातथ[1]—वि० [सं०] अयथार्थ । विरुद्ध । विपरीत । यथायोग्य नहीं ।

अयथातथ[2]—संज्ञा पुं० विपरीत या अयोग्य कार्य [को०] ।

अयथातथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] अयोग्यता । अनुपयुक्तता । व्यर्थता अयथार्थता [को०] ।

अयथाद्योतन—संज्ञा पुं० [सं०] अप्रत्याशित घटना घटित होना [को०] ।

अयथापूर्व—वि० [सं०] जो पूर्ववत् न हो । जो पहले जैसा न हो ।

अयथामुखीन—वि० [सं०] जिसका व्यवहार पहले जैसा न हो । जिसने मुँह फेर लिया हो [को०] ।

अयथावृत्त—वि० [सं०] अनुचित या गलत ढंग से काम करनेवाला ।

अयथास्थित—वि० [सं०] जो बेढंगेपन से रखा गया । अव्यवस्थित [को०] ।

अयथार्थ—वि० [सं०] १ जो यथार्थ न हो । मिथ्या । असत्य । २ जो ठीक न हो । अनुचित । अनुपयुक्त ।

यौ०—**अयथार्थज्ञान** = मिथ्या ज्ञान । झूठा ज्ञान । भ्रम ।

अयथावत्—वि० [सं०] अनुचित ढंग या गलत तरीके से [को०] ।

अयथेष्ट—वि० [सं०] १ जो यथेष्ट या संतोषजनक न हो । २ इच्छा के विपरीत हो [को०] ।

अयथोचित—वि० [सं०] १ जो समुचित या मुनासिब न हो । २ अयोग्य [को०] ।

अयन—संज्ञा पुं० [सं०] १ गति । चाल । २ सूर्य या चंद्रमा की दक्षिण से उत्तर या उत्तर से दक्षिण की गति या प्रवृत्ति जिसको उत्तरायण और दक्षिणायन कहते हैं । बारह राशिचक्र का आधा ।

विशेष—मकर से मिथुन तक छह राशियों को उत्तरायण कहते हैं । क्योंकि इनमें स्थित सूर्य या चंद्र पूर्व से पश्चिम को जाते हुए भी क्रम से कुछ कुछ उत्तर को झुकते जाते हैं । ऐसे ही कर्क से धनु की संक्रांति तक जब सूर्य या चंद्र की गति दक्षिण की ओर झुकी हुई दिखाई देती है तब दक्षिणायन होता है । ३ राशिचक्र की गति ।

विशेष—ज्योतिषशास्त्र के अनुसार यह राशिचक्र प्रतिवर्ष ५४ विकला, प्रतिमास ४ विकला, ३० अनुकला और प्रतिदिन ९ अनुकला खिसकता है । ९३ वर्ष ८ महीने में राशिचक्र विषुवत् रेखा पर पूरा एक फेरा लगाता है । यह दो भागों में विभक्त है—प्रागयन और पश्चादयन ।

४. ग्रह तारादि की गति का ज्ञान जिस शास्त्र में हो । ज्योतिष शास्त्र । ५ सेना की गति । एक प्रकार का सेनानिवेश (कवायद) जिसके अनुसार व्यूह में प्रवेश करते हैं । ६ मार्ग । राह । ७ आश्रम । ८ स्थान । ९ घर । १० काल । समय । ११ अंश । १२ एक प्रकार का यज्ञ जो अयन के प्रारंभ में होता था । १३ गाय या भैंस के थन के ऊपर का वह भाग जिसमें दूध भरा रहता है । उ०—अंतर अयन अयन भल, थन फल, बच्छ बेद बिस्वासी ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६४ ।

अयनकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह काल जो एक अयन में लगे । २ छह महीने का काल ।

अयनभाग—संज्ञा पुं० [सं०] अयन अंश वा हिस्सा ।

अयनवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य के गमन से बननेवाला वृत्त । २ ग्रहण की रेखा [को०] ।

अयनसंक्रम—संज्ञा स्त्री० [सं० अयनसङ्क्रम] १ मकर और कर्क की संक्रांति । अयन संक्रांति । २ प्रत्येक संक्रांति से २० दिन पहले का काल ।

अयनसंक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अयनसङ्क्रान्ति] मकर और कर्क की संक्रांति । अयनसंक्रम ।

अयनसंपात—संज्ञा पुं० [सं० अयनसम्पात] अयनांशों का योग ।

अयनसमांत—संज्ञा पुं० [सं० अयनसमान्त] १ रात और दिन दोनों का बराबर होना । विषुवत् रेखा पर उन दो बिंदुओं में से एक, जिनपर से होकर सूर्य का क्रांतिवृत्त (सूर्य का मार्ग) विषुवत् रेखा को वर्ष में दो बार (छह छह महीने पर) काटता है । जब किसी एक बिंदु पर सूर्य आता है, तब रात और दिन दोनों बराबर होते हैं । इसी को अयनसमांत कहते हैं । २ उक्त दोनों बिंदु ।

अयनांत—संज्ञा पुं० [सं० अयनान्त] अयन की समाप्ति । वह संधिकाल जहाँ एक अयन समाप्त हो और दूसरा अयन आरंभ ।

अयनांश—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य की गतिविशेष के काल का भाग । २ विषुवत् रेखा पर के वे दो बिंदु जिनपर से होकर सूर्य का क्रांतिवृत्त (गमन का मार्ग) वर्ष में दो बार (छह छह महीने पर) काटता है और जिनपर सूर्य के आने पर रात और दिन दोनों बराबर होते हैं ।

अयमदिन—संज्ञा पुं० [सं०] ६० घड़ी का वह एक ही रात दिन जिसमें दो तिथियों का अवसान हो जाय ।

विशेष—कहा गया है कि ऐसे दिन में स्नान और दानादि के अतिरिक्त और कोई शुभ कर्म नहीं करना चाहिए ।

अयमित—वि० [सं०] १ जिसे नियमित न किया जाय । २ जो काट छाँटकर दुरुस्त न किया गया हो । असज्जित [को०] ।

अयम्—सर्व० [सं०] यह ।

अयव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुरीष का एक कीड़ा जो यव से छोटा होता है । कद्दूदाना । २ पितृकर्म, क्योंकि इस कृत्य में यव नहीं काम आता । ३ शत्रु । ४ कृष्ण पक्ष ।

अयव[2]—वि० १ जिसमें यव का प्रयोग न हो । २ अभावयुक्त । अपूर्ण [को०] ।

अयश—संज्ञा पुं० [सं० अयशस्] १ अपयश । अपकीर्ति । २ निंदा ।

अयशस्कर—वि० [सं०] अपयश का कारण । जिसके करने से बदनामी हो ।

अयशस्य—वि० [सं०] जिनसे बदनामी हो । बदनाम करानेवाला ।

अयशस्वी—वि० [सं० अयशस्विन्] १ जिसे यश न मिले । अकीर्तिमान् । बदनाम ।

अयशी—वि० [सं० अयशस्वी, हिं० अयशी, अजसी] बदनाम ।

अयश्चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का चूरा [को०] ।

अयस—संज्ञा पुं० [सं० अयस्] लोहा ।

विशेष—समासांत में प्रयुक्त, जैसे कृष्णायस, कालायस आदि ।

अयस्कंस—संज्ञा पुं० [सं] लोहे का प्यालानुमा पात्र [को०] ।

अयस्कांड—संज्ञा पुं० [सं० अयस्‌-काण्ड] १ लोहे का तीर। २ लोहे की अधिकता। ३ उत्तम लोहा [को०]।

अअयस्कांत—संज्ञा पुं० [सं० अयस्कान्त] चुंबक।

अयस्स्कांतमणि—संज्ञा पुं० [सं० अयस्कान्त मणि] चुंबक [को०]।

अयस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १ लोहार। २ जाँघ का ऊपरी भाग (को०)।

अयस्कीट—संज्ञा पुं० [सं०] मोरचा। जंग (को०)।

अयस्कुंभ—संज्ञा पुं० [सं० अयस्कुम्भ] [स्त्री० अयस्कुंभी] लोहे का गगरा [को०]।

अयस्कृशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोहे की बनी रस्सी। लोहे के मेल से बनी रस्सी [को०]।

अयस्ताप—वि० [सं०] लोहे को तपानेवाला [को०]।

अयस्थूण¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि [को०]।

अयस्थूण²—वि० [सं०] लोहे के स्तंभ से युक्त। जिसमें लोहे के खंभे लगे हों [को०]।

अयाँ—वि० [अ०] १ प्रकट। जाहिर। २ स्पष्ट।

अयाचक—वि० [सं०] १ नहीं माँगनेवाला। जो माँगे नहीं। २ संतुष्ट। पूर्णकाम।

अयाचित—वि० [सं०] बिना माँगा हुआ। उ०—ईश अयाचित देते हैं फल प्रेम से।—कानन०, पृ० १०५।

यौ०—अयाचितोपस्थित=बिना माँगे प्राप्त। अयाचितवृत्ति, अयाचित व्रत=बिना माँगे प्राप्त वस्तु से जीविकानिर्वाह करने का नियम।

अयाची—वि० [सं० अयाचिन्] १ अयाचक। न माँगनेवाला। २ अयाच्य। पूर्णकाम। संपन्न। ३ समृद्ध। धनी।

अयाच्य—वि० [सं०] १ जिसे माँगने की आवश्यकता न हो। पूर्णकाम। भरापूरा। उ०—कुछ को अयाच्य करने से देश की दशा सुधर नहीं सकती।—प्रेमघन०, पृ० २७६। २ संतुष्ट। तृप्त। ३ जो माँगे जाने योग्य न हो।

अयाज्य¹—वि० [सं०] १ जो यज्ञ कराने योग्य न हो। जिसको यज्ञ कराने का अधिकार न हो। २ पतित। ३ यज्ञ के अयोग्य [को०]।

अयाज्य²—संज्ञा पुं० [सं०] चांडाल। अंत्यज [को०]।

अयाज्ययाजक—संज्ञा पुं० [सं०] वह याजक जो ऐसे पुरुष को यज्ञ करावे जिसको यज्ञ कराना शास्त्रों में वर्जित है।

अयाज्ययाजन—संज्ञा पुं० [सं०] अनधिकारी व्यक्ति से यज्ञ कराना [को०]।

विशेष—यह उपपातकों में है। इसे अयाज्यसयाज्य भी कहते हैं।

अयात—वि० [सं०] जो न गया हो [को०]।

अयातपूर्व—वि० [सं०] १ अनुगत। अनुयायी। २ उत्तराधिकारी। ३ स्थानापन्न [को०]।

अयातयाम—वि० [सं०] १. जिसको एक पहर न बीता हो। २ जो बासी न हो। ताजा। ३ विगतदोष। शुद्ध। ४ जो अतिक्रांत काल का न हो। ठीक समय का ५. जो व्यवहृत होने से नष्ट न हुआ हो [को०]।

अयाथार्थिक—वि० [सं० स्त्री० अयाथार्थिकी] १ जो सत्य न हो। गलत। झूठ। २ अवास्तविक। ३ अनुचित। अन्याय [को०]।

अयान¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वभाव। निसर्ग। २ अचंचलता। स्थिरता।

अयान² वि० [सं०] बिना सवारी का। पैदल।

अयान³ (पु)—वि० [सं० अज्ञान, प्रा० अयाण] १ अज्ञ। मूर्ख। उ०—कहइ सो अधमु अयान असाधू।—मानस, २।२०६। २ ज्ञानरहित। नादान। उ०—सुनि हैं कुसल गेह मे तेरे। जे अयान अरु वृद्ध घनेरे।—हम्मीर०, पृ० १३।

अयानत—संज्ञा स्त्री० [अ० इआनत] सहायता। मदद।

अयानता (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अयान+ता (प्रत्य०)] ज्ञानहीनता। अज्ञता। मूर्खता।

अयानप—संज्ञा पुं० [हिं० अयान+प (प्रत्य०)] १ अज्ञानता। अनजानापन। उ०—यहाँ यों सयानप अयानप सहस सम, सूधो मन भाय कहे मिटति मलीनता।—तुलसी ग्रं०, पृ०, ४८६। २ भोलापन। सीधापन।

अयानपन (पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अयान+पन] १ अज्ञानता। २ भोलापन। सीधापन। उ०—तुव अयानपन नहि भट्ठ नट्ठ नए नंदलाल, जब सयानपन सेइहै तब धौं कहा हवाल।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १२८।

अयानय (पु)—संज्ञा पुं० [सं०] १ अच्छी या बुरी तकदीर। सौभाग्य या दुर्भाग्य २ शतरंज की एक ऐसी जगह जिसे विरोधी खिलाड़ी के मुहरे नहीं अपना सकते [को०]।

अयाना—वि० पुं० [सं० अज्ञान, प्रा० अयाणय] [वि० स्त्री० अयानी] अजान। बुद्धिहीन। अज्ञानी। उ०—(क) जौ पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करत अयाना।—मानस, १।२५६।

अयाम—संज्ञा पुं० [सं०] १ समय या याव। समय की कमी। २ दिन का कोई भाग। ३ जो मार्ग या पथ न हो [को०]।

अयाल¹—संज्ञा पुं० [तु० याल फा० अयाल] घोड़े और सिंह आदि की गर्दन के बाल। केसर।

अयाल²—संज्ञा पुं० [अ० इयाल] लड़के बाले। बाल बच्चे।

अयालदार—संज्ञा पुं० [फा०] १ कंधे पर बालवाला पशु, जैसे घोड़ा, शेर। २ बालबच्चोंवाला गृहस्थ [को०]।

अयावक—वि० [सं०] स्वाभाविक या प्रकृत लाल [को०]।

अयावन—संज्ञा पुं० [सं०] संमिश्रित न होने देना [को०]।

अयास—क्रि० वि० [सं०] अ=नहीं+यास=प्रयास] बिना प्रयास। बिना उद्योग के। सहज ही। उ०—वृक्षों से ही बढो अयास।—युग०, पृ० ७३।

अयास्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ शत्रु। विरोधी। २ प्राणवायु। ३. अंगिरा ऋषि।

अयास्य²—वि० निश्चल। अटल।

अयि—अव्य [सं०] हे। अरे। अरी। यह संबोधन के लिये प्रयुक्त होता है।

अयुक—वि० [सं० अयुज्] अयुक्त [को०]।

अयुक्छद—संज्ञा पुं० [सं०] १. सप्तपर्ण वृक्ष। छतिवन। सतौना। २. वह वृक्ष या पौधा जिसकी अयुग्म पत्तियाँ हों, जैसे बेल, अरहर आदि।

अयुक्तनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अयुक्पलाश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अयुक्छद'।

अयुक्शक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

अयुक्शर—संज्ञा पुं० [सं०] पंचशर। कामदेव [को०]।

अयुक्त—वि० [सं०] १ अयोग्य। अनुचित। बेठीक। २ अमिश्रित। असंयुक्त। अलग। ३ आपद्ग्रस्त। ४ जो दूसरे विषय पर आसक्त हो। अनमना। ६ असबद्ध। युक्तिशून्य। ७ अविवाहित (को०)।

यौ०—अयुक्तकृत् = बुरा या गलत काम करनेवाला। अयुक्तचार = जिसने दूतों या जासूसों की नियुक्ति न की हो।

अयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ युक्ति का अभाव। असबद्धता। गड़बड़ी। २ अयुक्तता [को०]। योग न देना। अप्रवृत्ति ३ वंशी बजाने में उँगली से उसके छेद को बंद करने की क्रिया।

अयुग—वि० [सं०] १ विषम। ताक। २ अकेला। ३ जो श्लिष्ट या मिला न हो।

अयुगक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। त्रिनयन [को०]।

अयुगपद—अव्य० [सं०] एक साथ नहीं। क्रमश [को०]।

अयुगल—वि० [सं०] दे० 'अयुग' [को०]।

अयुगिषु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। अयुग्बाण [को०]।

अयुगू[1]—वि० [सं०] १ जिसका कोई मित्र या संगी न हो। २ वह लड़की जिसकी कोई बहन न हो [को०]।

अयुगू[2]—संज्ञा स्त्री० वह स्त्री जिसे जीवन में एक ही संतान उत्पन्न होकर फिर कोई संतान न हो। काकवंध्या [को०]।

अयुग्बाण—संज्ञा पुं० [सं०] विषमबाण। कामदेव [को०]।

अयुग्म—वि० [सं०] १ विषम। ताक। २ अकेला। एकाकी।

यौ०—अयुग्मच्छद। अयुग्मनेत्र। अयुग्मवाह। अयुग्मशर।

अयुग्मच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] १ सप्तपर्ण वृक्ष। छतिवन। सतवन। २ वह वृक्ष या पौधा जिसकी अयुग्म पत्तियाँ हों, जैसे बेल अरहर इत्यादि।

अयुग्मनयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अयुग्मनेत्र' [को०]।

अयुग्मनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अयुग्मनेत्री] शिव। महादेव।

विशेष—शिव की शक्तियों को भी अयुग्मनेत्रा कहते हैं।

अयुग्मबाण—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

अयुग्मवाद—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

अयुग्मशर—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। अयुग्मबाण [को०]।

अयुग्मसप्ति—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके रथ में सात घोड़े जुते हों। सूर्य [को०]।

अयुज—वि० [सं०] १ जो जोड़ा न हो। ताक। २ अकेला। संगी-विहीन। ३ अश्लिष्ट [को०]।

अयुत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ दस हजार संख्या का स्थान। २ उस स्थान की संख्या।

अयुत[2]—वि० १ असबद्ध। युक्त न हो। २ अक्षुब्ध [को०]।

अयुतसिद्ध—वि० [सं०] जो पृथक् करने योग्य न हो। परस्पर से युक्त। अविच्छेद्य [को०]।

अयुध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो युद्ध न करता हो।

अयुध[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयुध'।

अयुध्य—वि० [सं०] जिससे युद्ध न किया जा सके। दुर्धर्ष [को०]।

अयुव—वि० [सं०] १ असबद्ध। २ शांत [को०]।

अयुष—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आयुष्'।

अये[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] स्लोथ की जाति का एक जतु। यह जतु अये, अये शब्द करता है। इसीलिये इसको 'अये' कहते हैं।

अये[2]—अव्य० [सं०] १ क्रोध, विषाद, भयादि द्योतक अव्यय। २ संबोधन।

अयोग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ योग का अभाव। २ अप्रशस्त योगयुक्त काल। वह काल जिसमें फलित ज्योतिष के अनुसार दुष्ट ग्रह नक्षत्रादि का मेल हो। ३ कुसमय। कुकाल। ४. कठिनाई। संकट। ५ वह वाक्य जिसका अर्थ सुगमता से न लगे। कूट। ६ अप्राप्ति। ७. असंभव। ८ अलगाव [को०]। ९ अनुपयुक्तता [को०]। १० तीव्र प्रयत्न। जोरदार कोशिश [को०]। ११. विधुर। १२ हथौड़ा [को०]। १३ किसी वस्तु को न चाहना। नापसंदगी [को०]।

अयोग[2]—वि० [सं०] १ अप्रशस्त। बुरा। २ असबद्ध [को०]। ३ जोरदार कोशिश करनेवाला [को०]।

अयोग[3]—वि० [सं० अयोग्य] अयोग्य। अनुचित।

अयोगव—संज्ञा पुं० [सं०] वैश्य जाति की स्त्री और शूद्र पुरुष से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति।

अयोगवाह—संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्ण जिनका पाठ अक्षरसमाम्नाय सूत्र में नहीं है।

विशेष—ये किसी किसी के मत से अनुस्वार, विसर्ग, ‿क और ‿प चार हैं और किसी किसी के मत से अनुस्वार, विसर्ग ‿क ‿ख ‿प और ‿फ छह हैं। अनुस्वार विसर्ग के अतिरिक्त जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय भी अयोगवाह है।

अयोगी[1]—वि० [सं० अयोगिन्] योगशास्त्रानुसार जिसने योगांगों का अनुष्ठान न किया हो। योगांगों के अनुष्ठान में असमर्थ। जो योगी न हो।

अयोगी[2](पु)—वि० [सं० अयोग्य] अयोग्य।

अयोगुड—संज्ञा पुं० [सं०] १ लोहे की गोली। लोहे की बनी गेंद। लौह कंदुक। २ एक प्रकार का शस्त्र जिसमें लोहे के गेंद लगे रहते हैं [को०]।

अयोग्य—वि० [सं०] १ जो योग्य न हो। अनुपयुक्त २ अकुशल। नालायक। बेकाम। निकम्मा। अपात्र। ३ अनुचित। नामुनासिब। बेजा।

अयोघन—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का घन या हथौड़ा [को०]।

अयोच्छिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] मोरचा। जंग [को०]।

अयोजाल—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का बना हुआ जाल [को०]।

अयोद्धा—संज्ञा पुं० [सं०] १ निम्न कोटि का सैनिक। २ वह व्यक्ति जो योद्धा या सैनिक नहीं है [को०]।

अयोध्य—वि० [सं०] १ जिससे युद्ध न किया जा सके। अजेय। २ जो युद्ध के लिये असमर्थ हो [को०]।

अयोध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी।

विशेष—वाल्मीकीय रामायण के अनुसार इसे सरयू नदी के किनारे वैवस्वत मनु ने बसाया था जो ४८ मील लंबा और १२ मील चौड़ा बड़ा नगर था। इसका एक नाम साकेत भी है। रामचंद्र जी का जन्म यहीं हुआ था। पुराणानुसार यह हिंदुओं की सप्तपुरियों में से है।

अयोध्याकांड—संज्ञा पुं० [सं० अयोध्याकाण्ड] रामायण का द्वितीय कांड।

अयोनि¹—वि० [सं०] १ जो उत्पन्न न हुआ हो। अजन्मा। २ नित्य। ३ अवैध रूप से पैदा (को०)। ४ अज्ञात कुलवाला (को०)।

अयोनि²—संज्ञा पुं० १ योनि से भिन्न। २ ब्रह्मा। ३ शिव। ४ मूसल या लोढ़ा (को०)।

अयोनिज¹—वि० [सं०] १ जो योनि से उत्पन्न न हो। जो प्रजनन की साधारण प्रक्रिया से उत्पन्न न हो। २ स्वयंभू। ३ अदेह।

अयोनिज²—संज्ञा पुं० १ विष्णु। २ ब्रह्मा। ३ शिव। ४ अगस्त्य या कुंभज ऋषि।

अयोनिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता (को०)।

अयोनिसंभवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अयोनिसम्भवा] दे० 'अयोनिजा' (को०)।

अयोमय—वि० [सं०] लोहे से रचित। लोहे का (को०)।

अयोमल—संज्ञा पुं० [सं०] मोरचा। जंग (को०)।

अयोमुख—वि० [सं०] जिसका मुख लोहे का हो।

अयोहृदय—वि० [सं०] लोहे जैसा कठोर हृदयवाला। संगदिल। निष्ठुर (को०)।

अयौक्तिक—वि० [सं०] युक्तिहीन। असंगत (को०)।

अयौगिक—वि० [सं०] [स्त्री० अयौगिकी] १ रूढ़। जो (शब्द) व्याकरणविरुद्ध हो। २ जिसका योग या जोड़ से संबंध न हो (को०)।

अरग—संज्ञा पुं० [सं० अर्घ्य = पूजाद्रव्य अथवा सं० आघ्राण, तुल० 'अरघान'] सुगंध। महक। उ०—रूप के तरजन के अगन ते सोंधे के अरग लै लै तरल तरंग उठै पौन की।—देव (शब्द०)

अरगम—संज्ञा पुं० [सं० अरङ्गम] १ समीप आगमन या दिखाई पड़ना। २ सहायतार्थ उपस्थित होना (को०)।

अरगर—वि० [सं०] १ तुरंत स्फूर्ति करनेवाला। २ जहर का बना हुआ (को०)।

अरंगी—वि० [सं० अरङ्गिन्] रागरहित। रागविहीन (को०)।

अरंड(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एरंड, रेंड'।

अरंधन—संज्ञा पुं० [सं० अरन्धन] एक प्रकार का व्रत जो सिंहसंक्रांति और कन्यासंक्रांति के दिन पड़ता है। इस दिन 'आचारमार्तंड' के अनुसार भोजन नहीं पकाया जाता।

अरब्यंद(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अरविंद'। उ०—रवी पग दरस अरब्यंद मान।—पृ० रा० ६१।६३९।

अरंभ(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'आरंभ'। उ०—कृपा अरंभ करउ मोड चाहा। तेही समय गरुड खगनाहा।—मानस, ७।६३।

अरंभना¹(पु)—क्रि० स० [सं० आ + रम्भ = शब्द करना] बोलना। नाद करना। उ०—रोवत पंखि विमोहे जस कोकिला अरंभ। जाकरि कनक लता सो बिछुरा पीतम खंभ।—जायसी ग्रं०, पृ० १५८।

अरंभना²(पु)—क्रि० स० [सं० आरम्भण] आरंभ करना। शुरू करना उ०—सकुर्वाहि नमन विभूषन परसत जा वपु। तेहि सरीर हर हेतु अरंभेउ बड तपु।—तुलसी (शब्द०)।

अरंभना(पु)—क्रि० अ० आरंभ होना। शुरू होना। उ०—प्रनग्यु अवध अरंभेउ जब ते। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें।—मानस २।१५७।

अर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ पहिए की नाभि और नेमि के बीच की आड़ी लकड़ी। आरागज। २ आरी। ३ कोण। कोना। ४ सेवार। ५ पित्तपापड़ा। पर्पट (को०)।

अर²—वि० १ शीघ्र। जल्दी। २ छोटा (को०)।

अर³(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अड़] १ हठ। अड़। जिद। उ०—(क) पगि पाकरि बिनती घनी नीमरजा ही कीन। अब न नारि अर करि सकै जदुवर परम प्रवीन।—बिहारी (शब्द०)।

अरइल¹(पु)—वि० वि० [हिं० अरना, अड़ना] जो चलते चलते रुक जाय और आगे न बढ़े। अड़ियल।

अरइल²(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक वृक्ष का नाम। २ प्रयाग में वह स्थान जहाँ गंगा से यमुना मिलती हैं। अरैल। उ०—की कालिंदी विरह सताई। चलि पयाग अरइल बिच आई।—जायसी ग्रं०, पृ० ४६।

अरई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋ = जाना] बैल हाँकने की छड़ी या पैने के सिरे पर की लोहे की नुकीली कील जिससे बैल को गोदकर हाँकते हैं। प्रतोद।

मुहा०—अरई लगाना = ताकीद करना। प्रेरणा करना।

अरई²—संज्ञा स्त्री० दे० 'अरवी'।

अरक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेवार। २ पहिए का आरा। आरागज (को०)। ३ पित्तपापड़ा (को०)।

अरक²—संज्ञा पुं० [अ० अरक] १ किसी पदार्थ का रस जो भभके से खींचने से निकले। आसव। अर्क।

क्रि० प्र०—उतरना। खींचना। निकालना।

२ रस।

क्रि० प्र०—निचोड़ना।

३ पसीना।

क्रि० प्र०—आना—निकलना।

मुहा०—अरक अरक होना = पसीने से भीग जाना।

अरक³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्क] १ मदार। आक। उ०—छवि छवि अरकन मे खवि खरकन मे अवि अरकन मे जाड छमे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८९। २ सूर्य।

अरकगीर—संज्ञा पुं० [फा०] नमदे का बना हुआ वह टुकड़ा जिसको घोड़े की पीठ पर रखकर जीन या चारजामा खींचते हैं।

अरकटी—संज्ञा पुं० [हिं० आड़ + काटना] वह माँझी जो नाव की पतवार पर रहता और उसे घुमाता है।

अरकना¹(पु)—क्रि० अ० [अनु०] अर्राकर गिरना। टकराना। उ०—कढ़ै दंत जिनु अन जुथ्थि पर लुथ्थि अरक्किय।—सूदन (शब्द०)।

अरकना[२]—क्रि० अ० [हिं० दरकना] फटना। दरकना।
यौ०—अरकना दरकना।

अरकनाना—संज्ञा पुं० [अ०] एक अरक जो पुदीना और सिरका मिलाकर खीचने से निकाला जाता है।

अरकना बकरना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] इधर उधर करना। ऐंचातानी करना। उ०—प्रर कै डरि कै अरकैबरकै फरकै न रुकै मजिबोई चहै।—केशव (शब्द०)।

अरक बादियान(पु)—संज्ञा पुं० [अ०] सौफ का अरक।

अरकला(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्गला=अगरी या बडा] रोक। मर्यादा। उ०—मोंट अहै ईश्वर की कला। राजा सब राखहि अरकला।—जायसी (शब्द०)।

अरकसी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० आलस्य]। सुस्ती। प्रमाद।

अरकाट—संज्ञा पुं० दक्षिण भारत का एक स्थान।

अरकाटी—संज्ञा पुं० [हिं० अरकाट] वह व्यक्ति जो कुलियों आदि को चाय के बगीचो मे या मारिशस, गियाना आदि टापुओं मे काम करने के लिये भरती करके भेजता हो।

अरकान—संज्ञा पुं०[अ० 'रुक्न' का बहुव०]राज्य के प्रधान संचालक। प्रधान राजकर्मचारी। मंत्रिवर्ग। उ०—जावत अहहिं सकल। अरकाना। सांभरि लेहु दूर है जाना।—जायसी (शब्द०)।

अरकासर—संज्ञा पुं० [सं० कासार] तालाब। बावली।—डिं०।

अरकोल—संज्ञा पुं० [सं० कौलीरा] एक वृक्ष जो हिमालय पर्वत पर होता है। इसका पेड झेलम से आसाम तक २००० से ८००० फुट की ऊँचाई पर मिलता है। इसकी गोद ककरासिंगी या काकडासिंगी कहलाती है। लाखर।

अरक्षित—वि० [सं०] १ जिसकी रक्षा न की गई हो। रक्षाहीन। २ जिसका रक्षक न हो।

अरखट(पु)—संज्ञा पुं० [(पु)अखरावट, (पु)अखरोटी, (पु)अखरोट] १. अक्षर २ लिखावट। उ०—लिख लिलाट पट्ट विधि अरखट मिटही न कोटि जतन धरि वैए।—अकबरी०, पृ० ३२४।

अरग[१]—संज्ञा पुं० [सं०अगरु=एक चंदन] अरगजा। पीले रंग का एक मिश्रित द्रव्य जो सुगंधित होता है। इसे देवताओं को चढाते है और माथे मे लगाते हैं।

अरग[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्क'। उ०—अरुन वरुन उट्ठायो। अरग उद्दिग उद्दिग जुज।—पृ० रा०, ६१।१६६५।

अरगजा—संज्ञा पुं० [हिं०] एक सुगंधित द्रव्य जो शरीर मे लगाया जाता है। यह केशर, चदन, कपूर, आदि को मिलाने से बनता है। उ०—मैं लै दयौ, लयौ सुकर छुवत छिनकि गौ नीरु। लाल तिहारो अरगजा, उर ह्वै लग्यो अबीरु।—विहारी र०, दो० ५३५।

अरगजी[१]—संज्ञा पुं० [हिं० अरगजा] एक रंग जो अरगजे का सा होता है।

अरगजी[२]—वि० १ अरगजी रंग का। २ अरगजा की सुगंध का। उ०—उरधारी लटैं छूटी आनन पर भीजी फुलेलन सो आली हरि संग केलि। सोंधे अरगजी अरु सरगजी सारी केसरि खोरि विराजित कहुँ कहुँ कुचनि पर दरकी अँगिया घन वेलि।—(शब्द०)।

अरगट(पु)—वि० [हिं० अलगंट] पृथक्। अलग। निराला। भिन्न उ०—बाल छबीली तियनु मे बैठी आपु छिपाई। अरगट ही फानूस सी परगट होति लखाइ।—बिहारी र०, दो० ६०३।

अरगडा[१]—संज्ञा पुं० दे० 'अर्गला'।

अरगन—संज्ञा पुं० [अं० आर्गन] एक अँगरेजी बाजा।
विशेष—यह धौंकनी से बजता है। इसमे स्वर निकलने के लिये नलियाँ लगी रहती है। यह बाजा प्राय गिरजाघरो मे रहता है और एक आदमी के बजाने से बजता है।

अरगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अलगनी] बाँस, लकडी या रस्सी जो किसी घर मे कपडे आदि रखने के लिये बाँधी या लटकाई जाय। अलगनी।

अरगल—संज्ञा पुं० [सं० अर्गल] १ वह लकडी जो किवाड बद करने पर इसलिये आडी लगाई जाती है कि किवाड बाहर से खुले नही। ब्योडा। गज। उ०—अरि दुर्ग लूटि अरगल अखड। जनु धरी बडाई बाहु दड। गोपुर कपाट विस्तार झारि। गहि धर्यो बच्छ थल मे सँवारि।—गुमान (शब्द०)।

अरगवान—संज्ञा पुं० [फा०] गहरे लाल रंग का एक फूल तथा उक्त फूल का वृक्ष [को०]।

अरगवानी[१]—संज्ञा पुं० [फा०] रक्तवर्ण। लाल रंग।

अरगवानी[२]—वि० १ गहरे लाल रंग का। लाल। बैंगनी।

अरगा[१]—संज्ञा [फा० इर्काल] घोडे की एक प्रकार की चाल। कदम चाल जिसमे चारो पैर अलग अलग पडते है।
विशेष—इस चाल को चलते समय घोडा देह को साधकर चलता है। चारो टाँग अलग अलग पडती हैं। इस चाल मे सवार घोडे की लगाम खिची हुई रखता है और घोडे का कल्ला (गर्दन) उठा हुआ और स्थिर रहता है।

अरगाना[१](पु)—क्रि० अ० [हिं० अलगाना] १ अलग होना। पृथक् होना। उ०—(क) लोग भरोसे कौन के जग बैठे अरगाय।—कबीर (शब्द०)। २ सन्नाटा खीचना। चुप्पी साधना। मौन होना। (ख) सुनि सिहचौ उनही की कहचौ। अपनी चाल समुझि मन ही मन गुनि अरगाई रह्यौ।—सूर०, १०।४१२३।
मुहा०—प्राण अरगाना=प्राण सूखना। भकचका जाना। विस्मित होना। उ०—जासौं जैसी भाँति चाहियै ताहि मिले त्यौं धाइ। देस देस के नृपति देखि यह प्रीति रहे अरगाइ।—सूर०, १०।४२८२।

अरगाना[२](पु)—क्रि० स० अलग करना। छाँटना। उ०—बरनि न जाइ भक्त की महिमा बारबार बखानौं। ध्रुव गजपूत विदुर दासी सुत कौन कौन अरगानौ।—सूर०, १।११।

अरघ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्घ] १. सोलह उपचारो मे से एक। वह जल जिसे फूल, अक्षत, दूब आदि के साथ किसी देवता के सामने गिराते हैं। उ०—करि आरती अरघ तिन्ह दीन्हा। राम गमनु मडप तब कीन्हा।—मानस, १।३१६। २ वह जल

जो हाथ धोने के लिये किसी महापुरुष को उसके आने पर दिया जाय। उ०—आदर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने।—तुलसी (शब्द०)। ३ वह जल जो बरात के आने पर वहाँ भेजा जाता है। उ०—गिरिवर पठए बोलि लगन बेरा भई। मगल अरघ पावडे देत चले लई।—तुलसी ग्र० पृ० ३१। ४ वह जल जो किसी के आने पर दरवाजे पर उसके सामने आनदप्रकाशनार्थ ढरकाया जाता है। ढरकावन। उ०—गजमुकुता हीरामनि चौक पुराइय हो। देह सु अरघ राम कहु लेइ बैठाइय हो।—तुलसी ग्र०, पृ० ३। ५ जल का छिडकाव। उ०—नाइ सीस पगनि असीस पाइ प्रमुदित पावडे अरघ देत आदर से आते हैं।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। उ०—हरि को मिलन सुदामा आयो। विधि करि अरघ पावडे दीदे अतर प्रेम बढायो।—सूर (शब्द०)। दना। उ०—हृदय ते नहिं टरत उनके स्याम नाम सुहेत। अश्रु सलिल प्रवाह उर मनो अरघ नैनन देत।—सूर (शब्द०)।

अरघटी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह बाल्टी जो रहट मे लगी रहती है। २ गहरा कूप [को०]।

अरघट्ट—सज्ञा पुं० [सं०] रहट। अरहट।

अरघट्टक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरघट्ट'।

अरघनी†—सज्ञा स्त्री० [स० अर्घरिणक] आम का वह पत्ता जिसका प्रयोग देवविशेष को जल देने मे किया जाता है।

विशेष—कभी कभी पडित अपने यजमान के हाथ मे एक आम का पता देते हैं और देवविशेष के लिये जल छुडवाते हैं, तब वह पत्ता अरघनी कहलाता है।

अरघा¹—सज्ञा पुं० [सं० अर्घ] १ एक पात्र जिसमें अरघ का जल रखकर दिया जाता है। यह ताँबे का थूहर के पत्ते के आकार का गावदुम होता है। २ एक पात्र जिसमे शिवलिंग स्थापित किया जाता है। जलधरी। ३ वह पात्र जिसमे अर्घ रखकर दिया जाता।

अरघा²—सज्ञा पुं० [स० अरघट्ट] कुएँ की जगत पर पानी निकलने के लिये बनाया गया रास्ता। चँवना।

अरघान(पु)†—सज्ञा पुं० [स० आघ्राण] गध। महक। आघ्राण। उ०—(क) औंर केस वह मालति रानी। विसहर लुरे लेहिं अरघानी।—जायसी ग्र०, पृ० ४१। (ख) अरघान की फैन, मैली हुई मालिनी की मृदुल सैन।—आराधना पृ० ७।

अरघानि(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरघान'।

अरचन(पु)—सज्ञा पुं० [स० अर्चन] पूजा। नव प्रकार की भक्ति मे से एक। उ०—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादरत, अरचन, वदन दास। सख्य और आत्मनिवेदन, प्रेम लक्षणा जास।—सूर (शब्द०)।

अरचना(पु)—क्रि० स० [सं० अर्चन] पूजा करना। उ०—(क) दुख मे आरत अधम जन पाप करै डर डारि। बलि दै मूतन मारि पशु अरचै नही मुरारि।—दीनदयाल (शब्द०)।

अरचल†—सज्ञा स्त्री० [हिं० अडचन] अडस। रुकावट। अडचन। उ०—मैं कैसे चलौं सजनी चलो न जाय। उरझी है मारी रे वेरिया की भारी रे अरचन और परी।—प्रताप (शब्द०)।

अरचा(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अर्चा'। उ०—त्यो पदमाकर सालिगराम को कै अरचा चरनोदक चाखै।—पद्माकर ग्र०, पृ० २४४।

अरचि(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्चि] ज्योति। दीप्ति। आभा। प्रकाश। तेज। उ०—भे चलत अकरि करि समरपन रचि मुखमडल अरचिकर।—गोपाल (शब्द०)।

अरचित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अर्चित'।

अरज¹—सज्ञा स्त्री० [अ० अर्ज़] विनय। निवेदन। विनती। उ०—होत रग संगीत गृह प्रतिध्वनि उठत अपार। अरज करत निकरत हुकुम मनो काम दरबार।—गुमान (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—कहना।

यौ०—अरज गरज।

अरज²—सज्ञा पुं० [अ० अर्ज़] चौडाई।

अरज³—वि० [सं०] १ जिसमे धूल न लगी हो। स्वच्छ। २ राग आदि से रहित। ३ जिसे मासिक धर्म न हो [को०]।

अरजन(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अर्जन'। उ०—करन लगे जब सो अन्याय सहित धन अरजन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५३।

अरजना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अरज से नाम०] निवेदन या प्रार्थना करना।

अरजम—सज्ञा पुं० [देश०] कुवी नाम का एक बडा वृक्ष जिसकी लकडी से खेती के औजार और गाडी के धुरे आदि बनाए जाते हैं। वि० दे० 'कुवी'।

अरजल¹—सज्ञा पुं० [अ० अर्जल] १ वह घोडा जिसके दोनो पिछले पैर और अगला दाहिना पैर सफेद या एक रग का हो। (ऐसा घोडा ऐबी माना जाता है)। उ०—तीन पाँव एक रग हो एक पाँव एक रग। ताको अरजल कहत हैं करत राज मे भग। २ नीच जाति का पुरुष। ३. वर्णसकर।

अरजल²—वि० नीच, जैसे अरजल कौम।

अरजस्क—वि० [सं०] दे० 'अरज³'।

अरजाँ—वि० [फा०] सस्ता। कमकीमत [को०]।

अरजा¹—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ भार्गव ऋषि की पुत्री। २ घीकुआर। घृतकुमारी। ३ वह कन्या जिसे रजोधर्म न हुआ हो [को०]।

अरजा²—वि० [सं०] अरजस्वला [को०]।

अरजी¹†—सज्ञा स्त्री० [अ० अर्जी] १ आवेदनपत्र। निवेदनपत्र। प्रार्थनापत्र। उ०—गरजी ह्वै दियो उन पान हमैं पढि साँवरे रावरे की अरजी।—तोष (शब्द०)। २ दे० 'अर्जी'।

अरजी²(पु)†—[अ० अर्ज+हिं० ई (प्रत्या०)] प्रार्थी। उ०—अरजी पिव पिव रटन परखि तब प्रगटत मरजी।—सुधाकर (शब्द०)।

अरजुन(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्जुन'।

अरज्जु¹—वि० [सं०] बिना रस्सीवाला [को०]।

अरज्जु²—सज्ञा पु० कारागृह। जेल [को०]।

अरझना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरुझना'।

अरझा¹†—सज्ञा पुं० [दे०] छोटी जाति का सन। सनई।

अरझा²†—सज्ञा पुं० [हिं० अरुझना] १ उलझन। झमेला। २. बखेडा। टटा। झगडा।

अरटु—संज्ञा पुं० [सं०] अरनू नाम का वृक्ष [को०]।

अरडीग†—वि० [देश०] बलिष्ठ। जोरावर।—डिं०।

अरण†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरण्य'। उ०—अरण आज्ञाकारी मूझ नायक अवध अवध वितानै वेग आवौ।—रघु० रू०, पृ० १०४।

अरणव(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्णव'। उ०—अरणव साते उदर विरछ रोमाच विचारै।—रघु० रू०, पृ० ४४।

अरणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रकार का वृक्ष। गनियार। अँगेयू। २ सूर्य। ३ काठ का बना हुआ एक यत्र जो यज्ञो मे आग निकालने के काम आता है। अग्निमथ।

विशेष—इसके दो भाग होते हैं—अरणि या अधरारणि और उत्तरारणि। यह शमीगर्भ अश्वत्थ से बनाया जाता है। अधरारणि नीचे होती है और इसमे एक छेद होता है। इस छेद पर उत्तरारणि खडी करके रस्सो से मथानी के समान मथी जाती है। छेद के नीचे कुश या कपास रख देते है जिसमे आग लग जाती है। इसके मथने के समय वैदिक मत्र पढते हैं और ऋत्विक् लोग ही इसके मथने आदि का काम करते हैं। यज्ञ मे प्राय अरणि से निकली हुई आग ही काम मे लाई जाती हैं। ४ चीता नामक वृक्ष या उसकी लकडी। ५ श्योनाक। सोना पाढा। ६ अग्नि। ७ चकमक पत्थर।

अरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अरणि'।

अरणिकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निमथ नामक वृक्ष (को०)।

अरणीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] शुकदेव।

विशेष—लिखा है कि व्यास जी का वीर्यपात अरणी पर होने से शुकदेव की उत्पत्ति हुई थी।

अरण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ वन। जगल। २ कटफल। कायफल। ३ सन्यासियो के दस भेदो मे से एक। ४. रामायण का एक काड।

यौ० —अरण्यगान अरण्यरोदन।

अरण्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १ जगल। २ जगली सभा। ३ एक पौधा [को०]।

अरण्यकणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जगली जीरा [को०]।

अरण्यगान—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के अतर्गत एक गान जो जगल मे गाया जाता था।

अरण्यचद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अरण्यचन्द्रिका] जगल की चाँदनी (ला०)। वह शृ गार जिसका देखनेवाला या प्रशसा करनेवाला न हो [को०]।

अरण्यदमन—संज्ञा पुं० [सं०] दोन नामक एक पौधा। दौना [को०]।

अरण्यनृपति—संज्ञा पुं० [सं०] शेर। सिंह [को०]।

अरण्यपडित—संज्ञा पुं० [सं० अरण्यपण्डित] मूर्ख व्यक्ति। बुद्धिहीन मनुष्य [को०]।

अरण्यमक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] डाँस। जगली मक्खी [को०]।

अरण्ययान—संज्ञा स्त्री० [सं०] वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करना [को०]।

अरण्यरोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १ निष्फल रोना। ऐसी पुकार जिसका सुननेवाला कोई न हो। २. ऐसी बात जिसपर कोई ध्यान न दे। वह बात जिसका कोई ग्राहक न हो। जैसे—इस भीडभाड मे कोई बात कहना अरण्यरोदन है।—(शब्द०)।

अरण्यवास्तुक—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली बैंगन [को०]।

अरण्यवास्तूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरण्यवास्तुक' [को०]।

अरण्यविलाप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरण्यरोदन' [को०]।

अरण्यव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो मृगशिरा नक्षत्र के बारहवें दिन पडता है [को०]।

अरण्यश्वान—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेडिया। २ गीदड [को०]।

अरण्यषष्ठी—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो जेठ महीने के शुक्ल पक्ष मे पडता है।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ फलाहार करती हैं और देवी की पूजा करती हैं यह व्रत सतानवर्धक माना जाता है। शास्त्रानुसार स्त्रियो को बेना लेकर जगल मे घूमना चाहिए।

अरण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ओषधि।

अरण्यानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बीहड जगल या बीरान जगल। २. वन की देवी [को०]।

अरण्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करना [को०]।

अरण्यीय—वि० [सं०] १ जगल का। २ जगल के समीप [को०]।

अरत—वि० [सं०] १ जो अनुरक्त न हो। जो किसी पदार्थ मे आसक्त न हो। २ विरत। विरक्त। उ०—मन गोरख गोविंद मन, मन ही ओषधि सोय। जो मन राखै यतन करि, आपै अरता होय।—कबीर (शब्द०)। ३ सुस्त। आलसी। ४ असतुष्ट।

अरति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विराग। चित्त का न लगना। उ०—सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमत्र कुठाटु। रचि प्रपच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु।—मानस, २।२६४। २ जैन शास्त्रानुसार एक प्रकार का कर्म जिसके उदय मे चित्त किसी काम मे नही लगता। यह एक प्रकार का मोहनीय कर्म है। अनिष्ठ मे खेद उत्पन्न होने को भी अरति कहते है ३ असतोष [को०]। ४. क्रोध [को०]। ५ चिंता [को०]। ६ उच्चाटन [को०]। ७ उद्वेग [को०]। ८ सुस्ती। प्रमाद [को०]। ९. व्यथा। पीडा [को०]। १०. एक प्रकार पित्तरोग [को०]।

अरति[2]—वि० १ असतुष्ट। २ शातिरहित। अशात। ३. सुस्त। प्रमादी [को०]।

अरत्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अरत'। उ०—आलिंगन दे हृथ्य धरि, अरु पुच्छिय इह वत्त। जा जीवन रत्तो जगत, तू क्यो राज अरत।—पृ० रा०, ११५४८।

अरत्नि—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाहु। हाथ। २ कुहनी। ३. मुट्ठी बँधा हाथ। ४ मीमासा शास्त्र के अनुसार एक माप।

विशेष—इससे प्राचीन काल मे यज्ञ की वेदी आदि मापी जाती थी। यह माप कुहनी से कनिष्ठा के सिरे तक होती है।

अरथ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्थ'। उ०—भनइ विद्यापति, कहओ बुझाए अरथ असंभव के पतिआए।—विद्यापति, पृ० २२६।

अरथाना(पु)†—क्रि० स० [सं० अर्थ+हिं० आना (प्रत्य०)] १ समझाना। विवरण करना। उ०—पठवो दूत भरत कौ

ल्यावन वचन कह्यो विलखाई। दशरथ वचन राम वन गवने यह कहियो अरथाइ।—सूर०, ९।४७ । २ व्याख्या करना। वताना। उ०—भा विहान पडित सब आए। काढि पुरान जनम अरथाए। जायसी ग्र०, पृ० १६ ।

अरथी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० रथ] १ लकडी की बनी हुई सीढी के आकार का एक ढांचा जिसपर मुर्दे को रखकर श्मशान ले जाते हैं । टिखटी। विमान ।

अरथी[2]—वि० [सं०अ+रथी] १ जो रथी न हो । पैदल। २ जो रथ पर से युद्ध न करे [को०]।

अरथी[3]—वि० [हिं०] दे० 'अर्थी'। उ०—उत्तम मनुहारिन करे मानै मानिनि मक। मध्यम समयी अधम निजु अरथी निलजु निसक।—भिखारी ग्र० भा० १, पृ० २७।

अरदडा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का करील जो गगा के किनारे होता है ।

अरद[1]—वि० [सं०] १ बिना दांतवाला। २ जिसके सभी दाँत गिर गए हो [को०] ।

अरद[2]—संज्ञा पुं० १. दुख पहुँचाना। २ विनाश [को०] ।

अरदन[1]—वि० [सं० अ+रदन] १ बे दांत का। बे दांतवाला ।

अरदन[2]ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्दन' ।

अरदना ⓟ†—क्रि० स० [सं० अर्द्दन] १ रौंदना। कुचलना। उ०—जदपि अरदग्पु वधत तदपि रद कांति प्रकामत।—गोपाल (शब्द०)। २ वध करना। मार डालना । उ०—जिमि नकुल नाग को मद हरत तिमि अरि अरदत प्रण किए।—गोपाल (शब्द०) ।

अरदल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो पश्चिमी घाट और लंका द्वीप में होता है ।

विशेष—इससे पीले रंग की गोंद निकलती है जो पानी में नही घुलती, शराब मे घुलती है। इससे अच्छा पीले रंग का वारनिश बनता है। इसका फल खट्टा होता है और खटाई के काम आता है। इसके बीज से तेल निकलता है जो ओषधि के काम आता है। इसकी लकडी भूरे रंग की होती है जिसमे नीली धारियाँ होती हैं। गोरका। ओट। भव्य।

अरदली—संज्ञा पुं० [अ० ऑर्डरली] वह चपरासी या भृत्य जो किसी कर्मचारी या राजपुरुष के साथ कार्यालय मे उसके आज्ञापालन के लिये नियुक्त रहता है और लोगो के आने इत्यादि की इत्तला करता है ।

अरदावा ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० अर्दद, फा० आरद] १ दला हुआ अन्न। कुचला हुआ अन्न। २. भरता। उ०—धीव टांक महँ सौंध मिरावा। पख वघार कीन्ह अरदावा ।—जायसी (शब्द०)।

अरदास ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जदाश्त] १ निवेदन के साथ भेंट। नजर। उ० एहि विधि ढील दीन्ह तव ताईं। देहली की अरदासें आईं ।—जायसी (शब्द०)। २ शुभ कार्य या यात्रारभ मे किसी देवता की प्रार्थना करके उसके निमित्त कुछ भेंट निकाल रखना। ३ वह ईश्वरप्रार्थना जो नानकपंथी प्रत्येक शुभ कार्य, चढावे आदि के आरंभ मे करते हैं। ४ प्रार्थना। विनती ।

अरधग[1]ⓟ—संज्ञा [सं० अर्द्धाङ्ग] १ आधा अंग । उ०—सिव साहेब अचरज भरो सकल गावगो अग। क्यो कामहिं जारयो, कियो क्यो कामिनि अरधग।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १२५। २ शिव। उ०—तजै गौरि अरधग अचल ध्रुव आसन चल्लै।—हम्मीर०, पृ० १३ ।

अरधग[2]—वि० दे० 'अर्धांग'।

अरधगी[1]ⓟ—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अर्धांगी' ।

अरधगी[2]ⓟ—संज्ञा स्त्री० [अरधग+ई (प्र०)] स्त्री। पत्नी। उ०—आपु भए पति वह अरधगी । गोपनि नाउ धरयो नवरगी। सूर०, १०।३९४४ ।

अरधागी ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्द्धांग' ।

अरध[1]ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अर्ध'। उ०—कूट्यो पहार सतखड ह्वै अरध खड गढ भरहरयो ।—हम्मीर०, पृ० ४३ ।

अरध[2]ⓟ—क्रि० वि० [सं० अध०] अदर। भीतर । उ०—अरध उरध अस है दुइ हीया। परगट गुपुत बरै जस दीया।—जायसी (शब्द०) ।

अरधभापरी ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं०] अर्ध भापरी। एक प्रकार का राजस्थानी गीत जो भापरी का आधा होता है ।

अरधमावझड ⓟ†—संज्ञा पु० [हिं०] एक प्रकार का राजस्थानी गीत।

अरधाई ⓟ—वि० [हिं० अरध+आई प्रत्य०] आधा । उ०—तीनि हाथ एक अरधाई।—कबीर ग्र०, पृ० १३३।

अरध्र—वि० [सं०]१ जो पराजित न हो। अपराजेय।२ समृद्ध [को०]।

अरन[1]—संज्ञा पुं० [हिं० अडन] एक प्रकार की निहाई जिसके एक या दोनो ओर नोक निकली होती है ।

अरन[2]—संज्ञा पु० [सं० अरण्य, प्रा० अरण्ण] दे० 'अरण्य' ।

अरना[1]—संज्ञा पुं० [सं० आरण्यक] जगली भैंसा ।

विशेष—जगलो मे इनके झुड के झुड मिलते है। यह साधारण भैसे मे बडा और मजबूत होता है । इसके सुडौल और दृढ अगो पर बडे बडे बाल होते हैं। इसका सीग लबा, मोटा और पैना होता है और शेर तक का सामना करता है।

अरना[2]ⓟ—क्रि० अ० [हिं०] शीघ्रता करना। उ०—करी दया मो सीम दया कर आयो सार चार गुण अरकर।—रा० रू०, पृ० ६। २ दे० 'अडना' ।

अरनि ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अडन'। उ०—बरषि निझरे मेघ पाइक बहुत कीनो अरनि। सूर सुरपति हारि मानी तब परयो दुहुँ चरनि।—सूर०, १०।९५९ ।

अरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अरणी] १ एक छोटा वृक्ष जो हिमालय पर होता है।

विशेष—इसका फल लोग खाते है। इसकी पुलनी भी काम आती है। काश्मीरी और काबुली अरनी बहुत अच्छी होती है। इसकी लकडी से चरखे की चरख और डोई आदि बनती है। यह माघ, फाल्गुन मे फूलता है और बरसात मे पकता है ।

२—यज्ञ का अग्निमथन काष्ठ जो शमी के पेड मे लगे हुए पीपल से लिया जाता है। वि० दे० 'अरणि'। उ०—बारबार

विचार तें उपजै ज्ञान प्रकासं। ज्यौं अरनी मथन तें प्रगटै गुप्त हुतास।—दीन० ग्र०, पृ० १६६। ३ जतन। दाह।

अरन्य⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरण्य'। उ०—'दास' कहै मृगहू को उदास कै वास दियो है अरन्य गँभीरनि।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ५०१।

अरपन⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्पण'। उ०—बरनै दीनदयाल न देखत रूप कुरूपहि। जो घट अरपन करै ताहि ते ममता कूपहि।—दीन० ग्र०, पृ० २५६।

अरपना⑤—क्रि० स० [सं० अर्पण] अर्पण करना। भेंट करना। उ०—(क) पहिले दाता सिख भया तन मन अरपा सीस।—कबीर (शब्द०)। (ख) तोहि आम की मजरी अरपित हौं सिर माथ। महाराज कदर्प के धनुष लियो जिन हाथ।—शकुतला, पृ० १०६।

अरपा—संज्ञा पुं० [देश०] एक मसाला।

अरपित⑤—वि० [हिं०] दे० 'अर्पित'।

अरब¹—संज्ञा पुं० [सं० अर्बुद] १ सौ करोड। सख्या मे दसवाँ स्थान। २ इस स्थान की सख्या।

अरब²—संज्ञा पुं० [सं० अर्वन्] १ घोडा। २ इद्र। उ०—सरब गरबन अरब अरब ऐसे अरब के अरब चरब जहराय के।—गोपाल (शब्द०)।

अरब³—संज्ञा पुं० [अ०] १ एक मरु देश जो एशिया खड के पश्चिम-दक्षिण भाग में और भारतवर्ष से पश्चिम है। यहाँ इस्लाम धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहब उत्पन्न हुए थे। यहाँ घोडे, ऊँट और छुहारे बहुत होते है। २ अरब देश का उत्पन्न घोडा। ३ अरब का निवासी।

अरबर⑤—वि०[अनुध्व०] [स्त्री० अरबरी]१ ऊटपटाँग। असबद्ध। उ०—भक्तनि की सुधि करी खरी अरबरी मति, भावन करत भोग सुखद लगाए हैं —प्रिया (शब्द०)। २ कठिन। मुश्किल।

अरबराना⑤—क्रि० अ० [हिं० अरबर से नाम०] १ घबराना। व्याकुल होना। विचलित होना। (क) व्याही ही विमुख घर आयो लेन कहै पर खरी अरबरी कोऊ चित्त चिंता लागी है।—प्रिया (शब्द०)। (ख) मुनि सोच परेउ हियो खरो अरबरेउ मन गाढो लै कै करेउ बोल्यो हाँ जू सरसाई है।—प्रिया (शब्द०)। २ लटपटाना। अडबडाना। उ०—सिखवति चलन जसोदा मैया। अरबराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरनी धरै पैया।—सूर०, १०।११५।

अरबरी⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं० अरबर] घबराहट। हडबडी। उ०—(क) सभा की चाह अवगाह हनूमान की गरे डारि दई सुधि भई अति अरबरी है।—प्रिया (शब्द०)।

अरबिंद⑤—संज्ञा पुं० [सं० अरविन्द] दे० 'अरविंद'। उ०—देखत क्यो न अपूरब इदु मे द्वै अरबिंद रहे गहि लाली।—पद्माकर ग्र०, पृ० २०६।

अरबिस्तान—संज्ञा पुं० [अ० अरब+फा० स्तान] अरब देश।

अरबी¹—वि०[अ० अरब +फा० ई (प्रत्य०)] अरब देश का।

अरबी²—संज्ञा पुं० १ अरबी घोडा। अरब देश का उत्पन्न या अरबी नस्ल का घोड़ा। ताजी। ऐराकी।

विशेष—यह सब घोडों मे अधिक बलवान, मेहनती, सहिष्णु और आज्ञानुवर्ती होता है। इसके नथुने चौडे, गाल और जबडे मोटे, माथा चौडा, आँखें बडी बडी, थुथने छोटे, पुट्ठा ऊँचा और दुम जरा ऊपर चढकर शुरू होती है। इसके कान छोटे, तथा दुम और अयाल के बाल चमकीले होते हैं।

२ अरबी ऊँट। अरब देश का ऊँट।

विशेष—यह बहुत दृढ और सहिष्णु होता है और बिना दाने पानी के मरुभूमि मे चलता रहता है।

३ अरबी बाजा। ताशा।

अरबी³—संज्ञा स्त्री० अरब देश की भाषा।

अरबीला⑤—वि० [हिं० अरबर] १ भोलाभाला। अडबड। उ०—देखति आरसी मैं मुसुकयाति है छाँडि दई बतियाँ अरबीली।—लाल (शब्द०)। २ लडाका। युद्ध से न भागनेवाला। अडनेवाला।

अरबुद⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्बुद'। उ०—बुरे ऋषि वृद सुअरबुद आय। जहाँ ऋषि चाय वसै सत भाय।—हम्मीर रा०, पृ० ८।

अरब्बी¹—वि० [हिं०] दे० 'अरबी'।

अरब्बी²—संज्ञा पुं० [फा० अरबी] १ अरबी बाजा। ताशा।—बाजै अरब्बी उमडिकै गज्जै मनो घन घुमडि कै—पद्माकर ग्र०, पृ० ८। २ अरबी घोडा। उ०—अरब्बी फिरै बेस उब्बीन पै जे। नटो की कला सीकला जान लै जे।—पद्मामकर ग्र०, पृ० २८०।

अरभक⑤—वि० [हिं०] दे० 'अर्भक'।

अरम—वि० [सं०] क्षुद्र। नीच [को०]।

अरमण—वि० [सं०] १ अरुचिकर। २ खराब। ३ असतोषदायक। ४ विरामरहित। निरतर।

अरममाण—वि० [सं०] दे० 'अरमण' [को०]।

अरमनी—संज्ञा पुं० [फा०] आरमेनिया देश का निवासी।

विशेष—आरमेनिया काकेशश पहाड से दक्षिण मे है यहाँ के लोग विशेष सुदर होते हैं।

अरमाँ—संज्ञा पुं० [तु० अर्मान] दे० 'अरमान'। उ०—ऐ फलक क्या क्या हमारे दिल मे अरमाँ रह गया।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८४६।

अरमान—संज्ञा पुं० [तु० अर्मान] इच्छा। लालसा। चाह।

मुहा०—अरमान निकालना=इच्छा पूरी करना। उ०—बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४७६। अरमान भरा=उत्सुक। अरमान रहना या रह जाना=इच्छा का पूरा न होना। मन की बात मन ही मे रहना।

अरर¹—अव्य० [सं० अरेरे] एक शब्द जो अत्यत व्यग्रता तथा अचभे की दशा मे मुँह से निकलता है, जैसे—अरर! यह क्या हुआ (शब्द०)।

अरर²—संज्ञा पुं० [सं० अरर] १ किवाड कपाट। २ पिधान। ढक्कन। ३ उलूक [को०]। ४ युद्ध [को०]।

अरर³—संज्ञा पुं० [सं० अरर, अरल] मैनफल [को०]।

अररनादररना⑤—क्रि० स० [अनु०] दलना। पीसना। उ०—चित कर गोइयाँ प्रेम की दररिया समुझि समुझि भिझना

नावहु रे का अररिदररि जो पीमें लागी सजनी ह्वै वह पिया की सोहागिनि रे की। —कबीर (शब्द०)।

अरराना (पु)—क्रि० अ० [अनुध्व] अरर शब्द करना। अरराना। उ०—अरररात दोउ वृच्छ गिरे धर। अति आघात भयो व्रज भीतर।—सूर०, १०।३८१।

अरराना—क्रि० अ० [अनुध्व०] अररर शब्द करना। टूटने या गिरने का शब्द करना। उ०—तरु दोउ धरनि गिरे भहराइ। जर सहित अरराई कै आघात शब्द सुनाइ।—सूर०, १०।३८१। २ अररर शब्द करके गिरना। तुमुल शब्द करके गिरना। उ०—बरत बनपात फहरात फहरात अररात तरु महा धरनी गिरायौ।—सूर० १०।५९६। ३ भहरा पडना। सहसा गिरना। उ०—(क) खाय दरार परी छतियाँ अब पानी परे अरराय परेंगी (शब्द०)। (ख) सिंहद्वार अरराया जनता भीतर आई।—कामायनी, पृ० १६८।

अरराहट—सज्ञा सज्ञा [हिं० अरर + आहट (प्रत्य०)] अरराने की ध्वनि या आवाज। उ०—यो हो अरराहट अरावन को छायो है।—पद्माकर ग्र ०, पृ० ३२० ।

अररि—सज्ञा पुं० [सं०] १ द्वार। २. किवाड [को०]।

अररी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्वार। २ किवाड [को०]।

अररु—सज्ञा पु० [सं०] १ दुश्मन। २ एक हथियार। ३.एक असुर का नाम [को०]।

अरलु—सज्ञा पुं० [स०] १ श्योनाक। टेंटू। सोनापाडा। सोनागाछ। २ अलाबु। अलाबू। कडुई लौकी।

अरव—वि० [स०] शोरगुल रहित। रवरहित। शांत [को०]।

अरवन—सज्ञा पुं० [स० अ = नहीं + हिं लवना = खेत की कटाई] १ फसल जो कच्ची काटी जाय। २ वह फसल जो पहले पहल काटी जाय और खलिहान मे न ले जाकर घर पर लाई जाय। इसके अन्न से प्राय देवताओ की पूजा होती है और ब्राह्मण आदि खिलाए जाते हैं। अवई। अवनी। अवरी। अवाँसी। कवल। कवारी।

अरवन—सज्ञा पुं० [देश०] वह भौंरी जो घोडे के कान की जड मे गर्दन की ओर होती है। यह यदि दोनो ओर हो तो शुभ और एक ओर ही तो अशुभ समझी जाती है।

अरवा[1]—सज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + हिं० लावना = जलाना, भूनना] वह चावल जो कच्चे अर्थात् बिना उबाले या भूने धान से निकाला जाय।

अरवा[2]—सज्ञा पु० [सं०आलय = स्थान] आला। ताखा।

अरवाती (पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओरवती] छाजन का वह किनारा जहाँ से पानी बरसने पर नीचे गिरता है। ओलती। ओरौनी। उ०—सजनी नैना गए भगाइ। अरवाती को नीर बडेरी कैमें फिरिहैं धाइ।—सूर० (शब्द०)।

अरवाह (पु)—सज्ञा पुं० [अ० रुह का बहुव० अर्वाह] जीवात्मा। उ० - दादू इश्क अल्लाह का, जे कबहूँ प्रगटै आइ। तौ तन मन अरवाह का सब पडदा जलि जाइ।—दादू बा०, पृ० ६७।

अरविंद—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्द] १.कमल

यौ०—अरविंदनयन। अरविंदनाभ। अरविंदबधु। अरविंदलोचन अरविंदाक्ष।

२ सारस। ३ नील या रक्तकमल [को०]। ४ कामदेव के पाँच बाणो मे से एक [को०]। ५ ताँबा [को०]।

अरविंददलप्रभ—सज्ञा पु० [सं० अरविन्ददलप्रभ] ताँबा [को०]।

अरविंदनयन—सज्ञा पु० [स० अरविन्दनयन] कमलनयन। विष्णु।

अरविंदनाभ—सज्ञा पु० [स० अरविन्दनाभ] कमलनाभ। विष्णु।

अरविंदनाभि—सज्ञा पुं० [स० अरविन्दनाभि] विष्णु [को०]।

अरविंदबधु—सज्ञा पुं० [स० अरविन्दबन्धु] कमलबधु। सूर्य।

अरविंदयोनि—सज्ञा पुं० [स० अरविन्दयोनि] कमलयोनि। ब्रह्मा।

अरविंदलोचन—सज्ञा पुं० [स० अरविन्दलोचन] कमलनयन। विष्णु।

अरविंदसद्—सज्ञा पुं० [स० अरविन्दसद्] ब्रह्मा [को०]।

अरविंदाक्ष—सज्ञा पु० [स० अरविन्दाक्ष] विष्णु।

अरविंदिनी—सज्ञा स्त्री० [स० अरविन्दिनी] १. कमलिनी। २ कमल लता। ३ कमलसमूह। ४ कमल से भरा स्थान [को०]।

अरवी—सज्ञा पुं० [स० आलू] एक प्रकार का कद।

विशेष—इसके पत्ते पान के पत्तो के आकार के बडे बडे होते हैं। यह दो प्रकार की होती है, एक सफेद डंठी की, दूसरी काली डंठी की। जड या कद से बराबर पत्तो के लबे लबे डठल निकलते रहते हैं। नीचे नई पत्तियाँ बँधती जाती है। यह छूने मे लसदार और खाने मे कुछ कनकनाहट लिए हुए स्वादिष्ट होती है। लोग इसके पत्ते का साग इत्यादि बनाकर भी खाते हैं। यह अधिकतर बैसाख जेठ मे बोई जाती है और सावन मे तैयार हो जाती है। उ०—चूक लाय कै रीधे भाँटा। अरवी कहँ भल अरहन बाँटा।—जायसी (शब्द०)।

अरस[1]—वि० [स०] नीरस। फीका। २ गँवार। अनाडी। ३ कमजोर। निर्बल [को०]।

अरस[2]—सज्ञा पु० [स० अ० अर्श] आलस्य। उ०—नहिन दुरत हरि प्रिय को परम। उपजत है मन को अति आनंद, अधरनि रँग, नैननि को अरस।—सूर०, १०।२६५६।

अरस (पु)—सज्ञा पुं० [अ अर्श] १ छत। पाटन। २ धरहरा। महल। उ०—(क) मारु मारु कहि गारि दे, धिक गाइ चरैया। कम पास ह्वै आइए कामरी ओढ़ैया। बहुरि अरम तें आइ कै, तब अवर लीजो।—सूर०, १०।३०३८। (ख) अरस नाम है महल को, जहँ राजा बैठे। गारी दै दै सब उठे, भुज निज कर ऐंठे।—सूर० (शब्द०)। ३ आकाश। उ०—चलकर महल निकट गिर पहुँचिय चढ रज अरस फरक धुज चाहि।—रघु० रू०, पृ० ११९। ४ मुसलमानो के मतानुसार सबसे ऊपरवाला स्वर्ग जहाँ खुदा रहता है।

अरसठ (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अडसठ'।

अरसथ—सज्ञा पुं० [देश०] मासिक आयव्यय का लेखा। वही जिसमें प्रति मास के आयव्यय की खतियौनी जाती है।

अरसनपरसन (पु)—सज्ञा [हिं०] दे० 'अरसपरस'।

अरसना (पु)—क्रि० अ० [सं० अलस] शिथिल पडना। ढीला पडना। मद होना। उ०—आवती हो उत ही सो, उनकी बिलोकि दसा, बिरह तिहारे अग अग अरसे।—रघुनाथ (शब्द०)।

अरसनापरसना—क्रि० स० [सं० स्पर्शन] १ छूना। उ०—अरस परस चुटिया गहैं, बरजति है माई।—सूर०, १०।१६२। २ आलिंगन करना। मिलना। भेंटना। उ०—काहू के मन कछु दुख नाहीं। अरसि परसि हँसि हँसि लपटाहीं।—सूर०, १०।६२०।

अरसपरस[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श] लड़कों का एक खेल। आँखमिचौनी। छुआछुई। अँखमुनाल। उ०—गुरु बतावैं साध को साधु कहैं गुरु पूज। अरस परस के खेल में भई अगम की सूझ—कबीर (शब्द०)।

विशेष—इस खेल में एक लड़के को अलग कर देते हैं। वह लड़का आँख मूँदता है और सब लड़के दूर भाग जाते हैं। जब उससे आँख खोलने को कहते हैं तो वह औरों को छूने के लिये दौड़ता है। जिसे वह छू लेता है वह भी अलग किया जाता है और फिर उसे भी आँख मूँदनी पड़ती है।

अरसपरस[2]—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन स्पर्शन] देखना। उ०—बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु नाम लिए का होई। धन के कहे धनिक जो हो तो निर्धन रहत न कोई।—कबीर (शब्द०)।

अरसा—संज्ञा पुं० [अ० अर्सह] १ समय। काल। २ देर। अतिकाल ३ अतर। दूरी। फासिला [को०]। ४ क्षेत्र। मैदान [को०]।

अरसाना (पु) —क्रिया अ० [सं० अलस] अलसाना। निद्राग्रस्त होना। उ०—ऐंचनि सी चितवन चितै, भई ओट अरसाय। फिर उझकन को मृगनयनि, दृगनि लगनियाँ लाय।—बिहारी (शब्द०)।

अरसात—संज्ञा पुं० [सं० अलस आलस्य] २४ अक्षरों का एक वृत्त जिसमें सात 'भगण' और एक 'रगण' होता है। यह एक प्रकार का सवैया है। यथा—मासत रुद्र जु ध्यानिन में पुनि सारमुनी जस बानिन मानिए। नारद ज्ञानिन पानिन राम मु रानिन में विक्टोरिया मानिए। दानिन में जस कर्ण बडे तस भारत अब खरी उर आनिए। वेदन के दुख छूटन में कबहूँ अरसात नहीं फुर जानिए। (शब्द०)।

अरसाव (पु)—वि० [सं० आश्रव] बाधा। पाप। उ०—बोली गंगा माँचही महादेव कर भाव। जोगिन्ह आनि जेवावहू, जाइ कौल अरसाव।—चित्रा०, पृ० १२५।

अरसाग—संज्ञा पुं० [सं०] रूखा सूखा भोजन। बिना स्वाद का। स्वादरहित [को०]।

अरसिक—वि० [सं०] १ जो रसिक न हो। अरसज्ञ। रूखा। २. कविता के मर्म को न समझनेवाला। ३ बेस्वाद या बिना जायका का [को०]।

अरसी[1] (पु) —संज्ञा पुं० [सं० अतसी, प्रा० *अडसी] अलसी। तीसी। उ०—जनहु मात निमयानी बरसी। अति बिनभर फूले जनु अरसी।—जायसी (शब्द०)।

अरसी[2] (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरसी'। उ०—तन भुरसी तरसी हियें परसी बिरह जरूर। दृगनि बारि भर सीं लगी दरसी अरसी नूर।—स० सप्तक, पृ० ३८६।

अरसीला (पु) —वि० [सं० अलस] [स्त्री० अरसीली] आलस्यपूर्ण। आलस्य से भरा। उ०—लाजु नहीं तजु बैठी है भूपण तैसे ही अग कछू अरसीलो।—मतिराम (शब्द०)।

अरसौहाँ (पु)—वि० [सं० आलस्य, हिं० अरस + औहाँ (प्रत्य०)] आलस्यपूर्ण। आलस्यभरा। उ०—(क) नखरेखा सौंहैं नई, अरसौंहैं सब गात, सौहैं होत न नैन ये तुम सौंहैं कत खात—बिहारी (शब्द०)। (ख) सौहैं चितै अरसौंहैं तिया निरछौंहैं हसौंहैं सरावति सासुहिं।—देव (शब्द०)।

अरहंत (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्हत्, प्रा० अरहन्त] दे० 'अर्हत'। उ०—पियारे दूजो को अरहंत पूजा जोग मानि कै जग मैं जाको पूजैं संत।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० १३३।

अरहट—संज्ञा पुं० [सं० अरघट्ट, प्रा० अरहट्ट] एक यंत्र जिसमें तीन चक्कर या पहिए होते हैं। इन पहियों पर घड़ों की माला लगी होती है जिनसे कुएँ से पानी निकाला जाता हैं। रहँट। उ०—कबीर माला मन की और संसारी भेष। माला पहरयाँ हरि मिलैं, तो अरहट कै गलि देख।—कबीर ग्र०, पृ० ४५।

अरहन—संज्ञा पुं० [सं० रन्धन] वह आटा या बेसन जो तरकारी, साग आदि पकाते समय उसमें मिला दिया जाता है। रेहन। उ०—चूक लाइकै रीधे भाँटा। अरसी कहँ भल अरहन बाटा।—जायसी (शब्द०)।

अरहना[1] (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्हण, प्रा० अरहणा] पूजा आराधना।

अरहना[2] (पु) — क्रि० स० पूजा करना। आराधना करना।

अरहर—संज्ञा स्त्री० [सं० आढकी प्रा० अड्ढकी] १, एक अनाज जो दो दल के दाने का होता है। रहर। उ०—सन सूक्यो बीत्यो बनौ, ऊखौ लई उखारि। हरी हरी अरहर अजौं, धर धरहर हिय नारि।—बिहारी (शब्द०)। २ अरहर का बीज। तुवरी। तूअर। पर्या०—तुवरी। वीर्या०। करवीरभुजा। वृत्तबीजा। पीतपुष्पा। काशीमृत्स्ना। मृतालका। सुराष्ट्रजमा।

विशेष—इसका पौधा चार पाँच हाथ ऊँचा होता है। इसकी एक एक सींके में तीन तीन पत्तियाँ होती हैं जो एक ओर हरी और दूसरी ओर भूरी होती है। इसका स्वाद कसैला होता है। मुँह आने पर लोग इसे चबाते है और फोड़े फुंसियों पर भी पीसकर लगाते हैं। अरहर की लकड़ियाँ जलाने और छप्पर छाने के काम आती हैं। इसकी टहनियों और पत्तों से डलों से खाँचे और टोरियाँ बनाई जाती हैं। अरहर बरसात में बोई जाती है और अगहन पूस में फूलती है। इसका फूल पीले रंग का होता है और फूल झड जाने पर इसमें डेढ़ दो इंच की फलियाँ लगती हैं जिनमें चार पाँच दाने होते हैं। दानों में दो दालें होती हैं। इसके दो भेद हैं। एक छोटी दूसरी बड़ी। बड़ी को 'अरहरा' कहते हैं और छोटी को 'रबिमुनिया' कहते हैं। छोटी दाल अच्छी होती है। अरहर फागुन में पकती है और चैत में काटी जाती है। पानी पाने से इसका पेड़ कई वर्ष तक हरा रह सकता है। भिन्न भिन्न देशों में इसकी कई जातियाँ होती हैं, जैसे रायपुर में 'हरोना' और 'भिटी', बंगाल में 'मघरा' और 'चैती' तथा आसाम में 'पलडा', 'देव' या 'नली'।

अरहेड (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० हेट] चौपायों का भुंड। रेहड़ी।—हिं०।

अरा[1] (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरा'। भौंहैं अरा लै घरेरनि है उरकोर कटाछन ओर अराए।—देव (शब्द०)। २ रगड़ा। झगड़ा।

अरा²†—संज्ञा स्त्री० [स० आर] पहिए की गडारी और उसके मध्य भाग को मिलाने वाली पतली सलाई। तीली।

अराअरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अडना] अडाअडी। होड स्पर्धा। उ०—प्यारी तेरी पूतरी काजर हू ते कारी। मानो द्वै भँवर उडे बराबरी। चपे की डारि बैठे कुद अलि लागी है जेब अराअरी।—हरिदास (शब्द०)।

अराक¹—संज्ञा पु० [अ०] १ एक देश जो अरब मे है। एराक। इराक। २ वहाँ का घोडा। उ०—हरतौ हरीफ मान तरतौ समुद्र युद्ध क्षुद्र ज्वाल जरतौ अराकनि सो अरतौ।—भूषण (शब्द०)।

अराक²(पु)—संज्ञा पु० दे० 'अडाक'।

अराकन—संज्ञा पुं० [स० अरि = राक्षस + ग्राम, बरमी, कान = देश] बरमा देश के एक प्रात का नाम। यह बगाल की खाडी के किनारे पर है।

अराकी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इराकी'।

अराग¹—संज्ञा पु० [स०] रागाभाव। राग का अभाव। रति का अभाव [को०]।

अराग²—वि० वासनाविहीन। रागविहीन। रतिविहीन [को०]।

अरागी—वि० [स० अरागिन्] [स्त्री० अरागिनी] रागरहित। वासनाविहीन [को०]।

अराचना(पु)—क्रि० स० [स० अर्चन] अर्चन करना। आदर देना। उ०—तिय तजि लाज कहत रति जाचन। को नहि धर्म जो पुरुष अराचन्।—हम्मीर रा०, पृ० ६०।

अराज¹वि० [स० अ + राजन्] बिना राजा का। उ०—जग अराज ह्वै गयो रिपिन तब अति दुख पायो। लै पृथ्वी को दान ताहि फिरि वनहि पठायो।—सूर०, ६।१४।

अराज²—संज्ञा पु० अराजकता। शासन विप्लव। हलचल।

अराजक—वि०[स०]१ जहाँ राजा न हो। राजहीन। बिना राजा का। २ अराजकता फैलानेवाला। विद्रोह या विप्लव करनेवाला।

अराजकता—संज्ञा स्त्री० [स०] १ राजा का न होना। २ शासन का अभाव। ३ अशाति। हलचल। अँधेर।

यौ०—अराजकतावाद = व्यक्तिस्वातत्र्य का समर्थन करनेवाला तथा शासन की अनावश्यकता मनानेवाला सिद्धात या वाद।

अराजन्य—वि० [स०] क्षत्रियविहीन [को०]।

अराजबीजी—वि० [स० अराजबीजिन्] अराजकता फैलानेवाला। राजविद्रोह का प्रचार करनेवाला।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसे मनुष्यो को वहाँ भेजने का विधान बताया है जहाँ उपनिवेश बसाने मे बहुत कठिनता या खर्च हो।

अराजव्यसन—संज्ञा पु० [स०] अराजकता सबधी सकट।

अराजो—संज्ञा स्त्री० [अ० अर्ज का बहुव०] १ भूमि। धरती। जमीन। २ वह जमीन जो खेती बारी के काम आती है [को०]।

अराड—संज्ञा पुं० [स० अट्टाल] १ राशि। ढेर। अबार। २ टूटी फूटी तथा रद्दी वस्तुओ का अबार। ३ जलावन की दूकान।

अराडना—क्रि० अ० [१] गर्भपात हो जाना। गर्भ का गिर जाना। बच्चा फेकना।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्राय पशुओ ही के लिये होता है।

अरात(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अराति' [को०]।

अराति—संज्ञा पुं० [स०] १ शत्रु। उ०—कर लिया निश्चित अरिंदम ने निपात अराति का।—कानन०, पृ० ११२। २ फलित ज्योतिष मे कुडली का छठा स्थान। ३ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य जो मनुष्य के आतरिक शत्रु है। ४ छह की सख्या।

अराद्धि—संज्ञा स्त्री० [स०] १ वैमनस्य। २ दुर्भाग्य। ३ दोष। पातक [को०]।

अराधन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आराधन'।

अराधना(पु)—क्रि०स० [स० आराधन]१ आराधना करना। उपासना करना। उ०—हम अलि गोकुलनाथ अराध्यो। सूर० १०।३५३०। २ पूजा करना। अर्चना करना। ३. जपना। ४ ध्यान करना।

अराधी(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आराधी'।

अराना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अडाना'। उ०—भौहैं अरा लै अरेरति है उर कोर कटाक्षन और अरारे।—देव (शब्द०)।

अरावा—संज्ञा पुं० [अ०] १ गाडी। रथ। उ०—(क) चामिल पार भए सब आछे। तबै अडोल अरावे पाछे।—लाल (शब्द०)। (ख) जिती अरावी नार है सो सब लीनो सग। उतरि पार डेरा दए ठठि पठान सो जग।—सुजान०, पृ० ५१। २ वह गाडी जिसपर तोप लादी जाय। चरख। उ०—लावदार रक्खो किए सबै अरावो एहु। ज्यो हरीफ आवै नजरि तबै धडाधड देहु।—सुजान०, पृ० १५। (ख) दाराधाट धीरपुर बाँध्यो। रोपि अरावै कलहै काँध्यो। लाल (शब्द०)। ३ जहाज पर तोपो को एक बार एक ओर दागना। सलख।

अराम¹(पु)†—संज्ञा पु० [स० आराम] बाग। उपवन।—ये नहि फूल गुलाब के दाहन हिय जु हमार। बिन घनश्याम अराम मे लागी दुसह दवार।

अराम²—संज्ञा पु० [फा० आराम] दे० आराम'¹।

अरारूट—संज्ञापु० [अ० एरोरूट]एक पौधा जो अमेरिका से हिंदुस्तान मे आया है।

विशेष—गरमी के दिनो मे दो दो फुट की दूरी पर इसके कद गाडे जाते हैं। इसके लिये अच्छी दोमट और बलुई जमीन चाहिए। यह अगस्त से फूलने लगता है और जनवरी फरवरी मे तैयार हो जाता है। जब इसके पत्ते झडने लगते हैं तब यह पक्का समझा जाता है और इसकी जड खोद ली जाती है। खोदने पर भी इसकी जड रह ही जाती है। इससे, जहाँ यह एक बार लगाया गया वहाँ इसका उच्छिन्न करना कठिन होता है। इसकी जड को पानी मे खब धोकर कूटते है और फिर उसका सत निकालते हैं जो स्वच्छ मैदे की तरह होता है। यह अमेरिका की तीखुर है। इसका रग देसी तीखुर के रग से सफेद होता है तथा इसमे गध और स्वाद नही होता।

२ अरारूट का आटा।

अरारोट—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अरारूट'।

अराल¹—वि० [सं०] कुटिल। टेढ़ा। उ०—भाल पर भाग, लाल बेंदी पै सुहाग, देव भृकुटी अराल अनुराग हुलस्यो परै।—देव (शब्द०)।

यौ०—अरालकेशी = कुटिल केश या अलकवाली। घुँघराले बालोंवाली।

अराल²—संज्ञा पुं० १ सर्ज रस। राल। २ मत्त हाथी। ३. टेढ़ा या टूटा हाथ (को०)। ४. एक समुद्र [को०]।

अराला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपवित्र नारी। सतीत्वहीन नारी २ अवृष्टा स्त्री० [को०]।

अरावल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'हरावल'।

अरावली—संज्ञा पुं० राजस्थान का एक पहाड़।

अराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] राज्यसत्ता का नाश या अभाव [को०]।

अरिज—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बबूल। सफेद बबूल।

विशेष—यह पंजाब, राजपूताना, मध्य और दक्षिण भारत तथा बरमा में पाया जाता है। इसका छिलका रेशेदार होता है और इसमें मछली पकड़ने का जाल बनाया जाता है। इसमें एक प्रकार की गोंद भी निकलती है जो पानी में घोली जाने पर पीला रंग पैदा करती है। यह अमृतसरी गोंद कहलाती है। इसे बबूल की गोंद के साथ भी मिलाकर बेचते हैं। पेड़ की छाल को पीसकर गरीब लोग अकाल में बाजरे के आटे के साथ खाने के लिये मिलाते हैं। इसमें एक प्रकार का नशा भी होता है और यह मद्य में भी मिलाई जाती है। इसीलिये अरिज को "शराब का कीकर" भी कहते हैं।

अरिंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अरि + इन्द्र] शत्रु। उ०—तहँ मारि मारि अरिंद बरछी सों गिराए गगन तें।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०।

अरिंदम—वि० [सं० अरिन्दम] १. शत्रुनाशक। वैरी का दमन करनेवाला। उ०—कर लिया निश्चित अरिंदम ने निपात अराति का।—कानन०, पृ० ११२। २. विजयी।

अरि—संज्ञा पुं० [सं०] १ शत्रु। वैरी। २ चक्र। ३ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। ४ छह की संख्या। ५ ज्योतिष में लग्न से छठा स्थान। ६ विट् खदिर। दुर्गंध खैर। अरिमेद। ७ स्वामी [को०]। ८ रथ का कोई हिस्सा [को०]। ९ वायु [को०]। १०. धार्मिक व्यक्ति [को०]।

अरिकर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुओं का कर्षण या पराभव करनेवाला [को०]।

अरिकुल—संज्ञा पुं० [सं०] १ शत्रुसमूह। २ शत्रु [को०]।

अरिकेलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शत्रुक्रीड़ा। २ वासनात्मक आनंद [को०]।

अरिकेशी—संज्ञा पुं० [सं० अरी + केशी] केशी के शत्रु, कृष्ण।

अरिक्थभाग—वि० [सं०] जिसे पिता के धन का भाग न मिल सके। पिता का हिस्सा पाने के अयोग्य। अनंश।

अरिघ्न—वि० [सं०] शत्रुहंता [को०]।

अरिचिंता—संज्ञा स्त्री० [सं० अरिचिन्ता] शत्रु के विघटन या विनाश के लिए सोचना [को०]।

अरित्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ बल्ला जिससे नाव खेते हैं। डाँड़। २ क्षेपणी। निपातक। ३ जल की थाह लेने की डोरी। ४. लंगर।

अरित्र²—वि० [सं०] १ शत्रु से रक्षा करनेवाला। २ आगे बढ़ानेवाला [को०]।

यौ०—अरित्रगाध = छिछला।

अरिदमन¹—वि० [सं० अरि + दमन = नाश] शत्रु का नाश करनेवाला।

अरिदमन²—संज्ञा पुं० शत्रुघ्न। लक्ष्मण के छोटे भाई का नाम। रिपुदमन।

अरिनिपात—संज्ञा पुं० [सं०] दुश्मन का हमला [को०]।

अरिनुत—वि० [सं०] शत्रु भी जिसकी प्रशंसा करें [को०]।

अरिप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध में प्रवृत्त राजा के चारों ओर के शत्रुओं की स्थिति।

अरिभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] अति शक्तिशाली शत्रु [को०]।

अरिमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] काममर्द नाम का पौधा [को०]।

अरिमर्दन¹—वि० [सं०] शत्रुओं का नाश करनेवाला। शत्रुसूदन।

अरिमर्दन²—संज्ञा पुं० १ केकयनरेश राजा भानुप्रताप का भाई जो शापवश कुंभकर्ण हुआ था। २. अक्रूर का भाई।

अरिमेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ विट् खदिर। २ एक बदबूदार कीड़ा। गंधिया। ३ एक वृक्ष।

अरिमेदक—संज्ञा पुं० [सं०] मल में उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का कीड़ा [को०]।

अरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जो प्रायः पानी के किनारे रहती है। इसे ताक या लेदी भी कहते हैं।

अरियाना(पु)—क्रि० स० [सं० अरे] अरे कहकर बुलाना। तिरस्कार करना। उ०—अलकली धरे तजैं, बरत अनेक भरें, जनपद गहत लहत मग्र मत हैं। ऐसे बल तपे परलोकन तें अरियाते कोमनि अचल तंते केवरी लगत है। —गुमान (शब्द०)।

अरिल्ल—संज्ञा पुं० [सं० अरिला] सोलह मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में दो लघु अथवा एक यगण होता है, परंतु इसमें जगण का निषेध है। भिखारीदास ने इसके अंत में भगण माना है। जैसे,—लै हरिनाम मुकुंद मुरारी। नारायण भगवत खरारी (शब्द०)।

अरिवन—संज्ञा पुं० [देश०] रस्सी का फंदा जिसमें फँसाकर घड़ा या गगरा कुएँ में ढीलते हैं। उबका। उबक। छोर। फँसरी।

अरिष—संज्ञा पुं० [सं०] १ लगातार बरसत। २ गुदा का एक रोग [को०]।

अरिष्ट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्लेश। पीड़ा। २ आपत्ति। विपत्ति। ३ दुर्भाग्य। अमंगल। ४ अपशकुन। अशुभ लक्षण ५ दुष्ट ग्रहों का योग जिसका फल ज्योतिष शास्त्र के अनुसार अनिष्ट होता है। मरणकारी योग। ६. लहसुन। ७ नीम। निंब। ८ लंका के पास एक पर्वत। ९ कौआ। काक। १० कंक। गिद्ध। ११ रीठे का पेड़। फेनिल। निर्मली। १२ वह अरक जो बहुत सी दवाओं को मीठे में सड़ाकर बनाया जाय। एक प्रकार का मद्य जो धूप में ओषधियों का खमीर उठाकर बनता है। १३. काढ़ा। १४. एक ऋषि। १५. एक राक्षस

का नाम जिसे श्रीकृष्णचंद्र ने मारा था। वृषभासुर। १६ अनिष्टसूचक उत्पात, जैसे भूकंप आदि। १७ बलि का पुत्र, एक दैत्य। १८ मट्ठा। तक्र। १९ सौरी। सूतिकागृह। २० कौटिल्य के अनुसार एक प्रकार का असंहत व्यूह जिसमें रथ बीच में, हाथी कक्ष में और घोड़े पृष्ठ भाग में रहते थे।

अरिष्ट²—वि० १ दृढ़। अविनाशी। २ शुभ। ३. बुरा। अशुभ।

अरिष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] १ रीठा। निर्मली। २ रीठे का वृक्ष।

अरिष्टगृह—संज्ञा पुं० [सं०] सौरगृह [को०]।

अरिष्टनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] १. कश्यप प्रजापति का एक नाम। २ हरिवंश के अनुसार कश्यप का एक पुत्र जो विनता से उत्पन्न हुआ था। ३ राजा सगर के श्वशुर का नाम। ४ सोलहवें प्रजापति। ५ जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर। ६ हरिवंश के अनुसार वृष्णि का एक प्रपौत्र जो चित्रक का पुत्र था।

अरिष्टमथन—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ शिव [को०]।

अरिष्टसूदन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

अरिष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कश्यप ऋषि की स्त्री और दक्ष प्रजापति की पुत्री जिससे गंधर्व उत्पन्न हुए थे। २ कुटकी। ३ पट्टी [को०]।

अरिष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ रीठी। २ कुटकी।

अरिहंत (पु)—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'अर्हंत'। उ०—कै पूजैं श्रीकंत नू, कै पूजैं अरिहंत।—बांकीदास ग्रं०, भा० २, पृ० ६०।

अरिहन¹—संज्ञा पुं० [सं० अरिघ्न] शत्रुघ्न।

अरिहन²—संज्ञा पुं० [सं० अर्हंत्] वीतराग। जिन।

अरिहन³—संज्ञा पुं० [सं० रत्वन] रेहन। अरहन।

अरिहा¹वि० [सं० अरिहन्] शत्रुघ्न। शत्रु का नाश करनेवाला।

अरिहा²—संज्ञा पुं० लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न। उ०—(क) बोरौं सबै रघुवंश कुठार की धार में बारन बाजि सरत्थहिं। बान की वायु उड़ाय कै लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं।—राम च०, पृ० ३५। (ख) जूझि गिरे जबहीं अरिहा रन। भाजि गए तबहीं भट के गन।—राम च०, पृ० १७५।

अरी—अव्य० [सं० अयि] संबोधनार्थक अव्यय जिसका प्रयोग स्त्रियों के ही लिये होता है। उ०—अरी, खरी सटपट परी, बिधु आधैं मग हेरि। संग लगैं मधुपनु लई भागनु गली अँधेरि।—बिहारी र०, दो० ४५६।

अरीझना (पु)-क्रि०अ० [हिं०] बझ जाना। रीझना। दे० 'अरुझना'।

अरीठा—संज्ञा पुं० [सं० अरिष्टक, प्रा० अरिट्ठा] रीठा।

अरुंतुद¹-वि० [सं अरुन्तुद] १ मर्मस्थान को तोड़नेवाला। मर्मस्पृक्। उ०—अरुंतुद वाक्य कहते हो अहो तुम।—साकेत, पृ० ६२। २ दु:खदायी। ३ कठोर बात कहकर चित्त को दुखानेवाले परुषभाषी।

यौ०—अरुंतुदवचन।

अरुंतुद²—संज्ञा पुं० शत्रु। वैरी।

अरुंधती—संज्ञा स्त्री० [सं० अरुन्धती] १. वशिष्ठ मुनि की स्त्री। २ दक्ष की एक कन्या जो धर्म से ब्याही गई थी। ३ एक बहुत छोटा तारा जो सप्तर्षि मंडलस्थ वशिष्ठ के पास उगता है। विवाह में इसे वधू को दिखाने का विधान है। सुश्रुत के अनुसार जिसकी मृत्यु समीप होती है वह इस तारे को देख नहीं सकता। ४. तंत्र के अनुसार जिह्वा।

यौ०—अरुंधतीजानि, अरुंधतीनाथ, अरुंधतीपति = वशिष्ठ ऋषि। अरुंधती दर्शन न्याय = स्थूल से सूक्ष्म की ओर गमन। वि० दे० 'न्याय'।

अरुंषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक क्षुद्र रोग जिसमें कफ और रक्त के विकार या कृमि के प्रकोप से माथे पर बहुत मुँहवाले फोड़े हो जाते हैं।

अरु¹—संज्ञा पुं० [सं अरुस्] १ सूर्य। २ रक्त खदिर। ३. मदार वृक्ष। ४ मर्मस्थान। ५ घाव। जखम। ६ नेत्र। आँख [को०]।

अरु² (पु)—संयो० [हिं०] दे० 'और'। उ०—सनकुमार नारद अरु मीना। सर पुस्तक दुइ जिन्ह प्रवीना।—मानस, १।३०३।

अरुआ—संज्ञा पुं०[सं० आलु] एक प्रकार का बहुत बड़ा जंगली वृक्ष।

विशेष—यह बंगाल, मध्यभारत तथा दक्षिण भारत में प्राय: जंगली दशा में पाया जाता है। तथा उत्तरप्रदेश में लगाया जाता है। इसमें चैत बैसाख में पीले फल लगते हैं। इसकी छाल और पत्तियाँ औषधि के रूप में काम में आती हैं तथा इसकी लकड़ी से ढोल और तलवार की म्यान या इसी प्रकार की अन्य हलकी चीजें बनाई जाती हैं।

अरुई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरवी'। उ०—कनकहि रुमनी दई घटाई जैंवत पट्ट्न जात न गाई।—सूर०, १०।१२१३।

अरुकटि—संज्ञा स्त्री०[देश०]एक नगर जो कर्नाटक की राजधानी है। आर्काट। आरराट।

अरुग्ण—वि० [सं०] नीरोग। रोगरहित।

अरुचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ रुचि का अभाव। अनिच्छा। २ अग्निमांद्य रोग जिसमें भोजन की इच्छा नहीं होती। ३ घृणा। नफरत। ४ संतोष देनेवाली व्याख्या का अभाव [को०]।

अरुचिकर—वि० [सं०] जिससे अरुचि हो जाय। जो रुचिकर न हो। जो भला न लगे।

अरुचिर—वि० [सं०] १ असुंदर। जो अच्छा न लगे। २ अरुचिकर [को०]।

अरुज्—वि० [सं] रोग से मुक्त। नीरोग [को०]।

अरुज¹—वि० [सं] नीरोग। रोगरहित। स्वस्थ।

अरुज²—संज्ञा पुं० १ अमलतास। २ केसर। ३ सिंदूर।

अरुझना (पु)—क्रि० अ०[सं अवरुन्धन, प्रा० ओरुज्झन] १ उलझना। फँसना। उ०—(क) पाखन फिरि फिर परा सो फाँदू। उड़ि न सकइ अरुझइ भइ बाँदू।—जायसी (शब्द०)। २ अटकना। ठहरना। अड़ना। उ०—दुख न रहै रघुपतिहि बिलोकत तनु न रहै बिनु देखे। करत न प्रान पयान सुनहु सखि अरुझि परी यहि लेखे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३५१। ३ लड़ना भिड़ना। संघर्षरत होना।

अरुझाना (पु)¹—क्रि० स० [हिं० अरुझना का प्रे० रू०] उलझाना। फँसाना। उ०—नागरि मन गई अरुझाइ। अति बिरह तनु भई व्याकुल घरन नेकु सुहाइ।—सूर०, १०।६७८।

अरुझाना²--क्रि० अ० लिपटना। उलझना। उ०—विटप विसाल लता अरुझानी।--तुलसी (शब्द०)। (ख) मेरो मन हरि चितवनि अरुझानो।--सूर०, १०।१६६७।

अरुटु(पु)—वि० [सं० रुष्ट]। नाराज।

अरुट्ठना(पु)—क्रि० अ० [सं० रुष्ट] रुष्ट होना। क्रुद्ध होना। उ०—तिन पर तुट्टै बीज जौं, जिन पर राज अरुट्ठ। राजकाज समुह भिरन, दई न कबहू पुट्ठ।--पृ० रा०, ५१५।

अरुण¹--वि० पु० [सं०] [वि० स्त्री० अरुणा] लाल। रक्त।

अरुण²—संज्ञा पुं० १ सूर्य। २ सूर्य का सारथी। ३ गुड। ४ ललाई जो सध्या के समय पश्चिम मे दिखलाई पडती है। ५ एक दानव का नाम। ६ एक प्रकार का कुष्ठ रोग। ७ पुन्नाग वृक्ष। ८ गहरा लाल रग। ९ कुमकुम। १० सिंदूर। ११ एक देश। १२ बारह सूर्यो मे से एक सूर्य। माघ महीने का सूर्य। १३ एक आचार्य का नाम जो उद्दालक ऋषि के पिता थे १४ एक जहरीला क्षुद्र जतु [को०]। १५ एक झील जो हिमालय के इस पार है। १६ सोना। स्वर्ण [को०]। १७. एक प्रकार का पुच्छल तारा।

विशेष—इनकी चोटियाँ चँवर की सी होती है। ये कृष्ण अरुण वर्ण के होते हैं। इनका फल अनिष्ट है। ये सख्या मे ७७ हैं और वायुपुत्र भी कहलाते हैं।

यौ०—अरुणलोचन। अरुणात्मज। अरुणोदय। अरुणोपल।

अरुणकर--संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अरुणकिरण--संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अरुणचूड--संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुट। मुर्गा। अरुणशिखा।

अरुणज्योति--संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अरुणनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुणलोचन' [को०]।

अरुणप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अरुणप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अप्सरा। २ छाया और सज्ञा, सूर्य की स्त्रियाँ।

अरुणमल्लार—संज्ञा पुं० [सं०] मलार राग का एक भेद। इसमे सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

अरुणलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] जिसकी आँखे लाल हो। कबूतर [को०]।

अरुणशिखा--संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुट। मुर्गा।

अरुणसारथि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अरुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मजीठ। २. कोदो। ३. अतिविषा। ४. एक नदी का नाम। ५. मुडी। ६ निसोथ। त्रिवृता। ७. इंद्रायन। ८ घुँघची। ९. लाल रग की गाय। १०. उषा। ११. काला अनतमूल।

अरुणाई—संज्ञा स्त्री० [सं० अरुण + हिं० आई (प्रत्य०)] ललाई। रक्तता। लालिमा।

अरुणाग्रज—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड [को०]।

अरुणाचल--संज्ञा स्त्री० [सं०] पूरब दिशा।

अरुणात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. जटायु। २. यम ३. शनि। ४. सुग्रीव। ५ कर्ण [को०]।

अरुणात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यमुना। २. ताप्ती [को०]।

अरुणानुज—संज्ञा पुं० [सं०] अरुण के लघु भ्राता। गरुड [को०]।

अरुणाभ—वि० [सं०] लालिमायुक्त। रक्ताभ [को०]।

अरुणार(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अरुनार'।

अरुणार्चि--संज्ञा पुं० [सं० अरुणार्चिस] सूर्य [को०]।

अरुणावरज--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुणानुज'।

अरुणाश्व--संज्ञा पुं० [सं०] मरुत [को०]।

अरुणित—वि० [सं०] लाल किया हुआ।

अरुणिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ललाई। लालिमा। सुर्खी।

अरुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अरुण वर्ण की गाय। २ उषा [को०]।

अरुणोद¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ जैन मतानुसार एक समुद्र जो पृथ्वी को आवेष्टित किए है। २ लाल समुद्र। अरुणोदधि। ३ एक झील [को०]।

अरुणोद²(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणोदय'। उ०—पहिलौ मुखराग प्रगट थ्यो प्राची, अरुण कि अरुणोद अबर।—वेलि०, पृ० १६।

अरुणोदधि—संज्ञा पुं० [सं०] एक सागर जो मिस्र और अरब के मध्य मे है। पहले यह स्वेज स्थलडमरूमध्य के द्वारा रूम के समुद्र से पृथक् था पर अब इनरू मगर कर देने से यह रूम के समुद्र से मिल गया है। इंगलिस्तान को भारत मे जहाज इसी मार्ग से होकर जाते हैं। लाल सागर।

अरुणोदय—संज्ञा पुं० [सं०] वह काल जब पूर्व दिशा मे निकलते हुए सूर्य की लाली दिखाई पडती है। यह काल सूर्योदय से दो मुहूर्त या चार दड पहले होता है। उषाकाल। ब्राह्ममुहूर्त। तडका। भोर। उ०—देखा तो सुदर प्राची मे अरुणोदय का रसरग हुआ।--कामायनी, पृ० ७७।

अरुणोदयसप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ला सप्तमी। इस दिन अरुणोदय मे स्नान करना पुण्य माना गया है।

अरुणोपल—संज्ञा पुं० [सं०] पद्मराग मणि। लाल। उ०—जिमि अरुणोपल निकर निहारी।—मानस।

अरुन(पु)—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुण'। उ०—अरुन अधरनि दसन झाईं कहौ उपमा थोरि।—सूर० १०।२२५।

अरुनई(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरुणाई'।

अरुनचूड(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणचूड'। उ०—प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड वर बोलन लागे।—मानस, १।११७।

अरुनता(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरुणाई'। उ०—लसी मानहु चरनकमलनि अरुनता तजि तरनि।—तुलसी ग्र०, पृ० २८२।

अरुनशिखा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणशिखा'। उ०—उठे लखन निसि बिगत सुनि अरुनशिखा धुनि कान।--मानस, १।११५।

अरुनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरुनाई'। उ०—अरुन चरन अँगुली मनोहर, नख दुतिवत कछुक अरुनाई।--तुलसी ग्र०, पृ० ३२५।

अरुनाना¹(पु)--क्रि० अ० [सं० अरुण हिं० 'अरुन' से नाम०] लाल होना। उ०—अँग अँग भूषन और मे मांगे कहूँ पाए।

देखि थकित रहि रूप कौं लोचन अरुनाए।—सूर०, १०।२५२२।

अरुनाना(पु)—क्रि० स० लाल करना। उ०—जल लेन चाहै प्राण अति रिसाइ दृग अरुनाइ कै।—गोपाल (शब्द०)।

अरुनारा²(पु)—वि० [हिं० अरुन + आरा (प्रत्य०)] [वि०, स्त्री० अरुनारी] लाल रंग का। लाल। उ०—दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे।—मानस, १।१९९।

अरुनोदय(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणोदय'। उ०—अरुनोदय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन।—मानस, १।२३८।

अरुनोपल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणोपल'।

अरुरना¹(पु)—क्रि० अ० [सं० अरुस = घाव] दुखित होना। पीड़ित होना। उ०— लै भुजवल्लरी पल्लव हाथन वल्लव मल्लव मोद बिहारै। प्यारी के अगनि रन चढ़ै त्यों अनंग कला करगी नहिं हारै। ओठन दंत उरोज नखक्षत हू महि जीतै तिया पिय हारै। उरू मरोरनि ज्यों मरुरै उरही अरुरै अरुरैनि निहारे।—देव (शब्द०)।

अरुरना²(पु)—क्रि० अ० [सं० मरोड] मुड़ना। सिकुड़ना। संकुचित होना। उ०— नीकौ दीठ तूख सी पतूख सी अररि अंग ऊख सी मसरि मुख लागति महूख सी।—देव (शब्द०)।

अरुराना(पु)—क्रि० स० [हिं० अरूरना का स० रूप] १ मरोड़ना। २ सिकोड़ना।

अरुलित(पु)†—वि० [सं० अरुणित सं० अरुलित] ललाई युक्त। अरुणिमा लिए हुए। उ०—पूर्व दीण अरुलित भेष।—वर्ण०, पृ० १५।

अरुवा¹—संज्ञा पुं० [सं० अरु] १ एक लता जिसके पत्ते पान के पत्ते के सदृश होते हैं।

विशेष—इसकी जड में कंद पडता है और लता की गाँठों में भी एक सूत निकलता है जो चार पाँच अंगुल बढकर मोटा होने लगता है और कंद बन जाता है। इसके कंद की तरकारी बनती है। यह खाने पर कनकनाहट पैदा करता है। बरई लोग इसे पान के भीट पर बोते हैं।

अरुवा²—संज्ञा पुं० [हिं० उरुआ] उल्लू पक्षी।

अरुष¹—वि० [सं०] १ अक्रोधी। २ चमकदार। ३ बिना हानि का। अक्षत। ४ चक्कर काटनेवाला, जैसे घोडा।

अरुष²—संज्ञा पुं० १ अग्नि का लाल रंग का घोडा। २ सूर्य। ३ ज्वाला। ४ रक्त वर्ण के तूफानी बादल [को०]।

अरुषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उषा। २ ज्वाला। ३. और्व की माता जो भृगु की पत्नी थी [को०]।

अरुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] १ भिलावाँ। २. अडूसा।

अरुष्कर¹—वि० [सं०] घाव या चोट करनेवाला। क्षतकारक [को०]।

अरुष्कर²—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुष्क' [को०]।

अरुहा—संज्ञा पुं० [सं०] भूधात्री। भुई आँवला।

अरू(पु)—संयो० [हिं०] दे० 'अरु'। उ०—और अब दोनो गई तपस्या तो खंडित भई, अरु, उर्वसी हू जात रही।—हम्मीर रा०, पृ० २९।

अरूक्ष—वि० [सं०] मुलायम। सुकुमार। नाजुक [को०]।

अरूझना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरुझना'। उ०—(क) कहूँ लरत गजराज बाघ हरना कहूँ जूझत। मल्लयुद्ध कहुँ होत मेष, वृष, महिष अरूझत।—गुमान (शब्द०)।

अरूट(पु)—वि० [सं० आ + रुष्ट, प्रा० अरुट्ठ हिं० अरूठ] अत्यंत क्रुद्ध। उ०—भए कट्टाल कराल अरूट। मनौं जनु सींग सुरज्जन टूट।—पृ० रा०, ६।१५७।

अरूढ़¹(पु)—वि० [सं० आरूढ़] दे० 'आरूढ़'

अरूढ़²—वि० [सं० अरूढ़] जो रूढ़ या प्रचलित न हो। अप्रचलित [को०]।

अरूप¹—वि० [सं०] रूपरहित। निराकार। उ०—सोइ अरूप ईश्वर मन दीन।—कबीर (शब्द०)। (ख) अगुन अरूप अलख अज जोई।—तुलसी (शब्द०)। बदशकल। भद्दा [को०]। असदृश। बेमेल [को०]।

अरूप²—संज्ञा पुं० १ बदसूरत वस्तु। २ सांख्य में प्रधान और वेदांत में ब्रह्म [को०]।

अरूपक¹—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार योगियों की एक भूमि या अवस्था। निर्बीज समाधि।

विशेष—यह चार प्रकार की होती है—(१) आकाशायतन (२) विज्ञानायतन, (३) अकिंचनायतन, और (४) नैवसंज्ञा नासंज्ञायतन।

अरूपक²—वि० १ अलंकारविहीन। अनिश्चयात्मक। २ आकृति या आकार से विहीन [को०]।

अरूपहार्य—वि० [सं०] जो सौंदर्य द्वारा आकर्षित या पराजित न हो सके।

अरूपावचर—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार चित्त की वृत्ति का वह भेद जिससे अरूप लोक का ज्ञान प्राप्त होता है।

विशेष—यह बारह प्रकार की होती है—चार प्रकार की कुशल वृत्ति चार प्रकार की विपाक वृत्ति और चार प्रकार की क्रिया वृत्ति।

अरूपी—वि० [सं० अरूपिन्] बिना रूपवाला। रूप या आकार विहीन [को०]।

अरूरना(पु)—क्रि० अ० [सं० अरुस् = घाव] दुखित होना। पीड़ित होना।

अरूलना(पु)—क्रि० अ० [अरुत = क्षत, घाव] छिदना। छिदना। चुभना। उ०—छत आजु को देखि कहोगी कहा छतिया नित ऐसे अरूलति है।—देव (शब्द०)।

अरूष—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २. एक प्रकार का साँप [को०]।

अरूसा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अडूसा'।

अरे—अव्य० [सं०] १ एक संबोधनार्थक अव्यय। ए। ओ। जैसे—अरे मिठाईवाले! इधर आ। २ एक आश्चर्यसूचक अव्यय। जैसे—अरे! देखते ही देखते इसे क्या हो गया।

अरेणु¹—वि० [सं०] १ धूलविहीन। धूलरहित। २ अपार्थिव [को०]।

अरेणु²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जो धूल न हो। अधूलि। २ देवी देवता [को०]।

अरेप—वि० [सं० अपरेस] १. पाप या कलंकरहित। २ शुद्ध। स्वच्छ। कांतिमान् [को०]।

अरेरना(पु)—क्रि० अ० [सं० ऋ = जाना] रगड़ना। उ०—भौहैं अरा लै अरेरति है। उरकोर कटाक्षन ओर अराए।—देव (शब्द०)।

अरेरे—अव्य० [सं०] क्रोधोद्गार तथा निम्नता सूचक संबोधन। २. या दुखसूचक उद्गार। जैसे—अरेरे! उनका निधन हो गया।

अरेस(पु)†—[हिं०] दे० 'अरेह'। उ०—पिंड जुड़वा भड पाँव सौ, रहिया अडिग अरेस।—रा० रू०, पृ० ३१।

अरेह(पु)—वि [सं० अरेख = दाग रहित] हार न माननेवाला। उ०—नाद नाय लख धीर अरेहा। अँ मछरीक ढाल दल एहा।—रा० रू०, पृ० ३१४।

अरैल—वि० [हिं० अरना] हठी। जिद्दी। उ०—कोऊ नाहिनै जो वरजै निडर छै न अररानो हौं। परत डरत नहि रोकत रहत मग बनि अरैल।—भारतेंदु ग्र०, भा० २ पृ० ३६५।

अरैली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की झाड़ी जिसके डंठलों आदि से नेपाली कागज बनता है। वि दे० 'कचुर्ती'।

अरोक[1]—वि० [सं० अ + हिं० रोक] न रुकनेवाला। अबाध्य। उ०—तीन लोक माहिं देव मुनि थोक माहिं जाय विक्रम अरोक मोक ओक करि दियो है।—गोपाल (शब्द०)।

अरोक[2]—वि० [सं०] १ प्रभाहीन। बिना कांतिवाला। २ जिसमें छिद्र न हो। अच्छिद्र।

यौ०—अरोकदत, अरोकदत् = (१) जिसके दाँत काले या बदरंग हो। (२) घने या निविड दाँतोवाला।

अरोग—वि० [सं०] रोगरहित। नीरोग।

अरोगना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरोगना'। उ०—नंद भवन मैं कान्ह अरोगें। जसुदा ल्यावै पटरस भोगें।—सूर०, १०। ३९६।

अरोगी—वि० [सं०] जो रोगी न हो। नीरोग। चंगा।

अरोच(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अरुचि] रुचि का अभाव। अनिच्छा। त्याग। उ०—मोचु पच बान को अरोचु अभिमान को ये सोचु पति प्रान को सकोच सखियान को।—देव (शब्द०)।

अरोचक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें अन्न आदि का स्वाद मुँह में नहीं मिलता।

विशेष—यह दुर्गंधयुक्त और घिनौनी चीजें खाने और घिनौना रूप देखने तथा त्रिदोष के प्रकोप से उत्पन्न होता है। इसके प्रधान पाँच भेद हैं—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज (४) सन्निपातज और (५) शोकादि से उत्पन्न। २ अरुचि।

अरोचक[2]—वि० जो रुचे नहीं। अरुचिकर। उ०—मुनि अघाई बत-राइ उत सुवासने तिय बैन। हठि कत लाल बोराइयत मोहि अरोचक ऐन।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ५४।

अरोचकी—वि० [सं० अरोचकिन्] १ मदाग्नि से पीडित। २ सुरुचिसंपन्न। परिमार्जित रुचिवाला [को०]।

अरोड—वि० [अरुढ] शूर वीर। वीर।—डिं०।

अरोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० आरूढ] [स्त्री० अरोड़ी अरोड़िन] पंजाब की एक जाति जो अपने को खत्रियों के अंतर्गत मानती है।

अरोध्य—वि० [सं०] जिसकी चाल रोकी न जा सके। अबाध गति वाला [को०]।

अरोप—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरोप'। उ०—नदन वाक्यजुग अरथ को करिए एक अरोप।—भूषण ग्र०, पृ० ३०।

अरोर(पु)—वि० [हिं०] रोर रहित। शांत [को०]।

अरोष—वि [सं०] रोषरहित। क्रोधविहीन। उ०—प्रभु मरे आदर करै धरै अरोष विधान।—भिखारी ग्र०, भा १, पृ० १०।

अरोहण—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरोहण'।—रिपि कस्यप अरोहण कमठ शृंगार रस।—रघु० रू, पृ० ५३।

अरोहन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरोहण'।

अरोहना(पु)—क्रि० अ० [सं० आरोहण] चढ़ना। सवार होना।

अरोही[1](पु)—वि० [सं० आरोही] सवार होनेवाला।

अरोही[2](पु)—संज्ञा पुं० आरोही। सवार।

अरौसपरौस(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'अड़ोस पड़ोस'। उ०—गंग नहावन को नर नारि, चले है अरौस परौस के भोंऊ।—पोद्दार० अभि०, ग्र० पृ० ५७४।

अर्क[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २. इंद्र। ३. ताँबा। ४ स्फटिक। ५ विष्णु। ६ पंडित। ७ आक। मदार। उ०—अर्क जवास पात बिनु भयेउ।—मानस, ४।१५। ८ ज्येष्ठ भाई। ९. आदित्यवार। १०, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। ११ बारह की संख्या। १२ प्रकाशकिरण [को०]। १३. अग्नि [को०]। १४ एक धार्मिक कृत्य [को०]। १५. स्तुति। स्तोत्र [को०]। १६. भोजन। खाद्य पदार्थ [को०]। १७ सूर्यकांतमणि [को०]।

अर्क[2]—वि० पूजनीय। अर्चनीय।

अर्क[3]—संज्ञा पुं० [अ० अरक़] किसी चीज का निचोड़ा हुआ रस। रांग। वि० दे० 'अरक'।

यौ०—अर्क बादियान = सौंफ का अर्क।

अर्ककांत—संज्ञा पुं० [सं० अर्ककान्त] ११ मंजिलों का भवन [को०]।

अर्ककांता—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्ककान्ता] हुरहुर का क्षुप [को०]।

अर्कक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ सिंह राशि। २ उड़ीसा स्थित एक पवित्र स्थान [को०]।

अर्कगीर—संज्ञा पुं० [अ० अरक़ + फा० गीर] वह जो इत्र चुआने का काम करता है।

अर्कग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यग्रहण [को०]।

अर्कचंदन—संज्ञा पुं० [सं० अर्कचन्दन] रक्त चंदन। लाल चंदन।

अर्कज—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र—१. यम। २ शनि। ३। अश्विनीकुमार। ४ सुग्रीव। ५ कर्ण।

अर्कजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की कन्या—१ यमुना। ताप्ती।

अर्कतनय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का पुत्र। कर्ण, यम, शनि, वैवस्वत और सावर्णि मनु आदि [को०]।

अर्कदिन—संज्ञा पुं० [सं०] रविवार [को०]।

अर्कनंदन—संज्ञा पुं० [सं० अर्कनन्दन] दे० 'अर्कतनय' [को०]।

अर्कनयन—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य चंद्रमा जिसके नेत्र हैं वह—विराट् पुरुष।

अर्कनना—संज्ञा पुं० [अ० अरक़नाना] सिरके के साथ भभके में उतारा हुआ पुदीने का अर्क।

अर्कपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सुनंदा। २ एक लता जो विष की ओषधि है। अर्कमूल।

अर्कपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ मदार का वृक्ष। २ मदार का पत्ता।

अर्कपुष्पी—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यमुखी।

अर्कप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवा। जपा। अड़हुल। गुड़हर।

अर्कबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] १ गौतम बुद्ध। २ पद्म।

अर्कभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह नक्षत्र जो सूर्य द्वारा आक्रांत हो। जिस नक्षत्र मे सूर्य हो वह नक्षत्र। २ सिंह राशि। ३ उत्तरा फाल्गुनी।

अर्कभक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर का पौधा। हुड़हुड़।

अर्कमूल—संज्ञा पुं० [सं०] इसरमूल लता। रुहिमूल। अहिगंध।

विशेष—इसकी जड साँप के काटने मे दी जाती है। बिच्छू के डंक मारने मे भी उपयोगी होती है। यह पिलाई और ऊपर लगाई जाती है। स्त्रियो के मासिक धर्म को खोलने के लिये भी यह दी जाती है। कालीमिर्च के साथ हैजा अतीसार आदि पेट के रोगो मे पिलाई जाती है। पत्ते का रस कुछ मादक होता है। छिलका पेट की बीमारियो मे दिया जाता है। रस की मात्रा ३० से १०० बूँद तक है।

अर्कवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सौर वर्ष [को०]।

अर्कवल्लभ—संज्ञा पुं०[सं०]१ बंधुजीव। दुपहरिया। २ कमल [को०]।

अर्कवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बंधुजीव। दुपहरिया। २ कमल [को०]।

अर्कविवाह—संज्ञा पुं०[सं०]मदार के वृक्ष से किया जानेवाला विवाह।

विशेष—तीसरे विवाह के पूर्व मदार के साथ विवाह करने का विधान है। तीसरी पत्नी या तीसरा विवाह शुभ नही माना गया है। अत मदार के साथ विवाह कर के उस विवाह को चौथा मान लिया जाता है।

अर्कवेध—संज्ञा पुं० [सं०] तालीशपत्र।

अर्कव्रत—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक व्रत जो माघ शुक्ला सप्तमी को पडता है। २ राजा का प्रजा की वृद्धि के लिये उनसे कर लेना। जैसे सूर्य बारह महीने अपनी किरणो से जल खीचता है और चार महीने उसे प्रजा की वृद्धि के लिये बरसाता है, उसी प्रकार राजा का प्रजा से कर लेकर उनकी वृद्धि में उसे लगाना।

अर्कसुत—संज्ञा पुं० [सं०] यम। उ०—अर्कसुत की त्रास माही कृष्ण रामहिं काम।—ब्रजनिधि ग्र०, पृ० १६०।

अर्कसोदर—संज्ञा पुं० सूर्य का भाई। ऐरावत [को०]।

अर्काश्मा—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का छोटा नगीना। अरुणोपल। चुन्नी। २ सूर्यकांतमणि।

अर्कोपल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांतमणि। लाल पद्मराग।

अर्गजा(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरगजा'।

अर्गल—संज्ञा पुं० [सं०] वह लकडी जिसे किवाड बंद करके पीछे से आड़ी लगा देते हैं जिससे किवाड़ बाहर से न खुले। अरगल। अगरी। ब्योड़ा। २ किवाड। ३ अवरोध। ४ कल्लोल। लहर। ५. वे रंगबिरंगे बादल जो सूर्योदय या सूर्यास्त के समय पूर्व या पश्चिम दिशा मे दिखाई पडते हैं और जिनमे होकर सूर्य का उदय या अस्त होता है। ६ मांस। ७ एक नरक [को०]।

अर्गला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अर्गल। अगरी। २. ब्योंड़ा। ३. बिल्ली। किल्ली। सिटकिनी। ४ जंजीर जिसमे हाथी बाँधा जाता है। सिक्कड़। ५ एक स्तोत्र जिसका दुर्गासप्तशती आदि मे पाठ करते हैं। मत्स्य मत। ६ अवरोध। ७ बाधक। अवरोधक। रुकावट डालनेवाला।

अर्गलिका—संज्ञा स्त्री०[सं०]अर्गला या छोटा रूप। छोटी अगरी [को०]।

अर्गलित—वि०[सं०] सिटकिनी या अर्गला से बंद किया हुआ [को०]।

अर्गली¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अर्गला' [को०]।

अर्गली²—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ की एक जाति जो तिब्बत, शाम आदि देशों में होती है।

अर्गवनी—वि० [हिं०] दे० 'अर्गवान'। उ०—उस गहरे अर्गवनी रंग के पर्दे पर ऊँची काली चोटियाँ निश्चल, शांत और गंभीर खड़ी थीं।—किन्नर०, पृ० ६।

अर्गवानी—वि०[फ़ा०]अर्गवान नामक फूल के रंग का। सुर्ख [को०]।

अर्घ—संज्ञा पुं० [सं०] १ षोडशोपचार में से एक। जल, दूध, कुशाग्र, दही, सरसों, तंडुल और जव को मिलाकर देवता को अर्पण करना। २ अर्घ देने का पदार्थ। ३ जलदान। सामने जल गिराना। ४ हाथ धोने के लिये जो जल दिया जाय। ५ हाथ धोने के लिये जल देना। ६.मूल्य। दाम। ७ वह मोती जो एक धरण तौल मे २५ चढे। ८ भेंट। ९ तुला मे समानार्थ तौलना। १० मधु। शहद। ११ घोड़ा। अश्व।

क्रि० प्र०—देना। करना।

यौ०—अर्घपाद्य = हाथ पैर धोने के निमित्त दिया जानेवाला जल।

अर्घट—संज्ञा पुं० [सं०] भस्म। राख।

अर्घपतन—संज्ञा पुं० [सं०] भाव का गिरना। माल की कीमत बाजार मे कम होना।

अर्घपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] तांबे का एक बरतन जो नाव के आकार का होता है और जिसमे सूर्य आदि देवताओं को अर्घ दिया जाता है या पितरो का तर्पण किया जाता है। अर्घा।

अर्घबलाबल—संज्ञा पुं० [सं०] १ उचित मूल्य। २ सस्ता या महँगा दाम। कीमतो का चढ़ाव उतार [को०]।

अर्घवर्णांतर—संज्ञा पुं० [सं० अर्घवर्णान्तर] अच्छे माल मे घटिया माल मिलाकर अच्छे माल के दाम पर बेचना।

विशेष—ऐसा करनेवाले को चंद्रगुप्त के समय मे २०० पण तक जुर्माना होता था।

अर्घवर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] कीमत बढाना।

विशेष—कौटिल्य ने इसे अपराध माना है और इस प्रकार दाम बढ़ानेवाले व्यापारी पर २०० पण तक जुर्माना लिखा है।

अर्घवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] माल की दर बढना। बाजार मे किसी माल की कीमत चढ़ना।

अर्घसंस्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] वस्तुओ का मूल्य निश्चित करना। मूल्यनियमण [को०]।

अर्घा[1]—संज्ञा पुं० [सं० अर्घ] १ ताँबे या अन्य धातु का बना हुआ थूहर के पत्ते या शंख के आकार का एक पात्र जिससे अर्घ देते हैं। पितरों का तर्पण भी इससे किया जाता है। २ जलधरी।

अर्घा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] २० मोतियों का लच्छा जिसकी तौल ३२ रत्ती हो।

विशेष—वाराहमिहिर के समय में एक अर्घा १७० कार्षापण में बिकता था।

अर्घापचय—संज्ञा पुं० [सं०] मूल्य गिरना [को०]।

अर्घीश—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अर्घेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव [को०]।

अर्घ्य[1]—वि० [सं०] १ पूजनीय। २ बहुमूल्य। ३ पूजा में देने योग्य (जल, फूल, मूल आदि)। ४ भेंट देने योग्य।

अर्घ्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] जिस वन में जरत्कारु मुनि व्रत करते थे वहाँ का मधु।

अर्चक—वि० [सं०] पूजा करनेवाला। पूजक।

अर्चन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूजा। पूजन। २ आदर। सत्कार।

अर्चन[2]—संज्ञा पुं० [देश०] घुट्टी जिसपर दूर दूर कलावत्तू लपेटा हो।

अर्चना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूजा। पूजन।

अर्चना[2]Ⓤ—क्रि स० [हिं०] दे० 'अरचना'।

अर्चनीय—वि० [सं०] १ पूजनीय। पूजा करने योग्य। २ आदरणीय।

अर्चमान—वि० [सं०] पूजनीय। अर्चनीय। उ०—विचारमान ब्रह्म, देव अर्चमान मानिए।—राम च०, पृ० ,३।

अर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा। २ प्रतिमा।

अर्चि—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्चिस्] १ अग्नि आदि की शिखा। उ०—शुष्क डालियों से वृक्षों की अग्नि अर्चियाँ हुई समिद्ध—कामायनी, पृ० । २ दीप्ति। तेज। ३ किरण।

अर्चित[1]—वि० [सं०] १ पूजित। २ आदृत। आदरप्राप्त।

अर्चित[2]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

अर्चिती—वि० [सं० अर्चितिन्] आराधना करनेवाला [को०]।

अर्चिमान—वि० [सं०] प्रकाशमान। चमकता हुआ।

अर्चिमाल्य—संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि के अनुसार एक बंदर जो महर्षि मरीचि का पुत्र था।

अर्चिरादिमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] देवयान। उत्तर मार्ग।

अर्चिष्मती—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निपुरी। अग्निलोक।

अर्चिष्मान[1]—संज्ञा पुं० [सं० अर्चिष्मत्] [स्त्री० अर्चिष्मती] १ सूर्य। २ अग्नि। ३ देवताओं का एक भेद ४ वाल्मीकि के अनुसार एक बंदर जो महर्षि मरीचि का पुत्र था।

अर्चिष्मान[2]—वि० दीप्त। प्रकाशमान।

अर्ज—संज्ञा पुं० [अ० अर्ज] १ विनती। विनय।

क्रि० प्र०—करना = प्रार्थना करना। कहना। निवेदन करना।

२ चौड़ाई। आयत।

अर्जंद्रसाल—संज्ञा पुं० [फा०] वह पत्र जिसके द्वारा रुपया खजाने में दाखिल किया जाता है। चलान।

अर्जक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वनतुलसी। बबई।

अर्जक[2]—वि० उपार्जन करनेवाला। पैदा करनेवाला [को०]।

अर्जदाश्त—संज्ञा स्त्री० [फा०] निवेदनपत्र। प्रार्थनापत्र।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—भेजना।

अर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपार्जन। पैदा करना। कमाना। २ संग्रह करना। संग्रह।

क्रि० प्र०—करना।

अर्जनीय—वि० [सं०] १ संग्रह करने योग्य। २ ग्रहण करने योग्य। प्राप्त करने योग्य।

अर्जमाⓊ—संज्ञा पुं० [सं० अर्यमा] दे० 'अर्यमा'।

अर्जस्तⓊ—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जदाश्त] दे० 'अर्जदाश्त'। उ०—पग काज अर्जस्त चलावहु।—प० रासो, पृ० ९७।

अर्जित—वि० [सं०] १ संग्रह किया हुआ। संग्रहीत। २ प्राप्त किया हुआ। कमाया हुआ। प्राप्त।

अर्जी—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जी] प्रार्थनापत्र। निवेदनपत्र।

अर्जीदावा—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जीदावा] वह निवेदनपत्र को अदालत दीवानी या माल में किसी दादरसी के लिए दिया जाय।

अर्जीनवीस—वि० [फा० अर्जीनवीस] प्रार्थनापत्र या निवेदनपत्र लिखनेवाला [को०]।

अर्जीनालिश—संज्ञा पुं० [फा० अर्जीनालिश] दे० 'अर्जीदावा' [को०]।

अर्जीमरंमत—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जीमरम्मत] वह आवेदनपत्र जो किसी पूर्व आवेदनपत्र में छूटी हुई बातों को बढ़ाने या अशुद्धि को शोधने आदि के लिये दिया जाय।

अर्जुन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह वृक्ष जो दक्खिन से अवध तक नदियों के किनारे होता है।

विशेष—यह बरमा और लंका में भी होता है। इसके पत्ते टसर के कीड़ों को खिलाए जाते हैं। छाल, चमड़ा सिझाने, रंग बनाने तथा दवा के काम में आती है। इससे एक स्वच्छ गोंद निकलती है जो दवा के काम में आती है। लकड़ी से खेती के औजार तथा नाव और गाड़ी आदि बनती है। इसको जलाने से राख में चूने का भाग अधिक निकलता है।

पर्या०—शिवभल्ल। शवर। ककुभ। काहू।

२ पाँच पांडवों में से मँझले का नाम। ये बड़े वीर और धनुर्विद्या में निपुण थे।

पर्या०—फाल्गुन। जिष्णु। किरीटी। श्वेतवाहन। बृहन्नल। धनंजय। पार्थ। कपिध्वज। सव्यसाची। गाडीवधन्वा। गांडीवी। बीभत्सु। पांडुनंदन। गुडाकेश। मध्यम पांडव। विजय। राधाभेदी ऐंद्रि।

२ हैहयवंशी एक राजा। सहस्रार्जुन। ४ सफेद कनैर। ५ मोर। ६ आँख का एक रोग जिसमें आँख में सफेद छींटे पड़ जाते हैं। फूली। ७ एकलौता बेटा। ८ अर्जुन (वैदिक)। ९. इंद्र [को०]। १० चाँदी [को०]। ११ सोना [को०]। १२ दूब [को०]। १३ सफेद रंग [को०]।

अर्जुन[2]—वि० १ उज्वल। सफेद। २ शुभ्र। स्वच्छ।

अर्जुनक—वि० [सं०] १ अर्जुन संबंधी। १. अर्जुन की पूजा करनेवाला [को०]।

अर्जुनच्छवि—वि० [सं०] सफेद। सफेद रंगवाला [को०]।

अर्जुनध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद ध्वजवाला। हनूमान [को०]।

अर्जुनपाकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा तथा उसका फल [को०]।

अर्जुन बदर—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन नामक पौधे का रेशा [को०]।

अर्जुनसखा—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण [को०]।

अर्जुनायन—संज्ञा पुं० [सं०] वराहमिहिर के अनुसार उत्तर का एक देश।

अर्जुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बाहुदा या करतोया नदी जो हिमालय से निकलकर गंगा में मिलती है। २ सफेद रंग की गाय। ३. कुटनी। ४ अनिरुद्ध की पत्नी। उषा का नाम। ५ एक सर्प जाति [को०]।

अर्जुनोपम—संज्ञा पुं० [सं०] सागौन या टीक नामक वृक्ष [को०]।

अर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वर्ण। अक्षर। जैसे, पंचार्ण=पंचाक्षर। २ जल। पानी।

यौ०—दशार्ण=एक देश। दशार्णा=मालवा की एक नदी। ३ एक दंडक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और आठ रगण होते हैं। यह प्रचित का एक भेद है। ४. सागौन। शाल वृक्ष। ५ रंग [को०]। ६ शोरगुल। युद्धघोष [को०]। ७. जलप्रवाह (को०)।

अर्णव—संज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। २ सूर्य। ३ इंद्र। ४ अंतरिक्ष। ५ दंडक वृत्त का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में २ नगण और ८ रगण होते हैं। यह प्रचित का एक भेद है। ६ चार की संख्या। ७. रत्न। मणि। जवाहिर। ८. प्रवाह। धारा [को०]।

अर्णवज—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन [को०]।

अर्णवनेमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी [को०]।

अर्णवपति—संज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [को०]।

अर्णवपोत—संज्ञा पुं० [सं०] जलयान। पानी का जहाज [को०]।

अर्णवमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० अर्णवमन्दिर] १ वरुण। २ विष्णु [को०]

अर्णवमल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्णवज' [को०]।

अर्णवयान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्णवपोत' [को०]।

अर्णवोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्निजार नाम का पौधा। चंद्रमा। ३ अमृत [को०]।

अर्णवोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्णव से उत्पन्न—लक्ष्मी [को०]।

अर्णस—वि० [सं०] १ तरंगपूर्ण। २ फेनिल [को०]।

अर्णस्वान्[1]—संज्ञा पुं० [सं० अर्णस्वत्] सागर [को०]।

अर्णस्वान्[2]—वि० अतिशय जलवाला [को०]।

अर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

अर्णोद—संज्ञा पुं० [सं०] १ बादल। मुस्तक नाम का पौधा। मोथा [को०]।

अर्णोनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [को०]।

अर्णोरुह—संज्ञा पुं० [सं०] कमल [को०]।

अर्तगल—संज्ञा पुं० [सं०] नीलझिंटी। नीली कटसरैया [को०]।

अर्तन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] निंदा [को०]।

अर्तन[2]—वि० १ निंदा करनेवाला। २ दुःखी। खिन्न [को०]।

अर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अर्तित] १ पीड़ा। व्यथा। २ धनुष की कोटि। धनुष के दोनों छोर।

अर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (नाटक में) बड़ी बहन [को०]।

अर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. शब्द का अभिप्राय। मनुष्य के हृदय का आशय जो शब्द से प्रकट हो। शब्द की शक्ति।

विशेष—साहित्यशास्त्र में अर्थ तीन प्रकार का माना गया है—(क) अभिधा से वाच्यार्थ, (ख) लक्षणा से लक्ष्यार्थ और (ग) व्यंजना से व्यंग्यार्थ।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—बैठाना।

२. अभिप्राय। प्रयोजन। मतलब। जैसे—'वह किस अर्थ से यहाँ आया है' (शब्द०)। ३. काम। इष्ट। उ०—'यहाँ बैठने से तुम्हारा कुछ अर्थ न निकलेगा'। (शब्द०)।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।—सधना। साधना।

४. हेतु। निमित्त। जैसे—'विद्या के अर्थ प्रयत्न करना चाहिए' (शब्द०)। ५. इंद्रियों के विषय। ये पाँच हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। ६ चतुर्वर्ग में से एक। धन। संपत्ति। ७. अर्थशास्त्र के अनुसार मित्र, पशु, भूमि, धन, धान्य आदि की प्राप्ति और वृद्धि। ८ कुंडली में लग्न से दूसरा घर। ९ कारण [को०]। १० वस्तु। पदार्थ [को०]। ११ लाभ। प्राप्ति [को०]। १२. याचना। प्रार्थना [को०]। १३ वास्तविक स्थिति [को०]। १४. तौर तरीका। ढंग [को०]। १५ रोक। रुकावट [को०]। १६ मूल्य [को०] १७ परिणाम। नतीजा [को०]। १८ धर्म का एक पुत्र [को०]। १९. विष्णु २० [को०] पूर्वमीमांसा के अनुसार एक श्रेणी अपूर्व [को०]। २१ शक्ति [को०]। २२ दावा [को०]।

यौ०—अनर्थ। अभ्यर्थना। समर्थ। समर्थन। सार्थक। निरर्थक। अर्थपति। अर्थशास्त्र। अर्थकृच्छ्र। अर्थकरी। अर्थापत्ति। अर्थांतर। अर्थवान।

अर्थकर—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० अर्थकरी] १ जिससे धन उपार्जन किया जाय। लाभकारी, जैसे—अर्थकरी विद्या।

अर्थकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ मुख्य या प्रधान काम। २ फलदायक कार्य [को०]।

अर्थकाम—वि० [सं०] धन की इच्छा रखनेवाला [को०]।

अर्थकिल्विषी—वि० [सं० अर्थकिल्विषिन्] जो लेनदेन में शुद्ध व्यवहार न रखे। बेईमान।

अर्थकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ धन की कमी। दरिद्रता। २ राज्य की आर्थिक तंगी। राजकार्य में व्यय का बढ़ना।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार ऐसी तंगी में चंद्रगुप्त के समय में राज्य जनता से सपूर्ण राज्यकर एक दम से माँग लेता था।

अर्थकोविद—वि० [सं०] अनुभवी। विशेषज्ञ [को०]।

अर्थगत—वि० [सं०] शब्द के अर्थ पर आश्रित [को०]।

अर्थगर्भ—वि० [सं०] जिसमें अर्थ भरा हो। अर्थयुक्त [को०]।

अर्थगृह—संज्ञा पुं० [सं०] कोष। खजाना। जहाँ रुपया पैसा रखा जाता हो [को०]।

अर्थगौरव—संज्ञा पुं० [सं०] किसी शब्द या वाक्य मे अर्थ की गंभीरता ।

अर्थघ्न—वि० [सं०] अपव्ययी । फजूलखर्च [को०] ।

अर्थचर—संज्ञा पुं० [सं०] सरकारी नौकर ।

अर्थचिंतक—संज्ञा पुं० [सं० अर्थचिन्तक] वह मंत्री जो राज्य के आयव्यय पर ध्यान रखे । अर्थसचिव । मशीरमाल ।

अर्थचिंतन—संज्ञा पुं० [सं० अर्थचिन्तन] १. अर्थ (माने) के लिये चिंतन । २ धन के लिये सोचना [को०] ।

अर्थचिंता—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्थचिन्ता] अर्थ या धन संबंधी चिंता[को०]।

अर्थजात—वि० [सं०] १ अर्थ से भरा हुआ । २. धनी [को०] ।

अर्थज्ञ—वि० [सं०] उद्देश्य या मतलब समझनेवाला [को०] ।

अर्थत—अव्य [सं०] १ वास्तव में । सचमुच । वस्तुत । २ अर्थ की दृष्टि से [को०] ।

अर्थदंड—संज्ञा पुं० [सं० अर्थदण्ड] वह धन जो किसी अपराध के दंड मे अपराधी से लिया जाय । जुर्माना ।

अर्थद[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अर्थदा] धन देनेवाला ।

अर्थद[2]—संज्ञा पुं० १. कुबेर । २ दस प्रकार के शिष्यों मे से एक । वह जो धन देकर विद्या पढे ।

अर्थदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अर्थसंबंधी मुकदमों पर विचार करता है [को०] ।

अर्थदूषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ फिजूल खर्च । अपव्यय । २. अन्याय या धोखे से दूसरे की संपत्ति लेना । ३ अर्थ (माने) मे गलती पाना । ४ दूसरे की संपत्ति को नष्ट भ्रष्ट करना [को०]।

अर्थदोष—संज्ञा पुं० [सं०] १ अर्थसंबंधी दोष । २ साहित्य मे चार दोषों मे एक [को०] ।

अर्थना[1]Ⓟ—क्रि० स० [सं० अर्थ] माँगना । याचना करना ।

अर्थना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] याचना । निवेदन । प्रार्थना । २ अर्जी-दावा [को०]।

अर्थन्यायालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह न्यायालय जहाँ अर्थसंबंधी मुकदमों का निर्णय होता है ।

अर्थपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर । २ राजा ।

अर्थपिशाच[1]—वि० [सं०] जो द्रव्य का संग्रह करने में कर्तव्याकर्तव्य पर विचार न करे । धनलोलुप ।

अर्थपिशाच[2]—संज्ञा पुं०[सं०] वह जो धन का अत्यंत लोभ करता है।

अर्थप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटकों मे आनेवाली पाँच महत्वपूर्ण स्थितियाँ—१ बीज, २ बिंदु, ३. पताका, ४ प्रकरी और ५ कार्य ।

अर्थबंध—संज्ञा पुं० [सं० अर्थबन्ध] छंद मे शब्द आदि का उचित प्रयोग । पदरचना ।

अर्थबुद्धि—वि० [सं०] स्वार्थपरायण [को०] ।

अर्थबोध—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तविक अर्थ का ज्ञान [को०]।

अर्थभाक्—संज्ञा पुं० [सं० अर्थभाज्] जायदाद मे हिस्सा पानेवाला । हकदार [को०] ।

अर्थभृत—संज्ञा पुं०[सं०] अधिक तनख्वाह मे नकद रुपया लेकर काम करनेवाला व्यक्ति ।

अर्थभ्रंश—संज्ञा पुं०[सं०] १ धन संपत्ति का विनाश । २. उद्देश्य पूर्ण न होना [को०] ।

अर्थमंत्री—संज्ञा पुं०[सं० अर्थमन्त्रिण]अर्थ के मामलों से संबद्ध मंत्री ।

अर्थयुक्त—वि० [सं०] अर्थगर्भित । अर्थपूर्ण [को०] ।

अर्थयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राप्ति । लाभ [को०] ।

अर्थराशि—संज्ञा पुं० [सं०] प्रचुर धन [को०] ।

अर्थलाभ—संज्ञा पुं० [सं०] धन या द्रव्य की प्राप्ति [को०] ।

अर्थलोभ—संज्ञा पुं० [सं०] धन की तृष्णा या लोभ [को०] ।

अर्थवाद—संज्ञा पुं०[सं०] न्याय के अनुसार तीन प्रकार के वाक्यों मे से एक । वह वाक्य जिससे किसी विधि के करने की उत्तेजना पाई जाय । यह चार प्रकार का है—स्तुति, निंदा, परकृति और पुराकल्प ।

अर्थवादी—वि० [सं० अर्थवादिन्] अर्थवाद को माननेवाला [को०] ।

अर्थवान्—वि०[सं०]१ अर्थ (मतलब) वाला । एक विशेष अर्थ रखनेवाला । २ धनवान । पैसेवाला [को०] ।

अर्थविकरण—संज्ञा पुं० [सं०] तात्पर्य परिवर्तन [को०] ।

अर्थविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अर्थशास्त्र' । २ अर्थ को समझने की ६ प्रक्रियाओं मे से एक । धी गुण । [को०] ।

अर्थविद्—वि० [सं०] अर्थ का ज्ञाता । समझदार [को०] ।

अर्थविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यावहारिक जीवन का ज्ञान या विद्या [को०] ।

अर्थवेद—संज्ञा पुं० [सं०] शिल्पशास्त्र ।

अर्थव्यवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] सार्वजनिक राजस्व और उसके आय-व्यय की पद्धति । फाइनांस ।

अर्थशास्त्र—संज्ञा पुं०[सं०] वह शास्त्र जिसमे अर्थ की प्राप्ति, रक्षा और वृद्धि का विधान हो । प्राचीन काल मे इस विषय पर बहुत से आचार्यों के रचे ग्रंथ थे, पर अब केवल कौटिल्य (चाणक्य) का रचा हुआ ग्रंथ मिलता है । अर्थविज्ञान ।

अर्थशौच—संज्ञा पुं० [सं०] लेन देन मे शुद्ध व्यवहार । अर्थव्यवहार की पवित्रता रखना [को०]।

अर्थसंशयापद—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार ऐसे समानतोऽर्थापद की प्राप्ति जिसमे पार्ष्णिग्राह बाधक हो ।

अर्थसचिव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्थमंत्री' ।

अर्थसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कौटिल्य के अनुसार पार्ष्णिग्राह को मित्र तथा आक्रंद (शत्रु के शत्रु) का सहारा मिलना । २ अभिलषित की प्राप्ति । सफलता [को०] ।

अर्थहर—वि० [सं०] उत्तराधिकार मे धन पानेवाला [को०] ।

अर्थहीन—वि० [सं०] १ निर्धन । २ जिसमे अर्थ न हो । निरर्थक । ३ असफल [को०] ।

अर्थांतर—संज्ञा पुं० [सं० अर्थान्तर] १ भिन्न अर्थ । २ भिन्न कारण । ३, नई परिस्थिति । ४ अर्थ का अंतर [को०] ।

अर्थांतरन्यास—संज्ञा पुं० [अर्थान्तरन्यास] १. वह काव्यालंकार जिसमें सामान्य से विशेष का या विशेष से सामान्य का, साधर्म्य या वैधर्म्य द्वारा, समर्थन किया जाय, जैसे—(क) 'लागत निज मति दोष ते सुदरहू विपरीत। पित्तरोगवश लखहिं नर शशि सित शखहु पीत।' यहाँ पूर्वार्ध के सामान्य कथन का समर्थन उत्तरार्ध के विशेष कथन से साधर्म्य द्वारा किया गया है। (ख) 'हरि प्रताप गोकुल बच्यो का नहिं करहिं महान।' यहाँ 'हरि प्रताप गोकुल बच्यो' इस विशेष वाक्य का समर्थन 'का नहिं करहिं महान' इस सामान्य वाक्य से साधर्म्य द्वारा किया गया है। इसी प्रकार वैधर्म्य का भी उदाहरण समझना चाहिए। २ न्याय में एक प्रकार का निग्रह स्थान। जब वादी ऐसी बात कहे जो प्रकृत (असल) विषय या अर्थ से कुछ संबंध न रखती हो, तब वहाँ यह होता है।

अर्थागम—संज्ञा पुं० [सं०] धनलाभ। आमदनी।

अर्थात्—अव्य० [सं०] यानी। तात्पर्य यह कि।

विशेष—इसका प्रयोग विवरण करने में आता है, जैसे—ऐसा कौन होगा जो भले की प्रशंसा नहीं करता अर्थात् सब करते हैं।

अर्थातिक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार हाथ में आई या मिली हुई अच्छी वस्तु को छोड़ देना।

अर्थानर्थसंशय—संज्ञा पुं० [सं०] एक ओर से अर्थ तथा दूसरी ओर से अनर्थ की संभावना।

अर्थानर्थापद—संज्ञा पुं० [सं०] एक ओर से प्राप्ति और दूसरी ओर से राज्य जाने का भय।

अर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अर्थानुबन्ध] शत्रु को नष्ट कर पार्ष्णिग्राह को अपने वश में करना।

अर्थाधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० अर्थाधिकारिन्] कोषाधिकारी। खजांची [को०]।

अर्थाना㉁—क्रि० स० [सं० अर्थ + हिं० आना (प्रत्य०)] अर्थ लगाना। ब्योरे के साथ समझाकर कहना। अरथाना।

अर्थानुवाद—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायशास्त्रानुसार अनुवाद का एक भेद। विधि से जिसका विधान किया गया हो, उसका अनुवचन या फिर फिर कहना।

अर्थान्वित—वि० [सं०] १ अर्थयुक्त। अर्थगर्भ। २ महत्वपूर्ण। ३ धनवान् [को०]।

अर्थापत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. मीमांसा के अनुसार एक प्रकार का प्रमाण जिसमें एक बात कहने से दूसरी बात की सिद्धि आप से आप हो जाय। नतीजा। निगमन, जैसे—'बादलों के होने से वृष्टि होती है।' इसमें यह सिद्ध हुआ कि बिना बादल के वृष्टि नहीं होती। न्यायशास्त्र में इसे पृथक् प्रमाण न मानकर अनुमान के अंतर्गत माना है। २. एक अर्थालंकार जिसमें एक बात के कथन से दूसरी बात की सिद्धि दिखलाई जाय। इस अलंकार में वास्तव में यह दिखाया जाता है कि जब इतनी बड़ी बात हो गई, तब यह छोटी बात होने में क्या संदेह है, जैसे—(क) मुख जीत्यो वा चंद को कहा कमल की बात। (ख) जिसने शालिग्राम को भूना, उसे बैंगन भूनते क्या लगता है।

अर्थापत्तिसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाती के चौबीस भेदों में से एक। वादी के उत्तर में यह कहना कि यदि तुम मेरा प्रतिपादित अमुक सिद्धांत न मानोगे तो यह दोष पड़ेगा, अर्थापत्तिसम कहलाता है।

अर्थाप्रतिकार—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रबंधकर्ता जो कारखाने नौकरों, तथा अन्य मनुष्यों को, जिन्होंने कच्चा माल आदि दिया हो, धन देता है।

अर्थार्थी—वि० [सं० अर्थार्थिन्] १. धन की कामनावाला। २ धनप्राप्ति के लिये प्रयास करनेवाला। ३ अपना मतलब चाहनेवाला [को०]।

अर्थालंकार—संज्ञा पुं० [सं० अर्थालङ्कार] वह अलंकार जिसमें अर्थ का चमत्कार दिखाया जाय। शब्दालंकार के विरुद्ध अलंकार।

अर्थिक—संज्ञा पुं० [सं०] वे बंदीगण जो राजा को शयन से जगाते हैं। वैतालिक। स्तुतिपाठक। २ पहरुआ। प्रहरी [को०]।

अर्थित¹—वि० [सं०] माँगा हुआ। इच्छित [को०]।

अर्थित²—संज्ञा पुं० कामना। इच्छा [को०]।

अर्थी¹—वि० [सं० अर्थिन्] [वि०स्त्री० अर्थिनी] १ इच्छा रखनेवाला चाह रखनेवाला। २ कार्यार्थी। प्रयोजनवाला। गर्जी। याचक ३. वादी। मुद्दई। ४ सेवक। ५ धनी। ६ दे० 'अरथी'।

अर्थी²—संज्ञा पुं० वह जिसने किसी पर रुपयों का दावा किया हो (स्मृति)।

अर्थ्य¹—वि० [सं०] १. माँगने योग्य। २ उचित। उपयुक्त। अच्छा। ३ धनी। ४ बुद्धिमान्। ५ सत्य। ६ अर्थोपार्जन करने में कुशल [को०]।

अर्थ्य²—संज्ञा पुं० लाल खड़िया या चाक [को०]।

अर्दन¹—संज्ञा पुं० [सं०][स्त्री० अर्दना] १. पीडन। दलन। हिंसा। २ जाना। गमन। ३ याचना। माँगना। ४. शिव का एक नाम [को०]।

अर्दन²—वि० १ पीडक। हिंसक। २ बेचैन या व्यग्र होकर घूमनेवाला [को०]।

अर्दना㉁—क्रि० स० [सं० अर्दन=पीडन] पीडित करना। उ०—गहि वैष्णव को दंड कर मेघ समान नर्नदि। मर्दि सुरन रन अदि प्रति जैसे कुपित कपर्दि।—गोपाल (शब्द०)।

अर्दनि—संज्ञा पुं०[सं०]१ प्रार्थना।२. माँगना। भिक्षा। ३ बीमारी रोग। ४ आग [को०]।

अर्दली—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरदली'।

अर्दित¹—वि० [सं०] १ पीडित। दलित। २ गत। ३ याचित।

अर्दित²—संज्ञा पुं० [सं०] एक वातरोग।

विशेष—इसमें वायु के प्रकोप से मुँह और गर्दन टेढ़ी हो जाती है, सिर हिलता है, नेत्र आदि विकृत हो जाते हैं बोला नहीं जाता और गर्दन तथा दाढ़ी में दर्द होता है।

अर्द्धंग㉁—संज्ञा पुं०[सं० अर्द्धाङ्ग] १ शिव। उ०—अग होत अर्द्धंग धनु जानि लखन तिहि काल। कह्यो लोकपालन मनहि सजग होहु यहि काल।—रघुराज (शब्द०)। २ एक रोग। दे० 'अर्द्धांग'।

अर्द्ध¹—वि० [सं०] किसी वस्तु के दो सम भागों में से एक। आधा

अर्द्ध²—संज्ञा पुं० १ स्थान। क्षेत्र। २ भाग। हिस्सा। ३ आधा हिस्सा। ४ वायु। हवा। ५ वृद्धि। ६ समीप। लगभग [को०]।

विशेष--यह शब्द अर्द्ध और अर्ध इन दोनों रूपों में संस्कृत है। इससे बननेवाले शब्द भी दोनों रूपों में प्राप्त होते हैं। उनमे और कोई अंतर नहीं होता।

अर्द्धक¹--संज्ञा पुं० [सं०] चहानक। घुटने तक का लहँगा या पेटीकोट [को०]।

अर्द्धक²--वि० आधा [को०]।

अर्द्धकर्ण--संज्ञा पुं० [सं०] अर्धव्यास त्रिज्या [को०]।

अर्द्धकाल--संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

अर्द्धकूट--संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अर्द्धकेतु--संज्ञा पुं० [सं०] रुद्र [को०]।

अर्द्धगंगा--संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धगङ्गा] कावेरी।

अर्द्धगुच्छ--संज्ञा पुं० [सं० अर्धगुच्छ] वह मोती की माला जिसमें चालीस लड़ियाँ हों। वाराहमिहिर के अनुसार इसमें बीस लड़ियाँ होनी चाहिए।

अर्द्धगोल--संज्ञा पुं० [सं०] गोलार्द्ध [को०]।

अर्द्धचंद्र--संज्ञा पुं० [सं० अर्द्धचन्द्र] १ आधा चाँद। अष्टमी का चंद्रमा। २. चंद्रिका। मोरपंख पर की आँख। ३ नखक्षत का एक भेद। ४ एक प्रकार का बाण जिसके अग्रभाग पर अर्धचंद्राकार नोक होती है। ५ सानुनासिक का एक चिह्न। चंद्रबिंदु--ँ। ६ एक प्रकार का त्रिपुंड। ७ निकाल बाहर करने के लिये गले में हाथ लगाने की मुद्रा। गरदनिया।

अर्द्धचंद्रा--संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धचन्द्रा] तिधारा या कर्णस्फोट नाम का पौधा।

अर्द्धचंद्रिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धचंद्रिका] कनफोड़ा नाम की लता।

अर्द्धजल--संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान में शव को स्नान करा के आधा जल में और आधा बाहर डाल देने की क्रिया।

अर्द्धज्योतिका--संज्ञा संज्ञा [सं०] ताल का एक भेद।

अर्द्धतिक्त--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की नीम जो नेपाल में होती है।

अर्द्धतूर--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाद्य [को०]।

अर्द्धधार--संज्ञा पुं० [सं०] एक ओर धारवाला चाकू। सुश्रुत में वर्णित २० शल्योपकरणों में से एक [को०]।

अर्द्धनटेश्वर--संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक रूप [को०]।

अर्द्धनयन--संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की तीसरी आँख जो ललाट में होती है।

अर्द्धनाराच--संज्ञा पुं० [सं०] १ जैन शास्त्रानुसार वह हड्डी जो मर्कटबंध और कीलक पाशों में बँधी होती है। २ एक प्रकार का बाण।

अर्द्धनारी--संज्ञा पुं० [सं०] अर्धनारीश्वर। शिव [को०]।

अर्द्धनारीश--संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अर्द्धनारीश्वर--संज्ञा पुं० [सं०] १ तंत्र में शिव और पार्वती का सम्मिलित रूप। २. आयुर्वेद में रसांजन जिसे आँख में लगाने से ज्वर उतर जाता है।

अर्द्धपारावत--संज्ञा पुं० [सं०] तीतर।

अर्द्धपोहल--संज्ञा पुं० [दे०] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ मोटी होती हैं।

अर्द्धप्रादेश--संज्ञा पुं० [सं०] वास्तुशास्त्र में प्रलंबित सेतु के मध्य से आलंबन बिंदु तक का अंतर जहाँ शृंखला बँधे रहते हैं। सेतु के मध्य में उसके उस स्थान तक का अंतर जहाँ वह खंभे या दीवार पर टिका रहता है।

अर्द्धभागिक--वि० [सं०] आधे का हिस्सेदार [को०]।

अर्द्धभास्कर--संज्ञा पुं० [सं० अर्धभास्कर] दुपहरी। दुपहरिया। मध्याह्न [को०]।

अर्द्धमागधी--संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राकृत का एक भेद। पटना और मथुरा के बीच के देश की पुरानी भाषा।

अर्द्धमाणव--संज्ञा पुं० [सं०] १. कौटिल्य के अनुसार वह शीर्षकहार जिसके बीच में मणि हो। २ दस मोतियों की माला। ३. बारह लड़ियोंवाला एक हार [को०]।

अर्द्धमाणवक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्द्धमाणव'।

अर्द्धमात्रा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आधी मात्रा। २ व्यंजन। ३. संगीत शास्त्रानुसार चतुर्दश मात्राओं का एक भेद।

अर्द्धमासभृत--संज्ञा पुं० [सं०] वह मजदूर या नौकर जिसे अर्धमासिक (१५ दिन पर) वेतन मिलता हो।

अर्द्धरथ--संज्ञा पुं० [सं० अर्धरथ] वह रथी जो दूसरे के साथ होकर लड़े [को०]।

अर्द्धविसर्ग--संज्ञा पुं० [सं०] क, ख, प, फ, के पहले होनेवाले आधे विसर्ग का उच्चारण। विसर्ग का आधा उच्चारण [को०]।

अर्द्धविसर्जनीय--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्द्धविसर्ग' [को०]।

अर्द्धवीक्षण--संज्ञा पुं० [सं०] कनखी से देखना। तिरछी चितवन।

अर्द्धवृत्त--संज्ञा पुं० [सं०] वृत्त का आधा भाग। वृत्त का वह भाग जो व्यास और परिधि के आधे भाग से घिरा हो। २ पूरे वृत्त की परिधि का आधा भाग।

अर्द्धवृद्ध--संज्ञा पुं० [सं०] प्रौढ। मध्य आयु का व्यक्ति [को०]।

अर्द्धवृद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं०] किराए या सूद का आधा [को०]।

अर्द्धवैनाशिक--संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार अर्धनाश के पक्षपाती कणाद के अनुयायी जन [को०]।

अर्द्धव्यास--संज्ञा पुं० [सं०] केंद्र से परिधि तक का अंतर। त्रिज्या। रेडियस [को०]।

अर्द्धशफर--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

अर्द्धशब्द--वि० [सं०] धीमी आवाजवाला [को०]।

अर्द्धसम--वि० [सं०] आधे के बराबरवाला। आधा [को०]।

अर्द्धसमवृत्त--संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जिसका पहला चरण तीसरे चरण के बराबर हो; जैसे, दोहा और सोरठा।

अर्द्धसीरी--संज्ञा पुं० [सं० अर्धसीरिन्] अपने पारिश्रमिक के बदले में आधी फसल लेनेवाला। अधिया पर खेत जोतनेवाला कृषक [को०]।

अर्द्धहार--संज्ञा पुं० [सं०] ६४ मोतियों की माला अथवा ४० लड़ियोंवाला हार (को०)।

अर्द्धह्रस्व--संज्ञा पुं० [सं०] ह्रस्व स्वर का आधा [को०]।

अर्द्धांग--संज्ञा पुं० [सं० अर्धाङ्ग] १ आधा अंग। उ०--उत्तम नवीन अर्धांग नीलारमजा, श्याम नृपाल माला बिराजै।--तुलसी

ग्र० पृ० ४५८। २ एक रोग जिसमे आधा अंग चेष्टाहीन और वेकाम हो जाता है। लकवा। फालिज। पक्षाघात। ३ शिव।

अर्द्धांगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धाङ्गिनी] पत्नी। भार्या।

अर्द्धांगी[1]—संज्ञा पुं० [सं० अर्धाङ्गिन्] शिव।

अर्द्धांगी[2]—वि० अर्द्धांगरोगग्रस्त।

अर्द्धांशी—वि० [सं० अर्धांशिन्] अर्द्धभाग का अधिकारी [को०]।

अर्द्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसे २५ मोतियो का गुच्छा जिसकी तौल ३२ रत्ती हो।

विशेष—वाराहमिहिर के समय एक अर्धा का दाम १३० कर्षापण था। उस समय कर्षापण मे दस मासे चाँदी होती थी और वह सोलह मोटे (गोरखपुरी) पैसो के बराबर होता था।

अर्द्धाली—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्धालि] वह चौपाई जिसमे दो ही चरण हो। आधी चौपाई, जैसे—राम भजन बिनु सुनहु खगेसा। मिटै न जीवन केर कलेसा।

अर्द्धावभेदक—संज्ञा पुं० [सं०] १ अधकपारी। आधासीसी। २. अर्धांग [को०]।

अर्द्धाशन—संज्ञा [सं०] १ आधा भोजन [को०]।

अर्द्धासन—संज्ञा पुं० [सं०] १ आधा आसन। २ अतिशय सम्मान का स्थान। ३ बराबरी की जगह [को०]।

अर्द्धिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अर्धसीसी। २. वैश्य स्त्री और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न संतान जिसका संस्कार हुआ हो।

अर्धिक[2]—वि० अधिया पर काम करनेवाला [को०]।

अर्द्धीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ आधा करना। २ मंजूषा काढना बैठाना। जब एक कड़ी दूसरी कड़ी पर (होकर) रखी जाती है तब धरातल समान करके ठीक ठीक बैठाने के लिये प्रत्येक संधिस्थल को आधा आधा छील देते है। वास्तुशास्त्र मे यह अर्धीकरण कहलाता है

अर्द्धुक—वि० [सं०] उत्कर्षशील। उन्नतिशील [को०]।

अर्द्धेंदु—संज्ञा पुं० [सं० अर्द्धेन्दु] १ अर्धचन्द्र। २ अर्धचंद्राकार नखक्षत। दे० 'अर्द्धचंद्र' [को०]।

अर्द्धेंदुमौलि—संज्ञा पुं० [सं० अर्द्धेन्दुमौलि] शिव।

अर्द्धोदक—सं० पुं० [सं०] आधे शरीर तक भिगोता हुआ पानी। २ मृत शरीर को नहलाकर आधा जल मे और आधा बाहर रखने की क्रिया [को०]।

अर्द्धोदय—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्व जो उस दिन होता है जिस दिन माघ की अमावस्या रविवार को होती है तथा उसी दिन श्रवण नक्षत्र और व्यतीपात योग पडता है। इस दिन स्नान करने से सूर्यग्रहण मे स्नान करने का फल होता है।

अर्धंग(ऊ)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्द्धांग'।

अर्धंगी[1](ऊ)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्द्धांगी'।

अर्धंगी[2](ऊ)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] आधे अंगवाली स्त्री। अर्धांगिनी उ०—अर्धंगी पूछति मोहन सौं, कैसे हितू तुम्हारे।—सूर०, १०।४२३०।

अर्ध—वि० [सं०] दे० 'अर्द्ध'।

अर्न(ऊ)—संज्ञा पुं० [सं० अर्ण] जल। पानी। उ०—थंभ स्नेह रोमाच स्वरभंग कप वैवर्न। सबही के अनुभाव ये सात्विक औरो अर्न। भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० २७।

अर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अर्पित] किसी वस्तु पर मे अपना स्वत्व हटाकर दूसरे का स्थापित करना। देना। दान। २. नजर। भेंट।

यौ०—कृष्णार्पण। ब्रह्मार्पण।

३ स्थापन। रखना जैसे, पदार्पण करना। ४ वापस करना। लौटाना [को०]। ५ छेदन [को०]।

अर्पणप्रतिभू—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रतिभू (जामिन) जो किसी को इस प्रकार जमानत करे कि यदि यह ऋण का धन देगा, तो मैं दूँगा।

अर्पतर्प(ऊ)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उरप तरप'। उ०—गाइन अति भाइन भरति अर्प तर्प की तान। अर्प दर्प कदर्प जनु कीनो सर सधान।—स० सप्तक, पृ० ३८३।

अर्पना(ऊ)—संज्ञा पुं० [सं० अर्पण] दे० 'अर्पण'। उ०—सिव सर हमको फल दीन्हो। पुहुप, पात, नाना फल, मेवा, षटरस अर्पन कीन्हों।—सूर०, १०।७६८।

अर्पना(ऊ)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अरपाना'। उ०—पाँडे नहिं भोग लगावन पावै। करि करि पाक जबै अर्पत हैं, तबही तब छ्वै आवै।—सूर०, १०।२४६।

अर्पित—वि० [सं०] अर्पण किया हुआ। उ०—देवो को अर्पित मधु-रसमिश्रित सोम अधर से छूलो।—कामायनी, पृ० १२८। २ उत्कीर्ण [को०]। ३ चित्रित [को०]।

अर्पिस—संज्ञा पुं० [सं०] हृदय। हृदय का मांस [को०]।

अर्बदर्ब(ऊ)—संज्ञा पुं० [सं० अर्बुद+द्रव्य] धन। संपत्ति। धनदौलत। उ०—अर्बदर्ब सब देई बहाई। कै सब जाव न जाय पियाई।—जायसी (शब्द०)।

अर्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] १ गणित मे नवें स्थान की संख्या। दस कोटि। दस करोड। २ एक पर्वत जो राजपूताने की मरुभूमि मे है। अरावली। आबू जो जैनो पवित्र स्थान है। ३ एक असुर का नाम। ४ कद्रू का पुत्र एक सर्प विशेष एक नरक का नाम [को०]। ५ मेघ। बादल। ६ दो मास का गर्भ। एक रोग जिसमे शरीर मे एक प्रकार की गाँठ पड जाती है। बतौरी।

विशेष—इसमे पीडा तो नही होती पर कभी कभी यह पक भी जाती है। इसके कई भेद हैं जिनमे से मुख्य रक्तार्बुद और मांसार्बुद हैं।

अर्बुदी—वि० [सं० अर्बुदिन्] अर्बुद नामक रोग से ग्रसित [को०]।

अर्भ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ बालक। २ शिशि ऋतु। ३ शिष्य। छात्र। ४ सागपात। ५ नेत्रवाला। ६ कुशा।

अर्भ[2]—वि० १ मलिन। धुँधला। २ लघु। छोटा [को०]।

अर्भक[1]—वि० पुं० [सं०] १. छोटा। अल्प २ मूर्ख। ३. दुबला। पतला। ४ तुल्य। समान [को०]।

अर्भक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ बालक। लडका। उ०—गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर।—मानस, १।२७२। २. किसी भी

जानवर का बच्चा [को०]। मूर्ख या जड़ व्यक्ति [को०]। ३ नेत्र-वाला। कृश।

अर्म—संज्ञा पुं० १ आँख का एक रोग। टेंटर। ढेंढर। २ पुराना आधा उजड़ा नगर या गाँव। ३ गतव्य देश वा स्थान [को०]।

अर्मनी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरमानी'।

अर्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **अर्या, अर्याणी, अर्यी,**] १ स्वामी। २ ईश्वर। ३ वैश्य।

अर्य[2]—वि० १ श्रेष्ठ। उत्तम। २ दयालु। अनुकूल [को०]।

अर्यमा—संज्ञा पुं० [सं० **अर्यमन्**] १ सूर्य। २ बारह आदित्यो मे से एक। ३ पितर के गणो मे से एक जो सबसे श्रेष्ठ कहे जाते हैं। ४. उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। ५ मदार। ६. अतरग मित्र लँगोटिया यार [को०]।

अर्रबर्रा—संज्ञा पुं० [हिं०] अडबड बात। बेकार बात। फिजूल चर्चा।

अर्रा—संज्ञा पुं० [देश०] १ जगली पेड जो अर्जुन वृक्ष से मिलता जुलता होता है। इसकी लकडी बडी मजबूत होती है और छत पाटने के काम आती है। २. अरहर।

अर्ल—संज्ञा पुं० [अं०] [**स्त्री० काउंटेस**] इगलैंड के सामतो और बडे भूम्यधिकारियो को वशपरपरा के लिये दी जानेवाली एक प्रतिष्ठासूचक उपाधि इसका दर्जा मार्क्विस के नीचे और वाइकौंट के ऊपर है। वि० दे० 'ड्यूक'।

अर्वट—संज्ञा पुं० [सं०] भस्म। राख [को०]।

अर्वती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घोडी। २. दूती। कुटनी। ३ परी। विद्याधरी [को०]।

अर्वा—संज्ञा पुं० [सं० **अर्वन्**] १. घोडा। २ घोडे का सवार। असवार सवार। ३ चद्रमा के दस घोडो मे से एक। ४ इद्र। ५ एक प्रकार की दूरी। ६ जाना। दौडना। घूमना [को०]।

अर्वाक्—अव्य० [सं० **अर्वाक्**] १ पीछे। इधर। २ निकट। समीप। ३ नीचे।

यौ०—**अर्वाक् कालिक**=आधुनिक। अर्वाकस्रोता=जिसका वीर्यपात हुआ हो। उर्ध्वरेता का उलटा।

अर्वाग्विल—वि० [सं०] १ अधोमुख। नीचे की तरफ मुँह या छिद्र वाला [को०]।

अर्वाग्वसु[1]—वि० [सं०] धनदाता [को०]।

अर्वाग्वसु[2]—संज्ञा पुं० १ वर्षा। २ बादल [को०]।

अर्वाचीन—वि० [सं०] १ पीछे का। आधुनिक। २ नवीन। नया। ३ उलटा। विपरीत [को०]। ४ नम्र। कृपालु [को०]।

अर्वावसु—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओ का होता [को०]।

अर्वुक—संज्ञा पुं० [सं०] १ महाभारत मे कथित दक्षिण की एक जगली जाति जिसे सहदेव ने विजित किया था।

अर्श[1]—वि० [सं०] १ पापयुक्त। दुर्भाग्य लानेवाला।

अर्श[2]—संज्ञा पुं० [सं० **अर्शस्**] १ बवासीर। २ क्षति। हानि [को०]।

अर्श[3]—संज्ञा पुं० [अ०] १ आकाश। उ०—अर्श तक जाती थी अब लब तक भी आ सकती नही। रहम आता है 'वर्फा' अब मुझको अपनी आहू पर।—शेर०, भा० १. पृ० १७५। २. स्वर्ग। ३. चरखी जिसपर ऊन काता जाता है। ४ छत। पाटन [को०]। ५ सिहासन। तख्त [को०]। ६. लडाई। झगडा [को०]।

अर्शवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बवासीर जिसमें गुदा के किनारे ककडी के बीज के समान चिकनी और किंचित् पीडा-युक्त फुसियाँ होती हैं।

अर्शस—वि० [सं०] बवासीर का रोगी [को०]।

अर्शसान—संज्ञा पुं० [सं०] १ आग। २ एक राक्षस [को०]।

अर्शहर—संज्ञा पुं० [सं०] सूरन। ओल। जमीकद।

अर्शी—वि० [सं० **अर्शिन्**] अर्शरोगी [को०]।

अर्शोघोर—वि० [सं०] अर्श नामक रोग का नाशक [को०]।

अर्शोघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूरन। ओल। जमीकद। २ भिलावाँ। ३ सज्जीखार। ४ तेजबल। ५ सफेद सरसो।

अर्शोघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तालमूली। २ भल्लातक [को०]।

अर्शोहर—संज्ञा पुं० दे० '**अर्शोघ्न**' [को०]।

अर्शोहित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भल्लातक [को०]।

अर्शोहित[2]—वि० अर्शरोग को ठीक करनेवाला [को०]।

अर्हंत—संज्ञा पुं० [सं० **अर्हन्त**] १ जैनियो के पूज्यदेव। जिन। २ बुद्ध।

अर्ह[1]—वि० [सं०] १ पूज्य। २ योग्य। उपयुक्त। ३ मूल्य के योग्य मूल्यवान् [को०]।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अधिकतर यौगिक शब्द बनाने मे होता है, जैसे—पूजार्ह। मानार्ह। दडार्ह।

अर्ह[2]—संज्ञा पुं० १ ईश्वर। २ इद्र। विष्णु [को०]। ४ मूल्य। दाम [को०]। ५ गति [को०]। ६ उपयुक्तता [को०]।

अर्हण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्हणा'।

अर्हणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० **अर्हणीय**] पूजा। समान।

अर्हणीय—वि० [सं०] पूजनीय। सम्माननीय [को०]।

अर्हत[1]—वि० [सं०] पूजा।

अर्हत[2]—संज्ञा पुं० जिनदेव।

अर्हता—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग्यता। उपयुक्तता [को०]।

अर्हन—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्हंत'।

अर्हित—वि० [सं०] पूजित। सम्मानित। आदृत।

अर्ह्य—वि० [सं०] १ पूज्य। मान्य। २ पूजनीय। माननीय। आदरणीय। ३ योग्य। उपयुक्त। अधिकारी [को०]।

अल—अव्य० [सं० **अलम्**] दे० '**अलम्**'।

अलकटकटा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अलङ्कटङ्कटा**] विद्युत्केश नामक राक्षस की पत्नी। सुकेश की माता।

विशेष—वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाड मे इस राक्षसवश का सृष्टि के आदिकाल मे उत्पन्न होना लिखा है।

अलंकरण—संज्ञा पुं० [सं० **अलङ्करण**] १. सजावट। २ शृगार ३. आभूषण [को०]।

अलंकर्ता—वि० [सं० **अलङ्कर्तृ**] सजावट करनेवाला। अलंकृत करनेवाला [को०]।

अलकार—सज्ञा पुं० [स० अलङ्कार] [वि० अलंकृत] १ आभूषण। गहना। जेवर। २ अर्थ और शब्द की वह युक्ति जिससे काव्य की शोभा हो। वर्णन करने की वह रीति उसमे प्रभाव और रोचकता आ जाय।

विशेष—इसके तीन भेद हैं—(क) शब्दालकार, अर्थात् वह अलकार जिसमे शब्दो का सौंदर्य हो, जैसे अनुप्रास; (ख) अर्थालकार, जिमके अर्थ मे चमत्कार हो, जैसे उपमा और रूपक और किसी किसी आचार्य के मत से (ग) उभयालकार जिसमे शब्द और अर्थ दोनो का चमत्कार हो। आदि मे भरत मुनि ने चार ही अलकार मानें हैं—उपमा, दीपक, रूपक और यमक। उन्होने अलकारो के धर्म को इन्ही के अतर्गत माना है। अलकार यथार्थ मे वर्णन करने की शैली है, वर्णन का विषय नही। पर पीछे वर्णनीय विषयो को भी अलकार मान लेने से अलकारो की सख्या और भी वढ गई। स्वभावोक्ति और उदात्त आदि अलंकार इमी प्रकार के हैं।

३ वह हाव, भाव या क्रिया आदि जिससे स्त्रियो का सौंदर्य वढ़े। ४ सजावट। मडप[को०]। ५ अलकार सवधी शास्त्र [को०]।

अलकारक—सज्ञा पुं० [स० अलङ्कारक] आभूषण। अलकार [को०]।

अलकारमडप—सज्ञा पुं० [स० अलङ्कारमण्डप] सजावट का स्थान। प्रसाधनकक्ष। ड्रसिग रूम।

अलकारशास्त्र—सज्ञा पुं० [स० अलङ्कारशास्त्र] वह शास्त्र जिसमे अलकारो का वर्णन और विवेचन हो।

अलकित—वि० [हिं०] दे० 'अलकृत'।

अलकिय—वि० [स० अलङ्कृत, प्रा० अलंकिय] दे० 'अलकृत'। उ०—नील वरन वसुमतिय। पहिर आभ्रन अलकिय।—पृ० रा०, २५। ३५।

अलकृत—वि० [स० अलङ्कृत] १ विभूषित। गहना पहनाया हुआ। २ सजाया हुआ। सँवरा हुआ। ३ काव्यालकारयुक्त।

अलकृति—सज्ञा स्त्री०[स० अलङ्कृति]१ अलकार। आभूषण। २ सजावट। ३ उपमा, रूपक आदि अलकार। उ०—आखर अरथ अलकृति नाना। छद प्रवध अनेक विधाना।—मानस, पृ० ५।

अलग—सज्ञा पुं० [स० अल=पूर्ण, बडा+अग=प्रदेश] [हिं० अलग] ओर। तरफ। दिशा। उ०—(क) उमर अमीर रहे जहँ ताई, सव ही वॉट अलगँ पाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) लेन आयो कान्ह कोऊ मथुरा अलग तें।—भिखारी ग्र०, भा० २ पृ० १०७।

मुहा०—अलग पर आना या होना=घोड़ी का मस्ताना।

अलघनीय—वि० [स० अलङ्घनीय] १ जो लाँघने योग्य न हो। जिसे फाँद न सके। जिसे पार न कर सके। अलध्य। १ अटल।

अलघ्य—वि० [स० अलङ्घ्य] १ जो लाँघने योग्य न हो। जिसे फाँद न सकें। २. जिसे टाल न सकें। जिसे मानना ही पड़े; जैसे—राजा की आज्ञा अलघ्य होती है।

यौ०—अलंघ्य शासन।

अलजर—सज्ञा पुं० [स० अलञ्जर] मिट्टी का घडा। झझर [को०]।

अलंपट[1]—वि०[स० अलम्पट]जो लपट या विषयी न हो। सच्चरित्र।

अलंपट[2]—सज्ञा पुं० स्त्रियो का कक्ष। अतं पुर [को०]।

अलव—सज्ञा पुं० [स० आलम्ब] दे० 'आलव'।

अलवुष—सज्ञा पुं० [स० अलम्वुषा] १ वमन। उल्टी। कै। २ कौरवो का सहायक एक राक्षस जिसे भीम के पुत्र घटोत्कच ने मारा था। ३ प्रहस्त नाम का रावण का एक मत्री [को०]। ४. हथेली जिसकी ऊँगलियाँ फैलाई गई हो (को०)।

अलवुषा—सज्ञा स्त्री० [स० अलम्वुषा] १ मुडी। गोरखमुडी २ स्वर्ग की एक अप्सरा। ३ दूमरे का प्रवेश रोकने के लिये खींची हुई रेखा। गडारी। मडल।

विशेष—इसका व्यवहार अधिकतर भोजन को छुवाछूत से बचाने के लिये होता है।

४ लज्जावती। छुई मुई। लजालू पौधा। उ०—नव अलवुषा की व्रीडा सी खुल जाती फिर जा मुदती।—कामायनी, पृ० २६३।

अलभ—वि० [स० अलभ्य] दे० 'अलभ्य'। उ०—सरग का देवता अलभ चितोड।—वी० रासो, पृ० ४४।

अल[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ विच्छू का डक। २ हरताल। ३ विष। जहर। उ०—अति वल करि करि काली हार्यो। लपटि गयो सव अग अग प्रति निर्विष कियो सकल अल भार्यो।—सूर (शब्द०)।

अल[2]—वि० [स०] समर्थ। शक्त। उ०—कारन अविरल अल अपितु तुलसी अविद भुलान।—स० सप्तक, पृ० २६।

अलई—सज्ञा स्त्री० [देश०] ऐल नाम की कँटीली लता जिसकी वाढ प्राय खेतो मे लगाई जाती है। ऊरू।

अलक[1]—सज्ञा पुं० [स०] १. मस्तक के इधर उधर लटकते हुए मरोडदार वाल। २ वाल। केश। लट। ३ छल्लेदार वाल। उ०—मुकुट कुडल तिलक, अलक अलिव्रात इव, भृकुटि द्विज अधर वर चारु नासा।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६१। २ हरताल। ३ सफेद आक। श्वेत मदार। ४ शरीर पर लगाया हुआ केसर। अग पर लिप्त केसर [को०]। ५ पागल कुत्ता। अलर्क [को०]।

अलक[2]—सज्ञा पुं० [स० अलक्तक] महावर। आलता।

अलक[3]—सज्ञा पुं० [स० अलका] अलकापुरी। उ०—अलक लोक वज्जत विषम।—पृ० रा० २।१०१।

अलकत—सज्ञा पुं० [अ०] १ अवहेलना। २ नष्ट करना। रद्द करना। ३. काट देना [को०]।

अलकतरा—सज्ञा पुं० [अं०] पत्थर के कोयले को आँग पर गलाकर निकाला हुआ एक गाढा पदार्थ। उ०—छत छतरी वर वद खभ गेरू रँग राखे। अलकतरे रँग कल किवार सित सोहत पाखे।—रत्नाकर १।१०२।

विशेष—कोयले को विना पानी दिए भभके पर चढाकर जब गैस निकाल लेते हैं, तब उसमे दो प्रकार के पदार्थ रह जाते हैं—एक पानी की तरह पतला, दूसरा गाढा। यही गाढा काला पदार्थ अलकतरा है जो रँगने के काम मे आता है। यह कृमिनाशक है अत इसमे रँगी हुई लकडी घुन और दीमक से बहुत दिनो तक बची रहती है। इससे कृमिनाशक ओषधियाँ जैसे—नेप्थलीन कारवोलिक एसिड, फिनाइल आदि—तैयार होती हैं। इससे कई प्रकार के रंग भी बनते हैं।

अलकनंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० अलकनन्दा] १ हिमालय (गढ़वाल) की एक नदी जो गंगोत्री के आगे भागीरथी (गंगा) की धारा से मिल जाती है। २ आठ से दस वर्ष उम्र तक की कन्या [को०]।

अलकप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अलकापुरी। कुबेरपुरी।

अलकप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] पीतसाल नाम का एक पेड़ [को०]।

अलकलडैता(पु)—वि० [सं० अलक=बाल+लाड=दुलार या अ० अलक=प्यार+हिं० लाड+ऐता (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० अलकलडैती] दुलारा। लाडला। उ०—सूर पथिक मुनि मोहि रैनि दिन, बढ़यो रहत उर सोच। मेरो अलकलडैतो मोहन ह्वै है करत सँकोच।—सूर०, १०।३७६३।

अलकसंहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] घुँघराले बालों की कतार [को०]।

अलकसलोरा(पु)—वि० [सं०=अलक=बाल या अ० अलक=प्यार+हिं० सलोना=अच्छा] [स्त्री० अलकसलोरी] लाडला। दुलारा। उ०—हम तुम्हरें नितही प्रति आवति सुनहु राधिका गोरी। ऐसो आदर कबहुँ न कीन्हो मेरी अलकसलोरी।—सूर०, १०।२८२८।

अलका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुबेर की पुरी। यक्षों की पुरी। उ०—हिन्का छुटत मोर अलका पग्त हैं।—गंग०, पृ० १०५। २ आठ से दस वर्ष उम्र तक की लड़की [को०]।

अलकाउरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलकावलि'। उ०—अधर अधर सो भीज तबोरी। अलकाउरि मुरि मुरि गा मोरी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४२।

अलकाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] अलकापुरी के स्वामी। कुबेर [को०]।

अलकापति—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

अलकाब—संज्ञा पुं० [अ० लकब का बहुव०] १ प्रशस्ति। २ उपाधि या खिताब [को०]।

अलकावती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलका'।

अलकावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] केशों का समूह। बालों की लटें। उ०—कोमल नील कुटिल अलकावलि, रेखा राजति भाल।—सूर०, १०।२६५६।

अलकेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अलकेश] कुबेर। उ०—अकबकात अलकेस अखडन।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०।

अलक्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अलक्तक'।

अलक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १ लाही जो पेड़ों में लगती है। लाख। चपड़ा। २ लाह का बना हुआ रंग जिसे स्त्रियाँ पैर में लगाती हैं। महावर।

यौ०—अलक्तकरस=महावर। अलक्तक राग=महावर की लाली।

अलक्षण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ चिह्न या संकेत का न होना। २ ठीक ठीक गुण धर्म का अनिर्वाचन। ३ बुरा लक्षण। कुलक्षण। अशुभ चिह्न।

अलक्षण²—वि० जो लक्षणहीन हो। बुरे लक्षणवाला [को०]।

अलक्षित—वि० [सं०] १ अप्रकट। अज्ञात। २ अदृश्य। गायब। ३ अचिह्नित।

अलक्ष्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ धनाभाव। निर्धनता। दरिद्रता। २ बुरा भाग्य। विपरीत भाग्य। ३ अशुभ लक्षणोंवाली स्त्री ४. भाग्य की देवी। दरिद्रता देवी [को०]।

अलक्ष्य—वि० [सं०] १ अदृश्य। जो न देख पड़े। गायब। २ जिसका लक्षण न कहा जा सके। ३ छलविहीन। छलरहित [को०]। ४ अचिह्नित [को०]।

अलक्ष्यगति—वि० अदृश्य रूप से गमन करनेवाला [को०]।

अलक्ष्यजन्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञात जन्म या उत्पत्ति [को०]।

अलक्ष्यलिंग—वि० [सं० अलक्ष्यलिङ्ग] अपने को छिपाए रखनेवाला [को०]।

अलख¹—वि० [सं० अलक्ष्य] १ जो दिखाई न पड़े। जो नजर न आए। अदृश्य। अप्रत्यक्ष। उ०—बुधि, अनुमान, प्रमान स्रुति किएँ नीठि ठहराय। सूछम कटि परब्रह्म की, अलख, लखी नहिं जाय।—बिहारी र०, दो० ६४८। २ अगोचर। इंद्रियातीत। उ०—जे उपमा पटतर लै दीजै ते सब उनहिं न लायक। जौ पै अलख रह्यौ चाहत तौ बादि भए ब्रजनायक।—सूर०, २।४६४५। ३ ईश्वर का एक विशेषण। उ०—अलख अरूप अबरन सो करता। वह सबसो सब वहि सो बरता।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—अलख जगाना=(१) पुकारकर परमात्मा का स्मरण करना या कराना। (२) परमात्माके नाम पर भिक्षा माँगना।

यौ०—अलखधारी। अलखनामी। अलखनिरंजन। अलखपुरुष=ईश्वर। अलखमंत्र=निर्गुण संत संप्रदाय में ईश्वरमंत्र।

अलख²—संज्ञा पुं० ब्रह्म। ईश्वर [को०]।

अलखधारी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अलखनामी'।

अलखनामी—संज्ञा पुं० [सं० अलक्ष्यसंनाम+हिं० ई (प्रत्य०)] एक प्रकार के साधु जो गोरखनाथ के अनुयायियों में से हैं।

विशेष—अलखिया। ये लोग सिर पर जटा रखते हैं, गेरुआ वस्त्र धारण करते हैं, भस्म लगाते हैं और कमर में ऊन की सेली बाँधते हैं जिसमें कभी कभी घुँघरू या घंटी भी बाँध लेते हैं। ये लोग भिक्षा के लिये प्रायः दरियाई नारियल का खप्पर लेकर जोर जोर से 'अलख अलख' पुकारते हैं जिससे उनका अभिप्राय अलक्ष्य परमात्मा का स्मरण करना वा कराना होता है। इन लोगों में एक विशेषता यह है कि ये कहीं भिक्षाके लिये अधिक अड़ते नहीं।

अलखित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलक्षित'। उ०—कवि अलखित गति वेषु विरागी।—मानस २। ११०।

अलखिया(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अलखनामी'।

अलग—वि० [सं० अलग्न प्रा० अलग्ग] १. जुदा। पृथक्। न्यारा। भिन्न। अलहदा। उ०—सपति सकल जगत की स्वासा सम नहिं होइ। सो स्वासा तजि राम पद तुलसी अलग न खोइ।—स० सप्तक, पृ० ४।

क्रि० प्र०—करना। रखना।—होना।

मुहा०—अलग करना=(१) जुदा करना। दूर करना। हटाना। खसकाना। जैसे—इसे हमारे सामने से अलग करो। (२) छुड़ाना। बरखास्त करना, जैसे—मैंने उस नौकर को अलग कर दिया। (३) चुनना। छाँटना। (४) बेच डालना, जैसे—उसने उस घोड़े को अलग कर दिया। (५) निपटाना। समाप्त करना, जैसे—थोड़ा सा बचा है, खा पीकर अलग करो।

२ बेलाग। बचा हुआ। रक्षित, जैसे—घबराओ मत, तुम्हारा बच्चा अलग है।

यौ०—अलग अलग = दूर दूर। जुदा जुदा।

अलगगीर—संज्ञा पुं० [अ० अरक फा० गीर] कंबल या नमदा जिसे घोड़े की पीठ पर रखकर ऊपर से जीन या चारजामा कसते हैं।

अलगनी—संज्ञा स्त्री० [सं० आलग्न] आड़ी रस्सी या बाँस जो कपड़े लटकाने या फैलाने के लिये घर में बाँधा जाता है। डारा।

अलगरजा—वि० [अ० अल्+गरज] दे० 'अलगरजी'।

अलगरजी¹—वि० [अ०] बेगरज। बेपरवाह।

अलगरजी²Ⓟ—संज्ञा स्त्री० बेपरवाही। बेगरजी। उ०—आसिक अरु महबूब बिच आप तमासा कीन। ह्याँ ह्वै अलगरजी करै ह्वाँ ह्वै होइ अधीन।—स० सप्तक, पृ० १७६।

अलगर्द—संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह का जल में रहनेवाला साँप [को०]।

अलगर्दा—संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह की लंबी जहरीली जोंक [को०]।

अलगाऊ—वि० [हिं० अलगाना] अलग करनेवाला। अलग रखनेवाला।

अलगाना¹—क्रि० स० [हिं० अलग+आना (प्रत्य०)] १ अलग करना। छाँटना। बिलगाना। पृथक् करना। जुदा करना। २ दूर करना। हटाना।

अलगाना²—क्रि० अ० अलग होना। पृथक् होना। उ०—बदरिकासरम दोउ मिलि आइ। तीरथ करत दोउ अलगाइ।—सूर०, ३।४।

यौ०—अलगागुजारी = अलगाव।

अलगारⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अलग'। उ०—चामडराय दिल्ली धरह गढ़पति करि गढ़भार दिय। अलगार राज प्रथिराज तब पूरब दिसि तब गमन किय।—पृ० रा०, २०।३६।

अलगाव—संज्ञा पुं० [हिं० अलग+आव (प्रत्य०)] पृथक्करण। अलग रहने का भाव। बिलगाव। उ०—होली, सावन, झूले वा झेलुए की गीत आदि का अलगाव या ठहराव हुआ होगा।—प्रेमघन०, भा०, २, पृ० ३५१।

अलगोजा—संज्ञा पुं० [अ० अलगोजह] एक प्रकार की बाँसुरी। उ०—अलगोजे बज्जत छिति पर छज्जत सुनि-धुनि लज्जत कोइ रहैं।—पद्माकर ग्र, पृ० २८५।

विशेष—इसका मुँह कलम की तरह कटा होता है और जिसकी दूसरी छोर पर स्वर निकालने के लिये सात समानांतर छेद होते हैं। इसको मुँह मे सीधा रखकर उँगलियों को छेदों पर रखते और उठाते हुए बजाते हैं।

अलगौझा—संज्ञा पुं० [हिं० अलग+औझा (प्रत्य०)] [स्त्री० अलगौझी] पृथक्करण। अलगाव। बिलगाव।

अलग्गⓅ—वि० [सं० अलग्न] समीप नहीं। दूर। उ०—ढोलइ चित्त विमासियउ, मारू देस अलग्ग।—ढोला०, दू० ३०७।

अलघु—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अलघ्वी] १ जो लघु न हो। बड़ा। वजनी। २ गंभीर। ३ जो छोटा न हो। लंबा। ४ उग्र। भयकर [को०]।

अलच्छⓅ—वि० [हिं] दे० 'अलक्ष्य'। उ०—नग मग बरन अलच्छ जात अधरहि जनु पच्छी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११२।

अलच्छिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० अलक्ष्मी] दरिद्रता। गरीबी। उ०—माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा।—मानस, १।६।

अलज¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

अलज²Ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अलज्ज'।

अलजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँखों मे होनेवाली एक प्रकार की लाल या काली फुंसी जो बहुत पीड़ा देती है।

अलज्ज—वि [सं०] निर्लज्ज। बेहया। उ०—तुम अलज्ज से क्यों यहाँ अड़े।—साकेत, पृ० ३९३।

अलटविलट—संज्ञा पुं० [देश०] उलट पुलट। हेर फेर। गड़बड़ी। उ०—बात व्योहार मे कहीं कुछ अलटविलट हो तो अपने नौगछिया की जगहँसाई होगी।—नई०, पृ० ३१।

अलटा—संज्ञा पुं० [सं० अलक्तक, प्रा० अलत्तय, राज० अलता] १. वह लाल रग जो स्त्रियाँ पैरों मे लगाती हैं। २ खमी की मूत्रेंद्रिय, जैसे—अलते की बोटी।

अलत्ताⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अलक्तक, प्रा० अलत्तय] दे० 'अलता'। उ०—सुदरि, सोवन वर्ण तसु अहर अलत्ता रंगि। केसरिलंकी खीण कटि, कोमल नेत्र कुरंगि।—ढोला०, दू० ८७।

अलपⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अल्प'। उ०—तातें अनुमानौं अब जीवन अलप है।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १५८।

अलपाका—संज्ञा पुं० [स्पे० एलपका] १ ऊँट की तरह का एक जानवर जो दक्षिण अमेरिका के पेरू नामक प्रांत में होता है। इसके बाल लंबे और ऊन की तरह मुलायम होते हैं। २ अलपाका का ऊन। ३ एक पतला कपड़ा जो रेशम या सूत के साथ अलपाका जंतु के ऊनी बालों को मिलाकर बनाया जाता है। यह कई रंगों का बनता है, पर विशेषकर काला होता है।

अलफ—संज्ञा पुं० [अ० अलिफ] १ घोड़े का आगे के दोनों पाँव उठाकर पिछली टाँगों के बल खड़ा होना।

विशेष—अरबी वर्णमाला का पहला अक्षर अलिफ खड़ा होता है। इसी से यह शब्द इस अर्थ मे व्यवहृत होने लगा।

२ हरा चारा। हरी घास [को०]।

अलफा—संज्ञा पुं० [अ० अलफा] [स्त्री० अलफी] एक प्रकार का ढीला ढाला बिना बाँह का बहुत लंबा कुरता जिसे अधिकतर मुसलमान फकीर गले मे डाले रहते हैं। उ०—अद्धी की टोपी लगाए सुकेशधारी अलफी पहने लँगड़ाता हुआ चिल्लाने लगा।—श्यामा०, पृ० १५०।

अलफाज—संज्ञा पुं० [अ० लफ्ज का बहुव० अलफ़ाज़] शब्दसमूह। उ०—बिना अरबी के अलफाज मिलाए।—प्राण०, २।५६।

अलबत—अव्य० [हिं०] दे० 'अलबत्ता'। उ०—तथ्यों का आरोप या संभावना अलबत वे कभी कभी किया करते हैं।—रस० क०, पृ० १४।

अलबत्ता—अव्य० [अ० अलबत्तह] १ निस्संदेह। निःसंशय। बेशक, जैसे—'अब अलबत्ता यह काम होगा'। २ हाँ। बहुत ठीक। दुरुस्त। जैसे—अलबत्ता, बहादुरी इसका नाम है (शब्द०)। ३ लेकिन। परंतु, जैसे—हम रोज नहीं आ सकते, अलबत्ता कहो तो कभी कभी आ जाया करें (शब्द०)।

अलबम—संज्ञा पुं० [अं०, एलबम] तस्वीरें रखने की किताब।

अलबल—वि० [अनु०] अटपट। जल्दी जल्दी। उ०—अपने अपराधन कबहूँ बैठि बिचारैं हुव मिलन मनोरथ अल बल बैन उचारैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २६३।

अलबीतलबी—[अ०] अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाएँ अथवा बहुत कठिन उर्दू, जैसे—'आप अपनी अलबी तलबी छोड़कर सीधी तरह से हिंदी में बातें कीजिए'।

अलबेला¹—वि० [स० अलभ्य + हिं० ला (प्रत्य०)][स्त्री० अलबेली] १ बाँका। बना ठना। छैला। २ अनोखा। अनूठा। सुंदर, जैसे—'तुमने तो यह बड़ी अलबेली चीज निकाली।' ३ अल्हड़। बेपरवाह। मनमौजी। जैसे—यह बड़ा अलबेला है।

अलबेला²—संज्ञा पुं० [स० अलभ्य] नारियल का बना हुआ हुक्का। उ०—खायके पान बिदोरत होठ हैं बैठि सभा में पिऐं अलबेला।—ब्रजगोपाल (शब्द०)।

अलबेलापन—संज्ञा पुं० [हिं० अलबेला + पन (प्रत्य०)] १ बाँकापन। सजधज। छैलापन। २. अनोखापन। अनूठापन। सुंदरता। ३ अल्हड़पन बेपरवाही।

अलभ्य—वि० [स०] जिसकी प्राप्ति न हो सकी हो। जो हस्तगत न हुआ हो [को०]।

यौ०—अलब्धनाथ = बिना संरक्षक। स्वामीविहीन। अलब्ध-निद्र = जिसे नींद न आई हो।

अलब्धभूमिकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] समाधि का न जुड़ना। समाधि की अप्राप्ति।

अलब्धव्यायामभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य के अनुसार ऐसी भूमि जिसमें सैन्यसग्रह न हो सके।

अलभ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलभ्य'।

अलभ्य—वि० [स०] १ न मिलने योग्य। अप्राप्य। उ०—रस पिया सखि नित्य जहाँ नया अब अलभ्य वहाँ विष हो गया।—साकेत, पृ० ३०७। २ जो कठिनता से मिल सके। दुर्लभ। उ०—मुनिहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ सुगम सो राम लघु लोगनि को करिगे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३३६। ३ अमूल्य अनमोल। उ०—जीवन सौभाग्य है जीवन अलभ्य है।—लहर, पृ० ७०।

अलम्—अव्य० [सं०] यथेष्ट। पर्याप्त। पूर्ण। काफी। उ०—कृपा कटाक्ष अलम् है केवल, कोरदार या कोमल हो।—झरना, पृ० ८१।

अलम—संज्ञा पुं० [अ०] १ रंज। दुख। उ०—अलम है दर्दे हसरत है फना है आहोजारी है।—शेर०, पृ० ३७७। २ झंडा।

अलमनक—संज्ञा पुं० [अ०] अँगरेजी ढंग की जंत्री या पत्रा।

अलमनाक—वि० [अ०] १ दुःखपूर्ण। २ अतिदुःखदाई [को०]।

अलमबरदार—संज्ञा पुं० [अ०] १ वह जो झंडा उठाता है। २ वह जो आंदोलन आदि में आगे रहता है [को०]।

अलमर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा।

अलमस्त—वि० [फा०] १ मतवाला। बदहोश। बेहोश। २ बेगम। बेफिक्र। निर्द्वंद्व।

अलमारी—संज्ञा स्त्री० [पुर्त० अलमारियो] वह खड़ा संदूक जिसमें चीजें रखने के लिये खाने या दर बने रहते हैं और बंद करने के लिये पल्ले होते हैं। कभी कभी दीवार खोदकर और नीचे ऊपर तख्ते जोड़कर भी अलमारी बना दी जाती है। बड़ी भंडरिया।

अलमास—संज्ञा पुं० [फा०] हीरा।

अलय¹—वि० [स०] बिना घरवाला। चलता फिरता। जिसका नाश न हो [को०]।

अलय²—संज्ञा पुं० १ लय न होने का भाव। अनित्यता। २ जन्म। उत्पत्ति [को०]।

अलर्क—संज्ञा पुं० [स०] १. पागल कुत्ता। २ सफेद आक या मदार। ३ एक प्राचीन राजा जिसने एक अंधे ब्राह्मण के माँगने पर अपनी दोनों आँखें निकालकर दे दी थीं। ४ शूकर जैसा एक आठ पैरोंवाला जंतु [को०]। ५ एक तरह का कीड़ा [को०]।

अलल(पु)†—क्रि० वि० [अ० अलामाला] इधर उधर। उ०—सँभनत बअलमर साहुलि समलि। आलूदा ठाकुर अलल।—बेलि०, दू० ११३।

अललटप्पू—वि० [देश०] अटकलपच्चू। बेठिकाने का। अंडबंड।

अललबछेड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० अल्हड़ + बछेड़ा] १ घोड़े का जवान बच्चा। २ अल्हड़ आदमी। वह व्यक्ति जिसे कुछ अनुभव न हो।

अललहिसाब—क्रि० वि० [अ०] बिना हिसाब किए हुए [को०]।

क्रि० प्र०—देना।

अललाना—क्रि० अ० [सं० अर् = बोलना] तेज चिल्लाना। गला फाड़कर बोलना।

अलल्ल(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अलल्ल'।

अलल्ल(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अलल्लाँ'।

अलल्लाँ—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ा (डिं०)।

अलवाँत—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अलवाँती'।

अलवाँती—वि० स्त्री० [स० बालवती] (स्त्री) जिसके बच्चा हुआ हो। प्रसूता। जच्चा।

अलवाई—वि० स्त्री० [स० बालवती, हिं० अलवाँती] (गाय या भैंस) जिसको बच्चा जने एक दो महीने हुए हों। 'बाखरी' का उलटा।

अलवान—संज्ञा पुं० [अ०] पशमीने की चादर। ऊनी चादर।

अलवाल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आलवाल'।

अलविदा¹—अव्य० [अ० अल + विदाअ] विदा होते समय कहा जानेवाला शब्द।

अलविदा²—संज्ञा स्त्री० रमजान के महीने का अंतिम शुक्रवार।

अलस¹(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आलस्य'। उ०—चारि जाम जु निसि उनींदे, अलस बसहि जम्हात।—सूर०, १०।२६७६।

अलस²—वि० [स०] आलस्ययुक्त। आलसी। सुस्त। मंद। निरुद्योगी। उ०—बदन मिटाए तन अनिंही अलस मन नागरी की पीक लीक लागी है कपोलो।—सूर०, १०।२५०७।

अलस³—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाँव का एक रोग जिसमे पानी से भीगे रहने या गदे कीचड मे पडे रहने के कारण उँगलियो के बीच का चमडा सडकर सफेद हो जाता है और उसमे खाज और पीडा होती है। खरवात। कदरी। २ एक जहरीला छोटा जतु [को०]। ३ एक तरह का पौधा [को०]।

अलसई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आलस्य] अलसता। उ०—कुभकरन को रन ह्वयो गह्यो अलसई आइ। सिर चढि श्रुति नासा हसत जु न रोक्यो हरिराइ।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ७५।

अलसक—संज्ञा पुं० [सं०] अजीर्ण रोग का एक भेद।

अलसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हसपदी लता। लज्जालू। लाल फूल की लज्जावती।

अलसाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अलस] अलसता। सुस्ती। उ०—लटपटी पाग, अलक जो बिथुरी, बात कहत आवत अलसाई।—सूर०, १०।२६४०।

अलसान(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलसानि'।

अलसाना—क्रि० अ० [सं० अलस] आलस्य मे पडना। क्लात होना। शिथिलता अनुभव करना। उ०—(क) बन मोहन दोऊ अलसाने।—सूर०, १०।२३०। (ख) कबहुँ नैन अलसात जानि कै, जल लै पुनि पुनि धोवति।—सूर०, १०।२४९८।

अलसानि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आलस्य] आलस। सुस्ती। उ०—(क) आँखिन मे अलसानि, चितौन मे मजु विलासन की सरसाई।—मतिराम (शब्द०)। उ०—(ख) चिता जूँभ उनीदता विह्वलता अलसानि। लह्यो अभागिनि हौं अली, तैहूँ गहै सु बानि।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १४।

अलसि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आलस्य'। उ०—बढै अलसि जिय माँहि बैर मैं कहा जु पावो।—हम्मीर रा०, पृ० ५६।

अलसी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अतसी] एक पौधा और उसका फल या बीज। तीसी।

विशेष—यह पौधा प्राय दो ढाई फुट ऊँचा होता है। इसमे डालियाँ बहुत कम होती हैं, केवल दो या तीन लबी, कोमल और सीधी टहनियाँ छोटी छोटी पत्तियो से गुछी हुई निकलती हैं। इसमे नीले और बहुत सुदर फूल निकलते हैं जिनके झडने पर छोटी घुडियाँ बँधती हैं। इन्ही घुडियो मे बीज रहते हैं जिनसे तेल निकलता है। यह तेल प्राय जलाने और रगसाजी तथा सीसों के छापे की स्याही बनाने के काम मे आता है। बहुत से स्थानो पर साग,भाजी आदि मे भी इसका प्रयोग होता है। छापने की स्याही भी इसकी मिलावट से बनती है। इसको पकाकर गाढा करके एक प्रकार का वारनिश भी बनता है। तेल निकालने के बाद अलसी की जो सीठी बचती है उसे खरी, खली कहते हैं। यह खली गाय को बहुत प्रिय है। अलसी या अलसी की खली को पीसकर उसकी पुलटिस बाँधने से सूजन बैठ जाती है, कच्चा फोडा शीघ्र पककर बह जाता है तथा उसकी पीडा शात हो जाती है।

अलसी²(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आलसी'। उ०—राम सुभाव सुने तुलसी हुलसै अलसी हम से गलगाजे।—तुलसी ग्र०, पृ० १६८।

अलसेट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अलस+हिं० एट (प्रत्य०)] [वि० अलसेटिया] १. ढिलाई। व्यर्थ की देर। २ टालमटूल। भुलावा। चकमा। उ०—महरि गोद लैबे लगी करि बातन अलसेट।—व्यास (शब्द०)। ३. बाधा। अडचन।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

अलसेटिया(पु)—वि० [हिं० अलसेट+इया (प्रत्य०)] १ ढिलाई करनेवाला। व्यर्थ की देर करनेवाला। २ अडचन डालनेवाला। बाधा उपस्थित करनेवाला। टालमटूल करनेवाला।

अलसौंहा(पु)†—वि० [सं० अलस+हिं० औहाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० अलसौंही] आलस्ययुक्त। क्लात। शिथिल। उ०—सही रँगीले रति जगैं, जगी पगी सुख चैन। अलसौहैं सौंहैं किएँ, कहैं हँसौहैं नैन।—बिहारी र०, दो० ५११।

अलह(पु)—संज्ञा पुं० [अ० अल्लाह] अल्लाह। ईश्वर। खुदा। उ०—मुलतान जलाल सिकदर जाया। मुलतान। साहबदीन अलह उपाया। पृ० रा०, ६६।१४०।

अलह(पु)²—वि० [सं० अ+लभ्] व्यर्थ। वृथा। अलभ्य। उ०—गाजै जलहर गयण मे जाय अलह तै जोह।—बाँकीदास ग्र०, भा० १, पृ० ३०।

अलहदगी—संज्ञा स्त्री० [अ० अलाहदह्+फा० गी (प्रत्य०)] अलग होने का भाव। अलगाव। विलगाव।

अलहदा—वि० [अ० अलाहदह्] जुदा। अलग। पृथक।

अलहदी†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अहदी'। उ०—'कर्तव्यशून्य स्वभाव अलहदी बन गया'। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१।

अलहन—संज्ञा स्त्री० [सं० अलभन] अभाग्य का उदय। विपत्ति। उ०—एकहि रितु सौं अत दुहुनि की अलहन आई।—रत्नाकर भा० २, पृ० ४८।

अलहना(पु)†—वि० [सं० अ+लभन] न पानेवाला। उ०—जे गुणमना अलहणा गौरव नहइ भूजन।—कीर्ति०, पृ० ३४।

अलहनियाँ—संज्ञा पुं० [हिं० अलहन] जो कोई काम न कर सकता हो। अकर्मण्य। अहदी।

मु०—अपने अलहनियाँ आन के गडा पूरे=अपना काम न संभालकर दूसरे का काम करनेवाला।

अलहा—वि० [सं० अलभ्य] अलभ्य। जो प्राप्त न हो। उ०—अगहा गहणा, अकहा कहणा, अलहा लहणा तहँ मिलि रहणा।—दादू०, पृ० ५१६।

अलहिया—संज्ञा स्त्री०[हिं० आल्हा] एक रागिनी जिसमे सब कोमल स्वर लगते हैं। हिंडोल राग की स्त्री और दीपक की पुत्रवधू। इसका व्यवहार करुण रस प्रकट करने मे अधिक होता है।

अलहैरी—संज्ञा पुं० [अ०] एक जाति का अरबी ऊँट जिसके एक ही कूबड होता है और जो चलने मे बहुत तेज होता है।

अलाई¹—वि०[सं० अलस] [वि० स्त्री० अलाइन] आलसी। काहिल।

अलाई²—वि० [हिं०] अलाउद्दीन संबंधी। अलाउद्दीन का, जैसे—अलाई दरवाजा, अलाई मोहर (शब्द०)।

अलाई³—संज्ञा पुं० [देश० अलन्न] घोडे की एक जाति।

अलागलाग—संज्ञा पुं० [हिं० लाग=लगाव] नृत्य या नाचने का एक ढग।

अलात—संज्ञा पुं० [सं०] १ अंगार। २ जलती हुई लकड़ी। लुआठी।

अलातचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ जलती हुई लकड़ी या लुक को जल्दी जल्दी घुमाने से बना हुआ मंडल। उ०—मनु फिर रहे अलात-चक्र से उस घन तम में।—कामायनी, पृ० २००। २ बनैठी। ३ गतिभेदानुसार एक प्रकार का नृत्य या नाच।

अलान—संज्ञा पुं० [सं० आलान] [स्त्री० अलानी] १ हाथी बाँधने का खूँटा। २ हाथी बाँधने का सिक्कड़। उ०—नवगयदु रघु-बीर मनु राजु अलान समान।—मानस, २।५१। ३. बंधन। बेड़ी। ४. लता या बेल चढ़ाने के लिये गाड़ी हुई लकड़ी।

अलाना†—क्रि० अ० [सं०√अर्=बोलना] चिल्लाना। गला फाड़कर बोलना। अललाना।

अलानाहक़ां—अव्य [फ़ा० नाहक़] बिना मतलब। बेमतलब।

अलानिया—क्रि० वि० [अ० अलानियह्] उन्मुक्त रूप से। प्रकट रूप से। खुल्लम खुल्ला। सबके सामने [को०]।

अलाप(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आलाप'। उ०—आदर अलाप छाँड़ि आगे तें अनखि उठी, मेरे मुहँ एक बोल आकरो सो आइगो। गंग ग्रं०, पृ० ७८।

अलापना—क्रि० अ० [सं० आलापन] १ बोलना। बातचीत करना। २ सुर खींचना। तान लगाना। उ०—अधर अनूप मुरलि सुर पूरत गौरी राग अलापि बजावत।—सूर०, १०।१३६८। ३. गाना।

अलापी(पु)—वि० [सं० आलापिन्] बोलनेवाला। शब्द निकालनेवाला। उ०—नृत्यत कलापी भिल्ली पिक हैं अलापी विरहीजन बिलापी हैं मिलापी रसरास मैं।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० २८।

अलाबू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लौकी। कद्दू। २. तूँबा।

अलाभ—संज्ञा पुं० [सं०] लाभ का अभाव। नुकसान। उ०—दुख सुख, लाभ अलाभ समुझि तुम, कतहि मरत हौ रोइ।—सूर०, १।२६२।

अलाम(पु)—वि० [अ० अल्लामह्=चतुर] जिसकी बात का कोई ठिकाना न हो। बात बनानेवाला। मिथ्यावादी।

अलामत—संज्ञा पुं० [अ०] १ लक्षण। निशान। चिह्न। उ०—बहुत रोने रुसवा कर दिखाया। न चाहत की छुपी हमसे अलामत।—शेर०, भा० १, पृ० ११६। २. पहचान।

अलामत मलामत—संज्ञा स्त्री० [अ०मलामत] डाँट डपट। भर्त्सना। क्रि० प्र०—करना।

अलायक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+अ० लायक] नालायक। अयोग्य। उ०—(क) अगुन अलायकु आलसी जन अधन अनेरो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुर स्वारथी अतीस अलायक निठुर दया चित नाही।—तुलसी ग्रं० पृ० ५२२।

अलार¹—संज्ञा पुं० [सं०] कपाट। किवाड़।

अलार²(पु)—[सं० अलात] अलाव। आग का ढेर। अँवाँ। भट्ठी। उ०—तान आनि परी कान वृषभानु नंदिनी के तच्यो उर प्रान पच्यो विरह अलार है।—रघुनाथ० (शब्द०)।

अलार्म—संज्ञा पुं० [अं० एलार्म] खतरे की सूचना। खतरे का बिगुल [को०]।

मुहा०—अलार्म बजना=खतरे की घंटी या बिगुल बजना।

अलार्म घड़ी—संज्ञा स्त्री० [अं० एलार्म+सं० घटी] जागरन घड़ी। जगानेवाली घड़ी।

अलाल(पु)—वि० [सं० अलस] १ आलसी। सुस्त। काहिल। २ अकर्मण्य। निकम्मा। उ०—ऐसे अधम अलाल को कीन्हो आप निहाल।—रघराज (शब्द०)।

अलाव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अलात=अंगार] आग का ढेर। जाड़े के दिनों में घास, फूस, सूखी पत्तियों और कंडों से जलाई हुई आग जिसके चारों ओर बैठकर गाँव के लोग तापते हैं। कौड़ा।

अलावज—संज्ञा पुं० [सं० आलाप+वाद्य] १. एक प्रकार का पुराना बाजा जो चमड़ा मढ़कर बनाया जाता था।

अलावनी—संज्ञा स्त्री० [सं० आलापिनी] एक पुराना बाजा जो तार से बनाया जाता था।

अलावलसाही—वि० [हिं० अलावल=अलाउद्दीन+साही] अलाउद्दीन शाह संबंधी।

अलावा—क्रि० वि० [अ० अलावह्] सिवाय। अतिरिक्त।

अलास—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें जीभ के नीचे का भाग सूज कर पक जाता है और दाढ़ तन जाती है।

अलास्य—वि० [सं०] नृत्य न करनेवाला। सुस्त [को०]।

अलाहदी—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अलहदा'। उ०—कवि ठाकुर देखौ विचार हिये, कुछ ऐसी अलाहदी राह सी है।—ठाकुर०,पृ०१०।

अलिंग¹—वि० [सं० अलिङ्ग] १ लिंगरहित। बिना चिह्न का। जिसका कोई लक्षण न हो। २ जिसका ठीक ठीक लक्षण निर्धारित न हो सके। जिसकी कोई पहचान बतलाई न जा सके। ३. बुरे लक्षण या चिह्नवाला [को०]।

अलिंग²—संज्ञा पुं० १. व्याकरण में वह शब्द जो दोनों लिंगों में व्यव हृत हो, जैसे हम, तुम, मैं, वह, मित्र। २ वेदांत। ईश्वर। ब्रह्म। ३ चिह्न या लक्षण का अभाव [को०]।

अलिंगन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आलिङ्गन] दे० 'आलिंगन'। उ०—कंठ लगाइ लेत पुनि ताही। देत अलिंगन रीझन जाही।—सूर०, १०।११६४।

अलिंगी¹—संज्ञा पुं० [अलिङ्गिन्] लिंग या परिचायक चिह्नों से रहित साधु [को०]।

अलिंगी²—वि० बिना लिंग या पहचान का।

अलिंजर—संज्ञा पुं० [सं० अलिञ्जर] पानी रखने के लिये मिट्टी का बरतन। झझर। घड़ा।

अलिंद¹—संज्ञा पुं० [सं०अलिन्द] १. मकान के बाहरी द्वार के आगे का चबूतरा या छज्जा। २. एक पुराना जनपद [को०]।

अलिंद(पु)²—संज्ञा पुं० [सं अलीन्द्र] भौंरा। उ०—कौन जानै कहा भयो सुंदर सबल स्याम टूटें गुन धनुष तुनीर तीर झरिगो। ...नीलकंज मुद्रित निहारि विद्यमान भानु सिंधु मकरंदहि अलिंद पान करिगो (शब्द०)।

अलिंपक—संज्ञा पुं० [सं० अलिम्पक] १. मेढक। २. कोकिल। ३. भौंरा। ४. मधुमक्खी। ५. महुवे का पेड़ [को०]।

अलि¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अलिनी] १. भौंरा। भ्रमर। उ०—रे अलि चपल, मोद रस लंपट कतहि बकत बेकाज।—सूर०

१०।३७४२। २ कोयल। ३. कौआ। ४ बिच्छू। ५ वृश्चिक राशि। ६ कुत्ता। ७ मदिरा।

अलि(पु)[2]--संज्ञा स्त्री० [स० आलि, आली] दे० 'अली'। उ०--कुँवर सो कुसल छेम अलि तेहि पल कुलगुरु कहँ पहुँचाई।--तुलसी ग्रं०, पृ० ३६२।

अलिक--संज्ञा पुं० [सं०] १ ललाट। कपाल। २ दे० 'अलि'। उ०--सुनि लोन लोचनी नवल निधि नेही की अलका की अलिक अलक लटकति है।--केशव ग्रं०, भा० १, पृ० २१०।

अलिखित--वि० [स०] १ जो लिखा न हो। २ मौखिक रूप से परंपराप्राप्त।

अलिगर्द--संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अलिगर्द्ध' [को०]।

अलिगर्द्ध--संज्ञा पुं० [सं०] पानी में रहनेवाला एक प्रकार का साँप [को०]।

अलिजिह्वा--संज्ञा स्त्री० [स०] गले की घाँटी। गले के भीतर का कौवा

अलित्त(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अलिप्त'। उ०--मरान वाल आसन। अलित्त साय सासन।पृ० रा०, ५७।११६।

अलिदूर्वा--संज्ञा स्त्री० [स०] एक पौधा। मालादूर्वा [को०]।

अलिनी--संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रमरी। उ०--गिरा अलिनि मुखपंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी।--मानस १।२५६।

अलिपक--संज्ञा पुं० [स०] १ भौंरा। २ कोयल। ३ कुत्ता।

अलिपत्रिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] बिछुआ घास।

अलिपर्णी--संज्ञा स्त्री० [स०] अलिपत्रिका। बिछुआ घास [को०]।

अलिप्त--वि० [सं०] जो लिप्त न हो। निर्लिप्त। उ०--रहकर भी जल जाल में तू अलिप्त अरविंद।--साकेत, पृ० २६४।

अलिप्रिय--संज्ञा पुं० [स०] अरुणकमल। लाल कमल [को०]।

अलिमक--संज्ञा पुं० [सं०] १ कोयल। २ मेढक। ३ कमल का केसर [को०]।

अलिमोदा--संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियारी नामक पौधा [को०]।

अलियल(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अलिकुल, प्रा० अलिउल] (अलिसमूह) भ्रमरगण। उ०--अलियल बाज करत नह, गयंद कपोलाँ गान।--बाँकीदास ग्रं०, भा० १, पृ० ३१।

अलियाँ--संज्ञा स्त्री० [स० आलय] १ एक प्रकार की खारी। २ वह गड्ढा जिसमें कोई वस्तु रखकर ढँक दी जाय।

अलिवल्लभ--संज्ञा पुं० [स०] लाल कमल [को०]।

अलिविरुत--संज्ञा पुं० [सं०] भौंरों की गूँज [को०]।

अली(पु)[1]--संज्ञा स्त्री० [स० आली] १ सखी। सहचरी। सहेली। उ०--येहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हिय हरषी अली।--मानस, १।२३६। २ श्रेणी। पंक्ति। कतार।

अली[2]--संज्ञा पुं० [सं० अलिन्] [स्त्री० अलिनी] १. भौंरा। उ०--अली कली ही सौं बँध्यो, आगे कौन हवाल।--बिहारी र०, दो० ३८। २ बिच्छू [को०]।

अलीक[1]--वि० [सं०] १ बेसिर पैर का। मिथ्या। झूठा। उ०--(क) सोई रावनु जग विदित प्रतापी। सुनेहि न स्रवनअलीक प्रलापी।--मानस ६।२५। (ख) अनख भरी सुनि अनिन की वचन अलीक अमान।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ०४८। २ अमान्य। अप्रिय [को०]। ३. अल्प। थोड़ा [को०]।

अलीक[2]--संज्ञा पुं० १ नापसंद या असत्य चीज। २ ललाट। ३ स्वर्ग। आकाश। ४. दुःख [को०]।

अलीक[3]--संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+हिं० लीक] अप्रतिष्ठा।

अलीक[4]--वि० मर्यादारहित। अप्रतिष्ठित।

अलीकी--वि० [सं० अलीकिन्] १ नापसंद। अप्रिय। २ असत्य [को०]।

अलीगर्द--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अलिगर्द्ध' [को०]।

अलीगर्द्ध--संज्ञा पुं० दे० 'अलिगर्द' [को०]।

अलीजा(पु)--वि० [अ० आलीजाह] बहुत सा। अधिक। बुलंद। उ०--मोम महावर सूनी तीजा। अकरकरा अजमोद अलीजा।--सूदन (शब्द०)। २ दे० 'आलीजाह'।

अलीन[1]--संज्ञा पुं० [सं० आलीन=मिला हुआ] १ द्वार के चौखट की खड़ी लंबी लकड़ी जिसमें पल्ला या किवाड़ जड़ा जाता है। साह। बाजू। २ दालान या बरामदे के किनारे का खंभा जो दीवार से सटा होता है। इसका घेरा प्रायः आधा होता है।

अलीन[2]--वि० [सं० अ=नहीं+लीन=रत] १ अग्राह्य। अनुपयुक्त। उ०--'हे सखा! पुरुवंशियों का मन अलीन वस्तु कभी नहीं जाता'।--शकुंतला०, पृ० ३४। २ अनुचित। बेजा। उ०--अरि दलयुक्त आप दलहीना। करि बैठे कछु कर्म अलीना।--सबल (शब्द०)।

अलीपित(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अलिप्त'।

अलीवद--संज्ञा पुं० [अ० अली+फा० बंद] एक प्रकार का आभूषण। एक प्रकार का बाजूबंद।

अलील--वि० [अ०] बीमार। रुग्ण।

अलीह(पु)--वि० [सं० अलीक] मिथ्या। असत्य। उ०--कान मूदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं भ्रेट बात अलीहा।--मानस ६।४८।

अलु--संज्ञा पुं० [स०] एक छोटा जलपात्र [को०]।

अलुक्--संज्ञा पुं० [स०] व्याकरण में समास का एक भेद जिसमें बीच की विभक्ति का लोप नहीं होता। जैसे--सरसिज, मनसिज, युधिष्ठिर, कर्णेजय, अगदकर, असूर्यपश्या, विश्वंभर।

अलुक्क(पु)--वि० [सं० अ=नहीं+प्रा० लुक्क=छिपना] न छिपनेवाला। उ०--अलुक्क लुक्क मान की कला अचुक्क धारही।--पद्माकर ग्रं०, पृ० २८३।

अलुज्झना(पु)--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अलुझना'। उ०--खप्परन्हि खग अलुज्झि जुज्झहि सुभट भटन ढहावहीं।--मानस, ६।७८।

अलुझना(पु)--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरुझना' और 'उलझना'।

अलुटना(पु)--क्रि० अ० [स०√लुठ्=लोटना, लड़खड़ाना] लड़खड़ाना। गिरना पड़ना। उ०--चले जात अलह मग, लागे बाग दीठि पर्यो, करि अनुराग हरि सेवा विस्तारियै। पकि रहे आम माँगे माली पास भोग लिए, कहो लीजै, कही झुकि आई सब डारियै। चल्यौ दौरि राजा जहाँ, जाइकै सुनाई बात, गात भई प्रीति, अलुटत पाँव धारियै।--प्रिया (शब्द०)।

अलुमीनम--संज्ञा पुं० [अं० एलुमीनियम] एक धातु जो कुछ कुछ नीलापन लिए सफेद होती है और अपने हल्केपन के लिये

प्रसिद्ध है। इसके बरतन बनते हैं। इसमें रखने से खट्टी चीजें नहीं बिगड़ती।

अलूक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उलूक'। उ०—सारस्म चिल्ह चात्रिग अलूक।—पृ० रा०, ६१।१६७।

अलूप(पु)—वि० [सं० लुप = अभाव] लुप्त। गायब। उ०— ससि औ सूर जो नर्मल तेहि ललाट की रूप। निसि दिन चलहिं न सरवरि पावैं तपि तपि होहिं अलूप।—जायसी (शब्द०)।

अलूफा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलोप'। उ०—सुखमन के घर तारी लाओ ग्रमी अलूफा पाओगा।—गुलाल०, पृ० ५५।

अलूला(पु)—संज्ञा पु० [हिं० बुलबुला बलूला ?] बुलबुला। भभूका। लपट। उद्गार। उ०—बानर बदन रुधिर लपटाने छवि के उठत अलूले। रघुपति रन प्रताप रन सरवर, मनहुँ कमल कुल फूले।—हनुमान (शब्द०)।

अलेख[1]—वि०[सं०] १ जिसके विषय में कोई भावना न हो सके। दुर्बोध। अज्ञेय। उ०—अगुन अलेख अमान एक रस। राम सगुन भए भक्त प्रेम बस।—तुलसी (शब्द०)। २ जिसका लेखा न हो सके। बेहिसाब। बेअंदाज। अनगिनत। बहुत अधिक। उ०—जोग यज्ञ जप ध्यान अलेख। तीरथ फिरे घरे बहु भेख।—कबीर (शब्द०)।

अलेख[2](पु)—वि० [सं० अलक्ष्य] अदृश्य। उ०—सितासित अरुनारे पानिप के राखिबे को, नीरय के पति हैं अलेख लखि हारे हैं। —भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ३९।

अलेख[3](पु)—संज्ञा पु० [सं० लेख = देवता] देवता। देव। उ०—सजि निय नरमेपनि सहित अलेखनि करहिं असेषनि गानन को।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २२९।

अलेखा(पु)—वि० [सं० अलेख] १ जो गिना न जा सके। बेहिसाब। २ व्यर्थ। निष्फल। उ०—सूरदास यह मति आए बिन सब दिन गए अलेखे। का जानैं दिनकर की महिमा अंध नैन बिन देखे।—सूर०, २।२५।

अलेखी(पु)[1]—वि० [सं० अलेख] गड़बड़ मचानेवाला। अंधेर करनेवाला। अन्यायी। उ०—बड़े अलेखी लखि परे परिहरे न जाहीं। असमंजस मो मगन हौं लीजै गहि बाहीं।—तुलसी (शब्द०)।

अलेखी[2]—वि० [सं० अ + लेख्य] जो लिखी न गई हो या जिसका लेखा न हो। उ०—लेखी मैं अलेखी मैं नहीं है छवि ऐसी औ, असमसरी ममसरी दीबे कों परैं नियैं।—भिखारी० ग्र० भा० २, पृ० १८९।

अलेपक[1]—वि०[सं०] किसी भी चीज में लीप्त न होनेवाला। निर्लिप्त निष्कलुष। बेदाग [को०]।

अलेपक[2]—संज्ञा पु० परमात्मा। ब्रह्म।

अलेपा(पु)—वि०[हिं०] दे० 'अलेपक'। उ०—सर्व निवासी सदा अलेपा तोही मग समाई।—संतबाणी०, भा० २, पृ० ४९।

अलेल(पु)—वि० [प्रा० अलिल्लह = अप्रयोज्य अर्थात् प्रयोजन से अधिक] बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—घनआनंद खेन अलेल दसैं बिलसैं, सुलसैं लट भूमि भुलि।—घनआनंद, पृ० १५९।

अलेलहा—वि० [हिं०] दे० 'अलेल'।

अलेव(पु)—वि० [हिं०] अलेप। अलिप्त। उ०—सुने अचमो सो नगै सहजो ब्रह्म अलेव। —सहजो०, पृ० ४६।

अलैया—संज्ञा स्त्री० [हिं० अलहिया] एक रागिनी। वि० दे० 'अलहिया'।

अलोइ(पु)—वि० [सं० अलौकिक] अलौकिक। इस लोक से भिन्न। उ०—जपि राज दुजराज सम। तुम मति रूप अलोइ।—पृ० रा०, २५।१५३।

अलोक[1]—वि० [सं०] १ जो देखने में न आए। अदृश्य। २ लोक शून्य। निर्जन। एकांत। ३ पुण्यहीन।

अलोक[2]—संज्ञा पु० १ पातालादि लोक। परलोक। २ जैन शास्त्रानुसार वह स्थान जहाँ आकाश के अतिरिक्त धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय आदि कोई द्रव्य न हो और जिसमें मोक्षगामी के सिवा और किसी की गति न हो। (पु) ३ बिना देखी बात। मिथ्यादोष। कलंक। निंदा। उ०—(क) लक्ष्मण सीय तजी जब ते बन। लोक अलोकन पूरि रहे तन।—रामच०, पृ० १८१। (ख) पुत्र होइ कि पुत्रिका यह बात जानि न जाइ। लोक लोकन मैं अलोक न लीजिये रघुराइ।—रामच०, पृ० १६४। ४ संसार का विनाश [को०]।

यौ०—अलोक सामान्य = अद्वितीय। असामान्य।

अलोक[3](पु)—संज्ञा पु० [सं० आलोक] दे० 'आलोक'।

अलोकन—संज्ञा पु० [सं०] अदृश्यता। न दिखाई पड़ना [को०]।

अलोकना(पु)—क्रि० स० [सं० आलोकन] देखना। ताकना। उ०—रचक दीठि को मार लहे बहु बार बिलोकनि ईठि अनैसी। टूटिहै लागिहै लोक अलोकत वै हठ छूटिहै जूटिहै कैसी।—केशव (शब्द०)।

अलोकनीय—वि० [सं०] जो दीख न पड़े। अदृश्य [को०]।

अलोकित—वि० [सं०] अदेखा। बिना देखा हुआ [को०]।

अलोकी(पु)—वि० [हिं० अलोक = निंदा + ई (प्रत्य०)] निंदित। कलंकी। बदनाम। उ०—भ्रमै सभ्रमी, यत्र शोकै सशोकी अधर्मै अधर्मी अलोकै अलोकी।—रामच०, पृ० १५८।

अलोक्य—वि० [सं०] १ जो स्वर्ग दिलानेवाला न हो। अस्वर्ग्य। २ बुरे स्वभाववाला। क्रूर प्रकृति का [को०]।

अलोचन—वि० [सं०] १ जिसे आँख न हो। २ बिना खिड़की या झरोखावाला [को०]।

अलोना—वि० [सं० अलवण] [वि० स्त्री० अलोनी] १ बिना नमक का। जिसमें नमक न पड़ा हो। उ०—कीरति कुल करतूति भूति भलि सील सरूप सलोने। तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने।—तुलसी ग्र०, पृ० ५४६। २ जिसमें नमक न खाया जाय, जैसे—'रविवार को बहुत लोग अलोना व्रत रखते हैं'। ३ फीका। स्वादरहित। बेमजा। उ०—केसोदास बोले बिन, बोल के सुने बिना हू हिलन मिलन बिना मोह क्यों सरतु है। कौ लग अलोनो रूप प्याय प्याय राखौं नैन, नीर बिना मीन कैसे धीरज धरतु है।—केशव (शब्द०)।

अलोप(पु)—वि० [सं० लोप] दे० 'लोप'। उ०—अलोप टोप नै नगोर साह चोर सों धरै।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८४।

अवकृपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपा का अभाव। नाखुशी। उदासीनता।

अवकृष्ट[1]—वि०[सं०]१ दूर किया हुआ। निकाला हुआ। २ निगलित। नीचे उतारा हुआ। ३. नीच। नीच जाति का।

अवकृष्ट[2]—संज्ञा पुं० घर मे झाड़ू लगानेवाला। दास।

अवकेश—वि० [सं०] लटकते हुए बालोंवाला [को०]।

अवकेशी[1]—वि० [सं० अवकेशिन्] १. फल न देनेवाला। २ लघ या अल्प बालोंवाला [को०]।

अवकेशी[2]—संज्ञा पुं० फलहीन वृक्ष [को०]।

अवकोकिल—वि० [सं०] कोयल की आवाज से आकर्षित [को०]।

अवक्खन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवेक्षण] देखना।

अवक्तव्य—वि०[सं०] १ न कहने योग्य। २ निषिद्ध। ३ अश्लील। ४ मिथ्या। झूठ।

अवक्त्र—वि० [सं०] जो खुला न हो। बिना मुँह का—जैसे, बरतन या फोड़ा [को०]।

अवक्रंद—वि० [सं० अवक्रन्द] दे० 'अवक्रंदन'।

अवक्रंदन—संज्ञा पुं० [सं० अवक्रन्दन] ऊँचे स्वर मे रोना [को०]।

अवक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १ उतराव। नीचे की ओर उतरना।

अवक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे की तरफ उतरना। २ बौद्ध और जैन धर्म के मतानुसार गर्भ मे आना [को०]।

अवक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. बदला। २ मूल्य। दाम। ३. भाड़ा। किराया। ४ कर।

अवक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अवक्रान्ति] १. अधोगमन। उतार। गिराव। २ झुकाव।

अवक्रीतक[1]—वि० [सं०] माँगकर लिया हुआ। मँगनी लिया हुआ।

विशेष—अवक्रीतक वस्तु न लौटानेवाले के लिये याचितक के समान ही दंडविधान था।

अवक्रीतक[2]—संज्ञा पुं० किराए या भाड़े पर लिया हुआ मान।

अवक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्कश स्वर। असह्य कड़ी बोली। २ कोसना। गाली। ३. निंदा।

अवक्लिन्न—वि० [सं०] आर्द्र। गीला। तर। भीगा हुआ।

अवक्लेद—संज्ञा पुं० [सं०] जलस्राव [को०]।

अवक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] क्षय। नाश। हानि [को०]।

अवक्षिप्त—वि०[सं०]१ गिरा हुआ। २ जिसकी निंदा की गई हो। जिसपर लांछन लगाया गया हो।

अवक्षुत—वि० [सं०] जिसपर छींक पड़ गई हो।

अवक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १ आपत्ति। २. आरोप [को०]।

अवक्षेपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवक्षिप्त) १ गिराना। अधःपात करना। नीचे फेंकना।

विशेष—वैशेषिक शास्त्र मे यह अपक्षेपण, आकुंचन आदि पाँच कर्मों या क्रियाओं मे से एक है।

२ आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्रकाश, तेज या शब्द की गति मे उनके किसी पदार्थ मे होकर जाने मे वक्रता का होना। ३ निंदा करना(शब्द०)। ४ पराभूत। करना या पछाड़ना [को०]।

अवक्षेपणी—संज्ञा स्त्री० (सं०) बाग। लगाम [को०]।

अवखंडन—संज्ञा पुं० [सं० अवखण्डन] १. नष्ट करना। तोड़ फोड़ करना। २. खंड खंड या अलग अलग तोड़ना [को०]।

अवखात—संज्ञा पुं० [सं०] गहरा गड्ढा।

अवखाद—संज्ञा पुं० [सं०] अपवित्र या खराब भोजन। २ अनुपयुक्त नैवेद्य [को०]।

अवगंड—संज्ञा पुं० [सं० अवगण्ड] चेहरे या गालों पर होनेवाली फुड़िया या फुंसी। मुँहासा [को०]।

अवगण—वि०[सं०]१ स्वजनों से अलग रहनेवाला। एकांतवासी [को०]

अवगणन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवगणित] १ निंदा। तिरस्कार। अपमान। २ नीचा देखना। पराभव। पराजय। हार। ३ गिनती।

अवगणना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अवगणन'।

अवगणित—वि० [सं०] १ निंदित। तिरस्कृत। अपमानित। २. नीचा देखा हुआ। पराजित। ३ गिना हुआ।

अवगत—वि० [सं०] १ विदित। ज्ञात। जाना हुआ। उ०—"वह मुझे भली भाँति अवगत है"।—चंद्र०, पृ० २१५।

क्रि० प्र०—होना = मालूम होना। जान पड़ना।

२ नीचे गया हुआ। गिरा हुआ। ३ वादा किया हुआ [को०]।

अवगतना(पु)—क्रि० स० [सं० अवगत + हिं० ना (प्रत्य०)] [प्रे० रूप, अवगताना] सोचना। समझना। विचारना। उ०—मास मास नहिं करि सकै छठैं मास अलबत्ति।—यामैं ढील न कीजिये कबीर अवगति।—कबीर (शब्द०)।

अवगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुद्धि। धारणा। समझ। २ कुगति। नीच गति। ३ निश्चयात्मक ज्ञान।

अवगय—वि० [सं०] प्रातःस्नात। तड़के नहाया हुआ [को०]।

अवगनना(पु)†—क्रि० अ० [सं० अवगणन] १ निंदा करना। तिरस्कार करना। २ तुच्छ समझना। कम या घटिया समझना। ३ कम मूल्य या महत्व आँकना या लगाना।

अवगम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवगमन' [को०]।

अवगमन—संज्ञा पुं० [सं०] देख सुनकर किसी बात का अभिप्राय जान लेना। जानना समझना। २ दे० 'अवगति'।

अवगर(पु)—वि० [सं० अवग्रह = ज्ञान] [वि० स्त्री० अवगरी] ज्ञान या समझबूझवाला।

अवगलित—वि० [सं०] नीचे गिरा हुआ [को०]।

अवगहना—क्रि० स० [सं० अवगाहन] थहाना। थाह लेना।

अवगाढ—वि० [सं० अवगाढ] १ निबिड़। छिपा हुआ। २ प्रविष्ट। घसा हुआ। निमग्न। ३ नीचा। गहरा [को०]। ४ जमता या गाढ़ा होता हुआ—जैसे, खून [को०]।

अवगाद—संज्ञा पुं० [सं०] नाव से पानी उलीचने के लिये काठ का एक छोटा पात्र [को०]।

अवगाधना(पु)—क्रि० [हिं०] दे० 'अवगाहना'।

अवगारना(पु)—क्रि० स० [सं० अव + गृ] समझाना। बुझाना। जताना। उ०—कहा कहत रे मधु मतवारे। हम जान्यो यह श्याम सखा है यह तो औरे न्यारे। सूर कहा याके मुख लागन कौन याहि अवगारे। —सूर० (शब्द०)।

अवकृपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपा का अभाव। नाखुशी। उदासीनता।

अवकृष्ट¹—वि०[सं०]१ दूर किया हुआ। निकाला हुआ। २ निगलित। नीचे उतारा हुआ। ३ नीच। नीच जाति का।

अवकृष्ट²—संज्ञा पुं० घर मे झाडू लगानेवाला। दास।

अवकेश—वि० [सं०] लटकते हुए बालोवाला [को०]।

अवकेशी¹—वि० [सं० अवकेशिन्] १ फल न देनेवाला। २ लघु या अल्प बालोंवाला [को०]।

अवकेशी²—संज्ञा पुं० फलहीन वृक्ष [को०]।

अवकोकिल—वि० [सं०] कोयल की आवाज मे आकर्षित [को०]।

अवक्खन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवेक्षण] देखना।

अवक्तव्य—वि०[सं०] १ न कहने योग्य। २ निषिद्ध। ३ अश्लील। ४ मिथ्या। झूठ।

अवक्त्र—वि० [सं०] जो खुला न हो। बिना मुँह का—जैसे, बरतन या फोडा [को०]।

अवक्रंद—वि० [सं० अवक्रन्द] दे० 'अवक्रंदन'।

अवक्रंदन—संज्ञा पुं० [सं० अवक्रन्दन] ऊँचे स्वर मे रोना [को०]।

अवक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १ उतराव। नीचे की ओर उतरना।

अवक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे की तरफ उतरना। २ बौद्ध और जैन धर्म के मतानुसार गर्भ मे आना [को०]।

अवक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १ बदला। २ मूल्य। दाम। ३ भाडा। किराया। ४. कर।

अवक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अवक्रान्ति] १ अधोगमन। उतार। गिराव। २ झुकाव।

अवक्रीतक¹—वि० [सं०] माँगकर लिया हुआ। मँगनी लिया हुआ।
विशेष—अवक्रीतक वस्तु न लौटानेवाले के लिये याचितक के समान ही दंडविधान था।

अवक्रीतक²—संज्ञा पुं० किराए या भाडे पर लिया हुआ माल।

अवक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्कश स्वर। असह्य कडी बोली। २ कोसना। गाली। ३ निंदा।

अवक्लिन्न—वि० [सं०] आर्द्र। गीला। तर। भीगा हुआ।

अवक्लेद—संज्ञा पुं० [सं०] जलस्राव [को०]।

अवक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] क्षय। नाश। हानि [को०]।

अवक्षिप्त—वि०[सं०]१ गिरा हुआ। २ जिसकी निंदा की गई हो। जिसपर लांछन लगाया गया हो।

अवक्षुत—वि० [सं०] जिसपर छींक पड गई हो।

अवक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १ आपत्ति। २. आरोप [को०]।

अवक्षेपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवक्षिप्त) १. गिराना। अधःपात करना। नीचे फेंकना।
विशेष—वैशेषिक शास्त्र मे यह अपक्षेपण, आकुंचन आदि पाँच कर्मो या क्रियाओं मे से एक है।
२ आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्रकाश, तेज या शब्द की गति मे उसके किसी पदार्थ मे होकर जाने से वक्रता का होना। ३ निंदा करना(शब्द०)। ४ पराभूत करना या पछाडना [को०]।

अवक्षेपणी—संज्ञा स्त्री० (सं०) बाग। लगाम [को०]।

अवखंडन—संज्ञा पुं० [सं० अवखण्डन] १ नष्ट करना। तोड फोड करना। २. खंड खंड या अलग अलग तोडना [को०]।

अवखात—संज्ञा पुं० [सं०] गहरा गड्ढा।

अवखाद—संज्ञा पुं० [सं०] अपवित्र या खराब भोजन। २ अनुपयुक्त नैवेद्य [को०]।

अवगंड—संज्ञा पुं० [सं० अवगण्ड] चेहरे या गालो पर होनेवाली फुडिया या फुंसी। मुँहाँसा [को०]।

अवगण—वि०[सं०]१ स्वजनो से अलग रहनेवाला। एकांतवासी [को०]

अवगणन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवगणित] १ निंदा। तिरस्कार। अपमान। २ नीचा देखना। पराभव। पराजय। हार। ३ गिनती।

अवगणना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अवगणन'।

अवगणित—वि० [सं०] १ निंदित। तिरस्कृत। अपमानित। २. नीचा देखा हुआ। पराजित। ३ गिना हुआ।

अवगत—वि० [सं०] १ विदित। ज्ञात। जाना हुआ। उ०—"वह मुझे भली भाँति अवगत है"।—चंद्र०, पृ० २१५।
क्रि० प्र०—होना = मालूम होना। जान पडना।
२ नीचे गया हुआ। गिरा हुआ। ३. वादा किया हुआ [को०]।

अवगतना(पु)—क्रि० स० [सं० अवगत + हिं० ना (प्रत्य०)] [प्रे० रूप, अवगताना] सोचना। समझना। विचारना। उ०—मास मास नहिं करि सकै छठै मास अलबत्ति।—यामें ढील न कीजिये कबीर अवगति।—कबीर (शब्द०)।

अवगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुद्धि। धारणा। समझ। २ कुगति। नीच गति। ३ निश्चयात्मक ज्ञान।

अवगथ—वि० [सं०] प्रातःस्नात। तडके नहाया हुआ [को०]।

अवगनना(पु)†—क्रि० अ० [सं० अवगणन] १ निंदा करना। तिरस्कार करना। २ तुच्छ समझना। कम या घटिया समझना। ३ कम मूल्य या महत्व आँकना या लगाना।

अवगम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवगमन' [को०]।

अवगमन—संज्ञा पुं० [सं०] देख सुनकर किसी बात का अभिप्राय जान लेना। जानना समझना। २ दे० 'अवगति'।

अवगर(पु)—वि० [सं० अवग्रह = ज्ञान] [वि० स्त्री० अवगरी] ज्ञान या समझबूझवाला।

अवगलित—वि० [सं०] नीचे गिरा हुआ [को०]।

अवगहना—क्रि० स० [सं० अवगाहन] थहाना। थाह लेना।

अवगाढ—वि० [सं० अवगाढ] १ निबिड। छिपा हुआ। २ प्रविष्ट। घसा हुआ। निमग्न। ३ नीचा। गहरा [को०]। ४. जमता या गाढा होता हुआ—जैसे, खून [को०]।

अवगाद—संज्ञा पुं० [सं०] नाव से पानी उलीचने के लिये काठ का एक छोटा पात्र [को०]।

अवगाधना(पु)—क्रि० [हिं०] दे० 'अवगाहना'।

अवगारना(पु)—क्रि० स० [सं० अव + गृ] समझाना। बुझाना। जताना। उ०—कहा कहत रे मधु मतवारे। हम जान्यो यह श्याम सखा है यह तो औरे न्यारे। सूर कहा याके मुख लागत कौन यांहि अवगारे।—सूर० (शब्द०)।

अवगास(पु)—संज्ञा पुं० [स० अवकाश, प्रा० ओगास] जगह। स्थान। मैदान। उ०—भए अवगास कांस बन फूले। कंत न फिरे बिदेसहिं भूले।—जायसी ग्रं०, पृ० ३५६।

अवगाह[1](पु)—वि० [स० अवगाध] १ अथाह। गहरा। अत्यत गभीर। उ०—(क) पेम समुद जो अति अवगाहा। जहाँ न वार न पार न थाहा।—जायसी ग्रं०,पृ० ६०। २ अनहोनी। कठिन। उ०—तोरेहु धनुष ब्याहुअ बगाहा। बिनु तोरे को कुँअरि बिआहा।—मानस, १।२४५।

अवगाह[2](पु)—संज्ञा पुं० १ गहरा स्थान। २ सकट का स्थान। ३ कठिनाई। उ०—दस्तगीर गाढ़े कई साथी। जँह अवगाह दीन्ह तहँ हाथी।—जायसी (शब्द०)।

अवगाह[3]—संज्ञा पुं० [सं०] १ भीतर प्रवेश। हलना। २ जल मे हलकर स्नान करना। ३ स्नान करने की जगह [को०]। ४ डोल या बालटी [को०]। ५. भलीभाँति अध्ययन या छानबीन [को०]।

अवगाहक—वि० [सं०] अवगाहन करनेवाला। उ०—अवगाहक सा उतर अचेतन के निस्तल मे।—रजत०, पृ० १८।

अवगाहन—संज्ञा पुं० [स०] १. पानी मे हलकर स्नान करना। निमज्जन। उ०—शीतल जल मे अवगाहन कर मौन शिला पर बैठ गया।—प्रेम०, पृ० ३१। प्रवेश। पैठ। ३ मथन। विलोडन। ४ थहाना। खोज। छानबीन। जैसे—नगर भर अवगाहन कर डाला, कही लडके का पता न लगा। ५ चित्त धँसाना। लीन होकर विचार करना। जैसे—खूब अवगाहन करो, तब इस श्लोक का अर्थ खुलेगा। वि० दे० 'अवगाह'।

अवगाहना[1]—क्रि० अ० [स० अवगाहन] १ हलकर नहाना। निमज्जन करना। उ०—जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिं देव सर सरित सराहहिं।—तुलसी (शब्द०)। २. डूबना। पैठना। धँसना। मग्न होना। उ०—भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही।—तुलसी (शब्द०)।

अवगाहना[2]—क्रि० स० १ थहाना। छानना। छानबीन करना। उ०—अवगाहन, सीतहि चाहन, यूथप यूथ सबै पठाए।—राम च०, पृ० ९०। (ख) सहज सुगधि शरीर की, दिसि विदिसन अवगाहि। दूती ज्यो आई लिये, केशव शूर्पनखाहि।—केशव (शब्द०)। २ विचलित करना। हलचल डालना। मथना। उ०—सुनहु सूत तेहि काल, भरत तनय रिपु मृतक लखि। करि उर कोप कराल, अवगाही सेना सकल।—केशव (शब्द०)। ३ चलाना। हिलाना। डुलाना। उ०—नद सोक विषाद कुसाग्र ग्रसे करि धीरहि तें अवगाहनो है। हित दीनदयाल महा मृदु है कठिनो अति अंत निबाहनो हैं।—दीन ग्रं० पृ० २५८। ४ सोचना। विचारना। समझना। उ०—(क) अर्गसिगार स्याम हित कीन्हे, वृथा होन ये चाहत। सूर स्याम आपै की नाहिं, मन मन यह अवगाहत।—सूर०, १०। २०२८। (ख) पच्छिम मे याही मे बडो है राजहंस एक सदा नीर छीर के विवेक अवगाहे ते।—दूलह (शब्द०)। ५ धारण करना। ग्रहण करना। उ०—जाही समय जौन ऋतु आवै। तवही ताको गुन अवगाहै।—लाल (शब्द०)।

अवगाहित—वि० [स०] १ नहाया हुआ। २ जिसमे नहाया गया हो। ३ अच्छी तरह मनन किया गया।

अवगाही—वि० [स० अवगाहिन्] १ खोजनेवाला। अनुसधान करनेवाला। २ चिंतन करनेवाला। ३ थाह लगानेवाला। गहरे तक पैठनेवाला। ४ स्नान करनेवाला [को०]।

अवगाह्य—वि० [स०] स्नान करने योग्य (प्राणी)। २ स्नान के निमित्त उचित (स्थान)। ३ अध्ययन, मनन करने योग्य [को०]।

अवगीत[1]—वि० [सं०] १ जिसकी निंदा की गई हो। निंदित। २ बदमाश। दुष्ट। फिर फिर देखा हुआ। सुपरिचित [को०]।

अवगीत[2]—संज्ञा पुं० १ निंदा। २ निंद्य या अभद्र गीत। बेसुरा गीत [को०]।

अवगुंठन—संज्ञा पुं० [स० अवगुण्ठन] [वि० अवगुंठित] १ ढँकना। छिपाना। २ रेखा से घेरना। ३ पर्दा। ४ घूँघट। बुर्का। ५ झाड़ू [को०]। ६ धार्मिक अनुष्ठानो मे प्रयुक्त अँगुलियो की एक मुद्रा [को०]।

अवगुंठनवती—वि० स्त्री० [सं० अवगुण्ठनवती] घूँघटवाली। उ०—किंतु वह अर्ध अवगुंठनवती कौन ?—इरावती, पृ० १०१।

अवगुंठिका—संज्ञा पुं० [सं० अवगुण्ठिका] १ घूँघट। २ जवनिका। पर्दा। ३ चिक।

अवगुंठित—वि० [सं० अवगुण्ठित] ढँका हुआ। छिपा हुआ। २ चूर किया हुआ। चूर्णित [को०]।

अवगुंडित—वि० [सं० अवगुण्डित] चूर्ण किया हुआ [को०]।

अवगुंफन—संज्ञा पुं० [स० अवगुम्फन] १ गूथना। गुहना। २ ग्रथन। बुनना।

अवगुंफित—वि० [स० अवगुम्फित] १ गूँथा हुआ। गुहा हुआ। २ बुना हुआ। ग्रथित।

अवगुण—संज्ञा पुं० [स०] १ दोष। दूषण। ऐब। २ अपराध। बुराई। खोटाई।

अवगुन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवगुण'। उ०—गुन अवगुन जानत सब कोई, जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।—मानस, १।५।

अवगुरण—संज्ञा पुं० [स०] धमकाना। क्षति पहुँचाने की धमकी देना [को०]।

अवगूहन—संज्ञा पुं० [स०] १ छिपाना। २ आलिंगन करना [को०]।

अवगोरण—संज्ञा पुं० [स०] दे० अवगुरण [को०]।

अवग्गी—वि० [स०] नियत्रण' मे न रहनेवाला [को०]।

अवग्या(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अवज्ञा'। उ०—तौ कहि इती अवग्या उन्ह पै, कैसे सही परी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३३९।

अवग्रह—संज्ञा पुं० [स०] १ रुकावट। अटकाव। अडचन। बाधा। २ वर्षा का अभाव। अनावृष्टि। ३ बाँध। बंद। ४ व्याकरण मे संधिविच्छेद। ५ अनुग्रह का उलटा। ६ गजसमूह। ७ हाथी का ललाट। हाथी का माथा। ८ स्वभाव। प्रकृति। ९ शाप। कोसना। १० लुप्ताकार का चिह्न। खंडाकार(ऽ) [को०]। अंकुश [को०]।

अवग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनादर। अवमान। अपमान। २ रोक। बाधा [को०]। ३ ज्ञान [को०]।

अवग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] १ सवर्षाविच्छेद। अलगाव। २.बाधा [को०]। ३ कोसना [को०]। दे० 'अवग्रह'।

अवघट(ु)—वि० [सं० अव+घट्ट=घाट] कुघाट। अटपट। अडबड। विकट। दुर्गम। कठिन। दुर्घट। उ०—(क) सरिता वन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा।—मानस, ३।७ (१क)। (ख) घाट बाट अवघट यमुना तट बातें कहत बनाय। कोऊ ऐसो दान लेत है कौने सिखै पठाय।—सूर (शब्द०)।

अवघट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १ बिल। गुफा। २. पीसने की चक्की। ३ हिलाना [को०]।

अवघट्टन—संज्ञा पुं० [सं०] १ पीसना। मर्दन। २ दो वस्तुओं का परस्पर संपर्क। मिलन [को०]।

अवघर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] घसना। माँजना। रगडना [को०]।

अवघाटक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हार [को०]।

अवघात—संज्ञा पुं० [सं०] १.चोट। ताडन। घन। प्रहार। २. कूटना [को०]। ३.अकाल मृत्यु। अस्वाभाविक मृत्यु [को०]।

अवघाती—वि० [सं० अवघातिन्] अवघात करनेवाला [को०]।

अवघूर्ण¹—संज्ञा पुं० [सं०] ववडर [को०]।

अवघूर्ण²—वि० क्षुब्ध [को०]।

अवघूर्णन—संज्ञा पुं० [सं०] चक्कर काटना। ववडर [को०]।

अवघोरित—वि० [सं०] चारो ओर से ढँका या मढा हुआ [को०]।

अवघोषक—संज्ञा पुं० [सं०] झूठी खबरें उडानेवाला व्यक्ति।

विशेष—चद्रगुप्त मौर्य के समय मे ऐसे लोगो को फाँसी पर चढाने का दंड दिया जाता था।

अवघोषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोषणा [को०]।

अवच—क्रि० वि० [सं०] नीचे [को०]।

अवचट¹(ु)†—संज्ञा पुं०[सं० अव=नहीं+हिं० घट=जल्दी अथवा सं० अव=थोडा+हिं० चित]अनजान। अचक्का उ०—पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला।—मानस, १।२४८।

अवचट²—संज्ञा पुं० [हिं०]कठिनाई। अवघट। अडस। चपकुलिस। जैसे—अवचट मे पड़कर मनुष्य क्या नही करता।

अवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ वचन का अभाव। मौन। २ बुरा वचन। निंदा। दुर्वचन।

अवचनीय—वि [सं०] १.जो कहने योग्य नही। २.अश्लील। फूहड।

अवचय—संज्ञा पुं० [सं०] चुनकर इकट्ठा करना। फूल या फल तोड-कर बटोरना। उ०—नया नया उल्लास कुसुम अवचय का मन मे उठता था।—प्रेम०, पृ० १७।

अवचल(ु)†—वि० [सं० अविचल] अचल।—उ०—पुहमी जोइ अव-चल प्रेम।—रघु० रू० पृ० १२४।

अवचस्कर—वि० [सं०] मौन। चुप [को०]।

अवचाय—संज्ञा पुं० [सं०] फूल फल आदि चुनना [को०]।

अवचार¹—वि०[सं०]नीचे या ऊपर की ओर आना जाता हुआ [को०]।

अवचार²—संज्ञा पुं० १ रास्ता। सडक। २ कार्यक्षेत्र [को०]।

अवचित—वि०[सं०]१ चुना हुआ। बटोरा हुआ। २ आबाद[को०]।

अवचूड—संज्ञा पुं० [सं० अवचूड] ध्वजा के अगले भाग मे नीचे झूलता हुआ वस्त्र [को०]।

अवचूडा—संज्ञा स्त्री० [सं० अवचूडा] माला [को०]।

अवचूटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] टिप्पणी। लघु व्याख्या [को०]।

अवचूरी—संज्ञा स्त्री० [सं०अवचूरि] टीका। टिप्पणी।

अवचूर्णित—वि० [सं०] १ विचूर्ण किया हुआ। भलीभाँति पीसा हुआ। २ मिश्रित किया हुआ। मिलाया हुआ [को०]।

अवचूल—संज्ञा पुं० [सं०] अवचूड [को०]।

अवचूलक—संज्ञा पुं०[सं]चँवरी गाय की पूँछ के बाल या मोरपख का बना हुआ चँवर [को०]।

अवचेतन¹—वि० [सं०] अवचेतना सबधी। आशिक चेतनावाला।

अवचेतन²—संज्ञा पुं०[सं०]मनोविज्ञान के अनुसार मन का वह भाग जो चेतन मन मे न होने पर भी थोडा प्रयास करने से चेतना मे लाया जा सके। इसका स्थान अहं तथा अचेतन के बीच माना गया है।

अवचेतना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अवचेतन'।

अवच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] ढकना। सरपोश।

अवच्छाद—संज्ञा पुं० [सं०] ढकना। अवच्छद [को०]।

अवच्छिन्न—वि०[सं०]१ जिसका किसी अवच्छेदक पदार्थ मे अवच्छेद किया गया हो। अलग किया हुआ। पृथक। २ विशेषणयुक्त। ३ सीमित।

अवच्छुरित¹—संज्ञा पुं० [सं०] कठोर या कर्कश हास्य [को०]।

अवच्छुरित²—वि० मिला जुला। मिश्रित [को०]।

अवच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०][वि० अवच्छेद्य, अवच्छिन्न] १ अलगाव। भेद। २ इयत्ता। हद। सीमा। ३ अवधारण। निश्चय। छानबीन। ४ सगीत मे मृदग के बारह प्रबधों मे से एक। ५ परिच्छेद। विभाग। ६ किसी वस्तु का वह गुण या धर्म जिससे अन्य पदार्थ पृथक् प्रतीत हो [को०]। ७ व्याप्ति [को०]।

अवच्छेदक¹—वि० [सं०] १ छेदक। भेदकारी। अलग करनेवाला। २. इयत्ताकार। हद बाँधनेवाला। ३ अवधारक। निश्चय करनेवाला।

अवच्छेदक²—संज्ञा पुं० १ विशेषण। २ सीमा। इयत्ता [को०]।

अवच्छेदकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.अवच्छेद करने का भाव। पृथक् करने का धर्म। अलग करने का धर्म। २ हद या सीमा बाँधने का भाव परिमिति।

अवच्छेदन—संज्ञा पुं०[सं०]१.काटना। विभाजन। खंड करना। २. सीमा निर्धारण करना [को०]।

अवच्छेद्य—वि० (सं०) अलगाव के योग्य।

अवच्छेपणी—संज्ञा पुं० (सं० अवक्षेपणी) दहाना। दाँती। लगाम।

अवछंग(ु)—संज्ञा पुं० [सं० उत्सङ्ग) दे० उछंग]।

अवजय—संज्ञा स्त्री० (सं०) हार। पराजय [को०]।

अवजित—वि० [सं०] हारा हुआ। विजित। तिरस्कृत [को०]।

अवज्जि(पु)—संज्ञा पुं०[फा० आवाज] १ पुकार। आवाज। २ शोर-गुल। उ०—सुनी धाह जसवंत नृप, आयो सेन सुमज्जि। ढलकि ढाल वद्दल मिलिय, पुव्व भड्डउ अवज्जि। पृ० रा०, ४।२५।

अवज्ञा—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवज्ञात, अवज्ञेय] १ अपमान। अनादर। २ आज्ञा का उल्लघन। आज्ञा न मानना। अवहेना। ३ पराजय। हार।४ वह काव्यालकार जिसमें एक वस्तु के गुण या दोष से दूसरी वस्तु का गुण या दोष न प्राप्त करना दिखलाया जाय, जैसे,—करि वेदात विचार हू शठहि विराग न होय। रच न मृदु मैनाक भो निशि दिन जल मे सोय।—(शब्द०)।

अवज्ञात—वि० [सं०] अपमानित। तिरस्कृत।

अवज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] अनादर। अप्रतिष्ठा [को०]।

अवज्ञेय—वि [सं०] अपमान के योग्य। तिरस्कार के योग्य।

अवझरि(पु)—संज्ञा स्त्री०[प्रा० ओज्झरी] दे० 'ओझरी'। उ०—झाझोरी तोरि अवझरि उजरि। गहि हमे न हम्मीर निय।—पृ० रा०, ६४।३३५।

अवझोरा(पु)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० ओरुज्झ] उलझन। झझट। गाँठ। उ०—चित्र वचित्र इहै अवझोरा। तजि चित्रै चितु राखि चितेरा।—कबीर ग्र०, पृ० ३१०।

अवट—संज्ञा पुं० [सं०] १ गड्ढा। कुड। २ हाथियो के फँसाने के लिये गड्ढा जिसे तृणादि से आच्छादित कर देते हैं। खाँडा। माला। ३ गले के नीचे कधे और काँख आदि का गड्ढा। ४ एक नरक का नाम। ५ दाँत का गड्ढा। दतकोटर [को०]। ६ बाजीगर। ऐंद्रजालिक [को०]।

यौ०—अवटनिरोधन, अवटविरोधन = नरकविशेष का नाम।

अवटकच्छप—संज्ञा पुं० [सं०] १ गड्ढे के भीतर रहनेवाला कच्छप अर्थात् अज्ञानी मनुष्य [को०]।

अवटना[1](पु)—क्रि० स० [सं० आवर्त्तन, प्रा० आवट्टन, अट्टन] १ मथना। आलोडन करना। २ किसी द्रव पदार्थ को आग पर रखकर चलाकर गाढा करना। उ०—(क) परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई।—मानस, ७।११७। (ख) कान्ह माखन खाहु हम सु देखें। सद्य दधि दूध ल्याई अवटि हम, खाहु तुम सफल करि जनम लेखैं।—सूर०, १०।१५६६।

मुहा०—अवटि मरना = भ्रमना। मारे मारे फिरना। चक्कर खाना। दुख उठाना। उ०—जो आचरन विचारहु मेरो कलप कोटि लगि अवटि मरौं। तुलसिदास प्रभु-कृपा-विलोकनि गोपद ज्यो भवसिंधु तरौं।—तुलसी ग्र०, पृ० ५२६।

अवटना[2](पु)—क्रि० अ० [सं० अटन] घूमना फिरना।

अवटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गड्ढा। २ कुआँ। ३ छेद [को०]।

अवटीट—वि० [सं०] चपटी नाकवाला। नकचिपटा।

अवटु—संज्ञा पुं० १ बिल। २ कुआँ। ३ गले का पिछला हिस्सा। ४ शरीर का दबा हुआ भाग। ५ एक प्रकार का वृक्ष।

अवटुज—संज्ञा पुं० [सं०] सिर के पिछले भाग का बाल [को०]।

अवडग—संज्ञा पुं० [सं० अवटङ्ग] हाट। बाजार [को०]।

अवडीन—संज्ञा पुं०[सं०]पक्षी की उडान। पक्षियों का ऊपर से नीचे की तरफ आना [को०]।

अवडेर—संज्ञा पुं०[सं० अव + हिं० रार या राट]झमेला। झझट। बखेडा।

अवडेरना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० उद्वासन या हिं० अवडेर] १ न बसने देना। न रहने देना। उ०—गोरानाथ थोरे ही सरोष होत थोरे दोष, पोषि तोषि थापि आपने न अवडेरिये।—तुलसी ग्र०, पृ० २५६। २ चक्कर में डालना। फेर में डालना। उ०—(क) पच कहे सिव सती बिबाही। पुनि अवडेरि मरा-एन्हि ताही।—मानस, १।६९।

अवडेरा(पु)—वि० [हिं० अवडेर] १ घुमाव फिरावाला। चक्कर-दार। २ बेढब। कुढव। उ०—जननि जनक तज्यो जनमि करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे।—तुलसी ग्र०, पृ० ५७२।

अवढर(पु)—वि० [सं० अव + हिं० ढरना] दे० 'औढर'। उ०—(क) आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी।—मानस, २।४४। (ख) लच्छ नी वहु लच्छ दीन्हो दान अवढर ढरन।—सूर०, १।२०२।

अवतक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] टुकडे मे काटी गई कोई वस्तु [को०]।

अवतत—वि० [सं०] १ ढँका हुआ। आवृत। २ फैला हुआ। विस्तृत [को०]।

अवतमस—संज्ञा पुं० [सं०] १ साधारण अधकार। क्षीण अधकार। २ अधकार। ३ अस्पष्टता। गुह्यता [को०]।

अवतरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ उतारना। पार होना। २ उतार।२ शरीर धारण करना। जन्म ग्रहण करना। ३ नकल। प्रतिकृति। ४ किसी पुस्तक या लेख का ज्यो का त्यो उतारा या नकल किया हुआ अंश। उद्धरण। उ०—ऊपर दिए अवतरणों में हम स्पष्ट देखते हैं कि किसी उक्ति की तह मे काव्य की सरसता बराबर पाई जायगी।—रस०, पृ० ३६। ५ प्रादुर्भाव। ६ सीढ़ी जिसमें उतरें। घाट की सीढी। ७ घाट। ८ तीर्थ [को०]। ९ परिचय। उपोद्घात। [को०]।

यौ०—अवतरणचिह्न। अवतरणमगल।

अवतरणचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] उलटे लगे हुए विराम चिह्न जिनके बीच किसी का कथन उद्धृत किया गया हो, जैसे—' '।

अवतरणमगल—संज्ञा पुं० [सं० अवतरणमङ्गल] श्रद्धापूर्वक किया गया स्वागत [को०]

अवतरणिका—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ ग्रथ की प्रस्तावना। उपोद्घात। अवतरणी। २ परिपाटी। रीति।

अवतरना(पु)—क्रि० अ० (सं० अवतरण) प्रकट होना। उपजना। जन्मना। उ०—(क) इच्छा रूप नारि अवतरी। तासु नाम गायत्री धरी।—कबीर (शब्द०)। (ख) बहुरि हिमाचल कैं अवतरी। समय पाइ सिव बहुरौ वरी।—सूर०, ४१५।

अवतरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ग्रथ की प्रस्तावना के लिये भूमिका जो इस अभिप्राय से लिखी जाती है कि विषय की संगति मिल जाय। उपोद्घात। २. रीति। परिपाटी।

अवतरित—वि० [हिं० अवतरना] १. नीचे आया हुआ। उतरा हुआ। उ०—अवतरित हुआ मैं, आप उच्चफल जैसा।—साकेत, पृ० २१८। २ जन्मा हुआ। शरीर ग्रहण किया हुआ। ३ किसी दूसरे स्थल से लिया हुआ। ४ अवतीर्ण।

अवतर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] शांति प्रदान करनेवाला साधन। अनुकूल उपचार [को०]।

अवताडन—संज्ञा पुं० [सं० अवताडन] १ रौंद देना। कुचल देना। २ आघात करना या चोट देना [को०]।

अवतान—संज्ञा पुं० [सं०] १ आच्छादन। आवरण। २ लटका हुआ चेहरा। ३ धनुष की प्रत्यचा ढीली करना। ४ तानना। फैलाना। ५ लताओं का फैलाव। ६ आतपत्र। चँदवा [को०]।

अवतापी—वि० [सं० अवतापिन्] १ ताप देनेवाला। तपानेवाला। २ (स्थान) जो अधिक तप्त हो [को०]।

अवतार—संज्ञा पुं० [सं०] १ उतरना। नीचे आना। २ जन्म। शरीरग्रहण। उ०—(क) नव अवतार दीन्ह विधि आजू। रही छार भइ मानुष साजू।—जायसी (शब्द०)। (ख) प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा।—तुलसी (शब्द०)। ३ पुराणों के अनुसार किसी देवता का मनुष्यादि संसारी प्राणियों का शरीर धारण करना। ४ विष्णु का संसार में शरीर धारण करना।

विशेष—पुराणानुसार विष्णु भगवान् के २४ अवतार हैं—ब्रह्मा, वाराह, नारद, नरनारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वंतरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, हंस और हयग्रीव, इनमें से १० अर्थात् मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्किप्रधान माने जाते हैं।

५ (पु) सृष्टि। शरीररचना। उ०—कीन्हेसि धरती सरग पतारू। कीन्हेसि बरन बरन अवतारू।—जायसी (शब्द०)। ६ अवतरण भूमि। उतरने का स्थान [को०]। ७ तालाब [को०] ८ अनुवाद [को०]। ९ विषयप्रवेश। आमुख। भूमिका [को०]। १० तीर्थ [को०]। ११ विशिष्ट व्यक्ति [को०]। १२ उत्पत्ति। विकास [को०]।

मुहा०—अवतार लेना = शरीर ग्रहण करना। जन्म लेना। उ०—अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेइहउँ दिनकर बंस-उदारा।—तुलसी (शब्द०)। अवतार धरना = जन्म ग्रहण करना। उ०—भुव की रक्षा करन जु कारण धरि वराह अवतार। पीछे कपिल रूप हरि धारयो कीन्हो सांख्य विचार।—सूर (शब्द०) (पु) अवतार करना (पु) = शरीर धारण करना। उ०—अरुन असित सित वपु उनहार। करत जगत में तुम अवतार।—सूर (शब्द०)।

यौ०—अवतारकथा। अवतारमंत्र = भगवान् से अवतार ग्रहण करने के लिये की गई प्रार्थना। अवतारवाद।

अवतारण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवतारणा] १ उतारना। नीचे लाना। उ०—क्रूर कर्मों की अवतारणा से भी एक बार सद्धर्म के उठाने की आकांक्षा थी।—स्कंद०, पृ० ८४। २. उतारना। [को०]। ६ पूजा। अर्चा [को०]। ७. पोशाक का छोर या किनारा [को०]।

अवतारना (पु)—क्रि० स० [सं० अवतारण] १ उत्पन्न करना। रचना। उ०—चाँद जैस सग विधि अवतारा। दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा।—जायसी (शब्द०)। २. उतारना। जन्म देना। उ०—(क) सिंघलदीप राजघरबारी। महा स्वरूप दई अवतारी।—जायसी (शब्द०)। (ख) धन्य कोख जिहिं तोकौं राख्यौ धनि घरि जिहिं अवतारी। धन्य पिता माता तेरे छबि निरखति हरि महतारी।—सूर०, १०।७०३।

अवतारवाद—संज्ञा पुं० [सं० अवतार + वाद] भगवान् का मनुष्य आदि का शरीर धारण करने का सिद्धांत।

अवतारी[1]—वि० [सं० अवतारिन्] १ उतरनेवाला। अवतार ग्रहण करनेवाला। उ०—धनि यशुमति जिन बस किये अविनाशी अवतारि। धनि गोपी जिनके सदन माखन खात मुरारि।—सूर (शब्द०)। २. देवांशधारी। अलौकिक। उ०—कहत ग्वाल जसुमति धनि मैया। बडो पूत तैं जायो। यह कोउ आहि पुरुष अवतारी भाग हमारैं आयो।—सूर०, १०।२००६।

अवतारी[2]—संज्ञा पुं० २४ मात्राओं का एक छंद जिसके ७५०२५ प्रस्तार हैं। रोला, दिक्पाल, शोभा और लीला आदि इसके भेद हैं।

अवतीर्ण—वि० [सं०] १ उतरा हुआ। अवतरित। २ अनूदित [को०]। ३ व्यतीत, जैसे रात्रि [को०]। ४ पार किया हुआ [को०]। ५ स्नात [को०]। ६ अवतार ग्रहण किया हुआ [को०]। ७ उदाहृत। उद्धृत।

अवतोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री या गाय जिसका गर्भपात किसी दुर्घटनावश हो गया हो [को०]।

अवत्थ (पु)—वि० [सं० अवस्तु] निरर्थक। व्यर्थ। अवस्तु। उ०—तुम चित्त छंडि हम घर चलहिं। इह अवथ्य पन्नग।—पृ० रा०, ६६।३४६।

अवदंश—संज्ञा पुं० [सं०] मद्यपान के समय जो कबाब, बडे आदि खाए जाते हैं। गजक। चाट।

अवदस (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवदंश'।

अवदग्ध—वि० [सं०] जला हुआ [को०]।

अवदमन—संज्ञा पुं० [सं० अपदमन] अच्छी तरह दबाना। दमन करना।

अवदरण—संज्ञा पुं० [सं०] तोडना फोडना। अच्छी तरह दरना या पीसना [को०]।

अवदाघ—संज्ञा पुं० [सं०] १ तपन। जलन। २ ग्रीष्म ऋतु [को०]।

अवदात—वि० [सं०] १ शुभ्र। उज्वल। श्वेत। उ०—हँसी रानी सुनकर वह बात, उठी अनुराग आभा अवदात।—साकेत, पृ० २७। २ शुद्ध। स्वच्छ। विमल। निर्मल। उ०—सोच अति पोच उर मोच दुखदानिए मानु यह बात अवदात मम मानिए।—रामच०, पृ० ७४। ३ शुक्ल वर्ण का। गौर। ४ पीत वर्ण का। पीला। ५ खूबसूरत। सुंदर [को०]। ६ उत्तम। पुण्यशील [को०]।

अवदान—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रशस्त कर्म। २ शुद्ध आचरण। अच्छा काम। ३ खंडन। तोडना। ३ पराक्रम। शक्ति बल। ४. अतिक्रम। उल्लंघन। ५ शुद्ध करना। पवित्र करना। साफ करना। ६. वीरणमूल। खस। उशीर। गाँडर की जड़।

अवदान्य—वि० [सं०] १. पराक्रमी। बली। २ अतिक्रमणकारी। सीमा का अतिक्रमण करनेवाला। ३ व्यय न करके धनसंचय करनेवाला। कंजूस।

अवदारक[1]—वि० [सं०] विदारण करनेवाला। विभाग करनेवाला।

अवदारक[2]—संज्ञा पुं० मिट्टी खोदने के लिये लोहे का एक मोटा डंडा। खंता। रंभा।

अवदारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ विदारण करना। विभाग करना। २ ताडना। फोडना। ३ मिट्टी खोदने का औजार। रंभा। खंता।

अवदारित—वि [सं०] विदारण किया हुआ। विदीर्ण। टूटा फूटा।

अवदाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ अत्यधिक गर्मी। भीषण ताप। २ आग लगाना। जलना। ३ कुश की जड। खस [को०]।

अवदीर्ण—वि० [सं०] १ विभक्त। टूटा हुआ। २ घबराया हुआ। उदास। ३ पिघला या घुला हुआ [को०]।

अवदोह—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूध। दुग्ध। २ दूध दुहना। दोहन।

अवद्य[1]—वि० [सं०] १ अधम। पापी। २ गर्हित। निंद्य। ३ त्याज्य। ४ कुत्सित। निकृष्ट।

अवद्य[2]—संज्ञा पुं० १ दोष। २ पाप। ३ निंदा ४ लज्जा [को०]।

अवध[1]—संज्ञा पुं० [सं० अयोध्या] १ कोशल। साकेत एक देश जिसकी प्रधान नगरी अयोध्या थी। २ अयोध्या नगरी।

अवध(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अवधि] दे० 'अवधि'।

अवध[3]—वि० [सं०] अवध्य। न मारने योग्य [को०]।

अवधान[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मन का योग। चित्त का लगाव। मनोयोग। २ चित की वृत्ति का निरोध करके उसे एक ओर लगाना। समाधि। ३ ध्यान। सावधानी। चौकसी।

अवधान[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० आधान] गर्भ। गर्भाधान। पेट। उ०—जैस अवधान पूर होइ मासू। दिन दिन हिये होइ परगासू।—जायसी ग्रं०, पृ० १६।

अवधानी—वि० पुं० [सं० अवधानिन्] ध्यान रखनेवाला। ध्यानी [को०]।

अवधार—संज्ञा पुं० [सं०] निश्चय। सीमा [को०]।

अवधारक—वि० [सं०] अवधारण करनेवाला। किसी एक विषय पर अपने को केंद्रित करनेवाला [को०]

अवधारण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवधारित, अवधारणीय] १ विचारपूर्वक निर्धारण करना। निश्चय। २ शब्दार्थ की इयत्ता स्थिर करना [को०]। ३ शब्द आदि पर बल देना [को०]। ४ केवल विषय पर ध्यानस्थ होना [को०]।

अवधारणीय—वि० [सं०] विचार करने योग्य। निश्चय योग्य।

अवधारना(पु)—क्रि० स० [सं० अवधारण] १ धारण करना। ग्रहण करना। उ०—विप्र असीस विनित अवधारा। सुवा जीव नहिं करौ निरारा। जायसी (शब्द०)। २ निश्चय करना। समझना।

अवधारित—वि० [सं०] निश्चित। निर्धारित।

अवधार्य—वि० [सं०] निश्चय करने योग्य। अवधारण करने योग्य।

अवधावन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीछा करना। २. साफ करना। धोना [को०]।

अवधावित—वि० [सं०] १ पीछा किया हुआ। जिसका पीछा किया गया हो। २ साफ किया हुआ [को०]।

अवधि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सीमा। हद। पराकाष्ठा। उ०—जिन्हहिं बिरचि बड भयेउ बिधाता। महिमा अवधि राम पितु माता।—तुलसी (शब्द०)। २ निर्धारित समय। मीयाद। उ०—रह्यौ ऐंचि, अंतु न लहै अवधि दुसासनि बीरु। आली बाढतु बिरह ज्यौं पंचाली को चीर।—बिहारी र०, दो० ४००। ३ गड्ढा। गर्त [को०]। ४ प्रमाण [को०]। ५ उपजनपद। पडोस [को०]। ६ अंत समय। अंतिम काल। उ०—(क) आजु अवधिनगर पहुँचे गए जाउँ मुखरात। वेगि रोहु मोहि मारहु जनि चालहु यह बात।—जायसी। (शब्द०)। (ख) तेरी अवधि कहत सब कोऊ नाते कहियत बात। बिनु विश्वास मारिहै तो को आगु रैन कै प्रात।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—अवधि देना = समय निर्धारित करना। अवधि बदना = समय नियत करना। उ०—आज बिनु आनँद के मुख तेरो। निसि बसिबे की अवधि बदी मोसि, सांझ गए कहि आवन। सूरश्याम अनतहि कहुँ लुबधे नैन भए दोउ सावन।—सूर (शब्द०)।

अवधि[2]—अव्य० [सं०] तक। पर्यंत। उ०—तोसों हौं फिर फिर हित प्रिय पुनीत सत्य वचन कहत। विधि लगि लघु कोटि अवधि सुख सुखी दुख दहत।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—अद्यावधि = अब तक। समुद्रावधि = समुद्र तक।

अवधिज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह ज्ञान जिसके द्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, अंधकार और छाया आदि में व्यवहित द्रव्यों का भी प्रत्यक्ष हो और आत्मा का भी ज्ञान हो। अवधिदर्शन।

अवधिदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार पृथ्वी, जल, पवनादि से व्यवहित पदार्थों को यथावत् देखना। अवधिज्ञान।

अवधिमान(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। उ०—प्राची जाय अथवै प्रतीची कै उदित भानु भानुमान सीस चूम लेवै भूमि मित को। लांघि कै अवधि जो पै उमगै अवधिमान नाँघै यह चाल जो पै कालहू के गत को।—चरण (शब्द०)।

अवधी[1]—वि० [हिं० अवध + ई (प्रत्य०)] अवध सबंधी। अवध का। जैसे—'अवधी बोली' २।. अवध की भाषा।

अवधी(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'अवधि[1]'।

अवधीरण—संज्ञा पुं० [सं०] अवमान या तिरस्कार करना [को०]।

अवधीरणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरस्कार। अवज्ञा।

अवधीरित—वि० [सं०] अपमानित। तिरस्कृत।

अवधू(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवधूत'। उ०—अवधू ऐसा ज्ञान विचारी, ज्यूँ बहुरि न ह्वै संसारी।—कबीर ग्रं०, पृ० १५६।

अवधूक—वि० [सं०] बिना पत्नी का [को०]।

अवधूत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवधूतिन्] १. सन्यासी। साधु। योगी। उ०—(क) धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२३। (ख) यह सूरति यह मुद्रा हम न देखा अवधूत। जानें होहिं न योगी कोइ

राजा कर पूत ।—जायसी (शब्द०)। २. साधुओं का एक भेद। उ०—सेवरा खेवरा बान पर, सिध साधक अवधूत। आसन मारे बैठ सब जारि आतमा भूत।—जायसी (शब्द०)।

अवधूत²—वि० [सं०] १ कंपित। हिला हुआ। २ विनष्ट। नाश किया हुआ। ३ अपमानित। तिरस्कृत [को०]। ४ अस्वीकृत [को०]। ५ बढ़ा हुआ [को०]। ६ आक्रांत [को०]। ७ विरक्त [को०]।

अवधूतवेश—वि० [सं०] बिना वस्त्र का। नग्न। विवस्त्र।

अवधूपित—वि० [सं०] सुगंधित किया हुआ। सुवासित [को०]।

अवधूलन—संज्ञा पुं० [सं०] घाव के ऊपर चूर्ण छिड़कना [को०]।

अवधृत—वि० [सं०] दे० 'अवधारित'।

अवधेय¹—वि० [सं०] १ ध्यान देने योग्य। विचारणीय। २ श्रद्धेय। ३ जानने योग्य। ४ स्थान योग्य। रखने योग्य [को०]।

अवधेय²—संज्ञा पुं० १ नाम। २ ध्यान [को०]।

अवध्य—वि० [सं०] वध के अयोग्य। न मारने योग्य। अवध। उ०—यह समझकर कि ब्राह्मण अवध्य है, तू मुझे भय दिखलाता है।—चद्र०, पृ० ७७।

अवध्वंस—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवध्वस्त] १ परित्याग। छोड़ना। निंदा। कलंक। ३ चूर चूर करना। चूर्णन। नाश। ४ धूल। चूर्ण [को०]। ५ छिड़काव। छिड़कना। [को०]। ६ गिरकर दूर जा पड़ना [को०]।

अवध्वस्त—वि० [सं०] १ नष्ट। विनिष्ट। २ त्यक्त। ३ निंदित। ४. बिखेरा हुआ। ५ चूर चूर किया हुआ। ६ छिड़का हुआ [को०]।

अवन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रीणन। प्रसन्न करना। २ रक्षण। बचाव। उ०—दूत राम राय को, सपूत पूत पौन को तू अजनी को नंदन प्रताप भूरि भानु सो। सीय सोच समन दुरित दोष दमन, सरन आए अवन लखन प्रिय प्रान सो।—तुलसी ग्रं०, पृ० २४८। ३ प्रीति। ४ इच्छा। कामना [को०]। ५. संतोष [को०]। ६ त्वरा। जल्दबाजी। [को०]।

अवन²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवनि] १ जमीन। भूमि। २ रास्ता। राह। सड़क। उ०—गुरुजन वाहक जदपि पुनि चालक चाबुक सैन। वटे वटे न कढ़े तऊ रूप अवन ह्वै नैन।—(शब्द०)।

अवनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तारों का न दीख पड़ना [को०]।

अवनत—वि० [सं०] १ नीचा। झुका हुआ। उ०—वह नीचे नीचे गगन अपार जिसमें अवनत घन सजल भार।—कामायनी, पृ० २३४। २ गिरा हुआ। पतित। अधोगत। ३ कम। ४ अस्त होता हुआ [को०]। ५ विनीत। नम्र [को०]।

अवनति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घटती। कमी। घाटा। न्यूनता। हानि। २ अधोगति। हीन दशा। तनजुली। उ०—पूर्ण प्रकृति की पूर्ण नीति है क्या भली, अवनति को जो सहन करे गंभीर हो।—महा०, पृ० २। ३ झुकाव। झुकना। ४. नम्रता। ५ अस्त होना। डूबना [को०]।

अवनद्ध¹—वि० [सं०] बना हुआ। निर्मित। २ निश्चित किया हुआ। बैठा हुआ। ३ आवेष्टित। बँधा हुआ [को०]।

अवनद्ध²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का ढोल [को०]।

अवनमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. झुकने की क्रिया। २ पैर पड़ना। उ०—ज्ञान की खोज में ओज कुल खो दिया, सत्य की नित्य आराधना, अवनमन।—आराधना, पृ० ७१।

अवनम्र—वि० [सं०] झुका हुआ। नमित [को०]।

अवनयन—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे की तरफ ले जाना [को०]।

अवना(पु)—क्रि० अ० [सं० आगमन] आना। उ०—(क) तेहि रे हम चाहहिं गवना। होहु सँजूत बहुरि नहिं अवना।—जायसी ग्रं०, पृ० ६२। (ख) अब की के गवना बहुरि नहिं अवना करिले भेंट अँकवारी।—कबीर श०, पृ०।

अवनाट¹—वि० [सं०] १. चपटी नाकवाला। नकचिपटा [को०]।

अवनाट²—संज्ञा पुं० चपटी नाकवाला व्यक्ति [को०]।

अवनाम—संज्ञा पुं० दे० 'अवनमन' [को०]।

अवनामक—वि० [सं०] पतित करनेवाला। नीचे गिरानेवाला [को०]।

अवनाय—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे फेंकना [को०]।

अवनासिक—वि० [सं०] दे० 'अवनाट' [को०]।

अवनाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाँधना। कसकर बाँधन। २ आवेष्टित करना [को०]।

अवनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी। जमीन। उ०—सुचि अवनि सुहावनि आलवाल, कानन विचित्र बारी बिसाल।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६५।

यौ०—अवनिध्र = पर्वत। पहाड़। अवनिप = राजा। उ०—अवनिप अकनि राम पगुधारे।—तुलसी (शब्द०)। अवनिपति = राजा। अवनींद्र = राजा। अवनिसुता = जानकी। अवनितल पृथ्वी। अवनीश = राजा।

२. एक प्रकार की लता। ३ उँगली। ४ नदी का पाट [को०]। ५. नदी [को०]। ६ जगह। स्थान (को०)।

अवनिक्त—वि० [सं०] १ धोया हुआ। धोकर साफ किया हुआ। २. ढूँढा हुआ [को०]।

अवनिज—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह [को०]।

अवनिरुह—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष [को०]।

अवनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अवनि'। उ०—(क) कुटिल अलक वदन की छवि, अवनि परि लोलैं।—सूर०, १०।१०१।

अवनीच¹—वि० [सं०] इधर उधर घूमनेवाला। घुमक्कड़ [को०]।

अवनीतल—संज्ञा पुं० [सं०] धरती की सतह। धरातल [को०]।

अवनीध्र—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़ [को०]।

अवनीप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। उ०—दीप दीप हू के अवनीपन के अवनीप, पृथु सम केशोदास द्विज गाय के।—राम च०, पृ० २१।

अवनीपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। उ०—सातहू दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने।—राम च०, पृ० १६।

अवनीरुह—संज्ञा पुं० [सं०] पेड़। वृक्ष [को०]।

अवनीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवनीश' [को०]।

अवनीस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवनीश] उ०—विचरहिं अवनि अवनीस चरनसरोज मन मधुकर किए।—तुलसी ग्रं० पृ० ५२३।

अवनीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवनिज' [को०]।

अवनीसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता। पृथ्वीपुत्री जानकी [को०]।

अवनेजन—संज्ञा पुं० [सं०] १ धोना । प्रक्षालन । २. श्राद्ध मे पिंडदान की वेदी पर बिछाए हुए कुशो पर जल सीचने का संस्कार । ३ भोजन के बाद का आचमन ।

अवपाक¹—वि० [सं०] १ अच्छी तरह न पकाया हुआ । २ बिना जाल का [को०] ।

अवपाक²—संज्ञा पुं० अच्छी तरह भोजन न बनानेवाला रसोईदार । वह व्यक्ति जिसे अच्छी तरह भोजन बनाने न आता हो [को०] ।

अवपाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जो लघुछिद्र योनिवाली और रजस्वलाधर्म रहित स्त्री से मैथुन करने से, हस्तक्रिया से, लिंगेंद्रिय के बंद मुह को बलात् खोलने से अथवा निकलते हुए वीर्य को रोकने से हो जाता है । इस रोग मे लिंग को आच्छादित करनेवाला चमडा प्राय फट जाता है ।

अवपात—संज्ञा पुं० [सं०] १ गिराव । पतन । अध पतन । २ गड्ढा कुड । ३ हाथियो को फँसाने के लिये एक गढ़ा जिसे तृणादि से अच्छादित कर देते हैं । ३ खाँडा । माला । ४ नाटक मे भयादि मे भागना, व्याकुल होना आदि दिखलाकर अंक या गर्भांक की समाप्ति । ५ पक्षियो आदि का ऊपर से नीचे की ओर झपटना [को०] ।

अवपातन—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे उतारना । गिराना ।

अवपात्र—वि० [सं०] (म्लेच्छ) जिसके खाने से पात्र किसी के उपयोग योग्य न हो [को०] ।

अवपाद—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे गिराना [को०] ।

अवबाहुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिससे हाथ की गति रुक जाती है । भुजस्तंभ ।

अवबुद्ध—वि० [सं०] १ जाना हुआ । २ जाननेवाला [को०] ।

अवबोध—संज्ञा पुं० [सं०] १ जगना । जगना । २ ज्ञान । बोध । ३ शिक्षण । सिखाना । [को०] ४ न्याय करना । फैसला [को०] ।

अवबोधक¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवबोधिका] १ बदी । चारण । २ रात को पहरा देनेवाला पुरुष । चौकीदार । पाहरू । ३ सूर्य । ४ शिक्षक । सिखानेवाला व्यक्ति [को०] । ५ विचार । समझ बूझ [को०] ।

अवबोधक²—वि० चेतानेवाला । जाननेवाला ।

अवबोधन—संज्ञा पुं० [सं०] १ चेतावनी । ज्ञापन । २ ज्ञान । इंद्रियज्ञान [को०] ।

अवभंग—संज्ञा पुं० [सं० अवभङ्ग] १ नीचा दिखाना । पराजित करना । २ नथुना फूलना पचकना [को०] ।

अवभास—संज्ञा पुं० [सं०] [वि अवभासक, अवभासित] ज्ञान । प्रकाश । २ मिथ्याज्ञान । ३ चमक [को०] । ४ झलक । आभास [को०] । ५ अवकाश । स्थान [को०] ।

अवभासक¹—संज्ञा पुं० [सं०] परब्रह्म [को०] ।

अवभासक²—वि० [सं०] बोध करानेवाला । प्रतीत करानेवाला ।

अवभासित—वि० [सं०] लक्षित । प्रतीत ।

अवभासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊपर के चमडे का काम । चमडे की पहली पर्त ।

अवभृथ—संज्ञा पुं० [सं०] वह शेष कर्म जिसके करने का विधान मुख्य यज्ञ के समाप्त होने पर है । २. वह स्नान जो यज्ञ के अंत मे किया जाय । यज्ञांतस्नान । उ०—पावक सरोवर मे अवभृथ स्नान था, आत्मसम्मान यज्ञ की वह पूर्णाहुति ।—लहर, पृ० ६३ ।

अवभ्रट—वि०, पुं० संज्ञा [सं०] दे० 'अवनाट' [को०] ।

अवमता—वि० [सं० अवमन्तृ] अनादर करनेवाला । असमान करनेवाला [को०] ।

अवमथ¹—संज्ञा पुं० [सं० अवमन्थ] एक रोग जिसमे लिंग मे बडी बडी और घनी फुंसियाँ हो जाती हैं । यह रोग रक्तविकार मे होता है और इसमे पीडा तथा रोमाच होता है ।

अवमंथ²—वि० सूजन पैदा करनेवाला [को०] ।

अवम¹—वि० [सं०] १ अधम । अंतिम । २ रक्षक । रखवाला । ३ नीच । निंदित । ४ घनिष्ठ [को०] । ५ कनिष्ठ [को०] ।

अवम²—संज्ञा पुं० [सं०] १ पितरो का एक गण । २ मलमास । अधिमास । ३ पाप [को०] । ४ रक्षक व्यक्ति । त्राता [को०] ।

अवमत—वि० [सं०] अवज्ञात । अवमानित । तिरस्कृत । निंदित ।

अवमति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] अवज्ञा । अपमान । तिरस्कार । निंदा ।

अवमति²—संज्ञा पुं० स्वामी । मालिक [को०] ।

अवमतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जिसका क्षय हो गया हो ।

अवमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रहण का एक भेद । वह ग्रहण जिसमे राहु सूर्यमंडल या चद्रमंडल को पूर्णत मे ढँककर अधिक काल तक ग्रसे रहे । २ रौंदना । कुचलना । ३ शत्रु को क्षत विक्षत करना । ४ एक प्रकार का उल्लू [को०] ।

अवमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] १ पीडा देना । दुख देना । दलन । २. मालिश । रगड ना [को०] ।

अवमर्दित—वि० [सं०] १ पीडित । दलित । मालिश किया हुआ [को०] ।

अवमर्श—संज्ञा पुं० [सं०] स्पर्श । संपर्क [को०] ।

अवमर्शसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अवमर्शसन्धि] नाट्यशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की संधियो मे से एक ।

विशेष—जहाँ क्रोध, व्यसन अथवा विलोभन आदि से फलप्राप्ति के संबंध मे विचार या आशंका की जाय और जहाँ गर्भसंधि से बीजार्थ अधिक स्पष्ट हो वहाँ अवमर्शसंधि होत है । वि० दे० 'विमर्ष' ।

अवमर्शित—वि० [सं०] नष्ट भ्रष्ट [को०] ।

अवमर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ विचार । खोज बीन । २. दे० 'अवमर्श संधि' । ३ आक्रमण [को०] ।

अवमर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ मिटाना । २ हटाना । ३. बरबाद करना । ४ असहनशीलता [को०] ।

अवमान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवमानित] तिरस्कार । अपमान । अनादर । उ०—पूरन राम सुपेम पियूषा । गुर अवमान दोष नहिं दूषा । मानस, २।२०८ ।

अवमानन—संज्ञा पुं० [सं०][स्त्री० अवमानना] दे० 'अवमान' ।

अवमानित—वि० [सं०] तिरस्कृत । उपेक्षित । अपमानित [को०] ।

अवमानी—वि० [सं० अवमानिन्] [वि० स्त्री० अवमानिनी] तिरस्कार करनेवाला । अपमान करनेवाला । उ०—लोभिय सूद्र मिथ्र अवमानी । मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी ।—मानस, ३।१७२ ।

अवमूर्धशय—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] सिर नीचे करके लेटनेवाला [को०]।

अवमूल्यन—संज्ञा पुं० [सं०] [अं० डिवैल्युएशन] किसी देश की सरकार द्वारा दूसरे देशों की अपेक्षा अपने देश की मुद्रा का विनिमय मूल्य गिरा देना।

अवमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] निर्बंध करना। बंधनविहीन करना। मुक्त करना [को०]।

अवमोदरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अवम+उदरिका] एक वृत्ति जिसमें क्रमश भोजन से निवृत्ति प्राप्त करते हैं।—हिंदु० सभ्यता पृ० २३३।

अवय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवयव] दे० 'अवयव'। उ०—देवि कुँवरि अद्भुत अवय। रजित है अति लाज।—पृ० रा०, २५।१७७।

अवयव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंश। भाग। हिस्सा। २ शरीर का एक देश। अंग। ३. न्यायशास्त्रानुसार वाक्य का एक अंश या भेद।

विशेष—ये पाँच हैं—(१) प्रतिज्ञा, (२) हेतु, (३) उदाहरण, (४) उपनय, और (५) निगमन। किसी किसी के मत से यह दस प्रकार का है—(१) प्रतिज्ञा, (२) हेतु, (३) उदाहरण, (४) उपनय, (५) निगमन, (६) जिज्ञासा, (७) संशय (८) शक्यप्राप्ति, (९) प्रयोजन और (१०) संशयव्युदास।

४ उपकरण। साधन [को०]। ५. शरीर [को०]।

यौ०—**अवयवभूत** = अंगभूत। अंशभूत। **अवयवधर्म**। **अवयवरूपक** = रूपक का एक भेद।

अवयवार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द की प्रकृति और प्रत्यय से निकलनेवाला अर्थ [को०]।

अवयवी[1]—वि० [सं० अवयविन्] १. जिसके और बहुत से अवयव हों। अंगी। २ कुल। संपूर्ण। समष्टि। समूचा।

अवयवी[2]—संज्ञा पुं० १. वह वस्तु जिसके बहुत से अवयव हों। २. देह। शरीर। ३ न्याय में एक तर्क [को०]।

अवयस्क—वि० [सं०] जो वयस्क न हो [को०]।

अवयान—संज्ञा पुं० [सं०] १ विपथगामी होना। पीछे की ओर आना। २ किसी को संतुष्ट करना। ३ प्रायश्चित्त करना [को०]।

अवर[1]—वि० [सं०] (पु) १ अन्य। दूसरा। और। उ०—गम दुर्गम गढ देहु छुटाई। अवरो बात सुनो कछु भाई।—कबीर (शब्द०)। २. अश्रेष्ठ। अधम। नीच। ३ पिछला (भाग)। ४ अंतिम (को०)। ५ पश्चिमी (को०)। ६ निकटतम। दूसरा [को०]। ७ अत्यंत श्रेष्ठ [को०]।

अवर[2]—वि० [सं० अ+बल] निर्बल। बलहीन।

अवर[3]—संज्ञा पुं० १ अतीत काल। २ हाथी का पिछला भाग।

अवरक्षक—वि० [सं०] पालक। रक्षक।

अवरज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवरजा] १. छोटा भाई। २ नीच कुलोत्पन्न। नीच।

अवरण(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] १ दे० 'अवर्ण'। २ दे० 'आवरण'।

अवरत[1]—वि० [सं०] १ जो रत न हो। विरत। निवृत्त। २ ठहरा हुआ। स्थिर। ३ अलग। पृथक्।

अवरत[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० आवर्त] दे० 'आवर्त'।

अवरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विराम। २ निवृत्ति। छुटकारा।

अवरवर्णाभिनिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] छोटी जातियों से बसाया हुआ उपनिवेश।

अवरव्रत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २ आक। मदार।

अवरव्रत[2]—वि० हीनव्रत। अधम।

अवरशैल—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिम का पहाड जिसके पीछे सूर्य अस्त होता है [को०]।

अवरहस—वि० [सं०] जनशून्य। निर्जन [को०]।

अवरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा। २. दिशा। ३ हाथी का पिछला भाग [को०]।

अवराधक(पु)—वि० [सं० आराधन] आराधना करनेवाला। पूजनेवाला। सेवक। उ०—ए सब राममगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक।—मानस, ४।१७।

अवराधन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आराधन] आराधना। उपासना। पूजा। सेवा। उ०—प्रबसि होइ सिधि, साहस फलै सुसाधन। कोटि कलपतरु सरिस संभु अवराधन।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३०।

अवराधना(पु)—क्रि० स० [सं० आराधना] उपासना करना। पूजना। सेवा करना। उ०—(क) केहि अवराधहु का तुम चहहू। हम सन सत्य मरमु सब कहहू।—मानस, १।७८। (ख) हरि हरि हरि हरि सुमिरन करो। हरि चरणारविंद उर धरो। लै चरणोदक निज व्रत साधो। ऐसी विधि हरि को अवराधो।—सूर (शब्द०)।

अवराधी(पु)—वि० [हिं० अवराधना] आराधना करनेवाला। उपासक। पूजक। उ०—कहाँ बैठि प्रभु साधि समाधी। प्राजु होब हम हरि अवराधी।—रघुराज (शब्द०)।

अवरार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १ लघुतम भाग। कम से कम। २ उत्तरार्ध। ३ नीचे या पीछे का आधा भाग [को०]।

अवरापतन—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भपतन [को०]।

अवरावर—वि० [सं०] निम्नतम। सबसे निकृष्ट। सबसे बुरा [को०]।

अवरु(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'और'।

अवरुद्ध—वि० [सं०] १. रुँधा हुआ। २ आच्छादित। गुप्त। छिपा।

अवरुद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपने वर्ण की वह दासी या स्त्री जिसे कोई अपने घर में डाल ले। रखनी। सुरैतिन। २ वह स्त्री जिसे कोई रख ले। उढरी। रखुई।

अवरूढ—वि० [सं० अवरूढ] १ ऊपर से नीचे आया हुआ। उतरा हुआ। आरूढ का उलटा। २ टूटा हुआ। छिन्नमूल (को०)।

अवरूप—वि० [सं०] १ भद्दी आकृतिवाला। विरूप। २ पतित। जिसका पतन हो गया हो [को०]।

अवरेखना(पु)—क्रि० स० [सं० अवलेखन, अवरेखन या आलेखन] १ उरेहना। लिखना। चित्रित करना। उ०—(क) स्याम तन देखि री आपु तन देखिए। भीति जौ होइ तौ चित्र अवरेखिए।—सूर०, १०।३०७। (ख) सखि रघुबीर मुख छबि देखु। चित्त भीति सुप्रीति रंग सुरूपता अवरेखु।—तुलसी (शब्द०)। २ देखना। उ०—(क) ऐसे कहत गए अपने पुर सबहिं विलक्षण देख्यो।

मणिमय महल फटिक गोपुर लखि कनक भूमि अवरेखो।—सूर (शब्द०)। (ख) फिरत प्रभु पूछत वन द्रुम वेली। अहो वधु काहू अवरेखी एहि मग वधू अकेली।—सूर (शब्द०)। ३ अनुमान करना। कल्पना करना। सोचना। उ०—एकै कहै सुखमा लहरैं, मन के चढ़िवे की सिढ़ी एक पेखैं। कान्ह को टोवो कह्यो कछु काम कवीश्वर एक यहै अवरेखैं।—केशव (शब्द०)। ४ मानना। जानना। उ०—पियवा आय दुअरवा उठ किन देखु। दुरलभ पाय विदेसिया मुद अवरेखु।—रहीम (शब्द०)।

अवरेब(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अव=विरुद्ध+रेव=गति, फा० उरेब=टेढ़ा] १ वक्र गति। तिरछी चाल। २ कपड़े की तिरछी काट।

यौ०—**अवरेबदार**=तिरछी काट का।

३ पेच। उलझन। उ०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देव। सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब।—मानस, २।२६८। ४ बिगाड़। खराबी। उ०—रामकृपा अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी।—मानस, २।३१६। ५ झगड़ा। विवाद। खींचातानी। उ०—राक्षस सुत तो यह कही कन्या को हम लेव। विप्र कहै दे मित्र मोहिं परी दुहुन अवरेव।—(शब्द०)। ६ वक्रोक्ति। काकूक्ति। उ०—धुनि अवरेव कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती।—मानस, १।३७।

अवरोक्त—वि० [सं०] बाद में कहा गया। जिसका उल्लेख बाद में हुआ हो [को०]।

अवरोचक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें भूख बहुत कम लगती है या लगती ही नहीं [को०]।

अवरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. रुकावट। अटकाव। अड़चन। रोक। २ छेकना। घेर लेना। मुहासिरा। ३ निरोध। बंद करना। ४ अनुरोध। दबाव। ५ अंतःपुर।—उ० राजकीय अवरोध की ये स्त्रियाँ हैं।—इरा०, पृ० ६६। ६ लेखनी। कलम [को०]। ७ प्रहरी [को०]। ८ खाई। गड्ढा [को०]। ९ पर्त। तह [को०]।

अवरोधक¹—वि० [सं०] १ रोकनेवाला। २ घेरनेवाला [को०]।

अवरोधक²—संज्ञा पुं० १ पहरेदार। २ रोक। बाड़ [को०]

अवरोधन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवरोधक, अवरोधित, अवरोधी, अवरोध्य, अवरुद्ध] १ रोकना। छेकना। २ अंतःपुर। जनानखाना। ३ किसी वस्तु का भीतरी भाग [को०]। ४ निजी या व्यक्तिगत स्थान (को०)। ५ अंतःपुरिका। हरम में रहनेवाली स्त्री (को०)।

अवरोधना(पु)—क्रि० स० [सं० अवरोधन] रोकना। निषेध करना। उ०—यह विधि विषय भेद अवरोधा। नहिं कछु श्रुति प्रत्यक्ष विरोधा।—श० दि० (शब्द०)।

अवरोधिक¹—वि० [सं०] रोकनेवाला। अवरोध उपस्थित करनेवाला [को०]।

अवरोधिक²—संज्ञा पुं० अंतःपुर का प्रहरी [को०]।

अवरोधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंतःपुर की दासी। अंतःपुर की रखवाली करनेवाली स्त्री या दासी [को०]।

अवरोधित—वि० [सं०] रोका हुआ। रुका। घेरा हुआ।

अवरोधी—वि० [सं० अवरोधिन्] [वि० स्त्री० अवरोधिनी] अवरोध करनेवाला। रोकनेवाला। दे० 'अवरोधक'।

अवरोपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवरोपित, अवरोपणीय] १ उखाड़ना। उत्पाटन। २ पेड़ लगाना [को०]।

अवरोपणीय—वि० [सं०] १ उखाड़ने योग्य।

अवरोपित—वि० [सं०] उखाड़ा हुआ। उन्मूलित।

अवरोह—संज्ञा पुं० [सं०] १ उतार। गिराव। अधःपतन। २ अवनति। अवमर्षण। विवर्त्त। ३ एक अलंकार जो वर्धमान अलंकार का उलटा है। इसमें किसी वस्तु के रूप तथा गुण का क्रमशः अधःपतन दिखाया जाता है, जैसे—सिंधु सर पल्लव पुष्करणिय। कुंड वापिका कूप जु वरणिय। चुलुक रूप भौं जिन्ह कर भीतर। पान करन जय जय वह मुनिवर। ४ वररोह। ५ संगीत में स्वरों का उतार [को०]। ६ आरोहण। चढ़ाव (को०)। ७ वृक्ष में लता का लिपटते हुए चढ़ना या घेर लेना [को०]। ८ स्वर्ग [को०]।

यौ०—**अवरोहशाख, अवरोहशाखी अवरोहशायी** वट=वृक्ष।

अवरोहक¹—वि० [सं०] १ गिरनेवाला। २. अवनति करनेवाला।

अवरोहक²—संज्ञा पुं० [स्त्री० अवरोहिका] अश्वगंध।

अवरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवरोहक, अवरोहित, अवरोही] १ नीचे की ओर जाना। पतन। गिराव। २ चढ़ना [को०]।

अवरोहना¹(पु)—क्रि० अ० [सं० अवरोहण] १ उतरना। नीचे आना। २ चढ़ना। ऊपर जाना। उ०—(क) कहँ सिव चाँप लकरखनि बूझत बिहँस चितै तिरछौहैं। तुलसी गलिन भीर दरसन लगि लोग अटनि अवरोहैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जोवन व्याध नहीं अरु नैननि मोहिनी मंत्र नहीं अवरोह्यो।—देव (शब्द०)।

अवरोहना²(पु)—क्रि० स० [हिं० उरेहना] खींचना। अंकित करना। चित्रित करना। उ०—गोरे गात, पातरी, न लोचन समात मुख उर उरजातन की बात अवरोहिये।—केशव (शब्द०)।

अवरोहना³(पु)—क्रि० स० [सं० अवरोधन, प्रा० अवरोहन] रोकना। रूँधना। छेंकना। उ०—मत अद्वैत राजपथ मोहा। जहाँ भेद कटक अवरोहा।—श० दि० (शब्द०)।

अवरोहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगंधा [को०]।

अवरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक बुरी दशा, जो नक्षत्रों के खास स्थानों में पहुँचने से उत्पन्न होती है [को०]।

अवरोहित—वि० [सं०] १ गिरनेवाला। २ अवनत। हीन। ३ हल्के लाल रंग का।

अवरोही¹—संज्ञा पुं० [सं० अवरोहिन्] १ वह स्वर जिसमें पहले षड्ज का उच्चारण हो, फिर निषाद से षड्ज तक क्रमानुसार उतरते हुए स्वर निकलते जायँ। सा, नि, ध, प म, ग, रि, सा का क्रम। विलोम। आरोही स्वर का उलटा। २ वटवृक्ष।

अवरोही²—वि० ऊपर से नीचे की तरफ आनेवाला [को०]।

अवर्ग¹—वि० [सं०] जिसका कोई वर्ग या श्रेणी न हो [को०]।

अवर्ग²—संज्ञा पुं० स्वरवर्ण [को०]।

अवर्ण¹—वि० [सं०] १ वर्णरहित। बिना रंग का। २.बदरंग। बुरे रंग का। ३ जो ब्राह्मण आदि के धर्म से शून्य हो। वर्ण-धर्म-रहित।

अवर्ण²—संज्ञा पुं० [सं०] १ अकार अक्षर। २ निंदा। ३ अपशब्द।

अवर्ण्य¹—वि० [सं०] जो वर्णन के योग्य न हो।

अवर्ण्य²—संज्ञा पुं० [सं० अ+वर्ण्य] जो वर्ण्य या उपमेय न हो। उपमान। उ०—है उपमेय विशेष अरु वर्ण्य। उपमानतु विपरीत अवर्ण्य।—मतिराम (शब्द०)।

अवर्त¹—संज्ञा पुं०[सं०]स्फूर्तिशून्य पदार्थ। वह पदार्थ जिसके आरपार प्रकाश या दृष्टि न जा सके।

अवर्त²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आवर्त्त] १ भँवर। नांद। उ०—कादर भयकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी। दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त्त बहति भयावनी।—मानस, ६।८६। २.(पु) घुमाव। चक्कर। उ०—विपम विपाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा।—मानस, २।२७५।

अवर्तन¹—संज्ञा पुं०[सं०]जीविका का अभाव। जीविका की अनुपलब्धि।

अवर्तन²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवर्तन'।

अवर्तमान—वि०[सं०]१ जो वर्तमान न हो। अनुपस्थित। अप्रस्तुत। २ असत्। अभाव। ३ भूत या भविष्य।

अवर्धमान— वि० [सं०] वर्धमान का विपरीत। न बढ़नेवाला [को०]।

अवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवर्षण' [को०]।

अवर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] वृष्टि का अभाव। वर्षा का न होना। अवग्रहण। अनावृष्टि।

अवर्षुक—वि० [सं०] न बरसनेवाला [को०]।

अवलंघन—संज्ञा पुं० [सं० अव+लङ्घन] दे० 'उल्लंघन'।

अवलंघना(पु)—क्रि० स० [सं० अव+लङ्घन] लांघना। फांदना। उ०—राम प्रताप, सत्य सीता को, यहै नाव-कनधार। तिहिं अधार छन में अवलंघ्यो आवत भई न वार।—सूर०, ६।८९।

अवलंब—संज्ञा पुं०[सं० अवलम्ब] आश्रय। आधार। सहारा। उ०—सो अवलंब देउ मोहि देई। अवधि पार पावउँ जेहि सेई।—मानस, २।३०६।

अवलंबक—संज्ञा पुं०[सं० अवलम्बक]एक प्रकार का वृत्त या छंद [को०]।

अवलंबन—संज्ञा पुं० [सं० अवलम्बन] [वि० अवलम्बित, अवलम्बी] १ आश्रय। आधार। सहारा। उ०—नहिं कलि करम न भगति विवेकू। राम नाम अवलंबन एकू।—तुलसी (शब्द०)। २. धारण। ग्रहण।

क्रि० प्र०—करना=धारण करना। ग्रहण करना। अनुसरण करना, जैसे,—'यह सुन उसने मौनावलंबन किया' (शब्द०)। ३. छड़ी।

अवलंबना(पु)—क्रि० स०[सं० अवलम्बन] अवलंबन करना। आश्रय लेना। टिकना। उ०—जिन्हें अतन अवलंबई सो आलंबन जानि। निज तें दीपित होति है। ते उद्दीप बखानि।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ३५।

अवलंबित—वि० [सं० अवलम्बित] १.आश्रित। सहारे पर स्थित। टिका हुआ। उ०—चरणकमल अवलंबित राजित अनमान। प्रफुल्लित ह्वै ह्वै लता मनो चढ़ी तरु तमाल—सूर (शब्द०)। २.मुनहसर। निर्भर, जैसे—इनका पूरा होना द्रव्य पर अवलंबित है। (शब्द०)। उ०—ऐसे और पतित अवलंबित ते छिन माहिं तरे। सूर पतित तुम पतित उधारन विरद कि लाज धरे।—सूर० १।१९८। ३ लटकाया हुआ [को०]। ४ शीघ्र। सत्वर [को०]।

अवलंबी—वि० पुं०[सं० अवलम्बिन्][वि० स्त्री० अवलंबिनी]१ अवलंबन करनेवाला। सहारा लेनेवाला। उ०—और भगवान् की करुणा का अवलंबी बन गया था।—इंद्र०, पृ० ८१। २ सहारा देनेवाला। पालनेवाला।

अवल(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अव्वल'। उ०—अवल उकीलनू जी आदर कुरव दे अवधेस—रघु० रू०, पृ० ८१।

अवलक्ष¹—वि० [सं०] सफेद वर्ण का [को०]।

अवलक्ष²—संज्ञा पुं० सफेद वर्ण [को०]।

अवलग्न¹—वि० [सं०] लगा हुआ। मिला हुआ। संबंध रखनेवाला।

अवलग्न²—संज्ञा पुं० शरीर का मध्य भाग। धड़। माझा।

अवलच्छना(पु)—क्रि० स० [सं० अव+लक्ष्य] लक्ष्य बनाना। देखना। उ०—पच्छ-रहित जीतत उडि पच्छिय। अनरिच्छ गति जिन अवलच्छिय।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ६।

अवलि(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं० आवलि]दे० 'अवली'। उ०—भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं।—मानस, १।२४३।

अवलिप्त—वि०[सं०] १ लगा हुआ। पोता हुआ। २ सना हुआ। आसक्त। ३ घमंडी। गर्वित।

अवलिया—संज्ञा पुं०[हिं० औलिया]दे० 'औलिया'। उ०—जहाँ बसे तीरथ देव अवलिया होना।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४६।

अवली(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आवलि] १ पंक्ति। पाँति। उ०—मानो प्रगट कंज पर मंजुल अलि अवली फिरि आई।—सूर०, १०।१०८। २ समूह। झुंड। उ०—मन रंजन खंजन की अवली लित आँगन आय न डोलती है।—केशव (शब्द०)। ३ वह अन्न की डाँठ जो नवान्न करने के लिये खेत से पहले पहल काटी जाती है। ४ रोआँ या ऊन जो गड़रिया एक बार भेड़ पर से काटता है।

अवलीक—वि० [सं० अव्यलीक] अपराधशून्य। पापशून्य। निष्पाप। निष्कलंक। शुद्ध। उ०—जावो बालमीकि घर बडो अवलीक साधु कियो अपराध दियो जो बताइये।—प्रिया (शब्द०)।

अवलीढ—वि० [सं०] १.भक्षित। खाया हुआ। २ चाटा हुआ। ३ स्पृष्ट। संपर्कप्राप्त (को०)।

अवलीन—वि० [सं०] युक्त। भीतर युक्त अंदर की ओर स्थित [को०]।

अवलीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रीडा। खेल। २. अनादर। अवहेलना [को०]।

अवलुंचन—संज्ञा पुं० [सं० अवलुञ्चन] १ छेदना। काटना। २. उखाड़ना। नोचना। ३ दूर करना। हटाना। अपनयन। ४. खोलना।

अवलुंचित—वि०[सं० अवलुञ्चित]१. कटा हुआ। छेदित। २. उखाड़ा हुआ। नोचा हुआ। ३ दूरीकृत। हटाया हुआ। अपनीत। ४.चुना या खोला हुआ। मुक्त।

अवलुंठन—संज्ञा पुं० [सं० अवलुण्ठन] १ लोटना। लुढ़कना। २ लूटना (को०)।

अवलुंठित—वि० [सं० अवलुण्ठित] १. जो लुढ़क गया हो। लोटा हुआ। २ लूट लिया गया हो (को०)।

अवलुंपन—संज्ञा पुं० [सं० अवलुम्पन] अचानक लपक पडना। टूट पडना। झपट्टा मारना [को०]।

अवलेख—संज्ञा पुं० [स०] १ कोई खरोची हुई या चिह्नित वस्तु। २ खुरचना, चिह्नित करना वा तोडना [को०]।

अवलेखन—संज्ञा पुं० [स०] १ बुरुश या कघी करना। २ चिह्न करना या लकीर खीचना।

अवलेखनाⓅ—क्रि० स० [स० अवलेखन] १ खोदना। खरचना। २. चिह्न डालना। लकीर खीचना। उ०—गहौ विरद की लाज दीन हित करि सुदृष्टि व्रज देखौं। मोपौं वात कहत किन सन्मुख कहा अवनि अवलेखौ।—सूर०, १०। ४१५४।

अवलेखनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लेखनी। २ वाल झाडने की कघी या व्रश [को०]।

अवलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ रगडना। २ चित्राकन करना। ३ शृंगार करना। सजावट करना (को०)।

अवलेप—संज्ञा पुं० [स०] १ उवटन। लेप उ०—कुच कुकुम अवलेप तरुनि किये सोभित स्यामल गात। गत पतग, राका ससि विय सँग, घटा सघन सोभात।—सूर०, १०। २७३४। २ घमड। गर्व। ३ आभूषण (को०)। ४ मलहम (को०)। ५ संग। मिलन (को०)। ६ आक्रमण। हिंसा (को०)। ७ अपमान (को०)।

यौ०—बलावलेप = वल का गर्व।

अवलेपन—संज्ञा पुं० [स०] १ लगाना। पोतना। छोपना। २ वह वस्तु जो लगाई या छोपी जाय। लेप। उवटन। ३ घमड। अभिमान। अहकार। ४ दूषण। ५ चदन का वृक्ष (को०)।

अवलेह—संज्ञा पु० [स०] १ लेई जो न अधिक गाढी और न अधिक पतली हो और चाटी जाय। चटनी। माजून (वैद्यक)। २ औषध जो चाटा जाय। ३ निर्यास। सत्त। अरक—जैसे, सोम [को०]।

अवलेहन—संज्ञा पुं० [स०] १ जीभ की नोक लगाकर खाना। चाटना। २ चटनी।

अवलेह्य—वि० [स०] चाटने योग्य।

अवलोक—संज्ञा पु० [स०] दे० 'अवलोकन' [को०]।

अवलोकक—संज्ञा पुं० [स०] १. देखनेवाला। अवलोकन करनेवाला। १ सोद्देश्य किसी वस्तु को देखनेवाला, जैसे—जासूस [को०]।

अवलोकन—संज्ञा पुं० [स०] [वि० अवलोकित, अवलोकनीय] १ देखना। उ०—देव कहैं अपनी अपनी अवलोकन तीरथराज चलो रे।—तुलसी ग्र०, पृ० २३४। २ देख-ताल। जाँच पडताल। निरीक्षण। ३ नेत्र। आँख [को०]।

अवलोकनाⓅ—क्रि० स० [स० अवलोकन] १ देखना। उ०—गिरा अलिनि मुख पकज रोकी। प्रगट न लाज निशा अवलोकी।—मानस, १।२५६। २ जाँचना। अनुसधान करना।

उ०—फिरत वृथा भाजन अवलोकत सूने सदन अजान।—सूर०, १।१०३।

अवलोकनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [स० अवलोकन] आँख। दृष्टि। चितवन। उ०—अवलोकनि वोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास। भायप भलि चहुँ वधु की जलमाधुरी सुवास।—मानस, १।४२।

अवलोकनीय—वि० [स०] देखने योग्य। दर्शनीय।

अवलोकित—वि० [स०] देखा हुआ। दृष्ट।

अवलोकितेश्वर—संज्ञा पु० [स०] एक वोधिसत्व का नाम।

अवलोक्य—वि० [स०] देखने योग्य। अवलोकनीय [को०]।

अवलोचनाⓅ—क्रि० स० [स० अवलोचन, आलोचन] दूर करना। उ०—मोचैं अनागम कारण कत को मोचैं उसासनि आँसुहूँ मोचैं। मोची न हेरि हरा हिय को पदमाकर मोचि सकै न सँकोचैं। कोत की इह चाँदनी चैते अलि, याहि निवाहि विथा अवलोचैं। लोचैं पगी सी परी परजक पै वीती घरी न घरी घरी मोचैं।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२१।

अवलोप—संज्ञा पुं० [स०] १ काटना। काटकर दूर करना। विगाडना। २ अधर को दाँत से क्षत करना। अधर चूमना [को०]।

अवलोभन—संज्ञा पु० [स०] विषयवासना [को०]।

अवलोम—वि० [स०] १ अपनी तरफदारी करनेवाला। अपना पक्ष लेनेवाला। २ उपयुक्त [को०]।

अवल्गुज[1]—संज्ञा पुं० [स०] सोमराजी नामक पौधा [को०]।

अवल्गुज[2]—वि० जिसका मूल अच्छा न हो [को०]।

अववद—संज्ञा पुं० [सं०] निंदा। अपवाद [को०]।

अववदन—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अववद' [को०]।

अववादित—वि० [स०] सिखलाया हुआ। समझाया हुआ [को०]।

अववादिता—वि० [स० अववदितृ] निर्णायक ढग से बोलनेवाला [को०]।

अववारक—संज्ञा पुं० [स०] १. छेद। २ खिडकी [को०]।

अववाद—संज्ञा पुं० [स०] १ निंदा। बुराई। २ विश्वास। ३. अनादर। अवज्ञा। ४. सहारा। भरोसा। ५ आदेश। ६ सूचना [को०]।

अवश—वि० [स०] १ विवश। परवश। लाचार। २ स्वतत्र। मुक्त [को०]। ३ अनियत्रित [को०] ४ जरूरी। आवश्यक (को०)।

यौ०—अवशग = स्वतत्र। अवशीभूत = अनियत्रित। अवशेंद्रियचित्त = जिसका मन और मस्तिष्क वश मे न किया जा सके।

अवशप्त—वि० [स०] अभिशप्त [को०]।

अवशा—संज्ञा स्त्री० [स०] मरकही या बुरी गाय [को०]।

अवशिष्ट—वि० [सं०] वचा हुआ। शेष। बाकी। वचा खुचा। वचा वचाया।

अवशीन—संज्ञा पु० [स०] विच्छू [को०]।

अवशीर्ण—वि० [स०] टूटा फूटा। नष्ट [को०]।

अवशीर्षक्रिया—संज्ञा स्त्री० [स०] विरक्त मित्र या राज्यापराध के कारण बहिष्कृत व्यक्ति के साथ फिर सधि करना।

अवशीर्ष[1]—वि० [स०] जिसका सिर झुका हो।

[illegible]—[illegible] पुं० [illegible] [illegible] ।
[illegible] [सं०] १ [illegible] । [illegible] । [illegible] । उ०—[illegible]
कोई [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] (मानस) । २ [illegible] ।
[illegible]—[illegible] पुं० [सं० [illegible]] [illegible] । २ [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible]—वि० [सं०] [illegible] । [illegible] । उ०—[illegible]
[illegible]
[illegible]—तुलसी (मानस) ।
[illegible]—वि० [सं० [illegible]] जो [illegible] हो, [illegible]
[illegible] । [illegible] ।
[illegible]—वि० [सं०] [illegible] । [illegible] । [illegible] ।
[illegible]—वि० [सं० [illegible]] १ [illegible] । २ [illegible] ।
[illegible]—वि० [सं०] दे० '[illegible]' (सं०) ।
[illegible]—वि० [सं०] [illegible] । [illegible] ।
[illegible]—वि० [सं०] [illegible]
विशेष—[illegible]
[illegible]
[illegible] है, [illegible] है ।
[illegible]—वि० [सं०] १ [illegible] । २ [illegible] ।
[illegible]—पुं० [सं०] १ [illegible] । २ [illegible] ।
[illegible] । ३ [illegible] ।
यौ०—[illegible] = [illegible] ।
[illegible]—पुं० [सं०] [illegible]
[illegible] ।
[illegible]—वि० [सं०] [illegible]
[illegible] ।
[illegible]—पुं० [सं० [illegible]] [illegible] १ [illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible]

अवसरवादिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मौके से फायदा उठाने की प्रवृत्ति।

अवसरवादी—वि० [सं० अवसरवादिन्] [अं० अपॉरचुनिस्ट] १ [illegible] सिद्धांतों का परिवर्तित करनेवाला। [illegible]। २. अवसरवाद के दार्शनिक [illegible]।

अवसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १ [illegible]। छोड़ देना। २ शिथिल करना। ३. [illegible] [को०]।

अवसर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ना। बंधन से मुक्त कर देना [को०]।

अवसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तचर। जासूस [को०]।

अवसर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] अधोगमन। अधःपतन। अवरोहण। गिरना।

अवसर्पिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार गिराव का समय जिसमें रूपादि का क्रमशः ह्रास होता है। इसके छह विभाग हैं जिन्हें 'आरा' कहते हैं। अपरोह। विवर्त।

अवसर्पी—वि० [सं० अवसर्पिन्] [वि० स्त्री० अवसर्पिणी] नीचे जाने वाला। गिरनेवाला।

अवसवो(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अवश्यमेव'। उ०—अवसवो उद्यम [illegible] मिद्धि।—कीर्ति०, पृ० २६।

अवस[illegible]—वि० [सं०] [illegible]। [illegible] [को०]।

अवसाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाश। क्षय। २ विषाद। ३ दीनता। ४ थकावट। ५ कमजोरी। ६ कानून में कारण की सदोषता जिससे कि मुकदमा गिर जाय (को०)।

अवसादक—वि० [सं०] १ अवसाद उत्पन्न करनेवाला। २ सुस्त करनेवाला। थकावट लानेवाला। ३ क्षीण करनेवाला। ४ समाप्त करनेवाला [को०]।

अवसादन—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाश। क्षय। ध्वंस। २ विनाशन। ३ निम्न होना। ४ क्षीण होना। ५ थकना। ६ वैद्यक में व्रणचिकित्सा का एक अंग। मरहम पट्टी। ७ कार्य करने की अक्षमता [को०]।

अवसादी—वि० [सं० अवसादिन्] अवसादयुक्त [को०]।

अवसान¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ विराम। ठहराव। समाप्ति। अंत। ३ सीमा। उ०—'[illegible] तुम्हारे मान का अवसान है न?'—[illegible], पृ० [illegible]। ४ सायंकाल। ५ मरण। ६ घोड़े से उतरने का स्थान (को०)। ७ छंद की समाप्ति या छंद। ८ रहने का स्थान। निवासस्थान [को०]।

अवसान(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'औसान²'।—(क) [illegible], [illegible] आइ जगायो। पग जो चापि पूँछ, [illegible] अवसान भुलानो।—सूर०, १०। ५८९। (ख) छूटत [illegible], सावधान [illegible] अवसान [illegible] [illegible]।—[illegible], पृ० ४६६।

अवसानित—वि० [सं०] [illegible]। समाप्त होता हुआ [को०]।

अवसार(पु)—क्रि० [हिं०] दे० '[illegible]'। उ०—[illegible] गुरु गोविंद [illegible]—दक्खिनी०, पृ० ३३३।

अवसाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. निष्कर्ष। निर्णय। समाप्ति। २ अवशेष। ३ परिसमाप्ति। ४. निश्चय। ५. अंतिम अवस्था को पहुँचानेवाला [illegible] [को०]।

अवसायक—वि० [सं०] नष्ट भ्रष्ट करनेवाला। विघटित करनेवाला [को०]।

अवसायिता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अवसित=ऋद्ध] ऋद्धि। (डिं०)।

अवसायी—वि० [सं० अवसायिन्] रहनेवाला [को०]।

अवसारण—संज्ञा पुं० [सं०] हटाना [को०]।

अवसि(पु)—क्रि० वि०, दे० 'अवश्य'। उ०—तदपि अवसि हम वन राम जहँ भरत मनु भल कीन्ह।—मानस, २।१८४।

अवसिक्त—वि० [सं०] सींचा हुआ। सिंचित [को०]।

अवसित¹—वि० [सं०] १ समाप्त। २ ऋद्ध। बढ़ा हुआ। ३ परिपक्व। ४ निश्चित। ५ सबद्ध। ६ रहनेवाला। ७ जमा किया हुआ। एकत्र किया हुआ। ८ ज्ञात। जाना हुआ [को०]।

अवसित²—संज्ञा पुं० १ रहने की जगह। २ खलिहान [को०]।

अवसी—संज्ञा स्त्री० [आवसिन्, प्रा० आवसिअ=पका धान्य] वह धान्य या शस्य जो कच्चा नवान्न आदि के लिये काटा जाय। अवनी। अरवन। गद्दर।

अवसुप्त—वि० [सं०] सोया हुआ (को०)।

अवसृष्ट—वि० [सं०] [स्त्री० अवसृष्टा] १ त्यागा हुआ। त्यक्त। २ निकाला हुआ। ३ दिया हुआ। दत्त।

अवसेक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सिंचन। २ एक प्रकार का नेत्र रोग [को०]।

अवसेख(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवशेष'। उ०—उहाँ राम रजनी अवसेखा। जागे सीय सपन अस देखा।—मानस, २।२२५।

अवसेचन—संज्ञा पुं० [सं०] सींचना। पानी देना। २ पसीजना। पसीना निकलना। ३ वह क्रिया जिसके द्वारा रोगी के शरीर से पसीना निकाला जाय। ४ जोंक, सींगी, तूँबी या फस्द देकर रक्त निकालना। ५ जल जो छिड़का जाय (को०)।

अवसेर—संज्ञा स्त्री० [सं० अवसेर=बाधक]१ अटकाव। उलझन। उ०—भयो मो मन माधव को अवसेर। मौन धरे मुख चितवत ठाढ़ी ज्वाब न आवै फेर। तब अकुलाय चली उठि वन को बोले सुनत न टेर।—सूर (शब्द०)। २ देर। विलंब। उ०—महरि पुकारत कुँअर कन्हाई। माखन धर्‌यो तिहारे कारन आजु कहाँ अवसेर लगाई।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—लगना।—लगाना।—होना।

३ चिंता। व्यग्रता। उचाट। उ०—(क) भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आजु कौन वन गाइ चरावत, कहँ धौं भई अबेर। बैठे कहूँ सुधि लेउँ कौन विधि त्यारि करत अवसेर।—सूर०, १०। ४९८।

क्रि० प्र०—करना।—उ०—दूती मन अवसेर करै। श्याम मनावन मोहि पठाई यह कतहूँ निरुवै न टरै।—सूर(शब्द०)।—लगना। उ०—अब के नयन गए मोहि त्यागि। दुरी गई सबो तन ते मन उनहिं बिना अवसेरी लागि।—सूर(शब्द०)।

४. हैरानी। बेचैनी। उ०—दिन दस घोष चलहु गोपाल। गाइन के अवसेर मिटावहु लेहु आपने ग्वाल।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना=दुःख देना।—मिटाना।—में पड़ना=दुःख

में फँसना।–मे फँसना = दुख मे पडना। अवसेरन मरना = दुख से तंग आना।

अवसेरना Ⓟ—क्रि० स० [हिं० अवसेर] तंग करना। दुख देना। उ०–पिय पागें परोसिन के रस मे बस मे न कहूँ बस मेरे रहै। पदमाकर पाहुनी सी ननदी निस नीद तजे अवसेरे रहै।—पद्माकर (शब्द०)।

अवसेष Ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अवशेष'।

अवसेषित Ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अवशेषित'।

अवसेस Ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अवशेष[1]'। उ०–करि भोजन अवसेस जज्ञ को त्रिभुवन भूख हरी।—सूर०, १। १६।

अवस्कंद—संज्ञा पुं० [सं० अवस्कन्द] १. सेना के ठहरने की जगह। शिविर।—डेरा। २ जनवासा। ३ आक्रमण। हमला (को०)।

अवस्कंदक—संज्ञा पुं० [सं० अवस्कन्दक] जो रास्ते चलते लोगों को मारे पीटे।

अवस्कंदित—वि० [सं० अवस्कन्दित] १ जिसपर आक्रमण किया गया हो। २ नीचे गया हुआ। ३ अशुद्ध गलत। ४ नहाया हुआ। स्नात [को०]।

अवस्कंदितश्रमी—संज्ञा पुं० [सं० अवस्कन्दितश्रमी] मजदूरी या तनखाह लेकर भाग जानेवाला मजदूर।

अवस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १ मलमूत्र। २ मलमूत्रेंद्रिय। ३ कूड़ा कर्कट। ४ कतवारखाना। जहाँ कूड़ा कर्कट एकत्र रहता है। चूर।

अवस्करक[1]—वि० [सं०] गदगी से उत्पन्न होनेवाला [को०]।

अवस्करक[2]—संज्ञा पुं० १ मेहतर। २ गोबरैला। ३ झाड़ू [को०]।

अवस्करभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] वह नल जिसमे पाखाना बह कर बाहर जाता हो।

अवस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी के मुख का वह भाग जो दोनो आँखो के ठीक बीच मे है [को०]।

अवस्तार—संज्ञा पुं० [सं०] १ पर्दा। २ खेमे के चारो ओर लगाया गया कपड़ा। कनात। ३ चटाई [को०]।

अवस्तु—वि० [सं०] १ जो कोई वस्तु न हो। शून्य। २ तुच्छ। हीन।

अवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दशा। हालत। उ०—सुनता हूँ परम भट्टारक की अवस्था अत्यंत शोचनीय है।–स्कद०, पृ० ३२। २ समय। काल। उ०—मरन अवस्था कौं नृप जानैं। तौ हू धरै न मन मे ग्लानै।–सूर०, ४।१२। ३ आयु। उम्र। ४ स्थिति। उ०–'भाव के इस प्रकार प्रकृतिस्थ हो जाने की अवस्था को हम शील दशा कहेंगे'।–रस०, पृ० १८३। ५ वेदांत दर्शन के अनुसार मनुष्य की चार अवस्थाएँ—जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। ६ स्मृति के अनुसार मनुष्य जीवन की आठ अवस्थाएँ–कौमार, पौगड, कैशोर, यौवन, बाल, तरुण, वृद्ध और वर्षीयान्। ७ सांख्य के अनुसार पदार्थों की तीन अवस्थाएँ–अनागतावस्था, व्यक्ताभिव्यक्तावस्था और तिरोभाव। ८ निरुक्त के अनुसार छह प्रकार की अवस्थाएँ–जन्म, स्थिति, वर्धन, विपरिणमन, अपक्षय और नाश। ९ कामशास्त्रानुसार दस अवस्थाएँ–अभिलाष, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, सलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। १०. जैनशास्त्रानुसार लाभ की प्राप्ति के पूर्व की स्थिति। यह पाँच प्रकार की है—व्यक्त, अव्यक्त, जप, आदान और निष्ठा। ११ योनि। भग (को०)। १२. आकृति। रूप [को०]।

यौ०—अवस्थांतर = एक अवस्था से दूसरी अवस्था को पहुँचना। हालत का बदलना। दशापरिवर्तन। अवस्थाद्वय = सुख और दुख जीवन की दो अवस्थाएँ।

अवस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्थिति। सत्ता। २. स्थान। जगह। वास। ३. निवासस्थान [को०]। ४ रहना। ठहरना [को०]। ५ रुकने या ठहरने का काल [को०]।

अवस्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] १ निवेशन। रखना। स्थापन करना। २ निवास (को०)।

अवस्थापरिणाम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिणाम' (योग)।

अवस्थित—वि० [सं०] १ उपस्थित। विद्यमान। मौजूद। २ निश्चेष्ट (को०)। ३ तैयार। तत्पर (को०)। ४ अच्छी तरह सयोजित या लग्न (को०)। ५ टिका हुआ। निर्भर (को०)।

अवस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्तमानता। स्थिति। सत्ता। अवस्थान।

अवस्नात—वि० [सं०] (जल) जिसमे स्नान किया गया हो [को०]।

अवस्फूर्ज—संज्ञा पुं० [सं०] बादलों की ध्वनि। गर्जन। गड़गड़ाहट [को०]।

अवस्यदन—संज्ञा पुं० [सं० अवस्यन्दन] टपकना। चूना। गिरना।

अवस्य Ⓟ—क्रि० वि० [सं० अवश्य] दे० 'अवश्य'। उ०—और श्री रनछोर जी तो श्रीआचार्य जी के माने हैं, तातें वहाँ अवस्य जानो।—दो सौ बावन०, पृ० १८।

अवस्यक Ⓟ—वि० [सं० आवश्यक] दे० 'आवश्यक'। उ०—चतुर नैनपहिं नित न अवस्यक वल दिखरावत।—रत्नाकर, भा० १, पृ० २६।

अवह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह दिशा जिसमे नदी नाले न हों। २ वह वायु जो आकाश के तृतीय स्कंध पर है। ईथर।

अवह[2]—वि० १ जो वहन न किया जा सके। जो ढोया न जा सके। २ बिना नदी या सोतेवाला [को०]।

अवहनन—संज्ञा पुं० [सं०] १ कूटना (जैसे धान)। २. पछोरना। फटकना। ३ धान कूटकर चावल अलग करना। ४ फुफ्फुस। फेफड़ा [को०]।

अवहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ चुरा लेना। जबरदस्ती ले लेना। २ अन्यत्र जाना या ले जाना। ३ युद्धक्षेत्र मे शिविर को वापस होना [को०]।

अवहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ या गदेली का पृष्ठभाग। उलटा हाथ।

अवहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ जलहस्ति। सूँस। २ चोर। तस्कर (को०)। ३ आमत्रण। ४ युद्धक्षेत्र मे वापस होना (को०)। ५ सधि। शस्त्रविराम। (को०) ६ धर्मत्याग। ७ समीप लाने के योग्य या अनुकूल (को०)। ८. अपहरण (को०)। ९ वापस करना (को०)।

अवहारक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सूँस नामक जलजतु (को०)।

अगहारक[2]—वि० १ युद्ध रोकनेवाला। २ बचाव करनेवाला। ३ एक स्थान से दूसरी जगह ले जानेवाला [को०]।

अगहार्य—वि० [सं०] १ ले जाने योग्य। २ दंड योग्य या अर्थदंड योग्य। ३ जिसे लौटाने के लिये बाध्य हो। ४. पूर्ण होनेवाला [को०]।

अगहालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीवार। प्राचीर। घेरा [को०]।

अगहास—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुस्कान। मुस्काहट। २ उपहास। हँसी। मजाक उड़ाना [को०]।

अगहित—वि० [सं०] सावधान। एकाग्रचित्त।

अगहित्थ—संज्ञा पुं० [सं०] अवहित्था [को०]।

अगहित्था—संज्ञा स्त्री०[सं०]एक प्रकार का भाव जब कोई भय, गौरव, लज्जादि के कारण हर्षादि को चतुराई से छिपावे। यह संचारी या व्यभिचारी में गिना जाता है। आकारगुप्ति जैसे,—ज्यों ज्यों चवाव चलैं चहुँ ओर, धरैं चित चाव ये त्योंही त्यों चोखे। कोऊ सिखावनहार नहीं बिनु लाज भए बिगरैल अनोखे। गोकुल गाँव को एती अनीति कहाँ ते दई धौं दई अनजोखे। देखती हौ मोहिं माँझ गली में गही इन आइ धौं कौन के धोखे।—(शब्द०)।

अगही—संज्ञा पुं० [सं० अवह=बिना पानी का देश] एक प्रकार का बबूल जो कांगड़ा में होता है।

विशेष—इसकी लपेट आठ फुट की होती है। यह मैदानों में पैदा होता और इसकी लकड़ी खेती के औजार बनाने तथा छतों के तख्तों में काम आती है।

अगहृत—वि० [सं०] १ आगे या पीछे हटाया हुआ। २ चुराया हुआ। ३ दंडित किया गया [को०]।

अगहेलन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवहेलना] [वि० अवहेलित] १. अवज्ञा। अपमान। २. आज्ञा न मानना।

अगहेलना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अवज्ञा। अपमान। तिरस्कार। उ०—वे ईश नियमों की कभी अवहेलना करते न थे।—भारत०, पृ० ६। २ ध्यान न देना। बेपरवाही।

अगहेलना(पु)[2]—क्रि० स० [सं० अवहेलन] तिरस्कार करना। अवज्ञा करना। उ०—इन उतपातन गनिय सुजात न, सब अवहेलिय रन मद झेलिय।—सुजान०, पृ० २२५।

अगहेला—संज्ञा स्त्री०[सं०]अवज्ञा। तिरस्कार। अवहेलना। उ०—तब मेरी अवहेला की गई, यह उसी का परिणाम है।—स्कंद०, पृ० १४७।

अगहेलित—वि० [सं०] जिसकी अवहेला हुई हो। तिरस्कृत।

अगाछनीय—वि० [सं० अवाञ्छनीय] १. जिसे न चाहा जाय। अप्रिय। २. उपेक्षणीय [को०]।

अगातर[1]—वि०[सं० अवान्तर]१. अंतर्गत। २. मध्यवर्ती। बीज का ३ दूसरा। गौण। अन्य [को०]।

अगातर[2]—संज्ञा पुं० मध्य। भीतर। बीच।

यौ०—अवातर दिशा=बीच की दिशा। विदिशा। अवांतर देश=दो देशों का मध्यवर्ती स्थान। अवांतर भेद=अंतर्गत भेद। भाग का भाग। अवांतर वाक्य=महावाक्य के मध्य में आनेवाला वाक्य या सार्थक शब्दसमूह।

अवाँ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवाँ'। उ०—चंदन की चोली और कपूर चुवाएँ अंग अंग विरह की आँच त्यों अवाँ ज्यों सिलगाइगो।—गंग०, पृ० २८३।

अवाँग—वि० [सं० अवाङ्] १ झुका हुआ। नत। २ टेढ़े अंगवाला।

अवाँगना(पु)—क्रि० स० [हिं० अवाँग+ना] नीचे की ओर झुकाना। अवनत करना।

अवाच—वि०[सं० अवाञ्च]१ झुका हुआ। दबा हुआ। २ अधोमुख। ३ नीचे की ओर स्थित [को०]।

अवाच[2]—संज्ञा पुं० १ दक्षिण। २. ब्राह्मण [को०]।

अवाँसना†—क्रि० स० [हिं०] अनवासना। नए बर्तन को पहले पहल काम में लाना।

अवाँसी—संज्ञा स्त्री० [सं० अवासित] वह बोझ जो फसल में से पहले पहले काटा जाय। यह नवान्न के लिये काम में आता है। अखान। ददरी। कवल। अन्नी।

अवाई—संज्ञा स्त्री० [सं० आयन=आगमन] १ आगमन। उ०—(क) इहाँ राज अस सेन बनाई। उहाँ साह कै भई अवाई।—जायसी ग्र०, पृ० २३०। (ख) लखि यों अवाई वीर की रिपु भीर में खलबल भई।—पद्माकर ग्र०, पृ० १७। २ गहरा जोतना। गहरी जोताई।—'सेव' का उलटा।

अवाक्—वि० [सं०] १ चुप। मौन। चुपचाप। २ नीचे मुख किए हुए। अधोमुख। २ स्तब्ध। जड़। स्तंभित। चकित। विस्मित। ३ दक्षिण का। दक्षिणी [को०]।

क्रि० प्र०—रहना।—होना।

यौ०—अवाङ् मनसगोचर=जिसका न वर्णन हो सके और न चिंतन। वाणी और मन के परे, जैसे ईश्वर।

अवाक्पुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पौधा जिसके फूल अधोमुख हों। २ सौंफ। ३. सोया।

अवाक्शाख—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल [को०]।

अवाक्श्रुति—वि०[सं०]बोल न सुन सकनेवाला। गूँगा बहरा[को०]।

अवाक् संदेश—संज्ञा पुं० [बंग०] एक प्रकार की बँगला मिठाई।

अवाक्ष—वि० [सं०] रक्षक। अभिभावक। देखभाल करनेवाला[को०]।

अवागी(पु)—वि० [सं० अवाग्मिन्=अपटु] मौन। चुप।

अवाङ्—वि० [सं०] नीचे की तरफ झुका हुआ [को०]।

अवाङनरक—संज्ञा पुं० [सं०] जिह्वा छेदन का दुःख। जिह्वा काटने का दंड। जबान काटने की सजा।

अवाङ्निरय—संज्ञा पुं० [सं०] सबसे नीचे का नरक अर्थात् पृथ्वी [को०]।

अवाङ्मुख[1]—वि० [सं०] १ अधोमुख। उलटा। नीचे मुँह का २. लज्जित।

अवाङ्मुख[2]—संज्ञा पुं० एक शस्त्र [को०]।

अवाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा। उ०—प्राची प्रतीची अवाची बिलोकि दसो दिसि होत ही कूच कुकैनी—गंग०, पृ० ३४०।

अवाचीन—वि०[सं०]१ अधोमुख। मुँह लटकाए हुए। २ लज्जित ३. दक्षिण संबंधी। दक्षिणी। दक्षिण का [को०]। ४. नीचे गया हुआ [को०]।

अवाच्य¹—वि० [सं०] १ जो कहने योग्य न हो। अनिंदित। विशुद्ध। २ जिसमे बात करना उचित न हो। नीच। निंदित। ३ स्पष्टतारहित। अस्पष्ट [को०]। ४ दक्षिण सबधी। दक्षिणी [को०]।

अवाच्य²—संज्ञा पुं० कुवाच्य। बुरी बात। गाली।

यौ०—अवाच्यदेश = वह स्थान जिसकी बाबत कुछ कहना ठीक न हो—योनि।

अवाज(पु)—संज्ञा स्त्री० [फा० आवाज] ध्वनि। शब्द। आवाज। उ०—कहियत पतित बहुत तुम तारे स्रवननि सुनी आवाज। दई न जात खार उतराई चाहत चढयो जहाज।—सूर०, १। १०८।

अवाजी(पु)—वि० [फा० आवाज] शब्द करनेवाला। चिल्लानेवाला। उ०—यदपि आवाजी परम तदपि बाजी सो छाजत।—गोपाल (शब्द०)।

अवाड़ू(पु)—वि० [सं० अपवृत्त अथवा देशी] विपरीत। उलटा। उ०—पाँखड़ियाँ ई किऊँ नही, दैव अवाड़ू ज्याँह। चकवीकइ इह पखडी, रमणि न मेनउ त्याँह।—ढोला० दू० ७१।

अवात—वि० [सं०] वातशून्य। जहाँ वायु न लगे। निर्वात। २ अवाक्रांत [को०]।

अवादा दे०—वि० पुं० [हिं० वादा] दे० 'वादा'।

अवादी—वि० [सं० अवादिन्] १. न बोलनेवाला। अवक्ता। २. जो कोई वाद उपस्थित नही करता। शांतिप्रिय [को०]।

अवान—वि० [सं०] सूखा हुआ। शुष्क [को०]।

अवापित—वि० [सं०] १ जो बोया न गया हो। रोपा हुआ। २. (केश) जो काटा हुआ न हो [को०]।

अवाप्त—वि० [सं०] प्राप्त। लब्ध।

अवाप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्ति। २. (गणित मे) उद्धरण। [को०]।

अवाप्य—वि० [सं०] १ प्राप्त करने योग्य। २ (केश) न काटने योग्य [को०]।

अवाम—संज्ञा पुं० [अ० 'आम' का बहुव०] साधारणजन। सर्वसाधारण। आम लोग। उ०—करे तृप्त किमि तुमहि अवाम।—प्रेमघ०, पृ० १४१।

अवाय¹(पु)—वि० [सं० अवर्य] अनिवार्य। उच्छृखल। उद्धत। उ०—दीनदयाल पतित पावन प्रभु बिरद भुलावत कैसे। कहा भयो गज गनिका तारी जो जन तारौ ऐसे। अक्रम अबुध अज्ञान अवाया अनमारग अनरीति। जाको नाम लेत अघ उपजै सो मैं करी अनीति।—सूर (शब्द०)।

अवाय²—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ मे पहनने का भूषण। कड़ा।—डिं०।

अवार—संज्ञा पुं० [सं०] नदी के इस पार का किनारा। सामने का किनारा। 'पार' का उलटा। उ०—उठ अवार न पार जाकर सी गई। ऊर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नई।—साकेत, पृ० ३०३।

अवारजा—संज्ञा पुं० [फा०] १. वह वही जिसमे प्रत्येक असामी की जोत आदि लिखी जाती है। २ जमाखर्च की वही। ३ वह वही जिसमे याददाश्त के लिये नोट किया जाय। ४ संक्षिप्त वृत्तांत। गोशवारा। खतियौनी। संक्षिप्त लेखा। उ०—साँचो सो लिखवार कहावै। काया ग्राम ममाहत करिकै जमाबंधि ठहरावै। करि अवारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै। दूजी करे दूरि करि दाई तनक न तामे आवै।—सूर (शब्द०)।

अवारण—वि० [सं०] १ जिसका निषेध न हो सके। सुनिश्चित। २. जिसकी रोक न हो सके। बेरोक। अनिवार्य।

अवारणीय¹—वि० [सं०] १. जो रोका न जा सके। बेरोक। अनिवार्य। २ जिसका अवरोध न हो सके। दूर न हो सके। ३ जो आराम न हो। असाध्य।

अवारणीय²—संज्ञा पुं० सुश्रुत के अनुसार रोग का वह भेद जो अच्छा न हो। असाध्य रोग।

विशेष—यह आठ प्रकार का है—वात, प्रमेह, कुष्ठ, अर्श, भगदर, अश्मरी, मूढगर्भ और उदररोग।

अवारना(पु)—क्रि० स० [सं० अ + वारण] १ रोकना। मना करना २ वारना। न्योछावर करना।

अवारपार—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

अवारा—वि० [हिं०] दे० 'आवारा'

अवारा²(पु)—वि० [हिं० आना + वार (प्रत्य०)] आनेवाले। आगनुक। परदेशी। उ०—सिसिर सिरान्यो आस आवनि अवारे की।—प्रेमघन०, पृ० २२९।

अवारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिया।

अवारिजा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवारजा'।

अवारित—वि० [सं०] जिसपर रोक न हो। रोक या प्रतिबंधमुक्त [को०]।

यौ०—अवारित द्वार = जिसका द्वार बंद न हो खुला हो।

अवारी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० वारण] बाग। लगाम।

अवारी²—संज्ञा स्त्री० [सं० अवार] १. किनारा। मोड़।

क्रि०प्र०—देना = नाव फेरना।

२ मुखविवर। मुँह का छेद।

अवारीण—वि० [सं०] नदी पार गया हुआ [को०]।

अवारो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ = दूषित + प्रा० वार = वे] अबेर। देर। विलंब। अतिकाल। उ०—तब अवारो सो ये मेवा सो पहोंचता।—दो सौ बावन०, पृ० २१०।

अवार्य—वि० [सं०] दे० 'अवारणीय'। उ०—उस पहले के ही मलबे मे जिसका जलना गिरना अवार्य।—दैनिकी, पृ० २१।

अवावट—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे सवर्ण पति से उत्पन्न पुत्र, जैसे कुंड और गोलक।

अवास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आवास] निवासस्थान। घर। उ०—कबिरा कहा गरबियो ऊँचा देखि अवास। काल्हि परे भुइँ लोटना ऊपर जमिहै घास।—कबीर (शब्द०)। (ख) बाजति नंद अवास बधाई। बैठे खेलत द्वार आपने, सात बरस के कुँवर कन्हाई।—सूर०, १०। ८१८।

अविद्धकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाढा नाम की लता।

अविद्य[1]Ⓟ—वि० [सं० अविद्यमान्] नष्ट। नेस्त नाबूद। उ०—विद्या धरनि अविद्य करौं बिन सिद्ध सिद्धि सब।—रामच०, पृ० १२०।

अविद्य[2]—वि० [सं०] १ अशिक्षित। विद्याविहीन। अपढ। बेवकफ २ जो शिक्षा संबंधी न हो [को०]।

अविद्यमान—वि० [सं०] १ जो विद्यमान या उपस्थित न हो। अनुपस्थिति। २. जो न हो। असत्। उ०—अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहि जाइ गोसाईं। बिनु बाँधे निज हठ सठ परबस परयो कीर की नाईं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५१७।३ मिथ्या। असत्य। झूठा।

अविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विरुद्ध ज्ञान। मिथ्या ज्ञान। अज्ञान। मोह। उ०—(क) जिन्हहिं सोक ते कहौं बखानी। प्रथम अविद्या निसा नसानी।—मानस, ७।३१ (ख) विषम भई संकल्प जब तदाकार सो रूप। महाँ अँधेरो काल सो परे अविद्या कूप।—कबीर (शब्द०)। २ माया। उ०—हरि सेवकहि न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापै तेहि विद्या।—तुलसी (शब्द०)। ३ माया का भेद। उ०—तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ।—तुलसी (शब्द०)। ४ कर्मकांड। ५ सांख्यशास्त्रानुसार प्रकृति। अव्यक्त। अचित्। जड। ६ योगशास्त्रानुसार पाँच क्लेशों मे पहला। विपरीत ज्ञान। अनित्य मे नित्य, अशुचि मे शुचि, दुःख में सुख और अनात्मा (जड) मे आत्मा (चेतन) का भाव करना। ७ वैशेषिकशास्त्रानुसार इंद्रियों के दोष तथा संस्कार के दोष से उत्पन्न दुष्ट ज्ञान। ८ वेदांतशास्त्रानुसार माया।

यौ०—**अविद्याकृत**=अविद्या से उत्पन्न। **अविद्याजन्य**=अविद्या से उत्पन्न। **अविद्याच्छन्न**=अविद्या या अज्ञान से आवृत्त। **अविद्यामार्ग**=प्रेम। वह मार्ग जो संसार मे मनुष्यों को अनुरक्त करता है। **अविद्याश्रव**=अज्ञान (बौद्ध)।

अविद्वत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्खता। अज्ञानता।

अविद्वान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अविदुषी**] जो विद्वान् न हो। शास्त्रानभिज्ञ। मूर्ख।

अविद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] विद्वेष का अभाव। अनुराग। प्रेम।

अविधवा—वि० [सं०] सधवा। सौभाग्यवती। सुहागिन।

अविधानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **अभिधान**] दे० 'अभिधान'। उ०—व्याकरन कथा नाटक्क छंद। अभिधान दास अलंकार बंध।—पृ० रा०, १।७३६।

अविधान[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ विधि के विरुद्ध कार्य करना। २ विधान का अभाव।

अविधान[2]—वि० विधिविरुद्ध। २ उलटा।

अविधि[1]—वि० [सं०] विधिविरुद्ध। नियम के विपरीत।

अविधि[2]—संज्ञा पुं० १ विधान के विरुद्ध कार्य। अविधान। अनियमितता। उ०—वे हैं अविद्या के पुरोहित अविधि के आचार्य हैं।—भारत०, पृ० १२७। २. अपरिभाषेय। जिसकी परिभाषा न की जा सके [को०]।

अविनय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. विनय का अभाव। ढिठाई। उद्दंडता। उ०—अविनय विनय जथारुचि बानी। छमहि देव अति आरति जानी।—तुलसी (शब्द०)। २ घमंड। अभिमान [को०]। ३, अपराध। दोष [को०]।

अविनय[2]—वि० उद्दंड। धृष्ट। अशिष्ट। घमंडी [को०]।

अविनयी—वि० [सं० **अविनयिन्**] विनय रहित। उद्दंड [को०]।

अविनश्वर—वि० [सं०] जो नष्ट न हो। जो बिगड़े नहीं। चिरस्थायी। शाश्वत। उ०—दर्शन से जीवन पर बरसे अविनश्वर स्वर।—अपरा, पृ० १८६।

अविनाभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ संबंध। २ [illegible] जैसे अग्नि और धूम का।

अविनाश—संज्ञा पुं० [सं०] विनाश का अभाव। अक्षय।

अविनाशी—वि० पुं० [सं० **अविनाशिन्**] [वि० स्त्री० **अविनाशिनी**] १ जिसका विनाश न हो। अक्षय। अक्षर। २ नित्य। शाश्वत।

अविनासी[1]Ⓟ—वि० [सं० **अविनाशी**] दे० 'अविनाशी'। उ०—दादू अविहड आप हैं अमर उपजावनहार। अविनासी आपइ रहइ बिनसइ सब संसार।—दादू (शब्द०)।

अविनासी[2]—संज्ञा पुं० [सं० **अविनाशिन्**] ईश्वर। ब्रह्म। उ०—(क) राम नाम ठाँऔं नहीं सतगुरु सीख दई। अविनासी सो परसि के आतमा अमर भई।—कबीर (शब्द०)। (ख) दादू आनंद आतमा अविनासी के साथ। प्राननाथ हिरदै बसइ सकल पदारथ हाथ।—दादू (शब्द०)।

अविनीत—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अविनीता**] १ जो विनीत न हो। उद्धत। उ०—जो मेरी है सृष्टि उसी मे भीत रहूँ मैं, क्या अधिकार नहीं कि कभी अविनीत रहूँ मैं।—कामायनी, पृ० १९०।

अविनीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा नारी। असती स्त्री। दुराचारिणी या बदचलन स्त्री।

अविनेय—वि० [सं०] अनियंत्रणशील। अवाच्य। बेकहा [को०]।

अविपक्व—वि० [सं०] १ न पका हुआ। अपक्व। २ जिसका ज्ञान प्रौढ न हो [को०]।

अविपट—संज्ञा पुं० [सं०] भेड के ऊन का वस्त्र। ऊनी वस्त्र [को०]।

अविपद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] कष्ट, दुःख आदि का अभाव। सुख। समृद्धि [को०]।

अविपन्न—वि० [सं०] १ स्वस्थ। नीरोग। २ जो क्षत न हुआ हो। जिसे आघात या चोट न लगी हो। ३. शुद्ध। पवित्र।

अविपर्यय—संज्ञा पुं० [सं०] विपर्यय या विकार का न होना। क्रम के विरुद्ध न होना।

अविपाक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अजीर्ण रोग [को०]।

अविपाक[2]—वि० अजीर्ण रोग से ग्रस्त। अजीर्ण [को०]।

अविपाल—संज्ञा पुं० [सं०] गड़ेरिया। उ०—पशुओं की रक्षा करने के कारण उसे गोपालक, अजापाल या अविपाल कहते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २९२।

अविपित्तक—संज्ञा पुं० [सं०] एक चूर्ण, जो अम्लपित्त रोग में दिया जाता है।

अविबुध[1] वि० [सं०] १. अज्ञानी। नादान। २. बुद्धिहीन। बेअक्ल।

अविबुध[2]—संज्ञा पुं० असुर। दैत्य। राक्षस।

अविभक्त-वि० [सं०] १ जो अलग न किया गया हो। मिला हुआ। २ जो बाँटा न गया हो। विभागरहित। शामिलाती। ३ अभिन्न। एक। उ०—सुत तुम्हारे भाव ये अविभक्त, मैं स्वयं उन पर करूँगी व्यक्त।—साकेत, पृ० १८६।

अविभाग-वि० [सं०] जिसके टुकड़े न हों। जो अलग अलग न हो। जो एक ही [को०]।

अविभाज्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] गणित मे वह राशि जिसका किसी गुणक के द्वारा भाग न किया जा सके। निश्छेद।

अविभाज्य[2]-वि० जिसका बँटवारा न किया जा सके। जिसके भाग या खड न हो सकें।

अविभावन-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अविभावना] [वि० अविभावनीय, अविभाव्य] १ पहचान का अभाव। २ अदर्शन। लोप [को०]।

अविमान--संज्ञा पुं० [सं०] १ आदर। समान। २ अपमान का अभाव [को०]।

अविमुक्त[1]—वि० [सं०] जो विमुक्त न हो। बद्ध।

अविमुक्त[2]-संज्ञा पुं० १ कनपटी। जाबाल उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म का स्थान। २ काशी।

अविमुक्तेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] काशी मे स्थापित एक शिवलिंग [को०]।

अवियुक्त-वि० जो वियुक्त न हो। जो अलग अलग न हो। मिला हुआ [को०]।

अवियोग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वियोग का अभाव। उपस्थित। २ सयोग। मिलाप।

अवियोग[2]-वि० १ वियोगशून्य। जिसका वियोग न हो। २ सयुक्त समिलित। एकीभूत।

यौ०—अवियोगव्रत = कल्कि पुराण के अनुसार एक व्रत जो अगहन शुक्ल तृतीया को पडता है। इस दिन स्त्रियाँ स्नान कर चद्र दर्शन करके रात को दूध पीती हैं। यह व्रत सौभाग्यप्रद माना जाता है।

अविरत[1]—वि० [सं०] १ विरामशून्य। निरतर। २ अनिवृत्त। लगा हुआ।

अविरत[2]--क्रि० वि० १ निरतर। लगातार। २ सतत। नित्य। हमेशा।

अविरत[3]—संज्ञा पुं० विराम का अभाव। नैरतर्य।

अविरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निवृत्ति का अभाव। लीनता। २ विषयादि में तृष्णा का होना। विषयाशक्ति। ३ विराम का अभाव। अशाति। ४ जैनशास्त्रानुसार धर्मशास्त्र की मर्यादा से रहित वर्ताव करना।

विशेष—यह बधन के चार हेतुओ मे से है और बारह प्रकार का है। पाँच प्रकार की इद्रियाविरत, एक मनोविरति और छह प्रकार की कायाविरति।

अविरथा(पु)--क्रि० वि० [सं० वृथा, हिं० बिरथा] दे० 'वृथा'।

अविरल--वि० [सं०] १ जो विरल या भिन्न न हो। मिला हुआ। २. घना। अव्यवच्छिन्न। सघन। उ०—अचल अनिकेत अविरल अनामय अनारभ अवोदनादघ्न बधो।—तुलसी ग्र० पृ० ४८३।

यौ०—अविरलधारासार = अनवरत होनेवाली मूसलाधार वृष्टि।

अविरहित-वि० [सं०] वियोग न होना। अवियुक्त। अलग न होना [को०]।

अविराम[1]—वि० [सं०] १ विना विश्राम लिए हुए। अविश्रात। उ०—चलना है अविराम तुम्हें उद्वेग।—कानन०, पृ० १३।

अविराम[2]—क्रि० वि० लगातार। निरतर।

अविराम[3]—संज्ञा पुं० विरामाभाव। निरतरता। नैरतर्य [को०]।

अविरुद्ध—वि० [सं०] १. जो विरुद्ध न हो। अप्रतिकूल। उ०—स्थायी दशा को विरुद्ध या अविरुद्ध कोई भाव सचारी रूप मे आकर तिरोहित नही कर सकता।—रस०, पृ० १८२। २. अनुकूल। मुवाफिक। उ०—प्रजा आज कुछ और सोचती जो अब तक अविरुद्ध रही।—कामायानी, पृ० १७५।

अविरेचन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अविरेचनीय, अविरेच्य] विरेचन क्रिया मे बाधा उत्पन्न करनेवाली वस्तु। कब्ज करनेवाली वस्तु। [को०]।

अविरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १ साधर्म्य। समानता। २ विरोध का अभाव। अनुकूलता। ३ मेल। सगति। मुवाफिकत। उ०—समय समाज धर्म अविरोधा। बोले तब रघुवशपुरोधा।—तुलसी (शब्द०)।

अविरोधी-वि० [सं० अविरोधिन्] [वि० स्त्री० अविरोधिनी] १ जो विरोधी न हो। अनुकूल। २ मित्र। हित।

अविलघन—संज्ञा पुं० [सं० अविलङ्घन] [वि० अविलघनीय] न लाँघना। मर्यादा को न पार करना [को०]।

अविलब[1]—क्रि० वि० [सं० अविलम्ब] बिना विलब। तुरत। उ०—रथ रुका, उतरे उभय अविलब।—साकेत, पृ० १७४।

अविलब[2]—संज्ञा पुं० विलब का अभाव। शीघ्रता [को०]।

अविलक्ष्य— वि० [सं०] १ बिना लक्ष्यवाला। २ ईमानदार। निर्भीक। ३ असाध्य (रोग या रोगी) जिसकी चिकित्सा कठिन हो। ४ जिसका विरोध कठिन हो [को०]।

अविला—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेड [को०]।

अविलास[1]--वि० [सं०] विलास से मुक्त रहनेवाला। विश्वसनीय। स्थिर [को०]।

अविलास[2]—संज्ञा पुं० विलास का अभाव [को०]।

अविलिख—वि० [सं०] १ न लिखनेवाला अथवा लिखना न जानने वाला। २. बुरा लिखनेवाला। ३ लिखनेवाले से भिन्न या व्यतिरिक्त [को०]।

अविलोकन(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अवलोकन] दे० 'अवलोकन'।

अविलोकना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अवलोकना'।

अविलोडित—वि० [सं० अ = नहीं + विलोडित = मथा हुआ] न मथा हुआ। अमथित। उ०—अविलोडित था जमा दही।—साकेत, पृ० ३४८।

अविवक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विवक्षा अर्थात् कहने, बोलने आदि की अनिच्छा।

अविवक्षित—वि० [सं०] १ बिना उद्देश्य या अभिप्राय का। २. जिसके विषय मे कहना या बोलना न हो [को०]।

अविवाद[1]--वि० [सं०] विवादरहित। निर्विवाद। उ०—सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद।—युग०, पृ० ११

अविवाद²—संज्ञा पुं० सहमति। विवाद का न होना [को०]।

अविवादी--वि० [सं० अविवादिन्] विवाद न करनेवाला। शांत [को०]।

अविवाहित—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अविवाहिता] जिसका व्याह न हुआ हो। बिना व्याहा। क्वाँरा। उ०--तब मैं इस कुटुंब की कमनीय कल्पना को दूर ही से नमस्कार करता और आजीवन अविवाहित रहता'।—स्कंद०, पृ० ७०।

अविविक्त-- वि०[सं०] १ जिसकी विवेचना न हो। अविवेचित। २ विवेकरहित। अविवेकी। ३ कोई भेद न रखनेवाला। भेदरहित। ४ सर्वसाधारण से संबंध रखनेवाला। सार्वजनिक [को०]।

अविवेक—संज्ञा पुं० [सं०] १ विवेक का अभाव। अविचार। २ अज्ञान। नादानी। ३ अन्याय। ४. न्यायदर्शन के अनुसार विशेष ज्ञान का अभाव। ५ सांख्यशास्त्रानुसार मिथ्याज्ञान।

अविवेकता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विचार का अभाव। अज्ञानता। २ विवेक का न होना।

अविवेकी—वि० [सं० अविवेकिन्] १ अज्ञानी। विवेकरहित। जिसे तत्वज्ञान न हो। २ अविचारी। ३ मूढ। मूर्ख। ४ अन्यायी

अविवेचक—वि० [सं०] विवेचना वा स्पष्टीकरण न करनेवाला [को०]।

अविवेचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] विवेचना वा व्याख्यान करने की शक्ति का न होना [को०]।

अविशंक--वि० [सं० अविशङ्क] १ शंका या संदेह न करनेवाला। अशंक। २ न डरनेवाला। निर्भय [को०]।

अविशंका--संज्ञा स्त्री० [सं० अविशङ्का] संदेह या भय का अभाव [को०]।

अविशुद्ध—वि० [सं] १ जो विशुद्ध न हो। मेलमाल का। २ अशुद्ध। मलिन। ३ अपवित्र। नापाक।

अविशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अशुद्धि। मेलमाल। २ मलिनता। अपवित्रता। नापाकी। ३ विकार।

अविशेष¹—[सं०] भेदक धर्मरहित। जिसमें किसी दूसरी वस्तु से कोई विशेषता न हो। तुल्य। समान।

अविशेष²—संज्ञा पुं० १ भेदक धर्म का अभाव। तुल्यत्व। २ एकता [को०]। ३ सांख्य में सातत्व, धीरत्व और मूढ़त्व आदि विशेषताओं से रहित सूक्ष्म भूत।

यौ०अविशेषज्ञ।

अविशेषसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक। यदि वादी किसी वस्तु के सादृश्य के आधार पर कोई बात सिद्ध करे—उदाहरणार्थ घट के सादृश्य से शब्द को अनित्य सिद्ध करे और उसके उत्तर में प्रतिवादी कहे कि यदि प्रयत्न से उत्पन्न होने के कारण ही घट के समान शब्द भी अनित्य हो, तो इतना अल्पसादृश्य तो सभी वस्तुओं में होता है, और ऐसे सादृश्य के कारण सभी चीजों के धर्म एक मानने पड़ेंगे, तो ऐसा उत्तर अविशेषसम कहा जायगा।

अविश्रंभ—संज्ञा पुं० [सं० अविश्रम्भ] विश्वास का अभाव। अविश्वास [को०]।

अविश्रांत¹—वि० [सं० अविश्रान्त] १ विरामरहित। जो रुके नहीं। २ जो थके नहीं। ३ जो क्षतियुक्त न हो। अक्षत [को०]।

अविश्रांत²—क्रि० वि० अनवरत। लगातार [को०]।

अविश्वसनीय--वि० [सं०] जो विश्वासयोग्य न हो। जिस पर विश्वास न किया जा सके।

अविश्वस्त—वि०[सं०] संदेहास्पद। अविश्वसनीय।

अविश्वास--संज्ञा पुं० [सं०] १ विश्वास का अभाव। बेएतबारी। उ०—परंतु उस पर प्रकट रूप से अविश्वास का भी समय नहीं रहा।—स्कंद०, पृ० १०८। २ अप्रत्यय। अनिश्चय।

यौ०—अविश्वासपात्र = जिस पर विश्वास न किया जाय। बेएतबारी। झूठा।

अविश्वासी—वि० [सं० अविश्वासिन्] १ जो किसी पर विश्वास न करे। विश्वासहीन। श्रद्धारहित। उ०—सो कैसे होगा अविश्वासी क्षत्रिय। तभी तो म्लेच्छ लोग साम्राज्य बना रहे हैं।—चंद्र०, पृ० १६०। २ जिस पर विश्वास न किया जाय। अविश्वासपात्र।

अविष¹—वि० [सं०] १ जो विषैला न हो। विषहीन। २ विष के प्रभाव को समाप्त करनेवाला [को०]।

अविष²—संज्ञा पुं० १ समुद्र। २ आकाश। ३ राजा [को०]

अविषय¹—वि० [सं०] १ जो विषय न हो। अगोचर। २ अप्रतिपाद्य। अनिर्वचनीय। ३ जिसमें कोई विषय न हो। विषयशून्य।

अविषय²—संज्ञा पुं० [सं०] १ अभाव। २ लोप। अदर्शन। ३ इंद्रियों के विषय की उपेक्षा [को०]।

अविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्विषी तृण। एक जड़ी। जद्वार।

विशेष—यह मोथे के समान होती है और प्राय हिमालय के पहाड़ों पर मिलती है। इसका कंद अतीस के समान होता है और साँप, बिच्छू आदि के विष को दूर करता है।

अविषी— संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सरिता। नदी। २ पृथ्वी। धरनी। ३ स्वर्ग [को०]।

अविसर्गी—वि० [सं० अविसर्गिन्] न हटनेवाला। हमेशा बना रहनेवाला [को०]।

यौ०—अविसर्गी ज्वर=लगातार बना रहनेवाला ज्वर।

अविसह्य—वि०[सं०] रोग उत्पन्न करनेवाला या गुणरहित (पदार्थ)।

विशेष—कौटिल्यके अनुसार ऐसे पदार्थ बेचनेवाला दंड का भागी होता था।

अविसह्यदुर्ग--संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के मतानुसार वह दुर्ग जिसमें शत्रु प्रवेश न कर सकता हो।

अविस्तर—वि०[सं०] कम विस्तार या लंबाईवाला। संक्षिप्त [को०]।

अविस्तार—वि० [सं०] विस्तार का अभाव। संक्षिप्तता [को०]।

अविस्तीर्ण—वि० [सं०] जो विस्तीर्ण न हो। कम फैलाववाला [को०]।

अविस्तृत—वि० [सं०] ठसा हुआ। कम स्थान में फैला हुआ। अविरल। घना [को०]।

अविस्पष्ट—वि० [सं०] जो साफ या स्पष्ट न हो। स्पष्ट रहित। अस्पष्ट [को०]।

अविहड(पु)–वि० [स० अ + विघट्य] १. जो विहडे नहीं। जो खडित न हो। अखड। अनश्वर। उ०––(क) अविहड अखडित पीव है ताको निर्मय दास। तीनों गुन के पेल्हि के चौथे कियो निवास।–कबीर (शब्द०)। (ख) अविहड अंग विहडे नहीं अपलट पलट न जाय। दादू अनवट एक रस सब मे रहा समाय।––दादू (शब्द०)। २ दे० 'बीहड'।

अविहर(पु)—वि० [हिं० अ + बिहर = बिखरनेवाला] दे० अविहड। उ०—ढढोरज्जहिं ढाल मुरं गोरीदल अविहर।—प्रि० रा० १३।६५।

अविहित––वि० [स०] १ जो विहित न हो। विरुद्ध। २ अनुचित। अयोग्य। ३ निकृष्ट। नीच।

अवी– सज्ञा स्त्री० [स०] १ ऋतुमती स्त्री। वनकुलथी।

अवीचि––सज्ञा पु० [स०] पुराणानुसार एक नरक।

अवीचि––वि० लहरविहीन। जिसमे लहर न हो [को०]।

अवीज[1]–वि० [स०] १ बीजरहित। २ नपुसक। ३ मुख्य हेतु का अभाव [को०]।

अवीज[2]—सज्ञा पु० १ मानसिक उत्तेजना पर नियत्रण। २ बीज का अभाव या न होना। ३ बुरा बीज।

अवीजक—वि०, सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अवीज' [को०]।

अवीजा—सज्ञा स्त्री० [सं०] किशमिश।

अवीरा—वि० स्त्री० [स०] १ जिस स्त्री के पुत्र और पति न हो। पुत्र और पतिरहित (स्त्री)। २ स्वतत्र (स्त्री)।

अवीह(पु)—वि० [सं० अवीड?] जो डरे नहीं। अभय। निडर।—(डि०)।

अवृक्ष––वि० [स०] वृक्षविहीन। पेड पौधो से रहीत [को०]।

अवृत—वि० [सं०] १ जो रोका न गया हो। २ अनिर्वाचित। ३ आवरणरहित। रक्षाविहीन। ४ जो किसी के वश मे या पराभूत न हो।

अवृत्ति[1]—सज्ञा सज्ञा [स०] १ जीविका का अभाव। २ स्थिति का अभाव। बेठिकानापन।

अवृत्ति[2]––वि० १ अस्तित्व या स्थितिरहित। २ जीविकाहीन [को०]

अवृथा—अव्य० [सं०] सफलतासहित। अव्यर्थ [को०]।

अवृद्धिक[1]—सज्ञा पुं० [सं०] बिना वृद्धि या व्याज का रुपया। मूल धन। असल।

अवृद्धिक[2]––वि० जिसपर व्याज न लगता हो। जो बढता न हो।

अवृष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] वर्षा का अभाव। अवर्षण। सूखा [को०]।

अवेक्षक– वि० [स०] १ देखनेवला। अवलोकन करनेवाला। २. जाँच पडताल करनेवाला। निरीक्षक [को०]।

अवेक्षण––सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवेक्षित अवेक्षणीय] १ अवलोकन। देखना। २ जाँच पडताल। देखभाल। निरीक्षण।

अवेक्षणीय––वि० [स०] १ देखने योग्य। निरीक्षण योग्य। २ जाँच के लायक। परीक्षा के योग्य।

अवेक्षा––सज्ञा स्त्री० [स०] १ अवेक्षण। देखना। २ परवाह। ध्यान। ख्याल।

अवेज(पु)––सज्ञा पुं० [अ० एवज] बदला। प्रतीकार। उ०––मारग मे गज मे चढो जात चलो अँगरेज। कालीदह बोरचो मगज लिय कपि चना अवेज।––रघुराज (शब्द०)।

अवेणि––वि० [स०] १ वेणी न किया हुआ। २ जिनके बालो की वेणी न बनी हो। ३. जो एक साथ मिलकर न प्रवाहित हो, ––जैसे नदी का जल [को०]।

अवेत––वि० [सं०] १ बीता हुआ। २ पाया हुआ। प्राप्त किया हुआ। ३ सयुक्त [को०]।

अवेद––सज्ञा पुं० [स०] वेद से भिन्न। जो वेद न हो [को०]।

यौ०––अवेदविद अवेदविहित।

अवेदि––सज्ञा स्त्री० [स०] मूर्खता। अज्ञान [को०]।

अवेद्य[1]––वि० पु० [स०] १ जो जाना न जा सके। अज्ञय। २. अलभ्य।

अवेद्य[2]––सज्ञा पुं० १ बछडा। २ नादान बच्चा।

अवेद्या––वि० स्त्री० [स०] वह स्त्री जिससे विवाह नहीं कर सकते। अविवाह्य स्त्री।

अवेल[1]––वि० [स०] १ जिसकी सीमा न हो। असीमित। २ असामयिक [को०]।

अवेल[2]––सज्ञा पुं० गोपन छिपाव। दुराव [को०]।

अवेला––सज्ञा स्त्री० [स०] १ बुरा समय। कुसमय। अनुचित समय। प्रतिकूल समय। २ चबाया हुआ पान [को०]।

अवेव(पु)––वि० [स० अ = नहीं + वेग] निर्वेग। उ०––सबनो सूते सीह ज्यूँ असुरा लखे अवेव।––रा० रू०, पृ० २८८।

अवेश[1](पु)––सज्ञा पुं० [स० आवेश] १ किसी विचार मे इस प्रकार तन्मय हो जाना कि अपनी स्थिति भूल जाय। आवेश। जोश। मनोवेग। उ०––मारि मारि करि, कर खडग निकासि लियो दियो घोर सागर मे सो अवेश आयो है।––नाभा (शब्द०)। २ आगम। चेतनता अनुप्रवेश। उ०—शिष्यन सो कह्यो कभू देह मे अवेश जानो तब ही बखानो आनि मुनि कीजैं न्यारी है।––प्रिया (शब्द०)। ३ भूतावेश। भूत चढना। किसी भूत का सिर अना। भूत लगना। उ०—कोऊ कहै दोष, कोऊ कहत अवेश तापै करो दशरथ कियो भाव पूरो परचो है।––नाभा (शब्द०)।

अवेश[2]––वि० [स०] बिना वेशवाला। वेशरहित [को०]।

अवेस्ता––सज्ञा स्त्री० [पहल०] १ ईरान के पूर्वी जनसमूह की एक पुरानी भाषा जो सस्कृत के अति निकट है। २. पारसियो की एक धर्मपुस्तक।

अवैज्ञानिक––वि० [स०] १ जिसका विज्ञान मे कोई सबध न हो। २ जो तर्कसमत न हो [को०]।

अवैतनिक––वि० [स०] जो वैतनिक न हो। जो किसी काम को करने के लिये वेतन न पाए। बिना वेतन के काम करनेवाला। आनरेरी।

अवैदिक––वि० [स०] वेदविरुद्ध।

अवैद्य––वि० [स०] १ जो वैद्य न हो। जो वैद्यकशास्त्र को न जानता हो। २ अज्ञ। अनजान।

अवैध—वि० [स०] [वि० स्त्री० अवैधी] १ नियम के विपरीत। गैर कानूनी। अविहित। उ०—यदि वे हमी से अवैध सेवा लेना चाहें ।—स्कद०, पृ० १२१। २ जो शास्त्रानुमोदित न हो।

अवैधानिक—वि० [स०] जो विधान या नियम के विपरीत हो।

अवैमत्य[1]—संज्ञा पु० [स०] मतभेद का अभाव। ऐकमत्य।

अवैमत्य[2]—वि० जिसमे मतभेद न हो। सर्वसमत।

अवोक्षण—संज्ञा पुं० [स०] तिरछा हाथ करके जल गिराना। तिरछा हाथ करके जल छिड़कना।

अवोद[1]—वि० [स०] गीला। आर्द्र। नम [को०]।

अवोद[2]—संज्ञा पुं० आर्द्र करना। गीला करना [को०]।

अवोष—संज्ञा पु० [स०] ताजा या गरमागरम भोजन [को०]।

अव्यग—वि० [स० अव्यङ्ग] जो व्यग या टेढा न हो। सीधा।

अव्यंगांग—वि० [वि० अव्यङ्गाङ्ग] [स्त्री० अव्यगागी] जिसका कोई अग टेढा न हो। सुडौल।

अव्यगा—संज्ञा स्त्री० [स० अव्यङ्गा] केवाँच। करैंच। कौंच।

अव्यग्य—वि०[स० अव्यङ्ग्य]१ निर्दोष। २ व्यग्यरहित। व्यजनविहीन [को०]।

विशेष—साहित्य मे अव्यग्य काव्य को अवर अर्थात् अधम कोटि मे माना गया है।

अव्यजन[1]—वि० [सं० अव्यञ्जन] [वि० स्त्री० अव्यजना] १ बिना सीग का (पशु)। डूँडा। २ जो सुलक्षण न हो। कुलक्षण। ३ जिसमे (जवानी का) कोई चिह्न न हो। चिह्नशून्य। ४ जो पृथक् या व्यक्त न हो [को०]।

अव्यजन[2]—संज्ञा पुं० १ शृगहीन पशु। डूँडा पशु। २. जो व्यजन न हो अर्थात् स्वर [को०]।

अव्यडा—संज्ञा स्त्री० [सं० अव्यण्डा] १ केवाँच। करैंच। कौंच।

अव्यक्त[1]—वि० [स०] १ जो स्पष्ट न हो। अप्रत्यक्ष। अगोचर। उ०—(क) अटल शक्ति अविनाश अधिक वन एक अनादि अनूप। आदि अव्यक्त अविकापूरण अखिल लोक तव रूप।—सूर (शब्द०)। (ख) सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा 'चुप, चुप, चुप'।—अपरा, पृ० १३। २ अज्ञात। अनिर्वचनीय। उ०—प्रथम शब्द है शून्याकार। परा अव्यक्त सो कहै विचार।—कबीर (शब्द०)।

अव्यक्त[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ कामदेव। ३ शिव। ४ प्रधान। प्रकृति (साख्य)। उ०—अव्यक्त मूलमनादि तरुत्वच चारि निगमागम भने।—मानस, ७।१३ ५ वेदात शास्त्रानुसार अज्ञान। सूक्ष्म शरीर और सुषुप्ति अवस्था। ६ ब्रह्म। ईश्वर। ७ बीजगणित के अनुसार वह राशि जिसका मान अनिश्चित हो। अनवगत राशि। ८ मायोपाधिक ब्रह्म (शकर)। ९ जीव।

क्रि० प्र०—होना (१) प्रकृति दशा को प्राप्त होना। कारण मे लय होना। (२) अप्रकट होना। लुप्त होना। निर्वचनीय से अनिर्वचनीय अवस्था को प्राप्त होना।

अव्यक्तक्रिया—संज्ञा स्त्री० [स०] बीजगणित की एक क्रिया।

अव्यक्तिगणित—संज्ञा पुं० [स०] बीजगणित।

अव्यक्तगति—वि०[स०] जिसकी गति प्रकट न हो। अप्रत्यक्ष गमन करनेवाला [को०]।

अव्यक्तपद—संज्ञा पुं०[स०]वह पद जिसका तालु आदि स्थानो द्वारा स्पष्ट उच्चारण न हो सके, जैसे चिड़ियों की बोली।

अव्यक्तमलप्रभव—संज्ञा पु० [स०] ससार। जगत्।

अव्यक्तराग—संज्ञा पुं०[स०]१ हलका लाल। अरुण। २ गौर। श्वेत।

अव्यक्तराशि—संज्ञा स्त्री० [स०] (बीजगणित मे) वह राशि जिसका मान अनिश्चित हो [को०]।

अव्यक्तलक्षण—संज्ञा पुं० [स०] शिव [को०]।

अव्यक्तलिंग—संज्ञा पुं०[स० अव्यक्तलिङ्ग]१ साख्यशास्त्रानुसार महत्तत्त्वादि। २ सन्यासी। ३ वह रोग जो पहचाना न जाय।

अव्यक्तसाम्य—संज्ञा पुं०[स०] बीजगणित के अनुसार अव्यक्त राशि या वर्णों का समीकरण।

अव्यक्तानुकरण—संज्ञा पुं० [स०] अस्फुट शब्द का अनुकरण। जैसे, मनुष्य मुर्गे की बोली पर उसकी नकल करके 'कुकडूँकूँ' बोलता है।

अव्यक्तिक—वि० [स०] दे० 'अव्यक्त' [को०]।

अव्यग्र—वि० [स०] १ जो व्यग्र न हो। धीर। २ ध्यानवाला। सतर्क [को०]।

अव्यथ[1]—वि० [स०] १ किसी को दुःख न देनेवाला। दयालु। २ वेदना से रहित। दुःख से दूर [को०]।

अव्यथ[2]—संज्ञा पुं० साँप [को०]।

अव्यथय—संज्ञा पुं० [सं०] अश्व। घोडा [को०]।

अव्यथा—संज्ञा पुं० [स०] १ हरीतकी। हड। २ सोंठ। ३ स्थलकमल। स्थलपद्म। ४ गोरखमुडी। ५ आँवला। ६. स्थिरता। दृढता [को०]।

अव्यथिष—संज्ञा पुं० [स०] १ सूर्य। २ समुद्र [को०]।

अव्यथिषी—संज्ञा स्त्री० [स०] १ पृथ्वी। २ रात्रि। अर्धरात्रि। निशीथ [को०]।

अव्यथी—वि० [स० अव्यथिन्] १ दुःख से मुक्त। २ भय से मुक्त। निर्भय। ३ दुःख न देनेवाला [को०]।

अव्यथ्य—वि० [स०] १ जो किसी प्रकार क्षुब्ध न किया जा सके। २ दे० 'अव्यथी' [को०]।

अव्यपदेश्य[1]—वि० [स०] १ जो कहा न जा सके। अनिर्वचनीय। २ न्यायानुसार निर्विकल्प। जिसमे विकल्प या उलट फेर न हो। निश्चित। ३ अनिर्देश्य।

अव्यपदेश्य[2]—संज्ञा पुं० १ निर्विकल्प ज्ञान। २ ब्रह्म।

अव्यभिचार—संज्ञा पुं० [स०] १ अविच्छिन्नता। सातत्य। २ वफादारी। ३ नित्यसग या साहचर्य [को०]।

अव्यभिचारी—वि०[स० अव्यभिचारिन्] जो किसी प्रतिकूल कारण से हटे नहीं। अनुकूल। २ जो किसी प्रकार व्यभिचारिन न हो। ३ धर्मशील। सच्चरित्र। नैतिक [को०]। ४. नित्य। जो हमेशा बना रहे। एकरस [को०]।

अव्यभिचारी²—संज्ञा पुं० न्याय के मत मे साध्य-साधक-व्याप्ति-विशिष्ट हेतु।

अव्यय¹—वि० [सं०] १ जो विकार को प्राप्त न हो। सदा एकरस रहनेवाला। अक्षय। २ नित्य। आदि-अंत-रहित। ३. परिणाम-रहित। विकार-रहित। ४. प्रवाहरूप से सदा रहनेवाला।

अव्यय²—संज्ञा पुं० १ व्याकरण मे वह शब्द जिसका सब लिंगो, सब विभक्तियो और सब वचनो मे समान रूप से प्रयोग हो। २ परब्रह्म। ३ शिव। ४ विष्णु। ५ कुशल क्षेम [को०]। ६. समृद्धि [को०]।

अव्ययीभाव—संज्ञा पुं० [सं०] समास का एक भेद जिसमे अव्यय के साथ उत्तरपद समस्त होता है। जैसे, अतिकाल, अनुरूप, प्रति-रूप। यह समास प्राय पूर्वपदप्रधान होता है और या तो विशेषण या क्रियाविशेषण होता है।

अव्ययेत—संज्ञा पुं० [सं०] यमकानुप्रास के दो भेदो मे से एक जिसमे यमकात्मक अक्षरो के बीच कोई और अक्षर या पद न पड़े, जैसे—'अलिनी अलि नीरज बसे प्रति तरुवरनि विहग। त्यो मनमथ मन मथन हरि बसै राधिका सग।' यहाँ 'अलिनी, अलि नी' और 'मनमथ मन मथ के बीच कोई और पद नही है।

अव्यर्थ—वि० [सं०] १ जो व्यर्थ न हो। सफल। २ सार्थक। ३ अमोघ।

अव्यलीक—वि० [सं०] १ झूठ नही। सत्य। २ सहमत होने योग्य। प्रिय [को०]।

अव्यवधान¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यवधान या अंतर का अभाव।२. निकटता। लगाव। रोक का न होना। रुकावट का अभाव। ३ लापरवाही [को०]।

अव्यवधान²—वि० १ विना व्यवधान या रुकावट का। २ प्रकट। खुला हुआ। ३ नग्न। आवरणहीन, जैसे भूमि। ४. लापरवाह [को०]।

अव्यवसाय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यवसाय का अभाव। उद्यम का अभाव। २ निश्चयाभाव। निश्चय का न होना।

अव्यवसाय²—वि० उद्यमशून्य। व्यवसायशून्य। आलसी। निकम्मा।

अव्यवसायी—वि० [सं० अव्यवसायिन्] १ उद्यमहीन। निरुद्यमी। २ आलसी। पुरुषार्थहीन।

अव्यवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अव्यवस्थित] १ नियम का न होना। नियमाभाव। बेकायदगी। २ स्थिति का अभाव। मर्यादा का न होना। ३. शास्त्रादिविरुद्ध व्यवस्था। अविधि। ४ बेइतजामी। गडबड।

अव्यवस्थित—वि० [सं०]१ शास्त्रादि-मर्यादा-रहित। बेमर्याद। उ०—'गुप्तकुल का अव्यवस्थित उत्तराधिकार नियम'।—स्कद०, पृ० १२। २ अनियत रूप। बेठिकाने का। उ०—'सम्राट् की मति एक सी नही रहती, वे अव्यवस्थित और चचल हैं।'—स्कद०, पृ० २८। ३ चचल। अस्थिर। उ०—मैं इन बातो को नही सुनना चाहती, क्योकि समय ने मुझे अव्यवस्थित बना दिया है।—चद्र०, पृ० १३३।

यौ०—अव्यवस्थितचित्त = जिसका चित्त ठिकाने न हो। चचल-चित्त। उ०—वह अव्यवस्थितचित्त का मनुष्य है।—(शब्द०)।

अव्यवहार्य—वि० [सं०] १ जो व्यवहार या काम मे लाने योग्य न हो। जो व्यवहार में न लाया जा सके। २ पतित। पंक्तिच्युत।

अव्यवहित—वि० [सं०] विना व्यवधान या रुकावट का [को०]।

अव्यवहृत—वि० [सं०] जो व्यवहार मे न आया हो [को०]।

अव्यसन¹—वि० [सं०] व्यसन से मुक्त। व्यसन से हीन। दुर्गुण से दूर [को०]।

अव्यसन²—संज्ञा पुं० व्यसन या दुर्गुण का अभाव [को०]।

अव्याकृत¹—वि० [सं०] १ जो व्याकृत न हो। अविश्लिष्ट जो विकार प्राप्त न हो। २ अप्रकट। गुप्त। ३. कारण रूप। कारणस्थ।

अव्याकृत²—संज्ञा पुं० १ वेदातशास्त्रानुसार अप्रकट बीजरूप जग-त्कारण अज्ञान। २ साख्यशास्त्रानुसार प्रधान प्रकृति।

यौ०—अव्याकृतधर्म।

अव्याकृतधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धशास्त्रानुसार वह स्वभाव जिससे शुभ और अशुभ दोनो प्रकार के कर्म किए जा सकें।

अव्याख्या—संज्ञा पुं० [सं०] स्पष्टीकरण या व्याख्या का अभाव [को०]

अव्याख्यात—वि० [सं०] जिसे स्पष्ट न किया गया हो। व्याख्याहीन [को०]।

अव्याख्येय—वि० [सं०] १ व्याख्या के अयोग्य। २ जिसे व्याख्या की जरूरत न हो। सरल [को०]।

अव्याघात—वि० [सं०] १ व्याघातशून्य। जो रोका न जा सके। बेरोक। २ अटूट। लगातार।

अव्याज¹—वि० [सं०] १ छलछद्म से रहित। निष्कपट। २. अकृत्रिम। स्वाभाविक। नैसर्गिक (विशेषत समास मे, जैसे अव्याजमनोहर, अव्याजरमणीय [को०]।

अव्याज²—संज्ञा पुं० छलछद्म का अभाव। निष्कपटता। ईमानदारी [को०]।

अव्यापन्न—वि० [सं०] जो मरा न हो। जीवित। जिंदा।

अव्यापार¹—सं० [सं०] व्यापारशून्य। बेकाम।

अव्यापार²—संज्ञा पुं० १ उद्यम का अभाव। निठल्ला। २ वह काम जो अपने से सबधित न हो। बिना काम का काम [को०]।

अव्यापारी—वि० [सं० अव्यापारिन्] १ व्यापारशून्य। निरुद्यमी। निठल्लू। २ साख्यशास्त्रानुसार क्रियाशून्य, जिसमे व्यापार अर्थात् क्रिया करने की शक्ति न हो। जो स्वभाव से अकर्ता हो।

अव्यापी—संज्ञा पुं० [सं० अव्यापिन्] [स्त्री० अव्यापिनी] १ जो व्यापी न हो। जो सब जगह न पाया जाय। २ एक प्रकार का उत्तराभास जिसमे कहे हुए देश, स्थान का पता न चले, जैसे—'कोई कहे कि काशी के पूर्व मगध देश मे मेरा खेत अमुक ने लिया। यहाँ काशी के पूर्व मगध देश नहीं, किंतु मगध देश है, अत यह अव्यापी है।

अव्याप्त—वि० [सं०] जो व्याप्त न हो। जो हर जगह न हो। सीमित [को०]।

अव्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०][वि० अव्याप्त] १ व्याप्ति का अभाव। २ नव्य न्यायशास्त्रानुसार लक्ष्य पर लक्षण के न घटने का दोष, जैसे–'सब फटे खुरवाले पशुओ के सीग होती है। इस कथन मे अव्याप्ति दोष है, क्योकि सूअर के खुर फटे होते हैं, पर उसके सीग नही होती।

अव्याप्य—वि० [सं०] व्याप्तिरहित। जो समग्र पर न लागू हो [को०]।

यौ०—अव्याप्यवृत्ति=सुख दुःख आदि की क्षणिक वृत्ति।

अव्यावृत—वि० [स०] १ निरतर। सतत। लगातार। २ अटूट। ३ विना लोट पोट का। ज्यो का त्यो।

अव्याहत[1]—वि० [सं०] १ अप्रतिरुद्ध। वेरोक। उ०–सुनत फिरउँ हरि गुन अनुवादा। अव्याहत गति शभु प्रसादा।–तुलसी (शब्द०)। २ सत्य।

अव्याहत[2]—सज्ञा पुं० सत्य या अखडनीय वक्तव्य।

अव्युच्छिन्न—वि० [स०] वेरोक। अव्याहत।

अव्युत्पन्न—वि० [स०] १ अनभिज्ञ। अनुभवशून्य। अनाडी। अकुशल। २ व्याकरणशास्त्रानुसार वह शब्द जिसकी व्युत्पत्ति या सिद्धि न हो सके। ३ व्याकरणज्ञानशून्य।

अव्युष्ट—वि० [सं०] न चमकता हुआ। प्रकाशहीन। उ०–उषा के अव्युष्ट होने का अर्थ है कि अभी अँधेरा है।–आर्यो०, पृ० ११८।

अव्र—सज्ञा पु० [अ० अब्र, तुल० सं० अभ्र] वादल। मेघ।

अव्रण[1]—वि० [सं०] जो क्षत न हो। विना घाव का। जो घाव से खराव न हुआ हो [को०]।

अव्रण[2]—सज्ञा पुं० दे० 'अव्रणशुक्र' [को०]।

अव्रणशुक्र—सज्ञा पुं० [स०] आँख का एक रोग जिसमे आँख की पुतली पर सफेद रग की एक फूली सी पड जाती है औरउसमे सूई चुभने के समान पीडा होती है।

अव्रत[1]—वि० [स०] १ व्रतहीन। जिसका व्रत नष्ट हो गया हो। २ जिसने व्रतधारण न किया हो। व्रतरहित। ३ नियमरहित। नियमशून्य।

अव्रत[2]—सज्ञा पु० [सं०] १ जैनशास्त्रानुसार व्रत का त्याग।

विशेष—यह पाँच प्रकार का है–प्राणवध, मृषावाद, अदत्तदान, मैथुन या अब्रह्म और परिग्रह।

२ व्रत का अभाव। ३ नियम का न होना।

अव्रत्य—सज्ञा पु० [सं०] धर्मानुष्ठान का अभाव [को०]।

अव्वल[1]—वि० [अ०] १ पहला। आदि का। प्रथम। २ उत्तम। श्रेष्ठ।

अव्वल[2]—सज्ञा पुं० आदि। प्रारभ, जैसे–'अव्वल से आखिर तक'। –(शब्द०)।

मुहा०—**अव्वल आना या रहना**=प्रथम स्थान प्राप्त करना।

अव्वलन्—क्रि० वि० [अ०] प्रथमत। पहले।

अव्वास⑤†—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आवास'। उ०–ऊँचा महल ही अव्वास। करता नारि नर विल्लास।–राम० धर्म०, पृ० १६८।

अशक—वि० [सं० अशङ्क] १ निशक। वेडर। निर्भय। उ०–देखा भविष्य के प्रति अशक।–अपरा, पृ० १७४। २ सदेहरहित। निश्चित [को०]।

अशकित—वि० [स० अशङ्कित] दे० 'अशक' [को०]।

अशभु⑤—सज्ञा पुं० [स० अ=नहीं+शम्भु=कल्याण] अकल्याण। अमंगल। अशुभ। अहित। उ०–सुनो क्यो न कनकपुरी के राइ। डोलै गगन सहित सुरपति अरु पुहुमि पलट जग जाइ। नसै धर्म मन वचन काय करि शभु अशभु कराइ। अचला चलै, चलत पुनि थाकै, चिरजीव सो मरई। श्री रघुनाथ प्रताप पतिव्रत सीता सत नहिं टरई।–सूर (शब्द०)।

अशकुंभी—सज्ञा स्त्री० [स० असकुम्भी] जल मे होनेवाला एक पौधा। आकाशमूली [को०]।

अशकुन—सज्ञा पुं० [स०] कोई वस्तु या व्यापार जिससे अमगल की सूचना समझी जाय। बुरा शकुन। बुरा लक्षण।

विशेष—इस देश मे लोग दिन को गीदड का वोलना, कार्यारभ मे छीक होना आदि अशकुन समझते हैं।

अशक्त—वि० [स०][सज्ञा अशक्ति] १ निर्बल। कमजोर। २. अक्षम। असमर्थ। नाकाविल। उ०–होकर अशक्त अकाल मे ही काल-कवलित हो रहे।–भारत०, पृ० १०१।

अशक्तता—सज्ञा स्त्री० [स०] शक्तिहीनता। अयोग्यता [को०]।

अशक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ निर्बलता। कमजोरी। २ साख्य मे बुद्धि और इद्रियो का वध या विपर्यय। हाथ पैर आदि इद्रियो और बुद्धि का वेकाम होना।

विशेष—ये अशक्तियाँ अट्ठाईस हैं। इद्रियाँ ग्यारह हैं, अत ग्यारह अशक्तियाँ तो उनकी हुईं। इसी प्रकार बुद्धि की दो शक्तियाँ है तुष्टि और सिद्धि। तुष्टि नौ हैं और सिद्धि आठ। इन सबके विपर्यय को अशक्ति कहते हैं।

अशक्य—वि० [स०] १ असाध्य। शक्ति के वाहर। न होने योग्य। २ एक काव्यालकार जिसमे किसी रुकावट या अडचन के कारण किसी कार्य के होने की असाध्यता का वर्णन हो, जैसे–काक कला कहुँ कहुँ कपि कलकल। कहुँ भिल्ली रव कक कहुँ थल। वसी भाग्य वस सो वन ऐसे। करहिं तहाँ ध्वनि कोकिल कैसे।

अशत्रु[1]—वि० [स०] विना शत्रुवाला। २ जिसने शत्रु शत्रुता का व्यवहार नही रखते [को०]।

अशत्रु[2]—सज्ञा पुं० १ चद्रमा। २ शत्रु का अभाव [को०]।

अशन—सज्ञा पु० [स०][वि० अशित, अशनीय] १ भोजन। आहार। अन्न। २ भोजन की क्रिया। भक्षण। खाना। ३ चीता। चित्रक लकडी। ४ भिलावाँ। ५ अशन वृक्ष।

अशनपति—सज्ञा पुं० [स०] अन्न के स्वामी या देवता [को०]।

अशनपर्णी—सज्ञा स्त्री० [स०] पटसन [को०]।

अशना—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० अशनायित] भोजन की इच्छा। भूख [को०]।

अशनाया—सज्ञा स्त्री० [स०] १ भोजन की इच्छा। भूख। उ०–इस प्रवृत्ति का हेतु जो वल होता है उसे श्रुति मे अशनाया वल कहा गया है।–पोद्दार अभि०, पृ० ६१७।

अशनि—संज्ञा पुं० [सं०] १. वज्र। बिजली। २ बिजली की चमक [को०]। ३ महास्त्र [को०]। ४ स्वामी। मालिक [को०]। ५. इंद्र [को०]। ६. अग्नि [को०]।
यौ०—अशनिदंड = वज्र। बिजली। अशनिपात = वज्रपात।

अशनीय—वि० [सं०] खाने योग्य।

अशब्द¹—वि० [सं०] १ जो शब्दों में प्रकट न किया जाय। २ अव्यक्त। ३ शब्दविहीन। ४ जो वैदिक न हो। अवैदिक [को०]।

अशब्द²—संज्ञा पुं० १ शब्द का अभाव। २ ब्रह्म [को०]।

अशरण—वि० [सं०] जिसे कहीं शरण न हो। अनाथ। निराश्रय। बेपनाह।

अशरणशरण¹—वि० [सं०] अनाथ या निराश्रय को आश्रय देनेवाला [को०]।

अशरणशरण²—संज्ञा पुं० ईश्वर। भगवान् [को०]।

अशरफ—वि० [अ० अश्रफ] बहुत अधिक शरीफ [को०]।

अशरफी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ सोने का एक पुराना सिक्का जो सोलह रुपए से लेकर पचीस रुपए तक का होता था। मोहर। २ एक प्रकार का पीले रंग का फूल। गुल अशरफी।

अशरा—संज्ञा पुं० [अ० अशरह्] १ महीने का दसवाँ दिन। २ मुहर्रम का दसवाँ दिन [को०]।

अशराफ—वि० [अ० शरीफ का बहु०] भद्र। शरीफ। भलामानुप। उ०—फिरते हैं अशराफ गली में मारे मारे।—कविता कौ०, भा० २, पृ० २५५।

अशराफत—संज्ञा स्त्री० [अ० अशराफ + त (प्रत्य०)] सज्जनता। शराफत। भद्रता। उ०—'सादगी' और सीधेपन से रहने में मनुष्य की सच्ची अशराफत मालूम होती है'।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २७७।

अशरीर¹—वि० [सं०] शरीररहित। आकारविहीन [को०]।

अशरीर²—संज्ञा पुं० [सं०] १ परमात्मा। ब्रह्म। २ मीमांसा के अनुसार कोई भी देवता। ३ काम के देवता। कामदेव। ४. विरक्त। सन्यासी [को०]।

अशरीरी¹—वि० [सं० अशरीरिन्] शरीररहित। देहविहीन। उ०—ये अशरीरी रूप, सुमन से केवल वर्ण गंध में फूले।—कामायनी, पृ० २६४।

अशरीरी²—संज्ञा पुं० १ ब्रह्म। २. देवता [को०]।

अशर्फी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अशरफी'।

अशर्म¹—संज्ञा पुं० [सं०] कष्ट। दुःख। अकल्याण।

अशर्म²—वि० १ दुःखी। बेचैन। २ जिसे घरबार न हो। गृहरहित।

अशस्त—वि० [सं०] १. अनिर्वचनीय। अकथनीय। २ अप्रतिष्ठित। भाग्यहीन [को०]।

अशस्त्र¹—वि० [सं०] बिना शस्त्र का। शस्त्रहीन [को०]।

अशस्त्र²—संज्ञा पुं० जो शस्त्र न हो [को०]।

अशांत—वि० [सं० अशान्त] जो शांत न हो। अस्थिर। चंचल। डाँवाडोल। उ०—यही तो, मैं ज्वलित वाडव वह्नि नित्य अशांत।—कामायनी, पृ० ८५। २ अपवित्र। अधार्मिक [को०]। ३ पाँचों तन्मात्राओं में से एक।

अशांति—संज्ञा स्त्री० [अशान्ति] [वि० अशांत] १. अस्थिरता। चंचलता। हलचल। खलबली। उ०—जाकर कहाँ हमने जलाई आग युद्ध अशांति की।—भारत०, पृ० ५१। २. क्षोभ। असंतोष। उ०—जीवन अशांति अपूर्ण नवके दीन हों अथवा धनी।—भारत०, पृ० १४६।

अशाखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे शूलीतृण भी कहते हैं [को०]।

अशाम्य—वि० [सं०] जिसको शांत न किया जा सके। जिसका शमन असंभव हो [को०]।

अशालीन—वि० [सं०] धृष्ट। ढीठ। शालीनतारहित।

अशालीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धृष्टता। ढिठाई।

अशासन¹—संज्ञा पुं० [सं०] शासनाभाव। अव्यवस्थित शासन। अराजकता [को०]।

अशासन²—वि० शासन में न रहनेवाला। शासनहीन [को०]।

अशातावेदनीय—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वह कर्म जिसके उदय से दुःख का अनुभव होता है।

अशास्त्रीय—वि० [सं०] जो शास्त्रसंमत न हो। जो विहित न हो [को०]।

अशिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिक्षा का अभाव। ज्ञानभाव। उ०—ये सब अशिक्षा के कुफल हैं वाम है जिनका यहाँ।—भारत०, पृ० ११५।

अशिक्षित—वि० [सं०] जिसने शिक्षा न पाई हो। बेपढा लिखा। अनपढ। उजड्ड। अनाडी। गँवार। उ०—यदि हम अशिक्षित थे, कहे तो, सभ्य वे कैसे हुए।—भारत०, पृ० ६६।

अशित—वि० [सं०] खाया हुआ। भुक्त।

अशित्र—संज्ञा पुं० [सं०] चोर।

अशिथिल—वि० [सं०] १ जो ढीला न हो। कसा हुआ। गाढ। २ प्रभावकर। विश्वस्त [को०]।

अशिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. हीरा। २ अग्नि। ३ राक्षस। ४ सूर्य ५ वायु [को०]।

अशिव¹—संज्ञा पुं० [सं०] अमंगल। अकल्याण। अशुभ।

अशिव²—वि० १ दुष्ट। बदमाश। २ भाग्यहीन। ३ जो कृपालु न हो। अमित्र। ४ खतरनाक [को०]।

अशिशु¹—वि० [सं०] निःसंतान। बिना बाल बच्चेवाला [को०]।

अशिशु²—संज्ञा पुं० १ तरुण। युवा। २ शिशुता का अभाव [को०]।

अशिश्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बिना बच्चे की स्त्री। संतानहीन स्त्री। २ बिना बछड़े की गाय [को०]।

अशिश्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अशिश्विका'।

अशिष्ट—वि० [सं०] असाधु। दुःशील। अविनीत। उजड्ड। बेहूदा। अभद्र। अनैतिक अग्राह्य।

अशिष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. असाधुता। दुःशीलता। बेहूदगी। उजड्डपन। अभद्रता। २ ढिठाई।

अशीत—वि० [सं०] जो ठंढा न हो। गरम [को०]।

अशीतकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अशीतल—वि० [सं०] गरम [को०]।
अशीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ८० की संख्या [को०]।
अशीतिक—वि० [सं०] १ अस्सी सालवाला। २ अस्सी का मापक। ३ अस्सी का जिससे संकेत मिले [को०]।
अशील[1]—वि०[सं०]१ अभद्र। अशिष्ट। उद्दंड। २ उदास [को०]।
अशील[2]—संज्ञा पुं० अभद्र व्यवहार। अशिष्टता। उद्दंडता [को०]।
अशीष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आशिष्] आशीर्वाद। असीस। दुआ। उ०—कछु जनि जी दुख पायहु माइ। सो देहु अशीष मिलौ फिरि आइ।—रामच०, पृ० ४८।
अशुच—वि० [सं० अशुचि] दे० 'अशुचि'। उ०—अति विलक्षण है तव दुष्क्रिया अशुच मृत्यु अरे अधमाधम।—कविता कौ०, भा०, २, पृ० २४७।
अशुचि[1]—वि० [सं०] [संज्ञा अशौच] १ अपवित्र। २ गंदा। मैला। ३ काला [को०]।
अशुचि[2]—संज्ञा स्त्री० १ काला रंग। २ अपवित्रता। ३. अपकर्ष। अधोगमन [को०]।
अशुचिता—वि० [सं०] १ अपवित्रता। २ ग्रीष्माभाव। ज्येष्ठ और आषाढ का महीना [को०]।
अशुद्ध[1]—वि० [सं० संज्ञा अशुद्धता, अशुद्ध] १ अपवित्र। अशौचयुक्त। नापाक। २ विना साफ किया हुआ। विना शोधा हुआ। असंस्कृत जैसे, अशुद्ध पारा। ३. वेठीक। गलत।
यौ०—अशुद्ध वासक = संदिग्ध व्यक्ति।
अशुद्ध[2]—संज्ञा पुं० रक्त। खून [को०]।
अशुद्धता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपवित्रता। मैलापन। गंदगी। २. गलती।
अशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपवित्रता। अशौच। गंदगी। २. गलती।
अशुन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्विनी] अश्विनी नक्षत्र। उ०—अशुन, भरनि, रेवती भली। मृगसर मोल पुनरवसु वली।—जायसी (शब्द०)।
अशुभ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अमंगल। अकल्याण। अहित। २. पाप। अपराध। ३ दुर्भाग्य [को०]।
अशुभ[2]—वि० जो शुभ न हो। अमंगलकारी। बुरा।
यौ०—अशुभदर्शन = भद्दा। कुरूप। अप्रियदर्शन। अशुभसूचक = अमंगल की सूचना देनेवाला।
अशुश्रूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसकी आज्ञा में रहना चाहिए, उसकी आज्ञा में न रहने का अपराध।
विशेष—स्मृति के अनुसार पारिवारिक व्यवस्था की दृष्टि से इस अपराध का राज्य की ओर से दंड होता था, जैसे—यदि पुत्र पिता की आज्ञा न माने तो वह दंडनीय माना गया है।
अशून्य—वि० [सं०] शून्यरहित। प्रमाणित। अरिक्त। पूर्ण। पूरा। उ०—(क) 'हमने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा है सो लेना।' भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २०७। (ख) 'यही लेख अशून्य करने का होगी'।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २०८।
अशून्यशयन—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिथि जिस दिन विश्वकर्मा शयन करते हैं [को०]।
यौ०—अशून्यशयन द्वितीया = दे० 'अशून्यशयनव्रत'।
अशून्यशयनव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक व्रत जो श्रावण कृष्ण द्वितीया को होता है।
अशृत—वि० [सं०] विना पका हुआ। कच्चा। अपरिपक्व [को०]।
अशेव—वि० [सं०] सुखदायक। हर्षदायक [को०]।
अशेष—वि० [सं०] १ शेषरहित। पूरा। समूचा। सब। तमाम। उ०—विषमय यह गोदावरी अमृतन को फल देति। केशव जीवनहार को, दुख अशेष हरि लेति।—रामच०, पृ० ६९।
क्रि० प्र०—करना। होना।
२ समाप्त। खतम। ३ अनंत। अपार। बहुत। अधिक। अगणित। अनेक। उ०—सानंद आशिष अशेष ऋर्षीश दीन्हो।—रामच०, पृ० ६६। (ख) मिस रोम राजि रेखा सुवेष। विधि गनत मनो गुनगन अशेष।—गुमान (शब्द०)।
अशेषता संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णता। समग्रता [को०]।
अशेषसाम्राज्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।
अशैक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] अर्हंत। उ०—'प्रथम आचार्यों के अनुसार 'अर्हंत' से तीन यानों के उन आर्यों से आशय है जिन्होंने अशैक्ष फल का लाभ किया है'।—सपू० अभि० ग्र०, पृ० ३४९।
अशैव—वि० [सं०] अशुभ [को०]।
अशोक[1]—वि० [सं०] शोकरहित। दुखशून्य। उ०—देव अदेव नृदेव अरु, जितने जीव त्रिलोक। मन भायो पायो सबन कीन्हें सबन अशोक।—रामच०, पृ० १९२।
अशोक[2]—संज्ञा पुं० १ एक प्रसिद्ध पेड़।
विशेष—इसकी पत्तियाँ आम की तरह लंबी लंबी और किनारों पर लहरदार होती है। इसमें सफेद मंजरी (मौर) लगती है जिसके झड़ जाने पर छोटे छोटे गोल फल लगते हैं जो पकने पर लाल होते हैं, पर खाए नहीं जाते। यह पेड़ बड़ा सुंदर और हरा भरा होता है, इससे इसे बगीचों में लगाते हैं। शुभ अवसरों पर इसकी पत्तियों की बंदनवारें बाँधी जाती हैं। यह शीतल, कसैला, कड़ुआ, मल को रोकनेवाला, रक्तदोष को दूर करनेवाला और कृमिनाशक समझा जाता है। इसकी छाल विशेषकर स्त्री रोगों में दी जाती है। इसके दो भेद होते हैं—एक के पत्ते रामफल के समान और फूल कुछ नारंगी रंग के होते हैं। यह फागुन में फूलता है। दूसरे के पत्ते लंबे लंबे और आम के पत्तों के समान होते हैं और इसमें सफेद फूल वसंत ऋतु में लगते हैं।
पर्या०—विशोक। मधुपुष्प। ककेलि। वेलिक। रक्तपल्लव। रागपल्लव। हेमपुष्प। वंजुल। कर्णपूर। ताम्रपल्लव। वामाङ्घ्रिघातन। राम। रामा। नट। पिंडी। पुष्प। पल्लवद्रुम। दोहलीक। सुभग। रोगितरु।
२ पारा। ३ भारतवर्ष का एक प्राचीन मौर्यवंशीय सम्राट्। ४ विष्णु का एक नाम [को०]। ५ वकुल वृक्ष [को०]। ६. प्रसन्नता। आह्लाद [को०]।

अशोकपुष्पमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अशोकपुष्पमञ्जरी] दंडक वृत्त का एक भेद जिसमें २८ अक्षर होते हैं और लघु गुरु का कोई नियम नहीं होता, जैसे—सत्यधर्म नित्य धारि व्यर्थ काम सर्व डारि भूलि कै करो कदा न निंद्य काम।

अशोकपूर्णिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] फाल्गुन की पूर्णिमा [को०]।

अशोकवनिकान्याय—संज्ञा पुं० [सं०] किसी कार्य को करने का कारण न बताया जानेवाला व्यवहार, जैसे—रावण ने सीता जी को अशोक के ही नीचे रहने का क्यों आदेश दिया ? इसका कारण नहीं बताया गया [को०]।

अशोकवाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह बगीचा जिसमें अशोक के पेड़ लगे हों। २ शोक को दूर करनेवाला रम्य उद्यान। ३ रावण का वह प्रसिद्ध बगीचा जिसमें उसने सीता जी को ले जाकर रखा।

अशोकषष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र शुक्ला षष्ठी। इस दिन कामाख्या तंत्र के अनुसार पुत्रलाभार्थ षष्ठी देवी की पूजा की जाती है।

अशोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुटकी। २ अशोक की कली। ३ दे० 'अशोकषष्ठी'।

अशोकारि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कदंब [को०]।

अशोकाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र शुक्ला अष्टमी।

विशेष—इस दिन पानी में अशोक के आठ पल्लव डालकर उसे पीने का विधान है तथा अशोक के फूल विष्णु को चढ़ाते हैं।

अशोच—संज्ञा पुं० [सं०] १ चिंता या परवाह का अभाव। २ शांति। ३ विनम्रता [को०]।

अशोच्य—वि० [सं०] शोक न करने योग्य। उ०—वे हैं अशोच्य, हाँ स्मरण योग्य हैं सबके।—साकेत, पृ० २२३।

अशोधित—वि० [सं०] बिना शोधन किया हुआ। बिना साफ किया हुआ। संस्काररहित [को०]।

अशोभक—वि० [सं०] माणिक्य का एक दोष [को०]।

अशोभन—वि० [सं०] असुंदर। अभद्र। सुंदर न लगनेवाला।

अशौच—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपवित्रता। अशुद्धता। २. हिंदू शास्त्रानुसार अशौच की अवस्था।

विशेष—इन अवस्थाओं में अशौच माना जाता है—(क) मृतकसंस्कार के पश्चात् मृत के परिवार या सपिंडवालों में वर्णक्रमानुसार १०, १२, १५ और ३० दिन तक। (ख) संतान होने पर भी ऊपर के नियमानुसार। शोक के अशौच को सूतक और संतानोत्पत्ति के अशौच को वृद्धि कहते हैं। (ग) रजस्वला स्त्री को तीन दिन। (घ) मल, मूत्र, चांडाल या मुर्दे आदि का स्पर्श होने पर स्नानपर्यंत। अशौचावस्था में संध्या तर्पण आदि वैदिक कर्म नहीं किए जाते।

अशौचसंकर—संज्ञा पुं० [सं० अशौचसङ्कर] दो या दो से अधिक अशौचों का साथ होना, जैसे किसी परिवार में मृत्यु का अशौच लगा हो परंतु अशौच काल में ही बालक का जन्म हो जाय तो जन्म अशौच के कारण वही अशौचसंकर की स्थिति होगी [को०]।

अश्मंत[1]—संज्ञा पुं० [सं० अश्मन्त] १ चूल्हा। २ अमंगल। ३. मरण। ४ खेत। ५ एक मरुत् [को०]।

अश्मंत[2]—वि० १. अशुभ। अभागा। २. असीमित [को०]।

अश्मंतक—संज्ञा पुं० [सं० अश्मन्तक] १ मूँज की तरह एक घास जिससे प्राचीन काल में ब्राह्मण लोग मेखला अर्थात् करधनी बनाते थे। २ आच्छादन। छाजन। ढकना। ३ दीपाधार। दीवट। ४. पाषाणभेद। ५ तिमोढा। ६ कचनार। ७ चूल्हा। भट्ठी [को०]।

अश्क—संज्ञा पुं० [फ़ा०] अश्रु। आँसू। उ०—कल जो टुक रोया किसी की याद में वह गुलबदन। अश्क ये आँखों में या मोती कुचलकर भर दिए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३३२।

अश्म—संज्ञा पुं० [सं० अश्मन्] १ पर्वत। पहाड़। २ मेघ। बादल। ३ पत्थर। ४ सोनामक्खी। ५ लोहा।

अश्मक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम जो आजकल ट्रावंकोर (त्रिवांकुर) कहलाता है।

अश्मकदली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का केला जो कड़ा तथा कम स्वादवाला होता है। काष्ठकदली। कठकेला [को०]।

अश्मकुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के वानप्रस्थ जो सिल, बट्टा या उखली आदि नहीं रखते थे, केवल पत्थर से अन्न कूटकर पकाते थे।

अश्मगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] पन्ना। मरकत।

अश्मगर्भज—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिलाजीत। २ गेरू। ३ लोहा [को०]।

अश्मज—संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजतु। शिलाजीत। २ मोमियाई। ३ लोहा।

अश्मभेद—संज्ञा पुं० [सं०] पखानभेद नाम की जड़ी जो मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में दी जाती है।

अश्मयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] पन्ना [को०]।

अश्मर—वि० [सं०] पथरीला।

अश्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूत्ररोगविशेष। पथरी।

यौ०—अश्मरीघ्न = वरुण वृक्ष। बरना का पेड़।

अश्मसार—संज्ञा पुं० [सं०] लोहा।

अश्मा—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्म' [को०]।

अश्मीर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्मरी' [को०]।

अश्मोत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत [को०]।

अश्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँसू। २ रक्त [को०]।

अश्रद्ध—वि० [सं०] श्रद्धा न रखनेवाला। विश्वास न रखनेवाला [को०]।

अश्रद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अश्रद्धेय] श्रद्धा का अभाव।

अश्रद्धेय—वि० [सं०] अश्रद्धा के योग्य। घृणा के योग्य। बुरा।

अश्रप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस।

अश्रप[2]—वि० रक्त पीनेवाला। दुष्ट। अत्याचारी [को०]।

अश्रवण[1]—वि० [सं०] १ जो सुनता न हो। बहरा। २ कर्णहीन [को०]।

अश्रवण[2]—संज्ञा पुं० १ साँप। २. श्रवण शक्ति का अभाव। बहरापन [को०]।

अश्रांत—वि० [सं० अश्रान्त] १ अथक। स्वस्थ। जो थका-माँदा न हो। २. विरामरहित। लगातार। निरंतर। उ०—

चद्रमा नभ मे हँसता था बज रही थी वीणा अश्रांत।—झरना, पृ० ७१।

अश्रांति—सज्ञा स्त्री० [सं० अश्रान्ति] श्रांति या थकावट का अभाव। उ०—ससारयात्रा में स्वपति की वे अटल अश्रांति हैं।—भारत०, पृ० ५६।

अश्राव्य—वि० [सं०] १ न सुनने योग्य। २ न कहने योग्य [को०]।

अश्रि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ (कोठरी, घर आदि का) कोना। २ अस्त्र शस्त्र की नोक। ३ धार।

अश्री—सज्ञा स्त्री०[सं०]१ अलक्ष्मी। दरिद्रा। २. दे० 'अश्रि' [को०]।

अश्रीक—वि० [सं०] १.शोभाहीन। जिसमे श्री न हो। २.भाग्यहीन। अभागा [को०]।

अश्रु—सज्ञा पुं०[सं०]मन के किसी प्रकार के आवेग के कारण आंखो मे आनेवाला जल। आंसू। २ काव्य मे अनुभाव के अतर्गत सात्विक के नौ भेदो मे से एक।

अश्रुकला—सज्ञा स्त्री० [सं०] अश्रुबिंदु [को०]।

अश्रुगैस—सज्ञा स्त्री० [सं० अश्रु+अं० गैस] एक प्रकार की गैस जिसका प्रयोग अनियमित भीड को तितर बितर करने के लिये शासन द्वारा किया जाता है।

अश्रुत—वि०[सं०]१ जो न सुना गया हो। अज्ञात। २ जिसने कुछ देखा सुना न हो। नातजर्बेकार। ३. अशिक्षित। अशास्त्रज्ञ मूर्ख [को०]।

अश्रुतपूर्व—वि० [सं०] १ जो पहले न सुना गया हो। २ अद्भुत। विलक्षण। अनोखा।

अश्रुति[1]—वि० [सं०] १ बिना कानवाला। श्रुति या श्रवणरहित।

अश्रुति[2]—सज्ञा स्त्री० १ न सुनना। अश्रवण। २ विस्मृति [को०]।

अश्रुतिधर—वि० [सं०] १ वेदो को न जाननेवाला। ध्यान मे सुननेवाला। ध्यान न देनेवाला [को०]।

अश्रुपात—सज्ञा पुं० [सं०] आँसू गिराना। रुदन। रोना।

अश्रुमुख[1]—वि० [सं०] १ आँसुओं से भरा हुआ। रोता हुआ। २. रोनी सूरत का। रुआँसा।

अश्रुमुख[2]—सज्ञा पुं० ज्योतिष के अनुसार जिस नक्षत्रपर मगल का उदय होता है, उसके १० वें, ११ वें, या १२ वें नक्षत्रपर यदि उसकी गति वक्र हो तो वह (वक्रगति) अश्रुमुख कहलाती है।

अश्रेय[1]—वि० [सं० अश्रेयस्] १ बुरा। खराब। २. कल्याणकर व्यर्थ। निकम्मा [को०]।

अश्रेय[2]—सज्ञा पुं० १ बुराई। खराबी। २ अकल्याण। ३. दुःख [को०]।

अश्रेष्ठ—वि० [सं०] १ जो श्रेष्ठ या उत्तम न हो। २.बुरा निकृष्ट [को०]।

अश्रौत—वि [सं०] जो श्रुति या वेदसमत न हो [को०]।

अश्लाघ्य—वि०[सं०]१ जो श्लाघ्य न हो। अप्रशसनीय। जो सराहने योग्य न हो। निम्न। निंद्य।

अश्लिष्ट—वि० [सं०] १ श्लेषशून्य। श्लेषरहित। २ असंबद्ध। असगत।

अश्लील[1] —वि० [सं०] १ फूहड। भद्दा। २ लज्जाजनक।

अश्लील[2]—सज्ञा पुं० १ साहित्यशास्त्र के अनुसार काव्यादि मे ऐसे शब्दो का प्रयोग जिनमे व्रीडा जुगुप्सा और अमगल की अभिव्यक्ति होती हो। २ गँवारू भाषा।

अश्लीलता—सज्ञा स्त्री०[सं०]फूहडपन। भद्दापन। गदापन। लज्जा का उल्लघन। निलज्जता। उ०—यो भक्ति रस भी सन गया अश्लीलता की कीट मे।—भारत०, पृ० १२३।

विशेष—काव्य में यह दोष माना जाता है।

अश्लेष—वि०[सं०] श्लेषरहित। एकनिष्ठ। उ०—द्विम्बमात्र अश्लेष मे ब्राह्मण जाति अजेय।—रामच०, पृ० १६०।

अश्लेषा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. राशिचक्र के २७ नक्षत्रों मे से नवाँ नक्षत्र।

विशेष—यह नक्षत्र चक्राकार छ नक्षत्रो से मिलकर बना है। इसका देवता सर्प है और यह केतु ग्रह का जन्म नक्षत्र है। २.अलगाव। विच्छेद। विश्लेष [को०]।

अश्लेषाभव —सज्ञा पुं० [सं०] केतु ग्रह।

अश्वत—वि० सज्ञा पुं० [सं अश्वन्त] दे० 'अश्मत' [को०]।

अश्व—सज्ञा पुं० [सं०] १ घोडा। तुरग। २ सात की सख्या [को०]। ३ पुरुष की एक जाति [को०]।

अश्वकदा—सज्ञा स्त्री० [सं०अश्वकन्दा] अश्वगधा [को०]।

अश्वक—सज्ञा पुं० [सं०] १ छोटा घोडा। २ लावारिस घोडा। ३ घोडा। ४ खराब जाति का घोडा।

अश्वकर्ण—सज्ञा पुं० [सं०] १.एक प्रकार का शाल वृक्ष। २ लता शाल। ३ घोडे का कान [को०]। ४. चिकित्सा शास्त्र मे वर्णित एक प्रकार का अस्थिभग [को०]।

अश्विनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] अश्विनी नक्षत्र [को०]।

अश्वकुटी—सज्ञा स्त्री० [सं०] घुडसाल [को०]।

अश्वकुशल—वि०[सं०] घोडा फेरनेवाला सवार। अश्वशिक्षक[को०]।

अश्वकोविद—वि० [सं०] दे० 'अश्वकुशल'।

अश्वक्रंद—सज्ञा पुं० [सं० अश्वक्रन्द] १ एक प्रकार का पक्षी। २ देवसेना का नायक [को०]।

अश्वक्रांता—सज्ञा स्त्री० [सं० अश्वक्रान्ता] सगीत मे एक मूर्च्छना। इसका स्वरग्राम यो है—ग म प ध नि स रे ग म प ध नि।

अश्वखरज—सज्ञा पुं० [सं०] खच्चर [को०]।

अश्वखुर—सज्ञा पुं० [सं०] १ नख नामक सुगधित द्रव्य। २ घोडे का सुम [को०]।

अश्वखुरा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अपराजिता पौधे का नाम [को०]।

अश्वगंधा—सज्ञा स्त्री० [सं० अश्वगन्धा] असगध।

अश्वगति—सज्ञा पुं० [सं०] १ छद.शास्त्र मे नील वृत्त का दूसरा नाम। यह पाँच भगण और एक गुरु का होता है. जैसे—मा शिव आनन गौरि जबै मन लाय लखी। लै गई ज्यो सुठि भूषण धारि वितान सखी। २, चित्र काव्य मे एक चक्र जिसमें ६४ खाने होते हैं। ३. घोडे की चाल [को०]।

अश्वगोयुग--संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की जोड़ी [को०]।

अश्वगोष्ठ--संज्ञा पुं० [सं०] घुड़साल। अस्तबल [को०]।

अश्वग्रीव--संज्ञा पुं० [सं०] कश्यप ऋषि की दनु नाम्नी स्त्री से उत्पन्न पुत्र। हयग्रीव।

अश्वघ्न--संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का फूल तथा उसका पेड़ [को०]।

अश्वचक्र--संज्ञा पुं० [सं०] १ घोड़े के चिह्नों से शुभाशुभ का विचार। २ घोड़ों का समूह।

अश्वचिकित्सा--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शास्त्र जिसमें पशुओं के रोगों तथा उनकी चिकित्सा का विवरण होता है [को०]।

अश्वतर--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अश्वतरी] १ एक प्रकार का सर्प। नागराज। २. खच्चर। ३ बछड़ा [को०]। ४ गंधर्वों की एक जाति [को०]।

अश्वत्थ--संज्ञा पुं० [सं०] १. पीपल। २ पीपल का गोदा [को०]। ३ सूर्य का एक नाम [को०]। ४ पीपल में फल आने का काल [को०]। ५. अश्विनी नक्षत्र [को०]।

अश्वत्थक--संज्ञा पुं० [सं०] १ पीपल में फल लगने के समय अदा किया जानेवाला ऋण। २ पीपल वृक्ष।

अश्वत्था--संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन की पूर्णिमा [को०]।

अश्वत्थाम--वि० [सं०] घोड़े के समान शक्तिवाला [को०]।

अश्वत्थामा--संज्ञा पुं० [सं० अश्वत्थामन्] १ द्रोणाचार्य के पुत्र। २ मालवा के राजा इंद्रवर्मा के एक हाथी का नाम जो महाभारत के युद्ध में मारा गया था।

अश्वत्थी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ छोटा पीपल। २ पीपल की तरह लगनेवाला एक छोटा वृक्ष [को०]।

अश्वदंष्ट्र--संज्ञा स्त्री० [सं०] गोखरू।

अश्वदूत--संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार दूत [को०]।

अश्वनाय--संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े का चरवाहा [को०]।

अश्वनिवंधिक--संज्ञा पुं० [सं० अश्वनिबन्धिक] अश्वपाल। साईस [को०]।

अश्वपति--संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार। २ रिसालदार। ३ घोड़ों का मालिक। ४. भरत जी के मामा। ५ केकय देश के राजकुमारों की उपाधि।

अश्वपाल--संज्ञा पुं० [सं०] साईस।

अश्वपुच्छी--संज्ञा स्त्री० [सं०] माषपर्णी नामक पौधा [को०]।

अश्वबंध--संज्ञा पुं० [सं० अश्वबन्ध] चित्रकाव्य में वह पद्य जो घोड़े के चित्र में इस रीति से लिखा हो कि उसके अक्षरों से अंग प्रत्यंग तथा साजों और आभूषणों के रूप निकल आएँ।

अश्वबला--संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी [को०]।

अश्वबाल--संज्ञा पुं० [सं०] कास का पौधा।

अश्वभा--संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली [को०]।

अश्वमार--संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का पेड़।

अश्वमारक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्वमार' [को०]।

अश्वमाल--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०]।

अश्वमुख--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अश्वमुखी] किन्नर।

विशेष--कहते हैं, किन्नरों का मुँह घोड़ों के समान होता है।

अश्वमेद(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अश्वमेध] दे० 'अश्वमेध'। उ०--अश्वमेद राजसू। तंत्र गोपन मेद वर।--पृ० रा०, ५५।४०।

अश्वमेध--संज्ञा पुं० [सं०] १ एक बड़ा यज्ञ।

विशेष--इसमें घोड़े के मस्तक पर जयपत्र बाँधकर उसे भूमंडल में घूमने के लिये छोड़ देते थे। उसकी रक्षा के निमित्त किसी वीर पुरुष को नियुक्त कर देते थे जो सेना लेकर उसके पीछे पीछे चलता था। जिस किसी राजा को अश्वमेध करनेवाले का आधिपत्य स्वीकृत नहीं होता था, वह उस घोड़े को बाँध लेता और सेना से युद्ध करता था। अश्व बाँधनेवाले को पराजित कर तथा घोड़े को छुड़ाकर सेना आगे बढ़ती थी। इस प्रकार वह घोड़ा संपूर्ण भूमंडल में घूमकर लौटता था, तब उसको मारकर उसकी चर्बी से हवन किया जाता था। यह यज्ञ केवल बड़े प्रतापी राजा करते थे। यह यज्ञ साल भर में होता था।

२ एक प्रकार की तान जिसमें षड्ज स्वर को छोड़कर शेष छह स्वर लगते हैं।

अश्वमेधिक[1]--वि० [सं०] अश्वमेध संबंधी [को०]।

अश्वमेधिक[2]--संज्ञा पुं० १ अश्वमेध के योग्य घोड़ा। २ महाभारत का चौदहवाँ पर्व [को०]।

अश्वमेधीय--वि० [सं०] दे० 'अश्वमेधिक' [को०]।

अश्वयुज[1]--वि० [सं०] १ जिसमें घोड़ा जुता हो। २ जो अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न हो [को०]।

अश्वयुज्[2]--संज्ञा स्त्री० १ अश्विनी नक्षत्र। २ आश्विन महीना। ३ रथ जिसमें घोड़े जुते हों [को०]।

अश्वयूप--संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध के घोड़े को बाँधने का खूँटा [को०]।

अश्वयोग--वि० [सं०] घोड़े की तरह तेजी से पहुँचनेवाला [को०]।

अश्वरक्ष--संज्ञा पुं० [सं०] अश्वपाल [को०]।

अश्वरिपु--संज्ञा पुं० [सं०] भैंस [को०]।

अश्वरोधक--संज्ञा पुं० [सं०] कनेर।

अश्वल--संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रकार ऋषि का नाम।

अश्वलक्षण--संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े के शुभाशुभ लक्षणों का विचार [को०]।

अश्वललित--संज्ञा पुं० [सं०] अद्रितनया नामक वर्णवृत्त।

अश्वलाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०]।

अश्ववक्त्र--संज्ञा पुं० [सं०] किन्नर [को०]।

अश्ववदन--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम।

अश्ववह--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्ववाह' [को०]।

अश्ववार, अश्ववारक--संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार [को०]।

अश्ववाह, अश्ववाहक--संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार [को०]।

अश्वविद्[1]--वि० [सं०] १ घोड़ों का शिक्षक। २ घोड़े के लक्षणों को जाननेवाला [को०]।

अश्वविद्[2]--संज्ञा पुं० १. घुड़सवार। २. राजा नल [को०]।

अश्ववैद्य—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों का वैद्य [को०]।

अश्वव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें कवचधारी (लोहे की पाखरवाले) घोड़े सामने और साधारण घोड़े पक्ष और कक्ष में हों।

अश्वशंकु—संज्ञा पुं० [सं० अश्वशङ्कु] घोड़ा बाँधने का खूँटा [को०]।

अश्वशक—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की लीद [को०]।

अश्वशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ घोड़े रहें। घुड़साल। अस्तबल। तवेला।

अश्वशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें घोड़ों के शुभाशुभ लक्षणों एवं उनके रोगादि का वर्णन रहता है। शालिहोत्र [को०]।

अश्वसाद—संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार [को०]।

अश्वसादी—संज्ञा पुं० [सं० अश्वसादिन्] दे० 'अश्वसाद' [को०]।

अश्वसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] वेद का एक सूक्त जिसमें घोड़ों का वर्णन है।

अश्वस्तन¹—वि० [सं०] वर्तमान दिवस संबंधी। केवल आज के दिन से संबद्ध रखनेवाला।

अश्वस्तन²—संज्ञा पुं० [वि० अश्वस्तनिक] वह गृहस्थ जिसे केवल एक दिन के खाने का ठिकाना हो। कल के लिये कुछ न रखनेवाला गृहस्थ।

अश्वस्तनिक—वि० [सं०] १. कल के लिये कुछ न रखनेवाला। २. आगे के लिये संचय न करनेवाला।

विशेष—यह एक प्रकार की ऋषिवृत्ति है।

अश्वस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की पीठ पर रखा जानेवाला कपड़ा [को०]।

अश्वहृदय—संज्ञा पुं० [सं०] १ घोड़े का चिकित्साशास्त्र। शालिहोत्र। घुड़सवार [को०]।

अश्वांतक—संज्ञा पुं० [सं० अश्वान्तक] कनेर [को०]।

अश्वाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवसर्षप नामक पौधा। २ घोड़े की आँख [को०]।

अश्वाजनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाबुक। कशा [को०]।

अश्वाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार सेना का अध्यक्ष या नायक [को०]।

अश्वानीक—संज्ञा स्त्री० [सं०] घुड़सवार सेना। रिसाला [को०]।

अश्वायुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्वशास्त्र' [को०]।

अश्वारि—संज्ञा पुं० [सं०] १ भैंसा। महिष। २ करवीर। कनेर।

अश्वारूढ—वि० [सं० अश्वारूढ] जो घोड़े पर सवार हो [को०]।

अश्वारोह¹—वि० [सं०] अश्वारूढ [को०]।

अश्वारोह²—संज्ञा पुं० १ घुड़सवार। २ घुड़सवारी [को०]।

अश्वारोहक—संज्ञा पुं० [सं०] असगंध नामक पौधा [को०]।

अश्वारोहण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अश्वारोही] घोड़े की सवारी।

अश्वारोही¹—वि० [सं० अश्वारोहिन्] घोड़े की सवारी करनेवाला।

अश्वारोही²—संज्ञा पुं० घुड़सवार।

अश्वावतारी—संज्ञा पुं० [सं० अश्वावतारिन्] ३१ मात्राओं के छंदों की संज्ञा। वीर छंद इसी के अंतर्गत है।

अश्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घोड़ी। २. २७ नक्षत्रों में से पहला नक्षत्र अश्वयुक्। दाक्षायणी। ३. जटामासी। बालछड़।

विशेष—तीन नक्षत्रों के मिलने से इसका रूप घोड़े के मुख के सदृश होता है।

अश्विनीकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] त्वष्टा की पुत्री प्रभा नाम की स्त्री से उत्पन्न सूर्य के दो पुत्र।

विशेष—एक बार सूर्य के तेज को सहन करने में असमर्थ होकर प्रभा अपनी दो संतति यम और यमुना तथा अपनी छाया छोड़कर चुपके से भाग गई और घोड़ी बनकर तप करने लगी। इस छाया से भी सूर्य को दो संतति हुई। शनि और ताप्ती। जब छाया ने प्रभा की संतति का अनादर आरंभ किया, तब यह बात खुल गई कि प्रभा तो भाग गई है। इसके उपरांत सूर्य घोड़ा बनकर प्रभा के पास, जो अश्विनी के रूप में थी, गए। इस संयोग से दोनों अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई जो देवताओं के वैद्य हैं।

पर्या०—स्ववैद्य। दस्र। नासत्य। आश्विनेय। नासिक्य। गदागद। पुष्करस्रज। अश्विनीपुत्र। अश्विनीसुत।

अश्वियुगल—संज्ञा पुं० [सं०] दो कल्पित देवता जो प्रभात के समय घोड़ों या पक्षियों से जुते हुए सोने के रथ पर चढ़कर आकाश में निकलते हैं।

विशेष—कहते हैं कि यह लोगों को सुख सौभाग्य प्रदान करते हैं और उनके दुख तथा दरिद्रता आदि हरते हैं।—कहीं कहीं यही अश्विनीकुमार भी माने गए हैं। कहते हैं कि दधीचि से मधुविद्या सीखने के लिये इन्होंने उनका सिर काटकर अलग रख दिया था, और उनके धड़पर घोड़े का सिर रख दिया था, और तब उनसे मधुविद्या सीखी थी। वि० दे० 'दधीचि'।

अश्वियुज—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष् में एक युग अर्थात् पाँच वर्ष का काल जिसमें क्रम से पिंगल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र और दुर्मति संवत्सर होते हैं।

अश्वीय¹—वि० [सं०] अश्वसंबंधी [को०]।

अश्वीय²—संज्ञा पुं० घोड़ों का समूह [को०]।

अषडक्षीण¹—वि० [सं०] जिसे छह आँखों ने न देखा हो अर्थात् दो ही व्यक्तियों को ज्ञात अथवा दृष्ट [को०]।

अषडक्षीण²—संज्ञा पुं० रहस्य। राज। [को०]।

अषाढ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अषाढ] वह महीना जिसमें पूर्णिमा पूर्वाषाढ में तेढ़े। असाढ़। अषाढ़।

अषाढक—संज्ञा पुं० [सं० अषाढ़क] अषाढ़ का महीना [को०]।

अष्टंग(पु)—वि० [सं० अष्टङ्ग] दे० 'अष्टांग'। उ०—कहिय नृपति अष्टंग सुधि। रजि राज फल गान।—पृ० रा०, २५।१३।

अष्टंगी(पु)—वि० [सं० अष्टाङ्गी] दे० 'अष्टांगी'।

अष्ट¹—वि० [सं० अष्टन्] आठ।

अष्ट²—संज्ञा पुं० आठ की संख्या।

अष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आठ वस्तुओं का संग्रह, जैसे—हिंग्वष्टक। २ वह स्तोत्र या काव्य जिसमें आठ श्लोक हों, जैसे—रुद्राष्टक, गंगाष्टक। ३ वह ग्रंथावयव जिसमें आठ अध्याय आदि हों। ४. मनु के अनुसार एक गण जिसमें पैशुन्य, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थदूषण, वाग्दंड और पारुष्य ये आठ अवगुण हैं। ५. पाणिनिकृत व्याकरण। अष्टाध्यायी। ६ आठ ऋषियों का एक गण।

अष्टकमल—संज्ञा पुं० [सं०] हठयोग के अनुसार मूलाधार से ललाट तक के आठ कमल जो भिन्न भिन्न स्थानों मे माने गए हैं—मूलाधार, विशुद्ध, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान, अनाहत (अनहद) आज्ञाचक्र, सहस्रारचक्र और सुरति कमल ।

अष्टकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा [को०] ।

विशेष—चार मुख होने के कारण ब्रह्मा के आठ कान हैं, अत इन्हे अष्टकर्ण कहा जाता है ।

अष्टकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जिसके कान पर आठ की संख्या (८) का चिह्न अंकित हो । उ०—ऋग्वेद मे ऋषि नाभाने दिष्ठ हजार अष्टकर्णी गौएँ दान करने के कारण राजा सावर्णि की स्तुति करता है ।—मा० प्रा० लि०, पृ० ११ ।

अष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अष्टमी । २ अगहन, पूस, माघ और फागुन महीने की कृष्ण अष्टमी । इस दिन श्राद्ध करने से पितरो की तृप्ति होती है । ३ अष्टमी के दिन का कृत्य । अष्टका याम । ४ अष्टका मे कृत्य श्राद्ध ।

अष्टकुल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सर्पों के आठ कुल, यथा—शेष, वासुकि, कवल, कर्कोटिक, पद्म, महापद्म, शख और कुलिक । किसी किसी के मत से—तक्षक, महापद्म, शख, कुलिक, कबल, अश्वतर, धृतराष्ट्र और बलाहक हैं ।

अष्टकुलाचल—संज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रमुख पर्वत—नील, निषध, विंध्याचल, माल्यवान्, मलय, गंधमादन, हेमकूट और हिमालय [को०] ।

अष्टकुली—वि० [सं०] साँपो के आठ कुलो मे से किसी मे उत्पन्न ।

अष्टकृष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वल्लभ कुल के मतानुसार आठ कृष्ण, यथा—श्रीनाथ, नवनीतप्रिय, मथुरानाथ, विट्ठलनाथ, द्वारकानाथ, गोकुलनाथ, गोकुलचद्रमा और मदनमोहन ।

अष्टकोण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह क्षेत्र जिसमे आठ कोण हो । २ तत्र के अनुसार एक यंत्र । ३ एक प्रकार का कुंडल जिसमे आठ कोण होते हैं ।

अष्टकोण[2]—वि० आठ कोनेवाला । जिसमे आठ कोने हो ।

अष्टगध—संज्ञा पुं० [सं० अष्टगन्ध] आठ सुगधित द्रव्यो का समाहार । दे० 'गधाष्टक' ।

अष्टछाप—संज्ञा पुं० [सं० अष्ट + हिं० छाप] वल्लभ सप्रदाय के प्रसिद्ध अष्ट कवियो का वर्ग, जिनके नाम हैं—सूरदास, कुभनदास, परमानददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास और नददास ।

अष्टताल—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के आठ प्रकार—आड, दोज, ज्योति, चद्रशेखर गजन, पचताल, रूपल और समताल ।

अष्टदल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आठ पत्तो का कमल ।

अष्टदल[2]—वि० १ आठ दल का । २ आठ कानो का । आठ पहल का ।

अष्टद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] आठ द्रव्य जो हवन के काम आते हैं—अश्वत्थ, गूलर, पाकर, वट, तिल, सरसो, पायस और घी ।

अष्टधाती—वि० [सं० अष्ट + धातु] १ अष्टधातुओ से बना हुआ । २ दृढ । मजबूत । ३ उत्पाती । उपद्रवी । ४ जिसके मातापिता का ठीक ठिकाना न हो । वर्णसकर ।

अष्टधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] आठ धातुएँ—सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, जस्ता, सीसा, लोहा और पारा ।

अष्टनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आठ नायिकाएँ ।

विशेष—पुराणानुसार आठ प्रधान शक्तियाँ—उग्रचड, प्रचडा, चडोग्रा, चडनायिका, चामुडा, चडा, अतिचडा और चडवती । कृष्ण की आठ पटरानियाँ—रुक्मिणी, सत्यभामा, जाववती, कालिंदी, मित्रवृंदा, नाग्नजिती, भद्रा और लक्ष्मणा । इद्र की आठ नायिकाएँ—उर्वशी, मेनका, रभा, पूर्वचिती, स्वयप्रभा, मिश्रकेशी, जनवल्लभा और घृताची (तिलोत्तमा) । साहित्य मे वर्णित आठ नायिकाएँ—वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, स्वाधीनभर्तृका, कलहातरिता, खडिता, विप्रलब्धा, प्रोषितभर्तृका और अभिसारिका कही गई हैं ।

अष्टपद—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अष्टपाद' ।

अष्टपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आठ पदो का एक समूह । एक प्रकार का गीत जिसमे आठ पद होते हैं । २ बेला नाम का फूल या उसका पौधा ।

अष्टपाद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरभ । शार्दूल । २ लूता । मकडी । ३. आठ अगोंवाला एक जतु । ४ अर्गला । सिटकिनी [को०] । ५ कैलास पर्वत [को०] । ६ सोना । स्वर्ण । ७ कपडे की बनी बिसात [को०] । ८ एक कीट [को०] । ९ जगली चमेली [को०] ।

अष्टपाद[2]—वि० आठ पैरोवाला [को०] ।

अष्टप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शुक्रनीति के अनुसार राज्य के ये आठ प्रधान कर्मचारी—सुमत्र, पडित, मत्री, प्रधान अमात्य, प्राड्विवाक और प्रतिनिधि ।

विशेष—महाभारत, मनुस्मृति आदि मे पहले सात ही अंग कहे गए हैं ।

२. राज्य के आठ अग—राजा, राष्ट्र, अमात्य, दुर्ग, सेना, कोष, सामत तथा प्रजा । ३ शरीर की आठ प्रकृति—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर, मन, बुद्धि, और अहकार ।

अष्टप्रधान—संज्ञा पुं० [सं०] राज्य के आठ प्रकार के प्रधान जैसे—वैद्य, उपाध्याय, सचिव, मत्री, प्रतिनिधि, राजाध्यक्ष, प्रधान और अमात्य । शिवाजी के अष्टप्रधान ये थे—प्रधान, अमात्य, सचिव, मत्री, लिपिक या लेखक, न्यायाधीश, सेनापति, और न्यायशास्त्री [को०] ।

अष्टभुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

अष्टभुजी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अष्टभुजा' ।

अष्टभैरव—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के आठ गण जिनके नाम है, असितांग, सहार, रुरु, काल, क्रोध, ताम्रचूड, चद्रचूड तथा महाभैरव [को०] ।

अष्टमगल—संज्ञा पुं० [सं० अष्टमङ्गल] १ आठ मगलद्रव्य या पदार्थ—सिंह, वृष, नाग, कलश, पखा, वैजयती, भेरी और दीपक । किसी किसी के मत से—ब्राह्मण, गो, अग्नि, सुवर्ण, घी, सूर्य, जल और राजा हैं । २ एक घृत जो वच, कुट, ब्राह्मी, सरसो, पीपल, सारिवा, सेंधा नमक और घी इन आठ ओषधियो से बनाया जाता है ।

अष्टम—वि० पुं० [सं०] आठवाँ । उ०—सप्तम चेतनता लहै सोइ । अष्टम मास संपूरन होइ ।—सूर० ९।३१४ ।

अष्टमान—संज्ञा पुं० [सं०] आठ मुट्ठी का एक परिमाण अर्थात् एक कुडव ।

अष्टमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आधे पल या दो कर्ष का परिमाण । २ चार तोले का एक परिमाण ।

अष्टमी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शुक्ल और कृष्ण पक्ष के भेद से आठवीं तिथि । आठें । २ क्षीरकाकोली । पयस्वा ।

अष्टमी[2]—वि० स्त्री० [सं०] आठवी ।

अष्टमुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक माप । कुंचि [को०] ।

अष्टमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव । उ०—गनिये जु जीव आधार पुनि अष्ट (म) मूर्ति इनतें कहत ।—शकुंतला, पृ० ३ । २ शिव की आठ मूर्तियाँ क्षिति, जल, तेज वायु आकाश, जयमान, अर्क और चंद्र, अथवा सर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव ।

अष्टलोह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अष्टधातु' [को०] ।

अष्टवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि, इन आठ ओषधियों का समाहार । २ ज्योतिष का गोचरविशेष । ३ नीतिशास्त्र के अनुसार किसी राज्य के कृषि, वस्ती (बाजार आदि), दुर्ग, सेतु, हस्तिबंधन, खान, करग्रहण और सैन्यसंस्थापन का समूह ।

अष्टश्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा [को०] ।

अष्टश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० अष्टश्रवस्] दे० 'अष्टश्रवण' [को०] ।

अष्टसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग द्वारा प्राप्त होनेवाली आठ अलौकिक शक्तियाँ जिनके नाम हैं अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व तथा वशित्व [को०] ।

अष्टांग[1]—संज्ञा पुं० [सं० अष्टाङ्ग] [वि० स्त्री० अष्टांगी] १ योग की क्रिया के आठ भेद—यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । उ०—भक्ति पथ कौं जो अनुसरै । सो अष्टांग जोग कौं करै ।—सूर० १।३६४ । २ आयुर्वेद के आठ विभाग शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या कौमारभृत्य, अगदतंत्र, रसायनतंत्र और वाजीकरण । ३ शरीर के आठ अंग-जानु, पद, हाथ, उर, शिर, वचन, दृष्टि, बुद्धि, जिनसे प्रणाम करने का विधान है । ४ अर्घविशेष जो सूर्य को दिया जाता है । इसमें जल, क्षीर कुशाग्र, घी, मधु, दही, रक्त चंदन और करवीर होते हैं ।

अष्टांग[2]—वि० १ आठ अवयववाला । २ अठपहल ।

अष्टांगमार्ग—संज्ञा पुं० [सं० अष्टाङ्गमार्ग] बुद्ध द्वारा प्रतिपादित दुःख से त्राण दिलानेवाला आठ सूत्रों का मार्ग—सम्यग्दृष्टि सम्यग्संकल्प, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्म, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति, सम्यक्समाधि [को०] ।

अष्टांगयोग—संज्ञा पुं० [सं० अष्टांगयोग] दे० 'अष्टांग[1]' [को०] ।

अष्टांगायुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं० अष्टाङ्गायुर्वेद] दे० 'अष्टांग[2]' [को०] ।

अष्टांगी—वि० [सं० अष्टाङ्गिन्] आठ अंगवाला ।

अष्टाकपाल—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी के आठ बरतनों या खप्परों में पकाया हुआ पुरोडाश । २ वह यज्ञ जिसमें अष्टाकपाल पुरोडाश काम में लाया जाय ।

अष्टाकुल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अष्टकुल' । उ०—पारथ सीस सोधि अष्टाकुल, तब जदुनंदन ल्याये ।—सूर० ९।२६ ।

अष्टाक्षर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ आठ अक्षरों का मंत्र । २ विष्णु भगवान् का मंत्र—'ॐ नमो नारायण' । ३ वल्लभ कुल के मतवालों के मत से 'श्रीकृष्ण शरणं मम' ।

अष्टाक्षर[2]—वि० आठ अक्षरों का । आठ अक्षरवाला ।

अष्टादस(पु)—वि० [सं० अष्टादश] अठारह । उ०—रोमराजि अष्टादस भारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ।—मानस, ६।१५।

अष्टाध्यायी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाणिनीय व्याकरण का प्रधान ग्रंथ जिसमें आठ अध्याय हैं ।

अष्टापद—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना । २ शरभ । उ० -बर विद्या मी आनंद दानि । युत अष्टापद मनु शिवा मानि ।—राम चं० पृ०, १०० । ३ लूता । मकड़ी । ४ कृमि । ५ कैलास । ६ धतूरा ।

अष्टावक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक ऋषि । २ वह मनुष्य जिसके हाथ पैर आदि कई अंग टेढ़े मेढ़े हों ।

अष्टाश्रि[1]—वि० [सं०] आठ कोनेवाला । अठकोना ।

अष्टाश्रि[2]—संज्ञा पुं० वह घर जिसमें आठ कोन हों ।

अष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सोलह अक्षर की एक वृत्ति जिसके चंचला, चकिता, पंचचामर आदि बहुत भेद हैं । २ सो ह की संख्या । ३ खेलने की बिसात [को०] । ४ बीज [को०] । ५ फल का गूदा । गिरी [को०] ।

अष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीपक राग की एक रागिनी ।

अष्ठि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गुठली । २ बीज [को०] ।

अष्ठीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक रोग जिसमें मूत्राशय में अफरा होने से पेशाब नहीं होता और गाँठ पड़ जाती है जिसमें मला-वरोध होता है और बस्ति में पीड़ा होती है । २ पत्थर की गोली । ३ गूदा । गिरी [को०] । ४ बीजान्न [को०] ।

अष्ठीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का घाव । २ पत्थर का टुकड़ा [को०] ।

असक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अशक' । उ०—डहकि डहकि परिचेहु सब काहू । अति असक मन सदा उछाहू ।—मानस, १।१३७ ।

असका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आशङ्का] संदेह । शुबहा । शक । उ०—अस बिचारि सब तजहु असंका । सबहि ँ सकरु अकारा । —मानस १।७२ ।

असंकुल[1]—वि० [सं० असङ्कुल] जहाँ जनसमूह न हो । खुला हुआ । प्रशस्त । चौड़ा [को०] ।

असंकुल[2]—संज्ञा पुं० १ राजमार्ग । चौड़ी सड़क [को०] ।

असंक्रांत[1]—वि० [सं० असङ्क्रान्त] जो स्थानांतरित न हुआ हो । जिसका स्थान बदला न हो [को०] ।

असंक्रांत[2]—संज्ञा पुं० अधिक मास । मलमास [को०] ।

असंक्रांतिमास—संज्ञा पुं० [सं० असङ्क्रान्तिमास] बिना संक्रांति का महीना । अधिकमास । मलमास ।

असंख(पु)--वि० [हिं०] दे० 'असंख्य'। उ०—मधुर उठती है तान असंख।--झरना, पृ० ४४।

असंख्य--वि० [सं० असङ्ख्य] जिसकी गिनती न हो सके। अनगिनत। बेशुमार। बहुत अधिक। उ०—लहरें व्योम चूमती उठती, चपलाएँ असंख्य नचती।—कामायनी, पृ० १६।

असंख्यक--वि० [सं० असङ्ख्यक] दे० 'असंख्य'। उ०—बल से असंख्यक आर्य यो इसलाम मे लाये गये।—भारत०, पृ० ७६।

असंख्यात—वि० [सं० असङ्ख्यात] संख्यातीत। जो गिना न जा सके [को०]।

असंख्येय¹--वि० [सं० असङ्ख्येय] संख्यातीत। अनगिनत [को०]।

असंख्येय²--संज्ञा पुं० १ अत्यंत बडी संख्या। २ शिव का एक नाम। ३ विष्णु [को०]।

असंग¹—वि० [सं० असङ्ग] १ विना साथ का। अकेला। एकाकी। २ किसी से वास्ता न रखनेवाला। न्यारा। निर्लिप्त। मायारहित। उ०—(क) मन मैं यहै बात ठहराई। होइ असंग भजौं जदुराई।—सूर० (शब्द०)। (ख) भस्म अंग मर्दन अनंग, संतत असंग हर। सीस गंग, गिरिजा अधंग, भूषन भुअंगवर।—तुलसी (शब्द०)। ३ जुदा। अलग। पृथक्। उ०—चंद्रकला चंवँ परी, असंग गंग ह्वै परी, भुजंगी भाजि भ्रौ गी, बरंगी के बरत ही।—देव (शब्द०)।

असंग²—संज्ञा १.पुं० पुरुष। आत्मा। २.संपर्काभाव। निर्लिप्तता [को०]।

असंगचारी—वि० [सं० असङ्गचारिन्] आजादी से घूमनेवाला [को०]।

असंगत--वि० पुं० [सं० असङ्गत] १ अयुक्त। बेठीक। २ अनुचित। उ०---भ्रम भोयो मन भयो पखावज चलत असंगत चाल।—सूर० १। १५३। ३ असमान। बेमेल [को०]। ४. जो प्रसंगविरुद्ध हो। अप्रासंगिक [को०]। ५ असंस्कृत। गँवार। उजड्ड [को०]।

असंगति--संज्ञा स्त्री० [सं० असङ्गति] १. असंबंध। बेसिलसिलापन। २ अनुपयुक्तता। नामुनासिबत। ३.एक काव्यालंकार जिसमे कार्यकारण के बीच देशकाल-संबंधी अन्यथात्व दिखाया जाय, अर्थात् सृष्टिनियम के विरुद्ध कारण कहीं बताया जाय और कार्य कहीं; किसी नियत समय मे होनेवाले कार्य का किसी दूसरे समय मे होना दिखाया जाय। उ०—'हरत कुसुम छवि कामिनी, निज अंगन सुकुमार। मार करत यह कुसुमसर, युवकन कहा विचार।' यहाँ फूलों की शोभा हरण करने का दोष स्त्रियो ने किया, उसका दंड उनको न देकर कामदेव ने युवा पुरुषो को दिया।

विशेष—कुवलयानंद मे और दो प्रकार से असंगति का होना माना गया है। एक तो एक स्थान पर होनेवाले कार्य के दूसरे स्थान पर होने से, जैसे—'तेरे अंग की अंगना, तिलक लगायो पानि'। दूसरे, किसी के उस कार्य के विरुद्ध कार्य करने से जिसके लिये वह उद्यत हुआ हो, जैसे—'मोह मिटावन हेतु प्रभु, लीन्हो तुम अवतार। उलटो मोहन रूप धरि, मोह्यो सब ब्रजनार।'

असंगतिप्रदर्शन—संज्ञा पुं० [सं० असङ्गतिप्रदर्शन] १. तर्क के क्रम मे अंत मे ऐसी बात कह देना या ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचना जो मूल प्रतिपाद्य का विरोधी हो। २.दोष दिखाना।

असंगम¹—संज्ञा पुं० [सं० असङ्गम] १.संग का अभाव। २ अनासक्ति। ३ बेमेलपन [को०]।

असंगम²—वि० १ अलग। २ बेमेल [को०]।

असंगी—वि० [सं० असङ्गिन्] १ बिना लगाव का। असंबद्ध। २. संसार से विरक्त [को०]।

असंचय¹—संज्ञा पुं० [सं० असञ्चय] एकत्र करने की कमी। संचय का अभाव [को०]।

यौ०—असंचयशील = संचय करने की जिसकी आदत न हो या जो संचय न करता हो।

असंचय²—वि० आवश्यक वस्तुओ से हीन। संभाररहित [को०]।

असंचयिक —वि० [सं० असञ्चयिक] जो संचय न करे [को०]।

असंचयी—वि० [सं० असञ्चयिन्] संचय न करनेवाला [को०]।

असंचर—संज्ञा पुं० [असञ्चर] वह मार्ग जिसपर सब लोग नहीं चलते। सर्वसाधारण के लिये निषिद्ध पथ अथवा स्थान [को०]।

असंजोग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० असंयोग] संबंध या संपर्क का अभाव। असंबंध। उ०—असंजोग ते कहुँ कहैं एक अर्थ कविराई भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ७।

असंज्ञ--वि० [सं०] संज्ञारहित। चेतनारहित [को०]।

असंज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ संज्ञाहीनता। २ सामंजस्य का अभाव [को०]।

असंज्वर—वि० [सं०] क्रोध, शोक, द्वेष, रोग, आदि विकारो से रहित [को०]।

असंत—वि०[सं० असन्त] बुरा। खल। दुष्ट। उ०—संत—असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई।—मानस, ७।३७।

असंतति--वि० [सं० असन्तति] जिसे संतति या बाल बच्चे न हो। निःसंतान।

असंतान—वि० [सं० असन्तान] संतानविहीन। जिसे पुत्र या पुत्री न हो [को०]।

असंतुष्ट—वि [सं० असन्तुष्ट] १ जो संतुष्ट न हो। २ अतृप्त। जिसका मन न भरा हो। जो अघाया न हो। ३. अप्रसन्न।

असंतुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० असन्तुष्टि] १.संतोष का अभाव। २. अतृप्ति। ३ अप्रसन्नता।

असंतोष—संज्ञा पुं० [सं० असन्तोष] [वि० असंतोषी] १ संतोष का अभाव। अधैर्य। २.अतृप्ति। ३ अप्रसन्नता।

असंतोषी—वि० [सं० असन्तोषिन्] [वि० स्त्री० असन्तोषिणी] जिसे संतोष न हो। जिसका मन न भरे। जो तृप्त न हो।

असंदिग्ध—वि०[सं० असन्दिग्ध]१ संदेह से परे। जिनके विषय मे संदेह या आशंका की गुंजाइश न हो। २ निश्चित [को०]।

असंध—वि० [सं० असन्ध] १.जिसमे जोड़ न हो। २.असीवित। ३ जिसके खंड या टुकड़े न हुए हो।

असंधि¹—वि० [सं० असन्धि] १.जिनमें आपस मे संधि न हुई हो। संधिहीन (शब्द०)। २.अनमिल। स्वतंत्र [को०]।

असंधि²—संज्ञा स्त्री० १ संधि का अभाव। २. मेल या संबंध का अभाव [को०]।

असंपत्ति¹—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्पत्ति] १. दुर्भाग्य। २. सफलता या संपत्ति का अभाव [को०]।

असंपत्ति²—वि० अभागा। दरिद्र [को०]।

असंपर्क—संज्ञा पुं० [सं० असम्पर्क] संबंध न होना। संबंध का अभाव [को०]।

असंपर्की—वि० [सं० अ + सम्पर्किन्] संपर्क या संबंध न रखनेवाला।

असंपूर्ण—वि० [सं० असम्पूर्ण] अधूरा। जो पूरा न हो। अपूर्ण [को०]।

असंपृक्त—वि० [सं० असम्पृक्त] जो किसी के संपर्क में न हो। तटस्थ।

असंप्रज्ञात—वि० [सं० असम्प्रज्ञात] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो। अधूरे रूप में जाना हुआ।

असंप्रज्ञातसमाधि—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्प्रज्ञातसमाधि] योग की दो समाधियों में से एक जिसमें न केवल बाहरी विषयों की वृत्ति ज्ञाता और ज्ञेय की भावना भी लुप्त हो जाय। निर्विकल्प समाधि।

असंबंध¹—संज्ञा पुं० [सं० असम्बन्ध] संबंधहीनता। संबंध का न होना [को०]।

असंबंध²—वि० असंबद्ध [को०]।

असंबद्ध—वि० [सं० असम्बद्ध] १ जो मिला न हो। जो मेल में न हो। २ विलगाव। पृथक्। अलग। ३ अनमिल। बेमेल। बिना सिर पैर का। अंडबंड।

यौ०—असंबद्धप्रलाप।

असंबंधातिशयोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्बन्धातिशयोक्ति] अतिशयोक्ति अलंकार का एक भेद जिसमें प्रस्तुत या वर्णनीय की तुलना में अप्रस्तुत या अवर्णनीय को हीन और अयोग्य सिद्ध किया जाता है। जैसे—अति सुंदर मुख लखि तिय तेरो। आदर हम न करत ससि केरो। पद्माकर ग्रं०, पृ० ४०।

असंबाध—वि० [सं० असम्बाध] १ बिना बाधा का। अभाव। २ मुक्त। ३ जो सँकरा न हो। चौड़ा। विस्तृत। ४ सन्नाटा। ५ जिसमें कोई दुःख या कष्ट न हो। कष्टहीन [को०]।

असंबाधा—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्बाध] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में मगण, तगण, नगण, सगण और दो गुरु होते हैं। ऽऽऽ, ऽऽ।, ।।।, ।।ऽ, ऽऽ जैसे—माता नासो गंग कठिन भव की पीरा। जाते ह्वै निःशंक मवति तुमरे नीरा। गाओ तेरी ही गुण निस दिन बेबाधा। पावो जाते वेगि सुसगति असबाधा।

असंभ (पु)—वि० [हिं०] दे० 'असंभव'। उ०—मुनि आनंदयो चंद निन, सौन मान आरंभ, जप्प जाप हवि होम सब, लग्यौ कज्ज असंभ।—पृ० रा०, ६। १४६।

असंभव¹—वि० [सं० असम्भव] जो संभव न हो। जो हो न सके। अनहोना। नामुमकिन। उ०—जायँ वे इस गेह ही से रूठ, यह असंभव, झूठ, निश्चय झूठ।—साकेत पृ० १७८।

असंभव²—संज्ञा पुं० १ एक काव्यालंकार जिसमें यह दिखाया जाय कि जो बात हो गई है उसका होना असंभव था। उ०—किहि जानी जलनिधि अति दुस्तर। पीवहिं घटज, उलघहिं बदर। (शब्द०)। २ अनस्तित्व। न होना [को०]। ३ अनहोनी। असंभवता [को०]।

असंभव्य—वि० [सं० असम्भव्य] १ जिसका होना संभव न हो। २. समझ में न आने योग्य [को०]।

असंभार (पु)—वि० [सं० अ = नहीं + सम्भार] १ जो सँभालने योग्य न हो। जिसका प्रबंध न हो सके। २ अपार। बहुत बड़ा। उ०—बिरहा समुद भरा असंभारा। भौंर मेलि जिउ लहरिन्ह मारा।—जायसी ग्रं०, पृ० ७४।

असंभाव (पु)—वि० [सं० असम्भाव्य, प्रा० असंभव्य] जो संभव न हो। अनहोना। उ०—असंभाव बोलन आई है ढीठ ग्वालिनी प्रात। ऐसो नाहिं अचगरौ मेरो कहा बनावति बात।—सूर०, १०।२६०।

असंभावना—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्भावना] [वि० असंभावित, असंभाव्य] संभावना का अभाव। अनहोनापन। अप्रत्याशितता। उ०—भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती दारुन असंभावना बीती।—मानस, १। ११९।

असंभावनीय—वि० [सं० असम्भावनीय] दे० 'असंभाव्य'।

असंभावित—वि० [सं० असम्भावित] जिसकी संभावना न रही हो। जिसके होने का अनुमान न किया गया हो। अनुमानविरुद्ध।

असंभावी—वि० [सं० असम्भाविन्] जिसका होना असंभव हो। भविष्य में जिसका होना नामुमकिन हो [को०]।

असंभाव्य—वि० [सं० असम्भाव्य] १ जिसकी संभावना न हो। अनहोना। उ०—क्या असंभाव्य हो यह राघव के लिये धार्य।—अपरा, पृ० ४४। २ जो समय में आने योग्य न हो। दुर्बोध [को०]।

असंभाष्य¹—वि० [सं० असम्भाष्य] १ न कहे जाने योग्य। न उच्चारण करने योग्य। २ जिससे बातचीत करना उचित न हो। बुरा।

असंभाष्य²—संज्ञा पुं० बुरा वचन। खराब बात।

असंभूति—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्भूति] १ अस्तित्वहीनता। संभूति का अभाव। २ पुनर्जन्म न होना। ३ असंभवता। ४ अनहोनी घटना। ५ अव्याकृति प्रकृति [को०]।

असंभृत—वि० [सं० असम्भृत] १. अयत्नसिद्ध। सहज। २ जिसका पोषण सम्यक् रीति से न हुआ हो [को०]।

असंभोज्य—वि० [सं० असम्भोज्य] जिसके साथ बैठकर खाना वर्जित हो [को०]।

असंभ्रम¹—संज्ञा पुं० [सं० असम्भ्रम] हड़बड़ी या अधीरता का अभाव। धीरता [को०]।

असंभ्रम²—वि० धीर। स्वस्थचित्त। अनुद्विग्न [को०]।

असंयत—वि० [सं०] संयमरहित। जो नियमबद्ध न हो। क्रमशून्य।

असंयम—संज्ञा पुं० [सं०] संयम का अभाव। इंद्रियों को वश में न रखना।

असंयमी—वि० [सं० असंयमिन्] जो संयमी न हो।

असंयुक्त—वि० [सं०] न मिला हुआ। विभक्त। अलग [को०]।

असंयुत¹—वि० [सं०] दे० 'असंयुक्त'।

असंयुत²—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम [को०]।

असंयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ अवसर या योग का अभाव। २ सम्मिलन का अभाव [को०]।

असरोध—संज्ञा पुं० [सं०] हानि का न होना। अक्षति [को०]।

असलक्ष्य—वि० [सं०] जिसे लक्षित न किया जा सके। दुर्बोध्य [को०]।

असलक्ष्यक्रमव्यग्य—संज्ञा पुं० [सं० असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य] विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि का एक भेद जिसमे रसरूप लक्ष्य तक पहुँचने के क्रम का पता नहीं चलता, यद्यपि क्रम का निर्वाह वहाँ भी होता है, इसे रसध्वनि भी कहते हैं।

असवर—वि० [सं०] छिपाने के अयोग्य। अनाच्छादित [को०]।

असवृत[1]—वि० [सं०] अनाच्छादित। अरक्षित। खुला हुआ [को०]।

असवृत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] नरकविशेष [को०]।

असवैधानिक—वि० [सं०] सविधान के प्रतिकूल।

असव्यवहित—वि० [सं०] (देशकाल के) व्यवधान से रहित [को०]।

असशय[1]—वि० [सं०] १ सशयरहित। निर्विवाद। निश्चित। २. यथार्थ। ठीक।

असशय[2]—क्रि० वि० निःसदेह। बेशक।

असश्रव—वि० [सं०] जहाँ साफ साफ सुनाई न दे [को०]।

असश्लिष्ट[1]—वि० [सं०] जो मिला हुआ न हो। पृथक्। अलग [को०]।

असश्लिष्ट[2]—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

असषित्त(पु)—वि० [सं० असक्षिप्त प्रा० असषित्त] विस्तृत। प्रचुर। विपुल। उ०—गज बाज लूटे असषित्त माल। लियौ सग्रहे अस्सपत्ती भुआल।—पृ० रा०, ५७।२०६।

असंसक्त—वि० [सं०] १ जो सनक्त न हो। आसक्तिरहित। अनासक्त। २ विभक्त [को०]।

असंसक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लगाव का न होना। निर्लिप्तता। २ विरक्ति। सासारिक विषयवासनाओ का त्याग।

असंसारी—वि० [सं० असंसारिन्] १ ससार से अलग रहनेवाला। विरक्त। २ ससार से परे। अलौकिक।

असंसृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] सस्मृति का अभाव। मुक्ति [को०]।

असंसृष्ट—वि० [सं०] ससृष्टि से रहित। सबधहीन। बेमेल [को०]।

असंसै(पु)—वि० [सं० असशय] दे० 'असशय'। उ०—सकै दिखाय मिर कौं जो तेहि दोष असंसै, औ सहर्ष सगुद्द के गुन कौं भाषि प्रसंसै।—रत्नाकर, भा० १-पृ० ४७।

असंस्कृत—वि० [सं०] १ बिना सुधारा हुआ। अपरिमार्जित। २ जिसका सस्कार न हुआ हो। व्रात्य। ३ असभ्य [को०]।

यौ०—असंस्कृतालकी = अस्तव्यस्त केशोवाला।

असंस्तुत—वि० [सं०] १ जो प्रसिद्ध न हो। अज्ञात। २ अपरिचित। ३ अद्भुत। ४ बिना लगाव का। बेमेल [को०]।

असंस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यवस्था का अभाव। अक्रम। २. सबधहीनता। ३ अस्थिरता। ४ त्रुटि या अभाव [को०]।

असंस्थित—वि० [सं०] १ अनवस्थित। २ चंचल। ३ व्यवस्थारहित। ४. असकलित। असगृहीत [को०]।

असंस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रमहीनता। अव्यवस्था [को०]।

असंहत[1]—वि० [सं०] जो सहत या मिला हुआ न हो। बिखरा हुआ। [को०]।

असंहत[2]—संज्ञा पुं० १ पुरुष। आत्मा (साख्य)। २. असंहतव्यूह [को०]।

असंहतव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] सेना को छोटे छोटे समूहो मे अलग-अलग खडा करना।

अस(पु)—वि० [सं० ईदृश अथवा एष = यह] १ इस प्रकार का। ऐसा। उ०—अस विवेक जब देइ विधाता। तब तजि दोष गुनहि मनु राता।—मानस १।३२ २ तुल्य। समान। उ०—जो मुनि सब अस लाग तुम्हारे। काहे न बोलहु बचनु सँभारे।—मानस २। ३०।

असक(पु)—वि० [सं० अशक्त, प्रा० असक्क हिं० असक] शक्तिहीन। दुर्बल। असमर्थ उ०—कसि असक घोर कसि द्रव्य दड।—पृ० रा०, ५७। २९५।

असकत(पु)—वि० [सं० अशक्त] दुर्बल। कमजोर। उ०—उर भरम छेह लग्यौ अगम असकत उग्रम उक्कनी। कर भाव पार गुण सर करण साची नाम सरस्वती।—रा० रू०, पृ० ६।

असकताना†—क्रि० अ० [हिं० आसकत] आलस्य मे पडना। आलस्य अनुभव करना, जैसे—'असकताओ मत अभी उठो और जाओ।' (शब्द०)।

असकति—वि० [सं० अशक्ति] शक्तिरहित। अशक्त। उ०-हौं असकति, ज्यो त्यो इतहि सुमन चुनौगी चाहि। मानि विनै मेरी अली, और ठौर तू जाहि।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १६।

असकन्ना—संज्ञा पुं० [सं० असि = तलवार + करण = करन्ना] दो अगुल चौडा और जौ भर मोटा लोहे का एक औजार जो रेती के समान खुरदुरा या दानेदार होता है और जिससे म्यान के भीतर की लकडी साफ की जाती है।

असकल—वि० [सं०] जो पूर्ण या समग्र न हो। असमग्र [को०]।

असक्त[1]—वि० [सं० अशक्त] शक्तिहीन। उ०—हा आर्यसतति आज कैसी अध और अशक्त है।—भारत०, पृ० १५१।

असक्त[2](पु)—वि० [सं० अशक्त] लिप्त। चिपका या सटा हुआ। उ०—विषय असक्त, अमित अघ व्याकुल तबहूँ कछु न सँभारयो।—सूर० १। १०२।

असक्त[3]—वि० [सं०] १ जो आसक्त न हो। तटस्थ। उदासीन। २. असंलग्न। ३. असयुक्त। ४ सासारिक विषयो से विरक्त [को०]।

असक्तारभ—संज्ञा पुं० [सं० असक्तारम्भ] १ वह भूमि जिसमे बहुत थोडे श्रम से अन्न पैदा हो। २ कम मेहनत और थोडी वर्षा से हो जानेवाली फसल।

असक्थ—वि० [सं०] सक्थिहीन। बिना जाँघवाला। [को०]।

असगध—संज्ञा पुं० [सं० अश्वगधा] एक सीधी झाडी जो गर्म प्रदेशो मे होती है और जिसमे छोटे छोटे गोल फल लगते हैं।

पर्या०—अश्वगधा। हयगधा। वाजिगधा। तुरगगधा। तुरगा। वाजिना। हया। बलदा। वातघ्नी। श्यामला। कामरूपिणी। काला। गंधपत्री। वाराहपत्री। वाराहकर्णी। वनजा। हयप्रिया। पीवरा। पलाशपर्णी। कवुका। कवुकाष्ठा। प्रियकारी। अवरोहा। अश्वारोहिका। कुष्ठगन्धिनी। रसायनी। तिक्ता।

विशेष—इसकी मोटी मोटी जड दवा के काम आती है और बाजारो मे बिकती है। यह अग्रगत वातकारक तथा वात और कफ

का काम करनेवाला है। इसके बीज से दूध जम जाता है। इससे कई प्रसिद्ध आयुर्वेदीय औषध बनते हैं, जैसे—असगंधाद्यघृत, असगंधारिष्ट आदि।

असगर—वि० [अ० असगर] बहुत छोटा।

असगुन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अशकुन] दे० 'अशकुन'। उ०—अति गर्व गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते—मानस,६।७५।

असगुनिया—संज्ञा पुं० [हिं० असगुन+इया (प्रत्य०)] वह मनुष्य जिसका मुँह देखना लोग अशुभ समझते हों। मनहूस।

असगोत्र—वि० [सं०] [वि० स्त्री० असगोत्रा] जो सगोत्री न हो। भिन्नगोत्रीय [को०]।

असज्जन¹—वि० [सं०] बुरा। खल। दुष्ट। अशिष्ट। नीच। उ०—सदा सज्जन असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।—मानस, १।५।

असज्जन²—संज्ञा पुं० बुरा आदमी।

असडिहा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अखाड़िया'। उ०—कहीं डोंड़े आवें कहीं असडिहा जाते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३।

असढ़िया—संज्ञा पुं० [सं० आषाढ़, असाढ़+इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का बड़ा साँप जिसकी पीठ पर कई प्रकार की चित्तियाँ होती हैं। इसका विष बहुत कम होता है।

असगण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आपात] गड्डा। (डिं०)।

असत्¹—वि० [सं०] १ मिथ्या। अस्तित्वविहीन। सत्तारहित। २. बुरा। खराब। ३ खोटा। असाधु। असज्जन।

असत्²—संज्ञा पुं० १ अनस्तित्व। २ असत्यता। मिथ्यात्व। ३. बुराई। अहितत्व [को०]।

असत—वि० [सं० असत्] १ असाधु। असज्जन। खोटा। उ०—औघट घाट कुचीलनी सौं मिलि, माया जल में तरनी।—सुं० १।२०३। २ अस्तित्वविहीन। सत्तारहित। मिथ्या। उ०—यह सुन्दर असत था अंधकार, अवकाश पटल का वार पार।—कामायनी, पृ० २५१।

असतनायी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्टता, पाजीपन [को०]।

असति(पु)—वि० [सं० असत्य] दे० 'असत्य'। उ०—जन कौं पर निंद्या भावै नहीं, अरु असति न भावै।—कबीर ग्रं०, पृ० २०६।

असती—वि० [सं०] जो सती न हो। कुलटा। पुंश्चली। उ०—असतीन को नित्य मानि। नित ज्यों तजै कुलकानि।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १६१।

असतीत्व—संज्ञा पुं० [सं०] सतीत्व का अभाव। कुलटापन। स्वैराचार [को०]।

असतीन(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आस्तीन'। उ०—पारति वदन हीर दग दारन पर जिवार। है न यदि असतीन यथा चहौ एवाहि वार।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३५।

असतुति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तुति] प्रार्थना। स्तुति। उ०—असतुति निंदा आसा छाँड़ै तजै मान अभिमान।—कबीर ग्रं०,पृ०१५०।

असत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० असत्कृत] १ अपमान। निरादर।

असत्कृत—वि० [सं०] अनादृत। अपमानित।

असत्कृत्य¹—वि० [सं०] १ संमान न करने योग्य। २ अनुचित काम करनेवाला [को०]।

असत्कृत्य²—संज्ञा पुं० अनुचित कर्म। दुष्कृत्य [को०]।

असत्ख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भ्रमात्मक ज्ञान [को०]।

असत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सत्ता का अभाव। अविद्यमानता। अनस्तित्व। नेस्ती। २ असाधुता। असज्जनता।

असत्त्व¹—वि० [सं०] १ सत्वहीन। कमजोर। २. जिसमें अच्छाई न हो। ३ पशुविहीन। प्राणहीन [को०]।

असत्त्व²—संज्ञा पुं० १ अनस्तित्व। असत्ता। २ असत्यता। ३ बुराई। खोटाई। ४ अंधकार। अँधेरा [को०]।

असत्पथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुमार्ग। २ कदाचरण। दुराचरण [को०]।

असत्परिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असत्प्रतिग्रह' [को०]।

असत्पुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुपुत्र। बुरा लड़का। २ पुत्रहीन व्यक्ति [को०]

असत्प्रतिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० असत्प्रतिग्रही] वह दान जिसके लेने का शास्त्र में निषेध हो, जैसे—उभयमुखी गो, प्रेतान्न, चाडालादि का अन्न।

असत्प्रतिग्रही—वि० [सं० असत्प्रतिग्रहिन्] निषिद्ध दान लेनेवाला।

असत्य¹—वि० [सं०] १ मिथ्या। झूठ। २ अवास्तविक [को०]। ३ अनिश्चित फलवाला [को०]।

असत्य²—संज्ञा पुं० १ वह व्यक्ति जो झूठ न बोलता हो। २ झुठाई। असत्यता [को०]।

असत्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिथ्यात्व। झुठाई।

असत्यवाद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० असत्यवादी] मिथ्यावाद। झूठ बोलना।

असत्यवादी—वि० [सं० असत्यवादिन्] झूठ बोलनेवाला। झूठा। मिथ्यावादी।

असत्यशील—वि० [सं०] असत्य बोलने के स्वभाव या प्रवृत्तिवाला [को०]।

असत्यसंध—वि० [सं० असत्यसन्ध] जो वादे का पक्का न हो। झूठा [को०]।

असत्यसंनिभ—वि० [सं० असत्यसंनिभ] झूठ या असत्य तुल्य [को०]।

असथन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अष्ठि ?] १ जायफल। —हिं०।

असथि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अस्थि] हड्डी। हाड़। उ०—रविल मुकर मोतिन समुझ मल अरु असथि समेत।—स० सप्तक, पृ० १७।

असथिर(पु)—वि० [सं० अस्थिर] चंचल। चलायमान। उ०—रवि रजनीश धरा तथा यह असथिर असथूल।—स० सप्तक, पृ० ३५।

असथूल(पु)—वि० [सं० स्थूल] भौतिक। उ०—रवि रजनीश धरा। तथा यह असथिर असथूल।—स० सप्तक, पृ० १७।

असदाचार¹—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० असदाचारी] बुरा आचार। नियम या धर्मविरुद्ध आचरण। अधर्म [को०]।

असदाचार²—वि० बुरे आचारवाला [को०]।

असदृश—वि० [स०] [स्त्री० असदृशी] १ असमान। अथवा। २ अनुचित। अयोग्य [को०]।

असद्वुद्धि—वि० [सं०] दुर्बुद्धि। बुद्धिहीन [को०]।

असद्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ नव्य न्याय के अनुसार एक दोष जो तर्क के अवयवो के प्रयोग मे होता है। २ अस्तित्व का अभाव। अविद्यमानता [को०]। ३ अनुचित विचार या भावना [को०]। ४ दुष्ट स्वभाव [को०]।

असद्वाद—संज्ञा पुं० [स०] वह सिद्धात जो सत्ता को कोई वस्तु ही न माने।

असद्वृत्ति१—वि० [स०] दुर्वृत्त। अनाचारी। दुष्ट [को०]।

असद्वृत्ति२—संज्ञा स्त्री० भ्रष्टाचार। दुष्टता [को०]।

असद्व्यय—संज्ञा पुं० [सं०] असत् या बुरे कार्यो मे होनेवाला व्यय। खराव कामो मे खच। उ०—हुतो आढ्य तव कियो असद्व्यय करी न व्रज-वन-जात्र।—सूर०। १। २१६।

असन१(पु)—संज्ञा पुं० [स० अशन] भोजन। अशन। उ०—तहँ न असन नहि विप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा।—मानस १। १७४।

असन२—संज्ञा पुं० [सं०] १ फेंकना। क्षेपण २ पीतसाल वृक्ष [को०]।

असनपर्णी—संज्ञा स्त्री० [स०] मानल या गोकर्णी नामक वृक्ष [को०]।

असना—संज्ञा पुं० [सं० अशना] पीतशाल वृक्ष।

विशेष—यह वृक्ष शाल की तरह का होता है। इसके हीर की लकडी दृढ होती और मकान वनाने के काम आती है तथा भूरापन लिए हुए काले रग की होती है। इस पेड की पत्तियाँ माघ फागुन मे झड जाती हैं।

असनान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्नान, पु० हिं० अस्नान] नहाना। स्नान। उ०—नृपति सुरसरी कै तट आइ, कियो असनान मृत्तिका लाइ।—सूर० १। ३४१।

असनि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अशनि] १ वज्र। हीरा। उ०—त्रेनी की कंमनि रही कपनि सु कारो साँप, दमन की लसनि असनि दीहियत है।—गग०, पृ० २४। २ विद्युत्। उ०—चूक न असनि केतु नहिं राहू।—मानस ६। ३१।

असनी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अश्विनी] नक्षत्र विशेष।

असन्नद्ध—वि० [सं०] १ विना शस्त्र का। २ जो तैयार या मुस्तैद न हो। अतत्पर। ३ अहकारी। झगडी। ३ विद्वता मे अपने को लगानेवाला। पडितमानी।

असन्निकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] निकट या पास न होना। २ दूर होना [को०]।

असन्निधान—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूरता। २ अनुपस्थिति। अभाव। [को०]।

असन्निधि—संज्ञा स्त्री० [स०] दूरी। असमीपता। २ अनिष्ठता का अभाव [को०]।

असन्निहित—वि० [सं०] १ जो निकट न हो। २ अनुचित रीति से रखा हुआ [को०]।

असपती(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'असपत्ति'। उ०—अटक हीण असपती पाव ठित अवसर पायो।—रा० रू०, पृ० १६।

असपत्ति(पु), असपत्ती(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्वपति] १ घुडसवारों का प्रधान। २ नरपति। राजा। उ०—असपत्ती अजमेरगढ़ रहियौ पाँच दिवस्स।—रा० रू०, पृ० ५३।

असपत्न—वि० [स०] [वि० स्त्री० असपत्नी] १ विना पत्नी का। २ शत्रुरहित। शत्रुविहीन। ३ जो शत्रु न हो। अशत्रु [को०]।

असपिंड—वि० [सं० असपिण्ड] [असपिंडा] जो अपने कुल का न हो। अपने कुल की सात पीढियो से वाहर का। जिससे परपरागत रक्तसवध न हो [को०]।

असप्पति(पु)†—[हिं० अश्वपति] दे० असपत्ति।—दोउ मयमत सुजाँण सेज दिसि वाहुडइ। जाँणे धरती काज, असप्पति आहुडइ।—ढोला० दू० ५६६।

असफल—वि० [सं०] १ जो सफल न हो। नाकामयाव। उ०—आह स्वर्ग के अग्रदूत ! तुम असफल हुए विलीन हुए।—कामायनी, पृ० ७। २ व्यर्थ। निष्फल। उ०—तिरस्कृत कर उसको तुम भूल, वनाते हो असफल भवधाम।—कामायनी, पृ० ५३।

असफलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफलता का अभाव। नाकामयावी [को०]।

असवर्ग—संज्ञा पुं० [फा०] खुरासान मे होनेवाली एक प्रकार की लवी घास।

विशेष—इसमे पीले या सुनहले फूल लगते हैं। सुखाए हुए फूलो को अफगान व्यापारी मुलतान मे लाते हैं जहाँ वे अकलवेर के साथ रेशम रँगने के काम मे आते हैं।

असवाव—संज्ञा पुं० [अ० 'सवव' का वहुत व०] चीज। वस्तु। सामान। प्रयोजनीय पदार्थ। उ०—सव असवाव डाढो मैं न काढो तैं न काढौ, जिय की परी सँभार महन भडार को।—तुलसी ग्र०, पृ० १७३। २ कारणसमूह [को०]।

असभई—संज्ञा स्त्री० [स० असभ्यता] अशिष्टता। वेहूदगी।

असभ्य—वि० [सं०] १ सभा या गोष्ठी मे वैठने के नाकाविल। २ अशिष्ट। गँवार। उजड्ड। उ०—हम मूर्ख और असभ्य थे, उससे विदित होता यही।—भारत०, पृ० ११६।

असभ्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अशिष्टता। गँवारपन।

असमंजस१—संज्ञा पुं० [सं० असमञ्जस] १ दुविधा। पशोपेश। आगा-पीछा। फेरफार। उ०—वना आइ असमंजस आजू।—मानस १।१६७। २ अडचन। अडस। कठिनाई। चपकुल्लिस। उ०—तात तुम्हहि मैं जानउँ नीके। करउँ काह असमजसु जीके।—मानस, २।२६३।

क्रि० प्र०—मे पडना।—होना।

३ सूर्यवशी राजा सगर का वडा पुत्र जो रानी केशी से उत्पन्न था।

असमंजस२—वि० १ जो व्यक्त न हो। अस्पष्ट। २ अनुचित। अनुपयुक्त। ३ मूर्खतापूर्ण। बुद्धिविरहित। ४ अयुक्त। असगत [को०]।

असमत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्मन्त] चूल्हा।

असम१—वि० [स०] १ जो सम या तुल्य न हो। जो वरावर न हो। असम। उ०—जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।—मानस, ३।३६। २ विषम। ताक। उ०—लोचन असम अग भसम चिता की लाइ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २५६। ३ ऊँचानीचा। ऊवडखावड।

असम²—संज्ञा पुं० एक काव्यालंकार जिसमे उपमान का मिलना असंभव बतलाया जाय, जैसे—प्रति बन बन खोजत मर जैहो। मालति कुसुम नहीं तुम पैहो।

असमग्र—वि० [सं०] अधूरा। अंशमात्र [को०]।

असमत—संज्ञा स्त्री० [अ० इस्मत > अस्मत] १ पातिव्रत्य। सतीत्व। पाकदामनी। २ पवित्रता। निष्कलुषता [को०]।

यौ०—असमतफरोश = सतीत्वहीन। कुलटा। असमतफरोशी = व्यभिचार।

असमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] असमानता। विषमता। असाम्य [को०]।

असमद—वि० [सं०] १ गर्वरहित। २ विरोधशून्य [को०]।

असमन—वि० [सं०] १ विविध रंगोवाला। २ विभिन्न मतोवाला ३ विषम। समताहीन [को०]।

असमनयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असमनेत्र' [को०]।

असमनेत्र¹—वि० [सं०] जिसके नेत्र सम न हों, विषम (ताक) हो।

असमनेत्र²—संज्ञा पुं० त्रिनेत्र। शिव।

असमबाण—संज्ञा पुं० [सं०] विषमबाण। कामदेव [को०]।

असमय¹—संज्ञा पुं० [सं०] विपत्ति का समय। बुरा समय। उ०—समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी—मानस, १।१५८।

असमय²—क्रि० वि० कुअवसर। बेमौका। बेवक्त। उ०—मैंने असमय नहीं अचानक तुम्हे जगाया।—साकेत पृ० ४१५।

असमर्थ—वि० [सं०] १ सामर्थ्यहीन। दुर्बल। निर्बल। अशक्त। २ अयोग्य। नाकाबिल। ३ अपेक्षित शक्ति न रखनेवाला [को०]। ४ अभिप्रेतार्थ को व्यक्त करने मे अक्षम [को०]।

असमर्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षमता। अयोग्यता [को०]।

असमर्थपद—संज्ञा पुं० [सं०] वह पद जो वांछित अर्थ को प्रकट करने मे समर्थ या क्षम न हो [को०]।

असमर्थसमास—संज्ञा पुं०[सं०] व्याकरण मे ऐसा समास जो अन्वय-दोष से दूषित हो, जैसे—अश्राद्धभोजी, असूर्यपश्य—इस समस्तपद मे अनञ् समास का यथार्थ संबंध पूर्ववर्ती शब्द श्राद्ध और सूर्य के साथ न होकर भोजी और पश्य के साथ है [को०]।

असमवायिकारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ न्यायदर्शन के अनुसार वह कारण जो द्रव्य न हो, गुण या कर्म हो, जैसे—घड़े के बनने मे गले और पेंदे का संयोग अर्थात् आकार आदि की भावना जो कुम्हार के मन मे थी अथवा जोडने की क्रिया जो द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई। २ वैशेषिक के अनुसार वह कारण जिसका कार्य से नित्य संबंध न हो, आकस्मिक हो, जैसे—हाथ के लगाव से मूसल का किसी वस्तु पर आघात करना। यहाँ हाथ का लगाव ऐसा नहीं है कि जब हाथ का लगाव हो, तभी मूसल किसी वस्तु पर आघात करे। हवा या और किसी कारण से भी मूसल गिर सकता है।

असमवायी—वि० [सं० असमवायिन्] जो समवाय या नित्य संबंध रखनेवाला न हो। अनित्य। आनुषंगिक [को०]।

असमवृत्त—संज्ञा पुं०[सं०]संस्कृत काव्य मे प्रयुक्त वे वर्णवृत्त जिनके चारो चरणो मे समान गण न हो। विषमवृत्त [को०]।

असमशर—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। उ०—रत्यादिक सुरनारि नवीना। सकल असमसर कला प्रवीना।—तुलसी (शब्द०)।

असमस्त—वि० [सं०] १. अपूर्ण। अधूरा। २ अंशत। ३. समास-हीन। जो संक्षिप्त न हो। विस्तृत। ४ जो एकत्र न हो। ५ असंबद्ध। अलग [को०]।

असमान¹—वि०[सं०] जो समान या तुल्य न हो। उ०—हम लोगो ने साधारण नागरिको मे असमान उत्सव मनाने का निश्चय किया था।—इंद्र०, पृ० १३०।

असमान²(पु)†—संज्ञा पुं० [फा०, आसमान] दे० 'आसमान'। उ०—अचल अवनि असमान दसो दिसि थर थर करै।—हम्मीर०, पृ० १३।

असमानता—संज्ञा स्त्री० [सं०] समानता का अभाव [को०]।

असमाप्त—वि० [सं०] [संज्ञा असमाप्ति] अपूर्ण। अधूरा।

असमाप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपूर्णता। अधूरापन। समाप्ति का अभाव।

असमावर्तक—वि०[सं०]जिसका समावर्तन संस्कार न हुआ हो[को०]।

असमावृत—वि०[सं०]जिसका समावर्तन संस्कार न हुआ हो। जो बिना समावर्तन संस्कार हुए ही गुरुकुल छोड दे।

असमाहार—वि० संज्ञा पुं०[सं०] १ अलगाव। पृथक्ता। २ असमाप्ति[को०]।

असमाहित—वि०[सं०]चित्त की एकाग्रता से रहित। अस्थिर चित्त। चंचल।

असमीचीन—वि० [सं०] अनुचित। अयुक्त। बेठीक [को०]।

असमूच—वि० [हिं०] दे० 'असमूचा'। उ०—नासा-नथ-मुक्ता, बिबाधर प्रतिबिंबित असमूच। बाँधी कनक पास सुक सुंदर, करकबीज गहि चूँच।—सूर०, २।३०६३।

असमूचा(पु)—वि० [सं० अ + समुच्चय] १ जो पूरा या समूचा न हो। अधूरा। २ कुछ। थोडा।

असमेध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्वमेध, प्रा० अस्समेध] दे० 'अश्वमेध'। उ०—दस असमेध जगत जेइ कीन्हा।—जायसी (शब्द०)।

असम्मत¹—वि० [सं०] १ जो राजी न हो। विरुद्ध। २ जिसकी किसी की राय न हो।

असम्मत²—संज्ञा पुं० शत्रु [को०]।

असम्मति—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० असम्मत] १ सम्मति का अभाव। २ विरुद्ध मत या राय। ३ अनादर [को०]।

असम्मर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० असि] तलवार।—(डिं०)।

असम्मित—वि०[सं०] १ असदृश। अतुल्य। २ बिना मापा हुआ। ३ अपरिमेय [को०]।

असयाना(पु)—वि० [हिं० अ + सयाना] १ भोलाभाला। सीधा सादा। छल या चतुराई से रहित। उ०—बिबुध सनेह सानी बानी असयानी सुनी हँसे राघो जानकी लषन तन हेरि हेरि। तुलसी ग्रं०, १६४। २ अनाड़ी। मूर्ख।

असर—संज्ञा पुं० [अ०] १ प्रभाव। दबाव। २. चिह्न। निशान [को०]। ३ गुण। तासीर [को०]। ४ दिन का चौथा पहर।

यौ०—असर की नमाज।

असरा—संज्ञा पुं० [हिं० असाढ़] आसाम देश के कछारो में उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का चावल।

असरार¹Ⓟ—क्रि० वि० [हिं० सरसर] निरंतर। लगातार। बराबर। उ०—कहो नंद कहाँ छाँड़े कुमार। करुणा करे यसोदा माता नैनन नीर बहै असरार।—सूर० (शब्द०)।

असरार²—संज्ञा पुं० [अ० 'सिर' या 'सिर्र' का बहुव०] भेद। राज। मर्म [को०]।

असरु—संज्ञा पुं० [सं०] काकड़ासिंगी नामक पौधा।

असल¹—वि० [अ० अस्ल] १ सच्चा। खरा। २. उच्च। श्रेष्ठ। ३ बिना मिलावट का। शुद्ध। खालिस।

असल²—संज्ञा पुं० १ जड़। मूल। बुनियाद। तत्व। २ मूलधन। उ०—साँचो सो लिखवार कहावै। काया ग्राम मसाहत करि कै जमा बाँधि ठहरावै ......करि अवारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै।—सूर० (शब्द०)।

असल³—संज्ञा पुं० [स०] शहद। मधु [को०]।

असल⁴—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लंबा झाड़ जो मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, दक्षिणभारत और राजपूताने (राजस्थान) में पाया जाता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ तीन चार इंच लंबी होती हैं और डालियाँ नीचे की ओर झुकी होती हैं। इसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता है और बीज छाल तथा पत्तियों का औषध में व्यवहार होता है। अकाल पड़ने पर इसकी पत्तियाँ खाई भी जाती हैं। इसकी टहनियों की दातून बहुत अच्छी होती है। जब जाड़े के दिनों में यह फूलता है तब बहुत सुंदर जान पड़ता है।

असल⁵—संज्ञा पुं० [सं०] १ लोहा नामक धातु। २ शस्त्र छोड़ने से पूर्व उसे अभिमंत्रित करने का एक मंत्र। ३ शस्त्र [को०]।

असलियत—संज्ञा स्त्री० [अ० अस्लियत] १ तथ्य। वास्तविकता। २. जड़। मूल। बुनियाद। ३ मूलतत्व। सार।

असली—वि० [अ० अस्ल फा० ई (प्रत्य०)] १. सच्चा। खरा। २ मूल। प्रधान। ३ बिना मिलावट का। शुद्ध।

असवर्ण—वि० [सं०] भिन्न वर्ण या जाति का, जैसे—असवर्ण विवाह।

असवर्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] समान जाति या वर्ण का न होना। उ०—'फिर भी असवर्णता का सामाजिक दोष उसके हृदय को व्यथित किया करता।—इंद्र०, पृ० ६८।

असवर्ण विवाह—संज्ञा पुं० [सं०] वह विवाह जिसमें वर और वधू विभिन्न वर्णों के हों [को०]।

असवार†—संज्ञा पुं० [सं० अश्ववार, प्रा० अस्सवार, असवार] दे० 'सवार'। उ०—कबीर घोड़ा प्रेम का चेतनि चढ़ि असवार ......कबीर ग्रं०, पृ० ७०।

असवारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० असवार+ई (प्रत्य०)] दे० 'सवारी'। उ०—आने को निज पुण्य भूमि पर लक्ष्मी की असवारी।—पथिक, पृ० ५।

असह¹—वि० [सं०] १ न सहने योग्य। असह्य। उ०—सीत असह विष चिन चढ़ै सुख न चढ़ै परजंक। बिन मोहन अगहन हुनै ......—स० सप्तक, पृ० २४३। २ अधीर।

असह²—संज्ञा पुं० छाती का मध्य भाग अर्थात् हृदय।—(डिं०)।

असहकार—संज्ञा पुं० [सं०] असहयोग। सहकार की भावना का अभाव। मेल से काम न करना।

असहन¹—वि० [सं०] जो सहन न करे। असहिष्णु। ईर्ष्यालु।

असहन²—संज्ञा पुं० १ शत्रु। वैरी। २ अधीरता। असहिष्णुता (को०)। ३ ईर्ष्या [को०]।

असहनशील—वि० [सं०] १ जिसमें सहन करने की शक्ति न हो। असहिष्णु। २ चिड़चिड़ा। तुनकमिजाज।

असहनशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सहन करने की शक्ति का अभाव। असहिष्णुता। २ तुनकमिजाजी।

असहनीय—वि० [सं०] न सहने योग्य। जो बरदाश्त न हो सके। असह्य।

असहयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ साथ मिलकर काम न करने का भाव। २ आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में सरकार के साथ मिलकर काम न करने, उसकी संस्थाओं में सम्मिलित न होने और उसके पद आदि ग्रहण न करने का सिद्धांत। तर्के-मवालात। नान-कोआपरेशन।

असहयोगवाद—संज्ञा पुं० [सं० असहयोग+वाद] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम न करने का सिद्धांत।

असहयोगवादी—संज्ञा पुं० [सं० असहयोग+वादिन्] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम न करने के सिद्धांत को माननेवाला मनुष्य।

असहाइⓅ असहाईⓅ—वि० [हिं०] दे० 'असहाय'। उ०—एक किन्ह नहि भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई।—मानस, २।२२८

असहाय—वि० [सं०] १. जिसे कोई सहारा न हो। निःसहाय। निरवलंब। निराश्रय। २ अनाथ। लाचार।

असहिष्णु—वि० [सं०] १ जो सहन न कर सके। असहनशील। २ चिड़चिड़ा। तुनकमिजाज।

असहिष्णुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहन करने की शक्ति का अभाव। असहनशीलता। २ चिड़चिड़ापन। तुनकमिजाजी।

असही¹—वि० [सं० असह] दूसरे की बढ़ती न सहनेवाला। दूसरे को देखकर जलनेवाला। ईर्ष्यालु। उ०—असही दुसही मरहु मनहि मन, बैरिन बढ़हु विषाद। नृपसुत चारि चारु चिरजीवहु, संकर गौरि प्रसाद।—तुलसी ग्रं० पृ० २६५।

यौ०—असही दुसही।

असही²—संज्ञा स्त्री० [देश०] ककही या कघी नाम का पौधा।

असह्य—वि० [सं०] न सहन करने योग्य। जो बरदाश्त न हो सके। असहनीय।

असह्यव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह दंडव्यूह जिसके दोनों पक्ष फैला दिए गए हों।

असाँचⓅ—वि० [सं० असत्य, प्रा० असच्च] असत्य। झूठ। मृषा। उ०—सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा। विप्र श्राप किमि होइ असाँचा।—मानस १।१७५।

असांद्रⓅ—वि० [सं० असान्द्र] विरल। जो घनीभूत न हो [को०]।

असाप्रत—वि० [स० असाम्प्रत] १ जो साप्रत या उचित न हो। अनुचित। अयोग्य। २ जो वर्तमान या आज का न हो[कौ०]।

असाप्रदायिक—वि० [स० असाम्प्रदायिक] १ जिसमें साप्रदायिकता की भावना न हो। २ जो प्रथा या परपरा से अनुमोदित न हो [कौ०]।

असा—सज्ञा पुं० [अ०]१ सोटा। डडा। २ चाँदी या सोने से मढा हुआ सोटा जिसे राजा महाराजाओ के आगे या बरात इत्यादि के साथ सजावट के लिये आदमी लेकर चलते हैं। दे० 'आसा'।

यौ०—असावरदार=असा लेकर चलनेवाला। असावरदार।

असाई(पु)—सज्ञा पुं० [सं०अशास्त्रीय]वह जिसे कुछ भी ज्ञान न हो। अज्ञानी। उ०–बोला गध्रवसेन रिसाई। कस जोगी कस भाट असाई।–जायसी ग्र०, पृ० ११३।

असाक्षात्—वि० [सं०] जो आँखो के आगे न हो। परोक्षत। दूरत (सबद्ध) [कौ०]।

असाक्षात्कार—सज्ञा पु०[स०] १ अनुपस्थिति। २ परोक्ष। अप्रत्यक्ष [कौ०]।

असाक्षिक—वि० [सं०]१ जिसका कोई गवाह न हो। अप्रमाणित २ शासकविहीन। जिसकी कोई देखरेख करनेवाला न हो [कौ०]।

असाक्षी—सज्ञा पु० [स० असाक्षिन्] वह जिसकी साक्षी या गवाही धर्मशास्त्र के अनुसार मान्य न हो। साक्षी होने का अनधिकारी।

विशेष—धर्मशास्त्र के अनुसार इन लोगो की साक्षी ग्रहण नही करनी चाहिए-चोर, जुआरी, शरावी, पागल, वालक, अति वृद्ध, हत्यारा, चारण, जालसाज, विकलेंद्रिय (वहरे, अधे लूले, लँगडे) तथा शत्रु, मित्र इत्यादि।

असाक्ष्य—सज्ञा पुं० [स०] गवाही या साक्ष्य का अभाव [कौ०]।

असाढ—सज्ञा पुं० [स० आषाढ] आषाढ का महीना। वर्ष का चौथा महीना।

असाढा[1]—सज्ञा पु० [देश०] महीन वटे हुए रेशम का तागा।

असाढा[2]—सज्ञा पुं०[सं० आषाढ़]एक प्रकार की खाँड। कच्ची चीनी।

असाढी[1]—वि० [सं० आषाढ] आषाढ का।

असाढी[2]—सज्ञा स्त्री० १ वह फसल जो आषाढ़ मे वोई जाय। खरीफ। २ आषाढीय पूर्णिमा।

असाढू—सज्ञा पुं० [देश०] मोटे दल की चट्टान। मोटा पत्थर। भोट। उमवट।

असात्म्य—सज्ञा पु० [सं०] प्रकृतिविरुद्ध पदार्थ। वह आहार विहार जो दु खकारक और रोग उत्पन्न करनेवाला हो।

असाध[1](पु)†—वि० [हिं०] दे० 'असाध्य'।

असाध[2]—वि० [हिं०] दे० 'असाधु'। उ०–वाहर दीसै साध गति माँहैं महा असाध।–कवीर ग्र०, पृ० ४६।

असाधन[1]—वि० [स०] साधन या उपकरण से रहित [कौ०]।

असाधन[2]—सज्ञा पुं० सिद्धि या पूर्णता का अभाव [कौ०]।

असाधारण[1]—वि० [सं०] १ जो साधारण न हो। असामान्य। २ न्याय मे पक्ष या विपक्ष से पृथक्–जैसे हेतु [कौ०]। ३ जिसका दूसरा दावेदार न हो। निश्चित रूप से एक का–जैसे सपत्ति [कौ०]।

असाधारण[2]—सज्ञा पुं० १ न्याय मे हेत्वाभास का एक दोष। २. विशिष्ट सपत्ति [कौ०]।

असाधि(पु)†—वि [हिं०] दे० असाध्य'। उ०-देखी व्याधि असाधि नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।–मानस, २।३४।

असाधित—वि० [सं०] जो साधा न गया हो। असिद्ध [कौ०]।

असाधु[1]—वि० [सं०][वि० स्त्री० असाध्वी]१ दुष्ट। बुरा। खल। दुर्जन। खोटा। २ अविनीत। अशिष्ट। ३ जो ठीक ढग से सिद्ध न हो। भ्रष्ट। व्याकरणविरुद्ध [कौ०]।

यौ०—असाधुवृत्ता=पुश्च ी। स्वैरिणी।

असाधु[2]—सज्ञा पुं० १ भ्रष्ट या पतित साधु। २ असज्जन।

असाधुता—सज्ञा स्त्री० [स०] दुर्जनता। अशिष्टता। खलता। खोटाई।

असाध्य—वि० [सं०] १ जिसका साधन न हो सके। न करने योग्य। दुष्कर। कठिन। २ न आरोग्य होने के योग्य। जिसके अच्छे या चगे होने की सभावना न हो, जैसे–यह रोग असाध्य है (शब्द)।

यौ०—असाध्यसाधन=न हो सकनेवाले काम को कर लेना।

असाध्वी—सज्ञा स्त्री० [सं०] व्यभिचारिणी। कु टा। असती [कौ०]।

असानी—सज्ञा पुं० [अ० असाइनी] वह व्यक्ति जो अदालत की ओर से किसी दिवालिए की सपत्ति, जिसके बहुत से हन र हो, तब तक अपनी निगरानी मे रखने के लिये नियुक्त हो, जव तक कोई रिसीवर नियत होकर सपत्ति को अपने हाथ मे न ले।

असामयिक—वि० [सं०][वि० स्त्री० असामयिकी]जो समय पर न हो। जो नियत समय से पहले या पीछे हो। विना समय का। वेवक्त का।

असामर्थ्य—सज्ञा स्त्री० [स] १ शक्ति का अभाव। अक्षमता। २ निर्वलता। नाताकती।

असामान्य—वि० [सं०] जो साधारण न हो। असाधारण। गैरमामूली।

असामी[1]—सज्ञा पुं० [अ० आसामी]१ व्यक्ति। प्राणी, जैसे–वह लाखो का असामी है (शब्द)। २ जिससे किसी प्रकार का लेन देन न हो। जैसे, वह वडा खरा असामी है, रुपया तुरत देगा (शब्द)। ३ वह जिसने लगान पर जोतने के लिये जमीदार से खेत लिया हो। रैयत। काश्तकार। जोता। ४ मुद्दालेह। देनदार। ५ अपराधी। मुलजिम, जैसे,–असामी हवालात से भाग गया (शब्द)। ६ दोस्त। मित्र। सुहृद। जैसे–चलो तो, वहाँ बहुत असामी मिल जाएँगे (शब्द)। ७ ढग पर चढाया हुआ आदमी। वह जिससे किसी प्रकार का मतलब गाँठना हो।

यौ०—खरा आदमी=चटपट दाम देनेवाला आदमी। डूबा असामी=गया गुजरा। दिवालिया। मोटा असामी=धनी पुरुष। लीचड असामी=देने मे सुस्त। नादिहद।

मुहा०—असामी बनाना=अपने मतलव पर चढ़ाना। अपनी गौं का वनाना।

असामी[2]—सज्ञा स्त्री० १ परकीया या वेश्या। रखेली, जैसे,–तुम्हारी असामी को कोई उडा ले गया (शब्द०)। २ नौकरी। जगह, जैसे,–कोई असामी खाली हो तो वतलाना (शब्द०)।

असार¹—वि० [सं०] १ सारहित। तत्वशून्य। निःसार। २ शून्य। खाली। ३ तुच्छ। ४ जो तत्पर न हो। उत्साहहीन [को०]। ५ दरिद्र। निर्धन [को०]। ६ कमजोर। निर्बल [को०]।

असार²—संज्ञा पुं० १ रेंड का पेड। २. अगरु चंदन। ३ सारहीन या निस्तत्व भाग [को०]।

असार³ ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'असवार'।

असारता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ निःसारता। तत्वशून्यता। २. तुच्छता। ३ मिथ्यात्व।

असारभांड—संज्ञा पुं० [सं० असारभाण्ड] कौटिल्य के अनुसार घटिया माल।

असालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ कुलीनता। २ सचाई। तत्व।

असालतन—क्रि० वि० [अ०] स्वयं। खुद।

असाला—संज्ञा स्त्री० [सं० अशालिका] हालो। चंसुर।

असावधान—वि० [सं०][संज्ञा असावधानता] जो सावधान या सतर्क न हो। खबरदार न हो। जो सचेत न हो।

असावधानता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेपरवाही।

असावधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेखबरी। बेपरवाही।

असावरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० आशावरी अथवा आसावरी] छत्तीस रागिनियों में से एक प्रधान रागिनी। भैरव राग की स्त्री (रागिनी)। यह रागिनी टोडी से मिलती जुलती है और सवेरे सात बजे से नौ बजे तक गाई जाती है।

असावरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० अंशुपट्ट ?] वस्त्रविशेष। उ०—पाँवरी पंन्हि लैं प्यारी जगाइ की ओढि लै चाँचरि चारु असावरी।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ५४।

असावली—संज्ञा स्त्री०[हिं०]दे० 'असावरी'। उ०—सुंदरि क्यों पहिरति नग भूषन असावली। तन की द्युति तेरी सहज ही मसाल-प्रभावली।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० २७०।

असासा—संज्ञा पुं० [अ० असासह] १ माल। असबाब। २ संपत्ति। धन-दौलत।

असासुलबैत—संज्ञा पुं० [अ०] घर का असबाब। घर का अटाला।

असि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तलवार। खड्ग। वाराणसी के दक्षिण स्थित एक नदी। ३. श्वास [को०]।

असिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ होठ और ठुड्डी के बीच का भाग। २ एक देश का नाम।

असिक्निका—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती दासी [को०]।

असिक्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अंतःपुर में रहनेवाली वह दासी जो वृद्धा न हो। २ पंजाब की एक नदी। चिनाब। ३. वीरण प्रजापति की कन्या जो दक्ष को ब्याही थी। ४. रात्रि [को०]।

असिगंड—संज्ञा पुं० [सं० असिगण्ड] गाल के नीचे रखने की छोटी तकिया [को०]।

असिचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तलवार चलाने का अभ्यास [को०]।

असिजीवी—वि० [सं० असिजीविन्] तलवार के द्वारा जीविका उपार्जित करनेवाला। सैनिक।

असित¹—वि० [सं०] १. जो सफेद न हो। काला। उ०—असित कुटिल अलकें तेरी। उचित हरति मति है मेरी।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १९३। २. दुष्ट। बुरा। ३. टेढ़ा। कुटिल।

असित²—संज्ञा पुं० १ एक ऋषि का नाम। २ भरत राजा का पुत्र। ३. शनि। ४ पिंगला नाम की नाडी। ५ धौ का पेड। ६. काला या नीला रंग [को०]। ७ कृष्णपक्ष [को०]। ८. कृष्ण सर्प [को०]। ९ कृष्ण का एक नाम [को०]।

असितगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] नीलगिरि नाम का पहाड [को०]।

असितग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि। २ मयूर [को०]।

असितांग¹—वि० [सं० असिताङ्ग] १ काले रंग का। २ काले अंगों वाला।

असितांग²—संज्ञा पुं० १ एक मुनि। २ शिव का एक नाम।

असिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ यमुना नदी। २ नीली या नील नाम का पौधा। ३ चंद्रभागा नदी [को०]। ४ दक्षपत्नी का नाम (को०)। ५ अंतःपुर की वह दासी जिसके केश श्वेत न हुए हों (को०)। ६ रात्रि (को०)।

असितोत्पल—संज्ञा पुं० [सं० असित+उत्पल] नील कमल [को०]।

असितोपल—संज्ञा पुं० [सं० असित+उपल] नीलम [को०]।

असिदंत—संज्ञा पुं० [सं० असिदन्त] मकर नामक जलजीव। घड़ियाल [को०]।

पर्या०—असिदंष्ट्र। असिदंष्ट्रक।

असिद्ध¹—वि० [सं०] १ जो सिद्ध न हो। २ बेपका। कच्चा। ३ अपूर्ण। अधूरा। ४ निष्फल। व्यर्थ। ५. अप्रमाणित। जो साबित न हो।

असिद्ध²—संज्ञा पुं० १.एक प्रकार का बडा और ऊँचा वृक्ष जिसकी लकडी बहुत मजबूत होती है और प्रायः इमारत के काम में आती है। इसकी छाल से चमडा भी सिझाया जाता है। २. हेत्वाभास का एक भेद [को०]।

असिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अप्राप्ति। अनिष्पत्ति। २ कच्चापन। कचाई। ३ अपूर्णता।

असिधाराव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] १ असिधारा के समान व्रत। २ पुरानी प्रथा के अनुसार पति और पत्नी का ब्रह्मचर्यव्रत, जिसमें पति और पत्नी सोते समय बीच में एक नंगी तलवार रख लेते थे कि वे एक दूसरे का स्पर्श न कर सकें [को०]।

असिधावक—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार आदि को साफ करनेवाला। सिकलीगर।

असिधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] छुरी [को०]।

असिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईख। गन्ना। २.कृपाण का कोष [को०]।

असिपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असिपत्र' [को०]।

असिपत्रवन—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणों के अनुसार एक नरक जिसके विषय में लिखा है कि वह सहस्र योजन की जलती भूमि है, जिसके बीच में ऐसे पेडों का एक जंगल है जिसके पत्ते तलवार के समान हैं।

असिपथ—संज्ञा पुं० [सं०] साँस लेने की राह। श्वासमार्ग [को०]।

असिपाणि—वि० [सं०] जिसके हाथ में तलवार हो। खड्गधारी [को०]।

असिपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मगर। २. नहुती मछली जो पूँछ से मारती है।

असिपुच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असिपुच्छ' [illegible]।
असिपुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ छुरी। [illegible]।
असिपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'असिपुत्रिका'।
असिभेद—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] (को०)।
असियष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] [illegible]।
असिलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'असियष्टि' [illegible]।
असिव—वि० [सं० अशिव] [illegible] उ०—[illegible] [illegible]।
असिष्टट—वि० [सं० असिष्ट] [illegible]।
असिहत्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible]।
असिहत्य[2]—वि० [सं०] [illegible]।
असिहेति—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible]।
असी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० असि] [illegible]।
असी[2]—वि० [हिं०] दे० 'ऐसी'। [illegible]।
असीन—संज्ञा पुं० [देश०] [illegible]।
असीम—वि० [सं०] १ [illegible]। ३ अपार। अथाह।
असीमित—वि० [सं०] १ जो सीमित न हो। [illegible] [illegible]।
असीर—संज्ञा पुं० [अ०] १ कैदी। [illegible]।
असीरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] कैद (को०)।
असील[1]—वि० [हिं०] दे० 'असल'। [illegible]। (शब्द०)।
असील[2]—वि० [अ०] १ कुलीन। [illegible]। अच्छे नसल का (को०)।
असीस—संज्ञा स्त्री० [सं० आशिष्] दे० 'आशिष'। [illegible] असीस [illegible]।—मानस, [illegible]।
असीसना—क्रि० स० [हिं० असीस + ना (प्रत्य०)] आशीर्वाद देना। दुआ देना। उ०—[illegible] (शब्द०)।
असुंदर[1]—संज्ञा पुं० [सं० असुन्दर] वह अंग जिसकी [illegible] में अधिक चमत्कार हो। यह [illegible] का एक भेद है। उ०—[illegible] (शब्द०)।
असुंदर[2]—वि० जो सुंदर न हो। कुरूप। भद्दा। बदसूरत।
असु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राणवायु। प्राण। उ०—[illegible] असु कीजै। सो असु [illegible] ।—रामचं०, पृ० १७७।२. चित्त। ३ जल (को०)। ४ [illegible] (को०)। ५ एक पल का छठा भाग (को०)। ६. [illegible] (को०)। ७. [illegible] (को०)। ८. दुःख। वेदना (को०)।

[illegible]

असुभग—[illegible]।
असुमन—[illegible]।
असुर—संज्ञा पुं० [सं०] १ दैत्य। राक्षस। २. [illegible]। ३ नीच वृत्ति का पुरुष। ४ पृथिवी। ५. सूर्य। ६. बादल। ७. राहु। ८. [illegible] के अनुसार एक प्रकार का [illegible]।

विशेष—[illegible] आदि पर [illegible] करता है। [illegible] किसी [illegible] से उसकी तृप्ति नहीं होती और वह कुमार्ग में प्रवृत्त होता है।

६—समुद्री लवण। १० देवदार। ११. हाथी [को०]। १२. एक लड़ाकू जाति [को०]।

असुरकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार एक त्रिभुवनपति देवता।

असुरगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्राचार्य।

असुरद्रुट्—संज्ञा पुं० [सं० असुरद्रुह्] देव। सुर [को०]।

असुरद्विट्—संज्ञा पुं० [सं० असुरद्विष् (ट्)] विष्णु [को०]।

असुरराज—संज्ञा पुं० [सं०] राजा बलि। दैत्यराज [को०]।

असुररिपु—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

असुरविजयी—संज्ञा पुं० [सं० असुरविजयिन्] वह राजा जो पराजित की भूमि, धन, स्त्री, पुत्र आदि के अतिरिक्त उसकी जाति भी लेना चाहे।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि दुर्बल राजा ऐसे शत्रु को भूमि आदि देकर जहाँ तक दूर रख सके, अच्छा है।

असुरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तुलसी का पौधा [को०]।

असुरसूदन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

असुरसेन—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस। कहते हैं कि इसके शरीर पर गया नामक नगर बसा है। उ०—असुरसेन सम नरक निकंदिनि। साधु विबुध कुलहित गिरिनंदिनि।—मानस, १।३१

असुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात। २ वारांगना। ३. राशि [को०]।

असुराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० असुर+हिं० आई (प्रत्य०)] खोटाई। शरारत। उ०—बात चलत जाकी करैं असुराई नेहीन। है कछु अद्भुत मत भरो तेरे दृगन प्रवीन।—स० सप्तक, पृ० १६८।

असुराचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ शुक्र ग्रह। २ शुक्राचार्य। असुर गुरु [को०]।

असुराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. असुरराज। दैत्यों का अधिपति। २ जलधर नामक असुरराज। उ०—परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी।—मानस, १।२३। ३. राजा बलि [को०]।

असुरारि—संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

असुरारी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० असुरारि] दे० 'असुरारि'। उ०—गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंत।—मानस, १।१८६।

असुराह्व—संज्ञा पुं० [सं०] काँसा नामक धातु [को०]।

असुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ राक्षसी। २ राई [को०]।

असुविधा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० असुविधा'।

असुविलास—संज्ञा पुं० [सं०] १ छदविशेष [को०]।

असुस्थ—वि० [सं०] अनिश्चित। उद्विग्न। बीमार। रुग्ण [को०]।

असुस्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] उद्विग्नता। बीमारी [को०]।

असूक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] अनादर [को०]।

असूझ(पु)†—वि० [सं० अ+हिं० सूझना] १ अँधेरा। अंधकारमय। उ०—अगम असूझ देखि डर खाई। परै सो सप्त पतालहि जाई।—जायसी (शब्द)। २ जिसका वार पार न दिखाई पड़े। अपार। बहुत विस्तृत। बहुत अधिक। उ०—(क) कटक असूझ देखि कै राजा गरब करेइ। दैउ क दसा न देखै दुहु का कहँ जय देइ।—जायसी ग्र०, पृ० ११२। ३. जिसके करने का उपाय न सूझे। विकट। कठिन। उ०—दोऊ लड़े होय समुख लोहै भयो असूझ। सत्रु जूझ तब न्योरे एक दोऊ मँह जूझ।—जायसी (शब्द०)।

असूत(पु)†—वि० [सं० असूत्र] विरुद्ध। असंबद्ध। उ०—पुनि निज प्रश्न कियो निज पूतहि। शास्त्र परम्पर कहत असूतहि।—निश्चल (शब्द०)।

असूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बंध्यात्व। बाँझपन। २ निवारण [को०]।

असूतिका—वि० स्त्री० [सं०] १ जिसका बच्चा न पैदा हुआ हो। २ बंध्या [को०]।

असूयक[1]—वि० [सं०] १ ईर्ष्या करनेवाला। छिद्रान्वेषी २ असंतुष्ट। अप्रसन्न [को०]।

असूयक[2]—संज्ञा पुं० निंदा करनेवाला व्यक्ति [को०]।

असूया—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० असूयक] १ पराए गुण मे दोष लगाना। उ०—सदा सत्यमय सत्यव्रत सत्य एक पति इष्ट। विगत असूया सील सैं ज्यो अनसूया सृष्ट।—स० सप्तक, पृ० ३६६। २ रस के अंतर्गत एक संचारी भाव। ३ क्रोध [को०]।

असूयिता—वि० [सं० असूयितृ] दे० 'असूयक' [को०]।

असूयु—वि० [सं०] दे० 'असूयक' [को०]।

असूर्यपश्या[1]—वि० [सं० असूर्यम्पश्या] १ सूर्य को भी न देखनेवाली। राजा के अंतःपुर की स्त्रियों या रानियों के लिये प्रयुक्त जो कठोर पर्दे मे रहती थी। २ जिसको सूर्य भी न देखे। परदे मे रहनेवाली, जैसे,—'असूर्यपश्या दमयंती को विपत्ति मे वन वन फिरना पड़ा।

असूर्यपश्या[2]—संज्ञा स्त्री० पतिव्रता या साध्वी पत्नी [को०]।

असूल[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० उसूल] दे० 'उसूल'।

असूल—वि० [अ० वसूल] दे० 'वसूल'।

असृक्—संज्ञा पुं० [सं०] १ रक्त। रुधिर। २ मंगल ग्रह [को०]। ३ कुंकुम। केसर [को०]। ४ योग के सत्ताईस भेदों मे से एक [को०]।

यौ०—असृक्प, असृक्पा=रक्तपायी। राक्षस। असृक्स्राव, असृक्स्राव=रक्तपात। खून बहना।

असृक्कर—संज्ञा पुं० [सं०] (शरीर मे) रस से रक्त बनने की प्रक्रिया।

असृग्—संज्ञा पुं० [सं० असृक्] दे० 'असृक्' [को०]।

असृग्ग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह [को०]।

असृग्दर—संज्ञा पुं० [सं०] मासिकधर्म का अनियमित या अधिक होना [को०]।

असृग्दोह—संज्ञा पुं० [सं०] रक्तस्राव [को०]।

असृग्वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़ा। चर्म [को०]।

असृग्धारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चमड़ा २ खून की धारा [को०]।

असृग्वहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नाड़ी जिससे रक्तसंचार होता है [को०]।

असृग्विमोक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त निकालना [को०]।

असृष्ट—वि० [सं०] १ जिसकी सृष्टि न हुई हो। अनुत्पन्न। २. जो चल रहा हो। जारी। ३ जो प्रदान न किया गया हो अथवा जिसका वितरण न हुआ हो [को०]

यौ०--असृष्टान्न=जो भोजन का वितरण न करे ।

असेग(पु)—वि० [सं० असह्य] न सहने योग्य । असह्य । कठिन ।

असेचन, असेचनक—वि० [सं०] खूबसूरत । जिसे बार बार देखने को जी चाहे [को०] ।

असेत(पु)—वि० [सं० अ=नहीं+श्वेत, प्रा० सेअ, अप० सेत्त] अश्वेत । काला । बुरा । उ०—कीन्ही तुम सेत, मैं असेत कृति कीन्ही तुम धर्म अनुराग्यो मैं अधर्म अनुराग्यो है ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २४८ ।

असेवन१—[सं०] १ सेवा न करनेवाला । २ अनुगमन न करनेवाला [को०] ।

असेवन२—संज्ञा पुं० अवज्ञा । ध्यान न देना [को०] ।

असेवा--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'असेवन—२' [को०]

असेवित—वि० [सं०] १ परित्यक्त । उपेक्षित । २ अव्यवहृत [को०] ।

असेष(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अशेष' । उ०--राखत न लेस अब बिमन असेष को ।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १६५ ।

असेस(पु)—वि० [सं० अशेष, प्रा० असेस] अनंत । बहुत । उ०--जात भो रसातलै असेस कठमल भेदि ।– रामचंद्र०, पृ० १३५

असेसमेट—संज्ञा पुं० [अं० एसेसमेंट] १ मालगुजारी या लगान लगाने के लिये जमीन का मोल ठहराने का काम । बंदोबस्त । २ कर या टैक्स लगाने के लिये बही खाते की जाँच का काम ।

असेसर—संज्ञा पुं० [अं० एसेसर] १ वह व्यक्ति जो जज को फौजदारी के मुकद्दमे मे फैसले के समय राय देने के लिये चुना जाता है । २ वह जो बही खाता जाँच कर महसूल या कर की रकम निश्चित करता है । ३ वह जो जमीन का मोल ठहराकर लगान या मालगुजारी की रकम निश्चित करता है । कर लगानेवाला ।

असैनिक—वि० [सं०] १ जो सैनिक न हो । जो सेना से संबंध न रखता हो ।

असैला(पु)—वि० [सं० अ=नहीं+शैली=रीति] [स्त्री० असैली] १ रीति नीति के विरुद्ध कर्म करनेवाला । कुमार्गी । उ०—सभा-सरवर, लोक-कोकनद-कोकगन प्रमुदित मन देखि दिनमनि भोर हैं । अबुध असैले मनमैले महिपाल भए कछुक उलूक कछु कुमुद चकोर हैं । तुलसी ग्र०, पृ० ३०७ । २ शैली के विरुद्ध । अनुचित । रीतिविरुद्ध । उ०--मैं सुनी बातें असैली जे कहि निसिचर नीच । क्यो न मारै गाल बैठो काल डाढनि बीच ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३७४ ।

असो†—क्रि० वि० [सं० इह=समय या अस्मिन् समय का संक्षिप्त रूप] इस वर्ष । इस साल ।

असोक१(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अशोक] दे० 'अशोक' । उ०—तव असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ ।—मानस, ३। २३ ।

असोक२(पु)—वि० [सं० अशोक] शोकरहित । उ०— जहँ असोक तहँ सोक बस है न सियहिं निज बोध ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ४६ ।

असोकी(पु)--वि० [हिं० असोक=ई (प्रत्य०)] शोकरहित । उ०—प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी । माँगि अगम वर होउँ असोकी ।—मानस, १।१६४ ।

असोच(पु)—वि० [सं० अ+शोच] १ शोचरहित । चितारहित । उ०—रहे असोच बनै प्रभु पोसे ।—मानस, ४। ३ । २. निश्चित । बेफिक्र । उ०--माधौ जू, मन सबही बिधि पोच । अति उनमत्त, निरंकुम, मैंगल, चितारहित असोच ।--सूर०, १। १०२ ।

असोज(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० अश्वयुज, प्रा० असोय] आश्विन । क्वार

असोढ--वि० [सं०] १ असह्य । २ जो वश मे न किया जा सके । उद्धत [को०] ।

असोस(पु)--वि० [अ+शोष] जो सूखे नही । न सूखनेवाला । उ०—(क) कबिरा मन का माँहिना अवना बहै असोस । देखत ही दह मे परै देय किसी को दोस ।—कबीर (शब्द०) । (ख) गोपिन कै असुवनु भरी सदा असोस अपार । डगर डगर नै ह्वै रही बगर बगर के बार ।—बिहारी र०, पृ० २६३ ।

असोसिएशन-संज्ञा पुं० [अं० एसोसिएशन] समिति । समाज । सभा ।

असौंदर्य--संज्ञा पुं० [सं० असौन्दर्य] असुंदरता । कुरूपता [को०] ।

असौंध(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+हिं० सौंध=सुग] दुर्गंध । बदबू । उ०— जहँ आगम पौनहि को सुनिए । नित हानि असौंधहि की गुनिए ।—केशव (शब्द०) ।

असौच(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अशौच] दे० 'अशौच' । उ०—हौं असौच, अक्रिय अपराधी, सनमुख होत लजाउँ ।—सूर०, १। १२८ ।

असौधा(पु)-- वि० [हिं० असौंध] १ दे० 'असौंध' । २ सुगंधविहीन ।

असौम्य—वि० [सं०] जो सौम्य न हो । असुंदर । कुरूप [को०] ।

असौष्ठव१--संज्ञा पुं० [सं०] १ निकम्मापन । गुणहीनता । २ सुष्ठुता का अभाव । भद्दापन [को०] ।

असौष्ठव२—वि० असुंदर । भद्दा । विरूप [को०] ।

अस्कंदित-वि० [सं० अस्कन्दित] १ अक्षरित । न बहा हुआ । २ न गया हुआ । ३ अनाक्रांत । ४ अविस्मृत अनुपेक्षित--जैसे समय अथवा प्रतिज्ञा [को०] ।

अस्का--संज्ञा पुं० [देश०] नैनीताल मे बुलाक को कहते हैं । यह एक छोटी सी नथुनी और लटकन जिसे स्त्रियाँ नाक मे पहनती हैं ।

अस्कन्न-वि० [सं०] १ न फटा हुआ । २ न खुला हुआ । ३ टिकाऊ । ४ न उँडेला हुआ [को०] ।

अस्कर--संज्ञा पुं० [अ०] फौज । सेना [को०] ।

अस्करी--संज्ञा पुं० [अ०] सैनिक । योद्धा [को०] ।

अश्खल--संज्ञा पुं० [सं०] आग । अग्नि [को०] ।

अस्खलित-वि० [सं०] १. च्युत न होनेवाला । अच्युत । २ विचलित न होनेवाला । अडिग । ३ विशुद्ध । ४ शुद्ध उच्चारण करनेवाला [को०] ।

अस्तगत-वि० [सं० अस्तङ्गत] १ अस्त को प्राप्त । नष्ट । २ अवनत । हीन ।

अस्त१—वि० [सं०] १ छिपा हुआ । तिरोहित । २ जो दिखाई न पडे । अदृश्य । डूबा हुआ, जैसे--'सूर्य अस्त हो गया ।' ३. नष्ट । ध्वस्त, जैसे—'मुगलो का प्रताप औरंगजेब के पीछे अस्त हो गया' (शब्द०) । ४ फेंका हुआ । क्षिप्त [को०] । ५. समाप्त [को०] । ६ भेजा हुआ [को०] ।

अस्त२--संज्ञा पुं० [सं०] १ तिरोधान । लोप । अदर्शन, जैसे-सूर्यास्त के पहले आ जाना(शब्द०) । २. पश्चिम मेरु (जिसके पीछे सूर्य

डूबता है) [को०]। ३ आवास। घर [को०]। ४ समाप्ति। मृत्यु [को०]।

यौ०—सूर्यास्त। शुक्रास्त। अस्तंगत।

विशेष—सब ग्रह अपने उदय के लग्न से सातवें लग्न पर अस्त होते हैं। इसी से कुंडली में सातवें घर की संज्ञा 'अस्त' है। बुध को छोड़कर अन्य ग्रह जब सूर्य के साथ होते हैं, तब अस्त कहे जाते हैं।

अस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मोक्ष। २ घर [को०]।

अस्तकाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्तसमय'।

अस्तगमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ डूबना। लोप। २ मृत्यु। जीवन का अंत [को०]

अस्तगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] अस्ताचल। वह पर्वत जिसके पीछे सूर्य अस्त हो जाता है [को०]।

अस्तन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्तन] दे० 'स्तन'। उ०—कपट करि ब्रजहिं पूतना आई। अति सुरूप, विष अस्तन लाए, राजा कंस पठाई।—सूर०, । १०५२।

अस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके स्तन बहुत ही छोटे और नहीं के समान हों।

अस्तप्राय—वि० [सं०] लगभग डूबा हुआ।

अस्तबल—संज्ञा पुं० [अ०] घुड़साल। तबेला।

अस्तब्ध—वि० [सं०] १ जो स्तब्ध न हो। अचकित। २ चंचल। ३ विनयी [को०]।

अस्तभवन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार उदय के लग्न से सप्तम लग्न [को०]।

अस्तमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सरिवन का पेड़। सालिवा। शालपर्णी।

अस्तमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अस्त होना। तिरोधान। २ सूर्यादि ग्रहों का तिरोधान या अस्त होना।

यौ०—अस्तमनवेला।

अस्तमननक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जिस नक्षत्र पर कोई ग्रह अस्त हो वह नक्षत्र उस ग्रह का अस्तमन नक्षत्र कहलाता है।

अस्तमनवेला—संज्ञा स्त्री० [सं० अस्तमनवेला] सायंकाल। संध्या का समय।

अस्तमित—वि० [सं०] १ तिरोहित। छिपा हुआ २ नष्ट। मृत।

अस्तर—संज्ञा पुं० [फा०, मि० सं० आ+स्तृ आच्छादन, तह या आस्तर] १ नीचे की तह या पल्ला। भितल्ला। उपल्ले के नीचे का पल्ला। २ दोहरे कपड़े में नीचे का कपड़ा। ३ नीचे ऊपर रखकर सिले हुए दो चमड़ों में से नीचेवाला चमड़ा। ४ वह चंदन का तेल जिसपर भिन्न भिन्न सुगंधों का आरोप करके अतर बनाया जाता है। जमीन। ५ वह कपड़ा जिसे स्त्रियाँ बारीक साड़ी के नीचे लगाकर पहनती हैं। अँतरौटा। अंतरपट। ६ नीचे का रंग जिसपर दूसरा रंग चढ़ाया जाता है। ७ खच्चर [को०]।

अस्तरकारी—संज्ञा स्त्री० [फा] १ चूने की लिपाई। सफेदी। कलई। २ गचकारी। पलस्तर। पन्ना लगाना।

अस्तरखट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] पत्थर की वह वट्टी जिससे तसवीर की जमीन घोटी जाती है [को०]।

अस्तरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] नारी। स्त्री। उ०—माया माता पिता, अति माया अस्तरी सुता।—कबीर ग्रं०, पृ० ११५।

अस्तव्यस्त—वि० [सं०] उलटा पुलटा। छिन्न भिन्न। तितर बितर। उ०—अस्तव्यस्त है। वह भी ढक ले कौन सा अंग, न जिसमें कोई दृष्टि लगे उसे।—झरना, पृ० २२।

अस्ताघ—वि० [सं०] अतिशय गंभीर। बहुत गहरा [को०]।

अस्ताचल—संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्पित पर्वत जिसके संबंध में लोगों का यह विश्वास है कि अस्त होने के समय सूर्य इसी की आड़ में छिप जाता है। पश्चिमाचल। उ०—अस्ताचल जाते ही दिनकर के, सब प्रकट हुए कैसे।—प्रेम०, पृ० ११।

अस्ताद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्ताचल'।

अस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भाव। सत्ता। २ विद्यमानता। वर्तमानता। ३ जरासंध की एक कन्या जो कंस को ब्याही गई थी।

अस्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वे सिद्ध पदार्थ जो प्रदेशों या स्थानों के अनुसार कहे जाते हैं।

विशेष—ये पाँच हैं—(क) जीवास्तिकाय, (ख) पुद्गलास्तिकाय, (ग) धर्मास्तिकाय, (घ) अधर्मास्तिकाय और (च) आकाशास्तिकाय।

अस्तिकेतुसंज्ञा—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में वह केतु जिसका उदय पश्चिम भाग में हो और जो उत्तर भाग में फैला हो। इसकी मूर्ति रूक्ष होती है और इसका फल भयप्रद है।

अस्तित्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ सत्ता का भाव। विद्यमानता। मौजूदगी। उ०—सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ, सदा मौन हो प्रवचन करते जिसका वह अस्तित्व कहाँ।—कामायनी, पृ० २६। २ सत्ता। भाव। उ०—निज अस्तित्व बना रखने में जीवन आज हुआ था व्यस्त।—कामायनी, पृ० ३३।

अस्तिनास्ति—वि० [सं०] संदेहपूर्ण। हाँ नहीं। कुछ झूठा कुछ सच्चा [को०]।

अस्तिमान्—वि० [सं० अस्तिमत्] धनवान्। धनाढ्य [को०]।

अस्तीन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आस्तीन'।

अस्तु—अव्य० [सं०] १ जो हो। चाहे जो हो। उ०—अस्तु, सुव्रते। कहो कहाँ फिर तुम रहीं, मेरे जाने बाद।—करुणा०, पृ० ३१। २ खैर। भला। अच्छा। उ०—अस्तु सभी तुम शक्तिहीन हो गए।—करुणा० , पृ० ३२।

अस्तुति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] निंदा। अपकीर्ति।

अस्तुति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तुति] दे० 'स्तुति'। उ०—निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।—मानस ७। ३८।

अस्तुरा—संज्ञा पुं० [फा० उस्तुरा, मि० सं० क्षुर] बाल बनाने का छुरा।

अस्तेय—संज्ञा [सं०] १ चोरी का त्याग। चोरी न करना। २ योग के आठ अंगों में नियम नामक अंग का तीसरा भेद। वह स्तेय अर्थात् बल से या एकांत में पराए धन का अपहरण करने का उलटा या विरोधी। इसका फल योगशास्त्र में सब रत्नों

का उपस्थान या प्राप्ति है। ३ जैनशास्त्रानुसार अदत्तदान का त्याग करना। चोरी न करने का व्रत।

अस्तेयव्रत—संज्ञा पुं० [स०] अपनी आवश्यकता से अधिक संग्रह का त्याग। वह व्रत जिसमे जरूरत से ज्यादा संपत्ति रखने को चोरी जैसा पाप कर्म समझा जाता है [को०]।

अस्तोदय—संज्ञा पुं० [स० अस्त+उदय] १ डूबना उगना। २ बिगडना बनना [को०]।

अस्त्यान—संज्ञा पुं० [स०] १ परदोषकथन। निंदा। २ झिडकी। भर्त्सना [को०]।

अस्त्र—संज्ञा पुं० [स०] १ वह हथियार जिसे फेंककर शत्रु पर चलावें, जैसे—बाण। शक्ति। २ वह हथियार जिससे कोई चीज फेंकी जाय, जैसे—धनुष, बंदूक। ३ वह हथियार जिससे शत्रु के चलाए हथियारों की रोक हो, जैसे—ढाल। ४ वह हथियार जो मंत्र द्वारा चलाया जाय, जैसे जृंभास्त्र। ५ वह हथियार जिससे चिकित्सक चीर फाड करते हैं। ६ शस्त्र। हथियार।

यौ०—अस्त्रशस्त्र।

अस्त्रकंटक—संज्ञा पुं० [स० अस्त्रकण्टक] बाण। तीर [को०]।

अस्त्रकार—संज्ञा पुं० [स०] हथियार बनानेवाला कारीगर।

अस्त्रकारक—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अस्त्रकार' [को०]।

अस्त्रकारी—संज्ञा पुं० [स० अस्त्रकारिन्] दे० 'अस्त्रकार' [को०]।

अस्त्रघला(पु)† वि० [स० अस्त्र+घातक] अस्त्र चलानेवाला।

अस्त्रचिकित्सक—संज्ञा पुं० [स०] चीर फाड या जर्राही करनेवाला चिकित्सक। जर्राह [को०]।

अस्त्रचिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [स०] १ वैद्यकशास्त्र का वह अंश जिसमे चीरफाड का विधान है। २ चीरफाड करना। अस्त्रप्रयोग। जर्राही।

विशेष—इसके आठ भेद हैं। (क) छेदन=नश्तर लगाना। (ख) भेदन=फाडना। (ग) लेखन=खरोचना। (घ) वेधन=सुई की नोक से छेद करना। (च) मेषण=धोना। साफ करना। (छ) आहरण=काटकर अलग करना। (ज) विश्रावण=फस्द खोलना। (झ) सीना=सीना या टाँका लगाना।

अस्त्रजीवी—संज्ञा पुं० [स० अस्त्रजीविन्] १ पेशेवर सैनिक। २ सैनिक [को०]।

अस्त्रधारी—संज्ञा पुं० [स० अस्त्रधारिन्] सैनिक [को०]।

अस्त्रबंध—संज्ञा पुं० [स० अस्त्रबन्ध] अनवरत बाणवर्षा। [को०]।

अस्त्रमार्जक—संज्ञा पुं० [स०] अस्त्रों को माँजकर साफ करनेवाला [को०]।

अस्त्रलाघव—संज्ञा सं० [स०] अस्त्र कौशल। ठीक ठीक और फुर्ती के साथ लक्ष्यवेध करने की कुशलता [को०]।

अस्त्रविद्या—संज्ञा स्त्री० [स०] १ बाण विद्या। २ अस्त्रचालन की विद्या [को०]।

अस्त्रवेद—संज्ञा पुं० [स०] वह शास्त्र जिसमे अस्त्र बनाने और प्रयोग करने का विधान हो। धनुर्वेद।

अस्त्रशस्त्र—संज्ञा पुं० [स०] अस्त्र और शस्त्र। हाथ मे लिए हुए तथा हाथ से फेंककर प्रहार करने योग्य हथियार [को०]।

अस्त्रशाला—संज्ञा पुं० [स०] वह स्थान जहाँ अस्त्र शस्त्र रखे जायँ। अस्त्रागार। सिलहखाना।

अस्त्रशास्त्र—संज्ञा पुं० [स०] १ अस्त्रचालन की शिक्षा देनेवाला शास्त्र या विद्या। २ धनुर्वेद [को०]।

अस्त्रागार—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अस्त्रशाला'।

अस्त्री—संज्ञा पुं० [स० अस्त्रिन्] [स्त्री० अस्त्रिणी] अस्त्रधारी मनुष्य। हथियारबंद आदमी।

अस्त्रीक—वि० [स०] १ पत्नीहीन। २ बिना स्त्री का [को०]।

अस्त्रैण—वि० [स०] १ बिना स्त्री का। जिसे स्त्री न हो। २ जो स्त्री संबंधी न हो। ३ जो स्त्री का गुलाम न हो। ४ जो स्त्री द्वारा गौरवान्वित न हो [को०]।

अस्थल(पु)†—संज्ञा पुं० [स० स्थल] दे० 'स्थल'। उ०—अस्थल लीपि पात्र सब धोए, काज देव के कीन्ह।—सूर० १। ७८।

अस्थाई(पु)—वि० [स० स्थायी] दे० 'स्थायी'।

अस्थान¹(पु)—संज्ञा पुं० [स० आस्थान] दे० 'स्थान'। उ०—अति ऊँचे भूधरनि पर भुजगन के अस्थान। तुलसी अति नीचे सुखद ऊख, अन्न अरु पान।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२।

अस्थान²—संज्ञा पुं० [स०] १ अनुपयुक्त अथवा बुरा स्थान। २ अनवसर [को०]।

अस्थानीय—वि० [स०] प्रसंग से भिन्न। अनुपयुक्त। उ०—उसने अपना बहुत सुधार किया है कि जिसका आख्यान यहाँ अस्थानीय है'।—प्रेमघन, भा० २, पृ० २६०।

अस्थायी¹—वि० [स० अस्थायिन्] [वि० स्त्री० अस्थायिनी] जो स्थायी या टिकाऊ न हो। नश्वर। क्षणभंगुर [को०]।

अस्थायी²—संज्ञा स्त्री० [स० स्थायिन्] गीत का प्रथम चरण या टेक [को०]।

अस्थावर—संज्ञा पुं० [स०] १ जो स्थावर या अचल न हो। जंगम। चल। २ कानून मे वह संपत्ति जो चल हो—जैसे, मवेशी, जेवर आदि [को०]।

अस्थि—संज्ञा स्त्री० [स०] १ हड्डी। उ०—गौरी कथा मनै बिसराई लेत तुम्हारो नाम। सूर स्याम ता दिन तैं बिछुरे, अस्थि रहै कै चाम।—सूर०, २।३३०६। २ फल की गुठली या गिरी [को०]।

अस्थिकुंड—संज्ञा पुं० [स० अस्थिकुण्ड] पुराणों के अनुसार एक नरक जिसमे हड्डियाँ भरी हुई हैं।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त्त के अनुसार वे पुरुष इस नरक मे पडते हैं जो गया मे विष्णुपद पर पिंडदान नहीं करते।

अस्थिकृत—संज्ञा पुं० [स०] १ हड्डी के भीतर स्थित स्नेह। मज्जा। २ वज्र [को०]।

अस्थिज—संज्ञा पुं० [स०] १ मज्जा। २ हड्डी से बना हुआ द्रव्य। ३ वज्र [को०]।

अस्थित¹—वि० [स०] जो दृढ या स्थिर न हो [को०]।

अस्थित²(पु)—वि० [स० स्थित] उपस्थित। वर्तमान। स्थित। उ०—मेरौ वचन सत्य करि मानौ, छाँडौ सबकौ मोहु। तब लौं सब पानी की चुपरी जौ लौं अस्थित दोहु।—सूर०, १।३५३९

अस्थिति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दृढ़ता या स्थिरता का अभाव। चंचलता। डाँवाडोलपन। २ अच्छे ठाकुर या सलीके की कमी (को०)।

अस्थितुंड--संज्ञा पुं० [सं० अस्थितुण्ड] १ पक्षी। २ हड्डी की तरह कड़ी चोंचवाला पक्षी [को०]।

अस्थितेज--संज्ञा पुं० [सं० अस्थितेजस्] मज्जा [को०]।

अस्थितैल--संज्ञा पुं० [सं०] हड्डी का तेल [को०]

अस्थिधन्वा--संज्ञा पुं० [सं० अस्थिधन्वन्] शिव [को०]।

अस्थिपंजर--संज्ञा पुं० [सं० अस्थिपञ्जर] शरीर का ढाँचा। हड्डी पसली। कंकाल। उ०-धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर घर में। मांस नहीं है, शेष रही बस माँस अस्थिपंजर में।-पथिक, पृ० ४१।

अस्थिप्रक्षेप--संज्ञा पुं० [सं०] गंगा या अन्य किसी पवित्र नदी या सरोवर में मृत व्यक्ति की अस्थि को प्रवाहित करना। अस्थिविसर्जन [को०]।

अस्थिबंधन--संज्ञा पुं० [सं० अस्थिबन्धन] स्नायु [को०]।

अस्थिभंग--संज्ञा पुं० [सं० अस्थिभङ्ग] हड्डी टूटना [को०]।

अस्थिभक्ष--संज्ञा पुं० [सं०] हड्डी खानेवाला। कुत्ता [को०]।

अस्थिभुक्--संज्ञा पुं० [सं० अस्थिभुज्] दे० 'अस्थिभक्षी' [को०]।

अस्थिभेद--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्थिभंग' [को०]।

अस्थिभेदी--वि० [सं० अस्थिभेदिन्] १ हड्डी काटनेवाला। २. अत्यंत तीक्ष्ण [को०]।

अस्थिमाली--संज्ञा पुं० [सं० अस्थिमालिन्] शिव।

अस्थिर[1]--वि० [सं०] १ जो स्थिर न हो। चंचल। चलायमान। डाँवाडोल। उ०-दावाग्नि-प्रखर लपटों ने कर दिया सघन वन अस्थिर।-कामायनी, पृ० २८१। २-बे ठौरठिकाने का। जिसका कुछ ठीक न हो। उ०--यों ही लगा बीतने उनका जीवन अस्थिर दिन दिन।--कामायनी, पृ० ३३।

अस्थिर[2] (पु)--[सं० स्थिर] जो चंचल न हो। स्थिर उ०-भक्तनि हाट बैठि अस्थिर ह्वै, हरि नग निर्मल लेहि काम-क्रोध मद-लोभ-मोह तू सकल दलाली देहि।-सूर०, १। ३१०।

अस्थिरता--संज्ञा स्त्री० [सं०] चंचलता, व्यग्रता। व्याकुलता।

अस्थिविग्रह[1]--वि० [सं०] दुबला पतला (व्यक्ति या जीव)। जिसका शरीर सूखकर हड्डी का ढाँचा मात्र रह गया हो [को०]।

अस्थिविग्रह[2]--संज्ञा पुं० [सं०] शिव का भृंगी नामक गण [को०]।

अस्थिशेष--वि० [सं०] कंकालशेष। जिसके शरीर में हड्डियाँ ही रह गई हों [को०]।

अस्थिसंचय--संज्ञा पुं० [सं० अस्थिसञ्चय] भस्मांत या अंत्येष्टि संस्कार के अनंतर की एक क्रिया या संस्कार जिसमें जलने से बची हुई हड्डियाँ एकत्र की जाती हैं।

अस्थिसंधि--संज्ञा स्त्री० [सं० अस्थिसन्धि] हड्डियों का जोड़।

अस्थिसंभव--संज्ञा पुं० [सं० अस्थिसम्भव] १ मज्जा। २ वज्र [को०]।

अस्थिसमर्पण--संज्ञा पुं० [सं०] १ हड्डियों का नदी में प्रवाह। अस्थिविसर्जन [को०]।

अस्थिसार--संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा [को०]।

अस्थिस्नेह--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्थिसार' [को०]।

अस्थूल[1]--वि० [सं०] जो स्थूल न हो। सूक्ष्म।

अस्थूल[2] (पु)--वि० [सं० स्थूल] दे० 'स्थूल'।

अस्थैर्य--संज्ञा पुं० [सं०] दृढ़ता का अभाव। अस्थिति। डाँवाँडोलपन। उ०-- दिया नृप को वशिष्ठ ने धैर्य कहा-यह उचित नहीं अस्थैर्य।-साकेत, पृ० ४२।

अस्नान (पु)--संज्ञा पुं० [सं० स्नान] दे० 'स्नान'। करि अस्नान नंद घर आए।-सूर०, १०।२६०।

अस्नाविर--वि० [सं०] जिसे स्नायु न हो। दुबली देह का (व्यक्ति) [को०]।

अस्निग्ध--वि० [सं०] १. जो स्निग्ध या चिकना न हो। २ कठोर। निर्दय। हृदयहीन [को०]।

अस्निग्धदारु--संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु वृक्ष की जाति का एक वृक्ष [को०]।

अस्निग्धदारुक--संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु की जाति का एक पेड़।

अस्नेहन--संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अस्पंज--संज्ञा पुं० [यु० इस्फंज] स्पंज। मुर्दा बादल [को०]।

अस्पंद--संज्ञा पुं० [सं० अस्पन्द] जिसमें स्पंदन या कंपन न हो। गतिहीन [को०]।

अस्पताल--संज्ञा पुं० [अं० हॉस्पिटल] औषधालय। चिकित्सालय। दवाखाना।

अस्पर्श--वि० [सं०] १ जिसमें स्पर्श न हो। २ जो छूने योग्य न हो [को०]।

अस्पर्स (पु)--संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श] दे० 'स्पर्श'। उ०--भएँ अस्पर्श देवतन धरिहैं। मेरी कह्यो नाहिं यह टरिहै।-सूर० ८।२।

अस्पष्ट--वि० [सं०] जो साफ या स्पष्ट न हो। अप्रकट। अस्फुट। उ०-अस्पष्ट एक लिपि ज्योतिमयी, जीवन की आँखों में भरते।-कामायनी, पृ० ६४।

अस्पृश्य--वि० [सं०] जो छूने योग्य न हो। उ०-गिर जाय कुछ गंगांबु भी अस्पृश्य नाली में कभी, तो फिर उसे अपवित्र ही बतलायेंगे निश्चय सभी।-भारत, पृ० १२३। --नीच जाति का। अंत्यज।

अस्पृश्यता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अस्पृश्य होने का भाव या दशा। अछूतपन।

अस्पृष्ट--वि० [सं०] जिसपर हाथ न लगाया गया हो। अछूता [को०]।

अस्पृह--वि० [सं०] निःस्पृह। निर्लोभ। जिसमें लालच न हो।

अस्फटिक (पु)--संज्ञा पुं० [सं० स्फटिक] दे० 'स्फटिक'। उ०-जिनकी बनी अवनी अमल अस्फटिक मनि पटरीन सों।-प्रेमघन०, भा० १, पृ० १२०।

अस्फी--संज्ञा पुं० [फा० अस्प + ई (प्रत्य०)] घुड़सवार। अश्वारोही। उ०-सु अस्फी घने दुंदुभी हैं धुकारे। मनौ घनेरानें परैं सिंधु भारे।--पद्माकर ग्रं०, पृ० २७८।

अस्फुट—वि० [सं०] १ जो स्पष्ट न हो। जो साफ न हो। उ०—अस्फुट कोलाहल भरति मर्मरित वन है।—साकेत, पृ० २१७। २. गूढ। जटिल।

अस्म(पु)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अश्म] पत्थर। उ०—(क) जहँ जहँ जात तहीं तहीं त्रासत अस्म, लकुट पदत्रान।—सूर० १।१०३। (ख) आपुन तरि तरि औरनि तारत। अस्म अचेत प्रगटपानी मैं बनचर लै लै डारत।—सूर० ९।१२३।

अस्मद्[1]—सर्व० [सं० अस्मत्] मैं।

अस्मद्[2]—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अस्मत्] जीव। आत्मा [कौ०]।

अस्मदादि—सर्व० [सं०] हम सब [कौ०]।

अस्मदादिक—सर्व० [सं०] दे० 'अस्मदादि'। हम सब।

अस्मदीय—वि० [सं०] मेरा [कौ०]।

अस्मय—वि० [सं० अश्ममय] पत्थर द्वारा निर्मित। उ०—जरासंध बंदी कहँ नप कुल जस गावैं। अस्मय तन गौतम तिया कौ साप नसावैं।—सूर० १।४।

अस्मार्त—वि० [सं०] जो स्मृतियों का अनुयायी न हो। स्मृतिविरोधी। २ जो स्मृत न हो। स्मरण से परे। ३ परंपराविरुद्ध। अनुचित। ४ स्मार्त मत के विपरीत [कौ०]।

अस्मिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ योगशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के क्लेशों में से एक। द्रक, द्रष्टा और दर्शन शक्ति को एक मानना या पुरुष (आत्मा) और बुद्धि में अभेद मानना। २ अहंकार। सांख्य में इसको मोह और वेदांत में हृदयग्रंथि कहते हैं।

अस्र[1]—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कोना। २ रुधिर। ३ जल। ४ आँसू। उ०—प्रकृति-रंजन-हीन, दीन अजस्र। प्रकृति विधना थी भरे हिम अस्र।—साकेत, पृ० १९५। ५ केसर। ६ बाल।

अस्र[2]—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ दिन का चतुर्थ प्रहर। २ समय। वक्त। काल [कौ०]।

अस्रकंठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अस्रकण्ठ] बाण। तीर [कौ०]।

अस्रखदिर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रक्तखदिर का वृक्ष [कौ०]।

अस्रज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मांस [कौ०]।

अस्रप[1]—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस। २ मूल नक्षत्र। ३ जोंक जो लहू (अस्र) पीती है।

अस्रप[2]—वि० रक्त पीनेवाला।

अस्रपा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ जलौका। जोंक। २ डाइन। टोना करनेवाली।

अस्रपित्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नासिका मुख आदि से रक्तस्राव होना [कौ०]।

अस्रफला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सलाई का पेड़।

अस्रफली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० अस्रफला [कौ०]।

अस्रमातृका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] देह के भीतर का रस [कौ०]।

अस्ररोधिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] लज्जालु नामक पौधा। छुईमुई [कौ०]।

अस्रार्ज्जक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] श्वेत तुलसी।

अस्रु(पु)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अश्रु] दे० 'अश्रु'।

अस्ल—वि० [अ०] दे० 'असल'।

अस्ली—[अ०] दे० 'असली'।

अस्वंत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अस्वन्त] १ मृत्यु। २ खेत। ३ चूल्हा। ४ मरुत् विशेष [कौ०]।

अस्व(पु)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अश्व] दे० 'अश्व'। उ०—होइय नाथ अस्व असवारा।—मानस २। २०२।

अस्वच्छंद—वि० [सं० अस्वच्छन्द] जो आत्मनिर्भर न हो। दूसरे के भरोसे पर रहनेवाला [कौ०]।

अस्वच्छ—वि० [सं०] जो स्वच्छ न हो। जो स्पष्ट न हो। गंदा [कौ०]।

अस्वतंत्र—वि० [सं० अस्वतन्त्र] पराधीन। दास। गुलाम [कौ०]।

अस्वप्न[1]—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। २ अनिद्रा।

अस्वप्न[2]—वि० [सं०] जिसे नींद न आती हो [कौ०]।

अस्वभाव[1]—वि० [सं०] भिन्न स्वभाववाला [कौ०]।

अस्वभाव[2]—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अस्वाभाविक लक्षण। भिन्न लक्षण [कौ०]।

अस्वर[1]—वि० [सं०] अस्पष्ट या मंद (स्वर)। बुरे या मंद स्वरवाला [कौ०]।

अस्वर[2]—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्वरभिन्न या व्यंजन वर्ण [कौ०]।

अस्वर्ग्य—वि० [सं०] जो स्वर्गप्राप्ति में बाधक हो [कौ०]।

अस्वस्थ—वि० [सं०] १ रोगी। बीमार। २ अनमना।

अस्वादुकंटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अस्वादुकण्टक] गोखरू।

अस्वाधीन—वि० [सं०] पराधीन। परतंत्र [कौ०]।

अस्वाध्याय[1]—वि० [सं०] वेदों की आवृत्ति न करनेवाला। जिसने वेदपाठ न किया हो [कौ०]।

अस्वाध्याय[2]—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वेद के स्वाध्याय के बीच पड़नेवाली बाधा या मिलनेवाला अवकाश [कौ०]।

अस्वाभाविक—वि० [सं०] १. जो स्वाभाविक न हो। प्रकृतिविरुद्ध। २ कृत्रिम। बनावटी।

अस्वामिक[1]—वि० [सं०] जिसका कोई स्वामी न हो। लावारिस [कौ०]।

अस्वामिक[2]—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जिसका कोई स्वामी न हो [कौ०]।

अस्वामिकद्रव्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पराशरस्मृति के अनुसार वह धन जो किसी की मिलकियत न हो।

अस्वामिविक्रय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दूसरे के पदार्थ को उसकी आज्ञा के बिना बेच लेना। २ दूसरे की चीज जबरदस्ती छीनकर या कहीं पड़ी पाकर उसकी इच्छा के विरुद्ध बेच डालना। निक्षिप्त।

अस्वामिविक्रीत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मालिक की चोरी से बेचा हुआ।

विशेष—नारद ने कहा है कि ऐसी वस्तु का पता लगने पर मालिक उसका हकदार होता है। पर मालिक को इस बात की सूचना राज्य को कर देनी चाहिए।

अस्वामिसहत—वि० [सं०] (सेना) जिसका सेनानायक न मारा गया हो।

अस्वामी—वि० [सं० अस्वामिन्] १ जिसका कोई दावेदार या अधिकारी न हो। २ जिसका कोई स्वत्व वा अधिकार न हो [कौ०]।

अस्वार्थ—वि० [सं०] १ स्वार्थहीन । नि स्वार्थ । २. विरक्त । उदासीन । ३ निरर्थक । निकम्मा । बेकार [को०] ।
अस्वास्थ्य—सज्ञा पुं० [सं०] बीमारी । रोग ।
अस्विन्न—वि० [सं०] अच्छी तरह न उबाला हुआ । अपक्व [को०] ।
अस्वीकरण—सज्ञा पुं० [सं०] अस्वीकृति । स्वीकार न करना ।
अस्वीकार—सज्ञा पुं० [सं०] स्वीकार का उलटा । इन्कार । नामजूरी । नाही ।
क्रि० प्र०—करना ।
अस्वीकृत—वि० [सं०] अस्वीकार किया हुआ । नामजूर किया हुआ । नामजूर ।
अस्वीकृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] नामजूरी । स्वीकार न करने की क्रिया या भाव । अस्वीकार [को०] ।
अस्स(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अश्व, प्रा० अस्स] घोडा ।
अस्सी—वि० [सं० अशीति, प्रा० असीति] सत्तर और दस की सख्या । दस का अठगुना ।
अस्सु(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अश्रु, प्रा० अस्सु] आँसू ।
अह[1]—सर्व० [सं० अहम्] मैं ।
अह[2]—सज्ञा पुं० १ अहकार । अभिमान । उ०—(क) तुलसी सुखद शाति को सागर । संतन गायो कौन उजागर । तामे तन मन रहै समोई । अह अगिनि नहि दाहै कोई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ज्यो महराज या जलधि तें पार कियो भव जलधि पार त्यौं करौ स्वामी । अह ममता हमैं सदा लागी रहै मोह मद क्रोध जुत मद कामी ।—सूर०, (शब्द०) । २ सगीत का एक भेद जिसमे सब शुद्ध स्वरो तथा कोमल गधार का व्यवहार होता है
अहकार—सज्ञा पुं० [सं०] १ अभिमान । गर्व । घमड । २. वेदात के अनुसार अत करण का एक भेद जिसका विषय गर्व या अहकार है । "मैं हूँ" या "मैं करता हूँ" इस प्रकार की भावना । ३ साख्यशास्त्र के अनुसार महत्तत्व से उत्पन्न एक द्रव्य ।
विशेष—यह महत्तत्व का विकार है और इसकी सात्विक अवस्था से पाँच ज्ञानेंद्रियो, पाँच कर्मेंद्रियो तथा मन की उत्पत्ति होती है और तामस अवस्था से पचतन्मात्राओ की उत्पत्ति होती है, जिनमे क्रमश आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति होती है । साख्य में इसको प्रकृतिविकृति कहते हैं । यह अत करणद्रव्य है ।
४ अत करण की एक वृत्ति । इसे योगशास्त्र मे अस्मिता कहते हैं । ५ मैं और मेरा का भाव । ममत्व ।
अहकारी—वि० [सं० अहङ्कारिन्] [स्त्री० अहकारिणी] अहकार करनेवाला । घमडी । गर्वी ।
अहकृत्—वि० [सं० अहङ्कृत्] अहकार करनेवाला । घमडी [को०] ।
अहकृति—सज्ञा स्त्री० [सं० अहङ्कृति] अहकार ।
अहता—सज्ञा स्त्री० [सं० अहन्ता] अहकार । घमड । गर्व । उ०—था एक पूजता देह दीन, दूसरा अपूर्ण अहता मे रातो को समझ रहा प्रवीण ।—कामायनी, पृ० १६१ ।
अहधी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अहकार' ।
अहपद—सज्ञा पुं० [सं० अहम्पद] गर्व । अभिमान [को०] ।
अहपूर्व—सज्ञा पुं० [सं० अहम्पूर्व] लाग डाट मे दूसरे से आगे बढ जाने की अभिलाषा रखनेवाला [को०] ।
अहंपूर्विका—सज्ञा स्त्री० [सं० अहम्पूर्विका] होड । प्रतिस्पर्धा [को०] ।
अहप्रथमिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अहम्प्रथमिका] दे० 'अहपूर्विका' [को०] ।
अहप्रत्यय—सज्ञा पुं० [सं० अहम्प्रत्यय] घमड । गर्व [को०] ।
अहंभद्र—सज्ञा पुं० [सं० अहम्भद्र] अपना व्यक्तित्व महान् समझना [को०] ।
अहमति—सज्ञा स्त्री० [सं० अहम्मति] (वेदात दर्शन मे) भ्रमात्मक आध्यात्मिक आत्मज्ञान [को०] ।
अहवाद—सज्ञा पुं० [सं०] डीग मारना । शेखी हाँकना । उ०—अहवाद मैं तें नही दुष्ट सग नहि कोइ । दुख ते दुख नहि ऊपजे सुख से सुख नहि होइ ।—तुलसी (शब्द०) ।
अहँकार(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अहङ्कार] दे० 'अहकार' । उ०—त्रयनयन, मयन मर्दन महेश । अहँकार निहार उदित दिनेस ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६१ ।
अह[1]—सज्ञा पुं० [सं० अहन्] १ दिन । २ विष्णु । ३ सूर्य । ४ दिन का अभिमानी देवता । ५ आकाश [को०] । ६ एक दिन का काम [को०] । ७ रात्रि [को०] । ८ किसी ग्रथ का वह अंश जो एक दिन के लिये निश्चित हो [को०] ।
यौ०—अहर्निश = दिन रात । लगातार । अहपति = सूर्य । अहर्मुख = उषाकाल । अहर्ह = दिन दिन ।
अह[2]—अव्य [सं० अहह] एक अव्यय सबोधन । आश्चर्य खेद और क्लेश आदि मे इसका प्रयोग होता है, जैसे—अह ! तुमने बडी मूर्खता की (शब्द०)
अहक(पु)—सज्ञा पुं० [सं० ईहा] अच्छा । आकाक्षा । लालसा । उ०—अहक मोर बरषा ऋतु देखहुँ । गुरु चीन्हि कै योग विसेषहुँ ।—जायसी (शब्द०) ।
अहकना—क्रि० अ० [हिं० अहक] इच्छा करना । लालसा करना ।
अहकाम—सज्ञा पुं० [अ० हुक्म का बहुव०] १ नियम । कायदा । २. हुक्म । आज्ञाएँ ।
अहचरज—सज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य] दे० 'आश्चर्य' । उ०—समर जीति जौहर की होन । जो अहचरज भयौ यह तौन ।—हम्मीर०, पृ० ६५ ।
अहट—सज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'आहट' उ०—आह न अहट अध अरी या अदाई की ।—घन०, पृ० ८२ ।
अहटाना[1]—क्रि० अ० [हिं० आहट] आहट लगाना । पता चलना । उ०—रहत नयन के कोरवा चितवनि छाय । चलत न पग पैजनियाँ मग अहटाय ।—रहिमन० (शब्द०) ।
अहटाना[2](पु)—क्रि० स० आहट लगाना । टोह लेना । पता चलाना ।
अहटाना[3](पु)—क्रि० अ० [सं० आहत] दुखना । दर्द करना । उ०—(क) तनिक किरकिटी के परे पल पल मे अहटाय । क्यो सोवें सुख नीद दृग मीत बसे जब आय ।—रसनिधि० (शब्द०) । (ख) सुनी दूत बानी महासाती ख्वानजदै जबै, हिये अहटाना है रिसानी देह ता समै ।—सूदन० (शब्द०) ।

अहटियाना†—क्रि० स०, क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अहुटाना'।

अहत¹—वि० [सं०] १ जो हत न हो। २ अक्षत। ३ अनाहत। ४ जो पीटा या कचारा न गया हो। जैसे—वस्त्र। ५ जो कुंठाग्रस्त या हताश न हो। ६ नया। बिना धोया हुआ। ७ निर्दोष। वेदाग [को०]।

अहत²—संज्ञा पुं० [सं०] बिना धुला नया वस्त्र [को०]।

अहथिर(पु)†—वि० [सं० स्थिर] दे० 'स्थिर'। उ०—सबै नास्ति वह अहथिर ऐस साज जेहि केर।—जायसी (शब्द०)।

अहद¹—संज्ञा पुं० [अ०] प्रतिज्ञा। वादा। इकरार।

क्रि० प्र०—करना = प्रतिज्ञा करना।—टूटना = प्रतिज्ञा भग होना।—तोडना = प्रतिज्ञा भग करना। वादा पूरा न करना। २. सकल्प। इरादा। ३. समय। काल। राजत्वकाल, जैसे—'अकबर के अहद मे प्रजा बडी सुखी थी'।

यौ०—अहदनामा। अहदशकिन। अहदशिकनी अहद वो पैमान।

अहद²—वि० [सं० अ = नहीं + अ० हद] सीमारहित। असीम। उ०—पलटू दीगर को नेस्त करै, होय खुद अहत इस भाँति जाई।—पलटू०, पृ० ६३।

अहददार—संज्ञा पुं० [फा०] मुसलमानी राज्य के समय का एक अफसर जिसे राज्य की ओर से कर का ठीका दिया जाता था। उसको इस काम के लिये दो या तीन रुपया सैकडा वधेज मिलता था और राज्य मे वह सब कर का देनदार ठहरता था। एक प्रकार का ठेकेदार।

अहदनमा—संज्ञा पुं० [फा०] १. एकरारनामा। वह लेख या पत्र जिसके द्वारा दो या दो से अधिक मनुष्य किसी विषय मे कुछ इकरार या प्रतिज्ञा करें। प्रतिज्ञापत्र। २ सुलहनामा। सधिपत्र।

अहदी¹—वि० पुं० [अ०] १ आलसी। अलहदी। आसकती। २ वह जो कुछ काम न करे। अकर्मण्य। निठल्लू। मठ्ठर।

अहदी²—संज्ञा पुं० अकबर के समय के एक प्रकार के सिपाही जिनसे बडी आवश्यकता के समय काम लिया जाता था, शेष दिन वे बैठे खाते थे। उ०—घेर्‌यो आइ कुटुम लसकर मैं, जम अहदी पठयो। सूर नगर चौरासी भ्रमि भ्रमि, घर घर को जु भयो।—सूर० १।६४।

विशेष—इसी से 'अहदी' शब्द आलसियो के लिये चल गया। ये लोग कभी कभी उन जमीदारो मे मालगुजारी वसूल करने के लिये भी भेजे जाते थे जो देने मे आनाकानी करते थे। ये लोग अडकर बैठ जाते थे और बिना लिए नही उठते थे।

अहदीखाना—संज्ञा पुं० [फा० अहदीखानह्] अहदियो के रहने का स्थान।

अहदेहुकूमत—संज्ञा पुं० [फा०] शासनकाल। राज्य।

अहन्—संज्ञा पुं० [सं०] दिन। दिवस।

अहन—संज्ञा पुं० [सं० अहन्] १ दे० 'अहन्'। २ दिन। उ०—पेट को पढ़त गुन गढत, चढत गिरि अटत गहन बन अहन अखेटको।—तुलसी ग्र०, पृ० २२०।

अहना(पु)—क्रि० अ० [सं० अस्ति] वर्तमान रहना। होना। उ०—(क) राजा सेति कुँअर सब कहहीं। अस अस मच्छ समुद महँ अहहीं।—जायसी (शब्द०)। (ख) जब लगि गुरु हौं अहा न चीन्हा। कोटि अंतरपट बीचहि दीन्हा।—जायसी (शब्द०)।

अहनाथ—संज्ञा पुं० [सं० अहनाथ] दिन के स्वामी। सूर्य। उ०—महि मयक अहनाथ को आदिग्यान भव भेद। ता विधि तेरे जीव कहँ होत समुझ विनु सेद।—स० सप्तक, पृ० ३८।

अहनिसि(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अहर्निश'। उ०—मुयो मुयो अहनिसि चिल्लाई। ओही रोस नागन्ह धै खाई।—जायसी (शब्द०)।

अहनुपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] दुपहरिया का फूल। गुलदुपहरिया।

अहमक—वि० [अ०] जड। बेवकूफ। मूर्ख। नासमझ। उ०—नहुरे थर्क दुहि पीया खीरो, ताका अहमक कहै सरीरो।—कबीर ग्र०, पृ० २३९।

अहमग्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आगे बढने की प्रतिस्पर्धा। होड [को०]।

अहमहमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लागडाट। डाट। पहले हम तब दूसरा। हमाहमी। चढा ऊपरी।

अहमिति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अहस्मति] १. अविद्या। अज्ञान। उ०—निसि दिन फिरत रहत मुँह बाए, अहमिति जनम बिगोइसि। गोड पसारि परयो दोउ नीकै, अब कैसी कह रोइसि।—सूर०, १। ३३३। २ अहकार। उ०—सजेउ चापु दापु बड बाढा। अहमिति मनहु जीति जगु ठाढा।—मानस, १। २८३।

अहमेव—संज्ञा पुं० [सं०] अहकार। गर्व। घमड। उ०—(क) उदित होत शिवराज के, मुदित भए द्विज देव। कलियुग हट्यो मिट्यो सकल, म्लेच्छन को अहमेव।—भूषण (शब्द०)। (ख) सन्यासी माते अहमेव। तपसी माते तप के भेव।—कबीर ग्र०, पृ० ३०२।

अहर—संज्ञा पुं० [देश०] छीपियो के रग का मिट्टी का बरतन। नॅया।

अहरणीय—वि० [सं०] १ न चुराने योग्य। २ (धूर्तता द्वारा) न अपनाने योग्य। ३ दृढ। सुस्थिर [को०]।

अहरन—संज्ञा स्त्री० [सं० आ + धरण = रखना] निहाई। उ०—कबिरा केवल राम की तू मनि छडै ओट। घन अहरन बिच लोह ज्यो घनी सहै सिर चोट।—कबीर (शब्द०)।

अहरना†—क्रि० स० [सं० आहरण = निकलना] १ लकडी को छीलकर सुडौल करना। २ डौलना।

अहरनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अहरन'।

अहरनिसि(पु)†—क्रि० वि० दे० 'अहर्निश—२'। उ०—अहरनिसि आस लागी रहै सुन्न मे, बिना जल पिए क्या प्यास जाई।—कबीर० रे०, पृ० २९।

अहरा—संज्ञा पुं० [सं० आहरण = इकट्ठा करना] १ कडे का ढेर जो जलाने के लिये इकट्ठा किया जाय। २ वह आग जो इस प्रकार इकट्ठा किए हुए कडो से तैयार की जाय। ३. वह स्थान जहाँ लोग ठहरें। ४ प्याऊ। पौशाला।

अहराम—सं० पुं० [अ० हरम = पुरानी इमारत का बहुव०] पुराने भवन। २. मिस्र के स्तूप या पिरामिड।

अहरी-संज्ञा स्त्री० [सं० आहरण = इकट्ठा होना] १ वह स्थान जहाँ पर लोग पानी पिएँ। प्याऊ। २ वह गड्ढा या हौज जो कुएँ के किनारे जानवरों के पानी पीने के लिये बना रहता है। चरही। ३ हौज जिसमे किसी काम के लिये पानी भरा जाय।

अहर्गण- संज्ञा पुं० [सं०] १ दिनों का समूह। २ ज्योतिष कल्प के आदि से किसी इष्ट या नियत काल तक का समय।

अहर्दल- संज्ञा पुं० [सं०] दोपहर मध्यदिवस [को०]।

अहर्निश—क्रि० वि० [सं०] १ रातदिन। २. सदा। नित्य।

अहर्मणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

अहर्मुख—संज्ञा पुं० [सं०] उष काल। दिनारंभ। सवेरा।

अहल¹— वि० [सं०] अकृष्ट। बिना जोता हुआ (खेत) [को०]।

अहल²—वि० [अ० अह्ल] लायक। समर्थ। योग्य [को०]।

अहलकार—संज्ञा पुं० [फा०] १ कर्मचारी। २ कारिंदा।

अहलकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अहलकार का काम। कारिंदागिरी।

अहलना(पु)—क्रि० अ० [सं० अलहनम] हिलना। काँपना। दहलना। उ०—पहल पहल तन रुइ ज्यो झाँपै। अहल अहर अधिको हिय काँपै।—जायसी (शब्द०)।

अहलमद- संज्ञा पुं० [फा० अहलमद] अदालत का वह कर्मचारी जो मुकद्दमों की मिसिलों को रजिस्टर मे दर्ज करता और रखता है, अदालत के हुक्म के अनुसार हुक्मनामे जारी करता है तथा किसी मुकद्दमे का फैसला होने पर उसकी मिसिल को तर्तीब देकर मुहाफिजखाने मे दाखिल करता है।

अहला†—संज्ञा पुं० [हिं०] 'अहिला'।

अहलाद(पु)†-संज्ञा पुं० [सं० आह्लाद] दे० 'आह्लाद'। उ०—(क) ताकों पुत्र भयो प्रहलाद। भयो असुर मन अति अहलाद।—सूर०, ९।४२१। (ख) टूटा पकरि उठावै पर्वत पगुल करै नृत्य अहलाद। जो कोउ याको अर्थ विचारै सुदर सोई पावै स्वाद।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ५०८।

अहलादी(पु)†—वि० [हिं०] 'आह्लादी'।

अहलि—वि० [सं०] दे० 'अहल' [को०]।

अहले गहले†—क्रि० वि० [अनु०] मस्ती के साथ। प्रसन्नतापूर्वक। निश्चित मन से [को०]।

अहल्या¹—वि० [सं०] जो (धरती) जोती न जा सके।

अहल्या²—संज्ञा स्त्री० गौतम ऋषि की पत्नी।

अहवान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आह्वान] बुलाना। आवाहन। उ०—कियो आपने अयन पयाना। राति सरस्वति किय अहवाना।—रघुराज० (शब्द०)।

अहवाल—संज्ञा० पुं० [अ० 'हाल' का बहु०] १ समाचार। वृत्तांत। उ०—मरजे मुबारक का मरीज तब क्या अहवाल सुनाऊँ।—प्रेमघन०, पृ० १९२। २ दशा। अवस्था। उ०—अजब अहवाल देखा हमने कल इस खाने वीराँ का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २३०।

अहश्चर—वि० [सं०] दिन मे चलनेवाला। दिनचारी [को०]।

अहसान—संज्ञा पुं० [अ० एहसान] १ किसी के साथ नेकी करना। सलूक। भलाई। उपकार। २. कृपा। अनुग्रह। निहोरा। उ०—बहु धन लै अहसान कै, पारो देत सराहि। वैद वधू हँसि भेद सौ, रही नाह मुख चाहि।—बिहारी (शब्द०)। ३. कृतज्ञता।

अहसानफरामोश—वि० [अ० एहसान + फा० फरामोश] उपकार को न माननेवाला। कृतघ्न। उ०—'अच्छा, मैं बेवफा, अहसान फरामोश सही, तुम तो बड़े वफादार हो।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १२३।

अहसानफरोश- वि० [अ० एहसान + फा० फरोश] उपकार कर सबसे कहता फिरनेवाला [को०]।

अहसानमद—वि० [अ० एहसान + फा० मद] कृतज्ञ। किए हुए को माननेवाला [को०]।

अहसानमंदी-संज्ञा स्त्री० [अ० एहसान + फा० मंदी] कृतज्ञता। उ०—'वह मदनमोहन की अहसानमदी के बहाने से हरवक्त वहाँ बना रहता था।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २११।

अहस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १ दिनकर। सूर्य। २ मदार [को०]।

अहस्त—वि० [सं०] बिना हाथवाला। जिसके हाथ कटे हो [को०]

अहस्पति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अहस्कर'।

अहह—अव्य० [सं०] एक अव्यय जिसका प्रयोग आश्चर्य, खेद, क्लेश और शोक सूचित करने के लिये होता है। उ०—अहह तात दारुन हठ ठानी।—मानस, १।२५८।

अहा—अव्य० [सं० अहह] इसका प्रयोग प्रसन्नता और प्रशसा की सूचना के लिये होता है, जैसे—अहा! यह कैसा सुदर फूल है।

अहाता—संज्ञा पुं० [अ०] १ घेरा। हाता। २ प्रकार। चारदीवारी।

अहान- संज्ञा पुं० [सं० आह्वान] पुकार। शोर। चिल्लाहट। उ०—भइ अहान पदुमावति चली। छत्तिस कुलि भइ गोहन चली।—जायसी (शब्द०)।

अहार(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'आहार'। उ०—करहिं अहार साक फल कदा। सुमिरहि ब्रह्म सच्चिदानदा।—मानस, १।१४४।

अहारना(पु)—क्रि० सं० [सं० आहरण = खाना या हिं० अहार] १. खाना। भक्षण करना। उ०—तो हमरे आश्रम पगु धारो। निज रुचि के फल विपुल अहारो।—रघुराज० (शब्द०)। २ चपकाना। लेई लगाकर लसना। ३ कपड़े मे माँडी देना। ४ दे० 'अहरना'।

अहारी(पु)—वि० दे० 'आहारी'। उ०—जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहि सठ खग मास अहारी।—मानस, ६।३६।

अहार्य—वि० [सं०] १ जो धन या घूस के लोभ में न आ सके। २. जो हरण न किया जा सके। जो चुराया न जा सकता हो।

यौ०—अहार्य शोभा।

अहाहा—अव्य० [सं० अहह] हर्षसूचक अव्यय।

अहिंसक—वि० [सं०] १ जो हिंसा न करे। जो किसी का घात न करे। २ जो किसी को दुख न दे। जिससे किसी को पीड़ा न पहुँचे।

अहिंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ साधारण धर्मों मे से एक। किसी को दुख न देना। २. योगशास्त्रानुसार पाँच प्रकार के यमों में पहला। मन, वाणी और कर्म मे किसी प्रकार किसी का

मे किसी प्राणी को दुःख या पीडा न पहुँचाना। ३ बौद्धशास्त्रानुसार त्रस और स्थावर को दुःख न देना। ४ जैनशास्त्रानुसार प्रमाद से भी त्रस और स्थावर को किसी काल मे किसी प्रकार की हानि न पहुँचाना। धर्मशास्त्रानुसार शास्त्र की विधि के विरुद्ध किसी प्राणी की हिंसा न करना।६ कटफाली या हंस नाम की घास। ७ सुरक्षा [को०]।

अहिंसावादी—वि० [सं० अहिंसावादिन्] अहिंसा का सिद्धांत माननेवाला [को०]।

अहिंस्र¹—वि० [सं०] जो हिंसा न करे। अहिंसक।

अहिंस्र²—संज्ञा पुं० १ एक प्रकार का पौधा। २ नुकसान न पहुँचानेवाला व्यवहार [को०]।

अहि—संज्ञा पुं० [सं०] १ साँप। २ राहु। ३ वृत्रासुर। ४ खल। वचक। ५ आश्लेषा नक्षत्र। ६ पृथिवी। ७ सूर्य। ८ पथिक। ९ सीसा। १० मात्रिक गण मे ठगण अर्थात् छह मात्राओ के समूह का छठा भेद जिसमे क्रम से लघु गुरु गुरु लघु '। ऽऽ।' मात्राएँ होती हैं, जैसे—दयासिधु। ११ इक्कीस अक्षरो के वृत्त का एक भेद जिसमे पहले छह भगण और अत मे मगण होता है, जैसे—भोर समय हरि गेंद जो खेलत सग सखा यमुना तीरा। गेद गिरी यमुना दह मे झटि कूदि परे धरि कै धीरा। ग्वाल पुकार करी तब नद यशोमति रोवति ही धाए। दाऊ रहे मुसुकाय इतै अहि नाथि उतै दह मे आए।—(शब्द०)। १२ नाभि [को०]। १३ बादल [को०]। १४ जल [को०]

अहिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ अंधा साँप। २ ध्रुव तारा [को०]।

अहिक²—वि० [सं] स्थित रहनेवाला (यह संख्यावाचक शब्द के अत मे लगकर उतने दिनो का बोध कराता है) [को०]।

अहिकांत—संज्ञा पुं० [सं० अहिकान्त] पवन। वायु [को०]।

अहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमल का वृक्ष।

अहिकोप—संज्ञा पुं० [सं०] १ निर्मोक। साँप की केंचुल। २ छदविशेष [को०]।

अहिक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ दक्षिण पाचाल की राजधानी। २ प्राचीन दक्षिण पाचाल। अहिच्छत्र।

विशेष—यह देश कपिल से चबल तक था। इसे अर्जुन ने द्रुपद से जीतकर द्रोण को गुरुदक्षिणा मे दिया था।

अहिगण—संज्ञा पुं० [सं०] पाँच मात्राओं के गण—ठगण का सातवाँ भेद जिसमे एक गुरु और तीन लघु होते हैं (ऽ।।।), जैसे—पापहर।

अहिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिक चक्रविशेष [को०]।

अहिच्छत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राचीन दक्षिण पाचाल। यह देश अर्जुन ने द्रुपद से जीतकर द्रोण को गुरुदक्षिणा मे दिया था। २ दक्षिण पाचाल की राजधानी। ३ मेढासींगी।

अहिच्छत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] कुकुरमुत्ता [को०]।

अहिच्छत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अहिच्छत्र नामक देश की राजधानी। २ शक्कर। ३ मेषशृंगी। मेढासिंगी [को०]।

अहिजित्—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण [को०]।

अहिजित—संज्ञा पुं० [सं० अहिजित्] १ इंद्र। २ कृष्ण।

अहिजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागफनी।

अहिटा(पु)†—संज्ञा पुं० [अ० अहदी] वह व्यक्ति जो जमींदार की ओर से उस असामी की फसल काटने से रोकने के लिये बैठाया जाय जिसने लगान या देना न दिया हो। सहना।

अहित¹—वि० [सं०] १ शत्रु। वैरी। विरोधी। २ हानिकारक। अनुपकारी। उ०—और अहित अनरूप अनठनि सो पै बरनि न जाइ।—सूर० १। ५६।

अहित²—संज्ञा पुं० बुराई। अकल्याण। उ०—दुर्वासा दुर्जोधन पठयो पाडव अहित विचारी।—सूर०, १। १२२।

अहितकर—वि० [सं०] अहित करनेवाला। हानिकर [को०]।

अहितकारी—वि० [सं० अहितकारिन्] दे० 'अहितकर'।

अहितुंडिक—संज्ञा पुं० [सं० अहितुण्डिक] १ सँपेरा। साँप को वश मे करनेवाला। २ जादूगर [को०]।

अहिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] आश्लेषा नक्षत्र [को०]।

अहिदैवत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अहिदेव'।

अहिद्विट्—संज्ञा पुं० [सं० अहिद्विष्] १ इंद्र। २ नकुल। ३ मयूर। ४ गरुड। ५ कृष्ण [को०]।

अहिनकुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सर्प और नेवले का स्वाभाविक वैर। २ सहज शत्रुता [को०]।

अहिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] सर्पराज। शेषनाग [को०]।

अहिनामभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] बलदेव का एक नाम [को०]।

अहिनाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अहिनाथ, प्रा० अहिनाह] शेषनाग। उ०—प्रभु बिबाह जस भयेउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू।—मानस, १।३६१।

अहिनिर्मोक—संज्ञा पुं० [सं०] साँप की केंचुल [को०]।

अहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सर्पिणी। नागिन। उ०—दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।—मानस, २।११।

अहिप—संज्ञा पुं० [सं०] शेषनाग। उ०—अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई।—मानस, २।२५३।

अहिपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ वासुकि नाग। २ बड़े आकार का सर्प। ३ शेषनाग। उ०—महि सक न भार उदार अहिपति बार बारहि मोहई।—मानस, ५। ३५।

अहिपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सर्पाकृति नौका [को०]

अहिपूतन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अहिपूतना] बच्चो को होनेवाला एक रोग [को०]।

विशेष—इसमे बच्चो को पानी सा दस्त आता है। गुदा से सदा मल बहा करता है। गुदा लाल बनी रहती है। धोने पोछने से खुजली उठती और फोडे निकलते हैं।

अहिफेन—संज्ञा पुं० [सं०] १ सर्प के मुँह की लार या फेन। २. अफीम।

अहिबुध्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ एकादश रुद्रो मे से एक। २ शिव। ३ उत्तराभाद्रपद नक्षत्र। ४ एक महत् का नाम [को०]।

अहिबेल(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अहिवल्ली, प्रा० अहिवेली] नागबेलि।

पान। उ०—कनक कलित अहिबेलि बढाई। लखि नहिं परै सपरन सहाई।—तुलसी (शब्द०)।

अहिव्रघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अहिबुध्न'।

अहिभय—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपने ही पक्ष के विश्वासघात का भय। २ सर्प के काट खाने का भय।

अहिभयदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साँप को भय देनेवाली। भूम्यामलकी। भुँइआँवला [को०]।

अहिभानु—वि० [सं०] सूर्य की गति का जो कारण हो।—जैसे, वायु। २ वायु का विशेषण। ३ साँप सा चमकनेवाला [को०]।

अहिभुक्—संज्ञा पुं० [सं० अहिभुज्] १ मोर पक्षी। २ नेवला। ३ गरुड पक्षी। ४ गधनाकुली नामक पौधा [को०]।

अहिभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] सर्पधारी शिव [को०]।

अहिम—वि० [सं० अ + हिम] जो शीतल न हो। उष्ण [को०]।

यौ०—अहिमकर, अहिमतेजा, अहिमदीधिति, अहिमद्युति, अहिमयूख, अहिमरश्मि, अहिमरुचि, अहिमरोचिष् = सूर्य।

अहिमर्दनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गन्धनाकुली नामक पौधा [को०]।

अहिमांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

अहिमात—संज्ञा पुं० [सं० अहि = गति + मत् = युक्त अहिमान्] नाक में वह गढा जिसके बल नाक को कीला पर रखते हैं।

अहिमाली—संज्ञा पुं० [सं० अहिमालिन्] सर्प की माला धारण करनेवाले शिव।

अहिमेध—संज्ञा पुं० [सं०] सर्पयज्ञ।

अहिर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अहीर'। उ०—अहिर जाति गोधन कौं मानै।—सूर०, १०।१९२५।

अहिराइ—संज्ञा पुं० [सं० अहिराज, प्रा० अहिराइ] सर्पराज। उ०—गर्व बचन कहि कहि मुख भाषत, मोकौं नहिं जानत अहिराइ।—सूर०, १०।५५५।

अहिरिन ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० अहिर] अहिर की स्त्री। उ०—अहिरिनि हाथ दहेडि सगुन लेइ आवइ हो।—तुलसी ग्र०, पृ० ४।

अहिर्बुध्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ ११ रुद्रों में से एक। २ उत्तराभाद्रपद नक्षत्र, जिसके देवता अहिर्बुध्न हैं।

अहिर्बुध्न्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अहिर्बुध्न'।

अहिलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली। पान।

अहिला—संज्ञा पुं० [सं० अभिप्लव, प्रा० अहिल्लो, हिं० हील, चहला = कीचड] १ पानी की बाढ। बूडा। २ गडबड। ३ दगा।

अहिलाद ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० आह्लाद] दे० 'आह्लाद'। उ०—कामी लज्या नाँ करै मन माँहि अहिलाद। नींद न माँगै साँथरा भूष न माँगै स्वाद।—कबीर ग्र०, पृ० ४१।

अहिलोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामलकी [को०]।

अहिलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक सर्प [को०]।

अहिल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० अहल्या] दे० 'अहल्या'।

अहिवर—संज्ञा पुं० [सं०] दोहे का एक भेद जिसमें पाँच गुरु और ३८ लघु होते हैं, जैसे—कनक वरण तन मृदुल अति कुसुम सरिस दरसात। लखि दुति दूसरन ठकि रहे बिसराई सब बात।

अहिवल्ली—संज्ञा पुं० [सं०] पान। ताबूल। नागवल्ली।

अहिवात—संज्ञा पुं० [सं० अविधवात्व, प्रा० *अइहात ⓟ अहिवात] [वि० अहिवातीन, अहिवाती] सौभाग्य। सोहाग। उ०—(क) राज करौ चितउर गढ राखौ पिय अहिवात।—जायसी (शब्द०)। (ख) अचल होउ अहिवात तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जलधारा।—तुलसी (शब्द०)।

अहिवातिन—वि० स्त्री० [हिं० अहिवात] सौभाग्यवती। सधवा।

अहिवाती—वि० स्त्री० [हिं० अहिवात] सौभाग्यवती। सोहागिन।

अहिविषापहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गधनाकुली पौधा [को०]।

अहिसाव ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अहिशावक] साँप का बच्चा। पोआ। सँपोला।

अही—संज्ञा पुं० [सं०] पृथिवी और आकाश [को०]।

अहीक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार दस क्लेशों में से एक।

अहीन[1]—वि० [सं०] १ जो हीन न हो। आनिवश जिसे हीन समझ लिया जाय। २ जो औरों से कम न हो। महान्। ३ दोषरहित। ४ पूरा। संपूर्ण। ५ जो जातिच्युत न हो [को०]।

अहीन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कई दिनों में पूर्ण होनेवाला यज्ञविशेष। २ बड़ा साँप। ३ वासुकि [को०]।

अहीनगु—संज्ञा पुं० [सं०] एक सूर्यवंशी राजा। देवानीक का पुत्र।

अहीनवादी—वि० [सं० अहीनवादिन्] जो निरुत्तर न हुआ हो। जो वाद में न हारा हो।

अहीर—संज्ञा पुं० [सं० आभीर] [स्त्री० अहीरिन] एक जाति जिसका काम गाय भैंस रखना और दूध बेचना है। ग्वाला। उ०—मोह निवृत्ति पात्र विस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा।—मानस, ७।११७।

अहीरणि—संज्ञा पुं० [सं०] दो मुँहवाला साँप [को०]।

अहीरी[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

अहीरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अहीर] ग्वालिन। अहीरिन।

अहीश—संज्ञा पुं० [सं०] १ साँपों का राजा। शेषनाग २ शेष के अवतार लक्ष्मण और बलराम आदि।

अहीस ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अहीश] शेषनाग। उ०—दानव देव अहीस महीस महामुनि तापस सिद्ध समाजी।—तुलसी ग्र० पृ० २२०।

अहुँठ ⓟ—वि० [हिं०] साढे तीन। तीन और आधा।

अहुजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] घीए के महीन टुकडों को मिलाकर पकाया हुआ चावल।

अहुटना ⓟ—क्रि० अ० [सं० अ + हठ, हिं० हटना] हटना। दूर होना। अलग होना। उ०—(क) विरह भयो घर अगन कोने। हम अबला अति दीन हीन मति तुमही हो विधि योग। सूर बदन देखन हो अहुटै या शरीर को रोग।—सूर (शब्द०)। (ख) ढूँढ़ै देखि दाटत हरत झपटत जाइ लपटत धाइ। फिरि फेरि अहुटत चलत, चुहटत ढुँढ़ै पुहटत आइ—सूदन (शब्द०)।

अहुटाना ⓟ—क्रि० स० [सं० अ + हठ हिं० हटाना] हटाना। दूर करना। अलग करना। भगाना। उ०—उमडि किते कनु चोट चलाई। मुसिंडिनि मारि दए अहुटाइ।—सूदन (शब्द०)।

अहुठ(पु)--वि०[सं० अध्युष्ठ या अर्धचतुर्थ प्रा० *अद्धअउत्थ *अद्धउट्ठ] अध्युट्ठ अद्धुट्ठ] साढे तीन। तीन और आधा। उ०--(क) अहुठ हाथ तन-सरवर हिया कवल तेहि माँह--जायसी ग्रं०, अोगाह। पृ० ५०। अहुठ पैर वसुधा सब कीन्ही धाम अवधि विरमावन।--सूर (शब्द०)। (ग) कबहुँक अहुठ परग करि वसुधा कवहुँक देहरि उनँघि न जानी।--सूर (शब्द०)।

अहुत[1]--संज्ञा पुं० [सं०] जप। ब्रह्मयज्ञ। वेद-पाठ। यह मनुस्मृति के अनुसार पाँच यज्ञो मे से है।

अहुत[2]--वि० १ विना होम किया हुआ। २ अविहित ढग से हवन किया हुआ। ३ जिसे होम भाग या आहुति न मिली हो[को०]।

अहुर--संज्ञा पुं० [सं०] जठराग्नि [को०]।

अहुरमज्द--संज्ञा पुं० [पह अहुरमज्द] पारसी धर्मशास्त्र के अनुसार धर्म, ज्ञान और प्रकाश का देवता।

अहुँठा--वि० [हिं०] दे० 'अहुठ'।

अहुरनावहुरना(पु)-- क्रि० अ० [देश०] आना जाना। आने जाने की क्रिया।

अहूठन--संज्ञा पुं० [सं० स्थूण] जमीन मे गाडा हुआ काठ का कुदा जिसपर रखकर किसान गँडासे से चारा काटते हैं। ठीहा।

अहृदय--वि० [सं०] १ हृदयहीन। अरसिक। २ खलु।नहवास। झक्की [को०]।

अहृद्य वि० [सं०] १ जो हृदयहारी न हो। अरुचिकर। २ जो वलकारक न हो, जैसे--औषध [को०]।

अहे[1]--संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड जिसकी भूरी लकडी मकानो मे लगती है तथा हल और गाडी आदि बनाने के काम मे आती है।

अहे[2]--अव्य (सं०) १ दे० 'हे'। २ खेद, अलगाव या निंदा का वाचक [को०]।

अहेडमान--वि० [सं०] जो अनचाहा या अनिच्छित न हो [को०]।

अहेतु[1]--वि०(सं०) १ विना कारण का। विना सवव का। निमित्त-रहित। २ व्यर्थ। फजूल।

अहेतु[2]--संज्ञा पुं० एक काव्यालकार जिसमे कारणो के इकट्ठे रहने पर भी कार्य का न होना दिखलाया जाय, जैसे--है सखा हूँ रागयुत दिवसहु समुख नित्त। होत समागम तदपि नहिं विधि गति अहो विचित्र।

अहेतुक--वि० [सं०] दे० 'अहेतु'।

अहेतुसम--संज्ञा पुं० [सं०] न्याय मे जाति के चौबीस भेदो मे से एक। विशेष--यदि वादी कोई हेतु उपस्थित करे और उनके उत्तर मे यह कहा जाय कि तुम्हारा यह हेतु भूत, भविष्य या वर्तमान किसी काल मे हेतु नहीं हो सकता, तो ऐसा उत्तर अहेतुसम कहलाएगा।

अहेर--संज्ञा पुं० [सं० आखेट, प्रा० अहेड] [वि० अहेरी] १ शिकार। मृगया। २ वह जतु जिनका शिकार खेला जाय।

अहेरी[1]--संज्ञा पुं० [हिं० अहेर+ई (प्रत्य०)] शिकारी। आखेटक। उ०--चित्रकूट मनु अचल अहेरी। मानस, २।१३३।

अहेरी[2]--वि० शिकार खेलनेवाला। शिकारी। व्याधा।

अहेरु--संज्ञा पुं० [सं०] महाशतावरी या शतमूली नामक पौधा[को०]।

अहै--क्रि० अ० [सं० अस्ति, प्रा० अहइ > अहै] है। उ०--अहै कुमार मोर लघु भ्राता।--मानस, ३। ११।

अहो--अव्य०[सं०]एक अव्यय जिसका प्रयोग कभी संबोधन की तरह और कभी करुणा, खेद, प्रशंसा, हर्ष और विस्मय सूचित करने के लिये होता है, जैसे, (संवोधन) जाहु नही, अहो जाहु चले हरि जात चले दिनही वनि वागे।--केशव (शब्द०)। (करुणा, खेद) अहो! कैसे दुख का समय है। (प्रशंसा) अहो! धन्य तव जनम मुनीसा।--तुलसी (शब्द०)। (हर्ष) अहो भाग्य! आप आए तो। (विस्मय) दूनो दूनो वाढत सुपूनो की निसा मे, अहो आनँद अनूप रूप काहू ब्रज वाल को। पद्माकर (शब्द०)। कभी कभी केवल पादपूरणार्थक भी प्रयोग होता है। जैसे, भारत कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो।--भारत०, पृ० ८५।

अहोई[1]--संज्ञा स्त्री०[हिं०]संतानप्राप्ति के लिये स्त्रियों द्वारा की जाने वाली वह पूजा जो दीपावली से आठ दिन पहले होती है।

अहोई[2]--वि० [सं० अभाविन्, प्रा० *अहोई] न होनेवाली [को०]।

अहोनस(पु)--क्रि० वि० [सं० अहर्निश] रात दिन।

अहोरत्न--संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अहोरात्र-- संज्ञा पुं० [सं०] दिनरात। दिन और रात्रि का नाम।

अहोरावहोरा[1]--संज्ञा पुं० [हिं० अहुरना+वहुरना] विवाह की एक रीति जिसमे दुलहन ससुराल में जाकर उसी दिन अपने पिता के घर लौट जाती है। हेरफेरी।

अहोरावहोरा[2]--क्रि० वि० वार वार। लौट लौटकर। उ०--शरद चंद महँ खंजन जोरी। फिरि फिरि लरहिं अहोर वहोरी।--जायसी (शब्द०)।

अह्द--संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'अहद'।

अह्न--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अह'। (समासात मे) जैसे-मध्याह्न [को०]।

अह्निज--वि० [सं० अह्नि=सप्तमी रूप+ज] दिन मे होनेवाला [को०]।

अह्मि-- वि० [सं०] १ आरामतलव। स्थूल या मोटा। २ वुद्धिमान्। विद्वान्। कवि [को०]।

अह्रिय--वि० [सं०] धृष्ट। ढीठ। निर्लज्ज। घमडी [को०]।

अह्री[1]--वि० [सं०] निर्लज्ज [को०]।

अह्री[2]--संज्ञा स्त्री० निर्लज्जता [को०]।

अह्रीक[1]--वि० [सं०] निर्लज्ज। वेशर्म, जैसे--भिक्षुक [को०]।

अह्रीक[2]--संज्ञा पुं० वौद्ध भिक्षु [को०]।

अह्रुत--वि० [सं०] १ जो टेढा न हो। अकुटिल। २ अकपित [को०]।

अह्ल--वि० [अ०] दे० 'अहल' [को०]।

अह्लखाना--संज्ञा स्त्री० [अ० अह्ल+फा० खानह्] पत्नी। भार्या। गृहस्वामिनी [को०]।

अह्लेकलम--संज्ञा पुं० [अ०] लेखक। मसिजीवी [को०]।

अह्लेवतन--संज्ञा पुं० [अ०] देशवासी। वतनवाले [को०]।

अह्लिया--संज्ञा स्त्री० [अ० अह्लियह्] पत्नी। भार्या। जोरू [को०]।

अह्लीयत--संज्ञा स्त्री० [अ०] योग्यता। पात्रता। निपुणता [को०]।

अह्ल--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दृढ़ता। २ भिलावाँ। भल्लातक [को०]।

आ

आ—हिंदी वर्णमाला का दूसरा अक्षर जो 'अ' का दीर्घ रूप है।

आंकिक—संज्ञा पुं० [सं० आङ्किक] सख्याता। गणक। गणना करनेवाला।

आंकुशिक—संज्ञा पुं० [सं० आङ्कुशिक] अंकुश से आघात करनेवाला [को०]।

आंक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० आङ्क्षी] एक प्रकार का वाद्य [को०]।

आंग[1]—वि० [सं० आङ्ग][वि० स्त्री० आंगी]१ अंग या शरीरसंबंधी। २ शब्द के आधार या अंग से संबंध रखनेवाला (व्या०)। ३ अंग या अवयवयुक्त या उससे संबंध रखनेवाला। ४ गौण या निम्न पात्रों से संबंध रखनेवाला (नाट्य०)। ५ वेदों के अंग से संबंध रखनेवाला। ६ अंग देश मे पैदा किया हुआ या उत्पन्न [को०]।

आंग[2]—संज्ञा पुं० १ अंग देश का राजकुमार। २ सुकुमार शरीर। (पु) ३ अंग। शरीर।

आंगक[1]—वि० [सं० आङ्गक][वि० आंगकी]अंग देश मे उत्पन्न [को०]

आंगक[2]—संज्ञा पुं० १ अंग देश का निवासी व्यक्ति। २ अंग देश का शासक [को०]।

आंगदी—संज्ञा स्त्री० [सं०आङ्गदी] राजा अंगद की राजधानी [को०]।

आंगविद्य—वि० [सं० आङ्गविद्य] १. अंगविद्या संबंधी। २.अंगविद्या का जानकार या ज्ञानी [को०]।

आंगार—संज्ञा पुं० [सं० आङ्गार] कोयले का ढेर या समूह [को०]।

आंगारिक-वि०[सं० आङ्गारिक] कोयला सुलगाने या जलानेवाला[को०]।

आंगिक[1]-वि० [सं० आङ्गिक] [स्त्री० आंगिकी] १ अंगसंबंधी। अंग का। २ अंग की चेष्टा द्वारा व्यक्त या प्रकट किया हुआ, जैसे आंगिक अभिनय (नाट्य०)।

आंगिक[2]—संज्ञा पुं० १ चित्त के भाव को प्रकट करनेवाली चेष्टा, जैसे भ्रूविक्षेप, हाव आदि। २ रस मे कायिक अनुभाव। ३ नाटक में अभिनय के चार भेदों मे से एक।

विशेष—चार भेद ये हैं—(क) आंगिक = शरीर की चेष्टा बनाना, हाथ, पैर हिलाना आदि। (ख) वाचिक = बातचीत आदि की नकल। (ग) आहार्य = वेशभूषा आदि बनाना। (घ) सात्विक = स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य आदि की नकल।

यौ०—आंगिकाभिनय।

४ मृदंग या ढोल का वादक [को०]। ५ बाँहदार या बँहोलीदार पुरुषों का परिधान जो घुटनों के नीचे तक पहुँचता था। अंगा [को०]।

आंगिरस[1]-संज्ञा पुं० [सं० आङ्गिरस] [वि०स्त्री० आंगिरसी] १ अंगिरा के पुत्र बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त। २ अंगिरा के गोत्र का पुरुष। ३ अथर्ववेद की चार ऋचाओं का सूक्त जिसके द्रष्टा अंगिरा थे।

आंगिरस[2]—वि० [सं० आङ्गिरस] १ अंगिरासंबंधी। अंगिरा का। २ अंगिरा से उत्पन्न [को०]।

आंगिरस सत्र—संज्ञा पुं० [सं० आङ्गिरस + सत्र] यज्ञविशेष। बृहस्पति-सत्र [को०]

आंगूष—संज्ञा पुं० [सं० आङ्गूष] स्तुति। ऋचा। स्तोत्र [को०]।

आंग्ल— वि० [अं० ऐंग्लो] अँगरेजो से संबंधित। अँगरेजी।

आंचन—संज्ञा पुं०[सं० आञ्चन] काँटा, वाण या इसी प्रकार की कोई नुकीली चीज शरीर से बाहर निकालना [को०]।

आंचलिक—वि० [सं०अञ्चल] अंचल या स्थानविशेष का।

आंचलिकता—संज्ञा स्त्री० [सं० आञ्चलिक + ता (प्रत्य०)] क्षेत्र विशेष से संबंध रखनेवाली स्थिति।

आंछन-संज्ञा पुं० [सं०आञ्छन] टूटी हुई हड्डी बैठाना। उतरा हुआ पैर या जोड़ ठीक करना [को०]।

आंजन[1]-वि०[सं०आञ्जन]१ अंजनसंबंधी या अंजनयुक्त। २ स्थूल। मोटा [को०]।

आंजन[2]—संज्ञा पुं० १ आँख का अंजन। २ अंजना के पुत्र हनूमान्। मारुति।

आंजनिक्य-संज्ञा पुं०[सं० आञ्जनिक्य]आँख का अंजन बनाने मे काम आनेवाली चीज [को०]।

आंजनी-संज्ञा स्त्री० [सं०आञ्जनी] १ आँख का अंजन। २ अंजन की डिबिया [को०]।

आंजनीकारी-संज्ञा स्त्री० [सं०आञ्जनीकारी]अंजन तैयार करनेवाली या लगानेवाली स्त्री [को०]।

आंजनेय—संज्ञा पुं० [सं०आञ्जनेय] अंजना के पुत्र हनूमान्। उ०—आंजनेय को अधिक कृती उन कार्तिकेय से भी लेखो।—साकेत, पृ० ३८२।

आंजनिक-संज्ञा पुं० [सं० आञ्जनिक] एक प्रकार का अर्धचंद्राकार वाण [को०]।

आंजलिक्य—संज्ञा पुं० [सं० आञ्जलिक्य] नम्रता से अंजलि या हाथ जोड़ना [को०]।

आंजल्यक—संज्ञा पुं० [सं० आञ्जल्यक] करबद्ध होना। हाथ जोड़ना [को०]।

आंजस-वि० [सं० आञ्जस] [वि० स्त्री० आंजसी]सद्यस्क। तात्कालिक। क्रमिक [को०]।

आंजिनेय-संज्ञा पुं० [सं० आञ्जिनेय] १ एक प्रकार की छिपकली [को०]।

आंड[1]—वि० [सं० आण्ड] अंडे से उत्पन्न [को०]।

आंड[2]—संज्ञा पुं० १ ब्रह्मा। हिरण्यगर्भ। २ अंडों का ढेर है। ३ अंडकोश [को०]।

आंडज[1]—वि० [सं० आण्डज] अंडे से उत्पन्न [को०]।

आंडज[2]—संज्ञा पुं० १ पक्षी। २ पक्षी का शरीर। ३ सर्प [को०]।

आंडिक,आंडीक—वि० [सं० आण्डिक,आण्डीकइक] अंडयुक्त [को०]।

आंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० आण्डी] अंडकोष [को०]।

आडीर—वि० [सं० आण्डीर] १ बहुत अडोंवाला। २ लवान। प्रौढ़ (जैसे, बैल) [को०]।

आंत—वि० [सं० आन्त] [वि० स्त्री० आंती] अंतिम [को०]।

आंतर¹—वि० [सं० आन्तर] छिपा हुआ। भीतरी। गुप्त। उ०—इसके बाह्य और आंतर सौंदर्य के भेद करना मेरे विचार से असंगत है।—जय० ग्र०, पृ० ३८।

आंतर²—संज्ञा पुं० १ भीतरी स्वभाव। अंतःप्रकृति। २ जिगरी दोस्त। ३ हृदय [को०]।

आंतःपुरिक¹—वि० [सं० आन्तःपुरिक] अंतःपुरसंबंधी [को०]।

आंतःपुरिक²—संज्ञा पुं० अंतःपुर की वार्ता या कार्य [को०]।

आंतरज्ञ—वि० [सं० आन्तरज्ञ] आंतरिक या गुह्य तत्व को जाननेवाला [को०]।

आंतरतम्य—संज्ञा पुं० [सं० आन्तरतम्य] घनिष्ठ या निकट संबंध, जैसे दो अक्षरों का [को०]।

आंतरप्रपंच—संज्ञा पुं० [सं० आन्तर+प्रपञ्च] भ्रम के कारण उत्पन्न धारणा [को०]।

आंतरागारिक-वि० [सं० आन्तरागारिक] भाडार या भांडागारिक के कर्तव्यों से संबंध रखनेवाला [को०]।

आंतरायिक—वि० [सं० आन्तरायिक] १ अंतर से उपस्थित होनेवाला। २ समय समय पर उद्भूत [को०]।

आंतराल¹—वि० [सं० आन्तराल] अंतर की प्रकृति की जानकारी रखनेवाला [को०]।

आंतराल²—संज्ञा पुं० [सं० आन्तराल] एक दार्शनिक संप्रदाय।

आंतरिक वि० [सं० आन्तर+इक (प्रत्य०)] १. आंतर या हृदयसंबंधी। उ०—जब एक व्यक्ति अपने आंतर सत्य को प्राप्त करने के लिये अपनी सारी शक्तियों को केंद्रीभूत करता है।—मुंशी अभि० ग्र०, पृ० ४७। २ घरेलू। भीतरी। उ०-नंद आंतरिक विग्रह के कारण जर्जरित हो गया था।—चंद्र०, पृ० ३२।

आंतरिकता—संज्ञा स्त्री० [सं० आंतरिक+ता (प्रत्य०)] घनिष्ठता। आत्मीयता। उ०—वह कुछ सकुचाया और फिर जैसे उसने मुझे सह लिया और आंतरिकता भी बढ़ गई।—भस्मावृत०, पृ० १०।

आंतरिक्ष¹ वि० [सं० आन्तरिक्ष] [वि० स्त्री० आंतरिक्षी] १ अंतरिक्ष संबंधी। २ अंतरिक्ष में उत्पन्न [को०]।

आंतरिक्ष²—संज्ञा पुं० १ पृथ्वी और आकाश के बीच का स्थान। २ वर्षा का जल [को०]।

आंतरीक्ष—वि०, संज्ञा पुं० [सं० आन्तरीक्ष] दे० 'आंतरिक्ष' [को०]।

आंतरीय—वि० [सं० आन्तर+ईय (प्रत्य०)] आंतरिक। भीतरी। हार्दिक। उ०— यदि आंतरीय कष्ट न हो तो भी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६०।

आंतर्गेहिक—वि० [सं० आन्तर्गेहिक] [वि० स्त्री० आंतर्गेहिकी] घर के भीतर का। घर के भीतर उत्पन्न [को०]।

आंतर्वेदिक—वि० [सं० आन्तर्वेदिक] वेदिका या वेदी के भीतर का [को०]।

आंतर्वेशिक—संज्ञा पुं० [सं० आन्तर्वेशिक] दे० 'अंतर्वेशिक'। उ०—आंतर्वेशिक से प्रश्न हुआ, कितनी नई दासियाँ अंतःपुर में आई हैं।—इरा०, पृ० ४७।

आंतर्वेश्मिक—वि० [सं० आन्तर्वेश्मिक] घर के अंदर या भीतरी भाग से संबंध रखनेवाला [को०]।

आंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० आन्तिका] बड़ी बहन [को०]।

आंत्र¹—वि० [सं० आन्त्र] आँत का। आँत संबंधी [को०]।

आंत्र²—संज्ञा पुं० आँत [को०]।

आंत्रिक—वि० [सं० आन्त्रिक] आँत संबंधी [को०]।

आंदोल—संज्ञा पुं० [सं० आन्दोल] १ हिलना डुलना। झूलना। २ काँपना। कंपन [को०]।

आंदोलक—संज्ञा पुं० [सं० आन्दोलक] झूला।

आंदोलन—संज्ञा पुं० [सं० आन्दोलन] १ बार बार हिलना डुलना। इधर से उधर हिलना। काँपना। झूलना। उ०—आलोक रश्मि से बुने उषा अंचल में आंदोलन अमंद।—कामायनी, पृ० १६८। २ उथल पुथल करनेवाला सामूहिक प्रयत्न। हलचल। धूम, जैसे, शिक्षा के प्रचार के लिये वहाँ खूब आंदोलन हो रहा है। उ०—इसके पीछे तो खड़ी बोली के लिये एक आंदोलन ही खड़ा हुआ।—इतिहास०, पृ० ५०६।

आंदोलित—वि० [सं० आन्दोलित] [वि० स्त्री० आंदोलिता] हिलता डुलता हुआ। झोंके खाता हुआ। उ०—इन कवियों के मन में एक आँधी उठ रही थी जिसमें आंदोलित होते हुए वे उड़े जा रहे थे।—इतिहास०, पृ० ६५०। २. कंपनयुक्त। हलचल से भरा।

आंधस—संज्ञा पुं० [सं० आन्धस] मंड। माड़ [को०]।

आंधसिक¹—संज्ञा पुं० [सं० आन्धसिक] पाचक। पाककार। रसोइया [को०]।

आंधसिक²—वि० भोजन या खाना बनानेवाला [को०]।

आंध्य—वि० [सं० आन्ध्य] १ अंधता। अंधापन। २ अंधकार [को०]।

आंध्र¹—संज्ञा पुं० [सं० आन्ध्र] १ ताप्ती नदी के किनारे का देश। २. भारत का तेलुगु भाषी प्रदेश या राज्य।

आंध्र²—वि० आंध्र देश का निवासी।

आंब—संज्ञा पुं० [सं० आम्ब] अन्न का एक प्रकार या भेद [को०]।

आंबष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० आम्बष्ठ] अंबष्ठ देश का निवासी व्यक्ति [को०]।

आंबिकेय—संज्ञा पुं० [सं० आम्बिकेय] अंबिका का पुत्र। १ धृतराष्ट्र। २ कार्तिकेय [को०]।

आंबुद—वि० [सं० आम्बुद] अंबुद या बादल संबंधी [को०]।

आंभस—वि० [सं० आम्भस] [वि० स्त्री० आंभसी] १ जल संबंधी। २ द्रव। तरल [को०]।

आंभसिक¹-वि० [सं० आम्भसिक] जल में रहनेवाला। जलचर [को०]।

आंभसिक²—संज्ञा पुं० मछली [को०]।

आंभसी—संज्ञा स्त्री० [सं० आम्भसी] घेरंड संहिता में वर्णित पाँच धारणामुद्राओं में से एक। जलचरी मुद्रा।

आंशिक—वि० [सं०] अंशसंबंधी। अंश विषयक। कुछ। थोड़ा।

आंशुक जल—संज्ञा पुं० [सं०] किरण दिखाया हुआ पानी। वह जल जो एक तांबे के बर्तन में रखकर दिन भर धूप में और रात

भर चाँदनी या ओस में रखकर छान लिया जाय। वैद्यक में इसका बड़ा गुण लिखा है।

आश्य—वि० [सं०] अंश से संबंध रखनेवाला [को०]।

आँ—अव्य० [अनु०] १ विस्मयसूचक शब्द, जैसे,—आँ, क्या कहा ? फिर तो कहो। २ बालक के रोने के शब्द का अनुकरण।

आँक¹—संज्ञा पुं० [सं० अङ्क] १ अंक। चिह्न। निशान। २ संख्या का चिह्न। अदद। उ०—(क) तुलसी महीस देखे, दिन रजनीस जैसे, सूने पर सून से मनो मिटाए आँक के।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१८। (ख) कहत सबै बेंदी दिये आँक दस गुनो होत।—बिहारी र०, दो० ३२७। ३ अक्षर। हरफ। उ०-(क) बिरह तचे उपरयौ सु अब सेंहुड कैसो आँकु।—बिहारी र०, दो० ४५७। (ख) गुण पै अपार साधु, कहैं आँक चारि ही में अर्थ विस्तारि कविराज टकसार है।—प्रिया० (शब्द०)। ४. गढ़ी हुई बात। ५ दृढ़ निश्चय। निश्चित सिद्धांत। उ०—जाउँ राम पहिं आएसु देहू। एकहि आँक मोर मन एहू।—मानस, २।१७८। (ख) एकहि आँक इहइ मन माहीं। प्रात काल चलिहौं प्रभु पाहीं।—मानस, २।१८३। ६ अंश। हिस्सा। उ०—काम-संकल्प उर निरखि बहु बासनहि आस नहिं एकहू आँक निरबान की।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६३। ७. किसी मनुष्य के नाम पर प्रसिद्ध वंश, जैसे, वे बड़े कुलीन हैं, वे अमुक आँक के हैं। ८ अँकवार। गोद। उ०—पीछे ते गहि लाँकरी, गही आँकि री फेरि।—स० सप्तक, पृ० २४३।

मुहा०—आँक भरना=आलिंगन करना। उ०—छीतस्वामी गिरिवरधर मगन भए आँकों भरत, सुख स्वाद इहै, समै को कहत न बनि आवै।—छीत०, पृ० ४१।

९ भाग्य। उ०—एक को आँक बनावत मेटत पोथिय काँख लिए दिन जैहैं।—घनानंद (भू०) पृ० ५३। १० शान। उ०—कठिन काठियावाड़ चुटीले के परिपोषे, चंचल चपल चलाँक बाँकपन आँक अनोखे।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११२। ११ अँकुर। उ०—जाम्यो आँक अकार नेह दिन दिन बढ़त करम सदेह।—भीखा श०, पृ० ४७। १२ नौ मात्रा के छंदों की संख्या। अंक। १३ छकड़े या बैलगाड़ियों की बल्लियों के नीचे दिया हुआ लकड़ी का मजबूत ढाँचा जिसमें धुरी पहिए में पहनाई जाती है।

आँक²-संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आँख'। उ०—जितवा है बिन जिव में सुनता है बिन कान। देखता है बिन आँक मे, कादर बिन तन जान।—दक्खिनी०, पृ० ३८५।

आँकड़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० अङ्क, हिं० आँक+ड़ा (प्रत्य०)] १ आँक। अदद। संख्या का चिह्न। उ०—जनसंख्या से संबंधित समस्त आँकड़े जनगणना १९५१ पर आधारित है।—शुक्ल अभि० ग्रं०, (विविध) पृ० २।

आँकड़ा²—संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों की एक बीमारी।

आँकड़ा³—संज्ञा पुं० [सं० अर्क, हिं० आँक+ड़ा (प्रत्य०)] मदार। आँक।

आँकना¹—संज्ञा पुं० [सं० अ+कर्ण=दाना] ज्वार की बाल की खूँडी जिसमें से दाना निकाल लिया गया हो।

आँकना—क्रि० स० [सं० अङ्कन] चिह्नित करना। निशान लगाना। दागना। उ०—खिन खिन जीव सँडासन आँका। औ नित डोम छुआवहि बाँका।—जायसी (शब्द०)। २ कूतना। अंदाज करना। तखमीना करना। मूल्य लगाना। उ०—सन् १९५१ की पशुगणना के अनुसार राज्य में पशुधन से प्राप्त होनेवाले पदार्थों का मूल्य २१ करोड़ रुपए आँका गया है।—शुक्ल अभि० ग्रं०, (विविध), पृ० १७। ३ अनुमान करना। ठहराना। निश्चित करना। उ०—आम को कहत आमली है आमली को आम आक ही अनारन को आँकिबो करति है।—पद्माकर, ग्रं० पृ० २१८।

आँकबाँक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आक बाक'। उ०—जैसें कछु आँक बाँक बकत हैं। आजु हुति, तैसें जिन नाउँ मुख काइ को निकसि जाइ।—केशव ग्रं०, पृ० ५३१।

आँकमा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्क] आलिंगन। उ०—बाहु वलय आँकम भरे भाग, आपन आइति नहि आपन आँग।—विद्यापति, पृ० २०७।

आँकर¹—वि० [सं० आकर=खान, जो गहरी होती है] १ गहरा। 'स्याह' या 'सेव' का उलटा।

विशेष—जोताई दो तरह की होती है—एक आँकर अर्थात् खूब गहरी (अँवाय) और दूसरी स्याह या सेव।

२ बहुत अधिक। उ०—मोहमद मारयो रात्यो कुमति कुनारि सो बिसारि वेद लोक लाज आँकरो अचेतु है।—तुलसी (शब्द०)।

आँकर²—वि० [सं० अक्रय्य] महँगा।

आँकल—संज्ञा पुं० [सं० अङ्क, हिं० आँक=दाग] दागा हुआ साँड।—(हिं०)।

आँकुड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँकड़ा'।

आँकुर—संज्ञा पुं० [हिं०] पुं० 'अंकुर'। उ०—दुहुक आसा दीप मिझाएल, मदन आँकुर भांगु।—विद्यापति, पृ० ३७।

आँकुस—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश] दे० 'अंकुश'। उ०—जोवन अस मैमत न कोई, नवैं हस्ति जौं आँकुस होई।—जायसी ग्रं०, पृ० ७४।

आँकू—वि० [सं० अङ्क, हिं० आँक+ऊ (प्रत्य०)] आँकने या कूतनेवाला। तखमीना करनेवाला।

आँख¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि, प० अँक्ख] देखने की इंद्रिय। वह इंद्रिय जिसमें प्राणियों को रूप अर्थात् वर्ण-विस्तार तथा आकार का ज्ञान होता है।

विशेष—मनुष्य के शरीर में यह एक ऐसी इंद्रिय है, जिसपर आलोक के द्वारा पदार्थों का बिंब खिंच जाता है। जो जीव आरोह नियमानुसार अधिक उन्नत है, उनकी इंद्रियों की बनावट अधिक पेचीली और जटिल होती है पर क्षुद्र जीवों में इनकी बनावट बहुत सादी, कहीं कहीं तो एक बिंदी के रूप में होती है; उनपर रक्षा के लिये पलक और बरौनी इत्यादि बखेड़ा नहीं होता। बहुत क्षुद्र जीवों में चक्षुरिंद्रियों की संख्या नियत नहीं होती। शरीर के किसी चार, छः बिंदियाँ सी होती हैं जिनसे

मकडियो की आठ आँखें प्रसिद्ध हैं।। रीढवाले जीवों की आँखें खोपडे के नीचे गड्ढो मे बडी रक्षा के साथ बैठाई रहती हैं और उनपर पलक और बरौनी आदि का आवरण रहता है। वैज्ञानिको का कथन है कि सभ्य जातियाँ वर्णभेद अधिक कर सकती हैं और पुराने लोग रंगो मे इतने भेद नही कर सकते थे। आँख बाहर से लबाई लिए हुए गोल तथा दोनो किनारो पर नुकीली दिखाई पडती है। सामने जो सफेद काँच की सी भिल्ली दिखाई पडती है उसके पीछे एक और भिल्ली है जिसके बीचोबीच एक छेद होता है। इसके भीतर उसी से लगा हुआ एक उन्नतोदर काँच के सदृश पदार्थ होता है जो नेत्र द्वारा ज्ञान का मुख्य कारण है, क्योंकि इसी के द्वारा प्रकाश भीतर जाकर रेटिना पर के ज्ञानतंतुओं पर रूप का प्रभाव डालता है।

पर्या०—लोचन। नयन। नेत्र। ईक्षण। अक्षि। दृक्। दृष्टि। अंबक। विलोचन। वीक्षण। प्रेक्षण। चक्षु।

यौ०— **उनींदी आँख**=नीद से भरी आँख। वह आँख जिसमे नीद आने के लक्षण दिखाई पडते हो। **कजी आँख**=नीली और भूरी आँख। बिल्ली की सी आँख। **कँटीली आँख**=घायल करनेवाली आँख। मोहित करनेवाली आँख। **गिलाफी आँख**=पपोटों से ढकी हुई आँख, जैसे कबूतर की। **चचल आँख**=यौवन के उमग के कारण स्थिर न रहनेवाली आँख। **चरबाँक आँख**=चचल आँख। **चियाँ सी आँख**=बहुत छोटी आँख। **चोर आँख**=(१) वह आँख जिसमे सुरमा या काजल मालूम न हो। (२) वह आँख जो लोगो पर इस तरह पडे कि मालूम न हो। **धँसी आँख**=भीतर की ओर धँसी हुई आँख। मतवाली आँख=मद से भरी आँख। **मदभरी आँख, रतभरी आँख**=वह आँख जिसमे मद टपकता हो। **रसीली आँख, शरबती आँख**=गुलाबी आँख।

मुहा०—**आँख**=(१) ध्यान। लक्ष्य। जैसे, उनकी आँख बुराई ही पर रहती है। (२) विचार। विवेक परख। शिनाख्त। जैसे—(क) उसके आँख नही है, वह क्या सौदा लेगा। (ख) राजा के आँख नही कान होता है। (३) कृपादृष्टि। दया भाव, जैसे,—अब तुम्हारी वह आँख नही रही। (४) सतति। सतान। लडका वाला, जैसे—(क) सोगिन मर गई, आँख छोड गई। (ख) एक आँख फूटती है तो दूसरी पर हाथ रखते हैं। (अर्थात् जब एक लडका मर जाता है तब दूसरे को देखकर धीरज धरते हैं और उसकी रक्षा करते है।) (ग) मेरे लिये तो दोनो आँखें बराबर हैं। **आँख आना**=आँख मे लाली, पीडा और सूजन होना। **आँख उठना**=आँख आना। आँख मे लाली और पीडा होना। **आँख उठाना**=ताकना। देखना। सामने नजर करना। जैसे—आँख उठाई तो चारो ओर मैदान देख पडा। ( ) बुरी नजर से देखना। बुरा बर्ताव करना। हानि पहुँचाने की चेष्टा करना। जैसे—हमारे रहते तुम्हारी ओर कोई आँख उठा सकता है? **आँख उठाकर न देखना**=(१) ध्यान न देना। तिरस्कार करना, जैसे—(क) मैं उनके पास घटो बैठा रहा पर उन्होंने आँख उठाकर भी नही देखा। (ख) ऐसी चीजो को तो हम आँख उठाकर भी नही देखते। (२) सामने न ताकना। लज्जा या सकोच से बराबर दृष्टि न करना, जैसे—वह लडका तो आँख ही ऊपर नही उठाता, हम समझायें क्या। **आँख उलट जाना**=(१) पुतली का ऊपर चढ़ जाना। आँख पथराना (यह मरने के समय होता है), जैसे,—आँखें उलट गईं, अब क्या आशा है। (२) घमड से नजर बदल जाना। अभिमान होना, जैसे—इतने ही धन मे तुम्हारी आँखें उलट गई हैं। **आँख ऊँची न होना**=लज्जा से बराबर ताकने का साहस न होना। लज्जा से दृष्टि नीचे रहना, जैसे,—उस दिन से फिर उसकी आँख हमारे सामने ऊँची नही हुई। **आँख ऊपर न उठाना**=(१) लज्जा या भय से नजर ऊपर की ओर न करना। दृष्टि नीची रखना। **आँख ओट, पहाड़ ओट**=(१) निकट न होना। (२) जब आँख के सामने नहीं, तब क्या दूर, क्या नजदीक। **आँख कड़ आना**=अधिक ताकने या जागने से एक प्रकार की पीडा होना। **आँख का अंधा, गाँठ का पूरा**=मूर्ख धनवान। अनाडी मालदार। वह धनी जिसे कुछ विचार या परख न हो, जैसे—(क) हे भगवान् भेजो कोई आँख का अंधा गाँठ का पूरा। (ख) जो आँख का अंधा होगा, वही यह सडा कपडा लेगा। **आँख का काँटा होना**=(१) खटकना। पीडा देना। (कष्टक होना। बाधक होना। शत्रु होना, जैसे,—उसी के मारे तो हमारी कुछ चलने नही पाती, वही तो हमारी आँख का काँटा हो रहा है। **आँख का काजल चुराना**=गहरी चोरी करना। बडी सफाई के साथ चोरी करना। **आँख का जाना**=आँख फूटना, जैसे,—उसकी आँख चेचक मे जाती रही। **आँख का जाला**=आँख की पुतली पर एक सफेद भिल्ली जिसके कारण धुंध दिखाई देता है। **आँख का ढेला**=आँख का बट्टा। आँख का वह उभडा हुआ सफेद भाग जिसपर पुतली रहती है। **आँख का तारा**=(१) आँख का तिल। कनीनिका। (२) बहुत प्यारा व्यक्ति। (३) संतति। **आँख का तिल**=आँख की पुतली के बीचोबीच छोटा गोल तिल के बराबर काला धब्बा जिसमे सामने की वस्तु का प्रतिबिंब दिखाई पडता है। यह यथार्थ मे एक छेद है जिससे आँख के सबसे पिछले परदे का काला रग दिखाई पडता है। आँख का तारा। कनीनिका। **आँख का तेल निकालना**=आँख को कष्ट देना। ऐसा महीन काम करना जिससे आँखों पर बहुत जोर पडे, जैसे सीना पिरोना, लिखना, पढना आदि। उ०—क्यों न पो देंगे आँख का तिल वे, आँख का तेल जो निकालेंगे।—चोखे०, पृ० १७। **आँख कान खुला रहना**=सचेत रहना। सावधान होना। होशियार रहना। **आँख का परदा**=आँख के भीतर की भिल्ली जिससे होकर प्रकाश जाता है। **आँख का पर्दा उठना**=ज्ञानचक्षु का खुलना। अज्ञान या भ्रम का दूर होना। चेत होना, जैसे—उसकी आँख का परदा उठ गया है, अब वह ऐसी बातो पर विश्वास न करेगा। **आँख पर पर्दा पडना**=कुछ सुझाई न पडना। मोहग्रस्त होना। **आँख का पानी ढल जाना**=लज्जा छूट जाना। लाज शर्म का जाता रहना, जैसे,—जिसकी आँख का पानी ढल गया है, वह चाहे जो कर डाले। **आँख का पानी मरना**=दे० 'आँख का पानी ढलना'। **आँख की किरकिरी**=आँख का काँटा।

चक्षुशूल। खटकनेवाली वस्तु या व्यक्ति। **आँखों की ठंडक**=अत्यंत प्यारा व्यक्ति या वस्तु। **आँख की पुतली**=आँख के भीतर कार्निया और लेंस के बीच का रंगीन भूरी झिल्ली का वह भाग जो सफेदी पर की गोल काट से होकर दिखाई पड़ता है। इसी के बीच में वह तिल या कृष्णतारा दिखाई पड़ता है जिसमें सामने की वस्तु का प्रतिबिंब झलकता है। इसमें मनुष्य का प्रतिबिंब एक छोटी पुतली के समान दिखाई पड़ता है, इसी से इसे पुतली कहते हैं। (२) प्रिय व्यक्ति। प्यारा मनुष्य। जैसे,—वह हमारी आँख की पुतली है, उसे हम पास से जाने न देंगे। **आँख की पुतली फिरना**=आँख की पुतली का चढ़ जाना। पुतली का स्थान बदलना। आँख का पथराना (यह मरने का पूर्व लक्षण है)। **आँख की बदी भौं के आगे**=किसी के दोष को उसके इष्ट मित्र या भाई बंधु के सामने ही कहना। **आँख की सूइयाँ निकालना**=किसी काम के कठिन और अधिक भाग के अन्य व्यक्ति द्वारा पूरा हो जाने पर उसके शेष अल्प और सरल भाग को पूरा करके सारा फल लेने का उद्योग करना, जैसे,—इतने दिनों तक तो मर मरकर हमने इसको इतना दुरुस्त किया, अब तुम आए हो आँखों की सूइयाँ निकालने।

विशेष—इस मुहाविरे पर एक कहानी है। एक राजकन्या का विवाह बन में एक मृतक से हुआ जिसके सारे शरीर में सूईयाँ चुभी हुई थीं। राजकन्या नित्य बैठकर उन सूइयों को निकाला करती थी। उसकी एक लौंडी भी साथ थी जो यह देखा करती थी। एक दिन राजकन्या कहीं बाहर गई। लौंडी ने देखा कि मृतक के शरीर की सारी सूइयाँ निकल चुकी हैं, केवल आँखों की बाकी हैं। उसने आँखों की सूइयाँ निकाल डालीं और वह मृतक जी उठा। उस लौंडी ने अपने को उसकी विवाहिता बतलाया, और जब वह राजकन्या आई, तब उसे अपनी लौंडी कहा। बहुत दिनों तक वह लौंडी इस प्रकार रानी बनकर रही। पर पीछे से सब बातें खुल गईं और राजकन्या के दिन फिरे।

आँखों के आगे अँधेरा छाना=मस्तिष्क पर आघात लगने या कमजोरी से नजर के सामने थोड़ी देर के लिये कुछ न दिखाई देना। बेहोशी होना। मूर्च्छा आना। **आँखों के आगे अँधेरा होना**=संसार सूना दिखाई देना। विपत्ति या दुख के समय घोर नैराश्य होना। जैसे,—लड़के के मरते ही उनकी आँखों के आगे अँधेरा हो गया। **आँखों के आगे उजाला होना**=प्रकाश होना। ज्ञान होना। **आँखों में चमक आना**=प्रसन्न होना। **आँखों के आगे चिनगारी छूटना**=आँखों का तिलमिलाना। तिलमिली लगना। मस्तिष्क पर आघात पहुँचने पर चकाचौंध सी लगना। **आँखों के आगे नाचना**=दे० 'आँखों में नाचना'। **आँखों के आगे पलकों की बुराई**=किसी के इष्ट-मित्र के आगे ही उसकी निंदा करना। जैसे—नहीं जानते ये कि आँखों के आगे पलकों की बुराई कर रहे हैं, सब बातें खुल जायँगी ? **आँखों के आगे फिरना**=दे० 'आँखों में फिरना'। **आँखों के आगे रखना**=आँखों के सामने रखना। **आँखों के कोए**=आँखों के डेले। **आँखों के डोरे**=आँखों के सफेद डेलों पर लाल रंग की बहुत बारीक नसें। **आँखों के तारे छूट**[illegible] दे० 'आँखों के आगे चिनगारी छूटना'। **आँखों के सा**[illegible] **नाचना**=दे० 'आँखों में नाचना'। आँखों के सामने रखना निकट रखना। पास से जाने न देना। जैसे,—हम तो लड़[illegible] को आँखों के सामने ही रखना चाहते हैं। **आँखों सामने होना**=सम्मुख होना। आगे आना। **आँखों खो बैठना**=आँखों को खो देना। अंधा होना, जैसे, यदि यही रोना धोना रहा तो आँखों को खो बैठोगी (स्त्री॰ **आँख खटकना**=(१) आँख टीसना। आँख किरकिराना उ०—कुमकुम मारो गुलाल, नंद जू के कृष्णलाल, ज[illegible] कहूँगी कंसराज से आँख खटक मोरी गई है लाल।—हो (शब्द०)। (२) किसी से मनमुटाव होना। **आँख खुलना** (१) पलक खुलना। परस्पर मिली या चिपकी हुई पलकों अलग हो जाना, जैसे,—(क) बच्चे की आँखें धो डालो खुल जायँ।—(ख) बिल्ली के बच्चों ने अभी आँखें न खोलीं। (२) नींद टूटना, जैसे,—तुम्हारी आहट पाते ही मे आँखें खुल गईं। (३) चेत होना। ज्ञान होना। भ्रम दूर होना, जैसे,—पश्चिमीय शिक्षा से भारतवासियों की आ[illegible] खुल गई। (४) चित्त स्वस्थ होना। ताजगी आना। हो[illegible] हवास-दुरुस्त होना। तबियत ठिकाने आना। जैसे,—[illegible] शरबत के पीते ही आँखें खुल गईं। **आँख खुलवाना**=(आँख बनवाना। (२) मुसलमानों के विवाह की एक रीति। [illegible] दुलहिन के सामने एक दर्पण रखा जाता है और वे उस एक दूसरे का मुँह देखते हैं। **आँख खोलना**=(१) [illegible] उठाना। ताकना। (२) आँख बनाना। आँख का जाला माँड़ा निकालना। आँख को दुरुस्त करना, जैसे,—डाक्टर यहाँ बहुत से अंधों की आँखें खोलीं। (३) चेताना। सावध करना। ज्ञान का संचार करना। वास्तविक बोध करान जैसे—उस महात्मा ने सदुपदेश से हमारी आँखें खो[illegible] दीं। (४) ज्ञान का अनुभव करना। वाकिफ होना। माल[illegible] होना। उ०—भाई बंधु और कुटुंब कबीला झूठे मित्र गिनावे आँख खोल जब देख बावरे ! सब सपना कर पावे।—कबी (शब्द०)। (५) सुध होना। स्वस्थ होना, जैसे— चार दिन पर आज बच्चे ने आँख खोली है। **आँख गड़ना** (१) आँख किरकिराना। आँख दुखना, जैसे—हमारी आ[illegible] कई दिनों से गड़ रही है, आवेंगी क्या ? (२) आँख धँसना आँख बैठना, जैसे,—उसकी गड़ी गड़ी आँखें देखकर उसे पहचान लेना। (३) दृष्टि जमना। टकटकी बँधना जैसे,—(क) किस चीज पर तुम्हारी आँखें इतनी देर से गड़ हुई हैं। (ख) उसकी आँखें तो किताब में गड़ी हुई हैं, उ[illegible] इधर उधर की क्या खबर। (४) बड़ी चाह होना। प्राप्ति की उत्कट इच्छा होना, जैसे,—जिस वस्तु पर तुम्हारी आँ[illegible] गड़ती है, उसे तुम लिए बिना नहीं छोड़ते। **आँख गड़ाना**= (१) टकटकी बाँधना। स्तब्ध दृष्टि से ताकना। (२) नजर रखना। चाहना। प्राप्ति की इच्छा करना। जैसे,—अब तुम इसपर आँख गड़ाए हो, काहे को बचेगी। **आँख घुलना**= चार आँखें होना। घूर घुरघुरी होना। दृष्टि से दृष्टि मिलना, जैसे, घंटों से घूर आँखें घुल रही हैं। आँखें

चढ़ना=नशे, नींद या सिर की पीड़ा में पलकों का तन जाना और नियमित रूप से न गिरना। आँखों का लाल होना, जैसे—देखते नहीं उसकी आँखें चढ़ी हुई हैं और मुँह से सीधी बात नहीं निकलती। आँख चमकाना=आँखों से तरह तरह के इशारे करना। आँख की पुतली इधर उधर घुमाना। आँख मटकाना। आँख चरने जाना=दृष्टि का जाता रहना, जैसे—तुम्हारी आँख क्या चरने गई थी जो सामने से चीज उठ गई। आँख चार करना, चार आँखें करना=देखादेखी करना। सामने आना, जैसे,—जिस दिन से मैंने खरी खरी सुनाई, वे मुझसे चार आँखें नहीं करते। आँखें चार होना, चार आँखें होना=(१) देखादेखी करना। सामना होना। एक दूसरे के दर्शन होना, जैसे,—आँखें चार होते ही वे एक दूसरे पर मरने लगे। (२) विद्या का होना, जैसे,—हम तो अपढ़ हैं, पर तुम्हें तो चार आँखें हैं, तुम ऐसी भूल क्यों करते हो। आँख चीर चीर कर देखना=दे० 'आँख फाड़ फाड़ कर देखना'। आँख चुराना=नजर बचाना। कतराना। सामने न होना। जैसे—उस दिन से रुपया ले गया है, आँख चुराता फिरता है। (२) लज्जा से बराबर न ताकना। दृष्टि नीची करना (३) रुखाई करना। ध्यान न देना, जैसे— अब वे बड़े आदमी हो गए हैं, अपने पुराने मित्रों से आँख चुराते हैं। आँख चुराकर कुछ करना=छिपाकर कोई काम करना। आँख चूकना=नजर चूकना। दृष्टि हट जाना। असावधानी होना, जैसे,—आँख चूकी कि माल यारों का। आँख छत से लगना=(१) आँख ऊपर को चढ़ना। आँख टँगना। स्तब्ध होना। आँख का एकदम खुली रहना। (यह मरने के पूर्व की अवस्था है।) (२) टकटकी बँधना। आँख छिपाना=(१) नजर बचाना। कतराना। टालमटूल करना। (२) लज्जा से बराबर न ताकना। दृष्टि नीची करना। (३) रुखाई करना। बेमुरौवती करना। ध्यान न देना। आँख जमना=नजर ठहरना। दृष्टि का स्थिर रहना, जैसे,—पहिया इतनी जल्दी जल्दी घूमता है कि उसपर आँख नहीं जमती। आँख झपकना (१) आँख बंद होना। पलक गिरना। (२) नींद आना। झपकी लगना, जैसे,—आँख झपकी ही थी कि तुमने जगा दिया। आँख झपकाना=आँख मारना। इशारा करना। आँख झेंपना=दृष्टि नीची होना। लज्जा मालूम होना, जैसे,—सामने आते ही आँख झेंपती है। आँख टँगना=(१) आँख ऊपर को चढ़ जाना। आँख की पुतली का स्तब्ध होना। आँख का एकदम खुला रहना (यह मरने का पूर्वलक्षण है)। (२) टकटकी बँधना, जैसे,—तुम्हारे आसरे में हमारी आँखें टँगी रह गईं, पर तुम न आए। आँख टेढ़ी करना=(१) भौं टेढ़ी करना। रोष दिखाना। (२) आँखें बदलना। रुखाई करना। बेमुरौवती करना। आँखें ठंढी होना=तृप्ति होना। संतोष होना। मन भरना। इच्छा पूरी होना, जैसे,—अब तो उसने मार खाई, तुम्हारी आँखें ठंढी हुईं? आँखें डबडबाना=(१) (क्रि० अ०) आँखों में आँसू भर आना। आँखों में आँसू आना, जैसे,—यह सुनते ही उसकी आँखें डबडबा आईं। (२) (क्रि० स०) आँखों में आँसू लाना। अश्रु भरना, जैसे,—वह आँखें डबडबाकर बोला। आँख डालना=दृष्टि डालना। देखना। ध्यान देना। चाह करना। इच्छा करना, जैसे—भले लोग पराई वस्तु पर आँख नहीं डालते। आँखें ढकर ढकर करना=पलकों की गति ठीक न रहना। आँखों का तिलमिलाना। जैसे,—कई दिनों के उपवास से उसकी आँखें ढकर ढकर कर रही हैं। आँखें तरसना=देखने के लिये आकुल होना। दर्शन के लिये दुखी होना, जैसे—तुम्हें देखने के लिये आँखें तरस गईं। आँखें तरेरना=क्रोध से आँखें निकाल कर देखना। क्रोध की दृष्टि से देखना। उ०—पुनि लछिमन बिहँसि बहुरि नयन तरेरे राम।—मानस, १।२७०। आँख तले न आना=कुछ भी न जँचना। उ०—देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ।—मानस, १।२९८। आँखों तले न लाना=कुछ न समझना। तुच्छ समझना, जैसे,—वह किसी को अपनी आँखों तले लाता है जो तुम्हारी बात मानेगा? आँख दबाना=पलक गिराना। आँख मचकाना; जैसे, (क) वह जरा आँख दबाकर नाचता है। (ख) प्रभु ने आप की ओर आँख दबाए थीं कि वह तुरत चुप हो गई। आँख दिखाना=क्रोध से आँखें निकालकर देखना। क्रोध की दृष्टि से देखना। डर दिखाना। उ०—(क) जाने ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि।—मानस, १।२६६। (ख) मुनि सरोष भृगुनायकु आए। बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए।—मानस, १।२६३। (ग) [illegible] दिखावत आँखि।—तुलसी ग्रं०, पृ० ११४। आँख दीदे से डरना=दे० 'आँख नाक से डरना'। आँखें दुखना=आँख में पीड़ा होना। आँखों देखते=(१) आँखों के सामने। देखते हुए। जानबूझकर, जैसे,—(क) आँखों देखते तो हम ऐसा अन्याय नहीं होने देंगे।—(ख) आँखों देखते मक्खी नहीं निगली जाती। (२) देखते देखते। थोड़े ही दिनों में, जैसे—आँखों देखते इतना बड़ा घर बिगड़ गया। आँखों देखा=आँखों से देखा हुआ। अपना देखा। उ०—जग में उपजे जग में रहे। आँखों देखा सबसे कहे।—(पहेली, काजल।), जैसे,—यह तो हमारी आँखों देखी बात है। आँखें दौड़ाना=नजर दौड़ाना। दीठ पसारना। चारों ओर दृष्टि फेरना। इधर उधर देखना, जैसे,—मैंने इधर उधर बहुत आँख दौड़ाई पर कहीं कुछ न देख पड़ा। आँख न उठना=(१) लज्जा से दृष्टि नीची रहना। (२) एहसान से दबा रहना। (३) दे० 'आँख न आना'। आँख न उठाना=(१) नजर न उठाना। सामने न देखना। बराबर न ताकना। (२) लज्जा से दृष्टि नीची किए रहना (३) किसी काम में बराबर लगे रहना, जैसे,—वह सवेरे से जो सीने बैठा तो दिन भर आँख न उठाई। आँख न खोलना=(१) आँख बंद रखना। (२) सुस्त पड़ा रहना। बेसुध रहना। गाफिल रहना, जैसे,—आज चार दिन हुए बच्चे ने आँख न खोली। बादल का आँख न खोलना=बादल का घिरा रहना। आकाश का बादलों से ढका रहना। मेह का आँख न खोलना=पानी का न थमना। वर्षा का न रुकना। आँख न ठहरना=चमक या द्रुत गति के कारण दृष्टि न जमना। जैसे,—(क) वह ऐसा भड़कीला कपड़ा है कि आँख नहीं ठहरती। (ख) पहिया इतनी तेजी से घूमता था कि उसपर आँख नहीं ठहरती थी। आँख न पसीजना=आँख में आँसू न आना। (एक) आँख न भाना=बिलकुल

अच्छा न लगना, जैसे,—ये बातें हमे एक आँख नही भाती। **आँख नाक से डरना**=ईश्वर से डरना जो पापियों को अन्धा और नकटा कर देता है। पाप से डरना जिससे आँख नाक जाती रहती है, जैसे—भाई, मुझ दीन से न डर तो अपनी आँख नाक से तो डर। **आँख निकालना**=आँख दिखाना। क्रोध की दृष्टि से देखना, जैसे,—हमपर क्या आँख निकालते हो, जिसने तुम्हे कुछ कहा हो उसके पास जाओ।—(२) आँख के ढेले को छुरी से काटकर अलग कर देना। आँख फोड़ना, जैसे—उस दुष्ट सरदार ने शाह आलम की आँख निकाल ली। **आँख नीची करना**=दृष्टि नीची करना। सामने न ताकना जैसे—वहाँ आँख नीची किए चला जा रहा था। (२) लज्जा या संकोच से बराबर नजर न करना। दृष्टि न मिलाना। जैसे,—कब तक आँखे नीची किए रहोगे ? जो पूछते हैं, उसका उत्तर दो। **आँख नीची होना**=सिर नीचा होना। लज्जा उत्पन्न होना। अप्रतिष्ठा होना, जैसे,—कोई ऐसा काम न करना चाहिए जिससे हर आदमी के सामने आँख नीची हो। **आँख नीली पीली करना**=बहुत क्रोध करना। तेवर बदलना। आँख दिखाना। **आँख पटपटा जाना**=(१) आँख फूट जाना (स्त्रियाँ गाली देने मे अधिक बोलती हैं)। (२) अत्यधिक भूख या प्यास से व्याकुल होना। **आँख पट्टम होना**=आँख फूट जाना **आँख पड़ना**=(१) दृष्टि पड़ना। नजर पड़ना, जैसे,—संयोग से हमारी आँख उसपर पड़ गई नहीं तो वह बिल्कुल पास आ जाता। (२) ध्यान जाना। कृपादृष्टि होना, जैसे,—गरीबों पर किसी की आँख नही पड़ती। (३) चाह की दृष्टि होना। पाने की इच्छा होना, जैसे,—उनकी इस किताब पर बार बार आँख पड़ रही है। (४) कुदृष्टि पड़ना। ध्यान जाना, जैसे,—जिस वस्तु पर तुम्हारी आँख पड़े, भला वह रह जाय ? **आँख पथराना**=पलक का नियमित गति से न गिरना और पुतली की गति का मारा जाना। नेत्र स्तब्ध होना (यह मरने का पूर्वलक्षण है), जैसे,—(क) अब उनकी आँखे पथरा गई हैं, और बोली भी बंद हो गई है।—(ख) तुम्हारी राह देखते देखते आँखे पथरा गईं। **आँखों पर आइए या बैठिए**=आदर के साथ आइए। सादर पधारिए। (जब कोई बहुत प्यारा या बड़ा आता है या आने के लिये कहता है, तब लोग उसे ऐसा कहते हैं)। **आँखों पर ठिकरी रख लेना**=(१) जान बूझकर अनजान बनना। (२) रुखाई करना। बेमुरौवती करना। शील न करना। (३) गुण न मानना। उपकार न मानना। कृतघ्नता करना। (४) लज्जा खो देना। निर्लज्ज होना। बेहया होना। **आँखों में पट्टी बांधना**=(१) दोनो आँखों के ऊपर कपड़ा ले जाकर सिर के पीछे बांधना जिससे कुछ दिखाई न पड़े। आँखो को ढकना। (२) आँख बंद करना। ध्यान न देना, जैसे—तुमने खूब आँखो पर पट्टी बांध ली है कि अपना भला बुरा नही सूझता। **आँखो पर परदा पड़ना**=अज्ञान का अंधकार छाना। प्रमाद होना। भ्रम होना, जैसे,—तुम्हारी आँखो पर परदा पड़ा है, सच्ची बात क्यों मन मे धँसेगी। (२) विचार का जाता रहना। विवेक का दूर होना, जैसे,—क्रोध के समय मनुष्य की आँखो पर परदा पड़ जाता है। (३) कमजोरी से आँखो के सामने अँधेरा छाना, जैसे—भूख प्यास के मारे हमारी आँखो पर परदा पड़ गया है। **आँखों पलकों का बोझ नहीं होता**=(१) अपनी चीज का रखना भा[री] नही मालूम होता (२) अपने कुटुम्बियों को खिलाना पि[लाना] नही खलता। (३) काम की चीज महँगी नही मालूम होती **आँखों पर बिठाना**=बहुत आदर सत्कार करना। आव[भगत] प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना, जैसे—वह हमारे घर तो [आवें] हम उन्हे आँखो पर बिठावेंगे। **आँखो पर रखना**=बहुत [प्यार] करके रखना। बहुत आराम से रखना, जैसे,—आप निश्चिन्त रहिए, मैं उन्हें अपनी आँखो पर रखूँगा। **आँख पसारना** [=]फैलाना=दूर तक दृष्टि बढ़ाकर देखना। नजर दौड़ाना। **आँ[ख] फटना**=चोट या पीड़ा से यह मालूम पड़ना कि आँखे नि[कल] पड़ती हैं, जैसे,—सिर के दर्द से आँखे फटी पड़ती हैं। (२) [आँ]खे बढ़ना। आँखो की फांक का फैलना। उ०—दौरत [ही] ही मे थकिए, थहरैं पग, आवत जाँघ मटी सी। होत घरी [घ]छीन खरी कटि, औंर है पास मुवास अटी सी। हे रघुनाथ बिलोकिबे को तुम्हे आई न लेचन सोच पटी सी। मैं न जानति हान कहा यह काहे ते जाति है आँखि फटी सी। रघुनाथ(शब्द१०)। **आँख फड़कना**=आँख की पलक का बार बा[र] हिलना। वायु के संचार से आँख की पलक का बार बार [फ]ड़ाना। (दाहिनी या बाईं आँख के फड़कने से लोग भावी शु[भ] अशुभ का अनुमान करते हैं)। उ० सुनु मथरा बात फुर तोरि दहिन आँखि नित फरकइ मोरी।—मानस, २।२०। **आँख फाड़ कर देखना**=खूब आँख खोलकर देखना। उत्सुकता देखना। जैसे उधर क्या है जो आँख फाड़फाड़कर देख रहे हो **आँखे फिर जाना**=(१) नजर बदल जाना। पहले की कृपा या स्नेह दृष्टि न रहना। बेमुरौवती आ जाना, जैसे जबसे वे हम लोगो के बीच से गए, तबसे तो उनकी आँ[खें] ही फिर गई।—(२) चित्त मे विरोध उत्पन्न हो जाना। मे बुराई आना। चित्त मे प्रतिकूलता आना, जैसे,—उस[की] आँखें फिर गई वह बुराई करने से नही चूकेगा। **आँ[ख] फूटना**=(१) आँख का जाता रहना। आँख की ज्योति नष्ट होना। (२) आँख रहते कुछ दिखाई न पड़ना, जैसे तुम्हारी क्या आँखें फूटी हैं, जो सामने की वस्तु नही दिखा[ई] देती। (आँख एक बहुत प्यारी वस्तु है इसी से स्त्रियाँ प्र[ायः] इस प्रकार की शपथ खाती हैं कि मेरी आँखे फूट जायँ, य[दि] मैंने ऐसा कहा हो) (३) बुरा लगना। कुढ़न होना। उ० (क) उसको देखने से हमारी आँखे फूटती हैं। (ख) किसी सुखी देखकर तुम्हारी आँखें क्यो फटती हैं। **आँख फेर[ना]** (१) निगाह फेरना। नजर बदलना। पहले की सी कृपा स्नेहदृष्टि न रखना। मित्रता तोड़ना। (२) विरुद्ध होना प्रतिकूल होना। वाम होना। (३) अनुकूल होना। कृ[पा] करना। उ०— फेर दी आँख जी आया जैसे रसाल बौराया —गीतगुंज, पृ० ४०। **आँख फैलाना**=आश्चर्य से स्तब्ध होना। आश्चर्यचकित होना। **आँख फैलाना**=दृष्टि फैलाना। दी[ठ] पसारना। दूर तक देखना। नजर दौड़ाना। **आँख फोड़ना** (१) आँखों को नष्ट करना। आँखो की ज्योति का नाश करन[ा] (२) कोई काम ऐसा करना जिसमे आँखों पर जोर पड़े

कोई ऐसा काम करना, जिसमे देर तक दृष्टि गडानी पडे, जैसे लिखना पढना, सीना, पिरोना, जैसे—(क) घटो बैठकर आँखें फोडी हैं, तब इतना सीया गया है (ख) घटो चूल्हे के आगे बैठकर आँखें फोडी हैं तब रसोई बनी है। **आँख फोरना** = दे० 'आँख फोडना'। उ०—सुरपति सुत जानै बल थोरा। राखा जियत आँखि गहि फोरा।—मानस, ३। ३५। **आँख बद करके कोई काम करना, आँख मूँद कर कोई काम करना** = (१) बिना पूछे पाछे कोई काम करना। बिना जाँच परताल किए कोई काम करना। बिना कुछ सोचे विचारे कोई काम करना। बिना आगा पीछा किए कोई काम करना, जैसे—(क) आँख मूँदकर दवा पी जाओ। (ख) जितना रुपया वे माँगते गए हम उनको आँख बद करके देते गए। (२) दूसरी बातो की ओर ध्यान न देकर अपना काम करना। और बातो की परवाह न करके अपना नियत कर्तव्य करना। किसी के कुछ कहने-सुनने की परवाह न करके अपना काम करना, जैसे,—तुम आँख मूँदकर अपना काम किए चलो, लोगो को बकने दो। **आँख बद होना** = (१) आँख झपकना। पलक गिरना, जैसे—कहो तो वह पाँच मिनट तक ताकता रह जाय, आँख बद न करे। (२) मृत्यु होना। मरण होना, जैसे,—जिस दिन इसके बाप की आँखे बद होगी, यह अन्न को तरसेगा। **आँख बचाकर कोई काम करना** = इस रीति से कोई काम करना कि दूसरे न देख पाएँ। छिपाकर कोई काम करना, जैसे,—बुराई भी करते तो जरा आँख बचाकर। **आँख बचाना** = नजर बचाना। सामना न करना। कतराना, जैसे,—रुपया लेने को ले लिया, अब आँख बचाते फिरते हो। **आँख बचे का चाँटा** = लडको का एक खेल जिसमे यह बाजी लगती है कि जिसे असावधान देखें, उसे चाँटा लगावें। **आँख बदल जाना** = पहले की सी कृपादृष्टि या स्नेहदृष्टि न रह जाना। पहले का सा व्यवहार न रह जाना। नजर बदल जाना। मिजाज बदल जाना। बर्ताव मे रुखापन आ जाना, जैसे,—(क) अब उनकी आँखे बदल गई है, क्यो हम लोगो की कोई बात सुनेंगे।—(ख) गौं निकल गई, आँख बदल गई।—(शब्द०)। (२) आकृति पर क्रोध दिखाई देना। क्रोध की दृष्टि होना। रिस चढना, जैसे,—थोडे ही मे उनकी आँखे बदल जाती है। **आँख बनवाना** = **आँख का जाला कटवाना** = आँख का माडा निकलवाना। आँख की चिकित्सा करना, जैसे,—जरा आँख बनवा आओ तो कपडा खरीदना। **आँख बराबर करना** = (१) आँख मिलाना। सामने ताकना, जैसे,—वह चोर लडका अब मिलने पर आँख बराबर नही करता। (२) मुँह पर बातचीत करना। सामने डटकर बातचीत करना। ढिठाई करना, जैसे,—उसकी क्या हिम्मत है कि आँख बराबर कर सके। **आँख बराबर होना** = दृष्टि सामने होना। नजर से नजर मिलाना, जैसे,—जबसे उसने वह खोटा काम किया तबसे मिलने पर कभी उसकी आँख बराबर नही होती। **आँख बहना** = (१) आँसू बहाना। (२) आँख की बीनाई या रोशनी जाती रहना। **आँख बहाना** = आँसू बहाना। रोना। **आँख बिगडना** = (१) दृष्टि कम होना। नेत्र की ज्योति घटना। आँख मे पानी उतरना या जाना इत्यादि पडना। (२) आँख उलटना। आँख पथराना, जैसे,—उनकी आँखे बिगड गई है और बोली भी बद हो गई है'। **आँखें बिछना** = अत्य स्वागत-सत्कार होना। **आँख बिछाना** = प्रेम से स्वागत करना, जैसे,—वे यदि मेरे घर पर उतरे, तो मैं अपनी आँखे बिछाऊँ। (२) प्रेमपूर्वक प्रतीक्षा करना। बाट जोहना। टकटकी बाँधकर राह देखना, जैसे,—हम तो कब से आँख बिछाए बैठे है, वे आवें तो। **आँख बैठना** = (१) आँख का भीतर की ओर धँस जाना। चोट या रोग से आँख का डेला गड जाना (२) आँख फूटना। **आँख भर आना** = आँख मे आँसू आना। **आँख भर देखना** = खूब अच्छी तरह देखना। तृप्त होकर देखना। अघाकर देखना। इच्छा भर देखना। उ०—राज परै यहि राज पँ री अँखियाँ भरि देखन हू नहिं पाई।—(शब्द०), जैसे,—नाहक वे यहाँ आ जाते, हम उन्हे आँख भर देख तो लेते। **आँख भर लाना** = आँसू भर लाना। आँख डबडबाना। रोआँसा हो जाना। **आँख भौं टेढी करना** = आँख दिखाना। क्रोध की दृष्टि से देखना। तेवर बदलना, जैसे,—हमपर क्या आँख भौं टेढी करते हो, जिसने तुम्हारी चीज ली हो उसके पास जाओ। **आँख मचकाना** = (१) आँख खोलना और फिर बद करना। पलको को सिकोडकर गिराना। (२) इशारा करना। सैन मारना, जैसे,—तुमने आँख मचका दी, इसी से वह भडक गया। **आँख मलना** = सोकर उठने पर आँखो को जल्दी खुलने के लिये हाथ से धीरे धीरे रगडना, जैसे,—इतना दिन चढ गया, तुम अभी चारपाई पर बैठे आँख मलते हो। **आँख मारना** = (१) इशारा करना। सनकारना। पलक मारना। आँख मटकाना (२) आँख से निषेध करना। इशारे से मना करना, जैसे,—वह तो रुपये दे रहा था, पर उन्होने आँख मार दी। **आँख मिलना** = साक्षात्कार होना। देखा देखी होना। नजर से नजर मिलना। **आँख मिलाना** = (१) आँख सामने करना। बराबर ताकना। नजर मिलाना। (२) सामने आना। समुख होना। मुँह दिखाना, जैसे,—अब इतनी बेईमानी करके वह हमसे क्या आँख मिलावेगा। **आँख मुँदना** = आँख बद होना। **आँख मूँदना** = (१) आँख बद करना। पलक गिराना। (२) मरना, जैसे—सब कुछ उनके दम तक है, जिस दिन वे आँख मूँदेंगे, सब जहाँ का तहाँ हो जायगा। (३) ध्यान न देना, जैसे,—उन्हे जो जी मे आवे करने दो, तुम आँख मूँद लो, उ०—मूँदे आँखि कतहूँ कोउ नाही।—मानस, १।२८०। **आँखो मे** = दृष्टि मे। नजर मे। परख मे। अनुमान मे, जैसे,—(क) हमारी आँखो मे तो इसका दाम अधिक है। (ख) हमारी आँखो मे यह जँच गई है। **आँख मे आँख डालना** = (१) आँख मे आँख मिलाना। बराबर ताकना। (२) ढिठाई से ताकना, जैसे,—ढीठ आँख मे आँख डालता है, अपना काम नही देखता। **आँख मे काजल घुलना** = काजल का आँख मे खूब लगना। **आँखो मे खटकना** = नजरो मे बुरा लगना। अच्छा न लगना, जैसे—उनका रहना हमारी आँखो मे खटक रहा। है। **आँखो मे खून उतरना** = क्रोध से आँख लाल होना। रिस चढना। **आँख मे गडना** = (१) आँख मे खटकना। बुरा लगना। (२) मन

में बसना। जँचना। पसंद आना। ध्यान पर चढ़ना, जैसे,—वह वस्तु तो तुम्हारी आँख में गड़ी हुई है। उ०—जादु भले हो, कान्ह, दान अँग अंग को माँगत। हमरो यौवन रूप आँख इनके गडि लागत।—सूर (शब्द०)। किसी की आँखों में घर करना=(१) आँख में बसना। हृदय में समाना। ध्यान पर चढ़ना। (२) किसी को मोहना या मोहित करना, जैसे—पहली ही भेंट में उसने राजा की आँखों में घर कर लिया। आँखों में चढ़ना=नजर में जँचना। पसंद आना। आँखों में चरबी छाना=(१) घमंड, बेपरवाही या असावधानी से सामने की चीज न दिखाई देना। प्रमाद से किसी वस्तु की ओर ध्यान न जाना, जैसे,—देखते नहीं वह सामने किताब रखी है, आँखों में चरबी छाई है? (२) मदांध होना। गर्व में किसी की ओर ध्यान न देना। अभिमान में चूर होना, जैसे,—आजकल उनकी आँखों में चरबी छाई है, क्यों किसी को पहचानेंगे। आँख में चुभना=(१) आँख में धँसना। (२) आँख में खटकना। नजरों में बुरा लगना। (३) दृष्टि में जँचना। ध्यान पर चढ़ना। पसंद आना, जैसे,—तुम्हारी घड़ी हमारी आँखों में चुभी हुई है, हम उसे बिना लिए न छोड़ेंगे। आँखों में चुभना=(१) नजर में खटकना। बुरा लगना। (२) आँखों में जँचना। पसंद आना। (३) आँखों पर गहरा प्रभाव डालना, जैसे,—उसके दुपट्टे का रंग तो आँखों में चुभा जाता है। आँख में चोब आना=चोट आदि लगने से आँख में ललाई आना। आँखों में झाँई पड़ना=आँखों का थक जाना। उ०—आँखड़ियाँ झाँई परी, पथ निहारि निहारि। जीभड़ियाँ छाला पर्‌यो, राम पुकारि पुकारि।—कबीर (शब्द०)। आँखों में टेसू फूलना, आँखों में तीसी फूलना, आँखों में सरसों फूलना=चारों ओर एक ही रंग दिखाई पड़ना। जो बात जी में समाई हुई है, उसी का चारों ओर दिखाई पड़ना। जो बात ध्यान में चढ़ी है, चारों ओर वही सूझना। (२) नशा होना। तरंग उठना, जैसे—भाँग पीते ही आँखों में सरसों फूलने लगी। (३) घमंड होना। गर्व से किसी को न देखना। आँखों में तकला या टेकुआ चुभाना=आँख फोड़ना। (स्त्रियाँ जब किसी पर उसकी दृष्टि की वजह से बहुत कुपित होती हैं, तब कहती हैं कि 'जी चाहता है कि इसकी आँखों में टेकुआ चुभा दूँ')। आँखों में तरावट आना=आँखों में ठंढक आना। तबीयत का ताजी होना। आँखों में धूल देना, आँखों में धूल डालना=सरासर धोखा देना। भ्रम में डालना, जैसे,—अभी तुम किताब ले गए हो, अब हमारी आँखों में धूल डालते हो। उ०—(क) हरि की माया कोउ न जानै आँखि धूरि सी दीन्हीं। लाल ढिगनि की सारी ताको पीत उढनियाँ कीनी।—सूर (शब्द०)। (ख) सोइ अब अमृत पिवति है मुरली, सबहिनि के सिर नाँखि। लियो छँड़ाइ सकल सुनि सूरज बेनु धूरि दै आँखि।—सूर (शब्द०)। आँखों में नाचना=दे० 'आँखों में फिरना'। आँखों में नून देना=आँख फोड़ना। आँखों में नून राई=आँखें फूटें। (स्त्रियाँ उन लोगों के लिये कहती हैं जो उनके बच्चों को नजर लगाते हैं। किसी बच्चे को नजर लगने का संदेह होने पर वे उसका नाम लेकर और बच्चे के चारों ओर राई नमक घुमाकर आग में छोड़ती हैं)। आँखों में पालना=बड़े सुख चैन में पालना। बड़े लाड़ प्यार से पालन पोषण करना, जैसे,—जो लड़के आँखों में पले गए उनकी यह दशा हो रही है। आँखों में फिरना=ध्यान पर चढ़ना। स्मृति में बना रहना, जैसे—उसकी सूरत मेरी आँखों के सामने फिर रही है। आँखों में बसना=ध्यान पर चढ़ना। हृदय में समाना। किसी वस्तु का इतना प्रिय लगना कि उसका ध्यान हर समय चित्त में बना रहे, जैसे,—उसकी मूर्ति तुम्हारी आँखों में बस गई है। आँखों में बैठना=(१) नजर में गड़ना। पसंद आना। (२) आँखों पर गहरा प्रभाव डालना। आँखों में धँसना (चटकीले रंग के विषय में प्राय कहते हैं कि 'इस कपड़े का रंग तो आँखों में बैठा जाता है।')। आँखों में भंग घुटना=आँखों पर भाँग का खूब नशा छाना। गहागड्ड नशा होना। आँखों में रखना=(१) लाड़ प्यार से रखना। प्रेम से रखना। सुख से रखना, जैसे,—आप निश्चिंत रहिए मैं इस लड़के को आँखों में रखूँगा। उ०—आँखिन में सखि राखिबे जोग इन्हें किमि कै बनवास दियो है।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६६। (२) सावधानी से रखना। यत्न और रक्षापूर्वक रखना। हिफाजत से रखना। जैसे,—मैं इस चीज को अपनी आँखों में रखूँगा, कहीं इधर उधर न होने पाएगी। आँखों में रात कटना=किसी कष्ट, चिंता या व्यग्रता से सारी रात जागते बीतना। सारी रात नींद न पड़ना। वियोग में तड़पना। आँखों में रात काटना=किसी कष्ट, चिंता या व्यग्रता के कारण जागकर रात बिताना। किसी कष्ट, चिंता या व्यग्रता के कारण रात भर जागना, जैसे,—बच्चे की बीमारी से कल आँखों में रात काटी। आँखों में शील होना=चित्त में कोमलता होना। दिल में मुरौवत होना, जैसे,—उसकी आँखों में शील नहीं है, जैसे होगा, वैसे अपना रुपया लेगा। आँखों में समाना=हृदय में बसना। ध्यान पर चढ़ना। चित्त में स्मरण बना रहना, जैसे,—दमयंती की आँखों में तो नल समाए थे, उसने सभा में और किसी राजा की ओर देखा तक नहीं। आँख मोड़ना=दे० 'आँख फेरना'। आँख रखना=(१) नजर रखना। चौकसी करना, जैसे,—देखना, इस लड़के पर भी आँख रखना कहीं भागने न पावे।—(२) चाह रखना। इच्छा रखना, जैसे,—हम भी उस वस्तु पर आँख रखते हैं। (३) आसरा रखना। भलाई की आशा रखना, जैसे,—उस कठोरहृदय से कोई क्या आँख रखे। आँख लगना=नींद लगना। झपकी आना। सोना। उ०—जब जब वै सुधि कीजियै, तब तब सब सुधि जाँहि। आँखनु आँखि लगी रहैं, आँखैं लागति नाँहि।—बिहारी र०, दो० ६२, जैसे,—आँख लगती ही थी कि तुमने जगा दिया। (२) प्रीति होना। दिल लगना। उ०—(क) धार लगै तरवार लगै पर काहू से काहू की आँख लगै ना।—(शब्द०)। (ख) ना छिन टरत टारे, आँखि न लगत पल, आँखिन लगैरी स्यामसुंदर सलोने सों।—देव (शब्द०)। (३) टकटकी लगना। दृष्टि जमना, जैसे,—हमारी

आँखें उसी ओर तो लगी हैं, पर वे कही आते दिखाई नही देते। उ०—पलक आँखा तेहि मारग, लागी दुनहु रहाहि। कोउ न सदेशी आवही, तेहिक सँदेस कहाहि।—जायसी (शब्द०)। **आँखो लगना** = आँखो मे लगना। ऊपर पडना। ऊपर आना। शरीर पर बीतना। उ०—भारज रज लागे मोरी अँखियनि रोग दोष जजाल।—सूर०, १०। १३८। **आँख लगाना** = (१) टकटकी बाँधकर देखना। प्रीति लगाना। नेह जोडना। **आँख लगी** = (१) जिसमे आँख लगी हो। प्रेमिका। (२) सुरैतिन। उढरी। **आँख लडना** = (१)देखा देखी होना। आँखा मिलना। घूराघूरी होना। नजरबाजी होना। (२) प्रेम होना। प्रीति होना, जैसे,-अब तो आँखें लड गई हैं, जो होना होगा सो होगा। **आँख लडाना** = आँख मिलाना। घूरना। नजरबाजी करना। (लडको का यह एक खेल भी है जिसमे वे एक दूसरे को टकटकी बाँधकर ताकते हैं। जिसकी पलक गिर जाती है, उसकी हार मानी जाती है)। **आँख ललचाना** = देखने की प्रबल इच्छा होना। **आँख लाल करना** = आँख दिखाना। क्रोध की दृष्टि से देखना। क्रोध करना। **आँख वाला** = (१) जिसे आँख हो। जो देख सकता हो, जैसे,-भाई, हम अधे सही, तुम तो आँखवाले हो देखकर चलो। (२) परखवाला। पहचाननेवाला। जानकार। चतुर, जैसे,-तुम तो आँखवाले हो तुम्हे कोई क्या ठगेगा। **आँख सामने न करना** = सामने न ताकना। नजर न मिलाना। दृष्टि बराबर न करना (लज्जा और भय से प्राय ऐसा होता है।), जैसे—जब से उसने मेरी पुस्तक चुराई कभी आँख सामने न की। (२) सामने ताकने या वाद प्रतिवाद करने का साहस न करना। मुँह पर बातचीत करने की हिम्मत न करना, जैसे,—भला उसकी मजाल है कि आँख सामने कर सके। **आँख सामने न होना** = लज्जा से दृष्टि बराबर न होना। शर्म से नजर न मिलना, जैसे,-उस दिन से फिर उसकी आँख सामने न हुई। **आँखो सुख कलेजे ठढक** = पूरी प्रसन्नता। ऐन खुशी। (जब किसी बात को लोग प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृत करते हैं तब यह वाक्य बोलते हैं)। **आँख सेंकना** = (१) दर्शन का सुख उठाना। नेत्रानद लेना। (२) सुदर रूप देखना। नज्जारा करना। उ०-जरा आँखें सेक आइए, भैरवी उड रही होगी—रसीली नयनोवालियो ने फदा मारा।—फिसाना०, भा०, १, पृ० ३। **आँख से आँख मिलाना** = (१) सामने ताकना। दृष्टि बराबर करना। (२) नजर लडाना। **आँखो से उतरना** = नजरो से गिरना। दृष्टि मे नीचा ठहरना, जैसे—वह अपनी इन्ही चालो से सबकी आँखो से उतर गया। **आँखो से उतारना या उतार देना** = (१) किसी वस्तु या व्यक्ति को जान बूझकर भुला देना। (२) किसी वस्तु या व्यक्ति का मूल्य कम कर देना। **आँखो से ओझल होना** = नजर से गायब होना। सामने से दूर होना। **आँखों से काम करना** = इशारो से काम निकालना। **आँखो से कोई काम करना** = बहुत प्रेम और भक्ति से कोई काम करना, जैसे,—तुम मुझे कोई काम बतलाओ तो, मैं आँखों से करने के लिये तैयार हूँ। **आँखो से गिरना** = नजरो से गिरना। दृष्टि मे तुच्छ ठहरना, जैसे,—अपनी इसी चाल से तुम सबकी आँखो से गिर गए। **आँख से भी न देखना** = ध्यान भी न देना। तुच्छ समझना, जैसे,—उससे बातचीत करने की कौन कहे मैं तो उसे आँखो से भी न देखूँ। **आँखो से लगाकर रखना** = बहुत प्रिय करके रखना। बहुत आदर-सत्कार से रखना। **आँखों से लगाना** = प्यार करना। प्रेम से लेना, जैसे,—उसने अपनी प्रिया के पत्र को आँखो से लगा लिया। **आँख होना** = परख होना। पहचान होना। शिनाख्त होना। जैसे,—तुम्हे कुछ आँख भी है कि चीजो के दाम ही लगाना जानते हो। (२) नजर गडाना। इच्छा होना। चाह होना, जैसे,—उस तसवीर पर हमारी बहुत दिनो से आँख है। (३) ज्ञान होना। विवेक होना। उ०—देखो राम कैसो कहि कैद किए किए हिये, हूजिये कृपाल हनुमान जू दयाल हौ। ताही समै फैलि गए कोटि कोटि कपि नए लोचें तनु खैंचे चीर भयो यों विहाल हौं। भई तब आँखें दुख सागर को चाखौं, अब वही हमैं राखौ भाखौं वारों धन माल हौ।—प्रिया० (शब्द०)।

आँख²—सज्ञा पुं० [स० अक्षि, प्रा० अक्खि प० अक्ख] आँख के आकार का छेद या चिह्न, जैसे,—(१)आलू के ऊपर के नखक्षत के समान दाग। (२)ईख की गाँठ पर की टोंठी जिसमे से पत्तियाँ निकलती हैं। (३) अनन्नास के ऊपर के चिह्न या दाग। (४) सूई का छेद।

आँखडी†—सज्ञा पुं० [हि० आँख+डी (प्रत्य०)] आँख। उ०—(क) आँखडियाँ झाँई परी पथ निहारि निहारि, जीभडियाँ छाला परयो, राम पुकारि पुकारि।—कबीर (शब्द०)। (ख) मुझे पुकारे ताना मारे, भर आएँ आँखडियाँ।—ठडा०, पृ० ३०।

आँखफोडटिड्डा¹—सज्ञा पुं० [स० आक = मदार+हि० फोडना] हरे रग का एक कीडा या फतिगा जो प्राय मदार के पेड पर रहता और उसकी पत्तियाँ खाता है। होता तो है यह उँगली के ही बराबर, पर इसकी मूँछे बडी लबी होती हैं।

आँखफोडटिड्डा²—वि० [हि० आँख+फोड+टिड्डा] कृतघ्न। बेमुरौवत। ईर्ष्यालु।

आँखफोडतोता—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आँखफोड टिड्डा'। उ०—किसलिये आँख यो बचाते हो, मैं नहीं आँखफोड तोता हूँ।—चोखे०, पृ० ५०।

आँखफोरवा—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आँखफोड टिड्डा'। उ०-कठफोरवा आँखफोरवा को आँख मूँद निगल जाता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१।

आँखमिचौनी—सज्ञा स्त्री० [हि० आँख+√मीच+औनी(प्रत्य०)] दे० 'आँखमिचौली'। उ०—छाया की आँखमिचौनी मेघो का मतवालापन।—यामा, पृ० १६।

आँखमिचौली—सज्ञा स्त्री० [हि० आँख+√मीच+औली प्रत्य०] लडको का एक खेल। लडको द्वारा आँख मूँदकर छिपने और खोजने का एक खेल।

विशेष—इस खेल मे एक लडका किसी दूसरे लडके की आँख मूँदकर बैठता है। इस बीच और लडके छिप जाते हैं। तब उस लडके की आँखे खोल दी जाती हैं और वह लडको को छूने के लिये ढूँढता फिरता है। जिस लडके को वह छू पाता है, वह चोर हो जाता है। यदि वह किसी लड़के को नही छू

पाता और सब लडके एक नियत स्थान को चूम लेते हैं, तो फिर वही लड़का चोर बनाया जाता है। यदि सात बार वही लडका चोर हुआ तो फिर उसकी टाँगे बाँधी जाती हैं और उसके चारो ओर एक कुडल या गोडले खीच दिया जाता है। लडके बारी बारी से उस गोडले के भीतर पैर रखते हैं और उस लडके को 'बुढिया' 'बुढिया' कहकर चिढाकर भागते हैं। यह चोर या बुढिया बना हुआ लडका मडल के भीतर जिसको छू पाता है, वह चोर हो जाता है।

आँखमिहीचनीⓅ†—सज्ञा स्त्री० [हिं० आँख + मिहीचनी = मीचना] दे० 'आँखमिचौली'। उ०—आँखमिहीचनी खेलत मोहिं दुहू विधि सोध कहूँ नटि जाइ न।—देव ग्र०, पृ० ११।

आँखमीचलीⓅ†—सज्ञा स्त्री० [हिं० आँख + √मीच + ली (प्रत्य०)] दे० 'आँखमिचौली'। उ०—कहूँ खेलत मिलि ग्वाल मडली आँखमीचली खेल। चढीचढा को खेल सखन मे खेलत हैं रस रेल।—सूर (शब्द०)।

आँखमुचाई, आँखमुँदाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० आँख + √मीच + आई (प्रत्य०) तथा आँख + √मूद + आई प्रत्य०] दे० 'आँखमिचौली'।

आँखा—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आखा'।

आँखिⓅ—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आँख'। उ०—सो वह आँखि मीडि मीडि कै फिर फिरि कै देखन लाग्यो।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० ६।

आँखीⓅ†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आँख'। उ०—आँखी मद्धे पाखी चमकै पाँखी मद्धे द्वारा।—कबीर श०, भा०, १, पृ० ५५।

आँगⓅ†—सज्ञा पु० [स० अङ्ग] १ अग। उ०-(क) बानिनि चली सेंदुर दिये माँगा। कयथिनि चली समाइ न आँगा।—जायसी ग्र०, पृ० ८१। (ख) कहि पठई जियभावती, पिय आवन की बात। फूली आँगन मैं फिरै, आँग न आँग समात।—बिहारी र०, दो० २५४। २ कुच। स्तन। उ०—कहै पद्माकर क्यो आँग न समात आँगी लागी काह तोहि जागी उर मे उचाई है।—पद्माकर ग्र०, पृ० ८४। ३ चराई जो प्रति चौपाये पर ली जाती है।

आँगन—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गण] घर के भीतर का सहन। घर के भीतर का वह चौखूटा स्थान जिसके चारो ओर कोठरियाँ और बरामदे हो। चौक। अजिर। उ०—आँगन खेलै नद के नदा।—सूर०, १०। ११७।

आँगल†—सज्ञा स्त्री० [स० अर्गल] अगरी। अर्गला। उ०—तब वा बाई ने किवाड दै कै आँगल मारि दई।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३४१।

आँगी¹Ⓟ†—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गिका प्रा० अगिआ] अँगिया। उ०—उठि आपुही आसन दै रसखान सो लाल सो आँगी कढावति है।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १७८।

आँगी²—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आँधी'।

आँगुरⓅ—सज्ञा पुं० [हिं०] पुं० 'अगुल'। उ०—द्वादस आँगुर पवन चलतु है नाहि सिमटि घर आना।—जग० बानी, भा० २, पृ० ६५।

आँगुरीⓅ—सज्ञा स्त्री० [स० अङ्गुली] उँगली। उ०—गयी अचानक आगुरी छाती छैलु छुवाइ।—बिहारी र०, दो० ३८६।

मुहा०—आगुरी फोरनाँ = उँगलियाँ चटकाना। उ०—बिमल अँगोछी पोछि भूषन सुधारि सिर आँगुरिन फोरि त्रिन तोरि तोरि डारती।—भिखारी० ग्र०, भा० २ पृ० १५७।

आँच—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्चि = आग की लपट, पा० अच्चि] १. गरमी। ताप, जैसे,—(क) आग और दूर हटा दो, आँच लगती है। (ख) कोयले की आँच पर भोजन अच्छा पकता है। उ०—धौरी धेनु दुहाइ छानि पय मधुर आँचि मे औटि सिरायौ।—सूर०, १०। १६००।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।—लगना।

२ आग की लपट। लौ, जैसे,—चूल्हे मे और आँच कर दो, तवे तक तो आँच पहुँचती ही नही।

क्रि० प्र०—करना।—फैलना।—लगना।

३ आग। अग्नि, जैसे—(क) आँच जला दो। (ख) जाओ थोडी सी आँच लाओ।

मुहा०—आँच खाना। गरमी पाना। आग पर चढ़ना। जैसे,—यह बरतन आँच खाते ही फूट जायगा। आँच दिखाना = आग के सामने रखकर गरम करना, जैसे,—जरा आँच दिखा दो तो बरतन का सब घी निकल आवे।

४ ताव। जैसे,—अभी इस रस मे एक आँच की कसर है। (ख) उसके पास सौ आँच का अभ्रक है।

मुहा०—आँच खाना = ताव खाना। आवश्यकता से अधिक पकना। जैसे,—दूध आँच खा गया है, इससे कुछ कडुआ मालूम पडता है।

५. तेज। प्रताप। जैसे,—तलवार की आँच। ६ आघात। चोट। ७. हानि। अहित। अनिष्ट। जैसे,—(क) तुम निश्चित रहो, तुमपर किसी प्रकार की आँच न आवेगी।—(ख) साँच को आँच क्या। उ०—निहचिंत होइ के हरि भजै मन मे राखै साँच। इन पाँचन को बस करै, ताहि न आवै आँच।—कबीर (शब्द०)

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।

८ विपत्ति। सकट। आफत। सताप। जैसे,—इस आँच से निकल आवें तो कहे। उ०—आए नर चारि पाँच, जानी प्रभु आँच, गडि लियो सो दिखायो आँच, चलै भक्त भाइ कै।—प्रिया० (शब्द०)। ९ प्रेम। मुहब्बत। जैसे,—माता की आँच बडी होती है। १० काम। ताप।

आँचका—सज्ञा पुं० [देश०] वह लटकता हुआ रस्सा जिसके छोर पर के छल्ले मे से होकर वह रस्सा जाता है जिसपर खडे होकर खलासी जहाज का पाल खोलते और लपेटते हैं।

आँचना¹Ⓟ—क्रि० स० [हिं० आँच] जलाना। तापना। उ०—कोप कृसानु गुमान अवाँ घट जो जिनके मन आँच न आँचै।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२६।

आँचना²Ⓟ—क्रि० स० [स० अञ्चन] प्रवृत्त होना। गतिशील होना। उ०—मुद्रा खोलि गोविंद चद जब बाचन आँचे। परम प्रेम रस माँचे अच्छर न परत बँचे।—नद० ग्र०, पृ० २०४।

आँचना³†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अँचवना'। उ०—नाचो हे रुद्रताल, आँचो जग ऋजु अराल।—आराधना, पृ० ५५।

आँचर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आंचल'। उ०—गोह कँवै, आँवरु उनटि, मोरि, मुँहु मोरि मोरि नीठि नीठि भीतर गई, दीठि दीठि सौं जोरि।—बिहारी र०, दो० २४२।

आँचल—संज्ञा पुं० [सं० अञ्चल] १ धोती, दुपट्टा आदि बिना सिले हुए वस्त्रो के दोनो छोरो पर का भाग। पल्ला। छोर। उ०—पिअर उपरना काखा सोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोति।—मानस, १।३२६। २ साधुओं का अँचला। ३. स्त्रियो की साडी या ओढनी का वह छोर या भाग जो सामने छाती पर रहता है। उ०—वह मग मे रुक, मानो कुछ झुक आँचल सँभारती फेर नयन।—ग्राम्या, पृ० १७।

मुहा०—आँचल डालना=मुसलमान लोगो मे विवाह की एक रीति। (जब दूल्हा दुलहिन के घर जाने लगता है, तब उसकी बहन दरवाजे से उसके सिर पर आँचल डालकर उसे घर मे ले जाती है। इसका नेग बहन को मिलता है)। आँचल = दबाना=दूध पीना। स्तन मुँह में डालना। जैसे,—बच्चे ने आज दिन भर से आँचल मुँह मे नही दबाया। आँचल देना=(१) बच्चे को दूध पिलाना (स्त्रि०)। जैसे, बच्चे को किसी के सामने आँचल मत दिया करो।—(२) विवाह की एक रीति। (जब बारात वर के यहाँ से चलने लगती है, तब दूल्हे की माँ उसके ऊपर आँचल डालती है और उसे काजल लगाती है। इस रीति को आँचल देना कहते हैं।) ३. आँचल से हवा करना (स्त्रि०)। जैसे—(क) दीए को आँचल दे दो, व्यर्थ जल रहा है। (ख) थोडा आँचल दे दो तो आग सुलग जाय। आँचल पडना=आँचल छू जाना। जैसे,—देखो, बच्चे पर आँचल न पड़ जाय। (स्त्रियाँ बच्चे पर आँचल पडना बुरा समझती हैं और कहती हैं कि इससे बच्चो की देह फूल जाती है)। आँचल फाड़ना=बच्चे के जीने के लिये टोटका करना। (जिस स्त्री के बच्चे नही या बाँझ होती है, वह किसी बच्चेवाली स्त्री का आँचल घात पाकर कतर लेती है और उसे जलाकर खा जाती है। स्त्रियो का विश्वास है कि ऐसा करने से जिसका आँचल कतरा जाता है, उसके बच्चे तो मर जाते हैं और जो आँचल कतरती हैं, उसके बच्चे जीने लगते हैं)। आँचल मे बाँधना=(१) हर समय साथ रखना। प्रतिक्षण पास रखना। जैसे,—वह किताब क्या हम आँचल मे बाँधे फिरते हैं, जो इस वक्त माँग रहे हो। (२) कपडे के छोर मे इस अभिप्राय से गाँठ देना कि उसे देखने से वक्त पर कोई बात याद आ जाय। जैसे,—तुम बहुत भूलते हो, आँचल मे बाँध रखो। आँचल मे बात बाँधना=(१) किसी कही हुई बात को अच्छी तरह स्मरण रखना। कभी न भूलना। जैसे,—किसी के झगडे मे पडना बुरा है यह बात आँचल मे बाँध रखो। (२) दृढ निश्चय करना। पूरा विश्वास रखना। जैसे,—इस बात को आँचल मे बाँध रखो कि उन लोगो मे अवश्य खटपट होगी। आँचल मे सात बातें बाँधना=टोटका करना। जादू करना। आँचल लेना=(१) किसी स्त्री का अपने यहाँ आई हुई दूसरी स्त्री का आँचल छूकर सत्कार या अभिवादन करना। (२) किसी स्त्री का अपने से बडी स्त्री का आँचल से पैर छूना। पाँव छूना। पाँव पड़ना। जैसे—जीजी, बूआ आई हैं, उठकर आँचल ले। आँचल सँभालना=आँचल ठीक करना। शरीर को अच्छी तरह ढकना। उ०—फुलवा बिनत डार डार गोपिन के संग कुमार चद्रवदन चमकत वृषभानु की लली। हे हे चचल कुमारि अपनो आँचल सँभार आवत बृजराज आज विपिन की गली।—(शब्द०)।

आँचलपल्लू—संज्ञा पुं० [हिं० आँचल+पल्ला] कपडे के एक छोर पर टँका हुआ चौडा ठप्पेदार पट्टा।

आँचू—संज्ञा पुं० [देश०] एक कँटीली झाडी जिसमे शरीफे के आकार के छोटे छोटे फल लगते हैं। इन फलो मे मीठे रस से भरे दाने रहते हैं।

आँजन—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जन] दे० 'अंजन'।

आँजना—क्रि० स० [सं० अञ्जन] अंजन लगाना। उ०—(क) ललना गन जब जेहि धरहि धाइ। लोचन आँजहि फगुआ मनाइ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) न्हा हो अनूप ही जु आँजे माँजे न्हाए झाएँ, भूषन बनाए बीर बीरा खाए जानिबी।—गग ग्र०, पृ० ३३। २ विलब करना। जैसे, आँजो मत, काम चटपट कर डालो।

आँट—संज्ञा पुं० [हिं० अटी] १ हथेली मे तर्जनी और अँगूठे के बीच का स्थान।

विशेष—इसमे कभी कभी जुआरी लोग कौडी छिपा लेते हैं।

२ दाँव। वश। उ०—न ए बिससियहि लखि नए दुरजन दुसह-सुभाइ। आँटै परि प्राननु हरत काँटै लौं लगि पाइ।—बिहारी र०, दो० ३११।

मुहा०—आँट पर चढना=दाँव पर चढना। उ०—जहाँ तक हो आँट पर न चढो।—चोटी०, पृ० १४४।

३ बैर। लागडाँट। ४ गिरह। गाँठ। जैसे—धोती की आँट में रुपया रख लो। ५ पूला। गट्ठा। पेंच।

यौ०—आँट साँट।

आँटना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अटना] १ समाना। अँटना। अमाना। २. पूरा पड़ना। काफी होना। उ०—अगमहि कह पानी गहि बाँटा। पिछलहि कहँ नहि काँदू आँटा।—जायसी (शब्द०)। ३. आना। मिलना। उ०—(कोइ) फूल पाव, कोई पाती, जेहि के हाथ जो आँट।—जायसी ग्रं०, पृ० ८२। ४ पहुँचना। उ०—मच्छ छुवहिं आवहि गडि काँटी। जहाँ कमल तहँ हाथ न आँटी।—जायसी (शब्द०)।

आँटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्ड] १ लबे तृणो का छोटा गट्ठा। पूला। २ लडको के खेलने की गुल्ली। उ०—दियो जनाय बात सो हरी स्वरूप बालके। गोविंद स्वामी सग आँटि दड खेल हालके।—रघुराज० (शब्द०)। ३ कुश्ती का एक पेंच जिसमे विपक्षी की टाँग मे टाँग अडाते हैं और उसे कमर पर लादकर गिराते और चित करते हैं।

क्रि० प्र०—मारना।

४. सूत का लच्छा। ५. धोती की गिरह। टेंट। मुर्री। उ०—आपकी आँटी निकसी नाही तो करज बहुत सिर लीन्हा।—कबीर ग्र०, पृ० १०।

क्रि० प्र०—देना। लगाना।

मुहा०—आँटी काटना = गिरह काटना। जेब काटना।

आँटसाँट—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँट+सटना] १. गुप्त अभिसंधि। साजिश। २ मेलजोल।

आँठी—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टि, प्रा अट्ठि] १ दही, मलाई आदि वस्तुओं का लच्छा। थक्का। जैसे—उनके मुँह से कफ की सूखी आँठी गिरती है। २ गिरह। गाँठ। ३ गुठली। बीज। ४. नवोढा के उठते हुए स्तन।

आँडा—संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] अंडकोश।

आँडी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्ड] १ अँटी। गाँठ। कंद। उ०—सेंधा लोन परा सब हाँडी। काटी कंद मूर कै आँडी।—जायसी ग्रं०, पृ० २४५। २ कोल्हू की जाट का गोला, सिरा वा मूँड। ३ बैलगाडी के पहिए के छेद के चारो ओर जडी हुई लोहे की मामी। वद।

आँडू—वि० [सं० अण्ड = अण्डकोश] जिस (चौपाए) के अंडकोश न कूचे गए हो। अंडकोशयुक्त।

विशेष—यह शब्द विशेष कर बैल के लिये ही प्रयुक्त होता है।

आँडेबाँडे खाना—क्रि० अ० [हिं० अंडवंड अथवा डाँड = मेंड+बाँध] इधर उधर फिरना। इधर उधर हवा खाना। चक्कर खाना।

विशेष—फूल बुझौअल के खेल मे जब लडको के दल बँध जाते हैं और दोनो दलो के महतो को आपस में किसी फूल को निश्चित करना होता है, तब वे अपने अपने दल के लडको को यह कहकर इधर उधर हटा देते हैं कि 'आँडेबाँडे खाओ'। लडके 'आँडे बाँडे' कहते हुए इधर उधर चले जाते हैं और फिर फूल बूझने के लिये आते हैं।

आँत—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] प्राणियो के पेट के भीतर वह लंबी नली जो गुदा मार्ग तक रहती है।

विशेष—खाया हुआ पदार्थ पेट मे कुछ पचकर फिर इस नली मे जाता है जहाँ से रस तो अंग प्रत्यंग मे पहुँचाया जाता है और मल या रद्दी पदार्थ बाहर निकाला जाता है। मनुष्य की आँत उसके डील मे पाँच या छ गुनी लंबी होती है। मांसभक्षी जीवो की आँत शाकाहारियो से छोटी होती है। इसका कारण शायद यह है कि माँस जल्दी पचता है।

मुहा०—आँत उतरना—एक रोग जिसमे आँत ढीला होकर नाभि के नीचे उतर आती है और अंडकोश मे पीडा उत्पन्न होती है। आँत का बल खुलना—पेट भरना। भोजन से तृप्त होना। बहुत देर तक भूखे रहने के उपरात भोजन मिलना। जैसे,—आज कई दिनो के पीछे आँतों का बल खुला है। आँतो का बल खुलवाना—पेट भर खिलाना। आँतें अकुलाना, कुलकुलाना, कुलबुलाना—भूख के मारे बुरी दशा होना। आँतें गले मे आना—नाको दम होना। जंजाल मे फँसना। तंग होना। जैसे,—इस काम को अपने ऊपर लेते तो हो, पर आँते गले मे आवेंगी। आँते मुँह मे आना—दे० 'आँते गले मे आना'। आँतों मे बल पडना—पेट मे बल पड़ना। पेट ऐंठना। जैसे,—हँसते हँसते आँतो मे बल पड़ने लगा। आँतें समेटना—भूख सहना। जैसे,—रात भर आँतें समेटे बैठे रहे। आँतें सूखना = भूख के मारे बुरी दशा होना। जैसे,—कल से कुछ खाया पीया नही है, आँतें सूख रही हैं।

आँतकट्टू—संज्ञा पुं० [हिं० आँत+कटना] चौपायो का एक रो[ग] जिसमे उन्हे दस्त होता है।

आँतर[1]—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर = भीतर] खेत का उतना [भाग] जितना एक बार जोतने के लिये घेर लिया जाता है।

आँतर[2]—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर = दो वस्तुओं के बीच का स्थान] १ पान के भीटे के भीतर की क्यारियो के बीच का स्थान जो आने जाने के लिये रहता है। पासा। २ ताने मे दोनो [ओर] की खूँटियो के बीच की दो लकडियाँ जो थोडी थोडी दूर [पर] साँथी अलग करने के लिये गाडी जाती हैं (जुलाहे)। ३ भिन्नता अंतर। उ०—जीव ब्रह्म आँतर नहिं कोय। एकै रूप सर्व[ं]ध होय।—दरिया० बानी, पृ० १६। ४ दूरी। फासला। उ० आँतर जनु हो तोहार। तेंदुर का उर हार। [...] पृ० ३३०।

आँतरा[ⓤ]—संज्ञा पु० [हिं० आँतर] दे० 'अँतर'। उ०—साध स्वाँग आँतरा जैसा दिवस और रात।—दरिया० बानी, पृ० ३५।

आँदू—संज्ञा पुं० [सं० अन्दू = बेडी] १ लोहे का कडा। बेडी। उ० हूलै इतै पर मैन महावत लाज के आँदू परे जऊ पाइन। [...] पदमाकर कौन कहों गति माते मतंगनि की दुखदाइन [...] पद्माकर ग्रं०, पृ० १३०। २ बाँधने का सीकड। उ[०] आँदू सौं भरे जदपि तुव गज नैन। तदपि चलावत रहत झुकि झुकि चोटैं सैन।—स० सप्तक, पृ० १९३।

आँध[1]—संज्ञा स्त्री० [स० अन्ध] १ अँधेरा। धुंध। २ रतौंधी। ३ आफत। कष्ट। जैसे,—तुम्हे वहाँ जाते क्यो आँध आती है

क्रि० प्र०—आना।

आँध[2]ⓤ[1]—वि० १ अंधा। नेत्रहीन। २ कामांध। मोहित। उ सकर को मन हरयौ कामिनी, सेज छाडि भू सोयौ। [...] मोहिनी आइ आँध कियौ, तब नख तैं रोयौ।—सूर०, १।४३

आँधना[ⓤ]—क्रि० अ० [हिं० आँधी] वेग से धावा करना। टूटना उ०—भुसुंडिय और फुन्नडिय साधि। परे दुहुँ ओरन ते [...] आँधि।—(शब्द)।

आँधर—वि० [स० अन्ध, प्रा० अंधल] [स्त्री० आँधरी] अंधा। उ सूर कूर, आँधरो, मैं द्वार परयौ गाऊँ। सूर०, १।१६६।

यौ०—आँधर अँधुआ = अंधा। उ०—माया के बँधुआ अँ[धुआ] अँधुआ साधु जाने एह जाने एह बातें।—सं० दरिया, पृ० १४१

आँधरा[ⓤ]†—वि० [सं० अन्ध, प्रा० अंधरअ] [स्त्री० आँधरी] अंधा

आँधारंभ[ⓤ]—संज्ञा पु० [हिं० आँधर = अंधा (मूर्ख) जैसा+आरम्भ] अँधेरखाता। बिना समझा बूझा आचरण। उ०—करता कीरतन, ऊँचा करि करि दम। जानै बूझै कछु नही, यो [...] आँधारंभ।—कबीर (शब्द०)।

आँधी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध = अँधेरा, अंधा करनेवाली] बडे वेग [की] हवा जिससे इतनी धूल उठे कि चारो ओर अँधेरा छा जाय अंधड़। अंधवाव।

विशेष—भारतवर्ष मे आँधी का समय वसंत और ग्रीष्म है।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।—चलना।

मुहा०—आँधी उठाना = हलचल मचाना। धूम धाम मचाना। आँधी के आम = (१) आँधी में आप से आप गिरे हुए आम। (२) बिना परिश्रम के मिली हुई चीज। बहुत सस्ती चीज। (३) थोड़े दिन रहनेवाली चीज।

आँधी²—वि० आँधी की तरह तेज। किसी चीज को झटपट करनेवाला। चालाक। चुस्त। जैसे,—काम करने में तो वह आँधी है।

मुहा०—आँधी होना = बहुत तेज चलना।

आँबपु†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आम'। उ०—फले सोहाए मधुर फल, आँब गए झकझोरि।—भिखारी० ग्रं०, पृ० १३६।

आँबा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] 'आम'। उ०—और यह वैष्णव आँबा लेन कों बजार में गयो। सो बजार में कहूँ आँबा न मिले।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ३४।

आँबाहल्दी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आमाहल्दी'।

आँयबाँय—संज्ञा पुं० [अनु०] अनापसनाप। अंडबंड। व्यर्थ की बात। असंबद्ध प्रलाप।

आँव—संज्ञा पुं० [सं० आम = कच्चा] एक प्रकार का चिकना सफेद लसदार विकृत द्रव्य या मल जो अन्न न पचने से होता है।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

आँवठ†—संज्ञा पुं० [सं० ओष्ठ हिं० ओठ] १ किनारा। बारी। २ कपड़े का किनारा। बरतन की बारी।

आँवड़ना—क्रि० अ० [हिं०√उमड] उमड़ना। उ०—भरे रुचि भार सुकुमार सरसिज सार सोभा रूप सागर अपार रस आँवड़े।—देव (शब्द०)।

आँवड़ा¹(पु)—वि० [हिं० उमड़ना] गहरा। उ०—जेता मेठा बोलवा, तेता साधु न जान। पहिले थाह दिखाइ के, आँवड़े देसी आनि। कबीर (शब्द०)।

आँवड़ा²†—संज्ञा पुं० [सं० आम्रातक प्रा० अंबाडय] एक प्रसिद्ध खट्टा फल। अमड़ा।

आँवन—संज्ञा पुं० [सं० आनन = मुँह] १ लोहे की सामी जो पहिए के उस छेद के मुँह पर लगी रहती है जिसमें होकर धुरी का डंड जाता है। मुहँडी। २ वह औजार जिससे लोहे के छेद को लोहार लोग बढ़ाते हैं।

आँवरा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० आमलक, प्रा० आमलय] दे० 'आँवला'। उ०—आलूचा अमिली अँबहलदी, आल आँवरा साल अफनदी।—सुजान०, पृ० १६१।

आँवल—संज्ञा पुं० [सं० उल्बम = जरायु। अथवा, अंबर = आच्छादन] झिल्ली जिससे गर्भ में बच्चे लिपटे रहते हैं। यह झिल्ली प्रायः बच्चा होने के पीछे गिर जाती है। खेंडी। जेरी। साम।

यौ०—आँवल नाल।

आँवलगट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० आँवला + हिं० गट्टा वा गाँठ] आँवले का सूखा हुआ फल।

विशेष—यह दवा में तथा सिर मलने के काम आता है।

आँवला—संज्ञा पुं० [सं० आमलक, प्रा० आमलओ] १ एक प्रसिद्ध पेड़। २ इस पेड़ का फल।

विशेष—इसकी पत्तियाँ इमली की तरह महीन महीन होती हैं। इसकी लकड़ी कुछ सफेदी लिए होती है और उसके ऊपर का छिलका प्रति वर्ष उतरा करता है कार्तिक से माघ तक इसका फल रहता है जो गोल कागजी नीबू के बराबर होता है। इसके ऊपर का छिलका इतना पतला होता है कि उसकी नसें दिखाई देती हैं। यह स्वाद में कसैलापन लिए हुए होता है। आयुर्वेद में इसे शीतल, हलका तथा दाह पित्त और प्रमेह का नाश करनेवाला बतलाया है। इसके संयोग से त्रिफला, च्यवनप्राश आदि औषध बनते हैं। आँवले का मुरब्बा भी बहुत अच्छा होता है। आँवले की पत्तियों से चमड़ा भी सिझाया जाता है। इसकी लकड़ी पानी में नहीं सड़ती। इसी से कूओं के नीमचक आदि इसी से बनते हैं।
३ विपक्षी को नीचे लाने का कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब विपक्षी का हाथ अपनी गरदन पर रहे, तब अपना भी वही हाथ उसकी गरदन पर चढ़ावे और दूसरे से शत्रु के उस हाथ को जो अपनी गरदन पर है झटका देकर हटाते हुए उसको नीचे लावे। इसका तोड़ विषम पैंतरा करे अथवा शत्रु की गरदन पर का हाथ केहुनी पर से हटाकर पैंतरा बढ़ाते हुए बाहरी टाँग मार गिरावे।

आँवलापती—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँवला + पत्ती] एक प्रकार की सिलाई जिसमें पत्ती की तरह दोनों ओर तिरछे टाँके मारे जाते हैं।

आँवलासारगंधक—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँवला + सं० सार + गंधक] खूब साफ की हुई गंधक जो पारदर्शक होती है, यह खाने में अधिक खट्टी होती है।

आँवा—संज्ञा पुं० [सं० आपाक—आँवा] वह गड्ढा जिसमें कुम्हार लोग मिट्टी के बरतन पकाते हैं। जैसे,—कुम्हार आँवा लगा रहा है।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—आँवें का आँवाँ बिगड़ना = सारे परिवार का बिगड़ना। सारे परिवार का कुत्सित विचार होना। आँवाँ बिगड़ना = आँवें के बरतनों का ठीक ठीक न पकना।

आँस¹—संज्ञा स्त्री० [सं० काश—क्षत, हिं० गाँस] संवेदना। दर्द।

आँस²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अंश'। उ०—बिछुरत सुंदर अधर तैं, रहन न जिहि घट साँस। मुरली सम पाई न हम प्रेम प्रीति को आँस।—स० सप्तक, पृ० १८७।

आँस³(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अस्र] आँसू। उ०—रूप रस पीवत अघात ना हुते जो तब सोई अब आँस ह्वै उबरि गिरिबो करैं।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १२१।

आँस⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० अंशु प्रा० अंसु] १ सुतली। डोरी। २ रेशा।

आँसी—संज्ञा स्त्री० [सं० अंश = भाग] १. भाजी। बैना। मिठाई जो इष्ट-मित्रों के यहाँ बाँटी जाती है।—नंदलाल के ह्वैहीं दिना तें परी मन आइ सनेह की फाँसी। काम कलोलनि में मतिराम लगे मनो बाँटन मोद की आँसी।—मतिराम।—(शब्द०) २ भाग। हिस्सा। उ०—नारि कुलीन कुलीननि लै रमैं मैं उनमैं चहौ एक न आँसी।—भिखारी ग्रं०, भा० पृ० १५६।

आँसु(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँसू'। उ०—माता भरतु गोद बैठारे आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे।—मानस, २। १६५।

आँसू--संज्ञा पुं० [सं० अश्रु, पा० प्रा० अस्सु, प्रा अंसु] वह जल जो आँख के भीतर उस स्थान पर जमा रहता है, जहाँ से नाक की ओर नली जाती है। उ०—जो घनीभूत पीडा थी मस्तक मे स्मृति सी छाई, दुर्दिन मे आँसू बनकर वह आज बरसने आई।—आँसू, पृ० १४।

विशेष—यह जल आँख की झिल्लियो को तर रखता है और डेले पर गर्द या तिनके को नही रहने देता, धोकर साफ कर देता है। आँसू भी थूक की तरह पैदा होता रहता है और बाहरी या मानसिक आघात मे बढता है। किसी प्रबल मनोवेग के समय, विशेषकर पीडा और शोक मे आँसू निकलते हैं। क्रोध और हर्ष मे भी आँसू निकलते हैं। अधिक होने पर आँसू गालो पर बहने लगता है और कभी कभी भीतरी नली के द्वारा नाक मे भी चला जाता है और नाक से पानी बहने लगता।

क्रि० प्र०—आना।—गिरना।—गिराना।—चलना।—रुकना।—टपकाना।—डालना।—ढालना।—निकालना।—बहना।—बहाना।

यौ०—आँसू की धार। आँसू की लडी।

मुहा०—**आँसू गिराना**=रोना। जैसे,—क्यो झूठ मूठ आँसू गिराते हो। **आँसू डबडबाना**=आँसू निकलना। रोने की दशा होना। जैसे—यह सुनते ही उसके आँसू डबडबा आए। **आँसू ढालना**=आँसू गिराना। रोना। जैसे,—परगट ढारि सकै नहिं आँसू। घुट घुट माँस गुपुत होय नासू।—जायसी (शब्द०)। **आँसू तोड**=कुसमय की वर्षा (ठग)। **आँसू थमना**=आँसू रुकना। रोना बद होना। जैसे,—जब से उन्होने यह समाचार सुना है, तब से उनके आँसू नही थमते है। उ०—थमते थमते थमेंगे आँसू। रोना है कुछ हँसी नही है।—मीर (शब्द०)। **आँसू पीकर रह जाना**=भीतर ही भीतर रोकर रह जाना। अपनी व्यथा को रोकर प्रकट न करना। मन ही मन मसोसकर रह जाना। जैसे,—(क) मेरे देखते उसने बच्चे पर हाथ चलाया था, और मैं आँसू पीकर रह गया। (ख) इतना दुख उस पर पडा वह आँसू पीकर रह गया। **आँसू पुछना**=आश्वासन मिलना। ढारस बँधना। जैसे,—उस बेचारे की मारी सपत्ति चली गई पर घर बच जाने से आँसू पुँछ गए।—(शब्द०)। **आँसू पोछना**=(१) बहते हुए आँसू को कपडे मे सुखाना। (२) ढारस बँधाना। दिलासा देना। तसल्ली देना। आश्वासन देना। जैसे—(क) उसका घर ऐसा सत्यानाश हुआ कि कोई आँसू पोछनेवाला भी न रहा। (ख) हमारा सारा रुपया मारा गया, आँसू पोछने के लिये १००) मिले है।—**आँसू भर आना**=आँसू निकल पडना। **आँसू भर लाना**=रोने लगना। जैसे,—यह सुनते ही वह आँसू भर लाया। **आँसू का तार बँधना**=बराबर आँसू बहना। **आँसुओ से मुँह धोना**=बहुत आँसू गिराना। बहुत रोना। अत्यत विलाप करना।

आँसूढाल—संज्ञा पुं० [हिं० आँसू+ढालना] घोडो और चौपायो की एक बीमारी जिसमे उनकी आँखो से आँसू बहा करता है।

आँहड—संज्ञा पुं० [सं० आ+भांड] बरतन।

आँहड वीहँडा—वि० [प्रा० आहंड=खोजना, भटकना+विहड=टूटना, बिखरना] तितरबितर। ऊबडखाबड।

आँहाँ—अव्य [हिं० ना+हाँ] नही।

विशेष—यह शब्द किसी प्रश्न के उत्तर मे जीभ हिलाने के श्र[म] से बचने के लिये बोला जाता है स्वर और ऊष्म, विशेषकर 'ह' के उच्चारण में बहुत कम प्रयत्न करना पडता है।

आ१—अव्य० [सं०] एक अव्यय जिसका प्रयोग सीमा, अभिव्यक्ति, ईषत् और अतिक्रमण के अर्थो मे होता है। जैसे—(क) सीमा—आसमुद्र=समुद्र तक। आमरण=मरण तक। आजानुबाहु=जानु तक लबी बाहुवाला। आजन्म=जन्म से। (ख) अभिव्याप्ति—आपाताल=पाताल के अतर्भाग तक। आजीवन—जीवन भर। (ग) ईषत् (थोडा, कुछ) आपिंगल=कुछ कुछ पीला। आकृष्ण=कुछ काला। (घ) अतिक्रमण—आकालिक=बेमौसम का।

आ२—उप० [सं०] यह प्राय गत्यर्थक धातुओ के पहले लगता है और उनके अर्थो मे कुछ थोडी सी विशेषता कर देता है, जैसे, आ। आघूर्णन, आरोहण, आकपन, आघ्राण। जब यह 'गम' (जाना) 'या' (जाना), 'दा' (देना) तथा 'नी' (ले जाना) धातुको पहले लगता है, तब उनके अर्थो को उलट देता है, जैसे 'गमन (जाना) से आगमन (आना), 'नयन' (ले जाना) से 'आनयन (लाना), 'दान' (देना) से 'आदान' (लेना)।

आ३—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा। पितामह।

आइंदा१—वि० [फा० आइंदह्] आनेवाला। आगतुक। भविष्य जैसे,—आइंदा जमाना।

आइंदा२—संज्ञा पुं० भविष्य काल। आनेवाला समय। जैसे—आइंदा के लिये खबरदार हो रहो।

आइंदा३—क्रि वि० आगे। भविष्य मे। जैसे,—हमने समझा दिया आइंदा वह जाने उसका काम जाने।

यौ०—आइंदे। आइंदे को। आइंदे मे। आइंदे से। ये सबके क्रि० वि० के समान प्रयुक्त होते हैं।

आइ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० आयु] १ आयु। जीवन। उ०—जेहि सुभाय चितवहि हितु जानी। सो जानै जनु आइ खुटानी—मानस, १।२६९।

आइटम—संज्ञा पुं० [अं०] मद। उ०-बजट बनाने लगता है, तो हर एक आइटम मे दो चार लाख जादा लिख देता है।—रगभूमि भा० २, पृ० ६०५।

आइडियल—वि० [अं०] श्रेष्ठ। आदर्श।

आइना†—संज्ञा पु० [फा० आइनह्] दे० 'आईना'। उ०—है निराली प्रभु-कला जिसमे बसी, वह निराला आईना है फूटता।—चोखे० पृ० २३।

आइस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयसु'।

आइसु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयसु'।

आई१—संज्ञा स्त्री० [सं० आयु] १ आयु। जीवन। उ०—सतयुग [ल]ख वर्ष की आई, त्रेता दश सहस्र कह गाई।—सूर (शब्द०)। २ मृत्यु। मौत (ला०) भरा कटोरा दूध का, ठढा करके पी। तेरी आई मैं मरूँ, किसी तरह तू जी।—(शब्द०)।

आई२—क्रि० अ० 'आना' का भूतकाल स्त्री०

यौ०—आई गई=आकर गुजरी हुई बात।

मुहा०—आई गई करना = (१) बीती को बिसारना। (२) टाल जाना। उपेक्षा करना। आई गई होना = (१) घटित होकर गुजर जाना। २ अनुपस्थित होना।

आई[३]†—संज्ञा स्त्री० [सं० आर्यिका, प्रा० अज्जिआ] १ पितामही। दादी। २ माँ।

आई[४]—प्रत्य० [हिं०] १ एक प्रत्यय जो भाववाचक संज्ञा बनाने के लिये विशेषण शब्दों के अंत में जोड़ा जाता है, जैसे, 'कठिन' से 'कठिनाई', 'बड़ा' से 'बड़ाई', 'छोटा' से 'छुटाई', 'मीठा' से 'मिठाई' आदि। २ एक प्रत्यय जो धातुओं में लगकर भाववाचक संज्ञाएँ बनाता है। जैसे, 'पढ़' 'पढ़ाई', लिख से ,लिखाई', 'लड़ से' लड़ाई 'भिड़' से 'भिड़ाई' आदि।

आईन—संज्ञा पुं० [फ़ा०][वि० आईनी] १ नियम। विधि। कायदा। जाब्ता। २ कानून। राजनियम।

यौ०—आईनदाँ—वकील। कानून जाननेवाला।

आईना—संज्ञा पुं० [फ़ा० आईनह्] १ आरसी। दर्पण। शीशा।

यौ०—आईनादार। आईनाबंदी। आइनासाज। आइनासाजी।

मुहा०—आईना होना = स्पष्ट होना। जैसे,—यह बात तो आप पर आईना हो गई होगी। आईने में मुँह देखना—अपनी योग्यता को जाँचना। (यह मुहावरा उस समय बोला जाता है जब कोई व्यक्ति अपनी योग्यता से भी अधिक काम करने की इच्छा प्रकट करता है, जैसे,—पहले आइने में अपना मुँह तो देख लो, फिर बात करना।

२ किवाड़े का दिलहा। वि० दे० 'दिलहा'।

यौ०—आईनेदार = वह किवाड़ा जिसमें आईना या दिलहा हो।

आईनादार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह नौकर जो आईना दिखलाने का काम करे। नाई। हज्जाम।

विशेष—दसहरे, दीवाली आदि त्योहारों पर नाई आईना दिखाता है और उसके बदले में लोगों से कुछ ईनाम पाता है।

आईनाबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ कमरे या बैठक में झाड़ फानूस आदि की सजावट। २ कमरे या घर के फर्श में पत्थर या ईंट की जुड़ाई। ३. रोशनी करने के लिये तरतीब से टट्टियाँ खड़ी करना।

आईनासाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० आईनह् + साज] आईना बनानेवाला।

आईनासाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० आईनह् साजी] १ काँच की चद्दर के टुकड़े पर कलई करने का काम। २ आइनासाज का पेशा

आइनी—वि० [फ़ा० आईन] कानूनी। राजनियम के अनुकूल।

आउंस—संज्ञा पुं० [अं०] एक अंग्रेजी मान जो दो प्रकार का होता है। एक ठोस वस्तुओं के तौलने में और दूसरा द्रव पदार्थों के नापने में काम आता है। तौलने का आउंस हिंदुस्तानी सवा दो तोले के बराबर होता है। ऐसे बारह आउंसों का एक पाउंड होता है। नापने का आउंस सोलह ड्राम का होता है और एक ड्राम साठ बूँदों का होता है।

आउ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० आयु] जीवन। उम्र। उ०—(क) एहि वन रहत गई हम्ह आऊ। तरिवर चलत न देखा काऊ।—जायसी ग्रं०, पृ० २७। (ख) सकट सुकृत को सोवत जानि जिय रघुराउ। सहस द्वादस पंचमत में कछुक है अब आउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४२२।

आउज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आतोद्य प्रा० आओज्ज, आवज्ज] ताशा। उ०—घटा-घटि पखाउज-आउज झाझ बेनु डफ-तार। नूपुर धुनि-मंजीर मनोहर कर कंकन-झनकार।—तुलसी ग्रं०, २६५।

आउझ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आतोद्य, प्रा० आवज्ज] दे० 'आउज'।

आउट—वि० [अं०] खेल में हारा हुआ। बहिर्भूत।

विशेष—यह क्रिकेट आदि खेल में बोला जाता है। जब बल्लेवाले किसी खिलाड़ी के खेलते समय गेंद विकेट में लग जाती है वा बल्ले से मारी हुई गेंद लोक ली जाती है, तब वह आउट समझा जाता है, और बल्ला रखा देता है।

आउबाउ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० वायु > आउ अनु०] अंड बंड बात। अनर्थक शब्द। असंबद्ध प्रलाप।

क्रि० प्र०—बकना। उ०—मानस मलीन करतब कलिमल पीन जीह हू न जपेउ नाम बकेउ आउबाउ मैं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५८८।

आउस—संज्ञा पुं० [सं० आशु बँग० आउश] धान का एक भेद जो बंगाल में मई जून में बोया जाता है और अगस्त सितंबर में काटा जाता है। यह दो प्रकार का होता है—एक मोटा, दूसरा महीन या लेपी। भदई। ओसहन।

आऊपा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आयुष्य] उम्र। अवस्था। उ०—उनामिए पुत्री अवतरी। तिन आऊपा पूरी करी।—अर्ध० पृ० ५७।

आकंप—संज्ञा पुं० [सं० आकम्प] दे० 'आकंपन' [को०]।

आकंपन—संज्ञा पुं० [सं० आकम्पन] [वि० आकंपित] काँपना। कँपकँपी।

आकंपित—वि० [सं० आकम्पित] काँपा हुआ। हिला हुआ।

आक[१]—संज्ञा पुं० [सं० अर्क, प्रा० अक्क] मदार। अकौआ। अकवन। उ०—(क) पुरवा लागि भूमि जल पूरी। आक जवास भई तस झूरी।—जायसी ग्रं०, पृ० १५३। (ख) कबिरा चंदन बीरवे, बेधा आक पलाश। आप सरीखा कर लिया, जो होते उन पास।—कबीर (शब्द०)। (ग) देत न अघात रीझि जात पात आक ही के भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत है।—तुलसी ग्रं० पृ० २३७।

मुहा०—आक की बुढ़िया = (१) मदार का घूआ। ( ) बहुत बूढ़ी स्त्री।

आक[२](पु)—वि० [सं० अक = दुःख] दुःखी। उ०—आक करम भेषज विदित, लखत नहीं मतिहीन। तुलसी सठ अकरम विहठि दिन दिन दीन मलीन।—स० सप्तक, पृ० ४७।

आकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० अर्क, हिं० आक + डा (प्रत्य०)] मदार। अकौआ। अर्क।

आकना†—संज्ञा पुं० [सं० आकर्षण = खोदना] १ घास फूस, जिसे जोते हुए खेत से निकालकर बाहर फेंकते है। २ जोते हुए खेत से घास फूस निकालने की क्रिया। चिखुरना।

आकबत—संज्ञा स्त्री० [अ० आकबत] मरने के पीछे अवस्था। परलोक। जैसे,—बाबा, दिया लिया ही आकबत में काम आवेगा।

यौ०—आकबतअंदेश। आकबतअंदेशी।

क्रि० प्र० बिगड़ना = (१) परलोक बिगड़ना। परलोक नष्ट

होना। (२) अंजाम बिगड़ना। बुरा परिणाम होना।—बिगाड़ना।

मुहा०—आकवत में दिया दिखाना = परलोक में काम आना।

आकवतअंदेश—वि० [अ० आकबत + फा० अंदेश] परिणाम सोचनेवाला। अग्रसोची। दूरदेश। दीर्घदर्शी।

आकवतअंदेशी—संज्ञा स्त्री० [आकवत + फा० अंदेशी] परिणाम का विचार। परिणामदर्शिता। दीर्घदर्शिता। दूरदेशी।
क्रि० प्र०—करना।

आकवतीलगर—संज्ञा पुं० [अ० आकबत + फा० ई० (प्रत्य०) + हिं० लगर] एक प्रकार का लगर जो जहाज पर अगले मस्तूल की रस्सियों या ंगिन के पास बीच के टूटक में रहता है और आफत के वक्त डाला जाता है।

आकवाक—संज्ञा पुं० [प्रा० *अक्कइ > √वक से अनुध्व०] अकवक। अकबड बात। ऊटपटांगबात। उ०—(क) आकवाक वकति विथा मैं बूडि बूडि जाति पी की सुधि आएँ जी की सुधि बुधि खोइ देत।—देव (शब्द०)। (ख) आकवाक वकि और की वृथा न छाती छोल।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७३७।

आकर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ खानि। उत्पत्तिस्थान। उ०—सदासुमन फल सहित सव, द्रुम नव नाना जाति। प्रगटी सुदर सैल पर, मनि आकर बहु भाँति।—मानस, १।६५। २ खजाना। भाडार।
यौ०—गुणाकर। कमलाकर। कुसुमाकर। करुणाकर। रत्नाकर।
३ भेद। किस्म। जाति। उ०—आकर चारि लाख चौरासी जाति जीव जल थल न भवासी।—मानस, १।८। ४ तलवार के वत्तीस हाथो मे से एक। तलवार चलाने का एक भेद।

आकर[2]—वि० १ श्रेष्ठ। उत्तम। २ अधिक। उ०—चपा प्रीति जो तेल है, दिन दिन आकर वास। गलि गलि आप हेराय जो, मुए न छाँडै पास।—जायसी (शब्द०)। ३ गणित। गुणा। जैसे, पाँच आकर, दस आकर। उ०—अस भा सूर पुरुप निरमरा। सूर जाहि दस आकर करा।—जायसी (शब्द०)। ४ दक्ष। कुशल। व्युत्पन्न।

आकरकढा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आकरकरहा'।

आकरकरहा—संज्ञा पुं० [अ०] एक जडी जिसे मुँह मे रखने से जीभ मे चुनचुनाहट होती है और मुँह से पानी निकलता है। यह एक वृक्ष की लकडी है। आकरकढा। दे० 'अकरकरा'।

आकरखानाⓅ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'आकर्पना'।

आकरिक[1]—वि० [सं०] खान खोदनेवाला।

आकरिक[2]—संज्ञा पुं० वह मनुष्य जो खान को स्वय खोदे या औरो से खोदावे और उसमे धातु निकाले।

आकरी[1]—वि० [सं० आकर = खान (धातु और पत्थर आदि की)] कठोर। उ०—नारी बोलैं आकरी तव दुख पावैं नाह। सुदर वोलैं मधुर मुख तव सुख सीर प्रवाह।—सुदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७०७।

आकरी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० आकर + ई० (प्रत्य०)] खान खोदने का काम। उ०—चाकरी न आकरी न खेती न वनिज भीख जानत न छर कछु कसव वषारु है।—तुलसी ग्रं०, पृ० ११२।

आकरी[3]—संज्ञा पुं० [सं० आकरिन्] दे० 'आकरिक'।

आकर्ण—वि० [सं०] कान तक फैला हुआ।
यौ०—आकर्णचक्षु। आकर्णकृष्ट।

आकर्णन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आकर्णित] सुनना। कान करना। अकनना।

आकर्णित—वि० [सं०] सुना हुआ।

आकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक जगह के पदार्थ का वल से दूसरी जगह जाना। खिंचाव। कशिश।
क्रि० प्र०—करना—खींचना। उ०—तैसे ही भुवभार उतारन हरि हलधर अवतार। कालिंदी आकर्ष कियो हरि मारे अपार।—सूर। (शब्द०)।
२ पासे का खेल। ३ बिसात जिसपर पासा खेला जाय चौपड। ४ इंद्रिय। ५ धनुप चलाने का अभ्यास। ६ कसौटी। ७. चुवक।

आकर्षक[1]—वि० [सं०] १ वह जो दूसरे को अपनी ओर खींचे आकर्षण करनेवाला। खीचनेवाला। २. सुदर।

आकर्षक[2]—संज्ञा पुं० चुवक [को०]।

आकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आकर्षित, आकृष्ट] १ किसी वस्तु का दूसरी वस्तु के पास उसकी शक्ति या प्रेरणा से लाया जाना। २ खिंचाव। ३ तत्रशास्त्र का एक प्रयोग जिसके द्वारा दूर देशस्थ पुरुप या पदार्थ पास मे आ जाता है।
क्रि० प्र०—करना। होना।
यौ०—आकर्षण मंत्र। आकर्षण विद्या। आकर्षण शक्ति।

आकर्षणशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] भौतिक पदार्थों की एक शक्ति जिससे वे अन्य पदार्थों को अपनी ओर खीचते हैं।
विशेष—यह शक्ति प्रत्येक परमाणु मे रहती है। क्या कारण, क्या कार्य रूप मे सव परमाणु या उनसे उत्पन्न सव पदार्थों की ओर आकृष्ट होने हैं। इसी से द्वयणु, त्रसरेणु तथा समस्त चराचर जगत् का सगठन होता है। इसी से पापाणादि के परमाणु आपस मे जुडे रहते हैं। पृथ्वी के ऊपर ककड, पत्थर तथा जीव आदि सव इसी शक्ति के वल से ठहरे रहते हैं। जल के चद्रमा की ओर आकृष्ट होने से समुद्र मे ज्वार भाटा उठता है। वडे वडे पिंड, ग्रहमडल, सूर्य, चद्रादि सव इसी शक्ति से आकाशमडल मे निराधार स्थित हैं और न . से अपनी अपनी कक्षा पर भ्रमण करते हैं। पृथ्वी भी इसी शक्ति से वृहत् वायुमडल को धारण किए हुए है। सूर्य से लेकर परमाणु तक मे यह शक्ति विद्यमान है। यह शक्ति भिन्न भि रूपो से भिन्न भिन्न पदार्थों और दशाओ मे काम करती है मात्रानुसार इसका प्रभाव दूरस्थ और निकटवर्ती सभी दा.थ पर पडता है। धारण या गुरुत्वाकर्षण, चुवकाकर्षण, सलग्नाकर्षण, केशाकर्षण, रासायनिकाकर्पण आदि इनके -ने प्रभेद है।

आकर्षणी—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक लग्गी जिससे फल फूल तोडते हैं अँकुसी। लकसी। २ प्राचीन काल का एक सिक्का। ३ शरीर पर धारण की जानेवाली विशेप प्रकार की मुद्रा या चिह्न (को०,

आकर्षनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० आकर्षण] दे० 'आकर्षण'।

आकर्षनाⓅ—क्रि० स० [सं० आकर्षण से नाम०] खींचना। उ०—आकरष्यो धनु करन लगि, छाँडे सर इकतीस।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कालिंदी को निकट बुलायो जलक्रीडा के काज। लियो आकरषि एक छन मे हलि कति समरथ यदुराज।—सूर (शब्द०)।

आकर्षिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आकर्षिकी] दे० 'आकर्षक' [को०]।

आकर्षित—वि० [सं०] खींचा हुआ।

आकलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आकलनीय, आकलित] १ ग्रहण। लेना। २ सग्रह। बटोरना। सचय। इकट्ठा करना। ३ गिनती करना। ४ अनुष्ठान। सपादन। ५ अनुसधान। जाँच। ६ इच्छा। कामना [को०]। ७ वर्णन करना [को०]।

आकलना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'आकलन'। २ पूजा। भवित[को०]

आकलनीय—वि० [सं०] १ ग्रहण करने योग्य। लेने योग्य। २ सग्रह करने योग्य। ३ गिनती करने योग्य। ४ अनुष्ठान करने योग्य। ५ जाँचने योग्य। पता लगाने योग्य।

आकलित—वि० [सं०] १ लिया हुआ। पकडा हुआ। २ ग्रथित। गूँथा हुआ। ३ गिना हुआ। परिगणित। ४ अनुष्ठित। सपादित। कृत। ५ अनुसधान किया हुआ। जाँचा हुआ। परीक्षित।

आकली[1]†—संज्ञा स्त्री० [सं० आकुल+ई (प्रत्य०) या सं० आकल्य= बीमारी] आकुलता। बेचैनी।

आकली[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] चटक पक्षी। गौरैया।

आकल्प[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वेश रचना। सिंगार करना, जैसे, रत्नाकल्प। २ पोशाक। पहनावा [को०]। ३ बीमारी (को०)। ४ जोडना। बढाना [को०]।

आकल्प[2]—क्रि० वि० कल्प पर्यंत।

आकल्य—संज्ञा पुं० [सं०] बीमारी। अस्वस्थता [को०]।

आकष—संज्ञा पुं० [सं०] कसौटी।

आकसमातⓅ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकस्मात'। उ०—पथी माँहि पथ चलि आयो आकसमात।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७५८।

आकस्मातⓅ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकस्मात'।

आकस्मिक—वि० [सं०] जो बिना किसी कारण के हो। जो अचानक हो। सहसा होनेवाला। जिसके होने का पहले से अनुमान न हो।

यौ०—आकस्मिक अवकाश, आकस्मिक छुट्टी=अचानक काम से ली जानेवाली छुट्टी।

आकाक्षक—वि० [सं० आकाङ्क्षक] इच्छा रखनेवाला। अभिलाषा करनेवाला।

आकाक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० आकाङ्क्षा] [वि० आकाक्षक आकांक्षित, आकाक्षी] १ इच्छा। अभिलाषा। वाछा। चाह। २ अपेक्षा। ३ अनुसधान। ४ न्याय के अनुसार वाक्यार्थज्ञान के चार प्रकार के हेतुओ में से एक।

विशेष—वाक्य मे पदो का परस्पर सबध होता है और इसी सबध से वाक्यार्थ का ज्ञान होता है। जब वाक्य मे एक पद का अर्थ दूसरे पद के अर्थज्ञान पर आश्रित रहता है तब यह कहते है कि इस पद के ज्ञान की आकाक्षा है, जैसे,—'देवदत्त आया' इस वाक्य मे आया पद का ज्ञान देवदत्त के ज्ञान के आश्रित है।

५. जैनियो के अनुसार एक अतिचार। जैनियों से अतिरिक्त अन्य मतवालो की विभूति देख उसे ग्रहण करने की इच्छा।

यौ०—आकांक्षातिचार।

आकाक्षित—वि० [सं० आकाङ्क्षित] १ इच्छित। अभिलषित। वाछित। २ अपेक्षित।

आकाक्षी—वि० [सं० आकांक्षिन्] [वि० स्त्री० आकाक्षिणी] १ इच्छा रखनेवाला। इच्छुक। चाहनेवाला। २ आशा करनेवाला।

आका[1]†—संज्ञा पुं० [सं० आकाय] १ पोटा। पजार। २ भट्ठी। ३ पजावा। आँवा।

आका[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० आका] मालिक। स्वामी।

आकाय—संज्ञा पुं० [सं०] १ चिता की अग्नि। २ चिता। ३ आवास। निवास [को०]।

आकार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वरूप। आकृति। मूर्ति। रूप। सूरत। २ डील डौल। कद ३ बनावट। सघटन। ४ निशान। चिह्न। ५ चेष्टा। ६ 'आ' वर्ण। ७ बुलावा। ८ प्रकार। ढंग। उ० सुदर वर आनन समीप, अति राजत इहि आकार। जलरुह मनो बैर बिधु सों तजि, मिलत लए उपहार।—सूर०, १०।२८३।

यौ०—आकारगुप्ति। आकारगोपन=हृदय या मन के भाव को कृत्रिम चेष्टा से छिपाना।

आकार[2]—वि० रूपवाला। साकार। उ०—कोई आकार कहत कोई निराकार कहत तत्व को छोडि नि नतत धाई।—कबीर रे०, पृ० २८।

आकारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ आह्वान। बुलावा। २ चुनौती [को०]।

आकारवान—वि० [सं० आकारवत्] १ आकार या शरीरवाला। २ सुगठित। सुदर [को०]।

आकारात—वि० [सं० आकारान्त] जिसके अत मे 'आ' स्वर हो [को०]।

आकारित—वि० [सं०] १ आहूत। २. स्वीकृत। ३. माँगा या चाहा हुआ [को०]।

आकारीⓅ—वि० [सं० आकरण = आह्वान] [स्त्री० आकारिणी] आह्वान करनेवाला। बुलानेवाला। उ०—गोर मुख हिम किरण की जु किरणावली स्रवत मधुगान हिय पियत रसी। नागरी सकल सकेत आकारिणी गनत गुन गननि मति होति फसी।—नागरी० (शब्द०)।

आकारीठⓅ—संज्ञा पुं० [सं० आकारण = बुलाना] सग्राम। युद्ध। (डिं०)

आकाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. अतरिक्ष। आसमान। गगन। ऊँचाई पर का वह चारो ओर फैला हुआ अपार स्थान जो नीला और शून्य दिखाई देता है। जैसे,—पक्षी आकाश मे उड रहे हैं। २ साधारणत वह स्थान जहाँ वायु के अतिरिक्त और कुछ न हो, जैसे,—वह योगी ऊपर उठा और बडी देर तक आकाश मे ठहरा रहा। ३ शून्य स्थान। वह अनत विस्तृत अवकाश

जिसने विश्व के छोटे बड़े सब पदार्थ, ग्रह, सूर्य, ग्रह उपग्रह आदि स्थित हैं और जो सब पदार्थों के भीतर व्याप्त है।

विशेष—वैशेषिककार ने आकाश को द्रव्यों मे गिना है। उसके अनुयायी भाष्यकार प्रशस्तपाद ने आकाश, काल और दिशा को एक ही माना है। यद्यपि सूत्र के १७ गुणों मे शब्द नही है, तथापि भाष्यकार ने कुछ और पदार्थों के साथ शब्द को भी ले लिया है। न्याय मे भी आकाश को पचभूतो मे माना है और उससे श्रोत्रेंद्रिय की उत्पत्ति मानी है। साख्यकार ने भी आकाश को प्रकृति का एक विकार और शब्दतन्मात्रा से उत्पन्न माना है और उसका गुण शब्द कहा है। पाश्चात्य दार्शनिकों में से अधिकाश ने आकाश के अनुभव और दूसरे पदार्थों के अनुभव के बीच वही भेद माना है जो वर्तमान प्रत्यक्ष अनुभव और व्यतीत पदार्थों या भविष्य सभावनाओ की स्मृति या चिंतन प्रसूत अनुभव मे है। काट आदि ने आकाश की भावना को अतःकरण से ही प्राप्त अर्थात् उसी का गुण माना है। उनका कथन है कि जैसे रगो का अनुभव हमे होता है, पर वास्तव मे पदार्थों मे उनकी स्थिति नही है, केवल हमारे अतःकरण मे है, उसी प्रकार आकाश भी है।

यौ०—आकाशकुसुम। आकाशगगा। आकाशचारी। आकाशचोटी। आकाशजल। आकाशदीपक। आकाशधुरी। आकाशध्रुव। आकाशनीम। आकाशपुष्प। आकाशभाषित। आकाशफल। आकाशबेल। आकाशमडल। आकाशमुखी। आकाशमूली। आकाशलोचन। आकाशवल्ली। आकाशवाणी। आकाशवृत्ति। आकाशव्यापी। आकाशास्तिकाय।

पर्या०—द्यौ। द्यु। अभ्र। व्योम। पुष्कर। अबर। नभ। अतरिक्ष। गगन। अनत। सुरवर्त्म। ख। वियत्। विष्णुपद। तारापथ। मेघाध्वा। महाबिल। विहायस। मरुद्वर्त्म। मेघवेश्म। मेघवर्त्म। कुनाभि अक्षर। विविष्टप। नाक। अनग।

मुहा०—आकाश की कोर=क्षितिज। आकाश खुलना=आसमान का साफ होना। बादल का जाना। बादल हटना। जैसे,—दो दिन की बदली के पीछे आज आकाश खुला है। आकाश छूना या चूमना=बहुत ऊँचा होना। जैसे,—काशी के प्रासाद आकाश छूते हैं। आकाश पाताल एक करना=(१) भारी उद्योग करना। जैसे,—जब तक उसने इस काम को पूरा नही किया, आकाश पाताल एक किए रहा। (२) आदोलन करना। हलचल करना। धूम मचाना। जैसे,—वे जरा सी बात के लिये आकाश पाताल एक कर देते हैं। आकाश पाताल का अतर=बड़ा अतर। बहुत फर्क। उ०—तौ भी इनमे उनमे आकाश और पाताल का अतर है। प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०३। आकाश बाँधना=अनहोनी बात कहना। असभव बात कहना। उ०—कहा कहति डरपाइ कछू मेरो घटि जैहै। तुम बाँधति आकाश बात झूठी को सैहै।—सूर (शब्द०)। आकाश से बातें करना=बहुत ऊँचा होना। जैसे,—माधवराव के धरहरे आकाश से बातें करते हैं।

४ अबरक। अभ्रक। ५ छिद्र। विवर [को०]। ६ (गणित मे) शून्य [को०]। ७ प्रकाश। स्वच्छता [को०]। ८ ब्रह्म [को०]।

आकाशकक्षा—सज्ञा स्त्री० [स०] आकाश मे वह मडल जहाँ तक सूर्य की किरणों का सचार है। सूर्यसिद्धात के अनुसार इस मडल की परिधि १८७१२०६९२००००००००योजन है।

आकाशकल्प—सज्ञा पुं० [स०] ब्रह्म [को०]।

आकाशकुसुम—सज्ञा पुं० [सं०] १ आकाश का फूल। खपुष्प। अनहोनी बात। असभव बात।

आकाशगंगा—सज्ञा स्त्री० [सं० आकाशगङ्गा] १ बहुत से छोटे छोटे तारो का एक विस्तृत समूह जो आकाश मे उत्तर-दक्षिण फैला है।

विशेष—इसमे इतने छोटे छोटे तारे हैं जो दूरबीन के ही सहारे दिखाई पडते है। खाली आँख मे उनका समूह एक सफेद सडक की तरह बहुत दूर तक दिखाई पडता है। इसकी चौडाई बराबर नही है, कही अधिक कही बहुत कम है। इसकी कुछ शाखाएँ भी कुछ इधर उधर फैली दिखाई पडती हैं। इसी से पुराणो मे इसका यह नाम है। देहाती लोग इसे आकाशजनेऊ, हाथी की डहर या केवल डहर अथवा दूधगगा कहते हैं।

२ पुराणानुसार वह गगा जो आकाश मे है।

पर्या०—मदाकिनी। वियद्गगा। स्वर्ग गा। स्वर्णदी। सुरदीर्घिका।

आकाशग¹—वि० [स०] आकाशचारी [को०]।

आकाशग²—सज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

आकाशगगा—सज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगगा [को०]।

आकाशचमस—सज्ञा पुं० [स०] चद्रमा [को०]।

आकाशचारी¹—वि० [सं० आकाशचारिन्] [स्त्री० आकाशचारिणी] आकाश मे फिरनेवाला। आकाशगामी।

आकाशचारी²—सज्ञा पुं० १ सूर्यादि ग्रह नक्षत्र। २. वायु। ३. पक्षी। ४ देवता। ५. राक्षस।

आकाशचोटी—सज्ञा पुं० [सं० आकाश+हिं० चोटी] शीर्षबिंदु। वह कल्पित बिंदु जो ठीक सिर के ऊपर पडता है।

आकाशजननी—वि० [सं० आकाशजननिन्] दुर्ग आदि के प्राचीर मे बने झरोखे या छिद्र [को०]।

आकाशजल—सज्ञा पुं० [स०] १ वह जल जो ऊपर से बरसे। मेह का पानी।

विशेष—मघा नक्षत्र मे लोग बरसे हुए पानी को बरतनो मे भर कर रख लेते हैं। यह औषध के काम आता है। २ ओस।

आकाशदीप—सज्ञा पुं० [स०] आकाशदीया।

आकाशदीया—सज्ञा पुं० [स० आकाश+हिं० दीया] वह दीपक जो कार्तिक मे हिंदू लोग कडील मे रखकर एक ऊँचे बाँस के सिरे पर बाँधकर जलाते हैं।

विशेष—कार्तिक माहात्म्य के अनुसार २१ हाथ की ऊँचाई पर दिया जलाना उत्तम है, १४ हाथ पर मध्यम और ७ हाथ पर निकृष्ट है।

आकाशधुरी—सज्ञा स्त्री० [स० आकाश+हिं० धुरी] खगोल का ध्रुव। आकाशध्रुव।

आकाशध्रुव—सज्ञा पुं० [सं०] आकाशधुरी।

आकाशनदी—सज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगगा।

आकाशनिद्रा—सज्ञा स्त्री० [सं०] खुले हुए मैदान मे सोना।

आकाशनीम—सज्ञा स्त्री० [स० आकाश+हिं० नीम] एक प्रकार का पौधा जो नीम के पेड पर होता है। नीम का बाँदा।

आकाशपथिक--संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

आकाशपुष्प--संज्ञा पुं० [सं०] आकाश का फूल । आकाशकुसुम । खपुष्प ।

विशेष-- यह इस तरह बातों के उदाहरणों में से हैं ।

आकाशफल--संज्ञा पुं० [सं०] संतान या लड़का लड़की ।

आकाशबेल, आकाशबेलि--संज्ञा स्त्री० [सं० आकाश+हिं० बेल] अमरबेल ।

आकाशभाषित--संज्ञा पुं० [सं०] नाटक के अभिनय में एक संकेत। बिना किसी प्रश्नकर्ता के आपसे आप वक्ता ऊपर की ओर देखकर किसी प्रश्न को इस तरह करता है, मानो वह उससे किया जा रहा है और फिर वह उसका उत्तर देता है । इस प्रकार के कहे हुए प्रश्न को 'आकाशभाषित' कहते हैं ।

विशेष--भारतेंदु हरिश्चंद्र के 'विषस्य विषमौषधम्' में इसका प्रयोग बहुत है । उ०--हरिश्चंद्र--अरे सुनो भाई, सेठ, साहूकार, महाजन, दूकानदारो, हम किसी कारण से अपने को हजार मोहर पर बेचते हैं । किसी को लेना हो तो लो । (इधर उधर फिरता है । ऊपर देखकर) क्या कहा? 'क्यों तुम ऐसा दुष्कर्म करते हो ?" आर्य, यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है । (ऊपर देखकर) क्या कहा ? "तुम क्या कर सकते हो, क्या समझते हो और किस तरह रहोगे?" इसका क्या पूछना है । स्वामी जो कहेगा वह करेंगे, इत्यादि ।--सत्य हरिश्चंद्र ।

आकाशमंडल--संज्ञा पुं० [सं० आकाशमण्डल] नभमंडल । खगोल ।

आकाशमांसी--संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्र जटामांसी [को०] ।

आकाशमुखी--संज्ञा पुं० [सं० आकाश+हिं० मुखी] एक प्रकार के साधु जो आकाश की ओर मुँह करके तप करते हैं । ये लोग अधिकांश शैव होते हैं ।

आकाशमूली--संज्ञा स्त्री० [सं०] जलकुंभी । पाना ।

आकाशयान--संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो आकाशमार्ग से गमन करे । २ वायुयान । बैलून [को०] ।

आकाशयोधी--संज्ञा पुं० [सं० आकाशयोधिन्] वह लोग जो ऊँची जमीन या टीले पर से लड़ाई कर रहे हों । [को०] ।

आकाशरक्षी--संज्ञा पुं० [सं० आकाशरक्षिन्] वह जो किले की बाहरी दीवार या बुर्ज पर खड़ा होकर पहरा दे [को०] ।

आकाशलोचन--संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ से ग्रहों की स्थिति या गति देखी जाती है । मानमंदिर । आबजरवेटरी ।

आकाशवचन--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आकाशभाषित' [को०] ।

आकाशवर्त्म--संज्ञा पुं० [सं०] १ वायुमंडल ।

आकाशवल्ली--संज्ञा स्त्री० [सं०] अमरबेल ।

आकाशवाणी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह शब्द या वाक्य जो आकाश से देवता लोग बोलें । देववाणी । २ बेतार की युक्ति से प्रसारित वाणी या ध्वनि । रेडियो ।

आकाशवृत्ति[1]--संज्ञा स्त्री० [सं०] अनिश्चित जीविका । ऐसी आमदनी जो बँधी न हो ।

आकाशवृत्ति[2]--वि० [सं० आकाशवृत्तिक] १ जिसे आकाशवृत्ति का ही सहारा हो । २ (खेत) जिसे आकाश के जल ही का सहारा हो, जो दूसरे प्रकार से न सींचा जा सकता हो ।

आकाशसलिल--संज्ञा पुं० [सं०] १ वृष्टि । २ ओस [को०] ।

आकाशस्फटिक--संज्ञा पुं० [सं०] १ ओला । बनौरी । २ सूर्यकांत या चंद्रकांत मणि [को०] ।

आकाशास्तिकाय--संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार छह प्रकार के द्रव्यों में से एक । यह एक अरूपी पदार्थ है जो लोक और अलोक दोनों में है और जीव तथा पुद्गल दोनों को स्थान या अवकाश देता है । आकाश ।

आकाशी--संज्ञा स्त्री० [सं० आकाश+ई० (प्रत्य०)] वह चाँदनी जो धूप आदि से बचने के लिये तानी जाती है ।

आकाशीय--वि० [सं०] १ आकाशसंबंधी । आकाश का । २ आकाश में रहनेवाले । आकाशस्थ । ३ आकाश में होनेवाला । ४ दैवागत । आकस्मिक ।

आकास(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आकाश] दे० 'आकाश' । उ०--लंका राज विभीषन राजै ध्रुव आकास विराजै,। सूर०, १ । ३६ ।

आकासबानी(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आकाशवाणी' उ०--सूर, आकासबानी भई तबै तहँ, यह बैदेहि है, कत सुहारा ।--सूर०, ६। ७६ ।

आकिंचन--संज्ञा पुं० [सं० आकिञ्चन] गरीबी । निर्धनता । अकिंचनता [को०] ।

आकिंचन --वि० दे० 'अकिंचन' । उ०--आकिंचन इंद्रियदमन, रमन राम इकतार । तुलसी ऐसे संत जन, विरले या संसार ।--तुलसी ग्रं०, पृ० १२ ।

आकिल--वि० [अ० आकिल] बुद्धिमान् । ज्ञानी । अक्लमंद ।

आकिलखानी--संज्ञा पुं० [अ० आकिल+फा० खाँ (नाम)] एक प्रकार का रंग जो कालापन लिए लाल होता है । एक प्रकार का खैरा या काकरेजी रंग ।

आकीर्ण[1]--वि० [सं०] १ व्याप्त । पूर्ण । भरा हुआ । २ बिखरा या फैला हुआ । [को०] ।

यौ०--कंटककीर्ण । जनाकीर्ण ।

आकीर्ण[2]--संज्ञा पुं० भीड़ [को०] ।

आकुंचन--संज्ञा पुं० [सं० आकुञ्चन] [वि० आकुंचनीय आकुंचित] १ सिकुड़ना । बटुरना । सिमटना । संकोच । २. वैशेषिक शास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के कर्मों में पदार्थों का सिकुड़न । ३ ढेर लगाना [को०] । ४ टेढ़ा करना [को०] । ५ सेना का एक विशेष प्रकार का बढ़ाव [को०] ।

आकुंचनीय--वि० [सं० आकुञ्चनीय] सिकुड़ने योग्य । सिमटने योग्य ।

आकुंचित--वि० [सं० आकुञ्चित] १ सिकुड़ा हुआ । सिमटा हुआ । २. टेढ़ा । कुटिल । वक्र ।

आकुंठन--संज्ञा पुं० [सं० आकुण्ठन] [वि० आकुंठित] १ गुठला होना । कुंद होना । लज्जा । शर्म ।

आकुंठित--वि० [सं० आकुण्ठित] १ गुठला । कुंद । २ लज्जित । शर्माया हुआ । ३. स्तब्ध । जड़। जैसे,--उनकी बुद्धि आकुंठित हो गई है ।

आकुट्टी हिंसा--संज्ञा स्त्री० [प्रा० आकुट्ठी+सं० हिंसा] उत्साहपूर्वक ऐसा निषिद्ध कर्म करना जिसमें किसी प्राणी को दुःख हो ।

आकुल¹—वि० [सं०] [संज्ञा आकुलता] २ व्यग्र। घबराया हुआ। उ०—भारत अब भी आकुल विपत्ति के घेरे मे।—दिल्ली०, पृ० २१। २ व्यस्त। बिखरा हुआ। जैसे,—केश। ३ उद्विग्न। क्षुब्ध। ४. विह्वल। कातर। ५ अस्वस्थ। ६. व्याप्त। संकुल। ७ तारतम्यहीन। जिसका कोई ठीक सिलसिला न हो [को०]। ८. जगली। ऊबड खावड [को०]।

आकुल²—संज्ञा पु० [सं०] १ खच्चर। २ आबाद जगह [को०]।

आकुलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० आकुलित] १ व्याकुलता। घबराहट। उ०—वह आकुलता अब कहाँ रही जिसमे सब कुछ ही जाय भूल।—कामायनी, पृ० १४५। २ व्याप्ति।

आकुलत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आकुलता' [को०]।

आकुलित—वि०[सं०]१ व्याकुल। घबराया हुआ। उ०—अब साध्य मलय आकुलित दुकूल कलित हो, यो छिपते हो क्यो।—चंद्र० पृ० ६३।

आकूणित—वि० [सं०] ईषत् संकुचित [को०]।

आकूत—संज्ञा पुं० [सं०] १ आशय। अभिप्राय २ हार्दिक भावना [को०]। ३ कामना इच्छा [को०]।

आकूति—संज्ञा पु० [सं०] १ अभिप्राय। आशय। मतलब। २. पुराणानुसार मनु की तीन कन्यायो मे से एक जो रुचि प्रजापति को व्याही थी। ३ उत्साह। अध्यवसाय। ४ सदाचार। आप्तरीति। ५ कर्मेंद्रिय[को०]। ६ वायुपुराण के अनुसार एक कल्प का नाम [को०]।

आकूती—संज्ञा स्त्री० [सं० आकूति] स्वायंभुव मनु की तीन कन्याओ मे से एक।

आकृत¹—वि० [सं०] व्यवस्थित। निर्मित। गठित। २ समीप लाया हुआ [को०]।

आकृत²(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आकृति] मूर्ति। रूप।

आकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बनावट। गढन। ढाँचा। २ अवयव। विभाग। उ०—जानु सुजघन करभकर आकृति, कटि प्रदेस किंकिन राजै।—सूर०, १। ६९।

विशेष—इसका प्रयोग हिंदी मे चेतन के लिये अधिक और जड़ के लिये कम होता है।

२ मूर्ति। रूप। ३ मुख। चेहरा। जैसे,—उसकी आकृति बडी भयावनी है। ४ मुख का भाव। चेष्टा। जैसे,—मरते समय उस मनुष्य की आकृति बिगड़ गई। ५ २२ अक्षरो का एक वर्णवृत्त। मदिरा। हंसी। भद्रक। मदारमाला इसका भेद है। यह यथार्थ मे एक प्रकार का सवैया है। उ०—भासत गौरि गुसाँइन को वर राम धनू दुइ खड कियो। मालिनि को जयमाल गुह्यो हरि के हिय जानकि मेलि दियो। रावन की उतरी मदिरा चुपचाप पयान जो लंक कियो। राम वरी सिय मोदभरी नभ मे सुर जै जैकार कियो।—(शब्द०)। ६ जातिविशेष [को०]। ७. (गणित मे) २२ की संख्या [को०]।

यौ०—आकृतिगण। आकृतिच्छत्रा। आकृतियोग।

आकृष्ट—वि० [सं०] खीचा हुआ। आकर्षित।

आकृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खिंचाव। २ (ज्योतिष मे) गुरुत्वाकर्षण। ३ धनुष की डोरी का खिंचना। ४ तत्रोक्त आकर्षणक्रिया [को०]।

आकेकर—वि० [सं०] अर्धोन्मीलित (नेत्र) [को०]।

आकोकर—संज्ञा पु० [सं०] मकर राशि [को०]।

आकोप—संज्ञा पुं० [सं०] ईषत् कोप। जरा सा गुस्सा [को०]।

आकौशल—संज्ञा पुं० [सं०] कुशलता का अभाव [को०]।

आक्रंद—संज्ञा पु० [सं० आक्रन्द] १ रोदन। रोना। २ चिल्लाना। चीखना। चिल्लाहट। ३ बुलाना। पुकार। ४ मित्र। भाई। बंधु। ५ घोर युद्ध। कडी लडाई। ६ ध्वनि। आवाज। शब्द। ७ ग्रहयुद्ध मे किसी एक ग्रह के दूसरे ग्रह की अपेक्षा बलवान् या विजयी होने की अवस्था। ८ प्रधान शत्रु के पीछे रहकर सहायता करनेवाला शत्रु राजा या राष्ट्र।

आक्रंदन—संज्ञा पुं० [सं० आक्रन्दन] १ रोना। २ चिल्लाना।

आक्रंदिक—वि० [सं० आक्रन्दिक] उस स्थान पर पहुँचनेवाला जहाँ से चिल्लाहट सुनाई दे [को०]।

आक्रंदित¹—वि० [सं० आक्रन्दित] १ जोर जोर से रोने चिल्लानेवाला। २ आहूत (सहायतार्थ) [को०]।

आक्रंदित²—संज्ञा पु० १ जोर की चिल्लाहट। २ पश्चात्ताप। रोना पीटना [को०]।

आक्रंदी—वि० [सं० आक्रन्दिन्] रोने चिल्लानेवाला [को०]।

आक्रम(पु)—संज्ञा पु० [सं० आक्रम = परास्त करना] १ पराक्रम। शूरता। (हिं०)। २ दे० 'आक्रमण'।

आक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आक्रमणीय, आक्रमित, आक्रांत] १. बलपूर्वक सीमा का उल्लघन करना। हमला। चढाई। धावा। जैसे,—महमूद ने कई बार भारत पर आक्रमण किया। २. आघात पहुँचाने के लिये किसी पर झपटना। हमला। जैसे,—डाकुओ ने पथिको पर आक्रमण किया। ३ घेरना। छेंकना। मुहासिरा। ४ आक्षेप करना। निंदा करना। जैसे,—इस लेख मे लोगो पर व्यर्थ आक्रमण किया गया है। ५ निकट जा पहुँचना [को०]। ६ भोजन [को०]। ७ शक्ति [को०]।

आक्रमणकारी—वि० [सं० आक्रमणकारिन्] [स्त्री० आक्रमणकारिणी] आक्रमण करनेवाला। आक्रामक।

आक्रमित—वि०[सं० आक्रमित] जिस पर आक्रमण किया गया हो।

आक्रमितानायिका—संज्ञा स्त्री०[सं०] वह प्रौढा नायिका जो मनसा, वाचा, कर्मणा अपने प्रिय को वश मे करे।

आक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यापारी। २ व्यापार [को०]।

आक्रांत—वि० [सं० आक्रान्त] १. जिसपर आक्रमण किया गया हो। जिसपर हमला हुआ हो। २ घिरा हुआ। आवृत्त। छिका हुआ। ३ वशीभूत। पराजित। विवश। ४. पीडित। दलित। दबाया हुआ। ५ व्याप्त। आकीर्ण। ६ प्राप्त [को०]। ७. सज्जित [को०]।

यौ०—आक्रांतनायिका = वह नायिका जिसका प्रेमी या पति जीत लिया गया हो। आक्रांतमति = जिसकी मति मारी गई हो।

आक्रांति—संज्ञा स्त्री० [आक्रान्ति] १ उथल पुथल। उपद्रव। २. अधिकार करना [को०]। ३ दबाना। चाँपना [को०]। ४. ऊपर चढना [को०]। ५. शक्ति। ताकत [को०]।

विशेष—भिन्न भिन्न तत्वों के संयोग से भिन्न प्रकार के आक्साइड बनते हैं, जैसे पारे से आक्साइड आफ मर्करी, जस्ते से आक्साइड आफ जिंक, लोहे से आक्साइड आफ आइरन इत्यादि।

आक्सीजन—संज्ञा पुं० [अ०] एक गैस या सूक्ष्म वायु। अम्लज। अम्लजन। प्राणद। प्राणप्रद। ओषजन।

विशेष—यह रूप, रस, गंधरहित पदार्थ है और वायुमंडलगत वायु से कुछ भारी होता है तथा पानी में घुल जाता है। यह जल में ८९ फी सदी होता है। धातु में लगकर यह मोरचा उत्पन्न करता है। प्राणियों के जीवन के लिये यह बहुत आवश्यक है। यह बहुत से पदार्थों में संयुक्त रूप में मिलता है।

आखंडल—संज्ञा पुं० [सं० आखण्डल] इंद्र।

आख—संज्ञा पुं० [सं०] खता। खती। रंभा।

आखण—वि० [सं०] (खोदने या खनने में) कड़ा। जैसे,—पत्थर [को०]।

आखत(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अक्षत, प्रा० अक्खत] १ अक्षत। उ०—सेवा सुमिरन पूजिबो पात आखत थोरे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४५७। २ चंदन या केसर में रँगा हुआ चावल जो मूर्ति के मस्तक पर स्थापना के समय और दूल्हा दुलहिन के माथेपर विवाह के समय लगाया जाता है। ३ वह अन्न जो गृहस्थ लोग नेगी परजों को विवाहादि अवसरों पर किसी विशेष कृत्य के उपलक्ष में देते हैं।

आखता—वि० [ला० आखता] जिसके अंडकोश चीरकर निकाल लिए गए हों। बधिया।

विशेष—यह शब्द प्रायः घोड़े के लिये प्रयुक्त होता है, पर कोई कोई इस शब्द का कुत्ते और बकरे के लिये भी प्रयोग करते हैं।

आखन[1](पु)—क्रि० वि० [सं० आ+क्षण] प्रति क्षण। हर घड़ी।

आखन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आख' [को०]।

आखना[1](पु)—क्रि० स० [सं० आख्यान, प्रा० आक्खान, प०√आखना] उ०—कहना। बोलना। उ०—(क) बार बार का आखिये, मेरे मन की मोय। कलि तो ऊखल होयगी, साईं और न होय।—कबीर (शब्द०)। (ख) सत्यसंध साँचे सदा, जे आखर आखे। प्रनतपाल पाए सही, जे फल अभिलाखे।—तुलसी (शब्द०)।

आखना[2]—क्रि० स० [सं० आकांक्षा] चाहना। इच्छा करना। उ०—तोहि सेवा बिछुरन नहिं आखौं। पींजर हिये घालि कै राखौं।—जायसी ग्रं०, पृ० २२।

आखना[3]—क्रि० स० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि=आँख] देखना। ताकना। उ०—अलक, भुअंगिन अधरहि आखा। गहै जो नागिन सो रस चाखा।—जायसी।—(शब्द०)। (ख) आतम और विषै को सुख वाच्य पद आनंद को। विषै सुख त्यागि आतम सुख लक्ष्य आखिये।—निश्चल (शब्द०)।

आखना[4]—क्रि० स० [हिं० आखा] मोटे आटे को आखे में डालकर चालना। छानना।

आखनिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ खनक। २ चूहा। ३ शूकर। ४ चोर। ५ कुदाल [को०]।

आखर[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर, प्रा० अक्खर] अक्षर। उ०—(क) तव चंदन आखर हिय लिखे। भीख लेइ तुइ जोग न सिखे।—जायसी ग्रं०, पृ० ८४। (ख) कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाँचा।—मानस, २।२४०।

क्रि० प्र०—देना=बात देना। प्रतिज्ञा करना।

आखर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ फावड़ा। कुदाल। २ खनक। ३ जानवर की माँद। विवर। ४ अग्नि का एक नाम [को०]।

आखा[1]—संज्ञा पुं० [सं० आक्षरण=छानना] झीने कपड़े से मढ़ा हुआ एक मेंड़रेदार बरतन जिसमें मोटे आटे को रखकर चालने से मैदा निकलता है। एक प्रकार की चलनी। अाँगी।

आखा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] खुरजी। गठिया।

आखा[3]—वि० [सं० अक्षय, प्रा० अक्खय] १ कुल। पूरा। समूचा। समस्त। उ०—कहियै जिय न कछू सक राखौ। लाँवी मेलि दई हैं तुमको, बकत रहौ दिन आखौ।—सूर०, १।३५४०। जैसे,—उसे आज आखा दिन बिना खाए बीता। २ अनगढ़ा। समूचा। जैसे,—आखा लकड़ी (लक्कड़ी)।

आखातीज—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षयतृतीया] वैशाख सुदी तीज। अक्षयतृतीया।

विशेष—इस दिन हिंदुओं के यहाँ बट का पूजन होता है और ब्राह्मणों को पंखे, सुराहियाँ, ककड़ी, आदि ठंढक पहुँचानेवाली चीजें दी जाती हैं।

आखानवमी—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षयनवमी] कार्तिक शुक्ला नवमी। दे० 'अक्षय नवमी'।

आखिर[1]—वि० [फ़ा० आखिर] अंतिम। पीछे का। पिछला।

यौ०—आखिर जमाना। आखिर दम।

आखिर[2]—संज्ञा पुं० १ अंत। जैसे,—आखिर को वह ले के टला। २ परिणाम। फल। नतीजा। जैसे,—इस काम का आखिर अच्छा नहीं।

आखिर[3]—वि० समाप्त। खतम। उ०—उपजै औ पालै अनुसरै। बावन अक्षर आखिर करै।—कबीर (शब्द०)।

आखिर[4]—क्रि० वि० १ अंत में। अंत को। जैसे,—(क) आखिर उसे यहाँ से चला ही जाना पड़ा। (ख) वह कितना ही क्यों न बढ़ जाय, आखिर है तो नीच ही। २ हारकर। हार मानकर थककर। लाचार होकर। जैसे,—जब उसने किसी तरह नहीं माना, तब आखिर उसके पैर पड़ना पड़ा। ३ अवश्य। जरूर। जैसे,—आपका काम तो निकल गया, आखिर हमें भी तो कुछ मिलना चाहिए। ४ भला। अच्छा। खैर। तो। जैसे—अच्छा आज बच गए, जाओ, आखिर कभी तो भेंट होगी।

आखिरकार—क्रि० वि० [फ़ा० आखिरकार] अंत में। अंजाम को। अंत को। जैसे—सुनते सुनते आखिरकार उससे नहीं रहा गया और वह बोल उठा।

आखिरत—संज्ञा स्त्री० [अ० आखिरत] १ परलोक। २ अंत। ३ फल। [को०]।

आखिरी—वि० [फ़ा० आखिरी] अंतिम। सबसे पिछला। उ०—केशव को लगना, स्यात्, आखिरी घाव अभी तक बाकी है।—साम० पृ० ३१।

आखु—संज्ञा पुं० [सं०] १ मूसा। चूहा।

यौ०—आखुकर्णपर्णिका, आखुकर्णी, आखुपर्णिका, आखुपर्णी=

मूसाकानी लता। आखुग, आखुपत्र, आखुभुक् = बिलार। आखुरथ = आखुवाहन = गणेश।

२ देवताल। देवहाड। ३. सूअर। शूकर। ४ कुदाल। फावडा [को०]। ५. चोर [को०]। ६ कृपण। कजूस [को०]।

आखुकरीष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीक [को०]।

आखुघात—संज्ञा पुं० [सं०] मूस पकडने या मारनेवाला। मुसहर [को०]।

आखुपाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] १ चुबक पत्थर। २ संखिया नामक विष।

आखवाहन(५)—संज्ञा पु० [सं० आखुवाहन] गणेश। उ०—अभिलाष लाख लाहन समुझि राखु आखुवाहन हृदय।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १।

आखुभुक्—संज्ञा पुं० [सं०] बिडाल। बिलार [को०]।

आखुविषहा—संज्ञा पुं० [सं०] देवताली लता [को०]।

आखेट—संज्ञा पुं० [सं०] अहेर। शिकार। मृगया।

आखेटक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शिकार। अहेर।

आखेटक[2]—वि० [सं०] शिकार करनेवाला। शिकारी। अहेरी।

आखेटिक[1]—वि० [सं०] १ कुशल शिकार करनेवाला। २ भयानक। डरावना [को०]।

आखेटिक[2]—संज्ञा पुं० १ शिकारी। २ शिकारी कुत्ता [को०]।

आखेटी—वि० [सं० आखेटिन][वि० स्त्री० आखेटिन] शिकारी। अहेरी।

आखोट—संज्ञा पुं० [सं० आक्षोट] अखरोट।

आखोर[1]—संज्ञा पुं० [तु० आखोर] १ जानवरों के खाने से बची हुई घास या चारा। पखोर। २ चरनी। ३ जानवरों के पानी पीने का हौद। ४ कूडा करकट। ५. निकम्मी वस्तु। सडी गली चीज।

मुहा०—आखोर की भरती = (१) निकम्मों का समूह। (२) निकम्मी चीजों का अटाला।

आखोर[2]—वि० १ निकम्मा। बेकाम। २. सडा गला। रद्दी। ३. मैला कुचैला।

आख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाम। २ कीर्ति। यश। ३ विवरण। व्याख्या। ४ आकृति। चेहरा [को०]। ५. सौंदर्य। गरिमा [को०]।

आख्यात[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ तिङन्त क्रिया। २ राजवंश के लोगों का वृत्तात। ३ प्रयाणकाल का आनुमानिक सूचन [को०]।

आख्यात[2]—वि० १ प्रसिद्ध। नामवर। विख्यात। २ कहा हुआ। उक्त।

आख्यातव्य—वि० [सं०] वर्णन करने योग्य। कहने योग्य। बयान करने लायक।

आख्याता—वि० [सं० आख्यातृ] कहनेवाला। उपदेशक। शिक्षक [को०]।

आख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नामवरी। ख्याति। शुहरत। २ कथन।

आख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आख्यात, आख्यातव्य, आख्येय] १. वर्णन। वृत्तात। बयान। २ कथा। कहानी। किस्सा। ३ उपन्यास के नौ भेदों में से एक। वह कथा जिसे कवि ही कहे, पात्रों से न कहलावे।

विशेष—इसका आरंभ कथा के किसी अंश से कर सकते हैं, पर पीछे से पूर्वापर संबंध खुल जाना चाहिए। इसमें पात्रों की बातचीत बहुत लंबी चौडी नहीं हुआ करती। चूँकि कथा कहनेवाला कवि ही होता है और वह पूर्वघटना का वर्णन करता है, इससे इसमें अधिकतर भूतकालिक क्रिया का प्रयोग होता है, पर दृश्यों को ठीक ठीक प्रत्यक्ष कराने के लिये कभी कभी वर्तमानकालिक क्रिया का भी प्रयोग होता है। जैसे,—सूर्य डूब रहा है, ठंढी हवा चल रही है, इत्यादि। आजकल के नए ढंग के उपन्यास इसी के अंतर्गत आ सकते हैं।

४ जवाब। उत्तर [को०]। ५ भेदक धर्म [को०]। ६ प्रबंधक काव्य का अध्याय या सर्ग [को०]। ७ पौराणिक कथा [को०]।

आख्यानक—संज्ञा पुं० [सं०] १ वर्णन। वृत्तात। बयान। १ कथा। किस्सा। कहानी। ३ पूर्ववृत्तात। कथानक।

आख्यानकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवज्रा तथा उपेंद्रवज्रा के मेल से निर्मित छंदविशेष [को०]।

आख्यानिकी—संज्ञा पुं० [सं०] दंडक वृत्त के भेदों में से एक जिसके विषम चरणों में त, त, ज, ग, ग, और सम में ज, त, ज, ग, ग हों। उ०—गोविंद गोविंद सदा रटौ जू। अमार संसार तवै तरौ जू। श्रीकृष्ण राधा भजु नित्य भाई। जु सत्य चाहो अपनी भलाई (शब्द०)।

विशेष—इसके विरुद्ध अर्थात् इसके विषम चरण का लक्षण सम चरण में आवे और सम चरण का लक्षण विषम चरण में आवे, तो उस वृत्त को व्याख्यानिकी कहेंगे।

आख्यापक[1]—वि० [सं०] [स्त्री० आख्यायिकी] कहनेवाला।

आख्यायक[2]—संज्ञा पुं० दूत।

आख्यापन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकट करना। प्रकाश करना। कहना। कथन।

आख्यायक[1]—वि० [सं०] बतानेवाला। सूचना देनेवाला [को०]।

आख्यायक[2]—संज्ञा पुं० १ दूत। २ नेता। प्रवक्ता [को०]।

आख्यायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कथा। कहानी। किस्सा। २ कल्पित कथा जिससे कुछ शिक्षा निकले। ३ एक प्रकार का आख्यान जिसमें पात्र भी अपने अपने चरित्र अपने मुँह से कुछ कुछ कहते हैं।

विशेष—प्राचीनों में इसके विषय में मतभेद हैं। अग्निपुराण के अनुसार यह गद्यकाव्य का वह भेद है जिसमें विस्तारपूर्वक कर्ता की वंशप्रशंसा, कन्याहरण, संग्राम वियोग और विपत्ति का वर्णन हो, रीति, आचरण और स्वभाव विशेष रूप से दिखाए गये हों, गद्य सरल हो और कहीं कहीं छंद हो। इसमें परिच्छेद के स्थान पर उच्छवास होना चाहिए। वाग्भट्ट के मत से वह गद्यकाव्य जिसमें नायिका ने अपना वृत्तात आप कहा हो, भविष्यद्विषयों की पूर्वसूचना हो, कन्या के अपहरण, समागम और अभ्युदय का हाल हो, मित्रादि के मुँह से चरित्र कहलाए गए हों और बीच बीच में कहीं कहीं पद्य भी हो।

आख्येय—वि० [सं०] दे० 'आख्यातव्य'।

आगता—वि० [सं० आगन्तु] आने की इच्छावाला [को०]।

आगंतु—वि० [सं० आगन्तु] १ आनेवाला। २. बाहर से आनेवाला। ३ पथभ्रष्ट। भटका हुआ। ४ अचानक होनेवाला। दे० 'आगंतुक' (को०)।

आगंतुक¹—वि० [सं० आगन्तुक] [स्त्री० आगंतुका, आगंतुकी] १ जो आवे। आगमनशील। २ जो इधर उधर से घूमता फिरता आ जाय। उ०—जगा कहने आगंतुक व्यक्ति मिटाता उत्कंठा सविशेष।—कामायनी, पृ० ५०।

आगंतुक²—संज्ञा पुं० १ अतिथि। पहुना। २ वह पशु जिसके स्वामी का पता न हो। ३ अचानक होनेवाला रोग। ३ प्रक्षिप्त पाठ (को०)।

यौ०—**आगंतुक ज्वर**=वह ज्वर जो चोट, भूत, प्रेत के भय या अधिक श्रम करने आदि से अचानक हो जाय। **आगंतुक अनिमित्त लिंगनाश**=एक प्रकार का चक्षुरोग जिसमें आँख की ज्योति मारी जाती है। प्राचीनों के अनुसार यह रोग देवता, ऋषि, गंधर्व, बड़े सर्प और सूर्य के देखने से हो जाता है। **आगंतुकव्रण**=वह घाव जो चोट के पकने से हो। **आगंतुक व्याधि**=किसी बिमारी के बीच में होनेवाली बिमारी।

आग¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि] १ तेज और प्रकाश का पुंज जो उष्णता की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई वस्तुओं में देखा जाता है। अग्नि। बैसंदर। २ जलन। ताप। गरमी। जैसे,—वह डाह की आग से भुनता जाता है। ३ कामाग्नि। काम का वेग। जैसे—तुम्हें ऐसी ही आग है तो उनसे जाकर मिलो न। ४ वात्सल्य प्रेम। जैसे,—जो अपने बच्चे की आग होती है वह दूसरे के बच्चे की नहीं। ५ डाह। ईर्ष्या। जैसे,—जिस दिन से हमें इनाम मिला है, उसी दिन से उसे बड़ी आग है।

आग²—वि० जलता हुआ। बहुत गरम। जैसे,—चिलम तो आग हो रही है। २ जो गुण में उष्ण हो। जो गरमी फूँके। जैसे,—अरहर की दाल तो आजकल के लिये आग है।

मुहा०—**आग उगलना**=कड़ुए वचन सुनाना। जली कटी सुनाना। **आग उठाना**=झगड़ा उठाना। कलह या उपद्रव उत्पन्न करना। **आग कँजियाना या कौंवाना**=आग का ठंढा होना। दहकते हुए कोयले का ठंढा होकर काला पड़ जाना। **आग करना**=(१) आग जलाना। (२) बहुत गर्म करना। आग की तरह जलता हुआ बनाना। **आग का पतंगा**=चिनगारी। जलता हुआ कोयला। **आग का पुतला**=क्रोधी। चिड़चिड़ा। **आग का बाग**=(१) सुनार का अँगीठा। २ आतिशबाजी। **आग कुरेदना**=(१) गुस्सा भड़काना। क्रुद्ध करना। २ दबे या पुराने गुस्से को उभाड़ना। **आग के मोल**=बहुत महँगा। जैसे,—यहाँ तो चीजें आग के मोल बिकती हैं। **आग खाना, अंगार हगना**=जैसा करना, वैसा पाना। जैसे—हमें क्या, जो आग खाएगा, वह अँगार हगेगा। **आग गाड़ना**=कंडे को राख में सुरक्षित रखना। **आग जोड़ना**=आग सुलगाना। आग जलाना। **आग झाड़ना**=पत्थर या चकमक से आग बनाना। **आग दिखाना**=(१) आग लगाना। जलाने के लिये आग छुलाना। (२) तोप में बत्ती देना। **आग देना**=(१) चिता में आग लगाना। दाहकर्म करना। (२) आतिशबाजी में आग लगाना। आग लगाना। फूँकना। उ०—नाग कंठ आगि देइ होरी। छार भई जरि अग न मोरी।—जायसी ग्रं०, पृ० ३००। (३) बरबाद करना। नष्ट करना। जैसे,—उस पास है क्या, उसने तो अपने घर में आग दे दी। (४) तोप में बत्ती देना=रंजक पर पलीता छुलाना। **आग धोना**=अंगारों के ऊपर से राख दूर करना। जैसे,—आग धोकर चिलम पर रखना। **आग पर आग डालना**=किसी भड़के हुए व्यक्ति को और भड़काना। **आग पर पानी डालना**=झगड़ा शांत करना। **आग पर लोटना**=बेचैन होना। विकल होना। तड़पना। उ०—वह विरह के मारे आग पर लोट रहा है। २ डाह से जलना। ईर्ष्या करना। जैसे,—यह हमें देखकर आग पर लोट जाता है। **आग पानी का बैर**=स्वाभाविक शत्रुता। जन्म का बैर। **आग फाँकना**=(१) व्यर्थ बकवाद करना। बात बघारना। झूठी शेखी हाँकना। जैसे, उनकी क्या बात है, वे तो यों ही आग फाँका करते हैं। (असंभव कार्य को संभव करने की चेष्टा। **आग फुँकना**=क्रोध उत्पन्न होना। रिस लगना। जैसे,—यह बात सुनते ही तन में आग फुँक गई। **आग फूँक देना**=जलन उत्पन्न करना। गरमी पैदा करना। जैसे,—इस दवा ने तो और आग फूँक दी है। **आग फूस का बैर**=स्वाभाविक शत्रुता। जन्म का बैर। **आग बनाना**=आग सुलगाना। **आगबबूला (बगूला) होना या बनाना**=क्रोध के आवेश में होना। अत्यंत क्रुद्ध होना। जैसे,—इस बात के सुनते ही वह आगबबूला हो गया। **आग बरसना**=(१) बहुत गरमी पड़ना। (२) लू चलना। २ गोलियों की बौछार होना। **आग बरसाना**=शत्रु पर खूब गोलियाँ चलाना। जैसे,—सिपाहियों ने किले पर आग बरसाई। **आग बुझा लेना**=कसर निकालना। बदला लेना। जैसे,—अच्छा मौका है, तुम भी अपनी आग बुझा लो। **आग बोना**=(१) आग लगाना। उ०—योगी आहि वियोगी कोई। तुम्हरे मँडप आगि जिन बोई।—जायसी, (शब्द०)। २ चुगलखोरी करके झगड़ा उत्पात खड़ा करना। जैसे, यह सब आग तुम्हारी ही बोई तो है। **आग भड़कना**=आग का धधकना। २ लड़ाई उठना। उत्पात खड़ा होना। जैसे,—दोनों दलों के बीच आजकल खूब आग भड़की। ३ उद्वेग होना। जोश होना। क्रोध और शोक आदि मनोवेगों का तीव्र और उद्दीप्त होना। जैसे—(क) शत्रु को सामने देखकर उसकी आग और भड़क उठी। (ख) अपने मृत पुत्र की टोपी देखकर माता की आग और भड़क उठी। **आग भड़काना**=(१) आग धधकाना। २ लड़ाई लगाना। ३ क्रोध और शोक आदि भावों को उद्दीप्त करना। जोश बढ़ाना। **आग भभूका होना**=क्रोध में लाल होना। **आग में कूदना**=जान बूझकर विपत्ति मोल लेना। **आग में घी डालना**=क्रोधित व्यक्ति को और क्रुद्ध करना। (२) आहुति डालना। होम करना। **आग में कूदना**=अग्नि करना। जैसे,—चलो, क्यों आग में मूतते हो। **आग में झोंकना**=(१) अग्नि में डाल देना। (२) लड़की को ऐसे वर से ब्याह देना, जहाँ

हर घडी कष्ट हुआ करे। **आग मे पानी डालना**=झगडा मिटाना। वढते हुए क्रोध को धीमा करना। **आग लगना**= आग से किसी वस्तु का जलना उ०—नयन चुवहिं जस महवट नीरू। तेहि जल आग लाग सिर चीरू।—जायसी (शब्द०)। जैसे—उसके घर मे आग लग गई। (२) क्रोध उत्पन्न होना। कुढन होना। बुरा लगना। मिर्चा लगना। जैसे,—(क) उसकी कडवी बातें सुनकर आग लग गई। (ख) तुम तो मनमाना वके, अव हमारे जरा सी कहने पर आग लगती है। (३) ईर्ष्या होना। डाह होना। जैसे,—किसी को सुख चैन से देखा कि बस आग लगी। (४) लाली फैलना। लाल फूलो का चारो ओर फूलना। उ०—वागन वागन आग लगी है (शब्द०)। (५) महँगी फैलाना। गिरानी होना। जैसे,—(क) वाजार मे तो आजकल आग लगी है। (ख) सब चीजो पर तो आग लगी है कोई ले क्या। (६) बदनामी फैलना। जैसे,—देखो चारो ओर आग लगी है, सँभलकर काम करो (७) हटना। दूर होना। जाना। उ०— कभी यहाँ से तुम्हे आग भी लगेगी (स्त्री०)। (८) किसी तीव्र भाव का उदय होना। जैसे,—उसे देखते ही हृदय मे आग लग गई। ९ सत्यानाश होना। नष्ट होना। जैसे,—आग लगे तुम्हारी इस चाल पर (यह मुहाविरा स्त्रियो मे अधिक प्रचलित है। वे इसे अनेक अवसर पर बोला करती हैं, कभी चिढकर, कभी हावभाव प्रकट करने के हेतु और कभी यो ही बोल देती हैं) जैसे,—(क) आग लगे मेरी सुध पर, क्या करने आई थी, क्या करने लगी। (ख) आग लगे, यह छोटा सा लडका कैसा स्वाँग करता है। (ग) आग लगे, कहाँ से मैं इसके पास आई। **आग लगाना**=(१) आग से किसी वस्तु को जलाना। जैसे,—उसने अपने ही घर मे आग लगा दी। (२) गरमी करना। जलन पैदा करना। जैसे,—उस दवा ने तो वदन मे आग लगा दी। (३) उद्वेग वढाना। जोश वढाना। किसी भाव को उद्दीपित करना। भडकाना। ४ ईर्ष्या उत्पन्न करना। ५ क्रोध उत्पन्न करना। ६ चुगली करना। जैसे,—उसी ने तो मेरे भाई से जाकर आग लगाई है। ७ विगाडना। नष्ट करना। जैसे,—जो चीज उसे वनाने को दी जाती है, उसी मे वह आग लगा देती है। (स्त्री०)। ८ फूँकना। उडाना। वरवाद करना। जैसे,—वह अपनी सारी सपत्ति मे आग लगाकर वैठा है। ९ खूब धूमधाम करना। वडे वडे काम करना। (व्यग्य) जैसे,—तुम्हारे पुरखो ने विवाह में कौन सी आग लगाई थी कि तुम भी लगाओगे। **आग लगाकर पानी को दौडाना**=झगडा उठाकर फिर सबको दिखाकर उसकी शाति का उद्योग करना। **आग भी न लगाना**=वहुत तुच्छ समझना। जैसे,—उससे वोलने की कौन कहे, मैं तो उसको आग भी न लगाऊँ। (स्त्री०)। **आग लगने पर कुआँ खोदना**=(१) कोई कठिनाई कार्य आ पडने पर उसके करने के सीधे उपाय छोड वडी लवी चौडी युक्ति लगाना। (२) ऐन मौके पर कोई कार्य करने लग जाना। **आग लगाकर तमाशा देखना**=झगडा या उपद्रव खडा करके अपना मनोरजन करना। **आग लेने आना**=आकर फिर थोडी देर में लौट जाना। उलटे पाँव लौटना। थोडी देर के लिये आना। जैसे,—(क) जरा वैठो भाई, क्या आग लेने आए हो? (ख) आग लेने आई, घरवाली वन वैठी। **आग से पानी होना या हो जाना**=क्रुद्ध से शात होना। रिस का जाता रहना। जैसे,—उसकी बातें ही ऐसी मीठी होती हैं कि आदमी आग से पानी हो जाय। **आग होना**=(१) गर्म होना। लाल अगार होना। २ क्रुद्ध होना। रोष मे भरना। जैसे,—यह वात सुनते ही वे आग हो गए। **किसी की आग मे कूदना या पडना**=किसी की विपत्ति अपने ऊपर लेना। **तलवों से आग लगाना**—शरीर भर मे क्रोध व्याप्त होना। रिस मे भर उठना। जैसे,=उसकी झूठी वात से और भी तलवो से आग लग गई। **पानी मे आग लगाना**=(१)ऐसी अनहोनी वातें कहना जिनका होना समव न हो। (२) असभव कार्य करना। (३) जहाँ लडाई की कोई वात न हो वहाँ भी लडाई लगा देना। **पेट की आग**=भूख। जैसे,—कोई दाता ऐसा है जो पेट की आग वुझावे। **पेट मे आग लगना**=भूख लगना। जैसे— इस लडके के पेट मे सवेरे से ही आग लगती है। **मुँह मे आग लगना**=मरना। जैसे,—उसके मुँह मे कव आग लगेगी। (शवदाह के समय मुर्दे के मुँह मे आग लगाई जाती है।) **आग लगे मेह मिलना या पाना**=ताव पर किसी काम का चटपट होना। उ०—याकें तो आजु ही मिलौं कि अरि जाऊँ ऐसें। आगि लागे मेरी माई मेहु पाइयतु है—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ६६। **आग पर आग मेलना**=जले को जलाना। दुख पर दुख देना। उ०—विरह आगि पर मेलै आगी। विरह घाव पर घाव बजागी।—जायसी ग्र०, पृ० १०६।

यौ०—**आगजंत्र**=तोप।—(डिं०)। **आगवाण**=अग्निवाण। **आग लगन**=हाथी का एक रोग जिससे उसके सारे शरीर में फफोले पड जाते हैं।

आग३(प)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आगे'। उ०—चित डोलै नहिं खूँटी टरई पल पल पेखि आग अनुसरई।—जायसी (शब्द०)।

आग४(प)—सज्ञा पु० [स० अग्र, प्रा० अग्ग] १ दे० 'आग'। उ०— तू रिसभरी न देखेसि आगू। रिस महँ काकर भयउ सोहागू।—जायसी ग्र०, पृ० ३७। २ ऊख का अगौरा या अगला हिस्सा। उ०—जोरी भली वनी है उनकी, राजहस अरु काग। सूरदास प्रभु ऊख छाँडिकै, चतुर चचोरत आग।—सूर०, १०।३६५२। ३ हल के हरसे की नोक के पास के खड्डे जिनमे रस्सी अटका कर जुआठे से बाँधते हैं।

आगजनी—सज्ञा स्त्री० [हिं० आग + फा० जन + हिं० ई (प्रत्य०)] अग्निकाड। उपद्रवियो द्वारा लगाई जानेवाली आग।

आगडा—सज्ञा पुं० [स० अ = नहीं + हिं० गाढ़ = पुष्ट] ज्वार इत्यादि की वह वाल जिसके दाने मारे गए हो।

आगण—सज्ञा पु० [स० अग्रहायण] अगहन। मार्गशीर्ष। (डिं०)।

आगत१—वि० [स०] [स्त्री० आगता] आया हुआ। प्राप्त। उपस्थित।

यौ०—अभ्यागत। आगतपतिका। क्रमागत। स्वागत। देशागत। गतागत। तथागत।

आगत२—सज्ञा पुं० मेहमान। पाहुना। अतिथि।

आगत३—सज्ञा पुं० दे० 'आघात'। जैसे,—आगत कर।

आगतत्व—सज्ञा पु० [स०] उत्स। मूल। उद्‌गम [को०]।

आगतपतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदो मे से एक। वह नायिका जिसका पति परदेश से लौटा हो। उ०—आवत बलम बिदेस तें हरषित होइ जु वाम। आगतपतिका नाइका ताहि कहत रसधाम।—पद्माकर ग्र०, पृ० १३६।

आगतसाध्वस—वि० [सं०] भयभीत। डरा हुआ [को०]।

आगतस्वागत—संज्ञा पुं० [सं० आगत+स्वागत] आए हुए व्यक्ति का आदर। आदरसत्कार। आवभगत।

आगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आगमन। अवाई। २. प्राप्ति [को०]। ३ वापसी [को०]। ४. मूल। उत्स [को०]। मौका [को०]।

आगपीछ(ु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आगापीछा'।

आगम¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ अवाई। आगमन। आमद। उ०—श्याम कह्यो सब सखन सो लावहु गोधन फेरि। सध्या को आगम भयो व्रज तन हांको हेरि।—सूर (शब्द०)। २. भविष्य काल। आनेवाला समय। ३ होनहार। भवितव्यता। सभावना। उ०—आइ बुझाइ दीन्ह पथ तहाँ। मरन खेल कर आगम जहाँ।—जायसी ग्र०, पृ० ९८।

यौ०—आगमजानी। आगमज्ञानी। आगमवक्ता।

क्रि० प्र०—करना=ठिकाना करना। उपक्रम बाँधना। जैसे,—यह नही कहते कि चदा इकट्ठा करके तुम अपना आगम कर रहे हो। उ०—मैं राम के चरनन चित दीनो। मनसा, वाचा और कर्मना बहुरि मिलन को आगम कीनो।—तुलसी (शब्द०)।—जनाना=होनहार की सूचना देना। उ०—कबहूँ ऐसा विरह उपावै रे। प्रिय विनु देखे जिय जावै रे। तौ मन मेरा धीरज धरई। कोइ आगम आनि जनावै रे।—दादू (शब्द०)।—बाँधना=आनेवाली बात का निश्चय करना। जैसे,—अभी से क्या आगम बाँधते हो, जब वैसा समय आवेगा तब देखा जायगा। ४ समागम। सगम। उ०—अरुण, श्वेत सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ। मनु सरस्वती गगा जमुना मिलि आगम कीन्हो आइ।—तुलसी (शब्द०)। ५ आमदनी। आय। जैसे,—इस वर्ष उनका आगम कम और व्यय अधिक रहा।

यौ०—अर्थागम।

६ व्याकरण मे किसी शब्दसाधन मे वह वर्ण जो बाहर से लाया जाय। ७ उत्पत्ति। ८ योगशास्त्रानुसार शब्दप्रमाण। ९ वेद। उ०—आगम निगम पुरान अनेका। पढे सुने कर फल प्रभु एका।—मानस, ७। ४९। १० शास्त्र। ११ तत्र शास्त्र। १२ नीतिशास्त्र। नीति। १३ तत्रशास्त्र का वह अग जिसमे सृष्टि, प्रलय, देवताओ की पूजा, उनका साधन, पुरश्चरण और चार प्रकार का ध्यानयोग होता है। १४ प्रवाह। धारा [को०]। १५ ज्ञान [को०]। १६ सपत्ति की वृद्धि [को०]। १७ सिद्धात [को०]। १८ नदी का मुहाना। १९ (व्याकरण मे) प्रकृति और प्रत्यय [को०]। २० सडक या मार्ग की यात्रा [को०]। २१ लिखित प्रमाणपत्र [को०]।

आगम²—वि० [सं०] आनेवाला। आगामी। उ०—दरसन दियो कृपा करि मोहन वेग दियो वरदान। आगम कल्प रमण तुव ह्वै है श्रीमुख कही बखान।—सूर (शब्द०)।

आगमजानी—वि० [सं० आगमज्ञानिन् अथवा हिं० आगम=भविष्य+जानो=ज्ञाता] आगमज्ञानी। होनहार का जाननेवाला।

आगमज्ञानी—वि० [सं० आगमज्ञानिन्] भविष्य का जाननेवाला। आगमजानी।

आगमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अवाई। आना। आमद। उ०—मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गएउ लै विप्र समाजा।—मानस, १। २०७। २ प्राप्ति। आय। लाभ। ३. उत्पत्ति। उद्‌गम [को०]। ४ सभोगार्थ नारी के पास आना [को०]।

आगमना—संज्ञा पुं० [सं०] १ आगे चलनेवाली सेना। २ पूर्व दिशा।

आगमनिरपेक्ष—वि० [सं०] साक्षिपत्र आदि से मुक्त। साक्षिपत्र आदि की अपेक्षा न रखनेवाला [को०]।

आगमनी—संज्ञा स्त्री० [सं० आगमन+हिं० ई (प्रत्य०)] स्वागत के अवसर पर किया जानेवाला समारोह या उत्सव। उ०—अपनी आगमनी बना रही मैं आप कुद्ध हु कारो मे।—चक्र, पृ० ७१।

आगमनीत—वि० [सं०] पठित। परीक्षित। अधीत [को०]।

आगमपतिका—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आगतपतिका'।

आगमरहित—वि० [सं०] १ साक्ष्यरहित। २ शास्त्र से परे [को०]।

आगमवक्ता—वि० [सं०] १ भविष्यवक्ता। ज्योतिषी।

आगमवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भविष्यवाणी।

आगमविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वेदविद्या। २ तत्रविद्या। वैदिकेतर विद्या।

आगमवृद्ध—वि० [सं०] ज्ञानवृद्ध। शास्त्रज्ञ [को०]।

आगमवेदी—वि० [सं० आगमवेदिन्] १. वेदज्ञ। २ शास्त्रज्ञ [को०]।

आगमश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] परपरा। प्रथा [को०]।

आगमसोची—वि० [सं० आगम+हिं० सोच+ई (प्रत्य०)] आगे का भला बुरा सोचनेवाला। अग्रसोची। दूरदर्शी।

आगमापायी—वि० [सं० आगमापायिन्] जिसकी उत्पत्ति और विनाश हो। विनाशधर्मी। अनित्य।

आगमित—वि० [सं०] १ पठित। शिक्षित। २ निश्चित। निर्धारित ३ ले आया हुआ। [को०]।

आगमिष्ट—वि० [सं०] शीघ्रता या प्रसन्नतापूर्वक आनेवाला [को०]।

आगमी¹—संज्ञा पुं० [सं० आगम=भविष्य] सामुद्रिक विचारनेवाला। ज्योतिषी। अडडपोपो। उ०—अवध आजु आगमी एकु आयो। करतल निरखि कहत सब गुनगन बहुतन परिचय पायो।—तुलसी ग्र०, पृ० २७६।

आगमी²—वि० भविष्यवक्ता। होनहार कहनेवाला।

आगमी³—वि० [सं० आगमिन्] १ भविष्य। २ पहुँचने वाला। ३ शास्त्रज्ञ।

आगर¹—संज्ञा पुं० [सं० आकर=खाना] [स्त्री० आगरी] १ खान। आकर। २ समूह। ढेर।

विशेष—यह शब्द प्राय समासात मे आता है। जैसे,—गुण-आगर। बल-आगर।

३ कोष। निधि। खजाना। उ०—अस वह फूल वास का आगर भा नासिका समुद। जेति फूल वह फूलहि ते सब भए सुगद।—जायसी (शब्द०)। ४ वह गड्ढा जिसमें नमक जाता है। ५ नमक का कारखाना।

आगर²—संज्ञा पुं० [सं० अर्गल=व्योडा] व्योडा। अगरी। उ०—आगर इक लोह जटित लीन्हो वरिवड। दुहुँ करनि असुर हयो भयो मास पिंड।—सूर० ९। ९६।

आगर[3]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ आगार=घर] १ घर। गृह। २. छाजन का एक भेद जिसमे फूस या खर की जड ओलती की ओर करके छवाई होती है। ३ छाजन। छप्पर। उ॰—तृण तृण वरि भा झूरी खरी। भा वरपा आगर सिर परी।—जायसी (शब्द॰)।

आगर[4]—वि॰ [सं॰ आकर=श्रेष्ठ] [स्त्री॰ आगरि, आगरी] १. श्रेष्ठ। उत्तम। बढकर। उ॰—(क) दई दीन्ह अस जगत अनूपा। एक एक ते आगर रूपा।—जायसी (शब्द॰)। (ख) जिनको साँई रँग दिया कबहुँ न होय कुरग। दिन दिन बानी आगरी चढै सवाया रग।—कबीर (शब्द॰)। २ चतुर। होशियार। दक्ष। कुशल। उ॰—जो लाँघै सत योजन सागर। करै सो रामकाज अति आगर।—तुलसी (शब्द॰)।

आगर[5]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अमावस्या [को॰]।

आगरवध—संज्ञा पुं॰ [सं॰ आ+गल+वद्ध] कठमाला (डिं॰)।

आगरी—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ आगा] नमक बनानेवाला पुरुष। लोनिया।

आगल[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अर्गल] अगरी। व्योडा। वेंडा।

आगल[2]—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ अगला] सामने। आगे (लश॰)।

आगल[3]—वि॰ अगला। उ॰—आगल से पाछल भयो, हरि सो कियो न भेंट। अब पछिताने का भया, चिडिया चुगि गई खेत।—(शब्द॰)।

आगला⑤—क्रि॰ वि॰ [हिं॰] दे॰ 'अगला'।

आगवन⑤—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'आगमन'। उ॰—जिमि तुम्हार आगवन सुनि भए नृपति वलहीन।—मानस, १।२३८।

आगवाह⑤—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अग्निवाह=धूम] धूम्रां (हिं॰)।

आगस्—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ पाप। २ अपराध। दोप। ३ दड सजा [को॰]।

आगस्ती—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] अगस्त की दिशा। दक्षिण।

आगस्त्य—वि॰ [सं॰] १ दक्षिण दिशा। २ अगस्त्य सबधी [को॰]।

आगा[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अग्र, प्रा॰ अग्ग] १ किसी चीज के आगे का भाग। अगाडी। २ शरीर का अगला भाग। जैसे,—ऊँचे आगे का हाथी अच्छा होता है। ३ छाती। वक्ष स्थल। ४ मुख। मुँह। मुहरा। ५ ललाट। माथा। ६ लिंगेंद्रिय। ७ अँगरखे कुरते आदि की काट मे आगे का टुकडा। ८. पगडी का छज्जा। ९. घर के सामने का भाग। मुहरा। १०. सेना या फौज का अगला भाग। सेनामुख। हरावल। ११ नाव का अगला भाग। माँग। गलही। १२ घर के सामने का मैदान। घर के आगे का सहन। १३ पेशखीमा। आगडा। १४ पहिनावे का वह भाग जो आगे रहता है। पल्ला। आँचल। १५ आगे आनेवाला समय। भविष्य। परिणाम। जैसे,—(क) उसका आगा मारा गया है। (ख) उसका आगा अँधेरा है।

मुहा॰—**आगा काटना**=यात्रा या कार्य मे विघ्न डालना। **आगा तागा लेना**=आवभगत करना आदर सत्कार करना। **आगा भारी होना**=(१) गर्भ रहना। पैर भारी होना। जैसे,—व्याह होते ही उसका आगा भारी हो गया। (२) कहारों की बोली मे राह मे ठोकर गड्ढे आदि का होना जिससे गिरने का भय हो। **आगा मारना**=किसी के कार्य मे बाधा डालना। किसी की उन्नति मे रुकावट डालना। जैसे,—किसी का आगा मारना अच्छा नही। **आगा मारा जाना**=भावी उन्नति मे विघ्न पडना। आगम मारा जाना। जैसे,—परीक्षा मे फेल होने से उसका आगा मारा गया। **आगा रुकना**=भावी उन्नति मे बाधा पडना। **आगा रोकना**=(१) आक्रमण रोकना। (२) कोई बडा कार्य आ पडने पर उसे सँभालना। मुँहडा सँभालना। जैसे,—इतनी बडी बारात आवेगी, उसका आगा रोकना भी तो कोई सहज बात नही है। (३) किसी के सामने इस तरह खडे होना कि ओट हो जाय। आड करना। जैसे,—आगा मत रोको, जरा किनारे खडे हो।(४)किसी की उन्नति मे बाधा डालना। **आगा लेना**=शत्रु के आक्रमण को रोकना। भिडना। **आगा सँभालना**=(१) मुहडा सँभालना। कोई बडा कार्य आ पडने पर उसका प्रबध करना। (२) किसी खुले गुप्त अग को ढकना। (३) वार रोकना। भिडना। जैसे,—राजपूताने की लडाइयो मे पहले भील ही लोग आगा सँभालते थे।

आगा[2]—संज्ञा पुं॰ [तु॰ आगा] १ मालिक। सरदार। २ काबुली। अफगान। ३ ज्येष्ठ भाई [को॰]।

आगाज—संज्ञा पुं॰ [फा॰ आगाज] प्रारभ। आदि। शुरू।

आगाता—वि॰ [सं॰ आगातृ] गाकर पाने या कमानेवाला [को॰]।

आगाध—वि॰ [सं॰] १ अत्यत गहरा। २ जो कठिनाई से प्राप्त हो [को॰]।

आगान[1]—संज्ञा दे॰ [सं॰ आ+गान=वान] बात। प्रसग। आख्यान। वृत्तात। उ॰—और कृष्ण के व्याह को भूप सुनहु आगान। पापहरण भवनिधि-तरण करन सकल कल्याण।—गोपाल (शब्द॰)।

आगान[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह व्यक्ति जो गाना गाकर उपार्जन करे। गायक [को॰]।

आगापीछा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ आगा+पीछा] १ हिचक। सोच विचार। दुविधा। जैसे,—इस काम के करने मे तुम्हे आगा पीछा क्या है ?

क्रि॰ प्र॰—**करना**। जैसे,—अच्छे काम मे आगा पीछा करना ठीक नही।—(शब्द॰)।—**होना**।

२. परिणाम। नतीजा। पूर्वापर सबध। जैसे,—कोई काम करने के पहले उसका आगा पीछा सोच लेना चाहिए।

क्रि॰ प्र॰—**देखना**।—**सोचना**।

३ शरीर का अगला और पिछला भाग। शरीर के आगे और पीछे के गुप्त अग। जैसे,—भला इतना कपडा तो दो जिसमे आगा पीछा ढँके। ४ आगे और पीछे की दशा। जैसे,—जरा आगा पीछा चला करो।

आगामि, आगामी—वि॰ [सं॰ आगामिन्] [स्त्री॰ आगामिनी] भविष्य। होनहार। आनेवाला।

आगामिक—वि॰ [सं॰] १ भविष्यकालसबधी। २. आनेवाला[को॰]।

आगामुक—वि॰ [सं॰] १ आनेवाला। २ भावी [को॰]।

आगार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ घर। मदिर। मकान। २ स्थान। जगह। जैसे,—अग्न्यागार। ३ जैन मतानुसार बाधक नियम और व्रतभंग। ४. खजाना। उ॰—खान असी अकबर अली

जानत सब रस पंथ। रच्यो देव आगार गुनि यह सुखसागर ग्रंथ।—देव (शब्द०)।

आगारगोधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकिली। गृहगोधा [को०]।

आगारदाही—वि० [सं० आगारदाहिन्]। घर जलानेवाला।

आगारधूम—१ गृह मे निकलनेवाला धुआँ। २ एक पौधे का नाम [को०]।

आगाह¹—वि० [फा०] जानकार। वाकिफ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आगाह²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० आग+आह (प्रत्य०)] आगम। होनहार। उ०—चाँद गहन आगाह जनावा। राजमूलि गहि शाह चलावा।—जायसी (शब्द०)।

आगाही—संज्ञा स्त्री० [फा०] जानकारी। वाकफियत। उ०—यही सबब है कि मुझे इन सब बातो से आगाही हो गई।—सतति, भा० २१, पृ० १२।

आगि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आग'। उ०—दुरदिन परे रहीम कहि दुरथल जैयत भागि। ठाढे हूजा घूर पर जब घर लागत आगि।—कविता कौ०, भा० १, पृ० १६२।

आगिल(पु)—वि० [हिं० आग+इल (प्रत्य०)] १ आगे का। अगला। उ०—पल मे परलय बीतिया लोगन लगी तमारि। आगिल सोच निवारि कै पाछे करो गोहारि।—कबीर। (शब्द०)। २ भविष्य का। होनेवाला। उ०—आगिल बात समुझि डरु मोही।—मानस, २। १८।

आगिला(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'आगला'। उ०—आगिला अगनि होइवा अवधू, तौ आपण होइवा पाणी।—गोरख०, पृ० २३।

आगिवर्तक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्निवर्त्त] पुराणानुसार मेघ का एक भेद। उ०—सुनत मेघवर्तक सजि सैन लै आए। जलवर्त वारिवर्त पवनवर्त वज्रवर्त आगिवर्तक, जलद सँग लाए।—सूर (शब्द०)।

आगी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आग'। उ०—जीवन तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी, तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७५।

आगुआ—संज्ञा पुं० [हिं० आगे] तलवार इत्यादि की मुठिया के नीचे का गोल भाग।

आगू(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आगे'। उ०—वासर चौथे याम सतानद आगू दिए।—रामच०, पृ० २५।

आगे—क्रि० वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग] १ और दूर पर। और बढकर। 'पीछे' का उलटा। जैसे—उनका मकान अभी आगे है। २ समक्ष। सम्मुख। सामने। जैसे,—उसने मेरे आगे यह काम किया है। ३ जीवनकाल मे। जीते जी। जीवन मे। उपस्थिति मे। जैसे—वह अपने आगे ही इसे मालिक बना गए थे।—४ इसके पीछे। इसके बाद। जैसे,—मैं कह चुका हूँ, आगे तुम जानो तुम्हारा काम जाने।—५ भविष्य मे। आगे को। जैसे—अब तक जो किया सो किया, आगे ऐसा मत करना। ६ अंतर। बाद। जैसे,—चैत के आगे वैसाख का महीना आता है। ७. पूर्व। पहले। जैसे,—वह आप के आने से आगे हो गया है। ८. अतिरिक्त। अधिक। जैसे,—इससे आगे एक कौडी नही मिलने की। ९ गोद मे। जैसे,—(क) उसके आगे एक लडकी है।—(ख) गाय के आगे बछवा है या बछिया?

मुहा०—**आगे आगे**=थोडे दिनो बाद। क्रमश। जैसे—देखो तो आगे आगे क्या होता है। **आगे आना**=(१) सामने आना। जैसे,—नाई! सिर मे कितने बाल? अभी आगे आते हैं। २ सामने पडना। मिलना। जैसे,—जो कुछ उसके आगे आता है, वह खा जाता है। ३ सम्मुख आना। सामना करना। भिडना। जैसे,—अगर कुछ हिम्मत हो तो आगे आओ। ४. फल मिलना। बदला मिलना। उ०—(क) जो जैसा करै सो तैसा पावै। पूत भतार के आगे आवै। (ख) मत कर सास बुराई। तेरी धी के आगे आई। (शब्द०)। ५ घटित होना। घटना। प्रकट होना। जैसे,—देखो जो हम कहते थे, वही आगे आया। **आगे करना**=(१) उपस्थित करना। प्रस्तुत करना। जैसे,—जो कुछ घर मे था, वह आपके आगे किया। (२) अगुआ बनाना। मुखिया बनाना। जैसे,—इस काम मे तो उन्ही को आगे करना चाहिए। उ०—कमल सहाय सूर सँग लीन्हा। राघव चेतन आगे कीन्हा।—जायसी (शब्द०)। (३) अगुआना। अग्रगता बनाना। उ०—राजै राकम नियर बोलावा। आगे कीन्ह पंथ जनु पावा।—जायसी ग्रं, पृ०१७४। (४) आगे बढाना। चलाना। उ०—चक्र सुदर्शन आगे कियो। कोटिक सूर्य प्रकाशित भयो।—सूर (शब्द०)। (५) किसी आफत मे डालना। जैसे,—जब शेर निकला तो वह मुझे आगे कर आप पेड पर चढ गया। **आगे का उठा**=खाने से बचा हुआ। जूठा। उच्छिष्ट। जैसे,—नीच जाति के लोग बडे आदमियो के आगे का उठा खा लेते हैं। **आगे का उठा खानेवाला**=(१) जूठा खानेवाला। टुकडखोर। (२) दास। (३) नीच। अत्यज। (४) तुच्छ। नाचीज। **आगे का कदम पीछे पड़ना**=(१) घटती होना। ह्रास होना। तनज्जुली होना। अवनति होना। जैसे,—उनका पहले अच्छा जमाना था, पर अब आगे का कदम पीछे पड रहा है। (२) भय से आगे न बढा जाना। दहशत छा जाना। जैसे,—शेर को देखते ही उनका आगे का कदम पीछे पडने लगा। **आगे का कपड़ा**=(१) घूँघट। (२) अंचल। **आगे का कपड़ा खींचना**=घूँघट काढना। **आगे की उखेड**=कुश्ती का एक पेंच। खिलाडी का प्रतिद्वद्वी की पीठ पर जाकर उसकी कमर की लपेट को पकडकर जिधर जोर चले, उधर फेंकना। अग्रोत्तोलन। **आगे को**=आगे। भविष्य मे। फिर। पुन। जैसे,—अब की बार तुम्हे छोड दिया, आगे को ऐसा न करना। **आगे चलकर, आगे जाकर**=भविष्य मे। इसके बाद। जैसे—तुम्हारे किए का फल आगे चलकर मिलेगा। **आगे डालना**=देना। खाने के लिये सामने रखना। जैसे,—(क) कुत्ते के आगे टुकडा डाल दो। (ख) बैल के आगे चारा डालो। (यह अवज्ञासूचक है और प्राय. इसका प्रयोग पशु आदि नीच श्रेणी के प्राणियों के लिये होता है।) **आगे डोलना**=आगे फिरना। सामने खेलना कूदना। लडको का होना। जैसे,—बाबा, दो चार आगे डोलते होते तो एक तुम्हें भी दे देती। **आगे डोलना**=बच्चा। लडका। जैसे,—उसके आगे डोलता कोई नही है। **आगे देना**=सामने

रखना। उपस्थित करना। जैसे,—घोड़े को इन आमों नहीं, बैलों के आगे रख दो। **आगे दौड़, पीछे चौड़** = (१) किसी काम को जल्दी जल्दी करते जाना और यह न देखना कि किए हुए काम की क्या दशा होती है। (२) आगे बढ़ते जाना और पीछे का भूलते जाना। **आगे करना** = (१) सामने करना। जैसे,—किसी सिद्धांत को आगे करके काम करना उचित होता है। २. प्रस्तुत करना। उपस्थित करना। पेश करना। भेंट करना। भेंट देना। **आगे निकलना** = बढ़ जाना। जैसे,—(क) वह दौड़ में सबसे आगे निकल गया। (ख) वे तो बीत ही गए। भी पढ़ाई में वह अपने दर्जे के सब लड़कों से आगे निकल गया। **आगे पीछे** = एक के पीछे एक। जैसे,—(१) सिपाही आगे पीछे खड़े होकर कवायद कर रहे हैं। (ख) वह दोनों साथ ही आया, आगे पीछे आने से ठीक नहीं होगा। (२) अगल या बगल। इधर उधर। आस पास। आगे और पीछे पीछे। जैसे,—मैं किसी की कभी आगे पीछे बुराई नहीं की है। (३) और पीछे। आस पास। जैसे,—उसका घर के आगे पीछे रहना, दर का पड़ना। (४) मरने के पीछे। जैसे—आगे पीछे सभी चल बसेंगे, यहाँ कोई बैठा थोड़े ही रहेगा। (५) कुछ काल के अंतर से। क्रमानुसार। जैसे,—तुम इन कामों को बारी बारी करो और सब आगे पीछे होता रहेगा। (६) इधर या उधर। यहाँ वहाँ। उलट पलट। जैसे,—नौकर ने सारे कागजों को आगे पीछे कर दिया। ५. अनुपस्थिति में। गैरहाजिरी में। जैसे,—मेरे सामने तो किसी ने आदर कुछ नहीं कहा, आगे पीछे की कौन जाने। **किसी के आगे पीछे होना** = किसी के वंश में किसी प्राणी का होना। जैसे,—उनके आगे पीछे कोई नहीं है, इसलिए रुपए के पीछे मर रहा है। **आगे रखना** = (१) अर्पण करना। देना। चढ़ाना। (२) उपस्थित करना। पेश करना। भेंट करना। जैसे,—उसने कुछ बात कहा था, आखिर मान गया। **आगे से** = (१) सामने से। जैसे,—अभी वह हमारे आगे से निकल गया। (२) आइंदा से। भविष्य में। जैसे,—जो कुछ किया सो किया, आगे ऐसा मत करना। (३) पहले से। पूर्व से। बहुत दिनों से। जैसे,—(क) यह आगे से होता आया है। (ख) हम इसे आगे से जानते थे। **आगे ले लेना** = अभ्यर्थना करना। उ०—हरि आगमन जानि कै भीषम आगे लीन लिवाय। सूरदास प्रभु दरसन कारन नगर लोग सब आए।—सूर०, १०।४१७८। **आगे होना** = (१) आगे बढ़ना। अग्रसर होना। जैसे,—सरदार तो बढ़ आगे हुआ और उसके साथी पीछे रहे। (२) बढ़ जाना। जैसे,—वह पढ़ने में सबसे आगे हो गया। (३) सामने आना। मुकाबिला करना। जैसे,—उसके आदमियों में कोई अकेला शेर के आगे आया। (४) मुखिया बनाना। जैसे,—सब काम में व आगे होते हैं, पर उनको पूछता कौन है। (५) परदा करना। ओट करना। जैसे,—बड़े घरों में स्त्रियाँ जेठ के आगे नहीं आतीं। **आगे होकर लेना** = अभ्यर्थना करना। उ०—आगे ह्वै जेहि सुरपति लेई। अर्धसिंहासन आसन देई।—तुलसी। (शब्द०)।

थी। २ अग्निविस्फोट अस्त्र या वह अस्त्र जो अग्नि उत्पन्न होने या विस्फोट होने से चले। जैसे,—बदूक, पिस्तौल आदि।

आग्नेयी¹—वि० स्त्री०[स०] १ अग्नि को दीपन करनेवाली (औषध)। २ पूर्व और दक्षिण के बीच की (दिशा)।

आग्नेयी²—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अग्नि की पत्नी। स्वाहा। २ अग्नि की पुत्री जो उरु की पत्नी थी [कौ०]। ३ प्रतिपदा तिथि। परिवा [कौ०]।

आग्या(पु)†—सज्ञा स्त्री० [स० आज्ञा] दे० 'आज्ञा'—१। उ०—ज्यों गुरु आग्या सुनि चटसार। चट पढि उठत एक ही वार।—नद० ग्र०, पृ० २८६।

आग्यौ(पु)†—वि० [स० अग्र] भविष्य। उ०—तौ तुम कोऊ तारचो नहिं, जौ मोसौं पतित न दारचौ। हौं स्रवननि सुनि कहत न एकौ, सूर सुधारौ आग्यौ।—सूर०, १।७३।

आग्र जाणिक—सज्ञा पु० [स० अग्र+ज्ञानीक] आगे की वात जाननेवाला व्यक्ति। ज्योतिषी।—वर्ण०, पृ० ६।

आग्रभोजनिक—सज्ञा पु० [स०] वह ब्राह्मण जो भोजन मे अग्रस्थान का अधिकारी हो [कौ०]।

आग्रमास—सज्ञा पु० [स०] चित्रक वृक्ष। चीते का पेड [कौ०]।

आग्रयण—सज्ञा पुं० [सं०] १ अहिताग्नियो का नवशस्येष्टि। नवान्न विधान। नए अन्न से यज्ञ या अग्निहोत्र।

विशेष—इसका विधान श्रौतसूत्रानुसार होता है। यह तीन अन्नो मे से तीन फसलो मे किया जाता है। सावें मे वर्षा ऋतु मे, व्रीहि या चावल मे हेमत ऋतु मे और जौ से वसत ऋतु मे। गृह्यसूत्रानुसार जब इनका अनुष्ठान होता है, तब इन्हें नवशस्येष्टि कहते हैं।

२ अग्नि का एक भेद [कौ०]। ३ यज्ञ का समय [कौ०]।

आग्रस्त—वि० [सं०] १ विधा हुआ। २ छिदा हुआ। छेदयुक्त [कौ०]।

आग्रह—सज्ञा पुं० [स०] १. अनुरोध। हठ। जिद। जैसे,—वह बार बार मुझसे अपने साथ चलने का आग्रह कर रहा है। २ तत्परता। परायणता। दृढ निश्चय। उ०—राक्षस वडे आग्रह और सावधानी से चद्रगुप्त और चाणक्य के अनिष्ट साधन मे प्रवृत्त हुए।—हरिश्चद्र (शब्द०)। ३. बल। जोर। आवेश। उ०—और आप अपने मुख से अपने इस वाक्य का आग्रह दिखाते हैं 'सर्व गुह्यतम भूय शृणु मे परम वच'।—हरिश्चद्र (शब्द०)। ४ आक्रमण [कौ०]। ५ हरण। ग्रहण [कौ०]। ६ अनुग्रह। कृपा [कौ०]। ७ धैर्य। नैतिक बल [कौ०]।

आग्रहायण—सज्ञा पु० [स०] १ अगहन मास। मार्गशीर्ष मास। २ मृगशिरा नक्षत्र।

आग्रहायणक—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'आग्रहायण'।

आग्रहायणिक—सज्ञा पुं० [स०] १. अगहन की पूर्णमासी। २ मृगशिरा नक्षत्र [कौ०]।

आग्रहायणी¹—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अगहन मास। २ मृगशिरा नक्षत्र। ३ पाक यज्ञविशेष [कौ०]।

आग्रहायणी²—वि० [स०] १ अगहन की पूर्णिमा को दिया जानेवाला। २ अगहन की पूर्णिमा मे युक्त [कौ०]।

आग्रहारिक—वि०[स०]१ दान के रूप में गाँव या भूमि लेनेवाला। उ०—मार्ग मे जो अग्रहार गाँव पडते थे उनके जनपद आग्रहारिक लोग मगन के लिये ग्राममहत्तरो के हाथ मे जलकुभ उठाए हुए आ रहे थे।—हर्ष०, पृ० १६२। २ अग्रहार का हरण करनेवाला [कौ०]। ३ अग्रहार की देखभाल करनेवाला [कौ०]।

आग्रहिका—सज्ञा स्त्री० [स०] सहायता। अनुग्रह [कौ०]।

आग्रही—वि० [सं० आग्रहिन्] हठी। जिद्दी।

आग्रायण—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'आग्रयण'।

आघ(पु)—सज्ञा पु०[स० अर्घ, प्रा० अग्घ=मूल्य] १ मूल्य। कीमत। २ आदर। मान। उ०—विदर मूँछ जाशे वृथा इयक पटोरो आघ।—बाँकी० ग्र०, भा० २ पृ० ८६।

आघट्टक¹—सज्ञा पु० [स०] रक्त अपामार्ग। लाल चिचडी।

आघट्टक²—वि० [स०] घर्षण उत्पन्न करनेवाला। रगडनेवाला[कौ०]

आघट्टन—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० आघट्टना] १ रगड। घर्षण। २ सपर्क [कौ०]।

आघट्टित—वि० [स०] रगडा हुआ। मर्दित [कौ०]।

आघण(पु)—सज्ञा पुं० [स० अग्रहायण] अगहन उ०—प्रागण कर दिन छोटा होई।—वीसल० रा०, पृ० ६७।

आघर्ष, आघर्षण—सज्ञा पु०[स०] रगड। घर्षण [कौ०]।

आघर्षणी—सज्ञा स्त्री० [स०] घर्षण या रगडने मे प्रयुक्त होनेवाली कूँची, ब्रश आदि [कौ०]।

आघाट—सज्ञा पुं०[स०]१ गाँव की सीमा। गाँव की हद। सिवान।

विशेष—इस अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग प्राचीन शिलालेखो मे मिलता है। 'आघाटक' या 'आघाटन' शब्द भी इसी अर्थ मे आया है।

२ अपामार्ग। चिचडी [कौ०]। ३ एक तरह का बाजा [कौ०]।

आघात—सज्ञा पुं० [सं०] १ धक्का। ठोकर। २ मार। प्रहार। चोट। आक्रमण। जैसे,—निरपराधो पर आघात करना अच्छा नही। ३ वधस्थान। बूचडखाना। ४ प्रतिध्वनि। उ०—लियो तँबोल माथ धरि हनुमत, कियो चतुरगुन गात। चढि गिरि सिखर शब्द इक उच्चरचो, गगन उठचो आघात।—सूर० ६।७४। ५ वध। मारण (कौ०)। ६ वध करनेवाला व्यक्ति [कौ०]। ७ विपत्ति। दुर्भाग्य [कौ०]। ८ मूत्राघ रोग [कौ०]।

आघातज्वर—सज्ञा पुं० [सं०] किसी चोट या आघात से होनेवाला ज्वर [कौ०]।

आघातन—सज्ञा पु० [स०] वधस्थान। २ वध। हनन [कौ०]।

आघार—सज्ञा पुं० [स०] १. यज्ञ और होम आदि मे वे आहुतियाँ जो आदि मे प्रजापति और इद्र देवता को घी की अविच्छिन्न धार से 'प्रजापतये स्वाहा' और 'इद्राय स्वाहा' कहकर वायव्य कोण से अग्नि कोण तक और फिर नैऋत्य से ईशान तक दी जाती हैं। ऋग्वेदी इसे मौन होकर करते हैं और यजुर्वेदी जो से मत्र का उच्चारण करके करते हैं। २ घी [कौ०]। ३ सिंचन। सींचना [कौ०]।

आघी†—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्घ, प्रा० अग्घ=मूल्य] १ रुपये का व लेन देन जिसमे उधार लेनेवाला महाजन को आनेवाली फसल की उपज मे से फी रुपए की दर से अन्न आदि ब्याज

स्थान मे देता हैं। २ वह अन्न जो इस लेन देन मे ब्याज के रूप मे दिया जाय।

क्रि० प्र०—पर लेना।—पर देना।—देना।—लेना।

आघु(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आघ'। उ०—गढ़रचना, बरुनी अलक चितवनि भौंह कमान। आघु बकाई ही चढ़ै, तरनि तुरगम तान।—बिहारी र०, दो० ३१६।

आघूर्ण—वि०[सं०] १ घूमता हुआ। फिरता हुआ। २ हिलता हुआ।

आघूर्णन—संज्ञा पुं० [सं०] १ चक्कर। घुमाव। २ इधर उधर डोलना। दोलन [दे०]।

आघूर्णित—वि० [सं०] इधर उधर फिरता हुआ। भटकता हुआ। चकराया हुआ।

यौ०—आघूर्णित लोचन = जिसकी आँखें चढ़ी हों।

आघृणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

आघोष—संज्ञा पुं० [सं०]चारों ओर प्रचार करने के लिये किसी बात को ऊँचे स्वर से कहना [को०]।

आघोषण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आघोषणा] घोषणा [को०]।

आघोषणापटह—संज्ञा पुं० [सं० आघोषणा + पटह] जनसाधारण को सूचित करने के लिये या उनके आवाहन के लिये प्रयुक्त नगाड़ा।

आघोषित—वि० [सं०] घोषित।

आघ्राण—संज्ञा पुं० [सं० वि० आघ्रात, आघ्रेय] १ सूँघना। बास लेना। २ अघाना। आसूदगी। तृप्ति।

आघ्रात¹—वि० [सं०] १ सूँघा हुआ। २ तृप्त। अघाया हुआ। ३. सुगंधित। सुवासित [को०]।

आघ्रात²—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण के दस भेदों मे से एक जिसमे चंद्रमंडल या सूर्यमंडल एक ओर मलिन देख पड़ता है। फलित ज्योतिष के अनुसार ऐसे ग्रहण से अच्छी वर्षा होती है।

आघ्रेय—वि० [सं०] सूँघा जाने योग्य [को०]।

आचंचल—वि० [सं०आ + चञ्चल] अस्थिर। चंचल। उ०—वर्द्धोदय आरंभकाल मे आचंचल सागर मे।—पार्वती, पृ० १२३।

आचंभ—वि० [हिं०] दे० 'अचंभा'। उ०—आचंभ रूप इच्छिनि सुनी जन जन बत्त बखानियँ।—पृ० रा०, १२।१०।

आच(पु)—संज्ञा पुं० [सं० सच = सेवन करना] हाथ। उ०—जिकाँ भलाँ धन जोड़ियौ, ऊरमियौ निज आच।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४८। (डिं०)

यौ०—आचप्रभव = क्षत्रिय।

आचमन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आचमनीय, आचमित] १ जल पीना। २ शुद्धि के लिये मुँह मे जल लेना। ३ किसी धर्म संबंधी कर्म के आरंभ मे दाहिने हाथ मे थोड़ा सा जल लेकर मंत्रपूर्वक पीना यह पूजा के षोडशोपचार मे से एक है। ४ सुगंधवाला। नेत्रवाला।

आचमनक—संज्ञा पुं० [सं०] १ आचमन का पात्र। २ आचमन का जल। ३ पीकदान [को०]।

आचमनी—संज्ञा स्त्री० [सं० आचमनीय] एक छोटा चम्मच जो कलछी के आकार का होता है। इसे पंचपात्र मे रखते हैं और इससे आचमन करते और चरणामृत आदि देते हैं।

आचमनीय, आचमनीयक—वि० [सं०] १ आचमन के योग्य। पीने योग्य। २ कुल्ला करने योग्य।

आचमित—वि० [सं०] पिया हुआ।

आचय—संज्ञा पुं० [सं०] १ चुनने का कार्य। २ राशि या ढेर [को०]।

आचयक—वि० [सं०] १ चयन या एकत्र करनेवाला। २ चयन करने मे कुशल। ३ फूल आदि चयन करनेवाला [को०]।

आचर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँचर'। उ०—लागि नव छरे अनुरागक आँकुर धएन मोहे आचरे मोर।—विद्यापति, पृ० ७३।

आचरज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य] दे० 'अचरज'। उ०—मुनि मन मोह आचरज लागी।—मानस, १।१२८।

आचरजित(पु)—वि० [सं० आश्चर्यित] आश्चर्यित। चकित। विस्मित।

आचरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आचरणीय, आचरित] १ अनुष्ठान। २ व्यवहार। बर्ताव। चाल चलन। जैसे,—उनका आचरण अच्छा नहीं है। ३ आचारशुद्धि। सफाई। ४ रथ। गाड़ी। ५ चिह्न। लक्षण। ६ बौद्धों के अनुसार वे १५ आचरण जो सदाचार माने जाते हैं।

विशेष—वे इस प्रकार हैं—(१) शील। (२) इंद्रियसंवर। (३) मात्राशिता। (४) जागरणानुयोग। ५ श्रद्धा। (६) ह्री। (७) बहुश्रुतत्व। (८) उत्ताप, अर्थात् पछतावा। (९) पराक्रम। (१०) स्मृति। (११) मति। (१२) प्रथम ध्यान। (१३) द्वितीय ध्यान। (१४) तृतीय ध्यान। (१५) चतुर्थ ध्यान। ७ करना [को०]। ८ अनुगमन। अनुगमन [को०]।

आचरणीय—वि० [सं०] १ अनुष्ठान करने योग्य। २ व्यवहार करने योग्य। बर्ताव करने योग्य। करने योग्य।

आचरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आचरण] दे० 'आचरण'। उ०—सगुन समय सुमिरत सुगद भरत आचरनु चारु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ९७।

आचरना(पु)—क्रि० स० [सं० आचरण से नाम०] आचरण करना। व्यवहार करना। उ०—इहै गति वैराग्य ज्ञान यह हरि तोषन यह शुभ व्रत आचरै। तुलसिदास शिवमत मारग यह चलत सदा सपनेहु नाहिन डरै।—तुलसी (शब्द०)।

आचरित¹—वि० [सं०] १ किया हुआ। अनुष्ठान किया हुआ। २ नित्य का। रोजमर्रा का। नियमित [को०]। ३ व्यवहृत, जैसे—स्थान [को०]।

आचरित²—संज्ञा पुं० [सं०] १ धर्मशास्त्र के अनुसार ऋणी से धन लेने के पाँच प्रकार के उपायों मे से एक। ऋणी के स्त्री, पुत्र, पशु आदि को लेकर या उसके द्वार पर धरना देकर ऋण को चुका लेना। २. चरित्र। व्यवहार [को०]।

आचरितदापन—संज्ञा पुं० [सं०] ऋण का वह चुकता जो स्त्री, पुत्र को बाँधने या दरवाजे पर धरना देने से हो।

आचारितव्य—वि० [सं०] आचरण करने योग्य [को०]।

आचर्ज—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य] दे० 'आश्चर्य' उ०—गगन की डोरि एह सुरति छूटे नहीं अजर आचर्ज सम दरस बानी।—सं० दरिया, पृ० ८५।

आचार्य—वि० [सं०] [संज्ञा आचर्य] १ आचरण करने योग्य। २ जाने योग्य [को०]।

आचात—वि०[सं० आचान्त] १ आचमन किया हुआ। २ आचमन करने योग्य [को०]।

आचांति—संज्ञा स्त्री० [सं० आचान्ति] अचान ।
आचान—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आचमन' ।
आचानक—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचानक' ।
आचाम—संज्ञा पुं० [सं०] १. भात। २. मांड । ३ आचमन ।
आचामक—संज्ञा पुं० [सं०] आचमन करनेवाला व्यक्ति [को०] ।
आचार—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यवहार । चलन । रहन सहन । २ चरित्र । चाल ढाल । ३. शील । ४ शुद्धि । सफाई । ५ भोजन । आहार [को०] । ६ आचरण का तरीका [को०]। ७ नित्य नैमित्तिक नियम [को०] ।
यौ०—अनाचार । दुराचार । शिष्टाचार । समाचार। सदाचार। कुलाचार । देशाचार । भ्रष्टाचार ।
आचारज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आचार्य] दे० 'आचार्य' । उ०—आचारज वासिष्ठ भो ऋरवज वत्स प्रवीन ।—हम्मीर रा०, पृ० ५६ ।
आचारजी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आचार्य] पुरोहिताई । आचार्य होने का भाव । उ०—उनके घर किसकी आचारजी है ?
आचारतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० आचारतन्त्र] बौद्धों के चार तंत्रों में से एक [को०] ।
आचारदीप—संज्ञा पुं० [सं०] आरती आदि पूजनविधियों में प्रयुक्त होनेवाला दीप [को०] ।
आचारपतित—वि० [सं०] आचारभ्रष्ट [को०] ।
आचारपूत—वि० [सं०] शुद्ध आचरण करनेवाला [को०] ।
आचारभेद—संज्ञा पुं० [सं०] आचार या आचरण संबंधी नियमों का अंतर [को०] ।
आचारभ्रष्ट—वि० [सं०] आचार या आचरण की मर्यादा से रहित । पतित [को०] ।
आचारलाज—संज्ञा पुं० [सं०] राजा आदि पर डाला जानेवाला लावा [को०] ।
आचारवर्जित—वि० [सं०] १ आचारविरुद्ध या आचारशून्य । २. जाति से बहिष्कृत । जातिच्युत [को०] ।
आचारवान्—वि० [सं० आचारवत्] [वि० स्त्री० आचारवती] पवित्रता से रहनेवाला । शुद्ध आचार का । उ०—शुचि आचारवती कल्याणी गिरजा जब अभिजाता । सूर्यवदना अरुणाचल पर करती सद्य स्नाता ।— पार्वती, पृ० ६१ ।
आचारविचार—संज्ञा पुं० [सं०] आचार और विचार । पवित्र आचरण ।
विशेष—इस शब्द का प्रयोग अकसर आचार ही के अर्थ में होता है । जैसे,—वह बड़े आचारविचार से रहता है ।
आचारवेदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आचार की वेदी । आर्यावर्त [को०]।
आचारहीन—वि० [सं०] आचरणभ्रष्ट । जिसमें आचार विचार न हो । पतित [को०] ।
आचारिक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वास्थ्य संहिता । स्वास्थ्य संबंधी नियम [को०] ।
आचारी[1]—वि० [सं० आचारिन्] [वि० स्त्री० आचारिणी] आचारवान् । चरित्रवान् । शुद्ध आचार का । उ०—सोइ सयान जो परधन हारी । जो कर दंभ सो बड़ आचारी ।—मानस, ७ । ९८ ।
आचारी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] रामानुज संप्रदाय का वैष्णव । श्रीवैष्णव ।
आचारी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर । हिलमोचिका ।
आचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आचार्या, आचार्याणी] [वि० आचार्यी] १. उपनयन के समय गायत्री मंत्र का उपदेश करनेवाला । गुरु ।
विशेष—पाणिनि ने चार प्रकार के शिक्षकों का उल्लेख किया है । आचार्य, प्रवक्ता, श्रोत्रिय, अध्यापक । इनमें आचार्य का स्थान सर्वोच्च था । शिष्य का उपनयन कराने का अधिकार तो आचार्य को ही था । स्वयं आचार्य का काम करनेवाली स्त्री आचार्या कहलाती है । आचार्य की पत्नी को आचार्यानी कहते हैं ।
२. वेद पढ़ानेवाला । ३ यज्ञ के समय कर्मोपदेशक ४ पूज्य । पुरोहित । ५ अध्यापक । ६ ब्रह्मसूत्र के चार प्रधान भाष्यकार—(क) शंकर, (ख) रामानुज, (ग) मध्व और (घ) वल्लभाचार्य ७ वेद का भाष्यकार । ८. शास्त्रीय व्याख्या करनेवाला । तात्विक दृष्टि से गुण दोष का विवेचन करनेवाला । ९. किसी महाविद्यालय का प्रधान अधिकारी और अध्यापक । प्रिंसिपल । प्राचार्य [को०]। १ किसी शास्त्र या विषय का धुरंधर पंडित या ज्ञाता [को०] ।
यौ०—आचार्यकुल = गुरुकुल । आचार्यवान् = उपनीत ।
आचार्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आचार्योपदेश, शिक्षा, पाठ आदि । २ व्याख्या करने की शक्ति या योग्यता । व्याख्यातृत्व । ३. आचार्य का पद [को०]
आचार्यकरण—संज्ञा पुं० [सं०] माणवक या बटु को उपनीत करने का कार्य [को०] ।
आचार्यदेव—वि० [सं०] आचार्य को देव माननेवाला [को०] ।
आचार्यी—वि० स्त्री० [सं०] आचार्य की । आचार्य संबंधिनी । जैसे—आचार्यी दक्षिणा ।
आचिंत(पु)—वि० [सं० अचिन्त्य] (परमेश्वर) जो चिंतन में नहीं आ सकता । उ०—तेज अड आचिंत का, दीन्हा सकल पसार । अड शिखा पर बैठकर, अधर दीप निरधार ।—कबीर (शब्द०)।
आचिंत्य[1]—वि० [सं० आचिन्त्य] सब प्रकार से चिंतन करने योग्य।
आचिज्ज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य, प्रा० आचिज्ज] दे० 'आश्चर्य'। उ०—एह वत्त आचिज्ज उपजि सो चित्त तु तव्यह ।—पृ० रा०, ३।२० ।
आचित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक मान जो दस भार या २५ मन का होता था । २ गाड़ी भर का बोझ । एक छकड़े का भार ।
आचित[2]—वि० १ व्याप्त । २. एकत्र किया हुआ [को०] । ३ भरा हुआ [को०] । ४ बँधा हुआ [को०] । ५ फैलाया हुआ [को०] ।
आचीर्ण—वि० [सं०] खाया हुआ । आस्वादित [को०] ।
आचूषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ चूसना । २ चूसकर बाहर निकालना । रक्त चूसने का यंत्र लगाकर चूसना [को०] ।
आच्छद—संज्ञा पुं० [सं० आच्छद्] आवरण । वस्त्र ।
आच्छन्न—वि० [सं०] १ ढका हुआ । आवृत । २ छिपा हुआ । तिरोहित ।

आच्छाक—संज्ञा पुं० [सं०] नील का सा एक पौधा जिससे लाल रंग बनता है। आल।

पर्या०—रंजनद्रुम। पक्षीक। पक्षिक। आच्छुक।

आच्छाद—संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र। परिधान [को०]।

आच्छादक—संज्ञा पुं० [सं०] ढँकनेवाला। जो ढाँके।

आच्छादन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आच्छादित, आच्छन्न] ढकना। आवरण। उ०—धीरे धीरे हिम आच्छादन हटने लगा धरातल से।—कामायनी, पृ० २३। २ वस्त्र। कपड़ा। ३ छाजन। छवाई। ४. छिपाना [को०]। ५ परिधान [को०]। ६ ठाठ। ठाठर [को०]। ७ लोप [को०]।

आच्छादित—वि० [सं०] १ ढँका हुआ। आवृत्त। उ०—फिर देखी भीमा मूर्ति आज रण देखी जो आच्छादित किए हुए संमुख समग्र नभ को।—अनामिका, पृ० १५२। २. छिपा हुआ। तिरोहित।

आच्छादी—वि० [सं० आच्छादिन्] आच्छादन करनेवाला [को०]।

आच्छाद्य—वि० [सं०] १ ढकने योग्य (स्तन)। २ गोप्य। गोपनीय [को०]।

आच्छिन्न—वि० [सं०] १ हटाया हुआ। २ नष्ट किया हुआ [को०]।

आच्छुक—संज्ञा पुं० [सं०] अच्छाक। आक्षिक [को०]।

आच्छुरित[1]—वि० [सं०] १ मिश्रित। मिला हुआ। २ नख से चिह्नित या खँरोचा हुआ। क्षुब्ध [को०]।

आच्छुरित[2]—संज्ञा पुं० १ नखवाद्य। नखों को रगडकर शब्द करना। २. अट्टहास [को०]।

आच्छुरितक—संज्ञा पुं० [सं०] नखक्षत। २ अट्टहास [को०]।

आच्छेत्ता—वि० [सं० आच्छेतृ] छेदन करनेवाला। काटनेवाला [को०]।

आच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ काटना। काट डालना। २ किंचित् या कुछ काटना। ३. अपहरण। वलपूर्वक हरण करना [को०]।

आच्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] आच्छेद।

आच्छेप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आक्षेप] दे० 'आक्षेप'। उ०—पहिले कहिए बात कछु, पुनि ताको प्रतिपेध। ताहि कहत आच्छेप हैं, भूपन सुकवि सुमेध।—भूषण ग्र०, पृ० ३६।

आच्छोटन—संज्ञा पुं० [सं०] १ चुटकी वजाना। २ उँगली फोडना। उँगली चटकाना।

आच्छोदन—संज्ञा पुं० [सं०] अहेर। आखेट। मृगया [को०]।

आछढना(पु)†—क्रि० अ० [देश०] धक्का देना। उ०—उचित वयस भोर मनमथ चोर ठेलि आछढि आकरए अगोर।—विद्यापति, पृ० ५६२।

आछत†(पु)—क्रि० अ० [प्रा० √अच्छ, हिं० आछना का कृदंत रूप, जिसका प्रयोग क्रि० वि० वत् होता है।] होते हुए। रहते हुए। विद्यमानता में। मौजूदगी में। सामने। जैसे,—हमारे आछत उसे और कौन ले जा सकता है।—(शब्द०)। उ०—आँखिन आछत आँधरो जीव करै बहु भाँति। धीर न वीरज विनु करै तृष्णा कृष्णा राति।—केशव (शब्द०)।

आछना(पु)—क्रि० अ० [सं० अस्=होना अथवा सं० आ+√क्षि, प्रा० √अच्छ] १ होना। २ रहना। विद्यमान होना। उ०—भँवर आइ वनखँड सन, लेइ कमल कै वास। दादुर वास न पावई, भलहि जो आछै पास।—जायसीग्र०, पृ० ६।

विशेष—इस क्रिया के और सब रूपों का व्यवहार अब बोलचाल से उठ गया है, केवल आछन, आछते (होते हुए) रह गया है।

आछरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरा, प्रा० अच्छरा] दे० 'अप्सरा'।

आछा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अच्छा'। उ०—हरि आवत गाइनि के पाछे। मोर मुकुट मकराकृत कुंडल नैन विसाल कमल तैं आछे।—सूर०, १०। ५०७।

आछादित(पु)—वि० [सं० आच्छादित] दे० 'आच्छादित'। उ०—गज चर्म आछादित, भ्रम नाम, रहै वीर भँगे गन आस पास।—पृ० रा०, १। ३८६।

आछी[1](पु)—वि० स्त्री० [हिं० अच्छा] १ अच्छी। भली। उत्तम। उ०—लै पौढी आँगन ही सुत कौं छिटकि रही आछी उजियरिया।—सूर०, १०। २४६। २ स्वस्थ। नीरोग। ठीक। उ०—तब विट्ठल श्री गुसाँई जी सो विनती करे, जो महाराज! मेरी देह आछी नाहीं।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १४०।

आछी[2](पु)—वि० [सं० अशिन्] खानेवाला। उ०—पान फूल आछी सब कोई। तुम कारन यह कीन रसोई।—जायसी (शब्द०)।

आछी[3]†—संज्ञा स्त्री० [सं० आक्षिक] सुगंधित फूलवाला एक पेड जिसकी लकडी हल्के पीले रंग की होती है।

आछे(पु)†—क्रि० वि० [सं० अच्छ=स्वच्छ, हिं० अच्छा] अच्छी तरह। उ०—तिनके लच्छन-लच्छ अब आछे कहौं वखानि।—नंद० ग्र०, पृ० २६४।

आछे(पु)†[2]—वि० [हिं०] दे० 'अच्छा'। उ०—जे परमेश्वर पै चढ़ैं, तेई आछे फूल।—भूषण ग्र०, पृ० ७१।

आछेप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आक्षेप] आक्षेप नामक अलंकार। उ०—तहाँ कहत आछेप हैं कविजन मत उत्सेध।—मतिराम ग्र०, पृ० ४००।

आछै(पु)—क्रि० वि० [सं० अक्षय, प्रा० अच्छै] दे० 'अक्षय'। उ०—आछै सगै रहै जु वा। ता कारणि अनंत सिधा जोगेश्वर हूवा।—गोरख०, पृ० २।

आछो(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अच्छा'। उ०—कान न परत, कमल मुख देखें, भूल्यो काम, धाम आछो वदन निहारि।—नंद० ग्र०, पृ० ३५२।

आछोटण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आच्छोदन=मृगया] शिकार। आखेट। अहेर।—(डिं०)।

आछोप(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अछोप'। उ०—जाके भागवतु लेखियै, सतकर्म पेखिवे तास की जाति आछोप छीपा।—संत रवि०, पृ० १३२।

आछौ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आच्छा'। उ०—आछौ गात अकारथ गारयौ। करी न प्रीति कमल लोचन सौं जनम जुआ ज्यौं हारयौ।—सूर०, १। १०१। २ मंगल। शुभ। उ०—आछौ दिन सुनि महरि जसोदा, सखिनि वोलि सुभ गान करयौ।—सूर०, १०। ८८।

आज[1]—क्रि० वि० [स० अद्य, पा० अज्ज] १ वर्तमान दिन मे। जो दिन वीत रहा है उसमे। जैसे,— आज किसका मुँह देखा था जो सारा दिन भटकते बीता। २. इन दिनो। वर्तमान समय मे। जैसे,–(क) जो आज उनकी चलती है वह दूसरे की नही।—(ख) आज करे सो कल पावेगा।

आज[2]— सज्ञा पुं० १ वर्तमान दिन। जो दिन बीत रहा है। जैसे,— आज की रात वह इलाहाबाद जायगा। २ इस वक्त। जैसे,– खबरदार आज से ऐसा मत करना।

मुहा०—**आज को** = (१) इस समय। जैसे,—आज को यह बात कही, कल को दूसरी बात कहेगा।—(२) इस अवसर पर। ऐसे समय मे। ऐसे मौके पर। जैसे,—आज को वह न हुए, नही तो बतला देते। **आज तक** = (१) आज के दिन तक। जैसे,—उसे बाहर गए बरसो हुए, पर आज तक उसका कोई खत नही आया।—(२) इस समय तक। इस घडी तक। जैसे,—कल का गया आज तक न पलटा। **आज दिन** = इस समय। वर्तमान समय मे। जैसे,–आज दिन उनकी टक्कर का दूसरा विद्वान् नही। **आज बरसकर फिर बरसेगा** = ऐसा ही फिर होगा। **आज लौं** = आज तक। **आज से** = इस समय से। इस वक्त से। अब से। भविष्य मे। जैसे,—अब तक किया सो किया आज से न करना। **आज हो कि कल** = थोडे दिनो मे। दो चार दिन के अंदर ही। जैसे,—उनका अब क्या ठिकाना, आज मरें कि कल।

आज[3]— वि० [स०] [वि० स्त्री० आजी] १ बकरासबंधी। २ बकरे से उत्पन्न [को०]।

आज[4]—सज्ञा पुं० १ गृध्र। गिद्ध। २ आज्या घृत। घी। ३. क्षेपण। फेंकना [को०]।

आजक—सज्ञा पु० [स०] बकरो का झुड [को०]।

आजकल—क्रि० वि० [हिं० आज+कल] इन दिनो। इस समय। वर्तमान दिनो में। जैसे,—आजकल उनका मिजाज नही मिलता।

मुहा०—**आजकल मे** = थोडे दिनो मे। शीघ्र। जैसे,—घबराओ मत, आजकल मे देता हूँ। **आजकल करना, आजकल बताना** = टालमटोल करना। हीला हवाला करना। जैसे,— (क) व्यर्थ आजकल क्यो करते हो, देना हो तो दो। (ख) जब मैं माँगने जाता हूँ, तब वह मुझको आजकल बता देता है। **आजकल लगाना** = अब तब लगना। मरने मे दो ही एक दिन की देर होना। मरणकाल निकट आना। जैसे,— उनका तो आजकल लगा है, जा कर देख आओ। **आजकल होना** = (१) टालमटोल होना। हीला हवाला होना। जैसे,— महीनों से तो आजकल हो रहा है, मिले तब जानें।— (२) दे० 'आजकल लगना'। **आज मरे कल दूसरा दिन** = मरने के पीछे जो चाहे सो हो, मरने के बाद कोई चिंता नही रहती।

आजकार—सज्ञा पु० [स०] शिव का बैल। नदी [को०]।

आजगर—वि० [सं०][वि० स्त्री० आजगरी] १. अजगर संबंधी। २. अजगर के समान [को०]।

आजगव—सज्ञा पु० [सं०] १ शिवधनुप। महादेव का धनुप। पिनाक। २ शिव के धनुप जैसा दृढ धनुप [को०]।

आजनन[1]—सज्ञा पु० [स०] प्रसिद्ध या ज्ञात कुल। सद्वश [को०]।

आजनन[2]—क्रि० वि० [स०] जन्म से ही [को०]।

आजन्म—क्रि० वि० [स०] १ जन्म से। जन्म से लेकर। उ०— आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अय।—मानस, ६।११०। २ जीवन भर। जन्म भर। जिंदगी भर। आजीवन। जब तक जिए तब तक।

आजमाइश—सज्ञा स्त्री० [फा० आजमाइश] १ परीक्षा। इम्तहान। परख। २ खडी फसल का सरकारी अधिकारी द्वारा मूल्य लगाना या आँकना।

आजमाना—क्रि० स० [फा० आजमाइश=परीक्षा] [वि० आजमूदा] परीक्षा करना। परखना। जाँच करना। उ०—हम कहाँ किस्मत आजमाने जायँ।—शेर०, पृ० ४९३।

आजमीढ[1]—वि० [स० आजमीढ] अजमीढ राजा के वश का।

आजमीढ[2]—सज्ञा पुं० अजमीढ़ देश का राजा।

आजमूदा—वि० [फा० आजमूदह] आजमाया हुआ। परीक्षित।

आजर्जरित—वि० [स०] फटा हुआ। टुकडे टुकडे। तार तार [को०]।

आजयन—सज्ञा पुं० [सं०] १ विजय। २ युद्ध [को०]।

आजवन—सज्ञा पुं० [सं०] १ त्वरा। वेग। २. युद्ध। ३. आक्रमण [को०]।

आजवह[1]—वि०[सं०][वि० स्त्री०आजवहा]जिसे बकरी ले जाय या ढोए।

आजवह[2]—सज्ञा पु० हिमालय का पर्वतीय देश जहाँ भोजन आदि की सामग्री बकरियो पर लदकर जाती है।

आजस्रिक—वि० [सं०] अजस्र या प्रतिदिन होनेवाला [को०]।

आजा—सज्ञा पुं० [स० आर्यक, प्रा० अज्जअ][स्त्री० आजी] पितामह। दादा। बाप का बाप। उ०—आजा को घर अमर है बेटा के सिर भार। तीन लोक नाती ठगा, पडित करो विचार।— कबीर (शब्द०)।

आजागुरु—सज्ञा पुं० [हिं० आजा+गुरु] १ गुरु का गुरु। २ गुरु का आजा या दादा।

आजात—वि० [स०] उच्च या ख्यात कुल मे उत्पन्न [को०]।

आजाति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ जन्म। उत्पत्ति। २. अच्छा वंश[को०]।

आजाद—वि० [फा० आजाद] १ जो बद्ध न हो। छूटा हुआ। बरी। जैसे,—राज्याभिषेक के अवसर पर बहुत से कैदी आजाद किए गए। २ बेफिक्र। बेपरवाह। ३ स्वतत्र। जो किसी के अधीन न हो। स्वाधीन। उ०—साहब ने इस गुलाम को आजाद कर दिया। लो बदगी कि बदगी मे छूट गए हम।—शेर०, पृ० ४५९। ४ निडर। निर्भर। अशक। बेधडक। ५ स्पष्टवक्ता। हाजिरजवाब। ६ उद्धत। ७ अकिंचन। निष्परिग्रह। ८ कही एक जगह न रहनेवाला। बेपता। बे-निशान। ९ एक प्रकार के मुसलमान फकीर जो दाढी, मूँछ और भौं आदि मुँडाए रहते हैं और न रोजा रखते हैं और न नमाज पढ़ते हैं। ये सूफी सप्रदाय के अतर्गत है और अद्वैतवादी हैं।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

यौ०—आजाद तबीयत, आजाद मिजाज=स्वेच्छाचारी। मनमौजी। आनदी।

आजादगी—संज्ञा स्त्री० [फा० आजादगी] स्वतत्रता।

आजादाना—क्रि० वि० [फा० आजादानह्] आजाद की तरह। स्वतत्रतापूर्वक। स्वच्छदतापूर्वक।

आजादी—संज्ञा स्त्री० [फा० आजादी] १ स्वतंत्रता। स्वाधीनता। २ निरकुशता [को०]।

आजान[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ जन्म। जनन। २.उत्पत्ति या जन्म का कारण। ३ जन्मस्थान [को०]।

आजान[2]—क्रि० वि० [सं०] सृष्टिकाल से [को०]।

आजान[3]Ⓟ—वि० [हिं० अजान] अनजान। न जाननेवाला। उ०—करतलह सु कवि कित्तिय सुवर, पय थक्के आजान जिम।—पृ० रा०, २५। ५६८।

आजानज—वि० [सं०] सृष्टिकाल मे उत्पन्न, जैसे देव आदि [को०]।

आजानदेव—संज्ञा पुं० [सं०] वे देवता जो सृष्टि के आदि मे देवता रूप मे ही उत्पन्न हुए थे।

विशेष—देवता दो प्रकार के होते हैं—एक कर्मदेव, जो कर्म से देवता हो जाते हैं और दूसरे आजानदेव जो देवता रूप मे ही उत्पन्न होते है।

आजानि—संज्ञा स्त्री०[सं०] १ जननी। माता। २ जन्म। उत्पत्ति। ३ अच्छा वश [को०]।

आजानु—वि० [सं०] जाँघ तक लवा। घुटने तक लवा।

यौ०—आजानुवाहु। आजानुभुज। आजानुलवी।

आजानुवाहु—वि० [सं०] जिसकी वाहु जाँघ तक लंबी हो। जिसके हाथ घुटने तक लवे हो।

आजानुभुज —वि० [सं०]दे०'आजानुवाहु'। उ०—आजानुभुज सरचाप धर सग्रामजित खरदूपन।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७८।

आजानुलवी—वि० [सं० आजानुलम्बिन्] घुटने तक लवा [को०]।

आजानेय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] घोडे की एक जाति जो उत्तम मानी जाती है।

आजानेय[2]—वि० १ अच्छी नस्ल का (घोडा)। २. उच्चकुल मे उत्पन्न। ३ निर्भय [को०]।

आजार—संज्ञा पुं० [फा० आज़ार] १. रोग। वीमारी। व्याधि। उ०— उस मसीहा को दिखा दो तो कुछ आजार नही, अभी हो जाय शिफा।—श्यामा०, पृ० १०१।

क्रि० प्र०—देना।

२ दुख। कष्ट। तकलीफ। उ०—तेरे वीमार सा वीमार न होगा कोई। जिसको जाहिर मे जो देखा तो कुछ आजार नही।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २२६।

क्रि० प्र०—देना।—पहुँचना।—पाना।—लगाना।

आजि—संज्ञा पुं० [सं०] १ युद्ध। रण। सग्राम। लडाई। उ०—चतुरग सैन भगाइकै, तव जीतियौ वह आजि।—रामच०, पृ० १७४। २ दौड [को०]। ३ युद्धक्षेत्र या दौड का स्थान [को०]। ४. सीमा। घेरा [को०]। ५ पथ। मार्ग [को०]। ६ क्षण [को०]। ७. निंदा [को०]।

आजिक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध [को०]।

आजिगमिषु—वि० [सं०] आने की इच्छा रखनेवाला [को०]।

आजिगीषु—वि० [सं०] जय का इच्छुक [को०]।

आजिग्रह—वि० [सं०] ग्रहण या हरण करनेवाला [को०]।

आजिज—वि० [अ० आजिज] [संज्ञा आजिजी] १ दीन। विनीत। २ हैरान। तग। उ०—रहिन न आजिज तुम रहते इद्री मारि गिराओ।—पलटू० बानी, भा० ३, पृ० ५८।

क्रि० प्र०—आना।—होना।

आजिजी—संज्ञा स्त्री० [अ० आजिजी] १ दीनता। विनीत भाव। नम्रता। २ हैरानी। ३. निराशा। ४. कमजोरी।

आजिमुख—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध की अग्रपंक्ति [को०]।

आजी—संज्ञा स्त्री० [सं० आर्यिका, प्रा० अज्जिआ अथवा हिं० आजा] दादी। पितामही।

आजीव—संज्ञा पुं० [सं०] १ जीविका। धंधा। २ जीविका का साधन या उपाय। ३. उचित लाभ या आय। वाजिब आमदनी।

विशेष—जो लोग कारीगरो और श्रमिकों की आमदनी को घटाने का यत्न करते थे, उनके ऊपर चाणक्य ने १००० पण जुरमाना लिखा है।

४ राज्यकर। सरकारी टैक्स या महसूल।

विशेष—यह भिन्न भिन्न पदार्थों पर लगता था।

आजीवक—संज्ञा पुं०[सं०] १ गोशाल द्वारा प्रवर्तित धार्मिक संप्रदाय का साधु (जैन)। उ०—इतने मे एक आजीवक उसी स्थान पर आकर चदन से पूछने लगा।—इरा०, पृ० ७२। २. भिखमगा। भिक्षुक [को०]।

आजीवन—क्रि० वि० [सं०] जीवनपर्यंत। जिदगी भर। जब तक जीए तब तक।

आजीवनिक—वि० [सं०] जीविका के लिये प्रयत्न करनेवाला [को०]।

आजीवांत—क्रि० वि० [सं० आजीवान्त] मरने की घड़ी तक। प्राण निकलने के क्षण तक।

आजीविक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आजीवक' [को०]।

आजीविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृत्ति। रोजी। रोजगार। जीवन का सहारा। जीवननिर्वाह का अवलव। उ०—तेरी वहुत अच्छी आजीविका है।—शकुतला, पृ० १०१।

आजीवितांत—क्रि० वि० [सं० आजीवितान्त] जीवनपर्यंत [को०]।

आजीवी—वि० [सं० आजीविन्] जीविकायुक्त। २ एक प्रकार के भिक्षुक (एकदडी) [को०]।

आजीव्य[1]—वि० [सं०] १ जीविका योग्य। जीविका वनाने योग्य। ३ निवास योग्य। ४. उपजाऊ [को०]।

आजीव्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] जीविका या रोजी का साधन [को०]।

आजुⓅ—क्रि० वि०, संज्ञा पुं० [हिं० आजु] दे० 'आज'। उ०—(क) आजु अनरसेहि भोर के, पय पियत न नीके।—तुलसी ग्र०, पृ० २७४। (ख) वहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह विधि वनि भलि भूरी।—मानस, २। १०२।

आजुर्दगी—संज्ञा स्त्री० [फा० आजुर्दगी] रज। खेद। दुःख।

आजुर्दा—वि० [फा० आजुर्दह्] खिन्न। दुखी। उ०—वे लोग कैसे कुछ आजुर्दा खातिर हैं।—प्रेमघन, भा० २, पृ० १०१।

आजू¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ बेगार। २ विना वृत्ति लिए काम करनेवाला नौकर (को०)। ३. नरक निवास या वास (को०)।

आजू²(पु)—संज्ञा पुं० [अ० वजूअ] दे० 'वजू'। उ०—ज्ञान का गुसल कर पाक का आजू कर एक तकवीर परतीत पाई—कबीर० रे०, पृ० २४।

आज्ञप्त—वि० [सं०] १ आदेश दिया हुआ। २ सूचित [को०]।

आज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आज्ञा। आदेश। २. सूचना।
 यौ०—आज्ञप्तिहर = संदेशवाहक। दूत।

आज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बडो का छोटो को किसी काम के लिये कहना। आदेश। हुक्म। जैसे,—राजा ने चोर को पकडने की आज्ञा दी। २. छोटो को उनकी प्रार्थना के अनुसार बडे का उन्हें कोई काम करने के लिये कहना। स्वीकृति। अनुमति। जैसे,—बहुत कहने सुनने पर हाकिम ने लोगो को जुआ खेलने की आज्ञा दी।
 क्रि० प्र०—करना।—देना।—मानना।—लेना।—होना।
 यौ०—आज्ञाकारी। आज्ञावर्ती। आज्ञापक। आज्ञापालन। आज्ञाभंग।

आज्ञाकर—वि० [सं०] दास। सेवक [को०]।

आज्ञाकारी—वि० [सं० आज्ञाकारिन्] [स्त्री० आज्ञाकारिणी] १. आज्ञा माननेवाला। हुक्म माननेवाला। आज्ञापालक। उ०—लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि, ससि सब आज्ञाकारी। तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंत कर धारी।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०८। २. सेवक। दास। टहलुआ।

आज्ञाचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] योग और तंत्र मे माने हुए शरीर के भीतर के छह चक्रों मे से छठा, जो सुपुम्ना नाडी के बीचोबीच दोनो भौं के बीच दो दल के कमल के आकार का माना गया है।

आज्ञाता—वि० [सं० आज्ञातृ] आज्ञा देने या करनेवाला [को०]।

आज्ञादान—संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा करना या देना [को०]।

आज्ञाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी जो राजा की आज्ञा से रखी या रखाई गई हो।

आज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] अवगम। ज्ञान। बोध [को०]।

आज्ञापक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आज्ञापिका] १ आज्ञा देनेवाला। आज्ञा करनेवाला। २ प्रभु। स्वामी।

आज्ञापत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह लेख जिसके अनुसार किसी आज्ञा का प्रचार किया जाय। हुक्मनामा।

आज्ञापन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आज्ञापित] सूचना। जताना।

आज्ञापरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा प्राप्त करना या स्वीकार करना [को०]।

आज्ञापालक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आज्ञापालिका] १ आज्ञा पालन करनेवाला। आज्ञाकारी। आज्ञा के अनुसार चलनेवाला। फरमाँबरदार। २ दास। टहलुआ।

आज्ञापालन—संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा के अनुसार काम करना। फरमाँबरदारी।

आज्ञापित—वि० [सं०] सूचित। जाना हुआ।

आज्ञाप्य—वि० [सं०] आज्ञा या निर्देश के योग्य [को०]।

आज्ञाप्रतिघात—संज्ञा पुं० [सं०] १ आज्ञा का उल्लघन। २. विद्रोह [को०]।

आज्ञाभंग—संज्ञा पुं० [सं० आज्ञाभङ्ग] आज्ञा न मानना। हुक्म उदूली।
 क्रि० प्र०—करना।—होना।

आज्ञायी—वि० [सं० आज्ञायिन्] बोध या ज्ञानवाला। समझनेवाला [को०]।

आज्ञाविधेय—वि० [सं०] आज्ञा माननेवाला। आज्ञाकारी [को०]।

आज्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ घृत। घी। उ०—नौकरशाही दे चुकी, भारत तुझे स्वराज्य। डाल न आशा आग मे असहयोग का आज्य।—शकर०, पृ० २०६। २ (व्यापक भाव मे) घृत की जगह तेल, दूध आदि हवनीय पदार्थ [को०]। ३ प्रातःकालिक होत्र के मंत्र [को०]। ४ वह सूक्त जिसमे उक्त मंत्र है [को०]।
 यौ०—आज्यग्रह, आज्यधानी = घृतपात्र। आज्यदोह। आज्यप = घृत पीनेवाला। आज्यपा। आज्यभाग। आज्यभुक्। आज्यस्थाली।

आज्यदोह—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद की तीन ऋचाओ का एक सूक्त जिसका जप या पाठ पवित्र करनेवाला होता है।

आज्यधन्वा—संज्ञा पुं० [सं० आज्यधन्वन्] वह जिसके धनुष मे घृत की मालिश की गई हो [को०]।

आज्यपा—संज्ञा पुं० [सं०] सात पितरो मे से एक। मनु के अनुसार ये वैश्यो के पितर हैं जो पुलस्त्य ऋषि के लडके थे।

आज्यभाग—संज्ञा पुं० [सं०] घृत की दो आहुतियाँ जो अग्नि और सोमदेवताओ को उत्तर और दक्षिण भागो मे आधार के पीछे दी जाती हैं।
 विशेष—इनके अविच्छिन्न होने का नियम नही है। ऋग्वेदी लोग 'अग्नये स्वाहा' से उत्तर ओर और 'सोयाम स्वाहा' से दक्षिण ओर आहुति देते हैं, पर यजुर्वेदी लोग उत्तर और दक्षिण दिशाओ मे भी पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध का विभाग करके उत्तर और दक्षिण दोनो के पूर्वार्द्ध भाग ही मे देते हैं। आधार और आज्यभाग आहुति के विना हवि से आहुति नही दी जाती।

आज्यभुक्, आज्यभुज—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

आज्यलेप—संज्ञा पुं० [सं०] घी का मलहम [को०]।

आज्यवारि—संज्ञा पुं० [सं०] घृतसमुद्र। सात पौराणिक समुद्रो मे से एक [को०]।

आज्यविलापिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घृतपात्र [को०]।

आज्यस्थाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक यज्ञपात्र जो बटली के आकार का होता है और जिसमे हवन के लिये घी रखा जाता है।

आज्यहोम, आज्याहुति—संज्ञा पुं० [सं०] घी का होम [को०]।

आझाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० आकांक्षा] इच्छा। उ०—प्राणहारा जादव खग प्राजा, अमरो खान पुरवण आझा।—रा० रू०, पृ० २६७।

आझाल(पु)†—वि० [स० आ+ज्वाल] तेजस्वी उ०—अखई प्रोहित वम उजालो, आयी प्रिय दरसण आझोलो।—रा० रू०, पृ० ३००।

आटना—क्रि०अ० [म० अटन=घूमना से प्रे०रू० रूप आटन=घुमाना, फेरना।] पोतना। दवाना। उ०—(क) घोडो ही की लीद मे मारो आटि पठान।—सुजान०, पृ० ७०। (ख) क्यो इस वृद्ध पुरुष को अनुग्रह से आटे देते हो।—तोताराम।—(शब्द०)।

आटरूष—सज्ञा पु० [म०] १ पौधा। अडूसा। २ एक वृत्त का नाम। अटरूष [को०]।

आटविक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वन मे निवास करनेवाला व्यक्ति। २ छह प्रकार की सेनाओ मे से एक। ३ वन्य जातियो का प्रधान पुरुष या मुखिया [को०]।

आटविक[2]—वि० [स०] १ वन का। वन्य। जगली। २ वनवासियो सवधी [को०]।

आटा[1]—सज्ञा पुं० [स० आर्द=जोर से दाबना, प्रा० *अट्ट] १ किसी अन्न का चूर्ण। पिसान। चून। २ पिसा हुआ गेहूँ या जो।

मुहा०—कगाली या गरीवी मे आटा गीला होना=धन की कमी के समय पास से कुछ और जाता रहना। आटा दाल का भाव मालूम होना=ससार के व्यवहार का ज्ञान होना। आटा दाल की फिक्र=जीविका की चिंता। आटे का आपा=भोली स्त्री। अत्यत सीधी सादी स्त्री। आटा माटी होना=नष्ट भ्रष्ट होना।

३ किसी वस्तु का चूर्ण। बुकनी।

आटा[2]—अटना क्रिया का भूतकालिक रूप। उ०—अगिलहि कहँ पानी लेई बाँटा। पछिलहि कहँ नहि काँदो आटा।—जायसी ग्र०, पृ० ६।

आटि—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक चिडिया का नाम। आडी। आटी। एक प्रकार की मछली [को०]।

आटिक,आटिक्य—वि० [स०] [वि० स्त्री० आटिकी] यात्रा के लिये प्रस्तुत। यात्रा के योग्य [को०]।

आटिमुख—सज्ञा पुं० [स०] शल्यक्रिया सवधी एक शस्त्र जिसका आकार आडी चिडिया के मुख या चोच का सा होता है। [को०]।

आटी[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] डाट। रोक। टेक।

आटी[2]—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक चिडिया का नाम। आडी [को०]।

आटीकन—सज्ञा पु० [स०] गाय के वछडे का उछलना कूदना [को०]।

आटीकर—सज्ञा पु० [स०] साँड। वृषभ [को०]।

आटोक्रैट—सज्ञा पुं० [अ०] १ निरकुश या स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट्। वह राजा या शासक जो दूसरो पर अपनी शक्ति का अवाध प्रयोग या मनमानी करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता हो। २ वह जिसे किसी विषय मे अमर्यादित अधिकार प्राप्त हो या जो किसी विषय मे अपना अमर्यादित अधिकार मानता हो। मनमानी करनेवाला। स्वेच्छाचारी। निरकुश।

आटोक्रैसी—सज्ञा स्त्री०[अ०] १ दूसरो पर अनियत्रित या अमर्यादित अधिकार जो किसी एक ही व्यक्ति को हो। दूसरो पर मनमाना करने का अधिकार। स्वेच्छाचारिता। निरकुशता। २. किसी निरकुश स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट् की शक्ति। एकतत्रता।

आटोप—सज्ञा पु० [सं०] १ आच्छादन। फैलाव। २ आडवर। विभव। ३ पेट की गुडगुडाहट। ४ फूलना। शोथ [को०]। ५ भीड [को०]। ६ आधिक्य। प्राचुर्य [को०]। ७ गर्व। घमड [को०]।

यौ०—घटाटोप। उ०—घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। मुखहि निसान वजावहिं भेरी।—मानस ६।३८।

आट्टोप—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक रोग जिसमे पेट की नसें तन जाती हैं। २ पेट की नसो का तनाव।

आठ—वि० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ] एक सख्या। चार का दूना।

मुहा०—आठ आठ आँसू रोना=वहुत अधिक विलाप करना। आठो गाँठ कुम्मैत=(१) सर्वगुणसपन्न। (२) चतुर। (३) छँटा हुआ। धूर्त। आठो पहर=दिन रात। आठो पहर जामे से बाहर रहना=हर समय क्रुद्ध रहना। वरावर झल्लाए रहना।

आठक(पु)†—वि० [सं० अष्ट, पा० अट्ठ+हिं० एक] आठ।

आठवाँ—वि० [स० अष्टम, पा० अट्ठवें, प्रा० अट्ठय, अट्टवें] सख्या में आठ के स्थान पर का। अष्टम। जैसे,—इस पुस्तक का आठवाँ प्रकरण अभी पढना है।

आठैं, आठो—सज्ञा स्त्री० [सं० अष्टमी] अष्टमी तिथि। जैसे,—आठो का मेला उ०—सवत सरस विभावन, भादौं आठैं तिथि, वुधवार।—सूर०, १०।८६।

आठोगाँठ—वि० [हिं० आठों+गाँठ] सर्वांग। उ०—स्यामा सुगति सुवस की आठौ गाँठि अनूप। छूटी हाथ तें पातरी प्यारी छरी स्वरूप।—भिखारी० ग्र०, पृ० २७।

आडंवर[1]—सज्ञा पु० [स० आडवर] १ गभीर शब्द। २ तुरही का शब्द। ३. हाथी की चिग्घाड। ४ ऊपरी वनावट। तडक भडक। टीमटाम। झूठा आयोजन। ढोग। कपटवेष जिससे वास्तविक रूप छिप जाय। जैसे,—(क) उसमे विद्या तो ऐसी ही वैसी है, पर वह आडंवर खूब वढाए हुए है।—(ख) आजकल के साधुओ के आडवर ही आडवर देख लो।

क्रि० प्र०—करना।—फैलना।—बढाना।—रचना।

५ आच्छादन।

यौ०—मेघाडवर।

६ तवू। ७ वडा ढोल जो युद्ध मे वजाया जाता है। पटह। ८ कोलाहल करना। जोर जोर से या अधिक वोलना [को०]। ९ वादलो का गर्जन। मेघगर्जन [को०]। १० युद्धघोषणा या आक्रमण की सूचना देने का पटह या नगाडा [को०]। ११ प्रसन्नता। आह्लाद [को०]। १२ पलक [को०]। १३ अग-सवाहन। मालिश [को०]। १४ क्रोध। कोप [को०]।

आडवर[2]—वि० अधिक। उच्च। अपार [को०]।

आडवराघात—सज्ञा पु० [स० आडम्वराघात] पटह या नगाडा वजानेवाला आदमी [को०]।

आडवरी—वि० [स० आडम्वरिन्] आडवर करनेवाला। ऊपरी वनावट करनेवाला २ घमडी। अभिमानी [को०]।

आड[1]—सज्ञा स्त्री० [अल=वारण, रोक] १. ओट। परदा। ओझल। जैसे,—(क) वह दीवार की आड मे छिपा वैठा है। (ख) कपड़े से यहाँ आड़ कर दो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—आड़ देना(पु)=ओट करना। आड़ के लिये सामने रखना। उ०—आडे दै आले वसन, जाडे हूँ की राति। साहसु कै सनेह वस, सखी सबै ढिग जाति।—बिहारी र०, दो० ३७३। २ रक्षा। शरण। पनाह। सहारा। आश्रय। जैसे,—(क) अब वे किसकी आड पकड़ेंगे? (ख) जब तक उनके माता जीते थे, तब तक बडी भारी आड थी।

क्रि० प्र०—करना।—पकड़ना।—लेना।

३ रोक। अडान। ४. ईंट वा पत्थर का टुकडा जिसे गाडी के पहिए के पीछे इसलिये अडाते है जिसमे पहिया पीछे न हट सके। रोडा। ५ संगीत मे अष्टताल का एक भेद। ६ थूनी। टेक। ७ तिल की बोडी जिसमे तिल भरे रहते हैं। ८ एक प्रकार का कलछुला जो चीनी के कारखानो मे काम आता है।

आड²—संज्ञा स्त्री० [सं० अल=डंक, पा० अड, प्रा० आड] बिच्छू या भिड आदि का डक।

आड³—संज्ञा स्त्री० [सं० आलि=रेखा] १ लबी टिकली जिसे स्त्रियाँ माथे पर लगाती हैं। उ०—गोरी गदकारी परै हँसत कपोलनु गाड। कैसी लसति गँवारि यह सुनकिरवा की आड।—बिहारी र०, दो० ७०८। २ स्त्रियो के मस्तक पर का आडा तिलक। उ०—केसव, छबीलो छत्र सीसफूल सारथी सो केसर की आडि अथि रथिक रची बनाइ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ९०। (ख) मगल बिंदु सुरगु, ससि मुखु केसरि आड गुरु। इक नारी लहि सगु, रसमय किय लोचन जगत।—बिहारी र०, दो० ४२। ३ माथे पर पहनने का स्त्रियो का एक गहना। टीका।

आडगीर—संज्ञा पुं० [हिं०+आड़ फा० गीर] खेत के किनारे की घास।

आडण—संज्ञा स्त्री० [हिं० आडना=रोकना] ढाल।—(डिं०)।

आडना—क्रि० स० [अल=वारण करना] १. रोकना। छेकना। उ०—अँचवन दियो न आजु अलि हरि छवि-अमी अघाइ। आड्यो प्यासे दृगनि को लाज निगोडी आइ।—भिखारी० ग्र०, पृ० ४५। २ बाँधना। ३. मना करना। न करने देना। ४. गिरवी रखना। गहने रखना। जैसे,—सौ रुपए की चीज आड करके तो २५) लाया हूँ।

आडबंद—संज्ञा पुं० [हिं० आड+फा० बंद] १ फकीरो का लँगोट। २ पहलवानो का लँगोट जिसे वे जाँघिए के ऊपर कसते हैं।

आडबना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आडबद'।

आड़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० आलि=रेखा प्रा० आल, आड अथवा सं० अराला प्रा० *आल] [स्त्री० आडी] १ एक धारीदार कपडा। २ जहाज का लट्ठा। शहतीर। ३. नाव या जहाज मे लगे हुए बगली तख्ते। ४ जुलाहो का लकडी का वह समान जिसपर सूत फैलाया जाता है।

आडा²—वि० १ आँखो के समानातर दाहिनी ओर से बाईं ओर को बाईं ओर से दाहिनी ओर को गया हुआ। २ वार से पार तक रखा हुआ।

मुहा०—आडे आना=(१) रुकावट डालना। बाधक होना। जैसे,—जो काम हम शुरू करते हैं, उसी मे तुम बेहतर आडे आते हो। (२) कठिन समय में काम आना। गाढे मे काम आना। सकट मे खडा होना। उ०—कमरी थोडे दाम की आवै बहुतै काम। खासा मलमल बाफता उनकर राखै मान। उनकर राखै मान बुद जहँ आडे आवै। बकुचा बाँधै मोट राति को झारि बिछावै।—गिरधर (शब्द०)। आडा तिरछा होना=बिगडना। मिजाज बदलना। जैसे,—आडे तिरछे क्यो होते हो, सीधे सीधे बातें करो। आड़े पडना=बीच मे पडना। रुकावट डालना। उ०—कबिरा करनी आपनी कबहुँ न निष्फल जाय। सात समुद आडा परै मिलै अगाऊ आय।—कबीर (शब्द०)। आड़े हाथो लेना=किसी को व्यंग्योक्ति द्वारा लज्जित करना। जैसे,—बात ही बात मे उन्होने बलदेव को ऐसा आडे हाथो लिया कि वह भी याद करेगा। आडा होना=रुकावट डालना। आगे न बढने देना।—मैं पीछे मुनि धीय के, चह्यो चलन करि चाव। मर्यादा आडी भई, आगे दियो न राव।—लक्ष्मण (शब्द०)।

आडा³—संज्ञा पुं० [हिं० अड्डा] दे० 'अड्डा'। उ०—होइ निचिंत बैठे तेहि आडा। तब जाना खोंचा हिय गाड।—जायसी ग्र०, पृ० २८।

आडाखेमटा—संज्ञा पुं० [हिं० आडा+खेमटा] मृदग का साढे तेरह मात्राओ का एक ताल।

विशेष—इसमे तीन आघात और एक खाली रहता है। कोई कोई इसमे खाली का व्यवहार नही करते। इस ताल के बोल ये हैं—धा तेरे केटे धेने धागे नागे तेन। ताके तेरे केटे धेन धागे नागे तेन।

आडाचौताल—संज्ञा पुं० [हिं० आडा+चौताल] मृदग का एक ताल। यह ताल सात मात्राओ का होता है।

विशेष—इसमे चार आघात और तीन खाली होते हैं। इस ताल के बोल यो हैं—धाग् धागे दिता, केटे धागे दिता गदि धेने धा। मतातर से इसके बोल यो हैं—धागे तेटे केटे ताग तागे तेटे, केटे तागे धेत्ता तेटेकता गदि धेने धा।

आडाठेका—संज्ञा पुं० [हिं० आडा+ठेका] नौ मात्राओ का एक ताल।

विशेष—इसमे चार दीर्घ और चार अणु मात्राएँ होती है। चार दीर्घ मात्राओ की आठ द्रुत मात्राएँ और चार अणु मात्राओ की एक मात्रा। इस प्रकार सब मिला कर नौ मात्राएँ होती हैं। किंतु जब ठेके मे ४ दीर्घ मात्राएँ दी जाती हैं तो उनमे से प्रत्येक के साथ एक एक मात्रा अणु भी लगा दी जाती है। इसके मृदग के बोल ये हैं—धाकेटे नाग धी

\+ ० + १ + +

ऐन धा धा धिन धि ऐन ताकेटे तागधि ऐन धा धा तिरेन धा।

आडापचताल—संज्ञा पुं० [हिं० आडा+पंच+ताल] पाँच आघात और नौ मात्राओं का एक ताल।

\+ १ १

विशेष—इसके बोल ये हैं—धि गिर किट, धिना धि धि ना ना तु ना, कुत्ता धि धि, ना धि धि ना।

आडालोट—संज्ञा पुं० [हिं० आडा+लोटना] डावाँडोलपन। कष्ट। क्षोभ (लश०)।

क्रि० प्र०—मारना = जहाज का लहराना। जहाज का डगमगाना।

आडि, आडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार की मछली। २ एक जलपक्षी जिसको शरालि भी कहते हैं। यह गिद्ध की तरह होता है।

आडिटर—संज्ञा पुं० [अं०] आय व्यय का चिट्ठा जाँचनेवाला। आय-व्यय परीक्षक।

आडिवी—संज्ञा पुं० [सं० आडीविन्] [स्त्री० आडिविनी] काक। कौआ [को०]।

आडी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० आडा] १ तबला, मृदंग आदि बजाने का एक ढंग जिसमे किसी ताल के पूरे समय के तीसरे छठे या बारहवें भाग ही मे पूरा ताल बजा लिया जाता है। २ चमारो की छुट्टी।

आडी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरी'।

आडी[3]—वि० [हिं० आड + ई (प्रत्य०)] सहायक। अपने पक्ष का।

विशेष—जब किसी खेल मे लडको के दो दल हो जाते हैं तब एक लडका अपने दल के लडके को आडी कहता।

आडी[4]—वि० स्त्री० पडी। बेंडी।

मुहा०—आडी करना = चाँदी सोने के वर्क पीटनेवालो की बोली मे लबे पीटे हुए वर्क को चौडा पीटना।

आडू—संज्ञा पुं० [सं०] १ चद्रमा [को०]।

आडू—संज्ञा पुं० [सं० अंड अथवा आलु] १ एक प्रकार का फल जिसका स्वाद खटमीठा होता है। देहरादून की ओर यह फल बहुत अच्छा होता है। इसे शफतालू भी कहते हैं। यह फल दो प्रकार का होता है—एक चकैया, दूसरा गोल। २ इस फल का वृक्ष।

आढ[1]—संज्ञा पुं० [सं० आढक] चार प्रस्थ अर्थात् चार सेर की एक तौल।

आढ[2]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० आड] १ ओट। पनाह। २ सहारा। ठिकाना। उ०—ज्यौं ज्यौं जल मलीन त्यौं त्यौं जगमण मुख मलीन लहै आढ न।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६४। ३ Ⓟअतर। बीच। जैसे,—(क) एक दिन आढ देकर आना। (ख) एक कोस-आढ-देकर ठहरेंगे।

मुहा०—आढ़ आढ़ करना = बीच मे अवधि डालना। आजकल करना। टाल मटूल करना। जैसे,—उ०—(क) हरि तेरी माया को न बिगोयो। शकर को चित हरचो कामिनी सेज छाडि भू सोयो। जारि मोहिनी आढ आढ कियो तब नख सिख तें रोयो।—सूर (शब्द०)। (ख) आढ आढ करत असाढ आयो, एरो आली डर से लगत देखि तम के जमाक ते। श्रीपति ये मैन माते मोरन के बैन सुनि परत न चैन बुंदियान के झमाक ते।—श्रीपति। (शब्द०)।

आढ[3]—वि० [सं० आढ्य = सपन्न] कुशल। दक्ष। उ०—स्वारथ लागि रहे वे आढा। नाम लेत जस पावक डाढ़ा।—कबीर, (शब्द०)।

आढ़[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० आढि] एक प्रकार की मछली।

आढ[5]—संज्ञा स्त्री० [हिं० आड़ = टीका] माथे पर पहनने का स्त्रियो का एक आभूषण। टीका।

आढक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक तौल जो चार सेर के बराबर होत है। २ अन्न नापने का काठ का बरतन जिसमे अनुमान से चा सेर अन्न आता है। ३ अरहर।

आढकिक—वि० [सं०] १ आढकवाला आढकयुक्त। २ एक आढ से बोया हुआ (खेत) [को०]।

आढकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अरहर नाम का अन्न। २ सौरा मृत्तिका। गोपीचदन।

आढत—संज्ञा स्त्री० [हिं० आडना = जमानत देना] १. किसी अ व्यापारी का माल रखकर कुछ कमीशन लेकर उसकी बि करा देने का व्यवसाय। २ वह स्थान जहाँ आढ़त का रहता हो। ३ वह धन जो बिक्री कराने के बदले मिलत

आढतदार—संज्ञा पुं० [हिं० आढत + फा दार (प्रत्य०)] वह व्यापारियो का माल अपने यहाँ रखकर दूकानदारो के हा बेचता हो। आढत का काम करनेवाला। अढतिया।

आढतिया—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अढतिया'।

आढ्यकर—वि० [सं० आढ्यङ्कर] असपन्न को सपन्न करनेवाला।

आढ्यभविष्णु—वि० [सं० आढ्यम्भविष्णु] धनी होनेवाला [को०]।

आढ्य—वि० [सं०] १ सपूर्ण। पूर्ण। २ युक्त। विशिष्ट। ३ धनी [को०]।

यौ०—आढ्यकुलीन = धनी कुल मे उत्पन्न। आढ्यचर, आढ्य-पूर्व = पहले का धनी। आढ्यरोग = गठिया। वात रोग। गुणाढ्य। धनाढ्य। पुण्याढ्य। सनाढ्य।

आढ्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन [को०]।

आढ्यरोगी—वि० [सं० आढ्यरोगिन्] गठिया का रोगी [को०]।

आढ्यवात—संज्ञा पुं० [सं०] वातरोग जनित पक्षाघात या लकवा [को०]।

आणक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक रुपये का सोलहवाँ भाग। आना। २ एक प्रकार का रतिबध। पार्श्वसभोग [को०]।

आणक[2]—वि० अधम। कुत्सित।

आणव[1]—वि० [सं०] [स्त्री० आणवी] अत्यन्त सूक्ष्म। अणु। अत्यत छोटा [को०]।

आणव[2]—संज्ञा पुं० अणुता। अत्यत सूक्ष्मता [को०]।

आणविक—वि० [सं०] अणु से सबद्ध। अणु सबधी।

आणवीन—वि० [सं०] अणुधान्य (साँवाँ आदि) बोने योग्य [को०]।

आतⓅ—संज्ञा पुं० [सं० आत्म, हिं० आतम] आत्मा। उ०—आगम पथ बाटा चढ़ी सुति घाटा, गगन गैन फाटा सो आत निआत। घट०, पृ० ३८६।

आतक—संज्ञा० पुं० [सं०] १. रोब। दबदबा। प्रताप। उ०—सहित गुमान गरब आतक, सुनि राजा के बचन निसक। हम्मीर ह०, पृ० १८। २ भय। शका।

क्रि० प्र०—छाना।—जमना।—फैलना।

३ रोग। बीमारी।

यौ०—आतंक-निग्रह।

४ मुरचग की ध्वनि। ५ पीडा। कष्ट उ०—हो निर्मम निर्जेय शक्ति के मद से यदि, पावस के प्रवाह सा फैला भय, आतक, विषाद।—पार्वती पृ० ८९। ६. सदेह [को०]। ७ निश्चय का अभाव [को०]।

आतंकवादी--वि० [स० आतङ्क+वादिन्] जो राजनीतिक लक्ष्य की सिद्धि के लिये बल या अस्त्र शस्त्र मे विश्वास रखता हो। जैसे, आतंकवादी सघटन।

आतंकित--वि० [सं० आतङ्कित] भीत। त्रस्त। डरा हुआ। उ०--पशु फिरते सानद विहगकुल मगल के स्वर गाते। आतंकित थे असुर, मनुज थे उत्सव पर्व मनाते। पार्वती०, पृ० ५४।

आतचन--सज्ञा पुं० [स० आतञ्चन] १ दूध को जमाने के लिये डाला जानेवाला जावन। जामन। २ सकुचित या संकीर्ण करनेवाला पदार्थ या व्यक्ति। ३ दही। ४ जमाने का कारण। ५ जमने मे दूध का जलीय अश। ६ प्रेपक। ७ सतोपकारक या तोपकारक। ८ सकट। विपत्ति। ९. वेग। गति। १०. धातुओ के मिश्रण मे सयोजक तत्व। ११.स्थूलकरण। मोटा करना [कौ०]।

आत--सज्ञा पुं० [स० आतु] शरीफा। सीताफल। उ०--दिखा रहा था तरु वृ द मे खडा स्व आततायीपन, पेड आत का।--प्रिय० प्र० १०५।

आतत--वि० [सं०] १ चढा या चढाया हुआ। खिंचा हुआ। फैला हुआ (धनुप या उसकी डोरी) [कौ०]।

आततज्य--वि० [स०] जिसके ज्या (धनुप की डोरी) आतत (चढी या खिंची) हो [कौ०]।

आतताई--सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आततायी'। उ०--वरनि वताई, छिति व्योम की तनाई जेठ आयो आतताई पुटपाक सौ करत है।--कवित्त०, पृ० ५६।

आततायी--सज्ञा पुं० [स० आततायिन्] [स्त्री० आततायिनी] १. आग लगानेवाला। २ विप देनेवाला। ३ वधोद्यत शस्त्रधारी। ४ जमीन छीन लेनेवाला। ५ धन हरनेवाला। ४ स्त्री हरनेवाला। ७ क्रूर व्यक्ति। अत्याचारी। लोकपीडक। संताप देनेवाला व्यक्ति।

आतन--सज्ञा पुं० [स०] १ तानना। फैलाना। विस्तृत करना। २ दृश्य [कौ०]

आतप--सज्ञा पुं० [स०] [वि० आतपी, आतप्त] १ धूप। घाम। उ०--मृदुल मनोहर सुदर गाता। सहत दुसह वन आतप वाता।--मानस, ४।१। २ गर्मी। उष्णता। ३ सूर्य का प्रकाश। ४. ज्वर। बुखार।

यौ०--आतपक्लात।

आतपत्र, आतपत्रक--सज्ञा पुं० [स०]छाता। छतरी। उ०--आतपत्र सा रुचिर शीश पर राजित जिनके व्योम वितान।--पार्वती, पृ० ३०।

आतपन--सज्ञा पुं०[स०] शिव [कौ०]।

आतपलघन--सज्ञा पुं० [स० आतपलङ्घन] सूर्य के ताप में से गुजरना [कौ०]।

आतपात्यय--सज्ञा पुं० [स०] १ ग्रीष्म का वीतना। २ सूर्यास्त [कौ०]।

आतपाभाव--सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के ताप का अभाव [कौ०]।

आतपी[1]--सज्ञा पुं० [आतपिन्] सूर्य।

आतपी[2]--वि० धूप का। धूप सवधी।

आतपीय--वि० [सं०] सूर्यताप संबधी। धूपवाला [कौ०]।

आतपोदक--सज्ञा पुं० [स०] मृगतृष्णा।

आतम[1]--वि० [हिं०] दे० 'आत्म'। उ०--आतम रूप सकल घट दरस्यो, उदय कियो रवि ज्ञान।--सूर०, २।३३।

आतम[2]--सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आत्म'। उ०--एकै आतम हम तुम माही।--सूर० ११।४।

आतमक--वि० [स० आत्मक] दे० 'आत्मक'। उ०--प्रथम मंगलाचरन को तीनि आतमक जानि। नमस्कार अरु ध्यान पुनि, आसिरवाद बखान।--भिखारी, ग्र०, भा० १, पृ० १।

आतमगामी--वि० [स० आत्म+गामिन्] आत्मविद्। उ०--ज्ञान आतमानिष्ठ गुनत यो आतमगामी, कृष्ण अनावृत परम ब्रह्म परमातम स्वामी।--नद० ग्र०, पृ० ४१।

आतमज्ञान--सज्ञा पुं० [स० आत्मज्ञान] आत्मज्ञता। उ०--ताते आतमज्ञान धन पायो नाहिं अजान।--दीन० ग्र०, पृ० १५२।

आतमवादी--वि० [स० आत्मवादिन्] दे० 'आत्मवादी'। उ०--जे मुनिनायक आतमवादी।--मानस ७।७०।

आतमहन--वि० [स० आत्महन्] दे० 'आत्महन्'। उ०--जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृतनिंदक, मदमति आतमहन् गति जाइ।--तुलसी (शब्द०)।

आतमा--सज्ञा स्त्री० [स० आत्मा] दे० 'आत्मा'। उ०--समयसिंधु नाम--वोहित भजि निज आतमा न तारयो।--तुलसीग्र०, पृ० ५५६।

आतर--सज्ञा पुं० [स०] नदी पार जाने का महसूल। नाव का भाडा। उतराई।

आतर्द--सज्ञा पुं० [स०] छिद्र। सूराख [कौ०]

आतर्दन--सज्ञा पुं० [स०] १ धक्का देकर खोलने का कार्य। २ छिद्र। छेद। सूराख [कौ०]।

आतर्पसा--सज्ञा पुं० [स०] मागलिक लेपन। ऐपन।

आतश--सज्ञा स्त्री० [फा०] आग। अग्नि। उ०--आदि अत मन मध्य न होते, आतश पवन न पानी। लख चौरासी जीव जतु नहिं, साखी शब्द न बानी।--कबीर (शब्द०)।

यौ०--आतशखाना। आतशजनी। आतशदान। आतशपरस्त। आतशबाज। आतशबाजी।

आतशक--सज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० आतशकी] फिरग रोग। उपदश। गर्मी।

आतशखाना--सज्ञा पुं० [फा० आतशखानह्] १. अग्नि रखने का स्थान। वह स्थान जहाँ कमरा गर्म करने के लिये आग रखते हैं। २ वह स्थान जहाँ पारसियो की अग्नि स्थापित हो।

आतशगाह--सज्ञा पुं० [फा०] दे० 'आतशखाना'।

आतशजदगी--सज्ञा स्त्री० [फा० आतशज़दगी] आग लगाने का काम करना [कौ०]।

आतशजन—वि० [फा० आतशजन] आग लगानेवाला [को०]।

आतशजनी—संज्ञा स्त्री० [फा० आतशजनी] आग लगाने का काम।

आतशदान—संज्ञा पुं० [फा०] अँगीठी। बोरसी।

आतशपरस्त—सं० पुं० [फा०] १ अग्नि की पूजा करनेवाला मनुष्य। २ अग्निपूजक। पारसी।

आतशफिशाँ[1]—वि० [फा आतशफिशाँ] आग उगलनेवाला [को०]।

आतशफिशाँ—संज्ञा पुं० अग्निपर्वत। ज्वालामुखी पहाड़ [को०]।

आतशबाज—संज्ञा पुं० [फा० आतशबाज] आतशबाजी बनानेवाला। हवाईगर।

आतशबाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० आतशबाजी] १ बारूद के बने हुए खिलौनो के जलने का दृश्य। २ बारूद के बने हुए खिलौने। जैसे,—अनार, महताबी, छछूँदर, बान, चकरी, बमगोला, फुलझड़ी, हवाई आदि। ३ अगौनी (बुंदेल०)।

आतशमिजाज—वि० [फा० आतश+अ० मिजाज] शीघ्र उत्तेजित या क्रुद्ध होनेवाला। बिगड़ैल [को०]।

आतशी—वि० [फ़ा०] १ अग्नि संबंधी। २ अग्नि उत्पादक। जैसे,—आतशी शीशा जो सूर्यकिरणों की उष्णता एकत्र करके आग पैदा करता है। ३ जो आग मे तपाने से न फूटे, न तड़के, जैसे,—आतशी शीशा।

यौ०—आतशी आईना, आतशी शीशा = वह शीशा जिसके नीचे रखी हुई रुई आदि सूर्यताप से जल जाती है।

आतस(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतश'। उ०—ज्यो छिन एक ही मे छुटि जाति है आतस के लगे आतसबाजी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २४६।

आतशबाज(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आतशबाज'। उ०—आतसबाज अनेक मिले बारूद बनावत।—प्रेमघन० भा० १, पृ० ८२०।

आतशबाजी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतशबाजी'। उ०—ज्यो छिन एक ही मे छुटि जाति है आतस के लगे आतसबाजी।—पद्माकर ग्रं, पृ० २४६।

आतापि, आतापी—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक असुर जिसे अगस्त्य मुनि ने अपने पेट मे पचा लिया था। २ चील पक्षी।

आतायी—संज्ञा पुं० [सं० आतायिन्] चील पक्षी [को०]।

आतार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आतर'।

आतासंदेश—संज्ञा पुं० [सं० आतु+बं० संदेश] एक प्रकार की बँगला मिठाई। इसमे आत (शरीफा) की सी सुगंध आती है और कभी कभी शरीफे के आकाराश की भी इसमें थोड़ी झलक आती है। यह छेने की बनती है।

आति, आती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पक्षी। आड़ी [को०]।

आतिथेय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आतिथेयी] १ अतिथि के सत्कार की सामग्री। २ अतिथिसेवा मे कुशल मनुष्य। ३. मेजबान।

आतिथेयी—वि० [सं० आतिथेयिन्] अतिथिसेवा करनेवाला [को०]।

आतिथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ अतिथि का सत्कार। पहुनाई। मेहमानदारी। २ अतिथि को देने योग्य वस्तु। ३. मेहमान। अतिथि।

यौ०—आतिथ्यसत्कार, आतिथ्यसत्क्रिया = अतिथि का सम्मान या स्वागत आदि करना।

आतिरश्चीन—वि० [सं०] थोड़ा तिरछा [को०]।

आतिरेक्य, आतिरैक्य—संज्ञा पुं० [सं०] अतिरेक होना। आधिक्य [को०]।

आतिवाहिक—संज्ञा पुं० [सं०] मरने के पीछे का वह लिंगशरीर जिसे धारण करके जीव यमलोकादि मे भ्रमण करता है। यह शरीर वायुमय होता है। इसका दूसरा नाम 'भोगशरीर' भी है।

आतिश—संज्ञा स्त्री० [फा० आतश] दे० 'आतश'।—इश्क पर जोर नही, है यह वो आतिश गालिब। कि लगाए न लगे और बुझाए न बने।—शेर०, पृ० ५३६।

आतिशदान—संज्ञा पुं० [फा० आतशदान] दे० 'आतशदान'। उ०—आतिशदान के कार्निश पर धरे हुए बक्स और बोतल चमक उठे।—आकाश०, पृ० ५०।

आतिशयिक—वि० [सं०] अत्यधिक [को०]।

आतिशय्य—संज्ञा पुं० [सं०] अतिशय होने का भाव। आधिक्य। बहुतायत। अधिकाई। ज्यादती।

आतीपाती—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाती = पत्ता] पहडुआ। पहाड़ी डिनो। एक खेल।

विशेष—इसमे बहुत से लड़के जमा होकर एक लड़के को चोर बनाकर उसे किसी पेड़ की पत्ती लेने भेजते हैं। उसके चले जाने पर सब लड़के छिप रहते हैं। पत्ती लेकर लौट आने पर वह लड़का जिसको ढूँढकर छू लेता है, फिर वही चोर कहलाता है। उस लड़के को भी उसी प्रकार पत्ती लेने जाना पड़ता है। यह खेल बहुधा चाँदनी रातो मे खेला जाता है।

आतुर[1]—वि० [सं०] १ व्याकुल। व्यग्र। घबराया हुआ। जैसे,—इतने आतुर क्यो होते हो, तुम्हारा काम सब ठीक कर दिया जायगा। २ अधीर। उद्विग्न। बेचैन।

यौ०—आतुरसन्यास। कामातुर। क्रोधातुर।

३ उत्सुक। दुखी। रोगी।

आतुर[2]—क्रि० वि० शीघ्र। जल्दी। उ०—मर मज्जन करि आतुर आवहु। दिक्षया देउँ ज्ञान जिहि पावहु।—मानस, ६।५६।

आतुरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घबराहट। बेचैनी। व्याकुलता। व्यग्रता। उ०—तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चली जल च्वै।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६४। २ जल्दी। शीघ्रता।

आतुरताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आतुरता+हिं० आई (प्रत्य०)] उतावलापन। शीघ्रता। जल्दीबाजी। उ०—उठि कह्यो भोर भयो झँगुली दै मुदित महरि लखि आतुरताई। बिहँसी ग्वालि जानि तुलसी प्रभु सकुचि चले जननी उर धाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४३५।

आतुरशाला—संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सालय। अस्पताल [को०]।

आतुरसन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] वह सन्यास जो मरने के कुछ पहले त्वरापूर्वक धारण कराया जाता है।

आतुरालय—संज्ञा पुं० [सं०] अस्पताल। चिकित्सागृह [को०]।

आतुरिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आतुर+हिं० इया (प्रत्य०)] आधिक्य। उ०—दीपक ज्योति मलीन भई मनि भूषन जोति की आतुरिया है।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १२१।

आतुरी¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आतुर+ई (प्रत्य०)] १ घबराहट। व्याकुलता। २ शीघ्रता। जल्दीबाजी। उतावलापन। बेसब्री।

आतुरी²(पु)—क्रि० वि० घबराहट से। आतुरतापूर्वक। उ०—नारि गई फिरि भवन आतुरी। नद घरनि अब भई चातुरी।—सूर०, १०।३९१।

आतुरी³(पु)—वि० घबराया हुआ। व्याकुल।

आतुर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ रोग। बीमारी। २ एक प्रकार का ज्वर [को०]।

आतृण्ण¹—वि० [सं०] १ विद्ध। विंधा हुआ। २. कटा हुआ। घायल [को०]।

आतृण्ण²—संज्ञा पुं० १ छिद्र। छेद। २ खुला हुआ घाव या जख्म [को०]।

आतृप्य—संज्ञा पुं० [सं०] सीताफल। शरीफा [को०]।

आतोदी—वि० [सं० आतोदिन्] आघात द्वारा बजनेवाले बाजों को बजानेवाला [को०]।

आतोद्य, आतोद्यक—संज्ञा पुं० [सं०] आघात से बजनेवाला बाजा [को०]।

आत्त—वि० [सं०] १ लिया हुआ। प्राप्त। गृहीत। २ निकाला हुआ। ३. पकडा हुआ। हृत। ४ अनुभव किया हुआ। अनुभूत। ५ आरब्ध। प्रारभ किया हुआ [को०]।

आत्तगंध—वि० [सं० आत्तगन्ध] १. सूँघा हुआ। २ तिरस्कृत। अपमानित। ३ पराजित। पराभूत [को०]।

आत्तगर्व—वि० [सं०] गलितगर्व। जिसका गर्व हर लिया गया हो।

आत्तदंड—वि० [सं० आत्तदण्ड] दडित। सजायाफ्ता [को०]।

आत्तप्रतिदान—संज्ञा पुं० [सं०] पाई हुई वस्तु को लौटाना या फेरना (को०)।

आत्तमनस्क—वि० [सं०] हर्षित। तुष्ट [को०]।

आत्तमना—वि० [सं० आत्तमनस्] प्रसन्न। हृष्ट [को०]।

आत्तलक्ष्मी—वि० [सं०] धन से वंचित [को०]।

आत्तवचस्—वि० [सं०] वाक् या वाणी से रहित [को०]।

आत्मभरि—संज्ञा पुं० [सं० आत्मम्भरि] १. जो अकेले अपने को पाले। २ जो देवता पितर आदि को बिना अर्पित किए ही भोजन करे। उदरभरि [को०]।

आत्म—वि० [सं० आत्मन्] अपना। स्वकीय। निज का।

आत्मक—वि० [सं०] [स्त्री० आत्मिका] मय। युक्त।

विशेष—यह शब्द अकेले नही आता, केवल यौगिक बनाने के काम मे किसी शब्द के अंत मे आता है। जैसे—गद्यात्मक=गद्यमय। पद्यात्मक=पद्यमय।

आत्मकथा—संज्ञा स्त्री० [सं० आत्म+कथा] अपने ही मुख से कहा हुआ या अपना लिखा हुआ जीवनवृत्तांत। आत्मचरित। आपबीती। उ०—सुनकर क्या तुम भला करोगे ?—मेरी भोली आत्मकथा ?—लहर, पृ० ११।

आत्मकल्याण—संज्ञा पुं० [सं०] अपना भला। अपनी भलाई।

आत्मकाम—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्मकामा] १ स्वय से ही प्रेम करनेवाला। गर्विष्ठ। २. आत्मतत्व का प्रेमी [को०]।

आत्मकृत—वि० [सं०] १ अपना किया हुआ। २ अपने विरुद्ध किया हुआ [को०]।

आत्मक्रीडा—संज्ञा स्त्री० [सं० आत्मक्रीडा] आत्मतत्व के साथ क्रीडा [को०]।

आत्मगत¹—वि० [सं०] १ अंतरात्मा का। आंतरिक। उ०—बढ़ रहा था तेज तप का हुआ कृशतर गात। खिली मुख पर दीप्ति कोई आत्मगत अज्ञात।—पार्वती, पृ० १४५। २ मानसिक [को०]।

आत्मगत²—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक के पात्र का अपने ही मन मे सोचना या विचार करना जिसे श्रोताओं को अवगत कराने के लिये जोर जोर से कहना पडता है। स्वगत।

आत्मगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपनी गति (को०)।

आत्मगत्या—क्रि० वि० [सं०] अपनी ही गति से। अपने ही कार्य से [को०]।

आत्मगुप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केवाँच। २ शतावर।

आत्मगुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी जानवर के रहने की छिपी जगह। माँद [को०]।

आत्मगौरव—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी बडाई या प्रतिष्ठा का ध्यान। उ०—सती के पवित्र आत्मगौरव की पुण्यगाथा गूँज उठी भारत के कोने कोने जिस दिन।—लहर, पृ० ६३।

आत्मग्राही—वि० [सं० आत्मग्राहिन्] स्वार्थी। खुदगर्ज [को०]।

आत्मघात—संज्ञा पुं० [सं०] अपने हाथो अपने को मार डालने का काम। खुदकुशी। आत्महत्या।

आत्मघातक¹—वि० [सं०] अपने हाथो अपने को मार डालनेवाला।

आत्मघाती—वि० [सं० आत्मघातिन्] [वि० स्त्री० आत्मघातिनी] जो अपने हाथो अपने को मार डाले। उ०—आत्मघाती वन प्रकृति के रमण मे खो शक्ति सारी।—पार्वती, पृ० २।

आत्मघोष¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपनी भाषा मे अपना ही नाम पुकारनेवाला—कौआ। २ मुर्गा। ३ वह व्यक्ति जो अपनी प्रशंसा आप करे (को०)।

आत्मघोष²—वि० अपने मुँह से अपनी बडाई करनेवाला।

आत्मचिंतन—संज्ञा पुं० [सं० आत्मचिन्तन] आत्म या आत्मा सबधी चिंतन। उ०—हृदय नही है परिचित मन से, मन है विमुख आत्मचिंतन से।—प्रेमांजलि, पृ० ४५।

आत्मचतुर्थ—वि० [सं०] तीन हिस्सेदारो के अतिरिक्त चौथे भाग या हिस्सेवाला। चौथाई का हिस्सेदार [को०]।

आत्मचरित—संज्ञा पुं० [सं०] अपने जीवन का वृत्त या हाल। उ०—पुराने हिंदी साहित्य मे यही एक आत्मचरित मिलता है।—इतिहास०, पृ० २२२।

आत्मज¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आत्मजा] १. पुत्र। लडका। २. कामदेव। ३ रक्त। खून।

आत्मज²—वि० [सं०] स्वयं उत्पन्न [को०]।

आत्मजन्म--सज्ञा पुं० [स०] पुत्र का जन्म [को०]।
आत्मजन्मा--सज्ञा पु० [स०] आत्मजन्मन्] दे० 'आत्मज'।
आत्मजय--सज्ञा पु० [स०] इद्रियनिग्रह करने का कार्य [को०]।
आत्मजा--सज्ञा स्त्री० [स०] पुत्री। दुहिता [को०]।
आत्मजात--सज्ञा पुं० [स०] दे० 'आत्मज'।
आत्मजिज्ञासा--सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० आत्मजिज्ञासु] अपने को जानने की इच्छा।
आत्मजिज्ञासु--वि०[स०] अपने को जानने की इच्छा रखनेवाला।
आत्मज्योति--सज्ञा स्त्री० [स०] आत्मा की ज्योति। अतरात्मा का प्रकाश [को०]।
आत्मज्ञ--सज्ञा पुं० [स०] जो अपने को जान गया हो। जिसे निज स्वरूप का ज्ञान हो।
आत्मज्ञान--सज्ञा पुं० [स०] निजत्व की जानकारी। जीवात्मा और परमात्मा के विषय मे जानकारी। २ ब्रह्म का साक्षात्कार।
आत्मज्ञानी--सज्ञा पुं०[स० आत्मज्ञानिन्] १ जो आत्मतत्व को जान गया हो। आत्मा और परमात्मा के सबध मे जानकारी रखनेवाला।
आत्मतत्र[1]--सज्ञा पुं० [स० आत्मतत्र] अपना आधार [को०]।
आत्मतत्र[2]--वि० १ अपने वश या अधिकार मे किया हुआ। २. अपने पर अवलवित। स्वतत्र [को०]।
आत्मतत्व--सज्ञा पुं० [स०] आत्मा या परमात्मा का तत्व [को०]।
आत्मतत्वज्ञ--वि० [सं०] आत्मा या परमात्मा के तत्व का जानकार [को०]।
आत्मता--सज्ञा स्त्री० [स०] सार। प्रकृति [को०]।
आत्मतुष्टि--सज्ञा स्त्री०[स०]१ आत्मज्ञान से उत्पन्न सतोष या आनद। २ आत्मसतोष।
आत्मतृप्त--सज्ञा पु० [स०] स्वय में सतुष्ट [को०]।
आत्मत्याग--सज्ञा पुं० [स०] १ परोपकार वुद्धि से अपने लाभ की ओर ध्यान न देना। दूसरो के हित के लिये अपना स्वार्थ छोडना। २ आत्मघात। खुदकुशी (को०)।
आत्मत्यागी--वि० [सं० आत्मत्यागिन्] १ आत्मघाती। २ अविश्वासी [को०]।
आत्मद्रोही--वि० [सं० आत्मद्रोहिन्][वि० स्त्री० आत्मद्रोहिणी] अपने को हानि पहुँचानेवाला। अपनी हानि करनेवाला।
आत्मधारणभूमि--सज्ञा स्त्री०[स०]वह अधीन राज्य या भूमि जिसका शासनप्रवध वही की सेना और सपत्ति से हो जाय, साम्राज्य को उसके शासन का कोई खर्च न उठाना पडे (को०)।
आत्मन्--सज्ञा पुं० [स०] निजत्व। अपनापन। अपना स्वरूप।

विशेष--इसका प्रयोग प्राय यौगिक शब्दो मे होता है और यह 'निज' या 'अपना' का अर्थ देता है। जैसे,--आत्मकल्याण। आत्मरक्षा। आत्महत्या। आत्मश्लाघा इत्यादि।

आत्मनिवेदन--सज्ञा पुं० [स०] १ अपने आपको या अपना सर्वस्व अपने इष्टदेव पर चढा देना। आत्मसमर्पण। २ नवधाभक्ति मे से अतिम भक्ति।
आत्मनिवेदनासक्ति--सज्ञा पुं० [सं०]अपने सर्वस्व और शरीर को अपने इष्ट देव को सौंप देने की प्रवल इच्छा।
आत्मनिष्ठ--वि० [स०] आत्मज्ञान मे रत। ब्रह्मनिष्ठ। मुमुक्षु।
आत्मनिष्ठा--सज्ञा स्त्री०[स०]१. आत्मज्ञान की रति। २ अपने प्रति निष्ठा। आत्मविश्वास [को०]।
आत्मनीय--सज्ञा पु० [स०] १. पुत्र। २ साला। ३ विदूषक।
आत्मनेपद--सज्ञा पुं०[स०]१ सस्कृत व्याकरण मे धातु मे लगनेवाले दो प्रकार के प्रत्ययो मे से एक। २ वह क्रिया जो आत्मनेपद प्रत्यय लगने से वनी हो।
आत्मप्रशसा--सज्ञा पु० [स०] अपने मुँह से अपनी बडाई।
आत्मप्रसार--सज्ञा पुं०[स०]आत्मविस्तार। अपना फैलाव। उ०--मनुष्य उस कोटि की पहुँची हुई सत्ता है जो उस अल्पक्षण मे ही आत्मप्रसार को वद्ध रखकर सतुष्ट नही हो सकती।--रस०, पृ० १४८।
आत्मप्रेरणा--सज्ञा स्त्री० [स०]अपने भीतर से प्राप्त प्रेरणा। आतरिक प्रेरणा। उ०--आत्मप्रेरणा की पीडा से आकुल थे सब प्राणी।--पार्वती, पृ० ५६।
आत्मवोध--सज्ञा पु०[स०] दे० 'आत्मज्ञान'। उ०--आत्मवोध और जगद्वोध के वीच ज्ञानियो ने गहरी खाई खोदी पर हृदय ने कभी उसकी परवा न की।--रस०, पृ० ५५।
आत्मभू[1]--वि० [स०] १ अपने शरीर से उत्पन्न। २ आप ही आप उत्पन्न।
आत्मभू[2]--सज्ञा पु० १. पुत्र। २.कामदेव। ३ ब्रह्मा। ४ विष्णु। ५. शिव।
आत्मभूत--वि०[स०]आत्ममय। वह जो अपना अग वन गया हो। अपनाया हुआ।
आत्मयोनि--सज्ञा पुं० [स०] १ ब्रह्मा। २ विष्णु। ३ महेश। ४ कामदेव।
आत्मरक्षक--वि० [स०] [वि० स्त्री० आत्मरक्षिका] अपनी रक्षा करनेवाला।
आत्मरक्षण--सज्ञा पुं० [स०] अपना वचाव। अपनी हिफाजत।
आत्मरक्षा--सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'आत्मरक्षण'। २ इद्रवारुणी वृक्ष [को०]।
आत्मरत[1]--वि० [स० आत्मरति] १ जिसे आत्मज्ञान हुआ हो। ब्रह्मज्ञानप्राप्त। ब्रह्मज्ञानी। २ स्वय को प्रेम करनेवाला।
आत्मरत[2]--सज्ञा पुं० [स०] महेंद्रवारुणी। वडी इद्रायन।
आत्मरति--सज्ञा स्त्री०[स०]१ आत्मज्ञान। ब्रह्मज्ञान। २ स्वय से प्रेम करना।।
आत्मवचक--वि० [स० आत्मवञ्चक] अपने को आप ठगनेवाला। अपनी हानि स्वय करनेवाला। अज्ञानी।
आत्मवाद--सज्ञा पुं० [स०] अहभाव। उ०--प्रथम हम हम करत पहुँच्यो आत्मवाद कठोर।--वुद्ध०, पृ० १४५।
आत्मविक्रय--सज्ञा पुं० [स०] [वि० आत्मविक्रयी] अपने को आप ही वेच डालना।

विशेष--मनु के अनुसार यह कर्म एक उपपातक है।

आत्मविक्रयी—वि० [सं० आत्मविक्रयिन्] अपने को बेचनेवाला ।

आत्मविक्रेता—संज्ञा पुं० [सं० आत्मविक्रेतृ] वह दास जो अपने आपको बेचकर दास हुआ हो ।

आत्मविचय—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी तलाशी या नगाझोली देना ।

आत्मविद्—संज्ञा पुं० [सं०] १ बुद्धिमान व्यक्ति । आत्मज्ञानी । २. अपने तथा अपने कुटुंब परिवार को जाननेवाला व्यक्ति ३. शिव का एक नाम [को०] ।

आत्मविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह विद्या जिससे आत्मा और परमात्मा का ज्ञान हो । ब्रह्मविद्या । अध्यात्मविद्या । २. मिस्मेरिज्म ।

आत्मविश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी शक्ति पर विश्वास । अपनी योग्यता का भरोसा ।

आत्मविस्मृत—वि० [सं०] स्वयं को भूला हुआ ।

आत्मविस्मृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने को भूल जाना । अपना ध्यान न रखना । आत्मविस्मरण ।

आत्मशल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] सतावरी ।

आत्मशासन—संज्ञा पुं० [सं० आत्म + शासन] दे० 'स्वराज' (क्व०) ।

आत्मश्लाघा—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आत्मश्लाघी] अपनी तारीफ ।

आत्मश्लाघी—वि० [सं० आत्मश्लाघिन्] अपनी प्रशंसा करनेवाला ।

आत्मसंभव[1]—वि० [सं० आत्मसम्भव] [वि० स्त्री० आत्मसंभवा] अपने शरीर से उत्पन्न ।

आत्मसंभव[2]—संज्ञा पुं० पुत्र ।

आत्मसमान—संज्ञा पुं० [सं० आत्मसम्मान] आत्मगौरव । अपने गौरव का भाव ।

आत्मसंयम—संज्ञा पुं० [सं०] अपने मन को रोकना । इच्छाओं को वश में रखना ।

आत्मसंवेदन—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी आत्मा का अनुभव । आत्मबोध ।

आत्मसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] अपना सुधार ।

आत्मसमुद्भव[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्मसमुद्भवा] १ अपने शरीर से उत्पन्न । २ अपने ही आप उत्पन्न ।

आत्मसमुद्भव[2]—संज्ञा पुं० १ ब्रह्मा । २ विष्णु । ३ शिव । ४ कामदेव ।

आत्मसमुद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कन्या । २. बुद्धि ।

आत्मसाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० आत्मसाक्षिन्] जीवों का द्रष्टा ।

आत्मसिद्ध—वि० [सं०] अपने आप होनेवाला । बिना प्रयास ही होनेवाला ।

आत्मसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आत्मभाव की प्राप्ति । मुक्ति । मोक्ष ।

आत्महत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपने आपको मार डालना । खुदकुशी २ अपने आपको दुःख देना ।

आत्महन्—वि० [सं०] १. जो अपने आप को मार डाले । आत्मघाती । २ जो अपनी भलाई के प्रति उदासीन हो या उसकी उपेक्षा करे (को०) । ३ अविश्वासी (को०) । ४. मंदिर आदि में नौकरी करनेवाला (सेवक या पुजारी) (को०) ।

आत्महिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आत्महत्या' ।

आत्मा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० आत्मिक, आत्मीय] १ जीव । २ चित्त । ३ बुद्धि । ४ अहंकार । ५. मन । ६. ब्रह्म ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विशेषकर जीव और ब्रह्म के अर्थ में होता है । इसका यौगिक अर्थ 'व्याप्त' है । जीव शरीर के प्रत्येक अंग में व्याप्त है और ब्रह्म संसार के प्रत्येक अणु और अवकाश में । इसीलिये प्राचीनों ने इसका व्यवहार दोनों के लिये किया है । कहीं कहीं 'प्रकृति' को भी शास्त्रों में इस शब्द से निर्दिष्ट किया गया है । साधारणतः जीव, ब्रह्म और प्रकृति तीनों के लिये या यों कहिए, अनिर्वचनीय पदार्थों के लिये इस शब्द का प्रयोग हुआ है । इनमें 'जीव' के अर्थ में इसका प्रयोग मुख्य और 'ब्रह्म' और 'प्रकृति' के अर्थों में क्रमशः गौण है । दार्शनिकों के दो भेद हैं—एक आत्मवादी और दूसरे अनात्मवादी । प्रकृति से पृथक् आत्मा को पदार्थविशेष माननेवाले आत्मवादी कहलाते हैं । आत्मा को प्रकृति-विकार-विशेष मानने वाले अनात्मवादी कहलाते हैं, जिनके मत में प्रकृति के अतिरिक्त आत्मा कुछ है ही नहीं । अनात्मवादी आजकल योरप में बहुत हैं । आत्मा के विषय में इनकी धारणा यह है कि यह प्रकृति के भिन्न भिन्न वैकारिक अंशों के संयोग से उत्पन्न एक विशेष शक्ति है, जो प्राणियों में गर्भावस्था में उत्पन्न होती है और मरणपर्यंत रहती है । पीछे उन तत्वों के विश्लेषण से, जिनसे यह उत्पन्न हुई थी, नष्ट हो जाती है । बहुत दिन हुए भारतवर्ष में यही बात 'बृहस्पति' नामक विद्वान ने कही थी जिसके विचार चार्वाक दर्शन के नाम से प्रख्यात हैं और जिसके मत को चार्वाक मत कहते हैं । इनका कथन है कि 'तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात्' । देह के अतिरिक्त अन्यत्र आत्मा के होने का कोई प्रमाण नहीं है, अतः चैतन्यविशिष्ट देह ही आत्मा है । इस मुख्य मत के पीछे कई भेद हो गए थे और वे क्रमशः शरीर की स्थिति और ज्ञान की प्राप्ति में कारणभूत इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि और अहंकार को ही आत्मा मानने लगे । कोई इसे विज्ञान मात्र अर्थात् क्षणिक मानते हैं । वैशेषिक दर्शन में आत्मा को एक द्रव्य माना है और लिखा है कि प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मन, गति, इंद्रिय, अंतर्विकार जैसे—क्षुधा, प्यास, ज्वर, पीडादि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न आत्मा के लिंग हैं । अर्थात् जहाँ प्राणादि लिंग वा चिह्न देख पड़ें वहाँ आत्मा रहती है । पर न्यायकार गौतम मुनि के मत से 'इच्छा' द्वेष, प्रयत्न, सुख दुःख और ज्ञान (इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख-ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्) ही आत्मा के चिह्न हैं । सांख्यशास्त्र के अनुसार आत्मा एक अकर्ता साक्षीभूत प्रगण और प्रकृति से भिन्न एक अतींद्रिय पदार्थ है । योगशास्त्र के अनुसार यह वह अतींद्रिय पदार्थ है जिसमें क्लेश, कर्मविपाक और आशय हो । ये दोनों (सांख्य और योग) आत्मा के स्थान पर पुरुष शब्द का प्रयोग करते हैं । मीमांसा के अनुसार कर्मों का कर्ता और फलों का भोक्ता एक स्वतंत्र अतींद्रिय पदार्थ है । पर मीमांसकों में प्रभाकर के मत से 'अज्ञान' और कुमारिल भट्ट के मत से 'अज्ञानोपहत चैतन्य' ही आत्मा है । वेदांत के मत से नित्य,

शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव ब्रह्म का अंशविशेष आत्मा है। बुद्धदेव के मत से एक अनिर्वचनीय पदार्थ, जिसकी आदि और अंत अवस्था का ज्ञान नहीं है, आत्मा है। उत्तरीय बौद्धों के मत से यह एक शून्य पदार्थ है। जैनियों के मत से कर्मों का कर्ता फलों का भोक्ता और अपने कर्म से मोक्ष और बंधन को प्राप्त होनेवाला एक अरूपी पदार्थ है।

मुहा०—आत्मा ठंढी होना = (१) तुष्टि होना। तृप्ति होना। संतोष होना। प्रसन्नता होना। जैसे,—उसको भी दंड मिले तब हमारी आत्मा ठंढी हो। (२) पेट भरना। भूख मिटना। जैसे,—बाबा कुछ खाने को मिले तो आत्मा ठंढी हो। आत्मा मसोसना = (१) भूख सहना। भूख दबाना। जैसे,—इतने दिनों तक आत्मा मसोसकर रहो। (२) किसी प्रबल इच्छा को दबाना। किसी आवेग को भीतर ही भीतर सहना।

७ देह। शरीर। ८ सूर्य। ९ अग्नि। १० वायु। ११ स्वभाव। धर्म। १२ पुत्र [को०]।

आत्माधीन[1]—वि० [सं०] अपने वश में।

आत्माधीन[2]—संज्ञा पुं० १ पुत्र। २ विदूषक। ३ साला (को०)।

आत्मानंद—संज्ञा पुं० [सं० आत्मानन्द] आत्मा का ज्ञान। आत्मा में लीन होने का सुख।

आत्मानुभव—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपना अनुभव या तजुरबा। स्वानुभूति। २ आत्मा की अनुभूति।

आत्मानुरूप—संज्ञा पुं० [सं०] जो जाति, वृत्ति और गुण आदि में अपने समान हो। स्वानुरूप।

आत्माभिमान—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी इज्जत या प्रतिष्ठा का खयाल। मान अपमान का ध्यान। स्वाभिमान।

आत्माभिमानी—संज्ञा पुं० [सं० आत्माभिमानिन्] जिसे अपनी इज्जत या प्रतिष्ठा का बड़ा खयाल हो। जिसे मान अपमान का ध्यान हो। स्वाभिमानी।

आत्मामिष संधि—संज्ञा स्त्री० [सं० आत्मामिषसन्धि] कामंदकीय नीति के अनुसार वह संधि जो स्वयं सेना के साथ शत्रु के पास जाकर की जाय।

आत्माराम—संज्ञा पुं० [सं०] १ आत्मज्ञान से तृप्त योगी। २ जीव। ३ ब्रह्म। ४ तोता। सुग्गा।

आत्मावलंबी—संज्ञा पुं० [सं० आत्मावलम्बिन्] जो सब काम अपने बल पर करे। जो किसी कार्य के लिये दूसरे की सहायता का भरोसा न रखे। स्वावलंबी।

आत्मिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्मिका] १ आत्मासंबंधी। २ अपना। ३ मानसिक।

आत्मीकृत—वि० [सं०] अपनाया हुआ। स्वीकृत।

आत्मीय[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्मीया] निज का। अपना। स्वकीय।

आत्मीय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजन। अपना संबंधी। रिश्तेदार। इष्टमित्र। निकट का व्यक्ति।

आत्मीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपनायत। स्नेह-संबंध। मैत्री।

आत्मोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] परोपकार के लिये अपने को दुःख या विपत्ति में डालना। दूसरे की भलाई के लिये अपने हिताहित का ध्यान छोड़ना। स्वार्थत्याग।

आत्मोद्धार—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी आत्मा को संसार के दुख से छुड़ाना या ब्रह्म में मिलाना। मोक्ष।

आत्मोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुत्र। २ कामदेव। ३ दुख। पीड़ा [को०]।

आत्मोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कन्या। २ बुद्धि। ३ माषपर्णी [को०]।

आत्मोन्नति—संज्ञा पुं० [सं०] १ आत्मा की उन्नति। २ अपनी तरक्की। स्वविकास।

आत्मोपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० आत्मोपजीविन्] १ अपने श्रम से जीविकोपार्जन करनेवाला। २ रोजही या दैनिक मजदूरी पर काम करनेवाला श्रमिक। ३ अभिनेता [को०]।

आत्मोपम—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र [को०]।

आत्यंतिक—वि० [सं० आत्यन्तिक] [वि० स्त्री० आत्यन्तिकी] १ जो बहुतायत से हो। २ जिसका ओर छोर न हो।

यौ०—आत्यंतिकदुःखनिवृत्ति = मोक्ष। आत्यंतिकप्रलय = पूर्ण प्रलय।

आत्ययिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्ययिकी] १. विनाशक। २ दुर्भाग्यपूर्ण। ३. आवश्यकीय। ४. देर किया हुआ। विलंबित [को०]।

आत्रेय[1]—वि० [सं० अत्रि] १. अत्रि के गोत्रवाला।

आत्रेय[2]—संज्ञा पुं० १ अत्रि के पुत्र—दत्त, दुर्वासा, चंद्रमा। २ आत्रेयी नदी के तट का प्रदेश जो दीनाजपुर जिले के अंतर्गत है। ३. शिव की एक उपाधि [को०]।

आत्रेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपनिषद् काल की एक विदुषी तपस्विनी जो वेदांत में बड़ी निष्णात थी। २ पश्चिमी बंगाल की एक नदी का नाम। तिस्ता। ३ रजस्वला स्त्री। ४ अत्रि गोत्र की स्त्री।

आथⓊ—संज्ञा पुं० [सं० अर्थ] धन। पूँजी। उ०—आथ तेरो अभिलाप इम, इण भुजनूँ आवत।—बाँकीदास ग्रं०, भा० ३ पृ० ६।

आथना[1]Ⓤ—क्रि० अ० [सं० अस = होना, सं० अस्ति, प्रा० अत्थि] होना। उ०—(क) कबिरा पढना दूर कर, आथि पड़ा संसार। पीर न उपजै जीव की, क्यों पावै करतार।—कबीर (शब्द०)। (ख) काया माया संग न आथी। जेहि जिउ सौंपा सोई साथी।—जायसी ग्रं०, पृ० ६०।

आथना[2]Ⓤ—क्रि० अ० [सं० अस्त, प्रा० अत्थ] अस्त होना। डूबना। समाप्त होना।

आथर्वण—संज्ञा पुं० [सं०] १ अथर्ववेद का जाननेवाला ब्राह्मण। २. अथर्ववेदविहित कर्म। ३ अथर्वा ऋषि का पुत्र। ४ अथर्वा गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति।

आथी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्यात्, हिं० थाती अथवा सं० आयकी = आर्थिक स्थिति प्रा० * अत्थिई, *आथइ] पूँजी। धन। उ०—साथी आथि निआथि जो सकै साथ निरवाहि।—जायसी (शब्द०)।

आथी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्थ] अर्थसंपन्नता। अमीरी। खुशहाली।

आदंश—संज्ञा पुं० [सं०] १ दाँत से काटना। २ दाँत काटने से बना हुआ घाव। ३ दाँत [को०]।

आदत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ स्वभाव। प्रकृति। २ अभ्यास। टेव। बान। उ०—तू भी मजबूर है जाती नहीं आदत तेरी।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५४५।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—लगना।—लगाना।

आदम—संज्ञा पुं० [अ० आदम, तुल० सं० आदिम] १ इबरानी और अरबी लेखकों के अनुसार मनुष्यों का आदि प्रजापति। उ०—आदम आदि सुद्धि नहिं पावा। मामा हौवा कहँते आवा।—कबीर (शब्द०)। २. आदम की संतान। मनुष्य। जैसे,—चलते चलते वह एक ऐसे जगल में पहुँचा जहाँ न कोई आदम था न आदमजाद।

यौ०—आदमकद। आदमखोर। आदमचश्म। आदमजाद।

आदमकद—वि० [अ० आदम+कद] आदमी के कद के बराबर। उ०—कमरे में बड़े बड़े आदमकद आइने रखे जाते हैं।—गबन, पृ० १०६।

आदमखोर—वि० [अ०आदम+फा० खोर] आदमी को खानेवाला। मानवभक्षी (शब्द०)।

आदमचश्म—संज्ञा पुं० [अ० आदम+फा० चश्म=चक्षु] वह घोड़ा जिसकी आँख की स्याही मनुष्य की आँख की स्याही के समान हो। ऐसा घोड़ा बड़ा नटखट होता है।

आदमजाद—संज्ञा पुं० [अ० आदम+फा० जाद=पैदा] १. आदम की संतान। २ मनु की संतान। मनुष्य।

आदमियत—संज्ञा पुं० [अ०]१ मनुष्यत्व। इंसानियत। २ सभ्यता।

क्रि० प्र०—पकड़ना।—सीखना।

आदमी—संज्ञा पुं० [अ०] आदम की संतान। मनुष्य। मानव जाति।

मुहा०—आदमी बनना = सभ्यता सीखना। अच्छा व्यवहार सीखना। शिष्टता सीखना। आदमी बनाना=शिष्ट और सभ्य करना।

२ नौकर। सेवक। जैसे,—जरा अपने आदमी से मेरी यह चिट्ठी डाकखाने भिजवा दो।

आदमीयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ मनुष्यत्व। इंसानियत। उ०—गर फरिश्तावश हुआ कोई तो क्या। आदमीयत चाहिए इंसान में।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५५१। २. सभ्यता।

आदर—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आदरणीय आदृत, आदर्य] सम्मान। सत्कार। प्रतिष्ठा। इज्जत। कदर। जैसे,—(क) वे बड़े आदर के साथ हमें अपने घर ले गए। (ख) तुलसीदास के रामचरितमानस का समाज में बड़ा आदर है।

आदरणीय—वि० [सं०] आदरयोग्य। आदर करने के लायक। सम्माननीय।

आदरना(पु)—क्रि०स०[सं० आदर से नाम०] आदर करना। मानना। उ०—जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कवि करहीं।—मानस, १।१४।

आदरभाव—संज्ञा पुं० [सं० आदर+भा] सत्कार। सम्मान। कदर। प्रतिष्ठा। जैसे,—जहाँ अपना आदर भाव नहीं, वहाँ क्यों जायँ? उ०—ऊधौ, चलौ बिदुर के जइयै। दुरजोधन के कौन काज जहँ आदर भाव न पइयै।—सूर०, १।२३९।

आदरस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आदर्श] दे० 'आदर्श'। उ०—दरसो सारसरस भरे दृग आदरस मँगाय।—स० सप्तक, पृ० २५८।

यौ०—आदरसमंदिर=शीशमहल। उ०—आछे अवलोकि रही आदरस मंदिर में इंदीवर सुंदर गुविंद को मुखारविंद।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०१।

आदर्य—वि० [सं०] आदर के योग्य। आदरणीय।

आदर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १ दर्पण। शीशा। आईना। २ वह जिससे ग्रंथ का अभिप्राय झलक जाय। टीका। व्याख्या। ३ वह जिसके रूप और गुण आदि का अनुकरण किया जाय। नमूना। जैसे,—उसका चरित्र हम लोगों के लिये आदर्श है।

यौ०—आदर्शमंडल। आदर्शमंदिर। आदर्शरूप।

आदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] दर्पण। शीशा [को०]।

आदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रदर्शित करना। दिखलाना। २ शीशा। दर्पण [को०]।

आदर्शबिंब—संज्ञा पुं० [सं० आदर्श बिम्ब] गोला शीशा [को०]।

आदर्शमंडल—संज्ञा पुं० [सं० आदर्श मंडल] १. एक तरह का साँप। २ गोल आईना। ३ दर्पण का तल [को०]।

आदर्शमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० आदर्श मंदिर] शीशमहल।

आदर्शवाद—संज्ञा पुं० [सं० आदर्श+वाद] [अं० आइडियलिज्म] वस्तुओं के ज्यों के त्यों वर्णन को प्रमुखता या महत्व न देकर न करके उनके आदर्शरूप का वर्णन करना। पश्चिम के दर्शन, शिक्षा दर्शन और साहित्यिक वादों आदि में प्रचलित विशेष विचारधारा।

आदर्शवादी—वि०[सं० आदर्शवादिन्] [अं० आइडियलिस्ट] आदर्शवाद को माननेवाला या उसके अनुसार रचना करनेवाला।

आदर्शात्मक—वि०[सं०] काल्पनिक आदर्श के रूप में विषयों के चित्रण या निरूपण से युक्त। आदर्शवाद से संबद्ध रखनेवाला। आदर्शपरक।

आदहन—संज्ञा पुं० [सं०]१ ईर्ष्या। जलन। २ श्मशान। चिताभूमि।

आदा†—संज्ञा पुं० [सं० आर्द्रक] अदरक।

आदान—संज्ञा पुं० [सं०] १ लेना। ग्रहण करना। २ अर्जन। ३. रोग का लक्षण। ४ बाँधना। सुनियोजित करना। ५ घोड़े को फँसाना या बंधनग्रस्त करना। जकड़बंदी। ६ क्रिया या कार्य। ७. पराभूत करना [को०]।

आदानप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] लेना देना।

आदानसमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार आचारनियंत्रण के लिये स्थापित पंचसमिति में से एक जिससे यह ध्यान रहता है कि किसी जीव को कष्ट न हो [को०]।

आदापन—संज्ञा पुं० [सं०] कोई वस्तु ग्रहण करने के लिये किसी को बुलाना या अभिप्रेरित करना [को०]।

आदाब—संज्ञा पुं० [अ०] १. नियम। कायदा। २ लिहाज। आन। ३ नमस्कार। प्रणाम। सलाम। जोहार।

मुहा०—आदाब अर्ज करना = प्रणाम करना। आदाब बजा लेना=नियमानुसार प्रणाम करना।

आदि¹—वि० [सं०] प्रथम। पहला। शुरू का। आरंभ का। जैसे—वाल्मीकि आदिकवि माने जाते हैं। उ०—गाइ गाउँ के वत्सला मेरे आदि सहाई।—सूर०, १।२३८।

आदि²—संज्ञा पुं० [सं०]१ आरंभ। बुनियाद। मूल कारण। जैसे,—(क) इस झगड़े का आदि यही है। (ख) हमने इस पुस्तक को आदि से अंत तक पढ़ डाला। २ परमात्मा। परमेश्वर। उ०—आदि किएउ आदेश सुन्नहि ते अस्थूल भए।—जायसी ग्रं०, पृ० ३०८।

मुहा०—आदि से अंत तक = आद्योपात। शुरू से आखीर तक। सपूर्ण। समग्र। सब।

आदि३—अव्य० वगैरह। आदिक। उ०—सिंहसावक ज्यो तजै गृह, इद्र आदि डरात।सूर०, १।१०६।

आदिक—अव्य० [स०] आदि। वगैरह। उ०—कौसिल्या आदिक महतारी, आरति करहिं बनाइ।—सूर० ९।२९।

आदिकर—वि० [स०] आदि करनेवाला। स्रष्टा [को०]।

आदिकरणी—सज्ञा स्त्री० [स०] एक पौधा [को०]।

आदिकर्ता—वि० [स०] आदिकर। स्रष्टा [को०]।

आदिकर्म—सज्ञा पुं० [स०] कर्म का आदि या आरभ [को०]।

आदिकवि—सज्ञा पु० [स०] वाल्मीकि ऋषि। उ०—जान आदिकवि नाम प्रभाऊ। भएउ सुद्ध कहि उलटा नाऊँ।—मानस, १।१९। २ शुक्राचार्य।

आदिकाड—सज्ञा पु० [स० आदिकाण्ड] वाल्मीकि रामायण का पहला काड [को०]।

आदिकारण—सज्ञा पुं० [स०] पहला कारण जिससे सृष्टि के सब व्यापार उत्पन्न हुए। मूलकारण।

विशेष—साख्यवाले प्रकृति को आदिकारण मानते हैं। नैयायिक पुरुष या ईश्वर को आदि कारण कहते हैं।

आदिकाल—सज्ञा पु० [स०] प्रारभिक काल या समय [को०]।

आदिकालीन—वि० [स०] प्रारभिक या आदिकाल से सबध रखनेवाला [को०]।

आदिकाव्य—सज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि रामायण।

विशेष—यह महाकाव्य सबसे पुराना या पहला माना जाता है।

आदिकृत्—वि० [सं०] स्रष्टा [को०]।

आदिकेशव—सज्ञा पु० [स०] १ काशी स्थित एक देवविग्रह। २. विष्णु [को०]।

आदिगदाधर—सज्ञा पुं० [स०] विष्णु [को०]।

आदिजिन—सज्ञा पु० [स०] ऋषभदेव (जैन) [को०]।

आदित—क्रि० वि० [सं०] प्रारभ से। आदि से [को०]।

आदित(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आदित्य'। उ०—हरि दरसन सत्राजित आयौ। लोगनि जान्यौ आदित आवत हरि सौं जाइ सुनायौ।—सुर०, १०।४८०८।

आदिताल—सज्ञा पु० [स०] सगीत मे ताल का प्रकारविशेष [को०]।

आदितेय—सज्ञा पुं० [स०] १ अदिति का पुत्र। २. देव। ३. सूर्य [को०]।

आदित्य—सज्ञा पुं० [स०] १ अदिति के पुत्र। २ देवता। ३ सूर्य। ४ इद्र। ५. वामन। ६ वसु। ७ विश्वेदेवा। ८ बारह मात्राओ के छदो की सज्ञा, जैसे—तोमर लीला। ९ मदार मदार का पौधा।

यौ०—आदित्यपुराण = एक उपपुराण। आदित्यपर्णिका, आदित्यपर्णिनी, आदित्यपर्णी, आदित्यवल्लभा = एक जलीय लता। आदित्यसूक्त, आदित्यस्तोत्र, आदित्यहृदय = सूर्य सबधी सूक्त या स्तोत्र।

आदित्यकेतु—सज्ञा पुं० [स० आदित्य + केतु] १ एक राजा जिसके वशजों ने नौ पीढ़ी तक ३७५ वर्ष दिल्ली मे राज्य किया था। २ धृतराष्ट्र का एक पुत्र [को०]। ३ सूर्य का सारथि [को०]।

आदित्यगति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सूर्य का मार्ग [को०]।

आदित्यगर्भ—सज्ञा पुं० [स०] एक बोधिसत्व [को०]।

आदित्यज्योति—वि०[स०] जिसमे सूर्य जैसा तेज या ज्योति हो[को०]।

आदित्यदर्शन—सज्ञा पुं० [स०] चार मास के बालक को सूर्यदर्शन कराने का एक सस्कार [को०]।

आदित्यपत्र—सज्ञा पुं० [स०] १ एक पौधा। २ आक का पत्र या पत्ता [को०]।

आदित्यपाक—वि० [स०] सूर्यताप मे पकाया हुआ [को०]।

आदित्यपुष्पिका—सज्ञा स्त्री० [स०] लाल फूल का मदार।

आदित्यभक्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर।

आदित्यमडल—सज्ञा पुं० [स० आदित्यमण्डल] सूर्य के चतुर्दिक् पडनेवाला वलय या घेरा [को०]।

आदित्यलोक—सज्ञा पुं० [स०] सूर्यलोक [को०]।

आदित्यवार—सज्ञा पुं० [स०] एतवार। रविवार।

आदित्यव्रत—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आदित्यव्रतिक] सूर्य का व्रत [को०]

आदित्यशयन—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की निद्रा या शयन [को०]।

आदित्यसंवत्सर—सज्ञा पु० [सं०] सौर वर्ष [को०]।

आदित्यसूनु—सज्ञा पुं० [स०] सूर्य का पुत्र—१. शनैश्चर। २ यम। ३ कर्ण। ४ सुग्रीव। ५ मनु [को०]।

आदित्यानुवर्ती—वि० [स० आदित्यानुवर्तिन्] सूर्य का अनुवर्तन या अनुगमन करनेवाला [को०]।

आदित्व—सज्ञा पुं० [स०] पूर्वता। प्राथमिकता [को०]।

आदित्सा—सज्ञा स्त्री० [स०] लेने की इच्छा [को०]।

आदित्सु—वि० [सं०] ग्रहण करने या लेने का इच्छु [को०]।

आदिदीपक—सज्ञा स्त्री० [स०] छद की विशेष व्यवस्था (जिसमे क्रियापद वाक्य के आदि मे आता है) [को०]।

आदिदेव—सज्ञा पु० [स०] १ ब्रह्मा। २ विष्णु। ३ शिव। ४ गणेश। ५ सूर्य [को०]।

आदिदैत्य—सज्ञा पु० [स०] हिरण्यकशिपु [को०]।

आदिनव—सज्ञा पुं० [स०] १. अभाग्य। २ जूए की हार [को०]।

आदिनाथ—सज्ञा पु० [स०] १ आदिबुद्ध। २ एक जैन तीर्थंकर [को०]।

आदिपर्व—सज्ञा पुं० [स० आदिपर्वन्] महाभारत के पहले पर्व का नाम [को०]।

आदिपर्वत—सज्ञा पुं० [स०] मुख्य पर्वत [को०]।

आदिपुराण—सज्ञा पु० [स०] १. ब्रह्मपुराण। २ एक जैन धर्मग्रथ [को०]।

आदिपुरुष, आदिपूरुष—सज्ञा पुं० [स०] १ परमेश्वर। विष्णु। २ हिरण्यकशिपु [को०]।

आदिप्लुत—वि० [स०] (शब्द०) जिसका आदिस्वर प्लुत हो (व्या०) [को०]।

आदिवल—संज्ञा पुं० [सं०] उत्पादक या जनन शक्ति (सुश्रुत) [को०]।

आदिभूत¹—वि० [सं०] आदि मे उत्पन्न [को०]।

आदिभूत²—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मा। २ विष्णु [को०]।

आदिम—वि० [सं०] पहले का। पहला। प्रथम। उ०—आस्ट्रेलिया के लिये उक्त आदिम नरों का झुंड बीच बीच मे मिलता।—इद्र०, पृ० ८८।

आदिमत—वि० [सं०] जिसका आरंभ आदि हो [को०]।

आदिमूल—संज्ञा पुं० [सं०] मूल कारण [को०]।

आदियोगाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

आदिरस—संज्ञा पुं० [सं०] शृंगाररस (साहित्य शा०)।

आदिराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ मनु। २ पृथु [को०]।

आदिरूप—संज्ञा पुं० [सं०] प्रथम रूप या लक्षण (रोग का) [को०]।

आदिल—वि० [अ०] न्यायी। न्यायवान्। उ०—नौसेरवाँ जो आदिल कहा। साहि अदल-सरि सोउ न अहा।—जायसी ग्र०, पृ० ६।

आदिलुप्त—वि० [सं०] (शब्द) जिसका प्रथम अक्षर लुप्त हो [को०]।

आदिवराह—संज्ञा पुं० [सं०] वराहरूप विष्णु। विष्णु [को०]।

आदिवाराह—वि० [सं०] आदि वराह संबंधी [को०]।

आदिविपुला—संज्ञा पुं० [सं०] छंदविशेष। वह आर्या जिसके प्रथम दल के प्रथम तीन गणों मे पाद अपूर्ण हो।

आदिविपुलाजघनचपला—संज्ञा पुं० [सं०] छंदविशेष। वह आर्या जिसके प्रथम पाद के गणत्रय मे पाद अपूर्ण हो, दूसरे दल मे दूसरा और चौथा गण जगण हो।

आदिशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मूल या आदि स्थानीय शक्ति। महामाया। २ दुर्गा [को०]।

आदिशरीर—संज्ञा पुं० [सं०] १ मूल शरीर। २ सूक्ष्म शरीर [को०]।

आदिश्यमान—वि० [सं०] आदेश पाया हुआ। जिसको आज्ञा दी गई हो।

आदिष्ट—वि० [सं०] आदेश पाया हुआ। जिसको आज्ञा दी गई हो। आज्ञप्त। आदेशप्राप्त।

आदिष्टसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० आदिष्टसन्धि] वह संधि जो प्रबल शत्रु को कोई भूमिखंड देने की प्रतिज्ञा करके की जाय। (कामं द०)।

आदिसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] मूल या आदि की सृष्टि [को०]।

आदी¹—वि० [अ०] अभ्यस्त। उ०—अब उतर आए हैं वो तारीफ पर। हम जो आदी हो गए दुश्नाम के।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५५३।

आदी²—संज्ञा स्त्री० [सं० आर्द्रक] अदरक।

आदी³—क्रि० वि० [सं० आदि] बिलकुल। नितांत। जरा भी। उ०—(क) मातु न जानसि बालक आदी। हौं बादला सिंघ रनबादी। जायसी ग्र०, पृ० २८२।

आदीचक—संज्ञा पुं० [सं० आर्द्रक + चक्र] एक प्रकार की अदरक जिसकी भाजी बनती है। अदरक की एक प्रकार की खट्टी चटनी।

आदीनव—संज्ञा पुं० [सं०] १ दोष। २ क्लेश। विपत्ति। ३. दुख। बेचैनी (को०)।

आदीपक—वि० [सं०] १ आग लगानेवाला। २. दाहक। ३ उत्तेजक [को०]।

आदीपन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आदीपित, आदीप्त, आदीप्य] १. उत्तेजित करना। २. आग लगाना। ३ उत्सव आदि के अवसर पर दीवार, फर्श आदि की सफाई या पुताई करना [को०]।

आदीपित—वि० [सं०] प्रज्वलित। जलता हुआ [को०]।

आदीप्य—वि० [सं०] जलने योग्य [को०]।

आदीर्घ—वि० [सं०] कुछ लंबाई युक्त अंडाकार [को०]।

आदीर्य—वि० [सं०] फटा हुआ। दरका हुआ [को०]।

आदृत—वि० [सं०] आदर किया हुआ। सम्मानित।

आदृत्य—वि० [सं०] आदरणीय [को०]।

आदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृष्टि। नजर [को०]।

यौ०—आदृष्टिगोचर, आदृष्टिप्रसार = दृष्टि की सीमा के भीतर।

आदेय¹—वि० [सं०] लेने योग्य।

यौ०—उपादेय। अनादेय।

आदेय²—संज्ञा पुं० [सं०] वह लाभ जो सुगमता से प्राप्त हो, सुरक्षित रखा जा सके तथा शत्रु द्वारा न लिया जा सके (कौ०)।

आदेयकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वह कर्म जिससे जीव को वाक्‌सिद्धि होती है, अर्थात् वह जो कहे वही होता है।

आदेव¹—संज्ञा पुं० [सं०] देव सहित पूरी सृष्टि [को०]।

आदेव²—वि० [सं०] देवभक्त। देवपूजक [को०]।

आदेवक—वि० [सं०] १ खेल या क्रीडा करनेवाला। २. जुआ खेलनेवाला [को०]।

आदेवन—संज्ञा पुं० [सं०] १ खेल का स्थान। २ खेल का साधन या सामग्री। ३ खेल (जूए) मे होनेवाला लाभ [को०]।

आदेश—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आदिष्ट, आदिश्यमान, आदेशक] १. आज्ञा। २ उपदेश। ३ विवरण (को०)। ४. प्रणाम। नमस्कार। उ०—सेख बडो बड सिद्धि बखाना। किय आदेश सिद्धि बड माना।—जायसी (शब्द०)। ५ ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों का फल। ६ भविष्यकथन (को०)। ७ व्याकरण मे एक अक्षर के स्थान पर दूसरे अक्षर का आना। अक्षरपरिवर्तन।

आदेशक—वि० [सं०] १ आज्ञा देनेवाला। २ उपदेश देनेवाला।

आदेशकारी—वि० [सं० आदेशकारिन्] आज्ञा पालन करनेवाला [को०]।

आदेशन—संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा देना। निर्देशन [को०]।

आदेशी—वि [सं० आदेशिन्] १ आदेश देनेवाला। २ भविष्यकथन करनेवाला। ३ (वह वर्ण या अक्षर) जिसके लिये कोई अन्य वर्ण या अक्षर रखा गया हो [को०]।

आदेश्य—वि० [सं०] आदेश के योग्य [को०]।

आदेष्टा—वि० [सं० आदेष्टृ] आदेश देनेवाला [को०]।

आदेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं०आदेश] दे० 'आदेश'।

आद्यंत—क्रि० वि० [स० आद्यन्त] आदि से अंत तक। आद्योपांत। शुरू से आखीर तक।

आद्य¹—वि० [स०] १ पहला। आरंभ का। २ प्रधान। प्रथम। अद्वितीय (को०)।

आद्य²—वि० [स०√अद्=(खाना)>आद्य] खाने योग्य। जिसके खाने से शारीरिक या आत्मिक बल बढ़े।

आद्यकवि—संज्ञा पुं० [स०] १ ब्रह्मा। २ वाल्मीकि [को०]।

आद्यबीज—संज्ञा पुं०[स०]जगत् या सृष्टि का मूल कारण। सांख्य के अनुसार प्रधान या प्रकृति [को०]।

आद्यमाषक—संज्ञा पुं० [स०] एक तोल जो पाँच गुंजा या रत्ती के बराबर होता था [को०]।

आद्यश्राद्ध—संज्ञा पुं० [स०] मृतक के लिये ग्यारहवें दिन जो सोलह श्राद्ध किए जाते हैं उनमे से पहला।

आद्या—संज्ञा पुं०[स०] १ दुर्गा। प्रधान शक्ति। २ दश महाविद्याओं मे से प्रथम देवी।

आद्युदात्त—वि०[स०][संज्ञा आद्युदात्तत्व] जिसका पहला वर्ण उदात्त हो [को०]।

आद्यून- वि० [स] १ अध्ययन करनेवाला। पेटू। २ बुभुक्षित। भूखा। ३ लोभी। लालची। ४ आदिरहित [को०]।

आद्योत - संज्ञा पुं० [स०] प्रकाश। ज्योति। चमक [को०]।

आद्योपांत—क्रि० वि० [स० आद्योपान्त] शुरू से आखीर तक [को०]।

आद्रा—संज्ञा स्त्री० [स० आर्द्रा] १ एक नक्षत्र। २.जब सूर्य इस नक्षत्र का हो। इस नक्षत्र मे लोग धान वोना अच्छा मानते हैं। उ०—(क) चित्रा गेहूँ आद्रा धान। न उनके गेरुई न उनके घाम। (ख) आद्रा घाम पुनर्वसु पढ़या। गा किसान जब वोवा चिरइया। (शब्द०)।

आद्रिसार—वि० [स०] लौहनिर्मित। लोहे से बना हुआ [को०]।

आध—वि० [सं० अर्द्ध प्रा०अद्ध हिं० आधा] किसी वस्तु के दो बराबर भागों मे से एक। आधा। निस्फ। उ०—जै जै कार भयो भुव मापत तीनि पैंड भइ सारी। आधा पैंड वसुधा दै राजा नातरु चलि सत हारी।—सूर०, ८।१४।

विशेष—यह वास्तव मे आधा का अल्पार्थक रूप है और यौगिक शब्दो एवं प्राय तौल और नाप के सूचक शब्दो के साथ व्यवहृत होता है। जैसे,—आध सेर आध पाव, आध छटाँक, आध गज।

यौ०—एक आध=कुछ थोड़े से। चंद। जैसे,—एक आध आदमियो के विरोध करने से क्या होता है। (शब्द)

आधमन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा [को०]।

आधमर्ण्य—संज्ञा पुं० [स०] ऋणग्रस्त होना [को०]।

आधर्मिक—वि० [सं०] धर्महीन। अधर्मी [को०]।

आधवन—संज्ञा पुं० [सं०] कंपित करना। हिलाना डुलाना [को०]।

आधा—वि० [सं० अर्द्ध, वा अद्धो, प्रा० अद्ध] [स्त्री० आधी] किसी वस्तु के दो बराबर हिस्सों में से एक।

यौ०—आधा साझा। आधा सीसी।

मुहा०—आधो आध=दो बराबर भागों मे। जैसे—इन केलों को आधो आध बाँट लो। [यह क्रि० वि० की तरह आता है, जैसे, बीचो बीच] आधा तीतर आधा बटेर=कुछ एक तरह का और कुछ दूसरी तरह का। बेजोड़। बेमेल। अटपट। क्रमविहीन। आधा होना=दुबला होना। जैसे,—वह सोच के मारे आधा हो गया। आधे आध=दो बराबर हिस्सों मे बँटा हुआ। उ०—लागे जब रंग रंग मेर मोग धरयो रंग आवें आध पाव नले नूपुर बजाइ के।—प्रिया० (शब्द०)। आधे कान सुनना=यों ही या ऊपर से सुन लेना। उ०—फैले बरसाने मे न रावरी कहानी यह बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावे ना।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १४७। आधी बात=जरा सी भी अपमानसूचक बात। जैसे,—हमने किसी की आधी बात भी नहीं सुनी। आधे पेट खाना=भरपेट न खाना। पूरा भोजन न करना। आधे पेट रहना=तृप्त होकर न खाना। आधी बात कहना या मुँह से निकालना=जरा सी अपमानसूचक बात कहना। जैसे,—मेरे रहते तुम्हें कोई आधी बात नहीं कह सकता। आधी बात न पूछना=कुछ ध्यान न देना। कदर न करना। जैसे,—अब वे जहाँ जाते हैं, कोई आधी बात भी नहीं पूछता।

आधाझारा—संज्ञा पुं० [सं० आघाट] अपामार्ग। ओंगा। चिचड़ा। चिचड़ी।

आधाता—संज्ञा पुं० [सं० आधातृ] गिरवी रखनेवाला। बंधक रखनेवाला।

आधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थापन। रखना।

यौ०—अग्न्याधान। गर्भाधान।

२ गर्भ। ३ गिरवी या बंधक रखना। (को०) ४ अग्न्याधान (को०)। ५ प्रयत्न। चेष्टा (को०)। ६ वह स्थान जहाँ कोई वस्तु रखी जाय (को०)। ७ निश्चयात्मकता। ८ द्रवित करना (को०)। ९ सामीप्य। सन्निधि (को०)। १० मैथुन (को०)।

आधानवती—वि० स्त्री० [सं०] गर्भवती।

आधार—संज्ञा पुं० [सं०] १ आश्रय। सहारा। अवलंब। जैसे,—(क) यह छत चार खंभों के आधार पर है। (ख) वह चार दिन फलों के ही आधार पर रह गया। २ व्याकरण मे अधिकरण कारक। ३ थाला। आलवाल। ४ पात्र (नाटक)। ५ नींव। बुनियाद। मूल। ६ योगशास्त्र मे एक चक्र का नाम।

विशेष—इसे मूलाधार भी कहते हैं। इसमे चार दल हैं। रंग लाल है। स्थान इसका गुदा है और गणेश इसके देवता हैं।

७ बंधा। बाँध (को०)। ८ नहर। प्रणाली (को०)। ९ संबंध। लगाव (को०) १० किरण (को०)। ११ बरतन। पात्र (को०)। १२ आश्रय देनेवाला। पालन करनेवाला। जैसे,—इस दशा मे ही वे हमारे आधार हो रहे हैं।

यौ०—आधाराधेय=आधार और आधेय का संबंध, जैसे,—पात्र और उसमे रखे हुए घी या टेबुल और उसपर रखी हुई किताब का संबंध। प्राणाधार जिसके आधार पर प्राण हो। परम प्रिय।

मुहा०—आधार होना = कुछ पेट भर जाना। कुछ भूख मिट जाना। जैसे,—इतनी मिठाई से क्या होता है, पर कुछ आधार हो जायगा।

आधारित—वि० [सं० आधार] दे० 'आधृत'।

आधारी—वि० [सं० आधारिन्] [स्त्री० आधारिणी] १ सहारा रखनेवाला। सहारे पर रहनेवाला। जैसे,—दुग्धाधारी। २ साधुओं की टेवकी या अड्डे के आकार की लकड़ी जिसका सहारा लेकर वे बैठते हैं। उ०—(क) मुद्रा श्रवण नही थिर जीऊ। तन त्रिसूल आधारी पीऊ।—जायसी (शब्द०)। (ख) परम तत आधारी मेरे, सिव नगरी घर मेरा।—कबीर ग्र०, पृ० १५४।

आधासीसी—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्ध + शीर्ष] अधकपाली। आधे सिर की पीड़ा।

आधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मानसिक व्यथा। चिंता। फिक्र। शोच। सोच। उ०—आधि अगाधा व्याधि हरि, हरि राधा जप सोइ।—सं० सप्तक, पृ० ३४३। २ गिरो। गिरवी। बधक। रेहन। ३ स्थान। आवास [को०]। ४ पास पड़ोस (को०)। ५ विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]। ६ धर्म या कर्तव्य की चिंता (को०)। ७ परिभाषा। लक्षण [को०]। ८ आशा [को०]। ९ दंड (को०)। १० परिवार या कुटुंब की चिंता [को०]।

आधिक[1] ⓟ—वि० [हिं० आधा + एक] आधा। आधे के लगभग। उ०—(क) आधिक दूर लौं जाय चितै पुनि प्राय गरें लपटाय कै रोई।—मुबारक (शब्द०)। (ख) आधिक रात उठे रघुबीर कह्यो सुनु बीर प्रजा सब सोई।—हनुमान० (शब्द०)।

आधिक[2]—क्रि० वि० आधे के समीप। आधे के लगभग। थोड़ा। उ०—लखि लखि अँखियनु अधखुलिनु, आँगु मोरि अँगराइ। आधिक उठि, लेटति लटकि, आलस भरी जँभाइ।—बिहारी र०, दो० ६३०।

आधिकरणिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ न्यायाधीश। २ सरकारी अधिकारी [को०]।

आधिकारिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दृश्यकाव्य की वस्तु के दो भेदों में एक। मूल कथावस्तु। वि० दे० 'वस्तु'।

आधिकारिक[2]—वि० १ मुख्य या प्रधान। उ०—एक दल मनुष्य मनुष्य के बीच भ्रातृप्रेम को ही काव्यभूमि का एकमात्र आधिकारिक भाव मानता है।—रस०, पृ० ७७। २ अधिकार या अधिकारी से संबद्ध। अधिकारयुक्त। साधिकार।

आधिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] बहुतायत। अधिकता। ज्यादती।

आधिदैविक—वि० [सं०] देवताओं द्वारा प्रेरित। यक्ष, देवता, भूत, प्रेत आदि द्वारा होनेवाला। देवताकृत।

विशेष—सुश्रुत में सात प्रकार के दुःख गिनाए गए हैं, उनमें से तीन अर्थात् कालबलकृत (वर्फ इत्यादि पड़ना, वर्षा अधिक होना इत्यादि), देवबलकृत (बिजली पड़ना, पिशाचादि लगना), स्वभावबलकृत (भूख प्यास का लगना) आधिदैविक कहलाते हैं।

आधिधर्ता—संज्ञा पुं० [सं०] जिसके पास कोई वस्तु गिरवी या रेहन रखी जाय [को०]।

आधिपत्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभुत्व। स्वामित्व। अधिकार।

आधिपाल—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजकर्मचारी जो जमा की हुई धरोहर की रक्षा का प्रबंध करता हो।

आधिभोग—संज्ञा पुं० [सं०] धरोहर की वस्तु का उपयोग या उपभोग [को०]।

आधिभौतिक—वि०[सं०] व्याघ्र, सर्पादि जीवों द्वारा कृत। जीव या शरीरधारियों द्वारा प्राप्त।

विशेष—सुश्रुत में रक्त और शुक्रदोष तथा मिथ्या आहार विहार से उत्पन्न व्याधियों को आधिभौतिक के अंतर्गत ही माना है।

आधिमन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर की जलन। बुखार की गर्मी [को०]।

आधिमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] गिरवी या बंधक छुड़ाना।

आधिवेदनिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जो पुरुष दूसरा विवाह करने के पूर्व अपनी पहली स्त्री को उसके संतोष के लिये दे। यह स्त्रीधन समझा जाता है।

आधिस्तेन—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो धनाधिकारी की आज्ञा बिना जमा किए हुए धन का उपभोग करता है [को०]।

आधी—वि० स्त्री० [सं० अर्द्ध, प्रा० अद्ध] आधा का स्त्रीलिंग रूप। उ०—आधी छोड़ सारी को धावै। आधी रहै न सारी पावै।—लोक०।

आधीन ⓟ—वि०[सं० अधीन] दे० 'अधीन'। उ०—करौं घरी आधीन मैं करौं हरी आधीन।—भिखारी ग्र०, भा०, १, पृ० १८।

आधीनता ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अधीनता] दे० 'अधीनता'।

आधीरात—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्धरात्रि] वह समय जब रात का आधा भाग बीत चुका हो।

आधुनिक—वि०[सं०] वर्तमान समय का। हाल का। आजकल का। वर्तमान काल का। सांप्रतिक। नवीन।

आधुनिकतम—वि० [सं०] अद्यतन। नवीनतम।

आधूत—वि० [सं०] १ कंपित। काँपता हुआ। २ पागल। ३. व्याकुल।

आधूपन—संज्ञा पुं० [सं०] धुँए या कुहरे से आवृत [को०]।

आधूम्र—वि० [सं०] धुँए की तरह काले रंगवाला [को०]।

आधृत—वि० [सं०] किसी आधार पर टिका हुआ। आधार पाया हुआ [को०]।

आधेक—वि०, क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आधिक'। उ०—राधिका आधेक नैननि मूँदि हिए ही हिए हरि की छवि हेरति।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १५८।

आधेय—संज्ञा पुं०[सं०] १ आधार पर स्थित वस्तु। जो वस्तु किसी के आधार पर रहे। किसी सहारे पर टिकी हुई चीज। २ स्थापनीय। ठहराने योग्य। रखने योग्य। ३ गिरो रखने योग्य।

आधोरण—संज्ञा पुं० [सं०] हाथीवान। महावत। पीलवान।

आध्मात[1]—वि० [सं०] १ फूला हुआ। २ गर्व से भरा हुआ। ३. जला हुआ। ४. शब्दयुक्त। ध्वनिवाला। उदर वायु से ग्रस्त [को०]।

आध्मात[2]—सज्ञा पुं० १ उदर मे होनेवाला वायु रोग। २ युद्ध [को०]।

आध्मान—सज्ञा पु० [सं०] एक वातव्याधि। पेट का फूलना। अफरा

आध्मानी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ नलिका नामक गधद्रव्य। २ फुँकनी। वह धातु या बाँस की नली जिसमे हवा फूँकी जाय [को०]।

आध्यात्मिक—वि० [स०] [स्त्री० आध्यात्मिकी] १ आत्म सबधी। २ मन सबधी। ३ अध्यात्म से सबध रखनेवाला [को०]।

यौ०—आध्यात्मिक ताप = वह दुख जो मन आत्मा और देश इत्यादि को पीड़ा दे, जैसे,—शोक, मोह, ज्वर आदि।

आध्यापक—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अध्यापक' [को०]।

आध्यायिक—वि० [सं०] [स्त्री० आध्यायिकी] वेदो के अध्ययन मे सलग्न रहनेवाला [को०]।

आध्यासिक—वि० [स०] वेदातदर्शन मे भ्रमात्मक (ज्ञान) [को०]।

आनतर्य—सज्ञा पुं० [स० आनन्तर्य] १ अचानक होनेवाली सफलता। २ तात्कालिक अनुमान।

आनंत्य—सज्ञा पु० [सं० आनन्त्य] १ अत या समाप्ति का अभाव। अनतता। २ स्वर्ग। ३ अविनश्वरता।

आनद[1]—सज्ञा पुं० [सं० आनन्द] [वि० आनदित, आनदी] १ हर्ष। प्रसन्नता। खुशी। सुख। मोद। आह्लाद।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—देना।—पाना।—भोगना। मनाना।—मिलना।—रहना।—लेना। जैसे,—(क) कल हमको सैर मे बड़ा आनद आया। (ख) यहाँ हवा मे बैठे खूब आनद ले रहे हो। (ग) मूर्खो की सगति मे कुछ भी आनद नही मिलता।

यौ०—आनदमगल।

मुहा०—आनंद के तार या ढोल बजाना = आनद के गीत गाना। उत्सव मनाना।

२ प्रसन्नता या खुशी की चरम अवस्था जो ब्रह्म की तीन प्रधान विभूतियो मे से एक है। उ०—सत्, चित और आनद, ब्रह्म के इन तीन स्वरूपो मे से काव्य और भक्तिमार्ग 'आनद' स्वरूप को लेकर चले।—रस०, पृ० ५५। ३ मद्य। शराब। ४ शिव (को०)। ५ विष्णु (को०)। ६ बुद्ध के एक प्रधान शिष्य (को०)। ७ दडक छद का एक भेद (को०)। ८. ४८ वें सवत्सर का नाम (को०)।

आनद[2]—वि० सानद। आनदमय। प्रसन्न। जैसे,—आनद रहो।

विशेष—यह विशेषणवत् प्रयोग ऐसे ही दो एक नियत वाक्यो मे होता है। पर ऐसे स्थानो मे भी यदि आनद को विशेषण न मानना चाहे, तो उसके आगे 'से' लुप्त मान सकते हैं।

आनंदक—वि०[सं० आनन्दक] आनद प्रदान करनेवाला [को०]।

आनदकर—सज्ञा पु०[स० आनन्दकर] चद्रमा [को०]।

आनंदकला—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दकला] ब्रह्म की आनदमयी सत्ता। ईश्वर का आनदमय स्वरूप। उ०—भगवान् की आनदकला के विकास की ओर बढती हुई गति है।—रस०, पृ० ६०।

आनदकानन—सज्ञा पुं० [स० आनन्दकानन] दे० 'आनदवन'।

आनदघन[1]—वि० [स० आनन्द+घन] आनद से भरा हुआ।

आनंदघन[2]—सज्ञा पुं० १ श्रीकृष्ण भगवान्। २ हिंदी के एक कवि का नाम।

आनदज—वि० [सं० आनन्दज] हर्ष के कारण उत्पन्न, जैसे,—अश्रु [को०]।

आनदना(पु)—क्रि० अ० [सं० आनन्द से नाम०] प्रसन्न होना। आनंदयुक्त होना। उ०—ज्यो चकई प्रतिबिंब देखिकै, आनदै पिय जानि। सूर पवन मिलि निठुर विधाता, चपल कियौ जल आनि।—सूर०, १०।३२६८।

आनदपट—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दपट] वैवाहिक वस्त्र। जोड़ाजामा [को०]।

आनंदपूर्ण—वि० [सं० आनन्दपूर्ण] अत्यधिक प्रसन्न [को०]।

आनदप्रभव—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दप्रभव] वीर्य। शुक्र [को०]।

आनदबधाई—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्द+हिं० बधाई] १ मगल-उत्सव। २ मगल अवसर। ३ मगल की बधाई।

आनदवन—सज्ञा पु० [सं० आनन्दवन] काशी। वाराणसी। अविमुक्त क्षेत्र। बनारस। सप्तपुरियो मे से चौथी।

आनदभैरव—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दभैरव] १. शिव का एक नाम (को०)। २ वैद्यक मे एक रस का नाम जो प्राय ज्वरादि की चिकित्सा मे काम आता है।

विशेष—इसके बनाने की यह रीति है—शुद्ध पारा और शुद्ध गधक की कजली, शुद्ध सिंगी मुहरा, सिगरफ, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, भूना सुहागा, इन सबका चूर्ण कर भँगरैया के रस मे तीन दिन खरल कर आध आध रत्ती की गोलियाँ बनावें। एक गोली नित्य दस दिन पर्यंत खिलाने से खाँसी, क्षय, सग्रहणी, सनिपात और मृगी के सब रोग नष्ट हो जाते हैं।

आनदभैरवी—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दभैरवी] भैरव राग की रागिनी जिसमे सब कोमल स्वर लगते हैं। इसके गाने का समय प्रात काल १ दड से ५ दड तक है।

आनदमंगल—सज्ञा पुं० [सं० आनन्द+मङ्गल] सुख चैन।

आनदमत्ता—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दमत्ता] प्रौढा नायिका का एक भेद। आनद से उन्मत्त प्रौढा। दे० 'आनदसमोहिता'।

आनदमय[1]—वि० [सं० आनन्दमय] आनदपूर्ण। प्रसन्नता से युक्त [को०]।

यौ०—आनंदमयकोष = आत्मा के पचकोषो मे से एक (वेदांत)।

आनंदमय[2]—सज्ञा पुं० ब्रह्म [को०]।

आनदमया—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दमया] दुर्गा का एक रूप [को०]।

आनंदलहरी—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दलहरी] शकराचार्य विरचित एक ग्रथ जिसमे पार्वती जी की स्तुति है [को०]।

विशेष—इसे सौदर्यलहरी भी कहते हैं।

आनंदवाद—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दवाद] आनद को ही मानव जीवन का मूल लक्ष्य माननेवाली विचारधारा या सिद्धात।

आनदसमोहिता—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दसम्मोहिता] वह नायिका जो रति के आनद मे अत्यत निमग्न होने के कारण मुग्ध हो रही हो। यह प्रौढ़ा नायिका का एक भेद है।

आनदा—सज्ञा स्त्री० [स० आनन्दा] भाँग [को०]।

आनंदित—वि० [सं० आनन्दित] हर्षित। मुदित। प्रमुदित। सुखी। उ०—आनदित गोपी ग्वाल, नाचैं कर दै दै ताल, अति अहलाद भयो जसुमति माइ कै।—सूर०, १०। ३१।

आनंदी—वि० [सं० आनन्दिन्] हर्षित। प्रसन्न। सुखी। खुश।

आन[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० आणि = मर्यादा, सीमा] १ मर्यादा। २ शपथ। सौगंध। कसम। उ०—मोहिं राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहौ।—मानस, २।१००। ३. विजय-घोषणा। दुहाई।

क्रि० प्र०—फिरना। उ०—बार बार यों कहत सकात न, तोहिं हति लैहैं प्रान। मेरैं जान, कनकपुरी फिरिहै रामचद्र की आन।—सूर०, ६। १२१।

४. ढग। तर्ज। अदा। छवि। जैसे,—उस मौके पर बडौदा नरेश का इस सादगी से निकल जाना एक नई आन थी। ५ अकड। ऐंठ। दिखाव। ठसक। जैसे,—आज तो उनकी और ही आन थी। ६. अदब। लिहाज। दबाव। लज्जा। शर्म। हया। शका। डर। भय। जैसे,—कुछ बडो की आन तो माना करो। ७ प्रतिज्ञा। प्रण। हठ। टेक। जैसे,—वह अपनी आन न छोडेगा।

आन[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] क्षण। अल्पकाल। लमहा। जैसे,—एक ही आन मे कुछ का कुछ हो गया है।

मुहा०—**आन की आन मे** = शीघ्र ही। अत्यल्प काल मे। जैसे,—आन की आन मे सिपाहियों ने पूरा का पूरा शहर घेर लिया।

आन[3]Ⓟ—वि० [सं० अन्य] दूसरा। और। उ०—मुख कह आन, पेट बस आना। तेहि औगुन दस हाट बिकाना।—जायसी ग्र०, पृ० ३५।

आन[4]—क्रि० वि० [हिं० आना] आकर। उपस्थित होकर। जैसे,—पत्ता पेड से आन गिरा।

आनक—संज्ञा पुं० [सं०] १ डका। दुदुभी। भेरी। ढक्का। बडा ढोल। मृदग। नगाडा। उ०—गोमुख आनक ढोल नफीरी मिलि कै साजै।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६४३। २. गरजता हुआ बादल।

यौ०—आनकदुदुभी।

आनकदुंदुभ—संज्ञा पुं० [सं० आनकदुंदुभि] १. बडा नगाडा। २. कृष्ण के पिता वसुदेव।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि जब वसुदेव जी उत्पन्न हुए थे, तब देवताओं ने नगाडे बजाए थे।

आनडुह—वि० [सं०] बैल या साँड से सबद्ध [को०]।

आनत—वि० [सं०] अत्यत झुका हुआ। अतिनम्र। उ०—पत्रो के आनत अधरों पर, सो गया निखिल वन का मर्मर।—गुंजन, पृ० ७६। २ कल्पसव के अतर्गत वैमानि नामक जैन देवताओं मे से एक देवता।

आनतान[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० आन = दूसरा + तान = गीत] अंड बंड बात। ऊटपटाँग बात। बेसिर पैर की बात।

आनतान[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० आन + खितान = चाव] १. मर्यादा। ठसक। २. टेक। अड़।

आनति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नत होना। झुकना। झुकाव। २ प्रणाम करना। प्रणति। ३ सत्कार करना [को०]।

आनतिकर—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपहार। पुरस्कार [को०]।

आनद्ध[1]—वि० [सं०] १ बँधा हुआ। कसा हुआ। २ मढा हुआ।

आनद्ध[2]—संज्ञा पुं० १ वह बाजा जो चमडे से मढा हो, जैसे—ढोल मृदग आदि। २. सज्जित होना। कपड़े आभूषण आदि पहनना [को०]।

आनद्धवस्तिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेशाब या पाखाने का रुकना [को०]।

आनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुख। मुँह। उ०—आनन रहित सकल रस भोगी।—मानस, १।११८। २ चेहरा। उ०—आनन है अरविंद न फूल्यो आलीगन भूल्यो कहा मँडरात हौ।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ६१।

यौ०—वक्रानन। गजानन। चतुरानन। पचानन। षडानन।

आननफानन—क्रि० वि० [अ० आनन फानन] अतिशीघ्र। फौरन झटपट। बहुत जल्द।

आननाⓅ—क्रि० स० [सं० आ + √नी = ले जाना या लाना] लाना। उ०—आनहु रामहि वेगि बोलाई।—मानस, २।३६।

आनबान—संज्ञा स्त्री० [हिं० आन + बान] १ सजधज। ठाट बाट तडक भडक। बनावट। उ०—जुही आनबान भरी, चमेली जवान परी।—आराधना, पृ० २३।

आनमन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आनति' [को०]।

आनयनⓅ—संज्ञा पुं० [सं०] १ लाना। २ उपनयन सस्कार।

आनर—संज्ञा पुं० [अ०] १. संमान। प्रतिष्ठा। इज्जत। सत्कार। २ समानचिह्न। उपाधि।

आनरेबुल—वि० [अ०] प्रतिष्ठित। माननीय।

विशेष—अँगरेजी शासन में जो गवर्नर जनरल, गवर्नर, बडे लाट या छोटे लाट की कौंसिल के सभासद् होते थे, उन्हे तथा हाइ कोर्ट के जजो और कुछ चुने अधिकारियो को यह पदवी मिलती थी। अब केवल हाइकोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट के जजो को इस नाम से पुकारा जाता है।

आनरेरी—वि० [अ०] १. अवैतनीक। कुछ वेतन न लेकर प्रतिष्ठा के हेतु काम करनेवाला।

यौ०—आनरेरी मजिस्ट्रेट। आनरेरी सेक्रेटरी।

२ बिना वेतन लेकर किया जानेवाला। जैसे,—यह काम हमारा आनरेरी है।

आनर्त—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आनर्तक] १ देशविशेष। द्वारका। २. आनर्त देश का निवासी। ३ राजा शर्याति के तीन पुत्रों मे से एक। ४ नृत्यशाला। नाचघर। ५ युद्ध। ६ जल। ७ नृत्य [को०]।

आनर्तक—वि० [सं०] नाचनेवाला।

आनव[1]—वि० [सं०] १ मनुष्य की तरह शक्तिवाला। २. मनुष्य पर दया करनेवाला [को०]।

आनव[2]—संज्ञा पुं० १ मनुष्य। मानव। २. विदेशीजन [को०]।

आना[1]—संज्ञा पुं० [सं० आणक] १. रुपए का १६वाँ भाग। २ किसी वस्तु का १६वाँ अंश। जैसे,—(क) प्लेग के कारण शहर

अब चार आने लोग रह गए हैं। (ख) इस गाँव मे चार आना उनका है।

आना¹—क्रि० अ० [सं० आगमन, पुं० हिं० आगवन, आवना, जैसे द्विगुण से दूना। अथवा सं० आयण हिं० आवना] १ वक्ता के स्थान की ओर चलना या उसपर प्राप्त होना। जिस स्थान पर कहनेवाला है, था या रहेगा उसकी ओर बराबर बढना या वहाँ पहुँचना। जैसे,—(क) वे कानपुर से हमारे पास आ रहे है। (ख) जब हम बनारस मे थे, तब आप हमारे पास आए थे। (ग) हमारे साथ साथ तुम भी आओ। २ जाकर वापस आना। जाकर लौटना। जैसे—तुम यही खडे रहो, मैं अभी आता हूँ। ३ प्रारभ होना। जैसे,—बरसात आते ही मेढक बोलने लगते हैं। ४ फलना। फूलना। जैसे,—(क) इस साल आम खूब आए हैं। (ख) पानी देने से इस पेड मे अच्छे फूल आवेंगे। ५ किसी भाव का उत्पन्न होना। जैसे,—आनद आना, क्रोध आना, दया आना, करुणा आना, लज्जा आना, शर्म आना।

विशेष—इस अर्थ मे 'मैं' के स्थान पर 'को' लगता है। जैसे,—उनको यह बात सुनते ही बडा क्रोध आया।

६ आँच पर चढे हुए किसी भोज्य पदार्थ का पकना या सिद्ध होना। जैसे,—(क) चावल आ गए, अब उतार लो। (ख) देखो, चाशनी आ गई या नही। ७ स्खलित होना। जैसे—जो यह दवा खाता है, वह बडी देर से आता है।

मुहा०—**आई** = (१) आई हुई मृत्यु। जैसे,—आई कही टलती है। (२) आई हुई विपत्ति। **आए दिन** = प्रतिदिन। रोज रोज। जैसे,—यह आए दिन का झगडा अच्छा नही। **आए गए होना** = खो जाना। नष्ट होना। फजूल खर्च होना। जैसे,—वे रुपए तो आए गए हो गए। **आओ या आइए** = जिस काम को हम करने जाते हैं, उसमें योग दो। जैसे,—आओ, चलें घूम आवें। (ख) आइए, देखें तो इस किताब मे क्या लिखा है। **आ जाना** = पड जाना। स्थित होना। जैसे,—उनका पैर पहिए के नीचे आ गया। **आता जाता** = आने जानेवाला। पथिक। बटोही। जैसे,—किसी आते जाते के हाथ रुपया भेज देना। **आना जाना** = (१) आवागमन। जैसे,—उनका बराबर आना जाना लगा रहता है। (२) सहवास करना। सभोग करना। जैसे,—कोई आता जाता न होता तो यह लडका कहाँ से होता? **आ धमकना** = एकबारगी आ पहुँचना। अचानक आ पहुँचना। जैसे,—बागी इधर उधर भागने की फिक्र कर ही रहे थे कि सरकारी फौज आ धमकी। **आ निकलना** = एकाएक पहुँच जाना। अनायास आ जाना। जैसे,—(क) कभी कभी जब वे आ निकलते हैं, तब मुलाकात हो जाती है। (ख) मालूम नही हम लोग कहाँ आ निकले। **आ पडना** = (१) सहसा गिरना। एकबारगी गिरना। जैसे,—घरन एकदम नीचे आ पडी। (२) आक्रमण करना जैसे,—उसपर एक साथ ही बीस आदमी आ पडे। (३) अनिष्ट घटना का घटित होना। जैसे,—बेचारे पर बैठे बिठाए यह आफत आ पडी। (४) सकट, कठिनाई या दुःख का उपस्थित होना। जैसे,—(क) तुमपर क्या आ पडी है जो उनके पीछे दौडते फिरो। (ख) जब आ पडती है तब कुछ नही सूझता। (५) उपस्थित होना। एकबारगी आना। जैसे,—(क) जब काम आ पडता है, तब वह खिसक जाता है। (ख) उनपर गृहस्थी का सारा बोझ आ पडा। (शब्द०) (ग) कल हमारे यहाँ दस मेहमान आ पडे। (शब्द०)। (६) डेरा जमाना। टिकना। विश्राम करना। जैसे,—क्यों इधर उधर भटकते हो, चार दिन यहीं आ पडो। **आया गया** = अतिथि। अभ्यागत। जैसे,—आए गए का अच्छी तरह सत्कार करना चाहिए। **आ रहना** = गिर पडना। जैसे,—(क) पानी बरसते ही दीवार आ रही। (ख) वह चबूतरे पर से नीचे आ रहा। **आ लगना** = (१) किसी ठिकाने पर पहुँचना। जैसे,—(क) बात की बात मे किश्ती किनारे आ लगी। (ख) रेलगाडी प्लेटफार्म पर आ लगी। (इस क्रियापद का प्रयोग जड पदार्थों के लिये होता है, चेतन के लिये नही।) (२) आरभ होना। जैसे,—अगहन का महीना आ लगा है। (३) पीछे लगना। साथ होना। जैसे,—बाजार मे जाते ही दलाल आ लगते हैं। **आ लेना** = पास पहुँच जाना। पकड लेना। जैसे,—डाकू भागे पर गवारों ने आ लिया। (२) आक्रमण करना। टूट पडना। जैसे—हिरन चुपचाप पानी पी रहा था कि बाघ ने आ लिया। **किसी का किसी पर कुछ रुपया आना** = किसी के जिम्मे किसी का कुछ रुपया निकलना। जैसे,—क्या तुम पर उनका कुछ आता है? हाँ, बीस रुपये। **किसी की आ बनना** = किसी को लाभ उठाने का अच्छा अवसर हाथ आना। स्वार्थसाधन का मौका मिलना। जैसे,—कोई देखने भालने वाला है नही, नौकरों की खूब आ बनी है। **किसी को कुछ आना** = किसी को कुछ बोध होना। किसी को कुछ ज्ञान होना। जैसे,—(क) उसे तो बोलना ही नही आता। (ख) उसे चार महीने मे हिंदी आ जायगी। **किसी को कुछ आना जाना** = किसी को कुछ बोध या ज्ञान होना। जैसे,—उनको कुछ आता जाता नही। **किसी पर आ बनना** = किसी पर विपत्ति पडना। जैसे,—(क) आजकल तो हमपर चारो ओर से आ बनी है। (ख) मेरी जान पर आ बनी है। उ०—आन बनी सिर आपने छोड पराई आस (शब्द०)। **(किसी वस्तु) मे आना** = (१) ऊपर से ठीक बैठना। ऊपर से जमकर बैठना। चपकना। ढीला या तग न होना। जैसे,—(क) देखो तो तुम्हारे पैर मे यह जूता आता है। (ख) यह सामी इस छडी मे नही आवेगी। (२) भीतर अटना। समाना। जैसे,—इस बरतन मे दस सेर घी आता है। (३) अतर्गत होना। अतर्भूत होना। जैसे,—ये सब विषय विज्ञान ही मे आ गए। **किसी वस्तु से (धन या आय) आना** = किसी वस्तु से आमदनी होना। जैसे,—(क) इस गाँव से तुम्हें कितना रुपया आता है? (ख) इस घर से कितना किराया आता है? (जहाँ पर आय के किसी विशेष भेद का प्रयोग होता है, जैसे,—भाडा, किराया, लगान, मालगुजारी आदि वहाँ चाहे 'का' का व्यवहार करें चाहे 'से' का। जैसे,—(क) इस घर का कितना किराया आता है। (ख) इस घर से कितना किराया आता है। (पर जहाँ 'रुपया' या 'धन' आदि शब्दो का

प्रयोग होता है, वहाँ केवल 'से' आता है।) **कोई काम करने पर आना** = कोई काम करने के लिये उद्यत होना। कोई काम करने के लिये उतारू होना। जैसे,—जब वह पढ़ने पर आता है तो रात दिन कुछ नहीं समझता। **जूतों या लात घूसों आदि से आना** = जूतों या लात घूसों से आक्रमण करना। जूते या लात घूँसे लगाना। जैसे,—अब तक तो मैं चुप रहा, अब जूतों से आऊँगा। **(पौधे का) आना** = (पौधे का) बढ़ना। जैसे,—खेत में गेहूँ कमर बराबर आए हैं। **(मूल्य) को या में आना** = दामों में मिलना। मूल्य पर मिलना। मोल मिलना। जैसे,—यह किताब कितने को आती है। (ख) यह किताब कितने में आती है। (ग) यह किताब चार रुपए को आती है। (घ) यह किताब चार रुपए में आती है। (इस) मुहाविरे तृतीया के स्थान पर 'को' या 'में' का प्रयोग होता है।)

विशेष—'आना' क्रिया के अपूर्णभूत रूप के साथ अधिकरण में भी 'को' विभक्ति लगती है, जैसे,—'वह घर को आ रहा था'। इस क्रिया को आगे पीछे लगा कर संयुक्त क्रियाएँ भी बनती हैं। नियमानुसार प्रायः संयुक्त क्रियाओं में अर्थ के विचार से पद प्रधान रहता है और गौण क्रिया के अर्थ की हानि हो जाती है, जैसे, दे डालना, गिर पड़ना आदि। पर 'आना' और 'जाना' क्रियाएँ पीछे लगकर अपना अर्थ बनाए रखती है, जैसे,—'इस चीज को उन्हें देते आओ।' इस उदाहरण में देकर फिर आने का भाव बना हुआ है। यहाँ तक कि जहाँ दोनों क्रियाएँ गत्यर्थक होती हैं वहाँ 'आना' का व्यापार प्रधान दिखाई देता है, जैसे,—चले आओ। बढ़े आओ। कहीं कहीं आना का संयोग किसी और क्रिया का चिर काल से निरंतर संपादन सूचित करने के लिये होता है, जैसे,—(क) इस कार्य को हम महीनों से करते आ रहे हैं। (ख) हम आज तक आपके कहे अनुसार काम करते आए हैं। गतिसूचक क्रियाओं में 'आना' क्रिया धातुरूप में पहले लगती है और दूसरी क्रिया के अर्थ में विशेषता करती है, जैसे,—आ खपना, आ गिरना, आ घेरना, आ झपटना, आ टूटना, आ ठहरना, आ धमकना, आ निकलना, आ पड़ना, आ पहुँचना, आ फँसना, आ रहना। पर 'आ जाना' क्रिया में 'जाना' क्रिया का अर्थ कुछ भी नहीं है। इससे संदेह होता है कि कदाचित् यह 'आ' उपसर्ग न हो, जैसे,—आयान, आगमन, आनयन, आपतन।

आनाकानी—संज्ञा स्त्री० [सं० अनाकर्णन] १ सुनी अनसुनी करने का कार्य। न ध्यान देने का कार्य। उ०—आनाकानी आरसी निहारिनो करौगे कौ लौं ?—इतिहास, पृ० ३४१। २. टालमटूल। हीला हवाला। जैसे,—माल तो ले आए, अब रुपया देने में आनाकानी क्यों करते हो ?

क्रि० प्र०—करना।—देना।

३ कानाफूसी। धीमी बातचीत। इशारों की बात। उ०—आनाकानी कंठ हँसी मुहाचाही होन लगी देखि दसा कहत विदेह बिलखाय कै।—तुलसी (शब्द०)।

आनाथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] असहाय या अनाथ होने की अवस्था या भाव [को०]।

आनाय—संज्ञा पुं० [सं०] जाल। फंदा [को०]।

आनाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक उदरव्याधि। मलावरोध से पेट का फूलना। मलमूत्र रुकने से पेट फूलना। २ बाँधना [को०]। ३ लंबाई (कपड़े आदि की) [को०]। ४ विस्तार [को०]।

आनिⓊ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आन'।

आनिल[१]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आनिली] वायु से संबंधित या उत्पन्न [को०]।

आनिल[२] **आनिलि**—संज्ञा पुं० [सं०] १ हनुमान। २ भीम। ३ स्वाती नक्षत्र [को०]।

आनिला—संज्ञा पुं० [अ०] जहाज के लंगर की कुंडी।

आनीजानी—वि० [हिं० आना + जाना] अस्थिर। क्षणभंगुर। उ०—दुनिया भी अजब सराय फानी देखी। हर चीज यहाँ की आनी जानी देखी। जो आके न जाए वह बुढ़ापा देखा। जो जाके न आए वह जवानी देखी।—अनीस (शब्द०)।

आनीत—वि० [सं०] लाया हुआ [को०]।

आनील[१]—वि० [सं०] हरे रंग का। हल्का नीला [को०]।

आनील[२]—संज्ञा पुं० काला घोड़ा [को०]।

आनुकूलिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आनुकूलिकी] अनुकूल [को०]।

आनुकूल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुकूलता की स्थिति या भाव। २. कृपालुता। दयालुता [को०]।

आनुक्रमिक—वि० [सं०] क्रमानुसार [को०]।

आनुगतिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आनुगतिकी] अनुगत या अनुगति से संबंध रखनेवाला [को०]।

आनुगत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुगत होने की क्रिया। २ अनुकरण। ३ परिचय। घनिष्ठता। उ०—पा लिया है सत्य-शिव-सुंदर-सा पूर्ण लक्ष्य इष्ट हय सबको इसी का आनुगत्य है।—साकेत पृ० २०१।

आनुग्रहिककरनीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] राज्य की वह नीति जिसके अनुसार कुछ विशेष मालों पर रियायत की जाती है।

आनुग्रहिक दारो दय शुल्क—संज्ञा पुं० [सं०] वह चुंगी जो कुछ खास खास पदार्थों पर कम ली जाय। (अर्थशास्त्र, पृ० ११३ में यह द्वारादेय शुल्क या आनुग्रहिक कहा गया है।)।

आनुग्रामिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आनुग्रामिकी] ग्रामसंबंधी। ग्रामीण [को०]।

आनुपदिक—वि० [सं०] [स्त्री० आनुपादिकी] १ पीछा करनेवाला। २ अनुकरण करनेवाला [को०]।

आनुपातिक—वि० [सं०] अनुपात संबंधी [को०]।

आनुपूर्वी—वि० [सं० अनुपूर्व्य] क्रमानुसार। एक के बाद दूसरा।

आनुमानिक—वि० [सं०] अनुमान संबंधी। खयाली।

आनुयात्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक। नौकर। अनुचर [को०]।

आनुरक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुरक्ति [को०]।

आनुलोमिक—वि० [सं०] १ नियमित। क्रमित। २ अनुकूल। उपयुक्त [को०]।

आनुवंशिक—वि० [सं०] वंशपरंपरा में आया हुआ। वंशानुक्रमिक [को०]।

आनुवेश्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ पड़ोसी । प्रतिवेशी । २ वह पड़ोसी जिसका घर अपने मकान से दाहिने या बाएँ हो । प्रतिवेश्य का उलटा [को०] ।

आनुश्राविक¹—वि० [सं०] जिसको परंपरा से सुनते चले आए हों ।

आनुश्राविक²—संज्ञा पुं० वो प्रकार के विषयों में से एक, जिसे परंपरा से सुनते आए हों । जैसे,—स्वर्ग, अप्सरा ।

आनुषंगिक—वि० [सं०] जिसका साधन किसी दूसरे प्रधान कार्य को करते समय बहुत थोड़े प्रयास से हो जाय । बड़े काम के प्रसंग में हो जानेवाला । जिसकी बहुत कुछ पूर्ति किसी दूसरे कार्य के संपादन द्वारा हो जाय और शेष अंश के संपादन में बहुत ही थोड़े प्रयास की आवश्यकता रहे । साथ साथ होनेवाला । गौण । अप्रधान । प्रसंगतः होनेवाला या हो जानेवाला अथवा किया जानेवाला । प्रासंगिक । जैसे,—भिक्षा माँगने जाओ, उधर से आते समय साग भी लेते आना । उ०—जहाँ जहाँ तहँ जाइए जहाँ बसत ब्रजराज । गोरस बेचन हरि मिलन एक पंथ द्वै काज (शब्द०) ।

आनूप—वि० [सं०] १ दलदलवाला । २ दलदली भूमि में उत्पन्न [को०] ।

आनृत—वि० [सं०] [स्त्री० आनृती] हमेशा झूठ बोलनेवाला [को०] ।

आनृशंस¹—वि०[सं०] कोमल स्वभाववाला । दयालु [को०] ।

आनृशंस²—संज्ञा पुं० १ दयालुता । २ दयालुता । ३ मृदुलता । ४. रक्षकता । रक्षक स्वभाव [को०] ।

आनृशंस्य—वि० संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आनृशंस' [को०] ।

आनेता—वि० [सं० आनेतृ] लानेवाला [को०] ।

आनैपुण,आनैपुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] अकुशलता । भद्दापन [को०] ।

आनैश्वर्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऐश्वर्य का अभाव । अनैश्वर्य [को०] ।

आन्न—वि०[सं०][स्त्री० आन्नी]१ अन्नवाला । २ अन्न से संबंधित [को०] ।

आन्वयिक—वि०[सं०]१ कुलीन । २ सुव्यवस्थित । व्यवस्थित [को०] ।

आन्वष्टक्य—वि०[सं०]हेमंत और शिशिर के चारों महीनों, अगहन, पूस, माघ और फागुन में कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि को होनेवाला (श्राद्ध) ।

आन्वीक्षिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आत्मविद्या । २ तर्कविद्या । न्याय ।

आप¹—सर्व० [सं० आत्मन्, प्रा० अत्त अप्प, अप्पण, (पु) आपनो] १. स्वयं । खुद ।

विशेष—इसका प्रयोग तीनों पुरुषों के लिये होता है । जैसे, उत्तम पुरुष—मैं आप जाता हूँ, तुम्हें जाने की आवश्यकता नहीं । मध्य पुरुष—तुम आप अपना काम क्यों नहीं करते, दूसरों का मुँह क्यों ताका करते हो । अन्य पुरुष—तुम मत हाथ लगाओ, वह आप अपना काम कर लेगा । २ 'तुम' और 'वे' के स्थान पर आदरार्थक प्रयोग । जैसे,—(क) कहिए बहुत दिन पर आप आए हैं, इतने दिन कहाँ थे ? (ख) ईश्वरचंद्र विद्यासागर पुराने ढंग के पंडित थे । आपने समाज संशोधन के लिये बहुत कुछ उद्योग किया । (ग) आप बड़ी देर से खड़े हैं, ले जाकर बैठाते क्यों नहीं ? ३ ईश्वर । भगवान् । उ०—(क) जहाँ [illegible] है, जहाँ [illegible] आप । जहाँ [illegible] तहँ [illegible] है, जहाँ [illegible] तहँ आप—कबीर (शब्द०) ।

यौ०—आपबीती = [illegible] । [illegible] (शब्द०) । [illegible] महाराज ।—[illegible] पृ० [illegible] । आपस्वार्थी = स्वार्थी । मतलबी । आपधीती = [illegible] । आपरूप = स्वयं । आप । साक्षात् । उ०—[illegible] ।—[illegible] भाग १, पृ० [illegible] । आपस्वार्थी = मतलबी ।

मुहा०—आप आप करना = खुशामद करना । [illegible] आप आप करते हुए [illegible] । आप आपको पड़ना = अपनी अपनी चिंता में व्यग्र होना । [illegible] । आप आपकी = [illegible] । जैसे,—(क) [illegible] ।—[illegible] । (ख) [illegible] । आप आपको [illegible] । जैसे,—[illegible] । आपको भूलना = (१) अपने [illegible] । किसी [illegible] । जैसे—(क, [illegible] । (ख) [illegible] । (२) [illegible] होना । [illegible] । जैसे—[illegible] आपसे [illegible] । आप स = स्वयं । खुद । जैसे,—उसको [illegible] नहीं गया था । उ०—[illegible] ।—[illegible] भाग १, पृ० १८१ । आपसे आप = स्वयं । खुद । खुद । जैसे,—(क) आप [illegible] । (ख) [illegible] । आप ही = स्वयं । [illegible] । जैसे,—[illegible] पर लेंगे । उ०—[illegible] । [illegible] ।—[illegible] ([illegible]) । आप ही आप = (१) बिना किसी और [illegible] । जैसे,—उसने आप ही आप [illegible] गया था । (२) मन ही मन में । जैसे,—[illegible] कहता जा रहा था । (३) किसी को [illegible] । (नाटक में उस 'वाक्य' को सूचित करने का संकेत जिसे अभिनयकर्ता किसी पात्र को संबोधन करके नहीं कहता, परंतु इस प्रकार मुँह फेरकर कहता है मानो अपने मन में कह रहा है । पात्रों पर उसके कहने का कोई प्रभाव नहीं दिखाया जाता । इसे 'स्वगत' भी कहते हैं ।)

आप²—संज्ञा पुं० [सं० आप = जल] १ जल । पानी । उ०—[illegible] जटा कपाल [illegible] पुनीत आप पावन [illegible] बरत है ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २३७ ।

यौ०—आपधर=बादल। उ०—कर लिए चाप परतापधर। तीन लोक मे थापधर। नृप गरज्यो जैसे आपधर। मांपधरन सम दापधर।—गोपाल (शब्द०)। आपनिधि=समुद्र। उ०—ज्ञानगिरि फोरि, तोरि लाज तरु जाइ मिलैं, आप ही तें आपगा ज्यो आपनिधि प्रीतमैं।—केशव ग्र०, पृ० १२७।

२ आठ वसुओं मे से एक का नाम (को०)। ३ जलप्लावन। बाढ (को०)। ४ जल का सोता या प्रवाह (को०)। ५ आकाश (को०)।

आपक—वि० [सं०] प्रापक। प्राप्त करनेवाला (को०)।

आपकर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आपकरी] १ बिना मैत्री का। अमैत्रीपूर्ण। २ बुराई या निंदा करनेवाला। ३. अनिष्टकारी (को०)।

आपक्व—वि० [सं०] जो अच्छी तरह न पका हो। कम पका हुआ (को०)।

आपगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नदी। २ एक नदी का नाम (को०)।

आपगेय—संज्ञा पुं० [सं०] भीष्म पितामह (को०)।

आपचार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] मनमानी।

आपचारना(पु)—क्रि० अ० [हिं० आपचार+ना (प्रत्य०)] उ०—विष लै विमारची तन, कै त्रिमासी आपचारयो, जान्यौ हुती मन ? तैं सनेह कछु मेल सो।—घनानद, पृ० ६३।

आपण—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाट। बाजार। २ किराया या महसूल जो बाजार मे मिले। तहबजारी।

आपत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] 'आपद' का समासगत रूप (को०)।

आपत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आपद] दे० 'आपद्'।

आपत्कल्प—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आपद्धर्म' (को०)।

आपत्काल—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आपत्कालिक] १ विपत्ति। दुर्दिन। २ दुष्काल। कुसमय।

आपत्कृतऋण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो कोई आपत्ति पडने पर लिया जाय।

आपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुख। क्लेश। विघ्न। २ विपत्ति। सकट। आफत। ३ कष्ट का समय। ४ जीविकाकष्ट। ५ दोषारोपण। ६ उज्र। एतराज। जैसे,—हमको आपकी बात मानने मे कोई आपत्ति नही है। ७ प्राप्ति (को०)।

आपद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विपत्ति। आपत्ति। २ दुख। कष्ट। विघ्न।

यौ०—आपद्गत, आपद्ग्रस्त, आपद्प्राप्त=(१) आफत मे पडा हुआ। (२) अभागा। आपद्धर्म। आपद्विनीत=कष्ट या विपत्ति मे नम्र होनेवाला।

आपद—संज्ञा स्त्री० [सं० आपद्] दे० 'आपद्'।

आपदर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वह धन या सपत्ति जिसके प्राप्त करने पर आगे चलकर अपना अनिष्ट हो।

विशेष—जिस सपत्ति के लेने पर शत्रुओं की सख्या बढे, व्यय या क्षय बढे अथवा दूसरों को बहुत कुछ देना पडे, वह आपदर्थ है। कौटिल्य ने आपदर्थ के अनेक दृष्टात दिए हैं, जैसे,—वह सपत्ति जो कुछ दिनों पीछे मित्रनेवाली हो, जिसे पीछे से कुपित होकर पार्ष्णिग्राह छीन ले, जो मित्र के नाश या सधिभग द्वारा हो, जिसके ग्रहण के विरुद्ध सारा मडल हो, इत्यादि। (को०)।

आपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुख। क्लेश। विघ्न। २ विपत्ति। आफत। सकट। ३ सकट का समय। जीविका का कष्ट।

आपद्धर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह धर्म जिसका विधान केवल आपत्काल के लिये हो।

विशेष—जीविका के सकोच की दशा मे जीवनरक्षा के लिये शास्त्रो मे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के लिये बहुत से ऐसे व्यापारो से निर्वाह करने का विधान है, जिनका करना उनके लिये सुकाल मे वर्जित है, जैसे,—ब्राह्मण के लिये शस्त्रधारण, खेती और वाणिज्य आदि का करना मना है,पर आपत्काल मे इन व्यापारो द्वारा उनके लिये जीविका निर्वाह करने का विधान है।

आपधाप—संज्ञा स्त्री० [हिं० आप+धाप] अपनी अपनी चिंता। अपने अपने काम का ध्यान। दे० 'आपाधापी'।

आपन(पु)†, आपनि(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—(क) आपन मोर नीक जो चहहू।—मानस, २। ६१। (ख) आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।—मानस, २।१८२।

आपनपो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपो'।

आपनपौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपौ'। उ०—तहँ सांच चलै तजि आपनपौ, झिझकै कपटी जो निसाँक नही।—इतिहास, पृ० ३४३।

आपना(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—भजि रघुपति करु हित आपना। छाडहु नाथ मृषा जल्पना।—मानस, ६।५५।

आपनिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुमूल्य हरा पत्थर। पन्ना। २ जगली जाति। किरात (को०)।

आपनिधि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आपोनिधि] जलनिधि। समुद्र। उ०—आपहि ते आप गाज्यो आपनिधि प्रीति मे।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १२७।

आपनो(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—केहि अघ अवगुन आपनो कर डारि दिया रे।—तुलसी ग्र० पृ० ४७१।

आपन्न—वि० [सं०] १ आपदग्रस्त। दुखी। २ प्राप्त।

यौ०—आपन्नसत्व=गर्भिणी। सकटापन्न।

आपपति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आप+पति] समुद्र। उ०—काँपि उठ्यो आपपति तपनहि ताप चढी, सीरी यो सरीर गति भई रजनीस की।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १२८।

आपमित्यक—वि० [सं०] विनिमय अथवा अदल बदल द्वारा प्राप्त (सपत्ति) (को०)।

आपया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आपगा] नदी।

आपराह्णिक—वि० [सं०] अपराह्ण या तीसरे पहर होनेवाला (को०)।

आपरूप[1]—वि० [हिं० आप+सं० रूप] अपने रूप मे युक्त। मूर्तिमान्। साक्षात् (महापुरुषों के लिये)। जैसे,—इतने ही मे आपरूप भगवान प्रकट हुए।

आपरूप[2]—सर्व० साक्षात् आप। आप महापुरुष। ये महापुरुष। खुद बदौलत। हजरत (व्यग्य)। जैसे,—(क) यह सब आपरूप ही की करतूत है। (ख) यह देखिए अब आपरूप आए हैं।

आपरेशन—संज्ञा पुं० [अं० आॅपरेशन] शल्यचिकित्सा।

आपर्तुक—वि० [सं०] किसी विशेष समय या ऋतु से संबंध रखनेवाला [को०]।

आपवर्ग्य—वि० [सं०] अपवर्ग या मोक्ष से संबंध रखनेवाला [को०]।

आपस—संज्ञा स्त्री० [हिं० आप] [वि० आपसी] १. संबंध। नाता। भाईचारा। जैसे,—आपसवालों से धोखा न होगा। २. एक दूसरे का साथ। एक दूसरे का संबंध।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल 'षष्ठी' और 'सप्तमी' में होता है। नियमानुसार षष्ठी में यह विशेषण की तरह आता है। जैसे,—(क) यह तो आपस की बात है। (ख) वे आपस में लड़ रहे हैं।

मुहा०—आपस का =(१) एक दूसरे से समान संबंध रखनेवाला। अपने भाई बंधु के बीच का। जैसे,—आपस का मामला। आपस की बात। आपस की फूट। जैसे—कहो न, यहाँ तो सब आपस ही के लोग बैठे हैं। (२) परस्पर का। परस्पर का। जैसे,—जरा सी बात पर उन्होंने आपस का नाता जाता कर दिया। आपस में =परस्पर। एक दूसरे के साथ। एक दूसरे के बीच। उ०—(क) हिंदू मुसलमान शिष्य दोऊ। आपस में लागे लड़ दोऊ।—कबीर (शब्द०)। (ख) पुर पाइहै कान सुनै बतियाँ कछु आपुस में कहु पैं कहिहैं।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६७।

यौ०—आपसदारी =परस्पर का व्यवहार। भाईचारा। आपसतत्त्व =आत्मस्वरूप।

आपस्तंब—संज्ञा पुं० [सं० आपस्तम्ब] [वि० आपस्तंबीय] १. एक ऋषि जो कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा के प्रवर्तक थे। यह शाखा उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। २. आपस्तंब शाखा के कल्प सूत्रकार जिनके बनाए तीन सूत्र ग्रंथ हैं, कल्प, गृह्य और धर्म। ३. एक स्मृतिकार जिनकी स्मृति उनके नाम से प्रसिद्ध है।

आपस्तंबीय—वि० [सं० आपस्तम्बीय] आपस्तंब संबंधी।

आपा¹—संज्ञा पुं० [हिं० आप] १. अपनी सत्ता। अपना अस्तित्व। जैसे,—अपने आपे को समझो, तब ब्रह्मज्ञान होगा। २. अपनी असलियत। जैसे,—अपने आपको देखो तब बढ़ बढ़कर बातें करना। ३. अहंकार। घमंड। गर्व। उ०—(क) जग में बैरी कोइ नहीं जामे शीतल होय। या आपा को डारि दे दया करैं सब कोय।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—खोना।—छोड़ना।—जाना।—मिटना।

४. होश हवास। सुध बुध। जैसे,—यह दशा देख लोग अपना आपा भूल गए।

मुहा०—आपा खोना =(१) अहंकार त्यागना। नम्र होना। निरभिमान होना। उ०—ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय। औरन को शीतल करै आपुहि शीतल होय।—कबीर (शब्द०)। (२) अपने को बरबाद करना। अपने को मिटाना। अपनी सत्ता को भूलना। खाक में मिलाना। उ०—रंगहि पान मिले जस होई। आपहि खोय रहा होय सोई।—जायसी (शब्द०)। (३) हस्ती बिगाड़ना। प्राण तजना। मरना। जैसे,—उसने जरा सी बात पर अपना आपा खो दिया। आपा डालना =अहंकार का त्याग करना। [illegible] आपा तजना [illegible] आपा [illegible] —कबीर (शब्द०)। आपा [illegible]

[illegible]

आपे से बाहर होना =(१) वश में न रहना। [illegible] होना। [illegible] के आवेश में सुध बुध खोना। [illegible] क्रुद्ध होना। उ०—(क) एक ऐसी [illegible] आपे से बाहर होना।—प्रेमघन० (शब्द०)। (ख) [illegible] पर आपे से बाहर हो गया और [illegible] को मारने दौड़ा। (२) घबराना। उद्विग्न होना। जैसे,—धीरज धरो, आपे से बाहर होने से काम नहीं चलता।

आपा[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० आप] बड़ी बहिन (मुसलमानी)।
आपा[3]—संज्ञा पुं० बड़ा भाई (महाराष्ट्र)।
आपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १ आँवा। २ भट्ठी [को०]।
आपात—संज्ञा पुं० [सं०] १ गिराव। पतन। २ किसी घटना का अचानक हो जाना। ३. आरंभ। ४ अंत। ५ पहली झलक। प्रथम दर्शन (को०)। ६ गिराना। अधःपतित करना (को०)। ७ हाथी पकड़ने के लिये उसे गड्ढे मे गिराना (को०)। ८ नरक [को०]।
आपातत.—क्रि०वि० [सं०] १ अकस्मात्। अचानक। २ अंत को। आखिरकार। ३ ऊपर ऊपर से। उ०—सहानुभूति और उदारता आदि—आपातत आभासित होते हैं।—शैली, पृ० ११६।
आपातलिका—संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जो वैताली छंद के विषम चरणों मे ६ और सम चरणों मे ८ मात्राओं के उपरांत एक भगण और दो गुरु रखने मे बनता है। उ०—हर हर भज रात दिना रे, जंजालहि तज या जग माही। तन, मन, धन सो जपिहौ जो, हरधाम मिलब संशय नाही।
आपाद[1]—अव्य० [सं०] पैर तक [को०]।
यौ०—आपादमस्तक = सिर से पैर तक।
आपाद[2]—संज्ञा पुं० १ प्राप्ति। २ पुरस्कार। इनाम। ३ पारिश्रमिक [को०]।
आपाधापी—संज्ञा स्त्री० [हिं० आप + धाप] १ अपनी अपनी चिंता। अपने अपने काम का ध्यान। अपनी अपनी धुन। जैसे,—आज सब लोग आपाधापी मे हैं, कोई किसी की सुनता ही नहीं।
क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।
२ खींचतान। लागडाँट। जैसे,—उन लोगों मे खूब आपाधापी है।
आपान, आपानक—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह गोष्ठी जिसमे शराब पी जाय। शराबियों की गोष्ठी। उ०—रिक्त चषक सा चंद्र लुढककर है गिरा, रजनी के आपानक का अब अंत है।—झरना, पृ० २५। २ शराब पीने का स्थान।
यो०—आपानोत्सव, आपानकोत्सव = शराब पीने का समारोह।
आपापंथी—वि० [हिं० आप + सं० पन्थिन्] मनमाने मार्ग पर चलनेवाला। कुमार्गी। कुपथी।
आपायत(पु)—वि० [सं० आप्यायित = वर्धित] प्रबल। जोरावर।—(डिं०)।
आपालि—संज्ञा पुं० [सं०] जूँ। किलनी [को०]।
आपिंजर[1]—वि० [सं० आपिञ्जर] कुछ लाल रंग का [को०]।
आपिंजर[2]—संज्ञा पुं० स्वर्ण। सोना [को०]।
आपी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आप्य] वह नक्षत्र जिसका देवता जल है पूर्वाषाढ नक्षत्र।
आपीड़[1]—संज्ञा पुं० [सं० आपीड] १ सिर पर पहनने की चीज, जैसे,—पगड़ी, सिरगह, सिरपेच, बेनी इत्यादि। २ घर के बाहर पाख मे निकले हुए बँडेरे का भाग। मँगरोरी। मँगीरी। ३ एक प्रकार का विषम वृत्त जिसके प्रथम चरण में ८, दूसरे मे १२, तीसरे मे १६ और चौथे मे २० अक्षर होते हैं। इसमे समस्त चरणों के समस्त वर्ण लघु होते हैं, केवल अंत के दो वर्ण गुरु होते हैं।
आपीड[2]—वि० १ कष्ट देनेवाला। पीडक। २ दबानेवाला [को०]।
आपीडन—संज्ञा पुं० [सं० आपीडन] १ दबाना या मलना। २. दुःख देना। कष्ट देना [को०]।
आपीत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामाखी।
आपीत[2]—वि० [सं०] सोनामाखी के रंग का। कुछ पीला।
आपीन[1]—वि० [सं०] १ मोटा। २ मजबूत। बलवान् [को०]।
आपीन[2]—संज्ञा पुं० १ थन या छीमी। २ कुआँ। कूप [को०]।
आपु(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'आप'। उ०—आपु गए अरु तिन्हहूँ घालहिं जे कहुँ सन्मारग प्रतिपालहिं।—मानस, ७।१००।
आपुन[1]—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'।
आपुन[2]—सर्व० [सं० आत्मन्, प्रा० अप्पण, हिं० आप] खुद। स्वयं। उ०—आपुन चढे कदम पर धाई। बदन सकोरि भौंह मोरत हैं, हाँक देत करि मद दुहाई।—सूर०, १०।१४१८।
आपुनो(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'।
आपुस(पु)†—संज्ञापुं० [हिं०] दे० 'आपस'। उ०—देखि हमैं सब आपुस मे जो कछू मन भावै सोई कहती हैं।—इतिहास, पृ० २६३।
आपूपिक—वि० [सं०] १ बढ़िया पुआ बनानेवाला। २ पुआ खाने मे अभ्यस्त। पुआ खाने का शौकीन। ३ पुआ बेचनेवाला।
आपूप्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. आटा। २ बेसन। ३ मैदा। ४. सत्तू [को०]।
आपूर—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आपूरित, आपूर्ण] १ बाढ। बाढ का वेग। बहाव। २. जो भरा हो [को०]।
आपूरण—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्ण होना। पूरी तरह भर जाना [को०]।
आपूरना(पु)—क्रि० अ० [सं० आपूरण] भरना।
आपूरित, आपूर्ण—वि० [सं०] पूरी तरह भरा हुआ [को०]।
आपूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भरना। भरण। २ संतुष्टि। पूर्ति [को०]।
आपूष—संज्ञा पुं० [सं०] १ राँगा। २ सीसा।
आपृच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिज्ञासा। औत्सुक्य। २ वार्तालाप। बातचीत [को०]।
आपेक्षिक—वि० [सं०] १ सापेक्ष। अपेक्षा रखनेवाला। २ अवलंबन पर रहनेवाला। निर्भर रहनेवाला।
आपोक्लिम—संज्ञा पुं० [सं०] [यू० एपोक्लिमा] जन्मकुंडली का तीसरा छठा, नवाँ और बारहवाँ स्थान।
आपोजीशन—संज्ञा पुं० [अं० अपोजीशन] पार्लमेंट (संसद) या व्यवस्थापिका सभाओं (विधानपरिषद्) के सदस्यों का वह समूह या दल जो मंत्रिमंडल या शासन का विरोधी हो। जैसे,—पार्लमेंट की कामंस सभा में आपोजीशन के लीडर ने होम मेंबर पर वोट आफ सेंसर या निंदात्मक प्रस्ताव उपस्थित किया।
आप्त[1]—वि० [सं०] १ प्राप्त। प्रामाण्य रूप मे लब्ध। उ०—इसका आधार 'प्रत्यक्ष' अनुभव नहीं रह गया, 'आप्त' शब्द हुआ।—रस०, पृ० १२६।
विशेष—इसका प्रयोग इस अर्थ मे प्राय समस्त पदों में मिलता है, जैसे,—आप्तकाम। आप्तगर्भा। आप्तकाल।

२ कुशल। दक्ष। ३ विषय को ठीक तौर से जाननेवाला। साक्षात्कृतधर्मा।

आप्त[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऋषि। २ यथार्थ का वक्ता। प्रामाणिक कथन का कहनेवाला। ३ योगशास्त्र के अनुसार [illegible]।

विशेष—पतंजलि के अनुसार आप्त वह है जो [illegible] समग्रता के साथ जाननेवाला या द्रष्टा या ज्ञाता हो [illegible] के वश में पड़कर भी कभी अन्यथा न कहे।

यौ०—आप्तप्रमाण। आप्तवाक्य। आप्तवचन। आप्तागम। आप्तोक्ति।

३ भाग का लब्ध।

आप्तकाम—वि० [सं०] जिसकी सब कामनाएँ पूरी हो गई हों। पूर्णकाम।

आप्तकारी[1]—वि० [सं० आप्तकारिन्] उचित या [illegible] से कार्य करनेवाला [को०]।

आप्तकारी[2]—संज्ञा पुं० १ विश्वस्त अनुचर। २ [illegible] [को०]।

आप्तगर्भा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री० [को०]।

आप्तवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजन समूह [को०]।

आप्तवाक्य—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] वाक्य अवश्य मानते होंगे।—[illegible], पृ० [illegible]।

आप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटा [को०]।

आप्तागम—संज्ञा पुं० [सं०] १ विश्वसनीय बात जो परंपरा से चली आती हो। २ वेद, शास्त्र, स्मृति आदि [को०]।

आप्ताधीन—वि० [सं०] विश्वस्त जनों पर निर्भर। विश्वस्त व्यक्ति के अधीन रहनेवाला [को०]।

आप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्राप्ति। लाभ। २ पूर्णता [को०]। ३ पहुँचना [को०]। ४ संयोग। संबंध [को०]। ५ [illegible] [को०]।

आप्तोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उक्ति जिसे [illegible] रूप में [illegible] जाय। परंपरा से प्रामाणिक रूप में मानी जानेवाली बात [को०]।

आप्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वाषाढ़ नक्षत्र। २ [illegible] आदि [को०]।

आप्य[2]—वि० १ प्राप्तियोग्य। प्राप्य। २ जल से संबंधित [को०]।

आप्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आप्यायित] १ तुष्टि। वर्धन। २ तृप्ति। तर्पण। ३ एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होना। एक रूप से दूसरे रूप में जाना, जैसे—दूध में खट्टा पदार्थ पड़ने से दही जमना। ४ मृत धातु को पारद, सुहागा, घी आदि के संयोग से जगाना या जीवित करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आप्यायित—वि० [सं०] १ तृप्त। संतुष्ट। २ आर्द्र। तर। ३ परिवर्धित। बढ़ा हुआ। ४ अवस्थांतरप्राप्त। दूसरे रूप में परिवर्तित।

आप्रच्छन—संज्ञा पुं० [सं०] १ विदा करना या स्वागत करना। २ मिलने के समय का कुशलप्रश्न [को०]।

आप्रच्छन्न—वि० [सं०] रहस्य। गुप्त। छिपा हुआ [को०]।

आप्रपद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आप्रपदीन] पैरों तक पहुँचनेवाला वस्त्र [को०]।

आप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्नान। २ पानी से तर करना या सींचना [को०]।

आफताबी—[illegible]

आफत—[illegible]

[illegible] आफत मचाना = (१) [illegible] (२) शोर [illegible]। [illegible] आफत मोल लेना = दे० 'आफत सिर पर लेना'। आफत सिर पर लाना या लेना = (१) झगड़ा मोल लेना। झंझट में पड़ना। जैसे,—

तू इसे व्यर्थ छेडकर अपने सिर आफत लाया। (२) मकट मे पडना। दुख को बुलाना। अपने को भझट मे डालना। जैसे—तुम तो रोज रोज अपने सिर पर एक न इक आफत लाया करते हो।

आफताव—संज्ञा पुं० [फा० आफताब] [वि० आफताबी] १ सूर्य। उ०—जाहि के प्रताप सो मलीन आफताब होत, ताप तजि दुजन करत बहु ख्याल को।—भूषण ग्रं०, पृ० १०८। २ धूप। घाम [को०]।

आफतावा—संज्ञा पुं० [फा० आफताबह्] एक प्रकार का गडुआ जिसके पीछे दस्ती और मुँह पर सरपोश या ढक्कन लगा रहता है। यह हाथ मुँह धुलाने के काम आता है।

आफतावी[1]—संज्ञा स्त्री० [फा० आफ़ताबी] पान के आकार का या गोल जरदोजी का बना पखा जिसपर सूर्य का चिह्न बना रहता है। यह लकडी के डडे के सिरे पर लगाया जाता है और राजाओ के साथ या बरात और अन्य यात्राओ मे भडे के साथ चलता है। २ एक प्रकार की आतशबाजी जिसके छूटने से दिन की तरह प्रकाश हो जाता है। ३ किसी दरवाजे या खिडकी के सामने का छोटा सायबान या ओसारी जो धूप के बचाव के लिये लगाई जाय।

आफतावी[2]—वि० १ गोल। २ सूर्यसबधी।

यौ०—आफताबी गुलकद=वह गुलकद जो धूप मे तैयार की जाय।

आफर—संज्ञा पुं० [सं० आफर] प्रदान करना। प्रस्तुत करना। सामने रखना। उ०—पर जब कभी कोई आफर करता तो दो एक दम लगा लेता था।—सन्यासी, पृ० ५१।

आफरी—अव्य० [फा० आफ़रीं] शाबाश! वाह वाह! उ०—कीन्हे तैं आफताब खलक आफरी। कलमा बिन पढन कहैं कुफर काफरी।—घट०, पृ० २०६।

आफरीनिश—संज्ञा स्त्री० [फा० आफ़रीनिश] उत्पत्ति। सृष्टि [को०]।

आफिअत—संज्ञा स्त्री० [अ० आफ़ियत] कुशल। क्षेम।

आफिस—संज्ञा पुं० [अं० ऑफ़िस] दफ्तर। कार्यालय।

आफू—संज्ञा स्त्री० [हिं० अफीम, तुल० मरा० अफू] अफीम। उ०—मीठी कोऊ वस्तु नहिं मीठी जाकी चाह। अमली मिसरी छाँडि कै आफू खातु सराहि।—स० सप्तक, पृ० ३२२।

आफूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आफू' [को०]।

आबंध—संज्ञा पुं० [सं० आबन्ध] १ बधन। बाँधना। २ गाँठ। ३ प्रेमबधन। प्रेम। ४ हल के जुए का बधन (नाधा)। ५ अलकार की सजावट। अलकरण [को०]।

आबधन—संज्ञा पुं० [सं० आबन्धन] दे० 'आबध' [को०]।

आब[1]—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ चमक। तडक भडक। आभा। छटा। द्युति। काति। झलक। पानी। उ०—(क) साधु ऐसा चाहिए ज्यो मोती की आब।—कबीर (शब्द०)। (ख) चहचही चहल चहूँधा चारु चदन की चद्रक चुनीन चौक चौकन चढी है आब।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १२५। २ प्रतिष्ठा। महिमा। गुण। उत्कर्ष। उ०—गँवई गाहक कौन केवरा अरु गुलाब को। हिना पानडी बेल कौन बूझिहै आब को।—व्यास (शब्द०)। ३ शोभा। रौनक। छवि। उ०—वे न इहाँ नागर बढी जिन आदर तो आब। फूल्यो अनफूल्यो भयो गवँई गाँव गुलाब।—बिहारी र०, दो० ४३८।

क्रि० प्र०—उतरना। —जाना। —बिगडना। —बढना। —चढाना।—देना।

आब[2]—संज्ञा पुं० १ पानी। जल। २. मदिरा [को०]। ३ किसी वस्तु का अर्क [को०]। ४ प्रस्वेद। पसीना [को०]। ५. अश्रु। आँसू [को०]। ६ मवाद। पीप [को०]। ७ फूल का रस [को०]।

मुहा०—आब आब करना=पानी माँगना। उ०—काबुल गए मुगल हो आए, बोलें बोल पठानी। आब आब करि पूता मर गए धरा सिरहाने पानी।—(शब्द०)।

यौ०—आब व हवा=जलवायु। सरदी गरमी के विचार मे देश की प्राकृतिक स्थिति।

आबकार—संज्ञा पुं० [फा०] मद्य बनाने या बेचनेवाला। कलवार। कलाल।

आबकारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ वह स्थान जहाँ शराब चुआई जाती हो। हौली। शराबखाना। कलवरिया। भट्टी। २.मादक वस्तुओ से सबध रखनेवाला सरकारी मुहकमा।

यौ०—आबकारी कानून। आबकारी मुहकमा=एक सरकारी विभाग विशेष जिसे अग्रेजी मे 'एक्साइज' विभाग कहते हैं।

आबखुर्द—संज्ञा पुं० [फा० आबखुर्द] १ भाग्य। किस्मत। २ भाग। हिस्सा। ३ पेय जल का तालाब [को०]।

आबखोरा—संज्ञा पुं० [फा० आबखोरह्] १ पानी पीने का बरतन। गिलास। २. प्याला। कटोरा।

आबगीना—संज्ञा पुं० [फा० आबगीनह्] १ शीशे का गिलास। २. आईना। ३ हीरा।

आबगीर—संज्ञा पुं० [फा०] जुलाहो की कूँची। कूँचा।

आबजोश—संज्ञा पुं० [फा०] गरम पानी के साथ उबाला हुआ मुनक्का। लाल मुनक्का। दे० 'अगूर'।

आबड—संज्ञा स्त्री० [देश०] आवरण। घेरा।

आबताब—संज्ञा स्त्री० [फा०] तडक भडक। चमक दमक। द्युति। काति। शोभा।

आबदस्त—संज्ञा पुं० [फा०] १ मलत्याग के पीछे गुदेंद्रिय को धोना। सौंचना। पानी छूना। २ मलत्याग के अनतर मल धोने का जल। हाथपानी।

क्रि० प्र०—लेना।

आबदाना—संज्ञा पुं० [फा०] १ अन्नपानी। दानापानी। अन्नजल। २ जीविका। जैसे,—आबदाना जहाँ जहाँ ले जायगा, वहाँ वहाँ जायँगे।

मुहा०—आबदाना उठाना=जीविका न रहना। रहायश न होना। सयोग टलना। जैसे,—जब यहाँ से हमारा आबदाना उठ जायगा, तब अपना रास्ता लेंगे।

आबदार[1]—वि० [फा०] चमकीला। कातिमान्। द्युतिमान्। भडकीला।

आबदार[2]—संज्ञा पुं० वह आदमी जो तोप मे सुबा और पानी का पुचारा देता है। उ०—केतेक जानदार आबदार लाबदार हो।—सूदन (शब्द०)।

विशेष--पुरानी चाल की तोपो मे जब एक बार गोला छूट जाता था, तब नल को ठढा करने के लिये एक छड मे लपेटे हुए चीथडो को भिगोकर उसपर पुचारा दिया जाता था, जिसमे नल के गरम होने के कारण वह गोला आप ही आप न छूट जाय।

आवदारी--सज्ञा स्त्री० [फा०] चमक। जिला। ओप। काति। उ०--आवदारी से है हर मिसरए तर आवेहयात।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६३।

आवदीदा--वि० [फा० आवदीदह्] अश्रुयुक्त। रोता हुआ [को०]।

आवदोज--सज्ञा पुं० [फा० आवदोज] पानी के भीतर चलनेवाली नाव या जहाज [को०]। पनडुब्बी।

आवद्ध¹--वि० [स०] १ बँधा हुआ। २ कैद।

आवद्ध²--सज्ञा पु० १ अलकार। २ यून। जुआ। ३ दृढ या कठोर बधन [को०]।

आवनजूल--संज्ञा पुं० [फा० आव+अ० नुजूल] फोते मे पानी उतरने का रोग। अडवृद्धि।

आवनूस--सज्ञा पु० [फा०] [वि० आवनूसी] एक पेड जिसे तेंदू कहते हैं और जो जगलो मे होता है।

विशेष--यह पेड जब बहुत पुराना हो जाता है, तब इसकी लकडी का हीर बहुत काला हो जाता है। यही काली लकडी आवनूस के नाम से बिकती है और बहुत वजनी होती है। आवनूस की बहुत सी नुमाइशी चीजें बनती हैं,--जैसे--छडी, कलमदान, रूल, छोटे बक्स इत्यादि। नगीने मे आवनूस का काम अच्छा होता है।

यौ०--आवनूस का कुदा = अत्यंत काले रग का मनुष्य।

आवनूसी--वि० [फा०] आवनूस सा काला। अत्यत श्याम। गहरा काला। २ आवनूस का। आवनूस का बना हुआ।

आवपाशी--सज्ञा स्त्री० [फा०] सिंचाई।

आवरवाँ--सज्ञा पुं० [फा०] १ एक प्रकार का बारीक कपडा। बहुत महीन मलमल। २ बहता हुआ पानी।

आवरू--सज्ञा स्त्री० [फा०] इज्जत। प्रतिष्ठा। बडप्पन। मान।

क्रि० प्र०-- उतरना। --उतारना। --खोना। --गँवाना। --जाना।--देना।--पर पानी फिरना। --विगडना।--मे बट्टा लगना। --रखना। --रहना। --लेना। --होना। दे० 'इज्जत'।

आवरूह(पु)--सज्ञा स्त्री० [फा० आवरू+हिं० ह (प्रत्य०)] दे० 'आवरू'। उ०--हमरे सवद विवेक लर्गाह सूतर मे सोटा। आवरूह लै भागु, पकरि के, फटिहैं झोटा।--पलटू०, भा० ३, पृ० ८६।

आवला--सज्ञा पुं० [फा०] छाला। फफोला। फुटका।

क्रि० प्र०--पडना।

आवलोच(पु)--सज्ञा पुं० [फा० आव+हिं० लोच] सुंदरता का रस। उ०--हम गुलाव मे आवलोच घोल्या है।--दक्खिनी०, पृ० ४०५।

आवल्य--संज्ञा पुं० [स०] अवलता। निर्वलता। बलहीनता [को०]।

आवशिनास--सज्ञा पुं० [फा० आवशनास] जहाज का वह कार्यकर्ता जिसका काम गहराई जाँचकर राह बतलाना होता है।

आवहवा--सज्ञा स्त्री० [फा०] सर्दी गरमी आदि के विचार से किसी देश की प्राकृतिक स्थिति। जलवायु।

आवाद--वि० [फा०] १ बसा हुआ। २ प्रसन्न। कुशलपूर्वक। जैसे,--आवाद रहो वावा आवाद रहो। ३ उपजाऊ। जोतने बोने योग्य (जमीन)। जैसे,--ऊसर जमीन को आवाद करने मे बहुत खर्च पड़ता है।

क्रि० प्र०--करना।--होना।--रहना।

यौ०--आवादकार।

आवादकार--सज्ञा पुं० [फा०] १ एक प्रकार के काश्तकार जो जगल काटकर आवाद हुए हैं। २ एक प्रकार के जमीदार जिनकी मालगुजारी उन्हीं से वसूल की जाती है, नवरदार के द्वारा नहीं।

आवादानी--सज्ञा स्त्री० दे० 'अबादानी'।

आवादी--सज्ञा स्त्री० [फा०] १ बस्ती। २ जनसख्या। मर्दुमशुमारी। ३ वह भूमि जिसपर खेती होती हो।

आवाधा--सज्ञा स्त्री० [स०] १. पीडा। मानसिक पीडा। चिंता [को०]।

आवाल¹--अव्य० [स०] वालको से लेकर। लडको से लेकर। जैसे, आवालवृद्ध।

आवाल(पु)²--सज्ञा स्त्री० युवती। नायिका। उ०--लगन दसा आवाल तन उजियारी किमि होति। बिना नेह नहि बढत है तिय-तन दीपनि जोति।--स० सप्तक, पृ० ३४६।

आविल--वि० [स०] १ पकिल। गदा। २ तोडनेवाला। भंग करनेवाला। ३ साफ करनेवाला [को०]।

आवी¹--वि० [फा०] १ पानीसवधी। पानी का। २ पानी मे रहनेवाला। ३ रग मे हलका। फीका। उ०--दृग बने गुलावी मद भरे लखि अरिमुख आवी करत।--गोपाल (शब्द०)। ४ पानी के रग का। हलका नीला या आस्मानी। ५ जलतटनिवासी।

आवी²--सज्ञा पुं० १. खारी नमक जो सूर्य के ताप से पानी उडाकर बनता है। लवण। साँभर नमक। २ जल के किनारे रहनेवाली एक चिडिया जिसकी चोंच और पैर हरे होते हैं और ऊपर के पर भूरे और नीचे के सफेद होते हैं। ३ एक प्रकार का अगूर।

आवी³--सज्ञा स्त्री० वह भूमि जिसमे किसी प्रकार की आवपाशी होती हो। (खाकी के विरुद्ध)।

यौ०--आबी रोटी = रोटी जिसका आटा केवल पानी से सना हो। आवी शोरा।

मुहा०--आवी करना = दूध, पानी और लाजवर्द से बने हुए रग से किसी कपडे के थान को तर करके उसपर चमक लाना।

आवू--सज्ञा पुं० [स० अर्बुद] अरावली पर्वत पर का एक स्थान।

आवेरवाँ--सज्ञा पु० [फा०] बहता हुआ पानी या आँसू। उ०--देख तव सरवर मजलूम वेकस। वहा अँखियाँ सेती आवेरवाँ को असवस।--दक्खिनी०, पृ० १६१।

आवेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आवेश] दे० 'आवेश'। उ०—आभा के आवेस अगोचर अब कों लौं भटकैहो।—घनानंद, पृ० ५२३।

आवेहयात—संज्ञा पुं० [फा० आब+अ० हयात] जीवनजल। अमृत। सुधा। उ०—आबेहयात जाके किसू ने पिया तो क्या। मानिंद खिजर जग में अकेला जिया तो क्या।—कविता कौ० भा० ४, पृ० ४१।

आब्द - वि० [सं०] बादल से उत्पन्न या सबद्ध [को०]।

आब्दिक—वि० [सं०] वार्षिक। सालाना। सांवत्सरिक।

आव्रत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आवर्त] दे० 'आवर्त'। उ०—बिसरैं सुधि उनमद गति फिरैं। लीलानिधि आव्रत मन घिरैं।—घनानंद पृ० २६१।

आभ¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आभा] शोभा। कांति। आभा। द्युति।

आभ²(पु)—संज्ञा पुं० [फा० आब वा सं० अम्भ प्र० अम्भ] पानी। जल। उ०—जिन्ह हरि जैसा जाणियाँ तिनकूँ तैसा लाभ। ओसों प्यास न भाजई जब लग धँसै न आभ।—कबीर ग्र० पृ० ६।

आभ³—संज्ञा पुं० [सं० अभ्र] आकाश। (डिं०)।

आभय—संज्ञा पुं० [सं०] १ काला अगर। २ कुट नाम की ओषधि।

आभरण—संज्ञा पुं० [सं०] गहना। भूषण। आभूषण। जेवर। अलंकार।

विशेष—इनकी गणना १२ है—(१) नूपुर। (२) किंकिणी। (३) चूड़ी। (४) अँगूठी। (५) कंकण। (६) विजायठ। (७) हार। (८) कंठश्री। (९) बेसर। (१०) बिरिया। (११) टीका। (१२) सीस फूल। आभरण के चार भेद हैं—(१) आवेध्य अर्थात् जो छिद्र द्वारा पहने जायँ, जैसे,—कर्णफूल, बाली इत्यादि। (२) बंधनीय अर्थात् जो बाँधकर पहनी जायँ, जैसे—बाजूबंद, पहुँची, सीसफूल, पुष्पादि। (३) क्षेप्य अर्थात् जिसमें अंग डालकर पहनें, जैसे—कड़ा, छड़ा, चूड़ी, मुँदरी इत्यादि। (४) आरोप्य अर्थात् जो किसी अंग में लटकाकर पहने जायँ, जैसे—हार, कंठश्री, चंपाकली, सिकरी आदि। २ पोषण। परवरिश।

आभरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आभारण] दे० 'आभरण'। उ०—जटिल जवाहिर आभरन छवि के उठत तरंग।—स० सप्तक, पृ० ३७३।

आभरित—वि० [सं०] १ सजाया हुआ आभूषित। अलंकृत। २ पोषित।

आभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चमक। दमक। कांति। उ०—थी अंग सुरभि के संग तरंगित आभा।—साकेत, पृ० २०४। २ दीप्ति। द्युति। प्रभा। उ०—उस धुँधले गृह में आभा से तामस को छलती थी। कामायनी, पृ० ११८। ३ झलक। प्रतिबिंब। छाया। ४ बबूल का पेड़।

आभाणक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार के नास्तिक। २ कहावत। मसल। अहाना।

आभात—वि० [सं०] १ चमकता हुआ। २ कांतिपूर्ण। ३ दृश्य [को०]।

आभार—संज्ञा पुं० [सं०] १ बोझ। २ गृहस्थी का बोझ। गृहप्रबंध की देखभाल की जिम्मेदारी। उ०—चलत देत आभारु सुनि, उही परोसिहिं नाह। लसी तमासे की दृगनु हाँसी आँसुनु माँह।—बिहारी र०, दो० ५५१। ३ एक वर्णवृत्त जो आठ तगण का होता है, जैसे,—बोल्यौ तबै शिष्य आभार तेरो गुरु जी न भूलो जपौं आठहूँ जाम। हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम। (शब्द०)। ४. एहसान। उपकार। निहोर।

आभारी—वि० [सं० आभारिन्] एहसान माननेवाला। उपकार माननेवाला। उपकृत। उ०—कितना आभारी हूँ, इतना संवेदनमय हृदय हुआ।—कामायिनी, पृ० २२६।

आभाष—संज्ञा पुं० [सं०] १ संबोधित करना। २ परिचय। भूमिका। ३ भाषण। कथन [को०]।

आभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] संभाषण। बातचीत करना। २. संबोधन [को०]।

आभास—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रतिबिंब। छाया। झलक। जैसे,—हिंदू समाज में वैदिक धर्म का आभास मात्र रह गया है। २ पता। संकेत। जैसे,—उनकी बातों में कुछ आभास मिलेगा कि वे किसको चाहते हैं।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

३ मिथ्या ज्ञान। जैसे,—सर्प में रस्सी का आभास।

यौ०—प्रमाणाभाष। विरोधाभाष। रसाभास। हेत्वाभास।

आभासन—संज्ञा पुं० [सं०] स्पष्ट करना। आभासित करना। प्रकाशित करना [को०]।

आभास्वर—वि० [सं०] पूर्णरूप से भासित होनेवाला। चमकीला। तेजोमय। उ०—हम आभास्वर देवताओं की तरह प्रीति का भोजन करते हैं। भस्मावृत० पृ० १०५।

आभिचारिक¹—वि० [सं०] १ अभिचार संबंधी। टोना या जादू संबंधी [को०]।

आभिचारिक²—संज्ञा पुं० अभिचार संबंधी मंत्र [को०]।

आभिजन—संज्ञा पुं० [सं०] कुलीनता [को०]।

आभिजात्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ उच्च कुल में पैदा होने का भाव। कुलीनता। २ श्रेणी। ३ विद्वत्ता। ४ सौंदर्य [को०]।

आभिजित—वि० [सं०] अभिजित मुहूर्त या नक्षत्र में पैदा होनेवाला [को०]।

आभिधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ध्वनि। शब्द। २ नाम। ३ व्याख्या। उल्लेख [को०]।

आभिधानिक¹—वि० [सं०] कोश संबंधी या कोश में प्रयुक्त होनेवाला [को०]।

आभिधानिक²—संज्ञा पुं० कोशकार [को०]।

आभिप्रायिक—वि० [सं०] अभिप्राय संबंधी। ऐच्छिक [को०]।

आभिमुख्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ आमने सामने होने की अवस्था या भाव। २ अनुकूल होना [को०]।

आभिरामिक—वि० [सं०] सुंदर। अच्छा [को०]।

आभिरूपक, आभिरूप्य—संज्ञा पुं० [सं०] सुंदरता। सौंदर्य [को०]।

आभिषेचनिक—वि० [सं०] अभिषेचन संबंधी। राजतिलक संबंधी [को०]।

आभिहारिक¹—वि० [सं०] १ उपहार में दिया हुआ। २. छल या बलपूर्वक लिया हुआ [को०]।

आभिहारिक²—संज्ञा पुं० १ उपहार। भेंट। २. कमरा [को०]।

आभीर--संज्ञा पुं० [सं०][स्त्री० आभीरी] १ अहीर। ग्वाल। गोप। उ०--आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप जे।--मानस, ७।१३०।

विशेष--ऐतिहासिकों के अनुसार भारत की एक वीर और प्रसिद्ध जाति जो कुछ लोगों के मत से बाहर से आई थी। इस जातिवालों का विशेष ऐतिहासिक महत्व माना जाता है। कहा जाता है कि उनकी संस्कृति का प्रभाव भी भारतीय संस्कृति पर पड़ा। वे आगे चलकर आर्यों मे घुलमिल गए। इनके नाम पर आभीरी नाम की एक अपभ्रंश (प्राकृत) भाषा भी थी।

यौ०--आभीरपल्ली = अहीरों का गाँव। ग्वालों की बस्ती।

२ एक देश का नाम। ३ एक छंद जिसमें ११ मात्राएँ होती हैं और अंत में जगण होता है। जैसे,--यहि विधि श्री रघुनाथ। गहे भरत के हाथ। पूजत लोग अपार। गए राज दरबार। ४ एक राग जो भैरव राग का पुत्र कहा जाता है।

आभीरक[1]--वि० [सं०] आभीर या अहीर संबंधी [को०]।

आभीरक[2]--संज्ञा पुं० १ आभीर या अहीर जाति। २ आभीर या अहीर जाति का कोई सदस्य [को०]।

आभीरनट--संज्ञा पुं०[सं०]एक संकर राग जो नट और आभीर से मिलकर बनता है।

आभीरी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक संकर रागिनी जो देशकार, कल्याण, श्याम और गुर्जरी को मिलाकर बनाई गई है। अबीरी। २ भारतवर्ष की एक प्राचीन भाषा जो ईसवी दूसरी या तीसरी शताब्दी में पंजाब में बोली जाती थी। आगे चलकर ईसवी छठी शताब्दी में यह भाषा अपभ्रंश के नाम से प्रसिद्ध हुई थी। उस समय इस भाषा में साहित्य का भी निर्माण होने लगा था।

आभील--संज्ञा पुं० [सं०] दुख। कष्ट।

आभूत--वि० [सं०] उत्पन्न। अस्तित्ववाला [को०]।

आभूषण--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आभूषित] गहना। जेवर। आभरण। अलंकार। उ०--उधर धातु गलते, बनते हैं आभूषण औ अस्त्र नए।--कामायनी, पृ० १८१।

आभूषन(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आभूषण] दे० 'आभूषण'।

आभृत--वि० [सं०] १ अच्छी तरह से भरा हुआ। २ बँधा हुआ। ३ उत्पादित [को०]।

आभेरी--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी [को०]।

आभोग--संज्ञा [सं०] १ रूप की पूर्णता। रूप में कोई कसर न रहना। किसी वस्तु को लक्षित करनेवाली सब बातों की विद्यमानता। जैसे--यहाँ आभोग से वस्ती का पास होना जाना जाता है। २ किसी पद्य के बीच में कवि के नाम का उल्लेख। ३ वरुण का छत्र। ४. सुख आदि का पूरा अनुभव।

आभोजी--वि० [सं० आभोजिन्] खानेवाला [को०]।

आभ्यंतर--वि० [सं० आभ्यंतर] भीतरी। अंतर का। उ०--काव्य का आभ्यंतर स्वरूप या आत्मा भाव या रस है।--रस०, पृ० १०५।

यौ०--आभ्यंतर तप = भीतरी तपस्या। यह तपस्या छह प्रकार की होती है--(१) प्रायश्चित, (२) वैयावृत्ति, (३) स्वाध्याय, (४) विनय, (५) व्युत्सर्ग और (६) शुभ ध्यान।

आभ्यंतरप्रातिथ्य--संज्ञा पुं० [सं० आभ्यन्तर प्रातिथ्य] देश के भीतर आया हुआ विदेशी माल।

आभ्यंतरकोप--संज्ञा पुं०[सं० आभ्यन्तरकोप] मंत्री, पुरोहित, सेनापति युवराज आदि का विद्रोह (को०)।

आभ्यंतरिक--वि० [सं० आभ्यन्तरिक] अंतरंग। भीतरी।

आभ्युदयिक[1]--वि०[सं०]अभ्युदय संबंधी। मंगल या कल्याण संबंधी।

आभ्युदयिक[2]--संज्ञा पुं०[सं०]एक श्राद्ध जिसे नांदीमुख भी कहते हैं।

विशेष--इस श्राद्ध में दही, बेर और चावल को मिलाकर पिंड देते हैं और इसमें माता, दादी और परदादी को पहले तीन पिंड देकर तब बाप, दादा, परदादा, मातामह और वृद्ध प्रमातामह आदि को पिंड देते हैं। इनके अतिरिक्त तीनों पक्षों के नीस विश्वेदेवा होते हैं। उन्हें भी पिंड दिया जाता है। यह श्राद्ध पुत्रजन्म, जनेऊ और विवाह आदि शुभ अवसरों पर होता है। इसमें यज्ञ करनेवाले को अपसव्य नहीं होना पड़ता।

आमंजु--वि० [सं० आमञ्जु] अच्छा। मनोरम [को०]।

आमंत्रण--संज्ञा पुं० [सं० आमन्त्रण] [आमंत्रित] १ संबोधन। बुलाना। पुकारना। आह्वान। २ निमंत्रण। न्योता। बुलावा। उ०--खुले मसृण भुजमूलों से वह आमंत्रण था मिलता।--कामायनी, पृ० १२५।

आमंत्रयिता--संज्ञा पुं० [सं० आमन्त्रयितृ] वह जो निमंत्रण देता है [को०]।

आमंत्रित--वि०[सं०आमन्त्रित]१ बुलाया हुआ। पुकारा हुआ। २. निमंत्रित। न्योता हुआ। उ०--विस्तृत वसुधा की विभुता कल्याणसंघ की जन्मभूमि आमंत्रित करती आई थी।--लहर, पृ० ३३।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

आमंद्र[1]--वि० [सं० आमन्द्र] थोड़ा गंभीर स्वरवाला [को०]।

आमंद्र--संज्ञा पुं० थोड़ा गंभीर स्वर [को०]।

आम्--अव्य०[सं०] अंगीकार, स्वीकृति और निश्चयसूचक शब्द। हाँ। इसका प्रयोग नाटकों की बोलचाल में अधिक है।

आम[1]--संज्ञा पुं० [सं० आम्र] एक बड़ा पेड़ और उसका फल। रसाल।

विशेष--यह वृक्ष उत्तर पश्चिम प्रांत को छोड़ और सारे भारत वर्ष में होता है। हिमालय पर भूटान से कुमाऊँ तक इसके जंगली पेड़ मिलते हैं। इसकी पत्तियाँ लंबी लंबी गहरे हरे रंग की होती हैं। फागुन के महीने में इसके पेड़ मंजरियों या मौरों से लद जाते हैं, जिनकी मीठी गंध से दिशाएँ भर जाती हैं। चैत के आरंभ में मौर झड़ने लग जाते हैं और 'सरसई' (सरसों के बराबर फल) बैठने लगते हैं। जब बच्चे फल बेर के बराबर हो जाते हैं, तब वे 'टिकोरे' कहलाते हैं। जब वे पूरे बढ़ जाते हैं और उनमें जाली पड़ने लगती है, तब उन्हें 'अँबियाँ' कहते हैं। फल के भीतर एक बहुत कड़ी गुठली होती है जिसके ऊपर कुछ रेशेदार गूदा चढ़ा रहता है। कच्चे फल का गूदा सफेद और कड़ा होता है और पक्के फल का गीला और पीला। किसी किसी में तो बिलकुल पतला रस निकलता है। अच्छी

जाति के कलमी श्रामो की गुठली वहुत पतली होती है श्रौर उनका गूदा वँधा हुश्रा, गाढा तथा विना रेशे का होता है। श्राम का फल खाने मे वहुत मीठा होता है। पक्के श्राम श्रापाढ से भादो तक वहुतायत मे मिलते हैं।

केवल वीज से जो श्राम पैदा किए जाते हैं उन्हे 'वीजू' कहते हैं। ये उतने श्रच्छे नही होते। इसी से श्रच्छे श्राम कलम श्रौर पैवंद लगाकर उत्पन्न किए जाते हैं, जो 'कलमी' कहलाते हैं। पैवद लगाने की यह रीति है कि पहले एक गमले मे वीज रखकर पौधा उत्पन्न करते हैं। फिर उस पौधे को किसी श्रच्छे पेड के पास ले जाते है श्रौर उसकी डाल उस श्रच्छे पेड की डाल से वाँध देते हैं। जव दोनो की डाल विलकुल एक होकर मिल जाती है, तव गमले के पौधे को श्रलग कर लेते हैं। इस प्रक्रिया मे गमलेवाले पौधे मे उस श्रच्छे पौधे के गुण श्रा जाते हैं। दूसरी युक्ति यह है कि श्रच्छे श्राम की डाल को काटकर किसी वीजू पौधे के ठूँठे मे ले जाकर मिट्टी के साथ वाँध देते हैं। श्राम के लिये हड्डी की खाद वहुत उपकारी होती है।

श्राम के वहुत भेद हैं, जैसे, मालदह, ववइया, दशहरी मकेंदा, चौसा, श्रलफाजो लँगडा, सफेदा, कृष्णभोग, रामकेला इत्यादि। भारतवर्ष मे दो स्थान श्रामो के लिये वहुत प्रसिद्ध हैं--मालदह (वगाल मे) श्रौर मभगाँव (ववई मे)। मालदह श्राम देखने मे वहुत वडा होता है, पर स्वाद मे फीका होता है। ववइया श्राम मालदह से छोटा होता है, पर खाने मे वहुत मीठा होता है। लँगडा श्राम देखने मे लवा सा होता है श्रौर सवसे मीठा होता है। वनारस का लँगडा प्रसिद्ध है। लखनऊ का सफेदा भी मिठास मे श्रपने ढग का एक है। इसका छिलका सफेदी लिए होता है, इसी से इसे सफेदा कहते हैं। जितने कलमी श्रौर श्रच्छे श्राम हैं, वे सव छुरी से काटकर खाए जाते है।

श्राम के रस को रोटी की तरह जमाकर श्रवँसठ या श्रमावट वनाते हैं। कच्चे श्राम का पन्ना लू लगने की श्रच्छी दवा है। कच्चे श्रामो की चटनी वनती है तथा श्रचार श्रौर मुरव्वा भी पडता है। श्राम की फाँको को खटाई के लिये सुखाकर रखते हैं जो श्रमहर के नाम से विकती है। इसी श्रमहर के चूर को श्रमचूर कहते हैं।

श्राम की लकडी के तख्ते, किवाड़, चौखट श्रादि भी वनते हैं, पर उतने मजवूत नही होते। इसकी छाल श्रौर पत्तियो से एक प्रकार का पीला रग निकलता है। चौपायो को श्राम की पत्ती खिलाकर फिर उनके मूत्र को इकट्ठा करके प्योरी रग वनाते हैं।

पर्या०--चूत। रसाल। श्रतिसौरभ। सहकार। माकंद।

यौ०--श्रमचूर। श्रमहर।

मुहा०--श्राम के श्राम, गुठली के दाम = दोहरा लाभ उठाना। श्राम खाने से काम या पेड गिनने से = इस वस्तु से श्रपना काम निकालो इसके विषय मे निरर्थक प्रश्न करने से क्या प्रयोजन। वारो मे वारह श्राम सट्टी मे श्रट्ठारह श्राम = जहाँ चीज महँगी मिलनी चाहिए, वहाँ उस स्थान से भी सस्ती मिलना जहाँ साधारणत वह चीज सस्ती विकती है। (यह ऐसे श्रवसर पर कहा जाता है जव कोई किसी वस्तु का इतना कम दाम लगाता है जितने पर वह वस्तु जहाँ पैदा होती है, वहाँ भी नही मिल सकती।)

श्राम²--वि० [सं०] कच्चा। श्रपक्व। श्रसिद्ध। उ०--विगरत मन सन्यास लेत जल नावत श्राम घरो सो।--तुलसी ग्र०, पृ० ५४५।

श्राम³--सज्ञा पुं० [सं०] १ खाए हुए श्रन्न का कच्चा, न पचा हुश्रा मल जो सफेद श्रौर लसीला होता है।

यौ०--श्रामातिसार।

२ वह रोग जिसमे श्राँव गिरती है।

यौ०--श्रामज्वर। श्रामवात।

श्राम⁴--वि० [श्र०] १ साधारण। सामान्य। मामूली। जैसे,--श्राम श्रादमियो को वहाँ जाने की श्रादत नही है। उ०--श्राम लोग उनकी सोहवत को श्रच्छा न समझते थे।--प्रताप० ग्र०, पृ० २७५।

यौ०--श्रामखास = महलो के भीतर का वह भाग जहाँ राजा या वादशाह वैठते हैं। दरवार श्राम = वह राजसभा जिसमे सव लोग जा सकें। श्रामफहम = जो सर्वसाधारण की समझ मे श्रावे। उ०--इवारत वही श्रच्छी कही जायगी जो श्रामफहम श्रौर खासपसद हो।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०९।

२ प्रसिद्ध। विख्यात। जैसे,--यह वात श्रव श्राम हो गई है, छिपाने से नही छिपती।

विशेप--इस श्रर्थ मे इस शब्द का प्रयोग वस्तु के लिये होता है, व्यक्ति के लिये नही।

श्रामगंधि--सज्ञा स्त्री०[सं० श्रामगन्धि] विसायँध गध, जैसे,--चिता के धूँए या कच्चे मास या मछली की।

श्रामगⓅ--सज्ञा पु० [सं० श्रमार्ग] कुमार्ग। कुराह। उ०--वह पडित श्रौ चतुर परेवा। श्रामग न चलै जानि पति सेवा।--चित्रा०, पृ० १९२।

श्रामगर्भ--सज्ञा पु० [सं०] भ्रूण [को०]।

श्रामचुर--सज्ञा पुं० [सं० श्राम्रचूर्ण, हिं० श्रमचूर, श्रामचुर] दे० 'श्रमचुर'। उ०--खडै कीन्ह श्रामचुर परा। लौग लायची सौं खँडवरा।--जायसी ग्र०, पृ० २४७।

श्रामज्वर--सज्ञा पुं० [सं०] १ वह ज्वर जो श्राँव के कारण हो। २ वह ज्वर जिसमे श्राँव गिरे।

श्रामडा--सज्ञा पुं० [सं० श्राम्रात] एक वडा पेड जिसके फल श्राम की तरह खट्टे श्रौर वडे वेर के वरावर होते हैं, फलो का श्राचार पडता है। इसकी पत्तियाँ शरीफे की पत्तियो से मिलती जुलती होती हैं।

श्रामणदूमण--वि० [सं० उन्मन + दुर्मन, प्रा० उम्मण दुमन, राज० श्रामण दूमणो] उदास। खिन्न। उद्विग्नमन। उ०--साहिव हँमउ न वोलिया, मुझसूँ रीस ज श्राज। श्रतरि श्रामण दूमणा, किसउज इवडउ काज--ढोला०, दू० २१८।

श्रामद--सज्ञा स्त्री० [फा०] १ श्रवाई। श्रागमन। श्राना।

यौ०--श्रामदरफ्त = श्राना जाना। श्रावागमन।

मुहा०—आमद आमद होना=(१) आने के समय अत्यत निकट होना। (२) आने की खबर फैलना या धूम होना।

२ आय। आमदनी। उ०—इन्ने थोडी आमद मे अपने घर का प्रवध बहुत अच्छा वांध रक्खा है। —श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३०४।

आमदनी—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ आय। प्राप्ति। आनेवाला धन। उ०—इन्की आमदनी मामूली नही है, तथापि जितनी आमदनी आती है उससे खर्च कम किया जाता है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३०४। २ व्यापार की वस्तु जो और देशो से अपने देश मे आवे। रफ्तनी का उलटा।

आमन—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ वह भूमि जिसमे साल भर मे केवल एक ही फसल उत्पन्न हो। २ वगाल के धान की जाडे की फसल।

आमनघूमनाⓅ—वि० [हिं०] दे० 'आमण दूमण'। उ०—यह मन आमनघूमना, मेरो तन छीजत नित जाई।—कबीर ग्र०, पृ० १६०।

आमनस्य—सज्ञा पुं० [सं०] अनमनापन। दुख। रज।

आमनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० आवना] दे० 'आना'।

आमनाय—सज्ञा पुं० [पु० आम्नाय] दे० 'आम्नाय'।

आमनासामना—सज्ञा पुं० [आमना=सामना का अनु०+हिं० सामना] मुकावला। भेंट। जैसे,—इस तरह झगडा न मिटेगा। तुम्हारा उनका आमना सामना हो जाय।

आमनी—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ वह भूमि जिसमे जाडे का धान बोया जाता है। २ जाडे मे वोए जानेवाले धान की खेती।

आमनेसामने—क्रि० वि० [आमने=सामने का अनु०+हिं० सामने] एक दूसरे के समक्ष। एक दूसरे के मुकाविले। इस प्रकार जिसमें एक का प्रमुख या अग्रभाग दूसरे के मुख या अग्रभाग की ओर हो। इस प्रकार जिसमे एक वस्तु के अग्रभाग से खीची हुई सीधी रेखा पहले पहल दूसरी वस्तु के अग्रभाग ही को स्पर्श करे। जैसे,—सभा के वीच वे दोनो प्रतिद्वंदी आमने सामने वैठे। (ख) वे दोनो मकान आमने सामने हैं, सिर्फ एक सडक वीच मे पडती है।

आमय—सज्ञा पुं० [सं०] रोग। व्याधि। वीमारी। आरजा।

आमयावी—वि० [स० आमयाविन्] १ रोगी। २ मदाग्नि रोग से पीडित [को०]।

आमरक्तातिसार—सज्ञा पुं० [स०] आंव और लहू के साथ दस्त होने का रोग।

आमरखⓅ—सज्ञा पुं० [स० आमर्ष] दे० 'आमर्ष'।

आमरखनाⓅ—क्रि० अ० [स० आमर्ष=क्रोध, हिं० आमरख+ना (प्रत्य०)] क्रुद्ध होना। दुखपूर्वक क्रोध करना। उ०—(क) सुनि आमरखि उठे अवनीपति लगे वचन जनु तीर।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तव विदेह पन वदिन प्रगट सुनायो। उठे भूप आमरखि सगुन नहिं पायो।—तुलसी (शब्द०)।

आमरण—क्रि० वि० [स०] मरणकाल तक। जीवन की अवधि तक। मृत्यु पर्यंत।

आमरस—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमरस'।

आमर्दकी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. आमलकी। आमला। आंवला। २. फाल्गुन शुक्ला एकादशी का नाम।

आमर्दन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आमर्दित] १. जोर से मलना। २ खूब पीसना या रगडना।

आमर्ष—सज्ञा पुं० [सं०] १ क्रोध। कोप। गुस्सा। उ०—आमर्ष को जगानेवाली शिखा नई दे।—माम० पृ० ५७। २. असहनशीलता। ३ रस मे एक सचारी भाव। दूसरे का अहकार न सहकर उसको नष्ट करने की इच्छा।

आमलक—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अल्पा० आमलकी] आमला। आंवला। धात्रीफल। उ०—जानहिं तीनि काल निज ज्ञाना। करतलगत आमलक समाना।—मानस, ११३०।

आमलकी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ छोटी जाति का आंवला। आंवली। २ फागुन सुदी एकादशी।

आमला†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आंवला'।

आमलेट—सज्ञा पुं० [अ०] अडे का वना नमकीन पदार्थ। उ०—चाय आमलेट उडाने मे ही कितने रुपए खर्च कर देते हैं।—सन्यासी, पृ० १७४।

आमवात—सज्ञा पुं० [स०] एक रोग जिसमे आंव गिरती है और जोडों मे पीडा तथा हाथ पैर मे सूजन हो जाती है मुँह भी सूज जाता है और शरीर पीला पड जाता है। यह रोग मदाग्निवाले को अजीर्ण मे भोजन करने से होता है।

आमशूल—सज्ञा पुं० [सं०] आंव मरोडे का रोग। आंव के कारण पेट मे मरोड होने का रोग।

आमश्राद्ध—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का श्राद्ध जिसमे पिंडदान के वदले मे व्राह्मणो को कच्चा अन्न दिया जाता है।

आमाँ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवाँ'।

आमाजीर्ण—सज्ञा पुं० [स०] आंव का अजीर्ण। कच्चा अनपच। तुखमा। इस रोग मे खाया हुआ अन्न ज्यों का त्यो गिरता है।

आमातिसार—सज्ञा पुं० [स०] आंव के कारण अधिक दस्तों का होना। आंव मुरेडे के दस्त।

आमात्य—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमात्य'।

आमादगी—सज्ञा स्त्री० [फा०] तैयारी। मुस्तैदी। मौजूदगी। तत्परता।

आमादा—वि० [फा० आमादह्] उद्यत। तत्पर। उतारू। तैयार। सनद्ध। उ०—आज खुदकुशी करने पर आमादा है आकाश।—ठडा०, पृ० ६३।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आमानाह—सज्ञा पुं० [स०] आंव के कारण पेट का फूलना। आंव का अफरा।

आमान्न—सज्ञा पुं० [स०] कच्चा अन्न। विना पका अनाज। कोरा अन्न। सूखा अनाज।

आमाल—सज्ञा पुं० [अ०] कर्म। करनी। करतूत।

यौ०—आमालनामा।

आमालक—सज्ञा पुं०[स० आ+माल या देश०]पहाड के पास की भूमि।

आमालनामा—सज्ञा पुं० [अ० आमाल+फा० नामा] वह रजिस्टर जिसमे नौकरो की चालचलन और कार्य करने की योग्यता आदि का विवरण रहता है।

आमावास्य—वि॰ [स॰] अमावस्या से संबंधित [को॰]।

आमाशय—संज्ञा पुं॰ [स॰] पेट के भीतर की वह थैली जिसमे भोजन किए हुए पदार्थ इकट्ठे होते और पचते हैं।

विशेष—सुश्रुत मे इसका स्थान नाभि और छाती के बीच मे लिखा है, पर वास्तव मे इस थैली का चौड़ा हिस्सा छाती के नीचे बाईं ओर होता है और क्रमश पतला होता हुआ दाहिनी ओर को घुमाव के साथ यकृत के नीचे तक जाता है। यह थैली झिल्ली और मास की होती है। इसके ऊपर बहुत से छोटे छोटे बारीक गड्ढे $\frac{1}{100}$ इंच से $\frac{?}{200}$ इंच तक के व्यास के होते हैं, जिनमे पाचन रस भरा रहता है। इस थैली मे पहुँच कर भोजन बराबर इधर उधर लुढ़का करता है जिसमे उसके हर एक अंश मे पाचन रस लगता है। इसी पाचन रस और पित्त आदि की क्रिया से खाए हुए पदार्थ का रूपातर होता है, जैसे पित्त मे मिलकर दूध पेट मे जाते ही दही की तरह जम जाता है।

आमाहल्दी—संज्ञा स्त्री॰ [स॰ आम्रहरिद्रा] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ रंग मे हल्दी की तरह और गंध मे कचूर की तरह होती है। यह बंगाल के जगलों मे बहुत जगह आपसे आप होती है। यह चोट पर बहुत फायदा करती है।

आमिक्षा—संज्ञा स्त्री॰ [स॰] फटा हुआ दूध। छेना। पनीर।

आमिख—संज्ञा पु॰ [स॰ आमिष] दे॰ 'आमिष'।

आमिन—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ आम] अवध मे आम की एक जाति जिसके फल सफेदे की तरह मीठे पर बहुत छोटे होते हैं।

आमिर(पु)—संज्ञा पुं॰ [अ॰] हाकिम। अधिकारी। उ॰—नव नागरितन मुलुकु लहि जोवन आमिर जोर। घटि वढि तें वढि घटि रकम करी और की और।—बिहारी र॰, दो॰ २२०।

आमिल[1]—संज्ञा पु॰ [अ॰] १. काम करनेवाला। अनुष्ठान करने वाला। २. कर्तव्यपरायण। ३. अमला। कर्मचारी। ४. हाकिम। अधिकारी। उ॰—लिये सकल सुख छीन, विरहा आमिल आइके।—नट॰, पृ॰ १०१। ५. ओझा। सयाना। ६. पहुँचा हुआ फकीर। सिद्ध।

आमिल[2](पु)—वि॰ [स॰ अम्ल] खट्टा। अम्ल। उ॰—अहै सो कडुआ अहै सो मीठा। अहै सो आमिल अहै सो सीठा।—जायसी (शब्द॰)।

आमिश्रा—संज्ञा स्त्री॰[स॰] वह भूमि या राज्य जिसमे राजभक्त और राजद्रोही समान रूप से हों।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि राजभक्त जनता के सहारे ही आमिश्रा भूमि पर शासन किया जाय।

आमिष—संज्ञा पुं॰ [स॰] १ मास। गोश्त। उ॰—उनकी आमिष-भोगी रसना आँखों से कुछ कहती।—कामायनी, पृ॰ १११।

यौ॰—आमिषप्रिय। आमिषाशी। आमिषाहारी। निरामिष।

२ भोग्य वस्तु। ३ लोभ। लालच। ४ वह वस्तु जिससे लोभ उत्पन्न हो। ५ जँबीरी नीबू।

आमिषप्रिय[1]—वि॰ [स॰] जिसे मास प्यारा हो।

आमिषप्रिय[2]—संज्ञा पुं॰ गिद्ध, चील और बाज आदि पक्षी जो मांस पर टूटते हैं।

आमिषभोगी—वि॰ [स॰ आमिष+भोगी] मासभक्षी। उ॰—केते न रक्त प्रसूननि देख फिरे खग आमिषभोगी भुलाने।—भिखारी ग्र॰, भा॰ (?) पृ॰ ८०।

आमिषाशी—वि॰ [स॰ आमिषाशिन्] [वि॰ स्त्री॰ आमिषाशिनी] मांस भक्षक। मास खानेवाला।

आमिषी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] जटामासी। बालछड़।

आमी—अव्य॰ [इब॰] एवमस्तु। ऐसा ही हो।

मुहा॰—आमीं आमीं करनेवाले = हां मे हां मिलानेवाले। खुशामदी।

आमी[1]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ आम] १ छोटा आम। अँबिया। उ॰—आई उघरि प्रीति कलई सी जैसी खाटी आमी। सूर इते पर अनखनि मरियत ऊधो पीवत मामी।—सूर॰, १०।४२४७। २ एक पेड जो कद मे बहुत छोटा होता है। तुंगा। मान।

विशेष—हर साल शिशिर ऋतु मे इसके पत्ते झड़ जाते हैं। इसके हीर की लकडी स्याही लिए हुए पीली तथा बडी मजबूत और कडी होती है। इससे सजावट की अनेक चीजें बनाई जाती हैं। हिमालय के पहाडी लोग इसकी पतली टहनियों की टोकरियां बनाते हैं। शिमला, हजारा तथा कुमाऊँ के पहाडों मे यह वृक्ष अधिकतर पाया जाता है।

आमी[2]—संज्ञा स्त्री॰ [स॰ आम = कच्चा] जौ और गेहूँ की भुनी हुई बाल।

यौ॰—आमी होरा।

आमीलन—संज्ञा पु॰ [स॰] १ आँखें बंद करना। २ बंद करना [को॰]।

आमुक्त—वि॰ [स॰] १ मुक्त किया हुआ। छुटकारा पाया हुआ। २ फेंका हुआ या त्यागा हुआ। ३ स्वीकार किया हुआ। अपनाया हुआ [को॰]।

आमुख—संज्ञा पुं॰ [स॰] नाटक का एक अंग। प्रस्तावना।

आमुखता—संज्ञा पुं॰ [फा॰ आमोख्तह्] दे॰ 'आमोखता'। उ॰—(क) कुछ दिन कही जाकर आमुखता सुनाइए, तब कही आकर बातें बनाइए।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ २९९। (ख) कोउ आमुखता पढत जोर सौं सोर मचावत।—प्रेमघन॰, भा॰ १, पृ॰ २०।

आमुचे(पु)†—सर्व॰ [मरा॰ आमूचा = हमारा] हमारे। उ॰—तुम्ही आमुचे देव, तुम्ही आमुचे ध्यान।—दादू॰ बा॰, पृ॰ १७४।

आमुष्मिक—वि॰ [सं॰] [वि॰ स्त्री॰ आमुष्मिकी] पारलौकिक। परलोक सबधी।

आमूल—क्रि॰ वि॰ [स॰] आरंभ से अंत तक। आद्यंत। उ॰—देखा विवाह आमूल नवल। तुझ पर शुभ पटा कलश का जल।—अनामिका, पृ॰ ३२।

आमेज—वि॰ [फा॰ आमेज] मिला हुआ। मिश्रित।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय यौगिक शब्द बनाने के लिये होता है, जैसे,—दर्दआमेज। पनियामेज (दही वा अफीम)।

आमेजना—क्रि॰ स॰ [फा॰ आमेज + हिं॰ ना (प्रत्य॰)] मिलाना। सानना। उ॰—भीजी अरगजे मे भई ना मरगजे सजी आमेजे सुगंध सेजैं तजी शुभ्र शीत रे।—देव (शब्द॰)।

आमेजिश—संज्ञा स्त्री० [फा० आमेजिश] मिलावट। मिश्रण। मेल

आमेर—संज्ञा पुं० [स० अम्बर] राजपूताने का एक नगर जो जयपुर के पास है और जहाँ पहले राजधानी थी।

आमोख्ता—संज्ञा पुं० [फा० आमोख्तह] पढे हुए को अभ्यास के लिये फिर पढना। उद्धरणी।

क्रि० प्र०—करना।—पढना।—फेरना। सुनाना।

आमोचन—संज्ञा पुं० [स०] बंधनहीन करना। मुक्त करना [को०]।

आमोद—संज्ञा पुं० [स०][वि० आमोदित, आमोदी] १ आनंद। हर्ष। खुशी। प्रसन्नता। उ०—हाँ झूमता है चित्त के आमोद के आवेग मे।—कानन०, पृ० ५३। २ दिलबहलाव। तफरीह। ३. दूर से आनेवाली महक। सुगंध। उ०—कमल तजि तन रुचत नाही आक कौं आमोद।—सूर०, १०।४५३५। ४ शतावर।

यौ०—आमोदप्रमोद। आमोदयात्रा = मन बहलाने की दृष्टि से यात्रा।

आमोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुगंधित करना। वासना। २ दे० 'आमोद' [को०]।

आमोदप्रमोद—संज्ञा पुं० [सं०] भोगविलास। सुख चैन। हँसी खुशी।

आमोदित—वि० [स०] १ प्रसन्न। खुश। हर्षित। २ दिल लगा हुआ। जी बहला हुआ। ३ सुगंधित। उ०—और चंदन कर्पूरादि की सुगंध से घ्राणेंद्रिय तथा मस्तिष्क आमोदित हो जाता है।—प्रताप ग्र०, पृ० ५१५।

आमोदी—वि० [स० आमोदिन्] प्रसन्न रहनेवाला। खुश रहनेवाला।

आमोष—संज्ञा पुं० [स०] [वि० आमोषी] चुराना। अपहरण। छीनना [को०]।

आमोषी—संज्ञा पुं० [सं० आमोषिन्] तस्कर। चोर [को०]।

आम्नात¹—वि० [स०] विचारा हुआ। कहा हुआ। २ दुहराया हुआ। पढा हुआ। ३ याद किया हुआ। स्मरण किया हुआ। ४ ग्रंथोक्त। शास्त्रोक्त। ५ पवित्र ग्रंथादि के रूप मे परंपरागत [को०]।

आम्नात²—संज्ञा पुं० [स०] अध्ययन [को०]।

आम्नाय—संज्ञा पुं० [स०] १ अभ्यास।

यौ०—अक्षराम्नाय = वर्णमाला। कुलाम्नाय = कुलपरंपरा। कुल की रीति।

२ वेद आदि का पाठ और अभ्यास। ३. वेद।

आम्म—संज्ञा पुं० [देश०] नेवले के प्रकार का एक जंतु।

आम्र—संज्ञा पुं० [स०] १ आम का पेड। २ आम का फल।

यौ०—आम्रवन = आम का वन।

आम्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत जिसे अमरकटक कहते हैं।

आम्रगंधक—संज्ञा पुं० [स० आम्रगन्धक] एक पौधा। समष्ठिल [को०]।

आम्रात, आम्रातक—संज्ञा पुं० [स०] आमडे का पेड और फल।

आम्ल¹—वि० [स०] अम्लसंबंधी [को०]।

आम्ल²—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री० आम्ला] १ खट्टापन। २ इमली [को०]।

आम्लवेतस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लवेतस'।

आम्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

आयँतीपायँती—संज्ञा स्त्री० [फा० पायताना अथवा स० आदिन + पादत] सिरहाना पायताना। उ०—आयँती की छडियाँ पायँती और पायँती की आयँती।—(शब्द०)।

आयद—वि०, क्रि० वि० दे० 'आइंदा'। उ०—इनके दिन पर पूरा असर न हुआ तो, आयद बड़ी खराबी की सूरत पैदा होगी।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३१।

आयंदा—वि०, क्रि० वि० दे० 'आइंदा'।

आय¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आमदनी। आमद। लाभ। प्राप्ति। धनागम।

यौ०—आयव्यय।

२ जन्मकुंडली मे ११ वाँ स्थान। ३ आगमन। आना (को०) ४ अंतःपुररक्षक (को०)।

आय² ⓟ—संज्ञा स्त्री० [स० आयु] दे० 'आयु'। उ०—धन्य ते जे मीन से अवधि अंबु आय है।—तुलसी ग्र०, पृ० ३३७।

आय³—क्रि० अ० [स० अस् = होना] पुरानी हिंदी के 'आमना' या 'आहना' (होना) क्रिया का वर्तमानकालिक रूप। (शुद्ध शब्द 'आहि' है)।

आयत¹—वि० [स०] विस्तृत। लंबा चौडा। दीर्घ। विशाल। उ०—सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उर भूषन राजे।—मानस, १।३२७।

आयत²—संज्ञा स्त्री० [अ०] इंजील का वाक्य। कुरान का वाक्य। उ०—पुनि उसमान मंडित बड गुनी। लिखा पुरान जो आयत सुनी।—जायसी ग्र०, पृ० ५।

आयतच्छदा—संज्ञा स्त्री० [स०] कदली। केला [को०]।

आयतन—संज्ञा पुं० [स०] १ मकान। घर। मंदिर। २ विश्रामस्थान। ठहरने का जगह। ३ देवताओं की वंदना की जगह।

यौ०—रामपंचायतन = जानकी सहित राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की मूर्ति।

४ ज्ञान के संचार का स्थान। वे स्थान जिनमे किसी काल तक ज्ञान की स्थिति रहती है, जैसे,—इंद्रियाँ और उनके विषय।

विशेष—बौद्धमतानुसार उनके १२ आयतन हैं—(१) चक्षुरायतन, (२) श्रोत्रायतन, (३) घ्राणायतन, (४) जिह्वायतन, (५) कायायतन, (६) मनसायतन, (७) रूपायतन, (८) शब्दायतन, (९) गंधायतन, (१०) रसनायतन, (११) स्प्रोतव्यायतन और (१२) धर्मायतन।

आयतनेत्र—वि० [स०] विशाल नेत्रोवाला। बडी बडी आँखोवाला [को०]।

आयतलोचन—वि० [स०] दे० 'आयतनेत्र' [को०]।

आयति—संज्ञा स्त्री० [स०] भावी आय। आगे होनेवाली आमदनी [को०]।

आयत्त—वि० [स०] [संज्ञा आयत्ति] अधीन। वशीभूत।

आयत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधीनता। परवशता।

आयद—वि० [अ०] आरोपित। लगाया हुआ। जैसे,—तुम पर कई जुर्म आयद होते हैं।

क्रि० प्र० —करना ।—होना ।

आयमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ लंबाई । विस्तार । २ नियमन । ३. तानने या खींचने की क्रिया (जैसे धनुष को) । [को०]

आयमा—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह भूमि जो इमाम या मुल्ला को बिना लगान या थोड़े लगान पर दी जाय ।

आयवस—संज्ञा पुं० [सं०] १ पशुओं के चरने के लिये घास का मैदान । २ पशुओं को खिलाने का स्थान [को०] ।

आयव्यय—संज्ञा पुं० [सं०] जमाखर्च । आमदनी और खर्च । (को०)

आयस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आयसी] लोहा । १ लोहा २ लोहे का कवच । ३ अगर नाम की लकड़ी । ४ रत्न । मणि ।

आयस[2] Ⓤ—संज्ञा स्त्री० [स० आयसु] १ आदेश । हुक्म । आज्ञा । २ विवाह के अवसर की एक रीति ।

आयसी[1]—वि० [सं० आयसीय] लोहे का । आहनी । उ०—मंजूषा आयसी कठोरा । बंदि सृंखला लगी चहुँ ओरा ।—रघुराज (शब्द०) ।

आयसी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कवच । जिरहबख्तर ।

आयसीय—वि० [सं०] लोहे का । लौह का बना हुआ [को०] ।

आयसु Ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं०] आज्ञा । हुक्म । उ०—प्रभु अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३५६ ।

आया[1]—क्रि० अ० [हिं० आना] आना क्रिया का भूतकालिक रूप ।

आया[2]—संज्ञा स्त्री० [पुर्त०] अँगरेजों के बच्चों को दूध पिलाने और उनकी रक्षा करनेवाली स्त्री । धाय । धात्री ।

आया[3]—अव्य० [फ़ा०] क्या । जैसे— आया तुमने यह काम किया है या नहीं ।

आयात—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु या माल जो व्यापार के लिये विदेश से अपने देश में लाया या मँगाया गया हो । आगत । जैसे,—आयात व्यापार ।

यौ०—आयातकर=आयात वस्तुओं पर लगानेवाला महसूल ।

आयाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आगमन । २. पास आना [को०] ।

आयान—संज्ञा पुं० [सं०] १ आना । २ प्रकृति । स्वभाव । आदत [को०] ।

आयाम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ लंबाई । विस्तार । २ नियमित करने की क्रिया । नियमन ।

यौ०—प्राणायाम=प्राणवायु को नियमित करने की क्रिया ।

आयाम[2]—क्रि० वि० एक पहर तक ।

आयास—संज्ञा पुं० [सं०] परिश्रम । मेहनत ।

यौ०—अनायास ।

आयासक—वि० [सं०] १ परिश्रम करानेवाला । थकानेवाला २. कष्टकारक [को०] ।

आयासी—वि० [सं० आयासिन्] १ जिसने परिश्रम किया हो । थका हुआ । २ प्रयास में लगा हुआ । परिश्रमी [को०] ।

आयु शेष—संज्ञा पुं० [सं० आयुस्+शेष] आयु का शेष भाग [को०] ।

आयुष्टोम—संज्ञा पुं० [सं० आयुस्+ष्टोम] दीर्घजीवन की प्राप्ति के लिये किया जानेवाला यज्ञविशेष [को०] ।

आयु—संज्ञा स्त्री० [सं०] वय । उम्र । जिंदगी । जीवनकाल ।

क्रि० प्र०—क्षीण होना ।—घटना ।—पूरी होना ।—बढ़ना ।

मुहा०—आयु खुटाना=आयु कम होना । उ०—जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी । सो जानै जनु आयु खुटानी ।—तुलसी (शब्द०) । आयु सिराना=आयु का अंत होना । उ०—जो तैं कही सो सब हम जानी । पुंडरीक की आयु सिरानी ।—गोपाल (शब्द०) ।

आयुक्त[1]—वि० [सं०] १ नियुक्त । २ अधिकारप्राप्त । ३ संयुक्त । सम्मिलित । ४ प्राप्त [को०] ।

आयुक्त[2]—संज्ञा पुं० १ सचिव । मंत्री । २ कारिंदा । ३ कोषाधिकारी । ४. कमिश्नर । [को०] ।

यौ०—उच्चायुक्त=हाई कमिश्नर ।

आयुक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] अधिकारीविशेष [को०] ।

आयुत[1]—वि० [सं०] १ मिश्रित । २ द्रवित । पिघला हुआ [को०] ।

आयुत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] आधा पिघला हुआ नवनीत या मक्खन [को०] ।

आयुतिक—संज्ञा पुं० [सं०] दस हजार सिपाहियों का अध्यक्ष ।

आयुध—संज्ञा पुं० [सं०] हथियार । शस्त्र । उ०—तिन्हके आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर ।—मानस, ३।१३ ।

यौ०—आयुधागार=सिलहखाना । आयुधन्यास ।

आयुधजीवी[1]—वि० [सं० आयुधजीविन्] शस्त्र या हथियार की बदौलत जीविका उपार्जित करनेवाला [को०] ।

आयुधजीवी[2]—संज्ञा पुं० सैनिक । सिपाही [को०] ।

आयुधधर्मिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जयंती वृक्ष [को०] ।

आयुधन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों में पूजन के पहले बाह्यशुद्धि का विधान । इसमें चक्र, गदा आदि आयुधों का नाम ले लेकर एक एक अंग का स्पर्श करते हैं ।

आयुधपाल—संज्ञा पुं० [सं०] शस्त्रागार या सिलहखाने का अधिकारी [को०] ।

आयुधभृत्—वि० [सं०] शस्त्रधारी । हथियारबंद [को०] ।

आयुधशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आयुधागार' [को०] ।

आयुधसहाय—वि० [सं०] जिसका सहायक आयुध या हथियार हो । हथियारबंद [को०] ।

आयुधागार—संज्ञा पुं० [सं०] शस्त्रागार । सिलहखाना [को०] ।

आयुधिक[1]—वि० [सं०] शस्त्र से संबंध रखनेवाला [को०] ।

आयुधिक[2]—संज्ञा पुं० सैनिक । सिपाही [को०] ।

आयुधी—वि० [सं० आयुधिन्] दे० 'आयुधीय' [को०] ।

आयुधीय—संज्ञा पुं० [सं०] १. फौजी सिपाही । २ सैनिक या रंगरूट देनेवाला गाँव [को०] ।

आयुधीयकाय—संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र जिसमें फौज में काम करनेवाले सिपाहियों की संख्या अधिक हो । (को०) ।

आयुर्दाय—संज्ञा पुं० [सं०] १ फलित ज्योतिष में ग्रहों के बलाबल के अनुसार आयु का निर्णय । जैसे अष्टम स्थान में बृहस्पति आयु बढ़ाता है और तीसरे, छठे और ११वें स्थान में राहु, मंगल और शनि आदि पापग्रह आयु बढ़ाते हैं । लग्न या चंद्रमा को यदि मारकेश वा अष्टमेश देखता हो, तो आयु क्षीण होती है । २.आयु । जीवनकाल ।

आयुर्द्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ घृत । घी । २ दवा । औषधि [को०]।

आयुर्बल—संज्ञा पुं० [सं०] आयुष्य । उम्र ।

आयुर्योग—संज्ञा पुं० [सं०] वह ग्रहयोग जिसके अनुसार ज्योतिषी किसी व्यक्ति के विषय में भविष्यकथन करते हैं [को०]।

आयुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आयुर्वेदीय] आयु संबंधी शास्त्र । चिकित्साशास्त्र । वैद्य विद्या ।

विशेष—इस शास्त्र के आदि आचार्य अश्विनीकुमार माने जाते हैं जिन्होंने दक्ष प्रजापति के धड़ में बकरे का सिर जोड़ा था। अश्विनीकुमारों से इंद्र ने यह विद्या प्राप्त की। इंद्र ने धन्वंतरि को सिखाया। काशी के राजा दिवोदास धन्वंतरि के अवतार कहे गए हैं। उनसे जाकर सुश्रुत ने आयुर्वेद पढ़ा। अत्रि और भरद्वाज भी इस शास्त्र के प्रवर्तक माने जाते हैं। चरक की संहिता भी प्रसिद्ध है। आयुर्वेद अथर्ववेद का उपांग माना जाता है। इसके आठ अंग हैं। (१) शल्य (चीरफाड़), (२) शालाक्य (सलाई), (३) कायचिकित्सा (ज्वर, अतिसार आदि की चिकित्सा), (४) भूत विद्या (झाड़-फूँक), (५) कौमारतंत्र (बालचिकित्सा), (६) अगदतंत्र (बिच्छू, साँप आदि के काटने की दवा), (७) रसायन और (८) वाजीकरण। आयुर्वेद शरीर में वात, पित्त, कफ मानकर चलता है। इसी से उसका निदानखंड कुछ संकुचित सा हो गया है। आयुर्वेद के आचार्य ये हैं—अश्विनीकुमार, धन्वंतरि, दिवोदास (काशिराज), नकुल, सहदेव, अर्कि, च्यवन, जनक, बुध, जावाल, जाजलि, पैल, करथ, अगस्त्य, अत्रि तथा उनके छह शिष्य (अग्निवेश, भेड, जातूकर्ण, पराशर, सीरपाणि हारीत), सुश्रुत और चरक।

आयुर्वेदिक—वि० [सं०] १ आयुर्वेद संबंधी । २ आयुर्वेद में होनेवाला [को०]।

आयुर्वेदी¹—संज्ञा पुं० [सं० आयुर्वेदिन्] वैद्य । आयुर्वेदानुसार चिकित्सा करनेवाला व्यक्ति [को०]।

आयुर्वेदी²—वि० आयुर्वेद संबंधी [को०]।

आयुर्वृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आयु की वृद्धि । उम्र बढ़ना [को०]।

आयुष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आयुष्] आयु। उ०—तौ अब नामदेव आयुष तें होइ तुम्हहि प्रभु दाता।—भक्तमाला, (श्री०)। पृ० ४८५।

आयुषमान(पु)—वि० [सं०आयुष्मान्] दे० 'आयुष्मान'। उ०—ताते सरजा विरद सो सोभित सिंह प्रमान। रन-भूसिला सुर्मौसिला, आयुषमान खुमान।—भूषण ग्रं०, पृ० ७।

आयुष्कर—वि० [सं०] आयुवर्धक। उम्र बढ़ानेवाला [को०]।

आयुष्काम—वि०[सं०]लंबी उम्र की कामना रखनेवाला [को०]।

आयुष्कौमारभृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] बच्चों के रोगों का इलाज। बीमार बच्चों की दवा [को०]।

आयुष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो आयु की वृद्धि के लिये किया जाता है।

आयुष्मन्—संज्ञा पुं० [सं०] आयुष्मान् का संबोधन रूप। उ०—कल्याण हो आयुष्मन्, तुम्हारे युवराज अपने अधिकारों से उदासीन हैं।—स्कंद० पृ० ६।

आयुष्मान—वि० [सं० आयुष्मत्, आयुष्मान्] [स्त्री० आयुष्मति] १ दीर्घजीवी। चिरजीवी। २ नाटकों में सूत रथी को आयुष्मान कह कर संबोधन करते हैं। राजकुमारों को भी इसी शब्द से संबोधन करते हैं। ३ फलित ज्योतिष के विष्कुंभ आदि २७ भेदों में से एक।

आयुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] आयु। उम्र।

आयुस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आयुस्] आयु। उ०—आयुस किंकर गण तब पावै।—कबीर सा०, पृ० ४६२।

आयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ साहित्य में विप्रलंभ के दो पक्षों में से प्रथम जिसमें अविवाहित अवस्था में प्रेम हो जाने पर मिलन न होने से विरह दुःख उठाना पड़ता है। पूर्वराग की अवस्था। २ हल या बैलगाड़ी का जुआ। ३ पुष्पादि भेंट करने की क्रिया। ४ किनारा। तट। ५ नियुक्ति। ६ कार्यविशेष को पूर्ण करना। ७. ताल्लुक। संबंध। ८. कमीशन [को०]।

आयोगव—संज्ञा पुं० [सं०] वैश्य स्त्री और शूद्र पुरुष से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति जिसका काम विशेषकर काठ की कारीगरी है। बढ़ई।

आयोजक—वि० आयोजन या व्यवस्था करनेवाला। तैयारी करनेवाला। प्रबंधक [को०]।

आयोजन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आयोजना [वि० आयोजित] १ किसी कार्य में लगाना। नियुक्ति। २. प्रबंध। इंतजाम। सामग्रीसंपादन। ठीक ठाक। तैयारी। उ०—राका रजनी आयोजनरत लोकोत्तर छविशाली।—पारिजात, पृ० १०। ३ उद्योग। ४ सामग्री। सामान।

आयोजित—वि० [सं०] ठीक किया हुआ। तैयार।

आयोधन—संज्ञा पुं० [सं०] १ युद्ध। लड़ाई। २ रणभूमि। लड़ाई का मैदान।

आरंजित—वि० [सं० आरञ्जित] सम्यक् रूप से रंजित। अच्छी तरह रँगा हुआ। उ०—नव नव उषा राग आरंजित मनरंजन वनमाली।—पारिजात, पृ० १०।

आरंभ—संज्ञा पुं० [सं० आरम्भ] किसी कार्य की प्रथमावस्था का संपादन। अनुष्ठान। उत्थान। शुरू। समाप्ति का उलटा। उ०—आरंभ और परिणामों के संबंधसूत्र से बुनते हैं।—कामायनी, पृ० ७५।

क्रि० प्र०—करना। जैसे,—उसने कल से पढ़ना आरंभ किया। —होना। जैसे,—अभी काम आरंभ हुए कै दिन हुए हैं?।

२ किसी वस्तु का आदि। उत्थान। शुरू का हिस्सा। जैसे,—हमने यह पुस्तक आरंभ से अंत तक पढ़ी है। ३. उत्पत्ति। आदि। ४ वध (को०)। ५ गर्व (को०)।

आरंभक—वि० [सं० आरम्भक] आरंभ करनेवाला। श्रीगणेश करनेवाला [को०]।

आरंभण—संज्ञा पुं० [आरम्भण] १ आरंभ करने की क्रिया। आरंभ होने की क्रिया या भाव। २ अधिकार में करना। ३. मूठ (हैंडिल) [को०]।

आरंभत—अव्य० [सं० आरम्भतस्] आरंभ से। मूल से। मूलतः। नए सिरे से [को०]।

आरंभना¹—क्रि० अ० [सं० आरम्भण] शुरू होना।

आरभना[2]--क्रि० स० प्रारंभ या शुरू करना।

आरभनिष्पत्ति--सज्ञा स्त्री० [स०] १ उपलब्धि। माल की मांग पूरी करना। २. माल पैदा करने या बनाने की लागत। [को०]।

आरंभवाद--सज्ञा पुं० [स० आरम्भवाद] न्यायशास्त्र का वह सिद्धांत जिसके अनुसार विश्वसृष्टि परमाणुओं के योग से परमात्मा के इच्छानुसार हुई [को०]।

आरभशूर--वि० [सं० आरम्भशूर] किसी काम को ठान देने में आगे रहनेवाला। उ०--अपने सहयोगियों में हास्यास्पद बन जाएँगे, आरभशूर कहवाय लेंगे।--प्रताप ग्र०, पृ० ७१२।

आरंभिक--वि० [सं० आरम्भिक] आरंभ से संबंध रखनेवाला। शुरू का [को०]।

आरंभी--वि० [स० आरम्भिन्] १ आरंभ करनेवाला। २ नए और कठिन काम को करने के लिये सर्वप्रथम बढनेवाला।

आर[1]--सज्ञा पुं० [सं०, तुल० अ० 'ओर'] १ वह लोहा जो खान से निकाला गया हो, पर साफ न किया गया हो। एक प्रकार का निकृष्ट लोहा। २ पीतल। ३ किनारा। ४ कोना।

यौ०--द्वादशार चक्र। षोडशार चक्र।

विशेष--इस प्रकार के द्वादश कोण और षोडश कोण के चक्र बनाकर तांत्रिक लोग पूजन करते हैं।

५ पहिए का आरा। ६ हरताल।

आर[2]--सज्ञा स्त्री० [स० अल=डंक] १ लोहे की पतली कील जो सौंटे या पैने में लगी रहती है। अनी। पैनी। २ नर मुर्गे के पंजे का कांटा जिससे लडते समय वे एक दूसरे को घायल करते हैं। ३ बिच्छू, भिड और मधुमक्खी आदि का डंक। उ०--बीछी आर सरिस टेई मूछें सबही की।--प्रेमघन, भा० १, पृ० ८०।

आर[3]--सज्ञा स्त्री०[स० आरा]चमडा छेदने का सूआ या टेकुआ। सुतारी।

आर[4]--सज्ञा पुं० [देश०] १ ईख का रस निकालने का कलछा। पल्ली। तांबी। २ बर्तन बनाने के सांचे में भीतरी भाग के ऊपर मुँह पर रखा हुआ मिट्टी का लोंदा जिसे इस तरह बढाते हैं कि वह अँवठ के चारो ओर बढ आता है।

आर[5]†--सज्ञा पुं० [हिं० अड़] अड। जिद। हठ। उ०--(क) अँखियाँ करत हैं अति आर। सुंदर श्याम पाहुने के मिस मिलि न जाहु दिन चार (शब्द०)।

क्रि० प्र०--करना--जिद करना। उ०--कबहुँक आर करत माखन की कबहुँक मेख दिखाइ बिनानी।--सूर (शब्द०)। --ठानना। उ०--हरीचंद बलिहारी आर नहिं ठानो।--भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४६८।

आर[6]--सज्ञा स्त्री० [अ०] १ तिरस्कार। घृणा।

क्रि० प्र०--करना। जैसे, भले लोग बदचलनों से आर करते हैं।

२ अदावत। बैर जैसे,--न जाने वे हमसे क्यों आर रखते हैं। ३. शर्म। हया। लज्जा। उ०--कुछ तुम्हीं मिलने से बेजार हो मेरे, वर्ना, दोस्ती नग नही, ऐब नही, आर नही।--शेर०, भा० १, पृ० ११०।

क्रि० प्र०--आना। जैसे,--इतने पर भी उसे आर नही आती।

आरक्त[1]--वि० [सं०] १. ललाई लिए हुए। कुछ लाल। २ लाल।

आरक्त[2]--संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन।

आरक्तिम--वि० [सं०] थोडा लाल। हलकी लाली लिए हुए [को०]।

आरक्ष[1]--सज्ञा पुं० [स०] १ रक्षा। २ सैन्य। फौज। ३ हाथी के कुंभ का संधिस्थल [को०]।

आरक्ष[2]--वि० सुरक्षित। सँभालकर रखा हुआ [को०]।

आरक्षक-सज्ञा पुं० [स०] १ पहरेदार। रक्षक। २ सिपाही [को०]।

आरक्षण--सज्ञा पुं० [स०] निर्धारित करना। निश्चित करना। अं० रिजर्वेशन।

आरक्षिक, आरक्षी--सज्ञा पुं० [स०] दे० 'आरक्षक' [को०]।

आरग्वध--सज्ञा पुं० [स०] अमिलतास।

आरचित--वि० [स०] पूर्ण रूप से सज्जित। अच्छी तरह बनाया हुआ [को०]।

आरकेस्ट्रा--सज्ञा पुं० [अं० आरकेस्ट्रा] १ थियेटर आदि में सामने बैठकर बाजा बजानेवालों का दल। २ थियेटर में वह स्थान जहाँ बाजा बजानेवाले एक साथ बैठकर बाजा बजाते हैं। ३ थियेटर में सबसे आगे की सीटें या आसन।

आरजⓊ--वि० [सं० आर्य] दे० 'आर्य'। उ०--फूटहि सों जयचंद बुलायो जवनन भारत धाम। जाको फल अब लौं भोगत सब आरज होत गुलाम।--भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २३६।

आरजपथ--सज्ञा पुं० [स० आर्य+पथ] आर्यमार्ग। सदाचार का मार्ग। उ०--आरजपथ भूली भर्ले बिरम परी हितकद।--घनानंद, पृ० २३८।

आरजा--सज्ञा पुं० [अ० आरिजह] रोग। बीमारी।

आरजू--सज्ञा स्त्री० [फा०] इच्छा। वांछा। जैसे,--(क) मुझे बहुत दिनों से उनके मिलने की आरजू है। (ख) बहुत दिनों के बाद मेरी आरजू पूरी हुई।

यौ०--आरजूमंद।

मुहा०--आरजू बर आना=इच्छा पूरी होना। आशा पूरना। जैसे,--बहुत दिनों से आशा थी, आज मेरी आरज बर आई। आरजू मिटाना=इच्छा पूरी करना। जैसे,--तुम भी अपनी आरजू मिटा लो।

२ अनुनय। विनय। विनती।

आरजूमद--वि० [फा०] इच्छुक। अभिलाषी।

आरट[1]--वि० [सं०] बार बार रट लगानेवाला। शोर करने वाला [को०]।

आरट[2]--सज्ञा पुं० विदूषक [को०]।

आरट्ट--सज्ञा पुं० [सं०] १ पंजाब के उत्तर पूर्व का एक भूभाग। २ आरट्ट के निवासी। ३ आरट्ट जनपद का घोडा [को०]।

आरणⓊ--सज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अहरन'। उ०--जिव आरण लोहा पाहीजै तपै भखै भाखाय।--प्राण०, पृ० २११।

आरणि--सज्ञा पुं० [सं०] जलावर्त। भँवर [को०]।

आरणेय[1]--सज्ञा पुं० [स०] शुकदेव मुनि [को०]।

आरणेय[2]--वि० [स०] १ अरणि नामक यज्ञ से उत्पन्न या संबद्ध [को०]।

आरण्य[1]--वि० [सं०] १ जंगली। बनैला। २ जंगल का। बन का।

यौ०--आरण्य कुक्कुट। आरण्य गान। आरण्य पशु।

आरण्य[2]—संज्ञा पुं० १ दे० 'अरण्य'। २ जंगली पशु। ३ गोमय। गोवर। ४ मेष, वृष सिंह राशियाँ (ज्योतिष)। ५ विना वोए उत्पन्न होनेवाला एक अन्न [को०]।

यौ०—**आरण्यकांड**=रामायण का तृतीय कांड। **आरण्य कुक्कुट**=बनमुर्गा। **आरण्य गान**=सामवाद के चार गानों में एक **आरण्यपर्व**=महाभारत का एक पर्व। **आरण्यपशु**=जंगली पशु। **आरण्यमुद्गा**=एक प्रकार की मूंग [को०]। **आरण्य राशि**=(१) ज्योतिष में सिंह आदि राशियाँ। (२) कर्कराशि का पूर्वार्ध भाग।

आरण्यक[1]—वि० [सं०] [स्त्री० **आरण्यकी**] १ जंगल का। वन का। जंगली। बनैला।

आरण्यक[2]—संज्ञा पुं० वेदों की शाखा का वह भाग जिसमें वानप्रस्थों के कृत्य का विवरण और उनके लिये उपयोगी आदेश है।

विशेष—वैदिक वाङ्मय में संहिताओं के अनंतर के ब्राह्मण ग्रंथों का उत्तरवर्ती वाङ्मय भाग जो उपनिषदों का पूर्ववर्ती है।

यौ०—**आरण्यक संवाद**=आरण्यक ग्रंथों में प्रतिपादित सिद्धांत। उ०—सुनाने आरण्यक संवाद तथागत आया तेरे द्वार। —लहर, पृ० १२।

आरत(पु)—वि० [सं० आर्त] दे० 'आर्त'। उ०—गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुल तिलक नारि-पहिचानी।—मानस, ३।२३।

आरतहर(पु)—वि० [सं० आर्तिहर] दुःख दूर करनेवाला। कष्टहारी। उ०—नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो। मो समान आरत नहि आरतहर तोसो। तुलसी ग्रं०, पृ० ५००।

आरति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विरक्ति। विराग। स्थगन। रोक। २ दे० 'आर्ति'। ३ हठ। जिद। उ०—सौंझहि ते अति ही विरुझान्यौ चंदहि देखि करी अति आरति।—सूर०, १०।२००। ४ अनीति। उ०—नंदघरनि ब्रजनारि विचारति। ब्रजहिं बसत सब जनम सिरानौ ऐसी करि न आरति।—सूर०, १०।४२६।

आरति[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आर्ति] मनोरथ। इच्छा। उ०—मोको आत्मनिवेदन करवाइए और मेरी आरति पूरन करिए। —दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १६।

आरती—संज्ञा स्त्री० [सं० आरात्रिक] १ किसी मूर्ति के ऊपर दीपक को घुमाना। नीराजन। दीप। उ०—चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारी। लिए आरती मंगल थारी।—मानस, १।३०१।

विशेष—इसका विधान यह है कि चार वार चरण, दो वार नाभि, एक वार मुँह के पास तथा सात वार सर्वांग के ऊपर घुमाते हैं। यह दीपक या तो घी से अथवा कपूर रखकर जलाया जाता है। वत्तियों की संख्या एक से कई सौ तक की होती है। विवाह में वर और पूजा में आचार्य आदि की भी आरती की जाती है।

क्रि० प्र०—**उतारना**।—**करना**।

मुहा०—**आरती लेना**=देवता की आरती हो चुकने पर उपस्थित लोगों का उस दीपक पर हाथ फेरकर माथे लगाना।

२ वह पात्र जिसमें घी की वत्ती रखकर आरती की जाती है। ३ वह स्तोत्र जो आरती के समय गाया या पढ़ा जाता है।

आरत्ति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आर्ति] दे० 'आर्त्ति'। उ०—श्री कँधाई जी का स्मरन करि कै वोहोत आरत्ति सो विनती करी।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० १०७।

आरथ—संज्ञा पुं० [सं०] एक बैल या एक घोड़े से चलनेवाला रथ [को०]।

आरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अरण्य] जंगल। वन। उ०—कीन्हेसि साउज आरन रहई। कीन्हेसि पंखि उड़हि जहँ चहई।—जायसी ग्रं०, पृ० १।

आरनाल, आरनालक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कच्चे गेहूँ का खींचा हुआ अर्क। २ काँजी।

आरपार[1]—संज्ञा पुं० [सं० आर=किनारा+पार=दूसरा किनारा] यह किनारा और वह किनारा। यह छोर और वह छोर। अधिक। जैसे,—नाव से उसी नदी का आरपार नहीं दिखाई देता।

विशेष—यह शब्द समाहार द्वंद्व समास है, उसमें इसके साथ एक वचन क्रिया का ही प्रयोग होता है।

आरपार[2]—क्रि० वि० [सं०] एक छोर से दूसरे छोर तक। एक किनारे से दूसरे किनारे तक। जैसे,—(क) इस दीवार में आरपार छेद हो गया है। (ख) आरपार जाने में कितनी देर लगेगी ?

आरफनेज—संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ अनाथ बच्चों की रक्षा या पालन होता है। अनाथालय। यतीमखाना। जैसे,—हिंदू आरफनेज।

आरबल(पु)†, **आरबला**(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयुर्बल'।

आरब्ध—वि० [सं०] आरंभ किया हुआ।

आरब्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुरुआत। आरंभ [को०]।

आरभट—संज्ञा पुं० [सं०] १ साहसी व्यक्ति। २ साहस। बहादुरी। ३ विश्वास [को०]।

आरभटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्रोधादिक उग्र भावों की चेष्टा। उ०—झूठो मन झूठी सब काया, झूठी आरभटी। अरु झूठन को बदन निहारत मारत फिरत नटी।—सूर (शब्द०)। २ एक प्रकार की नृत्यशैली [को०]। ३ नाटक में एक वृत्ति का नाम

विशेष—इस वृत्ति में यमक का प्रयोग अधिक होता है। इसके द्वारा माया, इंद्रजाल, संग्राम, क्रोध, आघात प्रतिघात और बंधनादि विविध रौद्र, भयानक और बीभत्स रस दिखाए जाते हैं। इसके चार भेद हैं-वस्तूत्थापन, संफेट, संक्षिप्ति और अवपातन (१) वस्तूत्थापन=ऐसी वस्तुओं का प्रदर्शन या वर्णन जिसमें रौद्रादि रसों की सूचना हो। जैसे,—सियारों का बोलना और श्मशान आदि। (२) संफेट=दो आदमियों का झपट आकर भिड़ जाना। (३) संक्षिप्ति=क्रोधादि उग्र भावों की निवृत्ति। जैसे,—रामचंद्र जी की बातों को सुनकर परशुराम के क्रोध की निवृत्ति। (४) अवपातन=प्रवेश से निष्क्रमण तक रौद्रादि भावों का अविच्छिन्न प्रदर्शन।

आरमण—संज्ञा पुं० [सं०] १ हर्ष या आनंद मनाना। २ हर्ष। खुशी। ३ यौनसुख। ४ विश्रामस्थल। विराम [को०]।

आरव—संज्ञा पुं० [सं०] १ शब्द। आवाज। २ आहट। उ०—घुरघुरात हय आरव पाए। चकित बिलोकत कान उठाए।—तुलसी (शब्द०)।

आरषी(पु)—वि० [सं० आर्ष] आर्ष। ऋषियों को। उ०—भले भूप कहत भले भदेस भूपन सों लोक लखि बोलिए पुनीत रीति आरषी।—तुलसी (शब्द०)।

आरस¹ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० आलस] दे० 'आलस्य'। उ०—मोर खरी सारसमुखी आरस भरी जँभाय।—स० सप्तक, पृ० २५३।

आरस²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरसी'।

आरसा—संज्ञा पुं० [हिं० रस्सा] १ रस्सा। जैसे,—बोए का आरसा = वह रस्सा जिसमे लगड का वोझा वँधा रहता है। २ रस्से की मुट्ठी जिसमे कोई चीज वाँधकर लटकाई या उठाई जाय। गाँठ।

आरसी—संज्ञा स्त्री० [सं० आदर्श] १ शीशा। आईना। दर्पण। उ०—(क) कहा कुसुम, कह कौमुदी, कितक आरसी जोति। जाकी उजराई लखे, आँखि ऊजरी होति।—बिहारी र०, दो० ५१२। २ एक गहना जिसे स्त्रियाँ दाहिने हाथ के अँगूठे मे पहनती हैं। यह एक प्रकार का छल्ला है जिसके ऊपर एक कटोरी होती है जिसमे शीशा जडा होता है। उ०—कर मुँदरी की आरसी, प्रतिबिंबित प्यौ पाइ। पीठि दियें निधरक लखै, इकटक डीठि लगाइ।—बिहारी र०, दो० ६११।

आरस्य—संज्ञा पुं० [सं०] रसहीनता। अरसता। शुष्कता [को०]।

आरा¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० आरी] १ एक लोहे की दाँतीदार पटरी जिससे रेत कर लकडी चीरी जाती है। इसके दोनो ओर लकडी के दस्ते लगे रहते है। उ०—यह मन वाको दीजिए जो साँचा सेवक होय। सिर ऊपर आरा सहै, तवहुँ न दूजा सोय।—कबीर (शब्द०)। २ चमडा सीने का टेकुआ या सूजा। सुतारी।

यौ०—आराकश।

आरा²—संज्ञा पुं० [सं० आर] लकडी की चौडी पटरी जो पहिए की गडारी और पुट्ठी के बीच जडी रहती है। एक पहिए मे ऐसी दो पटरियाँ होती हैं, बाकी और जो पतली पतली चार पटरियाँ जडी जाती हैं, उन्हे गज कहते हैं।

आरा³—संज्ञा पुं० [हिं० आडा] लकडी की या पत्थर की पटरी जिसे दीवार पर रखकर उसके ऊपर घोडिया या टोटा बैठाते हैं। यह इसलिये रखा जाता है कि घोडिया आदि एक सीध मे रहे ऊपर नीचे न हो। दीवारदासा। दासा।

आरा⁴†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आला'।

आराइश—संज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० आरास्ता] १ सजावट। २. कागज के फूल पत्ते जो बरात मे द्वारपूजा के समय साथ ले जाते हैं। फुलवाडी।

आराइशी—वि० [फा०] आराइश या साज सज्जा के काम आनेवाला [को०]।

आराकश—संज्ञा पुं० [हिं० आरा + फा० कश] आरा चलानेवाला आदमी।

आराज—संज्ञा पुं० [सं०] अराजकता। शासक के अभाव मे होनेवाली अशांति [को०]।

आराजी—संज्ञा स्त्री० [अ० आराजी] १ भूमि। जमीन। २. खेत।

आराण—संज्ञा पुं० [सं० रण] युद्ध। संग्राम।—(डिं०) [को०]।

आरातⓤ—अव्य० [सं०] १ निकट। पास।

आराति—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु। वैरी। उ०—सावधान होइ धाए जानि सकल आराति। लागे बरषन राम पर अस्त्र शस्त्र बहु भाँति।—मानस, ३।१३।

आरातीⓤ—संज्ञा पुं० [सं० आराति] शत्रु। आराति। उ०—पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरै न कीस चरन एहि भाँती।—मानस, ६।३३।

आरात्—क्रि० वि० [सं०] १ पास। आसपास। २ दूर। दूरस्थ स्थान पर। ३ तुरंत। चटपट [को०]।

आराधक—वि० [सं०] [स्त्री० आराधिका] उपासक। पूजा करनेवाला।

आराधन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आराधक, आराधनीय, आराधित] १ सेवा। पूजा। उपासना। उ०—प्राराधन का दृढ आराधन से दो उत्तर।—अनामिका, पृ० १५६। २ तोषण। तर्पण। प्रसन्न करना। ३ पकाना। राँधना (को०)। ४ अर्जन [को०]।

आराधना¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूजा। उपासना।

आराधना²ⓤ—क्रि० स० [सं० आराध = आ + √राध् + हिं० ना (प्रत्य०)] १ उपासना करना। पूजना। उ०—केहि आराधहु का तुम चहहू। हम सन सत्य मर्म सब कहहू।—तुलसी (शब्द०)। २ संतुष्ट करना। प्रसन्न करना। उ०—इच्छित फल बिनु शिव आराधें। लहइ न कोटि योग जप साधें।—तुलसी (शब्द०)।

आराधनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपासना। सेवा। पूजा। [को०]।

आराधनीय—वि० [सं०] आराधना के योग्य। पूजनीय।

आराधयिता—वि० [सं० आराधयितृ] आराधना करनेवाला [को०]

आराधित—वि० [सं०] जिसकी उपासना हुई हो। पूजित।

आराध्य—वि० [सं०] पूज्य। पूजनीय।

आराम¹—संज्ञा पुं० [सं०] बाग। उपवन। फुलवारी। उ०—परम रम्य आराम यह जो रामहिं सुख देत।—तुलसी (शब्द०)।

आराम²—संज्ञा पुं० [फा०] १ चैन। सुख। जैसे,—संसार मे कौन नही आराम चाहता।

क्रि० प्र०—करना।—चाहना।—देना।—पहुँचना।—पाना।—लेना।—मिलना।

२. चंगापन। सेहत। स्वास्थ्य। जैसे,—जब से यह दवा दी गई हैं, तब से कुछ आराम है।

क्रि० प्र०—करना।—चाहना।—देना।—पाना।—होना।

३ विश्राम। थकावट मिटाना। दम लेना। जैसे,—बहुत चले, जरा आराम तो लेने दो।

क्रि० प्र०—करना।—पाना।—लेना।

यौ०—आरामगाह। आरामतलब। आरामदान। आरामपाई।

मुहा०—आराम करना = सोना। जैसे,—उन्हे आराम करने दो, बहुत जागे हैं। आराम मे होना = सोना। जैसे,—प्रभी आराम मे हैं, इस वक्त जगाना अच्छा नही। आराम लेना = विश्राम करना। आराम से = फुरसत मे। धीरे धीरे। बेखटके। जैसे,—(क) कोई जल्दी पडी है, ठहरो आराम से लिखा जायगा। (ख) इस वक्त रखो, घर पर आराम से बैठकर देखेंगे। आराम से गुजरना = चैन से दिन कटना।

आराम[3]—वि० [फा०] चंगा। तंदुरुस्त। जैसे,—उस वैद्य ने उसे बात की बात में आराम कर दिया।
क्रि० प्र०—करना। होना।

आरामकुरसी—संज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार की लंबी कुरसी जिसमें पीछे की ओर कुछ लंबोतरा ढालना होता है और दोनों ओर हाथ या पैर रखने के लिये लंबी पटरियाँ लगी होती हैं। इस पर आदमी बैठा हुआ आराम से लेट भी सकता है।

आरामगाह—संज्ञा स्त्री० [फा०] सोने की जगह। शयनागार।

आरामतलब—वि० [फा०] [संज्ञा आरामतलबी] १ सुख चाहनेवाला। सुकुमार। जैसे,—काम न करने से अमीर लोग आरामतलब हो जाते हैं। २ सुस्त। आलसी। निकम्मा। जैसे,—वह इतना आरामतलब हो गया है कि कहीं जाता आता भी नहीं।

आरामदान—संज्ञा पुं० [फा० आराम+दान] १ पानदान। २ सिंगारदान।

आरामपाई—संज्ञा स्त्री० [फा० आराम+हिं० पाय] एक प्रकार की जूती जिसे पहलेपहल लखनऊवालों ने बनाया था।

आरामशीतला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आनंदी। गंधाढ्या। महानंदा। रामशीतला।
विशेष—यह उपवन में रहने के कारण शीतल होती है। राजनिघंटु में इसे तिक्त, शीतल, पित्तहारिणी, दाह और शोथ को दूर करनेवाली कहा गया है।

आरामाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] बगीचों का अधिकारी।
विशेष—शुक्रनीति के अनुसार आरामाधिपति को फल फूल के पौधे बोने में निपुण, खाद तथा पानी देने का समय जाननेवाला, जड़ी बूटियों को पहचाननेवाला होना चाहिए।

आरामिक—संज्ञा पुं० [सं०] माली [को०]।

आरालिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आरालिका] रसोईदार। पाचक।

आराव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आरव' [को०]।

आरास्ता—वि० [फा० आरास्तह्] सजा हुआ। सुसज्जित। उ०—चमत्कृत चीजों से वह आरास्ता और पैरास्ता है। प्रेमघन, भा० २, पृ० २३४।
क्रि० प्र०—करना। होना।

आराही(पु)—वि० [सं० आराधक, प्रा० आराहग, अप० आराही] उपासक। आराधना करनेवाला। उ०—सुर जाको पार न पावें कोटि मुनी जन ध्याई। दादू रे तन ताको है रे जाको सकल लोक आराही।—दादू० बा०, पृ० ५७३।

आरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अड़] हठ। टेक। जिद। उ०—(क) द्वार हौं भोर ही को आजु। रटत रिरिहा, आरि और न, कौर ही तें काजु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६८। (ख) तब सकोप भगवान हरि तीछन चक्र प्रहारि। धर ते सीस धरा, धरा, करि लीन्ही श्रुति आरि।—गोपाल (शब्द०)।

आरिज[1]—संज्ञा पुं० [अ० आरिज़] कपोल। गाल। उ०—सगा दे गोराए आरिज ने गर वह आग गुलशन में।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०।

आरिज[2]—वि० [अ०] १ अड़चन डालनेवाला। बाधक। २ होने या लग जानेवाला (रोग आदि), [को०]।

आरिजा[1]—संज्ञा पुं० [अ० आरिजह्] १ रोग। बीमारी। २. कष्ट [को०]।

आरिजी—वि० [अ० आरिजी] १. क्षणस्थायी। नश्वर। २ आकस्मिक। उ०—उसके रुखसार देख जीता हूँ। आरिजी मेरी जिंदगानी है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २६।

आरित्रिक—वि० [सं०] अरित्र से संबंधित। नाव के डाँड से संबद्ध [को०]

आरिफ—संज्ञा पुं० [अ० आरिफ़] साधु। ज्ञानी। उ०—आरिफ जो हैं उनके हैं बस रंज व राहत एक 'रसा'। जैसे वह गुजरी है यह भी किसी तरह निभ जाएगी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८५६।

आरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० आरुक=ककड़ी] एक फल जो ककड़ी के समान होता है। यह भादों क्वार के महीने में होती है और बहुत ठंढी होती है। यह एक बित्ता लंबी और अँगूठे के बराबर मोटी होती है।

आरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० आरा का अल्पा०] १ लकड़ी चीरने का बढ़ई का एक औजार।
विशेष—यह लोहे की एक दाँतीदार पटरी होती है जिसमें एक ओर काठ का दस्ता या मूठ लगी रहती है। मूँठ की ओर यह पटरी चौड़ी और आगे की ओर पतली होती जाती है। इससे रेतकर लकड़ी चीरते हैं। हाथीदाँत आदि चीरने के लिये जो आरी होती है वह बहुत छोटी होती है।
२ लोहे की एक कील जो बैल हाँकने के पैने की नोक में लगी रहती है। ३. जूता सीने का सूजा। सुतारी।

आरी[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आर=किनारा] ओर। तरफ। उ०—बिछवाए पौरि लौं बिछौना जरीबाफन के, खिंचवाए, चाँदनी सुगंध सब आरी में।—रघुनाथ (शब्द०)। २. कोर। अवँठ। बारी।

आरी[3]—वि० [अ०] तंग। हैरान। आजिज। जैसे,—हम तो तुम्हारी चाल से आरी आ गए हैं।
क्रि० प्र०—आना।

आरी[4]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ बबूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसे जालबर्बुरक या स्थूलकंटक भी कहते हैं। २ दुर्गंधखैर। बबुरी।

आरु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्कट। केकड़ा। २ शूकर। ३ वृक्ष विशेष। ४ मेढक [को०]।

आरु[2]—संज्ञा स्त्री० घड़ा। जलपात्र [को०]।

आरुक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] औषध के काम आनेवाला एक प्रकार का पौधा जो हिमालय पर होता है। यह शीतलता प्रदान करता है [को०]।

आरुक[2]—वि० हानिकारक [को०]।

आरुण—वि० [सं०] अरुण से संबंध रखनेवाला [को०]।

आरुणि—संज्ञा पुं० [सं०] १ अरुण के पुत्र। २. सूर्य के पुत्र यम, शनैश्चर आदि। ३ उद्दालक ऋषि [को०]।

आरुणेय—संज्ञा पुं० [सं०] आरुणि ऋषि के पुत्र। श्वेतकेतु [को०]

आरुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] अरुणता । ललाई [को०] ।

आरुष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] फलविशेष । भल्लातक [को०] ।

आरु¹—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल वर्ण । पीला रंग [को०] ।

आरु²—वि० पिंगल वर्णवाला । भूरे और लाल रंग से मिश्रित [को०] ।

आरुक-संज्ञा पुं० [सं०] १ एक जड़ी जो हिमालय पर से आती है। आड़ । २ आलूबुखारा ।

आरुढ—वि० [सं० आरूढ] १ चढा हुआ । सवार । उ०—खर आरूढ नगन दससीसा । मुंडित सिर खंडित भुज बीसा ।—मानस, ५।११ । २. दृढ । स्थिर । जैसे,—हम तो अपनी बात पर आरुढ हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—आरूढयौवना । अश्वारूढ । गजारूढ । सिंहासनारूढ ।

आरुढयौवना—संज्ञा स्त्री० [सं० आरूढयौवना] मध्या नायिका के चार भेदों में से एक । वह स्त्री जिसे पतिप्रसंग अच्छा लगे ।

आरूढि—संज्ञा स्त्री० [सं० आरूढि] १. कढाव । चढाई । २. आरूढ होने का भाव । ३ तत्परता [को०] ।

आरेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. घटाना । २ खाली करना । ३ संदेह । ४ आधिक्य [को०] ।

आरेचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ संकोचन । २ खाली करना या कराना । ३ बहिष्करण । बाहर करना या निकालना [को०] ।

आरेचित—वि० [सं०] १ संकुचित । २. रिक्त । ३ घटाया हुआ [को०] ।

आरेवत—संज्ञा पुं० [सं०] अमिलतास । आरग्वध ।

आरेस(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] डाह । ईर्ष्या । उ०—कबहुँ न किएउ सवति आरेसू । प्रीति प्रतीति जान सब देसू ।—मानस, २।४६ ।

आरो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरव' ।

आरोग¹—वि० [सं० आरोग्य] दे० 'आरोग्य' ।

आरोगना(पु)—क्रि० स० [सं० आ + रोग (√रुज् = हिंसा)] खाना । उ०—(क) शबरी परम भक्त रघुबर की चरण कमल की दासी । ताके फल आरोगे रघुपति पूरण भक्ति प्रकासी ।—सूर (शब्द०) । (ख) आरोगत हैं श्रीगोपाल । षटरस सौंज बनाइ जसोदा, रचिकै कंचन थाल ।—सूर०, १०।१०१ ।

आरोगाना(पु)—क्रि० स० [हिं० आरोगना का प्रे० रूप] भोजन कराना । जिमाना । उ०—ताते आजु जो ए अपने घर भैंसि लैके आवेंगे तो मैं एक दिन की माखन आरोगाउँगी ।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ३ ।

आरोग्य—वि० [सं०] नीरोग । रोगरहित । स्वस्थ । तंदुरुस्त ।

आरोग्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वास्थ्य । तंदुरुस्ती ।

आरोग्यप्रतिपद्व्रत—संज्ञा पुं० [सं०] स्वास्थ्यलाभ के निमित्त किया जानेवाला एक व्रत [को०] ।

आरोग्यशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिकित्सा । अस्पताल [को०] ।

आरोग्यस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] बीमारी दूर हो जाने के बाद पहले पहल किया जानेवाला स्नान [को०] ।

आरोचक—वि० [सं०] चमकीला । प्रकाशवान् [को०] ।

आरोचन—वि० [सं०] दे० 'आरोचक' । उ०—मोह पटल मोचन आरोचन, जीवन कभी नहीं जनशोचन ।—अर्चना, पृ० २ ।

आरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १ अवरोध । बाधा । घेरा । २ कँटीली झाड़ी की बाड़ [को०] ।

आरोधना(पु)—क्रि० स० [सं० आरोध] रोकना । छेंकना । आड़ना । उ०—देखन दे पिय मदनगोपालहिं । अति आतुर आरोधि अधिक दुख तेहि कहँ उरति न ओ यम कालहिं । मन तौ पिय पहिले ही पहुँच्यो प्राण तहीं चाहत चित चालहिं ।—सूर० (शब्द०) ।

आरोप-संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थापित करना । लगाना । मढना । उ०—कवियों को उनपर अपने भावों के आरोपण की आवश्यकता नहीं होती ।—रस०, पृ० १४ । २ एक पेड़ को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना । रोपना । बैठाना । ३ मिथ्याध्यास । झूठी कल्पना । ४. एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ के धर्म की कल्पना । जैसे,—असंग जीवात्मा में कर्तृत्व धर्म का आरोप । ५ एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ के आरोप से उत्पन्न मिथ्या ज्ञान । ६ (साहित्य में) एक वस्तु में दूसरी वस्तु के धर्म की कल्पना ।

विशेष—यह आरोप दो प्रकार का माना गया है। एक आहार्य और दूसरा अनाहार्य । आहार्य वह है जहाँ इस बात को जानते हुए भी कि पदार्थों की प्रत्यक्षता से भ्रम की निवृत्ति हो सकती है, कहनेवाला अपनी इच्छा के अनुसार उसका प्रयोग करता है । जैसे 'मुखचंद्र' । यहाँ 'मुख' और 'चंद्र' दोनों के धर्म के साक्षात् द्वारा भ्रम की निवृत्ति हो सकती है । दूसरा 'अनाहार्य' है जिसमें ऐसे दो पदार्थों के बीच आरोप हो जिनमें एक या दोनों परोक्ष हों ।

आरोपक—वि० [सं०] दोष या अपराध लगानेवाला ।

आरोपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आरोपित, आरोप्य] १ लगाना । स्थापित करना । मढना । २ पौधे को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना । रोपना । बैठाना । ३. किसी वस्तु में स्थित गुण को दूसरी वस्तु में मानना । ४ मिथ्याज्ञान । भ्रम ।

आरोपना(पु)—क्रि० स० [सं० आरोपण] १ लगाना । उ०—भानु देखि दल चूरन कोप्यो । तजि अनिलास्त्र अनिल आरोप्यो ।—गोपाल० (शब्द) । २ स्थापित करना । उ०—सो सुनि नंद सवन दै थोपी । शिशुहि सप्यार अंक आरोपी ।—गोपाल (शब्द०) ।

आरोपित—वि० [सं०] १ लगाया हुआ । स्थापित किया हुआ । मढा हुआ । उ०—जहाँ तथ्य केवल आरोपित या संभावित रहते हैं वहाँ वे अलंकार रूप में ही रहते हैं ।—रस०, पृ० १४ । २. रोपा हुआ । बैठाया हुआ ।

आरोप्य—वि० [सं०] १ लगाने योग्य । स्थापित करने योग्य । २. रोपने योग्य । बैठाने योग्य ।

आरोप्यमाण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वस्तु जिसपर किसी अन्य वस्तु का आरोप किया जाय । २ साहित्य में उपमान या अप्रस्तुत [को०] ।

आरोह—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आरोही] १. ऊपर की ओर गमन । चढ़ाव । २. आक्रमण । चढ़ाई । ३. घोड़े, हाथी आदि पर

चढ़ना। सवारी। ४. वेदांत में क्रमानुसार जीवात्मा की उर्ध्वगति या क्रमश उत्तमोत्तम योनियों की प्राप्त होना। ५. कारण में कार्य का प्रादुर्भाव या पदार्थों की एक अवस्था में दूसरी अवस्था की प्राप्ति। जैसे,—बीज से अकुर, अकुर से वृक्ष, या अडे से बच्चे का निकलना। ६ क्षुद्र और अल्प चेतनावाले जीवों से क्रमानुसार उन्नत प्राणियों की उत्पत्ति। आविर्भाव। विकास।

विशेष—आधुनिक सृष्टितत्वविदों की धारणा है कि मनुष्य आदि सब प्राणियों की उत्पत्ति आदि में एक या कई साधारण अवयवियों से हुई है जिनमें चेतना बहुत सूक्ष्म थी। यह सिद्धांत इस सिद्धांत का विरोधी है कि ससार के सब जीव जिस रूप में आजकल हैं उसी रूप में उत्पन्न किए गए। निरवयव जड तत्व क्रमश कई सावयव रूपों में सामने आया, जिनमें, भिन्न भिन्न मात्राओं की चेतनता आती गई। इस प्रकार अत्यत सामान्य अवयवियों से जटिल अवयववाले उन्नत जीव उत्पन्न हुए। योरप में इस सिद्धात के बनानेवाले डार्विन साहब हैं जिनके अनुसार आरोह की निम्नलिखित विधि है—(क) देश काल के अनुसार परिवर्तित होते रहने की इच्छा। (ख) जीवनसग्राम में उपयोगी अगो की रक्षा और उनकी परिपूर्णता। (ग) सुदृढाग जीवों की स्थिति और दुर्बलागों का विनाश। (घ) प्राकृतिक प्रतिग्रह या सवरण जिसमें दपति-प्रतिग्रह प्रधान समझा जाता है। (च) यह साधारण नियम कि किसी प्राणी का वर्तमान रूप उपर्युक्त शक्तियों का, जो समान आकृति उत्पादन की पैतृक प्रवृत्ति के विरुद्ध कार्य करती है, परिणाम है।

७ सगीत में स्वरों का चढाव या नीचे स्वर से क्रमश ऊँचा स्वर निकालना। जैसे,—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा। ८ चूतड। नितब। ९. ग्रहण के दस भेदों में से एक।

विशेष—इस ग्रहण में ग्रस्त ग्रह को आवृत करनेवाला ग्रह (राहु) वर्तुलाकार ग्रहमडल को आवृत करके पुन दिखाई पडता है। फलित ज्योतिष के अनुसार इस प्रकार के ग्रहण के फलस्वरूप राजाओं में परस्पर सदेह और विरोध उत्पन्न होता है।

आरोहक¹—वि० [स०] १ चढनेवाला। आरोही। २ ऊपर उठनेवाला [को०]।

आरोहक²—सज्ञा पुं० [स०] १ सारथी। २ सवार। ३ वृक्ष [को०]।

आरोहण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आरोहित] १ चढना। सवार होना। उ०—उन्नति का आरोहण, महिमा शैल शृग सी श्रांति नही।—कामायनी, पृ० १८१। २ अँखुआना। अकुर निकलना। ३. सीढी। ४ नृत्यमच [को०]। ५ ऊपर उठना (को०)।

आरोहनⓅ—सज्ञा पुं० [स० आरोहण] दे० 'आरोहण'। उ०—आरोहन अवरोहन ये मैं कै फल सोहैं।—भारतेदु ग्र०, भा० १, पृ० ४१७।

आरोहनाⓅ—क्रि० अ० [स० आरोह] चढना। तुलसी गलिन भीर दरसन लगि लोग अटनि आरोहैं।—तुलसी ग्र०, पृ० ३००।

आरोहित—वि० [स०] १ चढा हुआ। २ निकला हुआ। ३ अँखुआया हुआ।

आरोही¹—वि० [स० आरोहिन्] [स्त्री० आरोहिणी] १ चढ़नेवाला। ऊपर जानेवाला। २ उन्नतिशील।

आरोही²—सज्ञा पुं० १ सगीत शास्त्रानुसार वह स्वर जो षडज से लेकर निषाद तक उत्तरोत्तर चढता जाय। जैसे,—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा। २ सवार।

आरौ—सज्ञा पुं० [सं० आरव] १ शब्द। ध्वनि। २ आहट। उ०—घुरघुरात हय आरौ पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ।—मानस, १। १५६।

आर्क—वि० [स०] अर्क अर्थात् (सूर्य या मदार) से सबध रखनेवाला। [को०]।

आर्कि—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र १ शनि। २ यम। ३. वैवस्वत मनु। ४ कर्ण [को०]।

आर्केस्ट्रा—सज्ञा पुं० [अ०] दे० 'आरकेस्ट्रा'।

आर्गल—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अर्गल' [को०]।

आर्घा—सज्ञा स्त्री० [सं०] पीले रग की एक प्रकार की मधुमक्खी जिसका सिर बडा होता है। सारग मक्खी।

आर्घ्य—सज्ञा पुं० [स०] १ आर्घा नाम की मक्खियों का मधु। सारग मधु।

विशेष—यह कफ, पित्त नाशक और आँखों को लाभकारी है। यह पकाने से कुछ कडुआ और कसैला हो जाता है।

२ एक प्रकार का महुआ जिसकी सफेद गोद मालवा देश से आती है।

आर्जⓅ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आर्य'। उ०—जय मुनि मडन धरमधर पर उपकारक आर्ज।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४९१।

आर्जव—सज्ञा पु० [स०] १ सीधापन। टेढ़ापन' का उलटा। २ सरलता। सुगमता। ३ व्यवहार की सरलता। कुटिलता का अभाव।

आर्जुनि—सज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन का पुत्र। अभिमन्यु [को०]।

आर्ट—सज्ञा पुं० [अं०] १ कौशल। कृतित्व। कारीगरी। शिल्प-विद्या। दस्तकारी। २ कला। विद्या। शिल्प। हुनर। जैसे,—चित्रकारी। ३ चित्रकार या भास्कर का काम या व्यवसाय। ४ विश्वविद्यालय का वह विभाग जिसमें चिकित्साविज्ञान और व्यवहारशास्त्र (वकालत) तथा अन्य सब विषयों, विद्याओं और भाषाओं की उच्च शिक्षा दी जाती है। जैसे,—आर्ट्स कालेज।

यौ०—आर्ट पेपर=चित्र आदि छापने के लिये एक प्रकार का चमकीला और चिकना कागज। आर्टस्कूल=वह पाठशाला जहाँ शिल्प और कलाकौशल की शिक्षा दी जाती हो।

आर्टिकिल—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ लेख। निबध। २ चीज। वस्तु।

आर्टिकिल्स ऑव् एसोसिएशन—सज्ञा पुं० [अ०] किसी सस्था या ज्वाइंट स्टाक कपनी या समिलित पूँजी से खुलनेवाली कपनी की नियमावली।

आर्टिक्यूलेटा—सज्ञा पुं० [अ०] बिना रीढ़वाले ऐसे जतुओं का एक

भेद जिनके शरीर संकुचित रहते हैं, पर चलने की दशा में फैल जाते हैं, जैसे,— जोंक ।

आर्टिलरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] तोपखाना ।

आर्टिस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी कला में, विशेषकर ललित कला (चित्रकारी, तक्षणकला, संगीत, नृत्य आदि) में कुशल हो ।

आर्डर—संज्ञा पुं० (अं० ऑर्डर] १. आज्ञा । हुक्म । २ कोई वस्तु भेजने पहुँचाने या मुहैया करने के लिये मौखिक या लिखित आदेश । माँग । जैसे,—(क) वे बादामी कागज की एक गाँठ का आर्डर दे गए हैं ।—(ख) आजकल बाहर से बहुत कम आर्डर आते हैं ।

क्रि० प्र०— आना ।—देना ।—मिलना ।

यौ०—आर्डरबुक = वह बही जिसमे आदेश या माँग लिखी जाय । आर्डर सप्लाई । आर्डर सप्लायर ।

३ स्थिरता । शांति । जैसे,—सभा मे बडा हल्ला मचा, लोग 'आर्डर', 'आर्डर', कहने लगे । ४ क्रम । सिलसिला ।

आर्डरी—वि० [अं० आर्डर+हिं० ई (प्रत्य०)] आर्डरसबंधी । आर्डर का ।

आर्डिनरी—वि० [अं० ऑर्डिनरी] १ साधारण । सामान्य । मामूली । जैसे,— आर्डिनरी मेंबर । आर्डिनरी शेयर । २ प्रसिद्ध । प्रधान ।

यौ०—आर्डिनरी स्टाक = कपनी का प्रधान या असली धन ।

आर्डिनेंस—संज्ञा पुं० [अं० ऑर्डिनेंन्स] वह आदेश या हुक्म जो किसी देश के अधिकारी (भारत मे वाइसराय, अब राष्ट्रपति) विशेष अवसरों पर जारी करते हैं और कुछ काल के लिये कानून माना जाता है । अस्थायी व्यवस्था या कानून । जैसे,—नए आर्डिनेंस के अनुसार बगाल मे कितने ही युवक गिरफ्तार किए गए ।

विशेष—भारत मे वाइसराय अपने अधिकार से, बिना कौंसिल की समति लिए आर्डिनेंस जारी कर सकते थे । ऐसे आर्डिनेंस का काल छह महीने होता है पर आवश्यकता पडने पर बढाया भी जा सकता है । स्वतत्र भारत मे यह अधिकार राष्ट्रपति को है ।

आर्णव—वि० [सं०] अर्णव या समुद्र सबंधी [को०] ।

आर्त, आर्त्त—वि० [सं०] [संज्ञा आर्ति] १ पीडित । चोट खाया हुआ । २. दुखित । दुखी । कातर । ३ अस्वस्थ । ४ नश्वर [को०] ।

आर्तगल—संज्ञा पुं० [सं०] नीली कटसरैया ।

आर्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पीडा । दर्द । २. दुख । क्लेश ।

आर्तध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियो के मतानुसार वह ध्यान जिससे दुख हो ।

विशेष—यह चार प्रकार का है—(१) अनिष्टार्त सयोगार्त ध्यान । (२) इष्टार्थ वियोगार्त ध्यान । (३) रोग निदानार्त ध्यान और (४) आग्रशोचनमार्त ध्यान ।

आर्तध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुखभरी पुकार । दर्दभरी आवाज [को०]

आर्तनाद—संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्द जिससे सुननेवाले को यह बोध हो कि उसका उच्चारण करनेवाला दुख मे है । दुःखसूचक शब्द ।

आर्तबंधु—संज्ञा पुं० [सं० आर्तबन्धु] १ दुखियों का सहायक । दीनबंधु । भगवान् । परमात्मा [को०] ।

आर्तव¹—वि० [सं०] [स्त्री० आर्तवी] ऋतु मे उत्पन्न । मौसमी । सामयिक । २ ऋतु सबंधी । ३ मासिक स्राव सबंधी [को०] ।

आर्तव²—वह रज जो स्त्रियों की योनि से प्रति मास निकलता है । पुष्प । रज ।

यौ०—आर्तव रोग = स्त्रियो के मासिक धर्म का समयानुसार न होना । यह दो प्रकार का होता है—(१) रजस्राव = जब रजोधर्म चार से अधिक दिन तक रहे अथवा महीने मे एक से अधिक बार हो । (२) रजस्तंभ = जब रजोधर्म एक मास से अधिक काल पर हो या कई महीने का अतर देकर हो ।

आर्तवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुखसूचक शब्द । आर्तस्वर । उ०—वृद्धों की आर्तवाणी, क्रदन रमणियो का भैरव सगीत बना ।—लहर, पृ० ६५ ।

आर्तवेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजस्वला स्त्री । ऋतुमति नारी [को०] ।

आर्तसाधु—वि० [सं०] दे० 'आर्तबंधु' [को०] ।

आर्तस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दुखसूचक शब्द ।

आर्ति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पीडा । दर्द । २. दुख । क्लेश । ३. व्याधि । रोग [को०] । ४ विनाश । बर्बादी (को०) । ५ बुराई । निंदा [को०] । ६ धनुष की कोर (को०) ।

आर्ति(पु)²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरती' । उ०—फेरि रसोईं मे जाइ मर्म भए भोग सराइ श्री ठाकुर जी की मगला आर्ति करि, सिंगार धरते ।—दो सौ० बावन, भा० १, पृ० १०१ ।

आर्त्विज—वि० [सं०] [स्त्री० आर्त्विजा] ऋत्विजासबंधी ।

यौ०—आर्त्विजी दक्षिणा = ऋत्विज की दक्षिणा ।

आर्थिक—वि० [सं०] १ धनसबंधी । द्रव्यसबंधी । रुपये पैसे का । माली । जैसे,— आर्थिक दशा । आर्थिक सहायता । उ०—लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर, हारता रहा मैं स्वार्थ समर ।—अपरा०, पृ० १६६ । २. महत्वपूर्ण । महत्व का [को०] । ३. धनयुक्त । धनी [को०] । ४ चतुर । कुशल [को०] । ५ स्वाभाविक । नैसर्गिक [को०] । ६ किसी शब्द के अर्थ से निःसृत [को०] ।

आर्थी—संज्ञा स्त्री० दे० 'कैतवापह्नुति' ।

आर्थोडाक्स—वि० [अं० ऑर्थोडॉक्स] जो अपने धार्मिक मत या सिद्धात पर अटल हो । अपने धार्मिक मत या सिद्धात से टस से मस न होनेवाला । कट्टर सनातनी । जैसे,—परिषद के आर्थोडाक्स हिंदू मेंबरों ने शारदा विवाह बिल का घोर विरोध किया ।

आर्द्ध—वि० [सं०] आधा । जैसे,—आर्द्धमासिक [को०] ।

आर्द्धिक—वि० सं० दे० 'आर्धिक' [को०] ।

आर्द्र—वि० [सं०] [संज्ञा आर्द्रता] १ गीला । ओदा । तर । २. सना । लथपथ ।

यौ०—आर्द्रवीर । आर्द्राग्नि ।

आर्द्रक¹—संज्ञा पुं० [सं०] अदरक । आदी ।

आर्द्रक²—वि० १ आर्द्रा नक्षत्रसबंधी वा आर्द्रा मे उत्पन्न । २. गीला । तर [को०] ।

आर्द्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गीलापन। शीतलता। ठढक।

आर्द्रपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] वंश। बाँस [को०]।

आर्द्रमाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] माषपर्णी। वनमाष। मसवन।

आर्द्रशाक—संज्ञा पुं० [सं०] हरी अदरक। हरी आदी [को०]।

आर्द्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सत्ताईस नक्षत्रों में छठा नक्षत्र।

विशेष—ज्योतिषियों ने इसे पद्माकार लिखा है, पर कोई कोई इसे मणि के आकार का भी मानते हैं। इस नक्षत्र में केवल एक ही उज्वल तारा है।

२ वह समय जब सूर्य आर्द्रा नक्षत्र का होता है। प्राय आषाढ के आरंभ में यह नक्षत्र उगता है। इसी नक्षत्र से वर्षा का आरंभ होता है। किसान इस नक्षत्र में धान बोते हैं। उनका विश्वास है कि इस नक्षत्र का धान अच्छा होता है। उ०—आर्द्रा धान पुनर्वसु पैया। गा किसान जब बोया चिरैया (शब्द०)। ३. ११ अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसके पहले और चौथे चरण में जगण, तगण, जगण और दो गुरु (ज त ज ग ग) दूसरे और तीसरे चरण में दो तगण, जगण और दो गुरु (त त ज ग ग) होते है। वृत्ति उपजाति के अंतर्गत है। उ०—साधो भलो योगन पै बढाओ। खडे रहो क्यों न खर्चे पचाओ। टीके सु छापे बहुतै लगाओ। वृथा सबै जो हरि को न गाओ (शब्द०)।

यौ०—आर्द्रालुब्धक = केतु।

४ अदरक। आदी। ५ अतीस।

आर्द्रावीर—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाममार्गी।

आर्द्राशनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विद्युत्। बिजली। २. एक अस्त्र।

आर्धिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ खेत की आधी उपज लेने की शर्त पर खेत जोतने बोनेवाला। २ पाराशर स्मृति के अनुसार वेश्या माता और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न एक सकर जाति।

विशेष—ये लोग ब्राह्मणों की पक्ति में भोजन कर सकते है। मनु के अनुसार यह वर्ण शूद्र माना गया है और भोज्यान्न है।

आर्नव(पु)—वि० [सं० आर्णव] आर्णव या समुद्रसबधी। उ०—आर्नव नाव विहग जिमि, फिरि आवै तिहि ठौर।—नद ग्र०, पृ० १३२।

आर्म—संज्ञा पुं० [अ०] हथियार। अस्त्र शस्त्र। जैसे,—आर्म्स ऐक्ट।

आर्मपुलिस—संज्ञा स्त्री० [अ० आर्म्ड पोलिस] हथियारबद पुलिस। सशस्त्र पुलिस।

आर्मर्डकार—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की गाड़ी जिसपर गोलियों से बचाव के लिये लोहा मढा रहता है। बख्तरदार गाडी।

विशेष—ऐसी गाडियाँ सेना के साथ रहती हैं।

आर्मी—संज्ञा स्त्री० [अ०] सेना। फौज। जैसे,—इडियन आर्मी।

विशेष—आर्मी शब्द० देश की समूची स्थल सेना का बोधक है।

आर्य[1]—वि० [सं०] [स्त्री० आर्या] १ श्रेष्ठ। उत्तम। २ बडा। पूज्य। ३. श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न। मान्य। ४ आर्य जाति सबंधी। आर्य जाति का।

आर्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्रेष्ठ पुरुष। श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न।

विशेष—स्वामी, गुरु और सुहृद् आदि को सबोधन करने में इस शब्द का व्यवहार करते हैं। छोटे लोग बड़े को जैसे,—स्त्री पति को, छोटा भाई बड़े भाई को, शिष्य गुरु को आर्य या आर्यपुत्र कहकर संबोधित करते हैं। नाटकों में नटी भी सूत्रधार को आर्य या आर्यपुत्र कहती है।

२ मनुष्यों की एक जाति जिसने संसार में बहुत पहले सभ्यता प्राप्त की थी।

विशेष—ये लोग गोरे, सुविभक्तांग और डील के लंबे होते हैं। इनका माथा ऊँचा, बाल घने, नाक उठी और नुकीली होती है। प्राचीन काल में इनका विस्तार मध्य एशिया तथा कैस्पियन सागर से लेकर गंगा यमुना के किनारों तक था। इनका आदिस्थान कोई मध्य एशिया, कोई स्कांडिनेविया और कोई उत्तरीय ध्रुव बतलाते हैं। ये लोग खेती करते थे, पशु पालते थे, धातु के हथियार बनाते थे, कपड़ा बुनते थे और रथ आदि पर चलते थे।

३. सावर्णि मनु का एक पुत्र [को०]। ४ बौद्ध धर्म का पालन करनेवाला व्यक्ति [को०]।

यौ०—आर्य अष्टांगमार्ग = बौद्ध दर्शन के अनुसार वह मार्ग जिससे निर्वाण या मोक्ष मिलता है। ये आठ हैं-(१) सम्यग्दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्पना, (३) सम्यक् वाचा, (४) सम्यक् कर्मणा, (५) सम्यगाजीव, (६) सम्यग्व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि।

यौ०—आर्यक्षेत्र। आर्यपुत्र। आर्यभूमि।

आर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १ आदरणीय जन। पूज्य व्यक्ति। २. पितामह। ३ एक श्राद्ध जो पितरों के सम्मानार्थ किया जाता है [को०]।

आर्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ श्रेष्ठ एव आदरणीय महिला। २. एक नक्षत्र का नाम [को०]।

आर्यकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] आर्यजातीय काव्य। भारतीय आर्यों का काव्य। उ०—वाल्मीकीय रामायण को मैं आर्यकाव्य का आदर्श मानता हूँ।—रस०, पृ० ११०।

आर्यदेश—संज्ञा पुं० [सं०] वह देश जिसमें आर्यों का निवास है [को०]।

आर्यधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] सदाचार। उ०—वह आर्यधर्म, वह शिरोधार्य वैदिक समता।—प्रणिमा, पृ० ३५।

आर्यपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] आदरसूचक शब्द०। दे० 'आर्य'।

आर्यभट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र के एक प्राचीन विद्वान् का नाम, जिन्होंने भारत में सर्व प्रथम बीजगणित का आविष्कार किया था। ये ईसा की पाँचवीं शताब्दी में हुए थे [को०]।

आर्यभाव—संज्ञा पुं० [सं०] सदाचार। शिष्टाचार [को०]।

आर्यमिश्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ संस्कृत नाटकों में गौरवान्वित या पूज्य पुरुष के लिये इस शब्द का प्रयोग करते हैं।

आर्यमिश्र[2]—वि० [सं०] पूज्य। गौरवान्वित [को०]।

आर्यरूप—वि० [सं०] ढोंगी। पाखडी [को०]।

आर्यलिंगी—वि० [सं० आर्यलिङ्गिन्] दे० 'आर्यरूप' [को०]।

आर्यव—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्तम आचार। सदाचार। २. न्यायोचित व्यवहार [को०]।

आर्यवाक्--वि० [स०] आर्यभाषा या संस्कृत बोलनेवाला [को०]।

आर्यवृत्त--वि० [स०] धार्मिक । सदाचारी [को०]।

आर्यवेश--वि०[स०] १ आर्यो का सा सभ्य वेश धारण करनेवाला। २ पाखडी । ढोंगी [को०]।

आर्यशील--वि० [स०] पुण्यचरित् । धर्मात्मा [को०]।

आर्यश्वेत-- वि० [स०] सम्माननीय। आदरणीय [को०]।

आर्यसत्य--सज्ञा पुं० [सं०] १ महान् सत्य। २ बौद्धधर्म के चार सिद्धात जो उसके आधारभूत स्तभ माने जाते है। वे हैं (१) जीवन दु खमय है, (२) जीवनेच्छा दु ख का कारण है, (३) इच्छा की निवृत्ति दु ख की निवृत्ति है, (४) अष्टमार्ग निर्वाण की ओर ले जाते हैं [को०]।

आर्यसमाज--सज्ञा पुं० [स०] एक धार्मिक समाज या समिति जिसके सस्थापक स्वामी दयानद थे।

विशेष--इस समाज के प्रधान दस नियम है। इस मत के लोग वेदो के सहिता भाग को अपौरुषेय और स्वत प्रमाण मानते है। मूर्तिपूजा, श्राद्ध, तर्पण नही करते। गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार वर्ण मानते हैं।

आर्यसमाजी--सज्ञा पु० [स० आर्यसमाजिन्] आर्यसमाज का अनुयायी। आर्यसमाज के सिद्धातो को माननेवाला [को०]।

आर्यसिद्धात--सज्ञा पु० [स० आर्यसिद्धान्त] आर्यभट्ट की कृति का नाम [को०]।

आर्यहृद्य--वि० [सं०] सज्जनो को प्रिय लगनेवाला [को०]।

आर्या--सज्ञा स्त्री० [स०] १ पार्वती। २ सास। ३ दादी। पितामही।

विशेष--इस शब्द का व्यवहार पद मे श्रेष्ठ या बडी बूढी स्त्रियो के लिये होता है।

४ अर्धमात्रिक छंद का नाम। इसके पहले और तीसरे चरण मे बारह बारह तथा दूसरे और चौथे चरण मे १५ मात्राएँ होती हैं।

विशेष--इस छद मे चार मात्राओ के गण को समूह कहते हैं। इसके पहले, तीसरे, पांचवें और सातवें चरण मे जगण का निषेध है। छठे गण मे जगण होना चाहिए। जैसे,--रामा, रामा, रामा, आठो यामा, जपो यही नामा। त्यागो सारे कामा, पैहो बैकुंठ विश्रामा। आर्या के मुख्य पाँच भेद हैं--(१) आर्या या गाहा, (२) गीति या उग्गाहा (३) उपगीति या गाहू, (४) उद्गीति या विग्गाहा और (५) आर्यागीति या स्कधक या खधा।

यौ०--आर्यासप्तशती = गोवर्धनाचार्य का आर्या छद मे निबद्ध लगभग ७०० छदो का सस्कृत मुक्तक काव्य।

आर्यागीत, आर्यागीति--सज्ञा स्त्री० [स०] आर्या छद का एक भेद जिसके विषम चरण मे १२ और सम चरणों मे २० मात्राएँ होती हैं। विषम गणो मे जगण नही होता तथा अंत मे गुरु होता है। जैसे,--रामा, रामा, रामा, आठोयामा। जपो यही नामा को। त्यागो सारे कामा, पैहो सौंनी सुनो दूरि धामा को।

आर्यावर्त--सज्ञा पुं० [स०] उत्तरी भारत जिसके उत्तर मे हिमालय, दक्षिण मे विध्याचल, पूर्व मे बगाल की खाडी और पश्चिम मे अरब सागर है। मनु ने इस देश को पवित्र कहा है।

आर्यावर्तीय--वि० [सं०] १. आर्यावर्त का रहनेवाला। २ आर्यावर्त सबधी।

आर्यिका--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुलीना और सदाचारिणी स्त्री। २ एक नक्षत्र का नाम। ३. भागवत पुराण मे वर्णित एक नदी का नाम [को०]।

आरलौ--सज्ञा पु० [हि० अड] १ अड। हठ। २. निवेदन। अनुरोध। उ०--वृषभानु की घरनि जसोमति पुकारयो। पठै सुत काज क्यो कहति ह्वौ लाज तजि, पाइ परिकै महरि करनि आरयौ।--सूर०, १०। १३९६।

आर्ष--वि० [स०] १ ऋषिसबधी। २ ऋषिप्रणीत। ऋषिकृत। ३ वैदिक। ४ ऋषिसेवित।

यौ०--आर्षक्रम। आर्षग्रथ। आर्षपद्धति। आर्षप्रयोग। आर्षविवाह।

आर्षक्रम--सज्ञा पु० [स०] ऋषियो की प्रथा। ऋषियो की प्राचीन परिपाटी।

आर्षग्रथ--सज्ञा पु० [सं० आर्षग्रन्थ] ऋषियो द्वारा प्रणीत या रचित धर्मग्रथ। वेद। शास्त्र। रामायण। पुराण [को०]।

आर्षप्रयोग--सज्ञा पुं० [स०] १ शब्दो का वह व्यवहार जो व्याकरण के नियम के विरुद्ध हो।

विशेष--प्राचीन सस्कृत ग्र थो मे प्राय व्याकरणविरुद्ध प्रयोग मिलते हैं। ऐसे प्रयोगो को व्याकरण की रीति से अशुद्ध न कहकर आर्ष कहते है।

२ छद मे कवियो का किया हुआ व्याकरणविरुद्ध प्रयोग।

आर्षभ--वि० [स०] १. साँड से उत्पन्न। २ ऋषभसबधी। ऋषभ गोत्र मे उत्पन्न।

आर्षभि--सज्ञा पु० [स०] १ ऋषभ का वशज। २ भारत के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् भरत का एक नाम [को०]।

आर्षभी--सज्ञा स्त्री० [स०] कपिकच्छु। केवाँच।

आर्षविवाह--सज्ञा पुं० [स०] आठ प्रकार के विवाहों मे तीसरा जिसमें वर से कन्या का पिता दो बैल शुल्क मे लेकर कन्या देता था।

आर्षेय--सज्ञा पु० [स०] १ ऋषियो का गोत्र और प्रवर। २ मत्रद्रष्टा ऋषि। ३. पठन पाठन, यजन याजन, अध्ययन अध्यापन आदि ऋषि कर्म।

आर्हत--वि० [सं०] अर्हत या जैन सिद्धात को माननेवाला अथवा उससे सबध रखनेवाला [को०]।

आलंकारिक--वि० [स० आलङ्कारिक] १ अलकारसबधी। २ अलंकारयुक्त। ३ अलकार जाननेवाला।

आलग¹--वि० [स० आलग्न] आसक्त। सलग्न। लगा हुआ [को०]।

आलग²--सज्ञा पु० [देश०] घोडियो की मस्ती।

विशेष--इस शब्द का प्रयोग विशेषकर घोडियो के सबंध मे होता है।

क्रि० प्र०--पर होना।--पर आना।

आलंब--सज्ञा पु० [स० आलम्ब] १ अवलब। आश्रय। सहारा। २.

गति। शरण। ३ अधिष्ठान [को०]। ४ लटकी हुई वस्तु वा पदार्थ [को०]।

आलंबन—संज्ञा पुं० [सं० आलम्बन] [वि० आलंबित] १ सहारा। आश्रय। अवलंबन। २ रस में एक विभाग जिसके अवलंब से रस की उत्पत्ति होती है। जैसे,—(क) शृंगार रस में नायक और नायिका, (ख) रौद्र रस में शत्रु, (ग) हास्य रस में विलक्षण रूप या शब्द, (घ) करुण रस में शोचनीय वस्तु या व्यक्ति, (च) वीर रस में शत्रु या शत्रु की प्रिय वस्तु, (छ) भयानक रस में भयंकर रूप, (ज) वीभत्स रस में घृणित पदार्थ, पीव, लोहू, मांस आदि (झ) अद्भुत रस में अलौकिक वस्तु, (ट) शांत रस में अनित्य वस्तु, (ठ) वात्सल्य रस में पुत्रादि। ३ बौद्ध मत में किसी वस्तु का ध्यानजनित ज्ञान। यह छह प्रकार का है— रूप, रस, गंध, स्पर्श शब्द और धर्म। ४ साधन। कारण। ५ आधार [को०]। ६ योगियों द्वारा कृत मानसिक ध्यान [को०]। ७ सहारा लेना। आश्रय लेना [को०]।

आलंबनता—संज्ञा स्त्री० [सं० आलंबन+ता (प्रत्य०)] आलंबन का गुण, स्वभाव या धर्म। उ०—उसकी आलंबनता स्त्री जाति और पुरुष जाति के बीच नैसर्गिक आकर्षण की बड़ी चौड़ी नींव पर ठहरी है।—चिंतामणि, भा० २ पृ० ६०।

आलंबित—वि० [सं० आलम्बित] आश्रित। अवलंबित।

आलंबितबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० आलम्बित बिन्दु] प्रलंबित पुल के आर पार के वे स्थान जहाँ जंजीरों के छोर खंभों से लगे रहते हैं।

आलंबी—वि० [सं० आलम्बिन्] झूलने या लटकनेवाला। उ०—सब पर सोहत गुंजमाल वनमाल सहित आलंबी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४१२।

आलंभ—संज्ञा पुं० [सं० आलम्भ] १ छूना। मिलना। पकड़ना। २ उत्पाटन। उखाड़ना [को०]। मारण। वध। हिंसा।

यौ०—अश्वालंभ। गवालंभ।

आलंभन—संज्ञा पुं० [सं० आलम्भन] दे० 'आलंभ।'

आलंभी—वि० [सं० आलम्भिन्] १ छूनेवाला। २ पकड़नेवाला [को०]।

आल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

आल[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अल = भूषित करना] १ एक पौधा जिसकी खेती पहले रंग के लिये बहुत होती थी।

विशेष—यह पौधा प्रत्येक दूसरे वर्ष बोया जाता है और दो फुट ऊँचा होता है। इसका मूल रूप ३०-४० फुट का पूरा पेड़ होता है। इसके दो भेद हैं—एक मोटी आल और दूसरी छोटी आल। छोटी आल फसल के बीच से बोई जाती है और मोटी आल बड़े पेड़ों के बीज से आषाढ़ में बोई जाती है। इसकी छाल और जड़ गड़ाँसे से काटकर हौज में सड़ने के लिये डाल दी जाती है और कई दिनों में रंग तैयार होता है। कहते हैं, इससे रँगे हुए कपड़े में दीमक नहीं लगती।

२ इस पौधे से बना हुआ रंग।

आल[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ एक कीड़ा जो सरसों की फसल को हानि पहुँचाता है। माहो। २ प्याज का हरा डंठल। ३ कद्दू। लौकी।

आल[4]—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] झंझट। बखेड़ा। उ०—(क) आठ पहर गया, यों ही माया मोह के आल। राम नाम हिरदय नहीं, जीत लिया जमजाल।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—आल जजाल, आल जँजाल, = झंझट। बखेड़ा। उ०—कंचन केवल हरिभजन, दूजा काँच कथीर। झूठा आल जँजाल तजि, पकड़ा साँच कबीर।—कबीर (शब्द०)। आलजाल = (१) बे सिर पैर की बात। इधर उधर की बात (२) अंड बंड या इधर उधर की वस्तु।

आल[5]—संज्ञा पुं० [सं० ओल या आर्द्र] १ गीलापन। तरी। जैसे,—ऐसा बरसा कि आल से आल मिल गई। २ आँसू। उ०—मिसक्यो जल छिन लेत दृग, भर पलकन में आल। बिचलत खँचत लाज को मचलत लखि नँदलाल।—स० सप्तक, पृ० १९२।

आल[6]—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ बेटी की संतति।

यौ०—आल औलाद = बाल बच्चे।

२ वंश। कुल। खानदान।

आल[7]—संज्ञा पुं० [देश०] गाँव का एक भाग।

आल[8]—वि० [सं० ओल या आर्द्र] गीला। कच्चा। हरा। उ०—आलहि बाँस कटाइन डँडिया फदाइन हो साधो।—पलटू०, भा० ३, पृ० १२।

आल[9]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कँटीला पौधा। स्याह काँटा किंगरई। वि० दे० 'किंगरई'।

आलकस—संज्ञा पुं० [सं० आलस्य] [वि० आलकसी, क्रि० अ० अलकसाना] आलस्य।

आलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ परीक्षण। २ निरीक्षण। देखना। समझना [को०]।

आलक्षण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुर्भाग्य। २ अपराध [को०]।

आलक्षि—वि० [सं०] निरीक्षक। लक्षित करने या समझनेवाला [को०]।

आलक्षित—वि० [सं०] १ भली भाँति देखा और समझा हुआ। २. अनुभव किया हुआ [को०]।

आलक्ष्य—वि० [सं०] १ दिखाई पड़ने लायक। प्रकट। २ जो कुछ कुछ दिखाई पड़े। पूरी तौर से न दिखाई पड़नेवाला [को०]।

आलड्वाल—संज्ञा पुं० [अनु०] आडंबर। साज सज्जा।

आलगर्द—संज्ञा पुं० [सं०] जल में रहनेवाला एक साँप [को०]।

आलथीपालथी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पालथी] बैठने का एक आसन जिसमें दाहिनी एँड़ी बाएँ जंघे पर और बाईं एड़ी दाहिने जंघे पर रखते हैं।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

आलन—संज्ञा पुं० [देश०] १ घास भूसा आदि जो दीवार पर लगाई जानेवाली मिट्टी में मिलाया जाता है। २ खर पात जो चूल्हा बनाने की मिट्टी या कंडे पाथने के गोबर में मिलाया जाता है। ३ बेसन या आटा जो साग बनाने के समय मिलाया जाता है।

आलना—संज्ञा पुं० [सं० आलय, फा० लाना] घोंसला।

आलपाका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अलपाका'।

आलपीन--संज्ञा स्त्री० [पुर्त० आलफिनेत] एक घुंडीदार छोटी सूई। जिसे अँगरेजी मे पिन कहते हैं।

आलबिलⓤ--संज्ञा पुं० [स० ऐलबिल] कुबेर।--नंद ग्रं०, पृ० २१।

आलम[1]--संज्ञा पुं० [अ०] १ दुनिया। ससार। जगत्। जहान। उ०--कई आलम किए है कत्ल उनने। करे क्या एकला हातिम बिचारा।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४०। २ अवस्था। दशा। जैसे,--वे बेहोशी के आलम मे है। ३ जनसमूह। बडी जमात। ४ हिंदी के एक रीतिकालीन कवि का नाम।

आलम[2]--संज्ञा पुं० १ एक प्रकार का नृत्य। उ०--उलथा टेंकी आलम सदिड। पद पलटि हुरमयी निशकचिड।--केशव (शब्द०)।

आलमन--संज्ञा पुं० [स०] १ ग्रहण। पकडना। २ छूना। स्पर्शन। ३ मारना। हिंसन। वध करना [को०]।

आलमनक--संज्ञा पुं० [पुर्त०] तिथिपत्र। पचाग। जत्री।

आलमारी--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलमारी'।

आलय--संज्ञा पुं० [स०] १ घर। गृह। मकान। २ स्थान।

यौ०--अनाथालय। देवालय। विद्यालय। शिवालय।

आलयविज्ञान--संज्ञा पुं० [स०] अहकार का आधार (बौद्ध)।

आलर्क--वि० [स०] १ अलर्क से सबधित। अलर्क का। २ पागल कुत्ते का (जहर) [को०]।

आलवण्य--संज्ञा पुं० [स०] १ लावण्यहीनता। असुदरता। २ स्वादविहीनता [को०]।

आलवाल--संज्ञा पुं० [स०] थाला। अवाल।

आलस[1]--वि० [स०] आलसी। सुस्त। काहिल।

आलस[2]ⓤ--संज्ञा पुं० [स० आलस्य] [वि० आलसी] आलस्य। सुस्ती। उ०--तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाही।--मानस, १।८१।

आलसी--वि० [हिं० आलस + ई (प्रत्य०)] सुस्त। काहिल। धीमा। अकर्मण्य। उ०--आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले पोसे राजा मेरे राजाराम, अवध सहरु।--तुलसी ग्रं०, पृ० ५८१।

आलस्य--संज्ञा पुं० [स०] कार्य करने मे अनुत्साह। सुस्ती। काहिली।

आला[1]--संज्ञा पुं० [स० आलय] ताक। ताखा। अखा।

आला[2]--वि० [अ० आलह्] १ अौवल दर्जे का। सबसे बढिया। श्रेष्ठ। उ०--कूँडा आला चाम का, भीतर भरा कपूर। दरिया बासन क्या करैं, वस्तु दिखावैं नूर।--दरिया० बानी, पृ० ३६। २ सितार के उतरे और मुलायम स्वर।

आला[3]--संज्ञा पुं० [अ०] १ औजार। हथियार। २ उपकरण। यत्र। साधन [को०]।

आला[4]--संज्ञा पुं० [स० अलात] कुम्हार का आँवा। पजावा।

आला[5]ⓤ†--वि० [स० आर्द्र, प्रा० अल्ल] १ गीला। ओदा। नम। भीगा। उ०--आडे दै आले बसन जाडे हूँ की राति। साहसु ककै सनेह बस सखी सबै ढिग जाति।--बिहारी र०, दो० २८३। २ हरा। टटका। ताजा।

आलाइश--संज्ञा स्त्री० [फा०] १ गदी वस्तु। मल। गलीज। २ घाव का गदा खून, पीब वगैरह। ३. पेट के भीतर की अँतडी आदि।

आलाटाली--संज्ञा पुं० [आला = अनु० + हिं० टालना + ई (प्रत्य०)] टालमटोल। उ०--ये इनकी आलाटाली है पर अपनी बात का प्रमाण देने के लिये मैं उनसे कोई चीज ले लूँ।--श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३६।

आलात[1]--संज्ञा पुं० [स०] लकडी जिसका एक छोर जलता हुआ हो। जलती लुआठी। लुक।

यौ०--आलातक्रीडा। आलातचक्र।

आलात[2]--संज्ञा पुं० [अ०] औजार।

यौ०--आलात काश्तकारी = खेती मे काम आनेवाले हल, पहटा आदि यत्र।

आलात[3]--संज्ञा पुं० [देश०] जहाज का रस्सा।

यौ०--आलाताखाना = जहाज मे रस्से वगैरह रखने की कोठरी।

आलातचक्र--संज्ञा पुं० [स०] वह मडल जो जलते हुए लुक को वेग के साथ घुमाने मे दिखाई पडता है।

आलान--संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथी बाँधने का खभा या खूँटा। २ हाथी बाँधने का रस्सा या जजीर। ३ बधन। रस्सी।

आलाप--संज्ञा पुं० [सं०] १ कथोपकथन। भाषण। बातचीत।

यौ०--वार्तालाप।

२ सगीत के सात स्वरो का साधन। तान।

क्रि० प्र०--करना।--लेना।

३ प्रश्न। जिज्ञासा [को०]। ४ संगीत मे सात स्वर [को०]।

आलापक--वि० [सं०] १ बातचीत करनेवाला। २ गानेवाला।

आलापचारी--संज्ञा स्त्री० [स० आलाप + चारी] स्वरो को साधने की क्रिया। तान लडाने की क्रिया। जैसे,--वहाँ तो खूब आलाप-चारी हो रही है।

आलापन--संज्ञा पुं० [स०] १ स्वस्तिवाचन। स्वस्तिपाठ। २. बातें करना। ३ सगीत मे आलाप लेने की क्रिया [को०]।

आलापना--क्रि० स० [स० आलापन या आलाप + हिं० ना (प्रत्य०)] गाना। सुर खीचना। तान लडाना।

आलापित--वि० [स०] १ कथित। सभाषित। २ गाया हुआ।

आलापिनी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बाँसुरी। बसी। २ तुमडी।

आलापी--वि० [स० आलापिन्] [वि० स्त्री० आलापिनी] १ बोलनेवाला। उ०--माधौ जू, मो तैं और न पापी। मन क्रम बचन दुसह सबहिन सौं कटुक बचन अवलापी।--सूर० १।१४०। २ आलाप लेनेवाला। तान लगानेवाला। गानेवाला।

आलाबु, आलाबू--संज्ञा पुं० [स०] अलाबु। लौकी [को०]।

आलारामी--वि० [सं० आलस्य ?] १ बेपरवाह। निर्द्वंद्व। २ जहाँ किसी बात की पूछताछ न हो। बेपरवाही का।

यौ०--आलारामी कारखाना = अंधेरखाता।

आलावर्त--संज्ञा पुं० [सं०] कपडे का पंखा।

आलास्य--संज्ञा पुं० [सं०] मगर नामक जलजतु [को०]।

आलिंग—संज्ञा पुं० [सं० आलिङ्गन] दे० 'आलिंगन'। उ०—बिन देखे मन होत वाहि कैसे करि देखें। देखे ते चित होत अग आलिंग बिसेखें।—ब्रज ग्रं०, पृ० ६०।

आलिंगन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आलिंगित, आलिंगी, आलिंग्य] गले से लगाना। हृदय से लगाना। परिरंभण। उ०—अजहूँ न लक्ष्मी चंद्रगुप्तहिं गाढ आलिंगन करै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १।

विशेष—यह सात प्रकार की बहिर्रतियों में गिना गया है, जैसे—आलिंगन, चुंबन, परस, मर्दन, नख-रद-दान। अधर-पान सो जाहिए, बहिरति सात सुजान।—केशव ग्रं० भा० १, पृ० १४।

आलिंगनाⓅ—क्रि० स० [सं० आलिङ्गन] अँकवार भरना। भेंटना। लपटाना। हृदय से लगाना। गले लगाना। उ०—पिय चूम्यो मुँह चूमि होत रोमांचित सगबग। आलिंगत मदमाति पीय अंगनि मेले अंग।—व्यास (शब्द०)।

आलिंगित—वि० [सं० आलिङ्गित] गले लगाया हुआ। हृदय से लगाया हुआ। परिरंभित। उ०—प्रतिजन प्रतिमन आलिंगित तुमसे हुई सभ्यता यह नूतन।—अनामिका, पृ० २१।

आलिंगी—वि० [सं० आलिङ्गिन्] आलिंगन करनेवाला।

आलिंग्य[१]—वि० [सं० आलिङ्ग्य] गले लगाने योग्य। हृदय से लगाने योग्य। परिरंभण करने योग्य।

आलिंग्य[२]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का मृदंग।

आलिंजर—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा घड़ा या झँझर [को०]।

आलिंद, आलिंदक—संज्ञा पुं० [सं० आलिन्द, आलिन्दक] दे० 'अलिंद' [को०]।

आलिंपन—संज्ञा पुं०[सं० आलिम्पन] १. दीवार, फर्श आदि की सफेदी या लिपाई पुताई काम। २ लीपना। पोतना [को०]।

आलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सखी। सहेली। वयस्या। २ बिच्छू। ३ भ्रमरी। ४ पंक्ति। अवली। ५ सेतु। बाँध। ६. रेखा।

आलिखित—वि० [सं०] १ चारो ओर रेखांकित। २ चित्रित। ३ लिखित। लिखा हुआ [को०]।

आलिप्त—वि०[सं० आलिप्त] अलेप। निर्लेप। उ०—लिप्त नाहिं आलिप्त रहत है ज्यों रवि जोति समावैं।—जग० बानी पृ० ११६।

आलिम—वि० [अ०] विद्वान्। पंडित। जानकार।

आली[१]—वि० [सं०] सखी। सहेली। गोइयाँ। उ०—एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली।—मानस, १।२२६।

आली[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] चार बिस्वे के बराबर का एक मान।

विशेष—यह शब्द गढवाल और कुमाऊँ मे बोला जाता है।

आली[३]Ⓟ†—वि० स्त्री० [सं० आर्द्र] भीगी हुई। गीली। तर।

आली[४]—वि० [अ०] बड़ा। उच्च। श्रेष्ठ। माननीय।

यौ०—आलीशान। आलीजाह। जनाब आली।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय यौगिक शब्दों के साथ होता है।

आली[५]—[वि० आल] आल के रंग का। जैसे,—आली रंग।

आली[६]—संज्ञा स्त्री० [सं० आलि] पंक्ति। अवली। उ०—बरनै दीन-दयाल बैठि हंसन की आली, मंद मंद पग देन अहो यह छल की चाली।—दीन० ग्रं०, पृ० २०६।

आलीजाⓅ—वि० [अ० आलीजाह] दे० 'आलीजा'। उ०—आलीजा इक बार, हम मत्रकी लै साथ मैं। जगत हरनि सिरदार, मेलो ये अरजै करै। हम्मीर०, पृ० २।

आलीजाह—वि० [अ०] ऊँचे दर्जे का। उच्चपदस्थ। श्रीमान्।

आलीढ[१]—संज्ञा पुं० [सं०] दाहिनी जाँघ को फैलाकर और बाईं जाँघ को मोड़कर बाण चलाने की मुद्रा [को०]।

आलीढ[२]—वि० १ खाया हुआ। भुक्त। २ चाटा हुआ। ३. घायल। चोट खाया हुआ [को०]।

आलीढक—संज्ञा पुं० [सं०] हाल के ब्याए हुए बछड़े की उछल कूद [को०]।

आलीन[१]—वि० [सं०] १ परिरंभित। आलिंगित। २ चिपका हुआ। श्लिष्ट। ३. द्रवित। पिघला हुआ [को०]।

आलीन—संज्ञा पुं० १ टीन। २. सीसा। ३. संपर्क [को०]।

आलीनक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आलीन' [को०]।

आलीशान—वि० [अ०] भव्य। भड़कीला। शानदार। विशाल।

आलुंचन—संज्ञा पुं०[सं० आलुञ्चन] फाड़ना। चीरना। छेदना [को०]।

आलुंठन—संज्ञा पुं०[सं० आलुण्ठन] चोरी करना। छीनना। अपहरण करना। लूटना [को०]।

आलु[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का मूल। २ आबनूस। ३ नाव या बेड़ा। ४ पेचक। उल्लू [को०]।

आलु[२]—संज्ञा स्त्री० पानी रखने की झारी। मटकी [को०]।

आलुक—संज्ञा पुं० [सं०] १ आलूकंद। २. शेषनाग।

आलुल—वि० [सं०] कंपित। हिलता हुआ [को०]।

आलुलायित—वि० [सं० आलुलित > आलुलायित = हिलता हुआ। कंपित। उ०—बजी निशा के बीच आलुलायित केशों के तम में।—नील०, पृ० १०।

आलुलित—वि० [सं०] १ विचलित। २ क्षुब्ध [को०]।

आलू—संज्ञा पुं० [सं० आलु] एक प्रकार प्रसिद्ध कंद।

विशेष—क्वार कातिक मे क्यारियों के बीच मेड बनाकर आलू बोए जाते हैं जो पूस मे तैयार हो जाते हैं। एक पौधे की जड़ मे पाव भर के लगभग आलू निकलता है। भारतवर्ष मे अब आलू की खेती चारो ओर होने लगी है, पर पटना, नैनीताल और चेरापूँजी इसके लिये प्रसिद्ध स्थान हैं। नैनीताल के पहाड़ी आलू बहुत बड़े बड़े होते हैं। आलू दो तरह के होते हैं लाल और सफेद। यह पौधा वास्तव मे अमेरिका का है। वहाँ से सन् १५८० ई० में यह यूरोप मे गया। भारतवर्ष मे इसका उल्लेख सबसे पहले उस भोज के विवरण मे आता है जो सन् १६१५ ई० मे सर टामस रो को आसफ खाँ की ओर से अजमेर मे दिया गया था। जब पहले पहल आलू भारतवर्ष मे आया था तब हिंदू लोग उसे नहीं खाते थे,

केवल मुसलमान और अँगरेज ही खाते थे। पर धीरे धीरे इसका खूब प्रचार हुआ और अब हिंदू व्रत के दिनो मे भी इसे खाते हैं। 'आलू' शब्द पहले कई प्रकार के कंदो के लिये व्यवहृत होता था, विशेषकर 'अरुआ' के लिये। फारसी मे कुछ गोल फलो के लिये भी आलू शब्द का व्यवहार होता है, जैसे,—आलूबुखारा, शफतालू आलूचा ।

यौ०—रताल। शफताल ।

आलू[२]—संज्ञा स्त्री० [स० आलु] छोटा जलपात्र। झारी। लुटिया। घड़ी।

आलूचा—संज्ञा पु० [फा० आलूचह्] १ एक पेड ।

विशेष—यह पेड पश्चिमी हिमालय पर गढवाल से कश्मीर तक होता है। इसका फल गोल गोल होता है और पंजाब इत्यादि मे बहुत खाया जाता है। फल पकने पर पीला और स्वाद मे खटमीठा होता है। अफगानिस्तान मे आलूचे की एक जाति होती है, जिसके सूखे हुए फल आलूबुखारा के नाम से भारतवर्ष मे आते हैं। आलूचे के पेड से एक प्रकार का पीला गोद निकलता है। फल की गुठलियो से तेल निकाला जाता है, जो कही कही जलाने के काम आता है। इसकी लकडी बहुत मुलायम होती है। इससे काश्मीर मे रगीन और नक्काशीदार सदूक बनाते है।

पर्या०—भोटिया बदाम। गर्दालू ।

आलूचाप—संज्ञा पु० [हिं० आलू + अ० चॉप] आलू का पकवान जो उबाले हुए आलू को पीसकर और गोल या चिपटी टिकियो की तरह बनाकर घी या तेल मे तलकर बनाया जाता है। उ०—अत मे मैने 'विशुद्ध' आलूचाप का प्रस्ताव कैलास के सामने रखा।—सन्यासी, पृ० ३४० ।

आलूदम—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'दमआलू' ।

आलूदा- वि० [फा० आलूदह्] लथपथ। लिथडा हुआ। लथापथ। सना हुआ। उ०—अश्क खूँ आलूदा मेरे इस कदर जारी है आज।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४०।

आलून—वि० [स०] काटा हुआ। काटकर अलग किया हुआ [को०]।

आलूबालू—संज्ञा पुं० [सं० आलू + बालू (अनु०)] आलूचे की तरह का एक पेड जो पश्चिमी हिमालय पर होता है। इससे एक प्रकार का गोद निकलता है। योरप मे इसके फलो का अचार और मुरब्बा डालते है, बीज से शराब को स्वादिष्ट करते हैं और लकड़ी से बीन और बाँसुरी आदि बाजे बनाते हैं।

पर्या०—गिलास। ओलची।

आलूबुखारा-संज्ञा पुं० [फा० आलू बुखारह्] आलूचा नामक वृक्ष का मुखाया हुआ फल।

विशेष—यह फल पश्चिमी हिमालय मे भी होता है, परतु बुखारा प्रदेश का उत्तम समझा जाता है। इसी से इसका यह नाम प्रसिद्ध है। यह आँवले के बराबर और आडू के आकार का होता है और स्वाद मे खटमीठा होता है। हिंदुस्तान मे आलूबुखारा अफगानिस्तान से आता है। यह दस्तावर है और ज्वर को शात करता है। इसी से रोगियो को इसकी चटनी खिलाते हैं।

आलूशफतालू—संज्ञा पुं० [हिं० आलू + फा० शफतालू] (निरर्थक)] लडको का एक खेल जो पश्चिम मे दिल्ली, मेरठ आदि स्थानो मे खेला जाता है।

विशेष—इसमे एक लडका दूसरे को घोडा बनाकर उसकी पीठ पर सवार होता है और उसकी आँखें अपने हाथो मे बद कर लेता है। तब एक तीसरा लडका उसके पीछे खडा होकर उँगलियाँ बुझाता है। यदि घोडा बना हुआ लडका उँगलियो की सख्या ठीक ठीक बतला देता है, तो वह छुटा हो जाता है और उस उँगली बुझानेवाले लडके को घोडा बनाकर उस पर सवार होता है।

आलेख[१]—संज्ञा पुं० [स०] १ लिखावट। लिपि। लिखाई। २ लिखित वस्तु। लिखित सामग्री (प्रमाण आदि के लिये उपयोगी)।

आलेख[२](पु)—वि० [सं० अलक्ष्य, प्रा० अलक्ख] जो लक्ष्य मे न आए। अलक्ष्य। उ०—अरुह आलेख को देखिया केसो भयो ब्रह्मरागी।—केशव० अमी०, पृ० १०।

आलेखन—संज्ञा पुं० [स०] १ चित्र। तस्वीर। उ०—चतुर शिल्पी या चितेरे की भाँति अनेक सुदर रूप या आलेखन उपस्थित किए।—पोद्दार अभि ग्र०, पृ० ६५३। २. लिखने का कार्य। लिखना। उ०—इस ग्रथ के आलेखन या सपादन मे सपादन समिति के मित्रो के साथ विविध समिति के सयोजको तथा अन्य मित्रो का सहयोग रहा है।—शुक्ल अभि० ग्र०, पृ० २।

आलेख्य[१]—संज्ञा पुं० [स०] चित्र। तसवीर।

आलेख्य[२]—वि० लिखने योग्य।

यौ०—आलेख्य विद्या = मुसव्वरी। चित्रकारी।

आलेपन—संज्ञा पुं० [स०] १ लेप। २ उपलेप। पलस्तर।

आलेपन—संज्ञा पुं० [सं०] लेप करने का कार्य।

आलै(पु)—संज्ञा पु० [सं० आलय] घर। निवास। भवन। उ०—जो पै प्रभु करुना के आलै। तौ कत कठिन कठोर होत मन, मोहिं बहुत दुख सालै।—सूर०, १०। ४७७२।

आलोक—संज्ञा पुं० [स०] [वि० आलोक्य] १. प्रकाश। चाँदनी। उजाला। रोशनी। २. चमक।

यौ०—आलोकवायक। आलोकमाला।

३ दर्शन। दीदार।

आलोकन—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शन। अवलोकन।

आलोकनीय—संज्ञा पुं० [स०] दर्शनीय। देखने योग्य।

आलोकित—वि० [स०] १ देखा हुआ। २ प्रकाशित। उद्भासित।

आलोच(पु)—संज्ञा पु० [स० आ + लुञ्चन] खेतो मे गिरा हुआ अन्न बीनना। सीला। (डिं०)।

आलोचक—वि० [स०] [वि० स्त्री० आलोचिका] १ देखनेवाला। २ जो किसी वस्तु के गुण दोष की विवेचना करे। जो आलोचना करे। जाँचनेवाला।

आलोचण(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० आलोच] दे० 'आलोच'।

आलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ दर्शन। २ गुण दोष का विचार। विवेचन। जाँच। ३ जैनमतानुसार पाप का प्रकाशन।

आलोचना—संज्ञा स्त्री० [स०] किसी वस्तु के गुण दोष का विचार। गुण-दोष-निरूपण।

आलोचित--वि० [सं०] जिसके गुण दोष का निरूपण किया गया हो। विचार किया हुआ।

आलोडन--संज्ञा पुं० [सं० आलोडन] १ मथना। हिलोरना। २. विचार। सोच विचार।

अलोडना(पु)--क्रि० स० [सं० आलोडन] १ मथना। २ हिलोरना। ३ खूब सोचना विचारना। ऊहापोह करना।

आलोडित--वि० [सं० आलोडित] १ मथा हुआ। २ हिलोरा हुआ। ३ सुचिंतित। सोचा हुआ।

आलोप--संज्ञा पुं० [सं०] १ लुप्त करना। २ पहले का निश्चय रद्द करना [को०]।

आलोल--वि० [सं०] १ कुछ कुछ हिलता हुआ। तनिक चंचल। २ क्षुब्ध। अस्तव्यस्त। जैसे,--केश [को०]।

आलोलित--वि० [सं०] क्षुब्ध किया हुआ। आदोलित [को०]।

आल्टरनेटिव--संज्ञा पुं० [अं०] १ चारा। दूसरा उपाय। उ०--इनमे से किसी को एप्रूवर बनाना होगा, और कोई आल्टरनेटिव नही है।--गबन, पृ० ३८२।

आल्वार--संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारतीय भागवत धर्म के मत उपदेशकों की श्रेणी।

आल्हा--संज्ञा पुं० [देश०] १ ३१ मात्राओं के एक छंद का नाम जिसे वीर छंद भी कहते हैं। इसमें १६ मात्राओं पर विराम होता है। जैसे,--सुमिरि भवानी जगदंबा कौ श्री सारद के चरन मनाय। आदि सरस्वति तुमका ध्यावों माता कंठ विराजौ आय। २ महोबे के एक पुरुष का नाम जो पृथ्वीराज के समय में था। ३ बहुत लंबा चौड़ा वर्णन।

मुहा०--आल्हा गाना = अपना वृत्तांत सुनाना। आपबीती सुनाना।

यौ०--आल्हा का पँवरा = व्यर्थ का लंबा चौड़ा वर्णन। वितंडावाद।

आवंतक--सं० [सं० आवन्तक] अवंती से संबंधित [को०]।

आवंतिक--वि० [सं० आवन्तिक] दे० 'आवंतक'।

आवंती संज्ञा स्त्री० [सं० आवन्ती] अवंति और उसके आस पास बोली जानेवाली प्राचीन भाषा।

आवंत्य--वि० [सं० आवन्त्य] १ अवंति देश का। २ आवंति देश का निवासी।

आवंदन--संज्ञा पुं० [सं० आवन्दन] नमस्कार। प्रणाम। [को०]।

आवँ(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँव'।

आव(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आयु] आयु। जिंदगी। उ०--मोहन दृग इन दृगन से, जा दिन लख्यो न नेक। मति लेखौ वह आव में, विधि लेखनि लै छेंक।--रसनिधि (शब्द०)।

आवआदर†--संज्ञा पुं० [हिं० आना + सं० आदर] आवभगत। आदर-सत्कार।

आवक-- संज्ञा पुं० [हिं० आवना + क (प्रत्य०)] आमद। पहुँच।

यौ०-- आवकजावक = आनाजाना।

आवज(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आतोद्य, प्रा० आओज्ज, आवज्ज] एक पुराना बाजा जो ताशे के ढंग का होता है। उ०--उद्धत सुजान सुत बुद्धिबलवान सुनि, दिल्ली के दरनि बाजै आवज उछाही के।--सुजान०, पृ० १०१।

आवझ(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० आवज] दे० 'आवज'। उ०--पटह पखाउज आवझ सोहैं। मिलि सहनाइन सों मन मोहैं।--रामच०, पृ० ४४।

आवटना¹(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आवर्त्त, पा० आवट्ट] १ हलचल। उथल पुथल। डावाँडोलपन। अस्थिरता। २ संकल्प विकल्प। ऊहापोह। उ०--जा घट जान विनान है, तिस घट आवटना घना। बिन खाँडे संग्राम है नित उठि मन सों जूझना।--कबीर (शब्द०)।

आवटना²(पु)--क्रि० स० गरम करना। औटाना। खौलाना।

आवटना³(पु)--क्रि० अ० गरम होना। औटना। खौलना। उबलना। उ०--जिहिं निदाघ दुपहर रहै भई माघ की राति। तिहिं उसीर की रावटी खरी आवटी जाति।--बिहारी र० दो० २४४।

आवट्ट(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आवर्त, प्रा० आवट्ट] दे० 'आवर्त'। उ०--ऐसो जु जुद्ध करिहै न कोउ। नय लष्प मान आवट्ट सोउ।--पृ० रा०, ६१। १०००।

आवडना(पु)--क्रि० अ० [सं० आत्रुष्ट, प्रा० आउट्ठ, गु आवडनु] समझना। पसंद आना। उ०--घड़ी एक नहिं आवडे, तुम दरसन बिन मोय। तुम ही मेरे प्राण जी, का सूँ जीवन होय।--संत बानी०, भा० २, पृ० ७०।

आवध(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० आयुध] दे० 'आयुध'। उ०--(क) दादू सोधी नहीं सरीर की कहै अगम की बात। जान कहावैं बापुडे, आवधजी लिये हाथ।--दादू० बानी, पृ० २२। (ख) मनो आवध बज्जि जौ वज्र बद्दर।--पृ० रा०, २। १०१।

आवन(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आगमन, पुं० हिं० आगवन] आगमन। आना। उ०--(क) द्वारे ठाढे हैं द्विज बावन। चारो वेद पढत मुख आगर अति सुकंठ सुर गावन। बानी मुनि बलि पूछन लागे इहाँ विप्र कित आवन।--सूर०, ८।४४०।

आवना¹(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० आवन] दे० 'आवन'। उ०--बहुर नहिं आवना या देस।--कबीर श०, पृ० ५।

आवना²(पु)--क्रि० अ० [हिं० आना] दे० आना'।

यौ०--आवना जावना = आना जाना। उ०--वार पार की हद्द पर हर वक्त मे भी, बीच आवना जावना लेखा है--कबीर रे०, पृ० ३५।

आवनि(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं० आवन] दे० 'आवन'।

आवनेय--संज्ञा पुं० [सं०] अवनि या पृथ्वी का पुत्र, मंगल।

आवपन--संज्ञा पुं० [सं०] १ बोआई। २ पेड का लगाना। ३ थाला। ४ सारे सिर का मुंडन।

यौ०--केशावपन।

आवभगत--संज्ञा पुं० [हिं० आवना + भक्ति] आदर सत्कार। खातिर तवाजा।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

आवभावा†--संज्ञा पुं० [सं० भाव] आदर सत्कार। खातिर तवाजा। उ०--आवभाव कै डोलिया पालकी सत्त नाम कै बाँस लगायो।--धरम० (शब्द०)।

आवय--संज्ञा पुं० [सं०] १ आगमन। २ आगंतुक। आनेवाला [को०]।

आवर(पु)--अव्य० [सं० अपर] और। उ०—सखी सिखाड केंदला गई। आवर मंदिर ठाढ़ी भई।--माधवा०, पृ० १६७।

आवरक[1]--वि० [सं०] छिपानेवाला। आवरण डालनेवाला [को०]।

आवरक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] परदा। चिक [को०]।

आवरखावो—संज्ञा पुं० [बं० आवर = और + बं० खावो = खाऊँगा] एक प्रकार की बँगला मिठाई।

आवरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ आच्छादन। ढकना। २ वह कपड़ा जो किसी वस्तु के ऊपर लपेटा हो। वेठन। ३. परदा। उ०—सब कहते हैं खोलो खोलो छवि देखूँगा जीवनधन की, आवरण स्वयं बनते जाते हैं भीड़ लग रही दर्शन की।—कामायनी, पृ० ६८। ४.ढाल। ५.दीवार इत्यादि का घेरा। ६ अज्ञान। ७ चलाए हुए अस्त्र शस्त्र को निष्फल करनेवाला अस्त्र।

आवरणपत्र--संज्ञा पुं० [सं०] वह कागज जो किसी पुस्तक के ऊपर उसकी रक्षा के लिये लगा रहता है और जिसपर पुस्तक और पुस्तककर्ता के नाम इत्यादि भी रहते हैं। कवर।

आवरणशक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदांत में आत्मा या चैतन्य की दृष्टि पर परदा डालनेवाली शक्ति।

आवरिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्र आपण। छोटी दुकान [को०]।

आवरित—वि० [सं०] ढका हुआ आवृत [को०]।

आवरिता-वि० [सं० आवरितृ] ढकने या आच्छादित करनेवाला [को०]

आवरी—वि० [सं० आवरीतृ > आवरीता] ढकी हुई। आच्छादित। उ०—मोह मैं आवरी ह्वै बुधि बावरी सीख सुनै न दसा दुख छीजै।—घनानंद, पृ० १४।

आवर्जक--वि० [सं०] आकर्षक [को०]।

आवर्जन--संज्ञा पुं० [सं०] १ आकृष्ट करना। २ संतुष्ट करना। ३ नीचा दिखाना। ४ दान की क्रिया [को०]।

आवर्जना—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ आकर्षण। २ तिरस्कार। अवमानना। उ०—मैं देव सृष्टि की रति रानी निज पंचबाण से वंचित हो, बन आवर्जना मूर्ति दीना अपनी अतृप्ति सी संचित हो।—कामायनी पृ० १०२।

आवर्जित[1]—वि० [सं०] १ त्याग किया हुआ। जिसे छोड़ दिया गया हो। छोड़ा हुआ। पराभूत। परास्त।

आवर्जित[2]--संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा की स्थिति विशेष [को०]।

आवर्त[1]—वि० [सं०] १. पानी का भँवर। २ चार मेघाधिपों में से एक। ३ वह बादल जिसमें पानी न बरसे। ४. एक प्रकार का रत्न। राजवर्त। लाजवर्द। ५ सोनामाखी। ६ गोएँ की भँवरी। ७ सोच विचार। चिंता। ८ संसार।

आवर्त[2]--वि० घूमा हुआ। मुड़ा हुआ।

यौ०--दक्षिणावर्त शंख = वह शंख जिसकी भौंरी दाहिनी तरफ गई हो। यह शंख बहुत मंगलप्रद समझा जाता है।

आवर्तक--संज्ञा पुं० [सं०] योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग। मार्कंडेय पुराण के अनुसार इस विघ्न के द्वारा ज्ञान आकुल हो जाता है और उनका चित्त नष्ट हो जाता है।

आवर्तकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसे चर्मरंगा और भगवद्वल्ली भी कहते हैं।

आवर्तन—संज्ञा पुं० [सं० आवर्त्तन] १ चक्कर देना। घुमाव। फिराव। उ०—वह अनंग पीड़ा अनुभव-सा अंगभंगियों का नर्तन, मधुकर के मरंद उत्सव सा मदिर भाव से आवर्तन।—कामायनी, पृ० ११। २ विलोड़न। मथन। हिलाना। उ०—सौर चक्र में आवर्तन था प्रलय निशा का होता प्रात।—कामायनी, पृ० २०। ३ धातु इत्यादि का गलाना। ४. दोपहर के पीछे पदार्थों की छाया का पश्चिम से पूर्व की ओर पड़ना। ५ तीसरा पहर। पराह्ण।

आवर्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह कुल्हिया या घड़िया जिसमें धातु गलाई जाती है। २ कलछी। चमच। चमचा [को०]।

आवर्तनीय--वि० [सं०] १ घुमाने योग्य। २ मथने योग्य।

आवर्तमणि--संज्ञा पुं० [सं०] राजावर्त मणि। लाजवर्द पत्थर।

आवर्तित—वि० [सं०] १ घुमाया हुआ। २. मथा हुआ।

आवर्तिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भँवर। जलावर्त। भौंरी। २ अज-शृंगी नाम का पौधा [को०]।

आवर्ती--वि० [सं० आवर्तिन्] १ चक्कर काटनेवाला। घूमने या फेरा लगानेवाला। २ पिघलनेवाला। ३ घुलमिल जानेवाला [को०]।

आवर्द[1]—वि० [फा०] १ लाया हुआ। २ कृपापात्र।

आवर्द[2]‡--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आयुर्दाय'।

आवर्ष--संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा। बरसात। वृष्टि [को०]।

आवलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पंक्ति। पाँत। अनुक्रमिकता। श्रेणी। कतार। उ०-वन उपवन खिल आई कलियाँ, रवि छवि दर्शन की आवलियाँ।—आराधना, पृ० ३।

आवलित--वि० [सं०] बल खाया हुआ। कुछ मुड़ा या झुका [को०]।

आवली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पंक्ति। श्रेणी। कतार। २ वह युक्ति या विधि जिसके द्वारा बिस्वे की उपज का अंदाज होता है। जैसे, बिस्वे की उपज के सेर का आधा करने से बीघे की उपज का मन निकलता है।

आवल्गित--वि० [सं०] धीरे धीरे हिलता हुआ। ईषत्कंपित [को०]।

आवल्गी--वि० [सं० आवल्गिन्] नाचनेवाला [को०]।

आवश्य--संज्ञा पुं० [सं०] १ जरूरत। आवश्यकता। २ अनिवार्य काम या परिणाम [को०]।

आवश्यक—वि० [सं०] १. जिसे अवश्य होना चाहिए। जरूरी। सापेक्ष्य। जैसे,—(क) आज मुझे एक आवश्यक कार्य है। (ख) तुम्हारा वहाँ जाना आवश्यक नहीं। २ प्रयोजनीय। काम का। जिनके बिना काम न चले। जैसे,-पहले आवश्यक वस्तुओं का इकट्ठा कर लो।

आवश्यकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जरूरत। अपेक्षा। २ प्रयोजन। मतलब। उ०—अपनी आवश्यकता का अनुचर बन गया, रे मनुष्य तू कितना नीचे गिर गया।—करुणा०, पृ० २६।

आवश्यकीय--वि० [सं०] प्रयोजनीय। जरूरी।

आवसति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात। निशा। २. रात में रहने के लिये विश्रामस्थान [को०]।

आवसथ—पु० [सं०] १ रहने की जगह। गृह। २ बस्ती। गाँव। ३ आश्रम। ४ व्रतविशेष।

आवसथ्य[1]—वि० [सं०] घर का। खानगी।

आवसथ्य[2]—संज्ञा स्त्री० पाँच प्रकार की अग्नियों मे से एक। वह अग्नि जो भोजन पकाने आदि के काम मे आती है। लौकिकाग्नि।

आवसान—वि० [सं०] ग्राम के अवसान या छोर का निवासी (जैसे चाडाल आदि) [को०]।

आवसित—वि०[सं०]१ पूर्ण। पूरा किया हुआ। २ निश्चित किया हुआ। एकत्र किया हुआ (धान्य आदि)। ४ पका हुआ। पूर्ण विकसित।

आवस्थिक—वि० [सं०] अवस्था के अनुकूल [को०]।

आवस्सिकⓟ—वि० [सं० आवश्यक] दे० 'आवश्यक'। उ०—कालि उहाँ भोजन करौ आवस्सिक यहु बात।—अर्ध०, पृ० ३२।

आवह—संज्ञा पु० [सं०] वायु के सात स्कंधो मे पहले स्कंध की वायु। भूर्लोक और स्वर्लोक के बीच की वायु। भूवायु।

विशेष—सिद्धातशिरोमणि मे इस वायु को १२ योजन ऊपर माना है और इसी से बिजली, ओले आदि की उत्पत्ति बतलाई है।

२ अग्नि की सात जिह्वाओ में से एक।

आवहन—संज्ञा पु० [सं०] ढोकर पास ले जाना। समीप लाना [को०]।

आवाँ[1]—संज्ञा पुं० [हिं० आना, आवना] १ लोहा जब खूब लाल हो जाता है तो उसे पीटने के लिये दूसरे लोहार को बुलाते हैं। इस बुलावे को 'आवाँ' कहते हैं।

आवाँ[2], **आवा**ⓟ—संज्ञा पु० [सं० आपाक] दे० 'आँवाँ'। उ०—जान प्यारे जीव कहूँ दीजिए सनेसो तीव आवा सम कीजिऐ जु कान तिहि काल हैं।—रसखान, पृ० ५०।

आवागमन—संज्ञा पु० [हिं० आवा=आना+सं० गमन] १ आना जाना। अवाई जवाई। आमदरफ्त। २ बार बार मरना और जन्म लेना। जन्म और मरण।

यौ०—आवागमन (से) रहित=मुक्त। मोक्षपदप्राप्त। जैसे,—पूर्ण ज्ञान के उदय से मनुष्य आवागमन से रहित हो सकता है।

आवागवनⓟ‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवागमन'। उ०—छुटावैं मोह को विपति अति आवागमन सो। शकुतला, पृ० १५४।

आवागौनⓟ—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आवागमन'।

आवाज—संज्ञा पु० [फा० आवाज, सं० आवाज्, पा० आवाज] १ शब्द। ध्वनि। नाद।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—देना।—लगाना।

२ बोली। वाणी। स्वर। जैसे,—वे गाते तो हैं, पर उनकी आवाज अच्छी नहीं है। ३ फकीरों या सौदा बेचनेवालो की पुकार। ४ हल्ला गुल्ला। शोर।

मुहा०—**आवाज उठाना**=(१) गाने मे स्वर ऊँचा करना। (२) किसी बात के समर्थन या विरोध मे कहना। **आवाज कसना**=(१) जोर से खीचकर शब्द निकालना। (२) दे० 'आवाज कसना'। उ०—अभी तो आप हमपर आवाज कस रहे थे।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५। **आवाज खुलना**=(१) बैठी हुई आवाज का साफ निकलना। जैसे,—तुम्हारा गला बैठ गया है, इस दवा से आवाज खुल जायगी। (२) अधोवायु का निकलना। **आवाज गिरना**=स्वर का मद पड़ना। **आवाज देना**=जोर से पुकारना। जैसे,—हमने आवाज दी, पर कोई नही बोला। **आवाज निकालना**=(१) बोलना। (२) चूँ करना। जवान खोलना। जैसे—जो कहते हैं चुपचाप किए चलो, आवाज न निकालना। **आवाज पड़ना**=आवाज बैठना। **आवाज पर लगना**=आवाज पहचान कर चलना। आवाज देने पर कोई काम करना। जैसे,—तीतर अपने पालनेवालो की आवाज पर लग जाते हैं। **आवाज पर कान रखना**=(१) सुनना। ध्यान देना। **आवाज फटना**=आवाज भर्राना। **आवाज लड़ना**=(१) एक के सुर का दूसरे के सुर से मेल खाना। (२) एक की आवाज दूसरे तक पहुँचाना। **आवाज बैठना**=कफ के कारण स्वर का साफ न निकलना। गला बैठना। जैसे,—उनकी आवाज बैठ गई है, वे गावेंगे क्या? **आवाज भर्राना**=दे० 'आवाज भारी होना।' **आवाज भारी होना**=कफ के कारण कंठ का स्वर विकृत होना। **आवाज मारना**=जोर से पुकारना। **आवाज मारी जाना**=स्वर सुरीला न रहना। स्वर का कर्कश होना। जैसे,—अवस्था बढ जाने पर आवाज भी मारी जाती है। **आवाज मे आवाज मिलाना**=(१) स्वर मिलाना। (२) हाँ मे हाँ मिलाना। दूसरा जो कह रहा है, वही कहना। **आवाज लगाना**=दे० 'आवाज देना'।

आवाजा—संज्ञा पु० [फा० आवाज] बोली ठोली। ताना। व्यग्य।

क्रि० प्र०—कसना।—फेंकना।—मारना।—सुनाना=व्यग्य वचन बोलना।

यौ०—आवाजाकशी=किसी दूसरे के माध्यम से की जानेवाली व्यग्योक्ति। बोली बोलना।

आवाजानीⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० आना+जाना] आवागमन। जन्म और मृत्यु का चक्र। उ०—धर्मदास कबीर पिय पाए मिट गइ आवाजानी।—धरम० शब्द०, पृ० ३।

आवाजाही‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० आना+जाना] आनाजाना।

आवादानी—संज्ञा स्त्री० [फा आवादानी] दे० 'अवादानी'।

आवाप—संज्ञा पुं० [सं०] वि०[आवापिक] १ बीज बोना। २ आलवाल। थाला। ३ कगन या ककण। ४ फेंकना। छितराना। ५ मिलाना। मिश्रण करना। ६ अन्न पात्र। ७ शत्रुतापूर्ण उद्देश्य। ८ पात्रो को व्यवस्थित ढग से रखना। ९ असमतल भूमि। १० एक प्रकार का पेय [को०]।

आवापक—संज्ञा पु० [सं०] सोने का ककण। कगन [को०]।

आवापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. करघा। २ धागा लपेटने की गोल लकडी। ३. बाल बनाना [को०]।

आवापिक—वि० [सं०] १ बोने या क्षौर कर्म के लिये उत्तम। २. अतिरिक्त। सहायक। पूरक [को०]।

आवाय—संज्ञा पु० [सं०] १ थाला। २ धान आदि का खेत मे रोपना। रोपाई। ३. हाथ का कडा। कगण। ४ वह सेना जो व्यूह बाँधने से बची हुई हो।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि परवा तथा प्रत्यावाय से जो सेना तीन गुनी से आठ गुनी तक हो, उसका आवाय बना देना चाहिए।

आवार—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षण। बचाव। शरण [को०]।

आवारगी—संज्ञा स्त्री० [फा०] आवारापन। शोहदापन।

आवारजा—संज्ञा पुं० [फा० आवारजह्] जमाखर्च की किताब। वि० दे० 'अवारजा'।

आवारा—वि० [फा० आवारह्] [संज्ञा आवारगी] १ व्यर्थ इधर उधर फिरनेवाला। निकम्मा। २ बेठौर ठिकाने का। उठल्लू।

क्रि० प्र०—घूमना।—फिरना।—होना।

३ बदमाश। लुच्चा। ४ कुमार्गी। शुहदा।

आवारागर्द—वि० [फा०] व्यर्थ इधर उधर घूमनेवाला। उठल्लू। निकम्मा।

आवारागर्दी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ व्यर्थ इधर उधर घूमना। २ बदमाशी। लुच्चापन। शुहदापन।

आवाल—संज्ञा पुं० [सं०] थाला।

आवास—संज्ञा पुं० [सं०] १ रहने की जगह। निवासस्थान। २ मकान। घर।

आवासी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० औसना] अन्न का हरा दाना, विशेषत जौ का दाना।

आवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ परिणयसंस्कार। विवाह। २ आमंत्रण [को०]।

आवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १ मंत्र द्वारा किसी देवता को बुलाने का कार्य। २ निमंत्रित करना। बुलाना।

क्रि० प्र०—करना।

आवाहना(पु)—क्रि० स० [सं० आवाहन] बुलाना। आमंत्रित करना [को०]।

आवाहनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता के आवाहन के अवसर पर की जानेवाली एक मुद्रा [को०]।

आविक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कंबल या ऊनी कपड़ा। भेड के रोएँ का वस्त्र।

आविक[2]—वि० [सं०] १ ऊन का। ऊनी। २. भेड से संबंधित [को०]।

यौ०—आविकसौत्रिक = ऊनी तागे से निर्मित [को०]।

आविग्न—वि० [सं०] उद्विग्न। व्याकुल [को०]।

आविद्ध[1]—वि० [सं०] १ छिदा हुआ। भेदा हुआ। २ फेंका हुआ। ३ कुटिल। वक्र। [को०]। ४ मूर्ख। जड [को०]। ५ निराश। हताश [को०]। ६ असत्य। झूठा [को०]।

यौ०—आविद्धकर्ण = जिसका कान छिदा हुआ हो। आविद्धकर्णिका, आविद्धकर्णी = एकलता पाढा या पाठा।

आविद्ध[2]—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक, जिसमें तलवार को अपने चारों ओर घुमाकर दूसरे के चलाए हुए वार को व्यर्थ या खाली करते हैं।

आविध—संज्ञा पुं० [सं०] बढ़इयों का औजार। बरमा [को०]।

आविर्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आविर्भूत] १ प्रकाश। प्राकट्य। २. उत्पत्ति। जैसे,—रामानुज का आविर्भाव दक्षिण में हुआ था। ३ आवेश। जैसे,—महात्माओं में क्रोध का आविर्भाव नहीं होता।

आविर्भूत—वि० [सं०] १ प्रकाशित। प्रकटित। २ उत्पन्न।

आविर्मुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चक्षु। आँख [को०]।

आविर्मूल—वि० [सं०] (वृक्ष) जिसकी जड या मूल खुदा हो [को०]।

आविर्हित—वि० [सं०] प्रत्यक्षीकृत। देखा हुआ [को०]।

आविर्होत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

आविल—वि० [सं०] १ कलुषित। मैला। पंकिल। २ मिला हुआ। मिश्रित। उ०—दुख में आविल सुख में पंकिल।—नीरजा, पृ० १।

आविष्कर्ता[1]—वि० [सं०] आविष्कार करनेवाला। आविष्कारक [को०]

आविष्कर्ता[2]—संज्ञा पुं० आविष्कार करनेवाला व्यक्ति।

आविष्कार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आविष्कर्त्ता, आविष्कृत] १. प्राकट्य। प्रकाश। २ कोई ऐसी वस्तु तैयार करना जिसके बनाने की युक्ति पहले किसी को न मालूम रही हो। ईजाद। जैसे,—रेल का आविष्कार इंगलैंड देश में हुआ। ३ किसी तत्व का पहले पहल ज्ञान प्राप्त करना। किसी बात का पहले पहल पता लगाना। साक्षात्करण। जैसे,—उस विद्वान् ने विज्ञान में बहुत से आविष्कार किए।

आविष्कारक—वि० [सं०] दे० 'आविष्कर्ता'।

आविष्कृत—वि० [सं०] प्रकाशित। प्रकटित। २ पता लगाया हुआ। जाना हुआ। ३ ईजाद किया हुआ। निकाला हुआ।

आविष्क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आविष्कार'।

आविष्ट—वि० [सं०] १ आवेश में आया हुआ। २ भूतप्रेतादिग्रस्त। ३ तत्पर। सनद्ध। ४ अभिभूत। आक्रांत। ५ प्रवेश किया हुआ। प्रविष्ट [को०]।

आवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रसवकालीन पीड़ा। २ अंतस्सत्वा। गर्भवती। ३ रजस्वला स्त्री [को०]।

आवीत—वि० [सं०] पहना हुआ। धारित। २ गया हुआ। गत [को०]। ३ उपनीत [को०]।

आवीती—वि० [सं० आवीतिन्] दाहिने कंधे पर जनेऊ रखे हुए। जनेऊ उलटा रखे हुए। अपसव्य।

आवुस—संज्ञा पुं० [सं० आयुष्मन्, पालि-प्रा० आवुस] हे आयुष्मन्। प्रिय। उ०—पंचवर्गीय साधुओं ने कहा—'आवुस गौतम हम जानते हैं'।—बौ० न०, पृ० ५०।

आवृत—वि० [सं०] १ छिपा हुआ। ढका हुआ। उ०—था प्रेमलता में आवृत वृष धवल धर्म का प्रतिनिधि।—कामायनी, पृ० २७५। २ लपेटा हुआ। आच्छादित। उ०—अपने को आवृत किए रहो, दिखलाओ निज कृत्रिम स्वरूप।—कामायनी, पृ० १६६। ३ घिरा हुआ। छेंका हुआ। उ०—उस शक्ति की विफलता की विषादमयी छाया से लोक को फिर आवृत दिखाकर छोड दिया।—रस०, पृ० ६१।

आवृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ढक्कन। आवरण [को०]।

आवृत्त—वि० [सं०] १ दुहराया हुआ। आवृत्ति किया हुआ। २ लौटाया या फिराया हुआ। ३ पढ़ा हुआ [को०]।

आवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बार बार किसी बात का अभ्यास। एक ही काम को बार बार करना। जैसे,—पाठ की आवृत्ति

कर जाओ। २ पाठ करना। पढना। ३ घूमना। लौटना [को०]। ४ पलायन [को०]। ५ संसृति। ससार [को०]। ६ किसी पुस्तक आदि का पुनर्मुद्रण। सस्करण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आवृत्तिदीपक—सज्ञा पुं० [सं०] दीपक अलकार का एक प्रकार जिसमे क्रियापदो की अनेक बार आवृत्ति होती है [को०]।

आवृष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] वृष्टि। वर्षा [को०]।

आवेग—सज्ञा पु० [सं०] १ चित्त की प्रवल वृत्ति। मन की झोक। जोर। जोश। जैसे,—क्रोध के आवेग मे हमने तुम्हे वे बातें कही थी। २ रस के सचारी भावो मे से एक। अकस्मात् इष्ट या अनिष्ट के प्राप्त होने से चित्त की आतुरता।

आवेजा—सज्ञा पुं० [फा० आवेजह्] १ लटकनेवाली वस्तु। २ किसी गहने मे शोभा के लिये लटकती हुई वस्तु। जैसे,—लटकन। झुलनी इत्यादि।

आवेदक—वि० [स०] निवेदन करनेवाला। प्रार्थी।

आवेदन—सज्ञा पु० [स०] [वि० आवेदक, आवेदनीय, आवेदित, आवेदी, आवेद्य] अपनी दशा को सूचित करना। निवेदन। अर्जी।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—आवेदनपत्र।

आवेदनपत्र—सज्ञा पुं० [स०] वह पत्र या कागज जिसपर सुधार की आशा से कोई अपनी दशा लिखकर सूचित करे।

आवेदनीय—वि० [सं०] निवेदन करने योग्य।

आवेदित—वि० [स०] निवेदन किया हुआ। सूचित किया हुआ।

आवेदी—वि० [स० आवेदिन्] निवेदन या सूचित करनेवाला।

आवेद्य—वि० [स०] दे० 'आवेदनीय'।

आवेलतेल—सज्ञा पु० [देश०] १ नारियल का वह तेल जो ताजी गरी से निकाला गया हो। २ वह तेल जो सूखी गरी से निकाला जाता है। 'मुठेल' का उलटा।

आवेश—सज्ञा पु० [स०] १ व्याप्ति। सचार। दौरा। २. प्रवेश। ३. चित्त की प्रेरणा। झोक। वेग। आतुरता। जोश। उ०—क्रोध के आवेश मे मनुष्य क्या नही कर डालता।—(शब्द०)। ४ भूत प्रेत की वाधा। ५ अपस्मार। मृगी रोग। ६. सकल्प। अभिनिवेश। आग्रह [को०]। ७ गर्व। मद [को०]।

आवेशन—सज्ञा पु० [स०] १ चद्र या सूर्य की परिधि वा परिवेश। २ प्रवेश। ३ कोप। क्रोध। ४ शिल्पशाला। शिल्पकेंद्र। ५. भूत प्रेतादि का आवेश [को०]।

आवेशनिक—सज्ञा पुं० [सं०] मित्रो को दिया जानेवाला भोज। [को०]।

आवेशिक[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ राजशेखर के मतानुसार कवियो की एक श्रेणी। मंत्र आदि के बल से प्राप्त सिद्धि द्वारा आवेश की स्थिति मे कविता करनेवाला कवि। २ अतिथि। अभ्यागत [को०]। ३ अतिथिसत्कार। आतिथ्य [को०]। ४. भीतर जाना। प्रवेश करना। घुसना [को०]।

आवेशिक[2]—वि० १ असामान्य। असाधारण। २ व्यक्तिगत। स्वगत। निजी। ३ अतर्निहित [को०]।

आवेष्टक—सज्ञा पु० [सं०] १ घेरा। २ जाल [को०]।

आवेष्टन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आवेष्टित] १. छिपाने या ढँकने का कार्य। २ छिपाने या ढँकने की वस्तु। ३. वह वस्तु जिसमे कुछ लपेटा हो। वेठन। ४ चहारदीवारी।

आवेष्टित—वि० [स०] १ छिपा हुआ। ढँका हुआ। २ आवेष्टनयुक्त।

आवेसⓅ—सज्ञा पु० [स० आवेश, प्रा० आवेस] दे० 'आवेश'। उ०—वाकी सेवा के आवेस में खाइवे की सुधि हू न रहती।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २११।

आव्रनⓅ—सज्ञा पु० [स० आवरण] आच्छादन। घेरा। उ०—दह कोह सा स्वामि आराम छुट्टौ। पछे पग रा सेन आव्रन्न उट्टौ।—पृ० रा०, ६। ।२०३७।

आशकनीय—वि० [स० आशङ्कनीय] आशकायोग्य। सदेहास्पद [को०]।

आशका—सज्ञा स्त्री० [स० आशङ्का] [वि० आशकित आशंकनीय] १ डर। भय। खौफ। उ०—उसे अपने गिर जाने की आशका थी।—ककाल, पृ० ६४। २ शक। शुबहा। सदेह। ३. अनिष्ट की भावना।

आशकित[1]—वि० [स० आशङ्कित] १ डरा हुआ। भयभीत। २ सदेहात्मक। सदेहयुक्त।

आशकित—वि० १. सदेह। शक। २ भय। डर [को०]।

आशसन—सज्ञा पु० [स०] १ आशा करना। इच्छा करना। २ कहना। घोषित करना [को०]।

आशंसा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ इच्छा। २ आशा। ३ संकेत। ४. भाषण। कथन। ५ कल्पना [को०]।

आशसित—वि० [स०] १ इच्छित। २ परिकल्पित। ३ कथित। ४ सोचा हुआ [को०]।

आशसिता—वि० [स० आशसितृ] १. आशा या इच्छा करनेवाला। २ वक्ता। कथन करनेवाला [को०]।

आशसी—वि० [स० आशसिन्] दे० 'आशसिता' [को०]।

आशसु—वि० [स०] दे० 'आशसिता' [को०]।

आश—सज्ञा पु० [स०] आहार। भोजन (समास मे प्रयुक्त) [को०]।

आशक—वि० [स०] खानेवाला। भोजन करनेवाला [को०]।

आशकार—सज्ञा पु० [स० आविष्कार, फा० आशकार, आशकारा, आशकारह] प्रकट। खुला हुआ। स्पष्ट। उ०—जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है। उसी का सब है जलवा जो जहाँ मे आशकारा है।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८५१।

आशना—सज्ञा उभ० [फा०] १ जिससे जान पहचान हो। २ चाहनेवाला। प्रेमी। ३. प्रेमपात्र। जैसे,—(क) वह औरत उसकी आशना है। (ख) वह उस औरत का आशना है।

आशनाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ जान पहचान। २. प्रेम। प्रीति। दोस्ती। ३ अनुचित सबध।

आशफल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष जो मद्रास, बिहार और बंगाल में बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और सजावट के असबाव बनाने के काम में आती है।

आशय—संज्ञा पुं० [सं०] १ अभिप्राय। मतलब। २ वासना। इच्छा। जैसे,—ईश्वर क्लेश, कर्मविपाक और आशय से रहित है।

यौ०—उच्चाशय। नीचाशय। महाशय।

३. स्थान। आधार। जैसे,—आमाशय, गर्भाशय। जलाशय। पक्वाशय। ४. गड्ढा। खात। ५ कटहल। पनश। ६ अभ्युदय। उन्नति [को०]। ७ धन। संपत्ति (को०)। ८ कंजूस। कृपण [को०]। ९. अन्नागार। बखार (को०)। १० भाग्य। नियति [को०]। ११ विश्रामस्थान (को०)। १२. घर। गृह। (को०)। १३. जंगली जानवरों को फँसाने का गड्ढा। अवट [को०]।

आशर—संज्ञा पुं० [सं०] १ राक्षस। उ०—काहू कहूँ शर आशर मारिय। आरत शब्द अकाश पुकारिय।—केशव (शब्द०) २. अग्नि।

आशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अप्राप्त के पाने की इच्छा और थोड़ा बहुत निश्चय। जैसे,—(क) आशा लगाए बैठे हैं, देखें कब उनकी कृपा होती है। (ख) आशा मरे, निराशा जीए। २ अभिलषित वस्तु की प्राप्ति के थोड़े बहुत निश्चय से संतोष। जैसे,—आशा है, कल रुपया मिल जायगा।

क्रि० प्र०—करना।—तोड़ना।—लगाना।—रखना।

मुहा०—आशा टूटना=आशा न रहना। आशा भंग होना। जैसे,—तुम्हारे नहीं कर देने से हमारी इतने दिनों की आशा टूट गई। आशा तोड़ना=किसी को निराश करना। जैसे,—इस तरह किसी की आशा तोड़ना ठीक नहीं। आशा देना=किसी को उम्मेद बँधाना। किसी को उसके अनुकूल कार्य करने का वचन देना। जैसे,—किसी को आशा देकर धोखा देना ठीक नहीं है। आशा पूजना=आशा पूरी होना। आशा पूरी होना=इच्छा और संभावना के अनुसार किसी कार्य या घटना का होना। जैसे,—बहुत दिनों पर हमारी आशा पूरी हुई। आशा पूरी करना=किसी की इच्छा और निश्चय के अनुसार कार्य करना। आशा बँधना=आशा उत्पन्न होना। जैसे,—रोग कमी पर है, इसी से कुछ आशा बँधती है। आशा-बाँधना=आशा करना।

यौ०—आशातीत। आशापाश। आशाबद्ध। आशाभंग। आशा-रहित। आशावान्। निराश। हताश।

३. दिशा।

यौ०—आशागज=दिग्गज। आशापाल=दिक्पाल। आशावसन=दिगंबर। उ०—आशावसन व्यसन यह तिनही। रघुपति चरित होहिं तहँ सुनही।—तुलसी (शब्द०)।

४ दक्ष प्रजापति की एक कन्या। ५. संगीत में एक राग जो भैरव राग का पुत्र कहा जाता है।

आशाढ—संज्ञा पुं० [सं० आशाढ] आषाढ़।

आशातीत—वि० [सं०] आशा से बहुत अधिक। आशा से परे [को०]।

आशानिर्वेदिसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] विजय से हताश सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि आशानिर्वेदि तथा परिमृप्त (भगोड़े) सेना में आशानिर्वेदि उत्तम है, क्योंकि वह अपना स्वार्थ देखकर युद्ध के लिये तैयार हो जाती है।

आशापाश—संज्ञा पुं० [सं०] आशाओं का फंदा, जाल या बंधन।

आशाबंध—संज्ञा पुं० [सं० आशाबन्ध] आशापूर्ति का विश्वास या बंधन [को०]।

आशाबद्ध—वि० [सं०] तरह तरह की आशाओं में पड़ा या लटका हुआ।

आशाभंग—संज्ञा पुं० [सं० आशाभङ्ग] आशा टूटना। आशा का न रह जाना [को०]।

आशार—संज्ञा पुं० [सं०] आश्रयस्थान। सुरक्षा की जगह [को०]।

आशालुब्ध(पु)-वि० [सं० आशालुब्ध, प्रा० आसालुद्ध] आशा के कारण लोभ में पड़ी हुई। आशालुब्ध। उ०—आसालुद्धी हूँ न मुइय सज्जन जजालेह। ढोला०, दू० २०६।

आशावसन—संज्ञा पुं० [सं० आशा+वसन] दिशाएँ जिनके वस्त्र रूप में हैं अर्थात् १ शिव। २ शुक। ३ सनत्कुमार आदि। ४. दिगंबर साधु।

आशावह—संज्ञा पुं० [सं०] १. आदित्य। सूर्य। २ वृष्णि [को०]।

आशासन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु की आकांक्षा करना या तदर्थ निवेदन [को०]।

आशासनीय[1]—वि० [सं०] आकांक्षणीय। अभिलषणीय [को०]।

आशासनीय[2]—संज्ञा पुं० १ आशीर्वचन। २ आकांक्षा। स्पृहा [को०]।

आशास्य—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आशासनीय' [को०]।

आशिंजन—संज्ञा पुं० [सं० आशिञ्जन] आभूषणों की झंकृति [को०]।

आशिंजित-वि० [सं० आशिञ्जित] झंकृत। झंकार करता हुआ [को०]।

आशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भोजन। खाना। भक्षण [को०]।

आशिक[1]—संज्ञा पुं० [अ० आशिक़] प्रेम करनेवाला मनुष्य। चित से चाहनेवाला मनुष्य। अनुरक्त पुरुष।

आशिक[2]—वि० प्रेमी। आसक्त। चाहनेवाला। मोहित।

क्रि० प्र०—होना।

यौ०—आशिकतन। आशिकजार=अनुरक्त प्रेमी। उ०—बेकरार आशिकजार भाँति भाँति की बोलियाँ बोल रहे हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११८। आशिकनवाज=प्रेमियों पर दयालु। आशिक माशूक=प्रेमी और प्रेमिका या प्रेमपात्र। आशिक-मिजाज=(१) आशिकाना मिजाज का। प्रेमी हृदय का। (२) दिलफेंक (व्यंग्य)।

आशिकाना—वि० [अ० आशिक़ानह्] आशिकों की तरह का। आशिकों का सा। आशिकों के ढंग का।

आशिकी—संज्ञा स्त्री० [अ० आशिक़+फा० ई (प्रत्य०)] प्रेम। मुहब्बत।

आशित—वि० [सं०] १. अशित। खाया हुआ। २. खा करके तृप्त। ३. अधिक भोजन करनेवाला [को०]।

आशिता—वि० [स० आशितृ] अधिक भोजन करनेवाला व्यक्ति। पेटू [को०]।

आशिमा—संज्ञा स्त्री० [स० आशिमन्] त्वरा। तेजी। वेग [को०]।

आशियाँ—संज्ञा पु० [फ़ा०] १. चिड़ियों का बसेरा। पक्षियों के रहने का स्थान। घोसला। उ०—गिरी है जिस पै कल बिजली वोह मेरा आशियाँ क्यों हो।—शेर०, पृ० ५२४। २ छोटा सा घर। झोपड़ा। उ०—क्या करे जाके गुलसिताँ में हम, आग रख आए आशियाँ में हम।—शेर०, पृ० २०३।

आशियाना—संज्ञा पु० [फा० आशियानह्] दे० 'आशियाँ'।

आशिष—संज्ञा स्त्री० [सं० आशिष्, आशिस्] १ आशीर्वाद। आसीस। दुआ। उ०—गुरुजन की आशिष सीस धरो,—आराधना०, पृ० ५१। २ एक अलंकार जिसमें अप्राप्त वस्तु के लिये प्रार्थना होती है। उ०—सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली, उर माल। इहि बानक मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल।—बिहारीर०, दो० ३०१। ३ दे० 'आशी' [को०]।

आशिषाक्षेप—संज्ञा पु० [स०] वह काव्यालंकार जिसमें दूसरों का हित दिखलाते हुए ऐसी बातों को करने की शिक्षा दी जाय जिनसे वास्तव में अपने ही दुःख की निवृत्ति हो। उ०—मंत्री मित्र पुत्र जन केशव कलत्र गन सोदर सुजन जन भट सुख साज सों। एतो सब होतै जात जो पै है कुशल गात, अवहीं चलौ कै प्रात, सगुन समाज सों। कीन्हो जु पयान बाघ छमिश्रै सु अपराध, रहिश्रै न पल आध, बँधिश्रै न लाज सों। हौं न कहौ, कहत निगम सब अब तब, राजन परम हित आपने ही काज सों।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १५६।

आशी[1]—संज्ञा स्त्री० [स०] १ सर्प का विषैला दाँत। २ वृद्धि नाम की जड़ी जो दवा के काम में आती है। ३. सर्प का विष (को०)।

आशी[2]—वि० [स० आशिन्] [वि०स्त्री० आशिनी] खानेवाला। भक्षक।

यौ०—वाताशी। फलाशी।

विशेष—इसका प्रयोग समास के अंत ही में होता है।

आशीर्वचन—संज्ञा पु० [सं०] आशीर्वाद। आसीस। दुआ।

आशीर्वाद—संज्ञा पुं० [स०] किसी के कल्याण की कामना प्रकट करना। मंगलकामनासूचक वाक्य। आशिष। दुआ।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—मिलना।—लेना।

यौ०—आशीर्वादात्मक।

आशीविष—संज्ञा पु० [स०] १ वह जिसके दाँतों में विष हो (को०)। २ सर्प। साँप।

आशीष—संज्ञा स्त्री० [स० आशिष्] दे० 'आशिष'। उ०- देते आकर आशीष हमें मुनिवर हैं।—साकेत, पृ० २०४।

आशु[1]—संज्ञा पु० [स०] बरसात में होनेवाला एक धान। सावन भादों में होनेवाला। व्रीहि। पाटल। आउस। साठी।

आशु[2]—वि० तीव्र। तेज। त्वरित [को०]।

आशु[3]—क्रि० वि० शीघ्र। जल्द। तुरत।

विशेष—गद्य में इसका प्रयोग यौगिक शब्दों के साथ ही होता है।

यौ०—आशुकवि। आशुतोष। आशुव्रीहि। आशुमत।

आशुकवि—संज्ञा पु० [स०] वह कवि जो तत्क्षण कविता कर सके।

आशुकोपी—वि० [स० आशुकोपिन्] शीघ्र ही क्रुद्ध हो जानेवाला। झगड़ालू। चिड़चिड़ा [को०]।

आशुग[1]—वि० [स०] जल्दी चलनेवाला। शीघ्रगामी।

आशुग[2]—संज्ञा पुं० १. वायु। २. बाण। तीर। ३ रवि (को०)।

आशुगामी[1]—वि० [स० आशुगामिन्] १ तेज चलनेवाला। तीव्रगामी। २. त्वरान्वित [को०]।

आशुगामी[2]—संज्ञा पुं० सूर्य [को०]।

आशुतोष[1]—वि० [स०] शीघ्र संतुष्ट होनेवाला। जल्दी प्रसन्न होनेवाला।

आशुतोष[2]—संज्ञा पुं० शिव। महादेव।

आशुशुक्षणि—संज्ञा पु० [सं०] १ अग्नि। २. वायु।

आशुव्रीहि—संज्ञा पुं० [स०] एक धान्य। आउस। साठी [को०]।

आशोब—संज्ञा पु० [फा०] १ आँख की पीड़ा। २ भय। डर। खौफ [को०]। ३ झगड़ा फसाद। शोरगुल [को०]।

क्रि० प्र०—उठना। होना।

आशोषण—संज्ञा पुं० [स०] पूरी तरह सोख लेने का काम [को०]।

आशौच—संज्ञा पु० [स०] अशुद्धि। अशौच का भाव [को०]।

आशौची—वि० [स० आशौचिन्] अपवित्र। अशौच। अशुद्ध [को०]।

आश्चर्य[1]—संज्ञा पुं० [स०] [वि० आश्चर्यित] १ वह मनोविकार जो किसी नई, अभूतपूर्व, असाधारण, बहुत बड़ी अथवा समझ में न आनेवाली बात के देखने, सुनने या ध्यान में न आने से उत्पन्न होती है। अचंभा। विस्मय। तअज्जुब।

क्रि प्र०—करना।—मानना।—होना।

यौ०—आश्चर्यकारक। आश्चर्यजनक।

२ रस के नौ स्थायी भावों में से एक।

आश्चर्य[2]—वि० आश्चर्ययुक्त। अद्भुत। विस्मयपूर्ण [को०]।

आश्चर्यित—वि० [स०] विस्मित। चकित।

आश्च्योतनकर्म—वि० [स०] आँख में दिन के समय किसी औषध की आठ बूँद डालना।

आश्म[1]—वि० [स०] अश्मरचित। पत्थर का बना हुआ [को०]।

आश्म[2]—संज्ञा पु० पत्थर की बनी वस्तु [को०]।

आश्मन[1]—वि० [सं०] दे० 'आश्म'।

आश्मन[2]—संज्ञा पुं० [स०] गरुडाग्रज अरुण जो सूर्य का सारथी है [को०]।

आश्मरिक—वि० [स०] अश्मरी-रोग-ग्रस्त। पथरी का रोगी [को०]।

आश्मिक—वि० [सं०] १ पत्थर ढोनेवाला। २ प्रस्तर निर्मित [को०]।

आश्यान—वि० [स०] जमकर कुछ सुखने या ठोस होनेवाला [को०]।

आश्र—संज्ञा पु० [सं०] अश्रु। आँसू [को०]।

आश्रपरा—संज्ञा पुं० [स०] पाचन क्रिया। पाक क्रिया [को०]।

आश्रम—संज्ञा पुं० [स०] [वि० आश्रमी] ऋषियों और मुनियों का निवासस्थान। तपोवन। २ साधु संत के रहने की जगह।

जैसे,—कुटी या मठ। ३. विश्रामस्थान। ठहरने की जगह। उ०—आश्रय दो आश्रमवासिनि, मेरी हो तुम्हीं सहारा।—गीतिका, पृ० ६३। ४ विष्णु [को०]। ५ गुरुकुल [को०]। ६. स्मृति में कही हुई हिंदुओं के जीवन की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ। ये अवस्थाएँ चार हैं ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास। उ०—(क) देहिं असीस भूमिसुर प्रमुदित प्रजा प्रमोद बढाए। आश्रम धर्म विभाग वेद पथ पावन लोग चलाए। (शब्द०)।

यौ०—**आश्रमगुरु। आश्रमधर्म। आश्रमपद, आश्रममंडल**=तपोवन। **आश्रमवास। गृहस्थाश्रम। वर्णाश्रम।**

आश्रमी—वि० [सं० **आश्रमिन्**] १. आश्रमसंबंधी। २ आश्रम मे रहनेवाला। ३. ब्रह्मचर्यादि चार आश्रमों मे से किसी को धारण करनेवाला।

आश्रय—संज्ञा पुं० [स०] [वि० **आश्रयी, आश्रित**] १ आधार। सहारा। अवलंब। जैसे,—छत खंभों के आश्रय पर है।

यौ०—**आश्रयाश।**

२ आधार वस्तु। वह वस्तु जिसके सहारे पर कोई वस्तु हो। ३. शरण। पनाह। ठिकाना। जैसे,—(क) वह चारो ओर मारा मारा फिरता है, उसे कही आश्रय नही मिलता। (ख) राजा ने उसको अपने यहाँ आश्रय दिया।

क्रि० प्र०—**चाहना।—ढूँढ़ना।—देना। —पाना। —मिलना। —लेना।**

४ जीवन निर्वाह का हेतु। भरोसा। सहारा। जैसे,—हमे तुम्हारा ही आश्रय है कि और किसी का। ५ राजाओं के छह् गुणों में से एक। ६. घर। मकान ७. तरकस। साथी। तूणीर [को०]। ८. अभ्यास [को०]। ९ व्याकरण मे उद्देश्य। १० बौद्ध मत से मन और पंच ज्ञानेंद्रिय (को०)। ११ सामीप्य। सन्निकटता। संनिधि [को०]।

आश्रयण—संज्ञा पुं० [स०] सहारा लेने का कार्य।

आश्रयणीय—वि० [सं०] अवलंबन के योग्य। सहारा लेने योग्य।

आश्रयभुक्—संज्ञा पुं० [सं० **आश्रयभुज्**] १ दे० 'आश्रयाश'। २ कृत्तिका नाम का नक्षत्र [को०]।

आश्रयाश—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

आश्रयासिद्ध—वि० [सं०] १ न्यायशास्त्र के अनुसार वह तर्क जिसका आधार असत्य हो। एक हेत्वाभास। २. असत्य या मिथ्या। ३ अमान्य [को०]।

आश्रयी—वि० [सं० **आश्रयिन्**] आश्रय लेनेवाला। आश्रय पानेवाला। सहारा लेनेवाला। सहारा पानेवाला।

आश्रव—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी के कहे पर चलना। वचन। स्थिति। २ अंगीकार। ३. क्लेश। ४ जैनमत के अनुसार मन, वाणी और शरीर से किए हुए कर्म का संस्कार जिसे जीव ग्रहण करके बद्ध होता है। यह दो प्रकार का है—पुण्याश्रव और पापाश्रव। ५. बौद्ध दर्शन के अनुसार विषय जिसमे प्रवृत्त होकर मनुष्य बंधन मे पडता है। यह चार प्रकार का है—कामाश्रव, भावाश्रव, दृष्टाश्रव और अविद्याश्रव। ६. अग्नि पर पकते हुए चावल के बुद्बुद या फेन (को०)। ७. सरिता। नदी (को०)। ८. प्रवाह। धारा (को०)।

आश्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] असिधारा। तलवार की धार [को०]।

आश्रित[1]—वि० [सं०] १ सहारे पर टिका हुआ। ठहरा हुआ। उ०—यहि विधि जग हरि आश्रित रहई।—तुलसी (शब्द०)। २. भरोसे पर रहनेवाला। दूसरे का सहारा लेनेवाला। अधीन। शरणागत। जैसे,—वह तो आपका आश्रित ही है, जैसे चाहिए, उसको रखिए। ३ सेवक। दास।

आश्रित[2]—संज्ञा पुं० न्याय मत मे आकाश और परमाणु नित्य द्रव्यों को छोड दूसरे अनित्य द्रव्यों का किसी न किसी अंश मे एक दूसरे से साधर्म्य। आश्रितत्व। साधर्म्य।

विशेष—भिन्न भिन्न नित्य द्रव्य परमाणुओं ही से बने हैं अत रूपांतर होने पर भी उनमे किसी न किसी अंश मे समानता रहेगी। पर नित्य द्रव्य पृथक् हैं इससे उनमे एक दूसरे से साधर्म्य नही।

आश्रितत्व—संज्ञा पुं० [सं०] आश्रित रहने या होने का भाव।

आश्रुत—वि० [सं०] १. गृहीत। अंगीकृत। स्वीकृत। २ आकर्णित। श्रुत। सुना हुआ [को०]।

आश्रुति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ स्वीकृति। वचनदान। २ आकर्णन। श्रवण [को०]।

आश्लिष्ट—वि० [स०] १ आलिंगित। हृदय से लगा हुआ। २. लगा हुआ। चिपका हुआ। सटा हुआ। मिला हुआ।

आश्लेष—संज्ञा पुं० [सं०] १ आलिंगन। २ लगाव।

आश्लेषण—संज्ञा पुं० [स०] मिलावट। मेल।

यौ०—**आश्लेषण विश्लेषण**=कई दवाओं को एक साथ मिलाना और मिली हुई दवाओं को अलग अलग करना।

२ आश्रयण। नवें नक्षत्र का नाम।

आश्लेषा—संज्ञा स्त्री० [स०] नवें नक्षत्र का नाम।

आश्लेषित—वि० [स०] लगा हुआ। चिपका हुआ। आलिंगित।

आश्व—संज्ञा पुं० [स०] १. घोडों का झुंड। २ घोडे की स्थिति या दशा। ३ वह रथ जिसे घोडे खींचते है।

आश्वत्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आश्वत्थ या पीपल का फल [को०]।

आश्वत्थ[2]—वि० [स०] १ अश्वत्थ या पीपल संबंधी। २ पीपल मे फल आने के समय से संबद्ध [को०]।

आश्वत्था—संज्ञा स्त्री० [स०] अश्विनी नक्षत्र की रात्रि [को०]।

आश्वमेधिक—वि० [सं०] अश्वमेध यज्ञ या अश्वमेध संबंधी [को०]।

आश्वयुज—संज्ञा पुं० [स०] वह महीना जिसकी पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्र युक्त हो। आश्विन। क्वार।

आश्वलक्षणिक—संज्ञा पुं० [सं०] घोडों के भले बुरे लक्षण पहचाननेवाला। शालिहोत्री [को०]।

आश्वलायन—संज्ञा पुं० [सं०] आश्वलायन गृह्यसूत्रों और श्रौतसूत्रों के रचयिता ऋषि का नाम [को०]।

आश्वस्त— वि० [सं०] १ निर्भय। उ०—आर्य सभ्यता हुई प्रतिष्ठित आर्य धर्म आश्वस्त हुआ।—साकेत, पृ० ३७९। २ उत्साहयुक्त [को०]।

आश्वास— संज्ञा पुं० [सं०][वि० आश्वासक] १. सात्वना। दिलासा। तसल्ली। आशाप्रदान। २ किसी कथा का एक भाग। ३ विराम [को०]। ४ पूरी तरह खुलकर सांस लेना [को०]।

आश्वासक¹— वि० [सं०] दिलासा देनेवाला। भरोसा देनेवाला।

आश्वासक²— संज्ञा पुं० कपडा। वस्त्र [को०]।

आश्वासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आश्वासनीय, आश्वासित, आश्वास्य] दिलासा। तसल्ली। सात्वना। आशाप्रदान। उ०— व्याकुल को आश्वासन सा देती हुई।—महा०, पृ० ४।

आश्वासनीय—वि० [सं०] दिलासा देने योग्य। तसल्ली देने योग्य। प्रोत्साहन के योग्य।

आश्वासित—वि० [सं०] दिलासा दिया हुआ। दिलासा पाया हुआ।

आश्वासी—वि० [सं० आश्वासिन्] १ आश्वासन देनेवाला। दिलासा या ढाढस वँधानेवाला। २ आत्मविश्वासी। ३ प्रफुल्लचित्त [को०]।

आश्वास्य—वि० [सं०] दे० 'आश्वासनीय'।

आश्विक¹—वि० [सं०] १ घोडों से सबध रखनेवाला। अश्वारोही घोडे से खीचा जानेवाला [को०]।

आश्विक²— संज्ञा पुं० घुडसवार सैनिक [को०]।

आश्विन— संज्ञा पुं० [सं०] १ वह महीना जिसकी पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्र मे पडे। क्वार का महीना। २ अश्विनीकुमार। ३ एक यज्ञ [को०]।

आश्विनेय—संज्ञा पुं० [सं०] १ अश्विनीकुमार। २ नकुल और सहदेव।

आष(पु)— स्त्री० पुं० [सं० आखु] दे० 'आखु'। उ०— आष इच्छि चष अग्ग। घात मजार न मडै।— पृ० रा०, ६३।१६०।

आषाढ—संज्ञा पुं० [सं० आषाढ] वह चाद्रमास जिसकी पूर्णिमा को पूर्वाषाढ़ नक्षत्र हो। जेष्ठ मास के पश्चात् और श्रावण के पूर्व का महीना। असाढ। २ ब्रह्मचारी का दड। ३ पलाश। ढाक।

आषाढक¹—वि० [सं० आषाढक] आषाढ मास मे होनेवाला। आषाढ़ सबधी [को०]।

आषाढक²—संज्ञा पुं० आषाढ मास [को०]।

आषाढा—संज्ञा पुं० [सं० आषाढा] पूर्वाषाढा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र।

आषाढाभव, आषाढाभू—संज्ञा पुं० [सं० आषाढाभव-भू] मगल ग्रह।

आषाढी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० आषाढी] १ आषाढ मास की पूर्णिमा।

विशेष—इस दिन गुरुपूजा या व्यास पूजा होती है। वृष्टि आदि का आगम निश्चय करने के लिये वायुपरीक्षा भी इसी दिन की जाती है।

२ इस पूर्णिमा के दिन होनेवाले कृत्य।

आषाढी²—वि० [सं० आषाढिन्] पलाशदड धारण करनेवाला [को०]।

आषाढीय—वि० [सं० आषाढीय] आषाढा नक्षत्र मे उत्पन्न [को०]।

आषाढी योग—संज्ञा पुं० [सं० आषाढी योग] आषाढ शुक्ला पूर्णिमा को अन्न की तौल से सुवृष्टि आदि का निश्चय।

विशेष—इस दिन लोग थोडा सा अन्न तौलकर हवा मे रख देते हैं। यदि वहाँ की सील से अन्न की तौल कुछ बढ़ गई तो समझते है कि वृष्टि होगी और सुकाल रहेगा।

आसग¹—संज्ञा पुं० [सं० आसङ्ग] १ साथ। सग। २ लगाव। सबध। ३ आसक्ति। अनुरक्ति। लिप्तता। ४ मुलतानी मिट्टी जिसे सिर मे मलकर लोग स्नान करते हैं।

आसग²—क्रि० वि० सतत। निरतर। लगातार।

आसगत्य—संज्ञा पुं० [सं० आसङ्गत्य] १ असगति का भाव या अवस्था। पार्थक्य। अलगाव। २ वियोग [को०]।

आसगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० आसङ्गिनी] बवडर। वात्याचक्र [को०]।

आसगी—वि० [सं० आसङ्गिन्] १ सपर्की। मेलजोल रखनेवाला। २. आसक्त [को०]।

आसजन—संज्ञा पुं० [सं० आसञ्जन] १ बाँधना या जोडना। २ पहनना या धारण करना। ३. अनुराग। ४ भक्ति। ५ मूठ [को०]।

आसद—संज्ञा पुं० [सं० आसन्द] वासुदेव या विष्णु [को०]।

आसदिका—संज्ञा स्त्री० [आसन्दिका] १ मचिया। २ आसनी [को०]।

आसदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मचिया। मोढा। कुरसी। २ खटोला।

आसबाध— वि० [सं० आसम्बाध] १ अवरुद्ध। घेरे मे पडा हुआ। २ फैला हुआ [को०]।

आससार—वि० [सं०] विकारी। प्रगतिशील। परिवर्तनशील [को०]।

आससृति—वि० [सं०] दे० 'आससार'।

आस¹—संज्ञा स्त्री० [सं० आशा] १ आशा। उम्मेद। उ०—साथि चले सँग बीछुरा, भए बिच समुद पहार। आस निरासा हौं फिरौं, तू विधि देहि अधार।—जायसी ग्र०, पृ० ३०। २ लालसा। कामना। उ०—तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि वैदेहि विवाहू।—मानस, १।२५२। ३ सहारा। आधार। भरोसा। जैसे,—हमे किसी दूसरे की आस नही।

मुहा०— **आस करना**=(१) आशा करना। (२) आसरा करना। मुँह ताकना। जैसे,—चलते पौरुष किसी की आस करना ठीक नही। **आस छोड़ना**=आशा परित्याग करना। उम्मेद न रखना। **आस टूटना**=निराश होना। जैसे,—जब आस टूट जाती है, तब कुछ करते धरते नही बनता। **आस तकना**=(१) आसरा देखना। इतजार करना। जैसे,—तुम्हारी आस तकते तकते दोपहर हो गए। (२) सहायता की अपेक्षा रखना। मुँह जोहना। जैसे,—ईश्वर न करे किसी की आस तकनी पडे। **आस तजना**=आशा छोडना। **आस तोडना**=किसी की आशा के विरुद्ध कार्य करना। किसी को निराश करना। जैसे,—किसी की आशा तोडना ठीक नही। **आस देना**=(१) उम्मेद वँधाना। किसी को उसके इच्छानुकुल कार्य करने का वचन देना। जैसे,—किसी को आस देकर तोडना ठीक नही। (२) संगीत मे किसी बाजे या स्वर से सहायता देना। **आस पुराना**=आशा पूरी करना। **आस पुजना**=आशा पूरी होना।

इच्छानुकूल फल मिलना। उ०—एकहि वार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी।—मानस, २।१६। **आस पूरना**=दे० 'आस पूजना'। **आस बँधना**=आशा उत्पन्न होना। जैसे,—रोगी की अवस्था कुछ सुधरी है, इसी से आस बँधती है। **आस लगना**=आशा उत्पन्न होना। **आस लगाना**=आशा बाँधना। **आस होना**=(१) आशा होना। (२) सहारा होना। आश्रय होना। (३) गर्भ होना। गर्भ रहना। जैसे,—तुम्हारी बहू को कुछ आस है।

यौ०—आस औलाद।

आस[2]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० आशा] दिशा। उ०—जैसे तैसे बीतिगे कलपत द्वादश मास। आई बहुरि बसंत ऋतु विमल भई दस आस।—रघुराज (शब्द०)।

आस[3]—संज्ञा पुं० [सं०] १ धनुष। कमान। २ चूतड़। ३ आसन (को०)। ४ उपवेशन। बैठना (को०)। ५ संनिधि। सामीप्य (को०)।

यौ०—कप्यास।

आसकत†—संज्ञा पुं० [सं० अशक्ति] [वि० आसकती, क्रि० असकताना] सुस्ती। आलस्य।

आसकती†—वि० [हिं० आसकत+ई (प्रत्य०)] आलसी।

आसक्त—वि० [सं०] १ अनुरक्त। लीन। लिप्त। जैसे,–इंद्रियों में आसक्त रहना ज्ञानियों का काम नहीं। २. आशिक। मोहित। लुब्ध। मुग्ध। जैसे–वह उस स्त्री पर आसक्त है। ३ विश्वास माननेवाला (को०)।

आसक्ति—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ अनुरक्ति। लिप्तता। २. लगन। चाह।

आसत्तिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आसक्ति'। उ०—आसति कहूँ न देखिहूँ, बिन नाँव तुम्हारे।—कबीर ग्र०, पृ० १५२।

आसतीन—संज्ञा स्त्री० [फा० आस्तीन] दे० 'आस्तीन'।

आसते[1]Ⓟ—क्रि० वि० [फा० आहिस्तह्] १ धीरे धीरे। उ०—पौन करि आसते न जाऊँ उठी बास तें, अरी गुलाबपास तें, उठाउ आसपास तें।—पद्माकर ग्र०, पृ० १६२। २. होते हुए।

आसते[2]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'आसना'।

आसतोषⓅ—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आशुतोष'। उ०—समरथ दूलनदास के आसतोष तुम राम।—संतबानी०, भा० १, पृ० १३७।

आसत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सामीप्य। निकटता। २ अर्थबोध के लिये बिना व्यवधान के एक दूसरे से संबंध रखनेवाले पदों या शब्दों का पास पास रहना। जैसे,—यदि कहा जाय कि 'वह खाता था पुस्तक और पढ़ता था दाल चावल' तो कुछ बोध नहीं होता, क्योंकि आसत्ति नहीं है। पर यदि कहें कि 'वह दाल चावल खाता था और पुस्तक पढ़ता था' तो तात्पर्य खुल जाता है। पदों का अन्वय आसत्ति के अनुसार होता है। ३ प्राप्ति। पाना। लाभ। (को०)। मेल। संगति (को०)।

आसथाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० आस्था] अंगीकार।—(हिं०)।

आसथानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० आस्थान] दे० 'आस्थान'।

आसदन—संज्ञा पुं०[सं०]१. लाभ। मुनाफा। २ संबंध। संपर्क। ३ निकटता। समीपता। ४ बैठने की क्रिया। बैठना। ५. आसन [को०]।

आसन[1]—संज्ञा पुं०[सं०]१ स्थिति। बैठने की विधि। बैठक। जैसे,–ठीक आसन से बैठो।

विशेष—यह अष्टांग योग का तीसरा अंग है और पाँच प्रकार का होता है-पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन,वज्रासनऔरवीरासन। कामशास्त्र या कोकशास्त्र में भी रतिप्रसंग के ८४ आसन हैं।

यौ०—पद्मासन। सिद्धासन। गरुडासन। कमलासन। मयूरासन।

मुहा०—**आसन उखड़ना**=(१) अपनी जगह से हिल जाना।(२)घोड़े की पीठ पर रान न जमना। जैसे,—वह अच्छा सवार नहीं है, उसका आसन उखड़ जाता है। **आसन उठना**=स्थान छूटना। प्रस्थान होना। जानना। जैसे,—तुम्हारा आसन यहाँ से कब उठेगा? **आसन करना**=(१) योग के अनुसार अंगों को तोड़ मरोड़कर बैठना। (२)बैठना। टिकना। ठहरना। जैसे,— उन महात्मा ने वहाँ आसन किया है। **आसन कसना**=अंगों को तोड़ मरोड़कर बैठना। **आसन छोड़ना**=उठ जाना। चला जाना। **आसन जमना**=(१) जिस स्थान पर जिस रीति से बैठे, उसी स्थान पर उसी रीति से स्थिर रहना। जैसे,—अभी घोड़े की पीठ पर उनका आसन नहीं जमता है। (२) बैठने में स्थिर भाव आना। जैसे,—अब तो वहाँ आसन जम गया, अब जल्दी नहीं उठते। **आसन जमाना**=स्थिर भाव से बैठना। जैसे,—वह एक घड़ी भी कहीं आसन जमाकर स्थिर भाव से नहीं बैठता। **आसन जोड़ना**=दे० 'आसन जमाना'। **आसन डिगना**=(१) बैठने में स्थिर भाव न रहना। (२) चित्त चलायमान होना। मन डोलना। इच्छा और प्रवृत्ति होना। (जिसमें जिस बात की आशा न हो वह यदि उस बात को करने पर राजी या उतारू हो तो उसके विषय में यह कहा जाता है।) जैसे,—(क) जब रुपया दिखाया गया, तब तो उसका भी आसन डिग गया। (ख) उस सुंदरी कन्या को देख नारद का आसन डिग गया। **आसन डिगाना**=(१) जगह से विचलित करना। (२) चित्त को चलायमान करना। लोभ या इच्छा उत्पन्न करना। **आसन डोलना**=(१) चित्त चलायमान होना। लोगों के विश्वास के विरुद्ध किसी की किसी वस्तु की ओर इच्छा या प्रवृत्ति होना। जैसे—मेनका के रूप को देख विश्वामित्र का भी आसन डोल गया। (ख) रुपए का लालच ऐसा है कि बड़े बड़े महात्माओं का भी आसन डोल जाता है। (२) चित्त क्षुब्ध होना। हृदय पर प्रभाव पड़ना। हृदय में भय और करुणा का संचार होना। जैसे,—(क) विश्वामित्र के घोर तप को देख इंद्र का आसन डोल उठा। (ख) जब प्रजा पर बहुत अत्याचार होता है, तब भगवान् का आसन डोल उठता है। **आसन ढोल**=कहारों की बोली। जब पालकी का सवार बीच से खिसककर एक ओर होता है और पालकी उस ओर झुक जाती है तब कहार लोग यह वाक्य बोलते हैं। **आसन तले आना**=वश में आना। अधीन होना। **आसन देना**=सत्कारार्थ बैठने के लिये कोई वस्तु रख देना या

बतला देना। बैठाना। **आसन पहचानना**=बैठने के ढंग से घोड़े का सवार को पहचानना। जैसे,—घोड़ा सवार को पहचानता है, देखो मालिक के चढ़ने से कुछ इधर उधर नहीं करता। **आसन पाटी**=खाट खटोला। ओढ़ने बिछाने की वस्तु। **आसन पाटी लेकर पड़ना**=अटवाटी खटवाटी लेकर पड़ना। दुख और कोप प्रकट करने के लिये ओढ़ना ओढ़कर या बिछौना बिछाकर खूब आडंबर के साथ सोना। **आसन बाँधना**=दोनो रानो के बीच दबाना। जाँघो से जकड़ना। **आसन मारना**=(१) जमकर बैठना। (२) पालथी लगा कर बैठना। उ०—मठ मडप चहुँ पास सकारे। जपा तपा सब आसन मारे।—जायसी (शब्द०)। **आसन लगाना**=(१) आसन मारना। जम कर बैठना। (२) टिकना। ठहरना। जैसे,—बाबा जी, आज तो यही आसन लगाइए। (३) किसी कार्य के साधन के लिये गड़कर बैठना। जैसे,—यदि आज न दोगे तो यही आसन लगावेगा। (४) बैठने की वस्तु फैलाना। बिछौना बिछाना। जैसे,—बाबा जी के लिये यही आसन लगा दो। **आसन होना**=रतिप्रसग के लिये उद्यत होना। २ बैठने के लिये कोई वस्तु। वह वस्तु जिसपर बैठें।

विशेष—बाजार मे ऊन, मूँज या कुश के बने हुए चौखूँटे आसन मिलते हैं। लोग इनपर बैठकर अधिकतर पूजन या भोजन करते हैं।

३ टिकान या निवास। (साधुओ की बोली)। ४. साधुओ का डेरा या निवास स्थान।

क्रि० प्र०—करना=टिकना। डेरा डालना।—देना=टिकाना। ठहराना। डेरा देना।

५ चूतड़। ६ हाथी का कधा जिसपर महावत बैठता है। ७ सेना का शत्रु के सामने डटे रहना। ८. उपेक्षा की नीति से काम करना। यह प्रकट करना कि हमे कुछ परवाह नहीं है।

विशेष—इस नीति के अनुसार शत्रु के चढ आने या घेरने पर भी राजा लोग नाचरग का सामान करते हैं।

९ कौटिल्य के अनुसार उदासीन या तटस्थ रहने की नीति। आक्रमण के रोके रहने की नीति। १० एक दूसरे की शक्ति नष्ट करने मे असमर्थ होकर राजाओ का सधि करके चुपचाप रह जाना।

विशेष—यह पाँच प्रकार का कहा गया है—विगृह्यासन, सधानासन, सभूयासन, प्रसगासन और उपेक्षासन।

आसन२—सज्ञा पुं० [स०] १ जीवक नाम का अष्टवर्गीय ओषधि। २ जीरक। जीरा।

आसना१ (पु)—क्रि० अ० [स० अस्=होना] होना। उ०—(क) है नाही कोइ ताकर रूपा। ना ओहि सन कोइ आहि अनूपा।—जायसी ग्र०, पृ० ३। (ख) मरी डरी कि टरी बिथा, कहा खरी, चलि चाहि। रही कराहि कराहि अति अब मुँह आहि न आहि।—बिहारी र०, दो० ५६।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग वर्तमान काल मे ही मिलता है और इसका रूप 'आहि' या आहि का ही कोई विकारी रूप होता है।

आसना२—सज्ञा पुं०[स०] १ जीव। २ वृक्ष।

आसनी—सज्ञा स्त्री० [स० आसन का हिं० अल्पा०] छोटा आसन। छोटा बिछौना।

आसन्न—वि० [स०] निकट आया हुआ। समीपस्थ। प्राप्त।

यौ०—आसन्नकाल=(१) प्राप्तकाल। आया हुआ समय। (२) मृत्युकाल। (३) जिसका समय आ गया हो। (४) जिसका मृत्युकाल निकट हो। आसन्नप्रसवा=जिसे शीघ्र बच्चा होनेवाला हो।

आसन्नता—सज्ञा स्त्री० [स०] नैकट्य। सामीप्य।

आसन्नपरिचारक—सज्ञा पुं० [स०] १ सदा मालिक के पास रहनेवाला नौकर। निकटवर्ती सेवक। २ अगरक्षक [को०]।

आसन्नभूत—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वह भूतकाल जो वर्तमान मे मिला हुआ हो, अर्थात् जिसे बीते थोड़ा ही काल हुआ हो। २. भूतकालिक क्रिया का वह रूप जिसमे क्रिया की पूर्णता और वर्तमान मे उसकी समीपता पाई जाय। जैसे,—मैं जा रहा हूँ। मैं आया हूँ। उसने खाया है। मैंने देखा है।

विशेष—सामान्य भूत की अकर्मक क्रिया के आगे कर्ता के वचन और पुरुष के अनुसार हूँ, है, हैं, हो लगाने मे आसन्नभूत क्रिया बनती है। पर सकर्मक क्रिया के आगे केवल कर्म के वचन के अनुसार 'है' या 'हैं' तीनों पुरुषों मे लगता है।

आसन्नमरण—वि० [स०] जो कुछ ही देर मे मरनेवाला हो [को०]।

आसन्नमृत्यु—वि० [स०] दे० 'आसन्नमरण'।

आसपास—क्रि० वि० [सं० आस=सामीप्य अथवा अनुध्व० आस+स० पार्श्व] चारो ओर। निकट। करीब। इर्द गिर्द। इधर उधर। अगल बगल। उ०—तब सरस्वती सी फेंक साँस, श्रद्धा ने देखा आसपास।—कामायनी, पृ० २४७।

आसबद—सज्ञा पुं० [स० आश्रय+बद] एक तागा, जो पटवो के पैर के अँगूठे मे बँधा रहता है। इसी तागे मे जेवर को अटकाकर गूँथते हैं।

आसमाँ—सज्ञा पुं० [फा०] दे० 'आसमान'।

आसमान—सज्ञा पुं० [फा०, मि० वै० स० अश्मन्=आकाश] १ आकाश। गगन। २ स्वर्ग। देवलोक। उ०—चहूँ ओर सब नगर के लसत दिवालैं चारु। आसमान तजि जनु रह्यो गीरवान परिवारु।—गुमान (शब्द०)।

मुहा०—**आसमान के तारे तोड़ना**=कोई कठिन या असभव कार्य करना। जैसे,—कहो तो मैं तुम्हारे लिये आसमान के तारे तोड लाऊँ। **आसमान जमीन के कुलावे मिलाना**=(१) खूब लबी चौड़ी हाँकना। खूब बढ चढकर बातें करना। (२) गहरा जोड़ तोड़ लगाना। विकट कार्य करना। **आसमान झाँकना या ताकना**=(१) घमड मे सिर ऊपर उठाना। तनना। (२) मुर्गेबाजो की बोली मे मुर्ग का मस्त होकर लड़ने के लिये तैयार होना। झड़प चाहना। (जब मुर्ग जोश मे भरता है तब आसमान की ओर देखकर नाचता है। इसी से यह मुहाविरा बना है)। जैसे,—अब तो मुर्गा आसमान झाँकने लगा। **आसमान टूट पड़ना**=किसी विपत्ति का अचानक आ पड़ना। वज्रपात होना। गजब पड़ना। जैसे,—क्यो इतना झूठ बोलते हो,

आसमान टूट पड़ेगा। **आसमान दिखाना**=(१) कुश्ती में पछाड़कर चित्त करना। (२) पराजित करना। प्रतिपक्षी को हराना। **आसमान पर उड़ना**=(१) इतराना। गरूर करना। (२) बहुत ऊँचे ऊँचे संकल्प बाँधना। ऐसा कार्य करने का विचार प्रकट करना जो सामर्थ्य से बाहर हो। बहुत बढ़ बढ़कर बातें करना। डींग हाँकना। **आसमान पर चढ़ना**=गरूर करना। घमंड दिखाना। शेखी मारना। सिट्टी मारना। जैसे,—(क) कौन सा ऐसा काम कर दिखाया है जो आसमान पर चढ़े जाते हो। (ख) उनका मिजाज आजकल आसमान पर चढ़ा है। **आसमान पर चढ़ाना**=(१) अत्यंत प्रशंसा करना। जैसे,— आप जिसपर कृपा करने लगते हैं उसे आसमान पर चढ़ा देते हैं। (२) अत्यंत प्रशंसा करके किसी को फुला देना। तारीफ करके मिजाज बिगाड़ देना। जैसे,— तुमने तो और उसको आसमान पर चढ़ा रखा है, जिसके कारण वह किसी को कुछ समझता ही नहीं। **आसमान पर थूकना**=किसी महात्मा के ऊपर लांछन लगाने के कारण स्वयं निंदित होना। किसी सज्जन के अपमानित करने के कारण उलटे आप तिरस्कृत होना। **आसमान फट पड़ना**=दे० 'आसमान टूट पड़ना'। उ०—फिक्र यह है कि दुनियाँ क्यों कर कायम है, आसमान फट क्यों नहीं पड़ता।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६४। **आसमान में थिगली लगाना**=विकट कार्य करना। जहाँ किसी की गति न हो वहाँ पहुँचना। जैसे,—कुटनियाँ आसमान में थिगली लगाती हैं। **आसमान में छेद करना**=दे० 'आसमान में थिगली लगाना'। **आसमान सिर पर उठाना**=(१) ऊधम मचाना। उपद्रव मचाना। (२) हलचल मचाना। खूब आंदोलन करना। धूम मचाना। **आसमान सिर पर टूट पड़ना**=दे० 'आसमान टूट पड़ना'। **आसमान से गिरना**=(१) अकारण प्रकट होना। आप से आप आ जाना। जैसे,—अगर यह पुस्तक तुमने यहाँ नहीं रखी तो क्या आसमान से गिरी है? (२) अनायास प्राप्त होना। बिना परिश्रम मिलना। जैसे,—कुछ काम धाम करते नहीं, रुपया क्या आसमान से गिरेगा? **आसमान से बातें करना**=आसमान छूना। आसमान तक पहुँचना। बहुत ऊँचा होना। जैसे,—माधवराय के दोनों धरहरे आसमान से बातें करते हैं। (हाल ही में एक धरहरा कमजोर होने से गिर गया। अब एक ही है)। **दिमाग आसमान पर होना**=बहुत अभिमान होना।

आसमानखोंचा—संज्ञा पुं० [फा० आसमान+हिं० खोंचा] १ लंबा लग्गा या धरहरा जो ऊपर तक गया हो। २ बहुत लंबा आदमी। ३. एक तरह का हुक्का जिसकी नैची इतनी लंबी होती है कि हुक्का नीचे रहता है और पीनेवाला कोठे पर।

आसमानी[1]—वि० [फा०] १ आकाश संबंधी। आकाशीय। आसमान का। २. आकाश के रंग का। हलका नीला। ३ दैवी। ईश्वरीय। जैसे,—उनके ऊपर आसमानी गजब पड़ा।

आसमानी[2]—संज्ञा स्त्री० १ ताड़ के पेड़ से निकला हुआ मद्य। ताड़ी। २ किसी प्रकार का नशा, जैसे,—भाँग, शराब। ३ मिस्र देश की एक कपास। ४. पालकी के कहारों की एक बोली। (जब कोई पेड़ की डाल आदि आगे आ जाती है जिसका ऊपर से पालकी में धक्का लगने का डर रहता है, तब आगेवाले कहार पीछेवालों को 'आसमानी, आसमानी' कहकर सचेत करते हैं।

आसमुद्र—क्रि० वि० [सं०] समुद्र पर्यंत। समुद्र के तट तक। उ०—आसमुद्र के छितीस और जाति को गनै। राजभौम भोज को सबै जने गए बनै।—केशव (शब्द०)।

आसय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आशय] दे० 'आशय'। उ०—वैष्णवन के मत को आसय जानि गए।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० ३११।

आसर[1]—संज्ञा पुं० [सं० आशर] दे० 'आशर'।

आसर[2]—संज्ञा पुं० [अं० अशर] दस रुपए (दलालों की बोली)।

आसरना(पु)—क्रि० स० [सं० आश्रयण] आश्रय लेना। सहारा लेना। उ०—नर तनु भक्ति तुम्हारी होय। ता में जीव आसरै सोय (शब्द०)।

आसरम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आश्रम] दे० 'आश्रम'। उ०—चार विचार आसरम धरम।—पलटू०, पृ० ७५।

आसरा—संज्ञा पुं० [सं० आश्रय प्रा० *आसरअ] १ सहारा। आधार। अवलंब। जैसे—(क) यह छत खंभों के आसरे पर है। (ख) बुड्ढे लोग लाठी के आसरे पर चलते हैं। २ भरण पोषण की आशा। भरोसा। आस। ३ किसी से सहायता पाने का निश्चय। जैसे,—हमें आप ही का आसरा है दूसरा हमारा कौन है।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—होना।

मुहा०—**आसरा टूटना**=भरोसा न रहना। नैराश्य होना। **आसरा देना**=वचन देना। किसी बात का विश्वास दिलाना।

४. जीवन या कार्य निर्वाह का हेतु। आश्रयदाता। सहायक। जैसे,—हम तो अपना आसरा आपको ही समझते हैं। ५ शरण। पनाह। जैसे,—जिसने तुम्हें आश्रय दिया उसी के साथ ऐसा करते हो।

क्रि० प्र०—ढूँढ़ना।—पकड़ना।—देना।—लेना।

६ प्रतीक्षा। प्रत्याशा। इंतजार।

क्रि० प्र०—तकना।—देखना।—में रहना।

७. आशा। जैसे,—अब उसका क्या आसरा है, चार दिनों का मेहमान है।

आसरैत—वि० [सं० आश्रित या हिं० आसरा+ऐत (प्रत्य०)।] १ आश्रित। किसी के सहारे रहनेवाला। २ शरणागत।

आसव—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह मद्य जो भभके से न चुआई जाय केवल फलों के खमीर को निचोड़कर बनाई जाय। उ०—ढ़ाला ढालती थी वह आसव जिसकी बुझती प्यास नहीं।—कामायनी, पृ० १८३। २ औषध का एक भेद। द्रव्यों को पानी में मिलाकर भूमि में ३० ४० या ६० दिन तक गाड़ रखते हैं फिर उस खमीर को निकालकर छान लेते हैं। इसी को आसव कहते हैं। ३ अर्क। ४. वह पात्र जिसमें मद्य रखा जाय। ५ उत्तेजन। ६ मकरंद। पुष्परस (हिं०)। ७. अधर रस (को०)।

आसवद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १ तालवृक्ष। ताड़ का पेड़। २ खजूर (हिं०)।

आसवन—संज्ञा पुं० [सं०] आसव बनाने की क्रिया (हिं०)।

आसवी--वि० [स० आसविन्] शराबी । मद्यप । मद्य पान करनेवाला । उ०—वे नैनन से आसवी मैं न लखेघनस्याम । छकि छकि मतवारे रहैं, तव छवि मद वसु जाम ।—स० सप्तक, पृ० २७२।

आसहर(पु)—वि० [सं० आशा+हर] निराश । उ०—सबै आसहर तकर आसा । वह न काहु के आस निरासा ।—जायसी ग्र ०, पृ० २ ।

आसा¹(पु)--सज्ञा पुं० [स० आशा] दे० 'आशा' ।

आसा²—सज्ञा पु० [अ० असा] सोने चाँदी का डडा जिसे केवल सजावट के लिये राजा महाराजो अथवा वरात और जुलूस के आगे चोवदार लेकर चलते हैं ।

यौ०—आसावल्लम । आसासोंटा । आसावरदार ।

आसाइश—सज्ञा पुं० [फा०] आराम । सुख। चैन ।

आसाढ(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आपाढ' ।

आसादन--सज्ञा पुं० [स०] १ प्राप्त करना । २ रखना । ३ झपट-कर पकड लेना । ४ आक्रमण करना [को०] ।

आसादित—वि० [स०] १ प्राप्त । उपलब्ध । २ पहुँचा हुआ । ३ बिखेरा हुआ । ४ पूर्ण किया हुआ । ५. आक्रात [को०] ।

आसान—वि० [फा०] सहज । सरल । सीधा । सहल ।

आसानी--सज्ञा स्त्री० [फा०] सरलता । सुगमता । सुबीता ।

आसापाल—सज्ञा पुं० [देश०] एक पेड का नाम ।

आसाम--सज्ञा पु० [देश०] भारत का एक प्रात या राज्य जो वगाल के उत्तर पूर्व मे है ।

विशेष--इसको प्राचीन काल में 'कामरूप' देश कहते थे । इस देश मे हाथी अच्छे होते हैं । यहाँ पहले 'आहम' वशी क्षत्रियो का राज्य था । इसी से इस देश का नाम 'आहम' या 'आसाम' पड गया है । मनीपुर के राजा लोग अपने को इसी वश का बतलाते हैं ।

आसामी¹—सज्ञा पु०, स्त्री० [हिं०] दे० 'असामी' ।

आसामी²-वि० [हिं० आसाम] आसाम देश का । आसाम देश सवधी।

आसामी³—सज्ञा पु० आसाम देश का निवासी ।

आसामी⁴—सज्ञा स्त्री० आसाम देश की भाषा ।

आसामुखी(पु)--वि० [सं० आशा+मुख+हिं० ई (प्रत्य०)] किसी के मुख का आसरा देखनेवाला । मुखापेक्षी । उ०—(क) जो जाकर अस आसामुखी । दुख महँ ऐस न मारैं दुखी ।—जायसी ग्र ०, पृ० ६७ । (ख) पाहन कूँ का पूजिए जे जनम म देई जाव । आधा नर आसामुखी, यौं ही खोवैं आव ।—कवीर ग्र ० पृ० ४४ ।

आसार¹--सज्ञा पुं० [अ०] १ चिह्न । लक्षण । निशान । उ०—वारिश के आसार पाए जाते हैं ।—श्रीनिवा सग्र ०, पृ० । २ चौडाई । ३ नीव । बुनियाद [को०] । ४ खडहर [को०] ।

आसार²—सज्ञा स्त्री० [स०] १ धारा । संपात । मूसलाधार वृष्टि । २ कौटिल्य के अनुसार लडाई मे मित्र आदि से मिलनेवाली सहायता । ३ मेघमाला ।—(डिं०) ४ हमला । हल्ला आक्रमण (को०) । ५ शत्रु की सेना को घेरने की क्रिया [को०] ।

आसारित—सज्ञा पु० [सं०] एक वैदिक गीत ।

आसाव--वि० [सं०] प्रशसक । स्तुतिकारक [को०] ।

आसावरी—सज्ञा पुं० [हिं० ?] १. श्रीराग की एक रागिनी । इसका स्वर घ, नि, स, म, प, घ है और गाने का समय प्रात काल १ दड से ५ दड तक । दे० 'असावरी' । २. एक प्रकार का कवूतर । ३ एक प्रकार का सूती कपडा ।

आसिक¹—वि० [सं०] तलवार चलानेवाला । असिकला मे प्रवीण ।

आसिक²(पु)--वि० [अ० आशिक] प्रेम करनेवाला [को०] ।

आसिक्त--वि० [स०] परिसिंचित । सीचा हुआ । भीगा हुआ [को०] ।

आसिख, आसिखा(पु)--सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आशिप' ।

आसित¹—वि० [सं०] १ वैठा हुआ । २ सुखासीन [को०] ।

आसित²—सज्ञा पु० १ असित मुनि का पुत्र । २ शाडिल्य गोत्र का एक प्रवर विशेष । ३ वैठने का तरीका (को०) । ४ वैठने की वस्तु । आसन (को०) ।

आसिद्ध--सज्ञा पुं०[सं०]राजाज्ञा के अनुसार मुद्दई के द्वारा हिरासत में किया हुआ मुद्दालेह् (प्रतिवादी) ।

आसिन—सज्ञा पुं० [सं० आश्विन] क्वार का महीना ।

आसिया—सज्ञा स्त्री० [फा०] चक्की । जाता । पेपणी [को०] ।

आसिरवचन(पु)--सज्ञा पु० [सं० आशीर्वचन] आशीर्वाद । आसीस उ०—वदि वदि पग सिय सवही के । आसिरवचन लहे प्रिय जी के ।—मानस, २।२४५ ।

आसिरवाद(पु)—सज्ञा पु० [सं० आशीर्वाद] दे० 'आशीर्वाद' ।

आसिरा(पु)--सज्ञा पुं० दे० 'आसरा' । उ०—दादू मैं ही मेरे आसिरे, मैं मेरे आधार ।—दादू० वानी, पृ० ।

आसिपा(पु)—सज्ञा स्त्री०[हिं०]दे० आशिप । उ०—औरो एक आसिपा मोरी । अप्रतिहत गति होइहि तोरी ।—मानस, ९।१०६ ।

आसिस(पु)—सज्ञा पु०[हिं०] दे० 'आशिप' । उ०—दछिना देत नद पग लागत आसिस देत गरग सब द्विज वर ।—नद ग्र०, पृ० ५७१ ।

आसी(पु)—वि० [स० आशी] दे० 'आशी' ।

आसीन—वि० [सं०] वैठा हुआ । विराजमान ।

आसीनपाठ्य--सज्ञा पुं० [सं०] नाटचशास्त्र के अनुसार लास्य के दस अगो मे से एक । शोक और चिंता से युक्त किसी आभूपिताशी नायिका का विना किसी वाजे या साज के यो ही गाना ।

आसीर्वाद—सज्ञा पुं० [स० आशीर्वाद] दे० 'आशीर्वाद' । उ०—कोऊ वैष्णव को आसीर्वाद तो नहिं भयो ?—दो सौ वावन०, भा० २, पृ० ४६ ।

आसीवन—सज्ञा पुं० [सं०] सीने की क्रिया । तागे डालना । टाँके लगाना [को०] ।

आसीस¹--सज्ञा पुं० [सं० आ+शीर्ष] तकिया । उसीसा । उ०-तिस-पर फेन से विछौने फूलो से सँवारे विशाल गड्डवा और आसीसे समेत सुगध से महक रहे थे ।—लल्लू (शब्द०) ।

आसीस²—सज्ञा पुं० [सं० आशिष] दे० 'आशिष' ।

आसु¹(पु)--सर्व [सं० अस्य, प्रा० अस्स, आसु जैसे 'यस्य से जासु तस्य' मे तासु] इसका । उ०—जानि पुछार जो भय वनवासू । रोवँ रोवँ परि फाँद न आसु ।—जायसी (शब्द०) ।

आसु² ⓤ—क्रि० वि० [स० आशु] दे० 'आशु'। उ०—आनि कै पाँ परी देस लै, कोस लै आसु ही ईस सीता चलै ओक को।—रामच०, पृ० ११३।

आसुग ⓤ—वि० सज्ञा पुं० [स० आशुग] दे० 'आशुग'।

आसुति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रस्रवण। चुवाना। २ चुआकर बनाई जानेवाली ओषधिविशेष। ३ प्रसव। ४ स्थिरता [को०]।

आसुतीवल—सज्ञा पुं० [स०] १. कन्यापालक। बालिका का अभिभावक। २. पुरोहित। ३. शराब चुआनेवाला कलाल। ४. बलि देनेवाला व्यक्ति [को०]।

आसुतोष¹ ⓤ—सज्ञा पुं० वि० [स० आशुतोष] दे० 'आशुतोष'।

आसुर¹—वि० [स०] १ असुरसबधी।

यौ०—**आसुर विवाह** = वह विवाह जो कन्या के मातापिता को द्रव्य देकर हो। **आसुरावेश** = भूत लगना।

२ दैवी (को०)। ३. यज्ञादि न करनेवाला (को०)।

आसुर²—सज्ञा पु० १. राक्षस। असुर। २. बिरिया। सोचर नमक। कटीला। बिड् लवण। ३. रुधिर (को०)।

आसुरि—सज्ञा पुं० [स०] एक मुनि जो साख्य योग के आचार्य कपिल मुनि के शिष्य थे।

आसुरी¹—सज्ञा पु० [स०] दे० 'आसुरि'।

आसुरी²—वि० स्त्री० [स०] असुर सबधी। असुरो का। राक्षसी।

यौ०—**आसुरी चिकित्सा** = शस्त्रचिकित्सा। चीरफाड। **आसुरी माया** = चक्कर मे डालनेवाली राक्षसो की चाल। **आसुरी सपत्।** **आसुरी सृष्टि।**

आसुरी³—सज्ञा स्त्री० १. राक्षस की स्त्री। उ०—कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावै। सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावै।—रामच०, पृ० ६५। २ वैदिक छदो का एक भेद। ३. राजिका। राई। ४ सरसों। ५. शस्त्रचिकित्सा। चीरफाड (को०)।

आसुरीसपत्—सज्ञा स्त्री० [स० आसुरीसम्पत्] १ राक्षसी वृत्ति। बुरे कर्मो का सचय। २ कुमार्ग मे आई हुई सपत्ति। बुरी कमाई का धन।

आसुरीसृष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] दैवी आपत्ति। जैसे,—आग लगना, पानी की बाढ, दुर्भिक्ष आदि।

आसूत्रित—वि० [स०] १ माल बनानेवाला। मालाकार। २. माला पहननेवाला। २ गुँथा हुआ [को०]।

आसूदगी—सज्ञा स्त्री० [फा०] तृप्ति। सतोष।

आसूदा—वि० [फा० आसूदह्] १ सतुष्ट। तृप्त। २ सपन्न। भरापूरा।

यौ०—**आसूदा हाल** = खाने पीने से खुश।

आसेक—सज्ञा पु० [स०] १. भिगोना। अच्छी तरह भिगोना। २ सींचना। आसेचन। जलसिक्त करना। अच्छी तरह सींचना। [को०]।

आसेक्य—वि० [स०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का नपुसक।

आसेचन¹—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'आसेक'।

आसेचन²—वि० [स०] सु दर। लुभावना [को०]।

आसेचनी¹—सज्ञा स्त्री० [स०] लघु पात्र [को०]।

आसेद्धा—सज्ञा पु० [स० आसेद्ध] बंदी बनानेवाला व्यक्ति। हिरासत मे लेनेवाला [को०]।

आसेध—सज्ञा पुं० [स०] राजा की आज्ञा से वादी (मुद्दई) का प्रतिवादी (मुद्दालैह्) को हिरासत मे रखना।

आसेधक—वि० [सं०] दे० 'आसेद्धा' [को०]।

आसेब—सज्ञा पुं० [फा०] [वि० आसेबी] १. भूत प्रेत की बाधा।

क्रि० प्र०—उतरना।—उतारना।—लगना।—होना।

२. कष्ट। दुख [को०]। ३ आघात। चोट [को०]। ४. रोक। बाधा [को०]।

आसेवन—सज्ञा पु० [सं०] १ निरतर सेवन करना। २ मेलजोल। बराबर होने का भाव [को०]।

आसेवा—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'आसेवन' [को०]।

आसेवित—वि० [सं०] सतत किया हुआ। बहुत दिनो तक व्यवहृत [को०]।

आसेवी—वि० [सं० आसेविन्] निरतर सेवन करनेवाला। अभ्यासी [को०]।

आसेव्य—वि० [स०] १ निरंतर सेवा के योग्य। २ देखने योग्य [को०]।

आसेर ⓤ—सज्ञा पुं० [स० आश्रय] किला।—(डिं०)।

आसोज†, आसोजा†—सज्ञा पुं० [स० अश्वयुज्] आश्विन मास। क्वार का महीना। उ०—आस रही आसोज आइहैं पीव री।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ३६८।

आसौं ⓤ—क्रि० वि० [स० अस्मिन् प्रा० अस्सिं = इस + स० सम = वर्ष] इस वर्ष। इस साल।

आस्कंद—सज्ञा पुं० [सं० आस्कन्द] १ नाश। २. शोषण। ३. आक्रमण। ४ आरोहण। ५ युद्ध। ६ घोडे की एक चाल। ७ अपशब्द। तिरस्कार या अपमान ८. आक्रमण करनेवाला व्यक्ति [को०]

आस्कदन—सज्ञा पुं० [स० आस्कन्दन] दे० 'आस्कंद'।

आस्कदित¹—वि० [सं० आस्कन्दित] १. आरग्रस्त। २. कुचला गया [को०]।

आस्कदित²—सज्ञा पुं० घोडे की तेज सरपट चाल [को०]।

आस्कदी—वि० [स० आस्कन्दिन्] १ आक्रमणकारी। आक्राता। २. खर्च करनेवाला। ३ अपहर्ता [को०]।

आस्तर—सज्ञा पु० [सं०] १ बिछौना। बिछावन। २ हाथी की झूल। ३ बिछाना। फैलाना [को०]।

आस्तरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञवेदी पर बिछाए कुश। २ दरी। बिछौना। ३ झूल। ४. फैलाना। बिछाना [को०]।

आस्तरणिक—वि० [सं०] १ बिस्तरे पर सोनेवाला। २ फैलाया या बिछाया जानेवाला [को०]।

आस्तार—सज्ञा पुं० [सं०] छितराना या बिखेरना [को०]।

आस्तारपक्ति—सज्ञा पु० [सं० आस्तार पड्क्ति] एक वैदिक छद का नाम जिसके पहले और चौथे चरण मे १२ वर्ण और दूसरे तथा तीसरे चरण मे आठ वर्ण होते हैं। यह सब मिलाकर ४० वर्णों का छद है।

आस्ताव—सज्ञा पुं० [सं०] १ स्तुतिपाठ। स्तवन। २ यज्ञ मे वह स्थान जहाँ से स्तुतिपाठ किया जाता है [को०]।

आस्तिक¹—वि० [सं०] १ वेद, ईश्वर और परलोक इत्यादि पर विश्वास करनेवाला। २. ईश्वर के अस्तित्व को माननेवाला।

आस्तिक²—संज्ञा पुं० वेद, ईश्वर और परलोक को माननेवाला पुरुष।

आस्तिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेद, ईश्वर और परलोक मे विश्वास।

आस्तिकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आस्तिकता' [को०]।

आस्तिकपन—संज्ञा पु० [सं० आस्तिक+हि०पन] आस्तिकता।

आस्तिक्य—संज्ञा पुं० [स०] ईश्वर वेद और परलोक पर विश्वास। २ जैन शास्त्रानुसार जिनप्रणीत सब भावो के अस्तित्व पर विश्वास।

आस्तीक—संज्ञा पु० [स०] एक ऋषि का नाम जिन्होने जनमेजय के सर्पसत्र मे तक्षक के प्राण बचाए थे। ये जरत्कारु ऋषि और वासुकि नाग की कन्या से उत्पन्न हुए थे।

आस्तीन—संज्ञा स्त्री० [फा०] पहनने के कपडे का वह भाग जो बाँह को ढँकता है। बाही।

मुहा०—**आस्तीन का साँप**=वह व्यक्ति जो मित्र होकर शत्रुता करे। ऐसा सगी जो प्रकट मे हिला मिला हो और हृदय से शत्रु हो। **आस्तीन चढाना**=(१) कोई काम करने के लिये मुस्तैद होना। (२) लडने के लिये तैयार होना। **आस्तीन मे साँप पालना**=शत्रु या अशुभचिंतक को अपने पास रखकर उसका पोषण करना।

आस्ते—अव्य० [अ० आहिस्तह्, हिं० आसते] धीरे।

आस्त्र—वि० [स०] हथियार या आयुधसबधी [को०]।

आस्था—संज्ञा स्त्री० [स०] १ पूज्य बुद्धि। श्रद्धा।

क्रि० प्र०—रखना।—होना।

२ सभा। बैठक। ३ आलबन। अपेक्षा। ३ प्रयत्न। चेष्टा (को०)। ४ निवास का साधन या स्थान (को०)। ५ वादा। प्रतिज्ञा (को०)। ६ आशा (को०)।

आस्थाता—वि० [स० आस्थातृ] १ चढनेवाला। आरोही। २ खडा होनेवाला [को०]।

आस्थान—संज्ञा पु० [स०] १ बैठने की जगह। बैठक। २ सभा। दरबार।

यौ०—**आस्थानगृह, आस्थाननिकेतन, आस्थानमंडप**।

आस्थानिका—संज्ञा स्त्री० [स०] बैठने की कोई वस्तु। कुर्सी। मचिया [को०]।

आस्थानी—संज्ञा स्त्री० [स०] सभाकक्ष। सभागृह [को०]।

आस्थापन—संज्ञा पुं० [स०] १. स्थापित करना। खडा करना। २ एक बलवर्धक ओषधि। ३ घी या तेल की वस्ति [को०]।

आस्थापित—वि० [सं०] १ खडा किया हुआ। २ सस्थापित। दृढीकृत [को०]।

आस्थायिका—संज्ञा स्त्री० [स०] १ श्रोताओं का समाज। २ दरबार [को०]।

आस्थित—वि० [स०] १ रहा हुआ। बसा हुआ। २ यत्न करता हुआ। ३ घेरा हुआ। ४. प्राप्त किया हुआ। पहुँचा हुआ। ५ व्याप्त। फैला हुआ [को०]।

आस्थिति—संज्ञा स्त्री० [स०] अवस्था। दशा [को०]।

आस्थेय—वि० [सं०] १ जिसके पास पास पहुँचा जाय। २ गृहीत। ३. आदृत [को०]।

आस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] १ पवित्रता। २ धोने या नहाने का पानी [को०]।

आस्नेय¹—वि० [सं०] रक्तरजित [को०]।

आस्नेय²—वि० मुख सबधी [को०]।

आस्पद—संज्ञा पुं० [स०] १ स्थान। उ०—कोटि बार आश्चर्य का आस्पद है।—श्यामा०, पृ० ७१। २. कार्य। कृत्य। ३ पद। प्रतिष्ठा। ४ अल्ल। वश। कुल। जाति। जैसे,—आप कौन आस्पद हैं। ५. कुडली मे दसवाँ स्थान।

आस्पर्धा—संज्ञा स्त्री० [स०] होडाहोडी। प्रतिस्पर्धा। लागडाट [को०]।

आस्पर्धी—वि० [स० आस्पर्धिन्] होड लेनेवाला प्रतिस्पर्धी [को०]।

आस्फाल—संज्ञा पु० [स०] १ धक्का देना। २ रगडना। ३ धीरे धीरे हिलाना। ४ हाथी का कान फडफडाना [को०]।

आस्फालन—संज्ञा पुं० [स] झटका। धक्का देना। झटकना। उ०—अपूर्व आस्फालन साथ श्याम ने। अतीव लबी वह यष्टि छीन ली।—प्रिय० प्र०, पृ० १८४।

आस्फुजित्—संज्ञा पुं० [स०] शुक्र नामक ग्रह [को०]।

आस्फोट—संज्ञा पु० [स०] १ ठोकर या रगड से उत्पन्न शब्द। २ ताल ठोकने का शब्द। ३ मदार।

आस्फोटक¹—संज्ञा पुं० [स०] अखरोट।

आस्फोटक²—वि० ताल ठोकनेवाला [को०]।

आस्फोटन—संज्ञा पु० [स०] १ ताल ठोकना। २ फटकना। ३ हिलाना। कँपाना। ४. सकुचन। ५ ताली बजाना। ६ उद्घाटित करना। प्रकट करना। ७ माँडना [को०]।

आस्फोटनी—संज्ञा स्त्री० [स०] बरमी नामक बढई का औजार जिससे लकडी मे छेद किया जाता है [को०]।

आस्फोटा—संज्ञा स्त्री० [स०] नवमल्लिका। चमेली।

आस्फोत—संज्ञा पुं० [स०] १ मदार। अर्क। २ कोविदार। ३ भूपलाश [को०]।

आस्फोतक—संज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० आस्फोतका] दे० 'आस्फोत', 'आस्फोता' [को०]।

आस्फोता—संज्ञा स्त्री० [स०] १ मल्लिका। २ अपराजिता। ३ सारिवा [को०]।

आस्यंदन—संज्ञा पु० [स० आस्यन्दन] प्रस्रवण। बहना। [को०]।

आस्यधय—संज्ञा पु० [स० आस्यन्धय] चुबन करना [को०]।

आस्य—संज्ञा पुं० [स०] मुख। मुँह। मुँखमडल। चेहरा। उ०—वेश भाषा भगियो पर हास्य, कर रहे थे सरस सबके आस्य।—साकेत, पृ० १७०।

आस्यपत्र—संज्ञा पु० [स०] कमल।

आस्यलागल—संज्ञा पु० [स० आस्यलाङ्गल] १ कुत्ता। २. सूअर [को०]।

आस्यलोम—संज्ञा पु० [सं० आस्यलोमन्] दाढी [को०]।

आस्या¹—संज्ञा स्त्री० [स०] १ विश्राम की अवस्था। २ बैठना। ३ रहना। ४ वासस्थान [को०]।

आस्या²—संज्ञा स्त्री० लार। राल।

आस्यासव—संज्ञा पुं० [सं०] लाला। लार [को०]।

आस्युत—वि० [स०] एक मे सिला हुआ [को०]।

आस्र—संज्ञा पु० [स०] रक्त। खून [को०]।

आस्रप¹--वि० [सं०] रक्तपायी। खून चूसने या पीनेवाला [को०]।

आस्रप²--संज्ञा पुं० १. राक्षस। २ मूल नक्षत्र [को०]।

आस्रम⊕--संज्ञा पुं० [सं० आश्रम] दे० 'आश्रम'। उ०—तुम्हरे आस्रम अबहिं ईस तप साधहिं।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१।

आस्रव—संज्ञा पुं० [सं०] १ उबलते हुए चावल का फेन। २ पनाला। ३ इंद्रियद्वार। उ०—आस्रव इंद्रिय द्वार कहावै। जीवहिं विषयन ओर बहावै।—(शब्द०)। ४ क्लेश। कष्ट। ५ जैनमतानुसार औदरिक और कामादि द्वारा आत्मा की गति जो दो प्रकार की है--शुभ और अशुभ।

आस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहाव। २ घाव। ३ पीडा। ४ एक रोग। ५ थूक [को०]।

आस्वनित--वि० [सं०] पूर्णतया ध्वनि करता हुआ। आशब्दित [को०]।

आस्वात--वि० [सं० आस्वान्त] दे० आस्वनित'।

आस्वाद—संज्ञा पुं० [सं०] रस। स्वाद। जायका। मजा। उ०—सस्कार से मुक्त सहृदय पुरुष रस का आस्वाद लेते हैं।—रस क०, पृ० १८।

आस्वादन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आस्वादनीय आस्वादित] चखना। स्वाद लेना। रस लेना। मजा लेना।

आस्वादनीय—वि० [सं०] चखने योग्य। स्वाद लेने योग्य। रस लेने योग्य। मजा लेने योग्य।

आस्वादित—वि० [सं०] चखा हुआ। स्वाद लिया हुआ। रस लिया हुआ। मजा लिया हुआ।

आस्वाद्य--वि० [सं०] आस्वादन करने योग्य। जायकेदार। खाने मे मधुर। मीठा [को०]।

आह¹-अव्य० [सं० अहह] पीडा, शोक, दुःख, खेद और ग्लानिसूचक अव्यय। उ०—पीडा—आह! बडा भारी काँटा पैर मे धँसा। दुःख शोक—आह! अन्न के बिना उसकी क्या दशा हो रही है। थोडा क्रोध और खेद—आह! तुमने तो हमे हैरान कर डाला।

आह²--संज्ञा स्त्री० कराहना। दुःख या क्लेशसूचक शब्द। ठढी साँस। उसास। उ०—तुलसी आह गरीब की, हरि सो सही न जाय। मुई खाल की फूँक सो, लोह भसम होइ जाय।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—आह करना = हाय करना। कलपना। ठढी साँस लेना। उ०-(क) आह करों तो जग जले, जगल भी जल जाय। पापी जियरा ना जले, जिसमे आह समाय। (शब्द०)। (ख) भरथरि बिछुरी पिंगला आह करत जिउ दीन्ह।—जायसी ग्र०, पृ० २७२। आह खींचना = ठढी साँस भरना। उसास खींचना। जैसे,-उसने तो आह खीचकर कहा कि तेरे जी मे जो आवे, सो कर। आह पडना = शाप पडना। किसी को दुःख पहुँचाने का फल मिलना। जैसे,-तुम पर उसी दुखिया की आह पडी है। आह भरना = ठढी साँस खीचना। उ०—चितहिं जो चित्र कीन्ह, धन रो रो अग समीप। सहा सास दुख आह भर, मुरछ परी कामीप।—जायसी (शब्द०)। आह मारना = ठढी साँस खीचना। उ०—आह जो मारी बिरह की, आग उठि तेहि लाग। हस जो रहा शरीर महँ पख जरे तब भाग।—जायसी (शब्द०)। आह लेना = सताना। दुःख देकर कलपाना। किसी को सताने का फल अपने ऊपर लेना। जैसे,—नाहक किसी की आह क्या लेते हो।

आह³⊕—संज्ञा पुं० [राज० आहस = बल] साहस। हियाव। बल। उ०—जड के निकट प्रवीन की, नहीं चलै कछु आह। चतुराई ढिग अध के, करै चितेरी चाह।—दीनदयाल (शब्द०)।

आहक--संज्ञा पुं० [सं०] १ एक रोग जो नाक मे होता है। २. गीर्वाण [को०]।

आहचर्ज⊕--संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'आश्चर्य'। उ०—सदा समीपिनि सखिहुँ लखति अति आहचर्ज सों।—रत्नाकर, पृ० ६।

आहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० आ = आना + हट (प्रत्य०), जैसे—बुलाहट घबराहट] १ शब्द जो चलने मे पैर तथा और दूसरे अगो से होता है। आने का शब्द। पाँव की चाप। खटका। जैसे,—(क) किसी के आने की आहट मिल रही है। उ०—होत न आहट भो पग धारे। बिनु घटन ज्यो गज मतवारे।—लाल (शब्द०)। (ग) आहट पाय गोपाल की ग्वालि गली महँ जाय के धाय लियो है। (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।—लेना।

२. आवाज जिससे किसी के रहने का अनुमान हो। जैसे,—कोठरी मे किसी आदमी की आहट मिल रही है।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।—लेना।

३ पता। सुराग। टोह। निशान।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

आहत¹—वि० [सं०] [संज्ञा आहति] १. जिसपर आघात हुआ हो। चोट खाया हुआ। घायल। जख्मी। जैसे,—उस युद्ध मे ४०० सिपाही आहत हुए। २. जिस सख्या को गुणित करें। गुण्य। ३. व्याघात दोष से युक्त (वाक्य)। परस्पर विरुद्ध (वाक्य)। असभव (वाक्य)। ४ तुरत धोया हुआ (वस्त्र)। (वस्त्र) जो अभी धुलकर आया हो। ५. पुराना। जीर्ण। गला हुआ। ६ चलित। कपित। थर्राया हुआ। हिलता हुआ। ७. हत। मृत [को०]। ८ आघात किया हुआ। बजाया हुआ [को०]। कुचला या रौंदा हुआ [को०]।

यौ०—हताहत = मारे हुए और जख्मी।

आहत²—संज्ञा पुं० [सं०] १ ढोल। २. नया अथवा पुराना वस्त्र [को०]।

आहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चोट। मार। २ गुणन। गुणना। ३ मार डालना। वध [को०]।

आहन--संज्ञा पुं० [फा०] लोहा।

आहनन—संज्ञा पुं० [सं०] १ यष्टि। डडा। २ मारना। पीटना [को०]।

आहनी—वि० [फा०] लोहे का।

आहर¹⊕—संज्ञा पुं० [सं० अह] समय। काल। दिन। उ०—तिन तप कीन्ह छाँडि कै राजू। आहर गयो न भा सिध काजू।—जायसी (शब्द०)।

आहर²—संज्ञा पुं० [सं० आहरण] युद्ध। लडाई।

आहर³—संज्ञा पुं० [सं० आहार] [प्रा० आहर] वह हौज जो पोखरे से छोटा हो, पर तलैया और गड्ढे से बडा हो।

आहर⁴—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वीकार। ग्रहण। लेना। २ बलिप्रदान करना। ३. वह वायु जो श्वास के रूप मे खीची जाती है [को०]।

आहरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आहरणीय, कर्तृ० आहर्ता] १ छीनना। हर लेना। २ किसी पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। स्थानान्तरित करना। ३ ग्रहण। लेना। ४ विवाह के अवसर पर वधू को उपहारस्वरूप में देय धन [को०]।

आहरणीय- वि० [सं०] छीनने योग्य। हर लेने योग्य।

आहरन—संज्ञा पुं० [सं० आहनन = जिसपर आघात किया जाय, अथवा सं० आघटन = जिसपर वस्तु को पीटकर उसकी घटना अर्थात् रचना की जाय, वस्तु को गढ़ा जाय।] लोहारों और सुनारों की निहाई।

आहरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० आहर का अल्पा०] १. छोटा हौज या गड्ढा। अहरी। २ थाला। ३ कुँए के पास का हौज या गड्ढा जो पशुओं के पानी पीने के लिये बनाया जाता है।

आहर्ता—वि० [सं० आहर्तृ] [वि० स्त्री० आहर्त्री] १ हरण करनेवाला छीननेवाला। लेनेवाला। ले जानेवाला। २ अनुष्ठान करनेवाला। अनुष्ठाता।

आहला†—संज्ञा पुं० [सं० आ + हला = जल] जल की बाढ़।

आहव—संज्ञा पुं० [सं०] १ युद्ध। लड़ाई। २ यज्ञ। ३. पुकारना। आह्वान [को०]।

आहवन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आहवनी] १ यज्ञ करना। होम करना। २ यज्ञीय हवि (को०)।

आहवनी—वि० [सं०] यज्ञ करने योग्य। होम करने योग्य।

आहवनीय (अग्नि)—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्मकांड में तीन प्रकार की अग्नियों में तीसरी। यह गार्हपत्य अग्नि से निकालकर अभिमंत्रित करके यज्ञ के लिये मंडप में पूर्व ओर स्थापित की जाती है।

आहाँ¹—संज्ञा पुं० [सं० आह्वान] १ हाँक। दुहाई। उ०—मदन जो कीन्ह उमर की नाई। भइ आहाँ नगरी दुनियाई।—जायसी (शब्द०)। २. पुकार। बुलावा। उ०—भइ आहाँ पदुमावति चली। छतिस कुरि भइ गोहन भली।—जायसी (शब्द०)

आहाँ²†—अव्य० [अ = नहीं + हाँ] अस्वीकार का शब्द। जैसे,—प्रश्न —तुम कुछ और लोगे? उत्तर—आहाँ।

आहा—अव्य० [सं० अहह] आश्चर्य और हर्षसूचक अव्यय। जैसे,— आश्चर्य—आहा! आप ही थे, जो दीवार की आड़ से बोल रहे थे। हर्ष—आहा! क्या सुंदर चित्र है।

आहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ भोजन। खाना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—निराहार। फलाहार।

२ खाने की वस्तु, जैसे,—बहुत दिनों से उसे ठीक आहार नहीं मिला है। ३ ले लेना। ग्रहण। स्वीकार (को०)।

आहारक—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार एक प्रकार की उपलब्धि जिसके द्वारा चतुर्दश पूर्वाधारी मुनिराज अपनी शंका के समाधान के लिये हस्त मात्र शरीर धारण कर तीर्थंकारों के पास उपस्थित होते हैं।

आहारपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पेट में खाए हुए पदार्थ का पचना। २ पकाने की क्रिया [को०]।

आहारविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] पाकविद्या। खाद्य वस्तुओं के गुण-दोष आदि को प्रस्तुत करनेवाला विज्ञान [को०]।

आहारविहार—संज्ञा पुं० [सं०] खाना, पीना, सोना आदि शारीरिक व्यवहार। रहन सहन।

यौ०— मिथ्या आहारविहार = [illegible] शारीरिक व्यवहार। [illegible] पीने आदि का [illegible]।

आहारसंभव— संज्ञा पुं० [सं० आहारसम्भव] [illegible] द्वारा [illegible] रस, [illegible] (को०)।

आहारिक—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] (को०)।

आहारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] [illegible]।

आहारी—वि० [सं० आहारिन्] [वि० स्त्री० आहारिणी] १ [illegible]। २ [illegible] (को०)। [illegible] करनेवाला। [illegible] (को०)।

आहार्य¹—वि० [सं०] १ [illegible]। २ कृत्रिम। बनावटी। ३ [illegible]। ४ [illegible] (को०)।

आहार्य²—संज्ञा पुं० [सं०] १ चार प्रकार के अनुभावों में से एक। नायक और नायिका का [illegible] करना। उ०—[illegible] —[illegible] (शब्द०) २ [illegible] प्रकारों में से एक। [illegible] करना।

आहार्याभिनय—संज्ञा पुं० [सं०] बिना कुछ [illegible] केवल [illegible] और वेश द्वारा ही नाटक के [illegible] [illegible] का [illegible] करना।

आहार्योदककेतु—संज्ञा पुं० [सं०] वह [illegible] जिसमें [illegible] पानी [illegible] हो। [illegible]।

आहाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ [illegible]। [illegible] आह्वान। २ अग्नि। ३. युद्ध। ४ कुएँ के पास बनी हुई नाली या हौज जिससे पशु पक्षी आकर पानी पीते हैं। [को०]।

आहिंडिक—संज्ञा पुं० [सं० आहिण्डिक] [स्त्री० आहिंडिकी] वह नर जो निषाद जाति के पुरुष और वैदेह जाति की स्त्री के संयोग से उत्पन्न हो। यह धर्मशास्त्र में महाशूद्र कहा गया है।

आहि—क्रि० अ० [हिं०] 'आसना' का वर्तमानकालिक रूप है।

आहिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ केतु। २ पुच्छल तारा। पाणिनि मुनि।

आहित¹—वि० [सं०] १. रखा हुआ। स्थापित। २ धरोहर रखा हुआ। गिरो रखा हुआ। रेहन रखा हुआ।

आहित²—संज्ञा पुं० पंद्रह प्रकार के दासों में से एक, जो अपने स्वामी से इकट्ठा धन लेकर उसकी सेवा में रहकर उसे पटाता हो।

आहितक—संज्ञा पुं० [सं०] गिरवी या बंधक रखा हुआ माल।

आहितक्लम—वि० [सं०] थका हुआ। श्रांत [को०]।

आहितदास—संज्ञा पुं० [सं०] ऋण के बदले में अपने को गिरवी रखकर बना हुआ दास। कर्जा पटाने के लिये बना हुआ गुलाम।

आहितलक्षण—वि० [स०] जो किसी विशेष चिह्न से पहचाना जाय [को०]।

आहितस्वन—वि० [स०] शोरगुल मचानेवाला [को०]।

आहिताक—वि० [स० आहिताङ्क] चिह्नवाला। चिह्नित [को०]।

आहिताग्नि—सज्ञा पु० [स०] अग्निहोत्री।

आहिति—सज्ञा स्त्री० [स०] स्थापन। रखना [को०]।

आहिस्ता—क्रि० वि० [फा० आहिस्तह] धीरे से। धीरे धीरे। शनै शनै। धीमे से।

यौ०—आहिस्ता आहिस्ता।

आहु—सज्ञा पु० [स० आहव=ललकार, युद्ध, प्रा० आह=बुलाना] ललकार। युद्ध के लिये किसी को प्रचारना। उ०—भाल लाल बेंदी छए छुटे वार छवि देत। गह्यौ राहु अति आहु करि, मनु ससि सूर समेत।—बिहारी र०, दो० ३५५।

आहुक—सज्ञा पुं० [सं०] एक यादव का नाम।

आहुड—सज्ञा पुं० [स० आहव+हिं० (प्रत्य०)] युद्ध। लड़ाई।

आहुत[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ अतिथियज्ञ। नृयज्ञ। मनुष्ययज्ञ। अतिथिसत्कार। २ भूतयज्ञ। वलिवैश्वदेव।

आहुत[2]—वि० हवन किया हुआ। हुत [को०]।

आहुति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ मत्र पढकर देवता के लिये द्रव्य को अग्नि मे डालना। होम। हवन। उ०—शिव आहुति वेरा जव आई। विप्रनि दच्छहिं पूछयो जाई।—सू०, ४।५। २ हवन मे डालने की सामग्री। ३ होमद्रव्य की वह मात्रा जो एक वार मे यज्ञकुड मे डाली जाय। उ०—आहुति जज्ञकुड मे डारी। कढ्यौ, पुरुष उपज्यो वल भारी।—सूर०, ४।३९९।

क्रि० प्र०—करना।—छोडना।—डालना।—देना।—होना।

यौ०—आज्याहुति। पूर्णाहुति।

आहुती(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आहुति'।

आहुल्य—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा या क्षुप [को०]।

आहू—सज्ञा पुं० [फा०] हिरन। मृग।

आहूत—वि० [स०] बुलाया हुआ। आह्वान किया हुआ। निमत्रित।

यौ०—अनाहूत।

आहूतसप्लव—सज्ञा पुं० [स० आहूतसम्प्लव] प्रलयकाल। प्रलयकालीन जलप्लावन।

आहूति—सज्ञा स्त्री० [स०] आह्वान। पुकार [को०]।

आहृत—वि० [स०] १ जो हरण किया हो। जो लिया गया हो। २ जो लाया गया हो। आनीत। लाया हुआ।

आहेय—वि० [स०] अहि या सर्पसबधी [को०]।

आहै(पु)—क्रि० अ० [हिं०] 'आसना' क्रिया का वर्तमानकालिक रूप।

आह्न—वि० [स०] दिनसबधी। दैनिक [को०]।

आह्निक[1]—वि० [स०] दिन का। दैनिक। रोजाना। जैसे,—आह्निक कर्म। आह्निक कृत्य।

आह्निक[2]—सज्ञा पुं० १ एक दिन का काम। २ सूत्रात्मक शास्त्र के भाष्य का एक अश जो एक दिन मे पढा जाय। ३. अध्यापक। ४ रोजाना मजदूरी। ५ एक दिन की मजदूरी।

आह्लाद—सज्ञा पु० [स०] [वि० आह्लादित] आनद। खुशी। हर्ष। उ०—जव उमडना चाहिए आह्लाद, हो रहा है क्यो मुझे अवसाद।—साकेत, पृ० १६७।

यौ०—आह्लादप्रद=आनददायक।

आह्लादक—वि० [स०] [स्त्री० आह्लादिका] आनंददायक। खुशी देनेवाला।

आह्लादन[1]—सज्ञा पु० [स०] हर्ष। आह्लाद [को०]।

आह्लादन[2]—वि० आनददायी। हर्ष प्रदान करनेवाला [को०]।

आह्लादित—वि० [स०] आनदित। हर्षित। प्रसन्न। खुश।

आह्लादी—वि० [स० आह्लादिन्] १ प्रसन्न। हर्षयुक्त। २ हर्षप्रद। आनद देनेवाला [को०]।

आह्वय—सज्ञा पु० [स०] १ नाम। सज्ञा।

यौ०—गजाह्वय। नागाह्वय। शताह्वय।

२ तीतर, वटेर, मेढ़े आदि जीवो की लडाई की वाजी। प्राणिद्यूत।

विशेष—मनु के धर्मशास्त्र मे इसका वहुत निषेध है।

आह्वयन—सज्ञा पुं० [स०] १. नाम का उच्चारण। २ नाम [को०]।

आह्वान—सज्ञा पुं० [स०] १. बुलाना। बुलावा। पुकार। उ०—अतर का आह्वान वेग से वाहर आया।—साकेत, पृ० ४१०। २ राजा की ओर से वुलावे का पत्र। समन। तलवनामा। ३ यज्ञ मे मत्र द्वारा देवताओं को बुलाना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आह्वाय—सज्ञा पुं० [स०] १ नाम। २ समन। तलवनामा [को०]।

आह्वायक[1]—वि० [स०] आह्वान करनेवाला। पुकारनेवाला [को०]।

आह्वायक[2]—सज्ञा पु० सदेशहर। संदेश ले जानेवाला। दूत [को०]।

इ

इ—देवनागरी वर्णमाला मे स्वर के अंतर्गत तीसरा वर्ण। इसका उच्चारणस्थान तालु और प्रयत्न विवृत है। ई इसका दीर्घ रूप है।

इंक—सज्ञा स्त्री० [अ०] स्याही। मसी। रोशनाई।

विशेष—यह मुख्यत दो प्रकार की होती है—लिखने की और छापने की। लिखने की स्याही कसीस, हड, माजू आदि को औटाकर वनती है और छापने की स्याही राल, तेल काजल इत्यादि को घोटकर वनाई जाती है।

यौ०—इंक पाट=स्याही रखने का वर्तन। मसीपात्र। दावात। इक पैड=स्याही लगी एक छोटी सी गद्दी जिसमे रवर की मुहर आदि पर स्याही लगाई जाती है।

इंकटेवल—सज्ञा पुं० [अं०] छापेखाने मे स्याही देने की चौकी।

विशेष—यह दो प्रकार की होती है—(१) सिंपुल (सादी)=यह सिर्फ एक चिकनी और साफ लोहे की ढली हुई चौकी होती है। (२) सिलिंड्रिकल (वेलनदार)=लोहे की एक साफ और चिकनी चौकी होती है जिसके एक ओर लोहे का एक वेलन लगा होता है। वेलन के पीछे एक प्रकार की नाली सी बनी रहती है जिसमे कुछ पेंच लगे होते हैं और स्याही भरी रहती है। उन पेंचो को कसने और ढीला करने मे स्याही आवश्यकतानुसार कम वा अधिक आती है और पिसकर बराबर हो जाती है। वेलनवाली चौकी मे स्याही देनेवाले को अधिक मनने का परिश्रम नहीं करना पडता।

इंकमैंन—संज्ञा पु० [अं०] छापेखाने मे मशीनपर स्याही देनेवाला मनुष्य। स्याहीवान।

इंकरोलर—संज्ञा पु० [अ०] छापेखाने मे स्याही देने का वेलन।

विशेष—यह तीन प्रकार का होता है—(१) लकडी का मोटा वेलन जिसपर कवल, बनात वगैरह लपेटकर ऊपर से चमडा मढते हैं। यह वेलन पत्थर के छापे मे काम देता है। (२) लकडी का वेलन जिसपर रवड ढालकर चढाते हैं। यह बहुत कम काम मे आता है। (३) तीसरे प्रकार का वेलन गराडीदार लकडी पर गला हुआ गुड और सरेम चढाकर बनाते हैं। यही अधिक काम मे आता है।

इंग¹—संज्ञा पुं० [सं० इङ्ग=इशारा, चिह्न] १ चलना। हिलना। डुलना। २ इशारा। ३ निशान। चिह्न। ४ हाथी का दाँत। उ०—वक लगे कुच बीच नखक्षत देखि भई दृग दूनी लजारी। मानो वियोग वराह हन्यो युग शैल की सधिनि इंगवै डारी।—केशव (शब्द०)। अग द्वारा भावो की अभिव्यक्ति। भावो की आगिक अभिव्यक्ति (को०)। ६ ज्ञान (को०)। ७ पृथिवी। भूमि (को०)।

इंग²—वि० १ गतिशील। हिलता हुआ। चल। २ विस्मयकारक। आश्चर्यजनक [को०]।

इंगन—संज्ञा पुं० [स० इङ्गन] [वि० इंगित] चलना। काँपना। २. हिलना। डोलना। ३ इशारा। सकेत। ४ ज्ञान। जानकारी (को०)। ५ चलाना (को०)। ६. हिलाना डुलाना (को०)।

इंगनी—संज्ञा स्त्री० [अ० मैंगनीज] एक प्रकार का मोर्चा जो धातुओं मे आक्सीजन के मिलने से पैदा होताहै।

विशेष—इंगनी भारतवर्ष मे राजस्थान, मैसूर, मध्यप्रात और मद्रास की खानो से निकलती है। यह काँच के हरेपन को दूर करने और काँच का लुक करने के काम आती है। यह अब एक प्रकार का सफेद लोहा बनाने के काम मे भी आती है जिसे अँगरेजी में 'फेरो मैंगनीज' कहते हैं।

इंगल(पु), इंगला(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इडा] हठयोग के अनुसार इडा नाम की एक नाडी। उ०—तीर चलै जो इंगल माँही। उत्तिम समत जो चलि जाही।—स० दरिया, पृ० २७। (ख) इगला पिंगला नाता कर ले सुषमन के घर मेला।—रामानद०, पृ० ३६। (ग) इंगला पिंगला सुखमन नारी। शून्य सहज मे वसहि मुरारी।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह नाडी बाईं ओर होती है। इसका काम बाईं नाक के नथने से श्वास निकालना और बाहर करना है। यह शब्द इस नाडी के साथ की ही दूसरी नाडी 'पिंगला' की समध्वन्यात्मकता पर बना है। इस नाडी को 'चद्र नाडी' कहते हैं। हठयोग के स्वरोदय मे इसका विवरण है।

इंगलिश¹—वि० [अ०] १ इंगलैंड देश सबधी। अँगरेजी। २ पेंशन (सिपाहियों की भाषा)।

इंगलिश²—संज्ञा स्त्री० अँगरेजी भाषा।

इंगलिशमैन—संज्ञा पुं० [अ०] इंगलैंड निवासी व्यक्ति। अँगरेज।

इंगलिस्तान—संज्ञा पुं० [अ० इंगलिश+फा० स्तान=जगह, तुल० स० स्थान] अँगरेजों का देश। इंगलैंड।

इंगलिस्तानी—वि० [अं० इंगलिश+फा० स्तानी] अँगरेजी। इंगलैंड देश का। उ०—इंगलिस्तानी और दरियाई कच्छी औलदेजी। औरहु विविध जाति के बाजी नकत पवन की तेजी।—रघुराज० (शब्द०)।

इंगलैंड—संज्ञा पु० [अ०] अँगरेजों का देश। इंगलिस्तान।

इंगार(पु)—संज्ञा पु० [स० इङ्गाल] दे० 'अंगार'। उ०—देही कण इंगार जू तपै, राजर माय मयड उगतड भाण।—बी० रासो, पृ० २१।

इंगालकर्म—संज्ञा पु० [स० अङ्गारकर्म] जैनमतानुसार वह व्यापार जो अग्नि से हो। जैसे,—लोहारी, सोनारी, ईट बनाना, कोयला बनाना।

इंगित¹—संज्ञा पु० [स०इङ्गित]१ हृदय के अभिप्राय को व्यक्त करनेवाली आगिक चेष्टा। २ सकेतचिह्न। इशारा। उ०—तरुगण अपनी शाखाओ से इंगित करके उसे दिखाते मार्ग।—कानन०, पृ० ५७। ३ अभिप्राय। मन का विचार या भाव (को०)। ४. हिलना डोलना। चलन (को०)।

इंगित²—वि० १. हिलता हुआ। २ चलित। कपित।

इंगितकोविद—वि०[स०इङ्गितकोविद] आगिक चेष्टा द्वारा आतरिक भावो को जानने मे उनकी अभिव्यक्ति मे कुशल [को०]।

इंगितज्ञ—वि० [स० इङ्गितज्ञ] दे० 'इंगित कोविद' [को०]।

इंगु—संज्ञा पु० [स० इङ्गु] एक रोग [को०]।

इंगुद—संज्ञा पुं० [स० इङ्गुद] दे० 'इंगुदी'।

इंगुदी—संज्ञा स्त्री० [स०इङ्गुदी] १ हिंगोट का पेड। उ०—विलसत निंब विशाल इंगुदी अरु आमलकी।—श्यामा, पृ० ३६। २. ज्योतिष्मती वृक्ष। मालकँगनी। ३ हिंगोट की गरी (को०)।

इंगुर(पु)†—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ईंगुर'।

इंगुरौटी—संज्ञा स्त्री० [हि० ईंगुर+औटी (प्रत्य०)] वह डिबिया या पात्र जिसमे सौभाग्यवती स्त्रियाँ ईंगुर रखती हैं। सिधौरा।

इंगुल—संज्ञा पुं० [सं० इङ्गुल] दे० 'इंगुदी' [को०]।

इंच—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ एक फुट का बारहवाँ हिस्सा। तीन आडे जव की लवाई। तस्मू। २ अत्यल्प। बहुत थोडा। उ०—इन महात्माओ के ध्यान मे यह बात नही आती कि ऐसी दलीलो से उनकी अप्रगतिशीलता एक इंच भी कम नही होती।—सरस्वती (शब्द०)।

इंचाक—संज्ञा पुं० [सं० इञ्चाक] एक प्रकार का मत्स्य। जलवृश्चिक [को०]।

इंचार्ज—वि० [अं०] किसी कार्य या विभाग की देखभाल करनेवाला। किसी कार्य या विभाग की जिम्मेदारी वहन करनेवाला [को०]।

इंच्छ्या Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] दे० 'इच्छा'। उ०—न तहाँ इच्छ्या श्रो श्रकार। न तहाँ नाभि न नालि तार। —रामानद०, पृ० ८।

इंछ Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] आकांक्षा। इच्छा।

इंछना Ⓟ—क्रि० स० [हिं० इंछ+ना (प्रत्य०)] दे० 'इच्छना'। उ०—पुनि तिनकी पद पकज रज श्रज श्रजहूँ इंछै। उद्धौ वुद्धि विशुद्धनु सौं पुनि सो रह इंछै।—नद० ग्र०, पृ० ४१।

इंछा Ⓟ—संज्ञा स्त्री० दे० 'इच्छा'। उ०—वर सजोग मोहि मेरवहु कलस जाति हौ मानि। जेहि दिन इंछा पूजै वेगि चढ़ावौं श्रानि। —जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २५०।

इंजन—संज्ञा पुं० [अं० एंजिन] १ कल पेंच। २ भाप या विजली से चलनेवाला यंत्र। ३. रेलवे ट्रेन मे वह गाडी जो सबमे आगे रहती है और सब गाडियो को खीचती है। उ०—इच्छा कर्म सयोगी इजन गारड आप अकेला है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०३।

यौ०—इंजनड्राइवर = इंजन को चलानेवाला व्यक्ति।

इंजर Ⓟ—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'समुदरफल'।

इंजीनियर—संज्ञा पुं० [अं० एंजीनियर] १ यंत्र की विद्या जाननेवाला। कलो का बनाने या चलानेवाला। २ शिल्प विद्या मे निपुण। विश्वकर्मा। ३ वह अफसर जिसके निरीक्षण मे सरकारी सडकें, इमारतें और पुल इत्यादि बनते हैं।

इंजीनियरिंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] १ इंजीनियर का कार्य। यंत्रादि के निर्माण का काम। २ लोहे के कल पुर्जे आदि बनाने का काम [को०]।

इंजील—संज्ञा स्त्री० [यू०] १. सुसमाचार। २ ईसाइयो की धर्मपुस्तक। बाइविल।

इंजेक्शन—संज्ञा पुं० [अं०] वह द्रव्य औषध जो सूई के द्वारा शरीर मे प्रविष्ट कराया जाय। उ०—डाक्टरो ने इंजेक्शन लेने के लिये कहा।—सन्यासी, पृ० १६६।

क्रि० प्र०—चढाना।—देना।—लेना।

इंट्रेंस—संज्ञा पुं० [अं० एंट्रेंस] १ द्वार। दरवाजा। फाटक। २ अंग्रेजी पाठशालाओ की एक श्रेणी।

इंड Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अंड] दे० 'अंड'। उ०—ध्यावैं इंड करै चौचंदा। आपु देखि श्रोर सहज श्रनदा।—कवीर सा०, पृ० ९०६।

इंडज Ⓟ—वि० [सं० अंडज] अंडा। अंडे के आकार का। उ०—तिहि रानी पूरव क्रम गत्तिय। इंडज आकृति हट्ट प्रसुतिय।—पृ० रा०, ५७। १९६।

इंडस्ट्रियल—वि० [अं०] उद्योग धंधा सवधी। शिल्प सवधी। औद्योगिक। जैसे,—इंडस्ट्रियल कानफरेंस।

इंडस्ट्री—संज्ञा स्त्री० [अं०] उद्योगधंधा। शिल्प।

इंडियन—वि०, पुं० [अं०] हिंदुस्तान निवासी। भारतीय [को०]।

इंडिया—संज्ञा पुं० [यू०, अं०] हिंदुस्तान। भारतवर्ष।

इंडियाश्राफिस—संज्ञा पुं० [अं० इंडिया ऑफिस] ब्रिटिश शासनकाल मे भारत सवधी कार्य या व्यवस्था के लिये स्थापित लदन स्थित एक कार्यालय। भारत और पाकिस्तान के स्वतंत्र होने पर इस कार्यालय की सभी महत्वपूर्ण सामग्री यथाप्राप्य दोनो देशो मे बाँट दी गई।

इंडीक—संज्ञा पुं० [सं०] कलमतराश चाकू [को०]।

इंडेक्स—संज्ञा पुं० [अं०] (पुस्तक के) विषयो की अक्षरक्रम से बनी हुई सूची। विषयानुक्रमणिका। अनुक्रमणिका।

इंडेंट—संज्ञा पुं० [अं०] माल मँगाने के समय भेजी जानेवाली माल की वही सूची जो किसी व्यापारी के पास माल की माँग के साथ भेजी जाती है।

इंडोर्स—क्रि० स० [अं० एंडोर्स] चेक या हुंडी आदि पर रुपए देने या पाने के सवध मे हस्ताक्षर करना।

इंडोली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक औषध का नाम।

इंडु—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की सुरक्षा के लिये मूज का दस्ताना [को०]।

इंतकाम—संज्ञा पुं० [अ० इंतकाम] प्रतिकार का बदला। बदला [को०]।

इंतकाल—संज्ञा पुं० [अ० इंतकाल] १. मृत्यु। मौत। परलोकवास। २ एक जगह से दूसरी जगह जाना। ३. किसी जायदाद या सपत्ति का एक के अधिकार से दूसरे के अधिकार मे जाना।

यौ०—इंतकाल जायदाद = रेहन, बय आदि के कारण सपत्ति का दूसरे के हाथ जाना।

इंतखाब—संज्ञा पुं० [अ० इंतखाब] १. दफ्तर या खतौनी आदि के किसी लेख की बाजाब्ते कराई हुई नकल। २. चुनना या छाँटना। ३. चुनाव [को०]।

इंतजाम—संज्ञा पुं० [अ० इंतजाम] प्रबंध। बदोवस्त। व्यवस्था।

इंतजार—संज्ञा पुं० [अ० इंतजार] प्रतीक्षा। वाट जोहना। रास्ता देखना। अगोरना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

इंतशार—संज्ञा पुं० [अ०] १ चिंता। परेशानी। उद्विग्नता। २. बिखरने की स्थिति। बिखराव [को०]।

इंतहा—संज्ञा पुं० [अ०] १ समाप्ति। अंत। उ०—इब्तिदा मे ही मर गए सब यार। इश्क की कौन इंतहा लाया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १३३। २ हद। पराकाष्ठा।

मुहा०—इंतहा करना = हद कर देना। अति कर देना।

यौ०—इंतहापसद = अति को पसद करनेवाला। अतिवादी।

इंतहाई—वि० [अ०] अत्यधिक। हद दर्जे का। उ०—इंतहाई इश्तआल पैदा करनेवाले हालात का सिलसिला वे दलील मे पेश करने लगे।—समावृत०, पृ० ३६।

इंथिहा—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक पारिभाषिक शब्द। मुदा। मुथहा [को०]।

इंदवर—संज्ञा पुं० [सं०] नीला कमल। इंदीवर [को०]।

इंद¹ Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० इंद्र, प्रा० इंद] दे० 'इंद्र'। उ०—श्रायसो हुतो रहो यह मद। वनि वनि तुम कहूँ परिहै इंद।—नद ग्र०, पृ० ३१३।

इंद²--क्रि० वि० [अ०] १ समीप। नजदीक। २ पर। किंतु [को०]।

इदउँ--सज्ञा पु० [देश०] दे० 'इंदुर'। उ०-प्रेम खटोलना कसि कसि बाँध्यौ विरह बान तिहि लागू हो। तिहि चढि इदउँ करत गँवमियाँ अनरि जमवा जागी हो।--कबीर ग्र०, पृ० ११२।

इदका--सज्ञा पुं० [सं० इन्दका] मृगशिरा नक्षत्र के ऊपर रहनेवाला नक्षत्रगण [को०]।

इदर(पु)--सज्ञा दे० [सं० इन्द्र] दे० 'इंद्र'। उ०-मुनि जन इदर झलि सब, झूने गौरि गनेस-मतवानी, भा० १, पृ० ११८।

यौ०--इदर का अखाड़ा=अप्सराओ, परियो का जमावडा। उ०--हमको 'नासिख' राजा इदर का अखाडा चाहिए।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३५४।

इदराज--सज्ञा पुं० [इंदिराज०] वहीखाता। लेखाजोखा या पंजिका मे लिखा जाना [को०]।

इदव¹--सज्ञा पुं० [सं० ऐन्द्रव] १ एक छद का नाम। इसके प्रत्येक चरण मे आठ भगण और दो गुरु होते हैं। इसे मत्तगयंद और मालती भी कहते है।

इदव²--सज्ञा पु० [सं० इन्दु] चद्रमा।

इदवभाल(पु)--सज्ञा पुं० [हिं० इदव+भाल] चद्रमाल शिव। उ०--हरि न बनाओ सुरसरी कीजो इदवभाल।--रहीम०, पृ० १।

इदवान(पु)--सज्ञा पु० [सं० इन्द्र+वाण=आयुध] शक्र का धनुप। इद्र धनुप। उ०-उर गजिय व्योम रजि इदवान। गहि काम चाप जनु दिय निसान।--पृ० रा०, ५७।६५।

इंदिंदिर--सज्ञा पु० [सं० इन्दिन्दिर] भ्रमर। भौंरा [को०]।

इदिम्र(पु)--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रिय, प्रा० इंदिय] दे० 'इंद्रिय'। उ०--इदिम्र दारुन जतहि हटिय ततहि ततहि धावे।--विद्यापति, पृ० ३७२।

इदिया--सज्ञा पुं० [अ०] १. समति। राय। विचार। मशा। २. आकाक्षा। इच्छा [को०]।

इदिरा--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दिरा] १. लक्ष्मी। विष्णुपत्नी। उ०-सती विधात्री इदिरा देखी अमित अनूप।--मानस १।५५। २. कुआर के कृष्ण पक्ष की एकादशी। ३. शोभा। काति। उ०--शरद इदिरा के मदिर की मानो कोई गैल रही।--कामायनी, पृ० ९८।

यौ०--इदिरामदिर=(१) विष्णु। (२) इदीवर। नील कमल। इदिरारमण=लक्ष्मीरमण। विष्णु [को०]।

इदिरालय--सज्ञा पु० [सं० इन्दिरालय] नीलकमल [को०]।

इदिवर, इदीवर--सज्ञा पुं० [सं० इन्दिवर, इन्दीवर] १ नील कमल। नीलोत्पल। उ०--स्वर्गंगा मे इदीवर की, या एक पक्ति कर रही हास। कामायनी, पृ० १५२। २ कमल।

इदीवरिणी--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दीवरिणी] कमलिनी [को०]।

इदीवरी--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दीवरी] शतमूली [को०]।

इदीवार--सज्ञा पु० [सं० इन्दवार] दे० 'इदीवर' [को०]।

इदु--सज्ञा पु० [सं० इन्दु] १ चद्रमा। २ कपूर। ३. एक प्रकार की सख्या। ४ मृगशिरा नक्षत्र। इस नक्षत्र का देवता चद्र है।

यौ०--इदुकमल=श्वेतकमल। इदुकिरीट, इदुभूपण=शिव। इदुनदन, इंदुपुत्र=चद्रमा। इदुलोक=चद्रलोक। इदुवासर=सोमवार।

इदुक--सज्ञा पु० [सं० इन्दुक] अश्मतक का वृक्ष [को०]।

इदुकर--सज्ञा पुं० [सं० इन्दुकर] चद्रमा की किरण। उ०--जलविहार विचार कर विद्याधरो की बालिका, आ गई हैं क्या, कि ये हैं इदुकर की जालिका।--कानन०, पृ० ४२।

इदुकला--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुकला] १ चंद्रमा की कला। २ चद्रमा की किरन। उ०--भाल लाल बेंदी ललन, आखत रहे बिराजि। इदुकला कुज मे बसी, मनो राहु भय भाजि।--बिहारी र०, दो० ६९०। ३ अमृत। पीयूप (को०)। ४. सोमलता। सोम (को०)। ५ गुडूची गुरुच (को०)।

इदुकलिका--सज्ञा पु० [सं० इन्दुकलिका] १ चद्रमा की कला या चद्रमा की किरण। २ केतकी का पौधा [को०]।

इदुकात--सज्ञा पु० [सं० इन्दुकान्त] चद्रकात नामक मणि [को०]।

इदुकाता--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुकान्ता] केतकी। इदुकलिका। २ निशा। रात्रि [को०]।

इदुक्षय--सज्ञा पु० [सं० इन्दुक्षय] १ चद्रमा का क्षीण होना या न दिखाई देना। २ नए चाँद का दिन [को०]।

इदुज--सज्ञा पुं० [सं० इन्दुज] चद्रमा का पुत्र। बुध [को०]।

इदुजनक--सज्ञा पु० [सं० इन्दुजनक] १ चद्रमा का पिता समुद्र। अत्रि नामक ऋषि [को०]।

इदुजा--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुजा] सोमोद्भवा। नर्मदा नदी।

इदुपर्णी--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुपर्णी] पंजीरी नाम का पौधा [को०]।

इदुपुष्पिका--संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुपुष्पिका] कलियारी या जागली नाम का पौधा [को०]।

इदुवधू(पु)--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवधू] दे० 'इद्रवधू'। उ०-ज्यो ज्यो परसे लाल तन त्यो त्यो राखति गोइ। नवल वधू लाजन ललित इदुवधू सी होइ।--मतिराम ग्र०, पृ० ४४६।

इदुभ--सज्ञा पु० [सं० इन्दुभ] १ कर्कराशि। २ मृगशिरा नक्षत्र [को०]।

इदुभा--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुभा] जलकमलिनी की एक जाति [को०]।

इंदुभृत्--सज्ञा पुं० [सं० इन्दुभृत्] शिव [को०]।

इदुमडल--सज्ञा पु० [सं० इन्दुमण्डल] चद्रमा का घेरा या परिधि [को०]।

इदुमणि--सज्ञा पु० [सं० इन्दुमणि] १. चद्रकात मणि। २ मोती [को०]।

इदुमती--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुमती] १ पूर्णिमा। २ राजा अज की पत्नी जो विदर्भ देश के राजा की बहिन थी। ३ राजा चद्रविजय की पत्नी। उ०--चद्रविजय नृप रह्यो तहाँ ही। रानी इंदुमती रति छाहीं। (शब्द०)।

इदुमान्--सज्ञा पु० [सं० इन्दुमत्] अग्नि [को०]।

इदुमुखी--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुमुखी] एक लता [को०]।

इदुमौलि--सज्ञा पु० [सं० इन्दुमौलि] शिव। इदुभूपण [को०]।

इदुर--सज्ञा पु० [सं० इन्दुर] चूहा। मूसा।

इंदुरत्न—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुरत्न] मुक्ता। मोती।

इंदुरेखा, इंदुलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुरेखा,-लेखा] १ चद्रमा की कला। इंदुकला। २. सोमलता। ३. अमृता। ४ गुडूची[को०]।

इंदुलतलव—क्रि० वि० [अ०] माँगने पर या जरूरत पडने पर [को०]।

इंदुलोहक, इंदुलोह—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुलोहक,-लोह] चाँदी रजत [को०]।

इंदुवदना—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुवदना] एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण मे भ ज स न ग ग (ऽ।। । ऽ। ।। ऽ ।।। ऽऽ) होता है। उ०— इंदुवदना वदत जाऊँ वनिहारी। जान मोहिं दे घरहिं सत्वर विहारी।—(शब्द०)। २ इंदुतुल्य मुखवाली स्त्री [को०]।

इंदुवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुवधू] इंद्रवधू'।

इंदुवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुवल्ली] सोमलता [को०]।

इंदुवार—संज्ञा पुं०[सं० इन्दुवार] १ वर्ष कुंडली के सोलह योगो मे से एक। जब तीसरे, छठे, नवें और बारहवें घर मे क्रूर ग्रह हों, तब यह योग होता है। यह शुभ नही है। २ सोमवार का दिन [को०]।

इंदुव्रत—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुव्रत] चांद्रायण नाम का एक व्रत।

इंदूर—संज्ञा पुं० [सं० इन्दूर] चूहा। मूसा।

इंद्र[1]—वि० [सं०] १ ऐश्वर्यवान्। विभूतिसपन्न २. श्रेष्ठ। बडा।
यौ०— देवेंद्र। नरेंद्र। यादवेंद्र। योगींद्र। दानवेंद्र। सुरेंद्र।

इंद्र[2]—संज्ञा पुं० १ एक सर्वप्रमुख वैदिक देवता जिसका स्थान अंतरिक्ष है जो ओर पानी बरसाता है। यह देवताओं का राजा माना गया है। शौर्य, युद्ध और वैभव का वह सर्वश्रेष्ठ वैदिक देव है। ऋग्वेद मे सबसे अधिक सूक्तों द्वारा इंद्र के शौर्य, वीर्य, पराक्रम और सोमपान आदि का वर्णन किया गया है। ऋग्वेदयुगीन वैदिक यज्ञों में भी उसका अत्यत प्रमुख स्थान है।

विशेष—इसका वाहन ऐरावत और अस्त्र वज्र है। इसकी स्त्री का नाम शचि और सभा का नाम सुधर्मा है, जिसमे देव, गंधर्व और अप्सराएँ रहती हैं। इसकी नगरी अमरावती और वन नदन है। उच्चैःश्रवा इसका घोडा और मातलि सारथी है। वृत्र, त्वष्टा, नमुचि, शबर, पण, वलि और विरोचन इसके शत्रु हैं। जयत इसका पुत्र है। यह ज्येष्ठा नक्षत्र और पूर्व दिशा का स्वामी है। पुराण के अनुसार एक मन्वतर मे क्रमश चौदह इंद्र भोग करते है जिनके नाम ये है—इंद्र। विश्वभुक। विपश्चित्। विभु। प्रभु। शिखि। मनोजव। तेजस्वी। बलि। अद्भुत। त्रिदिव। सुशांति। सुकीर्ति। ऋत धाता। दिवस्पति। वर्तमान काल मे तेजस्वी इंद्र भोग कर रहे हैं।

पर्या०—मरुत्वान्। मघवा। बिडौजा। पाकशासन। वृद्धश्रवा। शुनासीर। पुरहूत पुरदर। जिष्णु। लेखर्षभ। शक्र। शतमन्यु। दिवस्पति। सुत्रामा। गोत्रभिद्। वज्री। वासव। वृत्रहा। वृषा। वास्तोष्पति। सुरपति। बलाराति। शचीपति। जंभभेदी। हरिहय। स्वराट्। नमुचिसूदन। संक्रंदन। दुश्च्यवन। तुराषाह। मेघवाहन। आखडल। सहस्राक्ष। ऋभुक्ष। महेंद्र। कौशिक। पूतक्रतु। विश्वभर। हरि। पुरंदर। शतधृति। पृतनाषाड्। अहिद्विष। वज्रपाणि। देवराज। पर्वतारि। पर्यण्य। देवाधिप। नाकनाथ। पूर्वदिक्पति। पुलोमारि। अर्ह प्रचीन। वर्हि। तपस्तक्ष।

यौ०—इंद्र का अखाडा=(१) इंद्र की सभा जिसमे अप्सराएँ नाचती हैं। (२) बहुत सजी हुई सभा जिसमे खूब नाच रग होता हो। इंद्र की परी=(१) अप्सरा। (२) बहुत सुदरी स्त्री। इंद्रसभा=इंद्र का अखाडा। उ०—इंद्रसभा जनु परिगै डीठी।—जायसी ग्र०, पृ० १८।

२ बारह आदित्यों मे से एक। सूर्य। ३. बिजली। ४ राजा। मालिक। स्वामी। ५ ज्येष्ठा नक्षत्र। ६ चौदह की सख्या। ७ ज्योतिष मे विष्कुंभादिक २७ योगों मे से २६वाँ। ८ कुटज वृक्ष। ९. रात। १० छप्पय छद के भेदो मे से एक। ११ दाहिनी आँख की पुतली। १२ व्याकरण आदि के आचार्य का नाम। १३ जीव। प्राण। १४ श्रेष्ठ या प्रधान व्यक्ति [को०]। १५ मेघ। बादल (को०)। १६ भारतवर्ष का एक भाग (को०)। १७ परमेश्वर (को०)। १८ वनस्पतिजन्य एक प्रकार का जहर [को०]।

इंद्रक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रक] गोष्ठी का स्थान। सभागृह [को०]।

इंद्रकर्मा—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकर्मन्] विष्णु [को०]।

इंद्रकांत—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकांत] चौमंजिले भवन की एक मजिल या मरातिब [को०]।

इंद्रकार्मुक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकार्मुक] इंद्रायुध। इंद्रधनुष [को०]।

इंद्रकील—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकील] १ मदराचल का एक नाम। २ चट्टान [को०]। ३ इंद्र की ध्वजा [को०]। ४ कँटिया। किल्ली [को०]।

इंद्रकुंजर—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकुञ्जर] इंद्र का हाथी। ऐरावत[को०]।

इंद्रकूट—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकूट] एक पर्वत का नाम [को०]।

इंद्रकृष्ट[1]—वि० [सं० इन्द्रकृष्ट] वर्षा से अपने आप उत्पन्न होनेवाला [को०]।

इंद्रकृष्ट[2]—संज्ञा पुं० वर्षा के जल से अपने आप पैदा होनेवाली फसल [को०]।

इंद्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकेतु] इंद्र की ध्वजा [को०]।

इंद्रकोश, इंद्रकोष—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकोश,—कोष] १ मचान। २ चारपाई। ३ बारखाना। छज्जा। ४ नागदंत। खूँटी [को०]।

इंद्रकोष्ठ—संज्ञा पुं० दे० 'इंद्रकोश'।

इंद्रगिरि—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगिरि] महेंद्र नाम का पर्वत [को०]।

इंद्रगुरु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगुरु] देवगुरु बृहस्पति [को०]।

इंद्रगोप—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगोप] बीरबहूटी नाम का कीडा।

इंद्रगोपक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगोपक] दे० 'इंद्रगोप'।

इंद्रचंदन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रचन्दन] श्वेतचदन। हरिचदन [को०]।

इंद्रचाप—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रचाप] दे० 'इंद्रधनुष'।

इंद्रचिर्भिटी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रचिर्भिटी] इंद्रायण। एक लता-विशेष [को०]।

इंद्रच्छंद—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रच्छन्द] एक हजार आठ मोतियों की माला जो चार हाथ लबी होती थी।

विशेष—इसका एक नाम 'इंद्रच्छद' भी है।

इंद्रज—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रज] वालि नामक वानर जो इंद्र का पुत्र था [को०]।

इंद्रजतु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रजतु] शिलाजीत [को०]।

इंद्रजव—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रयव] कुडा। कौरैया का वृक्ष।

विशेष—ये बीज लंबे-लंबे जव के आकार के होते हैं और दवा के काम मे आते हैं। एक एक सीके मे हाथ हाथ भर की लंबी दो दो फलियाँ लगती है, जिनके दोनो छोर आपस मे जुडे रहते हैं। फलियो के अंदर रुई या घूवा होता है जिसमे बीज रहते हैं। इसके पेड मे काँटे भी होते हैं। यह मलरोधक, पाचक और गरम है तथा संग्रहणी और खूनी बवासीर मे फायदा करता है। त्वचा के रोगो पर भी यह चलता है।

इंद्रजाल—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रजाल] १ मायाकर्म। जादूगरी। तिलस्म। उ०—सो नर इंद्रजाल नहिं भूला।—मानस, ३। ३३।

विशेष—यह तंत्र का भी अंग है।

२ एक प्रकार का रणचातुर्य। ३ अर्जुन का एक शस्त्र (को०)।

इंद्रजालिक—वि० [सं० इन्द्रजालिक] इंद्रजाल करनेवाला। जादूगर।

इंद्रजाली—वि० [सं० इन्द्रजालिन्] [वि० स्त्री० इंद्रजालिनी] इंद्रजाल करनेवाला। मायावी। जादूगर। उ०—यों न कहो कटि नाहि तो कुच हैं किहि आधार। परम इंद्रजाली मदन विधि को चरित अपार।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १६१।

इंद्रजित्[1]—वि० [सं० इन्द्रजित्] इंद्र को जीतनेवाला।

इंद्रजित्[2]—संज्ञा पुं० रावण का पुत्र, मेघनाद।

इंद्रजीत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रजित्] दे० 'इंद्रजित्'। उ०—इंद्रजीत आदिक बलवाना।—मानस, ६। ३३।

इंद्रजौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० इन्द्रजव] दे० 'इंद्रजव'।

इंद्रतरु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रतरु] १ अर्जुन नाम का वृक्ष। २ कुटज का पौधा [को०]।

इंद्रतापन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रतापन] १. मेघगर्जन। बादलो का गरजना। २. एक दानव का नाम [को०]।

इंद्रतूल, इंद्रतूलक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रतूल, -तूलक] वह सूत जो वायु मे उड जाय। २. रुई की ढेरी या समूह [को०]।

इंद्रदमन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रदमन] १ बाढ के समय नदी के जल का किसी निश्चित कुंड, ताल अथवा वट या पीपल के वृक्ष तक पहुँचना। यह एक पर्व समझा जाता है। २ बाणासुर का एक पुत्र। ३ मेघनाद का एक नाम।

इंद्रदारु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रदारु] देवदारु।

इंद्रद्युति—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रद्युति] श्वेतचंदन [को०]।

इंद्रद्रुम—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रद्रुम] १ अर्जुन वृक्ष। २ कुटज [को०]।

इंद्रद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रद्वीप] भारतवर्ष के नौ खंडो मे एक का नाम [को०]।

इंद्रधनु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रधनुष, प्रा० इंद्रधणु] दे० 'इंद्रधनुष'। उ०—भरी धमनियाँ सरिताओं सी, रोष इंद्रधनु उदय हुआ।—नागयज्ञ, पृ० ६५।

इंद्रधनुष—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रधनुष] १. सात रंगों का बना हुआ एक अर्धवृत्त जो वर्षाकाल मे सूर्य के विरुद्ध दिशा में आकाश मे देख पडता है। जब सूर्य की किरणें बरसते हुए जल से पार होती हैं, तब उनकी प्रतिच्छाया से इंद्रधनुष बनता है।

इंद्रध्वज—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रध्वज] १ इंद्र की पताका। २ भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को वर्षा और खेती की वृद्धि के लिये होनेवाला एक पूजन जिसमे राजा लोग इंद्र की ध्वजा चढ़ाते और उत्सव करते हैं। ३ प्राचीन भारत मे प्रचलित एक उत्सव जिसमें वैदिक देव इंद्र की आराधना होती थी।

इंद्रनील—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रनील] नीलमणि। नीलम। उ०—इंद्रनील मणि महाचषक था सोमरहित उलटा लटका।—कामायनी पृ० २४।

इंद्रनेत्र—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रनेत्र] १ १००० की संख्या। २ इंद्र की आँख [को०]।

इंद्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रपर्णी] दे० 'इंद्रपुष्पा' [को०]।

इंद्रपर्वत—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रपर्वत] १ महेंद्र पर्वत। २ एक काला पहाड (को०)।

इंद्रपुरोहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रपुरोहिता] पुष्य नक्षत्र।

इंद्रपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रपुष्पा] करियारी। कलिहारी।

इंद्रप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रप्रस्थ] एक नगर जिसे पांडवो ने खांडव वन जलाकर बसाया था। यह आधुनिक दिल्ली के निकट है।

इंद्रप्रहरण—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रप्रहरण] वज्र (को०)।

इंद्रफल—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रफल] इंद्रजव।

इंद्रभगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रभगिनी] पार्वती [को०]।

इंद्रभाष—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रभाष] संगीत मे इंद्रताल के छ भेदो मे से एक।

इंद्रभेषज—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रभेषज] सोंठ [को०]।

इंद्रमंडल—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रमण्डल] अभिजित से अनुराधा तक के सात नक्षत्रो का समूह।

इंद्रमख—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रमख] इंद्र की प्रसन्नता के निमित्त किया जानेवाला एक यज्ञ [को०]।

इंद्रमद—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रमद] पहली वर्षा के जल से उत्पन्न विष जिसके कारण जोंक और मछलियाँ मर जाती हैं।

इंद्रमह—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रमह] १ दे० 'इंद्रमख'। २. वर्षा ऋतु।

यौ०—इंद्रमहकामुक = श्वान। कुत्ता।

इंद्रलुप्त—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रलुप्त] खलवाट होने का रोग। गंज रोग।

इंद्रलुप्तक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रलुप्तक] दे० 'इंद्रलुप्त'।

इंद्रलोक—संज्ञा पुं० [सं० इंद्रलोक] स्वर्ग। उ०—चढे अस्त्र लै कृष्ण मुरारी। इंद्रलोक सब लाग गोहारी।—जायसी ग्र०, पृ० ११३।

इंद्रवंशा—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवंशा] १२ वर्णों का एक वृत्त जिसमे दो तगण, एक जगण और एक रगण होते हैं। उ०—ताता जरा देखु विचारि कै मनै। को मार को देत सुखै दुखै जनै। संग्राम भारी कर आज बान सो। रे इंद्रवंशा ! लर कौरवान सो।—छंद०, पृ० १७२।

इंद्रवज्रा—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवज्रा] एक वर्णवृत्त का नाम जिसमे दो तगण, एक जगण और गुरु होते हैं। उ०—ताता जगो गोकुल

नाम गावो। भारी सर्व पापन को नसावो। साँची प्रभू काटहिं जन्मवैरी। हैं इंद्रवज्रा यह सीख मेरी। छंद०, पृ० १५७।

इंद्रवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवधू] वीरबहूटी नाम का कीड़ा।

इंद्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवल्ली] इंद्रायन।

इंद्रवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवस्ति] जाँघ की हड्डी।

इंद्रवारु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवारुणी] इंद्रायन। इंद्रारुन।

इंद्रवारुणी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवारुणी] इंद्रायन।

इंद्रवृद्ध—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवृद्ध] [स्त्री० इन्द्रवृद्धा] एक प्रकार की फुंसी।

इंद्रव्रत—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रव्रत] वह राजा जो अपनी प्रजा को उसी तरह भरा पूरा रखे जैसे इंद्र पानी बरसाकर जीवों को प्रसन्न करता है।

इंद्रशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रशक्ति] शची। इंद्राणी [को०]।

इंद्रशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रशत्रु] १ वृत्रासुर। २. प्रह्लाद [को०]।

इंद्रसारथि—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसारथि] १. मातलि। २ वायु। पवन [को०]।

इंद्रसावर्णी—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसावर्णी] चौदहवें मनु का नाम।

इंद्रसुत—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसुत] इंद्र के पुत्र (१) जयंत। (२) बालि। (३) अर्जुन वृक्ष (को०)।

इंद्रसुरस—संज्ञा पुं०[सं० इन्द्रसुरस]निर्गुंडी या सिंदुवार का पौधा[को०]।

इंद्रसेन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसेन] राजा बलि का एक नाम।

इंद्रसेनानी—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसेनानी] कार्तिकेय [को०]।

इंद्रस्तोम—संज्ञा पुं०[सं० इन्द्रास्तोम]१ इंद्र की प्रसन्नता के निमित्त यज्ञ। २ इंद्र की प्रार्थना [को०]।

इंद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रा] तुषार। हिम [को०]।

इंद्राग्निधूम—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्राग्निधूम] तुषार। हिम [को०]।

इंद्राणिका—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राणिका] निर्गुंडी [को०]।

इंद्राणी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राणी] १ इंद्र की पत्नी, शची। २ बड़ी इलायची। ३ इंद्रायन। ४. दुर्गा देवी। ५ दाईं आँख की पुतली। ६ सिंधुवार वृक्ष। सम्हालू। निर्गुंडी।

इंद्रानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राणी] दे० 'इंद्राणी'।

इंद्रानुज—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रानुज] विष्णु, जिन्होंने वामन अवतार लिया था। उपेंद्र।

इंद्रायण—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इंद्रायन'। उ०—कटु इंद्रायण में सुंदर फल, मधुर ईख में एक नहीं।—कविता कौ०, भा०, २, पृ० १५१।

इंद्रायन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्राणी] एक लता जो बिलकुल तरबूज की लता की तरह होती है। इनारु। उ०—इंद्रायन दाडिम विरस जहाँ न नेकु विवेक।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६६६।

विशेष—सिंध, डेरा इस्माईलखाँ, मुलतान, बहावलपुर तथा दक्षिण और मध्य भारत में यह आपसे आप उपजती है। इसका फल नारंगी के बराबर होता है जिसमें खरबूजे की तरह फाँकें कटी होती हैं। पकने पर इसका रंग पीला हो जाता है। लाल रंग का भी इंद्रायन होता है। यह फल विषैला और रेचक होता है। अँगरेजी और हिंदुस्तानी दोनों दवाओं में इसका मंत काम आता है। यह फल देखने में बड़ा सुंदर पर अपने कड़ुएपन के लिये प्रसिद्ध है।

मुहा०—इंद्रायन का फल=देखने में अच्छा पर वास्तव में बुरा। सूरतहराम। खोटा।

इंद्रायुध—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रायुध] १ वज्र। २. इंद्रधनुष। उ०—कादंबरी में वर्णित इंद्रायुध से क्या डीलडौल में कम था?—किन्नर०, पृ० ३४।

इंद्रावरज—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रावरज] विष्णु। उपेंद्र [को०]।

इंद्रावसान—संज्ञा स्त्री०[सं० इन्द्रावसान]रेगिस्तान। मरुभूमि [को०]।

इंद्राशन—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राशन] १. भाँग। सिद्धि। विजया। २. गुंजा। घुंघची। चिरमिटी।

इंद्रासन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रासन] १ इंद्र का सिंहासन। इंद्रपद। २ राजसिंहासन। उ०—माँझ ऊँच इंद्रासन साजा। गंध्रबसेन बैठ तहँ राजा। जायसी ग्रं०, पृ० १८। ३ पिंगल में ठगण के पहले भेद की संज्ञा, जिसमें पाँच मात्राएँ इस क्रम से होती हैं—एक लघु और दो गुरु, जैसे,—'पुजारी'।

इंद्रिजित(पु)—संज्ञा वि०[सं० इन्द्रियजित्] दे० 'इंद्रियजित्'। उ०—देखि कै उमा कौं रुद्र लज्जित भए मैं कौन यह काम कीनौ। इंद्रिजित हौं कहावत हुतौ आपु कौं समुझि मन माहिं ह्वै रह्यौ खीनौ।—सूर० ८।१०।

इंद्रिय—संज्ञा स्त्री०[सं० इन्द्रिय] १. वह शक्ति जिससे बाहरी विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। वह शक्ति जिससे बाहरी वस्तुओं के भिन्न भिन्न रूपों का भिन्न भिन्न रूपों में अनुभव होता है। २. शरीर के वे अवयव जिनके द्वारा यह शक्ति विषयों का ज्ञान प्राप्त करती है।

विशेष—सांख्य ने कर्म करनेवाले अवयवों को इंद्रिय मानकर इंद्रियों के दो विभाग किए हैं—ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय। ज्ञानेंद्रिय वे हैं जिनसे केवल विषयों के गुणों का अनुभव होता है। ये पाँच हैं चक्षु (जिससे रूप का ज्ञान होता है), श्रोत्र (जिससे शब्द का ज्ञान होता है।), नासिका (जिससे गंध का ज्ञान होता है), रसना (जिससे स्वाद का ज्ञान होता है) और त्वचा (जिससे स्पर्श द्वारा कड़े और नरम आदि का ज्ञान होता है)। इसी प्रकार कर्मेंद्रियाँ भी, जिनके द्वारा विविध कर्म किए जाते हैं, पाँच हैं—वाणी(बोलने के लिये), हाथ (पकड़ने के लिये) पैर (चलने के लिये), गुदा (मलत्याग करने के लिये), उपस्थ (मूत्रत्याग करने के लिये)। इनके अतिरिक्त उभयात्मक अंतरेंद्रिय 'मन' भी माना गया है जिसके मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त चार विभाग करके वेदांतियों ने कुल १४ इंद्रियाँ मानी हैं। इनके पृथक् पृथक् देवता कल्पित किए हैं, जैसे, कान के देवता दिशा, त्वचा के वायु, चक्षु के सूर्य, जिह्वा के प्रचेता, नासिका के अश्विनीकुमार, वाणी के अग्नि, पैर के विष्णु, हाथ के इंद्र, गुदा के मित्र, उपस्थ के प्रजापति, मन के चंद्रमा, बुद्धि के ब्रह्मा, चित्त के अच्युत, अहंकार के शंकर। न्याय के मत से पृथ्वी का अनुभव घ्राण से, जल का जिह्वा से, तेज का चक्षु से, वायु का त्वचा से और आकाश का कान से होता है।

यौ०--इंद्रियघात। इंद्रियजन्य। इंद्रियजित्। इंद्रियदमन। इंद्रियनिग्रह। इंद्रियसयम। इंद्रियार्थ। इंद्रियासक्त।

३ लिंगेंद्रिय। ४ पाँच की सख्या। ५ वीर्य। ६ कुश्ती के एक पेंच का नाम।

इंद्रियगोचर[1]--वि० [सं० इन्द्रियगोचर] इंद्रियों के ग्रहण के योग्य या ज्ञेय। इंद्रियों का विषय होने योग्य।

इंद्रियगोचर[2]--सज्ञा पुं० इंद्रियों का विषय [को०]।

इंद्रियग्राम--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियग्राम] इंद्रियों का समूह [को०]।

इंद्रियज--वि० [सं० इन्द्रियज] इंद्रियों के सयोग से होनेवाला। इंद्रियजन्य। उ०--आरभ मे मनुष्य की चेतनसत्ता अधिकतर इंद्रियज ज्ञान की समष्टि के रूप मे रही।--रस०, पृ० २०।

इंद्रियजित्--वि० [सं० इन्द्रियजित्] जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो। जो इंद्रियों को वश मे किए हो। जो विषयासक्त न हो। उ०--नीतिनिपुण मत्रणाकुशल ये वे रहस्यरक्षक इंद्रियजित्।--स्वप्न, पृ० ३६।

इंद्रियनिग्रह--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियनिग्रह] इंद्रियों को दबाना। इंद्रियों के वेग को रोकने का नियम।

इंद्रियबोधन--वि० [सं० इन्द्रियबोधन] इंद्रिय को जाग्रत या क्रियाशील करनेवाला [को०]।

इंद्रियलोलुप--वि० [सं० इन्द्रियलोलुप] इंद्रिय की तुष्टि के लिये व्याकुल [को०]।

इंद्रियवज्री--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रिय+वज्र] वाजीकरण क्रिया का एक भेद।

इंद्रियवध--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियवध] इंद्रियों का अपने अपने विषय मे आसक्त न होना [को०]।

इंद्रियवृत्ति--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रियवृत्ति] इंद्रियों का कार्य [को०]।

इंद्रियसनिकर्ष--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियसन्निकर्ष] ज्ञानेंद्रियों का अपने अपने विषयों या मन से सपर्क।

इंद्रियसुख--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियसुख] विषयानद। विषयसुख [को०]।

इंद्रियस्वाप--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियस्वाप] इंद्रियों को अपने विषयों का ज्ञान न होना। २ जडता। ३ प्रलय [को०]।

इंद्रियागोचर--वि० [सं० इन्द्रियागोचर] इंद्रियों द्वारा अग्राह्य या इंद्रियों का अविषय। अज्ञेय [को०]।

इंद्रियातीत--वि० [सं० इन्द्रियातीत] १ इंद्रियों से परे। इंद्रियागोचर। अज्ञेय [को०]।

इंद्रियायतन--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियायतन] इंद्रियों का आयतन या निवास। शरीर। देह। २ आत्मा [को०]।

इंद्रियाराम--वि० [सं० इन्द्रियाराम] इंद्रियलोलुप। विषयासक्त [को०]।

इंद्रियार्थ--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियार्थ] इंद्रियों का विषय। वे विषय जिनका ज्ञान इंद्रियों द्वारा होता है, जैसे--रूप।

इंद्रियार्थवाद--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियार्थ+वाद] वह मत जिसके अनुसार बुद्धि-व्यापार-वर्जित इंद्रियज सुख ही सब कुछ है और उसी की निष्पत्ति काव्य का प्रधान गुण है। उ०--कीट्स की कल्पना बहुत ही तत्पर थी वे अपने इंद्रियार्थवाद के लिये प्रसिद्ध हैं।--चिंतामणि, भा० २, पृ० १३८।

इंद्रियासग--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियासङ्ग] इंद्रियों और उनके विषयों के प्रति आसक्ति का अभाव। अनासक्ति। सन्यास। वैराग्य [को०]।

इंद्रियासक्त--वि० [सं० इन्द्रियासक्त] इंद्रियाराम। इंद्रियलोलुप [को०]।

इंद्री(पु)--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रिय] दे० 'इंद्रिय'। उ०--इंद्री मव न्यारी परी, मुख लूटति आँखि। सूरदास जे सग रहैं, तेऊ मरैं झाँखि।--सूर०, १०।२४०७।

इंद्रीजीत(पु)--वि० [सं० इन्द्रियजित्] दे० 'इंद्रियजित्'। उ०--प्रति अनन्य गति इंद्रीजीता। जाको हरि बिनु कतहुँ न चीता।--तुलसी ग्र०, पृ० १०।

इंद्रीजुलाव--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रिय+फा० जुलाब] वे ओषधियाँ जिनसे पेशाब अधिक आता है। इसके लिये पानी मिला हुआ दूध, शोरा, मिलखडी आदि वस्तुएँ दी जाती हैं।

इंद्र्या(पु)--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रिय] दे० 'इंद्रिय'।

इंद्रेज्य--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रेज्य] देवगुरु बृहस्पति [को०]।

इंध[1]--वि० [सं० इन्ध] प्रकाशक। दीपक।

इंध[2]--सज्ञा पुं० १. जलावन। ईंधन। २ परमात्मा [को०]।

इंधन--सज्ञा पुं० [सं० इन्धन] १ जलाने की लकडी। जलावन। उ०--पान क सए सोना क टका, चंदन क मूल इधन बिका।--कीर्ति०, पृ० ६८। २ वासना (को०)।

इंशा--सज्ञा स्त्री० [अ० इंशा] १. इबारत। बयान। २. पत्र लिखने की कला सिखानेवाली पुस्तक। चिट्ठियों की किताब [को०]।

इंसाफ--सज्ञा पुं० [अ० इन्साफ] [वि० मुंसिफ] १ न्याय। अदल।

यौ०--इंसाफपसद--न्याय चाहनेवाला।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

२ फैसला। निर्णय।

इंस्टिट्यूट--सज्ञा स्त्री० [अ० इन्स्टिट्यूट] सस्था। सभा। समाज।

इंस्ट्रूमेंट--सज्ञा पुं० [अ० इन्स्ट्रूमेन्ट] १ औजार। यत्र। २ साधन।

इंस्पेक्टर--सज्ञा पुं० [अ० इन्स्पेक्टर] १ देखभाल करनेवाला। निरीक्षक।

ईंगरेज(पु)--सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अँगरेज'। उ०--आयो अँगरेज मुलक रै ऊपर।--बाँकी० ग्र० भा०, ३, पृ० १०४।

ईंगरेजी--सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अँगरेजी'। उ०--फारसी की छार सी उडाय ईंगरेजी पढ मानो देवनागरी का नाम ही मिटावेंगे।--कविता कौ०, भा० २, पृ० १०३।

ईंगुरौटी--सज्ञा स्त्री० [हिं० इगुर+औटा (प्रत्य०)] वह डिबिया जिसमे सौभाग्यवती स्त्रियाँ ईंगुर या सिंदूर रखती हैं। सिंधोरा।

ईंगुवा--सज्ञा पुं० [सं० इङ्गुद] हिंगोट का पेड और फल। गोंदी।

ईंचना(पु)--क्रि० अ० [हिं० खिंचना] किसी ओर आकर्षित होना खिंचना। उ०--(क) भौंहनु त्रासति मुँह नटति आँखिनु सौं लपटातु। ऐंचि छुडावति कर इंची आगे आवति जाति।--बिहारी र०, दो० ६८३। (ख) आवनि आँख इची खिंची भौंह भयो भ्रम आवतु है मति यापै।--रघुनाथ (शब्द०)।

ईंटकोहरा--सज्ञा पुं० [हिं० ईंट+ओहरा (प्रत्य०)] ईंट का फूटा टुकडा। ईंट की गिट्टी।

इंटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं ईंट] एक प्रकार का पडुक। पेडुकी।

इँडहर—संज्ञा पुं० [सं० पिष्ट+हिं० हर (प्रत्य०)] उर्द की दाल से बना हुआ एक सालन। उ०—अमृत इँडहर है रस सागर। बेसन सालन अधिको नागर।—सूर०, १०। १२१३।

विशेष—यह इस रीति से बनता है उर्द और चने की दाल एक साथ भिगो देते हैं, फिर दोनो की पीठी पीसते हैं। पीठी में मसाला देकर उसके लवे लवे टुकडे बनाते हैं। इन टुकडो को पहले अदहन मे पकाते हैं, फिर निकालकर उनके और छोटे छोटे टुकडे करते हैं। अत मे इन टुकडो को घी मे तलते हैं और रसा लगाकर पकाते हैं।

इँडुआ(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'इँडुवा'।

इँडुरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] गुँडरी। विडई। विडवा। गेंडुरी।

इँडुआ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] कपडे की बनी हुई छोटी गोल गद्दी जिसे बोझ उठाते समय सिर के ऊपर रख लेते हैं। गेंडुरी।

इँणि(पु)—सर्व० [देश०] दे० 'इन'। उ०—साई दे दे सज्जना, रातड इँणि परि रुंन।—ढोला० दू० ३७७।

इँदारा†—संज्ञा पुं० [सं० अन्दु, या सं० ईंद=जल+धर=धारण करने वाला] कूआँ। कूप।

इँदारुन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवारुणी] इद्रायन। माहुर।

इँदुआ—संज्ञा पुं० [देश०] इँडुरी। गेंडुरी। वेंडुरी।

इँदोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवारुणी] दे० 'इँदाऊन'। उ०—वहुत जतन भेख रचो वनाय विन हरि भजन इँदोयन पाय।—गुलाल०, पृ० ५।

इँधरौड़ा—संज्ञा पुं० [सं० इन्धन+हिं० औंड़ा<सं० आलय] ईंधन रखने की कोठरी। इंधनगृह। गोठौला।

इँनारुन(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इँदारुन'। उ०—विनु हरि भजन इँनारुन के फल तजत नही करुआई।—तुलसी ग्र०, पृ० ५४६।

इ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. १०० की संख्या [को०]।

इ[2]—अव्य० क्रोध, तिरस्कार, सहानुभूति, सबोधन, आश्चर्य दु ख आदि का व्यंजक अव्यय [को०]।

इकक(पु)—क्रि० वि० [सं० एक, प्रा० इक्क+सं० अक] निश्चय। अवश्य। उ०—राम तिहारे सुजस जग, कीन्हो सेत इकक।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ५७।

इकग[1](पु)—वि० [सं० एकाङ्ग] एकतरफा। एक ओर का। उ०—दुखी इकगी प्रीति सौं, चातक, मीन, पतग। घन जल दीप न जानहीं, उनके हिय को अंग।—रसनिधि (शब्द०)।

इकग[2](पु)—संज्ञा पुं० शिव। महादेव। अर्धनारीश्वर।

इकग[3](पु)—क्रि० वि० मिश्रित। एक मे मिला। उ०—गरल अमृत इकग करि राखै। भिन्न भिन्न कै विररै चाखै।—नद ग्र०, पृ० ११८।

इकत(पु)—वि० [सं० एकान्त] दे० 'एकात'।

इक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'एक'। उ०—इक करहिं दाप न चाप सज्जन वचन जिमि टारें टरै।—तुलसी ग्र०, पृ० ५३।

इकआँक(पु)—क्रि० वि० [सं० एक, प्रा० इक्क+हिं० आँक] निश्चय। निश्चय करके। अवश्य। उ०—जे तव होत दिखादिखी, भई अमी एक आँक। दगै तिरीछी दीठि अब ह्वै वीछी को डाँक।—विहारी र०, दो० ६१५। (ख) यदपि लौंग ललितौ तऊ तू न पहिरि इक आँक। सदा साँक वढियै रहै रहै चढी सी नाँक।—विहारी र०, दो० ६८५।

इकइस(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इक्कीस'।

इकचोबिया†—संज्ञा पुं० [हिं० इक+चोब] एक चोव अर्थात् वल्लीवाला तंबू या डेरा। वह तबू जिसमे एक ही चोव लगती हो (बोल०)।

इकछत(पु)—वि० [सं० एकच्छत्र] दे० 'एकछत्र' उ०—जो नर इकछत भूप कहावै। सिंहासन ऊपर बैठे जतही बँवर ढुरावै।—चरण० बानी०, पृ० ६४।

इकजोर(पु)—क्रि० वि० [सं० एक+हिं० जोरना=जोड़ना] इकट्ठा। एक साथ। उ०—देखु सखि चारु चद्र इकजोर। निरखति वैठि नितविनि पिय सँग सार सुता की ओर।—सूर (शब्द०)।

इकट—संज्ञा पुं० [सं०] सरकडे का गोफा या कोपल [को०]।

इकटक—क्रि० वि० [हिं० एकटक] एक दृष्टि से। लगातार। विना दृष्टि हटाए। उ०—इकटक प्रतिविव निरखि पुलकत हरि हरषि हरषि, लै उछग जननी रसभग जिय विचारी।—तुलसी ग्र०, पृ० २८१।

इकटग(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'इकटक'। उ०—इकटग ध्यान रहै त्यौ लागै छाकि परे हरि रस पीवै।—दादू० वानी, पृ० ५६६।

इकट्ठा—वि० [सं० एकस्थ प्रा० इकट्ठा] एकत्र। जमा।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

इकठा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इकट्ठा'। उ०—तौ ये नाना कर्म विचित्र। इकठे रहन न पावैं मित्र।—नद० ग्र०, पृ० २३६।

इकठाई(पु)†—वि० [एक+ठाई=स्थान] एक स्थान पर या एकत्र। उ०—जव सव गाइ भई इकठाई।—सूर०, १०। ६१४।

इकठैन†—वि० [हिं० इकठा] इकट्ठा। एकत्र। उ०—सुनत ही सव हाँकि ल्याए गाइ करि इकठैन।—सूर०, १०। ४२७।

इकठौर—वि० [हिं० इक+ठौर=स्थान] एक स्थान पर। एकत्र। उ०—(क) जेंवत कान्ह नद इकठौरे।—सूर०, १०। २२४ (ख) जव पाँडे इत उत कहुँ गए। बालक सव इकठौरे भए।—सूर०, ७। २।

इकडाल(पु)—संज्ञा पुं०, वि० [हिं०] दे० 'एकडाल'।

इकतन(पु)†—क्रि० वि० [हिं० इक+तन=ओर, तरफ] एक तरफ। एक ओर। उ०—इकतन नर एकतन भई नारी। खेल मच्यौ ब्रज के विच भारी।—सूर०, १०।२६०१।

इकतर(पु)—वि० [हिं०] दे० 'एकत्र'। उ०—(क) मन औ पवन होत जव इकतर नाही वीच वराव।—जग० बानी, पृ० ७५। (ख) दई बडाई ताहि पच यह सिगरे जानी। दे कोल्हू मे पेरि, करी हैं इकतर घानी।—गिरिधर (शब्द०)। (ग) प्रथमहि पत्र चमेली आनै। ताको कूटि लेइ रस छानै। कूट सोहागा मनसिल लीजै। मीठे तेल मे इकतर कीजै।—(शब्द०)।

इकतरा(पु)†--संज्ञा पुं० [स० एकान्तर] वह ज्वर जो जाड़ा देकर एक दिन छोड़ दूसरे दिन आता है। अँतरिया। उ०--वड दुख होइ इकतरो आवै। तीन उपास न वल तन खावै।--जाल (शब्द०)।

इकता(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'एकता'। उ०--इकता कारज हेतु की हेतु कहत सु कविंद। परम पदारथ चारहू श्री राधा गोविंद।--पद्माकर ग्र०, पृ० ६९।

इकताई(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० एकता या फा० यकता+हिं० ई (प्रत्य०)] १ एक होने का भाव। एकत्व। सिखे आपनै दृगनसे इकताई की बात। जूरी डीठ इक सँग रहै, जद्दपि जुदे दिखात।--स० सप्तक, पृ० २१९। २ अकेले रहने की इच्छा, स्वभाव या बान। एकांतसेविता।--अली गई अव गरवई इकताई मुकुताई। भली भई ही अमलई जौं पी दई दिखाइ।--स० सप्तक, पृ० २८४।

इकताना(पु)--वि० [सं० एकतान या हिं० एक+तान=खिंचाव] एक रस। एक सा। स्थिर। अनन्य। उ०--ऐसे ही देखत रहौं, जन्म सफल करि मानो। प्यारे की भावती, भावती के प्यारे जुगल किसोर जानो। पलौ न टरौं छिन इत उत न होउँ रहौं इकतानो।--हरिदास (शब्द०)।

इकतार[1](पु)†--वि० [हिं० एक+तार] वरावर। एकरम। समान। उ०--हरि के केसन सो सटी लखत खौर इकतार। मानहुँ रवि की किरन कछु छीन लई अँधियार।--व्यास (शब्द०)।

इकतार[2]--क्रि० वि० लगातार। उ०--आकिंचन इंद्रियदमन रमन राम इकतार। तुलसी ऐसे सत जन विरले या ससार।--तुलसी ग्र०, पृ०, १२।

इकतारा--संज्ञा पुं० [हिं० एक+तार] १ एक वाजा। एक प्रकार का तानपूरा या तंवूरा।

विशेष--इसकी वनावट इस प्रकार होती है चमड़े से मढा हुआ एक तूंवा वाँस के एक छोर पर लगा रहता है। तुंवे के नीचे जो थोड़ा सा वाँस निकला रहता है उसमे एक तार तुंवे के चमड़े पर की घोड़ियाँ या ठिकरी पर से होता हुआ वाँस के दूसरे छोर पर एक खूँटी मे वँधा रहता है। इस खूँटी को ऐंठकर तार को ढीला करते और कसते हैं। वजानेवाला इस तार को तर्जनी से हिला हिलाकर वजाता है। प्राय साधु इसे वजा वजाकर भीख माँगते हैं।

२ एक प्रकार का हाथ से वुना जानेवाला कपड़ा।

विशेष--इसके प्रत्येक वर्ग इच मे २४ ताने के और आठ वाने के तागे होते हैं। वुन जाने पर कपड़ा धोया जाता है और उसपर कुदी की जाती है। इसका थान ६ गज लवा और ११ इच चौड़ा होता है।

इकताला[1](पु)--[हिं० एकताला] प्रथम ताल अर्थात् प्रथम दिवस। उ०--इकताला रै चैत सुद। आद उदे नवरात।--रा० रू०, पृ० २७९।

इकताला[2]--संज्ञा पुं० दे० 'एकताला'।

इकतीयार(पु)--संज्ञा पुं० [अ० इख्तियार] अधिकार। अख्तियार। उ०--वदे वदगी इकतीयार। साहिव रोष धरौ कि पियार।--कबीर ग्र०, पृ० ३०७।

इकतीस[1]--वि० [सं० एकत्रिंशत्, पा० एकतीस] तीस और एक।

इकतीस[2]--संज्ञा पुं० तीस और एक की संख्या। इकतीस का अक।

इकतृत(पु)†--संज्ञा स्त्री० [सं० एकत्रिति] इकट्ठे रहने की स्थिति। जमाव। उ०--भाँति भाँति के मनुजन की नित रहति इकतृत।--प्रेमघन, भा० १, पृ० ११।

इकत्र(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'एकत्र'। उ०--मनहुँ सिंगार इकत्र ह्वै वँध्यो वार के वेस।--भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३८८।

इकदाम--संज्ञा पुं० [अ० इक्दाम] १. किसी अपराध के करने की तैयारी या चेष्टा। २ सकल्प। इरादा। ३ कदम वढाना (को०)। ४ आगे वढना (को०)।

यौ०--इकदाम ए जुर्म=अपराध करने की चेष्टा या कोशिश।

इकन्नी--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'एकन्नी'।

इकपेचा--संज्ञा पुं० [हिं० एक+फा० पेचह्] एक प्रकार की पगड़ी जिसकी चाल दिल्ली आगरे मे वहुत है।

इकवारगी--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'एकवारगी'। उ०--वहुत भए इकवारगी, तिनको गुफ जु होय। ताहि समुच्चय कहत हैं, कवि कोविद सव कोय।--मतिराम ग्र०, पृ० ४१८।

इकवाल--संज्ञा पुं० [अ० इक़्वाल] दे० 'एकवाल'। उ०--राजाओं की रक्षा उनका इकवाल है।--काया०, पृ० १८६।

इकवाल दावा--संज्ञा पुं० [अ० इकवालदावा] मुद्दई के दावे का स्वीकरण। मुद्दई के दावे को अगीकार करना।

इकवालमद--वि० [अ० इकवाल+फा०+मन्द] प्रतापशाली। भाग्यवान् (को०)।

इकवाली गवाह--संज्ञा पुं० [अ० इक़्वाल+फा० ई (प्रत्य०)+गवाह] किए हुए अपराध को स्वीकार करनेवाला। जुर्म मजूर करनेवाला।

इकवाली वयान--संज्ञा पुं० [हिं० इकवाली+फा० वयान] वह साक्षी या गवाही जिसमे अपराध स्वीकार किया जाय।

इकवीस†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एकइस'। उ०--इकवीसे वार नछत्री अवनी कोन्ही पोइस धार कहर।--रघु० रू०, पृ० २५९।

इकरग(पु)--वि० [हिं०] दे० 'एकरग'। उ०--छिरकि छिरकि घनस्याम सव इकरग कियो है।--नद ग्र०, पृ० ३८६।

इकरदन(पु)--संज्ञा पुं० [सं० एक, प्रा० इक्क+सं० रदन] दे० 'एकरदन'।

इकरस(पु)--वि० [सं० एक+रस] एकरग। समान। वरावर। उ०--जो कटु अव का प्रीति न हममे। रहत न कोउ इकरस हर दम मे।--विश्राम (शब्द०)।

इकराजी(पु)--वि० [सं० एक+राजा+हिं० ई (प्रत्य०)] एक शासक वाला। एक राजा से युक्त। उ०--दादू नगरी चैन तव जव इकराजी होइ।--दादू० वानी, पृ० १२४।

इकराम--संज्ञा पुं० [अ० इकराम] १ दान। पारितोषिक। २ इज्जत। माहात्म्य। आदर। प्रतिष्ठा। ३ अनुग्रह। कृपा (को०)।

यौ०--इनाम इकराम। इज्जत इकराम।

इकरार--संज्ञा पुं० [अ० इक़रार] १. प्रतिज्ञा। वादा। २ कोई काम करने की स्वीकृति।

इकरारनामा--संज्ञा पुं० [अ० इकरार+फ़ा० नामह्] स्वीकृतिपत्र। प्रतिज्ञापत्र।

इकलस(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इकरस'। उ०—'खड खड निज ना भया, इकलस एकै नूर।—दादू० वानी, पृ० १०३।

इकला(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अकेला'।

इकलाई¹—सज्ञा स्त्री० [हिं० एक+लाई या लोई=पर्त] एक पाट का महीना दुपट्टा या चद्दर। उ०— क) ग्रानपाम ग्रानन के फवन फवी है कैसी कुचित कुसुभी कोरदार इकलाई की।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३१४। (ख) दुपट्टा दुनाई चादरैं इकलाई कटिवद वर। कचुकी कुलहिया ओढनी ग्रगवस्त्र धोती ग्रवर।—सूदन (शब्द०)।

इकलाई²—सज्ञा पु० [हिं० इकला+ई (प्रत्य०)] अकेलापन।

इकलीम—सज्ञा पुं० [अ० इकलीम] १ पृथिवी। भूखड। २ राज्य। ३ ससार की ग्रावाद भूमि का सातवाँ हिस्सा [को०]।

इकले(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकेले'। उ०—इकले प्रान पियारे पाए। देखि हरष भरे नयन सिराए।—नद ग्र० पृ० १७२।

यौ०—इकले दुकले=अकेले दुकेले।

इकलो†—वि० [हिं०] दे० 'इकला' या 'अकेला'। उ०—तब याको पिता मरचो। तब यह घर में इकलो रहे।—दो सौ वावन, पृ० १९।

इकलोईकड़ाही—सज्ञा स्त्री० [हिं० एक+लोई] वह कडाही जो एक ही लोई या तवे की वनी हो, अर्थात् जिसके पेंदे म जोडन हो।

इकलौता—सज्ञा पु० [हिं० इकला+स० पुत्र, प्रा० ऊत] [स्त्री० इकलौती] १. वह लडका जो अपने माँ वाप का अकेला हो। वह लडका जिसके और भाई वहिन न हो। २. एकमात्र। अकेला। उ०—तो इन्हें इकलौता वुद्धिमान मान लेना पडता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८०।

इकल्ला(पु)†—वि०[स० एकल=एकाकी, प्रा० एगल्ल, एकल्ल, इक्कल] १ अकेला। एकाकी। उ०—रणधीर इकल्ला है और अपने पास इतनी सेना है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १०७।

इकवाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० एक+वाह] १ एक प्रकार की निहाई जो सदान या अरन के आकार की होती है। भेद इतना ही होता है कि सदान मे दोनों ओर हाथे या कोर निकले रहते हैं और इसमें एक ही ओर। भारतवालो की इकवाई की एक कोर लवी नोक होती है और दूसरी कोर सपाट चोडी होती है जिसके किनारे तीखे होते हैं। २ जो सख्या मे तीन हो। तीन (दलाल)।

इकस(पु)†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अकस'।

इकसठ¹—वि० [स० एकषष्ठि, पा० एकसट्ठि] साठ और एक।

इकसठ²—सज्ञा पुं० वह अक जिससे साठ और एक कावोध हो। ६१।

इकसर(पु)—वि० [हिं० एक+सर (प्रत्य०)] अकेला। एकाकी।

इकसार†(पु)—वि०[स० एक, हिं० इक+स०सदृश, प्रा० सरिस, सारिस] एक सा। समान। वरावर। उ०—उनयो मेघ घटा चहुँ दिश तें वर्षन लगो अखडित धार। वूडी मेरु नदी सव सूकी भर लागो निसदिन इकसार।—सु दर ग्र०, भा० २, पृ० ५३१।

इकसीर—सज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'अकसीर'।

इकसूत(पु)—वि० [स० एकश्रुत (=लगातार) या एकसूत्रित] १ एक साथ। इकट्ठा। एकत्र। उ०—देखि के निकसे दोऊ ओर जे सखियाँ हुती। ते सवै तुरतै दौरी वाहरी ह्वै इकसुती।—गुमान (शब्द०)।

इकहरा—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० इकहरी] दे० 'एकहरा'।

इकहाइ(पु), इकहाई(पु)—क्रि० वि० [हिं० एक+हाइ (प्रत्य०)] १ एक साथ। फौरन। उ०—(क) यह सुनि रानिन के वदन भे प्रसन्न हरखाइ। ज्यों सूरज के उदय ते खिलत कमल इकहाइ।—(शब्द०)। (क) सीत भीत हरषादि तें उठै रोम इकहाइ। ताहि कहत रोमाच है सुकविन के समुदाइ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १६८। २ एकदम। अचानक।

इकहाऊ(पु)—क्रि० वि० [हिं० एक+हाऊ (प्रत्य०)] दे० 'इकहाइ'। उ०—त्यो पदमाकर भोरी भमाइ सु दौरी सवै हरि पै इकहाऊ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १५५।

इकात(पु)—वि० [स० एकान्त] दे० 'एकात'।

इकाई—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'एकाई'।

इकार—सज्ञा पुं० [स०] स्वर वर्ण 'इ'।

इकारात—सज्ञा पुं० [सं० इकारान्त] वह शब्द जिसके अंत मे इकार हो। वह शब्द जिसका अत 'इ' से हो।

इकीस(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इक्कीस'। उ०—तुलसी तेहि अवसर लावनिता दस, चारि नौं, तीनि, इकीस सवै।—तुलसी ग्र०, पृ० १५६।

इकेला(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अकेला।'। उ०—देहरी वैठी मेहरी रोवै द्वारे लौ सग माइ। मरहट लगि सव लोग कुटुँव मिलि हस इकेला जाइ।—कवीर ग्र०, पृ० २८५।

इकेले(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकेले'। उ०—भोजन करि कै इकेले ही गादि तकियान के ऊपर विराजे हते।—दो सौ वावन०, भा० २, पृ० १५।

इकैठ(पु)—वि० [स० एकस्थ, प्रा० इकट्ठा] इकट्ठा। एकत्र।

इकोतर(पु)—वि० [हिं०] दे० एकोत्तर'। उ०—और इकोतर नामहि पावै। तुम कहँ जीत हस घर आवै।—कवीर सा०, पृ० १६।

इकोतरसै(पु)—वि० [हिं०] दे० 'एकोतर सो'। उ०—इकोतर सै पुरिपा नरकहि जाई। सति सति भापत श्री गोरखराई।—गोरख० पृ० ५६।

इकौज—सज्ञा पुं० [स० एक+वध्या, प्रा० वज्झा, हिं० वांझ, या स० एक+जा, या सं० काकवध्या > काकवज्झा > कर्कोज्झा > इकौंजा] वह स्त्री जिसको एक ही पुत्र या एक ही कन्या उत्पन्न हुई हो। वह स्त्री जो एक वार जनकर वाँझ हो जाय। काकवंध्या।

इकौना†—सज्ञा पु० [हिं० एक+वना] विना छाँटा हुआ अन्न। विना चुना हुआ अनाज।

इकौसी(पु)—वि० स्त्री० [स० एक+वासी] [वि० पुं० इकौसा] एकात मे रहनेवाली। अकेली। उ०—अलवेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौसी ह्वै लाज थकै।—घनानद, पृ० ३३।

इकौसे(पु)—क्रि० वि० [हिं०] पृथक्। जुदा। अलग।

इकोसो(पु)†—वि० [स० एक+आवास या अवकाश (=स्थान), अप० ओसाम] एकात। निराला। उ०—मेरो है इकोसो वाम जाते हरि दास, लेवो मुखरासि, करो चीठी दीजे जाय कै।—प्रिया (शब्द०)।

इक्क(पु)—वि० [अप०] दे० 'एक'। उ०—इक्क मथ्यो विना धाइ हत्यों करें।—सुजान०, पृ० २०।

इक्कट—सज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का सरकडा जिसकी चटाइयाँ बनती हैं [को०]।

इक्कवाल—सज्ञा पुं० [अ० इकबाल] १ ताजक ज्योतिष के मत से एक ग्रहयोग।

विशेष—जब किसी के जन्म के समय ग्रह कटक (१,४,७ १०) या पनकर (२,५,८,११) मे हो, अर्थात् ३, ६, ९ और १२ मे कोई ग्रह न हो तब यह राज्य और सुख को बढानेवाला योग होता है।

२ अभ्युदय। बढती।

इक्का[1]-वि० [स० एक] १ एकाकी। अकेला। २.अनुपम। वेजोड।

इक्का[2]-सज्ञा पु० १ एक प्रकार की कान की वाली जिसमे एक मोती होता है। २ वह योद्धा जो लडाई मे अकेला लडे। उ०—कूदि परे लंका बीच इक्का रघुवर के।—मानकवि (शब्द०)। ३ वह पशु जो अपना झुड छोडकर अलग हो जाय। ४ एक प्रकार की दो पहिए की घोडा गाडी जिसमे एक ही घोडा जोता जाता है। ५ तास का वह पत्ता जिसमे किसी रग की एक ही बूटी हो। यह पत्ता और सब पत्तो को मार देना है। जैसे,—पान का इक्का। ईंट का इक्का।

इक्कादुक्का-वि० [हिं० इक्का+दुक्का] अकेला दुकेला। जैसे,—'कोई इक्का दुक्का आदमी मिले तो बैठा लेना'।

इक्कावन†—वि० [हिं०] दे० 'इक्यावन'।

इक्कावान†—सज्ञा पु० [हिं०[दे० 'एक्कावान'।

इक्कासी†—वि० [हिं०] दे० इक्यासी'।

इक्की†—संज्ञा स्त्री० [स० एक+ई (प्रत्य०)]ताश का वह पत्ता जिसमे एक बूटी हो। एक्का।

इक्कीस[1]—वि० [सं० एकविंश, प्रा० एक्कवीस, अप० इक्कवीस] बीस और एक।

इक्कीस[2]—सज्ञा पुं० बीस और एक की सख्या या अक जो इस तरह लिखी जाती है—२१।

इक्यावन[1]—वि० [स० एकपंचाशत्, प्रा० एक्कावन्न]पचास और एक।

इक्यावन[2]—सज्ञा पुं० पचास और एक की सख्या जो इस तरह से लिखी जाती है—५१।

इक्यासी[1]—वि० [स० एकाशीति, प्रा० एक्कासि] अस्सी और एक।

इक्यासी[2]—सज्ञा पुं० अस्सी और एक की सख्या या अक जो इस तरह लिखी जाती है—८१।

इक्षना(पु)—क्रि० स० [हिं० इच्छना] दे० 'इच्छना'। उ०—लप्पन उद्दल, सुभट वर, ते इक्षत घमसान।—प० रा०, पृ० १३४।

इक्ष—संज्ञा पु० [स०] १ ईख। गन्ना। दे० 'ईख'। २ कोकिला नाम का एक वृक्ष (को०)। ३ मनोरथ। इच्छा (को०)।

यौ०—इक्षुकाड। इक्षुगंवा। इक्षुतुल्या। इक्षुदंड। इक्षुपत्रा। इक्षुप्रमेह। इक्षुमती। इक्षुमेह। इक्षुरस। इक्षुविहारी। इक्षुविकार।

इक्षुकंद—सज्ञा पु० [सं० इक्षुकन्द] कूष्माड। कुम्हडा [को०]।

इक्षुक—सज्ञा पुं० [स०] ईख [को०]।

इक्षुकाड—सज्ञा पु० [स० इक्षुकाण्ड] १ ईख का डठल। २. कांस। ३ मूँज। ४ रामसर।

इक्षुकात—सज्ञा [सं० इक्षुकात] छमंजिली इमारत का एक भेद या श्रेणी [को०]।

इक्षुकीय—वि० [स०] [स्त्रि० स्त्री० इक्षुकीया] जहाँ ईख अधिक पैदा होती हो [को०]।

इक्षुकुट्टक—सज्ञा पुं० [स०] वह व्यक्ति जो इकट्ठा करता हो। गन्ना एकत्र करनेवाला व्यक्ति [को०]।

इक्षुगव—सज्ञा पुं० [स० इक्षुगव] १. छोटा गोखरू। २ कांस।

इक्षुगवा—सज्ञा स्त्री० [स० इक्षुबन्धा] १ गोखरू। २ कोकिलाक्ष। तालमखाना। ३. कांस। ४ सफेद विदारी कद।

इक्षुगविका—सज्ञा स्त्री० [सं० इक्षुगन्धिका] भूमिकूष्माड [को०]।

इक्षुज[1]—सज्ञा पु० [स०] वह पदार्थ जो ईख के रस से बने।

विशेष—प्राचीनो के अनुसार इसके छह भेद हैं—फाणित (जूसी या शीरा), मत्स्यण्डी (राब), गुड, खडक (खाँड), सिता (चीनी) और सितोपल (मिश्री)।

इक्षुज[2]—वि० ईख के रस से बना हुआ [को०]।

इक्षुतुल्या—सज्ञा स्त्री० [स०] ज्वार या बाजरे के प्रकार का एक पौधा जिसका रस मीठा होता है। कांस।

इक्षुदड-सज्ञा पु० [स० इक्षुदड] ईख का डंठल। ईख।

इक्षुदर्भ—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० इक्षुदर्भा] एक प्रकार का तृण।

इक्षुनेत्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ ईख का एक भेद। ईख की गाँठों पर होनेवाला आँख का आकार [को०]।

इक्षुपत्र-सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० इक्षुपत्रा] १ ज्वार। मक्का। २ बाजरा।

इक्षुपाक—सज्ञा पु० [स०] गुड या राब [को०]।

इक्षुप्र—सज्ञा पुं० [स०] रामशर। शर।

इक्षुप्रमेह—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का प्रमेह। इक्षुमेह। मधुमेह।

विशेष—इस रोग मे मूत्र के साथ मधु या शक्कर जाती है। इसके रोगी के मूत्र पर चीटियाँ और मक्खियाँ बहुत बैठती हैं। मूत्र के अशो को रासायनिक क्रिया द्वारा अलग करने पर उसमे चीनी का अंश मिलता है।

इक्षुबालिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] कास या मूँज [को०]।

इक्षुभक्षिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] ईख पेरने की मशीन, कल या यत्र [को०]।

इक्षुमती—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका कुरुक्षेत्र मे होना लिखा है।

इक्षुमालिनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जो इद्र पर्वत से निकलती है।

इक्षुमूल—सज्ञा पुं० [स०] १ एक प्रकार की ईख। वांसी। २. ईख की जड या मूल [को०]।

इक्षुमेह—सज्ञा पु० [स०] इक्षुप्रमेह। मधुप्रमेह। मधुमेह।

इक्षुमेही—वि० [स० इक्षुमेहिन्] मधुमेह का रोगी [को०]।

इक्षुयत्र—सज्ञा पु० [स० इक्षुयत्र] ईख पेरने की मशीन। कोल्हू [को०]।

इक्षुयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईख [को०]।

इक्षुर—संज्ञा पुं० [सं०] १ गोखरू। २. तालमखाना। ३. गन्ना [को०]।

इक्षुरस—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईख का रस। २. कास। ३ राव [को०]।

इक्षुरसवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरविदारी। दूधविदारी। महाश्वेता।

इक्षुरसोद—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रो मे से एक जो ईख के रस का है।

इक्षुवण—संज्ञा पुं० [सं०] ईख का डठल [को०]।

इक्षुवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पीले रग की ईख। २. क्षीरकद। क्षीरविदारी [को०]।

इक्षुवाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ईख की एक जाति। पुड्रक। पौंढा। २ ईख का खेत या फारम [को०]।

इक्षुविकार—संज्ञा पुं० [सं०] गुड, राव आदि ईख के रस के छह रूप। २. कोई भी मीठा पदार्थ [को०]।

इक्षुविदारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विदारीकद।

इक्षुवेष्टन—संज्ञा पुं० [सं०] गन्ने की एक किस्म [को०]।

इक्षुशर—संज्ञा पुं०[सं०] एक प्रकार का कास और उसका जगल [को०]।

इक्षुशाकट—संज्ञा पुं० [सं०] गन्ना बोने लायक खेत [को०]।

इक्षुसमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणोक्त सात महासमुद्रो मे एक नाम [को०]।

इक्षुसार—संज्ञा पुं० [सं०] इक्षुविकार। गुड आदि [को०]।

इक्ष्वाकु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्यवश का एक प्रधान राजा। यह पुराणों मे वैवस्वत मनु का पुत्र कहा गया है। रामचद्र इसी के वश के थे। २ इक्ष्वाकु के वश का व्यक्ति (को०)।

यौ०—इक्ष्वाकुनदन, इक्ष्वाकुवंशी = इक्ष्वाकु के पुत्र।

इक्ष्वाकु[2]—संज्ञा स्त्री० कड़वी लौकी। तितलौकी।

इक्ष्वारि—संज्ञा पुं० [सं०] ईख का दुश्मन—कास [को०]।

इक्ष्वालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नरकट। नरकुल। २ सरपत। मूँज। ३ कास।

इखद(पु)—वि० [सं० ईषत्] दे० 'ईषत्'।

इखफाय—संज्ञा पुं० [अ० इख़्फ़ाय] प्रकट न करना। गोपन। छिपाव [को०]।

यौ०—इखफाये जुर्म, इखफाये वारदात = कानून मे किसी पुरुष का किसी ऐसी घटना को छिपाना जिसका प्रकट करना नियमानुसार उसका कर्तव्य हो।

इखरना†—क्रि० अ० [हिं० बिखरना का अनु०] बिखरना। इधर उधर गिरना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'बिखरना' शब्द के साथ होता है।

यौ०—इखरना बिखरना = इधर उधर हो जाना। किसी भी वस्तु का इतस्तत हो जाना (बोल०)।

इखराज—संज्ञा पुं० [अ०] १. निकास। खर्च। २ बहिष्कार [को०]।

इखलाक—संज्ञा पुं० [अ० अख़लाक़] व्यवहार। आचरण। उ०—उनका जितना सदाचार और इखलाक है, सब मर्दो का बनाया हुआ।—ज्ञानदान, पृ० ११७।

इखलाकी—वि० [हिं० इखलाक] आचरण या व्यवहार सबधी। व्यावहारिक। उ०—'मसायब का इखलाकी पहलू भी होता है।'—गोदान, पृ० ३९।

इखलास—संज्ञा पुं० [अ० इख़्लास] १ मेलमिलाप। मित्रता। उ०—तू जा सुजानहि पास। हमसों करें इखलास।—सूदन (शब्द०)। २ प्रेम। भक्ति। प्रीति। उ०—कुल आलम इके दीदम अखाहे इखलास। बद अमल बदकार दुई पाक यार पास।—दादू (शब्द०)। ३. सबध। साविका।

क्रि० प्र०—जोड़ना।—बढ़ाना।

इखु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० इषु] 'इषु'। उ०—अमर अधिप बारन बरन दूसर अंत अगार। तुलसी इखु सह रागधर तारन तरन अधार।—स० सप्तक, पृ० १९।

इख्तियार—संज्ञा पुं० [अ० इख्तियार] १ अधिकार। २ आधिकारक्षेत्र। ३. सामर्थ्य। काबू। जैसे,—यह बात हमारे इख्तियार के बाहर की है। ४ प्रभुत्व। स्वत्व। जैसे,—इस चीज पर तुम्हारा कुछ इख्तियार नही है। ५ स्वीकार। ग्रहण। मजूर। उ०—सख्त काफिर था जिसने पहले मीर, मजहबे इश्क इख्तियार किया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १३१।

क्रि० प्र०—करना = स्वीकार करना। अपनाना। ग्रहण करना। उ०—और पेशा भी दूसरे का इख्तियार नही कर सकता है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २४९।

यौ०—इख्तियारे समाअत = विचार करने का अधिकार।

इख्तिलाफ—संज्ञा पुं० [अ० इख्तिलाफ] १. विरोध। विभेद। विभिन्नता। अंतर। फर्क। २. अनबन। बिगाड।

यौ०—इख्तिलाफे राय = विचारवैमत्य। मतभेद।

इगारह(पु)—वि० [हिं०] दे० 'ग्यारह'। उ०—सत जो धरै सो खेलन हारा। ठारि इगारह जाइ न मारा।—जायसी ग्र०,पृ० १३७।

इगारहों—वि० [हिं० इगारह] एकादश की सख्यावाला। दस और एक की सख्यावाला। उ०—सभा समासद निरखि पद पकरि उठायो हाथ। तुलसी कियो इगारहो बसनवेष जदुनाथ।—तुलसी ग्र०, पृ० ११७।

इग्यारस(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० एकादश] दे० 'एकादशी'। उ०—पाहण वरत इग्यारस पारस सामँत कुसुम कज सामीर।—रघु० रू०, पृ० २५५।

इग्यारह(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'ग्यारह'।

इग्यारी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अग्यारी'।

इचकना†—क्रि० अ० [देश०] क्रोध से दाँत या खीस निकालना।

इचन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० इचना] खिंचाव। तनाव। ऐचन। उ०—नीकी नासापुट ही की इचनि अचमे भरी, मुरिके इचनि मो न क्यो हूँ मन तें मुरै।—घनानद, पृ० ३२।

इचना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ऐचना'। उ०—डीठि मिचि जात

मिचि इचत ना ऐंचि खेंची खिचत न तसवीर तसवीरगर पै।—पजनेस०, पृ० ७।

इचरज(पु)-सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आश्चर्य'। उ०—शिवसूँ उमग पूछै मगत, इचरज अत आवत यहै।—रघु० रू०, पृ० ४५।

इचिकिल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कीचड़। २ तालाव या बावडी। ३. दलदल [को०]

इच्छक[1]—वि० [सं०] कामना या इच्छा करनेवाला।

इच्छक[2]—सञ्ज्ञा पुं० १ नारंगी का वृक्ष। २ गणित मे जोडी हुई राशि या सख्या। जोड [को०]।

इच्छना(पु)—क्रि०स० [स० इच्छन्] इच्छा करना। चाहना। उ०—इच्छ इच्छ विनती जस जानी। पुनि कर जोरि ठाढ भइ रानी।—जायसी (शब्द)।

इच्छा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक मनोवृत्ति जो किसी ऐसी वस्तु की प्राप्ति की ओर ध्यान ले जाती है जिससे किसी प्रकार के सुख की सभावना होती है। कामना। लालसा। अभिलाषा। चाह। ख्वाहिश।

विशेष—वेदात और साख्य मे इच्छा को मन का धर्म माना है। पर न्याय और वैशेषिक मे इसे आत्मा (गुण) धर्म या व्यापार माना गया है।

पर्या०—आकाक्षा। वांछा। दोहद। स्पृहा। ईहा। लिप्सा। तृष्णा। रुचि। मनोरथ। कामना। अभिलाषा। इषा। छद।

यौ०—इच्छाघात। इच्छाचार। इच्छाचारी। इच्छानुकूल। इच्छानुसार। इच्छापूर्वक। इच्छाबोधक। इच्छाभेदी। इच्छाभोजन। इच्छावान्। इच्छावाधक। इच्छावसु। स्वेच्छा। ईश्वरेच्छा।

२. माल की माँग।

विशेष—आधुनिक अर्थशास्त्र मे माँग या 'डिमाड' शब्द का व्यवहार जिस अर्थ मे होता है, उसी अर्थ मे कौटिल्य ने 'इच्छा' का प्रयोग किया है। उसने 'आयुधागाराध्यक्ष' अधिकरण में लिखा है कि आयुधेश्वर अस्त्रो की इच्छा और बनाने के व्यय को सदा समझता रहे।

३. गणित मे त्रैराशिक की दूसरी शक्ति। ४. तितिक्षा या इच्छा शक्ति के प्रकट होने की पूर्वावस्था। उ०—वह एक वृत्ति चक्र है जिसके अतर्गत प्रत्यय, अनुभूति, इच्छा, गति या प्रवृत्ति, शरीरधर्म सवका योग रहता है।—चितामणि, भा०, २, पृ० ८८।

इच्छाकृत—वि० [स०] अपनी इच्छा के अनुसार किया हुआ [को०]।

इच्छाचारी—वि० [स० इच्छा+चारिन्] [वि० स्त्री० इच्छाचारिणी] अपनी इच्छा के अनुकूल गति या गमन करनेवाला। उ०—चले गगन महि इच्छाचारी।—मानस, ५।३५।

इच्छादान—सञ्ज्ञा पुं० [स०] किसी याचक की आकाक्षा परिपूर्ण करना [को०]।

इच्छानिवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] भोग-तृष्णा से विरक्ति। विराग [को०]।

इच्छानुसारिणीक्रियाशक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार योग द्वारा प्राप्त एक शक्ति जिससे योगियो के इच्छानुसार कारण के विना कार्य की सिद्धि हो जाती है। जैसे,—मिट्टी के विना घट या बीज के विना वृक्ष इत्यादि का योगियो की इच्छा से उत्पन्न होना।

इच्छान्वित—वि० [सं०] लिप्सायुक्त [को०]।

इच्छाफल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसी प्रश्न या समस्या का इच्छानुकूल समाधान [को०]।

इच्छाभेदी—वि० [स०] इच्छानुसार विरेचन करानेवाला (औषध)। प्रक्रिया भेद से जिसके खाने से उतने ही दस्त आएँ जितने की इच्छा हो।

यौ०—इच्छाभेदी वटिका, इच्छाभेदी रस = दे० 'इच्छाभेदी'।

इच्छाभोजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जिन जिन वस्तुओ की इच्छा हो, उनको खाना। रुचि के अनुसार भोजन। जैसे, आज हमें इच्छाभोजन कराओ। १ भोजन की वह सामग्री जिसे खाने की इच्छा हो। रुचि के अनुसार खाद्य पदार्थ जैसे, इतने दिनो पर आज हमे इच्छाभोजन मिला है।

इच्छामय—वि० [स०] रुचि के अनुकूल। जैसा चाहे वैसा। उ०—इच्छामय नरवेष सँवारे।—मानस, १।१५२।

इच्छामरन—वि० [सं० इच्छा+मरण] अपनी इच्छा के अनुकूल जब चाहे तब मृत्यु प्राप्त करनेवाला। उ०—कामरूप इच्छा मरन ज्ञान विराग निधान।—मानस, ७।११३।

इच्छारूप—वि० [सं०] अपनी इच्छा के अनुकूल जैसा चाहे रूप धारण करनेवाला। कामरूप। उ०—चेहरे बदलने के कारण ही समवत इन्हें इच्छारूप और कामचारी कहा गया है।—प्रा० भा० प०, पृ० ६।

इच्छावसु[1]—सञ्ज्ञा पुं० [स०] कुबेर।

इच्छावसु[2]—वि० अपनी आकाक्षा के अनुकूल जब चाहे जितना धन प्राप्त करनेवाला [को०]।

इच्छित—वि० [सं०] चाहा हुआ। वाछित। अभिप्रेत। अभीष्ट। उ० इच्छित फल की चाह दिलाती बल तुम्हे।—करुणा, पृ० १४।

इच्छु[1](पु)—सञ्ज्ञा पुं० [स० इक्षु] ईख। उ०—इच्छु रसहू ते है सरस चरनामृत औ लवण समुद्र है लोनाई निरवधि कै।—चरण (शब्द०)।

इच्छु[2]—वि० [स०] चाहनेवाला।

विशेष—इसका प्रयोग यौगिक शब्द बनाने मे ही होता है, जैसे-शुभेच्छु, हितेच्छु।

इच्छुक—वि० [स०] चाहनेवाला। अभिलाषी। आकाक्षायुक्त।

इछना(पु)—क्रि०स० [हिं०] दे० 'इच्छना'। उ०—छैल इछहि छोडह मोर भीर।—विद्यापति, पृ० २०२।

इछा(पु)—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'इच्छा'। उ०—शीतल जल के इछा भूमि (क) कर्क्कशता।—वर्ण०, पृ० १६।

इछु—वि० [स० इच्छु] दे० 'इच्छुक'। उ०—धर्म तप्पनह पार। न कोऊ दास रहै इछु।—पृ० रा०, २५।१७३।

इजति(पु)—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० इज्जत] दे० 'इज्जत'। उ०—पति पातसाह की इजति उमरावन की राखी रैया राव भावसिंह की रहति है।—मतिराम ग्र०, पृ० ३८९।

इजतिराव--संज्ञा स्त्री० [अ० इज्तिराव] व्यग्रता। व्याकुलता। बेचैनी। उ०-मरना बेहतर इस इजतिराव के बदले।-भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०३।

इजमत(पु)--संज्ञा स्त्री० [अ० अजमत] दे० 'अजमत'। उ०-पसू ज्ञान इजमत कूँ देखो अनमुस एकै ठानै।-चरण० बानी, भा० २, पृ० १८३।

इजमाल--संज्ञा पुं० [अ०] [वि० इजमाली] १ कुल। समष्टि। २ किसी वस्तु पर कुछ लोगो का संयुक्त स्वत्व। इस्तराक। साझा। शिरकत। ३ एकत्र करना। इकट्ठा करना (को०)। ४ संक्षेप कथन (को०)।

इजमाली-वि० [अ०] शिरकत का। मुश्तरका। संयुक्त। साझे का।

इजरा[1]-संज्ञा स्त्री० [सं० नि (=नितरां)+जरा (जीर्ण) अथवा हिं० इ+जरा=जीर्णता] वह भूमि जो बहुत दिनो तक जोतने से कमजोर हो गई हो और फिर उपजाऊ होने के लिये परती छोड़ दी जाय।

इजरा[2]--संज्ञा पुं० [अ० इजराय] दे० 'इजराय'।

क्रि० प्र०--इजरा कराना = किसी भी निर्णय या आदेश को प्रचलित और कार्यान्वित कराना।

इजराय--संज्ञा पुं० [अ०] १ जारी करना। प्रचार करना। २ काम मे लाना। व्यवहार। अमल।

यौ०-इजराय डिगरी=डिगरी का अमलदरामद होना। डिगरी को कार्यान्वित करना।

इजलास--संज्ञा पुं० [अ०] १ बैठक। २. वह जगह जहाँ हाकिम बैठकर मुकदमे का फैसला करता है। कचहरी। विचारालय। न्यायालय। अदालत।

यौ०-इजलासकामिल=न्यायालय की वह बैठक जिसमे सब जज एक साथ बैठ कर फैसला करें।

इजहार--संज्ञा पुं० [अ०] जाहिर करना। प्रकट करना। प्रकाशन। उ०--धर्म का यह इजहार। खुदा है खुदा, न वह तिथि वार।--मधुज्वाल, पृ० ६।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

२ अदालत के सामने बयान। गवाही। साक्षी। साखी। उ०--एक दूसरे कैदी के इजहार से स्पष्ट ज्ञात होता है।--भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० १०१।

क्रि० प्र०--देना।=लेना।--होना।

यौ०-इजहारतहरीरी=लिखी हुई गवाही। लिखित बयान (को०)।

इजाजत--संज्ञा स्त्री० [अ० इजाजत] १ आज्ञा। हुक्म। २. परवानगी। मंजूरी। स्वीकृति।

इजाफत--संज्ञा स्त्री० [अ० इजाफत] संबंध। साविका। २ फारसी व्याकरण मे छठे कारक का चिह्न (को०)।

इजाफा--संज्ञा पुं० [अ० इज़ाफ़ह्] १ बढती। बेशी। वृद्धि। बढोतरी। उ०--अपने अँग के जानि कै, जोवन नृपति प्रवीन। स्तन, मन, नैन, नितंब को, बडो इजाफा कीन।--बिहारी र०, दो० २। २. बचा हुआ धन। बचत।

यौ०--इजाफालगान=लगान का अधिक होना। कर या लगान की बढ़ती।

इजावत--संज्ञा स्त्री० [अ०] १ कबूलियत। स्वीकृति। स्वीकार या मंजूर करना। २ शौच। दस्त। निस्तार (को०)।

इजार--स्त्री० [अ०] पायजामा। सूथन। सुथना। उ०--तसन गूजरी ऊजरी बिनसत लाल इजार। हिए हजारनि के हरै रैठी बाल बजार।--मतिराम ग्रं०, पृ० २९२।

क्रि० प्र०--उतारना = नंगा होना। प्रतिष्ठा खोना। इज्जत उतारना। उ०--और आदमी ही डाले है अपनी इजार उतार।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३१७।

यौ०--इजारबंद।

इजारदार-वि० [अ०हजारा+फा०दार(प्रत्य)] [वि०स्त्री०इजारदारिन] किसी पदार्थ को इजारे वा ठेके पर लेनेवाला। ठेकेदार। अधिकारी। उ०-कहा तुमही हो ब्रज के इजारदार।-गीत (शब्द०)

इजारबंद--संज्ञा पुं० [अ० इजार+फा० बंद] सूत या रेशम का बना हुआ जालीदार बँधना जो पायजामे या लहँगे के नेफे मे उसे कमर से बाँधने के लिये पड़ा रहता है। नारा। कमरबंद।

इजारा--संज्ञा पुं० [अ० इजारह्] १ किसी पदार्थ को उजरत या किराए पर देना। २ ठेका। ३. अधिकार। इख्तियार। स्वत्व। जैसे,--तुम्हारा कुछ इजारा है?

क्रि० प्र०--करना=जिम्मेदारी स्वीकारना। जिम्मेदार होना। उ०--कमँधा चालो मत करो, करो इजारो आय।--रा० रू०, पृ० ३१७।--देना।--लेना।

यौ०--इजारदार। इजारेदार।

इजारादारी--संज्ञा स्त्री० [अ० इजारह्+फा० दारी प्रत्य०] ठेकेदारी स्वत्व। कब्जे मे होने की स्थिति। उ०--इसे ही इजारादारी एकाधिपत्य या साम्राज्यवाद कहते हैं।--मान०, भा० ? पृ० २१२।

इजारेदार-वि० [अ० इजारह+फा० दार (प्रत्य०)] दे० 'इजारदार'।

इजाला-संज्ञा पुं० [अ० इजालह] दूर करना। निवारण करना (को०)।

इजाला हैसियत उर्फी-संज्ञा स्त्री० [अ० इजालह हैसियत उर्फी] कोई ऐसा काम करना जिससे दूसरे की इज्जत या आबरू मे धब्बा लगे या उसकी बदनामी हो। हतकइज्जती। मानहानि।

इज्जत--संज्ञा स्त्री० [अ० इज्ज़त] मान। मर्यादा। प्रतिष्ठा। आदर। उ०--समझते हैं इज्जत को दौलत से बेहतर।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५६३।

मुहा०--इज्जत उतारना=मर्यादा नष्ट करना। जैसे,--जरा सी बात के लिये वह इज्जत उतारने पर तैयार हो जाता है।

क्रि० प्र०--करना = प्रतिष्ठा या सम्मान करना।--खोना = अपनी मर्यादा नष्ट करना। जैसे,--तुमने अपने हाथो अपनी इज्जत खोई है।--गँवाना=दे० 'इज्जत खोना'।--जाना। जैसे,--पैदल चलने से क्या तुम्हारी इज्जत चली जायगी।--देना=(१) मर्यादा खोना। जैसे,--क्या रुपए के वास्ते मे हम अपनी इज्जत देंगे? (२) सम्मानित करना। महत्व बढ़ाना। जैसे,--बरात मे गरीब होकर आपने हम बड़ी इज्जत दी।--पाना=प्रतिष्ठा प्राप्त करना। जैसे,--उन्होने इस दर्बार में बड़ी इज्जत पाई।--बिगाड़ना=प्रतिष्ठा नष्ट करना। जैसे,--बदमाश भले आदमियो की राह चलते इज्जत

बिगाड देते हैं।—रखना = मर्यादा स्थिर रखना। बेइज्जती न होने देना। जैसे,—इस समय १००) देकर आपने हमारी इज्जत रख ली।—लेना = इज्जत बिगाडना।—होना = आदर होना। जैसे,—उनकी चारो तरफ इज्जत होती है।

यौ०—इज्जतदार।

इज्जतदार—वि० [अ० इज़्जत + फा० दार (प्रत्य०)] प्रतिष्ठित। माननीय।

इज्जल—संज्ञा पुं० [सं०] हिज्जल नामक वृक्ष जो जलाशय के समीप अधिक होता है [को०]।

इज्तिराव—संज्ञा स्त्री० [अ० इज्तिराव] दे० 'इजतिराव' [को०]।

इज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यज्ञ। २ देवपूजा।

इट—संज्ञा पुं० [सं०] १ बेंत। २. तृण। ३ तृण या बेंत का बना आस्तरण। चटाई [को०]।

इटली—संज्ञा पुं० [अ०] यूरोप के दक्षिण का एक देश।

इटसून—संज्ञा पुं० [सं०] चटाई। आस्तरण [को०]।

इटालिक—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'इटैलिक'।

इटालियन—संज्ञा पुं० [अं०] १ एक प्रकार का कपडा।

विशेष—यह पहले पहल इटली से आया था। यह किसी वृक्ष की छाल से बनता है और बहुत चमकीला होता है। इसका रंग प्राय काला होता है।

२ इटली देशवासी व्यक्ति।

इटैलिक—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का छापा या टाइप जिसमे अक्षर तिरछे होते हैं।

इट्चर—संज्ञा पुं० [सं०] निर्द्वंद्व घूमनेवाला साँड या बैल [को०]।

इठलाना—क्रि० अ० [देश०] १ इतराना। ठसक दिखाना। गर्वसूचक चेष्टा करना। जैसे,—क्षुद्र मनुष्य थोडे में ही इठलाने लगते हैं। २ मटकना। नखरा करना। उ०—पाइहैं पकरि तब पाइ है न कैसे हूँ, तू थोर इठलात वे तो अति इठलात हैं।—केशव (शब्द०) ३. छकाने के लिये जान बूझकर अनजान बनना। छकाने के लिये जान बूझकर किसी काम को देर मे करना। जैसे,—(क) इठलाओ मत, बताओ किताब कहाँ छिपाई है। (ख) इठलाओ मत जैसा कहते हैं, वैसा करो।

इठलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० इठलाना] इठलाने का भाव। ठसक।

इठलाहटी—वि० [हिं० इठलाहट + ई (प्रत्य०)] इठलानेवाली। ठसक वाली। उ०—खरैं अदब इठलाहटी, उर उपजावति त्रासु। दुसह सक विस की करैं जैसे सोठि मिठासु।—बिहारी र०, दो० ३६०।

इठाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इष्ट, प्रा० इट्ठ + हिं० आई (प्रत्य०)] १ रुचि। चाह। प्रीति। उ०—खारिक खात न दारो उदाखन माखन हू सह मेटि इठाई।—केशव (शब्द०)। २ मित्रता। प्रेम।

इठाना(पु)—क्रि० स० [सं० एषण या इषणि] भेजना। पठाना। उ०—चाह जीयँ मिलन की सो तौ कहा जात रही, ग्यान ही इठावत है लायौ तू घिगानो रे।—ब्रज० ग्र०, पृ० १३२।

इठिमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] यजुर्वेद से सबद्ध काठक का एक विभाग या अंश [को०]।

इठै—क्रि० वि० [सं० इध, प्रा० *इठ, इत्थ] यहाँ। इस ओर। इधर। उ०—सरधे इठै इठै।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५५।

इड—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

इडरहर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इडहर'। उ०—बने अनेक अन्न पकवाना। बरिन इडरहर स्वादु महाना।—रघुराज (शब्द०)।

इडविडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की बकरी। २ बकरी की तरह मेमियाने की क्रिया [को०]।

इडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथिवी। भूमि। २. गाय। ३. वाणी। ४ अनवरत प्रार्थना। स्तुति। ५. एक यज्ञपात्र। ६. आहुति, जो प्रयाजा और अनुयाजा के बीच दी जाती है। ७ एक प्रकार का अप्रिय देवता जो अग्नीमपा है। ८ अन्न। हवि। ९ नमदेवता। १० दुर्गा। अंबिका। ११ पार्वती। १२ कश्यप ऋषि की एक पत्नी जो दक्ष की पुत्री थी। १३ वसुदेव की एक स्त्री। १४ मनु या इक्ष्वाकु की पुत्री, जो बुध की स्त्री थी, जिससे पुरुरवा उत्पन्न हुआ था। इसे मैत्रावरुणी भी कहा जाता है। १५ ऋतध्वज रुद्र की स्त्री। १६ स्वर्ग। १७. एक नाडी जो बाईं ओर है।

विशेष—यह नाड़ी पीठ की रीढ से होकर नाक तक है। बाईं साँस इसी से होकर आती जाती है। स्वरोदय मे चद्रमा इसका प्रधान देवता माना गया है। प्राचीनो के अनुसार यह प्रधान नाडी है।

इडाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बर्रे। भिड [को०]।

इडाजात—संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगधित द्रव [को०]।

इडावान—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञान्न को खाने का अधिकारी। २ उपाहार। जलपान [को०]।

इडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी। धरती [को०]।

इडिक्क—संज्ञा पुं० [सं०] जगली बकरा [को०]।

इड्डुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'इट्चर' [को०]।

इडहर—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'इँडहर'।

इडा—संज्ञा स्त्री० [सं० इडा] दे० 'इडा'।

इण(पु)—सर्व० [सं० एनत, प्रा० एण, इण] दे० 'इस'। उ०—(क) इण रुति साहिब ना चलइ, चालइ तिके गिमार।—ढोला०, दू० २४९। (ख) आवे इण भाषा अमल, वयण सगाई वेस।—रघु० रू०, पृ० १२।

इत—क्रि० वि० [सं०] १ अत। इसलिये। २. यहाँ। ३ इस स्थान से। यहाँ से। ४ इधर। इस ओर। ५ इस समय से। अब से [को०]।

इत पर—क्रि० वि० [सं०] १ इसके उपरात। इसके बाद। २ इतने पर। इस पर।

इत¹(पु)†—क्रि० वि० [सं० इत] इधर। यहाँ। उ०—इततें उत औ उततें इत रहु यम की साँट सँवारी।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—इत उत = इधर उधर। उ०—भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।—मानस १।२०३। (ख) इत उत चितै धँस्यो मदिर मैं हरि को दरसन पायो।—सूर०, १०।४२७।

इत²†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ईति] दे० 'ईति'। उ०—सातू इत रो नह सोक लगर, सुखी सगला लोक।—रघु० रू०, पृ० १२३।

इतकाद—संज्ञा पुं० [अ० एतकाद] दे० 'एतकाद'। उ०—तुम करो तयारी मव इमवारी, मैं दिन यह इतकाद करयो।—सुजान०, पृ० १४।

इतनक(पु)—वि० [हिं० इतना+क (प्रत्य०)] इतना। थोड़ा। उ०—(क) जानै कटा कटाच्छ तिहारे कमलैन मेरो इतनक सो री। सूर०, १०।३०५। (ख) सुदर विरहिन दुखित पीव नहीं पावरी। (परि हाँ) इतनक विष अब बाँटि सखी मुहि पावरी।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० ३४१।

इतना—वि० [सं० इयान् इयत्, पा० इयन्त प्रा० इयतन अथवा हिं० ई० यह+तना (प्रत्य०)] [स्त्री० इतनी] इस मात्रा का। इस कदर। उ०-(क) इतनासुख जो न समाता अतरिक्ष मे, जल थल मे।—आँसू. पृ० ४६। (ख) जनु इतनी विरंचि करतूती। —तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—इतने मे=इसी बीच मे। इसी समय। उ०—इतने में रन ठौर रुधिर नदी प्रगटत भई। गज हय सुभट करारे छिन्न अंग ह्वै ह्वै गिरे।—(शब्द०)।

इतनो(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतना'। उ०—सब कौ न कहैं, तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फलु है।—तुलसी० ग्र०, पृ० २०६।

इतफाक—संज्ञा पुं० [अ० इत्तफ़ाक़] दे० 'इत्तफाक'। उ०—काट जिका कुल ऊबटे, आठवाट इतफाक।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० ६४।

इतबार—संज्ञा पुं० [अ० एतबार] विश्वास। प्रतीति। उ०—(क) सार शब्द से बाँचियो मानो इतबार।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५०। (ख) ऐसे घर मे जो बसै वाको क्या इतबार।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३५।

इतबारी—वि० [हिं० इतबार+ई (प्रत्य०)] एतबार के योग्य। विश्वामपात्र। उ०—गोरि न रख्यो पोरिया जे इतबारी धाम।—पृ० रा०, ६३। २०४।

इतमाम—संज्ञा पुं० [अ० इहतिमाम=प्रबंध] इतजाम। बदोबस्त। प्रबंध। उ०—ताहि तखत बैठारि धारि सिर छत्र जटित जर चँवर मोरछल ढारि कियो इतमाम ग्राम घर।—सूदन (शब्द०)।

इतमीनान—संज्ञा पुं० [अ०] विश्वास। दिलजमई। सतोष। उ०—दिल के लेने को जमानत चाहिए, और इतमीनान जामिन के लिये। कविता कौ०, भा० ४ पृ० ५५६।

क्रि० प्र०—करना। जैसे—तुम अपना हर तरह से इतमीनान कर लो, तब मकान खरीदो (शब्द०)।—कराना।—देना।—होना। जैसे—'अब तुम्हारी बातो से हमें इतमीनान हो गया (शब्द०)।

यौ०—इतमीनाने कल्ब=हृदय का विश्वास या सतोष।

इतमीनानी—वि० [अ० इतमीनान+फा० ई (प्रत्य०)] विश्वासपात्र। विश्वासनीय।

इतर¹—वि० [सं०] १ दूसरा। ऊपर। और। अन्य। उ०—बेटा इतर पदार्थों की क्या गणना है, मेरे शरीर का अब रक्त भी शेष नही। भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५१०। २. नीच। पामर। साधारण। उ०—महि परत सुमन रस फल पराग। जनु देत इतर नृप कर विभाग।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४९।

इतर²—संज्ञा पुं० [अ० इत्र] दे० 'अतर'।

यौ०—इतरदान=इत्र रखने का पात्र। इतरफरोश=इत्रविक्रेता।

इतरत., इतरत्र—क्रि० वि० [सं०] १ अन्यथा। व्यतिरिक्त। २. दूसरी जगह पर। अन्य स्थान पर [को०]।

इतरथा—क्रि० वि० [सं०] अन्यथा [को०]।

इतराज(पु)—संज्ञा पुं० [अ० एतराज] दे० 'एतराज'।

इतराजी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० इतराज+ई (प्रत्य०)] विरोध। विगाड। नाराजी। उ०—बडी मीत तुव मिलन की, चित राजी की चाव। इतराजी मत कर अरे, इत राजी है आव।—स० सप्तक, पृ० २१६।

इतराना—क्रि० अ० [सं० इतर अथवा सं० उत्तरण, हिं० उतराना या देश०] १. सफलता पर फूल उठना। घमड करना। मदाध होना। उ०—(क) बडो बडाई नहिं तजै, छोटो बहु इतराय। ज्यो प्यादा फरजी भयो, टेढो टेढो जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) जस थोरेहु धन खल इतराई।—मानस, ४।१४। २ रूप और यौवन का घमड दिखाना। ठसक दिखाना। ऐंठ दिखाना। इठलाना। उ०—अब काहू के जाउ कही जनि आवति हैं युवती इतरात। सूर —(शब्द०)।

इतराहट(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० इतराना] इतराने का भाव। दर्प। घमड। गर्व। उ०—जीवन के इतराहट सौ अठिलात अछो टटि ऐंठनि ऐंठि।—देव (शब्द०)।

इतरेतर—क्रि० वि० [सं०] परस्पर। आपस मे।

इतरेतरयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. परस्पर सबध। २ एक प्रकार का द्वद्वसमास जिसमे दो जाति के केवल एक एक व्यक्ति का समावेश होता है। हिंदी मे समास का यह भेद नही है।

इतरेतराभाव—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायशास्त्र मे एक के गुणो का दूसरे मे न होना। अन्योन्याभाव। जैसे,—गाय घोडा नही, क्योकि गाय के धर्म घोडे मे नहीं हैं।

इतरेतराश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तर्क मे एक प्रकार का दोष।

विशेष—जब एक वस्तु की सिद्धि दूसरी वस्तु की सिद्धि पर निर्भर हो और दूसरी वस्तु की सिद्धि भी पहली वस्तु की सिद्धि पर निर्भर हो, तब वहाँ पर इतरेतराश्रय दोष होता है। जैसे—परलोक की सिद्धि के लिये शरीर से पृथक् असिद्ध जीवात्मा को प्रमाण मे लाना या जीवात्मा को शरीरातिरिक्त सिद्ध करने के लिये असिद्ध परलोक को प्रमाण मे लाना।

इतरेद्यु—क्रि० वि० [सं०] दूसरे दिन। अन्येद्यु [को०]।

इतरैं(पु)—क्रि० वि० [सं० इत. पर] इतने में। इसके उपरात। उ०—इतरैं एक आली ले आवी आनन आगलि आदरस।—वेलि०, दू० ८३।

इतरौहाँ—वि० [हिं० इतराना+औहाँ (प्रत्य०)] जिससे इतराने का भाव प्रकट हो। इतराना सूचित करनेवाला। उ०—रहे परम पद साधत बीचै परी चाह चकचौंह। रतन खोइ कै कौड़ी पाई चाल चलै इतरौंह।—देवस्वामी (शब्द०)।

इतलाक—संज्ञा पुं० [अ० इतलाक़] १. जारी करना। इजराय। २. बंधनमुक्त करना। खोलना। ३. बोलना। कथन। ४. बहु

दफ्तर या वही जिसमे दस्तक और समनें आदि के जारी होने और उनके तलवाने के आयव्यय का लेखा लिखा जाता है।

यौ०—इतलाकनवीस=वह कर्मचारी जो इतलाक में काम करे या इतलाक का हिसाब रखे।

इतवत—क्रि० वि० [सं० इतस्तत, प्रा० *इतवतः हिं० इतउत] इधर उधर। उ०—उझकत इतवत देखि चलत ठठकत छवि पावत।—ब्रज० ग्र०, पृ० ६२।

इतवरी- सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'इत्वरी'।

इतवार—सज्ञा पुं० [स० आदित्यवार, प्रा० आइत्तवार=ऐतवार] शनि और सोमवार के बीच का दिन। रविवार।

इतस्तत —क्रि० वि० [स०] इधर उधर। यहाँ वहाँ।

इता(पु)—वि० [सं० इयत् पा० इयन्त, प्रा० *इअतन, हिं० इतन, इतना] इतना। इस मात्रा का। उ०—(क) वड्डा जु बोल मुख नन्हिया, इता बोल सिर पर धरै।—पृ० रा०, ६४।१२१। (ख) साचा मुँह मोडै नही अर्थ इता ही बूझ।—दादू०, पृ० ३८५।

इताअत—सज्ञा स्त्री० [अ०] आज्ञापालन। तावेदारी। उ०—'इनकी वैसे ही इज्जत और इताअत करते हैं'। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६२।

क्रि० प्र०—करना।—मानना।

इताति—सज्ञा स्त्री० [अ० इताअत] दे० 'इताअत'। उ०—को है जागजाल जो न मानत इताति है।—तुलसी ग्र०, पृ० २५५।

क्रि० प्र०—मानना=आज्ञा या हुक्म मानना। उ०—निमि वासर ताकहुँ भलो, मानै राम इताति।—ग्र०, पृ० ५१५।

इताव—सज्ञा पुं० [अ०] क्रोध। कोप। गुस्सा [को०]।

यौ०—इतावनामा=क्रोध, नाराजी या विरोध व्यक्त करनेवाला पत्र।

इति[1]—अव्य [स०] समाप्तिसूचक अव्यय।

इति[2]—सज्ञा स्त्री० [सं०] समाप्ति। पूर्णता। जैसे,—अब तुम्हारी पढाई की इति हो गई। २. गति। गमन। ३ ज्ञान (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—इतिकर्तव्यता। इतिवृत्त। इतिहास। इतिश्री।

इति[3]—क्रि० वि० इस प्रकार। ऐसा। उ०—(क) अचर-चर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा वसत, इति वासना धूप दीजै।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७६। (ख) इति वदत तुलसीदास।—तुलसी ग्र०, पृ० ७८।

इतिक[1]—वि० [सं०] चलता हुआ। गतिशील [को०]।

इतिक[2](पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतेक'। उ०—पन किती कहरि क्रप्पन्न होइ। इतिक विदा सजि चद को।—पृ० रा०, ६१। ८८६।

इतिकथ—वि० [सं०] १ अविश्वसनीय। २ नष्ट। अश्रद्धेय [को०]।

इतिकथा—सज्ञा स्त्री० [स०] अविश्वसनीय एव निरर्थक बात [को०]।

इतिकरणीय—वि० [स०] दे० 'इतिकर्तव्य' [को०]।

इतिकर्तव्य—वि० [सं०] जिसका करना आवश्यक और उचित हो। उ०—केवल प्रचलित प्रणाली का निर्वाह करना मात्र अपना इतिकर्तव्य मानते हैं। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५१।

इतिकर्तव्यता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी काम के करने की विधि। परिपाटी। २. कर्म की पराकाष्ठा। कर्तव्य की समाप्ति या पूर्णता। उ०—उनमें कागजी ग्रहदीठ मे है आज इतिकर्तव्यता।—भारत०, पृ० १२५। ३. मीमासा या धर्मशास्त्र मे वह अर्थवाद बोधित वाक्य जिसमे किसी कर्म की प्रशसा और उसके करने के विधान का बोध हो।

इतिमात्र—वि० [स०] इतना ही। इस प्रकार का ही [को०]।

इतिय(पु)—वि० [देश०] दे० 'इतना'। उ०—यों अजित मार आतुर इतिय ज्यों डहुरिय बूँद घन।—पृ० रा०, १३। ११६।

इतिवत्—क्रि० वि० [स०] इस प्रकार। इस ढग से [को०]।

इतिवृत्त—सज्ञा पु० [स०] १. पुरावृत्त। पुरानी कथा। २ कहानी। किस्सा।

इतिश्री—सज्ञा स्त्री० [स०] समाप्ति। अंत। जैसे,—औरगजेब से ही मुगलो के राज्य की इतिश्री हुई। उ०—कब से इतिश्री हो चुकी इनके अखिल उत्कर्ष की।—भारत०, पृ० २।

इतिह—क्रि० वि० [स०] इस प्रकार निश्चय ही [को०]।

इतिहास—सज्ञा पुं० [स०] १ बीती हुई प्रसिद्ध घटनाओं और उनसे संबध रखनेवाले पुरुषों का कालक्रम से वर्णन। तवारीख। उ०—यद्यपि हमे इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं।—भारत०, पृ० ४। २ वह पुस्तक जिसमे बीती हुई प्रसिद्ध घटनाओ और भूत पुरुषो का वर्णन हो। उ०—अब भी 'लिखित मुनि' का चरित वह लिखित है इतिहास मे।—भारत०, पृ० १०। ३ किसी विषय मे सबधित तथ्यो का आदिकाल से वर्तमान समय तक का क्रमबद्ध वर्णन। जैसे—किसी शास्त्र, कला, संस्कृति का इतिहास। ४. कथा। वृत्त। उ०—उस अनत काले शासन का, वह जब उच्छृंखल इतिहास।—कामायनी, पृ० ३८।

यौ०—इतिहासकार=इतिहास लिखनेवाला। इतिवृत्त लेखक। इतिहासज्ञ=इतिहास का जानकार। इतिहासवेत्ता=इतिहासज्ञ।

इते(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतो'। उ०—इत घटे घटिहै कहा जो न घटै हरि नेह।—तुलसी ग्र०, पृ० १७१।

इतेक—वि० [हिं० इत+एक] इतना एक। इतना।

इतै—क्रि० वि० [स० इत] इधर। इस तरफ। इस ओर। उ०—मोहन मानि मनायो मेरो। हौं बलिहारी नद नंदन की, नेकु इतै हँसि हेरो।—सूर०, १०। २१६।

मुहा०—इतै उत=दे० 'इतउत'। उ०—उमडे जवै मुंडदंडै उछालैं। तबै तोरि तारैं इतैउत्त घालैं। पद्माकर ग्र०, पृ० २७६।

इतो(पु), इतौ(पु)—वि० [सं० इयत्=इतना] [स्त्री० इती] इतना। इस मात्रा का। निर्दिष्ट मात्रा का। उ०—(क) कुटिल अलक छुटि परत मुख, बढिगो इतो उदोत। वक विकारी देत ज्यों दाम रुपैया होत।—बिहारी (शब्द०)। (ख) मेरे जान इन्हे बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाठ इतो री।—तुलसी ग्र०, पृ० ३०८। (ग) लै नै मोहन, चदा लै। सूरदास प्रभु इती बात को कत मेरे लाल हठै।—सूर०, १०। १९५।

इतौत(पु)—क्रि० वि० [हिं० इत+उत] इधर उधर। उ०—चद उदोत इतौत चितौत चकी सबकी चख चारु चकोरी।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १५०।

इत्कट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष या घास [को०]।
इत्किला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक सुगंध द्रव्य। गोरोचन [को०]।
इत्त(पु)—क्रि०वि० [हिं०] दे० 'इत'। उ०—जा को रहना उत्त घर सो क्यों लोड़ै इत्त। जैसे पर घर पाहुना रहै उठाए चित्त।—कबीर सा० स०, पृ० ७७।
इत्तन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतना'। उ०—इत्तन वचन कह्यौ चर आइय।—प० रा०, पृ० १२०।
इत्तफाक—संज्ञा पुं० [अ० इत्तिफ़ाक़] [वि० इत्तफाकिया, क्रि० वि० इत्तफाकन] १ मेल। मिलाप। एका। २ सहमति।
मुहा०—इत्तफाक करना = सहमत होना। जैसे,—मैं आपकी राय से इत्तफाक नहीं करता।
३ संयोग। मौका। अवसर। जैसे,—इत्तफाक की बात है, नहीं तो आप भी कभी यहाँ आते हैं?
मुहा०—इत्तफाक पड़ना = संयोग उपस्थित होना। मौका पड़ना। अवसर आना। जैसे,—मुझे अकेले सफर करने का इत्तफाक कभी नहीं पड़ा। इत्तफाक से = संयोगवश। अचानक। अकस्मात्। जैसे,—'मैं स्टेशन जा रहा था, इत्तफाक से वे भी रास्ते में मिल गए'।
इत्तफाकन्—क्रि०वि०[अ० इत्तिफ़ाकन्]संयोगवश। अचानक। एकाएक।
इत्तफाकिया—वि० [अ० इत्तिफाकियह] आकस्मिक।
इत्तफाकी—वि० [अ० इत्तिफ़ाक़] दे० 'इत्तफाकिया'।
इत्तला—संज्ञा स्त्री० [अ० इत्तलाअ] सूचना। खबर। उ०—वहरे खुदा जनाब दें हमको ये इत्तला। साहब का क्या जवाब था बाबू ने क्या कहा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६२६।
क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।
मुहा०—इत्तला लिखना = राजकर्मचारियों का किसी बात की सूचना लिखना।
यौ०—इत्तलानामा।
इत्तलानामा—संज्ञा पुं० [अ० इत्तला अ + फ़ा० नामह] किसी बात की खबर देनेवाला पत्रक। सूचनापत्र।
इत्तहाद—संज्ञा पुं० [अ० इत्तिहाद] मेल मिलाप। एकता। उ०—खुदा गवाह है, मैंने हमेशा इत्तहाद की कोशिश की।—काया०, पृ० ३३४।
इत्ता†—वि० [हिं० इतना] इतना। उ०—कड़ेल जवान न होगा तो भला शेरों से इत्ता ठेंगा मुकाबिला कर सकेगा।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२।
इत्तिफाक—संज्ञा पुं० [अ० इत्तिफ़ाक़] संयोग। मौका। उ०—'यह तो कई बार इत्तिफाक हुआ है कि हम पहाड़ की ऊँची चोटी पर हैं'।—मैर कु०, पृ० ६२।
इत्तिहाम—संज्ञा पुं० [अ०] दोष। तुहमत।
क्रि० प्र०—देना।
इत्तो(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतो'।
इत्थ—क्रि० वि० [सं० इत्थम्] इस प्रकार से। ऐसे। यों।
इत्थकार—क्रि० वि० [सं० इत्थङ्कारम्] इस प्रकार। इस ढंग से [को०]।
इत्थंभूत—वि० [सं० इत्थम्भूत] इस प्रकार का। ऐसा। २ सत्य। विश्वसनीय (कथा)।
इत्थविध—वि० [सं०] १ इस प्रकार का। ऐसा। २. इस प्रकार की विशेषता या गुणों से युक्त [को०]।
इत्थमेव¹—वि० [सं०] ऐसा ही।
इत्थमेव²—क्रि० वि० इसी प्रकार से।
इत्थशाल—संज्ञा पुं० [सं०; मि०, अ० इत्तिसाल] दे० 'इत्थसाल' [को०]।
इत्थसाल—संज्ञा पुं० [अ० इत्तिसाल] ताजक ज्योतिष के अनुसार कुंडली में १६ योगों में से तीसरा योग जहाँ वेगगामी ग्रह मंदगामी ग्रह से एक अंश में कम हो और वे परस्पर एक दूसरे को देखते हों या संबंध करते हों वहाँ इत्थसाल योग होता है।
इत्थाँ(पु)†, इत्थू(पु)† इत्थे(पु)†—क्रि० वि० [सं० इत] यहाँ। इस स्थान पर।
इत्यादि—अव्य० [सं०] इसी प्रकार के अन्य। और। इसी तरह। और दूसरे। वगैरह। उ०—बेटा हमारा धन, आभूषन, बसन इत्यादि सब लुटेरे बलात्कार हर ले गए'।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५०८।
विशेष—जहाँ किसी प्रसंग से समान संबंध रखनेवाली बहुत सी वस्तुओं को गिनाने की आवश्यकता होती है, वहाँ लाघव के लिये केवल दो तीन वस्तुओं को गिनाकर 'इत्यादि' लिख देते हैं जिससे और वस्तुओं का आभास मिल जाता है।
इत्यादिक-वि० [सं०] इसी प्रकार के अन्य और। ऐसे ही और दूसरे जैसे—राम कृष्ण इत्यादिकों ने भी ऐसा ही किया है।
विशेष—इस शब्द के आगे 'लोग' या इसी प्रकार के और विशेष्य शब्द प्राय लुप्त रहते हैं।
इत्र—संज्ञा पुं० [अ०] १ अतर। पुष्पसार। इतर। उ०—न दी बू एक ने ऐ गुलबदन तेरे पसीनों की, हजारों इत्र खिंचकर तबल ए अत्तार में आए। कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३७७। २. सुगंध। खुशबू। ३. सार। सत्त।
इत्रदान—संज्ञा पुं० [अ० इत्र + फा० दान] दे० 'अतरदान'।
इत्रफरोश—संज्ञा पुं० [अ० इत्र + फा० फरोश] अतर बेचनेवाला। गंधी। अत्तार।
इत्रसाज—संज्ञा पुं० [अ० इत्र + फा० साज़] इत्र बनानेवाला। गंधी [को०]।
इत्रीफल—संज्ञा पुं० [सं० त्रिफला] एक हकीमी दवा। हड़, बहेड़े और आँवले का चूर्ण तिगुने शहद में मिलाकर चालीस दिन तक रखा जाता है और फिर व्यवहार में आता है।
इत्वर¹—वि० [सं०] १ क्रूरकर्मा। क्रूर। २ निम्न। नीच। ३ यात्री। पथिक [को०]। ४ निर्धन। धनहीन [को०]।
इत्वर²—संज्ञा पुं० १. षढ। नपुंसक। २ उत्सर्ग किया हुआ वृष या छुट्टा पशु। खुला हुआ जानवर [को०]।
इत्वरी—वि०स्त्री०[सं०] १ छिनाल। कुलटा। २ अभिसारिका [को०]।
इथ(पु)—अव्य० [सं० अत्र, प्रा० इत्थ] यहाँ। अत्र। उ०—तैं इथ नैं सतारि दै जो चाहहि सो लेहि।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १६७।
इथ्थह(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'इथ'। उ०—तब लग्ग मेछ इथ्थह प्रवेस।—पृ० रा०, ६१।५६२।

इदतन—वि० [स० इदन्तन] १ इस समय का। वर्तमान। २ क्षण-स्थायी। क्षणिक [को०]।

इदता—सज्ञा स्त्री० [स० इदन्ता] सादृश्य। एकरूपता। समरूपता [को०]।

इदद्र—सज्ञा पुं० [स इदन्द्र] वह जो (इस) इद (=जगत्) को देखता है। परमात्मा [को०]।

इदवर—सज्ञा पुं० [स० इदम्वर] नीला कमल। इदीवर [को०]।

इडम्—सर्व० [स०] यह।

इदमित्थ—पद० [स० इदमित्थम्] यह ऐसा है। ऐसा ही है। ठीक है। उ०—हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थ कहि जाइ न सोई।—मानस, १।१२१।

इदराक—सज्ञा पु० [अ० इद्राक] ज्ञान। बोध। समझबूझ। उ०—गफलत कि यह जागे नही यहाँ चाहिये इदराक रहू।—राम० धर्म०, पृ० ८६।

इदानीतन—वि० [सं० इदानीन्तन] १ इस समय का। आधुनिक। २ नवीन। नया।

इदावत्सर—सज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति की गति के अनुसार प्रत्येक ६० वर्ष मे १२ युग होता है और प्रत्येक युग मे पाँच पाँच वर्ष होते हैं। प्रत्येक युग के तीसरे वर्ष को इदावत्सर कहते हैं।

विशेष—इनके नाम ये हैं–युवा, धाता, प्रमाथी, तारण, विरोधी, जय, विकारी, क्रोधी, सौम्य, आनद, सिद्धार्थ और रक्ता इनमे अन्न और वस्त्र के दान का बडा माहात्म्य है।

इद्दत—सज्ञा स्त्री० [अ०] पति के मरने के बाद का ४० दिन का अशौच जो मुसलमान विधवाओ को होता है और जिनके बीच वे अन्य पुरुष मे विवाह नही कर सकती।

विशेष—कहते हैं कि यह इसलिये रखा गया है जिससे यदि गर्भ हो तो उसका पता चल जाय। यह अवधि तलाक की स्थिति मे तीन महीने, पति की मृत्यु पर चार महीने दस दिन और गर्भवती के लिये सतान होने तक भी है।

इद्ध[1]—वि० [सं०] १ प्रकाशित। ज्योतित। २ चमकमान। चमकीला। ३ आश्चर्यकारक। विस्मयजनक। ४ पालन किया जानेवाला (आदेश)। ५ दीप्त। ६ दग्ध। ७ स्वच्छ। निर्मल [को०]।

इद्ध[2]—सज्ञा पुं० १ आतप। घाम। २ दीप्ति। काति। ३ आश्चर्य। अचभा [को०]।

इद्धदीधिति—सज्ञा पु० [सं०] अग्नि। आग [को०]।

इद्धमन्यु—वि० [सं०] भयकर क्रोधी। अत्यधिक क्रोधयुक्त [को०]।

इद्धाग्नि—वि०[सं०] जिसकी अग्नि निरतर प्रदीप्त रहती हो [को०]।

इद्वत्सर—सज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति की गति के अनुसार ६० वर्ष मे १२ युग होते हैं और प्रत्येक युग मे पाँच पाँच वत्सर होते हैं। प्रत्येक युग के पाँचवें व अतिम वर्ष को इद्वत्सर कहते हैं।

विशेष—इनके नाम ये हैं—प्रजाति, धाता, वृष, व्यय, खर, दुर्मुख, प्लव, पराभव, रोधकृत्, अनल, दुर्मति और क्षय।

इधक(पु)†—वि० [सं० अधिक] दे० 'अधिक'। उ०—इधक अनुरागकर पुरष निरजुर अही।—रघु० रू०, पृ० ५७।

इधकार(पु)†—सज्ञा पु० [सं० अधिकार] दे० 'अधिकार'। उ०—सगुन नाम इधकार जग सार भारी भगो।—रघु० रू०, पृ० २८।

इधर—क्रि० वि० [सं० इतर या इतः] १. इस ओर। यहाँ। इस तरफ। उ०—इधर कोई है अभी न और हुआ लगा यह मैं अनुमान।—[illegible], पृ० ४२।

मुहा०—इधर उधर = (१) यहाँ वहाँ। इतस्ततः। अनिश्चित स्थान में। जैसे,—वह दिन भर इधर उधर मारे मारे फिरते थे। (२) आसपास। इर्द गिर्द। अगल बगल में। जैसे,—तुम्हारे घर के इधर उधर कोई आदमी हो तो भेज देना। (३) चारों ओर। सब ओर। जैसे,—देखो, वह इधर उधर देखो, पुस्तक यहीं कहीं होगी। इधर उधर करना = (१) टाल-मटूल करना। हीला हवाला करना। जैसे,—हम जब रुपया माँगते हैं, तब तुम इधर उधर करते हो। (२) उलट-पलट करना। उलट पुलट करना। क्रम भंग करना। जैसे,—बच्चों ने सब कागजपत्र इधर उधर कर दिए। (३) तितर बितर करना। भगाना। जैसे,—पुलिस ने उन ५० लोगों को मारकर इधर उधर कर दिया। (४) हटाना। भिन्न भिन्न स्थानों पर कर देना। जैसे,—मजदूरों ने कमरे के भीतर का सामान इधर उधर कर दिया। इधर उधर की बात = (१) बाजारू गप। अफवाह। सुनी सुनाई बात। जैसे,—हम ऐसी इधर उधर की बातों पर विश्वास नहीं करते। (२) बेठिकाने की बात। अनर्गल बात। इधर की उधर बात। जैसे,—तुम कोई काम नहीं करते, इधर उधर की बातें किया करते हो। इधर की उधर करना या लगाना = चुगलखोरी करना। लगाव करना। एक पक्ष के लोगों की बात दूसरे पक्ष के लोगों से कहना। झगड़ा कराना। इधर की दुनिया उधर होना = अनहोनी बात का होना। असंभव का संभव होना। जैसे,—चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय, पर हम ऐसा कभी नहीं करेंगे। इधर उधर की हाँकना = गप शप करना। व्यर्थ समय खोना। जैसे,—तुम इधर उधर में समय काटते हो, कोई काम तो करते नहीं। इधर उधर से = (१) अनिर्दिष्ट स्थान से। अनिश्चित स्थान से। जैसे,—वह पुस्तक कहीं इधर उधर से झटक लाए हो। (२) धोखे से। दगा से। जैसे—(क) जब तक इधर उधर से काम चले, तब तक पैसा क्यों खोएँ। (ख) उसे इधर उधर से भोजन मिल ही जाता है, वह रसोई क्यों बनावे। इधर का उधर होना = (१) उलट पुलट होना। अंड बंड होना। बिगड़ना। जैसे,—हवा से सब कागज-पत्र इधर उधर हो गए। (२) टालमटूल होना। हीला-हवाला होना। जैसे,—महीनों से इधर उधर हो रहा है देखें रुपया कब मिलता है। (३) भाग जाना। तितर बितर होना। जैसे,—शेर के आते ही सब लोग इधर उधर हो गए। इधर का उधर करना = उलट पलट देना। अस्तव्यस्त करना। क्रम बिगाड़ना। इधर का उधर होना = उलट जाना। विपरीत होना। जैसे,—देखते देखते सारा मामला इधर का उधर हो गया। इधर या उधर होना = परस्पर विरुद्ध दो संभावित घटनाओ मे से (जैसे — जीना या मरना, हारना या जीतना) किसी एक का होना। जैसे,—कल के यहाँ

मुकदमा हो रहा है, दो चार दिन मे इधर या उधर हो जायगा। **इधर से उधर फिरना** = चारो ओर फिरना। जैसे,—तुम व्यर्थ इधर से उधर फिरा करते हो। **न इधर का होना न उधर का** = (१) किसी ओर का न रहना। किसी पक्ष मे न रहना। जैसे,—वे हमारी शिकायत उनसे और उनकी शिकायत हमसे किया करते थे, अत मे न इधर के हुए न उधर के। (२) किसी काम का न रहना। जैसे,—वे इतना पढ लिखकर भी न इधर के हुए न उधर के। (३) दो परस्पर विरुद्ध उद्देश्यो में से किसी एक का भी पूरा न होना। जैसे,—वे नौकरी के साथ साथ रोजगार भी करना चाहते थे, पर अत मे न इधर के हुए न उधर के।

इध्म—सज्ञा पुं० [स०] १ काठ। लकडी। २. यज्ञ की समिधा जो प्राय पलाश या आम की होती है।

यौ०—**इध्मजिह्व** = अग्नि। **इध्मवाह** = अगस्त्य ऋषि का एक पुत्र जो लोपामुद्रा से उत्पन्न हुआ था।

इध्मपरिवासन—सज्ञा पुं० [सं०] लकडी की चैली या टुकडा [को०]।

इध्मप्रवश्चन—सज्ञा पुं० [स०] कुल्हाडी। टाँगी [को०]।

इध्मभृति—वि० [स०] ईंधन या लकडी लानेवाला [को०]।

इन¹—सर्व० [हिं०] 'इस' का बहुवचन।

इन²—सज्ञा पुं० [स०] १ सूर्य। २ प्रभु। स्वामी। ३ राजा। नरेश (को०)। ४ हस्त नाम का नक्षत्र [को०]।

इन³—वि० १ योग्य। शक्त। क्षम। २ बहादुर। ताकतवर। दृढ। ३. गौरवपूर्ण [को०]।

इनग्राम—सज्ञा पुं० [अ० इन ग्राम] दे० 'इनाम'। उ०—इन लोगो को एक एक जोडा दुशाला इनग्राम दो।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५४२।

इनकम—सज्ञा स्त्री० [अ०] आय। आमदनी। अर्थागम।

यौ०—**इनकम टैक्स**।

इनकमटैक्स—सज्ञा पुं० [अ०] आमदनी पर महसूल। आय पर कर। आयकर।

इनकलाव—सज्ञा पुं० [अ० इनकलाव] परिवर्तन। उलटफेर। उ०—सुना न कानो से था जो हमने वो आँख से इनकलाव देखा।—शेर०, भा० १, पृ० ६९२। २. क्राति। राज्यपरिवर्तन।

यौ०—**इनकलाव जिंदावाद** = क्राति चिरजीवी हो। **इनकलाव हुकूमत** = राज्यक्राति। राज्य सबधी परिवर्तन।

इनकलावी—वि० [अ० इनकलावी] क्राति या परिवर्तन लानेवाला।

इनकात—सज्ञा पुं० [स० इनकान्त] सूर्यकात मणि [को०]।

इनकार—सज्ञा पुं० [अ०] अस्वीकार। नकारना। नामजूरी। नही करना। 'इकरार' का उलटा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

इनकारी¹—वि० [अ०] इनकार करनेवाला। अस्वीकृतिसूचक [को०]।

इनकारी²—सज्ञा स्त्री० इनकार या अस्वीकार की स्थिति।

इनकिशाफ—सज्ञा पुं० [अ० इनकिशाफ़] १ गवेषणा। अनुसधान। २. व्यक्त होना। प्रकट होना। जाहिर होना [को०]।

इनकिसार—सज्ञा पुं० [अ०] खाकसारी। नम्रता। विनय [को०]।

इनफार्मर—सज्ञा पुं० [अ० इनफार्मंड] वह जो गुप्त रूप से किसी बात का भेद लगाकर पुलिस को बताता है। गोइंदा। भेदिया। जैसे,—वह पुलिस का इनफार्मर है।

इनफिकाक—सज्ञा पुं० [अ० इनफ़िकाक] १. रेहन का छुड़ाना। बधक छुडाना। २ मुक्त होना। छूटना (को०)। ३ अलग अलग होना (को०)।

यौ०—**इनफिकाक रेहन**।

इनफिसाल—सज्ञा पुं० [अ० इनफिसाल] १. वाद का निर्णय होना। फैसला होना। २. फैसला। निर्णय [को०]।

इनफ्लुएजा—सज्ञा पुं० [अ० इनफ्लुएजा] सरदी का बुखार जिसमें सिर भारी रहता है, नाक बहा करती है और हरारत रहती है।

इनसभ—सज्ञा पुं० [स०] राजसभा। शाही दरबार [को०]।

इनसान—सज्ञा पुं० [अ०] १ मनुष्य। आदमी। २ सभ्य। सज्जन [को०]।

इनसानियत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ मनुष्यत्व। आदमीयत। २ बुद्धिमानी। बुद्धि। शऊर। ३ भलमनसी। सज्जनता। मुरव्वत।

इनसानी—वि० [अ० इनसान + फा० (प्रत्य०)] १ मानवीय। मानव सबधी। २ सज्जनोचित [को०]।

इनसानीयत—सज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'इनसानियत' [को०]।

इनसाफ—सज्ञा पुं० [अ० इन्साफ] दे० 'इसाफ'। उ०—मो और भाई मालिक मे इनसाफ चाहने के लिये विलायत पहुँचे।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३४६।

इनसालवट, इनसालवेंट—वि० [अ०] वह व्यापारी जो व्यापार मे घाटा आने के कारण अपना ऋण चुकाने में असमर्थ हो। दिवालिया। उ०—तो क्या इनसालवेंट होने की दरखास्त देनी पडेगी।—श्री निवास ग्र०, पृ० ३८१।

इनसिदाद—सज्ञा पुं० [अ०] १. बंद होना। रुक जाना। २. निवारण।

यौ०—**इनसिदादे जुर्म** = अपराधो का रुकना। अपराधो का निवारण। खात्मा [को०]।

इनस्टिटयूशन—सज्ञा पुं० [अ० इन्स्टिटयूशन] सस्था। समाज। मडल।

इनहिदाम—सज्ञा पुं० [अ०] १ ढहना। गिरना। २. ध्वस [को०]।

इनहिसार—सज्ञा पुं० [अ०] निर्भरता। दारोमदार [को०]।

इनान—सज्ञा पुं० [अ०] वल्गा। बाग। लगाम [को०]।

यौ०—**इनाने हुकूमत** = शासन की बागडोर। शासनसूत्र।

इनानी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृक्ष। वटपत्री [को०]।

इनाम—सज्ञा पुं० [अ० इनग्राम] १ पुरस्कार। बखशिश। उपहार। २ माफी जमीन।

यौ०—**इनाम इकराम** = इनाम जो कृपापूर्वक या सेवा से प्रसन्न होकर दिया जाय। **इनामदार** = इनाम प्राप्त करनेवाला।

इनायत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ कृपा। दया। अनुग्रह। मेहरबानी। उ०—इनायत है तुम पे यह सर्कार की। तुम्हें इसने उमने पोशाक दी।—कविता कौ०, भा० ३, पृ० २१३। २. एहसान।

क्रि० प्र०—करना।—फरमाना।—रखना।

मुहा०—इनायत करना = (१) कृपा करके देना। जैसे,—जरा कलम तो इनायत कीजिए। २ रहने देना। बाज रखना। वंचित रखना (व्यंग्य)। जैसे,—इनायत कीजिए, मैं आपकी चीज नहीं लेता।

इनारा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इँदारा'।

इनारुन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इँदारुन'।

इनारू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इँदारुन'। उ० -मीठा जिसमे जानते थे वह इनारू का फल था।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०५।

इनेगिने—वि० [हिं० इने = गिने की अनुध्व० + गिनना] १. कतिपय। कुछ। चंद। थोडे से। २ चुने चुनाए। गिने गिनाए। जैसे,—इस विद्या के जाननेवाले अब इने गिने लोग हैं।

इनोदय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्योदय [को०]।

इन्जिन—संज्ञा पुं० [हिं० इजन] दे० 'इंजन'। उ०—इच्छा कर्म सजोगी इन्जिन गारड आप अकेला है।—श्यामा०, पृ० ११४।

इन्टरनैशनल—वि० [अं०] दे० 'अंतर्राष्ट्रीय'। जैसे,—इन्टरनैशनल एग्जिबिशन।

इंटरमीडिएट—वि० [अं०] बीच का। मध्य का। मध्यम। जैसे,—इन्टरमीडिएट क्लास उच्चतर माध्यमिक कक्षा।

इन्टरव्यू—संज्ञा पुं० [अं०] १ व्यक्तियों का आपस में मिलना। एक दूसरे का मिलाप। भेंट। मुलाकात। साक्षात् वार्तालाप या प्रश्नोत्तर जैसे,—प्रयाग के एक संवाददाता ने उस दिन स्वराज्य पार्टी की स्थिति जानने के लिये उसके नेता प० मोतीलाल नेहरू का इंटरव्यू किया था। २ परीक्षा अथवा नियुक्ति के लिये किसी समिति के समुख साक्षात्कार के लिये उपस्थित होना।

क्रि० प्र०—करना।—लेना।

३ आपस में विचारों का आदान प्रदान। वार्तालाप। जैसे,—समाचार पत्रों में एक संवाददाता और मालवीयजी का जो इन्टरव्यू छपा है, उसमें मालवीय जी ने देश की वर्तमान राजनीतिक स्थिति पर अपने विचार प्रकट किए हैं।

इन्नर†—संज्ञा पुं० [सं० अनीर = बिना जल का] पेउस (१० दिन के भीतर ब्याई हुई गाय का दूध) में गुड, सोठ, चिरौंजी और कच्चा दूध मिलाकर पकाने से वह जम जाता है। इसी जमे हुए दूध को इन्नर कहते हैं।

इन्याम(५)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इनाम'। उ०—राजमती इन्याम दो। मढी है यानीक चापानेर।—बी० रासो, पृ० ९५।

इन्वका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इल्वला नाम का पाँच तारों का समूह जो मृगशिरा नक्षत्र के ऊपर रहता है।

इन्वायस—संज्ञा पुं० [अं०] १ व्यापारी द्वारा भेजे हुए माल की सूची जिसमें उस माल के दाम आदि का ब्योरा रहता है। बीजक। रवौती। २ चालान का कागज।

इन्श्योरेंस—संज्ञा पुं० [अं० इन्श्योरेंस] दे० 'बीमा'। जैसे—लाइफ इन्श्योरेंस, जीवनबीमा।

इन्स—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'इनसान'। उ०—वजुज खालिक जिन, इन्स व बशर, उनकी होनहारी की नई किस खबर।—दक्खिनी०, पृ० ३७४।

इन्साइक्लोपीडिया—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'विश्वकोश'।

इन्साइक्लोपीडियाब्रिटानिका—संज्ञा पुं० [अं०] अंग्रेजी का एक प्रसिद्ध विश्वकोश। उ०—न एतबार हो तो इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका खोलकर देख लीजिए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१४।

इन्सोलिन—संज्ञा स्त्री० [अं०] मधुमेह रोकने की दवा। उ०—सिर्फ एक बार शिमला में इन्सोलिन की सुई लगाई थी।—किन्नर०, पृ० १५।

इन्ह(५)†—सर्व० [हिं०] दे० 'इन'। उ०—इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी।—मानस, १।८५।

इन्हन(५)—संज्ञा पुं० [सं० इन्धन] दे० 'इंधन'। उ०—ज्ञान अगिन तामे दियो विषय इन्हन जरि जाय।—भीखा श०, पृ० १००।

इफतरा—संज्ञा पुं० [अ० इफ़्तिरह्] १ मिथ्या आरोप। तोहमत। २ व्यर्थ की बात। उ०—वेद कितेब इफतरा भाई दिल का फिकिर न जाई।—कबीर ग्र०, पृ० १९७।

यौ०—इफतरा परदाज = कलंक लगानेवाला। तोहमत लगानेवाला।

इफतार—संज्ञा पुं० [अ० इफ़्तार] रोजा खोलना [को०]।

इफतारी—संज्ञा स्त्री० [अ० इफ़्तारी] वह वस्तु जिसे खाकर रोजा खोला जाता है [को०]।

इफरात—संज्ञा स्त्री० [अ० इफ़रात] अधिकता। ज्यादती। अधिकाई। कसरत। बहुतायत।

इफलास—संज्ञा पुं० [अ० इफ़्लास] मुफलिसी। तंगदस्ती। गरीबी। दरिद्रता। आवश्यकता। उ०—वह इफलास अपना छिपाते हैं गोया। जो दौलत से करते हैं नफरत जियादा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६००।

इफलासी—संज्ञा स्त्री० [अ० इफ़्लासी] दे० 'इफलास'।

इफाकत—संज्ञा पुं० [अ० इफ़ाकत] १. रोगमुक्ति। २ रोग में सुधार होना। स्वास्थ्यलाभ करना [को०]।

इब(५)—अव्य [हिं०] दे० 'अब'। उ०—इब तो मोहि लागी बाई उन निहचल चित लियो चुराई।—दादू० पृ० ४७०।

इबतदा—संज्ञा स्त्री० [अ० इब्तिदह्] दे० 'इब्तिदा'। उ०—जो औव्वल में पैदायश इबतदा, परम आतमा से हुई यह सदा।—कबीर म०, पृ० ३८६।

इबन—संज्ञा पुं० [अ० इब्न] पुत्र। उ० - तेहि के कोख कीन्ह अवतरा। यूसुफ इबन अमीन दुई बारा। - हिंदी प्रेमा०, पृ० २३४।

इबरत—संज्ञा स्त्री० [अ० इब्रत] १ विचित्रता। अद्भुत कार्य। २ चेतावनी। शिक्षा। नसीहत [को०]।

यौ०—इबरतअंगेज = चेतावनी देनेवाला। शिक्षाप्रद। इबरत आमेज = अद्भुत। अद्वितीय। अनोखा।

इबरानी[1]—संज्ञा पुं० [अ० इब्रानी] इब्राहीम नामक पैगंबर के वंशज। यहूदी।

इबरानी[2]—संज्ञा स्त्री० पैलिस्तान देश की प्राचीन भाषा।

इबरानी[3]—वि० यहूद या फिलस्तीन देश का। उस देश से संबंधित।

इबरायनामा—संज्ञा पुं० [फा०] वह पत्र जिसके द्वारा कोई मनुष्य अपने स्वत्व या हक से दस्तबरदार हो। त्यागपत्र।

इबराहीम—संज्ञा पुं० [अ० इब्राहीम] यहूदी जाति के आदि पुरुष जो इस्लाम धर्म के अनुसार एक पैगंबर माने जाते हैं।—उ०—नूह की दसवीं पीढ़ी में इबराहीम उत्पन्न हुआ।—कबीर म०, पृ० ५२।

इबरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [अ० इब्रानी का संक्षिप्त रूप] दे० 'इबरानी'। उ०—इबरी औ अरबी सुर बानी। पारस औ तुरकी मिसरानी।—हिंदी प्रेमा०, पृ० २३३।

इबलीस—संज्ञा पुं० [अ० इब्लीस] शैतान। उ०—खडग दीन्ह उन्ह जाइ कहँ देखि डरै इबलीस।—जायसी ग्रं०, पृ० ३२२।

इबा—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ एक तरह का कंबल। २ बड़ा चोगा [को०]।

इबादत—संज्ञा स्त्री० [अ०] पूजा। आराधना। उ०—उन्हें शौके इबादत भी है और गाने की आदत भी, निकलती हैं दुआएँ उनके मुँह से ठुमरियाँ होकर।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६२२।

यौ०—**इबादतखाना**।

इबादतखाना—संज्ञा पुं० [अ० इबादत + फ़ा० खानह] पूजा करने का स्थान। पूजा गृह। उपासना गृह।

इबारत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ लेख। मजमून। उ०—उसके आसपास फारसी में बहुत सी इबारत लिखी थी।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १३०। २. लेखशैली। वाक्यरचना। उ०—बस इबारत हो चुकी मतलब प आया चाहिए।—कविता कौ०,भा० ४,पृ००००।

यौ०—**इबारत आराई**=आलंकारिक शैली।

इबारती—वि० [अ० इबारत फ़ा० ई (प्रत्य०)] जो इबारत में हो। इबारतसबंधी।

यौ०—**इबारती सवाल**=वह हिसाब जिसमें राशीकृत अंकों के संबंध में कुछ पूछा जाय।

इब्तदा—संज्ञा स्त्री० [अ० इब्तिदह्] आरंभ। शुरुआत। उ०—सच य है इन्सान को यूरुप ने हलका कर दिया। इब्तदा डाढ़ी से की औ इंतहा में मूँछ की।—कविता कौ०, भा० ४, पृ०६२४।

इब्तदाई—वि० [अ० इब्तिदह् + फ़ा० ई (प्रत्य०)] आरंभिक।

इब्तिदा—संज्ञा स्त्री० [अ० इब्तिदह्] १. आरंभ। आदि। शुरू। उ०—इब्तिदा ही में मर गए सब यार। इश्क की कौन इंतहा लाया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १३३। २ जन्म। पैदाइश। ३ निकास। उठान।

इब्न—संज्ञा पुं० [अ०] पुत्र। बेटा। लड़का। उ०—ये फरजंद दो उमर इब्न खत्ताब।—दक्खिनी०, पृ० ३५७।

इब्राहीम—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'इबराहीम'।

इब्राहीमी—संज्ञा पुं० [अ०] एक सिक्का जो इब्राहीम लोदी के वक्त में जारी हुआ था।

इभ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अभी या इभ्या] हाथी। उ०—राधे तेरे रूप की अधिकाइ। इभ टूटत अरु अरुन पगु भए विधना आन बनाइ।—सूर०, १०। २७७६।

इभ[2]—क्रि० वि० [सं० इव] इस प्रकार। ऐसे (डिं०)।

यौ०—**इभ आनन**, **इभानन**=गणेश। **इभकेशर**=नागकेशर। **इभगंधा**=विषैले फलवाला एक पौधा। **इभदंता**=एक प्रकार का पौधा। **इभपोटा**=अल्पवयस्का हथिनी। **इभपोत**=कम वय का हाथी। **इभभर**—हाथियों का झुंड। **इभयुवति**=मादा हाथी। हथिनी।

इभकणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली। गजपीपल।

इभकुंभ—संज्ञा पुं० [सं० इभकुम्भ] हाथी का मस्तक।

इभनिमीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०]१ विदग्धता। चातुर्य। बुद्धिमत्ता। २. भाँग [को०]।

इभपालक—संज्ञा पुं० [सं०] १ महावत। २ हाथी रखनेवाला व्यक्ति [को०]।

इभमाचल —संज्ञा पुं० [सं०] सिंह [को०]।

इभया—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्णक्षीरी का वृक्ष [को०]।

इभाख्य संज्ञा पुं० [सं०] नागकेशर का पौधा [को०]।

इभी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी [को०]।

इभोषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली का पौधा [को०]।

इभ्य[1]—वि० [सं०] १. जिसके पास हाथी हो। २ धनवान्। धनी।

यौ०—**इभ्यपुत्र**= धनीपुत्र। रईसजादा।

इभ्य[2]—संज्ञा पुं० १. राजा। २ हाथीवान। महावत। ३ शत्रु।

इभ्यक—वि० [सं०] संपत्तिशाली। धनी [को०]।

इभ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हथिनी। सलई का पेड़।

इमⓅ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'इमि'। उ०—(क) निधरक भई कढ़ति इम लहिए। सा परकिया लच्छिता कहिए।—नंददास ग्रं०, पृ० १४६। (ख) करत मंगलाचार इम नाशत विघ्न अनंत।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४।

इमकान—संज्ञा पुं० [अ० इम्कान] १ संभावना। २ ताकत। मक-दूर। बस। काबू। जैसे,—हमने अपने इमकान भर कोशिश कर दी।

इमकानात—संज्ञा पुं० [अ० इम्कान का बहु० व०] संभावनाएँ। उ०—मेरे दिमाग के उड़ने के ज्यादा इमकानात हैं।—दक्खिनी०, पृ० ४६१। ताकत। शक्ति (को०)।

इमकानी—वि० [अ० इम्कानी] संभावित [को०]।

इमकोस —संज्ञा पुं० [सं० कोश] तलवार का म्यान।—(डिं०)।

इमचार—संज्ञा पुं० [सं० चर १] गुप्तचर। गुप्त दूत।—(डिं०)।

इमदाद—संज्ञा स्त्री० [अ० मदद का बहु व०] मदद। सहायता। उ०—दाग कोताही न कर यह वक्त है इमदाद का—शेर०, भा० १, पृ० ६६६।

इमदादी—वि० [अ० इमदाद] १ मदद पानेवाला। जैसे,—इमदादी मदरसा=वह मदरसा जिसे सरकार से कुछ द्रव्य की सहायता मिलती हो। २ इमदाद या सहायता के रूप में प्राप्त होनेवाला।

इमन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ईमन'। उ०—मीड़ मधुरतम विधुर इमन की।—गीतगुंज, पृ० ६२।

इमरती—संज्ञा स्त्री० [सं० अमृत] एक मिठाई।

विशेष—उर्द की फेंटी हुई महीन पीठी और चौरंठे को तीन चार तह कपड़े में, जिसके बीच एक छोटा सा छेद रहता है, रखकर खौलते हुए घी की तई में घुमा घुमाकर टपकाते हैं, जिससे कंगन के आकार की बत्तियाँ बनती जाती हैं। घी में तल लेने पर इनको चीनी के शीरे में डुबाते हैं।

इमरतीदार—वि० [हिं० इमरती + फा० दार (प्रत्य०)] जिसमे इमरती की भाँति गोल गोल घेरे या वल पडे हो। जैसे,—इमरतीदार कगन।

इमरित(पु)—संज्ञा पुं० [स० अमृत दे० 'अमृत']। उ०—लडिका वाका महा हरामी इमरित मे विष घोरै।—पलटू०, भा० ३,पृ०५४।

इमला—संज्ञा पुं० [अ० इमलाह्] १ वर्तनी। शुद्ध लिखावट। २ वताई हुई इवारत को सही लिखना [को०]।

यौ०—इमलानवीस = वर्तनी के अनुसार या शुद्ध लिखनेवाला।

इमलाक—संज्ञा स्त्री० [अ० मुल्क का बहु० व०] सपत्ति। जायदाद [को०]।

इमली—संज्ञा स्त्री० [स० अम्ल + हिं० ई (प्रत्य०)] १. एक वडा पेड जिसकी पत्तियाँ वहुत छोटी छोटी होती हैं और सदा हरी रहती है। इसमे लवी लवी फलियाँ लगती हैं जिनके ऊपर पतला पर कडा छिलका होता है। छिलके के भीतर खट्टा गूदा होता है जो पकने पर लाल और कुछ मीठा हो जाता है। २ इस पेड़ की फली।

मुहा०—इमली घोंटना = विवाह के समय लडके या लडकी का मामा उसको आम्रपल्लव दाँत से खोटाता है और यथाशक्ति कुछ दक्षिणा भी वाँटता है। इसी रीति को 'इमली घोटना' कहते हैं।

इमसाक—संज्ञा पुं० [अ० इम्साक] १ रुकावट। २. आकर्षण। खिचाव। ३. कजूसी [को०]।

इमसाल—संज्ञा पुं० [फा० इम्साल] इस वर्ष [को०]।

इमाम—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० इमामी] १ अगुआ। २. पुरोहित। मुसलमानो के धार्मिक कृत्य करानेवाला मनुष्य। ३ अली के वेटो की उपाधि। ४ मुसलमानो की तसवीह या माला का सुमेर।

इमामजिस्ता—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इमामदस्ता'। उ०—यह तन कीजै इमामजिस्ता खमीर सवै करि डारिया रे।—स० दरिया०, पृ० ६६।

इमामत—संज्ञा स्त्री० [अ०] इमाम का पद। पेशवाई [को०]।

इमामदस्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० हावन + दस्तह्] एक प्रकार का लोहे या पीतल का खल वट्टा।

इमामा—संज्ञा पुं० [अ० अम्मामह्] एक प्रकार की वडी पगडी। अमामा।

इमामवाडा—संज्ञा पुं० [अ० इमाम + फा० वारह, हिं० वाडा] वह हाता जिसमे शीया लोग ताजिया रखते और उसे दफन करते है।

इमारत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ वडा और पक्का मकान। २ वैभव। शानशौकत। उ०—आप मे हिंदोस्तानी इमारत पूरे तौर पर मौजूद है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६१।

इमारती—वि० [फा०] मकान का। मकान से सवधित। जैसे,—इमारती सामान।

इमि(पु)—क्रि० वि० [स० एवम्] इस प्रकार। इस तरह। ऐसे। उ०—होहि प्रेम वस लोग इमि राम जहाँ जहँ जाहि।—मानस, २। १२१।

इमोशन—संज्ञा पुं० [अ०] १. संवेग (मनोवै०)। २ भाव। मनोविकार। उ०—अँगरेजी मे भाव को इमोशन और फारसी मे जजवा कहते हैं।—रस क०, पृ० ३६।

इम्तहान—संज्ञा पुं० [अ०] परीक्षा। जाँच। 'इम्तिहान'। उ०—साफ कव इम्तहान लेते हैं। वह तो दम दे के जान लेते हैं।—शेर०, भा० १, पृ० ६७२।

इम्तिनाई—वि० [अ०] रोक लगानेवाला [को०]।

इम्तिनाय—संज्ञा पुं० [अ०] निषेध। रोक मनाही [को०]।

इम्तियाज—संज्ञा पुं० [अ० इम्तियाज़] १. भेद। अतर। २ विवेक। गुण दोष की पहचान। उ०—देख इकवार चश्म अपना करके वाज। गर तुजे किस वात का है इम्तियाज।—दक्खिनी०, पृ० २०४।

इम्तिहान—संज्ञा पुं० [अ०] १ दे० 'इम्तहान'। २ परख (को०)।

इम्पीरियल—वि० [अ०] साम्राज्य या सम्राट् सवंधी। राजकीय। शाही। जैसे,—इम्पीरियल सर्विस = राजकीय नौकरी।

इम्पीरियलगवर्नमेंट—संज्ञा स्त्री० [अ०] साम्राज्य सरकार। वडी सरकार। जैसे,—भारत में अग्रेजी सरकार को भी इपीरियल गवर्नमेंट अर्थात् वडी सरकार कहते थे।

इम्पीरियलप्रेफरेन्स—संज्ञा पुं० [अ० इम्पीरिल प्रेफरेंस] साम्राज्य की वस्तुओ पर उसके अधीनस्थ देश मे इस प्रकार आयात निर्यातकर वैठाने की नीति जिससे वह दूसरे देशो के मुकावले मे सस्ता माल वेच सके। साम्राज्य की वनी वस्तुओ को प्रशस्तता देना।

इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स—संज्ञा स्त्री० [अ०] अग्रेजी शासनकाल मे वह सेना जो भारत के देशी रजवाड़े भारत सरकार के सहायतार्थ अपने यहाँ रखते थे और जिसकी देखभाल ब्रिटिश अफसर करते थे। आपत्काल में सरकार इस सेना से काम लेती थी।

इम्पोर्ट—संज्ञा पुं० [अ०] पुं० 'आयात'। जैसे,—इम्पोर्ट ड्यूटी = आयातकर।

इम्रित(पु)—संज्ञा पुं० [स० अमृत] दे० 'अमृत'।

इयत्—वि० [स०] इतने विस्तारवाला। इतना वडा [को०]।

इयत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीमा। हद। परिमिति। उ०—तूने अपने ज्ञान की इयत्ता का खूव अच्छा प्रमाण दिया।—कालिदास, पृ० ६७।

इयार(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यार'। उ०—जग मे जीवन थोरा थोरा वो इयार जी।—स० दरिया, पृ० १६८।

इरखा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईर्षा'। उ०—सौतिन्ह कर इरखा नहि करना। साईं सग सदा जिय डरना।—चित्रा०, पृ०२२४।

इरखाना(पु)—क्रि० अ० [स० ईर्ष्या] ईर्ष्या करना। डाह करना। उ०—उनीदति अलसाति सोवत सधीर चौंकि चाहि चित अमित सगर्व इरखानि है।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १४१।

इरण—संज्ञा पुं० [स०] मरुभूमि। मरुस्थल [को०]।

इरम्मद[1]—वि० [स०] १ पीने मे रुचि रखनेवाला। २ अग्नि का विशेषण [को०]।

इरम्मद[2]—संज्ञा पुं० १. मेघज्योति। विद्युत। २. वडवाग्नि [को०]।

इरशाद—संज्ञा पुं० [अ० इर्शाद] दे० 'इर्शाद'। उ०—देखते ही मुझे मह्फिल

मे यह इरशाद हुआ, कौन बैठा है उसे लोग उठाते भी नहीं।—शेर०, भा० १, पृ० ६७७।

इरषा⑤—सज्ञा स्त्री० [स० ईर्ष्या] दे० 'ईर्ष्या'। उ०—इद्र देखि इरषा मन लायो। करि कै क्रोध न जल बरसायो।—सूर०,५ २।

इरषित⑤—वि० [स० ईर्षित] दे० 'ईर्षित'।

इरसाल—सज्ञा पुं० [अ० इर्साल] १ प्रेषण। २. उपहार। भेंट।

इरसी—सज्ञा स्त्री० [देश०] पहिए की धुरी।

इरा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कश्यप की वह स्त्री जिससे वृहस्पति या उद्भिज उत्पन्न हुए। २ भूमि। पृथ्वी। ३. वाणी। वाचा। ४ जल। ५ अन्न। ६ मदिरा। शराब।

यौ०—इराक्षीर=क्षीरसागर। इराचर=(१) ओला। करक। (२) जलचर। (३) भूमि मे उत्पन्न।

इराज—सज्ञा पुं० [सं०] कामदेव [को०]।

इराक—सज्ञा पुं० [अ०] पश्चिम एशिया का एक देश।

इराकी[1]—वि० [अ०] इराक देश का।

इराकी[2]—सज्ञा पुं० १ घोड़ो की एक जाति। उ०—सुमडे घुमडे उमडे इराकी।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८०। २. इराक देश का निवासी।

इरादतन—अ० [अ०] इरादा करके। विचारपूर्वक। जानबूझकर [को०]।

इरादा—सज्ञा पुं० [अ० इरादह्] विचार। सकल्प। उ०—बदली जो उनकी आँखें, इरादा बदल गया।—बेला, पृ०, ८३।

इरावत[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक पर्वत का नाम। २ एक सर्प का नाम। ३ अर्जुन का एक पुत्र जो नागकन्या उलूपी से उत्पन्न हुआ था। इसका नाम बभ्रुवाहन था। ४. समुद्र। ५. मेघ।

इरावत्[2]—वि० तृप्तिदायक। सुखद [को०]।

इरावती—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कश्यप ऋषि की भद्रमदा नाम की पत्नी से उत्पन्न कन्या, जिसका पुत्र ऐरावत नामक महागज हुआ। २ ब्रह्म देश की एक नदी। ३ पटपत्री। पथरचट।

इरिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [को०]।

इरिण—सज्ञा स्त्री० [स०] ऊसर। ईरिण [को०]।

इरिमेद—सज्ञा पुं० [सं०] अरिमेदे। विट्खदिर [को०]।

इरिविल्ला, इरिवेल्लिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] सनिपात से उत्पन्न सिर की फुसी।

इरिषा⑤—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईर्ष्या'। उ०—जहँ प्रीतम को करत है कपट अनादर बाल। कछु इरिषा कछु मद लिए सो विव्वोक रसाल।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १४८।

इरेश—सज्ञा पुं० [स०] १. विष्णु। २ गणेश। ३. वरुण। ४. ब्राह्मण। ५. सम्राट् [को०]।

इर्गड—सज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० इर्गला] दे० 'अर्गल'।

इर्तकाब—सज्ञा पुं० [अ० इर्तिकाब] १ पार करना। २. कोई अपराध करना।

यौ०—इर्तकाबेजुर्म=अपराध करना।

इर्द गिर्द—क्रि० वि० [अनु० इर्द+फ़ा० गिर्द] १. चारो ओर। चारो तरफ। २. आसपास। इधर उधर। अगल बगल।

इर्वारु, इर्वालु[1]—वि० [स०] हिंसक [को०]।

इर्वारु, इर्वालु[2]—सज्ञा पुं० एक प्रकार की ककडी [को०]।

यौ०—इर्वारुशुक्तिका=एक प्रकार का खरबूजा।

इर्वारुक—सज्ञा पुं० [स०] माँद के अतर्गत रहनेवाला जानवर [को०]।

इर्शाद—सज्ञा पुं० [अ०] १. आज्ञा। हुक्म। उ०—यूँ आँख उनकी फरके इशारा पलट गई। गोया कि लब से होके कुछ इर्शाद रह गया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ०, ५४८। २ पथप्रदर्शन।

इर्षना⑤—सज्ञा स्त्री० [स० एषणा] प्रबल इच्छा। उ०—छूटी त्रिविध इर्षना गाढी। एक लालसा उर अति बाढी।—तुलसी (शब्द०)।

इल[1]—सज्ञा पुं० [स०] कर्दम प्रजापति के एक पुत्र का नाम जो वाह्लीक देश का राजा था।

इल[2]—सज्ञा स्त्री० [स० इला] पृथिवी। धरती। उ०—राक्षस हनि दाढे इल गह काढे सो थिर माडे निज सेनम्।—राम० धर्म०, पृ० १७६।

इलजाम—सज्ञा पुं० [अ० इल्जाम] १. दोष। कलक। अपराध। उ०—मैं इलजाम उनको देता था कुसूर अपना निकल आया।—शेर०, भा० १, पृ० ४७७। २ अभियोग। दोषारोपण। उ०—चुप रहेंगे हया से वे कब तक, गुस्सा इलजाम से तो आएगा।—शेर०, भा० १, पृ० ६६०।

क्रि० प्र०—लगाना।—देना।

इलता—सज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का बाँस जो दक्षिण भारत के मैदानो और पहाडो मे होता है। उसमे बहुत बडे बडे फूल और फल लगते है। इसके छोटे छोटे कल्लो से बहुत अच्छा कागज बनता है।

इलम⑤—सज्ञा पु० [अ० इल्म] दे० 'इल्म'। उ०—दादू अलिफ एक अल्ला का जे पढि जाणै कोई। कुरान कतेबां इलम सब पढि करि पूरा होई।—दादू०, पृ० ४७।

इलमास—सज्ञा पु० [अ०] १ हीरा। २ शीशा [को०]।

इलय—वि० [स०] गतिविहीन [को०]।

इलव—सज्ञा पुं० [स०] १ हलवाहा। २. गरीब आदमी। ३ किसान। कर्षक।

इलविला—सज्ञा स्त्री० [स०] १. विश्रवा की स्त्री, तृणबिंदु की कन्या और कुबेर की माता का नाम। २ पुलस्त्य की स्त्री।

इलहाक—सज्ञा पुं० [अ० इल्हाक़] १ सबध। मिलना। संयोजन। २ किसी वस्तु को किसी दूसरी वस्तु के साथ मिला देने का कार्य।

इलहाकदार—सज्ञा पु० [अ० इल्हाक़+फा० दार] वह मनुष्य जिसके साथ बदोबस्त के वक्त मालगुजारी अदा करने का इकरारनामा हो। नवरदार या लवरदार।

इलहाम—सज्ञा पुं० [अ० इल्हाम] ईश्वर का शब्द। देववाणी। ईश्वरीय प्रेरणा। आत्मा की आवाज। आत्मिक दृष्टि।

इलहामी—वि० [अ० इल्हामी] जिसको इलहाम हुआ हो। ईश्वर द्वारा प्रेरित। अतरात्मा मे स्फुरित ज्ञान से सबद्ध। [को०]।

यौ०—इलहामी किताब=ईश्वरीय प्रेरणा से रचित पुस्तक। धर्मग्रंथ।

इला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी। २ पार्वती। ३ सरस्वती। वाणी। ४. बुद्धिमती स्त्री। ५ गौ। धेनु। ६ वैवस्वत मनु की कन्या जो बुध को ब्याही थी और जिससे पुरूरवा उत्पन्न हुआ था। इडा। ७ राजा इक्ष्वाकु की एक कन्या का नाम। ८ कर्दम प्रजापति का एक पुत्र जो पार्वती के शाप से स्त्री हो गया था। ९. एक की संख्या।

इलाका—संज्ञा पुं० [अ० इलाकह्] १ संबंध। लगाव। उ०—कँधी कछू राखै रकापति सों इलाका मारी भूमि की सलाका कै पताका पुन्यगान की।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २६२। २ एक से अधिक मौजे की जमींदारी। राज्य। रियासत। उ०—इद दानपत्र युधिष्ठिर के संवत् १११ का है जो इलाका मैसूर में मिला है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० १३५।

यौ०—इलाकेदार।

इलाचा—संज्ञा पुं० [देश०] एक कपड़ा जो रेशम और सूत मिलाकर बुना जाता है।

इलाज—संज्ञा पुं० [अ०] १ दवा। औषध। २. चिकित्सा। ३ निवारण का उपाय, युक्ति या तदबीर। उ०—उदर भरन के कारनै प्रानी करत इलाज।—प० सप्तक, पृ० ३३०।

इलादा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलहदा'। उ० शब्द पद बचा सुनाता है भेद सबसे इलादा है। संत तुलसी०, पृ० ३६।

इलापत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम।

इलाम(पु)—संज्ञा पुं० [अ० ऐलान] १ इत्तलानामा। २. हुक्म। आज्ञा। उ०—ठान्यो न सलाम, मान्यो साहि को इलाम, धूमधाम कै न मान्यो रामसिंह हू को बरजा।—भूषण ग्रं०, पृ० ५८।

इलायची—संज्ञा स्त्री० [सं० एला+ची, फा० 'च' (प्रत्य०)] एक सदाबहार पेड़ जिसकी शाखाएँ खड़ी और चार से आठ फुट तक ऊँची होती हैं। यह दक्षिण में कनारा, मैसूर, कुर्ग तिरुवांकुर और मदुरा आदि स्थानों के पहाड़ी जंगलों में आप से आप होता है। यह दक्षिण में लगाया भी बहुत जाता है।

विशेष—इलायची के दो भेद होते हैं, सफेद (छोटी) और काली (बड़ी)। सफेद इलायची दक्षिण में होती है और काली इलायची या बड़ी इलायची नैपाल में होती है, जिसे बँगला इलायची भी कहते हैं। बड़ी इलायची तरकारी आदि तथा नमकीन भोजनों के मसालों में दी जाती है। छोटी इलायची मीठी चीजों में पड़ती है और पान के साथ खाई जाती है। सफेद या छोटी इलायची के भी दो भेद होते हैं—मलाबार की छोटी और मैसूर की बड़ी। मलाबारी इलायची की पत्तियाँ मैसूर इलायची से छोटी होती हैं और उनकी दूसरी ओर सफेद सफेद बारीक रोई होती है। इसका फल गोलाई लिये होता है। मैसूर इलायची की पत्तियाँ मलाबारी से बड़ी होती हैं और उनमें रोई नहीं होती। इसके लिये तर और छायादार जमीन चाहिए, जहाँ से पानी बहुत दूर न हो। यह कुहरा और समुद्र की ठंडी हवा पाकर खूब बढ़ती है। इसे धूप और पानी दोनों से बचाना पड़ता है। क्वार कार्तिक में यह बोई जाती है अर्थात् इसकी बेहन डाली जाती है। १७-१८ महीने में जब पौधे चार फुट के हो जाते हैं, तब उन्हें खोदकर सुपारी के पेड़ों के नीचे लगा देते हैं और पत्ती की खाद देते रहते हैं। लगाने के एक ही वर्ष के भीतर यह चैत बैसाख में फूलने लगता है और असाढ़ सावन तक उसमें ढोंढी लगती है। क्वार कार्तिक में फल तैयार हो जाता है और इसके गुच्छे या घौद तोड़ लिए जाते हैं और दो तीन दिन सुखाकर फलों को मलकर अलग कर लेते हैं। एक पेड़ में पाव भर लगभग इलायची निकलती है। इसका पेड़ १० या १२ वर्ष तक रहता है। कुर्ग से इलायची गुजरात होकर और प्रांतों में जाती थी, इसी से इसे गुजराती इलायची भी कहते हैं।

यौ०—इलायची डोरा = इलायची की ढोंढी।

इलायचीदाना—संज्ञा पुं० [हिं० इलायची + फा० दाना] १. इलायची का बीया या दाना। २ एक प्रकार की मिठाई। चीनी पागा हुआ इलायची या पोस्ते का दाना।

इलायची पंडू—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली फल।

इलावर्त(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'इलावृत्त'।

इलावृत, इलावृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] जंबू द्वीप के नौ खंडों में से एक।

विशेष—भागवत के अनुसार यह सुमेरु पर्वत को घेरे हुए है। इसके उत्तर में नील, दक्षिण में निषध पश्चिम में माल्यवान् और पूर्व में गंधमादन पर्वत है।

इलाही¹—संज्ञा पुं० [अ०] ईश्वर। परमेश्वर। परमात्मा। भगवान्। खुदा। उ०—यह रंग कौन रंगे तेरे सिवा इलाही।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३१३।

इलाही²—वि० ईश्वरसंबंधी। ईश्वरीय। जैसे,—कजाए इलाही। उ०—कौन को कलेऊ धौं करैया भयो काल अरु कापै धौं परैया भयो गजब इलाही है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २२८।

इलाहीखर्च—संज्ञा पुं० [अ० इलाही + फा० खर्च] फजूल खर्च। अधिक खर्च। बेहिसाब खर्च। अपव्यय।

इलाहीगज—संज्ञा पुं० [अ० इलाही + फा० गज] अकबर का चलाया हुआ एक प्रकार का गज जो ४१ अंगुल (३३¾ इंच) का होता है और जो अब तक इमारत आदि नापने के काम में आता है।

इलाहीमुहर¹—वि० [अ० इलाही + फा० मुहर] ज्यों का त्यों। अछूता। खालिस।

इलाहीमुहर²—संज्ञा स्त्री० अमानत। धरोहर। न्यास।

इलाहीरात—संज्ञा स्त्री० [अ०] रतजगे की रात।

इलाहीसन्—संज्ञा पुं० [अ० इलाही + हिं० रात] अकबर बादशाह का चलाया एक सन् या संवत्।

इलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी [को०]।

इली—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी तलवार। कटार [को०]।

इलीश, इलीष—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलसा मछली।

इलेक्ट्रिक—वि० [अ०] बिजली संबंधी। बिजली का।

यौ०—इलेक्ट्रिक पावर = बिजली की शक्ति। इलेक्ट्रिक लाइट = बिजली की रोशनी।

इलेक्ट्रिकल—वि० [अ०] बिजली संबंधी [को०]।

इलेक्ट्रीसिटी—संज्ञा स्त्री० [अ०] बिजली। विद्युत् [को०]।

इलेक्ट्रो¹—संज्ञा पुं० [अ०] बिजली द्वारा तैयार किया हुआ। इलेक्ट्रिक का। जैसे,—इलेक्ट्रो टाइप, इलेक्ट्रो प्रेस।

इलेक्ट्रो[२]—संज्ञा पुं० तसवीर आदि का वह ठप्पा या ब्लाक जो बिजली की सहायता से तैयार किया गया हो।

यौ०—**इलेक्ट्रो टाइप** = बिजली द्वारा किया जानेवाला अंकन या खुदाई का कार्य। **इलेक्ट्रोपेथी** = बिजली के तरंगसंचार द्वारा किसी रोग की चिकित्सा करने की प्रक्रिया।

इलेक्ट्रोन—संज्ञा पुं० [अं०] परमाणु (ऐटम) का अवयव जो उसके नाभिक (न्यूक्लियस) का चक्कर लगाता रहता है और जिसमें विद्युत् का ऋणावेश होता है।

इल्जाम—संज्ञा पुं० [अ० इल्ज़ाम] आरोप। दोषारोपण। उ०—इल्जाम यह रखा है खिलवत में कहा होता।—शेर०, भा० १, पृ० ६६५।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

इल्तजा—संज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिजह्] दे० 'इल्तिजा'। उ०—कहीं वह आके मिटा दे न इन्तजार का लुत्फ। कहीं कबूल न हो जाय इल्तजा मेरी।—शेर०, भा० १, पृ० ५४५।

इल्तमास—संज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिमास] अनुरोध। प्रार्थना। उ०—(क) सुबह तक शमा सर को धुनती रही। क्या पतंगे ने इल्तमास किया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १७२। (ख) मेरी आप से यही इल्तमास है कि आप उसकी वजारत कबूल करें।—मान०, भा० १, पृ० १८७।

इल्तिजा—संज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिजह्] १ निवेदन। प्रार्थना। २ मिन्नत। खुशामद।

क्रि० प्र०—करना।

इल्तिफात—संज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिफात] १ कृपा। दया। २ ध्यान देना [को०]।

इल्तिबास—संज्ञा पुं० [अ०] समानता। सादृश्य [को०]।

इल्तिवा—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० मुल्तवी] किसी कार्य के लिये स्थिर समय का टल जाना। तारीख टलना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अदालती कार्रवाइयों में अधिक होता है।

इल्म—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० इल्मी] विद्या। ज्ञान। जानकारी। उ०—इल्म और दौलत जहाँ से मिले हासिल करनी चाहिए।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १२४।

यौ०—**इल्मेअदब** = साहित्यशास्त्र। **इल्मेइलाही** = ब्रह्मविद्या, अध्यात्म। **इल्मेगैब** = परोक्षविज्ञान। **इल्मेनुजूम** = ज्योतिष विज्ञान।

इल्लत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ रोग। बीमारी। २ बाधा। झंझट। जैसे,—बुरी इल्लत पीछे लगी। ३ लत। व्यसन। उ०—पापों के बढ़ते दिल टूटें इल्लत की महज लतें छूटें।—बेला, पृ० ७९। ४ दोष। अपराध। जैसे,—वह किस इल्लत में गिरफ्तार हुआ था।

मुहा०—इल्लत पालना = बुरी आदत डाल लेना।

यौ०—**इल्लत आफताब** = कमल रोग। **इल्लत फाइली** = निमित्त कारण। **इल्लत माद्दी** = उपादान कारण।

इल्लल—संज्ञा पुं० [सं०] एक पक्षी [को०]।

इल्ला[१]—संज्ञा पुं० [सं० कील] छोटी कड़ी फुंसी जो चमड़े के ऊपर निकलती है। यह मसे के समान होती है।

इल्ला[२]—अव्य० [अ० इल्लह्] किंतु। लेकिन। पर। उ०—इल्ला, अब जब कि हम दोनों एक तीसरे की रिआया हैं"'। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८९।

इल्लिश, इल्लिस—संज्ञा पुं० [सं०] इलीश। हिलसा मछली [को०]।

इल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० इल्लिका] चींटी आदि के बच्चों का वह पहला रूप जो अंडे से निकलने के उपरांत तुरंत होता है।

इल्वल—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक दैत्य या असुर का नाम।

विशेष—इसका एक नाम आतापि भी था। यह अपने छोटे भाई वातापि को भेड़ा बनाकर ब्राह्मणों को खिला देता और फिर उसका नाम लेकर बुलाता था। तब वह ब्राह्मण का पेट फाड़कर निकल आता था। इन दोनों को अगस्त्य मुनि खाकर पचा गए थे।

२ ईल या बाम मछली।

इल्वला—संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र के सिर पर रहनेवाले पाँच तारों का समूह।

इव—अव्य० [सं०] उपमावाचक शब्द। समान। नाईं। तरह। सदृश। तुल्य। जैसे। उ०—निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपै अवा इव उर अधिकाई।—मानस १। ५८।

इवापोरेशन—संज्ञा पुं० [अं० इवैपोरेशन] गरमी पाकर किसी पदार्थ का भाप के रूप में परिवर्तित होना। भाप बनकर उड़ना। वाष्पन। वाष्पीभवन। वाष्पीकरण। उच्छोषण।

इशरत—संज्ञा स्त्री० [अ०] सुख। चैन। आराम। भोग विलास। उ०—फिर वह चर्चे हों फिर वही बातें। दिन हों इशरत के, ऐश की रातें।—शेर०, भा० १ पृ० ३७७।

यौ०—ऐश व इशरत।

इशरती—वि० [अ० इशरत + ई (प्रत्य०)] आरामतलब। विलासी। उ०—इशरती घर की मुहब्बत का मजा भूल गए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६३३।

इशा—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ संध्या। २ रात। ३ रात की नमाज [को०]।

इशारत—संज्ञा स्त्री० [अ०] इशारा। संकेत। उ०—न मुझसे बोला न की इशारत न दी तसल्ली न कुछ सँभाला।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३२५।

इशारा—संज्ञा पुं० [अ० इशारह्] १ सैन। संकेत। चेष्टा। उ०—यूँ आँख उनकी करके इशारा पलट गई। गोया कि लब से होके कुछ इर्शाद रह गया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५४८। २. संक्षिप्त कथन। उ०—जो इशारे में काम हो सकता तो मुझको इतने बढ़ाकर कहने में क्या लाभ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २७२। ३ बारीक सहारा। सूक्ष्म आधार। जैसे,—एक लकड़ी के इशारे पर यह संदूक ऊपर टिका है। ४ गुप्त प्रेरणा। जैसे,—इन्हीं के इशारे से उसने यह काम किया।

यौ०—इशारेबाजी = इशारा करना।

इशारात—संज्ञा पुं० इशारा का बहुवचन दे० 'इशारा'। उ०—क्या बात कोई उस बुते ऐयार की समझे। बोले है जो हमसे तो इशारात कहीं और।—कविता कौ० भा० ४, पृ० २२३।

इशिका, इशीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'इषीका'।

इश्क—संज्ञा पुं० [अ० इश्क़] [वि० आशिक, माशूक] मुहब्बत। चाह।

प्रेम। लगन। अनुराग। आसक्ति। उ०—गम बहुत दुनिया मे है पर इश्क का गम और है। है इसी आलम मे लेकिन उनका आलम और है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २२८।

यौ०—इश्कमजाजी = लौकिक प्रेम। वासनायुक्त प्रेम। इश्कहकीकी = आध्यात्मिक प्रेम। ईश्वर के प्रति प्रेम।

इश्कबाज—वि० [फा० इश्कबाज़] इश्क करनेवाला। प्रेमी। [को०]।

इश्कबाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० इश्क़+फा० बाजी] प्रेम के चक्कर मे पड़ना। उ०—इश्कबाजी बाजिए शतरज है। चाल नादाँ रह गया दाना चला।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५१४।

इश्कपेचाँ—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की बेल जिसकी पत्तियाँ सूत की तरह बारीक होती हैं और जिसमे लाल फूल लगते हैं। उ०—(क) दरख्तो को सुखाता है लपटना इश्कपेचाँ का।—कविता कौ०,भा० ४,पृ० ३६४। (ख) अत मे जब वो इश्कपेचे की बेल पर जाकर बैठा तब मुझे उसके पकड़ने का समय मिला।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६२।

इश्किया—वि० [अ० इश्किय्यह्] प्रेमसबधी। शृगारिक।

इश्तहार—संज्ञा पुं० [अ०] विज्ञापन। नोटिस। जाहिरात। एलान। उ०—शहरो शहरो मुल्को मुल्को मे उन्हीं का इश्तहार।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १४१।

इश्तहारी—वि० [अ०] विज्ञापित। जिसके लिये नोटिस या सूचना निकाली गई हो [को०]।

इश्तियाक—संज्ञा पुं० [अ० इश्तियाक़] १ शौक। २. इच्छा। अभिलाषा [को०]।

इश्तियाल—संज्ञा पुं० [अ०] १ दे० 'इश्तियालक'। २ भड़काना। उत्तेजित करना। ३ लौ। लपट [को०]।

इश्तियालक—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ वह सीक जो बत्ती बढाने के लिये दीपक मे पड़ी रहती है। टहलवी। २ बढ़ावा उत्तेजना।

क्रि० प्र०—देना।

इश्तिराक—संज्ञा पुं० [अ०] शिरकत। साझेदारी [को०]।

इश्तिहा—संज्ञा स्त्री० [अ० इश्तिहह] १. चाह। अभिलाषा। २ बुभुक्षा। भूख [को०]।

इष—संज्ञा पुं० [स०] १ क्वार का महीना। आश्विन। २ बलवान् व्यक्ति।

इषण, इषणा(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० एषणा] प्रबल इच्छा। कामना। ख्वाहिश। वासना।

इषणि—संज्ञा स्त्री० [स०] १ भेजना। २ अभिलाषा [को०]।

इषराया—संज्ञा स्त्री० [स०] उत्कट अभिलाषा। प्रबल इच्छा [को०]।

इषना(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० इषणा] दे० 'इषणा'।

इषव्य—वि० [स०] बाणविद्या मे निपुण [को०]।

इषित—वि० [स०] १ चलाया हुआ। २. प्रेषित। ३ उत्तेजित। प्रेरित। ४ तीव्र। प्रचंड [को०]।

इषीका—संज्ञा स्त्री० [स०] १ गाँडर या मूँज के बीच की सीक जिसके ऊपर जीरा या भूआ होता है। २ बाण। तीर। ३. हाथी की आँख का डेला।

इषु—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाण। तीर। २. क्षेत्रगणित मे वृत्त के अतर्गत जीवा के मध्यबिंदु से परिधि तक खीची हुई सीधी रेखा। दे० 'शर'। ३ पाँच की सख्या।

इषुकार—संज्ञा पुं० [स०] बाण बनाने का काम करनेवाला हो [को०]।

इषुधर—संज्ञा पुं० [सं०] बाण चलानेवाला व्यक्ति। धनुर्धर [को०]।

इषुधि—संज्ञा पुं० [सं०] तूण। तूणीर। तरकश।

इषुधी—संज्ञा पुं० [सं० इषुधि] दे० 'इषुधि'। उ०—नेकु जही दुचितो चित कीन्हो। शूर बडी इषुधी धनु दीन्हो।—केशव (शब्द०)।

इषुध्या—संज्ञा स्त्री० [स०] गिड़गिड़ाना। निवेदन करना [को०]।

इषुपथ—संज्ञा पुं० [सं०] बाण की मार। बाण की पहुँच [को०]।

इषुपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार का पौधा [को०]।

इषुमात्र—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष के बराबर लबा एक माप जो लगभग तीन फुट का होता है।

इषुमान[1]—वि० [स० इषुमत<इषुमान्] बाण चलानेवाला। तीरदाज। उ०—तब इषुमान प्रधान चलेउ इषुमान ज्ञानवर। देवश्रवा सतान समर पर सान मान हर।—गोपाल (शब्द०)।

इषुमान[2]—संज्ञा पुं० वसुदेव का भाई। देवश्रवा का पुत्र।

इषूपल—संज्ञा पुं० [सं०] किले के फाटक पर रखी जानेवाली एक प्रकार की तोप जिसमे ककड पत्थर डालकर छोड़े जाते थे।

इष्ट[1]—वि० [स०] १ अभिलषित। चाहा हुआ। वाछित। जैसे,—(क) परिश्रम मे इष्ट फल की प्राप्ति होती है। (ख) हमे वहाँ जाना इष्ट नही है। २ अभिप्रेत। जैसे,—ग्र थकार का इष्ट यह नही है। ३ पूजित। ४ अनुकूल। ५ प्रिय।

यौ०—इष्टदेव।

इष्ट[2]—संज्ञा पुं० १. अग्निहोत्रादि शुभ कर्म। इष्टापूर्त। धर्मकार्य। २. वह देवता जिसकी पूजा से कामना सिद्ध होती है। इष्टदेव। कुलदेव। ३ अधिकार। वश। जैसे,—उसको देवी का इष्ट है। ४. मित्र। दोस्त।

यौ०—इष्टमित्र।

५. पति। ६ रेंड का पेड़। ७ ईंट।

इष्टका—संज्ञा स्त्री० [स०] १ ईंट। यज्ञकुड बनाने की ईंट।

इष्टकाचित—वि० [स०] ईंटो द्वारा निर्मित [को०]।

इष्टकाचिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईंटो की पक्तिबद्ध जोड़ाई। उ०—इस स्तूप की इष्टकाचिति अपने ढग की अनूठी है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३०६।

इष्टकान्यास—संज्ञा पुं० [स०] शिलान्यास। नीव रखना [को०]।

इष्टकापथ—संज्ञा पुं० [स०] १ सुगंधित घास की जड़। २ ईंट द्वारा निर्मित मार्ग [को०]।

इष्टकाल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष मे किसी घटना के घटित होने का ठीक समय।

इष्टगध—संज्ञा पुं० [स० इष्टगन्ध] १ सुगधित वस्तु। २. सिकता। बालू [को०]।

इष्टजन—संज्ञा पुं० [स०] प्रिय व्यक्ति [को०]।

इष्टता—संज्ञा स्त्री० [स०] मित्रता। मिताई। दोस्ती।

इष्टदेव—संज्ञा पुं० [सं०] आराध्यदेव। पूज्यदेवता। वह देवता जिनकी पूजा से कामना सिद्ध होती हो। कुलदेवता। उ०—लहै बडाई देवता इष्टदेव जब होइ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२६।

इष्टदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'इष्टदेव'।

इष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रिया। प्रेमिका [को०]।

इष्टापत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वादी के कथन मे प्रतिवादी की दिखाई हुई ऐसी आपत्ति जो उक्त कथन में किसी प्रकार का व्याघात या अंतर न डाल सके और जिसे अनुकूल होने से वादी स्वीकार कर ले। जैसे, वादी ने कहा—जीव ब्रह्म है। प्रतिवादी ने कहा—तो ब्रह्म भी जगत की झूठी कल्पना करके झूठा हुआ। वादी—हाँ, इससे क्या हानि।

इष्टापूर्त—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्र करना, कुआँ, तालाब खुदाना, बगीचा लगवाना आदि शुभ कर्म।

विशेष—वेद का पठनपाठन, अतिथिसत्कार और अग्निहोत्र इष्ट कहलाते हैं, और कुआँ, तालाब खुदाना, देवमंदिर बनवाना, बगीचा लगाना आदि कर्म इष्टापूर्त कहलाते हैं। बडे बडे यज्ञों के बंद होने पर इष्टापूर्त का प्रचार अधिकता से हुआ है।

इष्टापूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १ 'इष्टापूर्त'। २ काम्य या वांछित की सिद्धि या उपलब्धि।

इष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ इच्छा। अभिलाषा। २ व्याकरण मे भाष्यकार की वह सम्मति जिसके विषय मे सूत्रकार ने कुछ न लिखा हो। व्याकरण का वह नियम जो सूत्र और वार्तिक में न हो। ३ यज्ञ। ४ हवि। ५ प्राप्ति तथा सिद्धि के निमित्त होनेवाला प्रयत्न। ६ निवेदन। ७ निमंत्रण (को०)।

इष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'इष्टका' [को०]।

इष्टिपच—संज्ञा पुं० [सं०] १ कृपण। कंजूस। २ असुर [को०]।

इष्टिपशु—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में बलि दिया जानेवाला पशु [को०]।

इष्टी(पु)—वि० [सं० इष्टिन्] इष्टसिद्धि करनेवाला। उ०—इष्टी सर्वंगी वहु मिलै हिरमी मिलै अनत।—संतवाणी०, भा० १, पृ० १२८।

इष्टु—संज्ञा स्त्री० [सं०] इच्छा। अभिलाषा [को०]।

इष्म[1]—वि० [सं०] इच्छुक [को०]।

इष्म[2]—संज्ञा पुं० १. कामदेव। २ वसंत ऋतु। ३ गमन [को०]।

इष्य—संज्ञा पुं० [सं०] वसंत ऋतु।

इष्व—संज्ञा पुं० [सं०] अध्यात्म की शिक्षा देनेवाला गुरु [को०]।

इष्वनीक—संज्ञा पुं० [सं०] वाण की अनी। तीर की नोक [को०]।

इष्वसन—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष [को०]।

इष्वस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'इष्वसन' [को०]।

इष्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १. वाण चलाना। २ धनुष। ३ धनुर्धर। ४ योद्धा [को०]।

इस—सर्व० [सं० एष] सर्वनाम 'यह' शब्द का विभक्ति के पहले आदिष्ट रूप जो समय, स्थान आदि के अनुसार समीपस्थ, प्रसंग के अनुसार प्रस्तुत और उल्लेख के अनुसार कुछ ही पहले प्रयुक्त होता है।

विशेष—जब 'यह' शब्द मे विभक्ति लगानी होती है, तब उसे 'इस' कर देते है। जैसे,—इसने, इसको, इससे, इसमे।

इसकंदर—संज्ञा पुं० [यू० इस्कंदर] सिकंदर बादशाह। अलेक्जेंडर। उ०—नग अमोल अस पाँचो मान समुँद वह दीन्ह। इसकंदर नहि पाई जोरे समुँद जस लीन।—जायसी (शब्द०)।

इसक(पु)—संज्ञा पुं० [अ० इश्क] दे० 'इश्क'। उ०—याकी करि करि जतन अति अतन तपन अति ताप। गजब हियँ समझ्यो न तब अजब इसक संताप।—स० सप्तक, पृ० ३७७।

इसतरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री, हिं० इस्त्री] दे० 'स्त्री'। उ०—नारि पुरुष की इसतरी पुरुष नारि का पूत।—संतवाणी०, भा० १, पृ० ५६।

इसनान(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० स्नान, हिं० असनान] दे० 'स्नान'। उ०—बार बार स्नान जेऊ गंगा इसनान करै न कुबेव देव होन न नजान है।—सुंदर ग्रं० (जी०) भा० १, पृ० १०८।

इसपंज—संज्ञा पुं० [अ० स्पंज] समुद्र मे एक प्रकार के अत्यंत छोटे कीडो के योग से बना हुआ मुलायम रुई की तरह का सजीव पिंड जिसमे बहुत से छेद होते हैं, जिनमे से होकर पानी आता है। मुर्दा बादल। अब्रे मुर्दा।

विशेष—इसपंज भिन्न भिन्न आकार के होते हैं। इनकी सृष्टि दो प्रकार से होती है—एक तो सविभाग द्वारा और दूसरे रजकीट और वीर्यकीट के संयोग से। इसकी बादामी रंग की, रुई के समान मुलायम ठठरी जिसमे बहुत से छेद होते हैं, बाजारो में इसपंज के नाम से बिकती है। इसमे पानी सोखने की बडी शक्ति होती है, इसी से लडके इससे स्लेट पोछते और डाक्टर लोग घाव पर का खून आदि सुखाते हैं। पानी सोखने पर यह खूब मुलायम होकर फूल जाता है।

इसपात—संज्ञा पुं० [सं० अयस्पत्र अथवा पुर्त० स्पेडा] एक प्रकार का कार्बन मिश्रित कडा लोहा। फौलाद।

इसपिरिट—संज्ञा स्त्री० [अ० स्पिरिट] १ किसी प्रकार का सत। २. एक प्रकार का खालिस शराब।

इसपेशल[1]—वि० [अ० स्पेशल] विशेष। खास।

इसपेशल[2]—स्त्री० नियत समयो पर चलनेवाली सवारी गाडी (रेल, मोटर आदि) के अतिरिक्त विशेष गाडी जो किसी विशेष अवसर पर या किसी विशेष व्यक्ति की यात्रा के लिये छोडी जाती है।

इसबगोल—संज्ञा पुं० [फा० इस्पगोल, इस्पगोल] चिकित्सा कार्य मे प्रयुक्त एक झाडी या पौधा।

विशेष—यह फारस मे बहुत होता है। पंजाब और सिंध में भी इसकी झाडियाँ लगाई जाती हैं। इसमे तिल के आकार के बीज लगते हैं जो भूरे और गुलाबी होते हैं। यूनानी चिकित्सा मे इसका व्यवहार अधिक है। यह शीतल, बद्धकारक और रक्तातिसारनाशक है। यह बवासीर, नकसीर आदि रक्तस्राव की बीमारियो मे बहुत फायदा करता है। अतिसार और सूजाक मे भी दिया जाता है।

इसम(पु)—संज्ञा पुं० [अ० इस्म] दे० 'इस्म'। उ०—पुप्रासफ इसम ग्रँगाली हमेशा।—दक्खिनी०, पृ० ११८।

इसमाईल—संज्ञा पुं० [इब०] १. इब्राहीम का बेटा जो हाजिरा

नाम्नी दासी से उत्पन्न हुआ था। २ सावर तंत्र मे एक योगी का नाम जिसकी आन प्राय मत्रो मे दी जाती है।

इसमाईली—संज्ञा पुं०[इव ०] शीया मुसलमानो की एक शाखा [को०]।

इसर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ईश्वर'।

इसराईल—संज्ञा पुं० [इव०] याकूब। पैगंवर का नाम। २ यहूदी। ३ एक देश का नाम।

इसराईली[1]—संज्ञा पुं० [इव०] याकूब के वंशज। यहूदी [को०]।

इसराईली[2]—संज्ञा स्त्री० इस्रायल की भाषा।

इसराईली[3]—वि० इसरायल देश सबधी।

इसराज—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का सारंगी की तरह का वाजा। उ०—इधर परदादी चपाकली ने इसराज सँभालकर पीलू का रियाज करना आरभ किया।—शरावी, पृ० १७।

इसराफ—संज्ञा पुं० [अ० इसराफ] फजूलखर्ची। अपव्यय [को०]।

इसरफील—संज्ञा पुं० [इव० इसराफील] उस फरिश्ते का नाम जो कयामत के दिन दो वार सुर फूँकेगा। पहली वार जीवित प्राणी मृत हो जायँगे और दूसरी वार सभी मृत जीवित हो जायँगे [को०]।

इसरार—संज्ञा पुं० [अ०] १ हठ। जिद। आग्रह। अनुरोध। उ०—तव वह इनकार और इसरार के लिए क्या बाकी छोडती हैं।—प्रेमघन, भा० २, पृ० २६२। २ सारंगी की तरह का एक वाजा।

इसरी(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'ईश्वरीय'।

इसलाम—संज्ञा पुं० [अ० इस्लाम] [वि० इसलामिया] मुसलमानी धर्म। मुहम्मद साहव का चलाया हुआ धर्म।

क्रि० प्र०—(कवूल) करना।

इसलामी—वि० [अ०] इसलामसबधी।

इसलाह—संज्ञा पुं० [अ० इस्लाह] सशोधन। दुरुस्त करना।

इसवर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईश्वर] दे० 'ईश्वर'। उ०—इसवर सीय सेस चढे रथ ऊपर।—रघु०, पृ० १०६।

इसहाक—संज्ञा पुं० [अ० इस्हाक] इसलाम धर्म के एक पैगंवर।

इसा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'ऐसा'। उ०—अडिग इसा है मेरु ज्यो डोलै न डुलाया।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ५१२।

इसाई—वि० [हिं०] दे० 'ईसाई'।

इसान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईशान] दे० 'ईशान'। उ०—हिमवान कहेउ इसान महिमा अगम निगम न जानई।—तुलसी ग्र०, पृ० ३९।

इसारत(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० इशारत] सकेत। इशारा। उ०—मुख सो न कह्यो कछू हाथ की इसारत सो गारी दै दै आपसी किवारी दोऊ दै गई।—रघुनाथ (शब्द०)।

इसिम—संज्ञा पुं० [अ० इस्म] दे० 'इस्म'। उ०—सत सिपाहिक पूत इसिम मे दाग न लागै।—पलटू०, पृ० ३४।

इसी—सर्व० [हिं०इस+ही वा ई (प्रत्य०)] 'इस' शब्द पर जोर देने के लिये यह रूप वनाता है।

इसीका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इषीका] दे० इषीका'।

इसे—सर्व० [सं० एष] 'यह' का कर्मकारक और सप्रदानकारक रूप।

इसै(पु)—वि० [सं० इदृश] इस प्रकार। ऐसा।

इसौ(पु)—वि० [हिं० ऐसा]। ऐसा। इस प्रकार।

इस्क—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इश्क'। उ०—तब इनको राग रंग को इस्क लग्यो।—दो सौ वावन०, भा० १, पृ० २८८।

इस्कात—संज्ञा पुं० [अ० इस्कात] गिरना। पतन। २ गर्भपात। हमल गिरना।

इस्कूल(पु)†—संज्ञा पुं० [अं० स्कूल] दे० 'स्कूल'। उ०—कथा कहानी सिखन हित इस्कूलन मे जाहि।—प्रेमघन०, भा० १ पृ० १८०।

इस्ट[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० इष्ट] दे० 'इष्ट'। उ०—प्राय घरै घर औरही वयण इस्ट दे वीन।—वाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ५७।

इस्ट[2]—संज्ञा पुं० [अं०] पूर्व दिशा।

इस्टाम†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'स्टांप'। उ०—या मेरे अल्लाह, अव मैं क्यो कर कहूँ। इस्टाम के कागज पर लिख दूँ, मुहर कर दूँ?—सैर०, पृ० ३०।

इस्टेशन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'स्टेशन' उ०—इस्टेशन से केवल दै ही कोस दूर पर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ८।

इस्तगी—संज्ञा स्त्री० [अं० स्ट्रिंग] जहाजो मे वह रस्सी जो घिर्री में लगी होती है और जिससे पाल के किनारे आदि ताने और खींचे जाते हैं।

क्रि० प्र०—चांपना।

इस्तकवाल—संज्ञा पुं० [अ० इस्तिकवाल] स्वागत। अगवानी। उ०—चमन मे सुन खवर आने की इस्तकवाल को चलियाँ।—कविता० कौ०, भा० ४, पृ० ४३।

इस्तखारा—संज्ञा पुं० [अ० इस्तिखारह्] दैवी सहायता चाहना। ईश्वर से मगलकामना करना। उ०—यहाँ नालो से मिलता है पियारा। अवस देखैं है जाहिद इस्तखारा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३९।

इस्तमरारी—वि० [अ० इस्तिमरारी] सव दिन रहनेवाला। जिसमे कुछ अदल वदल न हो। नित्य। अविच्छिन्न।

यौ०—इस्तमरारी वदोवस्त=जमीन का वह वदोवस्त जिसमे मालगुजारी सदा के लिये मुकर्रर कर दी जाती है। यह वदोवस्त लार्ड कार्नवालिस ने उत्तर प्रदेश के कुछ भागो मे किया था।

इस्तरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'स्त्री'। उ०—देखो हम दो टोपी दिए। मर्द इस्तरी उनमे जिए।—कविता कौ०, भा४,पृ० ९५।

इस्तिजा—संज्ञा पुं० [अ० इस्तिंजह] पेशाव करने के वाद मिट्टी के ढेले मे इंद्रिय मे लगी हुई पेशाव की बूँदो को सुखाने की क्रिया जो मुसलमानो में प्रचलित है। उ०—खडे होकर इस्तिजा मत करो।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ९१।

मुहा०—इस्तिजे का ढेला=अनाहूत व्यक्ति। तुच्छ मनुष्य। इस्तिजा लड़ना=अत्यत मित्रता होना। दाँतकाटी रोटी होना। इस्तिजा लड़ाना=अत्यत मित्रता करना।

इस्तिकलाल सज्ञा पुं० [अ०इस्तिकलाल] दृढता। मजवूती। सकल्प की दृढता [को०]।

इस्तिगासा—संज्ञा पुं० [इस्तिगासह्] न्याय के निमित्त किया गया निवेदन। नालिश। फौजदारी का दावा [को०]।

इस्तिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तरी (=तह करनेवाली) स्तृ] धोवी का

वह औजार जिससे वह धोने और सुखाने के बाद कपड़े की तह को जमाकर उसकी शिकन मिटाता है। इसके नीचे का भाग जो कपड़े पर रगड़ा जाता है, पीतल या लोहे का होता है। उसके ऊपर एक खोखला (हवादार) स्थान होता है, जिसमें कोयले के अंगारे भरे जाते हैं।

इस्तिलाह—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ परस्पर संधि करना। २ परिभाषा सिद्ध अर्थ। पारिभाषिक शब्दावली [को०]।

इस्तिस्नाय—संज्ञा पुं० [अ०] १ पृथक् करना। अलग रखना। २ अपवाद होना [को०]।

इस्तिहकाम—संज्ञा पुं० [अ०] दृढता। स्थिरता। पायदारी [को०]।

इस्तीफा—संज्ञा पुं० [अ० इस्तीफ़ा] नौकरी छोड़ने की दरख्वास्त। काम छोड़ने का प्रार्थनापत्र। त्यागपत्र।

क्रि० प्र०—देना।

इस्तेदाद—संज्ञा स्त्री० [अ०] विद्या की योग्यता। लियाकत। विद्वत्ता।

इस्तेमाल—संज्ञा पुं० [अ०] प्रयोग। उपयोग। व्यवहार।

क्रि० प्र० - करना। —में आना।—में लाना।—होना।

इस्त्रि, इस्त्री(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'स्त्री'। उ०—(क) वार वरग जो लिंग के भाषा में नहीं होइ। स्त्री पुंस नपुंसकहि इस्त्रि नपुंसक जोइ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५४४। (ख) वर वृक्ष को इस्त्री भाँवरि देति है।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० १५७।

इस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तरी, हिं० इस्तिरी] दे० 'इस्तरी'।

इस्त्रीजित(पु)—वि० [सं० स्त्रीजित्] स्त्रियों का गुलाम। स्त्रीभक्त। उ०—कोउ कहै ये परम धर्म इस्त्रीजित पूरे। लछ लाघव सधान धरें आयुध के सूरे।—नंद० ग्रं०, पृ० १८१।

इस्थिर(पु)—वि० [सं० स्थिर] दे० 'स्थिर'। उ०—(क) कहै कबीर सुनो भाई साधो करो इस्थिर मन ध्यान।—कबीर श०, भा० ३, पृ० २०। (ख) बूढा बारा ज्वान नहीं है कोई इस्थिर।—पलटू०, भा० १, पृ० ५४।

इस्नान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'स्नान'। उ०—क्या जप क्या तप संयमो क्या व्रत क्या इस्नान।—कबीर ग्रं०, पृ० ३२६।

इस्पंज—संज्ञा पुं० [हिं० इसपंज] दे० 'इसपंज'।

इस्पंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] राई।

मुहा०—इस्पंद करना = बुरी नजर दूर करने के लिये राई जलाना।

इस्पीच—संज्ञा स्त्री० [अं० स्पीच] वक्तृता। भाषण। लेक्चर। उ०—करनी कछु नहिं देत जग सिच्छा की इस्पीच।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६१।

इस्म—संज्ञा पुं० [अ०] नाम। संज्ञा।

यौ०—इस्मनवीसी = (१) गवाहों की सूची। (२) किसी गवाही, नौकरी या जगह के लिये नामजद करने का कार्य। ३ पटवारी की जगह के लिये जमींदार का किसी व्यक्ति का नाम चुनना।

इस्लाम—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इसलाम'। उ०—बुतपरस्ती को तो इस्लाम नहीं कहते हैं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १२८।

इस्लोक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'श्लोक'। उ०—कथा औ कवित इस्लोक रसरी बटैं बकैं बहु बाय मुख मूढ़ मारी।—कबीर रे०, भा० ३, पृ० ५।

इस्सर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ईश्वर'। उ०—(क) आइ परा गुरुनाथ गोसाईं। पंथ बीच इस्सर की नाईं।—इंद्रा०, पृ० १५५। (ख) इस्सर पैठें दरिद्दर निकसें।—(लोक०)।

इह[१]—क्रि० वि० [सं०] इस जगह। इस लोक में। इस काल में। यहाँ।

इह[२]—संज्ञा पुं० यह संसार। यह लोक। उ०—हृदय के जगते उ निवेदित इह के निवासी।—हरी घास०, पृ० १६।

यौ०—इहामुत्र।

इह[३]—सर्व० [हिं०] दे० 'यह'। उ०—ते मर छाँडन अवनन माँही। पुरुषराव इह पौरुष नाहीं।—नंद ग्रं०, पृ० १३५।

इहइ—सर्व० [हिं० यह + ही] दे० 'यही'।

इहकाल—संज्ञा पुं० [सं०] इस लोक का जीवन। लौकिक जीवन [को०]।

इहतिमाम—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'एहतमाम' [को०]।

इहतिमाल—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० इहतिमाली] १ संभावना। २. संदेह [को०]।

इहतियाज—संज्ञा पुं० [अ०] १ अभाव। आवश्यकता। २ अवसर।

इहतियात—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ सावधानी। खबरदारी। उ०—दिल के तईं गिरह से कभी खोलती नहीं। है जुल्फ को भी अपने परेशाँ की इहतियात।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १६१। २. रक्षा। बचाव। उ०—दागों की अपने क्यों न करे 'दर्द' परवरिश। हर बागबाँ करे है गुलिस्ताँ की इहतियात।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १६१।

यौ०—इहतियाती कार्रवाई = अनिष्ट को रोकने के लिये किया जानेवाला प्रयास।

इहतियातन्—क्रि० वि० [अ०] सावधानीपूर्वक [को०]।

इहतिलाम—संज्ञा पुं० [अ०] स्वप्नदोष [को०]।

इहलीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] इस लोक का जीवन तथा उससे संबद्ध समस्त क्रियाकलाप [को०]।

इहलोक—संज्ञा पुं० [सं०] यह संसार। जगत्। दुनिया। उ०—किंतु वह शीघ्र ही इहलोक में आने के लिये विवश हुआ।—रंगभूमि, पृ० ४७३।

इहलौकिक—वि० [सं०] इहलोकसंबंधी। इस लोक का। सांसारिक। २ इस लोक में सुख देनेवाला।

इहवाँ†—क्रि० वि० [सं० इह] इस जगह। यहाँ।

इहवैं†—क्रि० वि० [सं० इह] यहीं। इसी स्थान पर।

इहसान†—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'एहसान'।

इहाँ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'यहाँ'। उ०—कहहु करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया।—मानस, २। ३३।

इहामुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] यह लोक और परलोक। उ०—स्वर्गादिक की करिय न इच्छा इहामुत्र त्यागी सुख दोइ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४०।

इहामृग—संज्ञा पुं० [सं० ईहामृग] दे० 'ईहामृग'।

इहि(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'यह'। उ०—कहन लगे इहि भवन कौन के।—नंद० ग्रं०, पृ० २१४। २ दे० 'इस'। उ०—तिहुँ काल मैं प्रगट प्रभु प्रगट न इहि कलिकाल।—नंद० ग्रं०, पृ० १४३।

इहै(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'यही'। उ०—धरनी धन धाम सरीर भलो सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०७।

क्रि० प्र०—लगाना।

ईंदर†—सज्ञा पुं० [देश०] आठ दस दिन की ब्याई हुई गाय के दूध को औटाकर बनाई हुई एक प्रकार की मिठाई। प्योसी। ईन्नर।

ईंधन—सज्ञा पुं० [स० इन्धन] १. जलाने की लकडी, कोयला, कडा आदि। जलावन। जरवनी। उ०—बिघ न ईंधन पाइए सायर जुरे न नीर। परे उपास कुबेर घर जो विपच्छ रघुबीर।—तुलसी (शब्द०)। २ किसी यंत्र को गतिशील करने के लिये उसमे दी जानेवाली सामग्री या पदार्थ, जैसे—तेल, पेट्रोल, कोयला आदि। ३ ऐसी बात जो क्रुद्ध व्यक्ति को और अधिक उत्तेजित करने मे सहायक हो।

ई¹—सज्ञा स्त्री० [स०] लक्ष्मी।

ई²(पु)—सर्व० [सं० ई = निकट का सकेत] यह। उ०—(क) कहहिं कबीर पुकारि कै ई लेऊ व्यवहार। एक राम नाम जाने विना भव बूडि मुआ ससार।—कबीर (शब्द०)। (ख) विरल रसिक जन ई रस जान।—विद्यापति०, पृ० ३०८।

ई³—अव्य० [सं० हिं०] जोर देने का शब्द। ही। उ०—पत्रा ही तिथि पाइए वा घर के चहुँ पास। नित प्रति पून्यो ई रहै आनन ओप उजास।—बिहारी (शब्द०)।

ई⁴—सज्ञा पुं० [स०] कामदेव [को०]।

ईकार—सज्ञा पुं० [सं०] 'ई' स्वर अथवा दीर्घ ई का सूचक वर्ण [को०]।

ईकारांत—वि० [सं० ईकारान्त] (शब्द०) जिसके अंत में 'ई' हो। वह शब्द जिसके अंत मे ईकार हो।

ईख(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० इक्षु] दे० 'ईख'। उ०—मयो सरकरा ईख रस व्यापि मिठाई माहिं। सुदर ब्रह्म सु जगत है, जगत ब्रह्म ह्वै नाहिं।—सुदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८०२।

ईक्षक—सज्ञा पुं० [सं०] १ देखनेवाला। दर्शक। २ विचार या विमर्श करनेवाला [को०]।

ईक्षण—सज्ञा पुं० [स०] [वि० ईक्षणीय, ईक्षित, ईक्ष्य] १ दर्शन। देखना। २ आँख। उ०—पंकज के ईक्षण शरद हँसी।—बेला, पृ० २२। ३ दो (२) की सख्या का सूचक शब्द (को०)। ४. विवेचन। विचार। जाँच।

विशेष—इसमे अनु, नि, परि, प्रति, अभि, अप, उप, या सम् उपसर्ग लगाकर अन्वीक्षण, निरीक्षण,परीक्षण, प्रतीक्षण, अभीक्षण, अपेक्षण, उपेक्षण, समीक्षण आदि शब्द बनाए जाते हैं।

ईक्षणिक, ईक्षणीक—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईक्षणिका] १ दैवज्ञ। ज्योतिषी। २. सामुद्रिक जाननेवाला।

ईक्षा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दृष्टि। दर्शन। २. विवेचन। ३. आत्मज्ञान [को०]।

विशेष—इसमे परि, अप, सम, उप, प्र, वि आदि लगाकर परीक्षा, समीक्षा, अपेक्षा, उपेक्षा, वीक्षा आदि शब्द बनाए जाते हैं।

ईक्षिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] देखने की इंद्रिय। आँख। दृष्टि [को०]।

ईक्षित—वि० [स०] १ दृष्ट। देखा हुआ। २. विवेचित [को०]।

ईक्षिता—वि० [ईक्षितृ] देखनेवाला [को०]।

ईख—सज्ञा स्त्री० [सं० इक्षु, प्रा० इक्खु] शर जाति का एक प्रकार जिसके डठल में मीठा रस भरा रहता है। इसके रस से गुड़ चीनी और मिस्री आदि बनती है। डठल मे ६-६ या ७-७ अगुल पर गाँठें होती हैं और सिरे पर बहुत लंबी लंबी पत्तियाँ होती हैं, जिन्हें गेंडा कहते हैं।

विशेष—भारतवर्ष मे इसकी बुआई चैत वैसाख मे होती है कार्तिक तक यह पक जाती है, अर्थात् इसका रस मीठा हो जाता है और कटने लगती है। डठलों को कोल्हू मे पेरकर रस निकालते हैं। रस को छानकर कडाहे मे औटाते हैं। जब र पककर सूख जाता है तब गुड कहलाता है। यदि गाढ़ा न हुआ तो औटाते समय कडाहे मे रेंडी की गूदी का पुट देते हैं जिससे रस फट जाता है और ठढा होने पर उसमे कलमे व रवे पड जाते हैं। इसी राब से जूसी या चोटा दूर करके खाँड बनाते हैं। खाँड और गुड गला कर चीनी बनाते हैं।

ईख के तीन प्रधान भेद माने गए हैं। ऊख, गन्ना और पौंढा। (क) ऊख—इसका डंठल पतला, छोटा और कडा होता है। इसका कडा छिलका कुछ हरापन लिये हुए पीला होता है और जल्दी छीला नहीं जा सकता। इसकी पत्तियाँ पतली, छोटी, नरम और गहरे हरे रग की होती है। इसकी गाँठो मे उतनी जटाएँ नही होती, केवल नीचे दो तीन गाँठो तक होती हैं। इसकी आँखें, जिनसे पत्तियाँ निकलती हैं, दबी हुई होती हैं। इसके प्रधान भेद धौल, मतना, कुसवार, लखडा,सरौती आदि हैं। गुड चीनी आदि बनाने के लिये अधिकतर इसी की खेती होती है। (ख) गन्ना—यह ऊख से मोटा और लंबा होता है। इसकी पत्तियाँ ऊख से कुछ अधिक लंबी और चौडी होती हैं। इसका छिलका कडा होता है, पर छीलने से जल्दी उतर जाता है। इसकी गाँठो मे जटाएँ अधिक होती हैं। इसके कई भेद हैं, जैसे,—अगौल, दिकचन, पसाही, काला गन्ना, केतारा, बडौखा, तका, गोडारा। इससे जो चीनी बनती है उसका रग साफ नही होता। (ग) पौंढा—यह विदेशी है। चीन, मारिशस (मिरच का टापू), सिंगापुर इत्यादि से इसकी भिन्न भिन्न जातियाँ आई हैं इसका डठल मोटा और गूदा नरम होता है। छिलका कडा होता है और छीलने से बहुत जल्दी उतर जाता है। यह यहाँ अधिकतर रस चूसने के काम मे आता है। इसके मुख्य भेद थून, काला गन्ना और पौंढा है। राजनिघंटु मे ईख के इतने भेद लिखे हैं—पौंड्रक (पौंढा) भीरुक, वंशक (बडौखा), शतपोरक (सरौती), कातार (केतारा), तापसेक्षु, काष्ठेक्षु (लखडा), सूचिपत्रक, नैपाल, दीर्घपत्र, नीलपोर (काला गेंडा), कोशकृत (कुशवार या कुसियार)।

ईखत(पु)—वि० [स० ईषत्] दे० 'ईषत्'।—नद० ग्रं०, पृ० १००।

ईखना(पु)—क्रि० स० [सं०, ईक्षण प्रा० इक्खण] देखना। अवलोकना।—(डिं०)।

ईखराज—सज्ञा पुं० [हिं० ईख + राज] ईख बोने का प्रथम दिन।

ईच्छा—सज्ञा स्त्री० [स० इच्छा] दे० 'इच्छा'। उ०—जो प्रभुन की ईच्छा भई सो सही।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २२९।

ईछन(पु)—सज्ञा पुं० [स० ईक्षण = आँख, प्रा० *ईच्छन] आँख। उ०—दृगनु लगत बेधत हियहिं, बिकल करत अँग आन। ये तेरे सबतें बिषम ईछन तीछन बान।—बिहारी र०, दो० ३४९।

ईछना(पु)—क्रि० स० [स० इच्छ] इच्छा करना। चाहना। उ०—बाहिर भीतर भीतर बाहिर ज्यौं कोउ जानै त्यौं ही करि ईछो। जैसो ही आपुनो भाव है सुदर तैसोहि है दृग खालि कै बीछो।—सुदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५७७।

ईछा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'इच्छा'। उ०—बिसरी सबहि जुद्ध कै ईछा।—मानस, ६।४६।

ईछी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'इच्छा'। उ०—नेप भये विष, भावे न भूपण भोजन को कुछ हू नहि ईछी।—देव (शब्द०)।

ईजति(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० इज्जत] दे० 'इज्जत'। उ०—हिंदुवान द्रुपदी की ईजति बचैवे काज झपटि बिराटपुर बाहर प्रमान कै।—भूषण ग्र०, पृ० ९६।

ईजा—संज्ञा स्त्री० [अ० इजह्] दुख। तकलीफ। पीडा। कष्ट। उ०—जस मनसा तस आगे आवै, कहै कबीर ईजा नहि पावै।—कबीर सा०, पृ० ४४४।

क्रि० प्र०—देना।—पहुँचना।—पहुँचाना।

ईजाद—संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी नई चीज का बनाना। नया निर्माण। आविष्कार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ईजान—वि० [सं०] १ यज्ञ करनेवाला। यजमान। २ यज्ञ करानेवाला [को०]।

ईठ(पु)—वि०, संज्ञा पुं० [सं० इष्ट, प्रा० इट्ठ] १ जिसे चाहें। प्रिय। मित्र। सखा। उ०—(क) यार दोस्त बोले जा ईठ।—खुसरो (शब्द०)। (ख) ज्यों क्यो हू न मिलै कहूँ केशव दोऊ ईठ।—केशव (शब्द०)। (ग) करै निरादर ईठ को निज गुमान गहि बाम।—पद्माकर ग्र० पृ० १७७। २ चेष्टा। यत्न। उ०—केशव कैसहुँ ईठन दीठि ह्वै दीठ परे रति ईठ कन्हाई।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ४६।

ईठना(पु)—क्रि० अ० [सं० इष्ट+हिं० ना (प्रत्य०)] चाह करना। इच्छा करना।

ईठा(पु)—वि० [सं० इष्ट] अभिलषित। उ०—नानक वारवां हारु अनत सुख ईठा।—प्राण०, पृ० १४५।

ईठि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इष्टि, प्रा० इट्ठि] १ मित्रता। दोस्ती, प्रीति। उ०—चहि सूनें घर कर गहत दिठादिठी की ईठि। गडी सु चित नाही करति करि ललचौंही दीठि।—बिहारी र०, दो० ५८२। २ चेष्टा। यत्न। उ०—सखियाँ कहैं सु साँच है लगत कान्ह की डीठि। कालि जु मो तन तकि रह्यो उमरयो आजु सो ईठि।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ७। ३ सखी। उ०—लोनें मुहुँ दीठि न लगै, यों कहि दीनो ईठि। दूनी ह्वै लागन लगी, दिऐं दिठौना दीठि।—बिहारी र०, दो० २७।

ईठी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ भाला। बरछा। २. दड।

ईठी[2]—वि० [सं० इष्ट] प्यारी।

ईठी(पु)[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० इष्टि] प्रीति। उ०—लागें न वार मृनाल के तार ज्यों टूटैंगी लाल हमें तुम्हें ईठी।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० २५।

ईठोदाडू(पु)†—सं० पुं० [हिं० ईठी+दड] चौगान खेलने का डडा।

ईडन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रशंसा करना। प्रशसना [को०]।

ईड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० ईडा=स्तुति] [वि० ईडित, ईड्यत] स्तुति। प्रशसा। उ०—(क) कीन्हि विडोजा ईडि जिमि बार बार सिर नाय। कहूँ अभय वर दीन्ह हरि पठयो त्यहि समुझाय।—लल्लू (शब्द०)। (ख) रति मांगी तुमते करि ईडा। पारथ करहु सग मम क्रीडा।—सबल (शब्द०)।

ईडित—वि० [सं० ईडित] जिसकी स्तुति की गई हो। प्रशसित। उ०—तीनें अस्त्र अनेक हाथ गिरजा, लीन्हे महा ईडितै।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २६२।

ईडुरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'इडुरी'।

ईड्य—वि० [सं०] पूज्य। स्तुति के योग्य।—प्रशसित। उ०—अहो ईड्य नव घन तन स्याम। तडिदिव पीन बसन अभिराम।—नद० ग्र०, पृ० २६८।

ईढ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इष्ट प्रा० इट्ट अथवा सं० हठ > प्रा० *पढ, *अढ *ईढ़] [वि० ईढ़ी] जिद। हठ। उ०—बोलिये न झूठ ईढ मूढ पै न कीजई। दीजयै जो वित्ताहाय भूलिहूँ न लीजई।—केशव (शब्द०)।

ईत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ईति] दे० 'ईति'। उ०—ईत तणो नह भीत अगजी मान दुजा मन मेर।—रघु० रू०, पृ० ६२।

ईतर[1](पु)—वि० [हिं० इतराना] इतरानेवाला। ढीठ। शोख। गुस्ताख। उ०—गई नद घर कौं सबै, जसुमति तहँ भीतर। देखि महरि कौं कहि उठी सुत कीन्हौ ईतर।—सूर०, १।१।२१०४।

ईतर[2]—वि० [सं० इतर] निम्न श्रेणी का। साधारण। नीच। उ०—कोटि विलास कटाच्छ कलोल बढ़ावैं हुलासन प्रीतम हीतर। यो मनि यामैं अनूपम रूप जो मैनका मैन वधू कही ईतर।—सूर०, १०।१४८६।

ईतरता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इतरता] भेदभाव। अन्यत्व। परायापन। भिन्नता। उ०—ईहा और ईरषा भानौं। ईतरता कबहूँ नहि आनौं।—सुदर० ग्र० भा० १, पृ० २१६।

ईति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खेती को हानि पहुँचानेवाले उपद्रव। ये छह प्रकार के हैं—(क) अतिवृष्टि। (ख) अनावृष्टि। (ग) टिड्डी पडना। (घ) चूहे लगना। (च) पक्षियों की अधिकता। (छ) दूसरे राजा की चढाई। उ०—दसरथ राज न ईति भय नहि दुख दुरित दुकाल। प्रमुदित प्रजा प्रसन्न सब सब सुख सदा सुकाल।—तुलसी ग्र०, पृ० ६८। २ बाधा। उ०—अब राखे नाहिनै ब्रजनीति। सखि बिनु मिलै तो ना बनि ऐहै कठिन कुराज राज की ईति।—सूर (शब्द०)। ३. पीडा। दुख। उ०—बारुनी ओर की वायु बहै यह सीत की ईति है बीस बिसा मै। राति बडी जुग सी न सिराति रह्यो हिम पूरि दिशा बिदिशा मै।—गोकुल (शब्द०)।

ईतिभय—संज्ञा पुं० [सं० ईति+भय] ईति नामक विपत्ति की आशका।

ईथर—संज्ञा पुं० [अं०] १ एक प्रकार का अति सूक्ष्म और लचीला द्रव्य या पदार्थ जो समस्त शून्य स्थल मे व्याप्त है। यह अत्यंत घन पदार्थो के परमाणु के बीच मे भी व्याप्त रहता है। उष्णता और प्रकाश का सचार इसी के द्वारा होता है। २. एक रासायनिक द्रव पदार्थ जो अलकोहल और गधक के तेजाब से बनता है।

विशेष—बोतल मे अलकोहल और गधक का तेजाब बराबर मात्रा में मिलाकर भरते हैं। फिर आँच द्वारा उसे दूसरी बोतल मे

टपका लेते हैं, जो ईथर कहलाता है। यह बहुत शीघ्र जलनेवाला पदार्थ है। खुला रखा रहने से यह बहुत जल्द उड जाता है और बहुत शीत पैदा करता है, इसलिये बरफ जमाने मे काम आता है। रासायनिक क्रियाओ मे इससे बडे बडे कार्य होते हैं। सूँघने से यह थोडी बेहोशी पैदा करता है तथा क्लोरोफार्म की जगह भी काम मे लाया जाता है। यह जरमनी में बहुत ज्यादा बनता है।

ईद१— सज्ञा स्त्री० [अ०] मुसलमानो का एक त्योहार। रमजान महीने मे तीस दिन रोजा (व्रत) रखने के बाद जिस दिन दूज का चाँद दिखाई पडता है, उसके दूसरे दिन यह त्योहार मनाया जाता है। उ०- ईद और नौरोज है सब दल के साथ। दिल नहीं हाजिरा तो दुनियाँ है उजाड।-शेर०, भा० १, पृ०७३१।

मुहा०-ईद का चाँद = दुर्लभ। कम दृष्टिगोचर वस्तु या व्यक्ति। ईद का चाँद होना = बहुत कम दीख पडना। ईद मनाना = प्रसन्नता व्यक्त करना।

ईद२(पु)—सज्ञा पु० [स० ईन्दु] चद्रमा। इदु। उ०—हौं दरोग जो कहौं ईद उग्गमे कुहू निसि।—पृ० रा०, ६४। २०४४।

ईदगा(पु)—सज्ञा स्त्री० [फा० ईदगाह] दे० 'ईदगाह'। उ०—वडी मसीत ईदगावाली।—रा० रू०, पृ० २८४।

ईदगाह सज्ञा स्त्री० [अ० ईद + फा० गाह] वह स्थान जहाँ मुसलमान ईद के दिन इकट्ठे होकर नमाज पढते हैं।

ईदिया— सज्ञा पु० [अ० ईदियह्] दे० 'ईदी' [को०]।

ईदी – सज्ञा स्त्री० [अ०] १ त्योहार के दिन दी हुई सौगात या तोहफा। २ किसी त्योहार की प्रशंसा से बनाई हुई कविता जो मौलवी लोग उस त्योहार के दिन अपने शिष्यो को देते हैं। ३ वह वेलबूटेदार कागज जिसपर यह कविता लिखकर दी जाती है। ४ वह दक्षिणा जो इस कविता के उपलक्ष्य मे मौलवियो को शिष्य देते हैं। ५ नौकरो या लडको को त्योहार के खर्च के लिये दिया हुआ रुपया पैसा। (मुसलमान)।

ईदुज्जुहा—सज्ञा स्त्री० [अ० ईदुज्जुहह्] मुसलमानो का एक मुख्य त्योहार जिसमे भेंड, बकरी आदि की कुर्बानी होती है। बकरीद [को०]।

ईदुलफितर—सज्ञा स्त्री० [अ० ईदुलफित्र] दे० 'ईद'।

ईदृश१— क्रि० वि० [स०] [स्त्री० ईदृशी] इस प्रकार। इस तरह। इस भाँति। ऐसे।

ईदृश२—वि० इस प्रकार का। ऐसा।

ईद्रीजीत(पु)—वि० [हिं० इंद्रीजीत] दे० 'इद्रियजित्'। उ०—मुज को आडवे दवजर कोपिन। ईस विध्र जोगी ईद्रीजीत।—रामानद०, पृ० ४६।

ईप्सन—सज्ञा पुं० [स०] प्राप्त करने की अभिलाषा करना [को०]।

ईप्सा-संज्ञा स्त्री० [स०] [वि० ईप्सित, ईप्सु] १ इच्छा। वाछा। अभिलाषा। उ०-मान कर भी, सभी ईप्सा, सभी काक्षा, जगत् की उपलब्धियाँ सब है लुभानी भ्राति।—हरीघाम०, पृ० १३। २ प्राप्ति की इच्छा।

ईप्सित— वि० [स०] चाहा हुआ। अभिलषित। उ०—(क) अब अपनी नौका ईप्सित घाट पर आई।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११८। (ख) सारे श्रम उसको फूलों के हार से लगते हैं जो पाता ईप्सित वस्तु को।—करुणा०, पृ० १४।

ईप्सु—वि० [स०] चाहनेवाला। वाछा करनेवाला।

ईफाय-सज्ञा पुं० [अ० ईफाय] वचनपालन। वचन पूरा करना [को०]।

ईफायडिगरी—सज्ञा स्त्री० [अ० ईफाय + अ० डिगरी] डिगरी रुपया अदा कर देना। जर डिगरी बेबाक कर देना।

ईफायवादा-सज्ञा पुं० [अ०ईफाय + फा०ए-अ० वादह्] [illegible] वादे को निभाना [को०]।

ईवीसीवी(पु)—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] सिसकारी का शब्द। 'सी' शब्द जो संभोग के अत्यत आनद के समय मुँह मे निकलता उ०—गूजरी बजावै रव रसना सजावै कर चूरी छमकावै गहति गहकि कै। मुख मोरि त्योरी तोरि मौहैं नासिका [illegible] देव ईवीसीवी बोल बोलति पहकि कै।—देव (शब्द०)।

ईमन—सज्ञा पु० [फा० यमन]सतूर्ण जाति की एक रागिनी। ऐ उ०—आसा करि लागि पिय सो रटपवम सुर गा ईमन।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, २८८।

ईमनकल्यान -सज्ञा पु० [हिं० ईमन + सं०कल्याण] एक मि[illegible] राग का नाम।

ईमाँ—संज्ञा पुं० [अ० ईमान] दे० 'ईमान'। उ०—ईमाँ की [illegible] दुश्मने जानी है हमारा।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५।

ईमा-सज्ञा पु० [अ०]१ इशारा। सकेत। आदेश। हुक्म। २ [illegible] तात्पर्य [को०]।

ईमान—सज्ञा पुं० [अ०] १ विश्वास। आस्था। आस्तिक्य बु[illegible] उ०-दादू दिल अरवाह का सो अपना ईमान। सोई सा[illegible] राखिए जहँ देखइ रहिमान।—दादू (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लाना = विश्वास या आस्था रखना। जैसे—[illegible] कहते हैं कि ईसा पर ईमान लाओ।

२. चित्त की सद्वृत्ति। अच्छी नीयत। धर्म सत्य। जैसे (क) ईमान से कहना, झूठ मत बोलना। (ख) ईमान ही कुछ है, उसे चार पैसे के लिये मत छोडो। (ग) यह तो ई[illegible] की बात नहीं है।

क्रि० प्र०—खोना। —छोडना। —डिगना। —डिगा —डोलना। —डोलाना।

मुहा०—ईमान की कहना = सच कहना। न्याय की बात [illegible] ईमान जाना = नीयत विगडना। उ०-उधर है जेल की [illegible] इधर है कौम की लानत। उधर आराम जाता है इधर ई[illegible] जाता है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६५५। ईमान [illegible] न होना = धर्मभाव दृढ न रहना। ईमान देना = सत्य छोडन धर्म विरुद्ध कार्य करना। ईमान मे फर्क आना = धर्म भा[illegible] ह्रास होना। नीयत विगडना। ईमान लाना = दृढ विश्व[illegible] करना। ईमान से कहना = सच सच कहना।

ईमानदार—वि० [अ० ईमान + फा० दार] १. विश्वास करनेवा[illegible] २ विश्वासपात्र। जैसे—ईमानदार नौकर। ३ सच्चा। दियानतदार। जो लेनदेन या व्यवहार में सच्चा हो। ५ [illegible] का पक्षपाती।

ईमानदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० ईमान + फा० दारी] १ ईमान स्थिति। ईमानदार होने का भाव। २ सत्यनिष्ठा। दिय[illegible] दारी [को०]।

ईर१—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईड़'।

ईर²--संज्ञा पुं० [सं०] वायु [को०]।

ईरखा (पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० ईर्षा] दे० 'ईर्षा'। उ०--करै ईरखा। सो जु तिय मनभावन सो मान।--मतिराम ग्र०, पृ० २६४।

ईरज--संज्ञा पुं० [सं०] वायुपुत्र हनूमान् [को०]।

ईरण¹--वि० [सं०] विक्षुब्ध करनेवाला। उत्तेजित करनेवाला [को०]।

ईरण²--संज्ञा पुं० १ हवा। पवन। २ जाना। गमन। ३ भेजना। प्रेषित करना। प्रेषण। ४ कष्ट से मल का निकलना। ५ कहना। कथन [को०]।

ईरपाद--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प [को०]।

ईरपुत्र--संज्ञा पुं० [सं०] हनूमान् [को०]।

ईरमद (पु)--संज्ञा पुं० [सं० इरम्मद] दे० 'इरम्मद'।

ईरान--संज्ञा पुं० [फा०] [वि० ईरानी] फारस देश।

ईरानी¹--वि० [फा०] ईरान से संबंधित। ईरान का [को०]।

ईरानी²--संज्ञा पुं० ईरान का निवासी [को०]।

ईरानी³--संज्ञा स्त्री० ईरान देश की भाषा [को०]।

ईरिण¹--संज्ञा पुं० [सं०] बलुआ मैदान। ऊसर जमीन।

ईरिण²--वि० [सं०] ऊसर [को०]।

ईरित (पु)--वि० [सं०] प्रेषित। प्रेरित। उ०--ऊधो विधि ईरित भई है माग कीरति, लही रति जसोदा सुत पायनि परस की।--घनानद, पृ० २०२। २ कहा हुआ (को०)। ३ काँपता हुआ। हिलता डुलता हुआ [को०]। ४ गया हुआ। गत [को०]।

ईर्म¹--वि० [सं०] १ क्षुब्ध। २ निरंतर गतिशील। ३ उत्तेजित करनेवाला [को०]।

ईर्म²--संज्ञा पुं० १ बाहु। २ व्रण। फोडा [को०]।

ईर्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] यतियों की भाँति भ्रमण करना [को०]।

ईर्यासमिति--संज्ञा पुं० [सं०] जैनमतानुसार साढ़े तीन हाथ तक आगे देखकर चलने का नियम। यह नियम इस कारण रखा गया है कि जिससे आगे पड़नेवाले कीडे फतिंगे दिखाई पड़ें।

ईर्वारु--संज्ञा पुं० [सं०] ककडी [को०]।

ईर्षणा (पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० ईर्ष्यणा] ईर्ष्या। हसद। डाह। उ०--पर की पुण्य अधिक लखि सोई। तबै ईर्षणा मन मे होई।--विश्राम (शब्द०)।

ईर्षा--संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० ईर्षालु, ईर्षित, ईर्षु] दूसरे की बढती देखकर होनेवाली जलन। डाह। हसद। उ०--तजि द्वेष ईर्षा द्रोह निंदा देश उन्नति सब चहैं।--भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५१४।

ईर्षारति--संज्ञा पुं० [सं०] अर्धनपुंसक व्यक्ति [को०]।

ईर्षालु--वि० [सं०] ईर्षा करनेवाला। दूसरे की बढती देखकर जलनेवाला। दूसरे के उत्कर्ष से दुखी होनेवाला।

ईर्षापंड--संज्ञा पुं० [सं० ईर्षाषण्ड] एक प्रकार का अर्धनपुंसक व्यक्ति। हिरसी टट्टू।

ईर्षित- वि० [सं०] जिससे ईर्षा की गई हो।

ईर्षु--वि० [सं०] डाह करनेवाला। ईर्षालु।

ईर्ष्य--वि० [सं०] ईर्षालु [को०]।

ईर्ष्यक¹--संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार के नपुंसक जिन्हें उस समय कामोत्तेजना होती है जिस समय वे किसी दूसरे को मैथुन करते हुए देखते हैं।

ईर्ष्यक--वि० ईर्षालु। डाह करनेवाला [को०]।

ईर्ष्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईर्षा'। उ०--ईर्ष्या हमारे चित से क्षण मात्र भी हटती नहीं।--भारत०, पृ० १८६।

ईर्ष्यालु--वि० [सं०] दे० 'ईर्षालु' [को०]।

ईर्ष्यु--वि० [सं०] दे० 'ईर्ष्य' [को०]।

ईल¹--संज्ञा पुं० [देश०] एक बनैला जंतु।

ईल²--संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की मछली। बाँम।

ईलि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ यष्टि। लाठी। लगुड। २ एक शस्त्र। छोटी असि या कटार [को०]।

ईली--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईलि' [को०]।

ईश¹--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईशा, ईशी] १ स्वामी। मालिक। उ०--जो सबते हित मोकहँ कीजत, ईश दया करिकै वह दीजत।--रामचंद्र०, पृ० १६१। २. राजा। ३ ईश्वर। परमेश्वर। ४ महादेव। शिव। रुद्र। उ०--चंद्रहि बंदत हैं सब केशव ईश ते बंदनता अति पाई।--रामचं०, पृ० १६१

यौ०--ईशकोण।

५ ग्यारह की संख्या। ६ आर्द्रा नक्षत्र। ७ एक उपनिषद् जो शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि शाखा के अंतर्गत है। इसका पहला मंत्र 'ईश' शब्द से प्रारंभ होता है। ईशावास्य उपनिषद्।

यौ०--देवेश। नरेश। वागीश। सुरेश।

८ पारद। पारा।

ईश²--वि० १ ऐश्वर्यशाली। २ सामर्थ्यवान् [को०]।

ईशकोण--संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर और पूर्व का कोना [को०]।

ईशता--संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वामित्व। प्रभुत्व।

ईशत्व--संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वरत्व। स्वामित्व। प्रभुत्व। उ०--उस सृष्टिकर्ता ईश का ईशत्व क्या हममे नहीं।--भारत०, पृ० १५५।

ईशनगरी--संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी [को०]।

ईशपुरी--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईशनगरी' [को०]।

ईशबल--संज्ञा पुं० [सं०] पाशुपत नामक अस्त्र [को०]।

ईशसख--संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर [को०]।

ईशा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऐश्वर्य। २ ऐश्वर्यसंपन्न स्त्री। ३ दुर्गा।

ईशान¹--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईशानी] १ स्वामी। अधिपति। प्रभु। २ शिव। महादेव। रुद्र। ३ ग्यारह की संख्या। ४. ग्यारह रुद्रों में से एक। ५ शिव की आठ मूर्तियों मे से एक। सूर्य। ६ पूरब और उत्तर के बीच का कोना। ७ आर्द्रा नक्षत्र (को०)। ८ प्रकाश। ज्योति (को०)। ९ शमी वृक्ष (को०)।

ईशान²--वि० १ शास्ता। शासक। २ ऐश्वर्यशाली। ३. संपन्न [को०]।

ईशानी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा। २ सेमल का वृक्ष [को०]।

ईशिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आठ प्रकार की सिद्धियों मे से एक जिससे साधक सब पर शासन कर सकता है। २. ईश्वरत्व। ३. प्राधान्य।

ईशित्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ईशिता'।

ईशी¹—वि० [सं० ईशिन्] १. शासन रखनेवाला।२. प्रधानता रखनेवाला [को०]।

ईशी²—संज्ञा पुं० १ देवता। २ पति। ३ मालिक। स्वामी [को०]।

ईश्वर¹—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० ईश्वरी] १. मालिक। स्वामी। प्रभु। २. योगशास्त्र के अनुसार क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से पृथक् पुरुषविशेष। परमेश्वर। भगवान्।
 यौ०—ईश्वरप्रणिधान। ईश्वराधिष्ठात। ईश्वराधिष्ठित। ईश्वराधीन।
 ३. महादेव। शिव। ४. रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों मे से एक जो संसार का कर्ता, अपादान, अंतर्यामी और ऐश्वर्य तथा वीर्य आदि से संपन्न माना जाता है। (शेष दो पदार्थ चित् और अचित् हैं)। ५. राजा। ६. यति। ७. पारद। पारा। ८. पीतल। ९ कामदेव। पुष्पधन्वा (को०)। १० एक संवत्सर [को०]।

ईश्वर²—वि० समर्थ। शक्तिमान्। संपन्न।

ईश्वरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वर की भावना। ईश्वर भाव। उ०—(क) नाहिं ईश्वरता अटकी वेद मे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १३४। (ख) यदि जग मे है ईश्वरता तो है मनुष्यता मे ही।—सागरिका, पृ० ८०।

ईश्वरनिषेध—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर मे अविश्वास। नास्तिकता [को०]।

ईश्वरनिष्ठ—वि०[सं०] ईश्वर मे विश्वास या निष्ठा रखनेवाला [को०]।

ईश्वरपूजक—वि० [सं०] १. ईश्वर की उपासना करनेवाला। २. पवित्र [को०]।

ईश्वरप्रणिधान—संज्ञा पुं० [सं०] योगशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के नियमों मे से अंतिम एकाग्रध्यानात्मक। ईश्वर मे अत्यंत श्रद्धा और भक्ति रखना तथा अपने सब कर्मों के फलों को उसे अर्पित करना।

ईश्वरप्रसाद—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् की कृपा [को०]।

ईश्वरभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राधान्य। २ ऐश्वर्य। ३ सामर्थ्य [को०]।

ईश्वरवाद—संज्ञा पुं० [सं० ईश्वर+वाद] ईश्वर को जगत् का कर्ता माननेवाला मत जिसमे भगवान् के दया दाक्षिण्य की झलक जगत् के नाना रूपों और व्यापारों मे रहस्य की दृष्टि मे देखी जाती है। उ०—ईसाइयों मे जो रहस्यभावना प्रचलित थी वह ईश्वरवाद के भीतर थी।—चिंतामणि, भा० २, पृ० १४०।

ईश्वरवादी—वि० [सं० ईश्वर+वादिन्] ईश्वरवाद का अनुयायी।

ईश्वरविभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] परमात्मा के विभिन्न स्वरूप (को०)।

ईश्वरसख—संज्ञा पुं० [सं०] शिवजी के सखा, कुबेर।

ईश्वरसद्म—संज्ञा पुं० [सं०] देवालय। मंदिर [को०]।

ईश्वरसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] परमात्मा का पूजन अर्चन [को०]।

ईश्वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २ लक्ष्मी। ३. शक्ति [को०]।

ईश्वराधीन—वि० [सं०] ईश्वर के इच्छानुसार होनेवाला [को०]।

ईश्वरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'ईश्वरा'। २ नाकुली, क्षुद्रजटा, वध्या कर्कटी, लिंगिनी आदि पौधे [को०]।

ईश्वरी²—वि०, दे० 'ईश्वरीय' [को०]।

ईश्वरीय—वि० [सं०] १.ईश्वर संबंधी। उ०—है मात सबके आननों पर ईश्वरीय प्रसाद के।—भारत०, पृ० ६५।

ईश्वरोपासना—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वरसेवा। ईश्वर की पूजा [को०]

ईष—संज्ञा पुं० [सं०] १ आश्विन मास। कुआर। २. शिव का एक गण। तृतीय मनु के एक पुत्र का नाम [को०]।

ईषण—वि० [सं०] शीघ्रता या जल्दी करनेवाला [को०]।

ईषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शीघ्रता। तेजी। २ तेज गति [को०]।

ईषत्¹—वि० [सं०] थोड़ा। कुछ। कम। अल्प।
 यौ०—ईषद् उष्ण। ईषद् हास्य।

ईषत्²—क्रि० वि० कुछ कुछ। अल्प रूप में। आंशिक रूप मे [को०]।

ईषत्कर—वि० [सं०] १. आंशिक रूप मे करनेवाला। कम करनेवाला। २ आसान [को०]।

ईषत्कार्य—वि० [सं०] १. अत्यंत आसान। २ अल्पप्रभावयुक्त [को०]।

ईषत्पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] क्षुद्र व्यक्ति [को०]।

ईषत्स्पृष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वर्णों के उच्चारण मे एक प्रकार का आभ्यंतर प्रयत्न जिसमे जिह्वा, तालु, मूर्धा और दंत को तथा दाँत, ओष्ठ को कम स्पर्श करता है। 'य', 'र', 'ल', 'व' ईषत्स्पृष्ट वर्ण हैं।

ईषद्—वि० [सं०] दे० 'ईषत्'।

ईषद—वि० [सं० ईषद्, हिं० ईषद] दे० 'ईषद्'।

ईषदहास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईषद्हास] हलकी हँसी। मुसकराहट। उ०—ईषदहास दंत दुति विगसित मानिक मोती धरे जनु पोई।—सूर०, १०।२१०।

ईषदुष्ण—वि० [सं०] कुनकुना। कुछ कुछ गरम [को०]।

ईषद्दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. साधारण दृष्टि। स्वल्प दृक्पात। २ चितवन [को०]।

ईषद्धास संज्ञा पुं० [सं० ईषद्+हास्य] हलकी मुसकान। मुस्कराहट [को०]।

ईषना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० एषणा] प्रबल इच्छा। उ०—सुत वित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी।—मानस, ७।७१।

ईषल्लभ—वि० [सं०] अल्प मूल्य मे उपलब्ध [को०]।

ईषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाड़ी या हल में वह लंबी लकड़ी जिसके सिरे पर जुआ बाँध कर बैल को जोतते हैं। हरसा। हरिस।

ईषादंड—संज्ञा पुं० [सं० ईषादण्ड] हल की मूठ [को०]।

ईषादंत¹—संज्ञा पुं० [सं० ईषादन्त] १. लंबे दाँत का हाथी। २. हल की मूठ। ३. हाथी के दाँत [को०]।

ईषादंत²—वि० लंबे दाँतोंवाला [को०]।

ईपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हाथी की आँख का खोडरा या गोलक। २ चित्रकारी मे रंग भरने की कलम। कूँची। ३. बाण। ४. सिरकी। सींक।

ईंधिर—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि । आग [को०] ।

ईपीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईपिका' [को०] ।

ईप्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. वसंत ऋतु । २. कामदेव । मदन [को०] ।

ईप्व—संज्ञा पुं० [सं०] अध्यात्म की शिक्षा देनेवाले गुरु [को०] ।

ईस(५)—संज्ञा पुं० [सं० ईश, प्रा० ईस] दे० 'ईश' । उ०—तेहि द्विज बटु आज्ञा करत अहह कठिन अति ईस ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३०७ ।

ईसन(५)—संज्ञा पुं० [सं० ईशान] ईशान कोण । पूरब और उत्तर के बीच का कोना । उ०—सतमी पूनिउँ पायब आछी । अठइँ अमावस ईसन लाछी ।—जायसी (शब्द०) ।

ईसबगोल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इसबगोल' ।

ईसर¹(५)—संज्ञा पुं० [सं० ऐश्वर्य] धनसंपत्ति । ऐश्वर्य । वैभव । उ०—कहेन्हि न रोव बहुत तें रोवा । अब ईसर भा दारिद खोवा ।—जायसी (शब्द०) ।

ईसर²(५)—संज्ञा पुं० [सं० ईश्वर प्रा० इस्सर, ईसर] दे० 'ईश्वर' । उ०—ईसर केर घंट रन बाजा ।—जायसी ग्रं०, पृ० ११७ ।

ईसरगोल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इसबगोल' ।

ईसरी(५)—[सं० ईश्वरीय] दे० 'ईश्वरीय' ।

ईसवी—वि० [अ०] ईसा से संबंध रखनेवाला ।

यौ०—ईसवी सन्=ईसा मसीह के जन्मकाल से चला हुआ संवत् ।

विशेष—यह संवत् पहली जनवरी से आरंभ होता है और इसमें प्रायः ३६५ दिन होते हैं । ठीक ठीक सौर वर्ष का हिसाब पूरा करने के लिये प्रति चौथे वर्ष जब सन् की संख्या चार से पूरी विभक्त हो जाती है, तब फरवरी में एक दिन बढ़ा दिया जाता है और वह वर्ष, ३६६ दिन का हो जाता है । इसमें और विक्रमीय संवत् में ५७ वर्ष का अंतर है ।

ईसा—संज्ञा पुं० [अ०] ईसाई धर्म के प्रवर्तक या आचार्य ।

यौ०—ईसामसीह=ईसा जिनका धर्माभिषिंचन किया गया था ।

ईसाई—वि० [फा०] ईसा को माननेवाला । ईसा के बनाए धर्म पर चलनेवाला । क्रिश्चियन । उ०—मैं इससे घृणा करता हूँ क्योंकि यह ईसाई है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५६४ ।

ईसान(५)—संज्ञा पुं० [सं० ईशान] दे० 'ईशान' ।

ईसानी(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० ईशानी] दे० 'ईशानी' ।

ईसार—संज्ञा पुं० [अ०] दूसरे के लिये अपने स्वार्थ का त्याग करना [को०] ।

ईसारपेशा—वि० [अ० ईसार+फा० पेशह्] परोपकारी । अपना स्वार्थत्याग करके दूसरों का हित करनेवाला [को०] ।

ईसुर(५)†—संज्ञा पुं० [हिं० ईश्वर] दे० 'ईश्वर' । उ०—जौ ईसुर हो तो कहूँ सुनतो करुना बैन ।—श्यामा०, पृ० १६९ ।

ईसुरी¹(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० ईश्वरी] दुर्गा । पार्वती । उ०—इनके नमक तें ईसुरी हमको करै रन में अदा ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १८ ।

ईसुरी²—वि० [सं० ईश्वरीय] दे० 'ईश्वरीय' । उ०—दस औतार ईसुरी माया करता करि जिन्ह पूजा । कहै कबीर सुनो हो साधो उपजै खपै सो दूजा ।—घट०, पृ० २६४ ।

ईस्ट—संज्ञा पुं० [अ०] पूरब । पूर्व दिशा ।

ईस्वर(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] 'ईश्वर' । उ०—ऐसैं सुजस सुपंथ मैं ईस्वर सबकों देत ।—हम्मीर०, पृ० ४१ ।

ईस्वरता(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईश्वरता' । उ०—श्री गुसाईं जी वाकों समुझावत में अपनी ईस्वरता जताए ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १५६ ।

ईहग—संज्ञा पुं० [सं० ईहा=इच्छा+ग=गमन करनेवाला] कवि । चारण ।—(डिं०) ।

ईहाँ(५)—अव्य० [हिं०] दे० 'यहाँ' । उ०—इह न कहइ अस ईहाँ ऐसे । जैसिन वस्तु प्रकासक तैसे ।—नंद० ग्रं०, पृ० ११७ ।

ईहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० ईहित] १. चेष्टा । उ०—सूछम समुझि परासयहि ईहा साभिप्राय । कर जोरत लखि हरिहि तिय लिय कज्जल दृग लाय ।—पदमाकर ग्रं०, पृ० ६३ । २. उद्योग । ३. इच्छा । वांछा । ४. लोभ ।—(हिं०)

ईहाम—संज्ञा पुं० [अ०] भ्रांति । भ्रम । वहम [को०] ।

ईहामृग—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाटक का एक भेद जिसमें चार अंक होते हैं । इसका नायक ईश्वर या किसी देवता का अवतार और नायिका दिव्य स्त्री होती है जिसके कारण युद्ध होता है । इसकी कथा प्रसिद्ध और कुछ कल्पित होती है । कुछ लोग इसमें एक ही अंक मानते हैं । मृग के तुल्य अलभ्य कामिनी की नायक इसमें ईहा करता है । अतः इसे ईहामृग कहते हैं । २. भेड़िया ।

ईहार्थी—वि० [सं० ईहार्थिन्] [वि० स्त्री० ईहार्थिनी] धनलाभ या उद्देश्यपूर्ति के लिये यत्नशील [को०] ।

ईहावृक—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़बग्घा ।

ईहित—वि० [सं०] इच्छित । ईप्सित । चाहा हुआ । वांछित ।